॥ श्रीहरिः ॥

511

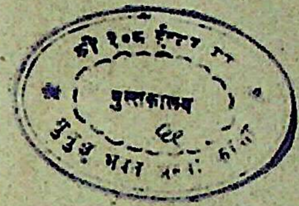
संक्षिप्त महाभारत

[द्वितीय खण्ड]

कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रास्थानिक और स्वर्गारोहणपर्व

गीताप्रेस, गोरखपुर





511

॥ श्रीहरिः ॥

संक्षिप्त महाभारत

द्वितीय खण्ड

[कर्णपर्व, शल्यपर्व, सौप्तिकपर्व, स्त्रीपर्व, शान्तिपर्व, अनुशासनपर्व, आश्वमेधिकपर्व, आश्रमवासिकपर्व, मौसलपर्व, महाप्रास्थानिकपर्व तथा स्वर्गारोहणपर्व]

[महाभारतका सरल और संक्षिप्त हिंदी अनुवाद]



सम्पादक तथा संशोधक

जयदयाल गोयन्दका

गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रकाशक—गोविन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०२७ से २०५२ तक	१,६२,५००
सं० २०५३ अठरहवाँ संस्करण	४,१००
	योग १,६६,६००

मूल्य { प्रथम खण्ड एवं द्वितीय खण्ड } दोनों खण्डोंका सम्पूर्ण एक सौ पचास रुपये

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर —२७३००५

फोन : ३३४७२१

भा० १

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

इस प्रकार महाभारतका संक्षिप्त भावानुवाद समाप्त हुआ। यह कैसा हुआ है, इसका निर्णय तो विज्ञ पाठक ही कर सकेंगे। मुझे तो इस कार्यमें लगनेसे लाभ-ही-लाभ हुआ है। महाभारतको संक्षेप करनेके बहाने मुझे इस ग्रन्थके विचारपूर्वक अध्ययन करने एवं इसमें आये हुए पवित्र चरित्रोंके आलोचन, शिक्षाप्रद कथाओंके मनन तथा भक्ति, ज्ञान एवं सदाचारकी शिक्षासे पूर्ण प्रसंगप्राप्त उपदेशोंके परिशीलन करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ, जिससे मेरा महाभारत-सम्बन्धी ज्ञान तो बढ़ा ही है।

महाभारतका भारतीय वाङ्मयमें बहुत ऊँचा स्थान है। इसे पञ्चम वेद भी कहते हैं। इसका विद्वानोंमें वेदोंका-सा आदर है। इसमें अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—चारों ही पुरुषार्थोंका निरूपण किया गया है। धर्मके तो प्रायः सभी अङ्गोंका इसमें वर्णन है। वर्णाश्रमधर्म, राजधर्म, आपद्धर्म, दानधर्म, श्राद्धधर्म, स्त्रीधर्म, मोक्षधर्म आदि विविध धर्मोंका शान्तिपर्व एवं अनुशासनपर्वमें भीष्मजीके द्वारा बहुत विशद वर्णन किया गया है। भगवद्गीता-जैसा अनुपम ग्रन्थ, जिसे सारा संसार आदरकी दृष्टिसे देखता है और जिसे हम विश्वसाहित्यका सर्वोत्तम ग्रन्थ कहें तो भी कोई अत्युक्ति न होगी, इसी महाभारतमें है। ज्ञान, कर्म और भक्तिका एक ही स्थानपर जैसा सुन्दर विवेचन गीतामें है वैसा अन्यत्र शायद ही कहीं मिलेगा। भगवद्गीता स्वयं भगवान्‌की दिव्य वाणी ही जो ठहरी। इस प्रकार जिस ओरसे भी हम महाभारतपर दृष्टिपात करते हैं, उसे हम परमोपयोगी पाते हैं। महाभारतके सम्बन्धमें स्वयं व्यासजीने कहा है—

अष्टादशपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः।
वेदाः साङ्गास्तथैकत्र भारतं चैकतः स्थितम्॥
यथा समुद्रो भगवान् यथा हि हिमवान् गिरिः।
ख्यातावुभौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते॥
इदं भारतमाख्यानं यः पठेत् सुसमाहितः।
स गच्छेत् परमां सिद्धिमिति मे नास्ति संशयः॥
यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे सुबहुश्रुताय।
पुण्यां च भारतकथां सततं शृणोति
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव॥
(महाभारत, स्वर्गारोहणपर्व)

'अठारहों पुराण, सारे धर्मशास्त्र (स्मृतिग्रन्थ) तथा व्याकरण, ज्यौतिष, छन्दःशास्त्र, शिक्षा, कल्प एवं निरुक्त—इन छहों अङ्गोंसहित चारों वेद—ये सब मिलाकर एक ओर और अकेला महाभारत एक ओर। अर्थात् वेद-वेदाङ्ग, पुराण एवं धर्मशास्त्रोंके अध्ययनसे जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह अकेले महाभारतके अध्ययनसे प्राप्त हो सकता है। जिस प्रकार समुद्र और हिमालयपर्वत दोनोंको ही रत्नोंका आकर कहा गया है, उसी प्रकार यह महाभारत ग्रन्थ भी उपदेश—रत्नोंकी खान कहा जाता है। एकाग्र मनसे जो इस महाभारत इतिहासका पाठ करता है, उसे मोक्षरूप परम सिद्धि निःसंदेह प्राप्त हो जाती है। एक मनुष्य तो वेदज्ञ एवं अनेक शास्त्रोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंको सोनेसे मढ़े हुए सींगोंवाली सौ गौएँ दान करता है और दूसरा नित्य महाभारतकी पुण्यमयी कथाका श्रवण करता है; दोनोंको समान फल मिलता है।' जिस महाभारतकी स्वयं वेदव्यासजीने ऐसी महिमा गायी है, उसका मनोयोगपूर्वक जितना भी पठन-पाठन होगा, उतना ही जगत्‌का कल्याण होगा।

इसी भावनासे प्रेरित होकर सम्पूर्ण महाभारतका संक्षिप्त भावानुवाद छापनेका विचार किया गया था। अब वह योजना निर्विघ्न पूर्ण हो भी गयी। महाभारतको संक्षिप्त करनेमें मैने जहाँतक हो सका है; इस बातका ध्यान रखा है कि जो कथाएँ तथा जो स्थल सार्वजनिक लाभकी दृष्टिसे अधिक उपयोगी हों, उन्हें ही लिया जाय। फिर भी कुछ ऐसे विशेष उपयोगी स्थल छूट भी गये हैं और ऐसे स्थल भी रख लिये गये हैं, जो कदाचित् उतने उपयोगी न हों। इस प्रकारकी भूलोंके लिये मैं विज्ञ पाठकोंसे हाथ जोड़कर क्षमा-याचना करता हूँ। यदि कोई सज्जन, जिन्होंने महाभारतका विशेष मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया हो, मुझे इस प्रकारकी भूलें बतलानेकी कृपा करेंगे तो मैं उनका आभारी होऊँगा।

महाभारतके पढ़ने-सुननेका अधिकार मनुष्यमात्रको

है। कोई किसी भी समुदाय अथवा जातिका क्यों न हो, वह महाभारतका अध्ययन कर उसमें आये हुए उत्तमोत्तम उपदेशोंको यथाधिकार आचरणमें लाकर अपना कल्याण कर सकता है। महाभारतकी रचना करनेमें वेदव्यासजीका प्रधान उद्देश्य यही था कि स्त्रियाँ, शूद्र और पतित ब्राह्मण आदि जिन्हें शास्त्र वेद पढ़नेकी आज्ञा नहीं देते, वे लोग भी वेदोंके ज्ञानसे वञ्चित न रह जायँ। इसी अभिप्रायसे ऊपर महाभारतके माहात्म्यके श्लोकोंमें यह बात कही गयी है कि अकेले महाभारतके पढ़ लेनेसे ही वेद-वेदाङ्ग, पुराण एवं धर्मशास्त्रोंका ज्ञान हो सकता है। इससे वेदोंको नीचा बतलाना ग्रन्थकारका अभीष्ट नहीं है। वस्तुतः महाभारतमें जो कुछ कहा गया है, उसका आधार तो हमारे सर्वमान्य वेद और स्मृतियाँ ही हैं। वेदों और स्मृतियोंका ही तात्पर्य सरल एवं रोचक ढंगसे महाभारतमें वर्णित है।

महाभारत एक उच्च कोटिका काव्य तो है ही, यह सच्चा इतिहास भी है। यह उपन्यासोंकी भाँति कपोल-कल्पित अथवा अतिरञ्जित नहीं है। जिन महर्षि वेदव्यासकी दी हुई दिव्यदृष्टिको पाकर संजय हस्तिनापुरमें बैठे हुए कुरुक्षेत्रमें होनेवाले युद्धकी छोटी-सी-छोटी घटनाएँ ही नहीं अपितु भगवान्‌का तत्त्व, प्रभाव एवं रहस्य तथा दूसरोंके मनकी बाततक जाननेमें समर्थ हो सके, उन्हीं भगवत्कल्प महर्षिकी वाणीमें प्रमाद, असत्य एवं अतिशयोक्ति आदिकी तो कल्पना भी नहीं करनी चाहिये। वे त्रिकालज्ञ तथा सर्वथा राग-द्वेषशून्य थे। महाभारतके कलेवरके सम्बन्धमें भी लोग अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ किया करते हैं; परंतु इस विषयमें मूल ग्रन्थको ही हमें प्रमाण मानना चाहिये, महाभारतमें ही इसकी श्लोक-संख्या एक लाख बतलायी गयी है। विद्या-बुद्धिके भंडार स्वयं श्रीगणेशजीने इसे लिखा था और पूरे तीन वर्षोंमें यह ग्रन्थ तैयार हुआ था। फिर इसके विषयमें ऐसी शङ्का करना कि यह पूरा ग्रन्थ वेदव्यासजीका लिखा हुआ है या नहीं, कहाँतक युक्तियुक्त है? ऐसे परममान्य और परमोपयोगी ग्रन्थको सर्व-सुलभ और सर्वोपयोगी बनानेके लिये ही इसका संक्षिप्त भावानुवाद छापा गया है।

अनुवादका कार्य पूज्य पं० श्रीशान्तनुविहारीजी (स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती) के द्वारा प्रारम्भ हुआ था; परंतु दो पर्वोंका ही अनुवाद हो सका; फिर संन्यास ग्रहण कर लेनेके कारण वे इस कार्यको आगे नहीं चला सके। इसलिये पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री तथा श्रीयुत मुनिलालजी (स्वामी श्रीसनातनदेवजी) ने मिलकर शेष अनुवाद किया। ग्रन्थका अनुवादन-संशोधन करने तथा प्रूफ आदि देखनेमें सम्पादकीय विभागके अतिरिक्त कई एक बन्धुओं तथा मित्रोंसे बहुमूल्य सहायता प्राप्त हुई, जिसके लिये मैं उन सबका कृतज्ञ हूँ। आधुनिक परिपाटीके अनुसार उन्हें धन्यवाद देना तो उनके कार्यका महत्त्व घटाना होगा। इस कार्यमें कई विद्वानोंका सहयोग होनेपर भी दृष्टिदोषसे भूलोंका रह जाना तो सर्वथा सम्भव ही है। इसके लिये सभी पाठकोंसे मैं हाथ जोड़कर क्षमा चाहता हूँ।

विनीत—

जयदयाल गोयन्दका



श्रीहरिः

संक्षिप्त महाभारत द्वितीय खण्डके भावानुवादकी विषय-सूची

सौप्तिकपर्व

स्त्रीपर्व

अनुशासनपर्व

आश्रमवासिकपर्व

मौसलपर्व



चित्र-सूची

रेखाचित्र

विषय	पृष्ठ-संख्या

अनुशासनपर्व

आश्वमेधिकपर्व

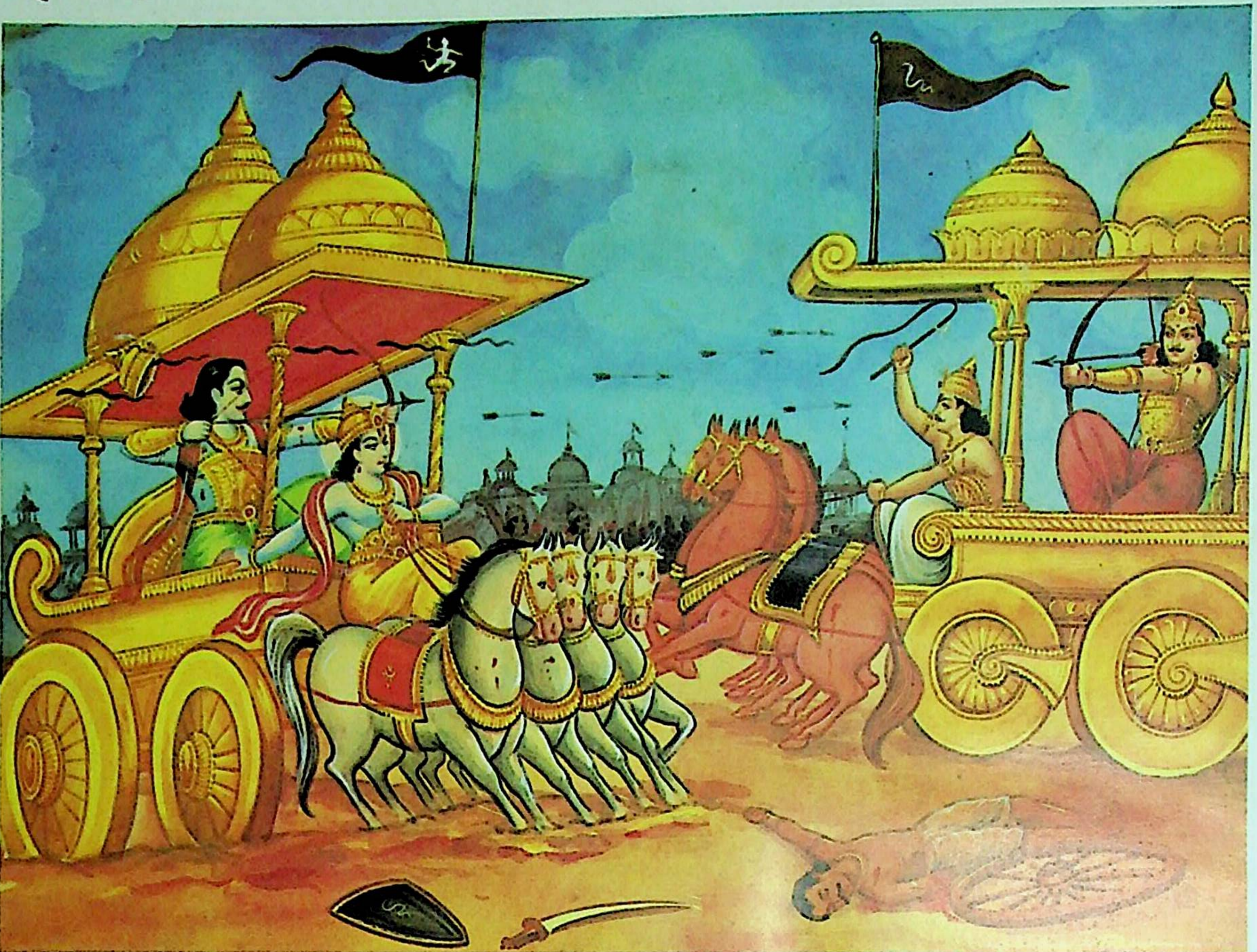
आश्रमवासिकपर्व

मौसलपर्व

महाप्रास्थानिकपर्व

स्वर्गारोहणपर्व

——::०::——



श्रीकृष्णद्वारा अर्जुनकी सर्पमुख-बाणसे रक्षा

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

कर्णपर्व

कर्णके सेनापतित्वमें युद्धका आरम्भ और भीमके द्वारा क्षेमधूर्तिका वध

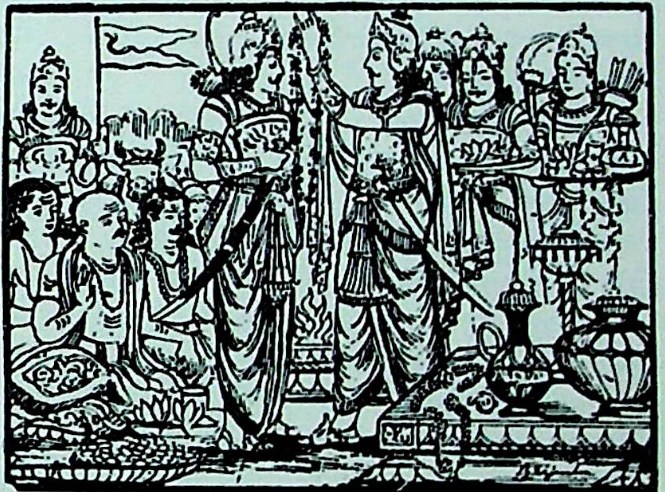
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप नर-रत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर विजय-प्राप्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! द्रोणाचार्यके मारे जानेसे दुर्योधन आदि राजा बहुत घबरा गये, शोकसे उनका उत्साह नष्ट हो गया। वे द्रोणके लिये अत्यन्त अनुताप करते हुए अश्वत्थामाके पास आकर बैठे और कुछ देरतक शास्त्रीय युक्तियोंसे उसे आश्वासन देते रहे; फिर प्रदोषके समय अपने-अपने शिविरमें चले गये। कर्ण, दुःशासन और शकुनिने दुर्योधनके ही शिविरमें वह रात व्यतीत की। सोते समय वे चारों ही पाण्डवोंको दिये हुए क्लेशोंपर विचार करते रहे। पाण्डवोंको जूएमें जो कष्ट भोगने पड़े थे तथा द्रौपदीको जो भरी सभामें घसीटकर लाया गया था—वे सब बातें याद करके उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ, उनका चित्त बहुत अशान्त हो गया।

तत्पश्चात् जब सबेरा हुआ तो सबने शास्त्रीय विधिके अनुसार अपना-अपना नित्यकर्म पूरा किया; फिर भाग्यपर भरोसा करके धैर्यधारणपूर्वक उन्होंने सेनाको तैयार होनेकी आज्ञा दी और युद्धके लिये निकल पड़े। दुर्योधनने कर्णका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया और दही, घी, अक्षत, स्वर्ण-मुद्रा, गौ, सोना तथा बहुमूल्य वस्त्रोंद्वारा उत्तम ब्राह्मणोंकी पूजा करके उनके आशीर्वाद प्राप्त किये। फिर सूत, मागध तथा वंदीजनोंने जय-जयकार किया। इसी प्रकार पाण्डव भी प्रातःकृत्य समाप्त कर युद्धका निश्चय करके शिविरसे बाहर निकले।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! अब तुम मुझे यह बताओ कि कर्णने सेनापति होनेके बाद कौन-सा कार्य किया।



सञ्जयने कहा—महाराज! कर्णकी सम्मति जानकर दुर्योधनने रणभेरी बजवायी और सेनाको तैयार हो जानेकी आज्ञा दी। उस समय बड़े-बड़े गजराजों, रथों, कवच बाँधनेवाले मनुष्यों तथा घोड़ोंका कोलाहल बढ़ने लगा। कितने ही योद्धा उतावले हो-होकर एक-दूसरेको पुकारने लगे। इन सबकी मिली हुई ऊँची आवाजसे आसमान गूँज उठा। इसी समय सेनापति कर्ण एक दमकते हुए रथपर बैठा दिखायी पड़ा। उसके रथपर श्वेत पताका फहरा रही थी। घोड़े भी सफेद थे। ध्वजामें सर्पका चिह्न बना हुआ था। रथके भीतर सैकड़ों तरकस, गदा, कवच, शतघ्नी, किङ्किणी, शक्ति, शूल, तोमर और धनुष रखे हुए थे। कर्णने शङ्ख बजाया और उसकी आवाज सुनते ही योद्धा उतावले होकर दौड़े। इस प्रकार कौरवोंकी बहुत बड़ी सेनाको उसने शिविरसे बाहर निकाला तथा पाण्डवोंको जीतनेकी इच्छासे उसका मगरके आकारका एक व्यूह बनाकर रणभूमिकी ओर कूच किया। उस मकर-

व्यूहके मुखके स्थानमें स्वयं कर्ण उपस्थित हुआ। दोनों नेत्रोंकी जगह शूरवीर शकुनि और उलूक खड़े हुए। मस्तक-भागमें अश्वत्थामा तथा कण्ठदेशमें दुर्योधनके सभी भाई थे। व्यूहके मध्यभागमें बहुत बड़ी सेनासे घिरा हुआ राजा दुर्योधन था। बायें चरणके स्थानमें कृतवर्मा खड़ा हुआ, उसके साथ रणोन्मत्त ग्वालोंकी नारायणी सेना भी थी। दाहिने चरणकी जगह कृपाचार्य थे, उनके साथ महान् धनुर्धर त्रिगर्तों और दाक्षिणात्योंकी सेना थी। वाम चरणके पिछले भागमें मद्रदेशीय योद्धाओंको साथ लेकर राजा शल्य खड़े हुए। दाहिने चरणके पीछे राजा सुषेण था, उसके साथ एक हजार रथियों और तीन सौ हाथियोंकी सेना थी। व्यूहकी पूँछके स्थानमें अपनी बहुत बड़ी सेनासे घिरे हुए दोनों भाई चित्र और चित्रसेन थे।

इस प्रकार व्यूह बनाकर कर्णने जब रणाङ्गणकी ओर कूच किया तो धर्मराज युधिष्ठिरने अर्जुनको देखकर कहा—'पार्थ ! देखो तो सही, कर्णने कौरव-सेनाकी किस तरह मोर्चेबंदी की है और महारथी वीर कैसे इसकी रक्षा कर रहे हैं। धृतराष्ट्रकी महासेनामें जितने बड़े-बड़े वीर थे, वे सब प्रायः मारे जा चुके हैं; अब थोड़े ही रह गये हैं। अतः मैं तो इसे तिनकेके समान समझता हूँ। इस सेनामें सूतपुत्र कर्ण ही एक महान् धनुर्धर वीर है, जिसे देवता भी नहीं जीत सकते। महाबाहो ! अब उस कर्णको मार डालनेसे ही तुम्हारी विजय होगी और मेरे हृदयका काँटा भी निकल जायगा। इसलिये तुम इच्छानुसार अपनी सेनाकी व्यूहरचना करो।'

भाईकी बात सुनकर अर्जुनने शत्रुओंके मुकाबलेमें अपनी सेनाका अर्धचन्द्राकार व्यूह बनाया। उसके वाम भागमें भीमसेन, दाहिने भागमें धृष्टद्युम्न तथा मध्यमें राजा युधिष्ठिर और अर्जुन खड़े हुए। नकुल और सहदेव—ये दोनों युधिष्ठिरके पीछे थे। पञ्चालदेशीय युधामन्यु और उत्तमौजा अर्जुनके पहियोंकी रक्षा करने लगे। शेष वीरोंमेंसे जिन्हें व्यूहमें जहाँ स्थान मिला, वे वहीं खूब उत्साहके साथ डट गये। इस प्रकार कौरव तथा पाण्डवोंने व्यूह बनाकर फिर युद्धमें मन लगाया। दोनों दलोंमें ऊँची आवाज करनेवाले बाजे बज उठे। विजयाभिलाषी शूरवीरोंका सिंहनाद सुनायी देने लगा। महान् धनुर्धर कर्णको व्यूहके मुहानेपर कवच धारण किये उपस्थित देख कौरव योद्धा द्रोणाचार्यके वियोगका दुःख भूल गये।

तदनन्तर कर्ण तथा अर्जुन आमने-सामने आकर खड़े हुए और दोनों एक-दूसरेको देखते ही क्रोधमें भर गये। उनके सैनिक भी उछलते-कूदते हुए परस्पर जा भिड़े। फिर तो भयानक युद्ध छिड़ गया; हाथी, घोड़े और रथोंके सवार तथा पैदल योद्धा एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे। वे अर्धचन्द्र, भल्ल, क्षुरप्र, तलवार, पट्टिश और फरसोंसे अपने प्रतिपक्षियोंके मस्तक काटने लगे। मरे हुए वीर हाथी, घोड़ों तथा रथोंसे गिर-गिरकर धराशायी होने लगे। सैनिकोंके हाथ, पैर और हथियार सभी चलने लगे; उनके द्वारा वहाँ महान् संहार आरम्भ हो गया। इस प्रकार जब सेनाका विध्वंस हो रहा था, उसी समय भीमसेन आदि पाण्डव हमलोगोंपर चढ़ आये। भीमसेन हाथीपर बैठे हुए थे। उन्हें दूरसे ही आते देख राजा क्षेमधूर्तिने, जो स्वयं भी हाथीपर सवार था, युद्धके लिये ललकारा और उनपर धावा कर दिया। पहले उन दोनोंके हाथियोंमें ही युद्ध आरम्भ हुआ। जब हाथी लड़ते-लड़ते आपसमें सट गये तो वे दोनों वीर तोमरोंसे एक-दूसरेपर जोरदार प्रहार करने लगे। फिर धनुष उठाकर दोनोंने दोनोंको बींधना आरम्भ किया। थोड़ी ही देरमें उन्होंने एक-दूसरेका धनुष काटकर सिंहनाद किया और परस्पर शक्ति एवं तोमरोंकी झड़ी लगा दी। इसी बीचमें क्षेमधूर्तिने बड़े वेगसे एक तोमरका प्रहार कर भीमसेनकी छाती छेद डाली, फिर गरजते हुए उसने छः तोमर और मारे।

भीमसेनने भी धनुष उठाया और बाणोंकी वर्षासे शत्रुके हाथीको बहुत पीड़ित किया; इससे वह भाग चला,



रोकनेसे भी नहीं रुका। क्षेमधूर्तिने किसी तरह हाथीको काबूमें किया और क्रोधमें भरकर भीमसेनको बाणोंसे बींध डाला। साथ ही उनके हाथीके भी मर्मस्थानोंमें चोट पहुँचायी। हाथी उस आघातको न सह सका। वह प्राण त्यागकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। भीमसेन उसके गिरनेसे पहले ही कूदकर जमीनपर आ गये और अपनी गदाके प्रहारसे शत्रुके हाथीको भी उन्होंने मार गिराया। क्षेमधूर्ति भी हाथीसे कूदकर नीचे आ गया और तलवार उठाकर भीमसेनकी ओर दौड़ा। यह देख भीमने उसपर गदासे चोट की। उसके आघातसे क्षेमधूर्तिके प्राण-पखेरू उड़ गये और वह तलवारके साथ ही हाथीके पास गिर पड़ा। महाराज! क्षेमधूर्ति कुलूत देशका यशस्वी राजा था, उसे मारा गया देख आपकी सेना व्यथित होकर रणभूमिसे भागने लगी।

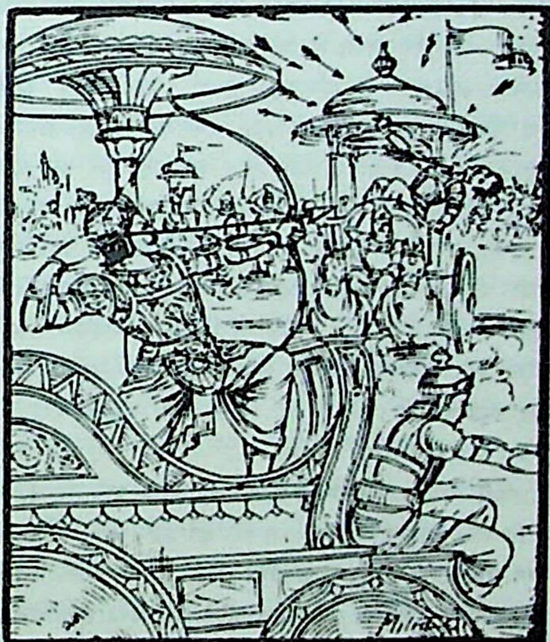


विन्द-अनुविन्द और चित्रसेन तथा चित्रका वध, अश्वत्थामा और भीमसेनका भयंकर युद्ध

सञ्जय कहते हैं—राजन्! तत्पश्चात् महान् धनुर्धर कर्णने अपने तीखे बाणोंसे पाण्डव-सेनाका संहार आरम्भ किया। उसके नाराचोंकी मारसे पीड़ित होकर झुंड-के-झुंड हाथी चिग्घाड़ने तथा सब ओर भागने लगे। यह देख सूतपुत्र कर्णपर नकुलने धावा किया। दूसरी ओर अश्वत्थामा दुष्कर पराक्रम दिखा रहा था, उसका भीमसेनने सामना किया। केकयदेशीय विन्द और अनुविन्दको सात्यकिने रोका। श्रुतकर्माने चित्रसेनका मुकाबला किया। चित्रको प्रतिविन्ध्यने रोक लिया। दुर्योधन राजा युधिष्ठिरसे भिड़ गया और क्रोधमें भरे हुए संशप्तकोंपर अर्जुनने धावा किया। धृष्टद्युम्न कृपाचार्यके और शिखण्डी कृतवर्माके साथ लड़ने लगा। श्रुतकीर्तिका शल्यके साथ और सहदेवका आपके पुत्र दुःशासनके साथ युद्ध होने लगा।

इस प्रकार उस द्वन्द्वयुद्धमें केकय वीर विन्द और अनुविन्द सात्यकिके ऊपर तेजस्वी बाणोंकी वर्षा करने लगे। यह देख सात्यकिने भी उन दोनोंको अपने सायकोंसे आच्छादित कर दिया। विन्द-अनुविन्दने जब पुनः सात्यकिकी छातीमें चोट पहुँचायी तो उसने उन दोनोंके धनुष काट दिये और तीखे बाणोंसे मारकर उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया। तब उन्होंने दूसरे धनुष हाथमें लिये और सात्यकिको बाणोंसे ढकना आरम्भ किया। उनकी बाणवर्षासे चारों ओर अन्धकार छा गया। फिर उन तीनों महारथियोंने एक-दूसरेके धनुष काट डाले। अब तो सात्यकिके क्रोधकी सीमा न रही, उसने तुरंत ही दूसरा धनुष लेकर उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ायी और एक अत्यन्त तीखा क्षुरप्र चलाकर अनुविन्दका मस्तक उड़ा दिया।

अपने शूरवीर भाईको मारा गया देख महारथी विन्दने भी दूसरा धनुष उठाया और सात्यकिको साठ बाणोंसे बींधकर बड़े जोरसे गर्जना की। फिर उसकी छाती और



भुजाओंको हजारों बाणोंसे घायल किया। इतनेपर भी सात्यकिका चेहरा मलिन नहीं हुआ, उसने हँसते-हँसते पचीस बाण मारकर विन्दको घायल कर दिया। इसके बाद दोनों महारथियोंने एक-दूसरेका धनुष काटकर सारथि और घोड़े मार डाले। इस प्रकार जब वे रथहीन हो गये तो ढाल और तलवार हाथमें ले आपसमें लड़ने लगे। दोनों ही तरह-तरहके पैंतरे बदलते और एक-दूसरेका वध करनेके लिये पूर्ण प्रयत्न करते थे। इतनेहीमें सात्यकिने विन्दकी ढालके दो टुकड़े कर दिये।

फिर विन्द भी सात्यकिकी ढाल काटकर तीखी तलवार ले मण्डलाकार पैंतरे देने लगा। इसी बीचमें मौका पाकर सात्यकिने बड़ी फुर्ती दिखायी। उसने तलवारका एक ऐसा हाथ मारा कि कवचसहित विन्दके शरीरके दो टुकड़े हो गये। विन्द प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और सात्यकि उसे मारकर तुरंत ही युधामन्युके रथपर चढ़ गया। इसके बाद एक दूसरा रथ विधिपूर्वक सजाकर लाया गया। सात्यकि उसपर सवार हुआ और पुनः अपने सायकोंसे केकय-सेनाका संहार करने लगा। उसकी मार खाकर केकयोंकी सेना ठहर न सकी। वह अपने प्रबल शत्रुका सामना करना छोड़ सब दिशाओंमें भाग गयी।

तदनन्तर श्रुतकर्माने क्रोधमें भरकर पचास बाणोंसे राजा चित्रसेनको घायल किया। अभिसारनरेश चित्रसेनने भी नौ बाणोंसे श्रुतकर्माको बींधकर पाँच सायकोंसे उसके सारथिको भी पीड़ित किया। तब श्रुतकर्माने चित्रसेनके मर्मस्थानमें तीखे नाराचसे वार किया। उसकी गहरी चोट लगनेसे वीरवर चित्रसेनको मूर्च्छा आ गयी। थोड़ी देरमें जब होश हुआ तो उसने एक भल्ल मारकर श्रुतकर्माका धनुष काट दिया और फिर सात बाणोंसे उसे भी बींध डाला। श्रुतकर्माको पुनः क्रोध आया, उसने शत्रुके धनुषके दो टुकड़े कर डाले और तीन सौ बाण मारकर उसे खूब घायल किया। फिर एक तेज किये हुए भालेसे चित्रसेनका मस्तक काट गिराया। अभिसारनरेश चित्रसेन मारा गया—यह देखकर उसके सैनिक श्रुतकर्मापर टूट पड़े। परंतु उसने अपने सायकोंकी मारसे उन सबको पीछे हटा दिया।

दूसरी ओर प्रतिविन्ध्यने चित्रको पाँच बाणोंसे घायल करके तीन सायकोंसे उसके सारथिको बींध दिया और एक बाण मारकर उसकी ध्वजा काट डाली। तब चित्रने उसकी बाँहों और छातीमें नौ भल्ल मारे। यह देख प्रतिविन्ध्यने उसका धनुष काट दिया और पचीस बाणोंसे उसे भी घायल किया। फिर चित्रने भी प्रतिविन्ध्यपर एक भयंकर शक्तिका प्रहार किया, किंतु उसने उस शक्तिको हँसते-हँसते काट दिया। तब उसने प्रतिविन्ध्यपर गदा चलायी। उस गदाने प्रतिविन्ध्यके घोड़े और सारथिको मौतके घाट उतार उसके रथको भी चकनाचूर कर दिया। प्रतिविन्ध्य पहलेसे ही कूदकर पृथ्वीपर आ गया था, उसने चित्रपर शक्तिका प्रहार किया। शक्तिको अपने ऊपर आते देख चित्रने उसे हाथसे पकड़ लिया और पुनः प्रतिविन्ध्यपर ही चलाया। वह शक्ति प्रतिविन्ध्यकी दाहिनी भुजापर चोट करती हुई भूमिपर जा पड़ी। इससे प्रतिविन्ध्यको बड़ा क्रोध हुआ, उसने चित्रको मार डालनेकी इच्छासे तोमरका प्रहार किया। वह तोमर



उसकी छाती और कवच छेदता हुआ जमीनमें घुस गया तथा राजा चित्र अपनी बाँहें फैलाकर भूमिपर ढह पड़ा।

चित्रको मारा गया देख आपके सैनिकोंने प्रतिविन्ध्यपर बड़े वेगसे धावा किया, परंतु उसने अपने सायक-समूहोंकी वर्षा करके उन सबको पीछे भगा दिया। उस समय, जब कि कौरव-सेनाके समस्त योद्धा भागे जा रहे थे, केवल अश्वत्थामा ही महाबली भीमसेनका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा। फिर उन दोनोंमें घोर संग्राम होने लगा।

अश्वत्थामाने पहले एक बाण मारकर भीमसेनको बींध दिया। फिर नब्बे बाणोंसे उनके मर्मस्थानोंमें आघात किया। तब भीमसेनने भी एक हजार बाणोंसे द्रोणपुत्रको आच्छादित करके सिंहके समान गर्जना की। किंतु अश्वत्थामाने अपने सायकोंसे भीमसेनके बाणोंको रोक दिया और मुसकराते हुए उसने भीमके ललाटमें एक नाराच मारा। यह देख भीमने भी तीन नाराचोंसे अश्वत्थामाके ललाटको बींध डाला। तब द्रोणकुमारने सौ बाण मारकर भीमसेनको पीड़ित किया, किंतु इससे भीम तनिक भी विचलित नहीं हुए। इसी प्रकार भीमने भी अश्वत्थामाको तेज किये हुए सौ बाण मारे, परंतु वह डिग न सका। अब उसने बड़े-बड़े अस्त्रोंका प्रयोग आरम्भ किया और भीमसेन अपने

अस्त्रोंसे उनका नाश करने लगे। इस तरह उन दोनोंमें भयंकर अस्त्र-युद्ध छिड़ गया। उस समय भीमसेन और अश्वत्थामाके छोड़े हुए बाण आपसमें टकराकर आपकी सेनाके चारों ओर सम्पूर्ण दिशाओंमें प्रकाश फैला रहे थे। सायकोंसे आच्छादित हुआ आकाश बड़ा भयंकर दिखायी देता था। बाणोंके टकरानेसे आग पैदा होकर दोनों सेनाओंको दग्ध कर रही थी। उन दोनों वीरोंका अद्‌भुत एवं अचिन्त्य पराक्रम देख सिद्ध और चारणोंके समुदायोंको बड़ा विस्मय हो रहा था। देवता, सिद्ध तथा बड़े-बड़े ऋषि उन दोनोंको शाबाशी दे रहे थे। वे दोनों महारथी मेघके समान जान पड़ते थे; वे बाणरूपी जलको धारण किये शस्त्ररूपी बिजलीकी चमकसे प्रकाशित हो रहे थे और बाणोंकी बौछारसे एक-दूसरेको ढके देते थे। दोनोंने दोनोंकी ध्वजा काटकर सारथि और घोड़ोंको बींध डाला, फिर एक-दूसरेको बाणोंसे घायल करने लगे। बड़े वेगसे किये हुए परस्परके आघातसे जब वे अत्यन्त घायल हो गये तो अपने-अपने रथके पिछले भागमें गिर पड़े। अश्वत्थामाका सारथि उसे मूर्च्छित जानकर रणभूमिसे दूर हटा ले गया। भीमके सारथिने भी उन्हें अचेत जानकर ऐसा ही किया।



संशप्तकों और अश्वत्थामाके साथ अर्जुनका घोर संग्राम, अर्जुनके हाथसे दण्डधार और दण्डका वध

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! अर्जुनका संशप्तकों तथा अश्वत्थामाके साथ किस प्रकार युद्ध हुआ?

सञ्जयने कहा—महाराज! सुनिये। संशप्तकोंकी सेना समुद्रके समान दुर्लङ्घ्य थी, तो भी अर्जुनने उसमें प्रवेश कर तूफान-सा खड़ा कर दिया। वे तेज किये हुए बाणोंसे कौरववीरोंके मस्तक काट-काटकर गिराने लगे। थोड़ी ही देरमें वहाँकी जमीन पट गयी और वहाँ पड़े हुए ढेर-के-ढेर मस्तक बिना नालके कमल-जैसे दिखायी देने लगे। हजारों बाणोंकी वर्षा करके उन्होंने रथों, हाथियों और घोड़ोंको उनके सवारों-सहित यमलोक भेज दिया। तीखे बाण मार-मारकर शत्रुओंके सारथि, ध्वजा, धनुष, बाण तथा रत्नजटित मुद्रिकासे सुशोभित हाथोंको भी काट गिराया। यह देख बड़े-बड़े योद्धा साँड़ोंके समान हुंकारते हुए अर्जुनपर टूट पड़े और तीखे तीरोंसे उन्हें घायल करने लगे। उस समय अर्जुन और उन योद्धाओंमें रोमाञ्चकारी संग्राम आरम्भ हो गया। अर्जुनपर सब ओरसे अस्त्रोंकी वर्षा हो रही थी, तो भी वे अपने अस्त्रोंसे उसका निवारण करके बाणोंसे मार-मारकर शत्रुओंके प्राण लेने लगे। जैसे हवा बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार वे विपक्षियोंके रथोंकी धज्जियाँ उड़ा रहे थे।

उस समय अर्जुन अकेले होनेपर भी एक हजार महारथियोंके समान पराक्रम दिखा रहे थे। उनका यह पुरुषार्थ देख देवता, सिद्ध, ऋषि और चारण भी उनकी प्रशंसा करने लगे। देवताओंने दुन्दुभि बजायी और अर्जुन तथा श्रीकृष्णपर फूलोंकी वर्षा की। फिर वहाँ इस प्रकार आकाशवाणी हुई। 'जिन्होंने चन्द्रमाकी कान्ति, अग्निकी दीप्ति, वायुका बल और सूर्यका प्रताप धारण किया है, वे ही ये श्रीकृष्ण और अर्जुन रणभूमिमें विराज रहे हैं। एक रथपर बैठे हुए ये दोनों वीर ब्रह्मा तथा शंकरकी भाँति अजेय हैं। ये सम्पूर्ण प्राणियोंसे श्रेष्ठ नर और नारायण हैं।'

इस आश्चर्यमय वृत्तान्तको देख और सुनकर भी अश्वत्थामाने युद्धके लिये भलीभाँति तैयार हो श्रीकृष्ण तथा अर्जुनपर धावा किया। उसने श्रीकृष्णको साठ तथा अर्जुनको तीन बाण मारे। तब अर्जुनने क्रोधमें भरकर तीन बाणोंसे उसका धनुष काट दिया। यह देख उसने दूसरा अत्यन्त भयंकर धनुष हाथमें लिया और श्रीकृष्णपर तीन सौ तथा अर्जुनपर एक हजार बाणोंका प्रहार किया। इतना ही नहीं, अश्वत्थामाने अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोककर उनके ऊपर हजारों, लाखों और अरबों बाण बरसाये। उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो उसके तरकस, धनुष, प्रत्यञ्चा, रथ, ध्वजा तथा कवचसे और बाँह, हाथ, छाती, मुँह, नाक, कान, आँख तथा मस्तक आदि अङ्गों एवं रोम-रोमसे बाण छूट रहे हैं। इस प्रकार अपने सायकसमूहोंकी बौछारसे उसने श्रीकृष्ण और अर्जुनको बींध डाला और अत्यन्त प्रसन्न होकर महामेघके समान भयंकर गर्जना की।

अश्वत्थामाकी गर्जना सुनकर अर्जुनने उसके चलाये हुए प्रत्येक बाणके तीन-तीन टुकड़े कर डाले। इसके बाद उन्होंने संशप्तकोंके रथ, हाथी, घोड़े, सारथि, ध्वजा और पैदल सिपाहियोंको भयंकर बाणोंसे मारना आरम्भ किया। गाण्डीवसे छूटे हुए नाना प्रकारके बाण तीन मीलपर खड़े हुए हाथी और मनुष्योंको भी मार गिराते थे। उस समय अर्जुनने शत्रुओंके बहुत-से सजे-सजाये घुड़सवारों और पैदल सैनिकोंका सफाया कर डाला। शत्रुओंमेंसे जो लोग

रणमें पीठ दिखाकर भाग नहीं गये, बराबर सामने डटे रहे, उनके धनुष, बाण, तरकस, प्रत्यञ्चा, हाथ, बाँह, हाथके हथियार, छत्र, ध्वजा, घोड़े, रथकी ईषा, ढाल, कवच और मस्तकको अर्जुनने काट डाला। पार्थके बाणोंके प्रहारसे रथ, घोड़े और हाथियोंके साथ उनके सवार भी धराशायी हो गये।

यह देख अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग और निषाद देशोंके वीर अर्जुनको मार डालनेकी इच्छासे हाथियोंपर सवार हो वहाँ चढ़ आये। किंतु अर्जुनने उनके हाथियोंके कवच, मर्मस्थान, सूँड, महावत, ध्वजा और पताका आदिको काट डाला। इससे वे हाथी वज्रके मारे हुए पर्वतशिखरकी भाँति जमीनपर ढह पड़े। इसी बीचमें अश्वत्थामाने अपने धनुषपर दस बाण चढ़ाये और मानो एक ही बाण छोड़ा हो, इस प्रकार उन दसोंको एक ही साथ छोड़ दिया। उनमेंसे पाँच बाणोंने तो अर्जुनको घायल किया और पाँचने श्रीकृष्णको क्षत-विक्षत कर दिया। उन दोनोंके शरीरसे खूनकी धारा बहने लगी। उनका इस प्रकार पराभव देखकर सबने यही माना कि अब वे मारे गये।

उस समय भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'अर्जुन ! ढिलाई क्यों कर रहे हो; मारो इसे। जैसे चिकित्सा न करनेपर रोग बढ़कर कष्टदायक हो जाता है, उसी प्रकार लापरवाही करनेसे यह शत्रु भी प्रबल होकर महान् दुःखदायी हो जायगा।' 'बहुत अच्छा' कहकर अर्जुनने भगवान्‌की आज्ञा स्वीकार की और सावधान होकर उन्होंने अश्वत्थामाकी बाँह, छाती, सिर और जङ्घाको बाणोंसे छेद डाला। फिर घोड़ोंकी बागडोर काटकर उन्हें बाणोंसे बींधना आरम्भ किया। घोड़े घबराकर भागे और अश्वत्थामाको रणभूमिसे दूर हटा ले गये। अश्वत्थामा अर्जुनके बाणोंसे इतना घायल हो चुका था कि फिर लौटकर उनसे लड़नेकी उसकी हिम्मत नहीं हुई। थोड़ी देरतक घोड़ोंको रोककर उसने आराम किया और फिर कर्णकी सेनामें प्रवेश कर गया। तदनन्तर श्रीकृष्ण और अर्जुन संशप्तकोंका सामना करने चल दिये।

इसी समय उत्तरकी ओर पाण्डवसेनामें बड़े जोरका आर्तनाद सुनायी पड़ा। वहाँ दण्डधार पाण्डवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका संहार कर रहा था। यह देख भगवान् कृष्णने रथको लौटाकर उधर ही घुमा दिया और अर्जुनसे कहा—'मगधदेशका राजा दण्डधार बड़ा पराक्रमी है, वह कहीं भी अपना सानी नहीं रखता। इसके पास शत्रुओंका संहार करनेवाला एक महान् गजराज है, इसे युद्धकी उत्तम शिक्षा मिली है और बल तो सबसे अधिक है ही। इनमेंसे किसी भी दृष्टिसे यह राजा भगदत्तसे कम नहीं है। पहले तुम इसीका संहार कर डालो, फिर संशप्तकोंको मारना।' इतना कहकर भगवान्‌ने अर्जुनको दण्डधारके निकट पहुँचा दिया। वह काले लोहेके कवच पहने हुए घुड़सवारों और पैदल सैनिकोंको अपने मदोन्मत्त गजराजके द्वारा गिराकर कुचलवा रहा था। वहाँ पहुँचते ही श्रीकृष्णको बारह और अर्जुनको सोलह बाण मारकर दण्डधारने उनके घोड़ोंको भी तीन-तीन बाणोंसे घायल किया। इसके बाद वह बारंबार हँसने और गर्जने लगा।

तब अर्जुनने भल्लोंसे उसके धनुष-बाण, प्रत्यञ्चा और ध्वजाको काट दिया। इससे कुपित हो दण्डधारने श्रीकृष्ण और अर्जुनको घबराहटमें डालनेकी इच्छासे अपने मदोन्मत्त गजराजको उनकी ओर बढ़ाया और तोमरोंसे उन दोनोंपर वार किया। यह देख पाण्डुनन्दन अर्जुनने तीन क्षुर चलाकर उसकी दोनों भुजाओं और मस्तकको एक ही साथ काट डाला, इसके बाद उसके हाथीको भी सौ बाण मारे। उनकी चोटसे पीड़ित होकर हाथी जोर-जोरसे चिग्घाड़ने लगा और चक्कर काटता तथा लड़खड़ाता हुआ इधर-उधर भागने लगा। अन्तमें ठोकर खाकर वह महावतके साथ ही गिरा और मर गया।



युद्धमें दण्डधारके मारे जानेपर उसका भाई दण्ड श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध करनेके लिये चढ़ आया। आते ही वह श्रीकृष्णको तीन और अर्जुनको तेज किये हुए पाँच

तोमर मारकर भीषण गर्जना करने लगा। तब अर्जुनने उसकी दोनों बाँहें काट डालीं और उसके मस्तकपर एक अर्धचन्द्राकार बाण मारा। उसकी चोटसे दण्डका मस्तक कटकर हाथीपरसे जमीनपर जा पड़ा। इसके बाद उन्होंने दण्डके हाथीको भी बाणोंसे विदीर्ण कर डाला। उनकी चोटसे अत्यन्त व्यथित होकर वह हाथी चिग्घाड़ता हुआ गिरकर मर गया। तत्पश्चात् दूसरे-दूसरे योद्धा भी उत्तम हाथियोंपर सवार होकर विजयकी इच्छासे चढ़ आये, परंतु सव्यसाचीने औरोंकी भाँति उन्हें भी मौतके घाट उतार दिया। फिर तो शत्रुकी बहुत बड़ी सेना भाग खड़ी हुई और अर्जुन संशप्तकोंका संहार करनेके लिये चल दिये।



अर्जुनके द्वारा संशप्तकोंका तथा अश्वत्थामाके हाथसे राजा पाण्ड्यका वध

सञ्जय कहते हैं—महाराज! अर्जुनने मङ्गल ग्रहकी भाँति वक्र और अतिवक्र गतिसे चलकर बहुसंख्यक संशप्तकोंका संहार कर डाला। अनेकों पैदल, घुड़सवार, रथी और हाथी अर्जुनके बाणोंकी मारसे अपना धैर्य खो बैठे, कितने ही चक्कर काटने लगे। कुछ भाग गये और बहुत-से गिरकर मर गये। उन्होंने भल्ल, क्षुर, अर्धचन्द्र तथा वत्सदन्त आदि अस्त्रोंसे अपने शत्रुओंके घोड़े, सारथि, ध्वजा, धनुष, बाण, हाथ, हाथके हथियार, भुजाएँ और मस्तक काट गिराये। इसी



बीचमें उग्रायुधके पुत्रने तीन बाणोंसे अर्जुनको बींध दिया। यह देख अर्जुनने उसका सिर धड़से अलग कर दिया। उस समय उग्रायुधके समस्त सैनिक क्रोधमें भरकर अर्जुन-पर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। परंतु अर्जुनने अपने अस्त्रोंसे शत्रुओंकी अस्त्रवर्षा रोक दी और सायकोंकी झड़ी लगाकर बहुतों-से शत्रुओंका वध कर डाला।

उसी समय भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'अर्जुन! तुम खिलवाड़ क्यों कर रहे हो? इन संशप्तकोंका अन्त करके अब कर्णका वध करनेके लिये शीघ्र तैयार हो जाओ।' 'अच्छा, ऐसा ही करता हूँ'—यह कहकर अर्जुनने शेष संशप्तकोंका संहार आरम्भ किया। अर्जुन इतनी शीघ्रतासे बाण हाथमें लेते, संधान करते और छोड़ते थे कि बहुत सावधानीसे देखनेवाले भी उनकी इन सब बातोंको देख नहीं पाते थे। अर्जुनका हस्तलाघव देख स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी आश्चर्यमें पड़ गये। उन्होंने अर्जुनसे कहा—'पार्थ! इस पृथ्वीपर दुर्योधनके कारण राजाओंका यह महाभयंकर संहार हो रहा है। आज तुमने जो पराक्रम किया है वैसा स्वर्गमें केवल इन्द्रने ही किया था।' इस प्रकार बातें करते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन चले जा रहे थे, इतनेहीमें उन्हें दुर्योधनकी सेनाके पास शङ्ख, दुन्दुभि, भेरी और पणव आदि बाजोंकी आवाज सुनायी दी। तब श्रीकृष्णने घोड़ोंको बढ़ाया और वहाँ पहुँचकर देखा कि राजा पाण्ड्यके द्वारा दुर्योधनकी सेनाका विकट विध्वंस हुआ है। यह देख उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। राजा पाण्ड्य अस्त्रविद्या तथा धनुर्विद्यामें प्रवीण थे। उन्होंने अनेकों प्रकारके बाण मारकर शत्रु-समुदायका नाश कर डाला था। शत्रुओंके प्रधान-प्रधान वीरोंने उनपर जो-जो अस्त्र छोड़े थे, उन सबको अपने सायकोंसे काटकर वे उन वीरोंको यमलोक भेज चुके थे।

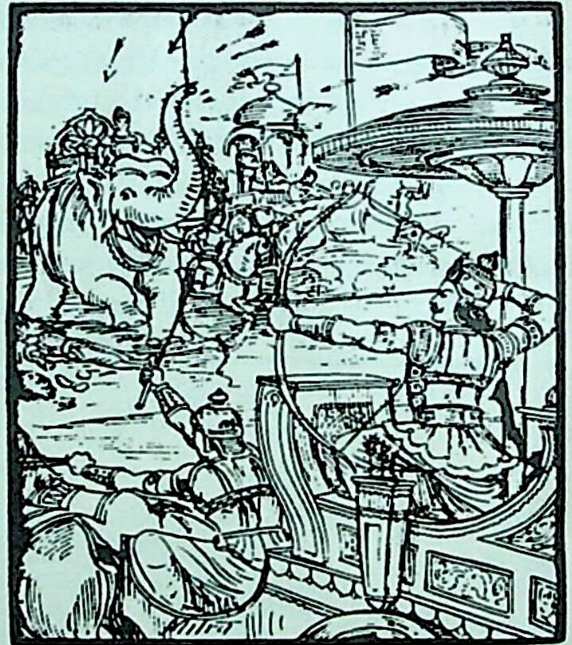
धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय! अब तुम मुझसे राजा पाण्ड्यके पराक्रम, अस्त्रशिक्षा, प्रभाव और बलका वर्णन करो।

सञ्जयने कहा—महाराज! आप जिन्हें श्रेष्ठ महारथी मानते हैं, उन सबको राजा पाण्ड्य अपने पराक्रमके सामने तुच्छ गिनते थे। अपने साथ भीष्म और द्रोणकी समानता बतलाना भी उन्हें बरदाश्त नहीं होता था। श्रीकृष्ण और अर्जुनसे किसी भी बातमें वे अपनेको कम नहीं समझते थे। इस प्रकार पाण्ड्य समस्त राजाओं तथा सम्पूर्ण अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ थे। वे कर्णकी सेनाका संहार कर रहे थे। उन्होंने सम्पूर्ण योद्धाओंको छिन्न-भिन्न कर दिया, हाथियों और उनके सवारोंको पताका, ध्वजा और अस्त्रोंसे हीन करके पादरक्षकोंसहित मार डाला। पुलिन्द, खस, बाह्लीक, निषाद, आन्ध्र, कुन्तल, दाक्षिणात्य और

भोजदेशीय शूरवीरोंको शस्त्रहीन तथा कवचशून्य करके उन्होंने मौतके घाट उतार दिया। इस प्रकार उन्हें कौरवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका नाश करते देख अश्वत्थामा उनका सामना करनेके लिये आया। उसने राजा पाण्ड्यके ऊपर पहले प्रहार किया, तब उन्होंने एक कर्णी नामक बाण मारकर अश्वत्थामाको बींध डाला। इसके बाद अश्वत्थामाने मर्मस्थानोंको विदीर्ण कर देनेवाले अत्यन्त भयंकर बाण हाथमें लिये और राजा पाण्ड्यके ऊपर हँसते-हँसते उनका प्रहार किया। तत्पश्चात् उसने तेज की हुई धारवाले कई तीखे नाराच उठाये और पाण्ड्यपर उनका दशमी गतिसे* प्रयोग किया। परंतु पाण्ड्यने नौ तीखे बाण मारकर उन नाराचोंको काट डाला और उसके पहियोंकी रक्षा करनेवाले योद्धाओंको भी मार डाला।

अपने शत्रुकी यह फुर्ती देखकर अश्वत्थामाने धनुषको मण्डलाकार बना लिया और बाणोंकी बौछार करने लगा। आठ-आठ बैलोंसे खींचे जानेवाले आठ गाड़ियोंमें जितने बाण लदे थे, उन सबको अश्वत्थामाने आधे पहरमें ही समाप्त कर दिया। उस समय उसका स्वरूप क्रोधसे भरे हुए यमराजके समान हो रहा था। जिन लोगोंने उसे देखा, वे प्रायः होश-हवास खो बैठे। अश्वत्थामाके चलाये हुए उन सभी बाणोंको पाण्ड्यने वायव्यास्त्रसे उड़ा दिया और उच्चस्वरसे गर्जना की।

तब द्रोणकुमारने उनकी ध्वजा काटकर चारों घोड़ों और सारथिको यमलोक भेज दिया तथा अर्धचन्द्राकार बाणसे धनुष काटकर रथकी भी धज्जियाँ उड़ा दीं। उस समय यद्यपि महारथी पाण्ड्य रथसे शून्य हो गये थे, तो भी अश्वत्थामाने उन्हें मारा नहीं। उनके साथ युद्ध करनेकी उसकी इच्छा अभी बनी ही हुई थी। इसी समय एक महाबली गजराज बड़े वेगसे दौड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा, उसका सवार मारा जा चुका था। राजा पाण्ड्य हाथीके युद्धमें बड़े निपुण थे। उस पर्वतके समान ऊँचे गजराजको देखते ही वे उसकी पीठपर जा बैठे। उन्होंने हाथीको अंकुश मारकर आगे बढ़ाया और सिंहनाद करके द्रोणपुत्रके ऊपर एक अत्यन्त तेजस्वी तोमरका प्रहार किया। तोमरकी चोटसे अश्वत्थामाके सिरका सुवर्णमय मुकुट चूर-चूर होकर खनखनाता हुआ जमीनपर जा गिरा। अब तो क्रोधके मारे द्रोणकुमारके बदनमें आग लग गयी, उसने शत्रुको पीड़ा देनेवाले यमदण्डके समान भयंकर चौदह बाण हाथमें लिये। उनमेंसे पाँच बाणोंसे तो उसने हाथीको



पैरोंसे लेकर सूँड़तक बींध डाला, तीनसे राजाकी दोनों भुजाओं और मस्तकको काट गिराया तथा शेष छः बाणोंसे पाण्ड्यके अनुयायी छः महारथियोंको यमलोक पठाया।

इस प्रकार महाबली पाण्ड्यको मारकर जब अश्वत्थामाने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया तो आपका पुत्र दुर्योधन अपने मित्रोंके साथ उसके पास आया और बड़ी प्रसन्नताके साथ उसने उसका स्वागत-सत्कार किया।



*दशमी गतिसे मारा हुआ बाण मस्तकको धड़से अलग कर देता है।

अङ्गराजका वध, सहदेवके द्वारा दुःशासनकी तथा कर्णके द्वारा नकुलकी पराजय और कर्णद्वारा पाञ्चालोंका संहार

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! आपके पुत्रकी आज्ञासे बड़े-बड़े हाथीसवार हाथियोंके साथ ही क्रोधमें भरकर धृष्टद्युम्नको मार डालनेकी इच्छासे उसकी ओर बढ़े। पूर्व और दक्षिण देशके रहनेवाले गजयुद्धमें कुशल जो प्रधान-प्रधान वीर थे, वे सभी उपस्थित थे। इनके सिवा अङ्ग, बङ्ग, पुण्ड्र, मगध, मेकल, कोसल, मद्र, दशार्ण, निषध और कलिङ्गदेशीय योद्धा भी, जो हस्तियुद्धमें निपुण थे, वहाँ आये। ये सब लोग पाञ्चालोंकी सेनापर बाण, तोमर और नाराचोंकी वर्षा करते हुए आगे बढ़े।

उन्हें आते देख धृष्टद्युम्न उनके हाथियोंपर नाराचोंकी वर्षा करने लगा। प्रत्येक हाथीको उसने दस-दस, छः-छः और आठ-आठ बाणोंसे मारकर घायल कर दिया। उस समय धृष्टद्युम्नको हाथियोंकी सेनासे घिर गया देख पाण्डव और पाञ्चाल योद्धा तेज किये हुए अस्त्र-शस्त्र लेकर गर्जना करते हुए वहाँ आ पहुँचे और उन हाथियोंपर बाणोंकी बौछार करने लगे। नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रक, सात्यकि, शिखण्डी तथा चेकितान—ये सभी वीर चारों ओरसे बाणोंकी झड़ी लगाने लगे।



तब म्लेच्छोंने अपने हाथियोंको शत्रुओंकी ओर प्रेरित किया। वे हाथी अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए थे; इसलिये रथों, घोड़ों और मनुष्योंको सूँड़ोंसे खींचकर पटक देते और पैरोंसे दबाकर कुचल डालते थे। कितने ही योद्धाओंको उन्होंने दाँतोंकी नोकसे चीर डाला और कितनोंको सूँड़में लपेटकर ऊपर फेंक दिया। दाँतोंसे कुचले हुए जो लोग जमीनपर गिरते थे, उनकी सूरत बड़ी भयानक हो जाती थी। इसी समय अङ्गराजके हाथीका सात्यकिसे सामना हुआ। सात्यकिने भयंकर वेगवाले नाराचसे हाथीके मर्मस्थानोंको बींध डाला। हाथी वेदनासे मूर्छित होकर गिर पड़ा। अङ्गराज उसकी ओटमें अपने शरीरको छिपाये बैठा था, अब वह हाथीसे कूदना ही चाहता था कि सात्यकिने उसकी छातीपर भी नाराचसे प्रहार किया। चोटको न सँभाल सकनेके कारण वह भी पृथ्वीपर गिर पड़ा। इसके बाद नकुलने यमदण्डके समान तीन नाराच हाथमें लिये और उनके प्रहारसे अङ्गराजको पीड़ित करके फिर सौ बाणोंसे उसके हाथीको भी घायल किया। तब अङ्गराजने नकुलपर एक सौ आठ तोमरोंका प्रहार किया, किंतु उसने प्रत्येक तोमरके तीन-तीन टुकड़े कर डाले और एक अर्धचन्द्राकार बाण मारकर उसके मस्तकको भी काट लिया। फिर तो वह म्लेच्छराज हाथीके साथ ही भूमिपर गिर पड़ा।

इस प्रकार अङ्गदेशीय राजकुमारके मारे जानेपर वहाँके महावत क्रोधमें भर गये और हाथियोंसहित नकुलपर चढ़ आये। उनके साथ ही मेकल, उत्कल, कलिङ्ग, निषध तथा ताम्रलिप्त आदि देशोंके योद्धा भी नकुलको मार डालनेकी इच्छासे उसपर बाणों और तोमरोंकी वर्षा करने लगे। उन सबके अस्त्रोंकी बौछारसे नकुलको ढक गया देख पाण्डव, पाञ्चाल और सोमक क्षत्रिय बड़े क्रोधमें भरकर वहाँ आ पहुँचे। फिर तो पाण्डवपक्षके रथी वीरोंका उन हाथियोंके साथ घोर युद्ध होने लगा। उन्होंने बाणोंकी झड़ी लगा दी और हजारों तोमरोंका वार किया। उनकी मारसे हाथियोंके कुम्भस्थल फूट गये, मर्मस्थानोंमें घाव हो गया, दाँत टूट गये और उनकी सारी सजावट बिगड़ गयी। उनमेंसे आठ बड़े-बड़े गजराजोंको सहदेवने चौंसठ बाण मारे, जिनकी चोटसे पीड़ित हो वे हाथी अपने सवारोंसहित गिरकर मर गये।

महाराज ! सहदेव जब क्रोधमें भरकर आपकी सेनाको भस्मसात् कर रहा था , उसी समय दुःशासन उसके मुकाबलेमें आ गया। आते ही उसने सहदेवकी छातीमें तीन बाण मारे। तब सहदेवने सत्तर नाराचोंसे दुःशासनको तथा तीनसे उसके सारथिको बींध डाला। यह देख दुःशासनने सहदेवका धनुष काटकर उसकी छाती और भुजाओंमें तिहत्तर बाण मारे। अब तो सहदेवके क्रोधकी सीमा न रही, उसने बड़ी फुर्तीसे

दुःशासनके रथपर तलवारका वार किया। वह तलवार प्रत्यञ्चासहित उसके धनुषको काटकर जमीनपर गिर पड़ी। फिर सहदेवने दूसरा धनुष लेकर दुःशासनपर प्राणान्तकारी बाण छोड़ा, किंतु उसने तीखी धारवाली तलवारसे उसके दो टुकड़े कर डाले और सहदेवको घायल करके उसके सारथिको भी नौ बाण मारे। इससे सहदेवका क्रोध बहुत बढ़ गया और उसने कालके समान विकराल बाण हाथमें लेकर उसे आपके पुत्रपर चला दिया। वह बाण दुःशासनका कवच छेदकर शरीरको विदीर्ण करता हुआ जमीनमें घुस गया। इससे आपका पुत्र बेहोश हो गया। यह देख सारथि तीखे बाणोंकी मार सहता हुआ अपने रथको रणभूमिसे दूर हटा ले गया।

इस प्रकार दुःशासनको परास्त करके सहदेवने दुर्योधनकी सेनापर दृष्टि डाली और उसका सब ओरसे संहार आरम्भ कर दिया। दूसरी ओर नकुल भी कौरव-सेनाको पीछे भगा रहा था। यह देख कर्ण क्रोधमें भरा हुआ वहाँ आया और नकुलको रोककर सामना करने लगा। उसने नकुलका धनुष काटकर उसे तीस बाणोंसे घायल किया। तब नकुलने भी दूसरा धनुष लेकर कर्णको सत्तर और उसके सारथिको तीन बाण मारे। फिर एक क्षुरप्रसे कर्णके धनुषको काटकर उसपर तीन सौ बाणोंका प्रहार किया। नकुलके द्वारा कर्णको इस तरह पीड़ित होते देख सभी रथियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ; देवता भी अत्यन्त विस्मित हो गये।

तदनन्तर कर्णने दूसरा धनुष उठाया और नकुलके गलेकी हँसलीपर पाँच बाण मारे। तब नकुलने भी सात बाणोंसे कर्णको बींधकर उसके धनुषका एक किनारा काट गिराया। कर्णने पुनः दूसरा धनुष लिया और नकुलके चारों ओरकी दिशाएँ बाणोंसे आच्छादित कर दीं। किंतु महारथी नकुलने कर्णके छोड़े हुए उन सभी बाणोंको काट डाला। उस समय सायकसमूहोंसे भरा हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो उसमें टिड्डियाँ छा रही हों। उन दोनोंके बाणोंसे आकाशका मार्ग रुक गया था, अन्तरिक्षकी कोई भी वस्तु उस समय जमीनपर नहीं पड़ती थी। उन दोनों महारथियोंके दिव्य बाणोंसे जब दोनों ओरकी सेनाएँ नष्ट होने लगीं तो सभी योद्धा उनके बाणोंके गिरनेके स्थानसे दूर हट गये और दर्शकोंकी भाँति खड़े होकर तमाशा देखने लगे। जब सब लोग वहाँसे दूर हो गये तो वे दोनों महारथी परस्पर बाणोंकी बौछारसे एक-दूसरेको चोट पहुँचाने लगे। कर्णने हँसते-हँसते उस युद्धमें बाणोंका जाल-सा फैला दिया, उसने सैकड़ों और हजारों बाणोंका प्रहार किया। जैसे बादलोंकी घटा घिर आनेपर उसकी छायासे अन्धकार-सा हो जाता है, वैसे ही कर्णके बाणोंसे अँधेरा-सा छा गया। इसके बाद कर्णने नकुलका धनुष काट दिया और मुसकराते हुए उसके सारथिको भी रथसे मार गिराया। फिर तेज किये हुए चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको तुरंत यमलोक भेज दिया। तत्पश्चात् अपने बाणोंकी मारसे उसने नकुलके दिव्य रथके तिलके समान टुकड़े करके उसकी धज्जियाँ उड़ा दीं। पहियोंके रक्षकोंको मारकर ध्वजा, पताका, गदा, तलवार, ढाल तथा अन्य सामग्रियोंको भी नष्ट कर दिया।

रथ, घोड़े और कवचसे रहित हो जानेपर नकुलने एक भयानक परिघ उठाया, किंतु कर्णने तीखे बाणोंसे उनके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले। उस समय उसकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं और वह सहसा रणभूमि छोड़कर भाग खड़ा हुआ। कर्णने हँसते-हँसते उसका पीछा किया और उसके गलेमें अपना धनुष डाल दिया। फिर वह कहने लगा—'पाण्डुनन्दन! अब बलवानोंके साथ युद्ध करनेका साहस न करना। जो तुम्हारे समान हों, उन्हींसे भिड़नेका हौसला करना चाहिये। माद्रीकुमार! हार गये तो क्या हुआ ? लजाओ मत। जाओ, घरमें जाकर छिप रहो अथवा जहाँ श्रीकृष्ण तथा अर्जुन हों, वहीं चले जाओ।'

यह कहकर कर्णने नकुलको छोड़ दिया। यद्यपि उस समय कर्णके लिये नकुलको मारना सहज था, तो भी कुन्तीको दिये हुए वचनको याद करके उसने उसे जीवित ही छोड़ दिया; क्योंकि कर्ण धर्मका ज्ञाता था। नकुलको इस पराजयसे बड़ा दुःख हुआ। वह उच्छ्वास लेता हुआ अत्यन्त संकोचके साथ जाकर युधिष्ठिरके रथपर बैठ गया।

इतनेमें सूर्यदेव आकाशके मध्यभागमें आ गये। उस दुपहरीमें सूतपुत्र कर्ण चारों ओर चक्रके समान घूमता हुआ पाञ्चालोंका संहार करने लगा। शत्रुओंके रथ टूट गये, ध्वजा-पताकाएँ कट गयीं, घोड़े और सारथि मारे गये तथा बहुतोंके रथके धुरे खण्डित हो गये। कुछ ही देरमें पाञ्चालसेनाके रथी भागते देखे गये। हाथियोंके शरीर खूनसे लथपथ हो गये। वे उन्मत्तकी भाँति इधर-उधर भागने लगे। ऐसा जान पड़ता था, मानो वे किसी बड़े भारी जंगलमें जाकर दावानलसे दग्ध हो गये हैं। उस समय हमें सब ओर कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे कटे अनेकों सिर, भुजा और जंघाएँ दिखायी देती थीं। संग्रामभूमिमें सृञ्जय वीरोंपर कर्णकी बड़ी भीषण मार पड़ रही थी, तो भी पतङ्ग जैसे अग्निपर टूट पड़ते हैं, उसी प्रकार वे कर्णकी ओर ही बढ़ते जा रहे थे। महारथी कर्ण जहाँ-तहाँ पाण्डव-सेनाओंको भस्म कर रहा था; अतः क्षत्रियलोग उसे प्रलयकालीन अग्निके समान समझकर उसके आगेसे भागने लगे। पाञ्चालवीरोंमेंसे भी जो योद्धा मरनेसे बचे थे, वे सब मैदान छोड़कर भाग गये।



उलूक-युयुत्सु, श्रुतकर्मा-शतानीक, शकुनि-सुतसोम और शिखण्डी-कृतवर्मामें द्वन्द्वयुद्ध; अर्जुनके द्वारा अनेकों वीरोंका संहार तथा दोनों ओरकी सेनाओंमें घमासान युद्ध

सञ्जयने कहा—राजन्! एक ओर आपका पुत्र युयुत्सु कौरवोंकी भारी सेनाको खदेड़ रहा था। यह देखकर उलूक बड़ी फुर्तीसे उसके सामने आया। उसने क्रोधमें भरकर एक क्षुरप्रसे युयुत्सुका धनुष काट डाला और कर्णी बाणसे उसे भी घायल कर दिया। युयुत्सुने तुरंत ही दूसरा धनुष उठाया और साठ बाणोंसे उलूकपर एवं तीनसे उसके सारथिपर वार करके फिर उसे अनेकों बाणोंसे बींध डाला। इसपर उलूकने युयुत्सुको बीस बाणोंसे घायल कर उसकी ध्वजाको काट डाला, एक भल्लसे उसके सारथिका सिर उड़ा दिया, चारों घोड़ोंको धराशायी कर दिया और फिर पाँच बाणोंसे उसे भी बींध डाला। महाबली उलूकके प्रहारसे युयुत्सु बहुत ही घायल हो गया और एक दूसरे रथपर चढ़कर तुरंत ही वहाँसे भाग गया। इस प्रकार युयुत्सुको परास्त करके उलूक झटपट पाञ्चाल और सृञ्जय वीरोंकी ओर चला गया।

दूसरी ओर आपके पुत्र श्रुतकर्माने शतानीकके रथ, सारथि और घोड़ोंको नष्ट कर दिया। तब महारथी शतानीकने क्रोधमें भरकर उस अश्वहीन रथमेंसे ही आपके पुत्रपर एक गदा फेंकी। वह उसके रथ, सारथि और घोड़ोंको भस्म करके पृथ्वीपर जा पड़ी। इस प्रकार ये दोनों ही वीर रथहीन होकर एक-दूसरेकी ओर देखते हुए रणाङ्गणसे खिसक गये।

इसी समय शकुनिने अत्यन्त पैने बाणोंसे सुतसोमको घायल कर दिया। किन्तु इससे वह तनिक भी विचलित नहीं हुआ। उसने अपने पिताके परम शत्रुको सामने देखकर उसे हजारों बाणोंसे आच्छादित कर दिया। किंतु शकुनिने दूसरे बाण छोड़कर उसके सभी तीरोंको काट डाला। इसके बाद उसने सुतसोमके सारथि, ध्वजा और घोड़ोंको भी तिल-तिल करके काट डाला। तब सुतसोम अपना श्रेष्ठ धनुष लेकर रथसे कूदकर पृथ्वीपर खड़ा हो गया और बाणोंकी वर्षा करके आपके सालेके रथको आच्छादित करने लगा। किंतु शकुनिने अपने बाणोंकी बौछारसे उन सब बाणोंको नष्ट कर दिया। फिर अनेकों तीखे तीरोंसे उसने सुतसोमके धनुष और तरकसोंको भी काट डाला।

अब सुतसोम एक तलवार लेकर भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, प्लुत, सृत, सम्पात और समुदीर्ण आदि चौदह गतियोंसे उसे सब ओर घुमाने लगा। इस समय उसपर जो बाण छोड़ा जाता था, उसे ही वह तलवारसे काट डालता था। इसपर शकुनिने अत्यन्त कुपित होकर उसपर सर्पोंके समान विषैले बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। परंतु सुतसोमने अपने शस्त्रकौशल और पराक्रमसे उन सबको काट डाला। इसी समय शकुनिने एक पैने बाणसे उसकी तलवारके दो टुकड़े कर दिये। सुतसोमने अपने हाथमें रहे हुए तलवारके आधे भागको ही शकुनिपर खींचकर मारा। वह उसके धनुष और धनुषकी डोरीको काटकर पृथ्वीपर जा पड़ा। इसके बाद वह फुर्तीसे श्रुतकीर्तिके रथपर चढ़ गया तथा शकुनि भी एक दूसरा भयानक धनुष लेकर अनेकों शत्रुओंका संहार करता हुआ दूसरे स्थानपर पाण्डवोंकी सेनाके साथ संग्राम करने लगा।

दूसरी ओर शिखण्डी कृतवर्मासे भिड़ा हुआ था। उसने उसकी हँसलीमें पाँच तीक्ष्ण बाण मारे। इसपर महारथी कृतवर्माने क्रोधमें भरकर उसपर साठ बाण छोड़े और फिर हँसते-हँसते एक बाणसे उसका धनुष काट डाला। महाबली शिखण्डीने तुरंत ही दूसरा धनुष ले लिया और उससे कृतवर्मापर अत्यन्त तीक्ष्ण नब्बे बाण छोड़े। वे उसके कवचसे टकराकर नीचे गिर गये। तब उसने एक पैने बाणसे कृतवर्माका धनुष काट डाला तथा उसकी छाती और भुजाओंपर अस्सी बाण छोड़े। इससे उसके सब अङ्गोंसे रुधिर बहने लगा। अब कृतवर्माने दूसरा धनुष उठाया और अनेकों तीखे बाणोंसे शिखण्डीके कंधोंपर प्रहार किया। इस प्रकार वे दोनों वीर एक-दूसरेको घायल करके लहूलुहान हो रहे थे तथा दोनों ही एक-दूसरेके प्राण लेनेपर तुले हुए थे।

इसी समय कृतवर्माने शिखण्डीका प्राणान्त करनेके लिये एक भयंकर बाण छोड़ा। उसकी चोटसे वह तत्काल मूर्छित हो गया और विह्वल होकर अपनी ध्वजाके डंडेके सहारे बैठ गया। यह देखकर उसका सारथि उसे तुरंत ही रणभूमिसे हटा ले गया। इससे पाण्डवोंकी सेनाके पैर उखड़ गये और वह इधर-उधर भागने लगी।

महाराज! इस समय अर्जुन आपकी सेनाका संहार कर रहे थे। आपकी ओरसे त्रिगर्त्त, शिबि, कौरव, शाल्व, संशप्तक और नारायणी सेनाके वीर उनसे टक्कर ले रहे थे। सत्यसेन, चन्द्रदेव, मित्रदेव, सुतञ्जय, सौश्रुति, चित्रसेन, मित्रवर्मा और भाइयोंसे घिरा हुआ त्रिगर्त्तराज—ये सभी वीर संग्रामभूमिमें अर्जुनपर तरह-तरहके बाणसमूहोंकी वर्षा कर रहे थे। योद्धालोग अर्जुनसे सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें टक्कर लेकर लुप्त हो जाते थे। इसी समय उनपर

सत्यसेनने तीन, मित्रदेवने तिरसठ, चन्द्रदेवने सात, मित्रवर्माने तिहत्तर, सौश्रुतिने सात, शत्रुञ्जयने बीस और सुशर्माने नौ बाण छोड़े। इस प्रकार संग्रामभूमिमें अनेकों योद्धाओंके बाणोंसे बिंधकर अर्जुनने बदलेमें उन सभी राजाओंको घायल कर दिया। उन्होंने सात बाणोंसे सौश्रुतिको, तीनसे सत्यसेनको, बीससे शत्रुञ्जयको, आठसे चन्द्रदेवको, सौसे मित्रदेवको, तीनसे श्रुतसेनको, नौसे मित्रवर्माको और आठसे सुशर्माको बींधकर अनेकों तीखे बाणोंसे शत्रुञ्जयको मार डाला, सौश्रुतिका सिर धड़से अलग कर दिया, इसके बाद फौरन ही चन्द्रदेवको अपने बाणोंसे यमराजके घर भेज दिया और फिर पाँच-पाँच बाणोंसे दूसरे महारथियोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया।

इसी समय सत्यसेनने क्रोधमें भरकर श्रीकृष्णपर एक विशाल तोमर फेंका और बड़ी भीषण गर्जना की। वह तोमर उनकी दायीं भुजाको घायल करके पृथ्वीपर जा पड़ा। इस प्रकार श्रीकृष्णको घायल हुआ देख महारथी अर्जुनने अपने तीखे बाणोंसे सत्यसेनकी गति रोककर फिर उसका कुण्डल-मण्डित विशाल मस्तक धड़से अलग कर दिया। इसके बाद उन्होंने अपने पैने बाणोंसे मित्रवर्मापर आक्रमण किया तथा एक तीखे वत्सदन्तसे उसके सारथिपर चोट की। फिर महाबली अर्जुनने सैकड़ों बाणोंसे संशप्तकोंपर वार किया और उनमेंसे सैकड़ों-हजारों वीरोंको धराशायी कर दिया। उन्होंने एक क्षुरप्रसे मित्रसेनका मस्तक उड़ा दिया और सुशर्माकी हँसलीपर चोट की। इसपर सारे संशप्तक वीर उन्हें चारों ओरसे घेरकर तरह-तरहके शस्त्रोंसे पीड़ित करने लगे।



अब महारथी अर्जुनने ऐन्द्रास्त्र प्रकट किया। उसमेंसे हजारों बाण निकलने लगे, जिनकी चोटसे अनेकों राजकुमार, क्षत्रिय वीर और हाथी-घोड़े पृथ्वीपर लोट-पोट हो गये। इस प्रकार जब धनुर्धर धनञ्जय संशप्तकोंका संहार करने लगे तो उनके पैर उखड़ गये। उनमेंसे अधिकांश वीर पीठ दिखाकर भाग गये। इस प्रकार वीरवर अर्जुनने उन्हें रणाङ्गणमें परास्त कर दिया।

राजन्! दूसरी ओर महाराज युधिष्ठिर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे। उनका सामना स्वयं राजा दुर्योधनने किया। धर्मराजने उसे देखते ही बाणोंसे बींध डाला। इसपर दुर्योधनने नौ बाणोंसे युधिष्ठिरपर और एक भल्लसे उनके सारथिपर चोट की। तब तो धर्मराजने दुर्योधनपर तेरह बाण छोड़े। उनमेंसे चारसे उसके चारों घोड़ोंको मारकर पाँचवेंसे सारथिका सिर उड़ा दिया, छठेसे उसकी ध्वजा काट डाली, सातवेंसे धनुषके टुकड़े कर दिये, आठवेंसे तलवार काटकर पृथ्वीपर गिरा दी और शेष पाँच बाणोंसे स्वयं दुर्योधनको पीड़ित कर डाला। अब आपका पुत्र उस अश्वहीन रथसे कूद पड़ा। दुर्योधनको इस प्रकार विपत्तिमें पड़ा देखकर कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य आदि योद्धा उसकी रक्षाके लिये आ गये। इसी समय सब पाण्डवलोग भी महाराज युधिष्ठिरको घेरकर संग्राम-भूमिमें बढ़ने लगे। बस, अब दोनों ओरसे खूब संग्राम होने लगा। दोनों ही पक्षके वीर वीरधर्मके अनुसार एक-दूसरेपर प्रहार करते थे; जो कोई पीठ दिखाता था, उसपर कोई चोट नहीं करता था। राजन्! इस समय योद्धाओंमें बड़ी मुक्का-मुक्की और हाथा-पाई हुई। वे एक-दूसरेके केश पकड़कर खींचने लगे। युद्धका जोर यहाँतक बढ़ा कि अपने-परायेका ज्ञान भी लुप्त हो गया। इस प्रकार जब धमासान युद्ध होने लगा तो योद्धालोग तरह-तरहके शस्त्रोंसे अनेक प्रकारसे एक-दूसरेके प्राण लेने लगे। रणभूमिमें सैकड़ों-हजारों कबन्ध खड़े हो गये। उनके शस्त्र और कवच खूनमें लथपथ हो रहे थे। इस समय योद्धाओंको यद्यपि अपने-परायेका ज्ञान नहीं रहा था, तो भी वे युद्धको अपना कर्तव्य समझकर विजयकी लालसासे बराबर जूझ रहे थे। उनके सामने अपना या पराया—जो भी आता, उसीका वे सफाया कर डालते थे। संग्रामभूमि दोनों ओरके वीरोंसे खलबला-सी रही थी तथा टूटे हुए रथ और मारे हुए हाथी, घोड़े एवं योद्धाओंके कारण अगम्य-सी हो गयी थी। वहाँ क्षणमें खूनकी नदी बहने लगती

थी। कर्ण पाञ्चालोंका, अर्जुन त्रिगर्तोंका और भीमसेन कौरव तथा गजारोही सेनाका संहार कर रहे थे। इस प्रकार तीसरे पहरतक यह कौरव और पाण्डव-सेनाओंका भीषण संहार चलता रहा।



दुर्योधन और कर्णका राजा युधिष्ठिर, अर्जुन एवं सात्यकिके साथ संग्राम

राजा धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! तुमने कहा कि युधिष्ठिरने महारथी दुर्योधनको रथहीन कर दिया था, सो उसके बाद उन दोनोंका किस प्रकार युद्ध हुआ ? इसके सिवा तीसरे पहरका रोमाञ्चकारी युद्ध भी कैसे-कैसे हुआ ? यह सब वृत्तान्त तुम मुझे सुनाओ।

सञ्जयने कहा—राजन्! जब दोनों ओरकी सेनाएँ आपसमें भिड़ गयीं तो आपका पुत्र एक दूसरे रथमें चढ़कर संग्रामभूमिमें आया। उसने अपने सारथिसे कहा, 'सूत! चल, चल जल्दीसे; जहाँ राजा युधिष्ठिर हैं, वहीं मुझे शीघ्र ले चल।' तब सारथि तुरंत ही उस रथको हाँककर धर्मराजके सामने ले गया। दुर्योधनने फौरन ही एक पैने बाणसे उनका धनुष काट डाला। इसपर महाराज युधिष्ठिरने दूसरा धनुष लेकर दुर्योधनके धनुष और ध्वजाके टुकड़े कर दिये। तब दुर्योधनने भी दूसरा धनुष लेकर उन्हें घायल कर डाला। इस प्रकार वे दोनों ही वीर अत्यन्त क्रोधमें भरकर एक-दूसरेपर शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, दोनों ही एक-दूसरेपर वार करनेका मौका देखने लगे, दोनों ही बाणोंकी चोटोंसे घायल हो गये तथा दोनों ही बार-बार सिंहके समान गर्जना और शङ्खध्वनि करने लगे। राजा युधिष्ठिरने तीन वज्रके समान वेगवान् और दुर्धर्ष बाणोंसे दुर्योधनकी छातीपर चोट की। इसके बदलेमें आपके पुत्रने उन्हें पाँच तीक्ष्ण बाणोंसे घायल कर दिया। इसके बाद उसने उनपर एक अत्यन्त तीक्ष्ण लोहमयी शक्ति छोड़ी। उसे आते देख राजा युधिष्ठिरने तीन पैने बाणोंसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये तथा पाँच बाणोंसे दुर्योधनको भी घायल कर डाला।

अब दुर्योधन गदा उठाकर बड़े वेगसे धर्मराजकी ओर दौड़ा। यह देखकर उन्होंने आपके पुत्रपर एक अत्यन्त देदीप्यमान शक्ति छोड़ी। उसने उसके कवचको तोड़कर छातीपर चोट पहुँचायी। इससे वह अत्यन्त व्याकुल होकर गिर पड़ा और मूर्छित हो गया। इसी समय भीमसेनने अपनी प्रतिज्ञा याद करके धर्मराजसे कहा, 'महाराज! इसे आप न मारें।' यह सुनकर धर्मराज वहाँसे हट गये।

अब आपके पक्षके योद्धा कर्णको आगे करके पाण्डव सेनापर टूट पड़े और उनके साथ युद्ध करने लगे। कर्णने अनेकों चमचमाते हुए बाण सात्यकिपर छोड़े। इसपर सात्यकिने फौरन ही उसे तथा उसके रथ, सारथि और घोड़ोंको अनेकों तीखे तीरोंसे छा दिया। कर्णको इस प्रकार सात्यकिके बाणोंसे व्यथित देख आपके पक्षके अनेकों अतिरथी हाथी, घोड़े, रथी और पैदल सेनाएँ लेकर दौड़े। उनका सामना द्रुपदके पुत्र आदि अनेकों वीरोंने किया। इससे वहाँ हाथी, घोड़े, रथ और सैनिकोंका बड़ा भारी संहार होने लगा।

इसी समय पुरुषप्रवर श्रीकृष्ण और अर्जुन अपने नित्यकर्मसे निपटकर तथा शास्त्रानुसार भगवान् शंकरका पूजन कर युद्धक्षेत्रमें आये। अर्जुनने गाण्डीव धनुष चढ़ाकर सारी दिशा-विदिशाओंको बाणोंसे व्याप्त कर दिया; शत्रुओंके अनेकों रथ, आयुध, ध्वजा और सारथियोंको नष्ट कर डाला तथा बहुत-से हाथी, महावत, घुड़सवार, घोड़े और पैदलोंको यमराजके घर भेज दिया। यह देखकर राजा दुर्योधन अकेला ही बाणोंकी वर्षा करता अर्जुनपर टूट पड़ा। अर्जुनने सात बाणोंसे उसके धनुष, सारथि, ध्वजा और घोड़ोंको नष्ट करके एक बाणसे उसका छत्र काट डाला। इसके बाद ज्यों ही उन्होंने दुर्योधनपर एक नवाँ प्राणघातक बाण छोड़ा कि अश्वत्थामाने बीचहीमें उसके सात टुकड़े कर दिये। इसपर अर्जुनने अपने बाणोंसे अश्वत्थामाके धनुष, रथ और घोड़ोंको नष्ट कर दिया तथा कृपाचार्यके प्रचण्ड कोदण्डको भी टूक-टूक कर डाला। इसके बाद वे कृतवर्माके धनुष, ध्वजा और घोड़ोंको नष्ट करके तथा दुःशासनका भी धनुष काटकर कर्णके सामने आये। कर्ण भी फौरन ही सात्यकिको छोड़कर अर्जुनके सामने आया और उन्हें तीन तथा श्रीकृष्णको बीस बाणोंसे घायल कर बार-बार बाणोंकी वर्षा करने लगा।

इतनेहीमें सात्यकि भी आ गया। उसने कर्णपर पहले निन्यानबे और फिर सौ बाणोंसे चोट की। इसके बाद पाण्डवपक्षके अन्यान्य योद्धा भी कर्णपर वार करने लगे। युधामन्यु, शिखण्डी, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रक वीर, उत्तमौजा, युयुत्सु, नकुल-सहदेव, धृष्टद्युम्न, चेदि, करूष, मत्स्य और केकय देशके वीर तथा चेकितान और धर्मराज युधिष्ठिर—इन सभी शूरवीरोंने बहुत-सी बलवती सेना लेकर उसे चारों ओरसे घेर लिया तथा उसपर तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। परंतु कर्णने अपने पैने

बाणोंसे उस सारी शस्त्रवृष्टिको छिन्न-भिन्न कर डाला। बात-की-बातमें कर्णकी अस्त्रशक्तिसे आक्रान्त होकर पाण्डवोंकी सेना शस्त्रहीन और घायल होकर भागने लगी। अर्जुनने हँसते-हँसते अपने अस्त्रोंसे कर्णके अस्त्रोंको नष्ट करके सम्पूर्ण दिशाओं, आकाश और पृथ्वीको बाणोंसे व्याप्त कर दिया। उनके बाण मूसल और परिघोंके समान गिर रहे थे तथा कोई शतघ्नी और वज्रोंके समान जान पड़ते थे।

इस प्रकार आपके और पाण्डवोंके पक्षके योद्धा विजयकी लालसासे युद्धमें जुटे हुए थे कि इसी समय सूर्यदेव अस्ताचलके शिखरपर जा पहुँचे। सब ओर अन्धकार फैलने लगा तथा बड़े-बड़े धनुर्धर अपने-अपने योद्धाओंके सहित छावनीकी ओर चलने लगे। कौरवोंको जाते देख विजयी पाण्डव भी अपने शिविरोंको चल दिये। सब वीर बाजे-गाजेके साथ सिंहनाद और गर्जना करते तथा अपने शत्रुओंकी हँसी एवं श्रीकृष्ण और अर्जुनकी स्तुति करते जाते थे। इस प्रकार उन्होंने छावनीमें जाकर रातभर विश्राम किया।



कर्णके प्रस्ताव और दुर्योधनके आग्रहसे शल्यका आनाकानीके बाद कर्णका सारथि बनना स्वीकार करना

राजा धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! इसके बाद दुर्योधनने क्या किया ? वह मन्दबुद्धि तो कर्णका सहारा पाकर पाण्डवोंको उनके पुत्र और श्रीकृष्णके सहित परास्त करनेका दम भरता था। किंतु बड़े ही खेदकी बात है कि कर्ण अपने पराक्रमसे संग्राममें पाण्डवोंसे पार नहीं पा सका। निःसंदेह जय-पराजय दैवाधीन ही है। मालूम होता है, अब जूएका परिणाम समीप ही आ गया है। हाय ! इस दुर्योधनके कारण मुझे काँटेके समान अनेकों तीव्रतर कष्ट सहने पड़ेंगे। मैं नित्यप्रति अपने पुत्रोंके ही मारे जाने और परास्त होनेकी बात सुनता रहा हूँ। क्या पाण्डवोंको रोकनेवाला हमारी सेनामें कोई भी वीर नहीं है ?

सञ्जयने कहा—राजन् ! जो पुरुष बीती हुई बातके लिये पीछेसे सोच-विचार करता है, उसका वह काम तो नहीं बनता, हाँ, चिन्ता उसे अवश्य खाती रहती है। अब आपको इस कार्यमें सफलता मिलनी तो बड़े दूरकी बात है; क्योंकि पहले जान-बूझकर भी आपने इसके औचित्य-अनौचित्यके विषयमें विचार नहीं किया। महाराज ! पाण्डवोंने तो आपसे बार-बार कहा था कि लड़ाई मत ठानिये, किंतु आपने मोहवश सुना ही नहीं। आपने पाण्डवोंके ऊपर बड़े-बड़े जुल्म किये हैं। इस समय भी आपहीके कारण यह राजाओंका घोर संहार हो रहा है। परंतु जो बात बीत गयी, उसके विषयमें आप चिन्ता न करें। अब जिस प्रकार वह भयंकर संहार हुआ, वह सुनिये।

वह रात बीतनेपर कर्ण राजा दुर्योधनके पास आया और उससे कहने लगा, 'राजन् ! आज मेरी अर्जुनके साथ मुठभेड़ होगी; उसमें या तो मैं उस वीरका काम तमाम कर दूँगा या वह मुझे मार डालेगा। मैं इन्द्रकी दी हुई शक्ति खो बैठा हूँ; इसलिये आज अर्जुन अवश्य मेरे ऊपर धावा करेगा। अब जो कामकी बात है वह सुनिये। मेरे और अर्जुनके दिव्य अस्त्रोंका प्रभाव तो समान ही है; किंतु शत्रुके पराक्रमको कुचलनेमें, हाथकी सफाईमें, युद्धकौशलमें और अस्त्र-संचालनमें अर्जुन मेरे समान नहीं है। इसके सिवा बल, वीर्य, विज्ञान, पराक्रम और निशाना साधनेमें भी वह मेरी बराबरी नहीं कर सकता। मेरा जो यह विजय नामका धनुष है, इसे विश्वकर्माने इन्द्रके लिये बनाया था। इसीके द्वारा इन्द्रने दैत्योंपर विजय प्राप्त की थी। इन्द्रने यह श्रेष्ठ धनुष परशुरामजीको दिया था और उन्होंने मुझे दिया। यह परशुरामजीका दिया हुआ प्रचण्ड धनुष गाण्डीवसे भी बढ़कर है। इसीके द्वारा परशुरामजीने इक्कीस बार पृथ्वीको जीता था। इसीसे अर्जुनके साथ मेरे दो हाथ होंगे। आज संग्रामभूमिमें विजयी वीर अर्जुनको धराशायी करके मैं आपको और आपके बन्धु-बान्धवोंको आनन्दित करूँगा। जिस प्रकार धर्ममें पूर्ण अनुराग रखनेवाले संयमी पुरुषका कार्यमें सफलता पाना स्वाभाविक ही है, उसी प्रकार ऐसा कोई काम नहीं है जिसे मैं आपके लिये न कर सकूँ। परंतु जिस बातमें मैं अर्जुनसे कम हूँ, वह भी मुझे अवश्य बता देनी चाहिये। उसके धनुषकी डोरी दिव्य है, तरकस अक्षय हैं तथा उसके पास अग्निदेवका दिया हुआ दिव्य रथ है, जो किसी भी ओरसे तोड़ा नहीं जा सकता। इसके सिवा उसके घोड़े मनके समान वेगवान् हैं, ध्वजा भी दिव्य और दीप्तिमती है तथा उसपर बड़ा ही विस्मयमें डालनेवाला एक वानर बैठा हुआ है। इससे भी बढ़कर यह बात है कि जगत्‌की रचना करनेवाले स्वयं श्रीकृष्ण उसके सारथि और रक्षक हैं। इन सब बातोंकी मेरे पास कमी है; तो भी मैं अर्जुनके साथ युद्ध करना चाहता हूँ। हमारे पक्षमें महाराज शल्य अवश्य श्रीकृष्णकी बराबरी कर सकते हैं। यदि वे मेरे सारथि बन जायँ तो निश्चय ही आपकी विजय हो सकती है। अतः आप इन्हें मेरा सारथ्य करनेके लिये तैयार कर लीजिये। इसके सिवा कई छकड़े मेरे लिये बाण लेकर चलें तथा बढ़िया घोड़ोंसे जुते हुए कई उत्तम-उत्तम रथ मेरे

पीछे-पीछे चलें जिससे कि आवश्यकता होनेपर मैं तुरंत दूसरा रथ बदल सकूँ। महाराज शल्य श्रीकृष्णके समान ही अश्वविद्याके मर्मज्ञ हैं। यदि ये मेरे सारथि हो जायँ तो मेरा रथ श्रीकृष्णके रथसे भी बढ़ जाय। फिर तो इन्द्रके सहित देवताओंका भी मेरे सामने आनेका साहस नहीं होगा। बस, मैं आपसे इतना प्रबन्ध कराना चाहता हूँ। फिर मैं संग्रामभूमिमें जो काम करके दिखाऊँगा, वह आप देखेंगे ही। अजी ! फिर तो जो भी पाण्डव वीर संग्राममें मेरे सामने आवेंगे, उन्हें मैं सर्वथा परास्त करके ही छोड़ूँगा।'

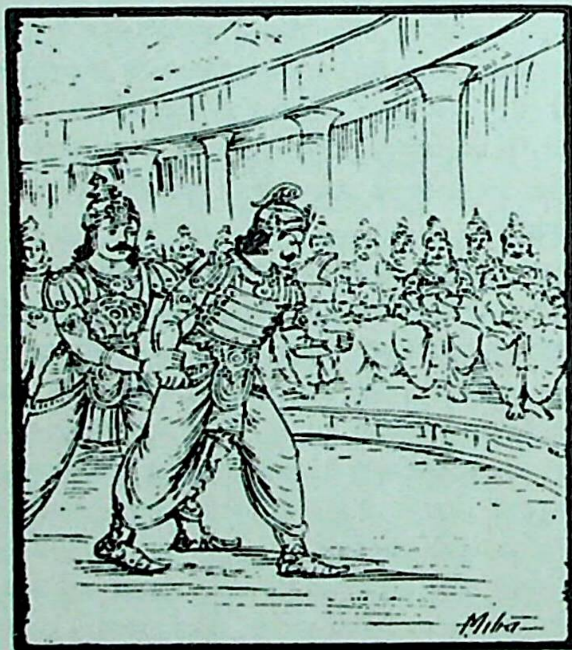
सञ्जयने कहा—जब कर्णने आपके पुत्रसे इस प्रकार कहा तो उसने प्रसन्न चित्तसे उसकी प्रशंसा करते हुए कहा, 'कर्ण ! तुम्हारा जैसा विचार है, मैं वैसा ही करूँगा। छकड़े तुम्हारे बाण लेकर चलेंगे तथा हम सब राजालोग तुम्हारे पीछे-पीछे चलेंगे।' राजन् ! कर्णसे ऐसा कहकर आपका पुत्र बड़ी विनयसे महारथी शल्यके पास गया और उनसे प्रेमपूर्वक कहने लगा, मद्रेश्वर ! आप सत्यव्रत, महाभाग और वक्ताओंमें अग्रगण्य हैं। मैं सिर झुकाकर अत्यन्त विनयके साथ आपसे एक प्रार्थना करता हूँ। आप अर्जुनके नाश



और मेरे हितके लिये केवल प्रेमके ही नाते कर्णका सारथ्य करना स्वीकार कर लीजिये। आपके सारथि बन जानेपर राधापुत्र कर्ण मेरे शत्रुओंको परास्त कर देगा। आपके सिवा कर्णके घोड़ोंकी रास पकड़ने योग्य कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। आप संग्राममें साक्षात् श्रीकृष्णके समान हैं। अतः जिस प्रकार त्रिपुर-युद्धके समय ब्रह्माजीने भगवान् शंकरकी सहायता की थी तथा जैसे श्रीकृष्ण सम्पूर्ण आपत्तियोंमें अर्जुनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप कर्णकी रक्षा कीजिये। आरम्भमें ही शत्रुओंकी सैन्यशक्ति कम होनेपर भी उन्होंने हमारी बहुत-सी सेनाको नष्ट कर डाला था, फिर इस समयकी तो बात ही क्या है ? इसलिये अब आप ऐसा उपाय कीजिये, जिससे पाण्डवलोग मेरी रही-सही सेनाका संहार न कर सकें। पहले संग्रामभूमिमें अर्जुन इस प्रकार शत्रुओंका संहार नहीं कर सकता था, किंतु अब श्रीकृष्णका साथ हो जानेसे ही उसकी इतनी शक्ति बढ़ गयी है। अब पाण्डवोंकी सेनामें आपके और कर्णके हिस्सेका ही भाग रह गया है, उसे आप कर्णके साथ मिलकर आज एक साथ नष्ट कर दीजिये। आप कोई ऐसी युक्ति कीजिये, जिससे पाञ्चाल और सृञ्जयोंके सहित कुन्तीके पुत्र शीघ्र ही नष्ट हो जायँ। कर्ण रथियोंमें श्रेष्ठ है और आप सारथियोंमें सर्वोत्तम हैं। आप दोनोंका-सा संयोग संसारमें न कभी हुआ है न होगा ही। जिस प्रकार श्रीकृष्ण सब अवस्थाओंमें अर्जुनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप कर्णकी रक्षा कीजिये। आपके सारथि बन जानेपर तो कर्ण इन्द्र और समस्त देवताओंके लिये भी अजेय हो जायगा, फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है ?'

दुर्योधनकी यह बात सुनकर शल्य एकदम क्रोधमें भर गये। उनकी भौंहोंमें बल पड़ गये तथा हाथ बार-बार काँपने लगे। उन्हें अपने कुल, ऐश्वर्य, विद्या और बलका बड़ा गर्व था। इसलिये उन्होंने क्रोधसे आँखें लाल करके कहा, 'दुर्योधन ! अवश्य ही तुम या तो मेरा अपमान कर रहे हो या तुम्हें मेरे प्रति संदेह है। इसीसे तुम मुझे सारथिका काम करनेकी आज्ञा दे रहे हो। तुम कर्णको हमारी अपेक्षा भी श्रेष्ठ समझकर उसकी प्रशंसा करते हो। किंतु मैं उसे संग्राममें अपने समान नहीं समझता। तुम जो बड़े-से-बड़ा वीर हो, उसे मेरे हिस्सेमें कर दो; मैं उसे संग्राममें जीतकर अपने घर चला जाऊँगा। अथवा आज मैं अकेला ही युद्ध करूँगा। तब तुम शत्रुओंका संहार करते समय मेरा पराक्रम देख लेना। जरा मेरी इन वज्रके समान मोटी और गँठीली भुजाओंको तो देखो तथा मेरे विचित्र धनुष, सर्पके सदृश बाण और सुवर्णपत्रसे मढ़ी हुई गदापर तो दृष्टि डालो। मैं अपने तेजसे सारी पृथ्वीको फोड़ सकता हूँ, पर्वतोंको छिन्न-भिन्न कर सकता हूँ और समुद्रोंको सुखा सकता हूँ। इस प्रकार शत्रुओंका दमन करनेमें पूर्णतया समर्थ होनेपर भी तुम मुझे इस नीच सूतपुत्रके सारथ्यका काम करनेकी आज्ञा कैसे दे रहे हो ? मैं इस नीचकी अपेक्षा सभी

प्रकार श्रेष्ठ हूँ, इसलिये उसका दासत्व करनेको कभी तैयार नहीं हो सकता। जो पुरुष प्रेमवश अपने आश्रित हुए किसी श्रेष्ठ व्यक्तिको नीच पुरुषके अधीन कर देता है, उसे उच्चको नीच और नीचको उच्च करनेका पाप लगता है। ब्रह्माने ब्राह्मणोंको अपने मुखसे, क्षत्रियोंको भुजाओंसे, वैश्योंको जंघाओंसे तथा शूद्रोंको पैरोंसे उत्पन्न किया है—ऐसा श्रुतिका मत है। इनमें क्षत्रियजाति सब वर्णोंकी रक्षा करनेवाली, सबसे कर लेनेवाली और दान देनेवाली है। ब्राह्मणोंका काम यज्ञ कराना, पढ़ाना और विशुद्ध दान लेना है। कृषि, गोपालन और धर्मानुसार दान देना वैश्योंका कर्म है तथा शूद्रलोग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवाके काममें नियुक्त किये गये हैं। यह बात तो मैंने बिलकुल नहीं सुनी कि क्षत्रिय शूद्रकी सेवा करे। मैंने राजर्षियोंके वंशमें जन्म लिया



है, मेरे मस्तकपर शास्त्रानुसार राज्याभिषेक किया गया है, लोग मुझे महारथी कहते हैं और वन्दीजन मेरी स्तुति किया करते हैं। ऐसा होकर भी मैं सूतपुत्रका सारथ्य करूँ—यह मेरे वशकी बात नहीं है। इस प्रकार अपमानित होकर तो मैं किसी प्रकार युद्ध नहीं कर सकूँगा। इसलिये अब मैं अपने घर जानेके लिये तुमसे आज्ञा माँगता हूँ।'

पुरुषसिंह शल्य ऐसा कहकर उठ खड़े हुए और वहाँ जो राजा बैठे थे, क्रोधपूर्वक उनके बीचसे जाने लगे। तब आपके पुत्रने बड़े प्रेम और मानसे उन्हें रोका और बड़े मीठे शब्दोंमें उन्हें समझाते हुए कहने लगा, 'राजन्! आप अपने विषयमें जैसा समझते हैं, निःसंदेह यह बात ऐसी ही है। परंतु मेरे कथनका जो अभिप्राय है, जरा उसे भी सुननेकी कृपा करें। आपके पूर्वपुरुष सर्वदा सत्यभाषण ही करते रहे हैं; मैं समझता हूँ, इसीसे आप 'आर्त्तायनि[1]' कहलाते हैं। तथा आप अपने शत्रुओंके लिये शल्य (काँटे) के समान हैं, इसीसे पृथ्वीतलमें 'शल्य' नामसे विख्यात हैं। आप धर्मज्ञ हैं और पहले मेरा प्रिय करनेका वचन दे चुके हैं; अतः अब अपने उसी वचनका पालन करनेकी कृपा कीजिये। आपकी अपेक्षा न तो कर्ण बलवान् है और न मैं ही हूँ; तो भी अश्वविद्याके सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता होनेके कारण मैं आपसे ऐसी प्रार्थना कर रहा हूँ। कर्ण शस्त्रविद्यामें अर्जुनसे श्रेष्ठ है और आप अश्वविद्यामें श्रीकृष्णसे बढ़-चढ़कर हैं।'

इसपर राजा शल्यने कहा—'दुर्योधन! तुम सब सेनाके सामने मुझे श्रीकृष्णसे भी बढ़कर बता रहे हो, इससे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। अच्छा लो, मैं कर्णका सारथ्य करना स्वीकार किये लेता हूँ। किंतु कर्णके साथ मेरी एक शर्त रहेगी। वह यह कि युद्धके समय मैं उससे चाहे जैसी बात कह सकूँगा; उसमें वह किसी प्रकारकी आपत्ति न करे।' इसपर कर्ण और आपके पुत्रने 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर शल्यकी शर्त स्वीकार कर ली।



१. ऋतु जिसका अयन (आश्रय) हो, उसे 'ऋतायन' कहते हैं। उसीके वंशमें उत्पन्न हुआ 'आर्त्तायनि' कहा जाता है।

त्रिपुरोंकी उत्पत्ति और उनके नाशका प्रसङ्ग

दुर्योधनने कहा—महाराज शल्य ! पूर्वकालमें महर्षि मार्कण्डेयने मेरे पिताजीसे एक उपाख्यान कहा था। वह सब कथा मैं आपको सुनाता हूँ। उसे सुनिये और मैंने जो प्रार्थना की है, उसके विषयमें किसी प्रकारका विचार न कीजिये।

पहले तारकामय नामका एक संग्राम हुआ था। उसमें देवताओंने दैत्योंको परास्त कर दिया। उस समय तारक दैत्यके ताराक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नामके तीन पुत्र थे। उन्होंने कठोर नियमोंका पालन करते हुए बड़ी ही भीषण तपस्या की और अपने शरीरोंको बिलकुल सुखा दिया। उनके संयम, तप, नियम और समाधिसे पितामह ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये और उन्हें वर देनेके लिये पधारे। उन तीनों दैत्योंने सर्वलोकेश्वर श्रीब्रह्माजीको प्रणाम किया और उनसे कहा, 'पितामह ! आप हमें ऐसा वर दीजिये कि हम तीन नगरोंमें बैठकर इस सारी पृथ्वीपर आकाशमार्गसे विचरते रहें। इस प्रकार एक हजार वर्ष बीतनेपर हम एक जगह मिलें। उस समय जब हमारे तीनों पुर मिलकर एक हो जायँ तो उस समय जो देवता उन्हें एक ही बाणसे नष्ट कर सके, वही हमारी मृत्युका कारण हो।' इसपर श्रीब्रह्माजी 'ऐसा ही हो' यह कहकर अपने लोकको चले गये।

ब्रह्माजीसे ऐसा वर पाकर वे दैत्य बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने आपसमें सलाह करके मयदानवके पास जाकर तीन नगर बनानेको कहा। मतिमान् मयने अपने तपके प्रभावसे तीन पुर तैयार किये। उनमें एक सोनेका, एक चाँदीका और एक लोहेका था। सोनेका नगर स्वर्गमें, चाँदीका अन्तरिक्षमें और लोहेका पृथ्वीमें रहा। ये तीनों ही नगर इच्छानुसार आ-जा सकते थे। इनमेंसे प्रत्येककी लंबाई-चौड़ाई सौ-सौ योजन थी। इनमें आपसमें सटे हुए बड़े-बड़े भवन और खुली हुई सड़कें थीं तथा अनेकों प्रासादों और राजद्वारोंसे इनकी बड़ी शोभा हो रही थी। इन नगरोंके अलग-अलग राजा थे। सुवर्णमय नगर तारकाक्षका था, रजतमय कमलाक्षका और लोहमय विद्युन्मालीका। इन तीनों दैत्योंने अपने शस्त्रबलसे तीनों लोकोंको अपने काबूमें कर लिया। इन दैत्योंके पास जहाँ-तहाँसे करोड़ों दानव योद्धा आकर एकत्रित हो गये। इन तीनों पुरोंमें रहनेवाला जो पुरुष जैसी इच्छा करता, उसकी उस कामनाको मयासुर अपनी मायासे उसी समय पूरी कर देता था।

तारकाक्षके हरि नामका एक महाबली पुत्र था। उसने बड़ी कठोर तपस्या की। इससे ब्रह्माजी उसपर प्रसन्न हो गये। उन्हें संतुष्ट देखकर हरिने यह वर माँगा कि 'हमारे नगरमें एक ऐसी बावड़ी बन जाय कि जिसमें डालनेपर शस्त्रसे घायल हुए योद्धा और भी अधिक बलवान् हो जायँ।' इस प्रकार ब्रह्माजीसे वर पाकर तारकाक्षके पुत्र हरिने अपने नगरमें एक मुर्दोंको जीवित कर देनेवाली बावड़ी बनवायी। दैत्यलोग जिस रूप और जिस वेषमें मरते थे उस बावड़ीमें डालनेपर वे उसी रूप, उसी वेषमें जीवित होकर निकल आते थे। इस प्रकार उस बावड़ीको पाकर वे सारे लोकोंको कष्ट देने लगे तथा अपनी घोर तपस्यासे सिद्धि पाकर वे देवताओंके भयकी वृद्धि करने लगे। युद्धमें उनका किसी भी प्रकार नाश नहीं हो सकता था। अब तो वे लोभ और मोहसे अंधे होकर एकदम मतवाले हो गये। उन्होंने लज्जाको एक ओर रख दिया और सब ओर लूट-मार करने लगे। वरदानके मदमें चूर होकर वे समय-समयपर जहाँ-तहाँ देवताओंको भगाकर स्वेच्छासे विचरने लगे। उन मर्यादाहीन दुष्ट दानवोंने देवताओंके प्रिय उद्यान और ऋषियोंके पवित्र आश्रमोंको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

इस प्रकार जब सब लोक पीड़ित होने लगे तो मरुद्गणको साथ लेकर देवराज इन्द्रने चढ़ाई कर दी और उन नगरोंपर वे सब ओर वज्र-प्रहार करने लगे। किंतु जब वे ब्रह्माजीके वरके प्रभावसे उन अभेद्य नगरोंको तोड़नेमें समर्थ न हुए तो भयभीत होकर अनेकों देवताओंको साथ ले ब्रह्माजीके पास गये और उन्हें दैत्योंके कारण मिलनेवाले अपने कष्टोंकी कहानी सुनायी। इस प्रकार सारा हाल सुनाकर उन्होंने प्रणाम करके ब्रह्माजीसे उनके वधका उपाय पूछा। देवताओंकी सब बातें सुनकर भगवान् ब्रह्माजीने कहा, 'जो दैत्य तुमलोगोंको दुःख दे रहा है, वह तो मेरा अपराध करनेमें भी नहीं चूकता। इसमें संदेह नहीं, मैं सब प्राणियोंके लिये समान हूँ। परंतु मेरा नियम है कि अधर्मियोंका तो नाश ही करना चाहिये। इसके लिये उन तीनों नगरोंको एक ही बाणसे तोड़ना होगा। किंतु इस कामको करनेमें श्रीमहादेवजीके सिवा और कोई समर्थ नहीं है। इसलिये तुम सब उनके पास जाकर यह वर माँगो। वे अवश्य उन दैत्योंको मार डालेंगे।'

ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर इन्द्रादि सब देवता उन्हींके नेतृत्वमें श्रीमहादेवजीकी शरणमें गये। भगवान् शंकर अपने शरणापन्नोंको भयके समय अभयदान करनेवाले और सबके आत्मस्वरूप हैं। उनके पास जाकर वे सब उनकी स्तुति करने लगे। तब उन्हें तेजोराशि पार्वतीपति श्रीमहादेवजीका दर्शन हुआ। सभीने पृथ्वीपर सिर रखकर उन्हें प्रणाम किया और महादेवजीने आशीर्वादद्वारा सत्कार करके सबको उठाया। फिर वे मुसकराते हुए कहने लगे, 'कहो, कहो, तुम्हारी क्या इच्छा है ?'

भगवान्‌की आज्ञा पाकर देवतालोग स्वस्थचित्त होकर कहने लगे, 'देवाधिदेव ! आपको नमस्कार है। प्रजापति भी आपकी स्तुति करते हैं और सबने भी आपकी स्तुति की है; आप सभीकी स्तुतिके पात्र हैं और सभी आपकी स्तुति करते हैं। शम्भो ! हम आपको नमस्कार करते हैं। आप सबके आश्रयस्थान और सभीका संहार करनेवाले हैं। ऐसे ब्रह्मस्वरूप आपको हम नमस्कार करते हैं। आप सभीके अधीश्वर और नियन्ता हैं तथा वनस्पति, मनुष्य, गौ और यज्ञोंके पति हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं। देव ! हम मन, वाणी और कर्मोंसे आपके शरणापन्न हैं; आप हमपर कृपा कीजिये।'

तब भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर उनका स्वागत-सत्कार करते हुए कहा, 'देवगण ! भयको छोड़िये और बताइये, मैं आपका क्या काम करूँ ?'

इस प्रकार जब महादेवजीने देवता, ऋषि और पितृगणको अभयदान दिया तो ब्रह्माजीने उनका सत्कार करके संसारके हितके लिये कहा, 'सर्वेश्वर ! आपकी कृपासे इस प्रजापतिके पदपर प्रतिष्ठित होकर मैंने दानवोंको एक महान् वर दे दिया था। उसके कारण उन्होंने सब प्रकारकी मर्यादा तोड़ दी है। अब आपके सिवा उनका और कोई भी संहार नहीं कर सकता। देवतालोग आपकी शरणमें आकर यही प्रार्थना कर रहे हैं, सो आप इनपर कृपा कीजिये।'

तब महादेवजीने कहा, 'देवताओ ! मैं धनुष-बाण धारण करके रथमें सवार हो संग्रामभूमिमें तुम्हारे शत्रुओंका संहार करूँगा। अतः तुम मेरे लिये एक ऐसा रथ और धनुष-बाण तलाश करो, जिनके द्वारा मैं इन नगरोंको पृथ्वीपर गिरा सकूँ।'

देवताओंने कहा—'देवेश्वर ! हम तीनों लोकोंके तत्त्वोंको जहाँ-तहाँसे इकट्ठे करके आपके लिये एक तेजोमय रथ तैयार करेंगे।' ऐसा कहकर उन्होंने विश्वकर्माके रचे हुए एक विशाल रथको महादेवजीके लिये तैयार किया। उन्होंने विष्णु, चन्द्रमा और अग्निको बाण बनाया तथा बड़े-बड़े नगरोंसे भरी हुई पर्वत, वन और द्वीपोंसे व्याप्त वसुन्धराको ही उनका रथ बना दिया। इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर आदि लोकपालोंको घोड़े बनाया एवं मनको आधार-भूमि बना दिया। इस प्रकार जब वह श्रेष्ठ रथ तैयार हो गया तो महादेवजीने उसमें अपने आयुध रखे। ब्रह्मदण्ड, कालदण्ड, रुद्रदण्ड और ज्वर—ये सब ओर मुख किये उस रथकी रक्षामें नियुक्त हुए; अथर्वा और अङ्गिरा उनके चक्ररक्षक बने; ऋग्वेद, सामवेद और समस्त पुराण उस रथके आगे चलनेवाले योद्धा हुए; इतिहास और यजुर्वेद पृष्ठरक्षक बने तथा दिव्यवाणी और विद्याएँ पार्श्वरक्षक बनीं। स्तोत्र तथा वषट्कार और ओङ्कार रथके अग्रभागमें सुशोभित हुए। उन्होंने छहों ऋतुओंसे सुशोभित संवत्सरको अपना धनुष बनाया तथा अपनी छायाको धनुषकी अखण्ड प्रत्यञ्चाके स्थानमें रखा।

इस प्रकार रथको तैयार देख वे कवच और धनुष धारण कर विष्णु, सोम और अग्निसे बने हुए दिव्य बाणको लेकर युद्धके लिये तैयार हो गये। तब देवताओंने सुगन्धयुक्त वायुको उनके लिये हवा करनेको नियुक्त किया। तब महादेवजी समस्त युद्धसज्जासे सुसज्जित हो पृथ्वीको कम्पायमान करते रथपर सवार हुए। बड़े-बड़े ऋषि, गन्धर्व, देवता और अप्सराओंके समूह उनकी स्तुति करने लगे। इस समय भगवान् शंकर खड्ग, बाण और धनुष धारण करके बड़ी ही शोभा पा रहे थे। उन्होंने हँसकर कहा, 'मेरा सारथि कौन बनेगा ? देवताओंने कहा, 'देवेश्वर ! आप जिसे आज्ञा देंगे, वही आपका सारथि बन जायगा—इसमें आप तनिक भी संदेह न करें।' तब भगवान्‌ने कहा, 'तुम स्वयं ही विचार करके जो मुझसे श्रेष्ठ हो, उसे मेरा सारथि बना दो।'

यह सुनकर देवताओंने पितामह ब्रह्माजीके पास जाकर उन्हें प्रसन्न करके कहा, 'भगवन् ! आपने हमसे पहले ही कहा था कि मैं तुम्हारा हित करूँगा, सो अपना वह वचन पूरा कीजिये। देव ! हमने जो रथ तैयार किया है, वह बड़ा ही दुर्धर्ष है; भगवान् शंकर उसके योद्धा नियुक्त किये गये हैं, पर्वतोंके सहित पृथ्वी ही रथ है तथा नक्षत्रमाला ही उसका वरूथ है। किन्तु उसका कोई सारथि दिखायी नहीं देता। सारथि इन सबकी अपेक्षा बढ़-चढ़कर होना चाहिये; क्योंकि रथ तो उसीके अधीन रहता है। हमारी दृष्टिमें आपके सिवा और कोई भी इसका सारथि बननेयोग्य नहीं है। आप सर्वगुणसम्पन्न और सब देवताओंमें श्रेष्ठ हैं। अतः अब आप ही रथपर बैठकर घोड़ोंकी रास सँभालिये।'

ब्रह्माजीने कहा—देवताओ ! तुम जो कुछ कहते हो, उसमें कोई बात झूठ नहीं है। अतः जिस समय भगवान् शंकर युद्ध करेंगे, मैं अवश्य उनके घोड़े हाँकूँगा।

तब देवताओंने सम्पूर्ण लोकोंके स्रष्टा भगवान् ब्रह्माजीको श्रीमहादेवजीका सारथि बनाया। जिस समय वे उस विश्ववन्द्य रथपर बैठे, उसके घोड़ोंने पृथ्वीपर सिर टेककर उन्हें प्रणाम किया। परम तेजस्वी भगवान् ब्रह्माने रथपर

चढ़कर घोड़ोंकी रास और कोड़ा सँभाला और श्रीमहादेवजीसे कहा—'देवश्रेष्ठ ! रथपर सवार होइये।' तब भगवान् शंकर, विष्णु, सोम और अग्निसे उत्पन्न हुआ बाण लेकर अपने धनुषसे शत्रुओंको कम्पायमान करते रथपर चढ़े। उस समय महर्षि, गन्धर्व, देवसमूह और अप्सराओंने उनकी स्तुति की। भगवान् शिव रथपर बैठकर अपने तेजसे तीनों लोकोंको देदीप्यमान करने लगे। उन्होंने इन्द्रादि देवताओंसे कहा, 'तुमलोग ऐसा संदेह मत करना कि यह बाण इन पुरोंको नष्ट नहीं कर सकेगा; अब तुम इस बाणसे इन असुरोंका अन्त हुआ ही समझो।'

देवताओंने कहा, 'आपका कथन बिलकुल ठीक है। अब इन दैत्योंका अन्त हुआ ही समझना चाहिये। आपका वचन किसी प्रकार मिथ्या नहीं हो सकता।' इस प्रकार विचार करके देवतालोग बड़े प्रसन्न हुए। इसके बाद देवाधिदेव श्रीमहादेवजी उस विशाल रथपर चढ़कर सब देवताओंके साथ चले। उनके इस प्रकार कूच करनेपर सारा संसार और देवतालोग प्रसन्न हो गये। ऋषिगण अनेकों स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे और करोड़ों गन्धर्वगण तरह-तरहके बाजे बजाने लगे। अब भगवान् शंकरने मुसकराकर कहा, 'प्रजापते ! चलिये; जिधर वे दैत्यगण हैं, उधर ही घोड़े बढ़ाइये।' तब ब्रह्माजीने अपने मन और वायुके समान वेगवान् घोड़ोंको दैत्य और दानवोंसे रक्षित उन तीनों पुरोंकी ओर बढ़ाया।

इस समय नन्दीश्वरने बड़ी भारी गर्जना की, जिससे सारी दिशाएँ गूँज उठीं। उनका वह भीषण नाद सुनकर तारकासुरके अनेकों दैत्य नष्ट हो गये। उनके सिवा जो शेष रहे, वे युद्धके लिये उनके सामने आ गये। अब त्रिशूलपाणि भगवान् शंकरने क्रोधमें भरकर अपने धनुषपर रौंदा चढ़ाया और उसपर बाण चढ़ाकर उसे पाशुपतास्त्रसे युक्त किया। फिर वे तीनों पुरोंके इकट्ठे होनेका चिन्तन करने लगे। इस प्रकार जब वे धनुष चढ़ाकर तैयार हो गये तो उसी समय तीनों नगर मिलकर एक हो गये। यह देखकर देवतालोग बड़ी हर्षध्वनि करने लगे तथा सिद्ध और महर्षियोंके सहित उनकी स्तुति करते हुए जय-जयकार करने लगे।

इस प्रकार जब असह्यतेजस्वी भगवान् शंकर असुरोंका संहार करनेकी तैयारी कर रहे थे, उनके सामने तीनों पुर एकत्रित होकर प्रकट हुए। उन्होंने तुरंत ही अपना दिव्य धनुष खींचकर उनपर वह त्रिलोकीका सारभूत बाण छोड़ा। उस बाणके छूटते ही तीनों पुर नष्ट होकर गिर गये। उस समय बड़ा ही आर्तनाद हुआ। महादेवजीने उन असुरोंको भस्म करके पश्चिम समुद्रमें डाल दिया। इस प्रकार त्रिलोकहितकारी भगवान् शिवने कुपित होकर उस त्रिपुरका दाह किया और दैत्योंको निर्मूल कर दिया। फिर अपने क्रोधसे उत्पन्न हुई अग्निको रोककर उन्होंने कहा, 'तू त्रिलोकीको भस्म न कर।'

इस प्रकार दैत्योंका नाश हो जानेपर समस्त देवता, ऋषि और लोक प्रकृतिस्थ हो गये तथा बड़े श्रेष्ठ वचनोंसे भगवान् शंकरकी स्तुति करने लगे। फिर भगवान्‌की आज्ञा पाकर ब्रह्मादि सभी देवगण सफलमनोरथ होकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये। इस तरह श्रीमहादेवजीने समस्त लोकोंका कल्याण किया था। उस समय जिस प्रकार जगत्कर्ता भगवान् ब्रह्माजीने उनका सारथ्य किया था उसी प्रकार आप भी वीरवर कर्णके अश्वोंका संचालन कीजिये। राजन् ! इसमें संदेह नहीं कि आप श्रीकृष्ण, कर्ण और अर्जुनसे भी श्रेष्ठ हैं। कर्ण युद्ध करनेमें श्रीमहादेवजीके समान है तो आप रथ हाँकनेमें साक्षात् ब्रह्माजीके सदृश हैं। अतः आप दोनों मिलकर मेरे शत्रुओंको उन दैत्योंके समान ही परास्त कर सकते हैं। महाराज ! अब आप ऐसा उपाय कीजिये जिससे आज कर्ण संग्रामभूमिमें अर्जुनका वध कर सके। कर्णकी, हमारी और हमारे राज्यकी स्थिति अब आपहीके ऊपर निर्भर है। हमारी विजय भी आपपर ही अवलम्बित है। अतः आप कर्णके घोड़ोंका नियन्त्रण कीजिये।

महाराज ! कर्णको स्वयं श्रीपरशुरामजीने धनुर्विद्या सिखायी है। यदि इसमें कोई दोष होता तो वे इसे कभी दिव्य अस्त्र न देते। मैं तो कर्णको क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुआ कोई देवपुत्र ही समझता हूँ। यह कवच और कुण्डल पहने उत्पन्न हुआ है तथा विशालबाहु और महारथी है; इसलिये इसका जन्म सूतकुलमें होना किसी प्रकार सम्भव नहीं है।



शल्यको सारथि बनाकर कर्णका युद्धके लिये प्रयाण

राजा दुर्योधनने कहा—वीरवर ! सारथि तो रथीसे भी बढ़कर होना चाहिये। इसलिये आप संग्रामभूमिमें कर्णके घोड़ोंका नियन्त्रण कीजिये। जिस प्रकार त्रिपुरोंके नाशके लिये देवताओंने कोशिश करके ब्रह्माजीको भगवान् शंकरका सारथि बनाया था उसी प्रकार हम कर्णसे भी श्रेष्ठ आपको उसका सारथि बनाना चाहते हैं।

शल्यने कहा—राजन् ! जिस प्रकार ब्रह्माजीने महादेवजीका सारथ्य किया था और जिस प्रकार एक ही बाणसे सम्पूर्ण दैत्योंका संहार हुआ था वह सब मुझे मालूम है। यह प्रसङ्ग श्रीकृष्णको भी विदित ही है। वे भूत, भविष्यत्‌की सब बातोंको पूरी तरहसे जानते हैं। यह सब जानकर ही उन्होंने अर्जुनका सारथ्य ग्रहण किया है। यदि किसी प्रकार कर्णने अर्जुनको मार डाला तो उसे मरा देखकर श्रीकृष्ण स्वयं युद्ध करने लगेंगे और जब वे कोप करेंगे तो तुम्हारी सेनाका कोई भी राजा शत्रुओंकी सेनाका सामना नहीं कर सकेगा।

सञ्जयने कहा—राजन् ! जब मद्रराज शल्यने ऐसा कहा तो दुर्योधन कहने लगा, 'महाराज ! आप कर्णका अपमान न करें। वह समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण अस्त्रविद्यामें पारंगत है। यह बात प्रत्यक्ष ही है कि उस रात्रिमें घटोत्कचने सैकड़ों मायाएँ रची थीं, तब उसे कर्णने ही मारा था। इन दिनोंमें अर्जुन भी डरके मारे कभी डटकर कर्णके सामने खड़ा नहीं हुआ है। महाबली भीमको भी कर्णने धनुषकी नोकसे युद्धके लिये उत्तेजित किया था और उसे 'ओ मूढ़ ! ओ पेटपाल !' ऐसा कहकर सम्बोधन किया था। उसने माद्रीपुत्र शूरवीर नकुलको भी संग्राममें परास्त कर दिया था और किसी विशेष कारणसे ही उसे नहीं मारा था। कर्णने ही वृष्णिकुलतिलक सात्यकिको युद्धमें परास्त किया था और उसे बलात् रथहीन कर दिया था। उसने धृष्टद्युम्नादि सृञ्जय वीरोंको तो संग्रामभूमिमें हँसते-हँसते कई बार नीचा दिखाया था। भला, ऐसे महारथी कर्णको पाण्डवलोग कैसे परास्त कर सकते हैं। कर्ण तो कुपित होनेपर वज्रधर इन्द्रको भी मार सकता है। आप भी सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता और समस्त विद्याओंमें पारंगत हैं। पृथ्वीमें आपके समान किसीका भी बाहुबल नहीं है। आप शत्रुओंके लिये शल्यके समान हैं, इसीसे आप 'शल्य' नामसे प्रसिद्ध हैं। सारे यदुवंशी मिलकर भी आपके बाहुपाशमें पड़नेपर उससे छुटकारा नहीं पा सकते। राजन् ! कृष्ण क्या आपके बाहुबलसे भी बलमें बढ़े-चढ़े हैं ? जिस प्रकार अर्जुनके मारे जानेपर श्रीकृष्ण पाण्डवसेनाकी रक्षा करेंगे उसी प्रकार यदि कर्ण मारा गया तो आपको हमारी विशाल वाहिनीकी रक्षा करनी होगी। महाराज ! मैं तो आपके बलसे ही अपने भाइयों और समस्त राजाओंके ऋणसे मुक्त होना चाहता हूँ।'

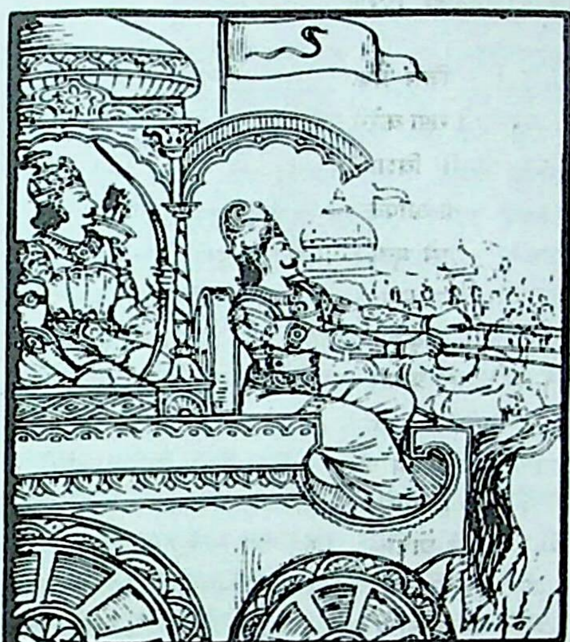
कर्णने कहा—मद्रराज ! जिस प्रकार ब्रह्माजी भगवान् शंकरके और श्रीकृष्ण अर्जुनके सारथि बनकर उनका हित करते रहे हैं, उसी प्रकार आप सर्वदा हमारे हितमें तत्पर रहें।

शल्य बोले—अपनी या दूसरेकी निन्दा अथवा स्तुति करना श्रेष्ठ पुरुषोंका काम नहीं है तो भी तुम्हारे विश्वासके लिये मैं अपने विषयमें जो प्रशंसाकी बातें कहता हूँ वह सुनो। मैं सावधानीसे घोड़ोंको हाँकने, उनके गुण-दोषोंको जानने तथा उनकी चिकित्सा करनेमें इन्द्रके सारथि मातलिके समान हूँ। अतः तुम चिन्ता न करो। अर्जुनके साथ युद्ध करते समय मैं तुम्हारा रथ हाँकूँगा।

दुर्योधनने कहा—कर्ण ! महाराज शल्य श्रीकृष्णसे भी बड़े सारथि हैं। अब ये तुम्हारा सारथ्य करेंगे। मातलि जैसे इन्द्रके रथको हाँकता है, उसी प्रकार ये तुम्हारे रथके घोड़ोंको हाँकेंगे। अब तुम निःसंदेह पाण्डवोंको नीचा दिखा सकोगे।

राजन् ! तब कर्णने प्रसन्न होकर अपने सारथिसे कहा—'सूत ! तुम फौरन मेरा रथ तैयार करके लाओ।' सारथिने कर्णके विजयी रथको विधिवत् सजाकर 'महाराजकी जय हो !' ऐसा कहकर निवेदन किया। कर्णने शास्त्रविधिसे उस श्रेष्ठ रथका पूजन किया और उसकी परिक्रमा करके सूर्यदेवकी स्तुति की। फिर उसने पास ही खड़े हुए मद्रराजसे कहा, 'राजन् ! रथपर बैठिये।' महातेजस्वी शल्य रथके अग्रभागपर बैठे। इसके बाद कर्ण भी उसपर सवार हुआ। उस समय वहाँ दोनों तेजस्वी वीरोंका स्तुतिगान हो रहा था। महाराज शल्यने घोड़ोंकी रासें सँभालीं और कर्ण रथपर बैठकर धनुषकी टंकार करने लगा।

तब दुर्योधनने कर्णसे कहा—'वीरवर ! मैं समझता था कि महारथी भीष्म और द्रोण अर्जुन और भीमसेनको मार डालेंगे। किन्तु वे इस कर्मको नहीं कर सके। अब तुम या तो धर्मराजको कैद कर लो, या अर्जुन, भीमसेन और नकुल-सहदेवको मार डालो। अच्छा, तुम युद्धके लिये



प्रस्थान करो। तुम्हारी जय हो, कल्याण हो। तुम पाण्डु-पुत्रोंकी सारी सेनाको भस्म कर दो।'

कर्णने दुर्योधनकी बात स्वीकार करके राजा शल्यसे कहा—'महाबाहो ! घोड़ोंको बढ़ाइये, जिससे कि मैं अर्जुन, भीम, नकुल-सहदेव और युधिष्ठिरको मार सकूँ। आज पाण्डवोंके नाश और दुर्योधनकी विजयके लिये मैं हजारों तीखे बाण छोड़ूँगा।'

शल्य बोले—सूतपुत्र ! तुम पाण्डवोंका अपमान क्यों करते हो ? वे तो समस्त शास्त्रोंके पारगामी, महान् धनुर्धर, रणमें पीठ न दिखानेवाले, अजेय और अत्यन्त पराक्रमी हैं। वे साक्षात् इन्द्रको भी भयभीत कर सकते हैं। जिस समय तुम गाण्डीव धनुषकी वज्रके समान भीषण टंकार सुनोगे उस समय इस प्रकार गाल बजाना भूल जाओगे। जिस समय भीमसेन दाँत उखाड़-उखाड़कर हाथियोंकी सेनाका संहार करेगा उस समय तुम इस प्रकार बातें न बना सकोगे। जिस समय तुम धर्मराज युधिष्ठिर और नकुल-सहदेवको अपने पैने बाणोंसे शत्रुओंका संहार करते देखोगे उस समय ऐसी कोई बात नहीं कह सकोगे।

सञ्जयने कहा—राजन् ! तब मद्रराजकी इन सब बातोंकी उपेक्षा करके कर्णने उनसे कहा, 'अच्छा, अब रथ बढ़ाइये।'



शल्यके सारथ्यमें कर्णका युद्धभूमिके लिये प्रस्थान और दोनोंका कटु-सम्भाषण

सञ्जयने कहा—महाराज ! जब महान् धनुर्धर कर्ण युद्धके लिये तैयार हो गया तो उसे देखकर समस्त कौरववीर हर्षध्वनि करने लगे। कर्णके प्रस्थान करते ही आपके पक्षके सब वीरोंने भी मृत्युका भय छोड़कर दुन्दुभि और भेरियोंके शब्दके साथ युद्धभूमिके लिये कूच किया। उस समय सारी पृथ्वी डगमगाने लगी तथा कर्णके घोड़े पृथ्वीपर गिर गये। कौरवोंके विनाशकी सूचना देनेवाले वहाँ ऐसे ही और भी अनेकों उत्पात हुए। किंतु दैववश सबकी बुद्धिपर ऐसा मोहजाल छा गया कि उन्होंने उनकी कुछ भी परवा नहीं की। कर्णके कूच करनेपर सब राजाओंने जयघोष किया। तब कर्णने राजा शल्यको सम्बोधन करके कहा, 'इस समय मैं अस्त्र-शस्त्र धारण किये रथमें बैठा हूँ, अब मुझे क्रोधमें भरे हुए वज्रधर इन्द्रसे भी भय नहीं है। इन भीष्मादि योद्धाओंको युद्धमें सोते देखकर मेरा साहस बहुत बढ़ गया है। वास्तवमें अर्जुनका मुकाबला रणभूमिमें मेरे सिवा और कोई नहीं कर सकता। वह साक्षात् उग्ररूप मृत्युके ही समान है। आचार्य द्रोणमें शस्त्रसंचालनकी कुशलता, बल, धैर्य और विनय आदि सभी गुण थे, उनके पास बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र भी थे, जब वे ही कालके गालमें चले गये तो और सबको भी मैं कमजोर ही समझता हूँ। अस्त्र, बल, पराक्रम, क्रिया, नीति और बढ़िया-बढ़िया हथियार भी मनुष्यको सुख पहुँचानेमें समर्थ नहीं हैं। देखो, गुरु द्रोणाचार्य इन सब बातोंके रहते हुए भी शत्रुओंके हाथसे मारे गये। वे अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी, विष्णु और इन्द्रके समान पराक्रमी, बृहस्पति और शुक्रके समान नीतिकुशल और बड़े ही दुःसह थे; तो भी शस्त्र उनकी रक्षा नहीं कर सके। इस समय दुर्योधनका पुरुषार्थ ढीला पड़ गया है; ऐसी स्थितिमें मैं अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह समझता हूँ। अब आप शत्रुओंकी सेनाकी ओर रथ बढ़ाइये। जहाँ सत्यप्रतिज्ञ राजा युधिष्ठिर मौजूद हैं, जहाँ भीमसेन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, सात्यकि, सृञ्जय वीर और नकुल-सहदेव युद्धके मैदानमें डटे हुए हैं, वहाँ मेरे सिवा और कौन योद्धा इन सब वीरोंसे टक्कर ले सकता है ? इसलिये मद्रराज ! आप शीघ्र ही रणभूमिमें पाञ्चाल, पाण्डव और सृञ्जय वीरोंकी ओर रथ ले चलिये। मैं उनके साथ चार

हाथ करके या तो उन्हींको मार डालूँगा या आचार्य द्रोणके मार्गसे स्वयं ही यमराजके पास चला जाऊँगा। धृतराष्ट्रनन्दन दुर्योधन सर्वदा ही मेरे कल्याणके लिये प्रयत्न करते रहे हैं। उनके लिये मैं अपने प्रिय भोग और दुस्त्यज प्राणोंको भी निछावर कर सकता हूँ। मुझे यह श्रेष्ठ रथ भगवान् परशुरामजीने दिया था; इसकी धुरी जरा भी शब्द नहीं करती। इसमें तरह-तरहके धनुष, ध्वजा, गदा, बाण, खड्ग और अनेकों बढ़िया-बढ़िया हथियार रखे हुए हैं। जिस समय यह चलता है, इससे वज्रपातके समान भीषण घरघराहट होने लगती है। इसमें सफेद घोड़े जुते हुए हैं तथा अच्छे-अच्छे तरकस सुशोभित हैं। इस श्रेष्ठ रथमें बैठकर मैं अवश्य ही अर्जुनको मार डालूँगा। यदि स्वयं काल भी अर्जुनको बचाना चाहेगा तो मैं उसे भी नष्ट कर डालूँगा अथवा भीष्मके समान स्वयं ही यमलोक चला जाऊँगा। अधिक क्या कहूँ, यदि उसकी रक्षाके लिये यम, वरुण, कुबेर और इन्द्र भी अपने अनुयायियोंसहित एक साथ मिलकर युद्धभूमिमें आयेंगे तो मैं उसे उन सबके सहित परास्त कर दूँगा।'

जब युद्धके जोशमें भरे हुए कर्णने ऐसी बातें कहीं तो उन्हें सुनकर मद्रराज हँसे और उसका तिरस्कार करके बीचहीमें रोककर कहने लगे, 'कर्ण! बस, अब चुप रहो। तुम जोशमें आकर बहुत बढ़ी-चढ़ी बातें कह गये हो। भला, कहाँ नरश्रेष्ठ अर्जुन और कहाँ नराधम तुम। यह तो बताओ, अर्जुनके सिवा और ऐसा कौन है जो साक्षात् विष्णुभगवान्से सुरक्षित यादवोंके राजभवनको बलात् नीचा दिखाकर स्वयं पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी छोटी बहिनका हरण कर सके तथा तीनों लोकोंके अधीश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् शंकरको युद्धके लिये ललकार सके। जब विराट-नगरमें गोहरणके समय पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनने तुम्हें सारी सेना और द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा एवं भीष्मके सहित परास्त किया था, उस समय तुमने उसे क्यों नहीं जीत लिया? अब आज तुम्हारे वधके लिये ही यह दूसरा युद्ध उपस्थित हुआ है। यदि तुम शत्रुके भयसे भाग न गये तो अवश्य ही मारे जाओगे।'



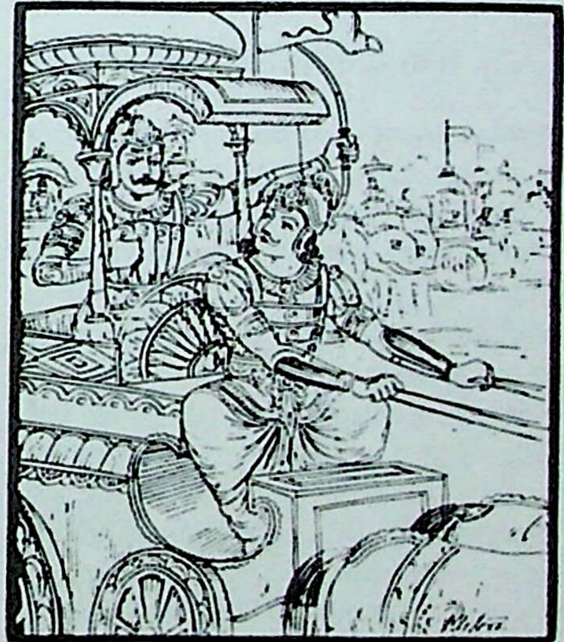
मद्रराजके इस प्रकार कटुभाषण करनेपर कौरव-सेनापति कर्ण अत्यन्त क्रोधमें भर गया और उनसे कहने लगा, 'रहने दो, रहने दो, इस प्रकार क्यों बड़बड़ाते हो, अब तो मेरा और अर्जुनका युद्ध होनेहीवाला है। यदि वह संग्राममें मुझे परास्त कर दे तो तुम्हारी ही बात सच मानी जायेगी।' इसपर मद्रराजने 'ऐसा ही हो' इतना कहकर और कोई उत्तर नहीं दिया। तब कर्णने युद्धके लिये उत्सुक होकर उनसे कहा 'शल्य! रथ बढ़ाओ।'

युद्धके लिये कूच करके कर्णने अपनी सेनाको उत्साहित करनेके लिये पाण्डवोंके एक-एक वीरसे मिलनेपर कहा, 'आज तुममेंसे जो कोई मुझे श्वेतवाहन अर्जुनसे मिलावेगा उसे मैं यथेच्छ धन दूँगा। यदि उतनेसे भी उसकी तृप्ति न हुई तो उसे रत्नोंसे भरा हुआ एक छकड़ा और दूँगा। यदि इससे भी संतोष न हुआ तो उसे हाथीके समान बलवान् छः बैलोंसे जुता हुआ एक सोनेका रथ दूँगा। यदि इतनेसे भी प्रसन्न न हुआ तो उसे सौ हाथी, सौ गाँव, सौ सुवर्णमय रथ, सौ सुशिक्षित और हृष्ट-पुष्ट घोड़े तथा सुवर्णसे मढ़े हुए सींगोंवाली चार सौ दुधार गौएँ दूँगा। यदि इन सबको पाकर भी वह प्रसन्न न हुआ तो जो चीज वह स्वयं लेना चाहेगा वही उसे दूँगा। मेरे पास पुत्र, स्त्री तथा दूसरे जो भी भोगोंके साधन हैं वह सब तथा और भी जिस वस्तुकी वह इच्छा करेगा वही उसे दूँगा। जो पुरुष मुझे श्रीकृष्ण और अर्जुनका पता बतावेगा, उन दोनोंको मारकर उनका सारा धन मैं उसीको दे डालूँगा।' युद्धक्षेत्रमें खड़े हुए कर्णने ऐसी ही अनेकों बातें कहीं तथा अपना श्रेष्ठ शङ्ख बजाया। इन्हें सुनकर दुर्योधन तथा उसके अनुयायी बड़े प्रसन्न हुए। सब ओर दुन्दुभि और मृदङ्गोंका शब्द होने लगा तथा योद्धालोग सिंहके समान गरजने लगे।

तब मद्रराज शल्यने हँसकर कहा, 'सूतपुत्र! तुम्हें

हाथीके समान बलवान् छः बैलोंसे जुता हुआ सोनेका रथ देनेकी आवश्यकता नहीं है; अर्जुन तुम्हें स्वयं ही दीख जायगा। तुम मूर्खतासे ही कुबेरकी तरह धन लुटाना चाहते हो, आज अर्जुनको तो तुम बिना यत्न किये ही देख लोगे। तुम जो बुद्धिहीन पुरुषोंके समान अपना सारा धन देनेको तैयार हुए हो, इससे मालूम होता है कि अपात्रको धन देनेमें जो दोष है उनका तुम्हें पता नहीं है। तुम जो अपार धन देना चाहते हो उससे तो यज्ञादि करो। तुम मोहवश वृथा ही कृष्ण और अर्जुनको मारनेकी इच्छा करते हो। हमने यह बात तो कभी नहीं सुनी कि किसी गीदड़ने युद्धमें सिंहको मार दिया हो। तुम्हें करनेयोग्य और न करनेयोग्य कामके विषयमें कुछ भी विवेक नहीं है। निःसंदेह तुम्हारा काल आ पहुँचा है। कोई भी जीवित रहनेवाला पुरुष भला ऐसी ऊटपटांग बातें कैसे कह सकता है ? तुम जो काम करना चाहते हो वह ऐसा है जैसे कोई अपनी भुजाओंके बलसे समुद्र पार करना चाहे अथवा पहाड़की चोटीसे कूदना चाहे। जब सव्यसाची अर्जुन अपना दिव्य धनुष लेकर सेनाको पीड़ित करता हुआ तुम्हें पैने बाणोंसे पीड़ित करेगा उस समय तुम्हें पछताना ही पड़ेगा। जिस प्रकार कोई माताकी गोदमें सोया हुआ बालक चन्द्रमाको पकड़ना चाहे, उसी प्रकार तुम अज्ञानसे ही रथमें चढ़े हुए तेजस्वी अर्जुनको परास्त करनेकी बात सोचते हो। जिस प्रकार कोई घरके भीतर बैठा हुआ कुत्ता वनमें रहनेवाले सिंहकी ओर भूँके, उसी प्रकार तुम पुरुषसिंह अर्जुनके लिये बड़बड़ा रहे हो। कर्ण ! वनमें खरगोशोंके साथ रहनेवाला गीदड़ भी जबतक सिंहको नहीं देखता तबतक अपनेको सिंह ही समझता रहता है। इसी प्रकार जबतक तुम रथपर चढ़े हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनको नहीं देखते हो तभीतक अपनेको सिंह समझ रहे हो। जिस समय तुम्हारी दृष्टि अर्जुनपर पड़ेगी, तुम तत्काल ही गीदड़ बन जाओगे। जिस तरह अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार लोकमें चूहा और बिल्ली, कुत्ता और बाघ, गीदड़ और सिंह, खरगोश और हाथी, मिथ्या और सत्य तथा विष और अमृत प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार सब लोग तुम्हें और अर्जुनको भी समझते हैं।'

शल्यके इस प्रकार तिरस्कार करनेपर उनके शल्यसदृश वाक्योंपर विचार करके कर्णने अत्यन्त कुपित होकर कहा, 'शल्य ! गुणवानोंके गुणोंको तो गुणीजन ही परख सकते हैं, गुणहीनोंको उनका पता नहीं लग सकता। तुममें कोई गुण तो है नहीं; इसलिये तुम्हें गुणागुणका ज्ञान क्या हो सकता है ? अजी ! अर्जुनके बड़े-बड़े अस्त्र, क्रोध, पराक्रम, धनुष, बाण और वीरताको जैसा मैं जानता हूँ, वैसा तुम नहीं समझ सकते। मेरा यह भयंकर बाण मनुष्य, घोड़े और हाथियोंका संहार करनेवाला, अत्यन्त भीषण और कवच एवं अस्थियोंको भी फोड़ डालनेवाला है। मैं रोषमें भरनेपर इससे पर्वतराज मेरुको भी तोड़ सकता हूँ। किन्तु अर्जुन और श्रीकृष्णको छोड़कर मैं किसी अन्य पुरुषपर इसका प्रयोग कभी नहीं करूँगा; क्योंकि सम्पूर्ण वृष्णिवंशियोंकी लक्ष्मी श्रीकृष्णके आश्रित है और समस्त पाण्डवोंकी विजयका आधार अर्जुन है। मेरे सिवा और ऐसा कौन है जो इन दोनोंसे मुकाबला होनेपर इन्हें संग्रामसे पीछे हटा सके। अर्जुनके पास गाण्डीव धनुष है और श्रीकृष्णके पास सुदर्शन चक्र। किंतु ये भीरुपुरुषोंको ही डरानेवाली चीजें हैं, मुझे तो इनसे हर्ष ही होता है। तुम तो दुष्टस्वभाव, मूर्ख और बड़ी-बड़ी लड़ाइयोंसे अनभिज्ञ हो। इस समय भयसे पीड़ित हो और डरके कारण ही बहुत-सी अनर्गल बातें बना रहे हो। अरे पापी देशमें उत्पन्न हुए क्षत्रियकुलकलंक दुर्बुद्धि शल्य ! मैं इन दोनोंको मारकर आज भाई-बन्धुओंके सहित तुम्हारा भी काम तमाम कर



दूँगा। तुम हमारे शत्रु होकर भी सुहृद्-से बनकर मुझे श्रीकृष्ण और अर्जुनसे डरा रहे हो, सो मैंने यह बात पहले ही सुन रखी है कि मद्रदेशका आदमी दुष्टचित्त, असत्यभाषी और कुटिल होता है तथा उस देशके लोग मरते दमतक दुष्टता नहीं छोड़ते। ये असभ्यलोग मदिरापान करके हँसते और चिल्लाते रहते हैं, ऊटपटांग गीत गाते हैं, मनमाना आचरण करते हैं और

आपसमें अश्लील बातें किया करते हैं। उनमें भला धर्म कैसे रह सकता है ? ये लोग अपने घमंड और नीच कर्मोंके लिये प्रसिद्ध हैं। इसलिये इनके साथ वैर या मित्रता कभी नहीं करनी चाहिये। इनमें स्नेह नामकी तो कोई चीज है ही नहीं। जब किसी मनुष्यको बिच्छू काटता है तो गुणी लोग उसका विष उतारनेके लिये यह मन्त्र पढ़ा करते हैं—'अरे बिच्छू ! जिस प्रकार मद्रदेशके लोगोंसे मित्रता नहीं हो सकती उसी प्रकार अब तेरा विष नष्ट हो गया है, क्योंकि मैंने अथर्ववेदके मन्त्रसे उसकी शान्ति कर दी है।' सो यह बात ठीक ही जान पड़ती है। मद्रदेशकी स्त्रियाँ भी बड़ी स्वेच्छाचारिणी होती हैं। अतः उन्हींके गर्भसे जन्म लेकर तुम धर्मकी बात कैसे कह सकते हो ?

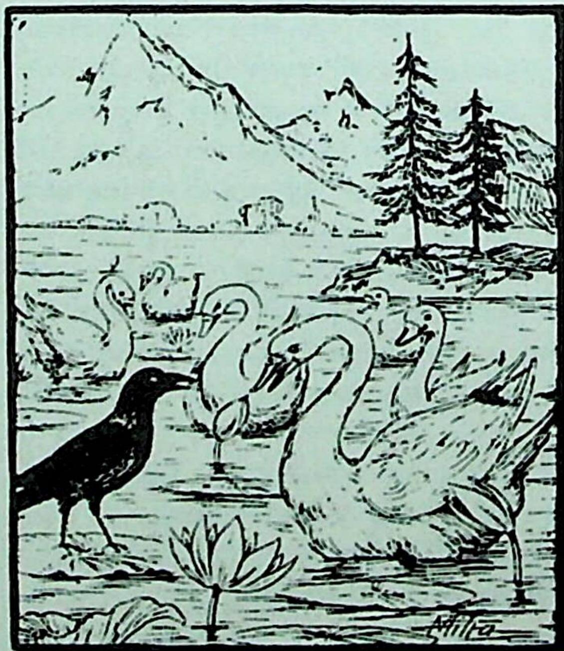
'मैं मतिमान् महाराज दुर्योधनका प्रिय मित्र हूँ। मेरे प्राण और सारी सम्पत्ति उन्हींके लिये हैं। किंतु मालूम होता है कि तुम्हें पाण्डवोंने अपनी ओर तोड़ लिया है। इसीसे तुम हमारे साथ सब प्रकार शत्रुका-सा बर्ताव कर रहे हो। पर याद रखो, जिस प्रकार नास्तिकलोग किसी धर्मज्ञ पुरुषको धर्मपथसे विचलित नहीं कर सकते, उसी प्रकार तुम-जैसे सैकड़ों पुरुष भी मुझे संग्रामसे विमुख नहीं कर सकते। गुरुवर परशुरामजीने संग्राममें पीठ न दिखाकर देहत्याग करनेवाले पुरुषसिंहोंकी जो सद्गति होती है, वह मुझे बतलायी थी। उसका मुझे आज भी स्मरण है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि तीनों लोकोंमें ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो मुझे इस कामसे हटा सके। इसलिये तुम चुप रहो। मैं तुम्हें मारकर मांसाहारी जीवोंके हवाले कर देता; परंतु एक तो मुझे अपने मित्र दुर्योधन और राजा धृतराष्ट्रके कामका खयाल है, दूसरे तुम्हें मारनेसे निन्दा होगी, तीसरे मैंने क्षमा करनेका वचन दिया है—इन तीन कारणोंसे ही तुम अभीतक जीवित हो। किंतु यदि फिर ऐसी बातें कहोगे तो मैं अपनी वज्रतुल्य गदासे तुम्हारा सिर पृथ्वीपर गिरा दूँगा।'

इसके बाद कर्णने फिर बेधड़क होकर कहा, 'चलो, रथ बढ़ाओ।'



राजा शल्यका कर्णको एक हंस और कौएका उपाख्यान सुनाना

सञ्जयने कहा—राजन् ! कर्णके ये वचन सुनकर राजा शल्यने उसे एक दृष्टान्त सुनाते हुए कहा—कुलकलंक कर्ण ! मैं तुम्हें एक दृष्टान्त सुनाता हूँ। कहते हैं, समुद्रके तटपर किसी धर्मप्रधान राजाके राज्यमें एक धनधान्यसम्पन्न वैश्य रहता था। वह यज्ञ-यागादि करनेवाला, दानी, क्षमाशील, अपने कर्मोंमें स्थित, पवित्रात्मा और समस्त जीवोंपर दया करनेवाला था। उसके कई अल्पवयस्क पुत्र थे। वे एक कौएको अपना जूठा भात, दही, दूध और खीर आदि दे दिया करते थे। उस उच्छिष्टको खा-खाकर वह खूब हृष्ट-पुष्ट हो गया और घमंडमें भरकर अपने सजातीय और अपनेसे श्रेष्ठ पक्षियोंका अपमान करने लगा। एक बार उस समुद्रतटपर गरुड़के समान लंबी-लंबी उड़ानें भरनेवाले मानसरोवरवासी हंस आये। तब उस घमंडी कौएने जो सबसे श्रेष्ठ जान पड़ता था उस हंससे कहा, 'आओ, आज हमारी-तुम्हारी उड़ान हो जाय।' यह सुनकर वहाँ आये हुए सभी हंस हँस पड़े और उस बातूनी कौएसे कहने लगे, 'हम मान-सरोवरमें रहनेवाले हंस हैं और इस सारी पृथ्वीपर उड़ते फिरा करते हैं। हमारी लंबी उड़ानके कारण सभी पक्षी हमारा सम्मान करते हैं। भैया ! तुम तो एक कौआ ही हो न ? फिर किसी बलिष्ठ हंसको उड़ानके लिये क्यों चुनौती देते हो ? बताओ तो सही, तुम हमारे साथ



कैसे उड़ सकोगे ?'

हंसकी यह बात सुनकर कौएने उसे बार-बार दुत्कारा और स्वयं क्षुद्र जातिका होनेके कारण अपनी बड़ाई करते हुए कहने लगा, मैं एक सौ एक प्रकारकी उड़ानें उड़ सकता हूँ। उनमेंसे प्रत्येक उड़ान सौ-सौ योजनकी होती है और वे सभी बड़ी अद्भुत और भाँति-भाँतिकी होती हैं। उनमेंसे कुछ उड़ानोंके नाम इस प्रकार हैं—उड्डीन (ऊँचा उड़ना); अवडीन (नीचा उड़ना), प्रडीन (चारों ओर उड़ना), डीन (साधारण उड़ना), निडीन (धीरे-धीरे उड़ना), संडीन (ललित गतिसे उड़ना), तिर्यग्डीन (तिरछा उड़ना), विडीन (दूसरोंकी चालकी नकल करते हुए उड़ना), परिडीन (सब ओर उड़ना), पराडीन (पीछेकी ओर उड़ना), सुडीन (स्वर्गकी ओर उड़ना), अभिडीन (सामनेकी ओर उड़ना), महाडीन (बहुत वेगसे उड़ना), निर्डीन (परोंको हिलाये बिना ही उड़ना), अतिडीन (प्रचण्डतासे उड़ना), संडीन डीन-डीन (सुन्दर गतिसे आरम्भ करके फिर चक्कर काटकर नीचेकी ओर उड़ना), संडीनोड्डीनडीन (सुन्दर गतिसे आरम्भ करके फिर चक्कर काटकर ऊँचा उड़ना), डीनविडीन (एक प्रकारकी उड़ानमें दूसरी उड़ान दिखाना), सम्पात (क्षणभर सुन्दरतासे उड़कर फिर पंख फड़फड़ाना), समुदीष (कभी ऊपरकी ओर और कभी नीचेकी ओर उड़ना), व्यतिरिक्तक (किसी लक्ष्यका संकल्प करके उड़ना), गतागत (किसी लक्ष्यतक उड़कर फिर लौट आना) और प्रतिगत (पलटा खाना) इत्यादि। मैं तुम्हारे सामने ये सब गतियाँ दिखाऊँगा; तब तुम्हें मेरी शक्तिका पता लगेगा। इनमेंसे किसी भी गतिसे मैं आकाशमें उड़ सकता हूँ। तुम जैसा उचित समझो कहो और बताओ कि मैं किस गतिसे उड़ूँ ?'

कौएके इस प्रकार कहनेपर एक हंसने हँसकर कहा, 'काक ! तुम अवश्य एक सौ एक प्रकारकी उड़ानें जानते होगे; और सब पक्षी तो एक प्रकारकी उड़ान ही जानते हैं। मैं भी एक प्रकारकी गतिसे ही उड़ूँगा। अन्य किसी गतिका मुझे ज्ञान नहीं है। तुम्हें जो उड़ान पसंद हो उसीसे उड़ो।'

यह सुनकर वहाँ जो दूसरे कौए थे वे हँस पड़े और कहने लगे, 'भला यह हंस एक ही उड़ानसे सौ प्रकारकी उड़ानोंको कैसे जीत सकेगा ?' अब वह कौआ और हंस होड़ बदकर उड़े। कौआ सौ प्रकारकी उड़ानोंसे दर्शकोंको चकित करने लगा तथा हंस अपनी एक ही प्रकारकी मृदुल गतिसे उड़ रहा था। कौएकी अपेक्षा उसकी गति बहुत मंद थी। यह देखकर कौए हंसोंका तिरस्कार करते हुए इस प्रकार कहने लगे, 'यह हंस उड़ा तो सही, किंतु कौएके सामने इसकी गति तो इतनी मंद है।' यह सुनकर हंसने उत्तरोत्तर वेग बढ़ाते हुए पश्चिमकी ओर समुद्रके ऊपर उड़ान लगायी। इस यात्रामें कौआ उड़ते-उड़ते थक गया। उसे विश्राम लेनेके लिये कहीं कोई टापू या वृक्ष दिखायी नहीं देता था। इससे उसे बड़ा भय हुआ और वह सोचने लगा कि 'मैं थककर कहीं इस समुद्रमें ही तो न गिर पड़ूँगा ?'

अन्तमें वह अत्यन्त श्रमित होकर हंसके पास आया। उसकी ऐसी गिरी अवस्था देखकर हंसने सत्पुरुषोंके व्रतका स्मरण करते हुए उसे बचा लेनेके विचारसे कहा, 'क्यों जी ! तुमने अपनी अनेक प्रकारकी उड़ानोंका बखान किया, परंतु उनका वर्णन करते समय अपनी इस गुह्य गतिका उल्लेख नहीं किया। भला, इस समय तुम किस उड़ानसे उड़ रहे हो, जो बार-बार तुम्हारी चोंच और डैने जलसे लग जाते हैं।'

कर्ण ! तब उस कौएने हंससे कहा, 'भाई हंस ! हम तो कौए हैं, व्यर्थ काँव-काँव किया करते हैं। मैं अपने प्राण तुम्हें सौंपता हूँ, तुम मुझे किसी प्रकार इस जलके तीरतक ले चलो।' ऐसा कहकर वह अपनी चोंच और डैनोंसे



जलको स्पर्श करते हुए समुद्रमें गिर गया। यह देखकर हंसने कहा, 'काक ! तुम तो बड़ी शेखी बघारते हुए कह रहे थे कि मैं एक सौ एक प्रकारकी उड़ानें जानता हूँ। फिर इस

समय इस प्रकार थककर क्यों गिर रहे हो ?' इसपर कौएने दुःखसे पीड़ित होकर कहा, 'हंस ! मैं जूठन खा-खाकर ऐसा घमंडी हो गया था कि अपनेको साक्षात् गरुड़के समान समझने लगा था। इसीसे मैंने अनेकों कौओं और दूसरे पक्षियोंका भी बहुत अपमान किया था। किंतु अब मैं तुम्हारी शरण हूँ, तुम मुझे किसी टापूके तटपर पहुँचा दो। भैया ! यदि मैं जीता-जागता फिर अपने देशमें पहुँच गया तो किसीका निरादर नहीं करूँगा। अब किसी प्रकार तुम मुझे इस आपत्तिसे उबार लो।'

इस प्रकार दीन वचन कहकर वह अचेत-सा होकर विलाप करने लगा। उसे काँव-काँव करते और समुद्रमें डूबते देखकर हंसको दया आ गयी और उसने उसे पंजोंसे पकड़कर धीरेसे अपनी पीठपर चढ़ा लिया। फिर वह उसी स्थानपर आ गया, जहाँसे कि शर्त लगाकर वे पहले उड़े थे। वहाँ पहुँचकर उसने कौएको नीचे उतारकर बहुत ढाढस बँधाया और फिर इच्छानुसार किसी दूर देशको चला गया !

कर्ण ! इस प्रकार जूठनसे पुष्ट हुआ वह कौआ अपने बल और वीर्यका घमंड भूलकर शान्त हुआ। जैसे पूर्वकालमें वह कौआ वैश्योंका जूठन खाता था, उसी प्रकार तुम्हें भी धृतराष्ट्रके पुत्रोंने अपनी जूठन खिला-खिलाकर पाला है, इसीसे तुम अपने समकक्ष और अपनी अपेक्षा श्रेष्ठ पुरुषोंका भी अपमान करते हो। विराट-नगरमें तो द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, भीष्म तथा और सब कौरव भी तुम्हारी रक्षा कर रहे थे; उस समय तुमने अकेले अर्जुनका काम तमाम क्यों नहीं कर डाला ? उस समय तुम्हारा पराक्रम कहाँ चला गया था ? जब संग्रामभूमिमें अर्जुनने तुम्हारे भाईका वध किया था, उस समय समस्त कौरव योद्धाओंके सामने सबसे पहले तो तुम्हीं भागे थे। इसी प्रकार द्वैतवनमें गन्धर्वोंके आक्रमण करनेपर भी सारे कौरवोंको छोड़कर पहले तुम्हींने पीठ दिखायी थी। उस समय भी अर्जुनने ही चित्रसेनादि गन्धर्वोंको युद्धमें परास्त करके दुर्योधन और उसकी रानियोंको छुड़ाया था। परशुरामजीने राजाओंकी सभामें श्रीकृष्ण और अर्जुनका जो पुरातन प्रभाव कहा था वह तो तुमने सुना ही था। इसके सिवा भीष्म और द्रोण भी राजाओंके आगे इन दोनोंकी अवध्यताका वर्णन करते रहते थे। उनकी बातें भी तुम बार-बार सुनते ही रहे हो। मैं तुम्हें ऐसी कौन-कौन-सी बातें बताऊँ जिन्हें देखते हुए अर्जुन तुम्हारी अपेक्षा कहीं बढ़-चढ़कर है। अब तुम शीघ्र ही वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण और कुन्तीकुमार अर्जुनको अपने श्रेष्ठ रथपर बैठे हुए देखोगे। अतः जिस प्रकार कौएने बुद्धिमानीसे हंसकी शरण ले ली थी उसी प्रकार तुम भी श्रीकृष्ण और अर्जुनका आश्रय ले लो। जिस समय तुम एक ही रथपर चढ़े हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनको युद्धमें पराक्रम दिखाते देखोगे, उस समय ऐसी बातें नहीं कह सकोगे, जैसे जुगनू सूर्य और चन्द्रमाका तिरस्कार करे उसी प्रकार तुम मूर्खतासे उनका अपमान मत करो। महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं, तुम उनका तिरस्कार न करो और इस प्रकार बढ़-बढ़कर बातें बनाना छोड़ दो।



कर्ण और शल्यका कटुसम्भाषण और दुर्योधनका उन्हें समझाना

सञ्जयने कहा—महाराज ! शल्यकी ये अप्रिय बातें सुनकर कर्णने कहा—शल्य ! अर्जुनका रथ हाँकनेवाले कृष्णके बल और अर्जुनके दिव्यास्त्रोंका जैसा मुझे पता है वैसा तुम उन्हें नहीं जान सकते। तो भी उन दोनोंके साथ मैं बेधड़क होकर संग्राम करूँगा। किंतु विप्रवर परशुरामजीने मुझे जो शाप दिया है, आज वह मुझे बहुत संतप्त कर रहा है। पूर्वकालमें मैं दिव्य अस्त्रोंकी प्राप्तिके लिये ब्राह्मणवेष धारण करके परशुरामजीके यहाँ रहा था। उस समय अर्जुनका हित करनेके लिये वहाँ भी इन्द्रने ही मेरे काममें विघ्न डाला था। एक बार गुरुजी मेरी जाँघपर सिर रखे सो रहे थे, उस समय उसने एक बेडौल कीड़ेके रूपमें आकर मेरी जाँघमें काटा। उसके जोरसे काटनेके कारण मेरे शरीरसे खूनकी धारा बहने लगी। किंतु गुरुजीकी निद्रा न टूट जाय इस भयसे मैं तनिक भी न हिला-डुला। जगनेपर उन्होंने वह सब घटना देखी। मुझे ऐसा धैर्यवान् देखकर उन्होंने कहा, 'अरे ! तू ब्राह्मण तो है नहीं, ठीक-ठीक बता, किस जातिका है ?' तब मैंने उन्हें ठीक-ठीक बता दिया कि 'मैं सूत हूँ।' मेरी बात सुनकर महातपस्वी परशुरामजी क्रोधमें भर गये और मुझे शाप दिया कि 'सूत ! तूने ब्राह्मणका वेष बनाकर यह ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया है, इसलिये काम पड़नेपर तुझे इसका स्मरण न रहेगा।' इसीसे इस अत्यन्त भयंकर घोर संग्रामके समय मैं उसे भूल गया हूँ। शल्य ! भरतवंशमें उत्पन्न हुआ यह अर्जुन बड़ा ही पराक्रमी, भीषण और सबका संहार करनेवाला है। मालूम होता है, आज बड़ा तुमुल युद्ध होगा और यह अनेकों

क्षत्रिय वीरोंको संतप्त कर डालेगा। तो भी सत्यप्रतिज्ञ अर्जुनके साथ मैं अवश्य संग्राम करूँगा और उसे मृत्युके मुखमें डालकर छोड़ूँगा। मुझे एक दूसरा अस्त्र भी मिला हुआ है, उसीसे मैं संग्रामभूमिमें अतुलित तेजस्वी अर्जुनको धराशायी करूँगा। शल्य ! मैं संग्रामभूमिमें अर्जुनके साथ जय या मृत्युको ही सामने रखकर युद्ध करूँगा। मेरे सिवा और ऐसा कोई वीर नहीं है जो इन्द्रके समान पराक्रमी पार्थके साथ अकेला रथारूढ़ होकर युद्ध कर सके। तुम तो निरे मूर्ख और मूढचित्त हो। तुम मुझे अर्जुनके बल-पराक्रमकी बातें क्या सुनाते हो ? अब मैं स्वयं ही संग्रामभूमिमें उसके पराक्रमसे प्रसन्न होकर क्षत्रियोंकी सभामें उसका वर्णन करूँगा। जो पुरुष अप्रिय, निठुर, क्षुद्र, आक्षेप करनेवाला और क्षमाशीलोंका तिरस्कार करनेवाला होता है, उसके जैसे सैकड़ोंको भी मैं मिट्टीमें मिला देता हूँ किंतु आज केवल समयकी ओर देखकर मैं तुम्हें क्षमा कर रहा हूँ। मेरा तो तुम्हारे साथ बड़ी सरलताका बर्ताव है, किंतु तुम टेढ़ी-टेढ़ी बातें करते हो। तुम बड़े ही मित्रद्रोही हो। मित्रता तो सात पग साथ रहनेसे हो जाती है। यह बड़ा ही कठोर समय आ गया है। राजा दुर्योधन रणभूमिमें आ गये हैं। मैं उन्हींकी विजयेच्छासे यहाँ आया हूँ। किंतु तुम अर्जुनकी ही गुणगाथा गाये जाते हो, जब कि वास्तवमें उसके प्रति आपका अटूट प्रेमसम्बन्ध भी नहीं है। आज विजय प्राप्त करनेके लिये मैं अर्जुनपर अपना अप्रमेय और अजेय ब्रह्मास्त्र छोड़ूँगा। इस दिव्य अस्त्रके प्रभावसे मैं दण्डपाणि यम, पाशहस्त वरुण, गदाधर कुबेर और वज्रपाणि इन्द्रसे तथा किसी अन्य आततायी शत्रुसे भी नहीं डरता हूँ; अतः मुझे श्रीकृष्ण और अर्जुनसे भी किसी प्रकारका भय नहीं है।

परंतु मुझे एक भय अवश्य है—एक बारकी बात है, मैं विजयके उद्देश्यसे अस्त्र पानेके लिये घूम रहा था। उस समय अनेकों भीषण बाणोंको चलानेका अभ्यास करते-करते मैंने भूलसे एक होमधेनुके बछड़ेको बाण मार दिया। बेचारा बछड़ा निर्जन वनमें चर रहा था। यह देखकर उसके स्वामी ब्राह्मणने कहा, चूँकि तुमने इस निरपराध होमधेनुके बच्चेको मारा है, इसलिये संग्राममें लड़ते-लड़ते तुम्हारे रथका पहिया गड्ढेमें फँस जायगा और तुम बड़ी आपत्तिमें फँस जाओगे। ब्राह्मणके उस प्रबल शापसे मुझे आज भी भय बना हुआ है। उस ब्राह्मणको मैंने हजार गौएँ और छः सौ बैल देने चाहे, परंतु मैं उसे प्रसन्न न कर सका। मैं बड़े सत्कारपूर्वक उस ब्राह्मणको अपना भरा-पूरा घर और भोगसामग्रियोंके सहित सारी सम्पत्ति देनी चाही,



किंतु उसने उसे लेना स्वीकार न किया। इस प्रकार जब मैं प्रयत्नपूर्वक अपना अपराध क्षमा कराने लगा तो उस ब्राह्मणने कहा, 'सूतपुत्र ! मैंने जो बात कही है वह तो बदल नहीं सकती। मिथ्याभाषण प्रजाका नाश करनेवाला होता है। यदि मैं अपने कथनको मिथ्या कर दूँगा तो मुझे पाप लगेगा। अतः धर्मकी रक्षाके लिये मैं झूठ तो बोल नहीं सकता। मुझसे झूठ बुलवाकर तुम मेरी ब्राह्मी गतिका उच्छेद न करो। लोकमें कोई भी मेरी बातको मिथ्या नहीं कर सकता। अतः अब तुम शान्त हो जाओ।'

'इस प्रकार यद्यपि तुमने मेरा तिरस्कार किया है तो भी मैंने सौहार्दवश तुम्हें यह प्रसंग सुना दिया है। अब तुम चुप रहो और आगेकी बातपर ध्यान दो। तुम मेरे साथी, स्नेही और मित्र हो। इन तीन कारणोंसे ही अबतक जीवित बचे हुए हो। इस समय मेरे सामने राजा दुर्योधनका बड़ा भारी काम है और उसकी जिम्मेवारी भी मेरे ही ऊपर है। मैं तुम्हारे कठोर वचनोंको क्षमा करनेकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। शत्रुओंपर विजय तो तुम-जैसे हजारों शल्योंकी सहायताके बिना भी मैं पा सकता हूँ। किंतु मित्रसे द्रोह करना बड़ा पाप है, इसीसे तुम अबतक बचे हुए हो।'

शल्यने कहा—कर्ण ! तुम अपने शत्रुओंके विषयमें जो

कुछ कह रहे हो वह सब तो तुम्हारा बकवाद ही है। मैं सहस्रों कर्णोंकी सहायताके बिना भी युद्धमें शत्रुओंको जीत सकता हूँ।

मद्रराजके इस प्रकार कहनेपर कर्ण उनसे दूने कटुवाक्य कहने लगा। वह बोला, 'मद्रराज ! मैं जो बात कहता हूँ उसे जरा ध्यान देकर सुनो। इस बातकी चर्चा मैंने महाराज धृतराष्ट्रके पास सुनी थी। एक बार उनके महलमें कई ब्राह्मण अनेकों अद्भुत देशों और प्राचीन वृत्तान्तोंका वर्णन कर रहे थे। वहाँ एक बूढ़े ब्राह्मणने वाहीक और मद्रदेशकी निन्दा करते हुए कहा था—'जो हिमालय, गङ्गा, सरस्वती, यमुना और कुरुक्षेत्रसे बाहर तथा सिन्धु और उसकी पाँच सहायक नदियोंके बीचमें स्थित है वह वाहीक देश धर्मबाह्य और अपवित्र है। उससे सर्वदा दूर रहना चाहिये। मैं एक गुप्त कार्यवश कुछ दिन वाहीक देशमें रहा था। उस समय मैंने उनके आचार-विचारके विषयमें बहुत-सी बातें जान ली थीं। जहाँ शाकल नामका नगर और आपगा नामकी नदी है वहाँ जर्तिका नामके वाहीक रहते हैं। उनका चरित्र बड़ा निन्दनीय होता है। ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो उन दुश्चरित्र, संस्कारहीन और दुरात्मा वाहीकोंके साथ मुहूर्तभर भी रहना पसंद करेगा।' उस ब्राह्मणने वाहीकोंको ऐसा दुराचारी बताया था। उनमें धर्म कैसे रह सकता है ? वाहीक देशके लोग उपनयन आदि संस्कारोंसे रहित होनेके कारण पतित समझे जाते हैं; उनकी स्त्रियाँ घरके नौकरोंसे मैथुन कराकर उन्हें उत्पन्न करती हैं। वे धर्मभ्रष्ट तथा यज्ञके अधिकारसे वञ्चित होते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे उनके दिये हुए हव्य, कव्य और दानको देवता, पितर तथा ब्राह्मणलोग नहीं स्वीकार करते—यह बात लोगोंमें खूब प्रसिद्ध है। एक विद्वान् ब्राह्मणने तो यहाँतक कहा था कि 'वाहीकलोग काठ और मिट्टीकी बनी हुई कुंडियोंमें भोजन करते हैं। उनमें शराब लिपटा रहता है, कुत्ते उन बर्तनोंको चाटते रहते हैं, तो भी उनमें खाते समय उन्हें तनिक भी घृणा नहीं होती। वे भेड़, ऊँटनी और गदहीके दूध पीते हैं तथा उस दूधके दही, मक्खन और छाछ आदि भी खाते-पीते हैं। इतना ही नहीं, वे वर्णसंकर संतान उत्पन्न करनेवाले और दुराचारी होते हैं। शुद्ध-अशुद्धका विचार छोड़कर सब तरहका अन्न खा लेते हैं। इसलिये विद्वानोंको चाहिये कि 'आरट्ट' नामसे प्रसिद्ध उन वाहीकोंका संसर्ग त्याग दें।'

'इसी प्रकार कारस्कर, माहिषक, कलिङ्ग, केरल, कर्कोटक, वीरक और दुर्धर्म नामक देशोंका भी त्याग करना उचित है। प्रस्थल, मद्र, गान्धार, आरट्ट, खश, वसाति, सिन्धु तथा सौवीर देश प्रायः निन्दित और अपवित्र माने गये हैं। पाञ्चाल देशके लोग वेदोंका स्वाध्याय करते हैं, कुरु देशके निवासी धर्मका आश्रय लेते है। मत्स्य देशके लोग सत्यवादी और शूरसेननिवासी यज्ञ करनेवाले होते हैं। पूरबके लोग दासवृत्ति करते हैं, दक्षिणी लोगोंका बर्ताव शूद्रोंके समान होता है। वाहीक लोग चोर तथा सौराष्ट्र निवासी वर्णसंकर होते हैं। मगध देशके मनुष्य इशारेसे ही बात समझ लेते हैं, कोसलकी प्रजा दृष्टिके संकेतको समझती है, कुरु और पाञ्चालके लोग आधी बात कह देनेपर पूरी बात समझ पाते हैं तथा शाल्व देशके निवासी पूरी बात कहनेसे ही उसे हृदयङ्गम करते हैं। शिविदेशकी प्रजा पहाड़ी लोगोंकी तरह मूर्ख होती है। यवन लोग सब बातोंको अनायास ही समझ लेते और विशेषतः शूरवीर होते हैं। म्लेच्छ जातिके लोग अपने संकेतके अनुसार बर्ताव करते हैं। दूसरे सभी लोग पूरी बात कहे बिना उसे नहीं समझ पाते। वाहीक और मद्र देशके मनुष्य तो पूरे गँवार होते हैं, वे किसी रथीका मुकाबला नहीं कर सकते। शल्य ! तुम भी ऐसे ही हो। तुममें उत्तर देनेकी भी योग्यता नहीं है। मैं तो डंकेकी चोट कहता हूँ—मद्र देश पृथ्वीके समस्त देशोंका मल है। ऐसा समझकर तुम अपनी जबान बंद करो, मेरा विरोध न करो; नहीं तो पहले तुम्हारा ही वध करके पीछे श्रीकृष्ण और अर्जुनको मारूँगा।'

शल्यने कहा—कर्ण ! तुम जिस देशके राजा बने बैठे हो, उस अङ्गदेशमें क्या होता है ? अपने ही सगेसम्बन्धी जब रोगसे पीड़ित हो जाते हैं तो उनका त्याग कर दिया जाता है। अपनी ही स्त्री और बच्चोंको वहाँके लोग सरे बाजार बेचते हैं। उस दिन रथी और अतिरथियोंकी गणना करते समय भीष्मजीने तुमसे जो कुछ कहा था, अपने उन दोषोंपर ध्यान दो और क्रोध छोड़कर शान्त हो जाओ। सभी देशोंमें ब्राह्मण हैं, सर्वत्र क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं तथा सब जगह सुन्दर व्रतका पालन करनेवाली सती साध्वी स्त्रियाँ भी हैं। सब देशोंमें अपने-अपने धर्मका पालन करनेवाले राजालोग हैं, जो दुष्टोंको दण्ड देते हैं। इसी प्रकार धार्मिक मनुष्य भी सर्वत्र होते हैं। किसी देशके सभी निवासी पाप ही करते हों—यह बात ठीक नहीं है; उसी देशमें ऐसे-ऐसे सच्चरित्र और सदाचारी मनुष्य भी होते हैं, जिनकी बराबरी देवता भी नहीं कर सकते। कर्ण ! दूसरोंके दोष बतानेमें सभी लोग बड़े प्रवीण होते हैं, किंतु उन्हें अपने दोषोंका पता नहीं रहता। अथवा अपने दोष जानते हुए भी वे ऐसे भोले बने रहते हैं, मानो उन्हें कुछ पता ही न हो।

इस प्रकार कर्ण और शल्यको परस्पर विवाद करते देख राजा दुर्योधनने उन दोनोंको रोका। उसने कर्णको मित्रभावसे समझाया तथा शल्यके सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना की। उसके मना करनेसे कर्ण मान गया और उसने शल्यकी बातका कोई जवाब नहीं दिया। शल्यने भी शत्रुओंकी ओर अपना मुहँ फेर लिया। तब राधानन्दन कर्णने हँसकर शल्यको पुनः रथ आगे बढ़ानेकी आज्ञा दी।



कौरव-व्यूहनिर्माण, कर्ण और शल्यकी बातचीत, अर्जुनद्वारा संशप्तकोंका, कर्णद्वारा पाञ्चालोंका तथा भीमद्वारा भानुसेनका संहार और सात्यकिसे वृषसेनकी पराजय

सञ्जय कहते हैं—महाराज! तदनन्तर कर्णने पाण्डवोंका अनुपम व्यूह देखा, जो शत्रुसेनाका आक्रमण सहनेमें सर्वथा समर्थ था। धृष्टद्युम्न उस व्यूहकी रक्षा कर रहा था। उसे देख कर्ण सिंहके समान गर्जना करता हुआ आगे बढ़ा। अपनी युद्ध-चातुरीका परिचय देते हुए उसने पाण्डवोंके मुकाबलेमें कौरव-सेनाकी व्यूह रचना की और पाण्डव-सैनिकोंका संहार करते हुए कर्णने राजा युधिष्ठिरको अपने दाहिने भागमें कर दिया।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! राधानन्दन कर्णने पाण्डवों तथा धृष्टद्युम्न आदि महान् धनुर्धरोंका सामना करनेके लिये कैसा व्यूह बनाया था? व्यूहके दोनों बगलमें तथा आस-पास कौन-कौन वीर खड़े थे? पाण्डवोंने भी मेरे पुत्रोंके मुकाबलेमें कैसा व्यूह रचा था? फिर दोनों सेनाओंका अत्यन्त दारुण युद्ध कैसे आरम्भ हुआ? उस समय अर्जुन कहाँ थे, जो कर्णने युधिष्ठिरपर चढ़ाई कर दी। यदि अर्जुन निकट होते तो युधिष्ठिरके पास कौन फटकने पाता?

सञ्जयने कहा—महाराज! आपकी सेनाका व्यूहनिर्माण जिस प्रकार हुआ था, उसे सुनिये। कृपाचार्य, मगधदेशके योद्धा और कृतवर्मा—ये व्यूहके दाहिने पार्श्वमें मौजूद थे। इनके पक्षपोषक थे महारथी शकुनि और उनका पुत्र उलूक। ये दोनों चमचमाते भाले लिये हुए गन्धारदेशीय घुड़सवारों तथा पर्वतीय योद्धाओंके साथ आपकी सेनाका संरक्षण कर रहे थे। इसी प्रकार संग्राममें कुशल चौबीस हजार संशप्तक व्यूहके वामपक्षकी रक्षामें खड़े थे। इनके पक्षपोषक थे काम्बोज, शक और यवन। ये लोग रथ, घोड़े और पैदलोंकी सेनासे युक्त थे। बीचमें कर्ण खड़ा था, जो सेनाके मुहानेकी रक्षा कर रहा था। कर्णके पुत्र कर्णकी रक्षामें खड़े थे; और पीली आँखोंवाला दुःशासन हाथीपर सवार हो अनेकों सेनाओंसे घिरा हुआ व्यूहके पृष्ठभागमें खड़ा था। उसके पीछे था स्वयं राजा दुर्योधन, जिसकी रक्षाके लिये उसके महाबली भाई मद्र और केकय वीरोंकी सेना लेकर उपस्थित थे। अश्वत्थामा, कौरवोंके प्रधान महारथी, मतवाले गजराज और शूरवीर म्लेच्छ—ये दुर्योधनकी रथ-सेनाके पीछे चल रहे थे। इस प्रकार अनेकों घुड़सवारों, रथों और सजाये हुए हाथियोंसे भरा हुआ वह व्यूह देवता और असुरोंके व्यूहके समान शोभा पा रहा था।

तत्पश्चात् सेनाके मुहानेपर कर्णको उपस्थित देख राजा युधिष्ठिर धनञ्जयसे कहने लगे—'अर्जुन! देखो तो सही,



संग्राममें कर्णने कितना विशाल व्यूह बना रखा है? पक्ष और प्रपक्षोंसे युक्त यह शत्रुसेना कैसी सुशोभित हो रही है! इसे देखकर हमें ऐसी नीति बर्तनी चाहिये, जिससे शत्रुओंकी यह महासेना हमलोगोंको परास्त न कर सके।'

राजाके ऐसा कहनेपर अर्जुनने हाथ जोड़कर कहा—'आपने जैसी आज्ञा की है, वैसा ही किया जायगा।' युधिष्ठिर बोले—'तुम कर्णके साथ, भीमसेन दुर्योधनके साथ, नकुल वृषसेनके साथ और सहदेव शकुनिके साथ युद्ध करें।

शतानीकका दुःशासनसे, सात्यकिका कृतवर्मासे, धृष्टद्युम्नका अश्वत्थामासे तथा मेरा कृपाचार्यके साथ युद्ध होगा। द्रौपदीके सभी पुत्र शिखण्डीको साथ लेकर धृतराष्ट्रके अन्य पुत्रोंके साथ युद्ध करें। इस प्रकार हमारे पक्षके प्रधान-प्रधान वीर शत्रुओंके वीरोंका संहार करें।'

धर्मराजके ऐसा कहनेपर धनञ्जयने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और सैनिकोंको वैसा ही करनेका आदेश देकर वे स्वयं सेनाके मुहानेपर चले। महारथी अर्जुनको आते देख शल्यने रणोन्मत्त कर्णसे पुनः इस प्रकार कहा—'कर्ण! तुम जिन्हें बारंबार पूछते थे, वे कुन्तीनन्दन अर्जुन आ पहुँचे। उनके रथका तुमुल नाद सुनायी दे रहा है। इधर यह अपशकुन होने लगा। वह देखो, रोंगटे खड़े कर देनेवाला अत्यन्त भयंकर कबन्धाकार केतु नामक ग्रह सूर्यमण्डलको घेरकर खड़ा है। तुम्हारी ध्वजा हिल रही है, घोड़े थर-थर काँपते हैं। मुझे तो इन अपशकुनोंसे ऐसा जान पड़ता है कि आज सैकड़ों और हजारों राजा मरकर रणभूमिमें शयन करेंगे। जिनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और शार्ङ्गधनुष शोभा पाते हैं तथा वक्षःस्थलमें कौस्तुभ मणि देदीप्यमान रहती है, वे भगवान् श्रीकृष्ण हवासे बातें करनेवाले सफेद घोड़ोंको हाँकते हुए इधर ही आ रहे हैं। यह देखो, गाण्डीव धनुषकी टंकार होने लगी। अर्जुनके छोड़े हुए तीखे बाण शत्रुओंके प्राण ले रहे हैं। युद्धमें डटे हुए वीर राजाओंके मस्तकोंसे रणभूमि पटती जा रही है। जरा अपनी सेनाकी ओर तो दृष्टि डालो, जो अर्जुनकी मारसे अत्यन्त व्याकुल हो रही है! ये पाण्डववीर दौड़-दौड़कर तुम्हारे पक्षके राजाओंका संहार करते हैं और हाथी, घोड़े, रथी तथा पैदलोंके समूहका नाश कर रहे हैं। यह देखो, अब महाबली अर्जुन संशप्तकोंकी ललकार सुनकर उधर ही बढ़ गये हैं और उन सभी शत्रुओंका संहार कर रहे हैं।'

महाराज शल्यकी ऐसी बातें सुनकर कर्णने क्रोधमें भरकर कहा—'शल्य! तुम भी देख लो संशप्तक वीरोंने क्रोधमें भरकर अर्जुनपर चारों ओरसे धावा किया है। अब उनका यहीं खात्मा समझो, वे रण-समुद्रमें डूब चुके हैं।

शल्यने कहा—अरे! जो दोनों भुजाओंसे पृथ्वीको उठा ले, क्रोध आनेपर सम्पूर्ण प्रजाको भस्म कर डालनेकी शक्ति रखता हो और देवताओंको स्वर्गसे नीचे गिरा सके, वही अर्जुनपर विजय पा सकता है। बेचारे संशप्तकोंमें इतनी ताकत कहाँ है?

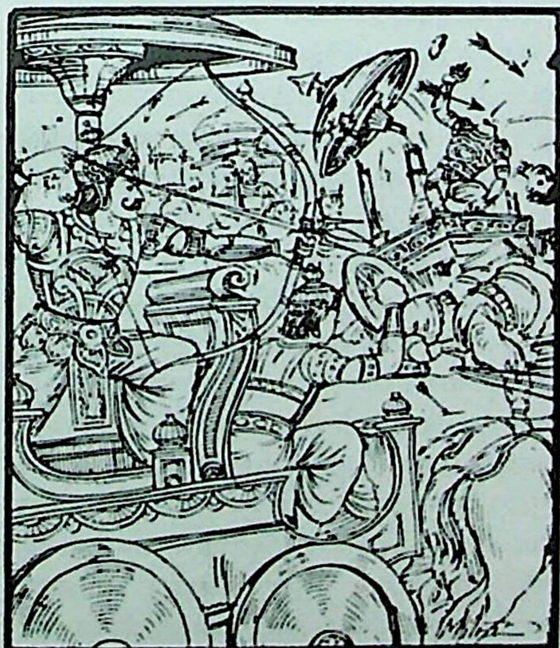
धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! जब सेनाओंकी मोर्चाबन्दी हो गयी, उसके बाद अर्जुनने संशप्तकोंपर और कर्णने पाण्डवोंपर कैसे धावा किया—इसका वर्णन विस्तारके साथ करो।

सञ्जयने कहा—महाराज! उस समय शत्रुसेनाको व्यूहाकारमें खड़े देख अर्जुनने भी उसके मुकाबलेमें व्यूह-निर्माण किया। व्यूहके मुहानेपर धृष्टद्युम्न खड़ा था, जो सेनाकी शोभा बढ़ा रहा था। वह मूर्तिमान् कालके समान दिखायी पड़ता था। द्रौपदीके पुत्र चारों ओरसे उसकी रक्षा कर रहे थे। तदनन्तर, व्यूह बन जानेपर अर्जुन संशप्तकोंको देखकर क्रोधमें भर गये और गाण्डीव धनुष टंकारते हुए उनकी ओर दौड़े। संशप्तक भी मृत्युपर्यन्त युद्ध करते रहनेका निश्चय करके मनमें विजयकी अभिलाषा लेकर अर्जुनका वध करनेके लिये उनपर टूट पड़े तथा उनको सब ओरसे पीड़ित करने लगे। हमने अर्जुनका निवात कवचोंके साथ जैसा भयंकर युद्ध सुना है, संशप्तकोंके साथ छिड़ा हुआ वह तुमुल संग्राम भी वैसा ही भयानक था। अर्जुनने शत्रुओंके धनुष, बाण, तलवार, चक्र, फरसे, हथियारोंसहित ऊपर उठी हुई भुजाएँ तथा नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र काट डाले और हजारों वीरोंके मस्तकोंको धड़से अलग कर दिया। उन्होंने पहले पूर्व दिशामें खड़े हुए शत्रुओंका वध करके फिर उत्तर दिशावालोंका संहार किया। इसके बाद दक्षिण और पश्चिमके सैनिकोंका सफाया किया। जैसे प्रलय-कालमें रुद्र समस्त प्राणियोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने शत्रुओंकी सेनाका विनाश कर डाला।

इसी समय पञ्चाल, चेदि और सृञ्जय देशके वीरोंका आपके सैनिकोंके साथ अत्यन्त दारुण संग्राम छिड़ा। कृपाचार्य, कृतवर्मा और शकुनि कोसल, काशी, मत्स्य, करूष, केकय तथा शूरसेनदेशीय शूरवीरोंके साथ युद्ध करने लगे। उस युद्धमें असंख्य वीरोंका विनाश हो रहा था। दूसरी ओर दुर्योधन अपने भाइयोंको साथ लिये मद्रदेशीय महारथियों तथा प्रधान-प्रधान कौरववीरोंसे सुरक्षित रहकर पाण्डव, पाञ्चाल और चेदिदेशीय योद्धाओं एवं सात्यकिसे लड़ते हुए कर्णकी रक्षा कर रहा था। उस समय कर्णने तीखे बाणोंसे पाण्डवोंकी विशाल सेनाका महान् संहार किया और बड़े-बड़े रथियोंको रौंदते हुए उसने युधिष्ठिरको अधिक पीड़ा पहुँचायी। हजारों शत्रुओंके प्राण लिये। इसके बाद बाणोंकी झड़ी लगाकर उसने प्रभद्रकोंके सतहत्तर श्रेष्ठ वीरोंका सफाया कर दिया। फिर पचीस बाणोंसे पचीस पाञ्चाल वीरोंका वध कर डाला तथा सैकड़ों और हजारों चेदिदेशीय योद्धाओंको सायकोंके निशाने बनाकर यमलोक पहुँचाया। उस समय झुंड-के-झुंड पाञ्चाल रथियोंने आकर

कर्णको चारों ओरसे घेर लिया। तब कर्णने पाँच दुःसह बाण छोड़कर भानुदेव, चित्रसेन, सेनाबिन्दु, तपन तथा शूरसेन—इन पाँच पाञ्चालोंको मार डाला। इन शूरवीरोंके मारे जानेपर पाञ्चाल-सेनामें हाहाकार मच गया। पाञ्चालोंके दस रथियोंने कर्णको घेर लिया। यह देख उसने अपने बाणोंसे उन्हें तुरंत मार गिराया। उस समय कर्णके पहियोंकी रक्षा करनेवाले उसके दुर्जय पुत्र सुषेण और सत्यसेन प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध कर रहे थे। कर्णका ज्येष्ठ पुत्र वृषसेन स्वयं उसके पीछे रहकर पृष्ठभागकी रक्षा करता था।

तदनन्तर धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, भीमसेन, जनमेजय, शिखण्डी, प्रधान-प्रधान प्रभद्रक, चेदि, केकय, पञ्चाल तथा मत्स्यदेशीय वीर और नकुल-सहदेव—ये कवच आदिसे सुसज्जित हो कर्णको मार डालनेकी इच्छासे उसकी ओर दौड़े। पास आते ही उन्होंने कर्णपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। कर्णके पुत्रों तथा आपके पक्षके अन्य योद्धाओंने उस समय उन वीरोंको आगे बढ़नेसे रोका। सुषेणने भल्ल मारकर भीमसेनका धनुष काट डाला और सात नाराचोंसे उनके हृदयमें घाव करके बड़े जोरसे गर्जना की। तब तो भीमसेनने दूसरा धनुष हाथमें लिया और उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ाकर सुषेणका धनुष काट दिया; साथ ही क्रोधमें भरकर उन्होंने उसको दस बाणोंसे बींध डाला। इतना ही नहीं, भीमने कर्णपर भी सत्तर तीखे बाणोंका प्रहार किया



और दस बाणोंसे उसके पुत्र भानुसेनको घोड़े तथा सारथि आदिसहित यमलोक भेज दिया। तत्पश्चात् भीमने आपकी सेनाको पीड़ित करना आरम्भ किया। उन्होंने कृपाचार्य और कृतवर्माके धनुष काटकर उन दोनोंको खूब घायल किया। दुःशासनको तीन और शकुनिको छः बाणोंसे बींध करके उलूक और पतत्रि दोनोंको रथहीन कर डाला। इसके बाद सुषेणसे यह कहकर कि 'ले, अब तुझे भी मारे डालता हूँ' उन्होंने एक सायक अपने हाथमें लिया; परंतु कर्णने उसे काट दिया और भीमको भी तीन बाणोंसे आहत किया। अब भीमने दूसरा बहुत तेज बाण हाथमें लिया और उसे सुषेणको लक्ष्य करके छोड़ दिया; किंतु कर्णने उसके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये और भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे उसने उनपर तिहत्तर बाणोंका प्रहार किया। इधर, सुषेणने अपना धनुष लेकर नकुलकी दोनों भुजाओं तथा छातीमें पाँच बाण मारे। तब नकुलने भी बीस बाणोंसे सुषेणको घायल किया और भीषण सिंहनाद करके कर्णको भी भयभीत कर डाला। यह देख सुषेणके क्रोधकी सीमा न रही, उसने नकुलको साठ तथा सहदेवको सात बाणोंसे घायल कर दिया। दूसरी ओर सात्यकि और वृषसेनमें युद्ध छिड़ा हुआ था। सात्यकिने तीन बाणोंसे वृषसेनके सारथिको मारकर एक भालेसे उसका धनुष काट डाला। फिर सात भल्लोंसे उसके घोड़ोंका काम तमामकर एक बाणसे ध्वजा काट दी और तीन सायकोंसे वृषसेनकी छातीमें घाव किया। उस प्रहारसे वृषसेनका सारा शरीर सुन्न हो गया। एक क्षणतक बेहोश रहनेके बाद वह उठा और हाथमें ढाल-तलवार ले सात्यकिको मार डालनेकी इच्छासे उसकी ओर झपटा। वृषसेन अभी कूदकर आ ही रहा था कि सात्यकिने दस बाणोंसे उसकी ढाल-तलवारके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

इसी समय उधर दुःशासनकी दृष्टि पड़ी; उसने वृषसेनको रथ और शस्त्रसे हीन देख तुरंत ही अपने रथपर बिठा लिया और दूर ले जाकर उसे दूसरे रथपर चढ़ाया। इसके बाद महारथी वृषसेनने वहाँ आकर द्रौपदीके पुत्रोंको तिहत्तर, सात्यकिको पाँच, भीमसेनको चौंसठ, सहदेवको पाँच, नकुलको तीस, शतानीकको सात, शिखण्डीको दस, धर्मराजको सौ तथा अन्य वीरोंको भी अनेकों बाणोंसे पीड़ित किया। तत्पश्चात् वह पुनः कर्णके पृष्ठभागकी रक्षा करने लगा। सात्यकिने नये बने हुए लोहेके नौ बाणोंसे दुःशासनके सारथि, घोड़े तथा रथको नष्ट करके उसके ललाटमें तीन बाण मारे। तब दुःशासन दूसरे रथपर सवार हो कर्णके उत्साह एवं बलको बढ़ाता हुआ पाण्डवोंके साथ युद्ध करने लगा।

तदनन्तर, कर्णको धृष्टद्युम्नने दस, द्रौपदीके पुत्रोंने तिहत्तर, सात्यकिने सात, भीमसेनने चौंसठ, सहदेवने सात, नकुलने तीस, शतानीकने सात, शिखण्डीने दस, धर्मराजने सौ तथा अन्य वीरोंने भी बहुत-से बाण मारे। सब लोगोंने सूतपुत्रको भलीभाँति पीड़ित किया। तब कर्णने भी उनमेंसे प्रत्येकको दस-दस बाणोंसे बींध डाला। उनके घोड़े, सारथि और रथ जब कर्णके बाणोंसे आच्छादित हो गये तो उन्होंने विवश होकर कर्णको आगे बढ़नेके लिये मार्ग दे दिया। अपने बाणोंकी बौछारसे उन महान् धनुर्धरोंका मानमर्दन करता हुआ कर्ण हाथियोंकी सेनामें बेरोक-टोक घुस गया। फिर चेदिवीरोंके तीस रथियोंका सफाया करके उसने राजा युधिष्ठिरपर धावा किया। उस समय शिखण्डी, सात्यकि तथा पाण्डव लोग राजाको सब ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करने लगे। इसी प्रकार आपके पक्षवाले शूरवीर योद्धा भी डटकर कर्णकी रक्षा करने लगे। उस समय युधिष्ठिर आदि पाण्डव और कर्ण आदि हमलोग निर्भय होकर युद्धमें लग गये।



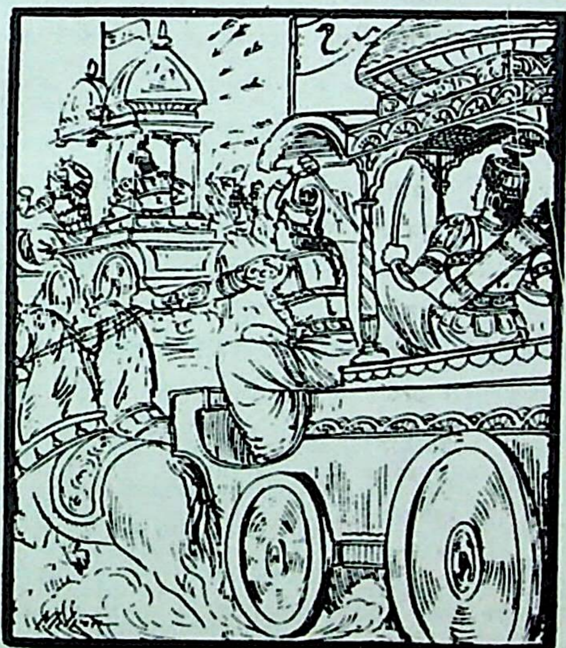
कर्ण और युधिष्ठिरका संग्राम, कर्णकी मूर्च्छा, कर्णद्वारा युधिष्ठिरका पराभव तथा भीमके द्वारा कर्णका परास्त होना

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! कर्णने उस सेनाको चीरकर धर्मराजपर धावा किया। उस समय शत्रुओंने उसपर नाना प्रकारके हजारों अस्त्र-शस्त्र चलाये, किंतु उसने उन सबके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इतना ही नहीं, अपने भयंकर बाणोंसे उसने शत्रुओंको घायल भी कर डाला। उनके मस्तकों, भुजाओं तथा जंघाओंको काट गिराया। कर्णके बाणोंसे मारे जाकर बहुत-से शत्रु धराशायी हो गये। बहुतोंके अङ्गभङ्ग हो गये, अतः वे युद्ध छोड़कर भाग चले। रणभूमिमें शत्रुपक्षके लाखों योद्धाओंकी लाशें बिछ गयीं। उस समय कर्ण प्राणियोंका अन्त करनेवाले यमराजके समान क्रोधमें भरा हुआ था। पाण्डव और पाञ्चाल सैनिकोंने उसे रोका अवश्य, किन्तु उन सबको रौंदकर वह युधिष्ठिरके पास जा धमका।

तदनन्तर कर्णको अपने पास ही खड़े देख युधिष्ठिरकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं, उन्होंने उससे कहा—'सूतपुत्र ! तू युद्धमें सदा अर्जुनसे लाग-डाँट रखता है और दुर्योधनकी हाँ-में-हाँ मिलाकर हमलोगोंको कष्ट पहुँचाया करता है। आज तुझमें जो बल और पराक्रम हो वह सब दिखा, अपना महान् पुरुषार्थ प्रकट कर।' यह कहकर युधिष्ठिरने कर्णको दस बाणोंसे बींध डाला। सूतपुत्र कर्णने भी हँसते-हँसते उन्हें दस बाणोंसे घायल करके तुरंत बदला चुकाया। तब युधिष्ठिरने पर्वतोंको भी विदीर्ण करनेवाला यमदण्डके समान भयंकर बाण धनुषपर चढ़ाया और सूतपुत्रका वध करनेकी इच्छासे उसे छोड़ दिया। वह वेगपूर्वक छोड़ा हुआ बाण बिजलीके समान कड़ककर महारथी कर्णकी बायीं कोखमें धँस गया। उसकी चोटसे कर्णको मूर्च्छा आ गयी। उसका सारा शरीर शिथिल हो गया, धनुष हाथसे छूटकर रथपर जा गिरा। मानो प्राण निकल गये हों, ऐसा निश्चेष्ट और अचेत होकर कर्ण शल्यके सामने ही गिर पड़ा। राजा युधिष्ठिरने अर्जुनका हित करनेकी इच्छासे कर्णपर पुनः प्रहार नहीं किया। कर्णको उस अवस्थामें देखकर कौरवसेनामें हाहाकार मच गया।

थोड़ी ही देरमें जब कर्णकी मूर्च्छा दूर हुई तो उसने विजयनामक अपना महान् धनुष तानकर तेज किये हुए बाणोंसे युधिष्ठिरकी प्रगति रोक दी। उस समय दो पाञ्चालराजकुमार युधिष्ठिरके पहियोंकी रक्षा कर रहे थे, उनके नाम थे चन्द्रदेव तथा दण्डधार। कर्णने उन दोनोंको छुरेके समान आकारवाले दो बाणोंसे मार डाला। यह देख युधिष्ठिरने कर्णको पुनः तीस बाणोंसे घायल कर दिया। साथ ही सुषेण और सत्यसेनको भी तीन-तीन बाण मारे। फिर नब्बे बाणोंसे शल्यको और तिहत्तरसे सूतपुत्रको बींध डाला तथा उसकी रक्षा करनेवाले योद्धाओंको भी तीन-तीन बाणोंसे घायल किया। तब कर्णने हँसकर अपना धनुष टंकारा और एक भल्ल तथा साठ बाणोंसे युधिष्ठिरको आहत करके जोरसे गर्जना की। फिर तो पाण्डव-पक्षके योद्धा बड़े अमर्षमें भरकर दौड़े और युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये कर्णको बाणोंसे पीड़ित करने लगे। सात्यकि, चेकितान, युयुत्सु पाण्ड्य, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रक, नकुल-सहदेव, भीमसेन, धृष्टकेतु तथा करूष, मत्स्य, केकय, काशी और कोसल देशके योद्धा—ये सब-के-सब कर्णपर बाणोंका प्रहार करने लगे। पाञ्चालदेशीय जनमेजय भी उसे सायकोंसे बींधने लगा। पाण्डववीर कर्णपर सब ओरसे वाराहकर्ण, नाराच, नालीक, बाण, वत्सदन्त, विपाट तथा क्षुरप्र आदि नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। यह

देख कर्णने ब्रह्मास्त्र प्रकट किया, उसके बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। शराग्निकी लपटमें झुलसकर पाण्डववीर भस्म होने लगे। तदनन्तर कर्णने हँसकर युधिष्ठिरका धनुष काट दिया, फिर पलक मारते ही उसने तेज किये हुए नब्बे बाणोंसे उनका कवच छिन्न-भिन्न कर दिया। कवच कट जानेपर बाणोंकी मारसे वे लोहूलुहान हो गये और क्रोधमें भरकर उन्होंने कर्णके रथपर फौलादकी बनी हुई शक्ति छोड़ी किंतु कर्णने सात बाण मारकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। इसके बाद युधिष्ठिरने कर्णकी भुजा, ललाट और मस्तकमें चार तोमरोंका प्रहार करके हर्षनाद किया। कर्णके शरीरसे खूनकी धारा बहने लगी। उसने एक भल्लसे युधिष्ठिरकी ध्वजा काट डाली और तीनसे उन्हें भी आहत किया। फिर तरकस काटकर रथके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इस प्रकार पराजित होकर राजा युधिष्ठिर एक दूसरे रथपर बैठे और रणभूमिसे भाग चले।



कर्णने पीछा करके युधिष्ठिरके कंधेपर हाथ रखा और उन्हें बलपूर्वक पकड़ लेना चाहा; इतनेहीमें उसे कुन्तीको दिये हुए वचनका स्मरण हो आया। इधर शल्य भी बोल उठे—'कर्ण! महाराज युधिष्ठिरको हाथ न लगाओ, मुझे भय है कि कहीं पकड़ते ही ये तुम्हें मारकर भस्म न कर डालें।'

यह सुनकर कर्ण हँस पड़ा और पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरका उपहास करते हुए कहने लगा—'युधिष्ठिर! जिसका उच्च कुलमें जन्म हुआ है, जो क्षत्रियधर्ममें स्थित है, वह भयभीत होकर प्राण बचानेके लिये युद्ध छोड़कर भाग कैसे सकता है? मेरा तो ऐसा विश्वास है, तुम क्षत्रियधर्मके पालनमें निपुण नहीं हो; क्योंकि सदा ब्राह्मणोचित स्वाध्याय और यज्ञोंमें ही लगे रहते हो। कुन्तीनन्दन! आजसे लड़ाईमें न आना, शूरवीरोंका सामना न करना तथा उनके लिये मुँहसे अप्रिय बातें भी न निकालना। इतने बड़े समरमें तो कभी जानेका नाम न लेना। यदि युद्धमें हम-जैसे लोगोंसे कुछ कड़वी बात कहोगे तो उसका यही अथवा इससे भी कठोर फल मिलेगा! राजन्! अपनी छावनीमें जाओ अथवा श्रीकृष्ण और अर्जुन जहाँ हैं, वहाँ ही चले जाओ।' ऐसा कहकर कर्णने युधिष्ठिरको छोड़ दिया और पाण्डवसेनाका संहार करने लगा।

राजा युधिष्ठिर बहुत लज्जित होकर तुरंत वहाँसे हट गये और श्रुतकीर्तिके रथपर बैठकर कर्णका पराक्रम देखने लगे। अपनी सेनाको खदेड़ी जाती हुई देख धर्मराजने योद्धाओंसे कुपित होकर कहा—'अरे! क्यों चुप बैठे हो, मारो इन कौरवोंको।' राजाकी आज्ञा पाते ही भीमसेन आदि पाण्डव-महारथी आपके पुत्रोंपर टूट पड़े। उस समय रथ, हाथी और घोड़ोंपर सवार हुए योद्धाओं तथा शस्त्रोंका भयंकर शब्द होने लगा और उठो, मारो, आगे बढ़ो, दबोच लो—इस प्रकार कहते हुए वे आपसमें मारकाट करने लगे।



उन आक्रमणकारियोंके प्रचण्ड वेगको सहन करनेकी अपनेमें शक्ति न देखकर आपके पुत्रोंकी विशाल सेना भागने लगी।

यह देख दुर्योधनने अपने योद्धाओंको सब ओरसे रोकनेका प्रयास किया, परंतु वह पुकारता ही रह गया, सेना पीछे न लौटी। कर्णकी भी दृष्टि उधर पड़ी, उसने कौरव-सैनिकोंको मालिकोंके साथ भागते देख महाराज शल्यसे कहा—'अब तुम भीमके रथके पास चलो।' शल्यने अपने घोड़ोंको भीमकी ओर बढ़ाया।

कर्णको आते देख भीमसेन क्रोधमें भर गये। उन्होंने सूतपुत्रको मार डालनेका विचार करके वीरवर सात्यकि तथा धृष्टद्युम्नसे कहा—'अब तुमलोग महाराज युधिष्ठिरकी रक्षा करो। अभी मेरे देखते-देखते उन्हें बहुत बड़े संकटसे किसी तरह छुटकारा मिला है। दुरात्मा कर्णने दुर्योधनको प्रसन्न करनेके लिये मेरे सामने ही उनकी समस्त युद्ध-सामग्रीको तहस-नहस कर डाला है। इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ है; अब मैं उसका बदला चुकाऊँगा। आज घोर संग्राम करके या तो मैं ही कर्णको मार डालूँगा या वही मेरा वध करेगा—यह मैं सच्ची बात बता रहा हूँ। राजाको मैं तुम्हें धरोहरके रूपमें देता हूँ; उनकी रक्षाके लिये सब प्रकारसे यत्न करना।'

यों कहकर महाबाहु भीमसेन अपने महान् सिंहनादसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए कर्णकी ओर बढ़े। उन्हें चढ़कर आते देख कर्णने क्रोधमें भरकर उनकी छातीमें नाराचका प्रहार किया। इस प्रकार सूतपुत्रके हाथों घायल होकर भीमने भी उसे बाणोंसे ढक दिया और तेज किये हुए नौ बाण मारकर उसको घायल कर डाला। तब कर्णने भीमके धनुषके दो टुकड़े कर दिये। भीमने दूसरा धनुष उठाया और कर्णके मर्मस्थानोंको बींधकर बड़े जोरसे गर्जना की। फिर सूतपुत्रका वध करनेके लिये उन्होंने पर्वतोंको भी विदीर्ण कर डालनेवाला एक बाण धनुषपर चढ़ाया और उसे उसकी ओर छोड़ दिया। उस वज्रके समान वेगशाली बाणने सूतपुत्रके शरीरको छेद डाला। सेनापति कर्ण बेहोश होकर रथकी बैठकमें गिर पड़ा। उसे मूर्च्छित देख मद्रराज शल्य कर्णको रणभूमिसे दूर हटा ले गये। इस प्रकार कर्णको परास्त करके भीमसेनने कौरवसेनाको मार भगाया।



भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके कई पुत्रों तथा कौरवयोद्धाओंका भीषण संहार

धृतराष्ट्र बोले—सञ्जय! भीमसेनने जो कर्णको रथकी बैठकमें गिरा दिया—यह तो उन्होंने बड़ा दुष्कर काम किया। उसीके भरोसे दुर्योधन मुझसे बार-बार कहा करता था कि 'अकेले कर्ण ही पाण्डवों और सृञ्जयोंको युद्धमें मार डालेगा।' अब भीमके हाथों कर्णको पराजित देख मेरे पुत्र दुर्योधनने क्या किया?

सञ्जयने कहा—महाराज! उस महासंग्राममें कर्णको युद्धसे विमुख होते देख दुर्योधनने अपने भाइयोंसे कहा—'तुम लोग शीघ्र जाकर कर्णकी रक्षा करो। वह भीमसेनके भयके कारण अगाध संकट-समुद्रमें डूब रहा है।' राजाकी आज्ञा पाकर वे क्रोधमें भर गये और जिस प्रकार पतंगे आगकी ओर दौड़ते हैं, उसी प्रकार भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे उनपर टूट पड़े। श्रुतर्वा, दुर्धर, क्राथ, विवित्सु, विकट, सम, निपंगी, कवची, पाशी, नन्द, उपनन्द, दुष्प्रधर्ष, सुबाहु, वातवेग, सुवर्चा, धनुर्ग्राह, दुर्मद, जलसन्ध, शल और सह—ये लोग रथियोंसे घिरे हुए दौड़े और भीमसेनको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। फिर तो उन्होंने नाना प्रकारके बाणोंकी झड़ी लगा दी। महाबली भीमसेन उनके प्रहारोंसे पीड़ित हो रहे थे, तो भी उन्होंने आपके पुत्रोंके पाँच सौ रथोंकी धज्जियाँ उड़ा दीं और पचास रथियोंको यमलोक भेज दिया। तदनन्तर, क्रोधमें भरे हुए भीमने एक भल्ल मारकर विवित्सुके मस्तकको धड़से अलग कर दिया। उसकी मृत्यु होती देख सभी भाई भीमपर टूट पड़े। तब उन्होंने दो भल्लोंसे आपके दो पुत्र विकट और सहके प्राण ले लिये। लगे हाथ भीमसेनने तेज किये हुए नाराचसे मारकर क्राथको भी यमलोक भेज दिया। महाराज! इस प्रकार जब आपके वीर धनुर्धर पुत्र मारे जाने लगे तो रणभूमिमें बड़े जोरसे हाहाकार मचा। उनकी सेनाका



संहार करके भीमने नन्द और उपनन्दको भी मौतके घाट उतारा। अब तो आपके पुत्र भयसे घबरा उठे। वे भीमसेनको प्रलयकालीन यमराजके समान भयंकर जानकर वहाँसे भाग गये। आपके इतने पुत्र मारे गये—यह देख कर्णका मन बहुत उदास हो गया। उसकी आज्ञासे मद्रराजने पुनः घोड़े बढ़ाये। वे घोड़े बड़े वेगसे आकर भीमसेनके रथसे भिड़ गये। फिर तो एक-दूसरेका वध चाहनेवाले कर्ण और भीमसेनमें बालि-सुग्रीवकी भाँति भयंकर युद्ध होने लगा। कर्णने अपने सुदृढ़ धनुषको कानतक खैंचकर तीन बाणोंसे भीमसेनको बींध डाला। उन्होंने भी एक भयंकर बाण हाथमें लेकर उसे कर्णपर चलाया। उस बाणने कर्णका कवच फाड़कर उसके शरीरको छेद दिया। उस प्रचण्ड प्रहारसे कर्णको बड़ी व्यथा हुई, वह व्याकुल होकर काँपने लगा। तदनन्तर रोष और अमर्षमें भरकर उसने भीमसेनको पचीस बाण मारे। फिर अनेकों सायकोंका प्रहार करके एक बाणसे उनकी ध्वजा काट डाली। इसके बाद एक भल्लसे मारकर उनके सारथिको भी मौतके घाट उतार दिया। लगे हाथ धनुष भी काट डाला; फिर एक ही मुहूर्तमें हँसते-हँसते उसने भीमसेनको रथहीन कर दिया।

रथके टूटते ही महाबाहु भीमसेन गदा हाथमें लिये हँसते-हँसते कूद पड़े। फिर वेगसे उछलकर वे आपकी सेनामें घुस गये और गदा मार-मारकर समस्त सैनिकोंका संहार करने लगे। पैदल होते हुए ही उन्होंने अपनी गदासे सात सौ हाथियोंको उनके सवारों, ध्वजाओं और अस्त्र-शस्त्रोंसहित नष्ट कर डाला। इसके बाद शकुनिके अत्यन्त बलवान् बावन हाथियोंको मार गिराया तथा एक सौसे अधिक रथों और सैकड़ों पैदलोंका संहार कर डाला।



ऊपरसे सूर्यदेव तपा रहे थे और सामने भीमसेन संताप दे रहे थे; इससे समस्त योद्धा भीमके डरसे मैदान छोड़कर भाग निकले। इतनेहीमें दूसरी ओरसे पाँच सौ रथियोंने आकर भीमपर चारों ओरसे बाणवर्षा आरम्भ कर दी। परंतु भीमने उन सबको गदासे मारकर यमलोक पठा दिया। साथ ही उनकी ध्वजा-पताका और आयुधोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तत्पश्चात् शकुनिके भेजे हुए तीन हजार घुड़सवारोंने हाथोंमें शक्ति, ऋष्टि और प्रास लेकर भीमसेनपर धावा किया। भीमसेनने बड़े वेगसे आगे बढ़कर उनका मुकाबला किया और तरह-तरहके पैंतरे बदलते हुए उन्होंने उन सबको गदासे मार डाला। इसके बाद भीमसेन दूसरे रथपर सवार हुए और क्रोधमें भरकर कर्णका सामना करनेके लिये पहुँच गये।

उस समय कर्ण और युधिष्ठिरमें युद्ध चल रहा था। कर्णने अपने बाणोंसे युधिष्ठिरको आच्छादित कर दिया और उनके सारथिको भी मार गिराया। सारथिके न होनेसे घोड़े भाग चले। उनके रथको पलायन करते देख महारथी कर्ण बाणोंकी बौछार करता हुआ उनका पीछा करने लगा। कर्णको धर्मराजका पीछा करते देख भीमसेन क्रोधसे जल

गये। उन्होंने अपने बाणोंसे पृथ्वी और आकाशको चारों ओरसे ढक दिया। इसके बाद कर्णपर भी भीषण बाणवर्षा की। कर्ण लौट पड़ा। उसने भी सब ओरसे तीखे बाणोंकी वर्षा करके भीमको आच्छादित कर दिया। कर्ण और भीम दोनों ही धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ थे। उस समय एक-दूसरेपर विचित्र-विचित्र बाणोंका प्रहार करते हुए उन दोनोंने अन्तरिक्षमें बाणोंका जाल-सा बुन दिया। यद्यपि उस वक्त मध्याह्नका सूर्य तप रहा था, तो भी उन दोनोंके सायकसमूहोंसे रुक जानेके कारण उसकी प्रखर प्रभा नीचे नहीं आने पाती थी। उस समय शकुनि, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्य—ये पाँच वीर पाण्डवसेनासे लोहा ले रहे थे। उनको डटे हुए देख भागनेवाले कौरवयोद्धा भी पीछे लौट पड़े। फिर तो दोनों पक्षकी सेनाएँ एक-दूसरीसे गुथ गयीं। उस दुपहरीमें जैसा भयंकर युद्ध हुआ, वैसा मैंने न तो कभी देखा था और न सुना ही था। एक ओरके सैनिकोंका झुंड दूसरी ओरके झुंडसे सहसा जा भिड़ा। भीषण मारकाट मच गयी। छूटते हुए बाण-समूहोंकी आवाजें बहुत दूरतक सुनायी देने लगीं। उस समय महान् सुयश चाहनेवाले दोनों पक्षके योद्धाओंकी सिंहगर्जना एक क्षणके लिये भी बंद नहीं होती थी। दोनों दलोंमें इतना भयानक युद्ध हुआ कि खूनकी नदियाँ बह चलीं। कितने ही क्षत्रिय उनमें डूबकर यमलोक पहुँच जाते थे। सब ओर मांस-भोजी जन्तुओंका चीत्कार हो रहा था। कौए, गिद्ध और वक आदि पक्षी मड़रा रहे थे। उस भयंकर



संग्राममें कौरवसेना बहुत कष्ट पाने लगी। उस समय उसकी दशा समुद्रमें टूटी हुई नौकाके समान हो रही थी।



अर्जुनद्वारा संशप्तकोंका संहार

सञ्जय कहते हैं—महाराज! जिस समय क्षत्रियोंका संहार करनेवाला वह भयानक युद्ध चल रहा था, उसी समय दूसरी ओर बड़े जोर-जोरसे गाण्डीव धनुषकी टंकार सुनायी देती थी। वहाँ अर्जुन संशप्तकोंका तथा नारायणी सेनाका संहार कर रहे थे। महारथी सुशर्माने अर्जुनपर बाणोंकी बौछार की तथा संशप्तकोंने भी उन्हें अपने तीरोंका निशाना बनाया। तत्पश्चात् सुशर्माने अर्जुनको दस बाणोंसे बींधकर श्रीकृष्णकी दाहिनी भुजामें भी तीन बाण मारे। फिर एक भल्ल मारकर उसने अर्जुनकी ध्वजा छेद डाली। ध्वजापर आघात लगते ही उसके ऊपर बैठे हुए विशाल वानरने बड़े जोरसे गर्जना करके सबको भयभीत कर दिया। उसका भयंकर नाद सुनकर आपकी सेना थर्रा उठी। डरके मारे कोई हिल-डुलतक न सका। थोड़ी देरमें जब उन्हें होश आया तो सब-के-सब अर्जुनपर बाणोंकी बौछार करने लगे। फिर सबने मिलकर अर्जुनके विशाल रथको घेर लिया। यद्यपि उनपर तीखे बाणोंकी मार पड़ रही थी, तो भी वे रथको पकड़कर जोर-जोरसे चिल्लाने लगे। किन्हींने घोड़ोंको पकड़ा, किन्हींने पहियोंको। कुछ लोगोंने रथकी ईषा पकड़नेका उद्योग किया। इस प्रकार हजारों योद्धा रथको जबरदस्ती पकड़कर सिंहनाद करने लगे। कुछ लोगोंने भगवान् श्रीकृष्णकी दोनों बाहें पकड़ लीं; कई योद्धाओंने रथपर चढ़कर अर्जुनको भी पकड़ लिया। श्रीकृष्णने अपनी बाहें झटककर उन लोगोंको जमीनपर गिरा दिया तथा अर्जुनने भी अपने रथपर चढ़े हुए कितने ही पैदलोंको धक्के देकर नीचे गिराया। फिर आसपास खड़े हुए संशप्तक योद्धाओंको निकटसे युद्ध करनेमें उपयोगी बाण मारकर ढक



दिया। तदनन्तर, अर्जुनने देवदत्त तथा श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य नामक शङ्ख बजाया। उनकी ध्वनिसे पृथ्वी और आकाश गूँजने-से लगे। शङ्खोंकी आवाज सुनकर संशप्तकोंकी सेना भयसे सिहर उठी। फिर अर्जुनने नागास्त्रका प्रयोग करके उन सबके पैर बाँध दिये। पैर बँध जानेसे निश्चेष्ट होकर वे पत्थरके पुतले-जैसे दिखायी देने लगे। उसी अवस्थामें अर्जुनने उनका संहार आरम्भ किया। जब मार पड़ने लगी तो उन्होंने रथ छोड़ दिया और अपने समस्त अस्त्र-शस्त्रोंको अर्जुनपर छोड़नेका प्रयास किया; परंतु पैर बँधे होनेके कारण वे हिल भी न सके। अर्जुन उनका वध करने लगे।

इसी समय सुशर्माने गारुडास्त्रका प्रयोग किया। उससे बहुतसे गरुड़ प्रकट हो-होकर सर्पोंको खाने लगे। उन गरुड़ोंको देख सर्पगण लापता हो गये। इस प्रकार नागपाशसे छुटकारा पाये हुए योद्धा अर्जुनके रथपर सायकों तथा अन्य अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। तब अर्जुनने बाणोंकी बौछारसे उनकी अस्त्र-वर्षाका निवारण करके योद्धाओंका संहार आरम्भ किया। इतनेमें सुशर्माने अर्जुनकी छातीमें तीन बाण मारे। इससे अर्जुनको गहरी चोट लगी और वे व्यथित होकर रथके पिछले भागमें बैठ गये। थोड़ी ही देरमें उन्हें चेत हुआ, फिर तो उन्होंने तुरंत ही ऐन्द्रास्त्रको प्रकट किया। उससे हजारों बाण निकल-निकलकर चारों दिशाओंमें छा गये और आपकी सेना तथा घोड़े-हाथियोंका विनाश करने लगे। इस प्रकार सेनाका संहार होता देख संशप्तकों तथा नारायणी सेनाके ग्वालोंको बड़ा भय हुआ। उस समय वहाँ एक भी पुरुष ऐसा नहीं था, जो अर्जुनका सामना कर सके। सब वीरोंके देखते-देखते आपकी सेना कट रही थी। वह स्वयं निश्चेष्ट हो गयी थी, उससे पराक्रम करते नहीं बनता था। यह सब मेरी आँखों-देखी घटना है। अर्जुनने वहाँ दस हजार योद्धाओंको मार डाला था। संशप्तकोंमेंसे जो शेष बच गये थे उन्होंने मर जाने या विजय पानेका निश्चय करके फिरसे अर्जुनको घेर लिया। फिर तो वहाँ अर्जुनके साथ आपके सैनिकोंका बड़ा भारी संग्राम हुआ।



कृपाचार्यके द्वारा शिखण्डीकी पराजय, सुकेतुका वध, धृष्टद्युम्नके द्वारा कृतवर्मा और दुर्योधनका परास्त होना तथा कर्णद्वारा पाञ्चाल आदि महारथियोंका संहार

सञ्जय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार कौरव-सेनाको अर्जुनकी मारसे पीड़ित होती देख कृतवर्मा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, उलूक, शकुनि, दुर्योधन तथा उसके भाइयोंने आकर बचाया। उस समय कुछ देरतक वहाँ घोर संग्राम हुआ, कृपाचार्यने बाणोंकी इतनी बौछार की कि टिड्डियोंके समान उन बाणोंसे सृञ्जयों (पाञ्चालों) की सारी सेना आच्छादित हो गयी। यह देख शिखण्डी बड़े क्रोधमें भरकर उनका सामना करनेके लिये गया और उनके ऊपर चारों ओरसे बाणवर्षा करने लगा। किंतु कृपाचार्य अस्त्रविद्याके महान् पण्डित थे। उन्होंने शिखण्डीकी बाणवर्षा शान्त करके उसे दस बाणोंसे बींध डाला। फिर तीखे बाणोंके प्रहारसे उसके सारथि और घोड़ोंको भी यमलोक पठा दिया। तब शिखण्डी सहसा उस रथसे कूद पड़ा और हाथोंमें ढाल-तलवार लेकर कृपाचार्यपर झपटा। उसे अपने ऊपर आक्रमण करते देख कृपाचार्यने अनेकों बाण मारकर ढक दिया। शिखण्डीने भी बारंबार तलवार घुमाकर कृपाचार्यके बाणोंको काट डाला। तब कृपाचार्यने अपने सायकोंसे शीघ्रतापूर्वक शिखण्डीकी ढाल काट दी। अब वह सिर्फ



तलवार लेकर ही उनकी ओर दौड़ा। कृपाचार्य अपने बाणोंसे उसे बार-बार पीड़ा देने लगे। उसकी यह अवस्था देख चित्रकेतु-नन्दन सुकेतु तुरंत वहाँ आ पहुँचा और बाबा कृपाचार्यपर बाणोंकी झड़ी लगाने लगा। शिखण्डीने देखा कि ब्राह्मण-देवता अब सुकेतुके साथ उलझे हुए हैं, तो वह मौका पाकर तुरंत भाग निकला। तदनन्तर सुकेतुने कृपाचार्यको पहले नौ बाणोंसे बींधकर फिर तिहत्तर तीरोंसे घायल किया। इसके बाद उनके बाणसहित धनुषको काटकर सारथिके मर्मस्थानोंमें भी घाव किया।

यह देख कृपाचार्यने तीस बाणोंसे सुकेतुके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें चोट पहुँचायी। इससे सुकेतुका सारा शरीर काँप उठा, वह बहुत व्याकुल हो गया। उसी अवस्थामें कृपाचार्यने एक क्षुरप्र मारकर उसके मस्तकको काट गिराया। सुकेतुके मारे जानेपर उसके अग्रगामी सैनिक भयभीत हो सब दिशाओंमें भाग गये।

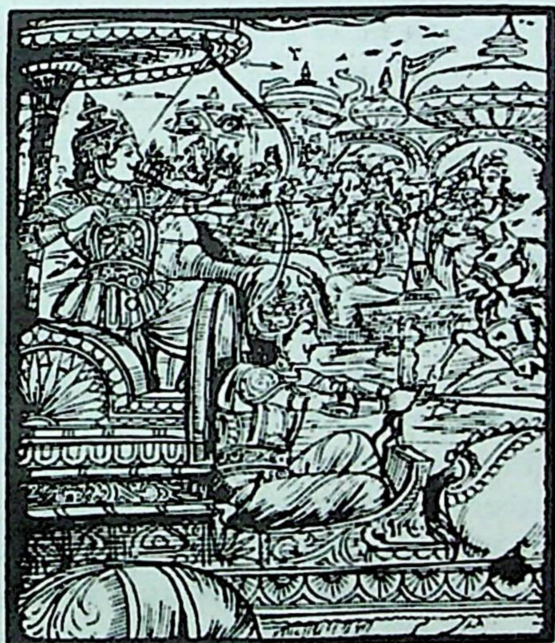
दूसरी ओर धृष्टद्युम्न और कृतवर्मा लड़ रहे थे। धृष्टद्युम्नने क्रोधमें भरकर कृतवर्माकी छातीमें नौ बाण मारे तथा उसके ऊपर सायकोंकी भयंकर बौछार की। कृतवर्माने भी हजारों बाण मारकर उस शस्त्रवर्षाको शान्त कर दिया, यह देख धृष्टद्युम्नने कृतवर्माके निकट पहुँचकर उसे आगे बढ़नेसे रोक दिया और तुरंत ही उसके सारथिको भी तीखे भालेसे मारकर यमलोकका अतिथि बनाया। इस प्रकार महाबली धृष्टद्युम्नने अपने बलवान् शत्रुको जीतकर सायकोंकी वर्षासे कौरव-सेनाका बढ़ाव रोक दिया। तब आपके सैनिक सिंहनाद करके धृष्टद्युम्नपर टूट पड़े, फिर घमासान युद्ध होने लगा।

उस दिन अर्जुन संशप्तकोंमें, भीमसेन कौरवोंमें और कर्ण पाञ्चालोंमें घुसकर क्षत्रियोंका संहार कर रहे थे। एक ओर दुर्योधन नकुल-सहदेवसे भिड़ा हुआ था। उसने क्रोधमें भरकर नौ बाणोंसे नकुलको और चार सायकोंसे उसके घोड़ोंको बींध डाला। फिर एक क्षुराकार बाणसे उसने सहदेवकी सुवर्णमयी ध्वजा काट दी। नकुलने भी कुपित होकर आपके पुत्रको इक्कीस बाण मारे तथा सहदेवने पाँच बाणोंसे उसको घायल किया। अब तो आपका पुत्र क्रोधसे आगबबूला हो गया, उसने उन दोनों भाइयोंकी छातीमें पाँच-पाँच बाण मारे। फिर दो भल्लोंसे उन दोनोंके धनुष काट डाले। इसके बाद उन्हें इक्कीस बाणोंसे घायल किया।

धनुष कट जानेपर उन दोनों भाइयोंने पुनः दूसरे धनुष लेकर दुर्योधनपर बड़ी भारी बाणवर्षा आरम्भ की। दुर्योधन भी बाणोंकी झड़ी लगाकर उन दोनोंको रोकने लगा। उस समय उसके धनुषसे निकलते हुए बाण सम्पूर्ण दिशाओंको ढकते दिखायी दे रहे थे। आकाश आच्छन्न होकर बाणमय बन गया था। नकुल-सहदेवको उसका रूप प्रलयकालीन यमराजके समान दिखायी पड़ता था। ठीक उसी समय पाण्डव-सेनापति धृष्टद्युम्न वहाँ आ पहुँचा और नकुल-सहदेवको पीछे करके अपने बाणोंसे दुर्योधनकी प्रगति रोकने लगा। आपके पुत्रने हँसकर धृष्टद्युम्नको पहले पचीस बाण मारे, फिर पैंसठ बाण मारकर सिंहनाद किया। तत्पश्चात् उसने एक तीखे क्षुरप्रसे धृष्टद्युम्नके बाणसहित धनुष और दस्ताने काट दिये।

तब धृष्टद्युम्नने दुर्योधनपर पंद्रह बाण छोड़े। वे बाण उसका कवच छेदते हुए पृथ्वीमें समा गये। इससे दुर्योधनको बहुत क्रोध हुआ। उसने एक भल्ल मारकर धृष्टद्युम्नका धनुष काट डाला। फिर बड़ी शीघ्रताके साथ उसकी भ्रुकुटियोंके बीचमें उसने दस बाण मारे। धृष्टद्युम्नने भी अपना कटा हुआ धनुष फेंककर दूसरा धनुष और सोलह भल्ल अपने हाथमें लिये। उनमेंसे पाँच भल्लोंके द्वारा उसने दुर्योधनके घोड़ों और सारथिको मार डाला, एकसे उसका धनुष काट दिया और दस भल्लोंसे सामग्रियोंसहित रथ, छत्र, ध्वजा, शक्ति, गदा और खड्ग आदिको नष्ट कर डाला। राजा दुर्योधन रथहीन हो गया, उसके कवच और आयुध भी नष्ट हो गये—यह देख उसके भाई उसकी रक्षामें आ पहुँचे। दण्डधार नामक राजा उसे अपने रथपर बिठाकर रणभूमिसे बाहर हटा ले गया।

तदनन्तर कर्णने धृष्टद्युम्नपर धावा किया। उन दोनोंमें महान् युद्ध छिड़ गया। उस समय पाण्डवोंका या हमारे पक्षका कोई भी योद्धा पीछे पैर नहीं हटाता था। पाञ्चाल देशके लड़ाकू वीर विजयकी अभिलाषासे बड़ी फुर्तीके साथ कर्णपर टूट पड़े। उन्हें इस प्रकार विजयके लिये प्रयत्न करते देख कर्ण उनके अग्रगामी वीरोंको बाणोंसे मारने लगा। उसने व्याघ्रकेतु, सुशर्मा, चित्र, उग्रायुध, जय, शुक्ल, रोचमान तथा सिंहसेनको अपने बाणोंका निशाना बनाया। उपर्युक्त वीरोंने भी रथोंसे कर्णको घेर लिया। कर्ण बड़ा प्रतापी था, उसने अपने साथ युद्ध करते हुए उन आठों वीरोंको आठ तीखे बाणोंसे मारकर खूब घायल कर दिया। फिर कई हजार योद्धाओंका सफाया कर डाला। तत्पश्चात्



जिष्णु, देवापि, भद्र, दण्ड, चित्र, चित्रायुध, हरि, सिंहकेतु, रोचमान और शलभको तथा चेदिदेशीय महारथियोंको भी मौतके घाट उतारा। इस युद्धमें कर्णने जैसा पराक्रम किया, वैसा न तो भीष्मने, न द्रोणने और न दूसरे योद्धाओंने ही कभी किया था। उसने हाथी, घोड़े, रथ और पैदल—इन सबका महान् संहार किया। कर्णका वह पराक्रम देख मेरे मनमें ऐसा विश्वास होने लगा कि अब एक भी पाञ्चाल योद्धा जीवित नहीं बचेगा।

उस महासंग्राममें कर्णको पाञ्चालसेनाका संहार करते देख राजा युधिष्ठिर बड़े क्रोधमें भरकर उसकी ओर दौड़े। साथ ही धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र तथा अन्य सैकड़ों वीरोंने पहुँचकर कर्णको चारों ओरसे घेर लिया। शिखण्डी, सहदेव, नकुल, जनमेजय, सात्यकि तथा बहुत-से प्रभद्रक योद्धा धृष्टद्युम्नके आगे होकर कर्णपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वृष्टि करने लगे। जैसे गरुड़ अकेला होकर भी बहुत-से सर्पोंको दबोच लेता है, उसी प्रकार कर्ण अकेला ही चेदि, पाञ्चाल और पाण्डववीरोंपर प्रहार कर रहा था।

जब कर्ण पाण्डवोंसे उलझा हुआ था, उसी समय भीमसेन रणमें सब ओर विचरकर अपने यमदण्डके समान बाणोंसे बाह्लीक, केकय, वसातीय, मद्र तथा सिन्धुदेशीय योद्धाओंका संहार कर रहे थे। भीमके बाणोंसे मारे गये रथियों, घुड़सवारों, सारथियों, पैदल योद्धाओं तथा हाथी-घोड़ोंकी लाशोंसे जमीन पट गयी थी। सारी सेना भीमसेनके भयसे उत्साह खो बैठी थी। किसीसे कुछ करते नहीं बनता था। सबपर दैन्य छा रहा था। कर्ण पाण्डवसेनाको भगा रहा था और भीम कौरववाहिनीको खदेड़ रहे थे—इस प्रकार रणभूमिमें विचरते हुए उन दोनों वीरोंकी अद्भुत शोभा हो रही थी।



अर्जुनके द्वारा संशप्तकोंका संहार और अश्वत्थामाकी पराजय

सञ्जय कहते हैं—एक ओर तो यह भयंकर संग्राम चल रहा था और दूसरी ओर अर्जुन संशप्तक-सेनाका विनाश कर रहे थे। शत्रुओंको जीतकर विजयी अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'जनार्दन ! ये संशप्तक तो अब युद्धमें मेरे बाणोंकी चोट न सह सकनेके कारण झुंड-के-झुंड भागे जा रहे हैं। दूसरी ओर सृञ्जयोंकी बहुत बड़ी सेना भी विदीर्ण हो रही है। उधर कर्ण बड़े आनन्दके साथ राजाओंकी सेनामें विचर रहा है, देखिये न, उसकी पताका दिखायी देती है। आप तो जानते ही हैं, कर्ण कितना बलवान् और पराक्रमी है। दूसरे कोई महारथी उसे युद्धमें नहीं जीत सकते। वह हमारी

सेनाको खदेड़ रहा है, इसलिये अब उधर ही चलिये। यहाँकी लड़ाई बंद करके महारथी कर्णके पास चलना चाहिये। मेरी तो यही राय है, आगे आपकी जैसी इच्छा।'

यह सुनकर भगवान् हँसते हुए बोले—'पाण्डुनन्दन! अब तुम शीघ्र ही कौरवोंका नाश करो' ऐसा कहकर गोविन्दने घोड़ोंको हाँक दिया। वे हंसके समान सफेद रंगवाले घोड़े श्रीकृष्ण और अर्जुनको लिये हुए आपकी विशाल सेनामें घुस गये। उनके पहुँचते ही आपकी सेना चारों ओर भागने लगी। अर्जुनको अपनी सेनाके भीतर विचरते देख दुर्योधनने संशप्तकोंको पुनः उनसे लड़नेकी आज्ञा दी। संशप्तक योद्धा एक हजार रथ, तीन सौ हाथी, चौदह हजार घोड़े तथा दो लाख पैदल सेना लेकर अर्जुनपर जा चढ़े। वे अपनी बाणवर्षासे अर्जुनको आच्छादित करते हुए उन्हें घेरकर खड़े हो गये।

अब अर्जुनने पाश हाथमें लिये यमराजकी भाँति अपना भयंकर रूप प्रकट किया। वे संशप्तकोंका संहार करने लगे। उस समय उनकी झाँकी देखने ही योग्य थी। उन्होंने बिजलीके समान चमकीले बाणोंसे वहाँके समूचे आकाशको ढक दिया, तनिक भी खाली नहीं रखा। उनके धनुषकी प्रत्यञ्चाकी आवाज सुनकर ऐसा जान पड़ता मानो पृथ्वी, आकाश, दिशाएँ, समुद्र तथा पर्वत—ये सब-के-सब फटे जा रहे हैं। थोड़ी ही देरमें अर्जुनने दस हजार योद्धाओंका सफाया कर डाला। फिर वे बड़ी फुर्तीके साथ उन आततायी शत्रुओंके हथियारसहित हाथ, भुजाएँ, जङ्घा और मस्तक काटने लगे। इस प्रकार अर्जुन संशप्तकोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका नाश कर ही रहे थे कि सुदक्षिणका छोटा भाई वहाँ पहुँचकर उनके ऊपर बाणोंकी बौछार करने लगा। उस समय अर्जुनने दो अर्धचन्द्राकार बाणोंसे उसकी परिघके समान मोटी भुजाएँ काट डालीं तथा क्षुरसे मारकर उसके पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मस्तकको भी धड़से अलग कर दिया। वह लोहूलुहान होकर जमीनपर गिर पड़ा। उसके गिरते ही बड़ा भयंकर संग्राम छिड़ गया। लड़नेवाले योद्धाओंकी नाना प्रकारसे दुर्दशा होने लगी। अर्जुनने एक-एक बाणसे काम्बोजों, यवनों तथा शकोंके घोड़ोंका संहार कर डाला, वे कम्बोज आदि स्वयं भी खूनसे लथपथ हो गये। उनके रुधिरसे सारी रणभूमि लाल हो गयी। रथी, सारथि, घुड़सवार, हाथीसवार और महावत सब मारे गये। इस प्रकार वहाँ भयानक नर-संहार हुआ।

तदनन्तर, अश्वत्थामा अर्जुनका सामना करनेके लिये चढ़ आया। उस समय वह क्रोधमें भरे हुए कालके समान जान पड़ता था। रथपर बैठे हुए श्रीकृष्णपर दृष्टि पड़ते ही उसने भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी। अश्वत्थामाके छोड़े हुए बाण चारों ओरसे आकर श्रीकृष्ण और अर्जुनपर पड़ने लगे। वे दोनों रथपर बैठे-ही-बैठे ढक गये। प्रतापी अश्वत्थामाने उन दोनोंको निश्चेष्ट कर दिया, उनसे कुछ भी करते नहीं बनता था। उनकी यह अवस्था देख समस्त चराचर जगत्में हाहाकार मच गया। संग्राममें श्रीकृष्ण और अर्जुनको आच्छादित करते समय अश्वत्थामाने जो पराक्रम दिखाया, वैसा इसके पहले मैंने कभी नहीं देखा था। उस समय द्रोणपुत्रकी ओर देखकर अर्जुनको बड़ा भारी मोह-सा हो गया। उन्हें यह विश्वास-सा होने लगा कि अश्वत्थामाने मेरा पराक्रम हर लिया है।

यह देख श्रीकृष्णने प्रेममिश्रित क्रोधके साथ कहा—'पार्थ! तुम्हारे विषयमें तो आज मैं बड़ी अद्भुत बात देख रहा हूँ। आज द्रोणकुमार तुमसे बहुत बढ़-चढ़कर पराक्रम दिखा रहा है। अब तुममें पहले-जैसी वीरता है या नहीं? तुम्हारी दोनों भुजाओंमें बलका अभाव तो नहीं हो गया है? हाथमें गाण्डीव है न? यह सब इसलिये पूछता हूँ कि आज द्रोणकुमार संग्राममें तुमसे बढ़ता दिखायी देता है। 'मेरे गुरुका पुत्र है' यह सोचकर उसकी उपेक्षा न करो। यह उपेक्षा करनेका समय नहीं है।'

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुनने चौदह भल्ल हाथमें लिये और उनसे अश्वत्थामाके धनुष, ध्वजा, छत्र, पताका, रथ, शक्ति और गदाको नष्ट कर डाला। फिर 'वत्सदन्त' नामक बाणोंसे उसके गलेकी हँसलीमें इतने जोरसे प्रहार किया कि उसे मूर्च्छा आ गयी। वह ध्वजाका डंडा थामकर बैठ गया। उसे बेहोश देखकर सारथि अर्जुनसे उसकी रक्षा करनेके लिये रणभूमिसे बाहर हटा ले गया। इस प्रकार अर्जुनने संशप्तकोंका, भीमने कौरव-योद्धाओंका तथा कर्णने पाञ्चालोंका एक ही क्षणमें विनाश कर डाला। बड़े-बड़े वीरोंका संहार करनेवाले उस भयंकर संग्राममें असंख्यों धड़ उठ-उठकर दौड़ रहे थे।



अश्वत्थामाकी प्रतिज्ञा, धृष्टद्युम्न और कर्णका युद्ध, अश्वत्थामाके द्वारा धृष्टद्युम्नकी और अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाकी पराजय

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर, दुर्योधनने कर्णके पास जाकर कहा—'राधानन्दन ! यह युद्ध स्वर्गका खुला हुआ दरवाजा है, जो हमें स्वतः प्राप्त हो गया है। सौभाग्यशाली क्षत्रियोंको ही ऐसा युद्ध मिला करता है। यदि तुमलोगोंने युद्धमें पाण्डवोंको मारा तो धन-धान्यसे सम्पन्न पृथ्वी प्राप्त करोगे और यदि शत्रुओंके हाथसे तुम्हीं मारे गये तो वीर पुरुषोंको प्राप्त होने योग्य पुण्य-लोक पाओगे।'

दुर्योधनकी बात सुनकर श्रेष्ठ क्षत्रियोंने हर्षध्वनि की। फिर सब ओर बाजे बजने लगे। उस समय अश्वत्थामाने वहाँ पहुँचकर आपके योद्धाओंको हर्षित करते हुए कहा—'आप सब लोगोंने तो देखा ही था कि मेरे पिता अस्त्र डालकर योगमें स्थित हो गये थे, तो भी उन्हें धृष्टद्युम्नने मारा। इसके कारण तो मुझे अमर्ष है ही, मित्र दुर्योधनका हित भी करना है। इसलिये क्षत्रियो ! मैं आपके समक्ष यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि धृष्टद्युम्नको मारे बिना अपना कवच नहीं उतारूँगा। यदि मेरी प्रतिज्ञा झूठी हो तो मुझे स्वर्ग न मिले। लड़ाईमें अर्जुन या भीमसेन जो भी मेरा सामना करने आयेंगे, उन सबको कुचल डालूँगा—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।'

अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर कौरवोंकी सेनाने एक साथ होकर पाण्डवोंपर धावा किया। साथ ही पाण्डवोंका भी उसपर आक्रमण हुआ। दोनों दलोंमें घोर संग्राम होने लगा। मनुष्योंका भीषण संहार मचा; प्रलयकालका दृश्य उपस्थित हो गया। उस समय पाण्डवोंके पक्षमें युधिष्ठिरकी और हमारे दलमें कर्णकी प्रधानता थी। खूब जोरसे मार-काट हुई। खूनकी धारा बह चली। संशप्तकोंमेंसे अब थोड़े ही बच गये थे। इसलिये धृष्टद्युम्न तथा पाण्डव-महारथियोंने सब राजाओंको साथ लेकर कर्णपर ही धावा किया। किंतु कर्णने अकेले ही उन सबका बढ़ाव रोक दिया। धृष्टद्युम्नने कर्णको एक बाण मारकर कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह, कहाँ भागा जाता है ?' यह सुनकर कर्ण क्रोधमें भर गया और धृष्टद्युम्नका धनुष काटकर उसने उसको नौ बाण मारे। धृष्टद्युम्नका कवच कट गया। इसके बाद उसने भी दूसरा धनुष लिया और कर्णको सत्तर बाणोंसे घायल किया। अब तो कर्णको बड़ा कोप हुआ, उसने धृष्टद्युम्नपर मृत्युदण्डके समान भयंकर बाणका प्रहार किया। उस बाणको धृष्टद्युम्नकी ओर आते देख सात्यकिने अपने हाथकी फुर्ती दिखाते हुए सहसा उसके सात टुकड़े कर डाले।

यह देख कर्णने बाणोंकी वर्षा करके सात्यकिको चारों ओरसे घेर लिया और सात नाराचोंसे उसे बींध डाला। सात्यकिने भी कर्णका यही हाल किया। फिर उन दोनोंमें विचित्र प्रकारसे घोर युद्ध हुआ, जिसे देखने और सुननेसे भी भय होता था। इसी बीचमें धृष्टद्युम्नपर अश्वत्थामाने चढ़ाई की। उसने आते ही क्रोधमें भरकर कहा—'ओ ब्रह्महत्यारे ! आज मैं तुझे मौतके मुँहमें भेज दूँगा। अगर अर्जुनने तेरी रक्षा नहीं की, यदि तू लड़ाईमें डटा रह गया और सामना छोड़कर भागा नहीं, तो आज तुझे तेरे पापका दण्ड अवश्य मिलेगा, तू कुशलसे नहीं रह सकेगा।'

उसके ऐसा कहनेपर धृष्टद्युम्न बोला—'तेरी बातका उत्तर मेरी वह तलवार ही देगी, जो तेरे पिताको संग्राममें मुँहतोड़ जवाब दे चुकी है।' यों कहकर सेनापति धृष्टद्युम्नने अमर्षमें भरकर अश्वत्थामाको एक तीखे बाणसे बींध डाला। इससे अश्वत्थामाको बड़ा क्रोध हुआ। उसने इतने बाणोंकी वर्षा की जिनसे धृष्टद्युम्नके चारों ओरकी दिशाएँ ढक गयीं। इसी प्रकार धृष्टद्युम्नने भी कर्णके देखते-देखते



द्रोणकुमारको अपने सायकोंसे आच्छादित कर दिया तथा

उसका धनुष भी काट डाला। अश्वत्थामाने वह धनुष फेंक दिया और दूसरा धनुष-बाण हाथमें लेकर उससे धृष्टद्युम्नके धनुष, शक्ति, गदा, ध्वजा, घोड़े, सारथि तथा रथको पलक मारते-मारते नष्ट कर दिया। तब धृष्टद्युम्नने ढाल और तलवार हाथमें ली, किंतु महारथी अश्वत्थामाने भल्लोंसे मारकर उनके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले। साथ ही उसने अनेकों बाणोंसे धृष्टद्युम्नको बहुत घायल कर दिया। यह सब करनेपर भी जब वह धृष्टद्युम्नका नाश न कर सका तो धनुष फेंककर धृष्टद्युम्नको पकड़नेके लिये दौड़ा।

इसी बीचमें श्रीकृष्णकी दृष्टि उधर गयी। उन्होंने अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! वह देखो, अश्वत्थामा धृष्टद्युम्नको मारनेके लिये बड़ा भारी उद्योग कर रहा है। इसमें संदेह नहीं कि वह उसे मार सकता है। धृष्टद्युम्न अब कालके समान अश्वत्थामाका ग्रास बना ही चाहता है, इसलिये तुम इसे शीघ्र छुड़ाओ।' ऐसा कहकर महाप्रतापी भगवान् श्रीकृष्णने, जहाँ अश्वत्थामा था, उधर ही अपने घोड़े बढ़ाये। श्रीकृष्ण और अर्जुनको आते देख उसने धृष्टद्युम्नको मारनेका विशेष उद्योग किया। अर्जुनने जब देखा कि अश्वत्थामा द्रुपदकुमारको घसीट रहा है, तो उसके ऊपर बहुत-से बाण मारे। गाण्डीवसे छूटे हुए वे बाण, जैसे साँप अपनी बाँबीमें घुसते हैं, उसी प्रकार अश्वत्थामाके शरीरमें धँस गये। उनसे पीड़ित होकर द्रोणपुत्रने धृष्टद्युम्नको तो छोड़ दिया और अपने रथमें बैठकर धनुष हाथमें ले अर्जुनको बींधना आरम्भ कर दिया।

इतनेमें सहदेवने धृष्टद्युम्नको अपने रथपर बिठाकर वहाँसे अन्यत्र हटा दिया। अर्जुनने भी द्रोणकुमारको बाणोंसे बींधना आरम्भ किया। इससे अश्वत्थामाका क्रोध बहुत बढ़ गया। उसने अर्जुनकी भुजाओं तथा छातीमें भी बाण मारे। तब अर्जुनने अश्वत्थामाके ऊपर द्वितीय कालदण्डके समान एक नाराच चलाया। वह उसके कंधेपर लगा। लगते ही अश्वत्थामा विह्वल होकर रथकी बैठकमें बैठ गया। उस समय उसे बड़ी वेदना हुई। उसकी यह अवस्था देख सारथि बड़ी फुर्तीके साथ उसे रणाङ्गणसे बाहर ले गया।

महाराज ! इस प्रकार धृष्टद्युम्नको संकटसे मुक्त और अश्वत्थामाको पीड़ित देख पाञ्चाल वीरोंने बड़े जोरसे गर्जना की। हजारों दिव्य बाजे बज उठे। सब लोग सिंहनाद करने लगे। तदनन्तर, अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—'अब संशप्तकोंकी ओर चलिये, उनका संहार करना इस समय मेरे लिये प्रधान काम है।' उनकी बात सुनकर भगवान् हवासे बातें करनेवाले अपने रथके द्वारा संशप्तकोंकी ओर चल दिये।



भगवान् श्रीकृष्णद्वारा अर्जुनसे कौरवोंके आक्रमण तथा भीमके पराक्रमका वर्णन

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! चलते समय राहमें श्रीकृष्णने अर्जुनसे युधिष्ठिरको दिखाते हुए कहा—'पाण्डुनन्दन ! ये हैं तुम्हारे भाई युधिष्ठिर। देखो, इन्हें मारनेके लिये अत्यन्त बलवान् और महान् धनुर्धर कौरव-योद्धा बड़ी तेजीके साथ इनका पीछा कर रहे हैं। साथ ही उनकी रक्षाके लिये पाञ्चालदेशीय वीर भी उनके पीछे-पीछे जा रहे हैं। यह राजा दुर्योधन भी रथियोंकी सेनासे घिरकर राजा युधिष्ठिरपर धावा कर रहा है। इसका भी उद्देश्य यही है कि युधिष्ठिरको मार डालें। इस कार्यमें इसके भाई भी साथ दे रहे हैं। ये हाथीसवार, घुड़सवार, रथी और पैदल—सभी उन्हें पकड़नेके लिये जा रहे हैं। अब देखो, सात्यकि और भीमने पहुँचकर यद्यपि इन्हें बीचमें ही रोक दिया है, तो भी ये संख्यामें अधिक होनेके कारण राजाकी ओर बढ़े ही चले जाते हैं। शत्रुको संताप देनेवाले राजा युधिष्ठिर भी यद्यपि बड़े बलवान् हैं, युद्धकी कलामें निपुण हैं, उनका हाथ भी फुर्तीसे चलता है, तथापि कर्णने उन्हें रणसे विमुख कर दिया है। धृतराष्ट्रके पुत्र शूरवीर हैं, उनकी



सहायता मिल जानेपर कर्ण अवश्य ही हमारे महाराजको कष्ट पहुँचा सकता है। इनके तथा और भी बहुत-से शूरवीरोंके साथ ये युद्ध कर रहे थे। उन सब महारथियोंने मिलकर उन्हें परास्त किया है। राजा युधिष्ठिर उपवास करनेके कारण बहुत दुर्बल हो गये हैं। ये अधिकतर ब्राह्मबल (क्षमा) में ही स्थित रहते हैं, क्षात्रबल (निष्ठुरता) में नहीं; जबसे कर्णके साथ इनकी भिड़ंत हुई है, तबसे ये बड़े संकटमें पड़ गये हैं। कर्ण धृतराष्ट्रके महारथी पुत्रोंसे यह कह रहा है कि 'तुमलोग पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको मार डालो।' पार्थ! ये सभी महारथी स्थूणाकर्ण, इन्द्रजाल तथा पाशुपत नामक अस्त्र-शस्त्रोंसे राजाको आच्छादित कर रहे हैं। वे आतुर हो गये हैं, इस समय उन्हें विशेष सेवाकी आवश्यकता है। अब शीघ्रता करनेका समय है—यह जानकर पाञ्चाल तथा पाण्डव वीर बड़ी तेजीसे उनके पीछे दौड़ते हैं। उन्हें यह आशा और विश्वास है कि यदि महाराज युधिष्ठिर पातालमें भी डूबते होंगे तो हम उन्हें बलपूर्वक निकाल लायेंगे। वह देखो, अब कर्ण अत्यन्त क्रोधमें भरकर पाञ्चालोंकी ओर दौड़ रहा है। उसके रथकी ध्वजा धृष्टद्युम्नके रथकी ओर जाती दिखायी दे रही है। पार्थ! इस समय मैं तुम्हें एक परम प्रिय समाचार सुना रहा हूँ कि राजा युधिष्ठिर जीवित हैं। उधर वे महाबाहु भीमसेन हैं, जो सृञ्जयोंकी वाहिनी तथा सात्यकिके साथ लौटकर अपनी सेनाके मुहानेपर खड़े हैं। पाञ्चाल योद्धा तथा भीमसेन अपने तेज बाणोंसे अब कौरवोंपर प्रहार कर रहे हैं। देखो, कौरव-सेना भाग चली। सैनिकोंके घावोंसे खूनकी धारा जारी है। उनकी बड़ी दयनीय दशा दिखायी देती है। अब देखो, भीमसेन शत्रुओंकी सेनाको खदेड़ने लगे। उनकी वजहसे कौरव-वाहिनी बड़े संकटमें पड़ गयी है। ये रथी लोग भीमके भयसे थर्रा उठे हैं। हाथी उनके नाराचोंकी मारसे विदीर्ण हो-होकर जमीनपर गिर रहे हैं। बड़े-बड़े गजराज भीमके बाणोंसे घायल होकर अपनी ही सेनाको रौंदते-कुचलते हुए भागे जा रहे हैं। अर्जुन! पहचान लो, संग्रामविजयी वीरवर भीमसेनका ही यह दुःसह सिंहनाद सुनायी देता है! यह लो, उन्होंने दस बाण मारकर निषादराजके पुत्रको भी मौतके घाट उतार दिया। अब कौरवोंकी बोलती बंद हो गयी है, पहले-जैसी उनकी गर्जना नहीं सुनायी देती। भीमसेनने दुर्योधनकी तीन अक्षौहिणी सेनाओंको आगे बढ़नेसे रोककर मार डाला है। जिनकी आँखें कमजोर हैं वे जैसे दोपहरके सूर्यकी ओर नहीं देख सकते, वैसे ही ये कौरवपक्षके राजा लोग भीमसेनकी ओर आँख उठाकर देख नहीं पाते। उनके बाणोंकी मारसे भयभीत हुए शत्रुओंको कहीं भी चैन नहीं मिलता।'

भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे ये बातें सुनकर अर्जुनने भीमसेनके दुष्कर पराक्रमपर दृष्टिपात किया। फिर अपने बचे-खुचे शत्रुओंको तीखे बाणोंसे मारना आरम्भ किया। संशप्तक योद्धा यद्यपि बड़े बलवान् थे तो भी वे अर्जुनकी मारसे युद्धमें नहीं ठहर सके। भयभीत होकर सब दिशाओंमें भाग गये।



दोनों पक्षके योद्धाओंका द्वन्द्वयुद्ध तथा भीमसेनका पराक्रम

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! पाण्डवों और पाञ्चालोंकी मार खानेसे जब हमारी सेना दुःखी होकर भागने लगी, उस समय कौरवोंने क्या किया?

सञ्जयने कहा—महाराज! उस समय महाबाहु भीमसेनपर कर्णकी दृष्टि पड़ी। उन्हें देखते ही उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और वह उनपर चढ़ आया। उसने भीमसेनके डरसे भागती हुई आपकी सेनाको बड़ी कोशिश करके रोका और उसे व्यवस्थापूर्वक खड़ी करके पाण्डवोंकी ओर बढ़ा। यह देख पाण्डवोंके महारथी भीमसेन, सात्यकि, शिखण्डी, जनमेजय, धृष्टद्युम्न तथा प्रभद्रक आदि भी क्रोधमें भरकर आपकी सेनाका संहार करनेके लिये उसपर चारों ओरसे टूट पड़े। उस युद्धमें शिखण्डीने कर्णका सामना किया और धृष्टद्युम्नने बहुत बड़ी सेनासे घिरे हुए दुःशासनका मुकाबला किया। नकुलने वृषसेनपर और युधिष्ठिरने चित्रसेनपर धावा किया। सहदेव उलूकसे भिड़ गया। सात्यकिका शकुनिपर और द्रौपदीके पुत्रोंका कौरवोंपर आक्रमण हुआ। अर्जुनका सामना महारथी अश्वत्थामाने किया। कृपाचार्यका युधामन्युसे और कृतवर्माका उत्तमौजासे युद्ध हुआ। भीमसेनने अकेले ही समस्त कौरवों तथा उनकी सेनाओंका वेग रोका।

महाराज! शिखण्डीने रणभूमिमें निर्भय विचरते हुए कर्णको अपने बाणोंका निशाना बनाया और उसे आगे बढ़नेसे रोक दिया। बाधा पाकर रोषके मारे कर्णके ओठ फड़कने लगे। उसने शिखण्डीकी दोनों भौंहोंके बीच तीन बाण मारे। उनसे अत्यन्त आहत होकर शिखण्डीने भी कर्णको तेज किये हुए नब्बे बाण मारे। तब महारथी कर्णने तीन बाणोंसे शिखण्डीके सारथि और घोड़ोंको मार डाला। इससे



शिखण्डीको बड़ा क्रोध हुआ। उसने अपने रथसे कूदकर कर्णके ऊपर शक्तिका प्रहार किया। कर्णने तीन बाणोंसे उस शक्तिके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और नौ तीखे बाण मारकर उसे भी बींध डाला। शिखण्डीके शरीरमें बहुत घाव हो गये थे; इसलिये वह कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंका वार बचाता हुआ तुरंत भाग निकला। अब कर्ण पाण्डव-सैनिकोंको अपने बाणोंसे मारकर गिराने लगा।

दूसरी ओर आपके पुत्र दुःशासनने धृष्टद्युम्नको बहुत पीड़ित किया। तब धृष्टद्युम्नने दुःशासनकी छातीमें तीन बाण मारे। फिर दुःशासनने भी एक तीखे भल्लसे धृष्टद्युम्नकी बायीं भुजाको बींध डाला, इससे धृष्टद्युम्न क्रोधमें भर गया और एक तीखा क्षुरप्र मारकर उसने दुःशासनका धनुष काट दिया। यह देख पाञ्चाल योद्धा उच्च स्वरसे गर्जना करने लगे। अब आपके पुत्रने दूसरा धनुष हाथमें लिया और हँसते-हँसते बाणोंकी झड़ी लगाकर धृष्टद्युम्नको चारों ओरसे घेर लिया। तदनन्तर, पञ्चाल-देशीय सैनिकोंने भी अपने सेनापतिको बचानेके लिये आपके पुत्रपर घेरा डाल दिया। फिर तो आपके योद्धाओंका शत्रुओंके साथ घोर संग्राम होने लगा।

इसी बीचमें अपने पिताके पास खड़े हुए वृषसेनने नकुलको पहले पाँच और फिर आठ बाण मारे तब शूरवीर नकुलने भी हँसते-हँसते एक तीखे नाराचसे वृषसेनकी छाती छेद डाली। इस चोटसे वृषसेन बहुत घायल हो गया। फिर तो वे दोनों वीर हजारों बाणोंकी बौछारसे एक-दूसरेको ढकने लगे। इतनेमें ही कौरव-सेनामें भगदड़ पड़ गयी। कर्ण पीछे लौटकर उसे रोकने लगा। उसके लौट जानेपर नकुलने कौरवोंके ऊपर चढ़ाई की। कर्णपुत्र वृषसेन भी नकुलका सामना करना छोड़ अपने पिताके पहियोंकी ही रक्षामें लग गया।

इसी प्रकार क्रोधमें भरे हुए उलूकको संग्राममें सहदेवने रोका, उसने उलूकके चारों घोड़ोंको मारकर उसके सारथिको भी यमलोक भेज दिया। उलूक रथसे कूदकर भागा और तुरंत त्रिगर्तोंकी सेनामें जा घुसा।

एक ओर सात्यकि और शकुनिमें लड़ाई हो रही थी। सात्यकिने तेज किये हुए बीस बाणोंसे शकुनिको घायल कर दिया और एक भल्ल मारकर उसकी ध्वजा भी काट डाली। इससे शकुनिको बड़ा कोप हुआ; उसने सात्यकिका कवच काटकर उसकी ध्वजाके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। सात्यकिने शकुनिको पुनः तीन बाणोंसे घायल किया। तीन ही बाण उसके सारथिको भी मारे। इसके बाद अनेकों बाण मारकर उसने शकुनिके घोड़ोंको यमलोक भेज दिया। फिर तो शकुनि सहसा रथसे कूद पड़ा और उलूकके रथपर बैठकर वहाँसे चम्पत हो गया। अब सात्यकि आपकी सेनापर बाण बरसाने लगा। उसके बाणोंकी चोटसे आहत हो आपके सैनिक चारों ओर भागने लगे। बहुतेरे अपने प्राण खोकर रणभूमिमें ही गिर गये।

दूसरी ओर, आपके पुत्र दुर्योधनने भीमसेनको रोका। किंतु भीमने तुरंत ही उसके घोड़ों और सारथिको मार डाला। फिर रथ और ध्वजाकी भी धज्जियाँ उड़ा दीं। इससे पाण्डव-पक्षके योद्धा बहुत प्रसन्न हुए। इस प्रकार परास्त होकर दुर्योधन भीमके सामनेसे भाग गया। इधर युधामन्युने कृपाचार्यको घायल करके तुरंत ही उनका धनुष भी काट दिया। तब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ आचार्य कृपने दूसरा धनुष हाथमें ले बाण मारकर युधामन्युके रथकी ध्वजा, सारथि और छत्रको नीचे गिरा दिया। तब तो महारथी युधामन्यु स्वयं ही रथ हाँकता हुआ भाग गया।

इसी प्रकार एक ओर उत्तमौजाने बाणोंकी झड़ी

लगाकर कृतवर्माको ढक दिया। फिर उन दोनोंमें अत्यन्त भयानक युद्ध छिड़ गया। कृतवर्माने उत्तमौजाकी छातीमें चोट की, वह मूर्च्छित होकर रथकी बैठकमें बैठ गया। उसकी यह अवस्था देख सारथि उसे रणभूमिसे दूर हटा ले गया। तदनन्तर, कौरवोंकी सारी सेना भीमसेनपर टूट पड़ी। दुःशासन तथा शकुनिने हाथियोंकी बहुत बड़ी सेनासे भीमसेनको घेरकर उनपर बाण मारना आरम्भ किया। हाथियोंकी सेना देखते ही भीमसेनके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करते हुए हाथियोंसे ही हाथियोंका संहार आरम्भ किया। अपने बाणोंसे हाथियोंके हजारों जत्थोंका सफाया कर डाला। उस समय बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान भीमके धनुषकी टंकार सुनकर हाथी मल-मूत्र त्यागते हुए बड़े वेगसे भाग रहे थे। महाराज! भीमसेनका वह पराक्रम सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करनेवाले रुद्रके समान जान पड़ता था।



कर्णसे पराजित और घायल होकर युधिष्ठिरका अपनी छावनीमें विश्रामके लिये जाना

सञ्जय कहते हैं—राजन्! दूसरी ओर युधिष्ठिरको आते देख आपका पुत्र दुर्योधन क्रोधमें भर गया। उसने अपनी आधी सेना साथ ले सहसा निकट जाकर उन्हें सब ओरसे घेर लिया और तिहत्तर क्षुरप्र मारकर उनको बींध डाला। कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने भी क्रोधमें भरकर आपके पुत्रको तुरंत ही तीस भल्ल मारे। यह देख उन्हें पकड़नेके लिये कौरवपक्षके योद्धा टूट पड़े। उस समय शत्रुओंके खोटे विचार जानकर महारथी नकुल, सहदेव तथा धृष्टद्युम्न एक अक्षौहिणी सेनाके साथ युधिष्ठिरके पास आ धमके। वहाँ पहुँचते ही सहदेवने बड़ी फुर्तीके साथ दुर्योधनको बीस बाण मारे। इतनेमें कर्ण युधिष्ठिरकी सेनाका संहार करने लगा। उसके बाणोंसे पीड़ित होकर वह सेना सहसा भाग खड़ी हुई। तब राजा युधिष्ठिरको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने तेज किये हुए पचास बाणोंसे कर्णको बींध डाला। तदनन्तर, उन दोनोंमें भयंकर युद्ध छिड़ा। धर्मराज शानपर चढ़ाकर तेज किये हुए भाँति-भाँतिके बाणों, भल्लों, शक्ति, ऋष्टि तथा मुसलोंसे आपकी सेनाका संहार करने लगे। उस समय आपके योद्धाओंमें हाहाकार मच गया। धर्मात्मा युधिष्ठिर जहाँ-जहाँ दृष्टि डालते थे, वहाँ-वहाँके सैनिकोंका सफाया हो जाता था। यह देख कर्ण अत्यन्त कुपित होकर युधिष्ठिरपर नाराच, अर्धचन्द्र तथा वत्सदन्त आदिका प्रहार करने लगा। युधिष्ठिरने भी तेज किये हुए बाणोंसे कर्णको घायल कर डाला। फिर कर्णने हँसते-हँसते तेज किये हुए बाणों तथा तीन भल्लोंसे युधिष्ठिरकी छाती छेद डाली। इससे धर्मराजको बड़ी पीड़ा हुई। वे रथके पिछले भागमें बैठ गये और सारथिको वहाँसे चल देनेकी आज्ञा की। उन्हें जाते देख दुर्योधनसहित सभी कौरव 'इसे पकड़ो-पकड़ो' कहकर चिल्लाते हुए उनके पीछे दौड़ पड़े। इतनेहीमें पाञ्चाल योद्धाओंके साथ सत्रह सौ केकय वीरोंने आकर कौरवोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया।

उस समय राजा युधिष्ठिर बाणोंके प्रहारसे बहुत घायल हो गये थे। वे नकुल तथा सहदेवके बीचमें होकर धीरे-धीरे छावनीकी ओर जा रहे थे, उनका होश ठिकाने नहीं था। ऐसी अवस्थामें भी कर्णने दुर्योधनके हितकी इच्छासे युधिष्ठिरका पीछा किया और उन्हें तीन तीखे बाणोंसे बींध डाला। युधिष्ठिरने भी कर्णकी छातीमें बाण मारकर बदला चुकाया। इसके बाद तीन बाणोंसे उसके सारथिको और चारसे चारों घोड़ोंको बींध डाला। फिर नकुल और सहदेवने भी बड़े प्रयासके साथ कर्णपर बाणोंकी वर्षा की। इसी प्रकार सूतपुत्र कर्णने भी तीखी धारवाले दो भल्लोंसे नकुल और सहदेवको घायल कर दिया। फिर युधिष्ठिरके घोड़ोंको मारकर एक भल्लसे उनके मस्तकके टोपको नीचे गिरा दिया। इसी तरह नकुलके भी घोड़ोंको मौतके घाट उतारकर उसके रथकी ईषा और धनुषको भी काट डाला। रथ टूट जानेपर वे दोनों पाण्डुकुमार अत्यन्त घायल होकर सहदेवके रथपर जा बैठे।

उन दोनोंको रथहीन देख उनके मामा मद्रराज शल्यको बड़ी दया आयी। उन्होंने सूतपुत्रसे कहा—'कर्ण! तुम्हें तो आज अर्जुनसे युद्ध करना है, फिर अत्यन्त क्रोधमें भरकर धर्मराजसे किसलिये लड़ रहे हो? इन्हें मारनेसे तुम्हें क्या फायदा होगा? इधर देखो, अर्जुन रथियोंकी सेनाका संहार कर रहे हैं। अपने बाणोंकी वर्षासे हमारी सम्पूर्ण सेनाको कालका ग्रास बना रहे हैं। उधर, भीमसेन दुर्योधनको दबोचे हुए हैं। हमलोगोंके देखते-देखते वे उसे मार न डालें—

इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। इन माद्रीके पुत्रों अथवा राजा युधिष्ठिरको मारनेसे क्या लाभ होगा? दुर्योधनका प्राण संकटमें पड़ा है, उसे चलकर बचाओ।'

कर्णने शल्यकी यह बात सुनी और देखा कि दुर्योधन भीमसेनके चंगुलमें फँस चुका है, तो युधिष्ठिर और नकुल-सहदेवको वहाँ ही छोड़कर आपके पुत्रको बचानेके लिये वह दौड़ पड़ा। उसके चले जानेपर युधिष्ठिर सहदेवके तेज चलनेवाले घोड़ोंद्वारा वहाँसे खिसक गये। राजाको अपनी पराजयके कारण बड़ी लज्जा हो रही थी। नकुल और सहदेवके साथ अपने घायल शरीरसे छावनीपर पहुँचकर वे रथसे उतरे और एक सुन्दर पलंगपर लेट गये। उस समय उनके देहसे बाण निकाल डाले गये तो भी हृदयके घावसे उन्हें बड़ी पीड़ा होने लगी। उन्होंने दोनों भाई माद्रीके पुत्रोंसे कहा—'भीमसेन मेघके समान गरज-गरजकर लड़ रहे हैं, तुम दोनों सहायताके लिये उनकी ही सेनामें जाओ।' उनकी आज्ञा पाकर नकुल दूसरे रथपर सवार हुआ। सहदेवके पास तो रथ था ही। दोनों भाई अपने शीघ्रगामी घोड़े हाँककर भीमसेनकी सेनामें जा पहुँचे।





अर्जुनद्वारा अश्वत्थामाकी पराजय, कर्णद्वारा भार्गवास्त्रका प्रयोग, श्रीकृष्ण और अर्जुनका युधिष्ठिरसे मिलनेके लिये छावनीपर जाना तथा युधिष्ठिरका उनसे कर्णके मारे जानेका समाचार पूछना

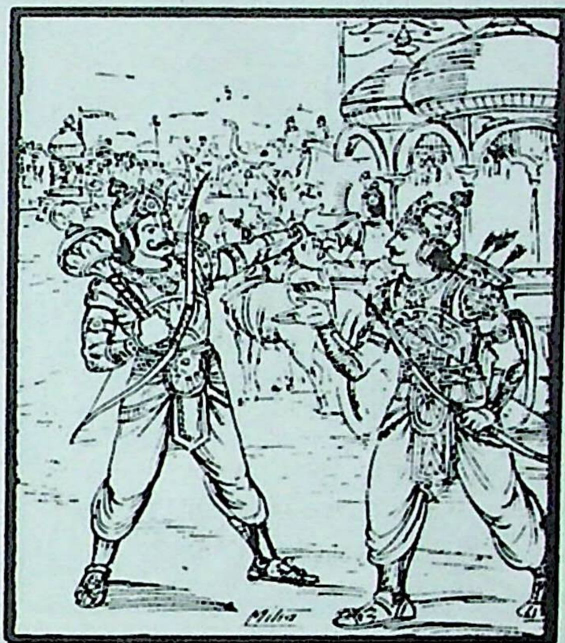
सञ्जय कहते हैं—महाराज! इसी समय अश्वत्थामा रथियोंकी बहुत बड़ी सेना साथ लेकर, जहाँ अर्जुन खड़े थे, वहाँ ही सहसा आ धमका। उसे आते देख अर्जुनने एकबारगी उसका बढ़ाव रोक दिया। अश्वत्थामा झल्ला उठा, वह बाणोंकी मारसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको आच्छादित करने लगा। यह देख अर्जुनने हँसते-हँसते दिव्यास्त्रका प्रयोग किया, किंतु अश्वत्थामाने उसका निवारण कर दिया। उस समय अर्जुनने अश्वत्थामाका वध करनेके लिये जिस-जिस अस्त्रका प्रहार किया, उन सबको द्रोणकुमारने काट डाला। उसने अपने बाणोंसे दिशाओं तथा उपदिशाओंको ढककर श्रीकृष्णकी दाहिनी बाँहमें तीन बाण मारे। तब अर्जुनने उसके घोड़ोंको घायल करके संग्राममें खूनकी नदी बहा दी। उन्होंने अश्वत्थामाका धनुष काट डाला। यह देख उसने अर्जुनपर वज्रके समान भयंकर परिघका प्रहार किया। किंतु अर्जुनने उसे हँसते-हँसते काट डाला। अब अश्वत्थामाका क्रोध और बढ़ गया। उसने ऐन्द्रास्त्रका प्रयोग किया, परंतु अर्जुनने महेन्द्रास्त्रसे उसे शान्त कर दिया। साथ ही अश्वत्थामाको भी अपने बाणोंसे ढक दिया। द्रोणकुमारने अपने सायकोंसे उन बाणोंको काट गिराया और सौ बाणोंसे श्रीकृष्णको तथा तीन सौसे अर्जुनको बींध डाला। तब अर्जुनने भी अश्वत्थामाके मर्मस्थानोंमें सौ बाण मारे और उसके सारथिको एक भल्लसे मारकर रथसे नीचे गिरा दिया। उस समय अश्वत्थामाने स्वयं ही घोड़ोंकी बागडोर सँभाली और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको बाणोंसे ढकना आरम्भ किया। उसके इस पराक्रमकी सभी योद्धा प्रशंसा कर रहे थे। इसी बीचमें अर्जुनने हँसते-हँसते उसके घोड़ोंकी बागडोरको क्षुरप्रोंसे तुरंत काट डाला। अब वे घोड़े बाणोंकी मारसे

अत्यन्त पीड़ित होकर भाग चले। उस समय पाण्डव विजय पाकर चारों ओर तीखे बाणोंकी वर्षा करते हुए आपकी सेनाको खदेड़ने लगे। उन्होंने कौरव-सैनिकोंको इतनी पीड़ा पहुँचायी कि वे आपके पुत्रोंके रोकनेपर भी न रुक सके।

तदनन्तर दुर्योधनने बड़े स्नेहके साथ कर्णसे कहा— 'महाबाहो ! देखो, पाण्डवोंने हमारी इस विशाल सेनाको बड़ा कष्ट पहुँचाया है, तुम्हारे रहते हुए यह भयके कारण भागी जा रही है। यह जानकर जो उचित समझो, करो। पाण्डवोंके खदेड़े हुए हमारे हजारों योद्धा अब तुम्हें ही सहायताके लिये पुकार रहे हैं।' दुर्योधनकी यह बात सुनकर कर्णने हँसते-हँसते अपने धनुषपर भार्गवास्त्रका संधान किया। फिर तो उससे लाखों, करोड़ों और अरबों बाण प्रकट हुए, जो अग्निके समान प्रज्वलित हो रहे थे। उन भयंकर बाणोंसे समस्त पाण्डव-सेना आच्छादित हो गयी। उस समय कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था। उस युद्धमें भार्गवास्त्रकी मारसे हजारों हाथी, घोड़े, रथी और पैदल प्राणहीन होकर गिरने लगे। पृथ्वी काँप उठी। पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेना व्याकुल हो गयी। कर्णद्वारा मारे जाते हुए पाञ्चाल और चेदिदेशीय योद्धा भयके मारे भागने और चिल्लाने लगे। साथ ही भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनकी पुकार करने लगे।

कर्णके बाणसे मारे जाते हुए सृञ्जयोंका आर्तनाद सुनकर कुन्तीनन्दन अर्जुनने भगवान् वासुदेवसे कहा— 'महाबाहो श्रीकृष्ण ! आप इस भार्गवास्त्रके पराक्रमको तो देखिये। युद्धमें किसी तरह भी इसका नाश नहीं किया जा सकता। उधर कर्ण अपने घोड़ोंको बढ़ाता हुआ बारंबार मेरी ओर देख रहा है; इस समय उसके सामनेसे भाग जाना भी मैं ठीक नहीं समझता।' श्रीकृष्णने कहा—'पार्थ ! कर्णने राजा युधिष्ठिरको बहुत घायल कर दिया है। इस समय उनसे मिलकर और धीरज देकर फिर कर्णका वध करना।' यह कहकर जनार्दन युधिष्ठिरसे मिलनेके लिये आगे बढ़े। उनका उद्देश्य यह था कि जबतक अर्जुन धर्मराजसे मिलेंगे, तबतक कर्ण युद्ध करते-करते खूब थक जायगा। भगवान्की आज्ञाके अनुसार अर्जुन अपने घायल हुए भाईको देखनेके लिये रथपर बैठे-बैठे चल दिये। चलते-चलते उन्होंने अपनी सेनामें सब ओर दृष्टि डाली; परंतु कहीं भी अपने बड़े भाईको नहीं देखा। तब वे बड़ी तेजीके साथ भीमसेनके पास पहुँचकर उनसे बोले—'राजा युधिष्ठिर कहाँ हैं ?'

भीमने कहा—धर्मराज युधिष्ठिर यहाँसे छावनीपर चले गये। कर्णके बाणोंसे घायल होनेके कारण उनके



शरीरमें बड़ी पीड़ा हो रही थी। सम्भव है, किसी तरह जीवित हों।

अर्जुन बोले—यदि ऐसी बात है तो आप शीघ्र ही उनका समाचार लेने जाइये। कर्णके बाणोंसे अत्यन्त घायल हो जानेके कारण अवश्य ही वे छावनीकी ओर चले गये हैं। उनकी क्या हालत है ? यह जाननेके लिये आप शीघ्र चले जाइये। मैं यहाँ खड़ा हो शत्रुओंको रोके रहूँगा।

भीमने कहा—अर्जुन ! यदि मैं चला जाऊँगा तो शत्रुपक्षके वीर यही कहेंगे कि 'भीमसेन डर गये' ! इसलिये तुम्हीं जाकर महाराजकी खबर लो।

अर्जुन बोले—मेरे शत्रु संशप्तक सामने खड़े हैं, आज इन्हें मारे बिना मैं भी यहाँसे नहीं जा सकता।

भीमने कहा—धनञ्जय ! मैं अपने पराक्रमसे संशप्तकोंका सामना करूँगा। तुम निश्चिन्त होकर जाओ।

भीमसेनकी बात सुनकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा— 'हृषीकेश ! अब मैं राजा युधिष्ठिरका दर्शन करना चाहता हूँ, आप शीघ्र ही घोड़े हाँकिये।' तब भगवान् गरुड़के समान तेज चलनेवाले घोड़ोंको हाँककर बहुत शीघ्र राजा युधिष्ठिरके पास पहुँच गये। फिर दोनोंने रथसे उतरकर धर्मराजके चरणोंमें प्रणाम किया और उन्हें सकुशल देख



वे बड़े प्रसन्न हुए। तदनन्तर, राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्ण और अर्जुनका अभिनन्दन किया। उस समय धर्मराजने यह समझ लिया कि कर्ण मारा गया, इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे हर्षगद्गद वाणीसे बोले—'देवकीनन्दन ! तुम्हारा स्वागत है ! धनञ्जय ! तुम्हारा भी स्वागत है ! इस समय तुम दोनोंको देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है; क्योंकि तुम लोगोंने स्वयं सकुशल रहकर महारथी कर्णको मार डाला है। वह सब प्रकारकी शस्त्रविद्यामें निपुण तथा कौरवोंका अगुआ था। परशुरामजीने अस्त्रविद्या सिखाकर उसे महान् शक्तिशाली बना दिया था। युद्धमें उसपर विजय पाना कठिन था। वह विश्वविख्यात महारथी और संसारका सर्वश्रेष्ठ वीर था। दुर्योधनका हित-साधन करता और हमलोगोंको दुःख देनेके लिये ही तैयार रहता था। हमारे मित्रोंके लिये तो वह कालके समान था। ऐसे महाबली कर्णको तुम दोनोंने युद्धमें मार डाला—यह बड़े आनन्दकी बात हुई। भैया श्रीकृष्ण और अर्जुन ! आज कर्णने मेरे साथ भयंकर युद्ध किया था। उसने मेरे दोनों चक्ररक्षकों तथा सारथिको मार डाला, घोड़ोंको यमलोक पठाया और मेरे पक्षके बहुत-से योद्धाओंको जीतकर मुझे भी परास्त कर दिया। इतना ही नहीं, उसने मेरा अपमान करके मुझे बहुत-से कटुवचन भी सुनाये। धनञ्जय ! अधिक क्या कहूँ, इस समय जो मैं जीवित हूँ—यह भीमसेनका प्रभाव है। मुझसे तो वह अपमान सहा नहीं जाता। कर्णने मुझे इतना घायल और अपमानित कर दिया तो अब मेरे जीनेसे क्या लाभ ? अब मैं राज्य लेकर भी क्या करूँगा। पहले कभी भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यसे भी मुझे जो अपमान नहीं मिला वह आज सूतपुत्रसे प्राप्त हुआ है। इसलिये अर्जुन ! मैं तुमसे पूछता हूँ कि किस प्रकार सकुशल रहकर तुमने कर्णका वध किया है ? यह सब समाचार मुझे सुनाओ। वीरवर ! कर्णके बाणोंसे जब मैं बहुत घायल



हो गया तो उसका वध करनेके लिये मैंने तुम्हारा ही स्मरण किया था, इस समय कर्णका वध करके तुमने मेरे उस स्मरणको सफल बना दिया न ? बताओ तो सूतपुत्रको तुमने किस तरह मारा ?'



अर्जुनकी बातसे कर्णके जीवित रहनेका पता पाकर युधिष्ठिरका उन्हें धिक्कारना तथा युधिष्ठिरका वध करनेके लिये उद्यत हुए अर्जुनको भगवान्‌द्वारा धर्मका तत्त्व समझाया जाना

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर अतिरथी वीर अर्जुन इस प्रकार बोले—'राजन् ! आज जब मैं संशप्तकोंके साथ युद्ध कर रहा था, उस समय अश्वत्थामा बाणोंकी वर्षा करता हुआ सहसा मेरे सामने आ धमका। मेरा रथ देखते ही उसकी सारी सेना मेरे साथ युद्ध करनेके लिये खड़ी हो गयी। तब मैं उस सेनाके पाँच सौ वीरोंको मारकर अश्वत्थामापर जा चढ़ा।



अश्वत्थामा अपने तीखे बाणोंसे मुझे और भगवान् श्रीकृष्णको पीड़ा देने लगा। मेरे साथ लड़ते समय उसके पीछे आठ सौ आठ बैल बाणोंका बोझा ढो रहे थे, उसने वे सभी बाण मुझपर चलाये; किंतु मैंने अपने सायकोंसे उन सबको नष्ट कर डाला। तत्पश्चात् उसके ऊपर मैंने वज्रके समान तीस बाण मारे। उनसे छिद जानेके कारण उसका रूप शिकारी जानवरके समान दिखायी देने लगा। फिर तो अपने समस्त शरीरसे खूनकी धारा बहाता हुआ वह सूतपुत्रके रथियोंके दलमें घुस गया। उस समय उसको दूसरे प्रधान-प्रधान योद्धा भी खूनसे लथपथ ही दिखायी पड़े। तदनन्तर, कौरवसेनाको पराजित तथा सैनिकोंको भयभीत देख कर्ण पचास प्रधान-प्रधान रथियोंको साथ लेकर बड़ी तेजीके साथ मेरी ओर चला। मैंने उसके सैनिकोंका तो संहार कर डाला; मगर कर्णको वहाँ ही छोड़कर आपका दर्शन करनेके लिये जल्दी यहाँ चला आया। मैंने सुना कि कर्णने युद्धमें आपको बहुत घायल कर दिया है। कर्ण बड़ा क्रूर है, उसके सामनेसे आपका यहाँ चला आना अनुचित नहीं है। मैं समझता हूँ, वह समय युद्धसे हट आनेका ही था। युद्धमें अपने सामने ही मैंने कर्णके अद्भुत अस्त्रको देखा है। पाञ्चालोंमें कोई भी ऐसा वीर नहीं है, जो आज कर्णका वेग सह सके। महाराज ! सात्यकि और धृष्टद्युम्न मेरे पहियोंकी रक्षा करें। राजकुमार युधामन्यु तथा उत्तमौजा—ये मेरे पृष्ठभागकी रक्षामें रहें। फिर मैं इस संग्राममें महारथी कर्णके साथ युद्ध करूँगा। आपकी भी इच्छा हो तो आइये और देखिये, हम दोनों किस प्रकार एक-दूसरेको जीतनेका प्रयास करते हैं। यदि मैं आज बलपूर्वक कर्णको उसके बन्धुबान्धवों-सहित न मार डालूँ तो प्रतिज्ञा करके उसका पालन न करनेवालोंको जो कष्टप्रद गति मिलती है, वही मुझे भी मिले। अब मैं आपसे युद्धमें जानेके लिये आज्ञा चाहता हूँ। आशीर्वाद दीजिये, जिससे रणमें मेरी विजय हो। राजन् ! मैं सूतपुत्र कर्ण, उसकी सेना तथा सम्पूर्ण शत्रुओंका संहार करूँगा।'

युधिष्ठिर कर्णके बाणोंकी चोटसे बहुत कष्ट पा रहे थे, अर्जुनके मुखसे जब उन्होंने कर्णके जीवित रहनेका समाचार सुना तो उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। वे धनञ्जयसे इस प्रकार बोले—'तात ! तुम्हारी सेना शत्रुओंसे तिरस्कृत होकर रणसे भाग गयी है और तुम जब कर्णको नहीं मार सके तो भयभीत होकर भीमको अकेले ही छोड़ यहाँ भाग आये, यह तुमने खूब स्नेह निभाया ! वीरमाता कुन्तीके गर्भसे जन्म लेकर यह अच्छा काम नहीं किया। द्वैतवनमें तुमने यह सच्ची प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं अकेले ही कर्णको मार डालूँगा', फिर उसे जीते-जी ही छोड़कर तुम यहाँ कैसे चले आये ? अर्जुन ! जब तुम जन्म लेकर सात दिनके ही हुए थे, उस समय आकाशवाणीने कुन्तीसे कहा था—'यह बालक इन्द्रके समान पराक्रमी होगा। समस्त शत्रुओंपर विजय पायेगा। यह खाण्डववनमें सम्पूर्ण देवताओं तथा सब प्राणियोंको जीत लेगा। राजाओंके बीच यह मद्र, कलिङ्ग, केकय तथा कौरव वीरोंका संहार करेगा। संसारमें इससे बढ़कर कोई भी धनुर्धर नहीं होगा। कोई भी प्राणी कभी



युद्धमें इसे परास्त नहीं कर सकेगा। यह सम्पूर्ण विद्याओंका ज्ञाता तथा जितेन्द्रिय होगा। इच्छा करते ही यह समस्त प्राणियोंको अपने अधीन कर लेगा। चन्द्रमाके समान इसकी कान्ति होगी और वायुके समान वेग। यह स्थिरतामें मेरु और क्षमामें पृथ्वीके समान होगा। सूर्यके समान तेजस्वी, कुबेरके समान धनी, इन्द्रके समान पराक्रमी और भगवान् विष्णुके समान बलवान् होगा। कुन्ती! जैसे अदितिके गर्भसे शत्रुहन्ता विष्णुने जन्म लिया था, उसी प्रकार तुम्हारा यह महात्मा पुत्र भी तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न हुआ है। अपने पक्षकी विजय तथा शत्रुपक्षका संहार करनेमें इसकी ख्याति होगी। इससे ही वंशपरम्पराका विस्तार होगा।' इस प्रकार शतशृङ्गपर्वतके ऊपर यह आकाशवाणी हुई, जिसे अनेकों तपस्वियोंने सुना। किंतु यह सत्य नहीं हुई। निश्चय ही अब देवता भी झूठ बोलने लगे हैं। सदा ही तुम्हारी प्रशंसा करनेवाले बड़े-बड़े ऋषियोंके मुखसे भी मैंने ऐसी बातें सुनी हैं, इसीलिये मुझे दुर्योधनकी उन्नतिके विषयमें कभी भी विश्वास नहीं हुआ तथा आजतक मुझे इस बातका भी पता नहीं था कि तुम कर्णके भयसे डरते हो। ऐसी परिस्थितिमें अब मैं क्या कर सकता हूँ? आज कौरवों, अपने मित्रों तथा अन्य सम्पूर्ण योद्धाओंके सामने मुझे सूतपुत्रके वशमें होना पड़ा, इसलिये मेरे जीवनको धिक्कार है। पार्थ! यदि तुम्हारा पुत्र महारथी अभिमन्यु आज जीवित होता तो वह शत्रुपक्षके सम्पूर्ण महारथियोंका नाश कर डालता। उसके रहते युद्धमें मुझे ऐसा अपमान कभी नहीं उठाना पड़ता। यदि घटोत्कच जीवित होता तो भी मुझे युद्धसे विमुख नहीं होना पड़ता। किंतु मैं अपने अभाग्यके लिये क्या कहूँ, जान पड़ता है, मेरे पूर्वजन्मके पाप बड़े ही प्रबल हैं, तभी तो दुरात्मा कर्णने तुम्हें तिनकेके समान भी न गिनकर मेरे साथ वह व्यवहार किया, जो किसी बन्धुहीन एवं असमर्थ मनुष्यके साथ किया जाता है। जो पुरुष आपत्तिमें पड़े हुएको उससे छुड़ाता है, वही सच्चा बन्धु और सुहृद् है—ऐसा प्राचीन मुनियोंका कथन है तथा सत्पुरुषोंने भी इस धर्मका सदा ही पालन किया है। परंतु तुमने नहीं किया। तुम्हारे पास विश्वकर्माका बनाया हुआ रथ है, जिसके धुरेसे कभी आवाज नहीं होती तथा जिसकी ध्वजापर वानर विराजमान है। यही नहीं, तुम्हारे हाथमें गाण्डीव-जैसा धनुष है तथा भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारा रथ हाँकते हैं। इन सबके होते हुए भी तुम कर्णसे डरकर भाग कैसे आये? यदि युद्धमें आज कर्णका मुकाबला करनेकी शक्ति नहीं रखते तो जो राजा तुमसे अस्त्र-बलमें बड़ा हो उसे ही अपना गाण्डीव धनुष दे दो। धिक्कार है तुम्हारे इस गाण्डीवको! धिक्कार है तुम्हारी भुजाओंके पराक्रमको तथा धिक्कार है तुम्हारे इन असंख्य बाणोंको!! अग्निके दिये हुए इस रथ और ध्वजाको भी धिक्कार है!'

युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर अर्जुनको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने धर्मराजको मार डालनेकी इच्छासे हाथमें तलवार उठा ली। भगवान् श्रीकृष्ण तो सबके हृदयकी बात जाननेवाले ही ठहरे, उन्होंने अर्जुनका कोप देखते ही उनकी चेष्टा ताड़ ली और कहा—'अर्जुन! यह क्या? तुमने तलवार क्यों उठायी? यहाँ किसीसे युद्ध करना हो—ऐसा तो नहीं दिखायी देता। मैं किसी ऐसे मनुष्यको भी यहाँ नहीं देखता, जो तुम्हारा वध्य हो। फिर प्रहार क्यों करना चाहते हो? तुमपर सनक तो नहीं सवार हो गयी? मैं पूछता हूँ, बताओ, इस समय क्या करनेका विचार है?'

श्रीकृष्णके पूछनेपर क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने युधिष्ठिरकी ओर देखते हुए कहा—'गोविन्द! मैंने गुप्तरूपसे यह प्रतिज्ञा की है कि 'जो कोई मुझसे ऐसा कह देगा कि तुम अपना गाण्डीव दूसरेको दे डालो, उसका मैं सिर काट लूँगा।' राजाने आपके सामने ही मुझसे ऐसी बात कही है, अतः मैं क्षमा नहीं कर सकता। आज इनका वध करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा। इसीलिये मैंने तलवार उठायी है।



इस अवसरपर आप क्या करना उचित समझते हैं ? आप ही इस जगत्‌के भूत और भविष्यको जानते हैं; आप जैसी आज्ञा दें वैसा ही करूँगा।'

यह सुनकर श्रीकृष्णने कहा—'धिक्कार है ! धिक्कार है !!' फिर वे अर्जुनसे बोले—पार्थ ! आज मुझे मालूम हुआ कि तुमने कभी वृद्ध पुरुषोंकी सेवा नहीं की है, तभी तो तुम्हें बेमौके क्रोध आ गया। धनञ्जय ! जो धर्मके विभागको जानता है, वह कभी ऐसा नहीं कर सकता। इस समय यहाँ तुमने जैसा बर्ताव किया है, उससे तुम्हारी धर्मभीरुता तथा अज्ञताका पता चलता है। जो नहीं करने योग्य काम करता है तथा करने योग्य नहीं करता, वह मनुष्य अधम है। जो स्वयं धर्मका आचरण करके शिष्योंद्वारा उपासना किये जानेपर उन्हें धर्मका उपदेश देते हैं; धर्मके संक्षेप और विस्तारको जाननेवाले उन गुरुजनोंका इस विषयमें क्या निर्णय है ? इसे तुम नहीं जानते। उस निर्णयको नहीं जाननेवाला मनुष्य कर्तव्य और अकर्तव्यके निश्चयमें तुम्हारी ही तरह असमर्थ एवं मोहित हो जाता है। क्या करना चाहिये और क्या नहीं ? इसे जान लेना सहज नहीं है। इसका ज्ञान होता है शास्त्रसे और शास्त्रका तुम्हें पता ही नहीं है। अज्ञानवश अपनेको धर्मवेत्ता मानकर जो तुम धर्मकी रक्षा करने चले हो, उसमें जीवहिंसाका पाप है—यह बात तुम्हारे-जैसे धार्मिककी समझमें नहीं आती। तात ! मेरे विचारसे प्राणियोंकी हिंसा न करना ही सबसे बड़ा धर्म है। किसीकी प्राणरक्षाके लिये झूठ बोलना पड़े तो बोल दे, परंतु उसकी हिंसा न होने दे। भला, तुम्हारे-जैसा श्रेष्ठ पुरुष अन्य साधारण मनुष्योंके समान अपने धर्मज्ञ भाई एवं चक्रवर्ती राजाको मारनेके लिये कैसे तैयार होगा ? भारत ! जो युद्ध न करता हो, शत्रुता न रखता हो, रणसे विमुख होकर भागा जा रहा हो, शरणमें आता हो, हाथ जोड़कर पड़ा हो अथवा असावधान हो, ऐसे मनुष्यका वध करना श्रेष्ठ पुरुष अच्छा नहीं समझते ! तुम्हारे बड़े भाईमें प्रायः उपर्युक्त सभी बातें हैं। तुमने नासमझ बालककी तरह पहले प्रतिज्ञा कर ली थी, इसलिये मूर्खतावश अधर्मयुक्त कार्य करनेको तैयार हो गये हो। पार्थ ! बताओ तो भला, धर्मके दुर्बोध एवं सूक्ष्म स्वरूपका अच्छी तरह विचार किये ही बिना अपने ज्येष्ठ भ्राताका वध करनेको कैसे दौड़ पड़े ? पाण्डुनन्दन ! अब मैं तुम्हें धर्मका रहस्य बता रहा हूँ। पितामह भीष्म, धर्मज्ञ युधिष्ठिर, विदुरजी अथवा यशस्विनी कुन्ती देवी तुम्हें धर्मके जिस तत्त्वका उपदेश कर सकती हैं, उसको मैं ठीक-ठीक बता रहा हूँ, सुनो। सत्य बोलना बहुत अच्छा काम है, सत्यसे बढ़कर कुछ भी नहीं है, फिर भी सत्यवादीको ही कभी-कभी सत्यके स्वरूपका ठीक-ठीक ज्ञान होना कठिन हो जाता है। देखो सत्यका अनुष्ठान कैसे होता है ? जहाँ सत्यका परिणाम असत् और असत्यका परिणाम सत् होता हो, वहाँ सत्य न बोलकर असत्य बोलना ही उचित है। विवाह-कालमें, स्त्री-प्रसंगके समय, किसीके प्राणोंका संकट आनेपर, सर्वस्वका अपहरण होते समय तथा ब्राह्मणकी भलाईके लिये आवश्यकता हो तो असत्य बोल दे। इन पाँच अवसरोंपर झूठ बोलनेपर पाप नहीं होता। जब किसीका सर्वस्व छीना जा रहा हो तो उसे बचानेके लिये झूठ बोलना कर्तव्य है। वहाँ असत्य ही सत्य और सत्य ही असत्य हो जाता है। जो वहाँ भी सत्य ही कह देता है ऐसे मनुष्यको लोग मूर्ख समझते हैं। पहले सत्य और असत्यका अच्छी तरह निर्णय करके जो परिणाममें सत्य हो उसका पालन करे। केवल अनुष्ठानकी दृष्टिसे असत्यरूप सत्यका भाषण नहीं करना चाहिये। जो ऐसा करता है, वही धर्मवेत्ता है। जिसकी बुद्धि निष्काम है, वह मनुष्य अंधे पशुको मारनेवाले बलाक नामक व्याधकी भाँति अत्यन्त कठोर कर्म करके भी यदि महान् पुण्य प्राप्त कर ले तो क्या आश्चर्य है ? इसी तरह जो धर्म-पालनकी इच्छा तो रखता है, पर है मूर्ख और गँवार; वह नदियोंके संगमपर बसे हुए कौशिक मुनिकी भाँति यदि अज्ञानपूर्वक धर्म करके भी महान् पापका भागी हो जाय तो क्या आश्चर्य है ?'

अर्जुनने कहा—भगवन् ! बलाक और कौशिक मुनिकी कथा मुझे सुनाइये, जिससे मैं इस विषयको अच्छी तरह समझ लूँ।

श्रीकृष्णने कहा—भारत ! एक व्याध था, जिसका नाम था बलाक। वह अपनी स्त्री और पुत्रोंकी जीवनरक्षाके लिये मृगोंको मारा करता था, कामना या आसक्तिके वशीभूत होकर नहीं। बूढ़े माता-पिता तथा अन्य आश्रित जनोंका पालन-पोषण किया करता था। सदा अपने धर्ममें लगा रहता, सत्य बोलता और किसीकी निन्दा नहीं करता था। एक दिन वह मृगोंको मारकर लानेके लिये वनमें गया; किंतु कोशिश करनेपर भी उसे उस दिन कोई मृग नहीं मिला। इतनेमें उसकी दृष्टि पानी पीते हुए एक शिकारी जानवरपर पड़ी, जो अंधा था, वह नाकसे सूँघकर ही आँखका काम निकाला करता था। यद्यपि वैसे जानवरको व्याधने पहले कभी नहीं देखा था, तो भी उसने उसे मार डाला। अंधेके मरते ही आकाशसे फूलोंकी वृष्टि होने लगी। व्याधको ले जानेके लिये स्वर्गसे एक सुन्दर विमान उतर आया, जिसपर अप्सराओंके गाने-बजानेका मनोरम शब्द हो रहा था। बात यह थी कि उस जन्तुने पूर्वजन्ममें तप करके सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार कर डालनेके लिये वर प्राप्त किया था, इसीलिये ब्रह्माजीने उसे अंधा बना दिया था। वह प्राणी समस्त जीवोंका अन्त कर देनेका निश्चय किये हुए था, अतः उसे मारकर व्याध स्वर्गमें गया। इस प्रकार धर्मके स्वरूपको समझना बड़ा कठिन है।

इसी तरह कौशिक नामका एक तपस्वी ब्राह्मण था, जो बहुत पढ़ा-लिखा नहीं था। वह गाँवसे दूर नदियोंके संगमके बीच रहा करता था। उसने यह व्रत ले लिया था कि 'मैं सदा सत्य बोलूँगा।' इससे वह'सत्यवादी' नामसे विख्यात हो गया। एक दिनकी बात है, कुछ लोग लुटेरोंके भयसे छिपनेके लिये उसके आश्रमके पासके वनमें घुस गये। लुटेरे भी यत्नपूर्वक उनका पता लगा रहे थे। वे सत्यवादी कौशिकके पास आकर बोले—'भगवन् ! बहुत-से लोग, जो इधर ही आये हैं, किस रास्तेसे गये हैं ? हम सच्ची बात पूछते हैं, यदि आप जानते हों तो बता दीजिये।' उनके पूछनेपर कौशिकने सच्ची बात कह दी—'इस वनमें, जहाँ घने वृक्ष, लता और झाड़ियाँ हैं, उधर ही वे गये हैं।' पता लग जानेपर उन निर्दयी डाकुओंने सब लोगोंको पकड़कर मार डाला। ऐसी किंवदन्ती है।

इस प्रकार वाणीका दुरुपयोग करनेके कारण ब्राह्मणको महान् पाप लगा और उस पापकी वजहसे कौशिकको दुःखदायी नरककी हवा खानी पड़ी; क्योंकि वह धर्मके सूक्ष्म स्वरूपको बिलकुल नहीं जानता था। इसी तरह जिसने शास्त्र बहुत कम पढ़ा है, जो गँवार है, धर्मके विभागको ठीक-ठीक नहीं जानता, वह मनुष्य यदि वृद्ध पुरुषोंसे अपने संदेह नहीं पूछता तो उसे महान् नरकका-सा कष्ट उठाना पड़ता है। अब तुम्हारे लिये संक्षेपसे धर्मकी पहचान बतायी जाती है। कितने ही मनुष्य 'परमज्ञान' रूप धर्मको तर्कके द्वारा जाननेका प्रयत्न करते हैं; किंतु बहुत लोग ऐसा कहते हैं कि वेदोंसे ही धर्मका ज्ञान होता है। मैंने जो यहाँ धर्मके स्वरूपकी व्याख्या की है, वह समस्त प्राणियोंके लाभको ही दृष्टिमें रखकर की है। धर्मके सम्बन्धमें ऐसा निश्चय है कि जो अहिंसायुक्त है, वही धर्म है। हिंसकोंको हिंसासे रोकनेके लिये धर्मकी यह व्याख्या की गयी है। धर्म ही प्रजाको धारण करता है और धारण करनेके कारण ही उसे धर्म कहते हैं, इसलिये जो प्राणरक्षासे युक्त हो—जिसमें किसी भी जीवकी हिंसा न की जाती हो, वही धर्म है—यही धर्मवेत्ताओंका सिद्धान्त है। जो लोग स्वयं अन्यायपूर्वक धन छीन लेनेकी इच्छा रखते हुए दूसरोंसे सत्य-भाषण कराना चाहते हैं, वहाँ यदि मौन रहनेसे छुटकारा मिल जाय तो वैसा ही करे, किसी तरह बोले ही नहीं। किंतु यदि बोलना अनिवार्य हो जाय और न बोलनेसे लुटेरोंको संदेह होने लगे तो वहाँ असत्य बोलना ही ठीक है। इसीको बिना विचारे सत्य समझो। जो मनुष्य किसी कामके लिये प्रतिज्ञा करके उसका प्रकारान्तरसे पालन करता है, उसे उसका फल नहीं मिलता—ऐसा मनीषी विद्वानोंका कथन है। प्राणसंकटमें, विवाहमें, समस्त कुटुम्बियोंके प्राणान्तका समय उपस्थित होनेपर या हँसी-परिहासमें यदि असत्य बोला गया हो तो वह असत्य नहीं माना जाता। धर्मका तत्त्व जाननेवाले विद्वान् उक्त अवसरोंपर मिथ्या बोलनेमें पाप नहीं मानते। जहाँ लुटेरोंके चंगुलमें फँस जानेपर झूठी शपथ खानेसे छुटकारा मिलता हो, वहाँ झूठ बोलना ही ठीक है, इसीको बिना विचारे सत्य समझो। जहाँतक वश चले उन लुटेरोंको धन नहीं देना चाहिये; क्योंकि पापियोंको दिया हुआ धन दाताको दुःख देता है। अतः धर्मके लिये झूठ बोलनेपर भी मनुष्यको झूठका दोष नहीं लगता। अर्जुन ! मैं तुम्हारा हित चाहता हूँ, इसीलिये अपनी बुद्धि तथा धर्मके अनुसार मैंने संक्षेपसे तुम्हें यह धर्मका लक्षण बताया है। इसे तुमने सुना, अब बताओ, क्या इस समय भी युधिष्ठिरको वध्य ही समझते हो ?



भगवान् कृष्णका अर्जुनको प्रतिज्ञाभङ्ग, भ्रातृवध तथा आत्मघातसे बचाना और युधिष्ठिरको वन जानेसे रोकना

अर्जुन बोले—श्रीकृष्ण ! कोई बहुत बड़ा विद्वान् और बुद्धिमान् मनुष्य जैसा उपदेश दे सकता है तथा जिसके अनुसार आचरण करनेसे हमलोगोंका कल्याण होना सम्भव है, वैसी ही बात आपने बतायी है। आप हमलोगोंके माता-पिताके तुल्य हैं, आप ही परम गति हैं, इसलिये आपने बहुत उत्तम बात बतायी है। तीनों लोकोंमें कहीं कोई भी ऐसी बात नहीं है, जो आपको विदित न हो। अतः आप ही परम धर्मको पूर्णरूपसे तथा ठीक-ठीक जानते हैं। अब मैं राजा युधिष्ठिरको मारने योग्य नहीं समझता। मेरी इस प्रतिज्ञाके सम्बन्धमें आप ही अनुग्रह करके कुछ ऐसी बात बताइये, जिससे इसका पालन भी हो जाय और राजाका वध भी न होने पावे। भगवन् ! आप तो जानते ही हैं कि मेरा व्रत क्या है ? मनुष्योंमें जो कोई भी यह कह दे कि 'तुम अपना गाण्डीव धनुष दूसरे किसी वीरको दे डालो, जो अस्त्र-विद्या और पराक्रममें तुमसे बढ़कर हो।' तो मैं हठात् उसकी जान ले लूँ। इसी तरह भीमसेनको कोई 'तूबरक' (बिना मूँछका या अधिक खानेवाला) कह दे, तो वे सहसा उसे मार डालें। सो राजाने आपके सामने ही मुझसे कहा है कि 'तुम अपना



धनुष दूसरेको दे डालो। ऐसी दशामें यदि मैं इन्हें मार डालूँ तो इनके बिना एक क्षणके लिये भी मैं इस संसारमें नहीं रह सकूँगा और यदि इनका वध न करूँ तो फिर प्रतिज्ञाभङ्गके पापसे कैसे मुक्त होऊँगा ? क्या करूँ ? मेरी बुद्धि कुछ काम नहीं देती। कृष्ण ! संसारके लोगोंकी समझमें मेरी प्रतिज्ञा भी सच्ची हो और राजा युधिष्ठिरका तथा मेरा जीवन भी सुरक्षित रहे—ऐसी ही कोई सलाह दीजिये।'

श्रीकृष्णने कहा—वीरवर ! सुनो। राजा युधिष्ठिर थक गये हैं और बहुत दुःखी हैं। कर्णने अपने तीखे बाणोंसे इन्हें संग्राममें अधिक घायल कर डाला है। इतना ही नहीं, ये जब युद्ध नहीं कर रहे थे, उस समय भी उसने इनके ऊपर बाणोंका प्रहार किया। इसीलिये दुःख और रोषमें भरकर इन्होंने तुम्हें न कहने योग्य बात कह दी है। ये जानते हैं कि पापी कर्णको सिर्फ तुम्हीं मार सकते हो; और उसके मारे जानेपर कौरवोंको शीघ्र ही जीत लिया जा सकता है। इसी विचारसे इन्होंने वे बातें कह डाली हैं; इसलिये इनका वध करना उचित नहीं है। अर्जुन ! तुम्हें अपनी प्रतिज्ञाका पालन करना है तो जिस उपायसे ये जीवित रहते हुए मरेके समान हो जायँ वही बताता हूँ, सुनो। यही उपाय तुम्हारे अनुरूप होगा। सम्माननीय पुरुष संसारमें जबतक सम्मान पाता है, तबतक ही उसका जीवित रहना माना जाता है, जिस दिन उसका बहुत बड़ा अपमान हो जाय, उस समय वह जीते-जी 'मरा' समझा जाता है। तुमने, भीमसेनने, नकुल-सहदेवने तथा अन्य वृद्ध पुरुषों एवं शूरवीरोंने राजा युधिष्ठिरका सदा ही सम्मान किया है। आज तुम उनका अंशतः अपमान करो। यद्यपि युधिष्ठिर पूज्य होनेके कारण 'आप' कहने योग्य हैं तथापि इन्हें 'तू' कह दो। गुरुजनको 'तू' कह देना उनका वध कर देनेके ही समान माना जाता है। जिसके देवता अथर्वा और अङ्गिरा हैं, ऐसी एक सर्वोत्तम श्रुति बतायी जाती है। अपना भला चाहनेवालोंको बिना विचारे ही इसके अनुसार बर्ताव करना चाहिये। उस श्रुतिका भाव यह है—'गुरुको 'तू' कह देना उसे बिना मारे ही मार डालना है।' इसलिये जैसा मैंने बताया, उसीके अनुसार तुम धर्मराजके लिये 'तू' शब्दका प्रयोग करो। तुम्हारे मुखसे अपने लिये 'तू' का प्रयोग सुनकर धर्मराज उसे अपना वध ही समझेंगे। इसके बाद तुम इनके चरणोंमें प्रणाम करके सान्त्वना देना और अपनी कही हुई अनुचित बातके लिये क्षमा माँग लेना। तुम्हारे भाई राजा युधिष्ठिर समझदार हैं, ये धर्मका खयाल करके भी तुमपर क्रोध नहीं

करेंगे। इस प्रकार तुम मिथ्याभाषण और भ्रातृवधके पापसे छूटकर प्रसन्नतापूर्वक सूतपुत्र कर्णका वध करना।

अपने सखा भगवान् श्रीकृष्णका वह वचन सुनकर अर्जुनने उसकी बड़ी प्रशंसा की, फिर वे हठपूर्वक धर्मराजके प्रति ऐसे कटुवचन कहने लगे, जैसे पहले कभी नहीं कहे थे। वे बोले—'तू चुप रह, न बोल, तू तो खुद ही लड़ाईसे



भागकर एक कोस दूर आ बैठा है, तू क्या उलाहना देगा? हाँ, भीमसेनको मेरी निन्दा करनेका अधिकार है; क्योंकि वे समस्त संसारके प्रमुख वीरोंके साथ लड़ रहे हैं। शत्रुओंको पीड़ा पहुँचा रहे हैं। असंख्य शूरवीरों, अनेकों राजाओं, रथियों, घुड़सवारों तथा हजारों हाथियोंको मौतके घाट उतारकर काम्बोजों और पर्वतीय योद्धाओंको इस तरह नष्ट कर रहे हैं, जैसे सिंह मृगोंको। तू अपने कठोर वचनोंके चाबुकसे अब मुझे न मार, मेरे कोपको फिर न बढ़ा।'

अर्जुन धर्मभीरु थे, वे युधिष्ठिरको ऐसी कठोर बातें सुनाकर बहुत उदास हो गये। यह जानकर कि 'मुझसे कोई बहुत बड़ा पाप बन गया' उनके चित्तमें बड़ा खेद हुआ। बारंबार उच्छ्वास खींचते हुए उन्होंने फिरसे तलवार उठा ली। यह देखकर श्रीकृष्णने कहा—'अर्जुन! यह क्या? तुम फिर क्यों तलवार उठा रहे हो? मुझे जवाब दो, तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध करनेके लिये मैं पुनः कोई उपाय बताऊँगा।'

पुरुषोत्तमके ऐसा कहनेपर अर्जुन दुःखी होकर बोले—'भगवन्! मैंने जिदमें आकर भाईका अपमानरूप महान् पाप कर डाला है, इसलिये अब अपने इस शरीरको ही नष्ट कर डालूँगा।' अर्जुनकी बात सुनकर भगवान्ने कहा—'पार्थ! राजा युधिष्ठिरको 'तू' मात्र कहकर तुम इतने घोर दुःखमें क्यों डूब गये? उफ! इसीके लिये आत्मघात करना चाहते हो? अर्जुन! श्रेष्ठ पुरुषोंने कभी ऐसा काम नहीं किया है। धर्मका स्वरूप सूक्ष्म है और उसका समझना कठिन। अज्ञानियोंके लिये तो और भी मुश्किल है। यहाँ जो कर्तव्य है, उसे मैं बताता हूँ, सुनो। भाईका वध करनेसे जिस नरककी प्राप्ति होती है, उससे भी भयानक नरक तुम्हें आत्मघात करनेसे मिलेगा। इसलिये अब अपने ही मुँहसे अपने गुणोंका बखान करो, ऐसा करनेसे यही समझा जायगा कि तुमने अपने ही हाथों अपनेको मार लिया।'

यह सुनकर अर्जुनने श्रीकृष्णकी बातोंका अभिनन्दन किया और 'तथास्तु' कहकर धनुषको नवाते हुए वे युधिष्ठिरसे बोले—'राजन्! अब मेरे गुणोंको सुनिये—पिनाकधारी भगवान् शंकरको छोड़कर दूसरा कोई भी मेरे समान धनुर्धर नहीं है; मेरी वीरताका उन्होंने भी अनुमोदन किया है। यदि चाहूँ तो इस चराचर जगत्को एक ही क्षणमें नष्ट कर डालूँगा। मेरे चरणोंमें रथ और ध्वजाके चिह्न हैं। मुझ-जैसा वीर यदि युद्धमें पहुँच जाय तो उसे कोई भी नहीं जीत सकता। उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम—इन सभी दिशाओंके राजाओंका मैंने संहार किया है।' 'कृष्ण! अब हम दोनों विजयशाली रथपर बैठकर सूतपुत्र कर्णका वध करनेके लिये शीघ्र ही चल दें। आज राजा युधिष्ठिर प्रसन्न हों, मैं कर्णको अपने बाणोंसे नष्ट कर डालूँगा।' यों कहकर अर्जुन पुनः युधिष्ठिरसे बोले—'आज या तो कर्णकी माता पुत्रहीन होगी या माता कुन्ती ही मुझसे हीन हो जायगी। मैं सत्य कहता हूँ, अपने बाणोंसे कर्णको मारे बिना आज कवच नहीं उतारूँगा।'

यह कहकर अर्जुनने तुरंत अपने हथियार और धनुष नीचे डाल दिये, तलवार म्यानमें रख दी, फिर लज्जित होकर उन्होंने युधिष्ठिरके चरणोंमें सिर झुकाया और हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! मैंने जो कुछ कहा है, उसे क्षमा कीजिये और मुझपर प्रसन्न हो जाइये। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। अब मैं सब तरहसे प्रयत्न करके भीमसेनको युद्धसे छुड़ाने और सूतपुत्र कर्णका वध करनेके लिये जा रहा हूँ। राजन्! मेरा जीवन आपका प्रिय करनेके लिये ही है—यह मैं सत्य कहता हूँ।' ऐसा कहकर अर्जुनने राजाके दोनों चरणोंका स्पर्श किया और फिर वे रणभूमिकी ओर जानेको उद्यत हो गये।

धर्मराज युधिष्ठिर अर्जुनके कठोर वचनोंको सुनकर अपने पलंगपर खड़े हो गये, उस समय उनका चित्त बहुत दुःखी हो गया था। वे कहने लगे—'पार्थ ! मैंने अच्छे काम



नहीं किये हैं, इसीलिये तुमलोगोंपर घोर संकट आ पड़ा है। मेरी बुद्धि मारी गयी है, मैं आलसी और डरपोक हूँ, इसलिये आज वनमें चला जाता हूँ। मेरे न रहनेपर तुम सुखसे रहना। महात्मा भीमसेन ही राजा होनेके योग्य हैं, मैं तो क्रोधी और कायर हूँ। अब मुझमें तुम्हारी ये कठोर बातें सहन करनेकी शक्ति नहीं है। इतना अपमान हो जानेपर मेरे जीवित रहनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है।'—यह कहकर वे सहसा पलंगसे कूद पड़े और वनमें जानेको उद्यत हो गये।

यह देख भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें प्रणाम करके कहा—'राजन् ! आपको तो सत्यप्रतिज्ञ अर्जुनकी यह प्रतिज्ञा मालूम ही है कि जो कोई उन्हें गाण्डीव धनुष दूसरेको देनेके लिये कह देगा, वह उनका वध्य होगा। फिर भी आपने उन्हें वैसी बात कह दी। इससे अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करते हुए मेरे कहनेसे आपका अनादर किया है। गुरुजनोंका अपमान ही उनका वध कहलाता है। इसलिये मैंने तथा अर्जुनने जो सत्यकी रक्षाको दृष्टिमें रखकर आपके साथ न्यायके विरुद्ध आचरण किया है, उसे आप क्षमा कीजिये। हम दोनों ही आपकी शरणमें आये हैं। मेरा भी अपराध है, इसके लिये आपके चरणोंपर गिरकर क्षमाकी भीख माँगता हूँ। आप मुझे भी क्षमा कर दें। आज यह पृथ्वी पापी कर्णका रक्त-पान करेगी, मैं आपसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, अब सूतपुत्रको मरा हुआ ही मान लीजिये।'

भगवान्‌की यह बात सुनकर युधिष्ठिरने सहसा उन्हें अपने चरणोंपरसे उठाया और हाथ जोड़कर कहा—'गोविन्द ! आप जो कुछ कहते हैं, बिलकुल ठीक है, सचमुच ही मुझसे यह भूल हो गयी है। माधव ! आपने यह रहस्य बताकर मुझपर बड़ी कृपा की, डूबनेसे बचा लिया। आज आपने हमलोगोंकी भयंकर विपत्तिसे रक्षा की। आप-जैसे स्वामीको पाकर ही हम दोनों संकटके भयानक समुद्रसे पार हो गये। हमलोग अज्ञानवश मोहित हो रहे थे, आपकी ही बुद्धिरूप नौकाका सहारा ले अपने मन्त्रियोंसहित शोकसागरके पार हुए हैं। अच्युत ! हम आपसे ही सनाथ हैं।'



अर्जुनका युधिष्ठिरसे क्षमा माँगना, युधिष्ठिरका अर्जुनको आशीर्वाद देना, अर्जुनकी रणयात्रा और भगवान् कृष्णद्वारा अर्जुनके पराक्रमका वर्णन

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! धर्मराजके मुखसे वह प्रेमयुक्त वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको भी बताया। इधर अर्जुनने भगवान्‌के कथनानुसार जो युधिष्ठिरका प्रतिवाद किया था, उससे 'कोई पाप बन गया' ऐसा समझकर वे पुनः बहुत उदास हो गये थे। तब भगवान् श्रीकृष्णने हँसते-हँसते कहा—'अर्जुन ! राजा युधिष्ठिरको 'तू' कह देनेमात्रसे जब तुम इस तरह शोकमें डूब गये हो तो राजाका वध कर देनेपर तुम्हारी क्या दशा होती ? सचमुच धर्मका स्वरूप जानना बड़ा कठिन है, जिनकी बुद्धि मन्द है, उनके लिये तो उसका जानना और भी मुश्किल है। तुम धर्मभीरु होनेके कारण अपने बड़े भाईका वध करके निश्चय ही घोर अन्धकारमें पड़ते, भयंकर नरकमें गिरते। अब मेरी राय यह है कि तुम



कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिरको ही प्रसन्न करो, जब वे प्रसन्न हो जायँ तो हमलोग शीघ्र ही सूतपुत्र कर्णसे लड़नेके लिये चलें।'

तब अर्जुन बहुत लज्जित होकर राजाके चरणोंमें पड़ गये और बोले 'राजन्! धर्मपालनकी कामनासे भयभीत होकर मैंने जो कुछ कह डाला है, उसे क्षमा कीजिये और मुझपर प्रसन्न होइये।' धर्मराजने देखा अर्जुन पैरोंपर पड़े हुए रो रहे हैं, तो उन्होंने अपने प्यारे भाईको उठाकर बड़े स्नेहके साथ गले लगाया और स्वयं भी फूट-फूटकर रोने लगे। दोनों भाई बड़ी देरतक रोते रहे, फिर दोनोंका भाव एक-दूसरेके प्रति शुद्ध हो गया, दोनों ही प्रेम और प्रसन्नतासे भर गये।

तदनन्तर, युधिष्ठिरने पुनः अर्जुनको बड़े प्रेमसे गले लगाया और उनका मस्तक सूँघकर अत्यन्त प्रसन्नताके साथ कहा—'महाबाहो! मैं युद्धमें पूर्ण प्रयत्नके साथ लड़ रहा था, किंतु कर्णने समस्त सैनिकोंके सामने मेरा कवच, रथकी ध्वजा, धनुष, बाण, शक्ति और घोड़े नष्ट कर डाले। उसके उस कर्मको याद करके मैं दुःखसे पीड़ित हो रहा हूँ, अब जीना अच्छा नहीं लगता। यदि आज युद्धमें उस वीरको नहीं मार डालोगे तो निश्चय ही मैं अपने प्राणोंको त्याग दूँगा।'



उनके ऐसा कहनेपर अर्जुनने कहा—'राजन्! मैं नकुल-सहदेव तथा भीमसेनकी सौगंध खाता हूँ और अपने हथियारोंको छूकर सत्यकी शपथ करके कहता हूँ कि आज या तो मैं कर्णको मार डालूँगा या स्वयं ही मरकर रणभूमिमें शयन करूँगा।' राजासे यों कहकर अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले—'माधव! आज युद्धमें मैं अवश्य कर्णको मारूँगा; आपकी बुद्धिके बलसे ही उस दुरात्माका वध होगा।'

यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले—'अर्जुन! तुम महाबली कर्णका वध करनेमें स्वयं समर्थ हो। मेरी तो सदा ही यह इच्छा रहती है कि तुम किसी तरह कर्णको मारते।' अर्जुनसे यह कहकर श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिरसे बोले—'राजन्! आप कर्णके बाणोंसे बहुत पीड़ित हो गये हैं—यह सुनकर मैं और अर्जुन—दोनों आपको देखने आये थे। सौभाग्यकी बात है कि आप न तो मारे गये और न उसकी कैदमें ही पड़े। अब अर्जुनको शान्त करके इन्हें विजयके लिये आशीर्वाद दीजिये।'

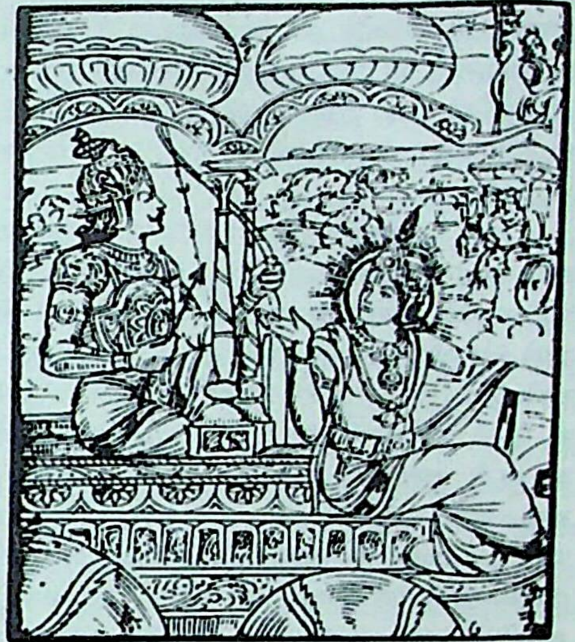
युधिष्ठिर बोले—भैया अर्जुन! आओ, आओ, फिर मेरी छातीसे लग जाओ। तुमने कहने योग्य और हितकी ही बात कही है तथा मैंने उसके लिये क्षमा भी कर दी। धनञ्जय! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ। जाओ, कर्णका नाश करो।

यह सुनकर अर्जुनने पुनः अपने बड़े भाईके चरण पकड़ लिये और उनपर सिर रखकर प्रणाम किया। राजाने उन्हें उठाकर पुनः छातीसे लगाया और उनका मस्तक सूँघकर कहा—'धनञ्जय ! तुमने मेरा बहुत सम्मान किया है, अतः मैं आशीर्वाद देता हूँ कि सर्वत्र तुम्हारी महिमा बढ़े और तुम्हें सनातन विजय प्राप्त हो।'

अर्जुनने कहा—महाराज ! जिसने आपको बाणोंसे पीड़ित किया है, उस कर्णको आज अपने पापोंका भयंकर फल मिलेगा। आज उसे मारकर ही आपका दर्शन करूँगा। इस सच्ची प्रतिज्ञाके साथ मैं आपके चरणोंका स्पर्श करता हूँ।

यह सुनकर युधिष्ठिरका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। उन्होंने अर्जुनसे फिर कहा—'पार्थ ! तुम्हें सदा ही अक्षय यश, पूर्ण आयु, मनोवाञ्छित कामना, विजय तथा बलकी प्राप्ति हो। तुम्हारे लिये मैं जो कुछ चाहता हूँ, वह सब तुम्हें मिले। अब जाओ और शीघ्र ही कर्णका नाश करो।'

इस प्रकार धर्मराजको प्रसन्न करनेके अनन्तर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'गोविन्द ! अब मेरा रथ तैयार हो। उसमें उत्तम घोड़े जोते जायँ और सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र सजाकर रख दिये जायँ फिर सूतपुत्रका वध करनेके लिये आप शीघ्र ही यात्रा करें।' अर्जुनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने दारुकसे कहा—'तुम पार्थके कथनानुसार सारी तैयारी करो।' भगवान्‌की आज्ञा पाते ही दारुकने रथको सब सामग्रियोंसे सुसज्जित करके उसमें घोड़े जोत दिये और उसे अर्जुनके पास लाकर खड़ा कर दिया। अर्जुनने देखा, दारुक रथ जोतकर ले आया, तो उन्होंने धर्मराजसे आज्ञा ली और ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर वे अपने मङ्गलमय रथपर विराजमान हुए। उस समय धर्मराज युधिष्ठिरने अर्जुनको आशीर्वाद दिये। तत्पश्चात् अर्जुन कर्णके रथकी ओर चल दिये। कुछ दूर जानेपर उनके मनमें बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—'मैंने कर्णको मारनेकी प्रतिज्ञा तो की है, किन्तु यह किस तरह पूर्ण होगी ?' अर्जुनको चिन्तित देख भगवान् मधुसूदनने कहा—'गाण्डीवधारी अर्जुन ! तुमने अपने धनुषसे जिन-जिन वीरोंपर विजय पायी है, उन्हें जीतनेवाला इस संसारमें तुम्हारे सिवा कोई मनुष्य नहीं है। जो तुम्हारे-जैसे वीर नहीं हैं, उनमेंसे कौन-सा ऐसा पुरुष है, जो द्रोण, भीष्म, भगदत्त, अवन्तीके राजकुमार विन्द-अनुविन्द, काम्बोजराज सुदक्षिण, श्रुतायु तथा अच्युतायुका सामना करके कुशलसे



रह सकता था ? तुम्हारे पास दिव्यास्त्र हैं, तुममें फुर्ती है, बल है, युद्धके समय तुम्हें घबराहट नहीं होती, तुम्हें अस्त्र-शस्त्रोंका पूर्ण ज्ञान है। लक्ष्यको बेधने और गिरानेकी कला मालूम है। निशाना मारते समय तुम्हारा चित्त एकाग्र रहता है। तुम चाहो तो गन्धर्वों और देवताओंसहित सम्पूर्ण चराचर जगत्‌का नाश कर सकते हो ? इस भूमण्डलपर तुम्हारे समान योद्धा है ही नहीं। ब्रह्माजीने प्रजाकी सृष्टि करनेके पश्चात् इस महान् गाण्डीव धनुषकी भी रचना की थी, जिससे तुम युद्ध करते हो, इसलिये तुम्हारी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है। तो भी तुम्हारे हितके लिये एक बात बता देना आवश्यक है; तुम कर्णको अपनेसे छोटा समझकर उसकी अवहेलना न करना। मैं तो महारथी कर्णको तुम्हारे समान या तुमसे भी बढ़कर समझता हूँ। इसलिये पूरा प्रयास करके तुम्हें उसका वध करना चाहिये। वह अग्निके समान तेजस्वी और वायुके समान वेगवान् है, क्रोध होनेपर कालके समान हो जाता है। उसके शरीरकी गठन सिंहके समान है, वह बहुत बलवान् है। उसकी ऊँचाई आठ रत्नि[1] (एक सौ अड़सठ अंगुल) है। भुजाएँ बड़ी-बड़ी और छाती चौड़ी है। उसको जीतना

१. मुट्ठी बँधे हुए हाथकी मापको रत्नि कहते हैं।

बहुत कठिन है। वह महान् शूरवीर और अभिमानी है। उसमें योद्धाओंके सभी गुण हैं। वह अपने मित्र कौरवोंको अभय देनेवाला और पाण्डवोंसे सदा द्वेष रखनेवाला है। मेरा तो ऐसा खयाल है कि सिर्फ तुम्हीं उसे मार सकते हो और किसीके लिये उसका मारना टेढ़ी खीर है। इसलिये आज ही उस दुरात्मा, क्रूर और पापी कर्णको मारकर अपना मनोरथ पूर्ण करो।

'अर्जुन ! मैं तुम्हारे उस पराक्रमको जानता हूँ, जिसका वारण करना देवता और असुरोंके लिये भी कठिन है। जैसे सिंह मतवाले हाथीको मार डालता है, उसी प्रकार तुम भी अपने बल और पराक्रमसे शूरवीर कर्णका संहार करो—इसके लिये मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ। तुम शत्रुओंके लिये दुर्द्धर्ष हो, तुम्हारे ही आश्रयमें रहकर ये पाण्डव और पाञ्चाल रणमें डटे हुए हैं। तुम्हारे द्वारा सुरक्षित हुए इन पाण्डव, पाञ्चाल, मत्स्य, करूष तथा चेदिदेशीय वीरोंने असंख्य शत्रुओंका संहार कर डाला है। तुम्हारे संरक्षणमें युद्ध करनेवाले पाण्डव-महारथियोंके सिवा दूसरा कौन है, जो संग्राममें कौरवोंको परास्त कर सके। तुम तो देवता, असुर और मनुष्योंसहित तीनों लोकोंको युद्धमें जीत सकते हो, फिर कौरवसेनाकी तो बिसात ही क्या है ? कोई इन्द्रके समान भी पराक्रमी क्यों न हो, तुम्हारे सिवा कौन राजा भगदत्तको जीत सकता था ? अक्षौहिणी सेनाके स्वामी तथा युद्धमें कभी पीछे पैर न हटानेवाले भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, जयद्रथ, शल्य तथा दुर्योधन-जैसे महारथियोंपर तुम्हें छोड़कर दूसरा कौन विजय पा सकता है ? भयंकर पराक्रम दिखानेवाले तुषार, यवन, खश, दार्वाभिसार, दरद, शक, माठर, तङ्गण, आन्ध्र, पुलिन्द, किरात, म्लेच्छ, पर्वतीय तथा समुद्रके तटपर रहनेवाले योद्धा क्रोधमें भरकर दुर्योधनकी सहायताके लिये आये हैं, इन्हें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नहीं जीत सकता।

यदि तुम रक्षक न होते तो व्यूहाकारमें खड़ी हुई कौरवोंकी विशाल सेनापर कौन चढ़ाई कर सकता था ? तुम्हारी ही सहायतासे पाण्डवपक्षके वीरोंने उसका संहार किया है। भीष्मजी अस्त्रविद्यामें बड़े प्रवीण थे, उन्होंने चेदि, काशी, पाञ्चाल, करूष, मत्स्य तथा केकयदेशीय वीरोंको बाणोंसे आच्छादित करके मार डाला था। वे जब एक बार धनुषकी मूठ पकड़ते तो हजारों रथियोंका सफाया कर डालते थे। उनके द्वारा लाखों मनुष्यों और हाथियोंका संहार हुआ। दस दिनोंके युद्धमें तुम्हारी बहुत-सी सेनाका विध्वंस करके उन्होंने कितने ही रथ सूने कर दिये। संग्राममें भगवान् रुद्र और विष्णुके समान अपना भयंकर रूप प्रकट करके चेदि, पाञ्चाल और केकय वीरोंका संहार करते हुए उन्होंने रथों, घोड़ों और हाथियोंसे भरी हुई पाण्डव-सेनाका विनाश कर डाला। इस प्रकार भीष्मजी अद्वितीय वीर थे, परंतु उन्हें भी शिखण्डीने तुम्हारे संरक्षणमें रहकर अपने बाणोंका निशाना बनाया। आज वे बाण-शय्यापर पड़े हुए हैं। पार्थ ! जयद्रथका वध करते समय युद्धमें तुमने जैसा पराक्रम किया था, वैसा तुम्हारे सिवा दूसरा कौन कर सकता है ? राजालोग सिन्धुराजके वधको तुम्हारा आश्चर्यजनक पराक्रम मानते हैं; पर मैं ऐसा नहीं समझता; क्योंकि तुम्हारे-जैसे वीरसे ऐसा काम होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि यदि सारा क्षत्रियसमाज एकत्रित होकर तुम्हारा सामना करने आ जाय तो वह एक ही दिनमें नष्ट हो जायगा और मेरे विचारसे ही यही तुम्हारे योग्य पराक्रम होगा।

'अर्जुन ! जिस समय भीष्म और द्रोणाचार्य मारे गये, तभीसे कौरवोंकी इस भयंकर सेनाका मानो सर्वस्व लुट गया। इसके प्रधान-प्रधान योद्धा नष्ट हो गये, इसमें घोड़ों, रथों और हाथियोंका अभाव हो गया। इस समय यह सेना सूर्य, चन्द्रमा और ताराओंसे रहित आकाशकी भाँति श्रीहीन दिखायी दे रही है। इसके प्रमुख वीरोंमेंसे और सब तो मारे गये, केवल अश्वत्थामा, कृतवर्मा, कर्ण, शल्य तथा कृपाचार्य—ये ही पाँच महारथी बाकी रह गये हैं, इन पाँचोंको मारकर तुम शत्रुहीन हो जाओ और राजा युधिष्ठिरको द्वीप, नगर, समुद्र, पर्वत, बड़े-बड़े वन तथा आकाश और पातालसहित समस्त पृथ्वी अर्पण कर दो। यदि अपने गुरु आचार्य द्रोणका सम्मान करनेके कारण तुम उनके पुत्र अश्वत्थामापर कृपादृष्टि रखते हो अथवा आचार्यका गौरव रखनेके लिये कृपाचार्यपर तुम्हें दया आती हो, यदि माताके बन्धुजनोंके प्रति आदर-बुद्धि होनेसे तुम कृतवर्माको सामने पाकर भी यमलोक नहीं भेजना चाहते तथा माता माद्रीके भाई मद्रराज शल्यको भी दयावश मारना नहीं चाहते तो न सही, किंतु पाण्डवोंके प्रति अत्यन्त नीचतापूर्ण बर्ताव करनेवाले इस पापी कर्णको तो आज तीखे बाणोंसे मार ही डालो। यह तुम्हारे लिये पुण्यका काम होगा। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ; कर्णका वध करनेमें कोई दोष नहीं है।

'दुर्योधनने पाँचों पुत्रोंसहित माता कुन्तीको आधी रातके समय जो लाक्षाभवनमें जलानेकी कोशिश की तथा तुमलोगों-के साथ जो वह जुआ खेलनेमें प्रवृत्त हुआ, उन सब

षड्यन्त्रोंका मूल कारण यह दुष्टात्मा कर्ण ही था। दुर्योधनको सदासे ही यह विश्वास था कि कर्ण मेरी रक्षा करेगा, इसीलिये वह क्रोधमें भरकर मुझे भी कैद करनेको तैयार हो गया था। उसने तुमलोगोंके साथ जो-जो बुराइयाँ की हैं, उन सबमें इस पापात्मा कर्णकी ही प्रधानता है। मित्र ! दुर्योधनके छः निर्दयी महारथियोंने मिलकर जो सुभद्राकुमारकी जान ली थी, उस भयंकर संग्राममें इस कर्णने ही अभिमन्युका धनुष काटा था। कर्णद्वारा धनुष कट जानेपर शेष पाँच महारथियोंने, जो छल-कपटमें बड़े प्रवीण थे, बाणोंकी बौछारसे उसे मार डाला। उस वीरके इस तरह मारे जानेपर प्रायः सबको दुःख हुआ; केवल ये दुष्ट कर्ण और दुर्योधन ही जी भरकर हँसे थे। इतना ही नहीं, इसने कौरवोंकी भरी सभामें द्रौपदीको इस प्रकार कटुवचन सुनाये थे—'कृष्णे ! पाण्डव तो नष्ट होकर सदाके लिये नरकमें पड़ गये ! अब तू दूसरा पति वरण कर ले। आजसे तू धृतराष्ट्रकी दासी हुई; अतः राजमहलमें जाकर अपना काम सँभाल। अब पाण्डव तुम्हारे स्वामी नहीं रहे। वे तेरे लिये कुछ कर भी नहीं सकते। तू दासोंकी स्त्री है और स्वयं भी दासी है।'

'इस तरह इस पापीने बहुत-सी बातें कहीं, जो तुमने भी सुनी थीं। इसके अलावे भी इसने तुमलोगोंके साथ अन्याय करके जो-जो पाप किये हैं उन सबको तथा इसके जीवनको भी तुम्हारे बाण नष्ट करें। आज दुरात्मा कर्ण अपने शरीरपर गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए भयंकर बाणोंकी चोट सहता हुआ आचार्य द्रोण तथा भीष्मके वचन याद करे। तुम्हारे सायकोंसे पीड़ित हुए राजालोग आज दीन और विषादयुक्त होकर हाहाकार मचाते हुए कर्णको रथसे नीचे गिरता देखें। राजा शल्य भी आज तुम्हारे सैकड़ों बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुए रथी और अश्वसे रहित रथको छोड़ भयभीत होकर भाग जायँ। पार्थ ! यदि तुम सूतपुत्र कर्णके देखते-देखते अपनी प्रतिज्ञापूर्तिके लिये उसके पुत्रको मार डालो तो वह भीष्म, द्रोण और विदुरकी बातोंको याद करे। तुम्हारा मुख्य शत्रु दुर्योधन तुम्हारे हाथसे कर्णको मारा गया देख आज अपने जीवन तथा राज्यसे निराश हो जाय। जान पड़ता है, पञ्चालदेशीय वीर, द्रौपदीके पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, धृष्टद्युम्नके पुत्र, शतानीक, नकुल-सहदेव, दुर्मुख, जनमेजय, सुधर्मा तथा सात्यकि—ये कर्णके वशमें पड़ गये हैं। उनका घोर आर्तनाद सुनायी पड़ता है। जो अपने मित्रके लिये प्राणोंकी परवा न करके सामने डटकर लड़ रहे हैं, उन सैकड़ों पाञ्चाल वीरोंको कर्ण यमलोक भेज रहा है। वे कर्णरूपी अगाध महासागरमें नावके बिना डूब रहे हैं, अब तुम्हें ही नौका बनकर उनका उद्धार करना चाहिये। कर्णने भृगुवंशी परशुरामजीसे जो अस्त्र प्राप्त किया था, उसीका अत्यन्त भयंकर रूप आज प्रकट हुआ है। वह घोर अस्त्र अपने तेजसे प्रज्वलित हो तुम्हारी सेनाको सब ओरसे घेरकर संताप दे रहा है। यह देखो, भीम सृञ्जय-योद्धाओंसे घिरे हुए हैं और अत्यन्त क्रोधमें भरकर कर्णसे लड़ते हुए उसके पैने बाणोंसे पीड़ित हो रहे हैं। मैं युधिष्ठिरकी सेनामें तुम्हारे सिवा और किसी वीरको ऐसा नहीं देखता, जो कर्णसे लोहा लेकर कुशलपूर्वक घर लौट आवे। इसलिये तुम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तेज किये हुए बाणोंसे आज कर्णको मारकर उज्ज्वल कीर्ति प्राप्त करो। वीरवर ! मैं सच कहता हूँ, एक तुम्हीं कर्णसहित कौरवोंको युद्धमें जीत सकते हो, दूसरा कोई नहीं। अतः महारथी कर्णको मारकर तुम अपना मनोरथ सफल करो।'



अर्जुनके वीरोचित उद्‌गार, दोनों पक्षकी सेनाओंमें द्वन्द्वयुद्ध, सुषेणका वध, भीमसेनका पराक्रम तथा अर्जुनके आनेसे उनकी प्रसन्नता

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! भगवान् श्रीकृष्णका भाषण सुनकर अर्जुन एक ही क्षणमें शोकरहित एवं परम प्रसन्न हो गये। फिर प्रत्यञ्चा सुधारकर गाण्डीव धनुषकी टंकार करते हुए उन्होंने केशवसे कहा—'गोविन्द ! जब आप मेरे स्वामी एवं संरक्षक हैं तो मेरी विजय निश्चित है। संसारके भूत और भविष्यका निर्माण आपके हाथमें है, जिसपर आप प्रसन्न हैं, उसकी विजयमें क्या संदेह है ? कृष्ण ! कर्णकी तो बात ही क्या है ? आपकी सहायता मिलनेपर तो मैं अपने सामने आये हुए तीनों लोकोंको परलोकका पथिक बना सकता हूँ। जनार्दन ! मैं देखता हूँ—पाञ्चालोंकी सेना भाग रही है। यह भी देख रहा हूँ कि कर्ण रणभूमिमें निर्भय-सा विचरता है। उस प्रज्वलित भार्गवास्त्रकी ओर भी मेरी दृष्टि है, जिसे कर्णने प्रकट किया है। निश्चय ही, यह वह संग्राम है, जहाँ कर्ण मेरे हाथसे मारा जायगा और जबतक यह पृथ्वी कायम रहेगी, तबतक समस्त प्राणी इस बातकी चर्चा करेंगे। आज मेरे गाण्डीव धनुषसे

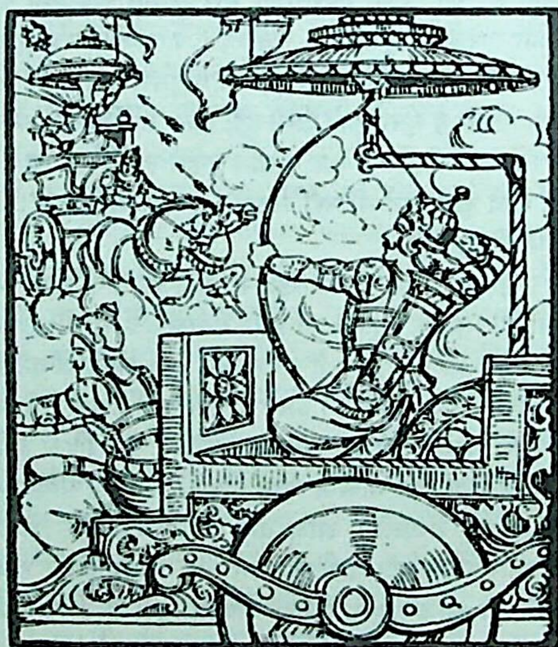


छूटे हुए बाण कर्णको मौतके घाट उतारेंगे। कृष्ण ! मैं आपसे सच्ची बात बता रहा हूँ, आज कर्णके मारे जानेसे दुर्योधन अपने राज्य और जीवन—दोनोंसे निराश हो जायगा। मेरे बाणोंसे कर्णके टुकड़े-टुकड़े हुए देख आज राजा दुर्योधन आपके उन वचनोंको स्मरण करे, जिन्हें आपने उसकी भलाईके लिये कहा था। कौरवोंकी सभामें पाण्डवोंकी निन्दा करते हुए कर्णने द्रौपदीसे जो कठोर बातें कहीं थी, उनके लिये आज उसे खूब पश्चात्ताप होगा। आज कर्णके मारे जानेपर धृतराष्ट्रके सभी पुत्र राजा दुर्योधनके साथ इस तरह भयभीत होकर भागेंगे, जैसे सिंहसे डरे हुए मृग भागते हैं। कर्णके पुत्र और मित्रोंको भी आज जीवित नहीं रहने दूँगा। सूतपुत्रकी मौत देखकर राजा दुर्योधन अब अपने लिये चिन्ता करे। आज राजा धृतराष्ट्रको उनके पुत्र-पौत्र, मन्त्री तथा सेवकोंसहित राज्यकी ओरसे निराश कर दूँगा। आज मैं अकेला ही कौरवों तथा बाह्लीकोंको सेनासहित मारकर अपने बाणोंकी ज्वालामें जला डालूँगा। मेरे एक हाथमें बाणकी तथा दूसरेमें बाणसहित दिव्य धनुषकी रेखाएँ हैं, पैरोंमें भी रथ और ध्वजाके चिह्न हैं। मेरे-जैसे लक्षणोंवाले योद्धाको कोई भी युद्धमें नहीं जीत सकता।'

भगवान्‌से ऐसा कहकर अद्वितीय वीर अर्जुन क्रोधसे लाल आँखें किये रणभूमिमें जा पहुँचे। उस समय उनके मनमें दो संकल्प थे—भीमसेनको संकटसे छुड़ाना और कर्णके मस्तकको धड़से अलग कर देना।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! मेरे पुत्रों तथा पाण्डव-सृञ्जयोंमें पहलेसे ही महाभयंकर संग्राम छिड़ा हुआ था। फिर जब अर्जुन वहाँ आ पहुँचे तो युद्धका स्वरूप कैसा हो गया ?

सञ्जयने कहा—राजन् ! उस समय अर्जुन घोड़े और सारथिसहित रथों, सवारसहित हाथियों और घोड़ों, पैदलों एवं सम्पूर्ण शत्रुओंको अपने बाण-समूहोंकी मारसे मृत्युके अधीन करने लगे। उनके पहुँचनेके पहले कृपाचार्य और शिखण्डी एक-दूसरेसे भिड़े थे। सात्यकिने दुर्योधनपर धावा किया था, श्रुतश्रवाका अश्वत्थामासे और युधामन्युका चित्रसेनके साथ युद्ध हो रहा था। उत्तमौजाने कर्णके पुत्र



सुषेणपर और सहदेवने शकुनिपर आक्रमण किया था। नकुलकुमार शतानीक और कर्णपुत्र वृषसेनमें मुकाबला हो रहा था। नकुलने कृतवर्मापर और धृष्टद्युम्नने सेनासहित कर्णपर चढ़ाई की थी। दुःशासनने संशप्तकोंकी सेना लेकर भीमसेनपर धावा किया था। उस संग्राममें उत्तमौजाने कर्णपुत्र सुषेणको अपने बाणोंका निशाना बनाकर उसका मस्तक काट गिराया। सुषेणका सिर पृथ्वीपर पड़ा देख कर्ण व्याकुल हो उठा। उसने क्रोधमें भरकर उत्तमौजाके घोड़ोंको मार डाला और पैने बाणोंसे उसके ध्वजा तथा रथकी भी धज्जियाँ उड़ा दीं। उत्तमौजा भी अपने तीखे बाणों तथा चमकती हुई तलवारसे कृपाचार्यके पार्श्वरक्षकों एवं घोड़ोंको

मारकर शिखण्डीके रथपर जा चढ़ा। रथपर बैठे हुए शिखण्डीने कृपाचार्यको रथहीन देख उनपर प्रहार करनेका विचार छोड़ दिया। तदनन्तर, अश्वत्थामाने आगे आकर कृपाचार्यके रथको अपने पीछे छिपा दिया और उनका उस रणसे उद्धार किया। दूसरी ओर भीमसेन अपने पैने बाणोंकी मारसे आपके पुत्रोंकी सेनाको अत्यन्त संताप देने लगे।

उस घमासान युद्धमें बहुत-से शत्रुओंद्वारा घिरे हुए भीमसेन अपने सारथिसे बोले—'सारथे ! तू घोड़ोंको तेज हाँककर मुझे शीघ्र धृतराष्ट्रके पुत्रोंके पास ले चल, आज उन सबको मैं यमलोक पहुँचाये देता हूँ।' आज्ञा पाते ही सारथिने घोड़ोंकी चाल तेज की और तुरंत ही रथ लिये आपके पुत्रोंकी सेनामें जा पहुँचा। कौरव-पक्षके योद्धा भी सब ओरसे हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंको साथ ले आगे बढ़ आये। भीमके रथपर चारों ओरसे बाणोंकी बौछार होने लगी और भीम उन सबको अपने बाणोंसे काटने लगे। उन्होंने शत्रुओंके छोड़े हुए प्रत्येक बाणके दो-दो, तीन-तीन टुकड़े कर डाले। तदनन्तर, उनके द्वारा मारे गये हाथी , घोड़े, रथ और पैदल जवानोंका चीत्कार सुनायी देने लगा। भीमसेनके बाणोंकी मारसे राजाओंके अङ्ग विदीर्ण हो रहे थे, तो भी उन्होंने उनपर सब ओरसे धावा कर दिया। तब भीमने अपना प्रचण्ड वेग प्रकट किया, जिसे शत्रु रोक न सके। महात्मा भीमके द्वारा भस्म होती हुई आपकी सेना भयभीत हो रणसे भाग चली। यह देख भीम प्रसन्न होकर पुनः अपने सारथिसे बोले—'सूत ! ये जो ध्वजाओंसहित बहुत-से रथ इस ओर बढ़ते चले आ रहे हैं ये अपने हैं या शत्रुओंके ? इसकी पहचान कर लेना। युद्ध करते समय मुझे अपने-परायेका ज्ञान नहीं रहता। कहीं ऐसा न हो कि अपनी ही सेनाको बाणोंसे आच्छादित कर डालूँ। विशोक ! राजा युधिष्ठिर बाणोंके प्रहारसे बहुत घबराये हुए हैं। इधर, अर्जुन उन्हें देखने गये थे, सो अभीतक नहीं लौटे। पता नहीं, राजा अबतक जीवित हैं या नहीं ? अर्जुनका भी समाचार नहीं मिला। इससे मुझे बड़ा खेद हो रहा है तो भी मैं शत्रुओंकी प्रचण्ड सेनाका संहार करूँगा। तू मेरे रथपर रखे हुए सभी तरकसोंकी जाँच कर ले, अब उनमें कितने बाण बाकी रह गये हैं। किस-किस तरहके बाण बचे हैं और उनकी संख्या कितनी है ? यह सब समझकर बता।'

विशोकने कहा—वीरवर ! अब अपने पास साठ हजार मार्गण हैं, दस-दस हजार क्षुर और भल्ल हैं, दो हजार नाराच बचे हैं तथा तीन हजार प्रदर हैं। अभी इतने अस्त्र-शस्त्र बाकी रह गये हैं कि छः बैलोंसे जुता हुआ छकड़ा भी उन्हें नहीं खींच सकता। गदाएँ तथा तलवारें हजारोंकी संख्यामें पड़ी हैं। प्रास, मुद्‌गर, शक्ति और तोमर भी बहुत हैं। आप इसके डरमें न रहें कि हमारे अस्त्र-शस्त्र जल्दी समाप्त हो जायँगे।

भीमसेन बोले—सूत ! आज अकेले मैं ही समस्त कौरवोंको मार गिराऊँगा या वे ही मुझे पीड़ित करेंगे। इस



समय देवतालोग मेरा एक ही काम सिद्ध कर दें; जैसे यज्ञमें आवाहन करते ही इन्द्र आ पहुँचते हैं, उसी प्रकार अर्जुन भी यहाँ आ जायँ। विशोक ! इस छिन्न-भिन्न होती हुई कौरव-सेनाकी ओर तो दृष्टि डाल, ये राजालोग क्यों भाग रहे हैं ? मुझे तो स्पष्ट जान पड़ता है कि नरश्रेष्ठ अर्जुन यहाँ आ पहुँचे, वे ही अपने बाणोंसे सम्पूर्ण सेनाको आच्छादित कर रहे हैं। कौरवोंपर मोह छा गया है, सब-के-सब भाग रहे हैं। रणमें हाहाकार मचा है। हाथी बड़े जोरोंसे चिग्घाड़ रहे हैं।

विशोकने कहा—कुमार भीमसेन ! क्रोधमें भरे हुए अर्जुनके द्वारा खींचे जानेवाले गाण्डीव धनुषकी भयंकर टंकार क्या तुम्हें नहीं सुनायी देती ? पाण्डुनन्दन ! लो, तुम्हारी सारी कामनाएँ पूरी हुईं, उधर देखो, हाथियोंकी सेनामें अर्जुनके रथकी ध्वजाका वानर दिखायी देता है। वह ध्वजाके ऊपर चढ़कर शत्रुओंको भयभीत करता हुआ चारों ओर देख रहा है। मैं स्वयं भी उसे देखकर डर रहा हूँ। अर्जुनका वह विचित्र

मुकुट, जिसमें सूर्यके समान चमकीली मणि लगी हुई है, कितना सुन्दर है ? उनकी बगलमें देवदत्त नामवाला श्वेत शङ्ख है। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके पार्श्वमें सूर्यके समान कान्तिमान् चक्र है, जो उनका यश बढ़ानेवाला है। यदुवंशी सदा उसकी पूजा किया करते हैं। श्रीकृष्णके पास उनका पाञ्चजन्य भी है, जो चन्द्रमाके समान उज्ज्वल है। देखो, भगवान्के वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि तथा वैजयन्ती माला कैसी शोभा पा रही है ? निश्चय ही श्यामसुन्दर घोड़े हाँकते हैं और महारथी अर्जुन शत्रुओंकी सेनाको खदेड़ते हुए इधर ही आ रहे हैं। वह देखो, अर्जुनने अपने बाणोंसे घोड़े और सारथिसहित चार सौ रथियोंको मार डाला, सात सौ हाथियोंका सफाया किया और हजारों घुड़सवारों तथा पैदलोंको मौतके घाट उतार दिया है। इस प्रकार कौरव-योद्धाओंका संहार करते हुए महाबली अर्जुन अब तुम्हारे ही पास आ रहे हैं। तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया।

भीमसेन बोले—विशोक ! तुमने बड़ा प्रिय समाचार सुनाया, इससे मुझे बड़ी खुशी हुई है, इस शुभ-संवादके लिये मैं तुम्हें चौदह गाँवोंकी जागीर दूँगा। साथ ही सौ दासियाँ तथा बीस रथ भी तुम्हें पारितोषिकके रूपमें मिलेंगे।



अर्जुन और भीमसेनके द्वारा कौरव-सेनाका संहार, भीमके हाथसे शकुनिका मूर्च्छित होना

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! जैसे देवराज इन्द्रने हाथमें वज्र लेकर जम्भासुरको मारनेके लिये यात्रा की थी, उसी प्रकार अर्जुनने भी रथमें बैठकर विजयके लिये यात्रा की। उन्हें आते देख कौरव-पक्षके नरवीर क्रोधमें भरकर रथ, घोड़े, हाथी और पैदलोंको साथ ले अर्जुनके सामने चढ़ आये। फिर तो त्रिलोकीका राज्य पानेके लिये जैसे असुरोंके साथ देवताओं और भगवान् विष्णुका युद्ध हुआ, उसी प्रकार उन योद्धाओंके साथ अर्जुनका संग्राम होने लगा। वह संग्राम देह, प्राण और पापोंका नाश करनेवाला था। उस समय कौरववीरोंने छोटे-बड़े जितने अस्त्रोंका प्रयोग किया, उन सबको क्षुर, अर्धचन्द्र तथा तीखे भल्लोंसे अर्जुनने अकेले ही काट डाला। इतना ही नहीं, उन्होंने उनके मस्तक और भुजाएँ काटकर छत्र, चवँर, ध्वजा, घोड़े, रथ, पैदल तथा हाथी आदिको भी नष्ट कर दिया। वे सब विरूप हो-होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। इस प्रकार धनञ्जय अपने वज्रके समान बाणोंसे शत्रुओंके घोड़े, हाथी और रथ आदिकी धज्जियाँ उड़ाकर कर्णको मार डालनेकी इच्छासे तुरंत उसके पास जा पहुँचे। उन्हें वहाँ देख आपके सैनिक रथी, घुड़सवार, हाथीसवार तथा पैदलोंकी सेना साथ लेकर पुनः उनपर टूट पड़े और एक साथ होकर उन्हें पैने बाणोंसे बींधने लगे। तब अर्जुनने भी अपने बाण उठाये और उनकी मारसे हजारों रथियों, हाथीसवारों तथा घुड़सवारोंको यमलोक भेज दिया। इस प्रकार जब कौरव महारथियोंपर अर्जुनके बाणोंकी मार पड़ी तो वे भयभीत होकर इधर-उधर छिपने लगे। तो भी उन्होंने उनमेंसे चार सौ महारथियोंको तीखे बाण मारकर यमलोकका अतिथि बना ही दिया। तरह-तरहके तीखे तीरोंकी चोट खाकर वे धैर्य खो बैठे और अर्जुनको छोड़कर सब ओर भाग निकले। इस प्रकार उस सेनाको खदेड़कर अर्जुनने सूतपुत्रकी सेनापर धावा किया। इसी समय प्रतापी भीमसेनने अर्जुनके शुभागमनका समाचार सुना। फिर तो वे अपने प्राणोंकी भी परवा न करके आपकी सेनाको कुचलने लगे। उस समय उनके अलौकिक बलको देख कौरव-सैनिकोंके होश उड़ गये।



तब राजा दुर्योधनने अपने महान् धनुर्धर योद्धाओंको आदेश दिया—'वीरो ! मार डालो भीमसेनको, इसके मारे

जानेपर मैं पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाको मरी हुई ही मानता हूँ।' राजाओंने आपके पुत्रकी आज्ञा स्वीकार की और भीमसेनको चारों ओरसे घेरकर उनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। तब भीमने भी बाणोंकी झड़ी लगायी और उस महासेनामें दरार बनाकर वे घेरेसे बाहर निकल आये। तत्पश्चात् उन्होंने दस हजार हाथियों, दो लाख दो सौ पैदलों, पाँच हजार घोड़ों और एक सौ रथोंका संहार करके खूनकी नदी बहा दी। महारथी भीम शत्रुओंकी सेनामें जिस ओर घुस जाते, उधर ही लाखों योद्धाओंका सफाया कर डालते थे। उनका यह पराक्रम देख दुर्योधनने शकुनिसे कहा—'मामाजी! आप महाबली भीमको परास्त कीजिये, इसको जीत लेनेपर मैं पाण्डवोंकी विशाल सेनाको भी जीती हुई ही समझता हूँ।'

यह सुनकर शकुनिने महान् संग्राम करनेके लिये तैयार हो अपने भाइयोंको भी साथ लिया और भीमसेनके पास पहुँचकर उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया। अब भीमसेन शकुनिकी ओर मुड़े। शकुनिने उनकी छातीमें बायें किनारेपर अनेकों तीखे नाराचोंसे प्रहार किया। वे भीमका कवच छेदकर शरीरके भीतर धँस गये। उनसे अत्यन्त घायल होकर भीमने बड़े रोषके साथ शकुनिपर एक बाण चलाया; किंतु शकुनिने उसके सात टुकड़े कर डाले। फिर दो भल्लोंसे सारथिको और सातसे भीमसेनको बींध डाला। इसके बाद एक भल्लसे ध्वजा और दोसे छत्र काट दिया। फिर चार बाणोंसे भीमके चारों घोड़ोंको भी घायल कर दिया।

तब भीमसेनको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सुबल-पुत्रपर लोहेकी बनी हुई एक शक्ति चलायी। पास आते ही शकुनिने उस शक्तिको हाथसे पकड़ लिया और उसे फिर भीमपर ही चला दिया। भीमकी बायीं भुजापर चोट करती हुई वह शक्ति जमीनपर जा पड़ी। अब भीमने प्राणोंकी परवा न करके अपने बाणोंसे शकुनिकी सेनाको आच्छादित कर दिया। फिर उसके चारों घोड़ों तथा सारथिको मारकर एक भल्लसे उसके रथकी ध्वजा भी काट डाली। शकुनि तुरंत ही रथसे कूदकर एक ओर खड़ा हो गया और धनुष टंकारता हुआ भीमपर चारों ओरसे बाणोंकी वृष्टि करने लगा। यह देख प्रतापी भीमने बड़े वेगसे उसपर आघात किया, फिर उसका धनुष काटकर उसे तीखे बाणोंसे बींध डाला। बलवान् शत्रुके आघातसे अत्यन्त घायल होकर शकुनि पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे मूर्च्छित जानकर आपका पुत्र दुर्योधन आया और उसे अपने रथपर बिठाकर रणभूमिसे दूर हटा ले गया। अब तो कौरव-योद्धा भयभीत होकर चारों दिशाओंमें भागने लगे और भीमसेन सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करते हुए बड़े वेगसे उनका पीछा करने लगे। उनकी मारसे पीड़ित हो वे सब-के-सब योद्धा कर्णकी शरणमें गये। महाराज! उस समय कर्ण ही उनका रक्षक हुआ।



कर्णकी मारसे पाण्डवसेनाका पलायन, श्रीकृष्ण और अर्जुनको आते देख शल्य और कर्णकी बातचीत तथा अर्जुनद्वारा कौरव-सेनाका विध्वंस

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! भीमसेनने जब कौरव योद्धाओंको तितर-बितर कर दिया, उस समय दुर्योधन, शकुनि, कर्ण, कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा अथवा दुःशासनने क्या कहा? सूतपुत्रने कौन-सा पराक्रम किया? मेरे पुत्रों तथा अन्य दुर्द्धर्ष राजाओंने क्या काम किया? ये सारी बातें बताओ।

सञ्जयने कहा—महाराज! उस दिन तीसरे पहरमें प्रतापी सूतपुत्रने भीमसेनके देखते-देखते समस्त सोमकोंका संहार कर डाला तथा भीमसेनने भी कौरवोंकी अत्यन्त बलवती सेनाका विध्वंस कर दिया। तत्पश्चात् कर्णने शल्यसे कहा—'अब मेरा रथ पाञ्चालोंकी ओर ही ले चलो।' सेनापतिकी आज्ञा पाकर मद्रराजने अपने घोड़ोंको चेदि, पञ्चाल तथा करूषदेशीय वीरोंकी ओर बढ़ाया। कर्णका रथ देखते ही पाण्डव और पञ्चाल वीर थर्रा उठे। तदनन्तर कर्ण अपने सैकड़ों बाणोंसे मारकर पाण्डव-सेनाके सौ-सौ तथा हजार-हजार वीरोंको गिराने लगा। यह देख पाण्डव-पक्षके अनेकों महारथियोंने पहुँचकर कर्णको चारों ओरसे घेर लिया। उस समय सात्यकिने तेज किये हुए बीस बाणोंसे कर्णके गलेकी हँसलीमें प्रहार किया। फिर शिखण्डीने पचीस, धृष्टद्युम्नने सात, द्रौपदीके पुत्रोंने चौंसठ, सहदेवने सात और नकुलने सौ बाण मारकर कर्णको घायल कर डाला। इसी प्रकार भीमसेनने कर्णकी हँसलीपर नब्बे बाण मारे।

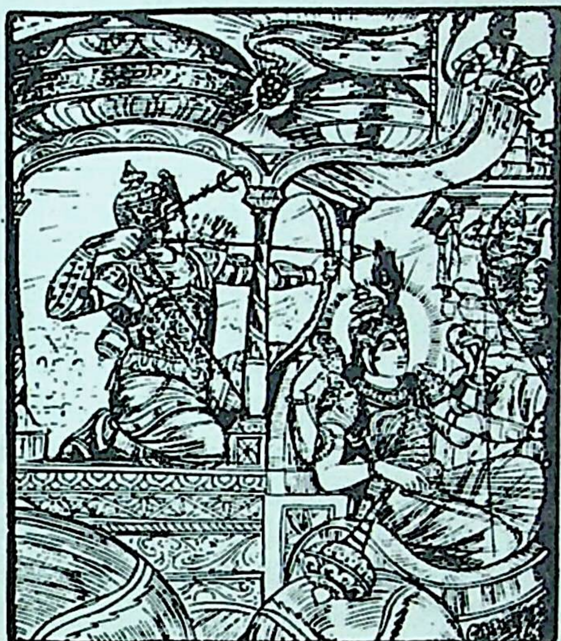
तदनन्तर, सूतपुत्रने हँसकर अपने धनुषकी टंकार की और तेज किये हुए बाणोंका प्रहारकर उन सब योद्धाओंको



बींध डाला। उसने सात्यकिका धनुष और ध्वजा काटकर उसकी छातीमें नौ बाणोंका प्रहार किया। फिर क्रोधमें भरकर भीमको भी तीस बाणोंसे घायल किया। एक भल्लसे सहदेवकी ध्वजा काटकर तीन बाणोंसे उसके सारथिको भी मार डाला तथा द्रौपदीके पुत्रोंको रथहीन कर दिया। यह सारा काम पलक मारते-मारते हो गया। देखनेवालोंके लिये यह बड़े आश्चर्यकी बात हुई। महारथी कर्णने चेदि तथा मत्स्य देशके योद्धाओंको भी अपने तीखे तीरोंका निशाना बनाया। उसकी मार खाकर वे भयभीत होकर भाग चले। कर्णका यह अद्‌भुत पराक्रम मैंने अपनी आँखों देखा था। जैसे भेड़िया पशुओंको भयभीत करके भगा देता है, उसी प्रकार कर्णने पाण्डव-योद्धाको आतङ्कित करके खदेड़ दिया। पाण्डवोंकी सेनाको भागती देख कौरवपक्षके धनुर्धर योद्धा भैरव-गर्जना करते हुए सामनेकी ओर बढ़ आये। राजा दुर्योधन अत्यन्त आनन्दमें भरकर तरह-तरहके बाजे बजवाने लगा। बाजोंकी आवाज सुनकर पाञ्चाल-महारथी मरनेकी परवा न करके वहाँ लौट आये। कर्णने उनमेंसे बहुतोंके पाँव उखाड़ दिये। पञ्चालदेशके बीस रथियों तथा चेदिदेशके सैकड़ों योद्धाओंको भी अपने सायकोंसे यमलोक पहुँचा दिया। इस प्रकार पाण्डवपक्षके बहुत-से योद्धाओंका नाश हो गया और महाबली भीमके सामने युद्ध करनेसे आपके भी बहुत-से वीर मारे गये।

इधर, अर्जुन कौरवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका विनाश करके जब आगे बढ़े तो क्रोधमें भरे हुए सूतपुत्रपर उनकी दृष्टि पड़ी, तब उन्होंने भगवान् वासुदेवसे कहा—'जनार्दन! वह देखिये, रणमें सूतपुत्रकी ध्वजा दिखायी दे रही है तथा ये भीमसेन आदि योद्धा कौरव-महारथियोंसे लड़ रहे हैं। इधर, पाञ्चाल योद्धा कर्णके भयसे भागे जाते हैं। उधर कर्णके संरक्षणमें रहकर कृपाचार्य, कृतवर्मा तथा अश्वत्थामा राजा दुर्योधनकी रक्षा कर रहे हैं। यदि हमलोगोंने इन्हें मारा नहीं तो ये सोमकोंका संहार कर डालेंगे। अतः मेरा विचार यह है कि आप महारथी कर्णके पास मुझे ले चलें, अब मैं संग्राममें कर्णका वध किये बिना पीछे नहीं लौटूँगा।'

तब भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके साथ द्वैरथ युद्ध करानेके लिये आपकी सेनामें कर्णकी ओर अपना रथ बढ़ाया। वे रथपर बैठे-ही-बैठे चारों ओर खड़ी हुई पाण्डव-सेनाको धीरज बँधाते जाते थे। वीरवर अर्जुन आपकी सेनाको परास्त करते हुए आगे बढ़ रहे थे। श्वेत घोड़ेवाले रथपर बैठकर अपने सारथि भगवान् कृष्णके साथ अर्जुनको आते देख मद्रराज शल्यने कर्णसे कहा—'कर्ण! तुम दूसरे लोगोंसे जिनका पता पूछते फिरते थे, वे कुन्तीनन्दन अर्जुन अपना गाण्डीव धनुष लिये हुए सामने खड़े हैं, वह उनका रथ आ रहा है। यदि आज उन्हें मार डालोगे तो हमलोगोंका भला होगा। अर्जुनके धनुषकी प्रत्यञ्चामें चन्द्रमा एवं ताराओंके चिह्न हैं, उनकी ध्वजाके शिखरपर भयंकर वानर दिखायी पड़ता है, जो चारों ओर ताक-ताककर वीरोंका भी भय बढ़ा रहा है। ये अर्जुनके रथपर बैठकर घोड़े हाँकते हुए भगवान् श्रीकृष्णके शङ्ख, चक्र, गदा तथा शार्ङ्ग-धनुष दीख रहे हैं। यह गाण्डीव टंकार रहा है तथा अर्जुनके छोड़े हुए तीखे तीर शत्रुओंके प्राण ले रहे हैं। आज यह रणभूमि राजाओंके कटे हुए मस्तकोंसे पटी जा रही है। पुण्य क्षीण होनेपर स्वर्गसे गिरनेवाले प्राणियोंकी तरह ये नाना देशोंके नरेश अपने रथोंसे गिरकर धराशायी हो रहे हैं। जैसे सिंह हजारों हरिणोंके झुंडको घबराहटमें डाल देता है, उसी



प्रकार अर्जुनने अपने शत्रुओंकी सेनाको अत्यन्त व्याकुल कर डाला है। अर्जुन तनिक-सी देरमें बहुसंख्यक शत्रुओंका अन्त कर देते हैं, इसीलिये उनके भयसे यह कौरव-सेना चारों ओरसे छिन्न-भिन्न हो रही है। यह देखो, अर्जुन सब सेनाओंको छोड़कर तुम्हारे पास पहुँचनेकी जल्दी कर रहे हैं। भीमसेनको पीड़ित देख वे क्रोधसे तमतमा उठे हैं, इसलिये आज तुम्हारे सिवा और किसीसे युद्ध करनेके लिये नहीं रुक सकेंगे। तुमने धर्मराजको रथहीन करके उन्हें बहुत घायल कर डाला है, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र, सात्यकि, उत्तमौजा, नकुल तथा सहदेवको भी तुम्हारे हाथों बहुत चोट पहुँची है; यह सब देखकर अर्जुनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयी हैं, वे समस्त राजाओंका संहार करनेकी इच्छासे अकेले ही तुम्हारे ऊपर चढ़े आ रहे हैं। कर्ण ! अब तुम भी इनका सामना करनेके लिये आगे बढ़ो, क्योंकि तुम्हारे सिवा, दूसरा कोई धनुर्धर ऐसा नहीं है, जो अर्जुनसे लोहा ले सके। केवल तुम्हीं युद्धमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको परास्त करनेकी शक्ति रखते हो, तुम्हारे ही ऊपर यह भार रखा गया है; अतः धनञ्जयका मुकाबला करो। तुम भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा तथा कृपाचार्यके समान बली हो, इस महासमरमें आगे बढ़ते हुए अर्जुनको रोको। देखो, ये कौरव-सेनाके महारथी अर्जुनके भयसे भागे जाते हैं, सूतनन्दन ! तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा वीर नहीं है, जो इनका भय दूर करे। ये समस्त कौरव तुम्हें दीपके समान अपना रक्षक मानकर तुम्हारे ही पास आ रहे हैं और तुमसे शरण पानेकी आशा रखकर यहाँ खड़े हुए हैं।'

कर्णने कहा—शल्य ! अब तुम राहपर आये हो और मुझसे सहमत जान पड़ते हो। महाबाहो ! अर्जुनसे भय न करो। आज मेरी इन भुजाओं और शिक्षाका बल देखना। मैं अकेला ही पाण्डवोंकी विशाल सेना तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध करूँगा। यह तुमसे सच्ची बात बता रहा हूँ। उन दोनों वीरोंको मारे बिना आज मैं किसी तरह पीछे पैर नहीं हटाऊँगा। दोमेंसे एक काम करके कृतार्थ होऊँगा—या तो उन्हें मारूँगा या स्वयं मर जाऊँगा।

शल्यने कहा—कर्ण ! महारथी लोग अर्जुनको अकेले होनेपर भी युद्धमें जीतना असम्भव मानते हैं, फिर जब वे श्रीकृष्णसे सुरक्षित हों, तब तो कहना ही क्या है? ऐसी दशामें यहाँ उन्हें जीतनेका साहस कौन कर सकता है?

कर्णने कहा—मैं मानता हूँ, अर्जुन-जैसा महारथी इस संसारमें कभी हुआ ही नहीं। उनके हाथ प्रत्यञ्चाके चिह्नसे अङ्कित हैं, उनमें न कभी पसीना आता है और न वे काँपते ही हैं। अर्जुनका धनुष भी मजबूत है। वे बड़े कार्यकुशल और शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले हैं। पाण्डुनन्दन अर्जुनके समान दूसरा योद्धा कहीं है ही नहीं। उनके बाण दो मीलतकके निशाने मारनेमें नहीं चूकते फिर उनके-जैसा योद्धा इस पृथ्वीपर कौन हो सकता है? अतिरथी वीर अर्जुनने केवल श्रीकृष्णकी सहायतासे खाण्डव-वनमें अग्निदेवको तृप्त किया था, जहाँ महात्मा श्रीकृष्णको चक्र मिला और पाण्डुनन्दनको गाण्डीव धनुष, श्वेत घोड़ोंसे जुता हुआ रथ, कभी खाली न होनेवाले दो तरकस तथा बहुत-से दिव्यास्त्र प्राप्त हुए। ये सभी वस्तुएँ अग्निदेवने भेंट की थीं। इसी प्रकार उन्होंने इन्द्रलोकमें जाकर असंख्य कालकेयोंका संहार किया था, जहाँ उन्हें देवदत्त नामक शङ्खकी प्राप्ति हुई। अतः इस भूमण्डलमें उनसे बढ़कर योद्धा कौन होगा? जिन महानुभावने अपनी सुन्दर युद्धकलाके द्वारा साक्षात् महादेवजीको प्रसन्न किया और उनसे अत्यन्त भयंकर पाशुपतनामक महान् अस्त्र प्राप्त किया, जो त्रिभुवनका संहार करनेमें समर्थ है। जिन्हें समस्त लोकपालोंने अलग-अलग अनेकों अनुपम दिव्यास्त्र प्रदान किये हैं तथा जिन्होंने विराटनगरमें अकेले ही हम सब महारथियोंको जीतकर सारा गोधन छीन लिया और महारथियोंके वस्त्र भी उतार लिये, ऐसे पराक्रम और गुणोंसे सम्पन्न अर्जुनको, जिनके साथ श्रीकृष्ण भी मौजूद हैं,

युद्धके लिये ललकारना बहुत बड़े दुःसाहसका काम है—इस बातको मैं भी अच्छी तरह समझता हूँ। इसके सिवा, समस्त संसार मिलकर जिनके गुणोंको दस हजार वर्षोंमें भी नहीं गिन सकता, जो शङ्ख, चक्र और खड्ग धारण करनेवाले हैं, वे अनन्तपराक्रमी साक्षात् भगवान् नारायण ही अर्जुनकी रक्षा कर रहे हैं। श्रीकृष्ण और अर्जुनको एक रथपर बैठे देख मुझे भय लगता है, हृदय काँप उठता है। अर्जुन समस्त धनुर्धारियोंसे बढ़कर हैं तथा चक्रयुद्धमें नारायण-स्वरूप श्रीकृष्णका मुकाबला करनेवाला भी कोई नहीं है। वे दोनों वीर ऐसे पराक्रमी हैं। हिमालय अपने स्थानसे हट जाय, पर श्रीकृष्ण और अर्जुन नहीं विचलित हो सकते। वे दोनों महारथी, शूरवीर और अस्त्र विद्याके विद्वान् हैं, दोनोंके ही अस्त्र-शस्त्र सुदृढ़ हैं। शल्य ! बताओ तो सही, ऐसे पराक्रमी, श्रीकृष्ण और अर्जुनका मुकाबला मेरे सिवा दूसरा कौन कर सकता है ? आज ऐसा युद्ध होगा, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। या तो मैं ही इन दोनोंको मार गिराऊँगा या ये ही मेरा वध कर डालेंगे।

ऐसा कहकर शत्रुहन्ता कर्णने मेघके समान गर्जना की। फिर वह आपके पुत्र दुर्योधनके निकट गया। दुर्योधनने उसका अभिनन्दन किया और छातीसे लगाया। तब कर्णने कुरुराज दुर्योधन, कृपाचार्य, कृतवर्मा, भाइयोंसहित शकुनि, अश्वत्थामा और अपने छोटे भाईसे तथा हाथीसवार, घुड़सवार एवं पैदल सैनिकोंसे कहा—'राजाओ ! आपलोग श्रीकृष्ण और अर्जुनपर धावा करके उन्हें चारों ओरसे घेर लें और सब ओरसे युद्ध छेड़कर अच्छी तरह थका डालें। आपके द्वारा जब वे बहुत घायल हो जायँगे तो मैं उन दोनोंको सुगमतासे मार सकूँगा।' 'बहुत अच्छा' कहकर अर्जुनको मारनेकी इच्छासे वे सभी वीर उनपर टूट पड़े और अपने बाणोंका प्रहार करने लगे।

उन महारथियोंके चलाये हुए बाणोंको अर्जुनने हँसते-हँसते काट डाला और आपकी सेनाको भस्म करना आरम्भ किया। यह देख कृपाचार्य, कृतवर्मा, दुर्योधन तथा अश्वत्थामा अर्जुनकी ओर दौड़े और उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। अर्जुनने अपने सायकोंसे उनके बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और बड़ी फुर्तीके साथ उन्होंने प्रत्येक महारथीकी छातीमें तीन-तीन बाण मारे। तब अश्वत्थामाने दस बाणोंसे धनञ्जयको, तीनसे श्रीकृष्णको और चारसे उनके चारों घोड़ोंको बींध डाला, फिर उनकी ध्वजापर बैठे हुए वानरको उसने अनेकों बाणों तथा नाराचोंका निशाना बनाया। यह देख अर्जुनने तीन बाणोंसे अश्वत्थामाके धनुषको, एकसे सारथिके मस्तकको, चार सायकोंसे उसके चारों घोड़ोंको तथा तीनसे उनकी ध्वजाको काटकर रथसे नीचे गिरा दिया। इसके बाद उन्होंने कृपाचार्यके भी बाणसहित धनुष, ध्वजा, पताका, घोड़े तथा सारथिको नष्ट कर दिया। फिर उन्हें भी हजारों बाणोंके घेरेमें कैद कर लिया। तत्पश्चात् अर्जुनने दहाड़ते हुए दुर्योधनके ध्वजा और धनुष काट दिये, कृतवर्माके घोड़ोंको मार डाला तथा उसके रथकी ध्वजा भी खण्डित कर दी। फिर बड़ी फुर्तीके साथ उन्होंने आपकी सेनाके घोड़ों, सारथियों, तरकसों, ध्वजाओं, हाथियों और रथोंका सफाया कर डाला। उस समय आपकी विशाल सेना छिन्न-भिन्न होकर इधर-उधर बिखर गयी।



अर्जुन और भीमसेनके द्वारा कौरववीरोंका संहार तथा कर्णका पराक्रम

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! दूसरी ओर कौरवोंके प्रधान-प्रधान वीरोंने भीमसेनपर धावा किया था। कुन्तीनन्दन भीम कौरव-समुद्रमें डूबना ही चाहते थे कि अर्जुन उन्हें उबारनेकी इच्छासे वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने सूतपुत्रकी सेनाको छोड़कर कौरवोंपर चढ़ाई की और शत्रुवीरोंको यमलोक भेजना आरम्भ कर दिया। अर्जुनके छोड़े हुए बाण आकाशमें पहुँचकर फैले हुए जालके समान दिखायी देते थे। जहाँ पक्षियोंके झुंड उड़ा करते थे, उस आकाशको बाणोंसे व्याप्त कर धनञ्जय कौरवोंके काल बन गये। वे भल्लों, क्षुरप्रों तथा उज्ज्वल नाराचोंसे शत्रुओंके अङ्ग-अङ्ग छेद डालते और मस्तक काट लेते थे। रणभूमि गिरे हुए और गिरते हुए योद्धाओंकी लाशोंसे ढक गयी थी। अर्जुनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुए रथ, हाथी और घोड़ोंके कारण वहाँकी जमीन-वैतरणी नदीके समान अगम्य हो गयी थी, उसे देखकर बड़ा भय मालूम होता था, उधर देखना कठिन हो रहा था। उस समय क्रूर महावतोंकी प्रेरणासे चार सौ हाथी चढ़ आये, जिन्हें अर्जुनने बाणोंसे मार गिराया। जैसे समुद्रमें तूफानके आघातसे जहाज टूट-फूट

जाता है, उसी प्रकार उनके सायकोंकी मारसे कौरव-सेना छिन्न-भिन्न हो गयी। गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए नाना प्रकारके बाण बिजलीकी भाँति आपकी सेनाको दग्ध करने लगे। जिस प्रकार बहुत बड़े जंगलमें दावाग्निसे डरे हुए मृग इधर-उधर भागते हैं वैसे ही रणभूमिमें अर्जुनके बाणोंसे आहत हुई कौरव-सेना चारों ओर भाग चली। जब समस्त कौरव युद्धसे विमुख हो गये तो विजयी अर्जुनने भीमसेनके पास पहुँचकर थोड़ी देर विश्राम किया। फिर, भीमसे मिलकर उन्होंने कुछ सलाह की और यह बताया कि 'राजा युधिष्ठिरके शरीरसे बाण निकाल दिये गये हैं; तथा इस समय वे अच्छी तरहसे हैं।' इस प्रकार कुशल-मङ्गल कहकर भीमसेनकी आज्ञा ले अर्जुन कर्णकी सेनाकी ओर चल दिये। इसी समय आपके दस वीरोंने अर्जुनको घेर लिया और उन्हें बाणोंसे पीड़ित करना आरम्भ किया। परंतु भगवान् श्रीकृष्णने रथ बढ़ाकर उन्हें अपने दाहिने भागमें कर दिया। अर्जुनके रथको दूसरी ओर जाते देख वे पुनः उनपर टूट पड़े। तब उन्होंने उनके रथकी ध्वजा, धनुष और सायकोंको नाराचों तथा अर्धचन्द्रोंसे तुरंत काट गिराया, फिर दूसरे दस भल्लोंसे उनके मस्तक उड़ा दिये। इस प्रकार उन दस कौरवोंको मौतके घाट उतारकर अर्जुन आगे बढ़े।

उन्हें जाते देख कौरव-पक्षके संशप्तक योद्धा, जिनकी संख्या नब्बे थी। युद्धके लिये अग्रसर हुए। उन्होंने यह शपथ लेकर कि 'यदि पीछे हटें तो हमें परलोकमें उत्तम गति न मिले' अर्जुनको सब ओरसे घेर लिया। भगवान् श्रीकृष्णने उनकी परवा न करके अपने तेज चलनेवाले घोड़ोंको कर्णके रथकी ओर हाँक दिया। यह देख संशप्तकोंने उनपर बाणोंकी वृष्टि करते हुए पीछा किया। तब अर्जुनने पैने बाणोंसे उनके सारथि, धनुष और ध्वजाको नष्ट करके उन्हें भी यमलोक पहुँचा दिया। उनके मारे जानेपर कौरव-महारथियोंने रथ, हाथी तथा घोड़ोंकी सेना लेकर अर्जुनपर धावा किया, उस समय उनके मनमें तनिक भी भय नहीं था। उन्होंने पास आते ही शक्ति, ऋष्टि, तोमर, प्रास, गदा, तलवार तथा बाणोंसे अर्जुनको ढक दिया। उनकी शस्त्रवर्षा आकाशमें चारों ओर छा गयी, किंतु अर्जुनने बाण मारकर उसे तुरंत ही नष्ट कर डाला। इसके बाद आपके पुत्र दुर्योधनकी आज्ञा पाकर तेरह सौ मतवाले हाथियोंपर बैठे हुए म्लेच्छजातिके योद्धा अर्जुनकी दोनों बगलमें चोट करने लगे। वे कर्णि, नालीक, नाराच, तोमर, प्रास, शक्ति, मुसल और भिन्दिपालोंकी मारसे पार्थको पीड़ा देने लगे। तब अर्जुनने तीखे भल्लों और अर्धचन्द्राकार बाणोंसे म्लेच्छोंद्वारा की हुई शस्त्रवर्षाको शान्त कर दिया। फिर नाना प्रकारके बाणोंसे हाथियोंको उनके सवारोंसहित



मार डाला। जब अधिकांश सेना नष्ट हो गयी तो बचे-खुचे लोग व्याकुल होकर भाग चले। उस समय भीमसेन अर्जुनके पास आ पहुँचे और मरनेसे बचे हुए घुड़सवारोंको अपनी गदासे नष्ट करने लगे। उन्होंने बहुत-से हाथियों और पैदलोंपर भी उस भयंकर गदाका प्रहार किया। उसके आघातसे योद्धाओंके सिर फूटे, हड्डियाँ टूटीं और पाँव उखड़ गये तथा वे आर्तनाद करते हुए पृथ्वीपर गिर गये। इस प्रकार दस हजार पैदलोंका सफाया करके क्रोधमें भरे हुए भीम हाथमें गदा लिये इधर-उधर विचरने लगे। महाराज ! उस समय आपके सैनिकोंने गदाधारी भीमको देखकर यही समझा कि साक्षात् यमराज ही कालदण्ड लिये यहाँ आ पहुँचे हैं। अब भीमने हाथियोंकी सेनामें प्रवेश किया और अपनी बड़ी भारी गदा लेकर एक ही क्षणमें सबको यमलोक पहुँचा दिया। गजसेनाका संहारकर महाबली भीम पुनः अपने रथपर आ बैठे और अर्जुनके पीछे-पीछे चलने लगे।

तदनन्तर, कौरवोंमें बड़े जोरसे आर्तनाद होने लगा। हाथी, घोड़े तथा पैदलोंके प्राण लेनेवाले अर्जुनके बाणोंकी मारसे सब लोग हाहाकार मचा रहे थे, सबपर अत्यन्त भय छा गया था, सभी एक-दूसरेकी आड़में छिपना चाहते थे। इस तरह आपकी सम्पूर्ण सेना उस समय अलातचक्रके समान घूम रही थी। उस युद्धमें कोई भी रथी, सवार, घोड़ा या हाथी ऐसा नहीं बचा था जो अर्जुनके बाणोंसे घायल

नहीं हुआ हो। उनका यह पराक्रम देख सभी कौरव कर्णके जीवनसे निराश हो गये। सबने गाण्डीवधारीके प्रहारको अपने लिये असह्य समझा और उनसे परास्त होकर सब पीछे हट गये। सायकोंसे बिंध जानेके कारण वे भयभीत हो रण-भूमिमें कर्णको अकेला ही छोड़कर भाग चले। किन्तु सहायताके लिये सूतपुत्र कर्णको ही पुकारते थे।

महाराज! इसके बाद आपके पुत्र भागकर कर्णके रथके पास गये। वे संकटके अगाध समुद्रमें डूब रहे थे, उस समय कर्ण ही द्वीपके समान उनका रक्षक हुआ। कर्म करनेवाले जीव मृत्युसे डरकर जैसे धर्मकी शरण लेते हैं, उसी प्रकार आपके पुत्र भी अर्जुनसे भयभीत हो कर्णकी शरणमें पहुँचे थे। कर्णने देखा, ये खूनसे लथपथ हो रहे हैं, बड़े संकटमें पड़े हैं और बाणोंकी चोटसे व्याकुल हैं, तो उसने उनसे कहा—'मेरे पास आ जाओ, डरो मत।' इसके बाद कर्णने खूब सोच-विचारकर मन-ही-मन अर्जुनके वधका निश्चय किया। और उनके देखते-देखते उसने पाञ्चालोंपर आक्रमण किया। यह देख पाञ्चाल-राजाओंकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं, वे कर्णपर बाणोंकी वृष्टि करने लगे। तब कर्णने भी हजारों बाण मारकर पाञ्चालोंको मौतके मुखमें भेज दिया। अब वह पञ्चालदेशीय राजकुमारोंका नाश करने लगा। उसने 'अञ्जलिक' नामक बाण मारकर जनमेजयके सारथिको नीचे गिरा दिया और उसके घोड़ोंको भी मार डाला। फिर शतानीक तथा सुतसोमपर भल्लोंकी वृष्टि करके उन दोनोंके धनुष काट दिये। छः बाणोंसे धृष्टद्युम्नको बींधा और उसके घोड़ोंका भी काम तमाम किया। इसी तरह सात्यकिके घोड़ोंको नष्ट करके सूतपुत्रने केकयराजकुमार विशोकका भी वध कर डाला। राजकुमारके मारे जानेपर केकयसेनापति उग्रकर्माने कर्णपर धावा किया। उसने अपने भयंकर वेगवाले बाणोंसे कर्णके पुत्र प्रसेनको घायल कर दिया। तब कर्णने तीन अर्धचन्द्राकार बाणोंसे उग्रकर्माकी दोनों भुजाएँ और मस्तक काट डाले। वह प्राणहीन होकर जमीनपर जा पड़ा। उधर जब कर्णने सात्यकिके घोड़े मार डाले तो उसके पुत्र प्रसेनने तेज किये हुए सायकोंसे सात्यकिको ढक दिया। इसके बाद सात्यकिके बाणोंका निशाना बनकर वह स्वयं भी धराशायी हो गया।

पुत्रके मारे जानेपर कर्णके हृदयमें क्रोधकी आग जल उठी, उसने सात्यकिपर एक शत्रुसंहारकारी बाण छोड़ा और कहा 'शैनेय! अब तू मारा गया।' किंतु कर्णके उस बाणको शिखण्डीने काट दिया और उसे भी तीन बाणोंसे बींध डाला। तब कर्णने दो क्षुरोंसे शिखण्डीकी ध्वजा और धनुष काट दिये तथा छः बाणोंसे उसे भी बींध दिया। इसके बाद उसने धृष्टद्युम्नके पुत्रका सिर धड़से अलग कर दिया और एक तीक्ष्ण बाण मारकर सुतसोमको भी घायल कर डाला। तत्पश्चात् सूतपुत्रने सोमकोंका संहार करते हुए बड़ा भारी संग्राम छेड़ा। उनके बहुत-से घोड़े, रथ और हाथियोंका नाश करके उसने सम्पूर्ण दिशाओंको बाणोंसे आच्छादित कर दिया। तब उत्तमौजा, जनमेजय, युधामन्यु, शिखण्डी तथा धृष्टद्युम्न—ये सभी गर्जना करते हुए क्रोधमें भरकर कर्णके सामने आये और उसपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। इन पाँचोंने कर्णपर जोरदार हमला किया, किन्तु सब मिलकर भी उसे रथसे गिरानेमें सफल न हो सके। कर्णने उनके धनुष, ध्वजा, घोड़े, सारथि और पताका आदिको काटकर पाँच बाणोंसे उन पाँचोंको भी बींध डाला। जिस समय वह बाणोंसे पाञ्चालोंपर प्रहार कर रहा था, उस समय उसके धनुषकी टंकार सुनकर ऐसा जान पड़ता था कि अब पर्वत और वृक्षोंसहित सारी पृथ्वी फट जायगी। उसने शिखण्डीको बारह, उत्तमौजाको छः और युधामन्यु, जनमेजय तथा धृष्टद्युम्नको तीन-तीन बाण मारे। इस प्रकार सूतपुत्र कर्णने उन पाँचों महारथियोंको परास्त कर दिया। वे कर्णरूपी समुद्रमें डूबना ही चाहते थे कि द्रौपदीके पुत्रोंने वहाँ पहुँचकर उन्हें रणसामग्रीसे सजे हुए रथोंमें बिठाया और इस प्रकार अपने मामाओंका संकटसे उद्धार किया।

तत्पश्चात् सात्यकिने कर्णके छोड़े हुए बहुत-से बाणोंको अपने तीखे तीरोंसे काट डाला। फिर कर्णको भी घायल कर आठ बाणोंसे आपके पुत्र दुर्योधनको बींध डाला। तब कृपाचार्य, कृतवर्मा, दुर्योधन तथा कर्ण—ये चारों मिलकर सात्यकिपर तीक्ष्ण सायकोंकी वर्षा करने लगे। जैसे चार दिक्पालोंके साथ अकेले दैत्यराज हिरण्यकशिपुका युद्ध हुआ था, उसी प्रकार इन चारों वीरोंके साथ यदुकुलभूषण सात्यकिने अकेले ही लोहा लिया। इतनेहीमें उक्त पाञ्चाल-महारथी कवच पहिन दूसरे रथोंपर बैठकर वहाँ आ पहुँचे और सात्यकिकी रक्षा करने लगे। उस समय शत्रुओंका आपके सैनिकोंके साथ घोर युद्ध हुआ। कितने ही रथी, हाथीसवार, घुड़सवार और पैदल योद्धा नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे आच्छादित हो इधर-उधर भटकने लगे। वे परस्परके ही धक्केसे लड़खड़ाकर गिर जाते और आर्तस्वरसे चीत्कार मचाने लगते थे। बहुतेरे सैनिक प्राणोंसे हाथ धोकर रणभूमिमें सो रहे थे।



भीमद्वारा दुःशासनका रक्त-पान और उसका वध, युधामन्युद्वारा चित्रसेनका वध तथा भीमका हर्षोद्गार

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! जब वह भयंकर संग्राम चल रहा था, उसी समय राजा दुर्योधनका छोटा भाई आपका पुत्र दुःशासन निर्भय हो बाणोंकी वर्षा करता हुआ भीमसेनपर चढ़ आया। उसे देखते ही भीमसेन भी दौड़े और जिस प्रकार 'रुरु' मृगपर सिंह आक्रमण करता है, वैसे ही वे उसके निकट जा पहुँचे। फिर तो शम्बरासुर और इन्द्रके समान क्रोधमें भरे हुए उन दोनों वीरोंमें बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ गया, दोनों ही प्राणोंकी बाजी लगाकर लड़ने लगे। इसी बीचमें भीमसेनने अपनी फुर्ती दिखाते हुए दो क्षुरोंसे आपके पुत्रके धनुष और ध्वजाको काट डाला, एक बाणसे उसके ललाटमें



घाव किया और दूसरेसे उसके सारथिका मस्तक भी धड़से अलग कर दिया। तब दुःशासनने भी दूसरा धनुष उठाकर भीमको बारह बाणोंसे बींध डाला और स्वयं ही घोड़ोंको काबूमें रखते हुए उसने पुनः उनके ऊपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। इसके बाद दुःशासनने भीमसेनपर एक भयंकर बाण चलाया, जो उनके अङ्गोंको छेद डालनेमें समर्थ और वज्रके समान असह्य था। उससे भीमसेनका शरीर छिद गया, वे बहुत शिथिल हो गये और प्राणहीनकी तरह बाँहें फैलाकर रथपर लुढ़क गये। थोड़ी ही देरमें जब होश हुआ तो वे पुनः सिंहके समान दहाड़ने लगे।

उस समय तुमुल युद्ध करते हुए दुःशासनने ऐसा पराक्रम दिखाया, जो दूसरोंसे होना कठिन था। उसने एक बाणसे भीमसेनका धनुष काटकर साठ बाणोंसे उनके सारथिको भी बींध डाला। इसके बाद अच्छे-अच्छे बाणोंसे वह भीमको घायल करने लगा। तब भीमसेनने क्रोधमें भरकर आपके पुत्रपर एक भयंकर शक्ति चलायी। उसे सहसा अपने ऊपर आती देख आपके पुत्रने दस बाणोंसे काट डाला। उसके इस दुष्कर कर्मको देख सभी सैनिक हर्षमें भरकर उसकी प्रशंसा करने लगे। परंतु भीमसेनका क्रोध और बढ़ गया। वे उसकी ओर रोषभरी दृष्टिसे देख आगबबूला होकर कहने लगे—'वीर दुःशासन ! आज तूने तो मुझे बहुत घायल किया, किंतु अब तू भी मेरी गदाका आघात सहन कर।' यों कहकर उन्होंने दुःशासनका वध करनेके लिये अपनी भयंकर गदा हाथमें ली और फिर कहा—'दुरात्मन् ! आज इस संग्राममें मैं तेरा रक्त-पान करूँगा।'

भीमके ऐसा कहते ही दुःशासनने उनके ऊपर एक भयंकर शक्ति चलायी, इधरसे भीमने भी अपनी भयानक गदा घुमाकर फेंकी। वह गदा दुःशासनकी शक्तिको टूक-टूक करती हुई उसके मस्तकमें जा लगी। गदाके आघातसे दुःशासनका रथ दस धनुष पीछे हट गया। उसके शरीरपर भी बहुत सख्त चोट पहुँची थी, कवच टूट गया, आभूषण और हार बिखर गये, कपड़े फट गये तथा वह अत्यन्त वेदनासे व्याकुल हो छटपटाने लगा और काँपता हुआ जमीनपर गिर पड़ा। इतना ही नहीं, उस गदासे दुःशासनके घोड़े मारे गये और उसके रथकी भी धज्जियाँ उड़ गयीं। दुःशासनको इस अवस्थामें देख पाण्डव और पाञ्चाल-योद्धा अत्यन्त प्रसन्न होकर सिंहनाद करने लगे।

इस प्रकार आपके पुत्रको गिराकर भीमसेन हर्षमें भर गये और सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। वह भैरव-नाद सुनकर आस-पास खड़े हुए योद्धा मूर्च्छित होकर गिर गये। उस समय भीमसेनको पिछली बातें याद हो आयीं 'देवी द्रौपदी रजस्वला थी, उसने कोई अपराध भी नहीं किया था, तो भी उसके केश खींचे गये और भरी सभामें वस्त्र उतारा गया।' इसके साथ ही कौरवोंद्वारा दिये हुए और भी बहुत-से दुःखोंका स्मरण करके भीमसेन क्रोधसे जल उठे तथा वहाँ

खड़े हुए कर्ण, दुर्योधन, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मासे कहने लगे—'योद्धाओ ! मैं पापी दुःशासनको अभी मारे डालता हूँ, तुम सब लोग मिलकर उसे बचा सको तो बचाओ।'

यों कहकर भीमसेन रथसे कूद पड़े और दुःशासनको मार डालनेकी इच्छासे दौड़ते हुए उसके पास जा पहुँचे। फिर सिंह जैसे बहुत बड़े हाथीको दबोच लेता है, उसी प्रकार उन्होंने कर्ण और दुर्योधनके सामने ही दुःशासनको धर दबाया। इसके बाद उसकी ओर आँखें गड़ाकर देखते हुए भीमने तलवार उठायी और एक पैरसे उसका गला दबा दिया। उस समय दुःशासन थर-थर काँप रहा था। अब उसकी ओर देख भीमसेन बोले—'दुःशासन ! याद है न वह दिन, जब कि तूने कर्ण और दुर्योधनके साथ बड़े हर्षमें भरकर मुझे 'बैल' कहा था। दुरात्मन् ! राजसूय-यज्ञमें अवभृथस्नानसे पवित्र हुए महारानी द्रौपदीके केशोंको तूने किस हाथसे खींचा था ? बता, आज भीमसेन तुझसे इसका उत्तर चाहता है।'

भीमका यह भयंकर वचन सुनकर दुःशासनने उनकी ओर देखा। उस समय उसकी त्यौरी बदल गयी, वह क्रोधसे जल उठा और बड़े आवेशमें आकर बोला—'यह है वह हाथ, जो हाथीके शुण्ड-दण्डके समान बलिष्ठ है, जिसने सहस्रों गौओंका दान तथा कितने ही क्षत्रिय-वीरोंका संहार किया है। भीमसेन ! उस समय जब कि प्रधान-प्रधान



कौरव, अन्यान्य सभासद् तथा तुम लोग भी बैठे-बैठे देख रहे थे, मैंने इसी दाहिने हाथसे द्रौपदीके केश खींचे थे !'

दुःशासनकी यह गर्वभरी बात सुनकर भीमसेन उसकी छातीपर चढ़ बैठे और अपने दोनों हाथोंसे उसकी दाहिनी बाँह पकड़कर बड़े जोरसे दहाड़ने लगे। फिर सम्पूर्ण योद्धाओंको सुनाकर बोले—'मैं दुःशासनकी बाँह उखाड़े लेता हूँ, अब यह प्राण त्यागना ही चाहता है। जिसमें ताकत हो वह आकर इसको मेरे हाथसे बचा ले।' इस प्रकार समस्त वीरोंपर आक्षेप करके महाबली भीमने क्रोधमें भरकर उसकी बाँह उखाड़ ली। दुःशासनकी वह भुजा वज्रके समान कठोर थी, भीमसेन उसीसे सब वीरोंके सामने उसको पीटने लगे। इसके बाद दुःशासनकी छाती फाड़कर वे उसका



गरम-गरम रक्त पीने लगे। तदनन्तर, उन्होंने तलवार उठायी और उसका मस्तक धड़से अलग कर दिया। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा सत्य कर दिखानेके लिये भीमने दुःशासनका गरम-गरम रक्त-पान किया। वे उसका स्वाद लेकर कहने लगे—'मैंने माताके दूधका, शहद और घीका तथा दिव्य रसका भी आस्वादन किया है, दूध और दहीसे बिलोये हुए ताजे माखनका भी स्वाद लिया है। इनके अलावे भी संसारमें बहुत-से पान करनेयोग्य पदार्थ हैं, जिनमें अमृतके समान मधुर स्वाद है; परंतु मेरे शत्रुके इस रक्तका स्वाद तो उन सबसे विलक्षण है, इसमें सबसे अधिक रस है !'

यों कहकर वे बारंबार उसके रक्तका आस्वादन करते

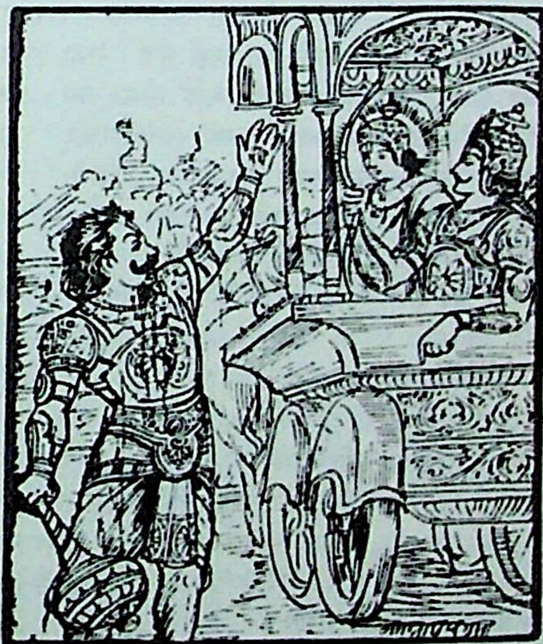
और अत्यन्त हर्षमें भरकर उछलने-कूदने लगते थे। उस समय जिन्होंने उनकी ओर देखा, वे भयसे व्याकुल हो पृथ्वीपर गिर पड़े। जो घबराये नहीं, उनके हाथोंसे भी हथियार तो गिर ही पड़ा। कितने ही भयके मारे आँखें बंद करके चीखने-चिल्लाने लगे। रक्त पीते समय उनका रूप बड़ा भयंकर जान पड़ता था। उस समय बहुत-से योद्धा भयभीत



होकर 'अरे! यह मनुष्य नहीं राक्षस है' ऐसा कहते हुए चित्रसेनके साथ भागने लगे। चित्रसेनको भागते देख युधामन्युने अपनी सेनाके साथ उसका पीछा किया और तेज किये हुए सात बाण मारकर उसे बींध डाला। चित्रसेनने भी युधामन्युको तीन और उसके सारथिको छः बाण मारे। तब युधामन्युने धनुषको कानतक खींचकर एक तीखा बाण चलाया और चित्रसेनका मस्तक धड़से अलग कर दिया। अपने भाईके मरनेसे कर्ण क्रोधमें भर गया और अपना पराक्रम दिखाता हुआ पाण्डव-सेनाको भगाने लगा। उस समय अत्यन्त तेजस्वी नकुलने आगे बढ़कर उसका सामना किया।

इधर, भीमसेन दुःशासनके रक्तको अपनी अञ्जलिमें लेकर विकट गर्जना करते हुए सब वीरोंको सुनाकर बोले—'नीच दुःशासन! यह देख, मैं तेरे गलेका खून पी रहा हूँ। अब फिर आनन्दमें भरा हुआ तू मुझे 'बैल-बैल' कहकर पुकार तो सही। उस दिन कौरव-सभामें जो लोग मुझे 'बैल-बैल' कहकर खुशीके मारे नाच उठते थे, उन सबको आज बारंबार 'बैल' बनाता हुआ मैं स्वयं नाचता हूँ। मुझे विष खिलाकर नदीमें डाल दिया गया, जहाँ काले साँपोंने डँसा। फिर हमलोगोंको लाक्षागृहमें जलानेका षड्यन्त्र हुआ और जूएमें सारा राज्य छीनकर हमें जंगलमें रहनेको मजबूर किया गया। सबसे घोर दुःख तो इस बातका है कि भरी सभामें द्रौपदीका केश खींचा गया। युद्धमें हमें दुःखदायक बाणोंकी मार सहनी पड़ती है और घरमें भी कभी सुख नहीं मिला। राजा विराटके भवनमें जो क्लेश भोगना पड़ा—सो तो अलग है। शकुनि, दुर्योधन और कर्णकी सलाहसे हमें जो-जो कष्ट सहने पड़े, उन सबका मूल कारण तू ही था।'

यों कहकर अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए भीमसेन श्रीकृष्ण और अर्जुनके पास गये। उस समय उनका शरीर खूनसे लथपथ हो रहा था। वे मुसकराते हुए बोले—'वीरो! मैंने युद्धमें



दुःशासनके विषयमें जो प्रतिज्ञा की थी, उसे आज पूर्ण कर दिया। अब इस रणयज्ञमें दुर्योधनरूपी यज्ञपशुका वध करके दूसरी आहुति डालूँगा और इन कौरवोंकी आँखोंके सामने ही जब उस दुरात्माका सिर पैरोंसे ठुकराकर कुचल डालूँगा, तभी मुझे शान्ति मिलेगी।' ऐसा कहकर वे गरजने लगे।

—★—

धृतराष्ट्रके दस पुत्रोंका वध, कर्णका भय और शल्यका समझाना, नकुल और वृषसेनका युद्ध, अर्जुनद्वारा वृषसेनका वध तथा कर्णके विषयमें श्रीकृष्ण-अर्जुनकी बातचीत

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! दुःशासनके मारे जानेपर आपके पुत्र निषङ्गी, कवची, पाशी, दण्डधार, धनुर्धर, अलोलुप, सह, षण्ढ, वातवेग और सुवर्चा—ये दस महारथी एक साथ भीमसेनपर टूट पड़े और उन्हें बाणोंकी वृष्टिसे आच्छादित करने लगे। इनको अपने भाईकी मृत्युके कारण बड़ा दुःख हुआ था, इसलिये इन्होंने बाणोंसे मारकर भीमसेनकी प्रगति रोक दी। इन महारथियोंको चारों ओरसे बाण मारते देख भीमसेन क्रोधसे जल उठे, उनकी आँखें लाल हो गयीं और वे कोपमें भरे हुए कालके समान जान पड़ने लगे। उन्होंने भल्ल नामक दस बाण मारकर आपके दसों पुत्रोंको यमराजके घर भेज दिया।

उनके मरते ही कौरवोंकी सेना भीमके डरसे भाग चली। कर्ण देखता ही रह गया। महाराज ! प्रजाका नाश करनेवाले यमराजके समान भीमका वह पराक्रम देखकर कर्णके मनमें भी बड़ा भारी भय समा गया। राजा शल्य उसका आकार देखकर भीतरका भाव समझ गये। तब उन्होंने कर्णसे यह समयोचित बात कही—'राधानन्दन ! भय न करो। तुम्हारे-जैसे वीरको यह शोभा नहीं देता। ये राजालोग भीमके भयसे घबराकर भागे जा रहे हैं, दुर्योधन भी भाईकी मृत्युसे दुःखी होकर किंकर्तव्यविमूढ हो गया है। भीमसेन जब दुःशासनका रक्त पी रहे थे, तभीसे कृपाचार्य आदि वीर तथा मरनेसे बचे हुए कौरव दुर्योधनको चारों ओरसे घेरकर खड़े हैं। सभी शोकसे व्याकुल हैं, सबकी चेतना लुप्त-सी हो रही है। ऐसी अवस्थामें तुम पुरुषार्थका भरोसा रखो और क्षत्रियधर्मको सामने रखकर अर्जुनका मुकाबला करो। दुर्योधनने सारा भार तुम्हारे ही ऊपर रखा है। तुम अपने बल और शक्तिके अनुसार उसका वहन करो। यदि विजय हुई तो बहुत बड़ी कीर्ति फैलेगी और पराजय होनेपर अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति निश्चित है।'

शल्यकी बात सुनकर कर्णने अपने हृदयमें युद्धके लिये आवश्यक भाव (उत्साह-अमर्ष आदिको) जगाया। इधर, महान् वीर नकुलने वृषसेनपर चढ़ाई की और रोषमें भरकर अपने शत्रुको बाणोंसे पीड़ित करना आरम्भ किया। उसने वृषसेनके धनुषको काट डाला। तब कर्णके पुत्रने दूसरा धनुष लेकर नकुलको घायल कर दिया। वह अस्त्रविद्याका ज्ञाता था, इसलिये माद्रीकुमारपर दिव्यास्त्रोंकी वर्षा करने लगा। उसने उत्तम अस्त्रोंके प्रहारसे नकुलके सफेद रंगवाले चारों घोड़ोंको मार डाला। घोड़ोंके मारे जानेपर नकुल हाथोंमें ढाल-तलवार ले रथसे कूद पड़ा और उछलता-कूदता हुआ रणभूमिमें विचरने लगा। उसने बड़े-बड़े रथियों, घुड़सवारों और हाथीसवारोंको तलवारके घाट उतारा तथा अकेले ही दो हजार योद्धाओं सफाया कर डाला। फिर वृषसेनको भी घायल किया और कितने ही पैदलों, घोड़ों तथा हाथियोंको मौतके मुखमें भेज दिया।

तब कर्णके पुत्रने नकुलको अठारह बाणोंसे बींधकर उसके ऊपर तीखे सायकोंकी झड़ी लगा दी। नकुल भी उसके बाणोंकी बौछारको व्यर्थ करता हुआ और युद्धके अनेकों अद्भुत पैंतरे दिखाता हुआ संग्रामभूमिमें विचरने लगा। इतनेहीमें वृषसेनने नकुलकी ढालके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। ढाल कट जानेपर उसने तलवारके हाथ दिखाने आरम्भ किये, किंतु कर्ण-पुत्रने छः बाणोंसे उसके भी खण्ड-खण्ड कर दिये। फिर तेज किये हुए सायकोंसे उसने नकुलकी छातीमें भी गहरी चोट पहुँचायी। इससे नकुलको बड़ी व्यथा हुई और वह सहसा छलाँग मारकर भीमसेनके रथपर जा बैठा। अब एक ही रथपर बैठे हुए उन दोनों महारथियोंको घायल करनेके लिये वृषसेन बाणोंकी वृष्टि करने लगा। उस समय वहाँ कौरवपक्षके दूसरे योद्धा भी आ पहुँचे और सब मिलकर उन दोनों भाइयोंपर बाण बरसाने लगे।

इसी समय यह जानकर कि 'नकुल वृषसेनके बाणोंसे पीड़ित है, उसकी तलवार तथा धनुष कट गये हैं और वह रथहीन हो चुका है।' द्रुपदके पाँचों पुत्र, सात्यकि तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्र गरजते हुए वहाँ आ पहुँचे और अपने बाणोंसे आपकी सेनाके रथ, हाथी एवं घोड़ोंका संहार करने लगे। यह देख, आपके प्रधान महारथी कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, दुर्योधन, उलूक, वृक, क्राथ और देवावृध आदिने बाण मारकर शत्रुओंके उन ग्यारह महारथियोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया।

तब नवीन मेघके समान काले और पर्वत-शिखरके समान ऊँचे एवं भयंकर वेगवाले हाथियोंके साथ कुलिन्दोंकी सेनाने आपके महारथियोंपर धावा किया। कुलिन्दराजके पुत्रने लोहेके दस बाण मारकर सारथि और घोड़ोंसहित कृपाचार्यको बहुत घायल किया, किन्तु अन्तमें कृपाचार्यके

सायकोंकी मार खाकर वह हाथीसहित जमीनपर गिरा और मर गया। कुलिन्दराजकुमारका छोटा भाई गान्धारराज शकुनिसे भिड़ा था, वह सूर्यकी किरणोंके समान चमकते हुए तोमरोंसे गान्धारराजके रथकी धज्जियाँ उड़ाकर बड़े जोरसे गर्जना करने लगा। इतनेहीमें शकुनिने उसका सिर काट लिया। कुलिन्दराजकुमारके दूसरे छोटे भाईने आपके पुत्र दुर्योधनकी छातीमें बहुत-से बाण मारे। तब दुर्योधनने तीखे बाणोंसे उसको बींधकर उसके हाथीको भी छेद डाला। हाथी अपने शरीरसे रक्तकी धारा बहाता हुआ धरतीपर गिर पड़ा। अब कुलिन्दकुमारने दूसरा हाथी आगे बढ़ाया, उसने सारथि तथा घोड़ोंसहित क्राथके रथको कुचल डाला। किंतु थोड़ी ही देरमें क्राथके द्वारा चलाये हुए बाणोंसे विदीर्ण होकर वह हाथी भी सवारसहित धराशायी हो गया।

इसके बाद हाथीपर ही बैठे हुए एक पर्वतीय राजाने क्राथराजपर आक्रमण किया। उसने अपने बाणोंसे क्राथके घोड़े, सारथि, ध्वजा तथा धनुषको नष्ट करके उसे भी मार गिराया। तब वृकने उस पहाड़ी राजाको बारह बाण मारकर अत्यन्त घायल कर दिया। चोट खाकर राजाका वह विशाल गजराज वृकपर झपटा और अपने चारों चरणोंसे उसने रथ और घोड़ोंसहित वृकका कचूमर निकाल डाला अन्तमें देवावृध-कुमारके बाणोंसे आहत होकर राजासहित वह गजराज भी कालका ग्रास बन गया। इधर, देवावृध-कुमार भी सहदेव-पुत्रके बाणोंसे पीड़ित होकर गिरा और मर गया। इसके बाद दूसरा कुलिन्द-योद्धा हाथीपर सवार हो शकुनिको मारनेके लिये आगे बढ़ा और उसे बाणोंसे पीड़ित करने लगा। यह देख गान्धारराजने उसका भी सिर काट लिया। दूसरी ओर नकुल-पुत्र शतानीक आपकी सेनाके बड़े-बड़े गजराजों, घोड़ों, रथियों और पैदलोंका संहार करने लगा। उस समय कलिङ्गराजके एक दूसरे पुत्रने उसका सामना किया। उसने हँसते-हँसते बहुत-से तीखे बाण मारकर शतानीकको घायल कर दिया। तब शतानीकने क्रोधमें भरकर क्षुराकार बाणसे कलिङ्गराजकुमारका मस्तक काट डाला।

इसी बीचमें कर्णकुमार वृषसेनने शतानीकपर आक्रमण किया। उसने नकुल-पुत्रको तीन बाणोंसे घायल करके अर्जुनको तीन, भीमसेनको तीन, नकुलको सात और श्रीकृष्णको बारह बाणोंसे बींध डाला। उसका यह अलौकिक पराक्रम देख समस्त कौरव हर्षमें भरकर उसकी प्रशंसा करने लगे। अर्जुनने देखा कि कर्णपुत्रद्वारा नकुलके घोड़े मार डाले गये हैं और उसने श्रीकृष्णको भी बहुत घायल कर दिया है, तो वे कर्णके सामने खड़े हुए उसके पुत्रकी ओर दौड़े। उन्हें आक्रमण करते देख कर्णकुमारने अर्जुनको एक बाणसे आहत करके बड़े जोरसे गर्जना की। फिर उनकी बायीं भुजाके मूलभागमें उसने कई भयंकर बाण मारे। इतना ही नहीं, उसने पुनः श्रीकृष्णको नौ और अर्जुनको दस बाणोंसे बींध डाला।

अब अर्जुनको कुछ-कुछ क्रोध हुआ और उन्होंने मन-ही-मन वृषसेनको मार डालनेका निश्चय किया। बढ़ते हुए क्रोधके कारण उनके भौंहोंमें तीन जगह बल पड़ गया, आँखें लाल हो गयीं। उस समय मुसकराते हुए वे कर्ण, दुर्योधन और अश्वत्थामा आदि सभी महारथियोंसे कहने लगे—'कर्ण! मेरा पुत्र अभिमन्यु अकेला था और मैं उसके साथ मौजूद नहीं था, ऐसी दशामें तुम सब लोगोंने मिलकर उसका वध किया—इस कामको सब लोग खोटा बताते हैं। किंतु आज मैं तुम लोगोंके सामने ही तुम्हारे पुत्र वृषसेनका वध करूँगा। रथियो! तुम सब मिलकर भी उसे बचा सको तो बचाओ। कर्ण! वृषसेनका वध करनेके पश्चात् तुम्हें भी मार डालूँगा। सारे झगड़ेकी जड़ तुम्हीं हो, दुर्योधनका आश्रय पाकर तुम्हारा घमंड बहुत बढ़ गया है, इसलिये आज मैं जबरदस्ती तुम्हारा वध करूँगा और दुर्योधनका वध भीमसेनके हाथसे होगा।'

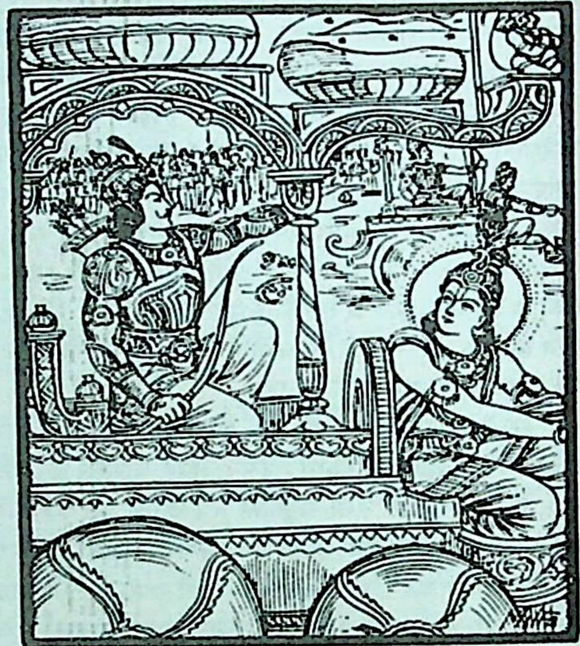
ऐसा कहकर अर्जुनने धनुषकी टंकार की और वृषसेनपर निशाना साधकर ठीक किया, तुरंत ही उसके वधके उद्देश्यसे दस बाण छोड़े। उनसे वृषसेनके मर्मस्थानोंमें चोट पहुँची। इसके बाद अर्जुनने कर्णकुमारका धनुष और उसकी दोनों भुजाएँ काट डालीं। फिर चार क्षुरोंसे उसका



मस्तक उड़ा दिया। मस्तक और भुजाएँ कट जानेपर वृषसेन रथसे लुढ़ककर जमीनपर जा पड़ा। पुत्रके वधसे कर्णको बड़ा दुःख हुआ, वह रोषमें भरकर सहसा श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ओर दौड़ा।

महाराज! उस समय कर्णको आते देख भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे हँसकर कहा—'धनञ्जय! आज तुम्हें जिसके साथ लोहा लेना है, वह महारथी कर्ण आ रहा है, अब सँभल जाओ। देखो, वह है उसका रथ; उसमें सफेद घोड़े जुते हुए हैं। रथीके स्थानपर स्वयं राधानन्दन कर्ण विराजमान है। रथपर भाँति-भाँतिकी पताकाएँ फहराती हैं तथा उसमें छोटी-छोटी बहुत-सी घंटियाँ शोभा पा रही हैं। जरा उसकी ध्वजा तो देखो, उसमें सर्पका चिह्न बना हुआ है। कर्ण बाणोंकी बौछार करता हुआ बढ़ा आ रहा है। उसे देखकर ये पाञ्चाल-महारथी भयके मारे अपनी सेनाके साथ भागे जा रहे हैं। इसलिये कुन्तीनन्दन! तुम्हें अपनी सारी शक्ति लगाकर सूतपुत्रका वध करना चाहिये। रणमें तुम देवता, असुर, गन्धर्व तथा स्थावर-जंगमरूप तीनों लोकोंको जीतनेमें समर्थ हो। इस बातको मैं जानता हूँ। जिनकी मूर्ति बड़ी ही उग्र एवं भयंकर है, जिनकी तीन आँखें हैं, जो मस्तकपर जटाजूट धारण करते हैं, उन भगवान् महादेवजीको दूसरे लोग देख भी नहीं सकते, फिर उनके साथ युद्ध करनेकी तो बात ही कहाँ है? परंतु तुमने सम्पूर्ण जीवोंका कल्याण करनेवाले उन्हीं भगवान् शिवकी युद्धके द्वारा आराधना की है। देवताओंने भी तुम्हें वरदान दिये हैं। इसलिये तुम त्रिशूलधारी देवदेव भगवान् शंकरकी कृपासे कर्णका उसी प्रकार वध करो, जैसे इन्द्रने नमुचिका किया था। मैं आशीर्वाद देता हूँ—युद्धमें तुम्हारी विजय हो।'

अर्जुन बोले—मधुसूदन! सम्पूर्ण लोकोंके गुरु, आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो मेरी विजय निश्चित है; इसमें तनिक भी संदेहके लिये गुंजाइश नहीं है। हृषीकेश! घोड़े हाँककर रथको कर्णके पास ले चलिये। अब अर्जुन कर्णको मारे



बिना पीछे नहीं लौट सकता। आज आप मेरे बाणोंसे टुकड़े-टुकड़े हुए कर्णको देखिये, या मुझे ही कर्णके बाणोंसे मरा हुआ देखियेगा। आज तीनों लोकोंको मोहमें डालनेवाला यह भयंकर युद्ध उपस्थित हुआ है। जबतक पृथ्वी कायम रहेगी, तबतक संसारके लोग इस युद्धकी चर्चा करेंगे।

भगवान् श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर अर्जुन बड़ी शीघ्रतासे आगे बढ़े। वे चलते-चलते कहने लगे—'हृषीकेश! घोड़ोंको तेज चलाइये, कर्णसे लड़नेका समय बीता जा रहा है।' अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान्ने विजयका वरदान दे उनका सत्कार किया और घोड़ोंको हाँका। एक ही क्षणमें अर्जुनका रथ कर्णके सामने जाकर खड़ा हो गया।



इन्द्रादि देवताओंकी प्रार्थनासे ब्रह्मा और शिवजीका अर्जुनकी विजय घोषित करना तथा कर्णका शल्यसे और अर्जुनका श्रीकृष्णसे वार्तालाप

सञ्जय कहते हैं—महाराज! उधर जब कर्णने देखा कि वृषसेन मारा गया तो उसे बड़ा दुःख हुआ; वह दोनों नेत्रोंसे आँसू बहाने लगा। फिर क्रोधसे लाल आँखें किये, कर्ण अर्जुनको युद्धके लिये ललकारता हुआ आगे बढ़ा। उस समय त्रिभुवनपर विजय पानेके लिये उद्यत हुए इन्द्र और बलिके भाँति उन दोनों वीरोंको एक-दूसरेसे भिड़नेके लिये तैयार देख सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्चर्य होने लगा। कौरव और पाण्डव दोनों दलोंके लोग शङ्ख और भेरी बजाने लगे। शूरवीर अपनी भुजाएँ ठोंकने और सिंहनाद करने लगे। उन सबकी तुमुल आवाज चारों ओर गूँजने लगी।

वे दोनों वीर जब एक-दूसरेका सामना करनेके लिये दौड़े, उस समय यमराज और कालके समान प्रतीत होते थे



तथा इन्द्र एवं वृत्रासुरके समान क्रोधमें भरे हुए थे। वे रूप और बलमें देवताओंके तुल्य थे, उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो सूर्य और चन्द्रमा दैवेच्छासे एकत्र हो गये हों। दोनों महाबली युद्धके लिये नाना प्रकारके शस्त्र धारण किये हुए थे। उन्हें आमने-सामने खड़े देख आपके योद्धाओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन दोनोंमें किसकी विजय होगी, इस विषयमें सब लोगोंको संदेह होने लगा।

महाराज! कर्ण और अर्जुनका युद्ध देखनेके लिये देवता, दानव, गन्धर्व, नाग, यक्ष, पक्षी, वेदवेत्ता महर्षि, श्राद्धान्नभोजी पितर तथा तप, विद्या एवं ओषधियोंके अधिष्ठाता देवता नाना प्रकारके रूप धारण किये अन्तरिक्षमें खड़े थे। वहाँ उनका कोलाहल सुनायी पड़ता था। ब्रह्मर्षियों और प्रजापतियोंके साथ ब्रह्माजी तथा भगवान् शंकर भी दिव्य विमानोंमें बैठकर वहाँ युद्ध देखने आये थे। देवताओंने ब्रह्माजीसे पूछा—'भगवन्! कौरव और पाण्डवपक्षके इन दो प्रधान वीरोंमें कौन विजयी होगा? देव! हम तो चाहते हैं—इनकी एक-सी ही विजय हो। कर्ण और अर्जुनके विवादसे सारा संसार संदेहमें पड़ा हुआ है। प्रभो! आप सच्ची बात बताइये, इनमेंसे किसकी विजय होगी?'

यह प्रश्न सुनकर इन्द्रने देवाधिदेव पितामहको प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! आप पहले बता चुके हैं कि श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ही विजय निश्चित है। आपकी वह बात सच्ची होनी चाहिये। प्रभो! मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ, मुझपर प्रसन्न होइये।'

इन्द्रकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा और शंकरजीने कहा—'देवराज! महात्मा अर्जुनकी ही विजय निश्चित है। उन्होंने खाण्डववनमें अग्निदेवको तृप्त किया है, स्वर्गमें आकर तुम्हें भी सहायता पहुँचायी है। अर्जुन सत्य और धर्ममें अटल रहनेवाले हैं; इसलिये उनकी विजय अवश्य होगी, इसमें



तनिक भी संदेह नहीं है। संसारके स्वामी साक्षात् भगवान् नारायणने उनका सारथि होना स्वीकार किया है; वे मनस्वी बलवान्, शूरवीर, अस्त्रविद्याके ज्ञाता और तपस्याके धनी हैं। उन्होंने धनुर्वेदका पूर्ण अध्ययन किया है। इस प्रकार अर्जुन विजय दिलानेवाले सम्पूर्ण सद्गुणोंसे युक्त हैं; इसके अलावे, उनकी विजय देवताओंका ही तो कार्य है। अर्जुन मनुष्योंमें श्रेष्ठ एवं तपस्वी हैं। वे अपनी महिमासे दैवके विधानको भी उलट सकते हैं; यदि ऐसा हुआ तो निश्चय ही सम्पूर्ण लोकोंका अन्त हो जायगा। श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके क्रोध करनेपर यह संसार कहीं नहीं टिक सकता। ये ही दोनों संसारकी सृष्टि करते हैं। ये ही प्राचीन ऋषि नर और नारायण हैं। इनपर किसीका शासन नहीं चलता और ये सबको अपने शासनमें रखते हैं। देवलोक या मनुष्यलोकमें इन दोनोंकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है। देवता, ऋषि और चारणोंके साथ ये तीनों लोक एवं सम्पूर्ण भूत यानी सारा विश्वब्रह्माण्ड

ही इनके शासनमें है; इनकी ही शक्तिसे सब लोग अपने-अपने कर्मोंमें प्रवृत्त हो रहे हैं। अतः विजय तो श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ही होगी। कर्ण वसुओं अथवा मरुतोंके लोकमें जायगा।'

ब्रह्मा और शंकरजीके ऐसा कहनेपर इन्द्रने सम्पूर्ण प्राणियोंको बुलाकर उनकी आज्ञा सुनायी। वे बोले—'हमारे पूज्य प्रभुओंने संसारके हितके लिये जो कुछ कहा है, उसे तुमलोगोंने सुना ही होगा। वह वैसे ही होगा, उसके विपरीत होना असम्भव है; अतः अब निश्चिन्त हो जाओ।' इन्द्रकी बात सुनकर समस्त प्राणी विस्मित हो गये और हर्षमें भरकर श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए उनपर सुगन्धित फूलोंकी वर्षा करने लगे। देवतालोग कई तरहके दिव्य बाजे बजाने लगे।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण और अर्जुनने तथा शल्य और कर्णने अलग-अलग अपने-अपने शङ्ख बजाये। उस समय उन दोनोंमें कायरोंको डरानेवाला युद्ध आरम्भ हुआ। दोनोंके रथोंपर निर्मल ध्वजाएँ शोभा पा रही थीं। कर्णकी ध्वजाका डंडा रत्नका बना हुआ था, उसपर हाथीकी साँकलका चिह्न था। अर्जुनकी ध्वजापर एक श्रेष्ठ वानर बैठा था, जो यमराजके समान मुँह बाये रहता था। वह अपनी दाढ़ोंसे सबको डराया करता था, उसकी ओर देखना भी कठिन था।

भगवान् श्रीकृष्णने शल्यकी ओर आँखोंकी त्यौरी करके देखा, मानो उसे नेत्ररूपी बाणोंसे बींध रहे हों। शल्यने भी उनकी ओर उसी तरहकी दृष्टि डाली। किंतु इसमें विजय श्रीकृष्णकी ही हुई, शल्यकी पलकें झँप गयीं। इसी प्रकार कुन्तीनन्दन धनञ्जयने भी दृष्टिद्वारा कर्णको परास्त किया।

तदनन्तर कर्ण शल्यसे हँसकर बोला—'शल्य! यदि कदाचित् इस संग्राममें अर्जुन मुझे मार डालें तो तुम क्या करोगे? सच बताना।' शल्यने कहा—'कर्ण! यदि वे आज तुझे मार डालेंगे तो मैं श्रीकृष्ण तथा अर्जुन दोनोंको ही मौतके घाट उतारूँगा।'

इसी तरह अर्जुनने भी श्रीकृष्णसे पूछा; तब वे हँसकर कहने लगे—'पार्थ! क्या यह भी सच हो सकता है? कदाचित् सूर्य अपने स्थानसे गिर जाय, समुद्र सूख जाय और आग अपना उष्णस्वभाव छोड़कर शीतलता स्वीकार कर ले—ये सभी बातें सम्भव हो जायँ; किंतु कर्ण तुम्हें मार डाले, यह कदापि सम्भव नहीं है। यदि किसी तरह ऐसा हो जाय तो संसार उलट जायगा। मैं अपनी भुजाओंसे ही कर्ण तथा शल्यको मसल डालूँगा।'

भगवान्‌की बात सुनकर अर्जुन हँस पड़े और बोले—'जनार्दन! ये शल्य और कर्ण तो मेरे ही लिये काफी नहीं हैं। आज आप देखियेगा मैं छत्र, कवच, शक्ति, धनुष, बाण, रथ, घोड़े तथा राजा शल्यके सहित कर्णको अपने बाणोंसे टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा। आज सूतपुत्रकी स्त्रियोंके विधवा होनेका समय आ गया है। वे अवश्य विधवा बनेंगी। इस अदूरदर्शी मूर्खने द्रौपदीको सभामें आयी देख बारंबार उसपर आक्षेप किया और हमलोगोंकी भी खिल्लियाँ उड़ायी थीं। अतः आज इसको अवश्य ही रौंद डालूँगा।'



अश्वत्थामाका दुर्योधनसे संधिके लिये प्रस्ताव, दुर्योधनद्वारा उसकी अस्वीकृति तथा कर्ण और अर्जुनके युद्धमें भीम और श्रीकृष्णका अर्जुनको उत्तेजित करना

सञ्जय कहते हैं—महाराज! तदनन्तर दुर्योधन, कृतवर्मा, शकुनि, कृपाचार्य और कर्ण—ये पाँच महारथी श्रीकृष्ण और अर्जुनपर प्राणान्तकारी बाणोंका प्रहार करने लगे। यह देख धनञ्जयने उनके धनुष, बाण, तरकस, घोड़े, हाथी, रथ और सारथि आदिको अपने बाणोंसे नष्ट कर डाला; साथ ही उन शत्रुओंका मान-मर्दन करके सूतपुत्र कर्णको बारह बाणोंका निशाना बनाया। इतनेहीमें वहाँ सैकड़ों रथी, सैकड़ों हाथीसवार और शक, तुषार, यवन तथा काम्बोज देशके बहुतेरे घुड़सवार अर्जुनको मार डालनेकी इच्छासे दौड़े आये; परन्तु अर्जुनने अपने बाणों तथा क्षुरोंकी मारसे उन सबके उत्तम-उत्तम अस्त्रों तथा मस्तकोंको काट गिराया। उनके घोड़ों, हाथियों और रथोंको भी काट डाला।

यह देख आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभी बज उठी, सभी अर्जुनको साधुवाद देने लगे। साथ ही वहाँ फूलोंकी वर्षा भी होने लगी। उस समय द्रोणकुमार अश्वत्थामा दुर्योधनके पास गया और उसका हाथ अपने हाथमें लेकर सान्त्वना देता हुआ बोला—'दुर्योधन! अब प्रसन्न होकर पाण्डवोंसे संधि कर लो; विरोधसे कोई लाभ नहीं है। आपसके इस झगड़ेको धिक्कार है! तुम्हारे गुरुदेव अस्त्र-विद्याके महान् पण्डित थे, किंतु इस युद्धमें मारे गये। यही दशा भीष्म आदि



महारथियोंकी भी हुई। मैं और मामा कृपाचार्य तो अवध्य हैं, इसलिये अवतक बचे हुए हैं। अतः अब तुम पाण्डवोंसे मिलकर चिरकालतक राज्य-शासन करो। मेरे मना करनेसे अर्जुन शान्त हो जायँगे। श्रीकृष्ण भी विरोध नहीं चाहते। युधिष्ठिर तो सभी प्राणियोंके हितमें ही लगे रहते हैं, अतः वे भी मान लेंगे। बाकी रहे भीमसेन और नकुल-सहदेव; सो ये भी धर्मराजके अधीन हैं, उनकी इच्छाके विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे। तुम्हारे साथ पाण्डवोंकी संधि हो जानेपर सारी प्रजाका कल्याण होगा। फिर तुम्हारी अनुमति लेकर ये राजालोग भी अपने-अपने देशको लौट जायँ और समस्त सैनिकोंको युद्धसे छुटकारा मिल जाय। राजन् ! यदि मेरी यह बात नहीं सुनोगे तो निश्चय ही शत्रुओंके हाथसे मारे जाओगे और उस समय तुम्हें बहुत पश्चात्ताप होगा। आज तुमने और सारे संसारने यह देख लिया कि अकेले अर्जुनने जो पराक्रम किया है उसे इन्द्र, यमराज, वरुण और कुबेर भी नहीं कर सकते। अर्जुन गुणोंमें मुझसे बढ़कर हैं, तो भी मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे मेरी बात नहीं टालेंगे। यही नहीं, वे सदा तुम्हारे अनुकूल बर्ताव भी करेंगे। इसलिये राजन् ! तुम प्रसन्नतापूर्वक संधि कर लो। अपनी घनिष्ठ मित्रताके कारण ही मैं तुमसे यह प्रस्ताव कर रहा हूँ। जब तुम इसे प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लोगे तो मैं कर्णको भी युद्धसे रोक दूँगा। विद्वान्लोग चार प्रकारके मित्र बतलाते हैं। एक सहज मित्र होते हैं, जिनकी मैत्री स्वाभाविक होती है। दूसरे हैं संधि करके बनाये हुए मित्र। तीसरे वे हैं, जो धन देकर अपनाये गये हैं। किसीका प्रबल प्रताप देखकर जो स्वतः चरणोंके निकट आ जाते हैं—शरणागत हो जाते हैं, वे चौथे प्रकारके मित्र हैं। पाण्डवोंके साथ तुम्हारी सभी प्रकारकी मित्रता सम्भव है। वीरवर ! यदि तुम प्रसन्नतापूर्वक पाण्डवोंसे मित्रता स्वीकार कर लोगे तो तुम्हारे द्वारा संसारका बहुत बड़ा कल्याण होगा।'

इस प्रकार जब अश्वत्थामाने दुर्योधनसे हितकी बात कही तो उसने मन-ही-मन खिन्न होकर कहा—'मित्र ! तुम जो कुछ कहते हो, वह सब ठीक है; किंतु इसके सम्बन्धमें कुछ मेरी बात भी सुन लो। इस दुर्बुद्धि भीमसेनने दुःशासनको मार डालनेके पश्चात् जो बात कही थी, वह अब भी मेरे हृदयसे दूर नहीं होती। ऐसी दशामें कैसे शान्ति मिले ? क्योंकर संधि हो ? गुरुपुत्र ! इस समय तुम्हें कर्णसे युद्ध बंद कर देनेकी बात भी नहीं कहनी चाहिये; क्योंकि अर्जुन बहुत थक गये हैं, अतः अब कर्ण उन्हें बलपूर्वक मार डालेगा।'

अश्वत्थामासे यों कहकर दुर्योधनने अनुनय-विनयके द्वारा उसे प्रसन्न कर लिया, फिर अपने सैनिकोंसे कहा—



'अरे ! तुमलोग हाथोंमें बाण लिये चुप क्यों बैठ गये ? शत्रुओंपर धावा करके उन्हें मार डालो।' इसी बीचमें श्वेत

घोड़ोंवाले कर्ण तथा अर्जुन युद्धके लिये आमने-सामने आकर डट गये। दोनोंने एक-दूसरेपर महान् अस्त्रोंका प्रहार आरम्भ किया। दोनोंके ही सारथि और घोडोंके शरीर बाणोंसे बिंध गये। खूनकी धारा बहने लगी। वे अपने वज्रके समान बाणोंसे इन्द्र और वृत्रासुरकी भाँति एक-दूसरेपर प्रहार कर रहे थे। उस समय हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे युक्त दोनों ओरकी सेनाएँ भयसे काँप रही थीं। इतनेहीमें कर्ण मतवाले हाथीकी भाँति अर्जुनको मारनेकी इच्छासे आगे बढ़ा। यह देख सोमकोंने चिल्लाकर कहा—'अर्जुन! अब विलम्ब करना व्यर्थ है। कर्ण सामने है, इसे छेद डालो; इसका मस्तक उड़ा दो।' इसी प्रकार हमारे पक्षके बहुतेरे योद्धा भी कर्णसे कहने लगे—'कर्ण! जाओ, जाओ अपने तीखे बाणोंसे अर्जुनको मार डालो।'

तब पहले कर्णने दस बड़े-बड़े बाणोंसे अर्जुनको बींध दिया। फिर अर्जुनने भी तेज की हुई धारवाले दस सायकोंसे कर्णकी काँखमें हँसते-हँसते प्रहार किया। अब दोनों एक-दूसरेको अपने-अपने बाणोंका निशाना बनाने लगे और हर्षमें भरकर भयंकररूपसे आक्रमण करने लगे। अर्जुनने गाण्डीव धनुषकी प्रत्यञ्चा सुधारकर कर्णपर नाराच, नालीक, वराहकर्ण क्षुर, अञ्जलिक और अर्धचन्द्र आदि बाणोंकी झड़ी लगा दी। किंतु अर्जुन जो-जो बाण उसपर छोड़ते थे, उसी-उसीको वह अपने सायकोंसे नष्ट कर डालता था। तदनन्तर उन्होंने आग्नेयास्त्रका प्रहार किया। इससे पृथ्वीसे लेकर आकाशतक आगकी ज्वाला फैल गयी। योद्धाओंके वस्त्र जलने लगे, वे रणसे भाग चले। जैसे जंगलके बीच बाँसका वन जलते समय जोर-जोरसे चटखनेकी आवाज करता है, उसी तरह आगकी लपटमें झुलसते हुए सैनिकोंका भयंकर आर्तनाद होने लगा।

आग्नेयास्त्रको बढ़ते देख उसे शान्त करनेके लिये कर्णने वारुणास्त्रका प्रयोग किया। उससे वह आग बुझ गयी। उस समय मेघोंकी घटा घिर आयी और चारों दिशाओंमें अँधेरा छा गया। सब ओर पानी-ही-पानी नजर आने लगा। तब अर्जुनने वायव्यास्त्रसे कर्णके छोड़े हुए वारुणास्त्रको शान्त कर दिया; बादलोंकी वह घटा छिन्न-भिन्न हो गयी। तत्पश्चात् उन्होंने गाण्डीव धनुष, उसकी प्रत्यञ्चा तथा बाणोंको अभिमन्त्रित करके अत्यन्त प्रभावशाली ऐन्द्रास्त्र वज्रको प्रकट किया। उससे क्षुरप्र, अञ्जलिक, अर्धचन्द्र, नालीक, नाराच और वराहकर्ण आदि तीखे अस्त्र हजारोंकी संख्यामें छूटने लगे। उन अस्त्रोंसे कर्णके सारे अङ्ग, घोड़े, धनुष, दोनों पहिये और ध्वजाएँ बिंध गयीं। उस समय कर्णका शरीर बाणोंसे आच्छादित होकर खूनसे लथपथ हो रहा था, क्रोधके मारे उसकी आँखें बदल गयीं। अतः उसने भी समुद्रके समान गर्जना करनेवाले भार्गवास्त्रको प्रकट किया और अर्जुनके महेन्द्रास्त्रसे प्रकट हुए बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इस प्रकार अपने अस्त्रसे शत्रुके अस्त्रको दबाकर कर्णने पाण्डव-सेनाके रथी, हाथीसवार और पैदलोंका संहार आरम्भ किया। भार्गवास्त्रके प्रभावसे जब वह पाञ्चालों और सोमकोंको भी पीड़ित करने लगा तो वे भी क्रोधमें भरकर उसपर टूट पड़े और चारों ओरसे तीखे बाण मारकर उसे बींधने लगे। किंतु सूतपुत्रने पाञ्चालोंके रथी, हाथीसवार और घुड़सवारोंके समुदायोंको अपने बाणोंसे विदीर्ण कर डाला; वे चीखते-चिल्लाते हुए प्राण त्यागकर धराशायी हो गये। उस समय आपके सैनिक कर्णकी विजय समझकर सिंहनाद करने और ताली पीटने लगे।

यह देख भीमसेन क्रोधमें भरकर अर्जुनसे बोले—'विजय! धर्मकी अवहेलना करनेवाले इस पापी कर्णने आज तुम्हारे सामने ही पाञ्चालोंके प्रधान-प्रधान वीरोंको कैसे मार डाला? तुम्हें तो कालिकेय नामक दानव भी नहीं परास्त कर सके, साक्षात् महादेवजीसे तुम्हारी हाथापाई हो चुकी है; फिर भी इस सूतपुत्रने तुम्हें पहले ही बाण मारकर कैसे बींध डाला? तुम्हारे चलाये हुए बाणोंको इसने नष्ट कर दिया! यह तो मुझे एक अचंभेकी बात मालूम हो रही है। अरे! सभामें द्रौपदीको जो कष्ट दिये गये हैं, उनको याद करो; इस पापीने निर्भय होकर जो हमलोगोंको नपुंसक कहा तथा तीखी और कठोर बातें सुनायीं, उन्हें भी स्मरण करो। इन सारी बातोंको ध्यानमें रखकर शीघ्र ही कर्णका नाश कर डालो। तुम इतनी लापरवाही क्यों कर रहे हो? यह लापरवाहीका समय नहीं है।'

तदनन्तर श्रीकृष्णने भी अर्जुनसे कहा—'वीरवर! यह क्या बात है? तुमने जितने बार प्रहार किये, कर्णने प्रत्येक बार तुम्हारे अस्त्रको नष्ट कर दिया। आज तुमपर कैसा मोह छा रहा है? ध्यान नहीं देते? ये तुम्हारे शत्रु कौरव कितने हर्षमें भरकर गरज रहे हैं! जिस धैर्यसे तुमने प्रत्येक युगमें भयंकर राक्षसोंको मारा और दम्भोद्भव नामक असुरोंका विनाश किया है, उसी धैर्यसे आज कर्णको भी नष्ट करो।'



कर्ण और अर्जुनका युद्ध

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! भीमसेन तथा श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर अर्जुनने सूतपुत्रके वधका विचार किया। साथ ही, भूमिपर आनेके प्रयोजनपर ध्यान देकर उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा—'भगवन्! अब मैं संसारका कल्याण और सूतपुत्रका वध करनेके लिये महान् भयंकर अस्त्र प्रकट कर रहा हूँ! इसके लिये आप, ब्रह्माजी, शंकरजी, समस्त देवता तथा सम्पूर्ण ब्रह्मवेत्ता मुझे आज्ञा दें।' भगवान्‌से ऐसा कहकर सव्यसाचीने ब्रह्माजीको नमस्कार किया और जिसका मन-ही-मन प्रयोग होता है, उस ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया। परंतु कर्णने अपने बाणोंकी बौछारसे उस अस्त्रको नष्ट कर डाला।

यह देख भीमसेन क्रोधसे तमतमा उठे, उन्होंने सत्य-प्रतिज्ञ अर्जुनसे कहा—'सव्यसाचिन्! सब लोग जानते हैं कि तुम परम उत्तम ब्रह्मास्त्रके ज्ञाता हो, इसलिये अब और किसी अस्त्रका संधान करो।' यह सुनकर अर्जुनने दूसरे अस्त्रको धनुषपर रखा; फिर तो उससे प्रज्वलित बाणोंकी वर्षा होने लगी, जिससे चारों दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। कोना-कोना भर गया। केवल बाण ही नहीं; उससे भयंकर त्रिशूल, फरसे, चक्र और नाराच आदि अस्त्र भी सैकड़ोंकी संख्यामें निकलकर सब ओर खड़े हुए योद्धाओंके प्राण लेने लगे। किसीका सिर कटकर गिरा तो कोई यों ही भयके मारे गिर पड़ा, कोई दूसरेको गिरता देख स्वयं वहाँसे चंपत हो गया। किसीकी दाहिनी बाँह कटी तो किसीकी बायीं। इस प्रकार किरीटधारी अर्जुनने शत्रुपक्षके मुख्य-मुख्य योद्धाओंका संहार कर डाला।

दूसरी ओरसे कर्णने भी अर्जुनपर हजारों बाणोंकी वर्षा की। फिर भीमसेन, श्रीकृष्ण और अर्जुनको तीन-तीन बाणोंसे बींधकर उसने बड़े जोरसे गर्जना की। तब अर्जुनने पुनः अठारह बाण चलाये; उनमेंसे एक बाणके द्वारा उन्होंने कर्णकी ध्वजा छेद डाली, चार बाणोंसे राजा शल्यको और तीनसे कर्णको घायल किया, शेष दस बाणोंका प्रहार राजकुमार सभापतिपर हुआ। दो बाणोंसे राजकुमारके ध्वजा और धनुष कट गये, पाँचसे घोड़े और सारथि मारे गये, फिर दोसे उनकी दोनों भुजाएँ कटीं और एकसे मस्तक उड़ा दिया गया। इस प्रकार मृत्युको प्राप्त होकर वह राजकुमार रथसे नीचे गिर पड़ा। इसके बाद अर्जुनने पुनः तीन, आठ, दो, चार, और दस बाणोंसे कर्णको बींध डाला। फिर अस्त्रशस्त्रोंसहित चार सौ हाथीसवारों, आठ सौ रथियों, एक हजार घुड़सवारों तथा आठ हजार पैदल सिपाहियोंको मौतके घाट उतार दिया। यही नहीं, उन्होंने बाणोंसे कर्णको उसके सारथि, रथ, घोड़े और ध्वजासहित ढक दिया; अब वह दिखायी नहीं पड़ता था। तदनन्तर, उन्होंने कौरवोंको अपने बाणोंका निशाना बनाया। उनकी मार खाकर कौरव चिल्लाते हुए कर्णके पास आये और कहने लगे—'कर्ण ! तुम शीघ्र ही बाणोंकी वर्षा करके पाण्डुपुत्र अर्जुनको मार डालो। नहीं तो यह पहले कौरवोंको ही समाप्त कर देना चाहता है।'

उनकी प्रेरणासे कर्णने पूरी शक्ति लगाकर लगातार बहुत-से बाणोंकी वर्षा की, इससे पाण्डव और पाञ्चाल सैनिकोंका नाश होने लगा। कर्ण और अर्जुन दोनों ही अस्त्र-विद्याके ज्ञाता थे, इसलिये बड़े-बड़े अस्त्रोंका प्रयोग करके वे अपने-अपने शत्रुओंकी सेनाका संहार करने लगे। इतनेहीमें राजा युधिष्ठिर मन्त्र तथा ओषधियोंके बलसे पूर्ण स्वस्थ होकर कर्ण और अर्जुनका युद्ध देखनेके लिये वहाँ आये। हितैषी वैद्योंने उनके शरीरसे बाण निकालकर घाव अच्छा कर दिया था। धर्मराजको संग्राम-भूमिमें उपस्थित देख सबको बड़ी प्रसन्नता हुई।

उस समय सूतपुत्र कर्णने अर्जुनको क्षुद्रक नामवाले सौ बाण मारे, फिर श्रीकृष्णको साठ बाणोंसे बींधकर अर्जुनको भी आठ बाणोंसे घायल किया। साथ ही, भीमसेनपर भी उसने हजारों बाणोंका प्रहार किया। तब पाण्डव और सोमक वीर कर्णको तेज किये हुए बाणोंसे आच्छादित करने लगे। किंतु उसने अनेकों बाण मारकर उन योद्धाओंको आगे बढ़नेसे रोक दिया और अपने अस्त्रोंसे उनके अस्त्रोंको नष्ट करके रथ, घोड़े तथा हाथियोंका भी संहार कर डाला। अब तो आपके योद्धा यह समझकर कि कर्णकी विजय हो गयी, ताली पीटने और सिंहनाद करने लगे।

इसी समय अर्जुनने हँसते-हँसते दस बाणोंसे राजा शल्यके कवचको बींध डाला, फिर बारह तथा सात बाण मारकर कर्णको भी घायल कर दिया। कर्णके शरीरमें बहुतसे घाव हो गये, वह खूनसे लथपथ हो गया। तदनन्तर कर्णने भी अर्जुनको तीन बाण मारे और श्रीकृष्णको मारनेकी इच्छासे उसने पाँच बाण चलाये। वे बाण श्रीकृष्णके कवचको छेदकर पृथ्वीपर जा पड़े। यह देख अर्जुन क्रोधसे जल उठे, उन्होंने अनेकों दमकते हुए बाण मारकर कर्णके मर्मस्थानोंको बींध डाला। इससे कर्णको बड़ी पीड़ा हुई, वह विचलित हो उठा; किन्तु किसी तरह धैर्य धारण कर रणभूमिमें डटा रहा। तत्पश्चात् अर्जुनने बाणोंका ऐसा जाल फैलाया कि दिशाएँ, कोने, सूर्यकी प्रभा तथा कर्णका रथ—इन सबका दीखना बंद हो गया। उन्होंने

कर्णके पहियोंकी रक्षा करनेवाले, चरणोंकी रक्षा करनेवाले, आगे चलनेवाले और पीछे रहकर रक्षा करनेवाले समस्त सैनिकोंका बात-की-बातमें सफाया कर डाला। इतना ही नहीं; दुर्योधन जिनका बड़ा आदर करता था, उन दो हजार कौरव-वीरोंको भी उन्होंने रथ, घोड़े और सारथिसहित मौतके मुखमें पहुँचा दिया। अब तो आपके बचे हुए पुत्र कर्णका आसरा छोड़कर भाग चले। कौरव योद्धा मरे हुए अथवा घायल होकर चीखते-चिल्लाते हुए बाप-बेटोंको भी छोड़कर पलायन कर गये। उस समय कर्णने जब चारों ओर दृष्टि डाली तो उसे सब सूना ही दिखायी पड़ा; भयभीत होकर भागे हुए कौरवोंने उसे अकेला ही छोड़ दिया था; किंतु इससे उसको तनिक भी घबराहट नहीं हुई। उसने पूर्ण उत्साहके साथ अर्जुनपर धावा किया।



भगवान्‌द्वारा अर्जुनकी सर्पमुख बाणसे रक्षा तथा अश्वसेन नागका वध

सञ्जय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर भागे हुए कौरव-सैनिक धनुषसे छोड़ा हुआ बाण जहाँतक पहुँचता है, उतनी दूरीपर जाकर खड़े हो गये। वहाँसे उन्होंने देखा कि अर्जुनका अस्त्र चारों ओर बिजलीके समान चमक रहा है। फिर यह भी देखनेमें आया कि कर्ण अपने भयंकर बाणोंसे उनके अस्त्रको नष्ट किये डालता है। अब अर्जुन प्रचण्ड रूप धारण कर कौरवोंको भस्म करने लगे। यह देख कर्णने आथर्वण अस्त्रका प्रयोग किया। वह शत्रुनाशक अस्त्र उसे परशुरामजीसे प्राप्त हुआ था। उसके द्वारा कर्णने अर्जुनके अस्त्रको शान्त कर दिया और उन्हें भी तेज किये हुए सायकोंसे बींध डाला। उस समय कर्ण और अर्जुनने इतनी बाण-वर्षा की कि सारा आकाश ढक गया, उसमें तनिक भी जगह खाली नहीं रह गयी। कौरवों और सोमकोंको चारों ओर बाणोंका जाल-सा फैला हुआ दिखायी देने लगा। घोर अंधकार छा गया, बाणोंके सिवा और कुछ नहीं सूझता था। वहाँ युद्ध करते समय वीरता, अस्त्र-संचालन, मायाबल तथा पुरुषार्थमें कभी सूतपुत्र कर्ण बढ़ जाता था और कभी अर्जुन। दोनों एक-दूसरेका छिद्र देखते हुए भयंकर प्रहार कर रहे थे; यह देखकर समस्त योद्धाओंको बड़ा आश्चर्य हो रहा था। उस समय अन्तरिक्षमें खड़े हुए प्राणी कर्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे—'वाह रे कर्ण! शाबाश अर्जुन!' यही बात आकाशमें सब ओर सुनायी पड़ती थी।

इसी समय पाताललोकमें रहनेवाला अश्वसेन नामक नाग, जो अर्जुनसे वैर मानता था, कर्ण तथा अर्जुनका युद्ध होता जान बड़े वेगसे उछलकर वहाँ आ पहुँचा और अर्जुनसे बदला लेनेका यही उपयुक्त समय है, ऐसा सोच बाणका रूप बनाकर वह कर्णके तरकसमें समा गया। उस युद्धमें जब कर्ण किसी तरह अर्जुनसे बढ़कर पराक्रम न दिखा सका, तब उसे अपने सर्पमुख बाणकी याद आयी। वह बाण बड़ा भयंकर था, आगमें तपाया होनेके कारण वह सदा देदीप्यमान रहता था। कर्णने अर्जुनको ही मारनेके लिये उसे बड़े यत्नसे और बहुत दिनोंसे सुरक्षित रखा था। वह नित्य उसकी पूजा करता और सोनेके तरकसमें चन्दनके चूर्णके अन्दर उसे रखता था। उसी बाणको उसने धनुषपर चढ़ाया और अर्जुनकी ओर ताककर निशाना ठीक किया। परंतु उस बाणके धोखेमें अश्वसेन नामक नाग ही धनुषपर चढ़ चुका था—यह देख इन्द्रादि लोकपाल 'हाय! हाय!' करने लगे।

उस समय मद्रराज शल्यने जब उस भयंकर बाणको धनुषपर चढ़ा हुआ देखा तो कहा—'कर्ण! तुम्हारा यह बाण शत्रुके कण्ठमें नहीं लगेगा; जरा सोच-विचारकर फिरसे निशाना ठीक करो, जिससे यह मस्तक काट सके।'

यह सुनकर कर्णकी आँखें क्रोधसे उद्दीप्त हो उठीं। वह शल्यसे कहने लगा—'मद्रराज! कर्ण दो बार निशाना नहीं साधता। मेरे-जैसे वीर कपटपूर्वक युद्ध नहीं करते।'

यह कहकर कर्णने जिसकी वर्षोंसे पूजा की थी, उस बाणको शत्रुकी ओर छोड़ दिया और उनका तिरस्कार करते हुए उच्च स्वरसे कहा—'अर्जुन! अब तू मारा गया।'

कर्णके धनुषसे छूटा हुआ वह बाण अन्तरिक्षमें पहुँचते ही प्रज्वलित हो उठा। उसे बड़े वेगसे आते देख भगवान् श्रीकृष्णने खेल-सा करते हुए अपने रथको तुरंत पैरसे दबा दिया, भार पड़नेसे रथके पहिये कुछ-कुछ जमीनमें धँस गये। साथ ही सोनेके गहनोंसे सजे हुए घोड़े भी पृथ्वीपर घुटने टेककर जरा-सा झुक गये। भगवान्‌का यह कौशल देख आकाशमें उनकी प्रशंसासे भरी हुई दिव्य-वाणी सुनायी देने लगी। फूलोंकी वर्षा होने लगी। कर्णका छोड़ा हुआ वह



बाण रथ नीचा हो जानेके कारण अर्जुनके कण्ठमें न लगकर मुकुटमें लगा। वह मस्तकसे नीचे जा पड़ा। अर्जुनका वह मुकुट पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग और वरुणलोकमें भी विख्यात था; सूर्य, चन्द्रमा और अग्निकी प्रभाके समान उसकी चमक थी। साक्षात् ब्रह्माजीने बड़े प्रयत्न और तपस्यासे उसको इन्द्रके लिये तैयार किया था। उससे बड़ी मीठी सुगन्ध फैलती रहती थी। अर्जुनने दैत्योंको मारनेकी इच्छासे जब रण-यात्रा की थी, उस समय इन्द्रने प्रसन्न होकर उन्हें अपने हाथसे यह मुकुट पहनाया था। वही मुकुट कर्णके साथ युद्ध करते समय सर्पकी विषाग्निसे जीर्ण-शीर्ण होकर जलता हुआ जमीनपर जा गिरा। इससे अर्जुनको तनिक भी घबराहट नहीं हुई, वे अपने सिरके बालोंपर सफेद साफा बाँधकर धैर्यपूर्वक डटे रहे। उस समय वे मौतके मुखसे बचे थे; क्योंकि सर्पमुख बाणके रूपमें अर्जुनके साथ वैर रखनेवाला तक्षकका पुत्र था। किरीटपर आघात करके वह पुनः तरकसमें घुसना ही चाहता था किंतु कर्णने उसे देख लिया। कर्णके पूछनेपर वह कहने लगा—'कर्ण ! तुमने अच्छी तरह सोच-विचारकर बाण नहीं छोड़ा था, इसीलिये मैं अर्जुनका मस्तक न उड़ा सका; अब जरा निशाना साधकर चलाओ, फिर मैं अपने और तुम्हारे इस शत्रुका सिर अभी काट डालता हूँ।'

कर्णने पूछा—तुम कौन हो ? नागने उत्तर दिया—'मैं नाग हूँ। अर्जुनने खाण्डव वनमें मेरी माताका वध करके बहुत बड़ा अपराध किया है, इसके कारण मेरी उससे दुश्मनी हो गयी है। यदि स्वयं वज्रधारी इन्द्र उसकी रक्षा करने आवें, तो भी उसे यमराजके घर जाना पड़ेगा।' कर्ण बोला— 'नाग ! आज कर्ण दूसरेके बलका आश्रय लेकर विजय पाना नहीं चाहता। यदि तुम्हारा संधान करनेसे मैं सैकड़ों अर्जुनोंको मार सकूँ, तो भी मैं एक बाणको दो बार संधान नहीं कर सकता। मेरे पास सर्पबाण है, उत्तम प्रयत्न है और मनमें रोष भी है; इन सबके द्वारा मैं स्वयं ही अर्जुनको मार डालूँगा, तुम प्रसन्नतापूर्वक लौट जाओ।'

कर्णकी यह बात नागराजसे नहीं सही गयी, वह स्वयं ही अर्जुनका वध करनेके लिये अपना भयंकर रूप प्रकट करके उनकी ओर दौड़ा। यह देख श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'यह महान् सर्प तुम्हारा दुश्मन है, इसे मार डालो।' अर्जुनने पूछा—'यह कौन है ?' भगवान्‌ने कहा—'खाण्डव वनमें जब तुम अग्निदेवको तृप्त कर रहे थे, उस समय इसकी माताने पुत्रका प्राण बचानेके लिये इसे निगल लिया था। इस प्रकार माँके पेटमें अपने शरीरको छिपाकर जब यह उसके साथ ही आकाशमें उड़ रहा था, उसी समय तुमने दोनोंको एकरूप मानकर केवल इसकी माताको मार डाला था। उसी वैरको याद करके आज यह तुम्हारी ओर आ रहा है।'

तब अर्जुनने आकाशमें तिरछी गतिसे उड़ते हुए उस नागको तेज किये हुए छः बाण मारे। बाणोंके प्रहारसे उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो गये और वह जमीनपर गिर पड़ा। उसके मारे जानेके बाद भगवान्‌ने पृथ्वीमें धँसे हुए रथको अपनी दोनों भुजाओंसे ऊपर निकाला। उस समय कर्णने श्रीकृष्णको बारह तथा अर्जुनको नब्बे बाणोंसे घायल कर दिया। फिर एक भयंकर बाणसे अर्जुनको बींध करके वह बड़े जोरसे गर्जने और हँसने लगा।



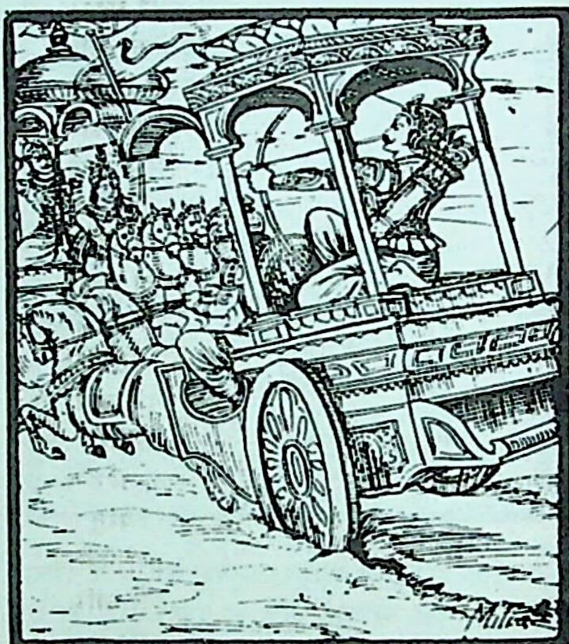
अर्जुनके प्रहारसे कर्णकी मूर्च्छा, पृथ्वीमें धँसे हुए पहियेको निकालते समय कर्णका धर्मकी दुहाई देना और भगवान्‌का उसे फटकारना

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! कर्णने हँसकर जो अपनी प्रसन्नता प्रकट की थी, वह अर्जुनसे नहीं सही गयी। उन्होंने सैकड़ों बाण मारकर उसके मर्मस्थानोंको बींध डाला। फिर कालदण्डके समान नब्बे सायकोंसे उसको घायल किया। इन

प्रहारोंके कारण कर्णके शरीरमें बहुत-से घाव हो गये और उसे बड़ी वेदना होने लगी। उसके मस्तकपर एक सुन्दर मुकुट था जिसमें उत्तम-उत्तम मणि, हीरे और सुवर्ण जड़े हुए थे। कानोंमें सुन्दर कुण्डल शोभा पा रहे थे। अर्जुनके बाणोंकी चोट खाकर कर्णका वह मुकुट कुण्डलोंके साथ ही जमीनपर जा पड़ा। उसने जो कवच पहन रखा था, वह भी बड़ा कीमती और चमकीला था। उस कवचको कारीगरोंने बहुत दिनोंमें बनाया था, परंतु अर्जुनने एक ही क्षणमें बाण मारकर उसके टुकडे-टुकड़े कर डाले। इसके बाद तेज किये हुए चार बाण मारकर उन्होंने उसे और भी घायल कर दिया। जैसे वात, पित्त और कफके प्रकोपसे होनेवाले सन्निपात-ज्वरमें रोगीको विशेष व्यथा होती है, वैसे ही शत्रुका बारंबार प्रहार होनेसे कर्णको बड़ी पीड़ा हुई। अर्जुनमें कार्य-कुशलता, उद्योग और बल सभी कुछ था; इनके सहारे वे अपने धनुषसे तेज किये हुए बाणोंकी वर्षा करके कर्णके मर्मस्थानोंको छेदने लगे। फिर उन्होंने उसकी छातीमें यमदण्डके समान नौ बाण मारे। इस प्रकार चोट-पर-चोट खाकर कर्ण अत्यन्त आहत हो गया, उसकी मुट्ठी खुल गयी, धनुष और तरकस गिर पड़े और वह रथपर ही गिरकर बेहोश हो गया।

अर्जुन श्रेष्ठ थे और श्रेष्ठ पुरुषोंके व्रतका पालन करते थे; उन्होंने जब कर्णको संकटमें पड़ा देखा तो उस समय उसे मारनेका विचार छोड़ दिया। यह देख भगवान् श्रीकृष्ण सहसा बोल उठे—'पाण्डुनन्दन ! यह लापरवाही कैसी ? बुद्धिमान् पुरुष संकटमें पड़े हुए शत्रुको मारकर धर्म और यश प्राप्त करते हैं। तुम भी इसका नाश करनेके लिये शीघ्रता करो; यदि यह पहलेहीके समान शक्तिशाली हो जायगा तो फिर तुमपर आक्रमण करेगा।' तब अर्जुनने 'बहुत अच्छा भगवन् ! ऐसा ही करूँगा' यों कहकर श्रीकृष्णका सम्मान किया और शीघ्र ही उत्तम बाणोंसे कर्णको बींधना आरम्भ किया। उन्होंने 'वत्सदन्त' नामवाले सायकोंसे कर्णको उसके रथ और घोड़ोंसहित ढक दिया और पूरी शक्ति लगाकर चारों दिशाओंको बाणोंसे आच्छादित कर दिया।

तदनन्तर, कर्णको जब चेत हुआ तो उसने धैर्य धारण करके अर्जुनको दस और श्रीकृष्णको छः बाणोंसे बींध डाला। अब अर्जुनने कर्णपर एक भयंकर बाण छोड़नेका विचार किया। इधर, उसके वधका समय भी आ पहुँचा था। उस समय कालने अदृश्य रहकर कर्णको ब्राह्मणके कोपवश दिये हुए शापकी याद दिला दी और उसके वधकी सूचना देते हुए कहा 'अब पृथ्वी तुम्हारे पहियेको निगलना ही चाहती है।' इसी समय परशुरामजीके द्वारा मिले हुए ब्राह्म अस्त्रकी याद उसके मनसे जाती रही। उधर, पृथ्वी ब्राह्मणके



शापके अनुसार उसके बायें पहियेको निगलने लगी। रथ डगमग हुआ और एक पहिया जमीनमें धँस गया।

इस प्रकार जब पहिया फँसा, परशुरामजीका दिया हुआ अस्त्र भूल गया और घोर सर्पमुख बाण भी कट गया, तब कर्ण बहुत घबराया। वह एक साथ इतने संकटोंको न सह सकनेके कारण विषादमें डूब गया और हाथ हिला-हिलाकर धर्मकी निन्दा करने लगा—'धर्मवेत्ता लोग सदा कहा करते थे कि धर्म अवश्य ही मनुष्यकी रक्षा करता है। मैं भी शास्त्रमें जैसा सुना गया है और जैसी अपनी शक्ति है, उसके अनुसार धर्मपालनके लिये सदा ही प्रयत्न करता रहा हूँ। किंतु आज वह भी मुझे मार ही रहा है, बचाता नहीं। इसलिये मेरी समझमें तो यही बात आती है कि धर्म भी अपने भक्तोंकी सदा रक्षा नहीं करता।'

जब कर्ण ये बातें कह रहा था, उस समय उसके घोड़े और सारथि लड़खड़ा रहे थे। वह स्वयं भी अर्जुनके बाणोंकी मारसे विचलित हो उठा था। मर्मस्थानोंमें चोट लगनेसे वह शिथिल हो गया था, काम करनेकी शक्ति नहीं रह गयी थी। अतः रह-रहकर धर्मकी निन्दा ही करता था। इसके बाद उसने कृष्णके हाथमें तीन और अर्जुनके सात भयंकर

बाण मारे। तब अर्जुनने भी कर्णपर वज्रके समान भयंकर सत्रह बाणोंका प्रहार किया, वे उसके शरीरको छेदते हुए पृथ्वीपर जा पड़े। उस प्रहारसे कर्ण काँप उठा, किंतु बलपूर्वक अपने शरीरको स्थिर रखकर उसने ब्रह्मास्त्र प्रकट किया। यह देख अर्जुनने भी अपने बाणोंको अभिमन्त्रित करके कर्णपर उनकी वर्षा आरम्भ कर दी। किन्तु महारथी कर्णने सामने आते ही अर्जुनके बाणोंको नष्ट कर डाला। तब भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'पार्थ ! राधानन्दन कर्ण तुम्हारे बाणोंको नष्ट किये डालता है। अतः अब तुम किसी उत्तम अस्त्रका प्रयोग करो।' यह सुनकर अर्जुन सावधान हो गये, उन्होंने मन्त्र पढ़कर अपने धनुषपर ब्रह्मास्त्रको चढ़ाया और बाणोंसे समस्त दिशाओंको आच्छादित करके कर्णको मारना आरम्भ किया। तब कर्णने तेज किये हुए बाणोंसे उनके धनुषकी डोरी काट दी। अर्जुनने दूसरी डोरी चढ़ायी, किंतु कर्णने उसे भी काट दिया। इस प्रकार तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठीं, सातवीं, आठवीं, नवीं, दसवीं, और ग्यारहवीं बार चढ़ायी हुई डोरीको भी उसने काट दिया। परंतु अर्जुनके पास सौ डोरियाँ मौजूद थीं, इस बातको कर्ण नहीं जानता था। उन्होंने फिर नयी डोरी चढ़ायी और उसे अभिमन्त्रित करके कर्णपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। उस समय कर्ण अपने अस्त्रोंसे अर्जुनके अस्त्रोंको काटकर पुनः उन्हें बींध डालता था। इस प्रकार उसने अर्जुनकी अपेक्षा बढ़कर पराक्रम दिखाया।

इधर श्रीकृष्णने जब अर्जुनको कर्णके बाणोंसे पीड़ित देखा तो कहा—'अर्जुन ! अस्त्र उठाओ और निकटसे प्रहार करो।' तब उन्होंने मन्त्र पढ़कर रौद्रास्त्रको धनुषपर चढ़ाया और उसे कर्णपर छोड़नेका विचार किया। इतनेमें कर्णके रथका पहिया पृथ्वीमें अधिक धँस गया; यह देख वह तुरंत रथसे उतर पड़ा और दोनों भुजाओंसे पहियेको पकड़कर ऊपर उठानेका उद्योग करने लगा। उसने सात द्वीपोंवाली इस पृथ्वीको पर्वत और वनसहित चार अंगुल ऊपर उठा दिया, मगर फँसा हुआ पहिया नहीं निकल सका। उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे और वह अर्जुनकी ओर देखकर बोला—'कुन्तीनन्दन ! तुम बड़े धनुर्धर हो; जबतक मैं अपना यह फँसा हुआ पहिया ऊपर निकाल न लूँ, तबतक क्षणभरके लिये ठहर जाओ। तुम्हें नीच पुरुषोंके मार्गपर नहीं चलना चाहिये। तुम्हारे लिये तो श्रेष्ठ आचरण ही उचित है। जिसके सिरके बाल बिखर गये हों, जो पीठ दिखाकर भागा जाता हो, ब्राह्मण हो, हाथ जोड़ रहा हो, शरणमें आया हो और प्राण-रक्षाके लिये प्रार्थना कर रहा हो, जिसने अपने हथियार रख दिये हों, जिसके पास बाण न हो, जिसका कवच कट



गया हो, अस्त्र-शस्त्र गिर गये या टूट गये हों, ऐसे योद्धापर उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले शूरवीर शस्त्र नहीं चलाते। तुम भी संसारके बहुत बड़े वीर और सदाचारी हो। युद्ध-धर्मको जानते हो। तुमने उपनिषदोंके गहन ज्ञानमें डुबकी लगायी है। तुम दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता और उदार हृदयवाले हो। युद्धमें कार्तवीर्यको भी मात करते हो। महाबाहो ! जबतक मैं इस फँसे हुए चक्केको ऊपर उठा न लूँ, तबतक रुक जाओ। तुम रथपर हो और मैं जमीनपर। साथ ही मैं बहुत घबराया हुआ हूँ, इसलिये मेरे ऊपर प्रहार करना उचित नहीं है।'

कर्णकी बात सुनकर रथपर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णने उससे कहा—'राधानन्दन ! सौभाग्यकी बात है कि इस समय तुम्हें धर्मकी याद आ रही है। प्रायः ऐसा देखनेमें आता है कि नीच मनुष्य विपत्तिमें फँसनेपर प्रारब्धकी ही निन्दा करते हैं, अपने किये हुए कुकर्मोंकी नहीं। कर्ण ! पाण्डवोंके वनवासका तेरहवाँ वर्ष बीत जानेपर भी जब तुमने उनका राज्य नहीं लौटाने दिया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ? तुम्हारी ही सलाह लेकर जब राजा दुर्योधनने भीमसेनको जहर मिलाया हुआ भोजन कराया और उन्हें साँपोंसे डँसवाया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? वारणावत नगरमें लाक्षाभवनके भीतर सोये हुए पाण्डवोंको जलानेका जब तुमने प्रबन्ध किया, उस समय तुम्हारा धर्म



कहाँ था ? भरी सभाके अंदर दुःशासनके वशमें पड़ी हुई रजस्वला द्रौपदीको लक्ष्य करके जब तुमने उपहास किया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ? याद है न ? तुमने द्रौपदीसे कहा था—'कृष्णे ! पाण्डव नष्ट हो गये, सदाके लिये नरकमें पड़ गये; अब तू किसी दूसरे पतिका वरण कर ले।' यह कहकर जब तुम उसकी ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे थे, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? फिर राज्यके लोभसे तुमने शकुनिकी सलाह लेकर जब पाण्डवोंको दुबारा जूएके लिये बुलवाया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ? अभिमन्यु बालक था और अकेला भी; तो भी तुम अनेक महारथियोंने जब चारों ओरसे घेरकर उसे मार डाला था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? यदि उस समय यह धर्म नहीं था, तो आज भी धर्मकी दुहाई देकर अधिक बकवाद करनेसे क्या लाभ है ? इस समय यहाँ कितने ही धर्म क्यों न कर डालो, अब जीते-जी तुम्हारा छुटकारा नहीं हो सकता। पुष्करने राजा नलको जूएमें जीत लिया था, किंतु उन्होंने अपने ही पराक्रमसे पुनः अपना राज्य भी पाया और यश भी। इसी तरह निर्लोभी पाण्डव भी अपनी भुजाओंके बलसे शत्रुओंका संहार करके फिर अपना राज्य प्राप्त करेंगे तथा इन महापुरुषोंके हाथसे ही धृतराष्ट्रके पुत्रोंका नाश हो जायगा।'

भगवान् वासुदेवके ऐसा कहनेपर कर्णने लज्जासे अपना सिर झुका लिया उससे कोई जवाब देते नहीं बना।



कर्णका वध और शल्यका दुर्योधनको सान्त्वना देना

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर कर्ण धनुष उठाकर बड़े वेगसे अर्जुनके साथ युद्ध करने लगा। उस समय श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'तुम कर्णको दिव्यास्त्रसे ही घायल करके मार गिराओ।' भगवान्‌के ऐसा कहनेपर अर्जुनको कर्णके अत्याचारोंका स्मरण हो आया। फिर तो उन्हें भयंकर क्रोध चढ़ा, उनके रोम-रोमसे आगकी चिनगारियाँ छूटने लगीं—यह एक अद्‌भुत बात हुई। यह देख कर्णने अर्जुनपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। अर्जुनने भी ब्रह्मास्त्रसे ही उसके अस्त्रको दबा दिया। इसके बाद उन्होंने कर्णको लक्ष्य करके आग्नेय अस्त्र छोड़ा, जो अपने तेजसे प्रज्वलित हो उठा। किंतु कर्णने उसे वारुणास्त्रसे शान्त कर दिया; साथ ही आकाशमें बादलोंकी घटा घिर आयी, सम्पूर्ण दिशाओंमें अँधेरा छा गया। परंतु अर्जुन इससे विचलित नहीं हुए, उन्होंने कर्णके देखते-देखते वायव्यास्त्रसे उन बादलोंको उड़ा दिया।

तब सूतपुत्रने अर्जुनका वध करनेके लिये जलती हुई आगके समान एक भयंकर बाण हाथमें लिया और ज्यों ही उसे धनुषपर चढ़ाया पर्वत, वन और काननोंसहित सारी पृथ्वी डगमगाने लगी। कर्णने उसे छोड़ दिया; उस वज्र-सरीखे बाणने अर्जुनकी छाती छेद डाली। गहरी चोट लगनेसे उन्हें चक्कर आ गया। हाथ ढीला पड़ गया, गाण्डीव धनुष खिसकने लगा और उनका सारा शरीर काँप उठा। इसी बीचमें मौका पाकर कर्ण पहिया निकालनेके लिये रथसे कूद पड़ा। उसने दोनों हाथोंसे पकड़कर पहियेको ऊपर उठानेकी बहुत कोशिश की, किंतु दैववश वह अपने प्रयत्नमें सफल न हो सका।

इतनेमें अर्जुनको चेत हुआ और उन्होंने यमदण्डके समान

समान भयानक बाण हाथमें उठाया। इसी समय श्रीकृष्णने कहा— 'कर्ण जबतक रथपर नहीं चढ़ जाता, तबतक ही इसका मस्तक काट डालो।' 'बहुत अच्छा' कहकर अर्जुनने भगवान्‌की आज्ञा स्वीकार की और कर्णकी ध्वजापर दहकते हुए बाणका प्रहार किया। ध्वजा टूट गयी और उसके गिरनेके साथ ही कौरवोंके यश, घमंड, विजय, मनोवाञ्छित कामनाओं तथा हृदयका भी पतन हो गया। उस समय बड़े जोरसे हाहाकार मचा। अब अर्जुन कर्णको मारनेके लिये बड़ी शीघ्रता करने लगे। उन्होंने अपने भाथेसे इन्द्रके वज्र और यमराजके दण्डके समान एक आञ्जलिक नामक बाण निकालकर हाथमें लिया। उसकी लंबाई लगभग ढाई हाथकी थी। उसमें छः पर लगे हुए थे; इसलिये वह बहुत तीव्र गतिसे चलता था। वह बाण सब ओर फैली हुई कालाग्निके समान घोर तथा पिनाक और सुदर्शन चक्रके समान भयंकर था। अर्जुनने उस अस्त्रको गाण्डीव धनुषपर चढ़ाया और उसे खैंचकर कहा—'यदि मैंने तप किया हो, गुरुजनोंको सेवासे प्रसन्न रखा हो, यज्ञ किया हो और हितैषी मित्रोंकी बातें ध्यान देकर सुनी हों तो इस सत्यके प्रभावसे यह बाण मेरे प्रचण्ड शत्रु कर्णका नाश कर डाले।' ऐसा कहकर उन्होंने वह भयानक बाण कर्णका वध करनेके उद्देश्यसे उसकी ओर छोड़ दिया। उनके हाथसे छूटते ही उस सूर्यके समान तेजस्वी बाणने समस्त दिशाओं और आकाशमें प्रकाश फैला दिया। दिनका तीसरा पहर बीत रहा था। उसी समय



अर्जुनने उस बाणसे कर्णका मस्तक काट डाला। आञ्जलिकसे कटा हुआ वह मस्तक पृथ्वीपर गिर पड़ा, इसके बाद उसका धड़ भी खूनकी धारा बहाता हुआ धराशायी हो गया। उस समय कर्णके शरीरसे एक तेज निकलकर आकाशमें फैल गया और फिर सूर्यमण्डलमें विलीन हो गया। इस अद्भुत दृश्यको वहाँ खड़े हुए सब लोगोंने अपनी आँखों देखा था।

अर्जुनने कर्णको मार गिराया—यह देख पाण्डवपक्षके योद्धा बड़े जोर-जोरसे शङ्ख बजाने लगे। श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा नकुल-सहदेवने भी हर्षमें भरकर अपने-अपने शङ्ख बजाये। सोमकोंने सेनासहित सिंहनाद किया। दूसरे योद्धाओंने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर बाजा बजाना आरम्भ कर दिया। कितने ही राजा आकर अर्जुनसे गले मिले। कितने ही एक-दूसरेको गले लगाकर नाचने लगे।

कर्णके शरीरको खूनसे लथपथ हो पृथ्वीपर पड़ा देख मद्रराज शल्य उस टूटी हुई ध्वजावाले रथके द्वारा ही वहाँसे भाग गये। कर्णकी मृत्यु देख कौरवपक्षके अन्य योद्धा भी भयभीत होकर भाग चले। उस समय दुर्योधनकी आँखोंमें आँसू भर आये। वह बारंबार उच्छ्वास लेने लगा। दोनों पक्षके योद्धा कर्णकी लाश देखनेके लिये उसे घेरकर खड़े हो गये। कोई प्रसन्न था, कोई भयभीत। किसीके चेहरेपर विषादकी छाया थी तो कोई आश्चर्यमें ही डूबा



हुआ था। सारांश यह कि जिनकी जैसी प्रकृति थी, वे उसी प्रकार हर्ष या शोकमें मग्न हो रहे थे।

कर्णके मरनेपर भीमने भयंकर सिंहनाद करके पृथ्वी और आकाशको कँपा दिया। वे धृतराष्ट्रके पुत्रोंको डराते हुए ताल ठोंककर नाचने-कूदने लगे। सोमक, सृञ्जय तथा दूसरे क्षत्रिय भी अत्यन्त हर्षमें भरकर एक-दूसरेको छातीसे लगाते हुए शङ्खनाद करने लगे। उस समय मद्रराज शल्यका चित्त ठिकाने नहीं था, वे दुर्योधनके पास पहुँचकर आँसू बहाते हुए बड़े दुःखके साथ बोले—'राजन्! तुम्हारी सेनाके हाथी-घोड़े, रथ और योद्धा नष्ट-भ्रष्ट हो गये, मानो उनपर यमराजका आधिपत्य हो गया है। आज कर्ण और अर्जुनमें जैसा युद्ध हुआ है, वैसा पहले कभी नहीं हुआ था। कर्णने चढ़ाई करके श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा अन्य शत्रुओंको प्रायः काबूमें कर लिया था; किंतु कुछ फल नहीं हुआ। निश्चय ही दैव पाण्डवोंके अधीन होकर काम कर रहा है। वह उनकी तो रक्षा करता है और हमारा नाश। यही कारण है कि तुम्हारे अर्थकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करनेवाले सभी वीर शत्रुओंके हाथसे बलपूर्वक मारे गये। तुम्हारी सेनाके प्रमुख योद्धा इन्द्र, यम और कुबेरके समान प्रभावशाली थे। उनमें पराक्रम, शौर्य, बल, तेज तथा और भी बहुत-से उत्तम गुण मौजूद थे। वे एक प्रकारसे अवध्य थे; तो भी उन्हें पाण्डवयोद्धाओंने रणमें मार डाला। अतः भारत! तुम शोच न करो। यह सब प्रारब्धका खेल है। सबको सदा ही सिद्धि नहीं मिलती, ऐसा जानकर धैर्य धारण करो।'



मद्रराजकी ये बातें सुनकर और मन-ही-मन अपने अन्यायोंका भी स्मरण करके दुर्योधन बहुत उदास हो गया। उसकी बुद्धि कुछ भी काम नहीं देती थी। दुःखसे अत्यन्त पीड़ित होकर वह बारंबार लंबी उसासें भरने लगा।



भीम और अर्जुन आदिके भयसे दुर्योधनके रोकनेपर भी कौरव-सेनाका भागना तथा दोनों ओरकी सेनाओंका शिविरमें जाना

सञ्जय कहते हैं—महाराज! उस समय कौरव-सैनिक भीमसेनके भयसे व्याकुल होकर भाग रहे थे। उनकी यह अवस्था देख दुर्योधन हाहाकार करके उठा और अपने सारथिसे बोला—'सूत! तुम धीरे-धीरे घोड़ोंको आगे बढ़ाओ। जब हाथमें धनुष लेकर मैं अपनी सम्पूर्ण सेनाके पीछे खड़ा रहूँगा, उस समय अर्जुन मुझे परास्त नहीं कर सकते। यदि वे मुझसे लड़ने आयेंगे तो निस्सन्देह उन्हें मार डालूँगा। आज मैं अर्जुन, श्रीकृष्ण तथा घमंडी भीमसेनको बचे-खुचे अन्य शत्रुओंके साथ मौतके घाट उतारकर कर्णके ऋणसे मुक्त होऊँगा।

दुर्योधनकी यह शूरवीरोंके योग्य बात सुनकर सारथिने घोड़ोंको धीरे-धीरे आगे बढ़ाया। आपकी ओरसे युद्धके लिये पचीस हजार पैदल खड़े थे, उन्हें भीमसेन और धृष्टद्युम्नने अपनी चतुरङ्गिणी सेनासे घेर लिया और बाणोंसे मारना आरम्भ किया। वे भी भीम और धृष्टद्युम्नका डटकर मुकाबला करने लगे। उस समय भीमसेन क्रोधमें भरकर हाथमें गदा लिये रथसे उतर पड़े और उन सबके साथ युद्ध करने लगे। भीमसेन युद्धधर्मका पालन करनेवाले थे, इसीलिये स्वयं रथपर बैठकर उन्होंने उन पैदलोंके साथ युद्ध नहीं किया। उन्हें अपने बाहुबलका पूरा भरोसा था।

गदा हाथमें लिये बाजकी तरह विचरते हुए महाबली भीमने आपके पचीसों हजार योद्धाओंको मार गिराया। एक ओरसे अर्जुनने रथियोंकी सेनापर धावा किया। दूसरी ओर



नकुल, सहदेव तथा सात्यकि—ये तीनों मिलकर दुर्योधनकी सेनाका संहार करते हुए शकुनिके ऊपर जा चढ़े। शकुनिके बहुत-से घुड़सवारोंको अपने तीखे बाणोंसे मारकर वे उसकी ओर भी दौड़े। फिर तो उनमें भयंकर युद्ध होने लगा। उधर, अर्जुनको आते देख आपके योद्धा भयके मारे भागने लगे। बहुतोंके रथ टूट गये, बहुत-से सायकोंकी मारसे अत्यन्त घायल हो गये; इस प्रकार अर्जुनके भी हाथसे मारे जाकर पचीस हजार योद्धा कालके गालमें समा गये।

इधर, धृष्टद्युम्नके डरसे आपके सैनिकोंमें भगदड़ पड़ गयी। चेकितान, शिखण्डी और द्रौपदीके पुत्र आपकी बड़ी भारी सेनाका संहार करके शङ्ख बजाने लगे। उन्होंने आपके भागते हुए सैनिकोंका भी पीछा किया। इसके बाद अर्जुनने पुनः रथ-सेनापर चढ़ाई की और अपने विश्वविख्यात गाण्डीव-धनुषकी टंकार करते हुए उन्होंने सहसा सबको बाणोंसे ढक दिया। पृथ्वीसे धूल उठी और चारों ओर घना अन्धकार छा गया। किसीको कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था। उस समय कौरव-सेनामें फिरसे भगदड़ पड़ी—यह देख आपके पुत्र दुर्योधनने शत्रुओंपर धावा किया और पाण्डवोंको युद्धके लिये ललकारा। पाण्डव-सेना दुर्योधनपर टूट पड़ी। उसने भी क्रोधमें भरकर सैकड़ों और हजारों योद्धाओंको यमलोक पठा दिया। उस युद्धमें हमलोगोंने दुर्योधनका अद्भुत पुरुषार्थ देखा, वह अकेला होनेपर भी समस्त पाण्डव-सेनासे युद्ध कर रहा था।

दुर्योधनने जब अपनी सेनापर दृष्टिपात किया तो सबको दुःखी पाया; तब उसने सबका उत्साह बढ़ाते हुए कहा—'योद्धाओ ! मैं जानता हूँ तुम भयसे काँप रहे हो; परंतु मेरे देखनेमें ऐसा कोई भी देश नहीं है, जहाँ तुमलोग भागकर जाओ और वहाँ पाण्डवोंसे तुम्हारी जान बच जाय। ऐसी दशामें भागनेसे क्या लाभ है? अब शत्रुओंके पास थोड़ी-सी सेना रह गयी है, श्रीकृष्ण और अर्जुन भी खूब घायल हो चुके हैं, आज मैं इन सब लोगोंको मार डालूँगा। हमलोगोंकी विजय निश्चित है। जितने क्षत्रिय यहाँ उपस्थित हैं, सब ध्यान देकर सुन लें—जब मौत शूरवीर और कायर दोनोंको ही मारती है तो मेरे-जैसा क्षत्रियव्रतका पालन करनेवाला होकर भी कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो युद्ध नहीं करेगा ? हमारा शत्रु भीमसेन क्रोधमें भरा हुआ है; यदि भागोगे तो उसके वशमें पड़कर तुम्हें प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा। इसलिये बाप-दादोंके आचरण किये हुए क्षत्रिय-धर्मका त्याग न करो। क्षत्रियके लिये युद्धमें पीठ दिखाकर भागनेसे बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं है तथा युद्धधर्मके पालनसे बढ़कर स्वर्गका दूसरा कोई मार्ग नहीं है। संग्राममें मरा हुआ योद्धा तुरंत उत्तम लोक प्राप्त करता है।'

आपका पुत्र इस प्रकार व्याख्यान देता ही रह गया, किंतु घायल सैनिकोंमेंसे किसीने उसकी बातपर ध्यान नहीं दिया। सब-के-सब चारों ओर भाग गये। उस समय मद्रराज शल्यने दुर्योधनसे कहा—'राजन्! जरा इस रण-भूमिकी ओर तो दृष्टि डालो, कितने मनुष्यों और घोड़ोंकी लाशें बिछी हुई हैं, पर्वताकार गजराज बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर मरे पड़े हैं और ये शूरवीर सैनिक नाना प्रकारके भोग, वस्त्राभूषण, मनोरम सुख तथा शरीरको भी त्यागकर धर्मकी पराकाष्ठाका पालन करते हुए अपने यशके साथ ही स्वर्गादि लोकोंमें पहुँच गये हैं। दुर्योधन ! अब ये सूर्यदेव ! अस्ताचलको जाना ही चाहते हैं, तुम भी



छावनीकी ओर लौट चलो।'



राजा शल्य इतना कहकर चुप हो गये। उनका चित्त शोकसे व्याकुल हो रहा था। उधर दुर्योधनकी भी बड़ी दयनीय अवस्था थी, वह आर्त होकर 'हा कर्ण! हा कर्ण ! !' पुकार रहा था। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी। अश्वत्थामा तथा दूसरे-दूसरे राजालोग आकर उसे बारंबार धीरज बँधाते और रक्तसे भीगी हुई रणभूमिको देखते हुए छावनीकी ओर लौट जाते थे। समस्त कौरव सूतपुत्रके वधसे दुःखी थे, अतः 'हा कर्ण ! हा कर्ण !!' पुकारते हुए बड़ी तेजीके साथ शिविरकी ओर लौट गये। देवता और ऋषि भी अपने-अपने स्थानको चल दिये। नभचर और थलचर जीव अपनी-अपनी मौजके अनुसार आकाश और पृथ्वीके स्थानोंमे चले गये। दर्शक मनुष्य कर्ण और अर्जुनका अद्भुत संग्राम देखकर आशचर्यमग्न हो दोनोंकी प्रशंसा करते हुए गये।

महाराज ! उत्तम याचकोंके माँगनेपर जिसने सदा यही कहा कि 'मैं दूँगा', 'मेरे पास नहीं है' ऐसी बात जिसके मुँहसे कभी निकली ही नहीं, ऐसा सत्पुरुष कर्ण द्वैरथ युद्धमें अर्जुनके हाथसे मारा गया। जिसका सारा धन ब्राह्मणोंके अधीन था, ब्राह्मणोंके लिये जो अपना प्राणतक देनेमें आनाकानी नहीं करता था, जो महान् दानी और महारथी था, वही कर्ण अब आपके पुत्रोंकी विजयकी आशा, भलाई और रक्षा—सब कुछ साथ लेकर स्वर्गको चला गया। कर्णके मारे जानेपर जब सूर्य अस्त हो गया तो मंगल तथा बुध वक्रगतिसे उदित हुए, पृथ्वीमें गड़गड़ाहट होने लगी, चारों दिशाओंमें आग लग गयी, उनमें धुआँ छा गया, समुद्रोंमें तूफान आ गया, गर्जनाएँ होने लगीं, समस्त प्राणी व्यथित हो उठे और बृहस्पति रोहिणीको घेरकर चन्द्रमा तथा सूर्यके समान तेजस्वी रूपमें प्रकट हुए। उस समय पृथ्वी काँप उठी, उल्कापात होने लगा तथा आकाशमें खड़े हुए देवता सहसा हाहाकार कर उठे।

इस प्रकार कर्णको मारनेके पश्चात् प्रसन्नतासे भरे हुए श्रीकृष्ण तथा अर्जुनने सोनेकी जालीसे मढ़े हुए श्वेत शङ्ख हाथोंमें लेकर उन्हें ओठोंसे लगाया और एक ही साथ बजाना आरम्भ किया। उनकी आवाज सुनकर शत्रुओंका हृदय विदीर्ण होने लगा। पाञ्चजन्य और देवदत्तके गम्भीर घोषसे पृथ्वी, आकाश तथा दिशाएँ गूँज उठीं। वह शङ्खनाद सुनते ही समस्त कौरव-सैनिक मद्रराज शल्य तथा राजा दुर्योधनको रणभूमिमें ही छोड़कर भाग गये। उस समय सब लोगोंने एकत्र होकर श्रीकृष्ण और अर्जुनका सम्मान किया। वे दोनों उदित हुए सूर्य और चन्द्रमाकी भाँति शोभा पा रहे थे। उनके पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं थी, वे अपने शरीरसे बाण निकालकर मित्रमण्डलीसे घिरे हुए आनन्दपूर्वक अपनी छावनीमें जा पहुँचे। जब कर्ण मारा गया था उस समय देवता, गन्धर्व मनुष्य, चारण, महर्षि, यक्ष तथा नागोंने विजय एवं अभ्युदयकी शुभ कामना प्रकट करते हुए उन दोनोंकी

पूजा की। सभीने उनके गुणोंकी प्रशंसा की।

कर्णकी मृत्युके पश्चात् जब कौरव-पक्षके हजारों योद्धा भयभीत होकर भाग गये तो आपके पुत्रने राजा शल्यकी सलाह मानकर युद्ध बंद करनेकी आज्ञा दी और सेनाको एकत्रित कर पीछे लौटाया। मरनेसे बची हुई नारायणी सेनाके साथ कृतवर्मा, हजारों गान्धारोंके साथ शकुनि तथा हाथियोंकी सेनाके साथ कृपाचार्य भी शिविरकी ओर लौटे। अश्वत्थामा भी पाण्डवोंकी विजय देखकर बारंबार उच्छ्वास लेता हुआ छावनीकी ओर ही चल दिया। बचे हुए संशप्तकोंसहित सुशर्मा और टूटी ध्वजावाले रथके साथ राजा शल्य भी डरते एवं लजाते हुए छावनीकी ओर चले। कर्णकी मृत्यु देखकर समस्त कौरव भयसे व्याकुल होकर काँप रहे थे, उनके शरीरसे खूनकी धारा बह रही थी; अतः सब-के-सब उद्विग्न होकर भाग गये। अब उन्हें अपने जीवन और राज्यकी आशा न रही। दुर्योधन दुःख और शोकमें डूब रहा था, वह बड़े यत्नसे सबको एकत्र करके छावनीमें ले आया। राजाकी आज्ञा मान सभी सैनिकोंने शिविरमें आकर विश्राम किया। उस समय सबका चेहरा फीका पड़ गया था।



—★—

कर्णवधके समाचारसे प्रसन्न हुए युधिष्ठिरद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा, राजा धृतराष्ट्र और गान्धारीका शोक तथा कर्णपर्वके श्रवणका माहात्म्य

सञ्जय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार जब कर्ण मारा गया और कौरव-सेना भाग खड़ी हुई तो भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको छातीसे लगाकर बड़े हर्षके साथ कहा—'पार्थ! इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था और तुमने कर्णको मार गिराया है। आजसे संसारके लोग वृत्रासुर-वधकी तरह कर्ण-वधकी कथा कहे-सुनेंगे। तुम बहुत दिनोंसे युद्धमें कर्णका वध करना चाहते थे, आज वह अभीष्ट पूरा हुआ; अतः धर्मराजसे यह शुभ समाचार बताकर तुम उनसे उऋण हो जाओ। तुममें और कर्णमें जब महासंग्राम छिड़ा हुआ था, उस समय वे भी युद्ध देखनेके लिये आये थे; मगर बहुत अधिक घायल होनेके कारण देरतक यहाँ ठहर नहीं सके, फिर छावनीमें ही चले गये। अतः हमें उन्हींके पास चलना चाहिये।'

अर्जुनने 'बहुत अच्छा' कहकर आज्ञा स्वीकार की; फिर भगवान्ने अपना रथ उधर ही मोड़ दिया। छावनीपर पहुँचकर वे अर्जुनको साथ ले राजा युधिष्ठिरसे मिले। राजा उस समय सोनेके पलंगपर सो रहे थे। श्रीकृष्ण और अर्जुनने प्रसन्नतापूर्वक उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उन दोनोंकी प्रसन्नता देख कर्णको मरा समझकर युधिष्ठिर उठ बैठे और आनन्दातिरेकसे आँसू बहाने लगे। फिर उन दोनोंको छातीसे लगाकर मिले और बारंबार युद्धका समाचार पूछने लगे। तब भगवान् श्रीकृष्णने रणभूमिमें जो कुछ घटना घटित हुई थी, सब कह सुनायी; अन्तमें कर्णके मरनेकी भी बात बतायी। इसके बाद भगवान् कुछ-कुछ मुसकराते हुए हाथ जोड़कर बोले—'महाराज! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आप, भीमसेन, अर्जुन तथा नकुल-सहदेव भी कुशलसे हैं। महारथी कर्ण मारा गया और आपकी विजय तथा अभिवृद्धि हो रही है—यह भी

बड़े आनन्दकी बात है। आज सूतपुत्रके सारे शरीरमें बाण चुभे हुए हैं और वह भूतलपर पड़ा हुआ है; इस अवस्थामें आप अपने शत्रुको चलकर देखिये। महाबाहो ! अब आप पृथ्वीका अकण्टक राज्य भोगिये।'

भगवान् श्रीकृष्णका वचन सुनकर धर्मराज बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'देवकीनन्दन ! यह बड़े आनन्दकी बात हुई। आप सारथि थे, तभी अर्जुन कर्णको मार सके हैं। यह आपकी बुद्धिका ही प्रसाद है, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है।' यह कहकर युधिष्ठिरने श्रीकृष्णकी दाहिनी बाँह पकड़ ली। फिर दोनोंसे कहा—'नारदजीने मुझे बताया था कि अर्जुन और श्रीकृष्ण पुरातन नर-नारायण ऋषि हैं।' तत्त्वज्ञानी श्रीव्यासजीने भी कई बार इस बातकी चर्चा की थी। कृष्ण ! आपकी ही कृपासे ये पाण्डुनन्दन अर्जुन शत्रुओंका सामना करके विजय पाते गये हैं। जिस दिन आपने युद्धमें अर्जुनका सारथि होना स्वीकार किया उसी दिन यह निश्चय हो गया था कि हमारे पक्षकी विजय ही होगी, पराजय नहीं। जब भीष्म, द्रोण तथा कर्ण-जैसे वीर आपकी बुद्धिसे मारे जा चुके हैं तो बाकी लोगोंको, जो उन्हींके अनुयायी हैं, मैं मरे हुएके समान ही मानता हूँ।'

यों कहकर राजा युधिष्ठिर सोनेसे सजाये हुए रथपर बैठकर श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके साथ रणभूमि देखनेको चले। वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने देखा कि नररत्न कर्ण सैकड़ों बाणोंसे छिदा हुआ पृथ्वीपर पड़ा है। उस समय सुगन्धित तेलसे भरकर हजारों सोनेके दीपक जलाये गये। उन्हींके प्रकाशमें सब लोगोंने कर्णके शरीरपर दृष्टिपात किया। उसका कवच छिन्न-भिन्न हो गया था और शरीर बाणोंसे विदीर्ण हो चुका था। कर्णको पुत्रसहित मरा हुआ देख राजा युधिष्ठिर पुनः श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'गोविन्द ! आप वीर और विद्वान् होनेके साथ ही मेरे स्वामी हैं; आपसे सुरक्षित रहकर आज सचमुच ही मैं भाइयोंसहित राजा हो गया। राधानन्दन कर्णको मारा गया सुनकर दुरात्मा दुर्योधन अब राज्य और जीवन दोनोंसे निराश हो जायगा। पुरुषोत्तम ! आपकी कृपासे हमलोग कृतार्थ हो गये। बड़ी खुशीकी बात है कि गाण्डीवधारी अर्जुनकी विजय हुई।'

इस प्रकार राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा की। उस समय नकुल, सहदेव, भीमसेन, सात्यकि, धृष्टद्युम्न और शिखण्डीने तथा पाण्डव, पाञ्चाल और सृञ्जय



योद्धाओंने 'महाराजका अभ्युदय हो' ऐसा कहकर युधिष्ठिरका सम्मान किया। फिर श्रीकृष्ण और अर्जुनका गुणगान करते हुए वे बड़ी प्रसन्नताके साथ शिविरकी ओर चले गये। राजा धृतराष्ट्र ! आपके ही अन्यायसे यह रोमाञ्चकारी संहार हुआ है; अब क्यों बारंबार सोच कर रहे हैं ?

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! यह अप्रिय समाचार सुनते ही राजा धृतराष्ट्र मूर्च्छित होकर जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति जमीनपर गिर पड़े। इसी तरह दूरतक सोचनेवाली गान्धारी देवी भी पछाड़ खाकर गिरीं और बहुत विलाप करती हुई कर्णकी मृत्युके शोकमें डूब गयीं। उस समय गान्धारीको विदुरजीने और राजाको सञ्जयने सँभाला। फिर दोनों मिलकर धृतराष्ट्रको समझाने-बुझाने लगे। और राजमहलकी स्त्रियोंने आकर गान्धारीको उठाया। राजाको बड़ी व्यथा हुई, उनकी विवेकशक्ति नष्ट हो गयी, वे चिन्ता और शोकमें डूब गये। मोहाच्छन्न हो जानेके कारण उन्हें किसी भी बातकी सुध न रही। विदुर और सञ्जयके बहुत आश्वासन देनेपर प्रारब्ध और भवितव्यताको ही प्रधान मानकर वे चुपचाप बैठे रह गये।

जो मनुष्य कर्ण और अर्जुनके इस युद्ध-यज्ञका स्वाध्याय करता है अथवा इसे सुनता है, उसे विधिवत्

किये हुए यज्ञका फल प्राप्त होता है! सनातन भगवान् विष्णु



यज्ञस्वरूप हैं; अग्नि, वायु, चन्द्रमा और सूर्य भी यज्ञके ही रूप हैं। अतः जो मनुष्य दोष-दृष्टिका त्याग करके इस युद्ध-यज्ञका वर्णन सुनता या पढ़ता है, वह समस्त लोकोंमें पहुँच सकनेवाला और सुखी होता है तथा उसके ऊपर भगवान् विष्णु, ब्रह्मा तथा शंकरजी संतुष्ट होते हैं। इस पर्वके स्वाध्यायसे ब्राह्मणको वेद-पाठका फल मिलता है, क्षत्रियोंको बल तथा युद्धमें विजयकी प्राप्ति होती है, वैश्योंका धन बढ़ता है और शूद्र नीरोग एवं स्वास्थ्यसम्पन्न होते हैं। इसमें सनातन भगवान् विष्णुकी महिमाका गान हुआ है, इसलिये इसके पाठसे मनुष्यकी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और वह सुखी होता है। लगातार एक वर्षतक बछड़ोंसहित कपिला गौओंका दान करनेसे जो फल मिलता है, वह कर्णपर्वके एक बार सुननेमात्रसे प्राप्त हो जाता है।



॥ कर्णपर्व समाप्त ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

शल्यपर्व

धृतराष्ट्रका विषाद; कृपाचार्यका दुर्योधनको संधिके लिये समझाना, किन्तु दुर्योधनका युद्धके लिये ही निश्चय करना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप नररत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर विजयप्राप्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! कौरव-सेनाका संचालन करनेवाले सूतपुत्रके मारे जानेपर मेरे पुत्रोंने क्या किया? क्या कारण है कि मेरे पुत्र जिस-जिसको सेनापति बनाते हैं, उसी-उसीको पाण्डवलोग थोड़े ही समयमें मार डालते हैं? तुम लोगोंके देखते-देखते भीष्म मारे गये, द्रोणकी भी यही दशा हुई और अब प्रतापी कर्ण भी जाता रहा। महात्मा विदुरने मुझसे पहले ही कह दिया था कि 'दुर्योधनके अपराधसे प्रजाका नाश हो जायगा।' उन्होंने जो कुछ कहा, वह ज्यों-का-त्यों आज सत्य हो रहा है। उस वक्त प्रारब्धवश मेरी बुद्धि मारी गयी थी, इसीलिये मैंने उनके कहनेके अनुसार काम नहीं किया। सञ्जय! अब मेरे उस अन्यायके फलका पुनः वर्णन करो। कर्णके मारे जानेपर कौन मेरी सेनाका प्रधान बना? किस महारथीने श्रीकृष्ण तथा अर्जुनका सामना किया?

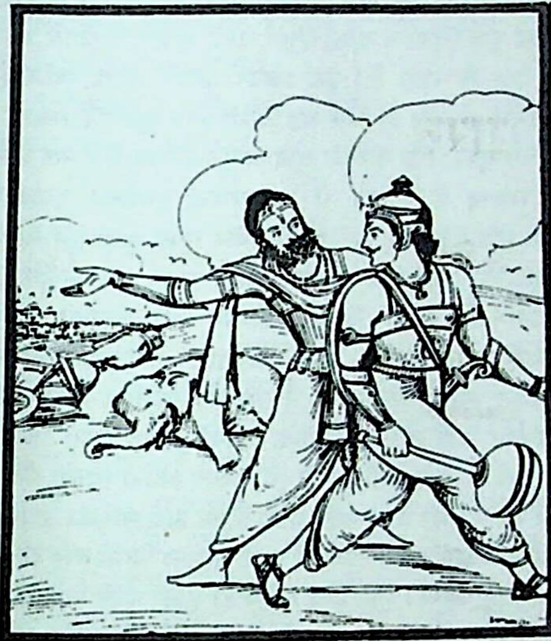
सञ्जयने कहा—महाराज! कौरव और पाण्डवोंके आपसमें भिड़नेसे जो महान् जनसंहार हुआ, उसकी कथा सावधान होकर सुनिये। नौकासे व्यापार करनेवाले व्यापारी जैसे अगाध जलमें नाव टूट जानेपर घबरा जाते हैं, उसी प्रकार कौरवोंके आश्रयभूत कर्णके मारे जानेपर आपके सैनिक थर्रा उठे। वे अनाथकी भाँति रक्षक ढूँढ़ने लगे। संध्याके समय अर्जुनसे परास्त होकर जब हमलोग छावनीमें लौटे, उस समय



कर्णकी मृत्युसे डरकर आपके सभी पुत्र भाग रहे थे। उनके कवच नष्ट हो गये थे । किस दिशामें जाना है, इसका भी उन्हें पता नहीं था; वे सुध-बुध खो बैठे थे। वे आपसमें एक-दूसरेको ही मारने लगे। बहुत-से महारथी भयके कारण घोड़ों, हाथियों और रथोंपर सवार होकर इधर-उधर भागने लगे। उस भयंकर संग्राममें हाथियोंने रथ तोड़ डाले, महारथियोंने घुड़सवारोंको मार डाला तथा रणभूमिसे भागनेवाले पैदलोंको घोड़ोंने कुचल डाला।

इसी समय कृपाचार्यजी आकर दुर्योधनसे बोले—'राजन्! मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ, उसे ध्यान देकर

सुनो और अच्छा लगे तो उसके अनुसार काम करो। पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, महारथी कर्ण, जयद्रथ, तुम्हारे बहुत-से भाई और तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण—ये सब तो मारे जा चुके;



अब कौन बच गया है, जिसका हम आश्रय ग्रहण करें? जिन वीरोंपर युद्धका भार रखकर हम राज्य पानेकी आशा करते थे, वे तो शरीर छोड़कर वेदवेत्ताओंकी गतिको प्राप्त हो गये। हमने बहुत-से राजाओंको मरवाकर अपने गुणवान् महारथियोंको खो दिया है। उनके बिना अब हम अकेले रह गये हैं, ऐसी दशामें हमें दीनतापूर्ण बर्ताव करना पड़ेगा। जब सब लोग जीवित थे, तब भी अर्जुन किसीके द्वारा परास्त नहीं हुए। कृष्ण-जैसे सारथिके होते हुए उन्हें देवता भी नहीं जीत सकते। उनकी वानरकी चिह्नवाली ध्वजा देखकर हमारी विशाल सेना थर्रा उठती है। भीमसेनका सिंहनाद, पाञ्चजन्यकी भयंकर आवाज और गाण्डीव धनुषकी टंकार सुनकर हमलोगोंका दिल बैठ जाता है। अर्जुनके हाथमें डोलता हुआ सुवर्णसे जटित महान् धनुष चारों दिशाओंमें इस प्रकार दिखायी देता है, जैसे मेघकी घटाओंमें बिजली। जिस प्रकार वायुकी प्रेरणासे बादल उड़ते फिरते हैं,वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णद्वारा हाँके हुए घोड़े, जो सुनहले साजोंसे सजे रहते हैं, अर्जुनकी सवारीमें दौड़ते हैं। अर्जुन अस्त्रविद्यामें कुशल हैं; उन्होंने तुम्हारी सेनाको उसी प्रकार भस्म किया है, जैसे भयंकर आग घासकी ढेरीको जला डालती है। वे धनुषकी टंकारसे हमारे योद्धाओंको उसी प्रकार भयभीत करते हैं, जैसे सिंह मृगोंको। आज इस भयंकर संग्रामको प्रारम्भ हुए सत्रह दिन बीत गये। महासागरमें हवाके थपेड़े खाकर डगमगाती हुई नौकाकी तरह आपकी सेनाको अर्जुनने कँपा डाला है। उस दिन जयद्रथको अर्जुनके बाणोंका निशाना बनते देखकर भी तुम्हारा कर्ण कहाँ चला गया था? अपने अनुयायियोंके साथ आचार्य द्रोण, मैं, तुम, कृतवर्मा तथा भाइयोंसहित दुःशासन—ये लोग कहाँ गये थे? सब वहीं तो थे, पर अर्जुनपर किसीका जोर चला? तुम्हारे सम्बन्धियों, भाइयों, सहायकों तथा मामाओंको उन्होंने अपने पराक्रमसे जीत लिया और तुम्हारे देखते-देखते सबके सिरपर पैर रखकर जयद्रथको मार डाला! अब हम किसका भरोसा करें? यहाँ कौन ऐसा पुरुष है, जो अर्जुनपर विजय पा सकेगा? उनके पास नाना प्रकारके दिव्य अस्त्र हैं। उनके गाण्डीवकी टंकार सुनकर हमलोगोंका धैर्य छूट जाता है। जैसे चन्द्रमाके बिना रात्रि अन्धकारमयी दिखायी देती है, उसी प्रकार हमारी यह सेना सेनापतिके मारे जानेसे श्रीहीन हो रही है। सभी योद्धा घबराये हुए हैं। उधर सात्यकि और भीमसेनका जो वेग है, वह समस्त पर्वतोंको विदीर्ण कर सकता है, समुद्रोंको सुखा सकता है। राजन्! द्यूत-सभामें भीमसेनने जो बात कही थी, उसे उन्होंने सत्य करके दिखा दिया; आगे भी वे ऐसा ही करेंगे। पाण्डव सज्जन हैं, किंतु तुमलोगोंने उनके साथ अकारण ही बहुत-से अनुचित व्यवहार किये; उन्हींका अब फल मिल रहा है। तुमने यत्न करके सारे जगत्के लोगोंको अपनी रक्षाके लिये एकत्रित किया था, किंतु तुम्हारा ही जीवन संदेहमें पड़ा हुआ है। दुर्योधन! अब तुम अपनेको बचाओ। बृहस्पतिजीकी बतायी हुई यह नीति है कि 'जब अपना बल कम अथवा बराबर जान पड़े तो शत्रुके साथ संधि कर लेनी चाहिये। लड़ाई तो उस वक्त छेड़नी चाहिये, जब अपनी शक्ति शत्रुसे बढ़-चढ़कर हो।' बल और शक्तिमें हम पाण्डवोंसे कम हो गये हैं, अतः मेरी रायमें तो अब उनसे संधि कर लेना ही उचित है। जो राजा अपनी भलाईकी बात नहीं जानता और श्रेष्ठ पुरुषोंका अपमान किया करता है, वह शीघ्र ही राज्यसे भ्रष्ट हो जाता है; उसका भला भी नहीं होता। यदि राजा युधिष्ठिरके सामने झुकनेसे हमलोग राज्य पा जायँ तो इसीमें अपनी भलाई है। मूर्खतावश हार जानेमें कोई लाभ नहीं है। राजा धृतराष्ट्र और भगवान् श्रीकृष्णके कहनेसे युधिष्ठिर तुम्हें राज्य दे सकते हैं। श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर,

भीम और अर्जुनसे जो कुछ कहेंगे उसे वे सब लोग मान लेंगे—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। मेरा विश्वास है कि श्रीकृष्ण धृतराष्ट्रकी बात नहीं टालेंगे और युधिष्ठिर श्रीकृष्णकी आज्ञाके विरुद्ध नहीं करेंगे। इसलिये मैं संधि करनेमें ही कुशल देखता हूँ, पाण्डवोंके साथ लड़नेमें कोई लाभ नहीं है। तुम यह न समझना कि मैं कायरतावश या प्राण बचानेके लिये ऐसी बात कह रहा हूँ। मैं तो तुम्हारे ही भलेके लिये कहता हूँ। यदि इस समय मेरा कहना नहीं मानोगे तो मरते समय तुम्हें मेरी बातें याद आयेंगी।'

कृपाचार्यके इस प्रकार कहनेपर दुर्योधन जोर-जोरसे गरम उसाँस खींचता हुआ कुछ देरतक चुपचाप बैठा रहा। फिर थोड़ी देरतक सोचने-विचारनेके बाद उसने कहा—'विप्रवर ! एक हितैषीको जो कुछ कहना चाहिये, वह सब आपने कह सुनाया। यही नहीं, प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध करते हुए आपने मेरी भलाईके लिये सब कुछ किया है। यद्यपि हितचिन्तक होनेके नाते आपने मेरे भलेके लिये ही यह बात बतायी है, तब भी यह मुझे पसंद नहीं आती—ठीक उसी तरह, जैसे मरनेवाले रोगीको दवा अच्छी नहीं लगती। राजा युधिष्ठिर महान् धनी थे, मैंने उन्हें जुएमें जीतकर दर-दरका भिखारी बनाया और राज्यसे बाहर निकाल दिया; अब वे मुझपर कैसे विश्वास करेंगे ? मेरी बातोंपर उन्हें क्योंकर एतबार होगा ? श्रीकृष्ण मेरे यहाँ दूत बनकर आये थे, किंतु मैंने उनके साथ धोखा किया; अब वे भी मेरी बात कैसे मानेंगे ? सभामें बलात् लायी हुई द्रौपदीने जो विलाप किया था तथा पाण्डवोंका जो राज्य छीन लिया गया था, उसके लिये श्रीकृष्णको अबतक अमर्ष बना हुआ है। श्रीकृष्ण और अर्जुन दो शरीर, एक प्राण हैं; वे दोनों एक-दूसरेके अवलम्ब हैं। पहले तो यह बात मैंने केवल सुनी थी, परंतु अब इसे प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। जबसे उन्होंने अपने भानजे अभिमन्युका मरण सुना है, तबसे वे सुखकी नींद नहीं लेते। हमलोग उनके अपराधी हैं, फिर वे हमें क्षमा कैसे कर सकते हैं ? महाबली भीमसेनका स्वभाव भी बड़ा कठोर है, उसने बड़ी भयंकर प्रतिज्ञा की है। सूखे काठकी तरह वह टूट भले ही जाय, झुक नहीं सकता। नकुल और सहदेव यमराजके समान भयंकर हैं, वे दोनों भी मुझसे वैर मानते हैं। धृष्टद्युम्न और शिखण्डीका भी मेरे साथ वैर है, फिर वे मेरे हितके लिये क्यों यत्न करेंगे ? द्रौपदी एक वस्त्र पहने हुए थी, रजस्वला थी, उस अवस्थामें वह सभामें लायी गयी और दुःशासनने सबके सामने उसे क्लेश पहुँचाया। उसके वस्त्रका उतारा जाना—उसकी वह दीनावस्था पाण्डवोंको आज भी याद है। अब उन्हें युद्धसे रोका नहीं जा सकता। जबसे द्रौपदीको क्लेश दिया गया, तभीसे वह मेरे विनाशका संकल्प लेकर मिट्टीकी वेदीपर सोया करती है। जबतक वैरका पूरा बदला न चुका लिया जाय, तबतकके लिये उसने यह व्रत ले रखा है। इस प्रकार वैरकी आग पूर्णरूपसे प्रज्वलित हो उठी है, अब वह किसी तरह बुझ नहीं सकती। अभिमन्युका नाश करनेके बाद अर्जुनके साथ मेरा मेल कैसे हो सकता है ? जब मैं समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका एकच्छत्र राजा होकर इसका पूरा उपभोग कर चुका हूँ तो इस समय पाण्डवोंका कृपापात्र बनकर कैसे राज्य कर सकूँगा ? समस्त राजाओंका सिरमौर होकर अब दासकी भाँति युधिष्ठिरके पीछे-पीछे कैसे चलूँगा ? दीनतापूर्ण जीवन क्योंकर व्यतीत करूँगा ? मैं आपकी बातोंका खण्डन या तिरस्कार नहीं करता; क्योंकि आपने स्नेहवश मेरे हितके ही लिये वे बातें कही हैं। मैं तो केवल अपना विचार प्रकट कर रहा हूँ। मेरे मनमें यही आता है कि अब संधिका अवसर नहीं रहा। इस समय संधिकी चर्चा चलाना किसी तरह उचित नहीं जान पड़ता। मुझे अब युद्धमें ही सुन्दर नीति दिखायी दे रही है। यह समय भयभीत होकर कायरता दिखानेका नहीं, उत्साहके साथ युद्ध करनेका है। मैं पाण्डवोंके सामने दीनतापूर्ण वचन नहीं कह सकता। संसारमें कोई भी सुख सदा रहनेवाला नहीं है, फिर राष्ट्र और यश भी कैसे रह सकते हैं ? यहाँ तो कीर्तिका ही उपार्जन करना चाहिये और कीर्ति युद्धके सिवा दूसरे किसी उपायसे नहीं मिल सकती। घरमें खाटपर सोकर मरना क्षत्रियके लिये बहुत बड़ा पाप है। जो बड़े-बड़े यज्ञ करके वनमें या संग्राममें शरीर त्याग करता है, वही महत्त्वको प्राप्त होता है। जिसका बुढ़ापेके कारण शरीर जर्जर हो गया हो, रोग पीड़ा दे रहा हो, परिवारके लोग आस-पास बैठकर रोते हों, उस अवस्थामें दीनतायुक्त वचन बोलकर विलाप करते-करते प्राण त्यागनेवाला क्षत्रिय 'मर्द' कहलाने योग्य नहीं है। अतः जिन्होंने नाना प्रकारके भोगोंका परित्याग करके उत्तम गति प्राप्त की है, इस समय युद्धके द्वारा मैं उनके ही लोकमें जाऊँगा। जिनके आचरण श्रेष्ठ हैं, जो संग्राममें पीठ नहीं दिखानेवाले, शूरवीर, सत्यप्रतिज्ञ तथा नाना प्रकारके यज्ञ करनेवाले हैं, जिन्होंने शस्त्रकी धारामें अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान किया है, उनका स्वर्गमें निवास होता है। देवताओंकी सभामें वे बड़े सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। देवता तथा संग्राममें पीठ नहीं दिखानेवाले शूरवीर जिस मार्गसे जाते हैं, उसीसे मैं भी जाऊँगा। मित्रों, भाइयों और दादाओंको मरवाकर यदि मैं अपने प्राणोंकी रक्षा करूँ

तो निश्चय ही सारा संसार मेरी निन्दा करेगा। भला, मित्रों और भाइयोंसे हीन होकर पाण्डवोंके पैरोंपर पड़नेसे जो राज्य मिलेगा, वह मेरे लिये किस कामका होगा ? इसलिये अब मैं अच्छी तरह युद्ध करके स्वर्गको ही प्राप्त करूँगा, इसके सिवा मुझे कुछ नहीं चाहिये।'

दुर्योधनकी यह बात सुनकर सब क्षत्रियोंने उसकी प्रशंसा की और उसे बहुत धन्यवाद दिया। सबने अपनी पराजयका शोक छोड़कर मन-ही-मन पराक्रम करनेकी ठान ली। युद्ध करनेके विषयमें सबका एक निश्चय हो गया। सबके हृदयमें उत्साह भर गया। तत्पश्चात् सब योद्धाओंने अपने-अपने वाहनोंको विश्राम दे आठ कोससे कुछ कम दूरीपर जाकर डेरा डाला। वहाँ रात्रि बिताकर दूसरे दिन कालकी प्रेरणासे वे पुनः रणभूमिकी ओर लौटे।

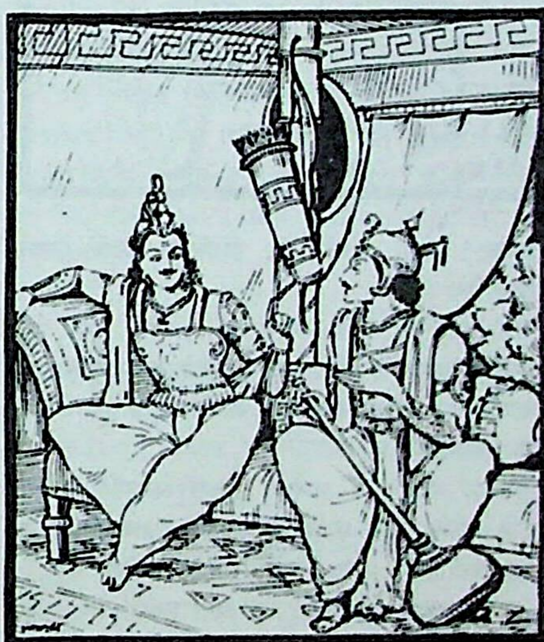


राजा शल्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक और भगवान् श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको शल्यसे लड़नेके लिये आदेश

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! हिमालयकी तराईमें विश्राम करनेके समय सभी प्रधान-प्रधान योद्धा एक स्थानपर इकट्ठे हुए। शल्य, चित्रसेन, शकुनि, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा, सुषेण, अरिष्टसेन, धृतसेन तथा जयत्सेन आदि राजाओंने भी वहीं रात्रि बितायी थी। इन सब लोगोंने एकत्रित होकर राजा शल्यके पास बैठे हुए दुर्योधनका विधिवत् पूजन किया और युद्धके लिये प्रयत्नशील होकर कहा—'राजन् ! तुम किसीको सेनापति बनाकर शत्रुओंके साथ युद्ध करो; क्योंकि सेनापतिके संरक्षणमें रहकर ही हम अपने वैरियोंपर विजय पा सकते हैं।'

तब राजा दुर्योधन रथपर सवार हो महारथी अश्वत्थामाके पास गया। अश्वत्थामा युद्धकी सम्पूर्ण कलाओंका ज्ञाता था, संग्राममें तो वह यमराजके समान जान पड़ता था। सूर्यके समान तेजस्वी और शुक्राचार्यके समान बुद्धिमान् था। उसमें सभी प्रकारके शुभ लक्षण थे, वह प्रत्येक कार्यमें निपुण और वैदिक ज्ञानका समुद्र था। शत्रुओंको वेगसे जीतनेवाला और स्वयं अजेय था। धनुर्वेदके (व्रत, प्राप्ति, धृति, पुष्टि, स्मृति, क्षेप, अरिभेदन, चिकित्सा, उद्दीपन और कृष्टि—इन) दस अङ्गोंको तथा (दीक्षा, शिक्षा, आत्मरक्षा और इसका साधन—इन) चार पादोंको ठीक-ठीक जानता था। छः अङ्गोंसहित चारों वेदों तथा इतिहास-पुराणरूप पञ्चम वेदका भी उसे पूर्ण ज्ञान था। उस महातपस्वीने कठोर व्रतोंका पालन करके बड़े यत्नसे शंकरजीकी आराधनाकी थी। उसके पराक्रम और रूपकी कहीं भी तुलना नहीं थी। वह सम्पूर्ण विद्याओंका पारगामी, गुणोंका समुद्र तथा सबकी प्रशंसाका पात्र था।

उसके पास पहुँचकर दुर्योधनने कहा—'आप हमारे गुरुके पुत्र हैं, हम सब लोगोंको आपका ही भरोसा है; अतः आप आज्ञा करें, हम किसे अपना सेनापति बनावें ?



अश्वत्थामाने कहा—हमलोगोंमें राजा शल्य ही अब ऐसे हैं, जो उत्तम कुल, पराक्रम, तेज, यश, लक्ष्मी तथा समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं। ये ही हमारे सेनापति होने योग्य हैं। राजन् ! इन्हींको सेनाध्यक्ष बनाकर हम शत्रुओंपर विजय पा सकते हैं।

द्रोणकुमारके ऐसा कहनेपर सभी योद्धा राजा शल्यको घेरकर खड़े हो गये और उनकी जय-जयकार करने लगे। अब उन्होंने बड़े आवेशमें भरकर युद्धका निश्चय किया। राजा शल्य द्रोण तथा भीष्मके समान पराक्रमी थे, वे एक उत्तम रथपर बैठे हुए थे। दुर्योधन रथसे उतरकर उनके सामने

भूमिपर खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर बोला—



मित्रवत्सल ! आप शूरवीर हैं, इसलिये हमारी सेनाके अध्यक्ष बनिये।'

राजा शल्यने कहा—कुरुराज ! यदि तुम मुझे सेनापतिका सम्मान दे रहे हो, तो मैं तुम्हारे कथनानुसार सब कुछ करूँगा। मेरे प्राण, राज्य और धन सब कुछ तुम्हारा प्रिय करनेके लिये ही हैं।

दुर्योधन बोला—मैं आपको अपना सेनापति स्वीकार करता हूँ। जैसे स्वामी कार्तिकेयने युद्धमें देवताओंकी रक्षा की थी, उसी प्रकार आप भी हमारी रक्षा कीजिये।

शल्यने कहा—दुर्योधन ! मेरी बात सुनो—रथपर बैठे हुए जिन श्रीकृष्ण और अर्जुनको तुम महारथियोंमें श्रेष्ठ समझते हो, वे दोनों बाहुबलमें किसी तरह मेरी समानता नहीं कर सकते। यदि देवता, असुर और मनुष्योंसहित सारा भूमण्डल ही मेरे विपक्षमें उठकर आ जाय तो मैं अकेला ही सबसे युद्ध कर सकता हूँ, फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है ? निःसन्देह मैं तुम्हारी सेनाका संचालक बनूँगा और ऐसा व्यूह बनाऊँगा, जिसे शत्रु नहीं लाँघ सकते।

तदनन्तर, राजा दुर्योधनने शास्त्रीय विधिके अनुसार शल्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया। उनका अभिषेक होते ही आपकी सेनामें महान् सिंहनाद होने लगा। तरह-तरहके बाजे बज उठे और मद्रदेशके महारथी बड़े हर्षमें भरकर राजा शल्यकी स्तुति करने लगे—'राजन् ! तुम्हारी जय हो, तुम चिरजीवी रहो और सामने आये हुए समस्त



शत्रुओंका संहार करो। तुम तो देवता, असुर और मनुष्य—सबको युद्धमें परास्त कर सकते हो। इन मरणधर्मी सोमकों और सृञ्जयोंकी तो बात ही क्या है ?'

इस प्रकार सम्मान पाकर मद्रराज शल्य फूले नहीं समाये। उन्होंने दुर्योधनने कहा—'राजन् ! आज मैं पाण्डवोंसहित समस्त पाञ्चालोंका संहार कर डालूँगा अथवा स्वयं ही मरकर स्वर्गलोकको चला जाऊँगा। आज सम्पूर्ण पाण्डव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा पाञ्चाल, चेदि एवं प्रभद्रक योद्धा मेरे पराक्रमपर दृष्टिपात करें, मेरे धनुषका महान् बल देखें। आज मैं पाण्डव-सेनाको चारों ओर भगा दूँगा। तुम्हारा प्रिय करनेके लिये, द्रोणाचार्य, भीष्म तथा कर्णसे भी अधिक पराक्रम दिखाता हुआ रणभूमिमें विचरूँगा।'

महाराज ! जब शल्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक हो गया उस समय सभी सैनिक कर्णके मरनेका दुःख भूलकर प्रसन्नचित्त हो गये। आपकी सेनाका हर्षनाद सुनकर राजा युधिष्ठिरने सब क्षत्रियोंके सामने ही भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'माधव ! दुर्योधनने मद्रराज शल्यको सेनापति बनाया है और सब सेनाओंके बीच उनका विशेष सम्मान किया है। यह जानकर आप जो उचित समझिये, कीजिये; क्योंकि आप ही मेरे नेता और रक्षक हैं।'

यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले—'भारत ! मैं आर्तायनके पुत्र



शल्यको बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। वे अत्यन्त पराक्रमी और महान् तेजस्वी हैं, युद्ध करनेके विचित्र-विचित्र ढंग उन्हें मालूम हैं। मेरा तो ऐसा खयाल है कि भीष्म, द्रोण और कर्ण जैसे योद्धा थे वैसे ही मद्रराज शल्य भी हैं। युद्धमें उनके जोड़का दूसरा योद्धा मुझे आपके सिवा कोई नहीं दिखायी देता। इस भूमण्डकी कौन कहे, देवलोकमें भी आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा वीर नहीं है, जो क्रोधमें भरे हुए मद्रराज शल्यको युद्धमें मार सके। दुर्योधनने जिनका सत्कार किया है, वे शल्य अजेय वीर हैं, उनके मारे जानेपर आप कौरवोंकी विशाल सेनाको भी मरी हुई ही समझिये। मेरी बात मानकर आप इस समय महारथी शल्यपर चढ़ाई कीजिये। मामा समझकर उनपर दया करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्षत्रिय-धर्मको सामने रखकर उन्हें मार ही डालिये। आजके संग्राममें आप अपना तपोबल और क्षात्रबल दिखाइये। महारथी शल्यको अवश्य मार डालिये।'

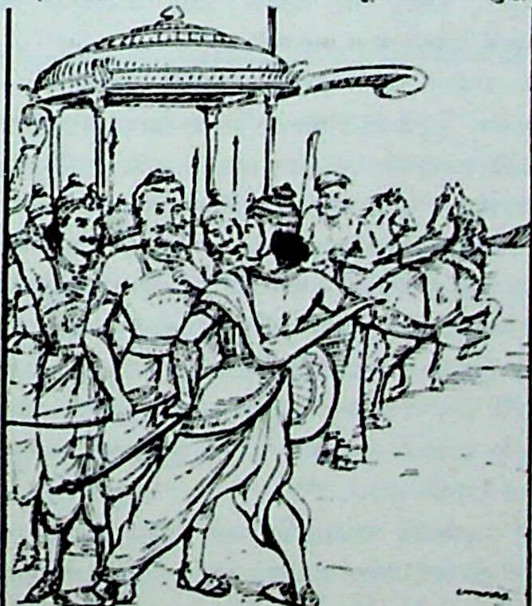
यह कहकर भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंसे सम्मानित हो विश्रामके लिये अपने शिविरमें चले गये। उनके जानेके बाद राजा युधिष्ठिरने सब भाइयों, पाञ्चालों और सोमकोंको भी विदा किया। फिर सबने अपने-अपने शिविरमें सोकर रात बितायी।



शल्यके सेनापतित्वमें युद्धका आरम्भ और नकुलद्वारा कर्णके शेष तीनों पुत्रोंका वध

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! यह रात बीत जानेपर दुर्योधनने आपके सब सैनिकोंको आज्ञा दी—'अब सब महारथी तैयार हो जायँ।' राजाकी आज्ञा पाकर सारी सेना कवच आदिसे सुसज्जित हो गयी। बाजे बजने लगे। योद्धाओंका सिंहनाद होने लगा। उस समय मरनेसे बचे हुए आपके सैनिक मौतकी परवा न करके रणभूमिकी ओर कूच करते दिखायी देने लगे। मद्रराज शल्यको सेनाका नायक बनाकर महारथियोंने सम्पूर्ण सेनाके कई विभाग किये और सबको युद्धभूमिमें यथास्थान खड़ा किया। फिर कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, शल्य, शकुनि तथा अन्य राजाओंने मिलकर यह शपथ ली कि 'हममेंसे कोई भी अकेला होकर पाण्डवोंसे न लड़े, जो अकेला ही उनसे लड़ेगा अथवा जो किसी लड़ते हुए योद्धाको अकेला छोड़ देगा, उसे पाँच महापातक और पाँच उपपातक लगेंगे। इसलिये सब एक-दूसरेकी रक्षा करते हुए साथ रहकर युद्ध करें।'

इस प्रकार शपथ लेकर समस्त महारथियोंने मद्रराजको आगे किया और बड़ी शीघ्रताके साथ शत्रुओंपर चढ़ाई कर दी। इसी तरह पाण्डव भी सेनाका व्यूह बनाकर युद्धकी



इच्छासे कौरवोंपर चढ़ आये। उनकी सेना क्षुब्ध हुए समुद्रकी

भाँति गर्जना कर रही थी। पाण्डवोंका सिंहनाद सुनकर आपके पुत्रोंके मनमें भय समा गया। तब मद्रराज शल्यने उन्हें धीरज बँधाया और सर्वतोभद्र नामक व्यूह बनाकर पाण्डवोंके ऊपर धावा किया। उस समय वे सिन्धुदेशके घोड़ोंसे जुते हुए एक विशाल रथपर विराजमान थे। उनके साथ मद्रदेशके वीर तथा कर्णके अजेय पुत्र भी थे। उनके वाम भागमें त्रिगर्तोंकी सेनासे घिरा हुआ कृतवर्मा था। दक्षिण भागमें शक और यवनोंके साथ कृपाचार्य थे। तथा पृष्ठभागमें काम्बोजोंको साथ लिये अश्वत्थामा मौजूद था। मध्यभागमें दुर्योधन था, जिसकी रक्षामें प्रधान-प्रधान कौरव खड़े थे। वहीं शकुनि भी था, जो घुड़सवारोंकी विशाल सेनासे घिरा हुआ था। महारथी कैतव्य भी सम्पूर्ण सेनाके साथ जा रहा था।

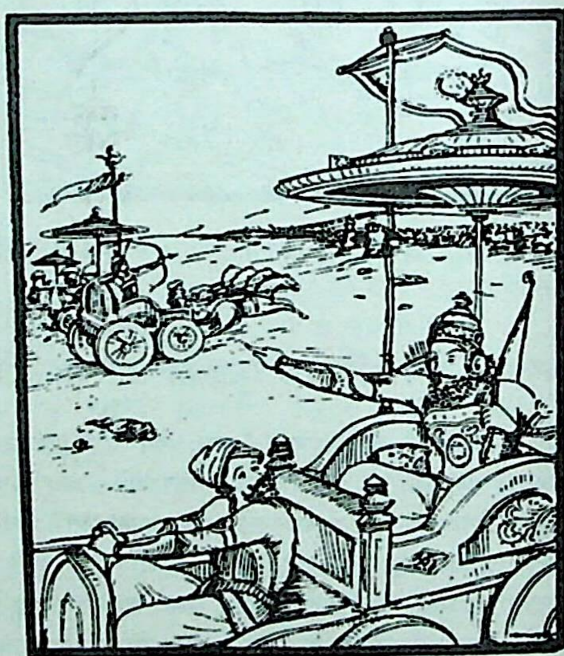
उधर पाण्डवोंने भी मोर्चाबंदी कर रखी थी। उन्होंने अपनी सेनाको तीन भागोंमें बाँटा था; उन तीनोंके अध्यक्ष थे—धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और सात्यकि। इन लोगोंने शल्यकी सेनापर धावा किया। तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिर भी शल्यका वध करनेकी इच्छासे अपनी सेनाके साथ उन्हींपर जा चढ़े। अर्जुनने कृतवर्मा और संशप्तकोंपर चढ़ाई की। भीमसेन और सोमकोंका कृपाचार्यपर धावा हुआ। नकुल-सहदेवने शकुनि तथा उलूकपर आक्रमण किया। इसी प्रकार आपके पक्षके कई हजार सैनिक भी पाण्डवोंपर जा चढ़े।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! भीष्म, द्रोण तथा कर्णके मारे जानेके पश्चात् मेरे पुत्रोंके तथा पाण्डवोंके पास कितनी-कितनी सेना बच गयी थी?

सञ्जयने कहा—महाराज! शल्यके सेनापतित्वमें जब हमलोग युद्धके लिये उपस्थित हुए थे, उस समय हमारे पास ग्यारह हजार रथ, दस हजार सात सौ हाथी, दो लाख घोड़े तथा तीन करोड़ पैदल थे और पाण्डवोंके पास छः हजार रथ, छः हजार हाथी, दस हजार घोड़े तथा एक करोड़ पैदल मौजूद थे। बस, इतनी ही सेना बच गयी थी और यही युद्धके लिये उपस्थित थी। प्रातःकाल सूर्योदय होते ही दोनों ओरके योद्धा एक-दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे आगे बढ़े। फिर तो दोनों दलोंमें अत्यन्त भयंकर युद्ध छिड़ गया। हजारों घुड़सवार, पैदल, रथी और हाथीसवार पराक्रम दिखाते हुए एक-दूसरेसे भिड़ गये।

महाराज! पाण्डवोंकी मार पड़नेसे आपकी सेना जहाँ-की-तहाँ बेहोश हो-होकर गिरने लगी। भीमसेन और अर्जुनने आपके सैनिकोंको मूर्च्छित करके शङ्ख बजाये और सिंहनाद करने लगे। इसी समय धृष्टद्युम्न तथा शिखण्डीने धर्मराजको आगे करके शल्यपर धावा कर दिया। माद्रीकुमार नकुल और सहदेव भी आपकी सेनापर टूट पड़े। फिर पाण्डवोंने कौरव-सेनाको अपने बाणोंसे बहुत घायल कर दिया। अब कौरव-वाहिनी आपके पुत्रोंके देखते-देखते चारों ओर भागने लगी। सबको अपनी-अपनी जान बचानेकी फिक्र पड़ गयी। लोगोंने अपने प्यारे पुत्रों और भाइयोंको छोड़ दिया; पितामहों और मामाओंकी परवा न की, भानजों तथा अन्य सम्बन्धियोंका भी खयाल नहीं किया। सब अपने घोड़ों और हाथियोंको जल्दी-जल्दी हाँकते हुए भाग खड़े हुए।

सेनाको इस तरह भागती देख प्रतापी मद्रराजने अपने सारथिसे कहा—'मेरे घोड़ोंको शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ाओ

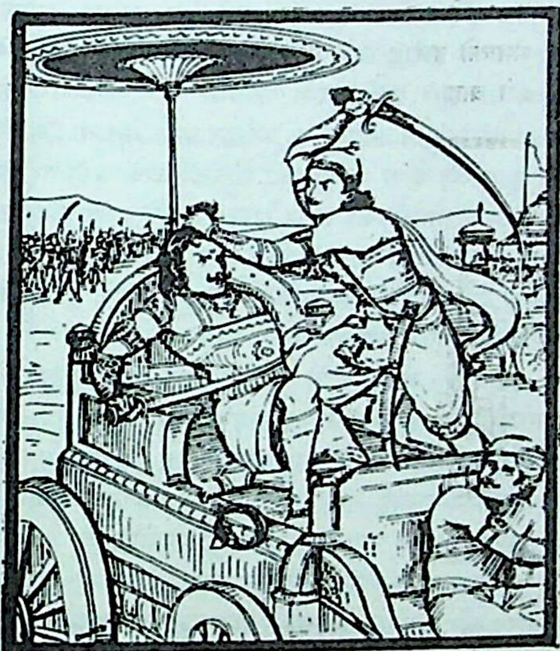


और जहाँ ये राजा युधिष्ठिर खड़े हैं, वहीं मुझे ले चलो। आज संग्राममें ये मेरे सामने ठहर नहीं सकते।' सेनापतिकी आज्ञासे सारथिने उनके रथको राजा युधिष्ठिरके पास पहुँचा दिया। वहाँ पहुँचकर बड़े वेगसे आक्रमण करती हुई पाण्डवोंकी विशाल सेनाको शल्यने अकेले ही रोक दिया। उस समय मद्रराजको समरभूमिमें डटे हुए देख भागनेवाले कौरव-योद्धा भी मृत्युकी परवा न करके लौट आये।

इसी बीचमें नकुलने चित्रसेनपर धावा किया। वे दोनों योद्धा एक-दूसरेपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। दोनों ही अस्त्रविद्याके ज्ञाता, बलवान् और रथद्वारा युद्ध करनेमें प्रवीण थे। दोनों एक-दूसरेका वध करनेके लिये

प्रयत्नशील होकर परस्पर प्रहार करनेका अवसर ढूँढ़ रहे थे। इतनेहीमें चित्रसेनने एक भल्ल मारकर नकुलका धनुष काट दिया। फिर तीन बाणोंसे उसके ललाटको बींधकर अनेकों तेज किये हुए बाणोंसे उसके घोड़ोंको यमलोक भेज दिया।

जब धनुष कटा और रथ टूट गया तो वीरवर नकुल ढाल-तलवार लेकर रथसे उतर पड़ा। अब उसने पैदल ही चित्रसेनपर आक्रमण किया। उस समय चित्रसेन उसके ऊपर बाणोंकी बौछार करने लगा। किंतु नकुल विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाला था, उसने चित्रसेनके बाणोंको ढालपर ही



रोककर नष्टकर दिया तथा सम्पूर्ण सेनाके सामने ही चित्रसेनके रथपर चढ़कर उसने उसके कुण्डल और मुकुटसे सुशोभित मस्तकको धड़से अलग कर दिया। चित्रसेनका मस्तक रथके पीछे भागमें गिर पड़ा।

उसको मरा हुआ देख पाण्डव-महारथी सिंहनाद करने लगे। किंतु कर्णके महारथी पुत्र सुषेण और सत्यसेन तीखे बाणोंकी वर्षा करते हुए नकुलपर टूट पड़े। उनके बाणोंसे नकुलका सारा शरीर बिंध गया, तो भी वह नया धनुष लेकर दूसरे रथपर सवार हो क्रोधमें भरे हुए यमराजकी भाँति समरमें डट गया। अब वे दोनों भाई नकुलके रथके टुकड़े-टुकड़े कर डालनेकी चेष्टामें लगे। यह देख नकुलने हँसते-हँसते चार बाणोंसे सत्यसेनके चारों घोड़ोंको मार गिराया। फिर एक नाराच मारकर उसका धनुष भी काट डाला। तब सत्यसेनने दूसरा धनुष और दूसरा रथ लेकर अपने भाईके साथ ही नकुलपर धावा किया और बाणोंकी झड़ी लगाकर उसे सब ओरसे ढक दिया। नकुलने भी उनके बाणोंको रोककर दो-दो बाणोंसे दोनोंको अलग-अलग बींध डाला। फिर उन दोनोंने भी नकुलको घायल किया और तीखे सायकोंसे उसके सारथिको भी बींध डाला। अब सत्यसेनने पृथक्-पृथक् दो बाण मारकर नकुलका धनुष और उसके रथका हरसा काट डाला। तब नकुलने रथशक्ति हाथमें ली और बहुत ऊँचे उठाकर सत्यसेनपर दे मारी। उसकी चोटसे सत्यसेनकी छातीके सैकड़ों टुकड़े हो गये



और वह प्राणहीन होकर जमीनपर जा पड़ा।

भाईको मरा देख सुषेण क्रोधमें भर गया और नकुलके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा। उसने चार सायकोंसे नकुलके चारों घोड़ोंको मार डाला, पाँचसे रथकी ध्वजा काट दी और तीनसे सारथिको भी यमलोक पठा दिया। नकुलको रथहीन देख द्रौपदीकुमार सुतसोम दौड़कर वहाँ आ पहुँचा। नकुल उसके रथपर बैठ गया और दूसरा धनुष लेकर सुषेणसे युद्ध करने लगा। तदनन्तर, सुषेणने नकुलको तीन और सुतसोमको उसकी भुजाओं तथा छातीमें बीस बाण मारे। तब तो नकुलने क्रोधमें भरकर बाणोंकी मारसे सुषेणको सब ओरसे ढक दिया और एक अर्धचन्द्राकार बाणसे उसका मस्तक काट गिराया। यह देख कौरव-सेना भयभीत होकर भागने लगी।



शल्यका युधिष्ठिर और भीमसेनके साथ युद्ध, दुर्योधनद्वारा चेकितानका तथा युधिष्ठिरद्वारा द्रुमसेनका वध

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! उस समय सेनापति शल्यने आपकी भागती हुई सेनाको खड़ी किया और भयंकर सिंहनाद तथा धनुषकी टंकार करते हुए वे शत्रुओंका सामना करनेके लिये डट गये। राजा शल्यसे सुरक्षित होनेपर कौरव-सैनिक निश्चिन्त हो उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये और युद्धकी इच्छासे शत्रुओंकी ओर बढ़ने लगे। उधरसे सात्यकि, भीमसेन और नकुल-सहदेव आदि पाण्डव-योद्धा युधिष्ठिरको आगे करके चढ़ आये और जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे।

तदनन्तर, अर्जुनने भी संशप्तकोंका संहार करके कौरव-सेनापर धावा किया। इसी प्रकार धृष्टद्युम्न आदि वीर भी तीखे सायकोंकी वर्षा करते हुए आपकी सेनापर चढ़ आये। उनकी मार पड़नेसे कौरव सैनिक मूर्च्छित हो गये। उन्हें दिशा और विदिशाओंका भी ज्ञान न रहा। पाण्डवोंके बाणोंसे कौरव-सेनाके मुख्य-मुख्य वीर मारे गये। ऐसे ही आपके पुत्रोंने भी पाण्डवपक्षके सैकड़ों और हजारों वीरोंका संहार कर डाला। उस समय आपसकी मारसे दोनों ओरकी सेनाएँ अत्यन्त संतप्त एवं व्याकुल हो उठीं। युद्ध करनेवाले सैनिक भागने लगे, हाथी चिग्घाड़ करने लगे। पैदल सिपाही कराहने और चिल्लाने लगे। समस्त प्राणियोंका भयंकर संहार होने लगा। पाण्डव बलवान् थे, वे जब प्रहार करते तो उनका निशाना कभी खाली नहीं जाता था; इसलिये कौरव-सेना बहुत कष्ट पाने लगी। आपकी सेनाको क्लेशमें पड़ी देख राजा शल्य उसका उद्धार करनेके लिये आगे बढ़े। पाण्डव भी मद्रराजके पास पहुँचकर उन्हें तीखे बाणोंसे बींधने लगे।

तब महाबली मद्रनरेशने युधिष्ठिरके सामने ही सैकड़ों तीखे बाण मारकर पाण्डव-सेनाका संहार आरम्भ किया। उस समय भाँति-भाँतिके अपशकुन होने लगे। पर्वतोंसहित पृथ्वी डोलने लगी। धीरे-धीरे युद्धका रूप बड़ा भयंकर हो गया। महाबली शल्यने द्रौपदीके सब पुत्रोंको, नकुल-सहदेवको और धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा सात्यकिको बींध डाला। उन्होंने इनमेंसे प्रत्येक वीरको दस-दस बाण मारे। तत्पश्चात् शल्यने बाणोंकी झड़ी लगा दी। फिर तो प्रभद्रक तथा सोमक क्षत्रिय हजारोंकी संख्यामें गिरते दिखायी देने लगे। उनके सायकोंकी चोट खाकर कितने ही हाथी, घोड़े, पैदल और रथी योद्धा धराशायी हो गये। कितनोंको मूर्च्छा आ गयी और बहुतेरे चीखने-चिल्लाने लगे। उस समय महाबली मद्रनरेश सिंहके समान दहाड़ रहे थे।

शल्यके बाणोंसे पीड़ित हुई पाण्डव-सेना रक्षाके लिये महाराज युधिष्ठिरके पास भाग गयी। इस प्रकार सेनाको कुचलकर वे युधिष्ठिरको पीड़ा देने लगे। यह देख युधिष्ठिरने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करके शल्यको आगे बढ़नेसे रोक दिया। तब शल्यने उनपर एक भयंकर बाण चलाया। वेगसे छूटा हुआ वह बाण युधिष्ठिरको घायल करके पृथ्वीपर जा पड़ा। अब भीमसेनको क्रोध चढ़ा। उन्होंने शल्यको सात बाण मारकर बींध डाला। इसी तरह सहदेवने पाँच और नकुलने दस बाणोंसे उन्हें घायल किया। द्रौपदीके पुत्रोंने भी बड़े वेगसे उनपर बाणोंकी वृष्टि की।

शल्यको बाण-वर्षासे पीड़ित होते देख कृतवर्मा, कृपाचार्य, उलूक, शकुनि, अश्वत्थामा तथा आपके पुत्र—ये सब एकत्रित होकर उनकी रक्षा करने लगे। कृतवर्माने तीन बाणोंसे भीमसेनको बींध डाला। फिर बाणोंकी बौछारसे धृष्टद्युम्नको घायल कर दिया। शकुनिने द्रौपदीके पुत्रोंका तथा अश्वत्थामाने नकुलसहदेवका सामना किया। दुर्योधन श्रीकृष्ण और अर्जुनके मुकाबलेमें खड़ा हुआ और अपने बाणोंसे उन दोनोंको बींधने लगा। इस प्रकार आपके पक्षके योद्धाओं और शत्रुओंमें सैकड़ों द्वन्द्व-युद्ध हुए। सभी भयंकर और विचित्र थे। तदनन्तर, मद्रराज शल्यने सहदेवके घोड़ोंको मार डाला। तब सहदेवने भी तलवार उठायी और शल्यके पुत्रका सिर धड़से अलग कर दिया। उधर अश्वत्थामाने किंचित् मुसकराकार द्रौपदीके पुत्रोंमेंसे प्रत्येकके दस-दस बाण मारे और कृतवर्माने भीमसेनके घोड़ोंको यमलोक पठा दिया। घोड़ोंके मरनेपर भीमसेन रथसे उतर पड़े और हाथमें कालदण्डके समान गदा लेकर उन्होंने कृतवर्माके घोड़ों तथा रथकी धज्जियाँ उड़ा दीं। कृतवर्मा उस रथसे कूदकर भाग गया।

इधर, शल्य भी सोमक और पाण्डव योद्धाओंका संहार करते-करते तीखे बाणोंसे युधिष्ठिरको पीड़ा देने लगे। यह देख भीमसेन वज्रके समान गदा लिये शल्यपर टूट पड़े और

उनके चारों घोड़ोंको मार गिराया। तब शल्यने कुपित होकर



भीमसेनकी छातीमें तोमरसे प्रहार किया। इससे उनका कवच कट गया और तोमरसे छाती छिद गयी। किंतु भीमसेन इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने वही तोमर अपनी छातीसे निकालकर मद्रराजके सारथिकी छातीपर दे मारा। उसके प्रहारसे सारथिका मर्म विदीर्ण हो गया और वह रक्त-वमन करता हुआ राजाके सामने ही गिर पड़ा। मद्रराज रथ छोड़कर दूर हट गये और लोहेकी गदा हाथमें लेकर अविचल भावसे खड़े हो गये। भीमसेन भी बहुत बड़ी गदा लेकर शल्यपर टूट पड़े। महाराज! संसारमें मद्रराज शल्य अथवा यदुनन्दन बलरामजीके सिवा दूसरा कोई ऐसा योद्धा नहीं है, जो गदाधारी भीमका वेग सह सके। इसी तरह शल्यकी गदाका वेग भी भीमसेनके सिवा दूसरा कोई नहीं सह सकता था। उन दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। मद्रराजने अपनी गदासे भीमसेनकी गदापर जब चोट की तो वह प्रज्वलित-सी हो उठी, उससे आगकी लपटें निकलने लगीं। इसी प्रकार भीमसेनकी गदाके आघातसे शल्यकी गदा भी अङ्गारे बरसाने लगी—यह देख सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। गदाकी मारसे एक ही क्षणमें दोनोंके शरीर घायल हो गये, दोनों ही लोहूलुहान हो उठे। मद्रराजकी गदासे बायें और दायें भागमें अच्छी तरह चोट खानेपर भी महाबाहु भीमसेन विचलित नहीं हुए। पर्वतके समान स्थिर भावसे खड़े रहे। इसी तरह भीमकी गदाका बारंबार आघात होनेपर भी शल्यको जरा भी घबराहट नहीं हुई। वे दोनों जब एक-दूसरेपर गदाका



प्रहार करते थे, उस समय चारों दिशाओंमें वज्रपातके समान आवाज सुनायी देती थी। उन दोनोंका पराक्रम अलौकिक था। वे लड़ते-लड़ते आठ कदम आगे बढ़ आये और लोहेके डंडे उठाकर एक-दूसरेको मारने लगे। उस समय परस्पर प्रहार करते हुए दोनों वीर मण्डलाकार विचरने और अपना-अपना विशेष कौशल प्रदर्शित करते थे। इसके बाद वे पुनः गदाएँ उठाकर परस्पर प्रहार करने लगे। इस तरह लड़ते-लड़ते जब अच्छी तरह घायल हो गये तो दोनों एक ही साथ रणभूमिमें गिर पड़े। उस समय दोनों पक्षकी सेनाओंमें हाहाकार मच गया। भीम और शल्य— दोनोंके मर्मस्थानोंमें गहरी चोटें लगी थीं, इसलिये दोनों ही अत्यन्त व्याकुल हो गये थे।

इतनेहीमें कृपाचार्य आये और शल्यको अपने रथमें बिठाकर तुरंत रणभूमिसे बाहर ले गये। इधर भीमसेन पलक मारते-मारते होशमें आकर उठ खड़े हुए और गदा हाथमें ले मद्रराजको युद्धके लिये ललकारने लगे। तब आपके सैनिक नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर पाण्डवसेनापर टूट पड़े। आपकी सेनाको आगे बढ़ती देख पाण्डव-योद्धा भी सिंहनाद करते हुए दुर्योधन आदि कौरवोंपर चढ़ आये। उस समय आपके पुत्रने एक प्रास मारकर चेकितानकी छाती चीर डाली, वह खूनसे नहा उठा और प्राणहीन होकर रथकी बैठकमें गिर पड़ा।



यह देख पाण्डव महारथी आपकी सेनापर बाण-वर्षा करने लगे तथा कृपाचार्य, कृतवर्मा और शकुनि—ये मद्रराजको आगे करके धर्मराज युधिष्ठिरसे युद्ध करने लगे।

शल्यने युधिष्ठिरको मार डालनेकी इच्छासे उन्हें तीखे बाणोंसे बींध डाला। तब युधिष्ठिरने भी मुसकराते हुए चौदह नाराच हाथमें लिये और उनसे शल्यके मर्मस्थानोंको बींध डाला। अब शल्य क्रोधमें भर गये। उन्होंने राजा युधिष्ठिरकी प्रगति रोक दी और अनेकों बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया, युधिष्ठिरने भी तेज किये हुए सायकोंसे शल्यको घायल किया; फिर चन्द्रसेनको सत्ताईस और उनके सारथिको नौ बाणोंसे घायल करके द्रुमसेनको चौसठ बाणोंसे मार डाला।

चक्ररक्षकके मारे जानेपर शल्यने पचीस चेदि-योद्धाओंका सफाया कर डाला; फिर सात्यकिको पचीस, भीमसेनको पाँच तथा नकुल-सहदेवको सौ बाणोंसे घायल कर डाला। राजा शल्य जब इस प्रकार रणभूमिमें विचर रहे थे, उस समय उनके ऊपर युधिष्ठिरने अनेकों तीक्ष्ण बाणोंका प्रहार किया। साथ ही उनके रथकी ध्वजा भी काट दी। ध्वजा गिरी हुई देख शल्यको बड़ा क्रोध हुआ और वे शत्रुओंपर बाणोंकी बौछार करने लगे। उन्होंने सात्यकि, भीम, नकुल और सहदेव—इनमेंसे हर एकको पाँच-पाँच बाणोंसे घायल कर दिया। फिर युधिष्ठिरकी छातीपर बाणोंका जाल-सा फैलाकर उन्हें खूब पीड़ित किया।



राजा शल्यका पराक्रम, अर्जुन-अश्वत्थामाका युद्ध तथा राजा सुरथका वध

सञ्जय कहते हैं—महाराज! मद्रराज शल्य जब युधिष्ठिरको पीड़ा देने लगे, उस समय सात्यकि, भीमसेन, नकुल और सहदेवने आकर शल्यको घेर लिया और उन्हें बींधना आरम्भ कर दिया। भीमसेनने शल्यको पहले एक और फिर सात बाणोंसे घायल किया। सात्यकिने उन्हें सौ बाण मारकर सिंहके समान गर्जना की। नकुलने पाँच और सहदेवने सात बाणोंसे शल्यको बींधकर पुनः सात सायकोंसे घायल किया।

इन महारथियोंसे पीड़ित होकर भी शूरवीर शल्य रणमें डटे रहे। उन्होंने सात्यकिको पचीस भीमसेनको तिहत्तर और नकुलको सात बाणोंसे बींध दिया। इसके बाद सहदेवके बाणसहित धनुषको काटकर उसे इक्कीस सायकोंसे घायल किया। सहदेवने भी दूसरा धनुष लेकर मामाजीको पाँच बाण मारे। फिर एक बाणसे उनके सारथिको घायल किया, इसके बाद पुनः तीन बाण मारकर शल्यको पीड़ित कर दिया। तदनन्तर, भीमसेनने सत्तर, सात्यकिने नौ तथा धर्मराजने साठ बाण मारे। फिर शल्यने भी प्रत्येकको पाँच-पाँच बाण मारकर बींध डाला।

तब सात्यकिने क्रोधमें भरकर शल्यपर तोमरका प्रहार किया, भीमसेनने सर्पके समान नाराच चलाया, नकुलने शक्ति छोड़ी और सहदेवने गदा तथा धर्मराजने शतघ्नीका वार किया। इस तरह पाँच वीरोंके चलाये हुए पाँच अस्त्र एक ही साथ शल्यकी ओर छूटे, किंतु शल्यने अपने शस्त्रोंसे मारकर उन सबको पीछे हटा दिया और सिंहके समान गर्जना की।

शत्रुकी यह गर्जना सात्यकिसे नहीं सही गयी। उन्होंने दो बाणोंसे मद्रराजको और तीनसे उनके सारथिको बींध डाला। तब शल्यने क्रोधमें भरकर पाण्डवपक्षके उन सभी महारथियोंको दस-दस बाण मारे। इस प्रकार शल्यके द्वारा बाधा पाकर वे महारथी अब उनके सामने नहीं ठहर सके।

मद्रराजका यह पराक्रम देखकर दुर्योधनने समझ लिया कि अब पाण्डव, पाञ्चाल तथा सृञ्जय-वीर मरे हुएके ही समान हैं।

तदनन्तर, धर्मराज युधिष्ठिरने एक क्षुरप्रके द्वारा शल्यके चक्ररक्षकको मार डाला। यह देख शल्यने बाणोंकी झड़ी लगाकर पाण्डव-सैनिकोंको आच्छादित कर दिया। उस समय राजा युधिष्ठिर सोचने लगे कि 'आजके युद्धमें मैं भगवान् श्रीकृष्णकी कही हुई (शल्यको मार डालनेकी) बात कैसे पूर्ण कर सकता हूँ ? कहीं ऐसा न हो कि मद्रराज क्रोधमें भरकर मेरी सारी सेनाका ही संहार कर डालें ?' वे इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि घोड़े, हाथी तथा रथियोंकी सेनाके साथ पाण्डव-सैनिक वहाँ आ पहुँचे और मद्रराजको सब ओरसे पीड़ित करने लगे।

किंतु मद्रराज शल्यने पाण्डवोंद्वारा की हुई अस्त्र-वर्षाको शान्त कर दिया। इसके बाद हमलोगोंने राजा शल्यकी बाणवृष्टि देखी। उनके बाण आसमानसे गिरती हुई टिड्डियोंके समान जान पड़ते थे। उस समय आकाश सायकोंसे ठसाठस भर गया था तथा घना अन्धकार छा जानेके कारण पाण्डवोंकी या हमारे पक्षकी कोई भी वस्तु सूझ नहीं पड़ती थी। मद्रराजकी बाण-वर्षासे पाण्डव-सेनाको विचलित होती देख सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। युधिष्ठिर तथा भीमसेन आदि महारथी यद्यपि बहुत घायल हो चुके थे, तो भी वे उस युद्धमें शल्यको छोड़कर न जा सके। उनसे लड़ते ही रहे।

दूसरी ओर, अश्वत्थामा तथा उसके पीछे चलनेवाले त्रिगर्त देशके महारथियोंने बहुत-से बाण मारकर अर्जुनको घायल कर दिया। तब धनञ्जयने तीन बाणोंसे द्रोणकुमारको और दो-दो बाणोंसे अन्य महारथियोंको बींध डाला। तत्पश्चात् उन्होंने पुनः बाण बरसाना आरम्भ किया। इससे आपके पक्षके योद्धा बहुत घायल हो गये। इसके बाद उन्होंने भी इतनी बाण-वर्षा की कि अर्जुनके रथकी बैठक थोड़ी ही देरमें भर गयी। श्रीकृष्ण और अर्जुनके सारे अङ्ग बाणोंसे बिंध गये—यह देख आपके सैनिकोंको बड़ा हर्ष हुआ।

महाराज ! उस समय आपके योद्धाओंने अर्जुनकी जो दशा की, वैसी न तो पहले कभी देखी गयी और न सुनी ही गयी थी। उनके रथमें सब ओर विचित्र पंखोंवाले बाण धँसे हुए थे। तदनन्तर, अर्जुन भी आपकी सेनापर बाण-वर्षा करने लगे। उनके नामाक्षरोंसे अङ्कित बाणोंकी मार खाते हुए कौरव सैनिकोंको सब कुछ अर्जुनमय ही प्रतीत होने लगा। अर्जुनरूपी आग आपके योद्धारूपी ईंधनोंको बड़े वेगसे भस्म करने लगी। सायकोंकी चोटसे बचानेके लिये जिनपर लोहेके आवरण पड़े हुए थे, ऐसे-ऐसे दो हजार रथोंका अर्जुनने विध्वंस कर डाला। जैसे प्रलयकालीन अग्नि इस चराचर जगत्को दग्ध करके धूमरहित होकर दमकने लगती है, उसी प्रकार पार्थ भी शत्रुओंका संहार करके देदीप्यमान हो रहे थे।

पाण्डुनन्दनका यह पराक्रम देख अश्वत्थामाने सामने आकर उन्हें आगे बढ़नेसे रोका। फिर तो उन दोनोंमें भीषण बाण-वर्षा होने लगी और बहुत देरतक एक-सा ही युद्ध चलता रहा। फिर अश्वत्थामाने बारह बाणोंसे अर्जुनको और दससे श्रीकृष्णको बींध डाला। तब अर्जुनने भी हँसकर गाण्डीवकी टंकार की और बाणोंसे गुरुपुत्रकी पूजा करके उसके घोड़ों और सारथिको मार डाला। अब अश्वत्थामाने उसी रथपर खड़ा हो एक लोहेका मूसल लेकर उसे अर्जुनपर दे मारा, किन्तु अर्जुनने सहसा उसके सात टुकड़े कर डाले। यह देख द्रोणकुमारने कुपित हो अर्जुनपर एक भयंकर परिघका प्रहार किया; परंतु पार्थने पाँच बाण मारकर उसके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले। साथ ही तीन भल्लोंसे द्रोणकुमारको खूब घायल किया।

अर्जुनके प्रहारसे अत्यन्त आहत हो जानेपर भी द्रोणकुमारको घबराहट नहीं हुई, वह अपने पुरुषार्थका भरोसा करके रणमें डटा रहा और पञ्चाल देशके महारथी सुरथपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। सुरथ भी अश्वत्थामाकी ओर दौड़ा और उसके ऊपर बाणोंकी बौछार करने लगा। यह देख अश्वत्थामाको बड़ा क्रोध हुआ, उसकी भौंहोंमें तीन जगह बल पड़ गये। अब उसने धनुषपर कालदण्डके समान भयंकर नाराच चढ़ाया और उसे सुरथको लक्ष्य करके छोड़ दिया। वह नाराच सुरथकी छाती छेदकर भीतर घुस गया और सुरथ प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। वीरवर सुरथके मारे जानेपर अश्वत्थामा उसीके रथपर जा बैठा और संशप्तकोंकी सेना साथ लेकर अर्जुनसे युद्ध करने लगा। दुपहरीका वक्त था, उस समय अर्जुनका शत्रुओंके साथ महान् संग्राम हुआ, जो यमलोककी आबादी बढ़ानेवाला था। वहाँ कौरव-योद्धाओंका पराक्रम देखकर तथा उनके साथ जो अर्जुन अकेले ही युद्ध कर रहे थे, इसको लक्ष्य करके हमलोगोंको बड़ा आश्चर्य हो रहा था।

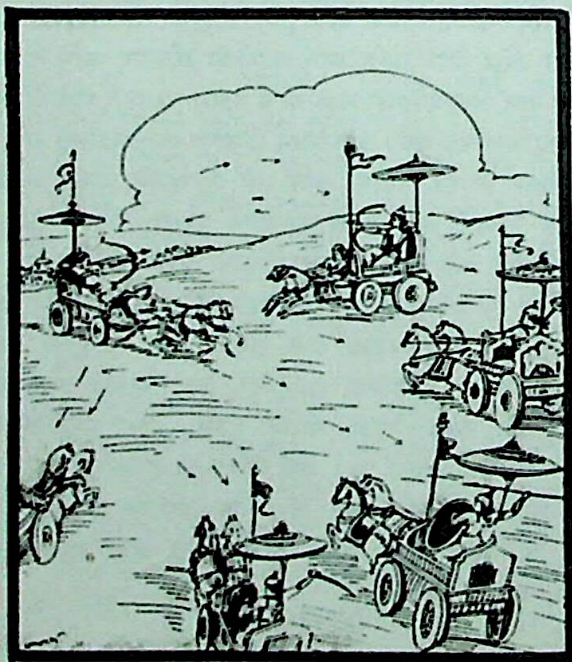


शल्यका पराक्रम तथा शल्यके साथ युधिष्ठिरका युद्ध

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! एक ओर दुर्योधन और धृष्टद्युम्नमें महान् संग्राम छिड़ा था, जिसमें बाणों और शक्तियोंका ही अधिक प्रहार हो रहा था। दोनों ही ओरसे सायकोंकी सहस्त्रों धाराएँ बरस रही थीं। पहले दुर्योधनने ही धृष्टद्युम्नको पाँच बाण मारे, तब धृष्टद्युम्नने भी सत्तर बाण मारकर दुर्योधनको विशेष पीड़ा पहुँचायी। यह देख उसके भाइयोंने बहुत बड़ी सेनाके साथ आकर धृष्टद्युम्नको चारों ओरसे घेर लिया। घिर जानेपर भी वह अस्त्र-संचालनमें अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाता हुआ युद्धमें निर्भय विचर रहा था।

दूसरी ओर शिखण्डी अपने साथ प्रभद्रकोंकी सेना लेकर कृपाचार्य और कृतवर्मासे युद्ध कर रहा था। वहाँ भी प्राणोंकी बाजी लगाकर भयंकर संग्राम हो रहा था। इधर, राजा शल्य बाणोंकी झड़ी लगाकर सात्यकि तथा भीमसेनसहित समस्त पाण्डवोंको पीड़ित कर रहे थे। साथ ही वे नकुल और सहदेवसे भी भिड़े हुए थे। जब शल्य अपने बाणोंसे पाण्डव-महारथियोंको आहत कर रहे थे, उस समय उन्हें कोई अपना रक्षक नहीं दिखायी देता था।

इसी समय शूरवीर नकुलने अपने मामा (शल्य) पर बड़े वेगसे धावा किया और बाणोंकी वर्षासे उन्हें आच्छादित कर दिया। फिर हँसते-हँसते उसने दस बाणोंसे शल्यकी छाती

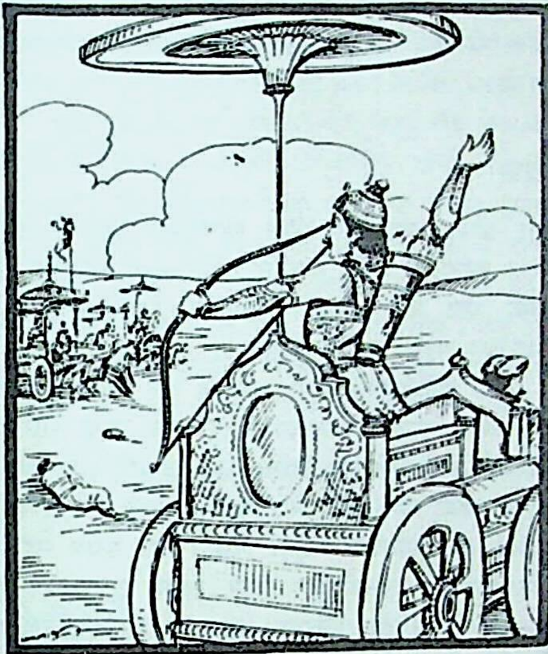


छेद डाली। अपने भानजेके द्वारा पीड़ित होकर शल्य भी उसे तीखे बाणोंका निशाना बनाने लगे। यह देख राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, सात्यकि और माद्रीनन्दन सहदेव शल्यपर टूट पड़े। सेनापति शल्यने तुरंत ही उन सबका सामना किया। उन्होंने युधिष्ठिरको तीन, भीमसेनको पाँच, सात्यकिको सौ और सहदेवको तीन बाणोंसे बींध डाला।

इसके बाद मद्रराजने क्षुरप्र मारकर नकुलके धनुषको काट दिया। तब नकुलने तुरंत ही दूसरा धनुष लेकर शल्यके रथको बाणोंसे भर दिया। साथ ही, युधिष्ठिर और सहदेवने भी उनकी छातीमें दस-दस बाण मारे। फिर भीमसेनने साठ और सात्यकिने दस सायकोंसे उन्हें घायल कर दिया। अब मद्रराजने क्रोधमें भरकर सात्यकिको पहले नौ और फिर सत्तर बाणोंसे बींध डाला। इसके बाद उसके धनुषको काटकर रथके घोड़ोंको भी मौतके घाट उतार दिया। तत्पश्चात् उन्होंने नकुल, सहदेव, भीमसेन और युधिष्ठिरको भी दस बाणोंसे घायल किया। इस महान् संग्राममें मैंने शल्यका अद्भुत पराक्रम देखा; वे अकेले ही पाण्डवोंके समस्त योद्धाओंके साथ युद्ध कर रहे थे।

तदनन्तर वे युधिष्ठिरके बहुत निकट आ गये और उन्हें अपने बाणोंसे पीड़ित करके पुनः भीमपर टूट पड़े। उस समय राजा शल्यकी फुर्ती तथा अस्त्र-संचालनकी कुशलता देखकर आपके तथा शत्रुपक्षके योद्धाओंने उनकी बहुत प्रशंसा की। शल्यके बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर जब पाण्डव-योद्धा बहुत कष्ट पाने लगे तो युधिष्ठिरके पुकारने और मना करनेपर भी वे युद्धका मैदान छोड़कर भाग चले। इससे धर्मराजको बड़ा अमर्ष हुआ, उन्होंने निश्चय कर लिया कि 'मेरी विजय हो या मृत्यु, युद्ध अवश्य करूँगा।' फिर तो वे अपने पुरुषार्थका भरोसा करके शल्यको बाणोंसे पीड़ित करने लगे तथा भगवान् श्रीकृष्ण और अपने सब भाइयोंको बुलाकर बोले—'मैं अपने मनकी बात बताता हूँ। मेरे पहियोंकी रक्षा करनेवाले माद्रीकुमार नकुल और सहदेव अब क्षत्रियधर्मको सामने रखकर अपने मामासे अच्छी तरह लड़ें; आज या तो शल्य मुझे मार डालेंगे या मैं ही उनका वध करूँगा। मेरी इस बातको तुमलोग सत्य समझो। इस समय पहियोंकी रक्षाका भार सात्यकि और धृष्टद्युम्नपर रहा। सात्यकि दायें पहियेकी रक्षा करें और धृष्टद्युम्न बायेंकी। अर्जुन

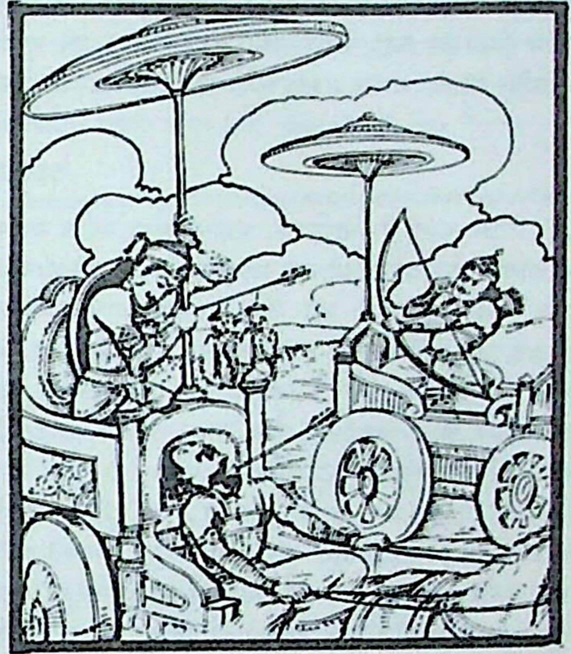
पृष्ठभागकी रक्षामें रहें और भीमसेन मेरे आगे-आगे चलें।



ऐसी व्यवस्था हो जानेपर मैं इस महासमरमें शल्यसे अधिक प्रबल हो जाऊँगा।'

राजाकी आज्ञा पाकर सबने वैसा ही किया; क्योंकि सभी उनका प्रिय करनेवाले थे। फिर तो पाण्डव-सेनामें बड़ा उत्साह छा गया। पाञ्चाल, सोमक और मत्स्यदेशीय वीर अत्यन्त हर्षमें भर गये। युधिष्ठिरने 'विजय अथवा मृत्यु'की प्रतिज्ञा करके मद्रराजपर चढ़ाई की। उस समय शङ्ख और भेरियाँ बजने लगीं। पाञ्चाल योद्धा सिंहनाद करते हुए मद्रराजपर टूट पड़े। परंतु आपके पुत्र दुर्योधन तथा मद्रराज शल्यने उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया। अब शल्य युधिष्ठिरपर बाणोंकी बौछार करने लगे। दुर्योधन भी सायकोंकी वर्षा करता हुआ अपनी अस्त्र-विद्याका परिचय देने लगा।

उस समय भीमसेन दुर्योधनसे भिड़ गये। धृष्टद्युम्न, सात्यकि, नकुल और सहदेवने शकुनि आदि वीरोंका सामना किया। फिर तो घमासान युद्ध होने लगा। दुर्योधनने भीमसेनकी ध्वजा काट दी। उनके धनुषके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तब भीमसेनने शक्तिका प्रहार करके दुर्योधनकी छाती छेद डाली। वह मूर्च्छित होकर रथकी बैठकमें गिर पड़ा। दुर्योधनके मोहाच्छन्न हो जानेपर भीमने क्षुरप्रसे उसके सारथिका सिर धड़से अलग कर दिया। सारथिके मरते ही उसके घोड़े जोरसे भागे, उस समय हाहाकार मच गया। अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा आपके पुत्रको बचानेके



लिये दौड़े।

उधर, युधिष्ठिर तेज किये हुए भल्लोंसे हजारों कौरव योद्धाओंका संहार करने लगे। वे जिस सेनाकी ओर जाते उसीको बाणोंसे मार गिराते थे। घोड़े, सारथि, ध्वजा और रथके सहित रथियोंका, घुड़सवारोंसहित घोड़ोंका तथा हजारों पैदलोंका उन्होंने सफाया कर डाला। फिर चारों ओर बाणोंकी झड़ी लगाते हुए वे मद्रराज शल्यकी ओर दौड़े।

युधिष्ठिरका ऐसा पराक्रम देख आपके सभी सैनिक थर्रा उठे। केवल शल्यने उनका सामना किया। वे दोनों क्रोधमें भरकर शङ्ख बजाते और एक-दूसरेको ललकारते तथा डराते हुए पास आ गये। फिर शल्यने अपने बाणोंकी बौछारसे युधिष्ठिरको ढक दिया तथा युधिष्ठिरने भी शल्यपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। उसी समय उन दोनों वीरोंको देखकर समस्त सैनिक इस बातका निश्चय नहीं कर सके कि 'इनमेंसे किसकी विजय होगी।'

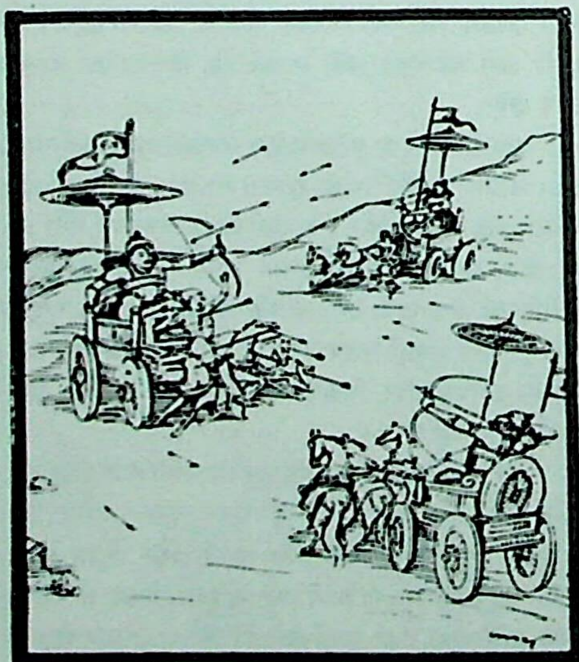
इसी बीचमें शल्यने युधिष्ठिरको सौ बाण मारे और उनका धनुष भी काट दिया। तब युधिष्ठिरने दूसरा धनुष लेकर शल्यको तीन सौ बाणोंसे बींध डाला और क्षुरप्र मारकर उनके धनुषको भी खण्डित कर दिया। फिर दो बाणोंसे उनके पार्श्वरक्षक तथा सारथिको मौतके घाट उतारकर एक भल्लसे उनके रथकी ध्वजा भी काट डाली। यह देखकर

दुर्योधनकी सेनामें भगदड़ पड़ गयी। मद्रराजको इस दुरवस्थामें पड़े देख अश्वत्थामा दौड़ा आया और उन्हें अपने रथमें बिठाकर बड़ी तेजीके साथ भाग गया। उस समय युधिष्ठिर सिंहके समान गर्जना करने लगे और मद्रराज शल्य विधिपूर्वक सजाये हुए दूसरे रथपर बैठकर पुनः उनका सामना करने आ गये। शल्यके रथपर निशाना बेधनेवाली मशीन भी थी, जिसे देखते ही शत्रुओंके रोंगटे खड़े हो जाते थे।



शल्यका वध

सञ्जय कहते हैं—तदनन्तर, मद्रराज शल्य मेघके समान बाणोंकी वर्षा करने लगे। वे सात्यकिको दस, भीमसेनको तीन तथा सहदेवको भी तीन बाणोंसे घायल करके युधिष्ठिरको पीड़ित करने लगे। शल्यने धर्मराजकी छातीमें सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी बाणका प्रहार किया। तब युधिष्ठिरने भी सावधानीके साथ बाण मारकर मद्रराजको बींध डाला। उसकी चोट खाकर वे मूर्च्छित हो गये। फिर थोड़ी ही देर बाद जब उन्हें चेत हुआ तो उन्होंने युधिष्ठिरको सौ बाण मारे। अब युधिष्ठिरने भी नौ सायकोंसे शल्यकी छाती छेद डाली और छः बाण मारकर उनका कवच भी काट दिया। यह देख मद्रराज शल्यने दो सायकोंसे युधिष्ठिरके धनुषके दो टुकड़े कर दिये। तब युधिष्ठिरने दूसरा भयंकर धनुष हाथमें लिया और शल्यको सब ओरसे बींध डाला। शल्यने भी नौ बाण मारकर युधिष्ठिर और भीमसेनके कवच काट दिये और उनकी भुजाओंको भी विदीर्ण कर डाला फिर शल्यने एक क्षुराकार बाणसे युधिष्ठिरका धनुष काट डाला और कृपाचार्यने उनके सारथिको यमलोक भेज दिया। इतना ही नहीं, शल्यने उनके चारों घोड़ोंको भी मौतके घाट उतार दिया। तत्पश्चात् उन्होंने युधिष्ठिरके सैनिकोंका संहार आरम्भ किया।



राजा युधिष्ठिरकी ऐसी अवस्था देख भीमसेनने बड़े वेगसे बाण मारकर शल्यका धनुष काट डाला और दो सायकोंसे स्वयं उन्हें भी विशेष चोट पहुँचायी। फिर एक बाणसे उनके सारथिका सिर धड़से अलग करके चारों घोड़ोंको भी यमलोक पहुँचा दिया। उस समय मद्रराज शल्य हाथमें ढाल-तलवार लिये रथसे कूद पड़े और नकुलके रथकी ईषा (हरसा) काटकर राजा युधिष्ठिरकी ओर दौड़े। राजा शल्यको युधिष्ठिरके ऊपर धावा करते देख धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र, शिखण्डी तथा सात्यकि सहसा उनपर टूट पड़े।

तदनन्तर, भीमसेनने नौ बाणोंसे शल्यकी ढालके टुकड़े-टुकड़े कर दिये और एक भल्ल मारकर उनकी तलवार भी काट डाली। फिर अत्यन्त हर्षमें भरकर आपकी सेनामें विचरते हुए वे जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे। उनकी भयंकर गर्जना सुनकर खूनसे लथपथ हुई आपकी सेना मूर्च्छित-सी हो गयी, उसे दिशाओंका भी भान न रहा।

तत्पश्चात् शल्य युधिष्ठिरकी ओर बढ़े और युधिष्ठिर शल्यकी ओर। युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णके कथनानुसार मन-ही-मन शल्यके वधका निश्चय किया और रत्नजटित सुवर्णमय दण्डवाली एक शक्ति हाथमें ली। फिर क्रोधसे जलती हुई आँखें उठाकर उन्होंने मद्रराजकी ओर देखा। उस समय मद्रराज शल्य धर्मराज युधिष्ठिरकी दृष्टि पड़नेसे भस्म नहीं हो गये—यही सबसे बड़े आश्चर्यकी बात मालूम हुई। तदनन्तर, युधिष्ठिरने उस दमकती हुई भयंकर शक्तिको मद्रराजके ऊपर बड़े वेगसे चलाया; जोरसे फेंकनेके कारण उससे आगकी चिनगारियाँ छूटने लगीं। पाण्डवोंने चन्दन, माला और उत्तम आसन आदिके द्वारा सदा ही उस शक्तिकी पूजा की थी, वह प्रलयकालीन अग्निके समान प्रज्वलित तथा अथर्वा अङ्गिराद्वारा उत्पन्न की हुई कृत्याके समान भयंकर

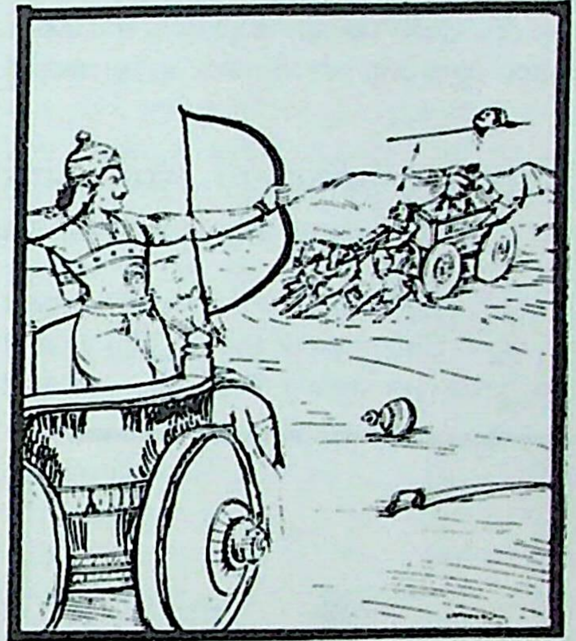
थी। उसमें जलचर, थलचर तथा नभचर जीवोंको भी बलपूर्वक नष्ट करनेकी शक्ति थी। विश्वकर्माने ब्रह्मचर्यादि नियमोंका पालन करके उसका निर्माण किया था, वह ब्रह्म-द्रोहियोंका विनाश करनेवाली और लक्ष्य वेधनेमें अचूक थी। बल और प्रयत्नके द्वारा उसका वेग बहुत बढ़ गया था। युधिष्ठिरने उसे भयंकर मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके बड़े यत्नके साथ अपने शत्रु मद्रराजपर छोड़ा था। एक तो वह पूरा बल लगाकर छोड़ी गयी थी, दूसरे उसकी शक्तिको रोकना किसीके लिये भी असम्भव था, तो भी उसकी चोट सहनेके लिये मद्रराज शल्य गरज उठे। किंतु वह शक्ति उनकी छाती छेदती हुई शरीरके मर्मस्थानोंको विदीर्ण कर पृथ्वीमें समा गयी और राजाका विशाल यश भी अपने साथ ही लेती



गयी। उनका सारा अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गया और वे लोहूलुहान होकर प्रेमसे पृथ्वीका आलिङ्गन करते हुए-से गिर पड़े।

तदनन्तर, राजा युधिष्ठिरने धनुष उठाया और तेज किये हुए भल्लोंसे एक ही क्षणमें बहुत-से शत्रुओंका नाश कर डाला। उनके बाणोंसे आच्छादित होनेके कारण आपके सैनिकोंने आँखें मीच लीं और आपसमें ही एक-दूसरेको घायल करके वे बहुत कष्ट पाने लगे। उस समय उनके शरीरोंसे खूनकी धाराएँ बह रही थीं और वे अपने अस्त्र-शस्त्र खोकर जीवनसे भी हाथ धो रहे थे।

मद्रराजका एक छोटा भाई था, जो अभी नवयुवक था, वह सभी गुणोंमें अपने भाईकी बराबरी करता था। शल्यके मारे जानेपर वह पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरपर चढ़ आया और बड़ी शीघ्रताके साथ उन्हें नाराचोंका निशाना बनाने लगा। तब धर्मराजने उसे छः बाणोंसे बींध डाला और दो क्षुराकार सायकोंसे उसके धनुष तथा ध्वजाको भी काट गिराया।



फिर एक तेज किये हुए भल्लके द्वारा उन्होंने उसका मस्तक काट लिया। तब खूनसे रँगा हुआ उसका धड़ रथसे नीचे गिर पड़ा। यह देखकर कौरव-सेनामें भगदड़ पड़ गयी। उस समय सात्यकि भागते हुए कौरवोंपर भी बाण बरसाने लगा, किंतु कृतवर्माने वहाँ पहुँचकर उसे आगे बढ़नेसे रोक लिया। अब वे ही दोनों एक-दूसरेपर बाणोंकी बौछार करने लगे। कृतवर्माने दस बाणोंसे सात्यकिको और तीनसे उसके घोड़ोंको घायल कर दिया; फिर एक बाण मारकर उसके धनुषको काट डाला। सात्यकिने उसे फेंककर दूसरा धनुष उठाया और कृतवर्माकी छातीमें दस बाण मारे; फिर अनेकों भल्लोंके प्रहारसे उसके रथ और जूएकी ईषाको काट डाला। यही नहीं, उसके घोड़ों, पार्श्वरक्षकों तथा सारथिको भी मौतके घाट उतार दिया।

कृतवर्माको रथहीन देख कृपाचार्यने उसे अपने रथपर बिठा लिया और दूर हटा ले गये। अब दुर्योधनकी सेना फिर भागने लगी। पाण्डवोंको वेगसे आते और अपनी सेनाको भागती देख दुर्योधनने अकेले ही समस्त पाण्डवोंको रोका।

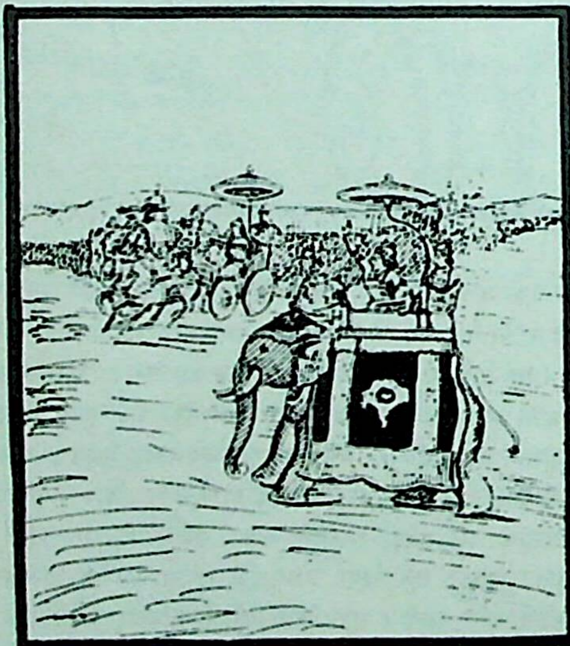
वह रथपर बैठे हुए पाण्डुपुत्रोंपर, धृष्टद्युम्नपर और आनर्त देशके राजापर बाणोंकी वर्षा करने लगा। जैसे मरणधर्मा मनुष्य अपनी मौतको नहीं टाल सकते, उसी प्रकार ये पाण्डव महारथी दुर्योधनको नहीं लाँघ सके।

इसी बीचमें कृतवर्मा भी दूसरे रथपर बैठकर वहाँ आ पहुँचा। तब युधिष्ठिरने चार बाणोंसे कृतवर्माके चारों घोड़ोंको यमलोक पहुँचा दिया और तेज किये हुए छः भल्लोंसे कृपाचार्यको भी घायल किया। घोड़े मारे जानेसे कृतवर्मा रथहीन हो गया—यह देख अश्वत्थामा उसे अपने रथपर बिठाकर युधिष्ठिरसे दूर हटा ले गया। महाराज ! आप और आपके पुत्रके अन्यायसे इस प्रकार शेष युद्ध हुआ था। युधिष्ठिरके द्वारा शल्यके मारे जानेपर सब पाण्डव प्रसन्न हो शङ्ख बजाने लगे। सबने राजा युधिष्ठिरकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। नाना प्रकारके बाजे बजाये गये, जिससे चारों ओरकी पृथ्वी गूँज उठी।



मद्रराजके अनुचरोंका वध, कौरव-सेनाका पलायन, भीमद्वारा इक्कीस हजार पैदलोंका संहार और दुर्योधनका अपनी सेनाको उत्साहित करना

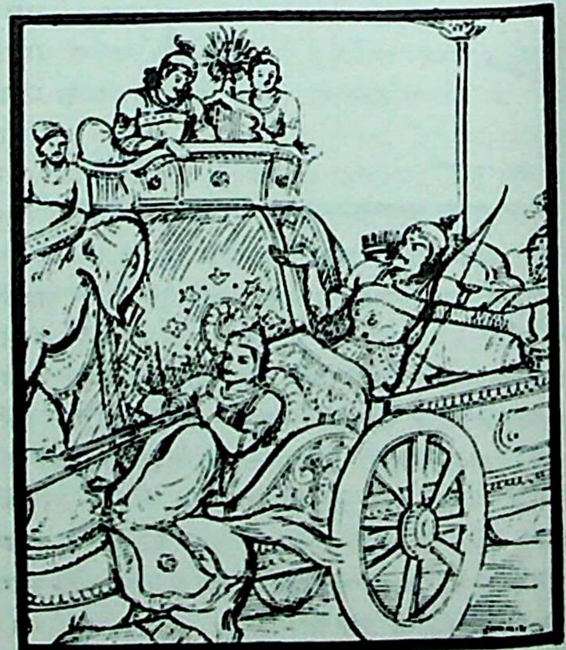
सञ्जय कहते हैं—शल्यके मारे जानेपर उनके अनुयायी सात सौ रथी युधिष्ठिरसे लड़नेके लिये आगे बढ़े ! उस समय राजा दुर्योधनने उन मद्रदेशीय वीरोंसे कहा—'इस समय



पाण्डव-सेनाकी ओर न जाओ, न जाओ।' किंतु उसके बारंबार मना करनेपर भी वे युधिष्ठिरको मार डालनेकी इच्छासे उनकी सेनामें घुस गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने धनुषकी टंकार की और पाण्डवोंके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया।

उधर, अर्जुनने सुना कि 'शल्य मारे गये और उनका प्रिय करनेवाले मद्रदेशीय महारथी धर्मराजको पीड़ित कर रहे हैं'; तो वे गाण्डीवकी टंकार करते हुए वहाँ आ पहुँचे। उस समय अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, सात्यकि, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा पाञ्चाल और सोमक योद्धा युधिष्ठिरकी रक्षा करनेके लिये उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये।

इतनेहीमें मद्रदेशीय योद्धा वहाँ चिल्लाकर कहने लगे—'अरे ! वह राजा युधिष्ठिर कहाँ है ? उसके शूरवीर भाई भी नहीं दिखायी देते। धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र, शिखण्डी तथा अन्यान्य पाञ्चाल महारथी कहाँ हैं ?' इस



तरह बकवाद करनेवाले उन मद्रराजके अनुचरोंको द्रौपदीके महारथी पुत्रोंने मारना आरम्भ कर दिया। उस समय दुर्योधनने उन्हें आश्वासन देते हुए पुनः मना किया, किन्तु किसीने उसकी आज्ञा नहीं मानी। तब शकुनिने दुर्योधनसे कहा—'भारत ! तुम्हारे रहते-रहते ऐसा होना कदापि उचित नहीं है कि मद्रराजकी सेना मारी जाय और हम खड़े-खड़े तमाशा देखते रहें। यह शपथ ली जा चुकी है कि हम सब लोग एक साथ रहकर लड़ें; ऐसी दशामें शत्रुओंको अपनी सेनाका संहार करते देखकर भी तुम क्यों सहन किये जा रहे हो ?'

दुर्योधन बोला—मैं क्या करूँ ? बारंबार मना करनेपर भी इन्होंने मेरी आज्ञा नहीं मानी है, सब एक साथ पाण्डव-सेनामें घुस गये हैं।

शकुनिने कहा—संग्राममें आये हुए सैनिक जब क्रोधमें भर जाते हैं, तो वे स्वामीकी भी आज्ञा नहीं मानते; अतः इनके ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिये; यह इनकी उपेक्षा करनेका समय नहीं है। हम सब लोग एक साथ होकर चलें और यत्नपूर्वक मद्रराजके सैनिकोंकी रक्षा करें।

शकुनिके ऐसा कहनेपर राजा दुर्योधन बहुत बड़ी सेना साथ ले अपने सिंहनादसे पृथ्वीको कम्पायमान-सा करता हुआ चला। उस दलमें मैं भी था। उधर पाणडवों और मद्रराजके सैनिकोंमें युद्ध छिड़ा हुआ था। अभी एक मुहूर्त भी नहीं बीतने पाया था कि मद्रदेशीय योद्धा पाण्डवोंसे हाथापाई करके मौतके मुँहमें जा पड़े। हमारे पहुँचते-पहुँचते उनका सफाया हो गया। सब ओर उनके धड़-ही-धड़ खड़े दिखायी देते थे। उस समय पाण्डव हर्षमें भरकर किलकारियाँ मार रहे थे। उनके मरनेपर हमलोगोंको वहाँ आते देख पाण्डव-योद्धा शङ्खध्वनिके साथ बाणोंकी सन-सनाहट फैलाते हुए हमपर टूट पड़े। वे विजयोल्लाससे सुशोभित हो रहे थे, उनकी मार पड़नेसे दुर्योधनकी सेना पुनः भयभीत होकर चारों ओर भागने लगी।

राजन् ! शल्यके मारे जानेसे सभी कौरव हतोत्साह हो गये थे। उस समय किसी भी योद्धाकी न तो सेना इकट्ठी करनेकी इच्छा होती थी और न पराक्रम दिखानेकी। भीष्म, द्रोण और कर्णके मरनेपर जैसा दुःख और भय हुआ था, वही भय हमलोगोंपर फिर सवार हो गया। विजयकी ओरसे पूर्ण निराशा हो गयी। कौरवोंके प्रधान-प्रधान वीर मारे जा चुके थे; इसलिये जो शेष थे वे भी तीखे बाणोंसे घायल होकर भागने लगे। कुछ लोग घोड़ोंपर चढ़कर भागे और कुछ लोग हाथियोंपर। बहुतेरे रथोंमें ही बैठकर रफूचक्कर हो गये। बेचारे पैदल योद्धा भयके मारे बड़े जोरसे पलायन कर रहे थे।

उन सबको उत्साह खोकर भागते देख विजयाभिलाषी पाण्डवों और पाञ्चालोंने दूरतक उनका पीछा किया। उन वीरोंके बाणोंकी सनसनाहट, उनका सिंहके समान दहाड़ना और शङ्ख बजाना बड़ा भयंकर जान पड़ता था। वह सब देख-सुनकर कौरव सैनिक थर्रा उठते थे। उन्हें इस अवस्थामें देखकर पाण्डव और पाञ्चाल योद्धा आपसमें कहने लगे—'आज सत्यवादी राजा युधिष्ठिर शत्रुओंपर विजय पा गये और दुर्योधन अपनी देदीप्यमान राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो गया। आज अपने पुत्रको मरा हुआ सुनकर राजा धृतराष्ट्र अत्यन्त व्याकुल हो पृथ्वीपर पछाड़ खाकर गिरें और दुःख भोगें। आज उनकी समझमें आ जायगा कि कुन्तीनन्दन सब धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ हैं। अब वे जी भरकर अपनी ही निन्दा करते हुए विदुरजीके सत्य और हितकारी वचनोंको याद करें। आजसे वे भी दासकी भाँति परिचर्यामें रहकर अनुभव करें कि पाण्डवोंने कितना कष्ट उठाया था ? अब अच्छी तरह जान लें कि श्रीकृष्णकी कैसी महिमा है ? और अर्जुनके धनुषकी टंकार कितनी भयंकर है ? उनके अस्त्रों तथा भुजाओंमें कितना बल है ? इससे भी वे पूर्ण परिचित हो जायँ। अब दुर्योधनके मारे जानेपर महात्मा भीमसेनके भयंकर बलका भी उन्हें ज्ञान हो जायगा। जिनकी ओर युद्ध करनेवाले धनञ्जय, सात्यकि, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पाँच पुत्र, नकुल-सहदेव, शिखण्डी तथा स्वयं राजा युधिष्ठिर-जैसे वीर हैं, उनकी विजय कैसे न हो ? सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण जिनके रक्षक हैं, जिन्हें धर्मका आश्रय प्राप्त है, उनकी विजय क्यों न होगी ?'

इस तरहकी बातें करते हुए सृञ्जय वीर अत्यन्त हर्षमें भरकर आपके सैनिकोंका पीछा कर रहे थे। इसी समय अर्जुनने रथसेनापर धावा किया। नकुल, सहदेव और सात्यकिने शकुनिपर चढ़ाई की। इधर, अपने सैनिकोंको भीमसेनके भयसे भागते देख दुर्योधनने सारथिसे कहा—'सूत ! यह देख, पाण्डव किस तरह मेरी सेनाको खदेड़ रहे हैं ? यदि सम्पूर्ण सेनाके पीछे मैं स्वयं मौजूद रहूँ, तो अर्जुन मुझे लाँघकर आगे बढ़नेका साहस नहीं कर सकते। इसलिये तू मेरे घोड़ोंको धीरे-धीरे हाँककर सेनाके पिछले भागकी रक्षा करता हुआ ले चल। मेरे रहनेसे जब पाण्डवोंका बढ़ाव रुक जायगा, तब भागती हुई सेना फिर लौट आयगी।'

दुर्योधनका शूरवीरोंके योग्य वचन सुनकर सारथिने घोड़ोंको धीरे-धीरे बढ़ाया। उस समय वहाँ हाथीसवार, घुड़सवार और रथियोंका पता नहीं था, केवल इक्कीस हजार

पैदल योद्धा प्राणोंका मोह छोड़कर युद्धके लिये आकर डट गये। फिर तो हर्षमें भरे हुए उन योद्धाओं और पाण्डवोंमें घोर घमासान युद्ध होने लगा। उस समय भीमसेनने चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर उन वीरोंका सामना किया। वे भी भीमपर ही टूट पड़े और उन्हें चारों ओरसे घेरकर बाणोंका प्रहार करने लगे। उन्होंने भीमसेनको कैद कर लेनेकी भी कोशिश की।

यह देख भीमसेनको बड़ा क्रोध हुआ, वे रथसे कूद पड़े और हाथमें बहुत बड़ी गदा ले पाँव-प्यादे ही दण्डधारी



यमराजकी भाँति आपके सैनिकोंका संहार करने लगे। उन्होंने अपनी गदासे उन इक्कीसों हजार योद्धाओंको मार गिराया। पैदलोंकी वह मरी हुई सेना बड़ी भयंकर दिखायी देती थी। इसी समय युधिष्ठिर आदिने आपके पुत्र दुर्योधनपर धावा किया। किंतु वे उसके पासतक न पहुँच सके। वहाँ हम-लोगोंने आपके पुत्रका अद्भुत पराक्रम देखा। समस्त पाण्डव एक साथ होकर भी अकेले दुर्योधनको नहीं परास्त कर सके। उस समय दुर्योधनने देखा कि मेरी सेना भागनेका निश्चय करके अभी थोड़ी ही दूरतक गयी है; तब उसने सैनिकोंको पुकारकर कहा—'अरे! इस तरह भागनेसे क्या लाभ है? अब तो शत्रुओंके पास बहुत थोड़ी सेना रह गयी है तथा श्रीकृष्ण और अर्जुन भी बहुत घायल हो चुके हैं; ऐसी दशामें यदि साहस करके हमलोग रणमें डटे रहें, तो हमारी विजय अवश्य होगी। तुम पाण्डवोंके अपराध तो कर ही चुके

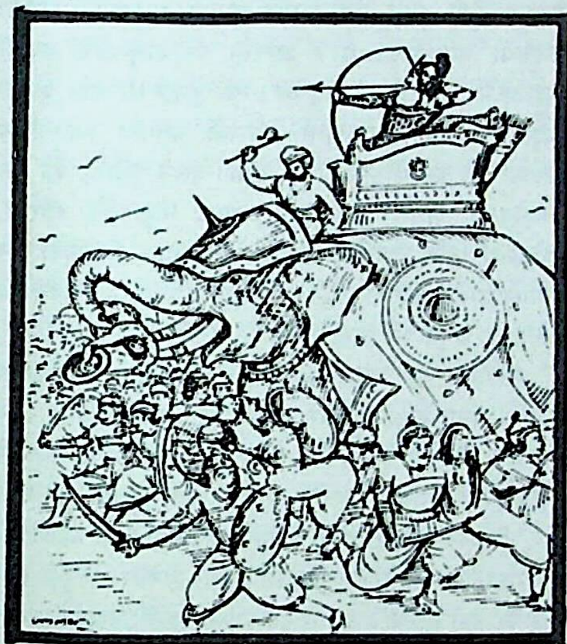


हो, यदि विलग-विलग होकर भागोगे, तो पाण्डव पीछा करके तुम्हें अवश्य मार डालेंगे। इस प्रकार जब मरना अवश्यम्भावी है, तो युद्धमें मरनेसे ही हमलोगोंका कल्याण है। जब शूरवीर और कायर सबको ही मौत मार डालती है, तो कौन ऐसा मूर्ख है, जो क्षत्रिय कहलाकर भी युद्धसे मुँह मोड़े। संग्राममें क्षत्रिय-धर्मके अनुसार लड़ते-लड़ते यदि मृत्यु भी हो जाय तो वह परिणाममें सुख देनेवाली है। युद्धके द्वारा मृत्युको वरण करना क्षत्रियके लिये सनातन धर्म है। यदि वह युद्धमें जीत जाय तो यहाँ ही सुख भोगता है और मारा गया तो परलोकमें जाकर महान् फलका भागी होता है। अतः क्षत्रियके लिये युद्धसे उत्तम दूसरा कोई मार्ग नहीं है।'

दुर्योधनकी बात सुनकर राजाओंने उसकी प्रशंसा की और पुनः पाण्डवोंपर धावा कर दिया। पाण्डव व्यूह बनाकर खड़े थे और प्रहार करनेको पहलेसे ही तैयार थे। कौरव सैनिकोंको आते देख वे क्रोधमें भर गये और उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े। अर्जुन अपने विश्वविख्यात गाण्डीव धनुषकी टंकार करते हुए रथपर बैठकर आपकी सेनापर टूट पड़े। नकुल, सहदेव और सात्यकिने शकुनिपर धावा किया। इस प्रकार ये सब लोग उत्साहमें भरकर आपकी सेनाकी ओर दौड़े।

शाल्वका वध, सात्यकि और कृतवर्माका युद्ध तथा दुर्योधनका पराक्रम

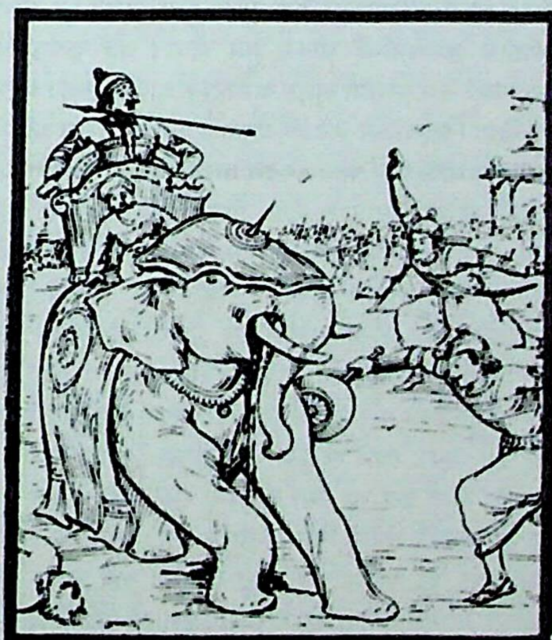
सञ्जय कहते हैं—तदनन्तर म्लेच्छोंका राजा शाल्व क्रोधमें भरकर पाण्डव-सेनापर चढ़ आया। वह ऐरावतके समान एक पर्वताकार गजराजपर बैठा हुआ था। उसने



इन्द्र-वज्रके समान अत्यन्त भयंकर बाणोंसे पाण्डवोंको बींधना आरम्भ किया। उसके बाण छोड़ने और सैनिकोंको यमलोक पहुँचानेमें कितनी देर लगती है, इसे कौरव या पाण्डव कोई भी नहीं जान सके। म्लेच्छराजका वह हाथी यद्यपि अकेला ही रणभूमिमें विचर रहा था, तो भी पाण्डव, सृञ्जय और सोमक उसे हजारोंकी संख्यामें देखते थे, सब ओर वही वह नजर आता था। वह शत्रुओंकी सेनाको चारों ओर भगाने लगा। योद्धा अत्यन्त भयभीत हो जानेके कारण अब समरभूमिमें ठहर नहीं सके। आपसमें ही धक्के खाकर कुचले जाने लगे। हाथीके वेगको न सह सकनेके कारण पाण्डवोंकी वह विशाल वाहिनी तितर-बितर हो चारों दिशाओंमें भाग गयी।

यह देख आपके प्रधान-प्रधान योद्धा म्लेच्छराजकी प्रशंसा करते हुए गर्जने और शङ्ख बजाने लगे। उनका शङ्खनाद सेनापति धृष्टद्युम्नसे नहीं सहा गया। वह बड़ी उतावलीके साथ हाथीकी ओर बढ़ा। उसे आते देख शाल्वने द्रुपद-पुत्रका वध करनेके लिये हाथीको उसीकी ओर दौड़ाया। तब धृष्टद्युम्नने तीन भयंकर नाराचोंसे हाथीको बींध डाला; फिर, उसके कुम्भस्थलको लक्ष्य करके उसने पाँच सौ नाराच और मारे। हाथी उन प्रहारोंसे घायल होकर पीछेकी ओर भागा, किंतु शाल्वने सहसा उसे लौटाकर धृष्टद्युम्नके रथकी ओर बढ़ा दिया। नागराजको पुनः अपनी ओर आता देख धृष्टद्युम्न भयसे घबरा गया और हाथमें गदा ले बड़े वेगके साथ रथसे कूद पड़ा। इतनेमें हाथीने रथके पास पहुँचकर घोड़ों और सारथिको कुचल डाला; फिर जोर-जोरसे गर्जना करते हुए उसने रथको सूँड़से उठाकर जमीनपर पटक दिया।

उस समय पाञ्चालराजकुमारको शाल्वके हाथीसे पीड़ित देख भीमसेन, शिखण्डी और सात्यकि सहसा उसके पास दौड़े आये। आते ही उन्होंने अपने बाणोंसे हाथीका वेग रोक दिया। उन महारथियोंके द्वारा अपनी प्रगति रुक जानेसे हाथी विचलित हो उठा; इसी समय राजा शाल्वने बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। उसके सायकोंकी मार खाकर पाण्डव रथी इधर-उधर भागने लगे। शाल्वका यह पराक्रम देख पाञ्चालों और सृञ्जयोंने हाहाकार करते हुए उसके गजराजको चारों ओरसे घेर लिया। तदनन्तर, धृष्टद्युम्नने बड़े वेगसे धावा



किया। और उस पर्वताकार हाथीके ऊपर गदाकी चोट करके उसे बहुत घायल कर दिया। उस आघातसे हाथीका कुम्भस्थल फट गया और वह चिग्घाड़ कर मुखसे रक्त वमन

करता हुआ धराशायी हो गया। इतनेहीमें सात्यकिने एक तीक्ष्ण भल्लसे शाल्वका सिर धड़से अलग कर दिया। तब वह म्लेच्छराज उस नागराजके साथ ही धरतीपर गिर पड़ा।

शाल्वके मारे जानेपर आपकी सेनाका व्यूह टूट गया—सब सैनिक तितर-बितर हो गये। यह देख महारथी कृतवर्माने आगे बढ़कर शत्रुओंकी सेनाको रोक दिया। उसे रणभूमिमें डटा हुआ देख आपके भागे हुए सैनिक भी लौट आये। उस समय प्राणोंकी भी परवा न करके लौटे हुए कौरवोंका पाण्डवोंके साथ घोर युद्ध होने लगा। कृतवर्माकी युद्धकला आश्चर्यजनक थी। अकेला होनेपर भी उसने समस्त पाण्डव-सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया। कौरव हर्षमें भरकर सिंहनाद करने लगे। उनकी गर्जना सुनकर पाञ्चाल योद्धा थर्रा उठे। इतनेमें महाबाहु सात्यकि वहाँ आ पहुँचा। आते ही उसकी राजा क्षेमधूर्तिसे मुठभेड़ हुई। सात्यकिने सात बाण मारकर उन्हें तत्काल यमलोक पहुँचा दिया।

यह देख कृतवर्माने बड़े वेगसे सात्यकिपर धावा किया। फिर दोनों महारथी एक-दूसरेसे भिड़ गये। थोड़ी ही देरमें उस युद्धने बड़ा भयंकर रूप धारण किया। अब पाण्डव और पाञ्चाल योद्धा दूर खड़े होकर दर्शककी भाँति तमाशा देखने लगे। कृतवर्माने चार तीखे बाणोंसे सात्यकिके चारों घोड़ोंको बींध डाला। इससे सात्यकिको बड़ा क्रोध हुआ, उसने भी आठ सायकोंसे कृतवर्माको घायल कर दिया। तब कृतवर्माने सात्यकिको तीन बाणोंसे आहत करके एक बाणसे उसका धनुप काट दिया। सात्यकिने कटे हुए धनुपको फेंककर दूसरा उठाया और कृतवर्माके पास पहुँचकर दस बाणोंसे उसके सारथि तथा घोड़ोंको मौतके घाट उतार दिया; फिर रथकी ध्वजा भी काट डाली। अब कृतवर्माके क्रोधकी सीमा न रही, उसने सात्यकिको मार डालनेकी इच्छासे उसपर शूलका प्रहार किया; किंतु सात्यकिने अपने तीखे बाणोंसे उस शूलको चकनाचूर कर दिया। कृतवर्मा हक्का-बक्का-सा होकर देखता रह गया।

कृतवर्माको इस दशामें पड़ा देख कृपाचार्य दौड़े आये और उसे अपने रथमें बिठाकर रणभूमिसे दूर हटा ले गये। सात्यकि रणमें डटा रहा और कृतवर्मा रथहीन हो गया—यह देख दुर्योधनकी सेनामें फिरसे भगदड़ पड़ी। परंतु उस समय इतनी धूल उड़ रही थी कि कुछ दिखायी नहीं पड़ता था; इसलिये आपके सैनिकोंका भागना शत्रुओंको नहीं विदित हो सका। सबके भागनेपर भी दुर्योधन वहाँ डटा रहा। वह बड़े वेगसे शत्रुओंपर टूट पड़ा और अकेला होनेपर भी समस्त पाण्डव-योद्धाओंको उसने आगे बढ़नेसे रोक दिया। यही नहीं, उसने शिखण्डी, द्रौपदीके पुत्र, केकय, सोमक तथा सृञ्जय—इन सब योद्धाओंको अपने तीखे बाणोंका निशाना बनाया। शत्रुपक्षका एक भी घोड़ा, हाथी, रथ या मनुष्य ऐसा नहीं था, जो दुर्योधनके बाणोंसे अछूता बचा हो। जैसे धूलसे सारी सेना ढकी हुई थी, वैसे ही उसके बाणोंसे भी ढकी दिखायी देती थी। उस समय दुर्योधनने सारी पृथ्वीको बाणमयी कर दिया था। आपके या शत्रुपक्षके हजारों योद्धाओंमें वह एक ही मर्द था। उस युद्धमें आपके पुत्रका अद्भुत पराक्रम देखा गया—समस्त पाण्डव एक साथ मिलकर भी उसे पीछे नहीं हटा सके। उसने युधिष्ठिरको सौ, भीमसेनको सत्तर, सहदेवको पाँच, नकुलको चौंसठ, धृष्टद्युम्नको पाँच, द्रौपदीके पुत्रोंको पाँच तथा सात्यकिको तीन बाणोंसे घायल कर दिया। साथ ही, एक भल्ल मारकर उसने सहदेवका धनुप भी काट डाला।

सहदेवने वह कटा हुआ धनुष फेंक दिया और दूसरा विशाल धनुप हाथमें लेकर दुर्योधनपर धावा किया। उसने दस बाण मारकर दुर्योधनको बींध डाला। तत्पश्चात् नकुलने नौ, सात्यकिने एक, द्रौपदीके पुत्रोंने तिहत्तर, धर्मराजने पाँच और भीमसेनने अस्सी बाण मारकर उसे खूब पीड़ा पहुँचायी। इस प्रकार चारों ओरसे बाणोंकी बौछार होनेपर भी दुर्योधनने पीछे पैर नहीं हटाया। उस समय उसकी फुर्ती, उसकी सफाई तथा उसकी वीरता सब सीमातीत दिखायी पड़ती थी।

इसी समय शकुनिने युधिष्ठिरके चारों घोड़ोंको मार डाला और उन्हें भी बाणोंसे पीड़ित किया। तब सहदेव राजाको अपने रथपर बिठाकर रणभूमिसे दूर हटा ले गया। थोड़ी ही देरमें दूसरे रथपर सवार होकर युधिष्ठिर पुनः आ पहुँचे और उन्होंने शकुनिको पहले नौ बाण मारकर फिर पाँच बाणोंसे बींध डाला। इसके बाद वे बड़े जोरसे गर्जना करने लगे।

उधर, उलूक चारों ओर बाणोंकी बौछार करता हुआ नकुलपर जा चढ़ा। तब नकुलने भी बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा की और शकुनिपुत्र उलूकको चारों ओरसे ढक दिया। दूसरी ओर, कृपाचार्यने क्रोधमें भरकर बाणोंकी मारसे द्रौपदीके पुत्रोंको घायल कर दिया। तब वे भी कृपाचार्यको अपने सायकोंसे पीड़ित करने लगे। इस प्रकार उनमें विचित्र युद्ध होने लगा। उस समय हाथी हाथियोंसे, घोड़े घोड़ोंसे और रथी रथियोंसे भिड़ गये। पैदलोंका पैदलोंके साथ मुकाबला होने लगा। फिर तो बड़ा ही भयंकर और घमासान युद्ध छिड़ गया। एक-दूसरेका सामना करते हुए सभी योद्धा गरजने और शस्त्रोंका प्रहार करने लगे।



दोनों सेनाओंका घोर संग्राम और शकुनिका कूट-युद्ध

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! इस प्रकार यह घोर संग्राम चल ही रहा था कि पाण्डवोंने आपकी सेनामें भगदड़ डाल दी। उस समय आपका पुत्र दुर्योधन बड़ी कोशिशसे अपने सैनिकोंको रोककर पाण्डव-सेनासे युद्ध करने लगा। इधर, राजा युधिष्ठिरने तीन बाणोंसे कृपाचार्यको बींधकर चारसे कृतवर्माके घोड़ोंको मार डाला। तब कृतवर्माको तो अश्वत्थामाने अपने रथपर बिठाकर अन्यत्र पहुँचा दिया; किंतु कृपाचार्य उनका सामना करते रहे। उन्होंने युधिष्ठिरको आठ बाणोंसे बींध दिया।

तदनन्तर, दुर्योधनने सात सौ रथियोंको राजा युधिष्ठिरका सामना करनेके लिये भेजा। उन रथियोंने युधिष्ठिरपर चारों ओरसे इतनी बाण-वर्षा की कि वे अदृश्य हो गये। उनकी यह करतूत शिखण्डी आदि महारथियोंसे नहीं सही गयी। वे अपने-अपने रथोंपर बैठकर युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये वहाँ आ पहुँचे। फिर तो कौरव तथा पाण्डव योद्धाओंमें भयंकर युद्ध छिड़ गया, पानीकी तरह खून बहाया जाने लगा, यमलोककी आबादी बढ़ने लगी। उस समय पाञ्चालों और पाण्डवोंने दुर्योधनके भेजे हुए उन सात सौ रथियोंको मौतके घाट उतार दिया। तत्पश्चात् पाण्डवोंके साथ आपके पुत्रने महान् युद्ध छेड़ा, वैसा पहले कभी न तो देखा गया और न सुना ही गया था। चारों ओर मर्यादा तोड़कर लड़ाई हो रही थी। दोनों ओरके योद्धा बेतरह मारे जा रहे थे।

इस समय शकुनिने कौरव-योद्धाओंसे कहा—'वीरो ! तुमलोग सामनेसे युद्ध करो और मैं पीछेसे पाण्डवोंका संहार करता हूँ।' इस सलाहके अनुसार जब हमलोग पीछेकी ओर बढ़े तो मद्रदेशके योद्धा अत्यन्त प्रसन्न होकर किलकारियाँ भरने लगे। इतनेहीमें पाण्डव फिर हमारे सामने आये और धनुष टंकारते हुए हमलोगोंपर बाण बरसाने लगे। थोड़ी ही देरमें मद्रराजकी सेना मारी गयी—यह देख दुर्योधनकी सेना फिर पीठ दिखाकर भागने लगी। तब शकुनिने कहा—'पापियो ! तुम्हारे भागनेसे क्या होगा ? लौटकर युद्ध करो।'

उस समय शकुनिके पास दस हजार घुड़सवारोंकी सेना मौजूद थी। उसीको लेकर वह पाण्डव-सेनाके पिछले भागकी ओर गया और सब मिलकर बाणोंकी वर्षा करने लगे। इस आक्रमणसे पाण्डवोंकी विशाल सेनाका मोर्चा टूट गया, वह तितर-बितर हो गयी। राजा युधिष्ठिरने अपनी सेनाकी यह अवस्था देख सहदेवसे कहा—'भैया ! जरा उस मूर्ख शकुनिको तो देखो, वह पीछेकी ओरसे प्रहार करके पाण्डव-सेनाका संहार कर रहा है। अब तुम द्रौपदीके पुत्रोंको साथ लेकर जाओ और शकुनिको मार डालो। तबतक मैं पाञ्चालोंके साथ रहकर कौरवोंकी रथ-सेनाको भस्म करता हूँ।'

धर्मराजकी आज्ञा पाकर सात सौ हाथीसवार, पाँच हजार घुड़सवार, तीन हजार पैदल, द्रौपदीके पाँचों पुत्र तथा महाबली सहदेव—इन सबने शकुनिपर धावा किया। उस समय शकुनि पीछेकी ओरसे आक्रमण करके पाण्डव-सैनिकोंका संहार कर रहा था। इन योद्धाओंने पहुँचकर शकुनिकी सेनाके बहुत-से घुड़सवारोंको मार डाला। तब शकुनि थोड़ी ही देरतक सामना करके मरनेसे बचे हुए छः हजार घुड़सवारोंके साथ भाग गया। तदनन्तर, पाण्डव-सेना भी अपने बचे हुए सवारोंके साथ लौट चली। द्रौपदीके पुत्र मतवाले हाथियोंकी सेना लेकर धृष्टद्युम्नके पास जा पहुँचे। शेष योद्धा भी जब इधर-उधर बँट गये तो शकुनि धृष्टद्युम्नकी सेनाके पार्श्वभागमें आकर बाणवर्षा करने लगा। फिर तो आपके और शत्रुओंके सैनिक प्राणोंका मोह छोड़कर घोर युद्ध करने लगे। सौ-सौ, हजार-हजार योद्धा एक साथ रणभूमिमें गिरने लगे। तलवारोंसे कटे हुए मस्तक जब धरतीपर गिरते थे तो ताड़के फलोंके गिरनेकी-सी धमाकेकी आवाज होती थी। कटे हुए शरीरों, आयुधोंसहित भुजाओं और जंघाओंके गिरनेका घोर शब्द सुनायी पड़ता था।

इस युद्धका वेग जब कुछ कम हुआ तो थोड़े-से बचे हुए घुड़सवारोंके साथ शकुनि पुनः पाण्डव-सेनापर टूट पड़ा। पाण्डवोंने भी फुर्ती दिखायी और पैदल, घुड़सवार तथा हाथीसवारोंको साथ लेकर उसपर धावा कर दिया। पाण्डव विजयके इच्छुक थे, उन्होंने मण्डल बनाकर शकुनिको चारों ओरसे घेर लिया और उसे बाणोंसे बींधना आरम्भ कर दिया। यह देख आपकी सेनाके घुड़सवार, हाथीसवार, रथी और पैदल भी पाण्डवोंकी ओर दौड़े। उस समय जिनके शस्त्र क्षीण हो गये थे, ऐसे बहुत-से पैदल योद्धा लातों और घूँसोंसे एक-दूसरेको मारकर धराशायी होने लगे। पाण्डव योद्धाओंने जब अधिकांश सेनाका संहार कर डाला तो शकुनि शेष सात सौ घुड़सवारोंको साथ ले तुरंत दुर्योधनकी सेनामें पहुँचा और क्षत्रियोंसे पूछने लगा— 'राजा कहाँ हैं ? योद्धाओंने

उत्तर दिया 'जहाँसे यह मेघकी गर्जनाके समान तुमुल आवाज आ रही है, वहीं कुरुराज खड़े हैं, आप शीघ्रतापूर्वक जाइये, वहीं वे मिल जायँगे।'

उनके ऐसा कहनेपर शकुनि, जहाँ वीरोंसे घिरा हुआ दुर्योधन खड़ा था, वहीं गया। रथियोंके बीचमें राजा दुर्योधनको देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई और वह सब सैनिकोंका हर्ष बढ़ाता हुआ दुर्योधनसे कहने लगा—'राजन्! मैंने पाण्डव-पक्षके घुड़सवारोंको परास्त कर दिया, अब तुम भी इस रथसेनाका संहार कर डालो; क्योंकि प्राण-त्याग किये बिना युधिष्ठिर हमारे वशमें नहीं आ सकते। इनके द्वारा सुरक्षित रथसेनाका नाश हो जानेपर हम हाथियों और पैदलोंका भी सफाया कर डालेंगे।'

शकुनिकी बात सुनकर आपके सैनिक पुनः पाण्डव सेनापर टूट पड़े। सबने धनुष उठाया और तरकसोंका मुँह खोल दिया। कुछ ही देरमें शूरवीरोंके सिंहनादके साथ ही उनके धनुषोंकी भयंकर टंकारें सुनायी देने लगीं।



अर्जुनद्वारा श्रीकृष्णसे दुर्योधनकी अनीतिका कुपरिणाम बताया जाना तथा कौरवोंकी रथसेना और गजसेनाका संहार

सञ्जय कहते हैं—तदनन्तर, कौरववीरोंको बड़े वेगसे धनुष उठाये देख अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—"जनार्दन! आप घोड़ोंको हाँकिये और इस सैन्य-सागरमें प्रवेश कीजिये। आज मैं तीखे बाणोंसे शत्रुओंका अन्त कर डालूँगा। इस संग्रामके आरम्भ हुए आज अठारह दिन हो गये। कौरवोंके पास समुद्र-जैसी अपार सेना थी, सो हमलोगोंके पास आकर अब गायके खुरकी-सी हो गयी। मुझे आशा थी कि पितामह भीष्मके मारे जानेपर दुर्योधन संधि कर लेगा, किन्तु उस मूर्खने ऐसा नहीं किया। भीष्मजीने सच्ची और हितकर बात बतायी थी, किंतु बुद्धि मारी जानेके कारण उसने उसे भी नहीं स्वीकार किया। फिर क्रमशः आचार्य द्रोण, कर्ण और विकर्ण आदिके मारे जानेपर बहुत थोड़ी-सी सेना बच रही है, तो भी युद्ध बंद नहीं हुआ। भूरिश्रवा, शल्य, शाल्व तथा अवन्तीके राजकुमार मारे गये, फिर भी इस मार-काटका अन्त न हो सका। जयद्रथ, बाह्लीक, राक्षस अलायुध, सोमदत्त, वीरवर भगदत्त, काम्बोजराज तथा दुःशासनकी मृत्यु हो जानेपर भी यह संहार न रुक सका। भैया भीमसेनके हाथसे अनेकों अक्षौहिणीपति मारे गये—यह देखकर भी लोभ या मोहके कारण लड़ाई बंद नहीं हुई। जिसको अपने हिताहितका ज्ञान है, जो मूर्ख नहीं है, ऐसा कौन पुरुष होगा जो शत्रुको गुण, बल और वीरतामें अपनेसे अधिक जानकर भी उससे लोहा लेनेका साहस करेगा? आपने भी पाण्डवोंसे संधि करनेके विषयमें उससे हितकारक वचन कहा था, किंतु वह उसके मनमें नहीं बैठा। जब आपकी ही बातपर वह ध्यान न दे सका तो दूसरेकी कैसे सुन सकता था? जिसने संधिके विषयमें कहनेपर भीष्म, द्रोण और विदुरकी भी बात टाल दी, उसे राहपर लानेके लिये अब और कौन-सी दवा है? जिसने मूर्खतावश अपने बूढ़े पिताकी बात नहीं मानी, हितकी बात बतानेवाली माताका अपमान किया, उसे और किसीकी बात कैसे अच्छी लगेगी? निश्चय ही दुर्योधनका जन्म इस कुलका अन्त करनेके लिये हुआ है। महात्मा विदुरने मुझसे बहुत बार कहा था कि 'दुर्योधन अपने जीते-जी तुम लोगोंको राज्यका भाग नहीं देगा। सदा ही तुम्हारी बुराई किया करेगा। उसको युद्धके

सिवा और किसी प्रकार जीतना असम्भव है।' आज ये सारी बातें सत्य जान पड़ती हैं। जिस मूर्खने भगवान् परशुरामजीके मुखसे यथार्थ और हितकर वचन सुनकर भी उसकी अवहेलना कर दी, वह तो निश्चय ही विनाशके मुखमें स्थित है। दुर्योधनके जन्म लेते ही बहुतेरे सिद्ध पुरुषोंने कहा था कि 'इस दुरात्माके कारण क्षत्रियकुलका महान् संहार होगा।' उनकी बात आज सत्य हो रही है; क्योंकि दुर्योधनके लिये ही यहाँ असंख्य राजाओंका संहार हुआ है। अतः आज मैं समस्त कौरव-योद्धाओंका वध करूँगा। आप मुझे दुर्योधनकी सेनामें ले चलिये, जिससे उसको और उसकी सेनाको मैं अपने तीखे बाणोंका निशाना बना सकूँ।''

घोड़ोंकी बागडोर हाथमें लिये भगवान् श्रीकृष्णसे जब अर्जुनने उपर्युक्त बात कही तो उन्होंने घोड़े बढ़ा दिये और निर्भय होकर शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश किया। उस समय अर्जुनके सफेद घोड़े चारों ओर दिखायी पड़ते थे। फिर, जैसे बादल पानीकी धारा बरसाता है, उसी प्रकार अर्जुन बाणोंकी बौछार करने लगे। उनके छोड़े हुए बाण योद्धाओंके कवच फाड़कर वज्रके समान चोट करते हुए धरतीपर गिर जाते थे। उनके द्वारा कितने ही मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंको प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा। अर्जुनके बाणोंपर उनका नाम खुदा हुआ था, उनके चलाये हुए वैसे बाणोंसे मानो सारा जगत् आच्छादित हो गया। जैसे धधकती हुई आग घासकी ढेरीको जला डालती है, उसी प्रकार अर्जुन भी शत्रु सैनिकोंको भस्म करने लगे। वे मनुष्य, घोड़ा अथवा हाथीपर दुबारा बाण नहीं छोड़ते थे, उनके एक ही बाणसे सबका काम तमाम हो जाता था। अनेकों प्रकारके सायकोंकी वर्षा करके उन्होंने अकेले ही आपके पुत्रकी सेनाका संहार कर डाला।

यद्यपि कौरव-योद्धा रणमें पीठ नहीं दिखानेवाले शूरवीर थे और पूरी शक्ति लगाकर लड़ रहे थे, तो भी अर्जुनने अपने गाण्डीवसे उनके विजयके संकल्पको व्यर्थ कर दिया। धनञ्जयके बाण वज्रके समान असह्य और अत्यन्त तेजस्वी थे; उनकी मार पड़नेसे आपकी सेना साहस खो बैठी और दुर्योधनके देखते-देखते रणभूमिसे भाग चली। उस समय कोई पिताको पुकारते थे, कोई सहायकोंको। कुछ लोग अपने भाई-बन्धु और सम्बन्धियोंको जहाँ-के-तहाँ छोड़कर भाग गये। बहुत-से महारथी पार्थके बाणोंसे अत्यन्त घायल हो जानेके कारण मूर्च्छित हो रणभूमिमें ही पड़े-पड़े उच्छ्वास ले रहे थे। उनको दूसरे लोग रथपर चढ़ाकर घड़ी-दो-घड़ी आश्वासन देते थे। कुछ लोग उन घायलोंको वैसे ही छोड़कर आपके पुत्रकी आज्ञाका पालन करते हुए युद्धके लिये चले जाते थे। बहुतेरे योद्धा स्वयं पानी पीकर घोड़ोंकी भी थकावट दूर करते, उसके बाद कवच पहनकर लड़ने जाते थे। कुछ लोग अपने भाइयों, पुत्रों अथवा पिताओंको धीरज दे उन्हें छावनीमें ही छोड़कर युद्धके लिये निकल पड़ते थे। कोई-कोई अपने रथको रण-सामग्रीसे सजाकर पाण्डव-सेनामें प्रवेश करते थे।

इस प्रकार कौरवपक्षके योद्धाओंने पाण्डव-सेनापर चढ़ाई करके धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध छेड़ दिया। उधरसे धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और शतानीक—ये लोग आपकी रथसेनाका सामना करने लगे। उस समय धृष्टद्युम्नको बड़ा क्रोध हुआ। यह अपनी विशाल सेनाके साथ आपके सैनिकोंका संहार करनेको तैयार हो गया। यह देख आपके पुत्रने उसके ऊपर नाना प्रकारके बाणोंकी झड़ी लगा दी। तब धृष्टद्युम्नने भी नाराच, अर्धनाराच और वत्सदन्त आदि शीघ्रगामी बाणोंसे दुर्योधनकी भुजाओं और छातीपर प्रहार किया। धृष्टद्युम्न आपके पुत्रके प्रहारसे पहले बहुत घायल हो चुका था, इसलिये उसने दुर्योधनको बींधकर उसके चारों घोड़ोंको भी मौतके घाट उतार दिया; फिर एक भल्ल मारकर उसके सारथिका मस्तक भी धड़से अलग कर दिया। अब दुर्योधन दूसरे घोड़ेकी पीठपर चढ़कर शकुनिके पास भाग गया।

इस प्रकार जब रथसेनाका संहार हो गया, उस समय हमारे पक्षके तीन हजार हाथीसवारोंने आकर पाँचों पाण्डवोंको चारों ओरसे घेर लिया। भगवान् श्रीकृष्ण जिनके



सारथि हैं; वे अर्जुन पर्वताकार गजराजोंसे घिरकर उन्हें अपने तीखे नाराचोंका निशाना बनाने लगे। वहाँ हमने देखा, उनके एक ही बाणसे विदीर्ण होकर बड़े-बड़े गजराज धराशायी हो रहे हैं। दूसरी ओरसे महाबली भीमसेन भी अपने रथसे कूदे और बहुत बड़ी गदा हाथमें लेकर दण्डधारी यमराजकी भाँति उन हाथियोंपर टूट पड़े। उन्हें गदा हाथमें लिये देख आपके सैनिक थर्रा उठे, उनका मल-मूत्र निकल पड़ा और सबपर उद्वेग छा गया। भीमकी गदाके आघातसे हाथियोंके कुम्भस्थल फूट जाते और वे धूलमें भरे हुए इधर-उधर भागते देखे जाते थे। कितने ही हाथी गदाकी चोटसे आहत हो चिग्घाड़ कर गिर पड़ते थे। गजसेनाकी यह दुर्दशा देख आपके सारे सैनिक भयसे काँप उठे। इसी प्रकार युधिष्ठिर और नकुल-सहदेव भी आपके हाथीसवारोंको यमलोक भेज रहे थे।

इसी समय अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्माने रथसेनामें दुर्योधनको ढूँढ़ा, जब वह नहीं मिला, तो उन्होंने वहाँ खड़े हुए क्षत्रियोंसे पूछा—'राजा दुर्योधन कहाँ गये ?' उत्तर मिला—'सारथिके मारे जानेपर वे पाञ्चालराजकी दुर्द्धर्ष सेनाका सामना करना छोड़ शकुनिके पास चले गये हैं।'

तब वे तीनों वीर पाञ्चालराजकी उस दुर्द्धर्ष सेनाका व्यूह तोड़कर शकुनिके पास जा पहुँचे। उनके चले जानेपर पाण्डवपक्षके योद्धा आपके सैनिकोंका संहार करते हुए उनपर चढ़ आये। उन्हें आक्रमण करते देख हमारे पक्षके बहुत-से योद्धा जीवनसे निराश हो गये। उनका चेहरा फीका पड़ गया। उनके अस्त्र-शस्त्र कम हो गये थे और वे चारों ओरसे घिर भी गये थे। उनकी यह दशा देख मैं अन्य चार महारथियोंको साथ लेकर प्राणोंकी परवा न करके पाञ्चालोंकी सेनासे युद्ध करने लगा। किन्तु अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हो जानेके कारण वहाँसे हम पाँचोंको भागना पड़ा। तब सेनासहित धृष्टद्युम्नके साथ हमारी मुठभेड़ हुई; किंतु द्रुपदकुमारने हम सब लोगोंको परास्त कर दिया। वहाँसे भागकर जब हम दूसरी ओर आये तो महारथी सात्यकि दिखायी पड़ा। वह बिलकुल पास आ गया था। मुझे देखते ही उसने चार सौ रथियोंके साथ धावा कर दिया। धृष्टद्युम्नके चंगुलसे किसी तरह निकला तो सात्यकिकी सेनामें आ फँसा। थोड़ी देरतक वहाँ बड़ा भयंकर संग्राम हुआ। सात्यकिने मेरी सारी युद्ध-सामग्री नष्ट कर दी और मुझे भी पकड़ लिया। इतनेमें भीमसेनकी गदा और अर्जुनके नाराचोंसे वहाँ सारी गजसेनाका संहार हो गया।



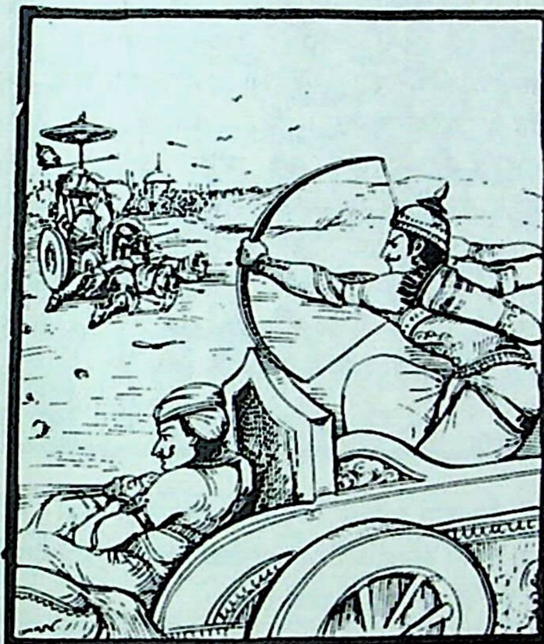
भीमद्वारा धृतराष्ट्रके बारह पुत्रोंका वध, श्रीकृष्ण और अर्जुनकी बातचीत तथा अर्जुनद्वारा त्रिगर्तोंका संहार

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! हाथियोंके समुदायका नाश हो जानेपर भीमसेन आपकी अन्य सेनाओंका संहार करने लगे। वे क्रोधमें भरे हुए दण्डधारी यमराजकी भाँति हाथमें गदा लिये रणभूमिमें विचर रहे थे। उस समय ढूँढ़नेपर भी जब दुर्योधनका कहीं पता न लगा तो मरनेसे बचे हुए आपके पुत्र भीमसेनपर टूट पड़े। दुर्मर्षण, श्रुतान्त, जैत्र, भूरिबल, रवि, जयत्सेन, सुजात, दुर्विषह, दुर्विमोचन, दुष्प्रधर्ष तथा श्रुतर्वाने धावा करके भीमको चारों ओरसे घेर लिया। तब भीमसेन पुनः अपने रथपर जा बैठे और आपके पुत्रोंके मर्मस्थलोंमें तीखे बाणोंका प्रहार करने लगे। उन्होंने एक क्षुरप्र मारकर दुर्मर्षणका मस्तक काट गिराया। फिर एक भल्लके द्वारा श्रुतान्तका अन्त कर दिया। तत्पश्चात् हँसते-हँसते जयत्सेनपर नाराचका प्रहार किया और उसे रथकी बैठकसे भूमिपर गिरा दिया। गिरते ही उसके प्राण निकल गये।

यह देख श्रुतर्वा कुपित हो उठा और उसने भीमको सौ बाण मारे। अब भीमसेनका क्रोध और भी बढ़ गया। उन्होंने जैत्र, भूरिबल और रवि—इन तीनोंको अपने तीखे बाणोंका निशाना बनाया। बाणोंकी चोट खाकर वे तीनों महारथी प्राणहीन हो रथसे नीचे गिर पड़े। इसके बाद भीमने एक तीखे नाराचसे दुर्विमोचनको मौतके घाट उतार दिया। फिर दुष्प्रधर्ष और सुजातको दो-दो बाण मारकर यमलोक भेज दिया। यह देख दुर्विषह भीमपर चढ़ आया, उसे आते देख भीमने उसके उपर भल्लका प्रहार किया, उससे आहत होकर वह सबके देखते-देखते रथसे गिरा और मर गया।

श्रुतर्वाने जब देखा कि भीमसेनने अकेले ही मेरे बहुत-से भाइयोंका काम तमाम कर डाला तो अमर्षमें भरकर धनुषकी टंकार करता हुआ वह उनपर टूट पड़ा और उन्हें अपने बाणोंका निशाना बनाने लगा। उसने भीमसेनके धनुषको

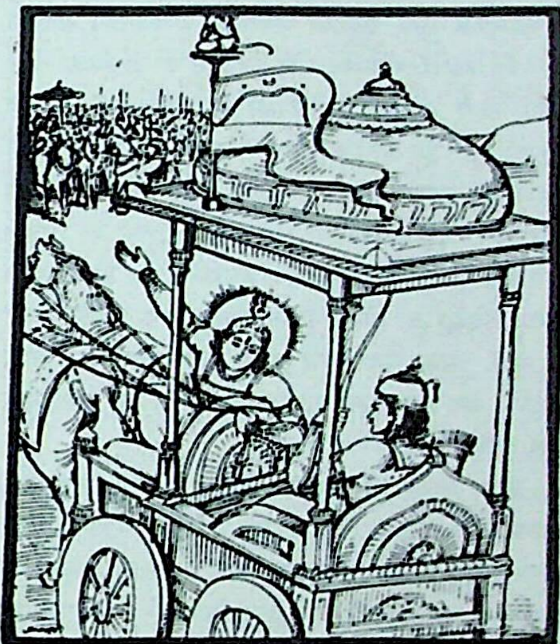
काटकर उन्हें भी बीस बाणोंसे घायल कर डाला। तब महारथी भीमने दूसरा धनुष उठाया और आपके पुत्रपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। श्रुतर्वाने भी कुपित होकर भीमकी भुजाओं और छातीमें बाण मारे। इससे भीम बहुत घायल हो गये। उन्होंने अत्यन्त रोषमें भरकर श्रुतर्वाके सारथि और चारों घोड़ोंको यमलोक भेज दिया। रथहीन हो जानेपर



श्रुतर्वा ढाल और तलवार लेने लगा—इतनेही में भीमने क्षुरप्र मारकर उसका मस्तक धड़से अलग कर दिया। उसके मरते ही आपके सैनिक भयसे विह्वल हो गये और युद्धकी इच्छासे भीमसेनकी ओर दौड़े। भीमसेन भी उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े। भीमके पास पहुँचकर उन वीरोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। तब भीमसेन अपने तीखे बाणोंसे उन्हें पीड़ा देने लगे उन्होंने कवचसे सुसज्जित पाँच सौ महारथियोंका काम तमाम करके सात सौ हाथियोंकी सेनाका सफाया कर डाला। फिर आठ सौ घुड़सवारों और दस हजार पैदलोंको मौतके घाट उतारकर वे विजयश्रीसे सुशोभित होने लगे।

जिस समय भीमसेन आपके पुत्रोंका संहार कर रहे थे, उस समय आपके सैनिकोंका उनकी ओर आँख उठाकर देखनेका भी साहस नहीं होता था। उन्होंने समस्त कौरवों और उनके अनुचरोंको मार भगाया; फिर ताल ठोंककर उसकी विकट आवाजसे वे बड़े-बड़े गजराजोंको भयभीत करने लगे। उस लड़ाईमें आपके बहुत-से सिपाही काम आये। जो बचे थे, उनकी भी हिम्मत टूट गयी थी।

महाराज ! दुर्योधन और सुदर्शन—ये ही दो आपके पुत्र बचे हुए थे। ये दोनों घुड़सवारोंके बीच खड़े थे। दुर्योधनको वहाँ खड़ा देख देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'अर्जुन ! अब शत्रुओंके अधिकांश योद्धा मारे जा चुके हैं। वह देखो, सात्यकि सञ्जयको कैद करके लिये आ



रहा है। उधर, कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा—ये तीनों राजा दुर्योधनको अलग छोड़कर रणमें डटे हुए हैं। इधर, प्रभद्रकोंसहित दुर्योधनकी सेनाका संहार करके पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न अपनी सुन्दर कान्तिसे शोभायमान हो रहा है। और वह है दुर्योधन, जो अपनी सेनाका व्यूह बनाकर रणमें खड़ा है। अर्जुन ! कौरवपक्षके योद्धा तुम्हें आये देख जबतक भाग नहीं जाते, उसके पहले ही दुर्योधनको मार डालो। इसकी सेना बहुत थक गयी है, अतः इस समय आक्रमण करनेसे यह पापी छूटकर जा नहीं सकता।'

श्रीकृष्णकी बात सुनकर अर्जुनने कहा—'माधव ! धृतराष्ट्रके सभी पुत्र भीमसेनके हाथसे मारे जा चुके हैं, ये दो, जो अभी बचे हुए हैं, ये भी रह नहीं जायँगे। शकुनिकी सेनामें भी अब पाँच सौ घुड़सवार, दो सौ रथी, सौसे कुछ अधिक हाथी और तीन हजार ही पैदल बच गये हैं। दुर्योधनकी सेनामें अश्वत्थामा, कृपाचार्य, त्रिगर्तराज, उलूक, शकुनि, कृतवर्मा आदि कुछ ही योद्धा बचे हैं, बाकी सब मारे गये। अब इनका

भी काल आ ही पहुँचा है। आज जो मेरे सामने आकर भाग नहीं जायँगे, वे देवता ही क्यों न हों, उन सबको मार डालूँगा। आज सारा झगड़ा समाप्त हो जायगा। दुर्योधन भी यदि मैदान छोड़कर भाग नहीं गया तो आज अपनी उद्दीप्त राज्यलक्ष्मी तथा प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा। आप घोड़े बढ़ाइये, मैं सबको अभी मारे डालता हूँ।'

अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान्‌ने दुर्योधनकी सेनाकी ओर घोड़े बढ़ाये, भीमसेन और सहदेवने भी अर्जुनका साथ दिया। तीनों महारथी दुर्योधनको मार डालनेकी इच्छासे सिंहनाद करते हुए आगे बढ़े। उस समय आपके पुत्र सुदर्शनने भीमसेनका सामना किया। सुशर्मा और शकुनि अर्जुनसे लड़ने लगे। दुर्योधन घोड़ेपर सवार हो सहदेवसे जा भिड़ा। उसने बड़ी फुर्तीके साथ सहदेवके मस्तकपर एक प्राससे प्रहार किया। सहदेव उस चोटसे मूर्च्छित होकर रथके पिछले भागमें बैठ गया, उसका सारा शरीर खूनसे तर हो गया। फिर थोड़ी ही देरमें, जब होश हुआ, तो वह क्रोधमें भरकर दुर्योधनपर तीखे बाणोंकी बौछार करने लगा।

उधर, अर्जुन भी घोड़ोंकी पीठपर बैठे हुए योद्धाओंके मस्तक काट-काटकर गिराने लगे। उन्होंने बहुत-से बाण मारकर सारी सेनाका संहार कर डाला। तदनन्तर, त्रिगर्तोंकी रथसेनापर धावा किया। उन्हें आये देख सारे त्रिगर्त महारथी एक साथ होकर श्रीकृष्ण तथा अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। तब अर्जुनने सत्यकर्माको एक क्षुरप्रसे घायलकर उसके रथका हरसा (ईषा) काट डाला, फिर दूसरे क्षुरप्रसे उसका मस्तक भी धड़से अलग कर दिया। इसके बाद उन्होंने सब योद्धाओंके सामने ही सत्येषुको पकड़कर मार डाला। तत्पश्चात् प्रस्थल देशके अधिपति सुशर्माको तीन बाणोंसे बींधकर वहाँ एकत्रित हुए समस्त रथियोंको अपने बाणोंका निशाना बनाया। फिर, सुशर्माको सौ बाण मारकर उसके घोड़ोंको भी घायल किया, इसके बाद उन्होंने हँसते-हँसते सुशर्मापर यमदण्डके समान एक भयंकर बाण चलाया। उससे उसकी छाती छिद गयी और वह प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। इस प्रकार सुशर्माको मारकर अर्जुनने



उसके पैंतालीस पुत्रोंको भी मौतके घाट उतार दिया। फिर उसके समस्त अनुयायियोंको यमलोक भेजकर उन्होंने मरनेसे बची हुई कौरव-सेनामें प्रवेश किया।

दूसरी ओर भीमसेनने हँसते-हँसते बाणोंकी वर्षा करके सुदर्शनको ढक दिया, अब वह दिखायी नहीं पड़ता था। प्रहार करते-करते उन्होंने एक तीखे क्षुरप्रसे सुदर्शनका मस्तक धड़से अलग कर दिया। यह देख उसके अनुचरोंने भीमको चारों ओरसे घेरकर उनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी।

तब भीमसेनने तेज किये हुए बाणोंकी वर्षा करके उन्हें सब ओरसे आच्छादित कर दिया और एक ही क्षणमें सबका संहार कर डाला। उस समय परस्पर प्रहार करते हुए दोनों दलोंके योद्धाओंमें कोई अन्तर नहीं रह गया, दोनों सेनाएँ मिलकर एक-सी हो गयीं।



शकुनि और उलूकका वध

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! उपर्युक्त संग्राम जब आरम्भ हुआ, उस समय शकुनिने सहदेवपर धावा किया। सहदेवने भी सुबलपुत्रपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। शकुनिके साथ उसका पुत्र उलूक भी था, उसने भीमसेनको दस बाणोंसे बींध डाला। साथ ही शकुनिने भी भीमसेनको तीन बाणोंमें घायल करके सहदेवपर नब्बे बाणोंकी वर्षा की। उस समय दोनों ओरके योद्धाओंद्वारा की हुई बाणोंकी बौछारसे सम्पूर्ण दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। क्रोधमें भरे हुए भीम

और सहदेव दोनों वीर संग्राममें भयंकर संहार मचाते हुए विचर रहे थे। उनके सैकड़ों बाणोंसे ढकी हुई आपकी सेना अन्धकारपूर्ण आकाशकी भाँति दिखायी पड़ती थी।

इस प्रकार लड़ते-लड़ते जब कौरवोंके पास बहुत थोड़ी सेना रह गयी तो पाण्डव योद्धा हर्षमें भरकर बड़े उत्साहसे उन्हें यमलोक पहुँचाने लगे। इसी समय शकुनिने सहदेवके मस्तकपर प्रासका प्रहार किया और सहदेव मूर्च्छित-सा होकर रथकी बैठकमें बैठ गया। उसकी यह अवस्था देख प्रतापी भीमने क्रोधमें भरकर शकुनिकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया और नाराचोंसे मारकर सैकड़ों एवं हजारों सैनिकोंका संहार कर डाला। इसके बाद उन्होंने बड़े जोरसे सिंहनाद किया, जिसे सुनकर हाथी और घोड़ोंसहित समस्त सैनिक थर्रा उठे। डरके मारे वे सहसा भाग चले। उन्हें भागते देख राजा दुर्योधनने कहा—'अरे पापियो ! लौट आओ, भागनेसे क्या लाभ होगा ? जो वीर लड़ाईमें पीठ न दिखाकर प्राण-त्याग करता है, वह संसारमें कीर्ति छोड़ जाता है और परलोकमें उत्तम सुख भोगता है।'

उसके ऐसा कहनेपर शकुनिके सिपाही मौतकी परवा न करके पुनः पाण्डवोंपर टूट पड़े। यह देख पाण्डव योद्धा भी उनका सामना करनेको आगे बढ़े। इतनेमें सहदेवने भी स्वस्थ होकर शकुनिको दस बाणोंसे बींध डाला और तीन बाणोंसे उसके घोड़ोंको घायल करके हँसते-हँसते उसका धनुष भी काट दिया। शकुनिने दूसरा धनुष लेकर सहदेवको साठ और भीमसेनको सात बाण मारे। इसी तरह उलूकने भी भीमको सात और सहदेवको सत्तर बाणोंसे घायल कर डाला। तब भीमसेनने उसे तेज किये हुए सायकोंसे बींध दिया और शकुनिको भी चौंसठ बाण मारकर उसके पार्श्व-रक्षकोंको तीन-तीन बाणोंका निशाना बनाया।

भीमके नाराचोंसे आहत हुए योद्धा क्रोधमें भरकर सहदेवके ऊपर बाणोंकी बौछार करने लगे। तब सहदेवने एक भल्ल मारकर अपने सामने आये हुए उलूकका मस्तक काट डाला। उसकी लाश जमीनपर गिर पड़ी। बेटेकी मृत्यु देखकर शकुनिको विदुरजीकी बात याद आ गयी। उसका गला भर आया, उच्छ्वास चलने लगा और वह अपनी आँखोंमें आँसू भरकर दो घड़ीतक चिन्तामें डूबा रहा। इसके बाद सहदेवके सामने जाकर उसने तीन बाण मारे, किंतु सहदेवने अपने सायकोंसे उन्हें काट गिराया और शकुनिके धनुषके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तब शकुनिने सहदेवके ऊपर तलवारका वार किया, किंतु उसने हँसते-हँसते उस तलवारके भी दो टुकड़े कर दिये। अब शकुनिने गदा चलायी, पर उसका वार खाली चला गया, वह जमीनपर जा पड़ी। इससे उसका क्रोध बहुत बढ़ गया और उसने एक भयंकर शक्ति सहदेवके ऊपर छोड़ी; किंतु सहदेवने बाण मारकर उसके भी तीन टुकड़े कर डाले।

इस प्रकार जब शक्ति भी नष्ट हो गयी और शकुनि भयभीत हो गया तो आपके सैनिकोंपर भी आतंक छा गया। वे सब-के-सब शकुनिके साथ भाग चले। उस समय पाण्डव जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे। प्रायः सभी कौरव योद्धा रणसे पीठ दिखाकर भाग गये। शकुनिको भी खिसकता देख सहदेवने सोचा 'यह मेरा हिस्सा बाकी रह गया है—इसका नाश मुझे करना है।' यह विचारकर अपना महान् धनुष टंकारते हुए उसने शकुनिका पीछा किया और तेज किये हुए बाण मारकर उसे अत्यन्त घायल कर दिया और कहने लगा, 'मूर्ख शकुनि ! तू क्षत्रियधर्ममें स्थित होकर युद्ध कर, पराक्रम दिखाकर पुरुषत्वका परिचय दे। उस दिन सभामें पासा फेंकते समय तो तू बहुत खुश हो रहा था, उसका फल आज अपनी आँखों देख। जिन दुरात्माओंने पहले हमलोगोंका उपहास किया था, वे सब मारे जा चुके हैं, केवल कुलाङ्गार दुर्योधन और उसका मामा तू बाकी रह गया है। आज तेरा मस्तक अवश्य काट डालूँगा।'

यह कहकर सहदेवने शकुनिको दस और उसके घोड़ोंको चार बाण मारे, फिर उसका छत्र, ध्वजा और धनुष काटकर उन्होंने सिंहके समान गर्जना की तथा अनेकों सायकोंका



प्रहार करके उसके मर्मस्थानोंको बींध डाला। इससे शकुनिको बड़ा क्रोध हुआ। वह सहदेवको मार डालनेकी इच्छासे दोनों हाथोंमें प्रास लेकर उसके ऊपर टूट पड़ा। सहदेवने शकुनिके उठाये हुए प्रासको तथा उसे पकड़नेवाली उसकी दोनों गोलाकार भुजाओंको तीन भल्ल मारकर एक ही साथ काट डाला। फिर बड़े जोरसे गर्जना की। तदनन्तर, खूब सावधानीके साथ एक मजबूत लोहेका भल्ल धनुषपर चढ़ाया और उसके प्रहारसे शकुनिका सिर धड़से अलग कर दिया। उसकी मस्तकसहित लाश जमीनपर गिर पड़ी।

शकुनिकी यह दशा देख आपके योद्धा डरके मारे अपना साहस खो बैठे। उनका मुँह सूख गया, चेतना जाती रही। और वे भयभीत होकर अपने-अपने हथियार लिये चारों दिशाओंमें भागने लगे। गाण्डीवकी टंकार सुनकर वे अधमरे हो रहे थे, किसीका रथ टूटा था, किसीके घोड़े मर गये थे और किन्हींके हाथी ही मौतके मुखमें जा चुके थे। ये सब लोग पाँव-प्यादे ही भाग रहे थे। इस प्रकार शकुनिके मारे जानेसे भगवान् श्रीकृष्णके साथ ही समस्त पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए। वे अपने योद्धाओंका हर्ष और उत्साह बढ़ाते हुए शङ्ख बजाने लगे। सभी लोग सहदेवके इस कर्मकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे, 'वीरवर ! तुम ने इस कपटी एवं दुरात्मा शकुनिको पुत्रसहित मार डाला, यह बड़ा ही अच्छा हुआ।'



दुर्योधनका सरोवरमें प्रवेश और युयुत्सुका हस्तिनापुर जाना

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर, शकुनिके अनुचर क्रोधमें भर गये और प्राणोंका मोह छोड़कर उन्होंने पाण्डवोंको चारों ओरसे घेर लिया। किंतु अर्जुन और भीमसेनने उनकी प्रगति रोक दी। वे लोग शक्ति, ऋष्टि और प्रास हाथमें लेकर सहदेवको मार डालनेकी इच्छासे आगे बढ़ रहे थे, परंतु अर्जुनने गाण्डीवके द्वारा उनका संकल्प व्यर्थ कर दिया। उन्होंने भल्ल मारकर उन योद्धाओंकी आयुधोंसहित भुजाओं तथा मस्तकोंको काट डाला और उनके घोड़ोंको भी मौतके घाट उतार दिया।

इस तरह अपनी सेनाका संहार देखकर राजा दुर्योधनको बड़ा क्रोध हुआ। उसने मरनेसे बचे हुए सब योद्धाओंको एकत्रित किया, उनमें सौ तो रथी थे और बाकी कुछ हाथी-सवार, घुड़सवार और पैदल थे। सबके इकट्ठे हो जानेपर दुर्योधनने उनसे कहा—'वीरो ! तुमलोग पाण्डवोंको उनके मित्रोंसहित मार डालो, साथ ही सेनासहित धृष्टद्युम्नका भी संहार कर डालो। इसके बाद शीघ्र मेरे पास लौट आना।'

दुर्योधनकी आज्ञा शिरोधार्य कर वे रणोन्मत्त वीर पाण्डवोंकी ओर दौड़े। उन्हें आते देख पाण्डव भी बाणोंकी बौछार करने लगे। कुछ ही क्षणोंमें वह सेना पाण्डवोंके हाथसे मारी गयी, उसे कोई भी बचानेवाला न मिला। वह युद्धके लिये प्रस्थित तो हुई, मगर भयके मारे ठहर नहीं सकी। पाण्डव-दलके बहुत-से सैनिकोंने मिलकर आपके उन योद्धाओंका कुछ ही क्षणोंमें सफाया कर डाला। उनमेंसे एक भी सिपाही नहीं बचा।

महाराज ! आपके पुत्रने ग्यारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठी की थी, किन्तु पाण्डव और सृञ्जयोंने सबका अन्त कर डाला। आपकी ओरसे लड़नेवाले हजारों राजाओंमें केवल एक दुर्योधन ही उस समय जीवित दिखायी पड़ा, वह भी बहुत घायल हो चुका था। उसने अपने चारों ओर दृष्टिपात किया, किंतु सारी पृथ्वी सूनी दिखायी पड़ी। दुर्योधनने जब अपनेको



सब योद्धाओंसे रहित अकेला पाया और पाण्डवोंको सफलमनोरथ एवं प्रसन्न देखा तो उसे बड़ा शोक हुआ।

उसके पास न सेना थी न सवारी, इसलिये वह भाग जानेका विचार करने लगा।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! जब मेरे सब सैनिक मार डाले गये और सारी छावनी सूनी हो गयी, उस समय पाण्डवोंके पास कितनी सेना बच गयी थी ? अकेला हो जानेपर मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधनने क्या किया ?

सञ्जयने कहा—महाराज ! उस समय पाण्डवोंके पास दो हजार रथी, सात सौ हाथीसवार, पाँच हजार घुड़सवार और दस हजार पैदल थे। उनकी इतनी सेना अभी बची हुई थी। राजा दुर्योधन जब अकेला हो गया और उसे समरभूमिमें कोई भी अपना सहायक नहीं दिखायी पड़ा तो अपने मरे हुए घोड़ोंको वहीं छोड़कर वह पूर्व दिशाकी ओर पैदल ही भागा। जो एक दिन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका मालिक था वही दुर्योधन अब गदा लेकर पैदल ही सरोवरकी ओर भागा जा रहा था। अभी थोड़ी ही दूर गया था कि उसे धर्मात्मा विदुरजीकी कही हुई बातें याद आने लगीं। उसने सोचा—'अहो ! हमारा और इन क्षत्रियोंका जो यह महान् संहार हुआ है, इसे महाबुद्धिमान् विदुरजीने पहले ही जान लिया था।' इस प्रकारकी बातें सोचता हुआ वह सरोवरमें प्रवेश करनेके लिये बढ़ता चला गया। उस समय अपनी सेनाका संहार देखकर उसका हृदय शोकसे संतप्त हो रहा था।

राजन् ! दुर्योधनकी सेनामें कई लाख वीर थे, किंतु उस समय अश्वत्थामा, कृतवर्मा तथा कृपाचार्यके सिवा कोई भी जीवित नहीं दिखायी पड़ता था। मुझे कैदमें पड़ा देख धृष्टद्युम्नने सात्यकिसे हँसकर कहा—'इसको कैद करके क्या करना है, इसके जीवित रहनेसे अपना कोई लाभ तो है ही नहीं।' उसकी बात सुनकर सात्यकिने मेरा वध करनेके लिये तीखी तलवार उठायी; किंतु श्रीवेदव्यासजीने सहसा वहाँ प्रकट होकर कहा—'सञ्जयको जीवित छोड़ दो, इसे किसी तरह मारना नहीं।'

व्यासजीकी बात सुनकर सात्यकिने मुझसे कहा—'सञ्जय ! जा अपना कल्याण-साधन कर।' उसकी आज्ञा पाकर संध्याके समय मैं वहाँसे हस्तिनापुरके लिये प्रस्थित हुआ। उस समय मेरे पास न कवच था, न कोई हथियार। चलते-चलते जब मैं एक कोस इधर आ गया तो गदा हाथमें लिये दुर्योधनको अकेला खड़ा देखा, उसके शरीरपर बहुत-से घाव हो गये थे। मुझपर दृष्टि पड़ते ही उसकी आँखोंमें आँसू भर आये, वह अच्छी तरह मेरी ओर देख न सका। मैं भी उसे उस अवस्थामें देख शोकमें डूब गया, कुछ देरतक मेरे मुँहसे भी कोई बात नहीं निकल सकी।

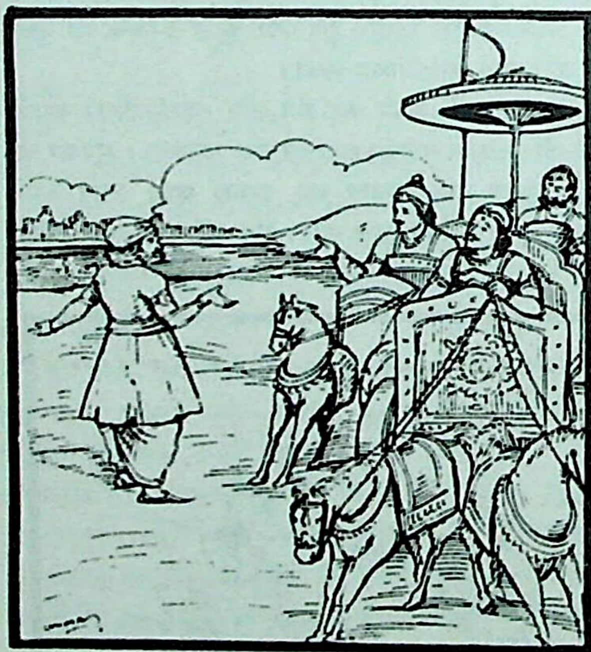
तदनन्तर मैंने अपने कैद होने और व्यासजीकी कृपासे जीते-जी छुटकारा पानेका समाचार कह सुनाया। सुनकर वह थोड़ी देरतक कुछ सोचता रहा, इसके बाद उसने अपने भाइयों और सेनाका हाल पूछा। मैंने भी जो कुछ आँखों देखा था, वह सब बता दिया और कहा—'राजन् ! तुम्हारे





भाई मारे गये और सारी सेनाका संहार हो गया। रणभूमिसे चलते समय व्यासजीने मुझसे कहा था कि तुम्हारे पक्षमें तीन ही महारथी बच गये हैं।'

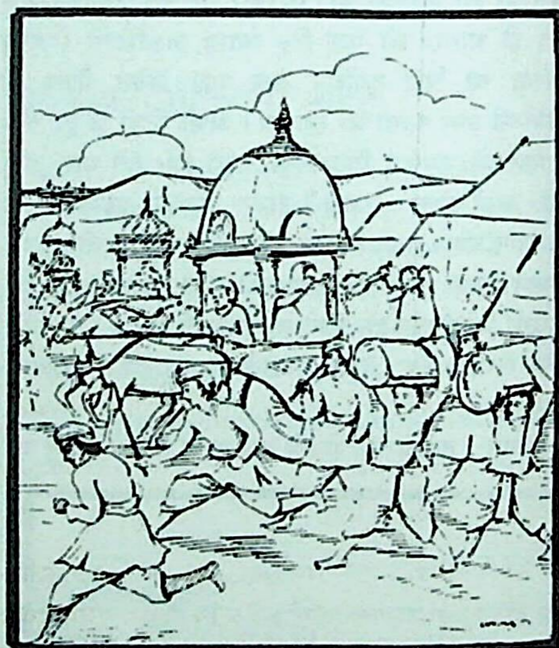
यह सुनकर उसने कहा—'सञ्जय! तुम प्रज्ञाचक्षु महाराजसे जाकर कहना कि 'आपका पुत्र दुर्योधन उस महासंग्रामसे जीवित बचकर पानीसे भरे सरोवरमें सो रहा है, वह बहुत घायल हो चुका है।' यों कहकर दुर्योधनने उस सरोवरमें प्रवेश किया और मायासे उसका पानी बाँध दिया। इसके बाद कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा भी उधर ही आ निकले; इन तीनों महारथियोंके घोड़े बहुत थक गये थे। मेरे पास आकर उन्होंने कहा—'सञ्जय! सौभाग्यकी बात है कि तुम जीवित हो। 'फिर वे लोग आपके पुत्रका समाचार पूछते हुए बोले—'सञ्जय! क्या हमारे राजा दुर्योधन जीवित हैं?'



तब मैंने उन लोगोंसे दुर्योधनका कुशलसमाचार बताया तथा दुर्योधनने मुझे जो संदेश दिया था वह भी कह सुनाया और वह जिस सरोवरमें घुसा था उसे भी दिखा दिया।

मेरी बात सुनकर वे महारथी थोड़ी देरतक वहाँ विलाप करते रहे, किंतु पाण्डवोंको रणमें खड़े देख वहाँसे भाग चले। उन्होंने मुझे भी कृपाचार्यके रथपर बिठा लिया। फिर सब लोग छावनीपर आ गये। सूर्यास्त निकट था, छावनीके पहरेदार घबराये हुए थे; आपके पुत्रोंका मरण सुनकर वे सब एक साथ रो पड़े। तदनन्तर, स्त्रियोंकी रक्षामें नियुक्त हुए वृद्ध पुरुषोंने राजरानियोंको साथ लेकर नगरकी ओर प्रस्थान करनेका विचार किया। बेचारी रानियाँ पतियोंके मरणका समाचार सुनकर कुररीके समान विलाप करने लगीं। वे हाय! हाय! करती हुई हाथोंसे सिर और छाती पीटने लगीं। उनका करुणक्रन्दन चारों ओर फैल गया।

राजमन्त्री व्याकुल हो उठे, उनका गला भर आया; वे रानियोंको साथ लेकर नगरकी ओर प्रस्थित हुए; साथमें



रक्षा करनेके लिये छड़ीदार सिपाही भी थे। रक्षा करनेवाले सिपाही रथपर बैठकर अपनी-अपनी स्त्रियोंको साथ ले नगरकी ओर जा रहे थे। राजमहलमें रहनेपर जिन रानियोंको सूर्य भी नहीं देख पाते थे। उन्हें ही नगरको जाते समय साधारण लोग भी देख रहे थे। उस समय ग्वाले और भेड़ चरानेवालेतक भीमसेनके डरसे नगरकी ओर भाग रहे थे।

उस भगदड़के समय युयुत्सु शोकसे मूर्छित हो मन-ही-मन सोचने लगा—'भयंकर पराक्रम करनेवाले पाण्डवोंने ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके स्वामी राजा दुर्योधनको परास्त कर दिया, उसके सब भाइयोंको मार डाला और भीष्म एवं द्रोण-जैसे कौरव वीर भी मौतके घाट उतर गये।

भाग्यवश केवल मैं बच गया हूँ। दुर्योधनके मन्त्री रानियोंको साथ लेकर नगरकी ओर भागे जा रहे हैं। अब उचित यही होगा कि मैं भी युधिष्ठिर तथा भीमसेनसे पूछकर उनके साथ नगरमें चला जाऊँ।' यह सोचकर उसने युधिष्ठिर और भीमसेनसे अपना मनोभाव प्रकट किया। राजा युधिष्ठिर



बड़े दयालु हैं, युयुत्सुकी बात सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और उसे छातीसे लगाकर उन्होंने जानेकी आज्ञा दे दी।

तब युयुत्सुने अपने रथमें बैठकर घोड़ोंको बड़ी तेजीके साथ हाँका और राजरानियोंको भी साथ लेकर नगरमें प्रवेश किया। उस समय सूर्यास्त हो रहा था। नगरमें पहुँचते ही उसका गला भर आया, आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। इसी अवस्थामें उसे विदुरजी मिल गये, उसे देखते ही विदुरजीके नेत्रोंसे भी अश्रुप्रवाह जारी हो गया। वे विनीत भावसे सामने खड़े हुए युयुत्सुसे बोले—'बेटा! इस कुरुवंशका संहार हो जानेपर भी तुम अभी जीवित हो—यह बड़े सौभाग्यकी बात है? किंतु राजा युधिष्ठिरके नगरमें प्रवेश करनेसे पहले ही तुम यहाँ कैसे आ गये। इसका कारण विस्तारपूर्वक बताओ।'

युयुत्सुने कहा—तात! अपने जाति, भाई और पुत्रके साथ जब मामा शकुनि मारे गये, उस समय राजा दुर्योधन रक्षकोंसे रहित हो जानेके कारण अपने मरे हुए घोड़ोंको वहीं छोड़ डरके मारे पूर्व दिशाकी ओर भाग गये। उनके भागते ही छावनीके सब लोग डरकर भागने लगे। फिर स्त्रियोंके रक्षक भी राजा और उनके भाइयोंकी रानियोंको सवारीपर बिठाकर भाग चले। तब मैं भी राजा युधिष्ठिर और भगवान् श्रीकृष्णसे पूछकर भागते हुए लोगोंकी रक्षाके लिये हस्तिनापुरतक आ गया।

युयुत्सुकी बात सुनकर विदुरने सोचा, 'इसने वही काम किया है, जो ऐसे अवसरपर उचित था।' अतः वे बहुत



प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करते हुए बोले—बेटा! यह ठीक ही हुआ है। दयालु होनेके कारण तुमने अपने कुलधर्मकी रक्षाकी है। उस संहारकारी संग्रामसे आज तुम्हें सकुशल लौटे देखकर मुझे बड़ा आनन्द मिला है। अपने अन्धे पिताके तुम्हीं लाठीके सहारे हो। विपत्तिमें डूबकर दुःख पाते हुए राजा धृतराष्ट्रको धैर्य देनेके लिये केवल तुम्हीं जीवित हो। आज यहाँ रहकर विश्राम करो, कल सबेरे ही युधिष्ठिरके पास चले जाना।'

यह कहकर विदुरजी आँसू बहाते हुए चले। उन्होंने युयुत्सुको राजभवनमें भेजकर स्वयं भी प्रवेश किया। उस समय वहाँ नगर और प्रान्तके लोग एकत्रित होकर बड़े दुःखसे हाहाकार कर रहे थे। वह भवन आनन्दशून्य और श्रीहीन दिखायी देता था। राजमहलकी यह अवस्था देख विदुरजीको बड़ा कष्ट हुआ। वे मन-ही-मन

विकल हो धीरे-धीरे उच्छ्वास लेते हुए वहाँसे लौटकर नगरमें चले गये। युयुत्सुने वह रात अपने ही घरमें रहकर व्यतीत की।



व्याधोंसे दुर्योधनका पता पाकर युधिष्ठिरका सेनासहित सरोवरपर जाना और कृपाचार्य आदिका दूर हट जाना

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! पाण्डवोंने रणभूमिमें जब हमारी सारी सेनाका संहार कर डाला, उस समय बचे हुए महारथी कृतवर्मा, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामाने क्या किया? और मूर्ख दुर्योधनने कौन-सा काम किया?

सञ्जयने कहा—महाराज! जब राजरानियाँ नगरकी ओर चल दीं और शिविरके दूसरे लोग भी पलायन कर गये, उस समय सारी छावनी सूनी देखकर उन तीनों महारथियोंको बड़ा दुःख हुआ। अब उस स्थानपर मन न लगा; इसलिये वे भी सरोवरकी ओर ही चल दिये।

उधर, धर्मात्मा युधिष्ठिर अपने भाइयोंको साथ लेकर दुर्योधनका वध करनेके लिये इधर-उधर विचरने लगे, किंतु बहुत ढूँढ़नेपर भी वे उसका पता न पा सके। इधर, उनके वाहन बहुत थक गये थे, इसलिये समस्त पाण्डव अपनी छावनीमें जाकर सैनिकोंसहित विश्राम करने लगे।

तदनन्तर कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा उस सरोवरपर गये। जहाँ दुर्योधन सो रहा था। वहाँ पहुँचकर वे उससे बोले—'राजन्! उठो और हमलोगोंको साथ लेकर युधिष्ठिरसे युद्ध करो या तो विजयी होकर पृथ्वीका राज्य भोगो या रणमें प्राण देकर स्वर्ग प्राप्त करो। पाण्डवोंकी भी सारी सेनाका तुमने संहार कर दिया है, जो सैनिक बच गये हैं, वे भी बहुत घायल हो चुके हैं। अब वे तुम्हारा वेग नहीं सह सकते। हम सर्वथा तुम्हारी रक्षा करेंगे। इसलिये तुम युद्धके लिये तैयार हो जाओ।

दुर्योधन बोला—जहाँ इतना बड़ा नर-संहार हुआ है, वहाँसे आपलोगोंको बचकर आये देख मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। अवश्य ही हमलोग शत्रुओंपर विजय पायेंगे; किंतु यह तभी हो सकता है, जब कुछ समयतक विश्राम करके अपनी थकावट दूर कर लें। आपलोग भी बहुत थक गये हैं और मैं भी विशेष घायल हो चुका हूँ। उधर पाण्डवोंका बल और उत्साह बढ़ा हुआ है। इसलिये इस समय उनके साथ युद्ध करना मुझे पसंद नहीं है। आज एक रात यहाँ विश्राम करके कल आपलोगोंको साथ लेकर शत्रुओंसे युद्ध करूँगा।

सञ्जय कहते हैं—दुर्योधनके ऐसा कहनेपर अश्वत्थामाने कहा—'राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। उठो, हमलोग अवश्य अपने शत्रुओंको जीतेंगे। मैं अपने यज्ञ-याग, दान, सत्य,



तथा जप आदि पुण्यकर्मोंकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ, आज मैं सोमकोंको अवश्य मार डालूँगा। यदि इसी रातमें मैं अपने शत्रुओंका संहार न कर डालूँ तो सत्पुरुषोंको मिलनेयोग्य यज्ञका फल मुझे न मिले।'

इस प्रकार जब वे बातें कर रहे थे, उसी समय मांसके बोझसे थके हुए कुछ व्याधे पानी पीनेके लिये अकस्मात् वहाँ आ पहुँचे। उनकी भीमसेनके प्रति बड़ी भक्ति थी।

वहाँ खड़े होकर व्याधोंने उन लोगोंका एकान्त-वार्तालाप सुन लिया। उन्हें दुर्योधनकी बात भी सुनायी दी। सब देख-सुनकर उन्होंने जान लिया कि 'राजा दुर्योधन जलमें छिपा है, उसका युद्ध करनेका मन नहीं है, तो भी ये महारथी उसे उकसा रहे हैं।'

अब वे आपसमें सलाह करने लगे—'यह तो साफ जाहिर हो गया कि दुर्योधन पोखरेके पानीमें आ बैठा है।



अतः भीमसेनसे चलकर कहना चाहिये कि 'दुर्योधन पानीमें सो रहा है।' इससे उन्हें बड़ी खुशी होगी और हमें बहुत-सा धन मिल जायगा। इस सूखे मांसको ढोकर व्यर्थ क्लेश उठानेसे क्या फायदा है ?'

यह निश्चय करके वे बड़े प्रसन्न हुए, उन्हें धनका लोभ जो था ! मांसका बोझ सिरपर उठाया और छावनीकी ओर चल दिये। उधर, पाण्डवोंने भी दुर्योधनका पता लगानेके लिये चारों ओर जासूस रवाने किये थे; किंतु सबने लौटकर यही बताया कि 'वह कहीं भाग गया, उसका कुछ पता नहीं चलता।' जासूसोंकी बात सुनकर राजाको बड़ी चिन्ता हुई।

उसका पता न लगनेसे समस्त पाण्डव उदास होकर बैठे थे, इतनेमें ही व्याधे वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने भीमसेनके पास जाकर जो कुछ वहाँ देखा-सुना था, सब कह सुनाया। तब भीमसेनने उन्हें बहुत-सा धन देकर विदा किया और धर्मराजसे जाकर कहा—'महाराज ! जिसके लिये आप चिन्तामें पड़े हैं, उस दुर्योधनका पता व्याधोंद्वारा



लग गया। वह मायासे पानी बाँधकर पोखरेमें सो रहा है।' यह प्रिय समाचार सुनकर भाइयोंसहित युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए और भगवान् श्रीकृष्णको आगे करके तुरंत सरोवरकी ओर चल दिये। उनके साथ सोमक क्षत्रिय भी थे। जाते समय उनके रथोंकी घरघराहट बड़ी दूरतक सुनायी देती थी। उस समय अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र तथा शेष पाञ्चाल योद्धा हाथीसवार घुड़सवार और सैकड़ों पैदलोंके साथ युधिष्ठिरके पीछे-पीछे गये। तदनन्तर, महाराज युधिष्ठिर सबके साथ उग्र अत्यन्त भयंकर द्वैपायन नामक सरोवरके पास, जहाँ दुर्योधन छिपा था, जा पहुँचे।

युधिष्ठिरकी सेनाने जब प्रस्थान किया था, उसी समय उसका महान् कोलाहल सुनकर कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामाने दुर्योधनसे कहा—'राजन् ! विजयोल्लाससे

सुशोभित पाण्डव अत्यन्त आनन्दमें भरकर इधर ही आ रहे हैं। यदि आप आज्ञा दें तो हमलोग कुछ देरके लिये हट जायँ।' उनकी बात सुनकर दुर्योधनने कहा—'अच्छा, आप लोग जाइये। उनसे ऐसा कहकर वह सरोवरके भीतर चला गया और मायासे जलको बाँध दिया। कृपाचार्य आदि महारथी राजाकी आज्ञा लेकर शोकमग्न हो वहाँसे दूर चले गये। रास्तेमें उन्हें एक बरगदका वृक्ष दिखायी पड़ा। वे थके तो थे ही, उसके नीचे बैठ गये और राजा दुर्योधनके विषयमें विचार करने लगे। 'अब युद्ध किस तरह होगा ? राजा दुर्योधनकी क्या दशा होगी ? पाण्डवोंको दुर्योधनका पता कैसे लगेगा ?' यही सब सोचते-सोचते उन्होंने घोड़ोंको रथसे खोल दिया और सब-के-सब वृक्षके नीचे आराम करने लगे।





युधिष्ठिर और दुर्योधनका संवाद, युधिष्ठिरके कहनेसे दुर्योधनका किसी एक पाण्डवसे गदायुद्धके लिये तैयार होना

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! उस सरोवरपर पहुँचकर युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'माधव ! देखिये तो सही दुर्योधनने जलके भीतर कैसी मायाका प्रयोग किया है ? यह पानीको रोककर यहाँ सो रहा है। यह मायामें बड़ा निपुण है। किंतु यदि साक्षात् इन्द्र भी इसकी सहायता करने आवें, तो भी आज संसार इसे मरा हुआ ही देखेगा।'

श्रीकृष्णने कहा—भारत ! इस मायावीकी मायाको आप मायासे ही नष्ट कर डालिये; आप भी जलमें मायाका प्रयोग करके इसका वध कीजिये। राजन् ! उद्योग ही सबसे अधिक बलवान् है; और कुछ नहीं। उद्योग और उपायोंसे ही बड़े-बड़े दैत्य, दानव, राक्षस तथा राजा मारे गये हैं; इसलिये आप भी उद्योग कीजिये।

भगवान्‌के ऐसा कहनेपर युधिष्ठिरने हँसते-हँसते पानीमें छिपे हुए आपके पुत्रसे कहा—'सुयोधन ! तुमने जलके भीतर किसलिये यह अनुष्ठान आरम्भ किया है ? समस्त क्षत्रियों तथा अपने कुलका संहार कराकर अब अपनी जान बचानेके लिये पोखरेमें जा घुसे हो ? तुम्हारा वह पहलेका दर्प और अभिमान कहाँ चला गया जो डरके मारे यहाँ आकर छिपे हो ? सभामें सब लोग तुम्हें शूर कहा करते हैं, किंतु जब तुम पानीमें घुसे हो तो मैं तुम्हारा वह शौर्य व्यर्थ ही समझता हूँ। जो कौरव-वंशमें जन्म लेनेके कारण सदा अपनी प्रशंसा किया करता था, वही युद्धसे डरकर पानीमें कैसे छिपा बैठा है ? अभी युद्धका अन्त तो हुआ नहीं, फिर तुम्हें जीवित रहनेकी इच्छा कैसे हो गयी ? इस लड़ाईमें पुत्र, भाई, सम्बन्धी, मित्र, मामा तथा बान्धव-जनोंको मरवाकर अब तुम पोखरेमें क्यों सो रहे हो ? कहाँ गया तुम्हारा पौरुष, कहाँ गया तुम्हारा अभिमान और कहाँ गयी तुम्हारी वज्रकी-सी गर्जना ? तुम तो अस्त्रविद्याके बड़े ज्ञाता थे, कहाँ गया वह सारा ज्ञान ? अब तालाबमें कैसे नींद आ रही है ? भारत ! उठो और क्षत्रियधर्मके अनुसार हमारे साथ युद्ध करो। हमलोगोंको परास्त करके पृथ्वीका राज्य करो अथवा हमारे हाथों मरकर सदाके लिये रणभूमिमें सो जाओ।'

धर्मराजके ऐसा कहनेपर आपके पुत्रने पानीमेंसे ही जवाब दिया—'महाराज ! किसी भी प्राणीको भय होना आश्चर्यकी बात नहीं है, किंतु मैं प्राणोंके भयसे यहाँ नहीं आया हूँ। मेरे पास न रथ है, न भाथा। पार्श्वरक्षक और

सारथि भी मारे जा चुके हैं। सेना नष्ट हो गयी और मैं



अकेला रह गया; इस दशामें मुझे कुछ देरतक विश्राम करनेकी इच्छा हुई। राजन् ! मैं प्राणोंकी रक्षाके लिये या और किसी भयसे बचनेके लिये अथवा मनमें विषाद होनेके कारण पानीमें नहीं घुसा हूँ; सिर्फ थक जानेके कारण ऐसा किया है। तुम भी कुछ देरतक सुस्ता लो, तुम्हारे अनुयायी भी विश्राम कर लें; फिर मैं उठकर तुम सब लोगोंके साथ लोहा लूँगा।'

युधिष्ठिरने कहा—सुयोधन ! हम सब लोग सुस्ता चुके हैं और बहुत देरसे तुम्हें खोज रहे हैं, इसलिये तुम अभी उठकर युद्ध करो। संग्राममें समस्त पाण्डवोंको मारकर समृद्धिशाली राज्यका उपभोग करो अथवा हमारे हाथसे मरकर वीरोंको मिलनेयोग्य पुण्यलोकोंमें चले जाओ।

दुर्योधन बोला—राजन् ! जिनके लिये मैं राज्य चाहता था, वे मेरे सभी भाई मारे जा चुके हैं। पृथ्वीके समस्त पुरुष-रत्नों और क्षत्रियपुंगवोंका विनाश हो गया है; अब यह भूमि विधवा स्त्रीके समान श्रीहीन हो चुकी है; अतः इसके उपभोगके लिये मेरे मनमें तनिक भी उत्साह नहीं है। हाँ आज भी पाण्डवों तथा पाञ्चालोंका उत्साह भंग करके तुम्हें जीतनेकी आशा रखता हूँ। किंतु जब द्रोण और कर्ण शान्त हो गये, पितामह भीष्म मार डाले गये, तो अब मेरी दृष्टिमें इस युद्धकी कोई आवश्यकता नहीं रही। आजसे यह सारी पृथ्वी तुम्हारी ही रहे, मैं इसे नहीं चाहता। मेरे पक्षके सभी वीर नष्ट हो गये; अतः अब राज्यमें मेरी रुचि नहीं रही। मैं तो मृगछाला धारण करके आजसे वनमें ही जाकर रहूँगा। मेरे अपने कहे जानेवाले जब कोई भी मनुष्य जीवित नहीं रहे, तो मैं स्वयं भी जीवित रहना नहीं चाहता। अब तुम जाओ और जिसका राजा मारा गया, योद्धा नष्ट हो गये तथा जिसके रत्न क्षीण हो चुके हैं, उस पृथ्वीका आनन्दपूर्वक उपभोग करो; क्योंकि तुम्हारी आजीविका छीनी जा चुकी है।

युधिष्ठिरने कहा—तात ! तुम जलमें बैठे-बैठे प्रलाप न करो। मैं इस सम्पूर्ण पृथ्वीको तुम्हारे दानके रूपमें नहीं लेना चाहता। मैं तो तुम्हें युद्धमें जीतकर ही इसका उपभोग करूँगा। अब तो तुम स्वयं ही पृथ्वीके राजा नहीं रहे, फिर इसका दान कैसे करना चाहते हो ? जब हमलोगोंने अपने कुलमें शान्ति कायम रखनेके लिये धर्मतः याचना की थी, उसी समय तुमने हमें पृथ्वी क्यों नहीं दे दी ! एक बार भगवान् श्रीकृष्णको कोरा जवाब देकर इस समय राज्य देना चाहते हो ? यह कैसी पागलपनकी बात है। अब न तो तुम पृथ्वी किसीको दे सकते हो और न छीन ही सकते हो, फिर देनेकी इच्छा क्यों हुई ? पहले तो सूईकी नोक बराबर भी जमीन नहीं देना चाहते थे और आज सारी पृथ्वी देनेको तैयार हो गये ! क्या बात है ? याद है न, तुमने हमलोगोंको जलानेकी कोशिश की थी, भीमको विष खिलाकर पानीमें डुबाया और विषधर साँपोंसे डँसवाया। इतना ही नहीं, तुमने सारा राज्य छीनकर हमें अपने कपटजालका शिकार बनाया। तुम्हारे ही आदेशसे द्रौपदीके केश और वस्त्र खींचे गये और स्वयं तुमने उसे गालियाँ सुनायीं। पापी ! इन सब कारणोंसे तुम्हारा जीवन नष्ट-सा हो चुका है। अब उठो और युद्ध करो, इसीमें तुम्हारी भलाई है।

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! मेरा पुत्र दुर्योधन स्वभावतः क्रोधी था, जब युधिष्ठिरने उसे इस तरह फटकारा तो उसकी क्या दशा हुई। राजा होनेके कारण वह सबके आदरका पात्र था, इसलिये ऐसी फटकार उसको कभी नहीं सुननी पड़ी थी। किंतु उस दिन उसको डाँट सहनी पड़ी और वह भी अपने शत्रु पाण्डवोंकी। सञ्जय ! बताओ, उनकी वे कड़वी बातें सुनकर दुर्योधनने क्या जवाब दिया ?

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! पानीके भीतर बैठे हुए दुर्योधनको भाइयोंसहित युधिष्ठिरने जब इस तरह फटकारा तो उनकी कड़वी बातें सुनकर वह क्रोधसे दोनों हाथ हिलाने

लगा और मन-ही-मन युद्धका निश्चय करके राजा युधिष्ठिरसे बोला—'तुम सभी पाण्डव अपने हितैषी मित्रोंको साथ लेकर आये हो, तुम्हारे रथ और वाहन भी मौजूद हैं। तुम्हारे पास बहुत-से अस्त्र-शस्त्र होंगे और मैं निहत्था हूँ, तुम रथपर बैठोगे और मैं पैदल हूँ; यही नहीं, तुम्हारी संख्या बहुत है और मैं कहाँ अकेला—ऐसी दशामें मैं तुम्हारे साथ कैसे युद्ध कर सकता हूँ? युधिष्ठिर! तुम अपने पक्षके एक-एक वीरके साथ मुझे बारी-बारीसे लड़ाओ। एकको बहुतोंके साथ युद्धके लिये मजबूर करना उचित नहीं है। राजन्! मैं तुमसे या भीमसे जरा भी नहीं डरता। श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा पाञ्चालोंका भी मुझे भय नहीं है। नकुल, सहदेव तथा सात्यकिकी भी मैं परवा नहीं करता, इनके अतिरिक्त भी तुम्हारे पास जो सैनिक हैं, उनको भी मैं कुछ नहीं समझता। मैं अकेला ही सबको परास्त कर दूँगा। आज भाइयोंसहित तुम्हारा वध करके मैं वाह्लीक, द्रोण, भीष्म, कर्ण, जयद्रथ, भगदत्त, शल्य, भूरिश्रवा और शकुनिके तथा अपने पुत्रों, मित्रों, हितैषियों एवं बन्धु-बान्धवोंके ऋणसे उऋण हो जाऊँगा।'

यह कहकर दुर्योधन चुप हो गया। तब युधिष्ठिरने कहा—'दुर्योधन! यह जानकर खुशी हुई कि तुम अभी युद्धका ही विचार रखते हो। यदि तुम्हारी इच्छा हममेंसे एक-एकके साथ ही लड़नेकी है, तो ऐसा ही करो। कोई भी एक हथियार, जो तुम्हें पसंद हो, लेकर मैदानमें उतरो और एकके ही साथ लड़ो। बाकी लोग दर्शक बनकर खड़े रहेंगे। इसके सिवा, तुम्हारी एक कामना और पूर्ण करता हूँ, हममेंसे एकको भी मार डालोगे तो सारा राज्य तुम्हारा हो जायगा और यदि खुद मारे गये तो स्वर्ग तो तुम्हें मिलेगा ही।'

दुर्योधनने कहा—यदि एकसे ही लड़ना है तो मैं युद्धके लिये ललकारता हूँ। किसी भी शूरवीरको मेरा सामना करनेके लिये दे दो। तुम्हारे कथनानुसार मैं आयुधोंमें एकमात्र गदाको ही पसंद करता हूँ। तुममेंसे कोई भी एक वीर, जो मुझे जीतनेकी शक्ति रखता हो, गदा लेकर पैदल ही आ जाय और मेरे साथ युद्ध करे। युधिष्ठिर! इस गदासे मैं तुमको, तुम्हारे भाइयोंको, पाञ्चालों और सृञ्जयोंको तथा तुम्हारे अन्य सैनिकोंको भी परास्त कर सकता हूँ। डर तो मुझे इन्द्रसे भी नहीं लगता, फिर तुमसे क्या भय करूँगा?

युधिष्ठिर बोले—गान्धारीनन्दन! उठो तो सही, एक-एकके साथ ही गदायुद्ध करके अपने पुरुषत्वका परिचय दो। आओ, मेरे ही साथ लड़ो। यदि इन्द्र भी तुम्हारी सहायता करें तो भी आज तुम जीवित नहीं रह सकते।

महाराज! युधिष्ठिरके इस कथनको दुर्योधन नहीं सह सका। वह कंधेपर लोहेकी गदा रखकर बँधे हुए जलको चीरता हुआ बाहर निकल आया। उस समय सब प्राणियोंने उसे दण्डधारी यमराजके समान ही समझा। उसे पानीसे बाहर आया देख पाण्डव तथा पाञ्चाल बहुत प्रसन्न हुए और एक-दूसरेके हाथपर ताली पीटने लगे।

दुर्योधनने इसे अपना उपहास समझा, क्रोधसे उसकी त्यौरियाँ चढ़ गयीं। भौंहोंमें तीन जगह बल पड़ गये और वह मानो सबको भस्म कर डालेगा, इस प्रकार श्रीकृष्णसहित पाण्डवोंकी ओर देखता हुआ बोला—'पाण्डवो! इस उपहासका फल तुम्हें भोगना पड़ेगा। तुम मेरे हाथसे मारे जाकर इन पाञ्चालोंके साथ शीघ्र ही यमलोकमें पहुँचोगे।'

यों कहकर जब वह हाथमें गदा लिये खड़ा हुआ, उस समय पाण्डव उसे कोपमें भरे हुए यमराजके समान मानने लगे। उसने मेघके समान गरजकर अपनी गदा दिखाते हुए सम्पूर्ण पाण्डवोंको युद्धके लिये ललकारा और कहने लगा—'युधिष्ठिर! तुमलोग एक-एक करके मुझसे युद्ध करनेके लिये आते जाओ; क्योंकि एक वीरको एक साथ बहुतों-से लड़ाना न्यायकी बात नहीं है। अगर सब लोग मेरे साथ लड़ना ही चाहो तो भी मैं तैयार हूँ, परंतु यह काम उचित है या अनुचित? यह तो तुम्हें मालूम ही होगा!'

युधिष्ठिर बोले—दुर्योधन! जिस समय बहुत-से महारथियोंने मिलकर अकेले अभिमन्युको मार डाला था, उस समय तुम्हें यह न्याय-अन्यायकी बात क्यों नहीं सूझी? यदि तुम्हारा धर्म यही कहता है कि बहुत-से योद्धा मिलकर एकको न मारें, तो उस दिन तुम्हारी सलाह लेकर बहुत-से महारथियोंने अभिमन्युको क्यों मारा था? सच है, स्वयं संकटमें पड़नेपर प्रायः सभी लोग धर्मका विचार करने लगते हैं। खैर, जाने दो इन बातोंको। कवच पहनो और शिखा बाँध लो तथा और जो आवश्यक सामान तुम्हारे पास न हो, वह मुझसे ले लो। इसके सिवा, जैसा कि पहले कह चुका हूँ, तुम्हें एक वरदान और देता हूँ—तुम पाँचों पाण्डवोंमेंसे जिसके साथ युद्ध करना चाहो, करो, यदि उसको मार डालोगे तो राज्य तुम्हारा ही होगा और यदि खुद मारे गये तो तुम्हारे लिये स्वर्ग तो है ही।

इसके अतिरिक्त भी बताओ, हम तुम्हारा कौन-सा प्रियकार्य करें ? जीवनकी भिक्षा छोड़कर जो चाहो माँग सकते हो।

सञ्जय कहते हैं—तदनन्तर, दुर्योधनने सोनेका कवच और सुनहरा टोप—ये दो चीजें माँग लीं और उन्हें धारण भी कर लिया। फिर हाथमें गदा लेकर बोला—'राजन् ! तुम्हारे भाइयोंमेंसे कोई भी एक आकर मुझसे गदायुद्ध करे। सहदेव, भीम, नकुल, अर्जुन अथवा तुम—कोई भी क्यों न हो, मैं उसके साथ युद्ध करूँगा और उसे जीत भी लूँगा। मेरा ऐसा विश्वास है कि गदायुद्धमें मेरे समान कोई है ही नहीं, गदासे मैं तुम सब लोगोंको मार सकता हूँ। यदि न्यायतः युद्ध हो तो तुममेंसे कोई भी मेरा सामना नहीं कर सकता। मुझे स्वयं अपने लिये ऐसी गर्वभरी बात नहीं कहनी चाहिये, तथापि कहना पड़ा है। अथवा कहनेकी क्या बात है, मैं तुम्हारे सामने ही सब कुछ सत्य करके दिखा दूँगा। जो मेरे साथ युद्ध करना चाहता हो, वह गदा लेकर सामने आ जाय।'



—★—

श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको उलाहना, भीमकी प्रशंसा तथा भीम और दुर्योधनमें वाग्युद्ध, फिर बलरामजीका आगमन और उनका स्वागत

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! यों कहकर दुर्योधन जब बारंबार गर्जना करने लगा, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण कुपित होकर युधिष्ठिरसे बोले—राजन् ! आपने यह कैसी दुःसाहसपूर्ण बात कह डाली कि 'तुम हममेंसे एकको ही मारकर कौरवोंके राजा हो जाओ।' अगर दुर्योधन अर्जुन, नकुल, सहदेव अथवा आपको ही युद्धके लिये चुन ले, तब क्या होगा ? मैं आपलोगोंमें इतनी शक्ति नहीं देखता कि गदायुद्धमें दुर्योधनका मुकाबला कर सकें। इसने भीमसेनका वध करनेके लिये उनकी लोहेकी मूर्तिके साथ तेरह वर्षोंतक गदायुद्धका अभ्यास किया है। दुर्योधनका सामना करनेवाला इस समय भीमसेनके सिवा दूसरा कोई नहीं है, आपने फिर पहलेहीके समान जूआ खेलना शुरु कर दिया ! आपका यह जूआ शकुनिके जूएसे कहीं अधिक भयंकर है ! माना कि भीमसेन बलवान् और समर्थ हैं, परंतु राजा दुर्योधनने अभ्यास अधिक किया है। एक ओर बलवान् हो और दूसरी ओर युद्धका अभ्यासी तो उनमें अभ्यास करनेवाला ही बड़ा माना जाता है। अतः महाराज ! आपने अपने शत्रुको समान मार्गपर ला दिया है। अपनेको विपत्तिमें फँसाया और हमलोगोंकी



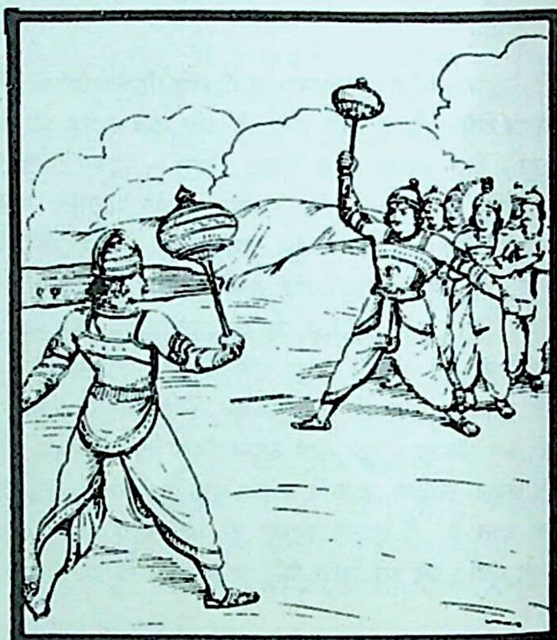
कठिनाई बढ़ा दी । भला कौन ऐसा होगा, जो सब शत्रुओंको जीत लेनेके बाद जब एक ही बाकी रह जाय और वह भी संकटमें पड़ा हो तो अपने हाथमें आया हुआ राज्य दाँवपर लगाकर हार जाय, एकके साथ युद्ध करनेकी शर्त लगाकर लड़ना पसंद करें । यदि हम न्यायसे युद्ध करें तो भीमसेनकी विजयमें भी संदेह है; क्योंकि दुर्योधनका अभ्यास इनसे अधिक है। तो भी आपने कह यह दिया कि 'हममेंसे एकको भी मार डालनेपर तुम राजा हो जाओगे।'

यह सुनकर भीमसेनने कहा—'मधुसूदन ! आप चिन्ता न क़ीजिये। आज युद्धमें दुर्योधनको मैं अवश्य मार डालूँगा। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। मुझे तो निश्चय ही धर्मराजकी विजय दिखायी देती है। मेरी गदा दुर्योधनकी गदासे डेढ़गुनी भारी है। मैं इस गदासे दुर्योधनके साथ भिड़नेका हौसला रखता हूँ। आप सब लोग तमाशा देखिये, दुर्योधनकी तो बिसात ही क्या है, मैं देवताओंसहित तीनों लोकोंके साथ युद्ध कर सकता हूँ।'

सञ्जय कहते हैं—भीमसेनने जब ऐसी बात कही तो भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और उनकी प्रशंसा करते हुए बोले—'महाबाहो ! इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि राजा युधिष्ठिरने तुम्हारे ही भरोसे अपने शत्रुओंको मारकर उज्ज्वल राज्य लक्ष्मी प्राप्त की है। धृतराष्ट्रके सब पुत्र तुम्हारे ही हाथसे मारे गये हैं। कितने ही राजे, राजकुमार और हाथी तुम्हारे द्वारा मौतके घाट उतारे जा चुके हैं। कलिङ्ग, मगध, प्राच्य, गान्धार और कुरुदेशके राजाओंका भी तुमने संहार किया है। इसी प्रकार आज दुर्योधनको भी मारकर तुम समुद्रसहित यह सारी पृथ्वी धर्मराजके हवाले कर दो। तुमसे भिड़नेपर पापी दुर्योधन अवश्य मारा जायगा। देखो, तुम इसकी दोनों जाँघें तोड़कर अपनी प्रतिज्ञाका पालन करना।'

तदनन्तर, सात्यकिने पाण्डुनन्दन भीमकी प्रशंसा की। पाण्डवों तथा पाञ्चालोंने भी उनके प्रति सम्मानका भाव प्रदर्शित किया। इसके बाद भीमने युधिष्ठिरसे कहा—'भैया ! मैं रणमें दुर्योधनके साथ लड़ना चाहता हूँ, यह पापी मुझे कदापि नहीं परास्त कर सकता। मेरे हृदयमें इसके प्रति बहुत दिनोंसे क्रोध जमा हो रहा है, उसे आज इसके ऊपर छोड़ूँगा और गदासे इसका विनाश करके आपके हृदयका काँटा निकाल दूँगा, अब आप प्रसन्न होइये। अब राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रको मेरे हाथसे मारा गया सुनकर शकुनिकी सलाहसे किये हुए अपने अशुभ कर्मोंको याद करेंगे।'

यों कहकर भीमने गदा उठायी और इन्द्रने जैसे वृत्रासुरको बुलाया था, वैसे ही दुर्योधनको युद्धके लिये

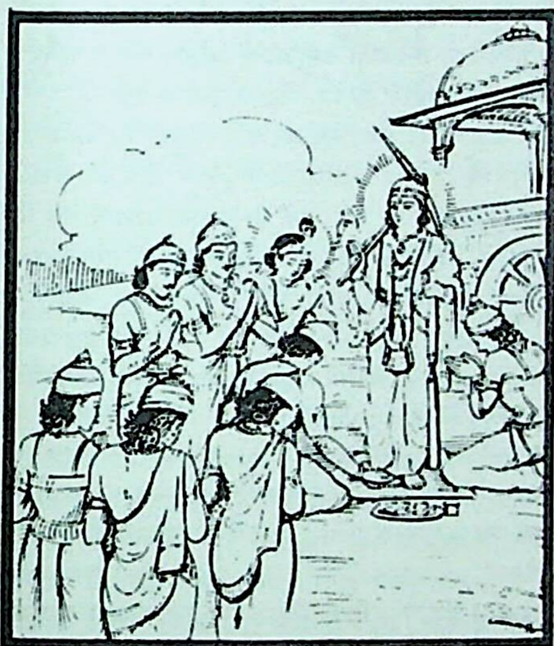


ललकारा। दुर्योधन उनकी ललकार न सह सका, वह तुरंत ही भीमका सामना करनेके लिये उपस्थित हो गया। उस समय दुर्योधनके मनमें न घबराहट थी न भय, न ग्लानि थी न व्यथा; वह सिंहके समान निर्भय खड़ा था। उसे देखकर भीमसेनने कहा—'दुरात्मन् ! तूने तथा राजा धृतराष्ट्रने हमलोगोंपर जो-जो अत्याचार किये थे और वारणावतमें जो तुम्हारे द्वारा हमारा अहित किया गया, उन सबको याद कर ले। भरी सभामें तूने रजस्वला द्रौपदीको क्लेश पहुँचाया, शकुनिकी सलाह लेकर राजा युधिष्ठिरको कपटपूर्वक जूएमें हराया तथा निरपराध पाण्डवोंपर जितने-जितने अत्याचार तूने किये, उन सबका महान् फल आज अपनी आँखों देख ले। तेरे ही कारण हमलोगोंके पितामह भीष्मजी आज शर-शय्यापर पड़े हुए हैं। द्रोणाचार्य, कर्ण, शल्य तथा वैरका आदि स्रष्टा शकुनि—ये सब मारे गये हैं। तेरे भाई, पुत्र, योद्धा तथा कितने ही वीर क्षत्रिय मौतके घाट उतर चुके; अब इस वंशका नाश करनेवाला सिर्फ तू ही एक बाकी रह गया है। आज इस गदासे तुझे भी मार डालूँगा—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। आज तेरा घमंड चूर्ण कर दूँगा और राज्यके लिये बढ़ी हुई लालसा भी मिटा दूँगा।'

दुर्योधन बोला—वृकोदर ! बहुत बातें बनानेसे क्या होगा, मेरे साथ लड़ तो सही, आज युद्धका तेरा सारा हौसला पूरा कर दूँगा। पापी ! देखता नहीं; मैं हिमालयके शिखरके

समान भारी गदा लेकर युद्धके लिये खड़ा हुआ हूँ मेरे हाथमें गदा होनेपर कौन शत्रु मुझे जीतनेका साहस कर सकता है। न्याययतः युद्ध हो तो इन्द्र भी मुझे परास्त नहीं कर सकते। कुन्तीनन्दन ! व्यर्थ गर्जना न कर; तुझमें जितना बल हो उसे आज युद्धमें दिखा।

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! भीमसेन और दुर्योधनमें महाभयंकर संग्राम छिड़नेहीवाला था कि अपने दोनों शिष्योंके युद्धका समाचार पाकर बलरामजी वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर श्रीकृष्ण तथा पाण्डवोंको बड़ी प्रसन्नता हुई।



उन्होंने निकट जाकर उनका चरण-स्पर्श किया और विधिवत् उनकी पूजा की। इसके बाद बलरामजी श्रीकृष्ण, पाण्डवों तथा गदाधारी दुर्योधनको देखकर कहने लगे—'माधव ! मुझे यात्रामें निकले आज बयालीस दिन हो गये। पुष्य नक्षत्रमें चला था और श्रवण नक्षत्रमें वापस आया हूँ। इस समय मैं अपने दोनों शिष्योंका गदायुद्ध देखना चाहता हूँ—इसीलिये इधर आया हूँ।

तदनन्तर, राजा युधिष्ठिरने बलरामजीको गलेसे लगाकर उनकी कुशल पूछी, श्रीकृष्ण और अर्जुन भी प्रणाम करके उनसे गले मिले। नकुल-सहदेव तथा द्रौपदीके पुत्रोंने भी उन्हें प्रणाम किया। फिर भीमसेन और दुर्योधनने गदा ऊँची करके उनके प्रति सम्मान प्रकट किया। इस प्रकार सबसे सम्मानित होकर बलरामजीने सृञ्जय-पाण्डवोंको गलेसे लगाया तथा सब राजाओंसे कुशल-समाचार पूछा।

इसके बाद उन्होंने श्रीकृष्ण और सात्यकिको छातीसे लगाकर उनके मस्तक सूँघे। फिर उन दोनोंने भी बड़े प्रेमसे उनका पूजन किया। तब धर्मराज युधिष्ठिरने बलदेवजीसे कहा—'भैया बलराम ! अब तुम इन दोनों भाइयोंका महान् युद्ध देखो।' उनके ऐसा कहनेपर बलरामजी महारथियोंसे सम्मानित एवं प्रसन्न



होकर राजाओंके मध्यमें जा बैठे। फिर तो भीम और दुर्योधनमें वैरका अन्त करनेवाला रोमाञ्चकारी संग्राम होने लगा।



बलरामजीकी तीर्थयात्रा तथा प्रभास-क्षेत्रका प्रभाव

जनमेजयने कहा—मुने ! जब महाभारत-युद्ध आरम्भ होनेके पहले ही बलदेवजी भगवान् श्रीकृष्णकी सम्मति लेकर अन्य वृष्णिवंशियोंके साथ तीर्थयात्राके लिये चले गये और जाते-जाते यह कह गये कि 'मैं न तो दुर्योधनकी सहायता करूँगा, न पाण्डवोंकी; तब फिर उस समय वहाँ उनका शुभागमन कैसे हुआ ? यह समाचार आप मुझे विस्तारके साथ सुनाइये ?

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! जिन दिनों पाण्डव उपप्लव्य नामक स्थानमें छावनी डालकर ठहरे हुए थे, उन्हीं दिनोंकी बात है, पाण्डवोंने सब प्राणियोंके हितके लिये भगवान् श्रीकृष्णको धृतराष्ट्रके पास भेजा। उन्हें भेजनेका उद्देश्य यह था कि कौरव-पाण्डवोंमें शान्ति बनी रहे—कलह न हो। भगवान् हस्तिनापुर जाकर धृतराष्ट्रसे मिले और उनसे सबके लिये हितकर एवं यथार्थ बातें कहीं। किंतु उन्होंने भगवान्का कहना नहीं माना। जब वहाँ संधि करानेमें सफल न हो सके तो भगवान् उपप्लव्यमें ही लौट आये और पाण्डवोंसे बोले—'कौरव अब कालके वशमें हो रहे हैं, इसलिये मेरा कहना नहीं मानते। पाण्डवो ! अब तुमलोग मेरे साथ पुष्य नक्षत्रमें युद्धके लिये निकल पड़ो।' इसके बाद जब सेनाका बँटवारा होने लगा तो बलदेवजीने श्रीकृष्णसे कहा—'मधुसूदन ! तुम कौरवोंकी भी सहायता करना।' परंतु श्रीकृष्णने उनका यह प्रस्ताव नहीं स्वीकार किया; इससे वे रूठ गये और पुष्य नक्षत्रमें वहाँसे तीर्थयात्राके लिये निकल पड़े। रास्तेमें उन्होंने सेवकोंको आज्ञा दी कि तुमलोग द्वारका जाकर तीर्थयात्रामें उपयोगी सभी आवश्यक सामान लाओ। साथ ही अग्निहोत्रकी अग्नि और यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंको भी आदरपूर्वक ले आना। सोना, चाँदी, गौ, वस्त्र, घोड़े, हाथी, रथ, खच्चर और ऊँट भी लाने चाहिये।

इस प्रकार आदेश देकर वे सरस्वती नदीके किनारे-किनारे उसके प्रवाहकी ओर तीर्थयात्राके लिये चल पड़े; उनके साथ ऋत्विज्, सुहृद्, श्रेष्ठ ब्राह्मण, रथ, हाथी, घोड़े, सेवक, बैल, खच्चर और ऊँट भी थे। उन्होंने देश-देशमें थके-माँदे रोगी, बालक और वृद्धोंका सत्कार करनेके लिये तरह-तरहकी देने योग्य वस्तुएँ तैयार करा रखी थीं। भूखोंको भोजन करानेके लिये सर्वत्र अन्नका प्रबन्ध कराया गया था। जिस किसी देशमें जो कोई भी ब्राह्मण जब भोजनकी इच्छा प्रकट करता था, उसको उसी स्थानपर तत्काल भोजन दिया जाता था। भिन्न-भिन्न तीर्थोंमें बलदेवजीकी आज्ञासे उनके सेवक खाने-पीनेके पदार्थोंके ढेर लगा रखते थे। ब्राह्मणोंके सम्मानार्थ बहुमूल्य वस्त्र, पलंग और बिछौने तैयार रहते थे। इस यात्रामें सब लोग आरामसे चलते और विश्राम करते थे। यात्रा करनेवालोंकी यदि इच्छा हो तो उन्हें सवारियाँ भी मिलती थीं। प्यासेको पानी पिलाया जाता और भूखेको स्वादिष्ट अन्न दिया जाता था।

उन यात्रियोंका रास्ता बड़े सुखसे तै होता था। सबको स्वर्गीय आनन्द मिलता था। सभी सदा ही प्रसन्न रहते थे। साथमें खरीदने-बेचनेकी वस्तुओंका बाजार भी चलता था। महात्मा बलदेवजीने अपने मनको वशमें रखकर पुण्य-तीर्थोंमें ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दान किया, यज्ञ करके उन्हें दक्षिणाएँ दीं हजारों दूध देनेवाली गौएँ दान कीं। उन गौओंके सींगमें सोना मढ़ा था और उन्हें सुन्दर वस्त्र ओढ़ाये गये थे। भिन्न-भिन्न देशोंके घोड़े दान किये गये। तरह-तरहकी सवारियाँ, सेवक, रत्न, मोती, मणि, मूँगा, सोना, चाँदी तथा लोहे और ताँबेके बर्तन भी ब्राह्मणोंको दिये गये। इस प्रकार सरस्वतीके तटवर्ती तीर्थोंमें बहुत-सा दान करके बलरामजी क्रमशः कुरुक्षेत्रमें आ पहुँचे।

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन् ! अब आप मुझे सरस्वतीके तटवर्ती तीर्थोंके गुण-प्रभाव और उत्पत्तिकी कथा सुनाइये। उन तीर्थोंमें जानेका फल क्या है ? और यात्राकी सिद्धि कैसे होती है ? तथा जिस क्रमसे बलरामजीने यात्राकी थी, वह क्रम भी बताइये, मुझे यह सब सुननेके लिये बड़ा कौतूहल हो रहा है।

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! सरस्वती तटके तीर्थोंका विस्तार, उनका प्रभाव तथा उनकी उत्पत्तिकी पवित्र कथा मैं सुना रहा हूँ, सुनो। यादवनन्दन बलदेवजी ब्राह्मणों तथा ऋत्विजोंके साथ सबसे पहले प्रभास-क्षेत्रमें गये, जहाँ राजयक्ष्मासे कष्ट पाते हुए चन्द्रमाको शापसे छुटकारा मिला तथा अपना खोया हुआ तेज भी प्राप्त हुआ, जिससे वे सारे जगत्को प्रकाशित करते हैं। चन्द्रमाको प्रभासित करनेके कारण ही वह प्रधान तीर्थ पृथ्वीपर 'प्रभास' नामसे विख्यात हुआ।

जनमेजयने पूछा—मुनिवर ! भगवान् सोमको यक्ष्मा कैसे हो गया ? और उन्होंने उस तीर्थमें किस तरह स्नान किया तथा उसमें डुबकी लगानेसे वे रोगमुक्त हो पुष्ट किस प्रकार हुए ? ये सारी बातें आप मुझसे विस्तारके साथ बताइये ?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! दक्षप्रजापतिकी संतानोंमें

अधिकांश कन्याएँ हुई थीं, उनमेंसे सत्ताईस कन्याओंका व्याह उन्होंने चन्द्रमाके साथ कर दिया। उन सबकी 'नक्षत्र' संज्ञा थी। चन्द्रमाके साथ जो नक्षत्रोंका योग होता है, उसकी गणनाके लिये वे सत्ताईस रूपोंमें प्रकट हुई थीं। वे सब-की-सब अनुपम सुन्दरी थीं। किंतु उनमें भी रोहिणीका सौन्दर्य सबसे बढ़कर था; इसलिये चन्द्रमाका अनुराग रोहिणीमें ही अधिक हुआ। वही उनकी हृदयवल्लभा हुई। वे सदा उसके ही सम्पर्कमें रहने लगे। जनमेजय ! पूर्वकालमें चन्द्रमा रोहिणीनक्षत्रके संसर्गमें अधिक कालतक रहा करते थे; इसलिये नक्षत्र नामवाली दूसरी स्त्रियोंको बड़ी ईर्ष्या हुई, वे कुपित होकर अपने पिता प्रजापतिके पास चली गयीं और बोलीं—'प्रजानाथ ! सोम सदा रोहिणीके ही पास रहते हैं, हमलोगोंपर उनका स्नेह नहीं है। अतः हमलोग अब आपके ही पास रहेंगी और नियमित आहार करके तपस्यामें लग जायँगी।'

उनकी बातें सुनकर दक्षने सोमको बुलाकर कहा—'तुम अपनी सब स्त्रियोंमें समताका भाव रखो, सबके साथ एक-सा बर्ताव करो। ऐसा करनेसे ही तुम पापसे बच सकोगे।'

तदनन्तर, दक्षने अपनी कन्याओंसे कहा—'तुम सब लोग चन्द्रमाके पास जाओ, अब वे मेरी आज्ञाके अनुसार तुम सबके साथ समान भाव रखेंगे।' पिताके विदा करनेपर वे पुनः पतिके घरमें चली गयीं। किंतु सोमके बर्तावमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। उनका रोहिणीके प्रति अधिकाधिक प्रेम बढ़ता गया और वे सदा उसीके पास रहने लगे। तब शेष कन्याएँ पुनः एक साथ होकर पिताके पास गयीं और कहने लगीं—'पिताजी ! सोमने आपकी आज्ञा नहीं मानी, अब तो हम आपकी ही सेवामें रहेंगी।' यह सुनकर दक्षने फिर सोमको बुलवाया और कहा—'तुम सब स्त्रियोंके साथ समान बर्ताव करो, नहीं तो मैं शाप दे दूँगा।' परंतु चन्द्रमाने उनकी बातका अनादर करके रोहिणीके ही साथ निवास किया।

जब दक्षको पुनः इसका समाचार मिला तो उन्होंने क्रोधमें भरकर सोमके लिये यक्ष्माकी सृष्टि की, यक्ष्मा चन्द्रमाके शरीरमें घुस गया। क्षयरोगसे पीड़ित हो जानेके कारण चन्द्रमा प्रतिदिन क्षीण होने लगे। उन्होंने उससे छूटनेका यत्न भी किया, नाना प्रकारके यज्ञ आदि किये, किंतु दक्षके शापसे छुटकारा न मिला, वे प्रतिदिन क्षीण ही होते गये। जब चन्द्रमाकी प्रभा नष्ट हो गयी, तो अन्न आदि ओषधियोंका पैदा होना भी बंद हो गया। जो पैदा भी होतीं उनमें न कोई स्वाद होता, न रस। उनकी शक्ति भी नष्ट हो जाती। इस प्रकार अन्न आदिके न होनेसे सब प्राणियोंका नाश होने लगा। सारी प्रजा दुर्बल हो गयी।

तब देवताओंने चन्द्रमाके पास आकर कहा—'यह आपका रूप कैसा हो गया ? इसमें प्रकाश क्यों नहीं होता ? हमलोगोंसे सारा कारण बताइये, आपसे पूरा हाल सुनकर फिर हम इसके लिये कोई उपाय करेंगे।'

उनके इस प्रकार पूछनेपर चन्द्रमाने उन्हें अपनेको शाप मिलनेका कारण बताया और उस शापके रूपमें यक्ष्माकी बीमारी होनेका हाल भी कह सुनाया। देवता लोग उनकी बात सुनकर दक्षके पास गये और बोले—'भगवन् ! आप चन्द्रमापर प्रसन्न होकर शाप निवृत्त कीजिये। उनका क्षय होनेसे प्रजाका भी क्षय हो रहा है। तृण, लता, बेलें, ओषधियाँ तथा नाना प्रकारके बीज—ये सब नष्ट हो रहे हैं। इनके न रहनेसे हमारा भी नाश ही हो जायगा। फिर हमारे बिना संसार कैसे रह सकता है ? इस बातपर ध्यान देकर आपको अवश्य कृपा करनी चाहिये।'

देवताओंके ऐसा कहनेपर प्रजापति बोले—'मेरी बात पलटी नहीं जा सकती, एक शर्तपर उसका प्रभाव कम हो सकता है, यदि चन्द्रमा अपनी सब स्त्रियोंके साथ समान बर्ताव करें तो सरस्वती नदीके उत्तम तीर्थमें स्नान करनेसे ये पुनः पुष्ट हो जायँगे। फिर ये पन्द्रह दिनोंतक बराबर क्षीण होंगे और पंद्रह दिनोंतक बढ़ते रहेंगे। मेरी यह बात सच्ची मानो। पश्चिम-समुद्रके तटपर, जहाँ सरस्वती नदी सागरमें मिलती है, जाकर ये भगवान् शंकरकी आराधना करें, इससे इन्हें इनकी खोयी हुई कान्ति मिल जायगी।'

इस प्रकार प्रजापतिकी आज्ञा होनेसे सोम सरस्वतीके प्रथम तीर्थ प्रभास-क्षेत्रमें गये। वहाँ अमावस्याको उन्होंने स्नान किया, इससे उनकी प्रभा बढ़ गयी, फिर वे समस्त संसारको प्रकाशित करने लगे। तब देवता लोग चन्द्रमाको साथ लेकर प्रजापतिके पास गये। उन्होंने देवताओंको तो विदा कर दिया और चन्द्रमासे कहा—'बेटा ! आजसे अपनी पत्नियोंका तथा ब्राह्मणका कभी अपमान न करना। जाओ, सावधानीके साथ मेरी आज्ञाका पालन करते रहना।

यह कहकर प्रजापतिने उन्हें जानेकी आज्ञा दे दी। चन्द्रमा अपने लोकमें गये और सम्पूर्ण प्रजा पूर्ववत् प्रसन्न रहने लगी। जनमेजय ! चन्द्रमाको जिस प्रकार शाप मिला था, वह सारा प्रसंग मैंने तुम्हें सुना दिया, साथ ही सब तीर्थोंमें प्रधान प्रभास-तीर्थका प्रभाव भी बता दिया। उस

तीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् बलरामजी चमसोद्भेद नामक तीर्थमें गये, वहाँ विधिवत् स्नान करके उन्होंने नाना प्रकारके दान किये और एक रात वहीं निवास भी किया। दूसरे दिन उदपान तीर्थमें गये, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है। इस तीर्थमें सरस्वती नदीका जल जमीनके भीतर छिपा रहता है।



उदपान तीर्थकी उत्पत्ति—त्रित मुनिका उपाख्यान

वैशम्पायनजी कहते हैं—'महाराज! उदपान तीर्थमें पहुँचकर बलदेवजीने आचमन किया और वहाँके ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें बहुत-सा द्रव्य दानमें दिया। वहाँ जानेसे उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। उस तीर्थमें पहले त्रित मुनि रहा करते थे, वे बड़े तपस्वी और धर्मपरायण थे। उन्होंने वहाँ कुएँमें रहकर ही सोमपान किया था। उनके दो भाई थे, जो उन्हें कुएँमें छोड़कर घर चले गये थे, इससे उन्होंने दोनों भाइयोंको शाप दे दिया था।

राजा जनमेजयने पूछा—मुनिवर! वह उदपान (कुआँ) तीर्थ कैसे हुआ? तथा वे महातपस्वी मुनि उसमें गिरे क्यों? दोनों भाइयोंने उनका परित्याग क्यों किया? वे उन्हें कुएँमें छोड़कर क्यों चले गये? वहाँ रहकर उन्होंने यज्ञ कैसे किया और सोमपान किस तरह किया? यह सब कथा मुझे सुनाइये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! पहले युगकी बात है, तीन सहोदर भाई थे, जो मुनि-वृत्तिसे रहा करते थे, उनके नाम थे एकत, द्वित और त्रित। वे सब वेदवेत्ता थे और तपस्यासे ब्रह्मलोकमें स्थान पा चुके थे। उनके धर्मात्मा पिताका नाम गौतम था। गौतमजी अपने पुत्रोंके तप, नियम और इन्द्रियनिग्रहसे उनपर बहुत प्रसन्न रहते थे। कुछ कालके बाद जब गौतम परलोकवासी हो गये तो उनके यजमान लोग उनके पुत्रोंका ही आदर-सत्कार करने लगे। उनमें भी त्रित मुनि अपने शुभ कर्म और वेदाध्ययनके द्वारा पिताके समान ही सम्मानित हुए।

एक दिनकी बात है, दोनों भाई एकत और द्वित यज्ञ और धनके लिये चिन्ता करने लगे। उन्होंने सोचा—'हमलोग त्रितको साथ लेकर यजमानोंका यज्ञ करावें और दक्षिणाके रूपमें बहुत-से पशु प्राप्त करें। फिर यज्ञ करके प्रसन्नतापूर्वक सोमपान करेंगे।' ऐसा विचार करके वे दोनों भाई यजमानोंके पास गये और उनसे विधिपूर्वक यज्ञ करवाकर उन्होंने बहुतेरे पशु प्राप्त किये। उन सबको लेकर वे पूर्व दिशाकी ओर चले। त्रित मुनि तो हर्षमें भरे हुए आगे-आगे चलते थे और एकत तथा द्वित पीछे रहकर पशुओंको हाँकते जाते थे।

पशुओंका वह महान् संग्रह देखकर एकत और द्वितके मनमें यह चिन्ता समायी कि 'कौन-सा उपाय हो, जिससे ये गौएँ त्रितको न मिलकर सब हमारे ही पास रह जायँ।' फिर वे परस्पर कहने लगे—'त्रित तो विद्वान् है, उसे और भी बहुतेरी मिल जायँगी। इन गौओंको तो हम दोनों ही मिलकर अन्यत्र हाँक ले चलें और त्रितको अलग कर दें। उसकी जहाँ इच्छा हो, चला जाय।'

इस प्रकार सलाह करते हुए वे मार्ग तै कर रहे थे। रात्रिका समय था, रास्तेमें एक भेड़िया खड़ा था। पास ही सरस्वतीके तटपर एक बहुत बड़ा कुँआ था। त्रित मुनिकी दृष्टि उस भेड़ियेपर पड़ी, उसे देखते ही वे भयभीत होकर भागे और दौड़ते-दौड़ते उसी कुएँमें जा पड़े। भीतरसे उन्होंने आर्तनाद किया, उनके दोनों भाइयोंने उसे सुना भी, परंतु उन्हें निकालनेकी चेष्टा नहीं की। भेड़ियेका भय तो था ही, लोभने भी उन्हें अपने चंगुलमें फँसा रखा था; इसलिये त्रितको कुएँमें ही छोड़कर वे चलते बने। उस कुएँमें पानीका नाम नहीं था, सिर्फ बालू भरा हुआ था, सब ओर घास और लताएँ बढ़ गयीं थीं, जिनसे उसका उपरी भाग ढका रहता था।

अपनेको कुएँमें गिरा देख त्रितको मृत्युका भय हुआ। उनकी सोमपानकी इच्छा अभी निवृत्त नहीं हुई थी। बुद्धिमान् तो वे थे ही, सोचने लगे, 'इसमें रहकर मैं सोमपान कैसे कर सकता हूँ?' इतनेमें कुएँके भीतर फैली हुई एक लतापर उनकी दृष्टि पड़ी; फिर उन्होंने बालूभरे कूपमें जलकी भावना करके संकल्पद्वारा अग्निकी स्थापना की। फिर अपनेमें होतृत्वकी और उस लतामें सोमकी भावना करके मन-ही-मन ऋग्, यजुः और सामका चिन्तन किया। इसके बाद कंकड़ोंमें शिलाकी भावना करते हुए उसपर पीसकर लतासे सोमरस निकाला। फिर पानीमें घीका संकल्प करके उन्होंने देवताओंके भाग नियत किये और सोमरस तैयार करके वेदमन्त्रोंका तुमुलनाद किया। महात्मा त्रितकी वह वेदध्वनि स्वर्गतक गूँज उठी।

देवपुरोहित बृहस्पतिजीको भी वह सुनायी पड़ी। उसे सुनकर उन्होंने सब देवताओंसे कहा—'त्रित मुनिका यज्ञ हो

रहा है, वहाँ हमलोगोंको चलना चाहिये। वे बड़े तपस्वी हैं, यदि नहीं चलेंगे तो क्रोधमें आकर दूसरे देवताओंकी सृष्टि कर डालेंगे। बृहस्पतिजीकी बात सुनकर सब देवता एक साथ हो जहाँ त्रित मुनिका यज्ञ हो रहा था, वहीं गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस कूपको देखा और यज्ञमें दीक्षित हुए त्रित मुनिका भी दर्शन किया। वे बड़े तेजस्वी दिखायी दे रहे थे। देवताओंने कहा—'हम अपना भाग लेने आये हैं।' त्रितने कहा—'देवताओ ! देखो, मैं किस दशामें पड़ा हुआ हूँ।' यह कहकर उन्होंने मन्त्र पढ़ते हुए विधिपूर्वक देवताओंको उनके भाग अर्पण किये।

इससे देवतालोग बहुत प्रसन्न हुए और मुनिसे बोले—'आप इच्छानुसार वर माँगिये।' मुनिने कहा—'इस कुएँसे मेरी रक्षा करो तथा जो मनुष्य इसमें आचमन करे, उसे सोमपान करनेवालेकी गति प्राप्त हो। राजन् ! त्रित मुनिके इतना कहते ही कुएँमें तरंगमालाओंसे सुशोभित सरस्वती नदी लहरा उठी, उसके जलके साथ ही उठकर वे कुएँसे बाहर निकल आये। देवताओंने 'तथास्तु' कहकर उनके माँगे हुए वरदानका अनुमोदन किया; तत्पश्चात् वे अपने-अपने धामको चले गये।

त्रित मुनि भी प्रसन्नतापूर्वक अपने घर आये। वहाँ अपने दोनों भाइयोंको देखकर उन्हें बड़ा क्रोध हुआ; इसलिये उन्होंने बहुत कठोर वचन सुनाकर उन दोनोंको शाप दिया—'तुमलोग पशुके लालचमें पड़कर जो मुझे कुएँमें ही छोड़कर भाग आये हो, यह महान् पाप किया है, इसके कारण तुम दोनों भयंकर भेड़िये हो जाओ और अपनी बड़ी-बड़ी डाढ़ें लिये इधर-उधर भटकते फिरो। तुमसे गवय, रीछ और बानर आदि पशुओंकी उत्पत्ति होगी।' उनके ऐसा कहते ही वे दोनों भाई भेड़ियेकी शकलमें दिखायी देने लगे।

बलदेवजीने नदीके भीतर स्थित उदपान तीर्थका दर्शन करके उसकी बड़ी प्रशंसा की, फिर उसके जलसे आचमन करके वहाँके ब्राह्मणोंकी पूजा की और उन्हें नाना प्रकारके दान दिये। तत्पश्चात् वे विनशन तीर्थमें गये।



विनशन आदि तीर्थोंका वर्णन, नैमिषीय तथा सप्तसारस्वत तीर्थोंका विशेष वृत्तान्त

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! वहाँ सरस्वती नदी जमीनके भीतर अदृश्य रूपसे बहती है, इसलिये ऋषिगण उसे 'विनशन तीर्थ, कहते हैं। बलदेवजी वहाँ आचमन करके आगे बढ़े और सरस्वतीके उत्तम तटपर सुभूमिक नामवाले तीर्थमें जा पहुँचे। वहाँ उन्हें बहुत-से गन्धर्व और अप्सराएँ दिखायी पड़ीं। उस पवित्र तीर्थमें स्नान तथा दान करके वे गन्धर्वतीर्थमें गये, जहाँ तपस्यामें लगे हुए विश्वावसु आदि प्रधान-प्रधान गन्धर्व गाना, बजाना तथा नृत्य कर रहे थे। उस तीर्थमें स्नान करके बलदेवजीने ब्राह्मणोंको सोना-चाँदी आदि विविध वस्तुओंका दान किया। फिर उन्हें भोजन कराकर बहुमूल्य वस्तुएँ दे उनकी कामनाएँ पूर्ण कीं।

तत्पश्चात् वे गर्गस्रोत नामक तीर्थमें गये। जहाँ वृद्ध गर्गने तपस्या करके अपने अन्तःकरणको पवित्र किया था तथा कालका ज्ञान, कालकी गति, नक्षत्रों और ग्रहोंकी गतिका उलट-फेर, भयंकर उत्पात और शुभ शकुन आदि ज्योतिः-शास्त्रके विषयोंकी पूर्ण जानकारी प्राप्त की थी। उन्हींके नामपर यह तीर्थ 'गर्गस्रोत' कहा जाने लगा। वहाँपर बलदेवजीने ब्रह्मणोंको विधिपूर्वक धन दान किया और नाना प्रकारके पदार्थ भोजन कराकर शङ्खतीर्थमें पदार्पण किया। वहाँ उन्होंने मेरुगिरिके समान एक बहुत ऊँचा शङ्ख देखा; जो अनेकों ऋषियोंसे सुसेवित था। वहीं सरस्वतीके तटपर एक बहुत बड़ा वृक्ष था, जहाँ हजारोंकी संख्यामें यक्ष, विद्याधर, राक्षस, पिसाच तथा सिद्ध रहते थे। वे सब अन्न त्याग करके व्रत और नियमोंका पालन करते हुए समय-समयपर उस वृक्षका फल ही खाया करते थे। वहाँ बलदेवजीने ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें बर्तन और वस्त्र दान किये। इसके बाद वे परम पवित्र द्वैतवनमें आये। उस वनमें रहनेवाले ऋषि-मुनियोंका दर्शन करके उन्होंने वहाँके तीर्थ-जलमें डुबकी लगायी और ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें विविध प्रकारके भोज्यपदार्थ दान किये। फिर वहाँसे चलकर वे सरस्वतीके दक्षिणभागमें थोड़ी ही दूरपर स्थित नागधन्वा तीर्थमें गये, जहाँ नित्य चौदह हजार ऋषि मौजूद रहते हैं। उसी स्थानपर देवताओंने वासुकिको सर्पोंका राजा बनाकर अभिषेक किया था। वहाँ किसीको भी साँपोंके डसनेका भय नहीं रहता। बलदेवजीने वहाँ भी ब्राह्मणोंको ढेर-के-ढेर रत्न दान किये। फिर वे पूर्व दिशाकी ओर चल दिये, जहाँ पग-पगपर लाखों तीर्थ प्रकट हुए हैं। उन सब तीर्थोंमें उन्होंने गोते लगाये और ऋषियोंके बताये अनुसार व्रत-नियमादिका पालन किया। फिर सब प्रकारके दान करके

वे अपने अभीष्ट मार्गकी ओर चल दिये। जाते-जाते वहाँ पहुँचे, जहाँ पश्चिमकी ओर बहनेवाली सरस्वती नदी नैमिषारण्यवासी मुनियोंके दर्शनकी इच्छासे पुनः पूर्व दिशाकी ओर लौट पड़ी है। उसे पीछेकी ओर लौटी देख बलदेवजीको बड़ा आश्चर्य हुआ।

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! सरस्वती नदी पूर्वकी ओर क्यों लौटी? बलभद्रजीके आश्चर्यका भी कोई कारण होना चाहिये। उस नदीके इस प्रकार पीछे लौटनेमें क्या हेतु है?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! सत्ययुगकी बात है, नैमिषारण्यके तपस्वी ऋषियोंने मिलकर बारह वर्षोंमें समाप्त होनेवाला एक महान् सत्र आरम्भ किया, उसमें सम्मिलित होनेके लिये बहुत-से ऋषि पधारे थे। जब सत्र समाप्त हुआ, उस समय भी तीर्थके कारण वहाँ बहुत-से ऋषि-महर्षियोंका शुभागमन हुआ। उनकी संख्या इतनी अधिक हो गयी कि सरस्वतीके दक्षिण किनारेके तीर्थ नगरोंके समान मनुष्योंसे भर गये। नदीके तीरपर नैमिषारण्यसे लेकर समन्तपञ्चकतक ऋषि-मुनि ठहरे हुए थे। वे वहाँ यज्ञ-होमादि करने लगे, उनके द्वारा उच्चारित वेद-मन्त्रोंके गम्भीर घोषसे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं। महाराज! उन ऋषियोंमें सुप्रसिद्ध बालखिल्य, अश्मकुट्ट,[1] दन्तोलूखली[2] और प्रसंख्यान[3] भी थे। कोई हवा पीकर रहता था कोई पानी। बहुतेरे तपस्वी पत्ते चबाकर रहते थे। सब लोग मिट्टीकी वेदीपर सोते और नाना प्रकारके नियमोंमें लगे रहते थे। वे सब ऋषि सरस्वतीके निकट आकर उसकी शोभा बढ़ाने लगे, किंतु वहाँ तीर्थभूमिमें उन्हें रहनेकी जगह नहीं दिखायी दी। इससे वे निराश एवं चिन्तित हो गये। उनकी यह अवस्था देख सरस्वतीने दयावश उन्हें दर्शन दिया। वह अनेकों कुञ्जोंका निर्माण करती हुई पीछे लौट पड़ी और ऋषियोंके लिये तीर्थ-भूमि बनाकर फिर पश्चिमकी ओर मुड़ गयी। उस महानदीने ऋषियोंके आगमनको सफल बनानेका निश्चय कर लिया था, इसीलिये यह अत्यन्त अद्भुत कार्य कर दिखाया। सरस्वतीका बनाया हुआ वह निकुञ्जोंका समुदाय ही 'नैमिषीय' नामसे विख्यात हुआ। वहाँके अनेकों कुञ्जों तथा पीछे लौटी हुई सरस्वती नदीको देखकर बलदेवजीको बड़ा विस्मय हुआ। वहाँ भी उन्होंने विधिवत् आचमन एवं स्नान किया और ब्राह्मणोंको भाँति-भाँतिके भोज्य-पदार्थ तथा बर्तन दान करके वे सप्तसारस्वत नामक तीर्थमें चले गये; जहाँ वायु, जल, फल अथवा पत्ता खाकर रहनेवाले बहुत-से महात्मा थे। उनके स्वाध्यायका गम्भीर घोष सब ओर गूँज रहा था। वहाँ अहिंसक एवं धर्मपरायण मनुष्य निवास करते थे।

जनमेजयने पूछा—मुनिवर! सप्तसारस्वत तीर्थ कैसे प्रकट हुआ? मैं इसका वृत्तान्त विधिपूर्वक सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! सरस्वती-नामसे प्रसिद्ध सात नदियाँ हैं, ये सारे जगत्में फैली हुई हैं। इनके विशेष नाम हैं—सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, मनोरमा, ओघवती, सुरेणु तथा विमलोदका। शक्तिशाली महात्माओंने भिन्न-भिन्न देशोंमें एक-एक सरस्वतीका आवाहन किया है। एक समयकी बात है, पुष्करतीर्थमें ब्रह्माजीका एक महान् यज्ञ हो रहा था, यज्ञशालामें सिद्ध ब्राह्मण विराजमान थे। पुण्याह-घोष हो रहा था, सब ओर वेद-मन्त्रोंकी ध्वनि फैल रही थी, समस्त देवता यज्ञ-कार्यमें लगे हुए थे, स्वयं ब्रह्माजीने यज्ञकी दीक्षा ली थी। उनके यज्ञ करते समय सबकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो रही थीं। धर्म और अर्थमें कुशल मनुष्य मनमें जिस वस्तुका चिन्तन करते थे, वही उन्हें प्राप्त हो जाती थी। उस समय ऋषियोंने पितामहसे कहा—'यह यज्ञ अधिक गुणोंसे सम्पन्न नहीं दिखायी देता; क्योंकि अभीतक यहाँ सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीका ही प्रादुर्भाव नहीं हुआ।' यह सुनकर ब्रह्माजीने सरस्वतीका स्मरण किया। उनके आवाहन करते ही 'सुप्रभा' नामवाली सरस्वती पुष्कर तीर्थमें प्रकट हो गयी। पितामहके सम्मानार्थ वहाँ सरस्वती नदीको प्रकट देख मुनियोंने उस यज्ञकी बड़ी प्रशंसा की।

इसी तरह नैमिषारण्यमें भी वेदके स्वाध्यायमें लगे रहनेवाले मुनियोंने सरस्वतीका आवाहन किया, उनके चिन्तन करते ही वहाँ 'काञ्चनाक्षी नामवाली सरस्वती नदी प्रकट हो गयी। ऐसे ही, जब राजा गय यज्ञ कर रहे थे, उस समय उनके यहाँ भी सरस्वतीका आवाहन किया गया था। वहाँ 'विशाला' नामवाली सरस्वतीका आविर्भाव हुआ। उसकी गति बड़ी तेज है। यह हिमालयकी घाटीसे निकली हुई है। एक समयकी बात है, उत्तर कोसल प्रान्तमें उद्दालक मुनि यज्ञ कर रहे थे, उन्होंने भी सरस्वतीका स्मरण किया। ऋषिके कारण वह नदी उस देशमें भी प्रकट हुई, जिसका मुनियोंने पूजन किया। वह 'मनोरमा' नामसे विख्यात हुई; क्योंकि ऋषियोंने पहले उसका अपने मनमें ही स्मरण किया था।

१.पत्थरसे फोड़े हुए फलका भोजन करनेवाले।

२.दाँतसे ही ओखलीका काम लेनेवाले अर्थात् ओखलीमें कूटकर नहीं, दाँतोंसे ही चबाकर खानेवाले।

३.गिने हुए फल खानेवाले।

'सुरेणु' नामवाली सरस्वती नदीका प्रादुर्भाव ऋषभ द्वीपमें हुआ। जिस समय राजा कुरु कुरुक्षेत्रमें यज्ञ कर रहे थे, उसी समय वहाँ सरस्वती प्रकट हुई। गङ्गाद्वारमें यज्ञ करते समय दक्ष प्रजापतिने जब सरस्वतीका स्मरण किया था तो वहाँ भी सुरेणु ही प्रकट हुई। इसी प्रकार महात्मा वसिष्ठजी भी एक बार कुरुक्षेत्रमें यज्ञ कर रहे थे, वहाँपर उन्होंने सरस्वतीका आवाहन किया; उनके आवाहनसे 'ओघवती'का प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्माजीने एक बार हिमालयपर्वतपर भी यज्ञ किया था, वहाँ जब उन्होंने सरस्वतीका स्मरण किया तो 'विमलोदका' प्रकट हुई। इन सातों सरस्वतियोंका जल जहाँ एकत्र हुआ है, उसे सप्तसारस्वत कहते हैं। इस प्रकार मैंने तुमसे सात सरस्वतियोंके नाम और वृत्तान्त बताये। इन्हींसे परमपवित्र सप्तसारस्वत तीर्थकी प्रसिद्धि हुई है।



रुषङ्गुके आश्रमपर आर्ष्टिषेण आदि तथा विश्वामित्रकी तपस्या, यायाततीर्थकी महिमा और अरुणामें स्नान करनेसे इन्द्रका उद्धार

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! बलरामजीने उस तीर्थमें आश्रमवासी ऋषियोंकी पूजा करनेके पश्चात् एक रात निवास किया। उन्होंने ब्राह्मणोंको दान दिये और स्वयं वहाँ रहकर रातभर उपवास किया। दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर तीर्थके जलमें स्नान किया और सब ऋषि-मुनियोंकी आज्ञा लेकर वे औशनस तीर्थमें जा पहुँचे। उसे कपालमोचन तीर्थ भी कहते हैं। पूर्वकालमें भगवान् रामने यहाँ एक राक्षसको मारकर उसका सिर दूर फेंका था, वह सिर (कपाल) महोदर मुनिकी जाँघमें जा लगा था। वहींपर उस मुनिने मुक्ति पायी थी तथा वहीं शुक्राचार्यजीने तप किया था, जिससे उनके हृदयमें सम्पूर्ण नीति-विद्या स्फुरित हुई थी। बलरामजीने उस तीर्थमें पहुँचकर ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक धनका दान किया।

तत्पश्चात् वे रुषङ्गुके आश्रममें गये, जहाँ आर्ष्टिषेणने घोर तपस्याकी थी। रुषङ्गु मुनिने यहीं अपने देहका त्याग किया था। उनकी कथा इस प्रकार है—रुषङ्गु एक बूढ़े ब्राह्मण थे, वे सदा तपस्यामें ही लगे रहते थे। एक दिन बहुत सोच-विचारकर उन्होंने अपना देह त्यागनेका निश्चय किया। उस समय उन्होंने अपने सब पुत्रोंको बुलाकर कहा—'मुझे पृथूदक तीर्थमें ले चलो।' उनके पुत्र भी बड़े तपस्वी थे, वे अपने पिताको अत्यन्त वृद्ध जानकर सरस्वती नदीके पृथूदक तीर्थपर ले गये। वहाँ पहुँचकर रुषङ्गुने तीर्थके जलमें विधिवत् स्नान किया और अपने पुत्रोंको बताया कि 'सरस्वती नदीके उत्तर किनारेपर जो यह पृथूदक तीर्थ है, इसमें स्नान करके गायत्री आदिका जप करते हुए जो पुरुष प्राण-त्याग करेगा, उसे पुनः जन्म-मरणका कष्ट नहीं भोगना पड़ेगा।' बलरामजीने उस पवित्र तीर्थमें स्नान करके ब्राह्मणोंको दान दिये। इसके बाद उस स्थानपर पदार्पण किया जहाँ लोकपितामह ब्रह्माजीने लोकोंकी सृष्टि प्रारम्भ की थी तथा जहाँ आर्ष्टिषेण, सिन्धुद्वीप, देवापि और विश्वामित्र आदि राजर्षियोंने महान् तप करके ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था।

जनमेजयने पूछा—मुनिवर! आर्ष्टिषेणने किस प्रकार महान् तप किया? सिन्धुद्वीप, देवापि तथा विश्वामित्रने भी कैसे ब्राह्मणत्व प्राप्त किया? यह सब बातें मुझे बताइये?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! सत्ययुगकी बात है, एक आर्ष्टिषेण नामवाले ब्राह्मण थे, जो गुरुके घरमें रहकर सदा वेदोंके अध्ययनमें लगे रहते थे। यद्यपि उन्होंने बहुत अधिक समयतक गुरुकुलमें निवास किया तथापि न तो उनकी विद्या समाप्त हुई और न उन्हें वेदोंका ही पूरा अभ्यास हुआ। इससे वे मन-ही-मन बहुत दुःखी हुए और कठोर तपस्यामें लग गये। उस तपके प्रभावसे उन्हें वेदोंका उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ। अब वे विद्वान् होनेके साथ ही सिद्ध हो गये। उन्होंने उस तीर्थमें तीन वरदान दिये—'आजसे जो मनुष्य सरस्वती नदीके इस तीर्थमें डुबकी लगायेगा, उसे अश्वमेध यज्ञका पूरा-पूरा फल मिलेगा, यहाँ सर्पोंका भय नहीं रहेगा तथा थोड़े समयतक भी इस तीर्थका सेवन करनेसे महान् फलकी प्राप्ति होगी।'

इस प्रकार रुषङ्गुके आश्रमपर ही आर्ष्टिषेण मुनिको सिद्धि प्राप्त हुई थी। फिर वहीं राजर्षि सिन्धुद्वीप एवं देवापिने तप करके ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था तथा सदा तपमें लगे रहनेवाले विश्वामित्रजीको भी वहीं ब्राह्मणत्व प्राप्त हुआ था। इसकी कथा यों है—पृथ्वीपर एक 'गाधि' नामसे विख्यात महान् राजा राज्य करते थे। विश्वामित्र उन्हींके पुत्र थे। कहते हैं, राजा गाधि बड़े योगी थे, उन्होंने अपने

पुत्र विश्वामित्रको राज्य देकर स्वयं देह त्याग देनेका विचार किया। उस समय प्रजाजनोंने राजाको प्रणाम करके कहा—'महाराज ! आप वनमें न जाइये, हमारी महान् भयसे रक्षा कीजिये।'

प्रजाके ऐसा कहनेपर गाधिने कहा—'मेरा पुत्र सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करनेवाला होगा।' यों कहकर उन्होंने विश्वामित्रको राज्यसिंहासनपर बिठा दिया और स्वयं शरीर त्याग कर स्वर्गकी राह ली। विश्वामित्र राजा तो हुए, किंतु बहुत यत्न करनेपर भी वे पृथ्वीकी पूर्णतः रक्षा न कर सके। एक दिन उन्होंने सुना कि प्रजापर राक्षसोंका महान् भय बढ़ा हुआ है; अतः वे चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर राजधानीसे निकल पड़े। बहुत दूरतक रास्ता तै कर लेनेके पश्चात् वे वसिष्ठ मुनिके आश्रमपर पहुँचे। वहाँ उनके सैनिकोंने नाना प्रकारके अत्याचार किये। इतनेमें वसिष्ठ मुनि आश्रमपर आये। उन्होंने देखा कि यह महान् वन सब ओरसे उजाड़ किया जा रहा है, तो अपनी कामधेनु गौसे कहा—'तू भयंकर भीलोंको उत्पन्न कर।' ऋषिकी आज्ञा पाकर धेनुने भयंकर मनुष्योंको प्रकट किया, जिन्होंने विश्वामित्रकी सेनापर धावा करके उसे चारों ओर भगा दिया। विश्वामित्रने जब सुना कि मेरी सेना भाग गयी तो उन्होंने तपस्याको ही सबसे बढ़कर माना और मन-ही-मन तप करनेका निश्चय किया।

तत्पश्चात् वे सरस्वतीके उपर्युक्त तीर्थमें ही आये और चित्तको एकाग्र करके व्रत और नियमोंका पालन करते हुए शरीरको सुखाने लगे। कुछ कालतक जल पीकर रहे, फिर वायुका आहार करने लगे, इसके बाद पत्ते चबाकर रहने लगे। इतना ही नहीं, वे खुले मैदानमें जमीनपर सोने तथा और भी बहुत-से नियमोंका पालन करने लगे।

तदनन्तर, देवताओंने उनके व्रतमें विघ्न डालना आरम्भ किया, किंतु किसी तरह उनका मन न डिग सका। वे बहुत प्रयत्न करके अनेकों प्रकारके तप करने लगे। उस समय वे सूर्यके समान तेजस्वी दिखायी देने लगे। उन्हें ऐसी कठोर तपस्यामें लगे देख ब्रह्माजी आये और उन्हें वर माँगनेके लिये कहा। विश्वामित्रने यही वर माँगा कि 'मैं ब्राह्मण हो जाऊँ।' ब्रह्माजीने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस प्रकार महायशस्वी विश्वामित्र कठोर तपस्याके द्वारा ब्राह्मणत्व पाकर कृतार्थ हो गये।

उस तीर्थमें पहुँचकर बलरामजीने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें बहुत-सा धन, दूध देनेवाली गौएँ, वाहन, बिछौने, वस्त्र, आभूषण तथा खाने-पीनेकी सुन्दर वस्तुएँ दान कीं। इसके बाद वे बक और दाल्भ्य मुनिके आश्रममें गये, जहाँ वेदमन्त्रोंकी ध्वनि गूँजती रहती है। वहाँ पहुँचकर उन्होंने ब्राह्मणोंको रथ, हीरे, माणिक्य तथा अन्न-धन आदि दान किये। वहाँसे यायात-तीर्थमें गये। जहाँ राजा ययातिके यज्ञमें सरस्वती नदीने घी और दूधकी धारा बहायी थी। वहीं यज्ञ करके ययातिने ऊपरके लोकोंमें गमन किया था। सरस्वतीने राजा ययातिकी उदारता तथा अपने प्रति उनकी सनातन भक्ति देखकर उनके यज्ञमें आये हुए ब्राह्मणोंकी सारी कामनाएँ पूर्ण की थीं। राजाका यज्ञवैभव देखकर देवता और गन्धर्व बहुत प्रसन्न थे, परंतु मनुष्योंको बड़ा आश्चर्य होता था। उस तीर्थमें भी नाना प्रकारके दान करके बलरामजी वसिष्ठापवाह तीर्थमें गये। वहीं स्थाणु तीर्थ है, जहाँ वसिष्ठ और विश्वामित्रने तपस्या की थी तथा जहाँ देवताओंने कार्तिकेयजीका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया था। इसी तीर्थमें स्नान करनेसे देवराज इन्द्रको ब्रह्महत्याके पापसे छुटकारा मिला था।

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! इन्द्रको ब्रह्महत्याका पाप कैसे लगा ? तथा इस तीर्थमें स्नान करके उन्हें उससे छुटकारा किस तरह मिला ?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! प्राचीन कालकी बात है, नमुचि इन्द्रके भयसे डरकर सूर्यकी किरणोंमें समा गया था। तब इन्द्रने उससे मित्रता कर ली और यह प्रतिज्ञा की कि 'मैं न तो तुम्हें गीले हथियारसे मारूँगा, न सूखेसे; न दिनमें मारूँगा, न रातमें। यह बात मैं सत्यकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ।' इस प्रकारकी प्रतिज्ञा कर लेनेपर एक दिन जब कि चारों ओर कुहासा छा रहा था, इन्द्रने पानीके फेनसे नमुचिका सिर काट लिया। वह कटा हुआ मस्तक इन्द्रके पीछे-पीछे गया और बोला—'मित्रकी हत्या करनेवाले पापी ! कहाँ जाता है ?' इस प्रकार जब उस मस्तकने बारंबार टोका तो इन्द्र घबरा उठे। उन्होंने ब्रह्माजीके पास जाकर यह सब समाचार सुनाया। सुनकर ब्रह्माजीने कहा—'इन्द्र ! तुम अरुणा नदीके तटपर जाओ। पूर्वकालमें सरस्वतीने गुप्तरूपसे जाकर अरुणाको अपने जलसे पूर्ण किया था, अतः वह अरुणा तथा सरस्वतीका पवित्र संगम है। वहाँ जाकर यज्ञ और दान करो। उसमें गोता लगानेसे इस भयंकर पापसे मुक्त हो जाओगे।'

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर इन्द्र सरस्वतीके तटवर्ती निकुञ्जमें गये और वहाँ यज्ञ करके उन्होंने अरुणामें डुबकी लगायी। ऐसा करनेसे वे ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो गये और अत्यन्त प्रसन्न होकर स्वर्गमें चले गये। नमुचिका वह सिर भी अरुणामें गोता लगाकर अक्षय लोकोंमें जा पहुँचा।

बलभद्रजीने उस तीर्थमें स्नान करके नाना प्रकारके दान

किये और वहाँसे सोम तीर्थकी ओर यात्रा की। पूर्वकालमें सोमने वहाँ राजसूय यज्ञ किया था, जिसमें अत्रि मुनि होता बने थे। उस यज्ञकी समाप्ति हो जानेपर दानव, दैत्य तथा राक्षसोंका देवताओंके साथ भयंकर युद्ध हुआ, जिसे तारक-संग्राम कहते हैं, उसमें स्वामी कार्तिकेयने तारकासुरको मारा था। उसी तीर्थमें कार्तिकेयजी देवसेनाके सेनापति बनाये गये तथा सदाके लिये उन्होंने वहाँ अपना निवास बना लिया। वहीं वरुणका भी जलके राज्यपर अभिषेक हुआ था। बलदेवजीने उस तीर्थमें स्नान करके स्वामी कार्तिकेयका पूजन किया और ब्राह्मणोंको सुवर्ण, वस्त्र तथा आभूषण दान किये। फिर एक रात वहाँ निवास करके उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।



सोमतीर्थ, अग्नितीर्थ और बदरपाचनतीर्थकी महिमा

जनमेजयने पूछा—मुनिवर ! देवताओंने सोमतीर्थमें वरुणका किस तरह अभिषेक किया ? इसकी कथा मुझे सुनाइये।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! पहले सत्ययुगकी बात है, समस्त देवता वरुणके पास जाकर बोले—'भगवन् ! देवराज इन्द्र जैसे सदा हमलोगोंकी भयसे रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप भी सब सरिताओंका पालन कीजिये। समुद्रमें आपका निवास होगा और समुद्र सदा आपके अधीन रहेगा। चन्द्रमाके घटने-बढ़नेके साथ ही आपकी भी हानि और वृद्धि होगी।'

वरुणने 'एवमस्तु' कहकर देवताओंकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। फिर सबने एकत्र होकर उनको जलका राजा बनाया और उनका अभिषेक करके पूजन किया। तत्पश्चात् वे अपने-अपने धामको चले गये। फिर इन्द्र जैसे देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार वरुण भी नदी, नद, सरोवर तथा समुद्रोंकी रक्षा करने लगे।

उस तीर्थमें पहुँचकर बलरामजीने स्नान किया और ब्राह्मणोंको दान देकर वहाँसे वे अग्नितीर्थमें गये। वहीं शमीके भीतर छिप जानेके कारण अग्निदेव किसीको दिखायी नहीं पड़ते थे। उस समय जब संसारका प्रकाश नष्ट हो गया तो सब देवता ब्रह्माजीके पास उपस्थित हुए और बोले—'प्रभो ! भगवान् अग्निदेव नहीं दिखायी पड़ते, इसका क्या कारण है ? कहीं ऐसा न हो कि अग्निके अभावमें सम्पूर्ण प्राणियोंका नाश हो जाय। अतः आप अग्निदेवको प्रकट कीजिये।'

जनमेजयने पूछा—सम्पूर्ण जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले भगवान् अग्नि अदृश्य क्यों हो गये थे ? और देवताओंने उनका पता किस तरह लगाया ? यह सब मुझे ठीक-ठीक बताइये।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! महर्षि भृगुने अग्निदेवको शाप दे दिया था, इससे अत्यन्त भयभीत होकर वे शमीके भीतर छिप गये। उनके अदृश्य हो जानेपर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंने अत्यन्त दुःखी होकर उनकी खोज आरम्भ की। खोजते-खोजते अग्नितीर्थमें आकर उन्होंने अग्निदेवको शमीके भीतर छिपे देखा। उन्हें पाकर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। अग्निदेव भी ब्रह्मवादी भृगुके शापके अनुसार सर्वभक्षी हो गये। फिर उसी तीर्थमें स्नान करनेसे उन्हें ब्रह्मत्वकी प्राप्ति हुई। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने भी सब देवताओंके साथ अग्नि-तीर्थमें डुबकी लगायी थी तथा यहाँ भिन्न-भिन्न देवताओंके तीर्थोंका उद्घाटन किया था।

बलरामजी वहाँ स्नान-दान करके कौबेर तीर्थमें गये, जहाँ बड़ी भारी तपस्या करके कुबेर धनके स्वामी हुए थे। वहाँ स्नान करके बलरामजीने ब्राह्मणोंको धन दान किया, इसके बाद कुबेरवनमें जाकर उस स्थानका दर्शन किया, जहाँ कुबेरने तप किया था। यक्षराजने वहाँ बहुत-से वरदान प्राप्त किये थे। धनका प्रभुत्व, शंकरजीके साथ मित्रता, देवत्व, लोकपालत्व और नलकूबर-जैसा पुत्र—यह सब कुछ कुबेरने वहीं तपस्या करके पाया था। वहीं मरुद्‌गणोंने एकत्रित होकर कुबेरका लोकपालके पदपर अभिषेक किया और उन्हें यक्षोंका राज्य तथा हंसोंसे जुता हुआ पुष्पकविमान प्रदान किया। बलदेवजीने वहाँ भी स्नान करके बहुत कुछ दान किया। इसके बाद वे बदरपाचन नामक तीर्थमें गये। वहाँ पूर्वकालमें भरद्वाजकी अनुपम रूपवती कन्या श्रुतावतीने इन्द्रको अपना पति बनानेके लिये उग्र तपस्या की थी। उसने ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए बहुत-से कठोर नियमोंका पालन किया था। उसका सदाचार, तप और भक्ति देखकर इन्द्र उसके ऊपर प्रसन्न हो गये तथा उसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर उन्होंने कहा—'शुभे ! मैं तुम्हारी तपस्या, नियमपालन और भक्तिसे बहुत संतुष्ट हूँ, इसलिये तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा और यह शरीर त्याग कर तुम मेरे साथ स्वर्गलोकमें निवास करोगी।

महाभागे ! इस पवित्र तीर्थमें अरुन्धतीसहित सप्तर्षि रहा करते थे। एक दिन वे अरुन्धतीको यहाँ अकेली छोड़कर स्वयं जीविकानिर्वाहके लिये फल-मूल लानेको हिमालयपर चले गये। वहाँ उस समय बारह वर्षोंके लिये वर्षा रुक गयी थी। जब ऋषियोंको वहाँ कुछ भी नहीं मिला तो वे आश्रम बनाकर रहने लगे। इधर, कल्याणी अरुन्धती निरन्तर तपस्यामें संलग्न हो गयी। उसे कठोर नियमका पालन करती देख वरदायक भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हो ब्राह्मणका रूप बनाकर वहाँ आये और बोले—'कल्याणी, मैं भिक्षा चाहता हूँ।' अरुन्धतीने कहा—'विप्रवर ! अन्न तो समाप्त हो गया है, सिर्फ थोड़े-से बेर रखे हैं, इन्हें खा लीजिये।' महादेवजीने कहा—'शुभे ! इन फलोंको आगपर पका दो।' यह सुनकर अरुन्धती ब्राह्मण-देवताका प्रिय करनेके लिये फलोंको प्रज्वलित अग्निपर रखकर पकाने लगी। उस समय उसे परम पवित्र, मनोहर एवं दिव्य कथाएँ सुनायी देने लगीं। वह बिना खाये ही बेर पकाती और कथा सुनती रही; इतनेमें बारह वर्षोंकी वह भयंकर अनावृष्टि समाप्त हो गयी। वह दारुण समय उसे एक दिनके समान ही प्रतीत हुआ। तदनन्तर, सप्तर्षि भी फल लेकर वहाँ आ पहुँचे। तब भगवान्ने प्रसन्न होकर कहा—'धर्मको जाननेवाली देवी, अब तुम पहलेकी ही भाँति इन ऋषियोंकी सेवा करो। तुम्हारा तप और नियम देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है।'

'यह कहकर भगवान् शंकरने अपना स्वरूप प्रकट किया और ऋषियोंसे उसके महत्त्वपूर्ण आचरणका वर्णन करते हुए कहा—'मुनियो ! तुमने हिमालयकी घाटीमें रहकर जिस तपका उपार्जन किया है और इस अरुन्धतीने यहीं रहकर जो तप किया है, इन दोनोंमें कोई समानता नहीं है। अरुन्धतीका ही तप श्रेष्ठ है। इसने बारह वर्षोंतक बिना भोजन किये बेर पकाते हुए दुष्कर तपका अनुष्ठान किया है।' इसके बाद उन्होंने पुनः अरुन्धतीसे कहा—'कल्याणि ! तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, वरदान माँग लो।' तब वह बोली—'भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हैं तो यह स्थान 'बदरपाचन' नामक तीर्थ हो जाय और सिद्धों तथा देवर्षियोंको यह बहुत प्रिय जान पड़े। जो मनुष्य इस तीर्थमें पवित्रतापूर्वक तीन रात्रि निवास तथा उपवास करे, उसे बारह वर्षोंतक तीर्थसेवन एवं उपवास करनेका फल प्राप्त हो।'

भगवान् शंकरने 'एवमस्तु' कहकर उसके वरका अनुमोदन किया। फिर सप्तर्षियोंद्वारा की हुई स्तुति सुनकर वे अपने धामको चले गये। अरुन्धती इतने वर्षोंतक भूख-प्यास सहकर भी न तो थकी और न उसके बदनपर उदासी ही छायी। उसको इस अवस्थामें देख ऋषियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ।

'इस प्रकार अरुन्धतीने यहाँ परम सिद्धि प्राप्त की थी, तुमने भी मेरे लिये अरुन्धतीकी ही भाँति उत्तम व्रतका पालन किया है। मैं तुम्हारे नियमसे संतुष्ट होकर इस तीर्थके सम्बन्धमें एक विशेष वरदान देता हूँ—जो मनुष्य इस तीर्थमें स्नान करके एकाग्रचित्त हो एक रात भी यहाँ निवास करेगा, वह देह त्यागनेके पश्चात् दुर्लभ लोकोंमें जायगा।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—पवित्र चरित्रवाली श्रुतावतीसे ऐसा कहकर इन्द्र स्वर्गको चले गये। उनके जाते ही वहाँ फूलोंकी वर्षा होने लगी। देवताओंकी दुन्दुभी बज उठी। सुगन्धित हवा चलने लगी। उसी समय श्रुतावती भी शरीर त्याग कर स्वर्ग चली गयी और वहाँ इन्द्रकी पत्नीके रूपमें रहने लगी। बलभद्रजी उस बदरपाचनतीर्थमें स्नान करके ब्राह्मणोंको धन दानकर इन्द्रतीर्थमें चले गये।



इन्द्रतीर्थ और आदित्यतीर्थकी महिमा, देवल-जैगीषव्य मुनि तथा वृद्धकन्याक्षेत्रकी कथा

वैशम्पायनजी कहते हैं—वहाँ जाकर बलरामजीने विधिवत् स्नान किया और ब्राह्मणोंको धन तथा रत्न दान दिये। इन्द्रतीर्थमें देवराजने सौ यज्ञ किये थे, जिनमें बृहस्पतिजीको बहुत-सा धन दिया गया था। अनेकों प्रकारकी दक्षिणाएँ बाँटी गयी थीं। इस प्रकार सौ यज्ञ पूर्ण करनेके कारण इन्द्र 'शतक्रतु' के नामसे विख्यात हुए और उन्हींके नामपर वह परम पवित्र, कल्याणकारी एवं सनातन तीर्थ 'इन्द्रतीर्थ' कहलाने लगा। वहाँ स्नान-दान करनेके पश्चात् बलरामजी रामतीर्थमें पहुँचे, जहाँ परशुरामजीने अनेकों बार क्षत्रियोंका संहार करके इस पृथ्वीपर विजय पायी और कश्यप मुनिको आचार्य बनाकर वाजपेय तथा सौ अश्वमेध यज्ञ किये। उन्होंने समुद्रसहित सम्पूर्ण पृथ्वी ही दक्षिणाके रूपमें दे दी थी तथा और भी नाना प्रकारके दान देकर वे वनमें चले गये थे। उस पावन तीर्थमें रहनेवाले मुनियोंको सादर प्रणाम करके बलरामजी यमुनातीर्थमें आये, जहाँ वरुणने राजसूय यज्ञ किया था। वहाँ ऋषियोंकी पूजा करके उन्होंने सबको संतुष्ट किया तथा दूसरे याचकोंको भी उनके इच्छानुसार दान दिया। इसके बाद वे आदित्यतीर्थमें

गये, जहाँ भगवान् सूर्यने परमात्माका यजन करके ज्योतियोंका आधिपत्य तथा अनुपम प्रभाव प्राप्त किया था। इनके सिवा, इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता, विश्वेदेव, मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सरा, द्वैपायन व्यास, शुकदेव तथा दूसरे अनेकों योगसिद्ध महात्माओंने भी सरस्वतीके उस पवित्र तीर्थमें सिद्धि प्राप्त की है।

पूर्वकालमें वहाँ देवल मुनि गृहस्थ-धर्मका आश्रय लेकर रहते थे। वे बड़े धर्मात्मा तथा तपस्वी थे। मन, वाणी तथा क्रियासे भी समस्त जीवोंके प्रति समान भाव रखते थे। क्रोध तो उन्हें छू नहीं गया था। उनकी कोई निन्दा करे या स्तुति, वे सबको समान समझते थे, अनुकूल या प्रतिकूल वस्तुकी प्राप्ति होनेपर उनकी वृत्ति एक-सी ही रहती थी। वे धर्मराजके समान समदर्शी थे। सुवर्ण और मिट्टीके ढेलेको एक ही नजरसे देखते थे। देवता, अतिथि तथा ब्राह्मणोंकी सदा पूजा किया करते और प्रतिदिन ब्रह्मचर्यकी रक्षा करते हुए धर्माचरणमें संलग्न रहते थे।

एक दिन जैगीषव्य मुनि उस तीर्थमें आये और अपनी योगशक्तिसे भिक्षुकका वेष बनाकर देवलके आश्रमपर रहने लगे। महर्षि जैगीषव्य सिद्धिप्राप्त योगी थे और सदा योगमें ही उनकी स्थिति रहती थी। यद्यपि जैगीषव्य देवलके आश्रमपर ही रहते थे, तो भी देवल मुनि उन्हें दिखाकर योग-साधना नहीं करते थे। इस तरह दोनोंको वहाँ रहते हुए बहुत समय बीत गया।

तदनन्तर, कुछ कालतक ऐसा हुआ कि जैगीषव्य मुनि सदा नहीं दिखायी देते, केवल भोजनके समय ही देवलके आश्रमपर उपस्थित होते थे। उस समय देवल अपनी शक्तिके अनुसार शास्त्रीय विधिसे उनका पूजन एवं आतिथ्य-सत्कार करते थे। यह नियम भी बहुत वर्षोंतक चला। एक दिन जैगीषव्य मुनिको देखकर देवलके मनमें बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा 'इनकी पूजा करते-करते कितने ही वर्ष बीत गये;' मगर ये भिक्षु आजतक मुझसे एक बात भी नहीं बोले।

यही सोचते हुए वे कलश हाथमें ले आकाशमार्गसे समुद्रतटकी ओर चल दिये। वहाँ जाकर देखा तो भिक्षु महोदय पहलेसे ही समुद्रतटपर मौजूद थे। अब तो उन्हें चिन्ताके साथ-ही-साथ आश्चर्य भी हुआ। सोचने लगे—'ये पहले ही कैसे आ पहुँचे? इन्होंने तो स्नान भी समाप्त कर लिया है!' तदनन्तर, महर्षि देवलने भी विधिवत् स्नान करके गायत्री-मन्त्रका जप किया। जब नित्य-नियम समाप्त हो गया तो वे पुनः आश्रमकी ओर चले। वहाँ पहुँचते ही उन्हें जैगीषव्य मुनि बैठे दिखायी पड़े। अब देवल मुनि पुनः विचारमें पड़ गये—'मैंने तो इन्हें समुद्रतटपर देखा है, ये आश्रमपर कब और कैसे आ गये।'

यह सोचकर उनके मनमें जैगीषव्यको ठीक-ठीक जाननेकी इच्छा हुई, फिर तो वे उस आश्रमसे आकाशकी ओर उड़े। ऊपर जाकर उन्हें बहुत-से अन्तरिक्षचारी सिद्धोंका दर्शन हुआ, साथ ही, उन सिद्धोंके द्वारा पूजे जाते हुए जैगीषव्य मुनि भी दिखायी पड़े। इसके बाद देवलने उन्हें स्वर्गलोक जाते देखा, वहाँसे पितृलोकमें, पितृलोकसे यमलोकमें, वहाँसे चन्द्रलोकमें तथा चन्द्रलोकसे एकान्तमें यज्ञ करनेवाले अग्निहोत्रियोंके उत्तम लोकोंमें उन्हें गमन करते देखा। इसी तरह दर्श-पौर्णमास याग करनेवालोंके लोकोंमें तथा अन्य बहुतेरे लोकोंमें भी वे जाते दिखायी पड़े। रुद्रों, वसुओं तथा बृहस्पतिके स्थानपर भी वे पहुँचे पाये गये।

तत्पश्चात्, वे पतिव्रताओंके लोकोंमें जाकर अन्तर्धान हो गये। फिर देवल मुनि उन्हें न देख सके। तब उन्होंने जैगीषव्यके प्रभाव, व्रत और अनुपम योगसिद्धिके विषयमें विचार करते हुए सिद्धोंसे पूछा—'अब मुझे महान् तेजस्वी जैगीषव्य नहीं दिखायी देते, आपलोग उनका पता बतावें।' सिद्धोंने कहा—'देवल! जैगीषव्य ब्रह्मलोकमें चले गये, वहाँ तुम्हारी गति नहीं है।'

सिद्धोंकी बात सुनकर देवल मुनि क्रमशः नीचेके लोकोंमें होते हुए भूमिपर उतरने लगे। जब अपने आश्रमपर पहुँचे तो वहाँ पहलेसे ही बैठे हुए जैगीषव्यपर उनकी दृष्टि पड़ी। वे उनके तप और योगका प्रभाव देख चुके थे, इसलिये अपनी धर्मयुक्त शुद्ध बुद्धिसे कुछ देर विचार किया; फिर विनयावनत होकर वे मुनिकी शरणमें गये और बोले—'भगवन्! मैं मोक्षधर्मका आश्रय लेना चाहता हूँ।' उनकी बात सुनकर और संन्यास लेनेका विचार जानकर जैगीषव्यने उन्हें ज्ञानोपदेश किया; साथ ही योगकी विधि बताकर शास्त्रके अनुसार कर्तव्य-अकर्तव्यका भी उपदेश दिया।

मुनिवर देवलने भी गृहस्थ-धर्मका परित्याग करके मोक्ष-धर्ममें प्रीति लगायी और परा सिद्धि एवं परम योगको प्राप्त किया। राजा जनमेजय! जैगीषव्य और देवल दोनों महात्माओंका जहाँ आश्रम था, वह उत्तम स्थान ही तीर्थ बन गया। बलरामजीने उस तीर्थमें आचमन करके ब्राह्मणोंको दान किया और अन्य धार्मिक कार्य सम्पन्न करके वे वहाँसे चलकर सारस्वत तीर्थमें पहुँचे, जहाँ पूर्वकालमें जब बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं हुई थी, उस समय सरस्वती-पुत्र सारस्वत मुनिने ब्राह्मणोंको वेद पढ़ाया था। सारस्वतमुनिके नामसे प्रसिद्ध हुए उस तीर्थमें धन दान करके बलरामजी वहाँसे आगे बढ़े और जहाँ वृद्धकन्याने तप किया था, उस प्रसिद्ध तीर्थमें जा पहुँचे।

जनमेजयने पूछा—मुने ! पूर्वकालमें कुमारीने किस उद्देश्यसे तप किया था और उस तपमें किन नियमोंका पालन किया गया था ? जिस प्रकार वह तपस्यामें प्रवृत्त हुई, उसका सारा वृत्तान्त सुनाइये।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! प्राचीन कालमें एक 'कुणिगर्ग' नामक महान् यशस्वी ऋषि हो गये हैं; उन्होंने बड़ी तपस्या करके अपने मनसे ही एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न की। पुत्रीको देखकर मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई। कुछ कालके पश्चात् वे इस शरीरका त्याग करके स्वर्गमें चले गये। अब आश्रमका भार उस कन्याके ही ऊपर आ पड़ा। वह बहुत क्लेश उठाकर उग्र तपस्यामें संलग्न हुई और निरन्तर उपवास करती हुई पितरों तथा देवताओंकी पूजा करने लगी। उसे उग्र तपस्या करते बहुत समय बीत गया। वह बूढ़ी और दुबली हो गयी। तब उसने परलोकमें जानेका विचार किया। उसकी देहत्याग-की इच्छा देख नारदजीने आकर कहा— 'देवि ! तुम्हारा तो अभी संस्कार (विवाह) ही नहीं हुआ है, फिर तुम्हें उत्तम लोक कैसे मिल सकते हैं ? यह बात मैंने देवलोकमें सुनी है। तुमने तपस्या तो बहुत बड़ी की, पर तुम्हें उत्तम लोकोंपर अधिकार नहीं प्राप्त हो सका।'

नारदकी बात सुनकर वह ऋषियोंकी सभामें जाकर बोली—'जो कोई मेरा पाणिग्रहण करेगा, उसे मैं अपनी तपस्याका आधा भाग दे दूँगी।' उसके ऐसा कहनेपर गालवके पुत्र शृङ्गवान्ने कहा—'कल्याणी ! मैं इस शर्तपर तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा कि विवाह हो जानेपर तुम एक रात मेरे साथ निवास करो।'

वृद्धा कुमारीने 'हाँ' कहकर अपना हाथ मुनिके हाथमें दे दिया। गालवनन्दनने शास्त्रीय विधिके अनुसार हवन आदि करके उसका पाणिग्रहण संस्कार किया। रात्रिके समय वह सुन्दरी तरुणी बनकर मुनिके पास गयी। उस समय उसके शरीरपर दिव्य वस्त्र और आभूषण शोभा पा रहे थे। दिव्य हार तथा दिव्य अङ्गरागोंकी सुगन्ध फैल रही थी। उसकी छविसे चारों ओर प्रकाश-सा हो रहा था। उसे देखकर शृङ्गवान् ऋषिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने एक रात उसके साथ निवास किया। सवेरा होते ही वह मुनिसे बोली—'विप्रवर ! आपने जो शर्त की थी, उसके अनुसार मैं आपके साथ रह चुकी, अब आज्ञा दीजिये, मैं जाती हूँ।'

यह कहकर वह वहाँसे चल दी। जाते-जाते उसने फिर कहा—'जो अपने चित्तको एकाग्र कर देवताओंको तृप्त करके इस तीर्थमें एक रात निवास करेगा, उसे अट्ठावन वर्षोंतक ब्रह्मचर्य-पालन करनेका फल मिलेगा।' ऐसा कहकर वह साध्वी देह त्यागकर स्वर्गमें चली गयी और मुनि उसके दिव्य रूपका चिन्तन करते हुए बहुत दुःखी हो गये। उन्होंने प्रतिज्ञाके अनुसार उसके तपका आधा भाग ले लिया और उससे अपनेको सिद्ध बनाकर फिर उसीकी गतिका अनुसरण किया। राजन् ! यही वृद्धकन्याका परिचय है, जो तुम्हें सुना दिया। बलरामजीने इसी तीर्थमें आनेपर शल्यकी मृत्युका समाचार सुना था। वहाँ भी उन्होंने ब्राह्मणोंको बहुत कुछ दान किया। तत्पश्चात् समन्तपञ्चक द्वारसे निकलकर उन्होंने ऋषियोंसे कुरुक्षेत्र-सेवनका फल पूछा। तब उन महात्माओंने बलरामजीसे उस क्षेत्रके सेवनका ठीक-ठीक फल बताया।



समन्तपञ्चकतीर्थ (कुरुक्षेत्र) की महिमा तथा नारदजीके कहनेसे बलदेवजीका भीम और दुर्योधनका युद्ध देखने जाना

ऋषियोंने कहा—बलरामजी ! समन्तपञ्चक क्षेत्र सनातन है, यह प्रजापतिकी उत्तर वेदी कहलाता है। प्राचीन कालमें देवताओंने यहाँ बहुत बड़ा यज्ञ किया था तथा बुद्धिमान् महात्मा राजर्षि कुरुने पहले बहुत वर्षोंतक इस क्षेत्रकी जमीन जोती थी, इसलिये उन्हींके नामपर यह 'कुरुक्षेत्र' कहा जाने लगा।

बलरामजीने पूछा—मुनिवरो ! महात्मा कुरुने इस क्षेत्रमें हल क्यों चलाया ?

ऋषियोंने कहा—बलरामजी ! पूर्वकालमें राजा कुरु जब यहाँ प्रतिदिन उठकर हल चलाया करते थे, उन्हीं दिनोंकी बात है, इन्द्रने स्वर्गसे आकर कुरुसे इसका कारण पूछा—'राजन् ! आप इतना बड़ा प्रयास क्यों कर रहे हैं ? यहाँकी जमीन जोतनेसे आपका क्या अभिप्राय है ?' कुरुने कहा—'इन्द्र ! जो लोग इस क्षेत्रमें मरेंगे वे पुण्यवानोंके लोकमें जायँगे।'

यह जवाब सुनकर इन्द्रको हँसी आ गयी। वे चुपचाप स्वर्ग लौट गये। इससे राजर्षि कुरुका उत्साह कम नहीं हुआ, वे वहाँकी जमीन जोतनेमें लगे ही रह गये। इन्द्रने कई बार आकर प्रश्न किया, किंतु वही उत्तर पाकर वे हर बार लौट

गये। कुरुने भी कठोर तपस्याके साथ हल जोतना आरम्भ किया। तब इन्द्रने उनका मनोभाव देवताओंसे कह सुनाया। सुनकर देवता बोले—'अगर सम्भव हो तो राजर्षिको वरदान देकर राजी कर लीजिये। नहीं तो यदि वे अपने प्रयत्नमें सफल हो गये और मनुष्य यज्ञ किये बिना ही स्वर्गमें आने लगे तो हमलोगोंका यज्ञभाग नष्ट हो जायगा।'

तब इन्द्रने कुरुके पास आकर कहा—'राजन्! अब आप कष्ट न उठाइये, मेरी बात मानिये; मैं वरदान देता हूँ कि जो मनुष्य अथवा पशु यहाँ निराहार रहकर या युद्धमें मारे जाकर शरीर त्याग करेंगे, वे स्वर्गके अधिकारी होंगे।' राजा कुरुने 'बहुत अच्छा' कहकर इन्द्रकी आज्ञा स्वीकार की और इन्द्र भी राजाकी अनुमति ले प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गको चले गये।

बलरामजी! इस प्रकार शुभ उद्देश्यसे राजर्षि कुरुने इस क्षेत्रको जोता था। पृथ्वीपर इससे बढ़कर कोई पवित्र स्थान नहीं है। जो मनुष्य यहाँ तप करेंगे, वे देहत्यागके पश्चात् ब्रह्मलोकमें जायँगे। जो दान करेंगे उनका दिया हुआ हजार गुना होकर फल देगा। जो सदा यहाँ निवास करेंगे, उन्हें यमराजके राज्यमें नहीं जाना पड़ेगा। यदि राजा लोग यहाँ आकर बड़े-बड़े यज्ञ करें तो जबतक यह पृथ्वी कायम रहेगी तबतकके लिये उन्हें स्वर्गमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त होगा। साक्षात् इन्द्रने भी कुरुक्षेत्रके विषयमें यह उद्गार प्रकट किया है—'कुरुक्षेत्रकी धूल भी यदि हवासे उड़कर किसी पापीके ऊपर पड़ जाय तो वह उसे उत्तम लोकमें पहुँचाती है। यहाँ बड़े-बड़े देवता, उत्तम ब्राह्मण तथा नृग आदि नरेश भी यज्ञ करके उत्तम गतिको प्राप्त हो चुके हैं। तरन्तुकसे लेकर आरन्तुकतक तथा रामह्रदसे आरम्भ करके यमचक्रकतके बीचका जो स्थान है वही कुरुक्षेत्र एवं समन्तपञ्चक तीर्थ है। इसे प्रजापतिकी उत्तर वेदी भी कहते हैं। यह क्षेत्र बहुत ही पवित्र एवं कल्याणकारी है, देवताओंने भी इसका सम्मान किया है। यह सभी सद्गुणोंसे सम्पन्न है; अतः यहाँ मरे हुए सब क्षत्रिय अक्षय गतिको प्राप्त होंगे।' इस प्रकार साक्षात् इन्द्रने यह बात कही और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवताओंने इसका समर्थन किया था।

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर, कुरुक्षेत्रका दर्शन और वहाँ बहुत-सा दान करके बलरामजी एक दिव्य आश्रमके निकट गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मुनियोंसे पूछा—'यह सुन्दर आश्रम किसका है?' तब उन्होंने कहा—'बलरामजी! पहले तो यहाँ भगवान् विष्णु तपस्या कर चुके हैं, फिर अक्षय फल देनेवाले कई यज्ञ भी इस आश्रमपर हुए हैं। बाल्यकालसे ही ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाली एक सिद्ध ब्राह्मणी भी यहाँ तपस्या कर चुकी है। वह शाण्डिल्य मुनिकी पुत्री थी।'

ऋषियोंकी बात सुनकर बलभद्रजीने उन्हें प्रणाम किया और हिमालयके समीप स्थित उस आश्रममें गये। वहाँके उत्तम तीर्थका तथा सरस्वतीके उद्गमभूत स्रोतका दर्शन करके उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। इसके बाद कारपवन तीर्थमें जाकर उन्होंने वहाँके स्वच्छ, शीतल एवं पवित्र जलमें डुबकी लगायी तथा देवताओं और पितरोंका तर्पण करके ब्राह्मणोंको दान दिया। फिर एक रात वहाँ निवास करके वे ब्राह्मणों और संन्यासियोंके साथ मित्रावरुणके पवित्र आश्रमपर गये। वह स्थान यमुनाके तटपर है। सर्वप्रथम उस स्थानपर आकर इन्द्र, अग्नि तथा अर्यमा बहुत प्रसन्न हुए थे। बलरामजी वहाँ स्नान-दान करके ऋषियों और सिद्धोंके साथ बैठकर उत्तम कथाएँ सुनने लगे।

उसी समय देवर्षि नारदजी दण्ड, कमण्डलु और मनोहर वीणा लिये वहाँ आ पहुँचे। उन्हें आते देख बलरामजी



उठकर खड़े हो गये और उनका विधिवत् पूजन करके उनसे कौरवोंका समाचार पूछने लगे। नारदजीने, जिस प्रकार कौरवोंका महासंहार हुआ था, वह सब ज्यों-का-त्यों सुना दिया। तब बलभद्रजीने दुःख प्रकट करते हुए कहा—'तपोधन! उस क्षेत्रकी क्या अवस्था है तथा वहाँ आये हुए राजाओंकी क्या दशा हुई है? यह सब संक्षेपके साथ मैं पहले

ही सुन चुका हूँ। अब मुझे वहाँका विस्तृत समाचार जाननेकी उत्कण्ठा हो रही है।'

नारदजीने कहा—भीष्मजी तो पहले ही मारे गये। उनके बाद द्रोणाचार्य, जयद्रथ, कर्ण और उसके पुत्र भी परलोक पहुँच गये। भूरिश्रवा, शल्य तथा दूसरे महाबली राजाओंकी भी यही दशा हुई है। ये सब राजा और राजकुमार दुर्योधनकी विजयके लिये अपने प्राणोंकी बलि दे चुके हैं। अब जो मरनेसे बचे हैं, उनके नाम सुनिये। दुर्योधनकी सेनामें कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा—ये ही तीन प्रधान वीर बचे हुए हैं। किंतु जब शल्य मारे गये तो ये भी डरके मारे पलायन कर गये। उस समय दुर्योधन बहुत दुःखी हुआ और भागकर द्वैपायन सरोवरमें जा छिपा। मायासे सरोवरका पानी बाँधकर वह उसके भीतर सो रहा था, इतनेमें पाण्डवलोग भगवान् श्रीकृष्णके साथ वहाँ जा पहुँचे और उसे कड़वी बातें सुनाकर कष्ट पहुँचाने लगे। वह भी बलवान् ही ठहरा, इनके ताने क्यों सहता ? हाथमें गदा लेकर उठ पड़ा और भीमसेनसे युद्ध करनेके लिये उनके पास जाकर खड़ा हो गया। अब उन दोनोंमें भयंकर युद्ध छिड़नेवाला है, यदि आप भी देखनेको उत्सुक हों तो शीघ्र जाइये, विलम्ब न कीजिये। अपने दोनों शिष्योंका युद्ध देखिये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—नारदजीकी बात सुनकर बलरामजीने अपने साथ आये हुए ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें विदा कर दिया और सेवकोंको द्वारका चले जानेकी आज्ञा दी। फिर वे, जहाँ सरस्वतीका स्रोत निकला हुआ है, उस श्रेष्ठ पर्वतशिखरसे नीचे उतरे और तीर्थका महान् फल सुनकर ब्राह्मणोंके समीप उसकी महिमाका इस प्रकार वर्णन करने लगे—'सरस्वतीके तटपर निवास करनेमें जो सुख है, आनन्द है, वह अन्यत्र कहाँ मिल सकता है ? उसमें जो गुण हैं, वे और कहाँ हैं ? सरस्वतीका सेवन करके स्वर्गलोकमें पहुँचे हुए मनुष्य उसका सदा ही स्मरण करते रहेंगे। सरस्वती सब नदियोंमे पवित्र है, वह संसारका कल्याण करनेवाली है; सरस्वतीको पाकर मनुष्य इहलोक और परलोकमें पापोंके लिये शोक नहीं करते।'

तदनन्तर, बारंबार सरस्वतीकी ओर देखते हुए बलरामजी सुन्दर रथपर सवार हुए और शिष्योंका युद्ध देखनेके लिये तेज चालसे चलकर द्वैपायन सरोवरके तटपर जा पहुँचे।



बलरामजीकी सलाहसे सबका समन्तपञ्चकमें जाना तथा वहाँ भीम और दुर्योधनमें गदायुद्धका आरम्भ

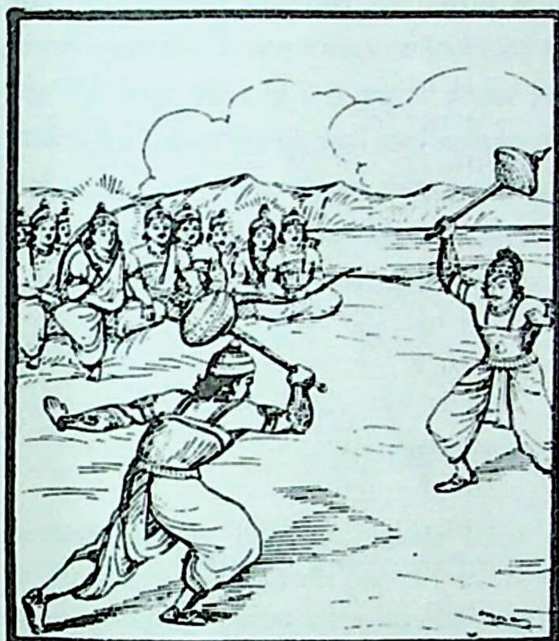
वैशम्पायनजी कहते हैं—राजा जनमेजय ! इस प्रकार होनेवाले उस तुमुल युद्धकी बात सुनकर धृतराष्ट्रको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने सञ्जयसे पूछा—'सूत ! गदायुद्धके समय बलरामजीको उपस्थित देख मेरे पुत्रने भीमसेनके साथ किस प्रकार युद्ध किया ?'

सञ्जयने कहा—महाराज ! बलरामजीको वहाँ उपस्थित देख दुर्योधनको बड़ी खुशी हुई। राजा युधिष्ठिर तो उन्हें देखते ही खड़े हो गये और बड़ी प्रसन्नताके साथ उनका पूजन करके बैठनेको आसन दे कुशल-समाचार पूछने लगे। तब बलरामजीने उनसे कहा—'राजन् ! मैंने ऋषियोंके मुँहसे सुना है कि कुरुक्षेत्र बड़ा पवित्र तीर्थ है, वह स्वर्ग प्रदान करनेवाला है, देवता, ऋषि तथा महात्मा, ब्राह्मण सदा उसका सेवन करते हैं, वहाँ युद्ध करके प्राण त्यागनेवाले मनुष्य निश्चय ही स्वर्गमें इन्द्रके साथ निवास करेंगे। इसलिये हमलोग यहाँसे समन्तपञ्चक क्षेत्रमें चलें, वह देवलोकमें प्रजापतिकी उत्तर वेदीके नामसे विख्यात है। वह त्रिभुवनका अत्यन्त पवित्र एवं सनातन तीर्थ है, वहाँ युद्ध करनेसे जिसकी मृत्यु होगी, वह अवश्य ही स्वर्गलोकमें जायगा।'

'बहुत अच्छा' कहकर युधिष्ठिरने बलरामजीकी आज्ञा स्वीकार की और वे समन्तपञ्चक क्षेत्रकी ओर चल दिये। राजा दुर्योधन भी हाथमें बहुत बड़ी गदा ले पाण्डवोंके साथ पैदल ही चला। उस समय शङ्खनाद होने लगा, भेरियाँ बज उठीं और शूरवीरोंके सिंहनादसे सम्पूर्ण दिशाएँ भर गयीं। तत्पश्चात् वे सब लोग कुरुक्षेत्रकी सीमामें आये, फिर पश्चिमकी ओर आगे बढ़कर सरस्वतीके दक्षिण किनारेपर स्थित एक उत्तम तीर्थमें पहुँचे। वही स्थान उन्हें युद्धके लिये पसंद आया।

फिर तो भीमसेन कवच पहनकर हाथमें बड़ी नोकवाली गदा ले युद्धके लिये तैयार हो गये। दुर्योधन भी सिरपर टोप लगाये सोनेका कवच बाँधे भीमके सामने डट गया। फिर दोनों भाई क्रोधमें भरकर एक-दूसरेको देखने लगे। दुर्योधनकी आँखें लाल हो रही थीं। उसने भीमसेनकी ओर देखकर अपनी गदा सँभाली और उन्हें ललकारा। भीमने भी

गदा ऊँची करके दुर्योधनको ललकारा। दोनों ही क्रोधमें भरे थे। दोनोंकी गदाएँ ऊपरको उठी थीं और दोनों ही भयंकर



पराक्रम दिखानेवाले थे। उस समय वे राम-रावण और बालि-सुग्रीवके समान जान पड़ते थे।

तदनन्तर, दुर्योधनने केकय, सृञ्जय और पाञ्चालों तथा श्रीकृष्ण, बलराम एवं अपने भाइयोंके साथ खड़े हुए युधिष्ठिरसे कहा—'मेरा भीमसेनके साथ जो युद्ध ठहरा हुआ है, उसको आप सब लोग पास ही बैठकर देखिये।' दुर्योधनकी इस रायको सबने पसंद किया। फिर सब लोग बैठ गये। चारों ओर राजाओंकी मण्डली बैठी और बीचमें भगवान् बलरामजी विराजमान हुए; क्योंकि सब लोग उनका सम्मान करते थे।

वैशम्पायनजी कहते हैं—यह प्रसंग सुनकर धृतराष्ट्रको बड़ा दुःख हुआ, उन्होंने सञ्जयसे कहा—'सूत! जिसका परिणाम इतना दुःखद होता है, उस मानव-जन्मको धिक्कार है! मेरा पुत्र ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका मालिक था, उसने सब राजाओंपर हुक्म चलाया, सारी पृथ्वीका अकेले उपभोग किया, किंतु अन्तमें यह हालत हुई कि गदा हाथमें लेकर उसे पैदल ही युद्धमें जाना पड़ा! इसे प्रारब्धके सिवा और क्या कहा जा सकता है?'

सञ्जयने कहा—महाराज! आपके पुत्रने मेघके समान गर्जना करके जब भीमको युद्धके लिये ललकारा, उस समय अनेकों भयंकर उत्पात होने लगे। बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ आँधी चलने लगी। धूलकी वर्षा शुरू हो गयी और चारों दिशाओंमें अंधकार छा गया। आकाशसे सैकड़ों उल्काएँ टूट-टूटकर गिरने लगीं। बिना अमावस्याके ही सूर्यपर ग्रहण लग गया। वृक्षों तथा वनोंके साथ धरती डोलने लगी। पर्वतोंके शिखर टूट-टूटकर जमीनपर पड़ने लगे। कुओंके पानीमें बाढ़ आ गयी। किसीका शरीर नहीं दिखायी देता तो भी देहधारीकी-सी आवाजें सुनायी पड़ती थीं।

इन सब अपशकुनोंको देखकर भीमसेनने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा—'भैया! आपके हृदयमें जो काँटा कसकता रहता है, उसे आज निकाल फेंकूँगा। इस पापीको गदासे मारकर इसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा। अब यह पुनः हस्तिनापुरमें नहीं प्रवेश करने पायेगा। इस दुष्टने मेरे बिछौनेपर साँप छोड़ा, भोजनमें विष मिलाया, प्रमाणकोटिमें ले जाकर मुझे पानीमें गिरवाया, लाक्षाभवनमें जलानेका प्रयत्न किया, सभामें हँसी उड़ायी, हमलोगोंका सर्वस्व छीना तथा इसीके कारण हमें वनवास एवं अज्ञातवासका कष्ट भोगना पड़ा। आज सबका बदला चुकाकर मैं उन दुःखोंसे छुटकारा पा जाऊँगा। इसे मारकर अपने आत्माका ऋण चुकाऊँगा। इस दुष्टकी आयु पूरी हो गयी है। अब इसे माता-पिताका दर्शन भी नहीं मिलेगा। आज यह कुलकलंक अपने राज्य, लक्ष्मी तथा प्राणोंसे हाथ धोकर सदाके लिये जमीनपर सो जायगा।'

यह कहकर महापराक्रमी भीमसेन गदा ले युद्धके लिये डट गये और दुर्योधनको पुकारने लगे। दुर्योधनने भी गदा ऊँची की, यह देख भीमसेन पुनः क्रोधमें भरकर बोले—'दुर्योधन! वारणावतमें राजा धृतराष्ट्रने और तूने जो पाप किये थे, उन्हें आज याद कर ले। तूने भरी सभामें रजस्वला द्रौपदीको जो क्लेश पहुँचाया, जूएके समय तूने और शकुनिने मिलकर जो राजा युधिष्ठिरके साथ वञ्चना की—उन सबका बदला चुकाऊँगा। खुशीकी बात है कि आज तू सामने दिखायी दे रहा है। तेरे ही कारण पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, कर्ण तथा शल्य-जैसे वीर मारे गये। तेरे भाई तथा और भी बहुत-से क्षत्रिय यमलोक पहुँच गये। सबसे पहले वैरकी आग लगानेवाला शकुनि और द्रौपदीको दुःख देनेवाला प्रातिकामी भी चल बसा, अब तू ही रह गया है, इसलिये तुझे भी इस गदासे मौतके घाट उतारूँगा—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।'

राजन्! भीमसेनने ये बातें बड़े जोरसे कही थीं, इन्हें सुनकर आपके पुत्रने बेधड़क जवाब दिया—'वृकोदर!

इतनी शेखी बघारनेसे क्या होगा ? चुपचाप लड़ाई कर, आज तेरा युद्धका सारा हौसला मिटाये देता हूँ। दुर्योधनको तू दूसरे साधारण लोगोंके समान मत समझ, यह तेरे-जैसे किसी भी मनुष्यकी धमकीसे नहीं डरता। मैं तो इसे सौभाग्य समझता हूँ, मेरे मनमें बहुत दिनोंसे यह इच्छा थी कि तेरे साथ गदायुद्ध होता, सो आज देवताओंने उसे पूर्ण कर दिया। अब बहुत बड़बड़ानेसे कोई लाभ नहीं है, पराक्रमके द्वारा अपनी वाणीको सत्य करके दिखा; विलम्ब न कर।'

दुर्योधनकी बात सुनकर सबने उसकी प्रशंसा की और भीमसेन गदा उठाकर बड़े वेगसे उसकी ओर दौड़े। दुर्योधनने भी गर्जना करते हुए आगे बढ़कर उनका सामना किया। फिर दोनों दो साँड़ोंकी तरह एक-दूसरेसे भिड़ गये। प्रहार-पर-प्रहार होने लगा। उस समय गदाकी चोट पड़नेपर वज्रपातके समान भयंकर आवाज होती थी। दोनों खूनसे नहा उठे। उनके रक्तरञ्जित शरीर खिले हुए ढाकके वृक्षों-जैसे दिखायी देने लगे। लड़ते-लड़ते दोनों ही थक गये, फिर दोनोंने घड़ीभर विश्राम किया। इसके बाद दोनों ही अपनी-अपनी गदाएँ उठाकर आपसमें युद्ध करने लगे।



भीम और दुर्योधनका भयंकर गदायुद्ध

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! उन दोनों भाइयोंमें जब पुनः भिड़ंत हुई तो दोनों-ही-दोनोंके चूकनेका अवसर देखते हुए पैंतरे बदलने लगे। दोनोंकी गदाएँ यमदण्ड और वज्रके समान भयंकर दिखायी देती थीं। भीमसेन जब अपनी गदाको घुमाकर प्रहार करते, उस समय उसकी भयंकर आवाज एक मुहूर्ततक गूँजती रहती थी। यह देखकर दुर्योधनको बड़ा विस्मय होता था। नाना प्रकारके पैंतरे दिखाकर चारों ओर चक्कर लगाते हुए भीमसेनकी उस समय अपूर्व शोभा हो रही थी।

दोनों एक-दूसरोंसे भिड़कर अपनी-अपनी बचावका प्रयत्न करते थे। तरह-तरहके पैंतरे बदलना, चक्कर देना, शत्रुपर प्रहार करना, उसके प्रहारको बचाना या रोकना तथा आगे बढ़कर पीछे हटना, वेगसे शत्रुपर धावा करना, उसके प्रयत्नको निष्फल कर देना, सावधानीपूर्वक एक स्थानपर खड़ा होना, सामने आते ही शत्रुसे युद्ध छेड़ना, प्रहारके लिये चारों ओर घूमना, शत्रुको घूमनेसे रोकना, नीचेसे कूदकर शत्रुका वार बचाना, तिरछी गतिसे उछलकर प्रहारसे बचना, पास जाकर और दूर हटकर शत्रुके ऊपर प्रहार करना—इत्यादि बहुत-सी क्रियाएँ दिखाते हुए दोनों लड़ रहे थे। दोनों ही प्रहार करते हुए एक-दूसरेको चकमा देनेकी कोशिश करते थे। युद्धका खेल दिखाते हुए सहसा गदाओंकी चोट कर बैठते थे। इस प्रकार उनमें इन्द्र और वृत्रासुरकी भाँति भयंकर युद्ध चल रहा था। दोनों ही अपने-अपने मण्डलमें खड़े थे। दायें मण्डलमें दुर्योधन था और बायेंमें भीमसेन। उस समय दुर्योधनने भीमसेनकी पसलीमें गदा मारी, परंतु भीमसेनने उसके प्रहारको कुछ भी न गिनकर यमदण्डके समान भयंकर गदा घुमायी और उसे दुर्योधनपर दे मारा। यह देख दुर्योधनने भी अपनी भयंकर गदा उठाकर पुनः भीमसेनपर प्रहार किया। गदा प्रहार करते समय बड़े जोरका शब्द होता और आगकी चिनगारियाँ छूटने लगती थीं।

दुर्योधन भी अपने युद्ध-कौशलका परिचय देता हुआ भीमसेनसे अधिक शोभा पाने लगा। भीमसेन भी बड़े वेगसे गदा घुमाने लगे। इतनेहीमें आपका पुत्र दुर्योधन युद्धके कई पैंतरे दिखाता हुआ भीमपर टूट पड़ा। भीमने भी क्रोधमें भरकर उसकी गदापर ही आघात किया। दोनों गदाओंके टकरानेसे भयानक आवाज हुई, चिनगारियाँ छूटने लगीं। भीमसेनने बड़े वेगसे गदा छोड़ी थी, वह ज्यों ही नीचे गिरी, वहाँकी धरती काँप उठी। यह देख दुर्योधनने भीमसेनके मस्तकपर गदाका प्रहार किया किन्तु भीमसेन तनिक भी घबराये नहीं—यह एक अद्भुत बात थी।

तत्पश्चात् भीमसेनने भी आपके पुत्रपर अपनी बड़ी भारी गदा चलायी, किंतु दुर्योधन फुर्तीसे इधर-उधर होकर उस प्रहारको बचा गया। इससे लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। अब उसने भीमसेनकी छातीपर गदा मारी, उसकी चोटसे भीमको मूर्च्छा आ गयी और एक क्षणतक उन्हें अपने कर्तव्यका ज्ञानतक न रहा। किंतु थोड़ी ही देरमें उन्होंने अपनेको



चिथड़े उड़ गये थे। उनकी ऐसी अवस्था देख पाण्डवोंको बड़ा भय हुआ। किंतु एक ही मुहूर्तमें भीमकी चेतना पुनः लौट आयी। उन्होंने खूनसे भीगे हुए अपने मुखको पोछा और धैर्य धारण करके आँखें खोलीं। फिर बलपूर्वक अपनेको सँभालकर वे खड़े हो गये।

उन दोनोंके युद्धको बढ़ता देख अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'जनार्दन! इन दोनों वीरोंमें आप किसको बड़ा मानते हैं; किसमें कौन-सा गुण अधिक है? यह मुझे बताइये।' भगवान् बोले—'शिक्षा तो इन दोनोंको एक-सी मिली है, किंतु भीमसेन बलमें अधिक हैं और अभ्यास तथा प्रयत्नमें दुर्योधन बढ़ा-चढ़ा है। यदि भीमसेन धर्मपूर्वक युद्ध करेंगे तो नहीं जीत सकते; इन्होंने जूएके समय यह प्रतिज्ञा की है कि 'मैं युद्धमें गदा मारकर दुर्योधनकी जाँघें तोड़ डालूँगा।' आज ये उस प्रतिज्ञाका



सँभाल लिया और दुर्योधनकी पसलीमें बड़े जोरसे गदा मारी। उस प्रहारसे व्याकुल हो आपका पुत्र जमीनपर घुटने टेककर बैठ गया। उसे इस अवस्थामें देखकर सृञ्जयोंने हर्षध्वनि की। तब दुर्योधन क्रोधसे जल उठा और महान् सर्पकी भाँति फुंकारें भरने लगा। उसने भीमसेनकी ओर इस तरह देखा, मानो उन्हें भस्म कर डालेगा। उनकी खोपड़ी कुचल डालनेके लिये वह हाथमें गदा लिये उनकी ओर दौड़ा। पास पहुँचकर उसने भीमके ललाटपर गदाका आघात किया। किंतु भीम पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े रहे, इस प्रहारका उनपर कोई असर नहीं हुआ।

तदनन्तर, उन्होंने भी दुर्योधनके ऊपर अपनी लोहमयी गदाका प्रहार किया। उसकी चोटसे आपके पुत्रकी नस-नस ढीली हो गयी। वह काँपता हुआ पृथ्वीपर जा पड़ा। यह देख पाण्डव हर्षमें भरकर सिंहनाद करने लगे। कुछ ही देरमें जब दुर्योधनको होश हुआ तो वह उछलकर खड़ा हो गया और एक सुशिक्षित योद्धाकी भाँति रणभूमिमें विचरने लगा। घूमते-घूमते मौका पाकर उसने सामने खड़े हुए भीमसेनको गदासे मारा। उसकी चोट खाकर उनका सारा शरीर शिथिल हो गया और वे धरती चूमने लगे। भीमको गिराकर दुर्योधन दहाड़ने लगा। उसकी गदाके आघातसे भीमके कवचके

पालन करें। अर्जुन! मैं फिर भी यह कहे बिना नहीं रह सकता कि धर्मराजके कारण हमलोगोंपर पुनः भय आ पहुँचा है। बहुत प्रयास करके भीष्म आदि कौरव-वीरोंको मारकर हमें विजय और यशकी प्राप्ति हुई थी, किंतु युधिष्ठिरने उस विजयको फिरसे संदेहमें डाल दिया है। एककी ही हार-जीतसे सबकी हार-जीतकी शर्त लगाकर इन्होंने जो इस भयंकर युद्धको जूएका दाँव बना डाला, यह इनकी बड़ी

भारी मूर्खता है। दुर्योधन युद्धकी कला जानता है, वीर है और एक निश्चयपर डटा हुआ है। इस विषयमें शुक्राचार्यका कहा हुआ एक श्लोक सुननेमें आता है, जिसमें नीतिका तत्त्व भरा है, मैं उसका भावार्थ तुम्हें सुना रहा हूँ—'युद्धमें मरनेसे बचे हुए शत्रु यदि प्राण बचानेके लिये भाग जायँ और फिर युद्धके लिये लौटें तो उनसे डरते रहना चाहिये; क्योंकि वे एक निश्चयपर पहुँचे हुए होते हैं। (उस समय वे मृत्युसे भी नहीं डरते) जो जीवनकी आशा छोड़कर साहसपूर्वक युद्धमें कूद पड़ें, उनके सामने इन्द्र भी नहीं ठहर सकते।' दुर्योधनकी सेना मारी गयी थी, वह परास्त हो गया था और अब राज्य मिलनेकी आशा न होनेके कारण वह वनमें चला जाना चाहता था, इसीलिये भागकर पोखरेमें छिपा था। ऐसे हताश शत्रुको कौन बुद्धिमान् द्वन्द्व युद्धके लिये आमन्त्रित करेगा ? अब तो मुझे यह भी संदेह होने लगा है कि 'कहीं दुर्योधन हमलोगोंके जीते हुए राज्यको फिर न हथिया ले।'

★

भीमके प्रहारसे दुर्योधनकी जंघाओंका टूटना, भीमद्वारा दुर्योधनका तिरस्कार और युधिष्ठिरका विलाप

सञ्जय कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर अर्जुन भीमसेनके देखते-देखते अपनी बायीं जंघा ठोंकने लगे। भीमने उनका संकेत समझ लिया। फिर वे गदा लिये अनेकों प्रकारके पैंतरे बदलते हुए रणभूमिमें विचरने लगे। उस समय शत्रुको चकमा देनेके लिये वे दायें-बायें तथा वक्रगतिसे घूम रहे थे। इसी तरह आपका पुत्र भी भीमको मार डालनेकी इच्छासे बड़ी फुर्तीके साथ तरह-तरहकी चालें दिखा रहा था। दोनों ही चन्दन और अगरसे चर्चित हुई अपनी भयंकर गदाएँ घुमाते हुए आपसके वैरका अन्त कर डालना चाहते थे। जब उनकी गदाएँ टकरातीं तो आगकी लपटें निकलने लगती थीं। और उनसे वज्रपातके समान भयंकर आवाज होती थी। लड़ते-लड़ते जब थक जाते तो दोनों ही घड़ीभर विश्राम करते और फिर गदा उठाकर एक-दूसरेसे भिड़ जाते थे।

गदाके भयंकर प्रहारसे दोनोंके शरीर जर्जर हो रहे थे, दोनों ही खूनमें लथपथ थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो हिमालयपर ढाकके दो वृक्ष फूले हुए हों। अर्जुनने भीमको जो इशारा किया, उसे दुर्योधन भी कुछ-कुछ समझ गया था; इसलिये वह सहसा उनके पाससे दूर हट गया। जब वह निकट था, उसी समय भीमने बड़े वेगसे उसपर गदा चलायी; किंतु वह अपने स्थानसे एकाएक हट गया, इसलिये गदा उसे न लगकर जमीनपर जा पड़ी। इस प्रकार उनके प्रहारको बचाकर दुर्योधनने भीमपर स्वयं गदाका वार किया। भीमसेनको गहरी चोट लगी। उनके शरीरसे खूनकी धारा बह चली और वे मूर्च्छित-से हो गये। किंतु दुर्योधनको उनकी मूर्च्छाका पता न चला; क्योंकि भीम अत्यन्त वेदना सहकर भी अपने शरीरको सँभाले हुए थे। दुर्योधनने यही समझा कि अब भीमसेन प्रहार करेंगे, इसीलिये उसने उनके ऊपर पुनः प्रहार नहीं किया, वह अपने बचावकी फिक्रमें पड़ गया।

थोड़ी ही देरमें जब भीमसेन पूरी तरह सँभल गये तो उन्होंने दुर्योधनपर बड़े वेगसे आक्रमण किया। उन्हें क्रोधमें भरकर आते देख दुर्योधनने पुनः उनके प्रहारको व्यर्थ करनेका विचार किया और अवस्थान नामक दाँव खेल भीमको धोखेमें डालनेके लिये ऊपर उछल जाना चाहा। भीमसेन उसका मनोभाव ताड़ गये थे; इसलिये सिंहके समान गर्जना करके उसके ऊपर टूट पड़े। अब वह कूदना ही चाहता था कि भीमने उसकी जाँघोंपर बड़े वेगसे गदा मारी। उस वज्र-सरीखी गदाने आपके पुत्रकी दोनों जाँघे तोड़ डालीं और वह आर्तनाद करता हुआ जमीनपर गिर पड़ा।

जो एक दिन सम्पूर्ण राजाओंका राजा था, उस वीरवर दुर्योधनके गिरते ही बड़े जोरकी आँधी चली, बिजली कौंधने लगी। धूलकी वर्षा शुरू हो गयी तथा वृक्षों और पर्वतोंसहित सारी पृथ्वी काँप उठी। धूलके साथ रक्तकी भी वर्षा होने लगी। आकाशमें यक्षों, राक्षसों तथा पिशाचोंका कोलाहल सुनायी देने लगा। बहुत-से हाथ-पैरोंवाले भयंकर कबन्ध नाचने लगे। कुओं और तालाबोंमें खून उफनाने लगा। नदियाँ अपने उद्गमकी ओर बहने लगीं। स्त्रियोंमें पुरुषोंका और पुरुषोंमें स्त्रियोंका-सा भाव आ गया। इस तरह नाना प्रकारके अद्भुत उत्पात दिखायी देने लगे। देवता, गन्धर्व, अप्सराएँ, सिद्ध तथा चारण लोग आपके दोनों पुत्रोंके अद्भुत संग्रामकी चर्चा करते हुए जहाँसे आये थे वहीं चले गये।

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! आपके पुत्रको इस प्रकार भूमिपर पड़ा देख पाण्डवों तथा सोमकोंको बड़ी प्रसन्नता

हुई। तदनन्तर, प्रतापी भीमसेन दुर्योधनके पास जाकर बोले—'अरे मूर्ख! पहले भरी सभामें तूने जो एकवस्त्रा द्रौपदीकी हँसी उड़ायी थी और हमलोगोंको बैल कहकर अपमानित किया था, उस उपहासका फल आज भोग ले।' यों कहकर उन्होंने बायें पैरसे दुर्योधनके मुकुटको ठुकरा दिया और उसके सिरको भी पैरसे दबाकर रगड़ डाला। इसके बाद जो कुछ कहा, वह भी सुनिये—'हमलोगोंने शत्रुओंको दबानेके लिये छल-कपटसे काम नहीं लिया, आगमें जलानेकी कोशिश नहीं की, न जुआ खेला, न और कोई धोखा-धड़ी की; केवल अपने बाहुबलके भरोसे दुश्मनोंको पछाड़ा है।'

ऐसा कहकर भीमसेन खूब हँसे; फिर युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा सृञ्जयवीरोंसे धीरे-धीरे बोले—'आपलोग देखते हैं न? जो रजस्वला-अवस्थामें द्रौपदीको सभाके भीतर घसीट लाये थे और जिन्होंने उसे नंगी करनेका प्रयत्न किया था, वे धृतराष्ट्रके सभी पुत्र पाण्डवोंके हाथसे मारे गये। यह द्रुपदकुमारीकी तपस्याका फल है। जिन्होंने हमें तैलहीन तिलके समान सारहीन एवं नपुंसक कहा था, उन सबको सेवकों तथा सम्बन्धियोंसहित मौतके घाट उतार दिया गया।'

इसके बाद भीमने दुर्योधनके कंधेपर रखी हुई गदा ले ली और उसे कपटी कहकर पुनः उसके मस्तकको अपने बायें पैरसे दबाया। किंतु उनके इस बर्तावको धर्मात्मा सोमकोंने पसंद नहीं किया। उस समय धर्मराज युधिष्ठिरने भी उनसे कहा—'भैया भीम! तुमने अपने वैरका बदला ले लिया, तुम्हारी प्रतिज्ञा भी पूरी हो गयी; अब तो शान्त हो जाओ। दुर्योधनके मस्तकको पैरसे न ठुकराओ, धर्मका उल्लङ्घन न करो। एक दिन यह ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी था, कौरवोंका राजा था और अपना कुटुम्बी रहा है; अतः पैरसे इसका स्पर्श नहीं करना चाहिये। इसके भाई और मन्त्री मारे गये, सेना भी नष्ट हो गयी और स्वयं भी युद्धमें मारा गया; अतः यह सब प्रकारसे शोचनीय है, दयाका पात्र है, इसकी हँसी नहीं उड़ानी चाहिये। सोचो तो, इसकी संतानें नष्ट हो गयीं; अब इसे पिण्ड देनेवाला भी कोई न रहा। इसके सिवा अपना भाई ही तो है, क्या इसके साथ यह बर्ताव उचित था? इसे पैरोंसे ठुकराकर तुमने न्याय नहीं किया है। भीमसेन! तुम्हें तो लोग धार्मिक बताते हैं, फिर तुम क्यों राजाका अपमान करते हो?'

भीमसेनसे ऐसा कहकर युधिष्ठिर दुर्योधनके निकट गये और बहुत दुःख प्रकट करते हुए गद्गद कण्ठसे



बोले—'तात! तुम हमलोगोंपर क्रोध न करना, अपने लिये भी शोक न करना; क्योंकि सब प्राणियोंको अपने पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंका ही भयंकर परिणाम भोगना पड़ता है। तुमने अपने ही अपराधसे इतना बड़ा संकट मोल लिया है। लोभ, मद, और मूर्खताके कारण मित्रों, भाइयों, चाचाओं, पुत्रों तथा पौत्रोंको मरवाकर अन्तमें तुम स्वयं भी मौतके मुखमें जा पड़े। तुम्हारे ही अपराधसे हमें तुम्हारे महारथी भाइयों तथा अन्य कुटम्बियोंका वध करना पड़ा है। वास्तवमें प्रारब्धको कोई टाल नहीं सकता। भैया! तुम्हें अपने आत्माके कल्याणके विषयमें शोक नहीं करना चाहिये; तुम्हारी मृत्यु इतनी उत्तम हुई है, जिसकी दूसरे लोग इच्छा करते हैं। इस समय तो हम ही लोग सब तरहसे शोकके योग्य हो गये; क्योंकि अब हमें अपने प्यारे बन्धुओंके वियोगमें बड़े दुःखके साथ जीवन बिताना होगा। जब भाइयों, पुत्रों और पौत्रोंकी विधवा स्त्रियाँ शोकमें डूबी हुई हमारे सामने आयेंगी, उस समय हम कैसे उनकी ओर देख सकेंगे? राजन्! तुमने तो अकेले स्वर्गकी राह ली है, निश्चय ही तुम्हें स्वर्गमें स्थान मिलेगा।'

यह कहकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर शोकसे आतुर हो गये और लंबी-लंबी साँसें भरते हुए देरतक विलाप करते रहे।

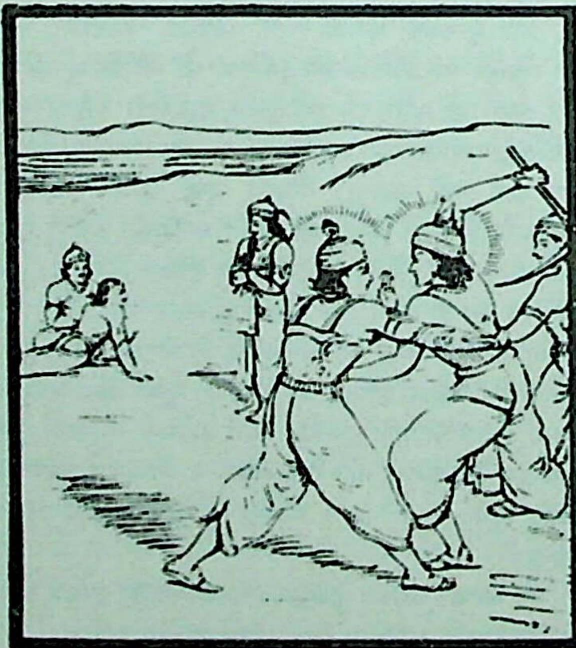
—★—

क्रोधमें भरे हुए बलरामको श्रीकृष्णका समझाना और युधिष्ठिरके साथ श्रीकृष्णकी तथा भीमसेनकी बातचीत

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! जब राजा दुर्योधन अधर्मपूर्वक मारा गया, उस समय बलभद्रजीने क्या कहा ? वे तो गदायुद्धके विशेषज्ञ हैं, यह अन्याय देखकर चुप न रहे होंगे; अतः उन्होंने यदि कुछ किया हो तो बताओ।

सञ्जयने कहा—महाराज ! भीमसेनने आपके पुत्रकी जाँघोंमें प्रहार किया—यह देख महाबली बलरामजीको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सब राजाओंके बीच अपना हाथ ऊपर उठाकर भयंकर आर्तनाद करते हुए कहा—''भीमसेन ! तुम्हें धिक्कार है ! धिक्कार है !! बड़े अफसोसकी बात है कि इस युद्धमें भी नाभिसे नीचेके अङ्गमें गदाका प्रहार किया गया। आज भीमने जैसा अन्याय किया है, यह गदायुद्धमें पहले कभी नहीं देखा गया। शास्त्रने यह निर्णय कर दिया है कि 'गदायुद्धमें नाभिसे नीचे नहीं प्रहार करना चाहिये।' किन्तु यह तो मूर्ख है, शास्त्रको बिलकुल नहीं जानता, इसीलिये मनमाना बर्ताव करता है।''

इसके बाद उन्होंने दुर्योधनकी ओर दृष्टिपात किया, उसकी दशा देख उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं; वे फिर कहने लगे—'कृष्ण ! दुर्योधन मेरे समान बलवान् है, इसकी समानता करनेवाला कोई योद्धा नहीं है। आज अन्याय करके केवल दुर्योधन ही नहीं गिराया गया है, मेरा भी अपमान किया गया है। शरणागतकी दुर्बलता देखकर शरण देनेवालेका तिरस्कार किया जा रहा है।' यह कहकर वे अपना हल ऊपरको उठाये भीमसेनकी ओर दौड़े। यह देख श्रीकृष्णने बड़ी विनती और बड़े प्रयत्नके साथ अपनी दोनों भुजाओंसे बलरामजीको पकड़ लिया और उन्हें शान्त करते हुए कहा—''भैया ! अपनी उन्नति छः प्रकारकी होती है—अपनी वृद्धि और शत्रुकी हानि, अपने मित्रकी वृद्धि और शत्रुके मित्रकी हानि तथा अपने मित्रके मित्रकी वृद्धि और शत्रुके मित्रके मित्रकी हानि। अपने या मित्रको जब विपरीत दशा आ घेरती है, तो मनमें ग्लानि होती है ही। आप जानते हैं पाण्डव हमलोगोंके स्वाभाविक मित्र हैं; ये विशुद्ध पुरुषार्थका भरोसा रखनेवाले हैं, बुआके लड़के होनेके कारण हर तरहसे अपने हैं। शत्रुओंने कपटपूर्ण बर्ताव करके पहले इन्हें बहुत कष्ट पहुँचाया है। सभाभवनमें भीमने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं अपनी गदासे दुर्योधनकी जाँघें तोड़ डालूँगा।' प्रतिज्ञा-पालन क्षत्रियके लिये धर्म है और भीमने उसीका पालन किया है। महर्षि मैत्रेयने भी दुर्योधनको यह शाप दिया था कि 'भीम अपनी गदासे तेरी जाँघें तोड़ डालेगा।' इस प्रकार यही होनहार थी, मैं भीमका इसमें कोई दोष नहीं देखता। इसलिये आप अपना क्रोध शान्त कीजिये। बुआ और बहनके नाते पाण्डवोंके साथ हमलोगोंका यौन सम्बन्ध भी है; मित्र तो ये हैं ही। अतः इनकी उन्नतिमें ही हमलोगोंकी भी उन्नति है। इसलिये आप क्रोध न कीजिये।''



श्रीकृष्णकी बात सुनकर धर्मको जाननेवाले बलदेवजीने कहा—'सत्पुरुषोंने धर्मका अच्छी तरह आचरण किया है, किंतु वह अर्थ और काम—इन दो वस्तुओंसे संकुचित हो जाता है। अत्यन्त लोभीका अर्थ और अधिक आसक्ति रखनेवालेका काम—ये दोनों ही धर्मको हानि पहुँचाते हैं। जो मनुष्य कामसे धर्म और अर्थको, अर्थसे धर्म और कामको तथा धर्मसे काम और अर्थको हानि न पहुँचाकर धर्म, अर्थ तथा काम—इन तीनोंका सेवन करता है, वही अत्यन्त सुखका भागी होता है। भीमसेनने तो धर्मको हानि पहुँचाकर इन सबको विकृत कर डाला है।'

श्रीकृष्णने कहा—भैया ! संसारके सब लोग आपको

क्रोधरहित और धर्मात्मा समझते हैं; इसलिये शान्त हो जाइये, क्रोध न कीजिये। समझ लीजिये कि कलयुग आ गया। भीमकी प्रतिज्ञाको भी भुला न दीजिये। पाण्डवोंको वैर और प्रतिज्ञाके ऋणसे मुक्त होने दीजिये।

सञ्जय कहते हैं—श्रीकृष्णकी बात सुनकर बलदेवजीको बहुत संतोष नहीं हुआ, उन्होंने राजाओंकी सभामें फिरसे कहा—'धर्मात्मा राजा दुर्योधनको अधर्मपूर्वक मारनेके कारण भीमसेन संसारमें कपटपूर्ण युद्ध करनेवाला कहा जायगा। दुर्योधन सरलतासे युद्ध कर रहा था, उस अवस्थामें वह मारा गया है; अतः वह सनातन सद्गतिको प्राप्त करेगा।' यह कहकर रोहिणीनन्दन बलरामजी द्वारकाकी ओर चल दिये। उनके चले जानेसे पाञ्चाल, वृष्णि तथा पाण्डव वीर उदास हो गये। युधिष्ठिर भी बहुत दुःखी थे, वे नीचे मुँह किये चिन्तामें मग्न हो रहे थे। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'धर्मराज! आप चुप होकर अधर्मका अनुमोदन क्यों कर रहे हैं? दुर्योधनके भाई और सहायक मर चुके हैं, बेचारा बेहोश होकर गिरा हुआ है; ऐसी दशामें भीम इसके मस्तकको पैरोंसे ठुकरा रहे हैं और आप धर्मज्ञ होकर चुपचाप तमाशा देखते हैं! क्यों ऐसा हो रहा है?'

युधिष्ठिरने कहा—कृष्ण! भीमसेनने क्रोधमें भरकर जो इसके मस्तकको पैरोंसे ठुकराया है, यह मुझे भी अच्छा नहीं लगा है। अपने कुलका संहार हो जानेसे मैं खुश नहीं हूँ। किंतु क्या करूँ? धृतराष्ट्रके पुत्रोंने सदा ही हमें अपने कपट-जालका शिकार बनाया, कटु वचन सुनाये और वनवास दिया; भीमसेनके हृदयमें इन सब बातोंके लिये बड़ा दुःख था, यही सोचकर मैंने उनके इस कामकी उपेक्षा की है।

धर्मराजके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने बड़े कष्टसे कहा—'अच्छा, ऐसा ही सही।' राजन्! आपके पुत्रको मारकर भीमसेन बहुत प्रसन्न हुए थे। उन्होंने युधिष्ठिरके सामने खड़े हो हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विजयोल्लासके साथ कहा— 'महाराज! आज यह सम्पूर्ण पृथ्वी आपकी हो गयी। इसके काँटे दूर हुए और यह मङ्गलमयी हो गयी। अब आप अपने धर्मका पालन करते हुए इसका शासन कीजिये। कपटसे प्रेम करनेवाले जिस मनुष्यने कपट करके ही वैरकी नींव डाली थी, वह मारा जाकर पृथ्वीपर पड़ा हुआ है। जिन्होंने आपसे कटु वचन कहे थे वे दुःशासन, कर्ण तथा शकुनि भी नष्ट हो गये। अब सारा राज्य आपका है।'

युधिष्ठिरने कहा—सौभाग्यकी बात है कि राजा दुर्योधन मारा गया और आपसके वैरका अन्त हो गया। श्रीकृष्णकी सलाहके अनुसार चलकर हमने पृथ्वीपर विजय पायी। अच्छा हुआ कि तुम माताके ऋणसे उऋण हो गये और अपना क्रोध भी तुमने शान्त कर लिया। शत्रु मरा और तुम्हारी विजय हुई, यह कितने आनन्दकी बात है!



पाण्डवोंका दुर्योधनके शिविरमें आकर उसपर अधिकार करना, अर्जुनके रथका दाह

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! दुर्योधनको भीमसेनके द्वारा मारा गया देख पाण्डवों और सृञ्जयोंने क्या किया?

सञ्जयने कहा—महाराज! आपके पुत्रके मारे जानेपर श्रीकृष्णसहित पाण्डवों, पाञ्चालों तथा सृञ्जयोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपने दुपट्टे उछाल-उछालकर सिंहनाद करने लगे। किसीने धनुष टंकारा तो कोई शङ्ख बजाने लगा। किसी-किसीने ढिंढोरा पीटना शुरू किया। बहुतेरे तो हँसने और खेलने लगे। कुछ लोग भीमसेनसे बारंबार यों कहने लगे—'दुर्योधनने गदायुद्धमें बड़ा परिश्रम किया था, उसको मारकर आपने बहुत बड़ा पराक्रम कर दिखाया! भला, नाना प्रकारके पैंतरे बदलते और सब तरहकी मण्डलाकार गतियोंसे चलते हुए शूरवीर दुर्योधनको भीमसेनके सिवा दूसरा कौन मार सकता था? भीम! आपने शत्रुओंको परास्त करके दुर्योधनका वध करनेके कारण इस पृथ्वीपर अपना महान् यश फैलाया है। यह बड़े सौभाग्यकी बात है।'

इस प्रकार जहाँ-तहाँ कुछ आदमी इकट्ठे होकर भीमसेनकी प्रशंसा कर रहे थे। पाञ्चाल और पाण्डव भी प्रसन्न होकर उनके सम्बन्धमें अलौकिक बातें सुना रहे थे। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'राजाओ! मरे हुए शत्रुको अपनी कठोर बातोंसे फिर मारना उचित नहीं है। यह पापी तो उसी समय मर चुका था, जब लज्जाको तिलाञ्जलि दे लोभमें फँसा और पापियोंकी सहायता लेकर हित चाहनेवाले सुहृदोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करने लगा। विदुर, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म और सृञ्जयोंने अनेकों बार अनुरोध किया; तो भी इसने पाण्डवोंको उनकी पैतृक सम्पत्ति नहीं दी। अब तो यह न मित्र कहने योग्य है, न शत्रु; यह महानीच है। काठके समान जड है। इसे वचनरूपी बाणोंसे बेधनेमें कोई लाभ नहीं है। सब लोग रथोंपर बैठो, अब छावनीमें चलें।

श्रीकृष्णकी बात सुनकर सब नरेश अपने-अपने शङ्ख

बजाते हुए शिविरकी ओर चल दिये। आगे-आगे पाण्डव थे; उनके पीछे सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके पुत्र तथा दूसरे-दूसरे धनुर्धर योद्धा चल रहे थे। सब लोग पहले दुर्योधनकी छावनीमें गये, जो राजाके न होनेसे श्रीहीन दिखायी दे रही थी। वहाँ कुछ बूढ़े मन्त्री और हिजड़े बैठे हुए थे। बाकी लोग रानियोंके साथ राजधानी चले गये थे। पाण्डवोंके पहुँचनेपर उनकी सेवामें दुर्योधनके सेवक हाथ जोड़े मैले कपड़े पहने उपस्थित हुए। पाण्डव भी दुर्योधनकी छावनीमें जाकर अपने-अपने रथोंसे उतर गये। अन्तमें श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'तुम स्वयं उतरकर अपने अक्षय तरकस और धनुषको भी रथसे उतार लो, इसके बाद मैं उतरूँगा। ऐसा करनेमें ही तुम्हारी भलाई है।'

अर्जुनने वैसा ही किया। फिर भगवान्‌ने घोड़ोंकी बागडोर छोड़ दी और स्वयं भी रथसे उतर पड़े। समस्त



प्राणियोंके ईश्वर श्रीकृष्णके उतरते ही उस रथपर बैठा हुआ दिव्य कपि अन्तर्धान हो गया; फिर वह विशाल रथ, जो दोणाचार्य और कर्णके दिव्यास्त्रोंसे दग्ध-सा ही हो चुका था, बिना आग लगाये ही प्रज्वलित हो उठा। उसके सारे उपकरण, जूआ, धुरी, लगाम और घोड़े—सब जलकर खाक हो गये। वह राखकी ढेरी होकर धरतीपर बिखर गया। यह देख पाण्डवोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। अर्जुनने हाथ जोड़कर भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम करके पूछा—'गोविन्द ! यह क्या आश्चर्यजनक घटना हो गयी ? एकाएक रथ क्यों जल गया ? यदि मेरे सुनने योग्य हो तो इसका कारण बताइये।'

श्रीकृष्णने कहा—अर्जुन ! लड़ाईमें नाना प्रकारके अस्त्रोंके आघातसे यह रथ तो पहले ही जल चुका था, सिर्फ मेरे बैठे रहनेके कारण भस्म नहीं हुआ था। जब तुम्हारा सारा काम पूरा हो गया है, तब अभी-अभी इस रथको मैंने छोड़ा है; इसीलिये यह अब भस्म हुआ है। यों तो ब्रह्मास्त्रके तेजसे यह पहले ही दग्ध हो चुका था।

इसके बाद भगवान्‌ने किंचित् मुसकराकर राजा युधिष्ठिरको हृदयसे लगाया और कहा—'कुन्तीनन्दन ! आपके शत्रु परास्त हुए और आपकी विजय हुई—यह बड़े सौभाग्यकी बात है। अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव तथा स्वयं आप इस विनाशकारी संग्रामसे कुशलपूर्वक बच गये—यह और भी खुशीकी बात है। अब आपको आगे क्या करना है, इसका शीघ्र विचार कीजिये। उपप्लव्यमें जब मैं अर्जुनके साथ आपके पास आया था, उस समय आपने मुझे मधुपर्क देकर कहा था—'कृष्ण ! अर्जुन तुम्हारा भाई और मित्र है, इसे हर एक आफतसे बचाना।' उस दिन मैंने 'हाँ' कहकर आपकी आज्ञा स्वीकार की थी। आपके उस अर्जुनकी मैंने हर तरहसे रक्षा की है, यह भाइयोंसहित विजयी होकर इस रोमाञ्चकारी संग्रामसे छुटकारा पा गया।'

श्रीकृष्णकी बात सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरको रोमाञ्च हो आया, वे कहने लगे—'जनार्दन ! द्रोण और कर्णने जिस ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया था, उसे आपके सिवा दूसरा कौन सह सकता था ? वज्रधारी इन्द्र भी उसका सामना नहीं कर सकते थे। आपकी ही कृपासे संशप्तक परास्त हुए हैं। अर्जुनने इस महासमरमें कभी पीठ नहीं दिखायी—यह भी आपके ही अनुग्रहका फल है। आपके द्वारा अनेकों बार हमारे कार्य सिद्ध हुए हैं। उपप्लव्यमें महर्षि व्यासने मुझसे पहले ही कहा था—जहाँ धर्म है, वहाँ श्रीकृष्ण हैं; और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है।'

तदनन्तर, उन सभी वीरोंने आपकी छावनीमें घुसकर खजाना, रत्नोंकी ढेरी तथा भंडार-घरपर अधिकार कर लिया। चाँदी, सोना, मोती, मणि, अच्छे-अच्छे आभूषण, बढ़िया कम्बल, मृगचर्म तथा राज्यके बहुत-से सामान उनके हाथ लगे। साथ ही असंख्य दास-दासियोंको भी उन्होंने अपने अधीन किया। महाराज ! उस समय आपके अक्षय धनका भंडार पाकर पाण्डव खुशीके मारे उछल पड़े, किलकारियाँ मारने लगे। इसके बाद अपने वाहनोंको खोलकर वे वहीं विश्राम करने लगे। विश्रामके समय

श्रीकृष्णने कहा—'आजकी रातमें हमलोगोंको अपने मङ्गलके लिये छावनीके बाहर ही रहना चाहिये।' 'बहुत अच्छा' कहकर पाण्डव श्रीकृष्ण और सात्यकिके साथ छावनीसे बाहर निकल गये। उन्होंने परम पवित्र ओघवती नदीके किनारे वह रात व्यतीत की।

उस समय राजा युधिष्ठिरने समयोचित कर्तव्यका विचार करके कहा—'माधव !एक बार क्रोधमें भरी हुई गान्धारी देवीको शान्त करनेके लिये आपको हस्तिनापुर जाना चाहिये, यही उचित जान पड़ता है।'



भगवान् कृष्णका हस्तिनापुर जाना और धृतराष्ट्र तथा गान्धारीको सान्त्वना देकर वापस आना

जनमेजयने पूछा—विप्रवर ! धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णको गान्धारीके पास क्यों भेजा ? जब पहले वे संधि करानेके लिये कौरवोंके पास गये थे, उस समय तो उनकी इच्छा पूरी हुई नहीं, जिसके कारण यह युद्ध हुआ। अब जब सारे योद्धा मारे गये, दुर्योधन गिर गया और पाण्डव शत्रुहीन हो गये, तब ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी, जिसके लिये भगवान् कृष्णको फिर वहाँ जाना पड़ा ! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, इसमें कोई छोटा-मोटा कारण नहीं होगा।

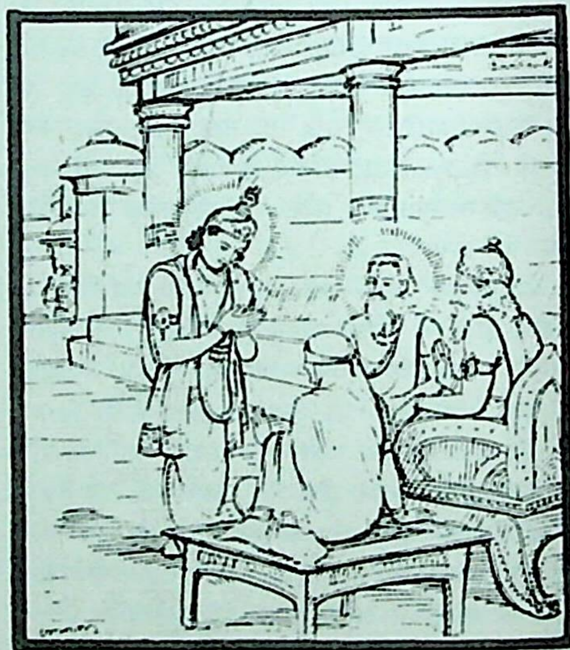
वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! तुमने जो प्रश्न किया है, वह ठीक ही है; मैं इसका यथार्थ कारण बताता हूँ, सुनो। भीमसेनने गदायुद्धके नियमका उल्लङ्घन करके महाबली दुर्योधनको मारा था—यह देखकर महाराज युधिष्ठिरको बड़ा भय हुआ। उन्होंने सोचा 'दुर्योधनकी माता गान्धारी बड़ी तपस्विनी हैं, उन्होंने जीवनभर घोर तपस्या की हैं। वे चाहें तो तीनों लोकोंको भस्म कर सकती हैं, इसलिये सबसे पहले उन्हें ही शान्त करना चाहिये। अन्यथा हमलोगोंके द्वारा जब वे अपने पुत्रका अन्यायपूर्वक वध सुनेंगी तो क्रोधमें भरकर अपने मनसे अग्नि प्रकट करके हमें भस्म कर डालेंगी।' यह सब सोच-विचारकर धर्मराजने श्रीकृष्णसे कहा—'गोविन्द ! आपकी ही कृपासे हमने अकण्टक राज्य पाया है, अपने पुरुषार्थसे तो हम उसे पानेकी बात भी नहीं सोच सकते थे। आपने ही सारथि बनकर हमारी सहायता और रक्षा की है। यदि आप इस युद्धमें अर्जुनके कर्णधार न होते, तो ये समुद्र-जैसी कौरव-सेनाको जीतकर उसके पार कैसे पहुँच पाते ? हमलोगोंके लिये आपने कौन-कौन-सा कष्ट नहीं उठाया ? गदाओंके प्रहार, परिघोंकी मार, शक्ति, भिन्दिपाल, तोमर और फरसोंकी चोटें सहीं तथा शत्रुओंकी कठोर बातें भी सुनीं। किंतु दुर्योधनके मारे जानेसे सब सफल हो गया। इस प्रकार यद्यपि हमलोगोंकी विजय हुई है, तथापि अभी हमारा चित्त संदेहके झूलेमें झूल रहा है। माधव ! जरा, आप गान्धारीके क्रोधका तो खयाल कीजिये; वे नित्य कठोर तपस्यामें संलग्न रहनेके कारण दुर्बल हो गयी हैं, अपने पुत्र-पौत्रोंका वध सुनकर निश्चय ही हमें भस्म कर डालेंगी। इसलिये इस समय उन्हें प्रसन्न करना आवश्यक है। पुरुषोत्तम ! जब वे पुत्रके शोकसे पीड़ित हो क्रोधसे लाल-लाल आँखें करके देखेंगी, उस समय आपके सिवा दूसरा कौन उनकी ओर दृष्टि डालनेका साहस करेगा ? अतः उन्हें शान्त करनेके लिये एक बार आपका वहाँ जाना उचित मालूम होता है। आपहीसे इस जगत्का प्रादुर्भाव होता है और आपहीमें प्रलय। अतः आप ही यथार्थ कारणोंसे युक्त समयोचित बात कहकर गान्धारीको शीघ्र शान्त कर सकेंगे। बाबा व्यासजी भी वहीं होंगे। आपको पाण्डवोंके हितकी दृष्टिसे हर एक उपाय करके गान्धारीका क्रोध शान्त कर देना चाहिये।'

धर्मराजकी बात सुनकर भगवान् कृष्णने दारुकको बुलाया और उसे रथ तैयार करनेकी आज्ञा दी। दारुकने बड़ी फुर्तीसे रथ सजाया और उसे जोतकर भगवान्‌की सेवामें ला खड़ा किया। भगवान् उसपर सवार हो तुरंत हस्तिनापुरको चल दिये और रथकी घरघराहटसे नगरको गुँजाते हुए वहाँ जा पहुँचे। नगरमें प्रवेश करके रथसे उतरे और धृतराष्ट्रको अपने आनेकी सूचना देकर उनके महलमें गये। जाते ही व्यासजीका दर्शन हुआ, जो पहलेसे ही वहाँ पधारे हुए थे। श्रीकृष्णने व्यासजी तथा राजा धृतराष्ट्रके चरण छूए और गान्धारीको भी प्रणाम किया। फिर वे धृतराष्ट्रका हाथ अपने हाथमें ले फूट-फूटकर रोने लगे। उन्होंने दो घड़ीतक शोकके आँसू बहाये। फिर जलसे आँखें धोकर विधिवत् आचमन किया और धृतराष्ट्रसे कहा—'भारत ! आप वृद्ध हैं। इसलिये कालके द्वारा जो कुछ संघटित हुआ और हो रहा है, वह आपसे छिपा नहीं है। पाण्डव सदासे ही आपके इच्छानुसार बर्ताव करते हैं।

उन्होंने बहुत चाहा कि किसी तरह हमारे कुलका नाश न हो। वे सर्वथा निर्दोष थे; तो भी उन्हें कपटपूर्वक जूएमें हराकर बनवास दिया गया। नाना प्रकारके वेष बनाकर उन्होंने अज्ञातवासका कष्ट भोगा। इसके अलावे भी उन्हें असमर्थ पुरुषोंकी तरह बहुत-से क्लेश सहने पड़े। जब युद्ध छिड़नेका अवसर आया, तो मैं स्वयं आपकी सेवामें उपस्थित हुआ और यह झगड़ा मिटानेके लिये मैंने सब लोगोंके सामने आपसे केवल पाँच गाँव माँगे थे। किंतु कालकी प्रेरणासे आप भी लोभमें फँस गये और मेरी प्रार्थना ठुकरा दी गयी। इस तरह सिर्फ आपके अपराधसे सम्पूर्ण क्षत्रियोंका संहार हुआ है। भीष्म, सोमदत्त, बाह्लीक, कृप, द्रोण, अश्वत्थामा और विदुरजी भी आपसे सदा संधिके लिये प्रार्थना करते रहे; किंतु आपने किसीका कहना नहीं माना। सच है, जिसके मनपर कालका प्रभाव होता है, वह मोहमें पड़ ही जाता है। जब युद्धकी तैयारी शुरू हुई, उस समय आपकी भी बुद्धि मारी गयी! इसे कालका प्रभाव या प्रारब्धके सिवा और क्या कहा जा सकता है? वास्तवमें यह जीवन प्रारब्धके ही अधीन है। महाराज! आप पाण्डवोंपर दोषारोपण न कीजियेगा, उन बेचारोंका तनिक भी अपराध नहीं है। वे न कभी धर्मसे गिरे हैं, न न्यायसे। आपके प्रति उनका स्नेह भी कम नहीं हुआ है और अब तो आपको तथा गान्धारी देवीको पाण्डवोंसे ही पिण्डा-पानी मिलनेवाला है। उन्हींसे आपका वंश बढ़ेगा। पुत्रसे मिलनेवाला सारा फल अब पाण्डवोंसे ही मिलेगा। इसलिये आपलोग पाण्डवोंके प्रति मनमें मैल न रखें, उनकी बुराई न सोचें। अपना ही अपराध या भूल समझकर उनका कल्याण मनावें, उनकी रक्षा करें। महाराज! आप तो जानते ही हैं, धर्मराज युधिष्ठिरकी आपके चरणोंमें कितनी भक्ति है। कितना स्वाभाविक स्नेह है! उन्होंने अपनी बुराई करनेवाले शत्रुओंका ही संहार किया है; तो भी वे उनके शोकमें दिन-रात जलते रहते हैं, उन्हें तनिक भी चैन नहीं मिलता! आप और गान्धारीके लिये तो वे बहुत शोक करते हैं, उनके हृदयमें शान्ति नहीं है। लज्जाके मारे उन्हें आपके सामने आनेकी हिम्मत नहीं पड़ती।'

राजा धृतराष्ट्रसे इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण शोकसे दुर्बल हुई गान्धारी देवीसे बोले—'कल्याणी! मैं तुमसे भी जो कह रहा हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। आज संसारमें तुम्हारी-जैसी तपस्विनी स्त्री दूसरी कोई नहीं है। तुम्हें याद होगा, उस दिन सभामें मेरे सामने ही तुमने दोनों पक्षोंका हित करनेवाला धर्म और अर्थयुक्त वचन कहा था; किंतु तुम्हारे पुत्रोंने उसे नहीं माना। दुर्योधन विजयका अभिलाषी था, उससे तुमने रुखाईके साथ कहा—'ओ मूर्ख! जिधर धर्म होता है, उसी पक्षकी जीत होती है।' राजकुमारी! तुम्हारी वही बात आज सत्य हुई है, ऐसा समझकर मनमें शोक न करो। तुममें तपस्याका बहुत बड़ा बल है, तुम अपनी क्रोधभरी दृष्टिसे चराचर जगत्को भस्म कर डालनेकी शक्ति रखती हो; तो भी तुम्हें पाण्डवोंके नाशका विचार कभी मनमें नहीं लाना चाहिये।'

श्रीकृष्णकी बात सुनकर गान्धारीने कहा—'केशव! तुम्हारी बात बिलकुल ठीक है। अबतक मेरे मनमें बड़ी



व्यथा थी, मैं चिन्ताकी आगमें जल रही थी; इसलिये मेरी बुद्धि विचलित हो गयी थी—मैं पाण्डवोंके अनिष्टकी बात सोच रही थी। किंतु अब तुम्हारी बातें सुननेसे मेरी बुद्धि स्थिर हो गयी—क्रोधका आवेश जाता रहा। जनार्दन! ये राजा अंधे हैं, बूढ़े हैं और इनके पुत्र मारे गये हैं—इसके कारण शोकसे पीड़ित भी हैं; अब वीरवर पाण्डवोंके साथ तुम्हीं इनको सहारा देनेवाले हो।'

इतना कहते-कहते गान्धारी अञ्चलसे मुँह ढाँपकर फूट-फूटकर रोने लगी। पुत्रोंके शोकसे उसे बड़ा संताप होने लगा। उस समय श्रीकृष्णने कितने ही कारण बताकर कितनी ही युक्तियाँ देकर गान्धारीको सान्त्वना दी—धीरज बँधाया। धृतराष्ट्र तथा गान्धारीको आश्वासन देनेके पश्चात्

भगवान्‌ने अश्वत्थामाके भीषण संकल्पका स्मरणका किया, फिर तो वे तुरंत खड़े हो गये और व्यासजीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर राजा धृतराष्ट्रसे बोले—'महाराज ! अब मैं यहाँसे जानेकी आज्ञा चाहता हूँ, आप शोक न करें। इस समय अश्वत्थामाके मनमें पापपूर्ण विचार जाग्रत् हुआ है, इसीलिये सहसा उठ पड़ा हूँ। उसने आजकी रातमें पाण्डवोंको मार डालनेका निश्चय किया है।'

यह सुनकर धृतराष्ट्र और गान्धारीने कहा—'जनार्दन ! यदि ऐसी बात है, तो जल्दी जाओ और पाण्डवोंकी रक्षा करो। हम फिर तुमसे शीघ्र ही मिलेंगे।' तदनन्तर, भगवान् श्रीकृष्ण दारुकके साथ तुरंत चल दिये। उनके जानेके बाद महात्मा व्यासजी धृतराष्ट्रको आश्वासन देने लगे। छावनीके पास पहुँचकर श्रीकृष्ण पाण्डवोंसे मिले और हस्तिनापुरका सारा समाचार उन्हें कह सुनाया।



दुर्योधनका विलाप तथा अश्वत्थामाका विषाद, प्रतिज्ञा और सेनापतिके पदपर अभिषेक

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! मेरा पुत्र बड़ा क्रोधी था, पाण्डवोंसे वैर रखनेके कारण उसपर बड़ा भारी संकट आ पड़ा। बताओ, जब जाँघें टूट जानेसे वह पृथ्वीपर गिरा और भीमसेनने उसके सिरपर पैर रखा, उसके बाद उसने क्या कहा ?

सञ्जयने कहा—महाराज ! जाँघ टूट जानेपर जब दुर्योधन धरतीपर गिरा तो धूलमें सन गया। फिर बिखरे हुए बालोंको समेटता हुआ वह दसों दिशाओंकी ओर देखने लगा। तत्पश्चात् बड़ी कोशिशसे किसी तरह बालोंको बाँधकर उसने आँसूभरे नेत्रोंसे मेरी ओर देखा और अपनी दोनों भुजाओंको धरतीपर रगड़कर उच्छ्वास लेते हुए कहा—'ओह ! शान्तनुनन्दन भीष्म, कर्ण, कृपाचार्य, शकुनि, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य और कृतवर्मा-जैसे वीर मेरे रक्षक थे; तो भी मैं इस दशाको आ पहुँचा ! निश्चय ही कालका कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता। जो एक दिन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी था, उसकी आज यह अवस्था ! सञ्जय ! मेरे पक्षके योद्धाओंमें जो लोग जीवित हों, उनसे कहना कि 'भीमसेनने गदा-युद्धके नियमको तोड़कर दुर्योधनको मारा है। क्रूर कर्म करनेवाले पाण्डवोंने भीष्म, द्रोण, भूरिश्रवा और कर्णको कपटपूर्वक मारनेके पश्चात् मेरे साथ छल करके एक और कलंकका टीका लगा लिया। मुझे विश्वास है, उन्हें इन कुकर्मके कारण सत्पुरुषोंके समाजमें पछताना पड़ेगा। कौन ऐसा विद्वान् होगा, जो मर्यादाका भंग करनेवाले मनुष्यके प्रति सम्मान प्रकट करेगा ? आज पापी भीमसेन जैसा खुश हो रहा है, अधर्मसे विजय पानेपर दूसरा कौन बुद्धिमान् पुरुष ऐसी खुशी मनायेगा ? मेरी जाँघें टूट गयी हैं; ऐसी दशामें भीमने जो मेरे सिरको पैरोंसे दबाया है, इससे बढ़कर आश्चर्यकी बात और क्या होगी ? मेरे माता-पिता बहुत दुःखी होंगे, उनसे यह संदेश कहना—मैंने यज्ञ किये; जो भरण-पोषण करने योग्य थे, उनका पालन किया और समुद्रपर्यन्त पृथ्वीपर अच्छी तरह शासन किया। शत्रु जीवित थे, तो भी उनके मस्तकपर पैर रखा और शक्तिके अनुसार मित्रोंका प्रिय किया। अपने बन्धु-बान्धवोंका आदर तथा वशमें रहनेवालोंका सत्कार किया। धर्म, अर्थ तथा कामका सेवन किया; दूसरे राष्ट्रोंपर आक्रमण करके उन्हें जीता और दासकी भाँति राजाओंपर हुक्म चलाया। जो अपने प्रिय व्यक्ति थे, उनकी सदा ही भलाई की। फिर मुझसे अच्छा अन्त किसका हुआ होगा ? विधिवत् वेदोंका स्वाध्याय किया, नाना प्रकारके दान दिये और आयुभरमें मुझे कभी रोग नहीं हुआ ! मैंने अपने धर्मसे लोकोंपर विजय पायी है तथा धर्मात्मा क्षत्रिय जैसी मृत्यु चाहते हैं, वही मुझे प्राप्त हो गयी। इससे अच्छा अन्त किसका होगा ? संतोषकी बात है कि मैं पीठ दिखाकर भागा नहीं, मेरे मनमें कोई दुर्विचार नहीं उत्पन्न हुआ। तो भी जैसे सोये अथवा पागल हुए मनुष्यको जहर देकर मार डाला जाय, उसी तरह उस पापीने युद्धधर्मका उल्लङ्घन करके मेरा वध किया है।'

तत्पश्चात् आपके पुत्रने संदेशवाहकोंसे कहा—'अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्यसे मेरी बात कह देना—अनेकों बार युद्धके नियमको भंग करके पापमें प्रवृत्त हुए इन पाण्डवोंका आपलोग कभी भी विश्वास न कीजियेगा। मैं भीमके द्वारा अधर्मपूर्वक मारा गया हूँ। जो मेरे ही लिये स्वर्गमें गये हैं उन आचार्य द्रोण, कर्ण, शल्य, वृषसेन, शकुनि, जलसन्ध, भगदत्त, भूरिश्रवा, जयद्रथ तथा दुःशासन आदि भाइयोंके तथा लक्ष्मण, दुःशासनकुमार और अन्य हजारों राजाओंके पीछे अब मैं भी स्वर्गलोगमें चला जाऊँगा। चिन्ता यही

है कि अपने भाइयों और पतिकी मृत्युका समाचार सुनकर मेरी दुःखिनी बहिन दुःशलाकी क्या दशा होगी। पुत्र और पौत्रोंकी बिलखती हुई बहुओंके साथ मेरे माता-पिता किस अवस्थाको पहुँचेंगे ! बेटे और पतिकी मृत्यु सुनकर बेचारी लक्ष्मणकी माता भी तुरंत प्राण दे देगी। व्याख्यान देनेमें कुशल और संन्यासीके वेषमें चारों ओर घूमने-फिरनेवाले चार्वाकको यदि मेरी हालत मालूम हो जायगी तो अवश्य ही वे मेरे वैरका बदला लेंगे। मैं तो त्रिभुवनमें प्रसिद्ध इस पवित्र तीर्थ समन्तपञ्चकमें प्राण त्याग कर रहा हूँ, इसलिये मुझे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होगी।'

राजन् ! आपके पुत्रका यह विलाप सुनकर हजारों मनुष्योंकी आँखोंमें आँसू भर आये। वे व्याकुल होकर वहाँसे इधर-उधर हट गये। दूतोंने आकर अश्वत्थामासे गदायुद्धकी सारी बातें तथा राजाको अन्यायपूर्वक गिराये जानेका समाचार भी कह सुनाया। इसके बाद वहाँ थोड़ी देरतक विचार करनेके पश्चात् वे जहाँसे आये थे, वहीं लौट गये।

संदेशवाहकोंके मुखसे दुर्योधनके मारे जानेका समाचार सुनकर बचे हुए कौरव महारथी अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कृतवर्मा—जो स्वयं भी तीखे बाण, गदा, तोमर और शक्तियोंके प्रहारसे विशेष घायल हो चुके थे—तेज चलनेवाले घोड़ोंसे जुते हुए रथपर सवार हो तुरंत युद्धभूमिमें गये। वहाँ पहुँचकर देखा कि दुर्योधन धरतीपर गिरा हुआ छटपटा रहा है और उसका सारा शरीर खूनसे भीगा हुआ है। क्रोधके मारे उसकी भौंहें तनी और आँखें चढ़ी हुई थीं, वह अमर्षमें भरा दिखायी देता था।

अपने राजाको इस अवस्थामें पड़ा देख कृपाचार्य आदिको बड़ा मोह हुआ। वे रथोंसे उतरकर दुर्योधनके पास ही जमीनपर बैठ गये। उस समय अश्वत्थामाकी आँखोंमें आँसू भर आये, वह सिसकता हुआ कहने लगा—'राजन् ! निश्चय ही इस मनुष्यलोकमें कुछ भी सत्य नहीं है, जहाँ तुम्हारे-जैसा राजा धूलमें लोट रहा है। अन्यथा जो एक दिन समस्त भूमण्डलका स्वामी था, जिसने सबपर हुक्म चलाया, वही आज इस निर्जन वनमें अकेला कैसे पड़ा हुआ है। आज मुझे दुःशासन नहीं दिखायी देता, महारथी कर्ण तथा सम्पूर्ण हितैषी मित्रोंका भी दर्शन नहीं होता—यह क्या बात है? वास्तवमें कालकी गतिको जानना बड़ा कठिन है। जरा समयका उलट-फेर तो देखो, तुम मूर्धाभिषिक्त राजाओंके अग्रगण्य होकर भी आज तिनकोंसहित धूलमें लोट रहे हो ! महाराज ! तुम्हारा वह श्वेत छत्र कहाँ है ? चँवर कहाँ है ? और वह विशाल सेना कहाँ चली गयी ? किस कारणसे कौन-सा काम होगा, इसको समझना बड़ा मुश्किल है; क्योंकि तुम समस्त प्रजाके माननीय राजा होकर भी आज इस दशाको पहुँच गये। तुम तो इन्द्रसे भी भिड़नेका हौसला रखते थे; जब तुमपर भी यह विपत्ति आ गयी तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि किसी भी मनुष्यकी सम्पत्ति स्थिर नहीं होती।'

अत्यन्त दुःखी हुए अश्वत्थामाकी बात सुनकर दुर्योधनकी आँखोंमें शोकके आँसू उमड़ आये। उसने दोनों हाथोंसे नेत्रोंको पोंछा और कृपाचार्य आदिसे यह समयोचित वचन कहा— 'मित्रो ! इस मर्त्यलोकका ऐसा ही नियम है, यह विधाताका बनाया हुआ धर्म है; इसलिये काल-क्रमसे एक-न-एक दिन समस्त प्राणियोंका मरण होता है। वही आज मुझे भी प्राप्त हुआ है, जिसे आपलोग अपनी आँखों देख रहे हैं। एक दिन मैं इस भूमण्डलका पालन करनेवाला राजा था और आज इस अवस्थाको पहुँचा हुआ हूँ। तो भी मुझे इस बातकी खुशी है कि युद्धमें बड़ी-से-बड़ी विपत्ति आनेपर भी मैं कभी पीछे नहीं हटा। पापियोंने मुझे मारा भी तो छलसे। मैंने युद्धमें सदा ही उत्साह दिखाया है और अपने बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर स्वयं भी युद्धमें ही प्राण-त्याग कर रहा हूँ; इससे मुझे विशेष संतोष है। सौभाग्यकी बात है कि आपलोगोंको इस नरसंहारसे मुक्त देख रहा हूँ। साथ ही आपलोग सकुशल एवं कुछ करनेमें समर्थ हैं—यह मेरे लिये भी प्रसन्नताकी बात है। आपलोगोंका मुझपर स्वभाविक स्नेह है, इसलिये मेरे मरनेसे दुःखी हो रहे हैं; किंतु चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं है। यदि वेद प्रमाणभूत हैं, तो मैंने अक्षयलोकोंपर अधिकार प्राप्त किया है; इसलिये मैं कदापि शोकके योग्य नहीं हूँ। आपलोगोंने अपने स्वरूपके अनुरूप पराक्रम दिखाया और सदा ही मुझे विजय दिलानेका प्रयत्न किया है; किंतु दैवके विधानका कौन उल्लङ्घन कर सकता है ?'

महाराज ! इतना कहते-कहते दुर्योधनकी आँखोंमें फिरसे आँसू उमड़ आये तथा वह शरीरकी पीड़ासे भी अत्यन्त व्याकुल हो गया; इसलिये अब आगे कुछ न बोल

सका, चुप हो रहा। राजाकी यह दशा देख अश्वत्थामाकी आँखें भर आयीं, उसे बड़ा दुःख हुआ। साथ ही शत्रुओंपर अमर्ष भी हुआ। वह क्रोधसे आगबबूला हो उठा और हाथसे हाथ दबाता हुआ कहने लगा—'राजन्! उन पापियोंने क्रूरकर्म करके ही मेरे पिताको भी मारा था; किंतु उसका मुझे उतना संताप नहीं है, जितना आज तुम्हारी दशा देखकर हो रहा है। अच्छा, अब मेरी बात सुनो—'मैंने जो यज्ञ किये, कुएँ-तालाब आदि बनवाये तथा और जो दान, धर्म एवं पुण्य किये हैं, उन सबकी तथा सत्यकी भी शपथ खाकर कहता हूँ—आज मैं श्रीकृष्णके देखते-देखते हर एक उपायसे काम लेकर समस्त पाञ्चालोंको यमलोक भेज दूँगा। इसके लिये सिर्फ तुम आज्ञा दे दो।'

अश्वत्थामाकी बात सुनकर दुर्योधन मन-ही-मन प्रसन्न हुआ और कृपाचार्यसे बोला—'आचार्य! आप शीघ्र ही जलसे भरा हुआ कलश ले आइये।' कृपाचार्यने ऐसा ही किया। जब कलश लेकर वे राजाके निकट आये, तो उसने कहा— 'विप्रवर! यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं, तो द्रोणकुमारका सेनापतिके पदपर अभिषेक कर दीजिये; आपका भला होगा।' राजाकी आज्ञासे कृपाचार्यने अश्वत्थामाका अभिषेक किया। इसके बाद वह दुर्योधनको हृदयसे लगाकर सम्पूर्ण दिशाओंको सिंहनादसे



प्रतिध्वनित करता हुआ वहाँसे चल दिया। दुर्योधन खूनमें डूबा हुआ रातभर वहीं पड़ा रहा। युद्धभूमिसे दूर जाकर वे तीनों महारथी आगेके कार्यक्रमपर विचार करने लगे।



शल्यपर्व समाप्त

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

सौप्तिकपर्व

तीनों महारथियोंका एक वनमें विश्राम करना और वहाँ अश्वत्थामाका पाण्डवोंको कपटपूर्वक मारनेका निश्चय करके कृपाचार्य और कृतवर्मासे सलाह लेना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप नररत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर विजय प्राप्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

तब अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा—ये तीनों वीर दक्षिणकी ओर चले और सूर्यास्तके समय शिविरके पास पहुँच गये। इतनेहीमें उन्हें विजयाभिलाषी पाण्डववीरोंका भीषण नाद सुनायी दिया; अतः उनकी चढ़ाईकी आशंकासे वे भयभीत होकर पूर्वकी ओर भागे तथा कुछ दूर जाकर उन्होंने मुहूर्तभर विश्राम किया।

राजा धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय! मेरे पुत्र दुर्योधनमें दस हजार हाथियोंका बल था। उसे भीमसेनने मार डाला—इस बातपर एकाएकी विश्वास नहीं होता। मेरे पुत्रका शरीर वज्रके समान कठोर था। उसे भी पाण्डवोंने संग्रामभूमिमें नष्ट कर दिया। इससे निश्चय होता है कि प्रारब्धसे पार पाना किसी प्रकार सम्भव नहीं है। भैया सञ्जय! मेरा हृदय अवश्य ही फौलादका बना हुआ है जो अपने सौ पुत्रोंकी मृत्युका संवाद सुनकर भी इसके हजारों टुकड़े नहीं हुए। भला, अब पुत्रहीन होकर हम बूढ़े-बुढ़िया कैसे जीवित रहेंगे? मैं एक राजाका पिता और स्वयं राजा ही था। सो अब पाण्डवोंका दास बनकर किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करूँगा? ओह! जिसने अकेले ही मेरे सौ-के-सौ पुत्रोंका वध कर डाला और मेरी जिंदगीके आखिरी दिन दुःखमय कर दिये, उस भीमसेनकी बातोंको मैं कैसे सुन सकूँगा? अच्छा, सञ्जय! यह तो बताओ कि इस प्रकार बेटा दुर्योधनके अधर्मपूर्वक मारे जानेपर कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामाने क्या किया?

सञ्जयने कहा—राजन्! आपके पक्षके ये तीनों वीर थोड़ी ही दूर गये थे कि इन्होंने तरह-तरहके वृक्ष और लताओंसे भरा हुआ एक भयंकर वन देखा। वहाँ थोड़ी देर विश्राम करके उन्होंने घोड़ोंको पानी पिलाया और थकावट दूर हो जानेपर उस सघन वनमें प्रवेश किया। वहाँ चारों ओर दृष्टि डालनेपर उन्हें एक विशाल वटवृक्ष दिखायी दिया, जिसकी हजारों शाखाएँ सब ओर फैली हुई थीं। उस वटके पास पहुँचकर वे महारथी अपने रथोंसे उतर पड़े और स्नानादि करके संध्यावन्दन करने लगे। इतनेहीमें भगवान् भास्कर अस्ताचलके शिखरपर पहुँच गये और सम्पूर्ण संसारमें निशादेवीका आधिपत्य हो गया। सब ओर छिटके हुए ग्रह, नक्षत्र और तारोंसे सुशोभित गगनमण्डल दर्शनीय वितानके समान शोभा पाने लगा। अभी रात्रिका आरम्भकाल ही था। कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा दुःख और शोकमें डूबे हुए उस वटवृक्षके निकट पास-ही-पास बैठ गये और कौरव तथा पाण्डवोंके विगत संहारके लिये शोक प्रकट करने लगे। अत्यन्त थके होनेके कारण नींदने उन्हें धर दबाया। इससे आचार्य कृप और कृतवर्मा सो गये। यद्यपि ये महामूल्य पलंगोंपर सोनेवाले, सब प्रकारकी सुखसामग्रियोंसे सम्पन्न और दुःखके अनभ्यासी थे, तो भी अनाथोंकी तरह पृथ्वीपर ही पड़ गये।

किंतु अश्वत्थामा इस समय अत्यन्त क्रोध और रोषमें भरा हुआ था। इसलिये उसे नींद नहीं आयी। उसने चारों ओर वनमें दृष्टि डाली तो उसे उस वटवृक्षपर बहुत-से कौए दिखायी दिये। उस रात हजारों कौओंने उस वृक्षपर बसेरा लिया था और वे आनन्दसे अलग-अलग घोसलोंमें सोये हुए थे। इसी समय उसे एक भयानक उल्लू उस ओर आता

दिखायी दिया। वह धीरे-धीरे गुनगुनाता वटकी एक शाखापर कूदा और उसपर सोये हुए अनेकों कौओंको मारने लगा। उसने अपने पंजोंसे किन्हीं कौओंके पर नोच डाले, किन्हींके सिर काट लिये और किन्हींके पैर तोड़ दिये। इस प्रकार अपनी आँखोंके सामने आये हुए अनेकों कौओंको उसने बात-की-बातमें मार डाला। इससे वह सारा वटवृक्ष कौओंके शरीर और अंगावयवोंसे भर गया।

रात्रिके समय उल्लूका यह कपटपूर्ण व्यवहार देखकर अश्वत्थामाने भी वैसा ही करनेका संकल्प किया। उस



एकान्त देशमें वह विचारने लगा, 'इस पक्षीने अवश्य ही मुझे संग्राम करनेकी युक्तिका उपदेश किया है। यह समय भी इसीके योग्य है। पाण्डवलोग विजय पाकर बड़े तेजस्वी, बलवान् और उत्साही हो रहे हैं। इस समय अपनी शक्तिसे तो मैं उन्हें मार नहीं सकता और राजा दुर्योधनके आगे उनका वध करनेकी मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। अब यदि मैं न्यायानुसार युद्ध करूँगा तो निःसंदेह मुझे अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा। हाँ, कपटसे अवश्य सफलता हो सकती है और शत्रुओंका भी खूब संहार हो सकता है। पाण्डवोंने भी तो पद-पदपर अनेकों निन्दनीय और कुत्सित कर्म किये हैं। युद्धके अनुभवी लोगोंका ऐसा कथन भी है कि जो सेना आधी रातके समय नींदमें बेहोश हो, जिसका नायक नष्ट हो चुका हो, जिसके योद्धा छिन्न-भिन्न हो गये हों और जिसमें मतभेद पैदा हो गया हो, उसपर भी शत्रुको प्रहार करना चाहिये।' इस प्रकार विचार करके द्रोणपुत्रने रात्रिके समय सोये हुए पाण्डव और पाञ्चाल-वीरोंको नष्ट करनेका निश्चय किया। फिर उसने कृपाचार्य और कृतवर्माको जगाकर अपना निश्चय सुनाया। वे दोनों महावीर अश्वत्थामाकी बात सुनकर बड़े लज्जित हुए और उन्हें उसका कोई उत्तर न सूझा। तब अश्वत्थामाने एक मुहूर्ततक विचार करके अश्रुगद्गद होकर कहा, 'महाराज दुर्योधन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके स्वामी थे। उन्हें अनेकों क्षुद्र योद्धाओंने मिलकर भीमसेनके हाथसे मरवा दिया। पापी भीमने एक मूर्द्धाभिषिक्त सम्राट्के मस्तकपर लात मारी—यह उसका कितना खोटा काम था। हाय ! पाण्डवोंने कौरवोंका कैसा भीषण संहार किया है कि आज इस महान् संहारसे हम तीन ही बच पाये हैं। मैं तो इस सबको समयका फेर ही समझता हूँ। यदि मोहवश आप दोनोंकी बुद्धि नष्ट नहीं हुई है तो इस घोर संकटके समय हमारा क्या कर्तव्य है, यह बतानेकी कृपा करें।'



कृपाचार्य और अश्वत्थामाका संवाद

तब कृपाचार्यने कहा—महाबाहो ! तुमने जो बात कही, वह मैंने सुन ली; अब कुछ मेरी बात भी सुन लो। सभी मनुष्य दैव और पुरुषार्थ—दो प्रकारके कर्मोंसे बँधे हुए हैं। इन दोके सिवा और कुछ नहीं है। अकेले दैव या पुरुषार्थसे कार्यसिद्धि नहीं होती। सफलताके लिये दोनोंका सहयोग आवश्यक है। इन दोनोंमें दैव ही फलका निश्चय करके स्वयं उसे देनेके लिये प्रवृत्त होता है, तो भी बुद्धिमान् लोग कुशलतापूर्वक पुरुषार्थमें लगे रहते हैं। मनुष्योंके सम्पूर्ण कार्य और प्रयोजन इन्हीं दोनोंसे सिद्ध होते हैं। उनके किये हुए पुरुषार्थकी सिद्धि भी दैवके ही अधीन है और दैवकी अनुकूलतासे ही उन्हें फलकी प्राप्ति होती है। कार्य कुशल मनुष्य दैवके अनुकूल न होनेपर जो कार्य हाथमें लेते हैं, बहुत सावधानीसे करनेपर भी उसका कोई फल नहीं होता। इसके विपरीत जो लोग आलसी और अमनस्वी होते हैं, उन्हें तो किसी कामको आरम्भ करना ही अच्छा नहीं लगता। किंतु बुद्धिमानोंको यह बात नहीं रुचती; क्योंकि संसारमें कोई भी कर्म प्रायः निष्फल नहीं देखा जाता,

परंतु कर्म न करनेपर तो दुःख ही दिखायी देता है। जो प्रयत्न न करनेपर भी दैवयोगसे ही सब प्रकारके फल प्राप्त कर लेते हैं अथवा जिन्हें चेष्टा करनेपर भी कोई फल नहीं मिलता—ऐसे लोग तो विरले ही होते हैं। तथापि तत्परतापूर्वक कार्यमें लगे हुए मनुष्य आनन्दसे जीवन व्यतीत कर सकते हैं और आलसियोंको कभी सुख नहीं मिलता। इस जीवलोकमें प्रायः तत्परताके साथ कर्म करनेवाले ही अपना हितसाधन करते देखे जाते हैं। यदि उन्हें कार्य आरम्भ करनेपर भी कोई फल नहीं मिलता तो उनकी किसी प्रकारकी निन्दा नहीं की जा सकती। परंतु जो बिना कुछ किये ही फल पा लेता है, उसकी लोकमें निन्दा होती है और प्रायः लोग उससे द्वेष करने लगते हैं। इस प्रकार जो पुरुष दैव और पुरुषार्थ दोनोंके सहयोगको न मानकर केवल दैव या पुरुषार्थके ही भरोसे पड़ा रहता है, वह अपना अनर्थ ही करता है—यही बुद्धिमानोंका निश्चय है।

कई बार उद्योग करनेपर भी जो फल नहीं मिलता, उसमें पुरुषार्थकी न्यूनता और दैव—ये दो कारण हैं। परंतु पुरुषार्थ न करनेपर तो कोई कर्म सिद्ध हो ही नहीं सकता। अतः जो पुरुष वृद्धोंकी सेवा करता है, उनसे अपने कल्याणका साधन पूछता है और उनके बताये हुए हितकारी वचनोंका पालन करता है, उसका यह आचरण ठीक माना जाता है। कार्यका आरम्भ कर देनेपर वृद्धजनोंद्वारा सम्मानित पुरुषोंसे बार-बार सलाह लेनी चाहिये। कार्यकी सफलतामें वे परम कारण माने जाते हैं तथा सिद्धि उन्हींके आश्रित कही जाती है। जो पुरुष वृद्धोंकी बात सुनकर कार्य आरम्भ करता है, उसे अपने कार्यका फल बहुत जल्द प्राप्त हो जाता है। किंतु जो पुरुष राग, क्रोध, भय या लोभसे किसी कार्यमें प्रवृत्त होता है वह उसमें सफलता पानेमें असमर्थ रहता है और तुरंत ही ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जाता है। दुर्योधन भी लोभी और ओछी बुद्धिका पुरुष था। उसने असमर्थ होनेपर भी मूर्खताके कारण बिना विचार किये अपने हितैषियोंका अनादर करके दुष्टजनोंकी सलाहसे यह काम आरम्भ किया था। पाण्डवलोग गुणोंमें उससे बढ़े-चढ़े थे, तथापि बहुत रोकनेपर भी उसने उनसे वैर ठाना। वह पहलेसे ही बड़ा दुष्टस्वभावका था, इसलिये धीरज धारण न कर सका और न उसने अपने मित्रोंकी ही बात सुनी। इसीसे अपने प्रयासमें विफल होकर उसे पश्चात्ताप करना पड़ा। हमलोगोंने उस पापीका पक्ष लिया था, इसलिये हमें भी यह महान् अनर्थ भोगना पड़ा। मैं बहुत सोचता हूँ, तथापि इस कष्टसे संतप्त होनेके कारण मेरी बुद्धिको तो आज भी कोई हितकी बात नहीं सूझती। मनुष्य जब स्वयं हिताहितका विचार करनेमें असमर्थ हो जाय तो उसे अपने सुहृदोंसे सलाह लेनी चाहिये। वहीं इसे बुद्धि और विनयकी प्राप्ति हो सकती है और वहीं इसे अपने हितका साधन भी मिल सकता है। पूछनेपर वे लोग जैसी सलाह दें, वही इसे करना चाहिये। अतः हमलोग राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी और महामति विदुरजीसे मिलकर सलाह लें और हमारे पूछनेपर जैसा वे कहें, वही हम करें—मेरी बुद्धि तो यही निश्चय करती है। यह बात तो निश्चित ही है कि कार्य आरम्भ किये बिना सफलता कभी नहीं मिलती तथा जिनका काम उद्योग करनेपर भी सिद्ध नहीं होता, उनका तो प्रारब्ध ही खोटा समझना चाहिये।

सञ्जय कहते हैं—राजन्! आचार्य कृपकी यह धर्म और अर्थयुक्त शुभ सम्मति सुनकर अश्वत्थामा शोकसे दहकती हुई अग्निके समान जलने लगा। फिर उसने मनको कड़ा करके कृप और कृतवर्मा दोनोंसे कहा—'प्रत्येक मनुष्यमें जो जुदी-जुदी बुद्धि होती है, उसीसे वे संतुष्ट रहते हैं। सब लोग अपनेको ही विशेष बुद्धिमान् समझते हैं। सबको अपनी ही समझ अच्छी जान पड़ती है। वे बार-बार दूसरोंकी बुद्धिकी निन्दा और अपनी बुद्धिकी बड़ाई करते हैं। यदि किसी कारणवश किन्हींका विचार बहुत-से मनुष्योंसे मिल जाता है तो वे एक-दूसरेसे संतुष्ट रहते हैं और बार-बार एक-दूसरेका सम्मान करते हैं। किंतु समयके फेरसे फिर उन्हीं मनुष्योंकी बुद्धियाँ विपरीत होकर एक-दूसरीसे विरुद्ध हो जाती हैं। मनुष्योंके चित्त प्रायः भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं; अतः उनके विभिन्न चित्तोंके परिणामस्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकारकी बुद्धियाँ पैदा होती हैं। एक मनुष्य युवावस्थामें एक प्रकारकी बुद्धिसे मुग्ध-सा हो जाता है, मध्यम अवस्थामें उसपर दूसरे प्रकारकी बुद्धि सवार होती है और वृद्धावस्थामें उसे अन्य ही प्रकारकी बुद्धि अच्छी लगने लगती है। जब मनुष्यपर बड़ा भारी संकट आता है या जब उसे महान् वैभवकी प्राप्ति होती है तो उसकी बुद्धिमें विकार आ जाता है। इस प्रकार एक ही मनुष्यमें समय-समयपर भिन्न-भिन्न बुद्धियाँ होती रहती हैं और उस समय उसको अपनी पहली बुद्धि अरुचिकर हो जाती है। किंतु जो मनुष्य अपनी बुद्धिके अनुसार निश्चय करके जिस बातको अच्छी समझता है वैसा ही अपना भाव बना लेता है, उसीकी बुद्धि उद्योगमें सहायक होती है। सब लोग अपनी ही बुद्धि और समझका आश्रय लेकर तरह-तरहकी चेष्टाएँ करते हैं और उन्हींमें अपना हित मानते हैं। आज आपत्तियोंमें पड़कर मुझे जो बुद्धि पैदा हुई है, वह मैं आपको सुनाता हूँ। इससे अवश्य ही मेरे शोकका नाश हो जायगा। प्रजापति प्रजाओंको उत्पन्न करके उनके लिये

कर्मका विधान करता है और प्रत्येक वर्णको एक-एक विशेष गुण देता है। वह ब्राह्मणको सर्वोत्तम वेद-विद्या, क्षत्रियको उत्तम तेज, वैश्यको व्यापार-कौशल और शूद्रको समस्त वर्णोंके अनुकूल रहनेकी योग्यता देता है। संयमहीन ब्राह्मण बुरा है, तेजोहीन क्षत्रिय निकम्मा है, अकुशल वैश्य निन्दनीय है और अन्य वर्णोंके प्रतिकूल आचरण करनेवाला शूद्र अधम है। मैं तो ब्राह्मणोंके अत्यन्त पूजनीय उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ। मन्दभाग्य होनेसे ही इस क्षात्रधर्मका अनुष्ठान कर रहा हूँ। यदि क्षात्रधर्मको जानकर भी मैं ब्राह्मणत्वकी ओट लेकर इस महान् कर्मको न करूँ तो मेरा यह आचरण सत्पुरुषोंको अच्छा नहीं लगेगा। मैं रणक्षेत्रमें दिव्य धनुष और दिव्य शस्त्र धारण करता हूँ। ऐसी स्थितिमें पिताजीको युद्धमें मारा गया देखकर अब मैं किस मुँहसे सभामें बोलूँगा? अतः आज मैं क्षात्रधर्मका आश्रय लेकर अपने पिता और राजा दुर्योधनके ही मार्गका अनुसरण करूँगा। आज विजयश्रीसे देदीप्यमान पाञ्चाल-वीर बड़े हर्षसे कवच उतारकर बेखटके सो रहे होंगे। अतः आज रात्रिमें उन सोते हुओंपर ही मैं धावा करूँगा और नींदमें बेहोश पड़े हुए उन शत्रुओंको शिविरके भीतर ही तहस-नहस कर डालूँगा। तभी मुझे चैन पड़ेगा। दुर्योधन, कर्ण, भीष्म और जयद्रथने जो दुर्गम मार्ग पकड़ा है उसीसे आज मैं पाञ्चालोंको भी भेजकर छोड़ूँगा। आज रात्रिमें ही मैं पशुके समान बलात् पाञ्चालराज धृष्टद्युम्नका सिर कुचल डालूँगा। आज रात्रिमें ही मैं अपनी तीखी तलवारसे सोये हुए पाञ्चाल और पाण्डववीरोंके सिर उड़ा दूँगा तथा आज रात्रिमें ही मैं सोयी हुई पाञ्चालसेनाको नष्ट करके सुखी और सफलमनोरथ होऊँगा।'

कृपाचार्य बोले—भैया! तुम अपनी टेकसे टलनेवाले नहीं हो। आज पाण्डवोंसे बदला लेनेके लिये तुम्हारा ऐसा विचार हुआ है, सो ठीक ही है। कल सबेरा होनेपर हम दोनों भी तुम्हारे साथ चलेंगे। आज तुम बहुत देरतक जगते रहे हो, इसलिये आजकी रात तो सो लो। इससे तुम्हें कुछ विश्राम मिल जायगा, तुम्हारी नींद पूरी हो जायगी और तुम्हारा चित्त भी ठिकानेपर आ जायगा। इसके बाद यदि तुम शत्रुओंका सामना करोगे तो अवश्य ही उनका वध कर सकोगे। हमलोग भी रातभर सोकर नींद और थकानसे छूट जायँ। रात बीतनेपर हम शत्रुओंका संहार करेंगे। फिर जो भी शत्रु हमारा सामना करेंगे, उन्हें हम तीनों मिलकर मारेंगे। जब संग्रामभूमिमें मेरा और तुम्हारा साथ होगा और कृतवर्मा भी तुम्हारी रक्षा करेगा तो साक्षात् इन्द्र भी हमारे पराक्रमको सहन नहीं कर सकेगा। भैया! कृतवर्मा और मैं पाण्डवोंको युद्धमें परास्त किये बिना कभी पीछे पाँव नहीं रखेंगे। या तो हम संग्रामभूमिमें पाण्डवोंके सहित क्रोधातुर पाञ्चालोंका संहार करके ही लौटेंगे या वहीं प्राणोंकी बलि देकर स्वर्ग प्राप्त करेंगे। मैं तुमसे सच कहता हूँ, कल हम पूरे उद्योगसे संग्राममें तुम्हारी सहायता करेंगे।

मामा कृपाचार्यजीके इस प्रकार हितकी बात कहनेपर अश्वत्थामाने क्रोधसे आँखें लाल करके कहा, 'जो पुरुष दुःखी है, क्रोधमें भरा हुआ है, किसी अर्थके चिन्तनमें लगा हुआ है अथवा किसी कार्यसिद्धिकी उधेड़-बुनमें व्यस्त है, उसे नींद कैसे आ सकती है। आप विचार कीजिये, आज ये चारों बातें मुझे घेरे हुए हैं। मेरी नींदको तो क्रोधने ही हराम कर दिया है। इन पापियोंने जिस प्रकार मेरे पिताजीका वध किया है, वह बात रात-दिन मेरे हृदयको जलाती रहती है। उसके कारण मुझे तनिक भी चैन नहीं है। आपने तो यह सब प्रत्यक्ष ही देखा था। उससे हर समय मेरे मर्मस्थानोंमें पीड़ा होती रहती है। हाय! मेरे-जैसा व्यक्ति इस लोकमें एक मुहूर्त भी किस प्रकार जी रहा है। मैंने पाञ्चालोंके मुखसे 'द्रोण मारे गये' यह शब्द सुना था। इसलिये अब मैं धृष्टद्युम्नको मारे बिना जीवित नहीं रह सकता। राजा दुर्योधनकी जंघाएँ टूट गयीं। उनकी वे दुःखभरी बातें सुनकर ऐसा कौन कठोरचित्त है, जिसकी आँखोंसे आँसू नहीं निकलेंगे? मेरे जीवित रहते मेरी मित्रमण्डलीकी ऐसी दुर्दशा हुई, इससे मेरा शोक बहुत ही बढ़ गया है। आज-कल मेरा मन एकतार होकर इसी उधेड़-बुनमें लगा रहता है। ऐसी स्थितिमें मुझे नींद कैसे आ सकती है? और सुख भी कैसे मिल सकता है? जिस समय दूतोंने मुझे मित्रोंकी पराजय और पाण्डवोंकी विजयका संवाद सुनाया था उसी समय मेरे हृदयमें आग-सी लग गयी थी। इसलिये मैं तो आज ही सोये हुए शत्रुओंका संहार करके विश्राम लूँगा और तभी निश्चिन्त होकर सोऊँगा।'

कृपाचार्यने कहा—अश्वत्थामा! मेरा विचार है कि जिस मनुष्यकी बुद्धि ठीक नहीं है और इन्द्रियोंपर जिसका काबू नहीं है, वह धर्म और अर्थको पूरी तरहसे नहीं जान सकता। इसी प्रकार मेधावी होनेपर भी जिसने विनय नहीं सीखी, वह भी धर्म और अर्थका निर्णय कुछ नहीं समझ सकता। मूर्ख योद्धा बहुत समयतक पण्डितोंकी सेवामें रहनेपर भी धर्मका रहस्य नहीं जान सकता, जिस प्रकार करछी दालका स्वाद नहीं चख सकती; किंतु जैसे जीभ दालका स्वाद तुरंत जान लेती है, वैसे ही बुद्धिमान् पुरुष एक मुहूर्त भी पण्डितोंके पास रहकर तत्काल धर्मको पहचान लेता है।

जो पुरुष धर्मश्रवणकी इच्छावाला, बुद्धिमान् और संयतेन्द्रिय होता है वह सब शास्त्रोंको समझ लेता है। परंतु जो दुरात्मा और पापी मनुष्य बतलाये हुए अच्छे कामको छोड़कर दुःखरूप फल देनेवाले कर्मोंको किया करता है, उसे किसी प्रकार उस कर्मसे नहीं रोका जा सकता। जो सनाथ होता है, उसको सुहृद्गण ऐसे कर्म करनेसे रोका करते हैं। पर उसके प्रारब्धमें यदि सुख मिलना होता है तो वह उस कर्मसे रुक जाता है, नहीं तो नहीं। जिस प्रकार विक्षिप्तचित्त पुरुषको भला-बुरा कहकर काबूमें किया जाता है, उसी प्रकार सुहृद्गण भी समझा-बुझाकर और डाँट-डपटकर उसे वशमें कर सकते हैं; नहीं तो वह वशमें नहीं आ सकता और उसे दुःख ही उठाना पड़ता है। तात! तुम भी मनको काबूमें करके उसे कल्याणसाधनमें लगाओ और मेरी बात मानो, जिससे तुम्हें पश्चात्ताप न करना पड़े। जो सोये हुए हों, जिन्होंने शस्त्र रख दिये हों, रथ और घोड़े खोल दिये हों, जो 'मैं आपका ही हूँ' ऐसा कह रहे हों, जो शरणागत हों, जिनके बाल खुले हुए हों और जिनके वाहन नष्ट हो गये हों, लोकमें उन लोगोंका वध करना धर्मतः अच्छा नहीं समझा जाता। इस समय रात्रिमें सब पाञ्चालवीर निश्चिन्ततापूर्वक कवच उतारकर निद्रामें अचेत पड़े होंगे। जो पुरुष उनसे इस स्थितिमें द्रोह करेगा, वह अवश्य ही बिना नौकाके अगाध नरकमें डूब जायगा। लोकमें तुम समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कहे जाते हो। अभीतक संसारमें तुम्हारा कोई छोटे-से-छोटा दोष भी देखनेमें नहीं आया। तुम सूर्यके समान तेजस्वी हो। अतः कल जब सूर्य उदित हो तो सब प्राणियोंके सामने अपने शत्रुओंको संग्राममें परास्त करना।

अश्वत्थामा बोला—मामाजी! आप जैसा कहते हैं, निःसन्देह वह ठीक ही है। परंतु इस धर्ममर्यादाके तो पाण्डवोंने पहले ही सैकड़ों टुकड़े कर डाले हैं। धृष्टद्युम्नने प्रत्यक्ष ही आपके और समस्त राजाओंके सामने मेरे शस्त्रहीन पिताजीका वध किया था। रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णको जब उनका पहिया फँस गया था और वे बड़े संकटमें पड़ गये थे, उसी समय अर्जुनने मार डाला था। भीष्मपितामहको भी शिखण्डीकी ओट लेकर अर्जुनने उसी समय मारा था, जब उन्होंने शस्त्र डाल दिये थे और वे सर्वथा निरायुध हो गये थे। वीरवर भूरिश्रवा तो रणक्षेत्रमें अनशन-व्रत लेकर बैठ गये थे; परंतु सात्यकिने सब राजाओंके चिल्लाते रहनेपर भी इसी स्थितिमें उन्हें मार डाला। महाराज दुर्योधन भी भीमसेनके साथ गदायुद्धमें भिड़कर सब राजाओंके सामने अधर्मपूर्वक ही गिराये गये हैं। इसलिये भले ही मुझे कीट-पतंगोंकी योनिमें जाना पड़े, मैं भी अपने पिताजीका वध करनेवाले इन पाञ्चालोंको रातमें सोते हुए ही मार डालूँगा। मैंने जो काम करनेका विचार किया है, उसके लिये मुझे बड़ी उतावली हो रही है। इस जल्दबाजीमें मुझे नींद कैसे आ सकती है और चैन भी कैसे पड़ सकता है? संसारमें न तो कोई ऐसा पुरुष जन्मा है और न जन्मेगा ही, जो पाञ्चालोंके वधके लिये किये हुए मेरे इस विचारको बदल सके।



अश्वत्थामाका श्रीमहादेवजीपर प्रहार, उसका पराभव और फिर आत्मसमर्पण करके उनसे खड्ग प्राप्त करना

सञ्जय कहते हैं—महाराज! कृपाचार्यजीसे ऐसा कहकर द्रोणपुत्र अकेला ही अपने घोड़ोंको जोतकर शत्रुओंपर चढ़ाई करनेकी तैयारी करने लगा। तब उससे कृपाचार्य और कृतवर्माने पूछा, 'तुम रथ किसलिये तैयार कर रहे हो, तुम्हारा क्या करनेका विचार है? हम भी तो तुम्हारे साथ ही हैं और सुख-दुःखमें तुम्हारे साथ ही रहेंगे।' यह सुनकर अश्वत्थामाने जो कुछ वह करना चाहता था, उन्हें साफ-साफ सुना दिया। वह बोला, 'धृष्टद्युम्नने मेरे पिताजीको उस स्थितिमें मारा था, जब उन्होंने अपने शस्त्र रख दिये थे। अतः आज उस पापी पाञ्चालपुत्रको मैं भी उसी तरह पापकर्म करके कवचहीन अवस्थामें मारूँगा। मेरा यही विचार है कि उसे शस्त्रोंके द्वारा प्राप्त होनेवाले लोक नहीं मिलने चाहिये। आप दोनों भी जल्दी ही कवच धारण कर लें, खड्ग तथा धनुष लेकर तैयार हो जायँ और मेरे साथ रहकर अवसरकी प्रतीक्षा करें।'

ऐसा कहकर अश्वत्थामा रथपर सवार हुआ और शत्रुओंकी ओर चल दिया। उसके पीछे-पीछे कृपाचार्य और कृतवर्मा भी चले। वह रात्रिमें ही, जब कि सब लोग सोये हुए थे, पाण्डवोंके शिविरमें पहुँचा और उसके द्वारपर जाकर खड़ा हो गया। वहाँ उसने चन्द्रमा और सूर्यके समान तेजस्वी एक विशालकाय पुरुषको दरवाजेपर खड़ा देखा। उस महापुरुषको देखकर शरीरमें रोमाञ्च हो जाता था। वह व्याघ्रचर्म धारण किये था, ऊपरसे मृगचर्म ओढ़े था तथा



सर्पोंका यज्ञोपवीत पहने हुए था। उसकी विशाल भुजाओंमें तरह-तरहके शस्त्र सुशोभित थे, बाजूबंदोंके स्थानमें बड़े-बड़े सर्प बँधे हुए थे तथा उसके मुखसे अग्निकी ज्वालाएँ निकल रही थीं। उसके मुख, नाक, कान और हजारों नेत्रोंसे भी बड़ी-बड़ी लपटें निकल रही थीं। उसके तेजकी किरणोंसे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले सैकड़ों-हजारों विष्णु प्रकट हो जाते थे।

समस्त लोकोंको भयभीत करनेवाले उस अद्भुत पुरुषको देखकर भी अश्वत्थामा घबराया नहीं, बल्कि उसपर अनेकों दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा-सी करने लगा। वह देव अश्वत्थामाके छोड़े हुए समस्त शस्त्रोंको निगल गया। यह देखकर उसने एक अग्निके समान देदीप्यमान रथशक्ति छोड़ी। परंतु वह भी उससे टकराकर टूट गयी। तब अश्वत्थामाने उसपर एक चमचमाती हुई तलवार चलायी। वह भी उसके शरीरमें लीन हो गयी। इसपर उसने कुपित होकर एक गदा छोड़ी, किंतु वह उसे भी लील गया।

इस प्रकार जब अश्वत्थामाके सब शस्त्र समाप्त हो गये तो उसने इधर-उधर दृष्टि डाली। इस समय उसने देखा कि सारा आकाश विष्णुओंसे भरा हुआ है। शस्त्रहीन अश्वत्थामा यह अत्यन्त अद्भुत दृश्य देखकर बड़ा ही दुःखी हुआ और आचार्य कृपके वचन याद करके कहने लगा, जो पुरुष अप्रिय किंतु हितकी बात कहनेवाले अपने सुहृदोंकी सीख नहीं सुनता, वह मेरी ही तरह आपत्तिमें पड़कर शोक करता है। जो मूर्ख शास्त्र जाननेवालोंकी बातका तिरस्कार करके युद्धमें प्रवृत्त होता है, वह धर्ममार्गसे भ्रष्ट होकर कुमार्गमें जानेसे उलटे मुँहकी खाता है। मनुष्यको गौ, ब्राह्मण, राजा, स्त्री, मित्र, माता, गुरु, दुर्बल, मूर्ख, अंधे, सोये हुए, डरे हुए, नींदसे उठे हुए, मतवाले, उन्मत्त और असावधान पुरुषोंपर हथियार नहीं चलाना चाहिये। गुरुजनोंने पहलेहीसे सब पुरुषोंको ऐसी शिक्षा दे रखी है। किन्तु मैं उस शास्त्रीय सनातन मार्गका उल्लङ्घन करके उलटे रास्तेसे चलने लगा था। इसीसे इस घोर आपत्तिमें पड़ गया हूँ। जब मनुष्य किसी कामको आरम्भ करके भयके कारण उसे बीचहीमें छोड़ देता है तो बुद्धिमान् लोग इसे उसकी मूर्खता ही कहते हैं। इस समय इस कामको करते हुए मेरे आगे भी ऐसा ही भय उपस्थित हो गया है। यों तो द्रोणपुत्र किसी प्रकार युद्धसे पीछे हटनेवाला नहीं है। परंतु यह महाभूत तो मेरे आगे विधाताके दण्डके समान आकर खड़ा हो गया है। मैं बहुत सोचनेपर भी इसे कुछ समझ नहीं पाता हूँ। निश्चय ही मेरी बुद्धि जो अधर्मसे कलुषित हो गयी है, उसका दमन करनेके लिये ही यह भयंकर परिणाम सामने आया है। निःसंदेह इस समय मुझे जो युद्धसे हटना पड़ रहा है, वह दैवका ही विधान है। सचमुच दैवकी अनुकूलताके बिना आरम्भ किया हुआ मनुष्यका कोई भी काम सफल नहीं हो सकता। अतः अब मैं भगवान् शंकरकी शरण लेता हूँ; जो जटाजूटधारी, देवताओंके भी वन्दनीय, उमापति, सर्वपापापहारी और त्रिशूल धारण करनेवाले हैं, वे ही इस भयानक दैवी विघ्नको नष्ट करेंगे।'

ऐसा सोचकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा रथसे उतर पड़ा और देवाधिदेव श्रीमहादेवजीके शरणागत होकर इस प्रकार स्तुति करने लगा, 'आप उग्र हैं, अचल हैं, कल्याणमय हैं, रुद्र हैं, शर्व हैं, सकल विद्याओंके अधीश्वर हैं, परमेश्वर हैं, पर्वतपर शयन करनेवाले हैं, वरदायक हैं, देव हैं, संसारको उत्पन्न करनेवाले हैं, जगदीश्वर हैं, नीलकण्ठ हैं, अजन्मा हैं, शुक्र हैं, दक्षयज्ञका विनाश करनेवाले हैं, सर्वसंहारक हैं, विश्वरूप हैं, भयानक नेत्रोंवाले हैं, बहुरूप हैं, उमापति हैं, श्मशानमें निवास करनेवाले हैं, गर्वीले हैं, महान् गणाध्यक्ष हैं, व्यापक हैं, खट्वाङ्ग (खाटका पाया) धारण करनेवाले हैं। आप रुद्रनामसे प्रसिद्ध हैं, आपके मस्तकपर जटा सुशोभित है, आप ब्रह्मचारी हैं और त्रिपुरासुरका वध करनेवाले हैं। मैं अत्यन्त शुद्ध हृदयसे आत्मसमर्पण करके आपका यजन करता हूँ। सभीने आपकी स्तुति की है, सभीके आप स्तुत्य हैं और सभी आपकी स्तुति करते हैं। आप भक्तोंके सभी

संकल्पोंको पूर्ण करनेवाले हैं, गजराजके चर्मसे सुशोभित हैं, रक्तवर्ण हैं, नीलग्रीव हैं, असह्य हैं, शत्रुओंके लिये दुर्जय हैं, इन्द्र और ब्रह्माकी भी रचना करनेवाले हैं, साक्षात् परब्रह्म हैं, व्रतधारी हैं, तपोनिष्ठ हैं, अनन्त हैं, तपस्वियोंके आश्रय हैं, अनेक रूप हैं, गणपति हैं, त्रिनयन हैं, अपने पार्षदोंको प्रिय हैं, धनेश्वर हैं, पृथ्वीके मुखस्वरूप हैं, पार्वतीजीके प्राणेश्वर हैं, स्वामिकार्तिकेयके पिता हैं, पीतवर्ण हैं, वृषवाहन हैं, दिगम्बर हैं। आपका वेष बड़ा ही उग्र है; आप पार्वतीजीको विभूषित करनेमें तत्पर हैं, ब्रह्मादिसे श्रेष्ठ हैं, परात्पर हैं तथा आपसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। आप उत्तम धनुष धारण करनेवाले हैं, सम्पूर्ण दिशाओंकी अन्तिम सीमा हैं, सब देशोंके रक्षक हैं, सुवर्णमय कवच धारण करनेवाले हैं, आपका स्वरूप दिव्य है तथा आप अपने मस्तकपर आभूषणके रूपमें चन्द्रकलाको धारण करनेवाले हैं, मैं अत्यन्त समाहित होकर आपकी शरण लेता हूँ। यदि आज मैं इस दुस्तर आपत्तिके पार हो गया तो समस्त भूतोंके संघातरूप इस शरीरकी बलि देकर आपका यजन करूँगा।'

इस प्रकार अश्वत्थामाका दृढ़ निश्चय देखकर उसके सामने एक सुवर्णमयी वेदी प्रकट हुई। उस वेदीमें अग्नि प्रज्वलित हो गयी। उससे बहुत-से गण प्रकट हुए। उनके मुख और नेत्र देदीप्यमान थे; वे अनेकों सिर, पैर और हाथोंवाले थे; उनकी भुजाओंमें तरह-तरहके रत्नजटित आभूषण सुशोभित थे तथा वे ऊपरकी ओर हाथ उठाये हुए थे। उनके शरीर द्वीप और पर्वतोंके समान विशाल थे, वे सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और नक्षत्रोंके सहित सम्पूर्ण द्युलोकको धराशायी करनेकी शक्ति रखते थे तथा उनमें जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—चारों प्रकारके प्राणियोंका संहार करनेकी शक्ति थी। उन्हें किसी प्रकारका भय नहीं था, वे इच्छानुसार आचरण करनेवाले थे तथा तीनों लोकोंके ईश्वरोंके भी ईश्वर थे। वे सर्वदा आनन्दमग्न रहते थे, वाणीके अधीश्वर थे, मत्सरहीन थे तथा ऐश्वर्य पाकर भी उन्हें अभिमान नहीं था। उनके अद्भुत कर्मोंसे सर्वदा भगवान् शंकर भी चकित रहते थे तथा वे मन, वाणी और कर्मोंद्वारा सर्वदा उन्हींकी आराधना करते थे। इससे भगवान् शंकर भी सर्वदा अपने औरस पुत्रोंके समान उनकी रक्षा करते थे।

ये सब भूत बड़े ही भयंकर थे। इनको देखनेसे तीनों लोक भयभीत हो सकते थे। तथापि महाबली अश्वत्थामा इन्हें देखकर डरा नहीं। अब उसने स्वयं अपने-आपको ही बलिरूपसे समर्पित करना चाहा। इस कर्मको सम्पन्न करनेके लिये उसने धनुषको समिधा, बाणोंको दर्भ और अपने शरीरको ही हवि बनाया। उसने सोमदेवताका मन्त्र पढ़कर अग्निमें अपनी आहुति देनी चाही। उस समय वह हाथ जोड़कर भगवान् रुद्रकी इस प्रकार स्तुति करने लगा, 'विश्वात्मन्! इस आपत्तिके समय आपके प्रति अत्यन्त भक्तिभावसे मैं समाहित होकर यह भेंट समर्पण करता हूँ। आप इसे स्वीकार कीजिये। समस्त भूत आपमें स्थित हैं, आप सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित हैं तथा आपहीमें मुख्य-मुख्य गुणोंकी एकता होती है। विभो! आप समस्त भूतोंके आश्रय हैं; यदि इन शत्रुओंका पराभव मेरे द्वारा नहीं हो सकता तो आप हविष्यरूपसे अर्पण किये हुए इस शरीरको स्वीकार कीजिये।'

द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ऐसा कह उस अग्निसे देदीप्यमान वेदीपर चढ़ गया और अपने प्राणोंका मोह छोड़कर आगके बीचमें आसन लगाकर बैठ गया। उसे हविरूपसे ऊर्ध्वबाहु होकर निश्चेष्ट बैठे देखकर भगवान् शंकरने हँसकर कहा, 'श्रीकृष्णने सत्य, शौच, सरलता, त्याग, तपस्या, नियम, क्षमा, भक्ति, धैर्य, बुद्धि और वाणीके द्वारा मेरी यथोचित आराधना की है। इसलिये उनसे बढ़कर मुझे कोई भी प्रिय नहीं है। पाञ्चालोंकी रक्षा करके भी मैंने उन्हींका सम्मान किया है; किंतु कालवश अब ये निस्तेज हो गये हैं, अब



इनका जीवन शेष नहीं है।' ऐसा कहकर भगवान् शंकरने अश्वत्थामाको एक तेज तलवार दी और अपने-आपको उसीके शरीरमें लीन कर दिया। इस प्रकार उनसे आविष्ट होकर अश्वत्थामा अत्यन्त तेजस्वी हो गया।

—★—

अश्वत्थामाके द्वारा पाण्डव और पाञ्चाल वीरोंका संहार

सञ्जय कहते हैं—राजन्! अब द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने शिविरमें प्रवेश किया तथा कृपाचार्य और कृतवर्मा दरवाजेपर खड़े हो गये। उन्हें अपना साथ देनेके लिये तैयार देखकर अश्वत्थामाको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने उनसे धीरेसे कहा, 'आप दोनों यदि तैयार हो जायँ तो सभी क्षत्रियोंका संहार कर सकते हैं, फिर निद्रामें पड़े हुए इन बचे-खुचे योद्धाओंकी तो बात ही क्या है? मैं शिविरके भीतर जाऊँगा और कालके समान मार-काट मचा दूँगा। आपलोग ऐसा करें, जिससे कोई भी आपके हाथोंसे जीवित बचकर न जा सके।'

ऐसा कहकर द्रोणपुत्र पाण्डवोंके उस विशाल शिविरमें द्वारसे न जाकर बीचहीसे घुस गया। उसे अपने लक्ष्य धृष्टद्युम्नके तंबूका पता था, इसलिये वह चुपचाप वहीं पहुँच गया। वहाँ उसने देखा कि सब योद्धा युद्धमें थक जानेके कारण अचेत होकर सोये पड़े हैं। उनके पास ही एक रेशमी शय्यापर उसे धृष्टद्युम्न सोता दिखायी दिया। तब अश्वत्थामाने उसे पैरसे ठुकराकर जगाया। पैर लगते ही रणोन्मत्त धृष्टद्युम्न जग पड़ा और महारथी अश्वत्थामाको आया देख ज्यों ही वह पलंगसे उठने लगा कि उस वीरने उसके बाल पकड़कर



पृथ्वीपर पटक दिया। इस समय धृष्टद्युम्न भय और निद्रासे दबा हुआ था, साथ ही अश्वत्थामाने उसे जोरकी पटक भी लगायी थी; इसलिये वह निरुपाय हो गया। अश्वत्थामाने उसकी छाती और गलेपर दोनों घुटने टेक दिये। धृष्टद्युम्न बहुतेरा चिल्लाया और छटपटाया, किंतु अश्वत्थामा उसे पशुकी तरह पीटता रहा। अन्तमें उसने अश्वत्थामाको नखोंसे बकोटते हुए लड़खड़ाती जबानमें कहा, 'आचार्यपुत्र! व्यर्थ देरी मत करो, मुझे हथियारसे मार डालो।' उसने इतना कहा ही था कि अश्वत्थामाने उसे जोरसे दबाया और उसकी अस्पष्ट वाणी सुनकर कहा, 'रे कुलकलंक! अपने आचार्यकी हत्या करनेवालोंको पुण्यलोक नहीं मिल सकते। इसलिये तुझे शस्त्रसे मारना उचित नहीं है।' ऐसा कहकर उसने कुपित होकर अपने पैरोंकी चोटोंसे धृष्टद्युम्नके मर्मस्थानोंपर प्रहार किया। इस समय धृष्टद्युम्नकी चिल्लाहटसे घरकी स्त्रियाँ और रखवाले भी जग पड़े। उन्होंने एक अलौकिक पराक्रमवाले पुरुषको धृष्टद्युम्नपर प्रहार करते देखकर उसे कोई भूत समझा। इसलिये भयके कारण उनमेंसे कोई भी बोल न सका।

अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नको इसी प्रकार पशुकी तरह पीट-पीटकर मार डाला। इसके बाद वह उस तंबूसे बाहर आया और रथपर चढ़कर सारी छावनीमें चक्कर लगाने लगा। पाञ्चालराज धृष्टद्युम्नको मरा देखकर उसकी रानियाँ और रखवाले शोकाकुल होकर विलाप करने लगे। उनके कोलाहलसे आस-पासके क्षत्रिय वीर चौंककर कहने लगे, 'क्या हुआ? क्या हुआ?' तब स्त्रियोंने बड़ी दीन वाणीसे कहा, 'अरे! जल्दी दौड़ो! जल्दी दौड़ो! हमारी तो समझमें नहीं आता यह कोई राक्षस है या मनुष्य है। देखो, इसने पाञ्चालराजको मार डाला और अब रथपर चढ़कर इधर-उधर घूम रहा है।' यह सुनकर उन योद्धाओंने एक साथ अश्वत्थामाको घेर लिया। किंतु पास आते ही अश्वत्थामाने उन्हें रुद्रास्त्रसे मार डाला।

इसके बाद उसने बराबरके तंबूमें उत्तमौजाको पलंगपर सोते देखा। उसके भी कण्ठ और छातीको उसने पैरोंसे दबा लिया। उत्तमौजा चिल्लाने लगा, किंतु अश्वत्थामाने उसे भी पशुकी तरह पीट-पीटकर मार डाला। युधामन्युने समझा कि उत्तमौजाको किसी राक्षसने मारा है। इसलिये वह गदा लेकर दौड़ा और उससे अश्वत्थामाकी छातीपर चोट की।

अश्वत्थामाने लपककर उसे पकड़ लिया और फिर पृथ्वीपर पटक दिया। युधामन्युने छूटनेके लिये बहुतेरे हाथ-पैर पटके, किंतु अश्वत्थामाने उसे भी पशुकी तरह मार डाला।

इसी प्रकार उसने नींदमें पड़े हुए अन्य महारथियोंपर भी आक्रमण किया। वे सब भयसे काँपने लगे, किंतु अश्वत्थामाने उन सभीको तलवारसे मौतके घाट उतार दिया। शिविरके विभिन्न भागोंमें उसने मध्यम श्रेणीके सैनिकोंको भी निद्रामें बेहोश देखा और उन सबको भी एक क्षणमें ही तलवारसे तहस-नहस कर डाला। इसी तरह अनेकों योद्धा, घोड़े और हाथियोंको उस तलवारकी भेंट चढ़ा दिया। इससे उसका सारा शरीर खूनमें लथपथ हो गया और वह साक्षात् कालके समान दिखायी देने लगा। उस समय जिन योद्धाओं-की नींद टूटती थी, वे ही अश्वत्थामाका शब्द सुनकर भौंचक्के-से रह जाते थे और उसे राक्षस समझकर आँखें मूँद लेते थे। इस प्रकार भयंकर रूप धारण किये वह सारी छावनीमें चक्कर लगा रहा था।

जब द्रौपदीके पुत्रोंने धृष्टद्युम्नके मारे जानेका समाचार सुना तो वे निर्भय होकर अश्वत्थामापर बाण बरसाने लगे। अश्वत्थामा अपनी दिव्य तलवार लेकर उनपर टूट पड़ा और उससे प्रतिविन्ध्यकी कोख फाड़ डाली। इससे वह प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। सुतसोमने पहले तो प्राससे चोट की। फिर वह भी तलवार लेकर द्रोणपुत्रकी ओर चला। अश्वत्थामाने तलवारके सहित उसकी वह भुजा काट डाली और फिर उसकी पसलीपर प्रहार किया। इससे हृदय फट जानेके कारण वह पृथ्वीपर गिर गया। इसी समय नकुलके पुत्र शतानीकने एक रथका पहिया उठाकर बड़े जोरसे अश्वत्थामाकी छातीपर मारा। अश्वत्थामाने भी तुरंत ही उसपर चोट की। उससे वह व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। फिर अश्वत्थामाने उसका सिर काट डाला। अब श्रुतकर्मा परिघ लेकर अश्वत्थामाकी ओर चला और उसके बायें गालपर चोट की। किंतु अश्वत्थामाने अपनी तीखी तलवारसे उसके मुँहपर ऐसा वार किया कि जिससे उसका चेहरा बिगड़ गया और वह बेहोश होकर पृथ्वीपर जा पड़ा। उसका शब्द सुनकर महारथी श्रुतकीर्ति अश्वत्थामाके सामने आया और उसपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। किंतु अश्वत्थामाने उसकी बाणवर्षाको ढालपर रोक लिया और उसके सिरको धड़से अलग कर दिया।

इसके बाद उसने तरह-तरहके शस्त्रोंसे शिखण्डी और प्रभद्रक वीरोंको मारना आरम्भ किया। उसने एक बाणसे शिखण्डीकी भ्रुकुटियोंके बीचमें चोट की और फिर पास जाकर तलवारके एक ही हाथसे उसके दो टुकड़े कर दिये। इस प्रकार शिखण्डीको मारकर वह अत्यन्त क्रोधमें भर गया और बड़े वेगसे प्रभद्रकोंपर टूट पड़ा। राजा विराटकी जो कुछ सेना बची थी, उसे उसने एकदम कुचल डाला तथा राजा द्रुपदके पुत्र, पौत्र और सम्बन्धियोंको खोज-खोजकर मौतके घाट उतार दिया।

अश्वत्थामाका सिंहनाद सुनकर पाण्डवोंकी सेनामें सैकड़ों-हजारों वीर जाग पड़े। उसने उनमेंसे किसीके पैर, किसीकी जाँघें और किसीकी पसलियाँ काट डालीं। उन सभीको बहुत अधिक कुचल दिया गया था, इससे वे भयानक चीत्कार कर रहे थे। इसी प्रकार घोड़े और हाथियोंके बिगड़ जानेसे भी अनेकों योद्धा पिस गये थे। उन सबकी लोथोंसे सारी रणभूमि पट गयी थी। घायल वीर 'यह क्या है? कौन है? किसका शब्द है? यह क्या कर डाला?' इस प्रकार चिल्ला रहे थे। उनके लिये अश्वत्थामा प्राणान्तक कालके समान हो रहा था। पाण्डव और सृञ्जय वीरोंमें जो शस्त्र और कवचोंसे रहित थे और जिन्होंने कवच धारण कर लिये थे, उन सभीको अश्वत्थामाने यमलोक भेज दिया। जो लोग नींदके कारण अंधे और अचेत-से हो रहे थे, वे उसके शब्दसे चौंककर उछल पड़े, किंतु फिर भयभीत होकर जहाँ-तहाँ छिप गये। डरके मारे उनकी घिग्घी बँध गयी और वे एक-दूसरेसे लिपटकर बैठ गये।

इसके बाद अश्वत्थामा फिर अपने रथपर सवार हुआ और हाथमें धनुष लेकर दूसरे योद्धाओंको यमराजके हवाले करने लगा। फिर वह हाथमें ढाल-तलवार लेकर उस सारी छावनीमें चक्कर लगाने लगा। अश्वत्थामाका सिंहनाद सुनकर योद्धालोग चौंक पड़ते थे; किंतु निद्रा और भयसे व्याकुल होनेके कारण अचेत-से होकर इधर-उधर भाग जाते थे। उनमेंसे कोई बुरी तरह चिल्लाने लगते थे और कोई अनेकों ऊटपटांग बातें करने लगते थे। उनके बाल बिखरे हुए थे। इसलिये आपसमें एक-दूसरेको पहचान भी नहीं पाते थे। कोई इधर-उधर भागनेमें थककर गिर गये थे। किन्हींको चक्कर आ रहा था। किन्हींका मल-मूत्र निकल गया था। हाथी और घोड़े रस्से तुड़ाकर सब ओर गड़बड़ी करते दौड़ रहे थे। कोई डरके मारे पृथ्वीपर पड़कर छिप रहते थे; किंतु हाथी-घोड़े उन्हें पैरोंसे खूँद डालते थे। इस प्रकार बड़ी ही गड़बड़ी मची हुई थी। लोगोंके इधर-उधर दौड़नेसे बड़ी धूल छा गयी, जिससे उस रात्रिके समय शिविरमें दूना अन्धकार हो गया। उस समय पिता पुत्रोंको और भाई भाइयोंको नहीं पहचान पाते थे। हाथी हाथियोंपर और बिना सवारके घोड़े

घोड़ोंपर टूट पड़े तथा एक-दूसरेपर चोटें करते घायल होकर पृथ्वीपर लोटने लगे। बहुत-से लोग निद्रामें अचेत पड़े थे, वे अँधेरेमें उठकर आपसमें ही आघात करके एक-दूसरेको गिराने लगे। दैववश उनकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी। वे 'हा तात! हा पुत्र!' इस प्रकार चिल्लाते हुए अपने बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर इधर-उधर भागने लगे। बहुत-से तो हाय! हाय! करते पृथ्वीपर गिर गये।

अनेकों वीर यन्त्र और कवचोंके बिना ही शिविरसे बाहर जाना चाहते थे। उनके बाल खुले हुए थे और वे हाथ जोड़े भयसे थर-थर काँप रहे थे; तो भी कृपाचार्य और कृतवर्माने शिविरसे बाहर निकलनेपर किसीको जीवित नहीं छोड़ा। इन दोनोंने अश्वत्थामाको प्रसन्न करनेके लिये शिविरके तीन ओर आग लगा दी। इससे सारी छावनीमें उजाला हो गया और उसकी सहायतासे अश्वत्थामा हाथमें तलवार लेकर सब ओर घूमने लगा। इस समय उसने अपने सामने आनेवाले और पीठ दिखाकर भागनेवाले दोनों ही प्रकारके योद्धाओंको तलवारके घाट उतार दिया। किन्हीं-किन्हींको उसने तिलके पौधेके समान बीचहीसे दो करके गिरा दिया। इसी प्रकार उसने किन्हींके शस्त्रसहित भुजदण्डोंको, किन्हींके सिरोंको, किन्हींकी जंघाओंको, किन्हींके पैरोंको, किन्हींकी पीठको और किन्हींकी पसलियोंको तलवारसे उड़ा दिया। इसी प्रकार उसने किसीका मुँह फेर दिया, किसीको कर्णहीन कर डाला, किन्हींके कंधेपर चोट करके उनका सिर शरीरमें घुसेड़ दिया। इस प्रकार वह अनेकों वीरोंका संहार करता शिविरमें घूमने लगा।

उस समय अन्धकारके कारण रात बड़ी भयावनी हो रही थी। हजारों मरे और अधमरे मनुष्योंसे तथा अनेकों हाथी-घोड़ोंसे पटी हुई पृथ्वीको देखकर हृदय काँप उठता था। लोग हाहाकार करते हुए आपसमें कह रहे थे, 'भाई! आज पाण्डवोंके पास न रहनेसे ही हमारी यह दुर्गति हुई है। अर्जुनको तो असुर, गन्धर्व, यक्ष और राक्षस—कोई भी नहीं जीत सकता; क्योंकि साक्षात् श्रीकृष्ण उनके रक्षक हैं।' दो घड़ीके बाद वह सारा कोलाहल शान्त हो गया। सारी भूमि खूनसे तर हो गयी थी। इसलिये एक क्षणमें ही वह भयानक धूल दब गयी। अश्वत्थामाने क्रोधमें भरकर ऐसे हजारों वीरोंको मार डाला, जो किसी प्रकार प्राण बचानेके प्रयत्नमें लगे हुए थे, एकदम घबराये हुए थे और जिनमें तनिक भी उत्साह नहीं था। जो एक-दूसरेसे लिपटकर पड़ गये थे, शिविर छोड़कर भाग रहे थे, छिपे हुए थे अथवा किसी प्रकार लड़ रहे थे, उनमेंसे भी किसीको उसने जीवित नहीं छोड़ा। जो लोग आगमें झुलसे जाते थे और जो आपसमें ही मार-काट कर रहे थे, उन्हें भी उसने यमराजके हवाले कर दिया। राजन्! इस प्रकार उस आधीरातके समय द्रोणपुत्रने पाण्डवोंकी उस विशाल सेनाको बात-की-बातमें यमलोक पहुँचा दिया।

पौ फटते ही अश्वत्थामाने शिविरसे बाहर आनेका विचार किया। उस समय नररक्तसे सनकर वह तलवार इस प्रकार उसके हाथसे चिपक गयी थी कि मानो वह उसीका एक अङ्ग हो। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वह कठोर कर्म करके अश्वत्थामा पिताके ऋणसे मुक्त होकर निश्चिन्त हुआ। वह छावनीसे बाहर आया और कृपाचार्य एवं कृतवर्मासे मिलकर उन्हें प्रसन्नतापूर्वक अपनी सारी करतूत सुनाकर आनन्दित किया। वे भी अश्वत्थामाका ही प्रिय करनेमें लगे हुए थे। अतः उन्होंने भी यह सुनाकर कि हमने यहाँ रहकर हजारों पाञ्चाल और सृञ्जय वीरोंका संहार किया है, उसे प्रसन्न किया।

राजा धृतराष्ट्र पूछते हैं—सञ्जय! अश्वत्थामा तो मेरे पुत्रकी विजयके लिये ही कमर कसे हुए था। फिर उसने ऐसा महान् कर्म पहले क्यों नहीं किया?

सञ्जयने कहा—राजन्! अश्वत्थामाको पाण्डव, श्रीकृष्ण और सात्यकिसे खटका रहता था। इसीसे अबतक वह ऐसा नहीं कर सका। इस समय उनके पास न रहनेसे ही उसने यह कर्म कर डाला।

इसके बाद अश्वत्थामाने आचार्य कृप और कृतवर्माको गले लगाया और उन्होंने उसका अभिनन्दन किया। फिर उसने हर्षमें भरकर कहा, 'मैंने समस्त पाञ्चालोंको, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको और संग्रामसे बचे हुए सभी मत्स्य एवं सोमक वीरोंको नष्ट कर डाला है। अब हमारा काम पूरा हो गया। इसलिये जहाँ राजा दुर्योधन हैं, वहीं चलना चाहिये। यदि वे जीवित हों तो उन्हें भी यह समाचार सुना दिया जाय।'



अश्वत्थामादिका दुर्योधनको सब समाचार सुनाना तथा दुर्योधनकी मृत्यु

सञ्जयने कहा—राजन्! वे तीनों वीर सम्पूर्ण पाञ्चालवीरों और द्रौपदीके पुत्रोंको मारकर जहाँ राजा दुर्योधन मरणासन्न अवस्थामें पड़ा था, उस स्थानपर आये। उन्होंने जाकर देखा तो इस समय उसमें कुछ ही प्राण शेष था। वह जैसे-तैसे अपने प्राण बचाये हुए था। उसके मुखसे रक्तका वमन होता था तथा उसे चारों ओरसे अनेकों भेड़िये और दूसरे हिंस्र जीव घेरे हुए थे। वे सब उसे चट कर जाना चाहते थे और वह बड़ी कठिनतासे उन्हें रोक रहा था। इस समय उसे बड़ी ही वेदना हो रही थी।

दुर्योधनको इस प्रकार अनुचित रीतिसे पृथ्वीपर पड़े देखकर उन तीनों वीरोंको असह्य कष्ट हुआ और वे फूट-फूटकर रोने लगे। उन्होंने अपने हाथोंसे दुर्योधनके मुँहका खून पोंछा और फिर दीन होकर विलाप करने लगे।

कृपाचार्यने कहा—हाय! विधाताके लिये कोई भी काम कठिन नहीं है। आज ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी राजा दुर्योधन इस प्रकार खूनमें लथपथ हुआ पृथ्वीपर पड़ा है। महलोंमें जिस प्रकार महारानी शयन करती थीं, उसी प्रकार यह सोनेके पत्तरसे मढ़ी हुई गदा वीर दुर्योधनके साथ सोयी हुई है। कालकी कुटिलता तो देखो—जो शत्रुसूदन सम्राट् किसी समय मुर्द्धाभिषिक्त राजाओंके आगे-आगे चलता था, आज वही भूमिमें पड़ा धूल फाँक रहा है। जिसके आगे सैकड़ों राजा लोग भयसे सिर झुकाते थे, वही आज वीरशय्यापर पड़ा हुआ है, पहले जिसे अनेकों ब्राह्मण अर्थप्राप्तिके लिये घेरे रहते थे, उसीको आज मांसके लोभसे मांसाहारी प्राणियोंने घेर रखा है।

अश्वत्थामा बोला—राजश्रेष्ठ! आपको समस्त धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ कहा जाता था। आप साक्षात् भगवान् संकर्षणके शिष्य और युद्धमें कुबेरके समान थे, तो भी भीमसेनको किस प्रकार आपपर प्रहार करनेका अवसर मिल गया? आप सब धर्मोंको जाननेवाले हैं। क्षुद्र और पापी भीमसेनने किस प्रकार आपको धोखेसे घायल कर दिया? अवश्य ही कालकी गतिसे पार पाना बड़ा कठिन है। भीमसेनने आपको धर्मयुद्धके लिये बुलाया था, किंतु फिर अधर्मपूर्वक गदासे आपकी जाँघें तोड़ डालीं। इस प्रकार अधर्मसे मारकर जब भीमसेनने आपको ठुकराया, तब भी कृष्ण और युधिष्ठिरने उस क्षुद्रसे कुछ नहीं कहा! धिक्कार है उन्हें! भीमने आपको कपटसे गिराया है। इसलिये जबतक प्राणियोंकी स्थिति रहेगी, तबतक योद्धालोग उसकी निन्दा ही करेंगे। महर्षियोंने क्षत्रियोंके लिये जो उत्तम गति बतायी है, युद्धमें मारे जानेके कारण आपने वह प्राप्त कर ली है। राजन्! आपके लिये मुझे चिन्ता नहीं है; मुझे तो आपके पिता और माता गान्धारीके लिये ही खेद है, जिनके सभी पुत्र कालके गालमें चले गये हैं। हाय! अब वे भिखारी बनकर दर-दर भटकेंगे और हर समय उन्हें पुत्रोंका शोक सताता रहेगा। वृष्णिवंशी कृष्ण और दुष्टबुद्धि अर्जुनको धिक्कार है, जिन्होंने बड़ा भारी धर्मज्ञताका अभिमान रखकर भी भीमसेनके मारते समय कोई रोक-टोक नहीं की। ये निर्लज्ज पाण्डव भी किस प्रकार कहेंगे कि हमने ऐसे-ऐसे दुर्योधनको मारा था। गान्धारीनन्दन! आप धन्य हैं, जो युद्धमें वीरगतिको प्राप्त हुए। महारथी कृपाचार्य, कृतवर्मा और मुझे धिक्कार है, जो आप-जैसे महाराजके साथ स्वर्ग नहीं सिधार रहे हैं। हम जो आपका अनुसरण नहीं कर रहे हैं—इससे यही जान पड़ता है कि एक दिन आपके सुकृतोंका स्मरण करते-करते हम यों ही मर जायँगे, स्वर्ग या अर्थ—इनमेंसे कोई हमारे हाथ नहीं लगेगा। न जाने हमारा ऐसा कौन-सा कर्म है, जो हमें आपका साथ देनेसे रोक रहा है। तब तो निःसंदेह हमें बड़े दुःखसे इस पृथ्वीपर अपने दिन काटने पड़ेंगे। राजन्! आपके न रहनेपर हमें शान्ति और सुख कैसे मिल सकते हैं? आप स्वर्ग सिधार रहे हैं। वहाँ सब महारथियोंसे आपकी भेंट होगी ही। उन सबकी ज्येष्ठता और श्रेष्ठताके अनुसार आप मेरी ओरसे पूजा करें। पहले आप समस्त धनुर्धरोंके ध्वजारूप आचार्यजीका पूजन करें और उन्हें सूचना दें कि आज अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नको मार डाला है। फिर महाराज बाह्लीक, महारथी जयद्रथ, सोमदत्त, भूरिश्रवा तथा और भी जो-जो वीर पहले स्वर्ग पहुँच चुके हैं, उनका मेरी ओरसे आलिङ्गन करें और उनसे कुशल पूछें।

राजन्! यदि आपमें कुछ प्राणशक्ति मौजूद हो तो मेरी एक बात सुनिये। इससे आपके कानोंको बड़ा आनन्द मिलेगा। अब पाण्डवोंके पक्षमें वे पाँचों भाई, श्रीकृष्ण और सात्यकि—ये सात वीर बचे हैं और हमारी ओर मैं, कृतवर्मा और आचार्य कृप—ये तीन बाकी हैं। द्रौपदीके सब पुत्र, धृष्टद्युम्नके बच्चे तथा समस्त पाञ्चाल और युद्धसे बचे हुए मत्स्यवीरोंका सफाया कर दिया गया है। पाण्डवोंको जो बदला चुकाया गया है, उसपर ध्यान दीजिये। अब उनके भी बच्चे मार दिये गये हैं। आज उनके शिविरमें

जितने योद्धा और हाथी-घोड़े थे, उन सभीको मैंने तहस-नहस कर दिया है। आज पापी धृष्टद्युम्नको भी मैंने पशुकी तरह पीट-पीटकर मार डाला है।

दुर्योधनने जब अश्वत्थामाकी यह मनको प्यारी लगनेवाली बात सुनी तो उसे कुछ चेत हो गया और वह कहने



लगा, 'भाई ! आज आचार्य कृप और कृतवर्माके सहित जो काम तुमने किया है वह तो भीष्म, कर्ण और तुम्हारे पिताजी भी नहीं कर सके। तुमने शिखण्डीके सहित सेनापति धृष्टद्युम्नको मार डाला, इससे आज निश्चय ही मैं अपनेको इन्द्रके समान समझता हूँ। तुम्हारा भला हो, अब स्वर्गमें ही हमारी-तुम्हारी भेंट होगी।' ऐसा कहकर मनस्वी दुर्योधन चुप हो गया और अपने सुहृदोंको दुःखमें छोड़कर उसने अपने प्राण त्याग दिये। उसने स्वयं पुण्यधाम स्वर्गलोकमें प्रवेश किया और उसका शरीर पृथ्वीपर पड़ा रहा। राजन् ! इस प्रकार आपके पुत्र दुर्योधनकी मृत्यु हुई। वह रणाङ्गणमें सबसे पहले गया था और सबसे पीछे शत्रुओंद्वारा मारा गया। मरनेसे पहले दुर्योधनने तीनों वीरोंको गले लगाया और उन्होंने भी उनका आलिङ्गन किया। अश्वत्थामाके मुखसे यह करुणाजनक संवाद सुनकर मैं शोकाकुल होकर दिन निकलते ही नगरमें चला आया। इस प्रकार आपहीकी खोटी सलाहसे यह कौरव और पाण्डवोंका भीषण संहार हुआ है। आपके पुत्रका स्वर्गवास होनेसे मैं अत्यन्त शोकार्त्त हो गया हूँ। अब व्यासजीकी कृपासे प्राप्त हुई मेरी दिव्यदृष्टि नष्ट हो गयी है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! महाराज धृतराष्ट्र इस प्रकार पुत्रकी मृत्युका संवाद सुनकर एकदम चिन्तामें डूब गये और लंबे-लंबे गर्म श्वास लेने लगे।



राजा युधिष्ठिर और द्रौपदीका मृत पुत्रोंके लिये शोक तथा द्रौपदीकी प्रेरणासे भीमसेनका अश्वत्थामाको मारनेके लिये जाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—वह रात बीतनेपर धृष्टद्युम्नके सारथिने राजा युधिष्ठिरको शिविरमें सोये हुए वीरोंके संहारकी सूचना दी। उसने कहा, 'महाराज ! राजा द्रुपदके पुत्रोंके सहित सब द्रौपदीपुत्र शिविरमें निश्चिन्त होकर बेखबर सोये हुए थे। वे सभी मार डाले गये। आज रात्रिमें क्रूर कृतवर्मा, कृपाचार्य और पापी अश्वत्थामाने आपके सारे शिविरको नष्ट कर डाला है। इन्होंने प्रास, शक्ति और फरसोंसे हजारों योद्धा तथा हाथी-घोड़ोंको काटकर आपकी सेनाका संहार कर डाला है। कृतवर्मा कुछ व्यग्रचित्त था, इसलिये सारी सेनामेंसे एक मैं ही किसी प्रकार बचकर निकल आया हूँ।'

सारथिकी यह अमङ्गल वाणी सुनकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर पुत्रशोकसे व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उस समय सात्यकि, भीमसेन, अर्जुन और नकुल-सहदेवने उन्हें सँभाला। चेत होनेपर वे विलाप करते हुए कहने लगे, 'हाय ! हम तो शत्रुओंको जीत चुके थे, किंतु आज उन्होंने हमें जीत लिया। हमने भाई, समवयस्क, पिता, पुत्र, मित्र, बन्धु, मन्त्री और पौत्रोंकी हत्या करके तो जय प्राप्त की; किंतु इस प्रकार जीतकर भी आज हम जीत लिये गये। कभी-कभी अनर्थ अर्थ-सा जान पड़ता है तथा अर्थ-सी दिखायी देनेवाली वस्तु अनर्थके रूपमें परिणत हो जाती है। इसी प्रकार हमारी यह विजय पराजय-सी हो गयी है और शत्रुओंकी पराजय भी विजय-सी हो गयी। इस मनुष्यलोकमें प्रमादसे बढ़कर मनुष्यकी कोई और मृत्यु नहीं है। प्रमादी मनुष्यको

अर्थ सब प्रकार त्याग देते हैं तथा उसे अनर्थ सब ओरसे घेर लेते हैं। वह विद्या, तप, वैभव और यश किसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकता। जिस प्रकार कोई व्यापारियोंका बेड़ा समुद्रको पार करके किसी छोटी-सी नदीमें डूब जाय, उसी प्रकार आज हमारे प्रमादसे ही ये इन्द्रके तुल्य राजाओंके पुत्र-पौत्र सहजहीमें मारे गये हैं। शत्रुओंने अमर्षवश जिन्हें सोते हुए ही मार डाला है वे तो निःसंदेह स्वर्ग सिधार गये हैं। परंतु मुझे तो द्रौपदीकी चिन्ता है; क्योंकि जिस समय वह अपने भाइयों, पुत्रों और बूढ़े पिता पाञ्चालराज द्रुपदकी मृत्युओंका समाचार सुनेगी उस समय उनके शोकजनित दुःखको कैसे सह सकेगी ? उसके हृदयमें तो आग-सी लग जायगी।'

इस प्रकार अत्यन्त दीनतासे विलाप करते-करते वे नकुलसे कहने लगे—'भैया ! तुम जाओ और मन्दभागिनी द्रौपदीको उसके मातृपक्षकी स्त्रियोंसहित यहाँ लिवा लाओ।' धर्मराजकी आज्ञा पाकर नकुल रथपर सवार हो उस डेरेकी ओर गया, जहाँ पाञ्चालराजकी महिलाएँ और महारानी द्रौपदी थी। नकुलको भेजकर महाराज युधिष्ठिर शोकाकुल सुहृदोंके सहित रोते-रोते उस स्थानपर गये, जहाँ उनके पुत्र मरे पड़े थे। उस भीषण स्थानमें पहुँचकर उन्होंने अपने खूनमें लथपथ सुहृद् और सखाओंको पृथ्वीपर पड़े देखा। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग कटे हुए थे और बहुतोंके सिर भी काट लिये गये थे। उन्हें देखकर महाराज युधिष्ठिर बहुत ही खिन्न हुए और फूट-फूटकर रोने लगे। अपने पुत्र, पौत्र और मित्रोंको संग्राममें मरे देखकर वे अत्यन्त दुःखातुर हो गये। उनकी आँखोंमें आँसुओंकी बाढ़-सी आ गयी, शरीर काँपने लगा और बार-बार मूर्च्छा आने लगी। तब उनके सुहृद्गण अत्यन्त उदास होकर उन्हें धीरज बँधाने लगे। इसी समय शोकाकुल द्रौपदीको रथमें लेकर वहाँ नकुल पहुँचा। वह उपप्लव्य नामक स्थानमें गयी हुई थी। जिस समय उसने अपने सब पुत्रोंको मारे जानेका अत्यन्त अशुभ समाचार सुना, वह तो बहुत ही दुःखी हुई। उसका मुख शोकसे बिलकुल फीका पड़ गया और वह राजा युधिष्ठिरके पास पहुँचकर पृथ्वीपर गिर पड़ी।

द्रौपदीको गिरते देख महापराक्रमी भीमसेनने लपककर अपनी दोनों भुजाओंमें पकड़ लिया और उसे ढाढ़स बँधाया। तब वह रो-रोकर राजा युधिष्ठिरसे कहने लगी 'राजन् ! अपने वीर पुत्रोंको क्षात्रधर्मके अनुसार मारा गया सुनकर आप तो उपप्लव्य नगरमें मेरे साथ रहकर याद भी नहीं करेंगे। परंतु पापी अश्वत्थामाने उन्हें सोते हुए ही मार डाला—यह सुनकर मुझे तो उनका शोक आगकी तरह जला रहा है। यदि आप आज ही साथियोंके सहित उस पापीके जीवनका अन्त नहीं कर देंगे और वह अपने कुकर्मका फल नहीं पायेगा तो याद रखिये मैं यहीं आजीवन अनशनव्रत आरम्भ कर दूँगी।'

ऐसा कहकर यशस्विनी द्रौपदी महाराज युधिष्ठिरके समीप ही बैठ गयी। तब धर्मराजने अपनी प्रियाको पास ही



बैठे देखकर कहा, 'धर्मज्ञे ! तुम्हारे पुत्र और भाई धर्मपूर्वक युद्ध करके वीरगतिको प्राप्त हुए हैं। तुम्हें उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये। अश्वत्थामा तो यहाँसे बहुत दूर दुर्गम वनमें चला गया है। उसे मार भी डाला जाय तो तुम्हें यह बात कैसे मालूम होगी ?'

द्रौपदीने कहा—'राजन् ! मैंने सुना है कि अश्वत्थामाके सिरमें जन्मके साथ ही उत्पन्न हुई एक मणि है। सो संग्राममें उस पापीका वध करके उस मणिको ले आना चाहिये। मेरा यही विचार है कि उसे आपके सिरपर धारण कराकर ही मैं जीवन धारण करूँगी।' धर्मराजसे ऐसा कहकर फिर द्रौपदीने भीमसेनके पास आकर कहा, 'भीमसेन ! आप क्षात्रधर्मकी ओर देखकर मेरी रक्षा करें। इन्द्रने जैसे शम्बरासुरको मारा था, उसी प्रकार आप उस पापीका वध करें। यहाँ आपके समान पराक्रमी और कोई पुरुष नहीं है। वारणावत नगरमें जब पाण्डवोंपर बड़ा संकट आ पड़ा था, तब आपहीने इन्हें सहारा दिया था। हिडिम्बासुरसे

पाला पड़नेपर भी आप ही इनके रक्षक हुए थे। विराटनगरमें जब कीचकने मुझे बहुत तंग किया था, तब भी आपहीने उस दुःखसे मेरा उद्धार किया था। आपने जिस प्रकार ये बड़े-बड़े काम किये हैं, उसी प्रकार इस द्रोणपुत्रको मारकर भी प्रसन्न होइये।'

द्रौपदीका यह तरह-तरहका विलाप और भीषण दुःख देखकर भीमसेन सह न सके। वे अश्वत्थामाको मारनेका निश्चय कर एक सुन्दर धनुष लेकर रथपर सवार हो गये तथा नकुलको अपना सारथि बनाया। उन्होंने बाण चढ़ाकर धनुषकी टंकार की और शीघ्र ही घोड़ोंको हँकवा दिया। छावनीसे निकलकर उन्होंने अश्वत्थामाके रथका चिह्न देखते हुए बड़ी तेजीसे उसका पीछा किया।

श्रीकृष्णका अश्वत्थामाके विषयमें एक पूर्वप्रसंग सुनाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भीमसेनके चले जानेपर यदुश्रेष्ठ भगवान् कृष्णने धर्मराजसे कहा, 'राजन्! आपके भाई भीमसेन पुत्रशोकके कारण अश्वत्थामाको संग्राममें मारनेके लिये अकेले ही जा रहे हैं। ये आपको अपने सब भाइयोंसे अधिक प्रिय हैं। फिर इस कठिनाईके समय आप उनकी सहायताका उद्योग क्यों नहीं करते? आचार्य द्रोणने अपने पुत्रको जिस ब्रह्मास्त्रकी शिक्षा दी है, वह सारी पृथ्वीको भी भस्म कर सकता है। वही परमास्त्र उन्होंने प्रसन्न होकर अर्जुनको भी दिया है। अश्वत्थामा बड़ा असहनशील है। उसने तो अकेले अपने-आपको ही इसे सिखानेकी प्रार्थना की थी। आचार्य इसकी चपलता ताड़ गये थे और उन्होंने इसे यह आदेश दिया था कि 'भैया! बहुत बड़ी आपत्तिमें पड़ जानेपर भी तुम इसका प्रयोग मत करना। विशेषतः मनुष्योंपर तो तुम इसे छोड़ना ही मत; क्योंकि मैं देखता हूँ तुम सत्पुरुषोंके मार्गपर स्थिर रहनेवाले नहीं हो।'

पिताके ये अप्रिय वचन सुनकर दुरात्मा अश्वत्थामा सब प्रकारके सुखकी आशा छोड़कर बड़े शोकसे पृथ्वीपर विचरने लगा। एक बार जिस समय आपलोग वनमें थे, यह द्वारकामें आकर वृष्णिवंशियोंके साथ रहा था और उन्होंने इसका बड़ा सत्कार किया था। एक दिन इसने एकान्तमें मेरे पास अकेले ही आकर कहा, 'कृष्ण! मेरे पिताजीने बड़ी भीषण तपस्या करके अगस्त्यजीसे जो ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया था, वह इस समय जैसा उनके पास है वैसा ही मेरे पास भी है। सो यदुश्रेष्ठ! आप मुझसे वह दिव्य अस्त्र लेकर अपना चक्र मुझे दे दीजिये।'

तब मैंने कहा, 'देखो! ये मेरे धनुष, शक्ति, चक्र और गदा पड़े हैं। तुम इनमेंसे जो-जो अस्त्र लेना चाहो, वही मैं तुम्हें देता हूँ। तुम जिसे उठा सको और जिसका युद्धमें प्रयोग कर सको, वही अस्त्र ले लो और मुझे जो अस्त्र देना चाहते हो, वह भी मत दो।' तब इसने मेरे साथ स्पर्धा रखते हुए एक हजार अरोंवाला और वज्रकी नाभिवाला मेरा लोहेका चक्र लेना चाहा। मैंने कहा—'ले लो।' इसने उछलकर बायें हाथसे उसे उठानेका प्रयत्न किया। किंतु उस स्थानसे उसे



टस-से-मस भी नहीं कर सका। फिर उसे दायें हाथसे उठानेकी चेष्टा करने लगा। किंतु पूरा-पूरा प्रयत्न करनेपर भी जब यह उसे उठाने या चलानेमें समर्थ न हुआ तो अत्यन्त उदास होकर हट गया। जब अपने उद्देश्यमें असफल होकर यह निराश हो गया और इसे बहुत खेद हुआ तो मैंने पास बुलाकर कहा, 'जिसकी ध्वजामें वानरका चिह्न सुशोभित है वह गाण्डीवधारी अर्जुन देवता और मनुष्य—सभीमें सम्मानित है। उसने द्वन्द्वयुद्धमें देवाधिदेव नीलकण्ठ उमापति भगवान् शंकरको भी संतुष्ट कर दिया था। उससे बढ़कर संसारमें मुझे

कोई भी पुरुष प्रिय नहीं है। किंतु जैसा तुम कह रहे हो, वैसी बात तो कभी उसने भी मुँहसे नहीं निकाली। मैंने बारह वर्षतक कठोर ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए हिमालयमें भीषण तपस्या करके यह अस्त्र पाया था। साक्षात् सनत्कुमारजी ही प्रद्युम्नरूपसे मेरी सहधर्मिणी रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। किंतु जिस चक्रको तुम माँग रहे हो, उसे तो कभी उन्होंने भी नहीं माँगा। महाबली बलरामजी तथा गद और साम्बने भी इसे लेनेकी इच्छा कभी प्रकट नहीं की। तुम भरतवंशके आचार्य द्रोणके पुत्र हो और सभी यादव तुम्हारा सम्मान करते हैं। फिर इस चक्रको लेकर तुम किसके साथ युद्ध करना चाहते हो ?'

मैंने इस प्रकार कहा तो अश्वत्थामा कहने लगा, 'कृष्ण ! मैं आपका पूजन करके फिर आपके ही साथ युद्ध करूँगा। भगवन् ! मैं सच कहता हूँ, मैंने आपके इस देवता और दानवोंसे पूजित चक्रको इसीलिये माँगा है जिससे कि मैं अजेय हो जाऊँ। किन्तु अब मैं अपनी दुर्लभ कामनाको पूर्ण किये बिना ही यहाँसे चला जाऊँगा, आप केवल इतना कह दीजिये कि 'तेरा कल्याण हो।' इस भयंकर चक्रको वीर-शिरोमणि आपहीने धारण कर रखा है। इसके समान संसारमें कोई दूसरा चक्र नहीं है और इसे धारण करनेकी शक्ति भी आपके सिवा और किसीमें नहीं है।' ऐसा कहकर अश्वत्थामा मुझसे रथमें जोतने योग्य घोड़े और तरह-तरहके रत्न लेकर चला गया। यह बड़ा क्रोधी, दुष्ट, चञ्चल और क्रूर स्वभाववाला है तथा इसे ब्रह्मास्त्रका भी ज्ञान है। इसलिये इस समय भीमसेनकी रक्षा करना बहुत आवश्यक है।



अश्वत्थामा और अर्जुनका एक-दूसरेपर ब्रह्मास्त्र छोड़ना तथा नारद और व्यासजीका उन्हें शान्त करा देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! ऐसा कहकर श्रीकृष्ण सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित एक श्रेष्ठ रथपर चढ़े। उस रथका रंग उदय होते हुए सूर्यके समान लाल था। उसके दाहिने धुरेमें शैब्य और बायेंमें सुग्रीव नामका घोड़ा जुता हुआ था तथा उसे अगल-बगलसे मेघपुष्प और बलाहक नामके घोड़े खींचते थे। उस रथपर विश्वकर्माका बनाया हुआ रत्न और धातुओंसे विभूषित ध्वजाका डंडा उठी हुई मायाके समान जान पड़ता था। उसकी ध्वजापर पक्षिराज गरुड़ विराजमान थे। इस अद्भुत रथपर भगवान् श्रीकृष्ण बैठ गये और उनके बैठनेपर अर्जुन तथा राजा युधिष्ठिर उसपर सवार हो गये। उनके चढ़ जानेपर श्रीकृष्णने अपने तेज घोड़ोंको चाबुकसे हाँका। घोड़े बड़ी तेजीसे भीमसेनके पीछे चल दिये और तुरंत ही उनके पास पहुँच गये। इस समय भीमसेन क्रोधातुर होकर शत्रुका संहार करनेके लिये तुले हुए थे; इसलिये इन महारथियोंके रोकनेपर भी वे रुके नहीं। वे इनके देखते-देखते अपने घोड़े दौड़ाते श्रीगङ्गाजीके तटपर पहुँच गये, जहाँ उन्होंने अश्वत्थामाको बैठा सुना था। किंतु उस स्थानपर पहुँचकर उन्होंने गङ्गाजीकी धारके पास ही परम यशस्वी व्यासजीको अनेकों ऋषियोंके साथ बैठे देखा। उनके पास ही क्रूरकर्मा अश्वत्थामा भी मौजूद था। उसने अपने शरीरमें घृत लगा रखा था और वह कुशाके वस्त्र पहने हुए था। कुन्तीनन्दन भीमसेन उसे देखते ही 'अरे ! खड़ा तो रह' इस प्रकार चिल्लाते हुए धनुष-बाण लेकर उसकी ओर दौड़े। द्रोणपुत्र अश्वत्थामा यह देखकर कि धनुर्धर भीम तथा उसके पीछे राजा युधिष्ठिर और अर्जुन भी मेरी ओर आ रहे हैं, बहुत डर गया और उसने निश्चय किया कि अब ब्रह्मास्त्रके प्रयोगका समय आ गया है। तुरंत ही अपने उस दिव्य अस्त्रका चिन्तन किया और अपने बायें हाथसे एक सींक उखाड़ ली; फिर ऐसा संकल्प करके कि 'पृथ्वी पाण्डवहीन हो जाय' उसने क्रोधमें भरकर सम्पूर्ण लोकोंको मोहमें डालनेके लिये वह प्रचण्ड अस्त्र छोड़ दिया। इससे उस सींकमें आग पैदा हो गयी और वह प्रलयकालकी अग्निके समान मानो तीनों लोकोंको भस्म करने लगी।

श्रीकृष्ण अश्वत्थामाकी चेष्टा देखकर ही उसके मनके भावको ताड़ गये थे। उन्होंने अर्जुनसे कहा, 'अर्जुन ! अर्जुन ! आचार्य द्रोणका सिखाया हुआ दिव्य अस्त्र तो तुम्हारे हृदयमें विद्यमान है, अब उसके प्रयोगका समय आ गया है। अपनी और अपने भाइयोंकी रक्षाके लिये तुम भी इस समय उसीका प्रयोग करो; क्योंकि ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रके द्वारा ही रोका जा सकता है।' श्रीकृष्णके इस प्रकार कहते ही अर्जुन धनुष-बाण लेकर तुरंत रथसे कूद पड़े। उन्होंने पहले 'आचार्यपुत्रका मङ्गल हो' और फिर 'मेरा और मेरे भाइयोंका

मङ्गल हो' ऐसा कहकर देवता और गुरुजनोंको नमस्कार किया। इसके बाद 'इस ब्रह्मास्त्रसे शत्रुका ब्रह्मास्त्र शान्त हो जाय' ऐसा संकल्प करके सम्पूर्ण लोकोंके मङ्गलकी कामनासे अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया। तब वह अर्जुनका छोड़ा हुआ अस्त्र प्रलयानलके समान अग्निकी बड़ी-बड़ी ज्वालाओंसे प्रज्वलित हो उठा। इसी प्रकार महातेजस्वी अश्वत्थामाका अस्त्र भी तेजोमण्डलसे घिरकर आगकी भीषण लपटें उगलने लगा। उनके आपसमें टकरानेसे बड़ी भारी गर्जना होने लगी, हजारों उल्काएँ गिरने लगीं और सभी प्राणियोंको बड़ा भय मालूम होने लगा। आकाशमें बड़ा शब्द होने लगा और सर्वत्र अग्निकी लपटें फैल गयीं तथा पर्वत, वन और वृक्षोंके सहित सारी पृथ्वी डगमगाने लगी।

इस प्रकार उन दोनों अस्त्रोंके तेज समस्त लोकोंको संतप्त करने लगे। यह देखकर अर्जुन और अश्वत्थामाको शान्त करनेके लिये वहाँ देवर्षि नारद और महर्षि व्यासने एक ही साथ दर्शन दिया। दोनों मुनिश्रेष्ठ देवता और मनुष्योंके पूजनीय और अत्यन्त यशस्वी हैं। ये सम्पूर्ण लोकोंके हितकी कामनासे उन दोनों अस्त्रोंको शान्त करानेके लिये उनके बीचमें आकर खड़े हो गये और कहने लगे,



'पूर्वकालमें जो तरह-तरहके शस्त्रोंको जाननेवाले महारथी हो गये हैं, उन्होंने इन अस्त्रोंका प्रयोग मनुष्योंपर कभी नहीं किया। फिर वीरो ! तुम दोनोंने ही यह महान् अनिष्टकारी साहस क्यों किया है ?'

उन अग्निके समान तेजस्वी महर्षियोंको देखते ही अर्जुन बड़ी फुर्तीसे अपना दिव्य अस्त्र लौटाने लगा। फिर उसने हाथ जोड़कर कहा, 'भगवन् ! मैंने तो इसी उद्देश्यसे यह अस्त्र छोड़ा था कि इसके द्वारा शत्रुका छोड़ा हुआ ब्रह्मास्त्र शान्त हो जाय। अब इस अस्त्रको लौटा लेनेपर तो पापी अश्वत्थामा अवश्य ही अपने अस्त्रके प्रभावसे हम सबको भस्म कर देगा। इसलिये इस समय जैसा करनेसे हमारा और सब लोकोंका हित हो, उसीके लिये आप हमें सलाह दें।' ऐसा कहकर अर्जुनने उस ब्रह्मास्त्रको वापस लौटा लिया। उसे लौटा लेना तो देवताओंके लिये भी कठिन था। संग्राममें एक बार छोड़ देनेपर उसे लौटानेमें तो अर्जुनके सिवा स्वयं इन्द्र भी समर्थ नहीं था। वह अस्त्र ब्रह्मतेजसे प्रकट हुआ था। असंयमी पुरुष उसे छोड़ तो सकता था; किंतु उसे लौटानेका सामर्थ्य ब्रह्मचारीके सिवा और किसीमें नहीं था। यदि कोई ब्रह्मचर्यहीन पुरुष उसे एक बार छोड़कर फिर लौटानेका प्रयत्न करता तो वह अस्त्र कुटुम्बसहित उस व्यक्तिका ही सिर काट लेता था। अर्जुन ब्रह्मचारी और व्रती था; उसने दुष्प्राप्य होनेपर भी यह परमास्त्र प्राप्त कर लिया था। परंतु बड़ी भारी विपत्ति पड़नेके सिवा और किसी समय वह इसका प्रयोग नहीं करता था। अर्जुन सत्यवादी, शूरवीर, ब्रह्मचारी और गुरुकी आज्ञाका पालन करनेवाला था। इसलिये उसने फिर भी उसे लौटा लिया।

अश्वत्थामाने भी जब उन ऋषियोंको अपने अस्त्रके सामने खड़े देखा तो उसे लौटानेका बड़ा प्रयत्न किया, किंतु वह वैसा कर न सका। तब वह मनमें अत्यन्त व्याकुल होकर श्रीव्यासजीसे कहने लगा, 'मुने ! मैं भीमसेनके भयसे जब बहुत बड़ी आपत्तिमें पड़ गया था, तब अपने प्राणोंको बचानेके लिये ही मैंने यह अस्त्र छोड़ा है। भीमसेनने दुर्योधनका वध करनेके उद्देश्यसे संग्रामभूमिमें नियमविरुद्ध आचरण करके अधर्म किया था। इसीसे संयमी न होनेपर भी मैंने यह अस्त्र छोड़ दिया है। अब इसे लौटानेमें तो मैं समर्थ नहीं हूँ। मैंने अग्निमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके यह दुर्दम्य दिव्य अस्त्र पाण्डवोंका नाश करनेके लिये छोड़ा है। अतः आज यह सभी पाण्डवोंके प्राण ले लेगा। इस प्रकार क्रोधमें भरकर पाण्डवोंके वधके लिये यह अस्त्र छोड़कर अवश्य ही मैंने बड़ा पाप किया है।'

व्यासजीने कहा—भैया ! ब्रह्मास्त्रका ज्ञान तो अर्जुनको भी है। किंतु उसने क्रोधमें भरकर या तुम्हें मारनेके लिये उसे नहीं छोड़ा है। उसने तो अपने ब्रह्मास्त्रसे तुम्हारे

ब्रह्मास्त्रको शान्त करनेके लिये ही उसका प्रयोग किया है और अब उसे लौटा भी लिया है। ब्रह्मास्त्रको पाकर भी तुम्हारे पिताजीका उपदेश मानकर महाबाहु अर्जुन क्षात्र-धर्मसे विचलित नहीं हुआ है। यह ऐसा धीर, वीर, साधु और सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको जाननेवाला है; फिर भी तुम्हें इसे भाइयोंके सहित मार डालनेकी कुबुद्धि क्यों हुई है ? देखो, जिस देशमें एक ब्रह्मास्त्रको दूसरे ब्रह्मास्त्रसे दबा दिया जाता है, वहाँ बारह वर्षतक वर्षा नहीं होती। इसीसे प्रजाका हित करनेके लिये अर्जुनने तुम्हारे ब्रह्मास्त्रको नष्ट नहीं किया है। तुम्हें पाण्डवोंकी, अपनी और राष्ट्रकी रक्षा करनी ही चाहिये। इसलिये अब तुम इस दिव्य अस्त्रको लौटा लो। अब तुम्हारा क्रोध शान्त हो जाना चाहिये और पाण्डवोंको भी स्वस्थ रहने चाहिये। राजर्षि युधिष्ठिर किसीको अधर्मसे जीतना नहीं चाहते। तुम्हारे सिरमें जो मणि है, वह तुम इन्हें दे दो और उसे लेकर पाण्डव लोग तुम्हें प्राणदान दे दें।

अश्वत्थामा बोला—पाण्डवोंने कौरवोंका जितना धन और जो-जो रत्न प्राप्त किये हैं, मेरी यह मणि उन सबसे अधिक कीमती है। इसे बाँध लेनेपर शस्त्र-व्याधि या क्षुधासे अथवा देवता, दानव, नाग, राक्षस या चोरोंसे होनेवाला किसी भी प्रकारका भय नहीं रहता। इस मणिका ऐसा अद्भुत प्रभाव है, इसलिये मुझे इसका त्याग तो किसी भी प्रकार नहीं करना चाहिये। तो भी आपने जो कुछ आदेश मुझे दिया है वह तो मुझे करना ही होगा। किन्तु मेरा छोड़ा हुआ यह दिव्य अस्त्र व्यर्थ तो हो नहीं सकता। इसे एक बार छोड़कर फिर लौटानेकी मुझे सामर्थ्य नहीं है। इसलिये अब मैं इस अस्त्रको उत्तराके गर्भपर छोड़ता हूँ। आपकी आज्ञाका मैं कभी उल्लङ्घन न करता; परंतु क्या करूँ, इसे लौटाना तो मेरे वशकी बात नहीं है।

व्यासजी बोले—अच्छा, ऐसा ही करो; चित्तमें और किसी प्रकारका विचार मत रखो, इस अस्त्रको पाण्डवोंके गर्भपर छोड़कर शान्त हो जाओ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! तब अश्वत्थामाने वह अस्त्र उत्तराके गर्भपर छोड़ दिया। यह देखकर भगवान् कृष्ण बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने अश्वत्थामासे कहा, 'कुछ दिन हुए विराटपुत्री उत्तरासे, जब वह उपप्लव्य नगरमें थी, एक तपस्वी ब्राह्मणने कहा था कि कौरवोंका परिक्षय होनेपर तेरे गर्भसे एक बालक होगा। उस ब्राह्मणका वह वचन सत्य होगा। वह परीक्षित् ही इन पाण्डवोंके वंशको चलानेवाला बालक होगा।'

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अश्वत्थामाने क्रोधमें भरकर कहा, 'केशव ! तुम पाण्डवोंका पक्ष लेकर जो बात कह रहे हो, वह कभी नहीं हो सकती। मेरा वाक्य झूठा नहीं होगा। मेरा यह भयानक अस्त्र अवश्य ही उसके गर्भपर गिरेगा।'

श्रीभगवान्ने कहा—इस दिव्य अस्त्रका वार तो अवश्य अमोघ ही होगा। किन्तु वह गर्भ मरा हुआ उत्पन्न होनेपर भी फिर दीर्घजीवन प्राप्त करेगा। हाँ, तुम्हें अवश्य सभी समझदार पापी और कायर ही समझते हैं; क्योंकि तुम बार-बार पाप ही बटोरते हो और बालकोंकी हत्या करते हो। इसलिये तुम्हें इस पापका फल भोगना ही पड़ेगा। तुम तीन हजार वर्षतक इस पृथ्वीमें भटकते रहोगे और किसी भी जगह किसी पुरुषके साथ तुम्हारी बातचीत नहीं हो सकेगी। तुम्हारे शरीरमेंसे पीब और लोहूकी गन्ध निकलेगी। इसलिये तुम मनुष्योंके बीचमें नहीं रह सकोगे। दुर्गम वनोंमें ही पड़े रहोगे। परीक्षित् तो दीर्घायु प्राप्त करके वेदव्रत धारण करेगा और फिर आचार्य कृपसे सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करेगा। इस प्रकार उत्तम-उत्तम अस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके वह क्षात्रधर्मका अनुसरण करते हुए साठ वर्षतक पृथ्वीका राज्य करेगा। दुरात्मन् ! देखना, यह परीक्षित् नामका राजा तुम्हारी आँखोंके सामने ही कुरुवंशकी गद्दीपर बैठेगा। वह तुम्हारे शस्त्रकी ज्वालासे जल अवश्य जायगा, परंतु मैं उसे पुनः जीवित कर दूँगा। नराधम ! उस समय तुम मेरे तप और सत्यका प्रभाव देख लेना।

व्यासजी कहने लगे—द्रोणपुत्र ! तुमने मेरी भी बात न मानकर ऐसा क्रूर कर्म किया है और ब्राह्मण होकर भी तुम्हारा आचरण ऐसा खोटा है इसलिये देवकीनन्दन श्रीकृष्णने जो बात कही है, वह अवश्य ठीक होगी; क्योंकि इस समय तुमने स्वधर्मको छोड़कर क्षात्रधर्म स्वीकार कर रखा है।

अश्वत्थामा बोला—ब्रह्मन् ! भगवान् कृष्णकी बात ठीक हो। अब मैं मनुष्योंमें केवल आपके ही साथ रहूँगा।



पाण्डवोंका द्रौपदीके पास आकर उसे मणि देना तथा श्रीकृष्णका राजा युधिष्ठिरको अश्वत्थामाके अद्भुत पराक्रमका रहस्य बताना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इसके बाद अश्वत्थामा पाण्डवोंको मणि देकर उन सबके सामने ही उदास मनसे वनमें चला गया। इधर पाण्डव भी श्रीकृष्ण, नारद और व्यासजीको आगे करके बड़ी तेजीसे मनस्विनी द्रौपदीके पास



आये, जो इस समय अन्न त्याग किये बैठी थी। वहाँ वे सब उसे चारों ओरसे घेरकर बैठ गये। फिर राजा युधिष्ठिरकी आज्ञासे भीमसेनने द्रौपदीको वह दिव्य मणि दी और उससे कहा, 'भद्रे! लो यह मणि है, तुम्हारे पुत्रोंके वध करनेवालेको हमने जीत लिया है। अब उठो और शोक त्यागकर क्षात्रधर्मका विचार करो। जिस समय श्रीकृष्ण संधिके लिये कौरवोंके पास जा रहे थे, उस समय तुमने इनसे कहा था कि 'केशव! आज पाण्डवलोग मेरे अपमानकी बात भूलकर शत्रुओंके साथ मेल करना चाहते हैं; इससे मैं समझती हूँ कि मेरे न तो पति हैं, न पुत्र हैं और न भाई ही हैं तथा न तुम ही मेरे हो।' सो आज अपने उन क्षत्रिय-धर्मोचित वाक्योंको याद करो। पापी दुर्योधन मारा गया, मैंने तड़पते हुए दुःशासनका रक्तपान भी कर लिया तथा द्रोणपुत्रको तो हमने जीत लिया; ब्राह्मण और गुरुपुत्र समझकर ही उसे जीता छोड़ दिया है। उसका सारा यश मिट्टीमें मिल चुका है। हमने उसकी मणि छीन ली है और अस्त्र पृथ्वीपर डलवा लिये हैं।'

यह सुनकर द्रौपदीने कहा—'गुरुपुत्र तो मेरे लिये गुरुहीके समान है, मैं तो केवल उससे अपने अनिष्टका बदला ही लेना चाहती थी। अब इस मणिको महाराज अपने मस्तकपर धारण करें।'

तब राजा युधिष्ठिरने उस मणिको गुरुजीका प्रसाद समझकर द्रौपदीके कहनेसे उसी समय अपने मस्तकपर धारण कर लिया। इसके बाद पुत्रशोकातुरा द्रौपदी उठकर अपने स्थानपर चली गयी।

राजन्! अब महाराज युधिष्ठिरने, रातके समय जो वीर मारे गये थे, उनके लिये शोकातुर होकर श्रीकृष्णसे कहा, 'कृष्ण! अश्वत्थामा तो शस्त्रविद्यामें विशेष कुशल भी नहीं था; फिर उसने मेरे सभी महारथी पुत्र और हजारों योद्धाओंके साथ अकेले ही लोहा लेनेवाले शस्त्रविद्याविशारद द्रुपदपुत्रोंको कैसे मार डाला? उसने ऐसा कौन पुण्यकर्म किया था, जिसके प्रभावसे उसने अकेले ही हमारे सब सैनिकोंको नष्ट कर दिया?'

श्रीकृष्णने कहा—अश्वत्थामाने अवश्य ही ईश्वरोंके ईश्वर देवाधिदेव अविनाशी भगवान् शिवकी शरण ली थी, इसीसे उसने अकेले ही अनेकों योद्धाओंको मार डाला। महादेवजी तो प्रसन्न होनेपर अमरता भी दे सकते हैं और इतना पराक्रम दे देते हैं, जिससे इन्द्रको भी नष्ट किया जा सकता है। भरतश्रेष्ठ! महादेवजीके स्वरूपका मुझे अच्छी तरह ज्ञान है तथा उनके जो अनेकों प्राचीन कर्म हैं, उन्हें भी मैं जानता हूँ। वे सम्पूर्ण भूतोंके आदि, मध्य और अन्त हैं। यह सारा जगत् उन्हींके प्रभावसे चेष्टा कर रहा है। वे महान् वीर्यशाली महादेवजी ही अश्वत्थामापर प्रसन्न हो गये थे। इसीसे उसने आपके महारथी पुत्रोंको और पाञ्चालराजके अनेकों अनुयायियोंको धराशायी कर दिया। अब आप उसके विषयमें कोई विचार न करें। अश्वत्थामाने यह काम महादेवजीकी कृपासे ही किया है। आप तो अब आगे जो काम करना हो, उसे कीजिये।

—★—

सौप्तिकपर्व समाप्त

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

स्त्रीपर्व

शोकाकुल धृतराष्ट्रको सञ्जय और विदुरका समझाना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप नररत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर विजयप्राप्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

राजा जनमेजयने पूछा— मुनिवर ! दुर्योधन और उसकी सारी सेनाका संहार हो जानेपर इस समाचारको सुनकर राजा धृतराष्ट्रने क्या किया ? इसी प्रकार कुरुराज युधिष्ठिर और कृपाचार्य आदि तीनों महारथियोंने भी इसके बाद क्या किया ?

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! अपने सौ पुत्रोंका संहार हो जानेसे महाराज धृतराष्ट्र बड़े दुःखी हुए ; पुत्रशोकसे उनका हृदय जलने लगा और वे चिन्तामें डूब गये। उस समय सञ्जयने उनके पास जाकर कहा, 'महाराज ! आप चिन्ता क्यों करते हैं ? शोकको कोई बँटा तो सकता नहीं। राजन् ! इस युद्धमें अठारह अक्षौहिणी सेना मारी गयी, यह पृथ्वी निर्जन होकर सूनी-सी हो गयी है। अब आप क्रमशः अपने चाचा-ताऊ, बेटों-पोतों, सम्बन्धियों-सुहृदों और गुरुजनोंकी प्रेतक्रिया कराइये।'

सञ्जयकी यह दुःखमयी वाणी सुनकर राजा धृतराष्ट्र बेटे-पोतोंके वधसे व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। फिर सावधान होनेपर वे बोले, 'मेरे पुत्र, मन्त्री और सभी सुहृजन मर चुके हैं। अब तो इस पृथ्वीपर भटक-भटककर मेरे लिये दुःख ही उठाना बाकी रह गया है। ऐसी जिंदगीसे भला, मुझे क्या लाभ है ? मेरा राज्य नष्ट हो गया, भाई-बन्धु सब युद्धमें काम आ गये और आँखें तो पहलेहीसे नहीं हैं। हाय ! मैंने अपने हितैषी परशुरामजी, नारदजी और भगवान् कृष्णद्वैपायनकी भी बात नहीं सुनी। श्रीकृष्णने सारी सभाके बीचमें मेरे भलेके लिये कहा था कि 'राजन् ! व्यर्थ वैर मत बाँधो, अपने बेटेको रोको।' किंतु मैं ऐसा मूर्ख हूँ कि मैंने उनकी बात नहीं मानी। इसी तरह मैंने भीष्मजीकी धर्मानुकूल सलाह भी नहीं सुनी। इसीसे आज बुरी तरह पछताना पड़ रहा है। सञ्जय ! इस जन्ममें किया हुआ कोई ऐसा पाप आज याद तो नहीं आता, जिसके कारण मुझे यह फल भोगना चाहिये था। अवश्य ही पूर्वजन्मोंमें मुझसे कोई बड़ा अपराध हुआ है। इसीसे विधाताने मुझे इन दुःखमय कर्मोंमें नियुक्त कर दिया। अब मेरी आयु ढल चुकी है, सब भाई-बन्धु समाप्त हो चुके हैं और दैववश मेरे हितैषी और मित्रोंका भी नाश हो चुका है। भला, अब संसारमें मुझसे बढ़कर दुःखी और कौन होगा। अतः पाण्डवलोग मुझे आज ही ब्रह्मलोकके खुले हुए मार्गपर बढ़ते देखें।'

इस प्रकार राजा धृतराष्ट्रने अत्यन्त शोक प्रकट करते हुए अनेकों बातें कहीं। तब सञ्जयने राजाके शोकको शान्त करनेके लिये ये शब्द कहे, राजन् ! आपका पुत्र दुर्योधन बड़ी ही खोटी बुद्धिवाला था। दुःशासन, कर्ण, शकुनि, चित्रसेन और शल्य जिन्होंने सारे संसारको कण्टकाकीर्ण कर दिये थे—ये सब उसके सलाहकार थे। अरे ! उसने पितामह भीष्म, माता गान्धारी, चाचा विदुर, गुरु द्रोण, आचार्य कृत और महामति नारदजीकी भी बात नहीं सुनी। यहाँतक कि उसने दूसरे-दूसरे ऋषि और अतुलित तेजस्वी व्यासजीका भी कहा नहीं किया। उसे सदा युद्धकी ही लगन लगी रही। इसके कारण उसने कभी आदरपूर्वक धर्मानुष्ठान भी नहीं किया और न कभी क्षत्रियोंके ही किसी धर्मका आदर किया। उसने तो व्यर्थ ही क्षत्रियोंका संहार कराया। आपमें सब प्रकारकी सामर्थ्य थी, तथापि इस विषयमें आपने भी कुछ नहीं कहा। आपकी बात कोई टाल नहीं सकता था, तथापि आपने निष्पक्ष होकर दोनों ओरके बोझेको तराजूपर नहीं तौला। मनुष्यको यथाशक्ति पहले ही ऐसा काम करना

चाहिये, जिससे अपने पिछले कर्मके लिये उसे पछताना न पड़े। आपने तो पुत्रस्नेहमें फँसकर उसीका प्रिय करना चाहा, इसीसे अब आपको पश्चात्ताप करना पड़ रहा है; अतः इसके लिये कोई शोक नहीं करना चाहिये। शोक करनेसे न तो धन मिलता है, न फल प्राप्त होता है, न ऐश्वर्य मिलता है और न परमात्माकी ही प्राप्ति होती है। जो पुरुष स्वयं अग्नि पैदा करके उसे कपड़ेमें लपेटकर जलने लगता है और फिर पछतावा करने बैठता है, वह बुद्धिमान् नहीं कहा जा सकता। इस समय आपके पुत्रों और आपने ही पाण्डवरूप अग्निको अपने वाक्यरूप वायुसे सुलगाया था और उसे लोभरूप घृत छोड़कर प्रज्वलित किया था। जब वह आग धधक उठी तो उसमें आपके पुत्र पतङ्गोंकी तरह गिरने लगे और उसकी बाणरूप ज्वालाओंमें जलकर भस्म हो गये। अतः आपको उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये। इस समय अश्रुपातके कारण आपका मुख अत्यन्त मलिन हो गया है। शास्त्रदृष्टिसे ऐसा होना अच्छा नहीं है और समझदार लोग इसे अच्छा भी नहीं कहते। ये शोकके आँसू आगकी चिनगारियोंके समान मनुष्योंको जलाया करते हैं। अतः आप बुद्धिके द्वारा मनको सावधान करके शोक और रोषको छोड़ दीजिये।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार महात्मा सञ्जयने राजा धृतराष्ट्रको धैर्य बँधाया। इसके बाद विदुरजी अपने अमृतके समान मीठे वाक्योंसे उन्हें सान्त्वना देते हुए कहने लगे, 'राजन्! आप पृथ्वीपर क्यों पड़े हैं, उठकर बैठ जाइये और विचारपूर्वक मनको सावधान कीजिये। संसारमें सब जीवोंकी अन्तमें यही तो गति होनी है। जितने सञ्चय हैं, उनका पर्यवसान क्षयमें ही होगा; सारी भौतिक उन्नतियोंका अन्त पतनमें ही होना है; सारे संयोग वियोगमें ही समाप्त होनेवाले हैं। इसी प्रकार जीवनका अन्त भी मरणमें ही होना है। जब यमराज शूरवीर और डरपोक दोनोंहीको अपनी ओर खींचते हैं, तब वे वीर क्षत्रिय युद्ध क्यों न करते। राजन्! समय आनेपर कोई नहीं बच सकता। जो युद्ध नहीं करता, वह भी मरता ही है और कभी-कभी युद्ध करनेवाला भी बच ही जाता है। मृत्यु आनेपर तो कोई नहीं जी सकता। जितने प्राणी हैं आरम्भमें वे नहीं थे और अन्तमें भी नहीं रहेंगे, केवल बीचमें ही दिखायी देते हैं। इसलिये उनके लिये शोक करनेकी क्या आवश्यकता है। शोक करनेसे मनुष्य न तो मरनेवालेके साथ जा सकता है और न मर ही सकता है। इस प्रकार जब लोककी यही स्वाभाविकी स्थिति है तो आप किसलिये शोक करते हैं?

'इसके सिवा राजन्! युद्धमें मारे जानेवाले वीरोंके लिये तो आपको शोक करना ही नहीं चाहिये। यदि शास्त्र ठीक है तो उन सभीने परमगति पायी है। इस युद्धमें मरनेवाले सभी वीर स्वाध्यायशील और सदाचारी थे तथा वे सभी शत्रुके सामने डटे रहकर वीरगतिको प्राप्त हुए हैं। इसलिये उनके लिये शोकका अवसर ही कहाँ है? जन्मसे पूर्व ये सभी लोग अदृश्य थे और अब फिर अदृश्य हो गये हैं। न तो वे आपके थे न आप ही उनके हैं। फिर इसमें शोक करनेका क्या कारण है? युद्धमें तो जो मनुष्य मारा जाता है, उसे स्वर्ग मिलता है और जो मारता है, उसे कीर्ति मिलती है। इस प्रकार हमारी दृष्टिसे तो दोनों ही प्रकार बड़ा भारी लाभ है, युद्धमें निष्फलता तो है ही नहीं। मनुष्य दक्षिणायुक्त यज्ञ और तपस्यासे भी उतनी सुगमतासे स्वर्ग प्राप्त नहीं कर सकते जैसे कि युद्धमें मारे जानेपर शूरवीरलोग प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार क्षत्रियके लिये तो इस लोकमें धर्मयुद्धसे बढ़कर और कोई साधन नहीं है। अतः आप अपने मनको शान्त करके शोक छोड़िये। इस प्रकार शोकाकुल होकर आपको अपने शरीरका त्याग नहीं कर देना चाहिये। संसारमें बार-बार जन्म लेकर आप हजारों माता-पिता और स्त्री-पुत्रादिका सङ्ग कर चुके हैं। परंतु वास्तवमें किसके वे हुए और किसके हम। शोकके हजारों स्थान हैं और भयके भी सैकड़ों स्थान हैं। किंतु इनका सर्वदा मूर्ख पुरुषोंपर ही प्रभाव पड़ता है, बुद्धिमानोंपर नहीं।

'कुरुश्रेष्ठ! कालका तो न कोई प्रिय है न अप्रिय और न किसीके प्रति उसका उदासीनभाव ही है। वह तो सभीको मृत्युकी ओर खींचकर ले जाता है। काल ही प्राणियोंको बूढ़ा करता है और काल ही उन्हें नष्ट कर देता है। जब सब जीव सो जाते हैं, उस समय भी काल जागता रहता है। निःसंदेह कालसे पार पाना बड़ा ही कठिन है। यौवन, रूप, जीवन, धनका संग्रह, आरोग्य और प्रियजनोंका सहवास—ये सभी अनित्य हैं। बुद्धिमान् पुरुषको इनमें फँसना नहीं चाहिये। यह दुःख तो सारे ही देशसे सम्बन्ध रखता है! इसके लिये आप अकेले शोक न करें। यद्यपि प्रियजनोंका अभाव होनेपर दुःख दबाता ही है। तथापि शोक करनेसे वह दूर नहीं होता; क्योंकि चिन्तन करनेपर दुःख कभी नहीं घटता, इससे तो वह और भी बढ़ जाता है। जो लोग थोड़ी बुद्धिवाले होते हैं, वे ही अनिष्टकी प्राप्ति और इष्टका वियोग होनेपर मानसिक दुःखसे जला करते हैं। शोक करनेसे मनुष्य कर्तव्य-विमूढ़ हो जाता है तथा अर्थ, धर्म और कामरूप त्रिवर्गसे भी वञ्चित रहता है। भिन्न-भिन्न आर्थिक स्थितियोंमें पड़नेपर असंतोषी पुरुष तो घबरा जाते हैं, किन्तु विचारवानोंको सभी अवस्थाओंमें संतोष रहता है।

मनुष्यको चाहिये कि मानसिक दुःखको विचारसे और शारीरिक कष्टको ओषधियोंसे दूर करे। इसे ही विज्ञानका बल कहते हैं। उसे मूर्खोंका-सा व्यवहार नहीं करना चाहिये। मनुष्यका पूर्वकृत कर्म उसके सोनेपर सो जाता है, उठनेपर उठ बैठता है और दौड़नेपर भी साथ लगा रहता है। वह जिस-जिस अवस्थामें जैसा-जैसा भी शुभ या अशुभ कर्म करता है, उसी-उसी अवस्थामें उसका फल भी पा लेता है। मनुष्य आप ही अपना बन्धु है, आप ही अपना शत्रु है और आप ही अपने पाप-पुण्यका साक्षी है। वह शुभ कर्मसे सुख पाता है और पापसे दुःख भोगता है। इस प्रकार सर्वदा किये हुए कर्मका ही फल मिलता है, बिना कियेका नहीं।'



विदुरजीका महाराज धृतराष्ट्रके प्रति संसारके स्वरूप, उसकी भयंकरता और उससे छूटनेके उपायका वर्णन करना

राजा धृतराष्ट्रने कहा—परम बुद्धिमान् विदुरजी ! तुम्हारे शुभ सम्भाषणको सुनकर मेरा शोक नष्ट हो गया है। अभी मैं तुम्हारी सारगर्भित बातें और भी सुनना चाहता हूँ।

विदुरजी बोले—महाराज ! विचार करनेपर यह सारा जगत् अनित्य ही जान पड़ता है। यह केलेके खंभेके समान सारहीन है, इसमें सार कुछ भी नहीं है। मनुष्य जैसे नये या पुराने वस्त्रको उतारकर दूसरा वस्त्र पहन लेता है, उसी प्रकार वह नये-नये शरीर भी धारण करता रहता है। जीव अपने पूर्वकर्मोंके अनुसार जन्म लेते हैं और फिर नष्ट भी हो जाते हैं। इस प्रकार जब लोकका स्वरूप स्वभावसे ही आगमापायी (आने-जानेवाला) है तो आप किसलिये शोक करते हैं। इस संसारमें जो लोग बुद्धिमान्, सत्त्वगुणसे युक्त, सबका हित चाहनेवाले और प्राणियोंके समागमको कर्मानुसार जाननेवाले हैं, वे ही परमगति प्राप्त करते हैं।

राजा धृतराष्ट्रने पूछा—विदुरजी ! संसारका स्वरूप बड़ा गहन है। अतः मैं यह सुनना चाहता हूँ कि इसे किस प्रकार जाना जा सकता है। सो तुम इसीका वर्णन करो।

विदुरजी बोले—महाराज ! जब गर्भाशयमें वीर्य और रजका संयोग होता है, तभीसे जीवोंकी क्रियाएँ दीखने लगती हैं। आरम्भमें जीव कलिल (वीर्य और रजके संयोग)में रहता है; फिर कुछ दिन बाद पाँचवाँ महीना बीतनेपर वह चैतन्यरूपसे प्रकट होकर पिण्डमें निवास करने लगता है। इसके बाद वह गर्भस्थ पिण्ड सर्वाङ्गपूर्ण हो जाता है। इस समय उसे मांस और रुधिरसे भरे हुए अत्यन्त अपवित्र गर्भाशयमें रहना पड़ता है। फिर वायुके वेगसे उसके पैर ऊपरकी ओर हो जाते हैं और सिर नीचेकी ओर। इस स्थितिमें योनिद्वारके समीप आ जानेसे उसे बड़े दुःख सहने पड़ते हैं। फिर वह योनिमार्गसे पीड़ित होकर उससे बाहर आ जाता है और संसारमें आकर अन्यान्य प्रकारके उपद्रवोंका सामना करता है, अब यह जैसे-जैसे बढ़ने लगता है, वैसे-वैसे इसे नयी-नयी व्याधियाँ भी घेरने लगती हैं। इस प्रकार अपने कर्मोंसे पीड़ित होकर यह जीवन व्यतीत करता रहता है। जिनमें आसक्ति होनेसे ही रसकी प्रतीति होती है, वे विषय इसे घेरे रहते हैं तथा उनके कारण यह इन्द्रियरूप पाशोंसे बँधा रहता है। ऐसी स्थितिमें इसे तरह-तरहके व्यसन घेर लेते हैं। उनसे बँध जानेपर तो इसे तृप्ति ही नहीं होती। उस समय भले-बुरे कर्म करनेपर इसे उनका कुछ ज्ञान नहीं होता। केवल ध्याननिष्ठ पुरुष ही अपने चित्तको कुमार्गमें फँसनेसे बचा सकते हैं। साधारण जीव तो यमलोकके द्वारपर पहुँचकर भी उसे नहीं पहचान पाता। इतनेहीमें काल इसे मृत्युके मुखमें डाल देता है और यमदूत शरीरसे बाहर खींच लेते हैं। इसे बोलनेकी शक्ति नहीं रहती। उस समय इसका जो कुछ पाप या पुण्य किया होता है, वह सामने आता है; किंतु देहबन्धनमें बँध जानेपर यह फिर अपने उद्धारका प्रयत्न नहीं करता। हाय ! लोभके पंजेमें फँसकर संसार स्वयं ही ठगा जा रहा है। यह लोभ, क्रोध और भयमें पागल होकर अपनी सुधि ही नहीं लेता। यदि यह कुलीन होता है तो अकुलीनोंको हेयदृष्टिसे देखता हुआ अपनी उस कुलीनतामें ही मस्त रहता है और धनी होनेपर धनके घमंडमें भरकर निर्धनोंकी निन्दा करता है। यह दूसरोंको तो मूर्ख बताता है, किंतु अपनी ओर कभी नहीं देखता। इसी तरह दूसरोंके दोषोंकी तो निन्दा करता रहता है, किन्तु अपनेको काबूमें रखनेका कभी विचार भी नहीं करता। जब बुद्धिमान् और मूर्ख, धनी और निर्धन, कुलीन और अकुलीन तथा प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित—सभी श्मशानभूमिमें जाकर वस्त्रहीन अवस्थामें पड़ते हैं, तब किसी भी व्यक्तिको उनमें कोई ऐसा अन्तर दिखायी नहीं देता, जिससे वे उनके कुल या रूपकी विशेषताका पता लगा सकें। जब मरनेके पश्चात् सभी जीव समान भावसे पृथ्वीकी गोदमें सोते हैं तो ये मूर्ख एक-

दूसरेको धोखा क्यों देते हैं ? इस नाशवान् लोकमें जो पुरुष इस वेदोक्त उपदेशको साक्षात् या किसीके द्वारा सुनकर जन्मसे ही धर्मका आचरण करता है, वह अवश्य परमगति प्राप्त कर लेता है।

राजा धृतराष्ट्रने कहा—विदुर ! धर्मके इस गूढ़ रहस्यका ज्ञान बुद्धिसे ही हो सकता है। अतः तुम मेरे आगे विस्तारपूर्वक इस बुद्धिमार्गको कहो।

विदुरजी कहने लगे—राजन् ! भगवान् स्वयंभूको नमस्कार करके मैं इस संसाररूप गहन वनके उस स्वरूपका वर्णन करता हूँ जिसका निरूपण महर्षियोंने किया है। एक ब्राह्मण किसी विशाल वनमें जा रहा था। वह एक दुर्गम स्थानमें जा पहुँचा। उसे सिंह, व्याघ्र, हाथी और रीछ आदि भयंकर जन्तुओंसे भरा देखकर उसका हृदय बहुत ही घबरा उठा; उसे रोमाञ्च हो आया और मनमें बड़ी उथल-पुथल होने लगी। उस वनमें इधर-उधर दौड़कर उसने बहुत ढूँढ़ा कि कहीं कोई सुरक्षित स्थान मिल जाय। परंतु वह न तो वनसे निकलकर दूर ही जा सका और न उन जंगली जीवोंसे त्राण ही पा सका। इतनेहीमें उसने देखा कि वह भीषण वन सब ओर जालसे घिरा हुआ है। एक अत्यन्त भयानक स्त्रीने उसे अपनी भुजाओंसे घेर लिया है तथा पर्वतके समान ऊँचे पाँच सिरवाले नाग भी उसे सब ओरसे घेरे हुए हैं। उस वनके बीचमें झाड़-झंखाड़ोंसे भरा हुआ एक गहरा कुआँ था। वह ब्राह्मण इधर-उधर भटकता उसीमें गिर गया। किंतु लताजालमें फँसकर वह ऊपरको पैर और नीचेको सिर किये बीचहीमें लटक गया।

इतनेहीमें कूएँके भीतर उसे एक बड़ा भारी सर्प दिखायी दिया और ऊपरकी ओर उसके किनारेपर एक विशालकाय हाथी दीखा। उसके शरीरका रंग सफेद और काला था तथा उसके छः मुख और बारह पैर थे। वह धीरे-धीरे उस कूएँकी ओर ही आ रहा था। कूएँके किनारेपर जो वृक्ष था, उसकी शाखाओंपर तरह-तरहकी मधुमक्खियोंने छत्ता बना रखा था। उससे मधुकी कई धाराएँ गिर रही थीं। मधु तो स्वभावसे ही सब लोगोंको प्रिय है। अतः वह कुएँमें लटका हुआ पुरुष इन मधुकी धाराओंको ही पीता रहता था। इस संकटके समय भी उन्हें पीते-पीते उसकी तृष्णा शान्त नहीं हुई और न उसे अपने ऐसे जीवनके प्रति वैराग्य ही हुआ। जिस वृक्षके सहारे वह लटका हुआ था, उसे रात-दिन काले और सफेद चूहे काट रहे थे। इस प्रकार इस स्थितिमें उसे कई प्रकारके भयोंने घेर रखा था। वनकी सीमाके पास हिंसक जन्तुओंसे और अत्यन्त उग्ररूपा स्त्रीसे भय था, कूएँके नीचे नागसे और ऊपर हाथीसे आशङ्का थी, पाँचवाँ भय चूहोंके काट देनेपर वृक्षसे गिरनेका था और छठा भय मधुके लोभके कारण मधुमक्खियोंसे भी था। इस प्रकार संसार-सागरमें पड़कर भी वह वहीं डटा हुआ था तथा जीवनकी आशा बनी रहनेसे उसे उससे वैराग्य भी नहीं होता था।

महाराज ! मोक्षतत्त्वके विद्वानोंने यह एक दृष्टान्त कहा है। इसे समझकर धर्मका आचरण करनेसे मनुष्य परलोकमें सुख पा सकता है। यह जो विशाल वन कहा गया है, वह यह विस्तृत संसार ही है। इसमें जो दुर्गम जंगल बताया है, वह इस संसारकी ही गहनता है। इसमें जो बड़े-बड़े हिंस्र जीव बताये गये हैं, वे तरह-तरहकी व्याधियाँ हैं तथा इसकी सीमापर जो बड़े डील-डौलवाली स्त्री है वह वृद्धावस्था है, जो मनुष्यके रूप-रंगको बिगाड़ देती है। उस वनमें जो कुआँ है, वह मनुष्यदेह है। उसमें नीचेकी ओर जो नाग बैठा हुआ है, वह स्वयं काल ही है। वह समस्त देहधारियोंको नष्ट कर देनेवाला और उनके सर्वस्वको हड़प जानेवाला है। कुएँके भीतर जो लता है, जिसके तन्तुओंमें यह मनुष्य लटका हुआ है, वह इसके जीवनकी आशा है तथा ऊपरकी ओर जो छः मुँहवाला हाथी है वह संवत्सर है। छः ऋतुएँ उसके मुख हैं तथा बारह महीने पैर हैं। उस वृक्षको जो चूहे काट रहे हैं, उन्हें रात-दिन कहा गया है। तथा मनुष्यकी जो तरह-तरहकी कामनाएँ हैं, वे मधुमक्खियाँ हैं। मक्खियोंके छत्तेसे जो मधुकी धाराएँ चू रही हैं, उन्हें भोगोंसे प्राप्त होनेवाले रस समझो, जिनमें कि अधिकांश मनुष्य डूबे रहते हैं। बुद्धिमान् लोग संसार-चक्रकी गतिको ऐसा ही समझते हैं। तभी वे वैराग्यरूपी तलवारसे इसके पाशोंको काटते हैं।

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर ! तुम बड़े तत्त्वदर्शी हो। तुमने मुझे बड़ा सुन्दर आख्यान सुनाया है। तुम्हारे अमृतमय वचनोंको सुनकर मुझे बड़ा हर्ष होता है।

विदुरजी बोले—महाराज ! सुनिये; अब मैं विस्तारपूर्वक आपको उस मार्गका विवरण सुनाता हूँ, जिसे सुनकर बुद्धिमान् लोग संसारके दुःखोंसे छूट जाते हैं। राजन् ! जिस प्रकार किसी लंबे रास्तेपर चलनेवाला पुरुष थक जानेपर बीच-बीचमें विश्राम कर लेता है, उसी प्रकार अज्ञानी लोगोंको इस संसारयात्रामें चलते हुए बीच-बीचमें गर्भमें रहकर विश्राम करना होता है। इस संसारसे मुक्त तो विवेकी पुरुष ही होते हैं। अतः शास्त्रज्ञोंने गर्भवासको मार्गका रूपक दिया है और गहन संसारको वन बताया है। यही मनुष्यों तथा

चराचर प्राणियोंका संसारचक्र है। विवेकी पुरुषको इसमें आसक्त नहीं होना चाहिये। मनुष्योंकी जो प्रत्यक्ष और परोक्ष शारीरिक तथा मानसिक व्याधियाँ हैं, उन्हींको बुद्धिमानोंने हिंस्र जीव बताया है। मन्दमति पुरुष इन व्याधियोंसे तरह-तरहके क्लेश और आपत्तियाँ उठानेपर भी संसारसे विरक्त नहीं होते। यदि किसी प्रकार मनुष्य इन व्याधियोंके पंजेसे निकल भी जाय तो अन्तमें इसे वृद्धावस्था तो घेर ही लेती है। इसीसे यह तरह-तरहके शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धोंसे घिरकर मज्जा और मांसरूप कीचड़से भरे हुए आश्रयहीन देहरूप गड्ढेमें पड़ा रहता है। वर्ष, मास, पक्ष और दिन-रातकी संधियाँ—ये क्रमशः इसके रूप और आयुका नाश किया करते हैं। ये सब कालके ही प्रतिनिधि हैं, इस बातको मूढ़ पुरुष नहीं जानते।

किंतु विद्वानोंका कथन है कि प्राणियोंका शरीर रथके समान है, सत्त्व (सत्त्वगुणप्रधान बुद्धि) सारथि है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं और मन लगाम है। जो पुरुष स्वेच्छापूर्वक दौड़ते हुए उन घोड़ोंके पीछे लगा रहता है, वह तो इस संसारचक्रमें पहियेके समान घूमता रहता है। किन्तु जो बुद्धिपूर्वक उन्हें अपने काबूमें कर लेता है, उसे इस संसारमें नहीं आना पड़ता। अतः बुद्धिमान् पुरुषको संसारकी निवृत्तिका ही प्रयत्न करना चाहिये। इस ओरसे लापरवाही नहीं करनी चाहिये। जो पुरुष इन्द्रियोंको वशमें रखता है, क्रोध और लोभसे छूटा हुआ है तथा संतुष्ट और सत्यवादी है, वह शान्ति प्राप्त करता है। मनुष्यको चाहिये कि अपने मनको काबूमें करके ब्रह्मज्ञानरूप महौषधि प्राप्त करे और उसके द्वारा इस संसारदुःखरूप महारोगको नष्ट कर दे। इस दुःखसे संयमी चित्तके द्वारा जैसा छुटकारा मिल सकता है वैसा पराक्रम, धन, मित्र या हितू—किसीकी भी सहायतासे नहीं मिल सकता। इसलिये मनुष्यको दयाभावमें स्थित रहकर शील प्राप्त करना चाहिये। दम, त्याग और अप्रमाद—ये तीन परमात्माके धाममें ले जानेवाले घोड़े हैं। जो पुरुष शीलरूप लगामको पकड़कर इन घोड़ोंसे जुते हुए मनरूप रथपर सवार रहता है, वह मृत्युके भयसे छूटकर ब्रह्मलोकमें जाता है। जो व्यक्ति समस्त प्राणियोंको अभयदान करता है, वह भगवान् विष्णुके निर्विकार परमपदको प्राप्त होता है। अभयदानसे पुरुषको जो फल प्राप्त होता है, वह हजारों यज्ञ और नित्यप्रति उपवास करनेसे भी नहीं मिल सकता। यह बात निर्विवाद है कि प्राणियोंको अपने आत्मासे अधिक प्रिय कोई वस्तु नहीं है; क्योंकि मरण किसीको भी इष्ट नहीं है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको सभी जीवोंपर दया करनी चाहिये। जो बुद्धिहीन पुरुष तरह-तरहके माया-मोहमें फँसे हुए हैं और जिन्हें बुद्धिके जालने बाँध रखा है, वे भिन्न-भिन्न योनियोंमें भटकते रहते हैं। सूक्ष्मदृष्टि महापुरुष तो सनातन ब्रह्मको ही प्राप्त कर लेते हैं।



शोकमग्न राजा धृतराष्ट्रको महर्षि व्यासका समझाना

श्रीवैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! विदुरके ये वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्र पुत्रशोकसे व्याकुल हो मूर्च्छा खाकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उन्हें इस प्रकार अचेत होकर गिरते देख श्रीव्यासजी, विदुर, सञ्जय, सुहृद्गण और जो विश्वासपात्र द्वारपाल थे, वे शीतल जलके छींटे देकर ताड़के पंखोंसे हवा करने लगे और उनके शरीरपर हाथ फेरने लगे। इस प्रकार उनके बहुत देरतक उपचार करनेपर राजाको चेत हुआ और वह पुत्रशोकसे व्याकुल होकर विलाप करने लगे, 'मनुष्यजन्मको धिक्कार है! इसमें भी विवाहादि करके परिवार बढ़ाना तो बड़े ही दुःखकी बात है। इसीके कारण बार-बार तरह-तरहके दुःख पैदा होते हैं। पुत्र, धन, सुहृद् और सम्बन्धियोंका नाश होनेपर विष और अग्निके दाहके समान बड़ा ही दुःख भोगना पड़ता है। उस दुःखसे शरीरमें जलन होने लगती है और बुद्धि नष्ट हो जाती है। ऐसी आपत्तिमें फँसनेपर तो मनुष्यको जीवित रहनेकी अपेक्षा मौत ही अच्छी मालूम होती है। इसलिये आज मैं भी अपने प्राणोंको त्याग दूँगा।'

महात्मा व्यासजीसे ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्र अत्यन्त शोकाकुल हो गये और अपने पुत्रोंके ही चिन्तनमें डूबकर वे मौन रह गये। तब भगवान् व्यासने उनसे कहा, 'धृतराष्ट्र! तुमने सब शास्त्र सुने हैं। तुम बुद्धिमान् हो! तथा धर्म और अर्थके साधनमें कुशल हो। मनुष्योंका जीवन सदा रहनेवाला नहीं है—यह तो तुम निःसन्देह जानते ही हो। यह मर्त्यलोक अनित्य है, परमपद नित्य है और जीवनका पर्यवसान मरणमें ही होता है—यह सब जानकर भी तुम शोक क्यों करते हो? इस वैरका प्रादुर्भाव तो तुम्हारे सामने ही हुआ था। तुम्हारे पुत्रको कारण बनाकर कालने ही इसे अंकुरित किया था। राजन्! यह कौरवोंका विध्वंस तो होना ही था। फिर तुम उन शूरवीरोंके लिये क्यों शोक करते हो? उन सबने तो परमगति प्राप्त कर ली है। पुराने समयकी बात है,



एक बार मैं इन्द्रकी सभामें गया था। वहाँ मैंने सब देवताओंको इकट्ठे हुए देखा। उस समय एक विशेष प्रयोजनसे पृथ्वी उनके पास आयी और उनसे कहने लगी, 'देवगण! आपलोगोंने मेरा जो काम करनेके लिये ब्रह्माजीकी सभामें प्रतिज्ञा की थी, उसे अब शीघ्र ही पूरा कर दीजिये।' उसकी यह बात सुनकर भगवान् विष्णुने कहा, 'राजा धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमें जो सबसे बड़ा दुर्योधन है, वह तेरा काम करेगा। उसके निमित्तिसे अनेकों राजा कुरुक्षेत्रमें आकर अपने सुदृढ़ शस्त्रोंके प्रहारसे एक-दूसरेका संहार कर डालेंगे। इस प्रकार उस युद्धमें तेरा सारा भार उतर जायगा। अब तू शीघ्र ही जा और सब लोकोंको धारण कर।'

'राजन्! तुम्हारा पुत्र जो दुर्योधन था, उसके रूपमें कलिके अंशने ही गान्धारीके गर्भसे जन्म लिया था। इसीसे वह ऐसा असहनशील, चञ्चल, क्रोधी और कूटनीतिसे काम लेनेवाला था। दैवयोगसे उसके भाई भी ऐसे ही उत्पन्न हुए और मामा शकुनि तथा परम मित्र कर्ण भी ऐसे ही मिल गये। ये सब पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही एक साथ उत्पन्न हुए थे। जैसा राजा होता है, वैसी ही उसकी प्रजा भी होती है। यदि स्वामी धार्मिक हो तो अधर्मी सेवक भी धार्मिक बन जाते हैं। सेवकोंकी प्रवृत्ति स्वामीके गुण-दोषोंके अनुसार होती है—इसमें संदेह नहीं। राजन्! दुष्ट राजाका संसर्ग होनेसे ही तुम्हारे और पुत्र भी मारे गये। इस बातको देवर्षि नारद जानते हैं। आपके पुत्र अपने ही अपराधसे मारे गये हैं। तुम उनके लिये शोक मत करो; क्योंकि इस सम्बन्धमें शोक करनेका कोई कारण नहीं है। पाण्डवोंने तुम्हारा जरा भी अपराध नहीं किया है। वास्तवमें तो तुम्हारे पुत्र ही दुष्ट थे, उन्हींने इस देशका नाश कराया है। पहले राजसूय यज्ञके समय देवर्षि नारदने राजा युधिष्ठिरकी सभामें कहा था कि 'राजन्! तुम्हें जो कुछ करना हो, वह कर लो। एक समय ऐसा आयेगा कि सारे कौरव-पाण्डव आपसमें युद्ध करके नष्ट हो जायँगे।' नारदजीकी यह बात सुनकर उस समय पाण्डवोंको बड़ा शोक हुआ था। इस प्रकार मैंने तुम्हें यह देवसभाका पुरातन गुप्त वृत्तान्त सुनाया है। इसे सुनानेमें मेरा यही उद्देश्य है कि किसी प्रकार तुम्हारा शोक दूर हो जाय तथा इस युद्धको दैवी योजना समझकर तुम पाण्डुपुत्रोंपर स्नेह करने लगो। यही बात मैंने एकान्तमें युधिष्ठिरसे भी कही थी। इसीसे उन्होंने कौरवोंके साथ युद्ध रोकनेका इतना प्रयत्न किया था। परंतु दैव बड़ा प्रबल है। इस जगत्के चराचर प्राणियोंके साथ कालका जो सम्बन्ध है, उसे कोई टाल नहीं सकता। राजन्! तुम तो बड़े धर्मात्मा और बुद्धिमान् हो, तुम्हें प्राणियोंके जन्म-मरणके रहस्यका भी पता है। फिर मोहमें क्यों फँसते हो? राजा युधिष्ठिरको यदि मालूम हो गया कि तुम अत्यन्त शोकातुर हो और बार-बार घबराकर अचेत हो जाते हो तो वे प्राण त्याग देंगे। वीरवर युधिष्ठिर तो सर्वदा पशु-पक्षियोंपर भी कृपा करते हैं, फिर वे तुम्हारे प्रति दयाभाव क्यों नहीं रखेंगे। अतः मेरी आज्ञा मानकर और विधिका विधान टल नहीं सकता—ऐसा समझकर तथा पाण्डवोंपर करुणा करके तुम अपने प्राण धारण करो। ऐसा बर्ताव करनेसे संसारमें तुम्हारी कीर्ति होगी, धर्म और अर्थकी प्राप्ति होगी और दीर्घकालिक तपस्याका फल मिलेगा। तुम्हें जो प्रज्वलित अग्निके समान पुत्रशोक उत्पन्न हुआ है, उसे विचाररूप जलसे सर्वदा शान्त करते रहो।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—अतुलित तेजस्वी व्यासजीके ये वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्रने कुछ देर विचार किया, इसके बाद वे बोले, 'द्विजवर! मुझे महान् शोकजालने सब ओरसे जकड़ रखा है, मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं है और बार-बार मूर्च्छा-सी आ जाती है। अब आपका यह उपदेश सुनकर मैं प्राण धारण करता हुआ यथासम्भव शोक न करनेका प्रयत्न करूँगा।'

राजा धृतराष्ट्रके ये वचन सुनकर सत्यवतीनन्दन भगवान् व्यास वहीं अन्तर्धान हो गये।



विदुरजीके समझानेसे राजा धृतराष्ट्रका कुरुकुलकी स्त्रियोंके साथ कुरुक्षेत्रकी ओर जाना तथा रास्तेमें कृपाचार्य आदिसे उनकी भेंट होना

जनमेजयने पूछा—मुनिवर ! भगवान् व्यासके चले जानेपर राजा धृतराष्ट्रने क्या किया ? तथा महामना राजा युधिष्ठिर और कृपाचार्य आदि तीन कौरव महारथियोंने भी क्या किया ? इसके सिवा सञ्जयने भी जो कुछ कहा हो, वह मुझे सुनानेकी कृपा करें।

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! जब दुर्योधन मारा गया और सारी सेनाका नाश हो गया तो सञ्जयकी दिव्य दृष्टि भी जाती रही और वह राजा धृतराष्ट्रके पास आकर कहने लगा, 'महाराज ! देश-देशसे अनेकों राजा आकर आपके पुत्रोंके साथ पितृलोकको प्रस्थान कर गये। इसलिये अब आप अपने पुत्र-पौत्र और चाचा-ताऊ आदि सभीका क्रमशः प्रेत-कर्म कराइये।'

सञ्जयकी यह दुःखमयी वाणी सुनकर राजा धृतराष्ट्र प्राणहीन-से होकर पृथ्वीपर गिर गये। उस समय विदुरजीने उनसे कहा, 'भरतश्रेष्ठ ! उठिये, इस प्रकार क्यों पड़े हैं ? शोक न कीजिये। संसारमें सब जीवोंकी अन्तमें यही गति होनी है। प्राणी न तो जन्मसे पहले होते हैं और न अन्तमें ही रहते हैं, केवल बीचमें ही उनकी प्रतीति होती है; इसलिये इनके लिये क्या शोक किया जाय ? तथा इस युद्धमें मरे हुए जिन राजाओंके लिये आप शोक करते हैं, वे तो वस्तुतः शोकके योग्य हैं भी नहीं; क्योंकि उन सबने स्वर्गलोक प्राप्त किया है। शूरवीरोंको संग्राममें शरीर त्यागनेसे जैसी स्वर्गप्राप्ति होती है, वैसी तो बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञ करनेसे, तपस्यासे और विद्याभ्याससे भी नहीं हो सकती। इन्होंने युद्धमें शत्रुओंका सामना करते हुए प्राण त्यागे हैं, इसलिये इनके लिये क्या शोक किया जाय ? राजन् ! यह बात तो मैंने पहले भी आपसे कही थी कि क्षत्रियके लिये युद्धसे बढ़कर इस लोकमें स्वर्ग-प्राप्तिका कोई और साधन नहीं है। इसलिये आप अपने मनको धैर्य बँधाइये और शोक करना छोड़िये।'

विदुरजीकी यह बात सुनकर राजा धृतराष्ट्रने रथ जोतनेकी आज्ञा देकर कहा, 'गान्धारीको और भरतवंशकी सब स्त्रियोंको जल्दी ही ले आओ तथा वधू कुन्तीको साथ लेकर वहाँ जो दूसरी स्त्रियाँ हों, उन्हें भी बुला लो।' धर्मज्ञ विदुरजीसे ऐसा कहकर वे रथपर सवार हुए। उस समय भी शोकके कारण वे संज्ञाशून्य-से हो रहे थे। गान्धारीका भी पुत्रशोकके कारण बुरा हाल था। पतिकी आज्ञा पाकर वह कुन्ती तथा दूसरी स्त्रियोंके साथ उनके पास आयीं। वहाँ पहुँचकर वे सब अत्यन्त शोकातुर होकर एक-दूसरीसे बिदा लेकर वहाँ आयीं और बड़े जोरसे विलाप करने लगीं। इस आर्तनादने विदुरजीको यद्यपि उनसे भी अधिक शोकाकुल कर दिया था, तो भी उन्होंने उन्हें धीरज बँधाया और सब स्त्रियोंको रथपर चढ़ाकर नगरसे बाहर आये। अब तो कुरुवंशियोंके सभी घरोंमें कोलाहल मच गया तथा बूढ़ेसे लेकर बालकतक सभी शोकाकुल हो गये। जिन स्त्रियोंपर पहले कभी देवताओंकी भी दृष्टि नहीं पड़ी थी, अब पतियोंके मारे जानेपर वे सामान्य पुरुषोंके भी सामने आ गयीं। उन्होंने बाल खोल दिये थे, आभूषण उतार डाले थे तथा केवल एक साड़ी पहने वे अनाथा-सी होकर रणभूमिकी ओर जा रही थीं। पहले जिन्हें अपनी सखियोंके आगे भी एक साड़ी पहनकर निकलनेमें संकोच होता था, इस समय वे ही अपने सास-ससुरोंके सामने इस दीन वेषमें चल रही थीं। ऐसी हजारों स्त्रियोंने रुदन करते हुए राजा धृतराष्ट्रको घेर रखा था। उनके साथ अत्यन्त व्याकुल होकर वे रणक्षेत्रकी ओर चले।

इस प्रकार वे हस्तिनापुरसे एक ही कोसकी दूरीपर पहुँचे होंगे कि उन्हें कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा—



ये तीनों महारथी मिले। राजा धृतराष्ट्रको देखते ही उनका हृदय भर आया और वे आँखोंमें आँसू भरकर लंबी-लंबी साँसें लेते हुए कहने लगे, 'भरतश्रेष्ठ ! दुर्योधनकी सेनामें केवल हम तीन ही बचे हैं। बाकी आपकी सारी सेना नष्ट हो गयी।' इसके बाद कृपाचार्यने गान्धारीसे कहा, 'गान्धारी ! तुम्हारे पुत्रोंने निर्भय होकर युद्ध किया है और अनेकों शत्रुओंको रणभूमिमें सुलाया है। इस प्रकार अनेकों वीरोचित कर्म करते हुए ही वे संग्राममें काम आये हैं। अब वे तेजोमय शरीर धारण करके स्वर्गमें देवताओंके समान विहार करते हैं। तुम्हारे शूरवीर पुत्रोंमेंसे ऐसा कोई भी नहीं था, जो युद्धसे पीठ दिखाते हुए मारा गया हो। हमारे प्राचीन ऋषियोंने संग्राममें शस्त्रसे मारा जाना क्षत्रियोंके लिये परमगतिका कारण बताया है। इसलिये तुम उनके लिये शोक मत करो। एक बात और है, उनके शत्रु पाण्डवलोग चैनसे रहे हों—ऐसी बात भी नहीं है। अश्वत्थामा आदि हम तीन महारथियोंने जो काम किया है, वह भी सुन लो। जिस समय हमने सुना कि भीमसेनने अधर्मपूर्वक तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको मारा है तो हम पाण्डवोंके नींदमें बेहोश हुए शिविरमें घुस गये और वहाँ भीषण मार-काट मचा दी। इस प्रकार हमने धृष्टद्युम्नादि सभी पाञ्चालोंको तथा द्रुपद और द्रौपदीके पुत्रोंको मार डाला है। इस तरह तुम्हारे पुत्रके शत्रुओंका संहार करके हम भागे जा रहे हैं, क्योंकि हम तीन ही पाण्डवोंके सामने संग्राममें नहीं ठहर सकेंगे। पाण्डव बड़े शूरवीर और महान् धनुर्धर हैं। इस समय अपने पुत्रोंकी मृत्युका समाचार पाकर वे क्रोधमें भरकर हमारे पैरोंके चिह्न देखते हुए इस वैरका बदला चुकानेके लिये बड़ी तेजीसे हमारा पीछा करेंगे। उन सबका संहार करके अब हमारी यह हिम्मत नहीं है कि पाण्डवोंका सामना कर सकें। इसलिये रानी ! तुम हमें यहाँसे जानेकी आज्ञा दो और अपने मनको शोकाकुल मत करो। राजन् ! आप भी हमें जानेकी आज्ञा दीजिये और क्षात्रधर्मपर विचार करके अच्छी तरह धैर्य धारण कीजिये।'

राजा धृतराष्ट्रसे ऐसा कहकर कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा—तीनोंने बड़ी तेजीसे गङ्गाजीकी ओर अपने घोड़े बढ़ाये। कुछ दूर निकल जानेपर वे तीनों महारथी आपसमें सलाह करके अलग-अलग रास्तोंसे चले गये। कृपाचार्य हस्तिनापुरको चल दिये, कृतवर्मा अपने देशकी ओर चला गया और अश्वत्थामाने व्यासाश्रमकी राह ली। इस प्रकार महात्मा पाण्डवोंका अपराध करनेके कारण भयभीत होकर वे तीनों वीर एक-दूसरेकी ओर देखते हुए भिन्न-भिन्न स्थानोंको चले गये। इसके कुछ ही देर बाद पाण्डवोंने अश्वत्थामाके पास पहुँचकर उसे अपने पराक्रमसे संग्राममें परास्त किया था।



पाण्डवोंका राजा धृतराष्ट्र और गान्धारीसे मिलना, गान्धारीका भीमसेनपर क्रोध तथा व्यासजी और भीमसेनका उसे शान्त करना

श्रीवैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! इधर महाराज युधिष्ठिरने सुना कि हमारे बूढ़े ताऊजी संग्राममें मरे हुए वीरोंका अन्त्येष्टि कर्म करानेके लिये हस्तिनापुरसे चल दिये हैं। तब वे शोकाकुल धृतराष्ट्रके पास अपने भाइयोंको लेकर चले। इस समय श्रीकृष्ण, सात्यकि और युयुत्सु भी उनके साथ हो लिये तथा पाञ्चालमहिलाओंके साथ द्रौपदीने भी उनका अनुसरण किया। गङ्गातटपर पहुँचकर राजा युधिष्ठिरने कुररीकी तरह विलाप करती हुई स्त्रियोंके अनेकों यूथ देखे। वहाँ हाथ उठाकर आर्त्तस्वरसे रोती हुई हजारों स्त्रियोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। वे कहने लगीं, 'राजन् ! आज आपकी धर्मज्ञता और दयालुता कहाँ चली गयी जो इस तरह अपने चाचा, ताऊ, भाई, गुरु, पुत्र और मित्रोंको भी मार डाला। इन सबको और अभिमन्यु तथा द्रौपदीके पुत्रोंको भी खोकर अब आप इस राज्यको लेकर क्या करेंगे ?'

इस प्रकार रोती हुई उन सब स्त्रियोंको पार करके महाराज युधिष्ठिर अपने ज्येष्ठ पितृव्य राजा धृतराष्ट्रके पास पहुँचे और उनके चरणोंमें प्रणाम किया। इसके बाद उनके अन्य साथियोंने भी धर्मानुसार धृतराष्ट्रको प्रणाम करके अपने-अपने नाम लिये। महाराज पुत्रशोकसे अत्यन्त व्याकुल थे। उन्होंने उदास चित्तसे युधिष्ठिरको गले लगाया। फिर उनका चित्त एकदम कठोर हो गया और वे अग्निके समान भीमको भस्म कर डालनेका विचार करने लगे। श्रीकृष्ण पहले ही उनका अभिप्राय ताड़ गये थे। इसलिये उन्होंने भीमसेनको हाथोंसे पकड़कर रोक लिया और



भीमकी एक लोहेकी मूर्ति आगे कर दी। राजा धृतराष्ट्र बड़े बली थे। उन्होंने लोहेके भीमको ही सच्चा भीमसेन समझकर अपनी भुजाओंसे दबोचकर तोड़ डाला। धृतराष्ट्रमें दस हजार हाथियोंका बल था; इसलिये उन्होंने लोहेके भीमको तोड़ तो डाला, परंतु इससे उनकी छातीपर बहुत दबाव पड़नेसे उनके मुँहसे खून निकलने लगा और वे खूनमें लथपथ होकर पृथ्वीपर गिर गये। उस समय सञ्जयने उन्हें थामकर शान्त किया। क्रोध शान्त होते ही वे अत्यन्त शोकाकुल हुए और 'हा भीम !' हा भीम ! कहकर रोने लगे।

जब श्रीकृष्णने देखा कि अब इनका क्रोध उतर गया है और भीमसेनका वध कर डालनेकी आशङ्कासे ये बहुत व्याकुल हो रहे हैं तो उन्होंने कहा, राजन् ! आप शोक न करें। आपके हाथसे भीमसेनका वध नहीं हुआ है। यह तो उनकी लोहेकी मूर्ति ही है, इसीको आपने कुचल डाला है। आपको क्रोधके वशीभूत देखकर मैंने भीमसेनको आपके पास जानेसे रोक लिया था। जिस प्रकार कालके पास पहुँचकर कोई जीता नहीं बच सकता, उसी प्रकार आपकी भुजाओंके बीचमें पड़कर किसीके प्राण नहीं बच सकते। यही सोचकर आपके पुत्रने भीमसेनकी जो लोहेकी मूर्ति बनवा रखी थी वही मैंने आपके आगे कर दी थी। पुत्रशोककी आगने आपके मनको धर्मसे विचलित कर दिया है, इसीसे आपको भीमसेनका वध करनेकी इच्छा हुई थी। किंतु आपके लिये यह उचित नहीं है कि आप भीमका वध करें। अतः हमने सर्वत्र शान्ति स्थापित करनेके उद्देश्यसे जो कुछ किया है उसका आप भी अनुमोदन करें, मनको व्यर्थ शोकाकुल न करें। राजन् ! आपने वेद और सभी शास्त्रोंका अध्ययन किया है तथा पुराण और सब प्रकारके राजधर्म भी सुने हैं। ऐसे विद्वान् और बुद्धिमान् होकर भी आप अपने ही अपराधसे होनेवाले इस कुटुम्बनाशको देखकर इतने कुपित क्यों होते हैं। मैंने तो आपसे पहले ही निवेदन किया था और भीष्म, द्रोण, विदुर एवं सञ्जयने भी बहुत कुछ समझाया था; किंतु उस समय तो आपने हमारी बात मानी नहीं। जो पुरुष हितकी बात समझानेपर भी अपने हिताहितको नहीं परख पाता, वह अन्यायका आश्रय लेनेसे आपत्तियोंके आनेपर शोक ही करता है। इस आपत्तिमें तो आप अपने ही अपराधसे पड़े हैं, फिर भीमसेनपर क्रोध क्यों करते हैं। दुर्योधनने ईर्ष्यावश द्रौपदीको सभामें बुलवाया था; उस वैरका बदला लेनेके लिये ही तो भीमसेनने उसे मारा है। आप अपने और अपने दुष्ट पुत्रके अपराधोंकी ओर तो देखिये। आपहीने तो निर्दोष पाण्डवोंको राज्यसे निकलवाया था।'

राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्णने जब साफ-साफ सब बातें कहीं तो राजा धृतराष्ट्र कहने लगे, 'माधव ! तुम जैसा कहते हो, वह सब ठीक है। यह अच्छा ही हुआ कि तुम्हारे रोक लेनेसे भीमसेन मेरी भुजाओंके बीचमें नहीं आया। अब मैं स्वस्थ हूँ, मेरा क्रोध शान्त हो गया है और मैं पाण्डुके शूरवीर मध्यम पुत्रको देखना चाहता हूँ। मेरे सब पुत्र और प्रधान-प्रधान राजालोग तो मारे गये। अब तो मेरी शान्ति और प्रीतिके आश्रय ये पाण्डुपुत्र ही हैं।' ऐसा कहकर उन्होंने भीम-अर्जुन और नकुल-सहदेव—सभीको रोते-रोते गले लगाया और 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा कहकर आशीर्वाद दिया।

इसके बाद उनकी आज्ञा लेकर सब पाण्डव श्रीकृष्णके साथ गान्धारीके पास आये। पाण्डवोंके प्रति गान्धारीके मनमें पाप है—इस बातको महर्षि व्यास पहले ही ताड़ गये थे। इसलिये वे बड़ी तेजीसे वहाँ पहुँचे। वे दिव्य दृष्टिसे और अपने मनकी एकाग्रतासे सभी प्राणियोंका आन्तरिक भाव समझ लेते थे। इसलिये गान्धारीके पास जाकर उससे कहने लगे, 'गान्धारी ! तुम पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरपर क्रोध मत करो, शान्त हो जाओ। तुम जो बात मुँहसे निकालना चाहती हो, उसे रोक लो और मेरी बातपर ध्यान दो। गत अठारह दिनोंमें तुम्हारा विजयाभिलाषी पुत्र नित्य ही तुमसे यह प्रार्थना करता था कि 'मैं शत्रुओंके साथ संग्राम करनेके



लिये जा रहा हूँ; माताजी ! मेरे कल्याणके लिये आप मुझे आशीर्वाद दीजिये।' उसके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर तुम हर बार यही कहती थी कि 'जहाँ धर्म है, वहीं विजय है।' इस प्रकार पहले तुम्हारे मुँहसे जो सच्ची बात निकलती थी, वह मुझे याद आती है। यों भी तुम सब प्राणियोंका हित चाहनेवाली हो। इस समय पाण्डवोंने विजय पायी है और इसमें संदेह नहीं कि युधिष्ठिर ही अधिक धर्मनिष्ठ भी हैं। तुम तो सदासे ही बड़ी क्षमावती हो, फिर इस समय तुमने क्षमाको क्यों छोड़ दिया है ? धर्मज्ञे ! तुम अधर्मको छोड़ दो; क्योंकि तुमने अपने धर्मपर दृष्टि रखकर ही ये शब्द कहे थे कि 'जहाँ धर्म है, वहीं विजय है।' अतः तुम अपने क्रोधको शान्त करो। तुम सत्य-भाषण करनेवाली हो, तुम्हारा ऐसा आचरण नहीं होना चाहिये।'

गान्धारीने कहा—भगवन् ! पाण्डवोंके प्रति मेरा कोई दुर्भाव नहीं है और न मैं इनका नाश ही चाहती हूँ। किंतु पुत्रशोकके कारण मेरा मन जबरदस्ती व्याकुल-सा हो रहा है। इस कुन्तीपुत्रोंकी रक्षा करना जैसा कुन्तीका कर्तव्य है, वैसा ही मेरा भी है और जैसा यह मेरा कर्तव्य है, वैसा ही महाराजका भी है। यह कौरवोंका संहार तो दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासनके अपराधसे ही हुआ है। इसमें अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव या युधिष्ठिरका कोई भी दोष नहीं है। कौरवोंने अभिमानमें भरकर युद्ध किया और वे अपने दूसरे साथियोंके सहित आपसहीमें लड़ मरे। किंतु साहसी भीमने दुर्योधनको गदायुद्धके लिये बुलाकर फिर श्रीकृष्णके सामने ही उसकी नाभिके नीचे गदाकी चोट की— इस अनुचित कार्यने ही मेरे क्रोधको भड़का दिया है। धर्मज्ञ महापुरुषोंने जिसे 'धर्म' कहा है, उसे क्या शूरवीर अपने प्राणोंके लोभसे भी रणभूमिमें छोड़ सकते हैं ?

गान्धारीकी यह बात सुनकर भीमसेनने बहुत डरते-डरते उससे विनयपूर्वक कहा, 'माताजी ! यह धर्म हो अथवा अधर्म, मैंने तो डरकर अपनी रक्षाके लिये ही ऐसा किया था, सो अब आप क्षमा करें। आपके उस महाबली पुत्रको धर्मयुद्धमें तो कोई भी नहीं मार सकता था। किंतु पहले उसने भी तो अधर्मसे ही राजा युधिष्ठिरको जीता था और हमें बार-बार तंग किया था। इस समय भी मुझे डर था कि कहीं दुर्योधन गदायुद्धमें मुझे मार न डाले, इसीसे मैंने यह काम कर डाला। देखो, आपके पुत्रने तो हमारा बहुत ही अप्रिय किया था। उसने भरी सभामें द्रौपदीको अपनी बायीं जाँघ दिखायी थी। हमें तो उसी समय उसे मार डालना चाहिये था, किंतु धर्मराजकी आज्ञासे हम चुपचाप बैठे रहे। पीछे उसने वैरको बहुत ही बढ़ा दिया और वनमें रहते समय हमें सदा ही दुःख देता रहा। इसीसे मुझसे भी ऐसा काम हो गया।

गान्धारीने कहा—भैया ! तुम मेरे पुत्रकी ऐसी प्रशंसा कर रहे हो, इसलिये यह तो उसका वध नहीं कहा जा सकता। परंतु तुमने जो संग्रामभूमिमें दुःशासनका खून पिया, उस कामको तो सभी सत्पुरुष निन्दा करेंगे, ऐसा काम आर्यपुरुष तो कभी नहीं करते। तुमने यह बड़ा ही क्रूर कर्म किया, ऐसा करना उचित नहीं था।

भीमसेन बोले—माताजी ! आप चिन्ता न करें। वह खून मेरे दाँत और ओठोंसे आगे नहीं गया। इस बातको कर्ण जानता था। मैंने तो अपने हाथ ही खूनमें सान लिये थे। जब द्यूतक्रीडाके समय दुःशासनने द्रौपदीके केश पकड़े थे, उसी समय क्रोधमें भरकर मैं ऐसी प्रतिज्ञा कर चुका था। यदि मैं उसे पूरा न करता तो अनन्त वर्षोंतक क्षात्रधर्मसे पतित समझा जाता। इसीसे मैंने यह काम किया था।

गान्धारीने कहा—भीम ! हम अब बूढ़े हो गये हैं, हमारा राज्य भी तुमने छीन लिया। ऐसी स्थितिमें हम दोनों अंधोंके सहारेके लिये लकड़ीके समान तुमने एक भी पुत्रको जीवित क्यों नहीं छोड़ा ? यदि तुम मेरे एक पुत्रको भी छोड़ देते तो तुम्हारे कारण मैं इतना दुःख न पाती, यही समझ लेती कि तुमने अपने धर्मका पालन किया है।

भीमसेनसे ऐसा कहकर अपने पुत्र-पौत्रोंके नाशसे पीड़िता गान्धारी क्रोधमें भरकर बोली—'राजा युधिष्ठिर कहाँ है ?' यह सुनते ही धर्मराज भयसे काँपते हुए हाथ जोड़े उसके सामने आये और बड़ी मीठी वाणीमें बोले, 'देवि ! आपके



पुत्रोंका संहार करानेवाला मैं क्रूरकर्मा युधिष्ठिर सामने खड़ा हूँ। पृथ्वीभरके राजाओंका नाश करानेमें मैं ही हेतु हूँ, इसलिये शापके योग्य हूँ; आप मुझे शाप दीजिये। मैं अपने सुहृदोंका शत्रु हूँ; अतः ऐसे-ऐसे बन्धुओंका संहार कराकर अब मुझे जीवन, राज्य या धन—किसीकी भी इच्छा नहीं है।'

महाराज युधिष्ठिर गान्धारीके पास खड़े हुए ये सब बातें कह गये। किंतु उसके मुँहसे कोई बात न निकली। वह बार-बार लंबी-लंबी साँसें लेती रही। वे झुककर उसके चरणोंमें गिरना ही चाहते थे कि दीर्घदर्शिनी गान्धारीकी दृष्टि पट्टीमेंसे होकर उनके नखोंपर पड़ी। इससे उनके सुन्दर नख उसी समय काले पड़ गये। यह देखते ही अर्जुन तो श्रीकृष्णके पीछे खिसक गये तथा और भाई भी इधर-उधर छिपने लगे। उन्हें इस प्रकार कसमसाते देखकर गान्धारीका क्रोध ठंडा पड़ गया और उसने माताके समान उन्हें धीरज दिया। फिर उसकी आज्ञा पाकर वे अपनी माता कुन्तीके पास गये। कुन्तीने अपने पुत्रोंको बहुत दिनोंपर देखा था, इसलिये उनके कष्टोंका स्मरण करके उसका हृदय भर आया और वह अञ्चलसे मुख ढाँककर आँसू बहाने लगी। उसके साथ पाण्डवोंकी आँखोंमें भी आँसू आ गये। उसने प्रत्येक पुत्रके अङ्गोंपर बार-बार हाथ फेरकर देखा। सभीके शरीर शस्त्रोंकी चोटोंसे घायल हो रहे थे। पुत्रहीना द्रौपदीको देखकर तो उसे बड़ा ही अनुताप हुआ। उसने देखा कि पाञ्चालकुमारी पृथ्वीपर पड़ी-पड़ी रो रही है।

द्रौपदी कह रही थी—आर्ये ! अभिमन्युके सहित आज आपके सभी पौत्र कहाँ चले गये। अब जब मेरे बच्चे ही नहीं बचे तो मैं राज्यको लेकर क्या करूँगी ?

तब कुन्तीने उसे धैर्य बँधाया। इसके बाद वह शोकाकुला द्रौपदीको उठाकर अपने साथ ले गान्धारीके पास आयी। उसके साथ ही सब पाण्डव भी वहाँ पहुँचे। तब गान्धारीने बहू द्रौपदी और यशस्विनी कुन्तीसे कहा, बेटी ! इस प्रकार शोकाकुल मत हो; मेरी ओर तो देख, मुझपर कैसा दुःखका पहाड़ टूट पड़ा है। मैं तो इस लोकसंहारको



समयके उलट-फेरसे हुआ ही समझती हूँ। यह रोमाञ्चकारी काण्ड होना ही था, इसीसे हुआ है। विदुरजीने जो बात कही थी, वह ज्यों-की-त्यों सामने आ गयी। जैसी तू है, वैसी ही मैं भी हूँ। बता कौन किसको धीरज बँधावे ? वास्तवमें इस श्रेष्ठ कुलका संहार तो मेरे ही अपराधसे हुआ है।'



युद्धभूमिमें पहुँचकर स्त्रियोंका विलाप करना और गान्धारीका श्रीकृष्णसे उनकी दशाका वर्णन करना

श्रीवैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! गान्धारी बड़ी ही पतिव्रता, भाग्यवती और तपस्विनी थी। वह सर्वदा सत्यभाषण ही करती थी। महर्षि व्यासके वरसे उसे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी थी। उसके प्रभावसे उसे दूरहीसे कौरवोंकी संहारभूमि दिखायी दे रही थी। उसे देखकर वह तरह-तरहसे विलाप करने लगी। बहुत दूर होनेपर भी उसे वह रणक्षेत्र पास ही-सा जान पड़ता था। वह बड़ा ही रोमाञ्चकारी था; हड्डी, केश और चर्बीसे भरा हुआ था। उसमें खूनकी धाराएँ बह रही थीं; सब ओर सहस्रों लोथें पड़ी थीं तथा खूनमें लथपथ हाथी, घोड़े, रथ और योद्धाओंके मस्तकहीन शरीर एवं शरीरहीन मस्तक पड़े हुए थे।

अब भगवान् व्यासकी आज्ञा पाकर राजा युधिष्ठिर आदि सब पाण्डव महाराज धृतराष्ट्र और श्रीकृष्णको आगे कर कुरुकुलकी सब स्त्रियोंको लेकर रणक्षेत्रकी ओर चले। कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर उन विधवा स्त्रियोंने युद्धमें मरे हुए अपने भाई, पुत्र, पिता और पति आदिको देखा। उस भीषण संहारभूमिको देखकर वे राजमहिलाएँ चीत्कार करती हुई अपने बहुमूल्य रथोंसे गिर पड़ीं। इस अभूतपूर्व दृश्यको देखकर वे दुःखसे अत्यन्त व्याकुल हो गयीं। उनमेंसे किन्हींके तो शरीर मुरझा गये और कोई पृथ्वीपर पछाड़ खाने लगीं। वे बहुत थकी हुई थीं और अनाथ हो चुकी थीं। इस समय उन्हें कुछ भी होश-हवास नहीं था। पाञ्चाल और कुरुकुलकी स्त्रियोंके लिये यह बड़ा ही करुणापूर्ण प्रसंग था।

तब दुःखिनी अबलाओंके आर्तनादसे उस भीषण युद्ध-स्थलमें बड़ा कुहराम मचा देख धर्मज्ञा गान्धारीने श्रीकृष्णको बुलाकर कहा, 'माधव ! देखो तो मेरी ये विधवा बहुएँ बाल बिखेरे कुररियोंके समान विलाप कर रही हैं। ये उन भरतकुलभूषणोंको याद कर-करके अलग-अलग अपने पुत्र, भाई, पिता और पतियोंकी ओर दौड़कर जाती हैं। वीरवर ! इस ऐसे युद्धस्थलको देखकर तो मैं शोकसे जली जाती हूँ। मधुसूदन ! इन पाञ्चाल और कौरववीरोंके मारे जानेसे मुझे तो ऐसा जान पड़ता है मानो पाँचों भूतोंका ही नाश हो गया। क्या कोई पुरुष ऐसी कल्पना भी कर सकता था कि इस युद्धमें जयद्रथ, कर्ण, द्रोण, भीष्म और अभिमन्यु-जैसे वीर भी स्वाहा हो जायेंगे ? हाय ! मेरे लिये इससे बढ़कर और क्या दुःख होगा। अवश्य ही पहले जन्मोंमें मुझसे कोई पापकर्म हो गया है। इसीसे मुझे अपनी आँखों अपने पुत्र, पौत्र और भाइयोंकी मृत्यु देखनी पड़ी है। पुत्रशोकाकुला गान्धारीने इसी प्रकार दीनतापूर्वक विलाप करते हुए श्रीकृष्णसे कई बातें कहीं; इतनेहीमें उसकी दृष्टि अपने मृतक पुत्र दुर्योधनपर पड़ी।

दुर्योधनको मरा हुआ देखते ही शोकातुर गान्धारी कटे हुए केलेके समान सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ी। होश आनेपर जब उसने दुर्योधनको खूनमें लथपथ हुए पृथ्वीपर पड़ा देखा तो वह उससे लिपटकर 'हा पुत्र ! हा पुत्र !' ऐसा कहकर रोने लगी। फिर उसे अपने आँसुओंसे सींचती हुई श्रीकृष्णसे कहने लगी, 'वार्ष्णेय ! जब यह बन्धुओंका विध्वंस करनेवाला संग्राम ठन गया तो दुर्योधनने हाथ जोड़कर मुझसे कहा था, 'माताजी ! मुझे आशीर्वाद दो कि इस युद्धमें मेरी विजय हो।' तब मैंने यही कहा था कि 'जय तो वहीं रहती है, जहाँ धर्म रहता है; किन्तु यदि तुम युद्ध करनेमें घबराये नहीं तो तुम्हें देवताओंके समान शस्त्रोंसे मरनेपर प्राप्त होनेवाले लोक अवश्य मिलेंगे।' इस प्रकार मैंने तो पहले ही दुर्योधनसे ऐसी बात कह दी थी। इसलिये मुझे इसके लिये शोक नहीं है। मुझे तो महाराजके लिये चिन्ता है, जिनके सभी सम्बन्धी संग्राममें काम आ गये हैं। जरा कालके उलट-फेरको तो देखो ! जो दुर्योधन मूर्द्धाभिषिक्त राजाओंके आगे-आगे चलता था, आज वही धूलिमें पड़ा हुआ है। आज वह वीरशय्यापर शत्रुके सामने मुँह किये पड़ा है, इसलिये इसे कोई साधारण गति नहीं मिली होगी। ओह ! जो ग्यारह अक्षौहिणी सेनाको लेकर युद्धके मैदानमें उतरा था, वह दुर्योधन अपने अन्यायसे ही आज मारा गया। यह अभागा बड़ा मूर्ख था। इसने अपने पिता और विदुरजी-जैसे वृद्ध पुरुषोंका अपमान किया, इसीसे आज कालके गालमें चला गया। जिसने तेरह वर्षतक पृथ्वीका निष्कण्टक राज्य किया, वही मेरा पुत्र आज मरकर पृथ्वीपर सो रहा है। श्रीकृष्ण ! तुम सुवर्णकी वेदीके समान तेजस्विनी लक्ष्मणकी माताको तो देखो। आज उसके भी बाल बिखरे हुए हैं। मेरी यह पुत्रवधू बड़े उदार हृदयकी है। पता नहीं इसकी स्थिति कैसी है। यह अपने पतिके लिये शोकाकुल है या पुत्रके लिये ? कभी यह पतिकी ओर देखती है तो कभी पुत्रकी ओर देखने लगती है। किंतु कुछ भी हो, यदि वेद और शास्त्र सच्चे हैं तो दुर्योधनने अवश्य ही अपने बाहुबलके प्रतापसे अविनाशी लोक प्राप्त किये होंगे।

'माधव ! देखो, इधर मेरे सौ पुत्र पड़े हुए हैं। इन सबको भीमसेनने ही अपनी गदासे युद्धमें पछाड़ा है ! मुझे तो इसीसे अधिक दुःख होता है कि पुत्रोंके मारे जानेसे आज मेरी ये छोटी-छोटी पुत्रवधुएँ बाल खोले रणभूमिमें फिर रही हैं। हाय ! जो कभी पैरोंमें आभूषण पहने राजमहलकी स्निग्ध भूमिपर विचरती थीं, वे ही आज आपत्तिमें पड़कर इन खूनसे लथपथ कठोर रणाङ्गणमें घूम रही हैं। इस सुकुमारी राजदुलारी लक्ष्मणकी माताको देखकर तो मेरे मनको किसी प्रकार ढाढ़स नहीं बँधता। देखो, इन महिलाओंमेंसे कोई भाइयोंको, कोई पिताओंको और कोई पुत्रोंको पृथ्वीपर पड़े देखकर उनकी भुजाएँ पकड़-पकड़कर पछाड़ खा रही हैं। यही नहीं, इस दारुण संहारमें अपने सम्बन्धियोंके मारे जानेसे तुम्हें कई मध्यम और वृद्ध अवस्थाकी स्त्रियेंका भी रुदन सुनायी पड़ेगा।

'इधर देखो, यह दुःशासन पड़ा हुआ है। शत्रुसूदन महावीर भीमने इसे युद्धमें पछाड़कर इसके शरीरका खून पिया है। हाय ! द्रौपदीके कहनेसे और जुएके समय सहे हुए दुःखोंको याद करके भीमने मेरे इस पुत्रकी कैसी दुर्गति की है। कृष्ण ! मैंने तो दुर्योधनसे उसी समय कहा था कि 'तू मौतकी फाँसीमें बँधे हुए शकुनिका साथ छोड़ दे। अपने इस कुबुद्धि मामाको तू पूरा कलहप्रिय समझ। तू इसे अभी त्यागकर पाण्डवोंके साथ संधि कर ले। मूर्ख ! क्या तू नहीं जानता भीमसेन कैसा असहनशील है, जो हाथीको उल्कासे जलानेके समान तू उसे अपने वाग्बाणोंसे बींधा करता है ?' आज उसीका फल है कि भीमसेनका पछाड़ा हुआ दुःशासन अपनी लंबी-लंबी भुजाओंको फैलाये पृथ्वीपर सो रहा है। क्रोधी भीमने दुःशासनको युद्धमें मारकर इसका खून पिया, यह तो उसका बड़ा ही भीषण काम था।

'माधव ! देखो, यह मेरा पुत्र विकर्ण पड़ा हुआ है। इसकी तो सभी बुद्धिमान् प्रशंसा करते थे। भीमने इसे भी सैकड़ों टुकड़े करके मार डाला है। कर्णि, नालीक और नाराच जातिके बाणोंसे यद्यपि इसके मर्मस्थान छिन्न-भिन्न हो गये हैं, तो भी इसकी कान्ति अभीतक बनी हुई है। यह शत्रुओंका संहार करनेवाला दुर्मुख सोया हुआ है। समरशूर भीमने अपनी प्रतिज्ञाका पालन करते हुए इसे भी मार डाला है। श्रीकृष्ण ! इसके सामने तो संग्राममें कोई भी नहीं टिक सकता था। इसे शत्रुओंने कैसे मार डाला। इधर देखो, यह धृतराष्ट्रनन्दन चित्रसेन मरा पड़ा है; यह तो धनुर्धरोंके लिये आदर्शरूप था।

'केशव ! इस अभिमन्युको तो बल और शौर्यमें अर्जुन तथा तुम्हारी अपेक्षा भी श्रेष्ठ कहा जाता था, इसने तो अकेले ही मेरे पुत्रके अभेद्य व्यूहको तोड़ डाला था। सो देखो, यह भी अनेकोंको मारकर स्वयं मरा पड़ा है। किंतु मैं देखती हूँ कि मर जानेपर भी अतुलित तेजस्वी अभिमन्युका तेज फीका नहीं पड़ा है। देखो, यह विराटपुत्री अनिन्दिता उत्तरा अपने वीर और अल्पवयस्क पतिको देखकर कैसा शोक कर रही है। यह बार-बार अपने पतिके पास आकर अपने हाथसे उसके शरीरपर लगी हुई धूल झाड़ रही है। कृष्ण ! यह अभिमन्यु तो बल, वीर्य, तेज और रूपमें बहुत कुछ तुम्हारे ही समान है। किन्तु हाय ! शत्रुओंका शिकार होकर आज यह भी पृथ्वीपर पड़ा हुआ है। देखो, इस समय उत्तरा उसके खूनसे सने हुए बालोंको हाथसे सुलझा रही है और गोदीमें उसका सिर रखकर मानो वह जीवित हो, इस प्रकार पूछ रही है कि 'आप तो साक्षात् श्रीकृष्णके भानजे और गाण्डीवधारी अर्जुनके पुत्र हैं! आपको संग्रामभूमिमें उन महारथियोंने कैसे मार डाला। क्रूरकर्मा कृपाचार्य, कर्ण, जयद्रथ तथा द्रोण और अश्वत्थामाको धिक्कार है, जिन्होंने मुझे विधवा बना दिया। युद्धमें अनेकों योद्धाओंने मिलकर आपको मार डाला, यह देखकर भी आपके पिता अबतक कैसे जी रहे हैं।

'प्राणनाथ ! आपने शस्त्रोंसे जिन पुण्यलोकोंपर विजय पायी है, वहीं मैं भी अपने धर्म तथा इन्द्रिय-निग्रहके बलपर शीघ्र आ रही हूँ; आप मेरी बाट देखिये ! सम्भवतः मृत्युकाल आये बिना किसीका मरना बड़ा कठिन होता है, तभी तो मैं अभागिनी आपको मरा देखकर भी अबतक जी रही हूँ। वीर ! इस लोकमें तो आपके साथ मेरा छः महीनेका ही सहवास बदा था। सातवें महीनेमें ही आप परलोक सिधार गये।' उत्तराको इस प्रकार विलाप करते देखकर मत्स्यराजके कुलकी दूसरी स्त्रियाँ उसे खींचकर अन्यत्र ले जा रही हैं। किंतु राजा विराटको मरा हुआ देखकर वे स्वयं भी विलाप कर रही हैं। धूप, आयास और परिश्रमके कारण इन सभीके मुँह उतर गये हैं और शरीर झुलसे-से हो गये हैं। इधर ये रणभूमिके अग्रभागमें ही उत्तर, काम्बोजकुमार, सुदक्षिण और लक्ष्मण आदि कई बच्चे मरे पड़े हैं। माधव ! जरा इनपर भी तो दृष्टि डालो।'



गान्धारीका अन्य मरे हुए वीरोंको देखकर विलाप करना और श्रीकृष्णको शाप देना

गान्धारीने फिर कहा—श्रीकृष्ण ! देखो, वह अनेकों महारथियोंको धराशायी करके खूनमें लथपथ हुआ कर्ण रणाङ्गणमें पड़ा हुआ है। यह बड़ा ही असहनशील, महान् क्रोधी, प्रचण्ड धनुर्धर और बड़ा बली था। किंतु आज अर्जुनके हाथसे मारा जाकर यह पृथ्वीपर सोया हुआ है। मेरे महारथी पुत्र भी पाण्डवोंके भयसे इसे ही आगे करके युद्ध करते थे। धर्मराज युधिष्ठिर इससे सदा ही घबराये रहते थे, इसकी ओरसे चिन्तित रहनेके कारण तेरह वर्षतक उन्हें सुखसे नींद भी नहीं आयी। यह प्रलयकालिक अग्निके समान तेजस्वी और हिमालयके समान निश्चल था और यही दुर्योधनका प्रधान अवलम्ब था। किंतु देखो, आज यह वायुद्वारा उखाड़े हुए वृक्षके समान पृथ्वीपर पड़ा है। इसकी पत्नी वृषसेनकी माता पृथ्वीपर पड़ी है और तरह-तरहसे विलाप करती बड़ा ही करुणक्रन्दन कर रही है। हाय ! बड़े खेदकी बात है। महाबाहु कर्णको रणभूमिमें अचेत पड़ा देखकर सुषेणकी माता अत्यन्त आतुर होकर मूर्च्छित हो गयी है। देखो, कुछ होश होनेपर उठकर वह फिर पृथ्वीपर गिर गयी है और पुत्रके वधसे अत्यन्त आतुर होकर बड़ा ही विलाप कर रही है।

इधर देखो, यह भीमसेनका मारा हुआ अवन्तिनरेश पड़ा है। उसकी रानियाँ भी चारों ओरसे घेरकर उसकी सार-सँभालमें लगी हुई हैं। श्रीकृष्ण ! महाराज प्रतीपके पुत्र बाह्लीक बड़े साहसी और धनुर्धर थे। वे भी भालेकी चोटसे मरकर रणभूमिमें सोये हुए हैं। मर जानेपर भी इनके मुखकी कान्ति फीकी नहीं पड़ी है। उधर, राजा जयद्रथ पड़ा हुआ है। इसे तो अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये ग्यारह अक्षौहिणी सेनाको पार करके मारा था। इसकी अनुरागिणी पत्नियाँ चारों ओरसे इसकी सँभाल कर रही हैं। जनार्दन ! जिस समय यह वनमेंसे द्रौपदीको हरकर ले गया था, पाण्डवलोग तो इसे तभी मार डालते; उस समय केवल दुःशलाकी ओर देखकर ही उन्होंने इसे छोड़ दिया था। हाय ! एक बार फिर उन्होंने दुःशलाका मान क्यों नहीं रखा ? देखो, मेरी बच्ची दुःखी होकर कैसा विलाप कर रही है। कृष्ण ! बताओ, मेरे लिये इससे बढ़कर दुःख क्या होगा कि मेरी अल्पवयस्का पुत्री विधवा हो गयी और बहुओंके पति मारे गये। हाय ! तनिक मेरी दुःशलाकी ओर तो देखो। पतिका सिर न मिलनेके कारण वह शोक और भयसे रहित-सी होकर उसे इधर-उधर ढूँढ़ती फिर रही है।

इधर ये नकुलके मामा राजा शल्य मरे पड़े हैं। इन्हें धर्मको जाननेवाले स्वयं धर्मराजने ही संग्राममें मारा था। इनकी तुम्हारे साथ सदासे स्पर्धा रहती थी। युद्धस्थलमें कर्णका सारथ्य करते समय ये पाण्डवोंको विजय दिलानेके लिये उसका तेज क्षीण करते रहे थे। देखो, इन्हें चारों ओरसे इनकी रानियोंने घेर रखा है। उधर वे पर्वतीय राजा भगदत्त हाथमें हाथीका अंकुश लिये पृथ्वीपर मरे पड़े हैं। इनके साथ अर्जुनका बड़ा ही प्रचण्ड, रोमाञ्चकारी और भीषण युद्ध हुआ था। एक बार तो इनके युद्धकौशलको देखकर अर्जुन भी दंग रह गया था, किन्तु अन्तमें ये उसीके हाथसे मारे गये। देखो, जिनके समान बल और पराक्रममें संसारभरमें कोई नहीं था, वे ही भीषण कर्म करनेवाले भीष्मजी इधर शरशय्यापर शयन कर रहे हैं। केशव ! इस प्रतापी नर-सूर्यने शत्रुओंको अपने शस्त्रोंके तापसे झुलसा डाला था। हाय ! आज यह अस्त होना चाहता है। आज वीरोचित शरशय्यापर पड़े हुए इन अखण्ड ब्रह्मचारी भीष्मजीके दर्शन तो करो। ये आजतक अपने व्रतसे नहीं डिगे। भगवान् स्वामिकार्तिकेय जैसे सरकण्डोंके समूहपर सुशोभित हुए थे उसी प्रकार ये कर्णि, नालीक और नाराच जातिके बाणोंकी सेज बिछाकर सोये हुए हैं। अर्जुनने इनके सिरके नीचे तीन बाण मारकर इन्हें बिना ही रूईका तकिया दिया है। अपने पिताकी आज्ञा पालन करनेके लिये ये अखण्ड ब्रह्मचारी रहे, जिससे इन्हें बड़ी भारी कीर्ति मिली। युद्धमें इनकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं था। ये बड़े ही धर्मात्मा और सर्वज्ञ हैं तथा मनुष्य होनेपर भी तत्त्वज्ञानके प्रभावसे देवताओंके समान प्राण धारण किये हुए हैं। आज जब भीष्मजी भी बाणोंके लक्ष्य बनकर रणक्षेत्रमें पड़े हुए हैं तो मुझे यही निश्चय होता है कि वास्तवमें न कोई युद्धकुशल है, न पराक्रमी है और न विद्वान् है। विधाता जिसे जीवनमें सफलता दे देता है, उसीको लोग श्रेष्ठ कहने लगते हैं। माधव ! जब ये देवतुल्य भीष्मजी स्वर्गको सिधार जायँगे तो कुरुकुलके लोग धर्मके विषयमें अपना संदेह किससे पूछेंगे ?

इधर देखो, ये कौरवोंके माननीय आचार्य द्रोण पड़े हुए हैं। चार प्रकारके अस्त्रोंका ज्ञान जैसा इन्द्रको है, वैसा या तो परशुरामजीको है या आचार्य द्रोणको था। जिनकी कृपासे अर्जुनने अनेकों दुष्कर कार्य किये, वे ही द्रोण आज मरे पड़े हैं; इनकी शस्त्रविद्या भी इन्हें नहीं बचा सकी ! इनके जिन

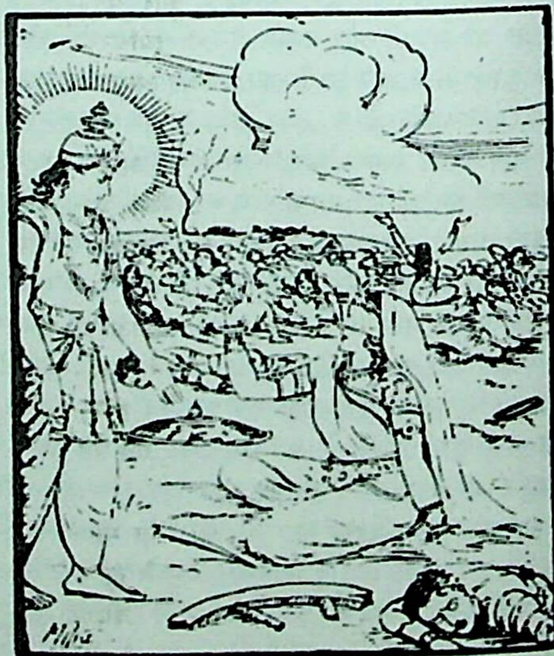
वन्दनीय चरणोंका सैकड़ों शिष्य पूजन किया करते थे, देखो ! आज उन्हींको गीदड़ खींच रहे हैं। इनके मरणकी व्यथासे कृपी अचेत-सी हो गयी है और अत्यन्त दीन-सी होकर इनके पास बैठी है। देखो तो सही, उसके बाल बिखरे हुए हैं और वह नीचा मुख किये फूट-फूटकर रो रही है। इनके शिष्योंने चितामें अग्नि स्थापित करके उसे सब ओरसे प्रज्वलित कर दिया है तथा उसपर आचार्यके शवको रखकर वे सामगान करते हुए रो रहे हैं। देखो, अब वे कृपीको आगे रखकर चिताकी प्रदक्षिणा करके गङ्गाजीकी ओर जा रहे हैं।

माधव ! पास ही पड़े हुए इस भूरिश्रवाकी ओर तो देखो। इसकी पत्नियाँ मरे हुए अपने पतिको घेरे खड़ी हैं और तरह-तरहसे शोक कर रही हैं। शोकके वेगने इन्हें बहुत ही कृश कर दिया है और ये आर्तस्वरसे विलाप करती बार-बार पछाड़ खाकर पृथ्वीपर गिर जाती हैं। इनकी ऐसी दयनीय दशा देखकर चित्तमें बड़ा ही दुःख होता है। देखो, ये कह रही हैं—'सात्यकिका यह काम बड़ा ही अधर्मपूर्ण और अकीर्तिकर हुआ है।' एक स्त्रीने पतिकी भुजाको गोदमें रख लिया है। वह दीनतापूर्वक विलाप करती हुई कह रही है—'यह वह हाथ है जिसने अनेकों शूर-वीरोंका संहार किया था, अपने मित्रोंको अभयदान दिया था और सहस्रों गौएँ दान की थीं। जिस समय दूसरेके साथ संग्राम करनेमें लगे होनेसे तुम असावधान थे, उस समय श्रीकृष्णके समीप ही अर्जुनने इसे काट डाला था।' इस प्रकार अर्जुनकी निन्दा करके वह सुन्दरी चुप हो गयी है। उसके साथ ही उसकी दूसरी सौतें भी शोकमें डूबी हुई हैं।

यह सहदेवका मारा हुआ गान्धारराज महावली शकुनि है। आज यह भी लड़ाईके मैदानमें सोया हुआ है। यह बड़ा मायावी था। इसको सैकड़ों-हजारों प्रकारके रूप बनाने आते थे। किन्तु आज पाण्डवोंके प्रतापसे इसकी सारी माया भस्म हो गयी है। इस कपटीने द्यूतसभामें अपनी मायाके प्रभावसे ही युधिष्ठिरका विशाल साम्राज्य जीत लिया था, किंतु आज यह अपना जीवन भी हार बैठा ! कृष्ण ! देखो, यह दुर्धर्ष वीर काम्बोजनरेश पड़ा है। यह काम्बोजदेशके गलीचोंपर सोनेयोग्य था, किन्तु आज मौतके मुखमें पड़कर धूलिकी शय्यापर सो रहा है ! देखो, वह कलिंगराज पड़ा है। उसके पास ही मगधदेशका राजा जयत्सेन है। उसकी स्त्रियाँ उसे चारों ओरसे घेरकर अत्यन्त विह्वल होकर रो रही हैं। इधर कोसलनरेश राजकुमार बृहद्बलको भी उसकी स्त्रियोंने घेर रखा है और वे फूट-फूटकर रो रही हैं। देखो, वे धृष्टद्युम्नके वीर पुत्र पड़े हैं और उधर आचार्यहीके गिराये हुए पाञ्चालराज द्रुपद सोये हुए हैं। ये बूढ़े पाञ्चालराजकी दुःखिनी स्त्रियाँ और बहुएँ उनका अग्निसंस्कार कर बायीं ओरसे प्रदक्षिणा करके जा रही हैं।

देखो, इधर द्रोणके मारे हुए चेदिराज धृष्टकेतुको उसकी स्त्रियाँ ले जा रही हैं। यह बड़ा ही शूरवीर और महारथी था। हजारों शत्रुओंका संहार करनेके बाद ही यह मारा गया है। इसकी सुन्दरी भार्याएँ इसे गोदमें उठाकर विलाप कर रही हैं। उधर द्रोणहीका बींधा हुआ इसका पुत्र पड़ा है। मेरे पुत्र दुर्योधनके लड़के वीरवर लक्ष्मणने भी इसी तरह अपने पिताका अनुगमन किया है। देखो, ये अवन्तिराज विन्द और अनुविन्द मरे पड़े हैं। ये इस समय भी अपने हाथोंमें धनुष-बाण और खड्ग पकड़े हुए हैं। कृष्ण ! पाँचों पाण्डव और तुम तो अवध्य हो। इसीसे द्रोण, भीष्म, कर्ण, कृप, दुर्योधन, अश्वत्थामा, जयद्रथ, सोमदत्त, विकर्ण और कृतवर्मा-जैसे वीरोंकी मारसे बच गये हो।

माधव ! निश्चय ही विधाताके लिये कोई काम कर डालना विशेष कठिन नहीं है। देखो न, क्षत्रियोंने ही इन शूरवीर क्षत्रियोंका बात-की-बातमें संहार कर डाला। मेरे पुत्रोंका नाश तो उसी दिन हो चुका था, जब तुम अपने संधिके प्रयत्नमें असफल होकर उपप्लव्यकी ओर लौटे थे। महामति भीष्म और विदुरजीने मुझसे उसी समय कह दिया था कि अब अपने पुत्रोंकी मोह-ममता छोड़ दो। उनकी वह दृष्टि मिथ्या



कैसे हो सकती थी। आज इसीसे इतनी जल्दी मेरे पुत्र भस्मीभूत हो गये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! श्रीकृष्णसे इतना कहकर गान्धारी शोकसे अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। दुःखकी अधिकतासे उसकी विचारशक्ति नष्ट हो गयी और उसका धैर्य टूट गया। जब उसे चेत हुआ तो पुत्रशोककी प्रबलतासे उसके अङ्ग-अङ्ग क्रोधसे भर गये और श्रीकृष्णपर दोषदृष्टि करके वह कहने लगी, 'कृष्ण! पाण्डव और कौरव आपसकी फूटके कारण ही नष्ट हुए हैं। किंतु तुमने समर्थ होते हुए भी इनकी उपेक्षा क्यों कर दी। तुम्हारे पास अनेकों सेवक थे और बड़ी भारी सेना थी। तुम दोनोंहीको दबा सकते थे और अपने वाक्कौशलसे उन्हें समझा भी सकते थे। किंतु तुमने अपनी इच्छासे ही इस कौरवोंके संहारकी उपेक्षा कर दी थी। सो अब तुम उसका फल भोगो। मैंने पतिकी सेवा करके जो तप संचय किया है, उसीके प्रभावसे मैं तुम्हें शाप देती हूँ—'तुमने कौरव और पाण्डव दोनों भाइयोंके आपसमें प्रहार करते समय उनकी उपेक्षा कर दी थी। इसलिये तुम भी अपने बन्धु-बान्धवोंका वध करोगे। आजसे छत्तीसवें वर्ष तुम भी बन्धु-बान्धव, मन्त्री और पुत्रोंका नाश हो जानेपर एक साधारण कारणसे अनाथकी तरह मारे जाओगे। आज जैसे ये भरतवंशकी स्त्रियाँ विलाप कर रही हैं, उसी प्रकार तुम्हारे कुटुम्बकी स्त्रियाँ भी अपने बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर सिर पकड़कर रोवेंगी।'

गान्धारीके ये कठोर वचन सुनकर महामना श्रीकृष्णने कुछ मुसकराते हुए कहा, 'मैं तो जानता था कि यह बात इसी प्रकार होनी है। तुमने जो कुछ होना था, उसीके लिये शाप दिया है। इसमें संदेह नहीं, वृष्णिवंशियोंका नाश दैवी कोपसे ही होगा। इनका नाश करनेमें भी मेरे सिवा और कोई समर्थ नहीं है। मनुष्य तो क्या, देवता या असुर भी इनका संहार नहीं कर सकते। इसलिये ये यदुवंशी आपसके कलहसे ही नष्ट होंगे।'

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर पाण्डवोंको बड़ा भय हुआ। वे अत्यन्त व्याकुल हो गये और उन्हें अपने जीवनकी भी आशा नहीं रही।



राजा धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा मरे हुए योद्धाओंका दाहकर्म

श्रीकृष्ण कहने लगे—गान्धारी! उठो, उठो, मनमें शोक मत करो। इन कौरवोंका संहार तो तुम्हारे ही अपराधसे हुआ है। तुम अपने दुष्ट पुत्रको भी बड़ा साधु समझती थी। जो बड़ा ही निठुर, व्यर्थ वैर बाँधनेवाला और बड़े-बूढ़ोंकी आज्ञाका भी उल्लङ्घन करनेवाला था, उसी दुर्योधनको तुमने सिरपर चढ़ा रखा था। फिर अपने किये हुए अपराधको तुम मेरे माथे क्यों मढ़ती हो?

वैशम्पायनजी कहते हैं—श्रीकृष्णके ये अप्रिय वचन सुनकर गान्धारी चुप रह गयी। फिर धर्मको जाननेवाले राजर्षि धृतराष्ट्रने अपने अज्ञानजनित मोहको दबाकर धर्मराज युधिष्ठिरसे पूछा, 'युधिष्ठिर! इस युद्धमें जो सेना मारी गयी है, उसके परिमाणका तुम्हें पता हो तो हमें बताओ।'

युधिष्ठिरने कहा—महाराज! इस युद्धमें एक अरब, छाछठ करोड़, बीस हजार वीर मारे गये हैं। इनके सिवा चौदह हजार योद्धा अज्ञात हैं और दस हजार एक सौ पैंसठ वीरोंका और भी पता नहीं है।

धृतराष्ट्रने पूछा—महाबाहो! मैं तुम्हें सर्वज्ञ मानता हूँ। इसलिये यह तो बताओ, उन सबकी क्या गति हुई है?

युधिष्ठिर बोले—महाराज! जिन सच्चे वीरोंने इस युद्धाग्निमें अपने शरीरोंको हर्षपूर्वक होमा है, वे तो इन्द्रके समान ही पुण्यलोकोंको प्राप्त हुए हैं; जो यह सोचकर कि 'एक दिन मरना तो है ही, इसलिये लड़कर ही मर जाओ' हर्षहीन हृदयसे लड़ते-लड़ते मारे गये हैं, वे गन्धर्वोंके साथ जा मिले हैं और जो संग्रामभूमिमें रहते हुए भी प्राणोंकी भिक्षा माँगते या युद्धसे भागते हुए शस्त्रोंद्वारा मारे गये हैं, वे यक्षोंके लोकमें गये हैं। किंतु जिन महापुरुषोंको शत्रुओंने गिरा दिया था, जिनके पास युद्ध करनेका कोई साधन भी नहीं रहा था, जो शस्त्रहीन हो गये थे और बहुत लज्जित होनेपर भी जिन्होंने शत्रुओंके सामने पीठ नहीं दिखायी—इस प्रकार क्षात्रधर्मका पालन करते हुए जो तीखे शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न हो गये थे, वे तो ब्रह्मलोकको ही गये हैं—इस विषयमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं है। इनके सिवा जो लोग किसी भी प्रकार इस युद्धभूमिके भीतर मार दिये गये हैं, वे उत्तरकुरु देशमें जन्म लेंगे।

धृतराष्ट्रने पूछा—बेटा! तुम्हें ऐसा कौन-सा ज्ञानबल प्राप्त है, जिससे इन बातोंको तुम सिद्धोंके समान देख रहे हो? यदि मेरे सुनने योग्य हो तो मुझे बताओ।

युधिष्ठिर बोले—पिछले दिनोंमें आपकी आज्ञासे वनमें विचरते समय जब मैं तीर्थयात्रा कर रहा था, उस समय मुझे देवर्षि लोमशजीके दर्शन हुए थे। उन्हींसे मुझे यह

अनुस्मृति प्राप्त हुई थी और उससे भी पहले ज्ञानयोगके प्रभावसे मुझे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी थी।

धृतराष्ट्रने कहा—युधिष्ठिर ! यहाँ जो अनेकों अनाथ और सनाथ योद्धा मरे पड़े हैं, क्या उनके शरीरोंका तुम विधिवत् दाह करा दोगे ? इनमें अनेकों ऐसे होंगे जो न तो अग्निहोत्री रहे होंगे और न उनका संस्कार करनेवाला ही कोई होगा। भैया ! यहाँ तो बहुतोंके अन्त्येष्टिकर्म करने हैं, हम किस-किसका करें ?

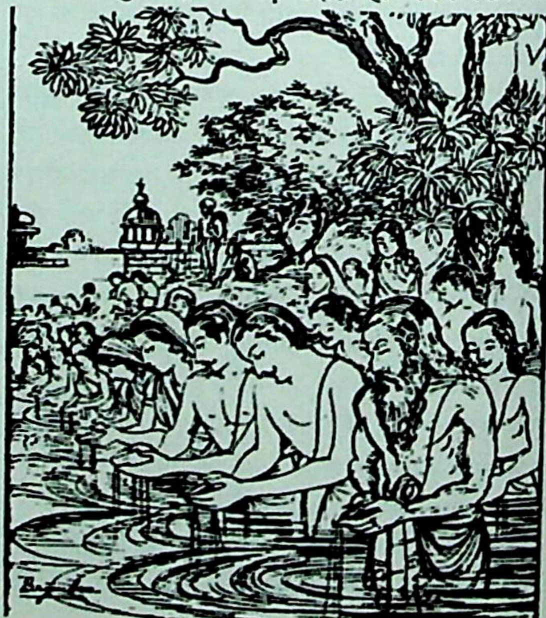
राजा धृतराष्ट्रके ऐसा कहनेपर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने कौरवोंके पुरोहित सुधर्मा और अपने पुरोहित धौम्यको तथा सञ्जय, विदुर, युयुत्सु, इन्द्रसेन आदि सेवक और सब सारथियोंको आज्ञा दी कि 'आपलोग विधिपूर्वक इन सभीके प्रेतकर्म कराइये, जिससे कोई भी शरीर अनाथकी तरह नष्ट न हो।' धर्मराजकी आज्ञा पाते ही ये सब लोग चन्दन, अगर, काष्ठ, घी, तेल, सुगन्धित द्रव्य और रेशमी वस्त्र आदि सब सामग्री जुटानेमें लग गये। उन्होंने टूटे-फूटे रथ और तरह-तरहके शस्त्रोंके ढेर लगा दिये। फिर बड़ी तत्परतासे चिताएँ तैयार कर उनपर मुख्य-मुख्य राजाओंके शव रखकर शास्त्रोक्त विधिसे उनका दाहकर्म कराया। राजा दुर्योधन, उसके निन्यानबे भाई, राजा शल्य, शल, भूरिश्रवा, जयद्रथ, अभिमन्यु, दुःशासनके पुत्र, लक्ष्मण, धृष्टकेतु, बृहन्त, सोमदत्त, सैकड़ों सृञ्जयवीर, राजा क्षेमधन्वा, विराट, द्रुपद, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, युधामन्यु, उत्तमौजा, कोसलराज, द्रौपदीके पुत्र, शकुनि, अचल, वृषक, भगदत्त, कर्ण, कर्णके पुत्र, केकयराज, त्रिगर्तराज, घटोत्कच, अलम्बुष और जलसन्ध—इन सबका तथा और भी हजारों राजाओंका उन्होंने घृतकी धाराओंसे प्रज्वलित हुई अग्निमें दाह कराया। किन्हीं-किन्हींके लिये श्राद्धकर्म भी कराये गये, किन्हींके लिये सामगान कराया गया और किन्हींके लिये उनके सम्बन्धियोंको बहुत शोक भी हुआ। उस रात्रिमें सामगानकी ध्वनि और स्त्रियोंके रुदनसे सभी जीवोंको बड़ा कष्ट हुआ। इसके बाद वहाँ अनेकों देशोंसे आये हुए जो अनाथ लोग मारे गये थे, उन सबकी हजारों ढेरियाँ कराकर उन्हें विदुरजीने घीमें भीगी हुई लकड़ियोंसे जलवा दिया। इस प्रकार सब राजाओंका दाहकर्म करके कुरुराज युधिष्ठिर महाराज धृतराष्ट्रको लेकर गङ्गाजीकी ओर चले।



सब स्त्रियोंका अपने सम्बन्धियोंको जलाञ्जलि देना तथा कुन्तीके मुखसे कर्णके जन्मका रहस्य खुलनेपर भाइयोंके सहित राजा युधिष्ठिरका शोकाकुल होना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! सब लोग साधुजनसेवित पुण्यतोया भागीरथीके तटपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने आभूषण और दुपट्टे उतार दिये। फिर कुरुकुलकी स्त्रियोंने अत्यन्त दुःखित होकर रोते-रोते अपने पुत्र और पतियोंको जलाञ्जलि दी तथा धर्मविधिको जाननेवाले पुरुषोंने भी अपने सुहृदोंको जलदान किया। जिस समय वे वीरपत्नियाँ जलदान कर रही थीं, शोकाकुला कुन्तीने रोते-रोते यकायक धीमे स्वरमें कहा, 'पुत्रो ! जिसे अर्जुनने संग्राममें परास्त किया है, जो वीरोंके सभी लक्षणोंसे सम्पन्न था, जिसे तुम राधाकी कोखसे उत्पन्न हुआ सूतपुत्र मानते हो, जिसने दुर्योधनकी सारी सेनाका नियन्त्रण किया था, पराक्रममें जिसके समान पृथ्वीमें कोई भी राजा नहीं था और जो दिव्य कवच एवं कुण्डल धारण किये था, वह सूर्यके समान तेजस्वी कर्ण तुम्हारा बड़ा भाई था। वह भगवान् सूर्यके द्वारा मेरे उदरसे उत्पन्न हुआ था। उसके लिये तुम जलाञ्जलि दो।'

माताके ये अप्रिय वचन सुनकर सभी पाण्डव कर्णके लिये शोकाकुल होकर बड़े उदास हो गये। फिर राजा



युधिष्ठिरने लंबी-लंबी साँसें लेते हुए मातासे पूछा, 'माताजी ! कर्ण तो साक्षात् समुद्रके समान गम्भीर थे, उनकी बाणवर्षाके सामने अर्जुनके सिवा और कोई वीर नहीं टिक सकता था, उन्होंने किस प्रकार देवपुत्र होकर आपके गर्भसे जन्म लिया था ! जैसे कोई आगको कपड़ेसे ढाँप ले, उसी प्रकार आपने इस बातको अबतक कैसे छिपा रखा था ? हम जैसे अर्जुनके बाहुबलका भरोसा रखते हैं, उसी प्रकार कौरवोंको तो उन्हींके बलका भरोसा था। ओह ! इस रहस्यको छिपाकर तो आपने हमारा सत्यानाश ही कर दिया। आज कर्णकी मृत्युसे हम सभी भाइयोंको बड़ा दुःख हो रहा है। अभिमन्यु, द्रौपदीके पुत्र, पाञ्चालवीर और कौरवोंके मारे जानेसे मुझे जितना दुःख है, उससे सौगुना कर्णकी मृत्युसे हो रहा है। अब तो मुझे कर्णका ही शोक है, उससे मैं ऐसे जल रहा हूँ मानो किसीने आग लगा दी हो। यदि हमें यह बात मालूम होती तो हमारे लिये पृथ्वीकी तो क्या, स्वर्गकी भी कोई वस्तु अप्राप्य नहीं रहती। फिर तो यह कुरुकुलका उच्छेद करनेवाला भीषण संहार भी न होता।'

इस प्रकार तरह-तरहसे अत्यन्त विलाप करके धर्मराज युधिष्ठिरने रोते-रोते कर्णको जलाञ्जलि दी। उस समय वहाँ सहसा सभी स्त्रियाँ रो पड़ीं। इसके बाद कुरुराज युधिष्ठिरने भ्रातृप्रेमवश कर्णकी सब स्त्रियोंको वहाँ बुलवाया और उनको साथ लेकर शास्त्रविधिसे कर्णका प्रेतकर्म किया। फिर वे कहने लगे, 'मैं बड़ा पापी हूँ, मैंने न जाननेके कारण ही अपने बड़े भाईका वध करा दिया। अतः उनकी पत्नियोंके हृदयमें मेरे प्रति कोई छिपा हुआ द्वेष हो तो वह दूर हो जाना चाहिये।' ऐसा कहकर वे विकल चित्तसे गङ्गाजीसे बाहर निकले और अपने सब भाइयोंके सहित तटपर आये।



स्त्रीपर्व समाप्त

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

शान्तिपर्व

शोकाकुल युधिष्ठिरको सान्त्वना देते हुए देवर्षि नारदका उन्हें कर्णका पूर्वचरित्र सुनाना

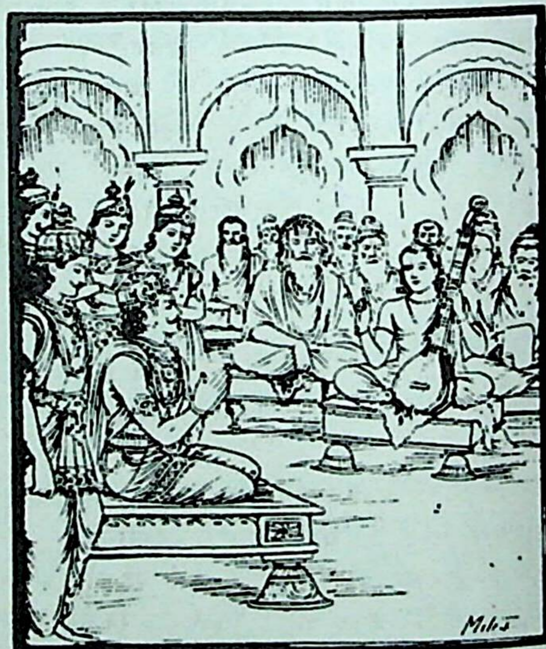
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप नररत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर विजयप्राप्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—अपने समस्त सुहृदोंको जलाञ्जलि देनेके पश्चात् पाण्डव, विदुर, धृतराष्ट्र तथा भरतवंशकी सम्पूर्ण स्त्रियाँ आत्मशुद्धिके लिये एक मासतक नगरसे बाहर गङ्गातटपर टिकी रहीं। उस समय धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके पास बहुत-से सिद्ध, महात्मा तथा ब्रह्मर्षि पधारे। उनमें द्वैपायन व्यास, नारद, देवल, देवस्थान, कण्व तथा इन सबके शिष्य भी थे। इनके अतिरिक्त भी अनेकों वेदवेत्ता ब्राह्मण, गृहस्थ एवं स्नातक पधारे थे। राजा युधिष्ठिरने उन सब महर्षियोंका विधिवत् पूजन किया। इसके बाद वे उनके दिये हुए बहुमूल्य आसनोंपर विराजमान हुए। समयोचित पूजा स्वीकार करके वे हजारों ऋषि-महर्षि गङ्गाके पावन तटपर शोकसे व्याकुल हुए महाराज युधिष्ठिरको धैर्य बँधाने लगे।

सबसे पहले नारदजीने व्यास आदि मुनियोंसे वार्तालाप करके राजा युधिष्ठिरके प्रति इस प्रकार कहा—'राजन्! आपने अपने बाहुबल तथा भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर धर्मपूर्वक विजय पायी है। सौभाग्यकी बात है कि आप इस भयंकर संग्रामसे जीते-जागते बच गये। अब क्षत्रियधर्मके पालनमें तत्पर रहते हुए आप प्रसन्न तो हैं न? इस राज्यलक्ष्मीको पाकर आपको कोई शोक तो नहीं सताता?

युधिष्ठिरने कहा—मुनिवर! भगवान् श्रीकृष्णके आश्रय, ब्राह्मणोंकी कृपा तथा भीम और अर्जुनके बलसे मैंने सम्पूर्ण



पृथ्वीपर विजय तो पा ली; परंतु मेरे हृदयमें प्रतिदिन यह एक महान् दुःख बना रहता है कि मैंने लोभवश अपने कुलका संहार करा दिया। सुभद्राकुमार अभिमन्यु और द्रौपदीके प्यारे पुत्रोंको मरवाकर अब यह विजय भी पराजय-सी ही जान पड़ती है। द्रौपदी सदा हमलोगोंका प्रिय तथा हित करनेमें लगी रहती है, इस बेचारीके पुत्र और भाई सब मारे गये; जब इसकी ओर देखता हूँ तो मुझे बहुत कष्ट होता है। नारदजी! यह सब दुःख तो था ही, एक दूसरी बात और बता रहा हूँ, मेरी माता कुन्तीने कर्णके जन्मका रहस्य छिपाकर मुझे और भी दुःखमें डाल दिया है। जिनमें दस हजार हाथियोंका बल था, संसारमें जिनकी समानता करनेवाला कोई भी महारथी

नहीं था, जो बुद्धिमान्, दाता, दयालु और व्रतका पालन करनेवाले थे, जिनमें शौर्यका पूरा अभिमान था, जो फुर्तीसे अस्त्र चलानेवाले तथा विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाले थे, जिनका पराक्रम अद्भुत था, उन विद्वान् कर्णको माता कुन्तीने ही गुप्तरूपसे जन्म दिया था; वे हमलोगोंके भाई थे। जलदान करते समय कुन्तीने यह रहस्य बताया कि वे भगवान् सूर्यके अंशसे उत्पन्न हुए थे। पूर्वकालकी बात है जब कुन्तीके गर्भसे सर्वगुणसम्पन्न कर्णका प्रादुर्भाव हुआ, उस समय माताने उन्हें पेटीमें रखकर गङ्गाकी धारामें बहा दिया था। जिन्हें सारा संसार राधाका पुत्र समझता था, वे कुन्तीके ज्येष्ठ पुत्र और हमलोगोंके सहोदर भाई थे। मैंने अनजानमें राज्यके लोभसे अपने भाईको ही मरवा डाला—यह स्मरण करके मेरे बदनमें आग-सी लग जाती है। हम पाँचोंमेंसे कोई भी उन्हें अपने भाईके रूपमें नहीं जानता था, किंतु वे हमलोगोंको जानते थे। सुना है, मेरी माता कुन्ती हमलोगोंसे संधि करानेके लिये उनके पास गयी थीं; इन्होंने बताया 'बेटा ! तुम राधाके नहीं, मेरे पुत्र हो।' किंतु कर्णने इनकी अभिलाषा नहीं पूरी की—वे संधिके लिये नहीं सहमत हुए। उन्होंने यही उत्तर दिया—'माँ ! मैं राजा दुर्योधनको छोड़नेमें असमर्थ हूँ। यदि तुम्हारी बात मानकर युधिष्ठिरसे संधि कर लेता हूँ तो नीच, नृशंस और कृतघ्न समझा जाऊँगा। लोग यही कहेंगे कि कर्ण अर्जुनसे डर गया। इसलिये समरमें श्रीकृष्णसहित अर्जुनको जीत लेनेके पश्चात् मैं धर्मनन्दन युधिष्ठिरसे संधि करूँगा।'

यह सुनकर कुन्तीने कहा, 'अच्छी बात है; तुम अर्जुनसे युद्ध करो, किंतु शेष चार भाइयोंको अभय-दान दे दो।' इतना कहकर माता काँपने लगीं, इनकी यह अवस्था देख बुद्धिमान् कर्णने कहा—'देवि ! तुम्हारे चार पुत्र मेरे चंगुलमें फँस जायँगे, तो भी उन्हें जानसे नहीं मारूँगा। यदि मैं मारा गया तो अर्जुन रहेंगे, अर्जुन मरे तो मैं रहूँगा; इस प्रकार तुम्हारे पाँच पुत्र तो हर हालतमें जीवित रहेंगे।' कुन्ती बोलीं—'बेटा ! अपने भाइयोंका कल्याण करना।' फिर ये घर चली आयीं। इस रहस्यको न तो कुन्तीने प्रकट किया, न कर्णने; इसीलिये भाईके हाथसे सहोदर भाईका वध हुआ—अर्जुनने वीरवर कर्णको मार डाला। इससे मेरे हृदयको बड़ी व्यथा हो रही है। कर्ण और अर्जुनकी सहायता पाकर तो मैं इन्द्रको भी जीत सकता था। धृतराष्ट्रके दुरात्मा पुत्र जब सभामें द्रौपदीको क्लेश दे रहे थे और कर्णकी कठोर बातें सुनायी देतीं थीं, उस समय मुझे सहसा रोष चढ़ आता था, किंतु कर्णके चरणोंपर दृष्टि जाते ही शान्त हो जाता था। मुझे कर्णके दोनों पैर माता कुन्तीके चरणों-जैसे ही मालूम होते थे। किंतु बहुत सोचनेपर भी मैं इसका कारण नहीं जान पाता था। भगवन् ! कर्णके पहियेको पृथ्वी क्यों निगल गयी। मेरे भाईको ऐसा शाप क्यों प्राप्त हुआ ? यह मुझे बताइये। मैं आपसे ये सभी बातें ठीक-ठीक सुनना चाहता हूँ; क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं, भूत-भविष्यकी सारी बातें जानते हैं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर नारद मुनि कर्णको जिस तरह शाप प्राप्त हुआ था, वह सारी कथा कहने लगे—"भारत ! यह देवताओंकी गुप्त बात है, किंतु मैं तुम्हें बता रहा हूँ। एक समय सब देवताओंने विचार किया कि कौन-सा ऐसा उपाय हो, जिससे भूमण्डलका सारा क्षत्रिय-समाज शस्त्रोंके आघातसे पवित्र होकर स्वर्ग सिधारे। यह सोचकर उन्होंने सूर्यद्वारा कुमारी कुन्तीके गर्भसे एक तेजस्वी बालक उत्पन्न कराया। वही कर्ण हुआ। उसने आचार्य द्रोणसे धनुर्वेदका अभ्यास किया। वह बचपनसे ही भीमसेनका बल, अर्जुनकी अस्त्र चलानेमें फुर्ती, आपकी बुद्धि, नकुल-सहदेवकी विनय तथा श्रीकृष्णके साथ अर्जुनकी मित्रता देखकर जला करता था। आपके ऊपर प्रजाका अनुराग जानकर वह चिन्तासे दग्ध होता रहता था। इसीलिये उसने बाल्यकालमें ही राजा दुर्योधनसे मित्रता कर ली।"

'धनञ्जयका धनुर्विद्यामें अधिक पराक्रम देखकर एक दिन कर्णने द्रोणचार्यसे एकान्तमें कहा—'गुरुदेव ! मैं ब्रह्मास्त्रको छोड़ने और लौटानेकी विद्या जानना चाहता हूँ।' कर्णकी अर्जुनके साथ जो लाग-डाँट थी, उसे द्रोणाचार्य जानते थे; उसकी दुष्टतासे भी वे अपरिचित नहीं थे। इसीलिये उसकी प्रार्थना सुनकर उन्होंने कहा—'कर्ण ! शास्त्रोक्त विधिके अनुसार ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाला ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय ही ब्रह्मास्त्र सीखनेका अधिकारी है, दूसरा नहीं।' उनके ऐसा कहनेपर कर्णने 'बहुत-अच्छा' कहकर उनका सम्मान किया। फिर उनकी आज्ञा लेकर वह सहसा वहाँसे चल दिया। जाते-जाते महेन्द्रपर्वतपर पहुँचा और परशुरामजीके निकट जा भृगुवंशी ब्राह्मणके रूपमें अपना परिचय दे उसने गुरुबुद्धिसे उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया और शिष्यभावसे वह उनकी शरणमें गया। परशुरामजीने भी गोत्र आदि पूछकर उसे शिष्यके रूपमें स्वीकार किया और कहा 'वत्स ! तुम्हारा स्वागत है, तुम प्रसन्नतापूर्वक यहाँ रहो।'

"कर्ण महेन्द्रपर्वतपर रहकर विधिपूर्वक ब्रह्मास्त्रका

अभ्यास करने लगा। उस समय वहाँ उसे गन्धर्व, राक्षस, यक्ष तथा देवताओंसे मिलनेका अवसर प्राप्त होता रहता था। इसलिये उन सबके साथ उसका बड़ा प्रेम हो गया। एक दिनकी बात है, वह आश्रमके पास ही समुद्रके किनारे-किनारे टहल रहा था। अकेला था और हाथोंमें तलवार तथा धनुष लिये हुए था। उसी समय एक वेदपाठीकी गौ उधर आ निकली। मुनि अग्निहोत्रमें लगे हुए थे। कर्णने अनजानमें उसे कोई हिंस्र जीव समझकर मार डाला। जब मालूम हुआ तो उसने अपने अज्ञानवश किये हुए अपराधको ब्राह्मणसे जाकर कह सुनाया। ब्राह्मणदेवताको प्रसन्न करनेके लिये कर्ण बोला—'भगवन्! मैंने अनजानमें आपकी यह गाय मार डाली है; इसलिये आप मुझपर कृपा करके यह अपराध क्षमा कर दीजिये।'

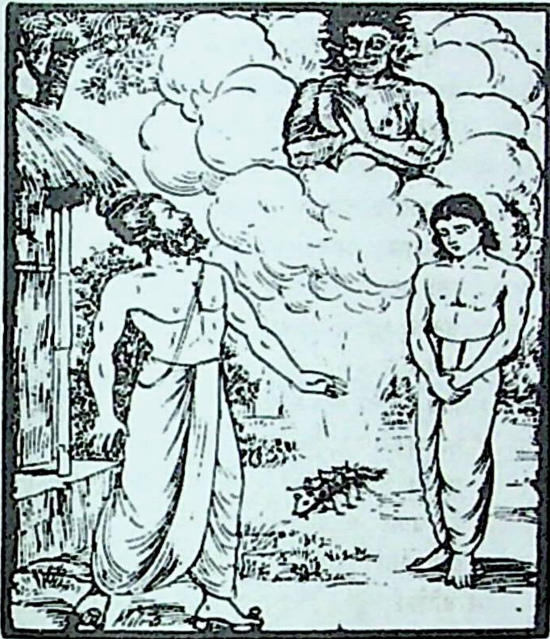
''ब्राह्मण बिगड़ उठा और उसको डाँटता हुआ बोला—'दुराचारी! तू मार डालने योग्य है; ले, इस पापका फल



भोग। अन्त समयमें पृथ्वी तेरे रथके पहियेको निगल जायगी; उस समय, जब तू घबराया होगा उसी अवस्थामें, शत्रु तेरा मस्तक काट डालेगा।' यह शाप सुनकर कर्णने बहुत-सी गौएँ, धन तथा रत्न दे ब्राह्मणको प्रसन्न करनेकी चेष्टा की। तब उसने फिर कहा—'सारा संसार मिलकर भी मेरी बात झूठी नहीं कर सकता।' उसके ऐसा कहनेपर कर्णको बड़ा भय हुआ। दीनतासे उसका मुँह नीचेकी ओर झुक गया। फिर मन-ही-मन इस दुर्घटनाको याद करता हुआ वह परशुरामजीके पास लौट आया।

''कर्णकी भुजाओंका बल, गुरुके प्रति उसका प्रेम, इन्द्रियसंयम तथा सेवाभाव देखकर परशुरामजी उसपर बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने प्रयोग और उपसंहारसहित सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्र-विद्या उसे विधिपूर्वक सिखा दी। तदनन्तर, एक दिन परशुरामजी कर्णके साथ अपने आश्रमके पास ही घूम रहे थे। उपवास करनेके कारण उनका शरीर दुर्बल हो गया था, अतः थकावट आ जानेसे उन्हें नींद सताने लगी। कर्णके ऊपर उनका पूर्ण विश्वास एवं स्नेह था, इसलिये वे उसीकी गोदमें सिर रखकर सो गये। इतनेमें लार, मज्जा, मांस और रक्तका आहार करनेवाला एक भयंकर कीड़ा, जो बड़ा तीखा डंक मारता था, कर्णके पास आया और उसकी जाँघपर चढ़ गया। जाँघमें घाव करके वह उसका रक्तपान करने लगा। इस प्रकार कीड़ेके काटनेसे उसे व्यथा होती रही; किंतु उसने धैर्यपूर्वक उसे सहन किया और गुरुके जाग उठनेके डरसे कीड़ेको दूर नहीं हटाया, बल्कि उसकी ओरसे उपेक्षा कर दी।

''कर्णके देहसे निकले हुए रक्तकी धारासे जब परशुरामजीका शरीर भीगने लगा तो वे सहसा जाग उठे और शंकित होकर बोले—'अरे! तू तो अशुद्ध हो गया! यह क्या कर रहा है? भय छोड़कर ठीक-ठीक बता।' तब कर्णने उन्हें कीड़ेके काटनेकी बात बता दी। ज्यों ही उन्होंने उस कीटकी ओर दृष्टिपात किया, उसके प्राणपखेरू उड़ गये; यह एक अद्भुत घटना हुई। इतनेमें एक भयंकर राक्षस आकाशमें खड़ा दिखायी दिया। वह दोनों हाथ जोड़कर परशुरामजीसे बोला—'मुनिवर! आपने मुझे इस नरकके कष्टसे छुटकारा दिला दिया, यह मेरा बड़ा प्रिय कार्य हुआ। मैं आपको प्रणाम करता हूँ और अब जहाँसे आया था, वहीं जा रहा हूँ।' परशुरामजीने पूछा 'अरे! तू कौन है और कैसे इस नरकमें पड़ा था?' उसने उत्तर दिया—'तात! सत्ययुगकी बात है, मैं दंश नामक असुर था। एक दिन मैंने भृगुमुनिकी प्राणप्यारी पत्नीका बलपूर्वक अपहरण किया; इससे क्रोधमें आकर महर्षिने यह शाप दिया—'पापी! तू कीड़ा होकर नरकमें पड़ेगा।' तब मैंने उनसे प्रार्थना की 'ब्रह्मन्! इस शापका अन्त भी होना चाहिये।' उन्होंने कहा 'मेरे वंशमें उत्पन्न हुए परशुरामकी दृष्टि पड़नेसे इस शापका अन्त होगा।' इस प्रकार मैं इस दुर्दशाको प्राप्त हुआ था और आज आपका समागम होनेसे मेरा इस पापयोनिसे उद्धार हुआ है।' यह कहकर वह महान् असुर परशुरामजीको प्रणाम करके चला गया।



''अब परशुरामजीने क्रोधमें भरकर कर्णसे कहा—'मूर्ख ! तूने इस कीड़ेके काटनेकी जो भयंकर पीड़ा बर्दाश्त की है, इसे ब्राह्मण कभी नहीं सह सकता। तेरा धैर्य तो क्षत्रियके समान जान पड़ता है। सच-सच बता, तू कौन है ?' उनका प्रश्न सुनकर कर्ण शापके भयसे डर गया और उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा करता हुआ बोला—'ब्रह्मन् ! मैं ब्राह्मण और क्षत्रियसे भिन्न सूत जातिमें उत्पन्न हुआ हूँ। लोग मुझे राधाका पुत्र कर्ण कहते हैं। ब्रह्मास्त्रके लोभसे मैंने झूठा परिचय दिया था, मुझपर कृपा कीजिये। विद्या प्रदान करनेवाला गुरु निसंदेह पिताके ही समान है, इसीलिये मैंने आपके निकट अपना भार्गव-गोत्र बतलाया था।'

''यह कहकर कर्ण दीन-भावसे हाथ जोड़कर उनके सामने पृथ्वीपर पड़ गया और थरथर काँपने लगा। यह देख परशुरामजीने हँसते हुए-से कहा—'मूर्ख ! तूने ब्रह्मास्त्रके लोभसे झूठ बोलकर मेरे साथ कपट किया है, इसलिये जब तू संग्राममें अपने समान योद्धासे युद्ध करेगा और तेरी मृत्यु निकट आ जायगी, उस समय तुझे मेरे दिये हुए ब्रह्मास्त्रका स्मरण नहीं रहेगा। अब तू यहाँसे चला जा, मिथ्यावादीके लिये यहाँ स्थान नहीं है। परंतु मेरे आशीर्वादसे युद्धमें कोई भी क्षत्रिय तेरी समानता नहीं कर सकेगा।' परशुरामजीके ऐसा कहनेपर कर्ण उन्हें प्रणाम करके वहाँसे लौट आया और दुर्योधनसे बोला—मैं ब्रह्मास्त्र सीख आया।''



युधिष्ठिरका घर छोड़कर वनमें जानेका विचार और अर्जुनद्वारा इसका विरोध

नारदजीने कहा—राजन् ! एक बार कर्णकी जरासन्धके साथ भी मुठभेड़ हुई थी, उसमें परास्त होकर जरासन्धने कर्णको अपना मित्र बना लिया और उसे चम्पा नगरी उपहारमें दे दी। पहले कर्ण केवल अङ्ग देशका राजा था, किंतु इसके बाद वह दुर्योधनकी अनुमतिसे चम्पा (चम्पारन) में भी राज्य करने लगा। इसी प्रकार एक समय इन्द्रने आपकी भलाई करनेके लिये कर्णसे कवच और कुण्डलोंकी भीख माँगी थी। वे कवच और कुण्डल दिव्य थे तथा कर्णके देहके साथ ही उत्पन्न हुए थे; तो भी उसने इन्द्रको ये दोनों वस्तुएँ दान कर दीं। इसीलिये अर्जुन श्रीकृष्णके सामने उसे मारनेमें सफल हो सके। एक तो उसे अग्निहोत्री ब्राह्मण तथा महात्मा परशुरामने शाप दे दिया था; दूसरे उसने स्वयं भी कुन्तीको वरदान दिया था कि मैं तुम्हारे चार पुत्रोंको नहीं मारूँगा। इसके सिवा महारथियोंकी गणना करते समय भीष्मने कर्णको 'अर्धरथी' कहकर अपमानित किया था, इसके बाद शल्यने भी उसका तेज नष्ट किया और भगवान् कृष्णने नीतिसे काम लिया। इतनी बातें तो कर्णके विपरीत हुईं और अर्जुनको रुद्र, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, द्रोण तथा कृपाचार्यसे दिव्यास्त्र प्राप्त हुए थे, जिनका उपयोग करके उन्होंने कर्णका वध किया है। फिर भी वह युद्धमें मारा गया है, इसलिये शोकके योग्य नहीं है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—इतना कहकर देवर्षि नारद चुप हो गये और राजा युधिष्ठिर शोकमग्न हो चिन्तामें डूब गये। उनकी यह अवस्था देख कुन्ती शोकसे विह्वल हो उठी और मधुर वाणीमें अर्थभरे वचन कहने लगी—'बेटा ! कर्णके लिये शोक न करो। चिन्ता छोड़ो और मेरी बात सुनो। मैंने और भगवान् सूर्यने पहले कर्णको यह जतानेकी कोशिश की थी कि युधिष्ठिर आदि तुम्हारे भाई हैं। एक

हितैषी सुहृद्को जो कुछ कहना चाहिये, सूर्यदेवने वह सब कहा। उन्होंने उसे स्वप्नमें तथा मेरे सामने भी बहुत समझाया। परंतु हमलोग अपने प्रयत्नमें सफल न हो सके। वह मौतके वशीभूत होकर बदला लेनेको तैयार था, इसलिये मैंने भी उसकी उपेक्षा कर दी।'

माताकी बात सुनकर धर्मराजके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे शोकसे व्याकुल होकर कहने लगे। 'माँ! तुमने यह रहस्यमयी बात छिपा रखी थी, इसीलिये आज मुझे कष्ट भोगना पड़ता है।' फिर उन्होंने दुःखी होकर संसारकी सब स्त्रियोंको शाप दे दिया—'आजसे कोई भी स्त्री गुप्त बात छिपाकर नहीं रख सकेगी।' इसके बाद वे मरे हुए पुत्र-पौत्र, सम्बन्धी तथा सुहृदोंको याद करके बहुत विकल हो गये और अर्जुनकी ओर देखकर कहने लगे—'अर्जुन! यदि हमलोग वृष्णिवंशी तथा अन्धकवंशी क्षत्रियोंके नगरोंमें जाकर भिक्षासे अपना जीवन-निर्वाह कर लेते तो आज अपने कुटुम्बको निर्वंश करके हमें यह दुर्गति नहीं भोगनी पड़ती। क्षत्रियके आचार और उसके बल, पौरुष तथा अमर्षको भी धिक्कार है, जिनके कारण हम इस विपत्तिमें पड़ गये। क्षमा, दम, शौच, वैराग्य, मात्सर्यका अभाव, अहिंसा और सत्य बोलना—ये वनवासियोंके धर्म ही श्रेष्ठ हैं। किंतु हमलोग तो लोभ और मोहके कारण राज्य पानेकी इच्छासे दम्भ और मानका आश्रय ले इस दुर्दशामें फँस गये हैं। इस समय तीनों लोकोंका राज्य देकर भी कोई हमें प्रसन्न नहीं कर सकता! हाय! हमने इस पृथ्वीपर अधिकार पानेके लिये अवध्य राजाओंकी भी हत्या की और अब अपने बन्धु-बान्धवोंके बिना हम अर्थभ्रष्टकी भाँति जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ओह! जिन बान्धवोंका हमने वध किया है उन्हें तो सारी पृथ्वी, सुवर्णके ढेर और बहुत-से गाय-घोड़े आदिकी प्राप्ति होनेपर भी हमें नहीं मारना चाहिये था; किंतु हमने उन्हें मार ही डाला। यह शोक हमें चैन नहीं लेने देता। धनञ्जय! सुना है मनुष्यका किया हुआ पाप शुभकर्मोंके आचरणसे, दूसरोंको कहकर सुनानेसे, पश्चात्तापसे तथा दान, तप, त्याग, तीर्थयात्रा एवं श्रुति-स्मृतियोंका पाठ करनेसे भी नष्ट होता है। श्रुतिने कहा है कि त्यागी पुरुषको जन्म-मरणकी प्राप्ति नहीं होती—वह अमृतत्वको प्राप्त होता है।* इसके अनुसार योग-मार्गको प्राप्त करके जब बुद्धि स्थिर हो जाती है, उस समय मनुष्य परमात्मभावको प्राप्त हो जाता है। यह सोचकर मैं भी शीत-उष्ण आदि द्वन्द्व-धर्मोंसे रहित हो, मुनिवृत्तिसे रहकर ज्ञानोपार्जन करना चाहता हूँ। इसलिये मैंने सारा संग्रह, सम्पूर्ण राज्य तथा सुख-भोग आदिको त्याग देनेका निश्चय किया है। अब मैं ममता और शोकसे रहित हो सब प्रकारके बन्धनोंसे छूटकर कहीं जंगलमें चला जाऊँगा, मुझे राज्य अथवा भोगोंसे कोई मतलब नहीं है।'

यह कहकर जब धर्मराज चुप हो गये तो अर्जुन बोले—'महाराज! यह बड़े अफसोसकी बात है और हददर्जेकी कायरता है, जो आप अलौकिक पराक्रम करके प्राप्त की हुई इस उत्तम राज्य-लक्ष्मीको ठुकरा देनेके लिये उद्यत हुए हैं।



यदि त्याग ही देना था तो आपने क्रोधमें आकर इसीके लिये तमाम राजाओंकी हत्या क्यों करायी? अपने समृद्धिशाली राज्यका परित्याग करके जब हाथमें खप्पर लेकर आप घर-घर भीख माँगते फिरेंगे, उस समय संसार क्या कहेगा? क्या कारण है कि सब प्रकारके शुभ कर्मोंका अनुष्ठान छोड़कर अशुभ एवं अकिञ्चन बनकर आप गँवार मनुष्योंकी तरह भिक्षा माँगना पसंद करते हैं। इस उत्तम राजवंशमें जन्म लेकर सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने अधीन करके अब आप धर्म और अर्थका परित्याग कर वनकी ओर जा रहे हैं! यह मूर्खता नहीं तो क्या है? जब आप ही हवन एवं यज्ञ-यागादि कर्मोंको त्याग देंगे तो दूसरे असाधु पुरुष आपका ही आदर्श सामने रखकर यज्ञोंका उच्छेद कर डालेंगे। उस

* 'त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।'

दशामें इसका सारा पाप आपको लगेगा। सर्वस्व त्यागकर अकिञ्चन हो जाना, दूसरे दिनके लिये संग्रह न करके प्रतिदिन माँगकर खाना—यह मुनियोंका धर्म है, राजाओंका नहीं; राजधर्मका पालन तो धनसे ही होता है। महाराज धनसे धर्म भी होता है, लौकिक कामनाएँ भी पूर्ण होती हैं और स्वर्गका साधनभूत यज्ञ भी सम्पन्न होता है; यही नहीं, धनके बिना तो संसारकी जीविका ही नहीं चल सकती। जिसके पास धन होता है, उसीके बहुत-से मित्र तथा बन्धु-बान्धव होते हैं वही मर्द समझा जाता है और वही पण्डित माना जाता है। निर्धन मनुष्य जब धन चाहता है तो उसे उसकी प्राप्ति कठिन हो जाती है; मगर धनवान्‌का धन बढ़ता रहता है। जैसे जंगलमें एक हाथीके पीछे बहुत-से हाथी चले आते हैं, उसी प्रकार धन ही धनको खींच लाता है। धनसे धर्मका पालन, कामनाकी पूर्ति, स्वर्गकी प्राप्ति, आनन्द तथा शास्त्रोंका अभ्यास—ये सब कुछ सम्भव हैं। धनसे वंशकी मर्यादा बढ़ती है और धनसे धर्मकी भी वृद्धि होती है, निर्धनको तो न इस लोकमें सुख है, न परलोकमें ! क्योंकि धनके बिना मनुष्य धार्मिक कृत्योंका विधिवत् अनुष्ठान नहीं कर सकता। जिसके पास धनकी कमी है, गौओं और सेवकोंका अभाव है, जिसके यहाँ अतिथियोंका आना-जाना नहीं होता, वही मनुष्य दुर्बल है। केवल शरीरकी ही दुर्बलतासे कोई दुर्बल नहीं कहा जाता। राजाको हर तरहसे धनका संग्रह करना चाहिये और उसके द्वारा यत्नपूर्वक यज्ञादिका अनुष्ठान भी करते रहना चाहिये। यही सनातनकालसे वेदोंकी भी आज्ञा है। धनसे ही मनुष्य यज्ञ करते और कराते हैं, पढ़ने-पढ़ानेका कार्य भी धनसे ही सम्पन्न होता है। राजालोग दूसरोंको युद्धमें जीतकर जो उनका धन ले आते हैं, उसीसे वे सम्पूर्ण शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं। किसी भी राजाके पास हम ऐसा धन नहीं देखते, जो दूसरोंके यहाँसे न आया हो। प्राचीनकालमें जो राजर्षि हो गये हैं और इस समय स्वर्गमें निवास करते हैं, उन्होंने भी राजधर्मकी ऐसी ही व्याख्या की है। राजन् ! पहले यह पृथ्वी राजा दिलीपके अधिकारमें थी; फिर क्रमशः इसपर नृग, नहुष, अम्बरीष और मान्धाताका आधिपत्य हुआ। वही आज आपके अधीन हुई है। अतः उन्हीं राजाओंकी भाँति आपके लिये भी, जिसमें सब कुछ दक्षिणाके रूपमें दान कर दिया जाता है, ऐसे सर्वस्वदक्षिण नामक द्रव्यमय यज्ञ करनेका समय प्राप्त हुआ है। जिनका राजा दक्षिणायुक्त अश्वमेध यज्ञ करता है, वे सभी प्रजाएँ उस यज्ञके अन्तमें अवभृथ-स्नान करके पवित्र होती हैं। अतः आप समस्त प्राणियोंके कल्याणार्थ यज्ञ कीजिये। क्षत्रियोंके लिये यही सनातन मार्ग है, यही अभ्युदयका पथ है।'



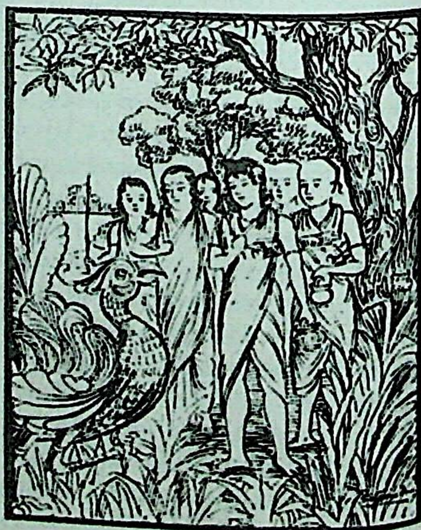
युधिष्ठिरका वनवासी, मुनि एवं संन्यासी होनेका विचार तथा भीम और अर्जुनद्वारा उसका विरोध

युधिष्ठिरने कहा—अर्जुन ! थोड़ी देरतक मनको एकाग्र करके मेरी बात सुनो और उसपर विचार करो; फिर तुम भी मेरे कथनका अनुमोदन करोगे। क्या तुम्हारे कहनेसे मैं उस मार्गपर न चलूँ, जिसपर श्रेष्ठ पुरुष सदा ही चलते आये हैं ? नहीं, मुझसे यह न होगा; मैं तो सांसारिक सुखोंपर लात मारकर अवश्य उसी मार्गपर चलूँगा और वनमें फल-मूल खाकर कठोर तपस्या करूँगा। सबेरे तथा सायंकालमें स्नान करके विधिवत् अग्निमें आहुति डालूँगा और शरीरपर मृगछाला तथा वल्कल-वस्त्र धारण कर मस्तकपर जटा रखूँगा। सर्दी-गर्मी, हवा तथा भूख-प्यासका कष्ट सहन करूँगा और शास्त्रोक्त विधिसे तप करके अपने शरीरको सुखा डालूँगा। एकान्तमें रहकर तत्त्वका विचार किया करूँगा और कच्चा-पक्का—जैसा भी फल मिल जायगा, उसीको खाकर जीवन-निर्वाह करूँगा। इस प्रकार वनवासी मुनियोंके कठोर-से-कठोर नियमोंका पालन करके इस शरीरकी आयु समाप्त होनेकी बाट देखता रहूँगा। अथवा मुनि-वृत्तिसे रहता हुआ मस्तक मुँड़ा लूँगा और एक-एक दिन एक-एक वृक्षसे भिक्षा माँगकर देहको दुर्बल कर डालूँगा। प्रिय और अप्रियका विचार छोड़कर पेड़के ही नीचे निवास करूँगा। किसीके लिये न शोक करूँगा न हर्ष। निन्दा तथा स्तुतिको समान समझूँगा। आशा और ममताको धो-बहाकर निर्द्वन्द्व हो जाऊँगा। कभी किसी भी वस्तुका संग्रह न करूँगा। आत्मामें ही रमण करता हुआ सदा प्रसन्न रहूँगा। दूसरोंके साथ कभी कोई बात नहीं करूँगा तथा अंधों, गूँगों और बहरोंकी तरह विचरता रहूँगा। चर और अचररूपमें जो चार प्रकारके जीव हैं, उनमेंसे किसीकी भी हिंसा नहीं करूँगा। सब प्राणियोंपर मेरी समान वृद्धि होगी, न तो किसीकी हँसी उड़ाऊँगा, न किसीको देखकर भौंहें टेढ़ी करूँगा। चेहरेपर सदा प्रसन्नता छायी रहेगी, सब इन्द्रियोंको पूर्णरूपसे वशमें रखूँगा।

कोई भी राह पकड़कर आगे बढ़ता रहूँगा, किसीसे भी रास्ता नहीं पूछूँगा। किसी खास देश या दिशामें जानेकी इच्छा न रखूँगा। यात्राका कोई विशेष उद्देश्य न होगा; न आगेकी उत्सुकता होगी, न पीछे फिरकर देखूँगा। चित्तमें कोई विकार नहीं रहेगा, अन्तरात्मापर दृष्टि रखूँगा और देहाभिमानसे रहित हो जाऊँगा। भिक्षा थोड़ी मिली या स्वादहीन—इसका विचार नहीं करूँगा। एक घरसे भिक्षा न मिली तो दूसरे घरसे माँगूँगा, वहाँ भी न मिलनेपर तीसरे घरसे। इस प्रकार न मिलनेकी दशामें सात घरोंतक माँगूँगा, आठवेंपर नहीं जाऊँगा। जब घरोंमें धुआँ निकलना बंद हो गया हो, मूसल रख दिया गया हो, अंगारे बुझ गये हों, सब लोग खा-पी चुके हों, परोसी हुई थालीको इधर-उधर ले जानेका काम समाप्त हो गया हो, भिखमंगे भिक्षा लेकर लौट गये हों, ऐसे समयमें मैं एक ही वक्त भिक्षाके लिये जाया करूँगा। सब ओरसे स्नेहका बन्धन तोड़कर पृथ्वीपर विचरता रहूँगा। न जीवनसे राग होगा, न मृत्युसे द्वेष। यदि एक मनुष्य मेरी एक बाँह बसुलेसे काटता हो और दूसरा दूसरी बाँहपर चन्दन चढ़ाता हो तो मैं उन दोनोंपर समान भाव ही रखूँगा। न एकका मङ्गल चाहूँगा न दूसरेका अमङ्गल। केवल शरीर-निर्वाहके लिये पलकोंके खोलने-मीचने तथा खाने-पीने आदिका कार्य करूँगा, परंतु इसमें भी आसक्ति नहीं रखूँगा। सम्पूर्ण इन्द्रियोंके व्यापारोंसे उपरत होकर मनके संकल्पको अपने अधीन रखूँगा। बुद्धिके मलका परिमार्जन करके सब प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त रहूँगा। इस प्रकार वीतराग होकर विचरनेसे मुझे अक्षय शान्ति मिलेगी। इस संसारमें जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और वेदनाओंका आक्रमण होता ही रहता है; इसके कारण यहाँका जीवन कभी स्वस्थ नहीं रहता। इस अपार-सा संसारका तो त्यागनेमें ही सुख है। आज बहुत दिनोंके बाद मुझे विशुद्ध विवेकरूपी अमृत प्राप्त हुआ है; इसके द्वारा मैं अक्षय, अविकारी एवं सनातन स्थानको प्राप्त करना चाहता हूँ। अत: उपर्युक्त धारणाके द्वारा निरन्तर विचरता हुआ मैं जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और वेदनाओंसे भरे हुए इस शरीरका अन्त करके निर्भय पदको प्राप्त हो जाऊँगा।

यह सुनकर भीमसेन बोले—राजन्! जब आपने राजधर्मकी निन्दा करके आलस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करनेका ही निश्चय कर रखा था तो बेचारे कौरवोंका नाश करानेसे क्या लाभ था? आपका यह विचार यदि पहले ही मालूम हो गया होता तो हमलोग न हथियार उठाते, न किसीका वध करते। आपहीकी तरह शरीर त्यागनेका संकल्प लेकर हम भी भीख ही माँगते। ऐसा करनेसे राजाओंके साथ यह भयंकर संग्राम तो नहीं होता। बुद्धिमान् पुरुषोंने क्षत्रियोंका तो यह धर्म बताया है कि वे राज्यपर अधिकार जमावें और यदि उसमें कुछ लोग बाधा उपस्थित करें तो उन्हें मार डालें। दुष्ट कौरव भी हमारे लिये राज्य-प्राप्तिमें बाधक थे, इसीलिये हमने उनका वध किया है; अब आप धर्मपूर्वक इस पृथ्वीका उपभोग कीजिये। अन्यथा हमलोगोंका सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जायगा; जैसे कोई मनुष्य मनमें किसी तरहकी आशा रखकर बहुत बड़ी मंजिल तै करे और वहाँ पहुँचनेपर उसे निराश लौटना पड़े, यही दशा हमलोगोंकी भी होगी। आप जिस संन्यासकी बात सोचते हैं, उसका यह समय नहीं है। जिनकी विचारदृष्टि सूक्ष्म है, वे बुद्धिमान् पुरुष ऐसे अवसरपर त्यागकी प्रशंसा नहीं करते; वे तो इसमें स्वधर्मका उल्लङ्घन समझते हैं। जो पुत्र-पौत्रोंके पालनमें असमर्थ हो, देवता, ऋषि एवं पितरोंका तर्पण न कर सके और अतिथियोंको भोजन देनेकी शक्ति न रखता हो, ऐसा मनुष्य जंगलोंमें जाकर मौजसे अकेला जीवन व्यतीत कर सकता है। आपजैसे शक्तिशाली पुरुषोंका यह काम नहीं है। राजाको तो कर्म ही करना चाहिये; जो कर्मोंको छोड़ बैठता है, उसे कभी सिद्धि नहीं मिलती।

तत्पश्चात् अर्जुनने कहा—महाराज! इसी विषयमें एक बार तपस्वियोंके साथ इन्द्रका संवाद हुआ था, वह प्राचीन इतिहास मैं आपको सुनाता हूँ। एक समयकी बात है, कुछ कुलीन ब्राह्मण-बालक—जो अभी बहुत नादान थे,



जिन्हें मूँछतक नहीं आयी थी—घर-बार छोड़कर जंगलमें चले आये, संन्यासी वन गये। इसीको धर्म मानकर वे प्रसन्न थे। भाई-बन्धु और माँ-बापकी सेवासे मुँह मोड़कर ब्रह्मचर्यका पालन करने लगे। एक दिन उनपर इन्द्रदेवकी कृपा हुई। वे सुवर्णमय पक्षीका रूप धारण करके उनके पास गये और उन्हें सुनाकर कहने लगे—'यज्ञशिष्ट अन्न भोजन करनेवाले महात्माओंने जो कर्म किया है; वह दूसरे मनुष्योंसे होना कठिन है। उनका यह कर्म बड़ा पवित्र और जीवन बहुत उत्तम है। उनका मनोरथ सफल हुआ और वे धर्मात्मा पुरुष उत्तम गतिको प्राप्त हुए हैं।'

ऋषियोंने कहा—वाह ! यह पक्षी यज्ञशिष्ट अन्न भोजन करनेवालोंकी प्रशंसा करता है, यह तो हमलोगोंकी ही प्रशंसा हुई; क्योंकि हमलोग ही यज्ञशिष्ट अन्न भोजन करते हैं !

पक्षीने कहा—अरे ! मैं तुम्हारी प्रशंसा नहीं करता। तुम तो जूठा खानेवाले और मूर्ख हो, पाप-पंकमें फँसे हुए हो। यज्ञशिष्ट अन्न खानेवाले तो दूसरे ही होते हैं।

ऋषियोंने कहा—पक्षी ! यह बड़ा कल्याणकारी साधन है—ऐसा समझकर ही हम इस मार्गका अवलम्बन किये बैठे हैं। अब तुम्हारी बात सुनकर तुमपर हमारी श्रद्धा हुई है; अतः जो अत्यन्त कल्याण करनेवाला साधन हो, वही हमें बताओ।

पक्षीने कहा—यदि तुम्हारा मुझपर विश्वास है तो मैं यथार्थ बात बताता हूँ, सुनो। चौपायोंमें गौ, धातुओंमें सोना, शब्दोंमें प्रणव आदि मन्त्र और मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणके लिये जातकर्मादि संस्कार शास्त्रविहित हैं; ब्राह्मण जबतक जीवित रहे, समय-समयपर उसका संस्कार होता रहना चाहिये। मरनेके पश्चात् भी उसका श्मशानभूमिमें अन्त्येष्टि-संस्कार तथा घरपर श्राद्ध आदि वेद-विधिके अनुसार होना उचित है। वेदोक्त यज्ञ-यागादि कर्म ही उसके लिये स्वर्गमें पहुँचानेवाले उत्तम मार्ग हैं। वैदिक कर्म ही सिद्धिका क्षेत्र है सभी प्राणी इसकी इच्छा रखते हैं। जहाँ इन कर्मोंका विधिवत् सम्पादन होता है, वह गृहस्थ-आश्रम ही सबसे बड़ा आश्रम है। जो कर्मकी निन्दा करते हैं, उन्हें कुमार्गगामी समझना चाहिये। उन्हें बड़ा पाप लगता है। देवयज्ञ, पितृयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ—ये ही तीन सनातन मार्ग हैं। जो मूर्ख इनका परित्याग करके और किसी मार्गसे चलते हैं, वे वेदविरुद्ध पथका आश्रय लेनेवाले हैं। हवनके द्वारा देवताओंको, स्वाध्यायद्वारा ऋषियोंको और श्राद्धद्वारा पितरोंको तृप्त करना—यह सनातन धर्म है; इसका पालन करते हुए गुरुजनोंकी सेवा करना ही कठोर तप है। इस दुष्कर तपस्याको करके ही देवताओंने बहुत बड़ी विभूति पायी है। जिनकी किसीके प्रति ईर्ष्या नहीं है, जो सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित हैं, ऐसे ब्राह्मण इसीको तप मानते हैं। संसारमें व्रतको ही तप कहते हैं, किन्तु वह इसकी अपेक्षा मध्यम श्रेणीका है। जो यज्ञशिष्ट अन्न भोजन करते हैं, उन्हें अविनाशी पदकी प्राप्ति होती है। देवताओं, पितरों, अतिथियों तथा परिवारके अन्य लोगोंको अन्न देकर जो स्वयं सबसे पीछे खाते हैं, वे ही यज्ञशिष्ट अन्न भोजन करनेवाले कहे गये हैं। अपने धर्मपर आरूढ़ होकर सुन्दर व्रतका पालन और सत्य-भाषण करते हुए वे इस जगत्के गुरु समझे जाते हैं।

अर्जुन कहते हैं—महाराज ! वे ब्राह्मण-कुमार पक्षिरूपधारी इन्द्रकी धर्म और अर्थयुक्त बातें सुनकर इस निश्चयपर पहुँचे कि 'हमलोग जिस स्थितमें हैं, यह हितकर नहीं है।' इसलिये वे वनवास छोड़कर घर लौट गये और गृहस्थ-धर्मका पालन करने लगे। अतः आप भी धैर्य धारण करके सम्पूर्ण भूमण्डलका अकण्टक राज्य कीजिये।



युधिष्ठिरको नकुल, सहदेव तथा द्रौपदीका समझाना

अर्जुनकी बात समाप्त होनेपर नकुलने भी उन्हींका अनुमोदन करते हुए राजा युधिष्ठिरसे कहा—'राजन् ! विशाखयूप नामक क्षेत्रमें सम्पूर्ण देवताओंद्वारा की हुई अग्निस्थापनाके चिह्न मौजूद हैं; इससे आपको यह समझना चाहिये कि देवता भी वैदिक कर्मों और उनके फलोंमें विश्वास करते हैं। जो वेदोंकी आज्ञाके विरुद्ध चलते हैं, उन्हें तो महान् नास्तिक मानना चाहिये। वैदिक कर्मोंका परित्याग करके कोई भी स्वर्गमें नहीं जा सकता। वेदवेत्ता विद्वान् कहते हैं—यह गृहस्थाश्रम सब आश्रमोंसे श्रेष्ठ है। श्रोत्रिय ब्राह्मणोंकी राय भी सुन लीजिये—'जो धर्मपूर्वक उपार्जन किये हुए धनका यज्ञादि कर्मोंमें उपयोग करता है, वह शुद्धात्मा मनुष्य ही त्यागी है।' जिनका कोई घर-बार नहीं, जो इधर-उधर विचरते और मौन रहकर वृक्षके नीचे सो रहते हैं, जो कभी रसोई नहीं बनाते और मन

तथा इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, ऐसे त्यागियोंको भिक्षु (संन्यासी) कहते हैं। जो ब्राह्मण क्रोध और हर्ष नहीं करता, किसीकी चुगली नहीं करता तथा प्रतिदिन वेदोंका स्वाध्याय करता है, वह त्यागी कहलाता है। एक समय महर्षियोंने चारों आश्रमोंको विवेकके तराजूपर तौला; तीन आश्रम एक ओर थे और अकेला गृहस्थाश्रम दूसरी ओर। किंतु वह विचारसे उन तीनोंकी अपेक्षा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। तबसे उन्होंने निश्चय किया कि यही मुनियोंका मार्ग है, यही लोकवेत्ताओंकी गति है। जो ऐसी भावना रखता है, वह भी त्यागी है। घर छोड़कर जंगलमें चले जानेसे ही कोई त्यागी नहीं होता। जंगलमें जाकर भी जिसके हृदयमें कामना जाग्रत् होती है, उसके गलेमें यमराज मौतका फंदा डाल देते हैं; शम, दम, धैर्य, सत्य, शौच, सरलता, यज्ञ धारणा तथा धर्म—इन सबका ही निरन्तर पालन ऋषियोंके लिये बताया गया है। पितरों, देवताओं तथा अतिथियोंका पोषण तो गृहस्थाश्रममें ही होता है। केवल इसी आश्रममें धर्म, अर्थ और काम—ये तीन पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। यहाँ रहकर वेदविहित विधिका पालन करनेवाले त्यागीका कभी विनाश नहीं होता—वह पारलौकिक उन्नतिसे कभी वञ्चित नहीं होता। कुछ ऋषि सद्ग्रन्थोंका स्वाध्यायरूप यज्ञ करनेवाले होते हैं, कुछ ज्ञानयज्ञमें तत्पर रहते हैं और कुछ लोग मनमें ही ध्यानरूप महान् यज्ञका विस्तार करते हैं। चित्तको एकाग्र करनारूप जो साधन—मार्ग है, उसका आश्रय लेनेवाला द्विज ब्रह्मभूत हो जाता है, देवता भी उसके दर्शनके लिये उत्सुक रहते हैं। जिसपर कुटुम्बका भार हो, उस राजाके लिये गृह-त्यागका विधान नहीं देखनेमें आता। उसे तो राजसूय, अश्वमेध, सर्वमेध या और कोई शास्त्रीय यज्ञ करके उसमें धनका दान करना चाहिये। राजाके प्रमादसे लुटेरे प्रबल होकर प्रजाको लूटने लगते हैं, उस अवस्थामें यदि राजाने प्रजाको शरण नहीं दी तो उसे कलियुगका मूर्तिमान् स्वरूप ही समझना चाहिये। जो दान नहीं देते, शरणागतोंकी रक्षा नहीं करते, वे राजा पापके भागी होते हैं; उन्हें दुःख-ही-दुःख भोगना पड़ता है, सुख तो कभी नसीब नहीं होता। भीतर और बाहर जो कुछ भी मनको फँसानेवाली चीजें हैं उन्हें छोड़नेसे मनुष्य त्यागी बनता है, सिर्फ घर छोड़ देनेसे त्यागकी सिद्धि नहीं होती। जो शास्त्रीय विधानमें सदा लगा रहता है, उसकी कभी हानि नहीं होती। महाराज ! पूर्ववर्ती राजाओंने जिसका सेवन किया है उस स्वधर्ममें स्थित रहकर शत्रुओंपर विजय पानेके पश्चात् भला, आपके सिवा दूसरा कौन शोक करेगा ?''

तदनन्तर सहदेवने कहा—'भारत ! केवल बाहरके पदार्थोंका त्याग करनेसे सिद्धि नहीं मिलती। शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुओंको छोड़ देनेसे भी सिद्धि मिलती है या नहीं, इसमें संदेह है। बाहरी पदार्थोंका त्याग करके दैहिक सुख-भोगोंमें आसक्त रहनेवालेको जो धर्म या सुख प्राप्त होता है, वह तो हमारे शत्रुओंको हो। किंतु दैहिक स्वार्थमें आनेवाली वस्तुओंकी ममता छोड़कर अनासक्त भावसे पृथ्वीका राज्यशासन करनेवालेको जिस धर्म अथवा सुखकी प्राप्ति होती है, वह हमारे हितैषी मित्रोंको मिले। दो अक्षरोंका 'मम' (यह मेरा है—ऐसा भाव) मृत्यु है और तीन अक्षरोंका 'न मम' (यह मेरा नहीं है—ऐसा भाव) अमृत-सनातन ब्रह्म है। महाराज ! यदि जीव नित्य है, इसका अविनाशी होना निश्चित है, तो प्राणियोंके शरीरका वध करनेमात्रसे वास्तवमें उनकी हिंसा नहीं होगी। इसके विपरीत यदि शरीरके साथ ही जीवकी उत्पत्ति तथा उसके नष्ट होनेके साथ ही जीवका भी नाश माना जाय, तब तो सारा वैदिक कर्ममार्ग ही व्यर्थ सिद्ध होगा। इसलिये विज्ञ पुरुषको एकान्तमें रहनेका विचार छोड़कर पूर्वपुरुषोंने जिस मार्गका सेवन किया है, उसीका आश्रय लेना चाहिये। राजन् ! वनमें रहकर वहाँके फल-फूलोंसे जीविका चलाता हुआ भी जो द्रव्योंमें ममता रखता है, वह मौतके ही मुखमें है। प्राणियोंका बाह्य स्वरूप कुछ और होता है और आन्तरिक स्वरूप कुछ और; आप उसपर गौर कीजिये। जो सबके भीतर विराजमान आत्माको देखते हैं, वे ही महान् भयसे छुटकारा पाते हैं। आप मेरे पिता, माता, भाई तथा गुरु—सब कुछ हैं। मैं आर्त हूँ, इसलिये दुःखमें न जाने क्या-क्या प्रलाप कर गया हूँ; आप उसे क्षमा करें। मैंने झूठा-सच्चा जो कुछ भी कहा है, वह आपके चरणोंमें भक्ति होनेके कारण ही कहा है।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार अपने भाइयोंके मुखसे वेदके सिद्धान्तोंको सुनकर भी जब युधिष्ठिर चुप ही रह गये तो धर्मको जाननेवाली द्रौपदी उनकी ओर देखकर उन्हें मधुर वचनोंसे समझाती हुई कहने लगी—''महाराज ! आपके ये भाई आपका संकल्प सुनकर सूख गये हैं, पपीहेकी तरह रट लगा रहे हैं। फिर भी आप अपनी बातोंसे इन्हें प्रसन्न नहीं करते। क्यों ? ये सदा आपके लिये दुःख-ही-दुःख उठाते आये हैं ? अब तो इन्हें उचित बातें सुनाकर आनन्दित कीजिये। आपको याद होगा, जब द्वैतवनमें ये सभी भाई आपके साथ सर्दी-गर्मी और आँधी-पानीका कष्ट भोग रहे थे। उन दिनों आपने इन्हें धैर्य देते हुए कहा था—'बन्धुओ ! हमलोग युद्धमें दुर्योधनको मारकर इस सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य भोगेंगे। उस समय



बड़े-बड़े यज्ञ करके पर्याप्त दान-दक्षिणा बाँटते रहनेसे तुम्हारा वनवासका यह दुःख सुखके रूपमें परिणत हो जायगा।' धर्मराज ! यदि यही करना था, तो उस समय आपने वैसी बातें क्यों कहीं ? जब स्वयं उपर्युक्त बातें कहकर हौसला बढ़ाया, तो अब क्यों आप हमलोगोंका दिल तोड़ रहे हैं ? आपको दण्ड आदिके द्वारा इस पृथ्वीका पालन करना चाहिये; क्योंकि दण्ड न देनेवाले क्षत्रियकी शोभा नहीं होती, दण्ड न देनेवाला राजा इस पृथ्वीका उपभोग नहीं कर सकता तथा उसकी प्रजाको भी सुख नहीं मिलता। राजाओंका परम धर्म तो यही है कि वे दुष्टोंको दण्ड दें, सत्पुरुषोंका पालन करें और युद्धमें कभी पीठ न दिखावें।

'जो अवसर देखकर क्षमा भी करता है और क्रोध भी, दान देता और कर लेता है, शत्रुओंको भय दिखाता और शरणागतोंको निर्भय बनाता है तथा दुष्टोंको दण्ड देता और दीनोंपर अनुग्रह करता है, वह राजा धर्मात्मा कहलाता है। आपको यह पृथ्वी न तो शास्त्र सुनानेसे मिली है, न दानमें; न आपने किसीको समझा-बुझाकर इसे हड़प लिया है, न यज्ञमें प्राप्त किया है और न भीख माँगकर ही पाया है। आपने तो शत्रुओंकी प्रबल सेनाका संहार करके इसपर विजय पायी है, इसलिये आप इस पृथ्वीका उपभोग कीजिये। महाराज ! अनेकों देशोंसे युक्त सम्पूर्ण जम्बूद्वीपपर आपने कर लगाया; जम्बूद्वीपके समान ही जो मेरुगिरिके पश्चिम क्रौञ्चद्वीप है, उसपर अधिकार जमाया, मेरुसे पूर्व दिशामें क्रौञ्चद्वीपके समान ही जो शाकद्वीप है, उसपर भी कर लगाया तथा मेरुसे उत्तर ओर जो शाकद्वीपके बराबर ही भद्राश्वद्वीप है, उसके ऊपर भी शासन किया है। इनके अतिरिक्त भी जो बहुत-से देशोंके आश्रयभूत द्वीप और अन्तर्द्वीप हैं, समुद्र लाँघकर उनपर भी आपने अधिकार प्राप्त किया। भाइयोंकी सहायतासे ऐसे अनुपम पराक्रम करके द्विजातियोंद्वारा सम्मानित होकर भी आप प्रसन्न क्यों नहीं होते ? मेरे अनुरोधसे अपने इन भाइयोंका अभिनन्दन कीजिये।

"महाराज ! मेरी सास कभी झूठ नहीं बोलीं, वे सर्वज्ञ हैं और सब कुछ उनकी दृष्टिके सामने है। उन्होंने मुझसे कहा था 'पाञ्चालराजकुमारी ! राजा युधिष्ठिर बड़े पराक्रमी हैं, ये हजारों राजाओंका संहार करके तुम्हें बड़े सुखसे रखेंगे।' किंतु आज आपका मोह देखकर उनकी बात भी व्यर्थ होती दिखायी देती है। जब जेठा भाई उन्मत्त हो जाता है, तो छोटे भी उसीका अनुसरण करने लगते हैं। आपके उन्मादसे सब पाण्डव भी उन्मत्त हो गये हैं। जो उन्मत्तताका काम करता है, उसका कभी भला नहीं होता; उन्मार्गसे चलनेवालेकी तो दवा करानी चाहिये। मैं ही संसारकी समस्त स्त्रियोंमें नीच हूँ, जो बेटोंके मारे जानेपर भी जीवित रहना चाहती हूँ। ये सब लोग समझानेका प्रयत्न कर रहे हैं, फिर भी आप मानते नहीं। मैं सच कहती हूँ, आप सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य छोड़कर अपने लिये स्वयं विपत्ति बुला रहे हैं। राजन् ! आप मान्धाता और अम्बरीषके समान तेजस्वी हैं; सम्पूर्ण प्रजाका धर्मपूर्वक पालन करते हुए पर्वत, वन तथा द्वीपोंसहित इस पृथ्वीका शासन कीजिये। उदास न होइये। नाना प्रकारके यज्ञ करके ब्राह्मणोंको दान दीजिये।"



अर्जुनद्वारा दण्डनीतिका समर्थन और भीमका युधिष्ठिरको राज्यकी ओर आकृष्ट करनेका प्रयास

वैशम्पायनजी कहते हैं—द्रुपदकुमारीकी बातें सुनकर राजा युधिष्ठिरकी आज्ञा ले अर्जुन फिर कहने लगे—"राजन् ! दण्ड ही समस्त प्रजाओंका शासन और उनकी रक्षा करता है, सबके सो जानेपर भी दण्ड जागता रहता है; इसलिये विद्वानोंने दण्डको राजाका धर्म बताया है। दण्डसे ही धर्म, अर्थ और कामकी रक्षा होती है; इसलिये दण्ड

त्रिवर्ग कहलाता है। दण्ड ही धन और धान्यकी रखवाली करता है, इसलिये आप दण्ड धारण कीजिये। संसारकी ओर देखिये—कितने ही पापी दण्डके ही भयसे पाप नहीं करते; दण्डसे ही सारी व्यवस्था ठीक-ठीक चलती है। बहुत-से मनुष्य दण्डके डरसे ही एक-दूसरेका सर्वनाश नहीं करते। यदि दण्ड सबकी रक्षा न करता तो संसारके प्राणी घोर अन्धकारमें डूब जाते। यह उच्छृङ्खल मनुष्योंका दमन करता और दुष्टोंको दण्ड देता है, इसीलिये विद्वान् पुरुष इसे 'दण्ड' कहते हैं। यदि ब्राह्मण अपराध करे तो उसे वाणीसे अपमानित करना ही उसका दण्ड है, क्षत्रियको भोजनमात्रके लिये वेतन देकर सेवा लेना उसका दण्ड है; वैश्यका दण्ड उससे जुर्माना वसूल करना है; किंतु शूद्रके लिये सेवाके अतिरिक्त दूसरा कोई दण्ड नहीं है, उससे दण्डके रूपमें भी काम ही लिया जाता है। मनुष्योंको प्रमादसे बचाने और उनके धनकी रक्षा करनेके लिये जो एक मर्यादा बाँधी गयी है, उसीको दण्ड कहते हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—ये सब दण्डके ही भयसे अपने-अपने मार्गपर स्थित रहते हैं। बिना भयके न कोई यज्ञ करता है, न दान देता है और न प्रतिज्ञा-पालनपर ही दृढ़ रहना चाहता है।

"रुद्र, कार्तिकेय, इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम, काल, वायु, मृत्यु, कुबेर, रवि, वसु, साध्य तथा विश्वेदेव—ये सभी देवता दण्ड देनेवाले हैं; अतः इनके प्रतापके सामने माथा टेककर सब लोग इन्हें प्रणाम करते हैं, सभी इनकी पूजा करते हैं। मैं संसारमें किसीको ऐसा नहीं देखता, जो अहिंसासे जीविका चलाता हो; [क्योंकि प्रत्येक क्रियामें कुछ-न-कुछ हिंसाका सम्बन्ध हो ही जाता है।] जो विधाताका विधान है, उसमें विद्वान् पुरुषको मोह नहीं होता। महाराज ! जिस जातिमें आपका जन्म हुआ है, उसीके अनुसार आपको बर्ताव करना चाहिये। पानीमें बहुतेरे जीव हैं, पृथ्वीपर तथा वृक्षके फलोंमें भी बहुत-से कीड़े होते हैं; कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो इनकी हिंसासे सर्वथा बचा रहता हो। परंतु इसे जीवन-निर्वाहके सिवा और क्या कहा जा सकता है ? कितने ऐसे सूक्ष्म कीटाणु होते हैं, जिनका अनुमानसे ही पता लगता है। मनुष्योंके पलक गिरानेमात्रसे उनके कंधे टूट जाते हैं। अतः ऐसे जीवोंकी हिंसासे यहाँतक बचाव हो सकता है ?"

"जबसे जगत्में दण्डनीतिका प्रचार हुआ है, तबसे सम्पूर्ण प्राणियोंके सभी कार्य सुचारुरूपसे होने लगे हैं। संसारमें भले-बुरेका विभाग करनेवाला दण्ड यदि न होता तो सब जगह अंधेर मचा रहता, किसीको कुछ भी सूझ नहीं पड़ता। जो धर्मकी मर्यादा नष्ट करके वेदोंकी निन्दा करनेवाले नास्तिक मनुष्य हैं, वे भी डंडे पड़नेपर जल्दी राहपर आ जाते हैं। दुनियामें सर्वथा शुद्ध मनुष्य मिलना कठिन है, सब दण्डसे विवश होकर ही ठीक रास्तेपर रहते हैं। दण्डके भयसे ही लोगोंकी मार्यादा-पालनमें प्रवृत्ति होती है। चारों वर्णोंके लोग आनन्दसे रहें, सबमें अच्छी नीतिका बर्ताव हो और पृथ्वीपर धर्म तथा अर्थकी रक्षा रहे—इस उद्देश्यसे ही विधाताने दण्डका विधान किया है। यदि पक्षी तथा हिंसक जीव दण्डसे डरते न होते तो वे पशुओं, मनुष्यों तथा यज्ञके लिये रखे हुए हविष्योंको भी खा जाते। चारों ओर धर्मकर्मोंका लोप हो जाता और सारी मर्यादाएँ टूट जातीं। इतना ही नहीं, जिनमें विधिपूर्वक बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ दी जाती हैं, वे संवत्सर-यज्ञ भी बेखटके नहीं होने पाते। आश्रम-धर्मका ठीक-ठीक पालन नहीं होता और कोई भी विद्या नहीं पढ़ पाता। डंडे पड़नेका डर न होता तो रथोंमें जुते हुए ऊँट, बैल, घोड़े, खच्चर तथा गदहे उन्हें खींचते ही नहीं। सेवक अपने स्वामीका तथा बालक माता-पिताका कहना नहीं मानते और युवती स्त्री अपने सतीधर्मपर स्थिर नहीं रहती। दण्डपर ही सारी प्रजा टिकी हुई है, दण्डसे ही भय होता है, मनुष्योंका इहलोक और परलोक दण्डपर ही प्रतिष्ठित है। जहाँ दण्ड देनेका सुन्दर विधान है, वहाँ छल, पाप और ठगी नहीं देखनेमें आती। इसमें संदेह नहीं कि मनुष्यके सब कार्य धनके अधीन हैं, परंतु धन दण्डके अधीन है। देखिये, दण्डकी कितनी महिमा है।

"लोक-यात्राका निर्वाह करनेके लिये धर्मका प्रतिपादन किया गया है। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसमें सब-के-सब गुण ही हों अथवा जो सर्वथा गुणोंसे वञ्चित ही हो। प्रत्येक कार्यमें अच्छाई और बुराई दोनों ही देखनेमें आती है। इन सब बातोंका विचार करके आप भी प्राचीन धर्मका पालन कीजिये। यज्ञ कीजिये, दान दीजिये तथा प्रजा एवं मित्रोंकी रक्षा कीजिये।"

अर्जुनकी बात समाप्त होनेपर भीमसेन कहने लगे—"राजन् ! आप सब धर्मोंके ज्ञाता हैं, आपसे कुछ भी कहनेकी आवश्यकता नहीं है। मैंने कई बार मनमें निश्चय किया कि 'न बोलूँ, न बोलूँ;' मगर अधिक दुःख होनेके कारण बोलना ही पड़ता है। आपका यह अत्यन्त मोह देखकर हमलोग विकल और निर्बल हो रहे हैं। आप संसारकी गति और अगति दोनों जानते हैं, भविष्य और वर्तमानमें भी आपसे कुछ छिपा नहीं है। ऐसी स्थितिमें भी आपको राज्यके प्रति आकृष्ट करनेका जो कारण है, उसे बता रहा हूँ; ध्यान देकर सुनें। मनुष्यको दो प्रकारकी व्याधियाँ होती हैं; एक

शारीरिक और दूसरी मानसिक। इन दोनोंकी उत्पत्ति अन्योन्याश्रित है। एकके बिना दूसरीका होना सम्भव नहीं है। कभी शारीरिक व्याधिसे मानसिक व्याधि होती है, कभी मानसिक व्याधिसे शारीरिक व्याधि। जो मनुष्य बीते हुए शारीरिक अथवा मानसिक दुःखके लिये शोक करता है, वह एक दुःखसे दूसरे दुःखको प्राप्त होता रहता है। उसे दोनों प्रकारके अनर्थोंसे कभी छुटकारा नहीं मिलता।

"इसलिये जैसे भीष्म और द्रोणके साथ आपका युद्ध हुआ था, उसी प्रकार अपने मनके साथ भी आपको लड़ना चाहिये। उसका समय अब आ गया है। इस युद्धमें न बाणोंका काम है, न मित्र और बन्धुओंकी सहायताका। अकेले आपको लड़ना है। मनको जीते बिना आपकी क्या दशा होगी, मैं कह नहीं सकता। हाँ, उसे जीतकर आप अवश्य कृतार्थ हो जायँगे। प्राणियोंके आवागमनपर विचार करके अपनी बुद्धिको स्थिर कीजिये और बाप-दादोंका राज्य चलाइये। सौभाग्यकी बात है कि पापी दुर्योधन सेवकोंसहित मारा गया; अब आप अश्वमेध यज्ञ करके विधिपूर्वक दक्षिणा दीजिये। हम सब लोग आपके दास हैं।"



युधिष्ठिरद्वारा भीमको फटकार और मुनिवृत्तिकी प्रशंसा तथा अर्जुनका राजा जनकके दृष्टान्तसे उन्हें समझाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—भीमसेनकी बात सुनकर राजा युधिष्ठिर बोले—"भीम! असंतोष, प्रमाद, मद, राग, अशान्ति, बल, मोह, अभिमान तथा उद्वेग—इन प्रबल पापोंने तुम्हारे मनको वशीभूत कर लिया है; इसीलिये तुम्हें राज्यकी इच्छा होती है। भाई! भोगोंकी आसक्ति छोड़ो और बन्धनमुक्त होकर शान्त एवं सुखी हो जाओ। आग कितनी ही धधकती क्यों न हो; उसमें ईंधन न डाला जाय तो वह अपने-आप शान्त हो जाती है। इसी प्रकार तुम भी अपना आहार कम करके पेटकी आग शान्त करो, यह आजकल बहुत बढ़ गयी है। पहले अपने पेटको जीतो; फिर ऐसा समझा जायगा कि इस जीती हुई पृथ्वीके द्वारा तुमने कल्याणपर विजय पायी है। भीमसेन! तुम मनुष्योंके कामभोग तथा ऐश्वर्यकी प्रशंसा करते हो; किंतु जो भोगोंसे रहित और तुम्हारी अपेक्षा बहुत दुर्बल हैं, वे ऋषि-मुनि ही सर्वोत्तम पदको प्राप्त करते हैं। जो लोग पत्ते चबाते हैं, पत्थर-पर पीसकर या दाँतोंसे ही चबाकर खाते हैं, अथवा पानी या हवा पीकर ही रह जाते हैं, उन तपस्वियोंने ही नरकपर विजय पायी है। (वहाँ तुम्हारे-जैसे वीरोंकी वीरता नहीं काम देती।) एक ओर सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन करनेवाला राजा है और दूसरी ओर पत्थर और सोनेको एक समझनेवाला मुनि। इन दोनोंमें मुनि ही कृतार्थ है, राजा नहीं। अपने मनोरथोंके पीछे बड़े-बड़े कार्योंका आरम्भ न करो। आशा तथा ममता न रखो। इससे तुम्हें इहलोक और परलोकमें भी शोकरहित स्थान प्राप्त होगा। जिन्होंने भोगोंकी आसक्ति छोड़ दी है, वे कभी शोक नहीं करते। फिर तुम क्यों भोगोंकी चिन्ता कर रहे हो? यदि सम्पूर्ण भोगोंका परित्याग कर दो तो मिथ्यावादसे छूट जाओगे। परलोकके दो मार्ग प्रसिद्ध हैं—पितृयान और देवयान। सकाम यज्ञ करनेवाले पितृयानसे जाते हैं और मोक्षके अधिकारी देवयानसे। महर्षिगण तप, ब्रह्मचर्य तथा स्वाध्यायके बलपर ऐसे राज्यमें पहुँच जाते हैं, जहाँ मृत्युका प्रवेश नहीं है। राजा जनक समस्त द्वन्द्वोंसे रहित और जीवन्मुक्त पुरुष थे, उन्हें मोक्षस्वरूप आत्माका साक्षात्कार हो गया था। पूर्वकालमें उन्होंने जो उद्गार प्रकट किया था, उसे लोग इस प्रकार बताते हैं— 'दूसरोंकी दृष्टिमें मेरे पास अनन्त धन है, किंतु मेरा उसमें कुछ भी नहीं है। सारी मिथिला जल जाय तो भी मेरा कुछ नहीं जलेगा।' जो स्वयं द्रष्टारूपसे रहकर इस दृश्य-प्रपञ्चको देखता है, वही आँखवाला और वही बुद्धिमान् है। अज्ञात तत्त्वोंका ज्ञान एवं सम्यक् बोध (निश्चय) करानेवाली वृत्तिको बुद्धि कहते हैं। जब मनुष्य भिन्न-भिन्न प्राणियोंको एक ही परमात्मामें स्थित देखता है तथा उसीसे सबका विस्तार हुआ मानता है, उस समय वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। बुद्धिमान् और तपस्वी ही उस उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं। जो जड और अज्ञानी हैं, जिनमें शुद्ध बुद्धि तथा तपका अभाव है, ऐसे लोगोंकी वहाँ पहुँच नहीं होती। वास्तवमें सब कुछ बुद्धिमें ही स्थित है।'

यों कहकर राजा युधिष्ठिर चुप हो गये, तब अर्जुनने फिर कहा 'महाराज! जानकार लोग राजा जनक और उनकी स्त्री-का संवादरूप एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। राजा जनकने भी राज्यका परित्याग करके भीख माँगनेका निश्चय किया था; उस समय उनकी रानीने दुःखी होकर जो कुछ कहा था, वही आपको सुना रहा हूँ।'

'कहते हैं, एक दिन राजा जनकपर मूढ़ता सवार हुई। वे धन, संतान, स्त्री, नाना प्रकारके रत्न तथा अग्निहोत्रका भी त्याग करके भिक्षुककी तरह मुट्ठीभर भुना हुआ जौ खाकर रहने लगे। स्वामीको इस अवस्थामें देख रानीको बड़ा रंज हुआ, वे एकान्तमें उनके पास जाकर बोलीं—'राजन्! आपको भिक्षुककी भाँति मुट्ठीभर भुना हुआ जौ खाकर रहना उचित नहीं है। आपकी यह प्रतिज्ञा और चेष्टा सब राजधर्मके विरुद्ध है। यह महान् राज्य छोड़कर यदि आप थोड़े-से अन्नमें संतोष मानते हैं तो इतने-से अतिथि, देवता, ऋषि और पितरोंका भरण-पोषण कैसे किया जा सकता है? मैं तो समझती हूँ आपका यह सारा परिश्रम व्यर्थ है। आपने कर्मोंको त्यागा है; इसलिये देवता, अतिथि और पितरोंने आपका भी परित्याग कर दिया है। आपके रहते ही आपकी माता आजसे पुत्रहीना हुई और यह अभागिनी कौसल्या भी पतिहीना। भला, कहिये तो—ये नाना प्रकारके वस्त्र तथा आभूषण छोड़कर आप किसलिये संन्यासी हो रहे हैं? क्यों निष्क्रिय जीवन व्यतीत करते हैं? आप सम्पूर्ण भूतोंके लिये प्याऊके समान थे, सभी आपके यहाँ अपनी प्यास बुझाने आते थे। इसी तरह एक समय ऐसा था, जब आप फलोंसे भरे हुए वृक्षकी भाँति सब जीवोंकी भूख मिटाया करते थे; किंतु अब मुट्ठीभर अन्नके लिये स्वयं ही दूसरोंके सामने हाथ फैलायेंगे! जब सब कुछ छोड़कर भी आप मुट्ठीभर जौके लिये दूसरोंकी कृपा चाहते हैं, तो इस त्यागमें और राज्य करनेमें अन्तर ही क्या रहा? दोनों एक-से ही तो हैं, फिर क्यों कष्ट उठा रहे हैं? मुट्ठीभर जौकी आवश्यकता बनी ही रह गयी तो सर्वत्यागकी प्रतिज्ञा कहाँ रही?

'महाराज! यदि मुझपर आपकी कृपा हो तो इस पृथ्वीका पालन कीजिये और राजमहल, शय्या, सवारी, वस्त्र तथा आभूषणोंको उपयोगमें लाइये। जो बराबर दूसरोंसे दान लेता है तथा जो निरन्तर स्वयं ही दान करता रहता है, उन दोनोंमें क्या अन्तर है? उनमें कौन-सा श्रेष्ठ है? इसे आप समझिये। संसारमें साधु-संतोंको अन्न देनेवाले राजाकी आवश्यकता है; यदि दान करनेवाला राजा न रहे तो मोक्ष चाहनेवाले महात्माओंका जीवन-निर्वाह कैसे हो? अन्नसे ही प्राणकी पुष्टि होती है, इसलिये अन्न देनेवाला प्राणदाता होता है। गृहस्थ-आश्रमसे अलग होकर भी त्यागी लोग गृहस्थोंके ही सहारे जीवन धारण करते हैं। जो आसक्तिरहित एवं सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त है, शत्रु और मित्रमें समान भाव रखता है, वह किसी भी आश्रममें रहकर मुक्त ही है। बहुत-से लोग तो दान लेने या पेट पालनेके लिये मूँड़ मुड़ाकर गेरुए वस्त्र पहन घरसे निकल जाते हैं, वे नाना प्रकारके बन्धनोंमें बँधे होनेके कारण भोगोंकी ही खोजमें डोलते-फिरते हैं। हृदयका राग आदि दोष दूर न हुआ हो तो गेरुआ वस्त्र धारण करना विडम्बनामात्र है। मेरा तो विश्वास है कि धर्मका ढोंग रचानेवाले मथमुंडे अपनी जीविका चलानेके लिये ही ऐसा करते हैं। जो हो, आप तो साधु-महात्माओंका पालन-पोषण करते हुए जितेन्द्रिय होकर पुण्यलोकोंपर अधिकार प्राप्त कीजिये। जो प्रतिदिन गुरुके लिये समिधा लाता है अथवा निरन्तर बहुत-सी दक्षिणाओंवाले यज्ञ करता रहता है, उससे बढ़कर धर्मपरायण कौन होगा?'

''(इस तरह रानीके समझानेसे जनकने संन्यासका विचार छोड़ दिया।) राजा जनक संसारमें तत्त्ववेत्ताके रूपमें प्रसिद्ध हैं, किंतु उन्हें भी मोह हो गया था। उन्हींकी भाँति आप भी मोहमें न पड़िये। यदि हमलोग सर्वदा दान और तपमें तत्पर रहकर अपने धर्मका अनुसरण करेंगे, दया आदि गुणोंसे सम्पन्न रहेंगे, काम-क्रोधादि दोषोंको त्याग देंगे तथा अच्छी तरहसे दान देते हुए प्रजापालनमें लगे रहेंगे तो गुरु और वृद्धजनोंकी सेवा करते हुए हम अपने अभीष्ट लोक प्राप्त कर लेंगे। इसी प्रकार ब्राह्मणसेवी और सत्यभाषी होकर देवता, अतिथि और समस्त प्राणियोंकी विधिवत सेवा करते रहनेसे भी हमें अपना इष्ट स्थान प्राप्त हो जायगा।''

राजा युधिष्ठिरने कहा—भैया! मैं धर्मका प्रतिपादन करनेवाले और पर तथा अपर ब्रह्मका निरूपण करनेवाले दोनों प्रकारके शास्त्रको जानता हूँ तथा मुझे कर्मानुष्ठान और कर्मत्याग दोनोंका प्रतिपादन करनेवाले वेद-वाक्योंका भी ज्ञान है। इसके सिवा परस्पर विरुद्ध अर्थका प्रतिपादन करनेवाले वाक्योंका भी मैंने युक्तिपूर्वक विचार किया है और उन वाक्योंका जो तात्पर्य है, उसे भी मैं विधिवत् जानता हूँ। तुम तो केवल शस्त्रविद्याके ही जानकार हो और वीरोंका धर्म पालन करते हो। शास्त्रके यथार्थ मर्मको तुम किसी प्रकार नहीं समझ सकते। जो लोग शास्त्रके सूक्ष्म रहस्यको जानते हैं और धर्मका निश्चय करनेमें कुशल हैं, तुम्हारी तरह तो वे भी मुझे उपदेश नहीं दे सकते। तथापि भ्रातृस्नेहवश तुमने जो कुछ कहा है, वह न्यायसंगत और उचित ही है, उससे मुझे भी तुम्हारे प्रति प्रसन्नता ही हुई है। युद्धके धर्मोंमें और संग्राम करनेकी कुशलतामें तो तुम्हारे समान तीनों लोकोंमें भी कोई नहीं है। किंतु जिन महानुभावोंकी बुद्धि परमार्थमें लगी हुई है, उनका विचार है कि तप और त्याग दोनों ही परस्पर एक-दूसरेसे श्रेष्ठ हैं। अर्जुन! तुम जो ऐसा समझते हो कि धनसे बढ़कर कोई चीज ही नहीं है, सो ठीक नहीं है;

वास्तवमें धनका कोई महत्त्व नहीं है, यह बात जिस तरह समझमें आ जाय वही तुम्हें बता रहा हूँ। इस लोकमें तप और स्वाध्यायमें लगे हुए भी अनेकों धर्मनिष्ठ पुरुष दिखायी देते हैं। वे तपस्वी ऋषि ही हैं, जो अन्तमें सनातन लोकोंको प्राप्त करते हैं। अनेकों ऐसे भी अजातशत्रु धैर्यवान् वनवासी हैं, जो वनमें रहकर स्वाध्याय करते हुए स्वर्गलोग प्राप्त कर लेते हैं। कोई भद्रपुरुष इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे रोककर अविवेकजनित अज्ञानसे छूटकर देवयानमार्गके द्वारा त्यागियोंका लोक प्राप्त कर लेते हैं और कोई तेजोमय दक्षिण मार्गसे पुण्यलोकोंको प्राप्त होते हैं। किंतु मोक्षमार्गी पुरुषोंकी गति तो अनिर्वचनीय है। अतः योग ही सब साधनोंमें प्रधान माना गया है। पर उसका स्वरूप जानना बहुत कठिन है। विद्वान्‌लोग सार-असार वस्तुका विवेक करनेकी इच्छासे निरन्तर शास्त्रका विचार करते रहते हैं और वे अपने स्वरूपमें स्थित हुए यहीं मुक्त हो जाते हैं। वह आत्मतत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म है, नेत्रसे उसे देखा नहीं जा सकता और वाणीसे कहा नहीं जा सकता। जो बड़े युक्तिकुशल. विद्वान् हैं, वे भी इस आत्मतत्त्वके विषयमें चक्करमें पड़ जाते हैं, साधारण जीवोंकी तो बात ही क्या है? इसी प्रकार बड़े-बड़े बुद्धिमान्, श्रोत्रिय और शास्त्रज्ञोंके लिये भी वह अत्यन्त दुर्विज्ञेय है। किंतु अर्जुन ! तत्त्वज्ञलोग तो तप, ज्ञान और त्यागसे उस नित्य महान् सुखको प्राप्त कर लेते हैं।



महर्षि देवस्थान और अर्जुनका राजा युधिष्ठिरको समझाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! युधिष्ठिरकी बात पूरी होनेपर वहाँ बैठे हुए देवस्थान नामके एक तपस्वीने ये युक्तियुक्त वचन कहने आरम्भ किये, 'अजातशत्रो ! आपने धर्मानुसार यह सारी पृथ्वी जीती है। इसे आपको व्यर्थ ही नहीं त्याग देना चाहिये। राजन् ! ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चारों आश्रम ब्रह्मको प्राप्त करनेकी चार सीढ़ियाँ हैं और इनका वेदमें प्रतिपादन किया गया है। अतः आपको इन्हें क्रमसे ही पार करना चाहिये। आप अभी बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञ कीजिये। स्वाध्याय यज्ञ तो ऋषिलोग किया करते हैं और कोई-कोई ज्ञानयज्ञ भी करते हैं। गृहस्थ तो यज्ञके लिये ही सम्पूर्ण धनका संचय करते हैं। वे यदि अपने शरीर अथवा किसी अयोग्य कार्यके लिये उसका दुरुपयोग करते हैं तो भ्रूणहत्या-जैसे दोषके भागी बनते हैं। ब्रह्माने यज्ञके लिये ही धनकी रचना की है और यज्ञके लिये ही पुरुषको उसका रक्षक नियुक्त किया है। अतः यज्ञके लिये सारा धन खर्च कर देना चाहिये। उसके बाद शीघ्र ही कामनाकी सिद्धि हो जाती है। राजन् ! अविक्षितके पुत्र राजा मरुत्तने बड़ी धूम-धामसे इन्द्रका यजन किया था। उनके यज्ञमें लक्ष्मीदेवी स्वयं पधारी थीं और उनके सभी यज्ञपात्र सुवर्णके थे। राजा हरिश्चन्द्रका नाम भी आपने सुना ही होगा। उन्होंने भी बड़ा धन खर्च करके इन्द्रका यजन किया था, उससे वे पुण्योंके भागी हुए और शोकरहित हो गये। इसलिये सारा धन यज्ञमें ही लगा देना चाहिये।

'राजन् ! मनुष्यके मनमें संतोष होना स्वर्गसे भी बढ़कर है। संतोष ही सबसे बड़ा सुख है। संतोषसे बढ़कर संसारमें कोई बात नहीं है। उसकी ठीक-ठीक स्थिति तभी होती है जब मनुष्य कछुआ जैसे अपने अङ्गोंको सिकोड़ लेता है, उसी प्रकार अपनी सब कामनाओंको सब ओरसे समेट लेता है। उस समय तुरंत ही आत्मज्योतिःस्वरूप परमात्माका अपने अन्तःकरणमें ही प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है। जब मनुष्य किसीसे भी भय नहीं मानता तो उससे भी किसीको कोई डर नहीं रहता। वह काम और द्वेषको जीत लेता है तथा आत्माका साक्षात्कार कर लेता है।

'कोई लोग तो शान्तिकी प्रशंसा करते हैं और कोई उद्योगके गुण गाते हैं। कोई इनमेंसे प्रत्येकको ही अच्छा बताते हैं और कोई एक साथ ही दोनोंको। कोई यज्ञको ही अच्छा बताते हैं, कोई संन्यासको और कोई दानको। कोई सब कुछ छोड़कर चुपचाप भगवान्‌के ध्यानमें मग्न रहते हैं और कोई राज्य पाकर प्रजाका पालन करते रहना ही अच्छा समझते हैं। किंतु इन सब बातोंपर विचार करके बुद्धिमानोंने तो यही निश्चय किया है कि किसीसे द्रोह न करना, सत्य भाषण करना, दान देना, सबपर दया रखना, इन्द्रियोंका दमन करना, अपनी ही स्त्रीसे पुत्रोत्पत्ति करना तथा मृदुता, लज्जा और अचञ्चलता—ये ही प्रधान धर्म हैं और ऐसा ही स्वायम्भुव मनुने भी कहा है।

'राजन् ! आप भी प्रयत्नपूर्वक इसी धर्मका पालन करें। भूपतिका यह धर्म है कि इन्द्रियोंको सर्वदा अपने अधीन रखे, प्रिय और अप्रियमें समान रहे, यज्ञानुष्ठानसे जो बचे उसी अन्नका सेवन करे, शास्त्रके रहस्यको जाने, दुष्टोंका दमन करता रहे, साधुओंकी रक्षा करे, प्रजाको धर्ममार्गपर ले जाकर उसके साथ धर्मानुसार व्यवहार करे और अन्तमें पुत्रको राजलक्ष्मी सौंपकर वनमें चला जाय। वहाँ भी वनके

फल-मूलादिसे निर्वाह करता हुआ आलस्य त्यागकर शास्त्रोक्त कर्मोंका ही विधिपूर्वक आचरण करे। जो राजा इस प्रकार बर्ताव करता है, वही धर्मको जाननेवाला है। उसके इहलोक और परलोक दोनों ही सुधर जाते हैं। इस प्रकार जो धर्मका अनुसरण करते थे, सत्य, दान और तपमें लगे रहते थे, दया आदि गुणोंसे सम्पन्न थे, काम-क्रोधादि दोषोंसे दूर रहते थे, सर्वदा प्रजापालनमें तत्पर रहते थे, उत्तम धर्मोंका आचरण करते थे और गौ एवं ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये युद्ध ठानते थे, ऐसे अनेकों राजा उत्तम गति प्राप्त कर चुके हैं। इसी प्रकार रुद्र, वसु, आदित्य, साध्य और अनेकों राजर्षियोंने भी इसी धर्मका आश्रय लिया था तथा निरन्तर सावधान रहकर अपने पवित्र कर्मोंका आचरण करनेसे स्वर्ग प्राप्त किया था।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार जब देवस्थान मुनिका भाषण समाप्त हुआ तो अर्जुनने अपने बड़े भाई महाराज युधिष्ठिरसे, जो अभीतक बहुत उदास थे, फिर कहा, 'राजन्! आप धर्मज्ञ हैं, आपने क्षत्रिय-धर्मके अनुसार ही यह दुर्लभ राज्य प्राप्त किया है। फिर आप इतने दुःखी क्यों हैं? महाराज! आप क्षात्र-धर्मका विचार कीजिये। क्षत्रियके लिये तो धर्मयुद्धमें मर जाना अनेकों यज्ञोंसे भी बढ़कर है। तप और त्याग तो ब्राह्मणोंके धर्म हैं। दूसरेके धनसे अपना निर्वाह करना यह क्षत्रियका धर्म नहीं है। आप तो सब धर्मोंको जानते हैं, धर्मात्मा हैं, बुद्धिमान् हैं, कर्मकुशल हैं और संसारमें आगे-पीछेकी सब बातोंपर दृष्टि रखनेवाले हैं तथा आपने क्षात्र-धर्मके अनुसार शत्रुओंको परास्त करके यह निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया है। अतः अब मनको वशमें रखकर आप यज्ञ-दानादिका अनुष्ठान कीजिये। देखिये, इन्द्र कश्यप ब्रह्मणका पुत्र था, किन्तु अपने कर्मसे वह क्षत्रिय हो गया था। उसने पापपरायण निन्यानबे जातियोंका वध किया था। लोकमें उसके इस कर्मको प्रशंसनीय ही माना गया है। अतः जो कुछ हो चुका है, उसके लिये आप शोक न करें। वे सब वीर तो क्षात्र-धर्मके अनुसार शस्त्रोंसे मारे जाकर परम गतिको ही प्राप्त हुए हैं।'



महर्षि व्यासका शङ्ख-लिखित और राजा हयग्रीवके दृष्टान्त देकर युधिष्ठिरको प्रजापालनके लिये उत्साहित करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अर्जुनके इस प्रकार समझानेपर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने कोई उत्तर नहीं दिया। तब



महर्षि व्यास कहने लगे—'सौम्य! अर्जुनका कथन बहुत ठीक है। गृहस्थ-धर्म बहुत उत्तम है और शास्त्रोंमें उसका वर्णन किया गया है। धर्मज्ञ! तुम शास्त्रानुसार स्वधर्मका ही आचरण करो। तुम्हारे लिये घर छोड़कर वनमें जानेका विधान नहीं है। देखो, देवता, पितर, अतिथि और सेवक इन सबका निर्वाह गृहस्थके द्वारा ही होता है। अतः तुम इन सबका पालन करो। पशु-पक्षी और समस्त प्राणियोंका पेट भी गृहस्थोंके कारण ही भरता है, इसलिये गृहस्थ ही सबसे श्रेष्ठ है। तुम्हें वेदका पूरा ज्ञान है और तुमने तपस्या भी बहुत बड़ी की है। इसलिये अपने इस पैतृक राज्यका भार उठानेमें तुम सब प्रकार समर्थ हो। राजन्! तप, यज्ञ, विद्या, भिक्षा, इन्द्रियोंका संयम, ध्यान, एकान्तसेवन, संतोष और शास्त्रज्ञान—ये सब बातें तो ब्राह्मणोंको सिद्धि देनेवाली हैं। क्षत्रियोंके धर्म यद्यपि तुम जानते ही हो तो भी मैं उन्हें सुनाता हूँ—यज्ञ, विद्याभ्यास, शत्रुओंपर चढ़ाई करना, राजलक्ष्मीकी प्राप्तिसे कभी संतुष्ट न होना, दण्ड देना, दबदबा रखना, प्रजाका पालन करना, समस्त वेदोंका ज्ञान-प्राप्त करना, तप, सदाचार, द्रव्योपार्जन और सुपात्रको दान देना—क्षत्रियके ये सब कर्म उसे इहलोक और परलोक दोनोंहीमें सफलता देनेवाले हैं। इनमें भी दण्ड धारण

करना उसका सबसे प्रधान धर्म है। इसके लिये उसमें सर्वदा बल रहना चाहिये; क्योंकि दण्डविधान बलके द्वारा ही हो सकता है। राजन्! क्षत्रियोंको तो इन्हीं धर्मोंके द्वारा सिद्धि प्राप्त हो सकती है। हमने सुना है कि राजर्षि सुद्युम्नने दण्डधारणके द्वारा ही परम सिद्धि प्राप्त कर ली थी। इस विषयमें यह प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है; तुम ध्यान देकर सुनो।

'शङ्ख और लिखित नामक दो भाई थे। वे बड़े ही तपस्वी थे। बाहुदा नदीके तीरपर उनके अलग-अलग आश्रम थे, जो बड़े ही रमणीय और सर्वदा फल-पुष्पादिसे लदे रहते थे। एक बार लिखित शङ्खके आश्रमपर आये। दैववश उस समय शङ्ख बाहर गये हुए थे। लिखितने भाईकी अनुपस्थितिमें वहाँके वृक्षोंसे बहुत-से पके हुए फल तोड़ लिये और वे उन्हें वहीं बैठकर खाने लगे। इतनेहीमें शङ्ख वहाँ आ गये। उन्होंने लिखितको फल खाते देखकर कहा, 'भैया! तुम्हें ये फल कहाँसे मिले।' इसपर लिखितने अपने बड़े भाईके पास जाकर उनसे हँसते-हँसते कहा, 'ये तो मैंने इस सामनेवाले



वृक्षसे ही तोड़े हैं।' इसपर शङ्खने कहा, 'तुमने मुझसे बिना पूछे स्वयं ही फल तोड़कर तो चोरी की है, इसलिये तुम राजाके पास जाओ और उसे अपना सब कर्म सुनाकर कहो कि 'राजन्! बिना दिये दूसरेकी चीज लेकर मैंने चोरीका अपराध किया है, इसलिये यह सब जानकर आप अपना धर्मपालन कीजिये और तुरन्त ही मुझे वह दण्ड दीजिये जो चोरको दिया जाता है।

'तब भाईकी आज्ञा सिरपर धारणकर लिखित राजा सुद्युम्नके पास गये और उनसे बोले, 'राजन्! मैंने बिना आज्ञा लिये अपने बड़े भाईके फल खा लिये हैं, इसलिये आप मुझे दण्ड दीजिये।'

'सुद्युम्नने कहा, 'विप्रवर! यदि आप दण्ड देनेमें राजाको प्रमाण मानते हैं तो क्षमा करनेका भी उसको अधिकार है ही। अतः मैं आपको क्षमा करता हूँ। इसके सिवा मेरे योग्य कोई और सेवा हो तो उसके लिये मुझे आज्ञा कीजिये। मैं उसे पालन करनेका प्रयत्न करूँगा।'

'परंतु राजाके बहुत प्रार्थना करनेपर भी लिखितने दण्डके लिये ही आग्रह किया। उसके सिवा और किसी प्रकारकी बात उन्होंने स्वीकार नहीं की। तब राजाने चोरीका दण्ड देते हुए उनके दोनों हाथ कटवा दिये। इस प्रकार दण्ड पाकर वे शङ्खके पास आये और अत्यन्त दीन होकर उनसे प्रार्थना की कि 'मुझे दण्ड प्राप्त हो गया है, अब आप मुझ मन्दमतिको क्षमा करें।'

'शङ्खने कहा, 'भैया! मैं तुमपर कुपित नहीं हूँ। तुम तो धर्मको जाननेवाले हो। तुमसे धर्मका उल्लङ्घन हो गया था। उसीका तुम्हें दण्ड मिला है। अब तुम शीघ्र ही बाहुदा नदीके तटपर जाकर विधिवत् देवता और पितरोंका तर्पण करो। भविष्यमें कभी अधर्ममें मन मत ले जाना।'

'शङ्खकी बात सुनकर लिखितने बाहुदाके पुनीत जलमें स्नान किया और फिर वे ज्यों ही तर्पण करनेको तैयार हुए कि उनकी भुजाओंमेंसे कमलके समान दो हाथ प्रकट हो गये। इससे उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ और उन्होंने अपने भाईको जाकर वे हाथ दिखाये। शङ्खने कहा, 'भाई! तुम शङ्का न करो। मैंने अपने तपके प्रभावसे ये हाथ उत्पन्न कर दिये हैं।' इसपर लिखितने पूछा, 'विप्रवर! यदि आपके तपका ऐसा प्रभाव है तो आपने पहले ही मेरी शुद्धि क्यों नहीं कर दी?' शङ्ख बोले, 'यह ठीक है; परंतु तुम्हें दण्ड देनेका अधिकार मुझे नहीं है; यह तो राजाका ही काम है। इससे राजाकी भी शुद्धि हुई है और पितरोंके सहित तुम भी पवित्र हो गये हो।' इसी प्रकार प्रचेताओंके पुत्र दक्षने भी उत्तम सिद्धि प्राप्त की थी। प्रजाओंका पालन करना—यही क्षत्रियोंका मुख्य धर्म है। इसलिये राजन्! आप शोक त्यागिये। अपने भाई अर्जुनकी हितकारिणी बातपर ध्यान दीजिये। क्षत्रियोंका प्रधान कर्तव्य तो दण्ड धारण करना ही है, मूँड़ मुँड़ाना उनका काम नहीं है।

'तात! वनमें रहते समय तुम्हारे धीर-वीर भाइयोंने जो मनोरथ किये थे उन्हें अब सफल होने दो। तुम नहुषपुत्र ययातिके समान पृथ्वीका पालन करो। अपने भाइयोंके साथ

धर्म, अर्थ और कामका भोग करो। पीछे प्रसन्नतासे वनमें चले जाना। पहले अतिथियों, पितरों और देवताओंके ऋणसे उऋण हो लो, इसके बाद यह सब करना। अभी तो सर्वमेध और अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करो। यदि तुम अपने भाइयोंके साथ बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञ करोगे तो तुम्हें अतुलित यश प्राप्त होगा। राजन् ! मैं तुमसे जो बात कहता हूँ उसपर ध्यान दो। वैसा करनेसे तुम अपने धर्मसे नहीं गिरोगे। देखो, जो राजा करका छठा भाग लेकर भी राष्ट्रकी रक्षा नहीं करता वह अपनी प्रजाके चतुर्थांश पापका भागी बनता है। यदि राजा धर्मशास्त्रका उल्लङ्घन करता है तो पतित हो जाता है और यदि उसका अनुसरण करता रहता है तो निर्भय रहता है। यदि काम-क्रोधको छोड़कर वह पिताके समान सारी प्रजाके प्रति समदृष्टि रखे तो इस शास्त्रोक्त बुद्धिका आश्रय लेनेसे उसे किसी प्रकार पापका संसर्ग नहीं होता। शत्रुओंको अपने तेज और बुद्धिके बलसे काबूमें रखना चाहिये। पापियोंके साथ कभी मेल नहीं करना चाहिये तथा अपने राज्यमें पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान कराना चाहिये। शूरवीर, श्रेष्ठ, सत्कर्म करनेवाले विद्वान्, वेदपाठी, ब्राह्मण और धनवानोंकी विशेष रक्षा करनी चाहिये। जो बहुश्रुत हों उन्हें धर्मकृत्योंमें नियुक्त करना चाहिये तथा एक व्यक्तिमें, चाहे वह कैसा ही गुणवान् हो, कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। जो राजा प्रजाकी रक्षा नहीं करता, विनयहीन है, मानी है, मान्य पुरुषोंका सत्कार नहीं करता और गुणोंमें भी दोषदृष्टि करता है, वह पापी हो जाता है और लोकमें उसे दुर्दान्त (क्रूर) कहा जाता है। कई बार प्रजा लोग जो राजाकी ओरसे सुरक्षित न होनेके कारण अनावृष्टि आदि दैवी आपत्तियोंसे नष्ट हो जाते हैं तथा चोरोंके उपद्रवादिसे दुःख पाते हैं, उसमें राजा ही दोषका भागी होता है। किंतु पूरे-पूरे विचार और नीतिके साथ सब प्रकार प्रयत्न करनेपर भी यदि सफलता न मिले तो उस अवस्थामें राजाको कोई पाप नहीं होता।

'राजन् ! इस विषयमें मैं तुम्हें हयग्रीवका प्रसंग सुनाता हूँ। वह बड़ा शूरवीर और पवित्र कर्म करनेवाला था। उसने संग्राममें अपने शत्रुओंको परास्त कर दिया था। परन्तु पीछे निःसहाय हो जानेपर शत्रुओंने उसे हराकर मार डाला। वह शत्रुओंका निग्रह और प्रजाका पालन करनेमें बड़ा ही कुशल था। इससे उसे बड़ी कीर्ति भी मिली थी। उसने विचारपूर्वक न्यायके अनुसार अपने राज्यका पालन किया, अहंकारको पास नहीं आने दिया और अनेकों यज्ञोंका अनुष्ठान किया। इस प्रकार सम्पूर्ण लोकोंको अपने सुयशसे व्याप्त करके वह महात्मा स्वर्गमें सुख भोग रहा है। उसने यज्ञादिके अनुष्ठानसे दैवी और दण्डनीतिसे मानुषी सिद्धि प्राप्त की थी तथा धर्मशास्त्रके अनुसार प्रजाका पालन किया था। वह बड़ा विद्वान्, त्यागी, श्रद्धालु और कृतज्ञ था। इस लोकमें उसने अनेकों पुण्यकर्म किये और फिर देह त्यागकर उन पुण्यलोकोंको प्राप्त किया जो बड़े-बड़े मेधावी, विद्वान्, माननीय और प्रयागादि तीर्थस्थानोंमें शरीर छोड़नेवालोंको मिलते हैं।'



व्यासजीका युधिष्ठिरसे कालकी महिमा कहना तथा युधिष्ठिरका अर्जुनके प्रति पुनः अपना शोक प्रकट करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! व्यासजीकी बात सुनकर राजा युधिष्ठिरने कहा, 'भगवन् ! इस पृथ्वीके राज्य और तरह-तरहके भोगोंसे मेरे मनको प्रसन्नता नहीं है, मुझे तो यह शोक खाये जा रहा है। जिनके पति और पुत्र नष्ट हो गये हैं, ऐसी इन अबलाओंका विलाप सुनकर मुझे तनिक भी चैन नहीं है।'

राजा युधिष्ठिरके इस प्रकार कहनेपर वेद-पारङ्गत श्रीव्यासजीने कहा—'राजन् ! जो लोग मारे गये हैं वे तो अब किसी भी कर्म या यज्ञादिसे मिल नहीं सकते और न कोई ऐसा पुरुष ही है जो उन्हें लाकर दे दे। बुद्धि या शास्त्राध्ययनके द्वारा असमय ही किसी विशेष वस्तुको पा लेना मनुष्यके वशकी बात नहीं है। कभी-कभी तो मूर्ख मनुष्यको भी उत्तम वस्तुकी प्राप्ति हो जाती है। वास्तवमें कार्यकी सिद्धिमें कालहीकी प्रधानता है। शिल्प, मन्त्र और ओषधियाँ भी दुर्भाग्यके समय फल नहीं देतीं। समयकी अनुकूलता होनेपर जब सौभाग्यका उदय होता है तो वे ही सफलता और वृद्धिकी निमित्त बन जाती हैं। समय आनेपर ही मेघ जल बरसाते हैं, बिना समयके वृक्षोंमें फल-फूल भी नहीं लगते तथा जबतक अनुकूल समय नहीं आता तबतक पक्षी, सर्प, मृग हाथी और हरिणोंमें कामोन्माद नहीं आता, स्त्रियाँ गर्भ धारण नहीं करतीं; जाड़ा, गर्मी और वर्षा ऋतुएँ नहीं आतीं। किसीका जन्म या मरण नहीं होता, बालक

बोलना आरम्भ नहीं करता, मनुष्यपर यौवन नहीं आता और बोया हुआ बीज अंकुरित नहीं होता। इसी प्रकार सूर्यके उदय और अस्त, चन्द्रमाके वृद्धि और ह्रास तथा समुद्रके उतार-चढ़ाव भी विना अनुकूल समय आये नहीं होते। राजन्! इस विषयमें राजा सेनजित्ने जो कुछ कहा था वह प्राचीन उपदेश मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

'राजाने कहा था—'यह दुःसह कालचक्र सभी मनुष्योंपर अपना प्रभाव डालता है। पृथ्वीके सभी पदार्थ समय आनेपर जीर्ण होकर नष्ट हो जाते हैं। धन, स्त्री, पुत्र अथवा पिताके नष्ट हो जानेपर पुरुष 'हाय! कैसा दुःख है' ऐसा सोचकर ही फिर उस दुःखकी निवृत्तिका उपाय करता है। किंतु तुम मूर्ख बनकर शोक क्यों करते हो? जो शोकरूप ही थे उनके लिये शोक क्या करना। तुम्हारे दुःख माननेसे तो दुःखोंकी और भय माननेसे भयोंकी वृद्धि ही होगी। न तो यह शरीर मेरा है और न सारी पृथ्वी ही मेरी है। यह जैसी मेरी है वैसे ही और सबकी भी है। ऐसी दृष्टि रखनेसे जीव कभी मोहमें नहीं फँसता। शोकके हजारों स्थान हैं और हर्षके भी सैकड़ों अवसर हैं। किंतु उनका प्रभाव रोज-रोज मूर्खोंपर ही पड़ता है, विद्वानोंपर नहीं। संसारमें तो केवल दुःख ही है, सुख तो है ही नहीं; इसलिये लोगोंको दुःखकी ही उपलब्धि होती है। यहाँ सुखके पीछे दुःख और दुःखके पीछे सुख लगा ही रहता है। सुखका अन्त तो दुःखमें ही होता है। कभी-कभी दुःखसे भी सुखकी प्राप्ति हो जाती है; इसलिये जिसे नित्य-सुखकी इच्छा हो वह सुख-दुःख दोनोंहीको त्याग दे। सुख या दुःख अथवा प्रिय या अप्रिय जो कुछ प्राप्त हो उसे हृदयमें अवसाद न लाकर प्रसन्नतासे सहन करे। भाई! अपने स्त्री और पुत्रोंके प्रति अनुकूल आचरणमें थोड़ी-सी भी कमी कर दो, फिर तुम्हें मालूम हो जायगा कि कौन किस हेतुसे किसका किस प्रकार सम्बन्धी है।'

युधिष्ठिर! यह सुख-दुःखके मर्मको जाननेवाले परमधर्मज्ञ महामति सेनजित्का कथन है। जिस पुरुषको जो दुःख सता रहा है उससे कभी शान्ति मिलनेवाली नहीं है। दुःखोंका अन्त कभी नहीं आता। एकके पीछे दूसरा दुःख पैदा होता ही रहता है। सुख-दुःख, उत्पत्ति-नाश, लाभ-हानि और जीवन-मरण— ये क्रमशः आते ही रहते हैं। अतः धीर पुरुषोंको इनके कारण हर्ष या शोक नहीं करना चाहिये। राजाओंका योग तो युद्धकी दीक्षा लेना, युद्ध करना, दण्डनीतिका ठीक-ठीक व्यवहार करना तथा यज्ञमें दक्षिणा और धन दान देना ही है। इन्हींसे उनकी शुद्धि होती है। जो राजा बुद्धिमानीसे न्यायपूर्वक राज्यशासन करता है, अहंकार त्यागकर यज्ञानुष्ठान करता है, सब प्रजाओंको धर्मके अनुसार चलाता है, युद्धमें विजय पाकर राष्ट्रकी रक्षा करता है, सोमयाग करते हुए प्रजाका पालन करता है, युक्तिपूर्वक दण्डविधान करता है, वेद-शास्त्रोंका अच्छी तरह अभ्यास करता है और चारों वर्णोंको अपने-अपने धर्ममें स्थित रखता है, वह शुद्धचित्त होकर अन्तमें स्वर्ग-सुख भोगता है तथा स्वर्गस्थ हो जानेपर भी जिसके आचरणकी पुरवासी, देशवासी और मन्त्री-लोग प्रशंसा करते हैं, उसी राजाको श्रेष्ठ समझना चाहिये।'

व्यासजीके इस प्रकार कहनेपर राजा युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा—'भैया! तुम जो समझते हो कि धनसे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है तथा निर्धनको स्वर्गसुख और अर्थकी भी प्राप्ति नहीं हो सकती—यह ठीक नहीं है। अनेकों मुनियोंने तपस्यामें लगे रहकर ही सनातन लोकोंको प्राप्त किया है। जो धर्मप्राण पुरुष ब्रह्मचर्य-आश्रममें रहकर वेदाध्ययनद्वारा ऋषियोंकी सम्प्रदाय-परम्पराकी रक्षा करते रहते हैं, देवगण उन्हें ही 'ब्राह्मण' कहते हैं। जो लोग स्वाध्यायनिष्ठ, ज्ञाननिष्ठ या धर्मनिष्ठ हैं उन्हींको तुम ऋषि समझो। वानप्रस्थोंके कहनेसे तो हमें यह बात मालूम हुई है कि राज्यके सब काम भी ज्ञाननिष्ठोंके ही हाथमें रखे। अज, पृश्नि, सिकत, अरुण और केतु नामके ऋषिगणोंने तो स्वाध्यायके द्वारा ही स्वर्ग प्राप्त कर लिया था। दान, अध्ययन, यज्ञ और निग्रह—ये सभी कर्म बहुत कठिन हैं। इन वेदोक्त कर्मोंका आश्रय लेकर लोग दक्षिणायनमार्गसे स्वर्गलोकमें जाते हैं; किंतु जो नियमके अनुसार उत्तरमार्गपर दृष्टि रखता है, उसे योगियोंको प्राप्त होनेवाले सनातन लोकोंकी उपलब्धि होती है। प्राचीन कालके विद्वान् इन दोनोंमेंसे उत्तरमार्गकी ही प्रशंसा करते हैं। वास्तवमें संतोष ही सबसे बड़ा स्वर्ग है, संतोष ही सबसे बड़ा सुख है। संतोषसे बढ़कर कोई चीज नहीं है। जिन पुरुषोंने क्रोध और हर्षको अच्छी तरह वशमें कर लिया है, उन्हींको वह उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। इस प्रसंगमें राजा ययातिकी कही हुई यह गाथा प्रसिद्ध है, जिसपर ध्यान देनेसे पुरुष, कछुआ जैसे अपने अङ्गोंको सिकोड़ लेता है उसी प्रकार अपनी सब वासनाओंको समेट लेता है!

'राजा ययातिने कहा था—'जब यह पुरुष किसीसे नहीं डरता और इससे भी किसीको भय नहीं रहता तथा इसे किसी वस्तुकी इच्छा या किसीसे द्वेष भी नहीं रहता, उस समय यह ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। जब यह कर्म, मन और वाणीसे सभी जीवोंके प्रति दुर्भावनाका त्याग कर देता है तो इसे ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है। जिसके मान और मोह दब

गये हैं और जिसने बहुत पुरुषोंका सङ्ग करना छोड़ दिया है, उस आत्मज्ञ महात्माके लिये मोक्ष सुलभ हो जाता है।'

'अर्जुन ! मैं तो साफ देखता हूँ कि जो मनुष्य धनके पीछे पड़ा हुआ है उसके द्वारा त्याज्य कर्मोंका छूटना बड़ा ही कठिन है। साधुता भी उसके लिये दुर्लभ ही है। शोक और भयसे रहित होनेपर भी जो पुरुष सदाचारसे डिगा हुआ है, उसे धनकी थोड़ी-सी तृष्णा भी हो तो वह दूसरोंसे ऐसा वैर ठान लेता है कि उसे पापकी भी कोई परवा नहीं होती। ब्रह्माने तो यज्ञके लिये ही धन उत्पन्न किया है और यज्ञकी रक्षाके लिये ही मनुष्यकी रचना की है। इसलिये सारे धनका उपयोग यज्ञके लिये ही करना चाहिये। उसे भोगमें लगाना अच्छा नहीं है। इसीसे लोगोंका विचार है कि धन कभी किसी एकका नहीं है। अतः श्रद्धावान् पुरुषको उसे दान और यज्ञमें लगाते रहना चाहिये। जो धन मिले उसे दानमें ही लगा दे, भोगोंमें न लगावे। दान देनेमें भी दो भूलें हुआ करती हैं। उनपर ध्यान रखना चाहिये। एक तो कुपात्रके पास धन पहुँच जाना और दूसरे सुपात्रको न मिलना।

'अर्जुन ! इस युद्धमें बालक अभिमन्यु, द्रौपदीके पुत्र, धृष्टद्युम्न, राजा विराट, द्रुपद, वृषसेन, धृष्टकेतु तथा भिन्न-भिन्न देशोंके अनेकों नृपतिगण काम आ गये हैं। इस सारे बन्धुवधकी जड़ मैं ही हूँ। हाय ! मैं बड़ा ही राज्यलोलुप और क्रूर हूँ। मैंने अपने कुटुम्बका भी मूलोच्छेद करा डाला। इसीसे मेरा शोक जरा भी दूर नहीं होता है, मैं अत्यन्त आतुर हो रहा हूँ। मैं कैसा मूर्ख और गुरुद्रोही हूँ ? भला, यह राज्य कितने दिन टिकनेवाला है; इसीके लोभमें पड़कर मैंने अपने दादा भीष्मजीको भी मरवा डाला। अरे ! उन्होंने तो हमें पाल-पोसकर बचेसे बड़ा किया था। गुरुवर द्रोणाचार्यको मेरी सत्यवादितामें विश्वास था, इसीसे उन्होंने मुझसे अपने पुत्रके वधके विषयमें पूछा था। किंतु मैंने हाथीकी आड़ लेकर झूठ बोल दिया। ऐसा भारी पाप करके भला, मेरी किस लोकमें गति होगी ? हाय ! मुझसे बड़ा और कौन पापी होगा ? मैंने तो अपने बड़े भाई कर्णको भी मरवा डाला। इस राज्यके लोभसे ही मैंने बालक अभिमन्युको कौरवोंकी सेनामें झोंक दिया। तबसे तो तुम्हारी ओर मेरी आँखें ही नहीं उठतीं। बेचारी दुःखिनी द्रौपदीके पाँचों पुत्र मारे गये। उनका शोक भी मुझे बराबर सालता रहता है। अब तो तुम मुझे प्रायोपवेशके लिये ही बैठा हुआ समझो। मैं यहीं बैठे-बैठे अपना शरीर सुखा डालूँगा। इस गङ्गातटपर ही मैं अपने प्राणोंको नष्ट कर दूँगा। आप सब लोग मुझे इस प्रायश्चित्तके लिये आज्ञा दीजिये।'



श्रीव्यासजीका राजा युधिष्ठिरको अश्मा मुनिका कहा हुआ धर्मोपदेश सुनाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! पाण्डुके ज्येष्ठ पुत्र राजा युधिष्ठिरको अपने सम्बन्धियोंके शोकसे संतप्त होकर प्राण त्यागनेके लिये तैयार देख श्रीव्यासजी उनका शोक दूर करनेके लिये बोले—युधिष्ठिर ! इस विषयमें अश्मा ब्राह्मणका कहा हुआ एक प्राचीन इतिहास है। उसपर ध्यान दो। एक बार विदेहराज जनकने दुःख और शोकके वशीभूत होकर महामति विप्रवर अश्मासे पूछा था कि 'अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको कैसा बर्ताव करना चाहिये ?'

इसपर अश्माने कहा—'राजन् ! यह पुरुष जैसे जन्म लेता है उसके साथ ही दुःख और सुख इसके पीछे लग जाते हैं। वे इसके ज्ञानको उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं, जैसे वायु बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देता है। इसीसे मनुष्यके हृदयमें 'मैं कुलीन हूँ, सिद्ध हूँ, कोई साधारण मनुष्य नहीं हूँ' ये तीन बातें घुस बैठती हैं। इनके नशेमें भरकर वह अपने बाप-दादोंसे प्राप्त हुई पूँजीको लुटाकर कंगाल हो जाता है और फिर दूसरोंके धनपर मन ले जाता है। उसे मर्यादाका कोई खयाल नहीं रहता। वह अनुचित उपायोंसे धन जुटाने लगता है। यह देखकर राजालोग उसे दण्ड देते हैं। इसलिये मनुष्यके ऊपर सुख या दुःख जो कुछ आ पड़े उसे सहना ही चाहिये, क्योंकि उसे दूर करनेका कोई उपाय भी तो नहीं है। अप्रियोंका संयोग, प्रेमियोंका वियोग, इष्ट, अनिष्ट और सुख-दुःख— इनकी प्राप्ति प्रारब्धानुसार ही होती है। इसी प्रकार जन्म-मरण और हानि-लाभ भी दैवाधीन ही हैं। वैद्योंको भी रोगी होते देखा जाता है, बलवान् भी कभी-कभी निर्बल हो जाते हैं तथा श्रीमान् भी कंगाल होते देखे गये हैं। यह कालका उलट-फेर बड़ा ही अद्भुत है। अच्छे कुलमें जन्म, पुरुषार्थ, आरोग्य, रूप, सौभाग्य और ऐश्वर्य—ये सब प्रारब्धसे ही मिलते हैं। जो कंगाल हैं और चाहते भी नहीं हैं, उनके तो कई-कई पुत्र हो जाते हैं और जो सम्पन्न हैं, उन्हें एक भी नसीब नहीं होता; विधाताकी करनी बड़ी ही विचित्र है। रोग, अग्नि, जल, शस्त्र, भूख-प्यास, आपत्ति, विष, ज्वर,

मृत्यु और ऊँची स्थितिसे गिरना—ये सब जीवके जन्मके समय ही निश्चित हो जाते हैं। उसी नियमके अनुसार इसे इन स्थितियोंमें जाना पड़ता है। आजतक न तो कोई इनसे छूट सका है और न अब छूट सकता है। इस प्रकार कालके प्रभावसे जब जीवोंका इष्ट और अनिष्ट पदार्थोंके साथ सम्बन्ध होता है। वायु, आकाश, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, दिन, रात, नक्षत्र, नदी और पर्वतोंको भी कालके सिवा और कौन बनाता और स्थिर रखता है ? सर्दी, गर्मी और वर्षाका चक्र भी कालहीके योगसे चलता है। यही बात मनुष्योंके सुख-दुःखके विषयमें भी है। राजन् ! जब मनुष्यपर मृत्यु या वृद्धावस्थाकी चढ़ाई होती है तो ओषधि, मन्त्र, होम और जप कोई भी उसे बचा नहीं सकते। जिस प्रकार समुद्रमें दो लक्कड़ कभी मिलते और कभी बिछुड़ जाते हैं, इसी प्रकार यहाँ जीवोंका समागम होता है। इस संसारमें हमारे माता-पिता और सैकड़ों स्त्री, पुत्र हो चुके हैं। परंतु सोचो तो वास्तवमें वे किसके हुए और हम अपनेको किसका कहें ? इस जीवका न तो कभी कोई सम्बन्धी हुआ है। और न होगा ही। रास्तेमें चलते हुए बटोहियोंके समान ही हमारा स्त्री, बन्धु और सुहृद्गणसे समागम हो जाता है। अतः विवेकी पुरुषको अपने मनमें इसीपर विचार करना चाहिये कि—मैं कहाँ हूँ ? कहाँ जाऊँगा ? कौन हूँ ? यहाँ किस कारणसे आया हूँ और किस लिये किसका शोक करूँ ? यह संसार अनित्य है और चक्रके समान घूमता रहता है। इसमें माता-पिता, भाई और मित्रोंका समागम रास्तेमें मिले हुए बटोहियोंके समान ही है।

कल्याणकामी पुरुषको चाहिये कि शास्त्राज्ञाका उल्लङ्घन न करके उसमें श्रद्धा रखे, पितरोंका श्राद्ध और देवताओंका पूजन करे, यज्ञोंका अनुष्ठान करे तथा धर्म, अर्थ और कामका सेवन करे। हाय ! यह सारा संसार अगाध कालसमुद्रमें डूबा हुआ है। उसमें जरा-मृत्यु-जैसे विशाल ग्राह भरे हुए हैं, किंतु इसे कुछ होश ही नहीं है। वैद्यलोग भी बड़े कड़वे-कड़वे काढ़े और तरह-तरहके घृत पीते रहते हैं; तो भी, समुद्र जैसे अपने तटका उल्लङ्घन नहीं करता, उसी प्रकार मृत्युको वे भी पार नहीं कर पाते। जो रसायनोंके जाननेवाले वैद्य तरह-तरहके रासायनिक द्रव्योंका सेवन करते रहते हैं, किंतु उन्हें भी बुढ़ापेसे जर्जर होते देखा ही जाता है। इसी प्रकार तपस्वी, स्वाध्याय-शील, दानी और बड़े-बड़े यज्ञ करनेवाले भी जरा और मृत्युको पार नहीं कर सकते। जन्म लेनेवाले सभी जीवोंके दिन-रात, मास-वर्ष और पक्ष एक बार बीतकर फिर कभी नहीं लौटते। मृत्युका यह लंबा रास्ता सभी जीवोंको तय करना पड़ता है। अतः ऐसा कोई भी मरणधर्मा मनुष्य नहीं है, जिसे कालके वशीभूत होकर इसमेंसे निकलना न पड़े। इस मार्गमें स्त्री आदिके साथ जो समागम होता है, वह राहगीरोंके समान कुछ ही क्षणोंका है इनमेंसे किसीके भी साथ मनुष्यका नित्य सहवास नहीं हो सकता। जब अपने शरीरके साथ ही इसका बहुत दिनोंतक सम्बन्ध नहीं रहता तो दूसरे सम्बन्धियोंके साथ तो रह ही कैसे सकता है ? राजन् ! आज तुम्हारे बाप-दादे कहाँ गये ? अब न तो तुम ही उन्हें देखते हो और न वे ही तुम्हें देखते हैं। स्वर्ग और नरकको तो मनुष्य इन नेत्रोंसे देख नहीं सकता। उन्हें देखनेके लिये तो सत्पुरुष शास्त्ररूपी नेत्रोंसे ही काम लेते हैं। अतः तुम शास्त्रके अनुसार ही आचरण करो।

मनुष्यको पहले ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। उसके बाद वह गृहस्थाश्रम स्वीकार करके पितर और देवताओंके ऋणसे मुक्त होनेके लिये संतानोत्पादन और यज्ञानुष्ठान करे। ऐसे सूक्ष्मदर्शी गृहस्थको अपने हृदयका शोक त्यागकर इहलोक, स्वर्गलोक अथवा परमात्माकी आराधना करनी चाहिये। जो राजा शास्त्रानुसार धर्मका आचरण और द्रव्य-संग्रह करता है उसका सम्पूर्ण चराचर लोकमें सुयश फैल जाता है।

व्यासजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! अश्मा मुनिसे इस प्रकार धर्मका रहस्य जानकर राजा जनककी बुद्धि शुद्ध हो गयी, उसका सब मनोरथ पूरा हो गया और वह शोकहीन हो मुनिसे आज्ञा लेकर अपने भवनको चला गया। इसी प्रकार तुम भी शोक त्यागकर खड़े हो जाओ। मनको प्रसन्न करो और शास्त्रधर्मके अनुसार जीते हुए इस पृथ्वीके राज्यको भोगो।



श्रीकृष्णका नारदजीद्वारा सृञ्जयके प्रति कहे हुए अनेकों राजाओंके दृष्टान्त सुनाकर राजा युधिष्ठिरको समझाना

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! व्यासजीका यह उपदेश सुनकर राजा युधिष्ठिरने कुछ भी नहीं कहा। उन्हें चुप देखकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, 'माधव ! धर्मराज युधिष्ठिर बन्धुओंके शोकसे अत्यन्त पीड़ित हैं; ये शोकसागरमें डूबे जा रहे हैं। आप उन्हें ढाढस बँधाइये।'

अर्जुनके इस प्रकार कहनेपर कमलनयन श्रीकृष्ण राजा

युधिष्ठिरके पास जाकर बैठ गये। धर्मराज श्रीकृष्णकी बात टाल नहीं सकते थे; क्योंकि बचपनसे ही श्रीकृष्णके प्रति



उनकी अर्जुनसे भी बढ़कर प्रीति थी। तब श्रीश्यामसुन्दरने उनका हाथ पकड़कर उन्हें अपने वचनोंसे प्रसन्न करते हुए कहा—'राजन्! अब आप शोक न करें। यह आपके शरीरको सुखाये देता है। जो लोग इस रणाङ्गणमें मारे गये हैं, उनका मिलना तो अब सम्भव है नहीं। जिस प्रकार जगनेपर स्वप्नमें प्राप्त होनेवाले सब लाभ व्यर्थ हो जाते हैं, उसी प्रकार इस महायुद्धमें जो क्षत्रिय मारे गये उन्हें तो तुम गये हुए ही समझो। उन सभीने बड़े-बड़े वीरोंके साथ लोहा लेकर अपने प्राण त्यागे हैं। शस्त्रोंसे मारे जानेके कारण वे सब स्वर्गको ही गये हैं। आप उनके लिये शोक न करें। वे सभी बड़े शूरवीर, क्षात्रधर्ममें तत्पर रहनेवाले और वेद-वेदाङ्गोंके पारदर्शी थे। उन्होंने वीरोंके योग्य उत्तम गति पायी है; इसलिये आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। इस विषयमें मैं आपको एक प्राचीन प्रसंग सुनाता हूँ।

एक बार राजा सृञ्जय पुत्रशोकमें डूबे हुए थे। उस समय उनसे श्रीनारदजीने कहा—'सृञ्जय! सुख-दुःखसे तो मैं, तुम और सारी प्रजामेंसे कोई भी छूटा हुआ नहीं है; इसलिये इसके लिये क्या शोक किया जाय। तुम अपने शोकको शान्त करो और मैं जो बात कहता हूँ उसपर ध्यान दो। यह प्राचीन राजाओंका बड़ा मनोहर प्रसंग है। इसे सुननेसे क्रूर ग्रहोंका शमन होता है और आयुकी वृद्धि होती है।

राजन्! हमलोग सुनते ही हैं कि राजा सुहोत्र मर गया। वह बड़ा ही अतिथिसेवी था। इन्द्रने एक सालतक उसके राज्यमें सुवर्णकी वर्षा की थी। उसके राज्यकालमें पृथ्वीका वसुमती नाम चरितार्थ हो गया था। नदियोंमें भी उस समय सुवर्ण ही बहता था। इन्द्रने उनके कछुए, कैंकड़े, नाके, मगर और शिंशुकोंको भी सोनेका कर दिया था। राजा सुहोत्रने उस सारे सुवर्णको कुरुजाङ्गल देशमें इकट्ठा कराया और एक भारी यज्ञका आयोजन करके उसे ब्राह्मणोंको दे दिया। सृञ्जय! वह अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारोंहीमें तुम्हारी अपेक्षा श्रेष्ठ था और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यवान् था। किंतु अन्तमें मर वह भी गया; इसलिये तुम्हें अपने पुत्रका शोक नहीं करना चाहिये।

'सृञ्जय! उशीनरके पुत्र शिविके मरनेकी बात भी हमने सुनी ही है। प्रजापति ब्रह्माजी भी राज्यका भार सँभालनेमें उसके समान किसी दूसरे भूत या भावी राजाको नहीं समझते थे। तुम्हारा पुत्र तो न दक्षिणा देनेवाला था और न यज्ञ करनेवाला। तुम्हारी तथा तुम्हारे पुत्रकी अपेक्षा तो वह अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों बातोंमें बढ़-चढ़कर था। किंतु वह भी मर ही गया; इसलिये तुम अपने पुत्रके लिये शोक न करो।

'दुष्यन्तके पुत्र भरतने हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ किये थे। वह भी तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे अर्थादि चारों बातोंमें बढ़ा-चढ़ा था। किंतु वह भी कालके गालमें चला ही गया; इसलिये तुम अपने लड़केके लिये शोक मत करो।

'सृञ्जय! सुना जाता है कि दशरथनन्दन राम प्रजाको अपनी संतानके समान पालते थे। उनके राज्यमें कोई भी स्त्री विधवा या अनाथा नहीं थी, मेघ समयपर वर्षा करते थे, समयपर अन्न पकता था और सर्वदा सुकाल रहता था। उस समय कोई जीव पानीमें डूबकर नहीं मरता था, किसीको आगसे कष्ट नहीं पहुँचता था और रोगोंका भी कोई भय नहीं था। स्त्री और पुरुषोंकी सहस्रों वर्षकी आयु होती थी, विवाद तो स्त्रियोंमें भी नहीं होता था, पुरुषोंकी तो बात ही क्या? प्रजा सर्वदा धर्ममें तत्पर रहती थी और सब लोग संतुष्ट, पूर्णकाम, निर्भय, स्वेच्छानुसार आचरण करनेवाले एवं सत्यवादी थे। जबतक उन्होंने राज्य किया, वृक्ष सर्वदा फल-फूलोंसे लदे रहे और गौएँ दोहनी भरकर दूध देती रहीं। उन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले दस अश्वमेध यज्ञ किये थे, जिनमें आने-जानेके लिये किसीको भी रोक-टोक नहीं थी।

महाबाहु राम नित्यनवयौवनशाली, श्यामवर्ण, अरुणनयन, आजानुबाहु, सुन्दर मुखवाले और सिंहके समान कंधोंवाले थे। उन्होंने ग्यारह हजार वर्षोंतक अयोध्याका राज्य किया था। जब वे भी परलोक सिधार गये तो तुम्हारे पुत्रकी तो बात ही क्या है ? तुम उसके लिये शोक न करो।

हम सुनते हैं, राजा भगीरथ भी नहीं रहा। उसने यज्ञानुष्ठान करते समय सुवर्णके आभूषणोंसे लदी हुई दस लाख कन्याएँ दक्षिणामें दान कर दी थीं। उनमेंसे प्रत्येक कन्या रथमें बैठी हुई थी, प्रत्येक रथमें चार-चार घोड़े थे और उसके पीछे सुवर्ण तथा कमलकी मालाओंसे विभूषित सौ-सौ हाथी थे, एक-एक हाथीके पीछे हजार-हजार घोड़े चल रहे थे तथा एक-एक घोड़ेके पीछे हजार-हजार गौएँ और प्रत्येक गौके साथ एक-एक हजार भेड़ और बकरियाँ थीं। तीनों लोकोंमें प्रवाहित होनेवाली गङ्गाजी उनकी पुत्री होकर प्रकट हुई थीं। इसीसे वे भागीरथी कहलायीं। किंतु देखो, वे भी मर ही गये। इसलिये अपने पुत्रके लिये तुम शोक मत करो।

'सृञ्जय ! सुना जाता है, राजा दिलीप भी जीवित नहीं रहे। उनके महान् कर्मोंका तो ब्राह्मणलोग अबतक बखान करते हैं। उन्होंने जब यज्ञानुष्ठान किया था तो इन्द्रादि देवताओंने प्रत्यक्ष होकर उसमें भाग लिया था। उनके यज्ञपात्र और यूप भी सोनेके थे तथा उनके यज्ञोत्सवमें छः हजार देवता और गन्धर्वोंने सातों स्वरोंके अनुसार नृत्य किया था। जिन लोगोंने उन सत्यवादी महात्मा दिलीपका दर्शन किया था वे भी स्वर्गके अधिकारी हो गये थे। उनके राजमहलोंमें वेदध्वनि, धनुषकी प्रत्यञ्चाकी टंकार और याचकोंका कोलाहल—ये तीन शब्द कभी बंद नहीं होते थे। किंतु मृत्युने उन्हें भी नहीं छोड़ा, इसलिये तुम अपने पुत्रके लिये शोक मत करो।

'युवनाश्वके पुत्र राजा मान्धाता भी मर ही गये। उनके पिताने भूलसे यज्ञका अभिमन्त्रित जल पी लिया था। इसीसे उन्होंने पिताके उदरसे ही जन्म लिया। वे बड़े ही वैभवशाली और त्रिलोकविजयी थे। उनका रूप साक्षात् देवताओंके समान था। उन्हें राजा युवनाश्वकी गोदमें लेटा देखकर देवताओंमें आपसमें चर्चा होने लगी कि यह बालक किसका स्तनपान करेगा ? तब इन्द्रने कहा 'मां धाता' (मेरा दूध पियेगा)। ऐसा कहकर उन्होंने उसका नाम 'मान्धाता' रख दिया। इसी समय इन्द्रके हाथसे दूधकी धारा निकलने लगी और उसे उन्होंने उस बालकके मुँहमें छोड़ा। उसे पीनेसे वह एक ही दिनमें सौ पल बढ़ गया और बारह दिनमें ही बारह वर्षका-सा जान पड़ने लगा। यह बालक बड़ा ही धर्मात्मा, शूरवीर और युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी हुआ। इसने राजा अङ्गार, मरुत्त, गय, अङ्ग और बृहद्रथको भी परास्त कर दिया था। सूर्यके उदयस्थानसे लेकर अस्त होनेके स्थानतक सारा देश राजा मान्धाताके ही अधिकारमें था। उन्होंने सौ अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ किये थे तथा दस योजन लंबे और एक योजन ऊँचे सोनेके मत्स्य बनवाकर ब्राह्मणोंको दान किये थे। किंतु आज उन परमप्रतापी मान्धाताका भी कहीं नाम निशान नहीं है। फिर तुम अपने पुत्रके लिये क्यों शोक करते हो ?

'सृञ्जय ! नाभागके पुत्र राजा अम्बरीष अब नहीं रहे हैं—यह बात भी सुनी ही जाती है। उन्होंने बड़ा भारी यज्ञ करके ब्राह्मणोंका ऐसा सत्कार किया था कि वे उनकी सराहना करते हुए यही कहते थे कि 'ऐसा यज्ञ न तो पहले किसीने किया है और न भविष्यमें ही कोई करेगा।' उस यज्ञमें जिन लाखों राजाओंने सेवाकार्य किया था, वे सभी अश्वमेध यज्ञका फल भोगनेके लिये उत्तरायणमार्गसे हिरण्यगर्भलोकमें गये थे; किंतु कराल कालने उन्हें भी नहीं छोड़ा, इसलिये तुम अपने पुत्रका शोक त्याग दो।

'राजन् ! हम सुनते हैं कि चित्ररथका पुत्र शशबिन्दु भी मर गया। उसके एक लाख रानियाँ थीं। उनसे उसके दस लाख पुत्र उत्पन्न हुए थे। प्रत्येक राजकुमारको सौ-सौ कन्याएँ विवाही थीं। प्रत्येक कन्याके पीछे सौ-सौ हाथी थे और एक-एक हाथीके साथ सौ-सौ रथ थे। एक-एक रथके पीछे सौ-सौ घोड़े थे और एक-एक घोड़ेके पीछे सौ-सौ गौएँ थीं। इसी क्रमसे एक-एक गौके पीछे सौ-सौ भेड़ें दहेजमें मिली थीं। किन्तु महाराज शशबिन्दुने एक अश्वमेध यज्ञमें यह सारा धन ब्राह्मणोंको दान कर दिया था। तुमसे तो वह राजा अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों बातोंमें बढ़ा-चढ़ा था। वह भी मृत्युके मुखमें चला ही गया; इसलिये तुम यह पुत्रशोक त्याग दो।

'सृञ्जय ! अमूर्त्तरयाके पुत्र गयकी मृत्युके विषयमें भी हम सुनते ही हैं। एक बार यज्ञमें अग्निदेव उनसे प्रसन्न हुए और उनसे वर माँगनेको कहा। तब गयने कहा कि 'अग्निदेव ! आपकी कृपासे मेरे पास अक्षय धन हो, धर्ममें मेरी श्रद्धा रहे और सत्यमें मनका अनुराग हो।' इस प्रकार अग्निदेवकी कृपासे उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो गये। उन्होंने हजार वर्षतक पूर्णिमा, अमावस्या और चातुर्मास्यमें अनेकों बार अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया और हजार वर्षतक ही नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर एक-एक लाख गौएँ और सौ-सौ खच्चर ब्राह्मणोंको दान किये। किन्तु अन्तमें

कालने उन्हें भी नहीं छोड़ा, इसलिये तुम अपने पुत्रका शोक त्याग दो।

'राजन् ! इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न हुए राजा सगर अब संसारमें नहीं हैं—यह हम सुनते ही हैं। इनके साठ हजार पुत्र थे, जो उनके पीछे-पीछे चलते थे। अपने बाहुबलसे उन्होंने इस पृथ्वीपर एकच्छत्र राज्य स्थापित किया था और हजार अश्वमेध यज्ञ करके देवताओंको तृप्त किया था। उन यज्ञोंमें उन्होंने ब्राह्मणोंको सोनेके महल दान किये थे। उन्होंने समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वी खुदवा डाली थी तथा उनके नामके अनुसार ही समुद्रका 'सागर' नाम पड़ा है। परंतु अन्तमें वे भी मर ही गये; इसलिये तुम अपने पुत्रके लिये शोक न करो।

'सृञ्जय ! वेनके पुत्र राजा पृथुका देह भी आज नहीं है। महर्षियोंने महान् वनके बीचमें इनका राज्याभिषेक किया था और यह सोचकर कि ये सब लोकोंमें धर्मकी मर्यादा प्रथित (स्थापित) करेंगे, उनका नाम 'पृथु' रखा था। उन्हें देखकर सभी प्रजाने एक स्वरसे कहा था कि हम इनसे प्रसन्न हैं। इस प्रकार प्रजाका रञ्जन करनेके कारण ही वे 'राजा' कहलाये। जिस समय वे राज्य करते थे, पृथ्वी बिना जोते ही धान्य उत्पन्न करती थी, ओषधियोंके पुट-पुटमें रस था और सभी गौएँ दोहनी भरकर दूध देती थीं। मनुष्य नीरोग, पूर्णकाम और निर्भय थे। वे इच्छानुसार खेतों या घरोंमें रहते थे। जिस समय राजा समुद्रके पास जाते थे, उसका जल स्थिर हो जाता था और नदियाँ बहना बंद कर देती थीं। उन्होंने एक अश्वमेध महायज्ञ करके उसमें ब्राह्मणोंको सोनेके इक्कीस पर्वत दान किये थे। किंतु अन्तमें उन्हें भी कालका ग्रास बनना पड़ा, इसलिये तुम अपने पुत्रका शोक छोड़ दो।' इस प्रकार उपदेश देकर नारदजीने पूछा 'राजन् ! तुम चुपचाप क्या सोच रहे हो ! क्या मेरी बातोंपर तुमने कुछ भी ध्यान नहीं दिया ? मैंने जो कुछ कहा है वह व्यर्थ ही नहीं है।'

सृञ्जयने कहा—महर्षे ! आपका उपदेश व्यर्थ नहीं हुआ है। आपका दर्शन करके मेरा सारा शोक दूर हो गया है। आपकी बातें सुननेकी मेरी लालसा अभी शान्त नहीं हुई है, अमृतपानके समान उसके लिये मेरी उत्कण्ठा बनी ही हुई है। फिर भी मेरी ऐसी इच्छा है कि एक बार आपकी कृपासे पुत्रके साथ मेरा समागम हो जाय।

नारदजी बोले—राजन् ! महर्षि पर्वतने तुम्हें सुवर्णष्ठीवी नामका पुत्र दिया था। वह तो अब नष्ट हो चुका। इसके स्थानपर मैं तुम्हें हजार वर्षतक जीवित रहनेवाला हिरण्यनाभ नामका दूसरा पुत्र देता हूँ।

श्रीकृष्णकी यह बात समाप्त होनेपर नारदजीने भी उनके कथनका अनुमोदन किया और राजा युधिष्ठिरको सुवर्णष्ठीवीका सारा चरित्र सुनाकर कहा कि 'राजन् ! जब सृञ्जयने अपने मृतपुत्रको जीवित करनेके लिये बहुत आग्रह किया तो मैंने उसे सजीव कर दिया। इससे उसके माता-पिताको बड़ी प्रसन्नता हुई। कालान्तरमें पिताका स्वर्गवास होनेपर सुवर्णष्ठीवीने ग्यारह सौ वर्षतक पृथ्वीपर राज्य किया। इसके बाद वह स्वर्ग सिधारा। धर्मराज ! अब तुम भी अपने हृदयका संताप दूर कर दो और श्रीकृष्ण एवं



व्यासजीके कथनानुसार अपने पैतृक राजसिंहासनपर बैठकर शासनका भार सँभालो। यह सब करते हुए यदि तुम बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करोगे तो अपने अभीष्ट लोक प्राप्त कर लोगे।'



श्रीव्यासजीका राजा युधिष्ठिरको राजधर्मका उपदेश देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! नारदजीकी बात सुनकर राजा युधिष्ठिर चुप हो गये। उस समय उन्हें शोकग्रस्त देखकर सब प्रकारके धर्मका रहस्य जाननेवाले महर्षि व्यासने कहा, 'युधिष्ठिर ! राजाओंका धर्म तो प्रजाओंका पालन करना ही है। इसलिये तुम अपना पैतृक राजसिंहासन स्वीकार करो। वेदोंने तपको तो ब्राह्मणोंका ही नित्य धर्म बताया है। क्षत्रिय तो सब प्रकारके धर्मकी रक्षा करनेवाला ही है। जो मनुष्य विषयासक्त होकर धर्मविधिका उल्लङ्घन करता है, वह लोकमर्यादाका विघातक है, क्षत्रियको अपने बाहुबलसे उसका दमन करना चाहिये। जो व्यक्ति मोहवश शास्त्र-प्रमाणको न माने वह अपना सेवक हो, पुत्र हो, तपस्वी हो अथवा कोई भी क्यों न हो, उस पापीका सब प्रकार दमन करे और उसे नष्ट कर दे। जो राजा इसके विपरीत आचरण करता है, उसे पाप लगता है। जो राजा नष्ट होते हुए धर्मकी रक्षा नहीं करता, वह धर्मका घात करनेवाला है। तुमने तो अनुयायियोंसहित उन धर्म-घातियोंका ही नाश किया है; इसलिये तुम तो अपने धर्ममें ही स्थित हो, फिर शोक क्यों करते हो ? राजाका तो यही धर्म है कि दुष्टोंका वध करे, सुपात्रोंको दान दे और प्रजाकी रक्षा करे।'

राजा युधिष्ठिरने कहा—तपोधन ! आप सभी धर्मज्ञोंमें शिरोमणि हैं। आपके लिये धर्म सर्वदा प्रत्यक्ष है। आपके वचनोंमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं है; किंतु भगवन् ! इस राज्यके लिये मैंनें अनेकों अवध्य पुरुषोंका वध करा डाला है, मेरे वे ही कर्म मुझे जला रहे हैं।

व्यासजी बोले—राजन् ! उद्धत पुरुषोंको दण्ड देना तो राजाका कर्तव्य ही है। इसी नियमके अनुसार तुमने कौरवोंको मारा है। इसलिये अब तुम मनको शोकग्रस्त न करो। सदोष मालूम होनेपर भी अपने धर्मका पालन करते हुए तुम्हें इस प्रकारकी आत्म-ग्लानि शोभा नहीं देती। शास्त्रोंमें जो पापकर्मोंके प्रायश्चित्त बताये हैं, उन्हें भी शरीरधारी ही कर सकता है, शरीर छोड़ देनेपर तो वे भी नहीं किये जा सकते। अतः राजन् ! यदि तुम जीवित रहोगे तो अपने पापका प्रायश्चित्त कर सकोगे। प्रायश्चित्त किये बिना ही यदि शरीर छूट गया तो तुम्हारे हाथ केवल पश्चात्ताप ही लगेगा।

युधिष्ठिरने कहा—दादाजी ! मैंने राज्यके लोभसे अपने पुत्र, पौत्र, भाई, चाचा, ससुर, गुरु, मामा, दादा, अनेकों वीर क्षत्रिय, सम्बन्धी, सुहृद्, समवयस्क, भानजे, जातिभाई और भिन्न-भिन्न देशोंसे आये हुए राजाओंका वध करा डाला है। उसका मुझे क्या दण्ड मिलेगा ? इस चिन्तासे मैं रात-दिन बार-बार जलता रहता हूँ। जब मैं पृथ्वीको उन श्रीसम्पन्न नृपश्रेष्ठोंसे सूनी देखता हूँ और इस भयानक जातिवध तथा इसमें मारे गये सैकड़ों शत्रुपक्षके वीरों और करोड़ों दूसरे लोगोंकी याद करता हूँ तो मुझे बड़ा ही पश्चात्ताप होता है। आह ! आज जो अबलाएँ अपने पुत्र, पति और भाइयोंसे शून्य हो गयी हैं, उनकी क्या दशा होगी ? वे उनका नाश करनेवाले हम पाण्डव और यादवोंको कोस रही होंगी और अत्यन्त दीन होकर पृथ्वीपर पछाड़े खा रही होंगी। विप्रवर ! उन स्त्रियोंका अपने मृत सम्बन्धियोंके प्रति जैसा प्रेम है, उससे मुझे तो यही निश्चय होता है कि वे सब निःसन्देह प्राण त्याग देंगी। धर्मकी गति बड़ी सूक्ष्म है, अतः इस प्रकार हमें स्त्रीवधका ही पाप लगेगा। अपने सुहृदोंको मारकर हमने बड़ा भारी पाप किया है; इसलिये अब हमें सिर नीचा किये नरकमें ही गिरना पड़ेगा। अतः अब हम भीषण तपस्या करके अपने शरीरको त्याग देंगे। आपकी दृष्टिमें तपस्याके योग्य कोई उत्तम तपोवन हो तो बतानेकी कृपा करें।

व्यासजीने कहा— राजन् ! तुम क्षत्रियोंमें अग्रगण्य हो। तुमने अपने धर्मके अनुसार ही इन क्षत्रियोंको मारा है, इसलिये तुम शोक न करो। वे सब तो अपने ही अपराधसे मारे गये हैं। तुम, भीम, अर्जुन या नकुल-सहदेव उन्हें मारनेवाले नहीं हो। इनका संहार तो कालने ही किया है। उसका तो न कोई माता है न पिता, वह किसीपर दया भी नहीं करता, वह तो प्रजाके कर्मोंका साक्षीमात्र है। तुम्हारा युद्ध तो उसके लिये केवल निमित्तमात्र था। वह इसी प्रकार एक प्राणीसे दूसरेकी हत्या कराता रहता है। इस संहारकर्मके लिये वह एक भगवान्का ही स्वरूप है। इसके सिवा, तुम्हें कौरवोंके विनाशकारी कर्मोंपर भी ध्यान देना चाहिये, जिनके कारण उन्हें कालके गालमें जाना पड़ा है। जिस प्रकार लोहारका बनाया हुआ यन्त्र अपना काम करनेमें उसके अधीन रहता है, उसी प्रकार यह सारा जगत् कालाधीन कर्मकी प्रेरणासे प्रवृत्त हो रहा है। फिर भी तुम्हारे चित्तमें जो इन सबको मरवानेसे व्यर्थ संताप हो रहा है, उसके दोषसे छूटनेके लिये तुम प्रायश्चित्त कर लो। राजन् ! यह बात सुनी ही जाती है कि पूर्वकालमें राजलक्ष्मीके लिये ही देवता और

असुरोंमें बारह हजार वर्षोंतक युद्ध हुआ था। उसमें देवताओंने दैत्योंका संहार करके स्वर्ग और पृथ्वीका आधिपत्य प्राप्त किया था। जो लोग धर्मका नाश करना चाहते हैं और अधर्मको फैलानेवाले हैं, उन्हें मार ही डालना चाहिये। इसीसे देवताओंने उस युद्धमें अट्ठासी हजार शालावृक नामके दैत्योंको भी मार डाला था। यदि एक पुरुषको मारकर कुटुम्बके शेष व्यक्तियोंको सुख मिले अथवा एक कुटुम्बका सफाया करनेसे देशमें शान्ति स्थापित हो तो उसे नष्ट करनेमें कोई दोष नहीं है। राजन्! किसी समय अधर्म दिखायी देनेवाला कर्म ही धर्म हो जाता है और धर्म दिखायी देनेवाला अधर्म बन जाता है। इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुषको धर्म और अधर्मका रहस्य अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। धर्मराज! तुमने शास्त्र श्रवण किया है, इसलिये धर्माधर्मके विषयमें अपनी बुद्धि स्थिर रखो। देखो, पूर्वकालमें देवताओंका जो धर्ममार्ग था, उसीका तुमने भी अनुसरण किया है। तुम जैसे धर्मप्राण पुरुष कभी नरकका द्वार नहीं देखते। इसलिये तुम अपने भाइयोंको और सुहृद्-सम्बन्धियोंको धैर्य दो। जो पुरुष हृदयमें पापकी भावना रखकर किसी कुकर्ममें प्रवृत्त होता है और उसे करके भी किसी प्रकार लज्जित नहीं होता, उसीको पापका भागी होना पड़ता है—ऐसा शास्त्रका कथन है। ऐसे पापका न कोई प्रायश्चित्त है और न कभी नाश ही होता है। तुम्हारा हृदय तो शुद्ध था। युद्धकी इच्छा न होनेपर भी शत्रुके अपराधके कारण तुम्हें युद्ध करना पड़ा और अब इस कर्मको करके पश्चात्ताप भी कर रहे हो। इसके लिये अश्वमेध यज्ञ बड़ा अच्छा प्रायश्चित्त है। उसका अनुष्ठान करो तुम निष्पाप हो जाओगे। इन्द्रने भी मरुतोंकी सहायतासे अपने शत्रुओंको परास्त करके एकके बाद एक—इस प्रकार सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। इसीसे वे 'शतक्रतु' नामसे प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार स्वर्गपर आधिपत्य प्राप्त करके उन्होंने पापोंसे छुटकारा पाया था। स्वर्गलोकमें देवता और ऋषि भी उसकी उपासना करते हैं। तुमने भी इस वसुन्धराको अपने पराक्रमसे प्राप्त किया है और अपने बाहुबलसे ही तुमने राजाओंको परास्त किया है। अब तुम अपने मित्रोंके साथ उनके देश और राजधानियोंमें जाकर उनके भाई, पुत्र या पौत्रोंको अपने-अपने राज्यपर अभिषिक्त करो। जिन राजाओंके उत्तराधिकारी अभी गर्भहीमें हैं, उनकी प्रजाको समझा-बुझाकर सान्त्वना दो। इस प्रकार सभी प्रजाका मनोरञ्जन करते हुए पृथ्वीका पालन करो। जिन राजाओंके पुत्र नहीं हैं, उनकी गद्दीपर पुत्रीका ही अभिषेक कर दो। भरतश्रेष्ठ! इस तरह सारे राज्यमें शान्ति स्थापित कर तुम असुरविजयी इन्द्रके समान अश्वमेधयज्ञद्वारा भगवान्‌का यजन करो। राजन्! इस युद्धमें जो क्षत्रिय मारे गये हैं, उनके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। वे तो कालकी शक्तिसे मोहित होकर अपने ही कुकर्मोंके कारण मौतके मुखमें पड़े हैं। उन्हें क्षात्रधर्मके पालनका पूरा फल प्राप्त हुआ है। तुम्हें यह निष्कण्टक राज्य मिला है। इसका पालन करते हुए तुम धर्मकी रक्षा करो। मरनेपर कल्याण करनेवाली यही चीज है।



पाप और उनके प्रायश्चित्तोंका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! कृपा करके यह बताइये कि किन कर्मोंको करनेसे मनुष्य प्रायश्चित्तका भागी बनता है और ऐसी स्थितिमें क्या करनेसे वह पापसे मुक्त होता है?

व्यासजीने कहा—जो मनुष्य शास्त्रविहित कर्मोंका आचरण न करके निषिद्ध कर्म कर बैठता है, उसे ऐसा विपरीत आचरण करनेसे प्रायश्चित्तका भागी बनना पड़ता है। जो ब्रह्मचारी सूर्योदय या सूर्यास्तके समय सोता रहे अथवा जिस पुरुषके नख या दाँत काले हों* उन्हें प्रायश्चित्त करना चाहिये। इसके सिवा बड़े भाईके अविवाहित रहते हुए विवाह करनेवाला छोटा भाई, ब्राह्मणका वध करनेवाला, निन्दक, छोटी कन्याका विवाह हो जानेके बाद उसकी बड़ी बहिनसे विवाह करनेवाला, बड़ी बहिनके अविवाहित रहते हुए उसकी छोटी बहिनसे विवाह करनेवाला, जिसका व्रत नष्ट हो गया हो वह ब्रह्मचारी, द्विजकी हत्या करनेवाला, अपात्रको दान देनेवाला, सुपात्रको दान न देनेवाला, सारे ग्रामको नष्ट करनेवाला मांस बेचनेवाला, आग लगानेवाला, वेतन लेकर वेद पढ़ानेवाला गुरु और स्त्रीका वध करनेवाला, दूसरोंका घर जलानेवाला, झूठ बोलकर पेट पालनेवाला, गुरुका अपमान और सदाचारकी मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाला—ये सभी पापी माने जाते हैं, इन्हें प्रायश्चित्त करना चाहिये।

इनके सिवा, जो लोक और वेदसे विरुद्ध दूसरे न करने योग्य कर्म हैं, उन्हें भी बताता हूँ, तुम एकाग्रचित्तसे सुनो। अपने धर्मको त्यागना, दूसरेके धर्मका आचरण करना, यज्ञ करनेके अनधिकारीसे यज्ञ कराना, अभक्ष्य भक्षण करना,

* क्योंकि 'स्वर्णहारी तु कुनखी सुरापः श्यावदन्तकः' इस स्मृतिके अनुसार वे पूर्वजन्ममें क्रमशः सुवर्णकी चोरी करनेवाले और शराबी होते हैं।

शरणागतको त्यागना, माता-पिता और भरण-पोषणके अधिकारी सेवक आदिका भरण-पोषण न करना, दूध-दही आदि रसोंको बेचना, पशु-पक्षियोंको मारना, शक्ति रहते हुए भी अग्न्याधान आदि कर्म न करना, गोग्रास आदि नित्य दानोंको न देना, ब्राह्मणोंको दक्षिणा न देना और ब्राह्मणोंका धन छीन लेना—धर्मतत्त्वके जाननेवालोंने ये सभी कर्म न करनेयोग्य बताये हैं।

राजन्! जो पुरुष पिताके साथ झगड़ा करता है, गुरु-स्त्रीके साथ समागम करता है और ऋतुकाल होनेपर अपनी स्त्रीके साथ सहवास नहीं करता, वह धर्मका त्याग करनेवाला है। इस प्रकार संक्षेप और विस्तारसे ऊपर जो कर्म कहे गये हैं, इनमेंसे किन्हींको करनेपर और किन्हींको न करनेपर मनुष्य प्रायश्चित्तका भागी होता है। अब, जिन-जिन कारणोंसे इन कर्मोंको करनेपर भी मनुष्यको पाप नहीं लगता वह सुनो। यदि युद्धस्थलमें कोई वेद-वेदान्तोंका पारगामी ब्राह्मण भी हाथमें हथियार लेकर मारनेके लिये आवे तो उसका वध करनेसे ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगता। राजन्! इस विषयमें वेदका मन्त्र भी है। मैं तुमसे वही बात कह रहा हूँ जो वेद-वाक्यके अनुसार धर्म मानी गयी है। यदि कोई पुरुष अपने धर्मसे डिगे हुए आततायी ब्राह्मणको मार डाले तो इससे भी वह ब्रह्महत्यारा नहीं होता। अनजानमें अथवा प्राणसंकटके समय भी यदि मदिरा पान कर ले तो बादमें धर्मात्माओंकी आज्ञाके अनुसार उसका पुनः संस्कार होना चाहिये। इसी प्रकार अन्य सब अभक्ष्य-भक्षणोंके विषयमें भी समझना चाहिये। यदि कभी ऐसी कोई भूल हो जाय तो प्रायश्चित्तसे ही उसकी शुद्धि होती है।

चोरी सर्वदा निषिद्ध ही है, किंतु आपत्तिके समय यदि गुरुके लिये चोरी की जाय तो उसमें दोष नहीं है। यदि चोरी करनेमें किसी प्रकारकी कामना न हो, उससे प्राप्त हुई वस्तुको स्वयं न भोगा जाय तथा आपत्कालमें ब्राह्मणके सिवा किसी अन्यका धन ले लिया जाय तो भी चोरीका पाप नहीं लगता। अपने या किसी दूसरेके प्राणोंकी रक्षाके लिये, गुरुके लिये, एकान्तमें स्त्रीके साथ अथवा विवाहके प्रसङ्गमें झूठ बोलनेसे भी पाप नहीं होता। यदि किसी कारणसे स्वप्नमें वीर्य स्खलित हो जाय तो इससे ब्रह्मचारीका व्रत भंग नहीं होता, किंतु इसके लिये उसे प्रज्वलित अग्निमें घृतकी आहुतियाँ छोड़कर प्रायश्चित्त करना चाहिये। यदि बड़ा भाई पतित हो जाय या संन्यास ले ले तो छोटे भाईको विवाह करनेमें भी दोष नहीं है। अज्ञानवश किसी अपात्र ब्राह्मणको दान देनेसे तथा योग्य ब्राह्मणका सत्कार न करनेसे भी कोई दोष नहीं लगता। व्यभिचारिणी स्त्रीका तिरस्कार करनेमें भी कोई दोष नहीं है। ऐसा करनेसे तो उसकी शुद्धि ही होती है और उसका भरण-पोषण करनेवालेको दोष भी नहीं होता। जो सेवक काम-काज करनेमें असमर्थ है, उसे त्यागनेमें दोष नहीं है तथा गौओंके लिये वनमें आग लगानेमें भी दोष नहीं माना जाता। राजन्! ये सब तो मैंने वे कर्म बताये जिन्हें करनेसे कोई दोष नहीं होता। अब मैं विस्तारपूर्वक प्रायश्चित्तोंका वर्णन करता हूँ।

राजन्! कृच्छ्र-चान्द्रायणादि तप, अग्निहोत्रादि कर्म और दानके द्वारा मनुष्य तभी अपने पापसे छूट सकता है, जब वह फिर पापमें प्रवृत्त न हो। यदि किसीने ब्रह्महत्या की हो तो वह भिक्षा माँगकर एक समय भोजन करे, अपना सब काम स्वयं ही करे, हाथमें खप्पर और खट्वाङ्ग (खाटका पाया) रखे, नित्य ब्रह्मचर्यव्रतसे रहे, भिक्षा माँगनेके समय सर्वदा खड़ा रहे, किसीसे ईर्ष्या न करे, पृथ्वीपर शयन करे और लोकमें अपने कर्मको प्रकट करे। इस प्रकार बारह वर्षतक करनेसे उसकी शुद्धि हो जाती है। अथवा अपनी इच्छासे किसी शस्त्रधारी विद्वान्‌का निशाना बन जाय या जलती हुई आगमें गिरे अथवा नीचेको सिर किये किसी भी वेदका पाठ करते हुए तीन बार सौ-सौ योजनकी यात्रा करे या किसी वेदज्ञ ब्राह्मणको अपना सर्वस्व समर्पण कर दे, अथवा जिससे जीवनभर निर्वाह हो सके इतना धन या सब सामानसे भरा हुआ घर ब्राह्मणको दान करे। इस प्रकार गौ और ब्राह्मणोंकी रक्षा करनेवाले पुरुषकी ब्रह्महत्यासे मुक्ति हो सकती है। यदि कृच्छ्रव्रतके अनुसार भोजन करे तो छः वर्षोंमें, मासिक कृच्छ्रव्रतके अनुसार भोजन करनेसे तीन वर्षोंमें और एक-एक मासमें भोजनक्रमका परिवर्तन करते हुए अत्यन्त तीव्र कृच्छ्रव्रतके अनुसार अन्न ग्रहण करे तो एक वर्षमें ब्रह्महत्यासे छुटकारा हो सकता है।'* इसमें तनिक भी संदेह नहीं करना

* तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल और तीन दिन बिना माँगे जो मिल जाय वह खा लेना तथा तीन दिन उपवास करना—इस प्रकार बारह दिनका कृच्छ्रव्रत होता है। इसी क्रमसे छः वर्षतक रहनेसे ब्रह्महत्या छूट सकती है। यही क्रम यदि तीन-तीन दिनमें परिवर्तित न होकर सम मासोंमें एक-एक सप्ताहमें और विषम मासोंमें आठ-आठ दिनोंमें बदलते हुए एक-एक मासके कृच्छ्रव्रतके अनुसार चले तो तीन वर्षोंमें शुद्धि हो जायगी और यदि एक मास प्रातःकाल, एक मास सायंकाल और एक मास अयाचित भोजन तथा एक मास उपवास—इस प्रकार चार-चार मासके कृच्छ्रव्रतके अनुसार चले तो एक ही वर्षमें ब्रह्महत्याका पाप छूट सकता है। — [नीलकण्ठी]

चाहिये। इसी प्रकार यदि उपवास ही किया जाय तो और भी जल्दी शुद्धि हो सकती है। इसके सिवा अश्वमेध यज्ञसे भी निःसंदेह यह पाप छूट सकता है। श्रुतिका कथन है कि जो इस प्रकारके लोग अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान करते हैं वे सभी सब प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। जो पुरुष ब्राह्मणके लिये युद्धमें प्राण दे देता है, वह भी ब्रह्महत्यासे छूट जाता है। ब्रह्महत्यारा होनेपर भी जो सुपात्र ब्राह्मणोंको एक लाख गौएँ दान देता है उसके तो सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य दूध देनेवाली पचीस हजार कपिला गौएँ सुपात्रोंको दान करता है, वह भी सब पापोंसे छूट जाता है। मरनेके समय दरिद्र और सत्पुरुषोंको बछड़ेवाली एक हजार दुधारू गौएँ देनेसे भी मनुष्य इस पापसे मुक्त हो सकता है। जो राजा सुपात्र ब्राह्मणोंको काम्बोज देशमें उत्पन्न हुए सौ घोड़े दान करता है, वह भी ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है। जो व्यक्ति किसी एक पुरुषको उसका मनोरथ पूर्ण होने योग्य दान देता है और फिर किसीके आगे उसकी जिक्र नहीं करता वह भी पापमुक्त हो जाता है।

जलहीन देशमें पर्वतसे गिरकर और अग्निमें प्रवेश करके अथवा महाप्रस्थानकी विधिसे हिमालयमें गलकर प्राण दे देनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। यदि किसी ब्राह्मणने मद्यपान किया हो तो बृहस्पतिसव याग करनेसे उसकी शुद्धि हो जाती है। एक बार मद्य पीनेपर जो निष्कपट भावसे भूमिदान करता है और फिर कभी शराब नहीं छूता वह भी शुद्ध हो जाता है।

जो पुरुष गुरुपत्नीके साथ समागम करता है वह या तो जलती हुई लोहेकी शिलापर पड़ जाय या अपनी मूत्रेन्द्रियको काटकर ऊपरकी ओर देखता हुआ दूरतक चला जाय। इसके सिवा, अपना शरीर त्याग देनेसे भी वह इस पापसे छूट सकता है। अथवा जो महाव्रतका (एक महीनेतक जल भी न पीनेके नियमका) पालन करता है, ब्राह्मणोंको अपना सर्वस्व दे देता है या गुरुके लिये युद्धमें प्राण होम देता है वह भी इस पापसे मुक्त हो जाता है। झूठ बोलकर आजीविका चलानेवाला अथवा गुरुका अपमान करनेवाला पुरुष गुरुजीको मनचाही वस्तु देकर प्रसन्न कर लेनेसे उस पापसे छूट जाता है। जिसका ब्रह्मचर्यव्रत खण्डित हो गया हो, उसे ब्रह्महत्याके लिये बताया हुआ प्रायश्चित्त करना चाहिये। अथवा छः महीनेतक शरीरपर गौका चमड़ा ओढ़नेसे वह उस पापसे छूट सकता है।

यदि कोई मनुष्य किसीका धन चुरा ले तो किसी-न-किसी उपायसे उसे उतना ही धन लौटा देनेसे वह उस पापसे मुक्त हो सकता है। बड़े भाईके अविवाहित रहते हुए विवाह करनेवाला छोटा भाई और उसका बड़ा भाई ये दोनों संयमपूर्वक बारह दिनका कृच्छ्रव्रत करनेसे पवित्र हो जाते हैं। इसके सिवा, यदि वह छोटा भाई बड़े भाईके विवाह कर लेनेपर अपनी विवाहिता स्त्रीके साथ फिर विवाहसंस्कार करा ले तो इससे भी उक्त दोष निवृत्त हो जाता है और उसके पितरोंका भी उद्धार होनेमें सहायता मिलती है तथा ऐसा करनेसे स्त्रीको भी कोई दोष नहीं होता। यदि अपनी स्त्रीके प्रति किसी प्रकारके पापाचरणकी शङ्का हो तो पुनः रजस्वला होकर स्नान करनेतक उसका समागम न करे। भस्मसे जैसे बर्तन साफ हो जाते हैं, उसी प्रकार रजःशुद्धिसे स्त्री शुद्ध हो जाती है। पशु-पक्षियोंका वध करनेवाला तथा तरह-तरहके बहुत-से पेड़ोंको काटनेवाला पुरुष तीन दिनतक वायुभक्षण करे और लोगोंके सामने अपना कुकर्म प्रकट कर दे। इससे वह शुद्ध हो जाता है। जो पुरुष किसी प्रकारकी हिंसा नहीं करता, राग-द्वेष एवं मानापमानसे शून्य है, विशेष भाषण नहीं करता और मिताहार करते हुए पवित्र और एकान्त देशमें रहकर गायत्रीका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। अन्य सब प्रकारके पापोंकी शुद्धिके लिये भी ब्राह्मणोंने धर्माधर्मके निर्णयमें प्रमाणभूत शास्त्रोंके कथनसे यही विधि निश्चित की है। जो पुरुष दिनमें आकाशकी ओर दृष्टि रखता है, रात्रिमें खुले मैदानमें सोता है, तीन बार दिनमें और तीन बार रात्रिमें वस्त्रोंसहित जलमें घुसकर स्नान करता है और इस व्रतका पालन करते समय स्त्री, शूद्र और पतितसे बात नहीं करता वह अज्ञानवश किये हुए सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। मनुष्यको अपने किये हुए शुभ या अशुभ कर्मका फल मरनेके बाद भोगना पड़ता है। इनमें जिसकी अधिकता होती है, उसीका फल उसे मिलता है। इसलिये दान, तप और शुभ कर्मोंके द्वारा पुण्यकी ही वृद्धि करनी चाहिये, जिससे वह पापको दबाकर स्वयं बढ़ सके। सर्वदा शुभ कर्मोंका आचरण करे, पापकर्मसे दूर रहे और सुपात्रको धन दान करे ऐसा करनेसे मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है।

राजन्! इसी प्रकार विवेकी पुरुषके लिये भक्ष्य और अभक्ष्य, वाच्य और अवाच्य तथा जान-बूझकर और बिना जाने किये हुए पापोंके भी प्रायश्चित्त बताये हैं। जो पाप जान-बूझकर किया जाता है वह बड़ा होता है और अनजानमें किया हुआ पाप छोटा माना जाता है। ऊपर कही हुई विधिसे पापकी निवृत्ति हो सकती है। जो आस्तिक और श्रद्धालु है, उसीके लिये यह विधि कही गयी है। नास्तिक

अश्रद्धालु और दम्भ एवं द्वेषप्रधान पुरुषोंके लिये इसका कोई उपयोग नहीं है। जो पुरुष मरकर सुख भोगना चाहता है, उसे श्रेष्ठ पुरुषोंके आचरण और धर्मका सेवन करना चाहिये। राजन्! तुमने अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये अथवा स्वधर्मका पालन करनेके लिये ही इनका वध किया है; इसलिये तुम तो इतने ही कारणसे इस पापसे सर्वथा मुक्त हो जाओगे। फिर भी यदि तुम्हें कुछ पश्चात्ताप है तो प्रायश्चित्त करो। इस प्रकार अनार्य पुरुषोंकी तरह रोषमें भरकर अपना नाश मत करो।



प्रायश्चित्तयोग्य कर्म, अन्नकी अशुद्धि और दानके अनधिकारीके विषयमें स्वायम्भुव मनुका प्रसंग

व्यासजी बोले—राजन्! इस विषयमें एक पुरातन इतिहास प्रसिद्ध है। एक बार बहुत-से तपस्वी ऋषि एकत्रित होकर स्वायम्भुव मनुके पास गये और उनसे धर्मका स्वरूप पूछते हुए बोले, 'दान, अध्ययन, तप, कार्य और अकार्य इनका क्या स्वरूप है?'

उनके इस प्रकार पूछनेपर मनुजीने कहा—मैं संक्षेप और विस्तारसे धर्मका यथार्थ स्वरूप बताता हूँ, आप ध्यान देकर सुनें। शास्त्रमें जिन पापोंके प्रायश्चित्तका उल्लेख नहीं है, उनकी निवृत्तिके लिये मन्त्र-जप, होम और उपवास करे, आत्मज्ञान प्राप्त करे, पवित्र नदियोंमें स्नान करे और जहाँ प्रायश्चित्त करनेवाले लोग रहते हों उन स्थानोंमें रहे। इन पुण्यकर्मोंसे, ब्रह्मगिरि आदि पवित्र पर्वतोंपर रहनेसे, सुवर्ण भक्षण करनेसे, जिनमें रत्न हों उन नदियों या सरोवरोंमें स्नान करनेसे, देवस्थानोंमें जानेसे और घृतपान करनेसे अवश्य ही मनुष्यकी तत्काल शुद्धि हो जाती है। मनुष्यको कभी गर्व नहीं करना चाहिये और यदि दीर्घायुकी इच्छा हो तो तप्तकृच्छ्रव्रतकी विधिसे तीन दिनतक गर्म दूध, घृत और जलका सेवन करना चाहिये।

बिना दी हुई वस्तुको न लेना, दान, अध्ययन और तपमें तत्पर रहना, अहिंसा, सत्य, अक्रोध और यज्ञ—ये सब धर्मके लक्षण हैं। एक ही क्रिया देश और कालके भेदसे धर्म या अधर्म हो जाती है। चोरी करना, झूठ बोलना, हिंसा करना आदि अधर्म भी अवस्थाविशेषमें धर्म माने जाते हैं। विवेकी लोग जानते हैं कि धर्म और अधर्म ये दोनों ही देशकालके विचारसे अधर्म और धर्म दोनों हो सकते हैं। लोक और वेदमें धर्मके दो भेद हैं—प्रवृत्तिधर्म और निवृत्तिधर्म। इनमें निवृत्तिधर्मका फल मोक्षरूप अमृतत्व है और प्रवृत्तिधर्मका फल जन्म-मरण है। अशुभ कर्मसे अशुभ फल मिलता है और शुभ कर्मसे शुभ। फलोंकी शुभाशुभताके कारण ही इन दो प्रकारके कर्मोंको शुभ या अशुभ कहते हैं।

यदि जान-बूझकर कोई अशुभ कर्म हो जाय तो उसके लिये शास्त्रने प्रायश्चित्तका विधान किया है। राजा यदि दण्डनीय पुरुषको दण्ड न दे तो उसे उसकी शुद्धिके लिये एक दिन-रातका उपवास करना चाहिये और यदि पुरोहित राजाको धर्मोपदेश न करे तो उसकी शुद्धि तीन दिन उपवास करनेसे होती है। किंतु जो पुरुष अपनी जाति, आश्रम या कुलके धर्मको त्याग देते हैं, उनकी शुद्धि किसी प्रायश्चित्तसे नहीं हो सकती। यदि धर्मनिर्णयमें कोई विवाद हो तो वेद और धर्मशास्त्रको जाननेवाले दस या तीन ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे उसका निर्णय करावे और वे जैसा कहें वैसा करे।

अब अन्नके विषयमें विचार करते हैं। प्रेतके निमित्त बनाया हुआ अन्न, सूतिकाका अन्न दस दिनसे पूर्व नहीं खाना चाहिये, इसी प्रकार ब्याई हुई गौका दूध भी दस दिनतक न पीवे। राजाका अन्न तेजको नष्ट करता है, शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजका नाशक है तथा सुनार और पति या पुत्रहीना स्त्रीका अन्न आयुका क्षय करता है। ब्याजखोरका अन्न विष्ठाके समान है और वेश्याका वीर्यके समान। कायर, यज्ञविक्रेता, बढ़ई, मोची, व्यभिचारिणी स्त्री, धोबी, वैद्य और चौकीदार इन सबका अन्न भी खाने योग्य नहीं है। जिन्हें समाज या गाँवने दोषी ठहराया हो, जो नर्तकीके द्वारा अपनी जीविका चलाते हों और जिन्होंने अपने बड़े भाईके अविवाहित रहते हुए अपना विवाह कर लिया हो, उनका तथा वन्दीजन और जुआरियोंका अन्न भी अखाद्य है। जो बायें हाथसे लाया गया हो, जो बासी हो, जिसपर मद्यके छींटे पड़ गये हों, जो जूठा हो और जिसे कुटुम्बसे छिपाकर अपने लिये रखा हो वह अन्न खानेयोग्य नहीं होता। इसी प्रकार जो पदार्थ आटे, ईख, शाक या दूधको बिगाड़कर बनाये गये हों वे भी नहीं खाने चाहिये। सत्तू, जौकी खीलें और दहीमें मिले हुए सत्तू ये अधिक देरके हो जानेपर खाने-योग्य नहीं रहते। खीर, खिचड़ी और मालपूए यदि देवताके उद्देश्यसे न बनाये

जायँ तो नहीं खाने चाहिये, गृहस्थ पुरुष देवता, ऋषि, अतिथि, पितर और कुलदेवताओंको नैवेद्य समर्पण करनेके बाद ही भोजन कर सकता है। उसे घरमें भी संन्यासीके समान अनासक्त-भावसे ही रहना चाहिये। जो अपनी अनुकूल स्त्रीके साथ इस प्रकार घरमें रहता है, वह धर्मका पूरा फल प्राप्त कर लेता है।

धर्मात्मा पुरुषको चाहिये कि यशके लोभसे, भयके कारण अथवा अपना उपकार करनेवालेको दान न दे। जो नाचने-गानेवाले, हँसी-मजाक करनेवाले (भाँड़ आदि), मदमत्त, उन्मत्त, चोर, निन्दा करनेवाले, गूँगे, तेजोहीन, अङ्गहीन, बौने, दुष्ट, कुलहीन या संस्कारशून्य हों, उन्हें भी दान न दे। जिसने वेदाध्ययन न किया हो उस ब्राह्मणको दान देना उचित नहीं है। विधिहीन दान देना या दान लेना दोनों ही ठीक नहीं हैं। ऐसा करनेसे दान देनेवाले और दान लेनेवाले दोनोंहीकी हानि होती है। जिस प्रकार खैरकी लकड़ी या पत्थरकी शिलाका आश्रय लेकर समुद्र पार करनेवाला व्यक्ति बीचहीमें डूब जाता है, उसी प्रकार ऐसे दाता और गृहीता दोनों ही नरकमें डूबते हैं। जिस प्रकार लकड़ी गीली होनेपर अग्नि प्रज्वलित नहीं होती, उसी प्रकार जिस दान लेनेवालेमें तप, स्वाध्याय और सदाचारका अभाव होता है वह अच्छा नहीं जान पड़ता। जिस प्रकार मनुष्यकी खोंपड़ीमें भरा हुआ जल और कुत्तेकी खालमें भरा हुआ दूध आपके आश्रयके दोषसे अपवित्र हो जाते हैं, उसी प्रकार दुराचारीके संसर्गके शास्त्राभ्यास दूषित हो जाता है। जो ब्राह्मण वेदहीन और अशास्त्रज्ञ होते हुए भी संतोषी और दूसरेके गुणोंमें दोष न देखनेवाला है, उसे दया करके ही दान देना चाहिये। उन्हें देना शिष्टोंका आचार है अथवा ऐसा करनेसे पुण्य होता है—यह समझकर उन्हें कुछ नहीं दिया जा सकता, क्योंकि जैसे लकड़ीका हाथी और चामका हरिण ये नाममात्रके ही होते हैं, उसी प्रकार बिना पढ़ा हुआ ब्राह्मण भी केवल नामका ही होता है। जिस प्रकार जलहीन कुआँ और राखमें किया हुआ हवन व्यर्थ होता है, उसी प्रकार मूर्खको दिया हुआ दान भी निष्फल है। दान लेनेवाला मूर्ख तो दाताका शत्रु है, वह उसका धन हरण करता है और देवता एवं पितरोंके हव्य-कव्यका नाश करता है। उसे दान देनेवाला पुण्य लोकोंको प्राप्त नहीं कर सकता। युधिष्ठिर ! तुमने जो पूछा था उसके अनुसार मैंने संक्षेपमें स्वायम्भुव मनुका यह पूरा प्रसंग सुना दिया। यह महत्त्वशाली प्रसंग सभी कल्याणकामियोंको सुनना चाहिये।



व्यासजी और भगवान् श्रीकृष्णकी सलाहसे महाराज युधिष्ठिरका हस्तिनापुरमें आना

राजा युधिष्ठिरने पूछा—मुनिवर ! मैं राजाओंके और चारों वर्णोंके धर्मोंको विस्तारसे सुनना चाहता हूँ। कृपया बताइये कि आपत्तिके समय इन्हें किस नीतिसे काम लेना चाहिये। आपने प्रायश्चित्तोंके विषयमें मुझे जो कुछ सुनाया है, उससे मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है।

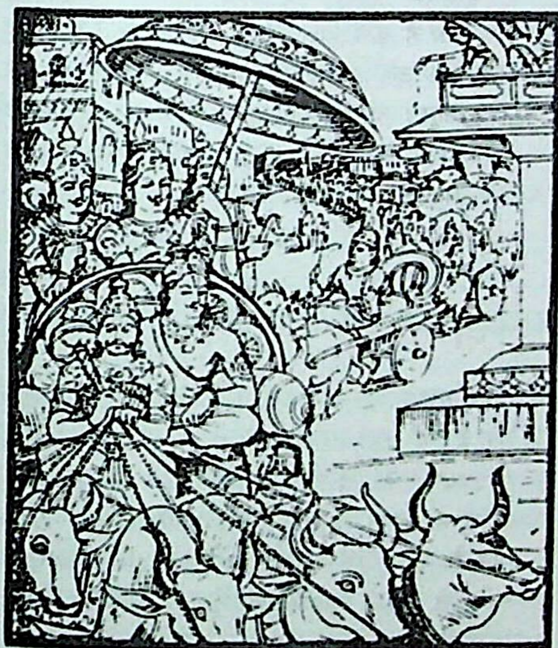
व्यासजी बोले—युधिष्ठिर ! यदि तुम धर्मका पूरा-पूरा रहस्य सुनना चाहते हो तो कुरुवृद्ध पितामह भीष्मके पास जाओ। वे गङ्गाजीके पुत्र सर्वज्ञ और सब प्रकारके धर्मका मर्म जाननेवाले हैं; इसलिये धर्मके विषयमें तुम्हारे मनमें जितनी शङ्काएँ हों, उन सभीका वे समाधान कर देंगे। जिस धर्मशास्त्रको शुक्राचार्य और देवगुरु बृहस्पतिजी जानते हैं, उसीको कुरुश्रेष्ठ भीष्मजीने शुक्राचार्य और च्यवनजीसे पूरे विवरणके साथ प्राप्त किया है। उन्होंने ब्रह्मचर्यव्रतकी दीक्षा लेकर वसिष्ठजीसे अङ्गोपाङ्गसहित वेदोंका अध्ययन किया है, ब्रह्माजीके ज्येष्ठ पुत्र परमतेजस्वी सनत्कुमारजीसे अध्यात्मविद्या पायी है, मार्कण्डेयजीसे पूर्णतया यतिधर्म सीखा है तथा परशुरामजी और इन्द्रसे अस्त्रविद्या पायी है। मनुष्योंमें उत्पन्न होकर भी मृत्युको उन्होंने इच्छाके अधीन कर लिया है। पवित्रचरित्र ब्रह्मर्षिगण उनके सभासद् थे। जब कभी ज्ञानयज्ञ होते थे तो उनमें ऐसी कोई बात नहीं होती थी, जिसे वे न जानते रहे हों। वे धर्म और अर्थका सूक्ष्म तत्त्व जानते हैं, वे ही तुम्हें धर्मका उपदेश करेंगे। अब कुछ ही समयमें वे प्राण छोड़नेवाले हैं। अतः तुम उनके प्राणपरित्यागके पहले ही उनके पास पहुँच जाओ।

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! मैंने तो अपने बन्धु-बान्धवोंका बड़ा भीषण और रोमाञ्चकारी संहार किया है। मैं सभी लोकोंका अपराधी और पृथ्वीका सत्यानाश करनेवाला हूँ। यही नहीं, वे सदा ही निष्कपटभावसे युद्ध करते रहे हैं, किंतु मैंने छलसे उनका संहार कराया है। ऐसी स्थितिमें मैं किस प्रकार उन्हें अपना मुँह दिखा सकता हूँ ?

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजा युधिष्ठिरकी यह बात सुननेपर यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णने चारों वर्णोंके हितकी कामनासे उनसे कहा, 'नृपश्रेष्ठ ! अब आप शोकको ही न पकड़े रहें। भगवान् व्यास जैसा कह रहे हैं, वैसा ही करें। ये अतुलित

तेजस्वी और आपके गुरुके समान हैं; इनकी आज्ञा मानकर आप ब्राह्मणोंका, अपने सुहृद् हमलोगोंका, द्रौपदीका और सम्पूर्ण लोकोंका हित करें।'

श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर महामना महाराज युधिष्ठिर सब लोकोंके हितके लिये अपने आसनसे उठे। वे वेद, उपनिषद्, मीमांसा और नीति आदि सभी शास्त्रोंमें पारंगत थे। इस समय अपना कर्तव्य निश्चय करके उन्हें बड़ी शान्ति मिली। उन्होंने महाराज धृतराष्ट्रको आगे किया और श्रीकृष्ण आदि सब बन्धु-बान्धवोंके साथ हस्तिनापुरमें आये। नगरमें प्रवेश करते समय उन्होंने देवताओंका तथा हजारों ब्राह्मणोंका पूजन किया। वे सफेद रंगके सोलह बैलोंसे जुते हुए एक नवीन रथमें सवार हुए। वह रथ ऊनी वस्त्र और चमड़ेसे मँढ़ा हुआ था तथा श्वेत



वर्णका था। उस समय महापराक्रमी कुन्तीनन्दन भीमने बैलोंकी बागडोर सँभाली, अर्जुनने कान्तिमान् श्वेत छत्र लिया तथा माद्रीनन्दन नकुल और सहदेव चँवर और पंखा डुलाने लगे। इस प्रकार जब पाँचों भाई सज-धजके साथ रथपर सवार हुए तो ऐसे मालूम होते थे मानो पाँचों भूत ही मूर्तिमान् होकर इकट्ठे हो गये हैं। महाराज युधिष्ठिरके पीछे एक रथपर युयुत्सु चला। इन कौरव और पाण्डवोंके बाद शैब्य और सुग्रीव नामके घोड़ोंसे जुते हुए एक सुवर्णमय रथपर चढ़कर सात्यकिके सहित भगवान् श्रीकृष्ण चल रहे थे। धर्मराजके आगे एक पालकीमें उनके ज्येष्ठ पितृव्य महाराज धृतराष्ट्र गान्धारीके साथ जा रहे थे। इन सबके पीछे कुन्ती और द्रौपदी आदि कुरुकुलकी स्त्रियाँ अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार सवारियोंपर चढ़कर चल रही थीं। इनकी देखभालमें विदुरजी थे, वे इनके पीछे चल रहे थे। उनके पीछे सब प्रकारके साज-बाजसे सुसज्जित अनेकों रथ, हाथी, घुड़सवार और पैदलोंकी पलटन थी। इस प्रकार सूत, मागध और वैतालिकोंसे स्तुति सुनते हुए महाराज युधिष्ठिरने नगरमें प्रवेश किया। उनकी यह सवारी संसारमें अनुपम थी।

जिस समय हस्तिनापुरमें धर्मराजकी सवारी निकली, वहाँके नागरिकोंने सारे नगर और राजमार्गोंको खूब सजाया था। सड़कोंपर सफेद रंगके फूल बिखरे हुए थे, अनेकों ध्वजा-पताकाएँ लगायी गयी थीं तथा उन्हें अच्छी तरहसे साफ करके धूपसे सुगन्धित किया गया था। राजमहलको सुगन्धित द्रव्योंके चूरेसे, तरह-तरहके पुष्पोंसे और पुष्पोंकी बन्दनवारोंसे छा दिया गया था। नगरके द्वारपर जलसे भरे हुए नवीन कलश रखे हुए थे तथा जहाँ-जहाँ श्वेत वर्णके फूलोंके गुच्छे लगाये गये थे। सब ओरसे सुमनोहर स्तुति-वाक्य सुनायी पड़ रहे थे। इस प्रकार अपने सुहृदोंके साथ महाराज युधिष्ठिरने खूब सजे-धजे हस्तिनापुरमें प्रवेश किया।

पाण्डवोंके पुरप्रवेशके समय सहस्रों पुरवासी उन्हें देखनेके लिये इकट्ठे हो गये। उस समय अनेकों पुरनारियाँ पाँचों भाइयोंकी प्रशंसा कर रही थीं। वे लज्जावश धीरे-धीरे कहने लगीं, 'पाञ्चालकुमारी! तुम धन्य हो, जो तुम्हें इन पुरुषश्रेष्ठोंकी सेवाका सुअवसर प्राप्त हुआ है। तुम्हारे सभी पुण्यकर्म और व्रत सफल हैं।' उनके ऐसे प्रशंसा वाक्योंसे और आपसके प्रेमालापसे उस समय सारा नगर गूँज रहा था।

इस प्रकार महाराज युधिष्ठिर धीरे-धीरे राजमार्गसे निकलकर महलके द्वारपर आये। तब सब दरबारी, नगर-निवासी और देशके लोग उनके सामने आये और प्रणाम करके तरह-तरहकी कानोंको अच्छी लगनेवाली बातें कहने लगे। वे बोले, महाराज! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपने धर्म और बलके प्रभावसे पुनः अपना खोया हुआ राज्य पा लिया है। आप सौ वर्षतक हमारे राजा रहें और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करें। इस प्रकार राजद्वारपर माङ्गलिक वचनोंसे उनका सभीने सत्कार किया तथा ब्राह्मणोंने भी आशीर्वाद दिये। उन सबको यथायोग्य स्वीकार कर महाराज

रथसे उतरे और फिर राजभवनमें पधारे। महलके भीतरी भागमें जाकर उन्होंने कुलदेवताओंका दर्शन किया और रत्न, चन्दन तथा माला आदिसे उनकी पूजा की। इसके बाद वे फिर महलके बाहर आये और वहाँ हाथोंमें माङ्गलिक द्रव्य लिये खड़े हुए ब्राह्मणोंके दर्शन किये। तब महाराजने गुरु धौम्य और राजा धृतराष्ट्रको आगे रखकर उनकी पुष्प, मोदक, रत्न, सुवर्ण, गौ और वस्त्रादिसे विधिवत् पूजा की। सेवकलोग ब्राह्मणोंसे यह पूछ-पूछकर कि आपकी क्या इच्छा है, उन्हें अभीष्ट पदार्थ देते थे। इसके बाद पुण्याहवाचनका घोष हुआ। उससे सारा आकाश गूँज उठा। वह सुहृदोंके लिये आनन्ददायक, परम पवित्र और कानोंको सुख देनेवाला था। इसी समय सब ओर जयकी घोषणा करते हुए शङ्ख और दुन्दुभियोंका मनोरम शब्द होने लगा।

इतनेमें ब्राह्मणके वेषमें छिपे हुए राक्षस चार्वाकने कहा, 'युधिष्ठिर ! इस समय मैं इन सब ब्राह्मणोंकी ओरसे बोल रहा हूँ। तुम्हें धिक्कार है। तुम बड़े दुष्ट राजा हो ! तुमने अपने बन्धु-बान्धवोंकी हत्या की है। अपने गुरुजनोंको मरवाकर तो अब तुम्हारा मर जाना ही अच्छा है। इस प्रकारका जीवन किस कामका ?'

उसकी यह बात सुनकर राजा युधिष्ठिर बड़े ही लज्जित और व्याकुल हुए। प्रतिवादके रूपमें उनके मुखसे एक भी शब्द न निकला। उन्होंने कहा, 'विप्रगण ! मैं अत्यन्त विनीत होकर आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। आप मुझपर प्रसन्न होइये इस समय मेरे ऊपर बड़ी आपत्ति है, ऐसे समय आपका मुझे धिक्कारना उचित नहीं है।'

युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर सब ब्राह्मण बोल उठे, 'महाराज ! यह हमारी बात नहीं कह रहा है। हम तो आशीर्वाद देते हैं कि आपकी राजलक्ष्मी सदा बनी रहे।' फिर उन महात्माओंने ज्ञानदृष्टिसे उसे पहचान लिया और राजा युधिष्ठिरसे कहा, 'यह दुर्योधनका मित्र चार्वाक नामका राक्षस है। इस समय संन्यासीका वेष बनाकर उसका हित करना चाहता है। धर्मात्मन् ! हम तुमसे ऐसी कोई बात नहीं कहते। तुम्हारा और तुम्हारे भाइयोंका कल्याण हो।' राजन् ! उसके बाद उन सब ब्राह्मणोंने क्रोधमें भरकर हुंकार करते हुए उस राक्षसको मार डाला। उनके तेजसे वह भस्म होकर गिर गया। राजाने उन सबकी पूजा की। वे उनका अभिनन्दन करते हुए वहाँसे विदा हुए। इससे महाराज युधिष्ठिर और उनके सम्बन्धियोंको भी बड़ी प्रसन्नता हुई।



महाराज युधिष्ठिरका अभिषेक, उनकी राज्यव्यवस्था तथा उनके द्वारा सम्बन्धियोंके श्राद्ध

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! अब महाराज युधिष्ठिर रोष और संतापसे मुक्त होकर पूर्वकी ओर मुख करके सुवर्णके सुन्दर सिंहासनपर विराजमान हुए। उन्हींकी ओर मुख करके एक चमचमाते हुए सोनेके सिंहासनपर सात्यकि और श्रीकृष्ण बैठे तथा महाराजके दोनों ओर दो मणिमय पीठोंपर भीमसेन और अर्जुन सुशोभित हुए। एक ओर सुवर्णजटित हाथीदाँतके आसनपर नकुल और सहदेवके सहित माता कुन्ती बैठीं। इसी प्रकार कौरवोंके पुरोहित सुधर्मा, विदुर, धौम्य और कुरुराज धृतराष्ट्र भी अलग-अलग सुन्दर सिंहासनपर विराजमान हुए। जहाँ महाराज धृतराष्ट्र थे उधर ही युयुत्सु, सञ्जय और गान्धारीने भी आसन लगाया।

महाराज युधिष्ठिरने सिंहासनपर बैठकर श्वेत पुष्प, अक्षत, भूमि, सुवर्ण, रजत और मणियोंको स्पर्श किया। सिंहासनके पास मृत्तिका, सुवर्ण, तरह-तरहके रत्न, सर्वौषधसे युक्त अभिषेकके पात्र, जलसे भरे हुए ताँबे, चाँदी और मिट्टीके बरतन, पुष्प, लाजा, धान, गोरस, शमी, पीपल और पलाशकी समिधाएँ, मधु, घृत, गूलरका स्रुवा और शङ्ख—यह सब सामग्री एकत्रित की गयी। फिर श्रीकृष्णकी आज्ञासे पुरोहित धौम्यने पूर्व और उत्तरके कोणमें नीचे स्थानपर शास्त्रोक्त विधिसे वेदी बनायी। इसके बाद सर्वतोभद्र आसनपर महाराज युधिष्ठिर और द्रौपदीको बैठाकर उनसे वेदके मन्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक हवन कराया। अब भगवान् श्रीकृष्ण खड़े हुए और उन्होंने पाञ्चजन्य शङ्खमें जल भरकर धर्मराजका अभिषेक किया। फिर उन्हींके कहनेसे राजर्षि धृतराष्ट्र तथा सब दरबारियोंने भी पाञ्चजन्यके द्वारा ही उनको अभिषिक्त किया।

अभिषेक होते ही नक्कारों और नफीरियोंका शब्द होने लगा। महाराजने धर्मानुसार प्रजाकी सब भेंटें स्वीकार कीं और उसे बहुत-से पुरस्कार देकर सम्मानित किया। इसके बाद उन्होंने ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर उन्हें हजारों मुहरें दक्षिणामें दीं। ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर उन्हें 'मङ्गल हो, जय हो' ऐसा कहकर आशीर्वाद दिया। फिर उन्होंने महाराजकी प्रशंसा करते हुए कहा, 'राजन् ! बड़े भाग्यकी बात है

आपको विजय प्राप्त हुई। आप अपने पराक्रमसे धर्मकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए। यह प्रजाका सौभाग्य ही था कि आप, भीमसेन, अर्जुन और नकुल-सहदेव अबतक सकुशल रहे। अब आप शीघ्र ही भावी कार्यक्रमको अपने हाथमें लें। इसके बाद समागत सज्जनोंने धर्मराज युधिष्ठिरका सत्कार किया और उन्होंने अपने सम्बन्धियोंके सहयोगसे उस विशाल साम्राज्यका भार अपने हाथोंमें ले लिया।

प्रजाके अभिनन्दनका उत्तर देते हुए महाराज युधिष्ठिरने कहा, 'महाराज धृतराष्ट्र मेरे पिता हैं। हमारे लिये ये इष्टदेवके समान हैं। जो लोग मेरा प्रिय करना चाहें, उन्हें इनकी आज्ञामें रहना चाहिये और इन्हें जो कुछ अच्छा लगे, वही करना चाहिये। मेरा भी प्रधान कर्तव्य सर्वदा सावधानीसे इनकी सेवा करना ही है। यदि आपलोग मेरे ऊपर कोई कृपा करना चाहते हैं तो मैं यही भिक्षा माँगता हूँ कि इनके प्रति पहलेहीके समान सम्मानका भाव रखें। मेरे, आपके और सारी पृथ्वीके स्वामी ये ही हैं। यह सारा राष्ट्र और पाण्डवलोग इन्हींके हैं। आप सब लोग मेरी यह प्रार्थना हृदयसे स्वीकार करें।

इसके बाद कुरुराज युधिष्ठिरने सभी पुरवासी और देश-वासियोंको विदा किया तथा भीमसेनको युवराज बनाया। महामति विदुरजीको राजकाज-सम्बन्धी सलाह देनेका, निश्चय करनेका तथा संधि, विग्रह, प्रस्थान, स्थिति, आश्रय और द्वैधीभाव—इन छः बातोंको निर्णय करनेका अधिकार सौंपा। क्या काम करना है और क्या नहीं करना—इसका विचार तथा आय-व्ययका निश्चय करनेके कार्यपर उन्होंने सर्वगुण-सम्पन्न वयोवृद्ध सञ्जयको नियुक्त किया। सेनाकी गणना करना, उसे भोजन और वेतन देना तथा उसके कामकी देख-भाल करना उन्होंने नकुलके जिम्मे किया। शत्रुके देशपर चढ़ाई करने तथा दुष्टोंको दमन करनेके कामपर अर्जुनकी नियुक्ति की। ब्राह्मण और देवताओंके कामपर तथा पुरोहितीके दूसरे कामोंपर महर्षि धौम्य नियुक्त हुए। सहदेवको अपने साथ रखा। उनको सब समय राजाकी रक्षाका काम सौंपा गया। राजाने जिन-जिन लोगोंको जिस-जिस कामके योग्य समझा, उन-उनको उसी-उसी कार्यपर नियुक्त किया। उन्होंने विदुर, सञ्जय और युयुत्सुसे कहा—'आप सब लोग सदा सावधान रहकर प्रतिदिन मेरे इन वृद्ध पिता राजा धृतराष्ट्रकी सेवा करें। इनका जो भी काम हो, उसे ठीक-ठीक पूरा करना चाहिये। इस नगर और प्रान्तमें रहनेवाले लोगोंके भी जो कुछ कार्य हों, उन्हें इन्हीं महाराजकी आज्ञा लेकर पूर्ण करना चाहिये।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने युद्धमें मरे हुए अपने कुटुम्बियोंके अलग-अलग श्राद्ध करवाये। धृतराष्ट्रने अपने पुत्रोंके श्राद्धमें अन्न, धन, गौएँ तथा बहुमूल्य रत्न दान किये। स्वयं राजा युधिष्ठिरने द्रौपदीको साथ लेकर द्रोण, कर्ण, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, घटोत्कच, विराट आदि मित्र राजाओं तथा द्रुपद एवं द्रौपदीकुमारोंका श्राद्ध किया। प्रत्येकके उद्देश्यसे उन्होंने हजारों ब्राह्मणोंको अलग-अलग धन, रत्न, गौ एवं वस्त्र देकर संतुष्ट किया। इनके सिवा जिन राजाओंके कोई पुत्र आदि सम्बन्धी जीवित नहीं थे, उनका भी श्राद्ध सम्पन्न किया। अपने हितैषी सम्बन्धियोंके उद्देश्यसे उन्होंने अनेकों धर्मशालाएँ, प्याऊघर तथा पोखरे बनवाये। इस प्रकार सबके और्ध्वदैहिक संस्कार करके वे उनके ऋणोंसे मुक्त हुए और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए कृतार्थताका अनुभव करने लगे। धृतराष्ट्र, गान्धारी, विदुर तथा अन्य आदरणीय कौरवोंकी वे पहलेकी ही भाँति सेवा करते और श्रेष्ठ भृत्योंका भी सम्मान किया करते थे। जिनके पति और पुत्र रणभूमिमें मारे गये थे, कुरुवंशकी उन सम्पूर्ण स्त्रियोंको वे बड़े सम्मानके साथ रखते और दयालु स्वभाव होनेके कारण उनके भरण-पोषणका सदा खयाल रखते थे। दीन-दुःखियों, अंधों तथा अनाथोंके रहनेके लिये घर बनवाते और उन्हें भोजन एवं वस्त्रकी भी सहायता देते थे। सबके साथ कोमलताका बर्ताव करते हुए वे सबके ऊपर कृपा रखते थे।



युधिष्ठिरद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति, भाइयों और कुटुम्बियोंका सत्कार तथा नाना प्रकारके दान

वैशम्पायनजी कहते हैं—युधिष्ठिरका राज्याभिषेक हो जानेपर वे भगवान् श्रीकृष्णसे हाथ जोड़कर बोले—'भगवन्! आपकी ही कृपा, नीति, बल, बुद्धि और पराक्रमसे मुझे अपने बाप-दादोंका यह राज्य प्राप्त हुआ है। कमललोचन! मैं आपको बारंबार प्रणाम करता हूँ। पवित्र अन्तःकरणवाले ब्राह्मण आपकी अनेकों नामोंद्वारा स्तुति किया करते हैं। यह सम्पूर्ण विश्व आपकी लीला है, आपहीसे इसकी उत्पत्ति हुई है और आप ही इसके आत्मा हैं; आपको सादर नमस्कार है। आप सर्वत्र व्यापक होनेके कारण विष्णु और विजयी होनेसे 'जिष्णु' कहलाते हैं। हरे! आप ही

सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण, विकुण्ठधामके अधिपति वैकुण्ठ और क्षर-अक्षर पुरुषसे उत्तम पुरुषोत्तम हैं। आप पुराणपुरुष परमात्माने ही सात बार अदितिके गर्भसे अवतार लिया है।* आप ही पृश्निगर्भके नामसे प्रसिद्ध हैं। विद्वान् लोग तीनों युगोंमें प्रकट होनेके कारण आपको त्रियुग कहते हैं। आपकी कीर्ति बड़ी पवित्र है, आप इन्द्रियोंके प्रेरक और यज्ञस्वरूप हैं। आप हंस (शुद्ध आत्मा) कहलाते हैं। तीन नेत्रोंवाले भगवान् शंकर और आप एक ही हैं। आप ही विभु तथा दामोदर हैं। वाराह, अग्नि, बृहद्भानु (सूर्य), वृषभ (धर्म), गरुडध्वज, अनीकसाह (शत्रुसेनाका वेग सह सकनेवाले), पुरुष (अन्तर्यामी), शिपिविष्ट, यज्ञमूर्ति और उरुक्रम (वामन) आदि आपहीके नाम हैं। आप सबसे श्रेष्ठ और उग्रसेनापति हैं। सत्यस्वरूप, अन्नदाता तथा स्वामी कार्तिकेय भी आप ही हैं। आप स्वयं रणसे कभी भी विचलित न होकर शत्रुओंको पीछे हटानेवाले हैं। वैदिक संस्कारोंसे युक्त द्विज और संस्कारशून्य द्विजेतर मनुष्य भी आपहीके स्वरूप हैं। आप ही कामनाओंकी वर्षा करनेवाले वृष (धर्म) हैं। कृष्णधर्म (यज्ञस्वरूप), वृषदर्भ (इन्द्रका दर्प दलन करनेवाले) और वृषाकपि (हरि-हर) भी आप ही हैं। आप ही सिन्धु (समुद्र), निर्गुण परमात्मा तथा सूर्य, चन्द्र एवं अग्निरूप त्रिविध तेज हैं; ऊपर, नीचे और मध्य—ये तीन दिशाएँ भी आप ही हैं। आपने अपने वैकुण्ठधामसे आकर इस पृथ्वीपर अवतार धारण किया है। आप सम्राट्, विराट्, स्वराट् और देवराज इन्द्र हैं। यह संसार आपहीसे प्रकट हुआ है। आप सर्वत्र व्यापक, नित्य सत्तारूप और निराकार परमात्मा हैं। आप ही कृष्ण (सबको अपनी ओर खींचनेवाले) और कृष्णवर्त्मा (अग्नि) हैं। आपहीको लोग अभीष्ट साधक, अश्विनीकुमारोंके पिता, कपिल मुनि, वामन, यज्ञ, ध्रुव, गरुड तथा यज्ञसेन कहते हैं । आप मोरपंखधारी और प्राणियोंको मायासे बाँधनेवाले हैं। आप ही सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त करनेवाले महेश्वर और पुनर्वसु नक्षत्र हैं। सुबभ्रु (अत्यन्त पिङ्गलवर्ण), रुक्मयज्ञ, सुषेण, दुन्दुभि, गभस्तिनेमि (कालचक्र), श्रीपद्म, पुष्कर, पुष्पधारी ऋभु, विभु अत्यन्त सूक्ष्म और सदाचारी—इन नामोंसे आपका ही कीर्तन किया जाता है। आप ही जलनिधि समुद्र, ब्रह्मा, पवित्र धाम तथा धामके ज्ञाता हैं। केशव ! विद्वान् पुरुष आपको ही हिरण्यगर्भ तथा स्वधा, स्वाहा आदि नामोंसे पुकारते हैं ! कृष्ण ! आप ही इस जगत्के आदि कारण हैं। आप ही इसकी सृष्टि करते हैं और आपहीमें इसका प्रलय होता है। विश्वयोने ! यह सम्पूर्ण विश्व आपके ही अधीन है। शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले परमात्मन् ! आपको मेरा बारंबार प्रणाम है !'

इस प्रकार धर्मराजने जब सभामें भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की तो उन्होंने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा युधिष्ठिरका अभिनन्दन किया। तदनन्तर राजाने दरबारमें आये हुए प्रजाजनोंको विदा कर दिया। वे सब लोग उनकी आज्ञासे अपने-अपने घर चले गये। इसके बाद युधिष्ठिरने भीमसेन, अर्जुन, नकुल तथा सहदेवको सान्त्वना देते हुए कहा—'प्रिय बन्धुओ ! गत महासमरमें शत्रुओंने नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करके तुम्हारे शरीरको बहुत घायल कर दिया है। इससे तुम बहुत थक गये हो और विशेष कष्ट उठा चुके हो; अतः अब जाकर प्रसन्नताके साथ आराम करो। विश्रामके अनन्तर जब तुम्हारा चित्त स्वस्थ हो जायगा, तो फिर कल मैं तुम लोगोंसे मिलूँगा।'

तत्पश्चात् राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे युधिष्ठिरने दुर्योधन-का महल भीमसेनको अर्पण किया। उसमें बहुत-सी अट्टालिकाएँ शोभा दे रही थीं, वहाँ रत्नोंका भण्डार भरा था और बहुत-सी दास-दासियाँ सेवाके लिये प्रस्तुत थीं। महाबाहु भीम उस महलमें चले गये। दुर्योधनका राजमहल जैसा सजा हुआ था, वैसा ही दुःशासनका भी था। उसमें भी प्रासादमालाएँ शोभा पा रही थीं। वह भवन सोनेकी बंदनवारोंसे सजाया गया था, धन-धान्य और दास-दासियोंसे भरपूर था। राजाकी आज्ञासे वह महाबाहु अर्जुनको मिला। दुर्मर्षणका महल तो दुःशासनसे भी सुन्दर था। वह सोने और मणियोंसे सजा होनेके कारण कुबेरके राजभवनको भी मात करता था। उसे धर्मपुत्र युधिष्ठिरने नकुलको दिया। दुर्मुखका स्वर्णमण्डित महल भी कम सुन्दर नहीं था, वह सहदेवको दिया गया। युयुत्सु, विदुर, सञ्जय, सुधर्मा और धौम्य—ये लोग अपने-अपने पहलेके ही स्थानोंमें जाकर विराजमान हुए। भगवान् श्रीकृष्ण सात्यकिको साथ लेकर अर्जुनके महलमें चले गये। इस प्रकार सब राजाओंने अपने-अपने स्थानपर खान-पान करके बड़ी प्रसन्नताके साथ रात व्यतीत की और फिर सबेरे उठकर सब राजा युधिष्ठिरकी सेवामें उपस्थित हो गये।

जनमेजयने पूछा—विप्रवर ! राजा युधिष्ठिरने राज्य

* आदित्य और वामनके रूपमें दो बार साक्षात् अदितिके गर्भसे और पृश्निगर्भ, परशुराम, श्रीराम, बलराम और श्रीकृष्णके रूपमें पाँच बार उनके जन्मान्तर्गत पृश्नि आदि अन्य रूपोंके गर्भसे यहाँ भगवान्के प्राकट्यकी बात कही गयी है।

पानेके पश्चात् और जो-जो कार्य किये हों, उन्हें बताइये। साथ ही त्रिभुवनगुरु भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रोंका भी वर्णन कीजिये।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने राज्य प्राप्त करनेके बाद सबसे पहले चारों वर्णोंको योग्यताके अनुसार अपने-अपने कर्तव्यपर स्थिर किया। फिर हजारों स्नातक ब्राह्मणोंमेंसे प्रत्येकको उन्होंने एक-एक हजार स्वर्णमुद्राएँ दान कीं। इसके सिवा, जिनकी जीविकाका भार उन्हींके ऊपर था उन भृत्यों, शरणागतों तथा अतिथियोंको इच्छानुसार वस्तुएँ देकर संतुष्ट किया। गरीबों और सवाल करनेवालोंकी भी कामनाएँ पूर्ण कीं। अपने पुरोहित धौम्य मुनिको उन्होंने हजारों गौएँ, धन, सुवर्ण, चाँदी तथा नाना प्रकारके वस्त्र दान किये। कृपाचार्यका गुरुकी भाँति पूजन किया और विदुरजीका पूज्यकी भाँति सम्मान किया। फिर अपने आश्रितोंको खाने-पीनेकी वस्तुएँ, नाना प्रकारके वस्त्र, शय्या तथा आसन देकर प्रसन्न किया। इसी प्रकार उन्होंने राजा धृतराष्ट्र और उनके पुत्र युयुत्सुका भी विशेष सत्कार किया। धृतराष्ट्र, गान्धारी तथा विदुरजीकी सेवामें अपना सारा राज्य ही निवेदन करके युधिष्ठिर बड़े निश्चिन्त और सुखी हो गये।



युधिष्ठिरका भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे उनके साथ भीष्मजीके पास जानेका विचार

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार सम्पूर्ण नगरकी प्रजाको संतुष्ट करके वे भगवान् श्रीकृष्णके पास गये और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उन्होंने देखा भगवान् रत्नों तथा सुवर्णसे भूषित एक बड़े पलंगपर बैठे हुए हैं, उनकी श्यामसुन्दर छवि नीलमेघके समान सुशोभित हो रही है, शरीरसे तेज बरस रहा है और उनके अङ्ग-अङ्गमें दिव्य आभूषण शोभा पा रहे हैं। उनका पीताम्बरधारी श्याम विग्रह स्वर्णजटित नीलमके समान जान पड़ता है। वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि चमक रही है। इस मनोहर झाँकीकी तीनों लोकोंमें कहीं भी उपमा नहीं है। दर्शनके पश्चात् भगवान्‌के निकट पहुँचकर राजा युधिष्ठिर मुसकराते हुए बोले—'भगवन्! आपहीकी कृपासे हमने राज्य पाया है, आपहीकी दयासे हम विजयी हुए और धर्मसे भ्रष्ट नहीं होने पाये।'

इस प्रकार राजाने कई बातें कहीं, पर भगवान्‌ने उनका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उस समय वे ध्यानमग्न हो रहे थे। उनको इस स्थितिमें देखकर युधिष्ठिरने कहा—'भगवन्! यह क्या, आप किसीका ध्यान कर रहे हैं? यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है! माधव! आपके रोंगटे खड़े हो गये हैं, शरीर जरा भी हिलता नहीं, बुद्धि तथा मन भी स्थिर हैं। आपका यह विग्रह काठ, दीवार और पत्थरकी तरह निश्चेष्ट हो रहा है, हिल-डुल नहीं रहा है। जहाँ हवा नहीं है, उस स्थानमें जैसे दीपकी लौ काँपती नहीं, एकतार जलती रहती है, उसी तरह आप भी स्थिर हैं, मानो पाषाणकी मूर्ति हों। यदि मैं सुननेका अधिकारी होऊँ और यह मुझसे छिपानेकी बात न हो, तो आप मेरे संदेहको दूर कीजिये। मैं आपकी शरणमें आकर बारंबार याचना करता हूँ। पुरुषोत्तम! आप ही इस



जगत्‌को बनाने और बिगाड़नेवाले हैं, आप ही क्षर और अक्षर पुरुष हैं, आपका न आदि है न अन्त। आप सबके आदि कारण हैं। मैं आपका शरणागत भक्त हूँ और माथा टेककर आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ; आप मुझे इस ध्यानका रहस्य बता दीजिये।'

युधिष्ठिरकी प्रार्थना सुनकर मन, बुद्धि तथा इन्द्रियोंको अपने-अपने स्थानपर स्थापित करके भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराते हुए बोले—'भैया! बाणशय्यापर पड़े हुए

भीष्मजी इस समय मेरा ध्यान कर रहे हैं, इसीलिये मेरा भी मन उनमें लग गया है। जिन्होंने तेईस दिनतक परशुरामजीके साथ युद्ध किया तो भी उनसे परास्त न हो सके, वे ही भीष्मजी सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी वृत्तियोंको एकाग्र कर बुद्धिके द्वारा मनको भी अपने अधीन करके मेरी शरणमें आ गये थे। इसीलिये मेरा भी मन उनमें लग गया। भगवती गङ्गाने जिन्हें विधिवत् अपने गर्भमें धारण किया, जिन्होंने महर्षि वसिष्ठजीसे शिक्षा पायी, जो सम्पूर्ण दिव्यास्त्रों तथा अङ्गोंसहित चारों वेदोंके ज्ञाता हैं, सम्पूर्ण विद्याओंके आधार हैं, भूत, भविष्य और वर्तमान जिनकी दृष्टिके सामने हैं, उन धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भीष्मजीके पास इस समय मैं मन-ही-मन पहुँच गया था। नरश्रेष्ठ भीष्मजीके स्वर्गवासी हो जानेपर यह पृथ्वी अमावस्याकी रातके समान श्रीहीन हो जायगी। इसलिये आप गङ्गानन्दन भीष्मजीके पास चलकर उनके चरणोंमें प्रणाम कीजिये और आपके मनमें जितने संदेह हों, उन सबको उनसे पूछिये। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंके स्वरूपको होता, उद्गाता, ब्रह्मा और अध्वर्युसे सम्बन्ध रखनेवाले यज्ञादि कर्मोंको तथा चारों आश्रमों और राजाओंके समस्त धर्मोंको आप उनसे पूछिये। कौरववंशका भार सँभालनेवाले भीष्मरूपी सूर्य जिस समय अस्त हो जायँगे, उस समय सब प्रकारके ज्ञानोंका प्रकाश नष्ट हो जायगा; इसीलिये मैं आपको वहाँ चलनेके लिये कहता हूँ।'

भगवान् श्रीकृष्णकी यथार्थ बातें सुनकर युधिष्ठिरका गला भर आया, वे नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए कहने लगे—'माधव ! आप भीष्मजीका जैसा प्रभाव बतला रहे हैं, वह सब ठीक है; उसमें संदेहके लिये गुंजाइश नहीं है। मुझे भी उनका प्रभाव मालूम है। उनके महान् सौभाग्य और प्रभावके विषयमें मैंने कई महात्मा ब्राह्मणोंकी बातें सुनी हैं। आप तो सम्पूर्ण जगत्के विधाता ही हैं; आप जो कुछ कह रहे हैं, उसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। भगवन् ! यदि आप मुझपर अनुग्रह करना चाहते हों तो आपको ही आगे करके हमलोग भीष्मजीके पास चलनेका विचार करते हैं। सूर्यके उत्तरायण होते ही वे देवलोकमें चले जायँगे, इसलिये अब उन्हें भी आपका दर्शन मिलना ही चाहिये।'

धर्मराजकी बात सुनकर मधुसूदनने पास ही बैठे हुए सात्यकिसे कहा—'तुम रथ तैयार कराओ।' आज्ञा पाकर सात्यकि शिविरसे बाहर निकले और दारुकसे बोले—भगवान् श्रीकृष्णका रथ जोतकर लाओ।' सात्यकिके कथनानुसार दारुकने रथ जोतकर तैयार किया। भगवान्के उस रथमें सब ओर सोना जड़ा हुआ था, उसका भीतरी भाग नाना प्रकारकी अद्भुत मणियोंसे सजाया गया था। सूर्यकी किरणोंके पड़नेसे उसकी आभा अत्यन्त उद्दीप्त हो रही थी। उसमें शैब्य और सुग्रीव आदि घोड़े जुते हुए थे। इस प्रकार रथ तैयार करके दारुक भगवान्के पास गया और हाथ जोड़कर उसने उनको इस बातकी इत्तिला की।



भीष्मद्वारा भगवान्की स्तुति

राजा जनमेजयने पूछा—मुनिवर ! बाणशय्यापर पड़े हुए पितामह भीष्मजीने किस प्रकार अपने शरीरका परित्याग किया ? उस समय उन्होंने किस योगकी धारणा की ?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! तुम पवित्र भावसे एकाग्रचित्त एवं सावधान होकर महात्मा भीष्मके देह-त्यागका वृत्तान्त सुनो। जब दक्षिणायन समाप्त हुआ और सूर्य उत्तर-मार्गपर आ गये, उस समय भीष्मजीने ध्यानमग्न होकर मनको परमात्मामें लगाया। उनके आस-पास अनेकों उत्तम ब्राह्मण विराजमान थे। वेदोंके ज्ञाता व्यास, देवर्षि नारद, देवस्थान, वात्स्य, अश्मक, सुमन्तु, जैमिनि, पैल, शाण्डिल्य, देवल, मैत्रेय, वसिष्ठ, कौशिक (विश्वामित्र), हारीत, लोमश, दत्तात्रेय, बृहस्पति, शुक्र, च्यवन, सनत्कुमार, कपिल, वाल्मीकि, तुम्बुरु, कुरु, मौद्गल्य, परशुराम, तृणविन्दु, पिप्पाद, वायु, संवर्त, पुलह, कच, कश्यप, पुलस्त्य, क्रतु, दक्ष, पराशर, मरीचि, अङ्गिरा, काश्य, गौतम, गालव, धौम्य, विभाण्ड, माण्डव्य, धौम्र, कृष्णानु- भौतिक, उलूक, मार्कण्डेय, भास्करि और पूरण—ये तथा और भी बहुत-से सौभाग्यशाली मुनि जो श्रद्धा, शम-दम आदि गुणोंसे सम्पन्न थे, भीष्मजीको घेरे हुए थे। इन ऋषियोंके बीचमें भीष्मजी ग्रहोंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान शोभा पा रहे थे। शरशय्यापर पड़े-ही-पड़े वे हाथ जोड़कर पवित्र भावसे श्रीकृष्णका ध्यान करने लगे। ध्यान करते-करते अत्यन्त हर्षमें भर गये। उनके कण्ठका स्वर स्पष्ट सुनायी देने लगा। वे संसारके स्वामी योगेश्वर भगवान् वासुदेवकी स्तुति करने लगे।

भीष्मजी बोले—मैं श्रीकृष्णके आराधनकी इच्छासे जिस वाणीका प्रयोग करना चाहता हूँ, वह विस्तृत हो या संक्षिप्त, उसे सुनकर वे पुरुषोत्तम मुझपर प्रसन्न हों। जो स्वतः

शुद्ध हैं, जिनकी प्राप्तिका मार्ग भी सर्वथा शुद्ध है, जो सबसे विलक्षण हंसस्वरूप हैं और प्रजाओंका पालन करनेवाले परमेष्ठी हैं, उन परमात्माकी मैं शरण लेता हूँ। सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करनेवाले श्रीहरि परब्रह्म परमात्मा हैं, उनका न आदि है न अन्त। उन्हें न देवता जान पाते हैं न ऋषि। एकमात्र वे नारायण ही सबको जानते हैं। नारायणसे ही ऋषि प्रकट हुए हैं, सिद्धों और बड़े-बड़े नागोंका भी उन्हींसे प्रादुर्भाव हुआ है। देवता और देवर्षि भी उनके विषयमें इतना ही जानते हैं कि वे अविनाशी परमात्मा हैं। किंतु वे भगवान् नारायण कौन हैं, कहाँसे आये हैं—इन बातोंका यथार्थ ज्ञान देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्पोंमेंसे किसीको नहीं है। उन्हींमें सम्पूर्ण प्राणी स्थित होते हैं और उन्हींमें उनका लय होता है। जैसे डोरेमें मनके पिरोये होते हैं, उसी प्रकार उन भूतेश्वर परमात्मामें सम्पूर्ण त्रिगुणात्मक भूत पिरोये हुए हैं। भगवान् कभी नष्ट न होनेवाले एक तने हुए लम्बे सूतके समान हैं; उनमें यह कार्य-कारणरूप जगत् उसी प्रकार गुँथा हुआ है, जैसे सूतमें माला। सम्पूर्ण विश्व उन्हींके आधारपर टिका हुआ है, यह उन्हींकी रचना है। उन श्रीहरिके हजारों मस्तक, हजारों पैर तथा हजारों नेत्र हैं; हजारों भुजाओं, हजारों मुकुटों तथा हजारों मुखोंसे वे देदीप्यमान रहते हैं। वे ही इस जगत्‌के परम आधार हैं, उन्हींको नारायण कहते हैं। वे सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और स्थूलसे भी स्थूल हैं, भारी-से-भारी और उत्तम-से भी उत्तम हैं। वाक और अनुवाकोंमें (मन्त्र और ब्राह्मणोंमें) तथा कर्म और ब्रह्मका प्रतिपादन करनेवाले वाक्योंमें जिस सत्यका प्रतिपादन किया गया है, वह सत्कर्मा भगवान् वासुदेव ही हैं; वे ही 'साम' संज्ञक ऋचाओंके परमार्थ तत्त्व हैं। विशुद्ध अन्तःकरणमें उनका नित्य निवास (साक्षात्कार) होता है, वे अपने भक्तोंका सदा पालन करते रहते हैं। श्रीकृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध—इन चार स्वरूपोंमें वे ही प्रकट होते हैं और भक्तजन उक्त चार दिव्य नामोंसे उन्हींकी पूजा किया करते हैं। भगवान् वासुदेवकी ही प्रसन्नताके लिये नित्य तप (नैत्यिक कर्म) का अनुष्ठान किया जाता है, वे ही सबके भीतर विराजमान हैं। वे सबके आत्मा, सबको जाननेवाले, सर्वस्वरूप एवं सबको उत्पन्न करनेवाले हैं। जैसे अरणी अग्नि प्रकट करती है, उसी प्रकार देवकी देवीने इस भूमण्डलपर रहनेवाले ब्राह्मणों, वेदों और यज्ञोंकी रक्षाके लिये जिन्हें वसुदेवके सकाशसे प्रकट किया था, सम्पूर्ण कामनाओंका त्याग कर अनन्यभावसे स्थित रहनेवाला साधक मोक्षके उद्देश्यसे अपने विशुद्ध अन्तःकरणमें जिन शुद्ध-बुद्ध आत्मारूप गोविन्दका ज्ञानदृष्टिसे साक्षात्कार करता है, जिनका पराक्रम इन्द्र और वायुसे बहुत बढ़कर है, जिनके तेजके सामने सूर्यकी कोई हस्ती नहीं है और जिनके स्वरूपतक मनुष्यके मन, बुद्धि तथा इन्द्रियोंकी पहुँच नहीं हो पाती, उन प्रजापालक परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ।

पुराणोंमें जिनका 'पुरुष' नामसे वर्णन किया गया है, जो युगोंके आरम्भमें 'ब्रह्म' और युगान्तके समय 'संकर्षण' कहे गये हैं, उन उपासनीय परमेश्वरकी मैं उपासना करता हूँ। जो एक होकर भी अनेक रूपोंमें प्रकट हुए हैं, समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, यज्ञादि कर्मोंमें लगे हुए अनन्य भक्त जिन परमात्माका यजन करते हैं, जिन्हें संसारका कोषागार कहते हैं, जिनमें ही सम्पूर्ण प्रजाएँ स्थित हैं, पानीके ऊपर तैरनेवाले जल-पक्षियोंकी तरह जिनके ही ऊपर इस सम्पूर्ण जगत्‌की चेष्टाएँ हो रही हैं, जो परमार्थ सत्यस्वरूप और एकाक्षर ब्रह्म (प्रणव) हैं, सत् और असत्‌से विलक्षण हैं, जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, जिन्हें न देवता ठीक-ठीक जानते हैं न ऋषि, अपने मन और इन्द्रियोंको वशीभूत करके सम्पूर्ण देवता, असुर, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि तथा नागगण जिनकी सदा पूजा किया करते हैं, जो संसाररूपी दुःखसे छुड़ानेके लिये सबसे बड़ी ओषधि हैं, जो जन्म-मरणसे परे स्वयम्भू एवं सनातन देवता हैं तथा जो इन नेत्रों और बुद्धिकी पहुँचके बाहर हैं, उन भगवान् नारायणकी मैं शरण लेता हूँ। जो इस विश्वके विधाता और चराचर जगत्‌के स्वामी हैं, जिन्हें संसारका साक्षी तथा अविनाशी परमपद कहते हैं, उन परमात्माकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

जो सुवर्णके समान कान्तिवाले और दैत्योंके संहारक हैं, एक होनेपर भी जिन्हें अदिति देवीने अपने गर्भसे बारह आदित्योंके रूपमें प्रकट किया, उन सूर्यस्वरूप परमेश्वरको नमस्कार है। जो अपनी अमृतमयी कलाओंसे शुक्लपक्षमें देवताओंको और कृष्णपक्षमें पितरोंको तृप्त करते हैं तथा जो सम्पूर्ण द्विजोंके राजा हैं, उन चन्द्रमाके रूपमें प्रकट हुए परमात्माको प्रणाम है। जो अज्ञानमय महान् अन्धकारसे परे और ज्ञानालोकसे अत्यन्त प्रकाशित होनेवाले आत्मा हैं, जिन्हें जान लेनेपर मनुष्य मौतके चंगुलसे छूट जाता है, उन ज्ञेयरूप परमेश्वरको नमस्कार है। उक्थ नामक बृहत् यज्ञके समय, अग्न्याधानकालमें तथा महायागमें ब्राह्मणवृन्द जिनका ब्रह्मके रूपमें स्तवन करते हैं, उन वेदभगवान्‌को नमस्कार है। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद जिसके आश्रय हैं, पाँच प्रकारका हविष्य जिसका स्वरूप है, गायत्री आदि सात छन्द ही जिसके सात तन्तु हैं, उस यज्ञके रूपमें प्रकट हुए परमात्मा-

को प्रणाम है। चार,[1] चार,[2], दो,[3] पाँच[4] और दो[5] अक्षरोंवाले मन्त्रोंसे जिन्हें हविष्य अर्पण किया जाता है, उन होमस्वरूप परमेश्वरको नमस्कार है। जो 'यजुः' नाम धारण करनेवाले वेदरूपी पुरुष हैं, गायत्री आदि छन्द जिनके हाथ-पैर आदि अवयव हैं, यज्ञ ही जिनका मस्तक है तथा 'रथन्तर' और 'वृहत्' नामक साम ही जिनकी सान्त्वनाभरी वाणी है, उन स्तोत्ररूपी भगवान्‌को प्रणाम है। जो हजार वर्षोंमें पूर्ण होनेवाले प्रजापतियोंके यज्ञमें सोनेकी पाँखवाले पंछीके रूपमें प्रकट हुए थे, उन हंसरूपधारी परमेश्वरको प्रणाम है। पदोंके समूह जिनके अङ्ग हैं, संधि जिनके शरीरकी जोड़ है, स्वर और व्यञ्जन जिनके लिये आभूषणका काम देते हैं तथा जिन्हें दिव्य अक्षर कहते हैं, उन परमेश्वरको वाणीके रूपमें नमस्कार है। जिन्होंने तीनों लोकोंका हित करनेके लिये यज्ञमय वराहका स्वरूप धारण करके इस पृथ्वीको रसातलसे ऊपर उठाया था, उन वीर्यस्वरूप भगवान्‌को प्रणाम है। जो अपनी योगमायाका आश्रय लेकर शेषनागके हजार फनोंसे बने हुए पलंगपर शयन करते हैं, उन निद्रास्वरूप परमात्माको नमस्कार है। जिनका सारा व्यवहार केवल धर्मके ही लिये है, उन वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा जो मोक्षके साधनभूत वैदिक उपायोंसे काम लेकर संतोंकी धर्म-मर्यादाका प्रसार करते हैं, उन सत्स्वरूप परमात्माको नमस्कार है। जो भिन्न-भिन्न धर्मोंका आचरण करके अलग-अलग उनके फलोंकी इच्छा रखते हैं, ऐसे पुरुष पृथक् धर्मोंके द्वारा जिनकी पूजा करते हैं, उन धर्ममय भगवान्‌को प्रणाम है। जिस अनङ्गकी प्रेरणासे सम्पूर्ण अङ्गधारी प्राणियोंका जन्म होता है, जिससे समस्त जीव उन्मत्त हो उठते हैं, उस कामके रूपमें प्रकट हुए परमेश्वरको नमस्कार है। जो स्थूल जगत्‌में अव्यक्तरूपसे विराजमान है, बड़े-बड़े महर्षि जिसके तत्त्वका अनुसंधान करते रहते हैं, जो सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञके रूपमें बैठा हुआ है, उस क्षेत्ररूपी परमात्माको प्रणाम है। जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओंके भेदसे त्रिविध प्रतीत होते हैं, गुणोंके कार्यभूत सोलह विकारोंसे आवृत होनेपर भी अपने स्वरूपमें ही स्थित हैं, सांख्यमतके अनुयायी जिन्हें उक्त सोलह विकारोंके साक्षी और उनसे निर्लिप्त सत्रहवाँ तत्त्व (पुरुष) मानते हैं, उन सांख्यरूप परमात्माको नमस्कार है। जो नींदको जीतकर प्राणोंपर विजय पा चुके हैं और इन्द्रियोंको अपने वशमें करके शुद्ध सत्त्वमें स्थित हो गये हैं, वे निरन्तर योगाभ्यासमें लगे हुए योगीजन समाधिमें जिनके ज्योतिर्मय स्वरूपका साक्षात्कार करते हैं, उन योगरूप परमात्माको प्रणाम है। पाप और पुण्यका क्षय हो जानेपर पुनर्जन्मके भयसे मुक्त हुए शान्तचित्त संन्यासी जिन्हें प्राप्त करते हैं, उन मोक्षरूप परमेश्वरको नमस्कार है। सृष्टिके एक हजार युग बीतनेपर प्रचण्ड ज्वालाओंसे युक्त प्रलयकालीन अग्निका रूप धारण कर जो सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करते हैं, उन उग्ररूपधारी परमात्माको प्रणाम है। इस प्रकार सम्पूर्ण भूतोंका भक्षण करके जो इस जगत्‌को जलमय कर देते हैं और स्वयं बालकका रूप धारण कर अक्षयवटके पत्तेपर शयन करते हैं, उन मायामय बाल-मुकुन्दको नमस्कार है। जिसपर यह विश्व टिका हुआ है, वह ब्रह्माण्डकमल जिन पुण्डरीकाक्ष भगवान्‌की नाभिसे प्रकट हुआ है। उन कमलरूपधारी परमेश्वरको प्रणाम है।

जिनके हजारों मस्तक हैं, जो अन्तर्यामीरूपसे सबके भीतर विराजमान हैं, जिनका स्वरूप किसी सीमामें आबद्ध नहीं है, जो चारों समुद्रोंके मिलनेसे एकार्णव हो जानेपर योगनिद्राका आश्रय लेकर शयन करते हैं, उन योगनिद्रारूप भगवान्‌को नमस्कार है। जिनके मस्तकके बालोंकी जगह मेघ हैं, शरीरकी संधियोंमें नदियाँ हैं और उदरमें चारों समुद्र हैं, उन जलरूपी परमात्माको प्रणाम है। सृष्टि और प्रलयरूप समस्त विकार जिनसे उत्पन्न होते हैं और जिनमें ही सबका लय होता है, उन कारणरूप परमेश्वरको नमस्कार है। जो रातमें भी बैठे होते हैं और दिनके समय साक्षीरूपमें स्थित रहते हैं तथा जो सदा ही सबके भले-बुरेको देखते रहते हैं, उन द्रष्टारूपी परमात्माको प्रणाम है। जिन्हें कोई भी काम करनेमें रुकावट नहीं होती, जो धर्मका काम करनेको सर्वदा उद्यत रहते हैं तथा जो वैकुण्ठधामके स्वरूप हैं, उन कार्यरूप भगवान्‌को नमस्कार है। जिन्होंने धर्मात्मा होकर भी क्रोधमें भरकर धर्मके गौरवका उल्लङ्घन करनेवाले क्षत्रिय-समाजका युद्धमें इक्कीस बार संहार किया, कठोरताका अभिनय करनेवाले उन भगवान् परशुरामको प्रणाम है। जो प्रत्येक शरीरके भीतर वायुरूपमें स्थित हो अपनेको प्राण-अपान आदि पाँच स्वरूपोंमें विभक्त करके सम्पूर्ण प्राणियोंको क्रियाशील बनाते हैं, उन वायुरूप परमेश्वरको नमस्कार है। जो प्रत्येक युगमें योगमायाके बलसे अवतार धारण करते हैं और मास, ऋतु, अयन तथा वर्षोंके द्वारा सृष्टि और प्रलय करते रहते हैं, उन कालरूप परमात्माको प्रणाम है। ब्राह्मण जिनके मुख हैं, सम्पूर्ण क्षत्रिय-जाति भुजा है, वैश्य जंघा एवं उदर हैं और शूद्र जिनके चरणोंके आश्रित हैं, उन चातुर्वर्ण्यरूप परमेश्वरको नमस्कार है। अग्नि जिनका मुख है,

१. आश्रावय। २. अस्तु श्रौषट्। ३. यज। ४. ये यजामहे। ५. वषट्।

स्वर्ग मस्तक है, आकाश नाभि है, पृथ्वी पैर है, सूर्य नेत्र है और दिशाएँ कान हैं, उन लोकरूप परमात्माको प्रणाम है।

जो कालसे परे हैं, यज्ञसे भी परे हैं और परेसे भी अत्यन्त परे हैं, जो सम्पूर्ण विश्वके आदि हैं, किंतु जिनका आदि कोई भी नहीं है। उन विश्वात्मा परमेश्वरको नमस्कार है। वैशेषिक दर्शनमें बताये हुए रूप, रस आदि गुणोंके द्वारा आकृष्ट हो जो लोग विषयोंके सेवनमें प्रवृत्त हो रहे हैं, उनकी उन विषयोंकी आसक्तिसे जो रक्षा करनेवाले हैं, उन रक्षकरूप परमात्माको प्रणाम है। जो अन्न-जलरूपी ईंधनको पाकर शरीरके भीतर रस और प्राण-शक्तिको बढ़ाते तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको धारण करते हैं, उन प्राणात्मा परमेश्वरको नमस्कार है। प्राणोंकी रक्षाके लिये जो भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य—चार प्रकारके अन्नोंका भोग लगाते हैं और स्वयं ही पेटके भीतर अग्निरूपमें स्थित भोजनको पचाते हैं, उन पाकरूप परमेश्वरको प्रणाम है। जिनका नरसिंह-रूप दानवराज हिरण्यकशिपुका अन्त करनेवाला था, उस समय जिनके नेत्र और कंधेके बाल पीले दिखायी पड़ते थे, बड़ी-बड़ी दाढ़ें और नख ही जिनके आयुध थे, उन दर्परूपधारी भगवान् नरसिंहको प्रणाम है। जिन्हें न देवता, न गन्धर्व, न दैत्य और न दानव ही ठीक-ठीक जान पाते हैं, उन सूक्ष्मस्वरूप परमात्माको नमस्कार है। जो सर्वव्यापक भगवान् श्रीमान् अनन्तनामक शेषनागके रूपमें रसातलमें रहकर सम्पूर्ण जगत्‌को अपने मस्तकपर धारण करते हैं, उन वीर्यरूप परमेश्वरको प्रणाम है। जो इस सृष्टि-परम्पराकी रक्षाके लिये सम्पूर्ण प्राणियोंको स्नेहपाशमें बाँधकर मोहमें डाले रखते हैं, उन मोहरूप भगवान्‌को नमस्कार है। अन्नमयादि पाँच कोषोंमें स्थित आन्तरतम आत्माका ज्ञान होनेके पश्चात् विशुद्ध बोधके द्वारा विद्वान् पुरुष जिन्हें प्राप्त करते हैं उन ज्ञानस्वरूप परब्रह्मको प्रणाम है।

जिनका स्वरूप किसी प्रमाणका विषय नहीं है, जिनके बुद्धिरूपी नेत्र सब ओर व्याप्त हो रहे हैं तथा जिनके भीतर अनन्त विषयोंका समावेश है, उन दिव्यात्मा परमेश्वरको नमस्कार है। जो जटा और दण्ड धारण करते हैं, लम्बोदर शरीरवाले हैं तथा जिनका कमण्डलु ही तूणीरका काम देता है, उन ब्रह्माजीके रूपमें भगवान्‌को प्रणाम है। जो त्रिशूल धारण करनेवाले और देवताओंके स्वामी हैं, जिनके तीननेत्र हैं, जो महात्मा हैं तथा जिन्होंने अपने शरीरपर विभूति रमा रखी है, उन रुद्ररूप परमेश्वरको नमस्कार है। जिनके मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट और शरीरपर सर्पका यज्ञोपवीत शोभा दे रहा है, जो अपने हाथमें पिनाक और त्रिशूल धारण करते हैं, उन उग्ररूपधारी भगवान् शंकरको प्रणाम है। जो सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा और उनके जन्म-मृत्युके कारण हैं, जिनमें क्रोध, द्रोह और मोहका सर्वथा अभाव है, उन शान्तात्मा परमेश्वरको नमस्कार है। जिनके भीतर सब कुछ रहता है, जिनसे सब उत्पन्न होता है, जो स्वयं ही सर्वस्वरूप हैं, सब ओर व्यापक हो रहे हैं और सर्वमय हैं, उन सर्वात्माको प्रणाम है।

इस विश्वकी रचना करनेवाले परमेश्वर! आपको प्रणाम है। विश्वके आत्मा और विश्वकी उत्पत्तिके स्थानभूत जगदीश्वर! आपको नमस्कार है। आप पाँचों भूतोंसे परे हैं और सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये मोक्षस्वरूप ब्रह्म हैं। तीनों लोकोंमें व्याप्त हुए आपको नमस्कार है, त्रिभुवनसे परे रहनेवाले आपको प्रणाम है, सम्पूर्ण दिशाओंमें व्यापक आप प्रभुको नमस्कार है। आप सब पदार्थोंसे पूर्ण भंडार हैं। संसारकी उत्पत्ति करनेवाले अविनाशी भगवान् विष्णु! आपको नमस्कार है। हृषीकेश! आप सबके जन्मदाता और संहारकर्ता हैं। आप किसीसे पराजित नहीं होते। मैं तीनों लोकोंमें आपके दिव्य जन्म-कर्मका रहस्य नहीं जान पाता; मैं तो तत्त्वदृष्टिसे आपका जो सनातन रूप है, उसीकी ओर लक्ष्य रखता हूँ। स्वर्गलोक आपके मस्तकसे, पृथ्वीदेवी आपके पैरोंसे और तीनों लोक आपके तीन पगोंसे व्याप्त हैं, आप सनातन पुरुष हैं। दिशाएँ आपकी भुजाएँ, सूर्य आपके नेत्र और प्रजापति शुक्राचार्य आपके वीर्य हैं; आपने ही अत्यन्त तेजस्वी वायुके रूपसे ऊपरके सातों लोकोंको व्याप्त कर रखा है। जिनकी कान्ति अलसीके फूलकी तरह साँवली है, शरीरपर पीताम्बर शोभा देता है, जो अपने स्वरूपसे कभी च्युत नहीं होते, उन भगवान् गोविन्दको जो लोग नमस्कार करते हैं, उन्हें कभी भय नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्णको एक बार भी प्रणाम किया जाय तो वह दस अश्वमेध यज्ञोंके अन्तमें किये गये स्नानके समान फल देनेवाला होता है। इसके सिवा प्रणाममें एक विशेषता है—दस अश्वमेध करनेवालेका तो पुनः इस संसारमें जन्म होता है, किंतु श्रीकृष्णको प्रणाम करनेवाला मनुष्य फिर भव-बन्धनमें नहीं पड़ता। जिन्होंने श्रीकृष्ण-भजनका ही व्रत ले रखा है, जो श्रीकृष्णका निरन्तर स्मरण करते हुए ही रातको सोते हैं और उन्हींका स्मरण करते हुए सबेरे उठते हैं, वे श्रीकृष्णस्वरूप होकर उनमें इस तरह मिल जाते हैं, जैसे मन्त्र पढ़कर हवन किया हुआ घी अग्निमें मिल जाता है।

जो नरकके भयसे बचानेके लिये रक्षा-गृहका निर्माण करनेवाले और संसाररूपी सरिताकी भँवरसे पार उतारनेके

लिये काठकी नावके समान हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो ब्राह्मणोंके प्रेमी तथा गौ और ब्राह्मणोंके हितकारी हैं, जिनसे समस्त विश्वका कल्याण होता है, उन सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् गोविन्दको प्रणाम है। 'हरि' ये दो अक्षर दुर्गम पथमें संकटके समय प्राणोंके लिये राह-खर्चके समान हैं, संसाररूपी रोगसे छुटकारा दिलानेके लिये औषधके तुल्य हैं तथा सब प्रकारके दुःख-शोकसे उद्धार करनेवाले हैं। जैसे सत्य विष्णुमय है, जैसे सारा संसार विष्णुमय है, जिस प्रकार सब कुछ विष्णुमय है, उस प्रकार इस सत्यके प्रभावसे मेरे सारे पाप नष्ट हो जायँ। देवताओंमें श्रेष्ठ कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण ! मैं आपका शरणागत भक्त हूँ और अभीष्ट गतिको प्राप्त करना चाहता हूँ; जिसमें मेरा कल्याण हो, वह आप ही सोचिये। जो विद्या और तपके जन्मस्थान हैं, जिनको दूसरा कोई जन्म देनेवाला नहीं है, उन भगवान् विष्णुका मैंने इस प्रकार वाणीरूप यज्ञसे पूजन किया है। इससे वे भगवान् जनार्दन मुझपर प्रसन्न हों। नारायण ही परब्रह्म हैं, नारायण ही परम तप हैं, नारायण ही सबसे बड़े देवता हैं और भगवान् नारायण ही सदा सब कुछ हैं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—भीष्मजीका मन भगवान् श्रीकृष्णमें लगा हुआ था, उन्होंने ऊपर बतायी हुई स्तुति करनेके पश्चात् 'नमः कृष्णाय' कहकर उन्हें प्रणाम किया। भगवान् भी अपने योगबलसे भीष्मजीकी भक्तिको जानकर अव्यक्तरूपसे वहाँ जा पहुँचे और उन्हें तीनों लोकोंकी बातोंका बोध करानेवाला दिव्य ज्ञान देकर लौट गये। जब भीष्मजीका बोलना बंद हो गया तो वहाँ बैठे हुए ब्रह्मवादी महर्षियोंने आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद कण्ठसे श्रीकृष्णकी स्तुति की। फिर वे धीरे-धीरे भीष्मजीकी प्रशंसा करने लगे।

इधर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण भीष्मजीका भक्तिभाव देखकर सहसा उठे और तुरंत रथपर जा बैठे। श्रीकृष्ण और सात्यकि एक रथपर चले। दूसरे रथपर महात्मा युधिष्ठिर और अर्जुन जा रहे थे। तीसरेपर भीम, नकुल तथा सहदेव—ये तीनों भाई सवार थे। कृपाचार्य, युयुत्सु और सञ्जय भी अपने-अपने रथपर बैठकर भीष्मजीके पास चले। उस समय बहुत-से ब्राह्मण मार्गमें पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे थे और भगवान् प्रसन्नतापूर्वक उसे सुनते जा रहे थे। कुछ लोग हाथ जोड़कर भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम करते थे और वे उन्हें आनन्दित करते हुए चले जा रहे थे।

—★—

परशुरामजीका चरित्र

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण, राजा युधिष्ठिर शेष पाण्डव तथा कृपाचार्य आदि सब लोग अपने नगराकार विशाल रथोंसे कुरुक्षेत्रकी ओर बढ़े। रास्तेमें चलते-चलते भगवान् श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिरको परशुरामजीका पराक्रम सुनाने लगे—'राजन् ! ये जो पाँच सरोवर दिखायी पड़ते हैं, 'रामह्रद' के नामसे प्रसिद्ध हैं। परशुरामजीने इक्कीस बार इस भूमण्डलके क्षत्रियोंका संहार करके इन कुण्डोंको उनके खूनसे भरा था।'

युधिष्ठिरने पूछा—यदुनाथ ! जब परशुरामजीने पूर्वकालमें इस पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियोंसे सूनी कर दिया तो फिर उनकी उत्पत्ति कैसे हुई ? उन्होंने क्षत्रियोंका संहार क्यों किया ? मेरे इस संदेहको आप दूर कीजिये; क्योंकि वेद-शास्त्र भी आपसे बढ़कर नहीं हैं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! राजा युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर श्रीकृष्णने वह सब घटना जैसे घटित हुई थी, सब उन्हें कह सुनायी।

श्रीकृष्ण बोले—कुन्तीनन्दन ! मैंने महर्षियोंके मुखसे परशुरामजीके प्रभाव, पराक्रम तथा जन्मकी कथा जिस प्रकार सुनी है, वह सब आपको सुनाता हूँ; सुनिये। प्राचीन कालमें एक जह्नु नामक राजा हो गये हैं; उनके पुत्रका नाम था अज। अजसे बलाकाश्वका जन्म हुआ और बलाकाश्वके पुत्रका नाम कुशिक हुआ। कुशिक बड़े धर्मज्ञ थे, उन्होंने पुत्र-प्राप्तिके लिये कठोर तपस्या की; इससे साक्षात् इन्द्र ही उनके यहाँ पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए। उनका नाम पड़ा गाधि। राजा गाधिके एक पुत्री हुई, जिसका नाम था सत्यवती। राजाने भृगुनन्दन ऋचीक मुनिके साथ अपनी उस कन्याका व्याह कर दिया। सत्यवती बड़े आचार-विचारसे रहती थी, उसकी शुद्धता देखकर ऋचीक मुनि बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सत्यवतीको तथा राजा गाधिको पुत्र देनेके लिये चरु तैयार किया और अपनी उस पत्नीको बुलाकर कहा—'कल्याणी ! यह दो तरहका चरु है, इसमेंसे यह तो तुम स्वयं खा लेना और यह दूसरा अपनी माँको खिला देना। इससे तुम्हारी माताके गर्भसे एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा, जो बड़े-बड़े क्षत्रियोंका संहार करेगा और कोई भी क्षत्रिय उसे युद्धमें नहीं जीत सकेगा। इसी तरह तुम्हारे लिये जो चरु तैयार किया है, इसको खानेसे तुम एक श्रेष्ठ ब्राह्मणबालक उत्पन्न करोगी, जो मनपर काबू रखनेवाला, तपस्वी तथा धैर्यवान् होगा।'

पत्नीको इस प्रकार समझाकर तपस्यामें लगे रहनेवाले ऋचीक मुनि वनमें चले गये। इसी समय तीर्थयात्राके लिये निकले हुए राजा गाधि अपनी स्त्रीके साथ ऋचीकके आश्रमपर आये। सत्यवती उस समय दोनों चरु हाथमें लेकर बड़ी उतावलीके साथ माताके पास पहुँची और उसके पतिने जो कुछ कहा था, वह सब प्रसन्नतापूर्वक उसने अपनी माँको सुना दिया। उसकी माताने भूलसे अपना चरु तो सत्यवतीको दे दिया और स्वयं उसका खा लिया।

तदनन्तर सत्यवतीने क्षत्रियोंका विनाश करनेवाला गर्भ धारण किया। उसकी अवस्था देख ऋचीक मुनिने कहा—'कल्याणी ! मैंने तुम्हारे चरुमें ब्राह्मणका महान् तेज स्थापित किया था और तुम्हारी माताके चरुमें क्षत्रियोंका सम्पूर्ण तेज रख दिया था; किंतु अब चरुओंके बदल जानेसे ऐसी बात नहीं होगी। तुम्हारी माताका पुत्र तो ब्राह्मण होगा और तुम्हारा पुत्र क्षत्रिय।' यह सुनकर सत्यवती काँप उठी, उसने पतिके चरणोंपर मस्तक रखकर कहा—'भगवन् ! अब ऐसी बात न कहिये। मुझे ब्राह्मणत्वसे रहित पुत्र पानेका आशीर्वाद न दीजिये।'

ऋचीकने कहा—कल्याणी ! मैंने यह संकल्प नहीं किया था कि तुम्हारे गर्भसे ऐसा पुत्र हो, यह भयंकर कर्म करनेवाला बालक तो चरु बदल जानेके कारण ही तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न होगा।

सत्यवती बोली—मुनिवर ! आप तो इच्छा करते ही सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि कर सकते हैं, फिर एक पुत्र उत्पन्न करना कौन बड़ी बात है ? मुझे तो वही पुत्र दीजिये जो शान्त हो, सरल हो। मेरा पौत्र भले ही उग्रस्वभावका हो जाय, किंतु पुत्र तो मैं शान्त ही चाहती हूँ।

ऋचीकने कहा—भद्रे ! अच्छी बात है; तुमने जो कहा है, वैसा ही होगा।

श्रीकृष्ण कहते हैं—तदनन्तर सत्यवतीने जमदग्निमुनिको जन्म दिया जो बड़े तपस्वी, शान्त और नियमोंका पालन करनेवाले थे। उधर कुशिकनन्दन गाधिने विश्वामित्रको उत्पन्न किया, जो सम्पूर्ण ब्राह्मणोचित गुणोंसे सम्पन्न थे और ब्रह्मर्षिकी पदवीको प्राप्त हुए। जमदग्निने जिस उग्रस्वभाववाले पुत्रको उत्पन्न किया, वही परशुरामजी थे; वे सम्पूर्ण विद्याओं तथा धनुर्वेदके पारगामी विद्वान् हुए। वे ही क्षत्रिय कुलका संहार करनेवाले तथा प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी हुए। उन्होंने गन्धमादन पर्वतपर महादेवजीको प्रसन्न करके उनसे अनेकों दिव्य अस्त्र तथा अत्यन्त तेजस्वी परशु प्राप्त किया। संसारमें इनकी समानता करनेवाला कोई नहीं था।

उन्हीं दिनोंकी बात है; राजा कृतवीर्यके एक अर्जुन नामक अत्यन्त तेजस्वी पुत्र हुआ, जो हैहयवंशी क्षत्रियोंका स्वामी था। उसने दत्तात्रेयजीकी कृपासे हजार बाँहें प्राप्त की थीं। वह महान् तेजस्वी चक्रवर्ती राजा था। उसने अश्वमेध यज्ञमें यह सम्पूर्ण पृथ्वी, जिसे अपने बाहुबलसे जीता था, ब्राह्मणोंको दान कर दी थी। एक बार अग्निदेवने उससे भिक्षा माँगी और उसने अपनी हजारों भुजाओंके पराक्रमका भरोसा करके उन्हें भिक्षा दी। उसके बाणोंके अग्रभागसे प्रकट होकर अग्निने अनेकों गाँवों, नगरों, देशों तथा गोशालाओंको जलाकर भस्म कर डाला। हवाका सहारा पाकर अग्निका प्रचण्ड वेग बढ़ता जाता था और वे हैहयराजको साथ लेकर जंगलों और पर्वतोंको जला रहे थे। उन्होंने महात्मा आपव मुनिके सूने आश्रमको भी जला दिया। इससे आपवने रोषमें भरकर अर्जुनको इस प्रकार शाप दिया—'तुमने मेरे इस जंगलको भी जलाये बिना नहीं छोड़ा, इसलिये संग्राममें तुम्हारी इन भुजाओंको परशुरामजी काट डालेंगे।'

अर्जुनने उस शापपर ध्यान नहीं दिया। उसके पुत्र बहुत बली थे। वे घमंडी और क्रूर भी थे। शापवश वे ही अपने पिताके वधमें कारण बने। एक दिन वे जमदग्निकी गायके बछड़ेको चुरा ले गये। कार्तवीर्य अर्जुनको इसका कुछ भी पता नहीं था। उस बछड़ेके लिये घोर युद्ध हुआ। उसीमें परशुरामजीने रोषमें भरकर अर्जुनकी भुजाओंको काट डाला। फिर बछड़ेको लेकर वे अपने आश्रमपर चले आये। अर्जुनके पुत्र बड़े मूर्ख थे, वे सब मिलकर जमदग्निके आश्रमपर गये। उस समय परशुरामजी समिधा और कुश लानेके लिये आश्रमसे बाहर गये हुए थे। अर्जुनके पुत्रोंने मौका पाकर भालेसे जमदग्निका मस्तक काट गिराया। परशुरामजी जब आश्रमपर आये तो पिताके वधसे उन्हें बड़ा अमर्ष हुआ, उनके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने पृथ्वीको क्षत्रियोंसे हीन कर देनेकी प्रतिज्ञा करके हथियार उठाया और सबसे पहले हैहयोंपर ही धावा किया। परशुरामजीने पराक्रम करके कार्तवीर्यके समस्त पुत्रों और पौत्रोंका अन्त कर दिया और हजारों हैहयवंशी क्षत्रियोंका सफाया कर डाला। फिर पृथ्वीको क्षत्रियोंसे सूनी करके उन्होंने इसे खूनसे गीली कर दिया। उस समय सैकड़ों क्षत्रिय मरनेसे बच गये थे; वे ही धीरे-धीरे बढ़कर महापराक्रमी भूपाल हुए। तब परशुरामजीने फिरसे अस्त्र उठाया और क्षत्रियोंके बालकोंतकको मार डाला। अब क्षत्राणियोंके गर्भमें ही बच्चे रह गये थे; पर उनमेंसे भी जो जन्म लेता, उसका पता लगाकर वे वध कर डालते थे। उस समय कुछ ही क्षत्रिय-नारियाँ

अपने गर्भको बचा सकीं। इस प्रकार इक्कीस बार क्षत्रियोंका संहार करके उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया और यह पृथ्वी कश्यपजीको दानमें दे दी। तब शेष क्षत्रियोंकी जीवन-रक्षाके लिये कश्यपजीने परशुरामजीसे कहा—'राम ! तुम दक्षिण समुद्रके किनारे चले जाओ, अब मेरे राज्यमें कभी निवास न करना।'

यह सुनकर परशुरामजी चले गये। समुद्रने उनके लिये जगह खाली कर दी, जो शूर्पारक देशके नामसे प्रसिद्ध हुआ; उसे अपरान्त-भूमि भी कहते हैं। कश्यपजीने परशुरामकी दी हुई पृथ्वी स्वीकार करके उसे ब्राह्मणोंके सुपुर्द कर दिया और स्वयं भी वनमें चले गये। उस समय कोई बलवान् रक्षक न होनेके कारण सब ओर अराजकता फैल गयी। बली दुर्बलोंको सताने लगे। ब्राह्मणोंमेंसे किसीकी प्रभुता कायम न रही। कालक्रमसे पापियोंका प्रभाव बढ़ा और पृथ्वी कष्ट पाने लगी। अत्याचारसे पीड़ित हो यह वसुधा रसातलमें धँसने लगी। यह देख कश्यपजीने अपने ऊरुओंसे सहारा देकर इसे रोका, इसलिये यह 'ऊर्वी' कहलाने लगी। तब इस पृथ्वीने अपनी रक्षाके लिये कश्यपजीको प्रसन्न करके वरदान माँगा—'ब्रह्मन् ! मैंने बहुत-से हैहयवंशी क्षत्रियोंको स्त्रियोंमें छिपा रखा है, वे मेरी रक्षा करें। उनके सिवा पुरुवंशी विदूरथका भी एक पुत्र जीवित है, जिसे ऋक्षवान् पर्वतपर रीछोंने पालकर बड़ा किया है। इसी तरह महर्षि पराशरने दयावश राजा सौदासके पुत्रोंकी जान बचायी है। राजा शिविका भी एक तेजस्वी पुत्र है, जिसका नाम है गोपति, उसे वनमें गौओंने पाल-पोसकर बड़ा किया है। राजा प्रतर्दनका पुत्र वत्स भी जीवित है, जिसे गोशालामें बछड़ोंने पाला है। दिविरथके पुत्रको महर्षि गौतमने गङ्गातटपर छिपा रखा है। महान् तेजस्वी बृहद्रथ भी जीवित हैं, जिन्हें गृध्रकूट पर्वतपर लंगूरोंने बचाया है तथा मरुत्तके वंशमें उत्पन्न हुए बहुत-से क्षत्रिय बालकोंकी समुद्रने रक्षा की है। ये राजपूत-बालक भिन्न-भिन्न स्थानोंपर मौजूद हैं, यदि ये मेरी रक्षा करें तो मैं स्थिर रह सकती हूँ। इन बेचारोंके बाप-दादे परशुरामजीके द्वारा युद्धमें मारे गये हैं। मैं धर्मकी मर्यादाको लाँघनेवाले क्षत्रियद्वारा अपनी रक्षा नहीं चाहती। धार्मिक पुरुषके संरक्षणमें ही रहूँगी। आप शीघ्र इसका प्रबन्ध कीजिये।'

पृथ्वीकी प्रार्थना सुनकर कश्यपजीने ऊपर बताये हुए राजकुमारोंको भिन्न-भिन्न स्थानोंसे एकत्रित किया और उन्हें पृथ्वीके विभिन्न देशोंके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। आज जिनके वंश कायम हैं, ये उन्हींके पुत्र-पौत्रोंमेंसे हैं। राजन् ! आपके प्रश्नके अनुसार यह प्राचीन इतिहास मैंने सुना दिया। इसी प्रकार ये बातें हुई थीं।



श्रीकृष्णद्वारा भीष्मकी प्रशंसा, भीष्मद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति और श्रीकृष्णका भीष्मसे धर्मोपदेशके लिये कहना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार बातें करते हुए श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर, जहाँ भीष्मजी बाणशय्यापर सोये हुए थे, उस स्थानपर जा पहुँचे। वह पावन प्रदेश ओघवती नदीके तटपर था। दूरसे ही भीष्मजीको देखकर श्रीकृष्ण, राजा युधिष्ठिर, अन्य चारों पाण्डव और कृपाचार्य आदि सब लोग अपने-अपने रथसे उतर पड़े और जहाँ ऋषियोंकी मण्डली बैठी थी, वहाँ आये। उन सब लोगोंने पहले व्यास आदि महर्षियोंको प्रणाम किया, फिर वे भीष्मजीकी सेवामें उपस्थित हुए और उन्हें चारों ओरसे घेरकर बैठ गये। तदनन्तर, श्रीकृष्णने इस प्रकार बातचीत आरम्भ की—'भीष्मजी ! आपको बाणोंकी चोट सहनेका जो कष्ट उठाना पड़ा है, इससे आपके शरीरमें पीड़ा तो नहीं है ? क्योंकि मानसिक दुःखसे शारीरिक दुःख अधिक प्रबल होता है—उसे बरदाश्त करना मुश्किल हो जाता है। शरीरमें एक छोटा-सा भी काँटा चुभ जाय तो वह बड़ा कष्ट देता है, फिर जो बाणोंके समूहपर ही सो रहा है, उस आपके शरीरकी पीड़ाके विषयमें तो कहना ही क्या है ? तो भी आपके सम्बन्धमें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये; क्योंकि आप जानते हैं—प्राणियोंके जन्म और मरण होते ही रहते हैं; अतः इस कष्टको दैवका विधान समझकर आप घबराते न होंगे। आप तो देवताओंको भी उपदेश देनेकी शक्ति रखते हैं; आपका ज्ञान सबसे बड़ा है। भूत, भविष्य और वर्तमान सब कुछ आपकी आँखोंके सामने है। प्राणियोंका संहार कब होता है, धर्मका क्या फल है और कब उसका उदय होता है ? ये सारी बातें आपको ज्ञात हैं; क्योंकि आप धर्मके भण्डार हैं। आप एक समृद्धिशाली राज्यके अधिकारी थे। आपके शरीरमें न तो कोई कमी थी, न किसी तरहका रोग था; आप पूर्ण स्वस्थ थे और हजारों स्त्रियोंके बीचमें रहते थे,

तो भी मैं आपको ऊर्ध्वरेता (अखण्ड ब्रह्मचर्यसे सम्पन्न) ही देखता हूँ। मैंने तीनों लोकोंमें सत्यवादी, धर्मपरायण, शूरवीर तथा महापराक्रमी शान्तनुनन्दन भीष्मके सिवा दूसरे किसीको ऐसा नहीं सुना है, जो बाणोंकी शय्यापर सोकर अपने तपोबलसे शरीरके लिये स्वभावसिद्ध मृत्युको रोक देनेमें सफल हो सका हो। तात! सत्य, तप, दान और यज्ञके आचरणमें, वेद, धनुर्वेद तथा नीतिशास्त्रके ज्ञानमें और कोमलताका बर्ताव, बाहर-भीतरकी शुद्धि, मन और इन्द्रियोंका दमन तथा सम्पूर्ण प्राणियोंका हितसाधन करनेमें मैंने आपके समान दूसरे किसी महारथीको नहीं देखा है। आप सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व, असुर, यक्ष और राक्षसोंको अकेले ही जीत सकते हैं; इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। महाबाहो! आप गुणोंमें वसुओंसे तनिक भी कम नहीं हैं, इसलिये ब्राह्मण लोग आपको नवम वसु कहते हैं। आप पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं और अपनी शक्तिसे देवताओंमें भी प्रसिद्ध हैं। इस पृथ्वीपर आपके समान गुणोंसे युक्त मनुष्य न तो मैंने कहीं देखा है और न सुना ही है। आप अपने सम्पूर्ण गुणोंके कारण देवताओंसे भी बढ़-चढ़कर हैं और अपनी तपस्यासे चराचर लोकोंकी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं; इसलिये आपसे एक निवेदन है—ये पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर अपने कुटुम्बियों और सगे-सम्बन्धियोंका नाश होनेसे बहुत दुःखी हो रहे हैं। आप जैसे भी हो, इनका शोक दूर कीजिये। शास्त्रोंमें चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके जो-जो धर्म बताये गये हैं, वे सब आपको विदित हैं। चारों विद्याओंमें जिन धर्मोंका प्रतिपादन किया गया है, चार प्रकारके होताओंके जो कर्तव्य हैं तथा योग और सांख्यमें जो सनातन धर्मका वर्णन है, वह सब आप व्याख्यासहित जानते हैं। देश, जाति और कुलके धर्मसे भी आप परिचित हैं। वेदोंमे कहा हुआ धर्म और शिष्ट पुरुषोंका बताया हुआ सदाचार भी आपसे अज्ञात नहीं है। इतिहास और पुराणोंके अर्थ आपको पूर्णरूपसे ज्ञात हैं। धर्मशास्त्र तो सदा आपके हृदयमें स्थित रहते हैं। संसारमें जो संदेहग्रस्त विषय हैं, उनका समाधान करनेवाला आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। इसलिये राजन्! युधिष्ठिरके हृदयमें जो शोक उमड़ उठा है, उसे आप अपनी बुद्धिसे शान्त कीजिये।'

श्रीकृष्णकी ये बातें सुनकर भीष्मने तनिक सिर उठाया और हाथ जोड़कर स्तुति करना आरम्भ किया—'सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण भूत भगवान् श्रीकृष्ण! आपको नमस्कार है। हृषीकेश! आप ही सबको उत्पन्न करनेवाले और आप ही सबके संहारकर्ता हैं। आप किसीसे परास्त नहीं होते। यह विश्व आपकी ही रचना है, आप ही इसके आत्मा और आप ही इसकी उत्पत्तिके स्थान हैं। आप पाँचों भूतोंसे परे और प्राणियोंके लिये मोक्षस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। तीनों लोकोंमें व्याप्त हुए आप परमेश्वरको नमस्कार है और तीनों लोकोंसे परे विराजमान आप प्रभुको प्रणाम है। योगीश्वर! आप ही सबको शरण देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। पुरुषोत्तम! आपने मेरे सम्बन्धमें जो बातें कही हैं, उनके ही प्रभावसे इस समय मैं तीनों लोकोंमें वर्तमान आपके दिव्य भावोंको देख रहा हूँ और आपके उस सनातन स्वरूपका भी मुझे साक्षात्कार होने लगा है। आपने ही अमित तेजस्वी वायुके रूपसे ऊपरके सातों लोकोंको व्याप्त कर रखा है। आकाश आपके मस्तकसे और पृथ्वीदेवी आपके पैरोंसे व्याप्त हैं। समस्त दिशाएँ आपकी भुजाएँ, सूर्य नेत्र तथा शुक्राचार्य वीर्य हैं। आपका अलसीके फूलके समान श्याम विग्रह पीताम्बर पहने रहनेसे बिजली-सहित मेघके समान जान पड़ता है। कमलके समान नेत्रों-वाले देवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण! मैं आपका शरणागत भक्त हूँ और अभीष्ट गति पाना चाहता हूँ। जिससे मेरा कल्याण हो, वह उपाय आप ही सोचिये।'

श्रीकृष्णने कहा—पुरुषश्रेष्ठ! मुझमें आपकी परा भक्ति है, इसीलिये मैंने आपको अपने दिव्य स्वरूपका दर्शन कराया है। भारत! आप मेरे भक्त तो हैं ही, आपका स्वभाव भी बहुत सरल है, साथ ही आप जितेन्द्रिय, तपस्वी, सत्यवादी, दानी तथा परम पवित्र हैं। इसलिये आप अपनी तपस्याके बलसे मेरा दर्शन पानेके अधिकारी हैं। आपकी सेवाके लिये वे दिव्यलोक प्रस्तुत हैं, जहाँ जाकर फिर इस लोकमें नहीं आना पड़ता। अब आपके जीवनके कुल छप्पन दिन शेष हैं, इसके बाद आप इस शरीरका त्याग करके अपने शुभ कर्मोंके फलस्वरूप उत्तम लोकोंमें जायँगे। देखिये, ये देवता और वसु विमानोंमें बैठकर आकाशमें अदृश्यरूपसे रहते हुए उत्तरायण सूर्य होनेपर आपके आनेकी बाट जोहते हैं। ज्ञानी पुरुष जिन लोकोंमें जाकर फिर इस संसारमें नहीं आते, आप भी वहीं जाइयेगा। वीरवर! इस लोकसे आपके चले जानेपर सारे ज्ञान लुप्त हो जायँगे; अतः ये सब लोग धर्मका विवेचन करानेके लिये आपके पास आये हैं। इसलिये अब आप युधिष्ठिरको धर्म, अर्थ और योगकी यथार्थ बातें सुनाकर शीघ्र ही इनका शोक दूर कीजिये।



भीष्मका अपनी असमर्थता प्रकट करना और भगवान्‌का उन्हें वरदान देकर जाना तथा दूसरे दिन पुनः सबके साथ वहाँ उपस्थित होना

वैशम्पायनजी कहते हैं—श्रीकृष्णका यह धर्म और अर्थसे युक्त वचन सुनकर शान्तनुनन्दन भीष्मने दोनों हाथ जोड़कर कहा—'जगदीश्वर ! आपकी बड़ी बाहें हैं, कल्याणकारी नारायण ! आप अपनी महिमासे कभी च्युत नहीं होते। आज आपकी बात सुनकर मैं आनन्दमें मग्न हो रहा हूँ। भला, मैं आपके समीप क्या कह सकूँगा जब कि वाणीका जो कुछ भी विषय है, वह सब आपकी वेदरूप वाणीमें स्थित है। जो मनुष्य देवराज इन्द्रके निकट देवलोकका वृत्तान्त बतानेका साहस कर सके, वही आपके सामने धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी बात कह सकता है। मधुसूदन ! इन बाणोंके गड़नेसे जो कष्ट हो रहा है; उससे मेरे मनमें बड़ी वेदना है; सारा शरीर पीड़ाके मारे शिथिल हो गया है। बुद्धि काम नहीं देती। अब मुझमें कुछ भी कहनेकी प्रतिभा नहीं है। विष और आगके समान ये बाण मुझे निरन्तर पीड़ा दे रहे हैं। बल कम होता जा रहा है। प्राण निकलनेको उतावले हो रहे हैं। कमजोरीके कारण जीभ तालुमें सट जाती है; ऐसी दशामें मैं कैसे बोल सकता हूँ। भगवन् ! आप मुझपर प्रसन्न होइये। क्षमा कीजिये, मैं कुछ बोल नहीं सकता। आपके पास धर्मोपदेश करते समय बृहस्पतिको भी हिचक हो सकती है, मेरी तो बिसात ही क्या है ? मुझे न दिशाओंका ज्ञान है, न आकाश और पृथ्वीका ही भान हो रहा है। केवल आपकी शक्तिसे जी रहा हूँ। इसलिये आप ही जिसमें धर्मराजका हित हो; वह बात बताइये; क्योंकि आप शास्त्रोंके भी शास्त्र हैं। श्रीकृष्ण ! आप जगत्‌के कर्ता और सनातन पुरुष हैं, आपके रहते मेरे-जैसा कोई भी मनुष्य कैसे उपदेश कर सकता है ? क्या गुरुके होते हुए शिष्य उपदेश देनेका अधिकारी है ?'

श्रीकृष्णने कहा—गङ्गानन्दन ! आपने जो बात कही है, वह सर्वथा आपके योग्य है; क्योंकि आप सब विषयोंके ज्ञाता हैं। इसके सिवा बाणोंके प्रहारसे होनेवाले कष्टके विषयमें जो कहा है, उसके लिये मैं प्रसन्न होकर आपको वर देता हूँ; उसे स्वीकार कीजिये। अबसे आपको न ग्लानि होगी न मूर्च्छा, न दाह होगा न रोग। भूख और प्यासका कष्ट भी जाता रहेगा। आपके अन्तःकरणमें सब प्रकारके ज्ञान भासित होंगे। आपकी बुद्धि किसी भी विषयमें कुण्ठित न होगी। मन सदा सत्त्वगुणमें स्थित रहेगा। उसपर रजोगुण और तमोगुणका असर न होगा। आप जिस किसी धर्म या अर्थयुक्त विषयका चिन्तन करेंगे, उसमें आपकी बुद्धि सफलतापूर्वक आगे बढ़ती जायगी। आप दिव्य दृष्टि पाकर स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज और जरायुज—इन चारों प्रकारके प्राणियोंको देख सकेंगे और अपनी ज्ञानदृष्टिसे संसारबन्धनमें पड़नेवाले जीवोंका भी साक्षात्कार कर सकेंगे।

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर व्यास आदि सम्पूर्ण महर्षियोंने ऋग्, यजुः और सामवेदके मन्त्रोंसे भगवान् श्रीकृष्णका पूजन किया। आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई। सब प्रकारके बाजे बज उठे। इतनेहीमें सूर्यदेव पश्चिममें अस्त होते दिखायी देने लगे। उस समय सब महर्षि उठकर खड़े हो गये और श्रीकृष्ण, भीष्म तथा युधिष्ठिरसे जानेके लिये पूछने लगे। तब पाण्डवोंसहित भगवान् श्रीकृष्ण, सात्यकि, सञ्जय तथा कृपाचार्यने उन सबको प्रणाम किया। इसके बाद वे धर्मात्मा महर्षि इन लोगोंद्वारा सम्मानित हो 'कल फिर मिलेंगे' ऐसा कहकर तुरंत अपने-अपने स्थानको चले गये। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण और पाण्डवोंने भी भीष्मजीसे जानेकी आज्ञा ली और सब-के-सब अपने सुन्दर रथोंपर सवार हो गये। फिर चतुरङ्गिणी सेनाके साथ वे लोग हस्तिनापुरकी ओर चल दिये। पाण्डव-महारथियोंके आगे और पीछे दोनों ओर सेना चल रही थी। थोड़ी देर बाद पूर्व दिशामें चन्द्रमाका उदय हुआ। चाँदनीका प्रकाश पाकर पाण्डव-सेनाको बड़ा हर्ष हुआ। सब यथासमय कौरव-राजधानी हस्तिनापुरमें जा पहुँचे और अपने-अपने योग्य महलोंमें जाकर विश्राम करने लगे।

भगवान् श्रीकृष्ण अपने पलंगपर सो रहे थे। जब आधा पहर रात बीतनेको बाकी रह गयी, तो वे जाग उठे और अपने सनातन ब्रह्मस्वरूपका ध्यान करने लगे। इतनेहीमें स्तुति और पुराणोंके ज्ञाता मनुष्य वहाँ आकर उनकी स्तुति करने लगे। शङ्ख और मृदंगोंकी ध्वनि होने लगी। वीणा और बाँसुरीका मनोरम स्वर सुनायी देने लगा। राजा युधिष्ठिरके महलमें भी माङ्गलिक गाने-बजाने होने लगे। इधर भगवान् श्रीकृष्णने शय्यासे उठकर प्रातः स्नान किया, फिर गुह्य गायत्री-मन्त्रका जप करके अग्निके पास बैठकर हवन किया। तत्पश्चात् चारों वेदोंके जाननेवाले एक हजार ब्राह्मणोंको बुलाकर प्रत्येकको एक-एक हजार गौएँ दान कीं। फिर माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श करके सात्यकिको आज्ञा दी—'युयुधान ! राजमहलमें जाकर पता तो लगाओ, क्या राजा युधिष्ठिर भीष्मजीके दर्शनार्थ चलनेको तैयार हो गये ?'

श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर सात्यकि तुरंत राजाके पास गये और कहने लगे—'राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण भीष्मजीके निकट चलनेके लिये तैयार हो गये हैं, केवल आपकी बाट जोहते हैं। अब आप जो उचित समझें, करें।' यह सुनकर युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा—'धनञ्जय ! मेरा रथ जोतकर तैयार कराओ। आज सेना साथ नहीं जायगी, सिर्फ हमलोगोंको ही चलना है। आगे चलनेवाले लोगोंको भी आज रोक देना चाहिये। आजसे भीष्मजी धर्मके गूढ़ रहस्योंका उपदेश करेंगे; अतः जिनकी उसे सुननेमें रुचि नहीं है, ऐसे लोगोंकी भीड़ मैं नहीं जुटाना चाहता।'

युधिष्ठिरकी आज्ञा मानकर अर्जुनने वैसा ही प्रबन्ध किया। उन्होंने आकर सूचना दी 'महाराजका रथ तैयार है।' तब युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव सब एक रथपर सवार हो श्रीकृष्णके भवनपर गये। उनके पहुँचनेपर सात्यकि-सहित श्रीकृष्ण भी रथपर सवार हुए। रथपर बैठे-ही-बैठे सबने एक-दूसरेसे पूछा—'रात कुशलसे बीती है न?' फिर परस्पर वार्तालाप करते हुए सब-के-सब कुरुक्षेत्रकी ओर चल दिये और जहाँ भीष्मजी बाणशय्यापर शयन कर रहे थे, वहाँ जा पहुँचे। जाते ही सब लोग रथसे उतर पड़े और अपने दाहिने हाथ उठाकर ऋषियोंके प्रति सम्मान-भाव प्रदर्शित करने लगे। तदनन्तर, सबके साथ राजा युधिष्ठिरने भीष्मजीका दर्शन किया।



श्रीकृष्ण और भीष्मकी बातचीत तथा भीष्मका आश्वासन पाकर युधिष्ठिरका प्रश्न करनेके लिये तैयार होना

जनमेजयने पूछा—महामुने ! जब पाण्डव बाणशय्यापर सोये हुए भीष्मजीकी सेवामें उपस्थित हुए, उस समय क्या-क्या बातें हुईं ? सब मुझे बताइये।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! उस समय वहाँ नारद आदि महर्षि तथा बहुत-से सिद्ध भी पधारे थे। महाभारतयुद्धमें जो मरनेसे बच गये थे, वे युधिष्ठिर आदि राजा तथा धृतराष्ट्र, कृष्ण, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव भीष्मजीके पास जाकर शोक करने लगे। तब नारदजीने थोड़ी देरतक कुछ सोच-विचारकर वहाँ उपस्थित हुए राजाओं तथा पाण्डवोंसे कहा—'महानुभावो ! भीष्मजी भगवान् सूर्यकी भाँति अब अस्त होनवाले हैं, अतः यह समय इनसे कुछ पूछनेका है; क्योंकि चारों वर्णोंके जो नाना प्रकारके धर्म हैं, उन सबको ये पूर्णरूपसे जानते हैं। ये वृद्ध हो गये हैं और अपना शरीर छोड़कर उत्तम लोकोंमें जानेवाले हैं; इसलिये आपलोग इनसे अपने मनकी शङ्काएँ पूछें।'

नारदजीके ऐसा कहनेपर सब राजालोग भीष्मजीके निकट आ गये; किंतु किन्हींको उनसे कुछ पूछनेका साहस न हुआ। सब एक-दूसरेका मुँह ताकने लगे। तब पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे कहा—'मधुसूदन ! आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो पितामहसे प्रश्न कर सके; अतः आप ही पहले बातचीत शुरू कीजिये। तात ! हमलोगोंमें तो आप ही सबसे बड़े धर्मज्ञ हैं।' युधिष्ठिरके यों कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने भीष्मजीसे पूछा—'राजेन्द्र ! आपकी रात सुखसे बीती है न ? अब तो आपकी बुद्धिका विवेक जाग्रत् हो गया होगा। सब प्रकारके ज्ञान भासित हो रहे हैं न ? अब आपके हृदयमें दुःख तो नहीं है ? मनकी घबराहट दूर हो गयी न ?'

भीष्मजीने कहा—वासुदेव ! मेरे शरीरकी जलन, मनका मोह, थकावट, विकलता, शोक और रोग—ये सब आपकी कृपासे तत्काल दूर हो गये थे। अब मैं हाथपर रखे हुए फलकी भाँति भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालकी बातें स्पष्ट देख रहा हूँ। वेदोंमें जो धर्म बताये गये हैं तथा वेदान्तद्वारा जिनको जाना गया है, उन सब धर्मोंको मैं आपके वरदानके प्रभावसे जानता हूँ। जनार्दन ! शिष्ट पुरुषोंने जिस धर्मका उपदेश किया है, वह भी मेरे हृदयमें है। मैं देश, जाति और कुलके धर्मोंसे भी अपरिचित नहीं हूँ। चारों आश्रमोंके धर्मोंमें जो तत्त्व है, वह भी मेरे मनमें स्फुरित हो रहा है; इस समय सम्पूर्ण राजधर्मोंको भी मैं जानता हूँ। जिस विषयमें जो कुछ भी कहनेयोग्य बातें हैं उन सबका मैं वर्णन करूँगा। आपकी कृपासे अब मेरे मनमें कल्याणमयी बुद्धिका प्रवेश हुआ है। आपके ध्यानसे मेरा बल इतना बढ़ गया है कि अब मैं जवान-सा हो गया हूँ। आपके प्रसादसे मुझमें अब कल्याणकारी उपदेश देनेकी शक्ति हो गयी है; तो भी मैं पूछता हूँ कि आप स्वयं ही युधिष्ठिरको कल्याणका उपदेश क्यों नहीं देते ?

श्रीकृष्णने कहा—भीष्मजी ! यश और श्रेयकी जड़

मैं ही हूँ। संसारमें जो भी सत्-असत् पदार्थ हैं, वे सब मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं। अतः मैं तो यशसे परिपूर्ण हूँ ही। अब आपके यशको बढ़ाना है, इसीलिये मैंने आपको प्रचुर बुद्धि प्रदान की है। राजन्! जबतक यह पृथ्वी कायम रहेगी, तबतक सम्पूर्ण लोकोंमें आपकी अक्षय कीर्ति फैली रहेगी। युधिष्ठिरके पूछनेपर आप जो कुछ भी उपदेश करेंगे, वह वैदिक सिद्धान्तकी भाँति इस भूमण्डलमें मान्य होगा। जो आपके उपदेशको प्रमाण मानकर उसे अपने जीवनमें उतारेगा, वह मृत्युके बाद सब प्रकारके पुण्योंका फल प्राप्त करेगा। संसारमें आपके सुयशका अधिकाधिक विस्तार कैसे हो, यह सोचकर ही मैंने आपको दिव्य बुद्धि प्रदान की है। राजन्! ये मरनेसे बचे हुए भूपाल आपके पास धर्मकी जिज्ञासासे बैठे हैं आप इन्हें उपदेश कीजिये। आपकी अवस्था सबसे बड़ी है, आपने शास्त्रोंका अध्ययन और सदाचारका पालन किया है, साथ ही राजधर्म तथा अन्य धर्मोंके भी विशेषज्ञ हैं। जन्मसे लेकर आजतक किसीने भी आपमें कोई दोष नहीं देखा है। सब राजा इस बातको स्वीकार करते हैं कि आप सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता हैं। आपने सदा देवताओं और ऋषियोंकी उपासना की है, इसलिये आपको अवश्य ही धर्मका उपदेश करना चाहिये। मनीषी पुरुषोंने यह धर्म बताया है कि विद्वान्से जब प्रश्न किया जाय तो उसको उचित है कि सुननेकी इच्छावाले लोगोंसे धर्मका उपदेश करे। जो प्रश्न करनेपर भी उपदेश नहीं देता, उसको बड़ा दोष लगता है; अतः जिज्ञासुभावसे पूछनेपर आप इन लोगोंको अवश्य ही उपदेश करें।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णकी बात सुनकर महातेजस्वी भीष्मजी बोले—'गोविन्द! आपके प्रसादसे इस समय मेरा मन स्थिर है और वाणीमें भी बल आ गया है। अब धर्मात्मा युधिष्ठिर मुझसे धर्मविषयक प्रश्न करें; इससे मुझे प्रसन्नता होगी और मैं सम्पूर्ण धर्मोंका उपदेश कर सकूँगा। जिनमें धैर्य, इन्द्रियनिग्रह, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धर्म, ओज और तेज सदा वर्तमान रहते हैं, जो सम्बन्धियों, अतिथियों, सेवकों तथा शरणागतोंका सदा सम्मान करते हैं, सत्य, दान, तप, शूरता, शान्ति, दक्षता तथा स्थिरता आदि समस्त सद्गुण जिनमें सदा मौजूद रहते हैं, जो कामनासे, क्रोधसे, भयसे, अथवा किसी स्वार्थके लोभसे भी कभी अधर्म नहीं करते, यज्ञ, वेदाध्ययन और धर्ममें जिनकी सदा प्रवृत्ति रहती है, जिन्होंने शास्त्रोंका रहस्य श्रवण किया है तथा जो नित्य शान्त रहते हैं, वे पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर ही मुझसे प्रश्न करें।'

श्रीकृष्णने कहा—राजन्! धर्मराज युधिष्ठिरको आपके निकट आनेमें संकोच हो रहा है, ये अपनेको अपराधी मानकर भयभीत हैं। जो पूज्य थे, आदरके पात्र थे, जिनकी इनमें भक्ति थी तथा जो गुरुजन, सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव एवं अर्घ्य पानेयोग्य थे, उन सबको इन्होंने बाणोंसे विदीर्ण किया है; इसी डरसे आपके पास नहीं आते हैं।

भीष्मजी बोले—श्रीकृष्ण! जैसे दान, अध्ययन और तप—यह ब्राह्मणोंका धर्म है, उसी प्रकार युद्धमें विपक्षीके शरीरको मार गिराना भी क्षत्रियोंके लिये धर्म ही है। ताऊ, चाचा, बाबा, भाई, गुरु, सम्बन्धी तथा बन्धु-बान्धव—कोई भी क्यों न हो, यदि वह असत्यके मार्गपर चल रहा है तो युद्धमें उसे मार डालना धर्म ही है। गुरु भी यदि लोभसे फँसकर पापका साथ देता हो और अपने नियत आचारका त्याग कर चुका हो तो उसे जो युद्धमें मार डालता है, वह क्षत्रिय धर्मज्ञ ही है। जो लोभवश धर्मकी सनातन मर्यादापर दृष्टि नहीं रखता, उसको युद्धमें मारनेवाले क्षत्रियको धर्मज्ञ ही समझना चाहिये। युद्धमें खूनकी नदी बहा देनेवाला क्षत्रिय धर्मज्ञ ही माना जाता है। संग्राममें शत्रुके ललकारनेपर क्षत्रियके लिये लड़ना अनिवार्य हो जाता है। मनुने कहा है कि युद्ध क्षत्रियके लिये धर्मका पोषक, स्वर्ग प्रदान करनेवाला और लोकमें यश फैलानेवाला है।

भीष्मके ऐसा कहनेपर धर्मनन्दन युधिष्ठिर बड़ी विनयके साथ उनके पास गये और उनकी दृष्टिके सामने खड़े हो गये। फिर उनके चरणोंमें मस्तक झुका दिया। भीष्मने भी आश्वासन देकर उन्हें प्रसन्न किया और उनका मस्तक सूँघकर कहा—'बेटा! बैठ जाओ, डरो मत; संकोच छोड़कर जो कुछ पूछना हो, पूछो।'



युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मका उनसे राजोचित शिष्टाचारका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर युधिष्ठिरने श्रीकृष्ण और भीष्मको प्रणाम करके समस्त गुरुजनोंकी आज्ञा लेकर प्रश्न किया।

युधिष्ठिर बोले—पितामह! धर्मके जाननेवाले ऐसा मानते हैं कि राजाका धर्म श्रेष्ठ है; अतः आप मुझे राजधर्मोंको विस्तारके साथ बताइये। राजाके धर्मोंमें धर्म, अर्थ, काम

और मोक्ष—सबका समावेश है। जैसे घोड़ोंको काबूमें रखनेके लिये लगाम और हाथीको वशमें करनेके लिये अंकुश है, उसी प्रकार समस्त संसारको मर्यादाके भीतर रखनेके लिये राजधर्म रस्सीका काम देता है। प्राचीन राजर्षियोंने जिसका सेवन किया है, उस राजधर्ममें यदि राजा मोहवश प्रमाद कर बैठे तो संसारकी व्यवस्था ही गड़बड़ हो जाती है और सब लोग व्याकुल हो जाते हैं, जैसे सूर्यदेव उदय होते ही अन्धकारका नाश कर देते हैं, उसी प्रकार राजधर्म मनुष्योंकी अशुभ गतिका निवारण करता है। अतः सबसे पहले मेरे लिये राजधर्मोंका ही निरूपण कीजिये; क्योंकि आप सम्पूर्ण धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं। हम सब लोगोंको आपहीसे शास्त्रोंका परम रहस्य ज्ञात हो सकता है। भगवान् श्रीकृष्ण भी बुद्धिमें आपको सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

भीष्मजीने कहा—मैं महान् धर्मको, विश्वविधाता श्रीकृष्णको और सम्पूर्ण ब्राह्मणोंको नमस्कार करके सनातन धर्मोंका वर्णन कर रहा हूँ। युधिष्ठिर ! अब तुम एकाग्र होकर मेरे बताये हुए राजधर्मोंको तथा और जो कुछ सुनना चाहते हो, उसको भी पूर्णरूपसे सुनो। कुरुश्रेष्ठ ! राजाके लिये सबसे पहले प्रजाका रञ्जन करना—उसे प्रसन्न रखना आवश्यक है। इसके लिये वह देवताओंका विधिवत् पूजन और ब्राह्मणोंका पूर्ण सम्मान करे; क्योंकि देवताओं और ब्राह्मणोंके पूजनसे वह धर्मके ऋणसे मुक्त होता है और सारी प्रजा उसका आदर करती है। बेटा ! तुम विजयके लिये सदा पुरुषार्थ करते रहना; पुरुषार्थके बिना केवल दैवसे राजाओंका काम नहीं सिद्ध होता। यद्यपि कार्यकी सिद्धिमें दैव और पुरुषार्थ दोनों साधारण कारण हैं, तथापि मैं इनमेंसे पुरुषार्थको ही श्रेष्ठ मानता हूँ। यदि आरम्भ किया हुआ काम खराब हो जाय तो इसके लिये मनमें दुःख न मानना, अपनेको सदा प्रयत्नमें ही लगाये रखना—यही राजाओंकी प्रधान नीति है।

सत्यके सिवा दूसरी कोई भी चीज राजाओंको सिद्धि प्रदान करनेवाली नहीं है, सत्यपरायण राजा इस लोकमें और परलोकमें भी सुख पाता है। ऋषियोंके लिये भी सत्य ही परम धन है। इसी प्रकार राजाओंके लिये भी सत्यके सिवा दूसरा कोई साधन विश्वास दिलानेवाला नहीं है। जो राजा गुणवान्, शीलवान्, मनपर काबू रखनेवाला, कोमल स्वभाववाला, धर्मपरायण, जितेन्द्रिय, प्रसन्नमुख और बहुत देनेवाला है, वह कभी राज्य-लक्ष्मीसे भ्रष्ट नहीं होता। कुरुनन्दन ! सदा कोमल बर्ताव करनेवाले राजाकी बात कोई नहीं मानता और सदा कठोरतापूर्ण शासन करनेवालेसे भी सब लोग उद्विग्न हो उठते हैं; इसलिये तुम्हें समयानुसार कोमलता और कठोरता दोनोंका आश्रय लेना चाहिये। बेटा ! तुम ब्राह्मणोंको कभी दण्ड न देना। इस विषयमें मनुजीने दो श्लोक कहे हैं, उनका भाव तुम्हें अपने हृदयमें सदा धारण किये रहना चाहिये। अग्नि जलसे, क्षत्रिय ब्राह्मणसे और लोहा पत्थरसे प्रकट हुआ है; इन सबका तेज दूसरी जगह काम देता है, मगर अपनेको उत्पन्न करनेवाले कारणमें जाकर शान्त हो जाता है। जब लोहा पत्थरपर मारा जाता है, आग पानीपर लगायी जाती है और क्षत्रिय ब्राह्मणसे द्वेष करने लगता है तो वे तीनों ही दुर्बल पड़ जाते—दुःख उठाते हैं। यह सोचकर तुम्हें ब्राह्मणोंको सदा नमस्कार ही करना चाहिये। यद्यपि ऐसी बात है, तथापि यदि ब्राह्मण भी तीनों लोकोंको हानि पहुँचाने लगें तो उनको भी बाहुबलसे परास्त करके दण्ड देनेमें कोई हर्ज नहीं है। इस विषयमें शुक्राचार्यने दो श्लोक बताये हैं, उनका अभिप्राय ध्यान देकर सुनो 'ब्राह्मण वेदान्तका विद्वान् ही क्यों न हो, यदि वह शस्त्र उठाकर युद्धमें सामना करनेके लिये आ रहा हो तो धर्मपालन करनेवाले राजाको उसे स्वधर्मानुसार अवश्य कैद करना चाहिये। उसके द्वारा नष्ट होते हुए धर्मकी जो रक्षा करता है, वही धर्मज्ञ है; आततायीको मारनेसे वह धर्मका नाशक नहीं माना जाता। क्रोधमें भरे हुए आततायीको तो उसका क्रोध ही नष्ट करता है। इतना अवश्य ध्यान रखनेकी बात है कि ब्राह्मण अपराध करे तो उसे देशनिकालेका ही दण्ड देना चाहिये; उसे शारीरिक दण्ड देनेका विधान नहीं है। जैसे वसन्त ऋतुका सूर्य न तो अधिक ठंडक पहुँचाता है और न कड़ी धूप ही करता है, उसी प्रकार राजाको भी न बहुत कोमल होना चाहिये, न अधिक कठोर। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम—इन चार प्रमाणोंके द्वारा अपने-परायेकी पहचान करनी चाहिये। तुम सब प्रकारके व्यसनोंका परित्याग कर देना; क्योंकि व्यसनमें आसक्त हुए मनुष्यका संसारमें अपमान होता है। प्रजाके साथ राजाका बर्ताव गर्भिणी स्त्रीके समान होना चाहिये। जैसे गर्भिणी स्त्री अपने मनको अच्छे लगनेवाले भोजन आदिका त्याग करके केवल गर्भस्थ बालकके हितका ध्यान रखती है, उसी प्रकार धर्मात्मा राजाको भी अपनी भलाईका खयाल न करके जिसमें सब लोगोंका हित हो, वही काम करना चाहिये।

पाण्डुनन्दन ! तुम धैर्यका भी कभी त्याग न करना। जो अपराधियोंको दण्ड देनेमें संकोच नहीं करता और सदा धैर्य रखता है, उस राजाको कभी भय नहीं होता। नौकरोंके साथ अधिक हँसी-मजाक नहीं करना चाहिये; इसमें जो बुराई

है, उसे सुनो। नौकरलोग अधिक मुँहलगे हो जानेसे मालिकका अपमान कर बैठते हैं, अपनी मर्यादापर कायम नहीं रहते और स्वामीकी आज्ञाका उल्लङ्घन करने लगते हैं। यही नहीं, वे राजापर भी हुकुम चलाने लगते हैं और रिश्वत लेकर जालसाजी करके राजकार्यमें विघ्न डाला करते हैं। बनावटी आज्ञापत्र निकालकर राजाके सारे राज्यको चूस लेते हैं। रनवासके पहरेदारोंसे मिलकर अन्तःपुरमें जाने लगते हैं और राजाके समान वेष-भूषा बनाये फिरते हैं। यहाँतक कि स्वामीके निकट निर्लज्जताका व्यवहार करते और उसकी गुप्त बातें भी प्रकट कर देते हैं। हँसी-मजाक करनेवाले और कोमल स्वभाववाले राजाको पाकर भृत्यगण उसकी अवहेलना करने लगते हैं और उसकी सवारीमें रहनेवाले हाथी, घोड़े तथा रथपर भी अकेले चढ़कर घूमते हैं। आम दरबारमें बैठकर दोस्तोंकी तरह बराबरीका बर्ताव करते हुए कहते हैं 'राजन्! आपसे इस कामका होना कठिन है, आपका यह बर्ताव बुरा है।' राजाको कुपित होते देख हँस देते हैं और उससे सम्मानित होकर भी विशेष प्रसन्न नहीं होते। राजकीय गुप्त बातों तथा राजाके दोषोंको दूसरोंपर प्रकट कर देते हैं और उसकी आज्ञाको अवहेलनापूर्वक खिलवाड़ करते हुए पूरी करते हैं। पास ही खड़ा होकर राजा सुनता रहता है और वे निर्भय होकर उसके आभूषण पहनने, खाने, नहाने और चन्दन लगाने आदिकी दिल्लगी उड़ाया करते हैं। उनके अधिकारमें जो काम सौंपा गया होता है, उसको वे बुरा बताते और छोड़ भी देते हैं; उन्हें जितनी तनख्वाह दी जाती है, उतनेसे संतोष नहीं होता। जैसे लोग डोरमें बँधी हुई चिड़ियाके साथ खेलते हैं, उसी तरह वे भी राजाके साथ खेलना चाहते हैं और साधारण लोगोंसे कहते फिरते हैं कि 'राजा तो हमारे ही हाथमें है, उसपर हमारा ही हुक्म चलता है।' युधिष्ठिर! राजा जब परिहासशील और कोमल स्वभावका हो जाता है, तो ऊपर बताये हुए तथा दूसरे भी बहुत-से दोष प्रकट हो जाते हैं।



राजाके नीतिपूर्ण बर्तावका वर्णन

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! राजाको उद्योगी होना चाहिये। जो स्त्रीकी भाँति बेकार बैठा रहता है, उस राजाकी प्रशंसा नहीं होती। इस विषयमें शुक्राचार्यका कहा हुआ एक श्लोक है, जिसका भाव इस प्रकार है। जैसे साँप बिलमें रहनेवाले चूहोंको निगल जाता है, उसी प्रकार दूसरे राजाओंसे लड़ाई न करनेवाले राजा और घर न छोड़नेवाले ब्राह्मण—इन दोनोंको पृथ्वी निगल जाती है। अर्थात् वे पुरुषार्थ-साधन किये बिना ही मर जाते हैं। जो संधि करनेके योग्य हों। उनसे संधि करो; जो विरोधके पात्र हों, उनसे विरोध करो। राज्यके सात अङ्ग हैं—राजा, मन्त्री, मित्र, खजाना, देश, किला और सेना। इनमेंसे किसीके भी विपरीत यदि कोई आचरण करे तो वह गुरु हो या मित्र, मार डालनेके ही योग्य है। महाराज मरुत्तका कहा हुआ एक पुराना श्लोक है, जो बृहस्पतिके मतानुसार राजाके अधिकारपर प्रकाश डालता है। उसका भाव यों है—घमंडमें भरकर कर्तव्य-अकर्तव्यका ध्यान न रखनेवाला और कुमार्गपर चलनेवाला मनुष्य यदि अपना गुरु हो तो भी उसको दण्ड देनेका सनातन विधान है। राजा सगरने तो नगरके लोगोंका हित करनेकी इच्छासे अपने ज्येष्ठ पुत्रका भी त्याग कर दिया था। उसका नाम था 'असमञ्जस'। वह पुरवासियोंके बालकोंको पकड़कर सरयू नदीमें डुबा दिया करता था, इसीलिये उसके पिताने उसे घरसे निकाल दिया। अतः प्रजावर्गको प्रसन्न रखना ही राजाका सनातन धर्म है। सत्यकी रक्षा और व्यवहारमें सरलता भी राजोचित कर्तव्य है। दूसरोंका धन चौपट न करे; जिसको जो कुछ देना हो, समयपर देनेकी व्यवस्था करे। पराक्रमी, सत्यवादी और क्षमाशील बना रहे। ऐसा करनेवाला राजा कभी सन्मार्गसे भ्रष्ट नहीं होता।

जो मनपर अधिकार रखता है, जिसने क्रोधको जीत लिया है, जिसे शास्त्रके तात्पर्यका निश्चय है, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके प्रयत्नमें लगा रहता है और अपने गुप्त विचार दूसरोंपर प्रकट नहीं होने देता, वही राजा होने योग्य है। राजाको चारों वर्णोंके धर्मोंकी रक्षा करनी चाहिये। संसारको धर्मसंकरतासे बचाना उसका सनातनधर्म है। राजा किसीपर भी विश्वास न करे, विश्वसनीय व्यक्तिका भी अत्यन्त विश्वास न करे। राजनीतिके छः[1] गुण होते हैं—संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय; इन

१. यदि शत्रुपर चढ़ाई की जाय और वह अपनेसे बलवान् सिद्ध हो तो उससे मेल कर लेना 'संधि' नामक गुण है। यदि दोनोंमें

सबके गुण-दोषोंपर सदा दृष्टि रखे। यमराजके समान न्यायकर्ता हो और कुबेरके सदृश धनका भंडार इकट्ठा करे। स्थान, वृद्धि तथा क्षयके हेतुभूत दशवर्गोंका[२] सदा ज्ञान रखे। जिनके भरण-पोषणका प्रबन्ध न हो, उनका पोषण करे। राजाको सदा प्रसन्नबदन रहना और हँसकर बातें करनी चाहिये। वृद्धोंकी सेवा करे। आलस्य और लोभको त्याग दे। सत्पुरुषोंके व्यवहारमें मन लगावे, संतुष्ट होनेयोग्य स्वभाव बनाये रखे। श्रेष्ठपुरुषोंका धन न छीने। दुष्टोंसे धन लेकर सत्पुरुषोंको दान करे। स्वयं दण्ड और कर ले तथा दूसरोंको भी दान दे, मनको वशमें रखे। समयपर दान करे और सदा शुद्ध सदाचारी रहे।

जो शूरवीर और भक्त हों, जिन्हें दुश्मन फोड़ न सकें, जो कुलीन, नीरोग और शिष्ट हों तथा शिष्ट पुरुषोंसे सम्बन्ध रखते हों, अपने सम्मानके रक्षक हों, दूसरोंका अपमान न करते हों, धर्मपरायण, साधु और पर्वतोंके समान अटल रहनेवाले हों, शास्त्रोंके विद्वान्, लोक-व्यवहारके ज्ञाता और शत्रुओंकी गति-विधिपर दृष्टि रखनेवाले हों—ऐसे लोगोंको ही सहायक बनावे। उन्हें अपने समान ही सुख-भोगकी सुविधा दे। सिर्फ राजोचित छत्र-धारण और हुकूमत करना—इन्हीं दो बातोंका अधिकार अपने पास उनसे अधिक रखे। सामने अथवा परोक्षमें उनके प्रति एक-सा ही बर्ताव करे। ऐसा करनेवाले राजाको कभी कष्ट नहीं उठाना पड़ता। जो सबपर संदेह करता और सबके धनका अपहरण करता है, वह लोभी और कुटिल राजा एक दिन अपने ही लोगोंके हाथ मारा जाता है। जो भूपाल बाहर-भीतरसे शुद्ध रहकर प्रजाके हृदयको अपनानेका प्रयत्न करता है, वह शत्रुओंका आक्रमण होनेपर भी उनके वशमें नहीं पड़ता। यदि कहीं परास्त हुआ, तो भी पीछे उन्हीं प्रजाओंकी सहायतासे पूर्ववत् अपना स्थान प्राप्त कर लेता है। जो क्रोध नहीं करता, किसी व्यसनमें नहीं फँसता, हलका कर लगाता और इन्द्रियोंपर काबू रखता है, वह सब लोगोंका विश्वासपात्र बन जाता है। जो बुद्धिमान्, त्यागी, शत्रुओंकी कमजोरी समझने में प्रवीण, चारों वर्णोंके न्याय-अन्यायको जाननेवाला, शीघ्र काम करनेवाला, क्रोधको जीतनेवाला, उदारचित्त, कोमल स्वभाववाला, काम करनेमें संलग्न और आत्मप्रशंसासे दूर रहनेवाला है, जिसके राज्यमें मनुष्य निर्भय होकर विचरते हैं, वही राजाओंमें सर्वश्रेष्ठ है।

जिसके राज्यमें रहनेवाले नागरिक न्याय-अन्यायको समझते हों, जिसके देशके लोग अपने धर्म-कर्मोंमें संलग्न, शरीरमें आसक्ति न रखनेवाले, जितेन्द्रिय, वशमें रहनेवाले, आज्ञापालक, कलहसे दूर रहनेवाले और दानमें रुचि रखनेवाले हों, वही वास्तवमें राजा है। जिस राजाके राज्यमें छल, कपट, कूटनीति, माया और मात्सर्यका सर्वथा अभाव हो, उसीके सनातन धर्मका निर्वाह होता है। जो विद्वानोंका आदर करता और शास्त्रीय अर्थके चिन्तन तथा परोपकारी कार्यमें लगा रहता है, जो सत्पुरुषोंके मार्गपर चलता और दान किया करता है, शत्रु जिसके गुप्त विचारोंको न जान सकें, जासूसोंको न पहचान सकें, वही राजा राज्य चलानेयोग्य समझा जाता है। राज्य चाहनेवाले राजाओंके लिये प्रजाओंकी रक्षासे बढ़कर और कोई सनातन धर्म नहीं है। मनुने राजधर्मका वर्णन करते हुए दो श्लोक कहे हैं, जिनका भाव इस प्रकार है। जैसे समुद्रकी यात्रामें टूटी हुई नौकाका त्याग कर दिया जाता है, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि वह उपदेश न देनेवाले आचार्य,

---

समान बल हो तो लड़ाई जारी रखना 'विग्रह' है। यदि शत्रु दुर्बल हो तो उस अवस्थामें उसके दुर्ग आदिपर जो आक्रमण किया जाता है, उसे 'यान' कहते हैं। अगर अपने ऊपर शत्रुकी ओरसे आक्रमण हो और शत्रुका पक्ष प्रबल जान पड़े तो उस समय अपनेको दुर्ग आदिमें छिपाये रखकर जो आत्मरक्षा की जाती है, वह 'आसन' कहलाता है। यदि चढ़ाई करनेवाला शत्रु मध्यम श्रेणीका हो तो 'द्वैधीभाव' का सहारा लिया जाता है। उसमें ऊपर कुछ और भाव दिखाया जाता है और भीतर कुछ और भाव रखा जाता है। जैसे आधी सेना दुर्गमें रखकर आत्मरक्षा करना और आधीको भेजकर शत्रुओंके अन्न आदि सामग्रीपर कब्जा करना आदि कार्य 'द्वैधीभाव' नीतिके अन्तर्गत है। आक्रमणकारीसे पीड़ित होनेपर किसी मित्र राजाका सहारा लेकर उसके साथ लड़ाई छेड़ना 'समाश्रय' कहलाता है।

२. मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग (किला), खजाना और दण्ड—ये पाँच 'प्रकृति' कहे गये हैं। ये ही अपने और शत्रुपक्षके मिलाकर 'दशवर्ग' कहलाते हैं। यदि दोनोंके मन्त्री आदि समान हों तो ये स्थानके हेतु होते हैं अर्थात् दोनों पक्षकी स्थिति कायम रहती है। अगर अपने पक्षमें इनकी अधिकता हो तो ये वृद्धिके साधक होते हैं और कमी हो तो क्षयके कारण बनते हैं।

वेद-मन्त्रका उच्चारण न करनेवाले ऋत्विक्, रक्षा न करनेवाले राजा, कटु वचन बोलनेवाली स्त्री, गाँवमें रहनेकी इच्छावाले ग्वाले और जंगलमें रहना पसंद करनेवाले नाई—इन छःको त्याग दे।



राज्यशासनके कुछ साधनोंका वर्णन

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर! यह प्रजापालन समस्त धर्मोंका सार है। भगवान् बृहस्पतिजी भी इस न्यायानुकूल धर्मकी प्रशंसा करते हैं। उनके सिवा भगवान् विशालाक्ष, तपस्वी शुक्राचार्य, इन्द्र, दक्ष, मनु, भरद्वाज, मुनिवर गौरशिरा और राजधर्मकी रचना करनेवाले अन्यान्य वेदवादियोंने भी प्रजापालनकी ही प्रशंसा की है। अब मैं तुम्हें राजाओंके कुछ साधन सुनाता हूँ—गुप्तचर (जासूस) रखना, दूसरे राष्ट्रोंमें अपना प्रतिनिधि (राजदूत) नियुक्त करना, समयपर वेतन और भत्ता देना, युक्तिके साथ कर लेना, अन्यायसे प्रजाको न चूसना, सत्पुरुषोंसे मेल करना, वीरता, कार्यकुशलता, सत्य, प्रजाका हितचिन्तन, सत्पुरुषोंको न त्यागना, कुलीन मनुष्योंको पास रखना, संग्रहयोग्य धान्यादिको जमा करना, बुद्धिमानोंको अपना सहायक बनाना, सेनाको उत्साहित करना, प्रजाकी स्वयं देख-भाल करना, काम करनेमें कष्टका अनुभव न करना, कोषकी वृद्धि करना, स्वयं नगरकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध करना, इस विषयमें दूसरोंके विश्वासपर न रहना, पुरवासियोंने कोई गुट्ट बना लिया हो तो उसमें फूट डलवा देना, शत्रु, मित्र और मध्यस्थोंपर यथोचित दृष्टि रखना, सेवकोंमें गुटबंदी न होने देना, अपने-आप नगरका निरीक्षण करना, नीतिधर्मका पालन करना और दुष्टोंको देशसे बाहर निकाल देना—ये सब बातें राजधर्मकी मूल हैं। बलवान् पुरुषको अपने दुर्बल शत्रुको भी छोटा न समझना चाहिये। आग थोड़ी-सी हो तो भी जला डालती है और विष बहुत कममात्रामें हो तो भी मार डालता है। जो राजा क्रूर होते हैं वे अपने विशाल राज्यको काबूमें नहीं रख सकते और जो बहुत कोमल प्रकृतिके होते हैं वे इस उच्च पदका भार नहीं सँभाल सकते। इसलिये राजामें क्रूरता और कोमलता दोनोंहीका मेल रहना चाहिये। युधिष्ठिर! यह मैंने तुम्हें थोड़ा-सा राजधर्म सुनाया है। अब तुम्हें जिस बातमें संदेह हो वह पूछ लो।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! भीष्मजीका वक्तव्य सुनकर भगवान् व्यास, देवस्थान, अश्म, वासुदेव, कृप, सात्यकि और सञ्जय बड़े प्रसन्न हुए और 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे। फिर कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिरने नेत्रोंमें जल भरकर उनके चरण छुये और कहा, 'दादाजी! अब सूर्य अस्त होनेवाला है, इसलिये मैं कल आपसे अपना संदेह पूछूँगा।'

इसके बाद श्रीकृष्ण, कृपाचार्य और युधिष्ठिरादि पाण्डवोंने ब्राह्मणोंको नमस्कार कर भीष्मजीकी परिक्रमा की और फिर रथोंपर सवार हो दृषद्वती नदीके तीरपर आये। वहाँ स्नान, तर्पण, संध्योपासन और जपादिसे निवृत्त हो वे हस्तिनापुरको चले आये।



ब्रह्माजीके नीतिशास्त्र तथा राजा पृथुके प्रसंगका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! दूसरे दिन प्रातःकाल ही पाण्डव और यादवलोग नित्यकर्मसे निवृत्त हुए और फिर रथोंपर चढ़कर कुरुक्षेत्रकी ओर चल दिये। वहाँ भीष्मजीके पास पहुँचकर उन्होंने व्यासादि महर्षियोंको प्रणाम किया और उनसे आशीर्वाद पा वे भीष्मजीके चारों ओर बैठ गये। फिर परमतेजस्वी राजा युधिष्ठिरने भीष्मजीका यथायोग्य सत्कार करते हुए हाथ जोड़कर पूछा, 'पितामह! लोकमें जो यह 'राजा शब्द प्रसिद्ध है, इसकी उत्पत्ति कैसे हुई—यह मुझे बतानेकी कृपा करें। जिसे हम 'राजा' कहते हैं वह भी एक मनुष्य ही है। उसके शरीर और प्राण भी अन्य पुरुषोंके समान ही हैं तथा जन्म-मरण आदि सब गुणोंमें भी वह दूसरे मनुष्योंकी तरह ही है। फिर भी शूरवीर और सत्पुरुषोंसे पूर्ण इस सारी पृथ्वीका वह अकेला ही क्यों पालन करता है? मुझे इसका यथार्थ कारण जाननेकी अभिलाषा है, अतः आप इसका पूरा रहस्य बतानेकी कृपा करें।'

भीष्मजी बोले—राजन्! सत्ययुगके आरम्भमें राज्य या राजा नामकी कोई चीज नहीं थी। उस समय न कोई दण्ड था और न दण्ड देनेवाला। सब प्रजा आपसमें धर्मके नाते ही एक-दूसरेकी रक्षा करती थी। पीछे सबलोग मोहमें पड़ गये, इससे उनका विवेक नष्ट हो गया और विवेकका नाश होनेसे

धर्मबुद्धि भी जाती रही। सब लोभमें फँस गये और जो वस्तुएँ जिनके पास नहीं थीं, उन्हें पानेके लिये लालायित रहने लगे। इतनेहीमें काम नामक एक दूसरे दोषने उन्हें धर दबाया। फिर कामके अधीन देखकर उनपर रागने भी अपना आधिपत्य जमा दिया। इस प्रकार रागके अधीन होकर वे कर्तव्याकर्तव्यको भूल गये। इसलिये गम्य-अगम्य, वाच्य-अवाच्य, भक्ष्य-अभक्ष्य और दोष-अदोष कोई भी बात उनकी दृष्टिमें त्याज्य न रही। इस प्रकार मानव-समाजमें धर्मविप्लव हो जानेसे वेद भी लुप्त होने लगा और वेदका लोप होनेसे धर्ममर्यादा ही नष्ट हो गयी। इससे देवताओंको बड़ा त्रास हुआ और वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीसे उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, 'भगवन्! मनुष्यलोकमें जो सनातन वेद था, उसको लोभ-मोह आदि दूषित भावोंने नष्ट कर डाला है, इससे हमें बड़ा भय हो रहा है। भगवन्! वेदका नाश होनेसे धर्म भी नष्ट हो गया है। मनुष्योंने यज्ञ-यागादि सभी शुभकर्म छोड़ दिये हैं; इसलिये हम बड़े संशयमें पड़ गये हैं। आप हमारे लिये जो हितकर हो ऐसा कोई उपाय सोचिये।'

तब स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माने उनसे कहा, 'देवताओ! डरो मत, मैं तुम्हारे कल्याणका कोई साधन सोचता हूँ।' इसके बाद उन्होंने अपनी बुद्धिसे एक लाख अध्यायोंका एक नीतिशास्त्र रचा। उसमें अर्थ, धर्म काम—इन त्रिवर्गका वर्णन था। वह ग्रन्थ 'त्रिवर्ग' नामसे विख्यात हुआ। चौथा वर्ग मोक्ष है, उसके फल और गुण इनसे पृथक् हैं। युधिष्ठिर! इस शास्त्रमें, साम, दान, दण्ड, भेद और उपेक्षा—इन पाँचों उपायोंका पूरा-पूरा वर्णन है। भय, सत्कार और धनसे की जानेवाली क्रमशः हीन, मध्यम और उत्तम संधियोंका, चढ़ाई करनेके चार प्रकारके अवसरोंका तथा अर्थ, धर्म और कामके विस्तारका भी इसमें अच्छी तरह निरूपण किया गया है। इसके सिवा इसमें प्रकट और गुप्त सेनाओंका भी विवेचन हुआ है; इनमें प्रकट सेना आठ प्रकारकी है और गुप्तके अनेकों भेद हैं। रथ हाथी, घोड़े, पैदल, बेगारमें पकड़े हुए लोग, नौका, दूत और युद्ध-सम्बन्धी आवश्यक बातोंका उपदेश करनेवाले—ये प्रकट सेनाके आठ अङ्ग हैं। यही नहीं, इसमें मार्गके गुण, भूमिके गुण, रथ, हाथी, घुड़सवार और पैदल सेनाको पुष्ट करनेके अनेकों उपाय, तरह-तरहकी व्यूहरचना, अनेकों प्रकारके युद्ध-कौशल, युद्ध करनेकी और उससे निकल भागनेकी रीतियाँ तथा शस्त्रोंकी रक्षाके उपाय भी बताये गये हैं। दूतकी शक्तिसे होनेवाली राष्ट्रकी वृद्धि, शत्रु, मित्र और तटस्थोंके विभाग, बलवानोंके नाश और अवरोध, शासन-सम्बन्धी अनेकों सूक्ष्म कार्य, मल्लक्रीडा और शस्त्र संचालनकी विधियाँ, जिनके भरण-पोषणका कोई प्रबन्ध न हो उनका पालन और उनकी देख-रेख, सुपात्रको दान देना, व्यसनोंसे बचना, राजाके गुण, सेनापतिके लक्षण, अर्थ, धर्म और कामके साधन तथा उनके गुण-दोष, अपने आश्रितोंकी आजीविकाका विचार, सबके प्रति सशंक रहना, प्रमादसे बचना, जो वस्तु मिली न हो उसे पाना और प्राप्त वस्तुकी वृद्धि करना, बढ़ी हुई वस्तु सुपात्रोंको दान करना, धर्मके लिये धन लगाना तथा भोग और दुःख निवृत्तिमें भी धनका उपयोग करना—इन सब बातोंका इस शास्त्रमें वर्णन हुआ है। काम और क्रोधसे होनेवाले दस उग्र व्यसनोंका भी इसमें उल्लेख है। नीति-शास्त्रके आचार्योंने मृगया, द्यूत, मद्यपान और स्त्रीप्रसंग—ये चार कामजनित तथा वाणीकी कटुता, उग्रता, मार-पीट, शरीरको कैद कर लेना, त्याग देना और आर्थिक हानि पहुँचाना—ये छः क्रोधसे होनेवाले व्यसन बताये हैं। तरह-तरहके यन्त्र और उनकी क्रियाओंका, शत्रुके राष्ट्रको पीड़ित करनेका तथा उसकी सेनापर चोट करने और उसके निवासस्थानोंको नष्ट करनेका भी इस ग्रन्थमें उल्लेख है। पुरानी इमारतों और वृक्षोंको ध्वंस करना, खेती-बारीकी विधि, सेनाकी सामग्री, कवच-धारण और कवचादि बनानेकी विधि—ये सब बातें इस शास्त्रमें बतायी गयी हैं। ढोल, नगाड़े, शङ्ख और दुन्दुभि आदि रणवाद्योंको बजाना, मणि, पशु, पृथ्वी, वस्त्र, दास-दासी और सुवर्ण—इन छः पदार्थोंको प्राप्त करना तथा शत्रुओंकी इन छः चीजोंका नाश करना, नये जीते हुए प्रान्तमें शान्ति स्थापित करना, सत्पुरुषोंका सत्कार, विद्वानोंके साथ मेल-जोल बढ़ाना, दान और होमकी विधि, भोजनकी व्यवस्था, सर्वदा आस्तिकबुद्धि रखना, अकेले होनेपर भी उठने-बैठनेकी रीति, सत्यता, मधुरभाषण तथा उत्सव और समाज आदिके अवसरपर होनेवाली घरेलू बातें—इन सभीका इस शास्त्रमें निरूपण हुआ है। देश, जाति और कुलके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारों पदार्थोंके लक्षण और इन्हें प्राप्त करनेके उपाय तथा जिन साधनोंसे मनुष्यका आर्यधर्मसे पतन न हो, उन सभीका इसमें वर्णन है। इस नीतिशास्त्रकी रचना हो जानेपर ब्रह्माजीको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने इन्द्रादि देवताओंसे कहा।

ब्रह्माजी बोले—यह दण्डनीति नामसे विख्यात विद्या तीनों लोकोंमें विद्यमान है। वास्तवमें दण्डसे ही राजव्यवस्था चलती है। यह दण्डनीति छः गुणोंसे युक्त है। महात्माओंमें इसका अग्रस्थान होगा। इस शास्त्रमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—सभीका विचार है।

तब सबसे पहले भगवान् शंकरने उस नीतिशास्त्रको ग्रहण किया। उन्होंने जीवोंकी आयु घटती देख उस शास्त्रको संक्षिप्त किया। यह ग्रन्थ 'वैशालाक्ष' कहलाया। इसे इन्द्रने ग्रहण किया। इसमें कुल दस हजार अध्याय थे। फिर भगवान् इन्द्रने भी इसे संक्षिप्त किया और इसमें केवल पाँच हजार अध्याय रह गये, तब यह ग्रन्थ 'बाहुदन्तक' कहलाया। इसके बाद बृहस्पतिजीने इसे तीन सहस्र अध्यायोंमें संकुचित कर दिया। यह ग्रन्थ 'बार्हस्पत्य' नामसे प्रसिद्ध हुआ। फिर योगाचार्य शुक्रजीने इसे संक्षिप्त करके एक हजार अध्यायोंमें रचा। इस प्रकार महर्षियोंने मनुष्योंकी आयुका ह्रास होते देखकर लोकहितकी दृष्टिसे इस शास्त्रको बहुत संक्षिप्त कर दिया।

इस नीतिशास्त्रकी रचनाके बाद मृत्युकी मानसी पुत्री सुनीथासे राजा अंगके द्वारा वेनका जन्म हुआ। वह रागद्वेषके अधीन होकर प्रजामें अधर्मका प्रचार करने लगा। यह देखकर वेदवादी मुनिजनोंने उसे अभिमन्त्रित कुशाओंसे मार डाला। फिर देशमें अराजकता फैली देखकर उन्होंने वेनके दाहिने हाथका मन्थन किया। उससे एक इन्द्रके समान रूपवान् पुरुष प्रकट हुआ। उसके शरीरपर कवच सुशोभित था, कमरमें तलवार लटक रही थी तथा कंधेपर धनुष-बाण थे। वह वेद-वेदाङ्गोंका ज्ञाता और धनुर्विद्यामें पारंगत था। उस वेनपुत्रने हाथ जोड़कर ऋषियोंसे कहा, 'मुनिगण ! मुझे धर्म और अर्थका निर्णय करनेवाली सूक्ष्म बुद्धि प्राप्त है। इसके द्वारा मुझे क्या करना चाहिये—यह ठीक-ठीक बताइये।' देवता और महर्षियोंने कहा, 'जिस कार्यमें तुम्हें धर्मकी स्थिति जान पड़े, उसीको निःशङ्क होकर करो। प्रिय-अप्रियकी परवा न करके सब जीवोंके प्रति समान भाव रखो। काम, क्रोध, लोभ और मानको दूरसे ही नमस्कार कर दो। सर्वदा धर्मपर दृष्टि रखो और जो मनुष्य धर्मसे विचलित होता दिखायी दे उसका अपने बाहुबलसे दमन करो।' वेनपुत्रने कहा, 'महानुभावो ! ब्राह्मण तो मेरे लिये सर्वदा वन्दनीय हैं, उन्हें मैं दण्ड न दे सकूँगा।' मुनियोंने कहा, 'ठीक है।'



अब वेदनिधि भगवान् शुक्राचार्य उसके पुरोहित बने और बालखिल्योंने मन्त्रीका कार्य सँभाला। यह वेनपुत्र पृथु विष्णुभगवान्से आठवीं पीढ़ीपर था। सुनते हैं पृथुके समय पृथ्वी बहुत ऊँची-नीची थी। उन्होंने ही पत्थर डलवाकर इसे समतल किया है। कहते हैं, भगवान् विष्णु, इन्द्र, देवगण, प्रजापति, ऋषि और ब्राह्मण—इन सबने मिलकर पृथुका अभिषेक किया था। स्वयं पृथ्वीदेवी भी रत्नोंकी भेंट लेकर उनकी सेवामें उपस्थित हुई थीं। समुद्र, हिमालय और इन्द्रने उन्हें अक्षय धन दिया था तथा यक्ष और राक्षसोंके स्वामी भगवान् कुबेरने भी बहुत धनराशि भेंट की थी।

युधिष्ठिर ! राजा पृथुके संकल्प करते ही करोड़ों हाथी, रथ, घोड़े और पैदल प्रकट हो गये। उनके राज्यमें बुढ़ापा, दुष्काल, आधि-व्याधि तथा सर्प, चोर या आपसमें एक-दूसरेसे किसी प्रकारका भय नहीं था। जिस समय वे समुद्रमें होकर चलते थे उसका जल स्थिर हो जाता था तथा पर्वत उन्हें रास्ता दे देते थे। उन्होंने इस पृथ्वीसे सतरह प्रकारके धान्य दुहे थे। महात्मा पृथुने इस लोकमें धर्मकी वृद्धि की थी और सारी प्रजाका रञ्जन किया था, इसलिये वह 'राजा' नामसे विख्यात हुआ। ब्राह्मणोंका क्षतिसे त्राण करनेके कारण वह 'क्षत्रिय' हुआ तथा उसने धर्मानुसार भूमिको प्रथित (पालित) किया था, इसलिये इसका नाम 'पृथ्वी' पड़ गया। स्वयं भगवान् विष्णुने उनके विषयमें ऐसी मर्यादा कर दी थी कि 'राजन् ! कोई भी पुरुष तुम्हारी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करेगा, तुमसे बढ़कर नहीं

होगा' राजा पृथुके शरीरमें स्वयं भगवान् विष्णुका आवेश था, इसीसे सारा संसार उन्हें देवताकी तरह मानकर उनके सामने झुकता था।

राजन्! इसलिये गुप्तचरोंके द्वारा प्रजाकी गतिविधिपर दृष्टि रखकर तुम्हें सर्वदा उसका दण्डनीतिके अनुसार पालन करना चाहिये। ऐसा न हो उसके साथ मिलकर कोई शत्रु तुम्हारा पराभव कर दे। राजा यदि शुभकर्म करता है तो वह प्रजाके भलेके लिये ही होता है। उसके दैवीगुणोंके सिवा और ऐसा क्या कारण हो सकता है, जिससे सारा देश एक व्यक्तिके अधीन रहे। राजा भी अन्य मनुष्योंके समान ही है, तो भी यह सारा लोक उस एककी ही आज्ञामें बँधा रहता है। राजाके दण्डका बड़ा महत्त्व है; उसीके कारण सारे राष्ट्रमें नीति और न्यायका आचरण होता है।

युधिष्ठिर! ब्रह्माजीके इस नीतिशास्त्रमें पुराणोंके आविर्भाव, महर्षियोंकी उत्पत्ति, तीर्थोंके वंश, नक्षत्रोंके वंश, चारों आश्रम, चार प्रकारके होत्रकर्म, चारों वर्ण, चार प्रकारकी विद्या, इतिहास, वेद, न्याय, तप, ज्ञान, अहिंसा, सत्य और असत्य, वृद्धजनोंकी सेवा, दान, शौच, सजगता और दया—इन सभी विषयोंका वर्णन है। अधिक क्या, जो कुछ इस पृथ्वीपर है और जो इसके नीचे है, उस सभीका इस ब्रह्माजीके शास्त्रमें उल्लेख है।

भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार राजाओंका जो कुछ महत्त्व है, वह सब मैंने तुम्हें सुना दिया। अब बताओ और क्या कहूँ?



राजा युधिष्ठिरके प्रश्न करनेपर भीष्मजीका चारों वर्ण और चारों आश्रमोंके धर्म सुनाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तब राजा युधिष्ठिरने पितामह भीष्मको प्रणाम कर उनसे हाथ जोड़कर पूछा, 'पितामह! चारों वर्ण, चारों आश्रम और राजाओंके कौन-कौन-से धर्म माने गये हैं। इनका अलग-अलग वर्णन कीजिये। ऐसे कौन कर्म हैं जिनसे राष्ट्रकी वृद्धि होती है और किन कर्मोंके करनेसे राजा, पुरवासी तथा राजसेवकोंका अभ्युदय होता है। राजाको किस प्रकारके कोष, दण्ड, दुर्ग, सहायक, मन्त्री, ऋत्विक्, पुरोहित और आचार्योंको त्याग देना चाहिये। आपत्तिकाल आनेपर किस प्रकारके लोगोंमें विश्वास करना चाहिये और किन लोगोंसे अपने शरीरकी पूरी-पूरी चौकसी रखनी चाहिये?

भीष्मजी बोले—धर्मकी महिमा महान् है; अतः मैं धर्मको धर्मके विधाता भगवान् कृष्णको और उपस्थित ब्राह्मणोंको नमस्कार करके सनातन धर्मोंका वर्णन करता हूँ। अक्रोध, सत्यभाषण, धनको बाँटकर भोगना, क्षमा, अपनी स्त्रीसे संतान उत्पन्न करना, शौच, अद्रोह, सरलता और अपने पालनीय व्यक्तियोंका पालन करना—ये नौ धर्म सभी वर्णोंके लिये समान हैं। अब ब्राह्मणोंके धर्म बताता हूँ। इन्द्रियोंका दमन करना यह ब्राह्मणोंका पुरातन धर्म है। इसके सिवा स्वाध्यायका अभ्यास भी उनका प्रधान धर्म है; क्योंकि इसीसे उनके सब कर्मोंकी पूर्ति हो जाती है। यदि अपने धर्ममें स्थित, शान्त और ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त ब्राह्मणको किसी प्रकारके असत्कर्मका आश्रय लिये बिना ही धन प्राप्त हो जाय तो उसे दान या यज्ञमें लगा देना चाहिये। सत्पुरुषोंको धन बाँटकर ही उसका उपभोग करना चाहिये—ऐसा विद्वानोंका मत है। ब्राह्मण केवल स्वाध्यायसे ही कृत-कृत्य हो जाता है; दूसरे कर्म वह करे अथवा न करे। दयाकी प्रधानता होनेके कारण वह सब जीवोंका मित्र कहा जाता है।

राजन्! अब क्षत्रियके धर्म सुनो। क्षत्रियको दान करना चाहिये, किंतु माँगना नहीं चाहिये। इसी प्रकार यज्ञ करना चाहिये, किंतु कराना नहीं चाहिये। वह वेदादिका अध्ययन करे, किन्तु पढ़ावे नहीं, प्रजाका पालन करे तथा लुटेरोंको मारनेमें चौकस रहकर रणभूमिमें पराक्रम दिखावे। जो राजा शास्त्रज्ञ और बड़े-बड़े यज्ञोंसे यजन करनेवाले हैं और जो युद्धमें विजय प्राप्त करते हैं, वे ही पुण्यलोकोंको प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार दान, स्वाध्याय और यज्ञ राजाओंके कल्याणमें सहायक हैं, उसी प्रकार युद्ध भी उनके लिये निःश्रेयसका साधन है। अतः धर्मोपार्जनके लिये राजाको अवश्य युद्ध करना चाहिये। उसे अपनी सब प्रजाको अपने-अपने धर्ममें स्थित रखते हुए उससे सब प्रकारके धर्मकृत्य कराने चाहिये। राजा प्रजापालनसे ही कृतकृत्यता प्राप्त कर लेता है, दूसरा कोई कर्म वह करे अथवा न करे। उसमें बलकी प्रधानता है, इसलिये वह प्रजाका इन्द्र कहा जाता है।

इसके बाद मैं वैश्यका सनातन धर्म सुनाता हूँ। दान, अध्ययन, यज्ञ और पवित्र साधनोंसे धन संग्रह करना—ये उसके प्रधान कर्तव्य हैं। इसके सिवा, उसे सावधानीसे सब प्रकारके पशुओंका पालन करना चाहिये। यदि वह किसी शास्त्रविरुद्ध कर्मका आचरण करता है तो उसे 'विकर्म'

कहा जाता है। पशुओंका पालन करनेसे वैश्यको बड़ा सुख मिलता है, इसलिये उसे ऐसा विचार कभी नहीं करना चाहिये कि मैं पशुपालन नहीं करूँगा।

अब तुम्हें शूद्रके धर्म बताता हूँ। ब्रह्माजीने शूद्रोंको तीन वर्णोंके दासत्वके लिये रचा है, इसलिये उन्हें उनकी सेवाशुश्रूषामें लगे रहना चाहिये। उनकी सेवा करनेसे ही उन्हें बड़े-से-बड़ा सुख मिल सकता है। शूद्रको धनसंचय कभी नहीं करना चाहिये; क्योंकि धन पाकर वह पापमें प्रवृत्त हो जाता है और अपनेसे बड़े ब्राह्मणादिको अपने अधीन रखने लगता है। उसे कोई धार्मिक कृत्य करना हो तो राजाकी आज्ञा पाकर वैसा कर सकता है। अब मैं उसकी वृत्तिका वर्णन करता हूँ, जिससे उसकी आजीविकाका निर्वाह हो सकता है। तीनों वर्णोंको शूद्रका भरण-पोषण अवश्य करना चाहिये। उसकी सेवाके बदले उसे काममें लाये हुए छाते, चादर, जूते और पंखे देने चाहिये। जो फटे-पुराने वस्त्र अपने पहननेयोग्य न रहें वे शूद्रको ही दे देने चाहिये; क्योंकि धर्मतः वे उसीकी सम्पत्ति हैं। सेवापरायण शूद्र जिस-किसी द्विजके पास जाय, उसीको उसकी आजीविकाका प्रबन्ध कर देना चाहिये—ऐसा धर्मज्ञ पुरुषोंका कहना है। शूद्रको भी अपने स्वामीका किसी प्रकारके आपत्तिकालमें भी त्याग नहीं करना चाहिये। यदि स्वामी संतानहीन हो तो उसे ही पिण्डदान करना चाहिये और बूढ़ा या दुर्बल हो तो उसका भरण-पोषण भी करना चाहिये। इस कार्यमें धनका नाश हो तो भी उसे उत्साहसे स्वामीके भरण-पोषणमें ही लगे रहना चाहिये; क्योंकि वस्तुतः वह धन शूद्रका अपना नहीं माना जाता, उसपर तो उसके स्वामीका ही अधिकार होता है।

शास्त्रोंमें तीनों वर्णोंके लिये यज्ञका विधान किया गया है तथा शूद्रके लिये मन्त्रहीन यज्ञकी विधि है। स्वाहाकार, वषट्कार और मन्त्र—इनमें शूद्रका अधिकार नहीं है। अतः शूद्र श्रौत यज्ञोंकी दीक्षा न लेकर केवल पाकयज्ञोंसे यजन करे। इन पाकयज्ञोंकी दक्षिणा एक पूर्णपात्र[1] कही गयी है। तीन वर्ण जो यज्ञ करते हैं उनका फल शूद्रको भी मिलता है; क्योंकि श्रद्धायज्ञ ही सब यज्ञोंमें प्रधान है। यज्ञ करनेवालोंका भी परमदेव श्रद्धा ही है और ब्राह्मण शूद्रोंके परमदेव हैं। अतः अपनी श्रद्धाके बलसे शूद्र अपने स्वामी ब्राह्मणादिके किये हुए यज्ञोंके फलका अधिकारी हो जाता है। शूद्रको ऋक्, साम और यजुर्वेदका अधिकार नहीं है, फिर भी उसका इष्टदेव प्रजापति है। इस प्रकार मानसिक यज्ञोंका अधिकार सभी वर्णोंको है। मनुष्य जो इन्द्रियोंको जीतकर प्रातःकाल और सायंकालमें श्रद्धापूर्वक हवन करता है, उसमें भी प्रधान कारण श्रद्धा ही है। जो श्रद्धासम्पन्न द्विज यज्ञोंको उनके विधिविधानके सहित जानता है और जिसे आत्मज्ञानके विषयमें भी पूर्ण निश्चय है वही यज्ञानुष्ठानका सच्चा अधिकारी है। यदि कोई चोर, पापी या महापापी भी यज्ञके द्वारा भगवान्‌का यजन करनेके लिये उत्सुक हो तो उसे भी 'साधु' ही कहा जाता है। ऋषिगण भी ऐसे पुरुषकी प्रशंसा करते हैं; अतः निश्चय यही होता है कि सब वर्णोंको सर्वदा जैसे बने वैसे यज्ञानुष्ठान करना चाहिये। तीनों लोकोंमें यज्ञके समान कोई धर्म नहीं है; इसलिये मनुष्यको ईर्ष्यारहित होकर अपनी शक्तिके अनुसार श्रद्धापूर्वक यथेच्छ यज्ञ-यागादि करने चाहिये।

युधिष्ठिर! अब तुम चारों आश्रमोंके नाम और कर्म सुनो, ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चार आश्रम हैं। इनमें गार्हस्थ्यकी महिमा विशेष है। ब्रह्मचर्यमें जटाधारण और उपनयन-संस्कारद्वारा द्विजत्व प्राप्त करके वेदाध्ययन करे, फिर गार्हस्थ्यमें अग्न्याधानादि कर्म करते हुए उनके द्वारा तीनों ऋणोंसे मुक्त होकर इन्द्रियोंका संयम कर स्त्रीके सहित अथवा उसे छोड़कर वानप्रस्थ आश्रममें प्रवेश करे। इस आश्रममें आरण्यक शास्त्रोंका अध्ययन कर वनवासियोंके धर्म सीखे और फिर ब्रह्मचर्यपूर्वक संन्यास लेकर इन्द्रिय-सम्बन्धी भोगोंसे विरक्त हो जाय। महाराज! मोक्षकामी ब्राह्मणके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करनेके बाद ही संन्यासाश्रममें प्रवेश करनेका अधिकार कहा है।

संन्यासीको चाहिये कि मन और इन्द्रियोंका संयम करे, जहाँ सूर्यास्त हो वहीं ठहर जाय, किसी वस्तुकी इच्छा न करे, अपने लिये कोई कुटी न बनवावे और जो कुछ मिल जाय उसीसे निर्वाह कर ले। सब तरहकी कामनाओंका त्याग कर दे, सबके प्रति समानभाव रखे, भोगोंसे दूर रहे और हृदयमें किसी प्रकारका विकार न आने दे। इन सब धर्मोंके कारण यह आश्रम साक्षात् क्षेमधाम अर्थात् कल्याणका स्थान है। इसमें पहुँचकर पुरुष अविनाशी परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त हो जाता है।

अब गृहस्थाश्रमके धर्म सुनाता हूँ। जो पुरुष वेदोंका अध्ययन कर सब प्रकारके कर्म करते हुए संतान उत्पन्न करके

---

१. पूर्णपात्रका परिमाण इस प्रकार है—आठ मुट्ठी अन्नको 'किञ्चित्' कहते हैं, आठ किञ्चित्का एक 'पुष्कल' होता है और चार पुष्कलका एक 'पूर्णपात्र' होता है। इस प्रकार दो सौ छप्पन मुट्ठीका एक पूर्णपात्र होता है।

इस आश्रमके मुनिजनोचित कठोर धर्मोंका पालन करता है वह भी इन्द्रियोंके भोगोंसे विरक्त हो जाता है। गृहस्थको चाहिये कि अपनी ही स्त्रीमें सन्तुष्ट रहे ऋतुकालमें स्त्री-समागम करे, शास्त्राज्ञाका पालन करे, शठता और कपटसे दूर रहे, परिमित आहार करे, देवताओंकी आराधनामें तत्पर रहे, दूसरोंके उपकारोंको याद रखे, सत्य और मृदु भाषण करे, दया और क्षमासे युक्त रहे, इन्द्रियोंका संयम करे, गुरु एवं शास्त्रोंकी आज्ञा माने, देवता और पितरोंकी तृप्तिके लिये हव्य-कव्य देता रहे, ब्राह्मणोंको निरन्तर अन्नदान करे, मत्सरसे दूर रहे, अन्य सब आश्रमोंका पोषण करे और सर्वदा यज्ञयागादिमें लगा रहे।

ब्रह्मचारीको एकमात्र आचार्यकी ही सेवामें तत्पर रहना चाहिये, इन्द्रियोंको काबूमें रखकर अपने व्रतका पालन करना चाहिये, वेदोंका स्वाध्याय करते हुए नित्यकर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये, नित्यप्रति गुरुजीको प्रणाम करना चाहिये तथा स्नान, संध्या, जप, होम, स्वाध्याय और अतिथिपूजन—इन छः कर्मोंका निष्कामभावसे आचरण करना चाहिये। ये ही सब ब्रह्मचर्याश्रमके धर्म हैं।



सर्वसाधारणके धर्म, राजधर्मकी महत्ता और उसके विषयमें इन्द्रवेषधारी भगवान् विष्णु और राजा मान्धाताके संवादका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! अब आप ऐसे धर्मोंका वर्णन कीजिये जो सब प्रकार कल्याणकारक, सुखप्रद, परम पुण्यप्रद, हिंसाहीन और सब लोकोंमें माननीय हों तथा जिनका सुगमतासे पालन हो सके।

भीष्मजी बोले—भरतश्रेष्ठ ! उक्त चार आश्रम ब्राह्मणोंके लिये ही कहे गये हैं। अन्य तीन वर्ण उनका अनुवर्तन नहीं करते। उसी प्रकार जो ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य या शूद्रोंके धर्मोंका सेवन करता है, उस मन्दमतिकी इस लोक और परलोकमें निन्दा होती है तथा मरनेपर वह नरकमें जाता है। जो ब्राह्मण छः कर्मोंमें तत्पर रहता है, चारों आश्रमोंमें उनके सब धर्मोंका आचरण करता है तथा तपस्वी, निरपेक्ष और उदार है, उसे अक्षय लोक प्राप्त होते हैं। जो पुरुष जिस प्रकारका कर्म करता है, उससे उसमें वैसा ही गुण आ जाता है।

राजन् ! धनुषकी डोरी खींचना, शत्रुको दबाना, खेती, व्यापार या पशुपालन करना अथवा धनके लिये दूसरोंकी सेवा करना—ये ब्राह्मणके लिये अत्यन्त अकर्तव्य हैं। मनीषी ब्राह्मण यदि गृहस्थ हो तो उसके लिये षट्कर्म ही सेवन करनेयोग्य हैं और कृतकृत्य होनेपर उसके लिये वनमें रहना ही अच्छा माना गया है। ब्राह्मणको राजसेवा, खेतीके धन, व्यापारकी आजीविका, कुटिलता, परस्त्रीगमन और व्याज—इनसे सर्वदा दूर रहना चाहिये। जो ब्राह्मण दुश्चरित्र, धर्महीन, कुलटाका स्वामी, चुगलखोर, नाचनेवाला, राजसेवक अथवा कोई और विकर्म करनेवाला होता है, वह अत्यन्त अधम है, उसे तो शूद्र ही समझो और उसे शूद्रोंकी पंक्तिमें बिठाकर ही भोजन कराना चाहिये। ऐसे ब्राह्मणोंको देवपूजन आदि कार्योंमें दूर रखना चाहिये। जो ब्राह्मण मर्यादाशून्य, अपवित्र, क्रूर स्वभाववाला, हिंसामय और अपने धर्मको त्यागकर चलनेवाला हो, उसे हव्य, कव्य अथवा दूसरे दान देना न देनेके बराबर ही है। ब्राह्मण तो उसीको समझना चाहिये जो जितेन्द्रिय, सोमपान करनेवाला, सदाचारी, कृपालु, सहनशील, निरपेक्ष, सरल, मृदु और क्षमावान् हो; इसके विपरीत जो पापपरायण है उसे क्या ब्राह्मण समझा जाय ?

राजन् ! क्षत्रियको तो चाहिये कि पहले धर्मानुसार प्रजाका पालन करे, राजसूय, अश्वमेध तथा दूसरे यज्ञोंका अनुष्ठान करे, शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे, संग्राममें विजय प्राप्त करे, फिर प्रजाकी रक्षाके लिये राज्यपर अपने पुत्रका अभिषेक करे और यदि वह योग्य न हो तो किसी अन्य क्षत्रियकुमारको गोद लेकर राज्यका अधिकारी बनावे। इस प्रकार पितृयज्ञोंके द्वारा पितरोंका तथा यज्ञानुष्ठान और वेदाध्ययनसे देवता और ऋषियोंका अच्छी तरह पूजन कर जो क्षत्रिय अन्त समयपर अन्य आश्रममें प्रवेश करना चाहे वह क्रमशः उन्हें स्वीकार करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है। गृहस्थधर्मोंका त्याग कर देनेपर भी क्षत्रियको संन्यासधर्मका पालन करते हुए जीवनरक्षाके लिये ही भिक्षाका आश्रय लेना चाहिये, अपनी सेवा करानेके लिये ऐसा करना ठीक नहीं है। ब्राह्मणके सिवा अन्य तीन वर्णोंके लिये चारों आश्रमोंके धर्मोंका पालन करना अनिवार्य नहीं है। क्षत्रियके लिये तो राजधर्मकी ही प्रधानता है। यों भी राजाका धर्म सब धर्मोंमें प्रधान है। इसीके द्वारा सब वर्णोंका पालन होता है। राजधर्मोंमें सब प्रकारके दानोंका समावेश हो जाता है और दानको ही सबसे प्रधान और

पुरातन धर्म कहा जाता है। यदि राजदण्ड न रहे तो वेदत्रयीका नाश हो जाय और उसके नष्ट होनेपर तो सारे धर्मोंका ही लोप हो जाय। इस प्रकार पुरातन राजधर्मको त्याग देनेसे सभी आश्रमोंके धर्मोंको ठेस पहुँच सकती है। राजधर्ममें सभी प्रकारकी दीक्षाओंका समावेश है और सारी विद्याएँ तथा समस्त लोक भी राजधर्मके ही अधीन हैं; इसलिये क्षत्रियके लिये तो राजधर्म ही सबसे श्रेष्ठ है।

युधिष्ठिर! यह बात मैं पहले ही कह चुका हूँ कि ब्राह्मणोंके ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास—इन तीनों आश्रमोंके धर्मोंका गृहस्थके धर्मोंमें अन्तर्भाव हो जाता है तथा क्षत्रियके धर्म तीनों वर्णोंके आश्रय हैं; क्योंकि समस्त लोक और पुण्यकर्मोंका आधार राजधर्म ही है। इस विषयमें मैं धर्म और अर्थका निर्णय करनेवाला एक इतिहास सुनाता हूँ। प्राचीन समयमें मान्धाता नामका एक राजा था। उसने आदि-अन्तशून्य भगवान् नारायणका दर्शन पानेकी इच्छासे एक यज्ञ किया। उसने भगवान्के चरणोंमें सिर रखकर दर्शनोंके लिये प्रार्थना की। तब उन्होंने इन्द्रका रूप धारण कर राजाको दर्शन दिया। मान्धाताने वहाँ बैठे हुए अन्य राजा और सभासदोंके सहित इन्द्ररूपधारी भगवान् विष्णुका पूजन किया। फिर उन दोनोंका आपसमें इस प्रकार संवाद हुआ—

इन्द्रने कहा—राजन्! तुम सभी मनुष्योंके राजा हो, इसलिये तुम्हारे मनमें जो-जो कामनाएँ हैं उन सबको मैं पूरी



करूँगा। तुम सत्यवादी, धर्मपरायण, जितेन्द्रिय और शूरवीर हो। तुम्हारी बुद्धि, भक्ति और सुदृढ़ श्रद्धाके कारण देवताओंकी तुमपर बड़ी प्रीति है; इसलिये तुम्हारी जो इच्छा हो वही वर देनेके लिये मैं तैयार हूँ।

मान्धाताने कहा—भगवन्! मैं आपको सिर झुकाता हूँ और आपको प्रसन्न करके आदिदेव भगवान् विष्णुके दर्शन करना चाहता हूँ। अब मेरी इच्छा सब प्रकारके भोगोंको त्याग कर वनमें जानेकी है; क्योंकि लोकमें सभी सत्पुरुष अन्तमें इसी मार्गका अनुसरण करते हैं; मैंने क्षात्रधर्मके द्वारा मिलनेवाले पुण्यलोकोंको तो प्राप्त कर लिया है और संसारमें अपनी कीर्ति भी स्थापित कर दी है, किंतु जो धर्म आदिदेव श्रीविष्णुभगवान्से प्रवृत्त हुआ है, उसका आचरण करना मैं नहीं जानता।

इन्द्रने कहा—आदिदेव भगवान् विष्णुसे तो पहले राजधर्म ही प्रवृत्त हुआ है, दूसरे धर्म तो उसीके अङ्ग हैं और उसके बाद ही प्रकट हुए हैं। सब धर्मोंका अन्तर्भाव क्षात्रधर्ममें ही हो जाता है, इसलिये इसीको सबसे श्रेष्ठ कहा जाता है। भगवान्ने क्षात्रधर्मके द्वारा ही शत्रुओंका दमन करके देवता और ऋषियोंकी रक्षा की थी। यदि वे असुरोंसे आक्रान्त इस पृथ्वीको न जीतते तो ब्राह्मणोंका नाश हो जानेसे चारों वर्ण और चारों आश्रमोंके सभी धर्मोंका नाश हो जाता। इन सनातन धर्मोंका सैकड़ों बार नाश हो चुका है; किंतु क्षात्रधर्मने इन्हें पुनः उज्जीवित कर दिया है। युग-युगमें इसीके कारण सनातन धर्मोंका उद्धार हुआ है, इसलिये मनुष्योंमें इसी धर्मको सबसे अच्छा माना जाता है। युद्धमें शरीरकी आहुति देना, समस्त प्राणियोंपर दया करना, लोक-व्यवहारका ज्ञान प्राप्त करना, भयभीत प्रजाकी रक्षा करना और दुःखी लोगोंको दुःखसे छुड़ाना—ये सब बातें राजाओंके क्षात्रधर्ममें ही पायी जाती हैं। जो लोग काम-क्रोधमें फँसे हुए हैं और मर्यादामें नहीं रहना चाहते, वे राजाके डरसे ही पाप नहीं कर पाते तथा जो सब प्रकारके धर्मोंका पालन करनेवाले शिष्ट पुरुष हैं, वे सदाचारका सेवन करते हुए सद्धर्मका उपदेश कर सकते हैं। राजा अपनी प्रजाका पुत्रोंकी तरह पालन करता है, अतः इसमें संदेह नहीं, उसकी देख-रेखमें सब प्राणी लोकमें निर्भय होकर विचरते हैं। इस प्रकार संसारमें क्षात्रधर्म ही सबसे श्रेष्ठ, सनातन, नित्य, अविनाशी और सब जीवोंका उपकार करनेवाला है; इसका पर्यवसान मोक्षमें ही होता है।

राजन्! तुम-जैसे लोकहितैषी पुरुषोंको इस क्षात्रधर्मका ही पालन करना चाहिये। यदि इसका पालन

न किया जायगा तो प्रजा नष्ट हो जायगी। जो राजा सब प्राणियोंपर दयादृष्टि रखता है, उसे इसीको अपना प्रधान धर्म समझना चाहिये। वह पृथ्वीका संस्कार करावे, राजसूय-अश्वमेधादि यज्ञोंमें अवभृथ-स्नान करे, भिक्षाका आश्रय न ले, प्रजाका पालन करे और संग्राममें शरीरत्याग करे। भिन्न उपायों, नियमों और पुरुषार्थोंके द्वारा चातुर्वर्ण्यको स्थापित करने और उसे सुरक्षित रखनेके कारण क्षात्रधर्मको ही श्रेष्ठ कहा जाता है और इसीमें सारे धर्म समाये हुए हैं। यज्ञ-यागादि कराना तथा पहले जो चारों आश्रम कहे गये हैं, उनके धर्मोंका पालन करना ब्राह्मणोंका कर्तव्य है। ब्राह्मणोंका प्रधान धर्म यही है। जो विप्र इसका पालन न करे, उसे शूद्रके समान शस्त्रसे मार डालना चाहिये। जो ब्राह्मण अधर्ममें प्रवृत्त है वह सम्मानका पात्र नहीं हो सकता, उसका किसीको विश्वास भी नहीं करना चाहिये।

मान्धाताने कहा—देवराज! मेरे राज्यमें जो यवन, किरात, गान्धार, चीन, शबर, बर्बर, शक, तुषार, कङ्क, पह्लव, आन्ध्र, मद्र, पौण्ड्र, पुलिन्द, रमठ और काम्बोज आदि जातियोंके लोग रहते हैं तथा जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंकी संतान हैं, उन्हें अपने-अपने धर्मोंका किस प्रकार पालन करना चाहिये? इनके सिवा, जो लोग लूट-पाट करके अपनी जीविका चलाते हैं; उन सबके साथ मेरा कैसा बर्ताव होना चाहिये?

इन्द्रने कहा—राजन्! जो लोग लूट-पाट करके ही अपना निर्वाह करते हैं, उनसे अपने माता-पिता, आचार्य, गुरु, आश्रमवासी और राजाओंकी सेवा करानी चाहिये, वेदोक्त धर्म-कर्म और पितृश्राद्ध कराने चाहिये, कुएँ, पौंसले और आश्रम बनवाने चाहिये तथा यथासमय ब्राह्मणोंको दान दिलाते रहना चाहिये। अहिंसा, सत्य, अक्रोध, शौच, अद्रोह, यज्ञ-यागादि करवाके ब्राह्मणोंको दक्षिणा दिलानी चाहिये और बड़े-बड़े ब्रह्मभोज करवाने चाहिये। राजन्! प्रजापति ब्रह्माने इसी प्रकार सब मनुष्योंके कर्तव्य पहले ही निश्चित कर दिये हैं। उनका उन्हें यथावत् पालन करना चाहिये।

मान्धाताने कहा—देवराज! मानवसमाजमें दस्यु तो सभी वर्ण और सभी आश्रमोंमें पाये जाते हैं। वे केवल भिन्न-भिन्न चिह्नोंसे छिपे रहते हैं।

इन्द्र बोले—राजन्! जब दण्डनीति नष्ट हो जाती है और राजधर्मकी उपेक्षा होने लगती है तो सभी प्राणी कर्तव्य-विमूढ़ हो जाते हैं। इस सत्ययुगकी समाप्ति होनेपर अनेकों वेषधारी संन्यासी प्रकट हो जायँगे और सब आश्रमोंमें फेर-फार हो जायगा। लोगोंमें काम और क्रोधकी प्रबलता होगी, इसलिये वे पुराण और धर्मोंकी परमगतिपर ध्यान न देकर उलटे रास्तेसे चलने लगेंगे। जब उदारहृदय राजालोग दण्डनीतिके द्वारा पापीको पाप करनेसे रोकते रहते हैं तो परममङ्गलमय सनातन धर्मका ह्रास नहीं होता। राजा सभी लोकोंके सम्मानका पात्र है। जो पुरुष उसका अपमान करता है, उसके दान, यज्ञ और श्राद्ध कभी सफल नहीं होते। राजा मनुष्योंका अधिपति, सनातन, देवस्वरूप और धर्मकी रक्षा करनेवाला होता है; जो पुरुष अपनी बुद्धिसे प्रवृत्तिधर्मकी गतिका विचार करता है, मैं तो उसीको माननीय और पूज्य समझता हूँ। उसीमें क्षात्रधर्म भी स्थित होता है।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! मान्धाताको इस प्रकार उपदेश देकर इन्द्ररूपधारी भगवान् विष्णु अपने सनातन और अविनाशी धामको चले गये। इस तरह पहले भगवान् विष्णुने ही राजधर्मको प्रचलित किया था। और अच्छे-अच्छे सत्पुरुष इसका आचरण करते रहे हैं। अतः तुम भी अपने पूर्वपुरुषोंद्वारा स्वीकृत इस क्षात्रधर्मका ही आचरण करो।



राजधर्ममें चारों आश्रमोंके धर्मोंका समावेश

राजा युधिष्ठिरने कहा—पितामह! आपने मनुष्योंके चार आश्रम बताये हैं, सो अब आप विस्तारसे उनका वर्णन कीजिये।

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर! यों तो सनातन धर्मोंका जैसा ज्ञान मुझे है वैसा तुमको भी है ही, तथापि तुम मुझसे पूछते हो तो सुनो। सदाचारमें प्रवृत्त होकर चारों आश्रमोंके धर्मोंका पालन करनेवाले लोगोंको जिन फलोंकी प्राप्ति होती है, वे ही राग-द्वेष छोड़कर दण्डनीतिके अनुसार बर्ताव करनेवाले राजाको भी प्राप्त होते हैं। यदि राजा सब प्राणियोंपर समान दृष्टि रखनेवाला हो तो उसे संन्यासियोंको प्राप्त होनेवाली गति मिलती है। जो राजा आत्मतत्त्वको जानता है और जिसे दया और निष्ठुरताके यथोचित प्रयोगका भी पता है, उसे गृहस्थाश्रमियोंको प्राप्त होनेवाले लोकोंकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार जो सम्माननीय पुरुषोंको उनकी अभीष्ट वस्तुएँ देकर सम्मानित करता है, उसे ब्रह्मचारियोंको प्राप्त होनेवाली गति मिलती है और जो अपने

सजातीय, सम्बन्धी और सुहृदोंका विपत्तिसे उद्धार करता है, उसे वानप्रस्थोंको प्राप्त होनेवाले लोक प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य प्रधान-प्रधान पुरुषों और आश्रमियोंका सत्कार करता है, नित्यप्रति पितृश्राद्ध, भूतयज्ञ, अतिथिसेवा और देवपूजन करता रहता है तथा जो सत्पुरुषोंके सत्कारके लिये शत्रुओंके राष्ट्रोंका दलन करता है, उस राजाको वानप्रस्थोंके लोकोंकी प्राप्ति होती है। समस्त प्राणियोंका तथा अपने राष्ट्रका पालन, नित्यप्रति वेदोंका अध्ययन, क्षमा, आचार्यका पूजन और गुरुसेवा—ये ब्रह्मलोककी प्राप्तिके साधन हैं। युद्धमें प्राणोंकी बाजीका अवसर आनेपर जिस राजाका ऐसा निश्चय रहता है कि 'या तो मर जाऊँगा या देशकी रक्षा करके रहूँगा' उसे भी ब्रह्मलोक ही प्राप्त होता है। जो राजा सब प्राणियोंके प्रति निष्कपट और सरल व्यवहार करता है वह भी संन्यासियोंका लोक ही प्राप्त करता है। जो राजा वानप्रस्थ और वेदत्रयीके ज्ञाता ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन देता है, उसे वानप्रस्थोंको प्राप्त होनेवाले लोक मिलते हैं। जो बालक, वृद्ध और समस्त प्राणियोंके प्रति दया करता है, उस राजाको सभी प्रकारके पुण्यलोक प्राप्त हो सकते हैं।

यदि कोई अत्याचारसे घबराकर अपनी शरणमें आवे तो उसकी रक्षा करनेवाले राजाको गृहस्थाश्रमीके लोकोंकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार जो सब प्रकार चराचर प्राणियोंकी रक्षा और पूजा करता है तथा जो पूजनीय और आत्मज्ञ सत्पुरुषोंका पालन करता है, उसे भी गृहस्थोंको मिलनेवाले पुण्यलोक ही मिलते हैं। जो पुरुष विधाताके रचे हुए धर्ममें यथार्थ रीतिसे स्थित है, वह सभी आश्रमोंके प्राप्त होनेवाले पुण्यफलको पा लेता है। मनुष्यको सभी आश्रमोंमें रहते हुए स्थान, कुल, और आयुका मान रखना चाहिये। जो बहुत सम्पत्ति और उपहारोंके द्वारा प्राणियोंका सत्कार करता है तथा सभी अवस्थाओंमें धर्महीपर दृष्टि रखता है, वह राजा सभी आश्रमोंका फल प्राप्त कर लेता है। जिस राजाके राज्यमें सुरक्षित रहकर धर्मकुशल पुरुष अपने धर्मका आचरण करते हैं, उसे उनके पुण्यका अंश प्राप्त होता है। जो राजा धर्मनिष्ठ पुरुषोंकी रक्षा नहीं करते, उन्हें उन पुरुषोंके पापका ही भागी होना पड़ता है। जो लोग धार्मिक पुरुषोंकी रक्षा करनेमें राजाकी सहायता करते हैं, उन्हें दूसरोंके धर्मका अंश मिलता है। युधिष्ठिर ! यह बात सर्वथा स्पष्ट है कि हमलोग जिसमें स्थित हैं, वह गृहस्थाश्रम अन्य सभी आश्रमोंसे श्रेष्ठ है। जो पुरुष दण्ड और क्रोधको त्याग कर समस्त प्राणियोंको अपने ही समान समझता है, वह इस लोकमें और मरनेके बाद परलोकमें सुख पाता है। जब जीवके हृदयमें संसारके किसी भी भोगके प्रति आसक्ति नहीं रहती तो वह सत्त्वमें स्थित हो जाता है और इसी समय उसे परब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है।

राजन् ! तुम वेदाध्ययनमें लगे हुए सत्कर्मपरायण ब्राह्मणोंकी तथा अन्य सब लोगोंकी रक्षाका प्रयत्न करो। देखो, वनमें और विभिन्न आश्रमोंमें रहकर लोग जितना धर्म करते हैं, उनकी रक्षा करनेसे राजाको उससे सौगुना पुण्य होता है। मैंने तुम्हें यह कई प्रकारका राजधर्म सुनाया है। यह अत्यन्त प्राचीन और सनातन है, तुम इसीका अनुष्ठान करो। यदि तुम प्रजाके पालनमें तत्पर रहोगे तो चारों आश्रम और चारों वर्णोंके धर्माचरणका फल प्राप्त कर लोगे।



प्रजाके अभ्युदयके लिये राजाकी आवश्यकताका निरूपण तथा इस विषयमें बृहस्पति और राजा वसुमनाके संवादका उल्लेख

राजा युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! आपने चारों आश्रम और चारों वर्णोंके धर्म कहे। अब आप मुझे राष्ट्रका प्रधान कर्तव्य सुनाइये।

भीष्मजी बोले—राजाका अभिषेक करना यह राष्ट्रका प्रधान कर्तव्य है; क्योंकि स्वामी और सेनासे शून्य राज्यको लुटेरे नष्ट कर देते हैं। जिस देशमें कोई राजा नहीं होता उसमें धर्मकी भी स्थिति नहीं रहती। वहाँ लोग आपसमें एक-दूसरेको खाने लगते हैं। ऐसी राजहीन स्थितिको धिक्कार है। अराजक देशमें रहना मैं किसीके लिये अच्छा नहीं समझता। यदि उसपर कोई राज्यलोलुप प्रबल शत्रु आक्रमण कर दे, तो यही अच्छा है कि आगे बढ़कर उसका स्वागत किया जाय; क्योंकि लोकमें अराजकतासे बढ़कर कोई भी पाप नहीं है। अतः जिन्हें उन्नतिकी इच्छा हो उन्हें सर्वदा अपने देशपर कोई राजा बनाये रखना चाहिये। जिस देशमें कोई राजा नहीं होता वहाँके लोग धन या स्त्रीका भी सुख नहीं भोग सकते। ऐसी स्थितिमें पापियोंको भी चैन नहीं मिलता; क्योंकि एक पुरुषका धन दो छीन लेते हैं तो दूसरे अनेकों मिलकर उन दोनोंका सर्वस्व लूट लेते हैं। वहाँ जो दास नहीं

होता उसे भी दास बना लिया जाता है, स्त्रियोंको बलात् छीन लिया जाता है। इसीसे देवताओंने प्रजाका पालन करनेवाले राजाकी सृष्टि की है। यदि पृथ्वीमें कोई दण्डधारी राजा न हो तो जलमें मछलियोंके समान बलवान् लोग दुर्बलोंको निगल जायँ।

सुनते हैं कि राजासे हीन होनेके कारण पूर्वकालमें बहुत-सी प्रजा नष्ट हो गयी थी। तब वह दुःखित होकर ब्रह्माजीके पास गयी और उनसे कहने लगी, 'भगवन्! राजाके बिना तो हमलोग नष्ट हो जायँगे, आप हमें कोई राजा दीजिये।' तब ब्रह्माजीने मनुको आज्ञा दी, किंतु



मनुने राज्यका भार लेना स्वीकार नहीं किया। वे कहने लगे, 'मैं पापसे बहुत डरता हूँ, राज्य करना बड़ा कठिन काम है। विशेषतः मनुष्योंमें तो यह और भी कठिन हो जाता है; क्योंकि उनका आचरण सर्वदा असत्यपूर्ण होता है।' तब ब्रह्माजी बोले, 'तुम इस बातसे मत डरो, पाप तो करनेवालेको ही लगेगा। तुम बड़े बलवान् और प्रतापी राजा होगे, कोई भी तुम्हें दबा न सकेगा और तुम्हारे कारण हम सभीको सुख प्राप्त होगा। तुमसे सुरक्षित रहकर प्रजा जो धर्म करेगी उसका चतुर्थांश तुम्हें मिलेगा। उस धर्मके प्रभावसे तुम हमारा भी पोषण कर सकोगे। अब तुम विजयके लिये निकलो और शत्रुओंका मानमर्दन करो, तुम्हें सर्वदा विजय प्राप्त हो।'

ब्रह्माजीकी यह आज्ञा पाकर मनु महाराज बड़ी भारी सेना लेकर विजयके लिये निकले। उनकी महत्ताको देखकर सभी लोग दंग रह गये और धर्म-कर्ममें मन लगाने लगे। इस प्रकार मनुजीने सर्वत्र घूम-घूमकर पापियोंका दमन किया और प्रजाको अपने कर्मोंमें नियुक्त कर दिया। अतः जिस मनुष्यको ऐश्वर्यकी इच्छा हो उसे सबसे पहले प्रजापर अनुग्रह करनेके लिये कोई राजा नियुक्त करना चाहिये और उसे नित्यप्रति बड़ी भक्तिसे नमस्कार करना चाहिये। इस लोकमें जिसका अपने लोग आदर करते हैं उसे दूसरे लोग भी मानते हैं और जिसका स्वजनोंके द्वारा तिरस्कार होता है वह दूसरोंकी दृष्टिमें भी गिर जाता है। राजाका दूसरोंके द्वारा तिरस्कार होना सभीके लिये दुःखदायी है, इसलिये प्रजाको चाहिये कि उसे छत्र, वस्त्र, आभूषण, अन्न, पान, भवन, आसन और शय्या आदि सभी प्रकारकी सामग्री भेंट करे। इस प्रकार वैभव पाकर वह दुर्जय हो जाता है और उसमें प्रजाकी रक्षा करनेकी शक्ति आ जाती है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! ब्राह्मणलोग राजाको देवरूप क्यों बताते हैं? कृपा करके मुझे इसका रहस्य सुनाइये।

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर! यही बात राजा वसुमनाने बृहस्पतिजीसे पूछी थी। तब बृहस्पतिजीने उससे कहा, "राजन्! लोकमें जो धर्म देखा जाता है, उसका मूल कारण राजा ही है। राजासे डरनेके कारण ही प्रजा आपसमें एक-दूसरेको नहीं खाती। जब प्रजा मर्यादाको छोड़ने लगती है और लोभके वशीभूत हो जाती है तो राजा ही धर्मके द्वारा उसमें शान्ति स्थापित करता है। यदि राजा न हो तो थोड़े जलमें रहनेवाली मछलियों और वनमें रहनेवाले पक्षियोंके समान प्रजा भी आपसमें लड़-झगड़कर बात-की-बातमें नष्ट हो जाय। तब तो बलवान् लोग निर्बलोंकी बहूबेटियोंको छीन लें और यदि वे सीधे-सीधे न दें तो उनके प्राणोंके ग्राहक बन जायँ। मनुष्योंके पास जो वाहन, वस्त्र, अलंकार और तरह-तरहके रत्न हों, उन्हें पापीलोग लूट लें। यदि राजा रक्षा न करे तो धर्मात्माओंको तरह-तरहका शस्त्राघात सहना पड़े, अधर्मका ही प्रचार होने लगे, पापीलोग माता, पिता, वृद्ध, आचार्य, अतिथि और गुरुओंको भी दुःख देने लगें; धनवानोंको मौत और बन्धनका क्लेश भोगना पड़े; कोई भी मनुष्य किसी वस्तुपर अपना स्वत्व न मान सके; लोग अकालमें ही कालके गालमें जाने लगें; देशमें दस्युओंकी ही प्रधानता हो जाय; खेती नष्ट हो जाय; व्यापार मिट्टीमें मिल जाय; नीति और कर्मकाण्डका लोप हो जाय; बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञ देखनेको भी न मिलें और न

विवाह या समाजका ही कोई संगठन रहे। यदि राजा प्रजाका पालन न करे तो सारे संसारमें त्रास फैल जाय, सबके हृदय डाँवाडोल हो जायँ, सब ओर हाहाकार मच जाय और एक क्षणमें ही इस सारे संसारका नाश हो जाय; फिर तो ब्रह्महत्या करनेवाला भी मौजसे इन्द्रियोंका सुख भोगता रहे, चोर हाथों-हाथ प्रजाकी चीजें उड़ा ले जायँ, धर्मकी सारी मर्यादा टूट जाय, लोग भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगें, जगत्में अन्याय फैल जाय, प्रजा वर्णसंकर हो जाय और देशमें दुर्भिक्ष पड़ने लगे। राजासे सुरक्षित रहनेपर ही लोग निर्भय होकर घरका दरवाजा खुला छोड़ देते हैं और सुखकी नींद सोते हैं। यदि धर्मनिष्ठ राजा पृथ्वीकी रक्षा न करते तो लोगोंको दूसरोंके मुहँसे कोई कड़वी बात सुनना भी सम्भव न होता, किसीकी मार सहनेकी तो बात ही क्या है ? यदि राजाकी देख-रेख रहती है तो स्त्रियाँ रास्तेमें सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित होकर विना किसी पुरुषको साथ लिये बेखटके चली जाती हैं, लोग धर्मका ही आचरण करते हैं, आपसमें किसीको कष्ट नहीं पहुँचाते, तीनों वर्ण तरह-तरहके यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं और ध्यान देकर विद्याभ्यास करते हैं। इस जगत्का पोषण खेती-बारी और व्यापारसे ही होता है और इसका आधार यज्ञ-यागादि हैं; ये सब भी तभी ठीक-ठीक निभते हैं, जब राजा धर्मकी रक्षा करता है।

''राजाके न रहनेपर सब प्रकारसे प्राणियोंका भी नाश होने लगता है, उसके रहनेपर ही सबकी रक्षा होती है। ऐसी स्थितिमें भला राजाका सम्मान कौन न करेगा ? जो पुरुष राजाका प्रिय और हित करता है, उसके इहलोक और परलोक दोनों ही बन जाते हैं और जो मनसे भी राजाका अहित चाहता है, उसे यहाँ भी कष्ट होता है और मरनेपर भी नरकका द्वार देखना पड़ता है। 'यह मनुष्य है' ऐसा समझकर राजाका कभी अपमान नहीं करना चाहिये। वास्तवमें तो यह मनुष्यरूपमें कोई महान् देवता ही विराजमान है। राजा समय-समयपर अग्नि, सूर्य, मृत्यु, कुबेर और यम—इन पाँच देवताओंका रूप धारण करता है। जिस समय वह छद्मवेष धारण करके प्रजाको कष्ट पहुँचानेवाले दुष्ट पुरुषोंको अपने उग्र तेजसे दग्ध करता है, उस समय अग्निरूप हो जाता है; जब वह गुप्तरूपी नेत्रोंके द्वारा सब प्रजाकी प्रवृत्तिको देखता है और उसके कल्याणका प्रयत्न करता है तो सूर्य हो जाता है; जब वह क्रोधमें भरकर सैकड़ों पापी पुरुषोंको उनके पुत्र-पौत्र और सलाहकारोंके सहित मारने लगता है तो वह मृत्युके समान हो जाता है। जब कठोर दण्ड देकर अधर्मियोंका दमन करता है और धर्मात्माओंके प्रति दयाभाव प्रदर्शित करता है, उस समय साक्षात् यमराज ही जान पड़ता है और जिस समय वह उपकारियोंको धन और स्त्री आदि देकर संतुष्ट करता है तथा अपकार करनेवालोंके तरह-तरहके रत्न छीनने लगता है तो स्वयं कुबेरके समान जान पड़ता है। जो पुरुष कार्यकुशल, पुण्यकर्मा और ईर्ष्याशून्य हो तथा जो धर्मकी वृद्धि चाहता हो उसे राजाकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये। राजाके विरुद्ध चलकर कोई भी सुख नहीं पा सकता, भले ही वह राजाका पुत्र, भाई, समवयस्क अथवा समकक्ष ही क्यों न हो। वायुसे प्रज्वलित हुई आग भी कदाचित् कोई वस्तु भस्म किये विना छोड़ दे, परंतु राजासे सामना पड़ जानेपर कुछ भी बाकी नहीं बच सकता। राजाकी वस्तुओंसे तो मौतके समान दूर रहना चाहिये। मृग जैसे मारकयन्त्रको छूते ही मर जाता है, उसी प्रकार राजद्रव्यका स्पर्श करते ही मनुष्यके प्राण संकटमें पड़ जाते हैं; इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको राजाकी वस्तुकी अपनी ही चीजकी तरह रक्षा करनी चाहिये।

''अतः जो पुरुष उन्नति चाहता हो, संयमी हो, जितेन्द्रिय हो, मेधावी हो, विचारशक्ति रखता हो और चतुर हो उसे सर्वदा राजाके ही पक्षमे रहना चाहिये। राजाको भी ऐसे मन्त्रीका अवश्य सत्कार करना चाहिये जो कृतज्ञ, बुद्धिमान्, उदाराशय, सुदृढ़ भक्ति रखनेवाला, जितेन्द्रिय, धर्मनिष्ठ और सर्वदा नीतिका अनुसरण करनेवाला हो। जो अपने प्रति दृढ़ अनुराग रखता हो, बुद्धिमान् हो, धर्मज्ञ हो, संयतेन्द्रिय, शूरवीर और उदार हो तथा और सबको रोककर अकेला आप ही सब काम करनेको तैयार हो ऐसा पुरुष राजाको अवश्य अपने पास रखना चाहिये। जिस प्रकार बुद्धि मनुष्यको निःसंकोच कर देती है, उसी प्रकार राजा उसे विनयी बना सकता है जो राजासे विरुद्ध है, उसे सुख कैसे मिल सकता है, राजा तो अपने शरणापन्नको ही सुखी करता है। राजा प्रजाका गौरवपूर्ण हृदय है तथा वही उसकी गति, प्रतिष्ठा और प्रधान सुख है। जो लोग उसका आश्रय लेते हैं वे पूरी तरहसे इहलोक और परलोकको अपने अधीन कर लेते हैं। राजा भी दमन, सत्य और सौहार्दसे पृथ्वीका शासन करता है तथा बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करके सनातन स्वर्गस्थान प्राप्त कर लेता है।'' बृहस्पतिजीके इस प्रकार उपदेश देनेपर कोसलराज वसुमना प्रयत्नपूर्वक अपनी प्रजाका पालन करने लगे।



राजाके प्रधान कर्तव्योंका तथा युगनिर्माणमें दण्डनीतिकी प्रधानताका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! राजाका प्रधान कर्तव्य क्या है ? उसे देशकी रक्षा किस प्रकार करनी चाहिये ? शत्रुओंको किस प्रकार जीतना चाहिये ? दूतोंकी नियुक्ति किस क्रमसे करनी चाहिये तथा चारों वर्ण और अपने सेवक, स्त्री एवं पुत्रोंको किस प्रकार अपना विश्वास दिलाना चाहिये ?

भीष्मजी बोले—राजन् ! तुम सावधान होकर राजाके आचरणके विषयमें सुनो। राजा तथा उसके प्रतिनिधिको आरम्भमें क्या करना चाहिये ? सो मैं तुम्हें सुनाता हूँ। राजाको पहले तो अपने मनको जीतना चाहिये, उसके बाद शत्रुओंको भी परास्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। पाँचों इन्द्रियोंको काबूमें रखना यही मनका विजय है। जो राजा जितेन्द्रिय है वही शत्रुओंका भी दमन कर सकता है। उसे किलोंमें, राज्यकी सीमापर तथा नगर और गाँवके बगीचोंमें सेना नियुक्त करनी चाहिये। इसी प्रकार सभी पड़ावोंपर, गाँव और नगरोंके भीतर तथा महलके आस-पास भी थोड़ी-बहुत कुमुक रखना बहुत जरूरी है। जिन लोगोंकी अच्छी तरह परीक्षा कर ली हो और जो देखनेमें मूर्ख, अंधे और बहरे-से जान पड़ते हों तथा भूख-प्यास और परिश्रम सहनेकी सामर्थ्य रखते हों, उन्हें गुप्तचर बनाना चाहिये। इन गुप्तचरोंको मन्त्री, मित्र और पुत्रोंके ऊपर भी नियुक्त करना चाहिये। इसी प्रकार नगर, देश और सामन्तोंके राज्यमें भी इन्हें ऐसी युक्तिसे नियुक्त करे, जिससे वे आपसमें भी एक-दूसरेको न पहचान सकें। अपने गुप्तचरोंके द्वारा राजाको बाजारों, विहारों, समाजों, संन्यासियों, बगीचों, पण्डितोंकी सभाओं, प्रान्तों, चौराहों, सभास्थानों और धर्मशालाओंमें रहनेवाले शत्रुके गुप्तचरोंका पता लगाते रहना चाहिये। यदि राजा शत्रुके दूतोंका पहले ही पता लगा लेता है तो इससे उसका बड़ा हित होता है।

यदि राजाको अपना पक्ष निर्बल जान पड़े तो वह अपनी कमजोरीका पता लगनेसे पहले ही शत्रुके साथ संधि कर ले। यदि इसमें कुछ भी लाभ दिखायी दे तो संधि करनेमें देरी न करे। जो राजा गुणवान् , उत्साही, धर्मज्ञ और सदाचारी हों उनके साथ प्रजाका धर्मानुसार पालन करनेवाले नृपतिको अवश्य मेल कर लेना चाहिये। यदि राजाको अपनी स्थिति संकटपूर्ण दिखायी दे तो जिन अपराधियोंको पहले छोड़ दिया हो और जिनसे जनता द्वेष मानती हो, उन लोगोंको सर्वथा नष्ट कर दे तथा जिससे किसी भी प्रकारके उपकार या अपकारकी सम्भावना न हो और जो स्वयं भी सिर उठानेकी सामर्थ्य न रखता हो उस पुरुषकी उपेक्षा करे। जिस राजामें शत्रुको दबानेकी सामर्थ्य हो और जिसकी सेना मजबूत हो वह अपनी राजधानीके प्रबन्धकी व्यवस्था करके जिस समय शत्रु दूसरेके साथ युद्धमें संलग्न, असावधान अथवा दुर्बल हो, अपनी सेनाको उसपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दे दे। यदि शत्रु अपनेसे बलवान् हो तो भी सर्वदा उसके अधीन न रहे। दुर्बल होनेपर भी गुप्तरूपसे उसकी शक्तिको नष्ट करनेका प्रयत्न करता रहे तथा उसके मन्त्री और प्रीतिपात्र पुरुषोंमें भेद डलवा दे।

जो राजा राष्ट्रका हित चाहे उसे सर्वदा युद्धमें ही नहीं लगा रहना चाहिये। बृहस्पतिजीने साम, दान और भेद—इन तीन उपायोंसे ही अर्थकी प्राप्ति बतलायी है। राजाको प्रजाकी आयका छठा भाग उसकी रक्षाके लिये ही कररूपसे लेना चाहिये। राजाको अपनी प्रजापर पुत्र-पौत्रोंके समान स्नेह रखना चाहिये, किंतु न्यायके समय प्रेमवश पक्षपात नहीं करना चाहिये। न्याय करते समय वादी और प्रतिवादीकी बातें सुननेके लिये सब विषयोंको समझानेवाले विद्वानोंको नियुक्त करना चाहिये; क्योंकि न्यायकी शुद्धि ही राज्यका आधार है। खान, नमक, चुंगीघर, नावके घाट और हस्तिसेनापर टैक्स लेनेके लिये अपने विश्वासपात्र और हितचिन्तक पुरुषोंको मन्त्री बनाकर नियुक्त करना चाहिये। जो राजा ठीक-ठीक प्रकारसे न्याय करता है, उसे ही धर्मकी प्राप्ति होती है। राजाका न्यायनिष्ठ होना ही प्रधान धर्म है। इसके सिवा, उसे वेद-वेदाङ्गोंका ज्ञाता, तपोनिष्ठ, दानशील और यज्ञ-यागपरायण भी होना चाहिये। राजामें ये सब गुण निरन्तर स्थिरतासे रहने चाहिये।

यदि किसी दुर्बल राजाको कोई बलवान् शत्रु दबाने लगे तो इसीमें बुद्धिमानी है कि वह किलेके भीतर चला जाय और अपने मित्रोंके साथ मिलकर साम, भेद या युद्धके विषयमें सलाह करे। यदि युद्ध करनेका ही निश्चय हो तो पशुशालाओंको वनमेंसे उठाकर मार्गोंपर ले आवे और गावोंको उठाकर कसबोंमें मिला दे। धनी और सेनाके प्रधान-प्रधान अधिकारियोंको बार-बार धीरज देकर ऐसे स्थानोंपर पहुँचा दे जो बहुत गुप्त और दुर्गम हों तथा राज्यका सारा अन्न अपने काबूमें कर ले। नदीके पुलोंको तुड़वा दे, जिन किलोंमें शत्रुओंके छिपनेकी सम्भावना हो उन्हें सब ओरसे तुड़वा डाले, देवालयोंके वृक्षोंको छोड़कर और सब

छोटे-मोटे पेड़ोंको उखड़वा दे, जो वृक्ष बहुत फैल गये हों उनकी डालियाँ कटवा दे। नगरके चारों ओर परकोटा बनवावे, उसपर दुर्गरक्षकोंको नियुक्त करे तथा उसके चारों ओरकी खाईको जलसे भरवा दे और उसमें नाके और मगर-मच्छ भी छुड़वा दे। नगरमें हवा आनेके लिये और आपत्तिके समय भागनेके लिये परकोटेमें झरोखे छुड़वावे और दरवाजोंके समान उनकी चौकसीका भी पूरा-पूरा प्रबन्ध करावे। इन झरोखोंपर भारी-भारी युद्धयन्त्र और तोपें लगा दे और उनपर अपना अधिकार रखे। किलेके भीतर बहुत-सा ईंधन इकट्ठा कर ले तथा नये कुएँ खुदवावे और जो कूएँ पहलेसे बने हुए हों उनकी सफाई करा दे। जिन घरोंके ऊपर छप्पर हों उन्हें मिट्टीसे लिपवा दे और चैत्रमासमें आग न लग जाय इस आशङ्कासे खेतोंकी घास उखड़वा दे। दिनके समय अग्निहोत्रके सिवा और किसी कारणसे आग न जलाने दे तथा लुहारकी भट्ठी और सूतिकागृहमें भी बहुत सावधानीसे आग जलवावे। नगरकी रक्षाके लिये ढिंढोरा पिटवा दे कि जो पुरुष दिनमें आग जलावेगा उसे भारी दण्ड दिया जायगा। ऐसे समय भिखारियोंको, हिजड़ोंको, पागलोंको और नटोंको नगरसे बाहर निकलवा दे, राजमार्गोंको चौड़ा करा दे तथा यथोचित रीतिसे पौंसालों और बाजारोंकी व्यवस्था करावे। अन्नके भण्डार, शस्त्रागार, योद्धाओंकी वारकें, अश्वशालाएँ, गजशालाएँ, सेनाकी छावनियाँ, खाइयाँ और राजमहल, बगीचे ऐसी युक्तिसे तैयार करावे जिससे कोई दूसरा इन्हें देख न सके। ऐसी स्थितिमें राजाको घायलोंकी सेवाके लिये तैल, घृत, मधु और सब प्रकारकी ओषधियोंका भी संग्रह करना चाहिये। इसके सिवा अंगारे, कुश, मूँज, ढाक, बाण, लेखक, घास और विषमें बुझे हुए बाणोंका भी संग्रह करे तथा सब प्रकारके शस्त्र, शक्ति, ऋष्टि, प्रास और कवच, फल-मूल और चार प्रकारके वैद्य भी तैयार रखे। ऐसे अवसरपर राजाको जिन सेवक, मन्त्री, पुरवासी या सामन्तोंकी ओरसे संदेह हो, उन्हें अपने काबूमें कर ले। जब किसी कार्यमें सफलता मिले तो उसमें सहायता देनेवालोंका बहुत-से धन, यथोचित पुरस्कार और मीठे वचनोंसे सत्कार करे।

अपना शरीर, मन्त्री, कोष, सेना, मित्र, राष्ट्र और नगर—इन सातको 'राज्य' कहते हैं। राजाको प्रयत्नपूर्वक इनकी रक्षा करनी चाहिये। जो राजा छः गुण, तीन वर्ग और तीन परमवर्ग—इन्हें जानता है, वह इस पृथ्वीको भोग सकता है। इनमें जिन्हें छः गुण कहा जाता है वह सुनो—संधि करके शान्तिसे बैठ जाना, चढ़ाई करना, शत्रुसे युद्ध ठानना, आक्रमणके द्वारा शत्रुको डराकर बैठ जाना, शत्रुओंमें भेद डलवा देना तथा किले या किसी दूसरे राजाका आश्रय लेना। तीन वर्ग ये हैं—क्षय, स्थिति और वृद्धि; तथा अर्थ, धर्म और काम—ये तीन परमवर्ग हैं। इन सबका यथासमय सेवन करे। अङ्गिराके पुत्र देवर्षि बृहस्पतिजीका कथन है कि 'सब प्रकारके कर्तव्योंको पूरा करके पृथ्वीका अच्छी तरह पालन करने और प्रजाकी रक्षा करनेसे राजा परलोकमें सुख प्राप्त करता है। जिस राजाने अपनी प्रजाका अच्छी तरह पालन किया है, उसे तपस्या या यज्ञादि करनेकी क्या आवश्यकता है ? वह तो सभी धर्मोंको जाननेवाला है।'

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! दण्डनीति और राजा ये दोनों किस प्रकार उपयोगमें आनेपर सफलता प्राप्त कर सकते हैं—यह मुझे बताइये।

भीष्मजी बोले—राजन् ! दण्डनीतिके द्वारा राजा और प्रजाका जो महाभाग्य सिद्ध होता है, उसका मैं युक्ति-युक्त शब्दोंमें वर्णन करता हूँ, सो तुम सुनो। यदि राजा दण्डनीतिका ठीक-ठीक प्रयोग करता है तो यह चारों वर्णोंको उनके धर्ममें स्थित रखती है और उन्हें अधर्मकी ओर जानेसे रोकती है। इस प्रकार जब मर्यादाका नाश नहीं होता और सकुशल रहनेके कारण प्रजाको कोई खटका नहीं रहता तो तीनों वर्ण शास्त्रानुसार समतामें स्थित होनेके लिये प्रयत्न करते हैं और इसीमें मानवजातिका सुख निहित है। तुम्हें यह संदेह तो होना ही नहीं चाहिये कि राजाकी स्थिति समयके अधीन है या समय राजाके अधीन है; क्योंकि वास्तवमें समय ही राजाके अधीन है। जिस समय राजा दण्डनीतिका पूरा-पूरा प्रयोग करता है तब पृथ्वीपर पूर्णतया सत्ययुग वर्तता है। उस सत्ययुगमें धर्म-ही-धर्म रहता है, अधर्मका कहीं नामनिशान भी दिखायी नहीं देता तथा किसी भी वर्णकी अधर्ममें रुचि नहीं होती। उस समय प्रजाके योग-क्षेम स्वभावसे ही सिद्ध होते रहते हैं तथा सर्वत्र वैदिक गुणोंका विस्तार हो जाता है। सभी ऋतुएँ सुख और स्वास्थ्यकी वृद्धि करती हैं, लोगोंके मन प्रसन्न हो जाते हैं, मनुष्योंकी आयु अल्प नहीं होती, कोई स्त्री विधवा नहीं होती और न कोई कृपण ही दिखायी देता है। पृथ्वीमें बिना जोते-बोये ही अन्न होने लगता है, ओषधियाँ सुलभ हो जाती हैं तथा छाल, पत्र, फल और मूलोंमें रस आ जाता है। ये सब सत्ययुगके धर्म हैं।

इसके बाद जब राजा दण्डनीतिके चतुर्थ अंशको छोड़कर उसके तीन अंशोंको वर्तने लगता है तो त्रेतायुग आरम्भ हो जाता है। उस समय धर्मके तीन अंशोंके साथ अधर्मका भी एक अंश वर्तने लगता है और पृथ्वीसे जोतने-बोनेपर ही अन्न और ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं। फिर जब राजा नीतिका

आधा भाग त्यागकर केवल आधे भागका ही अनुसरण करता है तो द्वापरयुग आ जाता है। उस समय अधर्मके दो अंश धर्मके दो अंशोंका अनुवर्तन करने लगते हैं और पृथ्वीसे जोतने-बोनेपर ही आधा फल प्राप्त होता है। अन्तमें जब दण्डनीतिको एकदम छोड़कर राजा प्रजाको दुःख देने लगता है तो पृथ्वीपर कलियुग फैल जाता है। कलियुगमें अधर्मकी ही प्रधानता होती है, धर्म कहीं देखनेको भी नहीं मिलता। सभी वर्णोंका मन अपने धर्मसे च्युत हो जाता है। शूद्रलोग भिक्षा माँगकर और ब्राह्मण सेवा करके अपनी आजीविका चलाते हैं, योगक्षेमका नाश हो जाता है, वर्ण-संकरता फैल जाती है, वैदिक कर्म विधिवत् सम्पन्न न होनेके कारण गुणहीन हो जाते हैं, ऋतुएँ सुखकारी नहीं रहतीं, वे सब रोगका ही कारण हो जाती हैं, मनुष्योंके स्वर, वर्ण और मन मलिन हो जाते हैं, सर्वत्र तरह-तरहके रोग फैल जाते हैं, लोग असमयहीमें मरने लगते हैं, देशमें विधवाओंकी अधिकता हो जाती है, प्रजा क्रूर हो जाती है, वर्षा भी कहीं-कहीं ही होती है और खेती भी सर्वत्र नहीं पकती। इस प्रकार सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इनकी रचना करनेवाला राजा ही है।

यदि राजा सत्ययुगकी सृष्टि करता है तो उसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है; त्रेताकी रचना करनेपर उसे अक्षय स्वर्ग नहीं मिलता; द्वापरकी सृष्टि करता है तो अपने पुण्यके अनुसार केवल कुछ समयतक स्वर्गमें रहता है और यदि वह कलियुगको चलाता है तो उसे अत्यन्त पाप होता है। उसके कारण उसे बहुत समयतक नरक भोगना पड़ता है। तथा प्रजाके पापमें डूबकर अपयश और पापका भागी बनना पड़ता है। अतः क्षत्रियको दण्डनीतिका ज्ञान प्राप्त करके उसीके अनुसार आचरण करना चाहिये। यदि इसका ठीक-ठीक उपयोग किया जाय तो यह माता-पिताके समान लोककी व्यवस्था और पालन करती है। सब प्राणी दण्डनीतिके आधारपर ही टिके हुए हैं और दण्डनीतिसे युक्त होना ही राजाका परम धर्म है। इसलिये युधिष्ठिर ! तुम नीतिनिष्ठ होकर धर्मानुसार प्रजाका पालन करो। इससे तुम दुर्जय स्वर्गलोक प्राप्त कर सकोगे।



राजाको इहलोक और परलोकमें सुखकी प्राप्ति करानेवाले छत्तीस गुणोंका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! किस प्रकारका आचरण करनेसे राजा इस लोक और परलोकमें सुख देनेवाले पदार्थोंको सरलतासे प्राप्त कर सकता है ?

भीष्मजी बोले—राजन् ! ऐसे छत्तीस गुण हैं, यदि उनसे सम्पन्न होकर राजा आचरण करे तो उसमें यह बात आ सकती है। अब मैं क्रमशः उनका वर्णन करता हूँ—(१) धर्मका आचरण करे, किंतु कटुता न आने दे। (२) आस्तिक रहते हुए दूसरोंके साथ प्रेमका बर्ताव न छोड़े। (३) क्रूरताका आश्रय लिये बिना ही अर्थसंग्रह करे। (४) मर्यादाका अतिक्रमण न करते हुए ही विषयोंको भोगे। (५) दीनता न लाते हुए ही प्रिय भाषण करे। (६) शूरवीर बने, किंतु बढ़-बढ़कर बातें न बनावे। (७) दान दे, परंतु अपात्रको नहीं। (८) स्पष्ट व्यवहार करे, पर कठोरता न आने दे। (९) दुष्टोंके साथ मेल न करे। (१०) बन्धुओंसे कलह न ठाने। (११) जो राजभक्त न हो ऐसे दूतसे काम न ले। (१२) किसीको कष्ट पहुँचाये बिना ही अपना कार्य करे। (१३) दुष्टोंसे अपनी बात न कहे। (१४) अपने गुणोंका वर्णन न करे। (१५) साधुओंका धन न छीने। (१६) नीचोंका आश्रय न ले। (१७) अच्छी तरह जाँच किये बिना दण्ड न दे। (१८) गुप्त मन्त्रणाको प्रकट न करे। (१९) लोभियोंको धन न दे। (२०) जिन्होंने कभी अपकार किया हो उनमें विश्वास न करे। (२१) किसीसे ईर्ष्या न करे और स्त्रियोंकी रक्षा करे। (२२) शुद्ध रहे और किसीसे घृणा न करे। (२३) स्त्रियोंका बहुत अधिक सेवन न करे। (२४) स्वादिष्ट होनेपर भी जो अहितकर हो उसे न खाय। (२५) निरभिमान होकर माननीयोंका आदर करे। (२६) गुरुकी निष्कपटभावसे सेवा करे। (२७) दम्भहीन होकर देवपूजन करे। (२८) अनिन्दित उपायसे लक्ष्मी प्राप्त करनेकी इच्छा रखे। (२९) स्नेहपूर्वक बड़ोंकी सेवा करे। (३०) कार्यकुशल हो, किंतु अवसरका विचार रखे। (३१) केवल पिण्ड छुड़ानेके लिये किसीसे चिकनी-चुपड़ी बातें न करे। (३२) किसीपर कृपा करते समय आक्षेप न करे। (३३) बिना जाने किसीपर प्रहार न करे। (३४) शत्रुओंको मारकर शोक न करे। (३५) अकस्मात् क्रोध न करे। (३६) जिन्होंने अपना अपकार किया हो, उनके प्रति कोमलताका बर्ताव न करे। राजन् ! यदि अपना हित चाहते हो तो राज्यपर स्थित रहकर इसी प्रकार व्यवहार करो। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो बड़ी आपत्तिमें पड़

जाओगे। जो राजा इन सब गुणोंका अनुवर्तन करता है, वह इस लोकमें सुख पाता है और मरनेपर स्वर्गमें सम्मानित होता है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! पितामह भीष्मका यह उपदेश सुनकर पाण्डवश्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिरने उन्हें प्रणाम किया।



राजधर्मका वर्णन, राजाके लिये विद्वान् पुरोहितकी आवश्यकता तथा दोनोंमें मेल रहनेसे लाभ

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! किस तरह प्रजाका पालन करनेवाला राजा चिन्तासे बच सकता है और न्याय करनेमें भूल नहीं होने देता ?

भीष्मजीने कहा—राजन्! यदि विस्तारके साथ राजधर्मोंका वर्णन करूँ, तब तो कभी उनका अन्त ही न होगा; इसलिये संक्षेपसे ही कहूँगा। जब घरपर शास्त्रोंके ज्ञाता धर्मिष्ठ ब्राह्मण पधारें, उस समय उन्हें देखते ही खड़े होकर उनका स्वागत करो, बैठनेको आसन दो, उनकी विधिवत् पूजा करके चरणोंमें प्रणाम करो, इसके बाद पुरोहितकी सलाहसे और सब राजकीय कार्य किया करो। धार्मिक और माङ्गलिक कार्योंको पूर्ण करके ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराओ और अपने अभीष्टकी सिद्धि एवं विजयके लिये उनके मुखसे आशीर्वाद लो। राजाको चाहिये कि वह सरलस्वभाव होकर धैर्य तथा बुद्धिके बलसे सत्यका आश्रय ले और काम-क्रोधका परित्याग कर दे। जो राजा काम और क्रोधका आश्रय लेकर धन पैदा करना चाहता है, वह मूर्ख धर्मको तो छोड़ ही बैठता है, धन भी उसके हाथ नहीं लगता। लोभी और मूर्ख मनुष्योंको तुम अर्थ-संग्रहके काममें न लगाना। जो बुद्धिमान् और निर्लोभ हों, उन्हें ही सब काम सौंपना चाहिये। मूर्खको अधिकार दे देनेपर वह कार्य करना तो ठीक-ठीक जानता नहीं, इसलिये काम और क्रोधके वशीभूत होकर अनुचित उपायोंसे प्रजाको कष्ट पहुँचाता है। प्रजाके पैदा किये हुए अन्नका छठा भाग 'कर'के रूपमें लेकर, शास्त्रके अनुसार अपराधियोंको दण्ड देकर और अपने संरक्षणमें रहनेवाले व्यापारियोंसे टैक्स लेकर धनसंग्रह करना चाहिये। राजाको धर्मानुसार कर लेना चाहिये और शास्त्रोक्त रीतिसे काम लेकर सावधानीके साथ अपने राज्यमें प्रजाके योगक्षेमकी व्यवस्था करनी चाहिये। जो आलस्य छोड़कर, राग-द्वेषसे रहित हो सदा प्रजाकी रक्षा करता, दान देता और निरन्तर न्यायपरायण रहता है, उस राजाके प्रति प्रजाका विशेष प्रेम होता है। तुम लोभवश अधर्मसे धन पैदा करनेकी कभी इच्छा न करना; क्योंकि अनुचित रीतिसे लिया हुआ धन बुरे कामोंमें ही नष्ट होता है। जो धनका लोभी राजा मोहवश प्रजासे शास्त्रविरुद्ध अधिक कर लेकर उसे कष्ट पहुँचाता है, वह अपने ही हाथों अपना नाश करता है। जैसे दूधके लोभसे गायका थन काट लेनेवालेको दूध नहीं मिलता, उसी प्रकार अन्यायपूर्वक प्रजाको चूसनेसे राष्ट्रकी उन्नति नहीं होती। जो घरपर गौका पालन करता है, उसीको रोज दूध मिलता है; इसी तरह उचित उपायसे राष्ट्रकी रक्षा करनेवाला राजा ही उससे लाभ उठाता है। जैसे माता स्वयं तृप्त रहनेपर ही बालकको यथेष्ट दूध पिलाती है, उसी प्रकार राजासे सुरक्षित होनेपर ही यह पृथ्वी इच्छानुसार अन्न और सुवर्ण देती है। जैसे माली वृक्षोंको सींच-सींचकर बढ़ाता है, उसी प्रकार तुम्हें भी प्रजाको उन्नतिशील बनाना चाहिये। यदि ऐसा वर्ताव करोगे तो चिरकालतक राज्यकी रक्षा करते हुए तुम उससे सुख उठा सकोगे। भारत ! तुम अत्यन्त कंगाल क्यों न हो जाओ, फिर भी ब्राह्मणको धनवान् देख उससे धन लेनेकी इच्छा न करना। ब्राह्मणको यथाशक्ति धन और आश्वासन देने तथा उसकी रक्षा करनेसे ही तुम उत्तम लोक प्राप्त कर सकोगे।

इस प्रकार धर्मानुकूल बर्ताव करते हुए तुम प्रजाका पालन करो, इससे तुम्हें कभी पश्चात्ताप नहीं होगा। प्रजाकी रक्षा करना राजाका परम धर्म है। सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया और उनकी रक्षा करनेसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है। राजा रक्षाकार्यमें नियुक्त होकर सबपर दया करता है, इसीलिये धर्मज्ञ पुरुषोंकी दृष्टिमें वह सबसे बड़ा धर्मात्मा है। प्रजाकी भयसे रक्षा करनेमें यदि राजा एक दिन भी लापरवाही करता है, तो उस पापका फल उसे एक हजार वर्षोंतक भोगना पड़ता है और एक दिन भी धर्मके अनुसार प्रजाका पालन करके वह जिस पुण्यका संचय करता है, उसका फल दस हजार वर्षोंतक स्वर्गमें रहकर भोगता है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थी लोग अपने धर्मका पालन करके अन्तमें जिन लोकोंको प्राप्त करते हैं, उन्हें ही राजा एक क्षण भी धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करनेसे प्राप्त कर लेता है। अतः कुन्तीनन्दन !

तुम प्रयत्न करके मेरे कथनानुसार धर्मका पालन करो। इससे तुम्हें पुण्यका फल मिलेगा और तुम्हारे मनमें कभी कोई चिन्ता नहीं होगी।

युधिष्ठिर ! धर्म और अर्थको ठीक-ठीक समझना कठिन है, यह सोचकर राजाको चाहिये कि प्रत्येक कार्यमें सत्परामर्श देनेके लिये एक बहुज्ञ विद्वान्को पुरोहित बनाकर रखे। जहाँ राजा और पुरोहित दोनों ही धर्मात्मा तथा राजनीतिक गूढ़ विचारोंके जाननेवाले होते हैं, उस राज्यकी प्रजाका सब ओरसे भला होता है। यदि दोनों धर्मपर आस्था रखनेवाले और एक-दूसरेके विश्वासपात्र हों, अत्यन्त तपस्वी और परस्पर हितैषी हों, दोनोंके हृदय—दोनोंके विचार एक-से हों तो वे अपनी प्रजाको उन्नतिशील बनाते और देवताओं तथा पितरोंको भी तृप्त करते हैं। यदि ब्राह्मण (पुरोहित) और क्षत्रिय (राजा) दोनोंमें परस्पर सद्भाव हो तो प्रजाको सुख मिलता है और दोनोंमें वैमनस्य होनेपर प्रजाका सर्वनाश हो जाता है। इस विषयमें राजा पुरूरवा और महर्षि कश्यपका संवादरूप एक प्राचीन इतिहास है, उसे सुनो।

राजा पुरूरवाने पूछा—जब ब्राह्मण और क्षत्रिय



दोनों एक-दूसरेका परित्याग कर दें तो दूसरे वर्णके लोग किसको प्रधान समझें और प्रजा किसका पक्ष ले ?

कश्यपने कहा—राजन् ! जहाँ ब्राह्मण क्षत्रियसे विरोध करता है, वहाँ क्षत्रियका राज्य नष्ट हो जाता है। जब क्षत्रिय ब्राह्मणको त्याग देते हैं तो उनका वेदाध्ययन रुक जाता है, उनके पुत्रोंकी वृद्धि नहीं होती, उनके घरमें न दधिमन्थन होता है, न यज्ञ तथा उनके बालक वेदाध्ययन नहीं कर पाते। ब्राह्मणोंका परित्याग करनेवाले क्षत्रियोंके घर धनकी बढ़ती नहीं होती, उनकी संतान न पढ़ती है, न यज्ञ करती है। वे क्षत्रिय अपने पदसे भ्रष्ट होकर डाकुओंकी भाँति लूट-पाट करने लगते हैं। इसलिये दोनोंको मिलकर रहना चाहिये। मिले रहनेपर दोनों एक-दूसरेकी रक्षामें समर्थ होते हैं। ब्राह्मणकी उन्नतिका आधार क्षत्रिय होता है और क्षत्रियके अभ्युदयका आधार ब्राह्मण। दोनों जातियाँ जब एक-दूसरेके आश्रित रहती हैं तो इनका विशेष गौरव बढ़ता है और यदि इनकी प्राचीन कालसे चली आती हुई मैत्री टूट जाती है, तो सब कुछ नष्ट हो जाता है। चारों वर्णोंकी प्रजापर मोह छा जाता है, उसे अपना कर्तव्य नहीं सूझता। इससे वह नष्ट होने लगती है। ब्राह्मणरूपी वृक्ष यदि सुरक्षित रहे तो वह सुख और सुवर्णकी वर्षा करता है और यदि उसकी रक्षा नहीं की गयी तो उससे निरन्तर दुःख और पापकी वृद्धि होती है। जहाँ ब्रह्मचारी ब्राह्मण लुटेरोंके उपद्रवसे विवश हो वेदकी शाखाके स्वाध्यायसे वञ्चित होता और उसके लिये अपनी रक्षा चाहता है (फिर भी कोई रक्षक न होनेके कारण उसकी रक्षा असम्भव हो जाती है), उस देशमें पानी नहीं बरसता और महामारी तथा दुर्भिक्ष आदि दुःसह उपद्रव बढ़ जाते हैं।

जैसे सूखी लकड़ियोंके साथ मिली होनेसे गीली लकड़ी भी जल जाती है, उसी तरह पापियोंके सम्पर्कमें रहनेसे धर्मात्माओंको भी उनके समान दण्ड भोगना पड़ता है; इसलिये पापियोंका संग कभी नहीं करना चाहिये। पुण्यात्माओंको मिलनेवाले सभी लोक सुखकी खान और अमृतके केन्द्र होते हैं। वहाँ घीके चिराग जलते हैं। उनमें सुवर्णके समान प्रकाश फैला रहता है। वहाँ न मृत्युका प्रवेश है, न वृद्धावस्थाका। उनमें किसीको कोई दुःख भी नहीं होता। ब्रह्मचारी लोग मृत्युके पश्चात् उन्हीं लोकोंमें जाकर आनन्दका अनुभव करते हैं। पापियोंका लोक है नरक, जहाँ सदा अँधेरा छाया रहता है। वहाँ अधिक-से-अधिक शोक और दुःख प्राप्त होते हैं। पापात्मा पुरुष वहाँ बहुत वर्षोंतक कष्ट भोगते हुए दौड़ते फिरते हैं, उन्हें अपने लिये बहुत शोक होता है।

ब्राह्मण-क्षत्रियमें परस्पर वैमनस्य होनेपर प्रजाको दुःसह दुःख उठाना पड़ता है। इन सब बातोंको समझ-बूझकर राजाको एक बहुज्ञ पुरोहित बना ही लेना चाहिये। अपना

राज्याभिषेक होनेके पहले ही पुरोहितका वरण कर लेना उचित है; क्योंकि धर्मके अनुसार ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ है। वेदवेत्ता विद्वानोंका कहना है कि सबसे पहले ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं; इसलिये वे सब वर्णोंसे ज्येष्ठ, सम्माननीय तथा पूजनीय हैं। यही नहीं, वे प्रत्येक वस्तुको पहले भोगनेके अधिकारी हैं। अतः बलवान् होनेपर भी राजाका यह कर्तव्य है कि धर्मानुसार सभी उत्तम वस्तुएँ पहले ब्राह्मणको निवेदन करे। ब्राह्मण-जाति क्षत्रियको उन्नतिशील बनाती है और क्षत्रिय ब्राह्मणकी उन्नतिमें कारण होते हैं। इसलिये राजाको सदा ही ब्राह्मणका विशेष सम्मान करना चाहिये।



ब्राह्मण और क्षत्रियकी सम्मिलित शक्तिका प्रभाव तथा राजाके धर्मानुकूल व्यवहारोंका वर्णन

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! राज्यकी वृद्धि और रक्षा राजाके अधीन है और राजाका अभ्युदय तथा संरक्षण पुरोहितके। जहाँ ब्राह्मण अपने तेजसे प्रजाका अदृष्ट भय दूर करता है और राजा अपने बाहुबलसे उसके प्रत्यक्ष भयका निवारण करता है, उस राज्यमें सुख और शान्ति बढ़ती है। इस विषयमें लोग राजा मुचुकुन्द और कुबेरके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। एक बार महाराज मुचुकुन्दने सारी पृथ्वीपर विजय पाकर अपने बलकी परीक्षा करनेके लिये अलकापति कुबेरपर चढ़ाई कर दी। यह देखकर कुबेरने उनका सामना करनेके लिये राक्षसोंकी सेना भेजी। राक्षसोंने मुचुकुन्दकी सेनाका संहार आरम्भ किया। यह देख मुचुकुन्द अपने विद्वान् पुरोहित वसिष्ठजीको कोसने लगे। तब वसिष्ठजीने अपने उग्र तपके प्रभावसे उन राक्षसोंका नाश कर दिया।

तब कुबेरने राजा मुचुकुन्दके पास आकर कहा—'राजन् ! पहले भी तुम्हारे समान बलवान् राजा हो चुके हैं और उन्हें भी पुरोहितोंकी सहायता प्राप्त थी; परंतु मेरे साथ तुम जैसा बर्ताव कर रहे हो वैसा किसीने नहीं किया, किसीका मुझपर आक्रमण नहीं हुआ। महाराज ! यदि तुम्हारी भुजाओंमें कुछ बल हो तो उसे दिखाओ। ब्राह्मणके बलपर क्यों इतना इतरा रहे हो ?'

कुबेरकी बात्त सुनकर मुचुकुन्दने उत्तर दिया—'अलकापते ! ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनोंको ब्रह्माजीने ही उत्पन्न किया है। दोनोंका मूल एक है। ब्राह्मणोंमें तप और मन्त्रका बल होता है और क्षत्रियोंमें अस्त्र तथा भुजाओंका। उनका बल और प्रयत्न अलग-अलग हो जाय तो वे संसारकी रक्षा नहीं कर सकते। अतः दोनोंको एक साथ रहकर ही प्रजाका पालन करना चाहिये। मैं भी इस नीतिके अनुसार कार्य कर रहा हूँ, फिर आप क्यों मुझपर आक्षेप करते हैं ?'

तब कुबेरने मुचुकुन्दसे कहा—'राजन् ! मैं न तो किसीको राज्य देता हूँ और न दूसरेका राज्य छीनता ही हूँ, तो भी आज तुम्हें सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य दे रहा हूँ। तुम इसका उपभोग करो।' उनके ऐसा कहनेपर मुचुकुन्दने कहा—'महाराज ! मैं आपका दिया हुआ राज्य नहीं चाहता। मैं तो अपने बाहुबलसे जीते हुए राज्यका ही उपभोग करूँगा।'

भीष्मजी कहते हैं—मुचुकुन्दको इस प्रकार क्षत्रियधर्ममें अटल देख कुबेरको बड़ा विस्मय हुआ। इसके बाद राजा मुचुकुन्द अपनी राजधानीमें लौट आये और क्षात्रधर्मका पालन करते हुए अपनी भुजाओंके बलसे प्राप्त हुई पृथ्वीका राज्य करने लगे। जो धर्मज्ञ राजा इस प्रकार पहले ब्राह्मणका आश्रय लेकर उसकी सहायतासे राज्य-कार्यमें प्रवृत्त होता है, वह बिना जीती हुई पृथ्वीको भी जीतकर महान् यशका भागी होता है। ब्राह्मणको सदा संध्या-वन्दन, तर्पण आदि अपने कर्ममें संलग्न रहना चाहिये; इसी प्रकार क्षत्रियको भी सदा शस्त्र-विद्याका अभ्यास बढ़ाना चाहिये। संसारमें जो कुछ है, वह सब इन्हीं दोनोंके अधीन है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! राजाका व्यवहार कैसा होना चाहिये, जिससे वह प्रजाको उन्नतिशील बनावे और स्वयं भी पुण्यलोकोंपर अधिकार प्राप्त करे ?

भीष्मजीने कहा—कुन्तीनन्दन ! राजाको सदा ही दान, यज्ञ, उपवास और तपस्या आदि शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करते हुए धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते रहना चाहिये। यदि धार्मिक पुरुष घरपर आ जायँ तो खड़ा होकर उनका स्वागत और धन आदि देकर सत्कार करे; क्योंकि जब राजा धर्मका आदर करता है तो देशमें भी सर्वत्र उसका आदर होता है। राजा जैसा काम करता है, प्रजा भी वैसा ही करना पसंद करती है। राजाको चाहिये कि वह शत्रुओंको यमराजकी भाँति दण्ड देनेके लिये सदा तैयार रहे और डाकुओंको

सब ओरसे पकड़वाकर मार दे। स्नेह या स्वार्थवश किसी दुष्टके अपराधको क्षमा न करे। राजाके द्वारा भलीभाँति रक्षित होकर प्रजा जो कुछ धर्म, स्वाध्याय, दान, हवन और पूजन आदि कर्म करती है, उसका एक चौथाई फल राजाको मिलता है। यदि वह प्रजाकी रक्षा नहीं करता तो उस दशामें उसके राज्यके भीतर जो कुछ पाप होता है, उसका चौथाई फल भी उसे ही भोगना पड़ता है। कुछ लोगोंका मत है कि उस अवस्थामें राजाको प्रजाके पूरे पापका भागी होना पड़ता है और किन्हींके मतमें उसको आधा पाप लगता है। ऐसा राजा क्रूर और मिथ्यावादी समझा जाता है।

अब हम उस उपायका वर्णन करते हैं, जिससे राजाको ऐसे पापोंसे छुटकारा मिल सकता है। यदि चोरोंने किसीका धन चुरा लिया हो और राजा उसका पता लगाकर लौटा लानेमें असमर्थ हो तो अपने खजानेसे उतना धन प्रजाको दे दे। अगर यह भी न हो सके तो रियासतके प्रधान-प्रधान कर्मचारियोंसे चंदा लेकर दे। ब्राह्मणके समान ही उसके धनकी भी रक्षा करना सब वर्णोंका कर्तव्य है। जो ब्राह्मणोंको कष्ट पहुँचाता हो, उसे अपने राज्यमें नहीं रहने देना चाहिये। ब्राह्मणोंकी कृपा होनेसे राजा कृतार्थ हो जाता है। जैसे सब प्राणी मेघोंके और पक्षी वृक्षोंके सहारे जीवन-निर्वाह करते हैं, वैसे ही सब मनुष्य राजाके आश्रित हो जीवन धारण करते हैं। जो राजा कामी, क्रूर और लोभी होता है, वह प्रजाका पालन नहीं कर सकता।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! मैं अपने सुखके लिये एक क्षण भी राज्यकी इच्छा नहीं करता। मुझे तो धर्मके ही लिये राज्य भी पसंद था, मगर इसमें धर्म नहीं है। ऐसी दशामें राज्य लेकर क्या करना है ? अब तो मैं धर्म करनेकी इच्छासे वनमें ही जाऊँगा और वहाँकी पवित्र झाड़ियोंमें रहकर धर्मकी आराधना करूँगा। राजदण्डका सर्वथा त्याग कर दूँगा और जितेन्द्रिय हो मुनिकी भाँति फल-मूलका आहार करके जीवन बिताऊँगा।

भीष्मजीने कहा—मैं जानता हूँ तुम्हारी बुद्धिमें कोमलता अधिक है, मगर राजाके लिये यह गुण नहीं है। निरे कोमल स्वभावका मनुष्य राज्यका शासन नहीं कर सकता। तुम्हें अत्यन्त धार्मिक, कोमल और दयालु देखकर लोग कायर समझेंगे, तुम्हारे प्रति उनकी महत्त्वबुद्धि नहीं होगी। अपने बाप-दादोंके व्यवहारको अपनाओ। तुम जिस ढंगसे रहना चाहते हो, उस तरह राजा नहीं रहते। इस प्रकार विकलता और कोमलताका आश्रय लेकर तुम प्रजापालनसे होनेवाले धर्मके फलको नहीं पा सकते। तुम्हारे पिता पाण्डु तुम्हारे लिये शूरता, बल और सत्यकी ही याचना किया करते थे; कुन्ती भी यही प्रार्थना करती थी कि तुम्हारी महत्ता और उदारता बढ़े। दान, वेदाध्ययन, यज्ञ और प्रजापालन—इन्हीं कर्मोंको करनेके लिये तुम्हारा जन्म हुआ है। राजधर्मका ज्ञाता पुरुष राज्य पानेके अनन्तर किसीको दानसे, किसीको बलसे और किसीको मधुर वाणीसे अपने वशमें कर लेता है।

युधिष्ठिरने पूछा—तात ! स्वर्ग पानेका उत्तम साधन क्या है ?

भीष्मजीने कहा—भयसे डरा हुआ मनुष्य जिसके पास जाकर एक क्षण भी शान्ति पा सके, वही स्वर्गका सबसे बड़ा अधिकारी है। इसलिये तुम प्रसन्नतापूर्वक कुरुदेशके राजा बनो और सत्पुरुषोंकी रक्षा तथा दुष्टोंका संहार करके स्वर्गपर अधिकार प्राप्त करो। जैसे सब प्राणी मेघके और पक्षी वृक्षके सहारे जीवन-निर्वाह करते हैं, उसी प्रकार सुहृद् और सज्जन पुरुष तुम्हारे आश्रित होकर जीविका चलावें। जो राजा धृष्ट, शूर, प्रहार करनेवाला, दयालु, जितेन्द्रिय, प्रजापर स्नेह करनेवाला और दानी होता है, उसीका आश्रय लेकर मनुष्य जीवन-निर्वाह करते हैं।



उत्तम-अधम ब्राह्मणोंके साथ राजाका बर्ताव और केकयराजका उपाख्यान

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! कुछ ब्राह्मण अपने वर्णोचित कर्मोंमें लगे रहते हैं और कुछ अपने वर्णके विपरीत कर्म करते हैं, उनमें क्या अन्तर है; यह मुझे बताइये।

भीष्मजीने कहा—जो विद्वान् और उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न हैं, जिनकी सर्वत्र समान दृष्टि है, ऐसे ब्राह्मण ब्रह्माजीके समान माने गये हैं। जो ऋग्, यजु और सामवेदका अध्ययन करके अपने कर्मोंमें लगे रहते हैं, वे ब्राह्मणोंमें देवताके

समान समझे जाते हैं। जिन्होंने अपने जातीय कर्मोंको छोड़ दिया है तथा जो कुत्सित कर्मोंमें प्रवृत्त होकर ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट हो चुके हैं, वे ब्राह्मण शूद्रके तुल्य हैं। इसी तरह जिन्होंने वेद नहीं पढ़े, जो अग्निहोत्र नहीं करते, वे भी शूद्रके तुल्य हैं। इन सबसे धार्मिक राजाको कर और बेगार लेनेका अधिकार है। न्यायालयमें अभियुक्तोंको पुकारनेका काम करनेवाले, वेतन लेकर देव-मन्दिरमें पूजा करनेवाले, ज्योतिषी, गाँवके पुरोहित और रास्तेका टैक्स वसूल करनेवाले—ये पाँच प्रकारके ब्राह्मण चाण्डालके समान हैं। ऋत्विज, राजपुरोहित, मन्त्री, राजदूत और जासूसका काम सँभालनेवाले ब्राह्मण क्षत्रियके तुल्य माने गये हैं। घुड़सवार, हाथीसवार, रथी और पैदल सिपाहीका काम करनेवाले ब्राह्मणोंको वैश्यके समान समझा जाता है। यदि राजाके खजानेमें कमी हो तो उपर्युक्त ब्राह्मणोंसे वह कर ले सकता है। केवल उन ब्राह्मणोंसे जो ब्रह्मा और देवताओंके समान बताये गये हैं, कर नहीं लेना चाहिये। राजा ब्राह्मणके सिवा अन्य सभी वर्णोंके धनका स्वामी होता है तथा जो अपने वर्णधर्मके विपरीत कर्म करते हैं, उन ब्राह्मणोंके भी धनपर राजाका ही अधिकार है। राजा कर्मभ्रष्ट ब्राह्मणको किसी तरह क्षमा न करे, बल्कि धर्मपर अनुग्रह करनेके लिये उसे दण्ड देकर धर्मात्मा ब्राह्मणोंकी श्रेणीसे अलग कर दे। वेदवेत्ता स्नातक यदि जीविकाका कोई साधन न होनेके कारण चोरी करने लगे तो राजाका कर्तव्य है कि उसके भरण-पोषणका प्रबन्ध करे। जीविका मिल जानेपर भी यदि वह चोरी करना न छोड़े तो उसे कुटुम्बसहित राज्यसे बाहर निकाल देना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! किन-किन मनुष्योंके धनपर राजाका अधिकार होता है और राजाको कैसा बर्ताव करना चाहिये?

भीष्मजीने कहा—राजा ब्राह्मणके सिवा अन्य सभी वर्णोंके धनका स्वामी होता है तथा जो अपने कर्मसे भ्रष्ट हो चुके हैं, उन ब्राह्मणोंके भी धनपर राजाका ही अधिकार है। उसे कर्मभ्रष्ट ब्राह्मणोंकी ओरसे लापरवाही नहीं करनी चाहिये। उन्हें दण्ड देकर राहपर लाना राजाओंका धर्म है। यदि राज्यमें ब्राह्मण चोरी करे तो वह राजाका ही अपराध समझा जाता है, उसका पाप राजाको ही लगता है। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है, सुनो। प्राचीनकालकी बात है, केकयराज वनमें रहकर तप और स्वाध्याय किया करते थे। एक दिन उन्हें एक भयंकर राक्षसने पकड़ लिया। यह देख राजाने उस राक्षससे कहा—'मेरे राज्यमें एक भी चोर, दुराचारी और मदिरा पीनेवाला नहीं है। अग्निहोत्र और यज्ञ न करनेवाला भी कोई नहीं है। फिर मेरे शरीरके भीतर तुम्हारा प्रवेश कैसे हो गया? मेरे देशमें एक भी ब्राह्मण ऐसा नहीं है, जो विद्वान् और तपस्वी न हो। मेरे राज्यके लोग पर्याप्त दक्षिणा दिये बिना यज्ञ नहीं करते। व्रतधारण किये बिना कोई वेद नहीं पढ़ता। ब्राह्मणलोग अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन और दान तथा प्रतिग्रह— इन छः कर्मोंमें लगे रहकर ही जीविका चलाते हैं। सभी ब्राह्मण मृदुलस्वभाव, सत्यवादी, अपने धर्मका पालन करनेवाले तथा मेरे सम्मानपात्र हैं; सबको राज्यसे वृत्ति मिलती है। मेरे राज्यके क्षत्रिय किसीसे याचना नहीं करते, स्वयं दान देते हैं। वे सत्यवादी और धार्मिक हैं। वेद पढ़ते हैं, पढ़ाते नहीं; यज्ञ करते हैं, कराते नहीं। ब्राह्मणोंकी रक्षा करते हैं और संग्राममें कभी पीठ नहीं दिखाते। मेरे यहाँके वैश्य भी अपने कर्मोंमें ही लगे रहते हैं। वे छल-कपट छोड़कर खेती, गोरक्षा और व्यापारसे जीविका चलाते हैं। प्रमादमें वक्त नहीं बिताते, सदा काममें ही लगे रहते हैं। उत्तम व्रतोंका पालन और सत्यभाषण करते हैं। अभ्यागतोंको देकर खाते हैं तथा सबके हितका ध्यान रखते हैं। इन्द्रियसंयम और पवित्रता कभी नहीं छोड़ते। मेरे राज्यके शूद्र भी अपने कर्तव्यसे विमुख नहीं होते; वे ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंकी सेवासे जीविका चलाते हैं और किसीकी निन्दा नहीं करते।

'मैं भी दीन-दुःखी, अनाथ, वृद्ध, दुर्बल, आतुर तथा स्त्रियोंको अन्न-वस्त्र देता रहता हूँ। अपने कुलधर्म, देशधर्म तथा जातिधर्मकी परम्पराका कभी लोप नहीं होने देता। अपने राज्यके तपस्वियोंकी मैंने सदा ही पूजा और रक्षा की है, उन्हें सत्कारपूर्वक आवश्यक वस्तुएँ दान की हैं। मैं देवता, पितर तथा अतिथि आदिको उनका भाग अर्पण किये बिना कभी भोजन नहीं करता, परायी स्त्रीकी ओर कुदृष्टि नहीं डालता। विद्वानों, बूढ़ों और तपस्वियोंका तिरस्कार नहीं करता। जब सारा देश सोता है, उस समय भी मैं उसकी रक्षाके लिये जागता रहता हूँ। मेरे पुरोहित आत्मज्ञानी, तपस्वी और सब धर्मोंके ज्ञाता हैं; वे बड़े बुद्धिमान् तथा सारे राज्यके स्वामी हैं। मैं धन-दान देकर विद्या पानेकी इच्छा रखता हूँ, सत्यभाषण तथा ब्राह्मणोंकी

रक्षा करके पुण्यलोकोंपर अधिकार पाना चाहता हूँ और सेवाद्वारा गुरुजनोंको अनुकूल रखता हूँ। मेरे राज्यमें विधवा स्त्री नहीं है और अधम, धूर्त, चोर, अनधिकारियोंसे यज्ञ करानेवाले तथा पापपरायण ब्राह्मणका भी अभाव है; इसलिये मुझे राक्षसोंसे तनिक भी भय नहीं है।'

राक्षसने कहा—केकयराज ! आप सब अवस्थाओंमें धर्मपर ही दृष्टि रखते हैं; इसलिये आपका भला हो, अपने घर जाइये। मैं भी आपको छोड़कर लौट जाता हूँ। जो गौ, ब्राह्मण तथा प्रजाकी रक्षा करते हैं, उन राजाओंको राक्षसोंसे भय नहीं होता।

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! इसलिये ब्राह्मणोंकी सदा रक्षा करनी चाहिये। सुरक्षित रहनेपर वे भी राजाओंकी रक्षा करते हैं। ठीक-ठीक बर्ताव करनेवाले राजाओंको ब्राह्मणोंका आशीर्वाद प्राप्त होता है। अतः उन्हें कर्मभ्रष्ट ब्राह्मणोंपर नियन्त्रण रखना चाहिये, यही राजाका उनपर अनुग्रह है। जो राजा अपने नगर और राष्ट्रकी प्रजाके साथ इस प्रकार धर्मपूर्ण बर्ताव करता है, वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें स्वर्गलोकमें इन्द्रके समान सुख भोगता है।



—★—

आपत्कालमें ब्राह्मण आदि वर्णोंके कर्तव्य तथा ऋत्विजोंके लक्षण

युधिष्ठिरने पूछा—भारत ! ब्राह्मणका यदि अपने धंधेसे गुजर न हो सके तो वह आपत्तिकालमें वैश्यधर्मके अनुसार जीविका चला सकता है या नहीं ?

भीष्मजीने कहा—ब्राह्मण अपनी जीविका नष्ट होनेपर संकटके समय यदि क्षत्रियधर्मसे भी जीवन-निर्वाह करनेमें असमर्थ हो जाय तो वैश्यधर्मके अनुसार खेती करके और गौएँ पालकर गुजर कर सकता है।

युधिष्ठिरने पूछा—भरतकुलभूषण ! यह तो बताइये, ब्राह्मण यदि वैश्यधर्मसे जीविका चलाते समय व्यापार भी करे तो किन-किन वस्तुओंकी खरीद-बिक्री करनेसे वह स्वर्ग-लोककी प्राप्तिके अधिकारसे वञ्चित नहीं होगा ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! ब्राह्मणको मदिरा, मांस, शहद, नमक, तिल, पकाया हुआ अन्न, घोड़ा, बैल, गाय, बकरा, भेड़ और भैंस आदि पशु—इन वस्तुओंका तो हर हालतमें त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि इनको बेचनेसे उसे नरकमें जाना पड़ता है। बकरा अग्नि, भेड़ वरुण, घोड़ा सूर्य, पृथ्वी विराट् तथा गौ यज्ञ एवं सोमका स्वरूप है; इन्हें किसी तरह नहीं बेचना चाहिये। कच्चा अन्न देकर पकाया हुआ अन्न लेनेसे अधर्म नहीं होता। इस विषयमें सनातन कालसे चला आता हुआ धर्म बतला रहा हूँ, सुनो। 'मैं आपको अमुक वस्तु देता हूँ, इसके बदले आप मुझे अमुक वस्तु दीजिये' यह कहकर दोनोंकी रुचिसे किया हुआ बदला धर्म माना जाता है। जबरदस्ती बदला नहीं करना चाहिये। इस प्रकार ऋषियों तथा अन्य सत्पुरुषोंके व्यवहार प्राचीन कालसे चले आते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—महाराज ! यदि सारी प्रजा शस्त्र धारण कर ले और अपना धर्म छोड़ बैठे, उस समय क्षत्रियकी शक्ति तो क्षीण हो जायेगी; फिर वह राष्ट्रकी रक्षा कैसे कर सकता है ? किस तरह सबको शरण दे सकता है ?

भीष्मजीने कहा— ऐसे समयमें जिनमें वेद-शास्त्रोंका बल हो, वे ब्राह्मण सब ओरसे उठकर राजाकी ताकत बढ़ावें। जिसकी शक्ति क्षीण हो रही हो, उस राजाको ब्राह्मणके बलका आश्रय लेकर ही अपनी उन्नति करनी चाहिये। जब डाकू और लुटेरे प्रजामें वर्णसंकरता फैला रहे हों और उनके द्वारा धर्म-मर्यादाका उल्लङ्घन हो रहा हो, उस समय इस अत्याचारको रोकनेके लिये यदि सब जातिके लोग भी

हथियार उठावें तो कोई दोष नहीं होता।

युधिष्ठिरने पूछा—यदि क्षत्रिय-जाति ही सब ओरसे ब्राह्मणोंके साथ दुर्व्यवहार करने लगे, उस समय ब्राह्मण अथवा वेदकी रक्षा कौन करे ? ऐसे अवसरपर विप्रका क्या कर्तव्य है ? वह किसकी शरणमें जाय ?

भीष्मजीने कहा—उस समय ब्राह्मण अपने तपसे; ब्रह्मचर्यसे, हथियारसे, बलसे, सद्व्यवहारसे अथवा कपटसे— जैसे भी हो, उसी तरह क्षत्रिय-जातिको दबानेका प्रयत्न करे; क्योंकि जब क्षत्रिय ही प्रजाके ऊपर, उसमें भी विशेषतः ब्राह्मणोंके साथ अत्याचार करने लगे तो उसे ब्राह्मण ही दबा सकता है; कारण यह कि क्षत्रिय ब्राह्मणसे ही उत्पन्न हुए हैं। जलसे अग्निकी, ब्राह्मणसे क्षत्रियकी और पत्थरसे लोहेकी उत्पत्ति हुई है; इनका प्रभाव सब जगह तो काम करता है, मगर अपनेको उत्पन्न करनेवाले मूल कारणसे मुकाबला पड़नेपर शान्त हो जाता है। जब लोहा पत्थर काटता है, अग्नि जलके पास जाती है और क्षत्रिय ब्राह्मणसे द्वेष करने लगता है तो ये तीनों नष्ट हो जाते हैं। यद्यपि क्षत्रियका तेज और बल प्रचण्ड तथा अजेय होते हैं, तो भी ब्राह्मणसे मुकाबला होनेपर मंद पड़ जाते हैं। यदि कदाचित् ब्राह्मणकी शक्ति कम हो गयी हो और क्षत्रियजाति भी दुर्बल पड़ गयी हो, उस समय जब सब वर्णोंके लोग ब्राह्मणोंके साथ अत्याचार करते हों तो जो लोग ब्राह्मणोंकी, धर्मकी तथा अपनी रक्षाके लिये प्राणोंकी परवा न करके दुष्टोंके साथ क्रोधपूर्वक लड़ते हैं, उन मनस्वी पुरुषोंको पुण्यलोकोंकी प्राप्ति होती है। ब्राह्मणकी रक्षाके लिये सबको शस्त्र ग्रहण करनेका अधिकार है। यज्ञ, वेदाध्ययन, तपस्या और निराहार व्रत करनेवाले लोगोंको जिन उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है, उनसे भी उत्तम लोक ब्राह्मणके लिये प्राण देनेवाले शूरवीरोंको प्राप्त होते हैं। ब्राह्मण भी यदि तीनों वर्णोंकी रक्षाके लिये शस्त्र ग्रहण करे तो उसे दोष नहीं लगता। जो लोग ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाले दुराचारियोंको दबानेके लिये युद्धकी ज्वालामें अपने शरीरकी आहुति दे डालते हैं, उन वीरोंको नमस्कार है। मनुजीने कहा है कि ऐसे लोगोंको ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। जैसे अश्वमेधयज्ञके अन्तमें अवभृथ-स्नान करनेवाले मनुष्य पापरहित होकर पवित्र हो जाते हैं, उसी प्रकार युद्धमें शस्त्रोंद्वारा मारे गये वीर भी पवित्र हो जाते हैं। सबके साथ मैत्रीका व्यवहार करनेवाले धर्मात्मा मनुष्य भी देश-कालकी परिस्थितिके अनुसार दूसरोंकी रक्षाके लिये कठोरतापूर्ण बर्ताव—हिंसारूप पाप करते हैं, तो भी उन्हें उत्तम गति ही प्राप्त होती है। अपनी रक्षाके लिये, अन्य वर्णोंमें यदि कोई बुराई आ रही हो तो उसको रोकनेके लिये तथा दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये—इन तीन अवसरोंपर ब्राह्मण भी शस्त्र ग्रहण करे तो उसे दोष नहीं लगता।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! जब लुटेरे अपना सिर उठावें, क्षत्रिय निर्बल हों, सब वर्णके लोग एक-दूसरेकी स्त्रियोंके साथ बलात्कार करने लगें और प्रजाकी रक्षाका कोई उपाय न सूझे, उस अवस्थामें यदि कोई बलवान् ब्राह्मण, वैश्य अथवा शूद्र धर्मकी रक्षाके लिये दण्ड धारण करके प्रजाको लुटेरोंके हाथसे बचावे तो वह राजा हो सकता है या नहीं, राजकार्य कर सकता है या नहीं ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! जो अपार संकटसे पार लगा दे, बिना नावके डूबते हुएको नाव बनकर सहारा दे, वह शूद्र हो या कोई और, सर्वथा सम्मानके योग्य है। डाकुओंके आक्रमणका शिकार होकर कष्ट पाती हुई अनाथ प्रजाको जिसकी शरणमें जानेसे सुख मिले, उसीको अपना बन्धु समझकर प्रेमसे सत्कार करना चाहिये। दूसरोंका भय दूर करनेवाला मनुष्य कोई भी क्यों न हो, आदरका पात्र है। काठका हाथी, चमड़ेका हिरन, हिजड़ा मनुष्य, ऊसर खेत, नहीं बरसनेवाला बादल, अपढ़ ब्राह्मण और रक्षा न करनेवाला राजा—ये सब-के-सब निरर्थक हैं। जो सदा सत्पुरुषोंकी रक्षा करे और दुष्टोंको दण्ड दे वही राजा बनाने योग्य है, वही समूचे राष्ट्रका भार सँभाल सकता है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! यज्ञके ऋत्विज् कैसे होने चाहिये ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! जो ऋक्, साम और यजुर्वेदके ज्ञाता, मीमांसाके विद्वान् और राजाके लिये शान्ति-पुष्टि आदि कर्म करनेवाले हों, वे ही ऋत्विज् होने योग्य हैं। वे सब एक तरहके विचारवाले, एक-दूसरेके हितैषी, सर्वत्र समान दृष्टि रखनेवाले दयालु, सत्यवादी, ब्याज न लेनेवाले तथा सरल स्वभावके होने चाहिये। इसी तरह जो विद्वान् द्रोह और अभिमानसे रहित, लज्जा-क्षमा-शम-दम आदि गुणोंसे युक्त, बुद्धिमान्, सत्यवादी, धीर, अहिंसक, राग-द्वेषसे शून्य, कुलीन, शास्त्रज्ञ, सदाचारी और ज्ञानसे संतुष्ट हो, वही 'ब्रह्मा'के आसनपर बैठनेका अधिकारी है। तात ! ये सभी ऋत्विज् महान् एवं सम्मानके योग्य हैं।



मित्र और अमित्रोंकी पहचान

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! छोटे-से-छोटा काम भी अकेले किसीकी सहायताके बिना करना कठिन हो जाता है। फिर राजाका कार्य तो दूसरेकी सहायता लिये बिना हो ही कैसे सकता है ? इसलिये मन्त्रीका होना आवश्यक है। अब आप बताइये, राजाका मन्त्री कैसा होना चाहिये ? उसका स्वभाव और आचरण किस तरहका हो, कैसे व्यक्तिपर विश्वास किया जाय और कैसेपर नहीं ?

भीष्मजीने कहा—राजाके चार प्रकारके मित्र होते हैं—सहार्थ, भजमान, सहज और कृत्रिम*। पाँचवाँ मित्र धर्मात्मा होता है, वह किसी एकका पक्षपाती नहीं होता और न दोनों पक्षोंसे वेतन लेकर कपटपूर्वक दोनोंका ही मित्र बना रहता है। जिधर धर्मका पल्ला मजबूत रहता है, उसी पक्षका वह आश्रय ग्रहण करता है अथवा जो राजा धर्ममें स्थित होता है, वही उसे अपनी ओर खींच लेता है। उपर्युक्त मित्रोंमेंसे भजमान और सहज श्रेष्ठ समझे जाते हैं, शेष दोकी ओरसे तो सदा सशङ्क रहना चाहिये। वास्तवमें तो अपने कार्यको दृष्टिमें रख सब प्रकारके मित्रोंसे ही सावधान रहना चाहिये। राजाको मित्रोंकी रक्षा करनेमें कभी असावधानी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि असावधान राजाका सब लोग तिरस्कार करते हैं। मनुष्यका चित्त चञ्चल होता है, भला मनुष्य बुरा और बुरा भला हो जाया करता है, शत्रु मित्र और मित्र शत्रु बन जाता है; अतः किसपर कौन विश्वास करे ? इसलिये मुख्य-मुख्य कार्योंको दूसरोंपर न छोड़कर अपने सामने ही कराना चाहिये। किसीपर भी पूरा-पूरा विश्वास कर लेनेसे धर्म और अर्थ दोनोंका नाश होता है। दूसरोंपर पूरी तरह विश्वास करना अकाल मृत्युको मोल लेना है; अन्धविश्वासीको विपत्तिमें पड़ना पड़ता है। वह जिसपर विश्वास करता है, उसीकी इच्छापर उसका जीना निर्भर रहता है। इसलिये राजाको कुछ लोगोंपर विश्वास भी करना चाहिये और उनकी ओरसे सर्तक भी रहना चाहिये। यही सनातन राजनीति है।

अपने अभावमें जिस मनुष्यका राज्यपर कब्जा हो सकता हो उससे सदा चौकन्ना रहना चाहिये; क्योंकि विज्ञ पुरुषोंने उसकी शत्रुओंमें गणना की है। जो मनुष्य राजाका अभ्युदय देख उसकी और भी अधिक उन्नति चाहे और अवनति होनेपर बहुत दुःखी हो जाय, वही उत्तम मित्र है। अपने न रहनेपर जिस व्यक्तिको विशेष हानि पहुँचनेकी सम्भावना हो, उसपर पिताके समान विश्वास करना चाहिये और जब अपने धनकी वृद्धि होती हो तो यथाशक्ति उसको भी समृद्धिशाली बनाना चाहिये। जो धर्मके कामोंमें भी राजाको नुकसानसे बचानेका ध्यान रखता है, उसकी हानि देखकर जिसको भय होता है, उसे ही उत्तम मित्र समझो। नुकसान चाहनेवाले तो शत्रु ही बताये गये हैं। जो मित्रकी उन्नति देखकर जलता नहीं और विपत्ति देखकर घबरा उठता है, वह मित्र अपने आत्माके समान है। जिसका रूप-रंग सुन्दर और स्वर मीठा हो, जो क्षमाशील, ईर्ष्यारहित, प्रतिष्ठित और कुलीन हो, उसकी श्रेणी पूर्वोक्त मित्रसे भी बढ़कर है। जिसकी बुद्धि अच्छी और स्मरणशक्ति तीव्र हो, जो कार्य साधनेमें कुशल और स्वभावतः दयालु हो, कभी मान या अपमान हो जानेपर जिसके हृदयमें दुर्भाव नहीं आता ऐसा मनुष्य यदि ऋत्विज्, आचार्य अथवा अत्यन्त सम्मानित मित्र हो तो उसे तुम अपने घरमें मन्त्री बनाकर रख सकते हो; वह तुम्हारे विशेष आदरका पात्र है। उसको राजकीय गुप्त विचारों तथा धर्म और अर्थकी प्रकृतिसे परिचित रखना। उसके ऊपर तुम्हारा पिताके समान विश्वास होना चाहिये। एक कामपर एक ही व्यक्तिको नियुक्त करना, दो या तीनको नहीं; क्योंकि उनमें परस्पर अमर्ष हो जानेकी सम्भावना रहती है। कारण कि एक कार्यपर नियुक्त हुए अनेक व्यक्तियोंमें प्रायः मतभेद होता ही है।

जो कीर्तिको प्रधानता देता और मर्यादाके भीतर कायम रहता है, शक्तिशाली पुरुषोंसे द्वेष और अनर्थ नहीं करता, कामना, भय, लोभ अथवा क्रोधसे भी जो धर्मका त्याग नहीं करता, जिसमें कार्यकुशलता तथा आवश्यकताके अनुरूप बातचीत करनेकी पूरी योग्यता हो, उसे तुम अपना प्रधान मन्त्री बनाना। जो कुलीन, शीलवान्, सहनशील, डींग न मारनेवाले, शूरवीर, आर्य, विद्वान् तथा कर्तव्य-अकर्तव्यको समझनेमें कुशल हों, उन्हें अमात्यके पदपर बिठाना एवं

* सहार्थ मित्र उनको कहते हैं, जो किसी शर्तपर एक-दूसरेकी सहायताके लिये मित्रता करते हैं। 'अमुक शत्रुपर हम दोनों मिलकर चढ़ाई करें, विजय होनेपर दोनों उसके राज्यको आधा-आधा बाँट लेंगे'—इत्यादि शर्तें 'सहार्थ' मित्रोंमें होती हैं। जिनके साथ पुश्तैनी मित्रता हो, वे 'भजमान' कहलाते हैं। जिनसे नजदीकी रिश्तेदारी हो, उन्हें 'सहज' मित्र कहते हैं और धन आदि देकर अपनाये हुए लोग 'कृत्रिम' मित्र कहलाते हैं।

सत्कारपूर्वक सुख और सुविधा देना। ये तुम्हारे अच्छे सहायक सिद्ध होंगे और सब तरहके कामोंकी देख-भाल करेंगे।

युधिष्ठिर ! तुम अपने कुटुम्बियोंको मृत्युके समान समझकर उनसे सदा डरते रहना। जैसे पड़ोसी राजा अपने पासके राजाकी उन्नति नहीं सह सकता, उसी प्रकार एक कुटुम्बी दूसरे कुटुम्बीका अभ्युदय नहीं देख सकता। जिसके कुटुम्बी या सगे-सम्बन्धी नहीं हैं, उसको भी सुख नहीं मिलता; इसलिये कुटुम्बीजनोंकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। बन्धु-बान्धवसे हीन मनुष्यको दूसरे लोग दबाते रहते हैं। दूसरोंके दबानेपर अपने भाई-बन्धु ही सहारा देते हैं। यदि गैर आदमी अपने जातिवालेका अपमान कर रहा हो, तो सजातीय बन्धु उसे कभी बरदाश्त नहीं कर सकता। अपने जातिवालेके अपमानको वह अपना ही अपमान समझेगा। इस प्रकार कुटुम्बीजनोंके रहनेमें गुण भी है और अवगुण भी। कुटुम्बका व्यक्ति न अनुग्रह मानता है, न नमस्कार करता है। उनमें भलाई-बुराई दोनों देखनेमें आती हैं। राजाका कर्तव्य है कि वह अपने जातीय बन्धुओंका वाणी और क्रियासे सत्कार करे। सदा ही उनकी भलाई करता रहे, कभी कोई बुराई न होने दे। उनपर विश्वास तो न करे किन्तु विश्वास करनेवालेकी भाँति ही उनके साथ वर्ताव करे। उनमें दोष है या गुण—इसकी चर्चा न करे। जो पुरुष सदा सावधान रहकर ऐसा बर्ताव करता है, उसके शत्रु भी प्रसन्न होकर उसके साथ मित्रताका बर्ताव करने लगते हैं। जो कुटुम्बी, सगे-सम्बन्धी, मित्र, शत्रु तथा उदासीन व्यक्तियोंके साथ इस नीतिके अनुसार व्यवहार करता है, उसका सुयश चिरकालतक बना रहता है।



मन्त्रीकी जाँच—कालकवृक्षीय मुनिका उपाख्यान

भीष्मजी कहते हैं—ऊपर जो बतायी गयी है, वह राजनीतिकी पहली वृत्ति है; अब दूसरी सुनो। जो भी मनुष्य राजाकी आर्थिक उन्नति करे, उसकी राजाको सदा रक्षा करनी चाहिये। यदि मन्त्री खजानेसे धनकी चोरी करता हो और कोई सेवक या तटस्थ मनुष्य इस बातकी सूचना देने आवे तो उसकी बात एकान्तमें सुननी चाहिये और मन्त्रीसे उसकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि धन हड़पनेवाले मन्त्री अक्सर ऐसे लोगोंको मार डालते हैं। खजाना लूटनेवाले लोग एकमत होकर उसके रक्षकको कष्ट देते हैं; यदि राजाकी ओरसे उसकी रक्षाका प्रबन्ध नहीं हुआ तो वह बेचारा बेमौत मारा जाता है। इस विषयमें कालकवृक्षीय मुनि और कौसल्यराजके संवादरूप प्राचीन इतिहासका लोग उदाहरण दिया करते हैं। सुना है कि एक बार कोसल देशके राजा क्षेमदर्शीके यहाँ एक कालकवृक्षीय नामके मुनि पधारे। वे बंद पिंजड़ेमें एक कौआ लिये राज्यका समाचार जाननेके लिये उस राजाके राज्यमें कई बार चक्कर लगा चुके थे। घूमते समय वे लोगोंसे कहते थे—'सज्जनो ! तुमलोग भी कौएकी विद्या सीखो; मैंने सीखी है, इसलिये कौए मुझे भूत और भविष्यकी बातें बता दिया करते हैं।' इस प्रकार घोषणा करते हुए वे बहुत लोगोंके साथ राज्यमें घूमते फिरे। उस समय उन्होंने राजकार्यमें नियत किये हुए कर्मचारियोंकी बहुत-सी अनुचित कार्रवाइयाँ देखीं। राष्ट्रके सभी व्यवसायोंपर उन्होंने दृष्टि डाली और उसकी असलियतका पता लगाया। जो राजाके धनका अपहरण करते थे, उनको भी जान लिया। इसके बाद वे कौएको साथ लेकर राजासे



मिलने आये और बोले 'मैं इस राज्यकी सारी बातें जानता हूँ।' सबसे पहले वे राजमन्त्रीसे जाकर बोले—'मेरा कौआ कहता है तुमने अमुक स्थानपर अमुक काम किया है, राजाके खजानेसे चोरी भी की है, इस बातको अमुक-अमुक व्यक्ति जानते हैं। इसलिये शीघ्र ही राजाके पास चलकर अपराध स्वीकार करो।' इसी तरह उन्होंने और कई आदमियोंसे

कहा, उन लोगोंने भी खजानेसे चोरी की थी। वे सबसे कहते थे, 'मेरे कौएकी कोई भी बात आजतक झूठी नहीं सुनी गयी। तुमलोग अवश्य अपराधी हो।'

इस प्रकार जब मुनिने राजकर्मचारियोंका तिरस्कार किया तो सबने मिलकर मुनिके सो जानेपर रातमें उनके कौएको मरवा डाला। सवेरे उठनेपर जब उन्होंने देखा कि मेरा कौआ पिंजड़ेमें बाणसे बिंधकर मरा पड़ा है, तो राजा क्षेमदर्शीके पास जाकर कहा—'राजन्! आप प्रजाके प्राण और धनके स्वामी हैं, मैं आपसे अभयकी याचना करता हूँ; यदि आज्ञा हो तो मैं आपके हितकी बात बताऊँ।' राजाने कहा—'विप्रवर! मैं अपना हित चाहता हूँ और आप मेरे हितकी ही बात कहनेवाले हैं, ऐसी दशामें क्षमा क्यों नहीं करूँगा? मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपके कहे अनुसार कार्य करूँगा; आप जो कुछ कहना चाहते हों, बेखटके कहें।'

मुनिने कहा—महाराज! आपके कर्मचारियोंमेंसे कौन अपराधी है और कौन निरपराध—इस बातका पता लगाकर तथा आपपर सेवकोंकी ओरसे भय आनेवाला है—यह जानकर प्रेमपूर्वक राज्यका सारा समाचार बतानेके लिये आपके पास आया हूँ। नीतिज्ञ पुरुषोंका कहना है कि जिसका राजाके साथ उठना-बैठना होता है, उसका विषैले साँपोंके साथ सहवास समझना चाहिये; क्योंकि राजाके जहाँ बहुतेरे मित्र हैं, वहाँ बहुत-से दुश्मन भी होते हैं। राजाके पार्श्ववर्तियोंको उन सबसे भय होता है। स्वयं राजासे भी उन्हें क्षण-क्षणमें खतरा रहता है। जो अपना भला चाहता हो, उसे राजाके पास कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये। जैसे जलती हुई आगके पास मनुष्य सचेत होकर जाता है, उसी तरह शिक्षित पुरुषको राजाके पास सावधानीके साथ रहना चाहिये। राजा प्राण और धन—दोनोंका स्वामी है; वह जब क्रोध करता है तो विषधर साँपके समान भयंकर हो जाता है। अतः सेवकोंको अपनी जान हथेलीपर लेकर बड़े यत्नसे राजाकी सेवा करनी चाहिये। मुँहसे कोई बुरी बात न निकल जाय, खड़ा रहते, उठते, बैठते, चलते और इशारा करते समय कोई बेअदबी न हो जाय तथा शरीरसे कोई कुचेष्टा न प्रकट हो जाय—इन सब बातोंके लिये सदा सतर्क रहना चाहिये। राजाको यदि प्रसन्न कर लिया जाय तो वह देवताकी भाँति सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध कर देता है और यदि कुपित हो गया तो आगकी भाँति जड़-मूलसहित भस्म कर डालता है।

मेरे-जैसा मन्त्री आपत्तिकालमें बुद्धिद्वारा सहायता देता है। राजन्! आपको पता नहीं, मेरा यह कौआ आपके ही कार्यमें मारा गया है। किंतु इसके लिये मैं आपको और आपके प्रेमियोंको दोष नहीं दे सकता; आप खुद अपने हित और अहितको पहचानिये, स्वयं राजकीय कार्योंको देखिये, दूसरोंकी देख-भालपर विश्वास न कीजिये। जो लोग आपके ही घरमें रहकर आपका खजाना लूटते हैं, वे प्रजाकी भलाई चाहनेवाले नहीं हैं; उन्हीं लोगोंने मेरे साथ वैर बाँध लिया है। जो आपका विनाश करके इस राज्यको हड़प लेना चाहता है, वह इसके लिये अन्तःपुरमें आने-जानेवाले नौकरोंसे मिलकर कोई षड्यन्त्र करनेकी फिक्रमें है। ऐसा ही करनेसे उसका काम बनेगा, अन्यथा नहीं। अतः आपको सावधान हो जाना चाहिये। मैं कोई कामना लेकर यहाँ नहीं आया था, तो भी षड्यन्त्रकारियोंने कपट करनेकी इच्छासे मेरे कौएको मारकर यमलोक पहुँचा दिया। यह बात मुझे अपने तपोबलसे मालूम हुई है। जैसे हिमालयकी कन्दरामें ठूँठ, पत्थर और काँटे होते हैं, उसके भीतर सिंह और व्याघ्रोंका निवास होता है और इन्हीं सब कारणोंसे उसमें प्रवेश करना तथा रहना कठिन हो जाता है, उसी प्रकार दुष्ट अधिकारियोंके कारण इस राज्यमें भी किसीका रहना मुश्किल है। इस स्थानपर रहनेमें भलाई नहीं है, यहाँ अच्छे और बुरेकी एक-सी गति है। पापी और पुण्यात्मा (अपराधी और निरपराध) दोनोंके ही मारे जानेका अंदेशा है। न्यायतः तो पापीको दण्ड मिलना चाहिये और पुण्यात्माका कुछ भी नहीं बिगड़ना चाहिये। मगर इस राज्यमें ऐसा नहीं होता, अतः यहाँ रहना ठीक नहीं है। समझदार मनुष्यको तो जल्दी ही यहाँसे खिसक जाना चाहिये। सीता नामकी एक नदी है, जिसमें नाव ही डूब जाती है; ऐसी ही आपके यहाँकी राजनीति भी है। इसमें मेरे-जैसे सहायकोंके भी डूबनेकी आशङ्का है। मैं तो इसे सबको नष्ट करनेवाली एक प्रकारकी फाँसी ही समझता हूँ।

राजन्! आपने ही जिन्हें मन्त्री बनाया, आपने ही जिनका पालन किया, वे आपसे ही मिलकर आपके हितका नाश करना चाहते हैं। मैं राजाके साथ रहनेवाले अधिकारियोंका शील-स्वभाव जानना चाहता था, इसलिये बहुत डरता हुआ सावधानीके साथ रहा हूँ—ठीक उसी तरह जैसे कोई साँपवाले मकानमें रहता है। इस देशके राजा जितेन्द्रिय हैं या नहीं? इनके अंदर रहनेवाले सेवक इनके वशमें तो हैं? इनका राजापर प्रेम तो है? अथवा राजा अपनी प्रजासे प्रेम करते हैं न? ये ही सब बातें जाननेकी इच्छासे मैं यहाँ आया था। जैसे भूखेको भोजन अच्छा लगता है, उसी प्रकार आपको देखकर तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई;

किंतु आपके मन्त्री अच्छे नहीं जान पड़ते। मैं आपकी भलाई करनेवाला हूँ—यही इन लोगोंने मुझमें सबसे बड़ा दोष पाया है। यद्यपि मैं इन लोगोंसे द्रोह नहीं करता, तो भी मुझे द्रोही समझकर ये मुझपर दोषदृष्टि रखने लगे हैं। जिसकी पीठ तोड़ दी गयी हो, उस साँपके समान दुष्ट हृदयवाले शत्रुसे सदा डरते रहना चाहिये। इसीलिये अब मैं यहाँ रहना नहीं चाहता।

राजाने कहा—ब्राह्मणश्रेष्ठ! आप मेरे महलमें रहिये, मैं आपको बड़ी हिफाजत और सत्कारसे रखूँगा। जो आपको नहीं रहने देना चाहेंगे, वे खुद ही नहीं रहने पायेंगे। इसके बाद उन लोगोंके साथ कैसा व्यवहार किया जाय, इसको आप ही सोचिये। भगवन्! जिस तरह राजदण्डको मैं अच्छी तरह धारण कर सकूँ और मेरेद्वारा अच्छे ही कार्य होते रहें, वह सब सोचकर आप मुझे कल्याणके मार्गपर लगाइये।

मुनिने कहा—राजन्! पहले तो कौएको मारनेका जो अपराध है, इसको प्रकट किये बिना ही एक-एक मन्त्रीको उसका अधिकार छीनकर दुर्बल कर डालिये। इसके बाद अपराधके कारणका पूरा-पूरा पता लगाकर क्रमशः एक-एक व्यक्तिको मौतके घाट उतार दीजिये। एक-एक करके मारनेको इसलिये कहता हूँ कि बहुत-से लोगोंपर जब एक ही तरहका दोष लगाया जाता है, तो वे सब मिलकर एक हो जाते हैं; उस दशामें वे बड़े-बड़े कंटकोंको भी मसल डालते हैं। अतः यह गुप्त विचार कहीं दूसरोंपर प्रकट न हो जाय, इसी भयसे ये बातें बता रहा हूँ।

राजन्! अब मैं आपको अपना परिचय देता हूँ—मेरा आपके साथ पुराना सम्बन्ध है, मैं आपके पिताका आदरणीय मित्र हूँ, मेरा नाम है कालकवृक्षीय मुनि। जब आपके राज्यपर संकट आया और आपके पिताका स्वर्गवास हो गया, उस समय सब कामनाओंका त्याग करके मैं तपस्या करने चला गया। आपके ऊपर विशेष स्नेह होनेके कारण ही मैं पुनः यहाँ आया हूँ और आपको ये बातें बता रहा हूँ; इसका उद्देश्य यही है कि आप फिर किसीके चक्करमें न पड़ें। आपने सुख और दुःख दोनों ही देखे हैं, यह राज्य आपको दैवेच्छासे प्राप्त हुआ है। तो भी आप इसे मन्त्रियोंपर छोड़कर क्यों भूल कर रहे हैं?

तदनन्तर, विप्रवर कालकवृक्षीयके पुनः आ जानेसे राज-परिवारमें मङ्गलपाठ होने लगा। पुरोहितके वंशमें भी हर्ष मनाया जाने लगा। कालकवृक्षीय मुनिने अपनी बुद्धिके बलसे कोसलनरेशको पृथ्वीका एकछत्र सम्राट् बना दिया। इसके बाद उन्होंने कई उत्तम यज्ञ किये। कौसल्यराजने भी पुरोहितके हितकारी वचन सुने और उनकी आज्ञाके अनुसार सब कार्य किया, इससे उन्होंने समस्त भूमण्डलपर विजय प्राप्त कर ली।



सभासद् आदिके लक्षण तथा गुप्त सलाह सुननेके अधिकारी

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! राजाके सभासद्, सहायक, सुहृद्, परिच्छद (सेनापति आदि) तथा मन्त्री कैसे होने चाहिये?

भीष्मजीने कहा—बेटा! जो लज्जावान्, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, सरल और किसी विषयपर अच्छी तरह बोल सकनेवाले हों, उन्हींको तुम सभासद् बनाना। मन्त्री, शूरवीर, विद्वान्, ब्राह्मण, अधिक संतोषी तथा कार्यमें विशेष उत्साह दिखानेवाले मनुष्योंको ही सहायक बनानेकी इच्छा करना। जो कुलीन हो, अपनी शक्तिको छिपाता न हो, सुखमें, दुःखमें, बीमारीमें अथवा घायल होनेपर भी कभी साथ न छोड़ता हो, वही सुहृद् बनाने योग्य है। जो अपने ही देशमें और अच्छे कुलमें उत्पन्न हुए हों, बुद्धिमान्, रूपवान्, बहुज्ञ, निर्भय तथा प्रेम रखनेवाले हों, वे ही तुम्हारे परिच्छद (सेनापति आदि) होनेयोग्य हैं। अच्छे कुलमें उत्पन्न, शीलवान्, इशारे समझनेवाले, दयालु, देश-कालके विधानको समझनेवाले और स्वामीका हित चाहनेवाले मनुष्योंको तुम सब कार्योंमें अपने मन्त्री बनाना; क्योंकि विद्वान्, सत्यवादी, सदाचारी, उत्तम व्रतका पालन करनेवाले और सदा साथ देनेवाले महान् पुरुष तुम्हें कभी त्याग नहीं सकते। जो कामनासे, भयसे, क्रोधसे अथवा लोभसे भी धर्मका त्याग न कर सके, जो अभिमानरहित, सत्यवादी, शान्त, मनको जीतनेवाला, दूसरोंसे सम्मानित तथा प्रत्येक अवस्थामें जाँचा-बूझा हुआ मनुष्य हो, उसीको तुम्हें गुप्त सलाहकार बनाना चाहिये। जिनके साथ कोई-न-कोई सम्बन्ध हो, जो अच्छे कुलमें उत्पन्न विश्वासपात्र, स्वदेशीय, लोभ दिखाकर फोड़े न जा सकनेवाले तथा व्यभिचार-दोषसे रहित हों, जिनकी जाति उत्तम हो, जो वैदिक पथपर चलते और पुश्त-दर-पुश्तसे राज्यकी नौकरी करते आ रहे हों तथा

जिनमें घमंडका नाम न हो, ऐसे लोगोंको ही मन्त्री बनाना चाहिये। जिसमें विनययुक्त बुद्धि, सुन्दर स्वभाव, तेज, धीरता, क्षमा, पवित्रता, प्रेम और स्थिरता हो, उनके इन गुणोंकी परीक्षा करके यदि वे राजकीय कार्यभारको सँभालनेमें प्रौढ़ तथा निष्कपट सिद्ध हों तो उन्हें मन्त्री बनाना चाहिये। ऐसे पाँच मन्त्रियोंकी आवश्यकता होती है। वे सब-के-सब बोलनेमें कुशल, शूर और प्रत्येक बातको ठीक-ठीक समझनेमें निपुण होने चाहिये। जो मूर्ख और दुर्बुद्धि है, उसको सिर्फ काम हाथमें ले लेनेसे ही उसके विशेष परिणामका ज्ञान नहीं होता। जिस मन्त्रीका राजाके प्रति अनुराग न हो, उसका विश्वास करना ठीक नहीं; इसलिये उसके समक्ष गुप्त विचारोंको नहीं प्रकट करना चाहिये। वह कपटी मन्त्री यदि गुप्त विचारोंको जान ले तो अन्य मन्त्रियोंको मिलाकर राजाका इस प्रकार नाश कर देता है, जैसे आग हवासे भरे हुए छेदोंमें घुसकर समूचे वृक्षको भस्म कर डालती है। जिसका स्वभाव सरल नहीं है, वह अनुरक्त हो, बुद्धिमान् हो तथा अन्य सारे गुणोंसे युक्त हो तो भी गुप्त सलाह सुननेका अधिकारी नहीं है।

जिसका शत्रुओंके साथ सम्बन्ध हो तथा नगरके मनुष्योंके प्रति जिसकी सम्मान-बुद्धि न हो, उसको सुहृद् नहीं मानना चाहिये; वह तो शत्रु ही है, उसे गुप्त सलाह सुननेका अधिकार नहीं है। मूर्ख, अपवित्र, जड, शत्रुसेवक, बातें बनानेवाला, क्रोधी और लोभी मनुष्य भी शत्रु ही है; उसपर गुप्त मन्त्र नहीं प्रकट करना चाहिये। कोई सम्मानका पात्र, बहुत बड़ा विद्वान् और प्रेमी ही क्यों न हो, यदि नया आया हुआ है, तो वह भी गुप्त मन्त्रणा सुननेका अधिकारी नहीं है। जिसका पिता अपने अधर्माचरणके द्वारा पहले अपमानपूर्वक निकाला गया हो और उसका वह पुत्र सम्मानपूर्वक पिताके पदपर नियुक्त कर लिया गया हो, उसे भी गुप्त सलाह नहीं बतानी चाहिये।

जिसकी बुद्धि शुद्ध और धारणाशक्ति प्रबल हो, जो स्वदेशमें ही उत्पन्न, शुद्ध आचरणवाला और विद्वान् हो तथा सब तरहके कामोंमें परीक्षा करनेपर ईमानदार साबित हुआ हो, वह गुप्त सलाह सुननेका अधिकारी है। जो ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न, अपने पक्ष तथा शत्रुपक्षके लोगोंकी प्रकृतिको परखनेवाला तथा राजाका अपना अभिन्न सुहृद् हो, वह भी गुप्त सलाह सुन सकता है। जो सत्यवादी, शीलवान्, गम्भीर, लज्जावान् और कोमल स्वभाववाला हो तथा पुश्त-दर-पुश्तसे राजाकी सेवामें रहता आया हो, वह भी मन्त्रणा सुननेका अधिकारी है। संतोषी, सत्पुरुषोंद्वारा सम्मानित, सत्यवादी, चतुर, पापसे घृणा करनेवाला, राजकीय मन्त्रणाको समझनेवाला, समयकी पहचान रखनेवाला, और शूरवीर मनुष्य भी सलाह सुननेयोग्य माना गया है। जो राजा चिरकालतक दण्ड धारण किये रहनेकी इच्छा रखता हो, उसे अपनी गुप्त सलाह उस आदमीको बतानी चाहिये, जो सारे जगत्‌को समझा-बूझाकर अपने वशमें कर लेनेकी शक्ति रखता हो। नगर और देशके लोग जिसपर धर्मतः विश्वास करते हों, जो नीतिका विद्वान् हो, वह गुप्त मन्त्रणा सुननेका अधिकारी है। इसलिये जो उपर्युक्त सभी गुणोंसे सम्पन्न और लोगोंकी प्रकृतिको परखनेवाले हों, ऐसे पुरुषोंको ही सम्मानपूर्वक मन्त्रीके पदपर नियुक्त करना चाहिये। मन्त्री कम-से-कम तीन होने चाहिये। मन्त्रियोंको चाहिये कि राजा, अमात्य, सेनाध्यक्ष आदि प्रकृतियोंके तथा शत्रुओंके भी छिद्रोंपर निगाह रखें; क्योंकि राजाके राज्यकी जड़ है मन्त्रियोंकी नेक सलाह। उसीके आधारपर राज्यका अभ्युदय होता है। जैसे कछुआ अपने सब अङ्गोंको समेटे रहता है, उसी तरह राजाको भी अपने गुप्त विचारोंको छिपाये रखना चाहिये। जो मन्त्री राज्यके गुप्त मन्त्रको छिपाये रखते हैं, वे बुद्धिमान् हैं। मन्त्री ही राजाका कवच है, सेना आदि तो शरीरमात्र हैं।

राजदूत राज्यकी जड़ है और गुप्त मन्त्रणा उसका बल है। यदि मन्त्री मद, क्रोध, मान और ईर्ष्या त्यागकर राजाका अनुसरण करते हैं, तो वे सुखी होते हैं। जो पाँच प्रकारके छलसे रहित हों, ऐसे मन्त्रियोंके साथ गुप्त परामर्श करना चाहिये। राजा पहले तीनों मन्त्रियोंकी पृथक्-पृथक् सलाह जानकर उसपर विचार करे; फिर अपना जो निश्चय हो उसको और दूसरोंके निश्चयको धर्म, अर्थ तथा कामके तत्त्वको समझनेवाले पुरोहित ब्राह्मणसे निवेदन करके उसकी राय पूछे। उस समय वह जो कुछ निर्णय दे, उसपर यदि सब लोग एकमत हो जायँ तो उस विचारको कार्यरूपमें परिणत करे। मन्त्रज्ञ विद्वान् कहते हैं—सदा इसी तरह मन्त्रणा करे और जो विचार प्रजाको अपने अनुकूल बनानेमें अधिक प्रबल जान पड़े, उसे काममें ले। जहाँ गुप्त विचार किया जाता हो, वहाँ या उसके आस-पास बौने, कुबड़े, दुबले, लँगड़े, अंधे, मूर्ख, स्त्री और हिजड़े न आने पावें। महलके ऊपरी मंजिलपर चढ़कर अथवा सूने एवं खुले हुए मैदानमें, जहाँ कुश-कास—घास-पात बढ़े हुए न हों, ऐसी जगह बैठकर उपयुक्त समयमें गुप्त परामर्श करना चाहिये।

——★——

राजाकी व्यावहारिक नीति और उसके निवासयोग्य नगरका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! राजा किस तरह प्रजाका पालन करे, जिससे वह धर्मानुसार लोगोंका प्रेम और अक्षय कीर्ति प्राप्त कर सके ?

भीष्मजीने कहा—जो राजा अपना भाव शुद्ध रखकर निष्कपट व्यवहारसे प्रजाके पालनमें लगा रहता है, वह धर्म और कीर्ति प्राप्त करता है तथा उसके लोक-परलोक दोनों सुधर जाते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—महाप्राज्ञ ! यह तो बताइये, राजाके व्यवहार कैसे हों और वह किन लोगोंको साथ लेकर व्यवहार करे ? मेरा तो ऐसा विश्वास है कि आपने पहले जिन गुणोंका वर्णन किया है, वे किसी भी एक पुरुषमें नहीं मिल सकते।

भीष्मजीने कहा—बेटा ! तुम्हारा कहना ठीक है। वास्तवमें उन सभी सद्‌गुणोंसे युक्त कोई एक पुरुष मिलना कठिन है। इसलिये राजा किस तरह और कैसे लोगोंका मन्त्रिमण्डल बनावे, इस बातको मैं संक्षेपसे बताता हूँ। जो वेदविद्याके विद्वान्, स्नातक, बाहर-भीतरसे शुद्ध एवं निर्भीक हों ऐसे चार ब्राह्मण, शरीरसे बलवान् तथा शस्त्रविद्याको जाननेवाले आठ क्षत्रिय, धन-धान्यसे सम्पन्न इक्कीस वैश्य, विनयशील तथा पवित्र आचार-विचारवाले तीन शूद्र, आठ[1] गुणोंसे युक्त और पुराण-विद्याको जाननेवाला एक सूत जातिका मनुष्य—इन सब लोगोंका एक मन्त्रिमण्डल बनावे। इस मण्डलके प्रत्येक सदस्यकी आयु पचास वर्षके लगभग होनी चाहिये; सारा मण्डल निर्भीक, किसीकी निन्दा न करनेवाला, अधिकारके अनुसार श्रुति-स्मृतियोंका विद्वान्, विनयशील, समदर्शी, वादी-प्रतिवादीके मामलोंका निपटारा करनेमें समर्थ, लोभरहित तथा सात[2] प्रकारके दुर्व्यसनोंसे दूर रहनेवाला होना चाहिये। इनमेंसे आठ प्रधान मन्त्रियोंका चुनाव करके राजा उनके साथ गुप्त सलाह-मशविरा किया करे। इन सबकी रायसे जो बात निश्चित हो, उसको देशमें प्रचारित करे और प्रत्येक राष्ट्रवासीको उसका ज्ञान करा दे।

युधिष्ठिर ! इसी व्यवहारसे तुम्हें सदा प्रजावर्गकी देख-रेख रखनी चाहिये। जो राजा प्रजाके साथ अन्यायपूर्ण बर्ताव करता है, धर्मतः उसका पालन नहीं करता, उसके हृदयमें भय बना रहता है तथा उसका परलोक भी बिगड़ जाता है। राजाका मन्त्री हो या राजकुमार न्याय ही जिसकी जड़ है, उस न्यायासनपर बैठकर यदि वह धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा नहीं करता तथा राज्यके दूसरे अधिकारी भी अगर प्रजावर्गके साथ अनुचित बर्ताव करते हैं तो राजाके साथ ही उन्हें भी नरकमें गिरना पड़ता है। जब बलवानोंके अत्याचारसे पीड़ित दीन-दुःखी और दुर्बल मनुष्य आर्त पुकार मचाते हुए शरणमें आवें, उस समय राजाको ही उन अनाथोंका नाथ (रक्षक) होना चाहिये। पापियोंको उनके अपराधके अनुसार दण्ड देना चाहिये। उनमेंसे जो धनी हों, उनको तो सम्पत्तिसे वञ्चित कर देना चाहिये; और जो गरीब हों, उन्हें जेलखानेमें कैद करना चाहिये और जो बहुत दुष्ट हों, उन्हें पीटकर राहपर लाना चाहिये।

जो राजाका खून करनेकी कोशिश करे, घरमें आग लगावे, चोरी करे अथवा वर्णसंकर संतान पैदा करे—ऐसे मनुष्यको अनेकों प्रकारका कठोर दण्ड देना चाहिये। यदि राजा राग-द्वेषसे रहित एवं समत्वभावसे युक्त है और अपराधके अनुरूप उचित रीतिसे प्रजाको दण्ड देता है, तो इससे उसको पाप नहीं लगता; बल्कि उसके द्वारा सनातन-धर्मका पालन होता है। परंतु जो मूर्ख मनमाना दण्ड देता है, वह इस लोकमें तो कलंकित होता ही है; मरनेके बाद उसे नरकमें भी जाना पड़ता है। दूसरोंके शिकायत करने-मात्रसे ही किसीको दण्ड न दे, अपराधका भलीभाँति निश्चय करके ही दण्ड दे अथवा रिहाई करे। राजा किसी भी आपत्तिमें क्यों न हो, दूतका वध न करे। दूतकी हत्या करनेवाला राजा अपने मन्त्रियोंके साथ नरकमें पड़ता है। दूतमें सात गुण होने चाहिये—वह अच्छे कुलमें उत्पन्न हो, उसका कुटुम्ब बड़ा हो, उसमें बोलनेकी शक्ति हो, वह कार्यकुशल, प्रिय बोलनेवाला, सत्यवादी तथा स्मरण-

---

१. सेवा करनेको सदा तैयार रहना, कही हुई बात ध्यानसे सुनना, उसे ठीक-ठीक समझना, याद रखना, किस कार्यका कैसा परिणाम होगा—इसपर तर्क करना, यदि अमुक प्रकारसे कार्य सिद्ध न हुआ तब क्या करना चाहिये ?—इस तरह वितर्क करना शिल्प और व्यवहारकी जानकारी रखना और तत्त्वका बोध होना—ये आठ गुण पौराणिक सूतमें होने चाहिये।

२. शिकार, जूआ, परस्त्री-प्रसंग और मदिरापान—ये चार कामजनित दोष और मारना, गाली बकना तथा दूसरेकी चीज खराब कर देना—ये तीन क्रोधजनित दोष मिलकर सात दुर्व्यसन माने गये हैं।

शक्तिसे सम्पन्न हो। राजाके प्रतीहारी (द्वारपाल) तथा शिरोरक्षकमें भी ये ही गुण होने चाहिये। मन्त्री संधि-विग्रहका अवसर जाननेवाला, धर्मशास्त्रका तत्त्वज्ञ, बुद्धिमान्, धीर, लज्जावान्, रहस्यको गुप्त रखनेवाला, कुलीन, साहसी तथा शुद्ध हृदयवाला हो तो उत्तम है। सेनापतिमें भी ऐसे ही गुण होने चाहिये। इनके सिवा, वह मोर्चाबंदी, यन्त्र चलाना और नाना प्रकारके दूसरे अस्त्रोंका प्रयोग करना ठीक-ठीक जाने, पराक्रमी हो, सर्दी, गर्मी, आँधी और वर्षाके कष्टको धैर्यपूर्वक सहे तथा शत्रुओंकी कमजोरीको समझनेवाला हो। राजा दूसरोंका अपने ऊपर विश्वास पैदा करे, पर स्वयं किसीका भी विश्वास न करे। उसके लिये अपने पुत्रोंपर भी पूरा विश्वास करना अच्छा नहीं। यह नीतिशास्त्रका तत्त्व है, जो मैंने तुम्हें बता दिया। किसीपर भी पूरा विश्वास न करना राजाओंका परम गोपनीय गुण है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! राजा स्वयं कैसे नगरमें निवास करे, पहलेसे बनी हुई राजधानीमें या नया नगर बसाकर रहे?

भीष्मजीने कहा—जहाँ सब प्रकारकी सम्पत्ति प्रचुर मात्रामें भरी हुई हो, ऐसे छः प्रकारके दुर्गों (किलों)का आश्रय लेकर नये नगर बसाने चाहिये। पहला है धन्वदुर्ग। जिसके चारों ओर दूरतक निर्जल प्रदेश (रेगिस्तान) हो, उस किलेको धन्वदुर्ग कहते हैं। दूसरा महीदुर्ग (समतल जमीनके अंदर बना हुआ किला या तहखाना) है, तीसरा गिरिदुर्ग (पहाड़की चोटीपर बना हुआ किला), चौथा मनुष्यदुर्ग (फौजी किला), पाँचवाँ मृत्तिकादुर्ग (रेतके ऊँचे टीलोंका घेरा) और छठा वनदुर्ग (कटबाँसी आदिके घने जंगलका घेरा) है। जिस नगरमें इनमेंसे कोई-न-कोई दुर्ग हो, जहाँ अन्न और अस्त्र-शस्त्रोंकी अधिकता हो, जिसके चारों ओर मजबूत दीवार (चहारदीवारी) और गहरी तथा चौड़ी खाई बनी हो, जहाँ हाथी, घोड़े और रथोंकी कमी न हो, विद्वान् और कारीगर बसे हों, आवश्यक वस्तुओंसे भरे कई भंडार हों, धार्मिक तथा कार्यदक्ष मनुष्योंका निवास हो, चौराहे और बाजार जिसकी शोभा बढ़ा रहे हों, जो व्यापारके लिये प्रसिद्ध स्थान हो, जहाँ पूर्ण शान्ति हो, कहींसे भय आनेकी सम्भावना न हो, जिसमें बड़े-बड़े शूरवीर और धनाढ्य रहते हों, वेद-मन्त्रोंकी ध्वनि गूँजती रहती हो तथा जहाँ सदा ही सामाजिक उत्सव और देवपूजनका क्रम चलता रहता हो—ऐसे नगरके भीतर अपने वशमें रहनेवाले मन्त्रियों तथा सेनाके साथ राजाको स्वयं निवास करना चाहिये।

राजाका कर्तव्य है कि वह उस नगरके खजाने, सेना तथा व्यापारको बढ़ावे, मित्रोंकी संख्या भी अधिक करे। नगर तथा प्रान्तके सब प्रकारके दोषोंको दूर करे। अन्नभंडार तथा अस्त्र-शस्त्रोंके भंडारको यत्नपूर्वक बढ़ाता रहे। सब प्रकारकी वस्तुओंके संग्रहालयोंको भी बढ़ावे, मशीन तथा अस्त्र-शस्त्रोंके कारखानोंकी उन्नति करे। काठ, लोहा, धानकी भूसी, कोयला, बाँस, तेल-घी, शहद, औषध, सन, करायल, धान्य, अस्त्र-शस्त्र, बाण, ढाल, बेंत तथा मूँज और बल्वजकी रस्सी आदि सामग्रियोंका संग्रह रखे। पौंसरों, कुओं, अधिक पानीवाले जलाशयों तथा दूधवाले वृक्षोंकी सदा रक्षा करे। आचार्य, ऋत्विज्, पुरोहित, महान् धनुर्धर, थवई (कारीगर), ज्योतिषी और वैद्योंका यत्नपूर्वक सत्कार करे। विद्वान्, बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय, कार्यकुशल, शूर, बहुज्ञ तथा साहसी मनुष्योंको ही सब कामोंमें लगावे। राजाको यत्नपूर्वक धार्मिकोंका सम्मान करना और पापियोंको दण्ड देना चाहिये। सभी वर्णोंको अपने-अपने कर्मोंमें लगाना चाहिये। जासूसोंके द्वारा नगर और देशके बाहरी तथा भीतरी समाचारोंको अच्छी तरह जानकर फिर उसके अनुसार काम करना चाहिये। जासूसोंसे मिलने, गुप्त परामर्श करने, खजानेकी जाँच-पड़ताल करने तथा विशेषतः अपराधियोंको दण्ड देनेका कार्य राजाको अपने हाथमें रखना चाहिये; क्योंकि इन्हींपर राज्यका अस्तित्व कायम है। गुप्तचररूपी नेत्रोंके द्वारा सदा इस बातपर दृष्टि रखे कि मेरे शत्रु, मित्र अथवा तटस्थ व्यक्ति नगर या प्रान्तमें कब क्या करना चाहते हैं। उनकी चेष्टाएँ जान लेनेके पश्चात् सावधानीके साथ उनका प्रतिकार करे। भक्तोंका आदर करे और द्वेष रखनेवालोंको कैदमें डाल दे।

नित्य नाना प्रकारसे यज्ञ करे, किसीको कष्ट न पहुँचाते हुए दान दे। प्रजाजनोंकी रक्षा करे और कोई भी काम ऐसा न होने दे, जिससे धर्ममें बाधा आती हो। दीन, अनाथ, वृद्ध तथा विधवाओंकी जीविकाका प्रबन्ध करे, उनके योग-क्षेमका खयाल रखे। अपने राज्यमें जो तपस्वी हो, उन्हें अपने शरीरसम्बन्धी, कार्यसम्बन्धी तथा राष्ट्रसम्बन्धी समाचार बताया करे और उनके सामने सदा विनीतभावसे रहे। जिसने अपने सम्पूर्ण स्वार्थोंको त्याग दिया है, ऐसे कुलीन एवं बहुज्ञ तपस्वीका उसे शय्या, आसन और भोजन देकर सत्कार करना चाहिये। कैसी भी आपत्तिका समय क्यों न हो, राजाको तपस्वीपर विश्वास करना चाहिये; क्योंकि उनपर चोरतक विश्वास करते हैं। कम-से-कम चार तपस्वियोंको अपना सहायक अवश्य बनाये रहना चाहिये।

उनमेंसे एक अपने राज्यमें, एक शत्रुके राज्यमें, एक जंगलमें और एक अपने सामंतोंके नगरोंमें रहनेवाला होना चाहिये। उन सबको आदर और सत्कारके साथ आवश्यक वस्तुएँ देते रहनी चाहिये। अपने राज्यके तपस्वियोंकी ही भाँति शत्रुके राज्यमें रहनेवाले तपस्वियोंका भी सम्मान करना चाहिये;क्योंकि किसी आपत्तिके समय जब राजा शरणार्थी होकर आता है तो वे उसे इच्छानुसार आश्रय देते हैं। युधिष्ठिर ! तुम्हारे पूछनेके अनुसार राजाको जैसे नगरमें निवास करना चाहिये, उसका लक्षण मैंने संक्षेपसे बता दिया है।



राष्ट्रकी रक्षा तथा वृद्धिके उपाय और प्रजासे कर लेनेका ढंग

युधिष्ठिरने पूछा—भरतश्रेष्ठ ! अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि राष्ट्रकी रक्षा और वृद्धि किस प्रकार करनी चाहिये ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! एक गाँवका, दस गाँवोंका, बीस गाँवोंका, सौ गाँवोंका तथा हजार गाँवोंका एक-एक अधिपति बनाना चाहिये। गाँवके स्वामीका यह कर्तव्य हो कि वह गाँववालोंके मामलोंका तथा उस गाँवमें जो अपराध होते हों, उन सबका पता लगावे और उनकी पूरी रिपोर्ट दस गाँवोंके मालिकके पास भेजे। इसी तरह दस गाँवोंवाला बीस गाँववालेके पास, बीस गाँवोंवाला सौ गाँववालेके पास तथा सौ गाँवोंवाला हजार गाँववाले अधिकारीके पास अपने गाँवोंकी रिपोर्ट भेजा करे। (फिर हजार गाँवोंका मालिक स्वयं राजाके यहाँ जाकर अपने पास आयी हुई रिपोर्ट पेश करे।) गाँवोंमें जो उपज हो, वह गाँवके मालिकोंके ही अधिकारमें रहनी चाहिये। वे लोग वेतनके रूपमें उसमेंसे नियत अंशका उपभोग कर सकते हैं। अपनी आमदनीसे वे दस गाँवके अधिपतियोंको कर दिया करें। दस गाँवके अधिकारियोंको बीस गाँवके मालिकोंके लिये कर देना चाहिये। वे लोग उसीसे अपना भरण-पोषण करें। जो सौ गाँवोंका मालिक हो, उसके खर्चके लिये एक गाँवकी आमदनी देनी चाहिये; वह गाँव बहुत बड़ी बस्तीवाला और सम्पन्न होना चाहिये तथा उसका इंतजाम कई मालिकोंकी सुपुर्दगीमें रहना चाहिये। (यदि सिर्फ उसीके अधीन कर दिया जाय तो लोभवश उसके द्वारा प्रजाके सताये जानेका भय है।) इसी तरह एक हजार गाँवोंके मालिकके लिये एक कसबेकी आमदनी देनी चाहिये। इन मालिकोंके जिम्मे युद्धसम्बन्धी तथा गाँवोंके प्रबन्धसम्बन्धी जो कार्य सौंपे गये हों, उनकी निगरानीके लिये एक मन्त्री (गवर्नर) नियुक्त करना चाहिये, जो धर्मको जाननेवाला और आलस्यरहित हो। अथवा प्रत्येक बड़े-बड़े नगर (जिले) में एक-एक अध्यक्ष (कलक्टर) नियुक्त करना चाहिये, जो वहाँके सभी कामोंकी देख-भाल करे और उनके लिये कोई अच्छी व्यवस्था सोचे। वह अपने-अपने मण्डलके सभी ग्रामाध्यक्षोंके यहाँ जा-जाकर उनके कार्योंकी जाँच-पड़ताल करता रहे। प्रत्येक नगराध्यक्षके पास गुप्तचर होना चाहिये। जो प्रजाके साथ होनेवाले ग्रामाध्यक्षोंके बर्तावोंकी सूचना दिया करे। खुफिया जाँचसे जो लोग प्रजाको चूसनेवाले, पापी, दूसरोंके धन हड़पनेवाले और शठ प्रतीत हों, ऐसे अधिकारियोंसे वह प्रजाकी रक्षा करे।

राजाको मालकी खरीद-बिक्री, रास्तेकी दूरी, उसके मँगानेका खर्च-बर्च और उसकी लागत तथा बचतका विचार करके ही व्यापारियोंपर टैक्स लगाना चाहिये। इसी तरह मालकी तैयारी, उसकी खपत तथा कारीगरीकी मध्यम-उत्तम आदि श्रेणियोंका विचार रखते हुए शिल्प एवं शिल्पकारोंपर कर लगाना चाहिये। इतना अधिक टैक्स न लगावे कि देनेवालोंको विशेष कष्ट हो, उनका काम और मुनाफा देखकर ही सब कुछ करे। अधिक लोभके कारण अपने आधारभूत राज्य तथा प्रजाओंके जीवनभूत खेती-बारी आदिको चौपट न कर डाले। तृष्णाको रोककर प्रजाका प्रेम प्राप्त करे; क्योंकि अधिक चूसनेवाले राजासे सारी प्रजा द्वेष करने लगती है। ऐसी दशामें उसका कल्याण कैसे हो सकता है ? जिससे प्रजावर्गका प्रेम हट जाता है, उसे कोई फायदा नहीं पहुँचता। बुद्धिमान् राजाको चाहिये कि वह बछड़ेकी तरह राष्ट्रसे लाभ उठावे। जैसे बछड़ा अधिक कालतक पूरा दूध पीकर बलवान् होनेके बाद ही भारी भार उठानेमें समर्थ होता है और गौको अधिक दुह लेनेसे दूध न मिलनेके कारण जब वह कमजोर हो जाता है, तो काम नहीं दे पाता; इसी प्रकार राज्यका भी अधिक दोहन करनेसे उसकी प्रजा दरिद्र हो जाती है, फिर उससे कोई बड़ा काम नहीं हो सकता। जो राजा अपने राष्ट्रपर अनुग्रह करके उसकी रक्षा करता है और उसकी उचित आमदनीसे अपनी जीविका चलाता है, उसे बहुत लाभ होता है। (अपने यहाँ तैयार हुए मालको बेचनेके लिये बाहर भेजनेसे जो आय होती है, उसे निर्यात कहते हैं।) राजाको

विपत्तिके समय काम आनेके लिये अपने देशमें निर्यातका धन बढ़ाना चाहिये और अपने राष्ट्रको घरमें रखा हुआ खजाना समझना चाहिये।

जब कोई संकट आवे और उस समय धनकी आवश्यकता हो तो देशकी प्रजाको राष्ट्रपर आनेवाले भयका ज्ञान कराना चाहिये। उससे कहना चाहिये—'सज्जनो! अपने देशपर बहुत बड़ी आपत्ति आ पहुँची है, शत्रुओंके आक्रमणका भारी खतरा है, मेरे दुश्मन बहुत-से लुटेरोंको साथ लेकर इस देशको संकटमें डालना चाहते हैं। इस घोर आपत्ति और दारुण भयके समय मैं आपलोगोंकी रक्षाके लिये धन चाहता हूँ। जब संकट टल जायगा, उस समय आपका सारा धन वापस कर दूँगा। यदि शत्रु आ गये तो आपका सारा धन जबरदस्ती लूट ले जायँगे और फिर वापस नहीं देंगे। इसके सिवा उनके आनेसे आपके बाल-बच्चोंकी जिंदगी भी खतरेमें पड़ सकती है। बाल-बच्चोंकी ही रक्षाके लिये धनका संग्रह किया जाता है। यदि मुझे आपकी सहायता प्राप्त हुई तो मैं इन सबकी रक्षा करके आपको आनन्दित करूँगा। अपनी शक्तिभर राष्ट्रको और आपलोगोंको कष्ट न होने दूँगा। जैसे बलवान् बैल समय पड़नेपर भारी बोझ उठाता है, उसी प्रकार इस विपत्तिके समय आपलोगोंको भी कुछ भार सहना ही चाहिये।'

समयकी गति-विधिको जाननेवाले राजाको इसी प्रकार मधुर वाणीसे समझा-बुझाकर प्रजासे धन लेना चाहिये। 'नगरकी रक्षाके लिये चहारदीवारी बनवानी है, सेवकोंका भरण-पोषण करना है, युद्धके भयको टालना है तथा सबके योग-क्षेमकी चिन्ता करनी है' इन सब बातोंकी आवश्यकता दिखाकर व्यापारियोंपर कर लगाना चाहिये। जो राजा व्यापारियोंके हानि-लाभकी ओरसे लापरवाह होकर उन्हें सताता है, वे राज्यको छोड़कर चले जाते हैं, जंगलोंमें रहने लगते हैं, इसलिये उनके साथ कठोरताका नहीं, कोमलताका बर्ताव करना चाहिये। व्यापार करनेवालोंको सान्त्वना दे, उनकी रक्षा करे, उन्हें धनकी सहायता दे, उनकी स्थितिको कायम रखनेका प्रयत्न करे तथा उन्हें आवश्यक वस्तुएँ देकर सदा उनका प्रिय कार्य करे। व्यापारियोंको उनके परिश्रमका फल सदा देते रहना चाहिये; क्योंकि वे ही राष्ट्रके वाणिज्य-व्यवसाय तथा खेती-बारीकी उन्नति करते हैं। अतः बुद्धिमान् राजा सदा उनपर प्रेम रखे। सावधानी रखकर उनके साथ दयालुताका बर्ताव करे। उनपर हलका टैक्स लगावे और ऐसा प्रबन्ध करे, जिससे वे कुशलपूर्वक देशमें सब जगह विचरण कर सकें। युधिष्ठिर! राजाके लिये इससे बढ़कर हितकर काम दूसरा नहीं है।

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! राजा किसी संकटमें न होनेपर भी यदि खजाना बढ़ाना चाहे तो उसे किस तरहका उपाय काममें लाना चाहिये?

भीष्मजीने कहा—धर्मकी इच्छा रखनेवाले राजाको देश और कालकी परिस्थितिका ध्यान रखते हुए अपनी बुद्धि और बलके अनुसार प्रजाके हितसाधनमें संलग्न रहना और सदा उसका पालन करते रहना चाहिये। जिसमें प्रजाकी और अपनी भी भलाई जान पड़े, उसी कार्य्यका वह सारे राष्ट्रमें प्रचार करे। जैसे भौंरा धीरे-धीरे फूलका रस लेता है, उसके वृक्षको काटता नहीं, जैसे मनुष्य बछड़ेको कष्ट न देकर धीरे-धीरे गायका दूध दुहता है, उसके थनोंको कुचल नहीं डालता तथा जैसे जोंक धीरे-धीरे ही शरीरका रक्त चूसती है, उसी प्रकार राजा भी कोमलताके साथ ही राष्ट्रसे कर वसूल करे। जैसे बाघिन अपने बच्चेको दाँतसे पकड़कर इधर-उधर ले जाती है, परंतु उसे पीड़ा नहीं पहुँचने देती, इसी तरह कोमल उपायोंसे ही राजा अपने राष्ट्रका दोहन करे—धीरे-धीरे धन संचित करे। उचित समयपर योग्य कार्यके लिये प्रजाको समझा-बुझाकर ही विशेष कर वसूल करना चाहिये, कुसमयमें और अनुचित कार्यके लिये नहीं। शराबखाना खोलनेवाले, वेश्याएँ, कुट्टनियाँ, वेश्याओंके दलाल, जुआरी तथा ऐसे ही बुरे पेशे करनेवाले और भी जितने लोग हों, वे समूचे राष्ट्रको रसातलमें भेजनेवाले होते हैं, उन सबको दण्ड देकर दबाये रखना चाहिये; अन्यथा राज्यमें रहकर वे भले लोगोंको तबाह करते रहते हैं। मनुजीने पहलेहीसे समस्त प्राणियोंके लिये एक नियम बना दिया है कि आपत्तिकालको छोड़कर बाकी समयमें कोई किसीसे कुछ भी न माँगे। यदि ऐसी व्यवस्था न होती, तो सब लोग भीख माँगकर ही निर्वाह करते, कोई भी काममें मन न लगाता—ऐसी दशामें सारा संसार नष्ट हो जाता। राजा ही सबको नियमके भीतर रखनेमें समर्थ होता है। जो राजा प्रजाको मर्यादाके भीतर नहीं रखता उसे प्रजावर्गके पापका चौथाई भाग खुद भोगना पड़ता है। यदि सबको मर्यादाके भीतर रखे तो वह प्रजाके चतुर्थांश पुण्यका भागी होता है; इसलिये राजाको उचित है कि वह सब पापियोंको दण्ड देकर उन्हें सदा नियन्त्रणमें रखे।

ऊपर बताये हुए मदिरालय तथा वेश्यालय आदि स्थानोंपर रोक लगा देनी चाहिये; क्योंकि इनके कारण मनुष्यमें आसक्ति बढ़ती है। आसक्तिके वशीभूत हुआ मनुष्य मांस खाता, मदिरा पीता और परधन तथा परस्त्रीका अपहरण

करता है। स्वयं तो करता ही है, दूसरोंको भी यही सब करनेका उपदेश देता है। जिन लोगोंके पास कुछ संग्रह नहीं है, वे यदि विपत्तिके समय ही याचना करें तो उन्हें धर्म समझकर और दया करके ही देना चाहिये, किसी भय या दबावमें पड़कर नहीं। तुम्हारे राज्यमें भिखमंगे और लुटेरे न हों; क्योंकि वे सिर्फ प्रजाके धनका अपहरण करते हैं, उसकी उन्नति नहीं करते। जो जीवोंपर अनुग्रह करते और प्रजाके अभ्युदयमें सहायक होते हैं, ऐसे ही लोगोंकी संख्या राज्यमें बढ़नी चाहिये। प्राणियोंका नाश करनेवाले लोगोंको राज्यमें नहीं रहने देना चाहिये। जो अधिकारी मुनासिबसे ज्यादा लगान वसूल करते हों, उन्हें दण्ड देना चाहिये तथा वे कितना कर लेते हैं इसकी जाँचके लिये निरीक्षक नियुक्त करना चाहिये।

खेती, गोरक्षा, वाणिज्य तथा इस तरहके अन्य व्यवसायोंमें अधिक आदमियोंको लगाना चाहिये। उक्त व्यवसाय करनेवाले लोगोंको हर तरहके संकटसे बचाना चाहिये। राजाको उचित है कि वह देशके धनी व्यक्तियोंको दावत देकर बुलावे और उनका यथोचित सम्मान करके कहे 'आपलोग मेरे सहायक होकर प्रजापर कृपादृष्टि रखें।' धनीलोग राष्ट्रके एक प्रधान अङ्ग तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके आधार होते हैं। विद्वान्, शूरवीर, धनी, धर्मनिष्ठ स्वामी, तपस्वी, सत्यवादी तथा बुद्धिमान् मनुष्य ही प्रजाकी रक्षा करते हैं। इसलिये युधिष्ठिर! तुम सब प्राणियोंसे प्रेम रखो और सत्य, सरलता, क्षमा तथा दया आदि सद्धर्मोंका पालन करो। ऐसा करनेसे तुम्हें दण्डधारणकी क्षमता, खजाना, मित्र तथा राज्यकी भी प्राप्ति होगी।



राजाके नीतिपूर्ण बर्ताव और उसके द्वारा धर्मपालनकी आवश्यकता

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! जिन वृक्षोंके फल खानेके काम आते हैं, उनको तुम्हारे राज्यमें कोई काटने न पावे—इसका ध्यान रखना। मूल और फल धर्मतः ब्राह्मणके धन बताये जाते हैं, इसलिये भी उनको काटना ठीक नहीं है। यदि ब्राह्मण अपने लिये जीविकाका प्रबन्ध न होनेसे दुर्बल हो जाय और उस राज्यको छोड़कर अन्यत्र जाने लगे तो राजाका कर्तव्य है कि परिवारसहित उस ब्राह्मणके लिये जीविकाका प्रबन्ध करे। ऐसा करनेसे वह निस्संदेह लौट आयगा; यदि इतना करनेपर भी वह कुछ बोले नहीं तो प्रार्थना करनी चाहिये—'भगवन्! मेरे पूर्व अपराधपर दृष्टि न डालिये, उसे भुला दीजिये।' इस तरह विनयपूर्वक उसको प्रसन्न करना राजाका सनातन धर्म है। खेती, पशु-पालन और वाणिज्य— ये तो इस लोककी ही आजीविका हैं किंतु तीनों वेद ऊपरके लोकोंमें भी रक्षा करते हैं। जो लोग उस वेदविद्याके अध्ययनमें या यज्ञ-यागादि वैदिक कर्मोंमें रोड़े अटकाते हैं, वे डकैत हैं; उनका वध करनेके लिये ही ब्रह्माजीने क्षत्रियोंको उत्पन्न किया है। युधिष्ठिर! तुम शत्रुओंको जीतो, प्रजाकी रक्षा करो, नाना प्रकारके यज्ञ करते रहो और संग्राममें वीरतापूर्वक लड़ो, कभी पीठ न दिखाओ।

राजाको सम्पूर्ण लोकोंकी भलाईके उद्देश्यसे सदा ही युद्धके लिये तैयार रहना चाहिये और शत्रुओंकी गति-विधिका पता लगानेके लिये सब ओर गुप्तचर तैनात कर देने चाहिये। जो लोग अपने अन्तरङ्ग या आत्मीय हों, उनसे बाहरी लोगोंकी रक्षा करो और बाहरी लोगोंसे अन्तरङ्ग व्यक्तियोंको बचाओ। फिर सबसे अपनी रक्षा करते हुए इस पृथ्वीकी भी रक्षा करो। मुझमें क्या कमजोरी है? किस तरहकी आसक्ति है? कौन-सी ऐसी बुराई है, जो अबतक दूर नहीं हुई और किस कारणसे मुझमें दोष आता है? इन सब बातोंका तुम्हें सदा विचार करते रहना चाहिये। कलतक मेरा जैसा बर्ताव रहा है, उसकी लोग प्रशंसा करते हैं या नहीं? यदि अबसे मेरे बर्तावको लोग जानें तो उसकी तारीफ करेंगे या नहीं? क्या प्रान्तमें अथवा समूचे राष्ट्रमें मेरा यश लोगोंको अच्छा लगता है?—ये बातें जाननेके लिये विश्वासपात्र गुप्तचरोंको पृथ्वीपर सब ओर घुमाते रहना चाहिये।

तात युधिष्ठिर! जो धर्मज्ञ, धैर्यवान् और संग्रामसे कभी पीठ न दिखानेवाले शूरवीर हैं, जो राज्यमें रहकर जीविका चलाते हैं, अथवा राजाके आश्रित रहकर जीते हैं तथा जो अमात्य और तटस्थ वर्गके लोग हैं, वे तुम्हारी प्रशंसा करें या निन्दा, तुम्हें सबका सत्कार ही करना चाहिये; क्योंकि किसीका कोई भी काम सर्वथा सबको अच्छा ही लगे—ऐसा सम्भव नहीं है। सभी प्राणियोंके शत्रु, मित्र और मध्यस्थ होते हैं। भारत! माल खरीदनेवाले व्यापारी तुम्हारे राज्यमें अधिक टैक्सके भारसे पीड़ित होकर उद्विग्न तो नहीं रहते हैं? किसानलोग ज्यादे लगान लिये जानेके कारण अत्यन्त कष्ट पाकर तुम्हारा राज्य छोड़ते तो नहीं हैं? क्योंकि किसान ही राजाका भार ढोते हैं और वे ही दूसरे लोगोंका भी पालन-पोषण करते हैं। इन्हींके दिये हुए अन्नसे देवता, पितर, मनुष्य, सर्प, राक्षस और पशु-पक्षी—सबकी जीविका चलती है।

यह मैंने राष्ट्रके साथ किये जानेवाले राजाके बर्तावका वर्णन किया, इसीसे राजाओंकी रक्षा होती है। इसी विषयको लेकर आगेकी बात भी बता रहा हूँ। ब्रह्मवेत्ता उतथ्य ऋषिने प्रसन्न होकर युवनाश्वके पुत्र मान्धाताको जो उपदेश दिया था, वह सब तुम्हें सुना रहा हूँ, सुनो—

उतथ्यने कहा—मान्धाता! राजा धर्मकी रक्षा और प्रचारके लिये होता है, विषय-सुखोंका उपभोग करनेके लिये नहीं। तुम्हें यह जानना चाहिये कि राजा सम्पूर्ण जगत्का रक्षक है। यदि वह धर्माचरण करता है तो देवता होता है और धर्मका त्याग करता है तो नरकमें पड़ता है। धर्मके ही ऊपर सम्पूर्ण भूतोंकी स्थिति है और धर्म राजाके आश्रयसे रहता है। परम धर्मात्मा एवं श्रीसम्पन्न राजा धर्मका साक्षात् स्वरूप कहलाता है, यदि वह धर्मका पालन नहीं करता तो देवता उसकी निन्दा करते हैं और वह पापकी मूर्ति समझा जाता है। जो अपने धर्ममें प्रवृत्त रहते हैं, उनके ही अभीष्टकी सिद्धि देखी जाती है, सारा संसार उस मङ्गलमय धर्मका ही अनुसरण करता है। यदि राजा पापको नहीं रोकता है तो देशमें धार्मिक बर्तावका उच्छेद हो जाता है और सब ओर महान् अधर्म फैल जाता है। जिससे प्रजाको दिन-रात भय बना रहता है। 'यह मेरी वस्तु है, यह मेरी नहीं है' ऐसा कहना कठिन हो जाता है। सत्पुरुषोंकी बनायी हुई कोई भी धार्मिक व्यवस्था रहने नहीं पाती। जब पापका बल बढ़ जाता है तो मनुष्योंके लिये अपनी स्त्री, अपने पशु और अपने खेत या घरका ठिकाना नहीं रहता। देवताओंकी पूजा बंद हो जाती है, पितरोंका श्राद्ध रुक जाता है, अतिथियोंका सत्कार नहीं होता, द्विजलोग व्रतधारणा-(ब्रह्मचर्यपालन-) पूर्वक वेदाध्ययन नहीं करते। ब्राह्मण यज्ञ नहीं करते। बूढ़े जन्तुओंकी तरह मनुष्योंका मन घबराहटमें पड़ा रहता है।

इहलोक और परलोक दोनोंपर दृष्टि रखकर ऋषियोंने स्वयं ही राजाकी सृष्टि की। उन्होंने सोचा—'राजा सब प्राणियोंमें महान् और धर्मका साक्षात् विग्रह होगा।' अतः जिसमें धर्म विराज रहा हो, उसे ही राजा कहते हैं। इसलिये राजाका कर्तव्य है कि वह धर्मका पालन एवं प्रसार करे। धर्मके बढ़नेसे सम्पूर्ण प्राणियोंका अभ्युदय होता है और उसकी हानिसे सबकी हानि होती है, इसलिये धर्मका लोप नहीं होने देना चाहिये। ब्रह्माजीने प्राणियोंके कल्याणार्थ ही धर्मकी सृष्टि की है, इसलिये अपने देशमें धर्मका प्रचार कराना चाहिये, यह प्रजाजनोंपर महान् अनुग्रह होगा। राजा वही है, जो धर्माचरणपूर्वक प्रजाका पालन करता है। इसलिये तुम भी काम और क्रोधको त्यागकर धर्मकी ही रक्षा करो। धर्म ही राजाओंके लिये सबसे बढ़कर कल्याण करनेवाला है।

धर्मका मूल है ब्राह्मण; इसलिये ब्राह्मणोंका सदा ही सम्मान करना चाहिये। ब्राह्मणोंकी इच्छा पूर्ण न करनेसे राजाके ऊपर भय आता है। राजन्! सम्पत्तिका पुत्र है दर्प, जो अधर्मके अंशसे उत्पन्न हुआ है। उसने बहुत-से देवताओं, असुरों और राजर्षियोंका विनाश कर डाला है। उसको जो जीत लेता है, वही राजा होता है, दर्पसे पराजित हो जानेपर तो वह दास ही कहलाता है। यदि तुम चिरकालतक राजसिंहासनपर विराजमान रहना चाहते हो तो ऐसा बर्ताव करो, जिससे तुम्हारे द्वारा दर्प और अधर्मको प्रोत्साहन न मिले। मतवाले, असावधान, बालक तथा पागलोंसे बचो, उनके परिचयसे भी दूर रहो और यदि वे एक साथ रहकर सेवा करना चाहें तो उनकी सेवासे तो सर्वथा ही बचे रहो। इसी तरह जिसको एक बार कैद किया हो उस मन्त्रीसे, परायी स्त्रियोंसे, ऊँचे-नीचे एवं दुर्गम पहाड़से और हाथी, घोड़े तथा सर्पोंसे बचकर रहे। कृपणता, अभिमान, दम्भ तथा क्रोधका सर्वथा परित्याग करे। वन्ध्याओं, वेश्याओं, परस्त्रियों और कुमारी कन्याओंके साथ समागम न करे। जब राजा धर्मकी ओरसे असावधान रहता है तो उत्तम कुलोंमें वर्णसंकर मनुष्योंके अंशसे पापी और राक्षस जन्म लेते हैं। नपुंसक, काने, लँगड़े, लूले, गूँगे तथा बुद्धिहीन बालकोंकी उत्पत्ति होती है। इसलिये प्रजाके हितका खयाल करके राजाको विशेषरूपसे धर्मका आचरण करना चाहिये।

राजाओंके प्रमादसे और भी बहुतसे बड़े-बड़े दोष प्रकट होते हैं। वर्णसंकरोंको जन्म देनेवाले पापकर्मोंकी वृद्धि होती है। गर्मीके मौसममें ठंडक और सर्दीमें गर्मी पड़ने लगती है। कभी सूखा पड़ जाता है, कभी अधिक वर्षा होती है। प्रजामें तरह-तरहके रोग फैल जाते हैं। आकाशमें धूमकेतु आदि तारे उगते हैं, भयंकर ग्रह दिखायी देते हैं तथा राजाके विनाशकी सूचना देनेवाले नाना प्रकारके उत्पात दृष्टिगोचर होते हैं। जो राजा अपनी रक्षा नहीं करता, वह प्रजाकी भी रक्षा नहीं कर सकता। प्रथम तो उसकी प्रजाका नाश होता है, उसके बाद वह स्वयं भी नष्ट हो जाता है। जब दो आदमी मिलकर एककी वस्तु छीन लेते हैं और बहुत-से मिलकर दोको लूटते हैं तथा कुमारी कन्याओंपर बलात्कार होने लगता है, उस समय इन सारे अपराधोंका दोष राजापर ही लगाया जाता है। राजा धर्म छोड़कर जब प्रमादमें पड़ जाता है तो कोई भी मनुष्य अपने धनको अपना नहीं कह सकता।



धर्माचरणसे लाभ तथा राजाके धर्म

उतथ्य कहते हैं—राजन् ! जब राजा धर्मका आचरण करे और समयपर वर्षा हो तो उससे जो धन-धान्यादि सम्पत्ति होती है, उसके द्वारा प्रजाका बड़े आनन्दसे पालन-पोषण होता है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये सब-के-सब राजाके आचरणमें स्थित हैं; राजा ही युगका प्रवर्तक होनेके कारण युग कहलाता है। चारों वर्ण, चारों वेद और चारों आश्रम—ये सब राजाके प्रमादसे नष्ट हो जाते हैं। जब राजा धर्मकी ओरसे असावधान हो जाता है तो गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि—ये तीन अग्नि, ऋक्, साम और यजु—ये तीन वेद और दक्षिणाओंके साथ सम्पूर्ण यज्ञ भी विकृत हो जाते हैं। राजा ही प्राणियोंको जन्म देनेवाला और राजा ही उनका नाश करनेवाला है। धर्मात्मा होनेपर वह जीवनदाता है और पापी होनेपर विनाशकारी। राजाके प्रमादग्रस्त हो जानेपर उसकी स्त्री, पुत्र, बान्धव तथा मित्र सब मिलकर शोक करते हैं। उसके हाथी, घोड़े, गौ, ऊँट, खच्चर और गदहे आदि पशु दुःख पाते हैं। विधाताने दुर्बल प्राणियोंकी रक्षाके लिये ही बलसम्पन्न राजाकी उत्पत्ति की है। निर्बल प्राणियोंका महान् समुदाय राजाके ही ऊपर टिका हुआ है। राजन् ! दुर्बल मनुष्य, मुनि और जहरीले साँपोंकी दृष्टिको मैं बड़ा दुःसह समझता हूँ, इसलिये तुम दुर्बलोंको कभी न सताना। वे जिस कुलको अपनी क्रोधाग्निसे जला डालते हैं, उसमें फिर कोई अंकुर नहीं जमता, वह जड़-मूलसहित भस्म हो जाता है। इसलिये अपने बलके अहंकारमें आकर निर्बल मनुष्योंको चूसनेका प्रयत्न न करना; क्योंकि मुझे भय है, जैसे आग अपने आश्रयभूत काठको जला देती है, उसी प्रकार दुर्बलोंकी दृष्टि तुम्हें भस्म न कर डाले। झूठे अपराध लगाये जानेपर जब दीन-दुर्बल मनुष्य रोने-बिलखने लगते हैं, उस समय उनकी आँखोंसे जो आँसू गिरते हैं, वे कलङ्क लगानेवालेके पुत्रों और पशुओंका नाश कर डालते हैं। जैसे पृथ्वीमें बोया हुआ बीज तुरंत फल नहीं देता, उसी प्रकार किया हुआ पाप भी तत्काल फल नहीं देता (समय आनेपर ही उसका फल मिलता है)। जहाँ निर्बल मनुष्य मारा जाता है और उसे कोई रक्षक नहीं मिलता, वहाँ उस सतानेवाले पापीको दैवकी ओरसे भयंकर दण्ड प्राप्त होता है।

जब देशके लोग समूह बनाकर भीख माँगते फिरते हैं, तो एक दिन वे राजाका विनाश कर डालते हैं। यदि राजा काम या लोभवश किसी गरीबकी दीनताभरी प्रार्थनाको ठुकराकर उसके धनको अन्यायपूर्वक छीन ले तो समझना चाहिये उसका महान् विनाश निकट है। जब राज्यकी प्रजा राजाका गुणगान करती हुई धर्मका आचरण तथा वैदिक संस्कारोंका विधिवत् अनुष्ठान करती है, उस समय राजा पुण्यका भागी होता है और वही प्रजा जब धर्मके स्वरूपको न समझकर अधर्ममें प्रवृत्त हो जाती है तो राजाको पापका भागी होना पड़ता है। जहाँ पापी मनुष्य प्रकटरूपसे अत्याचार करते हुए विचरते हैं, सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें उस राज्यके भीतर कलियुग प्रकट हुआ समझा जाता है। परंतु जब राजा दुष्ट मनुष्योंको दण्ड देता है, तो उसके राज्यमें सर्वत्र अभ्युदय होने लगता है।

अपने आश्रितोंको बाँटकर खाना, मन्त्रियोंका अनादर न करना और बलके घमंडमें चूर रहनेवालोंका दमन करना राजाका धर्म है। मन, वाणी और शरीरसे समस्त प्रजाकी रक्षा करना तथा अपराध करनेपर पुत्रको भी क्षमा न करना राजाका धर्म कहा गया है। राष्ट्रकी रक्षा, लुटेरोंका मूलोच्छेद और संग्राममें विजय—राजाके लिये धर्म माना गया है। अपना प्रियसे भी प्रिय व्यक्ति क्यों न हो, यदि वह क्रिया द्वारा अथवा वाणीसे भी पाप करे तो राजाका कर्तव्य है कि वह उसे क्षमा न करके दण्ड ही दे। शरणागतोंका पुत्रकी भाँति पालन करे और धर्मकी मर्यादा भंग न होने दे। जिस समय राज्यमें रहनेवाले लोग राग-द्वेषका त्याग करके श्रद्धापूर्वक यज्ञ करें और उसमें प्रचुर दक्षिणा दें, उस समय राजाके द्वारा धर्मपालन हुआ समझा जाता है। दीन-दुःखी, वृद्ध तथा अनाथोंके आँसू पोंछकर उन्हें प्रसन्न करना, मित्रोंको बढ़ाना, शत्रुओंका संहार करना, साधु पुरुषोंका पूजन, सत्यका पालन, भूमिदान, अतिथियोंका सत्कार और भृत्योंका पोषण करना राजाका धर्म है। जिसमें निग्रह और अनुग्रह दोनों प्रतिष्ठित हैं—जो दुष्टोंको दण्ड देता और सत्पुरुषोंपर कृपा रखता है, उस राजाको इस लोकमें और परलोकमें भी सुख मिलता है। राजा दुष्टोंको दण्ड देनेके कारण यम और धार्मिकोंपर अनुग्रह करनेसे उनके लिये परमेश्वरके समान है। जब वह अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखता है, तो राज्यशासनमें समर्थ होता है और जब उनको वशमें नहीं रखता तो अपनी मर्यादासे नीचे गिरता है। ऋत्विक्, पुरोहित और आचार्यका सत्कार करे, उनका अनादर न होने दे तथा उनके साथ उचित बर्ताव करे—यह राजाका धर्म है। जैसे यमराज सभी प्राणियोंपर समान रूपसे

शासन करते हैं, उसी प्रकार राजाको भी बिना किसी भेदभावके सभी प्राणियोंको नियन्त्रणमें रखना चाहिये। प्रमाद छोड़कर क्षमा, विवेक, धैर्य और सद्बुद्धिकी शिक्षा लेनी चाहिये। सब प्राणियोंकी सामर्थ्यका ज्ञान रखना चाहिये। मीठे वचन बोलना तथा नगर और देशके लोगोंकी रक्षा करते रहना चाहिये।

तात! राज्यकी रक्षा तो वही कर सकता है, जो बुद्धिमान् और शूरवीर होनेके साथ ही दण्ड देनेका ढंग जानता हो। जो दण्ड देनेसे हिचकता है वह मूर्ख और कायर मनुष्य क्या राज्यकी रक्षा करेगा? तुम्हें सुन्दर, कुलीन, राजभक्त एवं बहुज्ञ मन्त्रियोंको साथ लेकर आश्रमवासी तपस्वियों तथा दूसरे लोगोंकी भी बुद्धिकी परीक्षा करनी चाहिये। इससे तुमको सम्पूर्ण भूतोंके परमधर्मका ज्ञान हो जायगा, फिर स्वदेशमें रहो या परदेशमें, कहीं भी तुम्हारा धर्म नष्ट नहीं होगा। इस तरह विचार करनेसे धर्म ही अर्थ और कामसे श्रेष्ठ सिद्ध होता है। धर्मात्मा पुरुष इस लोकमें तथा परलोकमें भी सुख उठाता है। यदि मनुष्योंको सम्मान दिया जाय तो वे सम्मानदाताके हितके लिये अपने पुत्रों और स्त्रियोंको भी निछावर कर देते हैं। प्राणियोंको अपने पक्षमें मिलाये रखना, उन्हें कुछ देना, मीठी बोली बोलना, प्रमादका त्याग करना और पवित्र रहना—ये राजाका ऐश्वर्य बढ़ानेके महान् साधन हैं। मान्धाता! तुम इन सब बातोंकी ओरसे कभी उपेक्षा न रखना। इन्द्र, वरुण, यम तथा सम्पूर्ण राजर्षियोंने ऐसा ही बर्ताव किया है, इसीका तुम भी पालन करो। जो राजा धर्मका आचरण करता है, उसके सुयशको देवता, ऋषि, पितर और गन्धर्व सदा गाते रहते हैं।

भीष्मजी कहते हैं—उतथ्य मुनिके इस प्रकार उपदेश देनेपर मान्धाताने निर्भीक होकर उसका पालन किया और बिना किसीकी सहायताके सम्पूर्ण पृथ्वीपर अधिकार जमा लिया। राजा युधिष्ठिर! तुम भी मान्धाताकी ही भाँति धर्मका पालन करते हुए इस पृथ्वीकी रक्षा करो।



राजाके आचरणके विषयमें वामदेवजीके उपदेशका उल्लेख

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! जो धर्मनिष्ठ राजा अपने धर्ममें स्थित रहना चाहे, उसे किस प्रकार बर्ताव करना चाहिये?

भीष्मजी बोले—राजन्! इस विषयमें तत्त्वदर्शी महात्मा वामदेवजीका उपदेशरूप एक इतिहास प्रसिद्ध है। वसुमना नामके एक विचारशील, धैर्यशाली और पवित्रचित्त राजाने एक बार परम तपस्वी मुनिवर वामदेवजीसे पूछा था, 'भगवन्! आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिये जिसके अनुसार आचरण करनेसे मैं अपने धर्मसे कभी न गिरूँ।' तब महातेजस्वी तपोनिष्ठ भगवान् वामदेवजी कहने लगे—"राजन्! तुम धर्मका ही अनुष्ठान करो, धर्मसे बढ़कर कोई भी चीज नहीं है। जो राजा धर्ममें स्थित रहते हैं, वे इस सारी पृथ्वीको अपने काबूमें कर लेते हैं। जिसकी दृष्टिमें अर्थसिद्धिकी अपेक्षा भी धर्मका विशेष महत्त्व है और जो उसीको बढ़ानेका विचार करता है, धर्मके कारण उसकी बड़ी शोभा होती है। इसके विपरीत जो राजा अधर्मोन्मुख होकर बलात् उसीका आचरण करता है, उसे धर्म और अर्थ बात-की-बातमें छोड़कर चले जाते हैं। जो दुष्ट अपने पापी मन्त्रीकी सहायतासे धर्मकी हानि करता है, वह अपने परिवारके सहित प्रजाका वध्य हो जाता है; उसका सर्वनाश होनेमें देरी नहीं लगती। किंतु जो हितकारी बातोंको ग्रहण करनेवाला, ईर्ष्याशून्य, जितेन्द्रिय और बुद्धिमान् होता है, उस राजाकी इसी प्रकार वृद्धि होती है जैसे नदियोंके प्रवाहसे समुद्रकी। राजाको चाहिये कि धर्म, अर्थ, काम, बुद्धि और मित्रोंसे सम्पन्न होनेपर भी अपनेको कभी पूर्ण न समझे। ये धर्मादि ही राजाकी लोकयात्राके आधार हैं। इन्हींके द्वारा उसे यश, कीर्ति, वैभव और प्रजाकी प्राप्ति होती है। किंतु जो राजा कृपण, स्नेहशून्य, दण्डके द्वारा प्रजाको दुःख देनेवाला और बुद्धिहीन होता है तथा जिसे अपराधीकी भी पहचान नहीं होती, उसकी लोकमें अपकीर्ति होती है और मरनेपर नरकमें जाना पड़ता है तथा जो दूसरोंका मान करनेवाला, दानी, मधुरभाषी, धर्मके विषयमें गुरुकी सम्मतिसे चलनेवाला, अपने अर्थको स्वयं समझनेवाला और धर्मको ही सबसे बड़ा लाभ माननेवाला होता है, वह राजा बहुत दिनोंतक सुख भोगता है।

"जिस राज्यमें अपने बलके घमंडसे राजा दुर्बलोंपर अत्याचार करने लगता है, वहाँ उसके अनुयायी भी इसी प्रकारके आचरणको अपनी जीविकाका साधन बना लेते हैं। वे लोग तो उस पापी राजाका ही अनुसरण करते हैं। इससे लोगोंमें उद्दण्डता फैल जानेसे बहुत जल्द ही वह राज्य नष्ट हो जाता है।

"राजाको चाहिये कि यदि किसीका अप्रिय किया हो

तो फिर उसका प्रिय भी करे। इस प्रकार यदि अप्रिय पुरुष भी प्रिय करने लगता है तो थोड़े ही समयमें वह प्रिय हो जाता है। मिथ्या भाषण न करे; बिना कहे ही दूसरोंका प्रिय करे; किसी कामनासे, क्रोधमें आकर अथवा द्वेषवश धर्मका त्याग न करे, कोई कुछ पूछे तो उसका उत्तर देनेमें संकोच न करे, बिना विचारे कोई भी बात मुँहसे न निकाले, किसी काममें जल्दबाजी न करे और किसीमें भी दोष-दृष्टि न करे। ऐसे आचरणसे शत्रु भी अपने वशमें हो जाता है। यदि अपना प्रिय हो जाय तो बहुत प्रसन्न न हो और अप्रिय हो जाय तो घबराये नहीं। यदि आमदनीमें कमी पड़ जाय तो दुःखी न हो। उस समय भी प्रजाके ही हितका विचार करे। जो बड़े-बड़े काम हों, उनपर जितेन्द्रिय, अत्यन्त अनुगत, पवित्रात्मा, सामर्थ्यवान् एवं प्रीतिमान् पुरुषोंको नियुक्त करे। इसी प्रकार जिसमें ये सब गुण हों और जो राजाको प्रसन्न भी रख सकता हो तथा स्वामीका काम करनेमें सदा सावधान रहता हो, उसे धनकी व्यवस्थाका काम सौंपे। जो राजा मूर्ख, इन्द्रियलोलुप, लोभी, दुराचारी, दुष्ट, कपटी, हिंसक, दुष्टबुद्धि, अविद्वान्, अनुदार, मद्यपी, जुआरी, स्त्रीलम्पट और आखेटप्रिय पुरुषको मत्त्वपूर्ण कार्योंपर नियुक्त करता है, उसकी राज्यलक्ष्मी नष्ट हो जाती है। जो राजा अपने शरीरकी रक्षा और अपने रक्षणीयोंकी रक्षाका ठीक प्रबन्ध करता है, उसकी प्रजाकी वृद्धि होती है और उसे अवश्य ही महत्ता प्राप्त होती है।

"राजन्! इस जगत्‌में सभी पदार्थ नाशवान् हैं, कोई भी वस्तु निरापद नहीं है; इसलिये राजाको धर्मपर स्थित रहकर धर्मानुसार ही प्रजाका पालन करना चाहिये। दुर्गकी रक्षाके साधन, युद्धकी सामग्री, न्यायकी व्यवस्था, मन्त्रियोंके सत्परामर्श और प्रजाको यथासमय सुख पहुँचाना इन पाँच बातोंसे राज्यकी उन्नति होती है। एक ही पुरुष इन सब बातोंपर सर्वदा ध्यान नहीं रख सकता; इसलिये इन्हें योग्य अधिकारियोंको सौंप देनेसे राजा बहुत दिनोंतक राज्य भोग सकता है। जो पुरुष दानशील, मृदुलस्वभाव, पवित्रचरित्र और दुःखके समय अपने आदमियोंको न छोड़नेवाला होता है, उसीको लोग राजा बनाते हैं। किंतु जो मनके प्रतिकूल होनेके कारण अपने हितैषीकी बात नहीं सुनता, सर्वदा लापरवाह-सा रहता है और बुद्धिमानोंके आचरणोंका अनुसरण नहीं करता, वह क्षात्रधर्मसे पतित हो जाता है। जो प्रधान मन्त्रियोंका त्याग करके निम्नश्रेणीके लोगोंको अपना प्रिय बनाता है, द्वेषवश अपने सद्‌गुणी सम्बन्धियोंका भी सम्मान नहीं करता तथा जो चञ्चलचित्त और अत्यन्त क्रोधी है, वह तो सर्वदा मृत्युके ही पड़ोसमें रहता है। असमयमें कभी कर न लगावे; अप्रिय हो जानेपर कभी दुःखी न हो; प्रिय होनेपर हर्षसे फूल न जाय; सदा शुभकर्मोंमें लगा रहे; इस बातका ध्यान रखे कि कौन राजा मुझसे प्रेम रखते हैं, कौन केवल भयसे आश्रय लिये हुए हैं और कौन इनमें बीचकी-सी स्थितिमें हैं तथा बलवान् हो जानेपर भी अपने निर्बल शत्रुका कभी विश्वास न करे। जो लोग पापबुद्धि होते हैं, वे अपने सर्वगुणसम्पन्न और प्रियभाषी स्वामीसे भी द्रोह करनेमें नहीं चूकते, इसलिये ऐसे लोगोंका कभी विश्वास न करे।

"यदि राज्यकी जड़ मजबूत न हो तो राजाको अनधिकृत देशोंपर अधिकार करनेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि जिसके मूलमें ही दुर्बलता है, उस राजाको इस प्रकारका लाभ होना सम्भव नहीं है। किंतु जिस राजाका देश प्रशस्त, धन-धान्यसे पूर्ण, राजभक्त और संतुष्ट हो तथा जिसके मन्त्री सुयोग्य हों और सैनिक संतुष्ट, सुशिक्षित एवं शत्रुओंको खदेड़नेमें समर्थ हों, वह थोड़ी-सी सेनासे भी विजय प्राप्त कर सकता है। जिस राजाके पुरवासी और देशवासी जीवोंपर दया करनेवाले और धनसम्पन्न होते हैं, उसकी जड़ मजबूत कही जाती है। जिसका वैभव दिनोंदिन बढ़ रहा हो, जो सब प्राणियोंपर दया रखता हो, काम करनेमें फुर्तीला हो और अपने शरीरकी रक्षाका ध्यान रखता हो, उस राजाके राज्यकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। बुद्धिमान् राजाको ऐसा काम कभी नहीं करना चाहिये जिसे भले आदमी बुरा समझते हों, उसे ऐसे काममें ही मन लगाना चाहिये जिससे सबका हित हो। जो राजा इस प्रकारका बर्ताव करता है, वह इस लोक और परलोक दोनोंको सुधारकर विजय प्राप्त करता है।"

भीष्मजी कहते हैं—वामदेवजीके इस प्रकार कहनेपर राजा वसुमनाने सब काम उसी रीतिसे किये। यदि तुम भी ऐसा ही आचरण करोगे तो निःसन्देह अपने दोनों लोक बना लोगे।



युद्धनीतिका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! यदि कोई क्षत्रिय राजा दूसरे क्षत्रिय राजापर चढ़ाई कर दे तो उसे उसके साथ किस प्रकार युद्ध करना चाहिये ?

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर ! यदि वह कवच पहने हुए न हो तो उसके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये, हाँ, कवच धारण करके आवे तो स्वयं भी तैयार हो जाय और एक पुरुषके साथ अकेला ही युद्ध करे। यदि वह सेना लेकर आया हो तो स्वयं भी सेनासहित जाकर उसे ललकारे। यदि वह कपटसे युद्ध करे तो आप भी कपटयुद्ध करे और धर्मयुद्ध करे तो स्वयं भी धर्मानुसार ही उसका सामना करे। यदि शत्रु किसी संकटमें पड़ जाय तो उसपर प्रहार न करे तथा डरे हुए और परास्त शत्रुपर भी वार न करे। जो बलहीन हो, जिसका पुत्र मर गया हो, जिसके शस्त्र नष्ट हो गये हों, जो विपत्तिमें पड़ गया हो, जिसके धनुषकी डोरी टूट गयी हो अथवा जिसका वाहन नष्ट हो गया हो, उसपर कभी प्रहार न करे। ऐसा पुरुष अपने शिविरमें आ जाय तो उसकी चिकित्सा करावे अथवा उसके घर पहुँचा दे—यही सनातन धर्म है। अतः धर्मानुसार ही युद्ध करना चाहिये। यह बात स्वायम्भुव मनुने भी कही है। सत्पुरुषोंमें सदासे सज्जनोंका ही धर्म रहा है। उसमें स्थित रहकर उसे नष्ट न करे। जो क्षत्रिय धर्मयुद्धमें अधर्मके द्वारा विजय प्राप्त करता है, वह पापी है और स्वयं ही अपना नाश करता है। इस प्रकार अधर्मसे विजय पाना तो दुष्ट पुरुषोंका काम है, सत्पुरुषको तो अधर्मोंको भी धर्मसे ही जीतना चाहिये। धर्मपूर्वक तो मर जाना भी अच्छा है और पापके द्वारा विजय पानी भी अच्छी नहीं है। हाँ, यह अवश्य है कि अधर्मका फल तत्काल नहीं मिलता। किंतु वह मूल और शाखा दोनोंहीको जलाकर दम लेता है। पापी पुरुष किसी पापपूर्ण उपायसे धन पाकर बड़ा प्रसन्न होता है और यह समझकर कि धर्म है ही नहीं, पवित्रात्मा पुरुषोंकी हँसी करता है। इस प्रकार वह पापी पापके द्वारा बढ़नेके कारण अन्तमें पापमें ही फँस जाता है। उसकी धर्ममें श्रद्धा नहीं रहती और अन्तमें वह विनाशके ही मुखमें पड़ता है। जिस प्रकार नदीके तटपर खड़ा हुआ वृक्ष जड़सहित उखड़कर नदीमें बह जाता है, उसी प्रकार वह भी समूल नष्ट हो जाता है। पत्थरपर पटके हुए घड़ेके समान उसके टूट-टूक हो जाते हैं और सभी लोग उसकी निन्दा करते हैं; अतः राजाको धर्मपूर्वक ही धन और विजय प्राप्त करनेकी इच्छा करनी चाहिये।

राजन् ! अधर्मके द्वारा पृथ्वीपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छा राजाको कभी नहीं करनी चाहिये। अधर्मसे विजय पाकर कौन राजा सुख पा सकता है ? अधर्मसे पायी हुई विजय तो अस्थायी और स्वर्गसे गिरानेवाली होती है। वह राजा और राज्य दोनोंहीको नष्ट कर देता है। जिस योद्धाका कवच टूट गया हो, जो 'मैं आपका ही हूँ' ऐसा कह रहा हो, जो हाथ जोड़े खड़ा हो या जिसने हथियार रख दिये हों उसे कैद कर ले, मारे नहीं। एक सालतक कैदमें रहनेके बाद उसका नया जन्म होता है और वह विजयी राजाके पुत्रके समान हो जाता है; इसलिये सालभर बाद उसे छोड़ देना चाहिये। यदि अपने पराक्रमसे किसी कन्याको हरकर लावे तो एक सालतक उससे कोई प्रश्न न करे। इसके बाद भी यदि वह पूछनेपर किसी दूसरेको वरनेकी इच्छा प्रकट करे तो उसे छोड़ दे। इसी प्रकार धन या दास-दासी जो कुछ अपने पराक्रमसे जीतकर लावे, उसे भी एक सालतक अपने पास रखकर फिर उसके स्वामीको सौंप दे। यदि चोर आदि अपराधियोंका धन छीना हो तो उसे भी अपने पास न रखे, सार्वजनिक कामोंमें लगा दे और यदि गौ छीनकर लाया हो तो ब्राह्मणको दे दे।

दोनों ओरकी सेनाओंके भिड़ जानेपर यदि उनके बीचमें संधि करानेकी इच्छासे ब्राह्मण आ जाय तो उसी समय युद्ध बंद कर देना चाहिये। यदि दोनोंमेंसे कोई भी पक्ष ब्राह्मणका तिरस्कार करता है तो वह सनातन कालकी मर्यादाको तोड़ता है; ऐसे क्षत्रियको जातिसे बाहर कर देना चाहिये और उसे क्षत्रियोंकी सभामें स्थान नहीं देना चाहिये, क्योंकि वह अधम है। जिस राजाको विजयकी इच्छा हो उसे ऐसे आचरणका अनुसरण नहीं करना चाहिये। जो विजय धर्मयुद्धसे प्राप्त होती है उससे बढ़कर कोई दूसरा लाभ नहीं है। आक्रमण करनेवाले राजाको विजय करनेके बाद उस देशके बिगड़े हुए लोगोंको समझा-बुझाकर और पारितोषिक देकर प्रसन्न कर लेना चाहिये। यही राजाओंकी प्रधान नीति है। यदि ऐसा न करके उनके साथ कड़ाईसे बर्ताव किया जाता है तो वे दुःखी होकर अपने देशसे चले जाते हैं और शत्रुओंके साथ मिलकर विजयी राजाकी विपत्तिके समयकी बाट देखने लगते हैं। जब आपत्तिका समय आता है तो वे शत्रुओंकी सहायता लेकर तुरंत ही उसे आ दबाते हैं।

जिस राजाका देश विस्तृत, धन-धान्यसम्पन्न और

राजभक्त होता है तथा जिसके सेवक और मन्त्री संतुष्ट रहते हैं, उसीकी जड़ मजबूत कही जाती है। जो राजा ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य तथा अन्यान्य शास्त्रज्ञोंका सत्कार करता है, वही लोक-गतिको जाननेवाला कहा जाता है। यही प्राचीन कालके धर्मज्ञ राजाओंका धर्म है। जिस राजाको अपने वैभवकी वृद्धिकी इच्छा हो उसे सब प्रकार युद्धकौशलसे ही विजय प्राप्त करनेकी इच्छा रखनी चाहिये, कपट या दम्भके द्वारा नहीं।



युद्धमें होनेवाली हिंसाके प्रायश्चित्त और वीर तथा कायरोंको प्राप्त होनेवाले लोकोंका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! क्षात्रधर्मसे बढ़कर पापपूर्ण तो कोई भी धर्म नहीं है; क्योंकि राजा तो कूच करने और युद्ध करनेके समय बहुत-से मनुष्योंकी हत्या कर डालता है। सो कृपा करके यह बतलाइये कि ऐसा कौन कर्म है जिसके द्वारा उसे पुण्यलोकोंकी प्राप्ति हो सकती है?

भीष्मजी बोले—राजन्! पापियोंको दण्ड और सत्पुरुषोंको आश्रय देनेसे तथा यज्ञानुष्ठान और दान करनेसे राजालोग सब प्रकारके दोषोंसे छूटकर शुद्ध हो जाते हैं। यह ठीक है कि विजयप्राप्तिकी लालसासे पहले तो राजालोग जीवोंको कष्ट ही पहुँचाते हैं, किंतु विजय प्राप्त कर लेनेपर फिर वे ही प्रजाकी उन्नति भी तो करते हैं। वे दान, यज्ञ और तपके प्रभावसे अपने सारे पाप नष्ट कर डालते हैं, फिर तो उनके पुण्यकी ही वृद्धि होती है। जिस प्रकार खेती निरानेवाला पुरुष खेतकी सफाई करनेके लिये घास-फूसको उखाड़ डालता है, किंतु इससे उस खेतीका कुछ भी नहीं बिगड़ता, उसी प्रकार जो शस्त्र चलाकर तरह- तरहसे सेनाको संतप्त कर रहा है, उस राजाके इस कर्मका यही पूरा-पूरा प्रायश्चित्त है कि फिर युद्धसे बचे हुए लोगोंकी उन्नति होने लगती है। जो राजा प्रजाको धनक्षय, प्राणनाश और दुःखोंसे बचाता है तथा लुटेरोंसे उसके प्राणोंकी रक्षा करता है, वह धनदायक और सुखप्रद माना जाता है। जो निर्भय होकर शत्रुओंपर बाणवर्षा करता है, उससे बढ़कर देवता लोग संसारमें और किसीको नहीं समझते। उसके शस्त्र संग्रामभूमिमें शत्रुकी त्वचाको जितने स्थानोंपर छेदते हैं, उसे सब प्रकारकी कामनाओंको पूरी करनेवाले उतने ही अविनाशी लोक प्राप्त होते हैं। उसके शरीरसे जो युद्धस्थलमें खून बहता है उसीके कारण वह सारे पापोंसे मुक्त हो जाता है। धर्मज्ञ पुरुष ऐसा मानते हैं कि क्षत्रिय युद्ध करनेमें जो तरह-तरहके दुःख सहता है, उनसे उसका तप ही बढ़ता है। विपक्षी वीरोंसे अपनी रक्षा चाहनेवाले डरपोक पुरुष तो वीरोंके पीछे रहा करते हैं, जो उनकी रक्षा करते हैं वे ही पुण्यके भागी होते हैं। वीर पुरुष शत्रुओंका सामना करता है, इसलिये वह स्वर्गके रास्तेपर बढ़ने लगता है तथा कायर अपने साथियोंको संकटमें डालकर मैदान छोड़कर भाग जाता है। जो क्षत्रिय ऐसा कुत्सित आचरण करे उसे लाठी और ढेलोंसे मार डाले, अथवा मुर्देकी तरह आगमें जला दे या पशुओंकी तरह पीट-पीटकर मार डाले। राजन्! क्षत्रियका घरके भीतर मरना अच्छा नहीं समझा जाता। जिन्हें शूरत्वका अभिमान होना चाहिये, उनकी यह दुर्बलता अधर्मरूप और निन्दाके योग्य है। जो क्षत्रिय रोगशय्यामें पड़कर दीनवदन और दुर्गन्धपूर्ण होकर 'हाय! बड़ा दुःख है, बड़ी पीड़ा है, मैं बड़ा पापी हूँ' इस प्रकार बड़बड़ाता है और अपने आश्रितोंको शोकाकुल कर देता है, वह निन्दनीय ही है। सच्चा क्षत्रियकुमार तो अपने जाति-भाइयोंके साथ शत्रुओंका संहार करते हुए उनके पैने शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न होकर ही मरना चाहता है। वह कभी युद्धमें पीठ नहीं दिखाता और अपने प्राणोंकी परवा न करके पूरी शक्तिसे शत्रुओंका सामना करता है। इससे उसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। ऐसा शूरवीर, यदि दीनताको पास नहीं फटकने देता तो शत्रुओंसे घिरकर कहीं भी मारा जाय, अक्षय लोकोंको ही प्राप्त करता है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! जो शूरवीर युद्धमें पीठ नहीं दिखाते और रणाङ्गणमें ही अपने प्राण त्यागते हैं उन्हें किन लोकोंकी प्राप्ति होती है—यह बतानेकी कृपा करें।

भीष्मजी बोले—राजन्! इस विषयमें यह पुरातन इतिहास प्रसिद्ध है, जिसमें राजा प्रतर्दन और मिथिलेश्वर जनकके युद्धका उल्लेख है। उस समय सब प्रकारके तत्त्वोंको जाननेवाले मिथिलाधिपतिने अपने योद्धाओंको स्वर्ग और नरक दिखलाते हुए इस प्रकार कहा था, 'वीरो! देखो, ये तेजोमय लोक संग्राममें निर्भय होकर जूझनेवालोंको मिलते हैं। ये सभी प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं और देखो, ये नरक दिखायी दे रहे हैं। जो लोग युद्धसे भागते हैं, उनकी इस लोकमें सदाके लिये अपकीर्ति होती है और अन्तमें इन्हींमें जाना पड़ता है। इन्हें देखनेके बाद अब तुम

प्राणोंका मोह छोड़कर शत्रुओंको परास्त करो, युद्धमें पीठ दिखाकर निराधार नरकमें न पड़ो। शूरवीरोंको स्वर्गका सुन्दर द्वार तो प्राणोंका मोह त्यागनेसे ही मिलता है।'

राजा जनकके इस प्रकार कहनेपर मैथिल वीरोंने शत्रुओंको परास्त करके अपने स्वामीको प्रसन्न किया। अतः धीर पुरुषको सर्वदा संग्राममें आगे रहना चाहिये। गजारोहियोंके बीचमें रथियोंको नियुक्त करे, रथियोंके बाद अश्वारोहियोंको रखे और उनके बीचमें शस्त्रादिसे सुसज्जित पदातियोंकी सेना खड़ी करे। जो राजा अपनी सेनाका इस प्रकार व्यूह बनाता है, वह सर्वदा अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त करता है। इसलिये तुम्हें भी सर्वदा अपनी सेनाका इसी प्रकार संगठन करना चाहिये। जो योद्धा रणभूमिसे एकदम भाग जाते हैं, वीरपुरुष उनपर प्रहार करना नहीं चाहते। इसलिये भागते हुए योद्धाओंके बहुत पीछे न पड़े। स्थावर पदार्थ चलनेवाले जीवोंके अन्न हैं, बिना दाढ़ोंके प्राणी दाढ़वालोंके अन्न हैं, जल प्यासोंका अन्न है और कायर पुरुष शूरवीरोंके अन्न हैं। इसीसे भयभीत पुरुष हाथ जोड़े बार-बार प्रणाम करते वीरोंकी शरणमें आते हैं। यह सारा लोक बालकके समान शूरवीरकी भुजाओंपर टिका हुआ है। इसलिये वीरपुरुषका सदा ही मान होना चाहिये। शौर्यसे बढ़कर तीनों लोकोंमें कोई वस्तु नहीं है। शूरवीर ही सबका पालन करता है और उसीके आश्रित यह सारा जगत् है।



सैन्यसंचालनकी विधि, योद्धाओंके लक्षण और विजयके चिह्नोंका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भरतश्रेष्ठ ! विजयाभिलाषी राजा जिस प्रकार कायरोंको उत्साहित करनेके लिये धर्मका थोड़ा-सा उल्लङ्घन करके भी अपनी सेनाको ले जाते हैं, वह मुझे बताइये।

भीष्मजी बोले—राजन् ! किन्हींका मत है कि धर्म सत्यसे टिका हुआ है—कोई कहते हैं—इसका आधार युक्तिवाद है, किन्हींके मतमें सत्पुरुषोंका आचरण ही इसका आधार है और कोई इसे साधनाधीन मानते हैं। लोकमें कार्यसाधनके लिये सरल और कुटिल दो प्रकारकी बुद्धियोंसे काम लिया जाता है। राजाको इन दोनोंहीका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जहाँतक सम्भव हो जान-बूझकर कुटिल बुद्धिसे काम न ले, किंतु यदि शत्रु चढ़ आये हों तो उसके द्वारा उन्हें दबाकर आत्मरक्षा कर ले। यदि शत्रुपर चढ़ाई करनी हो तो लोहेकी कीलें, कवच, चमर, पैनाये हुए शस्त्र, पीले और लाल रंगके कवच, रंग-बिरंगी ध्वजा-पताकाएँ, ऋष्टि, तोमर, तलवार, फरसे, भाले और ढाल—इन्हें बहुत बड़ी संख्यामें तैयार करावे, यदि शस्त्र तैयार हों और योद्धा भी शत्रुपर विजय पानेपर तुले हुए हों तो चैत्र या मार्गशीर्षके महीनोंमें चढ़ाई करना अच्छा होता है; क्योंकि उस समय खेती पक जाती है, पृथ्वीपर जलकी प्रचुरता होती है और ऋतु भी न अधिक ठंडी होती है, न अधिक गर्म। इसलिये उसी समय चढ़ाई करे अथवा जिस समय शत्रु आपत्तिमें जान पड़े उस समय उसपर आक्रमण कर दे। शत्रुके दबानेके लिये ये ही अवसर अच्छे माने गये हैं। सेनाके कूचके लिये वह रास्ता अच्छा होता है जो चौरस हो और जिसमें जल और घासका सुपास हो। वनमें विचरनेवाले दूतोंको इसका खूब पता रहता है। इसलिये विजयाभिलाषी वीर सेनाका पथप्रदर्शन करनेमें उन्हींको नियुक्त करते हैं। सेनाके आगे कुलीन और शक्तिशाली योद्धाओंकी टुकड़ी रखे।

शत्रुसे बचाव करनेके लिये किला ऐसा होना चाहिये जिसके चारों ओर जलसे भरी हुई खाई हो और ऊँचा परकोटा हो। इससे शत्रुओंके आक्रमणसे रक्षा हो सकती है। युद्ध-कुशललोग छावनी डालनेके लिये कई बातोंको देखते हुए मैदानकी अपेक्षा जंगलको अच्छा मानते हैं। वहाँ थोड़े ही बीचमें सेनाका पड़ाव डाला जा सकता है। इसके सिवा वहाँ पदातियोंको छिपानेका, शत्रुपर आक्रमण करनेका और विपत्तिके समय छिप जानेका भी सुभीता रहता है।

योद्धाओंको चाहिये कि सप्तर्षियोंको पीछे रखकर पर्वतके समान अविचलभावसे युद्ध करें। सेनाको इस प्रकार खड़ी करे जिससे सूर्य, वायु और शुक्र अपने पीछेकी ओर रहें। यदि ये सब एक ओर न पड़ते हों, तो इनमें पूर्व-पूर्व श्रेष्ठ है, उसे ही अपने पीछे रखे। अश्वारोही सेनाके लिये युद्ध-विद्याविशारदोंने वह मैदान अच्छा बताया है जिसमें कीचड़, जल, बाँध और ढेले न हों; जहाँ कीचड़ और गड्ढे न हों वह भूमि रथसेनाके लिये अच्छी होती है; जहाँ ऊँचे-नीचे वृक्ष तथा जल हो वह स्थान गजारोहियोंके लिये ठीक होता है और जो भूमि दुर्गम, ऊँची-नीची, बाँस और बेंतोंसे भरी हुई तथा पहाड़ी और जंगली हो वह पैदल सेनाके लिये अच्छी मानी गयी है। जिस सेनामें रथ और घोड़ोंकी अधिकता हो उसके लिये सूखाके दिन अच्छे रहते हैं और जिसमें गजारोही और पैदलोंकी बहुलता हो उसके लिये वर्षाकाल ठीक रहता है। इन सब गुणोंको ध्यानमें रखकर

देश और कालके अनुसार व्यवहार करे। जो राजा इन सब बातोंपर विचारकर शुभ तिथि और नक्षत्रमें चढ़ाई करता है वह अपनी सेनाका ठीक संचालन करते हुए विजय प्राप्त करता है।

जो लोग सो रहे हों, प्यासे हों, थक गये हों अथवा इधर-उधर भाग रहे हों उनपर चोट न करे। शस्त्र और कवच उतार देनेके बाद, युद्धस्थलसे जाते समय, पानी पीते तथा भोजन करते समय भी किसीको न मारे। इसी प्रकार जो बहुत घबराये हुए हों, पागल हो गये हो घायल हों, दुर्बल हो गये हों, असावधान हों, दूसरे किसी काममें लगे हों, बाहर घूमते हों, छावनीकी ओर भाग रहे हों, उनपर भी प्रहार न करे।

जो शत्रुकी सेनाको छिन्न-भिन्न कर सकते हों और अपनीको संगठित करनेकी शक्ति रखते हों, उनको अपने साथ भोजन कराना चाहिये और साथ ही रखना चाहिये तथा दुगुना वेतन देना चाहिये। सेनामें कुछ लोगोंको तो दस-दस सैनिकोंका नायक बनावे और कुछको सौका तथा फिर एक हजार वीरोंका अध्यक्ष नियुक्त करे। प्रधान-प्रधान वीरोंको इकट्ठा करके यह प्रतिज्ञा करावे कि हम संग्राममें विजय प्राप्त करनेके लिये अन्ततक एक दूसरेको नहीं छोड़ेंगे। उन्हें यह भी समझा दे कि युद्धके मैदानसे भागनेमें कई प्रकारके दोष हैं। इससे अपने प्रयोजनकी हानि, भागते समय शत्रुके हाथसे वध और अपयश तो होते ही हैं, लोगोंके मुखसे तरह-तरहकी अप्रिय और दुःखदायिनी बातें भी सुननी पड़ती हैं। जो लोग युद्धमें पीठ दिखाते हैं वे तो नामके ही मनुष्य हैं। वे केवल योद्धाओंकी संख्या बढ़ानेवाले ही हैं, उन्हें इहलोक या परलोकमें कहीं भी सुख नहीं मिलता। इसलिये निश्चय करो कि हम स्वर्गकी कामनासे संग्राममें अपने प्राण होम देंगे। बस, या तो विजय प्राप्त करेंगे या युद्धमें मरकर सद्गति पायेंगे। जो लोग इस प्रकार शपथ करके प्राणोंका मोह त्याग देते हैं वे निर्भय होकर शत्रुकी सेनामें घुस जाते हैं।

सेनाकी व्यूहरचना करते समय सबसे आगे ढाल-तलवार-धारी पुरुषोंकी टुकड़ी रखे, पीछेकी ओर रथियोंको खड़ा करे और बीचमें परिवारके लोगोंको रखे। शत्रुओंपर आक्रमण करनेके लिये जो पुराने सैनिक हों वे आगे रहें और अपने पीछे चलनेवाले पदातियोंका उत्साह बढ़ावें। उन्हें प्रयत्नपूर्वक डरपोकोंको भी उत्साहित करना चाहिये। अथवा उन्हें केवल सेनाका विशेष समुदाय दिखानेके लिये ही साथ रखें। यदि थोड़े सैनिकोंको बहुतोंके साथ युद्ध करना पड़े तो उन्हें सूचीमुख नामका व्यूह बनाना चाहिये और हाथ उठाकर इस प्रकार कोलाहल करना चाहिये—'देखो, देखो, वैरी भाग रहे हैं। हमारी मित्रसेना आ गयी है, बेखटके चोट किये जाओ।' इस प्रकार भीषण शब्द करते हुए साहसके साथ शत्रुपर प्रहार करें। जो लोग सेनाके मुहानेपर हों उन्हें गर्जन-तर्जन और किलकिला शब्द करते हुए क्रकच, नरसिंहे, भेरी, मृदङ्ग और ढोल आदि बाजे बजवाने चाहिये।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! युद्ध करनेमें कैसे स्वभाव, कैसे आचरण और कैसे रूपवाले योद्धा ठीक रहते हैं तथा उनके कवच और शस्त्रास्त्र भी कैसे होने चाहिये ?

भीष्मजी बोले—राजन् ! शस्त्र और वाहन तो योद्धाओंके देश और कुलके अनुरूप ही होने चाहिये तथा अपने कुलाचारके अनुसार ही वे युद्धकार्यमें प्रवृत्त हुआ करते हैं। गान्धार और सिन्धुसौवीर देशोंके योद्धा दाँतोंवाले प्राससे युद्ध करते हैं। वे बड़े निडर और बलवान् होते हैं। उशीनरदेशके वीर सभी प्रकारके शब्दोंमें कुशल और बड़े बलशाली होते हैं। पूर्वी योद्धा गजयुद्धमें पारंगत होते हैं, वे कपटयुद्ध करना खूब जानते हैं। यवन, काम्बोज और मथुराकी ओरके योद्धा मल्लयुद्धमें पक्के होते हैं और दक्षिणी वीर तलवार चलाना अच्छा जानते हैं। जिन योद्धाओंकी वाणी और नेत्र सिंह या शार्दूलके समान हों, वे बड़े लड़ाके होते हैं। जिनका शब्द मेघके समान, मुख क्रोधयुक्त, शरीर ऊँटकी तरह और नाक तथा जीभ टेढ़ी हों, वे बहुत दूरतक दौड़नेवाले और दूरहीसे शत्रुपर निशाना छोड़नेवाले होते हैं। जिनका शरीर बिलावकी तरह बाँका और देहके बाल और खाल पतले होते हैं, वे बड़े शीघ्रगामी, चञ्चल और कठिनतासे काबूमें आनेवाले होते हैं। जिनके शरीर गठीले, छाती चौड़ी और अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुडौल होते हैं, वे वीर युद्धका धौंसा सुनते ही क्रोधमें भर जाते हैं तथा उन्हें युद्ध करनेमें ही आनन्द आता है। जिनके नेत्र तिरछे, ललाट ऊँचे और नीचेके ओंठ पतले होते हैं, जिनकी भुजाओंपर वज्रका और अँगुलियोंपर चक्रका चिह्न होता है तथा जिनकी नाड़ियाँ दिखायी देती हैं वे युद्धके आरम्भमें ही बड़े वेगसे शत्रुकी सेनामें घुस जाते हैं तथा मतवाले हाथियोंके समान बड़े दुर्धर्ष होते हैं। जिनके बालोंके अग्रभाग पीले और छितराये हुए, पसलियाँ, ठोढ़ी और मुँह चौड़े तथा कंधे ऊँचे होते हैं, गरदन मोटी और पिंडली भारी होती है तथा सिर गोल और स्वर कठोर होता है, वे बड़े क्रोधी होते हैं और युद्धमें शत्रुपर एकदम टूट पड़ते हैं। जिन्हें धर्मका ज्ञान नहीं होता, जो अभिमानी, उग्र तथा देखनेमें भयंकर होते हैं, ऐसे मनुष्य

प्रायः नीच जातिके हुआ करते हैं, वे भी जीने-मरनेकी परवा छोड़कर युद्ध करते हैं, कभी पीछे पैर नहीं हटाते। उन्हें सेनामें सदा आगे रखना चाहिये। वे साहसके साथ शत्रुओंकी चोट सहते और उनपर भी प्रहार करते हैं। उन अधर्मी पुरुषोंको मर्यादापालनका खयाल नहीं रहता, वे कभी-कभी अकारण ही राजापर भी बिगड़ उठते हैं; अतः उन्हें मीठी बातोंसे समझा-बुझाकर ही काबूमें रखना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! सेनाकी विजयके शुभ लक्षण कौन-कौन-से हैं? मैं उन्हें जानना चाहता हूँ।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! जिन शुभ लक्षणोंको देखकर सेनाके विजयिनी होनेका अनुमान किया जाता है, उन्हें बताता हूँ, सुनो—दैवके प्रकोपसे ही मनुष्योंपर कालकी प्रेरणा होती है; इस बातको अपनी ज्ञानदृष्टिसे जानकर विद्वान् लोग उसका प्रायश्चित्त करते हैं। जप-होम आदि माङ्गलिक कर्मोंका अनुष्ठान करके दैवी उपद्रवको शान्त कर देते हैं। जिस सेनाके वाहन और सैनिक प्रसन्न एवं उत्साहयुक्त दिखायी दें, उसकी विजय अवश्य होती है। यदि सेनाकी रणयात्राके समय पीछेसे मंद-मंद हवा चले, सामने इन्द्रधनुषका उदय हो, धूप निकली हो, थोड़ी-थोड़ी देरमें बादलोंकी छाया होती रहे तथा गीदड़, गिद्ध और कौए अनुकूल दिशामें आ जायँ तो विजय मिलनेमें संदेह नहीं रहता। बिना धुएँकी ऊपर उठती हुई आगकी ज्वाला अथवा दाहिनी ओर जाती हुई लपटोंका दिखायी देना तथा होमकी पवित्र सुगन्धका आना—ये भावी विजयके शुभ चिह्न हैं। शङ्खोंकी गम्भीर ध्वनि, रणभेरीकी ऊँची आवाज और योद्धाओंका अनुकूल रहना भी भविष्यमें होनेवाली विजयके शुभ लक्षण हैं। सेनाके कूच करते समय मृगोंके झुंडका पीछे या बायीं ओर दिखायी देना तथा युद्धकालमें दाहिने रहना शकुन है, किन्तु सामनेकी ओर दिखायी देना अच्छा नहीं है। हंस, क्रौञ्च, शतपत्र और नीलकण्ठ आदि पक्षी मङ्गलसूचक शब्द करते हों और सैनिक उत्साह-सम्पन्न एवं प्रसन्न दिखायी दें तो भावी विजयका अनुमान होता है। जिनकी सेना तरह-तरहके शस्त्र, यन्त्र, कवच तथा ध्वजाओंसे सुशोभित हो, जिनके लड़नेवाले जवानोंके चेहरेपर प्रसन्नताकी झलक हो तथा दुश्मनोंको जिनकी फौजकी ओर देखनेका भी साहस न होता हो, वे निश्चय ही अपने शत्रुओंको परास्त करते हैं। जिनके सैनिक स्वामीकी सेवामें उत्साह रखनेवाले, अहंकाररहित, आपसमें एक-दूसरेका हित चाहनेवाले तथा सदाचारका पालन करनेवाले हों, उनकी होनेवाली विजयका यही शुभ लक्षण है। जब योद्धाओंके मनको प्रिय लगनेवाले शब्द, स्पर्श तथा सुगन्ध प्राप्त हों और उनके भीतर धैर्यका संचार हो रहा हो तो इसे विजयका द्वार समझना चाहिये। यदि कौआ युद्धमें प्रवेश करते समय दाहिने भागमें और प्रविष्ट हो जानेके बाद वामभागमें शब्द करता हुआ आ जाय तो शुभ है। पीछेकी ओर होनेसे भी वह कार्यकी सिद्धि करता है, किंतु सामने होनेपर विजयमें बाधा डालता है। युधिष्ठिर! चतुरंगिणी सेना इकट्ठी कर लेनेके बाद भी तुम्हें पहले सामनीतिके द्वारा शत्रुसे संधि करनेका ही प्रयत्न करना चाहिये। युद्धमें मार-काट करनेके बाद जो विजय मिलती है, वह उत्तम नहीं समझी जाती। वह भी अचानक या दैवेच्छासे ही प्राप्त होती है—उसका पहलेसे कोई निश्चय नहीं रहता।

इसके सिवा बड़ी सेनामें जब भगदड़ पड़ जाती है तो उसे रोकना कठिन हो जाता है। जैसे मृगोंके झुंडमेंसे एकके भागनेपर सब भागने लगते हैं, यही दशा बड़ी सेनाकी भी होती है। उसमें कितने ही बलवान् वीर क्यों न हों, कुछ लोग भाग रहे हैं—इतना ही देखकर सब भागने लगते हैं; यद्यपि उन्हें भागनेका कारण मालूम नहीं रहता है। किंतु अच्छे कुलमें उत्पन्न, परस्पर संगठित एवं राजाद्वारा सम्मानित हुए पाँच-छः वीर भी यदि मरने-मारनेका निश्चय करके युद्धमें डटे रहें तो वे शत्रुओंपर विजय पा जाते हैं। जबतक संधि होनेकी सम्भावना हो तबतक युद्ध नहीं छेड़ना चाहिये। पहले सामनीतिका आश्रय लेकर शत्रुओंको समझानेका प्रयत्न करे, इससे काम न चले तो भेदनीतिके अनुसार उनमें फूट डालनेकी कोशिश करे, इसमें भी सफलता न मिले तो दाननीतिका प्रयोग करे—धन देकर शत्रुके सहायकोंको वशमें करनेका प्रयास करे, जब किसी तरह युद्ध रोकनेमें कामयाबी न हो तो अन्तमें युद्ध करना चाहिये।

कुन्तीनन्दन! सत्पुरुषोंको ही क्षमा करना आता है, दुष्टोंको नहीं। क्षमा करने और न करनेका प्रयोजन बताता हूँ, इसे समझो। जो राजा शत्रुओंको जीत लेनेके बाद उनके अपराध क्षमा कर देता है, उसका यश बढ़ता है। शत्रु भी उसपर विश्वास करने लगते हैं। राजाको चाहिये कि वह पुत्रकी ही भाँति अपने शत्रुको भी बिना क्रोध किये ही वशमें करे, उसका विनाश न करे। युधिष्ठिर! राजा यदि उग्र-स्वभावका होता है तो सब प्राणी उससे द्वेष करने लगते हैं और कोमल हुआ तो सब उसकी अवहेलना करते हैं, इसलिये उसे आवश्यकतानुसार उग्रता और कोमलता दोनोंसे काम लेना चाहिये। शत्रुपर प्रहार करनेसे पहले और प्रहार करते समय भी उससे मीठे वचन बोले। प्रहारके बाद भी शोक प्रकट करते हुए उसके प्रति दया दिखावे और शत्रुको

सुनाकर कहे—'ओह ! इस युद्धमें मेरे सिपाहियोंने जो इतने वीरोंको मार डाला है, यह मुझे अच्छा नहीं लगा—इससे मैं प्रसन्न नहीं हूँ। मैंने बारंबार मना किया, तो भी इन्होंने मेरे कहनेपर ध्यान नहीं दिया। उफ ! ये वीर तो किसी तरह मारने-योग्य नहीं थे। इन्होंने संग्रामसे कभी पीछे पैर नहीं हटाये; ऐसे सत्पुरुष इस संसारमें दुर्लभ हैं। मेरे जिन सैनिकोंने इन शूरवीरोंका वध किया है, उनके द्वारा मेरा बड़ा अप्रिय कार्य हुआ है।'

शत्रुपक्षके बचे हुए वीरोंके सामने इस प्रकार खेद प्रकट करके एकान्तमें जानेपर अपने बहादुर सैनिकोंकी प्रशंसा करे। जिन्होंने शत्रुवीरोंका वध किया हो, उनका विशेष सम्मान करे। इसी तरह शत्रुको मारनेवाले अपने पक्षके वीरोंमेंसे जो घायल हों अथवा मारे गये हों, उनकी हानिके लिये दुःख प्रकट करते हुए विलाप करे। उनका हाथ पकड़कर धैर्य दे। ऐसा करनेसे सब लोगोंकी सहानुभूति प्राप्त होती है। इस प्रकार जो सब अवस्थाओंमें साम आदि नीतियोंसे काम लेता है, वह धर्मज्ञ राजा सबका प्रिय होता है, उसको किसीसे भय नहीं रहता; सब प्राणी उसका विश्वास करने लगते हैं। विश्वासपात्र हो जानेपर वह इच्छानुसार राष्ट्रका उपभोग कर सकता है। अतः जो पृथ्वीका राज्य भोगना चाहता हो, उस राजाको चाहिये कि सबका विश्वास भाजन बने और भूमण्डलकी सब ओरसे रक्षा करे।



कालकवृक्षीय मुनिका उपदेश—राज्य, खजाना और सेना आदिसे वंचित हुए असहाय राजाका कर्तव्य

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! यदि राजा धर्मात्मा हो और उद्योग करते रहनेपर भी धन न पा सके, उस अवस्थामें मन्त्री उसे कष्ट देने लगें और उसके पास खजाना तथा सेना भी न रह जाय तो सुख चाहनेवाले उस राजाको क्या करना चाहिये ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! तुम्हारे इस प्रश्नके उत्तरमें मैं राजकुमार क्षेमदर्शीके इतिहासको दुहराता हूँ; तुम इसे ध्यान देकर सुनो। प्राचीन कालकी बात है, एक बार कोसलराजकुमार क्षेमदर्शीको बड़ी कठिन विपत्तिका सामना करना पड़ा। उसकी सैनिकशक्ति नष्ट हो गयी। उस समय वह कालकवृक्षीय मुनिके पास गया और उनके चरणोंमें प्रणाम करके उसने विपत्तिसे छुटकारा पानेका उपाय पूछा।

राजकुमारने कहा—ब्रह्मन् ! मनुष्य धनका भागीदार समझा जाता है। किंतु मेरे-जैसा पुरुष बारंबार उद्योग करनेपर भी यदि राज्य न पा सके तो उसे क्या करना चाहिये ? आत्मघात करना, दीनता दिखाना, दूसरोंकी शरणमें जाना तथा इसी तरहके और भी खोटे काम करना तो मैं चाहता नहीं, इनके अतिरिक्त क्या उपाय करना चाहिये ? मेरे पास बहुत धन था, मगर सब सपनेकी सम्पत्तिकी तरह नष्ट हो गया। मेरी समझमें जो अपनी भारी सम्पत्तिका त्याग कर देते हैं, वे बड़ा मुश्किल काम करते हैं। मेरे पास तो अब धनके नामपर कुछ रहा ही नहीं, फिर भी उसका मोह नहीं छोड़ पाता। मैं राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट, दीन और आर्त हूँ; इस शोचनीय अवस्थामें आ पड़ा हूँ। अब जिस उपायसे मुझे सुख और शान्ति नसीब हो, उसका मुझे उपदेश दीजिये।

कोसलराजकुमारके इस प्रकार पूछनेपर महातेजस्वी मुनिवर कालकवृक्षीयने उन्हें यों उत्तर दिया—'राजकुमार ! तुम जिस किसी वस्तुको ऐसा मानते हो कि 'यह है' उसको पहलेसे ही समझ लो कि नहीं है। जो बुद्धिमान् ऐसी समझ रखता है, उसे कठिन-से-कठिन आपत्तिमें पड़नेपर भी शोक नहीं होता। जो वस्तु पहले बहुत बड़े समुदायके अधिकारमें रह चुकी है तथा जो एकके बाद दूसरेकी होती आयी है; वह सब-की-सब तुम्हारी भी नहीं है—इस बातको अच्छी तरह समझ लेनेपर किसको चिन्ता होगी ? जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका नाश भी होता है; जो उत्पन्न हो चुकी है, वह वस्तु नष्ट भी होगी ही। शोकमें इतनी शक्ति नहीं है कि वह उसे नष्ट होनेसे बचा ले, ऐसी दशामें शोक करना व्यर्थ है। राजकुमार ! बताओ तो सही, तुम्हारे पिता आज कहाँ हैं ? तुम्हारे पितामह अब कहाँ चले गये ? आज तो न तुम उन्हें देखते हो, न वे तुम्हें देख पाते हैं। यह शरीर अनित्य है, इस बातको तुम भी समझते हो, फिर क्यों उन लोगोंके लिये शोक करते हो ? तनिक बुद्धिसे काम लेकर सोचो तो, एक दिन तुम भी नहीं रहोगे। मैं, तुम, तुम्हारे मित्र और शत्रु—इनमेंसे कोई भी रहनेवाला नहीं है, एक दिन सबका अन्त होना निश्चित है। आज जिनकी उम्र बीस और तीस वर्षोंकी है, वे तब आनेवाले सौ वर्षोंके पहले ही इस दुनियासे उठ जायँगे। ऐसी दशामें भी मनुष्य यदि बहुत

बड़ी सम्पत्तिको छोड़ न सके तो कम-से-कम उसकी ममताका तो त्याग कर दे। 'यह चीज मेरी नहीं है' ऐसा समझकर अपना कल्याण तो करे। जो वस्तु भविष्यमें मिलनेवाली हो, उसे यही माने कि 'वह मेरी नहीं है' तथा जो मिलकर नष्ट हो चुकी हो, उसके विषयमें भी यही भाव रखे कि 'वह मेरी नहीं थी।' प्रारब्ध ही सबसे प्रबल है, वही देता है और वही छीन लेता है, ऐसी धारणा रखनेवाले मनुष्य ही विद्वान् हैं, उनका ही सत्पुरुषोंमें स्थान है।'

राजकुमारने कहा—मैं तो यही समझता हूँ कि सारा राज्य मुझे अनायास ही दैवेच्छासे प्राप्त हो गया था और अब महाबली कालने वह सब-का-सब छीन लिया है। इसीलिये अब जहाँ जो कुछ मिल जाता है, उसीसे मैं अपना जीवन-निर्वाह कर रहा हूँ।

मुनिने कहा—राजकुमार! यथार्थ तत्त्वका निश्चय हो जानेपर मनुष्य किसी भी बातके लिये भूत और भविष्यको लेकर शोक नहीं करता। तुम्हें भी ऐसा ही करना चाहिये। क्या तुम दैववश जो कुछ मिल जाय उससे उतने ही आनन्दके साथ रह सकोगे, जैसा पहले रहते थे? आज राज्यलक्ष्मीसे वञ्चित होनेपर भी क्या तुम शुद्ध हृदयसे शोकका परित्याग कर दोगे? पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंके फलस्वरूप जब मनुष्यकी भोग-सामग्री छिन जाती है तो अपनी दुर्बुद्धिके कारण वह विधाताको कोसने लगता है और स्वतः प्राप्त हुए परिमित पदार्थोंसे उसे संतोष नहीं होता। संसारके मनुष्य प्रायः ईर्ष्या और अहंकारसे भरे होते हैं; किंतु तुम तो ऐसे नहीं हो? सहसा दूसरोंकी सम्पत्ति देख तुम्हारे मनमें डाह तो नहीं होती? योगधर्मको जाननेवाले धर्मात्मा एवं धीर मनुष्य अपनी राज्यलक्ष्मी तथा पुत्र-पौत्रोंका भी स्वयं ही त्याग कर देते हैं। यद्यपि धन परम दुर्लभ है तथापि यह अस्थिर है, ऐसा समझकर साधारण मनुष्य भी इसका परित्याग कर देते हैं। परंतु तुम तो समझदार हो, तुम्हें मालूम है कि भोग प्रारब्धके अधीन और अस्थिर हैं, तो भी नहीं चाहने योग्य विषयोंको चाहते हो और उनके लिये अत्यन्त दीनता दिखाते हुए शोक कर रहे हो! भैया! इन कामनाओंको छोड़ो और उस बुद्धिको जाननेका प्रयत्न करो, जिससे जीवका कल्याण होता है। जो तुम्हें अर्थके रूपमें प्रतीत हो रहे हैं, ये सब-के-सब अनर्थ ही हैं। तुम अर्थोंको अनर्थरूप ही समझो। इन भोग-पदार्थोंके पीछे कितने ही लोगोंका सारा धन नष्ट हो जाता है। दूसरे लोग भोगजनित सुखको अक्षय मानकर उसके ही लिये धनकी इच्छा करते हैं। कितने ही मनुष्य धन-सम्पत्तिमें इस तरह रम जाते हैं कि उन्हें उससे बढ़कर सुखका साधन और कुछ जान ही नहीं पड़ता। किंतु बड़े कष्टसे कमाया हुआ उनका वह अभीष्ट धन यदि नष्ट हो जाता है तो उनके सम्मानका सारा किला ही ढह जाता है। उस समय उन्हें धनसे वैराग्य होता है। कुछ ही मनुष्य ऐसे हैं, जो अपना वास्तविक कल्याण चाहते हैं और परलोकमें सुख पानेकी इच्छासे लौकिक भोगोंसे विरक्त हो धर्मकी शरण लेते हैं। कुछ तो ऐसे हैं, जो धनके लोभमें पड़कर अपने प्राणतक गँवा देते हैं; वे धनके सिवा जीवनका दूसरा कोई उद्देश्य ही नहीं समझते। उनकी दीनता और मूर्खता तो देखो, जो इस अनित्य जीवनके लिये मोहवश धनमें ही दृष्टि गड़ाये रहते हैं। संग्रहका अन्त विनाश है, जीवनका अन्त मरण है और संयोगका अन्त वियोग है—यह जानकर भी कौन इनमें अपना मन लगायगा? राजन्! चाहे मनुष्य धनको छोड़ता है या धन मनुष्यको छोड़ देता है; एक-न-एक दिन ऐसा अवश्य होता है—इस बातको जाननेवाला कौन-सा मनुष्य है, जो धनके लिये चिन्ता करेगा?

यह आपत्ति सिर्फ तुम्हारे ही ऊपर नहीं आयी है, दूसरोंके भी धन और मित्र नष्ट होते हैं—ऐसा जानकर अपने मन, वाणी और इन्द्रियोंपर काबू रखो—घबराओ मत! तुम तो उत्तम ज्ञानसे परितृप्त हो, तुम्हारे-जैसे व्यक्तिको शोक नहीं करना चाहिये। तुम्हारी इच्छा बहुत थोड़ी है। तुममें चञ्चलताका दोष नहीं है, तुम्हारा हृदय कोमल और बुद्धि एक निश्चयपर डटी रहनेवाली है तथा तुम जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी हो; तुम्हारे-जैसा मनुष्य शोक नहीं करता। तुम्हें कपटसे भरी हुई और शास्त्रके विरुद्ध वृत्तिका आश्रय नहीं लेना चाहिये। क्रूरताका भी त्याग करना चाहिये। ये बड़ी ही दूषित और पापपूर्ण वृत्तियाँ हैं, कायर मनुष्य ही इनका आश्रय लेते हैं। तुम तो फल-मूलसे ही जीविका चलाते हुए अकेले वनमें विचरते रहो! वाणीका संयम करके मनको वशमें रखो और सम्पूर्ण प्राणियोंके हित-साधनमें लग जाओ। सबपर दया करो। जंगली फल-मूलोंसे ही संतुष्ट होकर जंगलोंमें अकेले विचरना ही विद्वान्‌के योग्य वृत्ति है।



कालकवृक्षीय मुनिका कूटनीति बतलाना और क्षेमदर्शीका राजा जनकसे मेल करा देना

मुनिने कहा—राजकुमार ! अब मैं तुम्हें राज्यकी प्राप्तिके लिये एक नीति बता रहा हूँ, यदि इसके अनुसार कार्य करोगे तो तुम्हें पुनः महान् राज्य प्राप्त हो सकता है। काम, क्रोध, हर्ष, भय और दम्भ छोड़कर शत्रुकी भी सेवा करो, उसके सामने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाओ। उत्तम तथा विशुद्ध व्यवहारसे उसका विश्वास-पात्र बनो। विदेहराज जनक यद्यपि तुम्हारे शत्रु हैं तथापि यदि तुम उन्हें प्रसन्न कर सके तो तुम्हें बहुत-सा धन देंगे; क्योंकि वे सत्यप्रतिज्ञ हैं। यदि ऐसा हुआ तो तुमको बहुत-से शुद्ध हृदयवाले, दुर्व्यसनोंसे रहित तथा उत्साही सहायक मिल जायँगे। जो मनुष्य शास्त्रके अनुकूल आचरण करता हुआ अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखता है, वह अपना तो उद्धार करता ही है, प्रजाको भी प्रसन्न कर लेता है। राजा जनक बड़े धीर और श्रीसम्पन्न हैं, जब वे तुम्हारा सत्कार करेंगे तो सभी लोग तुमपर विश्वास करने लगेंगे। फिर तुम मित्रोंकी सेना इकट्ठी करना और अच्छे-अच्छे मन्त्रियोंसे सलाह लेना। इसके बाद शत्रुके शत्रुसे मिलकर शत्रुसेनाका विध्वंस करा डालना।

अथवा अत्यन्त दुर्लभ उत्तम पदार्थों, स्त्रियों, ओढ़ने-बिछानेके सुन्दर वस्त्रों, अच्छे-अच्छे पलंग, आसन और सवारियों, बहुत धन खर्च करके बनवाये हुए महलों, तरह-तरहके रसों, सुगन्धित पदार्थों और फलोंमें शत्रुको आसक्त करो तथा उसमें भाँति-भाँतिके पशुओं और पंछियोंको पालनेका भी शौक पैदा करो; जिससे इन व्यसनोंमें अधिक धन खर्च करनेके कारण शत्रुकी आर्थिक शक्ति नष्ट हो जाय।

बुद्धिमानोंके विश्वास-भाजन बनकर शत्रुके राज्यमें भ्रमण करो और कुत्ते, हिरन तथा कौओंकी तरह चौकन्ने रहकर मित्रधर्मका पालन करो।* शत्रुसे इतने बड़े-बड़े कार्य प्रारम्भ कराओ जिनका पूरा होना बहुत कठिन हो। बलवानोंके साथ उसका विरोध करा दो। बड़े-बड़े बगीचे, बहुमूल्य पलंग, बिछौने तथा भोग-विलासके अन्य कामोंमें खर्च कराकर सारा खजाना खाली करा दो। शत्रुका कोष क्षीण होते ही वह वशमें आ जाता है। हो सके तो वैरीको विश्वजित् यज्ञमें लगाकर उसके द्वारा दक्षिणारूपमें सर्वस्वका दान करवा दो। इससे तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। फिर किसी मोक्ष-धर्मके ज्ञाता पुरुषको बुलाकर शत्रुके समक्ष कुछ ऐसा उपदेश कराओ, जिससे वह राज्यके परित्यागकी इच्छा करे। यदि उसका शरीर नीरोग हो तो सिद्ध औषधका प्रयोग करके उसको मरवा डालो। उसके घोड़े, हाथी और मनुष्योंको भी कृत्रिम उपायोंसे मौतके घाट उतार दो। वे तथा और भी बहुत-से दम्भपूर्ण उपाय हैं, जिनसे बुद्धिमान् मनुष्य शत्रुका सर्वनाश कर सकता है।

राजकुमारने कहा—ब्रह्मन्! मैं कपट और दम्भका आश्रय लेकर जीवित रहना नहीं चाहता। अधर्मसे मुझे बहुत बड़ी सम्पत्ति मिलती हो, तो भी मैं उसकी इच्छा नहीं करता। इन दुर्गुणोंका तो मैंने पहलेसे ही त्याग कर दिया है, जिससे किसीका मुझपर संदेह न हो और मेरी तथा सबकी भलाई हो। क्रूरताका बर्ताव करके मुझे इस जगत्में जीवित रहनेकी इच्छा नहीं है। अतः मैं अधर्मका आचरण नहीं कर सकता और आपको भी ऐसा करनेके लिये मुझे उपदेश नहीं देना चाहिये।

मुनिने कहा—राजकुमार ! तुम जैसा कहते हो, वैसे ही गुणोंसे युक्त भी हो। स्वभावसे ही तुम धर्मात्मा हो और बुद्धिके द्वारा तुम्हें बहुत बातोंका ज्ञान है। इसलिये तुम्हारे और राजा जनकके कल्याणके लिये अब मैं स्वयं ही यत्न करूँगा। अथवा तुम दोनोंमें ऐसा सम्बन्ध करा दूँगा जो स्वाभाविक और चिरस्थायी होगा। तुम्हारा जन्म उच्च कुलमें हुआ है, तुम विद्वान्, दयालु तथा राज्यसंचालनकी कलामें निपुण हो, तुम्हारे-जैसे योग्यपुरुषको कौन अपना मन्त्री नहीं बनायेगा ? यद्यपि तुम्हें राज्यसे भ्रष्ट कर दिया गया है और तुम बहुत बड़ी विपत्तिमें फँस गये हो, तो भी तुमने क्रूरताको नहीं अपनाया, दयायुक्त बर्तावसे ही जीवन बिताना चाहते हो। इसलिये जब विदेहराज जनक मेरे आश्रमपर आयेंगे, उस समय उन्हें जो आज्ञा दूँगा, उसे वे निस्संदेह पूर्ण करेंगे।

---

*जैसे कुत्ते बहुत जागते हैं, उसी तरह शत्रुकी गति-विधिको देखनेके लिये बराबर जागता रहे। जिस प्रकार हिरन बहुत चौकन्ने होते हैं, जरा भी भयकी आशङ्का होते ही भाग जाते हैं, उसी तरह हर समय सावधान रहे, भय आनेके पहले ही वहाँसे खिसक जाय तथा जैसे कौए मनुष्यकी चेष्टा देखते रहते हैं, किसीको हाथ उठाते देख तुरंत उड़ जाते हैं, इसी प्रकार शत्रुकी चेष्टापर सदा दृष्टि रखे।

इस प्रकार आश्वासन देकर मुनिने राजा विदेहको अपने यहाँ बुलवाया और कहा—'राजन् ! यह राजकुमार उच्च



वंशमें उत्पन्न हुआ है। इसकी अन्तरङ्ग बातोंसे भी मैं परिचित हूँ। इसका हृदय दर्पणके समान शुद्ध और स्वच्छ है; शरत्कालीन चन्द्रमाके सदृश उज्ज्वल है। मैंने हर तरहसे इसकी परीक्षा कर ली है, इसके भीतर दुर्भावनाका नाम नहीं है। इसलिये तुम इसके साथ संधि कर लो और मुझपर जैसा विश्वास करते हो वैसा ही इसपर भी करो। कोई भी राज्य मन्त्रीके बिना तीन दिन भी नहीं चलाया जा सकता और मन्त्री शूरवीर एवं बुद्धिमान् पुरुषको ही बनाना चाहिये। धर्मात्मा राजाओंके लिये जगत्में मन्त्रीके सिवा दूसरा कोई सहारा नहीं है। यह राजकुमार महात्मा है, इसने सत्पुरुषोंके मार्गका आश्रय लिया है। यदि तुम धर्मको साक्षी देकर इसे सम्मानपूर्वक अपनाओगे तो यह तुम्हारे सब शत्रुओंको अपने अधीन कर लेगा। मेरी बात मानकर तुम युद्ध किये बिना ही इसे वशमें करो, मन्त्री बनाकर इसके हितसाधनमें लगे रहो। किसीकी भी जय या पराजय सदा नहीं रहती; इसलिये जैसे दूसरोंकी सम्पत्ति छीनकर स्वयं भोगते हो, वैसे ही दूसरोंको भी अपनी सम्पत्ति भोगनेका अवसर देना चाहिये। जो दूसरोंका संहार करते हैं, उन्हें अपने संहार होनेका भी सदा ही भय बना रहता है।

मुनिके इस प्रकार कहनेपर राजा जनकने उनका पूर्ण सम्मान किया और उनकी बातका अनुमोदन करते हुए कहा—'मुनिवर ! आप महान् बुद्धिमान् हैं, आपने अनेकों शास्त्रोंका श्रवण किया है तथा आप सदा दूसरोंका कल्याण चाहते रहते हैं; अतः आपकी जो आज्ञा हो, उसे स्वीकार करनेमें हम दोनोंकी ही भलाई है। मेरे लिये जो-जो आज्ञा हुई है, वह सब पूर्ण करूँगा। यह तो मेरे परम कल्याणकी बात है, इसमें अन्यथा विचार करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है।'

तदनन्तर मिथिलानरेशने कोसलराजकुमारको पास बुलाकर कहा—'राजन् ! मैंने धर्म और नीतिका आश्रय लेकर सम्पूर्ण जगत्पर विजय पायी है। मगर आपने अपने गुणोंसे आज मुझे भी जीत लिया। अतः मैं आपका हृदयसे स्वागत करता हूँ। आप मेरे घर पधारें।' इसके बाद दोनोंने मुनिकी पूजा की और फिर साथ ही घर गये। विदेहने कौसल्यको अपने महलमें ले जाकर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय तथा मधुपर्कसे उसका विधिवत् पूजन किया और उसके साथ अपनी पुत्रीका ब्याह कर दिया। दहेजमें नाना प्रकारके रत्न भी भेंट किये। यही राजाओंका परम धर्म है। उन्हे परस्पर मेल करके ही रहना चाहिये।



माता, पिता और गुरुकी सेवाका उपदेश, सत्य-असत्यकी पहचान तथा व्यावहारिक नीतिका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—भारत ! धर्मका रास्ता बहुत बड़ा है और उसकी अनेकों शाखाएँ हैं; इनमेंसे किस धर्मको आप सबसे प्रधान एवं विशेषरूपसे आचरणमें लानेयोग्य समझते हैं, जिसका अनुष्ठान करके मैं इहलोक और परलोकमें भी धर्मका फल पा सकूँगा।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! मैं तो माता, पिता तथा गुरुजनोंकी पूजाको ही सबसे श्रेष्ठ धर्म समझता हूँ। इसका पालन करनेवाला मनुष्य पुण्यलोकोंपर तो विजय पाता ही है, इस संसारमें भी उसे महान् सुयश प्राप्त होता है। माता, पिता और गुरुजन जिस कामके लिये आज्ञा दें, वह धर्मके

अनुकूल हो या विरुद्ध, उसका पालन करना ही चाहिये। दूसरा कोई कार्य धर्मके अनुकूल हो तो भी उनकी आज्ञा न मिलनेपर उसे नहीं करना चाहिये। जिस कामके लिये उनकी आज्ञा हो, वह धर्म ही है; ऐसा निश्चय रखना चाहिये।

माता, पिता और गुरु—ये ही तीनों लोक हैं, ये ही तीनों आश्रय है, ये ही तीनों वेद हैं और ये ही तीनों अग्नि हैं। पिता गार्हपत्य अग्नि, माता दक्षिणाग्नि और गुरु आहवनीयाग्नि हैं। लौकिक अग्नियोंसे माता-पिता आदि त्रिविध अग्नियोंका गौरव अधिक है। इन तीनोंकी सेवामें यदि भूल न करोगे तो तुम तीनों लोकोंको जीत लोगे। पिताकी सेवासे इस लोकको, माताकी सेवासे परलोकको और गुरुकी सेवासे ब्रह्मलोकको तर जाओगे; इसलिये तुम इनके साथ सदा अच्छे बर्ताव करो। ऐसा करनेसे तुम्हें उत्तम यश, परम कल्याण और महान् फल देनेवाले धर्मकी प्राप्ति होगी।

इन तीनोंकी आज्ञाका कभी उल्लङ्घन न करे। इनको भोजन करानेके पहले स्वयं भोजन न करे, इनपर कोई दोषारोपण न करे और सदा इनकी सेवामें संलग्न रहे—यही सबसे उत्तम पुण्य है। इसीके आचरणसे तुम कीर्ति, पवित्र यश तथा उत्तम लोकोंपर विजय पाओगे। जिसने इन तीनोंका आदर किया उसने मानो सम्पूर्ण जगत्का आदर कर लिया और जिसके द्वारा इनका अनादर हुआ, उसके सम्पूर्ण शुभकर्म व्यर्थ हो जाते हैं। जिसने इन तीनों गुरुजनोंका सम्मान नहीं किया, उसके लिये न यह लोक है न परलोक। न इस लोकमें यश मिलता है न परलोकमें सुख। मैं तो सब तरहके शुभकर्मोंका अनुष्ठान करके इन गुरुजनोंको ही अर्पण कर देता था; इससे उन कर्मोंका पुण्य सौ गुना और हजारगुना बढ़ गया है तथा उसीका यह फल है कि आज तीनों लोक मेरी दृष्टिके सामने हैं।

दस श्रोत्रियोंसे बढ़कर है आचार्य (कुलगुरु या दीक्षागुरु) दस आचार्योंसे बड़ा है उपाध्याय (विद्यागुरु)। दस उपाध्यायोंसे अधिक महत्त्व रखता है पिता और दस पिताओंसे भी अधिक गौरव है माताका। माता तो सारी पृथ्वीसे भी बढ़कर है। उसके समान गौरव किसीका नहीं है। मगर मेरा विश्वास ऐसा है कि गुरु (आचार्य) का दर्जा माता-पितासे भी बढ़कर है। माता-पिता तो केवल इस शरीरको जन्म देते हैं, किंतु आत्मतत्त्वका उपदेश देनेवाले आचार्यके द्वारा जो जन्म प्राप्त होता है, वह दिव्य है, अजर-अमर है। माता-पिता यदि कोई अपराध करें तो भी उनपर कभी हाथ नहीं छोड़ना चाहिये।

जो लोग विद्या पढ़कर गुरुका आदर नहीं करते, निकट रहते हुए भी मन, वाणी अथवा क्रियासे गुरुकी सेवा नहीं करते, उन्हें गर्भस्थ बालककी हत्याका पाप लगता है। संसारमें उनसे बढ़कर पापी दूसरा कोई है ही नहीं। जैसे गुरुओंका कर्तव्य है शिष्योंको आत्मोन्नतिके पथपर पहुँचाना, उसी प्रकार शिष्योंका धर्म है—गुरुओंकी सेवा करना। मनुष्य जिस धर्मसे पिताको प्रसन्न करता है, उसके द्वारा प्रजापति ब्रह्माजी भी प्रसन्न होते हैं तथा जिस बर्तावसे वह माताको प्रसन्न कर लेता है, उसके द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वीकी पूजा हो जाती है। परंतु जिस व्यवहारसे शिष्य अपने गुरुको प्रसन्न कर लेता है, उसके द्वारा परब्रह्म परमात्माकी पूजा सम्पन्न होती है; इसलिये गुरु माता-पितासे भी बढ़कर पूज्य है। गुरुओंकी पूजासे देवता, ऋषि और पितरोंको भी प्रसन्नता होती है, इसलिये गुरु परम पूजनीय है। माता, पिता और गुरु कभी भी अपमानके योग्य नहीं हैं, उनके किसी भी कार्यकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। गुरुजनोंके ही सत्कारको देवता और महर्षि स्वीकार करते हैं। जो लोग मनसे अथवा क्रियाके द्वारा उपाध्याय, पिता और मातासे द्रोह करते हैं तथा जो पिता-माताके द्वारा अपना पालन-पोषण कराकर बड़े होनेपर उनका पालन-पोषण नहीं करते, उन्हें गर्भहत्याका पाप लगता है; जगत्में उनसे बढ़कर कोई पापी नहीं है। मित्रद्रोही, कृतघ्न, स्त्रीहत्यारा और गुरुका वध करनेवाला इन चार प्रकारके पापियोंका उद्धार करनेके लिये हमने कोई प्रायश्चित्त नहीं सुना है। अतः माता, पिता और गुरुकी सेवा ही मनुष्यके लिये सबसे बड़ा धर्म है, यही कल्याणका साधन है; इससे बढ़कर कोई कार्य नहीं है।

युधिष्ठिरने पूछा—भारत! जो मनुष्य धर्मके मार्गमें स्थित रहना चाहता हो उसे कैसा बर्ताव करना चाहिये? सत्य और असत्यकी पहचान क्या है? कब सत्य बोलना चाहिये और कब असत्य? तथा धर्मका क्या लक्षण है?

भीष्मजीने कहा—राजन्! सत्य बोलना ही उत्तम है, सत्यसे बढ़कर कुछ भी नहीं है। मगर संसारके मनुष्य सत्य-असत्यको ठीक-ठीक समझ नहीं पाते, इसलिये यही बता रहा हूँ। जहाँ असत्यका परिणाम सत्य और सत्यका परिणाम असत्य होता हो वहाँ सत्य न बोलकर असत्य ही बोलना उचित है। ऐसे अवसरपर जो सत्य बोलता है, वह मूर्ख मारा जाता है। अतः परिणामके द्वारा सत्य-असत्यका निश्चय करके जो सत्य बोलता है, वही धर्मज्ञ है। जो अनार्य है, जिसकी बुद्धि शुद्ध नहीं जो अत्यन्त कठोर स्वभावका है, वह मनुष्य भी कभी अंधे पशुको मारनेवाले बलाक नामक बहेलियेकी तरह महान् पुण्य प्राप्त कर लेता है।*

* देखिये कर्णपर्व अध्याय ६९ श्लोक ३८ से ४५ तक।

प्राणियोंके अभ्युदय और कल्याणके लिये ही धर्मकी व्याख्या की गयी है, जिससे इस उद्देश्यकी सिद्धि होती हो, वही धर्म है। धर्मका नाम 'धर्म' इसलिये पड़ा है कि वह सबको धारण करता है—अधोगतिमें जानेसे बचाता और जीवनकी रक्षा करता है; धर्मसे ही सम्पूर्ण प्रजा जीवन धारण कर रही है; अतः जिस कर्मसे प्राणियोंके जीवनकी रक्षा हो, वही धर्म है—ऐसा निश्चय रखना चाहिये। जीवोंकी हिंसा न हो, इसके लिये ही धर्मका उपदेश किया गया है, अतः जो कर्म अहिंसासे युक्त हो, वही धर्म है।

यदि चोर किसी धनीका धन लूटनेकी इच्छासे उसका पता पूछते हों और न बतानेसे उस धनीका बचाव हो जाता हो तो कुछ भी उत्तर नहीं देना चाहिये। किंतु यदि नहीं बतानेपर चोरोंके मनमें संदेह होता हो और इसके लिये कुछ-न-कुछ बताना आवश्यक हो जाय तथा शपथ खानेसे भी पापियोंके हाथसे छुटकारा मिलता हो तो वहाँ सत्यकी अपेक्षा असत्य बोलना ही अच्छा है। ऐसे अवसरके लिये शास्त्रकारोंने यही विचार किया है। अपनी शक्ति रहते पापियोंको धन नहीं देना चाहिये; क्योंकि पापात्माओंको दिया हुआ धन दाताको ही कष्टमें डालता है। जो कर्जदारको अपने अधीन करके—उससे शारीरिक सेवा कराकर धन वसूल करना चाहता है, उसके दावेको ही सही साबित करनेके लिये यदि कुछ लोगोंको गवाही देनी पड़े और वे गवाह कहने योग्य सत्य बातको छिपा लें तो वे सब-के-सब मिथ्यावादी होते हैं। किंतु प्राणसंकटके समय, विवाहके अवसरपर और धन तथा दूसरोंके धर्मकी रक्षाके लिये आवश्यकता पड़नेपर असत्य बोला जा सकता है। कोई नीच मनुष्य भी यदि दूसरोंकी कार्यसिद्धिकी इच्छासे धर्मके लिये भीख माँगने आवे तो उसे देनेकी प्रतिज्ञा करके अवश्य ही दान देना चाहिये। जो कोई मनुष्य धार्मिक आचारसे भ्रष्ट हो पापमार्गका आश्रय ले, उसे अवश्य दण्ड देना चाहिये। जो दुष्ट धर्ममार्गसे हटकर सदा आसुरी प्रवृत्तिमें लगा रहता है और धर्म त्यागकर पापसे जीविका चलाना चाहता है, उस कपटी पापात्माको हर एक उपायसे मार डालना चाहिये; क्योंकि सभी पापियोंका यही सिद्धान्त होता है कि जैसे भी हो धनका संग्रह करना चाहिये। ऐसे लोग दूसरोंको असह्य कष्ट देते हैं। छल-कपटके मन्दिरमें ही निवास करते हैं। उन्हें न देवलोक प्राप्त होता है न मनुष्यलोक। प्रेतोंकी जो गति होती है, वही उनकी भी होती है। जो यज्ञ न करते हों, तपस्यासे दूर रहते हों, ऐसे मनुष्योंका सङ्ग तुम कदापि न करना।

पापियोंका तो यही निश्चय होता है कि धर्म कोई चीज नहीं है। ऐसे लोगोंको जो मार डाले, उसे पाप नहीं लगता। कपटसे जीविका चलानेवाले मनुष्य कौए और गिद्धोंके समान होते हैं। मरनेके बाद वे इन्हीं योनियोंमें जन्म लेते हैं। जो मनुष्य जिसके साथ जैसा बर्ताव करे, वह भी उसके साथ वैसा ही बर्ताव करे—यह धर्म (न्याय) है। कपटीके साथ कपट और सदाचारीके साथ सदाचारका व्यवहार करे।



दुःखोंसे छूटनेका उपाय और मनुष्यके स्वभावकी पहचानके लिये व्याघ्र तथा सियारकी कथा

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! जगत्‌के जीव भिन्न-भिन्न भावोंको लेकर नाना प्रकारके कष्ट उठा रहे हैं; अतः जिस उपायके द्वारा इन दुःखोंसे छुटकारा हो सके, उसे बतानेकी कृपा कीजिये।

भीष्मजीने कहा—राजन्! जो द्विज अपने मनको वशमें करके शास्त्रोक्त चारों आश्रमोंमें रहते हुए उनके अनुसार ठीक-ठीक बर्ताव करते हैं, वे दुःखोंके पार हो जाते हैं। जो दम्भ नहीं करते, जिनकी जीविका नियमित है, जो विषयोंकी ओर बढ़ती हुई इच्छाको रोकते हैं, दूसरोंके कटुवचन सुनकर भी उन्हें उत्तर नहीं देते, मार खाकर भी किसीको मारते नहीं, स्वयं देते हैं पर दूसरोंसे माँगते नहीं, अतिथियोंको सदा आश्रय देते हैं, कभी किसीकी निन्दा नहीं करते, नित्य नियमपूर्वक स्वाध्याय करते हैं, धर्मको जानते हैं, माता-पिताकी सेवामें लगे रहते हैं तथा दिनमें सोते नहीं, वे दुःखोंसे छुटकारा पा जाते हैं।

जो मन, वाणी और कर्मसे कभी पाप नहीं करते, किसी भी जीवको कष्ट नहीं पहुँचाते, राजा होकर लोभवश प्रजाका धन नहीं लेते और देशकी सब ओरसे रक्षा करते हैं, उन्हें कभी दुःख नहीं उठाना पड़ता। जो अपनी ही स्त्रीके साथ धर्मानुकूल समागम करते हैं तथा जो युद्धमें मृत्युका भय छोड़कर धर्मपूर्वक विजय पाना चाहते हैं, वे दुःखोंसे पार हो जाते हैं। जो लोग प्राण जानेके अवसर आनेपर भी झूठ नहीं बोलते, उनपर सम्पूर्ण प्राणियोंका विश्वास होता है और वे कभी दुःख नहीं उठाते। जिनके शुभकर्म दिखावेके लिये नहीं होते, जो सदा

मीठे वचन बोलते हैं, जिनका धन धर्मके काममें लगता है, वे दुस्तर विपत्तिके भी पार हो जाते हैं। जो तपस्यामें लगे रहते हैं, बचपनसे ही ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं और वेद, विद्या तथा व्रतमें निष्णात होते हैं, जिनके रजोगुण और तमोगुण शान्त हो गये हैं, जिनकी सदा सत्त्वगुणमें स्थिति रहती है, जिनसे दूसरे प्राणियोंको भय नहीं होता तथा जो दूसरे प्राणियोंसे स्वयं भय नहीं करते और सम्पूर्ण जगत्‌को आत्माके समान देखते हैं, वे कठिन-से-कठिन विपत्तिके भी पार हो जाते हैं।

परायी सम्पत्ति देखकर जिनके मनमें जलन नहीं होती, जो सत्पुरुष हैं और ग्राम्य विषय-भोगोंसे दूर रहते हैं, जो सब देवताओंको प्रणाम करते तथा सब धर्मोंको सुनते हैं, जिनमें श्रद्धा और शान्ति विद्यमान है, जो स्वयं आदर नहीं चाहते और दूसरोंका आदर करते हैं, जिनमें अपने क्रोधको रोक लेनेकी शक्ति है, जो दूसरोंका भी क्रोध शान्त कर देते हैं और कभी किसीपर कोप नहीं करते, वे सब प्रकारके दुःखोंसे पार हो जाते हैं। जो जन्मकालसे ही मधु-मांस और मदिराका सेवन नहीं करते, जो स्वादके लिये नहीं जीवनकी रक्षाके लिये भोजन करते हैं, विषय-वासनाकी तृप्तिके लिये नहीं संतानकी इच्छासे मैथुनमें प्रवृत्त होते हैं, जो सत्य बात बतानेके लिये ही बोलते हैं और सम्पूर्ण प्राणियोंके अधीश्वर भगवान् नारायणकी भक्ति करते हैं, वे दुस्तर दुःखोंसे भी पार हो जाते हैं। नारायणकी शरण लेनेवाले भक्त दुःखोंसे मुक्त हो जाते हैं—इसमें संदेहके लिये गुंजाइश नहीं है। और तो क्या, यह प्रसङ्ग (अध्याय) भी दुःखोंसे तारनेवाला है, जो लोग इसे पढ़ते या ब्राह्मणोंके मुखसे सुनते हैं, वे दुःखोंसे छूट जाते हैं। इस प्रकार यहाँ संक्षेपसे मनुष्योंके लिये वह कर्तव्य बताया गया है, जिससे वे इस लोकमें और परलोकमें भी विपत्तिके बन्धनसे छुटकारा पा जाते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—तात ! बहुत-से कठोर स्वभाववाले मनुष्य ऊपरसे कोमल और शान्त बने रहते हैं तथा कोमल स्वभाववाले लोग कठोर दिखायी देते हैं; ऐसे मनुष्योंकी ठीक-ठीक पहचान कैसे हो ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इस विषयमें एक पुराना इतिहास, जो बाघ और सियारके संवादके रूपमें है, तुम्हें सुना रहा हूँ, सुनो—पूर्वकालकी बात है, पुरिका नामकी एक नगरी थी, जो प्रचुर धन-धान्यसे सम्पन्न थी। उसमें पौरिक नामका एक राजा राज्य करता था। वह बड़ा ही क्रूर और नीच था। सदा दूसरे प्राणियोंकी हिंसामें लगा रहता था। धीरे-धीरे उसकी आयु समाप्त हुई। मरनेके बाद अपने पूर्व कर्मोंके कारण उसका सियारकी योनिमें जन्म हुआ। किन्तु उसे पूर्वजन्मका भी स्मरण बना रहा, इसलिये उस अधम योनिमें पूर्व वैभवकी याद आनेसे सियारको बड़ा खेद और वैराग्य हुआ। अब उसने जीवोंकी हिंसा करनी छोड़ दी, सत्य बोलनेका नियम लिया और वह अपने व्रतका दृढ़तापूर्वक पालन करने लगा। दिन-रातमें एक बार निश्चित समयपर भोजन करता और वह भी पेड़ोंसे अपने-आप गिरे हुए फलोंका। उसने श्मशान-भूमिमें ही रहना पसंद किया; क्योंकि वहीं उसका जन्म हुआ था। जन्मभूमिके स्नेहसे किसी दूसरे स्थानपर उसका मन नहीं लगता था।

सियारका इस तरह पवित्र आचार-विचारसे रहना उसके जाति-भाइयोंको अच्छा न लगा, उनके लिये यह बरदाश्तके बाहरकी बात हो गयी। इसलिये वे प्रेम और विनयभरी बातें सुनाकर उसकी बुद्धिको चलायमान करने लगे। उन्होंने कहा—'भाई सियार ! तू मांसाहारी जीव है और श्मशान-भूमिमें रहता है, फिर भी पवित्र आचार-विचारसे रहना चाहता है, यह तेरी उलटी समझका परिणाम है। भैया ! हमारे ही समान होकर रह, तेरे लिये भोजन हमलोग ला दिया करेंगे, तू सिर्फ इस शौचाचारका अड़ंगा छोड़कर चुपचाप खा लिया करना। तेरी जातिका जो सदासे भोजन रहा है, वही तेरा भी होना चाहिये।

उनकी ऐसी बात सुनकर सियार सावधान हो गया और मीठे तथा युक्तियुक्त वचनोंसे उन्हें समझाता हुआ बोला—'बन्धुओ ! अपने बुरे व्यवहारोंके ही कारण हमारी जातिका कोई विश्वास नहीं करता, अच्छे स्वभाव और आचरणसे ही कुलकी प्रतिष्ठा होती है, अतः मैं भी वही कर्म करना चाहता हूँ, जिससे अपने वंशका यश बढ़े। यदि मेरा निवास श्मशान-भूमिमें है, तो इसके लिये मैं जो समाधान देता हूँ, उसको सुनो—आश्रम (कुटी) बनाकर रहना ही धर्ममें कारण हो, ऐसी बात नहीं है, कोई भी शुभकर्म आत्माकी प्रेरणासे ही होता है। आश्रममें रहकर ही यदि कोई गौकी हत्या करे तो क्या उसे पाप नहीं लगेगा ? अथवा आश्रमसे अलग श्मशान आदि स्थानोंमें ही यदि कोई गोदान करे तो क्या वह व्यर्थ हो जायगा ? उससे पुण्य नहीं होगा ? तुमलोगोंकी जीविका असंतोषसे पूर्ण, निन्दनीय, धर्मकी हानिके कारण दूषित तथा इस लोक और परलोकमें अनिष्ट फल देनेवाली है, इसलिये मैं उसे पसंद नहीं करता।'

सियारके इस आचार-विचारकी चर्चा चारों ओर फैल गयी। तदनन्तर एक व्याघ्रने स्वयं आकर उसका विशेष सम्मान किया और उसे शुद्ध तथा बुद्धिमान् समझकर अपना मन्त्रित्व स्वीकार करनेके लिये उससे प्रार्थना की।

व्याघ्र बोला—सौम्य ! मैं तुम्हारे स्वरूपसे परिचित हूँ, तुम मेरे साथ चलकर रहो और मनमाने भोग भोगना। एक बात तुम्हें सूचित कर देते हैं, हमारी जातिका स्वभाव

कठोर होता है—यह दुनिया जानती है। यदि तुम कोमलता-पूर्वक व्यवहार करते हुए मेरे हित-साधनमें लगे रहोगे तो तुम्हारा भी भला होगा।

सियारने कहा—मृगराज ! आपने मेरे लिये जो बात कही है, वह सर्वथा आपके योग्य है तथा आप जो धर्म और अर्थ-साधनमें कुशल एवं शुद्ध स्वभाववाले सहायक ढूँढ़ रहे हैं—यह भी उचित ही है। महाभाग ! इसके लिये आपको चाहिये कि जिनका आपके प्रति अनुराग हो, जिन्हें नीतिका ज्ञान हो, जो संधि करानेमें कुशल, विजयाभिलाषी, लोभरहित, बुद्धिमान्, हितैषी तथा उदार हृदयवाले हों—ऐसे व्यक्तियोंको सहायक बनाकर पिता और गुरुके समान उनका आदर करें। आप मेरे लिये जो सुविधाएँ दे रहे हैं, उनकी मुझे इच्छा नहीं है। मैं सुख, भोग तथा उनके आधारभूत ऐश्वर्यको नहीं चाहता। आपके पुराने नौकरोंके साथ मेरा स्वभाव भी नहीं मिलेगा। वे दुष्ट प्रकृतिके जीव हैं, आपको मेरे विरुद्ध भड़काया करेंगे। उनका प्रताप बढ़ा हुआ है अतः उनको मेरे अधीन होकर रहना अच्छा नहीं मालूम होगा। इधर मेरा स्वभाव भी कुछ विलक्षण है, मैं पापियोंपर भी कठोरताका बर्ताव नहीं करता। दूरतककी बात सोचता हूँ। मेरा उत्साह कभी कम नहीं होता। मुझमें बलकी मात्रा भी अधिक है। मैं स्वयं कृतार्थ हूँ और प्रत्येक कार्य सफलताके साथ कर सकता हूँ। किसीकी सेवा-टहलका तो मुझे बिलकुल ज्ञान नहीं है। स्वच्छन्दतापूर्वक वनमें विचरता रहता हूँ। मेरे-जैसे वनवासियोंका जीवन आसक्तिरहित और निर्भय होता है। एक जगह बेखटके पानी मिलता हो और दूसरी जगह भय देनेवाला स्वादिष्ट अन्न प्राप्त होता हो—इन दोनोंको यदि विचार करके देखता हूँ तो मुझे वहाँ ही सुख जान पड़ता है, जहाँ कोई भय नहीं है। राजाके पास रहनेमें सदा भय-ही-भय है। राजसेवकोंमेंसे जितने लोग दूसरोंके लगाये हुए झूठे कलंकके कारण राजाके हाथसे मारे गये हैं, उतने सच्चे अपराधोंके कारण नहीं। मृगराज ! यदि मुझसे मन्त्रित्वका कार्य लेना ही हो तो मैं आपसे एक शर्त करना चाहता हूँ, उसीके अनुसार आपको मेरे साथ बर्ताव करना पड़ेगा। 'मेरे आत्मीय व्यक्तियोंका आप सम्मान करें, उनकी हितकारिणी बातें सुनें। मैं आपके दूसरे मन्त्रियोंके साथ कभी परामर्श नहीं करूँगा। एकान्तमें सिर्फ आपके साथ अकेला ही मिलूँगा और आपके हितकी बातें बताया करूँगा। आप भी अपने जाति-भाइयोंके कामोंमें मुझसे हिताहितकी बात न पूछियेगा। मुझसे सलाह करनेके बाद यदि आपके पहलेके मन्त्रियोंकी भूल भी साबित हो तो उन्हें प्राणदण्ड न दीजियेगा। तथा कभी क्रोधमें आकर मेरे आत्मीय जनोंपर भी प्रहार न कीजियेगा।'

शेरने 'ऐसा ही होगा' कहकर सियारका बड़ा आदर किया। सियारने भी उसका मन्त्री होना स्वीकार कर लिया। फिर तो उसका बड़ा स्वागत-सत्कार होने लगा। प्रत्येक कार्यमें उसकी प्रशंसा होने लगी। यह सब देख-सुनकर पहलेके सेवक और मन्त्री जल-भुन गये। सब उसके साथ द्वेष करने लगे। उनके मनमें दुष्टता भरी थी, इसलिये वे झुंड बाँधकर बारंबार सियारके पास आते और अपनी मित्रता जताते हुए उसको समझा-बुझाकर अपने ही समान दोषी बनानेकी कोशिश करते थे। सियारके आनेसे पहले उनकी रहन-सहन कुछ और ही थी। दूसरोंकी वस्तु छीनकर स्वयं उसका उपभोग करते थे। किंतु अब उनकी दाल नहीं गलती थी, वे किसीका भी धन लेनेमें असमर्थ थे, क्योंकि सियारने उनपर बड़ी कड़ी पाबन्दी लगा रखी थी। वे चाहते थे सियार भी डिग जाय, इसलिये तरह-तरहकी बातोंमें उसे फुसलाते और बहुत-सा धन देनेका लोभ दिखाते थे।

मगर सियार बड़ा बुद्धिमान् था, वह उनके चकमेमें नहीं आया—उसने धैर्य नहीं छोड़ा। तब उन नौकरोंने उसका नाश करनेकी शपथ खायी और सब मिलकर इसके लिये प्रयत्न करने लगे। एक दिन उन्होंने, शेरके खानेके लिये जो मांस तैयार करके रखा गया था, उसे उसके स्थानसे चुरा लिया और सियारकी माँदमें ले जाकर रख दिया। सियारने मन्त्री पदपर आते समय शेरसे पहले ही ठहरा लिया था कि 'राजन् ! यदि तुम मुझसे मित्रता चाहते हो तो किसीके बहकावेमें आकर मेरा विनाश न करना।'

उधर शेरको जब भूख लगी और वह भोजनके लिये उठा तो उसके खानेके लिये रखा हुआ मांस नहीं दिखायी पड़ा। शेरने चोरका पता लगानेके लिये नौकरोंको आज्ञा दी। तब जिनकी यह करतूत थी, उन्हीं लोगोंने शेरसे उस मांसके बारेमें बताया—'महाराज ! अपनेको बड़ा बुद्धिमान् और पण्डित माननेवाले सियार महोदयने ही आपके मांसका अपहरण किया है।' सियारकी यह चपलता सुनकर शेर गुस्सेसे भर गया और उसको मार डालनेका विचार करने लगा। उस समय सियारके प्रतिकूल कुछ कहनेका मौका देखकर पहलेके मन्त्रीलोग शेरसे कहने लगे—'राजन् ! वह तो बातोंसे ही धर्मात्मा बना हुआ है, स्वभावका बड़ा कुटिल है। भीतरका पापी है, मगर ऊपरसे धर्मका ढोंग बनाये हुए है। उसका सारा आचार-विचार दिखावेके लिये है।' यह कहकर वे क्षणभरमें ही उस मांसको सियारकी माँदसे उठा ले

आये। शेरने उनकी बातें सुनीं और जब निश्चय हो गया कि सियार ही मांस ले गया था तो उसने उसको मार डालनेकी आज्ञा दे दी।

शेरकी यह बात जब उसकी माताको मालूम हुई तो वह हितकारी वचनोंसे उसे समझानेके लिये आयी और कहने लगी—'बेटा ! इसमें कुछ कपटपूर्ण षड्यन्त्र हुआ जान पड़ता है। तुम्हें इसपर विश्वास नहीं करना चाहिये। काममें लाग-डाँट हो जानेसे जिनके मनमें पाप होता है वे निर्दोषको ही दोषी बनाते हैं। किसीको अपनेसे ऊँची अवस्थामें देखकर अक्सर लोगोंको ईर्ष्या हो जाया करती है, वे उसकी उन्नति नहीं सह सकते। कोई कितना ही शुद्ध क्यों न हो, उसपर भी दोष लगा ही देते हैं। लोभी शुद्ध स्वभाववाले व्यक्तियोंसे और आलसी तपस्वियोंसे द्वेष करते हैं। इसी प्रकार मूर्खलोग पण्डितोंसे, दरिद्र धनियोंसे, पापी धर्मात्माओंसे और कुरूप रूपवानोंसे डाह रखते हैं। विद्वानोंमें भी कितने ही ऐसे अविवेकी, लोभी और कपटी होते हैं, जो बृहस्पतिके समान बुद्धि रखनेवाले निर्दोष व्यक्तिमें भी दोष निकाला करते हैं। एक ओर तो जब घरमें सुनसान था, उस समय तुम्हारे मांसकी चोरी हुई है, दूसरी ओर एक व्यक्ति ऐसा है, जो देनेपर भी मांस नहीं लेना चाहता—इन दोनों बातोंपर अच्छी तरह विचार करो। संसारमें बहुत-से असभ्य प्राणी सभ्यकी तरह और सभ्य असभ्यकी तरह देखे जाते हैं, इस प्रकार उनमें अनेकों भाव दृष्टिगोचर होते हैं, अतः उनकी परीक्षा कर लेनी उचित है। आकाश औंधी कड़ाहीके समान और जुगनू अग्निके समान दिखायी देते हैं; किंतु न तो आकाशमें कड़ाही है और न जुगनूमें आग ही है, इसलिये सामने दिखायी देती हुई वस्तुकी भी जाँच करनी चाहिये। जो जाँचने-बूझनेके बाद किसी विषयमें अपना विचार प्रकट करता है, उसे पीछे पछतावा नहीं होता। राजाके लिये किसीको मरवा डालना कठिन काम नहीं है, मगर इससे उसकी बड़ाई नहीं होती। शक्तिशाली पुरुषमें यदि क्षमा हो तो उसीकी प्रशंसा की जाती है, उसीसे उसका यश बढ़ता है। बेटा ! सोचो तो, तुमने स्वयं ही सियारको मन्त्रीके आसनपर बिठाया है और तुम्हारे सामन्तोंमें भी इसकी ख्याति बढ़ गयी है। ऐसा सुपात्र मन्त्री बड़ी मुश्किलसे मिलता है, यह तुम्हारा बड़ा हितैषी है; इसलिये तुम्हें इसकी रक्षा करनी चाहिये। जो दूसरोंके मिथ्या कलंक लगानेपर निर्दोषको भी अपराधी मानकर दण्ड देता है, वह राजा दुष्ट मन्त्रियोंके साथ रहनेके कारण शीघ्र ही मौतके मुखमें पड़ता है।'

शेरकी माता इस प्रकार उपदेश दे ही रही थी कि उस शत्रुसमूहके भीतरसे एक धर्मात्मा व्यक्ति उठकर शेरके पास आया। वह सियारका जासूस था। उसने, जिस प्रकार यह कपटलीला की गयी थी, उसका भण्डाफोड़ कर दिया। इससे शेरको सियारकी सच्चरित्रताका पता चल गया और उसने मन्त्रीका सत्कार करके उसको इस अभियोगसे मुक्त कर दिया तथा अत्यन्त स्नेहके साथ उसे बारंबार गलेसे लगाया।

सियार नीतिशास्त्रका ज्ञाता था, उसने शेरकी आज्ञा लेकर उपवास करके प्राण त्याग देनेका विचार किया। शेरने उसे इस कार्यसे रोका और उसका भलीभाँति आदर-सत्कार किया। उस समय स्नेहके कारण उसका चित्त विकल हो रहा था। मालिककी यह अवस्था देख सियारका भी गला भर आया और वह उसे प्रणाम करके गद्‌गद-कण्ठसे बोला—'राजन् ! पहले तो आपने मुझे सम्मान दिया और पीछे अपमानित कर दिया, शत्रुकी-सी स्थितिमें पहुँचा दिया। अब मैं आपके पास रहनेके योग्य नहीं हूँ। जो अपने पदसे हटाये गये हों, सम्मानित स्थानसे नीचे गिरा दिये गये हों, जिनका सर्वस्व छीन लिया गया हो, जो दुर्बल, लोभी, क्रोधी और डरपोक हों, जिन्हें धोखेमें डाला गया हो, जिनका धन लूटा गया हो तथा जिन्हें क्लेश दिया गया हो—ऐसे सेवक शत्रुओंका काम सिद्ध करते हैं। आपने परीक्षा लेकर योग्य समझकर मुझे मन्त्रीके आसनपर बिठाया था और फिर अपनी की हुई प्रतिज्ञाको तोड़कर मेरा अपमान किया है। ऐसी दशामें अब आपका मुझपर विश्वास नहीं रहेगा और मैं भी आपपर विश्वास न होनेसे उद्वेगमें पड़ा रहूँगा। आप मुझपर संदेह करेंगे और मैं सदा आपसे डरता रहूँगा। इधर, दूसरोंके दोष ढूँढ़नेवाले आपके भृत्यलोग मौजूद ही हैं, इनका मुझसे तनिक भी स्नेह नहीं है तथा इन्हें संतुष्ट रखना भी मेरे लिये बहुत कठिन है। प्रेमका बन्धन जब एक बार टूट जाता है तो उसका जुड़ना मुश्किल हो जाता है और जो जुड़ा हुआ होता है वह बड़ी कठिनाईसे टूटता है। किन्तु जो बारंबार टूटता और जुड़ता रहता है, उसमें स्नेह नहीं होता। राजाओंका चित्त चञ्चल होता है, उनके लिये सुयोग्य व्यक्तिको पहचानना बहुत कठिन है। सैकड़ोंमें कोई एक ही ऐसा मिलता है, जो सब तरहसे समर्थ हो और किसीपर भी संदेह न करता हो।'

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम तथा युक्तियोंसे युक्त सान्त्वनापूर्ण वचन कहकर सियारने शेरको प्रसन्न किया और फिर स्वयं वनमें चला गया। यह बड़ा बुद्धिमान् था, इसलिये शेरकी अनुनय-विनय न मानकर मृत्युपर्यन्त निराहार रहनेका व्रत ले एक स्थानपर बैठ गया और अन्तमें शरीर त्यागकर स्वर्गधाममें जा पहुँचा।



शक्तिशाली शत्रुके सामने नम्र होने और मूर्खकी बातोंको अनसुनी करनेका उपदेश तथा राजा और राजसेवकोंके गुणोंका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—भरतश्रेष्ठ ! राजा एक दुर्लभ राज्यको पाकर भी यदि सेना-खजाना आदि साधनोंसे रहित हो तो वह अपनेसे बलमें सर्वथा बढ़े-चढ़े हुए शत्रुके सामने कैसे टिक सकता है ?

भीष्मजीने कहा—इस विषयमें समुद्र और नदियोंके संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। एक समयकी बात है, सरिताओंके स्वामी समुद्रने सरिताओंसे अपने मनका एक संदेह इस प्रकार पूछा—'नदियो ! मैं देखता हूँ, जब तुमलोगोंमें बाढ़ आती है तो बड़े-बड़े वृक्षोंको



जड़-मूल और डालियोंसहित उखाड़कर तुम अपने प्रवाहमें बहा लाती हो, किंतु उनमें बेंतका कोई पेड़ नहीं दिखायी देता। बेंतका शरीर तो नहींके बराबर—बहुत पतला होता है, उसमें कुछ दम भी नहीं होता और वह तुम्हारे खास किनारेपर जमता है; फिर भी तुम उसे न ला सकीं ! क्या कारण है ? उसे कमजोर समझकर उपेक्षा तो नहीं कर देतीं ? अथवा उसने तुमलोगोंका कुछ उपकार तो नहीं किया है ? क्यों बेंतका वृक्ष तुम्हारा तट छोड़कर नहीं आता ? इस विषयमें मैं तुम सब लोगोंका विचार जानना चाहता हूँ।'

यह सुनकर गङ्गाजीने युक्तियुक्त, अर्थपूर्ण तथा दिलमें बैठनेवाली बात कही—'नाथ ! वे वृक्ष अपने स्थानपर अकड़कर खड़े रहते हैं, हमारे प्रबल प्रवाहके सामने सिर नहीं झुकाते, इस प्रतिकूल बर्तावके कारण ही उन्हें अपना स्थान छोड़ना पड़ता है। किंतु बेंत नदीके वेगको देखकर झुक जाता है, वह समयके अनुसार बर्ताव करना जानता है, सदा हमारे अधीन रहता है, अकड़कर खड़ा नहीं होता; अतः अपने अनुकूल आचरणके कारण उसको स्थान छोड़कर यहाँ नहीं आना पड़ता। जो पौधे, वृक्ष या लता-गुल्म आदि हवा और पानीके वेगसे झुक जाते तथा वेग शान्त होनेपर सिर उठाते हैं, उनका कभी तिरस्कार नहीं होता।'

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! इसी प्रकार जो राजा बलमें बढ़े-चढ़े तथा विनाश करनेमें समर्थ शत्रुके पहले वेगको सिर झुकाकर नहीं सह लेता, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जो बुद्धिमान् अपने तथा शत्रुके सार, असार, बल और पराक्रमको जानकर उसके अनुसार बर्ताव करता है, उसकी कभी पराजय नहीं होती। अतः जब शत्रुको बलमें अपनेसे बहुत बढ़ा हुआ समझे तो विद्वान् पुरुषको बेंतकी तरह नम्र हो जाना चाहिये। यही बुद्धिमानीका लक्षण है।

युधिष्ठिरने पूछा—भारत ! यदि कोई धृष्ट मूर्ख मधुर या तीखे शब्दोंमें भरी सभाके बीच किसी विद्वान् पुरुषकी निन्दा करे तो विद्वान्को उसके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! जो निन्दा करनेवालेके ऊपर क्रोध नहीं करता, वह उसके पुण्यको ले लेता और अपने पाप धो डालता है। इसलिये कटु वचन बोलनेवालेको आतुर समझकर उसकी उपेक्षा कर देनी चाहिये। वह मूर्ख तो पापकर्म करके अपनी तारीफ करते हुए सदा यही कहता है कि 'मैंने अमुक भले आदमीको भरी सभामें ऐसी-ऐसी बातें सुनायीं कि वह लाजसे गड़ गया, उसका मुँह सूख गया और अब वह मरा हुआ-सा हो रहा है।' इस प्रकार निन्दनीय कर्मका उल्लेख करके वह अपनी प्रशंसा करता है और तनिक भी लजाता नहीं है। ऐसे नीच पुरुषकी यत्नपूर्वक उपेक्षा करनी चाहिये। मूर्ख मनुष्य जो कुछ भी कह दे, विद्वान्को वह सब सह लेना चाहिये। जैसे जंगलमें कौआ व्यर्थ ही काँय-काँय किया करता है, उसी तरह मूर्ख मनुष्य

भी अकारण ही निन्दा करता है और अपने अनुचित आचरण एवं चेष्टाओंसे अपनी असलियतमें संदेह पैदा करता है। संसारमें जिसके लिये कुछ भी कह देना या कर डालना असम्भव नहीं है, ऐसे मनुष्यसे बात ही नहीं करनी चाहिये। जो सामने गुण गाता और परोक्षमें निन्दा करता है, वह तो कुत्तेके समान है; उसके इहलोक और परलोक दोनों नष्ट हो चुके हैं; इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि ऐसे पापीका तुरंत त्याग कर दे।

युधिष्ठिरने कहा—दादाजी ! अब मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि जिससे राज्यका हित हो, जो वर्तमान तथा भविष्यमें कल्याण और अभ्युदय करनेवाला हो तथा जिससे राष्ट्रकी उन्नति हो, वह उपाय मुझे बताइये; क्योंकि आप तथा महाबुद्धिमान् विदुरजी ही हमारे वंशके हितमें लगे रहकर सदा राजधर्मका उपदेश देते रहते हैं। राजा अकेला ही सारे राज्यकी रक्षा नहीं कर सकता; इसलिये उसके पास कैसे और किन गुणोंवाले सेवक रहने चाहिये ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! कोई भी सहायकोंके बिना अकेले राज्य नहीं चला सकता; राज्य ही क्या, सहायताके बिना किसी भी अर्थकी प्राप्ति नहीं होती। यदि प्राप्ति हो भी गयी तो उसकी रक्षा असम्भव हो जाती है; अतः सेवकोंका होना आवश्यक है। जिसके सभी सेवक ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न, हितैषी, कुलीन तथा प्रेमी हों, उसी राजाको राज्यका सुख मिलता है। जो कुलीन हों, जिन्हें धनका लोभ दिखाकर शत्रु फोड़ न सकें, जो राजाके साथ रहते और उन्हें अच्छी बुद्धि देते हों, जो अच्छे स्वभावके हों और भविष्यका प्रबन्ध करनेवाले, समयको जाननेवाले तथा बीती हुई बातके लिये शोक न करनेवाले हों—ऐसे मन्त्री जिस राजाके पास रहते हों, वही राज्यका फल भोगता है। जिस राजाके सहायक उसके सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी रहते हों, उसकी आर्थिक उन्नतिकी चिन्तामें लगे रहनेवाले और सत्यवादी हों, वही राज्यका फल भोगता है। जिसका देश दुःखी न हो, जो स्वयं खोटे विचारका न होकर सदा सन्मार्गपर चलनेवाला हो, वही राजा राज्यका भागी होता है। विश्वासपात्र, संतोषी तथा खजाना बढ़ानेका प्रयत्न करनेवाले खजांचियोंके द्वारा जिसके कोषकी सदा वृद्धि हो रही हो, वही राजा उत्तम है। यदि लोभवश फूट न सकनेवाले, संग्रही, सुपात्र, विश्वसनीय एवं निर्लोभ मनुष्य अन्नादि-भंडारकी रक्षामें नियुक्त हों, तो उसकी विशेष उन्नति होती है। जिसके नगरमें कर्मके अनुसार फल देनेवाले शङ्खमुनिके बनाये हुए न्यायका पालन देखा जाता हो, वही राजा अपने धर्मका फल पाता है। जो अपने यहाँ अच्छे लोगोंको जुटाता है और अवसरके अनुसार राजनीतिके संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव तथा समाश्रय नामक छः गुणोंका उपयोग करता है, उसीको धर्मका फल मिलता है।

बुद्धिमान् राजाको चाहिये कि पहले अपने सेवकोंकी सच्चाई, शुद्धता, सरलता, स्वभाव, शास्त्रीय ज्ञान, सदाचार, कुलीनता, जितेन्द्रियता, दया, बल, पराक्रम, प्रभाव, विनय तथा क्षमा आदि गुणोंकी जानकारी प्राप्त करे। फिर जो जिस कार्यके योग्य जान पड़ें, उन्हें उसी कामपर लगावे और उनकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध कर दे। बिना जाँचे-बूझे किसीको मन्त्री न बनावे; क्योंकि नीच कुलके मनुष्यका सहवास हो जानेपर राजाको न सुख मिलता है, न उसकी उन्नति होती है। यदि राजा अपराध न होनेपर भी किसी कुलीन पुरुषका तिरस्कार कर दे तो वह अपनी कुलीनताके ही कारण राजाका अनिष्ट करनेका विचार नहीं करता। किंतु एक नीच कुलका मनुष्य साधु स्वभावके राजाका आश्रय पाकर यद्यपि दुर्लभ ऐश्वर्यका उपभोग करता है, तथापि यदि एक बार भी राजाने उसकी निन्दा कर दी तो वह उसका शत्रु बन जाता है। इसलिये मन्त्री उसे बनावे जो कुलीन, शिक्षित, बुद्धिमान्, ज्ञान-विज्ञानमें निपुण, सब शास्त्रोंका तत्त्व जाननेवाला, सहनशील अपने देशका निवासी, कृतज्ञ, बलवान्, क्षमावान्, जितेन्द्रिय, निर्लोभ, जितना मिल जाय उतनेहीसे संतुष्ट रहनेवाला, अपने स्वामी तथा मित्रोंकी उन्नति चाहनेवाला, देश-कालका ज्ञान रखनेवाला, वस्तुओंका संग्रह करनेवाला, सदा मनको वशमें रखनेवाला, हितैषी, आलस्यसे रहित, संधि और विग्रहका अवसर जाननेवाला, नगर और देशके लोगोंका प्रेमभाजन, खाई और सुरंग खुदवाने तथा व्यूह-निर्माणकी कलामें कुशल, अपनी सेनाका उत्साह बढ़ानेमें प्रवीण, चेष्टा और शकल देखकर मनुष्यके मनका भाव समझनेवाला, अहंकार-रहित, निर्भीक, कार्यदक्ष, बलवान्, उचित काम करनेवाला, शुद्ध, राजनीतिमें चतुर, गुणवान्, उद्योगशील, जड़तासे रहित, दूरतक विख्यात, अच्छे स्वभाववाला, मीठे वचन बोलनेवाला, धीर, शूरवीर तथा देश-कालके अनुसार काम करनेवाला हो।

जो राजा ऐसे योग्य पुरुषको मन्त्री बनाता और कभी उसका अनादर नहीं करता है, उसका राज्य चन्द्रमाकी चाँदनीकी तरह चारों ओर फैल जाता है। राजाको भी उपर्युक्त गुणोंसे विभूषित होना चाहिये। साथ ही उसमें शास्त्रज्ञान, धर्मपरायणता और प्रजापालन आदि गुण भी रहने चाहिये। राजा धीर, क्षमावान्, पवित्र, मनुष्य और समयको

पहचाननेवाला, बड़ोंकी सेवा करनेवाला, शास्त्रका ज्ञाता, बुद्धिमान्, स्मरणशक्तिसे सम्पन्न, न्यायके अनुसार कार्यकरनेवाला, जितेन्द्रिय, प्रिय बोलनेवाला, शत्रुको भी क्षमाकरनेवाला, श्रद्धालु और दुःखियोंको हाथका सहारा देनेवाला हो। वह अहंकार न करे, कर्तव्य-परायण बने, अपने भक्तोंपर प्रेम रखे,अच्छे मनुष्योंका संग्रह करे, जडताको त्याग दे, सदा प्रसन्नमुख बना रहे, सेवकोंका सर्वदा खयाल रखे, क्रोध न करे,हृदयको उदार बनावे, राजदण्डका कभी त्याग न करे, किंतु उसका न्यायके अनुसार उपयोग करे, गुप्तचररूपी नेत्रोंके द्वारा प्रजाकी प्रत्येक अवस्थापर दृष्टि रखे तथा धर्म और अर्थके विषयमें सर्वदा कुशल रहे। ऐसे सैकड़ों गुणोंसे युक्त राजा ही प्रजाके लिये वाञ्छनीय होता है।

राजन्! राज्यकी रक्षामें सहायता पहुँचानेवाले समस्त सैनिक भी इसी प्रकार अच्छे गुणोंसे सम्पन्न होने चाहिये। इसके लिये अच्छे पुरुषोंकी ही तलाश करनी चाहिये और उनका कभी अपमान नहीं करना चाहिये। जिसके योद्धा युद्धमें वीरता दिखानेवाले, कृतज्ञ, शस्त्र चलानेकी कलामें कुशल, निर्भय, धर्मशास्त्रके ज्ञाता तथा धनुर्विद्यामें प्रवीण होते हैं, उसी राजाके अधीन इस भूमण्डलका राज्य होता है।

जो राजा सेवकोंके गुण और स्वभावको जानकर उन्हें योग्य कार्योंमें नियुक्त करता है, उसे ही राज्यका फल मिलता है। मन्त्रीके पदपर भी उन्हींको बिठाना चाहिये, जिनमें उस पदके अनुरूप गुण और उस कामको सँभालनेकी योग्यता हो। जो भृत्योंको उनकी योग्यताके अनुकूल काम सौंपता है, वह राजा राज्यसे फायदा उठाता है; इसलिये मूर्ख, क्षुद्र, बुद्धिहीन, अजितेन्द्रिय तथा नीच कुलके मनुष्योंको राज्यके काममें नहीं लगाना चाहिये। जो सज्जन, कुलीन, शूर, ज्ञानी, किसीकी निन्दा न करनेवाले, उत्तम, पवित्र तथा कार्यदक्ष हों, वे ही लोग राजाके पार्श्ववर्ती (मन्त्री) होनेयोग्य हैं। ऐसे सहायकोंको पाकर सारी पृथ्वी जीती जा सकती है। जो आज्ञा पाते ही चलाये हुए तीरके समान शीघ्र जाकर स्वामीके काममें लग जाते हैं और सदा उसके हितका ध्यान रखते हैं, उन सेवकोंको बराबर सान्त्वना देते रहना चाहिये। राजाको यत्नपूर्वक अपने खजानेकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि वही राज्यकी जड़ है, उसीसे राजाका अभ्युदय होता है। युधिष्ठिर! भंडार-घरोंको भी अच्छे-अच्छे अनाजोंसे भरे रखो और उनकी रक्षाका भार सत्पुरुषोंके ऊपर छोड़ो। इस प्रकार धन और धान्य—दोनोंका संग्रह करते रहो। अपने युद्धकुशल योद्धाओंको सदा अभ्यासमें लगाये रखो। भाई-बन्धुओंकी भी देख-भाल करो। मित्रों और सम्बन्धियोंके साथ रहकर पुरवासियोंके कार्य सिद्ध करो और उनके हित-साधनमें लगे रहो।



राजधर्म और दण्डके स्वरूपका वर्णन

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! अब आप मुझे संक्षेपसे प्राचीन राजाओंके धर्म सुनाइये।

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर! क्षत्रियके लिये सबसे श्रेष्ठ धर्म है—सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा करना। किंतु यह किया कैसे जाय? इसको बता रहा हूँ, सुनो। राजाको समय-समयपर उग्र-शान्त आदि अनेकों रूप धारण करने चाहिये। जिस कार्यके लिये जो हितकर जान पड़े, उसमें वही रूप प्रकट करना उचित है (उदाहरणके लिये—अपराधीको दण्ड देते समय उग्ररूप और दीनपर अनुग्रह करते समय शान्त एवं दयालुरूप प्रकट करे)। इस प्रकार अनेकों रूप धारण करनेवाले राजाका छोटा काम भी नहीं बिगड़ने पाता। जैसे शरद् ऋतुका मोर बोलता नहीं, उसी प्रकार राजा भी मौन रहकर राजकीय गुप्त विचारोंको प्रकट न होने दे। बोलना ही पड़े तो मीठी वाणी बोले और वह भी बहुत कम।

राजा सबका प्रिय करे, किंतु धर्ममें बाधा न आने दे। जिसके सद्व्यवहारसे प्रसन्न होकर सारी प्रजा उसे अपना मानने लगती है, वह राजा पर्वतके समान अचल हो जाता है। जैसे सूर्य सबपर समान भावसे अपनी किरणें फैलाता है, उसी तरह राजा न्याय करते समय किसीका पक्षपात न करे। प्रिय और अप्रियको समान समझकर केवल धर्मकी ही रक्षा करे। जो कुलधर्म, प्रकृतिधर्म और देशधर्मको जाननेवाले तथा मीठे वचन बोलनेवाले हों, जिनपर जवानीमें कोई कलंक न लगा हो, जो हित-साधनमें लगे रहनेवाले, धैर्यवान्, निर्लोभ, शिक्षित, जितेन्द्रिय, धर्मनिष्ठ तथा धर्म और अर्थकी रक्षा करनेवाले हों, ऐसे ही पुरुषोंको राज्यके सब कामोंमें लगाना चाहिये।

इस प्रकार सदा सावधान रहकर राज्यके प्रत्येक कार्यका आरम्भ और उसकी समाप्ति करे। मनमें संतोष रखे और गुप्तचरोंकी सहायतासे राष्ट्रकी सारी बातें जानता रहे।

जिसके क्रोध और हर्ष निष्फल नहीं जाते, जिसकी दया सबपर विदित हो, जो यथार्थ कारणोंसे ही दण्ड देता हो तथा अपनी और अपने देशकी रक्षा करता हो, वही राजा राजधर्मका ज्ञाता है। जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे संसारको देखता है, उसी तरह राजा भी सदा अपने नेत्रोंसे राष्ट्रका निरीक्षण करे। राज्यमें भ्रमण करनेवाले चरोंकी बातें जाने और स्वयं अपनी बुद्धिसे भी विचार करे। जैसा समय आवे, उसके अनुसार काम करे और अपने अर्थ-संग्रहको दूसरोंपर प्रकट न करे। जैसे गायका पालन करते हुए प्रतिदिन उससे दूध दुहा जाता है, उसी प्रकार राज्यकी रक्षापूर्वक राजाको उससे कर लेना चाहिये। जैसे शहदकी मक्खी क्रमशः कई फूलोंसे थोड़ा-थोड़ा रस लेकर मधु एकत्र करती है, उसी तरह राजाको भी क्रमशः समस्त प्रजासे कर लेकर द्रव्य-संग्रह करना चाहिये।

राज्यकी रक्षा और वेतन आदि देनेसे जो धन बचे, उसीको धर्ममें खर्च करे और अपने उपभोगमें भी लगावे। शास्त्रज्ञ राजाको, जहाँतक सम्भव हो, खजानेका धन नहीं खर्च करना चाहिये। थोड़ा-सा भी धन मिलता हो तो उसका तिरस्कार न करे, शत्रुको छोटा न समझे, बुद्धिसे अपनी स्थितिको समझता रहे और मूर्खोंपर कभी विश्वास न करे। स्मरणशक्ति, चतुरता, संयम, बुद्धि, शरीर, धैर्य, शूरता और देश-कालकी परिस्थितिसे लापरवाह न रहना—ये आठ धनको बढ़ानेके मुख्य साधन हैं। शत्रु बालक, जवान अथवा बूढ़ा ही क्यों न हो, सावधान न रहनेवाले मनुष्यका नाश कर डालता है। वह मौका पाकर राजाकी जड़ उखाड़ सकता है; इसलिये जो समयका ज्ञान रखता है, वही राजाओंमें श्रेष्ठ समझा जाता है। द्वेष रखनेवाला शत्रु दुर्बल हो या बलवान्, राजाकी कीर्ति नष्ट करता है, उसके धर्ममें बाधा पहुँचाता है तथा अर्थोपार्जनमें बढ़ी हुई उसकी शक्तिका विनाश करता है। इसलिये मनको वशमें रखनेवाला राजा शत्रुकी ओरसे लापरवाह न रहे। हानि, लाभ, रक्षा और संग्रह आदिको खूब समझकर बुद्धिमान् पुरुष शत्रुके साथ संधि या विग्रह करे, इसके लिये बुद्धिका सहारा ले। परिमार्जित बुद्धि बलवान्को भी पछाड़ देती है, बढ़ते हुए बलकी बुद्धि ही रक्षा करती है,बलमें बढ़े-चढ़े शत्रुको भी बुद्धिके द्वारा संकटमें डाला जा सकता है, इसलिये बुद्धिसे विचारनेके बाद जो काम किया जाता है, वही उत्तम होता है। जिसने सब प्रकारके दोषोंका त्याग कर दिया है, वह धीर राजा थोड़ी-सी सेनाके बलसे भी सम्पूर्ण भोगोंको प्राप्त कर सकता है।

प्रजापर स्नेह रखते हुए ही उससे धन (कर) वसूल करे, उसे अधिककालतक सताकर उसपर बिजलीके समान गिरकर अपना प्रभाव न दिखावे। लोभी मनुष्य दूसरोंके धन, भोग-सामग्री, स्त्री, पुत्र तथा समृद्धि—सब कुछ हड़प लेना चाहता है, उसमें सब प्रकारके दोष प्रकट होते हैं; इसलिये लोभीको अपने यहाँ न रखे। जिस राजाने धर्मात्मा ब्राह्मणोंसे तत्त्वज्ञान प्राप्त किया है, जो मन्त्रियोंसे सुरक्षित, प्रजाका विश्वासपात्र तथा कुलीन है, वह अपनेको कर देनेवाले सामन्त-नरेशोंको वशमें रख सकता है। राजन्! मैंने संक्षेपसे जिन राजधर्मोंका वर्णन किया है, उन्हें बुद्धिसे विचार करके धारण करो। जो उन्हें भलीभाँति समझकर आचरणमें लाता है, वही अपने राज्यकी रक्षा कर सकता है। जिसका सुख-भोग हठ,अन्याय तथा कानूनके बलपर स्थित देखा जाता है, उस राजाको परलोकमें उत्तम गति नहीं मिलती और उसका वह राज्य-सुख भी अधिक दिनोंतक कायम नहीं रहता।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! आपने सनातन राजधर्मका वर्णन किया, इसके अनुसार दण्ड ही सबका ईश्वर है, दण्डके ही आधारपर सब कुछ टिका हुआ है। देवता, ऋषि, पितर, महात्मा, यक्ष, राक्षस, पिशाच तथा संसारके समस्त प्राणियोंके लिये दण्ड ही कल्याणका साधन है। उसीपर चराचर जगत् प्रतिष्ठित है; अतः मैं जानना चाहता हूँ कि दण्ड क्या है? कैसा है? उसका स्वरूप क्या है? और किसके आधारपर उसकी स्थिति है? साथ ही यह भी बताइये कि दण्डका उपादान क्या है? उसकी उत्पत्ति कैसे हुई? उसका आकार कैसा है और वह किस प्रकार सावधान रहकर सम्पूर्ण प्राणियोंका शासन करनेके लिये जाग्रत् रहता है?

भीष्मजीने कहा—कुरुनन्दन! दण्डका जो स्वरूप है तथा उसका व्यवहार जिस तरह किया जाता है, वह सब तुम्हें बताता हूँ, सुनो। इस संसारमें सब कुछ जिसके अधीन है, वही दण्ड है। उसकी धर्ममें गणना है, उसीको व्यवहार (न्याय) भी कहते हैं। लोकमें किसी तरह धर्म और न्यायका लोप न होने पावे—इसके लिये दण्ड आवश्यक है। व्यवहारकी रक्षाके कारण ही वह व्यवहार कहलाता है। पूर्वकालमें मनुने यह उपदेश दिया है कि जो राजा प्रिय और अप्रियको समान समझकर—पक्षपात न करके दण्डका ठीक-ठीक उपयोग करता हुआ प्रजाका पालन करता है, उसका वह कार्य केवल धर्म ही समझा जाता है। मैंने जो यह दण्डकी बात बतायी है, वह ब्रह्माजीका महान् वचन है और इसे सबसे पहले मनुजीने कहा है, इसलिये इसको 'प्राग्वचन' कहते हैं तथा व्यवहारका प्रतिपादन करनेके कारण यह व्यवहार भी कहा गया है। दण्डका ठीक-ठीक उपयोग होनेपर

ही सदा धर्म, अर्थ और कामकी सत्ता कायम रहती है; इसलिये दण्ड महान् देवता है। इसका स्वरूप प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी है। तलवार, धनुष, गदा, शक्ति, त्रिशूल, मुद्गर, बाण, मुसल, फरसा, चक्र, पाश, दण्ड, ऋष्टि, तोमर तथा दूसरे-दूसरे जो प्रहार करनेयोग्य अस्त्र-शस्त्र हैं, उन सबके रूपमें सर्वात्मा दण्ड ही मूर्तिमान् होकर विचरता है। वही अपराधियोंको भेदता, छेदता, पीडित करता, काटता, चीरता, फाड़ता तथा मरवाता है। इस प्रकार दण्ड ही संसारमें सब ओर दौड़ता फिरता है।

दण्ड सर्वत्र व्यापक होनेके कारण भगवान् विष्णु है और मनुष्योंका अयन (आश्रय) होनेसे नारायण कहलाता है। वह महान् सनातन स्वरूपको धारण करता है, इसलिये उसे महापुरुष कहते हैं। इसी प्रकार दण्डनीति भी ब्रह्माजीकी कन्या कही गयी है; लक्ष्मी, वृत्ति, सरस्वती और जगद्धात्री भी उसीके नाम हैं; इस तरह दण्डके अनेकों स्वरूप हैं। अर्थ-अनर्थ, सुख-दुःख, धर्म-अधर्म,बल-अबल, दुर्भाग्य-सौभाग्य, गुण-दोष, काम-अकाम, ऋतु-मास, रात-दिन, क्षण, प्रमाद-अप्रमाद, हर्ष-क्रोध, शम-दम, दैव-पुरुषार्थ, बन्ध-मोक्ष, भय-अभय, हिंसा-अहिंसा, तप, यज्ञ, संयम, मद, प्रमाद, दर्प, दम्भ, धैर्य, नीति-अनीति, शक्ति-अशक्ति, मान-अपमान, व्यय-अव्यय, विनय, दान, काल-अकाल, सत्य-असत्य, ज्ञान, श्रद्धा-अश्रद्धा, अकर्मण्यता-उद्योग, लाभ-हानि, जय-पराजय, कठोरता-कोमलता, मृत्यु, आना-जाना, विरोध-अविरोध, कर्तव्य-अकर्तव्य, असूया-अनसूया, लज्जा-अलज्जा, सम्पत्ति-विपत्ति, स्थान, तेज, कर्म, पाण्डित्य वाक्शक्ति तथा तत्त्वबोध—ये सब दण्डके ही अनेकों रूप हैं।

युधिष्ठिर ! संसारमें यदि दण्डकी व्यवस्था न होती तो सब लोग एक-दूसरेको पीस डालते। दण्डके ही भयसे कोई किसीपर हाथ नहीं उठाता। दण्डसे सुरक्षित रहकर ही प्रजा अपने राजाकी दिन-दिन उन्नति करती है, इसलिये दण्ड ही सबको आश्रय देनेवाला है। वही इस जगत्‌को शीघ्र सत्यमें स्थापित करता है। सत्यमें ही धर्मकी स्थिति है और धर्म ब्राह्मणोंमें रहता है। धर्मात्मा ब्राह्मण वेदोंका स्वाध्याय करते हैं, वेदोंसे ही यज्ञ प्रकट हुआ है, यज्ञसे देवता प्रसन्न होते हैं, प्रसन्न हुए देवता इन्द्रसे प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं, इससे इन्द्र प्रजाजनोंपर अनुग्रह करके (समयपर वर्षाके द्वारा खेती उपजाकर) उन्हें अन्न देता है और सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राण अन्नपर ही अवलम्बित रहते हैं। इसलिये दण्डसे ही प्रजाकी स्थिति कायम है, वही उसकी रक्षाके लिये सदा जाग्रत् रहता है। वह सदा सावधान रहनेवाला और अविनाशी है तथा रक्षारूपी प्रयोजन सिद्ध करनेके कारण वह क्षत्रिय है। ईश्वर, पुरुष, प्राण, सत्त्व, चित्त, प्रजापति, भूतात्मा तथा जीव—ये दण्डके ही आठ नाम हैं। उत्तम कुल, अत्यन्त धनवान् मन्त्री, बुद्धि, तेज, ओज और साहसरूप बल तथा (आगे बताये जानेवाले) अष्टाङ्ग बलसे उपार्जन करनेयोग्य जो धन, धान्य और खजाने आदिका बल है, उस सबका राजाके पास संग्रह होना चाहिये। हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, नाव, बेगार, देशकी प्रजा तथा भेड़ आदि पशु—यह आठ अङ्गोंवाला बल है। रथी, हाथीसवार, घुड़सवार, पैदल, मन्त्री, वैद्य, भिक्षुक, वकील, ज्योतिषी, दैवको अनुकूल बनानेके लिये पूजा-पाठ करनेवाले, खजाना, मित्र, धान्य तथा अन्य सब सामग्री—यह सात प्रकृति तथा आठ अङ्गोंसे युक्त सेनाका शरीर है। यह सेना दण्डके ही अन्तर्गत है, अतः दण्ड ही राज्यका प्रधान अङ्ग है; वही इसकी उत्पत्तिका मुख्य कारण है।

ईश्वरने प्रयास करके जगत्‌की रक्षाके लिये क्षत्रियके हाथमें दण्डका अधिकार दिया है। सबके प्रति समान भावसे (पक्षपातरहित होकर) उपयोग करनेपर ही दण्डके स्वरूपकी रक्षा होती है। संसारका सनातन व्यवहार दण्डके ही अधीन है। राजाके लिये दण्डरूप धर्मसे बढ़कर और कोई पूज्य नहीं है। ब्रह्माजीने स्वधर्मकी स्थापना तथा लोक-रक्षाके लिये ही दण्ड-नीतिमय धर्मका उपदेश किया है।

जो दण्ड है वही सनातन व्यवहार है, जो व्यवहार है वही वेद है, जो वेद है वही धर्म है और जो धर्म है वही सत्पुरुषोंका मार्ग है। सत्पुरुष हैं लोकपितामह ब्रह्माजी, जो सबसे प्रथम प्रकट हुए हैं। उन्होंने पहले देवता, असुर, राक्षस, मनुष्य तथा सर्प आदिसे युक्त सम्पूर्ण लोकोंकी रचना की। फिर वादी-प्रतिवादीके विवादका निर्णय करनारूप जो व्यवहार (न्याय)है, उसका उपदेश किया। ब्रह्माजीने न्याय करते समय न्याय-कर्ताके समक्ष यह आदर्श रखा है कि यदि माता, पिता, भाई,स्त्री तथा पुरोहित भी अपने धर्ममें स्थिर नहीं रहते तो राजाको चाहिये कि उन्हें भी दण्ड दे; उसके लिये कोई भी अदण्डनीय नहीं है।



दण्डकी उत्पत्ति तथा उसके क्षत्रियोंके हाथमें आनेकी परम्पराका वर्णन

भीष्मजी कहते हैं—इस दण्डकी उत्पत्तिके विषयमें एक प्राचीन इतिहास है, जिसको मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। अङ्गदेशमें वसुहोम नामके एक बहुत प्रसिद्ध राजा हो गये हैं। वे बड़े धर्मात्मा थे। एक समयकी बात है, राजा वसुहोम अपनी रानीको साथ लेकर पितरों, देवताओं तथा ऋषियोंसे पूजित मुञ्जपृष्ठ नामक स्थानपर गये। वह स्थान हिमालय पर्वतका एक शिखर है। एक दिन वहीं मुञ्जावटके नीचे परशुरामजीने अपनी जटाएँ बाँधी थीं, तभीसे ऋषियोंने उसका नाम 'मुञ्जपृष्ठ' रख दिया। उस स्थानपर भगवान् शंकरका निवास है। राजा वसुहोमने वहीं रहकर अनेकों वेदोक्त गुणोंको अपनाया। वे अपने तपके प्रभावसे देवर्षिके तुल्य हो गये। ब्राह्मणोंमें उनका बड़ा सम्मान होने लगा।

एक दिन राजा मान्धाता उनके दर्शनके लिये गये। महाराज वसुहोमको उत्तम तपस्यामें लगे देख वे बड़े विनीत भावसे उनके पास जाकर प्रणाम करके खड़े हुए। उस समय अङ्गराजने भी पाद्य और अर्घ्य अर्पण करके राजा मान्धाताका आतिथ्य-सत्कार किया, फिर उनके राज्यका कुशल-समाचार पूछा, इसके बाद प्रजाके साथ किये गये उनके सद्बर्तावका तथा सेवकोंका हाल पूछते हुए कहा 'महाराज ! बताइये मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?'

मान्धाताने कहा—राजन् ! आपने बृहस्पतिके सिद्धान्तोंका पूर्ण अध्ययन किया है, साथ ही शुक्राचार्यके नीति-शास्त्रकी भी विशेष जानकारी प्राप्त की है। अतः मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि दण्डकी उत्पत्ति कैसे हुई है ? इसका कारण और कार्य क्या है ? तथा इस समय इसका भार क्षत्रियोंपर क्यों रखा गया है ? मैं शिष्यभावसे पूछ रहा हूँ, मुझे इन बातोंका उत्तर दीजिये।

वसुहोमने कहा—राजन् ! दण्ड सम्पूर्ण जगत्को नियमके अंदर रखनेवाला है, यह धर्मका सनातन आत्मा है, इसका उद्देश्य है—प्रजाको उद्दण्डतासे बचाना। इसकी उत्पत्ति जिस तरह हुई है, सो बता रहा हूँ; सुनिये। सुननेमें आया है कि किसी समय लोकपितामह ब्रह्माजी यज्ञ करना चाहते थे, किंतु उन्हें अपने योग्य ऋत्विज् नहीं दिखायी पड़े। तब उन्होंने अपने मस्तकमें एक गर्भ धारण किया। वह गर्भ एक हजार वर्षोंतक उनके मस्तकमें रहा। हजारवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर ब्रह्माजीको छींक आयी। छींकके साथ ही वह गर्भ भी नाककी राहसे बाहर निकलकर गिरा। उससे जो बालक प्रकट हुआ, वह प्रजापति क्षुपके नामसे प्रसिद्ध हुआ। प्रजापति क्षुप ही ब्रह्माजीके यज्ञमें ऋत्विज् बनाये गये। (यज्ञकी दीक्षा लेनेपर ब्रह्माजीकी आकृतिमें विनय और शान्ति आदि गुणोंकी झलक दिखायी देने लगी। प्रजाके ऊपर शासन करते समय जो उग्रता थी वह न रही, इसलिये) यज्ञ प्रारम्भ होते ही प्रत्यक्षमें शान्तरूपकी प्रधानता होनेके कारण दण्ड अदृश्य हो गया—प्रजाको दण्ड मिलनेका भय जाता रहा।

दण्ड लुप्त होते ही प्रजामें वर्णसंकरता (व्यभिचार) की मात्रा बढ़ने लगी। कर्तव्य-अकर्तव्य, भक्ष्य-अभक्ष्य, पेय-अपेय तथा गम्य-अगम्यका विचार उठ गया। सब एक-दूसरेके प्राण लेने लगे। अपना और दूसरेका धन एक-सा समझा जाने लगा। जैसे कुत्ते मांसके टुकड़ेको आपसमें छीनते और नोचते-खसोटते हैं, उसी तरह मनुष्य भी एक-दूसरेका धन लूटने लगे। बलवान् निर्बलोंको मौतके घाट उतारने लगे। सर्वत्र उच्छृङ्खलताका बोलबाला हो गया।

यह देख पितामह ब्रह्माजीने सनातन भगवान् विष्णुका पूजन करके वरदानी महादेवजीसे कहा—'भगवन् ! अब आप ही कृपा करके ऐसा उपाय करें, जिससे प्रजामें वर्णसंकरता न फैलने पावे।' तब भगवान् शूलपाणिने कुछ देरतक सोच-विचार करके अपने-आपको ही दण्डके रूपमें प्रकट किया। उससे धर्माचरण होता देख नीतिदेवी सरस्वतीने लोक-विख्यात दण्डनीतिकी रचना की। फिर त्रिशूलधारी भगवान् शंकरने कुछ सोचनेके पश्चात् एक-एक समूहका एक-एक राजा बनाया। उन्होंने इन्द्रको देवताओंका, यमको पितरोंका, कुबेरको धन और राक्षसोंका, मेरुको पर्वतोंका, समुद्रको सरिताओंका, वरुणको जल और असुरोंका, मृत्युको प्राणोंका, वसिष्ठको ब्राह्मणोंका, अग्निको वसुओंका, सूर्यको तेजका, चन्द्रमाको ताराओं और ओषधियोंका, कुमार कार्तिकेयको भूतोंका तथा कालको सबका राजा बना दिया। इसके पश्चात् भगवान् शूलपाणि स्वयं रुद्रोंके राजा हुए। ब्रह्माके पुत्र क्षुपको उन्होंने समस्त प्रजाओंका आधिपत्य प्रदान किया।

तदनन्तर ब्रह्माजीका वह यज्ञ जब विधिवत् समाप्त हो गया तो महादेवजीने धर्मरक्षक भगवान् विष्णुका सत्कार करके उन्हें वह दण्ड अर्पण किया। विष्णुने उसे अङ्गिराको दिया। अङ्गिराने इन्द्र और मरीचिको, मरीचिने भृगुको, भृगुने ऋषियोंको, ऋषियोंने लोकपालोंको, लोकपालोंने क्षुपको, क्षुपने वैवस्वत मनुको तथा मनुने सूक्ष्म धर्म और अर्थकी

रक्षाके लिये उसे अपने पुत्रोंको सौंपा। अतः धर्मके अनुसार न्याय-अन्यायका विचार करके ही दण्डका विधान करना चाहिये, मनमानी नहीं करनी चाहिये। दुष्टोंका दमन करना ही दण्डका मुख्य उद्देश्य है। अपराधीसे जो सुवर्ण आदि वसूल किया जाता है, वह भी बाहरी लोगोंको आतङ्कित करनेके लिये ही है, खजाना भरनेके लिये नहीं। छोटे-से अपराधपर प्रजाका अङ्ग-भङ्ग करना, उसे मार डालना, उसके शरीरको तरह-तरहकी यातनाएँ देना तथा उसे देशनिकाला दे देना उचित नहीं है। वैवस्वत मनुने प्रजाकी रक्षाके लिये ही अपने पुत्रोंके हाथमें दण्ड सौंपा था, वही क्रमशः उत्तरोत्तर अधिकारियोंके हाथमें आकर प्रजाकी रक्षामें निरन्तर जाग्रत् रहता है।

प्रजाके पालन और दण्डका अधिकार ब्रह्माजीसे महादेवजीको मिला, उनसे विश्वेदेवोंको, विश्वेदेवोंसे ऋषियोंको, ऋषियोंसे सोमको, सोमसे सनातन देवताओंको और देवताओंसे ब्राह्मणोंको मिला, उस समय ब्राह्मण ही लोकरक्षाके लिये सावधान रहते थे। फिर ब्राह्मणोंसे यह अधिकार क्षत्रियोंको मिला। तबसे अबतक क्षत्रिय ही धर्मानुसार जगत्की रक्षा करते आ रहे हैं। दण्ड ही सबको वशमें रखता है। यह कालरूप दण्ड सृष्टिके आदि, मध्य और अन्तमें भी जागरूक रहता है। यही सम्पूर्ण लोकोंका ईश्वर तथा प्रजापति है। यह साक्षात् महादेवजीका स्वरूप है। धर्मज्ञ राजाको चाहिये कि वह न्यायके अनुसार दण्डका उपयोग करे।

भीष्मजी कहते हैं—जो राजा वसुहोमके बताये हुए इस सिद्धान्तको सुनता और सुनकर इसके अनुसार ठीक-ठीक बर्ताव करता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। इस प्रकार दण्डके सम्बन्धमें जितनी बातें हैं वे सब मैंने तुम्हें बता दीं। दण्ड ही सम्पूर्ण जगत्को नियमके भीतर रखनेवाला है।



त्रिवर्गका विचार और आङ्गरिष्ठ तथा कामन्दकका संवाद

युधिष्ठिरने पूछा—तात! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि धर्म, अर्थ और कामका निर्णय कैसे करना चाहिये? धर्म, अर्थ और काम किस उद्देश्यसे किये जाते हैं? इनकी उत्पत्तिका कारण क्या है? ये कहीं एक साथ मिले हुए और कहीं अलग-अलग क्यों रहते हैं?

भीष्मजीने कहा—संसारमें जब मनुष्योंका चित्त शुद्ध होता है, और वे धर्मपूर्वक किसी अर्थकी प्राप्तिका निश्चय करके प्रवृत्त होते हैं, उस समय उचित काल, कारण तथा सम्यक् कर्मानुष्ठानवश धर्म, अर्थ और काम तीनों एक साथ मिले हुए प्रकट होते हैं। इनमें धर्म तो अर्थका कारण है और काम अर्थका फल कहलाता है। परंतु इन तीनोंका मूल कारण है संकल्प। संकल्प है विषयरूप और सम्पूर्ण विषय इन्द्रियोंके उपभोगमें आनेके लिये हैं। यही धर्म, अर्थ और कामका मूल है। इससे निवृत्त होना ही मोक्ष है। फलेच्छाको त्यागकर त्रिवर्गका सेवन किया जाय तो उसका पर्यवसान भी मोक्षमें ही होता है। यदि मनुष्य उसे प्राप्त कर सके तो बड़े सौभाग्यकी बात है। अर्थसिद्धिके लिये समझ-बूझकर धर्मानुष्ठान करनेपर भी कभी अर्थकी सिद्धि होती है, कभी नहीं होती है; इसके सिवा, कभी दूसरे-दूसरे कामोंसे भी अर्थकी सिद्धि हो जाती है और कभी अर्थ नष्ट भी हो जाता है। फलकी इच्छा धर्मका मल है, केवल गाड़कर रखना धनका मल है और स्वगुणवर्जित—संतानोत्पत्तिके उद्देश्यसे रहित केवल आमोद-प्रमोदपर ही दृष्टि रखना कामका मल है।

इस विषयमें जानकार लोग राजा आङ्गरिष्ठ और कामन्दक ऋषिका संवाद सुनाया करते हैं। यह एक प्राचीन इतिहास है। किसी समयकी बात है, कामन्दक ऋषि अपने आश्रममें बैठे थे; उन्हें प्रणाम करके राजा आङ्गरिष्ठने पूछा—'मुनिवर! यदि राजा काम और मोहके वशीभूत होकर पाप कर बैठे और फिर उसे पश्चात्ताप होने लगे तो उसके उस पापको दूर करनेके लिये कौन-सा प्रायश्चित्त है?'

कामन्दकने कहा—राजन्! जो धर्म और अर्थका परित्याग करके केवल कामका ही सेवन करता है, उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धिका नाश ही मोह है, वह धर्म और अर्थ दोनोंको नष्ट करता है। इससे मनुष्यमें नास्तिकता आती है और वह दुराचारमें प्रवृत्त हो जाता है। ऐसी दशामें प्रजा उसका साथ नहीं देती, साधु और ब्राह्मण भी उससे अलग हो जाते हैं। फिर तो उसका जीवन खतरेमें पड़ जाता है और अन्ततोगत्वा वह प्रजाके हाथसे मारा भी जाता है। इस अवस्थामें आचार्य लोग उसके लिये यही कर्तव्य बतलाते हैं—वह अपने पापोंकी निन्दा, वेदोंका निरन्तर स्वाध्याय और ब्राह्मणोंका सत्कार करे। धर्ममें मन लगावे और उत्तम कुलमें विवाह करे। उदार और क्षमाशील ब्राह्मणोंकी सेवामें रहे। जलमें खड़ा होकर गायत्रीका जप करे। सदा प्रसन्न रहे।

पापियोंको राज्यके बाहर निकालकर धर्मात्माओंका सत्संग करे। मीठी वाणी तथा उत्तम कर्मके द्वारा सबको प्रसन्न रखे और दूसरोंके गुणोंका बखान करे। जो राजा इस प्रकार अपना आचरण बना लेता है, वह शीघ्र ही निष्पाप होकर सबके सम्मानका पात्र बन जाता है। वह अपने कठिन-से-कठिन पापोंका भी नाश कर डालता है।



शील-निरूपण—इन्द्र और प्रह्लादकी कथा

युधिष्ठिरने पूछा—नरश्रेष्ठ! संसारमें मनुष्य धर्मके हेतु-भूत शीलकी ही अधिक प्रशंसा करते हैं। अतः यदि आप मुझे सुननेका अधिकारी समझें तो यही बतानेकी कृपा करें कि उस शीलका क्या लक्षण है? और वह कैसे प्राप्त होता है?

भीष्मजीने कहा—राजन्! इन्द्रप्रस्थमें जब तुम्हारा राजसूय यज्ञ हुआ था, उस समय तुम्हारी अनुपम समृद्धि और सभाभवनको देखकर दुर्योधनको बड़ा संताप हुआ। वहाँसे लौटनेपर उसने अपने पितासे सारी बातें कह सुनायीं। तब धृतराष्ट्रने कहा—'बेटा! यदि तुम युधिष्ठिरकी ही भाँति या उनसे भी बढ़कर राज्य-लक्ष्मी पाना चाहते हो तो शीलवान् बनो। शीलसे तीनों लोक जीते जा सकते हैं। शीलवानोंके लिये इस संसारमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। मान्धाताने एक ही रातमें, जनमेजयने तीन रातोंमें और नाभागने सात रातोंमें ही इस पृथ्वीका राज्य प्राप्त किया था। ये सभी राजा शीलवान् तथा दयालु थे। अतः उनके द्वारा गुणोंके मोल खरीदी हुई यह पृथ्वी स्वयं ही उनके पास आ गयी थी।'

दुर्योधनने पूछा—भारत! जिसके द्वारा उन राजाओंने शीघ्र ही भूमण्डलका राज्य पा लिया, वह शील कैसे प्राप्त होता है?

धृतराष्ट्रने कहा—इसके विषयमें एक पुराना इतिहास है, जिसे नारदजीने शीलके प्रसङ्गमें सुनाया था। प्राचीन समयकी बात है, दैत्यराज प्रह्लादने अपने शीलके सहारे इन्द्रका राज्य ले लिया और तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लिया। उस समय इन्द्रने बृहस्पतिजीके पास जाकर उनसे ऐश्वर्यप्राप्तिका उपाय पूछा। बृहस्पतिजीने उन्हें इस विषयका विशेष ज्ञान प्राप्त करनेके लिये शुक्राचार्यके पास जानेकी आज्ञा दी। तब उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक शुक्राचार्यके पास जाकर फिर वही प्रश्न दुहराया। शुक्राचार्य बोले—'इसका विशेष ज्ञान महात्मा प्रह्लादको है।' यह सुनकर इन्द्र बहुत खुश हुए और ब्राह्मणका रूप धारण कर प्रह्लादके पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कहा—'राजन्! मैं श्रेय-प्राप्तिका उपाय जानना चाहता हूँ; आप बतानेकी कृपा करें।' प्रह्लादने कहा—'विप्रवर! मैं तीनों लोकोंके राज्यका प्रबन्ध करनेमें व्यस्त रहता हूँ, इसलिये मेरे पास आपको उपदेश देनेका समय नहीं है।' ब्राह्मणने कहा—'महाराज! जब समय मिले तभी मैं आपसे उत्तम आचरणका उपदेश लेना चाहता हूँ।'

ब्राह्मणकी सच्ची निष्ठा देखकर प्रह्लाद बड़े प्रसन्न हुए और शुभ समय आनेपर उन्होंने उसे ज्ञानका तत्त्व समझाया। ब्राह्मणने भी अपनी उत्तम गुरुभक्तिका परिचय दिया। उसने प्रह्लादके इच्छानुसार न्यायोचित रीतिसे भलीभाँति उनकी सेवा की। फिर समय पाकर उनसे अनेकों बार यह प्रश्न किया कि 'त्रिभुवनका उत्तम राज्य आपको कैसे मिला? इसका कारण मुझे बताइये।'

प्रह्लादने कहा—विप्रवर! मैं 'राजा हूँ' इस अभिमानमें आकर कभी ब्राह्मणोंकी निन्दा नहीं करता; बल्कि जब वे मुझे शुक्रनीतिका उपदेश करते हैं, उस समय संयमपूर्वक उनकी बातें सुनता हूँ और उनकी आज्ञाको सिरपर धारण करता हूँ। यथाशक्ति शुक्राचार्यके बताये हुए नीतिमार्गपर चलता हूँ, ब्राह्मणोंकी सेवा करता हूँ, किसीका दोष नहीं देखता, धर्ममें मन लगाता हूँ, क्रोधको जीतकर मनको काबूमें रखकर इन्द्रियोंको भी सदा वशमें किये रहता हूँ। मेरे इस बर्तावको जानकर ही विद्वान् ब्राह्मण मुझे अच्छे-अच्छे उपदेश दिया करते हैं और मैं उनके वचनामृतोंका पान करता रहता हूँ। इसीलिये जैसे चन्द्रमा नक्षत्रोंपर शासन करते हैं, उसी प्रकार मैं भी अपने जातिवालोंपर राज्य करता हूँ। शुक्राचार्यजीका नीतिशास्त्र ही इस भूमण्डलका अमृत है, यही उत्तम नेत्र है और यही श्रेय-प्राप्तिका सर्वोत्तम उपाय है।

प्रह्लादसे इस प्रकार उपदेश पाकर भी वह ब्राह्मण उनकी सेवामें लगा ही रहा। तब उन्होंने कहा—'विप्रवर! तुमने गुरुके समान मेरी सेवा की है, तुम्हारे इस बर्तावसे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ, तुम्हारी जो इच्छा हो माँग लो, मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

ब्राह्मणने कहा—महाराज ! यदि आप प्रसन्न हैं और मेरा प्रिय करना चाहते हैं, तो मुझे आपका ही शील ग्रहण करनेकी इच्छा है, यही वर दीजिये।

ऐसा वरदान माँगनेपर प्रह्लादको बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने सोचा 'यह कोई साधारण मनुष्य नहीं होगा।' फिर भी 'तथास्तु' कहकर उन्होंने वह वर दे दिया। वर पाकर विप्र-वेषधारी इन्द्र तो चले गये, परंतु प्रह्लादके मनमें बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—क्या करना चाहिये ? मगर किसी निश्चयपर नहीं पहुँच सके। इतनेहीमें उनके शरीरसे एक परम कान्तिमान् छायामय तेज मूर्तिमान् होकर प्रकट हुआ। उसे देखकर प्रह्लादने पूछा—'आप कौन हैं ?' उत्तर मिला—'मैं शील हूँ, तुमने मुझे त्याग दिया, इसलिये जा रहा हूँ। अब उसी ब्राह्मणके शरीरमें निवास करूँगा, जो तुम्हारा शिष्य बनकर एकाग्रचित्तसे सेवापरायण हो यहाँ रहा करता था।' यह कहकर वह तेज वहाँसे अदृश्य हो गया और इन्द्रके शरीरमें प्रवेश कर गया।

उसके अदृश्य होते ही उसी तरहका दूसरा तेज उनके शरीरसे प्रकट हुआ। प्रह्लादने उससे भी पूछा—'आप कौन हैं ? उसने कहा—'प्रह्लाद ! मुझे धर्म समझो। मैं भी उस श्रेष्ठ ब्राह्मणके ही पास जा रहा हूँ; क्योंकि जहाँ शील होता है, वहीं मैं भी रहता हूँ।' यों कहकर ज्यों ही वह विदा हुआ त्यों ही तीसरा तेजोमय विग्रह प्रकट हुआ। उससे भी वही प्रश्न हुआ 'आप कौन हैं ?' उस तेजस्वीने उत्तर दिया—'असुरेन्द्र ! मैं सत्य हूँ और धर्मके पीछे जा रहा हूँ।' सत्यके जानेपर एक और महाबली पुरुष प्रकट हुआ। पूछनेपर उसने कहा—'प्रह्लाद ! मुझे सदाचार समझो। जहाँ सत्य हो, वहीं मैं भी रहता हूँ !' उसके चले जानेपर उनके शरीरसे बड़े जोरकी गर्जना करता हुआ एक तेजस्वी पुरुष प्रकट हुआ। परिचय पूछनेपर वह बोला 'मैं बल हूँ और जहाँ सदाचार गया है, वहीं स्वयं भी जा रहा हूँ।' यह कहकर चला गया।

तत्पश्चात् प्रह्लादके शरीरसे एक प्रभामयी देवी प्रकट हुई। पूछनेपर उसने बताया 'मैं लक्ष्मी हूँ, तुमने मुझे त्याग दिया है, इसलिये यहाँसे चली जाती हूँ; क्योंकि जहाँ बल रहता है, वहीं मैं भी रहती हूँ।' प्रह्लादने पुनः प्रश्न किया—'देवि ! तुम कहाँ जाती हो ? वह श्रेष्ठ ब्राह्मण कौन था ? मैं इसका रहस्य जानना चाहता हूँ।' लक्ष्मी बोली—'तुमने जिसे उपदेश दिया है, उस ब्रह्मचारी ब्राह्मणके रूपमें साक्षात् इन्द्र थे। तीनों लोकोंमें जो तुम्हारा ऐश्वर्य फैला हुआ था, वह उन्होंने हर लिया। धर्मज्ञ ! तुमने शीलके ही द्वारा तीनों लोकोंपर विजय पायी थी, यह जानकर इन्द्रने तुम्हारे शीलका अपहरण किया है। धर्म, सत्य, सदाचार, बल और मैं (लक्ष्मी)—ये सब शीलके ही आधारपर रहते हैं—शील ही सबकी जड़ है।'

यह कहकर लक्ष्मी तथा शील आदि सभी गुण इन्द्रके पास चले गये। इस कथाको सुनकर दुर्योधनने पुनः अपने पितासे पूछा—'कुरुनन्दन ! मैं शीलका तत्त्व जानना चाहता हूँ, मुझे समझाइये और जिस तरह उसकी प्राप्ति हो सके, वह उपाय भी बताइये।'

धृतराष्ट्रने कहा—बेटा ! शीलका स्वरूप और उसे पानेका उपाय—ये दोनों बातें महात्मा प्रह्लादने पहले ही बतायी हैं। मैं संक्षेपसे शीलकी प्राप्तिका उपायमात्र बता रहा हूँ, ध्यान देकर सुनो—मन, वाणी और शरीरसे किसी भी प्राणीके साथ द्रोह न करे। सबपर दया करे। अपनी शक्तिके अनुसार दान दे—यही वह उत्तम शील है, जिसकी सब लोग प्रशंसा करते हैं। अपने जिस किसी कार्य या पुरुषार्थसे दूसरोंका हित न होता हो तथा जिसे करनेमें संकोचका सामना करना पड़े—वह सब किसी तरह नहीं करना चाहिये। जिस कामको जिस तरह करनेसे मानव-समाजमें प्रशंसा हो वह काम उसी तरह करना चाहिये। थोड़ेमें यही शीलका स्वरूप है। बेटा ! इस तत्त्वको ठीक तरहसे समझ लो और यदि युधिष्ठिरसे भी अच्छी सम्पत्ति प्राप्त करना चाहो तो शीलवान् बनो।

भीष्मजी कहते हैं—कुन्तीनन्दन ! राजा धृतराष्ट्रने अपने पुत्रको यह उपदेश दिया था। तुम भी इसका आचरण करो, इससे तुम्हें भी वही फल प्राप्त होगा।



यम और गौतमका संवाद तथा आपत्तिके समय राजाका धर्म

युधिष्ठिरने कहा—दादाजी ! जैसे अमृतको पीनेसे तृप्ति न होकर और पीनेकी इच्छा बढ़ती जाती है, उसी तरह आपका उपदेश सुननेसे मेरा मन नहीं भरता, बल्कि और अधिक सुननेकी इच्छा जाग्रत् होती है; इसलिये पुनः धर्मकी ही बातें बताइये, आपके धर्मोपदेशरूपी अमृतका पान करनेसे मुझे तृप्ति नहीं होती।

भीष्मजीने कहा—अब मैं तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। पारियात्र नामक पर्वतपर महर्षि गौतमका महान्

आश्रम है। वहाँ गौतमने साठ हजार वर्षोंतक तप किया था। एक दिन उग्र तपस्यामें लगे हुए उस महामुनिके आश्रमपर लोकपाल यमराज स्वयं आये और उनसे मिले। ऋषिके दर्शनसे संतुष्ट हो यमने उनका विशेष सत्कार किया और पूछा 'कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?'

गौतमने कहा—धर्मराज ! आप मुझे यह बतानेकी कृपा कीजिये कि कौन-सा काम करनेसे मनुष्यको माता-पिताके ऋणसे छुटकारा मिलता है ? तथा पवित्र एवं दुर्लभ लोक कैसे प्राप्त होते हैं ?

यमराजने कहा—मनुष्य तप करे, बाहर-भीतरसे पवित्र रहे और सदा सत्यभाषणरूप धर्मका पालन किया करे। उसे प्रतिदिन माता-पिताकी सेवामें संलग्न रहना चाहिये तथा बहुत-सी दक्षिणा देकर अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करना चाहिये, इससे उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! यदि राजाके दुश्मन अधिक हो जायँ, मित्र उसका साथ छोड़ दें तथा उसके पास खजाना और सेना भी न रह जाय, तो उसकी क्या गति है ? दुष्ट मन्त्रियोंकी सहायता होनेके कारण राज्यका गुप्त भेद खुल जानेसे, राज्यभ्रष्ट हुए दुर्बल राजापर जब बलवान् शत्रु चढ़ आवे और सामनीतिसे संधिकी कोई सम्भावना न रह जाय तो क्या काम करनेसे उसका भला हो सकता है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! यह तो तुमने बड़े गोपनीय विषयका प्रश्न किया; यदि तुम्हारे द्वारा प्रश्न न किया गया होता तो मैं ऐसे समयके धर्मका उपदेश नहीं कर सकता था। धर्मका विषय बड़ा सूक्ष्म है, शास्त्रके अनुशीलनसे उसका ज्ञान होता है। शास्त्रसे धर्मका श्रवण करके उसका पालन करनेवाला और सदाचारपूर्वक साधु जीवन व्यतीत करनेवाला मनुष्य कहीं कोई विरला ही होता है। उपर्युक्त संकटके समय राजाओंके जीवनकी रक्षाके लिये मैं ऐसा उपाय बताता हूँ, जिसमें धर्मका अंश अधिक है, उसे ध्यान देकर सुनो। मगर मैं धर्माचरणके उद्देश्यसे ऐसे धर्मकी प्रशंसा करना नहीं चाहता।

आपत्तिके समय भी यदि प्रजाको दुःख देकर धन वसूल किया जाता है, तो पीछे वह राजाके लिये मौतके समान सिद्ध होता है। यह सबका मत है। पुरुष ज्यों-ज्यों शास्त्रका स्वाध्याय करता है, त्यों-ही-त्यों उसका ज्ञान बढ़ता है; फिर तो ज्ञान प्राप्त करनेमें उसकी विशेष रुचि हो जाती है और उसके द्वारा वह संकटसे बचनेका उपाय स्वयं ही ढूँढ़ निकालता है।

अब अपने प्रश्नके अनुसार प्रासङ्गिक बातें सुनो—खजानेके नष्ट होनेसे ही राजाके बलका नाश होता है। इसलिये वह प्रजासे धन लेकर अपने कोषकी वृद्धि करे। फिर अच्छा समय आनेपर प्रजाके ऊपर धन आदि देकर अनुग्रह करे—यही सदाका धर्म है। प्राचीनकालके राजाओंने भी आपत्तिके समय इस उपाय-धर्मका ही आश्रय लिया था। सामर्थ्यशाली पुरुषोंका धर्म दूसरा है और विपत्तिग्रस्त मनुष्योंका दूसरा। इसलिये पहले कोष-संग्रह करके फिर धर्मका पालन करे।

राजा ऐसा बर्ताव करे, जिससे उसका धर्म भी बना रहे और उसे शत्रुके अधीन भी न होना पड़े। वह अपनेको विपत्तिमें न डाले। हर एक उपायके द्वारा अपने उद्धारके लिये ही प्रयत्न करे। धर्मवेत्ताओंको धर्ममें निपुणता प्राप्त करनी चाहिये और क्षत्रियोंको बाहुबलमें। जैसे ब्राह्मण जीविकाके बिना कष्ट पानेपर यज्ञके अनधिकारीसे भी यज्ञ करा लेता है और नहीं खानेयोग्य अन्नको भी खा लेता है, उसी प्रकार आजीविकाहीन क्षत्रिय भी तपस्वी और ब्राह्मणके सिवा सबका धन ले सकता है। खजाना और सेनाके नष्ट हो जानेपर सब लोगोंद्वारा अपमानित होनेपर भी क्षत्रियको न तो भीख माँगनी चाहिये और न वैश्य तथा शूद्रकी ही जीविकासे गुजारा करना चाहिये। क्षत्रिय अपने धर्मके अनुसार युद्धमें विजय पाकर ही धनोपार्जन करे तो उत्तम है। उसे अपनी जातिवालोंसे भीख माँगकर जीवन-निर्वाह नहीं करना चाहिये।

आपत्तिकालमें राजा और राज्यकी प्रजा—दोनोंको एक-दूसरेकी रक्षा करनी चाहिये। यही सदाका धर्म है। जैसे प्रजापर संकट आ जाय तो राजा राशि-राशि धन लुटाकर उसे आपत्तिसे बचाता है, उसी तरह राजाके ऊपर संकट पड़नेपर प्रजाको भी उसकी रक्षा करनी चाहिये। राजा जीविकाके लिये कष्ट पानेपर भी खजाना, राजदण्ड, सेना, मित्र तथा अन्य संचित साधनोंको कभी राज्यसे दूर न करे। महामायावी शम्बरासुरका कहना है कि मनुष्यको अपने भोजनके अन्नमेंसे भी बचाकर बीजकी रक्षा करनी चाहिये—यही धर्मज्ञोंकी भी राय है। जिसके राज्यकी प्रजाको अन्नका कष्ट हो और वहाँके मनुष्य जीविकाके लिये विदेशमें मारे-मारे फिरते हों, उस राजाको धिक्कार है ! राजाकी जड़ हैं खजाना और सेना, इनमें सेनाकी जड़ है खजाना, सेना सब धर्मों (की रक्षा) का मूल और धर्म प्रजाका मूल है; इसलिये सबके मूलभूत खजानाको बढ़ावे। खजाना ही न हो तो सेना कैसे रह सकती है ? अतः आपत्तिकालमें धन-संग्रहके लिये प्रजाको कुछ दबाना भी पड़े तो राजाको दोष नहीं लगता। युधिष्ठिर ! राजाके लिये

राज्यकी रक्षासे बढ़कर कोई धर्म नहीं है; यही राजाका मुख्य धर्म बताया गया है। ऊपर इस धर्मके विपरीत जो प्रजाको कुछ कष्ट देकर धन लेनेकी बात कही गयी है, वह तो सिर्फ आपत्तिकालके लिये है, सदाके लिये नहीं। अतः धर्मसे ही कोपका संग्रह करे, उसके लिये अधर्मका आश्रय कभी नहीं लेना चाहिये।



आपत्तिग्रस्त राजाके कर्तव्य तथा मर्यादाका पालन करनेवाले दस्युओंकी सद्गतिका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! जिस राजाकी शक्ति क्षीण हो गयी हो, जो दीर्घसूत्री हो, जिसके नगर और राष्ट्रोंको शत्रुओंने बाँट लिया हो, जिसके मन्त्रियोंमें एकमत न हो, जो दुर्बल हो गया हो और बलवान् शत्रुओंने जिसके चित्तको घबराहटमें डाल दिया हो उसे क्या करना चाहिये ?

भीष्मजी बोले—राजन् ! बाहरसे आनेवाला शत्रु यदि धर्म और अर्थमें कुशल तथा पवित्र चरित्र हो तो उसके साथ शीघ्र ही संधि कर ले और इस प्रकार अपने परम्परागत राज्यको शत्रुके हाथमें जानेसे बचा ले। खजाना और सेनाको त्याग देनेसे ही जिन आपत्तियोंसे छुटकारा मिल सकता हो, उनके लिये अर्थ और धर्मको जाननेवाला कौन मनुष्य अपने शरीरको भी फँसावेगा ?

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! यदि भीतर-ही-भीतर मन्त्रीलोग बिगड़ उठें, बाहर नगर और ग्राम आदिको शत्रुने रौंद डाला हो, खजाना खाली हो चुका हो और गुप्त रहस्य भी खुल गया हो तो ऐसी दशामें राजाको क्या करना चाहिये ?

भीष्मजी बोले—ऐसी स्थितिमें या तो तुरंत संधि कर लेनी चाहिये या अकस्मात् अपना प्रबल पराक्रम दिखाकर शत्रुको राज्यसे बाहर निकाल देना चाहिये। ऐसा उद्योग करते समय यदि मृत्यु हो जाय तो वह भी परलोकमें हित करनेवाली होती है। यदि सेनाका अपने प्रति अनुराग हो और उसमें उत्साह भी हो तो थोड़ी होनेपर भी उसकी सहायतासे राजा पृथ्वीको जीत सकता है। यदि वह युद्धमें मारा जाता है तो स्वर्गमें जाता है और शत्रुको मार डालता है तो पृथ्वीका राज्य भोगता है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! जब राजाका लोक-रक्षारूप परमधर्म न निभ सके और पृथ्वीमें आजीविकाके सारे साधनोंपर लुटेरोंका अधिकार हो जाय तो उसे क्या करना चाहिये ? तथा ऐसा आपत्काल आनेपर जो ब्राह्मण दयावश अपने स्त्री-पुत्रादिको न छोड़ सके, वह किस प्रकार अपनी जीविका चलावे ?

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर ! ऐसी स्थितिमें ब्राह्मणको तो अपने विज्ञानके बलसे जीवन-निर्वाह करना चाहिये और राजाको यदि फिर अपना राज्य पानेकी इच्छा हो तो वह किसी प्रकार राज्यकी व्यवस्थाका बिगाड़ न करते हुए प्रजाको अपना समझकर उसकी रक्षाके लिये उसके दिये बिना भी उससे धन ले सकता है परंतु (विपत्तिमें पड़ जानेपर भी) ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य और ब्राह्मणादि आदरणीय व्यक्तियोंको न सतावे—उनसे धन न ले। यह मैंने तुम्हें सब लोकोंके लिये प्रमाणभूत बात बतायी है। सब मनुष्योंको इसपर ही विश्वास करके इसीके अनुसार बर्ताव करना चाहिये। यदि गाँव या नगरके बहुत-से लोग रोषवश राजाके पास एक-दूसरेकी स्तुति या निन्दा करें तो उनकी बात मानकर ही किसीका सत्कार या तिरस्कार नहीं करना चाहिये; क्योंकि दूसरोंकी निन्दा करना दुष्ट पुरुषोंका स्वभाव ही होता है तथा सत्पुरुष सर्वदा दूसरोंके गुण ही गाया करते हैं। जो भगवान्‌के अवतारों तथा सत्पुरुषोंद्वारा सब ओरसे सम्मानित और अपने हृदयसे भी अनुमोदित हो, राजाको उसी धर्मका आचरण करना चाहिये। सत्पुरुषोंने जिस विनययुक्त मार्गका अनुसरण किया हो उसीपर उसे स्वयं भी चलना चाहिये; राजर्षियोंका आचरण ऐसा ही हुआ करता है।

राजन् ! राजाको चाहिये कि अपने और शत्रुके राज्यसे धन लेकर अपने खजानेको भरे; खजानेसे धर्मकी वृद्धि होती है और इसीसे राज्यकी जड़ भी फैलती है। कोषकी रक्षा करना और उसे बढ़ाना राजाका सदाका धर्म है, किंतु यदि राजा बलहीन हो तो उसके पास कोष कैसे रह सकता है ? कोष-हीनके पास सेना कैसे रह सकती है ? बिना सेनाके राज्य कैसे टिक सकता है ? और राज्यहीनके पास लक्ष्मी कैसे रह सकती है ? अतः राजाको सदा ही कोष, सेना और सुहृदोंको बढ़ाते रहना चाहिये। जिस प्रकार सूखी लकड़ी टूट जाती है, किंतु कभी झुकती नहीं, उसी प्रकार राजा नष्ट भले ही हो जाय, उसे कभी दबना नहीं चाहिये। राजाको ऐसी लोकमर्यादा स्थापित करनी चाहिये जो प्रजाके चित्तको प्रसन्न करनेवाली हो। लोकमें साधारण काममें भी मर्यादाका ही मान होता है। संसारमें ऐसे भी लोग हैं जो इहलोक, परलोक दोनोंहीको नहीं मानते। ऐसे

नास्तिकोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। युद्ध न करनेवालेको मारना, परस्त्रीपर बलात्कार करना, कृतघ्नता, ब्राह्मणका धन लेना, किसीका सर्वस्व छीनना, स्त्रीका अपहरण करना तथा किसी ग्रामादिपर आक्रमण करके स्वयं उसका स्वामी बन बैठना—ये सब बातें डाकुओंमें भी निन्दनीय मानी जाती हैं।

युधिष्ठिर ! जो दस्यु (डाकू) मर्यादाका पालन करता है, उसकी मरनेपर दुर्गति नहीं होती। इस विषयमें यह प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है। कायव्य नामके एक निषादपुत्रने दस्यु होनेपर भी सिद्धि प्राप्त कर ली थी। वह बड़ा बुद्धिमान्, शूरवीर, शास्त्रज्ञ, अक्रूर, आश्रम-धर्मोंका पालन करनेवाला, ब्राह्मणभक्त और गुरुपूजक था तथा क्षत्रियके द्वारा निषादजातिकी स्त्रीके पेटसे उत्पन्न हुआ था। वह शाम-सवेरे दोनों समय वनमें जाकर मृगोंकी टोलियोंको उत्तेजित कर देता था। उसे देश और कालका अच्छा ज्ञान था तथा वह सर्वदा पारियात्र पर्वतपर घूमा करता था। उसे सब प्रकारके प्राणियोंके स्वभावका ज्ञान था, उसका निशाना कभी खाली नहीं जाता था तथा उसके शस्त्र बड़े सुदृढ़ थे। वह अकेला ही हजारों मनुष्योंकी सेनाको जीत लेता था तथा उस विशाल वनमें रहकर अपने अंधे और बहरे माता-पिता तथा दूसरे बड़े-बूढ़ोंकी सेवा किया करता था। वह माननीय पुरुषोंका सत्कार करके उन्हें भोजन कराता और उनकी तरह-तरह-से सेवा करता था।

एक बार मर्यादाका अतिक्रमण और तरह-तरहके क्रूरकर्म करनेवाले कई हजार दस्युओंने उससे कहा, 'तुम देश-काल और मुहूर्तको जाननेवाले, बुद्धिमान्, शूरवीर और दृढ़प्रतिज्ञ हो, इसलिये हम सबकी सलाहसे तुम हमारे सरदार बन जाओ। तुम हमें जैसी-जैसी आज्ञा दोगे वैसा-वैसा ही हम करेंगे। तुम माता-पिताके समान हमारी यथोचित रीतिसे रक्षा करो।'

इसपर कायव्यने कहा—प्यारे भाइयो ! तुम कभी स्त्री, डरपोक, बालक और तपस्वीपर हाथ न उठाना तथा जो युद्ध न करना चाहता हो, उसका वध न करना। स्त्रियोंको कभी बलात् मत पकड़ना, स्त्री-हत्यासे सर्वथा बचकर रहना, ब्राह्मणोंके हितका सर्वदा ध्यान रखना, उनकी रक्षाके लिये आवश्यकता हो तो युद्ध भी करना, सत्यका कभी परित्याग न करना और जिन घरोंमें देवता, पितर और अतिथियोंका पूजन होता हो, उनमें कभी विघ्न मत डालना। समस्त प्राणियोंमें ब्राह्मण ही विशेषरूपसे रक्षा करनेके योग्य हैं, इसलिये आवश्यकता हो तो अपना सर्वस्व लगाकर भी उनकी सेवा करनी चाहिये। देखो, ब्राह्मणलोग कुपित होकर जिसका अनिष्ट-चिन्तन करने लगते हैं, उसकी तीनों लोकोंमें कोई भी रक्षा नहीं कर सकता। जो पुरुष ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है अथवा उनका नाश करना चाहता है, उसका सूर्योदय होनेपर अन्धकारके नाशके समान अवश्य ही नाश हो जाता है। जो मनुष्य सत्पुरुषोंको दुःख देता है, शास्त्रमें उसका वध करनेकी आज्ञा है। दण्डका विधान दुष्टोंके दमनके लिये ही हुआ है, अपना धन बढ़ानेके लिये नहीं। दस्युजातिमें उत्पन्न होकर भी जो धर्मशास्त्रके अनुसार आचरण करते हैं, वे लुटेरे होनेपर भी शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। (देखो, ये सब बातें तुम्हें मंजूर हों तो मैं तुम्हारा सरदार बन सकता हूँ।)

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! तब उन सबने कायव्यकी आज्ञाका ही अनुसरण किया। इससे उन सभीकी उन्नति हुई और उन्होंने पाप करना भी छोड़ दिया। इस पुण्यकर्मसे कायव्यने भी बड़ी भारी सिद्धि प्राप्त की; क्योंकि ऐसा करके उसने सत्पुरुषोंकी रक्षा कर ली और दस्युओंको पापसे बचा लिया। जो पुरुष नित्यप्रति इस कायव्यचरितका मनन करता है, उसे किसी भी प्रकारके प्राणियोंसे भय नहीं होता।



राजाके लिये धनसंग्रहके स्थान तथा अनागत विपत्तिसे सावधान रहनेमें तीन मत्स्योंका दृष्टान्त

भीष्मजी बोले—राजन् ! जिन उपायोंसे राजालोग अपना कोष भरते हैं, उनके विषयमें महात्मालोग ब्रह्माजीकी कही हुई कुछ गाथाएँ कहा करते हैं। राजाको यज्ञानुष्ठान करनेवाले द्विजोंका धन नहीं लेना चाहिये और देवोत्तर सम्पत्तिको भी नहीं छूना चाहिये। हाँ, लुटेरोंका और जो लोग धर्म-कर्म नहीं करते, उनका धन वह ले सकता है। जो पुरुष हविष्यान्नके द्वारा देवता, पितर और अतिथियोंका पूजन नहीं करता, उसके धनको धर्मज्ञ पुरुष निरर्थक बताते हैं। धार्मिक राजाको ऐसा धन छीनकर प्रजाका पालन करना चाहिये। जो राजा ऐसे दुष्ट पुरुषोंसे धन छीनकर उसे सत्पुरुषोंको देता है, वह सब प्रकारके धर्मोंको जाननेवाला है। जिस प्रकार पृथ्वीकी धूल पीसनेसे और भी महीन हो

जाती है, उसी प्रकार विचार करनेसे धर्मका स्वरूप उत्तरोत्तर सूक्ष्म होता जाता है।

युधिष्ठिर! जो पुरुष समयसे पहले ही कार्यकी व्यवस्था कर लेता है उसे 'अनागतविधाता' कहते हैं और जिसे ठीक समयपर ही काम करनेकी युक्ति सूझ जाती है, वह 'प्रत्युत्पन्नमति' कहलाता है। ये दो ही सुख पा सकते हैं, दीर्घसूत्री तो नष्ट हो जाता है। मैं दीर्घसूत्रीके कर्तव्य-अकर्तव्यके निश्चयको लेकर एक सुन्दर आख्यान सुनाता हूँ, सावधान होकर सुनो। एक तालाबमें, जिसमें थोड़ा ही जल था, बहुत-सी मछलियाँ रहती थीं। उसमें तीन कार्यकुशल मत्स्य भी थे। वे तीनों एक साथ ही रहा करते थे। उनमें एक दीर्घकालज्ञ (अनागतविधाता), दूसरा प्रत्युत्पन्नमति और तीसरा दीर्घसूत्री था। एक दिन कुछ मछेरोंने उस तालाबसे सब ओर नालियाँ निकालकर उसका पानी आस-पासकी नीची भूमिमें निकालना आरम्भ कर दिया। तालाबका जल घटता देखकर दीर्घदर्शीने आगामी भयकी शङ्कासे अपने दोनों साथियोंसे कहा, 'मालूम होता है इस जलाशयमें रहनेवाले सभी प्राणियोंपर आपत्ति आनेवाली है, इसलिये जबतक हमारे निकलनेका मार्ग नष्ट न हो तबतक शीघ्र ही हमे यहाँसे चले जाना चाहिये। यदि आपलोगोंको भी मेरी सलाह ठीक जान पड़े तो चलिये किसी दूसरे स्थानको चलें।' इसपर दीर्घसूत्रीने कहा, 'तुमने बात तो ठीक ही कही है, किंतु मेरा ऐसा विचार है कि अभी हमें जल्दी नहीं करनी चाहिये।' फिर प्रत्युत्पन्नमति बोला, 'अजी! जब समय आता है तो मेरी बुद्धि युक्ति निकालनेमें कभी नहीं चूकती।' उन दोनोंका ऐसा विचार देखकर महामति दीर्घदर्शी तो उसी दिन एक नालीमें होकर गहरे जलाशयमें चला गया।

कुछ समय बाद जब मछेरोंने देखा कि उस जलाशयका जल प्रायः निकल चुका है तो उन्होंने कई जालोंमें उसकी सब मछलियोंको फँसा लिया। सबके साथ दीर्घसूत्री भी जालमें फँस गया। जब मछेरोंने जाल उठाया तो प्रत्युत्पन्नमति भी सब मछलियोंमें घुसकर मृतक-सा होकर पड़ गया। वे जालमें फँसी हुई उन सब मछलियोंको लेकर दूसरे गहरे जलवाले तलाबपर आये और उन्हें उसमें धोने लगे। इसी समय प्रत्युत्पन्नमति जालमेंसे निकलकर जलमें घुस गया, किंतु मन्दबुद्धि दीर्घसूत्री अचेत होकर मर गया।

इस प्रकार जो पुरुष मोशवश अपने सिरपर आये हुए कालको नहीं देख पाता वह दीर्घसूत्री मत्स्यके समान जल्दी ही नष्ट हो जाता है। जो यह समझकर कि मैं बड़ा कार्यकुशल हूँ पहलेहीसे अपनी भलाईका उपाय नहीं करता, वह प्रत्युत्पन्नमति नामक मच्छके समान संशयकी स्थितिमें पड़ जाता है। इसीसे कहा है कि अनागतविधाता और प्रत्युत्पन्नमति— ये दो सुखी रहते हैं और दीर्घसूत्री नष्ट हो जाता है। ऋषियोंने इन्हींको धर्मशास्त्र और मोक्षशास्त्रमें प्रधान अधिकारी माना है तथा ये ही ऐश्वर्यके भी अधिकारी हैं। जो पुरुष उचित देश और कालमें, सोच-समझकर, सावधानीसे अच्छी तरह अपना काम करता है, वह अवश्य उसका फल प्राप्त कर लेता है।



शत्रुओंसे घिरे हुए राजाके कर्तव्यके विषयमें विडाल और चूहेका आख्यान

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भरतश्रेष्ठ! मैं उस बुद्धिके विषयमें सुनना चाहता हूँ, जिसका आश्रय लेनेसे राजा शत्रुओंसे घिरा रहनेपर भी मोहमें नहीं पड़ता। जब अनेकों बलवान् शत्रु किसी दुर्बल राजाको सब प्रकारसे हड़प जानेके लिये तैयार हो जायँ तो उस असहाय और अकेले राजाको क्या करना चाहिये? वह उनमेंसे किसके साथ युद्ध करे और किसके साथ संधि तथा यदि बलवान् होनेपर भी वह शत्रुओंके बीचमें फँस जाय तो उसे कैसा बर्ताव करना चाहिये? राजाके लिये तो सब कर्तव्योंमें यही प्रधान है और आप-जैसे सत्यसंध एवं जितेन्द्रिय महापुरुषके सिवा और कोई इस विषयको कह भी नहीं सकता। अतः आप अच्छी तरह विचारकर यही विषय सुनाइये।

भीष्मजी बोले—बेटा! तुमने जो प्रश्न पूछा है वह उचित ही है। आपत्तिके समय क्या करना चाहिये यह बात सबको मालूम नहीं है। मैं तुम्हें यह सब रहस्य सुनाता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो। भिन्न-भिन्न कार्योंका ऐसा प्रभाव होता है, जिसके कारण कभी शत्रु मित्र बन जाता है तो कभी मित्रका भी मन बिगड़ जाता है। वास्तवमें यह शत्रु-मित्रकी परिस्थिति सदा एक-सी नहीं रहती। अतः अपने कर्तव्य-अकर्तव्य तथा देश-कालका विचार करके किसीपर विश्वास और किसीके साथ युद्ध करना चाहिये। यदि प्राण संकटमें आ पड़ें तो शत्रुओंसे भी मेल करके उनकी रक्षा करनी चाहिये। इस विषयमें एक वटवृक्षपर रहनेवाले बिलाव और मूषकका संवादरूप यह प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है।

किसी वनमें एक बहुत बड़ा वटका वृक्ष था। वह बहुत-सी लता और बरोहोंसे आच्छादित था और उसपर

अनेकों पक्षियोंने बसेरा कर रखा था। वह वनमें बड़ी दूरतक फैला हुआ, लंबी-लंबी डालियोंसे युक्त और मेघके समान सघन था। उसकी छायामें बड़ी ठंढक थी। उस वृक्षपर अनेकों सर्प और जंगली जीव विश्राम करते थे। उसीकी जड़में सौ दरवाजोंका बिल बनाकर पलित नामका एक बुद्धिमान् चूहा रहता था तथा उसकी शाखापर लोमश नामका एक बिलाव था। वह बहुत समयसे पक्षियोंको खाकर बड़े आनन्दसे वहीं अपने दिन बिता रहा था। एक बार एक चाण्डालने उस वनमें आकर डेरा डाल दिया। वह सूर्यास्त होनेपर नित्य ही अपना जाल फैला देता था और उसकी ताँतकी डोरियोंको यथास्थान लगाकर मौजसे अपने झोंपड़ेमें जा सोता था। रातमें अनेकों जंगली जीव उस जालमें फँस जाते थे, उन्हें वह सबेरे आकर पकड़ लेता था। बिलाव यद्यपि बहुत सावधान रहता था, तो भी एक दिन वह उस जालमें फँस गया। यह देखकर पलित चूहा निर्भय होकर वनमें अपना आहार खोजने लगा। इतनेहीमें उसकी दृष्टि जीवोंको लुभानेके लिये चाण्डालके डाले हुए मांसखण्डोंपर पड़ी। अतः वह जालपर चढ़कर उन्हें खाने लगा। मांस खानेमें वह तल्लीन था और मन-ही-मन अपने बन्धनमें पड़े हुए शत्रुपर हँस रहा था। इतनेहीमें उसकी दृष्टि एक दूसरे शत्रुपर पड़ी। वह था हरिण नामका न्यौला, जो वहीं पृथ्वीमें बिल बनाकर रहता था। चूहेकी गन्ध पाकर वह तुरंत ही अपने बिलसे निकल आया। इधर तो यह न्यौला अपना भक्ष्य पकड़नेके लिये जीभ लपलपाते हुए पृथ्वीपर खड़ा था, उधर चूहेने ऊपरकी ओर देखा तो उसे वटकी शाखापर बैठा हुआ अपना एक शत्रु और भी दिखायी दिया। वह वटके खोखलेमें रहनेवाला चन्द्रक नामका उल्लू था। इस प्रकार उल्लू और न्यौलेके बीचमें पड़कर उस चूहेको बड़ा भय हुआ और वह चिन्तामें डूब गया।

इसी समय उसे एक विचार सूझा। वह सोचने लगा, 'जब कोई जीव आपत्तिमें पड़कर विनाशके समीप पहुँच जाय तो उसे जैसे बने अपने प्राणोंकी रक्षा करनी चाहिये। इस समय मेरे ऊपर जो आपत्ति आ पड़ी है उसमें सभी ओरसे प्राण जानेकी आशङ्का है। यदि मैं पृथ्वीपर उतरकर भागता हूँ तो न्यौला मुझे खा जायगा, यहीं रहता हूँ तो उल्लू उठा ले जायगा और यदि जाल काट देता हूँ तो बिलाव नहीं छोड़ेगा। परंतु ऐसी स्थितिमें भी मुझ-जैसे बुद्धिमान्‌को घबराना नहीं चाहिये। बिलाव मेरा कट्टर शत्रु है, किंतु इस समय यह बड़ी विपत्तिमें पड़ गया है। अच्छा, देखूँ तो सही, अपने स्वार्थके लिये भी यह मूर्ख मेरी बात मानता है या नहीं। सम्भव है, विपत्तिग्रस्त होनेके कारण इस समय यह मुझसे मेल कर ले। आचार्योंका ऐसा मत है कि विपत्ति आ पड़नेपर जीवनरक्षाके लिये बलवान् व्यक्तिको अपने समीपवर्ती शत्रुसे भी मेल कर लेना चाहिये। बुद्धिमान् शत्रु भी अच्छा होता है और मूर्ख मित्र भी किसी कामका नहीं होता। अब मेरे जीवनकी रक्षा तो मेरे शत्रु बिलावके ही द्वारा हो सकती है, अतः मैं इसे इसके जीवनकी रक्षाके लिये सम्मति देता हूँ।'

तब उस परिणामदर्शी चूहेने बिलावको समझाते हुए इस प्रकार कहा, 'भैया बिलाव! अभी जीवित हो न? मैं इस समय तुमसे एक मित्रकी तरह बोल रहा हूँ और चाहता हूँ कि तुम्हारे जीवनकी रक्षा हो जाय; क्योंकि इसमें हम दोनोंका ही हित है। भैया! डरो मत, तुम आनन्दसे जीवित रह सकते हो। यदि तुम मुझे मारना न चाहो तो मैं तुम्हारा उद्धार कर सकता हूँ। मैंने मनमें खूब विचार करके अपने और तुम्हारे लिये एक उपाय सोचा है, उससे हम दोनोंका एक-सा हित हो सकता है। देखो, ये न्यौला और उल्लू मेरी घातमें बैठे हुए हैं। अभी इन्होंने मुझपर आक्रमण नहीं किया है, इसीसे अबतक मैं बचा हुआ हूँ। चपलनयन उल्लू डालपर बैठा हुआ हू-हू कर रहा है और मेरी ओर ही ताक लगाये हुए है। इस पापीसे मुझे बड़ा डर लगता है। सत्पुरुषोंमें तो सात पग साथ रहनेसे ही मित्रता हो जाती है; तुम भी बड़े बुद्धिमान् हो, इसलिये मेरे मित्र हो। अब मुझे तुमसे कोई भय नहीं है और मैं इतने दिन साथ रहनेका अपना धर्म निभाऊँगा। तुम मेरी सहायताके बिना स्वयं तो इस जालको काट नहीं सकोगे। हाँ, यदि तुम मुझे न मारो तो मैं तुम्हारा बन्धन काट सकता हूँ। इसीसे मेरी इच्छा है कि हम दोनोंमें प्रीति बढ़े और नित्यप्रति हमारा समागम हुआ करे। देखो, जब कोई पुरुष लकड़ीका सहारा लेकर किसी गहरी नदीको पार करता है तो वह उस लकड़ीको किनारे लगा देता है और वह लकड़ी उसे पार पहुँचा देती है। इसी तरह हम दोनोंका भी मेल हो सकता है। मैं तुम्हें इस विपत्तिसे पार कर दूँगा और तुम मुझे आपत्तिसे बचा लोगे।'

इस प्रकार जब पलित चूहेने दोनोंके हितकी बात कही तो उसे युक्तियुक्त और माननेयोग्य समझकर उस बुद्धिमान् बिलावने अपनी दशापर दृष्टि डालकर उसकी बड़ी सराहना की और फिर उसकी ओर देखते हुए इस प्रकार कहने लगा, 'सौम्य! तुम मुझे जीवित रखना चाहते हो यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। इस समय अवश्य मैं बड़ी आपत्तिमें पड़ गया हूँ और मुझसे भी बढ़कर तुम्हारे ऊपर विपत्ति मँडरा रही है। अतः हम दोनों आपत्तिग्रस्तोंमें शीघ्र ही संधि हो जानी

चाहिये। मैं समयानुसार अवश्य तुम्हारा काम बनानेका प्रयत्न करूँगा, यह विपत्ति टल जायगी तो तुम्हारा उपकार व्यर्थ नहीं होगा। इस समय मेरा मान भंग हो चुका है, तुम्हारे प्रति मेरी भक्ति हो रही है। अब तो मैं तुम्हारी शरणमें हूँ और जैसा तुम कहोगे वैसा ही करूँगा।'

लोमशके इस प्रकार कहनेपर पलितने उससे ये अभिप्रायपूर्ण वचन कहे, 'इस समय मुझे न्यौलेसे बड़ा डर लग रहा है, मैं तुम्हारे नीचे छिप जाना चाहता हूँ। तुम मेरी रक्षा करना, मार मत डालना। इधर यह पापी उल्लू मेरे प्राणोंका ग्राहक बना हुआ है, इससे भी तुम मुझे बचा लो। इसके बाद मैं तुम्हारा जाल काट दूँगा—यह बात मैं तुमसे सत्यकी शपथ करके कहता हूँ।'

चूहेकी यह युक्तियुक्त बात सुनकर लोमशने उसकी ओर हर्षभरी दृष्टिसे देखा और स्वागतद्वारा सत्कार करते हुए उससे सुहृदतापूर्वक कहा, 'तुम जल्दी ही यहाँ आ जाओ, भगवान् तुम्हारा मङ्गल करें, तुम तो मेरे प्राणके समान प्रिय सखा हो। इस समय तो तुम्हारी कृपासे ही मेरी प्राणरक्षा होगी। इसलिये मित्र, आओ, हम-तुम दोनों संधि कर लें। भैया! इस संकटसे छूट जानेपर मैं अपने मित्र और बन्धु-बान्धवोंके सहित तुम्हारे सभी प्रिय और हितकारी काम करता रहूँगा।'

चूहा बोला, 'सौम्य! इस आपत्तिसे बच जानेपर मैं भी तुम्हारी प्रीति सम्पादन करूँगा। जब तुम मेरा प्रिय करोगे तो मैं भी अवश्य तुम्हारा हित करूँगा। यद्यपि उपकारका बहुत कुछ बदला देनेपर भी वह पहली बार उपकार करनेवालेके सत्कर्मकी बराबरी नहीं कर सकता; क्योंकि पीछेवाला तो उपकृत होनेपर ही उपकार करता है, किंतु पहले उपकार करनेवाला किसी कारणसे वैसा नहीं करता।'

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! इस प्रकार बिलावको उसका स्वार्थ अच्छी तरह समझाकर चूहा आनन्दसे उसकी गोदमें जा बैठा। बिलावने भी उसे ऐसा निःशङ्क कर दिया कि वह माता-पिताकी गोदके समान उसकी छातीसे लगकर सो गया। जब न्यौले और उल्लूने उसे बिलावकी गोदमें छिपा देखा तो वे निराश हो गये और उनकी ऐसी गहरी प्रीति देखकर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। अन्तमें निराश होकर वे अपने-अपने स्थानको चले गये। चूहा देश-कालकी गतिको अच्छी तरह जानता था, इसलिये वह बिलावके शरीरपर चढ़कर चाण्डालके आनेकी प्रतीक्षा करते हुए धीरे-धीरे जालको काटने लगा। बिलाव बन्धनके खेदसे ऊब उठा था। उसने देखा कि चूहा जालको काटनेमें फुर्ती नहीं कर रहा है, इसलिये उसे जल्दी करनेके लिये उकसाते हुए कहा, 'सौम्य! तुम जल्दी क्यों नहीं करते हो। देखो, चाण्डाल आता होगा, उसके आनेसे पहले ही मेरे बन्धनोंको काट दो।'

इसपर पलितने उससे कहा, 'भैया! चुप रहो, घबराओ मत। मैं समयको खूब समझता हूँ, ठीक अवसर आनेपर कभी नहीं चूकूँगा। जो काम असमयमें किया जाता है उससे करनेवालेका हित नहीं होता, किंतु यदि उसे ठीक समयपर किया जाय तो उससे बड़ा लाभ हो सकता है। यदि मैंने समयसे पहले ही तुम्हें छुड़ा दिया तो तुम्हींसे मुझको भय हो सकता है। इसलिये तुम समयकी प्रतीक्षा करो, ऐसी जल्दी क्यों करते हो? जिस समय मैं देखूँगा कि चाण्डाल हथियार लिये हुए इधर आ रहा है, उस समय तुम्हें सामान्य-सा भय होता देखकर ही मैं तुम्हारे बन्धन काट डालूँगा। उस समय छूटते ही तुम्हें भयवश वृक्षपर चढ़ना ही सूझेगा और मैं अपने बिलमें घुस जाऊँगा।'

चूहेकी ये बातें सुनकर बिलावने कहा, 'अच्छे आदमी मित्रके कामोंको प्रेमपूर्वक किया करते हैं, तुम्हारी तरह नहीं। देखो, मैंने तो तुम्हें आपत्तिमें देखकर तुरंत ही बचा लिया था। इसी तरह तुम्हें भी फुर्तीके साथ मेरा हित करना चाहिये। तुम ऐसा उपाय करो, जिससे हम दोनोंहीका भला हो। यदि अज्ञानवश पहले कभी मेरे द्वारा तुम्हारा कोई अहित हुआ हो तो उसे तुम मनमें मत लाना। मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ, तुम मेरे प्रति अपना मनोमालिन्य दूर कर दो।'

चूहा बड़ा बुद्धिमान् और नीतिज्ञ था, उसने बिलावसे कहा, 'जिस मित्रसे भयकी सम्भावना हो, उसका काम इस प्रकार करना चाहिये, जैसे बाजीगर सर्पके मुँहसे हाथ बचाकर ही उसे खेलाता है। जो व्यक्ति बलवान्के साथ संधि करके अपनी रक्षाका ध्यान नहीं रखता, उसका वह मेल अपथ्य-भोजनके समान हितकर नहीं होता। ऐसे मित्रके कामको अधूरा ही रखना चाहिये। जब चाण्डाल आ जायगा तो भयके कारण तुम्हें भागनेकी ही सूझेगी, उस समय तुम मुझे नहीं पकड़ सकोगे। मैंने बहुत-से तन्तु तो काट डाले हैं, अब केवल एक डोरी बाकी है। उसे मैं उसी समय काट दूँगा, तुम घबराओ मत।'

इसी तरह बात करते-करते वह रात बीत गयी। लोमशके मनमें बराबर भय बढ़ता गया। सबेरा होते ही परिघ नामका चाण्डाल हाथमें शस्त्र लिये आता दिखायी पड़ा। वह साक्षात् यमदूतके समान जान पड़ता था। उसे देखते ही बिलाव भयसे व्याकुल हो गया। उसे भयभीत देखकर चूहेने तुरंत ही जाल काट दिया। जालसे छूटते ही बिलाव उसी पेड़पर चढ़ गया और चूहा उस भयंकर शत्रुके पंजेसे छूटकर अपने बिलमें घुस गया।

चाण्डालने उलट-पुलटकर जालको सब ओरसे देखा और



फिर निराश हो उसे उठाकर अपने घर चला गया।

उस आपत्तिसे छूटकर पेड़की शाखापर बैठे हुए लोमशने बिलमें छिपे हुए पलित्तसे कहा—'भैया ! तुम मुझसे कोई बातचीत किये बिना इस प्रकार सहसा बिलमें क्यों घुस गये ? मैं तो तुम्हारा बड़ा ही कृतज्ञ हूँ, तुमने मेरा बड़ा उपकार किया है। क्या तुम्हें मेरी ओरसे कोई शङ्का है ? तुमने विपत्तिके समय मेरा विश्वास किया और फिर मुझे जीवनदान दिया। तुम्हारी जैसी शक्ति थी, उसके अनुसार तुमने मेरा पूरा सत्कार किया है। अब तो मैं तुम्हारा मित्र हो गया हूँ और तुम्हें मेरे साथ इस मित्रताका सुख भोगना चाहिये। मेरे जो भी मित्र और बन्धु-बान्धव हैं, वे सब तुम्हारी इसी प्रकार सेवा करेंगे जैसे शिष्यलोग गुरुकी करते हैं। मैं भी तुम्हारी और तुम्हारे मित्र एवं बन्धु-बान्धवोंका पूरा सत्कार करूँगा। भला, ऐसा कौन कृतज्ञ होगा जो अपने जीवनदाताका सत्कार न करना चाहेगा। तुम मेरे, मेरे शरीरके और मेरे घरके स्वामी हो; मेरी जो कुछ सम्पत्ति है उसके तुम्हीं व्यवस्थापक बनो। तुम बड़े बुद्धिमान् हो, आजसे मेरा मन्त्रित्व स्वीकार करो और पिताके समान मुझे सदुपदेश दो। मैं अपने जीवनकी शपथ करके कहता हूँ, अब तुम मुझसे किसी प्रकारका भय मत मानो। बुद्धिमें तो तुम साक्षात् शुक्राचार्य ही हो। अपने मन्त्रबलसे जीवनदान देकर तुमने मुझे अपने अधीन कर लिया है।'

बिलावकी ऐसी चिकनी-चुपड़ी बातें सुनकर परमनीतिज्ञ चूहेने कहा, 'भाईसाहब ! जिसका जीवन रहते हुए पुरुष अपना स्वार्थ सधता देखता है और जिसके मर जानेसे अपनी हानि मानता है, वही उसका मित्र बन सकता है और यह मित्रता भी तभीतक निभती है, जबतक अपने स्वार्थसे विरोध नहीं आता। मित्रता कोई स्थायी रहनेवाली चीज तो है नहीं और शत्रुता भी सदा नहीं बनी रहती। स्वार्थकी अनुकूलता और प्रतिकूलतासे ही मित्र और शत्रु बनते रहते हैं। कभी-कभी समयके फेरसे मित्र भी शत्रु बन जाता है और शत्रुसे भी मित्रता हो जाती है। जो व्यक्ति मित्रोंका सर्वदा विश्वास करता है और शत्रुओंसे सदा सशंक बना रहता है, नीति-शास्त्रपर दृष्टि रखकर किसीसे प्रेम नहीं करता, उसका किसी समय सर्वथा मूलोच्छेद हो जाता है। पिता, माता, पुत्र, मामा, भानजे तथा और सब सगे-सम्बन्धी स्वार्थके लिये ही एक-दूसरेसे बँधे रहते हैं। अपना प्यारा पुत्र भी यदि पतित हो जाता है तो माँ-बाप उसे त्याग देते हैं। संसारमें सब लोग सर्वदा अपनी ही रक्षा करना चाहते हैं, इसलिये तुम स्वार्थको ही सबका सार समझो। सब जीव स्वार्थके ही साथी हैं। संसारमें मुझे तो किसीका भी प्रेम अकारण नहीं जान पड़ता। यद्यपि कभी-कभी क्रोधवश भाइयोंमें और पति-पत्नियोंमें भी फूट पड़ जाती है, तथापि स्वभावतः उनमें प्रेम रहता ही है। दूसरे लोगोंसे इस प्रकारकी प्रीति नहीं हो सकती। दूसरोंसे तो कुछ मिलनेसे अथवा मीठी-मीठी बातें सुननेसे ही प्रेम होता है। हमारी प्रीति भी एक विशेष कारणसे ही हुई थी। अब जब वह कारण नष्ट हो गया तो प्रीति भी नहीं रही। बताओ, अब किस कारणको लेकर मैं यह समझूँ कि तुम मुझसे प्रेम करते हो ? मित्रता और शत्रुताके भाव तो बादलोंके समान क्षण-क्षणमें बदलते रहते हैं। आज ही तुम मेरे शत्रु हो सकते हो और आज ही मित्र बन सकते हो। पहले भी हमारी प्रीति तभीतक थी, जबतक उसका कारण बना हुआ था। वह काम पूरा होनेपर अब हम फिर आपसमें शत्रु हो गये हैं। तुम्हारा काम पूरा हो चुका और मेरी भी विपत्ति टल गयी। अब तो मुझे खा जानेके सिवा तुम्हारा मुझसे कोई और प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। मैं तुम्हारा भक्ष्य हूँ और तुम मुझे खानेवाले हो, मैं दुर्बल हूँ और तुम बलवान् हो। हमारी शक्ति समान नहीं है, इसलिये अब अलग हो जानेपर हमारी संधि नहीं हो सकती। मैं अच्छी तरह समझता हूँ, तुम्हें भूख लगी हुई है और यह तुम्हारा भोजन करनेका समय है। इसलिये मुझे फुसलाकर तुम अपना भक्ष्य पाना चाहते हो। इसीसे अपने

स्त्री-पुत्रोंके बीचमें बैठकर तुम मुझसे मेल करने चले हो। परंतु मित्र ! तुम मेरी जो सेवा करना चाहते हो, उसे करानेकी मुझमें योग्यता नहीं है। जब तुम्हारे प्रिय पुत्र और स्त्री मुझे तुम्हारे पास बैठा देखेंगे तो वे मुझे चट करनेमें क्यों चूकेंगे ? इसलिये मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकता। हमारे समागमका जो कारण था वह तो बीत चुका। जो अपना शत्रु हो, दुष्ट हो, कष्टमें पड़ा हुआ हो, भूखा हो और भोजनकी तलाशमें हो उसके पास थोड़ी-सी भी बुद्धि रखनेवाला व्यक्ति कैसे जा सकता है ? इसलिये भैया ! तुम्हारा कल्याण हो; लो, मैं तो जाता हूँ, मुझे तो दूरसे भी तुम्हारा भय लगा हुआ है। अब, तुम भी लौट जाओ। यदि तुम्हें मेरे किये हुए उपकारका ध्यान है तो सर्वदा सख्यभाव बनाये रहना, कभी अवसर पाकर मुझे दबोच मत बैठना। यदि वास्तवमें स्वार्थपर तुम्हारी दृष्टि नहीं है तो बताओ, मैं तुम्हारा क्या काम करूँ ? मैं तुम्हें सब कुछ दे सकता हूँ परंतु अपने-आपको नहीं दे सकता। अपनी रक्षा करनेके लिये तो संतान, राज्य, रत्न और धनादि सभीका त्याग किया जा सकता है। अधिक क्या, सारा सर्वस्व लुटाकर भी जीवको अपनी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि हमने सुना है, जीवित रहनेवालेको ये फिर भी मिल जाते हैं।'

पलितने जब इस प्रकार खरी-खरी सुनायी तो बिलावने लज्जित होकर कहा, 'भाई ! मैं सत्यकी सौगन्ध खाता हूँ, मित्रसे द्रोह करना तो बड़ी बुरी बात है। तुमने मेरी भलाई की—इसे तो मैं तुम्हारी बुद्धिमानी ही समझता हूँ। तुमने बड़ी नीतियुक्त बात कही है, तुम्हारा विचार मुझसे पूरा-पूरा मिलता है, किंतु इस विषयमें तुम्हें मेरी ओरसे कोई विपरीत बात नहीं समझनी चाहिये। तुमने प्राणदान देकर मेरे साथ मित्रता की है और मैं भी धर्मको जाननेवाला, गुणग्राही और कृतज्ञ हूँ। विशेषतः तुम्हारे प्रति तो मेरा बहुत ही प्रेम है। इसलिये तुम्हें भी मेरे साथ ऐसा ही बर्ताव करना चाहिये। तुम्हारे कहनेसे तो मैं अपने बन्धु-बान्धवोंसहित प्राण भी त्याग सकता हूँ। हम-जैसे मनस्वियोंमें तो सभी बुद्धिमानोंका विश्वास हो जाता है। अतः तुम्हें मेरे ऊपर कोई शङ्का नहीं करनी चाहिये।'

इस प्रकार बिलावने जब बहुत प्रशंसा की तो गम्भीर-स्वभाव चूहेने कहा, 'आप वास्तवमें बड़े साधु हैं। आपके मुखसे मैंने जो कुछ सुना है वह बहुत ठीक है। उससे मुझे प्रसन्नता भी है। परंतु मैं आपमें विश्वास नहीं कर सकता। इस सम्बन्धमें शुक्राचार्यजीने दो बातें कही हैं, आप उनपर ध्यान दें—(१) जब दो शत्रुओंपर एक-सी विपत्ति आ पड़े तो निर्बलको सबल शत्रुके साथ मेल करके बड़ी सावधानी और युक्तिसे काम करना चाहिये और जब काम हो चुके तो उसका विश्वास नहीं करना चाहिये। (२) जो अविश्वासपात्र हो उसमें कभी विश्वास न करे और जो विश्वसनीय हो उसमें भी अत्यन्त विश्वास न करे तथा अपने प्रति तो सर्वदा दूसरोंका विश्वास पैदा करे, किंतु स्वयं दूसरोंका विश्वास न करे। नीतिशास्त्रका भी संक्षेपमें यही सार है कि किसीका विश्वास न करना ही अच्छा है। अतः शत्रुके प्रति विश्वास न रखनेमें ही जीवका विशेष हित माना गया है। लोमशजी ! आप-जैसोंसे तो मुझे सर्वदा अपनी रक्षा करनी ही चाहिये। इसी प्रकार आप भी अपने जन्मशत्रु चाण्डालसे बचे रहें।'

चाण्डालका नाम सुनते ही बिलाव बहुत डर गया और वहाँसे लपककर दूसरी जगह चला गया तथा चूहा अपने बिलमें घुस गया।

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार दुर्बल और अकेला होनेपर भी पलित चूहेने अपने बुद्धिबलसे कई प्रबल शत्रुओंको छका दिया। अतः आपत्तिके समय बुद्धिमान् पुरुषको शत्रुके साथ भी मेल कर लेना चाहिये। देखो, मूषक और बिलाव—ये दोनों एक-दूसरेका आश्रय लेकर विपत्तिसे छूट गये थे। इस दृष्टान्तसे मैंने तुम्हें क्षात्रधर्मका मार्ग ही दिखाया है। जो पुरुष भय आनेसे पहले ही उससे सशङ्क रहता है, उसके सामने प्रायः भयका अवसर नहीं आता। परंतु जो निःशङ्क होकर दूसरोंमें विश्वास कर लेता है, उसे बड़े भारी भयका सामना करना पड़ता है। जो मनुष्य निर्भय विचरता है, वह किसी प्रकार दूसरोंकी सलाह भी नहीं सुनता, किंतु जो अपनेको अज्ञानी समझता है, वह बार-बार आप्त-पुरुषोंके पास जाता है। अतः मनुष्यको निर्भयता दिखाते हुए भी डरते रहना चाहिये और विश्वास प्रदर्शित करते हुए भी दूसरोंका विश्वास नहीं करना चाहिये।

राजन् ! इस प्रकार संधि और विग्रहके समयका विचार करके संकटसे छूटनेका उपाय करे। जब अपने और शत्रुके ऊपर समानरूपसे आपत्ति आ पड़े तो बलवान् शत्रुके साथ मेल कर ले। उसके साथ रहते हुए बड़ी युक्तिसे काम करे और काम पूरा हो जानेपर फिर उसका विश्वास न करे। यह नीति अर्थ, धर्म और काम—तीनोंको सिद्ध करनेवाली है। इसके अनुसार आचरण करके तुम अभ्युदय प्राप्त करो और अपनी प्रजाका पालन करो। ब्राह्मणोंके साथ तुम सर्वदा संसर्ग रखना। उनका साथ इहलोक और परलोक दोनों ही जगह परमकल्याणकारी है। राजन् ! मैंने तुम्हें जो चूहे और बिलावका दृष्टान्त सुनाया है, वह संधि और विग्रह दोनोंहीके विषयमें विशेष बुद्धि देनेवाला है। राजाको सर्वदा इसपर ध्यान रखते हुए शत्रुओंके साथ व्यवहार करना चाहिये।



शत्रुसे सदा सावधान रहनेके विषयमें राजा ब्रह्मदत्त और पूजनी चिड़ियाका प्रसंग तथा ब्राह्मणसेवाका माहात्म्य

राजा युधिष्ठिरने पूछा—महाबाहो ! आपने कहा कि शत्रुओंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये, सो यदि राजा किसीमें भी विश्वास न करे तो वह किस प्रकार राज्यकी व्यवस्था करेगा ? आपकी यह अविश्वास-कथा सुनकर तो मेरी बुद्धि बड़ी उलझनमें पड़ गयी है, कृपया आप मेरा यह संशय दूर कर दीजिये।

भीष्मजी बोले—राजन् ! इस विषयमें राजा ब्रह्मदत्तका अपने महलमें रहनेवाली पूजनी नामकी चिड़ियासे संवाद हुआ था, वह तुम सुनो। राजा ब्रह्मदत्तका महल काम्पिल्य नगरमें था। उसके अन्तःपुरमें बहुत दिनोंसे पूजनी नामकी एक चिड़िया रहती थी। वह तिर्यग्योनिमें उत्पन्न होनेपर भी सब प्राणियोंकी बोली समझ सकती थी। वहीं उसके एक बच्चा भी पैदा हुआ और उसी दिन रानीके भी एक कुमारने जन्म लिया। पूजनी नित्यप्रति समुद्रतटपर जाती और वहाँसे दो फल लाती थी। उनमेंसे एक वह राजकुमारको दे देती और दूसरेसे अपने बच्चेका पोषण करती। पूजनीका लाया हुआ फल अमृतके समान स्वादिष्ट और बल तथा तेजकी वृद्धि करनेवाला होता था। उस फलको खा-खाकर राजपुत्र खूब हृष्ट-पुष्ट हो गया। एक दिन धाय उसे गोदमें लिये घूम रही थी, इतनेहीमें बालककी दृष्टि पूजनीके बच्चेपर पड़ी। राजकुमार अपने बाल्यस्वभावसे धायकी गोदमेंसे खिसक गया और उस बच्चेके साथ खेलने लगा। वहाँ अकेलेमें जोरसे दबोचकर उसने वह बच्चा मार डाला और फिर धायकी गोदमें चला गया। जब पूजनी फल लेकर लौटी तो उसने देखा कि राजकुमारने उसका बच्चा मार डाला है। अपने बच्चेकी ऐसी दुर्गति देखकर उसकी आँखोंमें आँसू भर आये, वह दुःखसे व्याकुल हो गयी और इस प्रकार कहने लगी, 'क्षत्रियोंका संग करना अथवा उनसे प्रीति या मेल-मिलाप करना ठीक नहीं है। ये सबका अपकार ही करते हैं, इनका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। देखो, यह राजकुमार कैसा कृतघ्न, क्रूर और विश्वासघाती है; अच्छा, आज मैं इससे इस वैरका पूरा-पूरा बदला लूँगी।' ऐसा सोचकर उसने अपने पंजोंसे राजकुमारके दोनों नेत्र फोड़ दिये।

यह देखकर राजा ब्रह्मदत्तने विचार किया कि पूजनीने राजकुमारसे उसके कुकर्मका ही बदला लिया है; इसलिये वह उससे कहने लगा, 'पूजनी ! हमने तेरा अपराध किया था, तूने उसीका बदला लिया है। अब हम दोनों बराबर हो गये; इसलिये तू अब यहीं रह, किसी दूसरी जगह मत जा।'



पूजनी बोली—राजन् ! जब किसीसे वैर बँध जाय तो उसकी चिकनी-चुपड़ी बातोंमें आकर विश्वास नहीं करना चाहिये। ऐसा करनेसे वैर तो दूर होता नहीं, वह विश्वास करनेवाला ही मारा जाता है। जब एक बार वैर बँध जाता है तो बेटे-पोतेतक उसका बदला लिये बिना नहीं छोड़ते। इसलिये जिसने विश्वासघात किया हो, उसका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। जो अविश्वसनीय हो उसका विश्वास न करे और जो विश्वसनीय हो उसका भी अत्यन्त विश्वास न करे। विश्वासके कारण उत्पन्न होनेवाली विपत्ति जीवका समूल नाश कर डालती है। अतः जब आपसमें वैर बँध गया तो हमारा मेल होना सम्भव नहीं है। मैं जिस निमित्तसे यहाँ रहती थी अब वह नष्ट हो गया। मैं बहुत दिनोंतक बड़े आदरसे आपके महलमें रही। किंतु अब हमारा वैर ठन गया; इसलिये मुझे शीघ्र ही यहाँसे जाना होगा।

ब्रह्मदत्तने कहा—जो व्यक्ति अपकारके बदलेमें अपकार करता है, वह अपराधी नहीं माना जाता। इससे तो अपकार करनेवाला ऋणमुक्त हो जाता है। इसलिये तू आनन्दसे यहीं रह, कहीं मत जा।

पूजनी बोली—राजन्! जिसका अपकार किया जाता है और जो अपकार करता है, उनका मेल नहीं हो सकता। वह बात दोनोंहीके हृदयोंमें खटकती रहती है।

ब्रह्मदत्तने कहा—पूजनी! इससे तो वैर शान्त हो जाता है और अपकार करनेवालेको पापका फल भी नहीं भोगना पड़ता। इसलिये अपकार सहनेवाले और अपकारीका मेल तो फिर भी हो ही सकता है।

पूजनी बोली—इस प्रकार वैर कभी दूर नहीं होता और यह समझकर कि शत्रुने मुझे सान्त्वना दी है, उसका विश्वास भी नहीं करना चाहिये। ऐसे अवसरपर विश्वास करनेसे प्राणोंसे भी हाथ धोना पड़ता है, इसलिये फिर मुँह न दिखाना ही अच्छा है।

ब्रह्मदत्तने कहा—यदि आपसमें वैर रखनेवाले भी साथ-साथ रहें तो उनमें स्नेह हो जाता है, फिर उनमें वैर नहीं रहता।

पूजनी बोली—राजन्! पण्डितलोग अच्छी तरह जानते हैं, वैर पाँच कारणोंसे हुआ करता है—स्त्रीके कारण, घर और जमीनके कारण, कठोर वाणीके कारण, आपसकी लाग-डाँटके कारण और अपराधके कारण। जिस प्रकार बड़वानल किसी भी प्रकार शान्त नहीं होता वैसे ही क्रोधाग्नि भी धनसे, समझानेसे या डाँटने-डपटनेसे ठंडी नहीं पड़ती। वैरके कारण उत्पन्न होनेवाली आग एक पक्षको स्वाहा किये बिना कभी शान्त नहीं होती। जिसने पहले अपकार किया हो वह धन और मानद्वारा बहुत सत्कार करे तो भी उसका विश्वास नहीं करना चाहिये। अबतक तो न मैंने आपका कोई अपकार किया था और न आपने ही मेरी कोई हानि की थी, इसलिये मैं आपके महलमें रहती थी। किंतु अब मुझे आपका विश्वास नहीं हो सकता।

ब्रह्मदत्तने कहा—पूजनी! संसारमें तरह-तरहकी क्रियाएँ कालके ही कारण होती हैं, कालकी प्रेरणासे ही लोग विविध कर्मोंमें प्रवृत्त हो रहे हैं। इनमें कौन किसका अपराध करता है। जन्म और मृत्युका प्रेरक भी समानरूपसे काल ही है। कालके कारण ही जीवके जीवनका अन्त होता है। इसलिये जो कुछ हुआ है, उसमें मैं तेरा कोई अपराध नहीं समझता। तू यहाँ आनन्दसे रह, तुझे कोई कष्ट नहीं पहुँचावेगा। तुझसे जो अपराध बन गया है, उसे मैंने क्षमा किया, अब तू भी मुझे क्षमा कर दे।

पूजनी बोली—यदि आप कालको ही सब क्रियाओंका कारण मानते हैं तो किसीका किसीके साथ वैर नहीं होना चाहिये। फिर अपने सगे-सम्बन्धियोंके मारे जानेपर लोग उनका बदला क्यों लेते हैं और शोकाकुल होकर इतनी हाय-हाय क्यों करते हैं? वास्तवमें दुःखके कारण ही सबको उद्वेग होता है, सुख तो सभीको प्रिय है और दुःखके अनेकों रूप हैं। बुढ़ापा दुःख है, धनक्षय दुःख है, अप्रिय पुरुषोंके साथ रहना दुःख है और प्रियजनोंसे बिछुड़ना दुःख है। वध और बन्धनसे भी सबको दुःख होता है तथा स्त्रीके कारण और स्वाभाविकरूपसे भी दुःख होता ही है। राजन्! आपने मेरा जो अपकार किया है और मैंने आपका जो अपराध किया है, उन्हें हम सौ वर्षमें भी नहीं भूल सकते। इस प्रकार आपसमें एक-दूसरेका अपकार करनेके कारण अब हमारा मेल नहीं हो सकता। आप जैसे-जैसे अपने पुत्रकी दुर्गतिको याद करेंगे वैसे-वैसे ही आपका वैर ताजा होता रहेगा। अब इस मरणान्त वैरके ठन जानेपर आप जो प्रीति करना चाहते हैं, वह इसी प्रकार असम्भव है जैसे मिट्टीका घड़ा एक बार फूट जानेपर फिर नहीं जुड़ता। जब किसी कुलमें दुःखदायी वैर बँध जाता है तो वह शान्त नहीं होता। उसे याद दिलानेवाले बने ही रहते हैं; इसलिये जबतक कुलमें एक भी व्यक्ति बना रहता है तबतक वह खुनस नहीं मिटती। इसलिये किसीका कुछ बिगाड़ कर देनेपर फिर राजाको उसका विश्वास नहीं करना चाहिये।

ब्रह्मदत्तने कहा—अविश्वास करनेसे तो मनुष्य संसारमें कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता। यदि मनमें एक प्रकारका भी भय बना रहे तो उसका जीवन ही मिट्टी हो जायगा।

पूजनी बोली—राजन्! जिसके दोनों पैरोंमें चोट लगी हो और फिर भी वह पैरोंसे ही चलता रहे तो चाहे कैसी ही सावधानीसे चले उसके पैरोंमें घाव हो ही जायगा। जो पुरुष अपने रोगी नेत्रोंको हवाके सामने खुले रखता है उसके नेत्रोंमें वायुके कारण अवश्य ही बहुत पीड़ा बढ़ जायगी। जो पुरुष अपनी शक्तिका विचार न करके अज्ञानवश भयानक मार्गमें चल पड़ता है, उसका जीवन उस मार्गमें ही समाप्त हो जाता है। जो किसान वर्षाके समयका विचार न करके खेत जोतता है, उसका परिश्रम व्यर्थ होता है और उसे अनाज नहीं मिलता। जो पुरुष हितकारी भोजन करता है उसके लिये वह अन्न अमृतरूप हो जाता है। परंतु जो परिणामका विचार न करके कुपथ्य सेवन करता है उसके जीवनका अन्त तो उस अन्नके साथ ही समझो। दैव और पुरुषार्थ—ये दोनों एक-दूसरेके आश्रयसे रहते हैं, किंतु उदार पुरुष सर्वदा शुभकर्म किया करते हैं और नपुंसक दैवके भरोसे पड़े रहते हैं। जो पुरुष कर्मको छोड़ बैठता है, वह दरिद्रताके चंगुलमें फँसकर

सदा अनर्थोंका शिकार बना रहता है। अतः मनुष्यको सर्वस्वकी बाजी लगाकर भी अपना हित करना चाहिये। विद्या, शूरवीरता, दक्षता, बल और धैर्य—ये पाँच मनुष्यके स्वाभाविक मित्र हैं। बुद्धिमान्लोग सर्वदा इनके सहवासमें रहते हैं। घर, सोना, चाँदी, पृथ्वी, स्त्री और सुहृद्गण—ये मध्यम कोटिके मित्र हैं; ये मनुष्यको सभी जगह मिल सकते हैं। जो मनुष्य बुद्धिमान् होता है, वह सभी जगह आनन्दमें रहता है। बुद्धिमान्के पास थोड़ा-सा धन हो तो वह भी बढ़ता रहता है। वह दक्षतापूर्वक काम करते हुए संयमके द्वारा सर्वत्र प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है। किंतु बुद्धिहीन पुरुष घर, धरती, स्वदेश और स्वजनोंकी चिन्तामें ग्रस्त रहकर सदा दुःखी बना रहता है। यदि अपनी जन्मभूमिमें भी रोग और दुर्भिक्षादिका कष्ट हो तो वहाँसे अन्यत्र चला जाय; यदि रहना हो तो सदा सम्मानपूर्वक ही रहे। इसलिये अब मैं दूसरी जगह जाऊँगी, यहाँ रहना मेरे लिये सम्भव नहीं है। दुष्टा भार्या, दुष्ट पुत्र, कुटिल राजा, दुष्ट मित्र, दूषित सम्बन्ध और दुष्ट देशको तो दूरसे ही छोड़ देना चाहिये। कुपुत्रपर भला कैसे विश्वास हो सकता है, दुष्टा भार्यामें प्रेम होना कैसे सम्भव है ? कुराज्यमें शान्ति मिलना असम्भव ही है और दुष्ट देशमें भी कैसे निर्वाह हो सकता है ? कुमित्रका स्नेह कभी स्थिर नहीं रहता, इसलिये उससे मेल बना रहना कठिन ही है। स्त्री तो वही है जो मधुर भाषण करे, पुत्र वही है जिससे सुख मिले, मित्र वही है जिसमें विश्वास हो और देश वही है जहाँ निर्वाह हो सके तथा राजा उसे ही समझना चाहिये जिसके शासनमें किसी प्रकारका बलात्कार न होता हो, लोग निर्भय हों और गरीबोंका पालन होता हो। जिस देशका राजा गुणवान् और धर्मपरायण होता है वहाँ स्त्री, पुत्र, मित्र, सम्बन्धी और बन्धु-बान्धव सभीकी अनुकूलता हो जाती है। अधर्मी राजाके अत्याचारसे तो प्रजाका सत्यानाश हो जाता है। वास्तवमें धर्म, अर्थ, काम—इन तीनोंका मूल राजा ही है; इसलिये उसे सावधान रहकर सर्वदा अपनी प्रजाका पालन करना चाहिये। राजाको कररूपसे प्रजाकी आमदनीका छठाँ भाग लेकर उसे उचित कर्मोंमें खर्च करना चाहिये। जो राजा प्रजाकी अच्छी तरह रक्षा नहीं करता वह तो चोरके समान है। प्रजाको अभयदान देकर यदि राजा धनके लोभसे वैसा बर्ताव नहीं करता तो सारी प्रजाका पाप बटोरकर अन्तमें नरकमें जाता है और यदि वह अभय देकर वैसा ही आचरण भी करता है तो प्रजाका धर्मानुसार पालन करनेके कारण वह सबको सुख देनेवाला समझा जाता है। प्रजापति मनुने गुणोंकी दृष्टिसे राजाको माता, पिता, गुरु, रक्षक, अग्नि, कुबेर और यमरूप बताया है। प्रजापर प्रेम रखनेके कारण वह राष्ट्रका पिता है। वह प्रजाका पालन करता है और दीन-दुःखियोंकी भी सुधि लेता रहता है इसलिये माताके समान है। प्रजाका अनिष्ट करनेवालोंको वह अग्निके समान जलाता रहता है और यमराजके समान दुष्टोंका दमन करता है। अपने प्रीतिभाजनोंको धन देनेके कारण वह कुबेरके समान है, धर्मोपदेश देनेके कारण गुरु है और प्रजाकी रक्षा करनेके कारण रक्षक है। जो राजा अपने गुणोंसे सब नागरिकोंको प्रसन्न रखता है उसके राज्यका कभी नाश नहीं होता। जिसे पुरवासी और देशवासियोंको प्रसन्न रखनेकी कला आती है वह राजा इहलोक और परलोकमें सुख पाता है। जिस राजाकी प्रजा सर्वदा करके भारसे पीड़ित और तरह-तरहके अनर्थोंसे दुःखी रहती है, उसे जरूर नीचा देखना पड़ता है। इसके विपरीत जिसकी प्रजा सरोवरमें कमलोंके समान विकसित होती रहती है, वह सब प्रकारके पुण्यफलोंका भागी होता है और स्वर्गलोकमें भी सम्मान पाता है।

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! ब्रह्मदत्तसे इस प्रकार कहकर उसकी आज्ञा ले वह चिड़िया स्वेच्छानुसार चली गयी। इस प्रकार मैंने तुम्हें राजा ब्रह्मदत्त और पूजनीके सम्भाषणका प्रसंग तो सुना दिया, अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ?

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! क्या कोई ऐसी मर्यादा भी है जिसका किसीको उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये ? आप सभी सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं, कृपया उसका वर्णन कीजिये।

भीष्मजी बोले—मनुष्यको सर्वदा विद्यावृद्ध, तपस्वी, शास्त्रज्ञ और सदाचारनिष्ठ ब्राह्मणोंकी सेवा करनी चाहिये। यह बड़ा ही पवित्र कार्य है। तुम जैसा भाव देवताओंमें रखते हो वैसा ही ब्राह्मणोंमें भी रखो। ब्राह्मण प्रसन्न रहते हैं तो मनुष्यको बड़ा सुयश मिलता है और वे अप्रसन्न हो जाते हैं तो उसके लिये बड़ा संकट उपस्थित हो जाता है। ब्राह्मण प्रसन्न रहें तो अमृतके समान होते हैं और कोप करने लगें तो साक्षात् विष हो जाते हैं।



शरणागतकी रक्षा करनेके विषयमें एक बहेलिया और कपोत-कपोतीका प्रसंग

राजा युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! शरणागतकी रक्षा करनेवाले पुरुषका क्या कर्तव्य है—यह आप मुझे सुनाइये।

भीष्मजी बोले—राजन्! शरणागतकी रक्षा करना बड़ा भारी धर्म है। ऐसा प्रश्न तुम्हें अवश्य पूछना चाहिये। शिबि आदि राजाओंने तो शरणागतोंकी रक्षा करके ही सर्वश्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त कर ली थी। ऐसा भी सुना जाता है कि एक कबूतरने अपना मांस देकर शरणागत शत्रुका विधिवत् सत्कार किया था।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! कबूतरने शरणागत शत्रुको अपना मांस किस प्रकार खिलाया था और इससे उसे कौन सद्गति प्राप्त हुई थी?

भीष्मजी बोले—राजन्! सुनो, यह कथा समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली है और परशुरामजीने राजा मुचुकुन्दको सुनायी थी। पूर्वकालमें राजा मुचुकुन्दने परशुरामजीसे यही बात पूछी थी। उसकी सुननेकी इच्छा देखकर परशुरामजीने उसे यह कथा, जिसमें कबूतरके मुक्त होनेका प्रसंग वर्णित है, सुनायी थी।

परशुरामजीने कहा—राजन्! मैं तुम्हें धर्मके निर्णय और अभीष्ट अर्थसे युक्त एक कथा सुनाता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। किसी समय एक सघन वनमें एक बड़ा ही डरावना बहेलिया रहता था। उसके शरीरका रंग कौएके समान काला था। उसके क्रूर कर्मोंके कारण उसे सगे-सम्बन्धियोंने भी त्याग दिया था। वस्तुतः जिसका आचरण पापपूर्ण हो, उसे बुद्धिमान् पुरुषोंको दूरसे ही त्याग देना चाहिये। जो मनुष्य क्रूर, दुष्टहृदय और प्राणियोंकी हत्या करनेवाले होते हैं, उन्हें सर्पोंकी तरह सब प्राणियोंसे उद्वेग प्राप्त होता है। उसका तो नित्यका यही काम था कि जाल लेकर वनमें जाता और बहुत-से पक्षियोंको मारकर उन्हें बाजारमें बेच आता। इसके सिवा कोई दूसरी जीविका उसे अच्छी ही नहीं लगती थी।

एक बार जब वह वनमें ही था, बड़े जोरकी आँधी चलने लगी। एक क्षणमें ही आकाशमें घटाएँ छा गयीं और बिजली कड़कने लगी। इन्द्रदेवने मूसलाधार वर्षा करके बात-की-बातमें सारी पृथ्वीको जलमय कर दिया। वर्षाके वेगसे अनेकों पक्षी मरकर पृथ्वीपर गिर गये। इसी समय उस बहेलियेकी दृष्टि एक कबूतरीपर पड़ी जो शीतसे ठिठुरकर पृथ्वीपर गिर गयी थी। इस समय यद्यपि वह स्वयं भी बड़े कष्टमें था, तो भी उसने उसे उठाकर पिंजड़ेमें बन्द कर लिया। वह पापात्मा था और पाप ही करता रहता था, इसलिये इस समय भी उसने पाप ही किया। इतनेहीमें उसे वृक्षोंके कुंजमें एक मेघके समान सघन विशाल वृक्ष दिखायी दिया। उसपर अनेकों पक्षियोंने बसेरा किया था। थोड़ी ही देरमें बादल फट गये और आकाश स्वच्छ हो गया। बहेलिया जाड़ेसे बहुत ठिठुर रहा था। उसने इधर-उधर देखकर विचार किया, 'यहाँसे मेरी झोपड़ी तो बहुत दूर है, अच्छा, आज यहीं ठहर जाऊँ।' ऐसा सोचकर उस पेड़के नीचे ही रात बितानेके विचारसे उसने हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए कहा, 'इस वृक्षपर जो देवता निवास करते हों, मैं उनकी शरण लेता हूँ।' इस प्रकार प्रार्थना करके वह पत्ते बिछाकर एक शिलापर सिर रखकर सो गया।

राजन्! उस वृक्षकी शाखापर बहुत दिनोंसे एक कबूतर रहता था। उसकी कबूतरी सबेरेसे ही चुगा लेने गयी थी और अभीतक लौटकर नहीं आयी थी। इस समय रात हुई देखकर उस कबूतरको बड़ा खेद हुआ। वह कहने लगा, 'अरे! आज तो बड़ी आँधी-वर्षा थी और मेरी प्यारी कबूतरी अभीतक नहीं आयी। उसके अभीतक न लौटनेका क्या कारण हो सकता है? वनमें न जाने वह कुशलसे भी होगी या नहीं? उसके बिना तो आज मेरा यह घोंसला उजड़ा-सा जान पड़ता है। वास्तवमें घरको घर नहीं कहते—गृहिणीको ही 'घर' कहते हैं। जिस घरमें गृहिणी न हो वह तो वनके ही समान है। यदि आज मेरी मधुरभाषिणी-प्रिया न लौटी तो मैं इस जीवनको रखकर भी क्या करूँगा? वह ऐसी पतिव्रता थी कि मेरे नहाये बिना नहाती नहीं थी और मेरे भोजन किये बिना भोजन नहीं करती थी। इसी प्रकार मेरे बैठ जानेपर ही बैठती और सो जानेपर ही सोती थी। यदि मुझे प्रसन्न देखती तो उसका मुख भी खिल जाता और उदास देखती तो स्वयं भी खिन्न हो जाती। मैं कहीं बाहर जाने लगता तो उसका चेहरा उतर जाता और कभी क्रोध करता तो वह मीठे-मीठे शब्द सुनाकर मुझे शान्त कर देती। वह बड़ी ही पतिव्रता, पतिके आश्रित और पतिका प्रिय करनेमें तत्पर रहनेवाली थी। वह तपस्विनी मेरे प्रति बड़ा प्रेम और अनुराग रखती है और मेरी बड़ी भक्त है। पुरुषके धर्म, अर्थ और काममें स्त्री ही प्रधानतया सहायता करनेवाली होती है। विदेशमें भी वही विश्वसनीय मित्रका काम करती है। पुरुषकी सर्वोत्तम सम्पत्ति उसकी भार्या ही कही जाती है। जो पुरुष रोगसे पीड़ित हो और

बहुत दिनोंसे विपत्तिमें फँसा हुआ हो उसके लिये भी स्त्रीके समान कोई दूसरी ओषधि नहीं है। पुरुषका स्त्रीके समान न तो कोई बन्धु है और न धर्मसाधनमें कोई वैसा सहायक है। जिसके घरमें साध्वी और मधुरभाषिणी भार्या नहीं है उसे तो वनमें चला जाना चाहिये। उसके लिये तो जैसा घर वैसा ही वन।'

भीष्मजी कहते हैं—जब कबूतर इस प्रकार विलाप कर रहा था तो बहेलियेके पिंजड़ेमें पड़ी हुई कबूतरीने उसका करुण-क्रन्दन सुनकर कहा, 'अहो ! मेरा बड़ा सौभाग्य है जो मेरे प्रिय पतिदेव इस प्रकार मेरा गुणगान कर रहे हैं। स्त्रीका इष्टदेव तो पति ही है। जिससे पतिदेव प्रसन्न नहीं रहते, वह पत्नी दावानलसे दग्ध हुए पुष्प और गुच्छोंके समान भस्म हो जाती है। अस्तु, अब मेरे विषयमें तो आप कोई चिन्ता न करें। मैं आपसे एक प्रार्थना करती हूँ, आपसे हो सके तो एक शरणागतकी रक्षा कीजिये। देखिये, यह बहेलिया आपके निवासस्थानपर आकर सोया है। यह ठंड और भूखसे व्याकुल है, आप इसका सत्कार कीजिये। स्वामिन् ! जगन्माता गौ और ब्राह्मणका वध करनेवालेको जो पाप लगता है, वही शरणागतकी हिंसा करनेवालेको भी लगता है। भगवान्‌ने हमारी कापोती वृत्ति बना दी है। अपने जातिधर्मके अनुसार आप-जैसे मनस्वीको उसका आचरण करना चाहिये। जो गृहस्थ यथाशक्ति अपने आश्रमधर्मका पालन करता है, वह मरनेके पश्चात् अक्षयलोक प्राप्त करता है। अतः आप अपने देहकी ममता छोड़कर धर्म और अर्थपर दृष्टि रखते हुए इस बहेलियेका ऐसा सत्कार करें, जिससे इसका मन प्रसन्न हो जाय। मेरे लिये अब आप कोई चिन्ता न करें। आपकी शरीरयात्राका निर्वाह करनेके लिये आपको दूसरी स्त्रियाँ मिल जायँगी।' इस प्रकार पिंजड़ेमें पड़ी हुई उस तपस्विनी कबूतरीने अपने पतिसे कहा और फिर अत्यन्त दुःखी होकर पतिके मुँहकी ओर देखने लगी।

स्त्रीकी यह धर्मानुसार और युक्तियुक्त बात सुनकर कबूतरको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसकी आँखोंमें आनन्दाश्रु छलक आये। उसने निरन्तर पक्षियोंकी हिंसासे निर्वाह करनेवाले उस बहेलियेकी ओर देखकर उसका यथोचित स्वागत करते हुए कहा, 'कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? आप हमारे घर पधारे हैं। घर आयेका आतिथ्य करना यों तो सभीका कर्तव्य है, किंतु पञ्चयज्ञके अधिकारी गृहस्थका तो यह प्रधान धर्म है। जो पुरुष गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी मोहवश पञ्चमहायज्ञ नहीं करता, उसे धर्मानुसार ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकारके सुख नहीं मिलते। इसलिये आपकी जो इच्छा हो कहिये; किसी प्रकारका दुःख न मानिये। आप अपने मुखसे जो कुछ कहेंगे मैं वही करूँगा।'

उसकी बात सुनकर बहेलियेने कहा, 'मुझे शीतसे बड़ा कष्ट हो रहा है, इसलिये कोई ठंडसे बचनेका उपाय करो।' यह सुनकर कबूतरने पृथ्वीपर पत्ते इकट्ठे कर दिये और उन्हें जलानेको चिनगारी लेनेके लिये बड़ी तेजीसे उड़ान लगायी। वह लुहारके घरसे अङ्गारा ले आया और उससे सूखे पत्तोंमें आग लगा दी। बहेलिया आग तापने लगा। इससे उसके शरीरमें गर्मी आ जानेसे उसके होश-हवाश ठिकानेपर आ गये। फिर उसने अत्यन्त आनन्दित होकर डबडबायी आँखोंसे कबूतरकी ओर देखते हुए कहा, 'मुझे बड़ी भूख लगी है, मैं चाहता हूँ तुम मुझे कुछ भोजन दो।'

बहेलियेकी बात सुनकर कबूतर इस चिन्तामें पड़ गया कि 'अब मुझे क्या करना चाहिये।' उस समय वह अपनी असमर्थतापर खेद प्रकट करने लगा। किंतु कुछ ही देरमें उसे एक बात याद आयी और वह कहने लगा, 'अच्छा, थोड़ी देर ठहरिये, मैं अभी आपकी तृप्तिका उपाय किये देता हूँ।' ऐसा कहकर उसने सूखे पत्तोंसे आग सुलगायी और फिर बड़े हर्षमें भरकर कहा, 'पहले ऋषि, देवता और महानुभाव पितरोंके मुखसे मैंने सुना है कि अतिथिसत्कार बड़ा भारी पुण्य है। सौम्य ! आज आप हमारे अतिथि हैं, इसलिये मैंने आपका सत्कार करनेका पक्का विचार कर लिया है। आप मुझपर



सदा कृपादृष्टि रखें।' ऐसा कहकर वह पक्षी प्रसन्न वदनसे अग्निकी तीन परिक्रमाएँ करके उसमें कूद पड़ा। कबूतरको आगमें गिरा देखकर बहेलिया मन-ही-मन सोचने लगा, 'अरे! मैंने यह क्या कर डाला? हाय! मैं बड़ा क्रूर हूँ, मैं तो अपने कर्मसे ही निन्दनीय हूँ। निस्संदेह इससे तो मुझे बड़ा भारी पाप लगेगा।' इस प्रकार उसने बड़ा विलाप किया और बार-बार अपने कर्मकी निन्दा की।

यद्यपि इस समय बहेलियेको बड़ी भूख लगी हुई थी, तो भी कबूतरको आगमें पड़ा देखकर वह कहने लगा, 'हाय! मैं बड़ा ही क्रूर और मूर्ख हूँ, मैंने यह क्या कर डाला? मेरा तो जीवन ही दुःखमय है, मुझसे तो नित्य ऐसा ही पाप होता रहता है। मैं सर्वथा अविश्वसनीय, दुष्टबुद्धि और क्रूर विचारोंवाला हूँ। सारे शुभकर्मोंको छोड़कर मैंने यह पक्षियोंको फँसानेका ही धंधा स्वीकार किया है। देखो, यह कबूतर कैसा महात्मा है? इसने अपनेको अग्निमें होमकर मुझे अपना मांस दिया। ऐसा करके इसने ही मुझे धर्मका भी उपदेश कर दिया है। अब मैं भी स्त्री और पुत्रोंका मोह छोड़कर अपने प्रिय प्राणोंको त्याग दूँगा। आजसे मैं सब प्रकारके भोगोंको त्यागकर भूख-प्यास और धूपको सहन करते हुए शरीरको सुखा डालूँगा और तरह-तरहसे उपवास करके अपना परलोक सुधारूँगा। अहो! अपना शरीर होमकर इस कबूतरने यह बता दिया कि अतिथिका सत्कार कैसे करना चाहिये। इसलिये अब मैं भी धर्माचरण करूँगा, मनुष्यका सर्वोत्तम आश्रय धर्म ही है।' ऐसा सोचकर उस बहेलियेने लाठी, शलाका, जाल और पिंजड़ेको फेंककर उस कबूतरीको भी छोड़ दिया और महाप्रस्थानका निश्चय करके वहाँसे तप करनेके लिये चल दिया।

बहेलियेके चले जानेपर कबूतरी पतिको स्मरण करके बहुत शोकाकुल हो गयी और दुःखसे विलाप करती हुई कहने लगी, 'प्रियतम! मुझे याद नहीं कि कभी तुमने मेरा कोई अप्रिय कार्य किया हो। तुम नित्य ही मेरा लालन करते थे और बड़े आदरसे सत्कार करते थे। मैंने तुम्हारे साथ बहुत सुख भोगा है, आज मेरे लिये वह कुछ भी नहीं रहा। स्त्रीको पिता, भाई और पुत्रसे तो थोड़ा-सा ही सहारा मिलता है, उसे अपार सुख देनेवाला तो पति ही है। अतः ऐसी कौन नारी है, जो अपने पतिका आदर न करेगी। स्त्रीके लिये पतिके समान कोई नाथ नहीं और न पतिके समान कोई सुख ही है। उसके लिये तो धन और सर्वस्वको छोड़कर पति ही एकमात्र गति है। नाथ! अब तुम्हारे बिना मुझे इस जीवनसे भी क्या प्रयोजन है? ऐसी कौन सती स्त्री होगी जो पतिके बिना जीवित रहना चाहेगी?' इसी प्रकार उस कबूतरीने दुःखित होकर बहुत करुणक्रन्दन किया और फिर उस जलती हुई आगमें कूद पड़ी। उसने देखा कि उसका पति रंग-बिरंगे फूलोंकी माला और विचित्र वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हुआ एक विमानपर बैठा है तथा अनेकों महापुरुष उसकी सेवामें उपस्थित हैं। इस प्रकार पुण्यकर्मा महात्माओंके सैकड़ों विमानोंसे घिरा हुआ वह अपनी पत्नीके सहित स्वर्ग सिधारा और वहाँ अपने पुण्यकर्मके प्रतापसे सत्कृत होकर स्त्रीके सहित आनन्दपूर्वक विहार करने लगा।

बहेलियेने जब उन दोनोंको विमानपर चढ़कर आकाशमें जाते देखा तो उनकी ऐसी सद्गति देखकर उसे बड़ा अनुताप हुआ और वह सोचने लगा, 'मैं भी इसी प्रकार तपस्या करके परमगति प्राप्त करूँगा।' मनमें ऐसा विचार करके वह वहाँसे चल दिया और ममताहीन होकर पवनमात्रसे निर्वाह करता उद्यमरहित होकर एक कण्टकाकीर्ण वनमें घुसा। इससे उसका सारा शरीर काँटोंसे छिलकर लोहू-लुहान हो गया। इतनेहीमें वायुके कारण रगड़ लगनेसे वृक्षोंमें आग लग गयी। आग बड़ी प्रचण्ड थी। उसकी ऊँची-ऊँची ज्वालाओंसे सब ओर चिनगारियाँ फैलने लगीं और मृग तथा पक्षियोंसे भरा हुआ वह सारा वन जलकर खाक होने लगा। यह देखकर वह बहेलिया भी बड़ी प्रसन्नतासे शरीर छोड़नेके लिये उस प्रज्वलित अग्निकी ओर बढ़ा और खुशी-खुशी भस्म होकर परमगतिको प्राप्त हो गया। थोड़ी ही देरमें उसने देखा कि वह बड़े आनन्दसे स्वर्गमें विराजमान है तथा अनेकों यक्ष, गन्धर्व और सिद्धोंके बीचमें इन्द्रके समान शोभा पा रहा है।

इस प्रकार वे कपोत, कपोती और बहेलिया तीनों ही अपने पुण्यके प्रतापसे स्वर्ग सिधारे। जो स्त्री इस प्रकार अपने पतिका अनुसरण करती है, वह कपोतीके समान ही स्वर्गलोकमें विराजती है। राजन्! शरणागतकी रक्षा करना बड़ा ही पुण्यका काम है। ऐसा करनेसे गोवध करनेवालेके पापका भी प्रायश्चित्त हो जाता है। इस पापनाशक पवित्र इतिहासको सुननेसे मनुष्यकी दुर्गति नहीं होती और वह स्वर्गसुख प्राप्त करता है।



अबुद्धिपूर्वक किये हुए पापकी निवृत्तिके विषयमें राजा जनमेजय और इन्द्रोत मुनिका प्रसंग

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! यदि कोई पुरुष अनजानमें किसी प्रकारका पापकर्म कर बैठे तो वह उससे किस प्रकार मुक्त हो सकता है ?

भीष्मजी बोले—राजन् ! इस विषयमें शुनकके वंशमें उत्पन्न हुए इन्द्रोत मुनिने राजा जनमेजयको जो बात सुनायी थी, वही प्राचीन प्रसंग मैं तुम्हें सुनाता हूँ। पूर्वकालमें परीक्षित्का पुत्र राजा जनमेजय[1] बड़ा ही पराक्रमी था। उसे बिना जाने ही ब्रह्महत्याका पाप लग गया। इसलिये उसके पुरोहित और सब ब्राह्मणोंने उसका परित्याग कर दिया। इस पापकी आगसे वह रात-दिन जलता रहता था; इसलिये अन्तमें राज्य छोड़कर वनमें चला गया। वहाँ वह बड़ी तीव्र तपस्या करने लगा। उसने सारी पृथ्वीमें देश-देशमें भटकते हुए अनेकों ब्राह्मणोंसे ब्रह्महत्याकी निवृत्तिके लिये कोई प्रायश्चित्त पूछा। घूमते-घूमते वह महातपस्वी शुनकवंशीय इन्द्रोत मुनिके पास पहुँच गया और उनके दोनों पैर पकड़ लिये। राजाको देखकर ऋषिने बड़ा तिरस्कार किया और उससे कहा, 'अरे महापापी ! तू यहाँ कैसे आ गया ? मुझसे तुझे क्या काम है ? तू यहाँसे अभी चला जा, मुझे तेरा यहाँ रुकना अच्छा नहीं लगता। ब्राह्मणको मारनेके कारण तेरा चित्त अशुद्ध हो गया है। तू निरन्तर पापका ही चिन्तन करता है, इसलिये तेरा जीवन व्यर्थ और अत्यन्त क्लेशमय है। देख, तेरी ही करतूतसे तेरे पितरोंका वंश नरकमें पड़ा है, उन्होंने तुझसे जो-जो आशाएँ बाँध रखी थीं, आज वे सब व्यर्थ हो गयीं। जिनका पूजन करनेसे मनुष्य स्वर्ग, आयु, सुयश और संतान प्राप्त करते हैं, उन ब्राह्मणोंसे ही तू बिना काम द्वेष करता है। अब अपने पापके कारण तू अनेकों वर्षोंतक उलटा सिर किये नरकमें पड़ा रहेगा। वहाँ लोहेके समान चोंचोंवाले गिद्ध और मोर तुझे नोंच-नोंचकर दुःखी करेंगे और उसके बाद भी तुझे किसी पापयोनिमें ही जन्म लेना पड़ेगा। यदि तू ऐसा समझता हो कि जब इस लोकमें ही पापका कोई फल नहीं मिलता तो परलोकमें ही क्या रखा है, तो इस बातका निश्चय तुझे यमदूत करा देंगे।'

मुनिवर इन्द्रोतके इस प्रकार कहनेपर राजा जनमेजयने कहा, 'मुने ! मैं अवश्य धिक्कारके ही योग्य हूँ। अतः आपने मुझे जो भला-बुरा कहा है वह उचित ही है। मैं आपकी कृपाका भिखारी हूँ। मैं परितापाग्निमें अपनी सारी पाप-राशिको भस्म कर रहा हूँ। अपने कुकर्मोंपर दृष्टि जानेसे मेरे मनमें तनिक भी चैन नहीं है। मैं सच कहता हूँ, यमराजसे भी मुझे बड़ा भय लग रहा है। मेरे हृदयमें जो यह पापका काँटा साल रहा है, उसे निकाले बिना मैं कैसे जीवित रह सकता हूँ। अतः आप मुझे इससे मुक्त होनेका कोई उपाय बताइये। मैं चाहता हूँ किसी प्रकार मेरे वंशका नाश न हो, यह संसारमें बराबर बना रहे। अपने कर्मके लिये मुझे अत्यन्त खेद है; अब तो जैसे बने वैसे मेरी रक्षा कीजिये। पण्डितलोग जैसे बालककी बुद्धिपर ध्यान नहीं देते और पिता जैसे पुत्रके अपराधकी ओर नहीं देखते, उसी प्रकार मेरी बुद्धि और करनीपर ध्यान न देकर आप मुझपर प्रसन्न होइये।'

इन्द्रोतने कहा—तुम ब्राह्मणोंकी शक्ति और वेद-शास्त्रोंमें बतलाया हुआ उनका माहात्म्य तो जानते ही हो। इसलिये ब्राह्मणोंकी शरण लो और ऐसा काम करो, जिससे तुम्हें शान्ति मिले। प्रसन्न हुए ब्राह्मणोंकी शरण जानेसे ही तुम्हारी परलोकमें रक्षा होगी, अथवा यदि तुम अपने पापोंके लिये पश्चात्ताप करते हो तो सदा धर्मपर ही दृष्टि रखो।

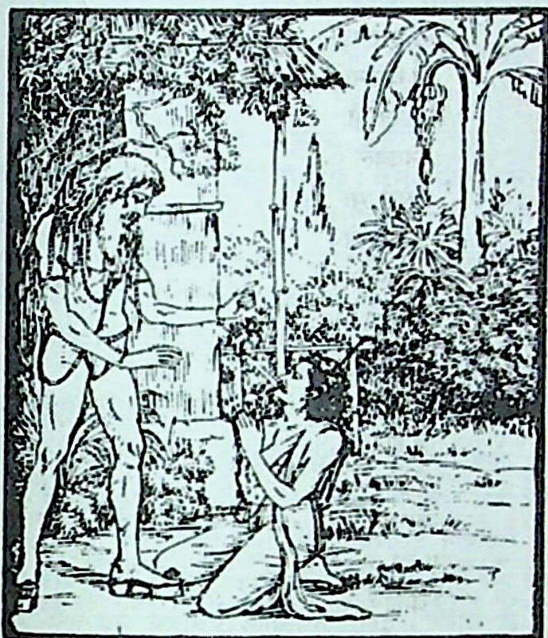
जनमेजयने कहा—मैं अपने पापके कारण बहुत संतप्त हूँ। अब आगे मैं कभी धर्मका लोप नहीं करूँगा। मुझे कल्याणकी इच्छा है और अब मैं आपकी सेवामें उपस्थित हूँ, इसलिये आप मुझपर प्रसन्न होइये।

इन्द्रोतने कहा—राजन् ! मैं भी यही चाहता हूँ कि तुम दम्भ और मानको छोड़कर मेरे प्रति सच्ची प्रीति रखो, समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहो और अपने धर्मपर दृष्टि रखो। मैं अब केवल धर्म समझकर ही तुम्हें स्वीकार कर रहा हूँ। इससे मेरा प्रधान उद्देश्य यही समझो कि तुम्हें ब्राह्मणोंके प्रति पूर्ण सद्भाव रखना चाहिये। तुम ऐसी प्रतिज्ञा करो कि मैं ब्राह्मणोंसे कभी द्रोह नहीं करूँगा।

जनमेजय बोला—ब्रह्मन् ! मैं आपके चरण-स्पर्श करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब कभी मन, वचन या कर्मसे ब्राह्मणोंके साथ द्रोह न करूँगा।

इन्द्रोतने कहा—राजन् ! अब तुम्हारा चित्त बदल गया है, इसलिये मैं तुम्हें धर्मका उपदेश करूँगा। लोग कहते हैं कि यदि राजा दुश्चरित्र हो तो अवश्य ही वह सारे राष्ट्रको संतप्त कर डालता है। तुम भी पहले ऐसे ही थे किंतु अब तुम्हारी दृष्टि धर्मपर है। सम्पन्न मनुष्य उदार,

१. ये परीक्षित् और जनमेजय अर्जुनके पौत्र और प्रपौत्र नहीं हैं।



कृपण या तपस्वी कुछ भी हो सकता है। किंतु यदि बिना विचार किये कोई काम किया जाता है तो उससे दुःख ही होता है। प्रत्येक काम सोच-समझकर करना ही अच्छा है। यज्ञ, दान, दया, वेद और सत्य—ये पाँचों ही पवित्र हैं। इनके सिवा अच्छी प्रकारसे किया हुआ तप भी परमपवित्र है और यही राजाको पूर्णतया पवित्र करनेवाला है। उसका अच्छी तरह अनुष्ठान करनेसे तुम परमकल्याणकारी धर्मकी उपलब्धि कर सकते हो। इसी प्रकार पवित्र क्षेत्रोंकी यात्रासे भी बड़ा पुण्य होता है। कुरुक्षेत्र पवित्र स्थान है, उसकी अपेक्षा सरस्वती नदी अधिक पवित्र है, सरस्वतीसे भी दूसरे कई तीर्थ ज्यादा पवित्र हैं और उनमें भी पृथूदक विशेष पवित्र है। उसमें स्नान करने और उसका जल पीनेसे मनुष्यको चाहे वह कल ही क्यों न मर जाय, इसकी चिन्ता नहीं सताती अर्थात् उसका जीवन सफल हो जाता है। यदि तुम महासरोवर, पुष्कर, प्रभास, उत्तर-मानसरोवर,कालोदक तथा दृषद्वती और सरस्वती नदीके संगम मानसरोवर आदि तीर्थोंमें जाकर स्नान करोगे तो तुम्हें दीर्घ आयु प्राप्त होगी।

इसके सिवा तुम्हें ब्राह्मणोंकी प्रसन्नता भी सम्पादन करनी चाहिये। वे तुम्हारा तिरस्कार करें और तरह-तरहसे तुम्हारी उपेक्षा करें तो भी तुम ऐसा नियम कर लो कि 'मैं उन्हें कभी कष्ट नहीं पहुँचाऊँगा।' इस प्रकार अपने सब काम करते हुए तुम परमकल्याण प्राप्त कर सकते हो। यदि मनुष्यसे कोई अपराध बन जाय तो उसके लिये पश्चात्ताप करनेसे वह पापसे मुक्त हो जाता है। यदि दूसरी बार फिर पाप बन जाय तो 'अब फिर ऐसा काम नहीं करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करनेसे पापमुक्त हो सकता है तथा ऐसा निश्चय करे कि 'अब भविष्यमें सर्वदा धर्मका ही आचरण करूँगा' तो तीसरी बारके पापसे भी मुक्ति हो जाती है और यदि पवित्रभावसे तीर्थोंमें भ्रमण करता रहे तो अनेकों पापोंसे छूट जाता है। तपस्यामें लगे हुए मनुष्यके तो सब पाप तत्काल छूट जाते हैं। जिस मनुष्यको कलंक लगा हो वह एक वर्षतक अग्निकी उपासना करनेसे उससे मुक्त हो सकता है। गर्भहत्या करनेवाले पुरुषका पाप तीन वर्षतक अग्निकी उपासना करनेसे अथवा महासर, पुष्कर, प्रभास और उत्तर-मानसरोवर आदि तीर्थोंमें सौ योजनतक यात्रा करनेसे छूट जाता है। जिस मनुष्यने जितने प्राणियोंकी हिंसा की हो वह उसी जातिके उतने ही प्राणियोंकी मृत्युसे रक्षा करे तो पापमुक्त हो जाता है। मनुजी कहते हैं कि जलमें डुबकी लगाकर तीन बार अघमर्षण-मन्त्र जपनेसे मनुष्य उसी प्रकार पापोंसे छूट जाता है जैसे अश्वमेध यज्ञके अन्तमें अवभृथ स्नान करनेसे। इससे तुरंत ही उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं, उसे सम्मान मिलता है और सब प्राणी प्रसन्न होकर उसके सामने जड एवं मूकके समान हो जाते हैं।' बृहस्पतिजीका मत है कि 'यदि मनुष्य पहले बिना जाने पाप करके फिर बुद्धिपूर्वक पुण्यकर्म करे तो इससे उसके पूर्व पापका इसी प्रकार नाश हो जाता है, जैसे क्षार लगानेसे वस्त्रका मैल छूट जाता है।' सूर्य जिस प्रकार प्रातःकाल उदित होकर रात्रिके सारे अन्धकारको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार शुभकर्म करके मनुष्य अपने सभी पापोंका अन्त कर देता है।

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! राजा जनमेजयको इस प्रकार उपदेश देकर मुनिवर इन्द्रोतने उससे विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञ कराया। इससे उसका सब पाप नष्ट हो गया और वह प्रज्वलित अग्निके समान देदीप्यमान होने लगा।



मृतककी पुनर्जीवनप्राप्तिके विषयमें एक ब्राह्मणबालकके जीवित होनेका प्रसंग

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! क्या आपने कभी कोई ऐसा पुरुष देखा या सुना है जो एक बार मरकर फिर जी उठा हो ?

भीष्मजी बोले—राजन् ! पूर्वकालमें नैमिषारण्यक्षेत्रमें गृध्र और गीदड़के संवादरूपसे एक घटना हुई थी, वह तुम सुनो। एक बार किसी ब्राह्मणका बड़ी कठिनतासे प्राप्त हुआ सुन्दर बालक बाल्यावस्थामें ही चल बसा। तब उसके कुछ सम्बन्धी शोकसे रोते-बिलखते उसे लेकर श्मशानमें गये। वे बालकको हृदयसे लगाकर अत्यन्त करुणक्रन्दन करने लगे। उन्होंने उसे पृथ्वीपर रख तो दिया, किंतु वहाँसे लौटनेका साहस न कर सके। उनके रोनेका शब्द सुनकर वहाँ एक गृध्र आया और उनसे कहने लगा, 'अब तुम अपने इस एकमात्र बालकको छोड़कर चले जाओ, व्यर्थ विलम्ब मत करो। जो लोग अपने मृतक सम्बन्धियोंको लेकर श्मशानमें आते हैं और जो नहीं आते उन सभीको अपनी आयु समाप्त होनेपर संसारसे कूच करना ही पड़ता है। यह श्मशानभूमि गृध्र और गीदड़ोंसे भरी हुई है, इसमें सर्वत्र नरकंकाल दिखायी पड़ रहे हैं; इसलिये यह सभी प्राणियोंके लिये भयावह है, आपलोगोंको यहाँ अधिक नहीं ठहरना चाहिये। प्राणियोंकी गति ऐसी ही है कि एक बार कालके गालमें पड़ जानेपर फिर कोई जीव नहीं लौटता। इस मर्त्यलोकमें जो भी जन्मा है, उसे एक दिन अवश्य मरना होगा। देखो, अब सूर्यभगवान् अस्ताचलके अञ्चलमें पहुँच चुके हैं; इसलिये इस बालकका मोह छोड़कर तुम अपने घर लौट जाओ।'

युधिष्ठिर ! उस गृध्रकी बातें सुनकर वे सब लोग बालकको पृथ्वीपर लिटाकर वहाँसे रोते-बिलखते चलने लगे। इतनेहीमें एक काले रंगका गीदड़ अपनी माँदमेंसे निकलकर वहाँ आया और उनसे कहने लगा, 'मनुष्यो ! वास्तवमें तुम बड़े स्नेहशून्य हो। अरे मूर्खो ! अभी तो सूर्यास्त भी नहीं हुआ। इतने डरते क्यों हो ? कुछ तो स्नेह निभाओ। सम्भव है, किसी शुभ घड़ीके प्रभावसे यह बालक जी ही उठे। तुम कैसे निर्दयी हो ? तुमने पुत्रस्नेहको तिलाञ्जलि देकर इस नन्हें-से बालकको पृथ्वीपर कुशा बिछाकर सुला दिया है और उसे इस भीषण श्मशानमें छोड़कर जानेको तैयार हो गये हो। क्या इस बच्चेमें तुम्हारा कुछ भी स्नेह नहीं है ? देखो, पशु-पक्षियोंका अपने बच्चोंपर कैसा स्नेह होता है ! यद्यपि उनका पालन-पोषण करनेपर भी उन्हें इस लोक या परलोकमें उनसे कोई फल नहीं मिलता। परंतु मनुष्योंमें तो स्नेह ही कहाँ है, जो उन्हें शोक हो। यह तुम्हारा वंशधर बालक है, इसे छोड़कर अब तुम कहाँ जाना चाहते हो ? अरे ! अभी देरतक आँसू बहाओ और प्यारके साथ जी-भरकर इसे देखो। शरीरसे क्षीण होते हुए, मुकदमेमें फँसे हुए और श्मशानकी ओर जाते हुए पुरुषका साथ उसके बन्धु-बान्धव ही दिया करते हैं, दूसरे लोग नहीं। हाय ! इस कमलनयन बालकको छोड़कर जानेके लिये तुम्हारे पैर कैसे उठते हैं ?' गीदड़की ये बातें सुनकर वे सब लोग उसी समय शवके पास लौट आये।

अब वह गिद्ध कहने लगा, 'अरे बुद्धिहीन मनुष्यो ! इस अत्यन्त तुच्छ मन्दमति गीदड़की बातोंमें आकर तुम लौट कैसे आये ? थोथे काठके समान इस पञ्चभूतोंके छोड़े हुए चेष्टाहीन शरीरके लिये तुम शोक क्यों करते हो ? अब तुम तीव्र तपस्यामें लग जाओ, उससे तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जायँगे। देखो, तपस्याके प्रभावसे सब कुछ मिल सकता है, व्यर्थ विलाप करनेमें क्या रखा है ? धन, गौ, सोना, मणि, रत्न और पुत्र सबका मूल तप ही है, तपहीसे ये सब चीजें मिल सकती हैं। मनुष्य अपने पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार ही सुख-दुःखको लेकर जन्मता है। पिताके कर्मोंसे पुत्र और पुत्रके कर्मोंसे पिता बँधा हुआ नहीं है। सब अपने-अपने पाप-पुण्योंसे बँधे हैं और अन्तमें इस मृत्युमार्गसे ही जाते हैं। अतः तुम प्रयत्नपूर्वक धर्मका आचरण करो, अधर्ममें मन मत ले जाओ तथा देवता और ब्राह्मणोंके साथ समयानुसार बर्ताव करो। शोक और दीनता छोड़ दो, पुत्रकी मोह-ममतासे दूर हो जाओ, इसे यहीं खुले मैदानमें छोड़कर चले जाओ। देखो, कोई कैसा ही प्यारा हो, यहाँ छोड़कर फिर किसीके बन्धु-बान्धव इस स्थानपर अधिक देर नहीं ठहरते। उन्हें अपने स्नेहबन्धन तोड़कर आँखोंमें आँसू भरे लौटना ही होता है। कोई बुद्धिमान् हो या मूर्ख, धनवान् हो या निर्धन, उसे अपने शुभाशुभ कर्मोंको लेकर कालके अधीन होना ही पड़ता है। अच्छा, शोक करके ही तुम क्या कर लोगे ? सबका शासक तो काल ही है, जो सबको एक नजरसे देखता है। यह कराल काल युवा, बालक, वृद्ध और गर्भस्थ जीवोंको भी लील जाता है; इस संसारकी ऐसी ही गति है।'

इसपर गीदड़ने कहा—अरे ! तुम तो पुत्रस्नेहमें भरकर बहुत चिन्तातुर थे, किंतु इस मन्दमति गिद्धने तुम्हारे स्नेहको शिथिल कर दिया है। इसीसे उसकी सरल, युक्ति-युक्त और

विश्वसनीय-सी जान पड़नेवाली बातोंमें आकर तुमलोग स्नेहको तिलाञ्जलि देकर घर लौटनेके लिये तैयार हो गये हो। आखिर यह तुम्हारे ही रक्त और मांससे बना है, तुम्हारे आधे शरीरके समान है और अपने पितरोंके वंशकी वृद्धि करनेवाला है। इसे वनमें छोड़कर तुम कहाँ जाओगे? अच्छा, इतना ही करो कि जबतक सूर्य अस्त न हो तबतक यहाँ ठहरो, उसके बाद तुम इसे या तो साथ ले जाना या यहीं बैठे रहना।

गिद्धने कहा—मनुष्यो! मुझे जन्म लिये आज एक हजार वर्षसे अधिक हो गये, किंतु मैंने तो कभी किसी स्त्री-पुरुष या नपुंसकको मरनेके बाद फिर जीवित होते नहीं देखा। देखो, इसका मृत देह निस्तेज और काठके समान हो गया है। ऐसे प्राणहीन शरीरको छोड़कर तुम चले क्यों नहीं जाते हो? तुम्हारा यह स्नेह और परिश्रम तो व्यर्थ ही है, इससे कोई फल हाथ लगनेवाला नहीं है। मैं तुमसे अवश्य कुछ कठोर बातें कह रहा हूँ, परंतु ये हेतुगर्भित हैं और मोक्षधर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली हैं, इसलिये मेरी बात मानकर तुम अपने-अपने घर चले जाओ। किसी मरे हुए सम्बन्धीको देखकर और उसके कामोंको याद करके तो मनुष्यका शोक दुगुना हो जाता है।

गिद्धकी ये बातें सुनकर सब लोग लौटने लगे, उसी समय गीदड़ तुरंत उनके पास आया और कहने लगा, 'भैया! देखो तो सही, इस बालकका रंग कैसा सोनेके समान देदीप्यमान है। यह एक दिन अपने पितरोंको पिण्डदान करेगा। तुम इस गीधकी बातोंमें आकर इसे छोड़े क्यों जाते हो? इसे छोड़कर जानेसे तुम्हारे स्नेह, वियोग-व्यथा और रोने-धोनेमें तो कमी आवेगी नहीं, हाँ, तुम्हारा संताप अवश्य बढ़ जायगा। एक बार राजर्षि श्वेतका भी बालक मर गया था, किंतु धर्मनिष्ठ श्वेतने उसे फिर जीवित कर लिया था। इसी प्रकार यदि तुम्हें भी कोई सिद्ध, मुनि या देवता मिल जायँ तो वे रोते देखकर तुम्हारे ऊपर कृपा कर सकते हैं।'

गीदड़के इस प्रकार कहनेपर वे सब लोग फिर श्मशानमें लौट आये और उस बालकका सिर गोदमें रखकर फूट-फूटकर रोने लगे। उनके रुदनका शब्द सुनकर गृध्रने उनके पास आकर कहा, 'अरे लोगो! तुम इस बालकको अपने आँसुओंसे क्यों भिगो रहे हो तथा हाथोंसे दबा-दबाकर क्यों इसकी मिट्टी खराब कर रहे हो? यह तो धर्मराजकी आज्ञासे सदाके लिये सो गया है। जो बड़े भारी तपस्वी, धनी और बुद्धिमान् होते हैं, उन्हें भी मृत्युके हाथोंमें पड़ना ही होता है और अन्तमें उन्हें भी इस श्मशानभूमिमें ही आश्रय मिलता है। अतः बार-बार लौटकर शोकका बोझा सिरपर धारण करनेसे कोई लाभ नहीं है। अब इसके पुनर्जीवनकी कोई आशा नहीं है। जो व्यक्ति एक बार देहसे नाता तोड़कर मर जाता है, वह फिर उसी शरीरमें नहीं आ सकता। यदि सैकड़ों गीदड़ भी इसके लिये अपना शरीर बलिदान कर दें तो भी अब यह बालक नहीं जी सकता। हाँ, यदि रुद्रदेव, स्वामिकार्त्तिकेय, ब्रह्मा या विष्णु इसे वर दें तो यह जी सकता है। तुम्हारे आँसू बहाने, लंबे-लंबे श्वास लेने या डींग फोड़कर रोनेसे इसे पुनर्जीवन नहीं मिल सकता। अतः बुद्धिमान् पुरुषको अप्रिय आचरण, कटु भाषण, दूसरोंके साथ द्रोह, अधर्म और असत्यका दूरसे ही त्याग कर देना चाहिये तथा धर्म, सत्य, शास्त्रज्ञान, न्याय, सर्वभूतदया, अकुटिलता और सृजनता आदि गुणोंका प्रयत्नपूर्वक सम्पादन करना चाहिये। अब मर जानेपर इस बालकके लिये रो-रोकर तुम क्या कर लोगे?'

गिद्धके ऐसा कहनेपर वे उस बालकको वहीं पृथ्वीपर पड़ा छोड़कर रोते-बिलखते घर लौटने लगे। इसी समय गीदड़ फिर कहने लगा, 'अरे! तुम्हें धिक्कार है! तुम इस गीधकी बातोंमें आकर बुद्धिहीनोंकी तरह पुत्रस्नेहको तिलाञ्जलि देकर कैसे जा रहे हो? यह गृध्र तो बड़ा पापी है। इसकी बात मानकर तुम इस रूपवान् और कुलकी शोभा बढ़ानेवाले बालकको छोड़कर कहाँ जाओगे? मैं सच कहता हूँ, मुझे अपने मनसे तो यह बालक जीवित ही जान पड़ता है। इसका नाश नहीं हुआ है; इसे छोड़कर तुम सुख नहीं पा सकोगे। देखो, तुम्हारी सुखकी घड़ी समीप ही है। निश्चय रखो, सुख तुम्हें अवश्य मिलेगा।

गिद्ध बोला—यह वन्य प्रदेश प्रेतोंसे भरा हुआ है; इसमें अनेकों यक्ष-राक्षस रहते हैं। इसलिये यह बहुत ही भयानक है। तुम इस शवको यहीं छोड़कर सूर्यास्त होनेसे पहले ही इसका क्रिया-कर्म कर दो। इस भयानक स्थानमें जो जीव रहते हैं, वे सभी विकराल कलेवरवाले और मांसाहारी हैं। रातमें वे तुम्हें तंग करेंगे। यह वन्य भूमि बड़ी डरावनी है, यहाँ ठहरनेसे तुम्हें भय लगेगा। इस बालकका शरीर तो अब काठके समान निष्प्राण है। तुम इसे छोड़कर चले जाओ।

गीदड़ने कहा—ठहरो, ठहरो! जबतक सूर्यका प्रकाश है तबतक यहाँ किसी प्रकारका खटका नहीं है। उस समयतक तो तुम स्नेहपूर्वक इस बालकको देखते हुए यहीं रहो और यथेच्छ विलाप करो। यदि तुम इस गिद्धकी कठोर और घबराहटमें डालनेवाली बातोंमें आ जाओगे तो इस बालकसे हाथ धो बैठोगे।

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! वे गृध्र और गीदड़ दोनों ही भूखे थे। परंतु उनमेंसे गृध्र तो यही कहता रहा कि अब सूर्य अस्त हो गया है और गीदड़ने यही कहा कि अभी अस्त नहीं हुआ। वास्तवमें वे दोनों ही अपना-अपना काम बनानेपर तुले हुए थे। दोनों ही ज्ञानकी बातें बनानेमें कुशल थे, इसलिये उनकी बात मानकर वे कभी तो घर जानेको तैयार होते और कभी फिर रुक जाते। अपना काम बनानेमें कुशल गृध्र और गीदड़ने उन्हें चक्करमें डाल दिया और वे शोकवश रोते हुए वहीं खड़े रहे। इसी समय श्रीपार्वतीजीकी प्रेरणासे उनके सामने भगवान् शंकर प्रकट हुए। उन्होंने उनसे वर माँगनेको कहा। तब सभी लोग अत्यन्त विनीत और दुःखित होकर बोले, 'भगवन् ! इस एकमात्र पुत्रके वियोगसे हम मृतक-से हो रहे हैं और पुनः जीवन-लाभ करनेके लिये आतुर हैं। अतः आप इस बालकको जीवनदान देकर हमें मरनेसे बचाइये।' जब उन लोगोंने आँखोंमें आँसू भरकर भगवान्‌से ऐसी प्रार्थना की तो उन्होंने उसे जीवित कर दिया और सौ वर्षकी आयु दी तथा उन गृध्र और गीदड़को भी भूख मिट जानेका वर दे दिया। ऐसा वर पाकर उन्होंने भगवान्‌को प्रणाम किया और वे सभी बड़े हर्षित और कृतकृत्य होकर नगरकी ओर चले गये।



राजन् ! यदि कोई व्यक्ति दृढ़ निश्चयके साथ किसी कामके पीछे लगा रहे, उससे ऊबे नहीं तो भगवान्‌की कृपासे शीघ्र ही उसे सफलता मिल सकती है। देखो, भगवान् शंकरकी कृपासे उन दुःखी मनुष्योंने सुख प्राप्त कर लिया और बालकको पुनर्जीवन मिलनेसे वे बड़े ही चकित और आनन्दित हुए तथा उसे लेकर बड़े चावसे नगरमें चले आये। जो पुरुष धर्म, अर्थ और मोक्षका मार्ग प्रदर्शित करनेवाले इस आख्यानको सुनता है, वह इस लोक और परलोकमें निरन्तर सुख पाता है।



प्रबल शत्रुसे बचनेका उपाय बतानेके लिये सेमलवृक्ष और वायुका प्रसंग

राजा युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! यदि कोई कमजोर मनुष्य मूर्खतासे अपने पास रहनेवाले किसी बलवान् मनुष्यसे वैर बाँध ले और वह क्रोधमें भरकर आवे तो उसे उससे किस प्रकार अपना बचाव करना चाहिये।

भीष्मजी बोले—भरतश्रेष्ठ ! इस विषयमें सेमलवृक्ष और वायुका संवादरूप यह पुरातन इतिहास प्रसिद्ध है। बहुत दिन हुए हिमालयके ऊपर एक बहुत बड़ा सेमलका वृक्ष था। हरे-भरे पत्तोंसे लदी हुई उसकी लंबी-लंबी शाखाएँ सब ओर फैली हुई थीं। उसके नीचे अनेकों मतवाले हाथी और मृग आदि विश्राम करते थे। उसकी छाया बड़ी ही घनी थी तथा उसका घेरा चार सौ हाथ था। अनेकों व्यापारी और वनमें रहनेवाले तपस्वीलोग मार्गमें जाते समय उसके नीचे ठहरते थे। एक दिन श्रीनारदजी उधरसे होकर निकले। उन्होंने उसकी लंबी-लंबी शाखाएँ और चारों ओर झूमती हुई डालियाँ देखकर उसके पास जाकर कहा, 'शाल्मले ! तुम बड़े ही रमणीय और मनोहर हो। वृक्षप्रवर ! तुम्हारे कारण हमें नित्य ही बड़ा सुख मिलता है। तुम्हारी छत्र-छायामें अनेकों पक्षी, मृग और गज सर्वदा निवास करते हैं। मैं देखता हूँ तुम्हारी लंबी-लंबी शाखा और सघन डालियोंको वायु कभी नहीं तोड़ता। सो क्या पवनदेवका तुम्हारे ऊपर विशेष प्रेम है अथवा वह तुम्हारा मित्र है, जिससे कि इस वनमें वह सदा ही तुम्हारी रक्षा करता रहता है। अजी ! यह वायु तो जब वेग भरता है तो छोटे-बड़े सभी प्रकारके वृक्षों और पर्वतशिखरोंको भी अपने स्थानसे हिला देता है। अवश्य, भीषण होनेपर भी, तुमसे बन्धुत्व या मैत्री माननेके कारण ही वायुदेव सर्वदा

तुम्हारी रक्षा करता रहता है। मालूम होता है तुम वायुके सामने अत्यन्त विनम्र होकर कहते होगे कि 'मैं तो आपहीका हूँ' इसीसे वह तुम्हारी रक्षा करता है।'

सेमलने कहा—ब्रह्मन् ! वायु न मेरा मित्र है, न बन्धु है और न सुहृद् है। वह ब्रह्मा भी नहीं है जो मेरी रक्षा करेगा, किंतु मेरे अंदर जो भीषण बल और पराक्रम है, उसके आगे वायुकी शक्ति अठारहवें अंशके बराबर भी नहीं है। जिस समय वह वृक्ष, पर्वत तथा दूसरी वस्तुओंको तोड़ता-फोड़ता मेरे पास पहुँचता है उस समय मैं अपने पराक्रमसे उसकी गति रोक देता हूँ।

नारदजीने कहा—शाल्मले ! इस विषयमें तुम्हारी दृष्टि निःसंदेह ठीक नहीं है। संसारमें वायुके समान तो कोई भी बलवान् नहीं है। उसकी बराबरी तो इन्द्र, यम, कुबेर और वरुण भी नहीं कर सकते, फिर तुम्हारी तो बात ही क्या है ? संसारमें जीव जितनी भी चेष्टाएँ करते हैं, उन सबका हेतु प्राणप्रद वायु ही है। वास्तवमें तुम बड़े ही सारहीन और दुर्बुद्धि हो, केवल बहुत-सी बातें बनाना जानते हो। इसीसे ऐसा झूठ बोल रहे हो। चन्दन, स्पन्दन, साल, सरल, देवदारु, बेंत और धन्वनं आदि जो तुमसे अधिक बलवान् वृक्ष हैं वे भी वायुका ऐसा निरादर नहीं करते। वे अपने और वायुके बलको अच्छी तरह जानते हैं, इसीसे वे सदा उसे सिर झुकाते हैं। तुम जो वायुके अनन्त बलको नहीं जानते—यह तुम्हारा मोह ही है। अच्छा तो अब मैं भी वायुके पास जाकर तुम्हारी ये बातें सुनाता हूँ।

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! शाल्मलिको इस प्रकार डपटकर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ नारदने वायुदेवके पास आकर उसकी सब बातें सुना दीं। इससे उसे बड़ा क्रोध हुआ और वह उस सेमलके पास जाकर कहने लगा,'शाल्मले ! जिस समय नारदजी तेरे पास होकर निकले थे, उस समय क्या तूने उनसे मेरी निन्दा की थी ? तू जानता नहीं, मैं साक्षात् वायुदेव हूँ। देख, मैं अभी तुझे अपनी शक्तिका परिचय कराये देता हूँ। ब्रह्माजीने प्रजाकी उत्पत्ति करते समय तेरी छायामें विश्राम किया था; इसीसे मैं अबतक तुझपर कृपा करता आ रहा था और तू मेरी झपटसे बचा रहता था। परंतु अब तो तू एक साधारण जीवके समान मेरी अवज्ञा करने लगा। अच्छा, तो ले, मैं तुझे अपना रूप दिखाता हूँ, जिससे फिर कभी तुझे मेरा तिरस्कार करनेका साहस न हो।'

वायुके इस प्रकार कहनेपर सेमलने हँसकर कहा, 'पवनदेव ! यदि तुम मुझपर कुपित हो तो अवश्य अपना रूप दिखाओ। देखें, क्रोध करके तुम मेरा क्या कर लेते हो। मैं तुमसे बलमें कहीं बढ़-चढ़कर हूँ, इसलिये तुमसे जरा भी नहीं डर सकता। अजी ! अधिक बलवान् तो वे ही होते हैं, जिनके पास बुद्धिबल होता है। जिनमें केवल शारीरिक बल होता है, उन्हें वास्तविक बलवान् नहीं माना जाता।'

शाल्मलिके ऐसा कहनेपर पवन बोला, 'अच्छा, कल मैं तुझे अपना पराक्रम दिखाऊँगा।' इतनेहीमें रात आ गयी। शाल्मलिने अपनेको वायुके समान बली न देखकर सोचा, 'मैंने नारदजीसे जो कुछ कहा था वह ठीक नहीं था। बलमें वायुके सामने मैं बहुत असमर्थ हूँ। इसमें संदेह नहीं, मैं तो दूसरे कई वृक्षोंसे भी दुर्बल हूँ। परंतु बुद्धिमें मेरे समान उनमेंसे कोई नहीं है। अतः मैं बुद्धिका आश्रय लेकर ही वायुके भयसे छूटूँगा। यदि दूसरे वृक्ष भी उसी प्रकारकी बुद्धिका आश्रय लेकर वनमें रहेंगे तो निःसंदेह उन्हें कुपित वायुसे किसी प्रकारकी क्षति नहीं हो सकेगी।'

भीष्मजी कहते हैं—सेमलने ऐसा विचारकर स्वयं ही अपनी शाखा, डालियाँ और फूल-पत्ते आदि गिरा दिये तथा प्रातःकाल आनेवाले वायुकी प्रतीक्षा करने लगा। समय होनेपर वायु क्रोधसे सनसनाता और अनेकों विशाल वृक्षोंको धराशायी करता हुआ वहाँ आया। जब उसने देखा कि वह अपनी शाखा और फूल-पत्ते आदि गिराकर ठूँठ बना खड़ा है तो उसका सारा क्रोध उतर गया और उसने मुसकराकर पूछा, 'अरे सेमल ! मैं भी क्रोधमें भरकर तुझे ऐसा ही कर देना चाहता था। तेरे पुष्प, स्कन्ध और शाखादि नष्ट हो गये हैं तथा अङ्कुर और पत्ते भी झड़ चुके हैं। अपनी कुमतिसे ही तू मेरे बल-पराक्रमका शिकार बना है।'

वायुकी ऐसी बात सुनकर सेमलको बड़ा संकोच हुआ और वह नारदजीकी कही हुई बातें याद करके बहुत पछताने लगा। राजन् ! इस प्रकार जो व्यक्ति दुर्बल होनेपर भी अपने बलवान् शत्रुसे विरोध करता है, उस मूर्खको इस सेमलके समान ही संतप्त होना पड़ता है। इसलिये बलवान् शत्रुओंसे कभी वैर नहीं ठानना चाहिये; क्योंकि आग जैसे तिनकोंमें बैठ जाती है उसी प्रकार बुद्धिमान्की बुद्धि उसके नाशका कोई उपाय निकाल लेती है। वस्तुतः बुद्धि और बलके समान मनुष्यके पास कोई दूसरी चीज नहीं है; इसलिये समर्थ पुरुषको बालक, मूर्ख, अंधे, बहरे और अपनेसे विशेष बलवान्के व्यवहारको सर्वदा सहते रहना चाहिये। यह बात मैं तुम्हारे अंदर खूब देखता हूँ। भरतश्रेष्ठ ! यहाँतक मैंने तुम्हें कुछ राजधर्म और आपद्धर्म सुनाये; बताओ, अब और क्या सुनाऊँ ?



लोभमें पाप, शिष्ट पुरुषोंके लक्षण, अज्ञानके दोष तथा दमकी प्रशंसा

युधिष्ठिरने पूछा—भरतश्रेष्ठ ! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि पापका अधिष्ठान क्या है और किससे उसकी प्रवृत्ति होती है।

भीष्मजी बोले—राजन् ! सुनो, लोभ एक बड़ा भारी ग्राह है और लोभसे ही पापकी प्रवृत्ति होती है। लोभसे ही पाप, अधर्म और दुःखका जन्म होता है तथा जिसमें फँसकर मनुष्य पापी बनते हैं, उस कपटका मूल भी लोभ ही है। लोभसे ही काम, क्रोध, मोह, माया, अभिमान और अनम्रताकी उत्पत्ति होती है। लोभसे ही अक्षमा, निर्लज्जता, श्रीनाश, धर्मक्षय, चिन्ता और अपकीर्तिका जन्म होता है तथा लोभसे ही कृपणता, अत्यन्त तृष्णा, विकर्मोंमें प्रवृत्ति, कुलाभिमान, रूप और ऐश्वर्यका मद, समस्त प्राणियोंसे द्रोह, सबका तिरस्कार, सबके प्रति अविश्वास और सभीके प्रति निष्ठुरता आदि दोषोंका प्रादुर्भाव होता है। दूसरेके धनको चुरा लेना, दूसरोंकी बहू-बेटियोंका शील नष्ट करना, वाणी और मनकी चञ्चलता, निन्दामें रुचि होना, काम तथा स्वादेन्द्रियकी प्रबलता, मिथ्याभाषणकी दुर्निवार प्रवृत्ति, दूसरोंसे घृणा करना और डींग मारना, मत्सरता और न करने योग्य कामोंको कर बैठना—इन सब दुर्गुणोंका कारण भी लोभ ही है। मनुष्य बूढ़ा हो जाता है तब भी लोभमें शिथिलता नहीं आती। जिस प्रकार अनेकों नदियोंकी जलराशिको अपनेमें लीन करके भी समुद्रकी पूर्ति नहीं होती, उसी तरह कितने ही धन और भोग्य पदार्थ मिल जायँ लोभका पेट नहीं भरता। राजन्! इसके वास्तविक स्वरूपको तो देवता, गन्धर्व, असुर, नाग तथा संसारके अन्य प्राणियोंमेंसे भी कोई नहीं जान सकता। अतः संयतचित्त पुरुषको किसी प्रकार मोह और लोभको ही काबूमें करना चाहिये। लोभी मनुष्यमें दम्भ, द्रोह, निन्दा, चुगली और मत्सर—ये सभी दोष रहते हैं। बहुश्रुत लोग बड़े-बड़े शास्त्रोंको कण्ठस्थ कर लेते हैं और सब प्रकारकी शङ्काओंका भी समाधान कर सकते हैं, किंतु इस पापीके चंगुलमें फँसकर वे सदा दुःख भोगते रहते हैं। उनमें द्वेष और क्रोधकी अधिकता रहती है, शिष्टाचारसे वे दूर पड़ जाते हैं, बोलचालमें बड़े मीठे किंतु भीतरसे बड़े कठोर हो जाते हैं। उनकी स्थिति घास-फूँससे ढके हुए कुएँके समान होती है। वे बड़े क्षुद्र और धर्मके नामपर संसारको धोखा देनेवाले हो जाते हैं। वे अनेकों मनमाने मार्ग खड़े कर देते हैं तथा सत्पुरुषोंके स्थापित किये मार्ग और धर्मोंका नाश करनेपर तुले रहते हैं। इन लोभग्रस्त दुरात्मा पुरुषोंके कारण समाजके जिस-जिस अङ्गमें विकार आता है, वह भी ऐसे ही कुकर्म करने लगता है।

अब मैं तुमसे शिष्ट पुरुषोंका वर्णन कर रहा हूँ; उनसे ही तुम अपने मनके संदेह पूछना। उनका सङ्ग करनेसे मनुष्यको पुनर्जन्म अथवा परलोकका भय नहीं रहता। इन लोगोंकी मांसभक्षणमें प्रवृत्ति नहीं होती, ये प्रिय और अप्रियको समान समझते हैं, इन्हें शिष्टाचार और इन्द्रियसंयम प्रिय होता है, सुख और दुःखमें इनकी समान दृष्टि होती है तथा सत्य ही इनका परम लक्ष्य होता है। ये देते हैं, लेते नहीं। स्वभावसे बड़े दयालु एवं पितर, देवता और अतिथियोंके सेवक होते हैं तथा दूसरोंका हित करनेके लिये सर्वदा उद्यत रहा करते हैं। ये सभीका उपकार करनेवाले, सब प्रकारके धर्मोंका पालन करनेवाले, दूसरोंके लिये सर्वस्व निछावर कर देनेवाले और बड़े वीर होते हैं। इन्हें कोई भी पुरुष अपने निश्चयसे डिगा नहीं सकता तथा इनके आचरणमें पूर्ववर्ती सत्पुरुषोंके आचरणसे कोई भेद नहीं आता। ये किसीको आतङ्कित करनेवाले, चपलस्वभाव या क्रूर भी नहीं होते और सर्वदा सन्मार्गपर स्थित रहते हैं। सत्पुरुषोंको सदा ही इनका सङ्ग करना चाहिये। इनमें अहिंसावृत्तिकी प्रधानता होती है, काम-क्रोधका अभाव रहता है तथा ममता और अहंकार भी नहीं पाये जाते। ये सदाचरणशील और मर्यादाका पालन करनेवाले होते हैं। तुम इनकी सेवा करना और जो पूछना हो इन्हींसे पूछना। राजन् ! उनका धर्म धन या यश बटोरनेके लिये नहीं होता। वे शरीरकी आवश्यक क्रियाओंके समान उसे भी अपना अनिवार्य कर्तव्य समझते हैं। उनमें भय, क्रोध, चपलता और शोकका अभाव होता है। वे धर्मका ढोंग नहीं रचते और न धर्मपालनमें उनका कोई छिपा हुआ स्वार्थ ही रहता है। वे लोभ और मोहसे रहित तथा सत्य और सरलताका पालन करनेवाले होते हैं। ऐसे पुरुषोंमें तुम सर्वदा प्रेम रखना। ये सर्वदा सत्त्वगुणमें स्थित और समदर्शी होते हैं। इनकी दृष्टिमें लाभ-हानि, सुख-दुःख, प्रिय-अप्रिय तथा जीवन और मरणमें भी कोई भेद नहीं होता। वे दृढ़ पराक्रमी, उन्नतिशील और सत्त्वमय मार्गका अनुसरण करनेवाले होते हैं। तुम अपनी इन्द्रियोंको जीतकर बड़ी सावधानीसे उन धर्मप्रिय और दिव्यगुणसम्पन्न महानुभावोंकी सेवा करना। वे सब बड़े गुणवान् होते हैं। दूसरे लोग तो केवल बातें बनानेवाले ही होते हैं।

युधिष्ठिरने कहा—तात ! आपने सब अनर्थोंके

आधारभूत लोभका तो वर्णन किया, अब मैं अज्ञानका यथार्थ स्वरूप सुनना चाहता हूँ।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जो मनुष्य अज्ञानवश पाप करता है और उससे होनेवाली अपनी ही हानिको नहीं समझता तथा साधु पुरुषोंसे द्वेष करता है, उसकी संसारमें निन्दा होती है। अज्ञानसे ही जीव नरकमें पड़ता है, अज्ञानसे ही उसकी दुर्दशा होती है तथा अज्ञानसे ही वह क्लेश उठाता और आपत्तिमें फँसता है। राग, द्वेष, मोह, हर्ष, शोक, अत्यन्त अभिमान, काम, क्रोध, दर्प, तन्द्रा, आलस्य, इच्छा, संताप, दूसरोंकी उन्नति देखकर जलना और पाप करना—यह सब अज्ञानके अन्तर्गत बताया गया है। राजन् ! अज्ञान और लोभ—इन दोनोंको एक समझो; क्योंकि इनसे एक-सा परिणाम निकलता—एक-सी बुराई पैदा होती है। लोभसे ही अज्ञान प्रकट होता है और लोभके बढ़नेपर अज्ञान भी बढ़ता है। जबतक लोभ रहता है, अज्ञान भी बना रहता है और लोभके क्षयसे अज्ञानका भी क्षय हो जाता है। अज्ञान और लोभके ही कारण जीवको नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकना पड़ता है। अज्ञानसे लोभ और लोभसे अज्ञान—इस प्रकार इनकी उत्पत्ति अन्योन्याश्रित है। लोभसे ही समस्त दोष प्रकट होते हैं; इसलिये लोभका परित्याग कर देना चाहिये। जनक, युवनाश्व, वृषादर्भि, प्रसेनजित् तथा अन्य अनेकों राजाओंने लोभ त्याग देनेसे ही दिव्यलोक प्राप्त किया था। युधिष्ठिर ! तुम भी लोभका त्याग करो, इससे तुम्हें इहलोक और परलोकमें सुख मिलेगा।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! संसारमें श्रेयका प्रतिपादन करनेवाले अनेकों दर्शन (मत) हैं; परंतु आप जिसे श्रेय मानते हों—जो इस लोक और परलोकमें भी कल्याण करनेवाला हो, उसे ही मुझे बताइये। धर्मका मार्ग बड़ा बीहड़ है, इससे बहुत-सी शाखाएँ (पगडंडियाँ) निकली हुई हैं, इनमेंसे कौन-सा धर्म सर्वोत्तम—अवश्य पालन करनेयोग्य माना गया है ? तथा बहुत-सी शाखाओंसे युक्त इस महान् धर्मका वास्तविक मूल क्या है ?—ये सब बातें आप पूर्णरूपसे बतलाइये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जिस उपायसे तुम्हें श्रेय (कल्याण) प्राप्त होगा, वह बताता हूँ, सुनो। जैसे अमृत पीनेसे पूर्ण तृप्ति हो जाती है, उसी प्रकार इस ज्ञानको पाकर तुम तृप्त हो जाओगे। धर्मके बहुत-से विधान हैं, जिनका महर्षियोंने अपने-अपने ज्ञानके अनुसार वर्णन किया है। उन सबका आधार है दम—मन और इन्द्रियोंका संयम। धार्मिक सिद्धान्तको जाननेवाले वृद्ध पुरुष दमको मुक्तिका साधन बतलाते हैं। विशेषतः ब्राह्मणके लिये तो दम ही सनातन धर्म है। इससे ही उसके शुभ कर्मोंकी यथावत् सिद्धि होती है। दम ब्राह्मणके लिये दान, यज्ञ और स्वाध्यायसे भी बढ़कर है। दम तेजकी वृद्धि करता है, वह बड़ा पवित्र साधन है। दमसे पापरहित हुआ तेजस्वी पुरुष परमपदको प्राप्त कर लेता है। संसारमें दमके समान दूसरा कोई धर्म मैंने नहीं सुना है। सभी धर्मवालोंके यहाँ उसकी प्रशंसा की गयी है। इन्द्रिसंयम तथा मनोनिग्रहसे युक्त मनुष्य इस लोक और परलोकमें भी सुख पाता है। उसे महान् धर्मका फल प्राप्त होता है। उसका मन सदा प्रसन्न रहता है। जिसकी इन्द्रियाँ औ मन वशमें नहीं हैं, उसे बारंबार दुःख उठाना पड़ता है तथा वह अपने ही दोषोंसे बहुत-से दूसरे-दूसरे अनर्थ भी पैदा कर लेता है। चारों ही आश्रमोंमें दमको उत्तम बताया गया है। जिन मनुष्योंके अन्तःकरणमें दम (संयम) का उदय हुआ है, उनके लक्षण बताता हूँ, सुनो—क्षमा, धीरता, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, इन्द्रियनिग्रह, दक्षता, कोमलता, लज्जा, स्थिरता, उदारता, क्रोधका अभाव, संतोष, मीठे वचन बोलना, किसीको कष्ट न देना और दूसरोंके दोष न देखना—ये सब गुण जिनमें उपलब्ध हों, उन पुरुषोंमें संयमका उदय समझना चाहिये। वे गुरुजनोंका आदर और सब प्राणियोंपर दया करते हैं।

संयमी पुरुष चुगुली, असत्यभाषण, दूसरोंकी निन्दा-स्तुति, काम, क्रोध, लोभ, दर्प, डींग हाँकना, रोष, ईर्ष्या और दूसरोंका अपमान—इन दुर्गुणोंका कभी सेवन नहीं करता। संयम रखनेवालेकी कभी निन्दा नहीं होती, उसके मनमें कोई कामना नहीं होती। 'मैं तेरा हूँ, तू मेरा, मुझमें उनका स्नेह है और उनमें मेरा'—इस प्रकारके पहलेके सम्बन्धोंको वह मनमें नहीं रखता। जो दूसरोंकी निन्दा और प्रशंसासे दूर रहता है, उसकी मुक्ति हो जाती है। जो सबके प्रति मित्रताका भाव रखनेवाला और सुशील है, जिसका मन नाना प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त है, उसे मृत्युके पश्चात् महान् फलकी प्राप्ति होती है। सदाचारी, सुशील, प्रसन्नचित्त और आत्माके स्वरूपको जाननेवाला विद्वान् पुरुष इस लोकमें सम्मान और परलोकमें सद्गति प्राप्त करता है। इस जगत्में जो केवल शुभ (कल्याणकारी) कर्म हैं, जिनका सत्पुरुषोंने आचरण किया है, वे ही ज्ञानी मुनिके मार्ग हैं। वह स्वभावसे ही उनका आचरण करता है, उन्हें त्यागता नहीं। ज्ञानसम्पन्न जितेन्द्रिय पुरुष घरसे निकलकर एकान्त वनका आश्रय लेता है और वहाँ देह-त्यागके समयकी प्रतीक्षा करता हुआ निर्द्वन्द्व विचरता रहता है। ऐसा ज्ञानी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। जिसको स्वयं

प्राणियोंसे भय नहीं है तथा जिससे दूसरे प्राणी भी भय नहीं पाते, वह देहाभिमानसे रहित महात्मा किसीसे भी नहीं डरता। वह सभी प्राणियोंमें समान भाव रखता और सबको मित्रकी भाँति अभयदान देता हुआ विचरता है। जैसे आकाशमें पक्षियोंकी और जलमें जलचर जीवोंकी गति नहीं दीख पड़ती, उसी प्रकार ज्ञानीकी गति भी जाननेमें नहीं आती। जो घरबारको छोड़कर मोक्षके लिये उद्योग करता है, वह तेजोमय लोकोंको प्राप्त होता है।

ब्रह्मराशिसे उत्पन्न हुआ जो पितामह (ब्रह्माजी) का उत्तम धाम है, वह मन और इन्द्रियोंके संयमसे ही प्राप्त होता है। जिसका किसी भी प्राणीसे विरोध नहीं है, जो ज्ञानस्वरूप आत्मामें ही रमता रहता है, ऐसे ज्ञानीको इस लोकमें पुनः जन्म लेनेका भय ही नहीं रहता, फिर उसे परलोकका भय कैसे हो ? संयममें एक ही दोष है, दूसरा नहीं, वह यह कि क्षमाशील होनेके कारण लोग उसे असमर्थ समझने लगते हैं। मगर इसमें गुण बहुत बड़ा है, क्षमा धारण करनेसे अनेकों उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है; क्योंकि क्षमासे मनुष्यमें सहनशक्ति आ जाती है। संयमी पुरुषको वनमें जानेकी आवश्यकता नहीं है और असंयमीको वनमें रहनेसे कोई लाभ नहीं है। संयमशील पुरुष जहाँ वास करता है, वही वन है, वही आश्रम है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—भीष्मजीकी ये बातें सुनकर राजा युधिष्ठिर आनन्दमग्न हो गये, मानो अमृत पीकर तृप्त हो गये हों। वे धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भीष्मजीसे फिर बारंबार प्रश्न करने लगे। तब भीष्मजीने प्रसन्न होकर उन सबका समाधान आरम्भ किया।



तप और सत्यकी महिमा, क्रोध-काम आदि दोषोंका वर्णन तथा नृशंस पुरुषके लक्षण

भीष्मजी बोले—विद्वान् पुरुष कहते हैं कि इस सम्पूर्ण जगत्का मूल कारण है तप। जिस मूर्खने कभी तप नहीं किया, उसे अपने कर्मोंमें सफलता नहीं मिलती। प्रजापतिने तपसे ही समस्त संसारकी सृष्टि की है तथा ऋषियोंने तपसे ही वेदोंका ज्ञान प्राप्त किया है। विधाताने जितने फल और मूल हैं उनको तथा अन्नको भी तपसे ही उत्पन्न किया है। तपःसिद्ध महात्मा पुरुष तीनों लोकोंको प्रत्यक्ष देखते हैं। प्रत्येक साधनकी जड़ तपस्या ही है। संसारमें जो दुर्लभ वस्तु है, वह भी तपस्यासे सुलभ हो जाती है। शराबी, चोर, गर्भहत्यारा और गुरु-पत्नीसे समागम करनेवाला पापी मनुष्य भी अच्छी तरह तपस्या करके ही पापसे छुटकारा पा सकता है।

तपस्याके अनेकों स्वरूप हैं, पर उनमें निराहार रहनेसे बढ़कर कोई तप नहीं है। दानसे बढ़कर कोई दुष्कर धर्म नहीं है, माताकी सेवासे बड़ा कोई आश्रम नहीं है, तीनों वेदोंके विद्वानोंसे श्रेष्ठ कोई मनुष्य नहीं है और संन्यास तो महान् तप है। ऋषि, पितर, देवता, मनुष्य तथा दूसरे जो चराचर जीव हैं, वे सब तपस्यामें ही लगे रहते हैं। तपस्यासे ही सबको सिद्धि प्राप्त होती है। देवताओंको भी तपस्यासे ही इतनी बड़ी महिमा मिली है।

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! ब्राह्मण, ऋषि, पितर और देवता—ये सब सत्यभाषणरूप धर्मकी प्रशंसा करते हैं, अतः अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि सत्य क्या है ? उसका लक्षण क्या है ?उसकी प्राप्ति कैसे होती है ? तथा सत्यका पालन करनेसे कौन-सा लाभ होता है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! सत्पुरुष सदा ही सत्यरूप धर्मका पालन करते हैं। सत्य सनातन धर्म है। सत्यको ही आदर देना चाहिये; क्योंकि सत्य ही जीवकी परम गति है। सत्य ही धर्म, तप, योग और सनातन ब्रह्म है। सत्य ही परम यज्ञ है। सत्यपर ही सब कुछ टिका हुआ है। अब मैं तुम्हें क्रमशः सत्यके आचार, लक्षण तथा उसकी प्राप्तिका उपाय बतलाता हूँ; सुनो। सम्पूर्ण लोकोंमें सत्यके (अतिरिक्त उसके) तेरह भेद माने गये हैं—सत्य, समता, दम, मत्सरताका अभाव, क्षमा, लज्जा, तितिक्षा (सहनशीलता), दूसरोंके दोष न देखना, त्याग, ध्यान, आर्यता (श्रेष्ठ आचरण), धैर्य, अहिंसा और दया—ये सब सत्यके स्वरूप हैं।

नित्य, अविनाशी और अविकारी होना ही सत्यका लक्षण है। किसीसे भी विरोध नहीं करना यह योग कहा जाता है और इसीसे सत्यकी प्राप्ति होती है। राग-द्वेष तथा काम-क्रोधको मिटाकर अपनेमें,अपने प्रिय मित्रमें तथा शत्रुमें भी समानभाव रखना समता है। किसी दूसरेकी वस्तुकी इच्छा न करना, सदा गम्भीरता और धीरता रखना तथा निर्भय एवं (मनके) रोगोंसे रहित रहना—यह सब दम (मन और इन्द्रियोंके संयम) का लक्षण है। इसकी प्राप्ति

ज्ञानसे होती है। दान और धर्मके समय अपने मनको काबूमें रखना—इसे विद्वान् लोग 'मत्सरताका अभाव' कहते हैं। सदा सत्यका पालन करनेसे ही मनुष्य मत्सरताका त्याग कर सकता है। सहने और न सहने योग्य प्रिय तथा अप्रिय वचन सुनकर भी जो क्षमा कर देता है, वह सत्पुरुष माना जाता है। सत्य बोलनेवालेमें ही क्षमाका गुण आता है। जो बुद्धिमान् भलीभाँति दूसरोंका कल्याण करता है और मनमें कभी खेद नहीं करता, जिसकी मन और वाणी सदा शान्त रहती है; वह लज्जावान् माना जाता है। यह लज्जा नामक गुण धर्मके आचरणसे प्राप्त होता है। धर्मके लिये कष्ट सहना तितिक्षा (सहनशीलता) कहलाती है। लोगोंके सामने आदर्श उपस्थित करनेके लिये, इसका अवश्य पालन करना चाहिये। तितिक्षाकी प्राप्ति धैर्यसे होती है। आसक्ति और विषयोंका जो त्याग है, वही वास्तविक त्याग है। राग-द्वेषसे मुक्त हुए बिना त्यागकी सिद्धि नहीं होती। जो मनुष्य अपनेको प्रकट न करके आसक्तिरहित होकर प्रयत्नपूर्वक जीवोंकी भलाईका काम करता रहता है, उसके उस श्रेष्ठ आचरणका नाम ही आर्यता है। सुख या दुःख प्राप्त होनेपर मनमें विकार न होना धैर्य कहलाता है। जो अपनी उन्नति चाहता हो, उस बुद्धिमान्को सदा धैर्य धारण करना चाहिये। सदा क्षमा करे, सत्य बोले तथा हर्ष, भय और क्रोधका परित्याग कर दे। ऐसे आचरणवाले विद्वान् पुरुषको धैर्य प्राप्त होता है। मन, वाणी तथा क्रियासे किसी भी प्राणीके साथ द्रोह न करना *, सबपर अनुग्रह रखना † तथा दान देना—यह मनुष्योंका सनातन धर्म है। इस प्रकार पृथक्-पृथक् बतलाये हुए उपर्युक्त सभी धर्म सत्यके ही स्वरूप हैं। इनके द्वारा मनुष्य सत्यका ही सेवन करते और सत्यको ही बढ़ाते हैं। राजन्! सत्यके गुणोंका पार पाना असम्भव है; इसीलिये ब्राह्मण, पितर और देवता भी सत्यकी प्रशंसा करते हैं। सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं और झूठसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। सत्य ही धर्मका आधार है, अतः सत्यका लोप नहीं करना चाहिये। सत्यसे दानका, दक्षिणाओंसहित यज्ञका, त्रिविध अग्नियोंमें हवनका और धर्मनिर्णय करनेवाले वेदोंके स्वाध्यायका भी फल मिल जाता है। यदि एक ओर एक हजार अश्वमेध यज्ञोंका और दूसरी ओर सत्यका फल तराजूपर रखकर तौला जाय तो एक हजार अश्वमेध यज्ञोंकी अपेक्षा सत्यका ही फल अधिक होगा।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! क्रोध, काम, शोक, मोह, विधित्सा (नये-नये काम आरम्भ करनेकी इच्छा), परासुता, (कठोरतापूर्ण कर्म करना), लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, निन्दा, दोषदृष्टि, क्रूरता और भय—ये दोष किससे उत्पन्न होते हैं? यह ठीक-ठीक बताइये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! तुम्हारे कहे हुए तेरह दोष प्राणियोंके अत्यन्त प्रबल शत्रु हैं। ये मनुष्योंको सब ओरसे घेरे रहते हैं। जो सावधान नहीं रहता, उसे ये शत्रु बड़ी पीड़ा पहुँचाते हैं। मनुष्यको देखते ही ये भेड़ियोंकी तरह उसपर टूट पड़ते हैं और बलपूर्वक उसका नाश कर देते हैं। इन्हींसे सबको दुःख मिलता है और इन्हींकी प्रेरणासे पापकर्मोंमें प्रवृत्ति होती है। ये किससे उत्पन्न होते, किस तरह बढ़ते और किस प्रकार नष्ट होते हैं? ये सब बातें बता रहा हूँ। सबसे पहले क्रोधकी उत्पत्ति बताता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। क्रोध लोभसे उत्पन्न होता है और दूसरेमें दोष देखनेसे बढ़ता है। क्षमासे उसका बढ़ाव रुक जाता है और धीरे-धीरे उसीसे दूर भी हो जाता है। कामकी उत्पत्ति संकल्पसे होती है, वह सेवन करनेसे बढ़ता है और आसक्तिरहित होकर सेवन छोड़ देनेसे तत्काल नष्ट हो जाता है। दूसरोंके दोष देखनेका नाम है असूया। यह क्रोध तथा लोभसे उत्पन्न होती है और सब प्राणियोंपर दया, मनमें वैराग्य तथा आत्मतत्त्वका ज्ञान होनेसे नष्ट हो जाती है। मोह उत्पन्न होता है अज्ञानसे। वह पापके अभ्याससे बढ़ता है और महात्मा पुरुषोंके सत्संगसे शीघ्र नष्ट हो जाता है। जब मनुष्य आत्मज्ञानके विरोधी शास्त्रोंका अवलोकन करते हैं, तो उन्हें (स्वर्गादिकी कामनासे) नये-नये कर्म आरम्भ करनेकी इच्छा (विधित्सा) होती है, किंतु तत्त्वज्ञान होनेपर उसकी निवृत्ति हो जाती है। जिसपर प्रेम हो उसके वियोगसे शोक होता है, किंतु जब मनुष्य यह समझ ले कि शोक व्यर्थ है—इससे कोई लाभ नहीं है, तो तुरंत उसकी शान्ति हो जाती है।

परासुता अर्थात् कठोर कर्म करनेमें प्रवृत्ति होती है क्रोध, लोभ और अभ्यासके कारण तथा उसकी निवृत्ति होती है, सब प्राणियोंपर दया करने और मनमें वैराग्य होनेसे। सत्यका त्याग और दुष्टोंका साथ करनेसे मात्सर्य दोषकी उत्पत्ति होती है तथा सत्पुरुषोंकी सेवामें रहनेसे उसकी निवृत्ति हो जाती है। अपने उत्तम कुल, अधिक जानकारी और ऐश्वर्यका अभिमान होनेसे मनुष्यपर 'मद' सवार हो जाता है, किंतु इनकी असलियत समझमें आ जानेसे वह तुरंत उतर जाता है। मनमें कामना होने और दूसरोंकी हँसी-खुशी देखनेसे ईर्ष्या पैदा होती है तथा विवेकशील बुद्धिके द्वारा उसका नाश होता है। समाजसे भ्रष्ट

* यह अहिंसा है।

† यह दया है।

हुए नीच मनुष्योंके द्वेषपूर्ण तथा अप्रामाणिक वचनोंको सुनकर भ्रममें पड़ जानेसे निन्दा करनेकी आदत होती है, किंतु अच्छे लोगोंके बर्तावोंपर दृष्टि डालनेसे वह मिट जाती है। जो लोग अपनी बुराई करनेवाले बलवान् मनुष्यसे बदला लेनेमें असमर्थ होते हैं, उनके हृदयमें बड़ी प्रबल असूया (दोष देखनेकी प्रवृत्ति) पैदा होती है, किंतु दयाका भाव जाग्रत् होनेसे उसकी निवृत्ति हो जाती है। हमेशा कृपण मनुष्योंको देखनेसे अपनेमें भी कृपणता आ जाती है, परंतु जब मनुष्य धर्ममें स्थित होकर उसके दोषको समझ लेता है तो वह अपने-आप शान्त हो जाती है। प्राणियोंका भोगोंके प्रति जो लोभ देखा जाता है, वह अज्ञानके ही कारण है। भोगोंकी क्षणभंगुरताको देखने और जाननेसे उसकी निवृत्ति हो जाती है। शान्ति धारण करनेसे उपर्युक्त सभी दोष जीत लिये जाते हैं। धृतराष्ट्रके पुत्रोंमें—ये तेरहों दोष मौजूद थे; और तुम सत्यको ग्रहण करना चाहते हो, इसलिये श्रेष्ठ पुरुषोंकी सेवा करके तुमने इन सबपर विजय पा ली है।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! साधु पुरुषोंके दर्शन और सेवनसे मैं इस बातको जानता हूँ कि कोमलतापूर्ण बर्ताव कैसे किया जाता है? मगर नृशंस (क्रूर) मनुष्यों और उनके कर्मोंका मुझे बिलकुल ज्ञान नहीं है। नृशंस पुरुष इस लोक और परलोकमें भी शोककी आगसे जलता रहता है, इसलिये आप मुझे नृशंस मनुष्य और उसके कर्मका परिचय दीजिये।

भीष्मजीने कहा—राजन्! नृशंस मनुष्यके मनमें बड़ी घृणित इच्छाएँ रहती हैं, वह हिंसाप्रधान कर्मोंका आरम्भ करना चाहता है। स्वयं तो दूसरोंकी निन्दा करता है और दूसरे उसकी निन्दा करते हैं। (यदि उसके इच्छानुसार काम नहीं हुआ तो) वह अपनेको वञ्चित समझता है। दिये हुए दानका बारंबार बखान करता है तथा बेईमानी, नीचता, धोखेबाजी और शठता करनेमें कभी नहीं चूकता। भोग्य वस्तुका अकेले उपभोग करता है, उसे अपने आश्रितोंको नहीं देता। अभिमानी और विषयासक्त होता है, व्यर्थ ही डींग हाँका करता है। सबके प्रति संदेह रखता और वञ्चना किया करता है। अपने वर्गमें रहनेवालोंकी तारीफ करता और द्वेषवश आश्रमोंपर लाञ्छन लगाया करता है। उसमें वर्णसंकरताका दोष होता है। नृशंस कर्म करनेवाला मनुष्य सदा हिंसाके लिये घूमता फिरता है, गुण-अवगुणको समान समझता है, झूठ अधिक बोलता है तथा बहुत ही लालची और तंगदिल होता है। वह धर्मात्मा और गुणवान् मनुष्यको ही पापी समझता है और अपने स्वभावके अनुसार किसीपर भी विश्वास नहीं करता। जहाँ दूसरोंकी बदनामी होती हो, वहाँ उनके गुप्त दोषोंको भी प्रकट कर देता है और अपने तथा दूसरेके अपराध बराबर होनेपर भी वह आजीविकाके लिये दूसरेका ही सर्वनाश करता है। जो उसका उपकार करता है, उसको वह अपने जालमें फँसा हुआ समझता है और उपकारीको भी यदि कभी धन देता है तो उसके लिये बहुत दिनोंतक पश्चात्ताप करता रहता है। जो मनुष्य दूसरोंके देखते रहनेपर भी उत्तम भोजनकी सामग्री अकेले चट कर जाता है, उसको भी नृशंस ही कहना चाहिये। जो पहले ब्राह्मणको देकर पीछे अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ स्वयं भोजन करता है, वह इस लोकमें सुखी होता है और मरनेके बाद स्वर्गमें जाता है। युधिष्ठिर! तुम्हारे पूछनेके अनुसार यह नृशंस पुरुषका लक्षण बतलाया है, समझदार मनुष्यको चाहिये कि नृशंससे सदा बचकर रहे।



पाप और उनके प्रायश्चित्त

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! सम्पूर्ण वेद और उपनिषदोंका पारंगत विद्वान् ब्राह्मण यदि यज्ञ करनेवाला हो और उसका धन चोर चुरा ले गये हों अथवा वह निर्धन हो तो राजाका कर्तव्य है कि वह उसे आचार्यकी दक्षिणा देने, पितरोंका श्राद्ध करने तथा अध्ययन करनेके लिये धन दे। वेदवेत्ता ब्राह्मणको चाहिये कि वह राजाके निकट अपने महत्त्वका वर्णन न करे। ब्राह्मण इस जगत्का कर्त्ता, शासक, रक्षक और देवता कहलाता है, अतः उसके प्रति अमङ्गलसूचक एवं कटु वचन नहीं कहना चाहिये। क्षत्रिय अपने बाहुबलसे, वैश्य और शूद्र धनके बलसे और ब्राह्मण मन्त्र तथा हवनकी शक्तिसे आपत्तिके समय अपनी रक्षा करे। कन्या, युवती, मन्त्र न जाननेवाला, मूर्ख और संस्कारहीन पुरुष—ये अग्निमें हवन करनेके अधिकारी नहीं हैं। ये जिसके यज्ञमें हवन करते हैं, उसके साथ ही स्वयं भी नरकमें पड़ते हैं। मनुष्य जो कुछ भी पुण्य कर्म करे उसे श्रद्धापूर्वक और इन्द्रियोंको काबूमें रखकर करे। बिना पूर्ण दक्षिणा दिये यज्ञ न करे। बिना दक्षिणाका यज्ञ प्रजा और पशुका नाश करता है तथा स्वर्गकी प्राप्तिमें भी बाधा डालता है। यही नहीं, वह इन्द्रिय, यश, कीर्ति तथा आयुको भी क्षीण करता है।

जो ब्राह्मण रजस्वला स्त्रीसे समागम करते हैं, जिन्होंने

घरमें अग्निकी स्थापना नहीं की है तथाजो अवैदिक रीतिसे हवन करते हैं, वे सभी पापी हैं। जिस गाँवमें एक ही कुएँका पानी सब पीते हों, वहाँ बारह वर्ष रहनेसे तथा शूद्र जातिकी स्त्रीसे विवाह कर लेनेसे ब्राह्मण भी शूद्र ही हो जाता है। यदि ब्राह्मण एक रात्रि भी किसी नीच वर्णके मनुष्य की सेवा करे अथवा उसके साथ एक जगह रहे या एक आसनपर बैठे तो इससे जो पाप लगता है, उसको वह तीन वर्षोंतक व्रतका पालन करते हुए पृथ्वीपर विचरनेसे दूर कर सकता है। परिहासमें, स्त्रीके पास, विवाहके अवसरपर, गुरुके हितके लिये अथवा अपने प्राण बचानेके उद्देश्यसे झूठ बोलनेमें दोष नहीं है। इन पाँच स्थलोंपर असत्य बोलना पाप नहीं माना गया है। नीच वर्णके पास भी उत्तम विद्या हो तो उसे श्रद्धापूर्वक ग्रहण करना चाहिये। सोना अपवित्र स्थानमें भी पड़ा हो तो उसे बिना किसी हिचकिचाहटके उठा लेना चाहिये तथा विषके स्थानसे भी अमृत मिले तो उसे पी लेना चाहिये।

गौ और ब्राह्मणोंका हित, वर्णसंकरताका निवारण तथा अपनी रक्षा करनेके लिये वैश्य भी हथियार उठा सकता है। मदिरापान, ब्रह्महत्या तथा गुरुपत्नीगमन—इन महापापोंके लिये कोई प्रायश्चित्त ही नहीं बताया गया है। किसी भी उपायसे अपने प्राणोंका अन्त कर देनेपर ही इनसे छुटकारा मिलता है। यही शास्त्रोंका निर्णय है। दूसरेका सोना हड़प लेना, चोरी करना और ब्राह्मणका धन छीन लेना—यह महान् पाप है। शराब पीनेसे, अगम्या स्त्रीके साथ गमन करनेसे, पतितोंके सम्पर्कमें रहनेसे और ब्राह्मणेतर होकर ब्राह्मणीके साथ समागम करनेसे मनुष्य शीघ्र ही पतित हो जाता है। पतितके साथ रहकर उसका यज्ञ कराने, उसे पढ़ाने अथवा उसके घरमें पुत्र या पुत्रीका ब्याह कर देनेसे मनुष्य एक वर्षमें पतित होता है।

उपर्युक्त पापोंको छोड़कर शेष जितने पाप हैं, उनका प्रायश्चित्त बताया गया है। उसके अनुसार प्रायश्चित्त करके फिर पापकी आदत छोड़ देनी चाहिये। पूर्वोक्त (शराबी, ब्रह्महत्यारा और गुरुस्त्रीगामी—इन) तीन पापियोंके मरनेपर उनकी दाहादि क्रिया किये बिना ही कुटुम्बियोंको उनके अन्न और धनपर अधिकार कर लेना चाहिये। इसमें कुछ अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। अपने मन्त्री और गुरु ही क्यों न हों, यदि वे पतित हो गये हों तो धार्मिक राजाको अपने धर्मके अनुसार ही उनका परित्याग कर देना चाहिये और स्वयं अपनी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये। जबतक वे प्रायश्चित्त करके शुद्ध न हो जायँ तबतक उनके साथ कोई बात या विचार करना उचित नहीं है।

पापी मनुष्य धर्माचरण और तप करके ही अपने पापको नष्ट कर सकता है। चोरको 'यह चोर है' ऐसा कह देनेमात्रसे चोरके बराबर पापका भागी होना पड़ता है और जो चोर नहीं है, उसको चोर कह देनेसे मनुष्यको चोरके दूना पाप लगता है। कुमारी कन्या जब अपनी इच्छासे चरित्रभ्रष्ट होती है, तो उसे ब्रह्महत्याका तीन हिस्सा पाप भोगना पड़ता है और उसके चरित्रको बिगाड़नेवाला पुरुष शेष पापका भागी होता है। ब्राह्मणको गाली देने या उसे पटककर मारनेसे बड़ा भारी पाप लगता है। सौ वर्षोंतक तो उसे प्रेतकी भाँति भटकना पड़ता है और एक हजार वर्षोंतक नरकमें रहना पड़ता है। इसलिये ब्राह्मणको न गाली दे, न मारे। ब्राह्मणके शरीरमें घाव हो जानेपर उससे निकला हुआ रक्त धूलके जितने कणोंको भिगोता है, चोट पहुँचानेवाला मनुष्य उतने ही वर्षोंतक नरकमें निवास करता है।

गर्भकी हत्या करनेवाला यदि युद्धमें शस्त्रोंके आघातसे मर जाय अथवा जलती हुई आगमें कूदकर अपनेको होम दे तो वह उस पापसे छूट जाता है। मदिरा पीनेवाला पुरुष यदि मदिराको खूब गरम करके पी ले और उससे मुँह जल जानेके कारण उसकी मृत्यु हो जाय तो वह उस पापसे मुक्त हो जाता है। गुरुपत्नीके साथ समागम करनेवाला पापी यदि स्त्रीके आकार-की लोहेकी प्रतिमा बनवाकर उसे आगसे तपा ले और उसका आलिङ्गन करके प्राण दे दे तो उसकी शुद्धि हो जाती है। ब्रह्महत्या करनेवाला मनुष्य उस मरे हुए ब्राह्मणकी खोपड़ी लेकर अपना पाप-कर्म लोगोंको सुनाता रहे और बारह वर्षों-तक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए सुबह, शाम तथा दोपहर तीनों समय स्नान और तपस्या करे। इससे उसकी शुद्धि हो जाती है।

इसी तरह जो जान-बूझकर गर्भिणी स्त्रीकी हत्या करता है, उसको दो ब्रह्महत्याका पाप लगता है। मदिरा पीनेवाला मनुष्य मिताहारी और ब्रह्मचारी होकर पृथ्वीपर शयन करे, तीन वर्ष या इससे अधिक समयतक अग्निष्टोम यज्ञ करे, इसके बाद एक हजार बैल या इतनी ही गौएँ ब्राह्मणोंको दान दे तो वह शुद्ध हो जाता है। वैश्यकी हत्या कर डालनेपर दो वर्षोंतक पूर्वोक्त नियमसे रहे और ब्राह्मणको एक सौ बैल तथा एक सौ गौएँ दान करे। शूद्रकी हत्या करनेवाला मनुष्य एक वर्षतक उक्त नियमोंका पालन करके एक बैल और सौ गौएँ ब्राह्मणको दान करे। कुत्ता, सूअर और गदहेकी हत्या करनेवाला मनुष्य भी शूद्रकी हत्याके समान ही प्रायश्चित्त करे। बिल्ली, नीलकण्ठ, मेढक, कौआ, साँप और चूहा मारनेपर भी पशु-हत्याके समान ही पाप लगता है।

अब दूसरे प्रायश्चित्त बतलाये जाते हैं—अनजानमें कीड़े-मकोड़े आदि छोटे जीवोंका वध हो जानेपर उसके लिये

पश्चात्ताप करे; अन्य उपपातकोंमेंसे प्रत्येकके लिये एक-एक वर्षतक व्रतका आचरण करना चाहिये। श्रोत्रियकी स्त्रीसे व्यभिचार करनेपर तीन वर्षोंतक और अन्य परस्त्रियोंसे सम्पर्क होनेपर दो वर्षोंतक ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते हुए दिनके चौथे पहरमें एक बार भोजन करे। परायी स्त्रीके साथ रहने, उठने-बैठने या भ्रमण करनेपर तीन दिनोंतक केवल पानी पीकर रह जाय। अग्निमें अपवित्र पदार्थ डालकर उसकी अवहेलना करनेवाले मनुष्यके लिये भी यही प्रायश्चित्त है।

जो अकारण ही पिता, माता और गुरुका परित्याग करता है, वह पतित हो जाता है—यही धर्मशास्त्रोंका निर्णय है। यदि पत्नीने व्यभिचार किया हो और विशेषतः इस काममें पकड़ी गयी हो तो उसे सिर्फ अन्न और वस्त्र दे तथा परायी स्त्रीसे व्यभिचार करनेवाले पुरुषके लिये जो व्रतरूप प्रायश्चित्त बताया गया है, वही उससे भी करावे। जो अपने श्रेष्ठ पतिको छोड़कर दूसरे किसी पापीसे समागम करती है, उस कुलटाको चौड़े मैदानमें खड़ी करके राजा कुत्तोंसे नोचवा डाले। इसी तरह व्यभिचारी पुरुषको लोहेकी तपायी हुई खाटपर सुलाकर ऊपरसे लकड़ी रखकर आग लगा दे, जिससे वह पापी उसीमें जलकर खाक हो जाय। पतिकी अवहेलना करके परपुरुषसे व्यभिचार करनेवाली स्त्रियोंके लिये भी यही दण्ड है। यदि पापी पाप करनेके बाद सालभरतक प्रायश्चित्त नहीं करता तो फिर उसे दूना प्रायश्चित्त करना चाहिये। उसके संसर्गमें यदि कोई दो वर्षतक रह जाय तो उस मनुष्यको तीन वर्षोंतक पृथ्वीपर विचरना और मुनियोंकी भाँति व्रतका पालन करते हुए भिक्षासे निर्वाह करना चाहिये। चार वर्षोंतक उसके सहवासमें रहनेवालेको पाँच वर्षोंतक उक्त नियमके साथ पृथ्वीकी परिक्रमा करनी चाहिये।

जो (बड़े भाईके अविवाहित रहते) अधर्मपूर्वक अपना ब्याह कर लेता है, वह परिवेत्ता है, अविवाहित भाईको परिवित्ति कहते हैं और वह स्त्री परिवेद्या है—ये तीनों ही पतित माने जाते हैं। इन तीनोंको पृथक्-पृथक् अपनी शुद्धिके लिये एक मासतक चान्द्रायण या कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। अथवा परिवेत्ता अपनी पत्नीको बड़े भाईके पास ले जाकर पुत्रवधूके रूपमें उसे समर्पण करे और ज्येष्ठकी आज्ञासे पुनः उसे स्वीकार करे तो वे दोनों भाई और वह पत्नी भी धर्मतः पाप-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं।

मनुष्योंके लिये इस प्रकार उत्तम प्रायश्चित्तका विधान है। उनमें जो दान करनेमें समर्थ हों, उनके लिये दानकी भी विधि है। श्रद्धालु पुरुषके लिये एक गोदानमात्र ही प्रायश्चित्त बताया गया है। इस प्रकार मैंने यह सनातन प्रायश्चित्तका वर्णन किया है।



धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके विषयमें विदुर तथा पाण्डवोंके पृथक्-पृथक् विचार

वैशम्पायनजी कहते हैं—यह कहकर जब भीष्मजी चुप हो गये तो राजा युधिष्ठिरने घर जाकर अपने चारों भाइयोंसहित विदुरजीसे प्रश्न किया—'धर्म, अर्थ और काम—इन तीनोंमें कौन उत्तम, कौन मध्यम और कौन लघु है? इन तीनोंको प्राप्त करनेके लिये विशेषतः किसमें मन लगाना चाहिये। यह बात आप सबलोग अपने-अपने विश्वासके अनुसार बताइये।' यह सुनकर सबसे पहले विदुरजीने धर्मशास्त्रका स्मरण करके कहना आरम्भ किया।

विदुरजी बोले—बहुत-से शास्त्रोंका अनुशीलन, तप, त्याग, श्रद्धा, यज्ञ, क्षमा, भावशुद्धि, दया, सत्य और संयम—ये सब आत्माकी सम्पत्ति हैं। युधिष्ठिर! तुम इन्हींको प्राप्त करो। धर्मसे ही ऋषियोंने संसारसमुद्रको पार किया है, धर्मके ही आधारपर सम्पूर्ण लोक टिके हुए हैं, धर्मसे ही देवताओंकी उन्नति हुई है और धर्ममें ही अर्थकी भी स्थिति है। मनीषी विद्वान् धर्मको उत्तम, अर्थको मध्यम और कामको लघु बतलाते हैं। अतः मनको वशमें रखकर धर्मको ही अपना प्रधान ध्येय बनाना चाहिये और सम्पूर्ण प्राणियोंके साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिये, जैसा हम अपने लिये चाहते हैं।

विदुरजीकी बात समाप्त होनेपर अर्जुनने कहा—'राजन्! यह कर्मभूमि है। यहाँ जीविकाके साधनभूत कर्मोंकी ही प्रशंसा होती है। खेती, व्यापार, गोपालन तथा भाँति-भाँतिके शिल्प—ये सब अर्थ-प्राप्तिके ही साधन हैं। अर्थ ही समस्त कर्मोंकी मर्यादा है। अर्थ (धन) के बिना धर्म और काम भी सिद्ध नहीं होते। धनवान् मनुष्य धनके द्वारा उत्तम धर्मका पालन और दुर्लभ कामनाओंकी प्राप्ति भी कर सकता है। सब प्रकारके संग्रहसे रहित, संकोचशील, शान्त एवं गेरुआ वस्त्र पहने, दाढ़ी-मूँछ बढ़ाये विद्वान् पुरुष भी धनकी अभिलाषा करते पाये जाते हैं। कई ऐसे हैं, जो स्वर्गके इच्छुक हैं और कुलपरंपरागत नियमोंका पालन करते हुए अपने-अपने वर्ण तथा आश्रमके धर्मोंका अनुष्ठान कर रहे हैं। फिर भी उन्हें धनकी चाह बनी हुई है। धनवान् वही है जो अपने भृत्योंको उत्तम भोग और शत्रुओंको दण्ड देकर उन्हें वशमें रखता है। महाराज! मेरा तो यही मत है! अब आप

नकुल और सहदेवकी बातें सुनें। ये दोनों भी कुछ कहनेको उत्कण्ठित हैं।'

तदनन्तर, धर्म और अर्थके ज्ञाता माद्रीकुमार नकुल तथा सहदेव कहने लगे—'राजन्! मनुष्यको बैठते, सोते, उठते और चलते-फिरते समय भी छोटे-बड़े हर तरहके उपायोंसे दृढ़तापूर्वक धन कमानेका उद्योग करना चाहिये। धन दुर्लभ और अत्यन्त प्रिय वस्तु है, इसकी प्राप्ति हो जानेपर मनुष्य संसारमें अपनी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण कर सकता है। धर्मयुक्त अर्थ और अर्थयुक्त धर्म—ये अमृतके समान लाभदायक हैं; इसलिये हम धर्म और अर्थ—दोनोंको आदर देते हैं। निर्धन मनुष्यकी कामना नहीं पूर्ण हो सकती और धर्महीन मनुष्यको धन भी कैसे मिल सकता है? अतः पहले धर्मका आचरण और फिर धर्मके अनुसार अर्थका संग्रह करे। इसके बाद कामनाओंका सेवन करना चाहिये। इस प्रकार त्रिवर्गका संग्रह करनेसे मनुष्य सफलमनोरथ होता है।'

यह कहकर नकुल और सहदेव चुप हो गये। तब भीमसेनने इस तरह कहना आरम्भ किया—'धर्मराज! जिसके भीतर कामना नहीं है, उसे न धन कमानेकी इच्छा होती है, न धर्म करनेकी। कामनाके बिना तो कोई काम (भोग) भी नहीं चाहता। इसलिये त्रिवर्गमें काम ही सबसे बढ़कर है। कोई-न-कोई कामना रखकर ही ऋषिलोग कठोर तपस्यामें संलग्न होते हैं; फल, मूल और पत्ते चबाकर, वायु पीकर सावधानीके साथ संयम करते हैं। कामनासे ही लोग वेदोंका स्वाध्याय करते, श्राद्ध-यज्ञादि क्रियाओंमें प्रवृत्त होते तथा दान देते और प्रतिग्रह स्वीकार करते हैं। बनिये, किसान, ग्वाले, कारीगर और शिल्पकार तथा देवतासम्बन्धी कार्य करनेवाले लोग भी कामनासे ही अपने-अपने धंधोंमें लगते हैं। सारा कार्य ही कामनासे व्याप्त है। अतः धर्म, अर्थ और काम—तीनोंका एक ही साथ सेवन करना चाहिये। जो इनमेंसे एकको ही स्वीकार करता है, वह अधम है, दोका आश्रय लेनेवाला मध्यम है और जो तीनोंके सेवनमें संलग्न है वह मनुष्य उत्तम है।'

यों कहकर भीमसेन जब चुप हो गये तो युधिष्ठिर बोले—'इसमें संदेह नहीं कि आपलोगोंने धर्मशास्त्रोंके सिद्धान्तोंको समझा है और प्रमाणोंका भी ज्ञान प्राप्त किया है। मेरे पूछनेपर आपने जो-जो विचार प्रकट किये, वे सब मैंने सुन लिये। अब मेरी बात भी सुनिये—जो न पापमें लगा हो, न पुण्यमें; न अर्थोपार्जनमें प्रवृत्त हो, न धर्म या कामके सेवनमें; जिसकी दृष्टिमें मिट्टीका ढेला और सोना एक समान हो, वह सब प्रकारके दोषोंसे रहित मनुष्य दुःख और सुख देनेवाली सिद्धियोंसे सदाके लिये मुक्त हो जाता है। स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजीका कहना है कि 'जिसके मनमें आसक्ति है, उसकी कभी मुक्ति नहीं होती।' किंतु जो धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गसे रहित है, वही दुर्लभ पुरुषार्थ (मोक्ष) को प्राप्त करता है; इसलिये गूढ़तत्त्वका ज्ञान ही संसारका हित करनेवाला है।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजा युधिष्ठिरकी कही हुई बात बड़ी ही उत्तम, युक्तियुक्त और मनमें बैठनेवाली थी, उसे सुनकर सब राजाओंको बड़ी प्रसन्नता हुई, सबने हर्षध्वनि की और उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया। फिर वे उनके वचनोंकी प्रशंसा करने लगे। महामना युधिष्ठिरने भी उन राजाओंकी प्रशंसा की और पुनः गङ्गानन्दन भीष्मजीके पास आकर उनसे धर्मके विषयमें प्रश्न किया।



मित्र बनाने और न बनानेयोग्य पुरुषोंके लक्षण तथा कृतघ्न गौतमकी कथा

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! सौम्य स्वभावके मनुष्य कैसे होते हैं? किनके साथ प्रेम करना उत्तम होता है? भविष्य और वर्तमानमें भी कौन-से मनुष्य उपकार करनेमें समर्थ होते हैं? यह सब बतानेकी कृपा कीजिये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! किनके साथ संधि करनी चाहिये और किनके साथ नहीं? यह बात मैं तुम्हें ठीक-ठीक बता रहा हूँ। ध्यान देकर सुनो—जो लोभी, क्रूर, धर्मत्यागी, कपटी, शठ, क्षुद्र, पापी, सबपर संदेह करनेवाला, आलसी, दीर्घसूत्री, कुटिल, निन्दित, गुरुस्त्रीसे व्यभिचार करनेवाला, संकटके समय साथ छोड़कर चल देनेवाला, दुरात्मा, निर्लज्ज, नास्तिक, वेदोंकी निन्दा करनेवाला, झूठा, सबके द्वेषका पात्र, चुगलखोर, पापपूर्ण विचार रखनेवाला, धूर्त, मित्रोंकी बुराई करनेवाला, दूसरोंका धन लेनेकी इच्छा रखनेवाला, बेमौके क्रोध करनेवाला, चञ्चलचित्त, अकस्मात् वैर बाँध लेनेवाला, अपना काम बनानेके लिये ही मित्रोंसे मेल रखनेवाला, वास्तवमें मित्रोंका द्वेषी, मुँहसे मित्रताकी बातें करके भीतरसे शत्रुभाव रखनेवाला, टेढ़ी नजरसे देखनेवाला, शराबी, द्वेषी, क्रोधी, निर्दयी, दूसरोंको कष्ट देनेवाला, मित्रद्रोही, प्राणियोंकी हिंसा करनेवाला, कृतघ्न तथा नीच हो, उसके साथ कभी संधि नहीं करनी चाहिये।

अब संधि करनेके योग्य पुरुषोंको बता रहा हूँ, सुनो—जो कुलीन, बोलनेमें पटु, ज्ञान-विज्ञानमें कुशल, रूपवान्, गुणवान्, लोभहीन, काम करनेसे कभी न थकनेवाले, कृतज्ञ, सर्वज्ञ, मधुर स्वभाववाले, सत्यप्रतिज्ञ तथा जितेन्द्रिय हों, उन्हीं लोगोंको राजा अपना मित्र बनावे। जो अपनी शक्तिके अनुसार कर्तव्यका ठीक-ठीक पालन करते और संतुष्ट रहते हैं, जिन्हें बेमौके क्रोध नहीं आता, जो उदासीन हो जानेपर भी मनसे बुराई करना नहीं चाहते, अर्थके तत्त्वको समझते हैं और अपनेको कष्टमें डालकर भी हितैषी पुरुषोंका कार्य सिद्ध करते हैं। जैसे रँगा हुआ ऊनी कपड़ा अपना रंग नहीं छोड़ता उसी प्रकार जो मित्रोंकी ओरसे विरक्त नहीं होते, जो सबके विश्वासपात्र और धर्मानुरागी हैं, जिनकी दृष्टिमें मिट्टीका ढेला और सोना एक-से हैं तथा जो सदा अपने स्वामीका काम बनानेमें लगे रहते हैं—ऐसे उत्तम पुरुषोंके साथ जो राजा संधि (मेल) करता है, उसका राज्य उसी तरह बढ़ता है, जैसे चन्द्रमाकी चाँदनी। जो सदा शास्त्रका स्वाध्याय करते हैं, क्रोधको काबूमें रखते हैं और युद्धमें प्रबल रहते हैं, जिनका उत्तम कुलमें जन्म हुआ है, जो शीलवान् और उत्तम गुणोंसे युक्त हैं, वे श्रेष्ठ पुरुष ही मित्र बनानेके योग्य होते हैं।

जिन्हें मैंने दोषयुक्त बताया है, उनमेंसे कई तो बहुत ही नीच, कृतघ्न और मित्रकी हत्या कर डालनेवाले होते हैं। ऐसे दुराचारियोंको सदा अपनेसे दूर ही रखना चाहिये—यही सबका मत है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! आपने जिसे मित्रद्रोही और कृतघ्न कहा है, उसकी पहचान क्या है ? यह मुझे बताइये।

भीष्मजीने कहा—इस विषयमें मैं तुम्हें एक पुराना इतिहास सुनाता हूँ; यह घटना उत्तर दिशामें म्लेच्छोंके देशमें घटित हुई थी। मध्यदेशका एक ब्राह्मण था, जिसने वेद बिलकुल नहीं पढ़ा था। एक दिन वह कोई सम्पन्न गाँव देखकर उसमें भीख माँगनेके लिये गया। उस गाँवमें एक दस्यु रहता था, जो बहुत ही धनी, ब्राह्मणभक्त, सत्यप्रतिज्ञ और दानी था। ब्राह्मणने उसीके घर पहुँचकर भिक्षाके लिये याचना की। दस्युने ब्राह्मणको रहनेके लिये एक घर देकर वर्षभर निर्वाह करनेके योग्य अन्नकी भिक्षाका प्रबन्ध कर दिया और नया कोरदार वस्त्र देकर उसकी सेवामें एक नवयुवती दासी भी दे दी, जो उस समय पतिसे रहित थी।

दस्युसे ये सारी चीजें पाकर ब्राह्मण मन-ही-मन बहुत खुश हुआ और दासीके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा। उसका नाम था गौतम। वह भी दस्युओंकी ही तरह प्रतिदिन वनमें विचरनेवाले हंसोंका शिकार करने लगा। हिंसामें बड़ा प्रवीण निकला। दया तो उसे छू भी नहीं गयी थी। सदा प्राणियोंको मारनेकी ही ताकमें लगा रहता था। डाकुओंके संसर्गमें रहकर वह पूरा डाकू बन गया।

इस प्रकार दस्युओंके गाँवमें सुखपूर्वक रहकर पक्षियोंका शिकार करते हुए उसके कई महीने बीत गये। तदनन्तर, उस गाँवमें एक दूसरा ब्राह्मण आया, जो स्वाध्याय-परायण, पवित्र, विनयी, नियमके अनुकूल भोजन करनेवाला, ब्राह्मणभक्त, वेदका पारंगत विद्वान् तथा ब्रह्मचारी था। वह गौतमके ही गाँवका रहनेवाला और उसका प्रिय मित्र था। शूद्रका अन्न नहीं खाता था, इसलिये उस दस्युओंसे भरे हुए गाँवमें ब्राह्मणके घरकी तलाश करता हुआ वह सब ओर विचर रहा था। घूमते-घूमते गौतमके घरपर जा पहुँचा; इतनेहीमें गौतम भी वहाँ आया। दोनोंकी एक-दूसरेसे भेंट हुई। ब्राह्मणने देखा, गौतमके कंधेपर मरे हुए हंसकी लाश है और हाथमें धनुष-बाण हैं। उसका सारा शरीर खूनसे रँग गया है, देखनेमें वह राक्षस-सा जान पड़ता है और ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट हो चुका है। इस अवस्थामें पड़े हुए गौतमको पहचानकर आगन्तुक ब्राह्मणको बड़ा संकोच हुआ। उसने उसे धिक्कारते हुए कहा—'अरे ! तू मोहवश यह क्या कर रहा है ? ब्राह्मण होकर डाकू कैसे बन गया ? जरा, अपने पूर्वजोंको तो याद कर, उनकी कितनी ख्याति थी, वे कैसे वेदोंके पारगामी विद्वान् थे ! और तू उन्हींके वंशमें पैदा होकर ऐसा कुलकलङ्क निकला। अब भी तो अपनेको पहचान। ब्राह्मणोचित सत्त्व, शील, शास्त्रज्ञान, संयम तथा दया आदि सद्गुणोंको याद करके अब यहाँ लुटेरोंमें रहना छोड़ दे।'

अपने हितैषी सुहृद्के इस प्रकार कहनेपर गौतम मन-ही-मन कुछ निश्चय करके आर्त-सा होकर बोला—'द्विजवर ! मैं निर्धन हूँ और वेदका एक अक्षर भी नहीं जानता, इसलिये धन कमानेके लिये इधर आया था; आज आपके दर्शनसे मेरा जीवन सफल हो गया। अब रातभर यहाँ रहिये; कल सबेरे हम दोनों साथ ही चलेंगे।' ब्राह्मण दयालु था, गौतमके अनुरोधसे उसके यहाँ ठहर गया, मगर वहाँकी किसी भी वस्तुको उसने हाथसे छुआतक नहीं। यद्यपि वह भूखा था और भोजन करनेके लिये उससे प्रार्थना भी की गयी, परंतु किसी तरह वहाँका अन्न ग्रहण करना उसने स्वीकार नहीं किया।

सबेरा होनेपर जब वह श्रेष्ठ ब्राह्मण उस स्थानसे चला गया तो गौतम भी घरसे निकलकर समुद्रकी ओर चल दिया। जाते-जाते वह एक दिव्य वनमें पहुँचा, जो बड़ा ही रमणीय था। वहाँके सभी वृक्ष फूलोंसे भरे हुए थे। अपनी शोभासे वह

नन्दवनको मात कर रहा था। उस वनमें यक्ष और किन्नर विचर रहे थे। चारों ओर पक्षियोंका कलरव सुनायी पड़ता था। कहीं मनुष्योंके समान मुखवाले 'भारुण्ड' बोलते थे तो कहीं समुद्र और पर्वतोंपर होनेवाले भूलिङ्ग आदि पक्षी चहचहा रहे थे। इतनेहीमें उसकी दृष्टि एक अत्यन्त शोभायमान बरगदके विशाल वृक्षपर पड़ी, जो चारों ओर मण्डलाकार फैला हुआ था, अपनी बहुत-सी सुन्दर शाखाओंके कारण वह एक महान् छत्रके समान जान पड़ता था। उसकी जड़ चन्दनमिश्रित जलसे सींची गयी थी। उस मनोरम वृक्षको देखकर गौतम बहुत प्रसन्न हुआ और निकट जाकर उसकी छायामें बैठा। उस समय वहाँकी पवित्र वायुके स्पर्शसे उसे बड़ी शान्ति मिली और वह सुखका अनुभव करता हुआ वहीं लेट गया। उधर सूर्य भी डूब गया।

उसी समय एक उत्तम पक्षी ब्रह्मलोकसे लौटकर अपने विश्रामस्थानपर आया, वह उस वृक्षपर ही बसेरा लिया करता था। उसका नाम था नाडीजङ्घ। वह बकराज ब्रह्माजीका प्रिय मित्र और कश्यपजीका सुपुत्र था। इस पृथ्वीपर राजधर्मके नामसे विख्यात था। देवकन्यासे उत्पन्न होनेके कारण उसके शरीरकी कान्ति देवताके समान थी, वह बड़ा विद्वान् था और दिव्य तेजसे देदीप्यमान दिखायी देता था। गौतमको उस समय भूख-प्यास सता रही थी, इसलिये उस पक्षीको आया देख उसने उसे मार डालनेके विचारसे ही उसकी ओर दृष्टिपात किया।

तब राजधर्माने कहा—विप्रवर ! यह मेरा घर है, आप यहाँ पधारे, यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है। मैं आपका स्वागत करता हूँ। सूर्य अस्त हो गया है, संध्याके समय आप मेरे घरमें उत्तम अतिथिके रूपमें आये हैं; इसलिये मैं शास्त्रीय विधिके अनुसार आज आपकी पूजा करूँगा। रातमें मेरा आतिथ्य स्वीकार करके कल सबेरे यहाँसे जाइयेगा। मैं महर्षि कश्यपका पुत्र हूँ। मेरी माता दक्ष प्रजापतिकी कन्या हैं। आप-जैसे गुणवान् अतिथिका मैं स्वागत करता हूँ।

यह कहकर राजधर्माने गौतमका विधिवत् सत्कार किया। शालके फूलोंका दिव्य आसन बनाकर उसे बैठनेको दिया। बड़ी-बड़ी मछलियाँ लाकर रख दीं और उन्हें पकानेके लिये आग प्रज्वलित कर दी। ब्राह्मण जब भोजन करके तृप्त हो गया तो वह तपस्वी पक्षी उसकी थकावट दूर करनेके लिये अपने पंखोंसे हवा करने लगा। विश्रामके पश्चात् जब वह बैठा तो राजधर्माने उससे गोत्र पूछा; किंतु इसके उत्तरमें वह और कुछ न कहकर सिर्फ इतना ही बता सका कि 'मैं ब्राह्मण हूँ और मेरा नाम गौतम है।' तत्पश्चात् राजधर्माने उसके लिये पत्तोंका बिछौना तैयार किया, जो दिव्य पुष्पोंसे वासित था।



उसमेंसे सुगन्ध फैल रही थी। उसपर गौतमने बड़े आरामसे शयन किया। जिस समय वह उस बिछौनेपर बैठा, राजधर्माने उससे वहाँ आनेका कारण पूछा। गौतम बोला—'महाप्राज्ञ ! मैं दरिद्र हूँ और धनके लिये समुद्रतक जाना चाहता हूँ।' राजधर्माने प्रसन्न होकर कहा, 'द्विजवर ! अब आप समुद्रतक जानेकी चिन्ता न कीजिये, यहीं आपका काम हो जायगा, यहींसे धन लेकर घर जाइयेगा। बृहस्पतिजीके मतके अनुसार चार प्रकारसे अर्थकी प्राप्ति होती है—वंश-परम्परासे, दैवकी अनुकूलतासे, काम करनेसे और मित्रकी सहायतासे। अब मैं आपका मित्र हो गया हूँ, आपके प्रति मेरे हृदयमें पूर्ण सौहार्द है। अतः मैं ही ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे आपको अर्थकी प्राप्ति हो जायगी।'

तदनन्तर, जब प्रातःकाल हुआ तो राजधर्माने ब्राह्मणके सुखका उपाय सोचकर उससे कहा—'सौम्य ! आप इस मार्गसे जाइये, आपका कार्य सिद्ध हो जायगा। यहाँसे तीन योजनकी दूरीपर मेरे एक मित्र रहते हैं, उनका नाम है विरूपाक्ष। वे राक्षसोंके राजा और महान् बली हैं। मेरे कहनेसे आप उन्हींके पास चले जाइये। निःसंदेह वे आपकी मनोवाञ्छित कामनाएँ पूर्ण करेंगे।' उसके ऐसा कहनेपर गौतम विरूपाक्षके नगरकी ओर चल दिया। अब उसकी थकावट दूर हो चुकी थी। रास्तेमें इच्छानुसार अमृतके समान मीठे फल खाता हुआ वह तेजीके साथ आगे बढ़ने लगा और

मेरुव्रज नामक नगरमें पहुँच गया। उस नगरके चारों ओर पर्वतोंका किला और पर्वतोंकी ही चहारदिवारी थी। उसका दरवाजा भी एक पर्वत ही था। नगरकी रक्षाके लिये सब ओर शिलाकी बड़ी-बड़ी चट्टानें और मशीनें थीं।

राक्षसराजको यह सूचना दी गयी कि आपके मित्रने अपने एक प्रिय अतिथिको आपके पास भेजा है। यह समाचार पाकर उसने सेवकोंसे कहा—'गौतमको नगरद्वारसे बुलाकर शीघ्र यहाँ ले आओ।' आज्ञा पाते ही उसके नौकर गौतमको पुकारते हुए बाजकी तरह झपटकर दरवाजेपर आ पहुँचे और बोले—'भाई! जल्दी चलो, हमारे राजा तुमसे मिलना चाहते हैं।' बुलावा सुनते ही गौतमकी थकावट दूर हो गयी, वह दौड़ पड़ा। राक्षसराजकी महासमृद्धि देखकर उसे बड़ा विस्मय हो रहा था। वह उन सेवकोंके साथ शीघ्र ही राजमहलमें जा पहुँचा।

वहाँ विरूपाक्षने उसका विधिवत् पूजन किया, तत्पश्चात् जब वह एक उत्तम आसनपर विराजमान हुआ तो राक्षसराजने उसके गोत्र, शाखा और ब्रह्मचर्यावस्थामें किये हुए स्वाध्यायके विषयमें प्रश्न किया। मगर वह गोत्र (जाति)के सिवा और कुछ न बता सका। तब राक्षसने पूछा—'भद्र! तुम्हारा निवास कहाँ है? तुम्हारी स्त्री किस जातिकी है? यह सब ठीक-ठीक बताओ, डरो मत।' गौतम बोला—'मेरा जन्म तो हुआ है मध्यदेशमें, मगर मैं भीलोंके घरमें रहता हूँ। मेरी स्त्री भी शूद्रजातिकी है और मुझसे पहले दूसरेकी पत्नी रह चुकी है। यह बात मैं आपसे सत्य ही कहता हूँ।'

यह सुनकर राक्षसराज मन-ही-मन सोचने लगा—'अब किस तरह काम करना चाहिये? यह जन्मसे ब्राह्मण और महात्मा राजधर्माका सुहृद् है। उन्होंने ही इसे मेरे पास भेजा है। अतः उनका प्रिय कार्य अवश्य करूँगा। आज कार्तिककी पूर्णिमा है, आजके दिन मेरे यहाँ हजारों ब्राह्मण भोजन करेंगे। उनके साथ इसे भी भोजन कराकर धन देना चाहिये।'

तदनन्तर, भोजनके समय हजारों विद्वान् ब्राह्मण स्नान करके रेशमी वस्त्र धारण किये हुए वहाँ आ पहुँचे। राक्षसराजकी आज्ञासे सेवकोंने जमीनपर कुशाओंके सुन्दर आसन बिछा दिये। जब ब्राह्मण उनपर विराजमान हो गये, तो राजा विरूपाक्षने तिल, कुश और जल लेकर उनका विधिवत् पूजन किया। उनमें विश्वेदेवों, पितरों तथा अग्निदेवकी भावना करके उसने सबको चन्दन लगाया और फूलकी मालाएँ पहनायीं। उस समय उत्तम रीतिसे पूजा सम्पन्न होनेपर उन ब्राह्मणोंकी बड़ी शोभा हुई। इसके बाद उसने हीरोंसे जड़ी हुई सोनेकी थालियोंमें घीसे बने हुए मीठे पकवान परोसकर उनके आगे रख दिये।

भोजनके पश्चात् ब्राह्मणोंके समक्ष रत्नोंकी ढेरी लगाकर विरूपाक्षने कहा—'द्विजवरो! आपलोग अपनी इच्छा और शक्तिके अनुसार इन रत्नोंको उठा लें और जिसमें आपने भोजन किया है, उस सुवर्णमय पात्रको भी अपने-अपने घर लेते जायँ।' राक्षसराजके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणोंने इच्छानुसार उन रत्नोंको ले लिया। इस प्रकार उत्तम रत्न और वस्त्रद्वारा सत्कार पाकर सभी ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए। तदनन्तर, विरूपाक्षने नाना देशोंसे आये हुए उन ब्राह्मणोंसे कहा—'विप्रवरो! आज दिनभर आपलोगोंको राक्षसोंसे कहीं कोई भय नहीं है, मौज करते हुए अपने-अपने अभीष्ट स्थानको चले जाइये। विलम्ब न कीजिये।'

यह सुनकर ब्राह्मणलोग चारों दिशाओंकी ओर भाग चले। गौतम भी सोनेका बोझ लेकर जल्दी-जल्दी चलता हुआ बरगदके वृक्षके पास आया। वह बड़ी कठिनाईसे उस भारको ढो रहा था। वहाँ पहुँचते ही थककर बैठ गया, भूखसे वह और भी क्लान्त हो रहा था। राजधर्मापक्षीने अपने पंखोंसे हवा करके उसकी थकावट दूर की; फिर पूजन करके उसके लिये भोजनका प्रबन्ध किया। भोजन और विश्राम कर लेनेके बाद गौतमने सोचा—मैंने लोभ तथा मोहके कारण सुवर्णका बड़ा भारी बोझा उठा लिया है। अभी दूर जाना है और रास्तेमें खानेके लिये मेरे पास कुछ भी नहीं है। कैसे प्राण धारण करूँगा? यही सोचते हुए उस कृतघ्नने मनमें विचार किया, यह बकोंका राजा राजधर्मा मेरे पास ही तो है, क्यों न इसीको मारकर साथ ले लूँ और शीघ्रतापूर्वक यहाँसे चल दूँ।'

भीष्मजी कहते हैं—उस समय वह पक्षी गौतमपर विश्वास करके उसके पास ही सो रहा था। उधर, वह दुष्टात्मा और कृतघ्न उसे मार डालनेकी तदबीर सोच रहा था उसके सामने ही आग जल रही थी, उसमेंसे एक जलती हुई लुआठी लेकर उसने निश्चिन्त सोते हुए राजधर्माको मार डाला। उसे मारकर गौतमको बड़ी प्रसन्नता हुई, उस हत्याके पापपर उसकी दृष्टि नहीं गयी। उसने मरे हुए पक्षीके पंख और बाल नोचकर उसे आगमें पकाया और साथमें ले लिया। फिर सोनेकी गठरी सिरपर लादकर बड़ी तेजीके साथ घरकी राह ली। दूसरे दिन विरूपाक्षने अपने पुत्रसे कहा—'बेटा! आज पक्षियोंमें श्रेष्ठ राजधर्माका दर्शन नहीं हुआ। वे प्रतिदिन प्रातःकाल ब्रह्माजीको प्रणाम करनेके लिये जाया करते थे और वहाँसे लौटनेपर मुझसे मिले बिना कभी घर नहीं जाते थे। इधर, दो

शाम बीत गयी, किंतु वे मेरे घर नहीं पधारे; अतः आज मनमें तरह-तरहके संदेह उठ रहे हैं, न जाने मेरे मित्रको क्या हो गया है ? तुम उनका पता लगाओ। कहीं ऐसा न हो कि वह अधम ब्राह्मण उन्हें मार डाले। वह बड़ा निर्दयी और दुराचारी जान पड़ता था, सूरत-शक्ल तो उसकी ऐसी भयानक थी, मानो कोई दुष्ट लुटेरा हो। नीच गौतम यहाँसे लौटकर फिर उन्हींके पास गया था, इसीलिये मेरे मनमें उद्वेग हो रहा है। बेटा ! तुम यहाँसे शीघ्र ही राजधर्माके स्थानपर जाओ और तुरंत इस बातका पता लगाओ कि वे जीवित हैं या नहीं ?'

पिताकी ऐसी आज्ञा पाकर जब वह बहुत-से राक्षसोंके साथ उस वटवृक्षके पास गया तो वहाँ राजधर्माका कंकाल पड़ा दिखायी दिया। यह देखकर राक्षसराजका पुत्र रो पड़ा और गौतमको पकड़नेके लिये उसने पूरी शक्ति लगाकर पीछा किया। थोड़ी ही दूर जानेपर राक्षसोंने गौतमको पकड़ लिया, उसके साथ ही हड्डियों और पंखोंसे रहित राजधर्माकी लाश भी मिल गयी। उसको लेकर वे तुरंत ही मेरुव्रजमें जा पहुँचे। वहाँ राक्षसोंने राजधर्माके मृत शरीर और उस पापी एवं कृतघ्न गौतमको राजाके सामने पेश किया। मित्रकी यह दशा देख राजा विरूपाक्ष अपने मन्त्री और पुरोहितके साथ फूट-फूटकर रोने लगा। राजमहलमें बड़ा कुहराम मचा। स्त्री और बच्चोंसहित सारे नगरमें मातम छा गया। तदनन्तर, राजाने कहा—'बेटा ! इस पापीका वध कर डालो और समस्त राक्षस इसके मांसके टुकड़ोंको इच्छानुसार बाँटकर खा जायँ; क्योंकि यह पापात्मा सदा पाप ही किया करता है।'

राक्षसराजके कहनेपर भी राक्षसोंको उस पापीका मांस खानेकी इच्छा नहीं हुई। उन्होंने सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए कहा—'महाराज !आप हमलोगोंको इसका पाप भक्षण करनेके लिये न दीजिये।' राजाने कहा—'बहुत अच्छा, तुमलोग इस कृतघ्नको दस्युओंके हवाले कर दो।' आज्ञा पाते ही राक्षस हाथमें त्रिशूल और पट्टिश लेकर टूट पड़े और उस पापीके टुकड़े-टुकड़े करके दस्युओंको देने लगे। किंतु दस्युओंने भी उसका मांस खाना स्वीकार नहीं किया। मांसाहारी जीव भी कृतघ्नका मांस नहीं खाते। ब्रह्महत्यारे, शराबी, चोर और प्रतिज्ञा भंग करनेवाले मनुष्यके लिये पापसे छूटनेका प्रायश्चित्त बताया गया है; मगर कृतघ्नके उद्धारका कोई भी उपाय नहीं कहा गया है।

तदनन्तर, विरूपाक्षने बकराजके लिये एक चिता तैयार करायी और बहुत-से रत्नों, चन्दनों तथा वस्त्रोंसे उसको खूब सजाया। फिर बकराजके शवको उसके ऊपर रखकर उसमें आग लगायी और विधिपूर्वक उसका दाह-कर्म सम्पन्न किया। उसी समय दक्षकन्या सुरभि देवी वहाँ आयीं और आसमानमें ऊपर खड़ी हो गयीं। उनके मुखसे दूधमिश्रित फेन निकलकर राजधर्माकी चितापर गिरा और उसके स्पर्शसे वह जीवित हो उठा। तब वह उड़कर विरूपाक्षके पास पहुँचा और दोनों मित्र गले मिले। इतनेहीमें देवराज इन्द्र भी विरूपाक्षके नगरमें आ पहुँचे और उससे बोले—'बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारे द्वारा राजधर्माको जीवन मिला।' इसके बाद राजधर्माने इन्द्रको प्रणाम करके कहा—'सुरेश्वर ! यदि आपकी मुझपर कृपा हो तो मेरे मित्र गौतमको जीवित कर दीजिये।' इन्द्रने उसकी बात मान ली और अमृत छिड़ककर उस ब्राह्मणको जीवित कर दिया। गौतमके जीवित होनेपर राजधर्माने बड़ी प्रसन्नताके साथ उसे मित्रभावसे गले लगाया और उस पापीको धनसहित विदा करके वह अपने स्थानपर आ गया।

गौतम पुनः भीलोंके ही गाँवमें जाकर रहने लगा। वहाँ उसने उस शूद्र जातिकी स्त्रीके पेटसे अनेकों पापाचारी पुत्रोंको जन्म दिया। तब देवताओंने गौतमको महान् शाप देते हुए कहा—'यह पापी कृतघ्न है और दूसरा पति स्वीकार करनेवाली स्त्रीके पेटसे बहुत समयसे संतान पैदा करता आ रहा है, इस पापके कारण इसको घोर नरकमें गिरना पड़ेगा।'

भीष्मजी कहते हैं—भारत ! बहुत दिन हुए, इस कथाको नारदजीने मुझे सुनाया था; और उसीको याद करके आज मैंने तुम्हें सुनाया है। कृतघ्न मनुष्यको यश, स्थान और सुख कैसे नसीब हो सकता है ? कृतघ्नपर तो किसीका विश्वास ही नहीं होता। कृतघ्नके उद्धारका कोई उपाय नहीं है। मनुष्यको विशेष ध्यान देकर मित्रद्रोहके पापसे बचना चाहिये; क्योंकि जो मित्रसे द्रोह करता है, वह घोर नरकमें पड़ता है। प्रत्येक मनुष्यको कृतज्ञ होना चाहिये, लोगोंको मित्र बनानेकी इच्छा रखनी चाहिये। कारण कि मित्रसे सब कुछ प्राप्त होता है। मित्रकी सहायता पाकर मनुष्य आपत्तियोंसे छुटकारा पा जाता है, इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यको मित्रोंका सत्कार और पूजन करना चाहिये। जो कृतघ्न, पापी, निर्लज्ज, मित्रद्रोही, कुलाङ्गार तथा पापाचारी हों, ऐसे लोगोंका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। राजन् ! इस प्रकार मित्रसे द्रोह करनेवाले पापपरायण कृतघ्न मनुष्यका चरित्र मैंने तुम्हें सुनाया है; अब और क्या सुनना चाहते हो ?

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! महात्मा भीष्मका यह वचन सुनकर युधिष्ठिर अपने मनमें बहुत प्रसन्न हुए।



शोकाकुल चित्तकी शान्तिके लिये राजा सेनजित् और ब्राह्मणके संवादका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! यहाँतक आपने राजधर्म-सम्बन्धी श्रेष्ठ धर्मोंका उपदेश दिया। अब आप सब आश्रमियोंके श्रेष्ठ धर्मोंका वर्णन कीजिये।

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर! वेदमें सर्वत्र धर्मका ही विधान है। धर्मके अनेकों द्वार हैं। संसारमें ऐसी कोई क्रिया नहीं है, जिसका कोई फल न हो। मनुष्य जैसे-जैसे संसारके पदार्थोंको सारहीन (क्षणभङ्गुर) समझता है, वैसे-वैसे इनमें उसका वैराग्य होता जाता है। अतः यह प्रपञ्च अनेकों दोषोंसे पूर्ण है—ऐसा निश्चय करके बुद्धिमान् पुरुषको अपने मोक्षके लिये यत्न करना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! धनके नष्ट हो जाने तथा स्त्री, पुत्र या पिताके मर जानेपर जिस विचारसे शोक दूर हो सकता है, वह क्या है? वर्णन करनेकी कृपा करें।

भीष्मजी बोले—बेटा! जब धन नष्ट हो अथवा स्त्री, पुत्र या पिताकी मृत्यु हो जाय तो 'ओह! संसार कैसा दुःखमय है' यह सोचकर शोकको दूर करनेका प्रयत्न करे। इस विषयमें उदाहरणरूपसे यह पुरातन इतिहास प्रसिद्ध है। पहले सेनजित् नामका एक राजा था। वह पुत्र-वियोगसे अत्यन्त शोकातुर हो रहा था। उसे उदास देखकर एक ब्राह्मणने कहा, 'राजन्! तुम मूढ मनुष्यकी तरह क्यों मोहित हो रहे हो? शोकके योग्य तो तुम स्वयं ही हो, फिर दूसरेके लिये क्यों शोक करते हो? अजी! एक दिन मैं, तुम और अन्य सब लोग भी वहीं जायँगे, जहाँसे आये हैं।'

सेनजित्ने पूछा—तपोधन! आपके पास ऐसी कौन बुद्धि, तप, समाधि, ज्ञान या शास्त्रबल है, जिसे पाकर आपको किसी प्रकारका विषाद नहीं होता?

ब्राह्मणने कहा—देखो, इस संसारमें उत्तम, मध्यम और अधम—सभी प्राणी दुःखमें ग्रस्त हैं तथा तरह-तरहके कर्मोंमें फँसे हुए हैं। मैं इस शरीर या पृथ्वीको अपनी नहीं मानता। ये जैसी मेरी हैं वैसी ही दूसरोंकी भी हैं—यही सोचकर इनके कारण मुझे व्यथा नहीं होती और इस बुद्धिको पाकर ही मैं हर्ष-शोकसे रहित रहता हूँ। जिस प्रकार समुद्रमें दो लकड़ियाँ मिलती हैं और फिर अलग-अलग भी हो जाती हैं, इसी प्रकार इस लोकमें प्राणियोंका समागम होता है तथा इसी तरह यह पुत्र, पौत्र, जाति, बन्धु और सम्बन्धियोंकी कल्पना हो जाती है। अतः उनमें विशेष स्नेह नहीं करना चाहिये; क्योंकि एक दिन उनसे बिछोह होना निश्चित है। तुम्हारा पुत्र किसी अज्ञात स्थानसे आया था और अब अज्ञातदेशको ही चला गया है। न तो वह तुम्हें जानता था और न तुम्हीं उसे जानते थे। अतः तुम उसके कौन हो, जो उसके लिये शोक कर रहे हो। संसारमें विषयतृष्णासे जो व्याकुलता होती है, उसीका नाम दुःख है और उस दुःखका नाश हो जाना ही सुख है। उस सुखसे बार-बार दुःख उत्पन्न होता रहता है। इस प्रकार सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख—यह सुख-दुःखका चक्र घूमता ही रहता है। इस समय तुम्हें सुखकी स्थितिसे दुःखमें आना पड़ा है, इसलिये अब तुम सुख प्राप्त करोगे। किसी प्राणीको सर्वदा सुख या सर्वदा दुःखकी ही प्राप्ति नहीं होती। मनुष्य स्नेहकी अनेक प्रकारकी फाँसियोंमें बँधे हुए हैं और जलमें बालूका पुल बनानेवालोंके समान अपने कार्योंमें असफल होनेसे दुःख पाते रहते हैं। तेली लोग तेलके लिये जैसे तिलोंको कोल्हूमें पेरते हैं, उसी प्रकार सब लोग अज्ञानजनित कष्टोंसे पिस रहे हैं। मनुष्य स्त्री-पुत्र आदि कुटुम्बके लिये संसारमें तरह-तरहके पाप बटोरता है, किंतु इस लोकमें और परलोकमें उसे अकेले ही उनका क्लेशमय फल भोगना पड़ता है। जिस प्रकार बूढ़ा हाथी दलदलमें फँसकर प्राण खो बैठता है,उसी प्रकार सब लोग पुत्र, स्त्री और कुटुम्बकी आसक्तिमें फँसकर शोक-समुद्रमें डूबे रहते हैं। जब पुत्र, धन या बन्धु-बान्धवोंमेंसे किसीका नाश हो जाता है तो वे दावानलके समान भीषण दुःखमें पड़ जाते हैं, परंतु सुख-दुःख और जन्म-मृत्यु आदि सब कुछ दैवके अधीन है। मनुष्य हितैषियोंसे युक्त हो या न हो, वह शत्रुओंसे घिरा हो या मित्रोंसे तथा बुद्धिमान् हो अथवा बुद्धिहीन—दैवकी अनुकूलता होनेपर ही सुख पा सकता है। अन्यथा न तो हितैषी सुख देनेमें समर्थ हैं और न शत्रु दुःख देनेमें। न बुद्धि धन दे सकती है और न धन सुख पहुँचा सकता है। वास्तवमें संसारकी गतिको कोई बुद्धिमान् ही समझ सकता है, दूसरा कोई नहीं।

जिन्हें बुद्धियोगका सुख प्राप्त है, जो द्वन्द्वोंसे अतीत हैं और जिनमें मत्सरताका भी अभाव है, उन्हें अर्थ या अनर्थ कभी व्यथा नहीं पहुँचाते। किंतु जिन्हें बुद्धियोग प्राप्त नहीं हुआ है, वे ऐसी परिस्थिति आनेपर अत्यन्त हर्ष और अत्यन्त शोकके अधीन हो जाते हैं। अतः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि सुख या दुःख, प्रिय अथवा अप्रिय जो-जो प्राप्त होता जाय, उसका उत्साहके साथ सामना करे, कभी हिम्मत न हारे। शोकके हजारों स्थान हैं और भयके सैकड़ों अवसर हैं, किंतु वे दिन-दिन मूर्खोंपर ही प्रभाव डालते हैं, बुद्धिमानोंपर

नहीं। जो बुद्धिमान्, विचारशील, शास्त्राभ्यासी, ईर्ष्याहीन, संयमी और जितेन्द्रिय होता है, उस मनुष्यको शोक छू भी नहीं सकता। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि इस निश्चयपर डटा रहकर संयत चित्तसे व्यवहार करे। जो पुरुष उत्पत्ति-विनाशके तत्त्वको जानता है, उसे शोक स्पर्श नहीं कर सकता। मनुष्य जब किसी पदार्थमें ममत्व कर बैठता है तो वही उसके दुःखका कारण बन जाता है। वह विषयोंमेंसे जिस-जिसकी आसक्तिको त्यागता जाता है, उसी-उसीसे सुखकी वृद्धि होती जाती है। किंतु जो पुरुष विषयोंके पीछे पड़ा रहता है, वह तो उन्हींके साथ नष्ट हो जाता है। लोकमें जितना भी विषयसुख है और जो कुछ दिव्य स्वर्गीय आनन्द है, वे सब तृष्णाक्षयके सुखकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते। मनुष्य बुद्धिमान् हो, मूर्ख हो अथवा शूरवीर हो—अपने पूर्वजन्ममें उसने जैसा भी शुभ या अशुभ कर्म किया होता है उसका उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। इस प्रकार जीवोंको बारी-बारीसे प्रिय-अप्रिय और सुख-दुःखकी प्राप्ति होती ही रहती है। ऐसे विचारका आश्रय लेकर कामनाओंके त्यागरूपी गुणसे युक्त हुआ मनुष्य सुखसे रहता है। अतः सब प्रकारके भोगोंमें दोष-दृष्टि करें और उन्हें स्वेच्छासे त्याग दे। हृदयसे उत्पन्न होनेवाला यह काम हृदयमें ही पुष्ट होकर मृत्युरूपमें परिणत हो जाता है। (जब इसकी सिद्धिमें कोई बाधा आती है तो) विद्वानों द्वारा यही प्राणियोंके शरीरके भीतर क्रोधके नामसे पुकारा जाता है। कछुआ जैसे अपने अङ्गोंको समेट लेता है, उसी प्रकार जब यह जीव अपनी सब कामनाओंका संकोच कर देता है तो इसे अपने विशुद्ध अन्तःकरणमें ही स्वयंप्रकाश आत्माका साक्षात्कार हो जाता है। जब यह किसीसे भय नहीं मानता और इससे भी कोई नहीं डरता तथा जब यह किसी वस्तुकी इच्छा या किसीसे द्वेष नहीं करता तो इसे ब्रह्मत्वकी प्राप्ति हो जाती है। जब यह सत्य और असत्य, शोक और आनन्द, भय और अभय तथा प्रिय और अप्रिय दोनोंको त्याग देता है, तो परम शान्तचित्त हो जाता है। जब पुरुष मन-वचन और कर्मसे किसी प्राणीके प्रति दूषित भाव नहीं करता, उस समय वह ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। दुष्टचित्त पुरुषोंके लिये जो अत्यन्त दुस्त्यज है, मनुष्यके जीर्ण हो जानेपर भी जिसमें शिथिलता नहीं आती तथा जो प्राणोंके साथ जानेवाला रोग है, उस तृष्णाको जो त्याग देता है, वह सुखी हो जाता है। राजन्! इस विषयमें पिङ्गलाकी गायी हुई एक गाथा प्रसिद्ध है जिससे ज्ञात होता है कि उसने क्लेशपूर्ण स्थितिमें पड़कर भी तृष्णाको त्याग देनेसे शुद्ध सनातन धर्मको पा लिया था।

एक बार पिङ्गला वेश्या बहुत देरतक संकेत-स्थानपर बैठी रही, तब भी उसके पास उसका प्रेमी नहीं आया। इससे उसे बड़ा खेद हुआ और उसने शान्त होकर ऐसा विचार किया—'मेरे सच्चे प्रियतम सदा ही स्वस्थ रहनेवाले हैं। मैं बहुत समयतक उनके साथ रह चुकी हूँ, फिर भी ऐसी उन्मत्त हो गयी कि इतने दिनोंतक पास रहनेपर भी उन्हें पहचान न सकी। भला, जिसे उस सच्चे प्रियतमका पता लग जायगा वह किसी दूसरेको कैसे पतिरूपसे स्वीकार करेगी। अब मैं भी मोहनिद्रासे जाग गयी हूँ। आजसे मैंने सब कामनाओंको तिलाञ्जलि दी। अब भोगोंका रूप धारण करके ये नरकरूपी धूर्त मनुष्य मुझे धोखा नहीं दे सकेंगे। दैववश पूर्व पुण्यका उदय होनेपर अनर्थ भी अर्थरूप हो जाता है। इसीसे आज निराशाने मुझे जितेन्द्रिय बना दिया है। वास्तवमें जिसे किसी प्रकारकी आशा नहीं है, वही सुखकी नींद सो सकता है, आशा न रखनेमें ही सबसे बड़ा आनन्द है। देखो, आशाको निराशामें परिणत करके ही आज पिङ्गला आनन्दसे सो रही है।'

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! ब्राह्मणने जब ये तथा और भी ऐसी ही युक्तियुक्त बातें कहीं तो राजा सेनजित्‌का शोक दूर होकर चित्त ठिकानेपर आ गया और वह प्रसन्न होकर आनन्दसे जीवन बीताने लगा।



कल्याणकामीके कर्तव्यके विषयमें पिता-पुत्रका संवाद

राजा युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! समस्त भूतोंका संहार करनेवाला यह काल बराबर बीता जा रहा है। ऐसी अवस्थामें बताइये, क्या करनेसे मनुष्यका कल्याण हो सकता है?

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर! इस विषयमें यह पिता और पुत्रका संवादरूप पुरातन इतिहास प्रसिद्ध है, सुनो। किसी स्वाध्यायशील ब्राह्मणका 'मेधावी' नामसे प्रसिद्ध एक बुद्धिमान् पुत्र था। वह मोक्ष, धर्म और अर्थमें कुशल तथा लोकस्थितिको जाननेवाला था। एक दिन उसने अपने स्वाध्यायपरायण पितासे कहा—'पिताजी! मनुष्यकी आयु बड़ी तेजीसे बीती जा रही है—ऐसा जानकर बुद्धिमान् मनुष्यको क्या करना चाहिये? आप मुझे यथार्थ धर्मका

उपदेश कीजिये, जिससे मैं क्रमशः उसका आचरण कर सकूँ।'

पिताने कहा—बेटा! मनुष्यको चाहिये कि पहले ब्रह्मचर्यव्रत लेकर वेदाध्ययन करे, फिर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके पितरोंकी सद्गतिके लिये पुत्र उत्पन्न करे और अग्न्याधानपूर्वक यज्ञादि करे, इसके बाद वानप्रस्थ आश्रममें रहे और फिर संन्यासी हो जाय।

पुत्र बोला—पिताजी! यह लोक तो अत्यन्त ताडित और सब ओरसे घिरा हुआ जान पड़ता है, इसमें अमोघ वस्तुओंका पतन हो रहा है; फिर भी आप निश्चिन्तसे होकर कैसे बातें कर रहे हैं?

पिताने कहा—बेटा! तुम मुझे डराते क्यों हो? भला, यह लोक किससे ताडित है, कौन इसे सब ओरसे घेरे हुए हैं और इसमें कौन-सी अमोघ वस्तुओंका पतन हो रहा है?

पुत्र बोला—देखिये, मृत्यु इसे अत्यन्त ताडित कर रही है, जरावस्थाने इसे सब ओरसे घेर रखा है और दिन-रात इसमें नित्य पतित होते (आते-जाते) रहते हैं? यह बात आपके ध्यानमें कैसे नहीं आती? अमोघ रात्रियाँ नित्य ही आती हैं और चली जाती है। यह भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मौत मेरे कहनेसे क्षणभर भी नहीं रुकेगी। यह सब जानकर भी मैं अपने कल्याणसाधनमें किस प्रकार ढील डाल सकता हूँ? जबकि प्रत्येक रात्रिके बीतनेके साथ आयु क्षीण हो रही है तो समझदार मनुष्यको यही समझना चाहिये कि उसका दिन व्यर्थ ही गया; ऐसी स्थितिमें छिछले जलमें रहनेवाली मछलीके समान कौन सुख मान सकता है? मनुष्यकी कामनाएँ पूर्ण होने भी नहीं पातीं कि मृत्यु उसे दबोच लेती है; इसलिये जो काम कल्याणकारक हो उसे आज ही कर डालो, समयको हाथसे मत निकलने दो; क्योंकि मृत्यु तो काम पूरे न होनेपर भी प्राणियोंको खींच ही ले जायगी। जो काम कल करना हो उसे आज करो और जो दोपहर बाद करना हो उसे पहले ही पूरा कर लो; क्योंकि मौत यह नहीं देखती कि इसका काम अभी पूरा हुआ है या नहीं। यह कौन जानता है कि आज किसकी मृत्यु हो जायगी। अतः युवावस्थामें ही मनुष्यको धर्मका आचरण करना चाहिये; क्योंकि जीवनका कोई ठिकाना नहीं है। धर्माचरण करनेसे मनुष्यका यश होता है और उसे इहलोक तथा परलोकमें सुख मिलता है। जो मनुष्य मोहमें डूबा रहता है, वही पुत्र और स्त्रीके लिये खटपटमें लगा रहता है और कार्य-अकार्य कुछ भी करके उनका पोषण करता है। उसके पास पुत्र और पशुओंकी अधिकता होती है और उन्हींमें उसका चित्त आसक्त रहता है। वह निरन्तर भोगोंके ही संग्रहमें लगा रहता है, फिर भी उनसे उसकी तृप्ति नहीं होती। किंतु ऐसी स्थितिमें ही मौत उसे इस प्रकार उठा ले जाती है जैसे व्याघ्री अपने सोते हुए शिकारको। वह सोचता है कि यह काम तो पूरा हो गया, यह अभी करना है और यह अधूरा ही पड़ा है किंतु इस धुनमें मस्त हुए उस पुरुषको मौत झट अपने वशमें कर लेती है। मनुष्य अपने खेत, दूकान और घरके ही चक्करमें पड़ा रहता है; उनके लिये तरह-तरहके कर्म करता है। परंतु उनका फल मिलने भी नहीं पाता कि मौत उसे उठाकर ले जाती है। मनुष्य दुर्बल हो या बलवान्, शूरवीर हो या डरपोक, अथवा मूर्ख हो या विद्वान्, मौत उसकी समस्त कामनाओंके पूर्ण होनेसे पहले ही उसे उठा ले जाती है। पिताजी! जब इस शरीरमें मृत्यु, जरा, व्याधि और अनेकों कारणोंसे होनेवाले दुःखोंका ताँता लगा ही रहता है तो आप इस प्रकार निश्चिन्त-से हुए क्यों बैठे हैं? मौत और बुढ़ापा—ये दोनों तो जीवके जन्मके साथ लगे हुए हैं। इन दोनोंका सभी स्थावर-जङ्गमोंसे सम्बन्ध है। अतः ग्राम या नगरमें रहकर स्त्री-पुत्रोंमें आसक्ति रखना तो जीवको बाँधनेवाली रस्सीके ही समान है। केवल पुण्यात्मा पुरुष ही इसे काटकर निकल पाते हैं, पापी पुरुष इसे नहीं काट सकते। जो मनुष्य मन, वाणी और शरीरसे जीवोंको कष्ट नहीं पहुँचाता, वे जीव भी उसके जीवन और अर्थकी हानि नहीं करते। सत्यके विना कोई भी मनुष्य मृत्युकी सेनाका सामना नहीं कर सकता, इसलिये असत्यको त्याग देना चाहिये; क्योंकि अमृतत्व सत्यमें ही है। अतः मनुष्यको सत्यव्रतका आचरण करना चाहिये, सत्ययोगमें तत्पर रहना चाहिये और इन्द्रियोंका दमन करना चाहिये। इस प्रकार सत्यके द्वारा ही वह मृत्युपर विजय प्राप्त करे। अमृत और मृत्यु—ये दोनों इस शरीरमें ही विद्यमान हैं। मोहसे मृत्यु होती है और सत्यसे अमरत्व प्राप्त होता है। अतः अब मैं हिंसासे दूर रहूँगा, सत्यकी खोज करूँगा, काम और क्रोधको हृदयसे निकाल दूँगा, सुख-दुःखमें समान रहूँगा, जिसमें दूसरोंको सुख मिले ऐसा आचरण करूँगा और मृत्युके भयसे मुक्त हो जाऊँगा। मैं (निवृत्तिपरायण होकर) शान्तियज्ञका अनुष्ठान करूँगा, इन्द्रियोंका दमन करूँगा, मननशील होकर ब्रह्मयज्ञमें तत्पर रहूँगा तथा जपरूप वाग्यज्ञ, ध्यानरूप मनोयज्ञ और गुरु-शुश्रूषादिरूप कर्मयज्ञका आचरण करूँगा। जिसकी वाणी और मन सदा एकाग्र रहते हैं तथा जो तप, त्याग और सत्यमें तत्पर रहता है, वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है। संसारमें ज्ञानके समान कोई नेत्र नहीं है, सत्यके समान कोई तप नहीं है, रागके समान कोई दुःख नहीं है और त्यागके

समान कोई सुख नहीं है। एकान्तवास, समता, सत्यभाषण, सदाचार, अहिंसा, सरलता और सब प्रकारके काम्यकर्मोंसे निवृत्ति—इनके समान ब्राह्मणका कोई और धन नहीं है। पिताजी ! जब एक दिन आपको मरना ही है तो इस धन, स्वजन अथवा स्त्री आदिसे क्या लेना है ? आप अपने अन्तःकरणमें स्थित आत्माको खोजिये। सोचिये तो सही आज आपके पिता-पितामह कहाँ चले गये।

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! पुत्रके वचन सुनकर पिताने जो कुछ किया, वही सत्यधर्ममें तत्पर रहकर तुम भी करो।



सुख-दुःखका विवेचन और त्यागकी महिमा

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! धनी और निर्धन दोनों ही स्वतन्त्रतासे व्यवहार करते हैं, फिर भी उन्हें सुख और दुःखकी प्राप्ति कैसे होती है ?

भीष्मजी बोले—राजन् ! कुछ दिन हुए इस विषयमें मुझसे शम्पाक नामके एक शान्त, जीवन्मुक्त और त्यागी ब्राह्मणने इस प्रकार कहा था—इस संसारमें जो भी मनुष्य उत्पन्न होता है, (वह धनी हो या निर्धन) उसे जन्मसे ही सुख-दुःख घेर लेते हैं। विधाता जब उसे सुख और दुःख इन दोनोंमेंसे किसी एकके मार्गपर ले जाय तो इसे न तो सुख पाकर प्रसन्न होना चाहिये और न दुःखमें पड़कर घबराना चाहिये। यदि तुम अकिंचन रहोगे तो सुखका आस्वादन कर सकोगे। जो अकिंचन होता है वह आनन्दसे सोता-जागता है। संसारमें अकिंचनतामें ही आनन्द है, यही हितकारक, कल्याणमय और निरापद है तथा इस मार्गमें किसी प्रकारके शत्रुका भी खटका नहीं है। मैं तीनों लोकोंपर दृष्टि डालकर देखता हूँ तो मुझे अकिंचन, शुद्ध और सब ओरसे विरक्त पुरुषके समान कोई दूसरा दिखायी नहीं देता। मैंने अकिंचनता और राज्यको तराजूपर रखकर तौला तो गुणोंमें अधिक होनेके कारण राज्यसे भी अकिंचनताका ही भार अधिक निकला। अकिंचनता और राज्यमें यह बड़ा भारी अन्तर है कि धनवान् पुरुष सर्वदा इस प्रकार घबराया रहता है मानो मौतके मुँहमें पड़ा हो। जो मनुष्य धनको त्याग कर मुक्तस्वरूप हो गया है उसे अग्नि, अरिष्ट, मृत्यु या चोर किसीका भी भय नहीं रहता। वह स्वेच्छासे विचरता है, बिना बिछाये पृथ्वीपर सोता है, बाँहका तकिया लगाता है और शान्तिसे जीवन बिताता है। देवतालोग भी उसकी स्तुति करते हैं। धनवान् तो क्रोध और लोभके कारण अपने-आपको भूले रहता है। उसकी निगाह टेढ़ी रहती है, मुँह सूख जाता है और भौंहें चढ़ी रहती हैं। उसे पाप-ही-पाप सूझता है, क्रोधके कारण वह ओठ चबाता है और कठोर भाषण करता है। वह यदि सारी पृथ्वी भी देनेको तैयार हो तो भी उसकी ओर कौन देखना चाहेगा ? वह सर्वदा लक्ष्मीकी ही गोदमें रहता है और वह उस मूर्खको मोहमें डालती रहती है। वायु जैसे शरद् ऋतुके बादलोंको उड़ा ले जाती है, उसी प्रकार लक्ष्मी उसके चित्तको हर लेती है। वह अपनेको बड़ा रूपवान् और धनवान् समझता है और ऐसा मानता है कि मैं बड़ा कुलीन और सिद्ध हूँ, कोई साधारण मनुष्य नहीं हूँ। इन कारणोंसे उसका चित्त मतवाला हो जाता है। भोगासक्त हो जानेके कारण वह बाप-दादोंके जोड़े हुए मालमतेको उड़ा देता है और इस प्रकार धनहीन हो जानेपर दूसरोंका धन छीननेका विचार करने लगता है। इस तरह जब वह मर्यादाका उल्लङ्घन करता है और जहाँ-तहाँसे धन-संग्रहकी चेष्टा करने लगता है तो राजपुरुष उसकी इस प्रवृत्तिमें बाधा उपस्थित करते हैं। इस प्रकार उस पुरुषको संसारमें तरह-तरहके दुःखोंका सामना करना पड़ता है। अतः अनित्य शरीरोंके साथ लगे हुए पुत्रैषणा आदि लोकधर्मोंकी ओर न देखकर अपने दूषित आचरणोंसे अवश्य प्राप्त होनेवाले इन महान् दुःखोंकी विचारपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिये। कोई भी मनुष्य त्याग किये बिना न तो सुख पा सकता है, न परमात्माको पा सकता है और न निर्भय होकर सो सकता है; अतः तुम सर्वस्व त्यागकर सुखी हो जाओ।'

युधिष्ठिर ! पहले शम्पाक मुनिने हस्तिनापुरमें मुझसे ये बातें कही थीं। अतः त्याग ही सबसे श्रेष्ठ माना गया है।



तृष्णात्यागके विषयमें मङ्किका दृष्टान्त तथा विदेहराज जनक और मुनिवर बोध्यकी उक्तियाँ

राजा युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! यदि कोई मनुष्य तरह-तरहके उद्योग करनेपर भी धन न पा सके तो इस धनतृष्णामें ग्रस्त रहते हुए उसे क्या करनेसे सुख मिल सकता है ?

भीष्मजी बोले—राजन् ! सबके प्रति समताका भाव रखना, धनादिके लिये विशेष खटपटमें न पड़ना, सत्यभाषण करना, भोगोंसे विरक्त रहना और कर्ममें आसक्त न होना—इन पाँच बातोंके होनेसे मनुष्य सुख पा सकता है। इस विषयमें एक बार मङ्किने विरक्त होकर जो कुछ कहा था, वह पुरातन इतिहास मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

मङ्किने धनोपार्जनके लिये बहुत प्रयत्न किया, किंतु उसे सफलता न मिली। तब थोड़े-से बचे-खुचे धनसे उसने भार सहने योग्य दो बछड़े खरीदे। एक दिन उन्हें सधानेके लिये वह जुएमें जोतकर ले चला। रास्तेमें एक ऊँट बैठा था। वे उसे बीचमें करके एकदम दौड़ पड़े। जब वे उसकी गर्दनके पास पहुँचे तो ऊँटको बड़ा बुरा लगा और वह खड़ा होकर उन दोनोंको गर्दनपर लटकाये बड़े जोरसे दौड़ने लगा। इस प्रकार उस उन्मत्त ऊँटके द्वारा अपहरण किये जाते हुए बछड़ोंको मरते देखकर मङ्कि कहने लगा, 'मनुष्य कैसा ही चतुर हो, किंतु उसके भाग्यमें नहीं होता तो प्रयत्न करनेपर भी उसे धन नहीं मिल सकता।' पहले अनेकों असफलताओंका सामना करनेपर भी मैं धनोपार्जनकी चेष्टामें लगा ही था, सो देखो, विधाताने इन बछड़ोंके बहाने ही मेरे सारे प्रयत्नको मिट्टीमें मिला दिया। इस समय काकतालीय न्यायसे ही यह ऊँट मेरे बछड़ोंको लटकाये इधर-उधर दौड़ रहा है। मेरे दोनों प्यारे बछड़े ऊँटकी गर्दनमें मणियोंके समान लटके हुए हैं। यह एकमात्र दैवकी ही लीला है। यदि कभी कोई पुरुषार्थ सफल होता दिखायी देता है तो खोजनेपर वह भी दैवका ही किया जान पड़ता है। अतः जिसे सुखकी इच्छा हो, उसे वैराग्यका ही आश्रय लेना चाहिये। जो पुरुष धनोपार्जनकी चिन्ता छोड़कर उपरत हो जाता है, वह सुखकी नींद सोता है। अहा ! शुकदेवमुनिने क्या ही अच्छा कहा है—'जो मनुष्य अपनी समस्त कामनाओंको पा लेता है और जो उनका सर्वथा त्याग कर देता है, उन दोनोंमें कामनाओंको पानेवालेकी अपेक्षा त्यागनेवाला ही श्रेष्ठ है।'

''ओ कामनाओंके दास ! तू सब प्रकारकी कर्मवासनाओंसे अलग हो जा, शान्ति धारण कर, विषयासक्तिको छोड़ दे। इस अर्थवासनाने तुझे बार-बार छकाया है, तो भी तू इससे उपरत नहीं होता। तूने बार-बार धन संचय किया और वह बार-बार नष्ट होता गया। ओ मूढ़ ! भला, इस अर्थलोलुपतासे तू कब अपना पिण्ड छुड़ायेगा ? अरे ! मेरी कैसी मूर्खता है, जो मैं तेरा खिलौना बना हुआ हूँ। ऐसा कौन पुरुष होगा जो इस प्रकार दूसरोंका दास बनकर रहेगा। काम ! निश्चय ही तेरा हृदय वज्रका बना हुआ है। इसीसे सैकड़ों अनर्थोंसे व्याप्त होनेपर भी इसके टुकड़े नहीं होते। मैं तेरी जड़को भी खूब जानता हूँ। तू संकल्पसे उत्पन्न होता है। अच्छा, मैं तेरा संकल्प ही नहीं करूँगा, तब तो तू मूलसहित नष्ट हो जायगा। यों तो धनके संकल्पमें ही सुख नहीं है, वह मिल जाय तो भी चिन्ता ही बढ़ती है और यदि एक बार मिलकर नष्ट हो जाय तब तो मौत ही आ जाती है तथा उद्योग करनेपर भी यह निश्चय नहीं होता कि वह मिलेगा भी या नहीं। मिल भी जाय तो इससे संतोष नहीं होता, फिर और भी पानेकी तृष्णा बढ़ती है। गङ्गाजलको पीकर जैसे-जैसे उत्तरोत्तर उसे पीते रहनेकी ही इच्छा होती है, उसी प्रकार धनका स्वभाव भी तृष्णाकी निवृत्ति न होने देना ही है। मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ, तू मेरा सत्यानाश करनेवाला ही है, इसलिये अब मेरा पिण्ड छोड़ दे। जिस प्राणने मेरे इस भूतसमष्टिरूप शरीरमें बसेरा किया है वह भी स्वेच्छासे इसमें रहे अथवा चला जाय। तुम जो अहंकारादि हो, काम और लोभके ही अनुचर हो। मेरा तुमसे कोई नेह-नाता नहीं है, अतः अब कामनाओंको छोड़कर मैं सत्यका ही आश्रय लूँगा। मैं सब भूतोंको अपने शरीर और मनमें देखते हुए बुद्धिको योगमें, चित्तको श्रवण-मननादिमें और आत्माको ब्रह्ममें लगाऊँगा। इस प्रकार सब प्रकारकी आसक्ति छोड़कर आनन्दसे सर्वत्र विचरूँगा, जिससे कि फिर तू मुझे दुःखोंमें न पटक सके। काम ! तृष्णा, शोक और परिश्रम इनका उत्पत्तिस्थान तू ही है। मैं तो समझता हूँ, धनका नाश होनेपर जो दुःख होता है वही सबसे बढ़कर है। धनमें जो थोड़ा-सा सुखका अंश देखा जाता है, वह भी दुःखके ही लिये है। जिस पुरुषके पास धन होनेका संदेह होता है, उसे लुटेरे मार डालते हैं अथवा उसे नित्यप्रति तरह-तरहकी पीड़ाएँ देकर तंग करते रहते हैं। यह बात तो मैं बहुत दिनोंसे जानता था कि अर्थ-लोलुपता दुःखरूप है। काम ! तेरा पेट भरना बड़ा कठिन काम है। तू पातालके समान दुष्पूर है। तू

मुझे दुःखोंमें फँसाना चाहता है। किंतु अब तू मुझपर फिर अधिकार नहीं जमा सकता। दैववश धनका नाश होनेसे आज मुझे वैराग्य प्राप्त हुआ है; अतः अब अत्यन्त उपरत होकर मैं भोगोंकी इच्छा नहीं करूँगा। अबतक मैंने बहुत दुःख सहे हैं, मैं ऐसा मूर्ख था कि कुछ समझता ही नहीं था। इस समय धनका नाश होनेसे मेरी सब खटपट मिट गयी; अब मैं मौजसे सोऊँगा। काम ! मैं मनकी सारी चेष्टाओंको छोड़कर तुझे दूर कर दूँगा। अब तू मेरे पास नहीं रह सकेगा।

"जो लोग मेरा तिरस्कार करेंगे उन्हें मैं क्षमा करूँगा, जो मुझे कष्ट पहुँचावेगा उसका कोई अहित नहीं करूँगा, जो द्वेष करेगा उसके अप्रिय व्यवहारका कोई विचार न करके उससे मीठी-मीठी बातें करूँगा। मैं तृप्त और स्वस्थचित्त रहूँगा तथा जो कुछ अनायास ही प्राप्त होगा उसीसे निर्वाह कर लूँगा। तू मेरा शत्रु है, मैं तेरी इच्छा पूर्ण नहीं होने दूँगा। तू अच्छी तरह समझ ले, मुझे वैराग्य, सुख, तृप्ति, शान्ति, सत्य, दम, क्षमा और सर्वभूतदया—ये सभी गुण प्राप्त हो गये हैं। अतः काम, लोभ, तृष्णा और कृपणताको चाहिये कि मुझे छोड़कर चले जायँ। अब मैं सत्त्वगुणमें स्थित हो गया हूँ। आज काम और लोभसे छुटकारा पाकर मैं सुखी हो गया हूँ। अतः अब अज्ञानियोंकी तरह मैं लोभमें फँसकर दुःख नहीं पाऊँगा। मनुष्य जिस-जिस कामनाको छोड़ देता है, उसीकी ओरसे सुखी हो जाता है, कामनाके वशीभूत होकर तो वह सर्वदा दुःख ही पाता है। दुःख, निर्लज्जता और असंतोष—ये काम और क्रोधसे ही उत्पन्न होनेवाले हैं; अतः अब मैं परब्रह्ममें प्रतिष्ठित हूँ, पूर्णतया शान्त हूँ और कर्मकलापसे मुक्त हो गया हूँ तथा मुझे विशुद्ध आनन्दका अनुभव हो रहा है। इस लोकमें जो विषय-सुख और दिव्य महान् सुख हैं, वे तृष्णाक्षयसे होनेवाले सुखके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हैं।"

राजन् ! इस प्रकारकी बुद्धि पाकर मङ्कि विरक्त हो गया और सब प्रकारकी कामनाओंको त्यागकर उसने ब्रह्मानन्द प्राप्त किया। दो बछड़ोंके नाशसे ही उसे अमरत्व प्राप्त हो गया। उसने कामकी जड़ काट डाली और अत्यन्त सुखी हो गया। एक बार परम शान्त विदेहराज जनकने भी कहा था—'मेरा धन अनन्त-सा है, किंतु वस्तुतः मेरे पास कुछ भी नहीं है। यदि मिथिलापुरी जल रही है तो इससे मेरा कुछ भी नहीं जलता।'

कहते हैं, किसी समय नहुषपुत्र ययातिने परम विरक्त और शान्तात्मा बोध्य ऋषिसे पूछा था, 'महाप्राज्ञ ! आप मुझे ऐसा उपदेश कीजिये जिससे शान्ति मिले। ऐसी कौन बुद्धि है जिसका आश्रय लेकर आप शान्त और सानन्द होकर विचरते हैं।'

बोध्यने कहा—राजन् ! मैं किसीको उपदेश नहीं देता हूँ, बल्कि दूसरोंके उपदेशके अनुसार आचरण करता हूँ। मैं तुम्हें अपनेको प्राप्त हुए उपदेशका लक्षण बताता हूँ। उसपर तुम स्वयं विचार करो। पिङ्गला, कुररपक्षी, सर्प, सारङ्ग, बाण बनानेवाला और कुमारी—ये छः मेरे गुरु हैं। महाराज ! आशा बड़ी प्रबल है, सुख तो निराशामें ही है। पिङ्गला आशाको निराशामें परिणत करके सुखसे सोयी थी। कुररपक्षी मांसका टुकड़ा लिये जाता था, उसे दूसरे पक्षी मारने लगे। तब उस टुकड़ेको फेंकनेसे ही उसे चैन मिला। सर्प दूसरोंके बनाये हुए घरमें घुसकर ही मौजसे रहता है; अतः घर बनानेकी खटपटमें पड़ना दुःखरूप ही है, इसमें कुछ भी सुख नहीं है। जिस प्रकार सारङ्गपक्षी किसीसे वैर न करके अहिंसावृत्तिसे अपना निर्वाह करते हैं, उसी प्रकार मुनिजन भिक्षावृत्तिका आश्रय लेकर आनन्दसे अपना जीवन व्यतीत करते हैं। एक बार एक बाण बनानेवालेको देखा, वह अपने काममें ऐसा दत्तचित्त था कि उसे अपने पाससे होकर निकली हुई राजाकी सवारीका भी पता नहीं लगा। (एक कुमारी कन्या धान कूट रही थी। इससे उसके हाथकी चूड़ियोंका शब्द होता था। उसने संकोचवश और सबको तोड़कर दोनों हाथोंमें केवल एक-एक चूड़ी रहने दी। इससे उनका शब्द होना बंद हो गया। इससे मैंने निश्चय किया कि) बहुत लोग साथ-साथ रहते हैं तो उनमें कलह होता है और दो-दो रह जाते हैं तो भी बातचीत तो होती ही है। अतः उस कुमारीकी एक-एक चूड़ीके समान मैं भी अकेला विचरूँगा।



संतजनोंके आचरणके विषयमें प्रह्लाद और अवधूत ब्राह्मणका संवाद

राजा युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! आप सदाचारके नियमोंको जाननेवाले हैं। कृपया यह बताइये कि मनुष्यको किस प्रकारका आचरण करते हुए निःशोक होकर पृथ्वीपर विचारना चाहिये तथा ऐसा कौन काम है जिसे करनेसे वह उत्तम गति प्राप्त कर सकता है ?

भीष्मजी बोले—राजन् ! इस विषयमें यह पुरातन

इतिहास प्रसिद्ध है। इसमें असुरराज प्रह्लाद और अजगर मुनिका संवाद है। एक शुद्धचित्त और निर्विकार ब्राह्मणको पृथ्वीपर विचरते देखकर परम बुद्धिमान् प्रह्लादजीने पूछा था, 'ब्रह्मन् ! आप स्वस्थ, शक्तिमान्, मृदु, जितेन्द्रिय, कर्मारम्भसे दूर रहनेवाले, दूसरोंके दोषोंपर दृष्टि न डालनेवाले, मिष्टभाषी और तत्त्वज्ञ होकर भी बालकोंका-सा आचरण करनेवाले हैं। आपको किसी लाभकी इच्छा नहीं है और हानि होनेपर आप किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करते। सदा ही तृप्त-से जान पड़ते हैं। आप इन्द्रियोंके विषयोंकी परवा न करके साक्षीके समान मुक्तरूपसे विचरते हैं। मुनिवर ! आपके पास ऐसी क्या बुद्धि, शास्त्रज्ञान या वृत्ति है ? यदि आप उचित समझें तो शीघ्र ही मुझे बतानेकी कृपा करें।'

प्रह्लादजीके इस प्रकार पूछनेपर उन मतिमान् मुनिश्रेष्ठने उनसे मधुर वाणीमें कहा, 'प्रह्लाद ! देखो, इस जगत्के उत्पत्ति, ह्रास, वृद्धि और नाशका कारण प्रकृति ही है; अतः मैं उनके कारण न हर्षित होता हूँ और न व्यथित ही होता हूँ। जितने संयोग हैं उन्हें तुम वियोगमें समाप्त होनेवाले समझो और जितने संचय हैं उनका पर्यवसान विनाशमें ही जानो। यह सब देखकर मैं तो कहीं अपने मनको नहीं लगाता। असुरराज ! पृथ्वीपर जितने स्थावर-जङ्गम प्राणी हैं, मुझे तो उनकी मृत्यु साफ दिखायी देती है। आकाशमें जो छोटे-बड़े तारे विचर रहे हैं, वे भी समय आनेपर गिरते देखे जाते हैं। इस प्रकार सब प्राणियोंको मृत्युके अधीन देखकर सबमें समान भाव रखते हुए मैं आनन्दसे सोता हूँ। यदि अनायास ही मिल जाय तो कभी-कभी खूब भोजन कर लेता हूँ, नहीं तो बहुत दिनोंतक बिना खाये ही रह जाता हूँ। कभी चावलकी कनी खाकर रह जाता हूँ और कभी तिलकी खली ही खा लेता हूँ। इस प्रकार बढ़िया-घटिया सभी तरहका भोजन करता रहता हूँ। मैं कभी तो सन, रेशम और चर्मके वस्त्र पहनकर रह जाता हूँ और कभी बड़े मूल्यवान् वस्त्र धारण करता हूँ। यदि दैववश कोई धर्मानुकूल पदार्थ मुझे प्राप्त होता है तो मैं उसका त्याग नहीं करता और यों किसी दुर्लभ भोगकी कभी इच्छा नहीं करता। मैं सर्वदा इस अजगर-वृत्तिसे ही रहता हूँ। यह व्रत अत्यन्त सुदृढ़, कल्याणमय, शोकहीन, पवित्र और अतुलनीय है। बड़े-बड़े विद्वान् भी इसे स्वीकार करते हैं। जो मूढमति हैं उन्हें ही यह अप्रिय है और वे ही इससे दूर भागते हैं। मेरी मति अविचल है, मैं अपने धर्मसे च्युत नहीं हुआ हूँ, मेरी गति परिमित है और मैंने भय, राग-द्वेष एवं लोभ-मोहको त्याग दिया है। मैं सर्वथा शुद्ध अन्तःकरणसे इस अजगर-वृत्तिका पालन करता हूँ। अनियतरूपसे जो कुछ फल या भक्ष्य-भोज्यादि मिल जाता है उसीसे निर्वाह कर लेता हूँ तथा प्रारब्धके अनुसार देश-कालकी व्यवस्था रखता हूँ। इस प्रकार कदर्य पुरुष जिसका सेवन नहीं करते उस अजगर-व्रतका आचरण करता रहता हूँ। कृपणलोग अर्थसंग्रहके लिये निरन्तर भले-बुरे आदमियोंकी सेवा करते रहते हैं यह देखकर तथा सुख-दुःख, लाभ-हानि, प्रीति-अप्रीति और जीवन-मरण विधाताके हाथमें है, ऐसा जानकर मैंने भय, राग, मोह और अभिमानको त्याग दिया है, धैर्य और बुद्धिको अपनाया है तथा अब मैं पूर्णतया शान्त हो गया हूँ। मेरे सोने-बैठनेका कोई नियत स्थान नहीं है, मैं स्वभावसे ही यम, नियम, व्रत, सत्य और शौचका पालन करता हूँ और किसी फलकी मुझे इच्छा नहीं है। इस प्रकार बड़े आनन्दसे मैं इस अजगर-व्रतका आचरण करता हूँ। मन, वाणी और बुद्धिकी उपेक्षा करके इनको प्रिय लगनेवाले विषय-सुखोंकी दुर्लभता तथा अनित्यताको उपलक्षित-सा कराता हुआ अजगर-व्रतका पालन करता हूँ। मूर्खलोग इस अति दुष्कर तपको ठीक-ठीक नहीं समझ सकते; परंतु मैं तो इसे सर्वथा निर्दोष और अविनाशी समझता हूँ तथा सब प्रकारके दोष और तृष्णाओंको नष्ट करके मनुष्योंमें विचरता रहता हूँ।'

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! जो महापुरुष राग, भय, लोभ, मोह और क्रोधको त्यागकर इस अजगर-व्रतका पालन करता है, वह इस लोकमें आनन्दसे विचरता है।

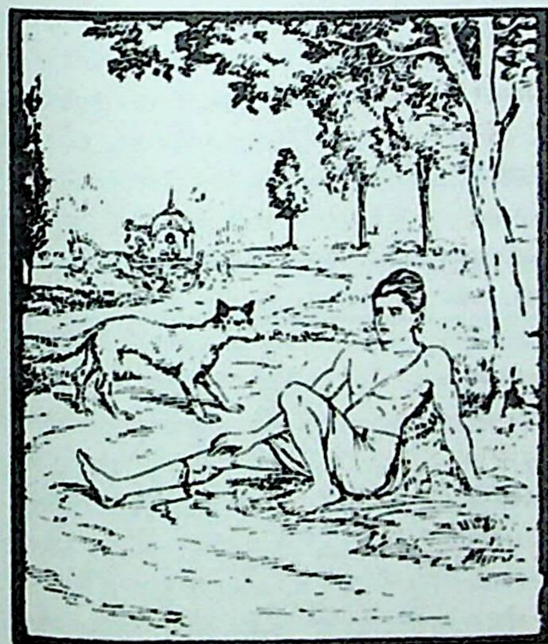


मनुष्यको सद्बुद्धिका आश्रय लेना चाहिये—इस विषयमें काश्यप ब्राह्मण और इन्द्रका संवाद

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! कृपया यह बताइये कि मनुष्यको बन्धुजन, कर्म, धन और बुद्धि इनमेंसे किसका आश्रय लेना चाहिये ?

भीष्मजी बोले—राजन् ! प्राणियोंका प्रधान आश्रय उनकी बुद्धि है। बुद्धि ही उनका सबसे बड़ा लाभ है और संसारमें बुद्धि ही उसका कल्याण करनेवाली है। राजा बलि, प्रह्लाद, नमुचि और मङ्किने भी बुद्धिबलसे ही अपना-अपना अर्थ सिद्ध किया था। संसारमें बुद्धिसे बढ़कर और क्या है ? इस विषयमें इन्द्र और काश्यप ब्राह्मणका संवादरूप एक प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है। कहते हैं, पूर्वकालमें काश्यप

नामका एक बड़ा संयमी और तपस्वी ऋषिपुत्र था। उसे धनके मदमें चूर किसी वैश्यने अपने रथके धक्केसे गिरा दिया। गिरनेसे वह बहुत दुःखी हुआ और क्रोधवश आपेसे बाहर होकर कहने लगा, 'दुनियामें निर्धन मनुष्यका जीवन व्यर्थ है, इसलिये अब मैं आत्मघात कर लूँगा।' उसे इस प्रकार क्षुब्धचित्त देखकर इन्द्र उसके पास गीदड़का रूप धारण करके आया और कहने लगा, 'मुनिवर ! मनुष्ययोनि पानेके लिये तो सभी प्राणी उत्सुक रहते हैं। उसमें भी ब्राह्मणत्वकी प्रशंसा तो सभीने की है। आप तो मनुष्य हैं, ब्राह्मण हैं और शास्त्रज्ञ भी हैं। ऐसा दुर्लभ शरीर पाकर आपको उसमें दोषानुसंधान नहीं करना चाहिये। अजी ! जिन्हें भगवान्‌ने हाथ दिये हैं, उनके तो मानो सभी मनोरथ सिद्ध हो गये हैं। इस समय आपको जैसे धनकी लालसा है,



उसी प्रकार मैं तो केवल हाथ पानेके लिये ही उत्सुक हूँ। मेरी दृष्टिमें हाथ मिलनेसे बढ़कर संसारमें कोई भी लाभ नहीं है। देखिये, मेरे शरीरमें काँटे लगे हुए हैं, किंतु हाथ न होनेसे मैं उन्हें निकाल नहीं सकता। किंतु जिन्हें भगवान्‌से दो हाथ मिले हैं, वे वर्षा, शीत और घामसे अपनी रक्षा कर सकते हैं। जो दुःख बिना हाथके दीन, दुर्बल और बेजबान प्राणी सहते हैं, सौभाग्यवश वे तो आपको नहीं सहने पड़ते। भगवान्‌की बड़ी कृपा है कि आप गीदड़, कीड़ा, चूहा, साँप, मेढक या किसी दूसरी योनिमें उत्पन्न नहीं हुए। काश्यप ! आपको तो इतने ही लाभसे संतुष्ट रहना चाहिये। इससे अधिक और क्या चाहिये ? आप तो सभी प्राणियोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। मेरी ही दशा देखिये, मुझे ये कीड़े काट रहे हैं, किंतु हाथ न होनेके कारण इनसे छुटकारा पानेकी मेरेमें शक्ति नहीं है। आत्महत्या करना बड़ा पाप है, यह सोचकर ही मैं ऐसा नहीं करता, जिससे मैं इससे भी नीच योनिमें न गिरूँ। इस समय मैं शृगाल-योनिमें हूँ, यह बहुत नीच है, परंतु इसकी अपेक्षा कई योनियाँ और भी अधिक नीच हैं। मनुष्य धनी हो जानेपर फिर राज्य चाहने लगता है, राज्य मिलनेपर देवत्वकी इच्छा करता है और फिर इन्द्रपद पाना चाहता है। इस प्रकार उसकी तृष्णा बराबर बढ़ती रहती है। प्रिय वस्तुके मिल जानेपर भी तृप्ति नहीं होती, तृष्णाकी आग पानीसे नहीं बुझती; बल्कि ईंधनसे अग्निके समान वह और भी प्रज्वलित हो जाती है। शोक तो आपको है ही, इसी प्रकार हर्ष भी हो सकता है। सुख-दुःख तो साथ ही रहा करते हैं, इसलिये इसमें शोक माननेकी क्या बात है ? बुद्धि और इन्द्रियाँ ही समस्त कामना और कर्मोंकी मूल हैं। उन्हें पिंजड़ेमें बंद पक्षियोंकी तरह अपने काबूमें रखना चाहिये।

'देखिये, मायाका चक्र तो ऐसा है कि भंगी और चाण्डाल भी अपनी योनियोंमें प्रसन्न रहते हैं, वे भी अपना शरीर नहीं छोड़ना चाहते। यही नहीं, आप लँगड़े-लूले और पक्षाघातादि रोगोंसे पीड़ित मनुष्योंको देखिये, वे भी अपनी योनिमें मस्त रहते हैं। फिर आप तो ब्राह्मण हैं, आपका शरीर नीरोग और पूर्णाङ्ग है तथा लोकमें आपको कोई बुरा भी नहीं कहता। यदि आपको जातिच्युत करनेवाला कोई सच्चा कलङ्क भी लगा हो तो भी प्राणत्यागका विचार नहीं करना चाहिये, आप धर्मपालनके लिये तैयार हो जाइये। यदि आप मेरी बात सुनेंगे और उसपर विश्वास करेंगे तो आपको वेदोक्त कर्मका ही वास्तविक फल मिलेगा। आप सावधानीसे स्वाध्याय और अग्निहोत्र कीजिये, सत्य बोलिये, इन्द्रियोंको वशमें रखिये, दान दीजिये और किसीसे भी स्पर्धा मत कीजिये। जो ब्राह्मण स्वाध्यायमें लगे रहते हैं और यज्ञयागादिका अनुष्ठान करते हैं वे किसी प्रकारकी चिन्ता क्यों करेंगे और कोई बुरी बात भी क्यों सोचेंगे ? अपने पूर्वजन्ममें मैं एक पण्डित था और कुतर्क करके वेदकी निन्दा किया करता था। उस समय थोथी तर्क-विद्यापर ही मेरा विशेष प्रेम था। मैं सभाओंमें तरह-तरहके कुतर्क करता था और जो ब्राह्मण वेदोंके विचारमें लगे रहते थे, उन्हें बुरा-भला कहकर बढ़-बढ़कर बातें बनाया करता था। वेदोंमें मेरी आस्था नहीं थी, उनकी हर एक बातमें शङ्का करता था और मूर्ख होनेपर भी अपनेको बड़ा पण्डित मानता था। विप्रवर ! यह शृगाल-योनि मेरे उस कुकर्मका

ही परिणाम है। अब मैं रात-दिन कोई ऐसा साधन करना चाहता हूँ जिससे फिर मनुष्य-योनि प्राप्त कर सकूँ। उस योनिमें मैं संतुष्ट और सावधान रहूँ, यज्ञ, दान और तपमें मेरा अनुराग हो, जाननेयोग्य वस्तुको जान सकूँ और त्याज्यको त्याग सकूँ।'

तब काश्यप मुनिने आश्चर्यचकित होकर कहा, 'अहो ! तुम तो बड़े कुशल और बुद्धिमान् हो।' ऐसा कहकर ज्ञानदृष्टिसे देखा तो उसे मालूम हुआ कि यह तो शचीपति इन्द्र हैं। यह जानकर उसने उनकी पूजा की और उनकी आज्ञा पाकर अपने घर लौट आया।

भीष्मजी बोले—राजन् ! जो श्रद्धावान् और जितेन्द्रिय धनाढ्य पुरुष यज्ञ-दानादि शुभकर्म करते हैं, उन्हें उत्तरोत्तर अधिकाधिक वैभव और सुख प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल मिलता है और जब वह सोता है तो उसके साथ कर्मफल भी सुप्त हो जाता है। कर्मकी ऐसी गति है कि वह सोते-बैठते, चलते-फिरते और क्रिया करते समय छायाके समान कर्ताके साथ लगा रहता है। जिस मनुष्यने अपने पूर्वजन्मोंमें जैसे-जैसे कर्म किये होते हैं, उन्हें कर्मविधानके अनुसार उनके वैसे ही फल भोगने होते हैं। जिस प्रकार फूल और फल किसीकी प्रेरणाके बिना ही अपने समयपर आ जाते हैं उसी प्रकार पहले किये हुए कर्म भी अपने परिपाकके समयका अतिक्रमण नहीं करते। जैसे बछड़ा हजारों गौओंमेंसे अपनी माताको पहचान लेता है, वैसे ही पहले किया हुआ कर्म भी अपने करनेवालेके पीछे लगा रहता है। जिस प्रकार पहलेसे भिगोकर रखा हुआ वस्त्र धोनेसे साफ हो जाता है वैसे ही जो उपवासपूर्वक तपस्या करते हैं, उन्हें कभी समाप्त न होनेवाला महान् सुख मिलता है। जिस प्रकार आकाशमें पक्षियोंके और जलमें मछलियोंके चरणचिह्न दिखायी नहीं देते वैसे ही ज्ञानियोंकी गतिका पता नहीं लगता। अतः जो काम अपने अनुकूल और हितकर जान पड़े वही करना चाहिये।



संसार और शरीरोंके मूलतत्त्वोंका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! इस स्थावर-जङ्गम जगत्की उत्पत्ति कहाँसे हुई है और प्रलय होनेपर यह कहाँ चला जाता है ? समुद्र, आकाश, पर्वत, मेघ, भूमि, अग्नि और वायुके सहित इस लोककी रचना किसने की है ? प्राणियोंकी उत्पत्ति, वर्णोंका विभाग, शुद्धि-अशुद्धिके नियम और धर्माधर्मकी विधि—इन सबकी कल्पना कैसे हुई ? जीवित प्राणियोंका जीव कैसा है ? उनमें जो मरते हैं वे कहाँ चले जाते हैं तथा उनका इस लोकसे परलोकमें जानेका क्रम क्या है—ये सब बातें मुझे सुनाइये।

भीष्मजी बोले—राजन् ! इस विषयमे यह पुरातन इतिहास प्रसिद्ध है। एक बार परम तेजस्वी महर्षि भृगु कैलासके शिखरपर बैठे थे। उन्हें देखकर उनसे भरद्वाज मुनिने यही प्रश्न किया। तब भृगुजी बोले, 'मुने ! महर्षियोंके सुननेमें ऐसा आया है कि आरम्भमें एक मानस देव था। वह आदि-अन्तसे रहित, अभेद्य और अजर-अमर था। वह 'अव्यक्त' नामसे प्रसिद्ध तथा शाश्वत, अक्षय और अविनाशी था। उसीसे सब जीवोंकी उत्पत्ति होती है और मरनेपर उसीमें वे लीन होते हैं। उस स्वयम्भू मानस देवने पहले एक तेजोमय दिव्य कमलकी रचना की। उससे वेदस्वरूप ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। वह 'अहंकार' नामसे भी प्रसिद्ध है और समस्त भूतोंका आत्मा तथा उनकी रचना करनेवाला है। ये



जो पञ्च महाभूत हैं, इनका वास्तविक स्वरूप भी वह ब्रह्मा ही है। पर्वत उसकी अस्थियाँ हैं, पृथ्वी उसका मेद और मांस

है, समुद्र रुधिर है, आकाश उदर है, पवन श्वास है, अग्नि तेज है, नदियाँ नाड़ियाँ हैं, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र हैं, आकाश सिर है, पृथ्वी पैर है और दिशा भुजाएँ हैं। इस अचिन्त्य पुरुषको जानना सिद्धोंके लिये भी कठिन है। यही भगवान् विष्णु है और 'अनन्त' नामसे प्रसिद्ध है। यह समस्त भूतोंका आत्मा और अन्तर्यामी है। जिनके चित्त मलिन हैं वे इसे नहीं जान सकते।'

भरद्वाजने पूछा—भगवन्! आकाश, दिशा, पृथ्वी और वायुका कितना-कितना परिमाण है—यह बताकर मेरा संदेह दूर कीजिये।

भृगुजीने कहा—मुनिवर! यह आकाश तो अनन्त है। इसमें अनेकों सिर और देवतालोग निवास करते हैं। इसीमें उनके लोक भी हैं। यह बड़ा ही रमणीय है तथा इतना विशाल है कि कहीं इसका अन्त ही नहीं दिखायी देता। ऊपर जानेवालोंको पृथ्वीके नीचे चन्द्रमा और सूर्य नहीं दिखायी देते। वहाँ अग्निके समान तेजस्वी देवता स्वयं अपने प्रकाशसे ही प्रकाशित रहते हैं, किंतु वे तेजस्वी नक्षत्रगण भी इस आकाशका अन्त नहीं पा सकते; क्योंकि यह अनन्त और दुर्गम है। आकाश ही नहीं, अग्नि, वायु और जलका परिमाण जानना भी देवताओंके लिये असम्भव ही है। ऋषियोंने विविध शास्त्रोंमें त्रिलोकी और समुद्रोंके परिमाणोंके विषयमें तो कुछ कहा भी है, परंतु जो दृष्टिसे परे है और जिसतक इन्द्रियोंकी भी पहुँच नहीं है, उस परमात्माका परिमाण कोई कैसे बतायेगा? आखिर, इन सिद्ध और देवताओंकी गति भी तो परिमित ही है; अतः परमात्माका 'अनन्त' नाम उसके गुणके अनुरूप ही है।

भरद्वाजने पूछा—मुनिवर! लोकमें ये पाँच धातु ही 'महाभूत' कहलाते हैं, जिन्हें ब्रह्माने सृष्टिके आरम्भमें रचा था और जिनसे ये सब लोक व्याप्त हैं। परंतु ब्रह्माजीने तो और ही हजारों भूतोंकी रचना की है, फिर इन्हींको 'भूत' कहना कहाँतक युक्तिसंगत है?

भृगुजी बोले—मुने! ये पाँचों असीम हैं, इसलिये इन्हें 'महा' कहा जाता है और इन्हींसे समस्त स्थूल भूतोंकी उत्पत्ति होती है; अतः इन पाँचकी ही 'महाभूत' संज्ञा होनी उचित ही है। मनुष्यका शरीर भी इन पाँच भूतोंका ही संघात है। इसमें जो गति है वह पवनका भाग है, खोखलापन आकाशका अंश है, ऊष्मा अग्निका अंश है, लोहू आदि तरल पदार्थ जलके अंश हैं और हड्डी-मांस आदि ठोस पदार्थ पृथ्वीके अंश हैं। इस प्रकार स्थावर-जङ्गम सारा जगत् इन पाँच भूतोंसे ही बना है तथा श्रोत्र, घ्राण, रसना, त्वचा और नेत्रसंज्ञक इन्द्रियाँ भी इन्हींके परिणाम हैं।

भरद्वाजने पूछा—भगवन्! आप कहते हैं कि समस्त स्थावर-जङ्गम इन पाँच महाभूतोंसे ही बने हैं, किंतु स्थावरोंके शरीरोंमें तो ये पाँचों तत्त्व देखे नहीं जाते। वृक्षोंको ही लीजिये—वे न सुनते हैं, न देखते हैं, न गन्ध और रसका ही अनुभव करते हैं और न उन्हें स्पर्शका ही ज्ञान है। फिर वे पाञ्चभौतिक कैसे कहे जा सकते हैं? उनमें न तो द्रवत्व देखा जाता है, न अग्निका अंश है और न पृथ्वी या वायुका भाग ही देखा जाता है तथा आकाशका तो कोई प्रमाण ही नहीं है। इसलिये उन्हें भौतिक नहीं कहा जा सकता।

भृगुजी बोले—मुने! वृक्ष यद्यपि ठोस जान पड़ते हैं, तो भी उनमें आकाश अवश्य है। इसीसे उनमें नित्यप्रति फल-फूलादिकी उत्पत्ति सम्भव हो सकती है। उनके अंदर जो ऊष्मा है उसीसे उनके पत्ते, छाल, फल और फूल कुम्हलाते हैं तथा ये सब मुरझाते और झड़ जाते हैं, इससे उनमें स्पर्श भी होना सिद्ध होता है। यह भी देखा जाता है कि बिजलीकी कड़क आदि भीषण शब्द होनेपर वृक्षोंके फल-फूल गिर जाते हैं। शब्दका ग्रहण तो श्रोत्रेन्द्रियसे ही होता है। अतः सिद्ध होता है कि वृक्ष सुनते भी हैं। देखो, लता वृक्षको चारों ओरसे लपेटती ऊपरकी ओर चढ़ती है; बिना देखे किसीको अपने जानेका मार्ग नहीं मिल सकता। इससे सिद्ध होता है कि वृक्ष देखते भी हैं। सुगन्ध और दुर्गन्धसे तथा भाँति-भाँतिकी धूप देनेसे वृक्ष नीरोग होते हैं और उनमें फूल आ जाते हैं। इससे उनका सूँघना भी सिद्ध होता है। वृक्षोंमें रसनेन्द्रिय भी है; क्योंकि वे अपनी जड़से जल पीते हैं और कोई रोग होनेपर जड़में ओषधि डालकर उनकी चिकित्सा भी की जाती है। जिस प्रकार मनुष्य कमलनालके द्वारा मुँहसे जल खींचते हैं उसी प्रकार वृक्ष वायुकी सहायतासे अपने पाद (जड़) द्वारा जल पीते हैं। इसीसे उन्हें 'पादप' कहा जाता है। वृक्षोंमें सुख-दुःखका भी ज्ञान देखा जाता है तथा वे काटनेपर फिर उग आते हैं, इससे सिद्ध होता है वे जीवयुक्त हैं, अचेतन नहीं हैं। वे अपनी जड़के द्वारा जो जल खींचते हैं, उसे उनके अंदर रहनेवाले वायु और अग्नि पचाते हैं। इस प्रकार आहारका परिपाक होनेसे उनमें चिकनाहट आती है और वे बढ़ते हैं। जङ्गमोंके शरीरमें भी पाँच भूत रहते हैं, किंतु उनके स्वरूपमें भेद रहता है। शरीरमें त्वचा, मांस, अस्थि, मज्जा और स्नायु—ये पाँच वस्तुएँ पृथ्वीमय हैं; तेज, क्रोध, चक्षु, ऊष्मा और जठरानल—ये पाँच अग्निमय हैं; श्रोत्र, घ्राण, मुख, हृदय और उदर—ये पाँच आकाशके अंश हैं; कफ, पित्त, स्वेद, चरबी और रुधिर—ये पाँच जलीय अंश हैं तथा

प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान—ये पाँच वायुके विकार हैं। प्राणके द्वारा मनुष्य एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाता है, व्यानसे बलपूर्वक होनेवाले कार्य करता है, अपान शरीरमें ऊपरसे नीचेकी ओर जाता है, समान हृदयमें स्थित है और उदानसे मनुष्य उच्छ्वास लेता तथा कण्ठ-ताल्वादि स्थानभेदसे शब्दोच्चारण करता है। इस प्रकार ये पाँच वायु प्रत्येक देहधारीसे भिन्न-भिन्न क्रियाएँ कराते हैं।

जीव भूमिके कारण ही अपनेमें गन्ध-गुणका अनुभव करता है, जलके कारण रसको जानता है, तेजोमय चक्षुके द्वारा रूपको देखता है और वायुमय त्वक्से स्पर्शका अनुभव करता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पृथ्वीके गुण माने गये हैं। इनमेंसे मैं गन्धके गुणोंका विस्तार बताता हूँ। इष्ट, अनिष्ट, मधुर, कटु, निर्हारी, संहत, स्निग्ध, रूक्ष और विशद भेदसे पार्थिव गन्ध नौ प्रकारका है। शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये जलके गुण माने गये हैं। इनमेंसे रसज्ञानका विस्तार सुनो। उदारचेता ऋषियोंने रसके अनेकों भेद कहे हैं। उनमें मधुर, लवण, तिक्त, कषाय, अम्ल और कटु—ये छः प्रकारके रस जलमय हैं। शब्द, स्पर्श और रूप—ये तीन गुण तेजके हैं। रूपोंका ज्ञान तेजसे होता है और उनके अनेकों भेद हैं। ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल, चौकोना, गोल, सफेद, काला, लाल, पीला, नीला, अरुण, कठोर, चिकना, श्लक्ष्ण, स्निग्ध, मृदु और दारुण—ये सोलह प्रकार रूपके हैं। शब्द और स्पर्श—ये दो गुण वायुके हैं। वायुका प्रधान गुण स्पर्श है और उसके अनेकों प्रकार हैं। उष्ण, शीत, सुखद, दुःखद, स्निग्ध, विशद, खुरदरा, मृदु, रूखा, हलका, भारी और अधिक भारी—ये स्पर्शके बारह भेद हैं। आकाशका एकमात्र गुण शब्द ही है। वह कई प्रकारका है। प्रधानतया उसके सात भेद हैं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद। अपने व्यापकरूपसे तो शब्द सर्वत्र है, किंतु विशेषरूपसे इसकी उपलब्धि नगाड़े आदिमें होती है। मृदङ्ग, भेरी, शङ्ख, मेघ और रथकी घरघराहट आदिमें जो कुछ शब्द सुना जाता है तथा और भी जड-चेतन आदिके द्वारा जितने प्रकारका शब्द होता है, वह इन सात भेदोंके ही अन्तर्गत है। इस प्रकार आकाशजनित शब्दके अनेकों भेद हैं और वह वायुके गुण स्पर्शसे मिलकर ही सुना जाता है। जल, अग्नि और वायु—ये तीन तत्त्व देहधारियोंमें सर्वदा जाग्रत् रहते हैं, ये ही शरीरके मूल हैं और प्राणोंमें ओतप्रोत होकर शरीरमें स्थित रहते हैं।



जीवकी नित्यता और सत्ताका वर्णन; चारों वर्णोंकी उत्पत्ति तथा उनके कर्म

भरद्वाजने पूछा—भगवन्! मृत्युके समय जो गोदान किया जाता है उसका क्या स्वरूप है। मुमूर्षु पुरुष यह समझकर कि यह गौ परलोकमें मुझे तार देगी, उसे दान करता है। परंतु वह तो दान करके मर जाता है, फिर वह गौ किसे तारेगी? इसके सिवा गौ और उसका दान करने और लेनेवाला—ये तीनों यहीं नष्ट होते देखे जाते हैं। फिर इनका समागम कैसे होता होगा? इनमेंसे जो मरता है, उसे या तो पक्षी खा जाते हैं या वह पर्वतसे गिरकर चूर-चूर हो जाता है अथवा आगमें जलकर भस्म हो जाता है। ऐसी अवस्थामें उसका पुनः जीवित होना तो सम्भव ही कहाँ है? क्योंकि जो मर जाता है वह तो सदाके लिये ही चला जाता है।

भृगुजी बोले—भरद्वाज! जीवका तथा उसके किये हुए दान या कर्मका कभी नाश नहीं होता। जीव तो उसी समय दूसरे शरीरमें चला जाता है, नाश तो केवल उसके इस शरीरका ही होता है।

भरद्वाजने पूछा—मुनिवर! अब यह बतानेकी कृपा कीजिये कि देहधारियोंके शरीरोंमें यदि केवल अग्नि, वायु, पृथ्वी, आकाश और जल-तत्त्व ही विद्यमान हैं, तो उनमें रहनेवाले जीवका क्या स्वरूप है? शरीरको चीर-फाड़कर देखनेसे तो उसमें कोई जीव उपलब्ध नहीं होता, ऐसी दशामें यदि पाञ्चभौतिक देहको जीवसे रहित जड मान लिया जाय तो प्रश्न होता है कि शरीर अथवा मनमें पीडा होनेपर उसके दुःखका अनुभव कौन करता है? जीव किसीकी कही हुई बातोंको कानोंसे सुनता है, किंतु मनमें व्यग्रता हो तो दोनों कान खुले होनेपर भी कोई बात नहीं सुनायी देती; इसलिये मनके अतिरिक्त किसी जीवकी सत्ता मानना व्यर्थ है। नेत्रके साथ मनका संयोग होनेपर ही कोई भी इस दृश्य प्रपञ्चको देखता है, मनके व्याकुल होनेपर तो वह देखकर भी नहीं देख पाता। इसी प्रकार नींदमें पड़ा हुआ प्राणी सम्पूर्ण इन्द्रियोंके रहते हुए भी न देखता है, न सूँघता है, न सुनता है और न बोलता ही है। स्पर्श और रसका भी उसे अनुभव नहीं होता। अतः जिज्ञासा होती है कि इस शरीरमें कौन हर्ष और क्रोध करता है? किसे शोक एवं उद्वेग होता है? इच्छा, ध्यान, द्वेष और बातचीत करनेवाला कौन है?

भृगुजीने कहा—मुने! मन भी पञ्चभूतोंके ही अन्तर्गत है, शरीरमें उसकी कोई अतिरिक्त सत्ता नहीं है। एकमात्र

अन्तरात्मा ही इस देहका संचालन करता है। वही रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्दका तथा दूसरे-दूसरे गुणोंका भी अनुभव करनेवाला है। वह पाँचों इन्द्रियोंके गुणोंको धारण करनेवाले मनका द्रष्टा है और वही इस पाञ्चभौतिक देहके प्रत्येक अवयवमें व्याप्त होकर सुख-दुःखका अनुभव करता है। जब आत्माका शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं रहता तो इस देहको सुख-दुःखका भान नहीं होता। (इससे मनके अतिरिक्त उसके साक्षी आत्माकी सत्ता स्वतः सिद्ध हो जाती है।) जब शरीरमें स्थित अग्निस्वरूप आत्मा इससे पृथक् हो जाता है, उस समय शरीरको रूप, स्पर्श तथा आगकी गर्मीका ज्ञान नहीं रहता और इसकी मृत्यु हो जाती है। आत्मा जब प्रकृतिके गुणोंसे युक्त होता है तो उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं और उन्हीं गुणोंसे जब वह मुक्त हो जाता है तो परमात्मा कहलाता है। क्षेत्रज्ञको तुम आत्मा ही समझो। वह कमलके पत्तेपर पड़े हुए जल-बिन्दुकी तरह इस शरीरमें रहकर भी इससे पृथक् ही है। उसके ज्ञानसे सम्पूर्ण जगत्का कल्याण होता है। वही सबसे चेष्टा कराता और करता है। देहके नष्ट हो जानेपर भी जीवका नाश नहीं होता। जो जीवकी मृत्यु बतलाते हैं, वे अज्ञानी हैं और उनका वह कथन मिथ्या है। जीव तो मृत देहका त्याग करके दूसरे शरीरमें चला जाता है। शरीरका नाश ही मृत्यु है।

इस प्रकार आत्मा सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर छिपा हुआ है। अविद्यासे आच्छादित होनेके कारण वह प्रकाशमें नहीं आता। तत्त्वदर्शी महात्मा ही अपनी तीव्र और सूक्ष्म बुद्धिसे उसका साक्षात्कार करते हैं। जो विद्वान् परिमित आहार करके रातके पहले और पिछले पहरमें सदा ध्यानयोगका अभ्यास करता है, वह चित्त शुद्ध होनेपर अपने अन्तःकरणमें ही उस आत्माका दर्शन कर लेता है। अन्तःकरण शुद्ध हो जानेपर उसका शुभाशुभ कर्मोंसे सम्बन्ध छूट जाता है और वह प्रसन्नात्मा पुरुष आत्मस्वरूपमें स्थित होकर अनन्त आनन्दका अनुभव करता है।

ब्रह्माजीने सृष्टिके प्रारम्भमें अपने तेजसे सूर्य और अग्निके समान प्रकाशित होनेवाले ब्राह्मणों—मरीचि आदि प्रजापतियोंको ही उत्पन्न किया। फिर स्वर्ग-प्राप्तिके साधनभूत सत्य, धर्म, तप, सनातन वेद, आचार और शौचके नियम बनाये। तदनन्तर देवता, दानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, महान्, सर्प, यक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच और मनुष्योंको उत्पन्न किया। मनुष्योंके चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रका विभाग किया तथा इसी प्रकार प्राणियोंमें जो और-और वर्ण हैं, उनकी भी रचना की। ब्राह्मणोंका रंग श्वेत, क्षत्रियोंका लाल, वैश्योंका पीला तथा शूद्रोंका काला बनाया।

भरद्वाजने पूछा—मुनिवर! हममेंसे काले-गोरे सभी मनुष्योंपर समानरूपसे काम, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिन्ता, भूख और थकावटका प्रभाव पड़ता है। सभीके शरीरसे पसीना, मल, मूत्र, कफ, पित्त और रक्त निकलते हैं। ऐसी दशामें रंगके द्वारा कैसे वर्ण-विभाग किया जा सकता है? वृक्ष आदि स्थावरों तथा पशु-पक्षी आदि जङ्गम प्राणियोंमें असंख्य जातियाँ हैं; उनके रंग भी नाना प्रकारके हैं; अतः उनके वर्णोंका निश्चय कैसे हो सकता है?

भृगुजीने कहा—पहले वर्णोंमें कोई अन्तर नहीं था। ब्रह्माजीसे उत्पन्न होनेके कारण सारा संसार ब्राह्मण ही था। पीछे विभिन्न कर्मोंके कारण उसमें वर्णभेद हो गया। जो अपने ब्राह्मणोचित धर्मका परित्याग करके विषयभोगके प्रेमी बन गये, तीखे और क्रोधी स्वभावके हो गये, साहसका काम पसंद करने लगे और इन कारणोंसे जिनके शरीरका रंग लाल हो गया, वे ब्राह्मण 'क्षत्रिय' के नामसे प्रसिद्ध हुए। जिन्होंने गौओंकी सेवा ही अपनी वृत्ति बना ली, जो खेतीसे जीविका चलानेके कारण पीले पड़ गये और अपने ब्राह्मण-धर्मको छोड़ बैठे, उन द्विजोंको 'वैश्य' कहा जाने लगा। जो शौच और सदाचारसे भ्रष्ट होकर हिंसा और असत्यके प्रेमी हो गये और लोभवश सब तरहके काम करके जीविका चलाते हुए काले पड़ गये, वे शूद्र कहलाये। इस प्रकार ये चार वर्ण हुए। जो ब्राह्मण वेदकी आज्ञाके अनुसार चलते और सदा ही वेद, व्रत तथा नियमोंको धारण किये रहते हैं, उनकी तपस्या कभी नष्ट नहीं होती। जो इस सृष्टिको परब्रह्मस्वरूप नहीं जानते, वे द्विज कहलानेके अधिकारी नहीं हैं। ऐसे लोगोंको नाना प्रकारकी योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। वे ज्ञान-विज्ञानसे हीन एवं स्वेच्छाचारी पिशाच, राक्षस, प्रेत तथा म्लेच्छ होते हैं। पीछेसे ऋषियोंने अपनी तपस्याके बलसे कुछ ऐसी प्रजा उत्पन्न की, जो वैदिक संस्कारोंसे सम्पन्न तथा अपने धर्म-कर्ममें दृढ़तापूर्वक डटी रहनेवाली थी। किंतु जो आदिदेव ब्रह्मासे उत्पन्न हुई है, जिसकी जड़—मूल ब्रह्माजी ही हैं और जो अक्षय, अव्यय तथा धर्ममें तत्पर रहनेवाली है, वह सृष्टि मानसी कहलाती है।

भरद्वाजजीने पूछा—विप्रवर! अब मुझे यह बताइये कि कौन-सा कर्म करनेसे मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र होता है?

भृगुजीने कहा—जो जातकर्म आदि संस्कारोंसे सम्पन्न, पवित्र तथा वेदोंके स्वाध्यायमें संलग्न है, (यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन और दान-प्रतिग्रह—इन) छः कर्मोंमें स्थित रहता है, शौच एवं सदाचारका पालन तथा यज्ञशिष्ट अन्नका भोजन करता है, गुरुके प्रति प्रेम रखता और नित्य

नियमोंका पालन करता है; जिसमें सत्य, दान, द्रोह न करना, सबके प्रति कोमल भाव रखना, लज्जा, दया और तप आदि सद्‌गुण देखे जाते हों, वह ब्राह्मण कहा गया है। जो युद्ध आदि कर्म करता और वेदोंके अध्ययनमें लगा रहता है, ब्राह्मणोंको दान देता और प्रजासे कर लेकर उसकी रक्षा करता है, उसको क्षत्रिय कहते हैं। इसी प्रकार जो वेदाध्ययनसे सम्पन्न होकर व्यापार, पशु-पालन और खेतीके काम करता है तथा दान देता और पवित्र रहता है, वह वैश्य कहलाता है। किंतु जो वेद और सदाचारका परित्याग करके सब कुछ खाता और सब तरहके काम करता है तथा सदा अपवित्र रहा करता है, वह शूद्र माना गया है।

यदि ये ब्राह्मणोचित सत्यादि गुण शूद्रमें दिखायी दें और ब्राह्मणमें न हों तो वह शूद्र शूद्र नहीं और वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है। हर एक उपायसे लोभ और क्रोधको दबाना ही पवित्र ज्ञान और आत्मसंयम है। क्रोध तथा लोभ मनुष्यके कल्याणमें सदा ही बाधा पहुँचानेको उद्यत रहते हैं; अतः पूरी शक्ति लगाकर उनका दमन करना चाहिये। क्रोधसे श्रीको, मात्सर्यसे तपको, मान-अपमानसे विद्याको और प्रमादसे अपनेको बचावे। जिसके सभी कार्य कामनाओंके बन्धनसे रहित होते हैं तथा जिसने त्यागकी आगमें सब कुछ होम दिया है, वही त्यागी और बुद्धिमान् है। किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे, सबके साथ मैत्रीपूर्ण बर्ताव करे, स्त्री-पुत्र आदिकी ममता एवं आसक्तिको त्याग कर बुद्धिके द्वारा इन्द्रियोंको वशमें करे और उस स्थितिको प्राप्त करे, जो इहलोक और परलोकमें भी निर्भय तथा शोकरहित है। नित्य तप करे, मननशील होकर मन और इन्द्रियोंका संयम करे, आसक्तिके आश्रयभूत देह-गेह आदिमें आसक्त न होकर परमात्माको प्राप्त करनेकी इच्छा रखे। मनको प्राणमें और प्राणको ब्रह्ममें स्थापित करे। वैराग्यसे ही निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त होता है, उसे पाकर किसी अनात्मपदार्थका चिन्तन नहीं होता। ब्राह्मण संसारसे परवैराग्य होनेपर परब्रह्म परमात्माको अनायास ही प्राप्त कर लेता है। सर्वदा शौच और सदाचारका पालन करना तथा सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया रखना—यह ब्राह्मणका लक्षण है।



सत्यकी महिमा, असत्यके दोष, दान आदिके फल और आश्रमधर्मोंका वर्णन

भृगुजी कहते हैं—मुने ! सत्य ही ब्रह्म है, सत्य ही तप है, सत्य ही प्रजाकी सृष्टि करता है, सत्यके ही आधारपर संसार टिका हुआ है और सत्यसे ही मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है। असत्य अन्धकारका रूप है, वह नीचे गिराता है। अज्ञानान्धकारसे घिरे हुए मनुष्य ज्ञानका प्रकाश नहीं देख पाते। जो सत्य है वही धर्म है, जो धर्म है वही प्रकाश (ज्ञान) है और जो प्रकाश है वही सुख है। इसी प्रकार जो असत्य है वही अधर्म है, जो अधर्म है वही अन्धकार (अज्ञान) है और जो अन्धकार है वही दुःख है। संसारकी सृष्टि शारीरिक और मानसिक दुःखोंसे भरी हुई है, इसमें सुख भी वे ही हैं, जो परिमाणमें दुःख देनेवाले हैं। यह जानकर विद्वान् पुरुष कभी मोहमें नहीं पड़ते। प्रत्येक बुद्धिमान्‌का यह कर्तव्य है कि वह दुःखोंसे छुटकारा पानेका उद्योग करे।

असत्यसे तम (अज्ञान) की उत्पत्ति हुई है, तमोग्रस्त मनुष्य अधर्मके ही पीछे चलते हैं, धर्मका अनुसरण नहीं करते; अतः जो क्रोध, लोभ, हिंसा और असत्य आदिसे आच्छादित हैं, वे न तो इस लोकमें सुखी होते हैं और न परलोकमें ही सुख उठाते हैं। नाना प्रकारके रोग, व्याधि और तापसे संतप्त होते रहते हैं, वध और बन्धन आदिके क्लेश सहते हैं तथा भूख-प्यास और परिश्रमके कारण भी कष्ट भोगते हैं। इतना ही नहीं, उन्हें आँधी, पानी, सर्दी और गर्मीसे उत्पन्न हुए भय तथा शारीरिक कष्ट भी झेलने पड़ते हैं। बन्धु-बान्धवोंकी मृत्यु, धनके नाश और प्रेमीजनोंके बिछोहके कारण होनेवाले मानसिक शोकका भी शिकार होना पड़ता है। इसी प्रकार वे जरा और मृत्युके कारण भी बहुत-से दूसरे-दूसरे क्लेश भोगते रहते हैं।

भरद्वाजने पूछा—मुनिवर ! दान, धर्म, तप, स्वाध्याय और अग्निहोत्रका क्या फल है ?

भृगुजीने कहा—अग्निहोत्रसे पाप नष्ट होता है, स्वाध्यायसे उत्तम शान्ति मिलती है, दानसे भोगोंकी और तपसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

भरद्वाजने पूछा—ब्रह्माजीने जो चार आश्रम बनाये हैं, उनके अपने-अपने धर्म क्या हैं? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

भृगुजीने कहा—जगत्‌का कल्याण करनेवाले भगवान् ब्रह्माजीने धर्मकी रक्षाके लिये पूर्वकालमें ही चार आश्रमोंका उपदेश किया था। उनमेंसे ब्रह्मचर्यको पहला आश्रम कहते हैं, जिसमें शिष्यको गुरुके यहाँ रहकर वेदोंका स्वाध्याय करना पड़ता है। इसमें रहनेवाले ब्रह्मचारीको बाहर-भीतरकी शुद्धि, वैदिक संस्कार तथा व्रत और नियमोंके पालनसे अपने मनको

वशमें रखना चाहिये। सुबह और शाम—दोनों समय संध्या, सूर्योपस्थान तथा अग्निहोत्रके द्वारा अग्निदेवकी उपासना करनी चाहिये। तन्द्रा और आलस्यको त्याग करके प्रतिदिन गुरुको प्रणाम करे, वेदोंका अध्ययन तथा उसके अर्थका अभ्यास करता रहे। इस प्रकारकी दिनचर्यासे अपने अन्तः-करणको पवित्र बनावे। सबेरे, शाम और दोपहर—तीनों वक्त स्नान करे। ब्रह्मचर्यका पालन तथा अग्नि और गुरुकी सेवा करे, प्रतिदिन भिक्षा माँगकर लावे और वह सब गुरुको अर्पण कर दे। अपनी अन्तरात्माको भी गुरुके चरणोंमें निछावर किये रहे। गुरुजी जो कुछ कहें, जिसके लिये संकेत करें और जिस कार्यके निमित्त स्पष्ट आज्ञा दें, उसके विपरीत आचरण न करे। इस प्रकार गुरुको प्रसन्न करके उनकी कृपासे स्वाध्यायका अवसर मिलनेपर वेदाध्ययनमें प्रवृत्त होना चाहिये। इस विषयमें एक श्लोक है (जिसका भाव इस प्रकार है—) 'जो द्विज गुरुकी आराधना करके वेदोंका ज्ञान प्राप्त करता है, उसे अन्तमें स्वर्गकी प्राप्ति होती है और उसका मानसिक संकल्प सिद्ध होता है।'

'गार्हस्थ्य' को दूसरा आश्रम बतलाया जाता है। अब हम उसके द्वारा पालन करने योग्य आचरणोंकी व्याख्या करते हैं। जब सदाचारका पालन करनेवाला ब्रह्मचारी विद्या पढ़कर गुरुकुलमें रहनेकी अवधि पूरी कर ले और समावर्तन संस्कारके पश्चात् स्नातक हो जाय, उस समय यदि उसे पत्नीके साथ रहकर धर्मका आचरण करने तथा पुत्रादिरूप फल पानेकी इच्छा हो तो उसके लिये गृहस्थाश्रममें प्रवेशका विधान है; क्योंकि इसमें धर्म, अर्थ और काम तीनोंकी प्राप्ति होती है। इसलिये त्रिवर्ग-साधनकी इच्छासे गृहस्थको उत्तम कर्मके द्वारा धन-संग्रह करना चाहिये और उसीके द्वारा अपनी गृहस्थीका निर्वाह करना चाहिये। गृहस्थ-आश्रम सभी आश्रमोंका मूल कहलाता है। गुरुकुलमें वास करनेवाले ब्रह्मचारी, वनमें रहकर संकल्पके अनुसार व्रत, नियम तथा धर्मोंका पालन करनेवाले वानप्रस्थी और सब कुछ त्यागकर विचरनेवाले संन्यासीको भी गृहस्थाश्रमसे ही भिक्षा आदिकी प्राप्ति होती है। तात्पर्य यह कि अन्य सब आश्रमवालोंका निर्वाह गृहस्थाश्रमसे ही होता है। गृहस्थद्वारा किये जानेवाले अतिथि-सत्कारके विषयमें एक श्लोक है (जिसका भावार्थ इस प्रकार है—) 'जिस गृहस्थके दरवाजेसे कोई अतिथि भिक्षा न पानेके कारण निराश होकर लौट जाता है, वह उस गृहस्थको तो अपना पाप दे डालता है और स्वयं उसका पुण्य लेकर चला जाता है।'

इसके सिवा, गृहस्थाश्रममें रहकर यज्ञ करनेसे देवता, श्राद्ध करनेसे पितर, शास्त्रोंके श्रवण, अभ्यास और धारणसे ऋषि तथा संतान उत्पन्न करनेसे प्रजापति प्रसन्न होते हैं। गृहस्थके कर्तव्यके विषयमें दो श्लोक और हैं, (जिनका सारांश इस प्रकार है—) 'वाणी ऐसी बोलनी चाहिये, जिसमें सब प्राणियोंके प्रति स्नेह भरा हो तथा जो सुनते समय कानोंको मीठी लगे। दूसरोंको पीड़ा देना, मारना या कटुवचन सुनाना अच्छा नहीं है। किसीका अपमान करना, अहंकार रखना और ढोंग दिखाना—इन बातोंकी कड़ी निन्दा की गयी है। किसी भी जीवकी हिंसा न करना, सत्य बोलना और मनमें क्रोध न होने देना—ये सभी आश्रमवालोंके लिये उपयोगी तप हैं। जिस पुरुषको गृहस्थाश्रममें सदा धर्म, अर्थ और कामके गुणोंकी सिद्धि होती रहती है, वह इस लोकमें सुखका अनुभव करके अन्तमें शिष्ट पुरुषोंकी गतिको प्राप्त करता है।'

तीसरा आश्रम है वानप्रस्थ। इसमें रहनेवाले मनुष्य धर्मका अनुसरण और तपका अनुष्ठान करते हुए पवित्र तीर्थोंमें, नदियोंके किनारे, झरनोंके आस-पास तथा मृग, भैंसे, सूअर, बनैले हाथी और सिंह-व्याघ्र आदि जन्तुओंसे भरे हुए एकान्त वनोंमें विचरते रहते हैं। गृहस्थोंके उपयोगमें आने योग्य सुन्दर वस्त्र, स्वादिष्ट भोजन और विषयभोगोंका परित्याग करके वे जंगली औषध, फल, मूल तथा पत्तोंका आहार करते हैं, वह भी बहुत थोड़ी मात्रामें और नियमानुकूल एक ही बार खाकर रहते हैं। नियत स्थानपर ही आसन बिछाकर बैठते हैं। जमीन, पत्थर, रेती, कँकरीली मिट्टी, बालू अथवा राखपर सोते हैं। कास या कुशकी रस्सी, मृगचर्म अथवा पेड़ोंकी छालसे अपना शरीर ढँकते हैं। सिरके बाल, दाढ़ी-मूँछ, नख और रोम बढ़ाये रहते हैं। नियत समयपर स्नान, बलिवैश्वदेव तथा अग्निहोत्र आदि कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं। सबेरे हवन-पूजनके लिये समिधा, कुशा और फूल आदिका संग्रह करके आश्रमको झाड़-बुहार लेनेके पश्चात् विश्राम करते हैं। सर्दी, गर्मी, वर्षा और हवाका वेग सहते-सहते उनके शरीरके चमड़े फट जाते हैं। नाना प्रकारके नियमोंका अनुष्ठान करते रहनेसे उनके रक्त और मांस सूख जाते हैं, शरीरकी जगह चामसे ढँकी हुई हड्डियोंका ढाँचामात्र रह जाता है; फिर भी धैर्य धारण करके अत्यन्त साहसके कारण शरीरको चलाये जाते हैं। जो पुरुष नियमके साथ रहकर ब्रह्मर्षियोंद्वारा आचरणमें लायी हुई इस योगचर्याका अनुष्ठान करता है, वह अग्निकी भाँति अपने दोषोंको दग्ध करके दुर्लभ लोकोंको प्राप्त कर लेता है।

अब संन्यासियोंका आचरण बतलाया जाता है। संन्यास (चौथा आश्रम है—इस) में प्रवेश करनेवाले पुरुष अग्निहोत्र, धन, स्त्री आदि परिवार तथा घरकी सारी सामग्रीका त्याग करके विषयासक्तिके बन्धनको तोड़कर घरसे निकल जाते हैं। ढेले, पत्थर और सोनेको समान समझते हैं, धर्म, अर्थ और कामके सेवनमें अपनी बुद्धि नहीं फँसाते। शत्रु, मित्र तथा उदासीन—सबके प्रति समान दृष्टि रखते हैं। स्थावर, अण्डज, पिण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज प्राणियोंके प्रति मन, वाणी अथवा कर्मसे भी कभी द्रोह नहीं करते। कुटी या मठ बनाकर नहीं रहते। उन्हें चाहिये कि चारों ओर विचरते रहें और रातमें ठहरनेके लिये पर्वतकी गुफा, नदीका किनारा, वृक्षकी जड़, देवमन्दिर, ग्राम अथवा नगर आदि स्थानोंमें चले जाया करें। नगरमें पाँच रात और गाँवोंमें एक रातसे अधिक न रहें। प्राण-धारण करनेके लिये गाँव या नगरमें प्रवेश करके अपने विशुद्ध धर्मोंका पालन करनेवाले द्विजातियोंके घरोंपर जाकर खड़े हो जायँ। बिना माँगे ही पात्रमें जितनी भिक्षा आ जाय, उतनी ही स्वीकार करें। काम, क्रोध, दर्प, लोभ, मोह, कृपणता, दम्भ, निन्दा, अभिमान तथा हिंसा आदिसे दूर रहें।

इस विषयमें कुछ श्लोक हैं, (जिनके भाव इस प्रकार हैं—) 'जो मुनि सब प्राणियोंको अभयदान देकर विचरता रहता है, उसे कहीं किसी भी जीवसे भय नहीं होता। जो अग्निहोत्रको अपने शरीरमें आरोपित करके शरीरस्थित अग्निके उद्देश्यसे मुखमें भिक्षाप्राप्त हविष्यका होम करता है, वह अग्निहोत्रियोंको प्राप्त होनेवाले लोकोंमें जाता है। जो बुद्धिको संकल्परहित करके पवित्र होकर शास्त्रोक्त विधिके अनुसार संन्यासके नियमोंका पालन करता है, वह परम शान्त ज्योतिर्मय ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।' इस प्रकार वेदमें प्रतिपादित आश्रम-धर्मका मैंने संक्षेपसे वर्णन किया है। जो मनुष्य लोकके धर्म-अधर्मको जानता है, वह बुद्धिमान् है।

भीष्मजी कहते हैं—महर्षि भृगुजीके इस प्रकार उपदेश देनेपर परम धर्मात्मा भरद्वाजने विस्मयविमुग्ध होकर उनका पूजन किया।



आचारकी विधि और अध्यात्मज्ञानका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! अब मैं आपके मुखसे आचारकी विधि सुनना चाहता हूँ; क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं।

भीष्मजीने कहा—मनुष्यको सड़कपर, गौओंके बीचमें और अन्नके पौदोंसे हरेभरे खेतमें मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। आवश्यक शौच आदिसे निवृत्त होकर कुल्ला करनेके पश्चात् नदीमें स्नान करना चाहिये। इसके बाद (संध्योपासना और) देवता-पितरोंका तर्पण करना आवश्यक है। प्रतिदिन सूर्योपस्थान करे। सूर्योदयके समय कभी न सोये। सायं और प्रातः—दोनों समय संध्या करके गायत्रीका जप करे। दोनों हाथ, दोनों पैर और मुँह—इन पाँच अङ्गोंको धोकर पूर्वकी ओर मुँह कर भोजन करने बैठे। भोजनके समय मौन रहे। भोजनके लिये परोसे हुए अन्नकी निन्दा न करे, उसे स्वादिष्ट मानकर प्रेमसे भोजन करे। भोजनके बाद हाथ धोकर उठे। रातको भीगे पैर न सोये। देवर्षि नारदजी इसीको आचार कहते हैं। यज्ञशाला आदि पवित्र स्थान, बैल, देवता, गोशाला, चौराहा, ब्राह्मण, धार्मिक मनुष्य तथा मन्दिरको सदा अपने दाहिने करके चले। घरमें अतिथियों, सेवकों और कुटुम्बीजनोंके लिये भी एक-सा ही भोजन बनवाना उत्तम माना गया है। शास्त्रमें मनुष्योंके लिये सबेरे और शाम—दो ही वक्त भोजन करनेका विधान है। बीचमें नहीं खाना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य उपवासी माना जाता है। होमके समय अग्निमें हवन और केवल ऋतु-स्नानके समय स्त्रीके साथ समागम करते हुए एक-पत्नीव्रत धारण करनेवाला बुद्धिमान् गृहस्थ भी ब्रह्मचारी ही माना जाता है। ब्राह्मणके भोजनसे बचा हुआ (यज्ञशिष्ट) अन्न अमृतके तुल्य है; ऐसे अन्नको भोजन करनेवाले सत्पुरुष सत्यस्वरूप परमात्माको प्राप्त होते हैं। जो मिट्टीके ढेले फोड़ता, तिनके तोड़ता और दाँतोंसे नख चबाया करता है तथा जो सदा जूठे हाथ और जूठे मुँह रहा करता है, उसकी बड़ी आयु नहीं मिलती।

मनुष्य स्वदेशमें हो या परदेशमें, अपने पास आये हुए अतिथिको भूखा न रहने दे। जीविकाके लिये किये हुए कार्यसे जो धन आदि प्राप्त हो, उसे माता-पिता आदि गुरुजनोंको निवेदन कर दे। गुरुजनोंके आनेपर उन्हें स्वयं आसन देकर बैठावे और सदा उनको प्रणाम किया करे। गुरुओंका सत्कार करनेसे आयु, यश और लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। उदयके समय सूर्यको न देखे, नंगी हुई परायी स्त्रीकी ओर दृष्टि न डाले और सदा धर्मानुसार ऋतुकालके समय एकान्त स्थानमें पत्नीके साथ समागम करे। परिचित मनुष्यसे जब-जब भेंट हो, उसका कुशल-समाचार पूछे। प्रतिदिन

प्रातःकाल और संध्याके समय ब्राह्मणोंको प्रणाम करे—ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है। देवमन्दिरमें, गौओंके बीचमें, ब्राह्मणोंके यज्ञादि कर्मोंमें, शास्त्रोंके स्वाध्यायकालमें और भोजन करते समय दाहिने हाथसे काम ले। प्रातः और संध्याके समय ब्राह्मणोंका विधिवत् पूजन करे। हजामतके समय, छींक आनेपर, स्नान और भोजनके समय तथा रुग्णावस्थामें सबको चाहिये कि ब्राह्मणोंको प्रणाम करे; इससे आयु बढ़ती है। सूर्यकी ओर मुँह करके पेशाब न करे, अपनी विष्ठापर दृष्टि न डाले, स्त्रीके साथ एक आसनपर सोना और एक थालीमें भोजन करना छोड़ दे। अपनेसे बड़ोंको नाम लेकर या 'तू' कहकर न पुकारे। अपनेसे छोटे या समवयस्क पुरुषोंका नाम लेनेसे दोष नहीं लगता।

पापियोंका हृदय ही उनके पापोंको बता देता है; जो लोग जान-बूझकर किये हुए पापको महापुरुषोंसे छिपाते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। जो मूर्ख हैं, वे ही जान-बूझकर किये हुए पापको छिपाते हैं। यद्यपि मनुष्य उस पापको नहीं देखते, तो भी देवता तो देखते ही हैं। पापी मनुष्यका छिपाया हुआ पाप उसे पुनः पापमें ही लगाता है और धर्मात्माका धर्मतः गुप्त रखा हुआ धर्म उसे पुनः धर्ममें ही प्रवृत्त करता है। मूर्ख मनुष्य पाप करके उसे भूल जाता है, किंतु वह पाप उसके पीछे ही लगा रहता है। किसी कामनाकी पूर्तिके लिये जो धन संचित करके रखा होता है, उसको अपने उपभोगमें खर्च करनेसे बड़ा क्लेश होता है। मगर समझदारलोग ऐसे धनकी प्रशंसा नहीं करते; क्योंकि मौत राह नहीं देखती (कामना पूरी हो या अधूरी, समयपर मृत्यु हो ही जाती है)। मनीषी पुरुषोंका कहना है कि सभी प्राणियोंका धर्म मानसिक है अर्थात् मनसे किया हुआ धर्म ही वास्तविक धर्म है; अतः मनसे समस्त जीवोंका कल्याण सोचता रहे। केवल वेदोक्त विधिका सहारा लेकर अकेले ही धर्मका आचरण करना चाहिये। इसमें दूसरेकी सहायताकी आवश्यकता नहीं है। धर्म ही मनुष्योंकी योनि है, धर्म ही स्वर्गके देवताओंका अमृत है। धर्मात्मा मनुष्य मरनेके पश्चात् धर्मके ही बलसे सदा सुख भोगते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! शास्त्रमें पुरुषके लिये जो अध्यात्मज्ञानका चिन्तन बताया जाता है, वह अध्यात्म क्या है? उसका स्वरूप कैसा है? यह चराचर जगत् किससे उत्पन्न हुआ है और प्रलयके समय किसमें लीन होता है?—ये बातें मुझे बतानेकी कृपा करें।

भीष्मजीने कहा—कुन्तीनन्दन! तुम मुझसे जिस अध्यात्मज्ञानके विषयमें पूछ रहे हो, उसकी व्याख्या करता हूँ। वह अत्यन्त कल्याणकारी और सुखस्वरूप है। आचार्योंने सृष्टि और प्रलयकी व्याख्याके साथ ही अध्यात्मज्ञानका वर्णन किया है। उसे जान लेनेसे मनुष्यको प्रसन्नता और सुखकी प्राप्ति होती है। वह सम्पूर्ण भूतोंके लिये हितकारी है, जो उसे जानता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि—ये पाँच महाभूत सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयके स्थान हैं। जैसे लहरें समुद्रसे प्रकट होकर फिर उसीमें लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार ये पाँच महाभूत भी जिस आनन्दस्वरूप परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं, पुनः उसीमें लीन हो जाते हैं। शब्द, श्रोत्र और सम्पूर्ण छिद्र आकाशके कार्य हैं; स्पर्श, त्वचा और चेष्टा—ये तीन वायुके; रूप, नेत्र और परिपाक—ये तेजके; रस, जिह्वा और क्लेद जलके तथा गन्ध, नासिका और शरीर पृथ्वीके गुण हैं। इस प्रकार इस देहमें पाँच महाभूत तथा छठा मन है। इन्द्रियाँ और मन—ये जीवको विषयोंका ज्ञान कराते हैं। इन छःके अतिरिक्त सातवीं बुद्धि और आठवाँ क्षेत्रज्ञ है। इन्द्रियाँ विषयोंको ग्रहण करती हैं, मन संकल्प-विकल्प करता है और बुद्धि उसका ठीक-ठीक निश्चय करती है। क्षेत्रज्ञ (आत्मा) साक्षीकी भाँति स्थित रहता है। यह शरीरके भीतर और बाहर सर्वत्र व्याप्त है। पुरुषको अपनी इन्द्रियोंकी परीक्षा करके उनकी पूरी जानकारी रखनी चाहिये; क्योंकि सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण इन्द्रियोंका ही आश्रय लेकर रहते हैं। मनुष्य अपनी बुद्धिके बलसे जीवोंके आवागमनकी अवस्था जानकर धीरे-धीरे उसपर विचार करते रहनेसे परम शान्ति पा जाता है। यह चराचर जगत् बुद्धिके उदय होनेपर ही उत्पन्न होता और उसके लयके साथ ही लीन हो जाता है; इसलिये सबको बुद्धिमय कहा गया है।

बुद्धि ही जिसके द्वारा देखती है, उसे नेत्र कहते हैं; जिससे सुनती है, वह श्रोत्र कहलाता है और जिससे सूँघती है, उसे घ्राण कहा गया है। वही जिह्वाके द्वारा रसका और त्वचासे स्पर्शका अनुभव करती है। इस प्रकार बुद्धि ही विकारको प्राप्त होकर नाना रूपोंसे विषयोंको ग्रहण करती है। वह जिस द्वारसे किसी विषयको पाना चाहती है, मन उसीका आकार धारण कर लेता है। भिन्न-भिन्न विषयोंको ग्रहण करनेके लिये जो बुद्धिके पाँच अधिष्ठान हैं, उन्हींको पाँच इन्द्रियाँ कहते हैं। बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि वे इन्द्रियोंको काबूमें रखें। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण सदा ही प्राणियोंमें स्थित रहते हैं और इनके कारण उनमें सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी तीन तरहकी बुद्धि भी देखनेमें आती है। इनमें सत्त्वगुणसे सुख, रजोगुणसे दुःख और तमोगुणसे मोह उत्पन्न होता है।

जब शरीर या मनमें किसी प्रकारसे भी प्रसन्नताका भाव हो, हर्ष बढ़ता हो, सुख और शान्तिका अनुभव हो रहा हो तो सत्त्वगुणकी वृद्धि समझनी चाहिये। जिस समय किसी कारणसे या बिना कारण ही असंतोष, शोक, संताप, लोभ और असहनशीलताके भाव दिखायी दें तो उन्हें रजोगुणके चिह्न जानने चाहिये। इसी प्रकार अपमान, मोह, प्रमाद, स्वप्न, निद्रा और आलस्य घेरते हों तो उन्हें तमोगुणके विविध रूप समझे। बुद्धि और आत्मा—दोनों सूक्ष्म तत्त्व हैं, तथापि इनमें जो अन्तर है, उसपर दृष्टि डालो। इनमेंसे बुद्धि तो गुणोंकी सृष्टि करती है और आत्मा इन सब बातोंसे अलग रहता है। जैसे गूलरका फल और उसके भीतर रहनेवाले कीड़े—ये दोनों एक साथ रहते हुए भी एक-दूसरेसे भिन्न हैं, उसी प्रकार बुद्धि और आत्मा परस्पर मिले हुए प्रतीत होनेपर भी वास्तवमें अलग-अलग हैं। सत्त्व आदि गुण जड होनेके कारण आत्माको नहीं जानते, किंतु आत्मा चेतन है, इसलिये गुणोंको जानता है। जैसे घड़ेमें रखा हुआ दीपक घड़ेके छेदोंसे अपना प्रकाश फैलाकर वस्तुओंका ज्ञान कराता है, उसी प्रकार परमात्मा शरीरके भीतर स्थित होकर चेष्टा और ज्ञानसे शून्य इन्द्रियों तथा मन-बुद्धिके द्वारा सम्पूर्ण पदार्थोंका ज्ञान कराता है। बुद्धि गुणोंको उत्पन्न करती है और आत्मा केवल देखता है। बुद्धि और आत्माका यह सम्बन्ध अनादि है। जो संसारी कामोंसे मन हटाकर केवल आत्मामें ही अनुराग रखता और आत्मतत्त्वका ही मनन करता है, वह सब प्राणियोंका आत्मा हो जाता है और इस साधनासे उसको बड़ी उत्तम गति प्राप्त होती है।

जैसे जलमें विचरनेवाला पंछी, उसमें रहकर भी पानीसे लिप्त नहीं होता, उसी तरह ज्ञानी पुरुष भी सम्पूर्ण प्राणियोंमें निर्लिप्त होकर विचरता है। निर्लेप होना ही आत्माका स्वरूप है, ऐसा अपनी बुद्धिसे निश्चय करके मनुष्य दुःख पड़नेपर शोक न करे और सुख मिलनेपर हर्षसे फूल न उठे। सब जीवोंके प्रति समान भाव रखे। जैसे मैले बदनवाले मनुष्य जलसे भरी हुई नदीमें नहा-धोकर साफ-सुथरे हो जाते हैं, उसी प्रकार इस ज्ञानमयी नदीमें अवगाहन करके मलिन हृदयवाले पुरुष भी शुद्ध एवं विद्वान् हो जाते हैं। यही विशुद्ध अध्यात्मज्ञान है। जो मनुष्य बुद्धिसे जीवोंके आवागमनपर शनैः-शनैः विचार करके इस उत्तम ज्ञानको प्राप्त कर लेता है, उसे अक्षय सुख मिलता है। जो धर्म, अर्थ और कामको ठीक-ठीक समझकर उसका परित्याग कर चुका है और योगयुक्त चित्तसे आत्मतत्त्वके अनुसंधानमें लग गया है, वही तत्त्वदर्शी है। उसे दूसरी कोई वस्तु जाननेकी उत्कण्ठा नहीं होती। उस परमात्माको जानकर ज्ञानी पुरुष अपनेको कृतार्थ मानते हैं। अज्ञानियोंको जिस संसारसे महान् भय बना रहता है, उसीसे ज्ञानियोंको तनिक भी भय नहीं होता।



ध्यानयोगका वर्णन और जपकी महिमा बतानेके लिये एक जापक ब्राह्मणकी कथा

भीष्मजी कहते हैं—कुन्तीनन्दन! अब मैं तुमसे ध्यानयोगका वर्णन कर रहा हूँ, जिसे जानकर महर्षिगण इस लोकमें सनातन सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। योगियोंको चाहिये कि वे सर्दी-गर्मी आदि द्वन्द्वोंको सहन करते हुए नित्य सत्त्वगुणमें स्थित रहें और सब प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त होकर शौच, संतोष आदि नियमोंका पालन करते हुए ऐसे स्थानोंपर ध्यान करें, जहाँ स्त्री आदिका संसर्ग तथा ध्यानविरोधी वस्तुएँ न हों, जहाँ मनमें पूर्णतया शान्ति बनी रहे। योगका साधक इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे समेट कर काष्ठकी भाँति निश्चल होकर बैठ जाय और मनको एकाग्र करके परमात्मामें लगा दे। उस समय ध्यानमें इस प्रकार मग्न हो जाय कि कानोंमें कोई शब्द न सुनायी दे, त्वचासे स्पर्शका अनुभव न हो, आँखसे रूपका, जिह्वासे रसका तथा नासिकासे सुगन्धित वस्तुओंका पता न चले। पाँचों इन्द्रियोंको मोहमें डालनेवाले विषयोंकी इच्छा ही न हो। बुद्धिमान् योगी पहले इन्द्रियोंको मनमें स्थिर करे, फिर पाँचों इन्द्रियोंसहित मनको ध्यानमें एकाग्र करे।

इस प्रकार प्रयत्न करनेसे पहले तो कुछ देरके लिये इन्द्रियोंसहित मन स्थिर हो जाता है, किंतु फिर बादलोंमें चमकती हुई बिजलीकी तरह वह बारम्बार विषयोंकी ओर जानेके लिये चञ्चल हो उठता है। जैसे पत्तेपर पड़ी हुई पानीकी बूँद सब ओरसे हिलती रहती है, उसी तरह ध्यानमार्गमें स्थित साधकका मन भी चलायमान होता रहता है। एकाग्र करनेपर कुछ देरतक तो वह ध्यानमें स्थिर रहता है, किंतु फिर नाड़ीमार्गमें प्रवेश करके वायुकी भाँति चञ्चल हो जाता है। ऐसे विक्षेपके समय ध्यानयोगको जाननेवाले साधकको खेद या चिन्ता नहीं करनी चाहिये; बल्कि आलस्य और मात्सर्यका त्याग करके ध्यानके द्वारा मनको पुनः एकाग्र करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

योगी जब ध्यानका आरम्भ करता है तो पहले उसके

द्वारा क्रमशः विचार, विवेक और वितर्क नामक ध्यान होते हैं। ध्यानके समय मनमें कितना ही क्लेश क्यों न हो साधकको घबराकर प्रयत्न नहीं छोड़ना चाहिये; बल्कि अपने आत्माके कल्याणके लिये विशेष तत्परताके साथ उसमें लग जाना चाहिये। प्रतिदिन मन और इन्द्रियोंको ध्यानमार्गमें स्थापित करके योगाभ्यास करनेसे इन्द्रियोंसहित मन अपने-आप शान्त हो जाता है। इस प्रकार मनोनिग्रहपूर्वक ध्यान करनेवाले योगीको जो दिव्य सुख प्राप्त होता है, वह मनुष्यको किसी उद्योगसे या दैवकी सहायतासे भी नहीं मिल सकता। ज्यों-ज्यों ध्यानजनित सुखका अनुभव होता है, त्यों-ही-त्यों ध्यानमें अनुराग बढ़ता जाता है। इस प्रकार योगीलोग ध्यानके द्वारा दुःख-शोकसे रहित निर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त कर लेते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—जप करनेवाले लोगोंको किस फलकी प्राप्ति होती है? उन्हें किन लोकोंमें स्थान मिलता है? जपकी विधि क्या है? जापक किसे कहते हैं? और जप करने योग्य मन्त्र क्या है?—ये सारी बातें मुझे बताइये; क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं।

भीष्मजीने कहा—इस विषयमें जानकार लोग यम, काल और ब्राह्मणके संवादरूपमें एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। हिमालय पर्वतके पास एक महायशस्वी धर्मात्मा ब्राह्मण रहता था। वह पिप्पलादका पुत्र था और कौशिकवंशमें उत्पन्न हुआ था। वेदोंमें उसने पूर्ण विद्वत्ता



प्राप्त की थी और छहों अङ्गोंका तो उसे अपरोक्ष ज्ञान था—वे सदा उसकी जिह्वापर रहते थे। एक बार वह संहिता (गायत्री) का जप करते हुए तपस्यामें प्रवृत्त हुआ। इस नियमका पालन करते हुए उसके एक हजार वर्ष बीत गये। तदनन्तर, सावित्री देवीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा—'ब्रह्मर्षे! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। बताओ क्या चाहते हो? तुम्हारी कौन-सी इच्छा पूरी करूँ?'

देवीके ऐसा कहनेपर वह धर्मात्मा ब्राह्मण बोला—'शुभे! इस मन्त्रके जपमें मेरी इच्छा बराबर बढ़ती रहे, मनकी एकाग्रतामें दिनोदिन उन्नति हो।' यह सुनकर देवीने मधुर वाणीमें उत्तर दिया—'तुम जैसा चाहते हो, वही होगा। मैं ऐसा प्रयत्न करूँगी, जिससे तुम्हें नित्यसिद्ध ब्रह्मधामकी प्राप्ति होगी। इसके सिवा इस समय जो तुमने मुझसे वरदानके रूपमें माँगा है, वह भी पूरा होगा। तुम एकाग्रचित्त होकर नियमपूर्वक जप करो। धर्म स्वयं तुम्हारे पास आवेगा। काल, मृत्यु तथा यम भी तुम्हारे निकट पधारेंगे। यहाँ उन लोगोंके साथ तुम्हारा धर्मके विषयमें विवाद होगा।'

भीष्मजी कहते हैं—यह कहकर सावित्री देवी अपने धामको चली गयीं। इधर वह सत्यप्रतिज्ञ ब्राह्मण भी सौ दिव्य वर्षोंतक जप करता रहा। वह मन और इन्द्रियोंको सदा वशमें रखता था, क्रोधको जीत चुका था और दूसरोंके दोष नहीं देखता था। इस प्रकार जब उसका नियम पूरा हो गया तो धर्मने प्रसन्न होकर उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और कहा—'ब्राह्मण! मेरी ओर तो देखो, मैं साक्षात् धर्म हूँ और तुम्हारा दर्शन करने आया हूँ। इस जपका जो कुछ फल तुम्हें प्राप्त हुआ है, उसे सुनो—मनुष्यों और देवताओंको प्राप्त होनेवाले जितने भी लोक हैं, वे सब तुमने जीत लिये हैं। तुम देवलोकको लाँघकर ऊपरके लोकोंमें पदार्पण करोगे; इसलिये मुने! अब तुम अपने प्राणोंको त्याग दो और जिन लोकोंमें जानेकी इच्छा हो, वहाँ जाओ। इस देहको त्याग देनेके बाद ही उन लोकोंमें जा सकोगे।'

ब्राह्मणने कहा—धर्म! मुझे उन लोकोंको लेकर क्या करना है। आप सुखपूर्वक अपने स्थानको जाइये।

धर्मने कहा—मुनिवर! तुम्हें इस शरीरका त्याग तो अवश्य ही करना चाहिये, इसके बाद स्वर्गमें जाओ या जैसी तुम्हारी रुचि हो करो।

ब्राह्मणने कहा—धर्म! मैं बिना देहके स्वर्गमें रहना नहीं चाहता। आप जाइये, मेरी स्वर्गमें जानेकी तनिक भी इच्छा नहीं है। मैं यहीं गायत्रीका जप करते हुए आनन्दसे रहूँगा।

धर्मने कहा—विप्रवर ! यदि तुम शरीर छोड़ना नहीं चाहते तो देखो, ये काल, मृत्यु और यम स्वयं तुम्हारे पास आ रहे हैं।

तदनन्तर यम, काल और मृत्यु तीनों उस ब्राह्मणके पास आ पहुँचे। सबसे पहले यमदेवता बोले 'द्विजवर ! मैं यम हूँ और यह कहनेके लिये आया हूँ कि तुम्हारे उत्तम आचरण और कठोर तपस्याका फल तुम्हें प्राप्त हुआ है।' कालने कहा 'मैं काल हूँ और यह सूचना दे रहा हूँ कि तुम्हें इस जपका बहुत उत्तम फल मिला है। यह तुम्हारे स्वर्गलोक चलनेका समय है।' मृत्युने कहा—'धर्मज्ञ ! मुझे मृत्यु समझो। मैं कालकी प्रेरणासे तुम्हें यहाँसे ले चलनेके लिये आया हूँ।'

ब्राह्मणने कहा—सूर्यपुत्र यम, महात्मा काल, मृत्यु और धर्मका मैं स्वागत करता हूँ। बताइये, मैं आपलोगोंकी क्या सेवा करूँ ?



यह कहकर ब्राह्मणने उन सबको पाद्य-अर्घ्य आदि निवेदन किया और प्रसन्नतापूर्वक पूछा 'अब मुझे क्या आज्ञा है ?' इतनेहीमें तीर्थयात्राके लिये निकले हुए राजा इक्ष्वाकु, जहाँ ये सबलोग एकत्रित हुए थे, वहीं आ पहुँचे। राजर्षिने सबका पूजन और प्रणाम करके, कुशल-समाचार पूछा। तत्पश्चात् ब्राह्मणने भी राजाको आसन और पाद्य-अर्घ्य देकर कुशल-प्रश्नके बाद कहा—'महाराज ! आपका स्वागत है। कहिये, मैं अपनी शक्तिके अनुसार आपका कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ ?'

राजाने कहा—मैं राजा हूँ और आप ब्राह्मण; इसलिये आपको कुछ धन देना चाहता हूँ, आपको जितने धनकी आवश्यकता हो, मुझसे माँगिये।

ब्राह्मणने कहा—राजन् ! ब्राह्मण दो प्रकारके होते हैं—एक प्रवृत्तिमार्गमें चलनेवाले और दूसरे निवृत्तिमार्गका आश्रय लेनेवाले। मैं अब प्रतिग्रहसे निवृत्त हो गया हूँ। जो लोग प्रवृत्तिमार्गपर चलनेवाले हों, उनको दान दीजिये। मैं तो अब दान लेता नहीं। हाँ, अपनी कुछ इच्छा हो तो बताइये, मैं आपको क्या दूँ ? अपने तपोबलसे आपका कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ ?

राजाने कहा—यदि आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो पूरे सौ वर्षोंतक जप करके आपने जिस फलको प्राप्त किया है, वही दे दीजिये।

ब्राह्मणने कहा—एवमस्तु, आप मेरे जपका उत्तम फल स्वीकार कीजिये।

राजा बोले—आपका भला हो, मैंने जो जपका फल माँगा है, उसकी मुझे आवश्यकता नहीं है; इसलिये जाता हूँ, साथ ही एक बात पूछता हूँ, उसे बताइये; आपके इस जपका फल है क्या ?

ब्राह्मणने कहा—इसका फल क्या मिलेगा ? यह मैं नहीं जानता; परंतु मैंने जो कुछ जप किया था, वह आपको दे दिया। ये धर्म, यम, मृत्यु और काल इस बातके साक्षी हैं।

राजाने कहा—ब्रह्मन् ! यदि आप अपने जपका फल नहीं बतला सकते तो वह अज्ञात फल मेरे किस काम आयगा ? मैं संदिग्ध फल नहीं चाहता; यह आपहीके पास रहे।

ब्राह्मणने कहा—राजन् ! अब तो मैं अपने जपका फल दे चुका। अब दूसरी कोई बात नहीं स्वीकार करूँगा। हम दोनोंको अपनी-अपनी बातपर दृढ़ रहना चाहिये। पहले जप करते समय कभी मैंने फलकी कामना नहीं की थी, अतः इस जपका क्या फल होगा ?—यह कैसे जान पाऊँगा। आपने 'दीजिये' कहकर माँगा और मैंने 'देता हूँ' कहकर दे दिया—ऐसी दशामें अपनी बात झूठी नहीं करूँगा। आप धैर्य धारण करके सत्यकी रक्षा कीजिये। इस प्रकार स्पष्ट बतानेपर भी यदि मेरी बात नहीं मानेंगे तो आपको असत्यका महान् पाप लगेगा। स्वयं यहाँ पधारकर आपने मुझसे जपके फलकी याचना की और वह मैंने आपको अर्पण कर दिया; इसलिये अब आप सत्यपर डटे रहकर मेरे दिये हुए फलको स्वीकार कीजिये। झूठ बोलनेवाले मनुष्यको न इस लोकमें

सुख मिलता है न परलोकमें। वह अपने पूर्वजोंको भी नहीं तार सकता; फिर आनेवाली पीढ़ीका तो उद्धार कर ही कैसे सकता है? परलोकमें सत्यसे जिस प्रकार जीवका उद्धार होता है, उस तरह यज्ञ, दान और नियमोंसे नहीं। लोगोंने अबतक जितनी तपस्याएँ की हैं और भविष्यमें वे जितनी करेंगे, उन सबको अगर सैकड़ों और लाखोंकी तादादमें इकट्ठा किया जाय, तो भी उनका महत्त्व सत्यसे बढ़कर नहीं सिद्ध हो सकता। एकमात्र सत्य ही अविनाशी ब्रह्म है, सत्य ही अक्षय तप है, सत्य ही अविनाशी यज्ञ तथा सत्य ही सनातन वेद है। वेदोंमें सत्यकी ही महिमा गायी गयी है। सत्यसे ही श्रेष्ठ फलकी प्राप्ति होती है। धर्म और इन्द्रिय-संयमकी सिद्धि भी सत्यसे ही होती है। सत्यके ही आधारपर सब कुछ टिका हुआ है। सत्य ही वेद, वेदाङ्ग, विद्या, विधि, व्रत और ॐकाररूप है। सत्यके ही प्रभावसे प्राणियोंका जन्म और उन्हें संतानकी प्राप्ति होती है। सत्यके बलसे ही हवा चलती, सूर्य तपते और आग जलती है। स्वर्ग भी सत्यपर ही स्थित है। यज्ञ, तप, वेद, स्तोभ, मन्त्र तथा सरस्वती—ये सब सत्यके ही स्वरूप हैं। मैंने सुना है, किसी समय धर्म और सत्यको तराजूपर रखकर तौला गया तो जिधर सत्य था, उधरका ही पलड़ा भारी हुआ। जहाँ धर्म है, वहाँ सत्य है। सत्यसे ही सबकी वृद्धि होती है। इसलिये राजन्! आप भी सत्यपर ही दृढ़ रहिये। असत्यका बर्ताव न कीजिये। यदि मेरे दिये हुए जपके फलको आप नहीं स्वीकार करेंगे, तो धर्मसे भ्रष्ट होकर संसारमें भटकते फिरेंगे। जो पहले देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर देना नहीं चाहता तथा जो याचना तो करता है, किंतु मिलनेपर उसे लेना नहीं चाहता—ये दोनों ही मिथ्यावादी होते हैं। अतः आप मेरी और अपनी भी बात मिथ्या न कीजिये।

राजाने कहा—ब्रह्मन्! क्षत्रियका धर्म तो प्रजाकी रक्षा और युद्ध करना है। क्षत्रियोंको दाता कहा गया है। ऐसी दशामें मैं उलटे आपसे ही दान कैसे ले सकता हूँ?

ब्राह्मणने कहा—राजन्! दान लेनेके लिये मैंने आपसे प्रार्थना नहीं की थी और न मैं देनेके लिये आपके घर ही गया था। आपने स्वयं यहाँ आकर माँगा है, अब लेनेसे क्यों इनकार करते हैं।

राजाने कहा—विप्रवर! यदि आपने अपने जपका उत्तम फल देनेका ही निश्चय किया है, तो ऐसा कीजिये; हम दोनोंके जो भी पुण्यफल हों, उन्हें एकत्र करके दोनों साथ ही भोगें। ब्राह्मणोंको दान लेनेका अधिकार है और क्षत्रिय केवल दान देते हैं, लेते नहीं। इस धर्मको आपने भी सुना होगा, अतः हमलोग साथ-ही-साथ दोनोंके कर्मफलोंका उपभोग करें। अथवा आपकी ऐसी इच्छा न हो तो साथ रहकर कर्मफल भोगनेकी आवश्यकता नहीं है। उस अवस्थामें मैं यही प्रार्थना करूँगा कि आप मेरे शुभकर्मोंका पूरा-पूरा फल स्वीकार कर लें—यह आपका मेरे ऊपर महान् अनुग्रह होगा।

ब्राह्मणने कहा—राजन्! आपके माँगनेपर मैंने जो कुछ देनेकी प्रतिज्ञा की है, उसे ले लीजिये; क्योंकि वह मेरे पास आपकी धरोहरके रूपमें रखा है। यदि नहीं लेंगे तो मैं आपको शाप दे दूँगा।

राजाने कहा—जिसके कार्यका यहाँ ऐसा परिणाम निकला, उस राजाके धर्मको धिक्कार है! अब तो मुझे आपके समान फलभागी होनेके लिये ही यह दान स्वीकार करना है। आजसे पहले किसीके सामने कुछ लेनेके लिये मैंने हाथ नहीं फैलाया था, किंतु आज ऐसा करना पड़ा है। आप जिसे मेरी धरोहर मानते हैं, वह दीजिये।

ब्राह्मणने कहा—राजन्! मैंने गायत्रीका जप करके जितना भी पुण्य संग्रह किया है, वह सब आप ले लीजिये।

राजाने कहा—विप्रवर! मैं भी अपने हाथमें संकल्पका जल ले चुका हूँ। अब आप भी मेरा दान ग्रहण कीजिये। जिससे हमलोग साथ-ही-साथ रहकर समान फलके भागी हों।

भीष्मजी कहते हैं—तदनन्तर, उस ब्राह्मणने राजाका अनुरोध मान लिया और वहाँ आये हुए धर्म, यम, काल तथा मृत्युका पूजन करके उन सबको प्रणाम किया। राजा और ब्राह्मणके उपर्युक्त निश्चयको जानकर देवराज इन्द्र भी बहुत-से देवताओं और लोकपालोंके साथ वहाँ उपस्थित हुए। साध्य, विश्वेदेव, मरुद्गण, नदी, पर्वत, समुद्र और तीर्थोंका भी शुभागमन हुआ। तप, वेद, वेदान्त, स्तोभ, सरस्वती, नारद, पर्वत, विश्वावसु, हाहा, हूहू, परिवारसहित चित्रसेन, नाग, सिद्ध, मुनि, प्रजापति तथा अचिन्त्यस्वरूप भगवान् विष्णुने भी वहाँ दर्शन दिया। उस समय आकाशमें भेरी और तुरही आदि बाजे बजने लगे। फूलोंकी वर्षा होने लगी।

तदनन्तर, जापक ब्राह्मण और राजा इक्ष्वाकु—दोनोंने एक ही साथ अपने मनको सब विषयोंसे हटा लिया। पहले (मूलाधार चक्रसे कुण्डलिनीको उठाकर) प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान—इन पाँचों प्राणवायुओंको हृदय (अनाहतचक्र) में स्थापित किया, फिर मनको प्राण और अपानके साथ मिलाकर नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि रखते हुए उसे दोनों भौंहोंके बीच आज्ञाचक्रमें स्थिर किया। इस

प्रकार मनको जीतकर दृष्टिको एकाग्र करके प्राणसहित मनको मूर्धामें स्थापित कर दिया और दोनों ही समाधिमें स्थित हो गये। उस समय उनके शरीर हिलते-डुलते नहीं थे। दोनों ही जडकी भाँति चेष्टाहीन हो गये थे। इतनेहीमें उस महात्मा ब्राह्मणके ब्रह्मरन्ध्रका भेदन करके एक ज्योतिर्मय प्रकाश निकला और सीधे स्वर्गकी ओर चल दिया। फिर तो चारों ओर बड़े जोरोंसे कोलाहल मचा। सब लोग उस दिव्य प्रकाशकी स्तुति करने लगे। प्रादेशके बराबर लंबे पुरुषका आकार धारण किये जब वह तेज ब्रह्माजीके पास पहुँचा तो उन्होंने आगे बढ़कर उसका स्वागत किया और मीठी वाणीमें कहा—'ब्राह्मणदेव ! योगियोंको जो फल मिलता है, वह जप करनेवालोंको भी मिलता है; बल्कि जप करनेवालोंको योगियोंसे भी उत्तम फलकी प्राप्ति होती है; अतः अब तुम मुझमें निवास करो।' आज्ञा पाकर वह ब्राह्मणतेज ब्रह्माजीके मुखमें प्रवेश कर गया। इसी प्रकार राजा इक्ष्वाकु भी भगवान् ब्रह्माजीमें लीन हो गये।

तब समस्त देवताओंने ब्रह्माजीको प्रणाम करके कहा—'भगवन् ! आपने जो उस ब्राह्मणका आगे बढ़कर स्वागत किया है, इससे जान पड़ता है जप करनेवालोंको योगियोंसे भी श्रेष्ठ फल मिलता है। इस जापक ब्राह्मणको सद्गति देनेके लिये ही आपने यह सारा उद्योग किया था। हमलोग भी उसीको देखनेके लिये यहाँ आये थे। आपने ब्राह्मण और राजा दोनोंको एक-सा आदर देकर समान फलका भागी बनाया है। आज हम लोगोंने जपके महान् फलको अपनी आँखों देख लिया।'

ब्रह्माजीने कहा—(जपका फल तो ऐसा है ही) जो महास्मृति और अनुस्मृतिका पाठ करता तथा योगमें अनुरक्त रहता है, वह भी इसी प्रकार शरीर त्याग करके उत्तम गतिको प्राप्त होता है। अच्छा, अब तुमलोग अपने-अपने स्थानको जाओ।

यह कहकर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये और उनकी आज्ञा पाकर देवता भी अपने-अपने धामको पधारे। दूसरे महात्मा भी धर्मका सत्कार करके प्रसन्नतापूर्वक उसके पीछे चल दिये। युधिष्ठिर ! जप करनेवालोंको यही फल मिलता है। इसी प्रकार उनकी गति होती है। ये सब बातें, जैसी सुनी थीं, तुमसे बता दीं। अब और क्या सुनना चाहते हो।'

मनु और बृहस्पतिका संवाद—मनुके द्वारा ज्ञानयोग आदिके फल तथा परमात्मतत्त्वका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! ज्ञानयोगका तथा वेदोंके नियमानुसार किये जानेवाले कर्मयोगका क्या फल है ? सब प्राणियोंके भीतर रहनेवाले आत्माका ज्ञान किस प्रकार हो सकता है ?

भीष्मजीने कहा—इस विषयमें प्रजापति मनु और महर्षि बृहस्पतिके संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। एक समयकी बात है, देवता और ऋषियोंकी मण्डलीमें प्रधान महर्षि बृहस्पतिने प्रजापति मनुको प्रणाम करके पूछा—'भगवन् ! जो इस जगत्‌का कारण और वैदिक कर्मोंका अधिष्ठान है, विप्रगण जिसे ज्ञानका फल बताते हैं तथा मन्त्रके शब्दोंद्वारा जिसके तत्त्वका सम्यक् ज्ञान नहीं होता, उस वस्तुका यथावत् वर्णन कीजिये। जिससे पृथ्वी और पार्थिव जगत्, वायु और अन्तरिक्ष, जलजन्तु और जल तथा देवता और देवलोककी उत्पत्ति हुई है, वह सनातन वस्तु क्या है ? यह बताइये ? मैंने ऋक्, साम और यजुर्वेदका तथा छन्द, ज्योतिष, निरुक्त, व्याकरण, कल्प और शिक्षाका भी अध्ययन किया है, तो भी मुझे आकाश आदि पाँचों भूतोंके उपादान कारणका ज्ञान न हो सका। इसलिये आप सामान्य और विशेषणयुक्त शब्दोंके द्वारा इस विषयका



पूर्णतया वर्णन करनेकी कृपा कीजिये तथा यह भी बताइये कि ज्ञान और कर्मका फल क्या है ? जीव किस तरह एक शरीरसे अलग होकर दूसरेमें प्रवेश करता है ?'

मनुजीने कहा—जिसको जो-जो विषय प्रिय होता है, उसको उसी-उसीमें सुख जान पड़ता है और जो अप्रिय होता है, वही उसके लिये दुःखरूप बताया गया है। इष्टकी प्राप्ति और अनिष्टके निवारणके लिये संसारमें कर्मोंका आरम्भ किया जाता है तथा इष्ट-अनिष्ट दोनोंसे बचनेके लिये ज्ञानयोगका उपदेश किया गया है। वैदिक कर्मकाण्ड प्रायः सकाम भावनासे युक्त हैं; किंतु जो कामनाओंके बन्धनसे मुक्त होता है, वही परमात्माकी प्राप्ति कर सकता है। मनुष्य निष्काम भावसे कर्मका अनुष्ठान करके परब्रह्मको प्राप्त करे—इसी उद्देश्यसे कर्मोंका विधान किया गया है। कर्मसे प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि फलोंकी प्रशंसा करनेवाले वचन तो कामनाओंमें आसक्त पुरुषोंपर ही अपना प्रभाव डालते हैं। अतः इन कामनाओंसे अपना पिण्ड छुड़ाकर परमात्माको ही प्राप्त करना चाहिये। नित्य कर्मोंके अनुष्ठानसे रागादि दोष दूर हो जानेके कारण अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, फिर उसमें ज्ञानका प्रकाश छा जाता है और मनुष्य कर्मोंके अगोचर कामनातीत परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। मन और कर्मसे ही संसारकी सृष्टि हुई है। ये दोनों बन्धनके कारण होते हुए भी ब्रह्मकी प्राप्तिके भी मार्ग बन जाते हैं; वेदविहित कर्म अक्षय फल (मोक्ष) भी देता है और नश्वर फलकी भी प्राप्ति कराता है। मनके द्वारा फलेच्छाको त्याग देना ही अक्षय फलकी प्राप्तिमें कारण है, दूसरा कुछ नहीं। जब रात बीत जाती है और अन्धकारका आवरण हट जाता है, उस समय जैसे नेत्र अपने तैजस स्वरूपसे युक्त होकर रास्तेमें पैरोंसे बचाव करनेयोग्य काँटे आदि देख सकते हैं, उसी प्रकार बुद्धि भी मोहका परदा हट जानेपर विवेकसे युक्त हो त्यागने योग्य अशुभ कर्मोंको समझ सकती है। विधिपूर्वक मन्त्रोंका उच्चारण, यज्ञका अनुष्ठान, दक्षिणा, अन्नका दान और मनकी समाधि—इन पाँच अङ्गोंसे सम्पन्न होनेपर ही कर्म फल देनेमें समर्थ होता है। शब्द, रूप, पवित्र रस, सुखद स्पर्श और सुन्दर गन्ध—ये ही कर्मोंके फल हैं, किंतु मनुष्य इसी (कर्म करनेवाले) शरीरसे इन फलोंको प्राप्त करनेकी शक्ति नहीं रखता, कर्मोंके फलरूपसे जो लोक या शरीर प्राप्त होते हैं, उन्हींमें जानेपर इन फलोंकी प्राप्ति होती है। जीव एक शरीरसे जो-जो शुभाशुभ कर्म करता है, दूसरा शरीर धारण करके ही उसके फलोंको भोगता है; क्योंकि शरीर ही सुख और दुःख भोगनेका साधन है। मन और वाणीसे किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल मन-वाणीके द्वारा ही भोगना पड़ता है। फलकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य अपने कर्मोंमें जैसे गुणका सम्पादन करता है, उसी गुणसे प्रेरित होकर वह कर्मके फलको भोगता है। जैसे मछली पानीके बहावके साथ बह जाती है, उसी प्रकार मनुष्यको भी पहलेके किये हुए कर्मोंके प्रवाहमें बहना पड़ता है। ऐसी स्थितिमें भी वह शुभ कर्मोंका फल पाकर प्रसन्न होता और अशुभ कर्मोंके फलसे दुःखी होता है।

अब, जिससे इस सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्ति हुई है, जिसे जानकर मनको वशमें रखनेवाले महात्मा इस संसार-समुद्रसे पार हो जाते हैं और वेदमन्त्रोंके पद भी जिसका प्रतिपादन नहीं कर पाते, उस अनिर्वचनीय परमात्मतत्त्वके विषयमें कुछ कहा जाता है, ध्यान देकर सुनो। परब्रह्म परमात्मा भाँति-भाँतिके रसों और गन्धोंसे रहित तथा शब्द, स्पर्श एवं रूपसे पृथक् हैं। वे मन-बुद्धिके अगोचर, अव्यक्त तथा निर्गुण हैं; फिर भी उन्होंने ही प्रजाके लिये रूप-रसादि पाँचों विषयोंकी सृष्टि की है। वे न स्त्री हैं, न पुरुष हैं, न नपुंसक हैं; न सत् हैं, न असत् हैं, न उभयरूप हैं। ज्ञानी पुरुष ही उनका साक्षात्कार करते हैं। उनका कभी क्षरण (नाश) नहीं होता, इसीलिये उन्हें अक्षर ब्रह्म कहते हैं।

अक्षरसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वी प्रकट हुई है, इस पृथ्वीसे ही पार्थिव जगत्‌की उत्पत्ति होती है। पार्थिव शरीरोंका जलमें लय होता है, जलसे वे अग्निमें, अग्निसे वायुमें, वायुसे आकाशमें और आकाशसे परमात्मामें लीन होते हैं। परमात्माकी प्राप्ति हो जानेपर जीवोंका पुनर्जन्म नहीं होता। परमात्मा न ठंडा है न गरम, न कोमल है न कठोर, न खट्टा है न कसैला और न मधुर है न तिक्त। शब्द, गन्ध और रूपसे भी वह रहित है। उसका स्वरूप सबसे विलक्षण है। त्वचा स्पर्शका, जिह्वा रसका, घ्राणेन्द्रिय गन्धका, कान शब्दका और नेत्र रूपका ही अनुभव करते हैं। ये इन्द्रियाँ परमात्माको अपना विषय नहीं बना सकतीं। अध्यात्मज्ञानसे हीन मनुष्योंको परमात्मतत्त्वका अनुभव नहीं होता।

अतः जो जिह्वाको रससे, नासिकाको गन्धसे, कानोंको शब्दसे, त्वचाको स्पर्शसे और नेत्रको रूपसे हटाकर अन्तर्मुखी बना लेता है, वही अपने मूलस्वरूप परमेश्वरका साक्षात्कार कर सकता है। श्रुतिके कथनानुसार व्यापक ईश्वर और साधक जीव—दोनों ही जिसके स्वरूप हैं, जो सम्पूर्ण लोकमें स्थित रहनेवाला—कूटस्थ, सबका कारण और स्वयं ही सब कुछ करनेवाला है, वही कारणतत्त्व है, उसके सिवा जो कुछ है, सब कार्यमात्र है। जैसे कोई मनुष्य कुल्हाड़ीसे काठको चीरकर उसमें अग्निका दर्शन करना चाहे तो न उसमें आग दिखायी

देगी, न धुआँ। उसी प्रकार इस शरीरका पेट फाड़ने या हाथ-पैर काटनेसे कोई अन्तर्यामी आत्माका दर्शन नहीं कर सकता; क्योंकि वह शरीरसे भिन्न है। किंतु उन्हीं काष्ठोंका युक्तिपूर्वक मन्थन करनेसे जैसे अग्नि और धूम दोनों ही देखनेमें आते हैं, उसी तरह योगके द्वारा मन और इन्द्रियोंको आत्मामें समाहित करनेपर बुद्धिमान् पुरुष अपने स्वरूपभूत आत्माका साक्षात्कार कर सकता है। जैसे सपनेमें मनुष्य अपने शरीरको आत्मासे अलग और पृथ्वीपर पड़ा देखता है, उसी प्रकार दस इन्द्रिय, पाँच प्राण तथा मन और बुद्धि—इन सत्रह तत्त्वोंसे बने हुए लिङ्गशरीरके साथ रहनेवाला जीवात्मा शरीरको अपनेसे पृथक् जाने। जो ऐसा नहीं जानता, वही एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जन्म लेता रहता है। आत्मा शरीरसे सर्वथा भिन्न है, वह इसके उत्पत्ति, वृद्धि, क्षय और मृत्यु आदि दोषोंसे कभी लिप्त नहीं होता। कोई भी इन चर्मचक्षुओंके द्वारा आत्माके स्वरूपको नहीं देख सकता। अपनी त्वचासे उसका स्पर्श नहीं कर सकता और न अपनी इन्द्रियोंसे उसका कोई कार्य ही सिद्ध कर सकता है। इन्द्रियाँ उसे नहीं देखतीं, पर वह उन सबको देखता है। जीव अपने दृश्य शरीरका त्याग करके जब दूसरे अदृश्य शरीरमें प्रवेश करता है तो पहलेके स्थूल देहको पाँचों भूतोंमें मिलनेके लिये छोड़कर दूसरे शरीरका आश्रय ले उसीको अपना स्वरूप मान लेता है। मनुष्यके मरनेपर उसके शरीरके पाञ्चभौतिक अंश अपने-अपने महाभूतोंमें मिल जाते हैं, किंतु श्रोत्र आदि सत्रह तत्त्वोंका लिङ्गशरीर कर्म-वासनामें आबद्ध हो दूसरे स्थूल देहमें प्रवेश करके पाँचों विषयोंका सेवन करता रहता है। श्रोत्रेन्द्रिय आकाशके गुण शब्दका, घ्राणेन्द्रिय पृथ्वीके गुण गन्धका, तैजस नेत्रेन्द्रिय तेजके गुण रूपका, रसनेन्द्रिय जलके गुण रसका तथा त्वगिन्द्रिय वायुके गुण स्पर्शका सेवन करती है। इन्द्रियोंके पाँचों विषय पाँच महाभूतोंमें रहते हैं, पाँचों महाभूत इन्द्रियोंमें रहते हैं, इन्द्रियाँ मनकी अनुगामिनी हैं, मन बुद्धिके आश्रित है और बुद्धि आत्माका आश्रय लेकर स्थित है।

आत्माकी दुर्विज्ञेयता

मनुजी कहते हैं—बृहस्पते ! मनुष्य उस आत्माका नेत्रोंसे दर्शन नहीं कर सकता, त्वचासे स्पर्श नहीं कर सकता और श्रोत्रसे श्रवण नहीं कर सकता। वह इन सबका अपना-आप है और ये श्रोत्रादि स्वयं ही अपने-आपको नहीं देख सकते। आत्मा सर्वज्ञ और सबका साक्षी है तथा सर्वज्ञ होनेसे इन सबको देखता भी है। किंतु जिस प्रकार मनुष्योंको दिखायी न देनेपर भी हिमालयके दूसरे पार्श्व और चन्द्रमाके पृष्ठभागके विषयमें यह नहीं कहा जा सकता कि वे हैं ही नहीं, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतोंका ज्ञानस्वरूप आत्मा इन्द्रियोंका विषय न होनेपर भी 'नहीं है' ऐसा नहीं कहा जा सकता। रूपवान् वस्तुएँ अपनी उत्पत्तिसे पूर्व और नष्ट हो जानेपर रूपहीन रहती हैं, इस नियमसे जैसे बुद्धिमान्लोग उनकी अरूपताका निश्चय कर लेते हैं तथा सूर्यके उदय और अस्तके द्वारा जैसे उसकी गतिका अनुमान हो जाता है, उसी प्रकार विवेकी लोग बुद्धिरूप दीपकके द्वारा दूरस्थ ब्रह्मका साक्षात्कार कर लेते हैं। जिस प्रकार मृगोंसे मृग, पक्षियोंसे पक्षी और हाथियोंद्वारा हाथियोंको पकड़ा जा सकता है, वैसे ही ज्ञानस्वरूप आत्माको ज्ञानद्वारा ग्रहण किया जा सकता है। हमने सुना है कि सर्पके पैरोंको सर्प ही पहचानता है। उसी प्रकार समस्त शरीरोंमें स्थित ज्ञेय आत्माको पुरुष ज्ञानद्वारा ही जान सकता है। जिस प्रकार अन्धकाररूप राहु चन्द्रमाकी ओर आता या उसे छोड़कर जाता दिखायी नहीं देता, वैसे ही जीवात्मा शरीरमें आता या उसे छोड़कर जाता हुआ जान नहीं पड़ता। जैसे चन्द्रमा या सूर्यका संयोग होनेपर राहु दीखने लगता है वैसे ही देहसे संयुक्त होनेपर आत्माका 'यह देहधारी है' ऐसा ज्ञान होने लगता है। किंतु जैसे चन्द्रमा और सूर्यसे अलग होनेपर राहुकी उपलब्धि नहीं होती, वैसे ही शरीरसे छूट जानेपर जीव दिखायी नहीं देता। जैसे अमावस्याकी रातमें चन्द्रमा स्वयं अदृश्य होकर नक्षत्रोंमें मिल जाता है, वैसे ही जीव शरीरसे छूटकर अपने कर्मोंके फलस्वरूप दूसरे शरीरसे जुड़ जाता है।

जिस प्रकार मनुष्य शुद्ध और स्थिर जलमें नेत्रद्वारा अपना रूप देख सकता है, वैसे ही इन्द्रियोंके शुद्ध और स्थिर हो जानेपर वह ज्ञानदृष्टिसे ज्ञेयस्वरूप आत्माका साक्षात्कार कर सकता है तथा जलमें हलचल पैदा होनेसे जैसे रूप दिखायी नहीं देता, वैसे ही इन्द्रियोंके चञ्चल हो उठनेपर बुद्धिके द्वारा आत्माका अनुभव नहीं होता। अज्ञानसे अविद्या आती है और अविद्यासे मन रागादि दोषोंमें फँस जाता है। इस प्रकार मनके दूषित होनेसे उसके अधीन रहनेवाली पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ भी दूषित हो जाती हैं। अतः अज्ञानी मनुष्य विषयोंमें सदा डूबा रहकर कभी तृप्त नहीं होता तथा अपने प्रारब्धके अनुसार वह विषय-भोगकी इच्छासे बारंबार इस संसारमें जन्म लेता रहता

है। पापके कारण ही संसारमें पुरुषकी तृष्णाका अन्त नहीं होता; जब पापोंकी समाप्ति हो जाती है तभी उसकी तृष्णा नष्ट होती है। विषयोंके संसर्गसे, सर्वदा उन्हींमें रचे-पचे रहनेसे तथा मनके द्वारा विपरीत साधनोंका अवलम्बन करनेसे परब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती। जब पापकर्मोंका क्षय हो जाता है तभी पुरुषको ज्ञान प्राप्त होता है। दर्पण स्वच्छ होनेपर जैसे प्रतिविम्ब दीखने लगता है, उसी प्रकार वह अपने शुद्ध हृदयमें परमात्माका साक्षात्कार करने लगता है। मनुष्य विषयोंकी ओर इन्द्रियोंके फैल जानेसे दुःखी बना हुआ है और उन्हींके संकुचित होनेसे सुखी हो सकता है। अतः उसे बुद्धिके द्वारा इन्द्रियोंको उनके विषयोंकी ओरसे रोककर वशमें रखना चाहिये। इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है, उससे बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धिसे ज्ञान श्रेष्ठ है और ज्ञानसे परमात्मा श्रेष्ठ है। अव्यक्त परमात्मासे ही ज्ञान उत्पन्न हुआ है तथा ज्ञानसे बुद्धि और उससे मन प्रकट हुआ है। वह मन ही श्रोत्रादि इन्द्रियोंसे युक्त होकर विषयोंको देखता है। जो पुरुष शब्दादि विषय, सम्पूर्ण व्यक्त पदार्थ और प्राकृत विषयोंको त्याग देता है, वह अमृतत्व प्राप्त कर लेता है। परंतु सकाम कर्म करनेवाला पुरुष बार-बार जन्म-मरणके चक्रमें पड़कर सुख-दुःखादि कर्मफलको ही भोगता रहता है। इन्द्रियोंद्वारा विषयोंको ग्रहण न करनेसे पुरुषके विषय तो छूट जाते हैं, परंतु उनमें उसकी आसक्ति बनी रहती है। वह तो तभी छूटती है जब उसे परब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है। जिस समय बुद्धि कर्मजनित गुणोंसे छूटकर मननात्मिका वृत्तिमें स्थित हो जाती है, उस समय मन ब्रह्ममें लीन होकर तद्रूप हो जाता है। परब्रह्म स्पर्श, श्रवण, रसन, दर्शन, घ्राण और संकल्प सभी प्रकारके कर्मोंसे रहित है; इसलिये उसतक केवल विशुद्ध बुद्धिकी ही पहुँच हो सकती है। विषयोंका मनमें लय होता है, मनका बुद्धिमें, बुद्धिका ज्ञानमें और ज्ञानका परमात्मामें लय होता है। इन्द्रियाँ मनको नहीं जानतीं, मन बुद्धिको नहीं जानता और बुद्धि अव्यक्त आत्माको नहीं जानती; किंतु अव्यक्त इन सबको जानता है।



आत्मदर्शनका उपाय

मनुजी कहते हैं—बृहस्पतिजी! जब शारीरिक या मानसिक दुःख आ पड़े तो उसके लिये मनुष्यको चिन्तित नहीं होना चाहिये। दुःखका चिन्तन न करना ही उसकी ओषधि है। चिन्तन करनेसे तो वह सामने आता है और अधिकाधिक बढ़ता ही है। अतः मानसिक दुःखको विचारसे और शारीरिक व्याधिको ओषधियोंसे दूर करे। यही विज्ञानकी सामर्थ्य है; बच्चोंके समान शोक नहीं करना चाहिये। यौवन, रूप, जीवन, धनसंग्रह, आरोग्य और प्रियजनोंका समागम—ये सब अनित्य ही हैं। विचारशीलोंको इनका लोभ नहीं करना चाहिये। जिस दुःखका सारे राष्ट्रसे सम्बन्ध हो उसके लिये एक व्यक्तिको शोक नहीं करना चाहिये। हाँ, यदि उसे उसके प्रतिकारका कोई उपाय दीखता हो तो शोक न करके वह उपाय ही करना चाहिये। इसमें संदेह नहीं, मनुष्यके जीवनमें सुखकी अपेक्षा दुःख ही अधिक है। जो पुरुष इन्द्रियोंके विषयोंमें राग करता है, उसे मोहवश मौतके मुँहमें जाना पड़ता है; किंतु जो पुरुष सुख-दुःख दोनोंको त्याग देता है, वह परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है, विचारशीलोंको उसके लिये शोक नहीं करना पड़ता। विषयोंके उपार्जनमें दुःख है, उनकी रक्षा करनेमें भी सुख नहीं है तथा दुःखसे ही उनकी उपलब्धि होती है; अतः उनका नाश हो जाय तो चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

जिस समय बुद्धि अपने कर्मजनित संस्कारोंके सहित चित्तकी मननात्मिका वृत्तिमें स्थित हो जाती है, उसी समय ध्यानयोगजनित समाधिसे ब्रह्मका साक्षात्कार हो सकता है। नहीं तो, जैसे जलकी धारा पर्वतके शिखरसे निकलकर ढालकी ओर बहती है, वैसे ही यह गुणात्मिका बुद्धि गुणमय पदार्थोंकी ओर ही जाती है। जिस समय यह ध्यानयोगके द्वारा निर्गुण तत्त्वतक पहुँच जाती है उसी समय, कसौटीके द्वारा जैसे सुवर्णको पहचान लिया जाता है वैसे ही, इसे परब्रह्मका अनुभव हो जाता है। अतः इन्द्रियोंके सब द्वारोंको रोककर मनमें स्थित होना चाहिये। इस प्रकार मनकी एकाग्रता होनेसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। जिस प्रकार गुणोंका क्षय होनेपर पञ्चमहाभूत निवृत्त हो जाते हैं, उसी प्रकार बुद्धि समस्त इन्द्रियोंके सहित मन (अहंकार) में लीन हो जाती है। जब निश्चयात्मिका बुद्धि अन्तर्मुख होकर मनमें स्थित होती है तो वह मनःस्वरूप ही हो जाती है। मन अनेक प्रकारके गुणोंसे युक्त है, किंतु जब वह ध्यानजन्य गुणोंसे युक्त होता है तो सब गुणोंको त्यागकर निर्गुण ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। उस अव्यक्त ब्रह्मका बोध करानेके लिये संसारमें कोई दृष्टान्त नहीं है। जहाँ वाणीका व्यापार ही नहीं है, उस वस्तुको कौन वर्णनका विषय बना सकता है? इसलिये तपसे, अनुमानसे, शमादि गुणोंसे, ब्राह्मणादि जातिके

धर्मोंका पालन करके तथा शास्त्राभ्यासके द्वारा चित्तको शुद्ध करके परब्रह्मको जाननेका प्रयत्न करे। गुणातीत पुरुष उस अतर्कनीय परब्रह्मको बाहर-भीतर समानभावसे अनुभव कर सकता है।

बृहस्पतिजी! धर्म करनेसे श्रेयकी वृद्धि होती है और अधर्मसे अकल्याण होता है। रागी पुरुष प्रकृतिके राज्यमें रहता है और विरक्त आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है। जिस समय मनुष्य शब्दादि पाँच विषयोंके सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रिय और मनको काबूमें कर लेता है, उस समय वह मणियोंमें ओतप्रोत तागेके समान सर्वत्र व्याप्त परब्रह्मका साक्षात्कार कर लेता है। उसी समय उसे यह भी अनुभव हो जाता है कि जिस प्रकार तागा सुवर्णके दानेकी तरह ही मोती, मूँगा और मृत्तिकाके भी दानोंमें पिरोया हुआ है, उसी प्रकार अपने कर्मोंके अनुसार आत्मा भी गौ, अश्व, मनुष्य, हाथी, मृग और कीट-पतंगादि समस्त शरीरोंमें व्याप्त है। यह जिस-जिस शरीरसे जो-जो कर्म करता है, उस-उस शरीरसे उसीका फल प्राप्त करता है।

मनुष्यको पहले विषयका ज्ञान होता है, फिर उसे पानेकी इच्छा होती है, उसके बाद प्रयत्न और फिर कर्म होता है तथा कर्म करनेपर उसका फल मिलता है। इस प्रकार फलको कर्मस्वरूप, कर्मको ज्ञेयस्वरूप, ज्ञेयको ज्ञानस्वरूप और ज्ञानको सदसत्स्वरूप समझना चाहिये। इस प्रकार ज्ञान, फल, ज्ञेय और कर्म—इन सबका क्षय होनेपर जो फल प्राप्त होता है उस परमात्माको ही तुम ज्ञेयमात्रमें व्याप्त वास्तविक ज्ञान समझो। उस परमतत्त्वको योगिजन ही देखते हैं, विषयोंमें आसक्त अज्ञानी जन अपने आत्मामें स्थित उस परब्रह्मको नहीं देखते। यहाँ जो कुछ दिखायी देता है, उनमें सारी पृथ्वीसे बढ़कर जल है, जलसे बड़ा तेज है, तेजसे बड़ा पवन है, पवनसे बड़ा आकाश है, आकाशसे बड़ा मन है, मनसे बड़ी बुद्धि है, बुद्धिसे बड़ा काल है और कालसे बड़े भगवान् विष्णु हैं। उन्हींसे यह सारा जगत् हुआ है, उन विष्णुभगवान्का कोई आदि, अन्त या मध्य नहीं है। आदि, मध्य और अन्तसे रहित होनेके कारण वे अविनाशी भी हैं। वे सम्पूर्ण दुःखोंसे परे हैं। दुःख ही सान्त हुआ करता है। अविनाशी विष्णु ही परब्रह्म कहे जाते हैं। वे ही परमधाम और परमपद भी हैं। उनके पास पहुँचकर जीव कालके अधिकारसे निकलकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। परंतु दुर्भाग्य, साधनहीनता और कर्मजनित अन्तरायोंके कारण मनुष्योंको उनके पास पहुँचनेका मार्ग दिखायी नहीं देता। लोगोंकी विषयोंमें आसक्ति है, स्वर्गादि चिरस्थायी सुखोंपर भी उनकी दृष्टि लगी रहती है और वे परमात्मासे भिन्न अनेकों वस्तुओंको पानेके लिये उत्सुक रहते हैं। इसीसे उन्हें ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती। मनुष्य इस संसारमें जिन-जिन विषयोंको देखते हैं, उन्हींको पाना भी चाहते हैं। इस प्रकार वे विषयोंके पीछे ही भटकते रहते हैं, निर्विषय परमात्माको पानेकी उन्हें कभी इच्छा नहीं होती। भला, जो इन तुच्छ विषयोंमें फँसा हुआ है, वह परब्रह्म परमात्माको कैसे जान सकता है? वास्तवमें परमात्मा अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। हम ध्यानद्वारा सूक्ष्म हुए मनसे उसका अनुभव तो कर सकते हैं, किंतु वाणीसे वर्णन नहीं कर सकते। मनुष्यको चाहिये कि ज्ञानद्वारा बुद्धिको निर्मल करे, बुद्धिसे मनको शुद्ध करे और मनसे इन्द्रियोंका शोधन करे। तब वह अक्षर परमात्माको प्राप्त कर सकता है। वह परमात्मा अजन्मा है, पुण्यवानोंकी परमगति है, स्वयंसिद्ध है, सबकी उत्पत्ति और लयका स्थान है, अविनाशी है, सनातन है, आदि, मध्य और अन्तसे रहित है तथा अविचल है। उसे जान लेनेपर जीव अमृतत्व प्राप्त कर लेता है।



भगवान् विष्णुसे विश्वकी उत्पत्ति तथा वराह-अवतारका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! कमलनयन भगवान् विष्णु अविनाशी, समस्त जीवोंके उत्पत्ति और प्रलयके स्थान, अजेय और व्यापक हैं। वे नारायण, हृषीकेश, गोविन्द और केशव—इन नामोंसे भी विख्यात हैं। मैं उनके स्वरूपका तात्त्विक विवेचन सुनना चाहता हूँ।

भीष्मजी बोले—राजन्! मैंने यह प्रसंग जमदग्निनन्दन भगवान् परशुराम, देवर्षि नारद और कृष्णद्वैपायन व्यासके मुखसे सुना है। महर्षि असित, देवल, वाल्मीकि और मार्कण्डेयजी भी इस अद्भुत रहस्यका वर्णन किया करते हैं। भगवान् विष्णु सबके ईश्वर और नियन्ता हैं। वे पुरुष एवं विराट् आदि अनेकों नामोंमें प्रसिद्ध और सर्वव्यापक हैं। लोकमें ब्रह्मवेत्ता पुरुष उन शार्ङ्गधन्वा भगवान्के जिन चरित्रोंको जानते हैं तथा पुराणवेत्ता जिनका निरूपण करते हैं, वह सब मैं तुम्हें सुनाता हूँ। वे पुरुषोत्तम सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा हैं; उन्हींने अपने संकल्पद्वारा आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन पाँचों भूतोंकी रचना की है। उन सर्वभूतेश्वर भगवान् विष्णुने

पृथ्वीकी रचना करके जलमें शयन किया तथा अपने सम्पूर्ण तेजसे सम्पन्न होकर उन्होंने मनसे ही समस्त भूतोंके अग्रज भगवान् संकर्षणको उत्पन्न किया। ये भगवान् संकर्षण ही समस्त भूतोंके आधार हैं तथा भूत-भविष्यत् सभी प्राणियोंको धारण करते हैं।

इसके बाद उनकी नाभिसे एक सूर्यके समान तेजोमय कमल प्रकट हुआ। उससे सम्पूर्ण भूतोंके पितामह भगवान् ब्रह्मा प्रकट हुए। ब्रह्माजीके अङ्गकी कान्तिसे सारी दिशाएँ देदीप्यमान हो उठीं। इसी समय अन्धकारसे आदिदैत्य मधुका जन्म हुआ। भगवान् पुरुषोत्तमने ब्रह्माका हित करनेके लिये उस उग्रकर्मा असुरका वध कर डाला। उसका वध करनेके कारण ही भगवान्को समस्त देवता, दानव और मनुष्य 'मधुसूदन' कहते हैं। इसके पश्चात् ब्रह्माजीने मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और दक्ष—इन सात मानसपुत्रोंको उत्पन्न किया। इन सबमें बड़े मरीचिने मनहीसे कश्यपको उत्पन्न किया। महर्षि कश्यप बड़े ही तेजस्वी और ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। ब्रह्माजीने मरीचिसे भी बड़े दक्षको अपने अँगूठेसे उत्पन्न किया था। वह 'प्रजापति' पदपर प्रतिष्ठित हुआ। प्रजापति दक्षके पहले तेरह कन्याएँ हुई थीं, इनमें दिति सबसे बड़ी थी। समस्त धर्मोंको विशेषरूपसे जाननेवाले, परमयशस्वी मरीचिनन्दन कश्यप इन सब कन्याओंके पति हुए। इसके बाद दक्षने दस कन्याएँ और उत्पन्न कीं तथा उन्हें धर्मके साथ विवाह दिया। इन कन्याओंसे धर्मके वसु, रुद्र, विश्वेदेव, साध्य और मरुद्गणने जन्म लिया।

प्रजापति दक्षके इनसे छोटी सत्ताईस कन्याएँ और भी हुईं। उन सबके पति महाभाग चन्द्रमा हुए। कश्यपजीकी अन्यान्य स्त्रियोंसे गन्धर्व, अश्व, पक्षी, गौ, किम्पुरुष, मत्स्य, उद्भिज्ज और वनस्पति आदि उत्पन्न हुए। अदितिसे देवताओंमें श्रेष्ठ महाबली आदित्योंका जन्म हुआ। उन्हींमें विष्णुने वामनरूपसे जन्म लिया था। उनके पराक्रमसे देवताओंकी श्रीवृद्धि हुई और दानव तथा दैत्योंका पराभव हुआ। विप्रचित्ति आदि दानव दनुके पुत्र थे तथा दितिसे महाबली दैत्योंका जन्म हुआ था।

फिर श्रीभगवान्ने दिन, रात, ऋतु, पूर्वाह्न, अपराह्न आदि भेदसे कालकी व्यवस्था की तथा अपने संकल्पसे ही मेघ, स्थावर-जङ्गम एवं सम्पूर्ण पदार्थोंके सहित पृथ्वीको रचा। इसके पश्चात् उन्होंने अपने मुखसे ही सैकड़ों ब्राह्मण उत्पन्न किये तथा भुजाओंसे सैकड़ों क्षत्रिय, जंघाओंसे सैकड़ों वैश्य और चरणोंसे सैकड़ों शूद्रोंकी सृष्टि की। इस प्रकार चारों वर्णोंको उत्पन्न करके उन्होंने स्वयं ब्रह्माजीको सबका अध्यक्ष बनाया। महातेजस्वी ब्रह्माजी वेदविद्याके विधाता हुए। तत्पश्चात् उन्होंने भूत और मातृगणके अध्यक्ष विरूपाक्ष, पापियोंको दण्ड देनेवाले पितृराज यम, धनाध्यक्ष कुबेर और जलचरोंके स्वामी वरुणको उत्पन्न किया। इन सब देवताओंके अध्यक्ष-पदपर उन्होंने इन्द्रको नियुक्त किया।

उस समय मनुष्योंको यमराजका भय नहीं था। वे जितने दिनोंतक चाहते उतने समयतक ही जीवित रह सकते थे। संतान उत्पन्न करनेके लिये भी उन्हें मैथुन-धर्ममें प्रवृत्त होनेकी आवश्यकता नहीं थी। वे संकल्पमात्रसे प्रजाकी उत्पत्ति कर सकते थे। इसके बाद त्रेतायुग आनेपर भी मैथुन-धर्मका प्रचार नहीं हुआ। उस समय स्पर्श करनेसे ही प्रजा उत्पन्न हो जाती थी। द्वापरयुगमें मैथुनद्वारा प्रजा उत्पन्न होने लगी और कलियुगमें सब लोग दाम्पत्यपूर्वक रहने लगे।

राजन्! इस प्रकार यह सारा जगत् भगवान् कृष्णसे ही उत्पन्न हुआ है। यह प्रसंग सम्पूर्ण लोकोंका वृत्तान्त जाननेवाले देवर्षि नारदजीने सुनाया था। उन्होंने भी श्रीकृष्णकी नित्यता यथार्थरूपसे स्वीकार की है। इस प्रकार ये सत्यपराक्रमी कमलनयन भगवान् कृष्ण साधारण मनुष्य नहीं हैं, इनकी महिमा अचिन्त्य है।

राजा युधिष्ठिरने कहा—पितामह! भगवान् कृष्ण अविनाशी और सबके ईश्वर हैं। आप इनके प्रभाव और पूर्वकर्मोंका पूरा-पूरा वर्णन कीजिये। उन्हें सुननेकी मुझे बड़ी इच्छा है। इन्होंने जगत्प्रभु होकर भी तिर्यग्योनिमें किस निमित्तसे जन्म लिया था, वह सब मुझे बतानेकी कृपा करें।

भीष्मजी बोले—राजन्! एक बार मैं शिकार खेलता महर्षि मार्कण्डेयके आश्रमपर जा पहुँचा। वहाँ मुझे सहस्रों मुनि बैठे दिखायी दिये। मुनियोंने मधुपर्क समर्पित करके मेरा बड़ा आदर किया और मैंने भी उनका स्वागत-सत्कार स्वीकार करके अभिनन्दन किया। फिर महर्षि कश्यपने मुझे यह मनोहर कथा सुनायी। तुम इसे एकाग्रचित्तसे सुनो।

पूर्वकालमें नरकासुर आदि सहस्रों दानव क्रोध और लोभके वशीभूत तथा बलके मदसे मतवाले हो गये। उनके अनेकों और भी साथी युद्धके लिये आतुर हो उठे। उन्हें देवताओंका बढ़ा-चढ़ा वैभव असह्य हो गया। उनका उपद्रव यहाँतक बढ़ा कि उससे तंग आकर देवता और देवर्षिगण जहाँ-तहाँ छिपने लगे। देवताओंने देखा कि भयंकर आकृतियोंवाले महाबली दानवोंसे व्याप्त होकर पृथ्वी बड़ी व्याकुल हो रही है। उसका बोझा बहुत बढ़ गया है, शान्ति नष्ट हो गयी है और वह दुःखके भारसे दबी जा रही है। यह

देखकर उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ और उन्होंने ब्रह्माजीसे कहा, 'ब्रह्मन् ! दानवोंका उपद्रव बहुत बढ़ गया है, हम इस अत्याचारको कैसे सहें ?'

तब ब्रह्माजीने कहा, 'देवताओ ! मैंने पहले ही इस विपत्तिको दूर करनेका उपाय कर दिया है। इस समय दानवलोग वर पाकर बल और दर्पसे चूर हो रहे हैं। उन्हें अव्यक्तस्वरूप भगवान् विष्णुका भी कोई भय नहीं है। देखो, इस समय उन्होंने वराहरूप धारण किया है। इनको काबूमें करना देवताओंके लिये भी कठिन है। इस भूमिके नीचे जहाँ दानवलोग सहस्रोंकी संख्यामें रहते हैं, भगवान् वराह वहीं जाकर उन सबका संहार करेंगे।' ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर



सभी देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई।

तब महातेजस्वी भगवान् विष्णु वराहरूप धारण कर बड़े वेगसे पृथ्वीके नीचे दानवोंके पास गये और उन्हें भयभीत करते हुए बड़ा भीषण शब्द करने लगे। उनके गम्भीर गर्जनसे सारे लोक गूँज उठे तथा उनमें रहनेवाले इन्द्रादि देवता भी घबराने लगे। सारा संसार सन्नाटेमें आ गया, स्थावर-जङ्गम सभी भौंचक्के-से रह गये। उस भीषण नादसे मूर्च्छित होकर अनेकों दानव प्राणहीन हो-होकर गिरने लगे। भगवान्ने रसातलमें पहुँचकर उन देवशत्रुओंके मांस, मेद और हड्डियोंको अपने खुरोंसे रौंद डाला।

इसी समय सब देवता मिलकर ब्रह्माजीके पास गये और उनसे पूछा, 'भगवन् ! यह शब्द कैसा हो रहा है ? इसका रहस्य हमारी समझमें कुछ नहीं आ रहा है। यह कौन है और किसका यह शब्द है, जिसने सारे संसारको विह्वल कर दिया है ? इसके तेजसे तो सारे देवता और दानव मोहमुग्ध-से हो गये हैं।' इतनेहीमें भगवान् वराह ऊपर आये। ऋषिगण उनकी स्तुति कर रहे थे। उन्हें देखकर ब्रह्माजीने कहा, 'देवताओ ! सावधान रहो, ये तो सम्पूर्ण विघ्नोंको नष्ट करनेवाले भगवान् विष्णु ही हैं। ये सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा, उनके रक्षक और स्वामी हैं, महान् योगी हैं तथा आत्माओंके आत्मा हैं। देखो, ये महाबली और विशालकाय वराहरूपसे समस्त दैत्यराजोंको मारकर यहाँ पधार रहे हैं। इन्होंने जो अद्भुत कर्म किया है, उसे तो तुम सब मिलकर भी नहीं कर सकते थे। तुम्हें किसी प्रकारका संताप, भय या शोक नहीं करना चाहिये। ये ही सारे संसारके रचयिता, पालक और संहारकर्ता हैं। सारे लोकोंका उद्धार करते हुए इन्होंने ही यह महान् शब्द किया था। ये कमलनयन भगवान् ही सम्पूर्ण लोकोंके वन्दनीय, अविनाशी और समस्त भूतोंके आदि कारण एवं नियामक हैं।'



गुरु-शिष्यके संवादका उल्लेख करते हुए योग तथा सदाचारका निरूपण

राजा युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! अब आप मुझे मोक्षके प्रधान कारण योगका वास्तविक स्वरूप सुनाइये। उसे जाननेकी मुझे बड़ी इच्छा है।

भीष्मजी बोले—राजन् ! इस विषयमें गुरु-शिष्यका संवादरूप यह पुरातन इतिहास प्रसिद्ध है। एक बार कोई ब्रह्मनिष्ठ आचार्य विराजमान थे। वे बड़े ही तेजस्वी, महात्मा, सत्यनिष्ठ और जितेन्द्रिय थे। उनके पास एक बुद्धिमान्, कल्याणकामी, समाहितचित्त शिष्य आया। उसने उनके चरण-स्पर्श किये और हाथ जोड़कर कहा, 'भगवन् ! यदि आप मेरी सेवासे प्रसन्न हैं तो मेरे मनमें एक बड़ा भारी संदेह है, उसे दूर करनेकी कृपा करें। स्वामिन् ! मेरा और आपका इस संसारमें कहाँसे आना हुआ है ? मैं देखता हूँ कि समस्त भूतोंमें उनके उपादान कारण समान हैं तो भी उनमें किन्हींकी वृद्धि और किन्हींका ह्रास क्यों होता है तथा वैदिक, स्मार्त

और लोकमें जो वर्णाश्रमधर्मसम्बन्धी वाक्य प्रसिद्ध हैं? उनका किस प्रकार समन्वय हो सकता है, भगवन्! ये सब बातें मुझे स्पष्ट करके समझानेकी कृपा करें।'

गुरुने कहा—बेटा! सुनो, तुम बड़े बुद्धिमान् हो; तुमने जो बात पूछी है वह वेदोंका गूढ़ रहस्य है, यही अध्यात्मतत्त्व है और यही समस्त विद्या और शास्त्रोंका सर्वस्व है। विश्वात्मा वेदका मूलकारण जो ओंकार है वह वासुदेव, सत्य, ज्ञान, यज्ञ, तितिक्षा, दम और आर्जवस्वरूप है। वेदज्ञ-जन उसीको पुरुष, सनातन और विष्णु भी कहते हैं तथा वही जगत्के उत्पत्ति-प्रलय करनेवाला, अव्यक्त और सनातन ब्रह्म भी है। ये वृष्णिवंशोत्पन्न भगवान् कृष्ण भी वही हैं। तुम मुझसे इनका इतिहास सुनो। इन अतुलित तेजस्वी देवदेव भगवान् कृष्णका माहात्म्य ब्राह्मणको ब्राह्मणोंसे, क्षत्रियको क्षत्रियोंसे, वैश्यको वैश्योंसे और शूद्रको शूद्रोंसे सुनना चाहिये। तुम श्रीकृष्णका कल्याणकारी चरित सुननेके अधिकारी हो; इसलिये सावधान होकर सुनो। श्रीकृष्ण ही आदि-अन्तसे रहित काल-चक्र हैं। उन्हींके भीतर ये तीनों लोक चक्रके समान घूम रहे हैं। श्रीकृष्णको ही अक्षर, अव्यक्त, अमृत, सनातन परब्रह्म भी कहते हैं। ये अविनाशी परमात्मा ही पितर, देवता, ऋषि, यक्ष, राक्षस, नाग, असुर और मनुष्यादिकी रचना करते हैं। इसी प्रकार कल्पके आरम्भमें अपनी मायामें स्थित होकर ये वेद, शास्त्र और सनातन लोकधर्मोंको अभिव्यक्त करते हैं। जिस प्रकार ऋतुपरिवर्तनके साथ भिन्न-भिन्न ऋतुओंके लक्षण प्रकट होते रहते हैं, वैसे ही प्रत्येक युगमें तदनुरूप भावोंकी अभिव्यक्ति होती रहती है तथा कालक्रमसे उन युगादिमें जिस समय जो-जो वस्तु भासती है, उस समय लोकयात्राके द्वारा उसी-उसी प्रकारका ज्ञान उत्पन्न होता रहता है। कल्पके अन्तमें वेद और इतिहासोंका लोप हो जाता है, उन्हें सर्गके आरम्भमें भगवान् स्वयम्भूके आदेशसे महर्षिलोग तपद्वारा फिर प्राप्त कर लेते हैं। उस समय स्वयं भगवान् ब्रह्माजीको वेदका, बृहस्पतिजीको वेदाङ्गोंका, शुक्राचार्यको नीतिशास्त्रका, नारदजीको गन्धर्वविद्याका, भरद्वाजको धनुर्विद्याका, गार्ग्यको देवर्षियोंके चरित्रका और कृष्णात्रेयको चिकित्सा-शास्त्रका ज्ञान होता है। उसी समय अनेकों शास्त्रज्ञ न्याय आदि विभिन्न तन्त्रोंकी रचना करते हैं। उन्होंने युक्ति, शास्त्र और आचरणके द्वारा जो कुछ उपदेश किया है, तुम्हें वही करना चाहिये।

परब्रह्म अनादि और सबसे परे है, उसे देवता और ऋषि भी नहीं जानते। उसे तो एकमात्र जगत्-पालक भगवान् नारायण ही जानते हैं। नारायणसे ही ऋषि, मुख्य-मुख्य देवता और असुर तथा पुराने राजर्षियोंने उस ब्रह्मको जाना है। वह ब्रह्मज्ञान समस्त दुःखोंका परमौषध है। जब प्रकृति पुरुषसे अधिष्ठित विविध पदार्थोंकी रचने लगती है तो उससे कारणसहित जगत् उत्पन्न होता है। पहले अव्यक्त प्रकृतिसे बुद्धि उत्पन्न होती है, उससे अहंकार, अहंकारसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे तेज, तेजसे जल और जलसे पृथ्वी उत्पन्न होती है। ये आठ मूल प्रकृतियाँ हैं। सारा जगत् इन्हींमें स्थित है। इन्हींसे पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच विषय और एक मन—ये सोलह विकार होते हैं। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं; पाद, पायु, उपस्थ, हस्त और वाक्—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं; शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच विषय हैं तथा इन सबमें व्यापक जो सर्वगत चित्त है, वह मन है। मन सर्वरूप है। रसज्ञानके समय यह जिह्वारूप हो जाता है तथा बोलनेके समय यही वाक् कहा जाता है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंके साथ मिलकर उन-उनके रूपमें मन ही व्यक्त होता है। मनको सत्त्वगुणका कार्य कहा है और सत्त्वको अव्यक्तका। अतः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह आत्माको समस्त भूतोंके आत्मा अव्यक्त (मूल प्रकृति) में स्थित जाने।

इस प्रकार ये सम्पूर्ण पदार्थ प्रकृतिसे अतीत उस निरञ्जनदेवमें स्थित होकर सम्पूर्ण चराचर जगत्का निर्वाह कर रहे हैं। वह परमात्मा इन पदार्थोंसे सम्पन्न इस नौ द्वारोंवाले पवित्र नगरको व्याप्त करके इसमें शयन करता है, इसलिये उसे 'पुरुष' कहते हैं। वह पुरुष जरा-मरणसे रहित, व्यापक, सर्वज्ञत्वादि गुणोंवाला, सूक्ष्म और समस्त भूत एवं गुणोंका आश्रय है। जिस प्रकार अग्नि काष्ठमें व्याप्त रहनेपर भी दिखायी नहीं देती, उसी प्रकार आत्मा शरीरमें रहता तो है, किंतु दिखायी नहीं देता तथा जिस तरह यत्नपूर्वक मथनेपर काष्ठमें छिपी हुई अग्नि प्रकट हो जाती है, वैसे ही योगाभ्यासके द्वारा शरीरमें स्थित आत्माका साक्षात्कार हो सकता है। जिस प्रकार स्वप्नावस्थामें पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके सहित जीवात्मा इस शरीरको छोड़कर अन्यत्र चला जाता है, वैसे ही मृत्युके बाद भी वह अन्य शरीर ग्रहण कर लेता है। कर्मके द्वारा ही इस देहका बाध होता है, कर्मसे ही अन्य देहकी उपलब्धि होती है तथा अपने किये हुए प्रबल कर्मके द्वारा ही वह अन्य शरीरमें ले जाया जाता है।

राजन्! जङ्गम और स्थावर जो चार प्रकारके प्राणी हैं, वे अव्यक्तसे उत्पन्न हुए हैं और अव्यक्तमें ही समा जाते हैं। जिस प्रकार पीपलके बीजमें अव्यक्तरूपसे बड़ा भारी वृक्ष समाया हुआ है, किंतु वृक्षरूपमें आनेपर वह व्यक्त हो जाता है, वैसे ही इस सारे संसारकी अव्यक्तसे उत्पत्ति होती है।

जिस तरह लोहा अचेतन होनेपर भी चुम्बककी ओर खिंच जाता है वैसे ही शरीरके उत्पन्न होनेपर उसके स्वाभाविक संस्कार तथा अविद्या, काम, कर्मादि दूसरे गुण उसकी ओर खिंच आते हैं। आत्मा सबके पहले विद्यमान था। वह नित्य, सर्वगत, मनका भी हेतु और उपलक्षण है। अज्ञानरूप कर्म ही जगत्की उत्पत्तिका कारण बताया गया है। इन कारणोंसे युक्त होकर जीव कर्मोंका संग्रह करता है तथा कर्मोंसे वासना और वासनाओंसे पुनः कर्म होते हैं। इस प्रकार यह आदि-अन्तशून्य महान् संसारचक्र चलता रहता है। जिस प्रकार तेलीलोग तेलसे युक्त होनेके कारण तिलोंको पेरते हैं, उसी प्रकार यह सारा जगत् आसक्तिग्रस्त होनेके कारण अज्ञानजनित भोगोंद्वारा कर्मचक्रमें पेरा जा रहा है। जीव अहंकारके अधीन होकर तृष्णाके कारण कर्म करता है और वह कर्म आगामी कार्य्य-कारण-संयोगमें हेतु बन जाता है; अतः विवेकी पुरुषको क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका अन्तर जान लेना चाहिये। इन दोनोंके तादात्म्यका-सा अभ्यास हो जानेसे जीव ऐसा हो गया है कि उसे अपने शुद्ध स्वरूपका पता ही नहीं लगता।

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार गुरुदेवने शिष्यकी शङ्काका समाधान किया। जैसे भुने हुए बीजोंसे फिर अङ्कुर नहीं निकलते, उसी प्रकार ज्ञानाग्निसे दग्ध हुए अविद्यादि क्लेश फिर आत्माका स्पर्श नहीं कर सकते। कर्मनिष्ठ पुरुषोंको जैसे प्रवृत्तिधर्म ही अच्छा जान पड़ता है वैसे ही विज्ञाननिष्ठोंको ज्ञानाभ्याससे बढ़कर और कोई वस्तु नहीं जान पड़ती। वेदको जाननेवाले और वेदोक्त कर्मोंमें श्रद्धा रखनेवाले पुरुष विरले ही मिलते हैं। वैदिक कर्मोंका प्रयोजन स्वर्ग या मोक्ष है। इनमें अधिक महत्त्वपूर्ण होनेके कारण बुद्धिमान् लोग सबके द्वारा प्रशंसित निवृत्तिरूप मोक्षमार्गको ही चाहते हैं। सत्पुरुषोंने सदासे इसी मार्गको ग्रहण किया है, अतः यही अधिक निर्दोष है। यह वह बुद्धि है जिसका अनुसरण करनेसे मनुष्य परमगतिको प्राप्त कर लेता है। किंतु देहाभिमानी पुरुष इस मार्गमें नहीं जा सकता। वह तो क्रोध-लोभादि अनेकों राजस-तामस भावोंसे युक्त होकर अज्ञानवश बहुत-से बखेड़े बाँध लेता है।

अतः जो पुरुष देहाध्याससे छूटना चाहे उसे किसी प्रकारका अवैध आचरण नहीं करना चाहिये। वह अपने लिये निष्काम कर्मके द्वारा मोक्षका द्वार खोले, स्वर्गादि पुण्य-लोकोंके प्रलोभनमें न फँसे। जो पुरुष एक बार धर्ममार्गपर पैर रखकर फिर लोभवश काम-क्रोधके चक्करमें पड़कर अधर्म करने लगता है, वह अपने परिवारसहित नष्ट हो जाता है। कल्याणकामी पुरुषको रागके अधीन होकर शब्दादि विषयोंका सेवन नहीं करना चाहिये। विषयोंके कारण ही सत्त्वादि गुणोंके संसर्गसे हर्ष, क्रोध और विषादकी उत्पत्ति होती है। यह देह पाँच भूतोंका विकार है तथा सत्त्व, रज, तम तीन गुणोंसे युक्त है। इसमें यह किसकी स्तुति करे और किसे बुरा कहे। शब्दादि विषयोंमें तो केवल मूर्खोंकी ही आसक्ति होती है। जैसे वनमें रहनेवाले संन्यासी मिष्ठान्नादिकी इच्छा न करके शरीर-निर्वाहके लिये स्वादहीन रूखा-सूखा भोजन ही खा लेते हैं, इसी प्रकार संसारी (गृहस्थ) मनुष्यको भी परिश्रममें संलग्न होकर रोगीके औषधसेवनके समान केवल शरीर-निर्वाहके लिये परिमित एवं सात्त्विक भोजन करना चाहिये। उदारचित्त पुरुष सत्य, शौच, सरलता, त्याग, तेज, उत्साह, क्षमा, धैर्य, बुद्धि, मन और तपके प्रभावसे समस्त विषयात्मक भावोंपर दृष्टि रखते हुए शान्तिकी इच्छासे इन्द्रियोंको काबूमें करे। ऐसा न होनेसे ही जीव अज्ञानवश सत्त्व, रज और तमसे मोहित होकर निरन्तर चक्रकी तरह घूमते रहते हैं; अतः विचारशील पुरुष अज्ञानजनित दोषोंकी अच्छी तरह परीक्षा करे तथा इससे उत्पन्न हुए दुःख और अहंकारसे छूट जाय।

राजन्! अब मैं तुम्हें सत्त्वादि गुणोंके कार्य बताता हूँ, सुनो। प्रसन्नता, हर्षजनित प्रीति, असंदेह, धैर्य और स्मृति—ये सत्त्वगुणके कार्य हैं। काम, क्रोध, प्रमाद, लोभ, मोह, भय, क्लान्ति, विषाद, शोक, अप्रसन्नता, मान, दर्प और अनार्यता—ये रजोगुण और तमोगुणके कार्य हैं। इन दोषोंके गौरव-लाघवका विचार करके फिर इस बातकी परीक्षा करे कि इनमेंसे मुझमें कौन दोष कितना-कितना बना हुआ है? इस तरह विचार करते हुए इन सभी दोषोंसे छूटनेका प्रयत्न करे।



सब प्रकारके दोषोंसे छूटनेके लिये ज्ञान, वैराग्य और ब्रह्मचर्यका उपदेश

राजा युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! मनुष्यको किन दोषोंका मनसे त्याग करना चाहिये, किन्हें बुद्धिसे शिथिल करना चाहिये, कौन दोष बारंबार आ जाते हैं और कौन मोहवश फलहीन-से जान पड़ते हैं? तथा बुद्धिमान् पुरुष अपनी बुद्धिसे युक्तिपूर्वक किन दोषोंके बलाबलका विचार करे?

भीष्मजी बोले—राजन्! अपने मूल कारण अज्ञानके सहित दोषोंका नाश हो जानेपर पुरुष विशुद्धचित्त होकर संसारसे मुक्त हो जाता है। जिस प्रकार छैनीकी धार लोहेकी जंजीरको काटकर नष्ट हो जाती है उसी प्रकार ध्यानसंस्कृत बुद्धि तमोगुणजनित दोषोंको नष्ट करके उनके साथ स्वयं भी शान्त हो जाती है। यद्यपि रजोगुण, तमोगुण और काम तथा मोहसे रहित शुद्ध तत्त्व—ये तीनों ही गुण देहके मूल कारण हैं तथापि आत्मवान् पुरुषके लिये ब्रह्मप्राप्तिका साधन तो सत्त्वगुण ही है। अतः संयमशील पुरुषको रजोगुण-तमोगुणसे दूर रहना चाहिये। इन दोनोंसे छूट जानेपर बुद्धि निर्मल हो जाती है। मनुष्य जब रजोगुणके अधीन रहता है तो तरह-तरहके अधर्मयुक्त कर्म करता है, उसमें दीनता आ जाती है तथा वह अर्थयुक्त भोगोंका सेवन करता है। तमोगुणके अधीन होनेपर वह लोभ और क्रोधजनित कर्मोंमें फँसा रहता है, हिंसामें उसका विशेष अनुराग हो जाता है और हर समय निद्रा-तन्द्रासे घिरा रहता है तथा सत्त्वगुणका आश्रय लेनेवाला पुरुष शुद्ध और सात्त्विक भावोंको ही देखता है। वह बड़ा निर्मल और कान्तिमान् होता है तथा उसमें श्रद्धा और विद्याकी प्रधानता रहती है।

राजन्! रजोगुण और तमोगुणसे मोहकी उत्पत्ति होती है और उससे क्रोध, लोभ, भय एवं दर्प उत्पन्न होते हैं। इन सबका नाश करनेसे ही मनुष्य शुद्ध होता है। ऐसा शुद्धचित्त पुरुष ही उस अक्षय, अविनाशी, सर्वव्यापक, अव्यक्त परमात्माका साक्षात्कार कर सकता है। उसीकी मायासे आवृत हो जानेपर मनुष्योंके ज्ञान और विवेकका नाश हो जाता है तथा वे अज्ञान और मोहके अधीन होकर क्रोधके चंगुलमें फँस जाते हैं। क्रोधसे काम उत्पन्न होता है और फिर लोभ, मोह, मान, दर्प एवं अहंकारका उन्मेष हो जाता है तथा अहंकारसे कर्ममें प्रवृत्ति होने लगती है। इस प्रकार जब कर्म होने लगते हैं तो जन्म-मरणका निमित्त भी बन ही जाता है। तथा जिसे जन्म लेना है उसे शुक्र और शोणितका संयोग होनेपर मल-मूत्रसे भरे हुए, रक्तसे लथपथ गर्भस्थानमें रहनेकी नौबत भी आ ही जाती है। अतः तृष्णासे तिरस्कृत और काम-क्रोधादिसे बँधे हुए पुरुषको यदि उनसे पार पानेकी इच्छा हो तो वह प्रयत्नपूर्वक स्त्रियोंके संसर्गसे दूर रहे; क्योंकि स्त्रियाँ भयंकर कृत्याके समान हैं, ये अज्ञानी मनुष्योंको मोहमें डाल देती हैं। स्त्रीसे ही उसके रज और अपने वीर्यद्वारा संतानकी उत्पत्ति होती है। किंतु जिस प्रकार मनुष्य अपने अङ्गसे उत्पन्न हुए जूओंको त्याग देते हैं, उसी प्रकार अपने न होकर अपने कहलानेवाले इन पुत्रादिको भी त्याग देना चाहिये। इस देहसे ही स्वभावतः स्वेदके द्वारा जूओंकी उत्पत्ति होती है और कर्मवश वीर्यद्वारा पुत्र उत्पन्न होते हैं। अतः बुद्धिमान् पुरुषको तो दोनोंहीकी उपेक्षा करनी चाहिये। यह बात ध्यानमें रखो कि दुःखकी प्राप्ति तो शरीरके ग्रहणमात्रसे निश्चित है, किंतु उसकी वृद्धि शरीरमें अभिमान करनेसे होती है। अभिमानके त्यागसे दुःखका अन्त होता है और जिसका दुःख दूर हो जाता है, वही मुक्त है।

राजन्! अब मैं तुम्हें शास्त्रदृष्टिसे मोक्षका उपाय बताता हूँ। जो पुरुष तत्त्वज्ञानका अभ्यास करता है, वह परमगति प्राप्त कर लेता है। जितने प्राणी हैं उनमें मनुष्य श्रेष्ठ है, मनुष्योंमें द्विज और द्विजोंमें वेदज्ञ श्रेष्ठ है। वेदज्ञ ब्राह्मण समस्त भूतोंके आत्मा, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होते हैं। उन्हें परमार्थतत्त्वका पूर्ण निश्चय होता है। नेत्रहीन पुरुष मार्गमें अकेला होनेपर जैसे तरह-तरहके दुःख पाता है वैसे ही ज्ञानहीन पुरुषको भी संसारमें अनेकों दुःख सहने पड़ते हैं। इसलिये ज्ञानी ही सबसे बढ़कर है।

वाणी, शरीर और मनकी पवित्रता, क्षमा, सत्य, धैर्य और स्मृति—ये श्रेष्ठ गुण प्रायः सभी धर्मोंके मनुष्योंमें देखे जाते हैं; किंतु ब्रह्मचर्यको तो शास्त्रोंमें ब्रह्मका ही स्वरूप माना है। यह सब धर्मोंमें श्रेष्ठ है, इसके द्वारा पुरुष परम गति प्राप्त कर सकते हैं। जो पुरुष इस व्रतका अच्छी तरह पालन करता है, उसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है, मध्यम ब्रह्मचारीको स्वर्ग मिलता है और कनिष्ठ विद्वान् ब्राह्मणका जन्म पाता है। ब्रह्मचर्य बड़ा कठिन व्रत है; इसका उपाय सुनो। ब्राह्मणको चाहिये कि जब रजोगुणकी वृत्ति बढ़ने लगे तो उसे रोक दे, स्त्रियोंकी बातें न सुने तथा उन्हें वस्त्रहीन अवस्थामें न देखे; क्योंकि यदि किसी प्रकार उनपर दृष्टि चली जाती है तो दुर्बलचित्त मनुष्यको कामका विकार हो जाता है। ब्रह्मचारीको यदि काम-विकार हो जाय तो उसे कृच्छ्रव्रत करना चाहिये और यदि स्वप्नमें वीर्य स्खलित हो तो जलमें गोता लगाकर तीन बार अघमर्षण मन्त्र जपना चाहिये। विवेकी पुरुषको इस प्रकार संयत और विवेकयुक्त चित्तसे अपने अन्तःकरणमें स्थित काम-विकारको नष्ट कर देना चाहिये। हृदयमें एक मनोबहा नामकी नाडी है, वह-संकल्पके द्वारा सारे शरीरसे वीर्य खींचकर बाहर निकाल देती है। जिस प्रकार दूधमें मिले हुए घीको मथानीसे मथकर अलग किया जाता है, वैसे ही शरीरमें व्याप्त वीर्य संकल्पकी मथानीसे अलग हो जाता है। स्वप्नमें वस्तुतः स्त्रीसंसर्गका अभाव होनेपर भी केवल संकल्पसे ही मनोबहा नाडी वीर्यको बाहर निकाल देती है।

जो पुरुष यह जानते हैं कि वीर्यकी गति ही वर्णसंकरता

करनेवाली है, वे विरक्त और निर्दोष हो जाते हैं तथा उन्हें पुनः देहकी प्राप्ति नहीं होती। वे केवल देहनिर्वाहके लिये कर्म करते हैं। मनके द्वारा निर्विकल्प अवस्थामें स्थित हो जाते हैं और प्राणोंको सुषुम्णामार्गमें ले जाकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करते हैं तथा जिन्हें ऐसा बोध हुआ है कि विश्वरूपमें मन ही स्थित है, उन महात्माओंका प्रणवोपासनापरिशुद्ध मन प्रकाशपूर्ण और निर्मल हो जाता है। अतः मनको वशमें करनेके लिये मनुष्यको निष्काम कर्म करने चाहिये। इससे वह रजोगुण-तमोगुणसे छूटकर यथेच्छ गति प्राप्त कर सकता है।



मुक्तिके लिये प्रयत्न करनेका उपदेश

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! विषय-भोगोंमें आसक्त रहनेवाले प्राणी सदा दुःख भोगते रहते हैं। जो महात्मा उनमें आसक्त नहीं होते, वे ही परम गतिको प्राप्त होते हैं। यह जगत् जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्थाके दुःखों, नाना प्रकारके रोगों तथा मानसिक चिन्ताओंसे पूर्ण है—ऐसा समझकर बुद्धिमान् पुरुषको मोक्षके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये। वह मन, वाणी और शरीरसे पवित्र रहकर अहंकारको त्याग दे तथा शान्तचित्त, ज्ञानवान् एवं निष्काम होकर भिक्षावृत्तिसे जीवन-निर्वाह करता हुआ सुखपूर्वक विचरे। जीवोंपर दया करते रहनेसे भी उनके प्रति मनमें आसक्ति पैदा हो जाती है—ऐसा सोचकर दया और ममताकी भी उपेक्षा कर दे तथा यह जानकर संतोष कर ले कि सारा संसार अपने-अपने कर्मोंका ही फल भोगता है। मनुष्य शुभ या अशुभ जैसा भी कर्म करता है, उसका फल उसे स्वयं भोगना पड़ता है, इसलिये बुद्धि और क्रियाके द्वारा सदा शुभ-कर्मोंका ही आचरण करे। किसी भी जीवकी हिंसा न करना, सत्य बोलना, सब प्राणियोंके प्रति सरल होना, क्षमा करना और प्रमादसे बचना—इतने गुण जिस पुरुषमें मौजूद हों, वही सुखी होता है।

जो इस अहिंसा आदिको सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये सुखद और दुःखसे छुड़ानेवाला परम धर्म समझता है, वही सर्वज्ञ है और वही सुखी होता है। इसलिये बुद्धिके द्वारा मनको समाहित करके किसी भी प्राणीके प्रति राग-द्वेष न करे। किसीका अहित न सोचे। दुर्लभ वस्तुकी कामनाएँ न करे तथा नश्वर पदार्थोंकी चिन्ता छोड़ दे और सफल प्रयत्न करके मनको ज्ञानके साधन (श्रवण-मननादि) में लगा दे। वेदान्त-वाक्योंके श्रवण तथा सुदृढ़ प्रयत्नसे उत्तम ज्ञानकी प्राप्ति होती है। जो सूक्ष्म धर्मको देखता और सत्यवचन बोलना चाहता हो, उसको ऐसी बात कहनी चाहिये जो सत्य होनेके साथ ही हिंसा, परनिन्दा, कपट, कटुता, क्रूरता और चुगली आदि दोषोंसे रहित हो। इस तरहकी वाणी भी बहुत थोड़ी मात्रामें और सावधान चित्तसे ही बोलनी चाहिये। संसारका सारा व्यवहार वाणीसे ही बँधा हुआ है, इसलिये अच्छी वाणी ही बोले और यदि वैराग्य हो तो बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके अपने किये हुए बुरे कर्मोंको भी लोगोंसे कह दे। (क्योंकि प्रकाशित कर देनेसे पापकी मात्रा घट जाती है।) रजोगुणसे प्रभावित हुई इन्द्रियोंकी प्रेरणासे मनुष्य सकाम कर्मोंमें प्रवृत्त होता है और इस लोकमें कष्ट भोगकर अन्तमें नरकगामी होता है; इसलिये मन, वाणी और शरीरसे ऐसा काम करे जिससे अपनेको धैर्य मिले।

जैसे (पुलिसके डरसे भागता हुआ) चोर जब चोरीके मालका बोझा उतार फेंकता है तो जहाँ उसे सुख मिलनेकी आशा होती है उस दिशामें आसानीके साथ भाग जाता है; उसी प्रकार मनुष्य राजस और तामस कर्मोंको त्याग देनेपर शुभगति प्राप्त कर सकता है। जो सब प्रकारके संग्रहसे रहित, निरीह, एकान्तवासी, अल्पाहारी, तपस्वी और जितेन्द्रिय है, जिसके सम्पूर्ण क्लेश ज्ञानाग्निसे दग्ध हो गये हैं तथा जो योगानुष्ठानका प्रेमी और मनको अधीन रखनेवाला है, वह अपने स्थिर चित्तके द्वारा निःसंदेह परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। बुद्धिमान् एवं धीर पुरुषको चाहिये कि वह बुद्धिको अपने वशमें करे। फिर बुद्धिके द्वारा मनको और मनके द्वारा विषयपरायण इन्द्रियोंको काबूमें रखे। इस प्रकार जब वह मनको वशमें करके इन्द्रियोंको अपने अधीन कर लेता है, उस समय उसकी इन्द्रियाँ प्रसन्न होकर ईश्वराभिमुख हो जाती हैं। फिर उनके साथ मनकी एकता होनेपर अन्तःकरणमें ब्रह्मका प्रकाश छा जाता है।

अतः योगशास्त्रोक्त नियमोंके अनुसार आचरण करना चाहिये और योग-साधना करते समय जिस उपायसे भी चित्तवृत्ति स्थिर हो सके, उसका पालन करते रहना चाहिये। अन्नके दाने, उड़द, तिलकी खली, साग, जौकी लप्सी, सत्तू, मूल, फल—जो कुछ भी भिक्षामें मिल जाय, उसीसे अपना निर्वाह करे। देश, काल और नियमके अनुसार सात्त्विक आहार करे। साधन आरम्भ कर देनेपर उसे बीचमें न रोके। जैसे आग धीरे-धीरे तेज की जाती है, उसी प्रकार ज्ञानके

साधनको शनैः-शनैः प्रदीप्त करे। ऐसा करनेसे ज्ञान सूर्यकी भाँति प्रकाशित होने लगता है तथा ज्ञानी पुरुष काल, जरा और मृत्युको जीतकर अक्षर, अविकारी, अमृत एवं सनातन ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है।

निष्कलङ्क ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको स्वप्नके दोषोंपर दृष्टि रखते हुए निद्राका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि स्वप्नमें जीवको प्रायः रजोगुण और तमोगुण घेर लेते हैं, ज्ञानका अभ्यास तथा तत्त्वका विचार करनेसे जागनेकी आदत होती है; तथा जो ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह तो सदा जाग्रत् ही रहता है। इन्द्रियोंके थक जानेपर सबको नींद आती है, किंतु उस समय (यद्यपि इन्द्रियोंका लय हो जाता है तो) भी मन जाग्रत् रहता है, इसीलिये तरह-तरहके सपने दिखायी देते हैं। जैसे जाग्रत्-अवस्थामें काम-काजमें फँसे हुए मनुष्यके संकल्प मनोराज्यकी ही विभूति हैं, उसी प्रकार स्वप्नके भाव भी मनसे ही सम्बन्ध रखते हैं। कामनाओंमें आसक्त पुरुष असंख्य जन्मोंकी वासनाओंको स्वप्नमें अनुभव करता है। उसके मनमें जो-जो भाव छिपे होते हैं, उन सबको अन्तर्यामी जानता रहता है। पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार यदि सत्त्व, रज या तम कोई भी गुण प्राप्त होता है तो उससे मनपर जैसे संस्कार पड़ते हैं, सूक्ष्मभूतोंकी प्रेरणासे स्वप्नमें वैसे ही आकार प्रकट हो जाते हैं। उस स्वप्नका दर्शन होते ही सात्त्विक, राजस और तामस गुण उसे सुख-दुःखका अनुभव करानेके लिये आ पहुँचते हैं। जाग्रत्-अवस्थामें इन्द्रियोंके द्वारा हृदयमें जो-जो संकल्प उठते हैं, स्वप्नमें भी यह मन उसी-उसी संकल्पको प्रसन्नताके साथ पूर्ण होता देखा करता है। आत्माके ही प्रभावसे आकाश आदि सम्पूर्ण भूतोंमें मनकी पहुँच होती है, उसे कहीं भी रुकावट नहीं होती। अतः आत्माको अवश्य जानना चाहिये; क्योंकि आकाश आदि सभी देवता आत्मामें ही स्थित हैं। तपस्यासे मनके अज्ञानान्धकारका नाश हो जाता है, फिर उसमें सूर्यकी भाँति ज्ञानमय प्रकाश फैल जाता है। देवताओंने तपका आश्रय लिया है और असुरोंने तपस्यामें विघ्न डालनेवाले दम्भ-दर्प आदि तम (अज्ञान) को अपनाया है। किंतु यह ब्रह्मतत्त्व गुणप्रधान देवता और असुरोंसे गुप्त है, उन्हें इसका पता नहीं है; क्योंकि तत्त्ववेत्ता पुरुष इसे ज्ञानस्वरूप बतलाते हैं। सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण—ये ही देवता और असुरोंके गुण हैं। इनमें सत्त्वगुण तो देवताओंका है और शेष दोनों गुण असुरोंके हैं। ब्रह्म इन सभी गुणोंसे अतीत, अक्षर, अमृत, स्वयंप्रकाश और ज्ञानस्वरूप है। शुद्ध अन्तःकरणवाले महात्मा ही उसे जान पाते हैं। जो जानते हैं, वे परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं। तत्त्वदर्शी महापुरुष ही ब्रह्मके विषयमें कुछ युक्तियुक्त बातें कह सकते हैं अथवा मन और इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे हटाकर एकाग्र होनेसे भी उस अक्षर ब्रह्मका ज्ञान होता है।

जो मनुष्य परम ऋषि भगवान् नारायणके बताये अनुसार व्यक्त और अव्यक्त तत्त्वको नहीं जानता, उसे परब्रह्मका ज्ञान नहीं है। व्यक्त (स्थूल जगत्) मृत्युके मुखमें पड़नेवाला है और अव्यक्त अमृतपद है। प्रजापति ब्रह्माजीने प्रवृत्तिरूप धर्मका उपदेश दिया है; किंतु प्रवृत्ति-धर्मके पालनसे संसारमें पुनः जन्म लेना पड़ता है, अतः वह पुनरावृत्तिरूप है और निवृत्ति-धर्मसे परम गति प्राप्त होती है, इसलिये वह मोक्षस्वरूप है। शुभाशुभ कर्मोंके ज्ञाता, निवृत्तिपरायण एवं सदा तत्त्व-चिन्तनमें लगे रहनेवाले मुनियोंको ही उस उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है।

इस प्रकार विचारशील पुरुषको चाहिये कि वह पहले अव्यक्त प्रकृति और पुरुष (क्षेत्रज्ञ) को जाने; फिर इन दोनोंसे श्रेष्ठ जो परम महान् ईश्वर-तत्त्व है, उसका विशेष ज्ञान प्राप्त करे। प्रकृति त्रिगुणमयी है। सृष्टि करना उसका स्वभाव है। क्षेत्रज्ञका स्वरूप इसके विपरीत है। वह स्वयं गुणोंसे रहित और प्रकृतिके कार्योंका द्रष्टा है। जीव और ईश्वर दोनों चेतन हैं; गुणादि लिङ्गोंसे रहित होनेके कारण ये इन्द्रियोंके विषय नहीं होते। दोनों ही स्थूल पदार्थोंसे सर्वथा भिन्न हैं। प्रकृति और पुरुषके संयोगसे चराचर जगत्की उत्पत्ति होती है। जीव इन्द्रियोंसे कर्म करनेके कारण कर्ता कहलाता है।

जो दिव्य सम्पत्ति अर्थात् ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करना चाहे, उस पुरुषको अपना मन शुद्ध रखना चाहिये और शरीरसे कठोर नियमोंका पालन करते हुए निष्काम तपका अनुष्ठान करना चाहिये। आन्तरिक तप चैतन्यमय प्रकाशसे युक्त है, उसमें तीनों लोक व्याप्त हैं। सूर्य और चन्द्रमा भी तपसे ही आकाशमें प्रकाशित हो रहे हैं। लोकमें तप शब्द विशेष प्रसिद्ध है। तपका फल है प्रकाश और ज्ञान। रजोगुण और तमोगुणका नाश करनेवाला निष्काम कर्म ही तप है। ब्रह्मचर्य और अहिंसा शारीरिक तप है। वाणी और मनका संयम मानसिक तप कहलाता है।

वैदिक विधिको जानने और उसके अनुसार चलनेवाले द्विजातियोंका अन्न ग्रहण करना उत्तम माना गया है। ऐसे अन्नका नियमपूर्वक आहार करनेसे रजोगुणसे उत्पन्न होनेवाला पाप शान्त हो जाता है तथा साधककी इन्द्रियाँ विषयोंकी ओरसे विरक्त हो जाती हैं। इसलिये भिक्षामें उतना ही अन्न ग्रहण करना चाहिये, जितना जीवन-रक्षाके लिये

वाञ्छनीय हो। इस प्रकार योगयुक्त मनके द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसे जीवनके अन्त समयतक पूरी शक्ति लगाकर धीरे-धीरे प्राप्त ही कर लेना चाहिये। धैर्य नहीं खोना चाहिये।

कुछ योगी आसनकी दृढ़तासे शरीरको धारण किये हुए बुद्धिके द्वारा मनको विषयोंसे हटाते हैं और इन्द्रियगोलकोंसे अपना सम्बन्ध त्यागकर उनकी अपेक्षा सूक्ष्म होनेके कारण प्राण और इन्द्रियोंको अपनेसे अभिन्न समझते हैं। कोई-कोई शास्त्रमें बताये हुए क्रमसे उत्तरोत्तर सूक्ष्म तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करते हुए पराकाष्ठातक पहुँचकर बुद्धिके द्वारा ब्रह्मका अनुभव करते हैं। कोई योगके द्वारा अन्तःकरणको पवित्र करके अपनी महिमामें स्थित हुए उस परम पुरुषको प्राप्त होते हैं, जो अव्यक्तसे भी श्रेष्ठ है। इसी तरह कोई तो ध्यान-धारणाके द्वारा सगुण ब्रह्मकी उपासना करते हैं और कोई उस परमदेवका चिन्तन करते हैं जिसे बिजलीके समान सहसा प्रकाशित होनेवाला और अक्षर कहा गया है। कुछ लोग तपस्यासे अपने पापोंको दग्ध करके अन्तकालमें ब्रह्मकी प्राप्ति करते हैं। इन सभी महात्माओंको उत्तम गति प्राप्त होती है। जिनका मन ज्ञानके साधनमें लगा हुआ है, वे मर्त्यलोकके बन्धनसे छूटकर रजोगुणसे रहित एवं ब्रह्मभूत हो परम गति (मोक्ष) प्राप्त कर लेते हैं। वेदको जाननेवाले विद्वानोंने इस प्रकार ब्रह्मको प्राप्त करानेवाले धर्मका वर्णन किया है। अपने-अपने ज्ञानके अनुसार उपासना करनेवाले सभी साधकोंकी उत्तम गति होती है। जिन्हें रागादि दोषोंसे रहित सुदृढ़ ज्ञान प्राप्त होता है, उनकी मुक्ति हो जाती है। जो सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे युक्त, अजन्मा, दिव्य एवं अव्यक्त नामवाले विष्णुभगवान्‌की भक्तिभावसे शरण लेते हैं, वे ज्ञानानन्दसे तृप्त और निष्काम हो जाते हैं तथा अपने अन्तःकरणमें श्रीहरिको स्थित जानकर अव्ययस्वरूप हो जाते हैं, उन्हें फिर इस संसारमें नहीं आना पड़ता। जो प्रकृति और उसके कार्यको तथा सनातन पुरुषको ठीक-ठीक जानते हैं, वे तृष्णासे रहित होकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। संसारको शरण देनेवाले ऋषिश्रेष्ठ भगवान् नारायणने जीवोंपर दया करनेके लिये ही इस अमृतमय ज्ञानको प्रकाशित किया है।



महर्षि पञ्चशिखका राजा जनकको उपदेश

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! मोक्षधर्मको जाननेवाले मिथिलानरेश जनकने मानवीय भोगोंका परित्याग करके किस प्रकारके आचरणसे मोक्ष प्राप्त किया था?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! सुनो; यह उस समयकी बात है, जब मिथिलामें जनकवंशी राजा जनदेवका राज्य था। जनदेव सदा ब्रह्मकी प्राप्तिका ही उपाय सोचा करते थे। उनके दरबारमें सौ आचार्य बराबर रहा करते थे, जो उन्हें भिन्न-भिन्न आश्रमोंके धर्मोंका उपदेश देते रहते थे। एक बार कपिलाके पुत्र महामुनि पञ्चशिख सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए मिथिलामें आ पहुँचे। वे संन्यास-धर्मके ज्ञाता और तत्त्वज्ञानी थे। उन्हें सब सिद्धान्तोंका ज्ञान था। उनके मनमें किसी प्रकारका संदेह नहीं था। वे सदा निर्द्वन्द्व होकर विचरा करते थे। ऋषियोंमें अद्वितीय थे। कामना तो उन्हें छू भी नहीं गयी थी। वे अपने उपदेशसे मनुष्योंके हृदयमें अत्यन्त दुर्लभ सनातन सुखकी प्रतिष्ठा करना चाहते थे। सांख्यके विद्वान् तो उन्हें साक्षात् प्रजापति कपिल मुनिका ही स्वरूप समझते हैं। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो सांख्यशास्त्रके प्रवर्त्तक भगवान् कपिल स्वयं पञ्चशिखके रूपमें आकर लोगोंको आश्चर्यमें डाल रहे हैं। वे मुनिवर आसुरिके प्रथम शिष्य और दीर्घजीवी थे। उन्होंने एक हजार वर्षोंतक मानस-यज्ञका अनुष्ठान किया था। कपिला नामकी एक ब्राह्मणी थी, जिसने अपना दूध पिलाकर पञ्चशिखको पाला था। उसका स्तन-पान करनेके कारण वे उसके पुत्र कहलाये। इसीलिये उनका नाम कापिलेय हो गया और उन्होंने ब्रह्ममें निष्ठा रखनेवाली शुद्ध बुद्धि भी प्राप्त की। पञ्चशिखके कपिलापुत्र कहलानेका यही वृत्तान्त है।

धर्मज्ञ पञ्चशिखने उत्तम ज्ञान प्राप्त किया था। वे राजा जनकको सौ आचार्योंपर समान भावसे अनुरक्त जानकर उनके दरबारमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपने युक्ति-युक्त वचनोंसे उन सब आचार्योंको मोहित कर दिया। उस समय महाराज जनक कपिलानन्दन पञ्चशिखका ज्ञान देखकर उनके प्रति आकृष्ट हो गये और अपने सौ आचार्योंको छोड़कर उन्हींके पीछे चल दिये। तब मुनिवर पञ्चशिखने राजाको धर्मानुसार चरणोंमें पड़े देख उन्हें योग्य अधिकारी समझकर सांख्यमतके अनुसार मोक्षधर्मका उपदेश दिया। पहले तो उन्होंने जन्मके कष्टोंका वर्णन किया, फिर कर्मके क्लेशोंको बताया। तत्पश्चात् ब्रह्मलोकतकके भोगोंकी क्षणभङ्गुरता और दुःखरूपताका प्रतिपादन करके सबकी ओरसे विरक्त होनेका उपदेश दिया। उन्होंने कहा—'जो एक दिन नष्ट होनेवाला है, जिसके जीवनका कुछ ठिकाना नहीं है, ऐसे अनित्य शरीरको



इन बन्धु-बान्धवों तथा स्त्री-पुत्रादिसे क्या लाभ है? यह सोचकर जो मनुष्य इन सबको क्षणभरमें त्यागकर चल देता है, उसे मृत्युके बाद फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु—ये सदा इस शरीरकी रक्षा करते रहते हैं—इस बातको अच्छी तरह समझ लेनेपर इसके प्रति आसक्ति कैसे हो सकती है? जो एक दिन मौतके मुखमें पड़नेवाला है, उस शरीरको सुख कहाँ?'

पञ्चशिखका यह उपदेश, जो भ्रम और वञ्चनासे रहित, सर्वथा निर्दोष और आत्माका ज्ञान करानेवाला था, सुनकर राजा जनकको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पुनः प्रश्न करनेका विचार किया।

जनकने पूछा—भगवन्! ज्ञानीको मृत्युके बाद फिर संसारकी प्राप्ति होती है या नहीं? यदि उस समय उसकी कोई विशेष संज्ञा नहीं रहती तो ज्ञान और अज्ञानका फल ही क्या होगा?

ऐसा प्रश्न सुनकर ज्ञानी महात्मा पञ्चशिखको निश्चय हो गया कि राजा जनककी बुद्धिपर अन्धकार छा रहा है; इन्हें आत्माके नाशका भ्रम-सा हो गया है, इसीलिये ये बहुत घबराये हुए हैं। उनकी यह अवस्था जानकर वे महर्षि उन्हें समझाते हुए कहने लगे—'राजन्! मुक्तावस्थामें आत्माका न तो नाश होता है और न वह किसी विशेष आकारमें ही परिणत होता है। यह जो प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाला संघात है, यह भी शरीर, इन्द्रिय और मनका समूहमात्र है। यद्यपि ये पृथक्-पृथक् हैं, तो भी एक-दूसरेका आश्रय लेकर कर्ममें प्रवृत्त होते हैं। प्राणियोंके शरीरमें उपादानके रूपमें आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँच धातु हैं। ये स्वभावसे ही एकत्र होते और बिलग हो जाते हैं। इन्हीं पाँच तत्त्वोंके मेलसे नाना प्रकारके देहोंका निर्माण हुआ है। आँख, कान, नाक, रसना और त्वचा—ये पाँच इन्द्रियाँ कहलाती हैं; इनकी उत्पत्तिका कारण मन है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द तथा मूर्त द्रव्य—ये छः गुण जीवकी मृत्युके पहलेतक इन्द्रियजन्य ज्ञानके साधक होते हैं। इनके साथ इन्द्रियोंका संयोग होनेपर ही भिन्न-भिन्न विषयोंका ज्ञान होता है।

'जो लोग गुणोंके संघातरूप इस शरीरको ही आत्मा समझ लेते हैं, उन्हें मिथ्याज्ञानके कारण अनन्त दुःखोंकी प्राप्ति होती है और उनकी परम्परा कभी शान्त नहीं होती। इसके विपरीत जिनकी दृष्टिमें यह दृश्य प्रपञ्च अनात्मा सिद्ध हो चुका है, उनकी इसके प्रति न ममता होती है न अहंता; फिर उन्हें दुःख कैसे प्राप्त हो? क्योंकि अब तो दुःखोंके लिये कोई आधार ही नहीं रह जाता। अब मैं तुम्हें वह शास्त्र सुना रहा हूँ, जिसमें त्यागकी प्रधानता है। ध्यान देकर सुनो। यह तुम्हारे मोक्षमें सहायक होगा। जो लोग मुक्तिके लिये प्रयत्नशील हों, उन सबको चाहिये कि सकाम कर्म और द्रव्य आदिका त्याग करें। जो लोग त्याग किये बिना व्यर्थ ही विनीत होनेका दावा करते हैं, उन्हें क्लेश-पर-क्लेश उठाने पड़ते हैं। शास्त्रोंमें द्रव्यका त्याग करनेके लिये यज्ञ आदि कर्म, भोगका त्याग करनेके लिये व्रत, दैहिक सुखोंके त्यागके लिये तप और सब कुछ त्यागनेके लिये योगके अनुष्ठानकी आज्ञा दी गयी है। यही त्यागकी सीमा है। सर्वस्वत्यागका यह एक मात्र मार्ग ही दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिये उत्तम बताया गया है। इसका आश्रय न लेनेवालोंको दुर्गति भोगनी पड़ती है।

'पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन—ये सब मिलकर ग्यारह इन्द्रियाँ हैं; इन सबको मनरूप जानकर बुद्धिके द्वारा तुरंत इनका त्याग कर देना चाहिये। श्रवण करते समय श्रोत्ररूपी इन्द्रिय, शब्दरूप विषय तथा मनरूपी कर्ता—ये तीन उपस्थित होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रियके द्वारा विषयानुभव करते समय विषय, इन्द्रिय और मन—इन तीनोंके समूहकी उपस्थिति रहती है। इस तरह तीन-तीनके पाँच समुदाय हैं, जिनसे विषयोंका ग्रहण होता है। ये कर्ता, कर्म और करणरूपी तीन प्रकारके भाव बारी-बारीसे उपस्थित होते हैं। इनमेंसे एक-एकके सात्त्विक,

राजस और तामस—तीन-तीन भेद होते हैं। अनुभव भी तीन प्रकारके ही हैं, जिनमें हर्ष-शोक आदि सबका समावेश है। हर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और चित्तकी शान्तिका होना सात्त्विक गुणका लक्षण है। असंतोष, संताप, शोक, लोभ तथा अमर्ष—ये किसी कारणसे हों या अकारण, रजोगुणके चिह्न हैं। अविवेक, मोह, प्रमाद, स्वप्न और आलस्य—ये किसी तरह भी क्यों न हों, तमोगुणके ही नाना रूप हैं।

'शब्दका आधार श्रोत्रेन्द्रिय है और श्रोत्रेन्द्रियका आधार आकाश है; अतः वह आकाशरूप ही है। इसी प्रकार त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका भी क्रमशः स्पर्श, रूप, रस और गन्धका आश्रय तथा अपने आधारभूत महाभूतोंके स्वरूप हैं। इन सबका अधिष्ठान है मन; इसलिये सब-के-सब मनःस्वरूप हैं; क्योंकि जब सब इन्द्रियोंका कार्य एक समय प्रारम्भ होता है, तो उन सबके विषयोंका एक साथ अनुभव करनेके लिये मन ही सबमें अनुगतरूपसे उपस्थित रहता है; अतः मनको ग्यारहवीं इन्द्रिय कहा गया है और बुद्धि बारहवीं मानी गयी है।

'इस प्रकार समस्त प्राणी अनादि अविद्याके कारण स्वभावतः व्यवहारपरायण हो रहे हैं। ऐसी दशामें ज्ञानद्वारा अविद्याकी निवृत्तिमात्र होनेसे आत्माके नाशका क्या प्रसंग है? सनातन आत्माका नाश हो ही कैसे सकता है? जैसे नद और नदियाँ समुद्रमें मिलकर अपने व्यक्तित्व (रूप) और नामको त्याग देती हैं, उसी प्रकार समस्त प्राणी अपने परिच्छिन्नरूप और नामको त्यागकर महत्स्वरूपमें प्रतिष्ठित होते हैं—यही उनका मोक्ष है। उस अवस्थामें मृत्युके बाद जब उपाधिका त्याग हो जाता है, तो जीवकी कोई विशेष संज्ञा कैसे रह सकती है।

'जो इस मोक्षविद्याको जानकर सावधानीके साथ आत्मतत्त्वका अनुसंधान करता है, वह जलसे कमलके पत्तेकी भाँति कर्मके अनिष्ट फलोंसे कभी लिप्त नहीं होता। संतानोंके प्रति आसक्ति और भिन्न-भिन्न देवताओंकी प्रसन्नताके लिये सकाम यज्ञोंका अनुष्ठान—ये सब मनुष्यके लिये नाना प्रकारके सुदृढ़ बन्धन हैं। जब वह इन बन्धनोंसे छूटकर सुख-दुःखकी चिन्ता छोड़ देता है; उस समय लिङ्गशरीरके अभिमानका त्याग करके सर्वश्रेष्ठ गति (मुक्ति) प्राप्त कर लेता है। श्रुतिके महावाक्योंपर विचार और शास्त्रमें बताये हुए मङ्गलमय (शम-दमादि) साधनोंका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य जरा तथा मृत्युके भयसे रहित होकर सुखसे सोता है। जब पुण्य और पापका क्षय तथा उनसे मिलनेवाले सुख-दुःख आदि फलोंका नाश हो जाता है, उस समय सब वस्तुओंकी आसक्तिसे रहित पुरुष आकाशके समान निर्लेप एवं निर्गुण आत्माका साक्षात्कार कर लेता है। जैसे मकड़ी जाला तानकर उसपर चक्कर लगाती रहती है, किंतु उन जालोंका नाश हो जानेपर एक स्थानपर स्थित हो जाती है, उसी प्रकार जीव भी कर्मजालमें पड़कर भटकता रहता है और उससे छूटनेपर दुःखसे रहित हो जाता है। जैसे साँप अपनी केंचुल त्यागकर उसकी उपेक्षा करके चल देता है, उसी प्रकार जो शरीरमें आसक्ति न रखकर उसके प्रति अपनापनका अभिमान त्याग देता है, वह दुःखसे छूट जाता है। जिस प्रकार वृक्षके प्रति आसक्ति न रखनेवाला पंछी जलमें गिरते हुए वृक्षको छोड़कर उड़ जाता है, उसी तरह जो लिङ्गशरीरकी आसक्तिको छोड़ चुका है, वह मुक्त पुरुष सुख और दुःख दोनोंका त्याग करके उत्तम गतिको प्राप्त होता है।'

भीष्मजी कहते हैं—आचार्य पञ्चशिखके बताये हुए इस अमृतमय ज्ञानको सुनकर राजा जनक एक निश्चित सिद्धान्तपर पहुँच गये तथा सब प्रकारके शोकोंका त्यागकर वे बड़े सुखसे रहने लगे। फिर तो उनकी स्थिति ही कुछ और हो गयी। एक बार उन्होंने मिथिलानगरीको आगसे जलती देखकर स्वयं यह उद्गार प्रकट किया कि 'इस नगरके जलनेसे मेरा कुछ भी नहीं जलता।'

राजन्! इस अध्यायमें मोक्ष-तत्त्वका निर्णय किया गया है; जो सदा इसका स्वाध्याय और चिन्तन करता रहता है, वह उपद्रवोंका शिकार नहीं होता, दुःख तो उसके पास कभी फटकने नहीं पाते; तथा जिस प्रकार राजा जनक पञ्चशिखके समागमसे इस ज्ञानको पाकर मुक्त हो गये थे, उसी प्रकार वह भी मोक्ष प्राप्त करता है।



दमकी महिमा तथा व्रत और तपका वर्णन, प्रह्लादद्वारा इन्द्रको उपदेश

युधिष्ठिरने पूछा—भारत ! मनुष्य क्या उपाय करनेसे सुखी होता है ? और क्या करनेसे वह सिद्धकी भाँति संसारमें निर्भय होकर विचरता है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! वेदार्थका विचार करनेवाले वृद्ध पुरुष सामान्यतः सभी वर्णोंके लिये और विशेषतः ब्राह्मणके लिये मन और इन्द्रियोंके संयमरूप 'दम' की ही प्रशंसा करते हैं। जिसने दमका पालन नहीं किया है, उसे अपने कर्मोंमें पूर्ण सफलता नहीं मिलती; क्योंकि क्रिया, तप और सत्य—इन सबका आधार 'दम' ही है। दमसे तेजकी वृद्धि होती है। दम परम पवित्र बताया गया है। दमनशील पुरुष पाप तथा भयसे रहित होकर 'महत्' पदको प्राप्त होता है। 'दम' का पालन करनेवाला मनुष्य सुखसे सोता, सुखसे जागता तथा सुखसे संसारमें विचरता है और उसका मन भी प्रसन्न रहता है। दमसे ही तेजको धारण किया जाता है, दमनशील पुरुष ही रजोगुणपर विजय पाता है तथा वही भीतरके काम-क्रोध आदि शत्रुओंको अपनेसे पृथक् देख सकता है, जिनके मन और इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं, उन्हें सिंह व्याघ्र आदि मांसाहारी जन्तुओंकी तरह समझकर सब प्राणी उनसे डरते रहते हैं। ऐसे उद्दण्ड मनुष्योंकी उच्छृङ्खल प्रवृत्तिको रोकनेके लिये ही ब्रह्माजीने राजाकी सृष्टि की है। चारों आश्रमोंमें दमको ही श्रेष्ठ माना गया है। सब आश्रमोंके धर्मोंका पालन करनेसे जो फल मिलता है, दमके पालनसे उससे भी अधिक फल मिलता है। अब मैं उन गुणोंका वर्णन करता हूँ जिनकी उत्पत्तिमें दम ही कारण है, कृपणताका अभाव, आवेश न आना, संतोष, श्रद्धा, क्रोधका न आना, सरलता, अधिक बकवाद न करना, अभिमानका त्याग करना, गुरुपूजा, किसीके गुणोंमें दोषदृष्टि न करना, जीवोंपर दया करना, किसीकी चुगली न करना तथा लोगोंकी शिकायत, मिथ्याभाषण, निन्दा और स्तुतिसे दूर रहना, सबकी भलाईकी इच्छा रखना तथा भविष्यमें आनेवाले सुख-दुःखकी चिन्ता न करना—ये सब गुण दमके पालनसे प्रकट होते हैं। जितेन्द्रिय पुरुष किसीके साथ वैर नहीं करता, उसका सबके साथ अच्छा बर्ताव होता है। वह निन्दा और स्तुतिमें समान भाव रखनेवाला, सदाचारी, शीलवान, प्रसन्नचित्त, धैर्यवान् तथा दोषोंका दमन करनेमें समर्थ होता है। दमनशील पुरुष समस्त प्राणियोंको दुर्लभ वस्तुएँ देकर—दूसरोंको सुख पहुँचाकर स्वयं प्रसन्न और सुखी होता है। वह सबके हितमें लगा रहता है और किसीसे द्वेष नहीं करता। वह बहुत बड़े जलाशयकी भाँति गम्भीर होता है और उसके मनमें कभी क्षोभ नहीं होता। वह सदा ज्ञानानन्दसे तृप्त एवं प्रसन्न रहता है। जो समस्त प्राणियोंसे निर्भय है तथा जिससे सम्पूर्ण प्राणी निर्भय हो गये हैं, वह दमनशील एवं बुद्धिमान् पुरुष सबके नमस्कारके योग्य समझा जाता है। जो बहुत बड़ी सम्पत्ति पाकर हर्षसे फूल नहीं उठता और संकट पड़नेपर जिसे शोकके कारण घबराहट नहीं होती, वह द्विज स्थिरबुद्धिवाला तथा जितेन्द्रिय कहलाता है। जो शास्त्रका ज्ञाता, वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाला, सदाचारी और पवित्र है तथा सर्वदा दमका पालन करता रहता है, उसे महान् फलकी प्राप्ति होती है। जिनका अन्तःकरण दूषित है, वे लोग दोषदृष्टिका अभाव, क्षमा, शान्ति, संतोष, मीठे वचन बोलना, सत्यभाषण, दान तथा उद्योगशीलता आदि गुणोंको नहीं अपनाते। उनमें तो काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या तथा डींग हाँकना आदि दुर्गुण ही रहते हैं; इसलिये उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ब्राह्मणको चाहिये कि वह जितेन्द्रिय होकर काम और क्रोधको वशमें करे, ब्रह्मचर्यका पालन करता हुआ घोर तपस्यामें संलग्न हो जाय और मृत्युकालकी प्रतीक्षा करता हुआ निर्द्वन्द्व होकर संसारमें विचरे।

युधिष्ठिरने पूछा—महाराज ! संसारके मनुष्य प्रायः उपवास करनेको ही तप कहते हैं। क्या वास्तवमें यही तप है ? या उसका और कोई स्वरूप है।

भीष्मजीने कहा——युधिष्ठिर ! गँवारलोग जो एक महीना या पन्द्रह दिनोंतक उपवास करके उसे तप मानते हैं, उससे आत्मज्ञानमें बाधा पहुँचती है; इसलिये श्रेष्ठ पुरुषोंकी रायमें वह तप नहीं है। उनके मतमें तो त्याग और विनय ही उत्तम तप हैं; इनका पालन करनेवाला मनुष्य नित्य उपवासी और सतत ब्रह्मचारी कहा गया है। त्यागी और विनयी ब्राह्मण ही मुनि तथा देवता माना जाता है। अतः वह कुटुम्बके साथ रहकर भी सदा धर्मपालनकी इच्छा रखे और नित्य जाग्रत् (सावधान) रहे। मांस कभी न खाय। सदा पवित्र रहे। यज्ञसे बचे हुए अमृतमय अन्नका भोजन तथा देवता और अतिथियोंकी पूजा करे। उसे सदा यज्ञशिष्ट अन्नका भोक्ता, अतिथिसेवाका व्रती, श्रद्धालु और देवता तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाला होना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! मनुष्य नित्य उपवासी, सतत ब्रह्मचारी, यज्ञशिष्ट अन्नका भोक्ता तथा अतिथिसेवाका व्रती कैसे होता है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जो सिर्फ सवेरे और शामको ही भोजन करता है, बीचमें कुछ नहीं खाता, उसे नित्य उपवास करनेवाला ही समझना चाहिये। जो द्विज केवल ऋतु-स्नानके समय ही पत्नीके साथ समागम करता, सत्य बोलता तथा ज्ञानमें स्थित रहता है, वह सदा ब्रह्मचारी ही है। नित्य दान करनेवाला पवित्र माना जाता है। जो दिनमें कभी नहीं सोता, उसे सदा जागनेवाला ही समझना चाहिये। जो सदा भरण-पोषण करनेके योग्य पिता-माता आदि व्यक्तियों तथा अतिथियोंके भोजन कर लेनेपर ही खाता है, वह केवल अमृत भोजन करता है। अपने इस नियमके द्वारा वह स्वर्गलोकपर विजय पाता है। शास्त्रज्ञ पुरुष उसीको विघसाशी (यज्ञशिष्ट अन्नका भोक्ता) कहते हैं। ऐसे पुरुषोंको अक्षयलोक प्राप्त होते हैं, वे ब्रह्माजीके साथ उनके धाममें निवास करते हैं तथा अप्सराओंसहित समस्त देवता उनकी परिक्रमा किया करते हैं। देवता और पितरोंके साथ रहकर वे पुत्र-पौत्रोंसहित आनन्द भोगते हैं। उन्हें बड़ी उत्तम गति प्राप्त होती है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! इस संसारमें जो भी शुभ या अशुभ कर्म होता है, वह पुरुषको उसके सुख-दुःखरूप फल भोगनेमें लगा ही देता है। परंतु पुरुष उस कर्मका कर्ता है या नहीं—इस विषयमें मुझे संदेह है। अतः मैं आपके मुखसे इसका ठीक-ठीक समाधान सुनना चाहता हूँ।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इस विषयमें जानकारलोग इन्द्र और प्रह्लादके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। प्रह्लादजीके मनमें किसी विषयकी आसक्ति नहीं थी। उनके पाप धुल गये थे। जडता और अहंकारका तो उनमें नाम भी न था। वे धर्मकी मर्यादाका पालन करते और शुद्ध सत्त्वगुणमें स्थित रहते थे। निन्दास्तुतिको समान समझते, मन-इन्द्रियोंपर काबू रखते और एकान्त घरमें निवास करते थे। उन्हें चराचर प्राणियोंकी उत्पत्ति और नाशका ज्ञान था। अप्रिय हो जानेपर वे क्रोध नहीं करते और प्रियकी प्राप्ति होनेपर अधिक हर्ष नहीं मानते थे। मिट्टीके ढेले और सुवर्णमें उनकी समान दृष्टि थी। वे आत्माका कल्याण करनेवाले ज्ञानयोगमें स्थित और धीर थे। उन्हें परमात्मतत्त्वका निश्चय हो गया था। ऐसे सर्वज्ञ, समदर्शी तथा जितेन्द्रिय प्रह्लादजीको एकान्तमें बैठे देख इन्द्र उनकी बुद्धिको जाननेकी इच्छासे उनके पास जाकर बोले— 'दैत्यराज ! जिन गुणोंको पाकर कोई भी मनुष्य संसारमें सम्मानित हो सकता है, उन सबको मैं तुम्हारे भीतर स्थिर देखता हूँ। तुम्हें आत्मतत्त्वका ज्ञान है, इसलिये पूछता हूँ; बताओ, तुम्हारे मतमें कल्याणका सर्वश्रेष्ठ साधन क्या है ? तुम रस्सियोंसे बाँधे गये, राज्यसे भ्रष्ट हुए, शत्रुओंके वशमें पड़े और राज्यलक्ष्मीसे हीन हो गये; इस प्रकार शोचनीय स्थितिमें पड़ जानेपर भी तुम्हें शोक क्यों नहीं होता ? प्रह्लाद ! अपने ऊपर संकट देखकर भी तुम निश्चिन्त कैसे हो ? तुम्हारी यह स्थिति आत्मज्ञानके कारण है या धैर्यके ?' इन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर निश्चित सिद्धान्त रखनेवाले धीरबुद्धि प्रह्लादजीने अपने ज्ञानका वर्णन करते हुए मधुर वाणीमें कहा।

प्रह्लादजी बोले—जो प्राणियोंकी प्रवृत्ति और निवृत्तिको नहीं जानता, उसीको अविवेकके कारण मोह होता है, ज्ञानीको कभी मोह नहीं होता। सब तरहके भाव और अभाव स्वभावसे ही आते-जाते रहते हैं; उनके लिये पुरुषका कोई प्रयत्न नहीं होता और प्रयत्नके अभावमें पुरुष कर्ता नहीं हो सकता, फिर भी उसे कर्तापनका अभिमान हो जाता है। जो आत्माको शुभ या अशुभ कर्मोंका कर्ता मानता है, उसकी बुद्धिको तत्त्वका ज्ञान न होनेके कारण मैं दोषसे आवृत समझता हूँ। इन्द्र ! यदि पुरुष ही कर्ता होता तो वह अपने कल्याणके लिये जो कुछ भी करता, वह सब अवश्य सिद्ध हो जाता, उसे अपने प्रयत्नमें कभी हार नहीं खानी पड़ती। किंतु देखा यह जाता है कि इष्टके लिये प्रयत्न करनेवालोंको प्रायः अनिष्टकी प्राप्ति होती है और इष्टकी प्राप्तिसे वे वञ्चित रह जाते हैं। अतः पुरुषका प्रयत्न कहाँ रहा ? कितने ही प्राणियोंको किसी प्रयत्नके बिना ही हमलोग अनिष्टकी प्राप्ति और इष्टका निवारण होते देखते हैं। यह बात स्वभावसे ही होती है। कितने ही सुन्दर और बुद्धिमान् पुरुष भी कुरूप और गँवार मनुष्योंसे धन पानेकी आशा करते दिखायी देते हैं। जब शुभ और अशुभ सभी प्रकारके गुण स्वभावकी ही प्रेरणासे प्राप्त होते हैं तो किसीको भी उनपर अभिमान करनेका क्या कारण है ? मैं तो निश्चित रूपसे यही मानता हूँ कि स्वभावसे ही सब कुछ मिलता है। मेरी आत्मनिष्ठ बुद्धि भी इसके विपरीत विचार नहीं रखती। यहाँपर जो शुभ और अशुभ फलकी प्राप्ति होती है, उसमें लोग कर्मको ही कारण मानते हैं; अतः मैं तुमसे कर्मके विषयका पूर्णतया वर्णन करता हूँ, सुनो। सम्पूर्ण कर्म स्वभावको ही लक्षित करानेवाले हैं। जो कार्योंको तो जानता है, किंतु उनको करनेवाली प्रकृतिको नहीं जानता, उसीको अविवेकके कारण मोह होता है। जो इस बातको समझता है। उसे मोह नहीं होता। सभी भाव स्वभावसे ही उत्पन्न होते हैं, इस बातको जो ठीक-ठीक जानता है, उसका दर्प या अभिमान क्या बिगाड़ सकता है ?

इन्द्र ! मैं धर्मकी पूरी-पूरी विधि तथा सम्पूर्ण भूतोंकी

अनित्यताको जानता हूँ। इसलिये सबको नाशवान् समझकर किसीके लिये शोक नहीं करता। ममता, अहंकार तथा कामनाओंका त्याग कर सब प्रकारके बन्धनोंसे रहित हो आत्मनिष्ठ एवं असङ्ग रहकर प्राणियोंकी उत्पत्ति और विनाशको देखता रहता हूँ। जो मन और इन्द्रियोंको अधीन करके तृष्णा और कामनाको छोड़ चुका है और सदा अविनाशी आत्मापर ही दृष्टि रखता है, उसे कभी कष्ट नहीं होता। प्रकृति और उसके कार्योंके प्रति मेरे मनमें न राग है, न द्वेष। न तो मैं किसीको अपना द्वेषी समझता हूँ और न अत्यन्त आत्मीय ही मानता हूँ। मुझे ऊपर (स्वर्गकी), नीचे (पातालकी) तथा बीचके लोक (मर्त्यलोक) की भी कभी कामना नहीं होती। ज्ञान, विज्ञान अथवा ज्ञेयके लिये भी मैं अभिलाषा नहीं करता।

इन्द्रने कहा—प्रह्लाद ! जिस उपायसे ऐसी बुद्धि और इस तरहकी शान्ति प्राप्त होती है, उसे पूछता हूँ, बताओ।

प्रह्लादने कहा—इन्द्र ! सरलता, सावधानी, बुद्धिकी निर्मलता, चित्तकी स्थिरता तथा बड़े-बूढ़ोंकी सेवा करनेसे पुरुषको महत् पदकी प्राप्ति होती है। इन गुणोंको अपनानेपर स्वभावसे ही ज्ञान प्राप्त होता है, स्वभावसे ही शान्ति मिलती है तथा जो कुछ भी तुम देख रहे हो सब स्वभावसे ही प्राप्त होता है।

दैत्यराज प्रह्लादके इस उत्तरको सुनकर इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने बहुत प्रसन्न होकर प्रह्लादके वचनोंकी प्रशंसा की। इतना ही नहीं, त्रिभुवनपति इन्द्रने दैत्यराजका पूजन भी किया और फिर उनकी आज्ञा लेकर अपने धाम—स्वर्गलोकको गये।



इन्द्रका नमुचि और बलिके साथ संवाद—कालकी महिमाका वर्णन

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! इसी विषयमें एक और पुराने इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। एक समयकी बात है, इन्द्र नमुचि नामक दैत्यके पास जाकर कहने लगे—'नमुचे ! तुम रस्सियोंसे बाँधे गये, राज्यसे भ्रष्ट हुए, शत्रुओंके वशमें पड़े और राज्यलक्ष्मीसे हीन हो गये। इस प्रकार शोकका अवसर आनेपर भी तुम्हें शोक नहीं होता—यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है !'

नमुचिने कहा—इन्द्र ! शोक करनेसे शरीरको कष्ट होता है और शत्रु प्रसन्न होते हैं, फिर शोक क्यों किया जाय ? शोकसे दुःख दूर करनेमें कोई सहायता भी तो नहीं पहुँचती। इसलिये मैं सबको नाशवान् समझकर किसी वस्तुके लिये शोक नहीं करता। संताप करनेसे रूप, कान्ति, आयु और धर्म सबका नाश ही होता है। अतः समझदार पुरुषको वैमनस्यके कारण आये हुए दुःखकी चिन्ता छोड़कर मन-ही-मन अपने कल्याणका उपाय सोचना चाहिये। इसमें संदेह नहीं कि पुरुष जब कल्याणमें मन लगाता है, तभी उसके सम्पूर्ण अर्थ सिद्ध होते हैं। जगत्का शासन करनेवाला एक ही है, दूसरा नहीं; वही गर्भमें रहनेवाले प्राणीका भी शासन करता है। उसकी जैसी प्रेरणा होती है, उसीके अनुसार मैं भी कार्य करता हूँ। पुरुषको जो वस्तु जिस प्रकार प्राप्त होनेवाली होती है, वह उस प्रकार मिल ही जाती है। जिस वस्तुकी जैसी होनहार होती है, वह वैसी होती ही है। विधाता जीवको जिस-जिस गर्भमें डालता है, वहीं उसे रहना पड़ता है; वह अपनी इच्छाके अनुसार कहीं नहीं रह सकता। अपने ऊपर जो यह अवस्था आ पड़ी है, ऐसी ही होनहार थी—इस तरहका भाव रखकर जो उस परिस्थितिको सहर्ष स्वीकार करता है, उसे कभी मोह नहीं होता। बारी-बारीसे सबपर कष्ट पड़ता है, उसके लिये किसीपर दोष नहीं लगाया जा सकता। दुःख पानेका कारण तो यह है कि पुरुष वर्तमान परिस्थितिमें द्वेष करके अपनेको उसका कर्ता मान बैठता है। ऋषि, देवता, बड़े-बड़े असुर, वैदिक ज्ञानमें बढ़े हुए पुरुष तथा वनवासी मुनि—इनमेंसे कौन है, जिसपर आपत्ति नहीं आती। किंतु जिन्हें सत-असत्का ज्ञान है, वे मोहमें नहीं पड़ते। विद्वान् पुरुष कभी क्रोध नहीं करते, किसी विषयमें आसक्त नहीं होते, दुःख पानेपर खेद नहीं करते, सुख मिलनेपर हर्षके मारे फूल नहीं उठते तथा आर्थिक कठिनाई या संकटके समय भी शोकग्रस्त नहीं होते; वे हिमालयकी तरह स्वभावसे ही अविचल होते हैं। जिसे उत्तम अर्थसिद्धि मोहमें नहीं डालती, कभी संकट पड़नेपर भी जो धैर्यको नहीं खो बैठता और सुख, दुःख तथा दोनोंके बीचकी अवस्थाका भी समानभावसे सेवन करता है, वही मनुष्य श्रेष्ठ समझा जाता है। जो धर्मके तत्त्वको समझकर उसके अनुसार बर्ताव करता है, वही श्रेष्ठ पुरुष है। जो वस्तु नहीं मिलनेवाली होती है, उसको कोई मन्त्र, बल, पराक्रम, बुद्धि, पुरुषार्थ, शील, सदाचार और धन-सम्पत्तिसे भी नहीं पा

सकता, फिर उसके लिये शोक क्यों किया जाय ? जीवके प्रारब्धमें जितने सुख और दुःखका भोग बदा है, उतना ही वह पाता है, जहाँ जानेका प्रारब्ध है, वहीं जाता है तथा जो कुछ उसे पाना है उसीको प्राप्त करता है—यह समझकर जो कभी मोहित नहीं होता और सब प्रकारके दुःखोंमें निश्चिन्त रहता है, वही सर्वश्रेष्ठ मनुष्य है।

युधिष्ठिरने पूछा—भरतश्रेष्ठ ! जो मनुष्य बन्धु-बान्धवों अथवा राज्यका नाश हो जानेसे घोर संकटमें पड़ गया हो, उसके कल्याणका क्या उपाय है ? संसारमें आपसे बढ़कर कोई वक्ता नहीं है; इसीलिये यह बात आपसे पूछ रहा हूँ।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जिसके स्त्री-पुत्र मर गये हों, सुख छिन गया हो तथा धन भी नष्ट हो गया हो और इन कारणोंसे जो कठिन विपत्तिमें फँस गया हो; उसका तो धैर्य धारण करनेमें ही कल्याण है। तात ! जो बुद्धिमान् सदा सात्त्विक वृत्तिका सहारा लिये रहता है, उसीको ऐश्वर्य और धैर्यकी प्राप्ति होती है तथा वही कार्य करनेमें कुशल होता है। इसके विषयमें भी पुनः एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण देता हूँ, जो बलि और इन्द्रके संवादके रूपमें है।

देवासुर-संग्राममें दैत्य और दानवोंका भयंकर संहार हो चुका था। वामनरूपधारी भगवान् विष्णुने अपने पैरोंसे तीनों लोकोंको नापकर अधिकारमें कर लिया था। सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले इन्द्र देवताओंके राजा थे। चारों वर्णोंके लोग अपने-अपने धर्ममें स्थित थे। देवताओंकी खूब पूजा होती थी। त्रिभुवनका अभ्युदय हो रहा था और सबको सुखी देख ब्रह्माजी भी प्रसन्न थे। इसी समयकी बात है, एक दिन इन्द्र अपने ऐरावत नामक गजराजपर बैठकर तीनों लोकोंमें भ्रमण करनेके लिये निकले। उनके साथ रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विनीकुमार, ऋषिगण, गन्धर्व, नाग, सिद्ध तथा विद्याधर आदि भी थे। घूमते-घूमते वे किसी समय समुद्रतटपर जा पहुँचे। वहाँ एक पर्वतकी गुफामें विरोचनकुमार बलि विराजमान थे। उनपर दृष्टि पड़ते ही इन्द्र हाथमें वज्र लिये हुए उनके पास पहुँच गये।

देवराज इन्द्रको देवताओंके बीचमें ऐरावतकी पीठपर बैठे हुए देखकर भी दैत्योंके स्वामी बलिके मनमें तनिक भी शोक या व्यथा नहीं हुई। वे निर्भय और निर्विकार होकर खड़े रहे। तब इन्द्रने कहा—'विरोचनकुमार ! अपने शत्रुकी समृद्धि देखकर भी तुम्हें व्यथा नहीं होती, इसका क्या कारण है ? पराक्रम, वृद्ध पुरुषोंकी सेवा अथवा तपसे अन्तःकरण शुद्ध हो जानेके कारण तो तुम्हें शोक नहीं होता ? दूसरोंके लिये तो ऐसा आचरण सर्वथा कठिन है। तुम शत्रुओंके वशमें पड़े और उत्तम स्थान (स्वर्गके राज्य) से भ्रष्ट हुए—इस प्रकार शोचनीय दशामें पड़कर भी तुम्हें शोक क्यों नहीं होता ? पहले बाप-दादोंके राज्यपर बैठकर सबके महाराज बने हुए थे; अब उस राज्यको शत्रुओंने छीन लिया—यह देखकर भी तुम शोक क्यों नहीं करते ? लक्ष्मी और धन खोकर भी दुःख न मानना बड़ा कठिन है। भला तुम्हारे सिवा दूसरा कौन है जो त्रिभुवनका राज्य नष्ट हो जानेपर भी जीवित रहनेमें उत्साह रखे ?'

ये तथा और भी बहुत-सी कठोर बातें सुनाकर इन्द्रने बलिका तिरस्कार किया। बलिने भी बड़े आनन्दसे वे सारी बातें सुनीं और निर्भय होकर उत्तर दिया।

बलिने कहा—इन्द्र ! जब मैं अच्छी तरह कालकी कैदमें आ गया हूँ, तो अब मेरे सामने इस प्रकार डींग हाँकनेसे क्या लाभ है ? देखता हूँ, आज वज्र उठाये सामने खड़े हो। पहले तुममें इतनी ताकत नहीं थी; अब किसी तरह शक्ति आ गयी है तो इतनी शेखी बघारते हो। तुम्हारे सिवा दूसरा कौन ऐसी कठोर बात कह सकता है ? जो समर्थ होकर भी अपने हाथमें पड़े हुए वीर शत्रुपर दया करता है, वही महापुरुष माना जाता है। जब दो व्यक्तियोंमें युद्ध होता है तो एककी जीत और दूसरेकी हार निश्चित होती है। इसलिये तुम ऐसा न समझ लो कि मैंने अपने बल और पराक्रमसे ही विजय पायी है। आज तो तुम्हारी दशा अच्छी और मेरी इसके विपरीत है—यह तुम्हारे या मेरे प्रयत्नका फल नहीं है। अतः तुम मेरा अपमान न करो। समय-समयपर जीवको कभी सुख और कभी दुःख मिलता ही रहता है। जैसे कालने इस समय तुम्हें राजाके पदपर पहुँचाया है, इसी तरह कभी वह मुझे भी पहुँचायगा। जब समय खराब आता है तो कालसे पीडित मनुष्यको विद्या, तप, दान, मित्र और बन्धु-बान्धव भी नहीं बचा पाते। सैकड़ों आघात करके भी कोई आनेवाले अनर्थको नहीं रोक सकता। इन्द्र ! तुम जो अपनेको इस परिस्थितिका कर्ता मानते हो—यह अभिमान तुम्हारे ही दुःखका कारण होगा। यदि पुरुष स्वयं ही कर्ता होता तो उसको दूसरा कोई उत्पन्न करनेवाला न होता; किंतु वह तो दूसरेके द्वारा उत्पन्न होता है, इसलिये ईश्वरके सिवा और कोई कर्ता नहीं है।

देवराज ! तुम्हारी बुद्धि गँवारोंकी-सी है, इसलिये एक-न-एक दिन अवश्य होनेवाले अपने नाशकी ओर तुम्हारी दृष्टि नहीं जाती। संसारमें कुछ मूर्ख भी हैं, जो तुम्हें अपने ही पराक्रमसे उत्तम पदवीको प्राप्त हुए समझकर बहुत बड़ा मानते हैं। किंतु मेरे-जैसा मनुष्य, जो संसारकी स्थितिको

जानता हो, समयके प्रभावसे आपत्तिमें पड़कर भी शोक, मोह अथवा भ्रममें कैसे पड़ सकता है ? मैं, तुम या दूसरे लोग, जो देवताओंके स्वामी होनेवाले हैं, एक दिन उसी मार्गपर जायँगे, जिसपर पहलेके सैकड़ों इन्द्र जा चुके हैं।

यद्यपि आज तुम दुर्द्धर्ष हो और अत्यन्त तेजसे देदीप्यमान हो रहे हो; किंतु याद रखना, समय आनेपर तुम भी मेरी ही तरह कालके शिकार बन जाओगे। अबतक देवताओंके हजारों इन्द्र कालके गालमें चले गये हैं। कालपर किसीका वश नहीं चलता। तुम इस शरीरको पाकर सब प्राणियोंको जन्म देनेवाले सनातन देव भगवान् ब्रह्माजीकी भाँति अपनेको बहुत बड़ा मानते हो, किंतु तुम्हारा यह इन्द्रपद आजतक किसीके लिये भी अविचल या अनन्तकालतक रहनेवाला नहीं साबित हुआ—इसपर कितने ही आये और चले गये। केवल तुम्हीं मूर्खताके कारण इसे अपना मानते हो।

देवराज ! नाशवान् होनेके कारण जो विश्वासके योग्य नहीं, उस राज्यपर तुम विश्वास करते हो, जो टिकनेवाला नहीं, उसे स्थिर मानते हो; इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि कालने जिसे घेर रखा हो, वह सदा ऐसा ही समझता है। जिस राज्यलक्ष्मीको मोहवश अपनी मानते हो, यह न तुम्हारी है, न मेरी है और न दूसरेकी ही है। यह किसीके पास स्थिर नहीं रहती। बहुत-से राजाओंके उपभोगमें आ चुकी है और उनको छोड़कर अब तुम्हारे पास आयी है। इसका स्वभाव चञ्चल है, अतः कुछ कालतक तुम्हारे पास भी रहकर फिर दूसरेके यहाँ चली जायगी। अबतक इसने जितने राजाओंका परित्याग किया है, उनकी गणना नहीं हो सकती। तुम्हारे बाद भी बहुत-से राजे इसका उपभोग करेंगे। पूर्वकालमें इसे जिन-जिन राजाओंने भोगा है, वे आज कहीं दिखायी नहीं देते। पृथु, पुरूरवा, मय, भीम, नरकासुर, शम्बरासुर, अश्वग्रीव, पुलोमा, स्वर्भानु, अमितध्वज, प्रह्लाद, नमुचि, दक्ष, विप्रचित्ति, विरोचन, ह्रीनिषेव, सुहोत्र, भूरिहा, पुष्पवान्, वृष, सत्येषु, ऋषभ, बाहु, कपिलाक्ष, विसूयक, बाण, कार्तस्वर, वह्नि, विश्वदंष्ट्र, नैर्ऋति, संकोच, वरीताक्ष, वराहाश्व, रुचिप्रभ, विश्वजित्, प्रतिरूप, विषाण्ड, विष्कर, मधु, हिरण्यकशिपु और कैटभ—ये तथा और भी बहुत-से दैत्य, दानव और राक्षस आदि पूर्वकालमें पृथ्वीके स्वामी हो चुके हैं। जिन-जिन पूर्ववर्ती नरेशोंके आज हमलोग नाम सुनते हैं, वे सभी कालकी मार पड़नेसे इस पृथ्वीको छोड़कर चले गये; क्योंकि काल ही सबसे बड़ा बलवान् है।

केवल तुमने ही सौ यज्ञोंका अनुष्ठान किया हो, यह बात भी नहीं है। उन सभी राजाओंने सौ यज्ञ किये थे, सभी धर्मात्मा थे और सब-के-सब निरन्तर यज्ञमें संलग्न रहनेवाले थे। तुम्हारी ही तरह वे भी आकाशमें विचरते थे, सैकड़ों मायाएँ जानते थे और इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे। उनके भी तेज और प्रताप बढ़े हुए थे। किंतु कालने उनका भी संहार कर ही डाला। जिस दिन तुम्हें इस पृथ्वीको उपभोगके बाद त्यागना पड़ेगा, उस दिन तुम अपने प्रबल शोकको न दबा सकोगे; इसलिये विषयभोगकी इच्छा छोड़ दो, राज्य-लक्ष्मीके घमंडको त्याग दो। ऐसा करनेसे तुम अपने राज्यके नष्ट हो जानेपर भी उसके शोकको धैर्यपूर्वक सह सकोगे। शोकके समय शोक न करो और हर्षका अवसर आनेपर हर्षसे फूल न उठो। इन्द्र ! इस कटु सत्यके लिये क्षमा करना, अब देर नहीं है, तुमपर भी कालका आक्रमण होनेहीवाला है, तुम्हें भी उससे भय प्राप्त होगा। इस समय तुम अपने तीखे वचनोंसे मुझे छेदे डालते हो। मैं शान्त होकर बैठा हूँ, इसलिये तुम अपनेको बहुत बड़ा मान रहे हो। किंतु याद रखो, जिस कालका मुझपर धावा हुआ था, वही तुमपर भी चढ़ाई करेगा। देवताओंके एक हजार वर्ष पूर्ण होनेतक ही तुम्हें इन्द्र होकर रहना है।

देवेन्द्र ! तुम मुझे जानते हो और मैं तुमको जानता हूँ। फिर मेरे सामने लाज छोड़कर इतनी डींग क्यों हाँकते हो ? जब मैं राजा था, उस समय जो पुरुषार्थ दिखा चुका हूँ, उससे तुम अपरिचित नहीं हो। कई बारके युद्धोंमें तुम मेरा पराक्रम देख चुके हो; एक ही दृष्टान्त देना काफी होगा। पहले जब देवासुर-संग्राम हुआ था, उस समयकी बात तुम्हें भूली न होगी; मैंने अकेले ही समस्त आदित्यों, रुद्रों, साध्यों, वसुओं तथा मरुद्गणोंको परास्त किया था। मेरे वेगसे देवताओंमें भगदड़ पड़ गयी थी। तुम्हारे सिरपर भी पर्वतोंके कितने शिखर फोड़ डाले थे; किंतु इस समय मैं क्या कर सकता हूँ, कालका उल्लङ्घन करना कठिन है। तुम्हारे हाथमें वज्र रहनेपर भी मैं केवल मुक्केसे मारकर तुम्हें मौतके घाट उतार सकता हूँ; किंतु मेरे लिये यह पराक्रम दिखानेका नहीं, क्षमा करनेका समय है। इसीलिये तुम्हारे सब अपराध चुपचाप सहे लेता हूँ और यही वजह है कि तुम अपनी झूठी बड़ाई किये जा रहे हो। जैसे मनुष्य रस्सीसे किसी पशुको बाँध लेता है, उसी प्रकार भयंकर काल मुझे अपने पाशमें बाँधे खड़ा है। पुरुषको लाभ-हानि, सुख-दुःख, काम-क्रोध, जन्म-मरण और बन्धन-मोक्ष—ये सब कालसे ही प्राप्त होते हैं। जो कालके प्रभावको जानता है, वह उससे

कष्ट पाकर भी शोक नहीं करता; क्योंकि दुःख दूर करनेमें शोकसे कोई सहायता नहीं मिलती, यही सोचकर मैं शोक नहीं करता। शोकग्रस्त मनुष्यका शोक उसकी विपत्तिको तो टालता नहीं, उलटे उसकी शक्तिको क्षीण कर देता है; इसीलिये मैं शोक नहीं करता।

बलिके इस कथनको सुनकर इन्द्रका क्रोध उतर गया। वे शान्त होकर बोले—'दैत्यराज ! मेरे हाथको वज्रसहित ऊपर उठे देखकर मारनेकी इच्छासे आयी हुई मृत्युका भी दिल दहल जाता है, फिर दूसरा कौन है जो व्यथित न हो; किंतु तुम्हारी बुद्धि तत्त्वको जाननेवाली और स्थिर है, इसलिये तनिक भी विचलित नहीं होती। इसमें संदेह नहीं कि धैर्यके ही कारण तुम्हें घबराहट नहीं होती। वास्तवमें कालका कोई परिहार नहीं है, उसके उल्लङ्घनका कोई उपाय नहीं है। काल सब प्राणियोंके साथ एक-सा बर्ताव करता है। वह दिन, रात, मास, क्षण, काष्ठा, लव और कलातकका हिसाब करके प्राणीको पीडा पहुँचाता रहता है। जैसे नदीमें अचानक आयी हुई बाढ़, अपने वेगसे किनारेके वृक्षको तोड़-उखाड़कर बहा ले जाती है, उसी प्रकार 'यह काम आज करूँगा, उसे कल पूरा करना है' ऐसा कहते हुए मनुष्यको काल सहसा आकर दबोच लेता है। 'अरे ! उसको तो अभी-अभी देखा था, वह मर कैसे गया ?'—इस तरह कालके वेगमें बहते हुए मनुष्योंके प्रलाप सुनायी पड़ते हैं। धन, ऐश्वर्य, भोग और स्थान—ये सब कालके द्वारा नष्ट हैं। काल ही आकर प्राणियोंका जीवन हर ले जाता है। ऊँचे चढ़नेका अन्त है नीचे गिरना और जन्मका परिणाम है मृत्यु। जो कुछ देखनेमें आता है, सब नाशवान् है, अस्थिर है; तो भी निरन्तर इस बातका स्मरण रहना कठिन हो जाता है। अवश्य ही तुम्हारी बुद्धि तत्त्वको जाननेवाली तथा स्थिर है, इसलिये उसे घबराहट नहीं होती। काल अत्यन्त प्रबल है, वह सम्पूर्ण जगत्पर आक्रमण करके सबको अपनी आँचमें पका रहा है। काल इस बातको नहीं देखता कि कौन बड़ा है और कौन छोटा; वह सबको अपनी आगमें झोंकता जाता है, फिर भी किसीको चेत नहीं होता। लोग ईर्ष्या, अभिमान, लोभ, काम, क्रोध, भय, स्पृहा और मोहमें फँसकर अपनी सुध-बुध खो बैठे हैं। किंतु तुम विद्वान्, ज्ञानी और तपस्वी हो, कालकी लीला और उसके तत्त्वको जानते हो, सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण हो तथा तत्त्वके विवेचनमें कुशल और ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हो।

'मेरा तो ऐसा विश्वास है कि तुमने अपनी बुद्धिसे सम्पूर्ण लोकोंका तत्त्व जान लिया है। तुम सर्वत्र विचरते हुए भी सबसे मुक्त हो, कहीं भी तुम्हारी आसक्ति नहीं है। तुमने अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है, इसलिये रजोगुण और तमोगुण तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकते। तुम हर्ष और शोकसे रहित आत्माकी उपासना करते हो। सब प्राणियोंके प्रति तुम्हारा सौहार्द है, किसीके प्रति वैर नहीं है। तुम्हारे चित्तमें सदा शान्ति बनी रहती है। तुम्हें देखकर मेरे मनमें दयाका संचार हो आया है। मैं तुम्हारे-जैसे ज्ञानीको बन्धनमें रखकर मारना नहीं चाहता। अब मेरी ओरसे तुम्हें कोई बाधा नहीं पहुँचेगी; तुम स्वस्थ और सुखी रहो।'

ऐसा कहकर गजराजपर बैठे हुए देवराज इन्द्र वहाँसे चले गये और सम्पूर्ण असुरोंको जीत लेनेके पश्चात् सबके एकच्छत्र सम्राट् होकर आनन्दसे रहने लगे। उस समय उत्तम ब्राह्मणोंने उनकी स्तुति की और वे स्वर्गमें लौटकर सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने लगे।



इन्द्रके पास लक्ष्मीका आना तथा दानव-दैत्योंके उत्थान और पतनका कारण बताना

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! जिस पुरुषका उत्थान या पतन होनेवाला होता है, उसके पूर्व लक्षण कैसे होते हैं ? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जिसका उत्थान या पतन होनेको होता है, उसका मन ही उसके पूर्व लक्षणोंको प्रकट कर देता है। इस विषयमें लक्ष्मी और इन्द्रके संवाद रूपमें एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है, उसे सुनो। एक समयकी बात है, देवर्षि नारदजी सबेरे उठकर पवित्र जलमें स्नान करनेके लिये ध्रुवलोकके द्वारसे प्रकट हुई गङ्गाजीके तटपर गये और उनके भीतर उतरे। इतनेहीमें वज्रधारी इन्द्र भी उसी तटपर आ पहुँचे जहाँ नारदजी स्नान कर रहे थे। फिर दोनोंने एक ही साथ गोते लगाये और मनको एकाग्र करके संक्षेपसे गायत्री-मन्त्रका जप किया। तत्पश्चात् वे गङ्गाजीके किनारे, जहाँ सुवर्णमयी बालुका फैली हुई थी, बैठ गये और अनेकों पुण्यात्माओं, देवर्षियों तथा महर्षियोंके मुँहसे सुनी हुई कथाएँ कहने-सुनने लगे। अभी दोनों एकाग्रचित्त होकर

वार्तालाप कर ही रहे थे, इतनेमें किरणजालसे मण्डित भगवान् सूर्यनारायणका उदय हुआ। तब उन दोनोंने खड़े होकर सूर्योपस्थान किया।



इसी समय उन्हें आकाशमें एक दिव्य ज्योति दिखायी पड़ी, जो क्रमशः निकट आती जान पड़ी। वह विष्णुभगवान्‌का एक विमान था और अपनी आभासे तीनों लोकोंको प्रकाशित करता हुआ अनुपम शोभा पा रहा था। नारद और इन्द्रने उस विमानमें साक्षात् लक्ष्मीदेवीका दर्शन किया, जो कमलके पत्तेपर विराजमान थीं। सुन्दरी स्त्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ लक्ष्मीदेवी उस उत्तम विमानसे उतरकर इन्द्र और नारदजीके पास आयीं। इन्द्र भी नारदजीके साथ आगे बढ़े और देवीके पास जाकर उन्होंने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् अपना नाम निवेदन करके उनकी विधिवत् पूजा की और पूछा 'देवि ! तुम कौन हो, कहाँसे आती हो और कहाँ जा रही हो ?'

लक्ष्मीजी बोलीं—इन्द्र ! तीनों लोकोंके चराचर प्राणी मेरे स्वरूपको प्राप्त होकर परमात्माके साथ मिलनेके लिये निरन्तर उद्योग करते रहते हैं। मैं सम्पूर्ण प्राणियोंको ऐश्वर्य प्रदान करनेके लिये सूर्यकी किरणोंसे खिले हुए कमलमें प्रकट हुई हूँ। मुझे लोग पद्मा, श्री और पद्ममालिनी कहते हैं। मैं ही लक्ष्मी, भूति, श्री, श्रद्धा, मेधा, संनति, विजिति, स्थिति, धृति, सिद्धि, समृद्धि, स्वाहा, स्वधा, नियति तथा स्मृति हूँ। धर्मशील पुरुषोंके देशमें, नगरमें और घरमें मेरा निवास है। मैं युद्धमें पीठ न दिखाकर विजयसे सुशोभित होनेवाले शूरवीर राजाके शरीरमें सदा मौजूद रहती हूँ। नित्य धर्माचरण करनेवाले, बुद्धिमान, ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, विनयी तथा दानशील पुरुषोंमें भी सदा निवास करती हूँ। मैं सत्य और धर्मसे बँधकर पहले असुरोंमें रहती थी, किंतु अब उन्हें धर्मके विपरीत देखकर तुम्हारे यहाँ रहनेका विचार करती हूँ।

इन्द्रने पूछा—देवि ! दैत्योंका आचरण पहले कैसा था ? जिससे तुम उनके पास रहती थीं और अब क्या देखा है, जो उन्हें छोड़कर मेरे पास आ गयी हो ?

लक्ष्मीजीने कहा—जो अपने धर्मका पालन करते और धैर्यसे कभी विचलित नहीं होते हैं; ऐसे प्राणियोंके भीतर मेरा निवास होता है। पहले दैत्यलोग दान, अध्ययन और यज्ञमें संलग्न रहते थे। देवता, पितर, गुरु और अतिथियोंकी पूजा करते थे। उनमें सदा सत्य बोलनेकी प्रवृत्ति थी। वे अपना घर-द्वार झाड़-बुहारकर साफ रखते थे। प्रतिदिन अग्निहोत्र किया करते थे और गुरुसेवी, जितेन्द्रिय, ब्राह्मणभक्त तथा सत्यवादी थे। उनमें श्रद्धा थी, क्रोध नहीं था। वे दानी थे, किंतु किसीकी निन्दा नहीं करते थे। ईर्ष्या छोड़कर स्त्री, पुत्र और मन्त्री आदि सेवकोंका भरण-पोषण करते थे। उनमें अमर्ष और लाग-डाँट नहीं थी, सबका स्वभाव अच्छा था, सभी दयालु थे, सबमें सरलता, सुदृढ़ भक्ति तथा इन्द्रिय-संयमका गुण था। सब अपने भृत्यों और मन्त्रियोंको संतुष्ट रखनेवाले, कृतज्ञ तथा मधुरभाषी थे। वे सबका समुचितरूपसे सम्मान करते, धन देते, लज्जा रखते और व्रत एवं नियमोंका पालन करते थे। उपवास और तपमें लगे रहते थे। सबके विश्वासपात्र थे। प्रतिदिन सूर्योदयके पहले जागते तथा रातमें कभी दही और सत्तू नहीं खाते थे। प्रातःकाल घी तथा दूसरी-दूसरी माङ्गलिक वस्तुओंका दर्शन करते और ब्राह्मणोंकी पूजा किया करते थे। सदा धर्मकी चर्चामें लगे रहते और प्रतिग्रहसे दूर रहते थे। रातके आधे भागमें ही सोते थे; दिनमें तो वे कभी सोनेका नाम भी नहीं लेते थे।

कृपण, अनाथ, वृद्ध, दुर्बल, रोगी और स्त्रियोंपर दया करते तथा उनके लिये अन्न और वस्त्र बाँटते थे। व्याकुल, विषादग्रस्त, उद्विग्न, भयभीत, रोगी, दुर्बल और पीडितको तथा जिसका सर्वस्व लुट गया हो उस मनुष्यको सदा ढाढ़स बँधाया करते थे। धर्मका ही आचरण करते थे, एक-दूसरेकी जान नहीं लेते थे। कार्यके समय परस्पर अनुकूल और गुरुजनों तथा बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें दत्तचित्त रहते थे। पितरों,

देवताओं और अतिथियोंकी विधिवत् पूजा करते थे तथा उन्हें अर्पण करनेके पश्चात् बचे हुए अन्नको ही प्रतिदिन प्रसादरूपमें ग्रहण करते थे, सभी सत्यवादी और तपस्वी थे। वे उत्तम भोजन बनवाकर उसे अकेले ही नहीं खाते थे, पहले दूसरोंको देकर पीछे अपने उपभोगमें लाते थे। सब प्राणियोंको अपने ही समान समझकर उनपर दया रखते थे। चतुरता, सरलता, उत्साह, अहंकारहीनता, परमसौहार्द, क्षमा, सत्य, दान, तप, पवित्रता, दया, कोमल वाणी तथा मित्रोंसे प्रगाढ़ प्रेम—ये सभी सद्गुण उनमें सदा मौजूद रहते थे। निद्रा, आलस्य, अप्रसन्नता, दोषदृष्टि, अविवेक, असंतोष, विषाद और कामना आदि दोष उनके भीतर नहीं प्रवेश करने पाते थे। इस प्रकार उत्तम गुणोंवाले दानवोंके पास मैं सृष्टिकालसे लेकर अबतक अनेकों युगोंसे रहती आयी हूँ।

किंतु अब समयके उलट-फेरसे उनके गुणोंमें विपरीतता आ गयी है। मैंने देखा, दैत्योंमें धर्म नहीं रह गया है, वे काम और क्रोधके वशीभूत हो गये हैं। जब बड़े-बूढ़े लोग सभामें बैठकर कोई बात कहते हैं तो गुणहीन दैत्य भी उनमें दोष निकालते हुए उनकी हँसी उड़ाया करते हैं। वृद्ध पुरुषोंके आनेपर भी नवयुवक लोग अपने आसनपर बैठे ही रह जाते हैं; पहलेकी भाँति अब उठकर खड़े नहीं होते और न प्रणाम आदिके द्वारा उनका सत्कार ही करते हैं। पिताके रहते ही बेटा मालिक बन बैठता है। पुत्र पिताकी तथा स्त्रियाँ अपने पतिकी आज्ञा नहीं मानतीं। माता, पिता, वृद्ध, आचार्य, अतिथि और गुरुओंका आदर उठ गया। संतानोंके लालन-पालनपर भी ध्यान नहीं दिया जाता। देवता, पितर, अतिथि तथा गुरुजनोंका पूजन और उन्हें अन्नदान किये बिना ही सब लोग भोजन करने लगे हैं। उनके रसोइये भी पवित्र नहीं रहते। दैत्योंके यहाँ दूधको बिना ढके छोड़ दिया जाता है; घीको अब वे जूठे हाथोंसे छूने लगे हैं। पशुओंको घरमें बाँध देते हैं, किंतु चारा और पानी देकर उनका आदर नहीं करते। छोटे बालक आशा लगाये देखते रहते हैं और दानव लोग खानेकी चीजें अकेले चट कर खा जाते हैं। सेवकोंको भूखे छोड़कर अपने खा लेते हैं। वे सूर्योदयतक सोते हैं और प्रभातको भी रात ही समझते हैं। उनके घर-घरमें दिन-रात कलह मचा रहता है। वे आश्रमवासी महात्माओंसे तथा आपसमें भी द्वेष रखते हैं।

अब उनके यहाँ वर्णसंकर संतानें होने लगी हैं; किसीमें भी पवित्रता नहीं रह गयी है। वेदवेत्ता ब्राह्मणों अथवा मूर्खोंका आदर या अनादर करनेमें वे कोई अन्तर नहीं रखते। उनकी दासियाँ सुन्दर गहने पहनकर दुराचारिणी स्त्रियोंकी भाँति चलने, फिरने, बैठने और कटाक्ष करने लगी हैं। क्रीडाके समय स्त्रियाँ पुरुषोंके और पुरुष स्त्रियोंके वेष धारण करते हैं। कितने ही दानव पूर्वकालमें अपने पूर्वजोंद्वारा सुयोग्य ब्राह्मणोंको दानके रूपमें दी हुई जागीरें नास्तिकताके कारण छीन लेते हैं। उनमें जो व्यापारी हैं, वे सदा दूसरोंका धन ठग लेनेका ही विचार रखते हैं। शिष्योंमें तो गुरुकी सेवाका भाव ही नहीं रहा, अब तो उलटे गुरु लोग ही शिष्योंकी सेवा-टहल करने लगे हैं। बहू अपने सास-ससुरके सामने ही नौकरोंपर हुक्म चलाती है। पत्नी ही पतिपर शासन करती और उसका नाम ले-लेकर पुकारती है। जिन्हें हितैषी और मित्र समझा जाता था, वे ही लोग जब अपने सम्बन्धीके धनको आग लगने, चोरी हो जाने अथवा राजाके द्वारा छिन जानेसे नष्ट हुआ देखते हैं तो द्वेषवश उसकी खिल्लियाँ उड़ाते हैं। सब-के-सब कृतघ्न, नास्तिक, पापाचारी तथा गुरुस्त्रीगामी हो गये हैं। जो चीज नहीं खानी चाहिये, वह भी खाते और धर्मकी मर्यादा तोड़कर मनमाने आचरण करते हैं। इसीलिये अब उनके वदनपर वह पहलेका-सा तेज नहीं रहा।

देवेन्द्र! जबसे इन दैत्योंने धर्मके विपरीत आचरण शुरू कर दिया है, तबसे मैंने यह निश्चय किया है कि अब इनके घरमें नहीं रहूँगी। यही वजह है, जिससे उन्हें त्यागकर मैं स्वयं तुम्हारे पास आयी हूँ; तुम मुझे स्वीकार करो। जहाँ मैं रहूँगी, वहाँ आशा, श्रद्धा, धृति, क्षान्ति, विजिति, संनति, क्षमा तथा जया—ये आठ देवियाँ भी मेरे साथ निवास करेंगी। इन आठोंमें जया ही सबसे प्रधान है। मेरे साथ ये सभी देवियाँ असुरोंको त्यागकर तुम्हारे पास आयी हैं। देवताओंका मन धर्ममें लगा होता है, इसलिये अब हमलोग इन्हींके यहाँ निवास करेंगी।

भीष्मजी कहते हैं—लक्ष्मीदेवीके इस प्रकार कहनेपर देवर्षि नारद और इन्द्रने उनकी प्रसन्नताके लिये अभिनन्दन किया। उस समय शीतल, सुखद और सुगन्धित हवा चलने लगी। उस पावन प्रदेशमें लक्ष्मीसहित इन्द्रका दर्शन करनेके लिये सम्पूर्ण देवता उपस्थित हो गये। तत्पश्चात् इन्द्र महर्षि नारद और लक्ष्मीजीके साथ स्वर्गमें आये और देवताओंसे सत्कृत होकर सभामें विराजमान हुए। उस समय नारदजीने लक्ष्मीजीके शुभागमनकी प्रशंसा की। पितामह ब्रह्माजीके लोकसे अमृतकी वर्षा होने लगी। देवताओंकी दुन्दुभि बिना बजाये ही बज उठी। सम्पूर्ण दिशाएँ निर्मल एवं श्रीसम्पन्न दिखायी देने लगीं। लक्ष्मीजीके वहाँ आ जानेपर संसारमें समयपर वर्षा होने लगी। कोई भी धर्ममार्गसे विचलित नहीं होता था। पृथ्वीमें बहुत-सी रत्नोंकी खानें प्रकट हो गयीं।

मनुष्य, देवता, किन्नर, यक्ष और राक्षसोंकी समृद्धि बढ़ गयी। वे सदा प्रसन्न रहने लगे। गौएँ दूध देनेके साथ ही सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध करने लगीं। किसीके मुँहसे कठोर वाणी नहीं निकलती थी। जो लोग इन्द्रादि देवताओंद्वारा की हुई भगवती लक्ष्मीकी आराधनासे सम्बन्ध रखनेवाले इस अध्यायका ब्राह्मणोंकी मण्डलीमें बैठकर पाठ करते हैं; वे यदि धनके इच्छुक हों तो उन्हें प्रचुर मात्रामें सम्पत्ति प्राप्त होती है। कुरुश्रेष्ठ! तुमने जो उत्थान और पतनके पूर्व लक्षणोंके विषयमें प्रश्न किया था, उसका उत्तर मैंने लक्ष्मीजीके द्वारा कहे हुए दानवोंके उत्थान-पतनका कारण बताकर दे दिया। तुम स्वयं परीक्षा करके इसकी यथार्थताका निश्चय कर सकते हो।



जैगीषव्यका देवलको समत्वबुद्धिका उपदेश तथा श्रीकृष्णका उग्रसेनके प्रति नारदजीके गुणोंका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! कैसे शील, किस तरहके आचरण, कैसी विद्या और कैसे पराक्रमसे युक्त होनेपर मनुष्य प्रकृतिसे पर, अविनाशी ब्रह्मपदको प्राप्त होता है?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! जो पुरुष मिताहारी और जितेन्द्रिय होकर मोक्षोपयोगी धर्मोंके पालनमें संलग्न रहता है, वही प्रकृतिसे पर, अविनाशी ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। इस विषयमें जैगीषव्य मुनि और असित-देवलके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। एक बार सम्पूर्ण धर्मोंको जाननेवाले महाज्ञानी जैगीषव्य मुनिसे असित-देवलने इस प्रकार पूछा—'मुनिवर! यदि आपको कोई प्रणाम करे तो आप अधिक प्रसन्न नहीं होते और निन्दा करे तो भी उसपर क्रोध नहीं करते—यह आपकी बुद्धि कैसी है, कहाँसे प्राप्त हुई है और इसका फल क्या है?'

उनके इस प्रकार पूछनेपर उन महातपस्वीने संदेहरहित, पवित्र और सार्थक वचनोंमें उत्तर दिया।

जैगीषव्यने कहा—मुनिवर! पुण्यकर्म करनेवाले मनुष्योंको जिसके प्रभावसे उत्तम गति और परम शान्ति प्राप्त होती है, वह बुद्धि मैं तुमसे बता रहा हूँ; सुनो—महात्मा पुरुषोंकी कोई निन्दा करे, प्रशंसाके गीत गाये अथवा उनके सदाचार तथा पुण्यकर्मोंपर परदा डाले किंतु वे सबके प्रति एक-सी ही बुद्धि रखते हैं। उनसे कोई कटु वचन कह दे तो वे उसके बदलेमें कुछ भी नहीं कहते। बुराई करनेवालेकी भी बुराई नहीं करते। स्वयं मार खाकर भी मारनेवालेको मारना नहीं चाहते। भविष्यमें आनेवाली बातकी चिन्ता छोड़कर वर्तमान कामोंको ही करते हैं। जो बात बीत चुकी है उसके लिये शोक नहीं करते। किसी बातके लिये प्रतिज्ञा नहीं करते, उनका ज्ञान परिपक्व होता है। वे महाबुद्धिमान्, क्रोधको जीतनेवाले और जितेन्द्रिय होते हैं। मन, वाणी और शरीरसे कभी किसीका अपराध नहीं करते, मनमें ईर्ष्या नहीं रखते। दूसरोंकी निन्दा और प्रशंसासे दूर रहते हैं। अपनी निन्दा अथवा प्रशंसा सुनकर उनके चित्तमें कभी विकार नहीं होता। वे सर्वथा शान्त और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें संलग्न रहते हैं। हृदयकी अज्ञानमयी गाँठ खोलकर चारों ओर आनन्दके साथ विचरा करते हैं। न तो उनके कोई शत्रु होते हैं और न वे ही किसीके शत्रु होते हैं। जो मनुष्य ऐसा आचरण करते हैं, वे सदा सुखसे जीवन बिताते हैं। जो धर्मज्ञ होकर धर्मके अनुसार चलते हैं, वे सुखी होते हैं तथा जो धर्ममार्गसे भ्रष्ट हो जाते हैं, उन्हें सदा दुःख उठाना पड़ता है। मैंने भी धर्ममार्गका ही अवलम्बन किया है, अतः अपनी निन्दा सुनकर क्यों किसीसे द्वेष करूँ? अथवा प्रशंसा सुनकर भी किसलिये हर्ष मानूँ? न निन्दासे मेरी हानि होती है, न प्रशंसासे लाभ। तत्त्ववेत्ताको चाहिये कि अपमानको अमृतके समान समझकर उससे संतुष्ट हो और सम्मानको विषतुल्य जानकर उससे डरता रहे। निर्दोष महात्मा पुरुष अपमानित होनेपर भी इस लोक और परलोकमें सुखसे सोते हैं, परंतु उनका अपमान करनेवाला मनुष्य अपने ही अपराधसे मारा जाता है। जो बुद्धिमान् उत्तम गति प्राप्त करना चाहते हैं, वे इस व्रतका आचरण करके सुखी होते हैं और इन्द्रियोंको अपने अधीन करके अविनाशी ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेते हैं। उन्हें जो गति प्राप्त होती है वह देवता, गन्धर्व, पिशाच और राक्षसोंके लिये भी दुर्लभ है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! संसारमें कौन मनुष्य सब लोगोंका प्रिय और समस्त गुणोंसे युक्त है?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! तुम्हारे इस प्रश्नके उत्तरमें मैं श्रीकृष्ण और उग्रसेनका संवाद सुनाता हूँ जो नारदजीके विषयमें हुआ था। एक दिन उग्रसेनने श्रीकृष्णसे कहा 'जनार्दन! सब लोग नारदजीके गुणोंकी प्रशंसा करते हैं,

इससे जान पड़ता है वे बड़े गुणवान् हैं; अतः तुम मुझसे उनके गुणोंका वर्णन करो।'



श्रीकृष्णने कहा—राजन्! सुनिये, मैं नारदजीके उत्तम गुणोंको संक्षेपमें बताता हूँ। वे जैसे विद्वान् हैं वैसे ही सच्चरित्र भी हैं, किंतु अपनी सच्चरित्रताका उनके मनमें तनिक भी अभिमान नहीं है। इसीलिये उनका सर्वत्र आदर होता है। नारदजीमें असंतोष, क्रोध, चपलता और भय आदि दुर्गुण नहीं हैं। वे किसी कामना या लोभके कारण अपनी बात नहीं पलटते; अतः सबके पूज्य हैं। अध्यात्मशास्त्रके विद्वान्, क्षमाशील, शक्तिमान्, जितेन्द्रिय, सरल और सत्यवादी होनेके कारण उनकी सब जगह पूजा होती है। तेज, यश, बुद्धि, ज्ञान, विनय, उत्तम कुल और तपस्यामें भी वे सबसे बढ़े हुए हैं। उनका स्वभाव बहुत अच्छा है, वे सबका आदर करते, पवित्र रहते और अच्छी बातें कहते हैं तथा किसीसे भी ईर्ष्या नहीं रखते। इन्हीं गुणोंके कारण उनका सर्वत्र सम्मान होता है। वे सबकी भलाई करते हैं, उनके मनमें जरा भी मैल नहीं है, उनकी सहनशक्ति भी बढ़ी हुई है तथा वे सबको समान दृष्टिसे देखते हैं, इसलिये उनका न कोई प्रिय है न अप्रिय। उन्हें अनेकों शास्त्रोंका ज्ञान है और उनका कथा कहनेका ढंग भी बड़ा विचित्र है। उनमें पूर्ण पाण्डित्य होनेके साथ ही लालसा और शठताका अभाव है। कृपणता, क्रोध और लोभ आदि दोष तो उन्हें छू भी नहीं गये हैं। मुझमें उनकी दृढ़ भक्ति है। उनका हृदय शुद्ध है, वे शास्त्रोंके ज्ञाता, दयालु और मोह आदि दोषोंसे रहित हैं। उनकी बुद्धिमें संदेहके लिये स्थान नहीं है, वे बड़े अच्छे वक्ता हैं। उनका मन विषयभोगोंकी ओर नहीं जाता, वे कभी अपनी प्रशंसा नहीं करते। ईर्ष्यासे दूर रहते और मीठी वाणी बोलते हैं, इसलिये उनका सर्वत्र आदर होता है। वे किसी शास्त्रमें दोषदृष्टि नहीं करते, समयको व्यर्थ नहीं खोते और अपने मनको वशमें रखते हैं। उनकी बुद्धि पवित्र है, उन्हें समाधिसे कभी तृप्ति नहीं होती, वे कर्तव्यपालनके लिये सदा उद्यत रहते हैं और कभी प्रमाद नहीं करते। लोग उन्हें अपनी भलाईके कामोंमें सदा लगाये रखते हैं। वे किसीके गुप्त रहस्यको नहीं प्रकट करते। धन मिलनेसे उन्हें प्रसन्नता नहीं होती और न मिलनेसे दुःख नहीं होता। उनकी बुद्धि स्थिर और मन आसक्तिरहित है, इसलिये सब जगहके लोग उनकी पूजा करते हैं। वे सम्पूर्ण गुणोंसे सुशोभित, कार्य-कुशल, पवित्र, नीरोग, समयका मूल्य समझनेवाले और परम प्रिय आत्मतत्त्वके ज्ञाता हैं, भला उनसे कौन प्रेम नहीं करेगा।



व्यासजीका शुकदेवके पूछनेपर उन्हें कालका स्वरूप तथा सृष्टिकी उत्पत्ति बतलाना

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति किससे होती है? उनका लय कहाँ होता है? परमार्थकी प्राप्तिके लिये किसका ध्यान और किस कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये? कालका क्या स्वरूप है और भिन्न-भिन्न युगोंमें मनुष्योंकी कितनी आयु होती है?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! इस विषयमें भगवान् व्यासने अपने पुत्र शुकदेवजीको जो उपदेश दिया था वही प्रसंग तुम्हें सुना रहा हूँ। एक दिन शुकदेवने वेदव्यासजीसे अपने मनका संदेह इस प्रकार पूछा—'पिताजी! पापियोंको उत्पन्न करनेवाला कौन है? कालके ज्ञानसे क्या परिणाम निकलता है और ब्राह्मणका क्या कर्तव्य है? ये सब बातें बतानेकी कृपा कीजिये।'

व्यासजीने कहा—बेटा! सृष्टिके प्रारम्भमें अनादि,



अनन्त, अजन्मा, दिव्य, अजर, अमर, अविकारी, अतर्क्य और ज्ञानातीत ब्रह्म ही था। वह कालस्वरूप है। कालके कला, काष्ठा आदि जितने भेद हैं सब उसीके अवयव हैं। महर्षियोंने पंद्रह निमेषकी एक काष्ठा, तीस काष्ठाकी एक कला, तीस कला और तीन काष्ठाका एक मुहूर्त तथा तीस मुहूर्तका एक रात-दिन माना है। तीस दिन-रातका एक मास और बारह मासका एक वर्ष होता है। एक वर्षमें दो अयन होते हैं, जिन्हें दक्षिणायन और उत्तरायण कहते हैं। मनुष्यलोकके दिन-रातका विभाग सूर्य करते हैं। रात सोनेके लिये है और दिन काम करनेके लिये। मनुष्योंके एक मासमें पितरोंका एक दिन-रात होता है। शुक्ल पक्ष उनका दिन है और कृष्ण पक्ष उनकी रात्रि। मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंके एक दिन-रातके बराबर है। उत्तरायण उनका दिन है और दक्षिणायन रात्रि। मनुष्योंके जो रात-दिन बताये गये हैं, उन्हींके हिसाबसे अब मैं ब्रह्माके दिन-रातका मान बतलाता हूँ, साथ ही चारों युगोंकी वर्ष-संख्या भी अलग-अलग बता रहा हूँ। देवताओंके चार हजार वर्षोंका एक सत्ययुग होता है। इसमें चार सौ दिव्य वर्षोंकी संध्या होती है और उतने ही वर्षोंका संध्यांश भी होता है। इस प्रकार सत्ययुगकी पूरी आयु अड़तालीस सौ दिव्य वर्षोंकी है। शेष तीन युगोंमें यह संख्या क्रमशः एक-एक चौथाई घटती जाती है अर्थात् संध्या और संध्यांशोंसहित त्रेतायुग छत्तीस सौ वर्षोंका, द्वापर चौबीस सौ वर्षोंका और कलियुग बारह सौ वर्षोंका होता है। ये चारों युग प्रवाहरूपसे सदा रहनेवाले लोकोंको धारण करते हैं। यह युगात्मक काल ब्रह्मवेत्ताओंके सनातन ब्रह्मका ही स्वरूप है। सत्ययुगमें धर्म और सत्यके चारों चरण मौजूद रहते हैं—उस समय धर्म और सत्यका पूरा-पूरा पालन होता है। कोई भी अधर्ममें नहीं प्रवृत्त होता। अन्य युगोंमें क्रमशः धर्मका एक-एक चरण नष्ट होता जाता है और चोरी, असत्य तथा छल-कपट आदिके द्वारा अधर्मकी वृद्धि होती रहती है। सत्ययुगके मनुष्य नीरोग और पूर्णकाम होते हैं, उनकी आयु चार सौ वर्षोंकी होती है। त्रेतामें उनकी आयु एक चौथाई घटकर तीन सौ वर्षोंकी रह जाती है। इसी प्रकार द्वापरमें दो सौ और कलियुगमें सौ वर्षोंकी पूरी आयु होती है। त्रेतादि युगोंमें वेदोंका स्वाध्याय कम होने लगता है, मनुष्योंकी आयु घटती जाती है, कामनाओंकी पूर्तिमें बाधा पहुँचने लगती है और वेदाध्ययनके फलमें भी न्यूनता आ जाती है। युगोंके ह्रासके अनुसार सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगमें मनुष्योंके धर्म भी भिन्न-भिन्न होते हैं। सत्ययुगमें तपस्याको सबसे बड़ा धर्म माना गया है, त्रेतामें ज्ञानको उत्तम बताया गया है, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें एकमात्र दान ही श्रेष्ठ कहा गया है। इस प्रकार देवताओंके बारह हजार वर्षोंका एक चतुर्युग होता है। एक हजार चतुर्युग बीतनेपर ब्रह्माका एक दिन पूरा होता है। इतने ही युगोंकी उनकी एक रात्रि भी होती है। भगवान् ब्रह्मा अपने दिनके आरम्भमें संसारकी सृष्टि करते हैं और रातमें जब प्रलयका समय होता है तो सबको अपनेमें लीन करके योगनिद्राका आश्रय लेकर सो जाते हैं। फिर प्रलयका अन्त होने अर्थात् रात बीतनेपर वे जाग उठते हैं। इस प्रकार एक हजार चतुर्युगका जो ब्रह्माका एक दिन बताया गया है और उतनी ही बड़ी जो उनकी रात्रि बतलायी गयी है, उसको जो लोग ठीक-ठीक समझे हुए हैं वे ही कालके तत्त्वको जाननेवाले हैं। रात्रि समाप्त होनेपर जाग्रत् हुए ब्रह्माजी पहले महत्तत्त्वको उत्पन्न करते हैं, फिर उससे स्थूल जगत्‌को धारण करनेवाले मनकी उत्पत्ति होती है।

बेटा! तेजोमय ब्रह्म ही सबका बीज है, उसीसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है। उस एक ही भूतसे स्थावर और जङ्गम दोनोंकी उत्पत्ति होती है। ऊपर बता आये हैं कि ब्रह्माजी अपने दिनके प्रारम्भमें जागकर सृष्टि-रचना आरम्भ करते हैं। सबसे पहले मायासे महत्तत्त्व प्रकट होता है, उससे स्थूल सृष्टिका आधारभूत मन उत्पन्न होता है। फिर सृष्टिकी इच्छासे प्रेरित होनेपर मन नाना प्रकारके आकार धारण करता है, उससे शब्द गुणवाले आकाशकी उत्पत्ति होती है।

तत्पश्चात् जब आकाशमें विकार होता है तो उससे अत्यन्त पवित्र और बलवान् वायुतत्त्वका आविर्भाव होता है। उसका गुण स्पर्श माना गया है। वायुके विकृत होनेपर उससे ज्योतिर्मय अग्नितत्त्व प्रकट होता है, उसका गुण है रूप। फिर तेजमें विकार आनेपर उससे रसमय जलतत्त्वकी उत्पत्ति होती है और जलसे पृथ्वी तथा उसके गुण गन्धका प्रादुर्भाव होता है। पीछे प्रकट हुए वायु आदि भूत अपने पूर्ववर्ती भूतोंके भी गुण धारण करते हैं।

पञ्चमहाभूत, दस इन्द्रियाँ और मन—इन सोलह तत्त्वोंसे शरीरका निर्माण हुआ है। इन सबका आश्रय होनेके कारण ही देहको शरीर कहते हैं। शरीरके उत्पन्न होनेपर उसमें जीवके भोगावशिष्ट कर्मोंके साथ सूक्ष्म महाभूत प्रवेश करते हैं। समस्त प्रजाके आदि कर्ता होनेके कारण ब्रह्माजीको प्रजापति कहते हैं, वे ही चराचर प्राणियोंकी सृष्टि करते हैं। देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य, नाना प्रकारके लोक, नदी, समुद्र, दिशा, पर्वत, वनस्पति, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग तथा सर्पोंको भी वे ही उत्पन्न करते हैं। नित्य और अनित्य पदार्थोंकी सृष्टि भी उन्होंने ही की है। सृष्टिके प्रारम्भमें जिन प्राणियोंके द्वारा जैसे कर्म किये गये होते हैं, दूसरी बार जन्म लेनेपर भी वे उन पूर्वकृत कर्मोंकी वासनासे प्रभावित होनेके कारण वैसे ही कर्म करने लगते हैं। एक जन्ममें मनुष्य हिंसा-अहिंसा, कोमलता-कठोरता, धर्म-अधर्म और सच-झूठ आदि जिन गुणोंको अपनाता है, दूसरे जन्ममें भी उनके संस्कारोंसे प्रभावित होकर उन्हीं गुणोंको पसंद करता और वैसे ही कार्योंमें लग जाता है।

सत्त्वगुणमें स्थित समदर्शी पुरुष तपको ही जीवके कल्याणका मुख्य साधन बतलाते हैं। तपका मूल है शम और दम। पुरुष अपने मनमें जिन-जिन कामनाओंकी इच्छा करता है, उन सबको वह तपस्यासे प्राप्त कर लेता है। जगत्की उत्पत्ति करनेवाले परमात्माकी प्राप्ति भी तपसे ही होती है, तपोबलसे ही मनुष्य समस्त प्राणियोंपर अपना प्रभुत्व स्थापित करता है। तपके ही प्रभावसे महर्षियोंने पूर्व जन्ममें पढ़े हुए वेदोंका स्मरण किया। तपःशक्तिसे सम्पन्न होकर ही ब्रह्माजीने आदि-अन्तसे रहित वेद-विद्याका ज्ञान प्राप्त किया और उसे परवर्ती ऋषियोंमें फैलाया। अपनी रात्रिका अन्त होनेपर ब्रह्माजीने जिन प्राणियोंको जन्म दिया, उनके नाम, नाना प्रकारके भेद, तप, धार्मिक कर्म, यज्ञ, कीर्ति तथा मोक्षके साधनोंको वेदोंके अनुसार ही प्रकाशित किया। ऋषियोंके नाम, देवताओंकी उत्पत्ति, प्राणियोंके अनेकों रूप और उनके कर्म आदिका विधान भी वेदवाक्योंके अनुसार ही हुआ है।

ब्रह्मके दो स्वरूप हैं—एक शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म। इन दोनोंका ज्ञान होना आवश्यक है। जिसे शब्दब्रह्मका पूर्ण ज्ञान हो जाता है वह सुगमतासे परब्रह्मका साक्षात्कार कर लेता है। सत्ययुगके लोग ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदमें बतलाये हुए सकाम यज्ञोंको आत्मासे पृथक् देखकर ध्यानयोगरूप तपका अनुष्ठान करते थे। उसके बाद त्रेतामें जो महाशक्तिशाली पुरुष उत्पन्न हुए, उन्होंने सम्पूर्ण चराचर जगत्को नियमके अंदर रखा। उस समय वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान और वर्णाश्रम-धर्मके पालनकी सुन्दर व्यवस्था थी। परंतु द्वापरयुगमें आयुकी न्यूनताके कारण लोगोंमें उपर्युक्त बातोंकी कमी होने लगी। कलियुग आनेपर तो वेदोंका कहीं दर्शन होता है और कहीं नहीं होता। उस समय अधर्मसे पीडित होकर यज्ञ और वेद लुप्त हो जाते हैं। बेटा ! इस प्रकार तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने सृष्टि, काल, कर्म, वेद और कर्मफल आदिके विषयमें कुछ बातें बतायी हैं।



प्रलयका क्रम, ब्राह्मणको दान देनेकी महिमा तथा ब्राह्मणके कर्तव्यका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—पुत्र ! अब मैं यह बता रहा हूँ कि ब्रह्माजीका दिन बीतनेपर उनकी रात्रि आरम्भ होनेके पहले किस प्रकार इस सृष्टिका लय होता है तथा ब्रह्माजी स्थूल जगत्को अत्यन्त सूक्ष्म करके इसे कैसे अपने भीतर लीन कर लेते हैं ? जब प्रलयका समय आता है तो ऊपरसे सूर्य और नीचेसे अग्निकी सात ज्वालाएँ संसारको भस्म करने लगती हैं। सबसे पहले पृथ्वीके चराचर प्राणी उन ज्वालाओंसे दग्ध होकर धूलमें मिल जाते हैं। उस समय यह भूमि तृण और वृक्षोंसे रहित होकर कछुएकी पीठ-सी दिखायी देने लगती है। तत्पश्चात् जब पृथ्वीके गुण गन्धको ग्रहण कर लेता है, इससे गन्धहीन पृथ्वी अपने कारणभूत जलमें लीन हो जाती है। फिर तो जल गम्भीर शब्द करता हुआ चारों ओर उमड़ पड़ता है, उसमें उत्ताल तरङ्गें उठने लगती हैं और वह सम्पूर्ण विश्वको अपनेमें निमग्न करके लहराता रहता है। तदनन्तर, तेज जलके गुण रसको ग्रहण कर लेता है और रसहीन जल तेजमें लीन हो जाता है। उस समय सम्पूर्ण आकाश आगकी लपटोंसे प्रज्वलित-सा दिखायी देता है। फिर तेजके गुण रूपको वायु-तत्त्व ग्रहण कर लेता है; इससे आग ठंडी होकर वायुमें

मिल जाती है, तब हवाका वेग बढ़ता है और वह बड़े जोरसे हरहराती हुई ऊपर-नीचे तथा इधर-उधर चलने लगती है। इसके बाद आकाश वायुके गुण स्पर्शको ग्रस लेता है, तब हवा शान्त होकर आकाशमें लीन हो जाती है और शब्द-गुणसे युक्त केवल आकाश रह जाता है। रूप, रस, गन्ध और स्पर्शका नाम भी नहीं रहता। तत्पश्चात् दृश्य-प्रपञ्चको व्यक्त करनेवाला मन आकाशके गुण शब्दको, जो मनसे ही प्रकट हुआ था, अपनेमें लीन कर लेता है। इस तरह पाञ्चभौतिक सृष्टिका ब्रह्माके मनमें लय होना ब्राह्म प्रलय कहलाता है। इस क्रमके अनुसार सम्पूर्ण भूतोंके प्रलयस्थान भी ब्रह्माजी ही हैं।

इस प्रकार तुम्हें ज्ञानका सुयोग्य अधिकारी जानकर परमात्माको प्राप्त हुए योगियोंके द्वारा जानने योग्य यह प्रलयका यथावत् वृत्तान्त मैंने सुनाया है। इसी तरह एक-एक हजार युगोंके ब्रह्माके दिन और रात होते रहते हैं तथा दिनके आरम्भमें सृष्टि और रात्रिके आरम्भमें प्रलयका क्रम चालू रहता है।

शुकदेव ! अब मैं तुम्हारे प्रश्नके अनुसार ब्राह्मणका कर्तव्य बतला रहा हूँ, ध्यान देकर सुनो—ब्राह्मण-बालकका जातकर्मसे लेकर समावर्तनतक विधिवत् संस्कार होना चाहिये। प्रत्येक संस्कारमें दक्षिणा देनी चाहिये। उपनयनके पश्चात् वह वेदोंके पारगामी आचार्यकी सेवामें रहकर सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन करे। फिर शुश्रूषा और दक्षिणाके द्वारा गुरु-ऋणसे मुक्त होनेके बाद उसका समावर्तन-संस्कार होना चाहिये। तदनन्तर, आचार्यकी आज्ञा लेकर ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास—इन चारों आश्रमोंमेंसे किसी एक आश्रममें शास्त्रोक्त विधिके अनुसार जीवनपर्यन्त रहे अथवा क्रमशः सभी आश्रमोंमें प्रवेश करे।

गृहस्थ-आश्रम सब धर्मोंका मूल है। इसमें रहकर अन्तःकरणके रागादि दोष पक जानेपर जितेन्द्रिय पुरुषको सर्वत्र सिद्धि प्राप्त होती है। गृहस्थ पुरुष पुत्र उत्पन्न करके पितृ-ऋणसे, वेदोंका स्वाध्याय करके ऋषि-ऋणसे और यज्ञोंका अनुष्ठान करके देव-ऋणसे छुटकारा पाता है। इस प्रकार तीनों ऋणोंसे मुक्त होकर वह अपने वर्ण तथा आश्रमके लिये विहित कर्मोंका सम्पादन करे और अपनेको पवित्र बनावे। तत्पश्चात् दूसरे आश्रमोंमें प्रवेश करे। इस पृथ्वीपर जो स्थान पवित्र एवं उत्तम जान पड़े वहीं निवास करके वह अपनेको यशस्वी और आदर्श पुरुष बनानेका प्रयत्न करे। महान् तप, पूर्ण विद्याध्ययन, व्रत, यज्ञ अथवा दान करनेसे गृहस्थ ब्राह्मणका यश बढ़ता है। उसकी कीर्ति जबतक इस संसारमें उसके सुयशका विस्तार करती रहती है, तबतक वह पुण्यवानोंके अक्षय लोकोंमें निवास करके दिव्य सुख भोगता रहता है। ब्राह्मणको अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन और दान तथा प्रतिग्रह—इन छः कर्मोंका आश्रय लेना चाहिये। किंतु उसे अनुचित प्रतिग्रह और व्यर्थ दानसे बचना चाहिये। देवता, ऋषि, पितर, गुरु, वृद्ध , रोगी और भूखे मनुष्योंको भोजन देनेके लिये गृहस्थ ब्राह्मणको प्रतिग्रह स्वीकार करना चाहिये। अपनी शक्तिके अनुसार पारमार्थिक उन्नतिके लिये प्रयत्न करनेवाले ब्राह्मणोंको द्रव्यके अतिरिक्त बनी हुई रसोईमेंसे अन्न भी देना चाहिये। योग्य ब्राह्मणोंके लिये कोई भी वस्तु अदेय नहीं है। महान् व्रतधारी राजा सत्यसंध ब्राह्मणके प्राणोंकी रक्षाके लिये अपने प्राण देकर स्वर्गलोकमें गये थे। अत्रिके पुत्र राजा इन्द्रदमनने योग्य ब्राह्मणको नाना प्रकारके धन दान करके अक्षय लोक प्राप्त किये थे। देवावृधने सोनेका छत्र दान करके अपने देशकी प्रजाके साथ स्वर्गलोक प्राप्त किया। अत्रिवंशमें उत्पन्न महातेजस्वी सांकृति अपने शिष्योंको निर्गुण ब्रह्मका उपदेश देकर उत्तम लोकोंको प्राप्त हुए। राजा अम्बरीषने ब्राह्मणोंको ग्यारह अरब गौएँ दान देकर देशवासियोंसहित स्वर्गमें निवास किया। सावित्रीने दो दिव्य कुण्डल दान किये थे और राजा जनमेजयने ब्राह्मणके लिये अपने शरीरका परित्याग किया था—इससे उन दोनोंको उत्तम लोककी प्राप्ति हुई। विदेहराज निमिने अपना राज्य और जमदग्निनन्दन परशुराम तथा राजा गयने नगरोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणको दानमें दे दी थी। एक बार पानी न बरसनेपर वसिष्ठने दूसरे प्रजापतिकी भाँति सम्पूर्ण प्रजाको जीवनदान किया। करन्धमके पुत्र राजा मरुत्तने महर्षि अङ्गिराको अपनी कन्या और पाञ्चालदेशके राजा ब्रह्मदत्तने उत्तम ब्राह्मणोंको महानिधि शङ्ख देकर उत्तम लोक प्राप्त किया था। राजर्षि सहस्रजित्ने ब्राह्मणके लिये अपने प्राण दे दिये। राजा शतद्युम्नने महर्षि मुद्गलको सब प्रकारके सुख-भोगोंसे भरा हुआ सुवर्णमय घर दान किया और शाल्वनरेश द्युतिमान्ने ऋचीक मुनिको अपना राज्य अर्पण कर दिया। इन सब राजाओंको उत्तम लोकोंकी प्राप्ति हुई थी। राजर्षि लोमपादने ऋष्यशृङ्ग मुनिको शान्ता नामकी अपनी कन्या ब्याह दी और राजा मदिराश्वने भी हिरण्यहस्त ऋषिको अपनी पुत्री अर्पण कर दी थी—इससे इन दोनोंको सब प्रकारकी कामनाएँ तथा उत्तम लोक प्राप्त हुए। राजा प्रसेनजित् बछड़ोंसहित एक लाख गौएँ दान करके उत्तम लोकोंमें गये। ये तथा और भी बहुत-से जितेन्द्रिय महापुरुष दान और तपके द्वारा स्वर्गको प्राप्त हो चुके हैं। जबतक यह पृथ्वी रहेगी, तबतक उनकी कीर्ति इस संसारमें कायम रहेगी।

ब्राह्मणको ऋक्, साम, यजु—इन तीन वेदों तथा वेदाङ्गोंका अध्ययन करना चाहिये। जो ब्राह्मण वेदाध्ययनमें प्रवीण, अध्यात्मज्ञानमें कुशल और सत्त्वगुणका अवलम्बन करनेवाले हैं, वे ही महाभाग उत्पत्ति और प्रलयके तत्त्वको प्रत्यक्षकी भाँति देखते हैं। ब्राह्मणको उचित है कि धर्मके अनुकूल जीवन बनावे और शिष्ट पुरुषोंकी भाँति सदाचारका पालन करे। किसी भी जीवको कष्ट न देकर ही जीविका चलावे। महात्मा पुरुषोंकी सेवामें रहकर तत्त्वज्ञान प्राप्त करे, सत्पुरुष बने और शास्त्रकी व्याख्या करनेमें कुशल हो। अपने धर्मके अनुकूल नित्यकर्मोंका अनुष्ठान करे। कर्तव्यपरायण सत्त्वगुणी महात्माओंका सङ्ग करे और गृहस्थाश्रममें रहते हुए अध्ययनाध्यापनादि छः कर्मोंमें लगा रहे। ऐसा आचरण करनेवाला ही उत्तम ब्राह्मण माना जाता है।

गृहस्थ ब्राह्मणको सदा श्रद्धापूर्वक पञ्चमहायज्ञोंद्वारा परमात्माका पूजन करना चाहिये। वह सदा धैर्य धारण करे, प्रमादसे बचे, मन और इन्द्रियोंको काबूमें रखे, धर्मात्मा बने, आत्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करे और हर्ष, मद तथा क्रोधसे रहित हो जाय। ऐसे ब्राह्मणको कभी दुःख नहीं भोगना पड़ता। अध्ययन, यज्ञ, दान, तप, लज्जा, सरलता और इन्द्रियसंयमसे वह अपने तेजको बढ़ावे और पापको नष्ट करे। इस प्रकार पापरहित होकर अपने मेधाशक्तिको जाग्रत् करे तथा मिताहारी और जितेन्द्रिय हो काम और क्रोधको अधीन करके ब्रह्मपदको पानेकी इच्छा करे। अग्नि, ब्राह्मण और देवताओंको प्रणाम करे। कड़वी बात न बोले और हिंसा न करे। यह ब्राह्मणका परम्परागत कर्तव्य है। कर्मोंके तत्त्वको जानकर उनका अनुष्ठान करनेसे अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है। इस बातको भूलना नहीं चाहिये कि प्राणियोंको अत्यन्त मोहमें डालनेवाला काल सदा आक्रमण करनेके लिये तैयार खड़ा है। बुद्धिमान् और धीर मनुष्य ज्ञानमयी नौकासे संसारसागरके पार हो जाते हैं; क्योंकि वे गुण और दोषोंका विचार करके गुणोंका ग्रहण और दोषोंका परित्याग करते हैं। किंतु कामनाओंमें आसक्त, चञ्चलचित्त, मन्दबुद्धि , एवं अज्ञानी पुरुष संदेहमें पड़ जानेके कारण इस संसारसागरको नहीं पार कर सकते। वे हिम्मत हारकर बैठ जाते हैं, इसलिये आगे नहीं बढ़ पाते। अतः बुद्धिमान्‌को भवसागरसे पार होनेका अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। इसका पार होना यही है कि वह सच्चे अर्थमें ब्राह्मण बन जाय अर्थात् ब्रह्मज्ञानको प्राप्त करे। उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ ब्राह्मण अध्यापन, याजन और प्रतिग्रह—इन तीन कर्मोंको संदेहकी दृष्टिसे देखकर उनमें प्रवृत्त न हो और अध्ययन, यजन तथा दान—इन तीन कर्मोंका अवश्य पालन करे। वह जैसे भी हो अपने उद्धारका प्रयत्न करे। ज्ञानके द्वारा इस भवसागरको अवश्य पार कर जाय। जिसके वैदिक संस्कार विधिवत् सम्पन्न हुए हैं, जो नियमपूर्वक रहकर मन और इन्द्रियोंपर विजय पा चुका है, उस विज्ञ पुरुषको इस लोक या परलोकमें कहीं भी सिद्धि प्राप्त होते देर नहीं लगती। गृहस्थ ब्राह्मण क्रोध और ईर्ष्याका त्याग करके उपर्युक्त नियमोंके पालनमें संलग्न रहे। नित्य पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान करके यज्ञशिष्ट अन्नका ही भोजन करे। सत्पुरुषोंके धर्म और शिष्टाचारका पालन करे, ऐसी आजीविका पसंद करे जिससे दूसरे लोगोंको कष्ट न हो तथा जिसकी लोकमें निन्दा न होती हो। ब्राह्मणको वेदका विद्वान् , तत्त्वज्ञानी, सदाचारी और चतुर होना चाहिये। जो अपने धर्मके अनुसार कार्य करनेवाला, श्रद्धालु और धर्म-अधर्मके तत्त्वको जाननेवाला होता है, वह सम्पूर्ण दुःखोंके पार हो जाता है। धैर्य, अप्रमाद, इन्द्रियसंयम और आत्मज्ञानको प्राप्त करना तथा हर्ष, मद और क्रोधको त्यागना यह ब्राह्मणका प्राचीन धर्म है। ज्ञानवान् होकर कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे उसे सर्वत्र सिद्धि प्राप्त होती है।



ज्ञानद्वारा मोक्षकी प्राप्ति, ध्यानके सहायक योग और सात प्रकारकी धारणाओंका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—पुत्र ! यदि मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो मनुष्यको ज्ञानवान् होना चाहिये। जैसे समुद्रकी ऊँची-नीची लहरोंमें डूबता-उतराता हुआ मनुष्य नाव मिल जानेपर उसके पार हो जाता है, उसी प्रकार संसार-सागरसे पार होनेके लिये भी बुद्धिमान् पुरुषको ज्ञानरूपी नौकाका सहारा लेना चाहिये। जो ज्ञानी है, वह ज्ञानमयी नौकाकी सहायतासे अज्ञानियोंको भी भवसागरसे पार कर देता है। ध्यानयोगकी साधना करनेवाले मुनिको चाहिये कि वह

हृदयके रागादि दोषोंको दूर कर पापोंसे मुक्त हो योगमें सहायता पहुँचानेवाले देश, कर्म, अनुराग, अर्थ, उपाय, अपाय, निश्चय, चक्षुष् ,आहार, संहार, मन और दर्शन—इन बारह उपायोंका आश्रय ले * ।

जिसे उत्तम ज्ञान (मोक्ष) प्राप्त करनेकी इच्छा हो उसे बुद्धिके द्वारा मन और वाणीको जीतना चाहिये। मनुष्य शूरवीर हो या दुःखी, वह इस प्रकारकी साधनासे जरा और मृत्युरूप दुर्गम समुद्रके पार हो जाता है। उपर्युक्तरूपसे योगमें प्रवृत्त हुए पुरुषको यदि ब्रह्मज्ञानकी इच्छा हो तो वह वैदिक कर्मफलोंकी सीमाको भी लाँघ जाता है। अक्षर ब्रह्मको प्राप्त करनेकी अभिलाषावाले पुरुषको जिस प्रकार शीघ्र सफलता मिल सकती है, वह उपाय मैं बता रहा हूँ। किसी एक विषयमें चित्तको स्थापित करनेका नाम है धारणा। ये धारणाएँ सात प्रकारकी होती हैं। ❊ साधकको मौन होकर यम-नियमका पालन करते हुए इनका अभ्यास करना चाहिये। दूर और समीपके भेदसे सात ही अवान्तर

---

* ध्यानयोगके साधकको ऐसे स्थानपर आसन लगाना चाहिये जो समतल और पवित्र हो। जहाँ रेत, कंकड़-पत्थर और आग आदि न हो, कानोंमें किसी तरहकी आवाज न आती हो, दूसरोंके रहनेका घर न हो तथा सार्वजनिक कुआँ, तालाब, बावड़ी या नदीका घाट आदि भी न हो। जो नेत्रोंको भला मालूम हो, जहाँ मन लग सके और हवाका जोर न हो। गुफा या ऐसा ही कोई एकान्तस्थान ही ध्यानके लिये उपयोगी होता है। ऐसे स्थानपर आसन लगानेको **देशयोग** कहते हैं। आहार, विहार, चेष्टा, सोना और जागना—ये सब परिमित और नियमानुकूल होने चाहिये। यही **कर्मनामक योग** है। सदाचारी शिष्यको अपनी सेवा और सहायताके लिये रखना **अनुरागयोग** कहलाता है। आवश्यक सामग्रीके संग्रहका नाम **अर्थयोग** है। ध्यानोपयोगी आसनसे बैठना **उपाययोग** है। संसारके विषयों और सगे-सम्बन्धियोंसे आसक्ति तथा ममता हटा लेनेको **अपाययोग** कहते हैं। गुरु और वेद-शास्त्रके वचनोंपर विश्वास रखनेका नाम **निश्चययोग** है। चक्षु आदि इन्द्रियोंको वशमें रखना **चक्षुर्योग** है। शुद्ध और सात्त्विक भोजनका नाम है **आहारयोग**। विषयोंकी ओर होनेवाली स्वाभाविक प्रवृत्तिको रोकना **संहारयोग** कहलाता है। मनके संकल्प, विकल्पको शान्त करनेका प्रयत्न **मनोयोग** है। जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि होनेके समय जो महान् दुःख होता है, उसपर विचार करके संसारसे विरक्त होनेका नाम **दर्शनयोग** है। जिसे योगके द्वारा सिद्धि प्राप्त करनी हो, उसे इन बारह योगोंको अवश्य सिद्ध कर लेना चाहिये।

❊ शरीरके अंदर क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अव्यक्त और अहंकार—इन सात तत्त्वोंका चिन्तन किया जाता है। यही सात प्रकारकी धारणा है। इसको इस प्रकार समझना चाहिये—पैरसे लेकर घुटनोंतक पृथ्वीका स्थान समझकर उसमें पृथ्वीकी धारणा करनी चाहिये। घुटनेसे लेकर गुदातक जलका स्थान माना गया है। गुदासे लेकर हृदयतक अग्निका स्थान कहलाता है। हृदयसे दोनों भौंहोंके बीचतकका भाग वायुका स्थान है और भ्रूमध्यसे लेकर मूर्धातक आकाश माना गया है। जल आदिके स्थानोंमें उस-उस तत्त्वकी धारणा करनी चाहिये। इसकी विधि यों है—पृथ्वी यानी-पैरसे घुटनेतकके भागमें भावनाद्वारा प्रणवसहित लं बीज और वायु देवताकी स्थापना करके चार मुखोंवाले सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीका ध्यान करे। पाँच घड़ीतक इस प्रकार धारणा करनेसे पृथ्वीतत्त्वपर विजय प्राप्त होती है। इसी प्रकार जलके स्थानमें प्रणवसहित वं बीज और वायु देवताको स्थापित करके ध्यानमें देखे कि 'वहाँ चार भुजाधारी भगवान् नारायण विराजमान हैं। उनके शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल श्रीविग्रहपर पीताम्बर शोभा पा रहा है। वे साधककी ओर देखकर मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं, बड़ी सुन्दर झाँकी है।' पाँच घड़ीतक इस प्रकार धारणा करनेसे सब प्रकारके रोग नष्ट हो जाते हैं। अग्निके स्थानमें भी प्रणव एवं रं बीजसहित वायु देवताकी स्थापना करके वहाँ इस प्रकार ध्यान करे—'मध्याह्नकालीन सूर्यके समान अत्यन्त तेजस्वी, त्रिनेत्रधारी वरदाता भगवान् शंकर सामने खड़े हैं। उनके सम्पूर्ण अङ्गोंमें विभूति शोभा दे रही है, वे बड़े प्रसन्न दिखायी देते हैं।' यह धारणा भी पाँच घड़ीतक सिद्ध हो जाय तो आगसे जलनेका भय नहीं रहता। वायुके स्थान अर्थात् हृदयसे भ्रूमध्यतकके भागमें पूर्ववत् भावनाके ही द्वारा प्रणवयुक्त यं बीज और वायु देवताका स्थापन करके उसमें भी अग्नितत्त्वकी भाँति भगवान् शंकरका ही ध्यान करे। यह धारणा सिद्ध होनेपर वायुकी तरह आकाशमें विचरनेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। आकाशतत्त्वके स्थानमें भी प्रणवयुक्त हं बीजके साथ वायु देवताकी प्रतिष्ठा करके उसमें आकाशके समान निराकार भगवान् सदाशिवका बिन्दुके रूपमें चिन्तन करे। अव्यक्तकी धारणामें नादका चिन्तन किया जाता है। अहंकारकी धारणामें स्थूलदेहकी आसक्तिका परित्याग करके 'मैं ही यह सम्पूर्ण विश्व हूँ' ऐसी भावना की जाती है। इसके बाद योगीको तत्त्वका साक्षात्कार हो जाता है।

(नीलकण्ठीके आधारपर)

धारणाएँ भी होती हैं। उन्हें प्रधारणा कहते हैं। (चन्द्र, सूर्य, ध्रुवमण्डल आदिकी धारणा दूरस्थ है और नासाग्र, भ्रूमध्य, कण्ठकूप आदिकी धारणा समीपस्थ है।) इन धारणाओंके द्वारा क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अव्यक्त तथा अहंकारके ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। अब योगाभ्यासमें प्रवृत्त हुए योगीके कुछ अनुभव बतलाते जाते हैं तथा धारणापूर्वक ध्यान करते समय जो पृथ्वीजय आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, उनका भी वर्णन किया जाता है।

साधक जब स्थूल देहके अभिमानसे मुक्त होकर ध्यानमें स्थित होता है तो उस समय सूक्ष्मदृष्टिसे युक्त होनेके कारण उसे कुछ इस तरहके रूप (चिह्न) दिखायी पड़ते हैं। प्रारम्भमें पृथ्वीकी धारणा करते समय मालूम होता है कि कुहरेके समान कोई सूक्ष्म वस्तु सम्पूर्ण आकाशको आच्छादित कर रही है।* यह पहला रूप है। जब कुहरा निवृत्त हो जाता है तो दूसरे रूपका दर्शन होता है। वह अपने देहके भीतर तथा सम्पूर्ण आकाशमें जल-ही-जल देखता है। यह अनुभव जलतत्त्वकी धारणा करते समय होता है; फिर जलका लय हो जानेपर जब वह अग्नितत्त्वकी धारणा करता है तो सर्वत्र आगकी ज्वाला दिखायी पड़ती है। इसके भी लय हो जानेपर योगीको आकाशमें सर्वत्र फैले हुए वायुका ही अनुभव होता है और वह स्वयं भी ऊनके धागेके समान अत्यन्त लघु और हलका होकर अपनेको निराधार आकाशमें वायुके ही साथ-साथ स्थित मानता है। उस समय उसे अपने शरीरका हृदयसे ऊपरका ही भाग दिखायी पड़ता है। इस प्रकार तेजका संहार करके जब योगी वायुपर विजय पाता है तो वायुका सूक्ष्मरूप आकाशमें लीन हो जाता है और केवल छिद्ररूप नीलाकाशमात्र शेष रहता है। उस अवस्थामें ब्रह्मभावको प्राप्त होनेकी इच्छा रखनेवाले योगीका चित्त अत्यन्त सूक्ष्म हो जाता है। उसे अपने स्थूल रूपका तनिक भी भान नहीं होता।

इन सब रूपों (चिह्नों) के दिखायी देनेके पश्चात् योगीको जो-जो फल प्राप्त होते हैं, उन्हें सुनो—पार्थिव ऐश्वर्यकी सिद्धि हो जानेपर योगीमें सृष्टि करनेकी शक्ति आ जाती है। वह प्रजापतिके समान अपने शरीरसे प्रजाकी सृष्टि कर सकता है। जिसको वायुतत्त्व सिद्ध हो जाता है वह बिना किसीकी सहायताके हाथ, पैर, अँगूठे अथवा अङ्गुलीमात्रसे दबाकर पृथ्वीको कम्पितकर सकता है। आकाशको सिद्ध करनेवाला पुरुष आकाशके ही समान होकर सर्वत्र विचरता है और अपने शरीरको अदृश्य कर सकता है। जिसका जलतत्त्वपर अधिकार हो जाता है, वह इच्छा करते ही बड़े-बड़े जलाशयोंको पी सकता है। अग्नितत्त्वको सिद्ध कर लेनेपर वह शरीरको इतना तेजस्वी बना लेता है कि कोई उसकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकता; फिर तेजको शान्त कर लेनेपर ही वह दिखायी देता है। अहंकारको जीत लेनेपर पाँचों भूत योगीके वशमें हो जाते हैं। पञ्चभूत और अहंकार—इन छः तत्त्वोंका आत्मा है बुद्धि, उसको जीत लेनेपर सम्पूर्ण ऐश्वर्योंकी प्राप्ति हो जाती है। उस समय विशुद्ध ज्ञान प्राप्त होता है।

जिसने ममता और अहंकारका त्याग कर दिया है, जो शीत, उष्ण आदि द्वन्द्वोंको समान भावसे सहता है, जिसके संशय दूर हो गये हैं, जो कभी क्रोध और द्वेष नहीं करता, झूठ नहीं बोलता, किसीकी गाली सुनकर और मार खाकर भी उसका अहित नहीं सोचता, सबपर मित्रभाव ही रखता है, जो मन, वाणी और कर्मसे किसी जीवको कष्ट नहीं पहुँचाता और सब प्राणियोंपर समान भाव रखता है; वही योगी ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। जो किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करता, जीवन-निर्वाह मात्रके लिये जो कुछ मिल जाता है,उसीपर संतोष करता है, जो निर्लोभ, निश्चिन्त, जितेन्द्रिय और पूर्णकाम है, सब प्राणियोंपर समान दृष्टि रखता है, मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णको एक-सा समझता है, जिसकी दृष्टिमें प्रिय और अप्रियका भेद नहीं है, जो धीर है, निन्दा और स्तुतिका जिसके चित्तपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जो कामनाओंकी इच्छा न रखकर दृढ़ताके साथ ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करता है तथा किसी भी जीवकी हिंसा नहीं करता—ऐसा ज्ञानवान् योगी ही संसारसे मुक्त होता है। योगीकी जिस उपायसे मुक्ति होती है, उसे बतलाता हूँ,

---

* यह अनुभव इस प्रकार होता है। जब साधक पैरसे लेकर घुटनेतकके भागमें पृथ्वी-तत्त्वकी धारणा करता है तो धारणा सिद्ध होनेपर उस स्थानका तो लय हो जाता है और वहाँ कुहरा-सा दिखायी पड़ता है। उस समय घुटनेसे ऊपरका भाग और आकाश कुहरेसे आच्छादित-सा जान पड़ता है। इस स्थितिको पृथ्वीपर विजय पानेका चिह्न मानते हैं। इसके बाद जब घुटनेसे ऊपर पायुतकके भागमें जलतत्त्वकी धारणा की जाती है तो वह कुहरा और पृथ्वीका स्थान अदृश्य हो जाता है तथा पायुसे ऊपरका भाग कल्पान्तके समुद्रमें डूबा-सा जान पड़ता है। यह जलतत्त्वमें भूमिके लय होने और जलतत्त्वपर विजय पानेका चिह्न है। इसी प्रकार उत्तरोत्तर धारणाओंमें भूतोंका लय होता और उनपर विजय पायी जाती है।

सुनो—योगसे जिन ऐश्वर्यों अथवा सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है, उनकी अवहेलना करके पूर्ण विरक्त हो जाना चाहिये। ऐसा करनेसे ही मोक्ष प्राप्त होता है। इस प्रकार भावशुद्धिसे प्राप्त होनेवाली बुद्धिका मैंने वर्णन किया है। जो उपर्युक्तरूपसे साधना करके द्वन्द्वोंसे रहित हो जाता है, वही ब्रह्मभावको प्राप्त होता है।



बुद्धिकी प्रशंसा, प्राणियोंके तारतम्य, ज्ञानका साधन तथा उसकी महिमा

शुकदेवजीने पूछा—पिताजी ! जिसके द्वारा मनुष्यको जन्म और मृत्युके बन्धनसे छुटकारा मिल जाता है, उस ज्ञानका क्या स्वरूप है ? प्रवृत्तिधर्मसे मुक्ति होती है या निवृत्तिधर्मसे ? मुझे बताइये।

व्यासजीने कहा—बेटा ! जो बुद्धिमान् हैं, वे ही खेलनेके लिये स्थान और रहनेके लिये घर बना सकते हैं, वे ही रोगोंको पहचानकर उनपर ठीक-ठीक दवाका प्रयोग कर सकते हैं। बुद्धिसे ही अर्थ प्राप्त होता है और बुद्धि ही कल्याण करती है। यद्यपि सब राजा एक-से ही होते हैं, किंतु उनमें जो बुद्धिमें बढ़ा-चढ़ा होता है, वही राज्यका उपभोग और दूसरोंपर शासन करता है। प्राणियोंके स्थूल-सूक्ष्म या छोटे-बड़ेका भेद बुद्धिसे ही जाना जाता है। बुद्धि ही सबकी परम गति है। संसारमें जो नाना प्रकारके प्राणी हैं, उनके जन्मपर दृष्टि रखते हुए उन्हें जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज—इन चार भागोंमें विभक्त किया जाता है। स्थावर प्राणियोंसे जङ्गमोंको श्रेष्ठ समझना चाहिये; क्योंकि उनमें चलने-फिरने आदिकी शक्ति होती है। जङ्गम जीवोंमें भी बहुत पैरवाले और दो पैरवाले ये दो तरहके प्राणी होते हैं। इनमें बहुत पैरवालोंकी अपेक्षा दो पैरवाले श्रेष्ठ होते हैं। दो पैरवालोंके भी दो भेद हैं—मनुष्य और खेचर। खेचरोंसे मनुष्य ही श्रेष्ठ हैं; क्योंकि उन्हें अन्न आदि भोगनेकी सुविधा प्राप्त है। मनुष्य भी दो प्रकारके हैं—उत्तम और मध्यम। मध्यम मनुष्योंकी अपेक्षा विशुद्ध ज्ञान प्राप्त करनेके कारण उत्तम मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मध्यम भी जातिधर्मका पालन करते हैं, इसलिये वे अधम मनुष्योंकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। मध्यम मनुष्योंके भी दो भेद हैं—धर्मके ज्ञाता और धर्मके अनभिज्ञ। इनमें धर्मज्ञ ही श्रेष्ठ हैं; क्योंकि उनमें कर्तव्य और अकर्तव्यका विवेक होता है। धर्मके जाननेवाले भी दो प्रकारके होते हैं—वेदके जानकार और वेदको न जाननेवाले। इनमें वेदके जानकार उत्तम हैं; क्योंकि उनमें वेद प्रतिष्ठित है। वेदके जानकार भी दो तरहके होते हैं—एक प्रवचन करनेमें कुशल होते हैं और दूसरे नहीं। उनमें प्रवचन करनेवाले ही श्रेष्ठ हैं; क्योंकि उन्हें वेदमें बताये हुए सम्पूर्ण धर्मोंका स्मरण रहता है तथा उनके द्वारा वैदिक धर्म, कर्म और उनके फलोंका दूसरोंको ज्ञान होता है। प्रवचन करनेवाले विद्वान् भी दो प्रकारके हैं—एक आत्मतत्त्वको जानते हैं और दूसरे नहीं। इनमें आत्मज्ञ पुरुष ही श्रेष्ठ हैं; क्योंकि वे जन्म और मृत्युके तत्त्वको समझते हैं। जो प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दोनों धर्मोंको जानता है, वही सर्वज्ञ, सर्ववेत्ता, त्यागी, सत्यसंकल्प, सत्यवादी, पवित्र और शक्तिमान् है। जो वेदशास्त्रका ज्ञाता है और तत्त्वका निश्चय करके ब्रह्मज्ञानमें स्थित हो गया है, उसे ही देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। बेटा ! जो लोग ज्ञानवान् होकर बाहर और भीतर व्याप्त अधियज्ञ (परमात्मा) और अधिदैवत (पुरुष) का साक्षात्कार कर लेते हैं, वे ही देवता और वे ही द्विज हैं। उन्हींमें यह सम्पूर्ण विश्व प्रतिष्ठित है। उनके माहात्म्यकी कहीं तुलना नहीं है। वे जन्म, मृत्यु और कर्मकी सीमाको लाँघकर समस्त प्राणियोंके अधीश्वर और स्वयम्भू होते हैं।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! इस प्रकार महर्षि व्यासके उपदेशको सुनकर शुकदेवजीने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और मोक्षधर्मके विषयमें पूछनेके लिये उत्सुक होकर इस प्रकार कहा—'पिताजी ! प्रज्ञावान्, वेदवेत्ता, याज्ञिक, दोषदृष्टिसे रहित तथा शुद्ध बुद्धिवाला पुरुष प्रत्यक्ष और अनुमानसे अज्ञात अलौकिक ब्रह्मको किस प्रकार प्राप्त होता है ? तप, ब्रह्मचर्य, सर्वस्वका त्याग, मेधाशक्ति, सांख्य अथवा योग—इनमेंसे किस साधनके द्वारा तत्त्वका साक्षात्कार होता है ? मनुष्य मन और इन्द्रियोंको किस उपायसे एकाग्र कर सकता है ? ये सब बातें बतानेकी कृपा कीजिये।'

व्यासजीने कहा—बेटा ! विद्या, तप, इन्द्रियनिग्रह और सर्वस्वत्यागके बिना कोई भी सिद्धि नहीं पा सकता। सम्पूर्ण महाभूत विधाताकी पहली सृष्टि हैं। वे प्राणियोंके शरीरमें भरे हुए हैं। पृथ्वीसे देहका निर्माण हुआ है। चिकनाहट और पसीने आदि जलके अंश हैं और अग्निसे नेत्र तथा वायुसे प्राण और अपान उत्पन्न हुए हैं। नाक, कान आदिके छिद्र आकाश-तत्त्वके स्वरूप हैं। चरणोंमें विष्णु, हाथोंमें इन्द्र और

उदरमें अग्नि देवता भोक्तारूपमें स्थित रहते हैं। कानोंमें श्रोत्र इन्द्रिय और दिशाएँ हैं। जिह्वामें वाक् इन्द्रिय और सरस्वती देवताका निवास है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और उन्हें विषयानुभवका द्वार बतलाया गया है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये इन्द्रियोंके विषय हैं। इन्हें इन्द्रियोंसे पृथक् समझना चाहिये। जैसे सारथि घोड़ोंको अपने वशमें रखकर उन्हें अपने इच्छानुसार चलाता है, इसी प्रकार मन इन्द्रियोंको काबूमें रखकर उन्हें स्वेच्छासे विषयोंकी ओर प्रेरित करता रहता है; किंतु हृदयमें रहनेवाला जीवात्मा उस मनपर भी सदा शासन किया करता है। जैसे मन सम्पूर्ण इन्द्रियोंका राजा और उन्हें विषयोंकी ओर प्रवृत्त करने तथा रोकनेमें समर्थ है, उसी प्रकार हृदयस्थित जीवात्मा भी मनका स्वामी तथा उसके निग्रह-अनुग्रहमें समर्थ है। इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके रूप, रस आदि विषय, स्वभाव (शीत-उष्णादि धर्म), चेतना, मन, प्राण, अपान और जीव—ये देहधारियोंके शरीरमें सदा मौजूद रहते हैं। इस प्रकार विद्वान् पुरुष पाँच इन्द्रिय, पाँच विषय और छः स्वभाव आदि गुण—इन सोलह तत्त्वोंसे आवृत अपने विशुद्ध आत्माका बुद्धिके द्वारा अन्तःकरणमें साक्षात्कार करता है। इस महान् आत्माका दर्शन नेत्रों अथवा सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे नहीं हो सकता। यह विशुद्ध मनरूपी दीपकसे ही बुद्धिमें प्रकाशित होता है। परमात्मा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धसे हीन, अविकारी तथा शरीर और इन्द्रियोंसे रहित है तो भी शरीरके भीतर ही इसका अनुसंधान करना चाहिये। जो इस विनाशशील शरीरमें अव्यक्त भावसे स्थित परमेश्वरका ज्ञानमयी दृष्टिसे निरन्तर साक्षात्कार करता रहता है, वह मृत्युके पश्चात् ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। ज्ञानीजन विद्या और उत्तम कुलसे युक्त ब्राह्मणमें तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें भी समान दृष्टि रखनेवाले होते हैं। जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, वह परमात्मा समस्त चराचर प्राणियोंके भीतर निवास करता है। जब जीवात्मा सम्पूर्ण प्राणियोंमें अपनेको और अपनेमें सम्पूर्ण प्राणियोंको स्थित देखता है, उस समय वह ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। अपने शरीरके भीतर जैसा आत्मा है वैसा ही दूसरोंके शरीरमें भी है; जिस पुरुषको निरन्तर ऐसा ज्ञान बना रहता है, वह अमृतत्व (मोक्ष) को प्राप्त होता है। जो सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मा होकर सबके हितमें लगा हुआ है, जिसका अपना कोई मार्ग नहीं है तथा जो ब्रह्मपदको प्राप्त करना चाहता है, उसके मार्गकी खोज करनेमें देवता भी मोहित हो जाते हैं। जैसे आकाशमें चिड़ियोंके और जलमें मछलियोंके चलनेके चिह्न दिखायी नहीं पड़ते, उसी प्रकार ज्ञानियोंकी गतिका भी किसीको पता नहीं चलता।

काल सम्पूर्ण प्राणियोंको पकाता (नष्ट करता) है, किंतु जहाँ काल भी पकाया जाता है—जो कालका भी काल है, उस आत्माको कोई नहीं जानता। परमात्मा ऊपर, नीचे, इधर-उधर अथवा बीचमें नहीं है। वह किसी एक स्थानसे दूसरे स्थानको गमन नहीं करता। सम्पूर्ण लोक उसके भीतर ही स्थित हैं। कोई भी स्थान उसके स्वरूपसे बाहर नहीं है। यदि कोई धनुषसे छूटे हुए बाण अथवा मनके समान वेगसे निरन्तर दौड़ता रहे, तब भी जगत्के कारणस्वरूप उस परमेश्वरका अन्त नहीं पा सकता। वह सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म है तथा उससे बढ़कर स्थूल भी कोई दूसरी वस्तु नहीं है। उसके सब ओर हाथ-पैर हैं, सब ओर नेत्र हैं तथा सब ओर सिर, मुख और कान हैं; क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है। छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा भी वही है। यद्यपि वह सब प्राणियोंके भीतर स्थित रहता है तो भी उसको कोई देख नहीं पाता। क्षर और अक्षर भेदसे दो प्रकारके पुरुष हैं। सम्पूर्ण भूत तो क्षर (विनाशी) हैं और दिव्य अमृतस्वरूप चेतन आत्मा अक्षर (अविनाशी) है। हंस नामसे जिस अविनाशी जीवात्माका प्रतिपादन किया गया है, वह कूटस्थ अक्षर ही है। इस प्रकार जो विद्वान् उस अक्षर आत्माको यथार्थ रूपसे जान लेता है, वह जन्म और मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है।



योगसे परमात्माकी प्राप्तिका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—बेटा ! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने यहाँ ज्ञानके विषयका यथावत् वर्णन किया। अब योगकी बातें बता रहा हूँ, सुनो—इन्द्रिय, मन और बुद्धिकी वृत्तियोंको रोककर व्यापक आत्माके साथ उनकी एकता स्थापित करना ही योगशास्त्रके मतमें उत्तम ज्ञान है। इसे प्राप्त करनेके लिये योगीको शम, दम आदि साधनोंसे सम्पन्न होना चाहिये। वह अध्यात्म-शास्त्रका चिन्तन करे, आत्मामें ही अनुराग रखे, शास्त्रोंका तत्त्व जाने और शास्त्रविहित कर्मोंका निष्कामभावसे अनुष्ठान करे, काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न—ये योगके पाँच दोष हैं। इन दोषोंका उच्छेद करके अपनेको योग्य अधिकारी बनावे। तत्पश्चात् गुरुके मुखसे उस ज्ञानका उपदेश ग्रहण करे।

अब उन पाँचों दोषोंको जीतनेका उपाय बतलाते हैं। मनको वशमें रखनेसे क्रोधको और संकल्पका त्याग करनेसे कामको जीता जा सकता है। सत्त्वगुणका आश्रय लेनेसे धीर पुरुष निद्रापर विजय पा सकता है। मनुष्यको धैर्यका सहारा लेकर विषयभोग और भोजनकी चिन्ता दूर करनी चाहिये। नेत्रोंकी सहायतासे हाथ और पैरोंकी, मनके द्वारा नेत्र और कानोंकी तथा कर्मके द्वारा मन और वाणीकी रक्षा करनी चाहिये। सावधानीके द्वारा भयका और विद्वानोंकी सेवासे दम्भका परित्याग करना चाहिये।

इस प्रकार योगके साधकको आलस्य छोड़कर योग-सम्बन्धी दोषोंको जीतनेका प्रयत्न करना चाहिये। वह अग्नि और ब्राह्मणोंकी पूजा तथा देवताओंको प्रणाम करे। मनको दुखानेवाली हिंसाभरी वाणी न बोले। तेजोमय ब्रह्म सबका बीज (कारण) है। यह जो कुछ दिखायी दे रहा है, सब उसीका रस (कार्य) है। सम्पूर्ण चराचर जगत् उस ब्रह्मके ही ईक्षण (संकल्प) का परिणाम है। ध्यान, वेदाध्ययन, सत्य, लज्जा, सरलता, क्षमा, शौच, आचारशुद्धि एवं इन्द्रियसंयमसे तेजकी वृद्धि होती और पापका नाश हो जाता है। साधककी सम्पूर्ण अभिलाषाएँ सिद्ध होती हैं तथा उसे विज्ञान प्राप्त होता है। योगीको चाहिये कि वह सम्पूर्ण प्राणियोंमें समानभाव रखे। जो कुछ मिल जाय उसीमें संतुष्ट रहे, पापोंको धो डाले तथा तेजस्वी, मिताहारी और जितेन्द्रिय होकर काम और क्रोधको वशमें करके ब्रह्मपदको पानेकी इच्छा करे।

योगी मन और इन्द्रियोंको एकाग्र करके रातके पहले और पिछले पहरमें ध्यानस्थ होकर मनको आत्मामें लगावे। जैसे मशकमें एक जगह भी छेद हो जानेपर पानी बह जाता है, उसी प्रकार यदि पाँच इन्द्रियोंमेंसे एक भी विषयोंकी ओर प्रवृत्त हुई तो साधकका शास्त्रीय ज्ञान लुप्त हो जाता है; इसलिये जैसे मछलीमार जाल काटनेवाली मछलीको पहले पकड़कर पीछे दूसरी मछलियोंको पकड़ता है; उसी तरह साधक पहले अपने मनको वशमें करे। उसके बाद कान, आँख, जिह्वा तथा नासिका आदि इन्द्रियोंका निग्रह करे। पाँचों इन्द्रियोंको मनमें स्थापित करके इन्द्रियसहित मनको बुद्धिमें लीन करे; इससे इन्द्रियोंकी मलिनता दूर हो जाती है और उनमें निर्मलता आ जाती है। उस समय ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है। योगी अपने अन्तःकरणमें धूमरहित अग्नि, दीप्तिमान् सूर्य तथा आकाशमें चमकती हुई बिजलीके समान आत्माका दर्शन करता है। वह सबको आत्मामें और सबमें आत्माको स्थित देखता है। जो महात्मा ब्राह्मण ज्ञानी, धैर्यवान्, विद्वान् और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं, वे ही उस परमात्माका दर्शन कर पाते हैं। जो योगी एकान्तमें बैठकर तीक्ष्ण नियमोंका पालन करते हुए इस प्रकार योगाभ्यास करता है, वह थोड़े ही समयमें अक्षर ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है।

योगसाधनामें अग्रसर होनेपर मोह, भ्रम और आवर्त आदि विघ्न प्राप्त होते हैं, दिव्य सुगन्ध आती है, दिव्य रूपोंके दर्शन होते हैं, नाना प्रकारके अद्भुत रस और स्पर्शका अनुभव होता है, इच्छानुकूल सर्दी और गर्मी प्राप्त होती है, हवाकी तरह आकाशमें चलने-फिरनेकी शक्ति आ जाती है, प्रतिभा बढ़ जाती है, दिव्य पदार्थ अपने-आप उपस्थित होने लगते हैं—इन सब सिद्धियोंको पाकर भी योगी उनकी उपेक्षा कर दे और मनको उनकी ओरसे लौटाकर आत्मामें ही एकाग्र करे, नियमके साथ रहे और पहाड़की चोटीपर, शून्य गृह या देवमन्दिरमें अथवा वृक्षोंके आस-पास बैठकर तीन समय (सबेरे तथा रातके पहले अथवा पिछले-पहरमें) योगका अभ्यास करे। धन चाहनेवाले मनुष्यको जैसे सदा उसीकी चिन्ता बनी रहती है, उसी तरह योगका साधक भी इन्द्रियोंको संयममें रखकर हृदय-कमलमें स्थित आत्माका एकाग्रभावसे चिन्तन करे। मनको उद्विग्न न होने दे, जिस उपायसे भी चञ्चल मनको रोका जा सके उसका सेवन करे और साधनासे कभी विचलित न हो। योगका साधक मन, वाणी या क्रियासे भी कहीं आसक्त न हो, सबकी ओरसे उपेक्षाका भाव रखे, नियमित भोजन करे और लाभ-हानिको समान समझे। कोई प्रशंसा करे या निन्दा, वह दोनोंको समान दृष्टिसे देखे। एककी भलाई या दूसरेकी बुराई न सोचे। कुछ लाभ होनेपर हर्षसे फूल न उठे और न होनेपर चिन्ता न करे। सब प्राणियोंके प्रति समान दृष्टि रखे। वायुके समान सर्वत्र विचरता हुआ भी असङ्ग रहे। इस प्रकार स्वस्थचित्त और समदर्शी रहकर छः महीनेतक नित्य योगाभ्यास करनेवाले साधु पुरुषको ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है।

धनके लिये प्राणियोंको विकल देखकर उसकी ओरसे विरक्त हो जाय और मिट्टीके ढेले, पत्थर तथा सोनेको समान समझे। कोई नीच वर्णका पुरुष अथवा स्त्री ही क्यों न हो, यदि उसे धर्म सम्पादन करनेकी इच्छा हो तो योगमार्गका सेवन करनेसे उसको भी परमगतिकी प्राप्ति हो जाती है। जिसने अपने मनको वशमें कर लिया है, वही अजन्मा, पुरातन, अजर, सनातन, नित्यमुक्त, अणुसे भी अणु और महान्‌से भी महान् आत्माका दर्शन कर सकता है।

महर्षि व्यासजीके इस उपदेशपर विचार करके जो इसके अनुसार आचरण करते हैं, वे बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्माके समान होकर परमगति प्राप्त करते हैं।



कर्म और ज्ञानका अन्तर तथा ब्रह्मचर्य आश्रमका वर्णन

शुकदेवजीने पूछा—पिताजी ! वेदोंमें कर्मोंको करनेका भी विधान मिलता है और उन्हें त्यागनेका भी, अतः मैं जानना चाहता हूँ कि मनुष्योंको कर्म करनेसे क्या फल मिलता है और ज्ञानके द्वारा कर्म त्याग देनेपर उन्हें किस फलकी प्राप्ति होती है ?

भीष्मजी कहते हैं—शुकदेवजीके इस प्रकार पूछनेपर व्यासजी बोले—'बेटा ! मैं इन दोनों मार्गोंका वर्णन करता हूँ—इनमेंसे एक क्षर (विनाशी) है और दूसरा अक्षर (अविनाशी)। क्षर कर्ममय है और अक्षर ज्ञानमय। वेदमें दो मार्गोंका वर्णन है—एक प्रवृत्तिधर्मका मार्ग है और दूसरा निवृत्तिधर्मका—इनमेंसे निवृत्तिधर्मका प्रतिपादन किया जा चुका है। कर्म (अविद्या) से मनुष्य बन्धनमें पड़ता है और ज्ञानसे मुक्त हो जाता है। इसलिये दूरदर्शी संन्यासीलोग कर्म नहीं करते। कर्म करनेसे फिर जन्म लेना पड़ता है, सोलह तत्त्वोंसे बने हुए देहकी प्राप्ति होती है; किंतु ज्ञानके प्रभावसे जीव नित्य, अव्यक्त और अविनाशी परमात्माको प्राप्त होता है। कुछ मन्दबुद्धि मनुष्य सकाम कर्मकी प्रशंसा करते हैं, इसलिये वे भोगासक्त होकर बारंबार शरीरके बन्धनमें पड़ते रहते हैं। परंतु जो धर्मके तत्त्वको भलीभाँति समझकर सर्वोत्तम ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं, वे कर्मकी उसी तरह प्रशंसा नहीं करते, जैसे प्रतिदिन नदीका पानी पीनेवाले मनुष्य कुएँका आदर नहीं करते। कर्मका फल है सुख-दुःख और जन्म-मृत्यु; किंतु ज्ञानसे उस स्थानकी प्राप्ति होती है जहाँ जानेसे सदाके लिये शोकसे पिण्ड छूट जाता है, जहाँ जन्म और मृत्युकी पहुँच नहीं होती तथा जहाँ पहुँचा हुआ जीव फिर इस संसारमें लौटकर नहीं आता। ज्ञान होते ही बिना क्लेशके प्राप्त होनेवाले और कभी भी विलग न होनेवाले अव्यक्त, अचल एवं नित्य ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है। उस अवस्थामें सुख-दुःख आदि द्वन्द्व तथा मानसिक संकल्प बाधा नहीं पहुँचाते। उस स्थितिको प्राप्त हुए मनुष्य सर्वत्र समान दृष्टि रखते हैं, सबको मित्र समझते हैं और सब प्राणियोंके हितमें तत्पर रहते हैं।

तात ! ज्ञानी और कर्मासक्त मनुष्योंमें बड़ा भारी अन्तर होता है। ज्ञानीका क्षय नहीं होता और कर्मासक्त मनुष्य चन्द्रमाकी कलाके समान घटता-बढ़ता रहता है। वह मन, इन्द्रियरूप ग्यारह विकारोंसे युक्त होकर जन्म धारण किया करता है। कमलके पत्तेपर पड़ी हुई पानीकी बूँदके समान जो स्वयंप्रकाश चिन्मय देवता हृदयाकाशमें विराजमान है, उसे क्षेत्रज्ञ (परमात्मा) समझना चाहिये तथा जिसने योगके द्वारा चित्तको वशमें किया है, वह जीवात्मा भी उसीका स्वरूप है।

शुकदेवजीने कहा—पिताजी ! इस संसारमें युग-युगसे जिस सदाचारका पालन होता आया है, उसे सुनना चाहता हूँ तथा संतलोग जैसा बर्ताव करते हैं वैसा ही मैं भी करना चाहता हूँ। आपके उपदेशसे मैं पवित्र हो गया हूँ तथा मुझे जगत्‌की रीति-नीतिका भी ज्ञान हो गया है। अब मैं धर्माचरणसे बुद्धिका संस्कार करके स्थूल देहका अभिमान त्याग कर अपने अविनाशी स्वरूप परमात्माका दर्शन करूँगा।

व्यासजीने कहा—बेटा ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने जिस आचार-व्यवहारका विधान कर दिया है, पहलेके सत्पुरुष और ऋषि-महर्षि भी उसीका पालन करते आये हैं। ऋषियोंने ब्रह्मचर्यके पालनसे ही पुण्यलोकोंपर अधिकार प्राप्त किया है, इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको ब्रह्मचर्यका पालन करके आत्मबल प्राप्त करना चाहिये। फिर वानप्रस्थके नियमसे वनमें रहकर फल-मूलका भोजन और पुण्य तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए तपस्या करनी चाहिये। प्राणियोंकी हिंसासे बचे रहना चाहिये। इसके पश्चात् संन्यासी होकर भिक्षासे जीवन-निर्वाह करते हुए आत्मतत्त्वका चिन्तन करना चाहिये। भिक्षा लेने उस समय जाना चाहिये जब गृहस्थोंके घरोंमें रसोई-घरसे धूआँ निकलना बन्द हो जाय और मूसलसे धान कूटनेकी आवाज न सुनायी पड़े। इस प्रकार जीवन व्यतीत करनेवाला पुरुष ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। शुकदेव ! तुम भी स्तुति, नमस्कार तथा शुभाशुभ विषयोंका त्याग करके जो कुछ फल-मूल मिल जाय, उसीसे भूख मिटाते हुए वनमें अकेले विचरते रहो।

शुकदेवजीने पूछा—पिताजी ! कर्म करना चाहिये और कर्मको त्याग देना चाहिये—ये जो वेदके दो तरहके वचन हैं, लोकदृष्टिसे विचार करनेपर परस्पर विरुद्ध जान पड़ते हैं। ये प्रामाणिक हैं या अप्रामाणिक ? विरोधके रहते हुए इनको शास्त्रीय वचन कैसे माना जा सकता है ? तथा दोनों ही प्रामाणिक कैसे हो सकते हैं ? साथ ही यह भी बताइये कि कर्मोंका विरोध किये बिना मोक्षकी प्राप्ति किस तरह हो सकती है ?

व्यासजीने कहा—बेटा ! कर्म करने और न करनेके अलग-अलग अधिकारी हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ—ये कर्म करनेके अधिकारी हैं और संन्यासी कर्मोंका

त्याग करते हैं। अपने-अपने आश्रमके अनुसार शास्त्रोक्त नियमोंका पालन करनेसे सभी उत्तम गति प्राप्त करते हैं। यदि कोई एक मनुष्य भी राग-द्वेषका त्याग करके क्रमशः इन चारों आश्रमोंके धर्मोंका विधिवत् पालन कर ले तो उसे अवश्य ही परब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है। ये चारों आश्रम ब्रह्ममें ही प्रतिष्ठित हैं और ब्रह्मतक पहुँचानेके लिये चार सीढ़ियोंके समान माने गये हैं। इनका सहारा लेनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें पहुँचकर प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। धर्म और अर्थमें कुशलता प्राप्त करनेके लिये अपनी आयुके एक चौथाई भाग अर्थात् पचीस वर्षोंतक गुरु या गुरुपुत्रकी सेवामें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। ब्रह्मचारी किसीकी निन्दा न करे, गुरुके सो जानेके पश्चात् शयन करे और उनके जागनेसे पहले ही उठ जाय। गुरुके घरमें एक शिष्य या दासके करनेयोग्य जो कुछ भी कार्य हो, उसे स्वयं पूरा करे। सदा गुरुके पास मौजूद रहे। हर एक काम करनेके लिये तैयार रहे और उसकी अच्छी जानकारी रखे। कामसे छुट्टी मिलनेपर अध्ययन करे। सबके प्रति उदार रहे, किसीपर कलङ्क न लगावे। आचार्यके बुलानेपर तुरंत उनकी सेवामें उपस्थित हो जाय। बाहर-भीतरसे पवित्र, प्रत्येक कार्यमें कुशल और गुणवान् बने। बात करते समय बीच-बीचमें ऐसा प्रसंग उपस्थित करे जो सुननेवालेको अनुकूल और प्रिय जान पड़े। इन्द्रियोंको अपने वशमें करके गुरुकी ओर शान्तदृष्टिसे देखे। आचार्य जबतक भोजन और जलपान न कर लें तबतक स्वयं भी न करे। उनके बैठनेसे पहले न बैठे और शयन करनेसे पहले न सोवे। दोनों हाथ फैलाकर अपने दाहिने हाथसे गुरुका दाहिना चरण और बाये हाथसे उनका बायाँ चरण छूकर प्रणाम करे। इस प्रकार अभिवादनके पश्चात् हाथ जोड़कर गुरुसे कहे 'भगवन्! अब मुझे पढ़ाइये। मैंने अमुक काम पूरा कर लिया है और अमुक कार्य अभी करूँगा। इसके सिवा और भी जिन कामोंके लिये आप आज्ञा देंगे उन्हें भी शीघ्र पूर्ण करूँगा।' इस तरह सब बातें विधिवत् निवेदन करके गुरुकी आज्ञा लेकर फिर दूसरा काम करे और काम हो जानेपर पुनः उसका समाचार गुरुजीको बतावे। जिन-जिन गन्धों और रसोंका सेवन ब्रह्मचारीके लिये निषिद्ध है उनका वह त्याग करे। समावर्तन संस्कारके बाद ही वह उनका उपयोग कर सकता है। यही धर्मशास्त्रका निश्चय है। इसके सिवा और भी ब्रह्मचारीके जितने नियम शास्त्रोंमें विस्तारके साथ बताये गये हैं, उन सबका वह पालन करे तथा सदा गुरुके समीप रहे। इस प्रकार यथाशक्ति सेवा करके गुरुको प्रसन्न करे और ब्रह्मचर्यका व्रत पूरा हो जानेपर उन्हें गुरुदक्षिणा देकर शास्त्रोक्त विधिके अनुसार समावर्तन करे। इसके बाद वह गृहस्थाश्रममें आनेका अधिकारी होता है।



गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रमका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—बेटा! गृहस्थ पुरुष अपनी आयुका दूसरा भाग गृहस्थ-आश्रममें व्यतीत करे। धर्मानुसार स्त्रीसे विवाह करके उसके साथ अग्निकी स्थापना करे और नित्य नियमके साथ रहकर दोनों समय अग्निहोत्र करे। गृहस्थ ब्राह्मणके लिये विद्वानोंने चार प्रकारकी आजीविका बतलायी है—(सालभरके लिये) एक कोठिला धान भरकर रखना, (महीनेभरके लिये) कुंडेभर अन्नका संग्रह करना, दिनभरके लिये अन्न रखना अथवा कापोती वृत्तिसे रहना। इनमें पहलीकी अपेक्षा दूसरी-दूसरी श्रेष्ठ है। पहली श्रेणीके अनुसार जीविका चलानेवाले ब्राह्मणको यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन, दान-प्रतिग्रह—ये छः कर्म, दूसरी श्रेणीवालेको अध्ययन, यजन और दान—ये तीन कर्म तथा तीसरी श्रेणीवालेको अध्ययन और दान—ये दो ही कर्म करने चाहिये। चौथी श्रेणीवालेको केवल ब्रह्मयज्ञ (वेदाध्ययन) करना उचित है। गृहस्थोंके लिये शास्त्रोंमें बहुत-से श्रेष्ठ नियम बताये गये हैं। वह केवल अपने ही भोजनके लिये रसोई न बनावे (अपितु देवता, पितर और अतिथियोंके उद्देश्यसे बनावे)। दिनमें कभी न सोवे, रातके पहले और पिछले भागमें भी नींद न ले। सबेरे और शाम दो ही वक्त भोजन करे, बीचमें कुछ न खाय। ऋतुकालके अतिरिक्त समयमें स्त्री-सहवास न करे। सदा इस बातका ध्यान रखे कि 'मेरे घरपर आया हुआ कोई ब्राह्मण अतिथि भूखा तो नहीं रहा, उसके आदर-सत्कारमें कोई कमी तो नहीं रह गयी?' यदि द्वारपर अतिथिके रूपमें वेदके विद्वान्, स्नातक, श्रोत्रिय, हव्य (यज्ञावशेष अन्न)-कव्य (श्राद्धका अन्न) भोजन करनेवाले, जितेन्द्रिय, क्रियानिष्ठ और तपस्वी आ जायँ तो उनकी विधिवत् पूजा करके उन्हें हव्य और कव्य समर्पण करने चाहिये। जो धार्मिकताका ढोंग दिखानेके लिये अपने नख और बाल बढ़ाकर आया हो, अपने ही मुखसे अपने किये हुए धर्मका विज्ञापन करता हो, अकारण अग्निहोत्रका त्याग कर चुका हो अथवा गुरुके साथ कपट करनेवाला हो—ऐसा मनुष्य भी गृहस्थके घर अन्न पानेका अधिकारी है। ब्रह्मचारी

और संन्यासीको तो सदा ही अन्न देना चाहिये। तात्पर्य यह कि गृहस्थ पुरुष उत्तम ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालतकको योग्यतानुसार अन्न प्रदान करे।

गृहस्थको सदा विघस और अमृत अन्नका भोजन करना चाहिये। पोष्य वर्गको भोजन करानेके बाद जो अन्न बचता है, उसे विघस कहते हैं और पञ्चयज्ञसे अवशिष्ट अन्न अमृत कहलाता है। गृहस्थ पुरुष अपनी ही स्त्रीसे प्रेम करे, इन्द्रियोंको वशमें करके जितेन्द्रिय बने और किसीके दोष न ढूँढ़े। वह ऋत्विज्, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, शरणागत, वृद्ध, बालक, रोगी, वैद्य, जाति-भाई, सम्बन्धी, माता, पिता, कुटुम्बकी स्त्री, भाई, पुत्र, पत्नी, पुत्री तथा सेवकोंके साथ कभी विवाद न करे। जो इन सबके साथ कलह नहीं करता, वह सब पापोंसे छूट जाता है। इनके अधीन रहनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण लोकोंपर विजय पाता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। आचार्य ब्रह्मलोकका स्वामी है और पिता प्रजापतिलोकका ईश्वर है। अतिथि इन्द्रलोकके, ऋत्विज् देवलोकके और जाति-भाई विश्वेदेवलोकके अधिकारी हैं—इन सबकी सेवासे उन-उन लोकोंकी प्राप्ति होती है। मामा और माताको संतुष्ट करनेसे पृथ्वीलोकपर अधिकार होता है। वृद्ध, बालक, रोगी और दुर्बल प्राणियोंकी सेवासे आकाशपर विजय प्राप्त होती है। बड़ा भाई पिताके समान है, स्त्री और पुत्र अपने ही शरीर हैं तथा सेवकगण अपनी छायाके समान हैं। बेटी तो और भी दयाके योग्य है। इसलिये इनके द्वारा कभी अपना तिरस्कार भी हो जाय तो बुरा न मानकर सह लेना चाहिये।

गृहस्थधर्मका पालन करनेवाले विद्वान्‌को निश्चिन्त होकर धर्मका आचरण करते रहना चाहिये और धनके लोभसे किसी कर्मका अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। गृहस्थ ब्राह्मणके लिये कुम्भधान्य (अर्थात् बड़े कुंडेमें महीनेभर खानेके लिये धान्य भरकर रखना), उञ्छशिल (रोज-रोज बिखरे हुए अन्नके दाने चुनना अथवा खेत कट जानेपर उसमें गिरे हुए धान्य आदिके बालोंका संग्रह करना) तथा कापोती वृत्ति (कबूतरकी तरह भूमिपर पड़े हुए अन्नके दाने चुनकर इकट्ठा करना)—ये तीन आजीविकाएँ बतायी गयी हैं। इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ तथा कल्याणका साधन है। इसी प्रकार चारों आश्रमोंमें भी पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर आश्रम ही कल्याणकारी माने गये हैं। उन्नति चाहनेवाले पुरुषको शास्त्रोक्त आश्रमधर्मोंका पूर्णतया पालन करना चाहिये। जिस राज्यमें पूर्वोक्त तीन प्रकारकी वृत्तियोंसे जीविका चलानेवाले पूजनीय ब्राह्मण रहते हैं, उसकी वृद्धि होती है। इन वृत्तियोंसे आनन्दपूर्वक जीवन-निर्वाह करनेवाला गृहस्थ अपनी दस पीढ़ीके पूर्वजोंको तथा दस पीढ़ीतक आगे होनेवाली संतानोंको पवित्र कर देता है और उसे विष्णुलोकके सदृश उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है अथवा वह जितेन्द्रिय महात्माओंको मिलनेवाली श्रेष्ठ गति प्राप्त करता है। उदार चित्तवाले गृहस्थोंको विमानसहित परम रमणीय स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। ब्रह्माने गृहस्थ-आश्रमको स्वर्ग-प्राप्तिका साधन बनाया है, अतः जो क्रमशः इस द्वितीय आश्रम—गार्हस्थ्यमें प्रवेश करके उसके नियमोंका पालन करता है, वह स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। इसके बाद वानप्रस्थ आश्रममें प्रवेश करना चाहिये। यह तृतीय आश्रम है तथा गृहस्थ-आश्रमसे भी श्रेष्ठ माना गया है। अब इसके धर्म बताता हूँ, सुनो—

गृहस्थ पुरुषको जब अपने सिरके बाल सफेद दिखायी दें, शरीरमें झुर्रियाँ पड़ जायँ और पुत्रको भी पुत्रकी प्राप्ति हो जाय तो अपनी आयुका तीसरा भाग व्यतीत करनेके लिये वानप्रस्थ आश्रममें रहना चाहिये। वह गृहस्थाश्रममें जिन अग्नियोंकी उपासना करता था, उनका वानप्रस्थाश्रममें भी सेवन करता रहे। प्रतिदिन देवताओंकी पूजा करे, नियमके साथ रहे, नियमानुकूल भोजन करे, दिनके छठे भाग अर्थात् तीसरे पहरमें एक बार अन्न ग्रहण करे और प्रमादसे बचा रहे। गार्हस्थ्यकी ही भाँति अग्निहोत्र, वैसी ही गो-सेवा तथा उसी प्रकार यज्ञके सम्पूर्ण अङ्गोंका पालन करना वानप्रस्थका धर्म है। वनवासी मुनि—बिना जोती हुई पृथ्वीसे पैदा हुआ धान, जौ, नीवार तथा विघस (अतिथियोंको देनेसे बचे हुए) अन्नसे जीवन-निर्वाह करे। वानप्रस्थमें भी पञ्चमहायज्ञोंका विधान है। उसमें भी चार प्रकारकी वृत्तियाँ बतलायी गयी हैं, उन्हींके अनुसार कोई दिनभरके लिये, कोई एक मासके लिये, कोई एक वर्ष और कोई बारह वर्षोंके लिये अतिथिसेवा तथा यज्ञके उद्देश्यसे अन्न संग्रह करके रखते हैं। वानप्रस्थीको वर्षाके समय खुले मैदानमें और हेमन्त ऋतुमें पानीके भीतर खड़ा रहना चाहिये। गर्मीके दिनोंमें पञ्चाग्निसे शरीरको तपाना तथा सदा स्वल्प भोजन करना चाहिये। वानप्रस्थी महात्मा जमीनपर लोटते, पंजोंके बल खड़े होते, एक स्थानपर आसन लगाकर बैठते तथा तीनों काल स्नान और संध्या करते हैं। कुछ लोग कच्चे अन्नको दाँतसे चबाकर खाते हैं, कुछ लोग पत्थरपर कूटकर भोजन करते हैं और कोई-कोई शुक्लपक्ष या कृष्णपक्षमें एक बार जौकी लपसी पीकर रह जाते हैं। कितने ही, समयानुसार जो कुछ मिल गया, वही खाकर जीवन-निर्वाह करते हैं। कोई कंद-मूलसे, कोई फलोंसे और कोई-कोई फूलोंसे ही जीविका चलाते हैं। इस प्रकार वानप्रस्थ-आश्रममें

निवास करनेवाले पुरुष बड़े कठोर नियमोंका पालन करते हैं, उनके लिये उपर्युक्त नियमोंके सिवा और भी बहुत-से नियम शास्त्रोंमें बताये गये हैं।

तात! सत्य संकल्पवाले यायावर नामक ऋषि, धर्ममें प्रवीणताको प्राप्त हुए बहुतेरे उग्र तपस्वी मुनि और असंख्य ब्राह्मण वानप्रस्थ-आश्रम स्वीकार कर चुके हैं। बालखिल्य और सैकत भी वानप्रस्थी ही थे। ये सभी जितेन्द्रिय महात्मा वनमें रहकर दुष्कर कर्मोंके द्वारा क्लेश सहन करते हुए सदा धर्ममें लगे रहते थे; इसलिये उनका संकल्प सिद्ध हो गया था। वे ताराओंसे भिन्न होकर भी ज्योतिर्मय स्वरूपमें दिखायी देते हैं, कोई भी उनका तिरस्कार नहीं कर सकता है।

इस प्रकार वानप्रस्थकी अवधि पूरी करनेके बाद जब आयुका चौथा भाग शेष रह जाय, वृद्धावस्थासे शरीर दुर्बल हो जाय और रोग सताने लगे तो उस आश्रमका परित्याग करके संन्यास-आश्रम ग्रहण करना चाहिये। संन्यासकी दीक्षा लेते समय एक दिनमें पूरा होनेवाला यज्ञ करके अपना सम्पूर्ण धन दक्षिणामें दे डाले। फिर आत्माका ही यजन, आत्मामें ही प्रेम और आत्माके ही साथ क्रीडा करे। सब प्रकारसे आत्माका ही आश्रय ले। अग्निहोत्रकी अग्नियोंको आत्मामें आरोपित करके समस्त संग्रहोंका परित्याग कर दे। अथवा तुरंत सम्पन्न किये जानेवाले (ब्रह्मयज्ञ आदि) यज्ञों तथा दसपौर्णमास आदि इष्टियोंका तबतक पालन करता रहे जबतक आत्मयज्ञका अभ्यास न हो जाय। आत्मयज्ञकी विधि यों है—अपने हृदयको गार्हपत्य, मनको अन्वाहार्यपचन और मुखको आहवनीय अग्नि मानकर तीनों अग्नियोंको अपने शरीरमें ही स्थापित करे; फिर देहपात होनेतक प्राणाग्निहोत्रकी विधिसे यजन करता रहे। संन्यासी अन्नकी निन्दा न करके यजुर्वेदके ''प्राणाय स्वाहा'' आदि* मन्त्रोंका उच्चारण करता हुआ पहले अन्नके पाँच ग्रास ग्रहण करे। (फिर आचमनके पश्चात् मौनपूर्वक शेष अन्न भोजन करे)।

जो ब्राह्मण सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय-दान देकर संन्यासी हो जाता है, वह मरनेके पश्चात् तेजोमय लोकमें जाता है और अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है। आत्मज्ञानी पुरुष सुशील एवं पापरहित होता है, वह इस लोक और परलोकके लिये भी कोई कर्म करना नहीं चाहता। क्रोध, मोह, संधि और विग्रहका त्याग करके वह सब ओरसे उदासीन-सा रहता है। जो अहिंसा आदि यमों और शौच, संतोष आदि नियमोंका पालन करनेमें कभी कष्टका अनुभव नहीं करता तथा संन्यास-आश्रमका विधान करनेवाले शास्त्रीय वचनोंके अनुसार त्यागमयी अग्निमें अपने सर्वस्वकी आहुति करनेमें उत्साह दिखाता है, उसे इच्छानुसार गति (मुक्ति) प्राप्त होती है; ऐसे जितेन्द्रिय एवं धर्मपरायण आत्मज्ञानीकी मुक्तिके विषयमें तनिक भी संदेहके लिये स्थान नहीं है।

जो आत्मतत्त्वका साक्षात्कार करके एकाकी विचरता रहता है, वह सर्वव्यापक होनेके कारण न तो स्वयं किसीका त्याग करता है और न दूसरे ही उसका त्याग करते हैं। संन्यासी कभी अग्निमें हवन न करे, घर या मठ बनाकर न रहे, केवल भिक्षा लेनेके लिये गाँवोंमें जाय और दूसरे दिनके लिये अन्न-संग्रह न करे, वह चित्तवृत्तियोंको रोके, हलका और नियमानुकूल भोजन करे, दिन-रातमें केवल एक बार अन्न ग्रहण करे। पानी पीनेके लिये कमण्डलु रखे, वृक्षकी जड़में निवास करे, जो देखनेमें सुन्दर न हो ऐसा वस्त्र धारण करे, किसीको साथ न रखे और सब प्राणियोंकी उपेक्षा करे—ये सब संन्यासीके लक्षण हैं। वह किसीसे भी न कहने योग्य बात न कहे, दूसरेकी भी वैसी बात न सुने तथा ब्राह्मणोंके प्रति किसी तरह कटुवचन न निकल जाय, इसके लिये विशेष सावधान रहे। जिससे ब्राह्मणोंका हित हो ऐसा ही वचन बोले, अपनी निन्दा सुनकर भी चुप रह जाय— यही भव-व्याधिसे छूटनेकी दवा है। जो अपने सर्वव्यापी स्वरूपसे स्थित होनेके कारण अकेले ही सम्पूर्ण आकाशमें परिपूर्ण-सा हो रहा है तथा जो नाम-रूपमें मिथ्या बुद्धि रखनेके कारण लोगोंसे भरे हुए स्थानको भी सूना समझता है, उसे ही देवतालोग ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) मानते हैं। जो जिस किसी भी (वस्त्र, वल्कल आदि) वस्तुसे अपना शरीर ढक लेता है, समयसे जो कुछ रूखा-सूखा मिल जाता है उसे ही भोजन करता है और जहाँ कहीं स्थान मिल जाय वहीं सो रहता है, जिसकी दृष्टिमें स्त्रियाँ मुर्दोंके समान हैं, जो मान या अपमान प्राप्त होनेपर शोक नहीं करता तथा जिसने सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय दान कर दिया है, उसे ही देवतालोग ब्राह्मण समझते हैं। संन्यासीको न जीवनसे प्रेम करना चाहिये न मृत्युसे। जैसे सेवक अपने स्वामीके आदेशकी बाट जोहता रहता है, उसी तरह उसे भी कालकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। मन और वाणीमें कोई दोष नहीं आने देना चाहिये और सब पापोंसे मुक्त होकर सर्वथा शत्रुहीन हो जाना चाहिये। जिसे ऐसी स्थिति प्राप्त हो गयी है, उसे संसारमें क्या भय है? जो किसी भी प्राणीसे नहीं डरता, जिससे कोई भी प्राणी नहीं डरते, उस मोहमुक्त पुरुषको किसीसे भी भय नहीं होता। जो हिंसा न करनेवाला, समदर्शी, सत्यवादी, धैर्यवान्, जितेन्द्रिय और सबको शरण देनेवाला है, वह अत्यन्त उत्तम गति पाता है।

* ॐ प्राणाय स्वाहा। ॐ अपानाय स्वाहा। ॐ व्यानाय स्वाहा। ॐ समानाय स्वाहा। ॐ उदानाय स्वाहा। ये पाँच मन्त्र हैं। इनमेंसे एक-एकको पढ़कर एक-एक ग्रास ग्रहण करना चाहिये।

इस प्रकार जो ज्ञानानन्दसे तृप्त होकर भय और कामनाओंसे रहित हो गया है, उसपर मृत्युका जोर नहीं चलता; वह स्वयं ही मृत्युको लाँघ जाता है। जो सब प्रकारकी आसक्तियोंसे छूटकर मुनिवृत्तिसे रहता है, आकाशकी भाँति निर्लेप और स्थिर है, किसी भी वस्तुको अपनी नहीं मानता, एकाकी विचरता और शान्तभावसे रहता है; जिसका जीवन धर्मके लिये और धर्म भगवान्‌के लिये होता है, जिसके दिन और रात शुभ कर्मोंमें ही व्यतीत होते हैं, जो निष्काम होनेके कारण सकाम कर्मोंका आरम्भ नहीं करता, नमस्कार और स्तुतिसे दूर रहता तथा सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त होता है, वही देवताओंके मतमें ब्राह्मण है। सम्पूर्ण प्राणी सुखमें प्रसन्न होते और दुःखसे घबराते हैं, अतः जिसे प्राणियोंपर भय आता देखकर खेद होता है, उस श्रद्धालु पुरुषको भयदायक कर्म नहीं करना चाहिये। जीवोंको अभयकी दक्षिणा देना सब दानोंसे बढ़कर है। जो पहलेसे ही हिंसाका त्याग कर देता है, वह सब प्राणियोंसे निर्भय होकर मोक्ष प्राप्त करता है। जो न तो स्वयं निन्दाके योग्य कोई काम करता और न दूसरोंकी निन्दा करता है, वही ब्राह्मण परमात्माका दर्शन कर सकता है। जिसके मोह और पाप दूर हो गये हैं, वह इस लोक और परलोकके भोगोंमें आसक्त नहीं होता। ऐसे संन्यासीको रोष और मोह नहीं छू सकते। वह मिट्टीके ढेले और सोनेको समान समझता, पञ्चकोशोंका अभिमान त्याग देता और संधिविग्रह तथा मान-अपमानसे रहित हो जाता है। उसकी दृष्टिमें न कोई प्रिय होता है न अप्रिय। वह उदासीनकी भाँति सर्वत्र विचरता रहता है।

शुकदेव! देह, इन्द्रिय और मन आदि जो प्रकृतिके विकार हैं, वे क्षेत्रज्ञ (आत्मा) के ही आधारपर स्थित रहते हैं। वे जड होनेके कारण क्षेत्रज्ञको नहीं जानते, किंतु क्षेत्रज्ञ उन सबको जानता रहता है। जैसे चतुर सारथि अपने वशमें किये हुए बलवान् और उत्तम घोड़ोंसे अच्छी तरह काम लेता है, उसी प्रकार क्षेत्रज्ञ भी अपने वशमें किये हुए मन तथा इन्द्रियोंके द्वारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करता है। इन्द्रियोंकी अपेक्षा उनके विषय, विषयोंसे मन, मनसे बुद्धि, बुद्धिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अव्यक्त (मूलप्रकृति) और अव्यक्तसे अविनाशी परमात्मा श्रेष्ठ है। परमात्मासे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। वही सबकी सीमा और परम गति है। सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर छिपा हुआ वह परमात्मा प्रकाशमें नहीं आता। उसे तो सूक्ष्मदर्शी ज्ञानी महात्मा ही अपनी सूक्ष्म एवं उत्तम बुद्धिसे देख पाते हैं। संन्यासीको चाहिये कि वह मनसहित इन्द्रियों और उनके विषयोंको बुद्धिके द्वारा अन्तरात्मामें लीन करके नाना प्रकारके दृश्योंका चिन्तन न करे। ध्यानके द्वारा मनको विषयकी ओरसे हटाकर उसे विवेकके द्वारा स्थिर करे और शान्तभावसे स्थित हो जाय—ऐसा करनेसे वह अमृतपदको प्राप्त होता है। जो इन्द्रियोंके वशमें रहता है, वह मनुष्य विवेक-शक्तिको खो देता और अपनेको काम आदि शत्रुओंके हाथोंमें सौंपकर मृत्युके चंगुलमें फँस जाता है। इसलिये सब प्रकारके संकल्पोंका नाश करके चित्तको सूक्ष्म बुद्धिमें लीन करे, इससे वह कालपर भी विजय पा जाता है। इतना ही नहीं, चित्त प्रसन्न होनेके कारण वह संन्यासी शुभ और अशुभका त्याग करके आत्मनिष्ठ होकर अनन्त आनन्द (मोक्ष-सुख) का अनुभव करता रहता है। प्रसन्नताका लक्षण यह है कि सदा सुषुप्तिके समान सुखका अनुभव होता रहे और वायुरहित स्थानमें निष्कम्प दीपशिखाकी भाँति मन कभी चञ्चल न हो।

जो मिताहारी और शुद्धचित्त होकर रातके पहले और पिछले भागमें आत्माको परमात्माके ध्यानमें लगाता है, वही अपने अन्तःकरणमें परमात्माका दर्शन करता है। बेटा! मैंने जो उपदेश दिया है यह परमात्माका ज्ञान करानेवाला शास्त्र है, सम्पूर्ण उपनिषदोंका रहस्य है। केवल अनुमान या आगमसे ही इसका ज्ञान नहीं होता, अनुभवसे ही यह ठीक-ठीक समझमें आता है। धर्म और सत्यके जितने उपाख्यान हैं, उन सबका यह सारभूत है। ऋग्वेदकी दस हजार ऋचाओंका मन्थन करके मैंने इस उपदेशामृतको निकाला है। जैसे दहीसे मक्खन निकलता और काठसे आग प्रकट होती है, उसी प्रकार मैंने वेदसे तुम्हारे लिये इस ज्ञानको निकाला है। तुम व्रतधारी स्नातकोंको ही इस शास्त्रका उपदेश करना। जिसका मन शान्त नहीं है, इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं तथा जो तपस्वी नहीं है, उसे इस ज्ञानका उपदेश नहीं करना चाहिये। जो वेदसे अनभिज्ञ, अभक्त, दोषदर्शी, कुटिल, आज्ञा न माननेवाला, व्यर्थ तर्क-वितर्क करनेवाला और चुगुलखोर है, वह भी इस ज्ञानका अधिकारी नहीं है। प्रशंसनीय, शान्त, तपस्वी तथा सेवापरायण शिष्य और प्रिय पुत्रको ही इस गूढ़ धर्मका उपदेश देना चाहिये, दूसरे किसीको नहीं। यदि कोई रत्नोंसे भरी हुई सम्पूर्ण पृथ्वी दे तो भी तत्त्ववेत्ता पुरुष उसकी अपेक्षा इस ज्ञानको ही श्रेष्ठ समझते हैं। अब मैं तुम्हारे प्रश्नके अनुसार इससे भी गूढ़ अध्यात्मज्ञानका उपदेश करूँगा जो मानवीय ज्ञानसे बाहर है, जिसे महर्षि ही जानते हैं तथा जिसका सम्पूर्ण उपनिषदोंमें वर्णन किया गया है। इस समय तुम्हें जो वस्तु सर्वश्रेष्ठ जान पड़ती हो तथा जिसके विषयमें तुम्हारे मनमें संदेह हो रहा हो, उसे पूछो और उसके उत्तरमें मैं जो कुछ कहूँ उसे ध्यान देकर सुनो।



अध्यात्मज्ञान और उसके साधनोंका वर्णन

शुकदेवजीने कहा—भगवन् ! अध्यात्मज्ञानका विस्तारसे वर्णन कीजिये।

व्यासजीने कहा—बेटा ! मैं अध्यात्मकी व्याख्या करता हूँ, सुनो। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पञ्चमहाभूत सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें स्थित हैं। ये सर्वत्र एक-से होनेपर भी समुद्रकी लहरोंके समान प्रत्येक जीवमें भिन्न-भिन्न दिखायी देते हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत् पञ्चभूतमय ही है। पञ्चभूतोंसे ही सबकी उत्पत्ति होती है और उन्हींमें सबका लय बताया गया है। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने समस्त प्राणियोंमें उनके कर्मानुसार न्यूनाधिकरूपमें पञ्चमहाभूतोंका संनिवेश किया है।

शुकदेवजीने पूछा—पिताजी ! शरीरके अवयवोंमें जो न्यूनाधिकरूपमें पञ्चमहाभूतोंका संनिवेश हुआ है, उसकी पहचान कैसे हो सकती है ? शरीरमें इन्द्रियाँ भी हैं और गुण भी। इनमेंसे कौन किस महाभूतके कार्य हैं—इसका ज्ञान कैसे हो सकता है ?

व्यासजीने कहा—बेटा ! मैं इस विषयका क्रमशः प्रतिपादन करता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। शब्द, श्रोत्रेन्द्रिय और शरीरके सम्पूर्ण छिद्र आकाशसे उत्पन्न हुए हैं। प्राण, चेष्टा और स्पर्शकी उत्पत्ति वायुसे हुई है। रूप, नेत्र और जठरानल—ये तीनों अग्निके कार्य हैं। रस, रसना और स्नेह—ये जलके गुण हैं। गन्ध, नासिका और शरीर—भूमिके कार्य हैं। यह इन्द्रियोंसहित पाञ्चभौतिक विकार बतलाया गया है। गुणोंमें स्पर्श वायुका, रस जलका, रूप तेजका, शब्द आकाशका और गन्ध भूमिका कार्य है। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको फैलाकर फिर सिकोड़ लेता है, उसी तरह बुद्धि सम्पूर्ण इन्द्रियोंको विषयोंकी ओर फैलाकर फिर समेट लेती है। बुद्धि ही गुणोंका स्वरूप धारण करती है और मनसहित सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भी बुद्धिरूप ही हैं। बुद्धिके अभावमें गुण या इन्द्रियोंका अस्तित्व ही कहाँ है ? मनुष्यके शरीरमें पाँच इन्द्रियाँ हैं, छठा तत्त्व मन है, सातवाँ तत्त्वबुद्धि और आठवाँ क्षेत्रज्ञ है। आँख देखनेका ही काम करती है, मन संदेह करता है और बुद्धि उसका निश्चय करती है; किंतु क्षेत्रज्ञ उन सबका साक्षी कहलाता है। सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण मनसे उत्पन्न हुए हैं और सब प्राणियोंमें समान रूपसे रहते हैं, उनकी पहचान उनके कार्योंद्वारा होती है। जब हर्ष, प्रेम, आनन्द, समता और स्वस्थचित्तताका विकास हो तो सत्त्वगुणकी वृद्धि समझनी चाहिये। अभिमान, असत्यभाषण, लोभ, मोह और असहनशीलता—ये रजोगुणके चिह्न हैं। मोह, प्रमाद, निद्रा, आलस्य और अज्ञानको तमोगुणका कार्य जानना चाहिये।

शुकदेव ! कर्म करनेमें तीन प्रकारसे प्रेरणा मिलती है, पहले तो मनमें नाना प्रकारके भाव उठते हैं, फिर बुद्धि निश्चय करती है, तत्पश्चात् हृदय उनकी अनुकूलता और प्रतिकूलताका विचार करता है। इसके बाद कर्ममें प्रवृत्ति होती है। इन्द्रियोंकी अपेक्षा उनके विषय श्रेष्ठ हैं, विषयोंसे मन, मनसे बुद्धि और बुद्धिसे आत्मा श्रेष्ठ है। भिन्न-भिन्न विषयोंको ग्रहण करनेके लिये बुद्धि ही विकृत होकर नाना रूप धारण करती है, वही जब सुनती है तो श्रोत्र कहलाती है और स्पर्श करते समय स्पर्श इन्द्रियके नामसे पुकारी जाती है। वही देखते समय दृष्टि और रसास्वादन करते समय रसना हो जाती है तथा जब वह गन्धको ग्रहण करती है, उस समय घ्राण-इन्द्रिय कहलाती है। इस प्रकार बुद्धिके इन विकारोंको ही इन्द्रिय कहते हैं। मनुष्य जब किसी बातकी इच्छा करता है तो उसकी बुद्धि मनके रूपमें परिणत हो जाती है। नेत्र आदि इन्द्रियाँ अलग-अलग प्रतीत होनेपर भी बुद्धिमें ही स्थित हैं, इन सबको अपने अधीन रखना चाहिये; क्योंकि जब मनुष्य अपनी इन्द्रियोंको अच्छी तरहसे वशमें कर लेता है तो जिस प्रकार दीपकके प्रकाशमें किसी वस्तुका आकार स्पष्ट दिखायी देता है, उसी प्रकार उसे ज्ञानालोकमें आत्माका साक्षात् दर्शन होता है। जैसे अन्धकार दूर हो जानेपर सबको प्रकाश दिखलायी देता है, उसी प्रकार अज्ञानका नाश होनेपर ज्ञानस्वरूप आत्माका साक्षात्कार होने लगता है। जैसे जलचर पक्षी जलमें विचरता हुआ भी उससे लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार मुक्त योगी संसारमें रहकर भी उसके गुण-दोषोंसे बचा रहता है। जो अपने पूर्वकृत कर्मोंका त्याग करके सदा परमात्माके चिन्तनमें ही लगा रहता है, वह सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मा हो जाता है और विषयोंमें कभी आसक्त नहीं होता। गुण आत्माको नहीं जानते, किंतु आत्मा उन्हें सदा जानता रहता है; क्योंकि वह गुणोंका द्रष्टा है। गुण और आत्मामें यही अन्तर है।

प्रकृति ही गुणोंकी सृष्टि करती है। आत्मा तो उदासीनकी भाँति अलग रहकर देखा करता है। जैसे मकड़ी अपने शरीरसे तन्तुओंकी सृष्टि करती है, उसी प्रकार प्रकृति ही समस्त त्रिगुणात्मक पदार्थोंकी जननी है। किन्हींका मत है कि तत्त्वज्ञानसे जब गुणोंका नाश कर दिया जाता है तो वे फिर नहीं उत्पन्न होते, उनका सर्वथा बाध हो जाता है; क्योंकि उनका कोई

चिह्न नहीं दिखायी पड़ता। इस प्रकार वे भ्रम या अविद्याके निवारणको ही मुक्ति मानते हैं। दूसरोंके मतमें त्रिविध दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है। इन दोनों मतोंपर अपनी बुद्धिके अनुसार विचार करके सिद्धान्तका निश्चय करे और अपने महत्त्वरूपमें स्थित हो जाय। आत्मा आदि-अन्तसे रहित है, उसे जानकर मनुष्य हर्ष और क्रोधको त्याग दे और सदा मात्सर्यरहित होकर विचरे। हृदयकी अविद्यामयी ग्रन्थिको, जो बुद्धिके चिन्तादि धर्मोंसे सुदृढ़ हो रही है, काटकर शोक और संदेहसे रहित तथा सुखी हो जाय। जैसे तैरनेकी कला न जाननेवाले मनुष्य यदि भरी हुई नदीमें कूद पड़ते हैं तो गोते खाते हुए दुःख उठाते हैं, उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य इस संसार-समुद्रमें डूबकर कष्ट भोगते रहते हैं; किंतु जो तैरना जानता है, वह जलमें भी स्थलकी ही भाँति चलता है, उसी तरह ज्ञानस्वरूप आत्माको प्राप्त हुआ तत्त्ववेत्ता पुरुष संसार-सागरसे पार हो जाता है। जो सम्पूर्ण प्राणियोंके आवागमनको जानता तथा उनकी विषम अवस्थापर विचार करता है, उसे परम शान्ति प्राप्त होती है। ब्राह्मणमें इस ज्ञानको प्राप्त करनेकी सहज शक्ति होती है, मन और इन्द्रियोंका संयम तथा आत्माका ज्ञान—ये मोक्षप्राप्तिके लिये पर्याप्त साधन हैं। शम और आत्मज्ञानसे पुरुष अत्यन्त शुद्ध-बुद्ध हो जाता है। बुद्ध (ज्ञानी) का इसके सिवा और क्या लक्षण हो सकता है? बुद्धिमान् मनुष्य इस आत्मतत्त्वको जानकर कृतार्थ हो जाते हैं। ज्ञानी पुरुषोंको जो सनातन गति प्राप्त होती है, उससे बढ़कर उत्तम गति और किसीको नहीं मिलती। कुछ लोग मनुष्योंको रोगी और दुःखी देखकर उनमें दोष ढूँढ़ते हैं और दूसरे लोग उनकी वह अवस्था देखकर शोक करते हैं। किंतु जिन्हें नित्य और अनित्यका विवेक है, वे न शोक करते हैं, न दोष-दृष्टि; ऐसे ही लोगोंको कुशल समझना चाहिये। कर्मपरायण मनुष्य निष्कामभावसे जिस कर्मका अनुष्ठान करते हैं, वह पहलेके किये हुए सकाम कर्मोंको नष्ट कर देता है; किंतु जो ज्ञानी है, उसके इस जन्म या पूर्वजन्मके किये हुए कर्म उसका भला या बुरा कुछ भी नहीं कर सकते।



ब्रह्मज्ञानके उपाय, उसकी महिमा तथा कामरूपी वृक्षको काटनेका उपदेश

शुकदेवजीने कहा—पिताजी! अब आप उस धर्मका वर्णन कीजिये जो सब धर्मोंसे श्रेष्ठ है तथा जिससे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है।

व्यासजीने कहा—बेटा! मैं ऋषियोंके बतलाये हुए प्राचीन धर्मका, जो सब धर्मोंसे श्रेष्ठ है, वर्णन करता हूँ, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। जैसे पिता अपने छोटे बच्चोंको काबूमें रखता है, उसी प्रकार मनुष्यको बुद्धिके बलसे अपनी प्रमथनशील इन्द्रियोंका यत्नपूर्वक संयम करना चाहिये। मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता ही सबसे बड़ी तपस्या है, यही सबसे श्रेष्ठ धर्म है। मनसहित इन्द्रियोंको बुद्धिमें स्थापित करके अपने-आपमें ही संतुष्ट रहे, नाना प्रकारके चिन्तनीय विषयोंका चिन्तन न करे। जिस समय ये इन्द्रियाँ अपने विषयोंसे हटकर बुद्धिमें स्थित हो जायँगी, उसी समय तुम्हें सनातन परमात्माका दर्शन होगा। धूमरहित अग्निके समान देदीप्यमान वह परमेश्वर ही सबका आत्मा और परम महान् है; महात्मा ब्राह्मण ही उसे देख पाते हैं। पुरुष जलते हुए ज्ञानमय प्रदीपके द्वारा अपने अन्तःकरणमें ही आत्माका दर्शन करता है। शुकदेव! तुम भी इसी प्रकार आत्माका साक्षात्कार करके सर्वज्ञ हो जाओ। उत्तम बुद्धिका आश्रय लेकर सब प्रकारके सांसारिक बन्धनोंसे छूट जाओगे और प्रसन्नचित्त होकर ब्रह्मभावको प्राप्त होगे। उस अवस्थामें तुम्हें समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयका स्पष्ट दर्शन होगा। धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ एवं तत्त्वज्ञानी मुनियोंने संसारसागरसे पार होनेके साधनको ही सर्वश्रेष्ठ धर्म माना है। बेटा! यह मैंने तुमसे सर्वव्यापी परमात्माके ज्ञानका साधन बतलाया है, जो कोई परम पवित्र, हितैषी और भक्त हो, उसीको इसका उपदेश करना चाहिये। यह परम गोपनीय, गुह्य ज्ञान आत्माका दर्शन करानेवाला है। इसका स्वयं ही अनुभव करना चाहिये। वह परब्रह्म परमात्मा दुःख-सुखसे परे और भूत-भविष्यका कारण है; वह न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक ही है। कोई स्त्री हो या पुरुष, जो उस ब्रह्मको जान लेता है, उसका संसारमें पुनर्जन्म नहीं होता। मोक्षकी सिद्धिके लिये ही इस आत्मज्ञानरूपी धर्मका उपदेश किया जाता है। बेटा! सब प्रकारके मतोंने इस विषयका जैसा प्रतिपादन किया है, उसके अनुकूल ही मैंने भी वर्णन किया है।

गन्ध और रस आदि विषयोंमें राग-द्वेषका न होना, सुखकी आसक्तिसे दूर रहना और मान-बड़ाई, यश तथा कीर्तिकी इच्छाका त्याग करना—यही तत्त्वज्ञानी ब्राह्मणका आचार है। गुरु-सेवापरायण होकर ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक

सम्पूर्ण वेदोंके पढ़ने और उनका ज्ञान प्राप्त कर लेनेमात्रसे ही कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता। जो सम्पूर्ण प्राणियोंको अपने कुटुम्बकी भाँति समझकर उनपर दया करता और सर्वज्ञ तथा सब वेदोंका तत्त्वज्ञ होकर मृत्युको अपने अधीन कर लेता है, वही सच्चा ब्राह्मण है। विधिका परित्याग करके नाना प्रकारकी इष्टियों और बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञोंका अनुष्ठान करनेमात्रसे ही किसीको ब्राह्मणत्व नहीं प्राप्त हो जाता। जिस समय वह दूसरे प्राणियोंसे नहीं डरता और दूसरे प्राणी भी उससे भयभीत नहीं होते तथा जब वह इच्छा और द्वेषका सर्वथा परित्याग कर देता है, उसी समय उसे ब्रह्मभावकी प्राप्ति होती है और तभी वह वास्तवमें ब्राह्मण कहलानेका अधिकारी होता है। जब मन, वाणी और शरीरसे किसी भी प्राणीकी बुराई करनेका विचार न उठे, उस समय मनुष्य ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। जगत्‌में कामना ही एकमात्र बन्धन है, दूसरा नहीं। जो कामनाके बन्धनसे छूट जाता है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। जो अनेकों नदियोंसे सदा भरा जानेपर भी कभी अपनी मर्यादाका त्याग नहीं करता, ऐसे समुद्रमें जिस प्रकार सम्पूर्ण जल आकर समा जाते हैं और उसे विचलित नहीं कर पाते, उसी प्रकार सम्पूर्ण भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुषमें कोई विकार उत्पन्न किये बिना ही प्रवेश कर जाते हैं, वही परम शान्तिको प्राप्त होता है, भोगोंको चाहनेवाला नहीं। वेदका सार है सत्य, सत्यका सार है इन्द्रियोंका संयम और उसका सार है दान और दानका सार है तपस्या। तपस्याका सार त्याग, त्यागका सार सुख, सुखका सार स्वर्ग तथा स्वर्गका सार मनोनिग्रह है। मनुष्यको संतोषपूर्वक रहकर शान्तिके उत्तम उपाय सत्त्वगुणको अपनानेकी इच्छा करनी चाहिये। सत्त्वगुण मनकी तृष्णा, शोक और संकल्पको जलाकर नष्ट करनेवाला है। पुरुषको शोकशून्य, ममतासे रहित, शान्त, प्रसन्नचित्त और मात्सर्यहीन होना चाहिये—इन छः लक्षणोंसे युक्त मनुष्य ज्ञानानन्दसे तृप्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है। जो देहाभिमानसे मुक्त होकर सत्त्वप्रधान सत्य, दम, दान, तप, त्याग और शम—इन छः गुणों तथा श्रवण, मनन, निदिध्यासनरूप तीन साधनोंसे प्राप्त होनेवाले आत्माको इस शरीरमें रहते हुए ही जान लेते हैं, वे परमशान्तिको प्राप्त होते हैं। जो उत्पत्ति और विनाशसे रहित, संस्कारशून्य, स्वभावसिद्ध तथा शरीरके भीतर स्थित है, उस ब्रह्मको प्राप्त होनेवाला मनुष्य ही अक्षय आनन्दका भागी होता है। अपने मनको इधर-उधर जानेसे रोककर आत्मामें स्थापित करनेसे पुरुषको जिस सुख और संतोषकी प्राप्ति होती है, उसका और किसी उपायसे प्राप्त होना असम्भव है। जिसको पाकर बिना भोजनके भी तृप्ति हो जाती है, जिस धनके होनेसे दरिद्र भी संतुष्ट रहता है, जिसका आश्रय मिलनेसे घृत आदिका सेवन किये बिना भी मनुष्य अपनेमें अनन्त बलका अनुभव करता है, उस ब्रह्मको जो जानता है, वही वेदोंका तत्त्वज्ञ है। जो अपनी इन्द्रियोंके द्वारोंको सब ओरसे रोककर नित्य ब्रह्मका चिन्तन करता रहता है, वही ब्राह्मण शिष्ट और आत्माराम कहलाता है। जो सामान्यतः सम्पूर्ण भूतों और भौतिक गुणोंका त्याग कर देता है, उसको सुखकी प्राप्ति होती है और उसका दुःख उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे सूर्योदयसे अन्धकार। गुणोंके ऐश्वर्यसे तथा कर्मोंका परित्याग करके विषयवासनासे रहित हुए उस ब्रह्मवेत्ता पुरुषको जरा और मृत्युका भय नहीं रहता। जब सम्पूर्ण आसक्तियोंसे छूटकर मनुष्य समतामें स्थित हो जाता है, उस समय इस शरीरमें रहकर भी इन्द्रियों और उनके विषयोंकी पहुँचके बाहर हो जाता है। इस प्रकार जो कार्यमयी प्रकृतिकी सीमाको लाँघकर कारणरूप ब्रह्ममें स्थित होता है, वह ज्ञानी परमपदको प्राप्त हो जाता है। उसे पुनः इस संसारमें जन्म नहीं लेना पड़ता।

मनुष्यकी हृदय-भूमिमें मोहरूपी बीजसे उत्पन्न हुआ एक अद्भुत वृक्ष है, उसका नाम है काम। क्रोध और अभिमान उसके स्कन्ध हैं, काम करनेकी इच्छा उसका थाला है और अज्ञान उसकी जड़ है। प्रमादके जलसे वह सींचा जाता है। असूया उसके पत्ते हैं तथा पूर्वजन्ममें किये हुए पाप उसके सार भाग हैं। शोक उसकी शाखा, मोह और चिन्ता डालियाँ और भय उसके अङ्कुर हैं। उसमें तृष्णारूपी लताएँ लिपटी हुई हैं। लोभी मनुष्य लोहेकी जंजीरोंके समान वासनाके बन्धनोंमें बँधकर उस वृक्षको चारों ओरसे घेरकर खड़े हैं और उसके फलका आस्वादन करना चाहते हैं। जो वासनाके बन्धनसे मुक्त होकर उस काम-वृक्षको काट डालता है, वही सांसारिक सुख-दुःखोंको त्यागकर उनके घेरेसे बाहर हो पाता है। परंतु जो मूर्ख फलके लोभसे उस वृक्षपर चढ़ता है, वह विषकी गोली खाये हुए रोगीकी तरह मारा जाता है। उस काम-वृक्षकी जड़ें बहुत दूरतक फैली हुई हैं। कोई विद्वान् पुरुष ही ज्ञानके प्रभावसे समतारूप शस्त्रके द्वारा उसको बलपूर्वक काटते हैं। इस प्रकार जो कामनाओंको बन्धनरूप समझकर उन्हें निवृत्त करनेका उपाय जानता है, वह सम्पूर्ण दुःखोंसे मुक्त हो जाता है।



पञ्चभूतोंके गुणोंका वर्णन तथा धर्मका प्रतिपादन

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी भगवान् व्यासजीने अपने पुत्र शुकदेवको पहले जिस प्रकार भूतोंके गुणोंका प्रतिपादन किया था, उसे मैं फिर तुम्हें बतला रहा हूँ; सुनो—स्थिरता, भारीपन, कठिनता, बीजको अङ्कुरित करनेकी शक्ति, गन्ध, गन्धको ग्रहण करनेकी शक्ति, मोटापन, संघात, आश्रय देना, सहनशीलता और धारणशक्ति—ये सब पृथ्वीके गुण हैं। शीतलता, रस, क्लेद (गीला होना), द्रवत्व (पिघलना), स्नेह (चिकनाहट), सौम्यभाव, जिह्वा, टपकना, बर्फ आदिके रूपमें जम जाना और पार्थिव पदार्थोंको पकाना—ये जलके गुण हैं। दुर्धर्ष होना, जलना, तपाना, परिपाक, प्रकाश, शोक, राग, शीघ्रगमन, तीक्ष्णता और लपटोंका ऊपरकी ओर जाना—ये अग्निके गुण हैं। स्पर्श, वागिन्द्रियका स्थान, चलनेमें स्वतन्त्रता, बल, शीघ्रगामिता, शरीरके मलको बाहर निकालना, उत्क्षेपण आदि कर्म, श्वास-प्रश्वास आदिकी क्रिया, प्राण तथा जन्म और मरण—ये वायुके गुण हैं। शब्द, व्यापकता, छिद्र होना, किसी स्थूल पदार्थका आश्रय न होना, स्वयं किसी दूसरे आधारपर न रहना, अव्यक्तता (रूप और स्पर्शसे रहित होना), निर्विकारता, अप्रतिघात और भूतत्व—ये आकाशके गुण हैं। पञ्चमहाभूतोंके ये पचास गुण बताये गये हैं। धैर्य, तर्क-वितर्कमें कुशलता, स्मरण, भ्रान्ति, कल्पना, क्षमा, शुभ संकल्प, अशुभ संकल्प और चञ्चलता—ये मनके नौ गुण हैं। इष्ट और अनिष्ट वृत्तियोंका नाश करना, उत्साह, चित्तको एकाग्र करना, संदेह और निश्चय—ये पाँच बुद्धिके गुण हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! प्रायः सब लोगोंको धर्मके विषयमें संशय बना रहता है, इसलिये पूछता हूँ धर्मका क्या स्वरूप है ? उसकी उत्पत्ति कहाँसे हुई है ? इस लोकमें सुख पानेके लिये जो कर्म किया जाता है, वही धर्म है या परलोकमें कल्याण होनेके लिये जो कुछ किया जाता है, उसे धर्म कहते हैं ? अथवा लोक-परलोक दोनोंके सुधारके लिये किया जानेवाला कर्म ही धर्म कहलाता है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! वेद, स्मृति और सदाचार—ये तीन धर्मका ज्ञान करानेवाले हैं। कुछ विद्वान् अर्थको भी धर्मका परिचायक मानते हैं। शास्त्रोंमें जो धर्मानुकूल कार्य बतलाये गये हैं, परवर्ती मनुष्य उनका अपनी बुद्धिसे निश्चय करके पालन करते हैं। लोक-व्यवहारका निर्वाह करनेके लिये ही धर्मकी मर्यादा स्थापित की गयी है। धर्म करनेसे इस लोक और परलोकमें भी सुख मिलता है, जो धर्मका आश्रय नहीं ग्रहण करता, वह पापमें प्रवृत्त होकर उसके दुःखरूप फलका भागी होता है। सत्य बोलना शुभ कर्म है, सत्यसे बढ़कर दूसरा कोई कार्य नहीं है, सत्यने ही सबको धारण कर रखा है और सत्यमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। भयंकर कर्म करनेवाले पापी भी पृथक्-पृथक् सत्यकी शपथ खाकर आपसमें द्रोह और विवाद नहीं करते; अपितु सत्यका आश्रय लेकर ही अपने-अपने कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं। वे यदि आपसकी सच्ची प्रतिज्ञाको भंग कर दें तो निःसंदेह परस्पर लड़-भिड़कर नष्ट हो जायँ। दूसरोंका धन नहीं चुराना चाहिये, यह सनातनधर्म है। कुछ बलवान् लोग बलके घमंडमें नास्तिकताका आश्रय लेकर धर्मको दुर्बलोंका चलाया हुआ मानते हैं; किंतु जब भाग्यवश वे भी दुर्बल हो जाते हैं तो अपनी रक्षाके लिये उन्हें भी धर्मका ही सहारा लेना अच्छा जान पड़ता है। संसारमें कोई भी सबसे बढ़कर बलवान् या सुखी नहीं होता। इसलिये तुम्हें कभी भी अपने मनमें कुटिलताका विचार नहीं लाना चाहिये। जो किसीका कुछ बिगाड़ नहीं करता, उसे चोर, बदमाश अथवा राजासे कभी भय नहीं होता। सदाचारी मनुष्य सदा निर्भय रहता है। गाँवमें आये हुए हिरनकी तरह चोर सबसे डरता रहता है, वह अनेकों बार दूसरोंके साथ जैसा अत्याचार कर चुका है, दूसरोंको भी वैसा ही अत्याचारी समझता है; किंतु जिसका स्वभाव शुद्ध है, उसे कहींसे कोई खटका नहीं होता, वह सदा प्रसन्न रहता है और किसी दूसरेसे अपने अनिष्टकी आशङ्का नहीं करता। प्राणियोंके हितमें लगे रहनेवाले महात्माओंने दानको उत्तम धर्म बतलाया है; परंतु बहुत-से धनवान् इसे गरीबोंका चलाया हुआ धर्म मानते हैं। लेकिन जिस दिन भाग्य फिर जाता है और धन नष्ट हो जानेसे वे धनी भी दीन—दर-दरके भिखारी हो जाते हैं, उस समय उनको भी यह दान-धर्म उत्तम जान पड़ता है। जगत्में कोई भी सबसे बढ़कर धनवान् या सुखी नहीं होता; इसलिये धनका अभिमान नहीं करना चाहिये।

मनुष्य दूसरोंके जिस बर्तावको अपने लिये ठीक नहीं समझता, दूसरोंके साथ भी वैसा बर्ताव न करे; क्योंकि जो अपने लिये अप्रिय है, वह दूसरोंके लिये भी अप्रिय हो सकता है। जो स्वयं दूसरेकी स्त्रीके साथ व्यभिचार करता है, वह और किसीको वही कर्म करता देख उसके विरुद्ध क्या कह

सकता है ? उसे दूसरेको दुराचारी कहनेका कोई अधिकार नहीं है। किंतु वह मनुष्य भी यदि अपनी स्त्रीके साथ दूसरे पुरुषको आसक्त पा जाय तो उसे नहीं बरदाश्त कर सकता, ऐसा मेरा विश्वास है। जो स्वयं जीवित रहना चाहता हो, उसे दूसरेके प्राण लेनेका क्या अधिकार है ? मनुष्य अपने लिये जो-जो सुख-सुविधा चाहता है, वही-वही दूसरेको भी मिले—ऐसा विचार कर अपने उपयोगसे जितना धन बच जाय उसे गरीबोंको बाँट देना चाहिये; इसीलिये विधाताने धनकी वृद्धिके लिये कुसीदवृत्तिका प्रचार किया है। जिस सन्मार्गपर चलनेसे देवताओंके दर्शन होते हैं, उसीपर सदा चलना चाहिये। यदि धनकी आय अधिक हो तो यज्ञ-दान आदि शुभ कर्मोंमें लगे रहना अच्छा है। सबको सुख पहुँचानेसे जो कुछ प्राप्त होता है, उसे धर्म माना गया है। इसी तरह दूसरोंको दुःख देना अधर्म है। युधिष्ठिर ! यह मैंने संक्षेपसे धर्म और अधर्मका लक्षण बताया है। विधाताने पूर्वकालमें सत्पुरुषोंके जिस उत्तम आचरणका विधान किया है, वह विश्वके कल्याणकी भावनासे युक्त है और उससे धर्मके सूक्ष्म स्वरूपका ज्ञान होता है।



युधिष्ठिरका धर्मविषयक प्रश्न और भीष्मजीका उसके उत्तरमें जाजलि तथा तुलाधार वैश्यका संवाद सुनाना

युधिष्ठिरने कहा—दादाजी ! आपने जिस वेदप्रतिपादित सूक्ष्म धर्मका वर्णन किया है, उसका मुझे भी कुछ-कुछ ज्ञान है और मैं उसे अनुमानसे भी कह सकता हूँ। किंतु अभी मुझे कुछ पूछना बाकी रह गया है, उसका भी समाधान कीजिये। आपके कथनानुसार सत्पुरुषोंका आचरण धर्म है और जो धर्माचरण करते हैं, वे ही सत्पुरुष हैं—ऐसी दशामें अन्योन्याश्रय दोष पड़नेके कारण लक्ष्य और लक्षणका ठीक-ठीक विवेक नहीं हो पाता; फिर सदाचार धर्मका लक्षण कैसे हो सकता है ? शास्त्रवेत्ताओंने धर्ममें वेदको ही प्रमाण बताया है; किंतु हमने सुना है कि युग-युगमें वेदोंका ह्रास होता है, अर्थात् धर्मके सम्बन्धमें जो वेदोंका निश्चय है, वह प्रत्येक युगमें बदलता रहता है। सत्ययुगके धर्म कुछ और हैं और त्रेता, द्वापर तथा कलियुगके कुछ और। मनुष्यकी शक्तिके अनुसार युग-धर्मोंकी व्यवस्था की गयी है। जब इस प्रकार वैदिक धर्मोंका समय-समयपर परिवर्तन होता रहता है तो वेदके वचनको सत्य कहना लोकरञ्जनके सिवा और क्या है ? वेदोंसे ही स्मृतियाँ निकली हैं और उनका सर्वत्र प्रचार है। यदि सम्पूर्ण वेद प्रामाणिक हों, तभी स्मृतियाँ भी प्रामाणिक हो सकती हैं। किंतु जब अपनी ही अङ्गभूत स्मृतियोंके साथ वेदका विरोध हो तो उसे प्रमाणभूत शास्त्र कैसे माना जा सकता है ? धर्मका स्वरूप हम जानें या न जानें, दूसरोंके बतानेपर भी उसे समझ सकें या नहीं, किंतु इतना स्पष्टरूपसे कहा जा सकता है कि धर्म छुरेकी धारसे भी सूक्ष्म और पर्वतसे भी अधिक भारी है। गौओंके पानी पीनेके लिये बने हुए पौंसलोंका तथा खेतकी क्यारियोंमें जल पहुँचानेके लिये बनी हुई नालियोंका जल जैसे शीघ्र ही सूख जाता है, उसी प्रकार वैदिक और स्मार्त सनातन धर्म धीरे-धीरे क्षीण होकर कलिके अन्तमें बिलकुल दिखायी नहीं देता; क्योंकि उस समय बहुत-से दुष्ट भी कामनासे दूसरोंके कहनेसे तथा अन्यान्य कारणोंसे भी व्यर्थ धर्माचरणका ढोंग किया करते हैं; और मूर्खलोग इसीको धर्म मानते हैं। यही नहीं, वे साधु पुरुषोंके सच्चे धर्मको भी प्रलाप बताते हैं और उसका आचरण करनेवाले सत्पुरुषोंको पागल कहकर उनकी हँसी उड़ाया करते हैं।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इस विषयमें तुलाधार वैश्यका जाजलि ऋषिके साथ जो धर्मविषयक संवाद हुआ था, उसी प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। जाजलि नामके एक ब्राह्मण थे, जो सदा वनमें रहा करते थे, उन्हें अपने तपोबलसे सम्पूर्ण लोकोंको देखनेकी शक्ति प्राप्त हो गयी थी।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! जाजलिने पूर्वकालमें कौन-सा दुष्कर तप किया था, जिससे उन्हें उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई थी ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! जाजलिमुनि बड़ी कठोर तपस्यामें प्रवृत्त हुए थे। वे प्रतिदिन प्रातःकाल और संध्याके समय स्नान करके अग्निहोत्र करते तथा वानप्रस्थके नियमोंका पालन करते हुए सदा स्वाध्यायमें लगे रहते थे। वनमें रहकर तप करते हुए वे वर्षाके दिनोंमें खुले आकाशके नीचे सोते और हेमन्तऋतु (सर्दी) में पानीके भीतर बैठा करते थे। इसी तरह गर्मीके महीनोंमें कड़ी धूप और लूका कष्ट सहते थे। जिसपर सोनेमें दूसरोंको महान् कष्ट हो सकता है, ऐसे बिछौनोंके ऊपर जमीनपर ही सोया करते थे। जब आकाशसे मूसलाधार वृष्टि होती, उस समय अपने मस्तकपर जलकी धाराका आघात सहते थे। इससे उनके सिरके बाल बराबर

भीगे रहनेके कारण उलझकर जटाके रूपमें परिणत हो गये थे। एक बार वे महातपस्वी मुनि निराहार रहकर केवल वायु भक्षण करते हुए काष्ठकी भाँति अविचल भावसे खड़े हो घोर तपस्यामें प्रवृत्त हुए। उस समय उन्हें कोई ठूँठ समझकर एक चिड़ियेके जोड़ेने उनकी जटाओंमें अपने रहनेका घोंसला बना लिया। महर्षि बड़े दयालु थे, इसलिये उन्होंने चिड़ियोंको



तिनकोंसे घोंसला बनाते देखकर भी उन्हें हटाया नहीं। जब जरा भी वे हिले-डुले नहीं, तब दोनों पक्षी विश्वास जम जानेके कारण बड़े सुखसे वहाँ रहने लगे। धीरे-धीरे वर्षाके चार महीने बीत गये और शरद् ऋतुका आगमन हुआ। उस समय कामसे मोहित होकर उन गौरैयोंने परस्पर समागम किया और समय आनेपर महर्षिके मस्तकपर ही अंडे दिये। इस बातको जानकर भी वे तेजस्वी मुनि हिले-डुले बिना ही अपने स्थानपर खड़े रहे; क्योंकि उनका मन सदा धर्ममें ही लगा रहता था। गौरैयोंका जोड़ा भी प्रतिदिन चारा चुगनेके लिये इधर-उधर जाता और फिर लौटकर बेखटके वहाँ रहता था। मुनिके मस्तकपर निवास पाकर वे दोनों बड़े प्रसन्न थे। कुछ दिनोंमें जब अंडे परिपुष्ट हुए, तो उन्हें फोड़कर बच्चे बाहर निकले, फिर वे भी वहीं रहकर बढ़ने लगे, इतनेपर भी मुनि अटल भावसे खड़े ही रहे। थोड़े दिनों बाद बच्चोंके पर निकल आये। यह जानकर जाजलिको बड़ा हर्ष हुआ। अब वे बच्चे इधर-उधर उड़ने भी लगे। दिनमें चुगनेके लिये चले जाते और शामको पुनः उसी घोंसलेमें लौट आते थे। यह देखकर भी मुनि कभी हिलते-डुलते नहीं थे। अब माँ-बापने उन बच्चोंकी देख-रेख छोड़ दी, वे अकेले ही बाहर आने-जाने लगे। दिनको जाते और शामको पुनः बसेरा लेनेके लिये वहीं चले आते थे। कभी-कभी ऐसा होता कि वे चिड़िये पाँच-पाँच दिनोंतक बाहर रहकर छठे दिन अपने घोंसलेमें आते, किंतु उस समय भी मुनि उन्हें स्थिरभावसे खड़े ही दिखायी देते थे। एक बार वे पक्षी उड़नेके बाद एक महीनेतक नहीं लौटे, पर जाजलिमुनि ज्यों-के-त्यों खड़े रहे। तदनन्तर, जब उनका कुछ भी पता न चला तो मुनिको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अपनेको सिद्ध मानने लगे और इस बातका उन्हें गर्व भी हो गया। फिर नदीके तटपर जाकर उन्होंने स्नान किया और अग्निमें होम करनेके पश्चात् सूर्यके उदय होनेपर उनका उपस्थान किया। अपने मस्तकपर चिड़ियोंके पैदा होने और बढ़ने आदिकी बातें याद करके वे अपनेको महान् धर्मात्मा समझने लगे और आकाशकी ओर देखकर बोल उठे 'मैंने धर्मको प्राप्त कर लिया।' इतनेमें आकाशवाणी हुई 'जाजलि! तुम धर्ममें तुलाधारकी बराबरी नहीं कर सकते। काशीपुरीमें तुलाधार नामके एक महाबुद्धिमान् वैश्य रहते हैं, जो बहुत बड़े धर्मात्मा हैं; किंतु वे भी ऐसी बात नहीं कह सकते, जैसी आज तुम कह रहे हो।'

आकाशवाणी सुनकर जाजलिको बड़ा अमर्ष हुआ, वे तुलाधारको देखनेके लिये वहाँसे चल दिये और बहुत दिनों बाद काशीमें आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने तुलाधारको सौदा बेचते देखा। महात्मा तुलाधार भी जाजलिको देखते ही उठकर खड़े हो गये; फिर आगे बढ़कर बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्होंने ब्राह्मणका स्वागत-सत्कार किया।

तुलाधार बोले—विप्रवर! आप मेरे पास आ रहे हैं, यह बात मुझे मालूम हो गयी थी, अब मेरी बात सुनिये। आपने समुद्रके तटपर एक वनमें रहकर बड़ी भारी तपस्या की है। उसमें सिद्धि प्राप्त होनेके बाद आपके मस्तकपर चिड़ियोंके बच्चे पैदा हुए और आपने उनकी भलीभाँति रक्षा की। जब उनके पर निकल आये और वे उड़कर इधर-उधर चले गये तब अपनेको धर्मात्मा समझकर आपको बड़ा गर्व हो गया। उसी समय मेरे विषयमें आकाशवाणी हुई और उसे सुनकर आप अमर्षमें भरे हुए मेरे पास आये हैं। विप्रवर! आज्ञा दीजिये, मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?

भीष्मजी कहते हैं—बुद्धिमान् तुलाधारके इस प्रकार कहनेपर जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ जाजलि बोले—'वैश्यवर! तुम तो सब प्रकारके रस, गन्ध, वनस्पति, ओषधि, मूल और फल आदि बेचा करते हो, तुम्हें ऐसा ज्ञान और धर्ममें निष्ठा

रखनेवाली बुद्धि कैसे प्राप्त हुई ? ये सब बातें बताओ।'

तुलाधारने कहा—मुनिवर ! मैं परमप्राचीन और सबका हित करनेवाले सनातन धर्मको उसके गूढ़ रहस्योंसहित जानता हूँ। किसी भी प्राणीसे द्रोह न करके जीविका चलाना श्रेष्ठ धर्म माना गया है। मैं उसी धर्मके अनुसार जीवन-निर्वाह करता हूँ। काठ और घास-फूससे छाकर मैंने अपने रहनेके लिये यह घर बनाया है। अलक्त, पद्मक, तुङ्गकाष्ठ, चन्दन आदि गन्ध तथा और भी छोटी-बड़ी वस्तुओंका विक्रय करता हूँ। मेरे यहाँ तरह-तरहके रसोंकी भी बिक्री होती है। मदिरा नहीं बेची जाती। ये सब चीजें मैं दूसरोंके यहाँसे खरीदकर बेचता हूँ, स्वयं तैयार नहीं करता। माल बेचनेमें किसी प्रकारकी ठगी या छल-कपटसे काम नहीं लेता। जो सब जीवोंका सुहृद् होता और मन-वाणी तथा कर्मसे सबके हितमें लगा रहता है, वही वास्तवमें धर्मको जानता है। मैं न किसीसे मेल-जोल बढ़ाता हूँ, न विरोध करता हूँ; मेरा न कहीं राग है, न द्वेष; सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति मेरे मनमें एक-सा भाव है। यही मेरा व्रत है। मेरी तराजू सबके लिये बराबर तौलती है। मैं दूसरोंके कार्योंकी निन्दा या स्तुति नहीं करता। मिट्टीके ढेले, पत्थर और सोनेमें भेद नहीं मानता। जैसे वृद्ध, रोगी और दुर्बल मनुष्य विषय-भोगोंकी स्पृहा नहीं रखते, उसी प्रकार मेरे मनमें भी उन्हें प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं होती। जिस समय पुरुषको दूसरोंसे भय नहीं होता, दूसरे भी उससे भय नहीं मानते; जब वह किसीसे द्वेष या किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करता तथा किसी भी प्राणीके प्रति उसके मनमें बुरे विचार नहीं उठते, उस समय वह ब्रह्मको प्राप्त होता है। जैसे मौतके मुखमें पड़नेसे सबको भय होता है, उसी प्रकार जिसके नामसे सब लोग थर-थर काँपते हैं तथा जो कटुवचन बोलनेवाला और दण्ड देनेमें कठोर है, ऐसे पुरुषको महान् भयका सामना करना पड़ता है। जो वृद्ध हैं, पुत्र और पौत्रोंसे युक्त हैं, शास्त्रके अनुसार आचरण करते हैं और किसी भी जीवकी हिंसा नहीं करते, उन महात्माओंके बर्तावके अनुसार मैं भी चलता हूँ। बुद्धिमान् मनुष्य सदाचारका पालन करनेसे शीघ्र ही धर्मके रहस्यको जान लेता है। नदीकी धारामें बहते हुए तिनके और काष्ठ आदिका कभी-कभी दूसरे-दूसरे तिनकों और काष्ठोंसे संयोग हो जाया करता है, यह संयोग दैवेच्छासे ही होता है, जान-बूझकर नहीं किया जाता। इसी प्रकार संसारके प्राणियोंका भी परस्पर संयोग-वियोग होता रहता है। जिससे जगत्‌का कोई भी प्राणी कभी किसी प्रकार किञ्चित् भी भय नहीं मानता, उस पुरुषको सम्पूर्ण भूतोंसे अभय प्राप्त होता है। जैसे नदीके तीरपर आकर कोलाहल करनेवाले मनुष्यके डरसे सब जलचर जीव पानीके भीतर छिप जाते हैं तथा जिस प्रकार भेड़ियेको देखकर सभी थर्रा उठते हैं, उसी प्रकार जिससे सब लोग डरते हों, उसको भी दूसरोंसे डरना पड़ता है। इस अभयदानरूप धर्मका प्रयत्नपूर्वक पालन करना उचित है। जो इसको आचरणमें लाता है, वह सहायवान्, द्रव्यमान्, सौभाग्यशाली तथा परलोकमें कल्याणका भागी होता है। अतः जो अभयदान देनेमें समर्थ होते हैं, उन्हें ही विद्वान् पुरुष श्रेष्ठ बतलाते हैं। उनमेंसे जो क्षणभङ्गुर विषयोंकी इच्छावाले हैं, वे तो कीर्ति और मान-बड़ाईके लिये अभयदानरूप व्रतका पालन करते हैं; किंतु जो चतुर हैं, वे ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये उसका आश्रय लेते हैं। तप, यज्ञ, दान और ज्ञानोपदेशके द्वारा जो-जो फल प्राप्त होता है, वह सब केवल अभयदानसे ही मिल सकता है। जो सम्पूर्ण जीवोंको अभयकी दक्षिणा देता है, वह मानो समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान कर लेता है तथा उसे भी सब ओरसे अभयदान मिल जाता है। अहिंसासे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जो सब प्राणियोंको अपना ही शरीर समझता है तथा सबको आत्मभावसे देखता है, वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है, उसे किसी विशेष स्थानकी प्राप्ति नहीं होती। देवता भी उसकी गतिका पता नहीं पाते। विप्रवर ! जीवोंको अभयदान देना सब दानोंसे उत्तम है। मैं आपसे यह सत्य कह रहा हूँ, इसपर विश्वास कीजिये।

धर्मका तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म है, कोई भी धर्म निष्फल नहीं होता। स्वर्ग या ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये ही धर्मकी व्याख्या की गयी है। सूक्ष्मधर्म आसानीसे सबकी समझमें नहीं आ सकता। जो लोग बैलोंको बधिया करते, बाँधते, नाथते, मार-पीटकर काम कराते और उनपर अधिक बोझा लादते हैं; जो कितने ही जीवोंको मारकर खा जाते, मनुष्य होकर मनुष्योंको दास बनाते और उनके परिश्रमका फल आप भोगते हैं तथा जो वध और बन्धनका दुःख जानते हुए भी दूसरोंको वैसे ही कष्ट देते हैं, ऐसे लोगोंकी आप क्यों नहीं निन्दा करते ? (मुझे ही क्यों निन्दनीय समझते हैं ? मैं तो अपनी जीविकाका ही कार्य कर रहा हूँ।) पाँच इन्द्रियोंवाले समस्त प्राणियोंमें सूर्य, चन्द्रमा, वायु, ब्रह्मा, प्राण, यज्ञ और यमराज आदि देवताओंका निवास है; फिर भी उन्हें जीतेजी बेचकर जो लोग जीविका चलाते हैं, क्या वे निन्दाके पात्र नहीं हैं ? बकरा अग्निका, भेड़ वरुणका, घोड़ा सूर्यका और पृथ्वी विराट्‌का रूप है तथा गाय और

बछड़े चन्द्रमाके स्वरूप हैं। इनको बेचनेसे कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती। मैं तो तेल, घी, शहद और औषधोंकी बिक्री करता हूँ, इसमें क्या हानि है ? बहुत-से मनुष्य तो दंश और मच्छरोंसे रहित देशमें पैदा हुए और सुखसे पले हुए पशुओंको उनकी माताओंसे अलग करके ऐसे देशोंमें ले जाते हैं, जहाँ दंश, मच्छर और कीचड़की अधिकता होती है। वहाँ उनपर भारी बोझ लादकर उन्हें अनुचित रूपसे कष्ट पहुँचाते हैं। उस अवस्थामें उन बेचारे पशुओंको बड़ा दुःख होता है। मैं तो इसमें भ्रूणहत्यासे भी बढ़कर पाप समझता हूँ। श्रुतिमें गौको अघ्न्या (अवध्य) कहा गया है; फिर कौन उसे मारनेका विचार करेगा। जो पुरुष गाय और बैलोंको मारता है, वह महान् पाप करता है। इस तरहके अमङ्गलकारी और भयंकर आचार इस जगत्में बहुत-से प्रचलित हैं। अमुक बात प्राचीन कालसे चली आ रही है, यही सोचकर आप उसकी बुराइयों-पर ध्यान नहीं देते। परिणामपर विचार करके ही किसी भी धर्मको स्वीकार करना चाहिये। लोगोंकी देखा-देखी करना अच्छा नहीं है। अब मैं अपने बर्तावके सम्बन्धमें कुछ निवेदन कर रहा हूँ, उसे सुनिये। जो मुझे मारता है तथा जो मेरी प्रशंसा करता है, वे दोनों ही मेरे लिये बराबर हैं, मैं उनमेंसे किसीको प्रिय और अप्रिय नहीं मानता। बुद्धिमान् पुरुष ऐसे ही धर्मकी प्रशंसा करते हैं। यही युक्तिसंगत है। यति भी इसीका सेवन करते हैं तथा धर्मात्मा मनुष्य अच्छी तरह विचारकर सदा इसी धर्मका अनुष्ठान किया करते हैं।



जाजलिको तुलाधार तथा पक्षियोंका उपदेश

जाजलिने कहा—वणिक महोदय ! तुम हाथमें तराजू लेकर सौदा तौलते हुए जिस धर्मका उपदेश करते हो, उससे तो स्वर्गका दरवाजा ही बंद हो जायगा तथा प्राणियोंकी जीविका ही रुक जायगी। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि अन्न और पशुओंसे ही मनुष्योंका जीवन-निर्वाह होता है। पशुओंद्वारा उत्पन्न किये हुए अन्नसे ही यज्ञ-यागादि कर्म सम्पन्न होते हैं। तुम्हारी बातें तो नास्तिकोंकी-सी हो रही हैं। पशुओंके कष्टका खयाल करके यदि कृषि आदि वृत्तियोंका ही त्याग कर दिया जाय, तब तो संसारका जीवन ही समाप्त हो जायगा।

तुलाधारने कहा—ब्रह्मन् ! दूसरोंको कष्ट दिये बिना जिस प्रकार जीवन-निर्वाह करना चाहिये, वह उपाय मैं बता रहा हूँ, सुनिये। आप मुझे नास्तिक बता रहे हैं, पर मैं नास्तिक नहीं हूँ और न यज्ञकी निन्दा ही करता हूँ। यज्ञ उत्तम कर्म है; किंतु उसके स्वरूपको ठीक-ठीक जाननेवाले लोग दुर्लभ हैं। ब्राह्मणोंके लिये जिस यज्ञका विधान है, उसको मैं प्रणाम करता हूँ तथा उस यज्ञको जाननेवाले ब्राह्मणोंके चरणोंमें भी शीश झुकाता हूँ। खेद है कि इस समय ब्राह्मणलोग अपने यज्ञका परित्याग करके क्षत्रियोचित यज्ञोंके अनुष्ठानमें प्रवृत्त हो रहे हैं। धन कमानेके प्रयत्नमें लगे हुए बहुत-से लोभी और नास्तिक पुरुषोंने वैदिक वचनोंका तात्पर्य न समझकर सत्य-से प्रतीत होनेवाले मिथ्या यज्ञोंका प्रचार कर दिया है। शुभ कर्मके द्वारा जिस हविष्यका संग्रह किया जाता है, उसीके होमसे देवता प्रसन्न होते हैं। शास्त्रके कथनानुसार नमस्कार, स्वाध्याय और अन्नरूप हविष्यके द्वारा देवताओंकी पूजा हो सकती है। जो लोग कामनाके वशीभूत होकर यज्ञ करते, तालाब खुदवाते या बगीचे लगवाते हैं, उनसे उन्हींकी तरह कामना रखनेवाली संतान उत्पन्न होती है। लोभीकी संतान लोभी और समदर्शीकी संतान समान दृष्टि रखनेवाली होती है। यजमान और ऋत्विक् स्वयं जैसे होते हैं, उनकी प्रजा भी वैसी ही होती है। जिस प्रकार आकाशसे निर्मल जलकी वर्षा होती है, उसी प्रकार शुद्धभावसे किये हुए यज्ञसे योग्य प्रजाकी उत्पत्ति होती है। विप्रवर ! अग्निमें डाली हुई आहुति सूर्यमण्डलमें पहुँचती है, सूर्यसे जलकी वृष्टि होती है, वृष्टिसे अन्न उपजता है और अन्नसे सम्पूर्ण प्रजा जन्म तथा जीवन धारण करती है। पहलेके लोग कर्तव्य-पालनकी दृष्टिसे यज्ञ-यागादिमें प्रवृत्त होते थे, मनमें कोई कामना नहीं रखते थे; इसीलिये उनकी सम्पूर्ण कामनाएँ स्वतः पूर्ण हो जाती थीं। पृथ्वीसे बिना जोते ही काफी अन्न पैदा होता तथा जगत्की भलाईके लिये उनके शुभ संकल्पसे ही वृक्ष और लताओंमें फल-फूल लगते थे। वे यज्ञ तो करते थे, पर अपनेको उसका कोई फल मिलता है, इसका विचार भी नहीं करते थे। जो मनुष्य यज्ञसे कोई फल मिलेगा या नहीं ? ऐसा संदेह लेकर यज्ञमें प्रवृत्त होते हैं, वे धन चाहनेवाले लोभी, धूर्त और दुष्ट हैं। ऐसे लोगोंको अपने अशुभ कर्मके कारण पापियोंको मिलनेवाले लोकोंमें जाना पड़ता है। जो प्रमाणभूत वेदको अपने कुतर्कसे अप्रामाणिक बतानेका दुःसाहस करता है, वह मूर्ख और पापात्मा है तथा उसे भी पापियोंके लोकोंकी ही प्राप्ति होती है। किंतु जो करने योग्य कर्मोंको नित्यकर्म समझकर करता

है और कभी उसका पालन न होनेपर भयभीत हो जाता है, जिसकी दृष्टिमें (ऋत्विक्, हविष्य, मन्त्र और अग्नि आदि) सब कुछ ब्रह्म ही है तथा जो कभी अपनेमें कर्तापनका अभिमान नहीं करता, वही सच्चा ब्राह्मण है। प्राचीन कालके ब्राह्मण सत्यवादी, इन्द्रियसंयमी और परम पुरुषार्थकी प्राप्तिके लिये उत्सुक रहनेवाले थे। उनकी धन पानेकी प्यास बुझ गयी थी। वे त्यागी, ईर्ष्यारहित, देह और आत्माके तत्त्वको जाननेवाले, आत्मयज्ञमें स्थित तथा प्रणवके जपमें तत्पर रहनेवाले थे, स्वयं संतुष्ट रहकर दूसरोंको भी संतोष देते थे।

ब्रह्म सर्वात्मक है, सम्पूर्ण देवता उसीके स्वरूप हैं। वह ब्रह्मवेत्ताके भीतर स्थित होता है; इसलिये उसके तृप्त होनेपर सम्पूर्ण देवता तृप्त हो जाते हैं। जैसे सब प्रकारके रसोंसे तृप्त मनुष्यको कुछ भी नहीं भाता, उसी प्रकार जो ज्ञानानन्दसे परिपूर्ण है, उसे सदा तृप्ति बनी रहती है, वह विषय-सुखोंको प्राप्त करना नहीं चाहता। जिनका धर्म ही आधार है, जो धर्ममें ही सुख मानते हैं तथा जिन्होंने सम्पूर्ण कर्तव्य और अकर्तव्यका निश्चय कर लिया है, वे ज्ञानी पुरुष ही परमात्माके स्वरूपको ठीक-ठीक जान पाते हैं। भवसागरसे पार उतरनेकी इच्छा रखनेवाले ज्ञान-विज्ञानसम्पन्न महात्मा लोग अत्यन्त पवित्र और पुण्यात्माओंसे सेवित ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं, जहाँ जाकर किसीको शोक नहीं करना पड़ता, जहाँसे गिरनेका डर नहीं रहता तथा जहाँ किसी तरहकी पीड़ा या व्यथा नहीं होती। वे सात्त्विक महापुरुष स्वर्ग नहीं चाहते, यश और धनके लिये यज्ञ नहीं करते तथा सत्पुरुषोंके मार्गका अवलम्बन करते हैं। उनके द्वारा अहिंसाप्रधान यज्ञोंका अनुष्ठान होता है। वे वनस्पति, अन्न और फल-मूलको ही हविष्य मानते हैं। फलकी इच्छा रखनेवाले लोभी ऋत्विज् उनका यज्ञ नहीं कराते। ज्ञानी ब्राह्मण अपनेको ही यज्ञका उपकरण मानकर मानसिक यज्ञका अनुष्ठान करते हैं। जिन्होंने कर्मका त्याग कर दिया है, वे भी लोक-संग्रहके लिये मानसिक यज्ञमें प्रवृत्त रहते हैं। लोभी ऋत्विज् तो ऐसे लोगोंका ही यज्ञ कराते हैं, जो मोक्षकी इच्छा नहीं रखते। साधु पुरुष अपने धर्मका आचरण करते हुए ही प्रजाको स्वर्गकी प्राप्तिका उपाय बताते हैं। सत्पुरुषोंके बर्तावके अनुसार मेरी बुद्धि भी सर्वत्र समान भाव ही रखती है। सिद्धसंकल्प ज्ञानी महात्माओंकी इच्छा होते ही बैल स्वयं गाड़ीमें जुतकर उनकी सवारी ढोने लगते हैं तथा दूध देनेवाली गौएँ सब प्रकारके मनोरथ सिद्ध करती हुई दुग्ध प्रदान करती हैं। जिसके मनमें कोई कामना नहीं है, जो किसी फलकी इच्छासे कर्मोंका आरम्भ नहीं करता, नमस्कार और स्तुतिसे अलग रहता है, जिसके कर्मबन्धन क्षीण हो गये हैं, उसी पुरुषको देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं।

जाजलिने पूछा—वैश्यप्रवर! मैंने आत्मयाजी मुनियोंके मानसिक यज्ञका तत्त्व कभी नहीं सुना, सम्भवतः वह समझनेमें कठिन भी है; क्योंकि पूर्वकालीन महर्षियोंने उसके ऊपर विशेष विचार नहीं किया है तथा अर्वाचीन महर्षि भी उसका प्रचार नहीं करते हैं। ऐसी स्थितिमें दुर्बोध होनेके कारण अविवेकी मनुष्य तो मानसिक यज्ञका अनुष्ठान कर नहीं सकते, फिर उनकी क्या गति होगी? वे किस कर्मसे सुख पा सकते हैं? यही बताओ। मुझे तुम्हारी बातोंपर बड़ी श्रद्धा हो रही है।

तुलाधारने कहा—ब्रह्मन्! जिन दम्भी पुरुषोंके यज्ञ अश्रद्धा आदि दोषोंके कारण यज्ञ कहलाने योग्य नहीं रहते, उन्हें न तो मानसिक यज्ञ करनेका अधिकार है न क्रियारूप यज्ञ। श्रद्धालु पुरुष तो घी, दूध, दही और पूर्णाहुतिसे ही अपना यज्ञ पूर्ण करते हैं। श्रद्धालुओंमें जो असमर्थ हैं, उनका यज्ञ गाय अपनी पूँछके बालोंसे, सींगसे और पैरोंकी धूलिसे ही पूर्ण कर देती है *। जो इस प्रकार केवल घी, दूध आदिका उपयोग करके अहिंसा-प्रधान यज्ञका आरम्भ करता है, वह यजमान पत्नीके अभावमें मानसिक भावनाद्वारा ही उसकी कल्पना कर लेता है अर्थात् श्रद्धाको ही पत्नी मान लेता है और इष्टदेवताका यजन करके यज्ञस्वरूप भगवान् विष्णुको प्राप्त हो जाता है। विप्रवर! यह आत्मा ही प्रधान तीर्थ है। आप तीर्थसेवनके लिये देश-देशमें मत भटकिये। जो मेरे बताये हुए अहिंसाप्रधान धर्मोंका आचरण करता है, उसे उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है। ब्रह्मन्! मैंने धर्मका जो स्वरूप सामने रखा है, उसका पालन सज्जन करते हैं या दुर्जन? इस बातकी जाँच कर लीजिये, तब आपको इसकी यथार्थताका ज्ञान हो जायगा। देखिये, ये जो बहुत-से पक्षी आकाशमें उड़ रहे हैं, सब आपके मस्तकसे उत्पन्न हुए हैं। इस समय अपने हाथ-पैर समेटकर घोंसलोंमें प्रवेश करनेके लिये दौड़े जाते हैं। आपने इन्हें पुत्रकी भाँति पाला है और ये भी आपका पिताके समान आदर करते हैं। निःसंदेह आप इनके पिताके ही तुल्य हैं। अतः इन्हें बुलाइये (और इन्हींके मुखसे अहिंसा-प्रधान धर्मकी महिमा सुनिये)।

भीष्मजी कहते हैं—तुलाधारकी बात सुनकर जाजलिने उन पक्षियोंको बुलाया, तब वे आकर धर्मका उपदेश करनेके

* गायकी पूँछसे पितरोंका तर्पण और उसके सींगके जलसे अभिषेक होता है तथा उसके चरणोंकी धूलि पड़नेसे सब पापोंका नाश हो जाता है।

लिये मनुष्यकी भाँति स्पष्ट वाणीमें बोलने लगे—'ब्रह्मन् ! हिंसा और उसकी भावनासे रहित होकर जो कर्म किये जाते हैं, वे इस लोक और परलोकमें भी कल्याणकारी होते हैं। हिंसा श्रद्धाका नाश करती है और नष्ट हुई श्रद्धा हिंसक मनुष्यका सर्वनाश कर डालती है। जो लाभ-हानिमें समान भाव रखनेवाले, श्रद्धालु, संयमी और शान्तचित्त हैं तथा कर्तव्य समझकर यज्ञका अनुष्ठान करते हैं; उन्हींका यज्ञ सफल होता है। श्रद्धा सबकी रक्षा करती है, उसके प्रभावसे विशुद्ध जन्म प्राप्त होता है। ध्यान और जपसे भी श्रद्धाका महत्त्व अधिक है। यदि कर्ममें वाणीके दोषसे मन्त्रका ठीक उच्चारण न हो सके और मनकी चञ्चलताके कारण इष्टदेवताके ध्यानमें विक्षेप आ जाय तो भी यदि श्रद्धा हो तो वह उस दोषको दूर कर देती है। किंतु श्रद्धाके न रहनेपर केवल मन्त्रोच्चारण और ध्यानसे ही कर्मकी पूर्ति नहीं होती—श्रद्धाहीन कर्म व्यर्थ हो जाता है। इस विषयमें प्राचीन वृत्तान्तोंको जाननेवाले लोग ब्रह्माजीकी कही हुई गाथा सुनाया करते हैं, जो इस प्रकार है—पहले देवता लोग श्रद्धाहीन पवित्र और पवित्रताहीन श्रद्धालुके द्रव्यको एक-सा ही समझते थे। इसी प्रकार वे कृपण वेदवेत्ता और महादानी सूदखोरके अन्नमें भी कोई अन्तर नहीं मानते थे। एक बार यज्ञमें उनके इस बर्तावको देखकर प्रजापति (ब्रह्माजी)ने कहा—'देवताओ ! तुम्हारा यह विचार ठीक नहीं है। वास्तवमें उदारका अन्न उसकी श्रद्धाके कारण पवित्र होता है और कंजूसका अश्रद्धासे दूषित। (अतः श्रद्धाहीन पवित्रकी अपेक्षा पवित्रताहीन श्रद्धालुका ही अन्न ग्रहण करने योग्य है। इसी प्रकार वेदवेत्ता और सूदखोरमेंसे वेदवेत्ताका ही अन्न श्रद्धापूत एवं ग्राह्य है)। सारांश यह कि उदारका ही अन्न भोजन करना चाहिये, कृपण एवं सूदखोरका नहीं। जिसमें श्रद्धा नहीं वह देवयज्ञका अधिकारी नहीं है। धर्मज्ञोंने उसीके अन्नको अग्राह्य बतलाया है। अश्रद्धा सबसे बड़ा पाप है और श्रद्धा पापसे मुक्त करनेवाली है। जैसे साँप अपनी पुरानी केंचुलको छोड़ता है, उसी प्रकार श्रद्धालु पुरुष पापका परित्याग कर देता है। श्रद्धा होनेके साथ-ही-साथ पापोंसे निवृत्त हो जाना सब पवित्रताओंसे बढ़कर है। जिसके रागादि दोष दूर हो गये हैं, वह श्रद्धालु पुरुष ही वास्तवमें पवित्र है। उसे तप और आचार-व्यवहारसे क्या प्रयोजन है ? यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वैसा ही है।' धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले सत्पुरुषोंने इसी प्रकार धर्मकी व्याख्या की है। हमलोगोंने धर्मदर्शन नामक मुनिसे पूछकर उस धर्मका ज्ञान प्राप्त किया है। विप्रवर ! आप इसपर विश्वास कीजिये। इसके अनुकूल आचरण करनेसे आपको परमात्माकी प्राप्ति होगी। श्रद्धालु मनुष्य साक्षात् धर्मका स्वरूप है। जो श्रद्धापूर्वक अपने धर्मपर स्थित है, उसे ही सर्वश्रेष्ठ समझना चाहिये।

भीष्मजी कहते हैं—तदनन्तर, तुलाधार और जाजलि थोड़े ही समयमें दिव्यलोकको प्राप्त हुए और वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे। तुलाधारने सनातन धर्मका उपदेश किया था और उसे सुनकर जाजलि मुनिको बड़ी शान्ति मिली थी।



राजा विचख्नुके द्वारा अहिंसाधर्मकी प्रशंसा तथा चिरकारीका उपाख्यान

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! राजा विचख्नुने प्राणियोंपर दया करनेके विषयमें जो कुछ कहा है, वह प्राचीन इतिहास मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। एक समय किसी यज्ञशालामें राजाने देखा कि बैलकी गर्दन कटी हुई है और वहाँ बहुत-सी गौएँ आर्तनाद कर रही हैं। हिंसाकी यह क्रूर प्रवृत्ति देखकर राजासे नहीं रहा गया; वे अपना निश्चित सिद्धान्त इस प्रकार सुनाने लगे, ओह ! बेचारी गौएँ बड़ा कष्ट पा रही हैं, इनकी हत्या न करो। संसारकी समस्त गौओंका कल्याण हो। जो धर्मकी मर्यादासे भ्रष्ट हो चुके हैं, मूर्ख हैं, जिन्हें आत्मतत्त्वके विषयमें भारी संदेह है तथा जो छिपे हुए नास्तिक हैं, उन्हीं लोगोंने हिंसाका समर्थन किया है। मनुष्य अपनी ही इच्छासे यज्ञवेदीपर पशुओंका बलिदान करते हैं। धर्मात्मा मनुने तो सब कर्मोंमें अहिंसाकी ही प्रशंसा की है; इसलिये विज्ञ पुरुषको वैदिक प्रमाणसे धर्मके सूक्ष्म स्वरूपका निर्णय करके उसका पालन करना चाहिये। किसी भी प्राणीकी हिंसा न करना ही सब धर्मोंसे श्रेष्ठ माना गया है। मिताहारी होकर कठोर नियमोंका पालन करे, वेदकी फल-श्रुतियोंमें आसक्त न होकर उनका त्याग करे, आचारके नामपर अनाचारमें प्रवृत्त न हो। कृपण मनुष्य ही फलकी इच्छा करते हैं। यज्ञमें मद्य, मांस और मीन आदिका उपयोग धूर्तोंका चलाया हुआ है। वेदोंमें इसकी कहीं भी चर्चा नहीं है। लोग मान, मोह और लोभके वशीभूत होकर जिह्वाकी लोलुपताके कारण निषिद्ध वस्तुओंको खाते-पीते हैं। श्रोत्रिय ब्राह्मण तो सम्पूर्ण यज्ञोंमें भगवान् विष्णुका ही आविर्भाव मानते हैं और पुष्प तथा खीर

आदिसे उनकी पूजा करते हैं। वेदोंमें जो यज्ञसम्बन्धी वृक्ष बताये गये हैं, उन्हींका हवनमें उपयोग होता है। शुद्ध चित्तवाले सत्त्वगुणी पुरुष अपनी विशुद्ध भावनासे प्रोक्षण आदिके द्वारा संस्कार करके जिस हविष्यको तैयार करते हैं, वही देवताओंको अर्पण करनेके योग्य होता है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! आप मेरे परम गुरु हैं। कृपया बतलाइये, यदि कभी गुरुजनोंके आग्रहसे कोई कठोर कार्य करनेका अवसर उपस्थित हो जाय, उस समय उसे शीघ्र कर डालना चाहिये या विलम्ब करके उस कार्यकी परीक्षा करनी चाहिये ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है, जो आङ्गिरसकुलमें उत्पन्न हुए चिरकारीके वृत्तान्तसे सम्बन्ध रखता है। कहते हैं, महर्षि गौतमके एक चिरकारी नामवाला पुत्र था, जो बड़ा बुद्धिमान् था। वह चिरकालतक जागता और सोता था। किसी कार्यपर बहुत देरतक विचार करता था और चिरविलम्बके बाद ही काम पूरा करता था, इसलिये सब लोग उसे चिरकारी कहने लगे। जो दूरतककी बात नहीं सोच सकते, ऐसे मन्दबुद्धि मनुष्य उसे आलसी और नासमझ कहते थे। एक दिन गौतमने अपनी स्त्रीका व्यभिचार देखकर बड़ा कोप किया और अपने दूसरे पुत्रोंको आज्ञा देकर चिरकारीसे कहा—'बेटा ! तू अपनी इस पापिनी माताको मार डाल।' बिना विचारे ही यह आज्ञा देकर महर्षि गौतम वनमें चले गये और चिरकारी 'हाँ' करके भी अपने स्वभावके अनुसार बहुत देरतक उसपर विचार करता रहा। उसने सोचा—'क्या उपाय करूँ, जिससे पिताकी आज्ञाका पालन भी हो जाय और माताका वध भी न हो। धर्मके बहाने यह मुझपर बड़ा भारी संकट आ पड़ा। भला अन्य असाधु पुरुषोंकी भाँति मैं भी इसमें डूबनेका साहस कैसे करूँ ? पिताकी आज्ञाका पालन परम धर्म है, साथ ही माताकी रक्षा करना भी अपना प्रधान धर्म है। पुत्र तो पिता और माता दोनोंके अधीन होता है। अतः क्या करूँ, जिससे मेरा ही धर्म मुझे कष्टमें न डाले। पिता स्वयं अपने शील, सदाचार, गोत्र और कुलकी रक्षाके लिये स्त्रीके गर्भमें आकर पुत्ररूपमें उत्पन्न होता है। अतः मुझे माता और पिता दोनोंने ही जन्म दिया है; फिर मैं अपनेको दोनोंका ही पुत्र क्यों न समझूँ ? जातकर्म तथा उपकर्मके समय पिताने जो मुझे पत्थरके[1] समान सुदृढ़ और फरसेके[2] समान शत्रुसंहारक होनेका आशीर्वाद दिया तथा अपना आत्मा[3] कहकर अनुगृहीत किया है, यह उनके गौरवका निश्चय करनेमें पर्याप्त प्रमाण है। पिता भरण-पोषण और अध्यापन करनेके कारण पुत्रका प्रधान गुरु है। वह जो कुछ भी आज्ञा दे, उसे धर्म समझकर स्वीकार करना चाहिये। यही वेदकी भी निश्चित आज्ञा है। पुत्र पिताके स्नेहका पात्र है, किंतु पिता पुत्रका सर्वस्व है। एकमात्र पिता ही पुत्रको शरीर आदि सब कुछ देता है; इसलिये कोई सोच-विचार किये बिना ही पिताकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। जो पुत्र पिताकी आज्ञा मानता है, उसके समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं। गर्भाधान और सीमन्तोन्नयन संस्कारके द्वारा पिता ही पुत्रको उत्पन्न करता है। वही अन्न-वस्त्र देता, पढ़ाता-लिखाता और समस्त लोक-व्यवहारोंका ज्ञान कराता है। पिता ही धर्म है, पिता ही स्वर्ग है और पिता ही सबसे बड़ा तप है। पिताके प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हो जाते हैं। पिता जो कुछ भी कहता है, वह पुत्रके लिये आशीर्वाद है। यदि पिता प्रसन्न होकर पुत्रका अभिनन्दन करे तो वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। वृक्ष अपने फूल और फलोंको छोड़ देते हैं; किंतु पिता बड़े-से-बड़े संकटमें भी स्नेहके कारण पुत्रको नहीं छोड़ता। अतः पुत्रके लिये पिताका स्थान बहुत ऊँचा है। अस्तु, पिताके गौरवपर तो मैंने विचार कर लिया, अब माताके विषयमें सोचता हूँ।

जैसे अरणी अग्निकी उत्पत्तिका कारण है, उसी प्रकार मुझे जो यह पाञ्चभौतिक मनुष्य-शरीर मिला है, इसको जन्म देनेवाली मेरी माता ही है। संसारके समस्त दुःखी जीवोंको मातासे ही सान्त्वना मिलती है। जबतक माता जीवित रहती है, मनुष्य अपनेको सनाथ समझता है। उसके मरनेपर वह अनाथ-सा हो जाता है। पुत्र और पौत्रोंसे युक्त सौ वर्षका बुड्ढा ही क्यों न हो, यदि उसकी माता जीवित हो तो वह उसके पास दो वर्षके बालकका-सा ही आनन्द उठाता है। बेटा समर्थ हो या असमर्थ, हृष्ट-पुष्ट हो या दुर्बल, माता हमेशा उसकी रक्षामें रहती है। माताके समान विधिपूर्वक पालन-पोषण करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। जब मातासे बिछोह हो जाता है, उस समय मनुष्य अपनेको बुड्ढा समझने लगता है, बहुत दुःखी हो जाता है और ऐसा जान पड़ता है, मानो उसके लिये सारा संसार सूना हो गया। माताकी छत्र-छायामें जो सुख है, वह कहीं नहीं है। माताके तुल्य दूसरा सहारा नहीं है। पुत्रके लिये माँके समान रक्षक और प्रिय कोई नहीं है। वह गर्भमें धारण करनेके कारण 'धात्री' और जन्म देनेके कारण 'जननी' कहलाती है। दूध पिलाकर पुत्रके अङ्गोंको बढ़ाती है, इसलिये उसे 'अम्बा' कहते

१. अश्मा भव। २. परशुर्भव। ३. आत्मा वै पुत्रनामासि।

हैं तथा वीरप्रसविनी होनेके कारण वह 'वीरसू' और शुश्रूषा करनेसे 'शुश्रू' नाम धारण करती है। ऐसी माताका भला कौन पुत्र वध करेगा ? 'पुत्रका क्या गोत्र है और वह किसके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है' इस बातको माता ही जानती है। बच्चेका लालन-पालन करनेमें माताको विशेष सुख मिलता है, वह उसपर पितासे भी अधिक स्नेह रखती है।

पुरुष अपनी स्त्रीका भरण-पोषण करनेसे भर्ता और पालन करनेके कारण पति कहलाता है। इन दोनों गुणोंके न रहनेपर वह भर्ता या पति कहलाने योग्य नहीं होता (इसलिये मेरे पिता भी अपनी स्त्रीको मार डालनेकी आज्ञा देनेके कारण उसके भर्ता या पतिके कर्तव्यसे गिर रहे हैं)। वास्तवमें स्त्रीका कोई अपराध नहीं होता। व्यभिचारका महान् पाप पुरुष ही करता है, इसलिये सारा अपराध उसीका है। पति नारीका सबसे बड़ा देवता है। वह उसकी सेवासे कभी मुँह नहीं मोड़ती। इन्द्र पिताजीके समान रूप धारण कर मेरी माताके पास आया था। अतः उसने उसे अपना ही पति समझकर आत्मसमर्पण किया है। ऐसे अवसरोंपर स्त्रियोंका नहीं पुरुषोंका ही दोष मानना चाहिये; क्योंकि सारे अपराधकी जड़ वे ही होते हैं। स्त्रियाँ तो अबला होनेके कारण पुरुषोंके अधीन होती हैं। किसी भी अपराधमें उनका अपना हाथ नहीं होता, अतः उनके ऊपर दोषारोपण नहीं करना चाहिये। माताका गौरव पितासे भी बढ़कर है। एक तो वह नारी होनेके कारण ही अवध्य है, दूसरे मेरी पूजनीया माता है। नासमझ पशु भी स्त्री और माताको अवध्य मानते हैं; फिर मैं समझदार होकर भी उसका वध कैसे करूँ ?

विलम्ब करनेका स्वभाव होनेके कारण चिरकारी इस प्रकार बहुत देरतक सोचता-विचारता रहा, इतनेमें उसके पिता वनसे लौटे। उस समय उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था। वे शोकके आँसू बहाते हुए मन-ही-मन इस प्रकार कह रहे थे—'ओह ! त्रिभुवनका स्वामी इन्द्र ब्राह्मणका वेष बनाकर मेरे आश्रमपर आया था। मैंने मीठी बातोंसे उसे सान्त्वना दी और स्वागतके पश्चात् अर्घ्य-पाद्य आदि निवेदन करके उसका विधिवत् पूजन किया। इस प्रकार जब मैंने ही उसे अपने घरमें आश्रय दिया और उसने अपनी विषय-लोलुपताके कारण ऐसा निन्द्य कर्म कर डाला, तो इसमें बेचारी स्त्रीका क्या अपराध है ? हाय ! ईर्ष्याके कारण मेरा चित्त चञ्चल हो गया था, इसीलिये मैं पापके समुद्रमें डूब गया। वह पतिव्रता मेरे दुःखमें हाथ बँटानेवाली थी और भार्या होनेके कारण मुझसे भरण-पोषण पानेकी अधिकारिणी थी; किंतु मैंने उसकी हत्या करा डाली। अब कौन इस पापसे मेरा उद्धार करेगा ? मैंने उदारबुद्धि चिरकारीको उसकी माताका वध करनेकी आज्ञा दी थी। यदि उसने इस कार्यमें विलम्ब करके अपने नामको सार्थक किया हो तो वही मुझे स्त्री-हत्याके पातकसे बचा सकता है। बेटा चिरकारिक ! तेरा कल्याण हो, यदि आज तूने इस कार्यमें देरी की हो, तभी तेरा चिरकारिक नाम सफल हो सकता है। आज विलम्ब करके वास्तवमें चिरकारी बन और अपनी माता तथा मेरी तपस्याकी रक्षा कर, साथ ही मुझे और अपने-आपको भी पापसे बचा ले। तेरी माता चिरकालसे तेरे जन्मकी आशा लगाये बैठी थी। उसने बहुत दिनोंतक तुझे अपने गर्भमें धारण किया है; अतः आज उसकी रक्षा करके अपनी चिरकारिताको सफल बना।'

इस प्रकार दुःखी होकर सोचते-विचारते हुए महर्षि गौतम जब आश्रममें आये तो उन्हें चिरकारी अपने पास ही खड़ा दिखायी दिया। वह पिताको देखकर बहुत दुःखी हुआ और हथियार फेंककर उन्हें प्रसन्न करनेके लिये चरणोंपर गिर पड़ा। पुत्रको पैरोंपर गिरा देख और पत्नीको अत्यन्त



लज्जित जानकर महर्षिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने यह सोचकर कि चिरकारी भयके मारे शस्त्र-ग्रहणकी चपलताको छिपा रहा है, उसको उठाकर गलेसे लगा लिया और देरतक वे उसका मस्तक सूँघते रहे; फिर उसकी प्रशंसा करके आशीर्वाद और उपदेश देते हुए बोले—' वत्स ! तू सदा चिरजीवी रह, तेरा कल्याण हो; यों ही चिरकालतक सोच-

विचारकर काम किया कर। आज तेरी चिरकारिताके ही कारण मैं बहुत समयतक दुःख भोगनेसे बच गया। बेटा! अधिक कालतक सोच-समझके ही किसीसे मित्रता जोड़नी चाहिये और जिसे मित्र बना लिया, उसका सहसा परित्याग भी नहीं करना चाहिये। बहुत दिनोंतक सोच-समझ करके स्थापित की हुई मैत्री ही अधिक कालतक टिकाऊ होती है। राग, दर्प, अभिमान, द्रोह, पाप और किसीका अप्रिय करनेमें विलम्ब करके जो खूब सोच-विचार लेता है; वह प्रशंसनीय माना जाता है। बन्धु, सुहृद्, भृत्य और स्त्रियोंके छिपे हुए अपराधोंका निर्णय करनेमें भी जल्दीबाजी करना अच्छा नहीं है।'

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! इस प्रकार गौतम अपने पुत्रके विलम्बपूर्वक कार्य करनेके कारण बहुत प्रसन्न हुए थे। ऐसे ही प्रत्येक कार्यमें देरतक विचार करके किसी निश्चयपर पहुँचनेवालेको पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता। जो विद्वानों और शिष्ट पुरुषोंकी सेवामें अधिक समयतक रहकर सदा अपने मनको वशमें किये रहता है, वह चिरकालतक सम्मानका भागी होता है। धर्मोपदेश करनेवाले पुरुषसे यदि कोई प्रश्न करे तो उसे देरतक विचार करके ही उसका उत्तर देना चाहिये। महातपस्वी महर्षि गौतम अपने चिरकारी पुत्रके साथ बहुत वर्षोंतक उस आश्रममें रहे; उसके बाद देहत्यागके अनन्तर वे पुत्रसहित स्वर्ग सिधारे।



अहिंसापूर्वक राज्यशासन करनेके विषयमें द्युमत्सेन और सत्यवान्‌का संवाद

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! राजा किसीकी हिंसा किये बिना प्रजाकी रक्षा कैसे कर सकता है?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! इस विषयमें द्युमत्सेन और सत्यवान्‌के संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। सुना है, एक दिन सत्यवान्‌ने देखा कि पिताकी आज्ञासे बहुत-से अपराधी फाँसीपर चढ़ानेके लिये ले जाये जा रहे हैं; उस समय उन्होंने पिताके पास जाकर कहा—'पिताजी! यह सत्य है कि कभी ऊपरसे अधर्म-सा दिखायी देनेवाला कार्य धर्म हो जाता है और धर्म-सा प्रतीत होनेवाला कार्य भी अधर्मका रूप धारण कर लेता है। तथापि किसीका प्राण लेना तो किसी तरह धर्म नहीं हो सकता।'

द्युमत्सेन बोले—बेटा! यदि अपराधीका वध करना भी अधर्म हो तो धर्म क्या हो सकता है? अगर डाकू मारे न जायँ तो धर्म-अधर्म सब मिलकर एक हो जायँ। कलियुगमें तो लोग दूसरोंकी वस्तुको सीधे हड़प लेना चाहते हैं। 'यह वस्तु मेरी है, उसकी नहीं है' ऐसा कहने लगते हैं। ऐसी दशामें दण्डके बिना लोकयात्राका निर्वाह कैसे हो सकता है? यदि तुम दण्डके बिना भी निर्वाहका कोई उपाय जानते हो तो बताओ।

सत्यवान्‌ने कहा—पिताजी! क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन तीनों वर्णोंको ब्राह्मणोंके अधीन कर देना चाहिये। जब चारों वर्णोंके लोग धर्मके बन्धनमें बँधकर उसका पालन करने लगेंगे तो उनकी देखा-देखी दूसरे मनुष्य—सूत-मागध आदि भी धर्मका आचरण करेंगे। अगर कोई ब्राह्मणकी आज्ञा न माने तो ब्राह्मणको राजाके पास जाकर कहना चाहिये कि 'अमुक मनुष्य मेरी बात नहीं सुनता।' फिर राजा उस व्यक्तिको दण्ड दे। दण्ड-विधान ऐसा होना चाहिये, जिसमें प्राण जानेका भय न हो। नीति-शास्त्रकी आलोचना और अपराधीके कार्यपर भलीभाँति विचार किये बिना दण्ड देना अच्छा नहीं है। राजा जब डाकुओंका वध करता है तो उनके साथ बहुत-से निरपराध मनुष्य—डाकुओंके माता-पिता, स्त्री-पुत्र आदि भी कालके ग्रास बन जाते हैं; अतः राजाको बहुत सोच-विचारकर दण्डका निश्चय करना चाहिये। दुष्ट पुरुष भी कभी साधु-सङ्गसे सुधरकर सुशील बन जाता है तथा बहुत-से दुष्ट पुरुषोंकी भी संतानें अच्छी निकल आती हैं; इसलिये दुष्टोंको प्राण-दण्ड देकर उनका मूलोच्छेद नहीं करना चाहिये। उनकी जड़ उखाड़ना सनातनधर्म नहीं है। हलका-सा शारीरिक दण्ड देना उचित है, जिससे उनके पापोंका प्रायश्चित्त हो जाय। अथवा सर्वस्व छीन लेनेका भय दिखाया जाय, कैद कर लिया जाय या नाक-कान आदि काटकर उन्हें कुरूप बना दिया जाय। प्राण-दण्ड देकर उनके कुटुम्बियोंको क्लेश पहुँचाना तो कदापि उचित नहीं है। इसी तरह यदि वे पुरोहित ब्राह्मणकी शरण जा चुके हों, तो भी राजा उन्हें दण्ड न दे। प्रजापतिकी आज्ञा है कि यदि दुष्ट पुरुष ब्राह्मणकी शरण जाकर यह प्रतिज्ञा करे कि 'आजसे हम कोई पाप या अपराध नहीं करेंगे' तो उन्हें छोड़ देना चाहिये। किंतु बारंबार अपराध करनेपर उसे पहलेकी भाँति दण्ड दिये बिना छोड़ना ठीक नहीं है। माथ मुड़ाकर दण्ड और मृगचर्म धारण करनेवाले संन्यासी भी यदि पाप करें तो उन्हें भी दण्ड देना चाहिये।

द्युमत्सेनने कहा—बेटा ! जिस तरहसे हो सके प्रजाको धर्मकी मर्यादाके भीतर रखना चाहिये। यही राजाका धर्म है। लुटेरोंका वध न किया जाय तो वे सारी प्रजाको कष्ट पहुँचाते हैं। पहलेके लोगोंको राहपर लाना सुगम था; क्योंकि उनका स्वभाव कोमल होता था, सत्यमें उनकी विशेष रुचि थी और द्रोह तथा क्रोधकी मात्रा उनमें बहुत कम थी। उस समय अपराधीको धिक्कार देना ही भारी दण्ड समझा जाता था। फिर धीरे-धीरे लोगोंमें अपराधकी प्रवृत्ति बढ़ने लगी, इससे वाग्दण्डका प्रचार हुआ—अपराधीको कटुवचन सुनाकर छोड़ दिया जाने लगा। उसके बाद जुरमाना वसूल करनेका दण्ड जारी किया गया और अब तो वधका दण्ड भी प्रचलित है। फिर भी लोगोंको मर्यादाके भीतर रखना कठिन हो गया है। लुटेरे देवता, पितर, गन्धर्व और मनुष्य—किसीके नहीं होते। वे तो मरघटमें जाकर मुर्दोंके भी जेवर उतार लाते हैं। भला उनको कौन राहपर ला सकता है ? उनके ऊपर विश्वास करनेवालोंको तो मूर्ख ही समझना चाहिये।

सत्यवान्‌ने कहा—पिताजी ! यदि आप लुटेरोंका वध न करके उन्हें सत्पुरुष बनानेमें असमर्थ हैं तो और किसी उत्तम उपायसे उनकी दस्यु-वृत्तिका अन्त कीजिये। कितने ही राजा लोक-कल्याणके लिये कठिन तपस्या करते हैं; उन्हें देखकर उस राज्यमें रहनेवाले दुष्ट लज्जित होते हैं और वे अपने आचरणको सुधारकर राजाके ही समान सदाचारी बन जाते हैं। बहुत-सी प्रजा केवल भय दिखानेसे सन्मार्गपर आ जाती है; अतः श्रेष्ठ भूपाल अपने सद्व्यवहारसे ही प्रजापर अधिक कालतक शासन करते हैं। वे अपराधियोंके प्राण नहीं लेते। यदि राजा उत्तम आचरण करता है तो दूसरे लोग भी उसका अनुकरण करते हैं। बड़ोंके आचरणोंका अनुवर्तन करना मनुष्योंका स्वभाव होता है। जो राजा स्वयं विषय भोगनेके लिये इन्द्रियोंका गुलाम हो रहा है, अपने मनको काबूमें नहीं रख पाता, वह यदि दूसरोंको सदाचारका उपदेश देने लगे तो लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं। अगर कोई मनुष्य दम्भ या मोहके कारण राजाके साथ कोई अनुचित व्यवहार करे तो प्रत्येक उपायसे उसका दमन करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह अपनी बुरी आदत छोड़ देता है। जो पापकी प्रवृत्तिको रोकना चाहता हो, उस राजाको पहले अपना मन वशमें करना चाहिये। इसके बाद यदि अपने सगे बन्धु-बान्धव भी अपराध करें तो उन्हें भी भारी दण्ड देना चाहिये। जहाँ पाप करनेवाले नीचको महान् संकटका सामना नहीं करना पड़ता, वहाँ पाप बढ़ता है और धर्मका ह्रास होता है।

पिताजी ! एक दयालु ब्राह्मणने मुझे यह उपदेश देते हुए कहा था कि 'तात सत्यवान् ! मेरे पूर्वजोंने कृपा करके मुझे ऐसी शिक्षा दी थी; इसलिये राजाको सत्ययुगमें जब कि धर्म अपने चारों चरणोंसे मौजूद रहता है, पूर्वोक्त अहिंसामय दण्डका ही विधान करना चाहिये। त्रेतायुग आनेपर धर्मका प्रचार एक चौथाई कम हो जाता है, (उस समयकी स्थितिके अनुसार वाग्दण्डके द्वारा प्रजाका शासन करना उचित है) द्वापरमें धर्मके दो ही पैर रह जाते हैं, (उस समयके लिये अर्थदण्ड उपयुक्त है) किंतु कलियुगमें तो धर्मका चतुर्थ भाग ही शेष रह जाता है; अतः उस समय मनुष्योंकी आयु, शक्ति और कालका विचार करके ही दण्डका विधान करना उचित है। स्वायम्भुव मनुने प्राणियोंपर अनुग्रह करके बताया है कि मनुष्यको अहिंसामय धर्मका ही पालन करना चाहिये; जिससे वह सत्यस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले धर्मके महान् फलसे वञ्चित न रहने पावे।'



कपिलका स्यूमरश्मिसे निवृत्तिप्रधान धर्मकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! एक ही उद्देश्य लेकर चलनेवाले गार्हस्थ्यधर्म और योगधर्ममें कौन श्रेष्ठ है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! दोनों धर्म महान् हैं, दोनोंका ही पालन कठिन है, दोनों उत्तम फल देनेवाले हैं और दोनोंका सत्पुरुषोंने आचरण किया है। मैं इन दोनों धर्मोंकी प्रामाणिकता बतला रहा हूँ, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो; इससे तुम्हारे मनका संदेह दूर हो जायगा। इस विषयमें जानकार लोग स्यूमरश्मि और कपिलके संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जो इस प्रकार है —

कपिलजी बोले—स्यूमरश्मे ! यम-नियमोंका पालन करनेवाले यति ज्ञान-मार्गका आश्रय लेकर परब्रह्मको प्राप्त होते हैं। सम्पूर्ण लोकोंमें कहीं भी उनकी गतिका अवरोध नहीं होता। उन्हें शीत-उष्ण आदि द्वन्द्व व्यथा नहीं पहुँचाते। वे कभी किसीको माथा नहीं टेकते और न आशीर्वाद ही देते हैं। यही नहीं, वे कामनाओंके बन्धनमें भी नहीं बँधते। सब प्रकारके पापोंसे मुक्त, पवित्र तथा शुद्धचित्त होकर विचरते रहते हैं। उनकी बुद्धि एक निश्चित सिद्धान्तपर स्थिर होती है। वे सब कुछ त्यागकर मोक्षको अपनाते हैं, ब्रह्ममें ही निवास करते हैं

और स्वयं भी ब्रह्मस्वरूप होते हैं। शोक उनका स्पर्श नहीं कर सकता और रजोगुणका उनमें नाम भी नहीं रहता। उन्हें सनातन लोककी प्राप्ति होती है। उनकी इस उत्तम गतिको प्राप्त कर लेनेपर गार्हस्थ्य-धर्मके पालनकी क्या आवश्यकता रह जाती है ?

स्यूमरश्मिने कहा—ज्ञान प्राप्त करके परब्रह्ममें स्थित हो जाना ही यदि पुरुषार्थकी चरम सीमा है, यदि वही उत्तम गति है, तब तो गृहस्थ-धर्मका महत्त्व और भी बढ़ जाता है; क्योंकि गृहस्थोंका सहारा लिये बिना कोई भी आश्रम न तो चल सकता है और न ज्ञानकी निष्ठा ही प्रदान कर सकता है। जैसे समस्त प्राणी माताकी गोदका सहारा पाकर ही जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ-आश्रमके अवलम्बसे ही दूसरे आश्रम टिक सकते हैं। गृहस्थ ही यज्ञ और तप करता है तथा मनुष्य अपने कल्याणके लिये जो कुछ भी चेष्टा करता है, जिस किसी भी धर्मका आश्रय लेता है, उस सबकी जड़ गार्हस्थ्य ही है। समस्त प्राणी संतानकी उत्पत्ति करके सुखी होते हैं; किंतु संतानका मुँह देखनेकी सुविधा गार्हस्थ्य-आश्रमके सिवा और कहाँ हो सकती है ? वैदिक धर्मकी सनातन मर्यादा तीनों लोकोंका हित करनेवाली है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णोंमें गर्भाधानके पहले वेद-मन्त्रोंका उपयोग होता है। इसके बाद प्रत्येक संस्कारमें तथा अन्यान्य कार्योंमें भी उनकी आवश्यकता पड़ती है। वे ही वेद पुकार-पुकारकर कहते हैं कि मनुष्य पितरों, देवताओं और ऋषियोंके ऋणी हैं। ऐसी दशामें गृहस्थाश्रममें रहकर उन ऋणोंको चुकाये बिना किसीका भी मोक्ष कैसे हो सकता है ? वेदोंकी अवहेलनासे नहीं, उनके अनुसार कर्म करनेसे ही मनुष्यको परब्रह्मकी प्राप्ति होती है।

कपिलजीने कहा—बुद्धिमान् पुरुषको दर्श, पौर्णमास, अग्निहोत्र तथा चातुर्मास्य आदि वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये; क्योंकि उनमें सनातन धर्मकी स्थिति है। किंतु जो संन्यास-धर्म स्वीकार करके कर्मानुष्ठानसे निवृत्त हो गये हैं तथा धीर, पवित्र एवं ब्रह्मस्वरूपमें स्थित हैं; वे ब्रह्मज्ञानसे ही देवताओंको तृप्त करते हैं। जो सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा हैं, सबको आत्मभावसे देखते हैं तथा जिनका कोई विशेष पद (स्थान) नहीं है; उस ज्ञानी पुरुषकी गतिका पता लगानेमें देवता भी मोहित हो जाते हैं। कल्याण चाहनेवालेको इन्द्रियोंका संयम करना आवश्यक है। जो जूआ नहीं खेलता, दूसरेका धन नहीं लेता, नीच पुरुषका बनाया हुआ अन्न नहीं ग्रहण करता तथा क्रोधमें आकर किसीको मार नहीं बैठता, उसके हाथ-पैर सुरक्षित रहते हैं। किसीको गाली न दे, व्यर्थ न बोले, दूसरोंकी चुगली या निन्दा न करे, थोड़ा और सत्य वचन बोले तथा सदा सावधान रहे—ऐसा करनेसे वाक्-इन्द्रियकी रक्षा होती है। उपवास न करे, किंतु बहुत अधिक भी न खाय, सदा भोजनके लिये लालायित न रहे, सज्जनोंका सङ्ग करे और जीवन-निर्वाहके लिये जितना आवश्यक हो उतना ही अन्न पेटमें डाले—इससे उदरका संयम होता है। परायी स्त्रीसे संसर्ग न करे, अपनी स्त्रीके साथ भी ऋतुकालके अतिरिक्त समयमें समागम न करे, एकपत्नीव्रत धारण करे; इससे उपस्थेन्द्रियकी रक्षा होती है। जिसके उपस्थ, उदर, हाथ-पैर और वाणीके साथ ही सम्पूर्ण इन्द्रियोंके द्वार संयमद्वारा सुरक्षित होते हैं; वही वास्तवमें द्विज है। जिसकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं, उसके समस्त कर्म निष्फल होते हैं। ऐसे मनुष्यको तप और यज्ञसे क्या लाभ हो सकता है ? जिसके पास लँगोटी या धोतीके सिवा और कोई वस्त्र न हो, जो बिना बिछौनेके सोता हो, बाँहोंकी ही तकिया लगाता हो और सदा शान्त रहता हो, उसे ही देवता लोग ब्राह्मण मानते हैं। जो दूसरोंके दिये हुए सुख-दुःखका स्मरण नहीं रखता, प्रकृति और उसके कार्योंको जानता है तथा जिसे सम्पूर्ण भूतोंकी गतिका ज्ञान है, उसे ही देवता लोग ब्राह्मण समझते हैं। जो समस्त प्राणियोंसे निर्भय रहता है, जिससे दूसरे प्राणी भी भय नहीं मानते तथा जो सम्पूर्ण जीवोंका आत्मा है, वही देवताओंके मतमें ब्राह्मण कहलाता है। जिसका आश्रय लेकर किया हुआ तप संसारके मूलभूत अज्ञानका नाश कर डालता है, उस साधु जनोचित आचारकी बहुत बड़ी महिमा है। वह अनादि कालसे चला आता है, मुमुक्षुओंका वही सनातन धर्म है तथा उसके फलमें कभी बाधा नहीं आती। वह सम्पूर्ण धर्मोंमें ओत-प्रोत है, आपत्ति तथा प्रमादसे रहित है। जो लोग उस आचारका पालन करनेमें असमर्थ होते हैं, वे ही परमेश्वरकी प्राप्ति करानेवाले तथा अवश्य फल देनेवाले कल्याणकारी कर्मोंको फलहीन बताया करते हैं। गुणोंके कार्यभूत जो यज्ञ-यागादि हैं, उनके स्वरूप और विधि-विधानको समझना कठिन है, समझनेपर भी उनका अनुष्ठान करना मुश्किल है और यदि अनुष्ठान भी किया जाय तो उनसे नाशवान् फलकी ही प्राप्ति होती है—इस बातको तो तुम भी जानते ही हो।

स्यूमरश्मिने कहा—ब्रह्मन् ! मेरा नाम स्यूमरश्मि है और मैं ज्ञान-प्राप्तिके लिये यहाँ आया हुआ हूँ। मैंने जो कुछ कहा है, वह अपने पक्षका समर्थन करनेके लिये नहीं; अपितु कल्याणकी इच्छा रखकर सरलभावसे ही अपनी बातें सेवामें निवेदन की हैं। इस समय मैं आपकी शरणमें आया हूँ, आप

मुझे शिष्य समझकर ही उपदेश कीजिये। चारों वर्णों और आश्रमोंके लोग एकमात्र सुखके ही उद्देश्यसे अपने-अपने कर्मोंमें प्रवृत्त हो रहे हैं; अतः आप यह बतानेकी कृपा करें कि अक्षय सुख क्या है ?

कपिलजीने कहा—किसी भी वर्ण या आश्रममें प्रवृत्ति क्यों न हो, जिस कर्मका आचरण शास्त्रके अनुसार (कामना और अहंकारका त्याग करके) किया जाता है, वह पुरुषार्थका साधक होता है। जो जिस वर्ण या आश्रमके कर्तव्यका पालन करता है, उसको वहाँ ही अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य विवेकका अनुसरण करता है, उसके समस्त दोषोंका ज्ञानसे परिमार्जन हो जाता है। शास्त्रीय मार्गसे हट जानेपर किसी भी वृत्तिका आश्रय क्यों न लिया जाय, वह जन्म-मरणके चक्करमें डालकर प्रजाका सर्वनाश ही करती है।



ब्रह्मज्ञानमें सभी आश्रमोंका अधिकार बताते हुए ब्रह्मतत्त्वका निरूपण

कपिलजीने कहा—सब लोकोंके लिये वेद ही प्रमाण हैं, वेदोंका उल्लङ्घन कोई नहीं कर सकता। ब्रह्मके दो रूप समझने चाहिये—शब्दब्रह्म और परब्रह्म। जो पुरुष शब्दब्रह्ममें पारंगत है, वह परब्रह्मको भी प्राप्त कर लेता है। जो निष्कामभावसे अग्निहोत्रादि कर्मकाण्डमें लगे रहनेवाले पुरुष कभी पापकर्ममें प्रवृत्त नहीं होते, उनके मानसिक संकल्प सिद्ध हो जाते हैं तथा उन्हें विशुद्ध ज्ञानस्वरूप परब्रह्मका निश्चय हो जाता है। वे किसीपर क्रोध नहीं करते और न किसीपर दोषारोपण ही करते हैं। उनमें अहंकार और मत्सरादि दुर्भावनाओंका सर्वथा अभाव रहता है, ज्ञानके साधन श्रवण, मनन और निदिध्यासनमें उनकी निष्ठा होती है, उनके जन्म-कर्म और ज्ञान तीनों ही शुद्ध होते हैं तथा वे समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहते हैं। ऐसे अनेकों राजा और ब्राह्मण हो गये हैं जो अपने कर्मोंका त्याग न करके गृहस्थाश्रममें ही रहे और विधिवत् साधन करते रहे। वे सब प्राणियोंपर समदृष्टि रखते थे; सरल, संतुष्ट, ज्ञाननिष्ठ, धर्मके फलका प्रत्यक्ष अनुभव करनेवाले और शुद्धचित्त होते थे तथा शब्दब्रह्म और परब्रह्म दोनोंहीमें श्रद्धा रखते थे। वे व्रतोंका यथावत् पालन करके पहले चित्त शुद्ध करते थे और कठिनतामें तथा दुर्गम स्थानोंमें पड़ जानेपर भी धर्मानुष्ठानमें तत्पर रहते थे। इसीमें उन्हें सुख भी जान पड़ता था। इस तरह सत्यधर्मका आश्रय लेनेके कारण वे अत्यन्त तेजस्वी माने जाते थे। वे भी विषयोंका प्रकाश करनेवाली बुद्धिका भरोसा न रखकर शास्त्रका ही अनुसरण करते थे। वे बड़े पवित्र, नियमनिष्ठ और यशस्वी होते थे। कामना और कर्मबन्धनसे मुक्त होकर भी वे नित्यप्रति यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन करते तथा काम-क्रोधाग्निको छोड़कर बड़े कठोर कर्मोंका आचरण करते थे। अपने उदार कर्मोंके कारण उनकी सर्वत्र प्रशंसा होती थी। स्वभावसे भी वे बड़े पवित्रचित्त, सरल, शान्तिपरायण और स्वधर्मनिष्ठ होते थे। इसलिये उनके यज्ञ, वेदाध्ययन, शास्त्रानुसारी कर्म, समय-समयपर किया हुआ शास्त्राध्ययन और संकल्प—ये सभी अनन्त फलवाले होते थे—यह बात हमने सदासे सुन रखी है। ऐसे धीर, वीर और कठोर कर्मोंका आचरण करनेवाले स्वकर्मनिष्ठ पुरुषोंका तप अविद्याकी निवृत्तिके लिये भयंकर शस्त्र बन जाता है।

ब्रह्मनिष्ठ पुरुष एक ही आश्रमधर्मको चार प्रकारसे विभक्त हुआ मानते हैं। संतजन उसका विधिवत् पालन करके परमगति प्राप्त कर लेते हैं। कोई लोग संन्यासी होकर, कोई वनमें रहते हुए वानप्रस्थरूपसे, कोई गृहस्थ रहकर और कोई ब्रह्मचर्य-आश्रमका सेवन करते हुए ही उस आश्रमधर्मका पालन करके परमपद प्राप्त करते हैं। इस समय वे ही द्विजगण आकाशमें नक्षत्ररूपसे दिखायी देते हैं। नक्षत्रोंके समान ही अनेकों तारागण भी हैं। इन सबने संतोषके द्वारा ही यह अनन्तपद प्राप्त किया है—ऐसा वैदिक सिद्धान्त है। जो इस प्रकार ब्रह्मचर्यका पालन करता है, गुरुसेवामें तत्पर रहता है, दृढ़ निश्चयवाला है और समाहितचित्त है, वही 'ब्राह्मण' है। उसके सिवा और कौन 'ब्राह्मण' हो सकता है ? चारों वर्ण और चारों आश्रमोंके उन तृष्णाहीन, विशुद्धबुद्धि और मोक्षपरायण पुरुषोंके लिये जाग्रदादि तीनों अवस्थाओंके साक्षी तुरीयका अनुभव करानेवाला वह शम-दमादिरूप धर्म समान ही है। शुद्धचित्त और संयतात्मा ब्राह्मण उस सनातन परब्रह्मको प्राप्त करते हैं। जो संतोषी और त्यागी है, वही ज्ञानका अधिकारी है। यह मोक्षदायिनी विद्या यतियोंका तो सनातन धर्म है। यह यतिधर्म अन्य आश्रमोंके धर्मोंसे मिला हुआ हो अथवा स्वतन्त्र, इसे जो कोई भी अपनी शक्तिके अनुसार पालन करता है, उसका अवश्य कल्याण हो जाता है। केवल शक्तिहीन (साधनमें तत्परता न रखनेवाले) पुरुषोंको ही इस धर्मका पालन करनेकी हिम्मत नहीं होती, पवित्रात्मा तो इसके द्वारा परमात्मपद पानेकी इच्छा करके संसारसे मुक्त हो जाता है।

स्यूमरश्मिने पूछा—भगवन् ! आप तो ज्ञाननिष्ठ हैं

और गृहस्थलोग कर्मनिष्ठ होते हैं। किंतु आप इस समय निष्ठामें सभी आश्रमोंकी एकताका प्रतिपादन कर रहे हैं। इस प्रकार ज्ञान और कर्मकी एकता और पृथक्ता दोनोंहीका भ्रम होनेसे इनका ठीक-ठीक अन्तर समझमें नहीं आता। अतः उसे आप यथार्थ रीतिसे समझानेकी कृपा करें।

कपिलजीने कहा—कर्म मनकी शुद्धि करते हैं और ज्ञान परमगतिरूप है। जब कर्मोंद्वारा चित्तके दोष जल जाते हैं तो मनुष्य रसस्वरूप ज्ञानमें स्थित होता है। सब प्राणियोंपर दया, क्षमा, शान्ति, अहिंसा, सत्य, सरलता, अद्रोह, निरभिमानता, लज्जा, तितिक्षा और शम—ये ब्रह्मप्राप्तिके उपाय हैं। इनके द्वारा पुरुष परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। विद्वान् पुरुषको इस प्रकार कर्मफलका निश्चय समझना चाहिये। जिस स्थितिको संतुष्ट, शान्त, विशुद्धचित्त और ज्ञाननिष्ठ पुरुष प्राप्त करते हैं उसीका नाम 'परमगति' है। जो पुरुष सम्पूर्ण वेद और उनके प्रतिपाद्य परब्रह्मको ठीक-ठीक जानता है, उसीको 'वेदज्ञ' कहते हैं और सब तो केवल धौंकनीके समान हैं। वेदज्ञ पुरुष सभी विषयोंको जानते हैं; क्योंकि वेदमें उन सभीका समावेश है। जो कुछ है और जो नहीं है, उन सभी विषयोंकी स्थिति वेदमें है। सम्पूर्ण शास्त्रोंकी एकमात्र निष्ठा यही है कि यह दृश्य जगत् प्रतीतिकालमें तो है और बाध हो जानेपर नहीं है। ज्ञानीकी दृष्टिमें सदसत्स्वरूप ब्रह्म ही इस जगत्का आदि, अन्त और मध्य है। सब कुछ त्याग देनेपर ही उसकी प्राप्ति होती है। सम्पूर्ण वेदोंमें उसीका प्रतिपादन हुआ है। वह अपने आनन्दस्वरूपसे सबमें अनुगत तथा अपवर्ग (मोक्ष) में प्रतिष्ठित है। अतः वह ब्रह्म, ऋत, सत्य, ज्ञात, ज्ञातव्य, सबका आत्मा, चराचरमूर्ति, विशुद्धसुखस्वरूप, मङ्गलमय, सर्वोत्कृष्ट, अव्यक्तका भी कारण और अविनाशी है। उस आकाशके समान असङ्ग, अविनाशी और एकरस तत्त्वका ज्ञाननेत्रोंवाले पुरुष तेज, क्षमा और शान्तिरूप शुभ साधनोंके द्वारा साक्षात्कार करते हैं। जो वास्तवमें ब्रह्मवेत्तासे अभिन्न है, उस परब्रह्मको हम नमस्कार करते हैं।

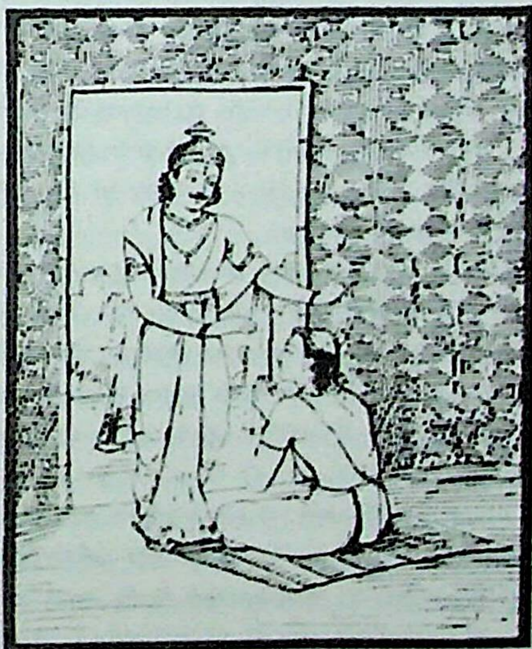


धर्मकी प्रधानता बतलानेके लिये एक ब्राह्मण और कुण्डधार मेघकी कथा

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! वेदोंने धर्म, अर्थ और काम तीनोंहीकी प्रशंसा की है। अतः आप मुझे यह बताइये कि इनमें किसको प्राप्त करना सबसे अच्छा है।

भीष्मजी बोले—राजन् ! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है। एक बार कुण्डधार नामके मेघने प्रसन्न होकर अपने एक भक्तपर कृपा की थी। वह प्रसंग मैं तुम्हें सुनाता हूँ। किसी समय एक निर्धन ब्राह्मणने सकामभावसे धर्म करना चाहा। तब उसने यज्ञानुष्ठानके लिये धन पानेकी इच्छासे बड़ा कठोर तप किया। इसी निश्चयसे उसने भक्तिपूर्वक देवताओंकी बड़ी पूजा की, तो भी उसे धन न मिला। एक दिन उसने अपने समीप देवताओंके सेवक कुण्डधार मेघको खड़ा देखा। उसे देखते ही ब्राह्मणके मनमें उसके प्रति भक्तिभाव उत्पन्न हुआ और वह सोचने लगा 'यह देवता मुझे अवश्य बहुत-सा धन देगा।' यह सोचकर उसने धूप, दीप, चन्दन, पुष्प और तरह-तरहके नैवेद्योंद्वारा उसकी पूजा की। इससे थोड़ी ही देरमें प्रसन्न होकर मेघने कहा, 'सत्पुरुषोंने ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी और व्रतभंग करनेवालोंके लिये तो प्रायश्चित्त बताये हैं, किंतु कृतघ्नके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है।'

इसके बाद वह ब्राह्मण कुशाओंकी शय्यापर सो गया। वह शम, दम, तप और भक्ति-भावसे सम्पन्न तथा शुद्ध हृदयवाला था। उसे रातहीमें कुण्डधारके प्रति अपनी



भक्तिका परिचय मिल गया। उसने स्वप्नमें बहुत-से देवता देखे। उनमें मणिभद्र नामका एक देवश्रेष्ठ अन्य देवताओंके सामने तरह-तरहके फलयाचकोंको प्रस्तुत कर रहा था। देवतालोग उन फलयाचकोंके शुभ कर्मोंके बदले उन्हें राज्य और धन आदि दे रहे थे। इतनेहीमें कुण्डधार देवताओंके आगे आकर पृथ्वीपर लेट गया। तब उससे मणिभद्रने पूछा, 'कुण्डधार ! तुम क्या चाहते हो ?'

कुण्डधार बोला—यह ब्राह्मण मेरा भक्त है। यदि देवतालोग मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं इसके ऊपर कुछ कृपा कराना चाहता हूँ। जिससे इसे कुछ सुख मिल सके।

तब देवताओंके ही कहनेसे मणिभद्रने उससे कहा, 'उठो ! उठो ! लो, तुम्हारा काम बन गया। अब प्रसन्न हो जाओ। देखो, यदि इस ब्राह्मणको धनकी इच्छा हो तो इसे मनमाना धन दे दो।'

किंतु कुण्डधारने यह सोचकर कि मानवदेह चञ्चल और नाशवान् है उससे कहा, 'इस ब्राह्मणकी बुद्धि तपमें लग जाय। मैं अपने भक्तको रत्नोंसे भरी हुई पृथ्वी या कोई विशाल रत्नराशि नहीं देना चाहता, मेरी तो यही इच्छा है कि यह धार्मिक हो जाय।'

मणिभद्रने कहा, 'राज्य और तरह-तरहके दूसरे सुख भी सर्वदा धर्मके ही फल हैं। इसलिये इसे फल ही भोगने दो न ? उनमें किसी प्रकारका शारीरिक क्लेश भी नहीं है।'

भीष्मजी कहते हैं—किंतु इसपर भी कुण्डधारने तरह-तरहसे धर्मके लिये ही आग्रह किया। इससे देवतालोग बड़े प्रसन्न हुए और मणिभद्रने कहा, 'तुमपर और इस ब्राह्मणपर सभी देवता प्रसन्न हैं। अतः यह धर्मात्मा होगा और इसकी बुद्धि धर्ममें ही रहेगी।' इस प्रकार सफलमनोरथ होकर वह मेघ बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने वह वर पाया जो दूसरोंके लिये बहुत दुर्लभ था।

इतनेहीमें ब्राह्मणको अपने पास बहुत-से महीन और बहुमूल्य वस्त्र दिखायी दिये। उन्हें देखकर उसे वैराग्य ही हुआ। वह कहने लगा, 'मेरी तपस्याका उद्देश्य इस कुण्डधारने ही नहीं समझा तो दूसरा कौन समझ सकेगा ? अच्छा, अब मैं वनको ही चलता हूँ, धर्ममय जीवन बिताना ही सबसे अच्छा है।'

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! तब वह ब्राह्मण वनमें रहकर बड़ा घोर तप करने लगा। वह देवता और अतिथियोंका सत्कार करके बचे हुए फल-मूलादिसे निर्वाह करता था। फिर फल-मूलादिको भी छोड़कर पत्ते खाने लगा। तत्पश्चात् उसे भी छोड़कर पानी पीकर रहने लगा। इसके बाद कई वर्षतक वायुभक्षण करके ही रहा। इस तरह धर्मपर श्रद्धा रखनेसे और कठोर तपस्या करते रहनेसे उसकी दृष्टि दिव्य हो गयी। उसे ऐसा मालूम होने लगा कि यदि मैं प्रसन्न होकर किसीको धन या राज्य देना चाहूँ तो वह अवश्य राजा हो जायगा, मेरा वचन मिथ्या नहीं होगा। इतनेहीमें उसके तपके प्रभावसे तथा भक्तिभावसे प्रेरित होकर कुण्डधार प्रकट हुआ। ब्राह्मणने उसकी विधिवत् पूजा की। तब कुण्डधारने कहा, 'विप्रवर ! तुम्हें बड़ी अच्छी दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई है। उसके द्वारा तुम राजाओंकी गति और भिन्न-भिन्न लोकोंको स्वयं देख लो।' ब्राह्मणने अपने दिव्य नेत्रोंसे देखा कि हजारों राजा नरकमें पड़े हुए हैं। कुण्डधार बोला, 'तुमने बड़े भक्तिभावसे मेरी पूजा की थी। इसपर भी यदि तुम धन पाकर दुःख ही भोगते रहते तो बताओ, मेरा क्या उपकार होता और क्या तुम्हारे ऊपर मेरा अनुग्रह माना जाता। देखो, देखो, एक बार तुम फिर इनकी दशापर दृष्टि डालो। पता नहीं, मनुष्य भोगोंकी लालसा क्यों करता है ? इससे उसके लिये स्वर्गका द्वार तो प्रायः बंद ही हो जाता है।' इस बार ब्राह्मणने देखा कि उन भोगी पुरुषोंको काम, क्रोध, लोभ, भय, मद, निद्रा, तन्द्रा और आलस्यादि घेरे हुए खड़े हैं। कुण्डधारने कहा, 'देखो, सब प्राणी इन्हीं दोषोंसे घिरे हुए हैं। किंतु देवताओंकी कृपासे आज तुम तो अपने तपके प्रभावसे दूसरोंको भी राज्य और धन देनेमें समर्थ हो गये हो।'

राजन् ! तब वह ब्राह्मण सिर झुकाकर कुण्डधारके आगे लेट गया और कहने लगा, 'आपने मुझपर बड़ी कृपा की है। आपके स्नेहको न जानकर मैंने काम और लोभके कारण आपके प्रति जो दुर्भावना की है, उसके लिये आप मुझे क्षमा करें।' कुण्डधारने 'मैं तो पहले ही क्षमा कर चुका हूँ' ऐसा कहकर ब्राह्मणको गले लगाया और फिर वहीं अन्तर्धान हो गया। इस प्रकार कुण्डधारकी कृपासे तपस्याद्वारा सिद्धि पाकर वह ब्राह्मण सब लोकोंमें विचरने लगा। आकाशमार्गसे चलना, संकल्पद्वारा अभीष्ट वस्तुको प्राप्त कर लेना तथा धर्म, शक्ति और योगके द्वारा जो परमगति मिलती है वे सभी सिद्धियाँ उसे प्राप्त हो गयीं। देवता, ब्राह्मण, संतजन, यक्ष, मनुष्य और चारण—ये सब भी धार्मिकोंका ही आदर करते हैं, धनाढ्य या कामी पुरुषोंका नहीं। राजन् ! देवताओंका तुम्हारे ऊपर बड़ा अनुग्रह है, इसीसे तुम्हारी बुद्धि धर्ममें लगी हुई है। धनमें तो सुखका लेशमात्र ही रहता है, परम सुख तो धर्ममें ही है।



पापी, धर्मात्मा, विरक्त और मुक्त होनेके कारण तथा मोक्षके साधनोंका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! मनुष्य पापी किस प्रकार हो जाता है ? धर्ममें किस प्रकार प्रवृत्त होता है ? उसे वैराग्य कैसे होता है ? और वह मोक्ष किस उपायसे प्राप्त करता है ?

भीष्मजी बोले—राजन् ! तुम्हें सब धर्मोंका पता है, तो भी धर्ममर्यादाकी स्थितिके लिये मुझसे प्रश्न कर रहे हो। अच्छा, तुम आरम्भसे ही मोक्ष, वैराग्य, पाप और धर्मके विषयमें सुनो। मनुष्य विषयोंको ठीक-ठीक जाननेके लिये उनमें इच्छापूर्वक प्रवृत्त होता है। इससे जिस विषयमें उसका राग होता है, उसे पानेके लिये वह बहुत-से काम करता है। वह अपने प्रिय रूप और गन्धादिका बार-बार सेवन करना चाहता है। इससे उसका उनमें राग हो जाता है और फिर उसपर क्रमशः द्वेष, लोभ और मोहका भी अधिकार हो जाता है। इस प्रकार लोभ, मोह एवं राग-द्वेषसे ग्रस्त होकर उसकी बुद्धि धर्ममें प्रवृत्त नहीं होती। वह केवल कपटसे ही धर्मका आचरण करता है और कपटसे ही धन कमाना चाहता है। इस प्रकार बुद्धिकी कपटमें प्रवृत्ति हो जानेसे उसकी पापमें ही रुचि हो जाती है। फिर तो यदि उसे कोई सगे-सम्बन्धी पाप करनेसे रोकते हैं तो वह शास्त्रके प्रमाण देकर उन्हें युक्तियुक्त उत्तर देने लगता है। राग और मोहके कारण उसका तीन प्रकारका अधर्म बढ़ता है;—वह पापका चिन्तन करता है, पाप ही बोलता है और पाप ही करता है। साधुजनोंको तो उसके दोष दिखायी देते हैं, परंतु जो वैसे ही आचरणवाले होते हैं, वे उसके मित्र बन जाते हैं। उसे तो इस लोकमें ही सुख नहीं मिलता, परलोककी तो बात ही क्या है ?

इस प्रकार तो पुरुष पापी बनता है, अब धर्मात्माकी बात सुनो। धर्मात्मा पुरुष सर्वदा कल्याणकारी धर्मोंका आचरण करता है, इसलिये उसका कल्याण ही होता है। वह कल्याणप्रद धर्मके द्वारा उत्तम गति प्राप्त करता है। जो पुरुष सुख-दुःखकी पहचानमें कुशल है, अपनी बुद्धिसे पहले ही इन राग-द्वेषादि दोषोंको देख लेता है तथा सत्पुरुषोंकी सेवा करता है, उसकी बुद्धिका साधुओंकी सेवा और सत्कर्मोंके अभ्याससे विकास होता है तथा उसे धर्ममें ही आनन्द आता है और धर्म ही उसके जीवनका आधार बन जाता है। उसका मन केवल धर्मसे प्राप्त हुए धनमें ही जाता है। वह जहाँ गुण देखता है, उसीके मूलको सींचता है। इस प्रकारके आचरणसे पुरुष धर्मात्मा बनता है और उसे धर्मनिष्ठ सुहृद् प्राप्त होते हैं। ऐसे सच्चे मित्र और पवित्र धन पाकर वह इस लोकमें सुखी रहता है और परलोकमें भी सुख पाता है। ऐसा पुरुष शब्दादि पाँचों विषयोंपर प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है। किंतु वह धर्मका ऐसा फल पाकर भी हर्षसे फूल नहीं जाता। वह इससे तृप्त न होनेके कारण विवेकदृष्टिसे वैराग्यको ही बढ़ाता है। ज्ञाननेत्र खुल जानेके कारण जब उसे काम, रस और गन्धमें सुख नहीं जान पड़ता तथा उसका मन शब्द, स्पर्श और रूपमें भी नहीं फँसता तो वह सब कामनाओंसे मुक्त हो जाता है; और धर्मको नहीं छोड़ता। सम्पूर्ण लोकोंको नाशवान् समझकर वह धर्मके फलभूत स्वर्गादिकी इच्छाको भी त्याग देनेका प्रयत्न करता है। तदनन्तर उपायपूर्वक मोक्षके लिये यत्नशील हो जाता है। इस प्रकार धीरे-धीरे मनुष्यमें वैराग्यकी प्रवृत्ति होती है, इससे वह पाप करना छोड़कर धर्मात्मा बन जाता है और फिर मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है। भरतश्रेष्ठ ! तुमने मुझसे पाप, धर्म, वैराग्य और मोक्षके विषयमें प्रश्न किया था, सो मैंने तुम्हें उनका स्वरूप समझा दिया। अतः तुम सब प्रकारकी परिस्थितियोंमें धर्मका ही आचरण करना; क्योंकि जो लोग धर्ममें डटे रहते हैं उन्हें सदा रहनेवाली परम सिद्धि प्राप्त होती है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! आपने उपायसे मोक्षकी प्राप्ति बतायी, बिना उपायके नहीं, सो अब मैं आपसे विधिवत् उसका उपाय ही सुनना चाहता हूँ।

भीष्मजी बोले—महाप्राज्ञ ! तुम तरह-तरहके उपायोंसे सर्वदा सब प्रकारके हितकर साधनोंकी खोज किया करते हो, इसलिये तुममें यह सूक्ष्म वस्तुओंकी परीक्षा करनेका गुण होना उचित ही है। देखो, जो मार्ग पूर्वसमुद्रकी ओर जाता है, वह पश्चिमकी ओर नहीं जा सकता। इसी प्रकार मोक्षका भी एक ही मार्ग है; सुनो, मैं उसका विस्तारसे वर्णन करता हूँ। मुमुक्षु पुरुषको चाहिये कि क्षमासे क्रोधका, संकल्प-त्यागसे कामनाओंका, भगवद्ध्यानादि सात्त्विक गुणोंके सेवनसे निद्राका, अप्रमादसे भयका, आत्माके चिन्तनसे श्वास-प्रश्वासका तथा धैर्यसे इच्छा, द्वेष और कामका नाश करे। भ्रम, मोह और संशयरूप आवरणका शास्त्रके अभ्याससे तथा लक्ष्यकी विस्मृति और चित्तका अन्य विषयमें चला जाना—इन दोनों दोषोंका ज्ञानाभ्याससे दमन करे। वात-पित्तादिजनित उपद्रव और रोगोंका हितकारी, सुपाच्य और परिमित आहारसे, लोभ और मोहका संतोषसे तथा विषयोंका तत्त्वदृष्टिसे निराकरण करे। अधर्मको दयासे

धर्मको पालन करके, आशाको भविष्य-चिन्तनका त्याग करके और अर्थको आसक्तिके त्यागसे जीते। वस्तुओंकी अनित्यताका चिन्तन करके स्नेहका, योगाभ्यासके द्वारा क्षुधाका, करुणाके द्वारा अभिमानका और संतोषसे तृष्णाका त्याग करे। तन्द्राको खड़ा होकर, तर्क-वितर्कको निश्चयद्वारा, बहुभाषणको मौनद्वारा और भयको शूरवीरताके द्वारा काबूमें करे। वाणी आदि बाह्य इन्द्रियोंका मनमें, मनका बुद्धिमें, बुद्धिका आत्मामें, उसका शुद्ध चेतन परमात्मामें निरोध करे। इस प्रकार मनुष्यको शान्त और पवित्रकर्मा होकर इस परमात्मपदका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। इसके लिये वह काम, क्रोध, लोभ, भय और निद्रा—इन पाँच दोषोंको छोड़कर वाणीका संयम रखते हुए योगाभ्यास करे। ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, नम्रता, क्षमा, शौच, आहारशुद्धि और इन्द्रियसंयम—इन सबके द्वारा मनुष्यका तेज बढ़ता है और उसका पाप नष्ट हो जाता है। उसके संकल्प सिद्ध होने लगते हैं और हृदयमें विज्ञानका आविर्भाव हो जाता है। इस प्रकार जब वह निष्पाप और तेजस्वी हो जाय तो मिताहार करते हुए इन्द्रियोंको जीतकर तथा काम-क्रोधको काबूमें रखकर अपने शुद्धस्वरूपको परब्रह्मपदमें स्थित करनेका संकल्प करे। अमूढता, अनासक्ति, काम-क्रोधको त्यागना, दीनता, गर्व और उद्वेगसे दूर रहना तथा निष्कामभावसे मन, वाणी और शरीरका संयम करना—यही मोक्षका शुद्ध और निर्मल मार्ग है।



भूत और इन्द्रियादिके विषयमें नारद और देवल मुनिका तथा तृष्णाक्षयके विषयमें माण्डव्य और जनकका संवाद

भीष्मजीने कहा—राजन्! इस विषयमें देवर्षि नारद और देवलका संवादरूप यह प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है। एक दिन बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ वयोवृद्ध देवल ऋषिको बैठे देखकर नारदजीने उनसे प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयके विषयमें प्रश्न किया। उन्होंने पूछा, 'ब्रह्मन्! यह स्थावरजङ्गम जगत् कहाँसे उत्पन्न हुआ है और प्रलयकालमें यह किसमें लीन हो जाता है?'

देवलने कहा—देवर्षे! सृष्टिके समय परमात्मा जिनसे समस्त प्राणियोंकी रचना करते हैं उन्हें भौतिक विज्ञानवादी विद्वान् 'पञ्चभूत' कहते हैं। परमात्माकी प्रेरणासे काल इन्हींके द्वारा प्राणियोंको रचता है। जो इनसे भिन्न किसी और तत्त्वको भूतोंका उपादान कारण बताता है, वह निःसंदेह झूठी बात कहता है। नारद! ये पाँच भूत और छठा काल नित्य अविचल और अविनाशी हैं और तेजोमय महत्तत्त्वकी स्वाभाविकी कलाएँ हैं। किसी भी युक्ति या प्रमाणसे इन छःके अतिरिक्त कोई और तत्त्व नहीं बताया जा सकता। इसलिये जो कोई दूसरी बात कहता है उसका कथन अवश्य निर्मूल है। तुम यही निश्चय करो कि ये छः ही जगत्-रूपमें स्थित हैं। पाँच महाभूत, काल तथा भाव और अभाव अर्थात् पूर्वजन्मके संस्कार और अज्ञान—ये आठ तत्त्व नित्य हैं तथा ये ही सब प्राणियोंकी उत्पत्ति और लयके कारण हैं। प्राणियोंका शरीर पृथ्वीका विकार है, श्रोत्रेन्द्रिय आकाशसे उत्पन्न हुई है तथा नेत्रेन्द्रिय सूर्यसे, प्राण वायुसे और रक्त जलसे उत्पन्न हुए हैं। विद्वानोंका मत है कि नेत्र, नासिका, कर्ण, त्वचा और जिह्वा—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ही विषयोंको ग्रहण करनेवाली हैं। इन पाँचोंके देखना, सूँघना, सुनना, स्पर्श करना और रस ग्रहण करना—ये पाँच गुण हैं तथा रूप, गन्ध, शब्द, स्पर्श और रस—ये पाँच विषय हैं; किंतु इन पाँचों विषयोंका ज्ञान इन्द्रियोंको नहीं होता, इन्हें जानता तो क्षेत्रज्ञ (जीव) ही है। शरीर और इन्द्रियोंकी अपेक्षा चित्त श्रेष्ठ है, चित्तसे मन श्रेष्ठ है, मनकी अपेक्षा बुद्धि श्रेष्ठ है और बुद्धिसे भी क्षेत्रज्ञ श्रेष्ठ है। जीव पहले तो अपनी इन्द्रियोंद्वारा उनके अलग-अलग विषयोंको प्रकाशित करता है, फिर मनसे विचार करके बुद्धिद्वारा उनका निश्चय करता है। अध्यात्मचिन्तन करनेवाले पुरुष पाँच इन्द्रिय तथा चित्त, मन और बुद्धि—इन आठोंको ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं।

हस्त, पाद, पायु, उपस्थ और मुख—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इनका भी विवरण सुनो—मुख-इन्द्रियका उपयोग बोलने और भोजन करनेमें है, पाद चलनेकी और हस्त काम करनेकी इन्द्रियाँ हैं तथा पायु और उपस्थ त्याग करनेवाली इन्द्रियाँ हैं। इनमें पायु-इन्द्रिय मल त्याग करती है और उपस्थ मैथुनके समय वीर्य त्यागता है। इनके सिवा छठी इन्द्रिय बल अर्थात् प्राण है। इस प्रकार मैंने अपनी वाणीसे तुम्हें समस्त इन्द्रियाँ और उनके ज्ञान, कर्म एवं गुण सुना दिये। जब अपने-अपने कामसे थककर इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं तब मनुष्य सो जाता है। इन्द्रियोंके निवृत्त हो जानेपर भी

यदि मन निवृत्त न होकर विषयोंका ही सेवन करता रहे तो उसे स्वप्नावस्था समझना चाहिये। जाग्रत्-अवस्थामें जो सात्त्विक, राजस और तामस भाव प्रसिद्ध हैं, उन्हींका भोगप्रद कर्मकी सहायतासे स्वप्नमें अनुभव होता है।

पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राण, मन, चित्त और बुद्धि—ये चौदह इन्द्रियाँ और सत्त्वादि तीन गुण—ये सत्रह तत्त्व माने गये हैं। इनसे पृथक् अठारहवाँ जीव है, जो शरीरमें रहता है और नित्य है। जब जीवका वियोग हो जाता है तो शरीर और उसमें रहनेवाले ये तत्त्व भी नहीं रहते। जिस प्रकार घरमें रहनेवाला पुरुष एक घरके गिरनेपर दूसरेमें और दूसरेके गिरनेपर तीसरेमें चला जाता है, उसी प्रकार यह जीव कालकी प्रेरणासे अविद्या, काम और कर्मके द्वारा एक देहसे दूसरे देहमें जाता रहता है। अज्ञानी जन देहसे अपना सम्बन्ध मानते हैं, इसलिये देहका वियोग होनेपर उन्हींको दुःख होता है, किंतु बोधवानोंका निश्चय आत्माकी असङ्गताके विषयमें निश्चल होता है, इसलिये उन्हें इससे कुछ भी खेद नहीं होता। यह जीव वास्तवमें कभी किसीका कुछ भी नहीं है। यह तो नित्य और अकेला ही है; सुख-दुःखका कारण तो देह ही है। जीव न कभी उत्पन्न होता है और न मरता ही है। जब कभी इसे तत्त्वज्ञान होता है तो यह शरीरके सम्बन्धसे छूटकर परमगति प्राप्त कर लेता है। देह पुण्य-पापमय है। कर्मोंके क्षयके साथ इसका भी क्षय होता रहता है। इस प्रकार शरीरका क्षय हो जानेपर यह जीव ब्रह्मत्वको प्राप्त हो जाता है। पुण्य-पापके क्षयके लिये आत्मज्ञान ही साधन है। उनका क्षय होकर जब जीवको ब्रह्मभावकी प्राप्ति हो जाती है तभी विद्वान्लोग उसकी परमगति मानते हैं।

राजा युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! हम बड़े ही क्रूर और पापी हैं, हाय ! हमने केवल अर्थके लिये ही अपने भाई, पिता, पौत्र, सजातीय, सुहृद् और पुत्रोंका संहार कर डाला। हमारी यह अर्थतृष्णा किस प्रकार दूर होगी ?

भीष्मजी बोले—राजन् ! एक बार माण्डव्यजीने राजा जनकसे ऐसा ही प्रश्न किया था। उस समय विदेहराजने जो बात कही थी वह पुरातन इतिहास मैं तुम्हें सुनाता हूँ। राजा जनकने कहा था—'मेरी कोई भी वस्तु नहीं है, इसलिये मैं मौजसे जीवन व्यतीत करता हूँ। यदि मिथिलापुरीमें आग लगी हुई है तो भी मेरा कुछ नहीं जलता। जो बोधवान् होते हैं उन्हें बड़े समृद्धिसम्पन्न विषय भी दुःखरूप ही जान पड़ते हैं, किंतु अज्ञानियोंको तो तुच्छ विषय भी मोहमें डाल देते हैं। लोकमें जो कामजनित सुख है और परलोकका जो दिव्य सुख है, वे दोनों तृष्णाक्षयसे होनेवाले सुखके सोलहवें अंशके समान भी नहीं हैं। जिस प्रकार कालक्रमसे बछड़ेकी आयु बढ़नेके साथ सींग भी बढ़ते जाते हैं, उसी प्रकार धनके साथ तृष्णाकी भी वृद्धि हो जाती है। यदि थोड़ी-सी वस्तु भी अपनी मान ली जाती है तो नष्ट होनेपर वही दुःखका कारण बन जाती है; इसलिये कामनाओंकी वृद्धि नहीं करनी चाहिये। कामनाओंकी आसक्ति दुःखरूप ही है। यदि किसी प्रकार धन मिल जाय तो उसे धर्ममें ही लगा दे, भोगोंकी सामग्री इकट्ठी न करे। विद्वान् अन्य सब प्राणियोंको भी अपने ही समान देखता है। इसीसे वह कृतकृत्य और शुद्धचित्त होकर सब वस्तुओंको त्याग देता है। वह सत्य-असत्य, हर्ष-शोक, प्रिय-अप्रिय, भय-अभय आदि सभी द्वन्द्वोंको त्यागकर अत्यन्त शान्त और निर्विकार हो जाता है। तृष्णाका त्याग दूषित अन्तःकरणवालोंके लिये अत्यन्त कठिन है, यह मनुष्यके बूढ़े हो जानेपर भी शिथिल नहीं होती तथा उसके जीवनपर्यन्त रहनेवाले रोगके समान है। अतः इसका त्याग करनेमें ही सुख है।'

राजाके ये वचन सुनकर माण्डव्य मुनि बड़े प्रसन्न हुए और उनके कथनकी प्रशंसा करके वे मोक्षमार्गमें तत्पर हो गये।



संन्यासीके स्वभाव, आचरण और धर्मोंका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! प्रकृतिसे परे जो परब्रह्म अविनाशी परमधाम है उसे कैसे स्वभाव, कैसे आचरण, कैसी विद्या और कैसे कामोंमें तत्पर रहनेवाला पुरुष प्राप्त कर सकता है ?

भीष्मजी बोले—राजन् ! जो पुरुष मोक्ष-धर्मोंमें तत्पर, स्वल्पाहार करनेवाला और जितेन्द्रिय होता है, वह उस प्रकृतिसे अतीत अविनाशी पदको प्राप्त कर लेता है। मुनिको चाहिये कि अपने घरसे निकलकर फिर लाभ और हानिमें समान भाव रखे, यदि अपने अभीष्ट पदार्थ मिलने लगें तो उनकी भी उपेक्षा करता रहे। अपने नेत्र, वाणी या मनसे किसी वस्तुको दूषित न करे अर्थात् मन, वचन और व्यवहार-द्वारा किसीके प्रति दुर्भाव प्रकट न करे तथा किसीके भी सामने या पीछे उसके दोष न कहे। किसी प्राणीको कष्ट न पहुँचावे, सूर्यके समान सदा विचरता रहे तथा कभी किसीके

साथ वैर न ठाने। अपनी निन्दाको सहन करे, किसीके प्रति अभिमान न करे, कोई क्रोध करे तो उससे प्रिय वाणी बोले और मार-पीट करे तो स्वयं उसके हितकी ही बातें कहे। गाँवमें रहकर लोगोंके साथ अनुकूल-प्रतिकूल व्यवहार न करे तथा भिक्षावृत्तिको छोड़कर किसीके घर पहलेसे निमन्त्रित होकर न जाय। मूर्ख लोग धूल-मिट्टी डालकर तंग करें तो भी शान्त रहे, अपने मुँहसे कोई कठोर शब्द न निकाले। सर्वदा मृदुताका बर्ताव करे, किसीके प्रति कठोरता न करे, निश्चिन्त रहे और बहुत बढ़-बढ़कर बातें न बनावे। जब पाकशालासे धूआँ निकलना बंद हो जाय, मूसल अलग रख दिया जाय, चूल्हेकी आग ठंडी पड़ जाय, सब लोग भोजन कर चुकें और परोसना भी बंद हो जाय, उस समय यतिको भिक्षा माँगना चाहिये। उसे केवल अपनी प्राणयात्राके निर्वाहमात्रका प्रयत्न करना चाहिये, भर पेट भोजन मिल जाय—इसकी भी परवा न करे। यदि न मिले तो दुःखी न हो और मिल जाय तो प्रसन्नता न माने। इन तुच्छ लौकिक लाभोंकी इच्छा न करे। जहाँ विशेष सत्कार होता हो वहाँ भिक्षा न करे। इसके सिवा सत्कारवश कोई और भी लाभ होता हो तो उससे बचता ही रहे। भिक्षामें मिले हुए अन्नके दोष या गुण कहकर उसकी निन्दा या स्तुति न करे। सोने और बैठनेके लिये सदा एकान्तका ही आदर करे। सूनी कुटी, वृक्षके नीचे, वनमें अथवा गुफाके भीतर अज्ञातचर्यासे रहकर आत्मानुसंधानमें ही निमग्न रहे। अनुकूलता और प्रतिकूलतामें अविचल अविनाशी समस्वरूप ब्रह्मभावसे स्थित रहे तथा अपने कर्मोंसे पुण्य-पापरूप कर्मफलकी भावना न करे। सर्वदा तृप्त और पूर्णतया संतुष्ट रहे, मुख और इन्द्रियोंको प्रसन्न रखे, भयको पास न फटकने दे, प्रणव आदिके जपमें तत्पर रहे तथा वैराग्यका आश्रय लेकर मौन रहे। देह और इन्द्रिय आदि भौतिक पदार्थोंमें अनात्मदृष्टिका अभ्यास रखे, जीवोंके जन्म-मरणपर विचार करता रहे, किसी वस्तुकी इच्छा न करे, सबपर समान भाव रखे, भात आदि पकाये हुए तथा कन्द-मूल आदि बिना पकाये भोजनसे निर्वाह करे तथा आत्मलाभके लिये प्रशान्तचित्त, मिताहारी और जितेन्द्रिय रहे। तपस्वीको वाणी, मन, क्रोध, हिंसा, उदर और उपस्थ—इनके वेगोंको वशमें रखना चाहिये। जहाँ निन्दा या प्रशंसा हो वहाँ दोनोंमें समान भाव रखकर उदासीन रहना चाहिये। संन्यासाश्रममें इस प्रकारका आचरण अत्यन्त पवित्र माना गया है।

संन्यासीको उदारचित्त, सब प्रकार जितेन्द्रिय, सब ओरसे असङ्ग, सौम्य, अनिकेत और समाहितचित्त होना चाहिये। उसे अपने पूर्वाश्रमके परिचित देशमें नहीं रहना चाहिये, गृहस्थ और वानप्रस्थोंसे संसर्ग नहीं रखना चाहिये, अपनी रुचिको बिना प्रकट किये जो वस्तु मिले उसीको पानेकी इच्छा रखनी चाहिये तथा अभीष्ट वस्तुके मिलनेपर प्रसन्न नहीं होना चाहिये। यह संन्यासाश्रम ज्ञानियोंके लिये तो मोक्षस्वरूप है, किंतु अज्ञानियोंके लिये श्रमरूप ही है। हारीत मुनिने इस धर्मको विद्वानोंके लिये मोक्षका विमान ही बताया है। जो पुरुष सबको अभय-दान करके घरसे निकल जाता है, उसे तेजोमय लोकोंकी प्राप्ति होती है तथा वह अजर-अमर हो जाता है।



ब्राह्मी स्थितिका वर्णन करते हुए भीष्मजीका वृत्रासुरकी कथा सुनाना

राजा युधिष्ठिरने कहा—दादाजी! सभी लोग मुझे बड़ा भाग्यवान् कहते हैं, किंतु मेरी दृष्टिमें तो मुझसे बढ़कर दुःखी कोई व्यक्ति नहीं है। वास्तवमें तो शरीर धारण करना ही महान् दुःख है। न जाने यह दुःखनाशक संन्यास हम कब ग्रहण करेंगे? हम न जाने कब यह राज-पाट छोड़कर वनमें जा सकेंगे?

भीष्मजी बोले—राजन्! अनन्त कोई वस्तु नहीं है, सभीकी एक सीमा है। आवागमन भी प्रसिद्ध ही है; इस लोकमें अविचल वस्तु कोई नहीं है। तुम जैसा मानते हो वह भी ठीक नहीं है; क्योंकि ऐश्वर्यसे भी आसक्ति होनेपर ही दोष होता है। तुमलोग तो धर्मात्मा हो, इसलिये समय आनेपर (शमादिके) अभ्यासद्वारा मोक्ष प्राप्त कर लोगे। जीव पुण्य-पापके कारण ही सुख-दुःखपर अधिकार नहीं कर पाता तथा उन सुख-दुःखसे उत्पन्न हुए तमोगुणद्वारा आच्छन्न हो जाता है। किंतु जिस समय यह ज्ञानद्वारा अज्ञानजनित अन्धकारको नष्ट कर देता है, उसी समय इसे सनातन परब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है। राजन्! इस विषयमें एक प्राचीन कथा है। उसमें यह बताया गया है कि ऐश्वर्यसे भ्रष्ट होकर वृत्रासुरने किस प्रकारका आचरण किया था। उसे तुम एकाग्र होकर सुनो।

वृत्रासुरको देवताओंने परास्त कर दिया, उसका राज्य छिन गया तथा कोई भी उसका सहायक नहीं रहा; तो भी केवल इस राग-द्वेषशून्य बुद्धिका आश्रय लेकर ही वह अपने शत्रुओंके बीचमें निश्चिन्त होकर रहता था। इस ऐश्वर्यहीन

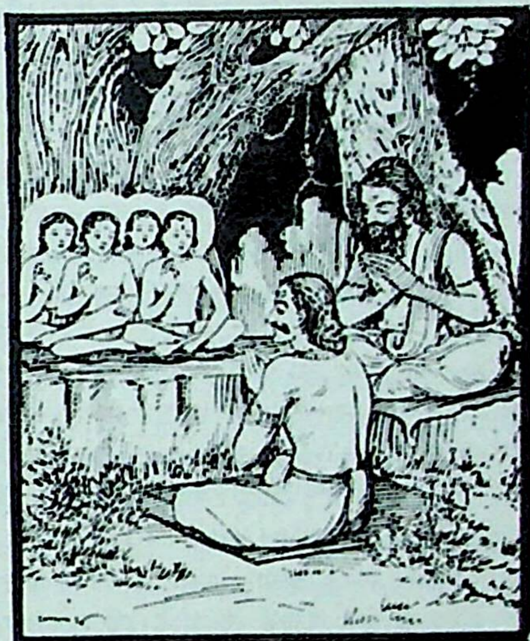
अवस्थामें उससे शुक्राचार्यजीने पूछा, 'दानवराज ! तुम्हें देवताओंने परास्त कर दिया है, फिर भी आजकल तुम्हारे चित्तमें किसी प्रकारकी व्यथा नहीं जान पड़ती। इसका क्या कारण है ?'

वृत्रासुरने कहा—ब्रह्मन् ! मैंने सत्य और तपके प्रभावसे जीवोंके जन्म-मरणका रहस्य ठीक-ठीक जान लिया है, उसमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं रह गया है। इसलिये अब उनके विषयमें मुझे हर्ष या शोक नहीं होता। जीव कालके अधीन होकर अपने पापोंके कारण बलात् नरकमें गिरते हैं और कोई अपने पुण्योंके प्रभावसे दिव्यलोकोंमें जाकर आनन्द मनाते हैं। इस प्रकार अपने कुछ पुण्य-पापोंका फल भोगकर बचे हुए कर्मोंके भोगके लिये बार-बार इस लोकमें जन्मते-मरते रहते हैं। कामनाके बन्धनमें बँधे हुए अनेकों जीव नरकमें पड़कर फिर विवश होकर पशु-पक्षियोंकी सहस्रों योनियोंमें जन्म लेते हैं। इस प्रकार मैंने सभी जीवोंको जन्म-मरणके चक्रमें पड़े देखा है। शास्त्रका भी ऐसा ही सिद्धान्त है कि जैसा कर्म होता है, वैसा ही फल मिलता है। इस तरह सारा संसार भगवान् कालके नियमानुसार चल रहा है।

उसे ऐसी-ऐसी बातें कहते देखकर भगवान् शुक्राचार्यने कहा, 'भैया ! तुम तो बड़े बुद्धिमान् हो, फिर ऐसी असुरभावका नाश करनेवाली व्यर्थ बातें क्यों बना रहे हो ?'

वृत्रासुर बोला—ब्रह्मन् ! आपको तथा दूसरे महामति महानुभावोंको यह तो मालूम ही है कि पहले विजयके लोभसे मैंने बड़ा तप किया था। उस समय अपने तेजके कारण मैं तीनों लोकोंमें सबसे बढ़-चढ़ गया था और मैंने दूसरे प्राणियोंसे अनेकों भोगसामग्रियाँ छीन ली थीं। मैं सर्वदा निर्भय होकर आकाशमें विचरता था तथा संसारका कोई प्राणी मुझे जीत नहीं सकता था। इस प्रकार तपके प्रभावसे मैंने जो ऐश्वर्य पाया था वह मेरे कर्मोंसे ही नष्ट भी हो गया; किंतु मैं धैर्य धारण करके उसके लिये चिन्ता नहीं करता हूँ। जिस समय मैं देवराज इन्द्रके साथ युद्ध कर रहा था, उस समय उनकी सहायताके लिये आये हुए भगवान् हरिके मैंने दर्शन किये थे। वे प्रभु, नारायण, वैकुण्ठ, पुरुष, अनन्त, शुक्र, विष्णु, सनातन, मुंजकेश, हरिश्मश्रु और सम्पूर्ण भूतोंके पितामह हैं। भगवन् ! अवश्य ही अब भी मेरी तपस्याका कोई अंश बचा हुआ है जो मैं आपसे कर्मफलके विषयमें प्रश्न करनेकी इच्छा रखता हूँ। कृपया यह बताइये कि किस उत्तम फलको पाकर जीव अजर-अमर हो जाता है तथा किस कर्म या ज्ञानके द्वारा उस फलकी प्राप्ति हो सकती है ?

भगवान् शुक्राचार्य और वृत्रासुरमें ये बातें चल ही रही थीं कि वहाँ महामुनि सनत्कुमार उनके संशयको दूर करनेके लिये पधारे। शुक्राचार्य और दानवराज वृत्रने उनका पूजन किया और वे एक बहुमूल्य आसनपर विराजमान हुए। जब



वे आरामसे बैठ गये तो महर्षि शुक्रने कहा, 'भगवन् ! इन दानवराजको भगवान् विष्णुका श्रेष्ठ माहात्म्य सुनानेकी कृपा कीजिये।' यह सुनकर श्रीसनत्कुमारजी बोले, 'दैत्यप्रवर ! भगवान् विष्णुका उत्तम माहात्म्य सुनिये। देखिये, यह सारा जगत् उन्हींमें स्थित है। वे ही समस्त भूतोंकी रचना करते हैं, वे ही प्रलयकाल आनेपर उनका संहार करते हैं और वे ही कल्पान्तरके आरम्भमें उनकी पुनः सृष्टि करते हैं। समस्त भूत उन्हींमें लीन होते हैं और उन्हींसे उत्पन्न होते हैं। उन्हें कोई शास्त्रज्ञानद्वारा अथवा तपस्या या यज्ञके द्वारा नहीं पा सकता, वे तो इन्द्रियोंके निग्रहसे ही प्राप्त हो सकते हैं। जो बाह्य और आभ्यन्तर कर्मोंमें प्रवृत्त होकर बुद्धिसे (निष्कामभावद्वारा) मनको शुद्ध करता है, वह अनन्त सुखको प्राप्त होता है। कर्मोंके द्वारा जीवकी शुद्धि सैकड़ों जन्मोंमें हो पाती है। किंतु कोई जीव महान् प्रयत्न करके एक ही जन्ममें शुद्ध हो जाता है। भगवान् नारायण आदि-अन्तसे रहित हैं और वे ही समस्त चराचर प्राणियोंकी रचना करते हैं। वे विश्वका संहार करनेवाले, सबके नियामक और शुद्ध चिद्रूप हैं। वे ही समस्त भूतोंमें क्षर और अक्षर-रूपसे भी रहते हैं। पृथ्वी

उनके चरण हैं, स्वर्गलोक मस्तक हैं, दिशाएँ भुजा हैं, आकाश कान हैं, सूर्य नेत्र हैं, चन्द्रमा मन है, महत्तत्त्व बुद्धि है और जल रसनेन्द्रिय है। सम्पूर्ण ग्रह उनकी भ्रुकुटियोंमें स्थित हैं और नक्षत्रसमूह नेत्रोंके तेजसे प्रकट हुए हैं। सत्त्व, रज, तम तीनों गुण नारायणस्वरूप हैं। सम्पूर्ण आश्रमोंके और जपादि कर्मोंके फल भी वे ही हैं तथा वे अव्यय परमात्मा ही कर्मत्यागरूप संन्यासके फल हैं। वेदमन्त्र उनके रोम हैं, प्रणव उनकी वाणी है तथा अनेकों वर्ण और आश्रम उनके आश्रय हैं। उनके अनेकों मुख हैं। वे ही हृदयमें आश्रित धर्म, आत्मदर्शनरूप परम धर्म, तप और सत्-असत्-स्वरूप हैं; वे ही श्रुति, शास्त्र, यज्ञपात्र और सोलह ऋत्विज् हैं तथा वे ही प्रजापति, विष्णु, अश्विनीकुमार, इन्द्र, मित्र, वरुण, यम और कुबेर हैं। जिस समय मनुष्यकी ज्ञानदृष्टि खुलती है उसी समय उनका साक्षात्कार होता है। जगत्की उत्पत्तिसे लेकर प्रलयपर्यन्त एक कल्प होता है, ऐसे करोड़ों कल्पतक जीव स्थावर-जङ्गम योनियोंमें आते-जाते रहते हैं। यदि एक योजन चौड़ी, पाँच सौ योजन लम्बी और एक कोस गहरी सहस्रों अगाध बावड़ियाँ हों और उनमेंसे बालके अग्रभागद्वारा एक दिनमें केवल एक ही बूँद जल निकाला जाय तो उन सबके सूखनेमें जितना समय लगेगा, उतना ही समय प्रजाके उत्पत्ति-प्रलयरूप एक कालमें लगता है। जीव अज्ञानके कारण ही अपने-अपने कर्मोंके अनुसार भिन्न-भिन्न गतियोंको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार नित्यप्रति शुद्ध चित्तसे ब्रह्मानुसंधान करते हुए वह उस शुद्धचिन्मात्रभावरूप परमगतिको प्राप्त कर लेता है और उसके द्वारा उस अविनाशी पदको प्राप्त होता है जो सनातन ब्रह्म और अत्यन्त दुष्प्राप्य है। महाबली दैत्यराज! इस प्रकार मैंने तुम्हें श्रीनारायणका प्रभाव सुना दिया।'

वृत्रासुरने कहा—भगवन्! मुझे आपकी बात बहुत ठीक जान पड़ती है। अब मुझे किसी प्रकारका विषाद नहीं है। आपके वचन सुनकर मैं पाप और शोकसे रहित हो गया हूँ। महर्षे! यह अनन्त और महातेजस्वी विष्णुका ही प्रबल चक्र चल रहा है। इस सनातन स्थानसे ही समस्त सृष्टियोंकी प्रवृत्ति होती है। वही परमात्मा और पुरुषोत्तम है और उसीमें यह सारा जगत् स्थित है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! सनत्कुमारजीने वृत्रासुरके आगे जिनका निरूपण किया था, वे भगवान् विष्णु ये श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं न?

भीष्मजी बोले—मूलमें स्थित जो भगवान् देवाधिदेव हैं, वे अपने स्वरूपमें स्थित हुए ही अपनी शक्तिसे अनेकों प्रकारके पदार्थ रचते हैं। इन श्रीकृष्णको उनके अष्टमांशसे उत्पन्न हुए समझो; किंतु ये अपने अष्टमांशसे ही तीनों लोकोंको रच देते हैं। वे अविनाशी भगवान् महान् शक्तिमान् और सबके अधीश्वर हैं। कल्पका अन्त होनेपर वे जलपर शयन करते हैं। वे सनातन और अनन्त परमात्मा अपनी सत्तास्फूर्तिसे ही समस्त कार्य-कारणको पूर्ण कर देते हैं और सर्वदा एकरस होकर भी इस श्रीकृष्णरूपसे लोकोंमें विचर रहे हैं; किंतु इस स्वरूपमें भी वे उपाधिसे बँधे हुए नहीं हैं और अपनेहीमें स्थित इस अनेक प्रकारके सम्पूर्ण जगत्की रचना करते हैं।



इन्द्रद्वारा वृत्रासुरके वधका प्रसंग

राजा युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! अतुलित तेजस्वी वृत्रासुरकी धर्मनिष्ठा धन्य है तथा उसका अतुलित विज्ञान और विष्णुभक्ति भी धन्यवादके योग्य है। भरतश्रेष्ठ! ऐसे प्रभावशाली वृत्रको इन्द्रने किस प्रकार मारा था और उन दोनोंका युद्ध किस प्रकार हुआ था—यह प्रसंग सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है, कृपया उसका विस्तारसे वर्णन कीजिये।

भीष्मजी बोले—राजन्! पुराने समयकी बात है, देवराज इन्द्र रथपर सवार हो देवताओंको साथ लिये वृत्रासुरसे युद्ध करनेके लिये चले। उन्होंने अपने सामने पर्वतके समान विशालकाय वृत्रको खड़ा देखा। वह पाँच सौ योजन ऊँचा और तीन सौ योजन मोटा था। वृत्रासुरका ऐसा विशाल डीलडौल, जो त्रिलोकीके लिये भी दुर्जय था, देखकर देवतालोग डर गये और बहुत ही घबराने लगे। यह देखकर इन्द्रकी जाँघें भी सुन्न पड़ गयीं। आखिर युद्ध ठन ही गया और दोनों ओरसे रणवाद्योंका भीषण नाद होने लगा। देवराज इन्द्र और वृत्रासुरकी बड़ी कड़ी मुठभेड़ हुई तथा सारा भूमण्डल देवता और असुरोंकी सेनाओंसे एवं तलवार, पट्टिश, त्रिशूल, शक्ति, तोमर, मुद्गर, तरह-तरहकी शिला, धनुष, अनेक प्रकारके दिव्य अस्त्र-शस्त्र और अग्निकी ज्वालाओंसे छा गया। उस अद्भुत युद्धको देखनेके लिये ब्रह्मादि देवता, ऋषि, सिद्ध और गन्धर्वलोग विमानोंपर चढ़कर वहाँ आ गये।

धर्मात्मा वृत्र आकाशमें चढ़कर इन्द्रपर पत्थर बरसाने

लगा। इससे देवताओंको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने सब ओरसे बाण बरसाकर उसकी पत्थरोंकी वर्षा बंद कर दी; किंतु महाबली वृत्र बड़ा मायावी भी था। उसने मायायुद्ध करके इन्द्रको मोहमें डाल दिया। इससे इन्द्र मूर्च्छित हो गये। तब वसिष्ठजीने रथन्तर सामद्वारा उन्हें सचेत किया। वसिष्ठजी कहने लगे, 'देवराज ! तुम सब देवताओंमें श्रेष्ठ, दैत्य और असुरोंका संहार करनेवाले और त्रिलोकीके बलसे सम्पन्न हो, फिर इस प्रकार विषादमें क्यों पड़े हो ? देखो, तुम्हारे सामने ये ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चन्द्रमा, सूर्य और समस्त महर्षिगण खड़े हुए हैं; अतः तुम सावधान होकर शत्रुओंका संहार करो।'

भीष्मजी कहते हैं—जब महात्मा वसिष्ठजीने इस प्रकार इन्द्रको सावधान किया तो उनके शरीरमें बड़ा बल आ गया। उन्होंने बुद्धिपूर्वक महायोगसे सम्पन्न हो वृत्रकी सारी माया नष्ट कर दी। तब बृहस्पतिजी तथा दूसरे महर्षियोंने वृत्रासुरका पराक्रम देखकर महादेवजीके पास जा उसका नाश करनेके लिये प्रार्थना की। इसपर जगत्पति भगवान् शंकरके तेजने भीषण ज्वर होकर वृत्रासुरके शरीरमें प्रवेश किया और विश्वकी रक्षा करनेवाले भगवान् विष्णु इन्द्रके वज्रमें विराजमान हुए। फिर महामति बृहस्पतिजी, परमतेजस्वी वसिष्ठजी तथा अन्य सब महर्षियोंने इन्द्रके पास जा एकचित्त होकर कहा, 'देवराज ! वृत्रका वध कीजिये।' महादेवजी बोले, 'देवेश्वर ! इस वृत्रासुरने बलप्राप्तिके लिये ही साठ हजार वर्ष तप किया था और तब इसे ब्रह्माजीने वर दिया था। उन्होंने इसे योगियोंकी-सी शक्ति, अद्भुत मायावीपन, महान् पराक्रम और विचित्र तेज प्रदान किया है। लो, मेरा तेज तुम्हारे शरीरमें प्रवेश करता है। इस समय यह (ज्वरके कारण) बहुत व्यग्र हो रहा है, ऐसी अवस्थामें ही तुम वज्रसे इसे मार डालो।' इन्द्रने कहा, 'भगवन् ! आपकी कृपासे मैं आपके सामने ही इस दुर्जय दैत्यको मार डालूँगा।'

राजन् ! जब वृत्रासुरके शरीरमें ज्वरने प्रवेश किया तो देवता और ऋषियोंमें बड़ी हर्षध्वनि होने लगी। इधर तीव्र ज्वरसे तपे हुए महादैत्य वृत्रने भी जमुहाई लेते हुए बड़ी अमानुषी गर्जना की। जमुहाई लेते समय ही इन्द्रने उसपर वज्र छोड़ा। उस कालाग्निके समान परमतेजस्वी वज्रने उसे तत्काल पृथ्वीपर गिरा दिया। बस, देवतालोग सब ओरसे हर्षनाद करने लगे। इस प्रकार वृत्रको मरा देखकर परमयशस्वी इन्द्रने विष्णुतेजसे व्याप्त वज्रको लिये हुए स्वर्गमें प्रवेश किया।

कुरुश्रेष्ठ ! इसी समय वृत्रके मृत देहसे महाभयावनी ब्रह्महत्या प्रकट हुई। वह देवराज इन्द्रको खोजने लगी। देवराज स्वर्गकी ओर जा रहे थे। उन्हें पकड़कर ब्रह्महत्या



उनके शरीरमें प्रवेश कर गयी। ब्रह्महत्याके डरसे घबराकर इन्द्र कमलनालमें घुस गये और बहुत वर्षोंतक वहीं छिपे रहे। इन्द्रने उसे दूर करनेका बहुत प्रयत्न किया, किंतु वह उससे अपना पिण्ड न छुड़ा सके। तब वे पितामह ब्रह्माके पास गये और उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया। ब्रह्माजीने अपनी मधुर वाणीसे ब्रह्महत्याको शान्त किया और फिर उससे कहा, 'कल्याणि ! यह देवराज है, तू इसे छोड़ दे। मेरा इतना प्रिय कर और बता मैं तेरा क्या काम करूँ, तू क्या चाहती है ?'

ब्रह्महत्याने कहा—आप त्रिलोकीके कर्ता और तीनों लोकोंमें सम्मानित हैं। जब आप प्रसन्न हैं तो मैं अपनी सभी कामना पूर्ण हुई समझती हूँ। आपहीने तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये धर्मकी मर्यादा बाँधी है। यह नियम आपका ही बनाया हुआ है कि जो ब्राह्मणका वध करे उसे ब्रह्महत्या लगेगी; किंतु अब आपकी ऐसी इच्छा है तो मैं इन्द्रको छोड़े देती हूँ। आप मेरे लिये कोई दूसरा स्थान बता दीजिये।

ब्रह्माजीने ब्रह्महत्यासे कहा, 'ठीक है, मैं तेरे लिये स्थान निश्चित करता हूँ।' फिर उन्होंने उपायद्वारा ब्रह्महत्याको इन्द्रसे दूर किया। उस समय उनके स्मरण करते ही वहाँ अग्निदेव उपस्थित हुए और उनसे बोले—'भगवन् ! मुझे क्या आज्ञा है ?' ब्रह्माजीने कहा, 'मैं इन्द्रको पापमुक्त करनेके लिये इस ब्रह्महत्याके कई विभाग करता हूँ, उनमेंसे एक चतुर्थांश तुम

ग्रहण करो।' अग्निने कहा, 'प्रभो ! ठीक है, मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है; किंतु मुझसे इस पापकी निवृत्ति कैसे होगी—इतना मैं जानना चाहता हूँ।' ब्रह्माजी बोले, 'अग्ने ! यदि किसी स्थानपर प्रज्वलित अवस्थामें तुम्हारे पास आकर कोई पुरुष अज्ञानवश बीज, ओषधि या रसोंसे तुम्हारा पूजन नहीं करेगा तो तुरंत ही तुम्हारी ब्रह्महत्या उसमें प्रवेश कर जायगी।' ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर अग्निने उनकी बात मान ली और ब्रह्महत्याके एक चौथाई भागने उसमें प्रवेश किया।

इसके पश्चात् पितामहने वृक्ष, तृण और ओषधियोंको बुलाकर उनसे भी वही बात कही। इसपर वे कहने लगे, 'त्रिलोकीनाथ ! आपकी आज्ञासे हम ब्रह्महत्याके चतुर्थांशको ग्रहण करेंगे, किंतु आप इससे हमारे छुटकारेका उपाय भी तो सोचिये।' ब्रह्माजी बोले, 'जो पुरुष पुण्यतिथियोंपर वृक्षादिको काटेगा यह उसीके पीछे लग जायगी।' तब वृक्षादिने उनकी बात स्वीकार कर ली और उनका यथावत् पूजनकर अपने-अपने स्थानको चले गये।

फिर ब्रह्माजीने अप्सराओंको बुलाकर उनसे मधुर वाणीमें कहा, 'सुन्दरियो ! यह ब्रह्महत्या इन्द्रके पास आयी है, सो मेरे कहनेसे इसका चतुर्थांश तुम ग्रहण कर लो।' अप्सराओंने कहा, 'देवेश्वर ! आपकी आज्ञासे हम इसे ग्रहण करनेको तैयार हैं; किंतु इससे हमारे छुटकारेके समयका भी विचार करनेकी कृपा करें।' ब्रह्माजी बोले, 'तुम निश्चिन्त रहो, जो पुरुष रजस्वला स्त्रीके साथ समागम करेगा, उसीके पास यह चली जायगी।' तब सब अप्सराएँ ब्रह्माजीकी आज्ञा शिरोधार्य कर अपने स्थानोंमें जाकर विहार करने लगीं।

इसके बाद लोकविधाता ब्रह्माने जलके लिये संकल्प किया। तुरंत ही जलदेवता उपस्थित हुए और ब्रह्माजीको प्रणाम करके कहने लगे, 'प्रभो ! हम उपस्थित हैं, कहिये, क्या आज्ञा है ?' ब्रह्माने कहा, 'देखो, यह ब्रह्महत्या वृत्रके शरीरसे निकलकर इन्द्रके पास आयी है। सो मेरी आज्ञासे इसका एक चौथाई भाग तुम ग्रहण करो।' जलने कहा, 'लोकेश्वर ! आप जैसा कहते हैं हमें स्वीकार है; किंतु इससे हमारे निस्तारका समय भी तो निश्चित कर दीजिये।' ब्रह्माजी बोले, 'जो मनुष्य अपनी बुद्धिकी मन्दतासे जलमें थूक-खखार या मल-मूत्र डालेगा तुम्हें छोड़कर यह उसीपर चली जायगी और उसीमें रहने लगेगी।'

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार इन्द्रको छोड़कर ब्रह्महत्या ब्रह्माजीके बताये हुए भिन्न-भिन्न स्थानोंमें चली गयी। इसके बाद ब्रह्माजीकी आज्ञासे इन्द्रने अश्वमेध यज्ञ किया। महाराज ! इस तरह देवराज शक्रने अपनी सूक्ष्म बुद्धिसे काम लेकर उपायपूर्वक वृत्रासुरका वध किया था। जो लोग पुण्यतिथियोंपर ब्राह्मणोंकी सभामें इस दिव्य कथाको सुनावेंगे उन्हें किसी प्रकारका पाप नहीं लगेगा। इस प्रकार मैंने तुम्हें वृत्रासुरके प्रसंगसे यह इन्द्रका अद्भुत चरित्र सुना दिया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ?



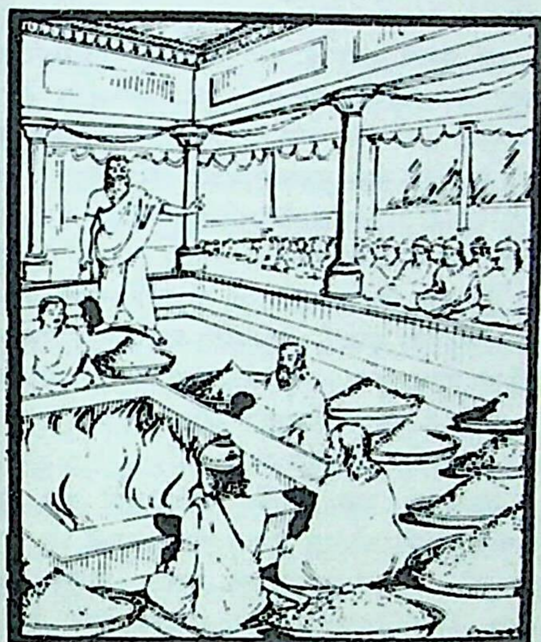
दक्ष-यज्ञ-विध्वंस

जनमेजयने पूछा—वैशम्पायनजी ! वैवस्वत मन्वन्तरमें प्रचेताके पुत्र प्रजापति दक्षका अश्वमेध यज्ञ किस प्रकार नष्ट हुआ था ? सुना है पार्वती देवीको दुःखित जानकर भगवान् शंकर दक्षपर कुपित हो गये थे। फिर उन्हें प्रसन्न करके दक्षने किस तरह अपना यज्ञ पूर्ण किया ? मैं इस प्रसंगको जानना चाहता हूँ; आप ठीक-ठीक बतानेकी कृपा करें।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! पुराने समयकी बात है, हिमालयके पास गङ्गाद्वारमें, जहाँ ऋषि और सिद्धोंका निवास था, प्रजापति दक्षने अपना यज्ञ आरम्भ किया। नाना प्रकारके वृक्ष और लताएँ उस स्थानकी शोभा बढ़ा रही थीं। धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ दक्ष वहाँ ऋषियोंकी मण्डलीसे घिरे हुए बैठे थे। उस समय पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्गलोकमें रहनेवाले मनुष्य तथा देवता आदि हाथ जोड़कर उनकी सेवामें उपस्थित हुए। दानव, पिशाच, सर्प, राक्षस, हाहा, हूहू, तुम्बुरु, विश्वावसु तथा विश्वसेन आदि गन्धर्व, सम्पूर्ण अप्सराएँ, आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य और मरुद्गणोंके साथ इन्द्रादि देवता यज्ञमें भाग लेनेके लिये पधारे थे। सोमपा-आज्यपा आदि पितर, ऋषि तथा ब्रह्माजीका भी शुभागमन हुआ था। इन सबके अतिरिक्त जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज चारों प्रकारके जीव वहाँ आमन्त्रित हुए थे। देवतालोग अपनी स्त्रियोंके साथ विमानपर बैठकर आते समय प्रज्वलित अग्निके समान शोभा पा रहे थे।

महामुनि दधीचि भी वहाँ मौजूद थे। उन्होंने देखा देवता और दानव आदिका समाज तो खूब जुटा हुआ है, परंतु भगवान्

शंकर नहीं दिखायी देते; जान पड़ता है, उनका आवाहन नहीं किया गया—यह सोचकर वे क्रोधमें भर गये और बोले 'सज्जनो ! जिसमें भगवान् शिवकी पूजा नहीं होती वह न



यज्ञ है, न धर्म। (इसलिये इस यज्ञको भी यज्ञ नहीं कहा जा सकता।) इसमें बड़ा भयंकर विनाश होनेवाला है; किंतु मोहवश किसीको दिखायी नहीं देता।' यह कहकर महायोगी दधीचिने ध्यान लगाकर देखा तो उन्हें भगवान् शंकर और वरदायिनी पार्वती देवीका दर्शन हुआ; उनके पास ही देवर्षि नारदजी भी दिखायी पड़े। इससे उनको बहुत संतोष हुआ।

तत्पश्चात् दधीचिने यह विचार किया कि ये सब लोग एकमत हो गये हैं, इसीसे इन्होंने महादेवजीको निमन्त्रण नहीं दिया है—यह बात ध्यानमें आते ही वे यज्ञशालासे अलग हो गये और दूर जाकर कहने लगे—'जो पूजनीय पुरुषकी पूजा न करके अपूज्यका पूजन करता है, उसे नरहत्याके समान पाप लगता है। मैंने आजतक कभी झूठ नहीं कहा है और आगे भी नहीं कहूँगा। इतने देवता तथा ऋषियोंके बीच मैं सच्ची बात बता रहा हूँ, भगवान् शंकर सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करनेवाले, समस्त जीवोंके रक्षक तथा सबके स्वामी हैं। तुम सब लोग देखना, वे इस यज्ञमें अग्रभोक्ताके रूपमें उपस्थित होंगे। मैं जानता हूँ, सबकी सलाहसे ही उन्हें आमन्त्रित नहीं किया गया है, किंतु मेरी समझमें भगवान् शंकरसे बढ़कर कोई भी देवता नहीं है। यदि यह सत्य है तो दक्षके इस विशाल यज्ञका विध्वंस हो जायगा।'

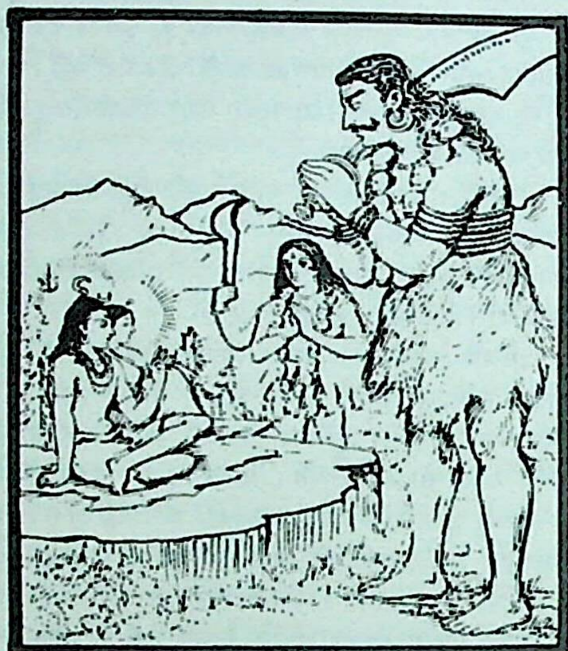
दक्षने कहा—महर्षे ! देखिये, विधिपूर्वक मन्त्रसे पवित्र-की हुई यह हवि सुवर्णके पात्रमें रखी है, इसे मैं भगवान् विष्णुको अर्पण करूँगा, जिनकी कहीं भी समता नहीं है। वे ही प्रभु (समर्थ), विभु (व्यापक) और आहवनीय (यज्ञ-भाग समर्पण करने योग्य) हैं।

(दूसरी ओर कैलासपर) पार्वती देवी बहुत उदास होकर भगवान् शंकरसे कह रही थीं—'आह ! मैं कौन-सा दान, व्रत या तप करूँ, जिसके प्रभावसे मेरे पतिदेवको यज्ञका आधा या तिहाई भाग अवश्य प्राप्त हो।'

क्षोभमें भरकर इस प्रकार बोलती हुई पत्नीकी बात सुनकर भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर कहा—'देवि ! मैं सम्पूर्ण यज्ञोंका ईश्वर हूँ। मेरे विषयमें कैसी बात कहनी चाहिये ? यह तुम नहीं जानती। जिनका चित्त एकाग्र नहीं है, जो असाधु पुरुष हैं, उन्हें मेरे स्वरूपका ज्ञान नहीं होता। इस समय इन्द्र आदि देवताओंके साथ ही तीनों लोक मोहमें पड़े हुए हैं। यज्ञमें प्रस्तोतालोग मेरी ही स्तुति करते हैं। सामगान करनेवाले ब्राह्मण रथन्तर सामके रूपमें मेरी ही महिमाका गायन करते हैं। वेदवेत्ता पुरुष मेरा ही यजन करते और ऋत्विजलोग मुझे ही यज्ञमें भाग देते हैं। देवेश्वरि ! यह सब मैं अपनी प्रशंसाके लिये नहीं कहता। देखो, जिसके कारण तुम्हें दुःख हुआ है, उस यज्ञको नष्ट करनेके लिये एक वीर पुरुषको उत्पन्न कर रहा हूँ।'

प्राणोंसे भी अधिक प्यारी उमासे ऐसी बात कहकर भगवान् महेश्वरने अपने मुखसे एक भयंकर भूत प्रकट किया, जिसको देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते थे। फिर उन्होंने उसे आज्ञा दी 'दक्षका यज्ञ नष्ट कर दो।' उस सिंहके तुल्य पराक्रमी पुरुषने पार्वतीजीका कोप शान्त करनेके लिये खेल-ही-खेलमें प्रजापतिके यज्ञका विध्वंस कर डाला। उस समय भवानीके क्रोधसे प्रकट हुई भयंकर आकारवाली महाकालीने भी सेवकोंसहित उसका साथ दिया था।

उस पुरुषका नाम था वीरभद्र। उसका शौर्य, बल और रूप भगवान् शंकरके ही समान था। क्रोधका तो वह मूर्तिमान् स्वरूप ही था। उसके बल, वीर्य और पराक्रमकी कोई सीमा नहीं थी। जब उसे यज्ञ-विध्वंस करनेकी आज्ञा मिली, उस समय उसने सबसे पहले भगवान् शंकरको प्रणाम किया, उसके बाद अपने शरीरके रोम-रोमसे 'रौम्य' नामक गण प्रकट किये, जो रुद्रके समान भयंकर, शक्तिशाली और पराक्रमी थे। वे महाकाय वीरगण सैकड़ों और हजारोंकी कई टोलियाँ बनाकर बड़ी तेजीके साथ यज्ञ-विध्वंस करनेके लिये टूट पड़े। उस समय उनकी किलकारियोंसे आसमान गूँजने



लगा। उनके महान् कोलाहल सुनकर देवता थर्रा उठे। पर्वतोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये। धरती डोलने लगी और समुद्रोंमें तूफान आ गया। इतना ही नहीं, सूर्य, ग्रह, तारे, नक्षत्र तथा चन्द्रमा भी फीके पड़ गये। चारों ओर अँधेरा छा गया। देवता, ऋषि और मनुष्य सब छिप गये, कोई दिखायी नहीं देता था।

दक्षसे अपमान पाकर कुपित हुए भूतोंने सबसे पहले यज्ञशालामें आग लगा दी। कुछ मार-पीट करने लगे। कुछ लोगोंने यूप उखाड़ने आरम्भ किये। बहुतेरे यज्ञकी सामग्रीको नष्ट करने और रौंदने लगे। कोई दौड़ लगाते, कोई बर्तन फोड़ते और कोई-कोई आभूषणोंको तोड़कर फेंक रहे थे। सारा सामान इधर-उधर बिखर गया। उस यज्ञ-भूमिमें जहाँ-तहाँ दिव्य अन्न, पान और भक्ष्य-भोज्यकी ढेरी पर्वतोंकी भाँति दिखायी देती थी। दूधकी नदियाँ बहती थीं। घी और खीर मानो उस नदीकी कीचड़ थे। खाँड़ और शक्कर बालूकी तरह बिछे हुए थे। इनके सिवा और भी बहुत-से खाने-पीने योग्य पदार्थोंका संग्रह किया गया था। उन सबको कालाग्निके समान भयंकर रुद्रगण अपने तरह-तरहके मुखोंद्वारा खाते, पीते, लूटते और फेंकते थे। देवताओंको डराते और उद्विग्न करते हुए वे भाँति-भाँतिके खिलवाड़ करते थे।

इस प्रकार भयानक कर्म करनेवाले वीरभद्रने उस यज्ञको सब ओरसे नष्ट कर डाला। तत्पश्चात् समस्त प्राणियोंको डरानेवाली भयंकर गर्जना की। उस समय ब्रह्मा आदि देवताओं तथा प्रजापति दक्षने हाथ जोड़कर पूछा, 'आप कौन हैं ?' वीरभद्र बोला 'हम दोनों शिव और पार्वती नहीं हैं। मेरा नाम है वीरभद्र ! मैं भगवान् रुद्रके कोपसे प्रकट हुआ हूँ। तथा यह भद्रकाली है; भगवती उमाके क्रोधसे इसका प्रादुर्भाव हुआ है। देवाधिदेव शंकरकी आज्ञासे हम दोनों इस यज्ञका नाश करनेके लिये यहाँ आये थे। विप्रवर ! तुम उमानाथ भगवान् शिवकी शरण लो; क्योंकि उनका क्रोध भी दूसरोंके वरदानसे अच्छा है।'

वीरभद्रकी बात सुनकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ दक्षने भगवान् शिवके उद्देश्यसे प्रणाम करके उनकी इस प्रकार स्तुति की—'जो सम्पूर्ण जगत्के शासक, पालक, महान् आत्मा, नित्य, अविकारी एवं सनातन देवता हैं, उन महादेवजीकी आज मैं शरण लेता हूँ।'

दक्षके इतना कहते ही हजारों सूर्योंके समान तेज धारण किये देवदेवेश्वर भगवान् शिव सहसा अग्निकुण्डसे प्रकट हुए और हँसकर बोले—'ब्रह्मन् ! बताओ, मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ?' उस समय देवगुरु बृहस्पतिने वेदका मखाध्याय पढ़कर भगवान्की स्तुति की। तत्पश्चात् प्रजापति दक्ष दोनों नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहाते हुए भय और शङ्कासे सहमे हुए-से बोले—'भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हों और मुझे अपना प्रिय भक्त एवं दयाका पात्र समझकर वर देना चाहते हों तो मैंने बहुत दिनोंसे परिश्रम करके जो यज्ञकी सामग्री जुटायी थी उसमेंसे बहुत कुछ आपके गणोंद्वारा खा-पीकर नष्ट-भ्रष्ट किया जा चुका है; वह सब व्यर्थ न जाय, उसके द्वारा इस यज्ञकी पूर्ति हो जाय—यही कृपा कीजिये।'

भगवान्ने 'तथास्तु' कहकर दक्षकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।



दक्षप्रजापतिका भगवान् शिवकी स्तुति करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर, दक्षप्रजापतिने भगवान् शंकरके सामने दोनों घुटने जमीनपर टेक दिये और अनेक नामोंके द्वारा उनकी स्तुति की।

युधिष्ठिरने पूछा—तात! जिन नामोंसे दक्षने भगवान् शिवका स्तवन किया था, उन्हें सुननेकी इच्छा हो रही है; कृपया सुनाइये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! अद्भुत पराक्रम करनेवाले देवाधिदेव शिवके प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध सभी तरहके नाम मैं तुम्हें सुना रहा हूँ, सुनो।

(दक्ष बोले)—देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। आप देववैरी दानवोंकी सेनाके संहारक और देवराज इन्द्रकी भी शक्तिको स्तम्भित करनेवाले हैं। देवता और दानव सबने आपकी पूजा की है। आप सहस्रों नेत्रोंसे युक्त होनेके कारण सहस्राक्ष हैं। आपकी इन्द्रियाँ सबसे विलक्षण अर्थात् परोक्ष विषयको भी ग्रहण करनेवाली हैं, इसलिये आपको विरूपाक्ष कहते हैं। आप त्रिनेत्रधारी हैं, इस कारण त्र्यक्ष कहलाते हैं। यक्षराज कुबेरके भी आप प्रिय (इष्टदेव) हैं। आपके सब ओर हाथ और पैर हैं, सब ओर आँख, मुँह और मस्तक हैं तथा सब ओर कान हैं। संसारमें जो कुछ है, सबको आप व्याप्त करके स्थित हैं। शंकुकर्ण, महाकर्ण, कुम्भकर्ण, अर्णवालय, गजेन्द्रकर्ण, गोकर्ण और पाणिकर्ण—ये सात पार्षद आपके ही स्वरूप हैं—इन सबके रूपमें आपको नमस्कार है। आपके सैकड़ों उदर, सैकड़ों आवर्त और सैकड़ों जिह्वाएँ होनेके कारण आप शतोदर, शतावर्त और शतजिह्व नामसे प्रसिद्ध हैं; आपको प्रणाम है। गायत्रीका जप करनेवाले आपकी ही महिमाका गान करते हैं और सूर्योपासक सूर्यके रूपमें आपकी ही आराधना करते हैं। मुनि आपको ब्रह्मा मानते हैं और याज्ञिक इन्द्र। ज्ञानी महात्मा आपको संसारसे परे तथा आकाशके समान व्यापक समझते हैं। समुद्र और आकाशके समान महत्स्वरूप धारण करनेवाले महेश्वर! जैसे गोशालामें गौएँ निवास करती हैं, उसी प्रकार आपकी भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा एवं यजमानरूप आठ मूर्तियोंमें सम्पूर्ण देवताओंका वास है। मैं आपके शरीरमें चन्द्रमा, अग्नि, वरुण, सूर्य, विष्णु, ब्रह्मा तथा बृहस्पतिको भी देख रहा हूँ। आप ही कारण, कार्य, प्रयत्न और करणरूप हैं। सत् और असत् पदार्थ आपहीसे उत्पन्न होते और आपहीमें लीन हो जाते हैं।

आप सबके उद्भव (जन्म) का कारण होनेसे भव, संहार करनेके कारण शर्व, रु अर्थात् पापको दूर करनेसे रुद्र, वरदाता होनेसे वरद तथा पशुओं (जीवों) के पालक होनेके कारण पशुपति कहलाते हैं। आपने अन्धकासुरका वध किया है, इससे आपको अन्धकघाती कहते हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। आप तीन जटा और तीन मस्तक धारण करनेवाले हैं। आपके हाथमें त्रिशूल शोभा पा रहा है। आप त्र्यम्बक—त्रिनेत्रधारी तथा त्रिपुरविनाशक हैं; आपको प्रणाम है। क्रोधवश प्रचण्ड रूप धारण करनेसे आपका नाम चण्ड है। आपके उदरमें सम्पूर्ण जगत् उसी भाँति स्थित है जैसे कुण्डेमें जल, इसीलिये आपको कुण्ड कहते हैं। आप ब्रह्माण्डस्वरूप, ब्रह्माण्डको धारण करनेवाले तथा दण्डधारी हैं। समकर्ण अर्थात् सबकी समानभावसे सुननेवाले हैं। दण्ड धारण करके माथ मुड़ाये रहनेवाले संन्यासी भी आपके ही स्वरूप हैं; आपको प्रणाम है। बड़ी-बड़ी डाढ़ें और ऊपरकी ओर उठे हुए केश धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। आप ही विशुद्ध ब्रह्म हैं और आप ही जगत्के रूपमें विस्तृत हैं। रजोगुणको अपनानेपर विलोहित तथा तमोगुणका आश्रय लेनेपर आप धूम्र कहलाते हैं। आपकी ग्रीवामें नीले रंगका चिह्न है, इसलिये आपको नीलग्रीव कहते हैं; हम आपको प्रणाम करते हैं। आपके समान दूसरा कोई नहीं है, आप नाना प्रकारके रूप धारण करते हैं और परम कल्याणमय शिवस्वरूप हैं। आप ही सूर्यमण्डल और उसमें प्रकाशित होनेवाले सूर्य हैं। आपकी ध्वजा और पताकापर सूर्यका चिह्न है; आपको नमस्कार है। प्रमथगणोंके अधीश्वर भगवान् शिव! आपको प्रणाम है। आपके कंधे वृषभके कंधोंके समान भरे हुए हैं। आप सदा पिनाक धनुष धारण किये रहते हैं। शत्रुओंका दमन करनेवाले और दण्डस्वरूप हैं। किरातवेषमें विचरते समय आप भोजपत्र और वल्कलवस्त्र धारण करते हैं। हिरण्य (सुवर्ण) को उत्पन्न करनेके कारण आपको हिरण्यगर्भ कहते हैं। हिरण्यके कवच और मुकुट धारण करनेसे आप हिरण्यकवच तथा हिरण्यचूडके नामसे प्रसिद्ध हैं। हिरण्यके आप अधिपति हैं; आपको सादर नमस्कार है।

जिनकी स्तुति हो चुकी है, हो रही है और जो स्तुति करने योग्य हैं, वे सब आपके ही स्वरूप हैं। आप सर्व, सर्वभक्षी और सब भूतोंके अन्तरात्मा हैं; आपको सादर प्रणाम है। आप ही होता हैं और आप ही मन्त्र। आपकी ध्वजा और पताकाका रंग श्वेत है; आपको नमस्कार है। आपकी नाभिसे

सम्पूर्ण जगत्का आविर्भाव होता है। आप संसार-चक्रके नाभिस्थान (केन्द्र) और आवरणके भी आवरण हैं; आपको हमारा प्रणाम है। आपकी नासिका पतली है, इसलिये आप कृशनास कहलाते हैं। आपके अवयव कृश होनेसे आपको कृशाङ्ग तथा शरीर दुबला होनेसे कृश कहते हैं। आप आनन्दमूर्ति, अति प्रसन्न रहनेवाले एवं किल-किल शब्दस्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप समस्त प्राणियोंके भीतर शयन करनेवाले अन्तर्यामी पुरुष हैं, प्रलयकालमें योगनिद्राका आश्रय लेकर सोनेवाले और सृष्टिके प्रारम्भ कालमें कल्पान्तनिद्रासे जागनेवाले हैं। आप ब्रह्मरूपसे सर्वत्र स्थित और कालरूपसे सदा दौड़नेवाले हैं। मूँड़ मुड़ाये हुए संन्यासी और जटाधारी तपस्वी भी आपके ही स्वरूप हैं; आपको प्रणाम है। आपका ताण्डवनृत्य बराबर चलता रहता है। आप मुँहसे शृङ्गी आदि बाजे बजानेमें निपुण हैं, कमलपुष्पकी भेंट लेनेको उत्सुक रहते हैं और गाने-बजानेमें मस्त रहा करते हैं; आपको नमस्कार है। आप अवस्थामें सबसे ज्येष्ठ और गुणोंमें भी सबसे श्रेष्ठ हैं। आपने ही बलाभिमानी इन्द्रका मान-मर्दन किया था। आप कालके भी नियन्ता तथा सर्वशक्तिमान् हैं। महाप्रलय और अवान्तर प्रलय आपके ही स्वरूप हैं; आपको मेरा प्रणाम है। नाथ! आपका अट्टहास दुन्दुभिकी भाँति भयंकर है। आप भीषण व्रतोंको धारण करनेवाले हैं। दस भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले और उग्र मूर्तिधारी आपको हमारा नमस्कार है। आप हाथमें कपाल लिये रहते हैं, चिताका भस्म आपको बहुत प्यारा है। भगवान् भीम! आप भयंकर होते हुए भी निर्भय हैं तथा शम आदि उत्तम व्रतोंका पालन करते रहते हैं; आपको हमारा प्रणाम है। आप वीणाके प्रेमी तथा वृष (वृष्टिकर्ता), वृष्य (धर्मकी वृद्धि करनेवाले), गोवृष (नन्दी) और वृष (धर्म) आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। कटङ्कट (नित्य गतिशील), दण्ड (शासक) और पचपच (सर्म्पूण भूतोंको पकानेवाला) भी आपहीके नाम हैं; आपको नमस्कार है। आप सबसे श्रेष्ठ, वरस्वरूप और वरदाता हैं, उत्तम माल्य, गन्ध और वस्त्र धारण करते हैं तथा भक्तको इच्छानुसार और उससे भी अधिक वरदान देते हैं; आपको प्रणाम है।

रागी और विरागी दोनों जिसके स्वरूप हैं, जो ध्यानपरायण, रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाले, कारणरूपसे सबमें व्याप्त और कार्यरूपसे पृथक्-पृथक् दिखायी देनेवाले हैं तथा जो सम्पूर्ण जगत्को छाया और धूप प्रदान करते हैं, उन भगवान् शंकरको नमस्कार है। अघोर, घोर और घोरसे भी घोरतर रूप धारण करनेवाले तथा शिव, शान्त एवं अत्यन्त शान्त स्वरूपमें दर्शन देनेवाले भगवान् शिवको प्रणाम है। एक पाद, अनेक नेत्र और एक मस्तकवाले आपको प्रणाम है। भक्तोंकी दी हुई छोटी-से-छोटी वस्तुके लिये भी लालायित रहनेवाले और उसके बदलेमें उन्हें अपार धनराशि बाँट देनेकी रुचि रखनेवाले आप भगवान् रुद्रको नमस्कार है। जो इस विश्वका निर्माण करनेवाले कारीगर, गौरवर्ण और सदा शान्तरूपसे रहनेवाले हैं, जिनकी घंटाध्वनि शत्रुओंको भयभीत कर देती है तथा जो स्वयं ही घंटानाद और अनाहत ध्वनिके रूपमें श्रवणगोचर होते हैं, उन महेश्वरको प्रणाम है। जिनकी एक ही घंटी हजारों मनुष्योंद्वारा एक साथ बजायी जानेवाली घंटियोंके बराबर आवाज करती है, जिन्हें घंटाकी माला प्रिय है, जिनका प्राण ही घंटाके समान ध्वनि करता है, जो गन्ध और कोलाहलरूप हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है। जो 'हूँ' कहकर क्रोध और आन्तरिक शान्ति प्रकट करते हैं, परब्रह्मके चिन्तनमें तत्पर रहते हैं तथा शान्ति एवं ब्रह्मचिन्तनको प्रिय मानते हैं; पर्वतोंपर और वृक्षोंके नीचे जिनका निवास है और जो सदा शान्त होनेका ही आदेश दिया करते हैं, उन महादेवजीको प्रणाम है। जो जगत्का तरण-तारण करनेवाले, यज्ञ, यजमान, हुत (हवन) और प्रहुत (अग्नि) रूप हैं, उन शंकरजीको नमस्कार है। जो यज्ञके निर्वाहक, दमनशील, तपस्वी और ताप देनेवाले हैं; नदी, नदीके किनारे तथा नदीपति समुद्र जिनके अपने ही स्वरूप हैं, उन भगवान् शिवको प्रणाम है। अन्नदाता, अन्नपति और अन्नभोक्तारूप महेश्वरको नमस्कार है। जिनके सहस्रों मस्तक, सहस्रों चरण, सहस्रों शूल तथा सहस्रों नेत्र हैं; जो बालसूर्यकी भाँति देदीप्यमान और बालक-रूप धारण करनेवाले हैं, उन शंकरजीको प्रणाम है। अपने बाल अनुचरोंके रक्षक, बालकोंके साथ खेल करनेवाले, वृद्ध, लुब्ध, क्षुब्ध और क्षोभमें डालनेवाले आपको प्रणाम है। आपके केश गङ्गाकी तरङ्गोंसे अङ्कित तथा मुञ्जके समान हैं, आप ब्राह्मणोंके छः कर्म—अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन और दान तथा प्रतिग्रहसे संतुष्ट रहते तथा स्वयं (अध्ययन, यजन और दानरूप) तीन कर्मोंका अनुष्ठान किया करते हैं; आपको मेरा नमस्कार है। आप वर्ण और आश्रमोंके भिन्न-भिन्न कर्मोंका विधिवत् विभाग करनेवाले, स्तवन करने योग्य, घोषस्वरूप तथा कलकल ध्वनि हैं, आपको बारंबार प्रणाम है। आपके नेत्र श्वेत, पीले, काले और लाल रंगके हैं, आप प्राणवायुको जीतनेवाले, दण्डरूपसे प्रजाको नियममें रखनेवाले, ब्रह्माण्डरूपी घटको फोड़नेवाले और कृश शरीर धारण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष देनेके विषयमें आपकी कीर्तिकथा वर्णन करने योग्य है।

आप सांख्यस्वरूप, सांख्ययोगियोंमें प्रधान तथा सांख्य शास्त्रको प्रवृत्त करनेवाले हैं; आपको प्रणाम है। आप रथपर बैठकर तथा बिना रथके भी घूमनेवाले हैं। जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—इन चारों मार्गोंपर आपके रथकी गति है। आप काले मृगचर्मको दुपट्टेकी भाँति ओढ़नेवाले और सर्परूप यज्ञोपवीत धारण करनेवाले हैं; आपको प्रणाम है।

ईशान! आपका शरीर वज्रके समान कठोर है। हरिकेश! आपको नमस्कार है। व्यक्ताव्यक्तस्वरूप परमेश्वर! आप त्रिनेत्रधारी तथा अम्बिकाके स्वामी हैं; आपको नमस्कार है। आप कामस्वरूप कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, कामदेवके नाशक, तृप्त-अतृप्तका विचार करनेवाले, सर्वस्वरूप, सब कुछ देनेवाले, सबके संहारक और संध्याकालके समान लाल रंगवाले हैं; आपको प्रणाम है। महान् मेघोंकी घटाके समान श्यामवर्णवाले महाकाल! आपको नमस्कार है। आपका श्रीविग्रह स्थूल, जीर्ण जटाधारी तथा वल्कल और मृगचर्मधारण करनेवाला है। आप देदीप्यमान सूर्य और अग्निके समान ज्योतिर्मयी जटासे सुशोभित हैं। वल्कल और मृगचर्म ही आपके वस्त्र हैं। आप सहस्रों सूर्योंके समान प्रकाशमान और सदा तपस्यामें संलग्न रहनेवाले हैं; आपको प्रणाम है। आप जगत्को मोहमें डालनेवाले और गङ्गाकी सैकड़ों लहरोंको धारण करनेवाले हैं। आपके मस्तकके बाल सदा गङ्गाजलसे भीगे रहते हैं। आप चन्द्रावर्त (चन्द्रमाको बारंबार क्षयवृद्धिके चक्करमें डालनेवाले), युगावर्त (युगोंका परिवर्तन करनेवाले) और मेघावर्त (वायुरूपसे मेघोंको घुमानेवाले) हैं; आपको नमस्कार है। आप ही अन्न, अन्नाद, भोक्ता, अन्नदाता, अन्नभोजी, अन्नस्रष्टा, पाचक, पक्कान्नभोजी तथा पवन एवं अग्निरूप हैं। देवदेवेश्वर! जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज्ज—ये चार प्रकारके प्राणी आप ही हैं। आप ही चराचर जीवोंकी सृष्टि और संहार करनेवाले हैं। ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! ज्ञानी पुरुष आपको ही ब्रह्मज्ञानियोंका ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्मवादी विद्वान् आपहीको मनका परम कारण, आकाश, वायु, तेज, ऋक्, साम तथा प्रणव बतलाते हैं। सुरश्रेष्ठ! सामगान करनेवाले वेदवेत्ता पुरुष 'हायि हायि, हुवा हायि, हावु हायि' आदिका उच्चारण करते हुए निरन्तर आपहीकी महिमाका गायन करते हैं। यजुर्वेद और ऋग्वेद आपके ही स्वरूप हैं। आप ही हविष्य हैं। वेद और उपनिषदोंकी स्तुतियोंद्वारा आपहीकी महिमाका बखान होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निम्न वर्णके लोग भी आपहीके स्वरूप हैं। मेघोंकी घटा, बिजली, गर्जना और गड़गड़ाहट भी आप ही हैं। संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, युग, निमेष, काष्ठा, नक्षत्र, ग्रह तथा कला भी आपके ही रूप हैं। वृक्षोंमें प्रधान वट-अश्वत्थ आदि, पर्वतोंमें शिखर, वनजन्तुओंमें व्याघ्र, पक्षियोंमें गरुड, सर्पोंमें अनन्त, समुद्रोंमें क्षीरसागर, यन्त्रों (अस्त्रों) में धनुष, शस्त्रोंमें वज्र तथा व्रतोंमें सत्य भी आप ही हैं। आप ही इच्छा, द्वेष, राग, मोह, क्षमा, अक्षमा, व्यवसाय, धैर्य, लोभ, काम, क्रोध, जय तथा पराजय हैं। आप गदा, बाण, धनुष, खाटका पाया तथा झर्झर नामक अस्त्र धारण करनेवाले हैं। आप ही छेत्ता (छेदन करनेवाले), भेत्ता (भेदन करनेवाले), प्रहर्ता (प्रहार करनेवाले), नेता, मन्ता (मनन करनेवाले) तथा पिता हैं। दस प्रकारके धर्म, अर्थ और काम भी आप ही हैं। गङ्गा आदि नदियाँ, समुद्र, गड़हा, तालाब, लता, वल्ली, तृण, ओषधि, पशु, मृग, पक्षी, द्रव्य, कर्म-समारम्भ तथा फूल और फल देनेवाला काल भी आप ही हैं।

आप देवताओंके आदि-अन्त हैं। गायत्री-मन्त्र और ॐकारस्वरूप हैं। हरित, रोहित, नील, कृष्ण, सम, अरुण, कद्रु, कपिल, कपोत (कबूतरके समान) तथा मेचक (श्याममेघके समान)—ये दस प्रकारके रंग भी आपहीके स्वरूप हैं। आप वर्णरहित होनेके कारण अवर्ण और अच्छे वर्णवाले होनेसे सुवर्ण कहलाते हैं। आप वर्णोंके निर्माता और मेघके समान हैं। आपके नाममें सुन्दर वर्णों (अक्षरों) का उपयोग हुआ है इसलिये आप सुवर्णनामा हैं तथा आपको सुवर्ण प्रिय है। आप ही इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि, उपप्लव (ग्रहण), चित्रभानु (सूर्य), राहु और भानु हैं। होत्र (स्रुवा), होता, हवनीय पदार्थ, हवनक्रिया तथा (उसके फल देनेवाले) परमेश्वर भी आप ही हैं। वेदकी त्रिसौपर्ण नामक श्रुतियोंमें तथा यजुर्वेदके शतरुद्रिय प्रकरणमें जो बहुत-से वैदिक नाम हैं, वे सब आपहीके नाम हैं।

आप पवित्रोंके भी पवित्र और मङ्गलोंके भी मङ्गल हैं। आप ही गिरिक (अचेतनको भी चेतन करनेवाले), हिंडुक (गमनागमन करनेवाले), वृक्ष (संसार), जीव, पुद्गल (देह), प्राण, सत्त्व, रज, तम, अप्रमद (स्त्रीरहित—ऊर्ध्वरेता), प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, उन्मेष-निमेष (आँखोंका खोलना-मीचना), छींकना और जँभाई लेना आदि चेष्टाएँ हैं। आपकी अग्निमयी दृष्टि लाल रंगकी तथा भीतर छिपी हुई है। आपके मुख और उदर महान् हैं। रोएँ सुईके समान हैं। दाढ़ी-मूछ काली है। सिरके बाल ऊपरकी ओर उठे हुए हैं। आप चराचरस्वरूप हैं। गाने-बजानेके तत्त्वको जाननेवाले हैं। गाना-बजाना आपको अधिक प्रिय है। आप मत्स्य, जलचर और जालधारी घड़ियाल हैं। फिर भी अकल

(बन्धनसे) परे हैं। आप केलिकलासे युक्त तथा कलहरूप हैं। आप ही अकाल, अतिकाल, दुष्काल तथा काल हैं। मृत्यु, क्षुर (छेदन करनेका शस्त्र), कृत्य (छेदन करनेयोग्य), पक्ष (मित्र) तथा अपक्षक्षयंकर (शत्रुपक्षका नाश करनेवाले) भी आप ही हैं। आप मेघके समान काले, बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले और प्रलयकालीन मेघ हैं। घण्ट (प्रकाशवान्), अघण्ट (अव्यक्त प्रकाशवाले), घटी (कर्मफलसे युक्त करनेवाले), घण्टी (घण्टावाले), चरुचेली (जीवोंके साथ क्रीडा करनेवाले) तथा मिलीमिली (कारणरूपसे सबमें व्याप्त)—ये सब आपहीके नाम हैं। आप ही ब्रह्म, अग्नियोंके स्वरूप, दण्डी, मुण्ड तथा त्रिदण्डधारी हैं। चार युग और चार वेद आपके ही स्वरूप हैं तथा चार प्रकारके होतृकर्मोंके आप ही प्रवर्तक हैं। आप चारों आश्रमोंके नेता तथा चारों वर्णोंकी सृष्टि करनेवाले हैं। आप ही अक्षप्रिय, धूर्त, गणाध्यक्ष और गणाधिप आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। आप रक्त वस्त्र तथा लाल फूलोंकी माला पहनते हैं, पर्वतपर शयन करते और गेरुए वस्त्रसे प्रेम रखते हैं। आप ही छोटे और बड़े शिल्पी (कारीगर) तथा सब प्रकारकी शिल्पकलाके प्रवर्तक हैं।

आप भगदेवताकी आँख फोड़नेके लिये अंकुश, चण्ड (अत्यन्त कोप करनेवाले) और पूषाके दाँत नष्ट करनेवाले हैं। स्वाहा, स्वधा, वषट्कार, नमस्कार और नमोनमः आदि पद आपके ही नाम हैं। आप गूढ़ व्रतधारी, गुप्त तपस्या करनेवाले, तारकमन्त्र और ताराओंसे भरे हुए आकाश हैं। धाता (धारण करनेवाले), विधाता (सृष्टि करनेवाले), संधाता (जोड़नेवाले), विधाता, धरण और अधर (आधाररहित) भी आपहीके नाम हैं। आप ब्रह्मा, तप, सत्य, ब्रह्मचर्य, आर्जव (सरलता), भूतात्मा (प्राणियोंके आत्मा), भूतोंकी सृष्टि करनेवाले, भूत (नित्यसिद्ध), भूत, भविष्य और वर्तमानके उत्पत्तिके कारण, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, ध्रुव (स्थिर), दान्त (दमनशील) और महेश्वर हैं। दीक्षित, (यज्ञकी दीक्षा लेनेवाले), अदीक्षित, क्षमावान्, दुर्दान्त, उद्दण्ड प्राणियोंका नाश करनेवाले, चन्द्रमाकी आवृत्ति करनेवाले (मास), युगोंकी आवृत्ति करनेवाले (कल्प), संवर्त (प्रलय) तथा संवर्तक (पुनः सृष्टि-संचालन करनेवाले) भी आप ही हैं। आप ही काम, बिन्दु, अणु (सूक्ष्म) और स्थूलरूप हैं। आप कनेरके फूलकी माला अधिक पसंद करते हैं। आप ही नन्दीमुख, भीममुख (भयंकर मुखवाले), सुमुख, दुर्मुख, अमुख (मुखरहित), चतुर्मुख, बहुमुख तथा युद्धके समय शत्रुका संहार करनेके कारण अग्निमुख (अग्निके समान मुखवाले) हैं। हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा), शकुनि (पक्षीके समान असङ्ग), महान् सर्पोंके स्वामी (शेषनाग) और विराट् भी आप ही हैं। आप अधर्मके नाशक, महापार्श्व, चण्डधार, गणाधिप, गोनर्द, गौओंको आपत्तिसे बचानेवाले, नन्दीकी सवारी करनेवाले, त्रैलोक्यरक्षक, गोविन्द (श्रीकृष्णरूप), गोमार्ग (इन्द्रियोंके आश्रय), अमार्ग (इन्द्रियोंके अगोचर), श्रेष्ठ, स्थिर, स्थाणु, निष्कम्प, कम्प, दुर्वारण (जिनका सामना करना कठिन है, ऐसे) दुर्विषह (असह्य वेगवाले), दुःसह, दुर्लङ्घ्य, दुर्द्धर्ष, दुष्प्रकम्प, दुर्विष, दुर्जय, जय, शश (शीघ्रगामी), शशाङ्क (चन्द्रमा) तथा शमन (यमराज) हैं। सर्दी, गर्मी, क्षुधा, वृद्धावस्था तथा मानसिक चिन्ताको दूर करनेवाले भी आप ही हैं। आप ही आधि-व्याधि तथा उसे दूर करनेवाले हैं। मेरे यज्ञरूपी मृगके वधिक तथा व्याधियोंको लाने और मिटानेवाले भी आप ही हैं। (कृष्णरूपमें) मस्तकपर शिखण्ड (मोरपंख) धारण करनेके कारण आप शिखण्डी हैं। पुण्डरीक (कमल) के समान सुन्दर नेत्र होनेके कारण पुण्डरीकाक्ष कहलाते हैं। आप कमलके वनमें निवास करनेवाले, दण्ड धारण करनेवाले, त्र्यम्बक, उग्रदण्ड और ब्रह्माण्डके संहारक हैं। विषाग्निको पी जानेवाले, देवश्रेष्ठ, सोमरसका पान करनेवाले और मरुद्गणोंके ईश्वर हैं। देवाधिदेव ! जगन्नाथ ! आप अमृतपान करनेवाले और गणोंके स्वामी हैं। विषाग्नि तथा मृत्युसे रक्षा करते और दूध एवं सोमरसका पान करते हैं। आप सुखसे भ्रष्ट हुए जीवोंके प्रधान रक्षक तथा तुषित नामक देवताओंके आदिभूत ब्रह्माजीका भी पालन करनेवाले हैं। आप ही हिरण्यरेता (अग्नि), पुरुष (अन्तर्यामी), स्त्री, पुरुष और नपुंसक हैं। बालक, युवा और वृद्ध भी आप ही हैं। नागेश्वर ! आप जीर्ण दाढ़ोंवाले और इन्द्र हैं। विश्वकृत् (जगत्‌के संहारक), विश्वकर्ता (प्रजापति), विश्वकृत् (ब्रह्माजी), विश्वकी रचना करनेवाले प्रजापतियोंमें श्रेष्ठ, विश्वका भार वहन करनेवाले, विश्वरूप, तेजस्वी और सब ओर मुखवाले हैं। चन्द्रमा और सूर्य आपके नेत्र तथा पितामह ब्रह्मा हृदय हैं। आप ही समुद्र हैं, सरस्वती आपकी वाणी है, अग्नि और वायु बल हैं तथा आपके नेत्रोंका खुलना और बंद होना ही दिन और रात्रि हैं।

शिव ! आपके माहात्म्यको ठीक-ठीक जाननेमें ब्रह्मा, विष्णु तथा प्राचीन ऋषि भी समर्थ नहीं हैं। आपके सूक्ष्म रूप हमलोगोंकी दृष्टिमें नहीं आते। भगवन् ! जैसे पिता अपने औरस पुत्रकी रक्षा करता है, उसी तरह आप मेरी रक्षा करें। अनघ ! मैं आपके द्वारा रक्षित होनेयोग्य हूँ, आप अवश्य मेरी रक्षा करें; मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप भक्तोंपर दया करनेवाले भगवान् हैं और मैं सदाके लिये आपका भक्त हूँ।

जो हजारों मनुष्योंपर मायाका परदा डालकर सबके लिये दुर्बोध हो रहे हैं, अद्वितीय हैं तथा समुद्रके समान कामनाओंका अन्त होनेपर प्रकाशमें आते हैं; वे परमेश्वर नित्य मेरी रक्षा करें। जो निद्राके वशीभूत न होकर प्राणोंपर विजय पा चुके हैं और इन्द्रियोंको जीतकर सत्त्वगुणमें स्थित हैं—ऐसे योगीलोग ध्यानमें जिस ज्योतिर्मय तत्त्वका साक्षात्कार करते हैं, उस योगात्मा परमेश्वरको नमस्कार है। जो जटा और दण्ड धारण किये हुए हैं, जिनका उदर विशाल है तथा कमण्डलु ही जिनके लिये तरकसका काम देता है; ऐसे ब्रह्माजीके रूपमें विराजमान भगवान् शिवको प्रणाम है। जिनके केशोंमें बादल, शरीरकी संधियोंमें नदियाँ और उदरमें चारों समुद्र हैं; उन जलस्वरूप परमात्माको नमस्कार है। जो प्रलयकाल उपस्थित होनेपर सब प्राणियोंका संहार करके एकार्णवके जलमें शयन करते हैं, उन जलशायी भगवान्‌की मैं शरण लेता हूँ। जो रातमें राहुके मुखमें प्रवेश करके स्वयं चन्द्रमाके अमृतका पान करते हैं तथा स्वयं ही राहु बनकर सूर्यपर ग्रहण लगाते हैं, वे परमात्मा मेरी रक्षा करें। उत्पन्न हुए नवजात शिशुओंकी भाँति जो देवता और पितर यज्ञमें अपने-अपने भाग ग्रहण करते हैं, उन्हें नमस्कार है। वे 'स्वाहा और स्वधा' के द्वारा अपने भाग प्राप्तकर प्रसन्न हों। जो रुद्र अङ्गुष्ठमात्र जीवके रूपमें सम्पूर्ण देहधारियोंके भीतर विराजमान हैं, वे सदा मेरी रक्षा और वृद्धि करें। जो देहके भीतर रहते हुए स्वयं न रोकर देहधारियोंको ही रुलाते हैं, स्वयं हर्षित न होकर उन्हें ही हर्षित करते हैं, उन सबको मैं नमस्कार करता हूँ। नदी, समुद्र, पर्वत, गुहा, वृक्षोंकी जड़, गोशाला, दुर्गम पथ, बन, चौराहे, सड़क, चौतरे, किनारे, हस्तिशाला, अश्वशाला, रथशाला, पुराने बगीचे, जीर्ण गृह, पञ्च भूत, दिशा, विदिशा, चन्द्रमा, सूर्य तथा उनकी किरणोंमें, रसातलमें और उससे भिन्न स्थानोंमें भी जो अधिष्ठाता देवताके रूपमें व्याप्त हैं, उन सबको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ। जिनकी संख्या, प्रमाण और रूपकी इयत्ता नहीं है, जिनके गुणोंकी गिनती नहीं हो सकती, उन रुद्रोंको मैं सदा नमस्कार करता हूँ।

आप सम्पूर्ण भूतोंके जन्मदाता, सबके पालक और संहारक हैं तथा आप ही समस्त प्राणियोंके अन्तरात्मा हैं। नाना प्रकारकी दक्षिणाओंवाले यज्ञोंद्वारा आपहीका यजन किया जाता है और आप ही सबके कर्ता हैं; इसीलिये मैंने आपको अलग निमन्त्रण नहीं दिया। अथवा देव ! आपकी सूक्ष्म मायासे मैं मोहमें पड़ गया था, इस कारण निमन्त्रण देनेमें भूल हुई है। भगवन् ! मैं भक्तिभावके साथ आपकी शरणमें आया हूँ, इसलिये अब मुझपर प्रसन्न होइये। मेरा हृदय, मेरी बुद्धि और मेरा मन सब आपमें समर्पित है।

इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके प्रजापति दक्ष चुप हो गये। तब भगवान् शिवने बहुत प्रसन्न होकर दक्षसे कहा—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले दक्ष ! तुम्हारे द्वारा की हुई इस स्तुतिसे मैं बहुत संतुष्ट हूँ; अधिक क्या कहूँ, तुम मेरे निकट निवास करोगे। प्रजापते ! मेरे प्रसादसे तुम्हें एक हजार अश्वमेध तथा एक सहस्र वाजपेय यज्ञका फल मिलेगा।' तदनन्तर, लोकनाथ भगवान् शिवने प्रजापतिको सान्त्वना देते हुए फिर कहा 'दक्ष ! दक्ष ! इस यज्ञमें जो विघ्न डाला गया है, इसके लिये तुम खेद न करना। मैंने पहले कल्पमें भी तुम्हारे यज्ञका विध्वंस किया था। यह घटना भी पूर्वकल्पके अनुसार ही हुई है। सुव्रत ! मैं पुनः तुम्हें वरदान देता हूँ, इसे स्वीकार करो और प्रसन्नवदन एवं एकाग्रचित्त होकर मेरी बात सुनो—मैंने पूर्वकालमें षडङ्ग वेद, सांख्ययोग और तर्कसे निश्चित करके देवता और दानवोंके लिये भी दुष्कर तपका अनुष्ठान किया था। उसका नाम है पाशुपतव्रत। वह कल्याणमय व्रत मेरा ही प्रकट किया हुआ है। उसके अनुष्ठानसे महान् फलकी प्राप्ति होती है। महाभाग ! उसी पाशुपतव्रतका फल तुम्हें प्राप्त हो; अब तुम अपनी मानसिक चिन्ता त्याग दो।'

यह कहकर महादेवजी अपनी पत्नी पार्वती तथा अनुचरोंके साथ दक्षकी दृष्टिसे ओझल हो गये। जो मनुष्य दक्षके द्वारा किये हुए इस स्तवनका कीर्तन या श्रवण करेगा उसका कभी अमङ्गल नहीं होगा तथा उसे दीर्घायुकी प्राप्ति होगी। जैसे सम्पूर्ण देवताओंमें भगवान् शंकर श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण स्तोत्रोंमें यह स्तवन श्रेष्ठ है। यह साक्षात् वेदके समान है। जो यश, राज्य, सुख, ऐश्वर्य, काम, अर्थ, धन या विद्याकी इच्छा रखते हों, उन सबको भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रका श्रवण करना चाहिये। रोगी, दुःखी, दीन, चोरके हाथमें पड़ा हुआ, भयभीत तथा राजाके कार्यका अपराधी मनुष्य भी इस स्तोत्रका पाठ करनेसे महान् भयसे छुटकारा पा जाता है। वह इसी देहसे भगवान् शिवके गणोंकी समता प्राप्त कर लेता है और तेजस्वी, यशस्वी एवं निर्मल हो जाता है। जहाँ इस स्तोत्रका पाठ होता है, उस घरमें राक्षस, पिशाच, भूत और विनायक कोई विघ्न नहीं करते। जो स्त्री भगवान् शंकरमें भक्ति रखकर ब्रह्मचर्यका पालन करती हुई इस स्तोत्रका श्रवण करती है, वह पिता और पति—दोनोंके घरमें देवताकी भाँति पूजी जाती है। जो मनुष्य समाहित चित्तसे इसका श्रवण या कीर्तन करता है, उसके सभी कार्य सदा सफल हुआ करते हैं। इस स्तोत्रके पाठसे मनमें सोची हुई तथा वाणीद्वारा प्रकट की हुई सभी

प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। मनुष्यको चाहिये कि इन्द्रियोंको संयममें रखकर शौच-संतोष आदि नियमोंका पालन करते हुए कार्तिकेय, पार्वती और नन्दिकेश्वर आदि अङ्गदेवताओंकी पूजा करके उन्हें बलि अर्पण करे; फिर एकाग्रचित्त होकर क्रमशः इन नामोंका पाठ करे। इस विधिसे पाठ करनेपर वह इच्छानुसार धन, काम और उपभोगकी सामग्री प्राप्त करता है तथा मरनेके पश्चात् स्वर्गमें जाता है। उसे पशु-पक्षी आदिकी योनिमें जन्म नहीं लेना पड़ता। इस प्रकार पराशरनन्दन भगवान् व्यासजीने इस स्तोत्रका माहात्म्य बतलाया है।



समङ्गका नारदजीसे अपनी शोकहीन स्थितिका वर्णन तथा नारदजीका गालव मुनिको श्रेयका उपदेश

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! संसारके जीव दुःख और मृत्युसे सदा डरते रहते हैं; अतः आप ऐसा उपदेश करें, जिससे हमें उन दोनोंका ही भय न रहे।

भीष्मजीने कहा—भारत ! इस विषयमें नारद और समङ्गके संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। एक बार नारदजीने समङ्गसे पूछा—'मुने ! तुम सदा आनन्दमग्न और शोकहीन-से दिखायी देते हो। तुम्हारे भीतर कभी लेशमात्र भी उद्वेग नहीं दीख पड़ता। तुम सदा संतुष्ट और अपने-आपमें ही स्थित रहकर बालकोंकी भाँति चेष्टा किया करते हो, इसका क्या कारण है ?'

समङ्गने कहा—मानद ! मैं भूत, वर्तमान और भविष्यके स्वरूप तथा उसके तत्त्वको जानता हूँ, इसीसे मेरे मनमें कभी विषाद नहीं होता। मुझे कर्मोंके आरम्भका तथा उनके फलोदयकालका भी ज्ञान है और लोकमें जो भाँति-भाँतिके कर्मफल प्राप्त होते हैं, उनको भी मैं जानता हूँ, इसीसे कभी उदास नहीं होता। जगत्में गम्भीर विद्वान्, मूर्ख, अंधे और जड भी जीवित रहते हैं तथा स्वस्थ शरीरवाले देवता, बलवान् और निर्बल—सभी अपने कर्मानुसार जीवन धारण करते हैं, इसी तरह हम भी जी रहे हैं। हजार रुपयेवाले भी जीवित हैं और सौ रुपयेवाले भी; तथा कुछ लोग साग खाकर ही जीवन धारण करते हैं, इसी तरह हमें भी जीवित समझिये। मनुष्य जिसके कारण किसीको प्राज्ञ (बुद्धिमान्) कहते हैं, उस प्रज्ञा (बुद्धि) की जड़ है इन्द्रियोंकी प्रसन्नता। जिस मूढ़ इन्द्रियवाले पुरुषकी इन्द्रियाँ शोक और मोहमें पड़ी हैं, उसको प्रज्ञाकी प्राप्ति नहीं होती। मूर्खको गर्व होता है, उसका वह गर्व मोहरूप ही है। मूढ मनुष्यके लिये न यह लोक सुखद होता है, न परलोक। किसीको भी न तो सदा दुःख ही उठाना पड़ता है और न हमेशा सुख ही मिलता है। संसारके स्वरूपको परिवर्तित होता देख हमारे-जैसे मनुष्य कभी संताप नहीं करते, अनुकूल भोग या सुख पाकर उसका अभिनन्दन नहीं करते तथा प्रतिकूल दुःख प्राप्त होनेपर भी कभी चिन्तित नहीं होते। जिसका चित्त स्थिर हो गया है, वह दूसरोंका धन नहीं चाहता, बहुत-सी सम्पत्ति पाकर हर्षसे फूल नहीं उठता और धनके नष्ट हो जानेपर भी खेद नहीं करता; क्योंकि बन्धु-बान्धव, धन, उत्तम कुल, शास्त्राध्ययन, मन्त्र और वीर्य—इनमेंसे कोई भी दुःखसे छुटकारा नहीं दिला सकते। मनुष्य अपने शीलगुणके कारण ही परलोकमें शान्ति पाता है। जिसका चित्त योगयुक्त नहीं है, उसे समत्वबुद्धि नहीं प्राप्त होती, योगके बिना सुख भी नहीं मिलता। दुःखों (के प्रति प्रतिकूल-बुद्धि)का त्याग और धैर्य—ये ही दोनों सुखके मूल हैं। प्रिय वस्तु प्राप्त होनेपर हर्ष होता है, हर्षसे अभिमान बढ़ता है और अभिमान नरकमें ले जानेवाला है, इसलिये मैं उन तीनोंका त्याग करता हूँ। शोक, भय और अभिमान—ये प्राणियोंको सुख-दुःखमें डालकर मोहित करनेवाले हैं; इसलिये जबतक यह देह चेष्टा कर रहा है, तबतक मैं इन सबको साक्षीकी भाँति देखता हूँ तथा अर्थ, काम, शोक, संताप, तृष्णा और मोहका परित्याग करके—निर्द्वन्द्व होकर इस पृथ्वीपर विचरता हूँ। जैसे अमृत पीनेवालेको मृत्युसे भय नहीं होता, उसी प्रकार मुझे भी इहलोक या परलोकमें मृत्यु, अधर्म, लोभ तथा दूसरे किसीसे भय नहीं है। नारदजी ! मैंने महान् और अक्षय तप करके यही ज्ञान पाया है, इसलिये शोक उपस्थित होकर भी मुझे दुःखमें नहीं डालता।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! जो शास्त्रोंके तत्त्वको नहीं जानता, जिसका मन सदा संशयमें पड़ा रहता है तथा जिसने परमार्थके लिये कोई निश्चित ध्येय नहीं बनाया है, उस पुरुषका कल्याण कैसे हो सकता है ? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! सदा गुरुजनोंकी पूजा, वृद्ध पुरुषोंकी उपासना और शास्त्रोंका श्रवण—ये तीन

कल्याणके अमोघ साधन हैं। इस विषयमें भी देवर्षि नारद और महर्षि गालवके संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। एक समय गालव मुनिने कल्याण-प्राप्तिकी इच्छासे ज्ञानानन्दसे परिपूर्ण एवं मनको सदा वशमें रखनेवाले देवर्षि नारदजीके पास जाकर उनसे इस प्रकार प्रश्न किया— 'भगवन्! आप उत्तम गुणोंसे युक्त और ज्ञानी हैं तथा मैं आत्मतत्त्वसे अनभिज्ञ एवं मूढ़ हूँ, अतः आप मेरे संदेहको दूर करें। शास्त्रोंमें बहुत-से कर्तव्य कर्म बताये गये हैं; किंतु वे सब मेरे लिये एक-से हैं। उनमेंसे जिसके अनुष्ठानसे मेरी ज्ञानमें प्रवृत्ति हो सकती है, उसका मैं निश्चय नहीं कर पाता; उसे आप ही निश्चय करके बता दें। सभी आश्रम भिन्न-भिन्न कर्तव्योंकी ओर दृष्टि दिलाते हैं तथा 'यह श्रेष्ठ है, यह श्रेष्ठ है' ऐसा कहते हुए वे सब लोगोंसे अपने ही सिद्धान्तोंकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करते हैं। दूसरी ओर विभिन्न शास्त्रोंके द्वारा भाँति-भाँतिके उपदेश पाकर मनुष्य नाना प्रकारके शास्त्रीय कर्मोंमें स्थित हैं और सभी अपने-अपने शास्त्रोंकी प्रशंसा करते हैं; इधर मैं भी अपने शास्त्रसे ही संतुष्ट हूँ। ऐसी दशामें उनको और अपनेको समानरूपसे संतुष्ट देखकर मुझे कल्याण-प्राप्तिके उपायका ठीक-ठीक निश्चय नहीं हो पाता। यदि शास्त्र एक होता तो श्रेयका उपाय (भी एक ही होनेके कारण) स्पष्टरूपसे समझमें आ जाता; किंतु बहुत-से शास्त्रोंने मिलकर श्रेयमार्गको अत्यन्त गूढ़ बना डाला है, जिससे अब वह संशयग्रस्त जान पड़ता है; इसलिये मैं आपकी शरणमें आया हूँ, कृपा करके मुझे श्रेयके वास्तविक मार्गका उपदेश कीजिये।

नारदजीने कहा—तात! आश्रम चार हैं और शास्त्रोंमें उनकी पृथक्-पृथक् कल्पना की गयी है। तुम गुरुकी शरण लेकर उन सबको यथार्थरूपसे जानो। उन चारों आश्रमोंके स्वरूप और गुण आदि भिन्न-भिन्न हैं। स्थूल दृष्टिसे विचार करनेपर वे सर्वोत्तम अभीष्ट अर्थात् श्रेयमार्गका निश्चयात्मक ज्ञान नहीं करा पाते। कुछ सूक्ष्मदर्शी विद्वानोंने ही आश्रमोंके परम तत्त्वको ठीक-ठीक समझा है। जो अच्छी तरह कल्याण करनेवाला और संशयसे रहित हो, उसे ही श्रेय कहते हैं। सुहृदोंपर अनुग्रह करना, शत्रुभाव रखनेवाले दुष्ट पुरुषोंको दण्ड देना तथा धर्म, अर्थ और कामका संग्रह करना—इन सबको विद्वान् पुरुष श्रेय कहते हैं। पाप-कर्मसे दूर रहना, पुण्यकर्मोंका निरन्तर अनुष्ठान करना, सत्पुरुषोंके साथ रहकर सदाचारका ठीक-ठीक पालन करना, सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति कोमल और व्यवहारमें सरल होना, मीठी वाणी बोलना, देवताओं, पितरों और अतिथियोंको उनका भाग देना तथा भरण-पोषण करने योग्य व्यक्तियोंका त्याग न करना—यह श्रेयका निश्चित साधन है। सत्य बोलना भी श्रेयस्कर है; किंतु सत्यको यथार्थरूपसे जानना कठिन है। मैं तो उसे ही सत्य कहता हूँ, जिससे प्राणियोंका अत्यन्त हित होता हो। अहंकारका त्याग, प्रमादको रोकना, संतुष्ट होना, अकेले रहकर धर्मका पालन, धर्माचरणपूर्वक वेद और वेदान्तोंका स्वाध्याय तथा उनके सिद्धान्तको जाननेकी इच्छा कल्याणका अमोघ साधन है। जिसे कल्याण-प्राप्तिकी इच्छा हो उस मनुष्यको शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्ध—इन विषयोंका अधिक सेवन नहीं करना चाहिये। रातमें घूमना, दिनमें सोना, आलस्य, चुगली, गर्व, अधिक परिश्रम करना तथा परिश्रमसे बिलकुल दूर रहना—ये सब बातें श्रेय चाहनेवालेके लिये त्याज्य हैं। दूसरोंकी निन्दा करके अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करनेका प्रयत्न न करे। साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा जो अपनेमें विशेषता है, वह उत्तम गुणोंद्वारा ही प्रकट होनी चाहिये। गुणहीन मनुष्य ही अधिकतर अपनी तारीफके पुल बाँधा करते हैं। वे अपनेमें गुणोंकी कमी देख दूसरे गुणवान् पुरुषोंके दोष बताकर उनपर आक्षेप किया करते हैं। यदि कहीं वे कुछ पढ़ जायँ तब तो घमण्डमें आकर अपनेको महापुरुषोंसे भी अधिक गुणी मानने लगें, किंतु जो दूसरे किसीकी निन्दा तथा अपनी प्रशंसा नहीं करता, ऐसा सर्वगुणसम्पन्न विद्वान् ही महान् यशका भागी होता है। फूलोंकी पवित्र एवं मनोहर सुगन्ध बिना बोले ही महककर अनुभवमें आ जाती है तथा सूर्य भी बिना कुछ कहे ही आकाशमें सबके समक्ष प्रकाशित हो जाता है; इसी प्रकार संसारमें बहुत-सी ऐसी वस्तुएँ हैं जो बोलतीं नहीं; किंतु अपने यशसे प्रकाशित होती रहती हैं। मूर्ख मनुष्य केवल अपनी प्रशंसा करनेसे ही संसारमें ख्याति नहीं पा सकता, किंतु विद्वान् पुरुष गुफामें छिपा रहे तो भी उसकी सर्वत्र प्रसिद्धि हो जाती है। बुरी बात जोर-जोरसे कही जाय तो भी वह शान्त हो जाती है अर्थात् लोकमें उसका आदर नहीं होता; किंतु अच्छी बात धीरेसे कहनेपर भी संसारमें प्रकाशित होती रहती है—उसका सबके ऊपर प्रभाव पड़ता है। घमंडी मूर्खोंकी कही हुई बहुत-सी असार बातें उनके दूषित हृदयका ही परिचय देती हैं; इस कारण अच्छे लोग प्रज्ञा (ज्ञान) की खोज करते हैं, मुझे तो सब प्राणियोंके लिये ज्ञानकी प्राप्ति ही अच्छी जान पड़ती है। बुद्धिमान् पुरुष ज्ञानवान् होनेपर भी बिना पूछे किसीको कोई उपदेश न करे, अन्यायपूर्वक पूछनेपर भी किसीके प्रश्नका उत्तर न दे, जडकी भाँति चुपचाप बैठा रहे।

मनुष्यको सदा धर्ममें लगे रहनेवाले साधु-महात्माओं तथा स्वधर्मपरायण उदार पुरुषोंके समीप निवास करनेका विचार करना चाहिये। जहाँ चारों वर्णोंके धर्मोंका परस्पर सम्मिश्रण

होता हो, वहाँ श्रेयकी इच्छावाले पुरुषको नहीं रहना चाहिये। किसी कर्मका आरम्भ न करनेवाला और जो कुछ मिल जाय उसीसे संतुष्ट रहनेवाला पुरुष भी पुण्यात्माओंके साथ रहनेसे पुण्य और पापियोंके संसर्गमें रहनेसे पापका भागी होता है। जैसे जल और अग्निके संसर्गसे क्रमशः शीत और उष्ण स्पर्शका अनुभव होता है, उसी प्रकार पुण्यात्मा और पापियोंके सङ्गसे पुण्य एवं पाप—दोनोंका संयोग हो जाता है। विघसाशी (भृत्य-वर्ग और अतिथि आदिको भोजन करानेके बाद भोजन करनेवाले) पुरुष रसास्वादनकी ओर दृष्टि न रख करके ही भोजन करते हैं; किंतु जो अपनी रसनाका विषय समझकर स्वादु-अस्वादुका विचार रखते हुए भोजन करते हैं, उन्हें कर्मपाशमें बँधे हुए समझना चाहिये। जहाँ ब्राह्मण अन्यायपूर्वक प्रश्न करनेवाले पुरुषोंको धर्मका उपदेश करता हो, आत्मज्ञानीको उस देशका परित्याग कर देना चाहिये। जहाँके लोग बिना किसी आधारके ही विद्वानोंपर दोषारोपण करते हों, वहाँ कौन रहेगा? जहाँ लालची मनुष्योंने प्रायः धर्मकी मर्यादा तोड़ डाली हो, उस देशको कौन नहीं त्याग देगा?

परंतु जहाँके लोग मात्सर्य और शङ्कासे रहित होकर धर्माचरण करते हों, वहाँ पुण्यशील महात्माओंके पास अवश्य निवास करना चाहिये। जिस देशमें मनुष्य धनके लिये धर्मका अनुष्ठान करते हों, वहाँ कभी न रहे; क्योंकि वहाँके निवासी पापी होते हैं। जहाँ जीवनरक्षाके लिये लोग पापकर्मसे जीविका चलाते हों, जहाँ राजा और उसके सेवकोंमें कोई अन्तर न हो तथा जहाँके मनुष्य अपने कुटुम्बीजनोंके पहले ही भोजन कर लेते हों, उस राष्ट्रको ज्ञानी पुरुष त्याग दे। जहाँ धर्ममें श्रद्धा रखनेवाले सनातनधर्मी श्रोत्रिय ब्राह्मण ही यज्ञ कराने और पढ़ानेके कार्यमें नियुक्त हों तथा उन्हीं लोगोंको पहले भोजन कराया जाता हो, उस देशमें निवास करना उचित है। जहाँ स्वाहा (अग्निहोत्र), स्वधा (श्राद्ध) तथा वषट्कार (इन्द्रयाग) का भलीभाँति अनुष्ठान होता हो, जहाँके लोग बिना माँगे ही भिक्षा देते हों, जहाँ दुष्टोंको दण्ड दिया जाता और साधु पुरुषोंका सम्मान किया जाता हो, वहाँ पुण्यशील महात्माओंके बीच निवास करना चाहिये। जो जितेन्द्रिय पुरुषोंपर क्रोध और साधु-महात्माओंके प्रति अत्याचार करते हों, उन लोभी और उद्दण्ड पुरुषोंको जिस देशमें अत्यन्त कठोर दण्ड दिया जाता हो तथा जहाँका राजा सदा धर्मपरायण होकर धर्मानुसार ही राज्यका पालन करता हो और सम्पूर्ण कामनाओंका स्वामी (सम्पत्तिमान्) होकर भी विषय-भोगसे विमुख रहता हो, वहाँ बिना विचारे ही निवास करना चाहिये; क्योंकि राजाके शील-स्वभाव जैसे होते हैं, वैसी ही उसकी प्रजा भी होती है। वह अपने कल्याणका समय उपस्थित होनेपर अपनी प्रजाका भी कल्याण करता है।

तात! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार यह मैंने श्रेयमार्गका संक्षेपसे वर्णन किया है। विस्तारसे तो आत्मकल्याणकी परिगणना हो ही नहीं सकती। जो इस प्रकारकी वृत्तिसे रहकर जीविका चलाता और प्राणियोंके हितमें मन लगाये रहता है, उस पुरुषको स्वधर्मरूप तपके अनुष्ठानसे इस लोकमें ही परम कल्याणकी प्राप्ति हो जायगी।



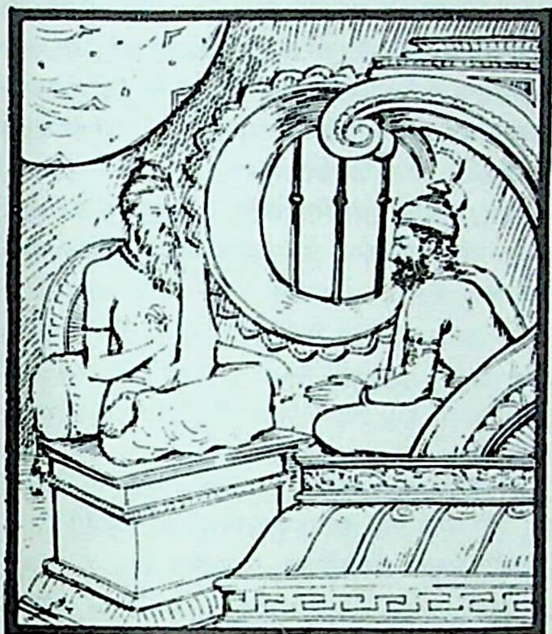
अरिष्टनेमिका राजा सगरको मोक्षका उपदेश

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! मेरे-जैसा राजा किस प्रकार योगयुक्त होकर पृथ्वीका पालन कर सकता है? तथा किन गुणोंसे युक्त होनेपर वह आसक्तिके बन्धनसे छुटकारा पा सकता है?

भीष्मजीने कहा—इस विषयमें राजा सगरके प्रश्न करनेपर अरिष्टनेमिने जो उत्तर दिया था, वह प्राचीन इतिहास मैं तुम्हें सुनाऊँगा।

सगरने पूछा—ब्रह्मन्! श्रेयप्राप्तिका सर्वोत्तम उपाय क्या है? क्या करनेसे मनुष्यको इस लोकमें ही परम सुख (मोक्ष) की प्राप्ति हो सकती है? किस तरह शोक और क्षोभसे पिण्ड छूट सकता है? मुझे यह जाननेकी इच्छा है।

भीष्मजी कहते हैं—सगरके इस प्रकार पूछनेपर समस्त शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ तार्क्ष्य (अरिष्टनेमि) ने उनमें दैवीसम्पत्तिके गुण जानकर उनको इस प्रकार उत्तम उपदेश किया—'सगर! संसारमें मोक्षका ही सुख वास्तविक सुख है, परंतु जो धन और धान्यके उपार्जनमें व्यग्र तथा पुत्र और पशुओंमें आसक्त हो रहा है, उस मूर्ख मनुष्यको उसका यथार्थ ज्ञान नहीं होता। जिसकी बुद्धि विषयोंमें आसक्त है, उसका मन अशान्त होता है। ऐसे पुरुषकी चिकित्सा करनी कठिन है। स्नेह-बन्धनमें बँधे हुए अज्ञानीका मोक्ष नहीं हो सकता। अब मैं तुम्हें स्नेहके बन्धनोंका परिचय देता हूँ, सुनो। समझदार मनुष्यको ये बातें कान लगाकर और ध्यान देकर सुननी चाहिये। तुम न्यायपूर्वक इन्द्रियोंसे विषयोंका अनुभव



करके उनसे अलग हो जाओ और आनन्दके साथ विचरते रहो; इस बातकी परवा न करो कि संतान हुई है या नहीं ? इन्द्रियोंका विषयोंके प्रति जो कौतूहल है, उसे मिटाकर मुक्तकी भाँति विचरो और दैवेच्छासे जो भी लौकिक पदार्थ प्राप्त हों, उनमें समान भाव रखो—राग-द्वेष न करो। मुक्त पुरुष सुखी होते और संसारमे निर्भय होकर विचरते हैं; किंतु जिनका चित्त विषयोंमें आसक्त होता है, वे चींटियों और कीड़ोंकी तरह आहारका संग्रह करते-करते ही नष्ट हो जाते हैं। अतः जो आसक्तिसे रहित हैं, वे ही इस संसारमें सुखी हैं; आसक्त मनुष्योंका तो नाश ही होता है। यदि तुम्हारी बुद्धि मोक्षमें लगी हुई है तो तुम्हें स्वजनोंके लिये ऐसी चिन्ता नहीं करनी चाहिये कि 'ये मेरे बिना कैसे रहेंगे ?' प्राणी स्वयं जन्म लेता है, स्वयं बढ़ता है और स्वयं ही सुख-दुःख तथा मृत्युको प्राप्त होता है। मनुष्य पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार ही भोजन, वस्त्र तथा अपने माता-पिताके द्वारा संग्रह किया हुआ धन प्राप्त करते हैं। संसारमें जो कुछ मिलता है, वह पूर्वकृत कर्मोंके फलके अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है। भूमण्डलके समस्त जीव अपने कर्मोंसे सुरक्षित होकर जगत्में विचरते हैं और विधाताने उनके प्रारब्धके अनुसार जो कुछ भोग नियत कर दिया है, उसे प्राप्त करते हैं। जो स्वयं ही (शरीरकी दृष्टिसे) मिट्टीका लोंदा, परतन्त्र तथा अस्थिर है, वह स्वजनोंकी रक्षा और पोषण करनेका अभिमान क्यों करता है ? तुम देखते हो और बचानेका भारी-से-भारी यत्न भी करते हो तो भी जब मौत तुम्हारे स्वजनको मारे बिना नहीं छोड़ती तो तुम्हारी क्या ताकत है ? इस बातपर स्वयं विचार करो। तुम्हारे ये सगे-सम्बन्धी जीवित भी रहें और इनके भरण-पोषणका कार्य समाप्त न भी हुआ हो तब भी तो तुम एक दिन इन्हें छोड़कर मर जाओगे ! अथवा जब कोई स्वजन मरकर इस लोकसे चला जायगा, उस समय वहाँ वह सुखी होगा या दुःखी ? इस बातको तो तुम नहीं जान सकोगे। अतः इसपर स्वयं विचार करो। तुम मर जाओ या जीवित रहो, तुम्हारे कुटुम्बका प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने कर्मका ही फल भोगेगा—ऐसा जानकर तुम्हें अपने कल्याण-साधनमें लग जाना चाहिये। संसारमें कौन किसका है ? इसका भलीभाँति विचार करके दृढ़ निश्चयके साथ अपने मनको मोक्षमें लगा दो।

'अब आगेकी बातपर भी ध्यान दो—जिसने क्षुधा, पिपासा, क्रोध, लोभ और मोह आदि भावोंपर विजय पा ली है, उस सत्त्वसम्पन्न पुरुषको मुक्त ही समझना चाहिये। जो मोहवश प्रमादके कारण जुआ, मद्यपान, स्त्रीसंसर्ग तथा मृगया आदिमें प्रवृत्त नहीं होता, वह भी मुक्त ही है। जो सदा योगयुक्त होकर स्त्रीमें भी आत्मदृष्टि ही रखता है—उसे भोग्य-बुद्धिसे नहीं देखता, वही यथार्थ मुक्त है। जो प्राणियोंके जन्म, मृत्यु और कर्मोंके तत्त्वको ठीक-ठीक जानता है, वह भी इस संसारमें मुक्त ही है। जो हजारों और करोड़ों गाड़ी अन्नमेंसे एक प्रस्थ (सेरभर) को ही पेट भरनेके लिये पर्याप्त समझता है (उससे अधिक संग्रह करना नहीं चाहता) तथा बड़े-से-बड़े महलमें भी माँच बिछानेभरकी जगहको ही अपने लिये आवश्यक मानता है, वह मुक्त हो जाता है। जो थोड़े-से लाभमें ही संतुष्ट रहता है—जिसे मायाके अद्भुत भाव छू नहीं सकते, जिसके लिये पलंग और भूमिकी शय्या एक-सी है, जो रेशमी वस्त्र, कुशके बने कपड़े, ऊनी वस्त्र और वल्कलको समान भावसे देखता है, संसारको पाञ्चभौतिक समझता है तथा जिसके लिये सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, इच्छा-द्वेष और भय-उद्वेग बराबर हैं, वह सर्वथा मुक्त ही है। जो इस देहको रक्त, मल, मूत्र तथा बहुत-से दोषोंका खजाना समझता है और इस बातको कभी नहीं भूलता कि बुढ़ापा आनेपर झुर्रियाँ पड़ जायँगी, बाल पक जायँगे, देह दुबला-पतला एवं सौन्दर्यहीन हो जायगा, कमर भी झुक जायगी, पुरुषार्थ नष्ट हो जायगा, आँखोंसे सूझ नहीं पड़ेगा, कान बहरे हो जायँगे और प्राणशक्ति क्षीण हो जायगी; वह पुरुष मोक्ष प्राप्त करता है। ऋषि, देवता और असुर सब इस लोकसे परलोकको चले

गये; हजारों प्रभावशाली राजाओंको पृथ्वी छोड़कर जाना पड़ा है—इस बातको जो सदा याद रखता है, वह मुक्त हो जाता है।

'संसारमें धन दुर्लभ है और क्लेश सुलभ। कुटुम्बके पालन-पोषणमें भी यहाँ बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। इतना ही नहीं, गुणहीन संतान तथा विपरीत गुणोंवाले मनुष्योंसे भी पाला पड़ता है। इस प्रकार संसारमें अधिकांश कष्ट ही दिखायी देता है—यह जानकर भी कौन मनुष्य मोक्षका आदर नहीं करेगा ? शास्त्रोंके अवलोकनसे ज्ञानवान् होकर जो सम्पूर्ण मानव-जगत्‌को असार समझता है, वह सब प्रकारसे मुक्त ही है। मेरे इस वचनको सुननेके पश्चात् तुम्हारी बुद्धि गृहस्थाश्रममें स्थिर हो या संन्यासाश्रममें; वहाँ ही रहकर मुक्तकी भाँति आचरण करो।'

राजा सगर अरिष्टनेमिके उपर्युक्त उपदेशको सुनकर मोक्षोपयोगी गुणोंसे युक्त हो प्रजाका पालन करने लगे।



राजा जनकको पराशर मुनिका उपदेश

(पराशर-गीता)

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! जैसे अमृत पीनेसे मन नहीं भरता, उसी तरह आपके वचन सुननेसे मुझे तृप्ति नहीं होती, इसलिये पूछता हूँ—पुरुष कौन-सा कर्म करे तो उसे इस लोक और परलोकमें परम कल्याणकी प्राप्ति हो सकती है ? यही बतानेकी कृपा करें।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इस विषयमें भी मैं पूर्ववत् तुम्हें एक प्राचीन प्रसंग सुना रहा हूँ। एक बार महायशस्वी



राजा जनकने महात्मा पराशरजीसे पूछा 'मुनिवर ! कौन-सा कर्म सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये इस लोक और परलोकमें भी कल्याणकारी है ?' राजाका यह प्रश्न सुनकर तपस्वी पराशर मुनिने उनपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे कहा।

पराशरजी बोले—राजन् ! धर्मका आचरण ही इस लोक और परलोकमें कल्याण करनेवाला है। धर्मकी शरण लेनेवाला मनुष्य स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। सभी आश्रमवाले धर्ममें आस्था रखकर अपने-अपने कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं। संसारमें जीवन-निर्वाहके लिये चार प्रकारकी जीविकाका विधान है (ब्राह्मणके लिये दान लेना, क्षत्रियके लिये कर लेना, वैश्यके लिये खेती आदि और शूद्रके लिये सेवा)। मनुष्य जिस वर्णमें उत्पन्न होते हैं, उसके अनुकूल जीविका भी इच्छानुसार प्राप्त हो जाती है। जिसने पूर्वजन्ममें शुभ कर्मोंका अनुष्ठान नहीं किया है, उसे सुख नहीं मिलता। देहत्यागके पश्चात् मनुष्यको पुण्यकर्मोंसे ही सुखकी प्राप्ति होती है। पहले जन्ममें जो कर्म नहीं किया गया है, उसका फल नहीं मिलता। लोग सदा इस बातको याद रखते हैं कि (मन, वाणी, चक्षु और हाथोंके द्वारा किये हुए) चार प्रकारके कर्म ही दूसरे जन्ममें फलकी प्राप्ति करानेवाले होते हैं। लोकयात्राके निर्वाह और मनकी शान्तिके लिये वैदिक वचनोंको प्रमाण माना गया है। मनुष्य नेत्र, मन, वाणी और क्रियाके द्वारा चार प्रकारके कर्म करते हैं; उनमें जिसका जैसा कर्म होता है, उन्हें वैसे ही फलकी प्राप्ति होती है। कर्मके फलरूपसे कभी केवल सुख, कभी केवल दुःख और कभी दोनों एक साथ प्राप्त होते हैं। पुण्य या पाप कोई भी कर्म क्यों न हो, फल भोगे बिना उसका नाश नहीं होता। जबतक मनुष्य पापके फलरूप दुःखके भोगसे छुटकारा नहीं पा जाता, तबतक उसका पुण्य अक्षयकी भाँति स्थित रहता है। जब पापजनित दुःखका भोग समाप्त हो जाता है, तब पुरुष अपने पुण्यकर्मके फलका उपभोग आरम्भ करता है। जब पुण्यका भी क्षय हो जाता है, तब फिर वह पापका फल भोगता है।

इन्द्रियसंयम, क्षमा, धैर्य, तेज, संतोष, सत्यभाषण, लज्जा, अहिंसा, दुर्व्यसनका अभाव तथा चतुरता—ये सब गुण सुख देनेवाले हैं। मनुष्यको जीवनपर्यन्त पाप या पुण्यमें ही आसक्त न होकर अपने मनको परमात्माके ध्यानमें लगानेका प्रयत्न करना चाहिये। जीव दूसरेके किये हुए शुभ अथवा अशुभ कर्मको नहीं भोगता। वह स्वयं जैसा करता है, वैसा फल पाता है। मनुष्य दूसरेके जिस कर्मकी निन्दा करता है, उसे स्वयं भी वह कर्म नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो दूसरेकी तो निन्दा करता है, किंतु स्वयं वैसे ही कर्ममें लगा रहता है; उसका जगत्में उपहास होता है। डरपोक क्षत्रिय, (भक्ष्याभक्ष्यका विचार न करके) सब कुछ खानेवाला और सत्यसे भ्रष्ट हुआ ब्राह्मण, बेरोजगार वैश्य, आलसी शूद्र, शीलरहित विद्वान्, सदाचारका पालन न करनेवाला कुलीन, दुराचारिणी स्त्री, विषयासक्त योगी, केवल अपने लिये भोजन बनानेवाला मनुष्य, मूर्ख वक्ता, राजासे हीन राष्ट्र तथा अजितेन्द्रिय होकर प्रजाके प्रति स्नेह न रखनेवाला राजा—ये सब शोकके योग्य हैं।

राजन्! आयु दुर्लभ वस्तु है, इसे पाकर आत्माको नीचे नहीं गिराना चाहिये; अपितु, पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करते हुए ऊँचे उठनेका प्रयत्न करना चाहिये। पुण्यकर्मसे ही मनुष्य उत्तम वर्णमें जन्म पाता है; पापीके लिये वह अत्यन्त दुर्लभ है। वह उसे न पाकर अपने पापके द्वारा अपना ही नाश कर लेता है। अनजानमें जो पाप बन जाय, उसे तपस्याके द्वारा नष्ट कर दे; क्योंकि अपना किया हुआ पाप पापरूप ही फल देता है। अतः दुःख देनेवाले पापकर्मका कभी सेवन न करे। पापका फल कितना कष्टप्रद है, इसे मैं जानता हूँ। उससे प्रभावित मनुष्य अनात्मामें ही आत्मबुद्धि करने लगता है। बिना रँगा हुआ वस्त्र धोनेसे स्वच्छ हो जाता है, किंतु जो काले रंगमें रँगा हो वह नहीं सफेद होता। इसी तरह पापको ही काले रंगके समान ही समझना चाहिये। जो स्वयं जान-बूझकर पाप करनेके पश्चात् उसका प्रायश्चित्त करनेके लिये पुनः शुभ कर्मका अनुष्ठान करता है; वह उन दोनोंका पृथक्-पृथक् फल भोगता है। अनजानमें जो हिंसा होती है, वह अहिंसाव्रतका पालन करनेसे दूर हो जाती है; किंतु स्वेच्छासे किये हुए पापको वह भी नहीं दूर कर सकती—ऐसा वेद-शास्त्रोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंका कथन है। परंतु मैं तो ऐसा मानता हूँ कि पुण्य या पाप जान-बूझकर हो या अनजानमें, उसका कुछ-न-कुछ फल होना ही है। देवता और मुनियोंने जो कर्म किये हैं, धर्मात्मा पुरुषको उनका अनुकरण नहीं करना चाहिये तथा सुनकर उन कर्मोंकी निन्दा भी नहीं करनी चाहिये। जो मनुष्य मनमें खूब सोच-विचारकर 'यह काम मुझसे हो सकेगा या नहीं?' इस बातका निश्चय करके शुभकर्मका अनुष्ठान करता है, वह अवश्य ही अपनी भलाई देखता है।

अतः राजाको चाहिये कि अपने उन्नतशील शत्रुओंको जीते। प्रजाका न्यायपूर्वक पालन करे, नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करके अग्निदेवको तृप्त करे तथा वैराग्य होनेपर मध्यम अवस्था या अन्तिम अवस्थामें वनमें जाकर रहे। राजन्! प्रत्येक पुरुषको इन्द्रियसंयमी और धर्मात्मा होकर समस्त प्राणियोंको अपने ही समान समझना चाहिये तथा जो विद्या, तप और अवस्थामें अपनेसे बड़े हों उनकी यथाशक्ति पूजा करनी चाहिये। नरेन्द्र! सत्यभाषण तथा अच्छे बर्तावसे ही सबको सुख मिलता है।

श्रेष्ठ पुरुषको दिया हुआ दान और श्रेष्ठ पुरुषसे प्राप्त हुआ प्रतिग्रह—इन दोनोंका महत्त्व बराबर है, तो भी प्रतिग्रह स्वीकार करनेकी अपेक्षा दाता होकर दान देना ही अधिक पवित्र माना गया है। जो धन न्यायसे प्राप्त हुआ हो और न्यायसे ही बढ़ाया गया हो, उसे धर्मके उद्देश्यसे यत्नपूर्वक बचाये रखना चाहिये—यह धर्मशास्त्रका निश्चय है। धर्म चाहनेवालेको क्रूर-कर्मके द्वारा धनका उपार्जन नहीं करना चाहिये। अधर्मसे सम्पत्ति बढ़ानेका विचार भी मनमें नहीं लाना चाहिये। जो (मौसमका विचार करके) अतिथिको ठंडा या गरम किया हुआ जल पवित्र भावसे अर्पण करता है, उसे भूखेको भोजन देनेके समान फल प्राप्त होता है। महात्मा राजा रन्तिदेवने फल-मूल और पत्तोंसे ऋषियोंका पूजन किया था और इसीसे उन्हें वह सिद्धि प्राप्त हुई, जिसकी सब लोग अभिलाषा करते हैं। महाराज शैब्यने भी फल और पत्तोंसे ही माठर मुनिको संतुष्ट किया था, जिससे उन्हें उत्तम लोक मिला। प्रत्येक मनुष्य देवता, अतिथि, भृत्यवर्ग और पितरोंका तथा अपना भी ऋणी होकर जन्म लेता है; अतः उसे उस ऋणसे मुक्त होनेका यत्न करना चाहिये। वेदोंका स्वाध्याय करके ऋषियोंके, यज्ञके अनुष्ठानसे देवताओंके, श्राद्धसे पितरोंके तथा स्वागत-सत्कारसे अतिथियोंके ऋणसे छुटकारा होता है। इसी प्रकार वेदवाणीके श्रवण-मनन, यज्ञशेष अन्नके भोजन तथा जीवोंकी रक्षा करनेसे मनुष्य अपने ऋणसे मुक्त होता है। पुत्रादि भृत्यवर्गके पालन-पोषणका आरम्भसे ही प्रबन्ध करना चाहिये; इससे उनके ऋणसे भी मुक्ति हो जाती है।

ऋषि-मुनियोंके पास धन नहीं था, फिर भी वे अपने

प्रयत्नसे ही सिद्ध हो गये। उन्होंने विधिपूर्वक अग्निहोत्र करके सिद्धि प्राप्त की थी। असित, देवल, नारद, पर्वत, कक्षीवान्, जमदग्निनन्दन परशुराम, आत्मज्ञानी ताण्ड्य, वसिष्ठ, जमदग्नि, विश्वामित्र, अत्रि, भरद्वाज, हरिश्मश्रु, कुण्डधार तथा श्रुतश्रवा आदि महर्षियोंने एकाग्रचित्त होकर ऋग्वेदकी ऋचाओंसे विष्णुका स्तवन किया तथा उन्हींकी कृपासे तपस्या करके उत्तम सिद्धि पायी। जो पूजाके योग्य नहीं थे, वे भी विष्णुका स्तवन करके पूजनीय संत होकर उन्हींको प्राप्त हो गये। इस लोकमें निन्दनीय आचरण करके किसीको भी अपने अभ्युदयकी आशा नहीं रखनी चाहिये। धर्मका पालन करते हुए जो धन प्राप्त होता है, वही सच्चा धन है। पापाचारसे प्राप्त होनेवाला धन तो धिक्कारके योग्य है। धनकी इच्छासे सनातन धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। राजेन्द्र! जो प्रतिदिन अग्निहोत्र करता है, वही धर्मात्मा है और वही पुण्य करनेवालोंमें श्रेष्ठ है; क्योंकि सम्पूर्ण वेद (दक्षिण, आहवनीय तथा गार्हपत्य—इन) तीन अग्नियोंमें ही स्थित हैं। जिसका सदाचार कभी लुप्त नहीं होता, वह ब्राह्मण (अग्निहोत्र न करनेपर भी) अग्निहोत्री ही है। सदाचार सम्पादित होनेपर अग्निहोत्र न हो सके तो भी अच्छा है, किंतु सदाचारका त्याग करके केवल अग्निहोत्र करना कदापि कल्याणकारक नहीं है। अग्नि, आत्मा, माता, जन्म देनेवाले पिता तथा गुरु—इन सबकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिये। जो अभिमानका त्याग करके वृद्ध पुरुषोंकी सेवा करता, विद्वान् एवं कामनाहीन होकर सबको प्रेमभावसे देखता, चालाकीसे रहित हो धर्मका आचरण करता और दूसरोंका दमन नहीं करता है, वह इस लोकमें श्रेष्ठ है तथा सत्पुरुष भी उसका आदर करते हैं।

शूद्रके लिये तीनों वर्णोंकी सेवा ही उत्तम वृत्ति है। यदि वह प्रेमके साथ उसका पालन करे तो वह उसे धर्मिष्ठ बनाती है। मेरा तो ऐसा विचार है कि धर्मके जाननेवाले सत्पुरुषोंके संसर्गमें रहना हर हालतमें अच्छा है, किंतु दुष्ट पुरुषोंका सङ्ग किसी भी दशामें उत्तम नहीं है। साधु पुरुषोंके समीप रहनेसे नीच वर्णका मनुष्य भी प्रतिभाशाली हो जाता है। श्वेत वस्त्रको जैसे रंगमें रँगा जाता है, वैसा ही उसका रूप हो जाता है; इसी प्रकार जैसा सङ्ग किया जाता है, वैसा ही रंग अपने ऊपर चढ़ता है। इसलिये गुणोंमें ही अनुराग करना चाहिये, दोषोंमें नहीं; क्योंकि मनुष्योंका जीवन अनित्य और चञ्चल है। जो विद्वान् सुख और दुःख दोनों अवस्थाओंमें शुभ कर्मका ही अनुष्ठान करता है, वही शास्त्रके तत्त्वको जानता है। धर्मके विपरीत कर्म यदि लोकमें बहुत लाभदायक हो तो भी बुद्धिमान् पुरुषको उसका सेवन नहीं करना चाहिये; क्योंकि उससे अपना हित नहीं होता। जो राजा दूसरोंकी हजारों गौएँ छीनकर दान करता है और प्रजाकी रक्षा नहीं करता, वह नाममात्रके लिये ही दानी है, उसे उसका कुछ फल नहीं मिलता। वास्तवमें तो वह राजा नहीं, लुटेरा है। जो राजा प्रतिदिन ब्राह्मणोंका सत्कार करके उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार जितना हो सके उतना दान करता है, उसको उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। स्वयं ही ब्राह्मणके पास जाकर उसे संतुष्ट करते हुए जो दान दिया जाता है, वह सर्वोत्तम माना गया है। याचना करनेपर दिये हुए दानको विद्वानोंने मध्यम बताया है और अवहेलना तथा अश्रद्धाके साथ जो कुछ दिया जाता है, उस दानको सत्यवादी मुनि अधम कहते हैं। मनुष्य संसार-सागरमें डूब रहा है उसे नाना प्रकारके उपायोंद्वारा सदा इसके पार उतरनेका प्रयत्न करना चाहिये। जिस तरह भी बन्धनसे छुटकारा मिले, वैसा उद्योग करना उचित है। ब्राह्मण इन्द्रियसंयमसे, क्षत्रिय युद्धमें विजय पानेसे, वैश्य धनसे और शूद्र सेवा-कार्यमें चतुराई रखनेसे शोभा पाता है।

ब्राह्मणके यहाँ प्रतिग्रहसे मिला हुआ, क्षत्रियके घर युद्धसे जीतकर लाया हुआ, वैश्यके पास न्यापूर्वक (खेती आदिसे) कमाया हुआ और शूद्रके यहाँ सेवासे प्राप्त हुआ थोड़ा भी धन हो तो उसे उत्तम माना गया है। उस धनका यदि धर्म-कार्यमें उपयोग किया जाय तो वह महान् फल देनेवाला होता है। ब्राह्मण यदि जीविकाके अभावमें क्षत्रिय अथवा वैश्यके धर्मसे जीवन-निर्वाह करे तो पतित नहीं होता; किंतु जब वह शूद्रके धर्मको अपनाता है तो तत्काल पतित हो जाता है। जब शूद्र सेवावृत्तिसे जीविका न चला सके तो उसके लिये भी व्यापार, पशुपालन तथा शिल्पकला आदिसे जीवन-निर्वाह करनेकी आज्ञा है। रंगमञ्चपर नाचना या खेल दिखाना, बहुरूपियेका काम करना, मदिरा और मांस बेचकर जीविका चलाना तथा लोहे और चमड़ेकी बिक्री करना—ये सब काम निन्दनीय हैं, शूद्र भी यदि पूर्व परम्परासे उसके घरमें ये काम न होते आये हों तो स्वयं इनका आरम्भ न करे और जिसके यहाँ पहलेसे इनके करनेकी प्रथा हो वह भी छोड़ दे तो महान् धर्म होता है। यदि सिद्धि प्राप्त करनेके पश्चात् कोई पुरुष घमंडमें आकर पापाचरण करने लगे तो उसका अनुकरण नहीं करना चाहिये। पुराणोंमें सुना जाता है कि पहले अधिकांश मनुष्य संयमी, धार्मिक और न्यायका अनुसरण करनेवाले थे। उस समय अपराधियोंको धिक्कारमात्रका ही दण्ड दिया जाता था। संसारके मनुष्योंमें सदा धर्मकी ही प्रशंसा होती थी। धर्ममें बढ़े-चढ़े लोग सद्गुणोंका ही सेवन करते थे; किंतु धर्मका यह

प्रचार असुरोंसे नहीं सहा गया। वे क्रमशः बढ़कर सम्पूर्ण प्रजाके शरीरमें व्याप्त हो गये। तब प्रजाओंमें धर्मको नष्ट करनेवाले दर्प (घमंड) का प्रादुर्भाव हुआ। दर्पके बाद क्रोध उत्पन्न हुआ। क्रोधसे आक्रान्त होनेपर उनकी लाज छूट गयी और विनययुक्त सदाचारका लोप हो गया। फिर मोह प्रकट हुआ। मोहसे अब उनमें पहलेकी भाँति विचारशक्ति न रही और सब लोग अपने-अपने सुखके लिये दूसरोंको कष्ट पहुँचाने लगे। अब उन्हें राहपर लानेमें धिक्कारका दण्ड सफल न हो सका। सभी मनुष्य देवता और ब्राह्मणोंका अपमान करके मनमाना व्यवहार करने लगे।

यह अवस्था आ जानेपर सम्पूर्ण देवता भगवान् शंकरकी शरण गये। तब शिवजीने देवताओंके तेजसे प्रबल हुए एक ही बाणके द्वारा तीन नगरोंसहित आकाशमें विचरनेवाले समस्त असुरोंको मारकर पृथ्वीपर गिरा दिया। उन असुरोंका स्वामी भयंकर आकारवाला तथा भीषण पराक्रम दिखलानेवाला था। देवताओंको उससे बड़ा भय होता था; किंतु भगवान् शूलपाणिने उसे भी मौतके घाट उतार दिया। उसके मारे जानेपर सब मनुष्य प्रकृतिस्थ हो गये तथा उन्हें पूर्ववत् वेद और शास्त्रोंका ज्ञान हो गया। तत्पश्चात् सप्तर्षियोंने इन्द्रको स्वर्गमें देवताओंके राज्यपर अभिषिक्त किया और वे स्वयं मनुष्योंके शासनकार्यमें लग गये। सप्तर्षियोंके बाद विपृथु नामक राजा भूमण्डलका स्वामी हुआ तथा और भी बहुत-से क्षत्रिय छोटे-छोटे मण्डलोंके अधिपति हुए।

इसलिये मैं शास्त्रके अनुसार खूब सोच-विचारकर कहता हूँ, मनुष्यको सिद्धि तो अवश्य प्राप्त करनी चाहिये, किंतु हिंसात्मक कर्म त्याग देना चाहिये। बुद्धिमान् धर्म करनेके लिये न्यायका त्याग कर पापमिश्रित मार्गसे धनका संग्रह न करे; क्योंकि उससे कल्याण नहीं होता। राजन्! तुम भी इसी तरह जितेन्द्रिय क्षत्रिय बनकर बन्धु-बान्धवोंसे प्रेम रखते हुए प्रजा, भृत्य और पुत्रोंका स्वधर्मके अनुसार पालन करो। इष्ट-अनिष्टकी प्राप्ति, वैर और प्रेमका अनुभव करते-करते जीवके हजारों जन्म बीत जाते हैं। इसलिये तुम (यदि कल्याण चाहते हो तो) सद्गुणोंमें ही अनुराग करो, दोषोंमें नहीं। महाराज! मनुष्योंमें जैसी धर्म-अधर्मकी प्रवृत्ति होती है, वैसी मनुष्येतर प्राणियोंमें नहीं होती। धर्मपरायण विद्वान् सबको आत्मभावसे देखता हुआ संसारमें विचरता रहे। किसी भी जीवकी हिंसा न करे। जब मनुष्यका मन कामना और संस्कारोंसे रहित तथा असत्यसे दूर हो जाता है, उस समय वह कल्याणको प्राप्त होता है।

गृहस्थाश्रममें मनुष्यका गौ, खेती-बारी, धन-दौलत, स्त्री-पुत्र और भृत्योंसे सम्बन्ध हो जाता है और इस प्रकार प्रवृत्तिमार्गमें रहकर वह प्रतिदिन इन वस्तुओंको देखता है; किंतु इनकी अनित्यताको नहीं जानता, इसलिये उसके मनमें राग और द्वेष बढ़ने लगते हैं। राग-द्वेषके वशीभूत होकर जब मनुष्य द्रव्यमें आसक्त हो जाता है, तो मोहकी कन्या रति आकर उसे अपने वशमें कर लेती है। रतिकी उपासना करनेवाले सभी लोग भोगीको ही कृतार्थ समझते हैं और रतिके द्वारा जो विषय-सुख प्राप्त होता है, उससे बढ़कर वे दूसरा कोई सुख नहीं मानते। फिर उनके मनपर लोभका अधिकार हो जाता है और वे आसक्तिवश अपने परिजनोंकी संख्या बढ़ाने लगते हैं। इसके बाद उनके पालन-पोषणके लिये धनकी इच्छा होती है। यद्यपि मनुष्य जानता है कि अमुक काम करना पाप है, फिर भी वह धनके लिये उसे कर ही डालता है तथा बाल-बच्चोंके स्नेहमें डूबे रहनेके कारण, जब उनमेंसे कोई मर जाता है तो उनके लिये वह बारंबार संतप्त होता है। धनसे जब लोकमें सम्मान बढ़ता है तो वह सदा इस बातका प्रयत्न करता है कि कभी अपनी हेठी न होने पावे। भोग-विलासकी सामग्रियोंसे सम्पन्न होनेके लिये जो कुछ आवश्यक समझता है, उसे ही वह करता है और उसीसे एक दिन नष्ट हो जाता है। वास्तवमें जो शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं और उनसे सुख पानेकी इच्छा नहीं रखते, उन समत्वबुद्धिसे युक्त ब्रह्मवादी पुरुषोंको ही सनातन पदकी प्राप्ति होती है। संसारी जीवोंको तो जब उनके स्नेहके आधारभूत स्त्री-पुत्र आदिका नाश हो जाता, धन चला जाता और रोग तथा चिन्तासे कष्ट उठाना पड़ता है, तभी वैराग्य होता है। वैराग्यसे आत्मतत्त्वकी जिज्ञासा होती है। जिज्ञासासे शास्त्रोंके स्वाध्यायमें मन लगता है, स्वाध्यायसे उसके मनमें यह बात बैठ जाती है कि तप ही कल्याणका साधन है। राजन्! संसारमें ऐसा विवेकी मनुष्य दुर्लभ है, जो स्त्री-पुत्र आदि प्रेय-सुखोंकी ओरसे उदासीन होकर (श्रेयकी प्राप्तिके लिये) तपमें प्रवृत्त होनेका ही निश्चय करता है। तपमें सबका अधिकार है, हीन वर्णके लिये भी (अपने अधिकारके अनुसार) तपका विधान है; तप ही जितेन्द्रिय एवं मनोनिग्रह-सम्पन्न पुरुषको स्वर्गकी राहपर लानेवाला है। पूर्वकालमें प्रजापतिने ब्रह्मपरायण और व्रतमें स्थित होकर तपके द्वारा ही संसारकी सृष्टि की थी। आदित्य, वसु, रुद्र, अग्नि, अश्विनीकुमार, विश्वेदेव, साध्य, पितर, मरुद्गण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध तथा दूसरे स्वर्गवासी देवता तपसे ही सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। ब्रह्माजीने पूर्वकालमें जिन (मरीचि आदि) ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया था, वे तपके ही प्रभावसे पृथ्वी और आकाशको पवित्र करते हुए सर्वत्र विचरते

थे। मर्त्यलोकमें जो गृहस्थ राजे-महराजे उत्तम कुलोंमें उत्पन्न देखे जाते हैं, वह सब उनकी तपस्याका ही फल है। त्रिभुवनमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो तपस्यासे दुष्प्राप्य हो।

अतः मनुष्य सुखमें हो या दुःखमें; मन और बुद्धिसे शास्त्रका विचार करके लोभका परित्याग कर दे। असंतोषसे दुःख होता है। लोभसे मन और इन्द्रियोंमें भ्रान्ति होती है। भ्रान्ति होनेपर अभ्यासरहित विद्याकी भाँति मनुष्यकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धिका नाश हो जानेपर वह विवेक खो बैठता है; इसलिये दुःखकी अवस्थामें मनुष्यको उग्र तपस्या करनी चाहिये। जो अपनेको प्रिय जान पड़ता है, उसे सुख कहते हैं तथा जो मनके प्रतिकूल होता है, वह दुःख कहलाता है। तपस्या करनेसे सुख और न करनेसे दुःख होता है। इस प्रकार तप करने और न करनेका जो फल है, उसको तुम भलीभाँति समझ लो। जो पापरहित तपका अनुष्ठान करता है, वह सदा कल्याणका भागी होता है तथा जिस पुरुषको धर्म, तप और दान करनेकी इच्छा नहीं होती, वह पापका ही आचरण करता और नरकमें पड़ता है। मनुष्य सुखमें हो या दुःखमें, जो सदाचारसे कभी विचलित नहीं होता, वही शास्त्रदर्शी माना जाता है। बाणको धनुषसे छूटकर पृथ्वीपर गिरनेमें जितनी देर लगती है, उतना ही समय स्पर्शेन्द्रिय, रसना, नेत्र, नासिका और कानके विषयोंका सुख अनुभव करनेमें लगता है तथा जब वह सुख नष्ट हो जाता है तो उसके लिये मनमें बड़ी वेदना होती है। इतनेपर भी अज्ञानी पुरुष (विषयोंके सुखमें ही लिप्त रहते हैं; वे) सर्वोत्तम मोक्ष-सुखकी प्रशंसा नहीं करते। सदा धर्म-पालन करनेवाले मनुष्यको कभी धन और भोगोंकी कमी नहीं होती; अतः गृहस्थ पुरुषको बिना प्रयत्नके प्राप्त हुए विषयका ही सेवन करना चाहिये। मेरे विचारसे प्रयत्न तो स्वधर्मोपार्जनके लिये ही करना उचित है। जब उत्तम कुलमें उत्पन्न, सम्मानित तथा शास्त्रके अर्थको जाननेवाले पुरुषोंका और असमर्थताके कारण कर्म-धर्मसे रहित एवं आत्मतत्त्वसे अनभिज्ञ मनुष्योंका भी लौकिक कर्म नष्ट हो जाता है तो तपके सिवा दूसरा कोई कर्म नहीं है, जो उन्हें अक्षय फल देनेवाला हो। गृहस्थको सर्वथा अपने कर्तव्यका निश्चय करके स्वधर्मका पालन करते हुए कुशलतापूर्वक यज्ञ तथा श्राद्ध आदि कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। जैसे सम्पूर्ण नदियाँ और नद समुद्रमें जाकर मिलते हैं, उसी प्रकार समस्त आश्रमी गृहस्थके ही सहारे जीवन धारण करते हैं।



राजा जनकके भिन्न-भिन्न प्रश्न और पराशरजीद्वारा उनके समाधान

(पराशर-गीता)

राजा जनकने कहा—भगवन्! अब आप पहले मुझे वर्णोंके विशेष धर्म बतलाइये; फिर सामान्य धर्मोंका भी वर्णन कीजिये; क्योंकि आप सब विषयोंका प्रतिपादन करनेमें कुशल हैं।

पराशरजीने कहा—राजन्! दान लेना, यज्ञ कराना और विद्या पढ़ाना—ये ब्राह्मणके विशेष धर्म हैं। प्रजाकी रक्षा करना क्षत्रियके लिये उत्तम है। खेती, गोरक्षा और व्यापार—ये वैश्यके प्रधान कर्म हैं तथा द्विजातियोंकी सेवा शूद्रका मुख्य धर्म है। ये वर्णोंके विशेष धर्म बताये गये हैं; अब इनके सामान्य धर्मोंका वर्णन विस्तारके साथ सुनो। दया, अहिंसा, सावधानी, दान, श्राद्धकर्म, अतिथि-सत्कार, सत्य, अक्रोध, अपनी ही पत्नीमें संतुष्ट रहना, पवित्रता रखना, किसीके दोष न देखना, आत्मज्ञान तथा सहनशीलता—ये सामान्य धर्म हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य—इन तीन वर्णोंको द्विजाति कहते हैं; उपर्युक्त धर्मोंमें इन तीनोंका समान अधिकार है। उक्त तीनों वर्ण विपरीत कर्मका आचरण करनेपर नीचे गिरते हैं और अपने वर्णोचित कर्ममें स्थित रहकर उन्नति प्राप्त करते हैं। शूद्र-जातिके लिये किसी वैदिक संस्कारका विधान नहीं है। उसे वेदोक्त कर्मोंके अनुष्ठानका भी अधिकार नहीं है; किंतु पूर्वोक्त साधारण धर्मोंका उसके लिये भी निषेध नहीं किया गया है। हीन वर्णके मनुष्य यदि अपना उद्धार करना चाहें तो सदाचारका पालन करते हुए आत्माको उन्नत बनानेवाली समस्त क्रियाओंका अनुष्ठान करें; किंतु वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण न करें—ऐसा करनेसे वे दोषके भागी नहीं होते। इतरजातीय मनुष्य भी ज्यों-ज्यों सदाचारका अनुष्ठान करते हैं, त्यों-ही-त्यों सुख पाकर इहलोक और परलोकमें भी आनन्द भोगते हैं।

राजा जनकने पूछा—महामुने! मनुष्य अपने कर्मसे दोषका भागी होता है या जातिसे? मेरे मनमें यह संदेह उत्पन्न हुआ है; आप इसका समाधान कीजिये।

पराशरजीने कहा—महाराज! इसमें संदेह नहीं कि कर्म और जाति दोनों ही दोषकारक होते हैं; किंतु इसमें जो विशेष

बात है, उसे बताता हूँ, सुनो—जाति और कर्ममेंसे किसीका भी आश्रय लेकर बुरे कर्मोंका सेवन नहीं करना चाहिये। जातिसे दूषित (चाण्डाल आदि) होकर भी जो पाप नहीं करता, वह पुरुष दोषका भागी नहीं होता। किंतु जो जातिसे उत्तम होकर भी निन्दाके योग्य कर्म करता है, उसका वह कर्म उसको दूषित बना देता है; अतः नीच जातिकी अपेक्षा नीच कर्म ही बुरा है।

जनकने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! इस संसारमें कौन-कौन-से ऐसे धर्मानुकूल कर्म हैं, जिनसे कभी किसी भी प्राणीकी हिंसा नहीं होती।

पराशरजीने कहा—महाराज! जो कर्म अहिंसाके अनुकूल तथा सदा मनुष्यकी रक्षा करनेवाले हैं, उन्हें बताता हूँ, सुनो—जो लोग अग्निहोत्रको त्याग संन्यास धारण कर उदासीनभावसे सब कुछ देखते रहते हैं, वे सब प्रकारकी चिन्ताओंसे रहित हो क्रमशः कल्याणपथपर आ जाते हैं और प्रश्रय, विनय, इन्द्रियसंयम तथा उत्तम व्रतोंसे युक्त हो समस्त कर्मोंका परित्याग करके जरा-मृत्युसे रहित अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं। राजन्! सभी वर्णके लोग यदि हिंसाप्रधान कर्मोंको त्यागकर धर्मका पालन और सत्यभाषण करने लगें तो वे निःसंदेह स्वर्ग प्राप्त कर सकते हैं।

जो पिता, मित्र, गुरु तथा धर्मपत्नीके प्रति यथायोग्य प्रेम नहीं रखते, उन गुणहीन मनुष्योंको पिता आदिसे कोई सुख नहीं मिलता; परंतु जो उनके अनन्य भक्त, प्रियवादी, हितसाधनमें तत्पर और उनके वशमें रहनेवाले हैं, उन्हें पिता आदिके सेवनका यथायोग्य फल अवश्य प्राप्त होता है। पिता मनुष्योंके लिये सर्वश्रेष्ठ देवता है, ज्ञानकी प्राप्ति सबसे बड़ा लाभ है तथा जिन्होंने इन्द्रियों और उनके विषयोंको जीत लिया है, वे ही परमात्माको प्राप्त करते हैं। क्षत्रियका बालक यदि रणाङ्गणमें घायल होकर बाणोंकी चितापर भस्म होता है तो वह देवदुर्लभ लोकोंमें जाता है और वहाँ आनन्दपूर्वक रहकर स्वर्गीय सुख भोगता है। राजन्! जो युद्धमें थका हुआ हो, भयभीत हो, जिसने हथियार नीचे डाल दिया हो, जो रोता हो, पीठ दिखाकर भाग रहा हो, जिसके पास युद्धका कोई भी सामान न रह गया हो, जो युद्धका उद्योग छोड़ चुका हो, रोगी हो, प्राणोंकी भिक्षा चाहता हो तथा बालक या वृद्ध हो; उसका वध नहीं करना चाहिये। हाँ, जिसके पास लड़ाईका सामान हो, जो युद्ध करनेके लिये तैयार हो और अपने बराबरका हो, उस क्षत्रियको जीतनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। अपने समान या अपनेसे बड़े वीरके हाथसे मरना अच्छा माना गया है। अपनेसे हीन, कातर अथवा दीन पुरुषके हाथ होनेवाली मृत्यु निन्दित है; क्योंकि पाप करनेवाले पापी और अधम श्रेणीके मनुष्यके हाथसे जो वध होता है, वह पापरूप ही माना जाता है तथा वह नरकमें गिरानेवाला है—यही शास्त्रका निश्चय है। मौतके वशमें पड़े हुएको कोई बचा नहीं सकता तथा जिसकी आयु शेष है, उसे कोई मार भी नहीं सकता। मरनेकी इच्छावाले गृहस्थोंके लिये तो वही मृत्यु सबसे उत्तम मानी गयी है, जो किसी पवित्र नदीके तटपर शुभकर्मोंका अनुष्ठान करते हुए प्राप्त हो।

संसारके समस्त प्राणियोंमें चलने-फिरनेवाले जीव श्रेष्ठ माने गये हैं। इनमें भी मनुष्य और मनुष्योंमें भी द्विज उत्तम हैं। द्विजोंमें बुद्धिमान् तथा बुद्धिमानोंमें भी विचारकुशल श्रेष्ठ समझे जाते हैं। उनमें भी जो अहंकाररहित हैं, उन्हें सर्वश्रेष्ठ माना गया है। सूर्यके उत्तरायण होनेपर उत्तम नक्षत्र तथा पवित्र मुहूर्तमें जिसकी मृत्यु हो, उसे पुण्यात्मा जानना चाहिये। वह किसीको भी कष्ट न देकर (प्रायश्चित्तके द्वारा) अपने पापको नष्ट कर डालता और शक्तिके अनुसार शुभकर्म करके स्वेच्छासे मृत्युको अङ्गीकार करता है। विष खा लेनेसे, गलेमें फाँसी लगानेसे, आगमें जलनेसे, लुटेरोंके हाथसे तथा दाढ़वाले पशुओंके आघातसे जो वध होता है, वह भी अधम श्रेणीका माना जाता है। पुण्यकर्म करनेवाले मनुष्य इस तरहके उपायोंसे प्राण नहीं देते तथा ऐसे ही दूसरे-दूसरे अधम उपायोंसे भी उनकी मृत्यु नहीं होती। राजन्! पुण्यात्मा पुरुषोंके प्राण ब्रह्मरन्ध्रको भेद कर निकलते हैं। जिनमें पुण्यका भाग आधा ही है अर्थात् जो पाप-पुण्य दोनोंसे युक्त हैं, उनके प्राण मध्य द्वार (मुख, नेत्र आदि) से बाहर होते हैं तथा जिन्होंने केवल पाप ही किया है, उनके प्राण अधोमार्ग (गुदा या शिश्न) से निकलते हैं।

पुरुषका एक ही शत्रु है, उसके समान दूसरा कोई शत्रु नहीं है, वह है अज्ञान; जिससे आवृत और प्रेरित होकर मनुष्य अत्यन्त घोर और कठोर कर्म करने लगता है। उस शत्रुको पराजित करनेमें वही समर्थ हो सकता है, जो वेदोक्त धर्मके पालनपूर्वक वृद्ध पुरुषोंकी सेवा करके प्रज्ञा (स्थिरबुद्धि) प्राप्त कर ले; क्योंकि अज्ञानमय शत्रुको जीतना प्रयत्नसाध्य है, वह प्रज्ञारूपी बाणकी चोट खाकर ही नष्ट होता है। द्विजको पहले ब्रह्मचर्य-आश्रममें रहकर वेदाध्ययन एवं तपस्या करनी चाहिये। फिर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके अपनी शक्तिके अनुसार इन्द्रियसंयमपूर्वक पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान करना चाहिये। तत्पश्चात् अपने पुत्रको घर-बारकी रक्षामें नियुक्तकर कल्याण-मार्गमें स्थित हो धर्मपालनकी इच्छासे वनमें प्रवेश करना चाहिये।

राजन्! मनुष्यकी योनि ही वह अद्वितीय योनि है, जिसे पाकर शुभकर्मोंके अनुष्ठानसे आत्माका उद्धार किया जा सकता है। 'कौन-सा ऐसा उपाय करें, जिससे हमें इस मनुष्ययोनिसे नीचे न गिरना पड़े' यह सोचकर और वैदिक प्रमाणोंपर विचार करके सब लोगोंको धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर भी जो दूसरोंसे द्वेष और धर्मका अनादर करता है तथा कामनाओंमें आसक्त हो जाता है, वह महान् लाभसे वञ्चित होता है। जो मनुष्य समस्त प्राणियोंको स्नेहभरी दृष्टिसे देखता है तथा सब लोगोंको सान्त्वना और अन्न देकर सबसे मीठे वचन बोलकर सभीके सुख-दुःखमें समान-भावसे हाथ बँटाता है, वह परलोकमें सम्मानित स्थान प्राप्त करता है। राजन्! सरस्वती नदी, नैमिषारण्यक्षेत्र, पुष्करक्षेत्र तथा और भी जो पृथ्वीके पावन तीर्थ हैं, उनमें जाकर दान और त्याग करे, शान्तभावसे रहे तथा तपस्या और तीर्थके जलसे अपने शरीरकी शुद्धि करे। मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार इष्टि, पुष्टि (शान्तिकर्म), यजन, याजन, दान, पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान तथा श्राद्ध आदि जो भी उत्तम कार्य करता है, वह सब यह अपने ही लिये करता है। धर्मशास्त्र और षडङ्गोंसहित वेद पुण्यकर्म करनेवाले पुरुषके कल्याणके ही लिये धर्मका उपदेश करते हैं।

भीष्मजी कहते हैं—महात्मा पराशर मुनिने जब मिथिलानरेशको इस प्रकार उपदेश दिया तो उन्होंने पुनः प्रश्न किया।

राजा जनकने पूछा—ब्रह्मन्! श्रेयका साधन क्या है? उत्तम गति कौन-सी है? कौन-सा कर्म नष्ट नहीं होता तथा कहाँ जानेपर जीवको यहाँ फिर लौटना नहीं पड़ता?

पराशरजीने कहा—राजन्! आसक्तिका अभाव तथा ज्ञान—ये श्रेयकी जड़ हैं। ज्ञानसे प्राप्त होनेवाली गति ही सबसे उत्तम गति है। स्वयं किया हुआ तप तथा सुपात्रको दिया हुआ दान—ये कभी नष्ट नहीं होते। जो अधर्ममय बन्धनका उच्छेद करके धर्ममें अनुरक्त हो जाता और सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदान कर देता है, उसे उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। जो एक हजार गौ तथा एक सौ घोड़े दान करता है, तथा जो सब भूतोंको अभयदान देता है—इनमें अभयदान करनेवाला गौ और अश्वदान करनेवालेसे सदा बढ़ा-चढ़ा रहता है। विशुद्ध बुद्धिवाला पुरुष विषयोंके बीचमें रहता हुआ भी (असङ्ग होनेके कारण) उनमें नहीं रहनेके बराबर है; किंतु जिसकी बुद्धि दूषित होती है, वह विषयोंके निकट न होनेपर भी सदा उन्हींमें रहता है। जैसे पानी कमलके पत्तेमें नहीं सटता, उसी प्रकार अधर्म ज्ञानी पुरुषको नहीं लिप्त कर सकता; किंतु जिस तरह लाह काठमें अधिक चिपट जाती है, वैसे ही पाप अज्ञानी मनुष्यको विशेशरूपसे बाँधता है। अधर्म केवल फलप्रदानके अवसरकी प्रतीक्षा करता रहता है, वह कर्ताका त्याग नहीं करता। कर्ताको समय आनेपर उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। जो प्रमादवश ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंके द्वारा होनेवाले पापोंपर विचार नहीं करता तथा शुभ और अशुभमें आसक्त रहता है, उसे महान् भयकी प्राप्ति होती है। परंतु जो वीतराग होकर क्रोधको जीत लेता और सदाचारका पालन करता है, वह विषयोंमें रहकर भी पाप नहीं करता। जैसे प्रवाहके सामने सुदृढ़ बाँध बाँध देनेपर जल बढ़ता है, उसी प्रकार जो धर्मकी बाँध बाँधकर मर्यादाके भीतर आबद्ध रहता है, उसका शक्ति-संचय बढ़ता ही रहता है, उसे कभी दुःख नहीं उठाना पड़ता। जिस प्रकार शुद्ध सूर्यकान्तमणि सूर्यके तेजको ग्रहण कर लेती है, उसी प्रकार साधक समाधिके द्वारा ब्रह्मके स्वरूपको ग्रहण करता है। जैसे तिलका तेल भिन्न-भिन्न प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे वासित होकर अत्यन्त मनोरम गन्ध ग्रहण करता है, वैसे ही शुद्धचित्त पुरुषोंका सत्त्वगुण सत्पुरुषोंके सङ्गके अनुसार बढ़ता है; परंतु जिसकी बुद्धि विषयोंमें आसक्त हो जाती है, उसे किसी तरह अपने हितका ज्ञान नहीं रहता। जैसे मछली काँटेमें गुँथे हुए मांसपर आकृष्ट होती है, उसी प्रकार वह सब प्रकारकी वासनाओंसे वासित चित्तके द्वारा विषयोंकी ओर आकृष्ट होकर दुःख भोगता है। पुरुषके लिये धर्म करनेका कोई खास समय नहीं नियत है; क्योंकि मृत्यु किसीकी बाट नहीं जोहती। जब मनुष्य हमेशा मौतके मुखमें ही है, तो सदा धर्मका आचरण करते रहना ही उसके लिये शोभाकी बात है। जैसे अंधा प्रतिदिनके अभ्याससे ही सावधानीके साथ बाहरसे अपने घरमें आ जाता है, उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य योगयुक्त चित्तके द्वारा उस परम गतिको प्राप्त कर लेता है। जन्ममें मृत्यु और मृत्युमें जन्म निहित है। जो मोक्ष-धर्मको नहीं जानता, वह अज्ञानी संसारमें आबद्ध होकर जन्म-मृत्युके चक्रमें घूमता रहता है। ज्ञानमार्गसे चलनेवालेको इहलोकमें भी सुख मिलता है और परलोकमें भी। विस्तार (अर्थात् अग्निहोत्र और बृहद्यज्ञ-यागादि कर्म) क्लेशसाध्य हैं तथा संक्षेप (यानी त्याग आदि साधन) सुखपूर्वक होनेवाले हैं। इनमेंसे कर्मविस्तार तो परार्थ है—अनात्मभूत स्वर्गादि लोकोंकी प्राप्ति करानेवाले हैं; किंतु त्याग (संक्षेप) आत्माका कल्याण करनेवाला माना गया है।

जैसे (पानीसे निकालते समय) कमलकी नालमें लगी

हुई कीचड़ तुरंत धुल जाती है, उसी प्रकार त्यागी पुरुषका आत्मा मनके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। मन आत्माको योगकी ओर ले जाता है और योगी इस मनको योगयुक्त (आत्मामें लीन) करता है। इस प्रकार जब वह योगमें सिद्धि प्राप्त कर लेता है तो उसे परमात्माका साक्षात्कार होने लगता है। जो परके लिये अर्थात् इन बाह्य इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये विषय-भोगोंमें प्रवृत्त होकर इसे अपना मुख्य कार्य समझता है, वह अपने वास्तविक कर्तव्यसे च्युत हो जाता है। जो विषय-भोगोंमें आसक्त है, वह कदापि मुक्त नहीं हो सकता। किंतु जो भोगोंको त्याग देता है, वही मुक्त होनेका निश्चय करता है। जैसे जन्मका अंधा रास्तेको नहीं देखता, वैसे ही शिश्नोदरपरायण एवं अज्ञानसे आवृत जीव मायारूप कुहासासे आच्छन्न होनेके कारण मोक्षके मार्गको नहीं समझ पाता। जैसे वैश्य समुद्रमार्गसे व्यापार करने जाकर अपने मूलधनके अनुसार द्रव्य कमाकर लाता है, उसी प्रकार संसार-सागरमें व्यापार करनेवाला जीव अपने कर्म और विज्ञानके अनुरूप उत्तम गति पाता है। दिन और रात्रिमय संसारमें बुढ़ापाका रूप धारण करके घूमती हुई मृत्यु समस्त प्राणियोंको उसी प्रकार खाती रहती है, जैसे साँप हवा पीया करता है। जीव जगत्में जन्म लेकर अपने पूर्वकृत कर्मोंका ही फल भोगता है। पूर्वजन्ममें कुछ किये बिना यहाँ किसीको इष्ट या अनिष्टकी प्राप्ति नहीं होती। मनुष्य सोता हो, बैठा हो, चलता हो या विषयभोगमें लगा हो, उसके शुभाशुभ कर्म हर समय साथ लगे रहते हैं। बीच समुद्रसे किनारे पहुँचकर फिर कोई उसमें तैरनेका साहस नहीं करता, उसी प्रकार संसार-सागरसे पार हुए जीवका फिर उसमें पड़ना असम्भव दिखायी देता है। जैसे समुद्रमें सब ओरसे बहुत-सी नदियाँ आकर मिलती हैं, उसी प्रकार मन योगके वशीभूत होकर मूलप्रकृतिमें लीन हो जाता है।

जिनका मन नाना प्रकारके स्नेहबन्धनोंमें जकड़ा हुआ है, वे अज्ञानके वशमें पड़े हुए जीव बालूके मकानकी तरह ढहकर नष्ट हो जाते हैं। जो देहधारी इस शरीरको ही घर और बाहर—भीतरकी पवित्रताको ही तीर्थ समझकर ज्ञानमार्गसे चलता है, उसे इस लोक और परलोकमें भी सुख मिलता है। कोई-न-कोई संकल्प (मनोरथ) लेकर ही लोग मित्र बनते हैं, कुटुम्बीलोग भी किसी हेतुसे ही नाता रखते हैं, और तो क्या, स्त्री, पुत्र और सेवक भी अपने धनके ही भूखे होते हैं। माता-पिता भी किसीको कुछ नहीं देते। अपना किया हुआ दान ही परलोकके मार्गमें पाथेय (राहखर्च) का काम देता है। प्रत्येक जीव अपने कर्मका ही फल भोगता है। पूर्वजन्मके किये हुए सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्म जीवका अनुसरण करते हैं। कर्मफलको उपस्थित जानकर अन्तरात्मा अपनी बुद्धिको तदनुकूल प्रेरणा देता है। जो पूर्ण उद्योगका सहारा लेकर तदनुकूल सहायकोंका संग्रह करता है, उसका कोई भी कार्य अधूरा नहीं रहता।

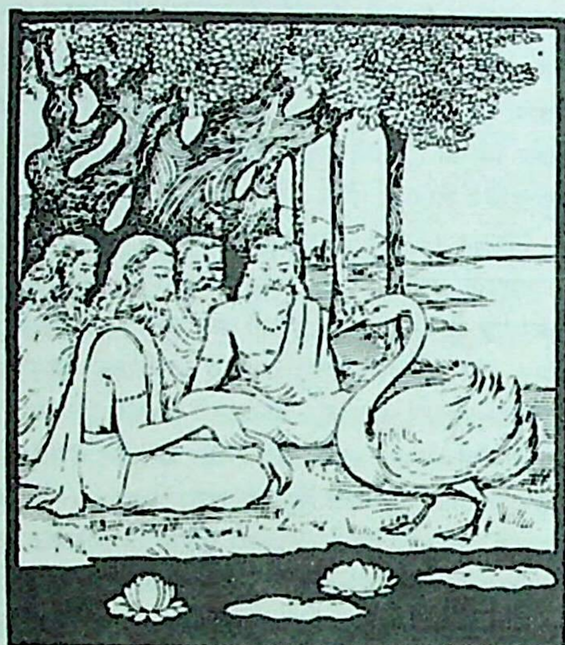
भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! ज्ञानी महात्मा पराशर मुनिके मुखसे इस यथार्थ उपदेशको सुनकर धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ राजा जनक बहुत प्रसन्न हुए।



साध्यगणोंको हंसका उपदेश

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! संसारमें बहुत-से विद्वान् सत्य, दम, क्षमा और प्रज्ञाकी प्रशंसा करते हैं; इस विषयमें आपका कैसा विचार है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इस विषयमें साध्यगणोंका हंसके साथ जो संवाद हुआ था, वही पुराना इतिहास मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। एक समय नित्य अजन्मा प्रजापति हंसका स्वरूप धारण करके तीनों लोकोंमें विचर रहे थे। घूमते-घूमते वे साध्यगणोंके पास पहुँचे। उस समय साध्योंने उनसे कहा—'हंस ! हमलोग साध्यदेवता हैं और आपसे मोक्षधर्मके विषयमें प्रश्न करना चाहते हैं; क्योंकि आप मोक्षतत्त्वके ज्ञाता हैं। महात्मन् ! हमने सुना है, आप पण्डित और धीर वक्ता हैं। आपकी उत्तम वाणी (अथवा कीर्ति) का सर्वत्र प्रचार है। इसलिये पूछते हैं, आपके मतमें सर्वश्रेष्ठ वस्तु क्या है ? किसमें आपका मन रमता है ? पक्षिराज ! समस्त कार्योंमेंसे जिस एक कार्यको आप सबसे उत्तम समझते हों तथा जिसके करनेसे जीवको सब प्रकारके बन्धनोंसे शीघ्र छुटकारा मिल सके, उसीका हमें उपदेश कीजिये।'



हंसने कहा—अमृत पीनेवाले देवताओ ! मैं तो सुनता हूँ—तप, इन्द्रियसंयम, सत्यभाषण और मनोनिग्रह आदि कार्य ही सबसे उत्तम हैं। हृदयकी गाँठें खोलकर प्रिय और अप्रियको अपने वशमें करे (अर्थात् उनके लिये हर्ष और विषाद न करे)। किसीके मर्ममें आघात न पहुँचावे, दूसरोंसे निष्ठुर बात न बोले, नीच मनुष्यसे शास्त्रका रहस्य न समझे तथा जिसे सुनकर औरोंको उद्वेग हो ऐसी नरकमें डालनेवाली अमङ्गलमयी बात भी न कहे। वचनरूपी बाण जब मुँहसे निकल पड़ते हैं तो उनकी चोट खाकर मनुष्य रात-दिन शोकमें डूबा रहता है। वे दूसरोंके मर्मपर ही आघात पहुँचाते हैं, इसलिये विद्वान् पुरुषको किसीपर वाग्बाणका प्रयोग नहीं करना चाहिये। दूसरा कोई भी यदि विद्वान्‌को कटुवचनरूपी बाणोंसे खूब घायल करे तो भी उसे शान्त ही रहना चाहिये। दूसरोंके क्रोध करनेपर भी जो बदलेमें प्रसन्न ही रहता है वह उनके पुण्यको ग्रहण कर लेता है। जो जगत्में निन्दा करानेवाले और आवेशमें डालनेवाले प्रज्वलित क्रोधको रोक लेता है, जिसका चित्त शान्त एवं प्रसन्न रहता है तथा जो दूसरोंके दोष नहीं देखता, वह पुरुष अपनेसे द्वेष रखनेवालोंके पुण्य ले लेता है। मुझे कोई गाली दे तो भी चुप रह जाता हूँ, कोई मारे तो भी उसे क्षमा करता हूँ। आर्यजन क्षमा, सत्य, सरलभाव और दयाको ही श्रेष्ठ बताते हैं। वेदाध्ययनका फल है सत्यभाषण, उसका फल है, इन्द्रियसंयम और इन्द्रियसंयमका फल है मोक्ष। यही सम्पूर्ण शास्त्रोंका आदेश है। जो वाणी, मन, क्रोध, तृष्णा, उदर तथा जननेन्द्रियके प्रचण्ड वेगको सह लेता है, उसीको मैं ब्राह्मण और मुनि मानता हूँ। क्रोधीसे क्रोध न करनेवाला, असहनशीलसे सहनशील, अमानवसे मानव तथा अज्ञानीसे ज्ञानी श्रेष्ठ है। जो दूसरेकी गाली सुनकर भी बदलेमें उसे गाली नहीं देता, उस क्षमाशील मनुष्यका दबा हुआ क्रोध ही गाली देनेवालेको भस्म कर सकता है और उसके पुण्यको भी ले लेता है। दूसरेके मुँहसे अपने लिये कड़वी बात सुनकर भी जो उसके प्रति कठोर या प्रिय कुछ भी नहीं कहता तथा किसीकी मार खाकर भी धैर्यके कारण बदलेमें न तो उसे मारता है और न उसकी बुराई ही चाहता है, उस महात्मासे मिलनेके लिये देवता भी सदा लालायित रहते हैं। पाप करनेवाला अपराधी अवस्थामें अपनेसे बड़ा हो या बराबर, उसके द्वारा अपमानित होकर, मार खाकर और गाली सुनकर भी उसे क्षमा ही कर देना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष परम सिद्धिको प्राप्त होगा।

यद्यपि मैं सब प्रकारसे परिपूर्ण हूँ (मुझे कुछ जानना या पाना बाकी नहीं है) तो भी श्रेष्ठ पुरुषोंकी उपासना (सत्सङ्ग) करता हूँ। मुझपर न तृष्णाका जोर चलता है, न क्रोधका। मैं लोभवश धर्मका अतिक्रमण नहीं करता और न विषयोंकी इच्छासे ही कहीं आता-जाता हूँ। कोई मुझे शाप दे दे तो भी मैं उसे शाप नहीं देता; मैं इन्द्रियसंयमको ही मोक्षका द्वार मानता हूँ। इस समय तुमलोगोंको एक बहुत गुप्त बात बता रहा हूँ, सुनो—मनुष्ययोनिसे बढ़कर दूसरी कोई उत्तम योनि नहीं है। जिस प्रकार चन्द्रमा बादलोंके आवरणसे अलग होकर प्रकाशमान दिखायी देता है, उसी प्रकार पापोंसे मुक्त होकर शुद्धचित्त हुआ धीर पुरुष धैर्यपूर्वक कालकी प्रतीक्षा करता रहे, इससे वह सिद्धिको प्राप्त होता है। जो अपने मनको वशमें करके आधार-स्तम्भकी भाँति सबके आदरका पात्र होता है तथा जिसके प्रति सब लोग प्रसन्नतायुक्त मधुर वचन बोलते हैं, वह मनुष्य देवभावको प्राप्त हो जाता है। किसीसे डाह रखनेवाले मनुष्य जिस तरह उसके दोषोंका वर्णन करना चाहते हैं, उस तरह उसके कल्याणकारी गुणोंका बखान करना नहीं चाहते। जिसकी वाणी और मन सुरक्षित होकर परमात्माके जप तथा चिन्तनमें लगे रहते हैं, वह वेदाध्ययन, तप और त्याग—इन सबके फलको पा जाता है।

इसलिये समझदार पुरुषको चाहिये कि वह कटुवचन कहने और अनादर करनेवाले अज्ञानियोंको उनके दोष बताकर समझानेका प्रयत्न न करे, न दूसरोंको बढ़ावा दे और

न अपनी हिंसा करे। विद्वान्‌को चाहिये कि वह अपमान पाकर अमृत पीनेकी भाँति संतुष्ट हो; क्योंकि अपमानित पुरुष तो सुखसे सोता है; किंतु अपमान करनेवालेका नाश हो जाता है। क्रोधी मनुष्य जो यज्ञ करता, दान देता और तपस्या अथवा हवन करता है, उन सब कर्मोंके फलको यमराज हर लेते हैं। क्रोध करनेवालेका सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है। देवताओ ! जो पुरुष अपने उपस्थ, उदर, दोनों हाथ और वाणी—इन चार द्वारोंको पापसे बचाये रखता है, वही धर्मज्ञ है। जो सत्य, इन्द्रियसंयम, सरलता, दया, धैर्य और क्षमाका विशेष सेवन करता है, स्वाध्यायमें लगा रहता है, दूसरेकी वस्तु नहीं लेना चाहता तथा एकान्तमें निवास करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जैसे बछड़ा अपनी माताके चारों स्तनोंका पान करता है,उसी प्रकार मनुष्यको उपर्युक्त समस्त सद्‌गुणोंका सेवन करना चाहिये। मेरी समझमें सत्यसे बढ़कर पवित्र कुछ भी नहीं है। मैं चारों ओर घूमकर देवता और मनुष्योंसे कहा करता हूँ कि जैसे जहाज समुद्रसे पार होनेका साधन है, उसी प्रकार सत्य ही स्वर्गमें पहुँचनेकी सीढ़ी है।

पुरुष जैसे लोगोंके साथ रहता है, जैसे मनुष्योंका सङ्ग करता है और जैसा होना चाहता है, वैसा ही होता है। जैसे सफेद कपड़ेको जिस रंगमें रँगा जाय वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य भी साधु, असाधु, तपस्वी या चोर जिसकी सङ्गति करता है, उसीके वशमें हो जाता है। देवतालोग सदा सत्पुरुषोंका सङ्ग करते हैं—उन्हींकी बातें सुनते हैं, इसीलिये वे मनुष्योंके क्षणभङ्गुर भोगोंकी ओर देखने भी नहीं जाते। जो विषयोंके बढ़ने-घटनेवाले स्वरूपको ठीक-ठीक जानता है, उसकी समानता न चन्द्रमा कर सकते हैं,न वायु। जो दोषोंका परित्याग करके हृदयान्तर्वर्ती परमात्माके ध्यानमें स्थित रहता है, वही सत्पुरुषोंके मार्गपर चलनेवाला है। उसीके साथ देवता प्रेम करते हैं। जो सदा पेट पालने और उपस्थ-इन्द्रियके भोग भोगनेमें ही लगे रहते हैं तथा जो चोरी करने और कठोर वाणी बोलनेवाले हैं, वे यदि (प्रायश्चित्त आदिके द्वारा) उक्त कर्मोंके दोषसे छूट भी जायँ तो भी देवतालोग उन्हें पहचानकर दूरसे ही त्याग देते हैं। सत्त्वगुणसे रहित और सब कुछ भक्षण करनेवाले पापाचारी मनुष्य देवताओंको संतुष्ट नहीं कर सकते; देवता तो सत्यवादी, कृतज्ञ और धर्मपरायण पुरुषोंके ही साथ प्रेम करते हैं। बोलनेसे न बोलना ही अच्छा है। किंतु यदि बोलना ही पड़े तो सत्य बोलना वाणीकी दूसरी विशेषता है,धर्मयुक्त बात कहना तीसरी और प्रिय बोलना चौथी विशेष्यता है।

साध्योंने पूछा—हंस ! इस लोकको किसने आवृत कर रखा है ? क्यों इसका स्वरूप प्रकाशित नहीं होता ? मनुष्य किस कारणसे मित्रोंका त्याग करता है ? और क्यों वह स्वर्गमें नहीं जाने पाता ?

हंसने कहा—देवताओ ! इस लोकको अज्ञानने आवृत कर रखा है। परस्पर डाहके कारण इसका स्वरूप प्रकाशित नहीं होता। मनुष्य लोभवश मित्रोंका त्याग करता है और आसक्तिके कारण वह स्वर्गमें नहीं जाने पाता।

साध्योंने पूछा—ब्राह्मणोंमें ऐसा कौन है, जो एकमात्र परम सुखी है ? वह कौन है जो बहुतोंके साथ रहकर भी मौन रहता है ? कौन दुर्बल होकर भी बलवान् है ? और कौन किसीके साथ भी कलह नहीं करता ?

हंसने कहा—ब्राह्मणोंमें जो ज्ञानी है, एकमात्र वही परम सुखी है। ज्ञानी ही बहुतोंके साथ रहकर भी मौन रहता है। वही दुर्बल होकर भी बलवान् है और वही किसीके साथ भी कलह नहीं करता।

साध्योंने पूछा—ब्राह्मणोंमें देवत्व क्या है ? साधुता क्या है ? तथा उनमें असाधुता और मनुष्यता क्या है ?

हंसने कहा—ब्राह्मणोंमें वेद-शास्त्रोंका अध्ययन ही देवत्व है, व्रतोंका पालन करना उनमें साधुता है, दूसरोंकी निन्दा करना असाधुता है और मृत्युको प्राप्त होना उनमें मनुष्यता है।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! इस प्रकार यह जो साध्योंका हंसके साथ संवाद हुआ था, उसका मैंने तुमसे वर्णन किया। यह शरीर ही कर्मोंकी योनि है और सद्भाव ही सत्य वस्तु है।



सांख्य और योगका अन्तर बतलाते हुए योगमार्गका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—तात ! सांख्य और योगमें क्या अन्तर है ? इसको बतानेकी कृपा करें; क्योंकि आपको सब बातोंका ज्ञान है।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! सांख्यके विद्वान् सांख्यकी और योगके जाननेवाले योगकी प्रशंसा करते हैं। दोनों ही अपने-अपने पक्षके समर्थनमें उत्तम-उत्तम युक्ति और प्रमाण दिया करते हैं। योगके मनीषी विद्वान् अपने मतकी श्रेष्ठतामें यह उत्तम युक्ति उपस्थित किया करते हैं कि ईश्वरका

अस्तिव स्वीकार किये बिना किसीकी भी मुक्ति कैसे हो सकती है ? (अतः ईश्वरवादी योगियोंका ही मत सर्वश्रेष्ठ है।) सांख्यमतके माननेवाले महाप्राज्ञ द्विज मुक्तिका कारण इस प्रकार बताते हैं—सब प्रकारकी गतियोंको जानकर जो विषयोंसे विरक्त हो जाता है, वही देह-त्यागके अनन्तर मुक्त होता है; दूसरे किसी उपायसे मोक्ष मिलना असम्भव है। इस प्रकार वे सांख्यको ही मोक्षदर्शन कहते हैं। अपने-अपने पक्षमें युक्तियुक्त कारण ग्राह्य होता है तथा सिद्धान्तके अनुकूल हितकारक वचन माननेयोग्य समझा जाता है। तुम्हारे-जैसे लोगोंको शिष्ट पुरुषोंका ही मत ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि शिष्ट पुरुष तुम्हारी प्रशंसा करते हैं। योगके विद्वान् प्रधानतया प्रत्यक्ष प्रमाणको ही माननेवाले होते हैं और सांख्यमतानुयायी शास्त्र-प्रमाणपर विश्वास करते हैं; परंतु मैं उन दोनों मतोंको तात्त्विक मानता हूँ। दोनों ही मतोंका शिष्ट पुरुषोंने आदर किया है। यदि शास्त्रके अनुसार उनका आचरण किया जाय तो दोनों ही परम गतिकी प्राप्ति करा सकते हैं। बाहर-भीतरकी पवित्रता, तप, प्राणियोंपर दया और व्रतोंका पालन आदि बातें दोनों मतोंमें समान रूपसे स्वीकार की गयी हैं। केवल उनके दर्शन (शास्त्रीय प्रक्रिया) में अन्तर है।

युधिष्ठिर ! योगी पुरुष केवल योगबलसे राग, मोह, स्नेह, काम और क्रोध—इन पाँच दोषोंका मूलोच्छेद करके परम पदको प्राप्त करता है। जैसे बड़े-बड़े मत्स्य जाल काटकर फिर जलमें समा जाते हैं, उसी प्रकार योगी अपने पापोंका नाश करके परमात्मपदको प्राप्त करते हैं। योगबलसे सम्पन्न पुरुष लोभके बन्धन तोड़कर परम निर्मल कल्याणमय मार्ग (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं, किंतु जैसे थोड़ी-सी आगपर बड़े-बड़े ईंधन रख देनेसे वह जलनेके बजाय बुझ जाती है, उसी प्रकार निर्बल योगी महान् योगके साधनसे दबकर नष्ट हो जाता है। परंतु वही आग जब हवाका सहारा पाकर प्रबल हो जाती है तो सम्पूर्ण पृथ्वीको भी तत्काल भस्म कर सकती है। इसी तरह योगीका भी योगबल बढ़ जानेसे जब वह महाशक्तिसम्पन्न हो जाता है तो उसका तेज प्रकाशित होने लगता है और उसमें प्रलयकालीन सूर्यकी भाँति समस्त जगत्‌को सुखा डालनेकी शक्ति आ जाती है। जिस प्रकार कमजोर मनुष्य पानीके वेगमें बह जाता है, उसी तरह दुर्बल योगी विषयोंसे विचलित हो जाता है। किंतु उसी महान् प्रवाहको जैसे हाथी रोक देता है, वैसे ही योगका महान् बल पाकर योगी भी समस्त विषयोंको रोक लेता है। योगशक्तिसम्पन्न पुरुष स्वतन्त्रतापूर्वक प्रजापति, ऋषि, देवता और पञ्च महाभूतोंमें प्रवेश कर जाते हैं। अमित तेजस्वी योगीके ऊपर क्रोधमें भरे हुए यमराज, अन्तक और भयंकर पराक्रम दिखानेवाली मौतका भी जोर नहीं चलता। वह योगबल पाकर अपने हजारों रूप बना सकता और उन सबके द्वारा इस पृथ्वीपर विचर सकता है। फिर तेजको समेट लेनेवाले सूर्यकी भाँति वह उन सभी रूपोंको अपनेमें लीन करके उग्र तपस्यामें प्रवृत्त हो जाता है। बलवान् योगी बन्धन तोड़नेमें समर्थ होता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि उसमें अपनेको मुक्त करनेकी पूर्ण शक्ति होती है।

राजन् ! मैं दृष्टान्तके लिये योगसे प्राप्त होनेवाली कुछ सूक्ष्म शक्तियोंका पुनः तुमसे वर्णन करूँगा तथा आत्म-समाधिके लिये जो चित्तकी धारणा की जाती है, उसके विषयमें भी कुछ सूक्ष्म दृष्टान्त बतलाऊँगा, सुनो—जिस प्रकार सदा सावधान रहनेवाला धनुर्धर वीर चित्तको एकाग्र करके प्रहार करनेपर लक्ष्यको बेध डालता है, उसी प्रकार जो योगी मनको परमात्माके ध्यानमें लगा देता है, वह निस्संदेह मोक्षको प्राप्त कर लेता है। जैसे (सिरपर रखे हुए) तेलसे भरे पात्रकी ओर ध्यान रखनेवाला पुरुष सावधान एवं एकाग्रचित्त होकर सीढ़ियोंपर चढ़ जाता है और जरा भी तेल नहीं छलकता, उसी तरह योगी भी योगयुक्त होकर आत्माको परमात्मामें स्थिर करता है। उस समय उसका आत्मा अत्यन्त निर्मल तथा सूर्यके समान तेजस्वी हो जाता है। जैसे सावधान मल्लाह समुद्रमें पड़ी हुई नावको शीघ्र ही किनारेपर लगा देता है, उसी प्रकार योगके अनुसार तत्त्वको जाननेवाला पुरुष समाधिके द्वारा मनको परमात्मामें लगाकर देहका त्याग करनेके अनन्तर दुर्गम स्थान (परम धाम) को प्राप्त होता है। जिस तरह अत्यन्त सावधान सारथि अच्छे घोड़ोंको रथमें जोतकर धनुर्धर वीरको तुरंत अभीष्ट स्थानपर पहुँचा देता है, वैसे ही धारणाओंमें एकाग्रचित्त हुआ योगी लक्ष्यकी ओर छोड़े हुए बाणकी भाँति शीघ्र परम पदको प्राप्त करता है। जो योगी समाधिके द्वारा आत्माको परमात्मामें स्थित देख स्थिरभावसे बैठा रहता है, वह अपने पापको नष्ट करके पवित्र पुरुषोंको मिलनेवाले अविनाशी पदको प्राप्त होता है। योगके महान् व्रतमें एकाग्रचित्त रहनेवाला जो योगी नाभि, कण्ठ, मस्तक, हृदय, वक्षःस्थल, नाक, कान और नेत्र आदि स्थानोंमें धारणाके द्वारा आत्माको परमात्माके साथ युक्त करता है, वह अपने शुभाशुभ कर्मोंको शीघ्र ही भस्म कर डालता है और इच्छा करते ही उत्तम योगका आश्रय लेकर मुक्त हो जाता है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! योगी कैसा आहार करे और किन-किनको जीते तो उसे योगशक्ति प्राप्त होती है ?

भीष्मजीने कहा—जो धानकी खुद्दी और तिलकी खली खाता तथा घी-तेलका परित्याग करता है, उसीको योगबलकी प्राप्ति होती है। दीर्घकालतक प्रतिदिन एक बार जौकी रूखी लप्सी खानेवाला योगका साधक शुद्धचित्त होकर योगबलकी प्राप्ति कर सकता है। जो योगी दूधमें पानी मिलाकर कुछ समयतक दिनमें एक बार पीता है, फिर पंद्रह दिनोंमें एक बार पीता है, तत्पश्चात् एक महीनेमें, एक ऋतुमें और एक वर्षमें एक बार उसे ग्रहण करता है, उसको भी योगशक्ति प्राप्त होती है। काम, क्रोध, शीत, उष्ण, वर्षा, भय, शोक, श्वास, मनुष्योंको प्रिय लगनेवाले विषय, दुर्जय असंतोष, घोर तृष्णा, स्पर्श, निद्रा तथा आलस्यको जीतनेवाले वीतराग महाप्राज्ञ महात्मा पुरुष स्वाध्याय तथा ध्यानका सम्पादन करके बुद्धिके द्वारा परमात्माके सूक्ष्म स्वरूपका प्रकाश (साक्षात्कार) करते हैं। विद्वान् ब्राह्मणोंने योगके इस महान् पथको दुर्गम बतलाया है, कोई विरला ही इस मार्गको कुशलतापूर्वक तय कर सकता है। यह बहुत सर्पों, कीड़े-मकोड़ों, गड्ढों और काँटोंसे भरे हुए निर्जल वनकी भाँति दुर्गम है, कोई-ही-कोई द्विज इस मार्गपर कुशलपूर्वक चल पाता है; क्योंकि इसमें बहुत-सी कठिनाइयाँ हैं। छूरेकी तीखी धारपर चाहे कोई सुगमतापूर्वक बैठ ले; किंतु जिनका चित्त शुद्ध नहीं है ऐसे मनुष्योंका योगकी धारणाओंमें स्थिर रहना नितान्त कठिन है। जो विधिपूर्वक योग-धारणाओंमें स्थिर रहता है, वह जन्म-मृत्यु, सुख और दुःखके बन्धनोंसे छुटकारा पा जाता है। यह मैंने तुम्हें योगविषयक नाना शास्त्रोंका सिद्धान्त बतलाया है। योगसाधनाका जो कुछ कार्य है वह द्विजातियोंके ही लिये निश्चित किया गया है अर्थात् उन्हींका इसमें अधिकार है। योगसिद्ध महात्मा पुरुष यदि चाहे तो तुरंत ही मुक्त होकर परब्रह्मके स्वरूपको प्राप्त हो जाता है, वह अपने योग-बलसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, धर्म, कार्तिकेय तथा ब्रह्मपुत्र सनकादिकोंके विग्रहमें प्रवेश कर सकता है। इसी प्रकार चन्द्रमा, विश्वेदेव, सर्प, पितर, वन, पर्वत, समुद्र, नदी, मेघ, नाग, वृक्ष, यक्ष, दिशा, गन्धर्व तथा स्त्री और पुरुषोंमेंसे प्रत्येकका स्वरूप धारण कर सकता है। युधिष्ठिर! परमात्मासे सम्बन्ध रखनेवाली यह कल्याणमयी वार्ता प्रसंगवश तुम्हें सुनायी गयी है, योगसिद्ध महात्मा पुरुष भगवान् नारायणका स्वरूप हो जाता है।



सांख्यका वर्णन

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! आपने शिष्ट पुरुषोंकी मान्यताके अनुसार योगमार्गका यथार्थरूपसे वर्णन किया, अब मैं सांख्यमतकी सम्पूर्ण विधि पूछ रहा हूँ, उसे बतानेकी कृपा कीजिये; क्योंकि तीनों लोकोंका सम्पूर्ण ज्ञान आपको विदित है।

भीष्मजीने कहा—राजन्! आत्मतत्त्वको जाननेवाले सांख्यशास्त्रके विद्वानोंका वह सूक्ष्म ज्ञान सुनो, जिसे ईश्वरकोटिमें माने जानेवाले कपिल आदि महर्षियोंने प्रकाशित किया है। इस मतमें किसी प्रकारकी भूल नहीं देखी जाती और गुण बहुत-से उपलब्ध होते हैं तथा इसमें दोषोंका सर्वथा अभाव है। जो ज्ञानके द्वारा मनुष्य, पिशाच, राक्षस, यक्ष, सर्प, गन्धर्व, पितर, तिर्यग्योनि, गरुड, मरुद्गण, राजर्षि, ब्रह्मर्षि, असुर, विश्वेदेव, देवर्षि, योगी, प्रजापति तथा ब्रह्माजीके भी सम्पूर्ण विषयोंको सदोष जानकर संसारके मनुष्योंकी परमायु तथा सुखके परम तत्त्वका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं और विषयोंकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको समय-समयपर जो दुःख प्राप्त होते हैं उसको, तिर्यग्योनि और नरकमें पड़नेवाले जीवोंके दुःखको स्वर्ग तथा वेदकी फलश्रुतियोंके गुण-दोषोंको जानकर ज्ञान, सांख्य और योगमार्गके गुण-दोषको भी समझ लेते हैं तथा सत्त्वगुणके दस, रजोगुणके नौ, तमोगुणके आठ, बुद्धिके सात, मनके छः और आकाशके पाँच गुणोंका ज्ञान प्राप्तकर आत्माकी प्राप्ति करानेवाले मार्ग, प्राकृत प्रलय तथा आत्मविचारको ठीक-ठीक जान लेते हैं; वे ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न तथा मोक्षोपयोगी साधनोंके अनुष्ठानसे शुद्धचित्त हुए सांख्ययोगी परम मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं। नेत्र रूपका, नासिका गन्धका, श्रोत्र शब्दका, जिह्वा रसका और त्वचा स्पर्शका आश्रय है। इसी प्रकार वायुका आश्रय आकाश, मोहका आश्रय तमोगुण और लोभका आश्रय इन्द्रियोंके विषय हैं। गतिका आधार विष्णु, बलका इन्द्र, उदरका अग्नि तथा पृथ्वीदेवीका आधार जल है। जलका तेज, तेजका वायु, वायुका आकाश, आकाशका महत्तत्त्व और महत्तत्त्वका अधिष्ठान बुद्धि है। बुद्धिका आश्रय तमोगुण, तमोगुणका आश्रय रजोगुण और रजोगुणका आश्रय सत्त्वगुण है। सत्त्वगुण प्रकृतिके आश्रयमें रहता है, प्रकृति जीवात्मामें और जीवात्मा परम तेजस्वी भगवान् नारायणमें स्थित है। नारायणका आश्रय मोक्ष है, किंतु मोक्षका कोई आश्रय नहीं है (इस बातको जो जानते हैं वे भी मुक्त हो जाते हैं)।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! आपके देखनेमें कौन-कौन-से ऐसे दोष हैं जो अपने ही शरीरसे उत्पन्न होते हैं? आप मेरे इस संदेहका समाधान करनेकी कृपा करें।

भीष्मजीने कहा—शत्रुसूदन! कपिल या सांख्यमतके अनुयायी मेधावी विद्वान् इस देहके भीतर पाँच दोष बतलाते हैं, उन्हें बताता हूँ, सुनो—काम, क्रोध, भय, निद्रा और श्वास—ये पाँच दोष समस्त शरीरधारियोंके भीतर देखे जाते हैं। सत्पुरुष क्षमासे क्रोधका, संकल्पके त्यागसे कामका, सत्त्वगुणके सेवनसे निद्राका, प्रमादके त्यागसे भयका तथा अल्प आहारके सेवनद्वारा श्वास-दोषका नाश करते हैं। राजन्! महाबुद्धिमान् सांख्यके विद्वान् सैकड़ों गुणोंके द्वारा गुणोंको, सैकड़ों दोषोंके द्वारा दोषोंको तथा सैकड़ों विचित्र हेतुओंसे विचित्र हेतुओंको विशेषरूपसे जानकर व्यापक ज्ञानके प्रभावसे संसारको पानीके फेनके समान नश्वर, विष्णुकी सैकड़ों मायाओंसे ढका हुआ, दीवारपर बने हुए चित्रकी तरह जड, नलके समान निःसार, अन्धकारसे भरे हुए गड्ढेकी भाँति भयंकर, वर्षाकालके जलके बुद्बुदोंकी तरह क्षणभङ्गुर, सुखहीन, पराधीन, नष्टप्राय तथा कीचड़में फँसे हुए हाथीकी तरह रजोगुण और तमोगुणमें मग्न समझते हैं। इसलिये वे संतान आदिकी आसक्तिको दूर करके तप और विवेकरूपी शस्त्रसे राजस, तामस और सात्त्विक गन्ध आदि विषयों तथा स्पर्शेन्द्रियके देहाश्रित भोगोंकी आसक्तिको काट डालते हैं। तदनन्तर, वे सिद्ध यति दुःखरूपी जलसे भरे हुए इस भयंकर संसार-सागरको ज्ञानरूपी नौकाके द्वारा तर जाते हैं तथा अत्यन्त दुस्तर जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पाकर परम निर्मल आकाशस्वरूप परमात्मामें प्रवेश कर जाते हैं। फिर वहाँसे संसारमें नहीं लौटते। यही परम गति है। जो सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित, सत्यवादी, सरल तथा सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करनेवाले हैं, उन महात्माओंको ही ऐसी गति प्राप्त होती है।

इस प्रकार सांख्ययोगी पुण्य और पापसे रहित होकर प्रकृतिका भी अतिक्रमण करके निर्द्वन्द्व, मायासे परे, अविनाशी भगवान् नारायणको प्राप्त होता है। वे नारायणदेव निर्विकार और निर्गुण परमात्मा ही हैं। उन्हें प्राप्त हो जानेपर जीवको फिर इस संसारमें लौटना नहीं पड़ता। सांख्य-योगियोंको यह बड़ी उत्तम गति प्राप्त होती है। इस ज्ञानके समान दूसरा कोई ज्ञान नहीं है। यह सबसे उत्कृष्ट माना गया है। इसमें अक्षर, ध्रुव एवं पूर्ण सनातन ब्रह्मका ही प्रतिपादन हुआ है। वह ब्रह्म आदि, मध्य और अन्तसे रहित, द्वन्द्वोंसे अतीत, शाश्वत, कूटस्थ और नित्य है—ऐसा मनीषी पुरुषोंका कथन है। उसीसे जगत्की उत्पत्ति और प्रलयरूप विकार होते हैं। महर्षियोंने अपने शास्त्रोंमें उसीकी प्रशंसा की है। समस्त ब्राह्मण, देवता और शान्तचित्त पुरुष उसी अनन्त, अच्युत परब्रह्म परमात्माकी प्रार्थना और स्तुति करते हैं। योगमें उत्तम सिद्धिको प्राप्त हुए योगी तथा अपार ज्ञानवाले सांख्यवेत्ता पुरुष भी उसीका गुणगान करते हैं। कुन्तीनन्दन! ऐसी प्रसिद्धि है कि यह सांख्यशास्त्र ही उस निराकार परमेश्वरका आकार है।

राजन्! महात्मा पुरुषोंमें, वेदोंमें, योगशास्त्रमें तथा पुराणोंमें जो नाना प्रकारका उत्तम ज्ञान देखा जाता है, वह सब सांख्यसे ही आया हुआ है। बड़े-बड़े इतिहासोंमें, सत्-पुरुषोंद्वारा सेवित अर्थशास्त्रमें तथा इस संसारमें जो कुछ भी ज्ञान है, वह सब सांख्यसे ही प्राप्त हुआ है। मन और इन्द्रियोंका संयम, उत्तम बल, सूक्ष्म ज्ञान तथा परिणाममें सुख देनेवाले जो सूक्ष्म तप बतलाये गये हैं, उन सबका सांख्यशास्त्रमें यथावत् वर्णन किया गया है। सांख्यज्ञानी शरीरत्यागके पश्चात् ब्रह्ममें प्रवेश करते हैं। सांख्यका ज्ञान अत्यन्त विशाल और परम प्राचीन है। यह महासागरके समान अगाध, निर्मल और उदारभावोंसे परिपूर्ण है। इस अप्रमेय ज्ञानको भगवान् नारायण ही पूर्णरूपसे धारण करते हैं। युधिष्ठिर! यह मैंने तुमसे सांख्यका तत्त्व बतलाया है। इस पुरातन विश्वके रूपमें भगवान् नारायण ही विराजमान हैं; वे ही सृष्टिके समय जगत्की सृष्टि और संहारकालमें उसका संहार करते हैं।



क्षर और अक्षरका विषय बतलानेके लिये करालजनक और वसिष्ठका संवाद

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! वह अक्षर-तत्त्व क्या है, जिसको प्राप्त कर लेनेपर जीव पुनः इस संसारमें नहीं आता तथा क्षर पदार्थ क्या है, जिसको जाननेपर भी आवागमन बना रहता है। क्षर-अक्षरके स्वरूपको स्पष्टरूपसे समझनेके लिये मैंने यह प्रश्न किया है। वेदोंके विद्वान् ब्राह्मण, महाभाग ऋषि तथा महात्मा यतियोंने आपको ज्ञानका खजाना बतलाया है। अब सूर्यके दक्षिणायनमें रहनेके थोड़े ही दिन बाकी हैं, उत्तरायण आते ही आप परमधामको पधारेंगे; फिर हमलोग यह कल्याणमयी वार्ता किससे सुनेंगे? आपके इन अमृतमय वचनोंको सुनकर मुझे तृप्ति नहीं होती (अतएव आप मुझे यह क्षर-अक्षरका विषय बतलाइये)।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! इस विषयमें करालजनक

और वसिष्ठके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ। एक समयकी बात है, सूर्यके समान तेजस्वी मुनिवर वसिष्ठ अपने आश्रमपर विराजमान थे। वहाँ राजा करालजनकने पहुँचकर उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विनययुक्त मधुर वाणीमें कहा 'भगवन्! जहाँसे ज्ञानी पुरुषोंका पुनरावर्तन नहीं होता, उस सनातन ब्रह्मके स्वरूपका मैं वर्णन सुनना चाहता हूँ। इसके सिवा जो क्षर कहा गया है उसका तथा जिसमें इस जगत्‌का लय होता है उस निर्विकार, आनन्दस्वरूप और कल्याणमय अक्षर-तत्त्वका भी ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ (अतः आप इस विषयका उपदेश करें)।'



वसिष्ठजीने कहा—राजन्! जिस प्रकार इस जगत्‌का क्षरण (लय) होता है उसको तथा जो कभी भी क्षरित (नष्ट) नहीं होता उस अक्षरको भी बता रहा हूँ, सुनो—देवताओंके बारह हजार वर्षोंका एक चतुर्युग होता है और दस हजार चतुर्युगका एक कल्प कहलाता है, इसीको ब्रह्माका एक दिन कहते हैं, इतनी ही बड़ी उनकी रात्रि भी होती है जिसके अन्तमें जाग्रत् होकर वे इस विशाल संसारकी सृष्टि करते हैं। यद्यपि वे वास्तवमें निराकार हैं तो भी साकार जगत्‌की रचना करते हैं, उनमें अणिमा आदि शक्तियोंका स्वाभाविक निवास है, वे अविनाशी ज्योतिर्मय परमेश्वर हैं, सब ओर हाथ-पैरवाले, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाले तथा सब ओर कानवाले हैं; क्योंकि वे संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित हैं। वे ही भगवान् हिरण्यगर्भ हैं, उन्हींको बुद्धि कहते हैं। वे ही योगशास्त्रमें महान्, विरञ्चि और अजके नामसे पुकारे जाते हैं तथा सांख्य-शास्त्रमें भी उनके अनेकों नामोंका वर्णन आता है। उनके नाना प्रकारके बहुत-से अद्भुत रूप हैं। वे विश्वके आत्मा और एकाक्षर कहलाते हैं। यह नानात्मक जगत् उनसे व्याप्त है, उन्होंने अपने ही स्वरूपसे तीनों लोकोंकी सृष्टि की है। बहुत-से रूप धारण करनेके कारण उन्हें विश्वरूप कहते हैं। वे महातेजस्वी भगवान् आत्म-शक्तिसे महत्तत्त्वकी सृष्टि करके फिर अहंकार और उसके अभिमानी देवता प्रजापतिको उत्पन्न करते हैं। इनमें निराकारसे साकाररूपमें प्रकट होनेवाले प्रजापतिको तो विद्यासर्ग कहते हैं और महत्तत्त्व एवं अहंकारको अविद्या-सर्ग। अविधि (ज्ञान) और विधि (कर्म) की उत्पत्ति भी उस परमात्मासे ही हुई है, श्रुति तथा शास्त्रके अर्थका विचार करनेवाले विद्वानोंने उन्हें विद्या और अविद्या बतलाया है। अहंकारसे जो सूक्ष्म भूतोंकी सृष्टि होती है, उसे तीसरा सर्ग समझना चाहिये। राजस, तामस और सात्त्विक-भेदसे तीन प्रकारके अहंकारोंसे एक चौथी सृष्टि उत्पन्न होती है, उसे वैकृत सर्ग कहते हैं। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पाँच महाभूत तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच विषय वैकृत सर्गके अन्तर्गत हैं, इन दसोंकी उत्पत्ति एक ही साथ होती है। पाँचवाँ भौतिक सर्ग है, इसके अन्तर्गत आँख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिङ्ग—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। मनसहित इन सबकी उत्पत्ति भी एक ही साथ होती है। ये चौबीस तत्त्व सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें मौजूद रहते हैं। तत्त्वदर्शी ब्राह्मण इनके यथार्थ स्वरूपको जानकर कभी शोक नहीं करते। त्रिभुवनमें जितने देहधारी हैं, उन सबमें इन्हीं तत्त्वोंके समुच्चयको देह समझना चाहिये। देवता, मनुष्य, दानव, यक्ष, भूत, गन्धर्व, किन्नर, सर्प, चारण, पिशाच, देवर्षि, निशाचर, दंश, कीट, मच्छर, दुर्गन्धित कीड़े, चूहे, कुत्ते, चाण्डाल, हिरन, पुल्कस (म्लेच्छ), हाथी, घोड़े, गधे, सिंह, वृक्ष और गौ आदिके रूपमें जो कुछ मूर्तिमान् पदार्थ है, सबमें इन्हीं तत्त्वोंका दर्शन होता है। पृथ्वी, जल और आकाशमें ही प्राणियोंका निवास है और कहीं नहीं। यह सम्पूर्ण पाञ्चभौतिक जगत् व्यक्त कहलाता है और प्रतिदिन इसका क्षरण (क्षय) होता है। इसलिये इसको क्षर कहते हैं, इसके अतिरिक्त जो तत्त्व है उसे अक्षर कहा गया है। इस प्रकार उस अव्यक्त अक्षरसे उत्पन्न हुआ यह व्यक्तसंज्ञक मोहात्मक जगत् क्षरित होनेके कारण क्षर नाम धारण करता है। क्षर-तत्त्वोंमें सबसे पहले महत्तत्त्वकी ही सृष्टि हुई है, यही क्षरका परिचय है। राजन्! तुमने जो पूछा था उसके अनुसार यह मैंने क्षर-अक्षरके विषयका वर्णन किया है।

वसिष्ठजीके द्वारा जीवकी अज्ञताका वर्णन

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! जीव अज्ञानवश एक देहसे दूसरे देहको धारण करता हुआ हजारों बार जन्म ग्रहण करता है। वह गुणोंके सम्बन्धसे कभी सहस्रों प्रकारकी तिर्यग्योनियोंमें और कभी देवताओंकी योनिमें जन्म लेता है। जैसे रेशमका कीड़ा अपने ही उत्पन्न किये हुए तन्तुओंसे अपनेको सब ओरसे बाँध लेता है, उसी प्रकार यह निर्गुण आत्मा भी अपने ही प्रकट किये हुए प्राकृत गुणोंसे बँध जाता है। वह स्वयं सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंसे रहित होनेपर भी भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म धारण करके सुख-दुःखको भोगता है। उसे कभी सिरमें दर्द होता, कभी आँख दुखती, कभी दाँतमें व्यथा होती तथा कभी गलेमें घेघा निकल आता है। इसी प्रकार वह जलोदर, तृषा-रोग, ज्वर, गण्ड, सफेद दाग, कोढ़, अग्निदाह, दमा, खाँसी और अपस्मार (मृगी) आदि रोगोंका शिकार होता रहता है। इनके सिवा और भी जितने प्रकारके प्रकृतिजन्य अद्भुत रोग देहधारियोंमें उत्पन्न होते हैं, उन सबसे यह अपनेको आक्रान्त समझता है। कभी अपनेको तिर्यग्योनिका जीव मानता है और कभी देवत्वका अभिमान धारण करता है तथा इस अभिमानके ही कारण उन-उन शरीरोंद्वारा किये हुए कर्मोंका फल भी भोगता है। अज्ञानसे आवृत मनुष्य कभी पृथ्वीपर सोता है, कभी मेंढकके समान हाथ-पैर सिकोड़कर शयन करता है, कभी वीरासनसे बैठता है, कभी खुले मैदानमें, कभी ईंटपर, कभी काँटोंपर, कभी राखमें, कभी जमीनपर, कभी युद्ध-भूमिमें, कभी पानी और कीचड़में, कभी चौकीपर और कभी नाना प्रकारकी शय्याओंपर सोता है। कभी मूँजकी मेखला बाँधे कौपीन धारण करता है, कभी नंग-धड़ंग घूमता है, कभी रेशमी वस्त्र, कभी काला मृगचर्म, कभी सन या ऊनके बने वस्त्र, कभी राजोचित वस्त्र, कभी पेड़की छाल, कभी खुरदरे वस्त्र, कभी रेशमके कपड़े और कभी चीथड़े पहनता है। इनके अतिरिक्त भी नाना प्रकारके वस्त्र और तरह-तरहके रत्न धारण करता और विचित्र-विचित्र भोजनोंका स्वाद लेता है। कभी एक रातका अन्तर देकर भोजन करता है, कभी दिन-रातमें एक बार और कभी दिनके चौथे, छठे या आठवें पहरमें भोजन करता है। कभी छः रात बिताकर, कभी आठ दिनोंपर, कभी सात, दस और बारह दिनोंके बाद अन्न ग्रहण करता है तथा कभी एक मासतक कुछ भी नहीं खाता। कभी सदा फल-मूलका ही भोजन करता, कभी पानी या हवा पीकर रह जाता और कभी तिलकी खली और दहीका ही आहार करता है। कभी-कभी गोबर, गोमूत्र, साग, फूल, सेवार, सूखे पत्ते अथवा पेड़से गिरे हुए फलोंको ही खाकर या जलका आचमनमात्र करके जीवन-निर्वाह करता है। इस प्रकार सिद्धि पानेकी इच्छासे वह नाना प्रकारके कठोर नियमोंका पालन करता है। कभी विधिके अनुसार चान्द्रायण-व्रतका अनुष्ठान करता और अनेकों प्रकारके धार्मिक चिह्न धारण करता है, कभी चारों आश्रमोंके मार्गपर चलता और कभी कुमार्गका सेवन करता है। कभी तरह-तरहके पाखण्ड फैलाता, कभी एकान्तमें शिलाखण्डोंकी छायामें बैठता, कभी झरनोंके पास, कभी नदियोंके एकान्त किनारोंमें, कभी एकान्त वनमें, कभी पवित्र देवमन्दिरोंमें तथा एकान्त सरोवरोंके तटपर और कभी पर्वतोंकी एकान्त गुफाओंमें निवास करता है। उन स्थानोंमें नाना प्रकारके गोपनीय जप, व्रत, नियम, तप, यज्ञ तथा अन्य कर्मोंका अनुष्ठान करता है। कभी व्यापार करता, कभी ब्राह्मण और क्षत्रियोंके कर्तव्यका पालन करता और कभी वैश्य तथा शूद्रोंके-से काम करता है। दीन-दुःखी और अंधोंको नाना प्रकारके दान देता तथा अज्ञानवश अपनेमें सत्त्व, रज, तम—इन त्रिविध गुणों और धर्म, अर्थ, कामका भी अभिमान करता है। इस प्रकार आत्मा प्रकृतिके द्वारा अपने ही स्वरूपके अनेकों विभाग करता है। कभी स्वाहा, कभी स्वधा, कभी वषट्कार और कभी नमस्कारमें प्रवृत्त होता है, कभी यज्ञ करता और कराता, कभी वेद पढ़ता और पढ़ाता तथा कभी दान देता और लेता है—इसी प्रकार दूसरे-दूसरे कार्य भी किया करता है। कभी जन्म लेता, कभी मरता तथा कभी विवाद और संग्राममें प्रवृत्त रहता है। विद्वान् पुरुषोंका कहना है कि यह सब शुभाशुभ कर्ममार्ग है।

जगत्‌की सृष्टि और प्रलय प्रकृतिदेवीका ही कार्य है। जैसे सूर्य प्रतिदिन सायंकालमें अपनी किरणोंको समेट लेता है, वैसे ही जगदात्मा प्रलयकालमें इन गुणोंका संहार करके अकेले रह जाते हैं। इस प्रकार यह सृष्टि और प्रलयका कार्य बारंबार चलता रहता है और आत्मा (स्वयं गुणोंसे रहित होनेपर भी प्रकृतिके सहवाससे) लीलाके लिये अपनेमें नाना प्रकारके मनोरम गुणोंका अभिमान (आरोप) कर लेता है। सृष्टि और प्रलय जिसके धर्म हैं, उस प्रकृतिको विकृत (कार्यक्षम) करके तीनों गुणोंका स्वामी आत्मा कर्म-मार्गमें प्रवृत्त होकर उस (प्रकृति) के द्वारा होनेवाले प्रत्येक त्रिगुणात्मक कार्यको अपना मान लेता है। इस प्रकार (प्रकृतिकी प्रेरणासे स्वभावतः) सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंकी पुनरावृत्ति होती रहती

है, किंतु जीवात्मा अज्ञानवश यह मान बैठता है कि यह सब द्वन्द्व मुझपर ही आक्रमण करते हैं (इसीलिये वह दुःखी होता है)। वह लिङ्गशरीरसे हीन होनेपर भी अपनेको उससे युक्त मानता है तथा कालधर्म (मृत्यु)से रहित होकर भी अपनेको कालधर्मी (मरणशील), सत्त्वसे भिन्न होकर भी सत्त्वरूप और तत्त्वसे रहित होकर भी तत्त्व-स्वरूप समझता है। वह यद्यपि क्षेत्रसे विलक्षण है तो भी अपनेको क्षेत्र मानता है, सृष्टिसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है तो भी समूची सृष्टिको अपनी ही समझता है। वह कहीं गमन नहीं करता तो भी अपनेको आने-जानेवाला मानता है। इसी प्रकार अज्ञानी जीव अपनेको अजन्मा होकर भी जन्म लेनेवाला, निर्भय होकर भी भयभीत तथा अक्षर (अविनाशी) होकर भी क्षर (नाशवान्) समझता है। इस तरह अज्ञानके कारण और अज्ञानी पुरुषोंका सङ्ग करनेसे जीवका निरन्तर पतन होता है तथा उसे करोड़ों बार जन्म लेने पड़ते हैं। वह पशु, पक्षी, मनुष्य तथा देवताओंकी योनियोंमें हजारों बार मर-मरकर जन्म धारण किया करता है।



आत्माकी प्रकृतिसे भिन्नता तथा योग और सांख्यका मत

राजा जनकने कहा—भगवन्! जैसे पुरुषके बिना स्त्री और स्त्रीके बिना पुरुष संतान नहीं उत्पन्न कर सकते; दोनोंके सम्बन्धसे ही देहकी उत्पत्ति होती है, इसी प्रकार प्रकृति और पुरुष भी सदा एक-दूसरेसे सम्बद्ध (होकर ही सृष्टि करते) हैं, ऐसी स्थितिमें पुरुषका मोक्ष असम्भव जान पड़ता है। यदि मोक्षके निकट पहुँचानेवाला (अर्थात् उसे स्पष्ट समझानेवाला) कोई दृष्टान्त हो तो उसे बताइये; क्योंकि आपको सब कुछ प्रत्यक्ष है। मुझे भी मुक्त होनेकी इच्छा है—मैं भी उस पदको पाना चाहता हूँ जो देहरहित, जरारहित, इन्द्रियातीत और निर्विकार है।

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! तुमने वेद और शास्त्रोंके अनुसार दृष्टान्त देकर जो बात कही है, वह ठीक है। तुम जैसा समझते हो, वैसी ही बात है। इसमें संदेह नहीं कि तुमने वेद और शास्त्रोंके ग्रन्थोंका अध्ययन किया है; परंतु ग्रन्थके तत्त्वको ठीक-ठीक नहीं समझा है। जो वेद और शास्त्रके ग्रन्थोंको तो याद रखता है, किंतु उसके तत्त्वको नहीं समझता, उसका वह याद रखना व्यर्थ है। वह तो केवल ग्रन्थोंका बोझ ढोता है। जो स्थूल और मन्दबुद्धिसे युक्त होनेके कारण विद्वानोंकी सभामें शास्त्रीय ग्रन्थका अर्थतक नहीं बता सकता, वह उस ग्रन्थके विषयका निर्णय कैसे कर सकता है? इसलिये सांख्य और योगके ज्ञाता महात्मा पुरुषोंके मतमें मोक्षका जैसा स्वरूप देखा जाता है, उसे मैं तुम्हें यथार्थरूपसे बतलाता हूँ, सुनो—योगी जिस तत्त्वका साक्षात्कार करते हैं, सांख्यके विद्वान् भी उसीका ज्ञान प्राप्त करते हैं। जो सांख्य और योगको एक समझता है, वही बुद्धिमान् है। जैसे बीजसे बीजकी उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार द्रव्यसे द्रव्य, इन्द्रियसे इन्द्रिय और देहसे देहकी प्राप्ति होती है। परंतु परमात्मा तो इन्द्रिय, बीज, द्रव्य और देहसे रहित तथा निर्गुण है, अतः उसमें गुण कैसे हो सकते हैं? जैसे आकाश आदि गुण सत्त्वादि गुणोंसे उत्पन्न होते और उन्हींमें लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार सत्त्वादि गुण भी प्रकृतिसे उत्पन्न होकर उसीमें लीन होते हैं। आत्मा तो जन्म-मृत्युसे रहित, अनन्त, सबका द्रष्टा और निर्विकार है। वह सत्त्वादि गुणोंमें केवल आत्माभिमान करनेके कारण ही गुणस्वरूप कहलाता है। गुण तो गुणवान्में ही रहते हैं, निर्गुण आत्मामें गुण कैसे रह सकते हैं? अतः गुणोंके स्वरूपको जाननेवाले विद्वान् पुरुषोंका यही सिद्धान्त है कि जब जीवात्मा प्राकृत गुणोंमें अपनेपनका अभिमान छोड़ देता है, उस समय देहादिमें आत्मबुद्धिका परित्याग करके अपने विशुद्ध परमात्मस्वरूपका साक्षात्कार करता है। अतः सांख्य और योगके विद्वान् कहते हैं कि जो सत्त्वादि गुणोंसे रहित, अव्यक्त, नियामक, निर्गुण, अन्तर्यामी, नित्य और सबका अधिष्ठाता है, वह परमात्मा प्रकृति और उसके गुणोंसे विलक्षण पचीसवाँ तत्त्व है। जिस समय ज्ञानी पुरुष इस अव्यक्त तत्त्वको ठीक-ठीक समझ लेते हैं, उस समय उन्हें ब्रह्मके स्वरूपकी प्राप्ति हो जाती है। सदा एक रूपमें स्थित रहनेवाला परमात्मा अक्षर है और नाना रूपमें प्रतीत होनेवाला जगत् क्षर कहलाता है, इस प्रकार यह क्षर-अक्षरका स्वरूप बतलाया गया।

जनकने पूछा—मुनिवर! आपने अक्षरको एकरूप और क्षरको अनेक रूप बतलाया; किंतु अब भी मुझे इन दोनोंके स्वरूपके विषयमें संदेह बना ही रह गया है। यद्यपि आपने क्षर और अक्षरको समझनेके लिये कई युक्तियाँ बतलायी हैं, किंतु मैं अस्थिरबुद्धि होनेके कारण उन्हें भूल-सा गया हूँ; इसलिये इस नानात्व और एकत्वरूप दर्शनको पुनः सुनना चाहता हूँ। क्षर, अक्षर, सांख्य, योग और भेद-अभेदका विषय पूर्णरूपसे बताइये।

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! तुम जो-जो बातें पूछ रहे हो, उन सबका उत्तर दूँगा। इस समय विशेषत: योगविधिका वर्णन कर रहा हूँ, सुनो—योगका प्रधान कर्तव्य है ध्यान, यही योगियोंका परम बल है। योगके विद्वान् मनकी एकाग्रता और प्राणायाम—ये ध्यानके दो भेद बतलाते हैं। प्राणायाम भी सगुण और निर्गुण भेदसे दो प्रकारका है। मलत्याग, मूत्रत्याग और भोजन—इन तीन कालोंको छोड़कर बाकी समयमें योगाभ्यास करना चाहिये। योगका साधक मनके द्वारा इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर शुद्धभावसे स्थित हो जाय और मनीषी पुरुषोंने जिन्हें चौबीस तत्त्वोंसे परे अविनाशी बतलाया है, उस परमात्माका ध्यान करे। उसे सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग करके मिताहारी और जितेन्द्रिय होना चाहिये तथा रात्रिके पहले और पिछले भागमें मनको आत्मामें एकाग्र करना चाहिये। जब योगी मनके द्वारा सम्पूर्ण इन्द्रियोंको और बुद्धिके द्वारा मनको स्थिर करके पत्थरकी भाँति अविचल हो जाय, सूखे काठकी भाँति निष्कम्प और पर्वतकी तरह स्थिर रहे, तभी वह योगयुक्त कहलाता है। जिस समय उसे सुनने, सूँघने, स्वाद लेने, देखने और स्पर्श करनेका ज्ञान नहीं रहता, जब मनमें किसी प्रकारका संकल्प नहीं उठता तथा काष्ठकी भाँति स्थित होकर वह किसी भी वस्तुका अभिमान या सुध-बुध नहीं रखता, उसी समय उसे अपने शुद्ध स्वरूपको प्राप्त एवं योगयुक्त कहते हैं। उस अवस्थामें वह वायुरहित स्थानमें बिना हिले-डुले जलनेवाले दीपककी भाँति निश्चलभावसे प्रकाशित होता है। लिङ्गशरीरसे उसका कोई सम्पर्क नहीं रहता। ऐसे योगसिद्ध पुरुषकी ऊपर-नीचे अथवा मध्यमें कहीं भी गति नहीं होती। ध्याननिष्ठ योगीको अपने हृदयमें धूमरहित अग्नि, किरणमालाओंसे मण्डित सूर्य और बिजलीके समान तेजस्वी आत्माका साक्षात्कार होता है। धैर्यवान्, मनीषी, वेदवेत्ता और महात्मा ब्राह्मण ही उस अजन्मा एवं अमृतस्वरूप ब्रह्मका दर्शन कर पाते हैं। वह ब्रह्म अणुसे भी अणु और महान्से भी महान् कहा गया है। सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर वह अन्तर्यामीरूपसे अवश्य स्थित रहता है तो भी किसीको दिखायी नहीं देता; शुद्ध बुद्धिसे ही उसका साक्षात्कार होता है। वह महान् अज्ञानान्धकारसे परे है, इसलिये वेदके पारगामी सर्वज्ञ पुरुषोंने उसे तमोनुद (अज्ञाननाशक) कहा है। वह निर्मल, अज्ञानरहित, लिङ्गरहित और उपाधिशून्य परमात्मा कहा गया है। यही योगियोंका योग है, इसके सिवा योगका और क्या लक्षण हो सकता है? इस तरह साधना करनेवाले योगी सबके द्रष्टा अजर-अमर परमात्माका दर्शन करते हैं। यहाँतक मैंने तुम्हें योगदर्शन बतलाया है।

अब सांख्यका वर्णन करता हूँ, यह विचार प्रधान दर्शन है। राजन्! प्रकृतिवादी विद्वान् मूल प्रकृतिको अव्यक्त कहते हैं, उससे दूसरा तत्त्व प्रकट हुआ जिसे महत्तत्त्व कहते हैं, महत्तत्त्वसे अहंकार नामक तीसरे तत्त्वकी उत्पत्ति हुई है, अहंकारसे सूक्ष्म भूतोंकी पाँच तन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) प्रकट हुई हैं। इन आठोंको प्रकृति कहते हैं, इनसे सोलह तत्त्वोंकी उत्पत्ति होती है, जिन्हें विकार या विकृति कहते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन और पाँच स्थूल भूत—ये ही सोलह विकार हैं। सांख्यशास्त्रके विद्वानोंका कहना है कि ये प्रकृति और उसके विकार ही सांख्यशास्त्रके चौबीस तत्त्व हैं। जो तत्त्व जिससे उत्पन्न होता है, उसका उसीमें लय भी होता है। प्रकृति परमात्माके संनिधानसे अनुलोमक्रमके अनुसार तत्त्वोंकी रचना करती है (अर्थात् प्रकृतिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार, अहंकारसे सूक्ष्म भूत आदिके क्रमसे सृष्टि होती है); किंतु उनका संहार विलोमक्रमसे होता है (अर्थात् पृथ्वीका जलमें, जलका तेजमें, तेजका वायुमें लय होता है, इस तरह सभी तत्त्व अपने-अपने कारणमें लीन होते हैं)। जैसे समुद्रसे उठी हुई लहरें फिर उसीमें शान्त हो जाती हैं, उसी तरह सम्पूर्ण तत्त्व अनुलोमक्रमसे उत्पन्न होकर विलोमक्रमसे लीन होते हैं। इस प्रकार प्रकृतिसे ही जगत्की उत्पत्ति और उसीमें उसका लय होता है, इतना ही सृष्टि और प्रलयका विषय है। तत्त्ववेत्ता पुरुषको इसी प्रकार प्रकृतिके एकत्व और नानात्वका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। (प्रलयकालमें तो वह एक रूपमें रहती है और सृष्टिके समय नाना रूप धारण करती है)। इसी तरह पुरुष भी प्रलयकालमें एक ही रूपमें रहता है, किंतु सृष्टिके समय प्रकृतिको प्रेरित करनेके कारण उसकी ही अनेकतासे वह स्वयं भी अनेक-सा प्रतीत होता है। परमात्मा ही प्रकृतिको नाना रूपोंमें परिणत करता है। प्रकृति और उसके विकारको क्षेत्र कहते हैं। चौबीस तत्त्वोंसे भिन्न जो पचीसवाँ तत्त्व—महान् आत्मा है, वह क्षेत्रमें अधिष्ठातारूपसे निवास करता है। समस्त क्षेत्रोंका अधिष्ठान होनेके कारण ही उसे अधिष्ठाता कहते हैं। वह अव्यक्तसंज्ञक सम्पूर्ण क्षेत्रोंको जानता है, इसलिये क्षेत्रज्ञ कहलाता है और प्राकृत शरीरमें अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट है, इसलिये पुरुष नाम धारण करता है; वास्तवमें क्षेत्र अन्य वस्तु है और क्षेत्रज्ञ अन्य। क्षेत्र अव्यक्त (प्रकृति) है और क्षेत्रज्ञ उसका ज्ञाता पचीसवाँ तत्त्व आत्मा है। यही सांख्यदर्शन है। सांख्यवादी प्रकृतिको ही जगत्का कारण मानते हैं और इसके चौबीस तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करते हैं; फिर उससे भिन्न जो पचीसवाँ तत्त्व आत्मा है, उसका ज्ञान होता है। जिस समय पुरुष अपनेको प्रकृतिसे

भिन्न जान लेता है, उस समय वह केवल ब्रह्मरूपमें स्थित हो जाता है। इस प्रकार मैंने तुमसे सम्यग्दर्शन (सांख्य) का यथार्थ वर्णन किया, जो इसे इस प्रकार जानते हैं वे समस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। इसके अनुसार ज्ञान प्राप्त करनेवालोंकी इस संसारमें पुनरावृत्ति नहीं होती, वे परापरस्वरूप अविनाशी अक्षर-भावको प्राप्त होते हैं। जिनकी बुद्धि नानात्वका दर्शन करती है, वे सम्यक्-ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते, ऐसे लोगोंको बारंबार शरीर धारण करना पड़ता है। सम्पूर्ण जगत्को अव्यक्त कहते हैं और पचीसवाँ तत्त्व आत्मा उससे भिन्न है, जो उसे जानते हैं उन्हें आवागमनका भय नहीं रहता।

बुद्धिमान् पुरुष जब यह जान लेता है कि 'मैं अन्य हूँ और यह प्रकृति मुझसे भिन्न है,' तब प्रकृतिका त्याग कर देनेके कारण वह अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थित होता है। उस समय वह प्रकृतिसे मिला हुआ प्रतीत होनेपर भी वास्तवमें उससे भिन्न देखा जाता है। जब वह प्राकृत गुणसमुदायपर प्रीति नहीं रखता, उस समय द्रष्टाके रूपमें स्थित होकर परमात्माका दर्शन पा जाता है और फिर उसका त्याग नहीं करता। (जिस समय जीवात्माको विवेक होता है, उस समय वह यों पश्चात्ताप करने लगता है—) ओह ! मैंने यह क्या किया, जैसे मछली अज्ञानवश स्वयं ही जाकर जालमें फँस जाती है, उसी प्रकार मैं भी आजतक इस भवजालका ही अनुसरण करता रहा। जिस तरह मत्स्य पानीको ही अपने जीवनका मूल समझकर एक तालाबसे दूसरे तालाबको जाता है, उसी तरह मैं भी अज्ञानवश एक देहसे दूसरे देहमें भटकता रहा। वास्तवमें इस जगत्के भीतर यह परमात्मा ही मेरा बन्धु है, इसीके साथ मेरी मैत्री होनी उचित है। पहले मैं कैसा ही क्यों न रहा होऊँ, इस समय तो मैं इसकी समानता—अभिन्नताको प्राप्त हो चुका हूँ, इसीमें मुझे अपनी समता दिखायी देती है, मैं अवश्य इसके ही तुल्य हूँ, यह अत्यन्त निर्मल है और मैं भी ऐसा ही हूँ। मैं आसक्तिसे रहित हूँ तो भी अज्ञान एवं मोहके वशीभूत होकर इतने समयतक इस आसक्तिमयी जड प्रकृतिके साथ रमता रहा। इसने इस तरह वशमें कर लिया था कि मुझे आजतकके समयका पता ही न चला। यह तो उच्च, मध्यम तथा नीच—सब श्रेणीके लोगोंके साथ रहती है; भला, इसके साथ मैं कैसे रह सकता हूँ ? मैं निर्विकार होकर भी इस विकारमयी प्रकृतिके द्वारा ठगा गया ! अबतक मैंने बड़ा धोखा खाया; अब इसके साथ नहीं रहूँगा। किंतु इसमें इसका कोई अपराध नहीं है। सारा अपराध मेरा ही है; क्योंकि मैं ही परमात्मासे विमुख होकर इसमें आसक्त हुआ था। यद्यपि मेरी एक भी मूर्ति नहीं है, तो भी मैं प्रकृतिकी नाना मूर्तियोंमें स्थित हुआ। देहरहित होकर भी ममतासे परास्त होनेके कारण देहधारी बना। उफ ! इस ममताने भिन्न-भिन्न योनियोंमें डालकर मेरा क्या नहीं किया ? इसके साथ नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकनेके कारण मेरी चेतना खो गयी थी। अब इस अहंकारमयी प्रकृतिसे मेरा कोई काम नहीं है। अब भी यह बहुत-से रूप धारण करके फिर मेरे साथ संयोगकी चेष्टा कर रही है; किंतु अब मैं इसकी चाल समझ गया हूँ। ममता और अहंकारसे अलग हो गया हूँ। अब तो इसको और इसकी ममताको त्यागकर निरामय परमात्माकी शरण लूँगा और उन्हींकी समता प्राप्त करूँगा। इस जड प्रकृतिकी समानता नहीं धारण करूँगा। परमात्माके साथ एकता होनेमें ही मेरा कल्याण है, इस प्रकृतिके साथ रहनेमें नहीं।

इस प्रकार उत्तम विवेकके द्वारा अपने शुद्ध स्वरूपका ज्ञान प्राप्तकर (चौबीस तत्त्वोंसे परे) पचीसवाँ आत्मा क्षरभाव (विनाशशीलता) का त्याग करके निरामय अक्षरभावको प्राप्त होता है। राजन् ! वेदमें जैसा वर्णन किया गया है, उसके अनुरूप यह क्षर-अक्षरका विवेक करानेवाला ज्ञान मैंने तुम्हें सुनाया है। यह संदेहरहित सूक्ष्म तथा अत्यन्त निर्मल है। अब मैं पुनः जो बात बता रहा हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो—मैंने सांख्य और योगका जो वर्णन किया है, उसमें इन दोनोंको पृथक्-पृथक् दो शास्त्र बताया है; किंतु वास्तवमें जो सांख्यशास्त्र है, वही योगदर्शन भी है (क्योंकि दोनोंका फल एक ही है)। राजन् ! मैंने प्रेमभावसे इस शुद्ध सनातन एवं सबके आदिभूत ब्रह्मके यथार्थ तत्त्वका उपदेश किया है। जो पुरुष वेदकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाला न हो, उसे इस उत्तम ज्ञानका उपदेश नहीं करना चाहिये। इसे प्राप्त करनेका वही अधिकारी है जो जिज्ञासुभावसे शरणमें आया हो। असत्यवादी, शठ, कामी, कपटी, अपनेको पण्डित माननेवाले और दूसरेको कष्ट पहुँचानेवाले मनुष्य भी इस ज्ञानके अधिकारी नहीं हैं। कैसे लोगोंको यह ज्ञान देना चाहिये ? इसको भी सुन लो—श्रद्धालु, गुणवान्, दूसरोंकी निन्दासे दूर रहनेवाले, विशुद्ध योगी, विद्वान्, सदा वेदोक्त कर्म करनेवाले, क्षमाशील, सबके हितैषी, एकान्तवासी, शास्त्रविधिका आदर करनेवाले, विवादहीन, बहुज्ञ, विज्ञ, किसीका अहित न करनेवाले तथा शम-दमसे सम्पन्न पुरुष ही इस ज्ञानके अधिकारी हैं। जिनमें उपर्युक्त गुणोंका अभाव हो ऐसे पुरुषोंको यह विशुद्ध परब्रह्मका ज्ञान नहीं देना चाहिये। विद्वानोंका कहना है कि इन गुणोंसे हीन मनुष्यको दिया हुआ उपदेश उसका कल्याण नहीं करता तथा कुपात्रको उपदेश देनेसे वक्ताका भी भला नहीं

होता। राजन्! जिसने व्रत और नियमका पालन न किया हो, वह सारी पृथ्वीका राज्य दे तो भी उसे यह उपदेश नहीं देना चाहिये; किंतु जितेन्द्रिय पुरुषको अवश्य इसका उपदेश करना चाहिये।

कराल! तुमने मुझसे परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त किया है, अब तुम्हारे मनमें तनिक भी भय नहीं होना चाहिये। यह ब्रह्म परम पवित्र, शोकरहित, आदि-मध्य और अन्तसे शून्य, जन्म-मृत्युसे बचानेवाला, निरामय, निर्भय तथा कल्याणमय है। वही सम्पूर्ण ज्ञानोंका तात्त्विक अर्थ है। उसका ज्ञान प्राप्त करके मोहका परित्याग कर दो। जिस प्रकार आज तुमने मुझसे सनातन ब्रह्मका ज्ञान प्राप्त किया है, इसी प्रकार मैंने भी सनातन हिरण्यगर्भ नामसे प्रसिद्ध ब्रह्माजीके मुखसे इसे प्राप्त किया था।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! महर्षि वसिष्ठजीके बताये अनुसार पचीसवें तत्त्वरूप परब्रह्मका स्वरूप मैंने तुम्हें बताया है। यही वह ब्रह्म है, जिसे जान लेनेपर फिर इस संसारमें नहीं आना पड़ता। जो उसे ठीक-ठीक नहीं जानता, वही संसारमें बारंबार जन्म लेता है। जो जान लेता है, वह तो अजर-अमर हो जाता है। तात! यह परम कल्याणकारी ज्ञान मैंने देवर्षि नारदजीके मुँहसे सुना था, वही आज तुम्हें भी बताया है। ब्रह्माजीसे वसिष्ठजीको और वसिष्ठजीसे नारदजीको यह ज्ञान प्राप्त हुआ था। नारदजीसे मिला हुआ यह सनातन ब्रह्मका उपदेश परमपद है; इसे जानकर अब तुम सब प्रकारके शोकका त्याग कर दो। राजन्! जो क्षर-अक्षरको जानता है, उसे संसारका भय नहीं होता; जो नहीं जानता, उसीको भय प्राप्त होता है। मूर्ख मनुष्य इस तत्त्वको न जाननेके कारण बारंबार संसारमें आता है और हजारों योनियोंमें जन्म-मरणके कष्टका अनुभव करता है। वह देव, मनुष्य और पशु-पक्षी आदिकी योनिमें भटकता रहता है। अज्ञानरूपी समुद्र अव्यक्त, अगाध और भयंकर है, इसमें कितने ही प्राणी प्रतिदिन गोते खाते रहते हैं। तुम मेरा उपदेश पाकर इस भवसागरसे पार हो गये हो, अब रजोगुण और तमोगुण तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकते, (तुम शुद्ध सत्त्वमें स्थित हो)।



राजकुमार वसुमान्‌को एक ऋषिका धर्मविषयक उपदेश

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! एक समयकी बात है, जनकवंशका राजकुमार वसुमान् शिकार खेलनेके लिये एक निर्जन वनमें गया। वहाँ उसने भृगुके वंशमें उत्पन्न हुए एक ब्रह्मर्षिको देखा जो पास ही बैठे हुए थे। वसुमान्‌ने निकट जाकर उनके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और फिर उनकी आज्ञा लेकर इस प्रकार प्रश्न किया—'भगवन्! इस नाशवान् शरीरमें कामके अधीन होकर रहनेवाले पुरुषका इस लोक और परलोकमें किस उपायसे कल्याण हो सकता है?'

ऋषिने कहा—राजकुमार! धर्म ही सत्पुरुषोंका कल्याण करनेवाला तथा धर्म ही उनका आश्रय है। तीनों लोकके चराचर प्राणी धर्मसे ही उत्पन्न हुए हैं। तुम तो सदा विषयोंका ही रस लेना चाहते हो, भला तुम्हारी कामनाओंकी तृष्णा शान्त क्यों नहीं होती, अपनी कुत्सित बुद्धिके कारण अभी तुम्हें कामनाओंमें मिठास-ही-मिठास दिखायी देती है, उनसे होनेवाले पतनकी ओर तुम्हारी दृष्टि नहीं जाती। जैसे ज्ञानका फल चाहनेवालेके लिये ज्ञानसे परिचित होना आवश्यक है, उसी प्रकार धर्मका फल चाहनेवालेको भी धर्मका परिचय प्राप्त करना चाहिये। दुष्ट पुरुष यदि धर्मकी इच्छा करे भी तो उसके द्वारा विशुद्ध कर्मका सम्पादन होना कठिन हो जाता है और साधुपुरुष यदि धर्मानुष्ठानकी इच्छा करे तो उसके लिये कठिन-से-कठिन कर्म भी सहज हो जाते हैं।



वनमें रहकर भी जो ग्रामीण सुखका उपभोग करना चाहता है, उसको ग्रामीण ही समझना चाहिये तथा गाँवमें रहकर भी जो वनवासी मुनियोंके-से बर्तावमें ही सुख मानता है, उसकी गिनती वनवासियोंमें ही करनी चाहिये। पहले निवृत्ति और प्रवृत्तिमें जो गुण-अवगुण हैं उसका तुम अच्छी तरह निश्चय कर लो, फिर एकाग्रचित्त होकर श्रद्धापूर्वक मन, वाणी तथा शरीरद्वारा धर्मका अनुष्ठान करो। प्रतिदिन नियम और पवित्रताका पालन करते हुए अच्छे देश और कालमें साधु पुरुषोंको प्रार्थना और सत्कारपूर्वक अधिकसे-अधिक दान करना चाहिये। और उनमें दोषदृष्टि नहीं रखनी चाहिये, शुभकर्मोंद्वारा प्राप्त हुआ धन सत्पात्रको अर्पण करना चाहिये, क्रोध त्याग कर दान देना चाहिये, देनेके बाद पश्चात्ताप अथवा दानका बखान नहीं करना चाहिये। दयालु, पवित्र, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, सरल, योनि और कर्मसे शुद्ध वेदवेत्ता ब्राह्मण ही दानके लिये उत्तम पात्र है। अपनी ही जातिके उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई पतिद्वारा सम्मानित पतिव्रता स्त्री उत्तम योनि मानी गयी है। इसी प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदका विद्वान् होकर सदा छः कर्मों (यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह) का अनुष्ठान करनेवाला ब्राह्मण कर्मसे शुद्ध एवं उत्तम पात्र बताया गया है। इस प्रकार देश, काल और पात्रका विचार करके दिये हुए दानसे धर्म होता है और देश-कालादिका विचार न करनेपर पात्र और क्रियाकी विशेषतासे वही दान दाताके लिये अधर्मके रूपमें परिणत हो जाता है। जो मनुष्य अपने दोषोंका नाश करके धर्मका आचरण करता है, उसको धर्म परलोकमें सुख पहुँचाता है, सभी प्राणियोंके मनमें अच्छे और बुरे विचार रहते हैं, मनुष्यको चाहिये कि चित्तको अशुभ विचारोंकी ओरसे हटाकर शुभ विचारोंमें लगावे। अपने वर्ण और आश्रमके अनुसार सबके द्वारा सब जगह किये जानेवाले सब प्रकारके कर्मोंका आदर करे, तुम भी अपने धर्मके अनुसार जिस कर्ममें अनुराग हो उसका इच्छानुसार पालन करो, मनको स्थिर करो, बुद्धिमान् और शान्त बनो तथा प्राज्ञ पुरुषोंके समान आचरण करो। जो सत्पुरुषोंका सङ्ग करता है उसे उन्हींके प्रतापसे ऐसे उपायकी प्राप्ति हो सकती है जो इस लोक और परलोकमें भी कल्याण करनेवाला हो। धृति (मनकी स्थिरता) ही कल्याणका मूल है, राजर्षि महाभिष धृतिमान् न होनेके कारण ही स्वर्गसे नीचे गिरे और राजा ययाति पुण्य क्षीण हो जानेके बाद भी धृतिके ही बलसे उत्तम लोकोंको प्राप्त हुए। तुम भी धर्मज्ञ एवं तपस्वी विद्वानोंकी सेवा करो, इससे तुम्हारी बुद्धि बढ़ेगी और तुम्हें कल्याणकी प्राप्ति हो जायगी।

मुनिके इस उपदेशको सुनकर राजकुमार वसुमान्ने अपने मनको कामनाओंसे हटाकर धर्ममें लगा दिया।



याज्ञवल्क्यका राजा जनकको उपदेश—सांख्य-मतके अनुसार सृष्टि, प्रलय और गुणोंका वर्णन

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! जो धर्म-अधर्मसे रहित, संशयशून्य, जन्म-मृत्युसे मुक्त, पुण्य-पापसे हीन, नित्य, निर्भय, कल्याणमय, अक्षर, अव्यय, पवित्र एवं क्लेशरहित तत्त्व है, उसका आप हमें उपदेश कीजिये।

भीष्मजीने कहा—भारत ! इस विषयमें तुम्हें जनक-याज्ञवल्क्यका संवादरूप एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। एक बार देवरातके पुत्र महायशस्वी राजा जनकने प्रश्नका रहस्य समझनेवालोंमें श्रेष्ठ मुनिवर याज्ञवल्क्यजीसे पूछा—'विप्रवर ! इन्द्रियाँ कितनी हैं ? प्रकृतिके कितने भेद हैं ? उससे परे कारण ब्रह्मका क्या स्वरूप है ? उससे भी पर निर्गुण तत्त्व क्या है ? सृष्टि और प्रलयका क्या स्वरूप है ? ये सब बतानेकी कृपा कीजिये। मैं आपका कृपापात्र और अज्ञानी हूँ, इसलिये प्रश्न करता हूँ। आप ज्ञानके भण्डार हैं, अतः आपहीसे इन सब विषयोंको सुननेकी इच्छा हो रही है।

याज्ञवल्क्यने कहा—राजन् ! तुम जो कुछ पूछते हो वह योग और सांख्यका परम रहस्यमय ज्ञान तुम्हें बताता हूँ, सुनो। यद्यपि तुमसे कोई भी विषय अज्ञात नहीं है, फिर भी मुझसे पूछते हो तो कहना ही पड़ता है; क्योंकि किसीके पूछनेपर जानकार मनुष्यको उसके प्रश्नका उत्तर देना ही चाहिये, यही सनातन धर्म है। प्रकृतियाँ आठ हैं और उनके विकार सोलह। अध्यात्म-शास्त्रके विद्वानोंने अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहंकार, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज—इन आठ तत्त्वोंको प्रकृति बतलाया है। अब विकारोंके नाम सुनो—आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा, वाक्, हाथ, पैर, गुदा, लिङ्ग, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इनमेंसे हस्त-पादादि कर्मेन्द्रियाँ और शब्द-स्पर्शादि विषय विशेष कहलाते हैं तथा नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियोंको सविशेष कहते हैं, ये सब मिलकर पंद्रह हैं और इनके साथ सोलहवाँ मन है, ये ही सोलह विकार कहे गये हैं। राजन् ! अव्यक्त प्रकृतिसे

महत्तत्त्व (समष्टिबुद्धि) की उत्पत्ति होती है, इसे विद्वान् पुरुष पहली और प्राकृत सृष्टि कहते हैं। महत्तत्त्वसे अहंकार प्रकट होता है, यह दूसरा सर्ग है, जिसे बुद्ध्यात्मक सृष्टि कहते हैं। अहंकारसे मन प्रकट होता है, जिसे तीसरी आहंकारिक सृष्टि कहते हैं। मनसे पाँच महाभूत उत्पन्न हुए हैं, इसे चौथी मानसी सृष्टि कहते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच विषय पञ्चभूतोंसे उत्पन्न होनेके कारण भौतिक सर्ग कहलाते हैं, यह पाँचवीं सृष्टि है। श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और घ्राणेन्द्रियको छठा सर्ग कहते हैं, यह बहुचिन्तात्मक (मानस) सृष्टि है। श्रोत्र आदिके बाद कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति हुई है, यह सातवाँ सर्ग है। यह ऐन्द्रियक सृष्टि है। तदनन्तर, प्राणवायुके साथ ही समान, व्यान और उदानका ऊपरी भाग प्रकट हुआ, यह आठवाँ सर्ग है। तत्पश्चात् अपानवायुके साथ समान, व्यान और उदानका निम्न भाग उत्पन्न हुआ, इसे नवम सर्ग कहते हैं। आठवें और नवें सर्गका नाम आर्जवक सृष्टि है। राजन्! इस प्रकार मैंने नौ प्रकारकी सृष्टि और चौबीस प्रकारके तत्त्वोंका श्रुतिके अनुसार वर्णन किया है।

अब तत्त्वोंके संहारका वृत्तान्त सुनो। आदि-अन्तसे रहित नित्य, अक्षरस्वरूप ब्रह्माजी जिस प्रकार बारंबार सृष्टि और संहार करते हैं वह सब बातें बता रहा हूँ—ब्रह्माजी जब देखते हैं कि मेरे दिनका अन्त हो गया तो उनके मनमें रातको शयन करनेकी इच्छा होती है, इसलिये वे अहंकारके अभिमानी देवता रुद्रको संहारके लिये आज्ञा देते हैं, उस समय वे रुद्रदेव ब्रह्माजीसे प्रेरित होकर प्रचण्ड सूर्यका स्वरूप धारण करते हैं और अपने बारह स्वरूप बनाकर अग्निके समान प्रज्वलित हो उठते हैं। तत्पश्चात् अपने तेजसे जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज—इन चार प्रकारके प्राणियोंसे भरे हुए सम्पूर्ण जगत्को भस्म कर डालते हैं। पलक मारते-मारते चराचर विश्वका नाश हो जाता है और यह भूमि सब ओरसे कछुवेकी पीठकी तरह दिखायी देने लगती है। इसके बाद अमित बलवान् रुद्र जलनेसे बची हुई पृथ्वीको जलके महान् प्रवाहमें डुबो देते हैं। तदनन्तर, कालाग्निकी लपटमें पड़कर सारा जल सूख जाता है। पानीके सूखते ही आग अत्यन्त भयानक रूप धारण करती है और सब ओर बड़े जोरसे प्रज्वलित हो उठती है। तब अत्यन्त बलवान् वायुदेव अपने आठों रूपोंमें प्रकट होकर उस प्रचण्ड वेगसे जलती हुई आगको निगल जाते हैं और ऊपर-नीचे तथा बीचमें सब ओर प्रवाहित होने लगते हैं। तदनन्तर, वायुको आकाश, आकाशको मन, मनको अहंकार, अहंकारको महत्तत्त्व और महत्तत्त्वको प्रजापति शम्भु अपना ग्रास बना लेते हैं। ये शम्भु अणिमा, लघिमा और प्राप्ति आदि सिद्धियोंसे सम्पन्न, सबके ईश्वर, ज्योतिःस्वरूप तथा अविकारी हैं। वे सब ओर हाथ-पैरोंवाले, सब ओर आँख, मस्तक और मुखवाले तथा सब ओर कानवाले हैं, ये सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके स्थित हैं। ये सब प्राणियोंके हृदयस्थित आत्मा, अनन्त, परम महान् और सर्वेश्वर हैं तथा ये ही सम्पूर्ण विश्वको अपनेमें लीन करते हैं। इस प्रकार सबके अन्तमें सर्वस्वरूप, अक्षय, अव्यय, छिद्ररहित, भूत-भविष्य वर्तमानके स्रष्टा और सब प्रकारके दोषोंसे रहित परमेश्वर ही शेष रहते हैं। राजन्! इस प्रकार मैंने तुम्हें यह तत्त्वोंके संहारका क्रम बतलाया है।

राजन्! प्रकृति स्वतन्त्रतापूर्वक खेल करनेके लिये अपनी ही इच्छासे सैकड़ों और हजारों गुणोंको उत्पन्न करती है। जैसे मनुष्य एक दीपकसे हजारों दीपक जला लेते हैं, उसी प्रकार प्रकृति पुरुषके एक-एक गुणसे अनेकों गुण उत्पन्न कर देती है। आनन्द, प्रीति, मन और इन्द्रियोंकी प्रसन्नता, सुख, शुद्धि, आरोग्य, संतोष, श्रद्धा, दीनता और क्रोधका अभाव, क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य, उऋण होना, मृदुता, लज्जा, चपलताका अभाव, शौच, सरलता, सदाचार, अलोलुपता, हृदयमें सम्भ्रमका न होना, इष्ट-अनिष्टके वियोगका बखान न करना, दानके द्वारा मनको वशमें रखना, किसी वस्तुकी इच्छा न करना, परोपकार तथा सब प्राणियोंपर दया करना—ये सब गुण सत्त्वगुणसे उत्पन्न होते हैं। रूप, ऐश्वर्य, विग्रह, त्यागका अभाव, निर्दयता, सुख-दुःखके सेवनमें आसक्ति, पर-निन्दामें प्रीति, झगड़े मोल लेनेका स्वभाव, अहंकार, माननीय पुरुषोंका सत्कार न करना, चिन्ता, वैर बाँधना, संताप करना, दूसरोंका धन हड़प लेना, निर्लज्जता, कुटिलता, भेदबुद्धि, कठोरता, काम, मद, दर्प और द्वेष—ये रजोगुणके कार्य बतलाये गये हैं। मोह, अप्रकाश (अज्ञान), तामिस्र (क्रोध), अन्धतामिस्र (मरण), बहुत तरहकी खानेकी चीजोंमें रुचि रखना, भोजनसे संतोष न होना, पीनेयोग्य वस्तुओंसे मन न भरना, सुगन्ध, वस्त्र, शय्या, आसन, विहार, दिनमें शयन, अधिक बकवाद और प्रमादमें मन लगाना, नाच-गान और बाजेमें प्रेम रखना तथा धर्मसे द्वेष करना—ये सब तामसगुण समझने चाहिये।

राजन्! सत्त्व, रज और तम—ये तीन प्रकृतिके गुण हैं। अध्यात्मशास्त्रका विचार करनेवाले विद्वान् कहते हैं कि सात्त्विक पुरुषको उत्तम, रजोगुणीको मध्यम और तमोगुणीको अधम स्थानकी प्राप्ति होती है, केवल पुण्य करनेसे मनुष्य ऊर्ध्वलोकमें गमन करता है, पुण्य और पाप दोनोंके अनुष्ठानसे मर्त्यलोकमें जन्म लेता है तथा केवल पापाचार करनेपर उसे अधोगति (नरक) में गिरना पड़ता है। अब मैं सत्त्व, रज

और तम—इन तीनों गुणोंके द्वन्द्व और संनिपातका[1] वर्णन करता हूँ, सुनो—सत्त्वगुणके साथ रजोगुण, रजोगुणके साथ तमोगुण अथवा तमोगुणके साथ सत्त्वगुणका मेल देखा जाता है। केवल सत्त्वगुणसे युक्त मनुष्यको देवलोककी प्राप्ति होती है, रजोगुण और सत्त्वगुण दोनोंसे युक्त होनेपर वह मनुष्य-योनिमें जन्म पाता है तथा रजोगुण और तमोगुणसे युक्त जीवको तिर्यग्योनिमें जन्म लेना पड़ता है। जिसमें तीनों गुणोंका संयोग रहता है, उसका भी मनुष्ययोनिमें ही जन्म होता है; किंतु जो पुण्य और पापसे रहित होते हैं, उन महात्माओंको अक्षय, अविकारी, अमृतमय एवं सनातन स्थानकी प्राप्ति होती है। वह उत्तम पद ज्ञानियोंको ही सुलभ होता है।

राजा जनकने पूछा—महामते ! प्रकृति और पुरुष दोनों आदि-अन्तसे रहित, मूर्तिहीन और अचल हैं। दोनोंके ही गुण अप्रकम्प्य हैं तथा दोनों ही निर्गुण और अग्राह्य (बुद्धिके अगोचर) हैं। फिर एकको क्यों आपने अचेतन बताया और दूसरेको चैतन्ययुक्त क्षेत्रज्ञ कहा है ? आप पूर्णतया मोक्ष-धर्मका सेवन करते हैं; इसलिये आपहीके मुँहसे मुझे सारा-का-सारा मोक्षधर्म सुननेकी इच्छा है। पुरुषके अस्तित्व, केवलत्व और प्रकृतिसे भिन्नत्वका स्पष्टीकरण कीजिये, देहका आश्रय ग्रहण करनेवाले इन्द्रिय-देवताओंके सम्बन्धकी बात बताइये तथा मरनेवाले जीवके प्राणोंका जब उत्क्रमण होता है, तो उसे किस स्थानकी प्राप्ति होती है ? इसपर भी प्रकाश डालिये। साथ ही पृथक्-पृथक् सांख्य और योगके ज्ञानका तथा मृत्युसूचक चिह्नोंका भी वर्णन कीजिये; क्योंकि सारा ज्ञान आपके लिये हस्तामलकवत् है ?

याज्ञवल्क्यने कहा—राजन् ! त्रिगुणमयी प्रकृति और गुणातीत पुरुषका यथार्थ तत्त्व मैं बता रहा हूँ, सुनो—तत्त्वदर्शी महात्मा कहते हैं, जिसका गुणोंके साथ सम्पर्क है वह गुणवान् है तथा जो गुणोंके संसर्गसे रहित है, वह निर्गुण कहलाता है। अव्यक्त प्रकृति स्वभावसे ही गुणवती है, वह गुणोंका अतिक्रमण नहीं कर सकती। उसे किसी वस्तुका ज्ञान नहीं होता। इसके विपरीत पुरुष स्वभावसे ही ज्ञानी है, वह सदा इस बातको जानता रहता है कि मेरे सिवा दूसरा कोई चेतन पदार्थ नहीं है। अतः क्षर होनेके कारण प्रकृति अचेतन (जड) है और नित्य तथा अक्षर होनेके कारण पुरुष चेतन है। किंतु जबतक वह अज्ञानवश बारंबार गुणोंका संसर्ग करता और अपने असङ्ग स्वरूपको नहीं जानता है, तबतक उसकी मुक्ति नहीं होती है। वह अपनेको प्रकृति (प्रजा) का कर्ता माननेके कारण प्रकृतिधर्मी कहलाता है। स्थावर पदार्थोंके बीजोंको उत्पन्न करनेके कारण उसे बीजधर्मा कहते हैं तथा वह गुणोंकी उत्पत्ति तथा प्रलयका कर्ता होनेसे गुणधर्मा कहा जाता है। अध्यात्मशास्त्रको जाननेवाले सिद्ध यति साक्षी और अद्वितीय होनेके कारण पुरुषको केवल (प्रकृतिके सङ्गसे रहित) मानते हैं। उसे सुख-दुःखका अनुभव तो अभिमानके कारण होता है, वह कारणरूपसे नित्य और अव्यक्त है तथा कार्यरूपसे नित्य और व्यक्त है। सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करनेवाले और केवल ज्ञानका सहारा लेनेवाले कुछ सांख्यके विद्वान् प्रकृतिको एक और पुरुषको अनेक मानते हैं। पुरुष प्रकृतिसे भिन्न और नित्य है तथा अव्यक्त (प्रकृति) पुरुषसे भिन्न एवं अनित्य है। जैसे सींकसे मूँज अलग होती है, उसी प्रकार प्रकृति भी पुरुषसे भिन्न है। जैसे गूलर और उसके कीड़े एक साथ होनेपर भी अलग-अलग समझे जाते हैं तथा जिस प्रकार कमल दूसरी वस्तु है और पानी दूसरी, पानीके स्पर्शसे कमल लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार पुरुष भी प्रकृतिसे भिन्न और असङ्ग है। गँवार लोग इनके सहवास और निवासको ठीक-ठीक नहीं समझ पाते। जो प्रकृति और पुरुषको एक-दूसरेसे भिन्न नहीं जानते, वे बारंबार घोर नरकमें पड़ते हैं। इस प्रकार मैंने तुम्हें सांख्यशास्त्रका मत बतलाया है, सांख्यके विद्वान् इसी प्रकार प्रकृति और पुरुषकी भिन्नताका विचार करके कैवल्यको प्राप्त हो गये हैं।



योग तथा मृत्युसूचक चिह्नोंका वर्णन

याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—राजन् ! मैं सांख्यसम्बन्धी ज्ञान तो तुम्हें बतला चुका, अब योगशास्त्रका ज्ञान सुनो। सांख्यके समान कोई ज्ञान नहीं है और योगके समान दूसरा कोई बल नहीं है, दोनोंका लक्ष्य एक है और दोनों ही मृत्युका नाश करनेवाले हैं। जो इन दोनों शास्त्रोंको सर्वथा भिन्न मानते हैं, वे अज्ञानी हैं। मैं तो विचारके द्वारा पूर्ण निश्चय करके दोनोंको एक समझता हूँ। योगी जिस तत्त्वका साक्षात्कार करते हैं, सांख्यके विद्वान् भी उसीका ज्ञान प्राप्त करते हैं। जो सांख्य और ज्ञानको एक समझता है वही तत्त्ववेत्ता है। योग-साधनामें रुद्र (प्राणशक्ति) की प्रधानता है, प्राणको

१. दो गुणोंके मेलको द्वन्द्व और तीन गुणोंके मेलको संनिपात कहते हैं।

अपने वशमें कर लेनेपर योगी इसी शरीरसे दसों दिशाओंमें स्वच्छन्द विचरण कर सकते हैं। जबतक योगीका स्थूल शरीर रहता है तबतक वह योगबलसे सूक्ष्म शरीरके द्वारा लोक-लोकान्तरोंमें विचरण करता है। स्थूल देहको त्याग देनेपर उसे परम सुखरूप मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। मनीषी पुरुषोंका कहना है कि वेदमें स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकारके योगोंका वर्णन है। स्थूल योग अणिमा आदि आठ प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है और सूक्ष्म योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—इन) आठ गुणों (अंगों) से युक्त है। योगका प्रधान कर्तव्य है प्राणायाम, जो सगुण और निर्गुण भेदसे दो प्रकारका होता है। मनकी धारणाके[1] साथ किया जानेवाला प्राणायाम सगुण है और प्राणों (इन्द्रियों) के निग्रहपूर्वक मनको समाधिमें एकाग्र करना निर्गुण प्राणायाम कहलाता है। सगुण प्राणायाम मनको निर्गुण (वृत्तिशून्य) करके स्थिर करनेमें सहायक होता है। इस तरह (प्राणायामके द्वारा) मनको वशमें करके शान्त और जितेन्द्रिय होकर एकान्तवास करनेवाले आत्माराम ज्ञानीको परमात्माका ध्यान करना चाहिये। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये इन्द्रियोंके पाँच दोष हैं, इन दोषोंको दूर करे। फिर सम्पूर्ण इन्द्रियोंको मनमें स्थिर करके लय और विक्षेपको शान्त करे। मनको अहंकारमें, अहंकारको बुद्धिमें और बुद्धिको प्रकृतिमें स्थापित करे। इस प्रकार सबका लय करके केवल उस परमात्माका ध्यान करना चाहिये, जो रजोगुणसे रहित, निर्मल, नित्य, अनन्त, शुद्ध, छिद्ररहित, कूटस्थ, अन्तर्यामी, अभेद्य, अजर, अमर, अविकारी, सबका शासन करनेवाला और सनातन ब्रह्म है।

राजन्! अब समाधिमें स्थित हुए योगीके लक्षण सुनो। जैसे तृप्त हुआ मनुष्य सुखसे सोता है, उसी प्रकार योगयुक्त पुरुषके चित्तमें सदा प्रसन्नता बनी रहती है—वह समाधिसे विरत होना नहीं चाहता, यही उसकी प्रसन्नताकी पहचान है। जैसे तेलसे भरा हुआ दीपक वायुशून्य स्थानमें एकतार जलता रहता है, उसकी शिखा स्थिरभावसे ऊपरकी ओर उठी रहती है, उसी तरह समाधिनिष्ठ योगी भी स्थिर होता है। जैसे बादलकी बरसायी हुई बूँदोंके आघातसे पर्वत चञ्चल नहीं होता, वैसे ही अनेकों विक्षेप आकर योगीको विचलित नहीं कर सकते। उसके पास बहुत-से शङ्ख और नगाड़ोंकी ध्वनि हो और तरह-तरहके गाने-बजाने किये जायँ तो भी उसका ध्यान भङ्ग नहीं हो सकता, यही उसकी सुदृढ़ समाधिकी पहचान है। जैसे सावधान पुरुष दोनों हाथोंमें तेलसे भरा कटोरा लेकर सीढ़ीपर चढ़े और उस समय बहुत-से मनुष्य हाथमें तलवार लेकर उसे डराने-धमकाने लगें तो भी वह उनके डरसे एक बूँद भी तेल गिरने नहीं देता, उसी प्रकार योगकी ऊँची स्थितिको प्राप्त हुआ एकाग्रचित्त योगी इन्द्रियोंकी स्थिरताके कारण समाधिसे विचलित नहीं होता। योगसिद्ध महात्माके ऐसे ही लक्षण समझने चाहिये। जो अच्छी प्रकार समाधिमें स्थिर हो जाता है वह अविनाशी परब्रह्मका साक्षात्कार करता है। इस साधनाके द्वारा मनुष्य देहत्यागके पश्चात् केवल (प्रकृतिके संसर्गसे रहित) परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो जाता है, यही योगियोंका योग है, इसे जानकर मनीषी पुरुष अपनेको कृतार्थ मानते हैं।

विदेहराज! अब मैं विद्वानोंके बताये हुए मृत्युसूचक चिह्नोंका वर्णन करता हूँ। जिस पुरुषको अरुन्धती या ध्रुव नामक तारा, जिसे उसने पहले कभी देखा हो, न दिखायी पड़े तथा पूर्ण चन्द्रमाका मण्डल और दीपककी शिखा दाहिने भागसे खण्डित जान पड़े, वह केवल एक वर्षतक जीवित रह सकता है। जो लोग दूसरोंके नेत्रोंमें अपनी परछाईं न देख सकें, उनकी आयु भी एक ही वर्षतक शेष समझनी चाहिये। जिसकी बहुत बढ़ी-चढ़ी कान्ति भी फीकी पड़ जाय, बुद्धि नष्ट हो जाय, स्वभावमें भारी उलट-फेर हो जाय, जो काले रंगका होकर भी पीला पड़ने लगे तथा देवताओंका अनादर और ब्राह्मणोंके साथ विरोध करता हो, वह छः महीनेसे अधिक नहीं जी सकता। जो मनुष्य सूर्य और चन्द्रमाको मकड़ीके जालेके चक्रके समान छिद्रयुक्त देखता है तथा देवमन्दिरमें बैठकर वहाँकी सुगन्धित वस्तुमें भी सड़े मुर्देकी-सी दुर्गन्धका अनुभव करता है, वह सात दिनमें ही मृत्युको प्राप्त हो जाता है। जिसकी नाक और कान टेढ़े हो जायँ, दाँत और नेत्रोंका रंग बिगड़ जाय, जिसे बेहोशी होने लगे, जिसका शरीर ठंडा पड़ जाय तथा जिसकी बायीं आँखसे अकस्मात् आँसू बहने और मस्तकसे धुआँ उठने लगे, उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती है।

इन मृत्युसूचक चिह्नोंको जानकर मनको वशमें रखनेवाला साधक रात-दिन परमात्माका ध्यान करे और मृत्युकालकी बाट जोहता रहे। ऐसा करनेसे वह उस सनातन पदको प्राप्त करता है, जो अशुद्ध चित्तवाले पुरुषोंके लिये दुर्लभ है तथा जो अक्षय, अजन्मा, अचल, अविकारी, पूर्ण तथा कल्याणमय है।



१. किसी एक देशमें चित्तको स्थापित करनेका नाम धारणा है।

याज्ञवल्क्यद्वारा मोक्षधर्मका वर्णन

याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—राजन्! तुमने जो अव्यक्त परब्रह्मके विषयमें प्रश्न किया है, वह बड़ा गूढ है, ध्यान देकर सुनो—पहलेकी बात है, मैंने बड़ी भारी तपस्या करके भगवान् सूर्यकी आराधना की थी। एक दिन उन्होंने प्रसन्न होकर कहा, 'ब्रह्मर्षे! तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँग लो, दुर्लभ होनेपर भी वह तुम्हें दूँगा; क्योंकि तुम्हारे कठोर तपसे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ और मेरी प्रसन्नता प्रायः दुर्लभ है।' यह सुनकर मैंने कहा 'भगवन्! मुझे यजुर्वेदका ज्ञान नहीं है, अतः मैं शीघ्र ही उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ।' तब भगवान् सूर्यने कहा 'विप्रवर! मैं तुम्हें यजुर्वेद प्रदान करता हूँ। तुम अपना मुँह खोलो, वाग्देवता सरस्वती तुम्हारे भीतर प्रवेश करेगी।' उनकी आज्ञासे मैंने अपना मुख फैलाया और उसमें सरस्वती प्रवेश कर गयीं। उनके प्रवेश करते ही मेरे शरीरमें जलन होने लगी और उसे शान्त करनेके लिये मैं पानीमें घुस गया। मुझे जलनसे कष्ट पाता देख भगवान् सूर्यने कहा 'तात! थोड़ी देरतक और कष्ट सहन कर लो, फिर यह जलन अपने-आप शान्त हो जायगी।' कुछ ही देरमें जब मैं पूर्ण शान्त हो गया तो भगवान्ने कहा 'द्विजवर! परकीय शाखाओं और उपनिषदोंके सहित सम्पूर्ण वेद तुम्हारे भीतर प्रतिष्ठित होंगे तथा तुम सम्पूर्ण शतपथका भी प्रणयन (सम्पादन) करोगे। इसके बाद तुम्हारी बुद्धि मोक्षमें स्थिर होगी और तुम उस अभीष्ट पदको प्राप्त करोगे, जिसे सांख्यवेत्ता तथा योगी भी प्राप्त करना चाहते हैं।'

यह कहकर भगवान् सूर्य चले गये और मैं उनका कथन सुनकर अपने घर लौट आया। वहाँ आकर बड़ी प्रसन्नताके साथ मैंने सरस्वतीदेवीका स्मरण किया। मेरे स्मरण करते ही स्वर और व्यञ्जन वर्णोंसे विभूषित सरस्वतीदेवी ॐकारको आगे करके मेरे सामने प्रकट हो गयीं। तब मैंने उनके तथा भगवान् सूर्यके निमित्त अर्घ्य निवेदन किया और उन्हींका चिन्तन करता हुआ बैठ गया। उस समय बड़े हर्षके साथ मैंने रहस्य-संग्रह और परिशिष्ट भागसहित समस्त शतपथका संकलन किया। तत्पश्चात् मेरे सौ शिष्योंने मुझसे उस (शतपथ) का अध्ययन किया। इस प्रकार सूर्यदेवके द्वारा उपदेश की हुई पंद्रह शाखाओंका ज्ञान प्राप्त करके मैंने इच्छानुसार वेद्य तत्त्वका चिन्तन किया है।

एक समय वेदान्त-ज्ञानमें कुशल विश्वावसु नामक गन्धर्व 'सत्य एवं सर्वोत्तम ज्ञातव्य वस्तु क्या है?' इस बातका विचार करते हुए मेरे पास आये। आकर उन्होंने मुझसे वेदविषयक कई प्रश्न किये। तब मैंने उनसे कहा



'गन्धर्वराज! समस्त भूत जिससे उत्पन्न होते और जिसमें ही लीन हो जाते हैं, उस वेदप्रतिपाद्य ज्ञेय परमात्माको जो नहीं जानते, वे बारंबार जन्म लेते और मरते रहते हैं। साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़कर भी जिसे वेदवेद्य परमेश्वरका ज्ञान नहीं हुआ तथा वेदवेत्ता होकर भी जिसने वेद्य-अवेद्यका तत्त्व नहीं जाना, वह मूर्ख केवल शास्त्र-ज्ञानका बोझ ढोनेवाला है। पुरुषको तत्पर होकर बुद्धिके द्वारा प्रकृति और पुरुषका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये; जिससे बारंबार उसे जन्म-मरणके चक्करमें न पड़ना पड़े। संसारमें जन्म-मरणकी परम्परा कभी नहीं टूटती और वैदिक कर्मकाण्डमें बताये हुए सभी कर्म नश्वर हैं—यह सोचकर नाशवान् कर्मोंको त्याग दे और अक्षयधर्मके सेवनमें संलग्न हो जाय। जो पुरुष सदा परमात्माके स्वरूपका विचार करता रहता है, वह प्रकृतिके बन्धनसे मुक्त होकर छब्बीसवें तत्त्वरूप परमेश्वरको प्राप्त कर लेता है। अज्ञानी मनुष्य पचीसवें तत्त्वरूप जीवात्मा और सनातन परमात्माको भिन्न-भिन्न मानते हैं; किंतु साधु पुरुषोंकी दृष्टिमें दोनों एक हैं। परमपदकी इच्छा रखनेवाले सांख्यके विद्वान् और योगी भी जन्म और मृत्युके भयसे जीवात्मा और परमात्मामें भेद-दृष्टि नहीं रखते।

विश्वावसुने कहा—विप्रवर ! आपने पचीसवें तत्त्व जीवात्माको परमात्मासे अभिन्न बतलाया है, किंतु जीवात्मा वास्तवमें परमात्मा है या नहीं ? इस विषयमें संदेह है; अतः आप इस बातका स्पष्ट वर्णन कीजिये। मैंने मुनिवर जैगीषव्य, असित, देवल, पराशर, वार्षगण्य, भृगु, पञ्चशिख, कपिल, शुक्र, गौतम, आर्ष्टिषेण, गर्ग, नारद, आसुरि, पुलस्त्य, सनत्कुमार तथा अपने पिता कश्यपजीके मुखसे भी पहले इस विषयका प्रतिपादन सुना था। उसके बाद रुद्र, विश्वरूप, अन्यान्य देवता, पितर तथा दैत्योंसे इसका ज्ञान प्राप्त किया। ये सब विद्वान् ज्ञेय तत्त्वको पूर्ण और नित्य बतलाते हैं। अब मैं इस विषयमें आपके विचार सुनना चाहता हूँ; क्योंकि आप विद्वानोंमें श्रेष्ठ, शास्त्रोंके वक्ता तथा अत्यन्त बुद्धिमान् हैं। ऐसा कोई विषय नहीं है, जिसे आप न जानते हों। वेदोंके तो आप भण्डार ही माने जाते हैं। देवलोक और पितृलोकमें भी आपकी प्रसिद्धि है। ब्रह्मलोकमें गये हुए ब्राह्मण तथा महर्षि भी आपकी महिमाका वर्णन करते हैं। साक्षात् भगवान् सूर्यने आपको वेद पढ़ाया है तथा आपने सम्पूर्ण सांख्य और योगशास्त्रका भी ज्ञान प्राप्त किया है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि आप समस्त चराचरको जानकर पूर्ण ज्ञानी हो चुके हैं; इसलिये आपके ही मुखसे मैं उस तत्त्वज्ञानको सुनना चाहता हूँ।

तब मैंने कहा—गन्धर्वश्रेष्ठ ! तुम बड़े मेधावी हो। इस समय मुझसे जो कुछ पूछ रहे हो, उसका शास्त्रीय उत्तर सुनो—प्रकृति जड है, उसे पचीसवाँ तत्त्व—जीवात्मा जानता है, किंतु वह जीवात्माको नहीं जानती। सांख्य और योगके विद्वान् प्रकृतिको 'प्रधान' कहते हैं। साक्षी पुरुष विवेकदृष्टिसे चौबीसवें तत्त्व—प्रकृतिको, पचीसवें अपनेको और छब्बीसवें परमात्माको देखता है। किंतु यदि जीवात्मा यह अभिमान करता है कि मुझसे बढ़कर कोई नहीं है, तो वह देखता हुआ भी परमात्माको नहीं देख पाता; किंतु परमात्मा सदा देखते रहते हैं। जब जीवात्माको यह ज्ञान हो जाता है कि मैं भिन्न हूँ और प्रकृति मुझसे सर्वथा भिन्न है, तब वह उससे असङ्ग होकर छब्बीसवें तत्त्वरूप परमात्माका साक्षात्कार कर लेता है और जब उसे परमात्माका दर्शन हो जाता है, उस समय वह सर्वज्ञ विद्वान् होकर पुनर्जन्मके बन्धनसे सदाके लिये छुटकारा पा जाता है।

विश्वावसुने कहा—याज्ञवल्क्यजी ! आपने सब देवताओंके आदि कारण ब्रह्मके विषयमें जो यथावत् वर्णन किया है, वह सत्य, शिव, सुन्दर तथा सबका कल्याण करनेवाला है। आपका मन सदा इसी प्रकार ज्ञानमें स्थित रहे। अच्छा आपका भला हो (अब मैं जाता हूँ)।

यों कहकर विश्वावसुने सौम्यदृष्टिसे मेरी ओर देखा और बड़े हर्षसे मेरा अभिनन्दन किया। फिर मेरी प्रदक्षिणा करके वे स्वर्गलोकको चले गये। राजा जनक ! ब्रह्मादि देवताओंके लोकमें, पृथ्वीपर तथा पातालमें रहकर जो लोग कल्याणमय मोक्षमार्गका आश्रय लिये हुए थे, उन सबको विश्वावसुने मेरे बताये हुए इस ज्ञानका उपदेश किया था। सांख्यज्ञानमें निष्ठा रखनेवाले सांख्यवेत्ता, योगधर्मका पालन करनेवाले योगी तथा अन्य जो मोक्षाभिलाषी मनुष्य हैं, उन सबके लिये यह ज्ञान प्रत्यक्ष फल देनेवाला है। ज्ञानसे ही मोक्ष होता है, अज्ञानसे नहीं; इसलिये यथार्थ ज्ञानका अनुसंधान करना चाहिये, जिसके द्वारा अपनेको जन्म-मृत्युरूप बन्धनसे छुटकारा मिल सके। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा नीच योनिमें उत्पन्न हुए पुरुषसे भी यदि ज्ञान मिल सके तो प्राप्त करके मनुष्य उसपर सदा श्रद्धा रखे; क्योंकि श्रद्धालुमें जन्म और मृत्युका प्रवेश नहीं होता। ब्रह्मसे उत्पन्न होनेके कारण सभी वर्ण ब्राह्मण हैं। ब्रह्मके ही मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, नाभिसे वैश्य तथा पैरोंसे शूद्रकी उत्पत्ति हुई है; अतः किसी भी वर्णको ब्रह्मसे भिन्न नहीं समझना चाहिये। मनुष्य अज्ञानके कारण ही कर्मानुसार योनियोंमें जन्म लेते और मरते हैं। उनका भयंकर अज्ञान ही उन्हें नाना प्रकारकी प्राकृत योनियोंमें गिराता है। अतः सब ओरसे ज्ञान प्राप्त करनेका ही प्रयत्न करना चाहिये। यह तो मैं तुमसे बता ही चुका हूँ कि सभी वर्णके लोग अपने-अपने आश्रममें रहते हुए ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। ब्राह्मण हो या क्षत्रिय आदि दूसरा कोई वर्ण हो, जो ज्ञानमें स्थिर होता है, उसके लिये मोक्ष नित्य प्राप्त है। राजन् ! तुमने जो पूछा था, उसका यथार्थ उत्तर मैंने दे दिया, अब तुम्हें शोकका परित्याग कर देना चाहिये। तुम्हारा कल्याण हो, जाओ, जैसे बने इस ज्ञानमें पारंगत बनो।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! परम बुद्धिमान् याज्ञवल्क्यजीके द्वारा इस प्रकार उपदेश पाकर मिथिलानरेश-को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने सत्कारपूर्वक मुनिकी प्रदक्षिणा करके उन्हें विदा किया। जब मुनि चले गये तो मोक्षके ज्ञाता देवरातनन्दन राजा जनकने सुवर्णसहित एक करोड़ गौएँ दान कीं तथा बहुत-से ब्राह्मणोंको एक-एक अञ्जलि रत्न प्रदान किया। तदनन्तर, मिथिलाका राज्य पुत्रको सौंप दिया और स्वयं वे यतिधर्मका पालन करने लगे। उन्होंने सम्पूर्ण सांख्य और योगशास्त्रका स्वाध्याय करके यह निश्चय किया कि 'मैं अनन्त हूँ।' फिर धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप, सत्य-असत्य तथा जन्म-मृत्युको प्राकृत (प्रकृतिजन्य एवं मिथ्या) समझकर केवल अपने शुद्ध स्वरूपको ही नित्य माना। राजन् ! सांख्य

और योगके विद्वान् अपने-अपने शास्त्रोंमें वर्णित लक्षणोंके अनुसार उस ब्रह्मको इष्ट-अनिष्टसे मुक्त, स्थिर, परात्पर, नित्य एवं पवित्र मानते हैं; अतः तुम भी उसे जानकर पवित्र हो जाओ। 'जो कुछ दिया जाता है, जो प्राप्त होता है, जो देता है और जो ग्रहण करता है, वह सब एकमात्र आत्मा ही है; उसके सिवा और है ही क्या ?' सदा ऐसी ही मान्यता रखो, इसके विपरीत विचार मनमें न लाओ। जिसे अव्यक्त प्रकृतिका ज्ञान न हो, सगुण-निर्गुण परमात्माकी पहचान न हो, उस पुरुषको यज्ञोंका अनुष्ठान और तीर्थोंका सेवन करना चाहिये। स्वाध्याय, तप अथवा यज्ञसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती, (ये तो उनके तत्त्वको जाननेमें सहायक होते हैं)। इनके द्वारा परमात्माको जानकर मनुष्य महिमान्वित होता है। महत्तत्त्वकी उपासना करनेवाले महत्तत्त्वको और अहंकारके उपासक अहंकारको प्राप्त होते हैं; किंतु महत्तत्त्व और अहंकारसे भी श्रेष्ठ कोई स्थान है, जिसको प्राप्त करना सबके लिये आवश्यक है। जो शास्त्रके अनुसार चलनेवाले हैं, वे ही प्रकृतिसे पर, नित्य, जन्म-मरणसे रहित, मुक्त एवं सदसत्स्वरूप परमात्माका ज्ञान प्राप्त करते हैं। युधिष्ठिर ! यह ज्ञान मुझे तो राजा जनकसे मिला और जनकको याज्ञवल्क्यजीसे प्राप्त हुआ था। ज्ञान सबसे उत्तम साधन है, यज्ञ इसकी समानता नहीं कर सकते। मनुष्य ज्ञानके सहारे इस दुर्गम भवसागरके पार हो जाते हैं। यज्ञके द्वारा वे इसके पार नहीं जा सकते। अतः तुम प्रकृतिसे पर, महत्, पवित्र, कल्याणमय, निर्मल तथा मोक्षस्वरूप ब्रह्मका ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञान-यज्ञकी उपासना करनेसे तुम निश्चय ही तत्त्वज्ञानी ऋषि बन जाओगे। पूर्वकालमें याज्ञवल्क्यने राजा जनकको जिस उपनिषद् (ज्ञान) का उपदेश दिया था, उसका मनन करनेसे मनुष्य सनातन, अविनाशी, शुभ, अमृतमय तथा शोकरहित ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है।



व्यासजीका अपने पुत्र शुकदेवको उपदेश

राजा युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! व्यासपुत्र शुकदेवको किस प्रकार वैराग्य हुआ था ? इस विषयमें मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है; अतः मैं यह प्रसंग सुनना चाहता हूँ। इसके सिवा आप मुझे अव्यक्त और व्यक्त तत्त्वोंका स्वरूप तथा अजन्मा भगवान्‌की लीलाएँ भी सुनाइये।

भीष्मजी बोले—राजन् ! पुत्र शुकदेवको सर्वथा निर्भय और सामान्य पुरुषोंका-सा आचरण करते देख श्रीव्यासजीने उन्हें सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन कराया और फिर यह उपदेश दिया—'बेटा ! तुम सर्वदा जितेन्द्रिय रहकर धर्मका सेवन करो; गर्मी-सर्दी और भूख-प्यासको सहन करते हुए प्राणोंपर विजय प्राप्त करो; सत्य, सरलता, अक्रोध, अदोषदर्शन, जितेन्द्रियता, तपस्या, अहिंसा और अक्रूरता आदि धर्मोंका विधिवत् पालन करो; सत्यपर डटे रहो तथा सब प्रकारकी कुटिलता छोड़कर धर्ममें अनुराग करो। देवता और अतिथियोंका सत्कार करके जो अन्न बचे उसीसे अपने प्राणोंकी रक्षा करो। देखो बेटा ! यह शरीर जलके फेनकी तरह क्षणभङ्गुर है, इसमें जीव पक्षीकी तरह बसा हुआ है और यह प्रियजनोंका सहवास भी सदा रहनेवाला नहीं है; फिर भी तुम क्यों सोये पड़े हो ? तुम्हारे शत्रु सर्वदा सावधान, जगे हुए और तुम्हारे छिद्रोंको देखनेमें लगे हुए हैं; परंतु तुम्हें बच्चोंकी तरह कुछ होश ही नहीं है। दिन बीते जा रहे हैं और तुम्हारी आयु भी प्रतिदिन क्षीण हो रही है; इस तरह जीवन समाप्त हो रहा है, फिर भी तुम सावधान नहीं होते। नास्तिकलोग परलोकसम्बन्धी कार्योंकी ओरसे तो सोये पड़े रहते हैं, वे सर्वदा मांस और रक्तको बढ़ानेवाले संसारी धंधोंमें ही लगे रहते हैं। जो बुद्धिके व्यामोहमें डूबे हुए पुरुष धर्मसे द्वेष करते हैं और सदा कुपथमें ही चलते हैं, उनके अनुयायियोंको भी दुःख भोगना पड़ता है। इसलिये जो धर्मबलसे सम्पन्न महापुरुष संतुष्ट और श्रुतिपरायण रहकर सर्वदा धर्मपथपर ही आरूढ़ रहते हैं, तुम तो उन्हींकी सेवा करो और उन्हींसे अपना कर्तव्य पूछो। उन धर्मदर्शी विद्वानोंका मत मालूम करके तुम अपनी श्रेष्ठ बुद्धिसे अपने कुपथगामी मनको काबूमें करो। जिनकी केवल वर्तमान सुखपर ही दृष्टि रहती है, उसका भावी परिणाम जिनके लिये बहुत दूर है और जिन्हें किसी प्रकारका भय नहीं है, वे सर्वभक्षी बुद्धिहीन पुरुष कर्तव्याकर्तव्यको नहीं देख पाते। तुम धर्मरूप सीढ़ीके पास पहुँचकर धीरे-धीरे उसपर चढ़ते जाओ। यदि तुम रेशमके कीड़ेकी तरह अपनेको वासनाओंसे लपेटते रहोगे तो कभी चेत नहीं सकोगे। जो नास्तिक और धर्ममर्यादाका भङ्ग करनेवाला हो, उस पुरुषको तुम निःशङ्क होकर उखाड़े हुए बाँसकी तरह त्याग दो। काम, क्रोध, मृत्यु और जिसमें पाँच इन्द्रियरूप जल भरा हुआ है, ऐसी विषयाशारूप नदीको तुम सात्त्विकी धृतिरूप नौकापर चढ़कर पार कर लो और इस प्रकार जन्मरूप दुर्गम पथसे पार हो जाओ। सारा संसार मृत्युसे व्याप्त और वृद्धावस्थासे परिपीडित है, इसे तुम धर्ममयी नौकापर चढ़कर पार कर लो। मनुष्य बैठा हो अथवा सो रहा हो, मृत्यु उसे खोज ही लेती है। इस प्रकार जब मृत्यु अकस्मात्

तुम्हारा नाश करनेवाली है तो तुम चैनसे कैसे बैठे हो ? मनुष्य भोगसामग्रियोंके संचयमें लगा ही रहता है, उससे उनकी तृप्ति होने भी नहीं पाती कि भेड़िया जैसे भेड़के बच्चेको उठा ले जाय, उसी प्रकार मौत उसे उठा ले जाती है। यदि तुम्हें इस संसाररूप अन्धकारमें प्रवेश करना है तो हाथमें धर्म-बुद्धिरूप प्रज्वलित दीपक ले लो। जीवको अनेकों योनियोंमें जाते-जाते जैसे-तैसे मानवयोनिमें आकर यह ब्राह्मण-शरीर मिलता है; इसलिये बेटा ! इसे सफल करना चाहिये। ब्राह्मणका शरीर भोगनेके लिये नहीं होता। उसे यहाँ तपस्याका क्लेश सहनेके लिये और मरनेपर अनन्त सुख भोगनेके लिये रचा गया है। ब्राह्मण-शरीर बहुत समयतक तपस्या करनेपर मिलता है। वह मिल जाय तो विषयानुरागमें फँसकर उसे बर्बाद नहीं करना चाहिये; बल्कि सर्वदा स्वाध्याय, तपस्या और इन्द्रियनिग्रहमें तत्पर रहकर कुशल कर्मोंमें लगे रहना चाहिये। मनुष्योंका आयुरूप घोड़ा दौड़ा चला जा रहा है। इसका स्वभाव अव्यक्त है, कला-काष्ठादि इसके शरीर हैं, इसका स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है, क्षण, त्रुटि, निमेष आदि इसके रोम हैं, शुक्ल और कृष्णपक्ष नेत्र हैं और मास अङ्ग हैं। यदि तुम्हारी ज्ञानदृष्टि अंधोंके समान दूसरोंका अनुसरण करनेवाली नहीं है तो इसे निरन्तर बड़े वेगसे दौड़ता देखकर तुम्हारा मन धर्ममें ही लगना चाहिये। जो लोग यहाँ धर्ममार्गको छोड़कर यथेच्छ आचरण करते हैं और दूसरोंको बुरा-भला कहते हुए निरन्तर कुमार्गमें ही चलते हैं, उन्हें मरनेके पश्चात् यातनादेह पाकर अनेक प्रकारकी नारकीय यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। जो राजा सर्वदा धर्मपरायण रहकर उत्तम और अधम प्रजाका यथायोग्य पालन करता है, वह पुण्यात्माओंके लोकोंको प्राप्त होता है और अनेक प्रकारका धर्माचरण करनेके कारण उसे दुर्लभ एवं निर्दोष सुख प्राप्त होता है; किंतु जो गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करते हैं, वे असत् पुरुष ऐसे लोकोंमें जाते हैं जहाँ मनुष्योंको पीड़ित किया जाता है और उन्हें भयंकर शरीरवाले कुत्ते, लोहेकी चोंचोंवाले कौए और महाबली गिद्ध आदि रक्तपान करनेवाले जीव मिल-जुलकर नोचते हैं। जो मनुष्य मनमानी चालसे चलकर स्वायम्भुव मनुकी बाँधी हुई धर्मकी दस[1] प्रकारकी मर्यादाको तोड़ता है, वह पापात्मा पितृलोकके असिपत्र वनमें जाकर अत्यन्त दुःख भोगता है। जो पुरुष अत्यन्त लोभी, असत्यसे प्रेम करनेवाला और सर्वदा कपटकी बातें बनानेवाला होता है तथा जो तरह-तरहके कूट साधनोंसे दूसरोंको दुःख देता है, वह पापात्मा घोर नरकमें पड़कर अत्यन्त दुःख भोगता है। उसे अत्यन्त उष्ण महानदी वैतरणीमें गोता लगाना पड़ता है, असिपत्र वनमें उसके अङ्ग छिन्न-भिन्न होते हैं और परशु वनमें उसे शयन करना पड़ता है। इस प्रकार वह महानरकमें पड़कर अत्यन्त आतुर हो उठता है। तुम ब्रह्मलोक आदि बड़े-बड़े स्थानोंकी बात तो करते हो, परंतु परमपदपर तुम्हारी दृष्टि ही नहीं है। भविष्यमें जो मृत्युकी परिचारिका वृद्धावस्था आनेवाली है, उसका तो तुम्हें पता ही नहीं है। इस प्रकार हाथ-पर-हाथ धरे क्यों बैठे हो ? देखो, तुम्हारे ऊपर बड़ी आपत्ति आनेवाली है; इसलिये तुम परमानन्द-प्राप्तिके लिये प्रयत्न करो। तुम्हे मरनेपर यमराजकी आज्ञासे उनके सामने उपस्थित किया जायगा; इसलिये कृच्छ्रादि तप करके तुम धर्मोपार्जनपूर्वक निरतिशय सुख पानेका उपाय कर लो। जिस समय तुम्हारे सामने यमराजका प्रचण्ड पवन चलेगा, उस समय वह अकेले तुम्हींको यमके सामने ले जायगा; अतः तुम परलोकमें सुख देनेवाले धर्मका आचरण करो। पूर्वजन्ममें तुम्हारे सामने जो प्राणनाशक पवन चल रहा था, आज वह कहाँ है ? अब भी जब मृत्युरूप महाभय उपस्थित होगा तो तुम्हें सब दिशाएँ घूमती दिखायी देंगी। बेटा ! जब तुम यह शरीर छोड़कर चलने लगोगे तो व्याकुलताके कारण तुम्हारी श्रवणशक्ति भी नष्ट हो जायगी। इसलिये तुम सुदृढ़ समाधि प्राप्त कर लो। देखो, तुम्हारे देखते-देखते वृद्धावस्था तुम्हारे शरीरको जर्जर कर डालेगी, फिर रोग जिसका सारथि है, वह कालभगवान् आकर तुम्हारे शरीरको नष्ट कर देगा; इसलिये इस जीवनके नष्ट होनेसे पहले ही तुम खूब तपस्या कर लो। इस मनुष्यदेहमें रहनेवाले काम-क्रोधादि भयंकर भेड़िये चारों ओरसे तुमपर आक्रमण करेंगे, इसलिये तुम पुण्यसंचयका प्रयत्न कर लो। मरनेके समय तुम्हें पहले तो घोर अन्धकार दिखायी देगा, फिर पर्वतके शिखरपर सुनहले वृक्ष दीखेंगे; अतः तुम आत्मकल्याणके लिये शीघ्र ही प्रयत्न करो। ये इन्द्रियाँ, जो तुम्हें मित्रके समान जान पड़ती हैं, वास्तवमें तुम्हारी शत्रु हैं, ये अपनी दृष्टिमात्रसे तुम्हारी बुद्धिको बिगाड़ देंगी। इसलिये तुम परम पुरुषार्थके लिये प्रयत्न करो। जिस धनको न राजाका भय है और न चोरका तथा जो मरनेपर भी साथ नहीं छोड़ता, उसीको प्राप्त करनेका तुम उद्योग करो। अपने कर्मोंद्वारा प्राप्त हुए उस पुण्यरूप धनको परलोकमें किसीको बाँटकर नहीं देना पड़ता। वहाँ तो जो जिसकी धरोहर है, वह उसीको मिल जाती है। अतः

---

१. मनुजीने धर्मके दस भेद ये बताये हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

धृति, क्षमा, मनोनिग्रह, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रियसंयम, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध—ये धर्मके दस लक्षण हैं।

तुम ऐसा धन दो जो अक्षय और अविनाशी हो और स्वयं भी उसी धनको इकट्ठा करो।

'बेटा ! जीव अपने जीवनकालमें जो कुछ शुभाशुभ कर्म करता है, यहाँसे जानेपर वही उसके साथ रहता है। माता, पुत्र, बन्धु-बान्धव या प्रियजनोंमेंसे कोई भी उसके साथ नहीं जाता। जिन सुवर्ण और रत्नादिको वह भले-बुरे कर्म करके इकट्ठे करता है, वे शरीर छूटनेपर उसके किसी काम नहीं आते। इस लोकमें अग्नि, वायु और सूर्य—ये तीन देवता जीवके शरीरका आश्रय करके रहते हैं, वे ही उसके धर्माचरणको देखनेवाले हैं और वे ही परलोकमें उसके साक्षी बनते हैं। दिन सब पदार्थोंको प्रकाशित करता है और रात्रि उन्हें छिपा लेती है। ये सर्वत्र व्याप्त हैं और सभी वस्तुओंको स्पर्श करते हैं। अतः तुम सर्वदा अपने धर्मका ही पालन करो। परलोकमें किसीके भी कर्मका बँटवारा नहीं होता। वहाँ तो अपने किये हुए कर्मोंका ही फल भोगना होता है। वहाँ पुण्यात्मा लोग विमानोंपर चढ़कर यथेच्छ विहार करते हैं। इस प्रकार शुद्धचित्त पुरुष इस लोकमें जैसा-जैसा शुभ कर्म करते हैं; परलोकमें उसका वैसा-वैसा ही फल प्राप्त करते हैं। जो गार्हस्थ्य-धर्मका पालन करते हैं, वे प्रजापति, बृहस्पति अथवा इन्द्रके लोकमें जाते हैं।

'पुत्र ! तुम्हारी आयुके चौबीस वर्ष बीत गये, अब तुम्हारी अवस्था पचीस सालकी है। इसी प्रकार सारी आयु बीती जा रही है, तुम धर्मसंचय कर लो। देखो, काल तुम्हारी इन्द्रियोंकी शक्तिको शिथिल कर रहा है; उसके नष्ट होनेसे पहले ही तुम धर्मोपार्जनके लिये शीघ्रता करो। जिस समय तुम शरीर छोड़कर जाओगे, उस समय तुम्हारे आगे-पीछे भी तुम्हारे सिवा और कोई नहीं होगा। जब तुम्हें इस प्रकार अकेले ही जाना है तो अपने या पराये शरीरोंसे तुम्हारा क्या प्रयोजन है ?

'बेटा ! मैंने अपने शास्त्रज्ञान और अनुमानके द्वारा तुम्हें इस समय जो उपदेश दिया है, तुम उसीके अनुसार आचरण करो। जो पुरुष अपने कर्मोंद्वारा केवल शरीरका ही पोषण करता है और किसी-न-किसी फलकी आशासे दान देता है, वह तो अज्ञान और मोहजनित गुणोंसे ही बँधता है; किंतु जो शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करता है, वह परम पुरुषार्थरूप मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार कृतज्ञ पुरुषको जो भी उपदेश किया जाता है, वही सफल होता है। मनुष्य जो गाँवमें रहकर वहींके पदार्थोंसे प्रेम करने लगता है यह उसे बाँधनेवाली रस्सी ही है। पुण्यात्मालोग इसे काटकर उत्तम लोकोंको प्राप्त होते हैं, किंतु पापियोंसे यह नहीं कट पाती। बेटा ! जब तुम्हें मरना ही है तो इन धन, बन्धु और पुत्रादिसे तुम क्या लोगे ? अतः तुम बुद्धिरूप गुहामें छिपे हुए आत्मतत्त्वका अनुसंधान करो। सोचो तो सही, आज तुम्हारे सारे पूर्वज कहाँ चले गये ? जो काम कल करना हो उसे आज कर लेना चाहिये और जो दोपहर बाद करना हो उसे सबेरे ही कर डालना चाहिये; क्योंकि मौत यह नहीं देखती कि अभी इसका काम पूरा हुआ है या नहीं। जब मनुष्य मर जाता है तो सब सगे-सम्बन्धी और जातिवाले श्मशानतक साथ जाकर इसे अग्निमें झोंककर लौट आते हैं। अतः तुम परमतत्त्वकी प्राप्तिके इच्छुक बनो तथा प्रमाद और संशयको त्यागकर नास्तिक, निर्दय और पापबुद्धिमें स्थित पुरुषोंको बाँये रखो; कभी भूलकर भी उनका साथ मत दो। इस प्रकार जब सारा संसार कालके अधीन है और उसके पंजेमें पड़कर दुःख भोग रहा है, तो तुम अत्यन्त धैर्य धारणकर सब प्रकार धर्मका आचरण करो।

'जो पुरुष परमात्माके साक्षात्कारके इस साधनको अच्छी तरह जानता है, वह इस लोकमें स्वधर्मका पूर्णतया साधनकर परलोकमें सुख भोगता है। जो धर्ममार्गका ठीक-ठीक अनुसरण करता है, उसे कभी हानि नहीं होती। जो धर्मकी वृद्धि करता है वही पण्डित है और जो धर्मसे च्युत होता है, वह मोहग्रस्त है। जो पुरुष स्वधर्मका आचरण करता है, वह अपने कर्मके अनुसार फल पाता है। इस प्रकार जो धर्मका पारगामी है, वह स्वर्ग पाता है और जो कर्त्तव्यच्युत हो जाता है उसे नरकमें गिरना पड़ता है। जो व्यक्ति भोगोंको त्यागकर इस शरीरसे तपस्या करता है, उसे कुछ भी अप्राप्त नहीं रहता। मेरे विचारसे तो यही सबसे उत्तम फल है। इस संसारमें तुम्हारे हजारों माँ-बाप और सैकड़ों स्त्री-पुत्रादि हो चुके हैं और आगे भी होंगे। परंतु वास्तवमें किसके वे और किसके हम ? मैं तो अकेला ही हूँ, मेरा कोई नहीं है और न मैं ही किसी दूसरेका हूँ। ऐसा तो मुझे कोई भी दिखायी नहीं देता जिसका मैं होऊँ अथवा जो मेरा हो। तुम्हें अपने उन अतीत माता-पितादिसे अब कोई प्रयोजन नहीं है और न उन्हें ही तुमसे कोई प्रयोजन है। वे अपने-अपने कर्मानुसार उत्पन्न हुए थे, तुम भी अपने कर्मोंके अनुसार ही उत्पन्न हुए हो और अब जैसा कर्म करोगे वैसी ही गति प्राप्त करोगे। इस लोकमें धनी पुरुषोंके स्वजन तो स्वजन बने रहते हैं, किंतु दरिद्रियोंके स्वजन तो उन्हें जीवित रहनेपर भी छोड़ देते हैं। मनुष्य स्त्री-पुत्रादिके लिये ही पाप बटोरता है और उनके कारण ही इस लोक और परलोकमें दुःख भोगता है।

'अतः बेटा ! मैंने तुम्हें जो कुछ उपदेश दिया है उसीके अनुसार तुम आचरण करो। यह लोक कर्मभूमि है—ऐसा

समझकर दिव्यलोकोंकी इच्छा करनेवाले पुरुषको शुभ कर्म ही करने चाहिये। यह कालरूप रसोइया बलात् सब जीवोंको पका रहा है। मास और ऋतु इसका कोंचा है, सूर्य अग्नि है और कर्मफलके साक्षी रात-दिन ईंधन हैं। जो धन दान या भोगके काम न आवे उससे क्या लाभ ? जिस शास्त्रश्रवणसे धर्माचरण न हो उससे क्या लाभ ? और जो जितेन्द्रिय एवं संयमी न हो उस जीवात्मासे क्या लाभ ?'

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! व्यासजीके ये हितकारी वचन सुनकर शुकदेवजी अपने पिताको छोड़कर मोक्षतत्त्वका उपदेश करनेवाले राजा जनकके पास चल दिये।



दान, यज्ञ और तप आदि शुभकर्मोंकी उपयोगिताका वर्णन तथा शुकदेवजीके जन्मका वृत्तान्त

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! दान, यज्ञ, तप और गुरुजनोंकी सेवा करनेसे जो फल मिलता है, वह मुझे सुनाइये।

भीष्मजी बोले—राजन् ! जो लोग देवता और अतिथियोंसे प्रेम करते हैं अथवा उदार, साधुप्रेमी या यज्ञोंमें दक्षिणा देनेवाले हैं, वे आत्मज्ञानियोंके कल्याणप्रद मार्गको प्राप्त होते हैं। जैसे तन्दुलहीन धानकी भूसी व्यर्थ हो जाती है वैसे ही धर्मको छोड़ देनेवाले मनुष्य व्यर्थ हैं। पाप-पुण्य मनुष्यका सङ्ग कभी नहीं छोड़ते। वह खड़ा होता है तो खड़े रहते हैं, दौड़ता है तो दौड़ने लगते हैं और काम करता है तो ये भी काम करने लगते हैं। इस प्रकार ये छायाके समान उसका अनुसरण करते रहते हैं। पहले जिस-जिसने जैसे-जैसे कर्म किये होते हैं, वह उनका उस-उस प्रकारसे अवश्य फल भोगता है। मनुष्य अपने शुभाशुभ कर्मोंके द्वारा ही अपने सुख-दुःखका विधान करता है। वह जबसे गर्भमें आता है तभीसे अपने पूर्वजन्मके कर्मोंका फल भोगने लगता है। जिस प्रकार बछड़ा हजारों गौओंमेंसे भी अपनी माताको पहचान लेता है, उसी प्रकार पूर्वजन्ममें किया हुआ कर्म अपने कर्ताके पास पहुँच जाता है। जैसे मैला वस्त्र पानीसे धोनेपर शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार उपवासके द्वारा तपे हुए मनुष्यका चित्त स्वच्छ हो जाता है और उसे दीर्घकालीन अनन्त सुख प्राप्त होता है। जो लोग दीर्घकालतक तप करते हैं, उनके पाप दूर हो जाते हैं और उनकी सब कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। जिस प्रकार आकाशमें पक्षियोंके और जलमें मछलियोंके चरणचिह्न दिखायी नहीं देते, वैसे ही पुण्य करनेवालोंकी गतिका पता नहीं लगता। दूसरोंके उपालम्भ या कहनेसे खोटा कर्म करना ठीक नहीं, जो अपने लिये प्रिय, अनुरूप और हितकर हो वही कर्म करना चाहिये।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! व्यासजीके यहाँ महातपस्वी और धर्मात्मा शुकदेवजीका जन्म कैसे हुआ और उन्होंने परमसिद्धि किस प्रकार प्राप्त की थी—वह प्रसंग मुझे सुनाइये। शुकदेवजीको बाल्यावस्थामें ही सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करनेकी बुद्धि कैसे हुई ? संसारमें उनके सिवा किसी दूसरे पुरुषकी तो ऐसी बुद्धि नहीं देखी जाती। आप मुझे शुकदेवजीका माहात्म्य, आत्मयोग और विज्ञान यथार्थ रीतिसे क्रमशः सुनाइये।

भीष्मजी बोले—राजन् ! मैं तुम्हें शुकदेवजीका जन्मवृत्तान्त, योगप्रभाव और अज्ञानियोंकी समझमें न आनेवाली उनकी उत्कृष्ट गति सुनाता हूँ। एक बार मेरुपर्वतके शिखरपर भगवान् शंकर भयंकर भूतगणोंके साथ विहार कर रहे थे। वहाँ पर्वतराजकी पुत्री देवी उमा भी उनके साथ ही थीं। उन्हीं दिनों भगवान् कृष्णद्वैपायन उस पर्वतपर तपस्या कर रहे थे। उन्होंने इस संकल्पसे कि मुझे अग्नि, भूमि, जल, वायु अथवा आकाशके समान धैर्यशाली पुत्र प्राप्त हो, तपस्या आरम्भ की थी। वे सौ वर्षतक केवल वायु भक्षण करते हुए उमापति श्रीमहादेवजीकी आराधनामें लगे रहे। ऐसा कठोर तप करनेपर भी न तो उनके प्राण नष्ट हुए और न उन्हें थकान ही हुई। इससे तीनों लोकोंको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। मुझे तो यह वृत्तान्त भगवान् मार्कण्डेयजीने सुनाया था। वे सदा ही मुझे देवताओंके चरित सुनाया करते थे।

भरतश्रेष्ठ ! व्यासजीकी ऐसी तपस्या और भक्ति देखकर महादेवजी बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने मन-ही-मन उन्हें अभीष्ट वर देनेका विचार किया। वे उनके पास आये और हँसते हुए कहने लगे, 'व्यासजी ! तुम्हें अग्नि, वायु, भूमि, जल और आकाशके समान महान् एवं पवित्र पुत्र प्राप्त होगा। वह भगवद्भावमें रँगा होगा, भगवान्में ही उसकी बुद्धि होगी, भगवान् ही उसके आत्मा होंगे और एकमात्र भगवान्को ही वह अपना आश्रम समझेगा। उसके तेजसे

तीनों लोक व्याप्त हो जायँगे और वह महान् यश प्राप्त



करेगा।'

यह उत्तम वर पानेके पश्चात् एक दिन सत्यवतीनन्दन श्रीव्यासजी अग्नि प्रकट करनेके लिये अरणीमन्थन कर रहे थे। इसी समय उनकी दृष्टि परमरूपवती घृताची अप्सरापर पड़ी। उसकी रूपसम्पत्तिने उनका मन आकर्षित कर लिया। इससे अकस्मात् उनका वीर्य अरणीमें गिरा। उसीसे महातपस्वी शुकदेवजीका जन्म हुआ। वे धूमहीन अग्निके समान तेजस्वी थे। उसी समय नदियोंमें श्रेष्ठ श्रीगङ्गाजी मूर्तिमती होकर मेरुपर्वतपर आयीं और उनका अपने जलसे अभिषेक किया। आकाशसे उनके लिये दण्ड और कृष्णमृगचर्म गिरे। विश्वावसु, तुम्बुरु, नारद, हाहा, हूहू आदि गन्धर्व उनके जन्मकी स्तुति गाने लगे। उस समय वहाँ इन्द्रादि लोकपाल, देवता, देवर्षि और ब्रह्मर्षि भी आये। वायुने दिव्य पुष्पोंकी वर्षा की, चर-अचर सारा संसार हर्षित हो उठा। उनके जन्मकालमें ही पार्वतीजीके सहित भगवान् शंकरने



आकर उनका विधिवत् यज्ञोपवीत संस्कार कराया। देवराज इन्द्रने उन्हें प्रेमपूर्वक सुन्दर कमण्डलु और दिव्य वस्त्र अर्पण किये।

इस प्रकार महामति शुकदेवजी ब्रह्मचारी होकर वहीं रहने लगे। जन्मते ही उन्हें रहस्य और संग्रहके सहित सब वेद इसी प्रकार उपस्थित हो गये जैसे उन्हें व्यासजी जानते थे। उन्होंने बृहस्पतिजीको अपना गुरु बनाया और उन्हींसे सम्पूर्ण वेद, इतिहास और राजनीतिकी शिक्षा प्राप्तकर, उन्हें दक्षिणा देकर वे घर लौट आये। वहाँ ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए महान् तपस्या करने लगे। वे बाल्यावस्थामें ही अपने ज्ञान और तपस्याके कारण देवता और ऋषियोंके माननीय एवं संशय-छेदन करनेवाले बन गये थे। उनकी दृष्टि मोक्ष-धर्मपर थी। इसलिये गार्हस्थ्यपर अवलम्बित रहनेवाले तीनों आश्रमोंमें भी उनका मन प्रसन्न नहीं रहता था।



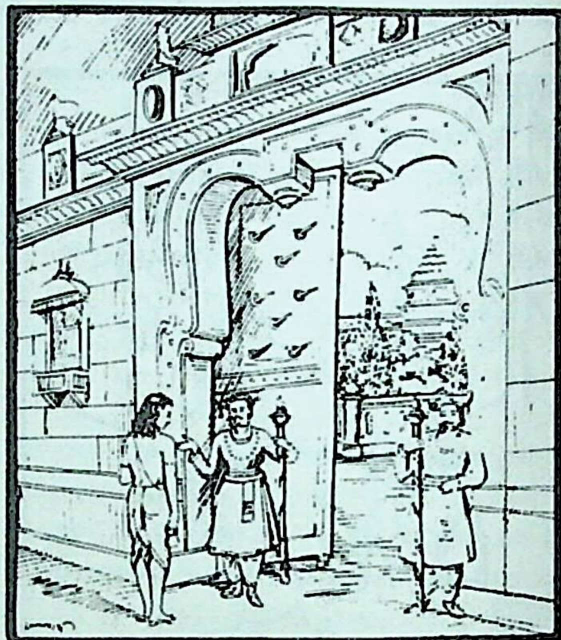
पिताकी आज्ञासे शुकदेवजीका मिथिलामें जाना और जनकके राजमहलमें उनका सत्कार होना

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! शुकदेवजी मोक्षका विचार करते हुए उसकी प्राप्तिकी इच्छासे अपने पिता व्यासजीके पास गये और उनके चरणोंमें प्रणाम करके बड़ी विनयके साथ बोले 'प्रभो ! आप मोक्षधर्ममें निपुण हैं; अतः मुझे ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे मेरे चित्तको परम शान्ति मिले।' पुत्रकी बात सुनकर महर्षि व्यासने कहा, 'बेटा ! तुम

मोक्ष तथा अन्यान्य धर्मोंका अध्ययन करो।' पिताकी आज्ञासे शुकदेवजीने सम्पूर्ण योग और सांख्यशास्त्रका अध्ययन किया। जब व्यासजीने यह समझ लिया कि मेरा पुत्र ब्रह्मतेजसे सम्पन्न और मोक्षधर्ममें कुशल हो गया है तथा समस्त शास्त्रोंमें इसकी ब्रह्माके समान गति हो गयी है, तब उन्होंने कहा 'बेटा ! अब तुम मिथिलाके राजा जनकके पास जाओ, वे तुम्हें सम्पूर्ण मोक्ष-शास्त्रका ज्ञान करा देंगे। वहाँ जाते समय इन बातोंका ध्यान रखना, जिस मार्गसे साधारण मनुष्य चलते हों, उसीसे तुम भी जाना; अपनी योगशक्तिका आश्रय लेकर आकाशमार्गसे कदापि यात्रा न करना। रास्तेमें सुख और सुविधाकी तलाशमें न पड़ना, विशेष-विशेष व्यक्तियों या स्थानोंकी खोज न करना; क्योंकि इससे उनके प्रति आसक्ति हो जाती है। राजा जनक हमारे यजमान हैं, इसलिये उनके पास किसी बातका अहंकार न प्रकट करना। वे जो आज्ञा दें, उसका प्रसन्नतापूर्वक पालन करना। उन्हें मोक्षशास्त्रका विशेष ज्ञान है, वे तुम्हारी सब शंकाओंका समाधान कर देंगे।'

पिताके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा मुनि शुकदेवजी मिथिलाकी ओर चल दिये। यद्यपि वे आकाश-मार्गसे सारी पृथ्वी लाँघ जानेमें समर्थ थे, तो भी पैदल ही चले। मार्गमें उन्हें अनेकों पर्वत, नदी, तीर्थ और सरोवर पार करने पड़े। सर्पों और वनजन्तुओंसे भरे हुए बहुत-से जंगलोंमें होकर जाना पड़ा। वे क्रमशः मेरुवर्ष (इलावृत), हरिवर्ष और हैमवत (किंपुरुष) वर्षको पार करते हुए भारतवर्षमें आये। चीन और हूण आदि देशोंको लाँघकर उन्होंने आर्यावर्तमें प्रवेश किया। पिताकी आज्ञाके अनुसार वे पैदल ही सारा रास्ता तय कर रहे थे। मार्गमें बड़े सुन्दर-सुन्दर शहर और कसबे दिखायी पड़े, विचित्र-विचित्र ढंगके रत्न दृष्टिगोचर हुए; किंतु शुकदेवजी उनकी ओर देखकर भी नहीं देखते थे। इस प्रकार चलते-चलते वे धर्मात्मा राजा जनकके द्वारा पालित विदेह-प्रान्तमें पहुँचे; उन्हें वहाँ पहुँचनेमें बहुत अधिक समय नहीं लगा। मिथिलाके बहुत-से गाँव उनकी दृष्टिमें आये, जहाँ अन्न, पानी तथा नाना प्रकारकी खाद्य-सामग्री प्रचुरमात्रामें मौजूद थी। गाँव-गाँवमें धन-धान्यसे सम्पन्न गोशालाएँ थीं, जहाँ बहुत-सी गौएँ एकत्रित रहती थीं। उस प्रान्तमें सब ओर धानकी खेती लहलहा रही थी।

इस प्रकार विदेह-राज्यको लाँघते हुए शुकदेवजी जनककी राजधानी मिथिलाके सुरम्य उपवनके निकट पहुँचे। वहाँसे उन्होंने नगरमें प्रवेश किया और राजमहलकी पहली



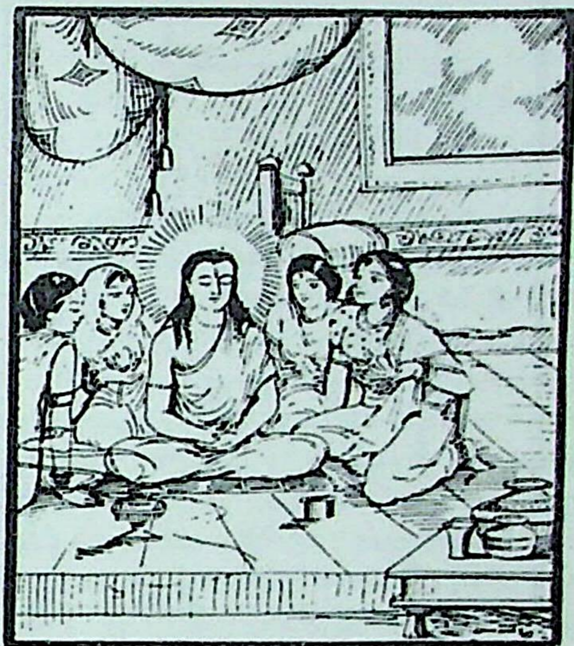
ड्योढ़ीपर पहुँचकर वे बेखटके उसके भीतर घुसने लगे। उस समय द्वारपालोंने उन्हें डाँटकर भीतर जानेसे रोक दिया। किंतु शुकदेवजीको इससे किसी प्रकारका खेद या क्रोध नहीं हुआ। वे चुपचाप वहीं खड़े हो गये। रास्तेकी थकावट और सूर्यकी धूपसे उन्हें संताप नहीं पहुँचा था। भूख और प्यास भी उन्हें कष्ट नहीं दे सकी थी। उनके मनमें तनिक भी शिथिलता नहीं आयी थी। चेहरेपर ग्लानिका कोई चिह्न नहीं दिखायी देता था। वे धूपमें जहाँ-के-तहाँ खड़े थे, वहाँसे सायेकी ओर नहीं हटते थे।

उन द्वारपालोंमेंसे एकको अपने व्यवहारपर बड़ा दुःख हुआ। उसने मध्याह्नकालीन सूर्यके समान तेजस्वी शुकदेवजीको चुपचाप खड़े देख हाथ जोड़कर प्रणाम किया और शास्त्रीय विधिके अनुसार उनकी पूजा करके उन्हें महलकी दूसरी कक्षामें पहुँचा दिया। वहाँ एक जगह बैठकर शुकदेवजी मोक्षधर्मका ही विचार करने लगे। उन्होंने यह नहीं देखा कि यहाँ धूप है या छाँह, उन दोनोंमें उनकी समान-दृष्टि थी। थोड़ी ही देरमें राजमन्त्री हाथ जोड़े हुए वहाँ पधारे और उन्हें अपने साथ महलकी तीसरी ड्योढ़ीमें ले गये। वहाँ अन्तःपुरसे सटा हुआ एक बहुत सुन्दर बगीचा था, जिसका नाम था प्रमदावन। मन्त्रीने शुकदेवजीको वहीं पहुँचाकर उनको बैठनेके लिये सुन्दर आसन बता दिया और स्वयं वे प्रमदावनसे बाहर निकल आये।

मन्त्रीके जाते ही पचास वाराङ्गनाएँ दौड़कर शुकदेवजीकी सेवामें उपस्थित हुई। वे सब-की-सब बड़ी

सुन्दरी और नवयुवती थीं। उनकी वेष-भूषा बड़ी ही मनोहारिणी थी। उनके सुन्दर अङ्गोंपर लाल रंगकी महीन साड़ियाँ शोभा पा रही थीं। वे बातचीत करने, नाचने तथा गानेमें बड़ी प्रवीण थीं और मन्द मुसकानके साथ बातें करती थीं। रूपमें तो वे अप्सराओंको भी मात कर रही थीं। उन्होंने पाद्य-अर्घ्य आदि निवेदन करके विधिपूर्वक शुकदेवजीका पूजन किया और उन्हें समयानुकूल स्वादिष्ट अन्न भोजन कराकर पूर्ण तृप्त किया। भोजनके पश्चात् वाराङ्गनाएँ उन्हें साथ लेकर प्रमदावनकी सैर कराने और वहाँकी एक-एक वस्तुको दिखाने लगीं। उस समय वे हँसती, गाती तथा नाना प्रकारकी क्रीडाएँ करती थीं। इस प्रकार सभी स्त्रियाँ उनकी सेवामें संलग्न थीं।

किंतु अरणीसे उत्पन्न हुए शुकदेवजीका अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध था, वे इन्द्रियों और क्रोधपर विजय पा चुके थे। उनके मनमें किसी प्रकारका संदेह नहीं था और वे सदा अपने कर्तव्यका पालन किया करते थे। इसलिये उन स्त्रियोंकी सेवासे उन्हें न हर्ष होता था, न क्रोध। तदनन्तर, उन सुन्दरी रमणियोंने देवताओंके बैठनेयोग्य एक दिव्य पलंग, जिसमें रत्न जड़े हुए थे तथा जिसके ऊपर बहुमूल्य बिछौने बिछे हुए थे, शुकदेवजीको सोनेके लिये दिया; किंतु शुकने पहले हाथ-पैर धोकर संध्योपासन किया, उसके बाद पवित्र आसनपर बैठकर वे मोक्ष-तत्त्वका ही विचार करते हुए ध्यानस्थ हो गये। रात्रिका प्रथम भाग जबतक बीत न गया, तबतक वे ध्यानमें ही लगे रहे। फिर योगशास्त्रके



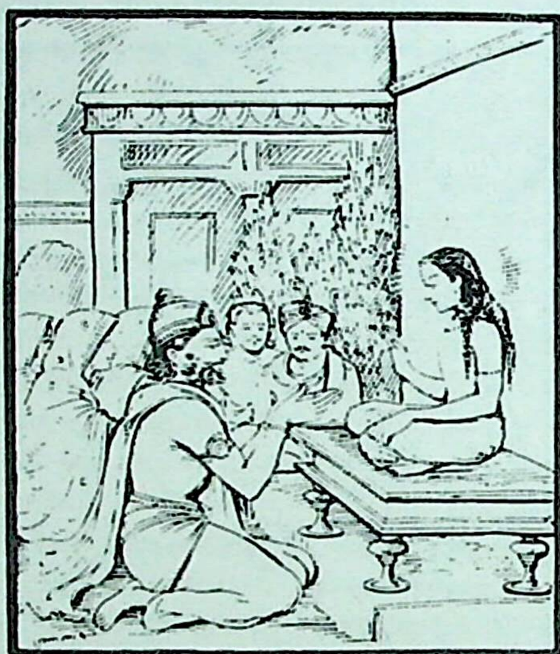
नियमानुकूल रात्रिके मध्यम भागमें नींद लेने लगे। पुनः जब ब्राह्ममुहूर्त हुआ तो वे उठ बैठे और शौचादि नित्य नियमोंसे निवृत्त होकर स्त्रियोंसे घिरे होनेपर भी ध्यानमग्न हो गये। इस प्रकार व्यासनन्दनने दिनका शेष भाग और समूची रात उस राजभवनमें रहकर व्यतीत की।



राजा जनकके द्वारा शुकदेवजीका पूजन तथा उनके प्रश्नका समाधान करना

भीष्मजी कहते हैं—भारत! तदनन्तर, राजा जनक अन्तःपुरकी सम्पूर्ण स्त्रियों और पुरोहितको आगे करके मन्त्रियोंके साथ शुकदेवजीके पास आये। आगे-आगे आसन और नाना प्रकारके रत्न लिये पुरोहितजी चल रहे थे और राजा अपने मस्तकपर अर्घ्यपात्र लिये पीछे आ रहे थे। गुरुपुत्रके निकट पहुँचकर उन्होंने पुरोहितके हाथसे वह सर्वतोभद्र नामक रत्नजटित आसन, जिसपर बहुमूल्य बिछावन बिछा हुआ था, ले लिया और अपने हाथसे शुकदेवजीको बैठनेके लिये दिया। जब व्यासनन्दन राजाके दिये हुए आसनपर विराजमान हो गये तो उन्होंने शास्त्रके अनुसार उनका पूजन आरम्भ किया। पहले पाद्य और अर्घ्य आदि निवेदन करके राजाने उन्हें एक गौ दान की। शुकदेवजीने भी विधिपूर्वक की हुई वह पूजा स्वीकार करके राजाका कुशलसमाचार पूछा, फिर अनुचरोंसहित उनके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें जिज्ञासा की, इसके बाद उनकी आज्ञा पाकर राजा जनक अपने सेवकोंके साथ जमीनपर बैठ गये और हाथ जोड़कर शुकका कुशल-मङ्गल पूछते हुए बोले 'मुने! किस निमित्तसे आपका यहाँ शुभागमन हुआ है?'

शुकदेवजीने कहा—राजन्! आपका कल्याण हो। मेरे पिताजीने मुझसे कहा है कि 'यदि तुम्हें प्रवृत्ति या निवृत्ति-धर्मके विषयमें कोई संदेह हो तो तुरंत ही मेरे यजमान विदेहराज जनकके पास चले जाओ। वे मोक्षधर्मके ज्ञाता हैं,



अतः तुम्हारी सब शङ्काओंका समाधान कर देंगे।' उनकी इस आज्ञासे ही मैं आपके पास कुछ पूछने आया हूँ। आप धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं; अतः मेरे प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर दीजिये। ब्राह्मणका क्या कर्तव्य है? मोक्षका क्या स्वरूप है? तथा उसकी प्राप्ति—तपसे होती है या ज्ञानसे?

जनकने कहा—तात! ब्राह्मणको जन्मसे लेकर जो-जो कर्म करने चाहिये, उनको सुनिये—यज्ञोपवीत संस्कार हो जानेके बाद ब्राह्मण-बालकको वेदाध्ययन करना चाहिये। अध्ययन-कालमें गुरुकी सेवा, तपका अनुष्ठान और ब्रह्मचर्यका पालन—ये तीन उसके परम कर्तव्य हैं। स्वाध्याय और तर्पणके द्वारा वह पितरोंके ऋणसे मुक्त होनेका यत्न करे, किसीकी निन्दा न करे और इन्द्रियसंयमपूर्वक रहे। जब वेदाध्ययन समाप्त हो जाय तो गुरुको दक्षिणा दे, उनकी आज्ञा लेकर समावर्तन संस्कारके पश्चात् घर लौटे। घर आनेपर विवाह करके गार्हस्थ्य-धर्मका पालन करे और अपनी ही स्त्रीके साथ सम्बन्ध रखे। किसीसे ईर्ष्या न रखकर न्यायानुकूल बर्ताव करे तथा अग्निकी स्थापना करके नित्य अग्निहोत्र करता रहे। तत्पश्चात् जब पुत्र-पौत्र उत्पन्न हो जायँ तो वनमें रहकर वानप्रस्थ-धर्मका पालन करे। उस समय भी शास्त्र-विधिके अनुसार अग्निहोत्र करे और अतिथियोंसे प्रेम रखे। इसके बाद धर्मज्ञ पुरुष शास्त्रानुसार अग्निहोत्रकी अग्नियोंका अपनेमें ही आरोप करके निर्द्वन्द्व हो जाय और वीतराग होकर ब्रह्मचिन्तनसे सम्बन्ध रखनेवाले संन्यासाश्रममें प्रवेश करे।

शुकदेवजीने पूछा—यदि किसीको ब्रह्मचर्याश्रममें ही सनातन ज्ञान-विज्ञानकी प्राप्ति हो जाय और हृदयके राग-द्वेषादि द्वन्द्व दूर हो जायँ तो भी क्या उसके लिये शेष तीन आश्रमोंमें रहना आवश्यक है?

जनकने कहा—जैसे ज्ञान-विज्ञानके बिना मोक्ष नहीं हो सकता, उसी प्रकार सद्‌गुरुसे सम्बन्ध हुए बिना ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती। गुरु इस संसारसागरसे पार उतारनेवाले हैं और उनका दिया हुआ ज्ञान नौकाके समान बताया गया है। मनुष्य उस ज्ञानको पाकर भवसागरसे पार और कृतकृत्य हो जाता है। पहलेके विद्वान् लोकमर्यादा तथा कर्म-परम्पराकी रक्षा करनेके लिये चारों आश्रमोंके धर्मोंका पालन करते थे। इस तरह क्रमशः नाना प्रकारके कर्मोंका अनुष्ठान करते हुए शुभाशुभ कर्मोंकी आसक्तिका परित्याग करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। अनेकों जन्मोंसे कर्म करते-करते जब सम्पूर्ण इन्द्रियाँ पवित्र हो जाती हैं तो शुद्ध अन्तःकरणवाला मनुष्य पहले ही आश्रममें मोक्षरूप ज्ञान प्राप्त कर लेता है। उसे पाकर जब ब्रह्मचर्याश्रममें ही तत्त्वका साक्षात्कार हो जाय तो परमात्माको चाहनेवाले जीवन्मुक्त विद्वान्‌के लिये शेष तीन आश्रमोंमें जानेकी क्या आवश्यकता है? विद्वान्‌को चाहिये कि वह राजस और तामस दोषोंका परित्याग कर दे और सात्त्विक मार्गका आश्रय लेकर बुद्धिके द्वारा आत्माका दर्शन करे। जो सम्पूर्ण भूतोंमें अपनेको और अपनेमें सम्पूर्ण भूतोंको देखता है, वह संसारमें कहीं भी आसक्त नहीं होता। वह तो घोंसलेको छोड़कर उड़ जानेवाले पक्षीकी भाँति इस देहसे पृथक् हो निर्द्वन्द्व एवं शान्त होकर परलोकमें अक्षयपद (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है।

तात! इस विषयमें राजा ययातिकी कही हुई गाथा सुनिये, जिसे मोक्षशास्त्रके विद्वान् द्विज सदा याद रखते हैं। 'अपने भीतर ही आत्मज्योतिका प्रकाश है, अन्यत्र नहीं। वह ज्योति सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर समान रूपसे स्थित है। समाधिमें अपने चित्तको भलीभाँति एकाग्र करनेवाला पुरुष उसको स्वयं देख सकता है। जिससे दूसरा कोई प्राणी नहीं डरता, जो स्वयं दूसरे किसी प्राणीसे भयभीत नहीं होता तथा जो इच्छा और द्वेषसे रहित हो गया है, वह तत्काल ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। जब मनुष्य मन, वाणी तथा क्रियाके द्वारा किसीकी बुराई नहीं करना चाहता, उस समय वह ब्रह्मरूप हो जाता है। जब मोहमें डालनेवाली ईर्ष्या, काम और मोहका त्याग करके पुरुष अपने मनको आत्मामें लगा देता है, उस

समय उसे ब्रह्मानन्दका अनुभव होता है। जब सुनने और देखने योग्य विषयोंमें तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके ऊपर मनुष्यका समान भाव हो जाय और सुख-दुःखादि द्वन्द्व उसके चित्तपर प्रभाव न डाल सकें, उस समय वह साक्षात् ब्रह्म हो जाता है। जिस समय निन्दा-स्तुति, लोहा-सोना, सुख-दुःख, शीत-उष्ण, अर्थ-अनर्थ, प्रिय-अप्रिय तथा जीवन-मरणमें समान दृष्टि हो जाती है, उस समय मनुष्यको ब्रह्मभावकी प्राप्ति हो जाती है। जैसे कछुआ अपने अंगोंको फैलाकर फिर समेट लेता है, उसी प्रकार संन्यासीको मनके द्वारा इन्द्रियोंपर नियन्त्रण रखना चाहिये। जिस प्रकार अन्धकारसे व्याप्त हुआ घर दीपकके प्रकाशसे स्पष्ट दीख पड़ता है, उसी तरह बुद्धिरूपी दीपककी सहायतासे अज्ञानसे आवृत आत्माका साक्षात् दर्शन हो सकता है।'

बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी ! उपर्युक्त सारी बातें मुझे आपके अंदर दिखायी देती हैं। इनके अतिरिक्त भी जो कुछ जाननेयोग्य विषय है, उसे आप ठीक-ठीक जानते हैं। ब्रह्मर्षे ! मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ। आप अपने पिताजीकी कृपा और शिक्षासे विषयोंसे परे हो चुके हैं। उन्हींकी कृपासे मुझे भी दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ है, जिससे मैं आपकी स्थितिको पहचानता हूँ। आपका विज्ञान, आपकी गति और आपका ऐश्वर्य—ये सब अधिक हैं; किंतु आपको इस बातका पता नहीं है। बालस्वभावके कारण, संशयसे अथवा मोक्ष न मिलनेके काल्पनिक भयसे मनुष्यको विज्ञान प्राप्त हो जानेपर भी मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। जब सत्संगके द्वारा विशुद्ध निश्चयको प्राप्त होनेसे संदेह दूर हो जाता है, तब हृदयकी गाँठ खुल जानेपर वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। आपको ज्ञान हो चुका है और आपकी बुद्धि भी स्थिर है; परंतु विशुद्ध निश्चयके बिना किसीको भी परब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती। आप सुख-दुःखमें कोई अन्तर नहीं समझते। आपके मनमें तनिक भी लोभ नहीं है। आपको न नाच देखनेकी उत्कण्ठा होती है, न गीत सुननेकी। आपका कहीं भी राग है ही नहीं। न बन्धुओंके प्रति आसक्ति है, न भयदायक पदार्थोंसे भय। महाभाग ! आपकी दृष्टिमें मिट्टीका ढेला, पत्थर और सुवर्ण सब एक-से हैं। मैं तथा दूसरे मनीषी विद्वान् भी आपको अक्षय एवं अनामय पथ-(मोक्षमार्ग) पर स्थित मानते हैं। ब्रह्मन् ! ब्राह्मण होनेका जो फल है और मोक्षका जो स्वरूप है उसीमें आपकी स्थिति है, अब और क्या पूछना चाहते हो ?



शुकदेवजीका पिताके पास लौट आना तथा व्यासजीका अपने शिष्योंको स्वाध्यायकी विधि और शुकदेवको अनध्यायका कारण बताना

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! राजा जनककी यह बात सुनकर शुद्ध अन्तःकरणवाले शुकदेवजी एक दृढ़ निश्चयपर पहुँच गये और बुद्धिके द्वारा आत्माका साक्षात्कार करके उसीमें स्थित होकर कृतार्थ हो गये। उस समय उन्हें बड़ा सुख मिला, बड़ी शान्तिका अनुभव हुआ। इसके बाद वे हिमालय पर्वतको लक्ष्य करके वायुके समान वेगसे चुपचाप उत्तर दिशाकी ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने पिता व्यासजीका परम उत्तम रमणीय आश्रम देखा, जहाँ वे शिष्योंसे घिरे हुए विराजमान थे और सुमन्तु, वैशम्पायन, जैमिनि तथा पैलको वेद पढ़ा रहे थे। उसी समय व्यासजीकी भी दृष्टि शुकदेवजीपर पड़ी, जो प्रज्वलित अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी दिखायी देते थे तथा धनुषसे छूटे हुए बाणकी तरह वृक्षों और पर्वतोंमें अटके बिना ही चले आ रहे थे। निकट आ जानेपर अरणी-गर्भसे उत्पन्न हुए महामुनि शुकने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया और उनके शिष्योंसे भी योग्यतानुसार मिलकर पितासे मिथिलाका सारा समाचार कह सुनाया। वहाँ राजा जनकके साथ जो संवाद हुआ था, वह सब बड़ी प्रसन्नतासे उन्होंने निवेदन किया। इसके बाद मुनिवर व्यासजी पुत्र और शिष्योंको पढ़ाते हुए हिमालयके शिखरपर ही रहने लगे।

एक समयकी बात है व्यासजीके शिष्य, जो वेदाध्ययनसे सम्पन्न, शान्त, जितेन्द्रिय, साङ्गवेदमें पारंगत और तपस्वी थे, उन्हें चारों ओरसे घेरकर बैठ गये और हाथ जोड़कर कहने लगे 'गुरुदेव ! आपकी कृपासे हमलोग अत्यन्त तेजस्वी हो गये हैं और हमारा यश भी चारों ओर बढ़ गया है। आप एक बार और कृपा करके हमें कुछ उपदेश कीजिये, यही हमारी इच्छा है।'

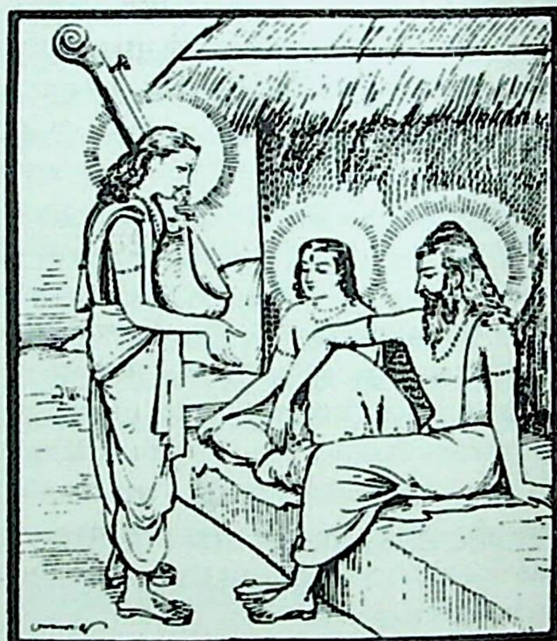
व्यासजीने कहा—प्रिय शिष्यगण ! जो ब्रह्मलोकका अक्षय निवास चाहता हो, उसका कर्तव्य है कि पढ़नेकी इच्छासे आये हुए ब्राह्मणको सदा ही वेद पढ़ावे। तुमलोग बहुत-से होकर वेदोंका विस्तार करो। जो ब्रह्मचर्यव्रतका पालन न करता हो, जिसका मन वशमें न हो तथा जो शिष्य-

भावसे पढ़ने न आया हो, उसे वेदाध्ययन नहीं कराना चाहिये। जिसे वेद पढ़ाना हो, उसमें शिष्यके ये सभी गुण मौजूद हैं कि नहीं—इस बातको अच्छी तरह जान लेना चाहिये। जिसके सदाचारकी जाँच नहीं की गयी है, उसे कदापि विद्यादान नहीं देना चाहिये। जैसे आगमें तपाने, छीलने और कसौटीपर कसनेसे अच्छे सोनेकी परख होती है, उसी प्रकार उत्तम कुल और गुण आदिके द्वारा शिष्योंकी परीक्षा करनी चाहिये। तुमलोग अपने शिष्योंको किसी अनुचित या भयदायक काममें न लगाना। तुम्हारे पढ़ानेपर भी जिसकी जैसी बुद्धि होगी और पढ़नेमें जो जैसा परिश्रम करेगा, उसीके अनुसार उसको सफलता मिलेगी। अपना उद्देश्य तो यही होना चाहिये कि सब मनुष्य दुःखोंसे पार हो जायँ, सबका कल्याण हो। ब्राह्मणको आगे रखकर चारों वर्णोंको उपदेश देना चाहिये। वेदाध्ययन बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य है, इसको अवश्य करना चाहिये। जो मोहवश वेदके पारंगत ब्राह्मणकी निन्दा करता है, वह उसके अनिष्ट-चिन्तनके कारण निस्संदेह पराभवको प्राप्त होता है। जो धार्मिक विधिका उल्लंघन करके प्रश्न करता है और जो धर्मके अनुसार उत्तर नहीं देता, उन दोनोंमेंसे एककी मृत्यु हो जाती है अथवा एक द्वेषका पात्र होता है। यह सब मैंने तुमलोगोंसे स्वाध्यायकी विधि बतलायी है, इसको याद रखनेसे शिष्योंका महान् उपकार हो सकता है।

भीष्मजी कहते हैं—अपने गुरु व्यासजीके इस उपदेशको सुनकर उनके तेजस्वी शिष्य बहुत प्रसन्न हुए और आपसमें एक-दूसरेका आलिङ्गन करके व्यासजीसे बोले 'भगवन्! आपने भविष्यमें हमारे हितका विचार करके जो बातें बतायी हैं, वे हमारे मनमें बैठ गयी हैं, हम अवश्य उनका पालन करेंगे। महामुने! यदि आप पसंद करें तो हमलोग वेदोंका विभाग करनेके लिये इस पर्वतसे पृथ्वीपर जाना चाहते हैं।' शिष्योंकी बात सुनकर व्यासजीने धर्म और अर्थसे युक्त वचनोंमें उत्तर दिया 'पृथ्वीपर या देवलोकमें जहाँ तुम्हारी इच्छा हो जा सकते हो, किंतु प्रमाद न करना; क्योंकि वेदमें बहुत-सी प्ररोचनात्मक श्रुतियाँ हैं।'

सत्यवादी गुरुकी यह आज्ञा पाकर सभी शिष्योंने उनके चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करके वहाँसे प्रस्थान किया। पृथ्वीपर उतरकर उन्होंने चातुर्होत्र (अग्निहोत्रसे लेकर सोमयागतकके कर्मों) का प्रचार किया और गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्योंके यज्ञ कराते हुए वे बड़े आनन्दसे रहने लगे। द्विजातियोंमें उनका विशेष सम्मान था। यज्ञ कराना और वेदोंकी शिक्षा देना ही उनकी जीविका थी और इन्हीं कर्मोंके कारण उन्होंने संसारमें बड़ी ख्याति प्राप्त की थी।

शिष्योंके चले जानेपर व्यासजीके साथ उनके पुत्र शुकदेवके सिवा कोई नहीं रह गया था। वे चुपचाप किसी सोच-विचारमें पड़े एकान्तमें बैठे थे। उसी समय महातपस्वी नारदजी उस आश्रमपर आकर व्यासजीसे मिले और मीठी वाणीमें बोले 'ब्रह्मर्षे! आज इस आश्रमपर वेद-मन्त्रोंका स्वर क्यों नहीं सुनायी देता? आप अकेले चुपचाप किस



विचारमें पड़े हैं? क्यों चिन्तित-से होकर बैठे हैं? वेदध्वनि न होनेके कारण अब इस पर्वतकी पहले-जैसी शोभा नहीं रही। देवर्षियोंसे सेवित होनेपर भी यह शैल ब्रह्मघोषके बिना भीलोंके घरकी तरह श्रीहीन जान पड़ता है। यहाँके ऋषि, देवता और महाबली गन्धर्व भी वेदध्वनिसे वियुक्त होकर अब पहलेकी भाँति शोभायमान नहीं दिखायी देते।' नारदजीकी बात सुनकर व्यासजी बोले 'देवर्षे! आपने जो कुछ कहा, वह मेरे मनके अनुकूल ही है, आप ही ऐसी बात कह सकते हैं। आप सर्वज्ञ, सब कुछ देखनेवाले और सर्वत्रकी बातें जाननेके लिये उत्कण्ठित रहनेवाले हैं। तीनों लोकोंमें जो बात होती है, वह सब आपको मालूम रहती है; इसलिये मुझे आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? इस समय मेरा जो कर्तव्य हो उसे भी बतलाइये; क्योंकि अपने प्यारे शिष्योंसे बिछोह होनेके कारण आज मेरा मन विशेष प्रसन्न नहीं है।'

नारदजीने कहा—व्यासजी ! वेद पढ़कर उसका अभ्यास (आवृत्ति) न करना वेदाध्ययनका मल (दोष) है, व्रतका पालन न करना ब्राह्मणका मल है, वाहीक देशके लोग पृथ्वीके मल हैं और नये-नये दृश्य देखने या नयी-नयी बातें जाननेकी उत्कण्ठा रखना स्त्रीके लिये दोषकी बात है; अतः आप अपने बुद्धिमान् पुत्रके साथ सदा वेदोंका स्वाध्याय करते रहें।

भीष्मजी कहते हैं—नारदजीकी बात सुनकर परम धर्मात्मा व्यासजीने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और अपने पुत्र शुकदेवके साथ त्रिभुवनको गुञ्जायमान करते हुए-से ऊँचे स्वरसे वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करने लगे। इतनेहीमें समुद्री हवासे प्रेरित होकर बड़े जोरकी आँधी उठी। तब व्यासजीने अनध्याय-काल बताकर अपने पुत्रको उस समय वेद पढ़नेसे रोक दिया। उनके मना करनेपर शुकदेवजीके मनमें इसका कारण जाननेके लिये प्रबल उत्कण्ठा हुई। यह देखकर व्यासजीने कहा 'बेटा ! जब बाहरकी हवा प्रचण्ड वेगसे चल रही हो, उस समय वेदमन्त्रोंका ठीक-ठीक सस्वर उच्चारण नहीं हो पाता। उस दशामें जगत्‌को उस वायुसे महान् भयकी प्राप्ति होती है; इसीलिये ब्रह्मवेत्तालोग आँधीके समय वेदाध्ययन नहीं करते।' यह कहकर जब वायु शान्त हो गयी तो व्यासजी पुत्रको अध्ययनके लिये आज्ञा देकर आकाशगङ्गाके तटपर चले गये।



शुकदेवजीको नारदजीका उपदेश

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! व्यासजीके चले जानेके बाद उस आश्रमपर एकान्त स्थानमें बैठकर स्वाध्यायमें लगे हुए शुकदेवजीके पास देवर्षि नारदजी पधारे। उन्हें उपस्थित देख शुकने वेदोक्तविधिसे अर्घ्य आदि निवेदन करके उनका पूजन किया। तब नारदजीने प्रसन्न होकर पूछा 'वत्स ! मैं तुम्हारा कौन-सा उत्तम एवं प्रिय कार्य करूँ ?' यह सुनकर शुकदेवजीने कहा, 'इस लोकमें जो परम कल्याणका साधन हो उसीका उपदेश देनेकी कृपा करें।'

नारदजीने कहा—एक समय पवित्र अन्तःकरणवाले ऋषियोंने तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रश्न किया, उसके उत्तरमें भगवान् सनत्कुमारने यह उपदेश दिया—'विद्याके समान कोई नेत्र नहीं है, सत्यके समान कोई तप नहीं है, रागके समान कोई दुःख और त्यागके समान कोई सुख नहीं है। पापकर्मोंसे दूर रहना, सदा पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करना, साधु-पुरुषोंके-से बर्ताव और सदाचारका पालन करना, यह सर्वोत्तम श्रेय-(कल्याण) का साधन है। जहाँ सुखका नाम भी नहीं है—ऐसे इस मानव-शरीरको पाकर जो विषयोंमें आसक्त होता है वह मोहको प्राप्त होता है। विषयोंका संयोग दुःखरूप ही है, वह दुःखोंसे छुटकारा नहीं दिला सकता। विषयासक्त पुरुषकी बुद्धि चञ्चल होती है, वह मोहजालका विस्तार करती है और मोहजालसे बँधा हुआ पुरुष इस लोक तथा परलोकमें भी दुःख ही भोगता है। जिसे कल्याण-प्राप्तिकी इच्छा हो, उसे प्रत्येक उपायसे काम और क्रोधको दबाना चाहिये; क्योंकि ये दोनों दोष कल्याणका नाश करनेके लिये उद्यत रहते हैं। मनुष्यको चाहिये कि तपको



क्रोधसे, लक्ष्मीको डाहसे, विद्याको मान-अपमानसे और अपनेको प्रमादसे बचावे। क्रूर स्वभावका परित्याग सबसे बड़ा धर्म है, क्षमा सबसे बड़ा बल है, आत्माका ज्ञान सबसे बड़ा ज्ञान है और सत्यसे बढ़कर तो कुछ है ही नहीं। सत्य बोलना सबसे श्रेष्ठ है; किंतु हितकारक बात कहना सत्यसे भी बढ़कर है। जिससे प्राणियोंका अत्यन्त हित होता हो, उसीको मैं सत्य

मानता हूँ। जो नये-नये काम आरम्भ करनेका संकल्प छोड़ चुका है, जिसके मनमें कोई कामना नहीं है, जो किसी वस्तुका संग्रह नहीं करता तथा जिसने सब कुछ त्याग दिया है, वही विद्वान् है और वही पण्डित है। जो अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा अनासक्त भावसे विषयोंका अनुभव करता है, जिसका चित्त शान्त, निर्विकार और एकाग्र है तथा जो आत्मीय कहलानेवाले देह और इन्द्रियोंके साथ रहकर भी उनसे एकाकार न होकर विलग-सा ही रहता है, वह मुक्त है और उसे बहुत शीघ्र परम कल्याणकी प्राप्ति होती है। जिसकी किसी प्राणीकी ओर दृष्टि नहीं जाती, जो किसीका स्पर्श तथा किसीसे बातचीत नहीं करता, वह परम कल्याणको प्राप्त होता है। किसीकी हिंसा न करे, सबके साथ मित्रताका भाव रखे और यह मनुष्य-जन्म पाकर किसीके साथ वैर न करे। जो आत्मतत्त्वका ज्ञाता तथा मनको वशमें रखनेवाला है, उसे चाहिये कि किसी वस्तुका संग्रह न करे, संतोष रखे और कामना तथा चञ्चलताका त्याग कर दे; इससे परम कल्याणकी सिद्धि होगी। तात शुकदेव! तुम संग्रहका त्याग करके जितेन्द्रिय हो जाओ तथा उस पदको प्राप्त करो जो इहलोक और परलोकमें भी निर्भय तथा सर्वथा शोकरहित हो। जिन्होंने भोगोंका परित्याग कर दिया है, वे कभी शोकमें नहीं पड़ते; इसलिये प्रत्येक मनुष्यको भोगासक्तिका त्याग करना चाहिये। सौम्य! जो भोगासक्तिका त्याग कर देता है, वह दुःख और संतापसे छूट जाता है। जो अजित (परमात्मा) को जीतनेकी इच्छा रखता हो, उसे तपस्वी, जितेन्द्रिय, मननशील, संयतचित्त और विषयोंमें अनासक्त रहना चाहिये। जो ब्राह्मण त्रिगुणात्मक विषयोंमें आसक्त न होकर सदा एकान्तवास करता है, वह बहुत शीघ्र सर्वोत्तम सुख (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है। जो मुनि मैथुनमें सुख माननेवाले प्राणियोंके बीचमें रहकर भी अकेले रहनेमें ही आनन्द मानता है, उसे ज्ञानानन्दसे तृप्त समझना चाहिये; जो ज्ञानानन्दसे तृप्त होता है, वह कभी शोकमें नहीं पड़ता। जीव सदा कर्मोंके अधीन रहता है, वह शुभ कर्मोंके अनुष्ठानसे देवता होता है, शुभ-अशुभ दोनोंके आचरणसे मनुष्ययोनिमें जन्म पाता है और केवल अशुभ कर्मोंसे पशु-पक्षी आदि नीच योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है। उन-उन योनियोंमें जीवको सदा जरा, मृत्यु तथा नाना प्रकारके दुःखोंका शिकार होना पड़ता है। इस प्रकार संसारमें जन्म लेनेवाला प्रत्येक प्राणी संतापकी आगमें पकाया जाता है—इस बातकी ओर तुम क्यों नहीं ध्यान देते? यहाँ विभिन्न वस्तुओंके संग्रहकी कोई आवश्यकता नहीं है; क्योंकि संग्रहसे महान् दोष प्रकट होता है। रेशमका कीड़ा अपने संग्रहके कारण ही बन्धनमें पड़ता है। स्त्री, पुत्र और कुटुम्बमें आसक्त रहनेवाले जीव उसी प्रकार कष्ट पाते हैं, जैसे जंगलके बूढ़े हाथी तालाबके दलदलमें फँसकर दुःख उठाते हैं। जिस प्रकार महान् जालमें फँसकर पानीके बाहर आये हुए मत्स्य तड़पते हैं, उसी प्रकार स्नेहजालमें फँसकर अत्यन्त कष्ट उठाते हुए इन प्राणियोंकी ओर दृष्टि डालो। संसारमें कुटुम्ब, स्त्री, पुत्र, शरीर और संग्रह—सब कुछ पराया है, सब नाशवान् है; इसमें अपना क्या है—सिर्फ पाप और पुण्य। जहाँ ठहरनेके लिये कोई स्थान नहीं, कोई सहारा देनेवाला नहीं, राहखर्च नहीं तथा अपने देशका कोई साथी नहीं है, जो अन्धकारसे व्याप्त और दुर्गम है, उस मार्गपर तुम अकेले कैसे चल सकोगे? जब तुम परलोककी राह लोगे, उस समय कोई तुम्हारे पीछे नहीं जायगा, केवल तुम्हारा किया हुआ पुण्य या पाप ही वहाँतक साथ देगा। अर्थ (परमात्मा) की प्राप्तिके लिये ही विद्या, कर्म, पवित्रता और अत्यन्त विस्तृत ज्ञानका सहारा लिया जाता है; जब अर्थकी सिद्धि (परमात्माकी प्राप्ति) हो जाती है तो मनुष्य मुक्त हो जाता है। गाँवमें रहनेवाले मनुष्यकी विषयोंके प्रति जो आसक्ति होती है, वह उसे बाँधनेवाली रस्सीके समान है, पुण्यात्मा पुरुष उस रस्सीको काटकर आगे—परमार्थके पथपर बढ़ जाते हैं; किंतु जो पापी हैं वे उसे नहीं काट पाते। यह संसार एक नदीके समान है, रूप इसका किनारा, मन स्रोत, स्पर्श द्वीप और रस ही प्रवाह है। गन्ध उस नदीकी कीचड़, शब्द जल और स्वर्गरूपी दुर्गम घाट है। शरीररूपी नौकाकी सहायतासे उसे पार किया जा सकता है। क्षमा इसको खेनेवाली लग्गी और धर्म इसको स्थिर करनेवाली रस्सी (लंगर) है। यदि त्यागरूपी पवनका सहारा मिले तो इस नदीको शीघ्र पार किया जा सकता है। यह देह पञ्चभूतोंका घर है, इसमें हड्डियोंके खंभे लगे हैं, यह नस-नाड़ियोंसे बँधा हुआ, रक्त-मांससे लिपा हुआ और चमड़ेसे मढ़ा हुआ है। इसमें मल-मूत्र भरा है, जिसके कारण दुर्गन्ध आती रहती है। यह जरा और शोकसे व्याप्त, रोगोंका आश्रय, आतुर, रजोगुणरूपी धूलसे ढका हुआ और अनित्य है, अतः तुम्हें इसकी आसक्तिका त्याग कर देना चाहिये। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् पञ्चमहाभूतोंसे उत्पन्न हुआ है, इसलिये उनसे भिन्न नहीं है। पञ्चमहाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, बुद्धि और सत्त्वादि गुण—इन सत्रह तत्त्वोंके समुदायको अव्यक्त कहते हैं। इनके साथ ही (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द तथा बुद्धि और अहंकारके आश्रयभूत) सम्पूर्ण विषयोंको मिलानेसे जो चौबीस तत्त्वोंका समूह होता है, उसे व्यक्ताव्यक्त-समुदाय कहते हैं। जो इन सब तत्त्वोंसे युक्त है, उसका नाम पुरुष है। जो पुरुष धर्म, अर्थ, काम,

सुख-दुःख और जीवन-मरणके तत्त्वको ठीक-ठीक समझता है, वही उत्पत्ति और प्रलयके तत्त्वको भी यथार्थरूपसे जानता है। ज्ञानके सम्बन्धमें जितनी बातें हैं, उन्हें परम्परासे जानना चाहिये। जो पदार्थ इन्द्रियोंद्वारा जाने जाते हैं, वे व्यक्त कहलाते हैं और जो इन्द्रियोंके अगोचर होनेके कारण अनुमानसे जाननेमें आते हैं, उनको अव्यक्त कहते हैं। जिनकी इन्द्रियाँ अपने वशमें हैं वे उसी प्रकार संतुष्ट रहते हैं, जैसे वर्षाकी धारासे प्यासे हुए जीव। ज्ञानी पुरुष लोकमें अपनेको और अपनेमें लोकको विस्तृत देखते हैं, उन्हें भूत और भविष्यका भी ज्ञान होता है तथा उनकी वह ज्ञानशक्ति कभी नष्ट नहीं होती। उसीके प्रभावसे वे सब अवस्थाओंमें सम्पूर्ण भूतोंका दर्शन करते हैं। जो ज्ञानके बलसे मोहजनित नाना प्रकारके क्लेशोंके पार हो गया है, वह सम्पूर्ण प्राणियोंके सहवासमें आकर भी कभी अशुभ कर्मोंसे लिप्त नहीं होता। किंतु अज्ञानी मनुष्य मथानीकी भाँति कर्मोंसे बँधता और मथित होता रहता है। वह प्रारब्धकर्मके उदय होनेपर नाना प्रकारके कष्ट भोगता हुआ संसारमें चक्रकी भाँति घूमता रहता है। इसलिये तुम कर्मोंसे निवृत्त, सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त, सर्वज्ञ, सर्वविजयी सिद्ध और भाव-अभावसे रहित हो जाओ। बहुत-से ज्ञानी पुरुष संयम और तपस्याके बलसे नवीन बन्धनोंका उच्छेद करके अनन्त सुख देनेवाली अबाध सिद्धि (मुक्ति) को प्राप्त हो चुके हैं।



नारदजीका शुकदेवको उपदेश और शुकदेवका सूर्यलोकमें जानेका निश्चय

नारदजी कहते हैं—शुकदेव! शास्त्र शोकको दूर करनेवाला है, वह शान्तिमय और कल्याणकारक है। जो अपने शोकका नाश करनेके लिये शास्त्रका श्रवण करता है, वह उत्तम बुद्धि पाकर सुखी होता है। शोकके हजारों और भयके सैकड़ों स्थान हैं, वे प्रतिदिन मूढ़ पुरुषोंपर ही अपना प्रभाव डालते हैं; बुद्धिमान् मनुष्योंपर उनका जोर नहीं चलता। इसलिये तुम्हारे अनिष्टका नाश करनेके लिये मैं कुछ उपदेश करता हूँ, सुनो—यदि बुद्धि अपने वशमें रहे तो शोक सदाके लिये दूर हो जाता है। बुद्धिहीन मनुष्य ही अप्रिय वस्तुकी प्राप्ति और प्रिय वस्तुका वियोग होनेपर मन-ही-मन दुःखी होते हैं। जो वस्तु भूतकालके गर्भमें छिप गयी (नष्ट हो गयी), उसके गुणोंका स्मरण नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो आदरपूर्वक उसके गुणोंका चिन्तन करता है, उसकी आसक्ति नहीं छूटती। जहाँ चित्तकी आसक्ति बढ़ने लगे उस वस्तुको अनिष्टकारी समझकर उसमें दोषदृष्टि कर लेनी चाहिये। ऐसा करनेपर उससे शीघ्र ही वैराग्य हो जाता है। जो बीती बातके लिये शोक करता है, उसे अर्थ, धर्म और यशकी प्राप्ति नहीं होती; वह उसके अभावका दुःखमात्र उठाता है, उससे अभाव दूर नहीं होता। सभी प्राणियोंको उत्तम पदार्थोंसे संयोग और वियोग प्राप्त होते रहते हैं; किसी एकपर ही यह शोकका अवसर नहीं आता। जो मनुष्य भूतकालमें मरे हुए किसी व्यक्ति अथवा नष्ट हुई वस्तुके लिये निरन्तर शोक करता रहता है, वह एक दुःखसे दूसरे दुःखको प्राप्त होता है; इस प्रकार उसे दो अनर्थ भोगने पड़ते हैं। जो अपनी बुद्धिसे विचारकर संसारमें सदा होनेवाले जन्म-मरणके प्रवाहपर दृष्टि रखते हैं, वे कभी उसके लिये आँसू नहीं बहाते। जो सबको सम्यक् दृष्टिसे देखता है, उस ज्ञानीको कभी अश्रुपात होता ही नहीं। यदि कोई शारीरिक या मानसिक दुःख उपस्थित हो जाय और उसे दूर करनेमें कोई उपाय काम न दे सके तो उसके लिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये। दुःख दूर करनेकी सबसे अच्छी दवा यही है कि उसके लिये चिन्ता न की जाय। चिन्ता करनेसे वह घटता नहीं बल्कि और बढ़ता जाता है। इसलिये मानसिक दुःखको बुद्धिसे और शारीरिक कष्टको औषध-सेवनके द्वारा नष्ट करना चाहिये। शास्त्रज्ञानके प्रभावसे ही ऐसा होना सम्भव है। दुःख पड़नेपर बालकोंकी तरह रोना उचित नहीं। रूप, यौवन, जीवन, धनसंग्रह, आरोग्य और प्रियजनोंका सहवास—ये सब अनित्य हैं, विद्वान् पुरुषको इनमें आसक्त नहीं होना चाहिये। सारे देशपर आये हुए संकटके लिये किसी एक व्यक्तिको शोक करना उचित नहीं है। यदि उस संकटको टालनेका कोई उपाय दिखलायी दे तो शोक छोड़कर उसे ही करना चाहिये। इसमें संदेह नहीं कि जीवनमें सुखकी अपेक्षा दुःख ही अधिक होता है; किंतु जो सुख और दुःख दोनोंकी ही चिन्ता छोड़ देता है, वह अक्षय ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। धनके उपार्जनमें बड़ा कष्ट होता है, उसकी रक्षामें भी सुख नहीं है तथा उसे खर्च करनेमें भी क्लेश ही होता है, अतः धनको प्रत्येक अवस्थामें दुःखदायक समझकर उसके नष्ट होनेपर चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मनुष्य धनका संग्रह करते-करते पहलेकी अपेक्षा ऊँची स्थितिको प्राप्त होकर भी कभी तृप्त नहीं होते, वे और अधिककी आशा लिये हुए ही मर जाते हैं; इसलिये विद्वान् पुरुष सदा संतुष्ट रहते हैं। संग्रहका अन्त है विनाश, ऊँचे चढ़नेका अन्त है नीचे गिरना, संयोगका अन्त है वियोग और

जीवनका अन्त है मरण। तृष्णाका कभी अन्त नहीं होता, संतोष ही परम सुख है, अतः विवेकी पुरुष संतोषको ही परम धन मानते हैं। आयु लगातार बीत रही है, वह क्षणभर भी विश्राम नहीं लेती। जब अपना शरीर ही अनित्य है तो दूसरी किस वस्तुको नित्य समझा जाय ? जो मनुष्य सब प्राणियोंके भीतर मनसे परे परमात्माका चिन्तन करते हैं, वे अपनी संसारयात्रा समाप्त करके परम पदका साक्षात्कार करते हुए शोकके पार हो जाते हैं। जैसे जंगलमें नयी-नयी घासकी खोजमें चरते हुए पशुको सहसा व्याघ्र आकर दबोच लेता है, उसी प्रकार कामनाओंकी खोजमें लगे हुए अतृप्त मनुष्यको मौत उठा ले जाती है; इसलिये सबको दुःखसे छूटनेका उपाय सोचना चाहिये। जो शोक छोड़कर कार्य आरम्भ करता है और किसी व्यसनमें आसक्त नहीं होता, उसकी मुक्ति हो जाती है। धनी हो या निर्धन, सबको उपभोगकालमें ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि विषयोंमें किंचित् सुखका अनुभव होता है, उसके बाद उनमें कुछ भी नहीं रहता। प्राणियोंको एक-दूसरेसे संयोग होनेके पहले कोई दुःख नहीं रहता; जब संयोगके बाद वियोग होता है, तभी सबको दुःख हुआ करता है; इसलिये विवेकी पुरुषको अपने स्वरूपमें स्थित होकर कभी भी शोक नहीं करना चाहिये। धैर्यके द्वारा शिश्न और उदरकी, नेत्रके द्वारा हाथ और पैरकी, मनके द्वारा आँख और कानकी तथा सद्विद्याके द्वारा मन और वाणीकी रक्षा करनी चाहिये। जो पूजनीय तथा अन्य मनुष्योंमें आसक्तिको हटाकर शान्तभावसे विचरण करता है तथा जो अध्यात्मविद्यामें परायण, निष्काम और लोभहीन रहकर एकाकी विचरता रहता है, वही सुखी और विद्वान् है।

जब मनुष्य सुखको दुःख और दुःखको सुख समझने लगता है, उस अवस्थामें बुद्धि, नीति अथवा पुरुषार्थसे भी उसकी रक्षा नहीं होती। अतः मनुष्यको ज्ञान-प्राप्तिके लिये सदा प्रयत्न करते रहना चाहिये; क्योंकि यत्न करनेवाला पुरुष कभी दुःखमें नहीं पड़ता। आत्मा सबसे बढ़कर प्रिय है, उसे जरा, मृत्यु और रोगसे बचाना चाहिये। शारीरिक और मानसिक रोग सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले वीर पुरुषके छोड़े हुए तीखे बाणोंकी तरह शरीरको पीड़ित करते हैं। तृष्णासे व्यथित, दुःखी एवं विवश होकर भी जीनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यका शरीर विनाशकी ओर ही खिंचता चला जाता है। जैसे नदियोंका प्रवाह आगेकी ओर ही बढ़ता जाता है, पीछेकी ओर नहीं लौटता, उसी प्रकार रात और दिन भी मनुष्योंकी आयुका अपहरण करते हुए बीतते चले जा रहे हैं। शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंका यह परिवर्तन देहधारी जीवोंको जरा-जीर्ण कर रहा है, वह एक क्षणके लिये भी विश्राम नहीं लेता। सूर्य स्वयं अजर हैं, किंतु प्रतिदिन उदय और अस्त होकर प्राणियोंके सुख और दुःखका नाश करते रहते हैं। ये रात्रियाँ कितनी ही अपूर्व तथा असम्भावित प्रिय-अप्रिय घटनाएँ लिये आती और चली जाती हैं। यदि जीवके किये हुए कर्मोंका फल पराधीन न होता तो वह जो चाहता, उसकी वही कामना पूरी हो जाती। बड़े-बड़े संयमी, चतुर और बुद्धिमान् मनुष्य भी अपने कर्मोंके फलसे वञ्चित होते देखे जाते हैं तथा गुणहीन, मूर्ख और नीच पुरुष भी किसीके आशीर्वादके बिना ही समस्त कामनाओंसे सम्पन्न दिखायी देते हैं। कोई-कोई मनुष्य तो सदा प्राणियोंकी हिंसामें ही लगा रहता और संसारको धोखा दिया करता है, फिर भी वह सुख ही भोगता है। कितने ही ऐसे हैं, जो कोई काम न करके चुपचाप बैठे रहते हैं, फिर भी उनके पास लक्ष्मी अपने-आप पहुँच जाती है और कुछ लोग काम करके भी मनचाही वस्तु नहीं पाते। यह सब पुरुषके प्रारब्धका दोष है। देखो, वीर्य अन्यत्र पैदा होता है और अन्यत्र जाकर संतान उत्पन्न करता है। कभी तो वह योनिमें पहुँचकर गर्भधारण करानेमें समर्थ होता है और कभी नहीं होता। कभी-कभी आमकी बौरके समान व्यर्थ ही झड़ जाता है। कितने ही लोग पुत्र-पौत्रकी इच्छा रखकर उसकी सिद्धिके लिये यत्न करते रहते हैं तो भी उनके संतान नहीं होती और बहुत-से मनुष्य संतानको क्रोधमें भरे हुए साँप समझकर सदा उससे डरते रहते हैं तो भी उनके यहाँ दीर्घजीवी पुत्र उत्पन्न हो जाता है। कितने ही गर्भ ऐसे हैं, जो पुत्राभिलाषी दीन स्त्री-पुरुषोंद्वारा देवताओंकी पूजा और तपस्या करके दस महीनेतक सुरक्षित रहनेके बाद भी पैदा होनेपर कुलाङ्गार निकल आते हैं तथा बहुत-से ऐसे हैं जो आमोद-प्रमोदमें ही जन्म धारण करके पिताके संचित किये हुए अपार धन-धान्य और विपुल भोगोंके अधिकारी होते हैं। कुछ गर्भ माताके पेटसे गिर जाते हैं, कुछ जन्म लेते हैं और कितने ही जन्म लेकर भी मर जाते हैं।

जैसे व्याध छोटे मृगोंको कष्ट पहुँचाते हैं, उसी प्रकार जब मनुष्योंको नाना प्रकारके रोग पीड़ित करते हैं तो उन्हें उठने-बैठनेकी भी शक्ति नहीं रह जाती। व्याधिके सताये हुए मनुष्य वैद्योंको बहुत-सा धन देते हैं और वैद्यलोग रोग दूर करनेकी बहुत चेष्टा करते हैं तो भी वे उनकी पीड़ा नहीं खींच पाते। बहुत-सी ओषधियोंका संग्रह करनेवाले चतुर-चालाक वैद्य भी व्याधोंके मारे हुए मृगोंकी भाँति रोगोंके शिकार हो जाते हैं। वे तरह-तरहके काढ़े और घृत पीते रहते हैं तो भी जैसे हाथी किसी पेड़को झुका देता है, वैसे ही वृद्धावस्था

उनकी कमर टेढ़ी कर देती है। इस पृथ्वीपर मृग, पक्षी, शिकारी जन्तु और दरिद्र मनुष्योंको जब रोग सताता है तो कौन उनकी चिकित्सा करने जाते हैं ? प्रायः उन्हें रोग होता ही नहीं। किंतु बड़े-बड़े पशु जैसे छोटे पशुओंपर आक्रमण करके उन्हें दबा देते हैं, उसी प्रकार प्रचण्ड तेजवाले दुर्धर्ष राजाओंको भी बहुत-से रोग घेरे रहते हैं। इस प्रकार सब लोग भवसागरके प्रबल प्रवाहमें बहते हुए मोह-शोकमें डूब रहे हैं। देहधारी मनुष्य धन, राज्य तथा कठोर तपस्याके प्रभावसे प्रकृतिका उल्लङ्घन नहीं कर सकते। यदि प्रयत्नका फल अपने हाथमें होता तो कोई भी मनुष्य न बूढ़ा होता, न मरता। सबकी सब कामनाएँ पूरी हो जातीं और किसीको अप्रिय नहीं देखना पड़ता। सब लोग संसारमें सर्वोपरि होना चाहते हैं और इसके लिये यथाशक्ति यत्न भी करते हैं; किंतु उसमें सफलता नहीं प्राप्त होती। प्रमाद-रहित, शूरवीर एवं पराक्रमी पुरुष भी ऐश्वर्य तथा मदिराके मदसे उन्मत्त मनुष्योंकी सेवा करते हैं। कितने ही लोगोंके क्लेश ध्यान दिये बिना ही निवृत्त हो जाते हैं तथा दूसरोंको अपना ही धन समयपर नहीं मिलता। कर्मोंके फलमें बड़ी भारी विषमता देखनेमें आती है। कुछ लोग पालकी ढोते हैं और दूसरे लोग उसी पालकीमें बैठकर चलते हैं। कितने ही मनुष्य स्त्रीके मर जानेपर एकाकी जीवन व्यतीत करते हैं और बहुतोंके पास अनेकों स्त्रियाँ रहती हैं। सभी प्राणी सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें रम रहे हैं, मनुष्य उनमेंसे एक-एकका अनुभव करते हैं अर्थात् किसीको सुखका अनुभव होता है और किसीको दुःखका। तुम इस बातको देखो, किंतु मोहमें न पड़ो। ऋषिश्रेष्ठ ! यह मैंने तुमसे गूढ़ बात बतलायी है।

नारदजीकी बात सुनकर परम बुद्धिमान् और धीरचित्त शुकदेवजीने मन-ही-मन बहुत विचार किया; किंतु सहसा वे किसी निश्चयपर न पहुँच सके। थोड़ी देर बाद उन्हें अपने धर्मकी कल्याणमयी गतिका निश्चय हो गया, फिर वे सोचने लगे—'मैं सब प्रकारकी उपाधियोंसे मुक्त होकर किस प्रकार उस उत्तम गतिको प्राप्त करूँ, जहाँसे फिर इस संसार-सागरमें लौटना न पड़े। जहाँ जानेपर जीवकी पुनरावृत्ति नहीं होती, मैं उसी परम भावको प्राप्त करना चाहता हूँ। सब प्रकारकी आसक्तियोंका परित्याग करके मैंने मनके द्वारा उत्तम गति पानेका निश्चय किया है। अब मैं वहीं जाऊँगा जहाँ मेरे आत्माको शान्ति मिलेगी तथा जहाँ मैं अक्षय, अविकारी और सनातनरूपसे स्थित रहूँगा; किंतु वह परमगति योगका सेवन किये बिना नहीं प्राप्त हो सकती। कर्मके द्वारा देहबन्धनसे छुटकारा मिलना असम्भव है, इसलिये अब मैं योगका आश्रय लेकर इस देह-गेहका परित्याग कर दूँगा और वायुरूपसे तेजोमय आदित्यमण्डलमें प्रवेश कर जाऊँगा। देवतालोग चन्द्रमाका अमृत पीकर जिस प्रकार उसे क्षीण कर देते हैं, उस प्रकार सूर्यदेवका क्षय नहीं होता। धूममार्गसे चन्द्रमण्डलमें गया हुआ जीव कर्मभोग समाप्त होनेपर कम्पायमान होकर फिर इस पृथ्वीपर गिर पड़ता है, इसी प्रकार नूतन कर्मफल भोगनेके लिये वह पुनः चन्द्रलोकमें जाता है। सारांश यह कि चन्द्रलोकमें जानेवालेको आवागमनसे छुटकारा नहीं मिलता। इसके सिवा चन्द्रमा सदा घटता-बढ़ता रहता है, उसकी ह्रास-वृद्धिका सिलसिला कभी नहीं टूटता। अतः इन सब बातोंका विचार करके मुझे चन्द्रलोकमें जानेकी इच्छा नहीं होती। परंतु सूर्यदेव अपनी प्रचण्ड किरणोंसे समस्त जगत्को संताप देते हैं। वे सबके तेजको स्वयं ग्रहण करते हैं (उनके तेजका कभी ह्रास नहीं होता); इसलिये उनका मण्डल सदा अक्षय बना रहता है। अतः उद्दीप्त तेजवाले आदित्यमण्डलमें जाना ही मुझे अच्छा जान पड़ता है, वहाँ मैं निर्भीक होकर रहूँगा, कोई मेरा पराभव नहीं कर सकेगा। इस शरीरको सूर्यलोकमें डालकर मैं ऋषियोंके साथ सूर्यदेवके अत्यन्त दुसह तेजमें प्रवेश कर जाऊँगा, इसके लिये मैं नग, नाग, पर्वत, पृथ्वी, दिशा, आकाश, देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, सर्प और राक्षसोंसे पूछकर उनकी आज्ञा लेना चाहता हूँ। आज मैं जगत्के सम्पूर्ण भूतोंमें प्रवेश करूँगा, समस्त देवता और ऋषि मेरी योगशक्तिका प्रभाव देखें।'

ऐसा निश्चय करके शुकदेवजीने विश्वविख्यात देवर्षि नारदजीसे आज्ञा माँगी। जब उनकी अनुमति मिल गयी तो वे अपने पिता महामुनि श्रीकृष्णद्वैपायनके पास आये और उन्होंने उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् उनसे सूर्यलोकको जानेके लिये आज्ञा माँगी और मोक्षका विचार करते हुए वे पिताको वहीं छोड़ सिद्धगणोंसे सेवित कैलासके शिखरपर चले गये।



शुकदेवकी ऊर्ध्वगतिका वर्णन तथा व्यासको महादेवजीका आश्वासन देना

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! व्यासपुत्र शुकदेवजी कैलास-शिखरपर पहुँचकर एकान्तमें समतल भूमिपर बैठ गये और शास्त्रोक्त विधिसे सम्पूर्ण शरीरमें आत्माकी धारणा करने लगे। थोड़ी ही देरमें जब सूर्योदय हुआ तो वे हाथ-पैर समेटकर विनीत-भावसे पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके बैठे और योगमें प्रवृत्त हो गये। वहाँ पक्षी नहीं थे और किसीका कोलाहल नहीं सुनायी पड़ता था। उस समय वे सब प्रकारके सङ्गोंसे रहित आत्माका साक्षात्कार करके खूब हँसे; फिर मोक्षमार्गकी उपलब्धिके लिये योगका आश्रय ले महान् योगेश्वर होकर उन्होंने आकाशमें उड़नेका विचार किया। तदनन्तर, देवर्षि नारदके पास जाकर उनकी प्रदक्षिणा की और उनसे अपने योगके सम्बन्धमें इस प्रकार निवेदन किया 'तपोधन ! अब मुझे मोक्षमार्गका दर्शन हो गया, आपका कल्याण हो, अब मैं वहाँ जानेको तैयार हूँ; आपकी कृपासे अभीष्ट गति प्राप्त करूँगा।'

नारदजीकी आज्ञा पाकर व्यासनन्दन शुकदेवजी उन्हें प्रणाम करके पुनः योगमें स्थित हुए और कैलास-शिखरसे उछलकर आकाशमें जा पहुँचे। फिर वायुका रूप धारण कर अन्तरिक्षमें विचरने लगे। उस समय शुकदेवजीका तेज सूर्य और अग्निके समान उद्दीप्त हो रहा था। वे निश्चयात्मक बुद्धिके द्वारा सम्पूर्ण त्रिलोकीको आत्मभावसे देखते हुए बहुत दूरतक आगे बढ़ गये। उन्हें निर्भय होकर शान्त और एकाग्रचित्तसे ऊपर जाते देख सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंने अपनी शक्ति और रीतिके अनुसार उनका पूजन किया। देवताओंने उनपर दिव्य फूलोंकी वर्षा की। तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध परम धर्मात्मा शुकदेवजी पूर्वदिशाकी ओर मुँह करके सूर्यको देखते हुए मौनभावसे आगे बढ़ रहे थे। थोड़ी ही देरमें वे मलय पर्वतपर जा पहुँचे, जहाँ उर्वशी और पूर्वचित्ति—ये दो अप्सराएँ सदा निवास करती हैं। ब्रह्मर्षि व्यासजीके पुत्र शुकदेवको इस प्रकार जाते देख उन दोनों अप्सराओंको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे आपसमें कहने लगीं—'अहो ! इस वेदाभ्यासी ब्राह्मणकी बुद्धिमें कितनी अद्भुत एकाग्रता है जो थोड़े ही समयमें पिताकी सेवासे उत्तम बुद्धि प्राप्तकर चन्द्रमाके समान आकाशमें विचर रहा है। यह बड़ा ही तपस्वी और पितृभक्त था। इसके पिता भी इसको बहुत प्यार करते थे, फिर भी उन्होंने इसे जानेकी आज्ञा कैसे दे दी ?' उर्वशीकी बात सुनकर शुकदेवजीने अन्तरिक्ष, पृथ्वी, पर्वत, वन, सरोवर तथा सरिताओंपर दृष्टि डाली। उस समय इन सबकी अधिष्ठात्री देवियोंने हाथ ज़ोड़कर बड़े आदरके साथ उनकी ओर देखा, तब शुकदेवजीने उन सबसे कहा—'देवियो ! यदि मेरे पिताजी मेरा नाम लेकर पुकारते हुए इधर आ निकलें तो आपलोग सावधानीके साथ उत्तर देना। मुझपर आपलोगोंका स्नेह है, इसलिये मेरी इतनी-सी बात मान लेना।' उनका कथन सुनकर समुद्र, नदी, पर्वत और वनसहित सम्पूर्ण दिशाओंकी अधिष्ठात्री देवियोंने सब ओरसे उत्तर दिया—'बहुत अच्छा, आप जो आज्ञा देते हैं, वैसा ही होगा।'

यह कहकर महातपस्वी शुकदेवजी सिद्धि पानेके उद्देश्यसे आगे बढ़ गये। उन्होंने चार प्रकारके दोषोंका, आठ प्रकारके तमोगुणका तथा पाँच प्रकारके रजोगुणका परित्याग करके सत्त्वगुणको भी त्याग दिया। यह एक अद्भुत बात हुई। तत्पश्चात् वे नित्य, निर्गुण एवं लिङ्गरहित ब्रह्मपदमें स्थित हो गये। उस समय उनका तेज धूमहीन अग्निकी भाँति देदीप्यमान हो रहा था। इन्द्रने सरस और सुगन्धित जलकी वर्षा की और दिव्य गन्ध फैलाती हुई परम पवित्र वायु चलने लगी। आगे बढ़नेपर श्रीशुकदेवजीने पर्वतके दो दिव्य शिखर देखे, जिनमें एक हिमालयका और दूसरा मेरुपर्वतका था। हिमालयका शिखर रजतमय होनेके कारण श्वेत दिखायी देता था और सुमेरुका स्वर्णमय शृङ्ग पीले रङ्गका था। इन दोनोंकी लंबाई-चौड़ाई सौ-सौ योजनकी थी। उत्तर दिशाकी ओर जाते समय ये दोनों शिखर जब शुकदेवजीकी दृष्टिमें पड़े तो वे निर्भीक होकर उनके ऊपर चढ़ गये। वह महान् पर्वत उनकी गतिको रोक न सका, उसके दो टुकड़े हो गये और शुकदेवजी आगे बढ़ गये। यह देख उस पर्वतपर रहनेवाले सम्पूर्ण देवताओं, गन्धर्वों और ऋषियोंने बड़े जोरसे हर्षनाद किया। उनकी हर्षध्वनि आकाशमें चारों ओर गूँज उठी तथा वहाँ सब ओर शुकदेवजीके प्रति साधुवादके शब्द सुनायी पड़ने लगे। उस समय देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और विद्याधरोंने उनका पूजन किया। उनके चढ़ाये हुए दिव्य पुष्पोंकी वर्षासे वहाँका सारा आकाश छा गया। तदनन्तर, ऊर्ध्वलोकमें जाते हुए शुकदेवजीने आकाशगङ्गाका दर्शन किया।

इस प्रकार उन्हें सिद्धिके लिये उत्क्रमण करते जान उनके पिता वेदव्यासजी भी स्नेहवश उत्तम गतिका आश्रय ले उनके पीछे-पीछे आने लगे। पलक मारते-मारते वे उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँसे पर्वतको गिराकर शुकदेवजी आगे बढ़े थे।

वहाँ उन्होंने पर्वतके दो टुकड़े देखे। उस समय वहाँ रहनेवाले ऋषियोंने आकर व्यासजीसे उनके पुत्रका वह अलौकिक कर्म कह सुनाया। तब व्यासजीने शुकदेवका नाम लेकर बड़े जोरसे क्रन्दन किया। उनकी आवाजसे तीनों लोक गूँज उठे। पिताकी पुकार सुनकर सबके आत्मरूप शुकदेवजीने सर्वव्यापक स्वरूपसे 'भोः' इस एकाक्षर शब्दका उच्चारण करके उत्तर दिया। उस समय समस्त चराचर जगत्ने उस ध्वनिका उच्चारण किया। तभीसे आजतक पर्वतोंके शिखरपर अथवा गुफाओंके पास जब-जब आवाज दी जाती है, तब-तब वहाँसे शुकदेवजीके शब्दमें ही प्रतिध्वनि निकलती है। इस प्रकार अपना प्रभाव दिखाकर शुकदेवजी अन्तर्धान हो गये और शब्द आदि गुणोंका त्याग करके परम पदको प्राप्त हुए।

अपने अमित तेजस्वी पुत्रकी यह महिमा देखकर व्यासजी उसीका चिन्तन करते हुए पर्वतके शिखरपर बैठ गये। इतनेमें देवता और गन्धर्वोंसे घिरे हुए तथा महर्षियोंसे पूजित पिनाकधारी भगवान् शंकर वहाँ आ पहुँचे और पुत्रशोकसे संतप्त वेदव्यासजीको सान्त्वना देते हुए कहने लगे—'ब्रह्मर्षे! तुमने पहले अग्नि, भूमि, जल, वायु और आकाशके समान शक्तिशाली पुत्र होनेका मुझसे वरदान माँगा था, अतः तुम्हारी तपस्याके प्रभाव तथा मेरी कृपासे तुम्हें वैसा ही पुत्र प्राप्त हुआ। वह ब्रह्मतेजसे सम्पन्न और परम पवित्र था। इस समय उसने ऐसी उत्तम गति प्राप्त की है, जो अजितेन्द्रिय पुरुषों तथा देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। फिर भी तुम उसके लिये क्यों शोक कर रहे हो? जबतक इस संसारमें पर्वत और समुद्रोंकी सत्ता रहेगी तबतक तुम्हारी और तुम्हारे पुत्रकी अक्षय कीर्ति यहाँ बनी रहेगी तथा मेरी कृपासे इस जगत्में सर्वदा तुम्हें अपने पुत्रकी छाया दिखायी देगी।'

भगवान् शंकरके इस प्रकार आश्वासन देनेपर मुनिवर व्यासजी सर्वत्र अपने पुत्रकी छाया देखते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने आश्रमपर लौट आये। युधिष्ठिर! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने शुकदेवजीके जन्म और परमपद-प्राप्तिकी कथा विस्तारसे सुनायी है। सबसे पहले देवर्षि नारदजीने मुझे यह वृत्तान्त सुनाया था। महायोगी व्यासजी तो बातचीतके प्रसंगमें पद-पदपर इस कथाको दुहराया करते हैं। जो पुरुष मोक्षधर्मसे युक्त इस परम पवित्र इतिहासको धारण करेगा, वह शान्तिपरायण होकर परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होगा।



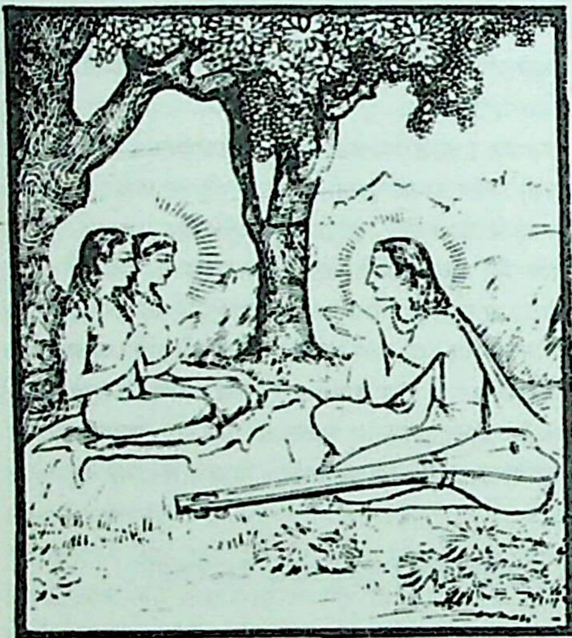
बदरिकाश्रममें भगवान् नारायणके द्वारा नारदजीकी शङ्काका समाधान

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी जो भी सिद्धि पाना चाहता हो उसे किस देवताका पूजन करना चाहिये? देवयज्ञ अथवा पितृयज्ञकी क्या विधि है? मुक्त पुरुष किस गतिको प्राप्त होता है? मोक्षका क्या स्वरूप है? देवताओंका भी देवता और पितरोंका भी पिता कौन है? अथवा उससे भी श्रेष्ठ तत्त्व क्या है? इन सब बातोंको मुझे बताइये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! तुमने बड़ा गूढ़ प्रश्न किया है, इसका उत्तर समझनेमें कठिन है फिर भी तुम्हें तो बतलाना ही है। इस विषयमें जानकार लोग देवर्षि नारद और नारायण ऋषिके संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। मेरे पिताजीने मुझे बताया था कि भगवान् नारायण सम्पूर्ण जगत्के आत्मा, चतुर्मूर्ति और सनातन देवता हैं, वे ही धर्मके पुत्ररूपमें प्रकट हुए थे। स्वायम्भुव मन्वन्तरके सत्ययुगमें उनके चार स्वयम्भुव अवतार हुए थे, जिनके नाम हैं—नर, नारायण, हरि और कृष्ण। उनमेंसे अविनाशी नर और नारायण बदरिकाश्रममें जाकर घोर तपस्या करने लगे। तप करते-करते वे दोनों बहुत दुर्बल हो गये, उनके शरीरकी नसें दिखायी देने लगीं। तपस्यासे उनका तेज इतना बढ़ गया कि देवताओंको भी उनकी ओर देखना कठिन हो गया। जिसपर उनकी कृपा होती थी, वही उन्हें देख सकता था। एक समय शीघ्रगामी नारदजी घूमते-घूमते बदरिकाश्रममें जा पहुँचे। वहाँ जब नर और नारायणके नित्यकर्मका समय हुआ तो नारदजीके मनमें उन्हें देखनेके लिये बड़ा कौतूहल हुआ। वे सोचने लगे—'अहो! यह उन्हीं भगवान्का स्थान है, जिनके भीतर देवता, असुर, गन्धर्व, किन्नर और नागोंसहित सम्पूर्ण लोक निवास करते हैं। पहले ये एक ही रूपमें विद्यमान थे, फिर धर्मके वंशमें चार स्वरूप धारण करके प्रकट हुए। इन्होंने अपने धर्माचरणसे धर्मको बढ़ाया और अनुगृहीत किया है। पहले किसी कारणवश हरि और कृष्ण यहाँ रहकर तपस्या करते थे, अब धर्माचरणमें बढ़े-चढ़े हुए ये नर और नारायण तपमें प्रवृत्त हुए हैं, ये ही दोनों परम धाम हैं, ये सम्पूर्ण प्राणियोंके पिता, देवता और परम यशस्वी हैं। भला ये दोनों यहाँ किस दूसरे देवता या पितरकी पूजा कर रहे हैं?'

इस प्रकार मन-ही-मन भक्तिपूर्वक सोच-विचारकर

नारदजी सहसा उन दोनों देवताओंके पास उपस्थित हुए। भगवान् नर और नारायण जब देवता और पितरोंकी पूजा समाप्त कर चुके तो उन्होंने नारदजीको देखा और उनकी शास्त्रीय विधिसे पूजा की। उनका यह आश्चर्यजनक बर्ताव देखकर नारदजीने उन्हें नमस्कार किया और इस प्रकार कहा—'भगवन्! अङ्ग-उपाङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदों और



पुराणोंमें आपकी ही महिमाका गान किया जाता है। आप अजन्मा सनातन माता-पिता और सर्वोत्तम अमृतरूप हैं। आपहीमें भूत, भविष्य और वर्तमानकालीन सम्पूर्ण जगत् प्रतिष्ठित हैं। चारों आश्रमोंके लोग आपहीकी पूजा करते हैं, आप ही जगत्के माता, पिता और सनातन गुरु हैं, फिर भी आप जिस देवता या पितरकी पूजा करते हैं, वह कौन है—यह हमारी समझमें नहीं आता (अतः यह रहस्य बतानेकी कृपा करें)।'

श्रीभगवान् नारायणने कहा—देवर्षे! तुमने जिसके विषयमें प्रश्न किया है, वह अपने लिये गोपनीय विषय है। यद्यपि इस सनातन रहस्यको प्रकट करना उचित नहीं है तो भी तुम्हारी भक्ति देखकर तुमसे इस विषयका यथार्थ वर्णन करूँगा। जो सूक्ष्म, अज्ञेय, अव्यक्त, अचल और ध्रुव है, जो इन्द्रियों, विषयों और सम्पूर्ण भूतोंसे परे है तथा विद्वानोंने जिसे सम्पूर्ण प्राणियोंका अन्तरात्मा, क्षेत्रज्ञ, त्रिगुणातीत तथा अन्तर्यामी बतलाया है, उस परमात्मासे ही त्रिगुणमय अव्यक्तकी उत्पत्ति हुई है, जिसे प्रकृति कहते हैं। वह सत्-असत्स्वरूप परमात्मा ही हम दोनोंकी उत्पत्तिका कारण है। हम दोनों उसीकी पूजा करते और उसीको देवता तथा पितर मानते हैं। उससे बढ़कर दूसरा कोई देवता या पिता नहीं है। वही हमलोगोंका आत्मा है, इसीलिये हम उसकी पूजा करते हैं। ब्रह्मन्! उसीने लोकको उन्नतिके पथपर ले जानेवाली धर्ममर्यादा स्थापित की है। देवता और पितरोंकी पूजा करनी चाहिये, यह उसीकी आज्ञा है। ब्रह्मा, रुद्र, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, यम, मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्रमा, कर्दम, क्रोध और विक्रीत—ये प्रजापति उसी परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं और उसीकी बनायी हुई सनातन मर्यादाका पालन करते हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मण उसीके उद्देश्यसे किये जानेवाले देवता तथा पितृ-सम्बन्धी कर्मोंको ठीक-ठीक जानकर अपनी अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त करते हैं। स्वर्गमें रहनेवाले प्राणियोंमेंसे जो कोई उस परमात्माको प्रणाम करते हैं, वे उसकी कृपासे उत्तम गति प्राप्त करते हैं।

जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण तथा मन और बुद्धिरूप सत्रह गुणोंसे, सब कर्मोंसे तथा पंद्रह कलाओंसे अपनेको पृथक् समझते हैं, वे ही मुक्त हैं; यह शास्त्रका सिद्धान्त है। मुक्त पुरुषोंकी गति परमात्मा है, जिसे शास्त्रोंमें क्षेत्रज्ञ कहा है। वह परमात्मा सर्वगुणसम्पन्न तथा निर्गुण भी कहलाता है। ज्ञानयोगके द्वारा उसका साक्षात्कार होता है। हम दोनोंका प्रादुर्भाव उसीसे हुआ है, ऐसा जानकर हम उस सनातन परमात्माकी पूजा करते हैं। चारों वेद, चारों आश्रम तथा नाना प्रकारके मतोंका आश्रय लेनेवाले लोग भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करते हैं और वह इन सबको उत्तम गति प्रदान करता है। जो सदा उसका स्मरण करते तथा अनन्य भावसे उसकी शरण लेते हैं, उन्हें सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि वे उसके स्वरूपमें प्रवेश कर जाते हैं। नारद! तुम्हारी भक्ति और प्रेमके कारण हमने तुम्हारे सामने इस परम गोपनीय विषयका वर्णन किया है।



नारदजीका श्वेतद्वीपमें जाना तथा भीष्मका युधिष्ठिरसे उपरिचरके चरित्रवर्णनके प्रसंगमें तन्त्रशास्त्रकी उत्पत्ति बतलाना

भीष्मजी कहते हैं—पुरुषोत्तम नारायणने जब नारदजीसे इस प्रकार कहा तो वे उनसे बोले—'भगवन्! अब आप अपने अवतार-धारणके उद्देश्यकी पूर्ति कीजिये, अब मैं (श्वेतद्वीपमें स्थित) आपके आदि विग्रहका दर्शन करने जाता हूँ। लोकनाथ! मैंने वेदोंका स्वाध्याय और तप किया है, कभी असत्य भाषण नहीं किया है, मैं सदा गुरुजनोंका आदर करता हूँ, किसीकी गुप्त बात दूसरोंपर प्रकट नहीं करता, शत्रु और मित्रमें मेरा समानभाव है तथा आदिदेव परमात्माकी शरण लेकर सदा अनन्यभावसे उनका भजन करता हूँ। इन सब कारणोंसे मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, ऐसी दशामें मैं उन अनन्त परमेश्वरके दर्शनसे कैसे वञ्चित रह सकता हूँ?'

नारदजीकी बात सुनकर सनातन धर्मके रक्षक भगवान् नारायणने उनकी विधिवत् पूजा की और उन्हें जानेकी आज्ञा दे दी। आज्ञा पाकर नारदजी भी उन पुरातन ऋषिकी पूजा करके योगयुक्त हो आकाशकी ओर उड़े और सहसा मेरुपर्वतपर पहुँचकर अदृश्य हो गये। मेरुके शिखरपर एकान्त स्थानमें क्षणभर विश्राम करनेके पश्चात् जब उन्होंने उत्तर-पश्चिमकी ओर दृष्टि डाली तो उन्हें एक अद्भुत दृश्य दिखायी दिया। क्षीरसागरके उत्तर भागमें जो श्वेतनामसे प्रसिद्ध विशाल द्वीप है, वह उनके सामने प्रकट हो गया। उस द्वीपमें सब प्रकारके पापोंसे रहित श्वेतवर्णवाले पुरुष निवास करते हैं। वे प्राकृतिक इन्द्रियोंसे शून्य होनेके कारण शब्द आदि विषयोंका उपभोग नहीं करते, उनके शरीरसे किसी प्रकारकी चेष्टा नहीं होती और सदा सुगन्ध निकलती रहती है। उनकी ओर देखनेसे पापी मनुष्योंकी आँखें चौंधिया जाती हैं, उनके शरीर तथा हड्डियाँ वज्रके समान दृढ़ होती हैं, वे मान और अपमानको समान समझते हैं, उनका रूप दिव्य होता है, वे स्वभावतः योगशक्तिसे सम्पन्न होते हैं, उनके मस्तकका आकार छत्रके समान और स्वर मेघके समान गम्भीर होता है। उनके मुँहमें साठ सफेद दाँत और आठ दाढ़ें होती हैं। जिनसे सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति हुई है और जिन्होंने वेद, धर्म, शान्तवृत्तिसे रहनेवाले मुनि तथा सम्पूर्ण देवताओंकी सृष्टि की है, उन परमेश्वरको श्वेत-द्वीपके निवासी भक्तिपूर्वक अपने हृदयमें धारण करते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! श्वेतद्वीपमें रहनेवाले पुरुष इन्द्रिय, आहार तथा चेष्टासे रहित क्यों होते हैं? उनके शरीरसे सुन्दर गन्ध क्यों निकलती है? उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है तथा वे किस उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं? इस लोकसे मुक्त होनेवाले पुरुषोंका शास्त्रोंमें जो लक्षण बताया गया है, वैसा ही आपने श्वेतद्वीपके निवासियोंका भी बताया है, इन दोनोंमें यह समानता क्यों है? इसे जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है।

भीष्मजीने कहा—राजन्! यह कथा बहुत विस्तृत है, इसे मैंने अपने पिताजीके मुँहसे सुना था; किंतु इस समय मैं तुम्हें इसका सारांशमात्र बतला रहा हूँ। पूर्वकालमें इस पृथ्वीपर एक उपरिचर नामक राजा राज्य करते थे, वे इन्द्रके मित्र और भगवान् नारायणके प्रसिद्ध भक्त थे। सदा धर्माचरण करते और अपने पितामें भक्ति रखते थे, आलस्य तो उन्हें छू भी नहीं गया था। नारायणके वरसे ही उन्होंने इस भूमण्डलका साम्राज्य प्राप्त किया था। सूर्यके द्वारा उपदिष्ट वैष्णवशास्त्रोक्त विधिसे पहले वे भगवान् नारायणका पूजन करते, फिर उनकी पूजासे बची हुई सामग्रीके द्वारा पितरों और ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे। अपने आश्रयमें रहनेवाले लोगोंको अन्न बाँटकर सबसे पीछे वे स्वयं भोजन करते थे, सदा सत्य बोलते और प्राणियोंकी हिंसासे दूर रहते थे। देवदेव जनार्दनमें वे सम्पूर्ण चित्तसे भक्ति करते थे, इससे प्रसन्न होकर देवराज इन्द्र उन्हें अपने साथ एक शय्या और एक सिंहासनपर बिठाया करते थे। राजा उपरिचर अपने राज्य, धन, स्त्री और वाहन आदि सब उपकरणोंको भगवान्‌की कृपासे प्राप्त समझकर सब उन्हींको समर्पण किये रहते थे तथा सदा सावधान रहकर सकाम और नैमित्तिक यज्ञोंकी सम्पूर्ण क्रियाएँ वैष्णवशास्त्रोक्त विधिसे सम्पन्न किया करते थे। उन महात्मा राजाके यहाँ पाञ्चरात्र आगमके मुख्य-मुख्य विद्वान् सदा मौजूद रहते थे। भगवान्‌को अर्पण किया हुआ प्रसाद सबसे पहले उन्हें ही भोजन कराया जाता था। राजाने धर्मपूर्वक ही राज्यका शासन किया, कभी असत्यका आश्रय नहीं लिया, उनके मनमें कभी बुरा विचार नहीं उठा और अपने शरीरसे उन्होंने कभी छोटे-से-छोटा पाप भी नहीं किया था।

(अब मैं जिस प्रकार तन्त्रशास्त्रकी उत्पत्ति हुई है, उसे बताता हूँ, सुनो—) मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और महातेजस्वी वसिष्ठ—ये सात प्रसिद्ध ऋषि चित्रशिखण्डी कहलाते हैं। इन्होंने मेरुगिरिपर एकमत होकर एक उत्तम शास्त्रका निर्माण किया, जो चारों वेदोंके

सिद्धान्तके अनुकूल था। सात ऋषियोंके मुखसे निकले हुए उस शास्त्रमें उत्तम लोकधर्मकी व्याख्या की गयी है। उपर्युक्त ऋषि एकाग्रचित्त, जितेन्द्रिय, संयमपरायण, भूत, भविष्य और वर्तमानके ज्ञाता तथा सत्यधर्ममें तत्पर रहनेवाले हैं। उन्होंने मन-ही-मन यह सोचकर कि अमुक साधनसे संसारका कल्याण होगा, ऐसा करनेसे परमात्माकी प्राप्ति होगी तथा अमुक उपायसे जगत्का अत्यन्त हित होगा, उक्त शास्त्रकी रचना की। उसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका वर्णन है तथा नाना प्रकारकी मर्यादाओं और स्वर्ग एवं मर्त्यलोककी स्थितिका भी वर्णन किया गया है। उपर्युक्त ऋषियोंने एक हजार दिव्य वर्षतक तपस्या करके भगवान् नारायणकी आराधना की थी, उससे प्रसन्न होकर भगवान्ने सरस्वतीदेवीको उनके पास भेजा। नारायणकी आज्ञासे सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये सरस्वतीदेवीने उन ऋषियोंके भीतर प्रवेश किया, तब उन तपस्वी ब्राह्मणोंने यथार्थ रूपसे शब्द, अर्थ और हेतुयुक्त वाणीका प्रयोग किया। उनकी यह प्रथम रचना ही ॐकार तथा स्वरसे विभूषित तन्त्रशास्त्र है। ऋषियोंने सबसे पहले करुणामय भगवान्को ही वह शास्त्र सुनाया, उसे सुनकर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए और उनसे अदृश्य रहकर ही बोले—'मुनिवरो ! तुमलोगोंने एक लाख श्लोकोंका यह उत्तम शास्त्र बनाया है, इससे सम्पूर्ण लोकधर्मका प्रचार होगा। प्रवृत्ति और निवृत्तिके विषयमें यह ऋक्, साम, यजु और अथर्ववेदके समान प्रमाण माना जायगा। ब्रह्मा, महादेवजी, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, पृथ्वी, जल, अग्नि, नक्षत्र तथा अन्यान्य भूत नामधारी पदार्थ और ब्रह्मवादी ऋषिगण जैसे अपने-अपने अधिकारके अनुसार बर्ताव करते हुए प्रमाणभूत माने जाते हैं, उसी प्रकार तुमलोगोंका बनाया हुआ यह उत्तम शास्त्र भी प्रामाणिक माना जायगा, यह मेरी आज्ञा है। स्वायम्भुव मनु इसीके अनुसार धर्मका उपदेश करेंगे। जब शुक्राचार्य और बृहस्पतिका जन्म होगा तो वे दोनों भी तुम्हारी बुद्धिसे प्रकट हुए इस शास्त्रका प्रवचन करेंगे। स्वायम्भुव मनु, शुक्राचार्य और बृहस्पतिके शास्त्रोंका जब लोकमें अच्छी तरह प्रचार हो जायगा तो प्रजापालक वसु (राजा उपरिचर) बृहस्पतिजीसे इस शास्त्रका अध्ययन करेगा। सत्पुरुषोंद्वारा सम्मानित वह राजा मेरा बड़ा भक्त होगा और उसी शास्त्रके अनुसार सम्पूर्ण कार्योंका सम्पादन करेगा। तुम्हारा बनाया हुआ यह शास्त्र सब शास्त्रोंसे श्रेष्ठ माना जायगा, इसमें धर्म, अर्थ और उत्तम रहस्योंकी व्याख्या की गयी है। इसके प्रचारसे तुम्हारी प्रजाकी वृद्धि होगी तथा राजा उपरिचर भी राजलक्ष्मीसे सम्पन्न एवं महापुरुष होगा; किंतु उसकी मृत्युके बाद यह शास्त्र संसारसे लुप्त हो जायगा। इस प्रकार इस शास्त्रके सम्बन्धमें सारी बातें मैंने तुमलोगोंको बता दीं।'

इतना कहकर भगवान् ऋषियोंको छोड़कर स्वयं किसी अज्ञात दिशाको चले गये। तत्पश्चात् सब लोगोंका हित चाहनेवाले उन ऋषियोंने धर्मके मूलभूत उस सनातन शास्त्रका जगत्में प्रचार किया, फिर आदि कल्पके प्रारम्भिक युगमें जब बृहस्पतिका प्रादुर्भाव हुआ तो उन्होंने साङ्गोपाङ्ग वेद और उपनिषदोंसहित वह शास्त्र उन्हें पढ़ाया। तदनन्तर धर्मका प्रचार और लोकोंको धर्म-मर्यादाके भीतर स्थापित करनेवाले वे ऋषिगण तपस्याका निश्चय करके अपने अभीष्ट स्थानको चले गये।



राजा उपरिचरके यज्ञमें एकत आदि मुनियोंका बृहस्पतिसे श्वेतद्वीप एवं भगवान्की महिमाका वर्णन

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! बृहत्, ब्रह्म और महत्—ये तीनों शब्द एक अर्थके वाचक हैं। बृहस्पतिजीमें इन तीनों शब्दोंके गुण मौजूद थे, इसीलिये वे बृहस्पति कहलाते थे। राजा उपरिचर उन्हींके शिष्य हुए और उन्होंने उनसे चित्रशिखण्डियोंके बनाये हुए तन्त्रशास्त्रका विधिवत् अध्ययन किया। इसके बाद वे पृथ्वीका पालन करने लगे। एक बार राजाने महान् अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया। उसमें बृहस्पतिजी होता हुए और प्रजापतिके तीन पुत्र महर्षि एकत, द्वित और त्रित तथा धनुष, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, मेधातिथि, ताण्डय, शान्ति, वेदशिरा, शालिहोत्रके पिता कपिल, आदि कठ, वैशम्पायनके बड़े भाई तैत्तिरि, कण्व और देवहोत्र—ये सोलह ऋषि सदस्य बने। उस महायज्ञमें सब प्रकारकी सामग्री एकत्र की गयी थी। राजा उपरिचर पवित्र, उदार तथा निष्कामभावसे कर्ममें प्रवृत्त हुए थे। जंगलमें उत्पन्न हुए पदार्थोंसे ही उस यज्ञमें देवताओंके भाग कल्पित किये गये थे। उस समय पुराणपुरुष भगवान् नारायणने प्रसन्न होकर राजाको प्रत्यक्ष दर्शन दिया; किंतु दूसरा कोई उन्हें देख न सका। भगवान्ने स्वयं अलक्षित

रहकर अपने लिये अर्पित पुरोडाशको ग्रहण किया और उसे सूँघकर अपने अधीन कर लिया, इससे बृहस्पतिको बड़ा क्रोध हुआ। वे राजा उपरिचरसे बोले—'राजन्! मैंने जो भाग समर्पण किया है, उसे देवताको मेरे सामने प्रत्यक्ष प्रकट होकर ग्रहण करना चाहिये (इस तरह छिपकर उठा लेना अच्छा नहीं)।'

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! जब सभी देवताओंने प्रत्यक्ष दर्शन देकर अपने-अपने भाग ग्रहण किये तो भगवान् विष्णुने ऐसा क्यों नहीं किया ?

भीष्मजी कहते हैं—बेटा! जब बृहस्पतिजी क्रोधमें भर गये तो राजा उपरिचर और उनके सम्पूर्ण सदस्य उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगे। वे शान्तभावसे बोले—'ब्रह्मन्! आपको क्रोध नहीं करना चाहिये। आपने जिनको यह भाग अर्पण किया है, वे भगवान् कभी क्रोध नहीं करते, उन्हें हमलोग या आप स्वेच्छासे नहीं देख सकते। जिसपर वे कृपा करते हैं, वही उनका दर्शन पा सकता है।' इसके बाद एकत, द्वित, त्रित तथा चित्रशिखण्डी नामवाले ऋषियोंने कहा—'बृहस्पते! हमलोग ब्रह्माजीके मानस पुत्र कहलाते हैं। एक बार अपने कल्याणकी इच्छासे हम सबने उत्तर दिशाकी यात्रा की, वहाँ मेरुके उत्तर और क्षीरसागरके किनारे एक पवित्र स्थान है, जहाँ हमलोगोंने हजार वर्षोंतक काठकी भाँति एक पैरसे खड़े होकर एकाग्र-चित्तसे कठोर तपस्या की थी। हमारे मनमें एकमात्र यही संकल्प था कि 'हमें सनातन देवता भगवान् नरायणका दर्शन किसी तरह प्राप्त हो जाय।' जब हमारा व्रत समाप्त हुआ और हमलोग अवभृथ-स्नान कर चुके, उस समय बड़े गम्भीर स्वरमें आकाशवाणी हुई—'विप्रवरो! तुमलोगोंने प्रसन्नचित्तसे भलीभाँति तप किया है, तुम भगवान्‌के भक्त हो और यह जानना चाहते हो कि उन सर्वव्यापक परमात्माका दर्शन कैसे हो ? इसका उपाय सुनो—'क्षीरसमुद्रके उत्तर भागमें अत्यन्त प्रकाशमान श्वेतद्वीप है। वहाँ भगवान् नारायणका भजन करनेवाले पुरुष रहते हैं, जो चन्द्रमाके समान कान्तिमान् होते हैं। वे स्थूल इन्द्रियोंसे रहित, निराहार और निश्चेष्ट होते हैं, उनके शरीरसे मनोहर गन्ध निकलती रहती है तथा वे भगवान्‌के अनन्य भक्त होते हैं। तुमलोग उस श्वेतद्वीपमें ही चले जाओ, वहाँ भगवान् प्रत्यक्षरूपसे दर्शन देते हैं।'

'इस आकाशवाणीको सुनकर हमलोग उसके बताये हुए मार्गसे श्वेत नामक महाद्वीपमें पहुँचे। उस समय हमारा चित्त भगवान्‌में ही लगा था, हम उनके दर्शनकी इच्छासे उत्कण्ठित हो रहे थे। श्वेतद्वीपमें प्रवेश करते ही हमारी आँखोंने जवाब दे दिया। वहाँके निवासियोंके सामने हमारी दृष्टि ठहर नहीं पाती थी, इसलिये हम वहाँ किसी पुरुषको नहीं देख सके। तदनन्तर, दैवयोगसे हमारे हृदयमें यह बात स्फुरित हुई कि 'तपस्या किये बिना हमलोग यहाँ भगवान्‌को सुगमतापूर्वक नहीं देख सकते', यह विचार आते ही हमने फिर सौ वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। उसके पूर्ण होनेपर हमें वहाँ रहनेवाले पुरुषोंके दर्शन हुए, जो चन्द्रमाके समान गौर और सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थे। वे प्रतिदिन ईशानकोणकी ओर मुँह करके हाथ जोड़े ब्रह्मका मानस जप करते थे। उनकी इस एकाग्रतासे भगवान्‌को बड़ी प्रसन्नता होती थी। प्रलयकालमें सूर्यकी जैसी प्रभा होती है, वैसी ही उस द्वीपमें रहनेवाले प्रत्येक पुरुषकी थी। उस समय हमें तो ऐसा जान पड़ा कि यह द्वीप तेजका ही निवासस्थान है। वहाँ कोई किसीसे बढ़कर नहीं था, सबका तेज समान था। थोड़ी देरमें हमारे सामने एक ही साथ हजारों सूर्योंके समान प्रभा प्रकट हुई, हमारी दृष्टि सहसा उस ओर खिंच गयी। हमने देखा वहाँके सभी पुरुष प्रसन्नताके साथ हाथ जोड़े 'नमो नमः' कहते हुए शीघ्रतापूर्वक उस तेजकी ओर दौड़ रहे हैं। इसके बाद जब वे स्तुति करने लगे तो उनकी तुमुल ध्वनि हमारे कानोंमें पड़ी। सब लोग उस तेजस्वी पुरुषको पूजाकी सामग्री अर्पण कर रहे थे। उस तेजके सामने हमारी नेत्रशक्ति और इन्द्रियाँ काम नहीं दे पाती थीं, इसलिये हम स्पष्टरूपसे कुछ देख न सके। परंतु स्तुतिकी जो ऊँची ध्वनि हो रही थी, वह हमें स्पष्ट सुनायी पड़ी। सब लोग कह रहे थे—'पुण्डरीकाक्ष! आपकी जय हो। विश्वभावन! आपको प्रणाम हो। महापुरुषोंके भी पूर्वज हृषीकेश! आपको नमस्कार है।'

'इतनेहीमें पवित्र और सुगन्धित वायु बहुत-से दिव्य पुष्प और ओषधियाँ ले आयी, जिनसे वहाँके अनन्य भक्तोंने बड़ी भक्तिके साथ उस तेजस्वी पुरुषकी पूजा की। उनकी बातचीतसे हमें विश्वास हो गया कि अवश्य ही यहाँ भगवान् प्रकट हुए हैं; किंतु हम उनके दर्शनमें सफल न हो सके। उस समय हमसे किसी शरीररहित देवताने कहा—'मुनिवरो! तुमलोगोंने श्वेतद्वीपवासी इन्द्रियरहित पुरुषोंका दर्शन किया है, इनका दर्शन भगवान्‌के ही दर्शनके समान है। अब तुमलोग जहाँसे आये हो वहीं लौट जाओ, देर करनेकी आवश्यकता नहीं है। भगवान्‌में अनन्य भक्ति हुए बिना किसीको उनका साक्षात् दर्शन होना असम्भव है। हाँ, बहुत समयतक उनकी भक्ति करते-करते जब पूरी अनन्यता आ जायगी तो तुम इच्छानुसार उनका दर्शन कर सकते हो। इस समय तुम्हें अभी बहुत बड़ा काम करना है। इस सत्ययुगके बीतनेपर जब वैवस्वत मन्वन्तरके त्रेतायुगका आरम्भ होगा,

उस समय देवताओंकी कार्य-सिद्धिके लिये तुम उनकी सहायता करोगे।' यह अमृतके समान मधुर तथा अद्भुत वचन सुनकर हमलोग भगवान्‌की कृपासे अपने अभीष्ट स्थानपर आ पहुँचे। बृहस्पते! इस प्रकार हमने बड़ी भारी तपस्या की, हव्य-कव्योंके द्वारा भगवान्‌का पूजन भी किया तो भी हमें उनका दर्शन न मिल सका; फिर तुम कैसे अपनेको उनके दर्शनका अधिकारी मानते हो? भगवान् नारायण सबसे महान् देवता हैं, एकमात्र वे ही हव्य-कव्यके भोक्ता और संसारकी रचना करनेवाले हैं, उनका आदि और अन्त नहीं है, उन अव्यक्त परमेश्वरकी देवता और दानव भी पूजा करते हैं।'

इस प्रकार एकत, द्वित तथा त्रित आदि सदस्योंके समझानेपर उदारबुद्धिवाले बृहस्पतिजीने उस यज्ञको समाप्त करके भगवान्‌का पूजन किया। यज्ञ समाप्त होनेपर राजा उपरिचर भी पूर्ववत् अपनी प्रजाका पालन करने लगे।



नारदजीका अनेकों नामोंके द्वारा भगवान्‌की स्तुति करना

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! मैंने श्वेतद्वीपनिवासी पुरुषोंकी स्थितिका वर्णन किया, अब देवर्षि नारदजी जिस प्रकार श्वेतद्वीपमें गये उस प्रसंगको सुना रहा हूँ, ध्यान देकर सुनो। उस महान् द्वीपमें पहुँचकर देवर्षि नारदजीने जब वहाँके चन्द्रमाके समान कान्तिमान् पुरुषोंको देखा तो मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और मन-ही-मन उनकी पूजा की। तत्पश्चात् श्वेतद्वीपवासी पुरुषोंने भी नारदजीका सत्कार किया। फिर वे भगवान्‌के दर्शनकी इच्छासे उनके नामका जप करने लगे और कठोर नियमोंका पालन करते हुए वहाँ रहने लगे। नारदजीने वहाँ अपनी दोनों बाँहें ऊपर उठाकर एकाग्रचित्त हो निर्गुण-सगुणरूप विश्वात्मा, भगवान् नारायणकी इस प्रकार स्तुति की—'देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। आप निष्क्रिय, निर्गुण और समस्त जगत्‌के साक्षी हैं। क्षेत्रज्ञ, पुरुषोत्तम (क्षर-अक्षर पुरुषसे उत्तम), अनन्त, पुरुष, महापुरुष, पुरुषोत्तम (परमात्मा), त्रिगुण, प्रधान, अमृत, अमृताख्य, अनन्ताख्य, व्योम, सनातन, सदसद्व्यक्ताव्यक्त, ऋतधामा, आदिदेव, वसुप्रद, प्रजापति, सुप्रजापति, वनस्पति, महाप्रजापति, ऊर्जस्पति, वाचस्पति, जगत्पति, मनस्पति, दिवस्पति, मरुत्पति, सलिलपति, पृथ्वीपति, दिक्पति, पूर्वनिवास (महाप्रलयके समय जगत्‌के आधाररूप), गुह्य, ब्रह्मपुरोहित, ब्रह्मकायिक, महाराजिक, चातुर्महाराजिक, भासुर (प्रकाशमान), महाभासुर, सप्तमहाभाग, याम्य, महायाम्य, संज्ञासंज्ञ, तुषित, महातुषित, प्रमर्दन (मृत्युरूप), परिनिर्मित, अपरिनिर्मित, वशवर्ती, अपरिनिन्दित, अपरिमित (अनन्त), वशवर्ती, अवशवर्ती, यज्ञ, महायज्ञ, यज्ञसम्भव, यज्ञयोनि, यज्ञगर्भ, यज्ञहृदय, यज्ञस्तुति, यज्ञभागहर, पञ्चयज्ञ, पञ्चयज्ञकालकर्तृपति (अहोरात्र, मास, ऋतु, अयन और संवत्सररूप कालके स्वामी), पाञ्चरात्रिक, वैकुण्ठ, अपराजित, मानसिक, नामनामिक (सम्पूर्ण नामोंके नामी), परस्वामी (परमेश्वर), सुस्नात, हंस, परमहंस, महाहंस, परमयाज्ञिक, सांख्ययोग, सांख्यमूर्ति, अमृतेशय, हिरण्येशय, देवेशय, कुशेशय, ब्रह्मेशय, पद्मेशय, विश्वेश्वर और विष्वक्सेन आदि आपहीके नाम हैं। आप ही जगदन्वय (जगत्‌में ओत-प्रोत) तथा जगत्‌की प्रकृति हैं। अग्नि आपका मुख है, आप ही वडवानल, आहुति, सारथि, वषट्कार, ॐकार, तप, मन, चन्द्रमा, नेत्र, आज्य (घृत), सूर्य, दिग्गज, दिग्भानु (दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले), विदिग्भानु (कोणोंको प्रकाशित करनेवाले) तथा हयग्रीव हैं। आप प्रथम त्रिसौपर्णमन्त्र, ब्राह्मणादि वर्णोंको धारण करनेवाले तथा पञ्चाग्निरूप हैं। नाचिकेत नामसे प्रसिद्ध त्रिविध अग्नि भी आप ही हैं। आप शिक्षा, कल्प व्याकरण, छन्द, निरुक्त और ज्यौतिष नामक छः अङ्गोंके भाण्डार हैं। प्राग्ज्यौतिष, ज्येष्ठसामग, सामिक-व्रतधारी, अथर्वशिरा, पञ्चमहाकल्प, फेनपाचार्य, बालखिल्य, वैखानस, अभग्नयोग (पूर्णयोग), अभग्नपरिसंख्यान (पूर्णविचार), युगादि, युगमध्य, युगान्त, आखण्डल (इन्द्र), प्राचीनगर्भ, कौशिक, पुरुष्टुत, पुरुहूत, विश्वकृत् (विश्वकर्मा), विश्वरूप, अनन्तगति, अनन्तभोग, अनन्त, अनादि, अमध्य, अव्यक्तमध्य, अव्यक्तनिधन, व्रतावास (व्रतके आश्रय), समुद्रवासी, यशोवास (यशके निवास), तपोवास (तपके अधिष्ठान), दमावास (संयमके आधार), लक्ष्मीनिवास, विद्यावास, कीर्त्यावास, श्रीवास, सर्वावास (सबके निवास-स्थान), वासुदेव, सर्वच्छन्दक (सबकी इच्छा पूर्ण करनेवाले), हरिहय, हरिमेध (यज्ञ), महायज्ञभागहर, वरप्रद, सुखप्रद, धनप्रद, हरिमेध (भगवद्भक्त), यम, नियम, महानियम, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, महाकृच्छ्र, सर्वकृच्छ्र, नियमधर, निवृत्तभ्रम (भ्रमरहित), प्रवचनगत (व्याख्यान-परायण), पृश्निगर्भ-प्रवृत, प्रवृत्तवेदक्रिय (वैदिक कर्मके प्रवर्तक), अज, सर्वगति, सर्वदर्शी, अग्राह्य, अचल, महाविभूति, माहात्म्यशरीर, पवित्र, महापवित्र, हिरण्मय, बृहद्, अप्रतर्क्य, अविज्ञेय, ब्रह्माग्र्य,

प्रजाकी सृष्टि करनेवाले, प्रजाका अन्त करनेवाले, महामायाधारी, चित्रशिखण्डी, वरद, पुरोडाश ग्रहण करनेवाले, गताध्वर (समाप्तयज्ञ), छिन्नतृष्ण (तृष्णारहित), छिन्न-संशय, सर्वतोवृत्त (सर्वव्यापक), निवृत्तरूप, ब्राह्मणरूप, ब्राह्मणप्रिय, विश्वमूर्ति, महामूर्तिबान्धव, भक्तवत्सल तथा ब्रह्मण्यदेव आदि नामोंसे पुकारे जानेवाले परमेश्वर ! आपको नमस्कार है। मैं आपका भक्त हूँ और आपके दर्शनकी इच्छासे यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। एकान्तमें दर्शन देनेवाले आप परमात्माको बारम्बार नमस्कार है।



श्वेतद्वीपमें नारदजीको भगवान्‌का दर्शन होना और भगवान्‌का अपने भविष्य-अवतारोंके कार्योंकी सूचना देना

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! इस प्रकार गुह्य तथा सत्य नामोंसे जब नारदजीने भगवान्‌की स्तुति की तो उन्होंने



विश्वरूप धारण करके उन्हें दर्शन दिया। उनके श्रीविग्रहका कुछ भाग चन्द्रमासे भी अधिक निर्मल और कुछ भाग चन्द्रमासे विलक्षण था। कोई अङ्ग अग्निके समान देदीप्यमान और कोई नक्षत्रोंके समान जाज्वल्यमान था। शरीरका कोई स्थान तोतेकी पाँखके रंगका, कोई स्फटिकमणिके समान, कोई कज्जलराशिके समान, कोई स्थान सोनेके रंगका, कोई मूँगेके समान और कोई श्वेतवर्णका था। कुछ भाग श्वेत वैदूर्यके समान, कुछ नील वैदूर्यके समान, कुछ इन्द्रनीलमणिके तुल्य, कुछ मोरके कण्ठके रंगका तथा कुछ मोतीकी मालाके समान था। इस प्रकार वे सनातन भगवान् अपने विग्रहमें नाना प्रकारके रंग धारण किये हुए थे। उनके हजारों नेत्र, हजारों मस्तक, हजारों पैर, हजारों उदर और हजारों हाथ थे तथा कहीं-कहीं उनकी आकृति स्पष्ट नहीं जान पड़ती थी। वे एक मुखसे ॐकारसहित गायत्रीका जप तथा अन्यान्य मुखोंसे चारों वेदों और आरण्यकोंका गान कर रहे थे। वे अपने हाथोंमें वेदी, कमण्डलु, उज्ज्वलमणि, कुश, मृगचर्म, दण्ड और धधकती हुई आग लिये हुए थे। उनके चरणोंमें चरण-पादुकाएँ शोभा पा रही थीं। भगवान्‌का मुख प्रसन्न दिखायी देता था। उनका दर्शन पाकर नारदजीका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा और वे चुपचाप उनके चरणोंमें पड़ गये। तब देवताओंके आदिकारण उन अविनाशी परमात्माने नारदजीसे कहा—'देवर्षे ! महर्षि एकत, द्वित और त्रित भी मेरे दर्शनकी इच्छासे यहाँ आये हुए थे, किंतु उन्हें मेरा दर्शन न हो सका। वास्तवमें मेरे अनन्य भक्तके सिवा और कोई मुझे नहीं देख सकता। तुम तो मेरे अनन्य भक्तोंमें श्रेष्ठ हो, इसीलिये मेरा दर्शन कर सके हो। विप्रवर ! धर्मके घरमें जिन्होंने अवतार लिया है, वे नर-नारायण आदि मेरे ही स्वरूप हैं; तुम सदा उनका भजन किया करो। आज मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। यदि मुझसे कोई वर माँगना चाहो तो माँग लो।'

नारदजीने कहा—भगवन् ! जब आपका दर्शन हो गया तो मुझे तप, यम और नियम सबका फल मिल गया। आपका दर्शन ही मेरे लिये सबसे बड़ा वरदान है।

भगवान्‌ने कहा—नारदजी ! मुझे कोई नेत्रोंसे नहीं देख सकता। तुम जो मुझे देख रहे हो, यह मेरी रची हुई मायाका प्रभाव है। मैं सर्वत्र व्यापक और सम्पूर्ण प्राणियोंका अन्तरात्मा हूँ। प्राणियोंके शरीरोंका नाश हो जानेपर भी मैं नहीं नष्ट होता। मुनिवर ! जो लोग मेरे एकान्त भक्त हो चुके हैं, वे बड़े सौभाग्यशाली और सिद्ध हैं; क्योंकि रजोगुण और तमोगुणसे मुक्त होकर वे मुझमें ही प्रवेश करेंगे। मुनिवर ! देखो, मेरे दाहिने भागमें ग्यारह रुद्र और वाम भागमें बारह आदित्य विराजमान हैं। मेरे अग्रभागमें आठ

वसु और पृष्ठभागमें दोनों अश्विनीकुमार स्थित हैं। यह देखो सम्पूर्ण प्रजापति, सात ऋषि, वेद, यज्ञ, अमृत, ओषधि तथा नाना प्रकारके यम-नियम भी मेरे शरीरमें मूर्तिमान् दिखायी देते हैं। आठ प्रकारके ऐश्वर्य भी यहाँ साकाररूपसे प्रकट हैं। श्री, लक्ष्मी, कीर्ति, पृथ्वी तथा वेदमाता सरस्वतीदेवी भी मेरे भीतर विराजमान हैं, उनका दर्शन करो। देखो, ये नक्षत्रोंमें श्रेष्ठ ध्रुव दिखायी दे रहे हैं। बादल, समुद्र, सरोवर और नदियोंको भी मूर्तिमान् देख लो। ये चार प्रकारके पितृगण शरीर धारण करके प्रकट हुए हैं। इनके साथ ही मेरे अंदर रहनेवाले सत्त्वादि गुणोंका भी अवलोकन करो। मैं ही देवताओं और पितरोंका पिता हूँ तथा हयग्रीवरूप धारण करके समुद्रके भीतर वायव्य कोणमें रहता हूँ। सांख्यके आचार्य मुझे विद्याशक्तिसे सम्पन्न एवं सूर्यमण्डलमें स्थित कपिल कहते हैं। वेदमें जिनकी स्तुति की गयी है, वह हिरण्यगर्भ मैं ही हूँ तथा योगीलोग जिसमें रमण करते हैं, वह योगशास्त्रप्रसिद्ध ब्रह्म भी मैं ही हूँ। इस समय मैं व्यक्तरूप धारण करके आकाशमें स्थित हूँ; फिर हजार युग बीतनेपर इस जगत्का संहार करूँगा और सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंको अपनेमें लीन करके मैं अकेला ही अपनी विद्याशक्तिके साथ विहार करूँगा। तदनन्तर, सृष्टिका समय आनेपर फिर उस विद्याशक्तिके ही द्वारा संसारकी सृष्टि करूँगा तथा कुछ काल-पश्चात् त्रेता और द्वापरके संध्यांशके समय मैं दशरथ-नन्दन 'राम' के रूपमें अवतार लूँगा। उस समय समस्त संसारके लिये कण्टकरूप पुलस्त्यकुलघालक राक्षसराज रावणका उसके अनुयायियोंसहित नाश करूँगा। फिर द्वापर और कलिकी संधिमें कंसको मारनेके लिये मथुरामें अवतार धारण करूँगा और देवताओंके लिये काँटा बोनेवाले बहुत-से दानवोंका वध करके द्वारकापुरीमें निवास करूँगा। वहाँ रहते समय देवमाता अदितिका अप्रिय करनेवाले भूमिपुत्र नरकासुर, मुर तथा पीठ नामक दानवका संहार करूँगा और उनके प्राग्ज्योतिषपुर नामक नगरका धन-धान्य द्वारकामें उठवा ले जाऊँगा। तदनन्तर, वाणासुरका प्रिय तथा हित चाहनेवाले विश्ववन्दित देवता महादेव और कार्तिकेयको युद्धमें परास्त करूँगा और हजार बाँहोंवाले बलिपुत्र बाणासुरको जीतकर सौभ विमानमें रहनेवाले शाल्वादि वीरोंको मौतके घाट उतारूँगा। इतना ही नहीं, महर्षि गर्गके तेजसे शक्तिशाली बने हुए कालयवनका भी मेरे ही द्वारा नाश होगा। उस समय गिरिव्रज (राजगृही) में जरासन्ध नामक एक बहुत बलवान् असुर राजा होगा, जो दूसरे राजाओंसे वैर मोल लेता फिरेगा। उसका भी मेरी ही बुद्धिके प्रयत्नसे नाश होगा। इसी प्रकार धर्मपुत्र युधिष्ठिरके यज्ञमें भेंट लेकर आये हुए समस्त बलवान् राजा-महाराजाओंके बीच शिशुपालका मस्तक काटूँगा। महाभारतमें सबको परास्त करके भाइयोंसहित युधिष्ठिरको उनके राज्यपर बिठाऊँगा। उस समय संसारके लोग यही कहेंगे कि 'श्रीकृष्ण और अर्जुनके रूपमें ये नर और नारायण ऋषि जगत्का कल्याण करनेके लिये क्षत्रियकुलका संहार कर रहे हैं।' इस प्रकार पृथ्वीका भार उतारकर मैं द्वारकाके समस्त यादवोंका भी भयंकर संहार करूँगा। नारदजी ! तुम्हारी भक्तिके कारण यह भूत और भविष्यका सारा रहस्य मैंने तुमसे बतलाया है।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! विश्वरूपधारी अविनाशी भगवान् नारायण इतनी बात कहकर अन्तर्धान हो गये। तब महातेजस्वी नारदजी भी भगवान्का मनोवाञ्छित अनुग्रह पाकर नर-नारायणका दर्शन करनेके लिये बदरिकाश्रमकी ओर चल दिये। यह उपाख्यान नारदजीका ही कहा हुआ है, किंतु मुझे परम्परासे प्राप्त हुआ है। मुझसे मेरे पिताजीने जो कहा था, वही मैंने तुम्हें सुनाया है।

सौति कहते हैं—शौनक ! वैशम्पायनजीके मुखसे सुना हुआ यह सारा-का-सारा उपाख्यान मैंने तुम्हें सुना दिया। राजा जनमेजयने इसे सुनकर विधिपूर्वक भगवान्का यजन किया। तुमलोग भी तपस्वी और व्रतका पालन करनेवाले हो, नैमिषारण्यमें निवास करनेवाले प्रायः सभी ऋषि वेदवेत्ताओंमें प्रधान हैं। सौभाग्यवश तुम सभी इस महायज्ञमें एकत्रित हुए हो, अतः विधिवत् हवन करके उन सनातन परमेश्वरका यजन करो।



श्रीकृष्णका अर्जुनको अपने नामोंकी व्याख्या सुनाना

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन् ! मैं प्रजापतियोंके पति भगवान् श्रीहरिके नाम श्रवण करना चाहता हूँ। आप उनका वर्णन कीजिये, जिन्हें सुनकर मैं पवित्र हो जाऊँ।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! भगवान् श्रीहरिने अर्जुनपर प्रसन्न होकर उनसे गुण और कर्मके अनुसार स्वयं अपने नामोंकी जैसी व्याख्या की है, वही तुम्हें सुना रहा हूँ; सुनो—एक समय अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा 'भगवन् ! आप भूत और भविष्यके स्वामी, सम्पूर्ण भूतोंकी

सृष्टि करनेवाले, अविनाशी, जगत्के आश्रय, ईश्वर और अभय देनेवाले हैं। देवदेव ! वेद और पुराणोंमें महर्षियोंने आपके कर्मानुसार जो-जो गूढ़ नाम बतलाये हैं, उनकी आपहीके मुँहसे व्याख्या सुनना चाहता हूँ, कृपया सुनाइये।

भगवान् बोले—अर्जुन ! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, उपनिषद, पुराण, ज्यौतिष, सांख्य, योगशास्त्र तथा आयुर्वेदमें महर्षियोंने मेरे बहुत-से नाम बतलाये हैं, उनमेंसे कुछ नाम तो गुणोंके अनुसार हैं और कुछ कर्मोंके अनुसार। अब मैं उन नामोंकी व्याख्या करता हूँ, सावधान होकर सुनो—जिनके प्रसादसे ब्रह्मा और क्रोधसे रुद्र प्रकट हुए हैं, उन निर्गुण-सगुणरूप विश्वात्मा भगवान् नारायणको नमस्कार है। वे ही सम्पूर्ण चराचर जगत्की उत्पत्तिके कारण हैं। उनसे ही सृष्टि, प्रलय आदि सम्पूर्ण विकारोंकी उत्पत्ति होती है। वे ही तप, यज्ञ और यजमान हैं। पुराणपुरुष और विराट्-पुरुष भी उन्हींके नाम हैं। जब प्रलयकी रात बीती थी, उस समय उन अमित तेजस्वी नारायणकी कृपासे एक कमल प्रकट हुआ तथा उन्हींकी कृपासे उस कमलमेंसे ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्माका दिन बीतनेपर क्रोधके आवेशमें आये हुए भगवान्के ललाटसे संहारकारी रुद्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार ये दोनों देवता—ब्रह्मा और रुद्र भगवान्के प्रसाद और क्रोधसे प्रकट हुए हैं तथा उन्हींके बताये हुए मार्गसे सृष्टि और संहारका कार्य पूर्ण करते हैं। समस्त प्राणियोंको वर देनेवाले ये दोनों देव सृष्टि और प्रलयके निमित्तमात्र हैं। वास्तवमें तो वह सब कुछ नारायणकी इच्छासे ही होता है। इनमेंसे संहारकारी रुद्रके कपर्दी (जटाजूटधारी), जटिल, मुण्ड, श्मशानगृहका सेवन करनेवाले, कठोर व्रतका पालन करनेवाले, रुद्र, योगी, परम दारुण, दक्ष-यज्ञ-विध्वंस करनेवाले तथा भग देवताकी आँख फोड़नेवाले आदि कई नाम हैं। पाण्डुनन्दन ! ये भगवान् रुद्र भी नारायणके ही स्वरूप हैं। इन देवदेव महेश्वरकी पूजा करनेसे भगवान् नारायणकी भी पूजा हो जाती है। मैं सम्पूर्ण जगत्का आत्मा हूँ, इसलिये मैं पहले अपने आत्मारूप रुद्रकी ही पूजा करता हूँ। यदि मैं वरदाता भगवान् शिवकी पूजा न करूँ तो दूसरा कोई भी उन आत्मरूप शंकरका पूजन नहीं करेगा; क्योंकि मेरे कार्यको ही आदर्श मानकर सब लोग उसका अनुसरण करते हैं। जो रुद्रको जानता है, वह मुझे जानता है। जो उनका भजन करता है, वह मेरा भी भजन करता है। रुद्र और नारायणकी एक ही सत्ता है, जो दो स्वरूप धारण करके संसारमें विचर रही है। मुझे रुद्रके सिवा दूसरा कोई वर देनेमें समर्थ नहीं है, यह सोचकर ही मैंने पुत्र-प्राप्तिके लिये अपने आत्मारूप भगवान् रुद्रकी आराधना की थी। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि देवता और ऋषि भी भगवान् नारायणकी पूजा करते हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें जो प्राणी रहते हैं, उन सबके नेता और सेव्य भगवान् विष्णु ही हैं, वे सदा सबकी पूजाके योग्य हैं। अर्जुन ! तुम हव्य-कव्यको स्वीकार करने तथा सबको शरण देनेवाले उन भगवान्को सदा नमस्कार किया करो। चार प्रकारके मनुष्य मेरे भक्त होते हैं; यह बात तुम सुन चुके हो। उनमेंसे जो मेरे अनन्य भक्त हैं—मेरे सिवा किसी दूसरे देवताका भजन नहीं करते, वे ही श्रेष्ठ हैं; मैं ही उनकी परमगति हूँ। वे कर्म करते हुए भी फलकी इच्छा नहीं रखते। शेष तीन प्रकारके जो भक्त हैं, उन्हें मैं फलकी कामनावाला ही मानता हूँ और फलकी कामना-वालोंको नीचे गिरना पड़ता है। किंतु जो कामनाका त्याग करनेवाले ज्ञानी भक्त हैं उन्हें सर्वोत्तम फलकी प्राप्ति होती है। ज्ञानी पुरुष ब्रह्मा, शिव तथा दूसरे देवताओंकी सेवा करते हुए भी अन्तमें मुझे ही प्राप्त होते हैं। अर्जुन ! यह मैंने तुमसे भक्तोंका अन्तर बतलाया है। तुम और मैं—दोनों नरनारायण ऋषि हैं और पृथ्वीका भार उतारनेके लिये हमने मनुष्य-शरीरमें प्रवेश किया है। मैं अध्यात्मयोगको जानता हूँ तथा 'मैं कौन हूँ और कहाँ से आया हूँ' इस बातका भी मुझे ज्ञान है। लौकिक अभ्युदयका साधक प्रवृत्तिधर्म और निःश्रेयस प्रदान करनेवाला निवृत्ति धर्म मुझसे अज्ञात नहीं है। एकमात्र मैं ही सम्पूर्ण मनुष्योंका आश्रयभूत सनातन परमात्मा हूँ।

नर (पुरुष) से उत्पन्न होनेके कारण जलको नार कहते हैं, वह नार (जल) पहले मेरा अयन (निवासस्थान) था, इसलिये मैं 'नारायण' कहलाता हूँ। (जो आच्छादित करे अथवा जो किसीका निवासस्थान हो उसको वासु कहते हैं।) मैं ही सूर्यरूप धारण करके अपनी किरणोंसे सम्पूर्ण जगत्को आच्छादित करता हूँ तथा मुझमें ही समस्त प्राणी निवास करते हैं, इसलिये मेरा नाम 'वासुदेव' है। मैं सम्पूर्ण प्राणियोंकी गति और उत्पत्तिका स्थान हूँ, मैंने आकाश और पृथ्वीको व्याप्त कर रखा है, मेरी कान्ति सबसे बढ़कर है, समस्त प्राणी अन्तमें मुझे ही पानेकी इच्छा करते हैं तथा मैं सबको आक्रान्त करता हूँ; इन्हीं सब कारणोंसे लोग मुझे 'विष्णु' कहते हैं। मनुष्य दम (इन्द्रियसंयम) के द्वारा सिद्धि पानेकी इच्छा करते हुए मुझे पाना चाहते हैं, इसलिये मैं 'दामोदर' कहलाता हूँ। अन्न, वेद, जल और अमृतको पृश्नि कहते हैं, ये सदा मेरे गर्भमें रहते हैं, अतः मेरा नाम 'पृश्निगर्भ' है। जगत्को तपानेवाले सूर्य और अग्निकी तथा चन्द्रमाकी जो किरणें प्रकाशित होती हैं, वे मेरा केश कहलाती हैं; उस केशसे युक्त होनेके कारण सर्वज्ञ विद्वान्

मुझे 'केशव' कहते हैं। सूर्य और चन्द्रमा मेरे नेत्र हैं और इनकी किरणें केश कहलाती हैं। ये दोनों जगत्को शान्ति और ताप देकर हर्षित करते हैं; इसलिये 'हृषी' कहे गये हैं तथा वे ही मेरे केश हैं; इस कारण मैं 'हृषीकेश' कहलाता हूँ। यज्ञमें 'इलोपहूता सह दिवा' आदि मन्त्रसे आवाहन करनेपर मैं अपना भाग हरण (स्वीकार) करता हूँ तथा मेरे शरीरका रंग भी हरित (श्याम) है, इसलिये मुझे 'हरि' कहते हैं। प्राणियोंके सार या बलका नाम है धाम और ऋतका अर्थ है सत्य। मेरा धाम ऋत है—ऐसा विचार कर ब्राह्मणोंने मुझे 'ऋतधामा' कहा है। (गोविन्दका अर्थ है पृथ्वीको प्राप्त करनेवाला) पूर्वकालमें जब पृथ्वी पानीमें डूबकर रसातलमें चली गयी थी, तो मैंने (वाराह-अवतार धारण करके) इसे प्राप्त किया था; इसलिये देवताओंने 'गोविन्द' कहकर मेरा स्तवन किया है। मेरे शिपिविष्ट नामकी व्याख्या इस प्रकार है—रोमहीन प्राणीको शिपि कहते हैं—यह निराकारका उपलक्षण है तथा विष्टका अर्थ है व्यापक। मैंने निराकार-रूपसे समस्त जगत्को व्याप्त कर रखा है, इसलिये मुझे 'शिपिविष्ट' कहते हैं। मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें रहनेवाला साक्षी—आत्मा हूँ। मैंने न तो पहले कभी जन्म लिया है, न अब जन्म लेता हूँ और न आगे कभी जन्म लूँगा; इसीलिये मेरा नाम 'अज' है। मैंने कभी असत्—ओछी या अश्लील बात मुँहसे नहीं निकाली है; सत्यस्वरूपा ब्रह्मपुत्री सरस्वती मेरी वाणी है तथा सत् और असत् (सत् और त्यत्) मेरे ही भीतर स्थित हैं; इस कारण मेरे नाभिकमलरूप ब्रह्मलोकमें रहनेवाले ऋषिगण मुझे 'सत्य' कहते हैं। मैं पहले कभी सत्त्वसे च्युत नहीं हुआ हूँ, सत्त्व मुझसे ही उत्पन्न हुआ है, सत्त्वके कारण मैं पापसे रहित हूँ तथा सात्त्वतज्ञान (पाञ्चरात्रादि वैष्णव तन्त्र) से मेरे स्वरूपका बोध होता है; इन सब कारणोंसे मुझे 'सात्त्वत' कहते हैं। अर्जुन ! धर्म ही सबसे उत्कृष्ट है, वही शान्तिमय परब्रह्म है, उस धर्म या ब्रह्मसे मैं कभी च्युत नहीं होता; इसलिये 'अच्युत' कहलाता हूँ। (अधःका अर्थ है पृथ्वी, अक्षका अर्थ है आकाश और 'ज' का अर्थ है इनको जीतने या धारण करनेवाला) पृथ्वी और आकाश—दोनोंको धारण करनेके कारण मुझे 'अधोक्षज' कहते हैं। महर्षिलोग अधोक्षज शब्दको अलग-अलग तीन पदोंका समूह मानते हैं—'अ' का अर्थ लयस्थान, 'धोक्ष' का अर्थ पालनस्थान और 'ज' का अर्थ उत्पत्तिस्थान है। उत्पत्ति, स्थिति और लयके स्थान एकमात्र नारायण ही हैं; अतः उनके सिवा दूसरा कोई 'अधोक्षज' नहीं कहला सकता। प्राणियोंके प्राणोंकी पुष्टि करनेवाला घृत मेरे स्वरूपभूत अग्निदेवकी अर्चिष् अर्थात् ज्वालाको जगानेवाला है; इसलिये वेदज्ञोंने मुझे 'घृतार्चि' कहा है। जीव वात, पित्त और कफ—इन तीन धातुओंसे जीवन धारण करते हैं और इन्हीं तीनोंके क्षीण होनेपर नष्ट हो जाते हैं; इसीलिये आयुर्वेदके विद्वान् मुझे 'त्रिधातु' कहते हैं। मेरे स्वरूपभूत भगवान् धर्म संसारमें वृष नामसे विख्यात हैं तथा वैदिक शब्दकोषमें जहाँ पदोंकी व्याख्या की गयी है वहाँ भी धर्मरूपसे मुझे ही वृष कहा गया है; इसी प्रकार कपिशब्दका अर्थ श्रेष्ठ है, इसलिये प्रजापति कश्यपने मुझे 'वृषाकपि' बतलाया है। मैं जगत्का साक्षी और सर्वव्यापक ईश्वर हूँ, देवता तथा असुर भी मेरे आदि, मध्य और अन्तका कभी पता नहीं पाते, इसलिये मैं 'अनादि', 'अमध्य' और 'अनन्त' कहलाता हूँ। धनञ्जय ! जो शुचि—पवित्र एवं श्रवण करने योग्य हैं, उन्हीं वचनोंको मैं श्रवण करता हूँ; इसीलिये मेरा नाम 'शुचिश्रवा' है। पूर्वकालमें मैंने एक सींगवाले वाराहका रूप धारण करके इस पृथ्वीको पानीसे निकाला था, अतः मेरा नाम 'एकशृङ्ग' हुआ। वाराह-अवतारके ही समय मेरे शरीरमें तीन ककुद् (ऊँचे स्थान) थे, इसलिये मैं 'त्रिककुद्' नामसे विख्यात हुआ। सांख्य-शास्त्रका विचार करनेवाले विद्वानोंने जिसे विरञ्चि कहा है, वह प्रजापति 'विरञ्चि' मैं ही हूँ। तत्त्वका निश्चय करनेवाले सांख्यशास्त्रके आचार्योंने मुझे आदित्य-मण्डलमें स्थित, विद्या-शक्तिसे सम्पन्न, सनातन देवता कपिल कहा है। वेदोंमें जिनकी स्तुति की गयी है तथा योगीजन सदा जिनकी पूजा करते हैं, वह तेजस्वी 'हिरण्यगर्भ' मैं ही हूँ। वेदके विद्वान् मुझे ही इक्कीस हजार ऋचाओंसे युक्त 'ऋग्वेद' और एक हजार शाखाओंवाला 'सामवेद' कहते हैं। आरण्यकोंमें ब्राह्मणलोग मेरा ही गान करते हैं। वे मेरे परम भक्त दुर्लभ हैं। जिसमें एक सौ एक शाखाएँ मौजूद हैं, उस यजुर्वेदमें भी मेरा ही गान किया गया है। अथर्ववेदके विद्वान् मुझे ही आभिचारिक प्रयोगोंसे युक्त पञ्चकल्पात्मक 'अथर्ववेद' मानते हैं। वेदोंमें जो भिन्न-भिन्न शाखाएँ हैं, उन शाखाओंमें जितने गीत हैं तथा उन गीतोंमें स्वर और वर्णके उच्चारण करनेकी जितनी रीतियाँ हैं, उन सबको मेरी ही बनायी हुई समझो। मैं ही वरदाता हयग्रीव हूँ। प्राचीनकालमें मैं धर्मके पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुआ था, इसलिये 'धर्मज' कहलाता हूँ। जिन्होंने गन्धमादन पर्वतपर अखण्ड तपका अनुष्ठान किया है, वे नर और नारायण मेरे ही स्वरूप हैं।



देवर्षि नारद और नर-नारायणकी बातचीत तथा सौतिके द्वारा भगवान्‌की महिमाका वर्णन

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन् ! जैसे दहीसे मक्खन, मलयसे चन्दन, वेदोंसे आरण्यक तथा ओषधियोंसे अमृत निकाला गया है, उसी प्रकार आपने यह नारायणकी कथारूप अमृतको प्रकट किया है। वे भगवान् नारायण सब प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले और सबके ईश्वर हैं। अहो ! नारायणका तेज अद्भुत है, उसका साक्षात्कार होना कठिन है। कल्पके अन्तमें जहाँ ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि, गन्धर्व और समस्त चराचर प्राणी लीन होते हैं, उन नारायणदेवसे उत्कृष्ट और पावन दूसरा कोई नहीं है। नारायणकी कथा सुननेसे जो फल मिलता है, वह सम्पूर्ण आश्रमोंमें जाने और सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे भी नहीं मिलता। सम्पूर्ण विश्वके स्वामी श्रीहरिकी कथा सब पापोंका नाश करनेवाली है, उसे आरम्भसे ही सुनकर मैं सर्वथा पवित्र हो गया हूँ। मेरे पूज्य पितामह अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे जो महाभारतमें विजय प्राप्त की, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि त्रिलोकीनाथ विष्णुकी सहायता मिलनेपर तो मैं संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं समझता। मेरे सभी पूर्वज धन्य थे, जिनका हित और कल्याण करनेके लिये साक्षात् जनार्दन तैयार रहते थे। सारा संसार जिनकी पूजा करता है, उन भगवान् नारायणका दर्शन तपस्यासे ही हो सकता है; किंतु मेरे पितामहोंने श्रीवत्सके चिह्नसे विभूषित उन भगवान्‌का साक्षात् दर्शन अनायास ही पा लिया था। उनसे भी बढ़कर धन्यवादके पात्र देवर्षि नारदजी हैं, मैं उनको साधारण तेजस्वी नहीं मानता; क्योंकि उन्होंने श्वेतद्वीपमें जाकर साक्षात् भगवान्‌का दर्शन किया। भगवान्‌की कृपासे उन्हें उनके श्रीविग्रहका प्रत्यक्ष दर्शन मिला। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि श्वेतद्वीपसे लौटकर नारदजी नर-नारायणका दर्शन करनेके लिये जो पुनः बदरिकाश्रम गये उसका क्या कारण था, वहाँ जाकर वे कितने समयतक उन दोनों ऋषियोंकी सेवामें रहे, उन्होंने उनसे कौन-कौन-से प्रश्न किये तथा उन प्रश्नोंके उत्तरमें महात्मा नर-नारायणने क्या कहा था ? ये सब बातें बतानेकी कृपा कीजिये।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! मैं पहले अमित तेजस्वी भगवान् व्यासको नमस्कार करता हूँ, जिनकी कृपासे मुझे यह नारायणकी कथा कहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। श्वेतद्वीपमें श्रीहरिका दर्शन करके जब नारदजी लौटे तो बड़े वेगसे मेरु पर्वतपर आ पहुँचे। भगवान्‌ने जो आज्ञा दी थी उसे उन्होंने हृदयसे स्वीकार किया था। मेरुसे चलकर वे गन्धमादन पर्वतके पास पहुँचे और वहाँ आकाशसे बदरिकाश्रममें उतरे। फिर निकट जाकर उन्होंने पुरातन ऋषि नर-नारायणका दर्शन किया, जो महान् व्रतका पालन करते हुए तपस्यामें संलग्न थे। उस समय वे सब लोकोंको प्रकाशित करनेवाले सूर्यसे भी अधिक तेजस्वी दिखायी पड़ते थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित हो रहा था। दोनों अपने मस्तकपर जटा धारण किये हुए थे, उनके हाथोंमें हंसका और चरणोंमें चक्रका चिह्न था। विशाल वक्षःस्थल, बड़ी-बड़ी भुजाएँ, मेघके समान गम्भीर स्वर, सुन्दर मुख, चौड़े ललाट, बाँकी भौंहें, सुन्दर ठोढ़ी और मनोहर नासिकासे उनकी अपूर्व शोभा हो रही थी तथा उनके मस्तक छत्रके समान सुशोभित होते थे। इन शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न इन दोनों महापुरुषोंका दर्शन करके नारदजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। भगवान् नर और नारायणने भी नारदजीका स्वागत-सत्कार करके उनकी कुशल पूछी। तदनन्तर, नारदजीने उन दोनोंकी ओर देखकर मन-ही-मन कहा—'मैंने श्वेतद्वीपमें जिनका दर्शन किया था उन्हींके समान इन दोनों महापुरुषोंकी भी झाँकी है।' यह सोचकर वे उनकी प्रदक्षिणा करके एक सुन्दर कुशासनपर बैठ गये। तब भगवान् नारायणने नारदजीसे पूछा—'देवर्षे ! क्या तुमने श्वेतद्वीपमें जाकर हम दोनोंके मूलस्वरूप सनातन परमात्माका दर्शन किया ?'

नारदजीने कहा—भगवन् ! मैंने विश्वरूपधारी उन अविनाशी परमेश्वरका दर्शन कर लिया। देवता और ऋषियोंके साथ सम्पूर्ण लोक उन्हींके भीतर विराजमान हैं। आप दोनों सनातन पुरुषोंको देखकर तो मैं इस समय भी श्वेतद्वीपवासी भगवान्‌की ही झाँकी कर रहा हूँ। वहाँ हमने श्रीहरिमें जो-जो लक्षण देखे थे, आप दोनों भी उन्हीं लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। यही नहीं, आप दोनोंको मैंने वहाँ भी श्रीहरिके पास उपस्थित देखा था और उन्हींके भेजनेसे मैं फिर यहाँ आया हूँ। इस संसारमें आप दोनोंके अतिरिक्त दूसरा कौन है जो तेज, यश और श्रीमें उनके समान हो। उन्होंने मुझे धर्मका उपदेश दिया और भविष्यमें होनेवाले अपने अवतार-कार्योंका भी वर्णन किया है। श्वेतद्वीपमें जो पाँच इन्द्रियोंसे रहित श्वेत वर्णवाले पुरुष हैं, वे सब-के-सब ज्ञानी और भक्त हैं तथा सदा भगवान्‌की पूजामें लगे रहते हैं। भगवान् भी उनके साथ सदा प्रसन्न रहते हैं। उनको अपने भक्त और ब्राह्मण बहुत प्रिय हैं। वे विश्वका पालन करनेवाले, सर्वव्यापक और भक्तवत्सल हैं। कर्ता, कारण

और कार्य भी वे ही हैं। उनका बल और कान्ति अनन्त है। वे हेतु, आज्ञा, विधि और तत्त्वरूप तथा महायशस्वी हैं। उन दयालु परमात्माने तीनों लोकोंमें शान्तिका विस्तार किया है। जिनकी बुद्धि अनन्य भावसे एकमात्र उन्हींमें लगी हुई है, उन भक्तोंद्वारा अर्पण की हुई प्रत्येक क्रियाको वे भगवान् स्वयं शिरोधार्य करते हैं। संसारमें उन्हें अपने अनन्य भक्तसे बढ़कर और कोई प्रिय नहीं है।

नर-नारायणने कहा—नारद! तुमने श्वेतद्वीपमें साक्षात् भगवान्का दर्शन किया है, अतः तुम धन्य हो। वास्तवमें भगवान्ने तुमपर बड़ी कृपा की। वे प्रभु अव्यक्त प्रकृतिके भी मूल कारण हैं; किसीके लिये भी उनका दर्शन मिलना नितान्त कठिन है। देवर्षे! हम सच कह रहे हैं, भगवान्को इस जगत्में भक्तसे बढ़कर दूसरा कोई प्रिय नहीं है; इसीलिये उन्होंने तुम्हारे सामने अपना स्वरूप प्रकट किया है। एक हजार सूर्योंके एकत्र होनेपर जितनी कान्ति हो सकती है, उतनी ही उस स्थानकी भी कान्ति है, जहाँ साक्षात् भगवान् विराज रहे हैं। विप्रवर! विश्वविधाता ब्रह्माजीके भी पति उन परमेश्वरसे ही क्षमाकी उत्पत्ति हुई है, जिससे पृथ्वीका संयोग होता है। वे सम्पूर्ण प्राणियोंका हित करनेवाले हैं, उन्हींसे रस प्रकट हुआ है, जो जलका गुण है और जिसके कारण जल द्रवीभूत होता है। उन्हींसे रूपगुणविशिष्ट तेजका प्रादुर्भाव हुआ है, जिससे संयुक्त होनेके कारण सूर्यदेव इस जगत्में प्रकाशित हो रहे हैं। उन्हीं पुरुषोत्तमसे स्पर्शकी उत्पत्ति हुई है, जिससे संयुक्त होकर वायु सम्पूर्ण जगत्में प्रवाहित होती रहती है। वे ही लोकेश्वर शब्दकी भी उत्पत्तिके हेतु हैं, जिससे आकाशका नित्य संयोग है और जिसके ही कारण वह निरावृत रहता है। सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर स्थित रहनेवाले मनकी उत्पत्ति भी उन्हींसे हुई है। उस मनसे संयुक्त होकर ही चन्द्रमा प्रकाश गुण धारण करता है। वे भगवान् विद्या-शक्तिके साथ अपने सत्यधाममें विराजमान हैं। तपोधन! श्वेतद्वीपमें तुम्हें हमलोगोंने भी देखा था। भगवान्से समागम होनेके पश्चात् तुम्हारे मनमें जो संकल्प उठा वह सब भी हमलोगोंको विदित है। इस चराचर जगत्में जो शुभ या अशुभ बात हो चुकी है, हो रही है या होनेवाली है, वह सब उस समय देवदेव भगवान्ने तुम्हें बतलायी थी।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कठोर तपस्यामें प्रवृत्त हुए भगवान् नर और नारायणकी यह बात सुनकर नारदजीने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और नारायणके मन्त्रोंका विधिवत् जप करते हुए वे एक हजार दिव्य वर्षोंतक उन्हींके आश्रमपर रहे। वहाँ प्रतिदिन भगवान्का ध्यान और पूजन यही उनकी जीवन-चर्या थी। इस प्रकार भगवान्की कथा सुनते और प्रतिदिन उनका दर्शन करते हुए बदरिकाश्रममें एक हजार वर्ष पूरा होनेपर नारदजी हिमालय पर्वतपर स्थित अपने आश्रममें चले गये और वे विख्यात तपस्वी नर-नारायण पुनः उत्तम तपस्यामें संलग्न हो गये। जनमेजय! तुम प्रारम्भसे ही यह कथा सुनकर पवित्र हो गये हो। जो मनुष्य अविनाशी भगवान् नारायणके साथ मन, वाणी या क्रियाके द्वारा द्वेषभाव रखता है, उसका न इस लोकमें ठिकाना है न परलोकमें; उसके पितर सदा नरकमें डूबे रहते हैं। भगवान् विष्णु सबके आत्मा हैं, भला उनसे कौन द्वेष करेगा? राजन्! मेरे गुरु गन्धवतीनन्दन व्यासजीने इस श्रेष्ठ माहात्म्यका वर्णन किया था, उन्हींके मुँहसे मैंने इसको सुना है और वही तुम्हें भी सुनाया है। अब तुम अपने संकल्पके अनुसार इस महान् यज्ञको पूर्ण करो।

सौति कहते हैं—शौनक! वैशम्पायनजीके मुखसे यह महान् उपाख्यान सुनकर राजा जनमेजयने अपने यज्ञको पूर्ण करनेका कार्य आरम्भ किया। तुमने नैमिषारण्यवासी ऋषियोंके सामने जिसके विषयमें प्रश्न किया था, वह नारायणीय उपाख्यान मैंने तुम्हें सुना दिया। परम ऋषि नारायण सम्पूर्ण मनुष्यों और लोकोंके स्वामी हैं। इस विशाल पृथ्वीको उन्होंने ही धारण कर रखा है। वे वैदिक धर्म और विनयका पालन करनेवाले, शम और दमकी निधि, यम-नियममें परायण, देवताओंका हित साधन करनेवाले, असुरविनाशक, तपके भण्डार, महान् यशके भाजन, मधु-कैटभका वध करनेवाले, धर्मज्ञोंको सद्गति एवं अभय प्रदान करनेवाले तथा यज्ञमें भाग ग्रहण करनेवाले हैं—ऐसे भगवान्की तुम शरण लो। जो सम्पूर्ण जगत्के साक्षी, अजन्मा, अन्तर्यामी, पुराणपुरुष, सूर्यके समान तेजस्वी, ईश्वर और सबकी गति हैं, उन परमेश्वरको तुम सब लोग एकाग्रचित्त होकर प्रणाम करो। वे इस जगत्के आदिकारण, मोक्षके आश्रय, सूक्ष्म-स्वरूप, सबके शरण देनेवाले, अविचल और सनातन पुरुष हैं। अपने मनको वशमें रखनेवाले सांख्ययोगी उन्हींको बुद्धिके द्वारा प्राप्त करते हैं।



हयग्रीव-अवतार, नारायणकी महिमा तथा भक्तिधर्मकी परम्पराका वर्णन

शौनकने पूछा—भगवन्! हमने परमेश्वरके माहात्म्यको सुना तथा उन्होंने धर्मके घरमें जो नर-नारायणरूपसे अवतार धारण किया था, वह बात भी मालूम हुई। अब हम यह जानना चाहते हैं कि जगत्को धारण करनेवाले भगवान्ने अद्भुत रूप और प्रभावसे युक्त हयग्रीव-अवतार क्यों धारण किया था? और उस रूपमें भगवान्का दर्शन करके ब्रह्माजीने कौन-सा कार्य सम्पन्न किया?

सौतिने कहा—शौनक! भगवान्के हयग्रीव-अवतारकी चर्चा सुनकर राजा जनमेजयको भी तुम्हारी ही तरह संदेह हुआ था, तब उन्होंने इस प्रकार प्रश्न किया—'विप्रवर! ब्रह्माजीने भगवान्के जिस हयग्रीवरूपका दर्शन किया था, वह किसलिये प्रकट हुआ, यह बतानेकी कृपा करें।'

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! इस जगत्में जितने प्राणी हैं, वे सब ईश्वरके संकल्पसे उत्पन्न हुए पञ्चमहाभूतोंसे युक्त हैं। विराट्-स्वरूप भगवान् नारायण इस जगत्के ईश्वर और स्रष्टा हैं, वे ही सब जीवोंके अन्तरात्मा, वरदाता, सगुण और निर्गुणरूप हैं। अब तुम पञ्चभूतोंके आत्यन्तिक प्रलयकी बात सुनो—पूर्वकालमें जब इस पृथ्वीका एकार्णवके जलमें, जलका तेजमें, तेजका वायुमें, वायुका आकाशमें, आकाशका मनमें, मनका व्यक्तमें, व्यक्तका अव्यक्त प्रकृतिमें, अव्यक्तका पुरुष (ब्रह्म) में और पुरुषका सर्वव्यापक परमात्मामें लय हो गया, उस समय चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार छा गया। उसके सिवा और कुछ नहीं जान पड़ता था। उस अवस्थामें विद्या-शक्तिसे सम्पन्न श्रीहरिने योगनिद्राका आश्रय लेकर कारणरूप जलमें शयन किया तथा नाना गुणोंसे उत्पन्न होनेवाली अद्भुत सृष्टिके सम्बन्धमें विचार करते-करते उन्हें अपने महान् गुणका स्मरण हुआ, उससे अहंकार प्रकट हुआ। वह अहंकार ही चार मुखोंवाले ब्रह्माजी हैं, जो सब लोकोंके पितामह और भगवान् हिरण्यगर्भके नामसे विख्यात हैं। उस समय भगवान् नारायणकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ था, जिसमें कमल-लोचन ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ। अत्यन्त तेजस्वी सनातन देव ब्रह्माजीने सहस्रदल कमलपर विराजमान होकर जब इधर-उधर दृष्टि डाली तो उन्हें समस्त जगत् जलमय दिखायी पड़ा। तब ब्रह्माजी सत्त्वगुणमें स्थित होकर प्राणियोंकी सृष्टिमें प्रवृत्त हुए। वे जिस कमलपर बैठे हुए थे, उसका पत्ता सूर्यके समान देदीप्यमान था। उस पत्तेपर पहलेसे ही भगवान् नारायणकी प्रेरणासे जलकी दो बूँदें पड़ी थीं, जो रजोगुण और तमोगुणकी प्रतीक थीं। आदि-अन्तसे रहित भगवान् अच्युतने उन दोनों बूँदोंकी ओर देखा। उनमेंसे एक बूँद भगवान्की दृष्टि पड़ते ही तमोमय मधु नामक दैत्यके आकारमें परिणत हो गयी। उस दैत्यका रंग मधुके समान था और उसके शरीरकी कान्ति बड़ी सुन्दर थी। जलकी दूसरी बूँद, जो कुछ कड़ी थी, नारायणकी आज्ञासे रजोगुणसे उत्पन्न कैटभ नामक दैत्यके रूपमें प्रकट हुई। तमोगुण और रजोगुणसे युक्त वे दोनों दैत्य मधु और कैटभ बड़े बलवान् थे। कमलके आसनपर विराजमान होकर सृष्टि-रचनामें प्रवृत्त हुए ब्रह्माकी ओर दृष्टि पड़ते ही वे दोनों कमलनालकी ओर दौड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने साकाररूपमें प्रकट हुए चारों वेदोंको ब्रह्माजीके देखते-देखते सहसा हर लिया। उन सनातन वेदोंको लेकर वे तुरंत समुद्रके भीतर ईशानकोणमें स्थित रसातलमें प्रवेश कर गये।

वेदोंका अपहरण हो जानेपर ब्रह्माजीको बड़ा खेद हुआ, वे मन-ही-मन परमात्मासे कहने लगे 'भगवन्! वेद ही मेरे उत्तम नेत्र हैं, वेद ही मेरे बल हैं, वेद ही मेरे आश्रय और वेद ही मेरे उपास्य देव हैं। मेरे उन्हीं वेदोंको दो दानवोंने बलात् छीन लिया है। उनके बिना मुझे सब ओर अन्धकार दिखायी देता है। वेदोंके बिना मैं संसारकी सृष्टि कैसे कर सकता हूँ? ओह! मुझपर यह बड़ा भारी संकट आ गया। इस तीव्र शोकसे मेरा हृदय फटा जा रहा है।' इस प्रकार विलाप करते-करते उनके मनमें यह विचार उठा कि मैं भगवान् श्रीहरिकी स्तुति करूँ, यह बात ध्यानमें आते ही वे हाथ जोड़कर परम आराध्य परमात्माकी स्तुति करने लगे—'भगवन्! आप हमारे पूर्वज हैं, वेद आपका हृदय है, आप जगत्के आदि कारण, सबसे श्रेष्ठ, सांख्ययोगकी निधि और सर्वशक्तिमान् हैं, आपको नमस्कार है। व्यक्त जगत् और अव्यक्त प्रकृतिको उत्पन्न करनेवाले परमात्मन्! आपका स्वरूप अचिन्त्य है। आप कल्याणमय मार्ग (मोक्ष) में स्थित हैं। विश्वपालक! आप सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तरात्मा, किसी योनिसे उत्पन्न न होनेवाले, जगत्के आधार और स्वयम्भू हैं। मैं आपके प्रसादसे उत्पन्न हुआ हूँ। आपके नेत्र कमलके समान हैं, आपका श्रीविग्रह विशुद्ध सत्त्वमय है, आप ही ईश्वर और स्वभाव हैं, आपहीने मुझे जन्म दिया है और आपहीकी कृपासे मुझपर कालका जोर नहीं चलता। आपने मुझे वेदरूपी नेत्र प्रदान किये थे, किंतु उन्हें दानवोंने छीन लिया। उनके बिना मैं अंधा-सा हो रहा हूँ; अतः आप कृपा करके

पुनः उन्हें वापस ला दीजिये; क्योंकि मैं आपका प्रिय भक्त हूँ और आप मेरे प्रियतम स्वामी हैं।'

ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर सर्वव्यापक भगवान् नारायण योगनिद्राका त्याग कर वेदोंका उद्धार करनेको तैयार हो गये। उन्होंने अपने ऐश्वर्यके द्वारा दूसरा



शरीर धारण किया, जो चन्द्रमाके समान कान्तिमान् था। उनका मस्तक घोड़ेके मस्तकके समान श्वेतवर्ण तथा वेदोंका आश्रय था। उनकी नासिका भी बड़ी सुन्दर थी। नक्षत्र और ताराओंसे युक्त स्वर्ग उनका सिर था। सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले बड़े-बड़े बाल थे। आकाश और पाताल उनके कान थे और समस्त भूतोंको धारण करनेवाली पृथ्वी ललाट थी। इसी प्रकार गङ्गा और सरस्वती उनका नितम्ब, महान् समुद्र उनकी भौंहें, सूर्य और चन्द्रमा नेत्र, संध्या नासिका, ॐकार संस्कार, बिजली जीभ, सोमपान करनेवाले पितर दाँत, गोलोक और ब्रह्मलोक ओठ और कालरात्रि उनकी ग्रीवा थी। इस प्रकार अनेक मूर्तियोंसे आवृत हयग्रीवका रूप धारण करके वे जगदीश्वर वहाँसे अन्तर्धान हो गये और रसातलमें प्रवेशकर परम योगका आश्रय ले शिक्षाके नियमानुसार उदात्तादि स्वरोंसे युक्त सामवेदका गान करने लगे। नाद और स्वरसे विशिष्ट सामगानकी वह मधुर ध्वनि रसातलमें सब ओर फैल गयी, जो सब प्राणियोंका हितसाधन करनेवाली थी। दोनों असुरोंने जब वह शब्द सुना तो वेदोंको बन्धनमें बाँधकर रसातलमें एक ओर फेंक दिया और स्वयं जिधरसे वह ध्वनि आ रही थी उसी ओर दौड़े। इसी बीचमें भगवान् हयग्रीवने उस स्थानपर पहुँचकर रसातलमें पड़े हुए सम्पूर्ण वेदोंको अपने अधिकारमें कर लिया और उन्हें लाकर पुनः ब्रह्माजीको सौंप दिया। इसके बाद वे अपने पूर्व रूपको धारण करके फिर ज्यों-के-त्यों सो रहे।

इधर, जब उन दानवोंको शब्द होनेके स्थानपर कुछ दिखायी न पड़ा तो वे पुनः बड़े वेगसे उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ वेदोंको फेंक आये थे; किंतु वहाँ भी कुछ हाथ न आया, वह स्थान खाली ही दिखायी दिया। अब वे बलवान् दैत्य बड़े जोरसे ऊपरकी ओर बढ़े और शीघ्र ही रसातलसे बाहर निकल आये। ऊपर आकर उन्होंने देखा कि पानीके ऊपर शेषनागकी शय्यापर एक चन्द्रमाके समान कान्तिमान् पुरुष सो रहा है। वे विशुद्ध सत्त्वसे सम्पन्न भगवान् ही थे, जो योगनिद्रामें पौढ़े हुए थे। उन्हें देखकर दानवराज मधु और कैटभ ठहाका मारकर जोर-जोरसे हँसने लगे और रजोगुण तथा तमोगुणके आवेशमें आकर परस्पर कहने लगे—'यह जो श्वेत वर्णवाला पुरुष यहाँ नींद ले रहा है, निस्संदेह यही



रसातलसे वेदोंको चुरा लाया है। यह किसका पुत्र है, कौन है और क्यों यहाँ साँपके शरीरपर सो रहा है?' इस प्रकार बातचीत करके उन दोनोंने श्रीहरिको जगाया। उन्हें युद्धके लिये उत्सुक देख भगवान् पुरुषोत्तम उठकर खड़े हो गये और उन दोनोंकी ओर दृष्टि डालकर उन्होंने मन-ही-मन युद्धका

निश्चय किया। फिर तो युद्ध प्रारम्भ हो गया और भगवान् मधुसूदनने ब्रह्माजीका मान रखनेके लिये रजोगुण तथा तमोगुणसे प्रभावित हुए उन दैत्योंको मार डाला। इस प्रकार वेदोंको वापस लाकर और मधु-कैटभको मारकर उन्होंने ब्रह्माजीका शोक दूर किया। तत्पश्चात् वेदसे सम्मानित और भगवान्से सुरक्षित होकर ब्रह्माजीने समस्त चराचर जगत्की सृष्टि की। भगवान् उन्हें लोकरचनाकी बुद्धि देकर अन्तर्धान हो गये—जहाँसे आये थे वहीं चले गये। इस प्रकार श्रीहरिने प्रवृत्तिधर्मका प्रचार करनेके लिये हयग्रीवरूप धारण किया था। उनका यह वरदायक रूप परम प्राचीन और विख्यात है। जो ब्राह्मण प्रतिदिन इस अवतारकी कथाको सुनता या स्मरण करता है, उसके अध्ययनका कभी नाश नहीं होता। राजन्! तुमने जिसके लिये पूछा था, वह हयग्रीवावतारकी प्राचीन कथा मैंने तुम्हें सुना दी। यह उपाख्यान वेदके द्वारा अनुमोदित है। परमात्मा कार्य-साधन करनेके लिये जिस-जिस शरीरको धारण करना चाहते हैं, उसे स्वयं प्रकट कर लेते हैं। वे वेद और तपस्याकी निधि हैं तथा सांख्य, योग, ब्रह्म एवं हविष्यरूप हैं। वेदोंका पर्यवसान नारायणमें ही है, यज्ञ नारायणके ही स्वरूप हैं, तप नारायणकी ही प्राप्ति करानेवाले हैं और नारायणकी प्राप्ति ही उत्तम गति (मोक्ष) है। इतना ही नहीं, ऋत और सत्य भी नारायणके ही स्वरूप हैं तथा जिसके अनुष्ठानसे पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता, वह निवृत्तिप्रधान धर्म भी नारायणको ही लक्ष्य करनेवाला है। प्रवृत्तिधर्म भी नारायणका ही स्वरूप है। भूमिका उत्तम गुण गन्ध, जलका गुण रस, तेजका गुण रूप, वायुका गुण स्पर्श और आकाशका गुण शब्द भी नारायणसे भिन्न नहीं हैं। मन, काल, नक्षत्र-मण्डल, कीर्ति, श्री, लक्ष्मी, सम्पूर्ण देवता तथा सांख्य और योगशास्त्र—ये सब नारायणके ही स्वरूप हैं। पुरुष, प्रधान, प्रभाव, कर्म तथा दैव—ये जिन वस्तुओंके कारण हैं, वे भी नारायणरूप ही हैं। अधिष्ठान, कर्ता, भिन्न-भिन्न प्रकारके करण, नाना प्रकारकी अलग-अलग चेष्टाएँ तथा दैव—इन पाँच कारणोंके रूपमें सर्वत्र श्रीहरि ही विराजमान हैं। जो लोग सर्वव्यापक हेतुओंसे तत्त्वको जाननेकी इच्छा रखते हैं, उनके लिये महायोगी नारायण ही एकमात्र ज्ञातव्य तत्त्व हैं। सम्पूर्ण लोक, ब्रह्मादि देवता, महात्मा ऋषि, सांख्यके विद्वान्, योगी और आत्मज्ञानी यति—इन सबके मनकी बातें भगवान् जानते हैं; किंतु उनके मनमें क्या है? यह किसीको पता नहीं है। समस्त विश्वमें जो लोग देवताओंके लिये यज्ञ और पितरोंके लिये श्राद्ध करते हैं, दान देते हैं और महान् तप करते हैं, उन सबके आश्रय भगवान् विष्णु ही हैं। वे अपने ऐश्वर्ययोगमें स्थित रहते हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंके आवास-स्थान होनेसे उन्हें वासुदेव कहते हैं। ये परम महर्षि नारायण नित्य, महान् ऐश्वर्यसे युक्त और गुणोंसे रहित हैं तो भी जैसे गुणहीन काल ऋतुके गुणोंसे युक्त होता है, उसी प्रकार वे भी समय-समयपर गुणोंको स्वीकार करते हैं। उन महात्माके गमनागमनको कोई नहीं जानता। जो ज्ञानी महर्षि हैं, वे ही उन नित्य अन्तर्यामी परमात्माका साक्षात्कार करते हैं।

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन्! भगवान् अनन्यभावसे भजन करनेवाले अपने सभी भक्तोंको प्रसन्न करते और उनकी विधिवत् की हुई पूजाको स्वीकार करते हैं—यह कितने आनन्दकी बात है! संसारमें जिन लोगोंकी वासनाएँ दग्ध हो गयी हैं और जो पुण्य-पापसे रहित हो गये हैं, उन्हें परम्परासे जो गति प्राप्त होती है, उसका भी आपने वर्णन किया है; किंतु मेरी समझमें जो ब्राह्मण उपनिषदोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका विधिवत् स्वाध्याय करते हैं तथा जो संन्यास-धर्मका पालन करते हैं, इन सबसे उत्तम गति उन्हींको प्राप्त होती है, जो भगवान्के अनन्य भक्त हैं। भगवन्! इस भक्तिरूप धर्मका किसने उपदेश किया है? इसका आदि उपदेशक कोई देवता है या ऋषि? एकान्त भक्तोंकी नित्यचर्या क्या है? और वह कबसे प्रचलित हुई है? मेरे इस संदेहको दूर कीजिये; क्योंकि मुझे इन सब बातोंको जाननेकी बड़ी उत्कण्ठा है।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! जिस समय कौरव और पाण्डवोंकी सेनाएँ युद्धके लिये (कुरुक्षेत्रके मैदानमें) डटी हुई थीं और अर्जुन युद्धसे अनमने हो रहे थे, उस समय स्वयं भगवान्ने उन्हें गीतामें इस धर्मका उपदेश दिया तथा सृष्टिके आदिमें जब भगवान् नारायणसे ब्रह्माजीका मानसिक जन्म हुआ, उस समय उन्होंने भी अमित तेजस्वी ब्रह्माजीको इस धर्मका उपदेश दे करके कहा—'तुम युगोंके धर्म तथा निष्काम कर्मका विधान करो।' यह आदेश देकर वे अज्ञानान्धकारसे परे अपने परमधामको चले गये। तत्पश्चात् सबको वर देनेवाले लोकपितामह ब्रह्माजीने स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण जगत्की रचना की। सृष्टिके प्रारम्भकालमें जब अत्यन्त उत्तम सत्ययुगका आरम्भ हुआ था। उस समय ब्रह्माजीने दक्षप्रजापतिको उस धर्मका उपदेश किया। दक्षने अपने ज्येष्ठ दौहित्र आदित्यको, जो सविता (विवस्वान्) से बड़े थे, यह धर्म बतलाया। उनसे विवस्वान्ने प्राप्त किया, फिर त्रेतायुगके आरम्भमें विवस्वान्ने मनुको और मनुने लोक कल्याणके लिये अपने पुत्र इक्ष्वाकुको उस धर्मका

उपदेश किया। तदनन्तर, इक्ष्वाकुके उपदेशसे इसका विश्वव्यापी प्रचार हो गया। जब संसारका प्रलय होगा तो फिर यह धर्म भगवान् नारायणमें ही लीन हो जायगा। नारदजीने साक्षात् जगदीश्वर नारायणसे रहस्य और संग्रहसहित इस धर्मको प्राप्त किया था। इस प्रकार यह महान् धर्म सबसे प्रथम तथा सनातन है, इसके तत्त्वको समझना और इसका ठीक-ठीक पालन करना कठिन है तो भी भगवान्के भक्त इसे सदा धारण किये रहते हैं। इस धर्मको जानकर क्रियाद्वारा अच्छी तरह पालन करने तथा अहिंसा-धर्ममें स्थित रहनेसे भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होते हैं। राजन्! मैंने गुरुके प्रसादसे अनन्य भक्तोंके धर्मका वर्णन किया है। जिनका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है, उनके लिये इस धर्मको ठीक-ठीक समझना कठिन है। भगवान्में एकान्त भक्ति रखनेवाले मनुष्य प्रायः दुर्लभ हैं। यदि यह संसार भगवान्के अनन्य भक्त, अहिंसक, आत्मज्ञानी और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितकारी मनुष्योंसे ही भरा रहे तो सर्वत्र सत्ययुग ही छा जाय, कहीं भी सकाम कर्मका अनुष्ठान न हो। इस प्रकार मेरे गुरु भगवान् व्यासने ऋषियोंके निकट श्रीकृष्ण और भीष्मके सुनते हुए धर्मराज युधिष्ठिरसे इस धर्मका उपदेश किया था और व्यासजीको प्राचीन कालमें महातपस्वी नारदजीसे यह धर्म प्राप्त हुआ था। नारायणकी आराधनामें लगे हुए अनन्य भक्त चन्द्रमाके समान गौर वर्णवाले परब्रह्मस्वरूप भगवान् अच्युतको प्राप्त होते हैं।



अतिथिके कहनेसे धर्मारण्यका नागराजके यहाँ जाना और सूर्यमण्डलसे उनके लौटनेपर उनसे उञ्छवृत्तिकी महिमा सुनना

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! आपके बतलाये हुए कल्याणमय मोक्षधर्मोंका मैंने श्रवण किया, अब आप आश्रमधर्मका पालन करनेवाले मनुष्योंके लिये जो सबसे उत्तम धर्म हो, उसका उपदेश कीजिये।

भीष्मजीने कहा—राजन्! इस विषयमें मैं तुम्हें एक प्राचीन कथा सुना रहा हूँ, उसे सुनो। प्राचीन कालमें देवर्षि नारदने इन्द्रको यह कथा सुनायी थी। वह प्रसंग इस प्रकार है—एक बार नारदजी देवराज इन्द्रके यहाँ पधारे। इन्द्रने उन्हें अपने समीप ही बिठाकर उनका बड़ा सत्कार किया। थोड़ी देर बैठकर जब नारदजी विश्राम ले चुके तो उनसे इन्द्रने पूछा 'देवर्षे! इधर आपने कोई आश्चर्यजनक घटना देखी है क्या? आप सिद्ध हैं और तीनों लोकोंमें विचरते रहते हैं, जगत्की कोई ऐसी बात नहीं है जो आपसे छिपी हो, यदि आपने कुछ सुना हो, देखा हो अथवा अनुभव किया हो तो उसे कहिये।'

इन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर नारदजीने कहा—गङ्गाके दक्षिण किनारेपर महापद्मनामक उत्तम नगर है। वहाँ एक ब्राह्मण रहता था। वह एकाग्रचित तथा शान्तभावसे रहनेवाला था। उसका जन्म अत्रिगोत्रमें हुआ था। वेदमें उसकी अच्छी गति थी तथा उसके मनमें किसी प्रकारका संदेह नहीं था। वह सदा धर्मपरायण, क्रोधरहित, नित्य संतुष्ट, जितेन्द्रिय, तप और स्वाध्यायमें संलग्न, सत्यवादी और सत्पुरुषोंके सम्मानका पात्र था। उसके घरमें न्यायसे पैदा किये हुए धनका संग्रह था और उसके सगे-सम्बन्धियोंकी संख्या अधिक थी। वह ब्राह्मणोचित शीलसे सम्पन्न तथा उत्तम आजीविकासे जीवन-निर्वाह करनेवाला था। एक बार उसने वेदोक्त धर्म, शास्त्रोक्त धर्म और शिष्टाचार—इन त्रिविध धर्मोंपर मन-ही-मन विचार करके सोचा कि 'क्या करनेसे मेरा कल्याण होगा, मुझे किसका आश्रय लेना चाहिये?' इसी प्रकार वह प्रतिदिन विचार करता, किंतु किसी निश्चयपर नहीं पहुँच पाता था। एक दिन जब वह इसी सोच-विचारमें पड़ा हुआ कष्ट पा रहा था, उसके यहाँ एक परम धर्मात्मा तथा एकाग्रचित्त ब्राह्मण अतिथिके रूपमें आ पहुँचा। ब्राह्मणने उस अतिथिका विधिवत् सत्कार किया और जब वह सुखपूर्वक बैठकर आराम करने लगा तो उससे पूछा 'विप्रवर! आपकी मीठी बातें सुनकर मेरे मनमें आपके प्रति बड़ी आस्था हो रही है। अब आप मेरे मित्र हो गये हैं, इसलिये आपसे कुछ कहना चाहता हूँ; मेरी बात सुनिये। मैं गृहस्थ-धर्मको अब अपने पुत्रके अधीन करके श्रेष्ठ धर्मका आचरण करना चाहता हूँ, बताइये मेरे लिये कौन-सा मार्ग श्रेयस्कर होगा? मेरी इच्छा है कि अकेला ही रहूँ और आत्माका आश्रय लेकर उसीमें स्थित हो जाऊँ। आजतककी आयु पुत्ररूपी फल पानेके लिये विषय-भोगोंमें ही बीत गयी। अब परलोकमें राहखर्चका काम देनेवाले आध्यात्मिक धनका संग्रह करना चाहता हूँ। मुझे इस संसार-सागरसे पार जानेकी इच्छा तो हुई है, किंतु उसके लिये धर्ममय नौका कैसे प्राप्त हो, यह नहीं जान पड़ता। जब मैं सुनता और देखता हूँ कि

विषयोंके सम्पर्कमें आये हुए सात्त्विक पुरुष भी तरह-तरहके कष्ट पाते हैं तथा समस्त प्रजाके ऊपर यमराजकी ध्वजा फहरा रही है तो भोग प्राप्त होनेपर भी मेरे मनमें उन्हें भोगनेकी रुचि नहीं होती, इसलिये आप ही अपने बुद्धिबलसे उपदेश देकर मुझे धर्मके मार्गमें लगाइये।'

अतिथिने कहा—ब्राह्मणदेव ! इस विषयमें मेरी भी बुद्धि काम नहीं देती, अतः मैं इस प्रश्नका निर्णय नहीं कर सकता। कुछ लोग वानप्रस्थके धर्मोंका पालन करते हैं और कितने ही गार्हस्थ्य-धर्मका आश्रय लिये हुए हैं। कोई राजधर्म, कोई आत्मज्ञान, कोई गुरु-शुश्रूषा और कोई मौन-व्रतको ही अपनाये बैठे हैं। कुछ लोग माता-पिताकी सेवासे, कुछ लोग अहिंसासे, कुछ लोग सत्यभाषणसे और कुछ लोग युद्धमें शत्रुका सामना करते हुए प्राण त्यागनेसे स्वर्गको प्राप्त हुए हैं। कितने ही मनुष्य उञ्छवृत्तिके द्वारा सिद्धि प्राप्त करके स्वर्गगामी हुए हैं। कितने ही बुद्धिमान् पुरुष संतुष्टचित्त और जितेन्द्रिय हो वेदोक्त व्रतका पालन तथा स्वाध्याय करते हुए स्वर्गलोकमें स्थान प्राप्त कर चुके हैं। इस प्रकार संसारमें धर्मके अनेकों दरवाजे खुले हुए हैं। उन्हें देखकर मेरी बुद्धि भी चक्करमें पड़ गयी है तो भी मैं तुम्हें परम्परासे उपदेश करूँगा। मेरे गुरुने इस विषयमें मुझे जो बात बतलायी है, वह बता रहा हूँ; सुनो—पूर्वकल्पमें जहाँ धर्मचक्रकी स्थापना की गयी थी, उस नैमिषारण्यमें गोमतीके तटपर नागपुरनामक एक नगर है। उसमें पद्मनाभ नामक एक धर्मात्मा नाग निवास करते हैं। लोगोंमें उनकी पद्म नामसे प्रसिद्धि है। वे मन, वाणी और क्रियाके द्वारा सम्पूर्ण प्राणियोंको प्रसन्न रखते हैं और कर्म, ज्ञान तथा उपासना—इन तीनों मार्गोंका आश्रय करके रहते हैं। विषमताका बर्ताव करनेवाले पुरुषको वे साम, दान, दण्ड और भेद-नीतिके द्वारा राहपर लाते हैं, समदर्शीकी रक्षा करते हैं और नेत्र आदि इन्द्रियोंको विचारके द्वारा कुमार्गमें जानेसे रोकते हैं। तुम उन्हींके पास जाकर विधिपूर्वक (शिष्यभावसे) अपना अभीष्ट प्रश्न उनके सामने रखो। वे तुम्हें परम धर्मका उपदेश करेंगे। नागराज सबका अतिथि-सत्कार करते हैं, शास्त्रके विद्वान् हैं तथा उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र है। वे अनुपम तथा वाञ्छनीय सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं। स्वभाव तो उनका पानीके समान है। वे सदा स्वाध्यायमें लगे रहते हैं। तप, इन्द्रियसंयम और सदाचार उनकी शोभा बढ़ाते हैं। वे यज्ञका अनुष्ठान करनेवाले, दानियोंके शिरोमणि, क्षमाशील, सद्बर्तावका पालन करनेवाले, सत्यवादी, दोषदृष्टिसे रहित, शीलवान्, जितेन्द्रिय, यज्ञशेष अन्नके भोक्ता, कर्तव्य-अकर्तव्यको जाननेवाले, किसीसे भी वैर न करनेवाले, समस्त प्राणियोंके हितमें लगे रहनेवाले और पवित्र तथा उत्तम कुलमें उत्पन्न हैं।

ब्राह्मणने कहा—विप्रवर ! मुझपर बड़ा भारी बोझ-सा लदा हुआ था, उसे आज आपने उतार दिया। आपकी यह बात सुनकर मुझे बड़ी सान्त्वना मिली है। राह चलनेसे थके हुए बटोहीको शय्या, प्यासेको पानी और भूखेको भोजन मिलनेसे जितना संतोष होता है तथा प्रेमीके दर्शनसे जितना आनन्द मिलता है, उतना ही आनन्द आज आपकी बातोंसे मुझे मिल रहा है। महात्मन् ! आपने मुझे जैसी सलाह दी है वैसा ही करूँगा। अब सूर्य अस्ताचलको जा रहे हैं, आजकी रात आप मेरे साथ यहीं रह जाइये और सुखपूर्वक विश्राम करके भलीभाँति अपनी थकावट दूर कीजिये, फिर सबेरे चले जाइयेगा।

तदनन्तर, वह अतिथि उस ब्राह्मणका आतिथ्य ग्रहण करके रातभर उसके यहाँ रहा। दोनोंमें मोक्ष-धर्मके विषयमें बातें होती रहीं। बात करते-करते उनकी सारी रात बड़े सुखसे बीती। सबेरा होनेपर ब्राह्मणद्वारा सम्मानित हो वह अतिथि चला गया और धर्मात्मा ब्राह्मण अपने घरके लोगोंकी अनुमति लेकर अतिथिके बताये हुए नागराजके घरकी ओर चल दिया। रास्तेमें एक मुनिके आश्रमपर जाकर उसने नागराजका पता पूछा। उस मुनिने उसे जो कुछ बताया उसको ध्यानसे सुनकर उसीके अनुसार चलता हुआ वह ब्राह्मण नागराजके स्थानपर पहुँच गया। उनके दरवाजेपर जाकर ब्राह्मणने आवाज दी। उसे सुनकर धर्मपर प्रेम रखनेवाली नागराजकी पतिव्रता पत्नी ब्राह्मणके सामने आयी और शास्त्रविधिके अनुसार उसका पूजन करके स्वागत करती हुई बोली—'ब्राह्मणदेव ! आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?'

ब्राह्मणने कहा—देवि ! तुमने मधुर वाणीसे मेरा स्वागत और पूजन किया, इससे मेरी थकावट दूर हो गयी। अब मैं महात्मा नागराजका दर्शन करना चाहता हूँ, यही मेरा सबसे बड़ा कार्य और मनोरथ है और इसीके लिये आज मैं उनके इस आश्रमपर आया हूँ।

किंतु उस समय नागराज वहाँ उपस्थित न थे, वे सूर्यका रथ खींचने चले गये थे; इसलिये ब्राह्मणने कहा—'देवि ! जब नागराज यहाँ आ जायँ तो शान्तभावसे उन्हें मेरे आगमनका समाचार बतला देना। मैं उनकी प्रतीक्षा करता हुआ गोमतीके तटपर निवास करूँगा।' यह कहकर वह ब्राह्मण गोमती नदीके किनारे चला गया और वहाँ निराहार रहकर तपस्या करने लगा। उसके भोजन न करनेसे वहाँ

रहनेवाले नागोंको बड़ा दुःख हुआ। तब नागराजके बन्धु-बान्धव, स्त्री और पुत्र सब मिलकर ब्राह्मणके पास गये और बारम्बार उसकी पूजा करके कहने लगे—'तपोधन ! आपको यहाँ आये आज छः दिन हो गये; किंतु अभीतक आप भोजन लानेके लिये हमें आज्ञा नहीं दे रहे हैं। आप हमारे घर अतिथिके रूपमें आये हैं और हम आपकी सेवामें उपस्थित हुए हैं। आपका आतिथ्य करना हमारा कर्तव्य है; क्योंकि हम सब लोग गृहस्थ हैं। ब्राह्मणदेव ! आप क्षुधाकी निवृत्तिके लिये हमारे लाये हुए फल, मूल, साग, दूध अथवा अन्न अवश्य स्वीकार कीजिये। इस वनमें रहकर आपने भोजन छोड़ दिया है, इससे हमारे धर्ममें बाधा आती है। बालकसे लेकर वृद्धतक हम सब लोगोंको इस बातका कष्ट है। हमारे कुलमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो देवता, अतिथि और बन्धुओंको अन्न देनेके पहले ही भोजन कर लेता हो।'

ब्राह्मणने कहा—नागगण ! आपलोगोंकी बातोंसे ही मैं तृप्त हो गया। अब नागराजके आनेमें सिर्फ आठ दिन बाकी हैं। यदि आठ रात बीत जानेपर भी वे नहीं आये तो मैं आपलोगोंके कहनेसे भोजन कर लूँगा। उनके आगमनके लिये ही मैं इस व्रतका पालन कर रहा हूँ, आपलोग इसमें विघ्न न डालें। मेरे लिये संताप करना उचित नहीं है, आप सब लोग अपने स्थानपर लौट जाइये।

ब्राह्मणके इस प्रकार कहनेपर वे नागगण अपने प्रयत्नमें असफल होकर घर लौट गये। तदनन्तर, जब समय पूरा हो गया और नागराजकी ड्यूटी समाप्त हो गयी तो सूर्यदेवकी आज्ञा लेकर वे घर लौट आये। वहाँ उनकी पत्नी पैर धोनेके लिये जल लेकर सेवामें उपस्थित हुई। नागराजने उससे पूछा—'कल्याणी ! मेरे द्वारा बतायी हुई विधिके अनुसार तुम देवता और अतिथिके पूजनमें तत्पर तो रही हो न ? मेरे वियोगके कारण कभी धर्मसे विमुख तो नहीं हुई ?'

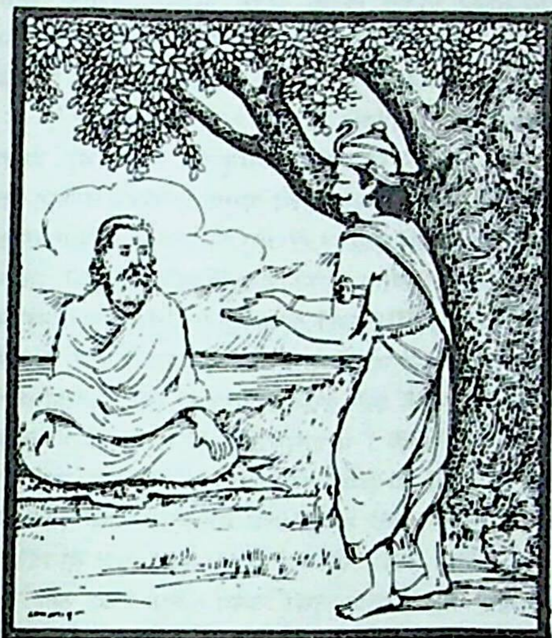
नागपत्नी बोली—नागराज ! पत्नीके लिये पतिकी आज्ञाका पालन करना सबसे बड़ा धर्म बतलाया गया है, आपके उपदेशसे इस बातको मैं अच्छी तरह जानती हूँ। जब आप सदा धर्ममें स्थित रहते हैं तो मैं कैसे सन्मार्गका त्याग करके बुरे रास्तेपर पैर रखूँगी। महाभाग ! देवताओंकी आराधनामें कोई कमी नहीं आयी है। अतिथि-सत्कारके लिये भी मैं सदा सावधान रहती हूँ, आलस्यको कभी पास नहीं फटकने देती; किंतु आज पंद्रह दिनोंसे एक ब्राह्मणदेवता यहाँ पधारे हुए हैं, वे मुझसे अपना काम कुछ नहीं बताते, केवल आपका दर्शन चाहते हैं और उसके ही लिये उत्सुक होकर कठोर व्रतका पालन करते हुए गोमतीके तटपर बैठे हैं। उन्होंने मुझसे सच्ची प्रतिज्ञा करा ली है कि नागराजके आते ही उन्हें मेरे पास भेज देना, अतः अब आपको वहाँ जाना और ब्राह्मणदेवताको दर्शन देना चाहिये।

नागने पूछा—प्रिये ! ब्राह्मणरूपमें तुमने किसका दर्शन किया है ? वे कोई देवता हैं या मनुष्य ? भला मनुष्योंमें कौन मुझे देखनेकी इच्छा कर सकता है और यदि दर्शनकी इच्छा करे भी तो इस तरह हुक्म देकर कौन बुला सकता है ?

नागपत्नी बोली—नाथ ! उनकी सरलता देखकर तो यही जान पड़ता है कि वे कोई देवता नहीं हैं। मुझे तो उनमें एक बहुत बड़ी विशेषता यह जान पड़ी है कि वे आपके बड़े भक्त हैं। जैसे पपीहा पानीके लिये सालभर वर्षाकी बाट देखता रहता है, उसी प्रकार वे आपके दर्शनकी प्रतीक्षा करते हैं। इसलिये आप अपने स्वाभाविक क्रोधका परित्याग करके अब उन्हें दर्शन दीजिये। उनकी आशा भङ्ग करके अपनेको भस्म न कीजिये। जो आशा लगाकर शरणमें आये हुए जीवोंके आँसू नहीं पोंछता, वह राजा हो या राजपुत्र, उसे भ्रूणहत्याका पाप लगता है। मौन रहनेसे ज्ञानरूपी फलकी प्राप्ति होती है, दान देनेसे यश बढ़ता है, सत्य बोलनेसे वाणीकी पटुता और परलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। न्यायपूर्वक धनका उपार्जन करनेसे उत्तम फल मिलता है। अपनी इच्छाके अनुकूल कार्य भी यदि दूसरेके संघर्षसे रहित तथा आत्माका कल्याण करनेवाला हो तो उसको करनेसे कोई नरकमें नहीं पड़ता।

नागने कहा—प्रिये ! जातिदोषके कारण ही मुझे कभी-कभी अभिमान और रोषका शिकार हो जाना पड़ता है; किंतु आज तुमने अपने उपदेशरूप अग्निके द्वारा मेरे संकल्पजनित क्रोधको भस्म कर डाला। मेरी दृष्टिमें क्रोधसे बढ़कर मोहमें डालनेवाला कोई दोष नहीं है और क्रोधके लिये सर्पजाति अधिक बदनाम है। इसलिये आज तुम्हारी बात सुनकर तपस्याके शत्रु और कल्याणसे भ्रष्ट करनेवाले इस क्रोधको मैंने काबूमें कर लिया। तुम-जैसी गुणवती स्त्रीको पाकर मैं अपने सौभाग्यकी विशेष सराहना करता हूँ। अच्छा, अब मैं गोमतीके तटपर, जहाँ वे ब्राह्मण-देवता विराजमान हैं, जाता हूँ। उनकी जो इच्छा होगी उसे पूर्ण करूँगा, वे सर्वथा कृतार्थ होकर अपने घर लौटेंगे।

यह कहकर नागराज मन-ही-मन उस ब्राह्मणके कार्यका विचार करते हुए उसके पास गये और वहाँ पहुँचकर मधुर वाणीमें बोले—'द्विजवर ! मेरे अपराधको क्षमा कीजिये,



मुझपर क्रोध न कीजियेगा। मैं स्नेहवश आपके सामने आकर पूछता हूँ, बताइये किसके लिये, किस प्रयोजनसे यहाँ आये हैं और गोमतीके इस एकान्त तटपर आप किसकी उपासना कर रहे हैं।'

ब्राह्मण बोला—मेरा नाम धर्मारण्य है, मैं नागराज पद्मनाभका दर्शन करनेके लिये यहाँ आया हूँ, उन्हींसे मुझे कुछ काम है। उनके स्वजनोंसे मैंने सुना है कि वे यहाँसे दूर गये हुए हैं। अतः जैसे किसान वर्षाकी राह देखता है, उसी तरह मैं भी उनकी बाट जोह रहा हूँ और उनके कल्याणके लिये वेदका पारायण कर रहा हूँ।

नागने कहा—महाभाग! आपका आचरण बड़ा ही कल्याणमय है। आप बड़े ही सत्पुरुष और सज्जनोंपर दया करनेवाले हैं; क्योंकि दूसरोंपर स्नेहदृष्टि रखते हैं। मैं ही वह नाग हूँ, जिससे आप मिलना चाहते हैं; इच्छानुसार आज्ञा दीजिये, मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ? अपनी स्त्रीसे आपके आगमनका समाचार सुनकर मैं स्वयं ही आपसे मिलने आया हूँ। आपने हम सब लोगोंको अपने गुणोंके मोल खरीद लिया है; क्योंकि आप अपने हितकी बात भूलकर मेरे ही कल्याणका चिन्तन कर रहे हैं।

ब्राह्मण बोला—नागराज! मैं आपहीके दर्शनकी इच्छासे यहाँ आया हूँ और आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। इस समय मेरे मनमें एक नया प्रश्न उठा है, पहले इसका उत्तर दे लीजिये, उसके बाद अपना कार्य निवेदन करूँगा। आप सूर्यके एक पहियेवाले रथको खींचनेके लिये जाया करते हैं, यदि वहाँ कोई आश्चर्यजनक बात आपने देखी हो तो बतानेकी कृपा करें।

नागने कहा—ब्रह्मन्! भगवान् सूर्य अनेकों आश्चर्योंके स्थान हैं, जिनके तेजमें स्वयं परमात्माका निवास है, जिनसे नाना प्रकारके बीज उत्पन्न होते हैं, जिनके ही सहारे चराचर जगत्के साथ समस्त पृथ्वी टिकी हुई है तथा जिनके मण्डलमें आदि-अन्तरहित सनातन पुरुषोत्तम नारायण विराजमान हैं; उनसे बढ़कर आश्चर्यकी वस्तु और क्या हो सकती है? किंतु इन सब आश्चर्योंसे भी बढ़कर एक आश्चर्यकी बात मैं बता रहा हूँ, उसे सुनिये—प्राचीनकालकी बात है, दोपहरके समय भगवान् भास्कर सम्पूर्ण लोकोंको तपा रहे थे। उसी समय दूसरे सूर्यके समान एक तेजस्वी पुरुष दिखायी पड़ा। वह अपने तेजसे सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित करता हुआ मानो आकाशको चीरकर सूर्यकी ओर बढ़ा आ रहा था। पास आनेपर भगवान् सूर्यने उसे भेंटनेके लिये अपनी दोनों भुजाएँ फैला दीं। उसने भी सम्मानके लिये अपना दाहिना हाथ सूर्यकी ओर बढ़ा दिया। तत्पश्चात् आकाशको भेदकर वह सूर्यकी किरणोंके समूहमें समा गया और एक ही क्षणमें तेजराशिके साथ एकाकार होकर सूर्यस्वरूप हो गया। उस समय हमलोगोंके मनमें यह संदेह हुआ कि इन दोनोंमें असली सूर्य कौन थे, जो इस रथपर बैठे हुए थे वे अथवा जो अभी पधारे थे वे? ऐसी शङ्का होनेपर हमने सूर्यसे पूछा—'भगवन्! ये जो द्वितीय सूर्यके समान आकाशको लाँघकर यहाँतक आये हैं, कौन थे?'

सूर्यने कहा—ये उञ्छवृत्तिका पालन करनेवाले एक सिद्ध मुनि थे, जो दिव्य लोकको प्राप्त हुए हैं। फल, मूल, सूखे पत्ते, पानी और हवा—यही इनके भोजनकी सामग्री थी। इन्होंने संहिताके मन्त्रोंसे भगवान् शंकरका स्तवन किया था। ये सदा अपने मनको वशमें रखते थे, किसीका सङ्ग नहीं करते थे और बड़े निःस्पृह थे। खेत आदिमें गिरे हुए अनाजके दाने अथवा बाल बीनकर लाते और उसीसे जीविका चलाते थे; साथ ही समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहते थे। ऐसे लोगोंको जो उत्तम गति प्राप्त होती है, उसे देवता, गन्धर्व, असुर और नाग कोई नहीं पा सकते।

विप्रवर! सूर्यमण्डलमें यही आश्चर्य मैंने देखा था। सिद्धिको प्राप्त हुए पुरुष इसी तरह इच्छानुसार उत्तम गति पाते हैं।

ब्राह्मणने कहा—नागराज! इसमें संदेह नहीं कि यह

एक आश्चर्यजनक वृत्तान्त है, इसे सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। मेरे मनमें जिस बातकी अभिलाषा थी, उसके अनुकूल वचन कहकर आपने मुझे रास्ता दिखा दिया। आपका कल्याण हो, अब मैं यहाँसे जाऊँगा। आप समय-समयपर मेरा स्मरण करते रहें।

नागने कहा—द्विजवर ! आपने अभी अपने मनकी बात तो बतायी ही नहीं, फिर चले कहाँ जा रहे हैं ? जिस कामके लिये यहाँ आये थे, उसे बताइये तो सही। जब वह कार्य सिद्ध हो जाय तो मेरी अनुमति लेकर जाइयेगा। आपका मुझपर अधिक प्रेम है, इसलिये वृक्षके नीचे बैठे हुए राहीकी तरह सिर्फ मुझे देखकर ही चल देना आपके लिये उचित नहीं है। मेरी आपमें भक्ति है और आपकी मुझमें, ऐसी स्थितिमें मेरा यह सारा परिवार आपका है, फिर मेरे यहाँ रहनेमें आपको क्या संकोच है ?

ब्राह्मणने कहा—महाप्राज्ञ ! आपका कहना ठीक है। जो आप हैं सो मैं हूँ, हम दोनोंमें कोई भेद नहीं है। मैं, आप तथा समस्त प्राणी परमात्मामें लीन होनेपर सदा एकरूपताको ही प्राप्त होते हैं। नागराज ! पुण्य-संग्रहके विषयमें मुझे कुछ संदेह हो गया था, किंतु अब वह दूर हो चुका है। अब मैं उञ्छव्रतका पालन करके अपने अभीष्ट अर्थका साधन करूँगा, यही मेरा निश्चय है। आपके द्वारा मेरा कार्य बड़ी उत्तमतासे सम्पन्न हो गया; मैं कृतार्थ हो गया। आपका कल्याण हो, अब मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये।

इस प्रकार नागराजकी अनुमति लेकर वह ब्राह्मण उञ्छव्रतकी दीक्षा लेनेके लिये भृगुवंशी च्यवन ऋषिके पास गया। उन्होंने उसे दीक्षा दे दी और वह उस धर्मानुकूल व्रतका पालन करने लगा। उसने उञ्छवृत्तिकी महिमासे सम्बन्ध रखनेवाली इस कथाको च्यवनमुनिसे भी कहा। च्यवनने राजा जनकके दरबारमें नारदजीसे यह पवित्र कथा सुनायी, नारदजीने इन्द्रको और इन्द्रने ब्राह्मणोंको इस कथाका श्रवण कराया। युधिष्ठिर ! परशुरामजीके साथ जब मेरा भयंकर युद्ध हुआ था, उस समय वसुओंने मुझसे यह कथा कही थी। इस समय जब तुमने मुझसे परम धर्मके सम्बन्धमें प्रश्न किया है तो उसीके उत्तरमें मैंने यह पवित्र कथा तुम्हें सुनायी है। तत्पश्चात् वह ब्राह्मण दूसरे वनमें चला गया और वहाँ उञ्छवृत्ति (बिखरे हुए अनाजके दाने और बाल बीनने) से प्राप्त हुए परिमित अन्नका भोजन करता हुआ यम-नियमका पालन करने लगा।



शान्तिपर्व समाप्त

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

अनुशासनपर्व

युधिष्ठिरको समझानेके लिये भीष्मजीके द्वारा गौतमी ब्राह्मणी, व्याध, सर्प, मृत्यु और कालके संवादका वर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप नररत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर विजयप्राप्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! आपने शान्ति प्राप्त करनेके लिये अनेकों सूक्ष्म उपाय बतलाये, किंतु अभी मेरा हृदय शान्त नहीं हुआ। बाणोंसे भरे हुए आपके शरीर तथा उसके गहरे घावको देखकर मुझे जरा भी चैन नहीं मिलती। बार-बार अपने पापोंकी ही याद आती है। पर्वतसे गिरनेवाले झरनेकी तरह आपके शरीरसे रक्तकी धारा बह रही है—आप खूनसे लथपथ हो रहे हैं और अपनी आँखों आपकी यह दुर्दशा देखकर मैं वर्षाकालके कमलकी तरह गला जाता हूँ। मेरे ही कारण दूसरे-दूसरे राजा भी अपने पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित मारे गये हैं, इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है? ओह! मैंने ही आपके जीवनका अन्त किया है और मेरे ही द्वारा अन्य सुहृदोंका भी वध हुआ है। आपको इस दुःखमयी अवस्थामें जमीनपर पड़े देख मुझे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो कुछ ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे मैं परलोकमें इस पापसे छुटकारा पा सकूँ।

भीष्मजीने कहा—महाभाग! तुम तो सदा परतन्त्र हो (काल, अदृष्ट और ईश्वरके अधीन हो), फिर अपनेको शुभाशुभ कर्मोंका कारण क्यों मानते हो? वास्तवमें आत्माका कर्तृत्वहीन स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म और इन्द्रियोंकी पहुँचके बाहर है। इस विषयमें जानकार लोग गौतमी ब्राह्मणी, व्याध, सर्प, मृत्यु और कालके संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। पूर्वकालमें गौतमी नामवाली एक बूढ़ी ब्राह्मणी थी, जो शान्तिके साधनमें लगी रहती थी। एक दिन उसने देखा, उसके इकलौते बेटेको साँपने डँस लिया और उसकी मृत्यु हो गयी। इतनेहीमें अर्जुनक नामके एक बहेलियेने उस साँपको जालमें बाँध लिया और अमर्षवश उसे गौतमीके पास लाकर कहा—'देवि! तुम्हारे पुत्रके प्राण लेनेवाला नीच सर्प यही है। जल्दी बताओ, मैं किस तरह इसका वध करूँ? इसे जलती हुई आगमें झोंक दूँ या इसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँ। बालकको हत्या करनेवाला यह पापी सर्प अब अधिक कालतक जीवित रहनेके योग्य नहीं है।'

गौतमीने कहा—अर्जुनक! तू अभी नादान है, इसे



छोड़ दे। यह मारनेके योग्य नहीं है। होनहारको कोई टाल नहीं सकता, इस बातको जानकर भी इसकी उपेक्षा करके कौन मनुष्य अपने ऊपर पापका बोझ लादेगा ? इसको मार डालनेसे मेरा पुत्र जीवित नहीं हो सकता और इसको जीवित छोड़ देनेसे भी कोई हानि नहीं होगी; फिर इस जीवित प्राणीकी हत्या करके कौन अगाध नरकमें पड़े ?

व्याधने कहा—देवि ! मैं जानता हूँ, बड़े-बूढ़े लोग किसी भी प्राणीको कष्टमें पड़ा देख इसी तरह दुःखी हो जाते हैं। ये उपदेश तो स्वस्थ पुरुषके लिये हैं। मेरा मन खिन्न हो रहा है, अतः मैं इस नीच सर्पको अवश्य मार डालूँगा। तुम भी इसके मारे जानेपर अपने पुत्रका शोक त्याग देना।

गौतमीने कहा—मुझ-जैसे लोगोंको पुत्र-शोककी पीड़ा नहीं सताती। सज्जन पुरुष सदा धर्ममें ही लगे रहते हैं। इस बालककी मृत्यु इसी तरह होनेवाली थी, इसलिये मैं इस सर्पको मारनेमें असहमत हूँ। तू भी कोमलताका बर्ताव कर और इस सर्पके अपराधको क्षमा करके इसे छोड़ दे।

व्याधने कहा—महाभागे ! शत्रुको मारनेमें ही लाभ है।

गौतमी बोली—अर्जुनक ! शत्रुको कैद करके उसे मार डालनेसे क्या लाभ होता है ? उसको छुटकारा न देनेसे किस कामनाकी सिद्धि हो जाती है ? क्या कारण है कि मैं सर्पके अपराधको क्षमा न करूँ ? तथा किसलिये मोक्षप्राप्तिके प्रयत्नसे वञ्चित रहूँ ?

व्याधने कहा—गौतमी ! इस एक साँपसे बहुतेरे मनुष्योंके जीवनकी रक्षा करना है (क्योंकि यदि यह जीवित रहा तो बहुतोंको काटेगा) । अनेकोंकी जान लेकर एक जीवकी रक्षा करना कदापि उचित नहीं है। धर्मको जाननेवाले पुरुष अपराधीका त्याग कर देते हैं; इसलिये तुम भी इस पापी साँपको मार डालो ।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! व्याधके बार-बार उकसानेपर भी महाभागा गौतमीने जब सर्पको मारनेका विचार नहीं किया तो बन्धनसे पीड़ित होकर धीरे-धीरे साँस लेता हुआ वह साँप बड़ी कठिनाईसे अपनेको सँभालकर मनुष्यकी वाणीमें बोला—'ओ नादान अर्जुनक ! इसमें मेरा क्या दोष है ? मैं तो पराधीन हूँ। मृत्युने मुझे प्रेरित किया है, उसीके कहनेसे मैंने इस बालकको डँसा है, क्रोध करके या अपनी इच्छासे नहीं । यदि इसमें कुछ अपराध है तो वह मेरा नहीं, मृत्युका है।'

व्याधने कहा—ओ सर्प ! यद्यपि तूने दूसरेके अधीन होकर यह पाप किया है तथापि तू भी इसमें कारण तो है ही, इसलिये तेरा भी अपराध है । अतः तुझे भी मार डालना चाहिये।

साँपने कहा—जैसे दण्ड और चक्र आदि मिट्टीका बर्तन बनानेमें कारण होते हुए भी कुम्हारके अधीन हैं, इसलिये स्वतन्त्र नहीं माने जाते, इसी प्रकार मैं भी मृत्युके अधीन हूँ। अतः तूने मुझपर जो अपराध लगाया है, वह ठीक नहीं है।

व्याधने कहा—तू अपराधका कारण या कर्ता न भी हो तो भी बालककी मृत्यु तो तुम्हारे ही कारण हुई है, इसलिये मैं तुझे वध्य समझता हूँ। नीच ! तू बालहत्यारा और क्रूर है। वधके योग्य होकर भी अपनेको बेकसूर साबित करनेके लिये क्यों बहुत बातें बना रहा है ?

साँपने कहा—व्याध ! जैसे यजमानके यहाँ ऋत्विज् लोग अग्निमें आहुति डालते हैं, किंतु उसका फल उन्हें नहीं मिलता। इसी प्रकार इस अपराधका दण्ड मुझे नहीं मिलना चाहिये; क्योंकि वास्तवमें मृत्यु ही अपराधी है।

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! मृत्युकी प्रेरणासे बालकको डँसनेवाला साँप जब इस तरह अपनी सफाई दे रहा था, उसी समय मृत्युने आकर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'सर्प ! कालकी प्रेणासे मैंने तुझे प्रेरित किया था, इसलिये इस बालकके विनाशमें न तो मैं कारण हूँ और न तू ही है। जैसे हवा बादलोंको इधर-उधर उड़ाकर ले जाती है, उसी प्रकार मैं भी कालके वशमें हूँ। सात्त्विक, राजस और तामस जितने भी भाव हैं, वे सब कालकी ही प्रेरणासे प्राणियोंको प्राप्त होते हैं। पृथ्वी अथवा स्वर्गलोकमें जितने भी स्थावर-जङ्गम पदार्थ हैं, सभी कालके अधीन हैं। यह सारा जगत् ही कालका अनुसरण करनेवाला है। संसारमें जितने प्रकारके प्रवृत्ति और निवृत्ति धर्म तथा उनके फल हैं, वे सब कालके ही वशमें हैं। इस बातको जानकर भी तू मुझे दोष क्यों दे रहा है ? यदि ऐसी स्थितिमें भी मुझपर दोषारोपण हो सकता है तो तू भी निर्दोष नहीं है।'

साँपने कहा—मृत्यो ! मैं तो न तुम्हें दोषी मानता हूँ न निर्दोष। मेरा कहना इतना ही है कि तूने मुझे बालकको काटनेके लिये प्रेरित किया था। इस विषयमें कालका भी दोष है या नहीं ? इसकी जाँच मुझे नहीं करनी है और जाँच करनेका मुझे कोई अधिकार भी नहीं है। परंतु मेरे ऊपर जो दोष लगाया गया है, उसका निवारण तो मुझे जैसे भी हो करना ही चाहिये। मेरा मतलब यह नहीं है कि मेरे बदले मृत्युका दोष साबित हो जाय।

तदनन्तर, सर्पने अर्जुनकसे कहा—अब तो तूने मृत्युकी बात सुन ली। मैं सर्वथा निर्दोष हूँ, अतः मुझे बन्धनमें बाँधकर व्यर्थ कष्ट न दे।

व्याधने कहा—सर्प ! मैंने तेरी और मृत्युकी भी बात सुनी, इससे तेरी निर्दोषता नहीं सिद्ध होती। इस बालकके

विनाशमें तुम दोनों ही कारण हो, अतः मैं दोनोंको ही अपराधी मानता हूँ, किसीको भी निरपराध नहीं मानता। सज्जनोंको दुःखमें डालनेवाले इस क्रूर एवं दुरात्मा मृत्युको धिक्कार है !

मृत्युने कहा—व्याध ! हम दोनों कालके अधीन हैं, विवश हैं और उसका हुक्म बजानेवाले हैं। यदि तू अच्छी तरह विचार करेगा तो हम दोषी नहीं प्रतीत होंगे। जगत्में जो कोई काम हो रहा है वह सब कालकी ही प्रेरणासे होता है।

इस प्रकार इनमें बातें हो ही रही थीं तबतक वहाँ काल आ पहुँचा और सर्प, मृत्यु तथा बहेलियेको लक्ष्य करके कहने लगा—'व्याध ! मैं, मृत्यु तथा यह सर्प कोई भी अपराधी नहीं हैं। प्राणियोंकी मृत्युमें हमलोग प्रेरक नहीं हैं। इस बालकने जो कर्म किया था, उसीसे इसकी मृत्यु हुई है, इसके विनाशमें इसका कर्म ही कारण है। जैसे कुम्हार मिट्टीके लोंदेसे जो-जो बर्तन बनाना चाहता है बना लेता है, उसी प्रकार मनुष्य अपने किये हुए कर्मके अनुसार ही नाना प्रकारके फल भोगता है। जिस प्रकार धूप और छाया दोनों सदा एक-दूसरेसे मिले रहते हैं, उसी तरह कर्म और कर्ता भी एक-दूसरेसे सम्बद्ध होते हैं। इस प्रकार विचार करनेसे मैं, तू, मृत्यु, सर्प अथवा यह बूढ़ी ब्राह्मणी कोई भी बालककी मृत्युमें कारण नहीं है। यह शिशु स्वयं ही अपनी मृत्युमें कारण है।'

कालके इस प्रकार कहनेपर गौतमी ब्राह्मणीको यह निश्चय हो गया कि मनुष्यको अपने कर्मके अनुसार ही फल मिलता है, अतः उसने अर्जुनकसे कहा—'व्याध ! सचमुच इस बालकके मरणमें काल, सर्प या मृत्यु कारण नहीं है, यह अपने ही कर्मसे मरा है। तू साँपको छोड़ दे और काल तथा मृत्यु भी अपने-अपने स्थानको चले जायँ।'

भीष्मजी कहते हैं—तदनन्तर काल, मृत्यु तथा सर्प जैसे आये थे वैसे ही चले गये और अर्जुनक तथा गौतमी ब्राह्मणीका भी शोक दूर हो गया। युधिष्ठिर ! इस उपाख्यानको सुनकर तुम शान्ति धारण करो; शोकमें न पड़ो। सब मनुष्य अपने-अपने कर्मोंके अनुसार मिलनेवाले लोकोंमें ही जाते हैं। तुमने या दुर्योधनने कुछ नहीं किया है। कालकी ही यह सारी करतूत है, उसीने समस्त राजाओंका संहार किया है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—भीष्मजीकी यह बात सुनकर महातेजस्वी धर्मज्ञ राजा युधिष्ठिरकी चिन्ता दूर हो गयी तथा वे पुनः धर्मविषयक प्रश्न करने लगे।



अतिथि-सत्कारके विषयमें सुदर्शनका उपाख्यान

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! क्या किसी गृहस्थने धर्मका आश्रय लेकर मृत्युपर विजय पायी है ?

भीष्मजीने कहा—एक गृहस्थने जिस प्रकार धर्मका आश्रय लेकर मृत्युपर विजय प्राप्त की है, उसके विषयमें एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। प्रजापति मनुके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम था इक्ष्वाकु। राजा इक्ष्वाकु सूर्यके समान तेजस्वी थे, उन्होंने सौ पुत्रोंको जन्म दिया। उनमेंसे दसवें पुत्रका नाम दशाश्व था, जो माहिष्मती नगरीमें राज्य करता था। वह बड़ा ही धर्मात्मा और सत्यपराक्रमी था। उसका पुत्र भी बड़ा धर्मात्मा था, वह इस भूमण्डलपर राजा मदिराश्वके नामसे प्रसिद्ध हुआ। मदिराश्वसे द्युतिमान्का जन्म हुआ, जो महान् तेजस्वी था। उसके विश्वविख्यात सुवीरनामक पुत्र हुआ। सुवीरसे दुर्जय और दुर्जयसे दुर्योधनका जन्म हुआ, जो अश्विनीकुमारके समान कान्तिमान् था। वह समस्त राजर्षियोंमें श्रेष्ठ समझा जाता था। उसका पराक्रम इन्द्रके समान था। वह संग्रामसे कभी पीछे पैर नहीं हटाता था। उसके राज्यमें इन्द्र भलीभाँति वर्षा करते थे। उसका सारा राज्य और नगर नाना प्रकारके रत्न, पशु और धन-धान्यसे परिपूर्ण था। उसके राष्ट्रमें कोई दीन, दुःखी, रोगी या दुर्बल मनुष्य नहीं था। राजा दुर्योधन अत्यन्त उदार, मृदुभाषी, किसीके दोष न देखनेवाला, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, कोमल स्वभाववाला और पराक्रमी था। वह कभी अपनी झूठी प्रशंसा नहीं करता था। समय-समयपर यज्ञोंका अनुष्ठान करता, सत्य बोलता, दान देता और किसीका भी अपमान नहीं करता था। वह वेद-वेदाङ्गोंका पारंगत विद्वान् था। एक बार देवनदी नर्मदा उस पुरुषसिंहपर आसक्त होकर उसकी पत्नी बन गयी। दुर्योधनने उसके गर्भसे एक कमललोचना कन्या उत्पन्न की, जिसका नाम था सुदर्शना। वह नामके अनुसार ही रूपमें भी सुदर्शना थी। उसके पहले संसारमें वैसी सुन्दरी स्त्री नहीं उत्पन्न हुई थी। राजकुमारी सुदर्शनापर साक्षात् अग्निदेव आसक्त हो गये। उन्होंने ब्राह्मणका रूप धारण करके राजासे उस कन्याको माँगा। राजाने कन्याके शुल्करूपमें भगवान् अग्निसे यह वरदान माँगा—'अग्निदेव ! आपको इस नगरकी रक्षाके लिये सदा इसके समीप रहना होगा।' अग्निने 'एवमस्तु' कहकर

राजाकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तबसे आजतक माहिष्मती नगरीके समीप अग्निदेवकी उपस्थिति रहती है। दक्षिण दिशाकी विजय करते समय सहदेवने भी उनका दर्शन किया था।

तदनन्तर, राजा दुर्योधनने कन्याको वस्त्राभूषणोंसे विभूषित कर उसे अग्निदेवको समर्पित कर दिया और अग्निने वैदिक विधिके अनुसार सुदर्शनाको अपनी पत्नी बनाया। उसका रूप, स्वभाव, उत्तम कुल, शरीरकी गठन और शोभा देखकर अग्निदेव बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसमें गर्भाधान करनेका विचार किया। कुछ काल पश्चात् उसके गर्भसे एक पुत्र हुआ, जिसका नाम सुदर्शन रखा गया। वह रूपमें पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर था और उसे बचपनमें ही सनातन परब्रह्मका ज्ञान हो गया था। उन दिनों राजा नृगके पितामह ओघवान् इस पृथ्वीपर राज्य करते थे। उनके ओघवती नामवाली एक कन्या थी, जो देवकन्याके समान सुन्दरी थी। उन्होंने स्वयं आकर अपनी कन्या सुदर्शनको पत्नीरूपमें प्रदान कर दी। सुदर्शन ओघवतीके साथ कुरुक्षेत्रमें रहकर गृहस्थ-धर्मका पालन करने लगे। वे बड़े बुद्धिमान् और तेजस्वी थे। उन्होंने यह प्रतिज्ञा कर ली कि मैं गृहस्थ रहकर भी मृत्युको जीत लूँगा। एक दिन सुदर्शनने अपनी पत्नी ओघवतीसे कहा—'कल्याणी! तुम कभी किसी अतिथिकी इच्छाके प्रतिकूल न करना। जिस-जिस वस्तुसे अतिथिको संतोष हो, वह-वह सदा उसे देती रहना। अपना शरीर दान करनेका भी अवसर आ जाय तो मनमें कभी अन्यथा विचार न करना; क्योंकि गृहस्थोंके लिये अतिथि-सेवासे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। यदि तुम्हें मेरा वचन मान्य हो तो तुम सदा इस बातको याद रखना।'

यह सुनकर ओघवतीने दोनों हाथ जोड़ मस्तकमें लगाकर कहा—'प्राणनाथ! आपकी आज्ञासे कोई भी ऐसा कार्य नहीं है, जो मैं न कर सकूँ।' तत्पश्चात् एक दिन अग्निपुत्र सुदर्शन यज्ञकी समिधा लानेके लिये बाहर गये हुए थे, उसी समय उनके घरपर एक ब्राह्मण अतिथिके रूपमें आया और ओघवतीसे कहने लगा—'सुन्दरी! यदि तुम गृहस्थोचित धर्मका आदर करती हो तो मेरा सत्कार करो।' ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर उस यशस्विनी राजकन्याने वेदोक्त विधिसे उनका पूजन किया और आसन तथा पाद्य, अर्घ्य आदि निवेदन करके पूछा—'विप्रवर! आपको किस वस्तुकी आवश्यकता है? आपकी सेवामें क्या भेंट करूँ?' ब्राह्मणने कहा—'कल्याणी! मुझे तुमसे ही काम है, यदि गृहस्थ-धर्मको मान्य समझती हो तो अपना शरीर दान करके मेरा प्रिय कार्य करो।' राजकन्याने दूसरी कोई अभीष्ट वस्तु माँगनेके लिये ब्राह्मणसे बहुत अनुरोध किया, किंतु उसने उसके शरीरके सिवा और कोई वस्तु नहीं माँगी। तब उसे अपने स्वामीकी आज्ञाका स्मरण हो आया और उसने लजाते-लजाते 'हाँ' कहकर उस ब्राह्मणका कथन स्वीकार कर लिया। तदनन्तर, ब्राह्मणने मुसकराकर ओघवतीके साथ घरके भीतर प्रवेश किया। थोड़ी देर बाद अग्निपुत्र सुदर्शन समिधा लेकर लौटा और आश्रमके द्वारपर पहुँचकर अपनी पत्नीको पुकारने लगा। वह बारम्बार पूछता, 'देवि! तुम कहाँ चली गयी?' किंतु वह राजकन्या अपने स्वामीको कोई उत्तर नहीं देती थी। अतिथिरूपमें आये हुए ब्राह्मणने दोनों हाथोंसे उसका स्पर्श किया था, इससे वह अपनेको दूषित मान रही थी। अतः स्वामीसे लज्जित होकर वह चुप रह गयी, कुछ भी बोल न सकी। तब सुदर्शन फिर पुकार-पुकारकर कहने लगा—'मेरी साध्वी स्त्री कहाँ है? वह कहाँ चली गयी? मेरी सेवासे बढ़कर कौन-सा गुरुतर कार्य उसपर आ पड़ा? सदा सरल भावसे रहने और सत्य बोलनेवाली मेरी पतिव्रता पत्नी आज पहलेकी तरह मुसकराती हुई आगे आकर मेरा स्वागत क्यों नहीं करती?'

यह सुनकर आश्रमके भीतर बैठे हुए ब्राह्मणने जवाब दिया—'अग्निकुमार! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैं ब्राह्मण हूँ और तुम्हारे घरपर अतिथिके रूपमें आया हूँ। तुम्हारी स्त्रीने अतिथि-सत्कारके द्वारा मेरी इच्छा पूर्ण करनेका वचन दिया है, तब मैंने इसे ही वरण किया है। इसीके अनुसार यह सुमुखी मेरी सेवामें उपस्थित हुई है, अतः अब तुम्हें जो उचित प्रतीत हो वह करो।' परंतु सुदर्शन मन, वाणी, नेत्र और क्रियासे भी ईर्ष्या और क्रोधका त्याग कर चुके थे। वे हँसते-हँसते बोले—'विप्रवर! आप अपनी इच्छा पूर्ण कीजिये, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता है; क्योंकि घरपर आये हुए अतिथिका पूजन करना गृहस्थके लिये सबसे बड़ा धर्म है। जिस गृहस्थके घरपर आया हुआ अतिथि पूजित होकर जाता है, उसके लिये उससे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं बताया गया है। मेरे प्राण, मेरी स्त्री तथा मेरे पास जो कुछ धन-दौलत है, वह सब अतिथिके लिये निछावर है—ऐसा मैंने व्रत ले रखा है। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज, बुद्धि, आत्मा, मन, काल और दिशाएँ—ये दस देवता प्राणियोंके शरीरमें रहकर सदा ही उनके पाप-पुण्यपर दृष्टि रखते हैं।'

सुदर्शनके इतना कहते ही चारों दिशाओंसे आवाज आयी—'तुम्हारा कथन सत्य है, इसमें झूठका लेश भी नहीं है।' तत्पश्चात् वह ब्राह्मण आश्रमसे बाहर निकला और शिक्षाके अनुकूल स्वरसे तीनों लोकोंको प्रतिध्वनित करता हुआ धर्मात्मा सुदर्शनको सम्बोधित करके बोला—'अग्निकुमार! तुम्हारा



कल्याण हो, मैं धर्म हूँ और तुम्हारे सत्यकी परीक्षा लेनेके लिये यहाँ आया था। तुममें सत्य है, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। तुमने इस मृत्युको, जो सदा तुम्हारा छिद्र ढूँढ़ती हुई पीछे लगी रहती थी, जीत लिया। तुम्हारे धैर्यसे पराजित होकर मृत्यु तुम्हारे अधीन हो गयी है। नरश्रेष्ठ ! तुम्हारी स्त्री बड़ी पतिव्रता और साध्वी है, तीनों लोकोंके भीतर किसी भी पुरुषमें इतनी शक्ति नहीं है कि वह इसकी ओर आँख उठाकर देख भी सके। यह अपने पातिव्रत्यके द्वारा तथा तुम्हारे गुणोंसे सदा सुरक्षित है। कोई भी इसका पराभव नहीं कर सकता। यह जो भी बात अपने मुँहसे निकालेगी, वह सत्य ही होगी, मिथ्या नहीं हो सकती। अपने तपोबलसे युक्त यह ब्रह्मवादिनी स्त्री संसारको पवित्र करनेके लिये अपने आधे शरीरसे ओघवती नामक श्रेष्ठ नदी होगी और आधे शरीरसे तुम्हारी सेवा करती रहेगी। तुम भी इसके साथ अपनी तपस्यासे प्राप्त हुए उन सनातन लोकोंमें गमन करोगे, जहाँसे फिर इस संसारमें लौटना नहीं पड़ता। तुमने मृत्युको जीत लिया है, इसलिये तुम इसी देहसे उन सनातन लोकोंमें जाओगे। अपने पराक्रमसे पञ्चभूतोंको लाँघकर तुम मनके समान वेगवान् हो गये हो। इस गृहस्थधर्मके ही आचरणसे तुमने काम और क्रोधपर विजय पा ली है तथा इस राजकुमारीने भी तुम्हारी सेवासे आसक्ति, राग, आलस्य, मोह और द्रोह आदि दोषोंको जीत लिया है।'

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! तदनन्तर, देवराज इन्द्र भी उत्तम रथ लेकर सुदर्शनसे मिलने आये। इस प्रकार उसने (अतिथि-सत्कारसे) मृत्यु, आत्मा, लोक, पञ्चभूत, बुद्धि, काल, मन, आकाश, काम और क्रोधको भी जीत लिया। इसलिये तुम अपने मनमें यह निश्चय समझो कि गृहस्थ पुरुषके लिये अतिथिसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। यदि अतिथि पूजित होकर मन-ही-मन गृहस्थके कल्याणका चिन्तन करे तो उससे जो फल मिलता है, उसकी सौ यज्ञोंसे भी तुलना नहीं हो सकती, ऐसा मनीषी विद्वानोंका कथन है। जो गृहस्थ सुपात्र और सुशील अतिथिके आनेपर उसका सत्कार नहीं करता, वह अतिथि उस गृहस्थको अपना पाप दे उसका पुण्य लेकर चला जाता है। बेटा ! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार पूर्वकालमें एक गृहस्थने जिस प्रकार मृत्युपर विजय पायी थी, वह उत्तम उपाख्यान मैंने तुमसे कहा। जो विद्वान् प्रतिदिन सुदर्शनके इस चरित्रको कहकर सुनाता है, वह पुण्यलोकोंको प्राप्त होता है। (ये असाधारण पुरुषोंके चरित्र हैं, साधारण मनुष्योंको इनका अनुकरण नहीं करना चाहिये।)



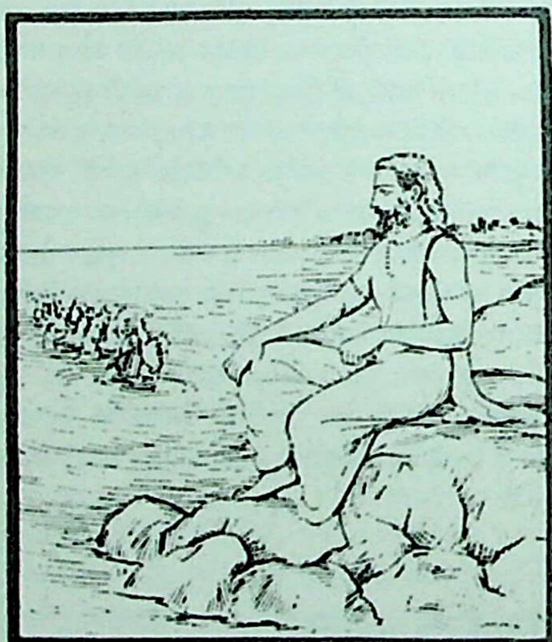
विश्वामित्रके जन्मकी कथा और उनके पुत्रोंके नाम

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! यदि तीनों वर्णके मनुष्योंके लिये ब्राह्मणत्व प्राप्त करना कठिन है तो महात्मा विश्वामित्र क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण कैसे हो गये ? मैं इस बातको यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ। आप बतानेकी कृपा करें।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! पूर्वकालमें विश्वामित्रजी क्षत्रिय होकर भी जिस प्रकार ब्राह्मण तथा ब्रह्मर्षि हुए, उस प्रसंगको तुम यथार्थरूपसे सुनो। भरतवंशमें एक अजमीढ नामक राजा हुए थे, उनके पुत्र महाराज जह्नु थे, जिन्होंने गङ्गाजीको अपनी पुत्री बनाया था। जह्नुका पुत्र सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीपका पुत्र बलाकाश्व था, उससे वल्लभका जन्म हुआ, जो साक्षात् द्वितीय धर्मके समान था। उसके इन्द्रके समान कान्तिमान् एक पुत्र हुआ, जिसका नाम कुशिक था। कुशिकके पुत्र महाराज गाधि हुए। उनके कोई पुत्र नहीं था, इसलिये वे संतानकी इच्छासे वनमें रहकर यज्ञानुष्ठान करने

लगे। वहाँ यज्ञसे उन्हें एक कन्या प्राप्त हुई, जो इस पृथ्वीपर अनुपम सुन्दरी थी। उस समय च्यवनके पुत्र विख्यात तपस्वी ऋचीकमुनिने राजासे उस कन्याके लिये याचना की। तब राजा गाधिने कहा—'भृगुनन्दन ! आप मुझे शुल्करूपमें एक हजार ऐसे घोड़े ला दीजिये, जो चन्द्रमाके समान कान्तिमान् और वायुके समान वेगवान् हों तथा जिनके एक कान श्याम रंगके हों।'

यह सुनकर च्यवनपुत्र ऋचीक मुनिने जलके स्वामी अदितिनन्दन वरुणके पास जाकर कहा—'देवश्रेष्ठ ! मैं आपसे श्यामरंगके एक कानवाले, चन्द्रमाके समान कान्तिमान् तथा वायुके समान वेगवान् एक हजार घोड़ोंकी भिक्षा माँगता हूँ।' वरुणने कहा—'बहुत अच्छा, आपकी जहाँ इच्छा होगी, वहीं इस तरहके घोड़े प्रकट हो जायँगे।' तत्पश्चात् ऋचीकने एक स्थानपर आकर घोड़ोंके लिये चिन्तन किया। उनके चिन्तन करते ही चन्द्रमाके समान कान्तिमान् एक हजार तेजस्वी घोड़े गङ्गाके जलसे प्रकट हो गये। गङ्गाका



वह उत्तम तट कन्नौजके पास ही है। वह स्थान आज भी लोगोंमें अश्वतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। तदनन्तर, ऋचीकने प्रसन्न होकर वे घोड़े राजा गाधिको कन्याके शुल्करूपमें अर्पण कर दिये। यह देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने शापके भयसे अपनी कन्याको वस्त्र और आभूषणोंसे अलंकृत करके उसका ऋचीकमुनिके साथ ब्याह कर दिया। ब्रह्मर्षिने उस कन्याका विधिवत् पाणिग्रहण किया तथा वह कन्या भी उन्हें पतिरूपमें पाकर बहुत प्रसन्न हुई। सत्यवतीके बर्तावसे ऋचीकमुनिको बड़ा संतोष हुआ और उन्होंने उसे वरदान देनेकी इच्छा प्रकट की। राजकन्याने वह सारा समाचार अपनी मातासे कहा। यह सुनकर उसकी माता बोली—'बेटी ! तुम्हारे पतिको मुझपर भी कृपा करनी चाहिये। उनसे कहो, वे मुझे भी पुत्र प्रदान करें; क्योंकि उनकी तपस्या बहुत बड़ी है। वे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं।' माताकी आज्ञा पाकर सत्यवती तुरंत पतिके पास गयी और उसकी कही हुई बात उसने उनसे निवेदन कर दी। उसकी माताका अभिप्राय जानकर ऋचीकने सत्यवतीसे कहा—'प्रिये ! मेरी कृपासे तुम्हारी माताको भी शीघ्र ही एक गुणवान् पुत्रकी प्राप्ति होगी, तुम्हारा प्रेमपूर्ण अनुरोध निष्फल नहीं जायगा, तुम्हारे गर्भसे भी एक गुणवान् पुत्र उत्पन्न होगा, जिससे हमारी वंश-परम्परा चलेगी। तुम्हारी माता ऋतुस्नानके पश्चात् पीपलके वृक्षका आलिङ्गन करे और तुम गूलरके वृक्षका, इससे तुम दोनोंको पुत्रकी प्राप्ति होगी। तुमलोगोंके लिये मैंने ये दो मन्त्रपूत चरु तैयार किये हैं, इनमेंसे एक तो तुम खा लेना और दूसरा अपनी माँको खिला देना। ऐसा करनेसे तुम दोनोंके पुत्र होंगे।' यह सुनकर सत्यवतीको बड़ा हर्ष हुआ। उसने ऋचीकमुनिकी कही हुई सारी बातें अपनी माताको सुना दीं और उन दोनों चरुओंकी भी चर्चा की। तब उसकी माताने कहा—'बेटी ! तुम्हारे स्वामीने मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके जो चरु तुम्हारे लिये दिया है, वह तो मुझे दे दो और मेरा तुम ले लो। इसी प्रकार हमलोग वृक्षोंमें भी अदल-बदल कर लें। मैं तुम्हारी माँ हूँ, यदि मेरी बात माननेके योग्य समझो तो ऐसा ही करो।'

इस प्रकार बातचीत करके उन दोनों माँ-बेटीने ऐसा ही किया और उन दोनोंके गर्भ रह गया। महर्षि ऋचीकने जब गर्भवती सत्यवतीकी ओर दृष्टिपात किया तो उनके मनमें बड़ा खेद हुआ और वे उससे कहने लगे—'शुभे ! जान पड़ता है तुमलोगोंने चरु और वृक्षोंको बदलकर उनका उपयोग किया है। मैंने तुम्हारे चरुमें सम्पूर्ण ब्रह्मतेजका संनिवेश किया था और तुम्हारी माताके चरुमें समस्त क्षत्रियोचित शक्तिकी स्थापना की थी। मैंने यह सोचा था कि तुम्हारे गर्भसे त्रिभुवनमें विख्यात गुणोंवाला ब्राह्मण पुत्र उत्पन्न होगा और तुम्हारी माँ एक विशिष्ट क्षत्रियको जन्म देगी; किंतु तुमलोगोंकी अदला-बदलीके कारण तुम्हारी माताके गर्भसे तो उत्तम ब्राह्मण उत्पन्न होगा और तुम कठोर कर्म करनेवाले क्षत्रियको जन्म दोगी। माताके स्नेहमें पड़कर तुमने यह अच्छा काम नहीं किया।' पतिकी बात सुनकर सत्यवती शोकसे

संतप्त होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। थोड़ी देरमें जब उसे चेत हुआ तो वह स्वामीके चरणोंमें सिर रखकर बोली—'ब्रह्मर्षे! मैं आपकी पत्नी हूँ और आपको प्रसन्न करना चाहती हूँ, मुझपर कृपा कीजिये। मेरा पुत्र क्षत्रिय न हो। मेरे पुत्रका पुत्र भले ही कठोर कर्म करनेवाला हो जाय, परंतु मेरा पुत्र ऐसा न हो, मुझे यही वर दीजिये।' तब उन महातपस्वीने अपनी भार्यासे कहा—'अच्छा, ऐसा ही हो।'

तदनन्तर, सत्यवतीने जमदग्नि नामक उत्तम पुत्र उत्पन्न किया और राजा गाधिकी यशस्विनी पत्नीने ऋचीकमुनिकी कृपासे ब्रह्मवादी विश्वामित्रको जन्म दिया। इसीसे महातपस्वी विश्वामित्र ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए और क्षत्रिय होकर भी उन्होंने ब्राह्मणवंशकी परम्परा चलायी। उनके पुत्र बड़े तपस्वी, ब्रह्मवेत्ता, ब्राह्मणवंशको बढ़ानेवाले और गोत्रके प्रवर्तक थे। मधुच्छन्दा, देवरात, अक्षीण, शकुन्त, बभ्रु, कालपथ, याज्ञवल्क्य, स्थूण, उलूक, यमदूत, सैन्धवायन, वल्गुजङ्घ, गालव, वज्र, सालंकायन, लीलाढ्य, नारद, कूर्चामुख, वादुलि, मुसल, वक्षोग्रीव, आङ्घ्रिक, शिलायूप, शित, शुचि, चक्रक, मारुतन्तव्य, वातघ्न, आश्वलायन, श्यामायन, गार्ग्य, जाबालि, सुश्रुत, कारीषि, संश्रुत्य, पर, पौरव, तन्तु, कपिल, ताडकायन, उपगहन, आसुरायण, मार्दमर्षि, हिरण्याक्ष, जङ्गारि, बाभ्रवायणि, भूति, विभूति, सूत, सुरकृत, अरालि, नाचिक, चाम्पेय, उज्जयन, नवतन्तु, बकनख, सेयन, यति, अम्भोरुह, चारुमत्स्य, शिरीषी, गार्दभि, ऊर्जयोनि, उदापेक्षी और नारदी—ये सब ऋषि विश्वामित्रके पुत्र थे तथा विश्वामित्रजी यद्यपि क्षत्रिय थे तथापि ऋचीकमुनिने उनमें ब्रह्मतेजका आधान किया था। युधिष्ठिर! इस प्रकार मैंने तुमसे सोम, सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी विश्वामित्रजीके जन्मकी कथा यथार्थरूपसे बतलायी है।



स्वामिभक्त एवं दयालु पुरुषकी श्रेष्ठता बतलाते हुए इन्द्र और तोतेके संवादका उल्लेख

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! अब मैं दयालु और भक्त पुरुषोंके गुणोंका वर्णन सुनना चाहता हूँ, कृपा करके बताइये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! इस विषयमें भी तोतेके साथ इन्द्रका जो संवाद हुआ था, वह प्राचीन इतिहास बतला रहा हूँ, सुनो—काशिराजके राज्यकी बात है, एक व्याधा विषमें बुझाया हुआ बाण लेकर गाँवसे निकला और इधर-उधर मृगोंको ढूँढ़ने लगा। एक घने जंगलमें जानेपर उसे थोड़ी ही दूरपर कुछ मृग दिखायी पड़े। उसने उन मृगोंको लक्ष्य करके बाण चलाया; किंतु निशाना चूक जानेसे वह बाण एक महान् वृक्षमें धँस गया और उसका तीक्ष्ण विष सारे वृक्षमें फैल गया, इससे उसके फल और पत्ते झड़ गये और वह वृक्ष धीरे-धीरे सूखने लगा। उसके खोखलेमें बहुत दिनोंसे एक तोता निवास करता था। उसका उस वृक्षके साथ बड़ा प्रेम था, इसलिये वह उसके सूखनेपर भी उसे छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहता था। उसने बाहर निकलना बंद कर दिया और चारा चुगना भी छोड़ दिया; अतः अब उससे बोलातक नहीं जाता था। इस प्रकार वह धर्मात्मा शुक कृतज्ञतावश उस वृक्षके साथ अपने शरीरको भी सुखाने लगा। उसकी उदारता, धैर्य, अलौकिक चेष्टा और दुःख-सुखमें समान वृत्ति देखकर इन्द्रको बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर उन्होंने यह सोचकर मनको समझाया कि 'इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है; क्योंकि सब जगह सब प्राणियोंमें सब तरहकी बातें देखनेमें

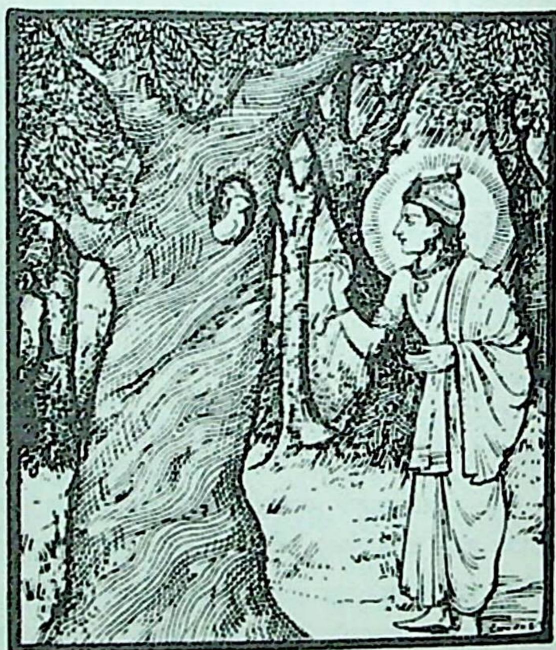


आती है।' तदनन्तर, इन्द्र पृथ्वीपर उतरे और ब्राह्मणका रूप धारण करके उस पक्षीसे बोले—'पक्षियोंमें श्रेष्ठ शुक! मैं एक बात पूछता हूँ, तुम इस वृक्षको छोड़ क्यों नहीं देते?' इन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर तोतेने मस्तक झुका कर प्रणाम

किया और कहा—'देवराज ! आपका स्वागत है। मैंने अपने तपोबलसे आपको पहचान लिया है।' उसकी बात सुनकर इन्द्रने मन-ही-मन कहा—वाह, क्या अद्भुत विज्ञान है ! फिर उन्होंने वृक्षके प्रति उसके प्रेमका कारण पूछते हुए कहा—'शुक ! इस वृक्षपर न पत्ते हैं, न फल और न अब इसके ऊपर कोई पक्षी ही रहता है। जब इतना बड़ा जंगल पड़ा हुआ है, तो तुम इस सूखे वृक्षपर किसलिये रहते हो ? यहाँ और भी तो बहुत-से वृक्ष हैं, जिनके खोखले पत्तोंसे ढके हुए हैं, जो देखनेमें सुन्दर—हरे-भरे हैं तथा जिनके ऊपर खानेके लिये काफी फल-फूल मौजूद हैं। इस वृक्षकी आयु समाप्त हो गयी है, अब इसमें फलने-फूलनेकी शक्ति नहीं रही तथा यह निःसार और श्रीहीन हो चला है। अतः अपनी बुद्धिसे सोच-विचारकर इस ठूठे पेड़को तुम त्याग दो।'

भीष्मजी कहते हैं—धर्मात्मा शुकने इन्द्रकी बात सुनकर लम्बी साँस छोड़ते हुए दीन वाणीमें कहा—'देवराज ! मैंने इसी वृक्षपर जन्म लिया और यहीं रहकर अच्छे-अच्छे गुण सीखे हैं। इसने अपने बालकके समान मेरी रक्षा की और शत्रुओंके आक्रमणसे बचाया है, इसलिये इस वृक्षपर मेरी बड़ी भक्ति है। मैं इसे छोड़कर और कहीं जाना नहीं चाहता, दयारूप धर्मका पालन कर रहा हूँ। ऐसी दशामें आप कृपा करके यह व्यर्थ सलाह क्यों दे रहे हैं ? साधु पुरुषोंके लिये दूसरोंपर दया करना ही सबसे महान् धर्म बतलाया गया है। सहस्राक्ष ! जब देवताओंको धर्मके विषयमें संदेह होता है तो वे उसका समाधान आपसे ही पूछते हैं; इसीलिये आपको देवताओंका गजा बनाया गया है, अतः आप मुझे इस वृक्षको त्यागनेके लिये न कहिये; क्योंकि जब यह हर तरहसे समर्थ था, उस समय तो मैंने इसीके सहारे जीवन धारण किया और आज जब यह शक्तिहीन हो गया तो इसे छोड़कर चल दूँ, यह कैसे हो सकता है ?'

तोतेकी कोमल वाणी सुनकर इन्द्रको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उसकी दयालुतासे संतुष्ट होकर कहा—'तुम मुझसे कोई वर माँगो।' तब शुकने कहा—'यह वृक्ष पहलेहीकी तरह हरा-भरा हो जाय।' उसकी भक्ति और शील-स्वभाव देखकर इन्द्रको और भी प्रसन्नता हुई। उन्होंने तुरंत ही अमृतकी वर्षा करके उस वृक्षको सींच दिया। फिर तो उसमें नये-नये पत्ते, फल और मनोहर शाखाएँ निकल आयीं। तोतेकी सुदृढ़ भक्तिके कारण वह वृक्ष पूर्ववत् श्रीसम्पन्न हो गया तथा वह शुक भी आयु समाप्त होनेपर अपने दयापूर्ण बर्तावके कारण इन्द्रलोकको प्राप्त हुआ। राजन् ! जैसे शुकका सहवास पाकर वृक्षको अपनी खोयी हुई शक्ति प्राप्त हो गयी, उसी प्रकार अपनेमें भक्ति रखनेवाले पुरुषका सहारा



पाकर प्रत्येक मनुष्य अपनी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध कर लेता है।



भाग्यकी अपेक्षा पुरुषार्थकी श्रेष्ठता

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! दैव (भाग्य) और पुरुषार्थमें कौन श्रेष्ठ है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इस विषयमें वसिष्ठ और ब्रह्माजीके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। पूर्वकालमें महर्षि वसिष्ठजीने लोकपितामह ब्रह्माजीसे पूछा—'भगवन् ! प्रारब्ध और मनुष्यके प्रयत्नमें किसकी श्रेष्ठता है ?'

ब्रह्माजीने कहा—बिना बीजके कोई चीज पैदा नहीं होती। बीजसे ही बीज पैदा होता और बीजसे ही फल उत्पन्न होता है। किसान खेतमें जाकर जैसा बीज बो आता है, उसीके अनुसार

उसको फल मिलता है। इसी प्रकार पुण्य या पाप जैसा कर्म किया जाता है वैसा ही फल प्राप्त होता है। जैसे बीज खेतमें बोये बिना फल नहीं दे सकता उसी प्रकार प्रारब्ध भी पुरुषार्थके बिना काम नहीं देता। कर्म करनेवाला मनुष्य अपने भले या बुरे कर्मका फल स्वयं ही भोगता है, यह बात संसारमें प्रत्यक्ष दिखायी देती है। शुभ कर्म करनेसे सुख और पाप करनेसे दुःख मिलता है। पुरुषार्थी मनुष्य सर्वत्र सम्मान पाता है; किंतु जो निकम्मा है, वह घावपर नमक छिड़कनेके समान असह्य दुःख भोगता है। मनुष्य तपस्यासे रूप, सौभाग्य और नाना प्रकारके रत्न प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार कर्मसे सब कुछ मिल सकता है, परंतु भाग्यके भरोसे बैठे रहनेवाले निकम्मेको उससे कुछ नहीं मिलता। इस जगत्में पुरुषार्थ करनेसे स्वर्ग, भोग, प्रतिष्ठा और विद्वत्ता—इन सबकी उपलब्धि होती है। नक्षत्र, नाग, यक्ष, चन्द्रमा, सूर्य और वायु आदि देवता पुरुषार्थ करके ही मनुष्यलोकसे देवलोकको गये हैं। जो लोग उद्योग नहीं करते उन्हें धन, मित्र, ऐश्वर्य अथवा दुर्लभ लक्ष्मीकी भी प्राप्ति नहीं हो सकती। कंजूस, नपुंसक, उद्योगहीन, कामसे जी चुरानेवाले तथा शौर्य एवं तपस्यासे हीन पुरुषको धन नहीं मिलता। जो पुरुषार्थ न करके केवल दैवके भरोसे बैठा रहता है, वह नपुंसकको पति बनानेवाली स्त्रीकी तरह व्यर्थ ही दुःख उठाता है। पुरुषार्थ करनेपर मनुष्यको दैवके अनुसार फल मिल जाता है; किंतु चुपचाप बैठे रहनेपर दैव किसीको कोई फल नहीं दे सकता। देवता भी अपनी पराजयकी आशङ्कासे प्रायः मनुष्यके पारमार्थिक कार्यमें भयंकर विघ्न डाला करते हैं; किंतु पुण्यात्मा पुरुषका ये क्या बिगाड़ सकते हैं? पूर्वकालमें राजा ययाति दैववश स्वर्गसे भ्रष्ट हो गये तो भी उनके नातियोंने अपने पुण्यकर्मसे पुनः उन्हें स्वर्गमें पहुँचा दिया। इसी तरह इलाके पुत्र राजर्षि पुरूरवा भी ब्राह्मणोंके प्रयत्नसे स्वर्गको प्राप्त हुए। जैसे आगकी एक चिनगारी भी हवाके सहारेसे प्रज्वलित होकर महान् रूप धारण करती है, उसी प्रकार दैव भी पुरुषार्थकी सहायतासे बड़ा हो जाता है। जिस प्रकार तेल समाप्त हो जानेपर दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार कर्मके नाश होनेसे दैव भी नष्ट हो जाता है। निकम्मा मनुष्य बहुत बड़े धनका भण्डार, तरह-तरहके भोग और स्त्रियोंको पाकर भी उनका उपभोग नहीं कर सकता। जो दान करनेके कारण निर्धन हो गया है, ऐसे सत्पुरुषके पास उसके सत्कर्मके कारण देवता भी पहुँचते हैं; अतः उसका घर मनुष्यलोककी अपेक्षा श्रेष्ठ देवलोक-सा बन जाता है। किंतु जहाँ दान नहीं होता, वे घर यदि अनन्त समृद्धिसे भरे हों तो भी देवताओंकी दृष्टिमें श्मशानके तुल्य हैं। जगत्में उद्योगहीन मनुष्य फूलता-फलता नहीं दिखायी देता। दैवमें इतनी ताकत नहीं है कि वह कुमार्गमें पड़े हुए पुरुषको सन्मार्गपर पहुँचा दे। जैसे शिष्य गुरुको आगे करके चलता है, उसी तरह दैव पुरुषार्थका ही अनुसरण करता है। संचित किया हुआ पुरुषार्थ ही दैवको जहाँ चाहता है, ले जाता है। वसिष्ठजी! मैंने सदा पुरुषार्थके फलको देखकर ही ये सारी बातें बतायी हैं।



कर्मोंके फलका वर्णन तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी प्रशंसा

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! अब सम्पूर्ण शुभ कर्मोंके फलोंका वर्णन कीजिये।

भीष्मजीने कहा—भारत! तुम जो कुछ पूछ रहे हो, यह ऋषियोंके लिये भी रहस्यका विषय है; किंतु तुम्हें बतला रहा हूँ, सुनो। मरनेके बाद जिस पुरुषको जैसी गति मिलती है, उसका भी वर्णन करता हूँ। मनुष्य जिस अवस्थामें जो शुभ या अशुभ कर्म करता है दूसरा जन्म धारण करनेपर उसी अवस्थामें उस कर्मका फल भोगता है। पाँचों इन्द्रियोंसे किये जानेवाले कर्मका कभी नाश नहीं होता, इसलिये मनुष्यको उचित है कि यदि कोई अतिथि घरपर आ जाय तो उसको प्रसन्न दृष्टिसे देखे, उसकी सेवामें मन लगावे, मीठी बोली बोलकर उसे संतुष्ट करे, जब वह जाने लगे तो उसके पीछे-पीछे कुछ दूरतक जाय और जबतक वह रहे, उसके स्वागत-सत्कारमें लगा रहे—यह पाँच काम करना गृहस्थके लिये पञ्चदक्षिण यज्ञ कहलाता है। जो थके-माँदे अपरिचित पथिकको प्रसन्नतापूर्वक अन्न दान करता है, उसे महान् पुण्य-फलकी प्राप्ति होती है। जो अतिथिकी पूजाके लिये आसन, पैर धोनेको जल, दीपक, अन्न और ठहरनेको स्थान देता है, उसका भी वह अतिथि-सत्कार पञ्चदक्षिण यज्ञ कहलाता है।

जो लोग कोई व्रत धारण करके चबूतरेपर सोते हैं, उन्हें दूसरे जन्ममें उत्तम घर और शय्या आदिकी प्राप्ति होती है। नियमपूर्वक चीर और वल्कल धारण करनेवालोंको वस्त्र तथा आभूषण प्राप्त होते हैं। योग और तपस्यामें प्रवृत्त रहनेवालोंको उत्तम-उत्तम वाहनोंकी प्राप्ति होती है। अग्निकी उपासना करनेवाले राजाकी शक्ति बढ़ती है। जो अपना सिर नीचे करके लटकता है, पानीमें खड़ा रहता है तथा सदा अकेले शयन करता है, उसे मनोवाञ्छित गति प्राप्त होती है। जो रणभूमिमें जाकर वीर-शय्या (मृत्यु) को प्राप्त हो स्वर्गगामी

होता है, उसे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होती है। दानसे धन मिलता है, मौनव्रतका अवलम्बन करनेसे दूसरोंके द्वारा आज्ञा पालन करानेकी शक्ति (वाक्सिद्धि) प्राप्त होती है। तपस्यासे भोग-सामग्री मिलती है और ब्रह्मचर्यके पालनसे आयु बढ़ती है। अहिंसा-धर्मके आचरणसे रूप, ऐश्वर्य और आरोग्य प्राप्त होते हैं। फल, मूल खानेवालेको राज्य और पत्ते चबाकर रहनेवालों-को स्वर्गकी प्राप्ति होती है। उपवास करनेवाले मनुष्यको सर्वत्र सुख मिलता है। शाकाहारीको गोधन और तृण भक्षण करने-वालेको स्वर्गकी उपलब्धि होती है। जो ब्राह्मण सदा जल पीकर रहता, अग्निहोत्र करता और मन्त्र-साधनामें संलग्न रहता है, उसे राज्य मिलता है। निराहार व्रत करनेवाला स्वर्गलोकमें जाता है। जो पुरुष बारह वर्षोंतकके लिये व्रतकी दीक्षा लेकर अन्नका त्याग करता और तीर्थोंमें स्नान करता रहता है, उसे रणभूमिमें प्राण त्यागनेवाले वीरसे भी बढ़कर उत्तम लोककी प्राप्ति होती है। जो सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन करता है, वह तत्काल दुःखसे छूट जाता है तथा जो मानसिक धर्मका आचरण करता है, उसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। जैसे बछड़ा हजारों गौओंके बीचमें भी अपनी माताको ढूँढ़ लेता है, इसी तरह पहलेका किया हुआ कर्म कर्ताको पहचानकर उसका अनुसरण करता है। जिस प्रकार फूल और फल किसीकी प्रेरणा न होनेपर भी अपने समयपर फूलने- फलने लगते हैं, वैसे ही पूर्वजन्मका किया हुआ कर्म भी समयपर फल देता ही है। मनुष्यके जीर्ण (जराग्रस्त) होनेपर उसके केश, दाँत, आँख और कान भी जीर्ण हो जाते हैं, केवल तृष्णा नहीं जीर्ण होती। मनुष्य जिस कार्यसे पिताको प्रसन्न करता है, उससे प्रजापति भी प्रसन्न हो जाते हैं। जिस कर्मसे माताको संतुष्ट करता है, उससे पृथ्वीकी भी पूजा हो जाती है तथा जिससे वह उपाध्यायको तृप्त करता है, उसके द्वारा ब्रह्मकी पूजा सम्पन्न हो जाती है। जिसने इन तीनोंका आदर किया उसके द्वारा मानो सम्पूर्ण धर्मोंका आदर हो गया और जिसने इनका अनादर किया उसकी सम्पूर्ण यज्ञादिक क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। इस प्रकार शुभाशुभ फल-प्राप्ति-के सम्बन्धमें मुनिवर व्यासजीने जो कुछ बतलाया था, वह सब मैंने तुम्हें सुना दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो ?

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! जगत्में पूजनीय कौन हैं ? आप किनको नमस्कार करते हैं ? किनकी स्पृहा (चाह) रखते हैं ? बड़ी-से-बड़ी आपत्तिमें पड़नेपर आप किनको स्मरण करते हैं ? तथा इस लोक और परलोकमें हितकारक कार्य क्या है ? ये सारी बातें मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जिनके कुलमें बच्चेसे लेकर बूढ़ेतक परम्परागत धार्मिक कार्यका भार सँभालते हैं और उसके लिये मनमें कभी दुःख नहीं मानते, ऐसे ही लोगोंकी मैं स्पृहा करता हूँ। जो विनीतभावसे विद्याध्ययन करते, इन्द्रियोंका संयम रखते और मीठी-मीठी बातें करते हैं; जो शास्त्रके विद्वान्, सदाचारी, अक्षर-तत्त्वके ज्ञाता और सत्पुरुष हैं, उनके मुँहसे मेघके समान गम्भीर और कल्याणमयी मनोहर वाणी सुनायी देती है। यदि राजा उन महात्माओंकी बातें सुने तो वे उसे इहलोक और परलोकमें भी सुख पहुँचानेवाली होती हैं। जो प्रतिदिन उनके वचनोंको श्रवण करते हैं, वे विज्ञानगुणसे सम्पन्न होते हैं। ऐसे साधु पुरुषों तथा उनके श्रोताओंकी मुझे सदा चाह बनी रहती है। जो लोग पवित्र भावसे ब्राह्मणोंकी तृप्तिके लिये उन्हें अच्छे ढंगसे बनाये हुए शुद्ध और स्वादिष्ट अन्न परोसते हैं, वे भी मेरे बड़े प्रिय हैं। बेटा ! कुलीन, धर्मात्मा, तपस्वी और विद्वान् ब्राह्मण होनेकी बात कौन कहे, यदि मैं साधारण ब्राह्मण भी होता तो अपनेको धन्य समझता। इस संसारमें तुमसे बढ़कर मेरा प्रिय कोई नहीं है, किंतु ब्राह्मण मुझे तुमसे भी अधिक प्रिय हैं। और तो क्या, अपने पिता, पितामह और सुहृदोंको भी मैंने कभी ब्राह्मणोंसे अधिक प्रिय नहीं समझा। मेरे द्वारा ब्राह्मणोंका कभी किंचित् भी अपकार नहीं होता। मैंने मन, वाणी और कर्मसे ब्राह्मणोंका जो थोड़ा-बहुत उपकार किया है, उसीके प्रभावसे आज बाणशय्यापर पड़े रहनेपर भी मुझे पीड़ा नहीं होती। लोग मुझे ब्राह्मणोंका भक्त कहते हैं, इससे मुझे बड़ा संतोष होता है। ब्राह्मणोंकी सेवा ही सबसे बढ़कर पवित्र कार्य है। ब्राह्मणकी सेवामें रहनेवाले पुरुषको जिन निर्मल और पवित्र लोकोंकी प्राप्ति होती है, उन्हें मैं यहींसे देख रहा हूँ। अब शीघ्र ही मुझे भी अन्तकालतकके लिये उन्हीं लोकोंमें जाना है।

युधिष्ठिर ! जैसे स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवा ही संसारमें सबसे बड़ा धर्म है, पति ही उनका देवता तथा वही परमगति माना गया है, उसी प्रकार क्षत्रियके लिये ब्राह्मणकी सेवा ही परम धर्म तथा ब्राह्मण ही देवता और परमगति है। क्षत्रिय सौ वर्षकी अवस्थाका और ब्राह्मण दस वर्षकी उम्रका हो तो भी उन दोनोंको परस्पर पुत्र और पिताके समान समझना चाहिये। उनमें ब्राह्मण पिता है और क्षत्रिय पुत्र। अतः ब्राह्मणोंकी पुत्रके समान रक्षा, गुरुकी भाँति उपासना तथा अग्निकी भाँति परिचर्या करनी चाहिये। सरल, सत्यवादी और समस्त प्राणियोंके हितमें लगे रहनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी सदा ही सेवा करनी चाहिये। युधिष्ठिर ! तुम्हें हमेशा इस बातकी ओर दृष्टि रखनी चाहिये कि ब्राह्मणके घरमें जीवननिर्वाहके लिये आवश्यक सामग्री मौजूद है या नहीं ?



गीदड़ और वानरकी कथा—ब्राह्मणको प्रतिज्ञा करके न देने और उसका धन लेनेसे दोष

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! जो लोग ब्राह्मणोंको दान देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर मोहवश नहीं देते, उनकी क्या गति होती है ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! जो देनेकी प्रतिज्ञा करके भी नहीं देता, वह जीवनभर जो कुछ होम, दान तथा तप आदि पुण्य कर्म करता है, वह सब नष्ट हो जाता है। धर्मशास्त्रके विद्वानोंका कहना है कि एक हजार श्यामकर्ण घोड़ोंका दान करनेपर प्रतिज्ञाभङ्गके पापसे छुटकारा मिलता है। इस विषयमें सियार और वानरके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका दृष्टान्त दिया जाता है। पूर्वकालकी बात है, एक सियार और वानर एक स्थानपर मिले। ये दोनों पूर्वजन्ममें मनुष्य और परस्पर मित्र थे। दूसरी योनिमें इन्हें सियार और वानरकी योनिमें जन्म लेना पड़ा था। सियारको मरघटमें मुर्दे खाता देख वानरने पूर्वजन्मका स्मरण करके पूछा—'भैया ! तुमने पूर्वजन्ममें कौन-सा भयंकर पाप किया था, जिसके कारण तुम्हें मरघटमें घृणाके योग्य सड़ा हुआ मुर्दा खाना पड़ता है ?' सियारने जवाब दिया—'मैंने ब्राह्मणको दान देनेकी प्रतिज्ञा करके नहीं दिया; इसी पापके कारण मुझे इस पापयोनिमें जन्म लेना पड़ा है। अच्छा, अब तुम बताओ, तुमने ऐसा क्या पाप किया, जिससे वानर हो गये ?' वानर बोला—'मैं सदा ब्राह्मणोंका फल चुराकर खा जाया करता था, इसी पापसे वानर हुआ। अतः विज्ञ पुरुषको कभी ब्राह्मणका धन नहीं लेना चाहिये, उनके साथ कभी विवाद नहीं करना चाहिये और यदि उन्हें दान देनेकी प्रतिज्ञा की गयी हो तो अवश्य दे डालना चाहिये।'



भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! इसलिये किसीको ब्राह्मणके धनका अपहरण नहीं करना चाहिये। यदि ब्राह्मणसे कोई अपराध भी हो जाय तो उसे क्षमा कर देना चाहिये। बालक, दरिद्र अथवा दीन होनेपर भी किसी ब्राह्मणका अपमान नहीं करना चाहिये। पहले तो उन्हें किसी बातकी आशा नहीं देनी चाहिये और यदि दे दी तो पूरी करनी चाहिये; क्योंकि पहलेकी दी हुई आशाके भङ्ग होनेपर ब्राह्मण क्रोधमें भरकर जिसकी ओर देखता है उसे उसी प्रकार भस्म कर डालता है, जैसे घास-फूसको आग। किंतु वही ब्राह्मण जब आशा-पूर्तिसे संतुष्ट होकर आशीर्वाद देता है तो वह दाताके लिये औषधके समान हो जाता है तथा उसके पुत्र-पौत्र, बन्धु, बान्धव, पशु, मन्त्री, नगर और देशका कल्याण करके उन्हें शक्तिशाली बनाता है। इस पृथ्वीपर सहस्रों किरणोंवाले सूर्यदेवके प्रचण्ड तेजकी भाँति ब्राह्मणका तेज भी देखनेमें आता है। इसलिये जो उत्तम योनिमें जन्म लेना चाहता हो, उसे ब्राह्मणको देनेकी प्रतिज्ञा की हुई वस्तु अवश्य दे डालनी चाहिये। इस लोकमें ब्राह्मणको दान देनेसे देवता और पितर तृप्त होते हैं; इसलिये विद्वान् पुरुष ब्राह्मणोंको अवश्य दान दें। ब्राह्मण महान् तीर्थ माने जाते हैं। वे किसी भी समय घरपर आ जायँ तो बिना सत्कार किये उन्हें नहीं जाने देना चाहिये।



शूद्रको विशेष उपदेश देनेसे अनर्थकी प्राप्ति—एक शूद्र और मुनिकी कथा

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! यदि कोई मनुष्य सौहार्दवश किसी नीच जातिके पुरुषको उपदेश दे तो उसे दोष लगेगा या नहीं ? मैं इस बातको यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ; क्योंकि धर्मकी गति बड़ी सूक्ष्म है।

भीष्मजीने कहा—बेटा ! किसी नीच जातिके मनुष्यको उपदेश नहीं देना चाहिये; क्योंकि इससे उपदेश देनेवालेको महान् दोषकी प्राप्ति बतलायी जाती है। इस विषयमें यह दृष्टान्त सुनो, जो दुःखमें पड़े हुए एक नीच जातिके पुरुषको

उपदेश देनेसे सम्बन्ध रखता है। हिमालयके निकट एक बड़ा सुन्दर और पवित्र आश्रम था, जहाँ सिद्ध और चारण विचरा करते थे। उसके आसपासका वन सदा फूलोंसे भरा रहता था। उस आश्रममें व्रत और नियमोंका पालन करनेवाले बहुत-से तपस्वी और तेजस्वी ब्राह्मण निवास करते थे। वहाँ सब ओर वेदमन्त्रोंके उच्चारणकी ध्वनि गूँजती रहती थी। अनेकों बालखिल्य ऋषि तथा संन्यासी उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे। एक दिन वहाँ एक शूद्र बड़े उत्साहसे आया। आश्रमवासी मुनियोंने उसका बड़ा आदर किया; तदनन्तर, उसे तप करनेकी इच्छा हुई, अतः उसने कुलपतिके दोनों चरणोंका स्पर्श करके कहा—'द्विजवर ! मैं आपकी कृपासे धर्मका उपदेश सुनना चाहता हूँ। इसके लिये आप हमें विधिवत् संन्यासकी दीक्षा दें। मैं वर्णोंमें नीच शूद्र हूँ तथा आपकी शरणमें आया हूँ। आप मुझपर प्रसन्न होइये।' कुलपतिने कहा—'बेटा ! शूद्रको संन्यास धारण करनेका अधिकार नहीं है, अतः तुम संन्यासीके वेषमें यहाँ नहीं रह सकते। यदि तुम्हारा यहीं रहनेका विचार हो तो रहो, किंतु उच्च वर्णोंकी सेवा किया करो। सेवासे तुम्हें अत्यन्त उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।'

कुलपतिके ऐसा कहनेपर शूद्र सोचने लगा 'अब मुझे क्या करना चाहिये ? शूद्रके लिये शास्त्रका ऐसा ही विधान हो तो भी मैं तो वही करूँगा जो मेरे मनको प्रिय जान पड़ता है।' यह विचारकर उसने उस आश्रमसे दूर जाकर एक पर्णकुटी बनायी और वहाँ यज्ञके लिये वेदी, रहनेके लिये स्थान और देवालय बनाकर वह नियमपूर्वक रहने लगा। वह प्रतिदिन नियमपूर्वक स्नान करता तथा देवालयमें जाकर देवताकी पूजा, बलि और होम किया करता था। फलाहार करके इन्द्रियोंको काबूमें रखता और उसके पास जो अन्न और फल आदि प्रस्तुत रहते, उनसे आये हुए अतिथियोंका सत्कार करता था। इस नियमका पालन करते हुए उस शूद्र मुनिको बहुत समय बीत गया। एक दिन एक मुनि सत्संगकी दृष्टिसे उस आश्रमपर पधारे। शूद्रने विधिवत् स्वागत-सत्कार करके उन्हें संतुष्ट किया। तबसे वे परम तेजस्वी धर्मात्मा ऋषि उस शूद्रसे मिलनेके लिये वहाँ अनेकों बार आये। एक बार शूद्रने उन तपस्वी मुनिसे कहा—'मुने ! मैं पितरोंका श्राद्ध करना चाहता हूँ, आप कृपा करके इस कार्यको सम्पन्न करा दीजिये।' मुनिने 'बहुत अच्छा' कहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, तब शूद्रने ऋषिको पाद्य निवेदन किया और जंगलसे कुश, आसन, चटाई और अन्न आदि श्राद्धोपयोगी सामान एकत्रित किया। फिर उन तपस्वी मुनिके आदेशानुसार बुद्धिमान् शूद्रने कुश, अर्घ्य और हव्य-कव्य आदि समर्पण करनेकी सम्पूर्ण विधिका पालन किया। इस प्रकार जब श्राद्धका कार्य समाप्त हो गया तो वे मुनि उससे विदा लेकर चले गये और शूद्र धर्ममार्गमें स्थित हो गया।

तदनन्तर, दीर्घकालतक तपस्या करके उस शूद्रने वनमें ही प्राण-त्याग किया और अपने पुण्यके प्रभावसे वह एक राजवंशमें महान् तेजस्वी बालकके रूपमें उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार उन तपस्वी मुनिने भी समयानुसार मृत्युको प्राप्त होकर उसी राजवंशके पुरोहितके घरमें जन्म धारण किया। इस तरह वह शूद्र और वे मुनि एक ही स्थानपर उत्पन्न हुए, साथ-ही-साथ बढ़े और अनेकों विद्याओंमें प्रवीण हुए। ऋषिने वेद, कल्प और ज्योतिषशास्त्रमें पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त किया तथा सांख्यशास्त्रपर भी उनका बड़ा अनुराग था। कुछ दिनों बाद बूढ़े राजाका देहावसान हो गया। तब प्रजाने उस राजकुमारको राजतिलक दे दिया। राजा होनेपर उसने पुरोहितके घरमें उत्पन्न हुए ऋषिको ही अपना पुरोहित बनाया। उन्हें हर काममें आगे रखकर वह धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करता हुआ बड़े सुखसे रहने लगा। पुरोहितजी प्रतिदिन राजाके सामने जब-जब पुण्याहवाचन तथा कोई धार्मिक कार्य करते तो राजा उन्हें देखकर मुसकराता या ठठाकर हँस पड़ता था। पुरोहितने राजाके इस व्यवहारको अनेकों बार लक्ष्य किया। जब उसे बराबर अपना उपहास करता पाया तो उनके मनमें बड़ा खेद हुआ। एक दिन उन्होंने एकान्तमें राजासे मिलकर कहा—'राजन् ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हों तो मैं एक वर माँगना चाहता हूँ। किंतु पहले आप प्रतिज्ञा करें कि मैं जो कुछ पूछूँगा, उसका सही-सही उत्तर देंगे।' राजाने कहा—'हाँ-हाँ, यदि जानता होऊँगा तो अवश्य उत्तर दूँगा।'

तब पुरोहितने कहा—'प्रतिदिन देखता हूँ जब पुण्याहवाचन या और कोई धार्मिक कृत्य अथवा शान्ति होम आदि कार्योंमें मैं प्रवृत्त होता हूँ, तब आप मेरी ओर देखकर हँसा करते हैं, इसका क्या कारण है ? आप यों ही नहीं हँसते, इसका जरूर कोई-न-कोई कारण होगा, उसे ठीक-ठीक बतलाइये। मैं सुननेके लिये बहुत उत्सुक हूँ।' राजाने कहा—'विप्रवर ! मैं पूर्वजन्ममें शूद्र था और आप महान् तपस्वी ब्राह्मण थे। उस समय आपने मुझपर कृपा करके बड़े प्रेमसे मुझे श्राद्धविषयक उपदेश किया था। आसन, कुश और हव्य-कव्यकी विधि बतायी थी। उसी

कर्मदोषके कारण आप इस जन्ममें पुरोहित हुए हैं और मुझे राजा होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मेरे लाभके लिये उपदेश करनेका फल आपको इस रूपमें मिला ! यह सोचकर मुझे हँसी आती है। आपका अपमान करनेके लिये मैं उपहास नहीं करता; क्योंकि आप मेरे गुरु हैं। आपको जो अपनी तपस्याके विपरीत फल भोगना पड़ा, उसको याद करके मुझे खेद और संताप हुआ करता है। मुझे आपके पूर्वजन्मकी स्मृति बनी हुई है, इसीसे आपकी ओर देखकर हँसता था। आपकी उतनी बड़ी तपस्या केवल मुझे उपदेश देनेके कारण नष्ट हो गयी, इसलिये अब पुरोहितका काम छोड़कर ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिससे अगले जन्ममें आपको इससे भी नीच योनिमें न जाना पड़े।'

भीष्मजी कहते हैं—इस प्रकार राजाने जब पुरोहितको जानेकी आज्ञा दी तो उन्होंने सारा धन और जमीन-जायदाद ब्राह्मणोंको दान कर दी तथा विद्वान् ब्राह्मणोंके बताये अनुसार कठोर व्रतका पालन करते हुए अनेकों तीर्थोंमें स्नान किया और ब्राह्मणोंको गौ तथा अन्य प्रकारके दान देकर अपने अन्तःकरणको पवित्र कर लिया। तत्पश्चात् मनको वशमें करके वे अपने पूर्वजन्मके ही आश्रमपर गये और वहाँ कठोर तपस्या करने लगे। तपके प्रभावसे उन्होंने परमसिद्धि प्राप्त कर ली और उस आश्रमके रहनेवाले अन्यान्य ऋषियोंके भी वे सम्मानभाजन बन गये। युधिष्ठिर ! यद्यपि वे पूर्वजन्ममें महान् ऋषि थे तो भी शूद्रको उपदेश देनेके कारण बड़े कष्टमें पड़ गये, अतः ब्राह्मणको किसी नीच वर्णके मनुष्यके प्रति उपदेश नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन वर्ण द्विज कहलाते हैं, इनके बीचमें उपदेश करनेसे ब्राह्मण दोषका भागी नहीं होता। अतः धर्म-पालनकी इच्छा रखनेवाले विद्वान् पुरुषको खूब सोच-समझकर उपदेश करना चाहिये। रोजगारकी दृष्टिसे उपदेश देनेवाला मनुष्य अपने ही धर्मकी हानि करता है। जब कोई प्रश्न करे तो अच्छी तरह सोच-विचारकर एक सिद्धान्त स्थिर करके उसका उत्तर देना चाहिये तथा उपदेश ऐसा करना चाहिये, जिससे धर्मकी पुष्टि हो। राजन् ! उपदेशके सम्बन्धमें ये सारी बातें मैंने तुम्हें बतायीं। नीचको उपदेश देनेसे महान् क्लेशका सामना करना पड़ता है, इसलिये उसे उपदेश देना उचित नहीं है।



युधिष्ठिरके विविध प्रश्नोंका उत्तर तथा दानके लिये उत्तम पात्रका लक्षण

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! लोकयात्राका भलीभाँति निर्वाह करनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको क्या करना चाहिये ? कैसा स्वभाव बनाकर लोकमें जीवन-यापन करना चाहिये ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! शरीरसे तीन, वाणीसे चार और मनसे तीन—इस तरह कुल दस प्रकारके कर्मोंका त्याग करना चाहिये। हिंसा, चोरी और परस्त्रीगमन—ये तीन शरीरसे होनेवाले पाप हैं, इनका सर्वथा परित्याग करना उचित है। व्यर्थ बकवाद करना, निष्ठुर वचन कहना, चुगली खाना और झूठ बोलना—ये चार वाणीद्वारा होनेवाले पाप हैं। इन्हें न कभी जबानपर लाना चाहिये और न मनमें ही सोचना चाहिये। दूसरोंका धन हड़पनेकी इच्छा न करना, सब प्राणियोंपर प्रेम रखना और कर्मोंका फल अवश्य मिलता है—इस बातपर विश्वास करना—ये तीन मनसे आचरण करनेयोग्य कार्य हैं। इन्हें सदा करना चाहिये और इनके विपरीत दूसरोंके धनका लालच करना, सम्पूर्ण प्राणियोंसे वैर रखना और कर्मोंके फलपर विश्वास न करना—ये तीन मानसिक पाप हैं, इनसे सदा बचे रहना चाहिये। इसलिये मनुष्यका कर्तव्य है कि वह मन, वाणी या शरीरसे कभी अशुभ कर्म न करे; क्योंकि वह शुभ या अशुभ जैसा कर्म करता है, उसका फल उसे भोगना पड़ता है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! विद्वानोंका कहना है कि देवकार्यमें ब्राह्मणकी परीक्षा न करे, किंतु श्राद्धमें अवश्य उसकी परीक्षा करे। इसका क्या कारण है ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! यज्ञ-होमादि देवकार्यकी सिद्धि ब्राह्मणके अधीन नहीं, देवताके अधीन है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यजमान लोग देवताओंकी कृपासे ही यज्ञ करते हैं। किंतु श्राद्ध-कर्मकी सिद्धि ब्राह्मणके ही अधीन है; अतः उसमें सदा वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको ही निमन्त्रित करना चाहिये, यह बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीने बहुत पहलेसे ही बता रखा है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! जो अपरिचित विद्वान्, सम्बन्धी, तपस्वी अथवा यज्ञ करनेवाले हों, उन्हींको क्यों दानका पात्र मानना चाहिये ?

भीष्मजीने कहा—इस विषयमें पृथ्वी, काश्यप, अग्नि और मार्कण्डेयमुनि—इन चार तेजस्वियोंका मत सुनो।

पृथ्वी कहती है—जिस प्रकार महासागरमें फेंका हुआ ढेला तुरंत गलकर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह—इन तीन वृत्तियोंसे जीविका चलानेवाले ब्राह्मणमें सारे दुष्कर्मोंका लय हो जाता है।

काश्यप कहते हैं—जो ब्राह्मण शीलसे रहित है, उसे छहों अङ्गोंसहित वेद, सांख्य और पुराणका ज्ञान तथा उत्तम कुलमें जन्म—ये सब मिलकर भी उत्तम गति नहीं प्रदान कर सकते।

अग्नि कहते हैं—जो ब्राह्मण अध्ययन करके अपनेको बहुत बड़ा पण्डित मानता और अपनी विद्वत्तापर गर्व करने लगता है तथा जो अपनी विद्याके बलसे दूसरोंके यशका नाश करता है, वह धर्मसे भ्रष्ट होकर सत्यका पालन नहीं करता, अतः उसे नाशवान् लोकोंकी प्राप्ति होती है।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—यदि तराजूके एक पलड़ेमें एक हजार अश्वमेध-यज्ञको और दूसरेमें सत्यको रखकर तौला जाय तो भी न जाने वे सारे अश्वमेध-यज्ञ सत्यके आधेके बराबर भी होंगे या नहीं ?

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! इस प्रकार अपार तेजवाले पृथ्वी, काश्यप, अग्नि और मार्कण्डेयजी ब्राह्मणोंके विषयमें अपना-अपना मत प्रकट करके चले गये।

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! यदि ब्रह्मचारी ब्राह्मण श्राद्धमें भोजन करते हैं तो (उनका व्रत नष्ट हो जानेसे) उन्हें दिया हुआ दान कैसे सफल हो सकता है ?

भीष्मजीने कहा—राजन् ! जिन्हें गुरुने नियत वर्षोंतक ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करनेका आदेश दे रखा है, वे आदिष्टी कहलाते हैं। ऐसे वेदके पारंगत आदिष्टी ब्राह्मण यदि श्राद्धमें भोजन करते हैं तो उनका अपना ही व्रत नष्ट होता है (इससे दाताका दान नहीं दूषित होता) *।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! विद्वानोंका कहना है कि धर्मके साधन और फल अनेक प्रकारके हैं; इसमें क्या कारण है, यह बतानेकी कृपा करें।

भीष्मजीने कहा—बेटा ! अहिंसा, सत्य, अक्रोध, कोमलता, इन्द्रियसंयम और सरलता—ये धर्मके निश्चित लक्षण हैं। जो लोग इस पृथ्वीपर घूम-घूमकर धर्मकी प्रशंसा तो करते हैं, किंतु स्वयं उसका आचरण नहीं करते, वे पाखण्डी हैं। ऐसे लोगोंको जो सोना, रत्न, गौ और अश्व आदि वस्तुएँ दान करता है, वह नरकमें पड़कर दस वर्षोंतक विष्ठा खाता है। इतना ही नहीं, वह गाय-भैंसका मांस खानेवाले चाण्डालों, चमारों, हत्यारों और राग एवं मोहवश दूसरोंके गुप्त रहस्यको प्रकट करनेवाले पापियोंकी विष्ठाका कीड़ा होता है। जो मूर्ख बलिवैश्वदेवके समय आये हुए ब्रह्मचारी ब्राह्मणको अन्न नहीं देते, वे पापमय लोकोंमें जाते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! उत्तम ब्रह्मचर्य क्या है ? धर्मका सबसे श्रेष्ठ लक्षण क्या है ? तथा सर्वोत्तम पवित्रता किसे कहते हैं ? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

भीष्मजीने कहा—तात ! मांस और मदिराका त्याग ब्रह्मचर्यसे भी श्रेष्ठ है (अर्थात् यही उत्तम ब्रह्मचर्य है)। वेदोक्त मर्यादामें स्थित रहना सबसे श्रेष्ठ धर्म है तथा मन और इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे हटाये रखना ही सर्वोत्तम पवित्रता है।

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! मनुष्यको किस समय धार्मिक कृत्य करना चाहिये ? कब अर्थोपार्जनपर ध्यान देना चाहिये ? तथा किस समय सुख-भोगोंमें प्रवृत्त होना चाहिये ?

भीष्मजीने कहा—राजन् ! पूर्वाह्णमें अर्थोपार्जनपर ध्यान देना चाहिये, तत्पश्चात् धर्मका सेवन करना चाहिये और सबके अन्तमें सुख-भोगमें प्रवृत्त होना चाहिये। किसी

---

* श्राद्धमें भोजन करानेयोग्य ब्राह्मणोंके विषयमें स्मृतियोंमें इस प्रकार उल्लेख मिलता है—'कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाः पञ्चाग्निब्रह्मचारिणः। पितृमातृपराश्चैव ब्राह्मणाः श्राद्धसम्पदः'॥ तथा—'व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत्'॥ तात्पर्य यह कि 'क्रियानिष्ठ, तपस्वी, पञ्चाग्निका सेवन करनेवाले, ब्रह्मचारी तथा पिता-माताके भक्त—ये पाँच प्रकारके ब्राह्मण श्राद्धकी सम्पत्ति हैं—इन्हें भोजन करानेसे श्राद्धकर्मका पूर्णतया सम्पादन होता है।' तथा 'अपनी कन्याका बेटा ब्रह्मचारी हो तो भी यत्नपूर्वक उसे श्राद्धमें भोजन कराना चाहिये।' ऐसा करनेसे श्राद्धकर्ता पुण्यका भागी होता है। केवल श्राद्धमें ही ऐसी छूट दी गयी है। श्राद्धके अतिरिक्त और किसी कर्ममें ब्रह्मचारीको लोभ आदि दिखाकर जो उसके व्रतको भङ्ग करता है, उसे दोषका भागी होना पड़ता है और अपने किये हुए दानका भी पूरा-पूरा फल नहीं मिलता। इसीलिये शास्त्रमें लिखा है कि 'मनसा पात्रमुद्दिश्य जलमध्ये जलं क्षिपेत्। दाता तत्फलमाप्नोति प्रतिग्राही न दोषभाक्॥' अर्थात् 'यदि किसी सुपात्र (ब्रह्मचारी आदि) को दान देना हो तो उसका मनमें ध्यान करे और उसे दान देनेके उद्देश्यसे हाथमें संकल्पका जल लेकर उसको जलमें ही छोड़ दे। इससे दाताको दानका फल मिल जाता है और दान लेनेवालेको दोषका भागी नहीं होना पड़ता।' यह बात सत्पात्रका आदर करनेके लिये बतायी गयी है। —नीलकण्ठीके आधारपर

एकमें ही आसक्त नहीं होना चाहिये। ब्राह्मणों और गुरुजनोंका आदर-सत्कार करे, सब प्राणियोंके अनुकूल रहे, नम्रताका बर्ताव करे और सबसे मीठे वचन बोले। न्यायालयमें झूठ बोलना, राजासे किसीकी चुगली करना और गुरुके साथ कपटपूर्ण बर्ताव करना—ये तीन ब्रह्महत्याके समान पाप हैं। राजापर प्रहार न करे, गायको न मारे। जो इसके विपरीत करता है, उसे भ्रूण-हत्याका पाप लगता है। वेदोंके स्वाध्याय और अग्निहोत्रका त्याग न करे तथा ब्राह्मणकी निन्दासे दूर रहे; क्योंकि ये सब दोष ब्रह्महत्याके समान हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—कैसे ब्राह्मणको सत्पुरुष समझना चाहिये ? और किनको दान देनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है ?

भीष्मजीने कहा—जो क्रोधरहित, धर्मपरायण, सत्यनिष्ठ और इन्द्रियसंयममें लगे रहते हैं, ऐसे ब्राह्मणोंको साधु पुरुष समझना चाहिये और उन्हींको दान देनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है। जिनमें अभिमानका नाम नहीं है, जो सब कुछ सह लेते हैं, जिनका विचार दृढ़ है, जो जितेन्द्रिय, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितकारी तथा सबके साथ मित्रताका भाव रखनेवाले हैं, उनको दिया हुआ दान महान् फल देनेवाला है। जो निर्लोभ, पवित्र, विद्वान्, संकोची, सत्यवादी और अपने कर्तव्यका पालन करनेवाले हैं, उनको दान देनेसे भी महान् फलकी प्राप्ति होती है। जो ब्राह्मण अङ्गोंसहित चारों वेदोंका अध्ययन करता और ब्राह्मणोचित्त छः कर्मों (अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन और दान-प्रतिग्रह) में प्रवृत्त रहता है, उसे ऋषिलोग दानका उत्तम पात्र मानते हैं। ऊपर बताये हुए गुणोंसे युक्त ब्राह्मणोंको दिया हुआ दान महान् फल देनेवाला होता है। गुणवान् पुरुषको दान देनेसे दाताको हजारगुना फल मिलता है। यदि उत्तम बुद्धि, शास्त्रकी विद्वत्ता, सदाचार और सुशीलता आदि उत्तम गुणोंसे सम्पन्न एक ब्राह्मण भी दान स्वीकार कर ले तो वह दाताके सम्पूर्ण कुलका उद्धार कर देता है; अतः ऐसे गुणवान् पुरुषको गौ, घोड़ा, अन्न, धन तथा दूसरे-दूसरे पदार्थ दान करने चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्यको मरनेके बाद पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता। एक भी उत्तम ब्राह्मण सारे कुलको तार सकता है, यदि वह उपर्युक्त गुणोंसे युक्त हो तब तो कहना ही क्या है ? अतः सुपात्रकी खोज करनी चाहिये। सत्पुरुषोंद्वारा सम्मानित गुणवान् ब्राह्मण यदि कहीं दूर भी सुनायी पड़े तो उसको वहाँसे अपने यहाँ बुलाना चाहिये तथा उसका अच्छी तरह पूजन और सत्कार करना चाहिये।



त्याज्य अन्न, श्राद्धमें निमन्त्रण देनेयोग्य ब्राह्मण, दानपात्र तथा नरक एवं स्वर्ग देनेवाले कर्मोंका विवेचन

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! देवता और ऋषियोंने श्राद्धके समय, देवयज्ञमें तथा पितृयज्ञमें जिस-जिस कार्यका विधान किया है, वह मैं आपके मुँहसे सुनना चाहता हूँ।

भीष्मजीने कहा—बेटा ! मनुष्यको चाहिये कि स्नान आदिसे पवित्र होकर माङ्गलिक कार्य सम्पन्न करके बड़े यत्नके साथ पूर्वाह्णमें देवसम्बन्धी कार्य, अपराह्णमें पितृकार्य और मध्याह्नमें मनुष्योंके कार्य (अतिथि-सत्कार आदि) करे। असमयका दान राक्षसोंका भाग माना गया है। जिस भोज्यपदार्थको किसीने लाँघ दिया हो, चाट लिया हो, जो लड़ाई-झगड़ा करके तैयार किया गया हो अथवा जिसपर रजस्वला स्त्रीकी दृष्टि पड़ी हो, वह भी राक्षसोंका ही भाग है। जिसके लिये लोगोंमें ढिंढोरा पीटा गया हो, जिसे व्रतहीन मनुष्यने भोजन किया हो, जिस अन्नको कुत्तेने छू लिया हो अथवा जिसपर उसकी दृष्टि पड़ी हो, जिसमें केश या कीड़े गिर गये हों, जो छींक या आँसूसे दूषित हो गया हो अथवा जो तिरस्कारपूर्वक दिया गया हो, वह अन्न भी राक्षसोंका ही भाग है। मन्त्रज्ञानसे रहित, शस्त्रधारी तथा दुराचारी पुरुषोंका खाया हुआ, दूसरोंका जूँठा किया हुआ और देवता, पितर, अतिथि एवं बालक आदिको दिये बिना ही अपने उपभोगमें लाया हुआ जो अन्न है, उसे भी राक्षसीभोजन ही समझना चाहिये। राजन् ! मन्त्र और विधिसे हीन श्राद्धका अन्न, घीकी आहुति दिये बिना भोजनके लिये सामने रखा हुआ अन्न तथा जिसमेंसे पहले दुराचारी मनुष्योंको जिमा दिया गया हो वह अन्न भी राक्षसोंका ही भाग माना गया है। इस प्रकार जो भाग राक्षसोंको प्राप्त होते हैं, उनका वर्णन किया गया।

अब दानके योग्य ब्राह्मणकी परीक्षा करनेके विषयमें कुछ कहता हूँ, उसे सुनो। जो ब्राह्मण पतित, जड़ या

उन्मत्त हो गये हों, वे देवकार्य या पितृकार्यमें निमन्त्रण पानेके अधिकारी नहीं हैं। जिसके बदनमें सफेद दाग हों, जो कोढ़ी, नपुंसक, राजयक्ष्मा (तपेदिक) और मृगीका रोगी तथा अंधा हो, उसे भी श्राद्धमें नहीं बुलाना चाहिये। वैद्य, पुजारी, पाखण्डी, सोम-रस बेचनेवाले, गाने-बजाने और नाचनेवाले, खेल-कूदकर तमाशा दिखानेवाले, बकवादी, पहलवान, शूद्रोंका यज्ञ करानेवाले, शूद्रोंको पढ़ाने तथा शिष्य बनानेवाले ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रण देनेयोग्य नहीं हैं। वेतन लेकर वेद पढ़ानेवाले और वृत्ति लेकर वेद पढ़नेवाले ब्राह्मण भी श्राद्धके योग्य नहीं हैं; क्योंकि वे वेदको बेचनेवाले हैं। जो पहले समाजका अगुआ रहा हो और पीछे उसने शूद्र जातिकी स्त्रीसे व्याह कर लिया हो, वह ब्राह्मण सम्पूर्ण विद्याओंका ज्ञाता होनेपर भी श्राद्धमें बुलाने योग्य नहीं है। अग्निहोत्र न करनेवाले, मुर्दा ढोनेवाले, चोरी करनेवाले, पतित, अपरिचित, गाँवके मुखिया तथा पुत्रिकाधर्मके[१] अनुसार नानाके घरमें रहनेवाले ब्राह्मण भी श्राद्धमें भोजन करनेके अधिकारी नहीं हैं। जो ब्राह्मण कर्ज या ब्याज लेकर तथा प्राणियोंको बेंचकर जीविका चलाता हो, जो स्त्रीके अधीन रहता हो, वेश्याका पति हो और संध्यावन्दन न करता हो, उसे भी श्राद्धमें निमन्त्रण नहीं देना चाहिये।

राजन्! देवयज्ञ और श्राद्धमें वर्जित ब्राह्मणका उल्लेख हो चुका। अब दान देने और लेनेवाले ऐसे पुरुषोंका वर्णन करता हूँ जो श्राद्धमें निषिद्ध होनेपर भी किसी विशेष गुणके कारण अनुग्रहपूर्वक ग्राह्य माने गये हैं; उनके विषयमें सुनो। जो ब्राह्मण खेतीसे जीविका चलाते हुए भी व्रतका पालन करनेवाले, सद्गुणसम्पन्न, क्रियानिष्ठ और गायत्रीमन्त्रके ज्ञाता हों, उन्हें श्राद्धमें निमन्त्रण दिया जा सकता है। जो युद्धमें क्षात्र-धर्मका पालन करता हुआ भी कुलीन हो, अग्निहोत्र करता हो, एक गाँवका रहनेवाला हो, चोरी न करता हो तथा अतिथि-सत्कारमें प्रवीण हो, उसे भी निमन्त्रण देना चाहिये। जो तीनों समय गायत्रीका जप करता है, भिक्षासे जीविका चलाता है, क्रियानिष्ठ है, जो सबेरे धनी और शामको गरीब तथा शामको धनी और सबेरे गरीब हो जाता है, किसी जीवकी हिंसा नहीं करता तथा जिसमें दोषोंकी कमी है, उसे भी श्राद्धमें भोजन कराया जा सकता है। जो दम्भरहित, व्यर्थ तर्क-वितर्क न करनेवाला और योग्य स्थानसे भिक्षा लेनेवाला है, वह श्राद्धमें निमन्त्रण देने योग्य है। जिसने पहले कठोर कर्म करके धनका संग्रह किया हो, किंतु पीछे अतिथिसेवाका व्रत धारण कर लिया हो, वह श्राद्धमें सम्मिलित करनेयोग्य हो जाता है। जो धन वेद बेचकर या स्त्रीकी कमाईसे प्राप्त हुआ हो अथवा जो लोगोंके सामने दीनता दीखाकर माँग लाया गया हो, वह श्राद्धमें ब्राह्मणको देनेयोग्य नहीं है।

जो ब्राह्मण श्राद्ध समाप्त होनेपर 'अस्तु स्वधा' आदि उचित वाक्योंका प्रयोग नहीं करता, उसे गौकी झूठी शपथ खानेका पाप लगता है। ब्राह्मणके यहाँ श्राद्ध समाप्त होनेपर 'अस्तु स्वधा' इस वाक्यका उच्चारण करनेपर पितरोंको प्रसन्नता होती है, क्षत्रियके यहाँ श्राद्धकी समाप्तिमें 'पितरः प्रीयन्ताम्' (पितर तृप्त हो जायँ) इस वाक्यका उच्चारण करना चाहिये और वैश्यके घर 'अक्षय्यमस्तु' (श्राद्धका दान अक्षय हो) कहना चाहिये। इसी तरह जब ब्राह्मणके यहाँ देवकार्य होता हो तो उसमें ॐकारसहित पुण्याहवाचनका विधान है (अर्थात् 'ॐ पुण्याहम्' का उच्चारण करे)। क्षत्रियके यहाँ ओंकाररहित पुण्याहवाचनकी विधि है (अर्थात् केवल 'पुण्याहम्' का उच्चारण करे)। तथा वैश्यके घर देवकार्यमें 'देवताः प्रीयन्ताम्' (देवता प्रसन्न हो) इस वाक्यका प्रयोग करे। अब क्रमशः तीनों वर्णोंके कर्मानुष्ठानकी विधि सुनो। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य—इन तीनों वर्णोंके जात-कर्मादि संस्कार वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक कराने चाहिये। उपनयनके समय ब्राह्मणको मूँजकी, क्षत्रियको प्रत्यञ्चाकी और वैश्यको बल्वज (एक प्रकारके तृण) की मेखला धारण करनी चाहिये।

अब दाता और दान लेनेवालेके धर्म-अधर्मका वर्णन सुनो। ब्राह्मणको झूठ बोलनेपर जितना पाप लगता है, उससे चौगुना क्षत्रियको और आठगुना वैश्यको लगता है। यदि किसी ब्राह्मणने पहलेसे ही श्राद्धका निमन्त्रण दे रखा हो तो निमन्त्रित ब्राह्मणको दूसरी जगह जाकर भोजन नहीं करना चाहिये। यदि करता है तो उसको छोटा समझा जाता है और उसे पशु-हिंसाका पाप लगता है। इसी प्रकार यदि उसे किसी क्षत्रिय या वैश्यने पहलेसे निमन्त्रण दे रखा हो और वह कहीं अन्यत्र जाकर भोजन कर ले तो छोटा समझा जानेके साथ ही वह पशु-हिंसाके आधे पापका भागी होता है। राजन्! जो ब्राह्मण तीनों वर्णोंके यहाँ देव-यज्ञ अथवा श्राद्धमें स्नान किये बिना ही भोजन करता है अथवा जो लोभवश जान-बूझकर अपने घरमें अशौच रहते हुए भी

१. जब कोई अपनी कन्याको इस शर्तपर ब्याहता है कि 'इससे जो पहला पुत्र होगा, उसे मैं गोद ले लूँगा और अपना पुत्र मानूँगा' तो उसे 'पुत्रिका-धर्मके अनुसार विवाह' कहते हैं। इस नियमसे प्राप्त होनेवाला पुत्र श्राद्ध-भोजनका अधिकारी नहीं है।

दूसरेके यहाँ श्राद्धका अन्न ग्रहण करता है, उसको गौकी झूठी शपथ खानेका पाप लगता है। जो किसी कामका बहाना करके दूसरोंसे धन माँगते हैं, उन्हें झूठ बोलनेका पाप होता है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य वेद-व्रतका पालन न करनेवाले ब्राह्मणोंको श्राद्धमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक अन्न परोसता है, उसे भी गायकी झूठी शपथ खानेका पाप लगता है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! देव-यज्ञ अथवा श्राद्धकर्ममें जो दान दिया जाता है, वह कैसे पुरुषोंको देनेसे महान् फलकी प्राप्ति करानेवाला होता है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जैसे किसान वर्षाकी बाट जोहता रहता है, उसी प्रकार जिनके घरोंकी स्त्रियाँ अपने स्वामीकी जूँठन पानेके लिये प्रतीक्षा करती रहती हैं, उनको तुम अवश्य भोजन कराना। जो सदाचारी हों, भोजन न मिलनेके कारण दुर्बल हो गये हों तथा जिनकी जीविका क्षीण हो गयी हो, ऐसे लोग यदि याचक होकर आते हैं तो उन्हें दिया हुआ दान महान् फलकी प्राप्ति करानेवाला होता है। जो सदाचारके भक्त हैं, जिनके घरमें सदाचारका ही पालन होता है, जो सदाचारको ही बल और सदाचारको ही परलोकमें सहारा देनेवाला मानते हैं तथा विशेष आवश्यकता पड़नेपर ही याचना करते हैं, उनको दान देनेसे महान् फल होता है। चोर और शत्रुओंके भयसे पीड़ित होकर जो केवल भोजनकी याचना करनेके लिये आते हैं, जिनके मनमें किसी तरहका कपट नहीं है तथा अत्यन्त दरिद्र होनेके कारण जिनके हाथपर अन्न आते ही उनके भूखे हुए बच्चे 'मुझे दो, मुझे दो' कहते हुए माँगनेको दौड़ते हैं, ऐसे लोगोंको दान देनेसे महान् फल होता है। देशमें विप्लव होनेके समय जिनके धन और स्त्रियाँ छिन गयी हों, ऐसे ब्राह्मण यदि धनकी याचनाके लिये आवें तो उन्हें देनेसे महान् पुण्य होता है। जो व्रत और नियममें लगे हुए ब्राह्मण व्रतके उद्यापनके लिये धन चाहते हों तथा जो पाखण्डियोंके धर्मसे दूर रहकर अन्न न मिलनेके कारण दुर्बल एवं निर्धन हो गये हों ऐसे ब्राह्मणोंको भी धन देनेसे बड़ा भारी पुण्य होता है। निर्दोष होनेपर भी बलवान् मनुष्योंद्वारा जिनका सर्वस्व लूट लिया गया हो, फिर भी जो खानेके लिये अन्नमात्र चाहते हों तथा जो तपस्वी, तपोनिष्ठ और तपस्वियोंके लिये भीख माँगनेवाले हों, ऐसे याचकोंको जो कुछ दिया जाय, उसका महान् फल होता है।

युधिष्ठिर ! किनको दान देनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है, यह विषय मैंने तुम्हें सुना दिया। अब जिस कर्मसे मनुष्यको नरक या स्वर्गमें जाना होता है, उसे सुनो। जो मनुष्य गुरुको लाभ पहुँचाने अथवा किसीको भयसे मुक्त करनेके अतिरिक्त और किसी उद्देश्यसे झूठ बोलते हैं, वे नरकमें पड़ते हैं। दूसरोंकी स्त्री चुरानेवाले, परायी स्त्रीका सतीत्व नष्ट करनेवाले, दूत बनकर परस्त्रीको दूसरोंसे मिलानेवाले, दूसरोंके धनको हड़पने या नष्ट करनेवाले और दूसरोंकी चुगली खानेवाले मनुष्योंको भी नरकमें गिरना पड़ता है। जो पौंसलों, धर्मशालाओं, पुलों और दूसरोंके घरोंको नष्ट करते हैं, जो अनाथ, बूढ़ी, तरुणी, बालिका, भयभीत और तपस्विनी स्त्रियोंको धोखेमें डालते हैं तथा जो दूसरोंकी जीविका नष्ट करते, घर उजाड़ते, पति-पत्नीमें बिछोह डालते, मित्रोंमें विरोध पैदा कराते और किसीकी आशा भंग करते हैं, वे भी नरकगामी होते हैं। चुगली खानेवाले, कुल या धर्मकी मर्यादा नष्ट करनेवाले, दूसरोंकी जीविकापर गुजारा करनेवाले, मित्रोंद्वारा किये गये उपकारको भुला देनेवाले, पाखण्डी, निन्दक, धार्मिक नियमोंके विरोधी तथा एक बार संन्यास लेकर फिर गृहस्थ-आश्रममें लौट आनेवाले पुरुष भी नरकमें पड़ते हैं। जिनका व्यवहार सबके विरुद्ध पड़ता है, जो लाभ और वृद्धिमें विषम दृष्टि रखते हैं, जो दूतका काम करते और किसी मनुष्यकी परख करनेमें असमर्थ होते हैं, जिनकी सदा जीवहिंसामें प्रवृत्ति होती है तथा जो वेतनपर रखे हुए परिश्रमी नौकरको कुछ देनेकी आशा देकर और देनेका समय नियत करके उसके पहले ही भेदनीतिके द्वारा उसे मालिकके यहाँसे निकलवा देते हैं, उन्हें नरकमें जाना पड़ता है। जो पितरों और देवताओंकी पूजाका त्याग करके अग्निमें आहुति दिये बिना ही अतिथि, पोष्यवर्ग तथा स्त्री-बच्चोंसे पहले ही भोजन कर लेते हैं, जो वेद बेचते, वेदोंकी निन्दा करते, आश्रममर्यादाके बाहर रहते, वेदविरुद्ध कार्य करते, अधर्मसे जीविका चलाते, केश, विष और दूधकी बिक्री करते, ब्राह्मण, गौ तथा कन्याओंके कार्यमें विघ्न डालते, हथियार बेचते, धनुष-बाण बनाते तथा जो पत्थर रखकर काँटे बिछाकर और गड्ढे खोदकर रास्ता रोकते हैं, वे भी नरकगामी होते हैं। जो शुद्ध हृदयवाले अध्यापकों, भृत्यों और भक्तोंका त्याग कर देते हैं, जो बैलोंको कुटवाते (बधिया करते), नाथते और पशुओंको कठघरेमें बंद करते हैं, जो राजा होकर भी प्रजाकी रक्षा नहीं करते और उसकी आमदनीके छठे भागको लगानके रूपमें लूटते रहते हैं तथा जो समर्थ होनेपर भी दान नहीं करते, वे भी नरकमें जाते हैं। जो क्षमाशील, जितेन्द्रिय, विद्वान् तथा बहुत दिनोंसे अपने साथ रहनेवाले पुरुषोंको काम निकल जानेपर त्याग देते हैं तथा जो बच्चों, बूढ़ों और

नौकरोंको दिये बिना ही पहले स्वयं भोजन कर लेते हैं, उन्हें भी नरकमें जाना पड़ता है।

इस प्रकार पहले नरकगामी मनुष्योंका वर्णन किया गया। अब स्वर्गमें जानेवालोंका वर्णन करता हूँ। जो दान, तपस्या और सत्यके द्वारा धर्मका अनुसरण करते हैं, गुरुशुश्रूषा और तपस्यापूर्वक विद्याध्ययन करके प्रतिग्रहसे राग नहीं रखते, जिनके प्रयत्नसे मनुष्य भय, पाप, बाधा, दरिद्रता तथा रोगसे छुटकारा पा जाते हैं, जो क्षमावान्, धीर, धर्मकार्यमें उत्साह रखनेवाले और माङ्गलिक आचारसे सम्पन्न हैं तथा जो मधु, मांस, मदिरा और परस्त्रीसे दूर रहते और आश्रम, कुलधर्म, देश तथा नगरोंकी रक्षा करते हैं, वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं। जो वस्त्र, आभूषण, भोजन, पानी तथा अन्नदान करते हैं, दूसरोंका ब्याह करा देते हैं, सब प्रकारकी हिंसासे अलग रहते हैं, सब कुछ सहन करते और सबको आश्रय देते हैं, जो जितेन्द्रिय होकर माता-पिताकी सेवा करते और भाइयोंपर स्नेह रखते हैं, जो धनी बलवान् और नौजवान होकर भी इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, जो अपराधियोंपर भी दया करते हैं, जिनका स्वभाव मृदुल होता है तथा जो मृदुल स्वभाववाले व्यक्तियोंपर प्रेम रखते हैं, जिन्हें दूसरोंकी आराधना (सेवा) में ही सुख मिलता है और जो हजारों मनुष्योंको भोजन परोसते, हजारोंको धन देते तथा हजारोंकी रक्षा करते हैं, उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो सुवर्ण, गौ, पालकी, सवारी, वैवाहिक सामान, दास-दासी तथा वस्त्र दान करते हैं, जो दूसरोंके लिये आश्रय, गृह, उद्यान, कुआँ, बगीचा, धर्मशाला, पौंसला तथा चहारदीवारी बनवाते हैं, जो याचकोंको घर, खेत और गाँव प्रदान करते हैं, जो स्वयं ही पैदा करके रस, बीज और अन्न दान करते हैं तथा जो किसी भी कुलमें उत्पन्न हो बहुत-से पुत्रों और सौ वर्षकी आयुसे युक्त होकर दूसरोंपर दया करते और क्रोधको काबूमें रखते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं। भारत ! यह मैंने तुमसे परलोकमें कल्याण करनेवाले देवकार्य और पितृकार्यका वर्णन किया तथा प्राचीनकालमें ऋषियोंद्वारा बतलाये हुए दान-धर्म और उसकी महिमाका भी निरूपण किया है।



ब्रह्महत्याके समान पापों तथा विविध तीर्थोंका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! ब्राह्मणकी हिंसा न करनेपर भी मनुष्यको ब्रह्महत्याका पाप कैसे लगता है ? इस बातको ठीक-ठीक बतानेकी कृपा कीजिये।

भीष्मजीने कहा—राजन् ! पूर्वकालमें मैंने एक बार व्यासजीको बुलाकर उनसे जो प्रश्न किया था (तथा उन्होंने मुझे जो उसका उत्तर दिया था) वह सब तुमसे बता रहा हूँ, ध्यान देकर सुनो। मैंने पूछा था—'मुने ! ब्राह्मणकी हिंसा न करनेपर भी किन कर्मोंके करनेसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है ?' इस प्रकार पूछनेपर धर्मनिपुण व्यासजीने मुझे यह संदेहरहित उत्तर दिया 'भीष्म ! जिसके पास कोई आजीविका नहीं है ऐसे ब्राह्मणको जो स्वयं भिक्षा देनेके लिये बुलाकर पीछे देनेसे इन्कार कर देता है, उसको ब्रह्महत्यारा समझो। जो दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य तटस्थ रहनेवाले विद्वान् ब्राह्मणकी जीविका छीन लेता है और प्याससे कष्ट पाती हुई गौओंके पानी पीनेमें विघ्न डालता है, उसको भी ब्रह्महत्यारा ही समझना चाहिये। जो उत्तम कर्तव्यका विधान करनेवाली श्रुतियों और ऋषिप्रणीत शास्त्रोंपर बिना समझे-बूझे दोषारोपण करते हैं, जो अपनी रूपवती कन्याकी बड़ी उम्र हो जानेपर भी उसका योग्य वरके साथ विवाह नहीं करते, उन्हें भी ब्रह्महत्याका पाप लगता है। जो पापपरायण मूर्ख मनुष्य ब्राह्मणको व्यर्थ ही मर्मभेदी शोकका शिकार बनता है, जो अंधे, लूले और गूँगे मनुष्योंका सर्वस्व हरण कर लेता है तथा जो मोहवश आश्रम, वन, गाँव अथवा नगरमें आग लगा देता है, उसे भी ब्रह्मघाती ही समझना चाहिये।'

युधिष्ठिरने पूछा—भरतश्रेष्ठ ! तीर्थोंका दर्शन करना, उनमें स्नान करना और उनका माहात्म्य सुनना श्रेयस्कर बताया गया है, अतः मैं तीर्थोंका वर्णन सुनना चाहता हूँ। इस पृथ्वीपर जितने पवित्र तीर्थ हैं, उन्हें बतलानेकी कृपा कीजिये।

भीष्मजीने कहा—राजन् ! पूर्वकालमें अङ्गिराने तीर्थ समूहका वर्णन किया था, उसे ही सुनो। इससे तुम्हें उत्तम धर्मकी प्राप्ति होगी। एक समयकी बात है, महामुनि अङ्गिरा अपने तपोवनमें विराजमान थे। उस समय उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले गौतमने उनके पास जाकर पूछा—'महामुने ! तीर्थोंमें स्नान करनेसे मृत्युके बाद किस फलकी प्राप्ति होती है ? इसका यथावत् वर्णन कीजिये।'

अङ्गिराने कहा—मनुष्य उपवास करके चन्द्रभागा और वितस्तामें सात दिनतक स्नान करे तो वह (सब पापोंसे छूटकर) मुनिके समान निर्मल हो जाता है। काश्मीर

प्रान्तकी जो-जो नदियाँ महानद सिन्धुमें मिलती हैं, उन-उन नदियोंमें तथा सिन्धुमें स्नान करके शीलवान् पुरुष मरनेके बाद स्वर्गमें जाता है। पुष्कर, प्रभास, नैमिषारण्य, सागरोदक (समुद्रजल), देविका, इन्द्रमार्ग और स्वर्णबिन्दु—इन तीर्थोंमें स्नान करनेसे मनुष्य विमानपर बैठकर स्वर्गकी यात्रा करता है और अप्सराएँ स्तुति करती हुई उसे जगाती हैं। हिरण्यबिन्दु तीर्थमें स्नान करके वहाँके प्रधान देवता भगवान् कुशेशयको पवित्र भावसे प्रणाम करनेपर मनुष्यका सारा पाप दूर हो जाता है। गन्धमादन पर्वतके निकट इन्द्रतोया नामकी नदीमें और कुरंगक्षेत्रके भीतर करतोया नदीमें स्नान करके तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य अश्वमेघ-यज्ञका फल पाता है तथा परम पवित्र एवं शुद्ध हो जाता है गङ्गाद्वार (हरिद्वार), कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत तथा कनखल तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य पापरहित होकर स्वर्गमें जाता है। यदि कोई क्रोधहीन, सत्य प्रतिज्ञ और अहिंसक होकर ब्रह्मचर्यका पालन करता हुआ सलिलह्रद तीर्थमें डुबकी लगावे तो उसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है। जिस स्थानपर भागीरथी गङ्गा उत्तर दिशाकी ओर बहती हैं, वह भगवान् शंकरका (स्वर्ग, मर्त्यलोक और पातालरूप) त्रिविध स्थान है, उस त्रिस्थाननामक तीर्थमें स्नान करके जो एक मासतक उपवास करता है, उसे देवताओंके दर्शन होते हैं। सप्तगङ्ग, त्रिगङ्ग और इन्द्रमार्गमें पितरोंका तर्पण करनेवाला मनुष्य यदि पुनर्जन्म लेता है तो उसे अमृत भोजन मिलता है (अर्थात् वह देवता हो जाता है)। महाश्रमतीर्थमें स्नान करके प्रतिदिन पवित्र भावसे अग्निहोत्र करते हुए जो एक महीनेतक उपवास करता है, वह सिद्ध हो जाता है। जो लोभका त्याग करके भृगुतुङ्गक्षेत्रके महाह्रदनामक तीर्थमें स्नान करता और तीन राततक निराहार रहता है, वह ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है। कन्याकूपमें स्नान करके बलाका तीर्थमें तर्पण करनेवाले पुरुषकी देवताओंमें कीर्ति फैलती है और वह अपने यशसे सुशोभित होता है। देविकाकुण्ड, सुन्दरिका-कुण्ड और अश्विनीकुमार क्षेत्रमें स्नान करनेपर मृत्युके पश्चात् दूसरे जन्ममें रूप और तेजकी प्राप्ति होती है। महागङ्गा और कृत्तिकाङ्गारक तीर्थमें स्नान करके एक पक्षतक निराहार रहनेवाले मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्गमें जाता है। जो वैमानिक और किङ्किणीकाश्रम तीर्थमें स्नान करता है, वह अप्सराओंके दिव्य लोकमें जाकर सम्मानित होता और इच्छानुसार विचरा करता है। जो कालिकाश्रममें स्नान करके विपाशा नदीमें पितरोंका तर्पण करता है और क्रोधको जीतकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए तीन राततक वहाँ निवास करता है, वह जन्म-मरणके बन्धनसे छूट जाता है।

जो कृत्तिकाश्रममें स्नान करके पितरोंका तर्पण और महादेवजीको प्रसन्न करता है, वह पापमुक्त होकर स्वर्गलोकमें जाता है। महापुरतीर्थमें स्नान करके पवित्रतापूर्वक तीन राततक उपवास करनेसे चराचर प्राणियों तथा मनुष्योंसे भय नहीं रहता। जो देवदारु वनमें स्नान करके तर्पण करता है और पवित्रभावसे सात राततक वहाँ निवास करता है, उसके पाप धुल जाते हैं और मृत्युके पश्चात् वह देवलोकको प्राप्त होता है। जो शरस्तम्ब, कुशस्तम्ब और द्रोणशर्मपद तीर्थके झरनोंमें स्नान करता है, उसकी अप्सराएँ सेवा करती हैं। जनस्थानमें (गोदावरीके जलमें) और चित्रकूटमें मन्दाकिनीके जलमें स्नान करके उपवास करनेवाला पुरुष राजलक्ष्मीसे सेवित होता है। श्यामाश्रम-तीर्थमें जाकर वहाँ स्नान, निवास तथा एक पक्षतक उपावस करनेसे (गन्धर्वलोकके) अन्तर्धान आदि भोग प्राप्त होते हैं। जो कौशिकी नदीमें स्नान करके निष्काम भावसे इक्कीस राततक वायु पीकर रह जाता है, वह स्वर्गको प्राप्त होता है। जो मतङ्गवापी तीर्थमें स्नान करता है, उसे एक रातमें सिद्धि प्राप्त होती है। जो अनालम्ब, अन्धक और सनातन तीर्थमें डुबकी लगाता तथा नैमिषारण्यके स्वर्ग तीर्थमें स्नान करके इन्द्रियसंयमपूर्वक एक मासतक पितरोंको जलाञ्जलि देता है, उसे यज्ञका फल प्राप्त होता है। गङ्गाह्रद और उत्पलावन तीर्थमें स्नान करके एक महीनेतक पितृ-तर्पण करनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। गङ्गा-यमुनाके संगममें तथा कालञ्जरगिरि तीर्थमें एक मासतक-स्नान और तर्पण करनेसे दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। षष्टिह्रदमें स्नान करनेसे अन्नदानसे भी अधिक फल मिलता है। माघकी अमावास्याको प्रयागराजमें तीन करोड़ दस हजार तीर्थोंका समागम होता है। जो नियमपूर्वक उत्तम व्रतका पालन करते हुए माघके महीनेमें प्रयागमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गको प्राप्त होता है। जो पवित्र भावसे मरुद्गण तीर्थ, पितृगणोंके आश्रम तथा वैवस्वत तीर्थमें स्नान करता है, वह स्वयं तीर्थरूप हो जाता है। तथा जो ब्रह्मसर (पुष्कर) और भागीरथी (गङ्गा) में स्नान करके पितरोंका तर्पण करता और वहाँ एक मासतक निराहार रहता है, उसे चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। उत्पातक तीर्थमें स्नान और अष्टावक्र तीर्थमें तर्पण करके बारह दिनतक निराहार रहनेसे यज्ञका फल मिलता है। गयामें अश्मपृष्ठ (प्रेतशिला) की यात्रा करनेसे पहली, निरविन्द पर्वतपर

जानेसे दूसरी तथा क्रौञ्चपदी नामक तीर्थकी यात्रा करनेपर तीसरी ब्रह्महत्यासे छुटकारा मिलता है। कलविङ्क तीर्थमें स्नान करनेसे अनेकों तीर्थोंमें गोते लगानेका फल होता है। अग्निपुर तीर्थमें डुबकी लगानेसे अग्निकन्यापुरका निवास प्राप्त होता है। करवीरपुरमें स्नान, विशालामें तर्पण और देवह्रदमें मज्जन करनेसे मनुष्य ब्रह्मरूप हो जाता है। जो सब प्रकारकी हिंसाका त्याग करके जितेन्द्रियभावसे आवर्तनन्दा और महानन्दा तीर्थका सेवन करता है, वह नन्दनवनमें अप्सराओंसे सेवित होता है। जो कार्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिकाका योग होनेपर, एकाग्रचित्त होकर उर्वशी और लौहित्यतीर्थमें विधिपूर्वक स्नान करता है उसे पुण्डरीक यज्ञका फल मिलता है। रामह्रद (परशुरामकुण्ड) में स्नान और विपाशा नदीमें तर्पण करके बारह दिनोंतक उपवास करनेवाला पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है। यदि मनुष्य महाह्रदमें स्नान करके शुद्धचित्तसे एक महीनेतक निराहार रहे तो उसे जमदग्निके समान सद्गति प्राप्त होती है। जो हिंसाका त्याग करके सत्य-प्रतिज्ञ होकर विन्ध्याचलमें रहता और अपने शरीरको कष्ट देकर विनयपूर्वक तपस्या करता है, उसको एक महीनेमें सिद्धि प्राप्त हो जाती है। नर्मदा नदी और शूर्पारकक्षेत्रके जलमें स्नान करके एक पक्षतक निराहार रहनेवाला मनुष्य दूसरे जन्ममें राजकुमार होता है। जो इन्द्रिय-संयमपूर्वक एकाग्रचित्त हो तीन महीनेतक जम्बूमार्गकी यात्रा करता है, उसे एक दिन-रातमें ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जो कोकामुख तीर्थमें स्नान करके आञ्जलिकाश्रम तीर्थमें जाकर सागका भोजन करता हुआ चीरवस्त्र धारण करके कुछ कालतक निवास करता है, उसे दस बार कन्याकुमारी तीर्थके सेवनका फल प्राप्त होता है तथा उसे कभी यमराजके घर नहीं जाना पड़ता। जो कन्याह्रद (कन्याकुमारी तीर्थ) में निवास करता है, वह मृत्युके पश्चात् देवलोकमें जाता है। जो एकाग्रचित्त होकर अमावास्याको प्रभासतीर्थका सेवन करता है, उसे एक ही रातमें सिद्धि मिल जाती है तथा शरीर-त्यागके बाद वह अमर (देवता) हो जाता है। उज्जानक तीर्थ, आर्ष्टिषेण तथा पिङ्गाके आश्रममें स्नान करनेसे सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। जो कुल्या नदीमें स्नान करके अघमर्षण मन्त्रका जप करता तथा तीन राततक वहाँ उपवास करके रहता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। जो पिण्डारक तीर्थमें स्नान करके एक रात वहाँ निवास करता है, वह सबेरा होते ही पवित्र हो जाता है और उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है। धर्मारण्यसे सुशोभित ब्रह्मसरमें स्नान करनेवाला मनुष्य पवित्र होकर पुण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त करता है। मैनाक पर्वतपर एक महीनेतक स्नान और संध्योपासन करनेसे मनुष्य कामको जीतकर समस्त यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। सौ योजनकी यात्रा करके कालोदक, नन्दिकुण्ड तथा उत्तरमानस तीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य भ्रूणहत्याके पापसे मुक्त हो जाता है। नन्दीश्वरकी मूर्तिका दर्शन करनेसे सब पाप छूट जाते हैं और स्वर्गमार्ग नामक तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्योंको ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। भगवान् शंकरका श्वशुर हिमवान् पर्वत परम पवित्र और संसारमें विख्यात है, वह सब रत्नोंकी खानि तथा सिद्ध और चारणोंसे सेवित है। जो वेदान्तका ज्ञाता द्विज इस जीवनको नाशवान् समझकर उक्त पर्वतपर रहता और देवताओंका पूजन तथा मुनियोंको प्रणाम करके विधिपूर्वक अनशनके द्वारा प्राण त्याग देता है वह सिद्ध होकर सनातन ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। जो मनुष्य काम, क्रोध और लोभको जीतकर तीर्थोंमें निवास करता है, उसे उस तीर्थयात्राके पुण्यसे कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती। जो समस्त तीर्थोंके दर्शनकी इच्छा रखता हो, वह दुर्गम और अगम्य होनेके कारण जिन तीर्थोंमें शरीरसे न जा सके वहाँ मानसिक यात्रा करे। यह तीर्थसेवनका कार्य परम पवित्र, पुण्यप्रद, स्वर्गका उत्तम साधन और वेदोंका गुप्त रहस्य है। प्रत्येक तीर्थ पवित्र और स्नानके योग्य होता है।

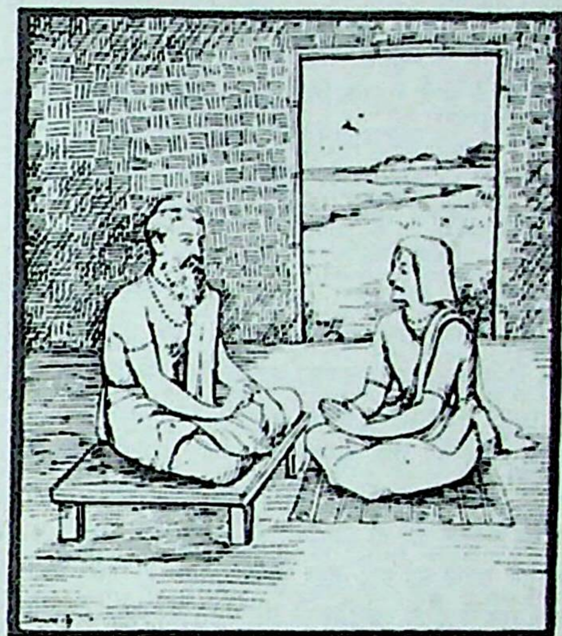
तीर्थोंका यह माहात्म्य द्विजातियोंके, अपने हितैषी साधु पुरुषोंके, सुहृदोंके और अनुगत शिष्यके ही कानमें डालना चाहिये। इसे महातपस्वी अङ्गिराने गौतमको सुनाया और अङ्गिराको यह माहात्म्य काश्यपसे प्राप्त हुआ था। यह कथा महर्षियोंके पढ़नेयोग्य और परम पवित्र है। जो सावधान होकर सदा इसका पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकको जाता है।



गङ्गाजीके माहात्म्यका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! बुद्धिमें बृहस्पति, क्षमामें ब्रह्माजी, पराक्रममें इन्द्र और तेजमें सूर्यके समान गङ्गानन्दन भीष्मजी जब वीर-शय्यापर पड़े हुए कालकी बाट जोह रहे थे और राजा युधिष्ठिर उनसे तरह-तरहके प्रश्न कर रहे थे, उसी समय बहुत-से दिव्य महर्षि भीष्मजीको देखनेके लिये आये। उनके नाम ये हैं—अत्रि, वसिष्ठ, भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, गौतम, अगस्त्य, सुमति, विश्वामित्र, स्थूलशिरा, संवर्त, प्रमति, दम, बृहस्पति, शुक्राचार्य, व्यास, च्यवन, काश्यप, ध्रुव, दुर्वासा, जमदग्नि, मार्कण्डेय, गालव, भरद्वाज, रैभ्य, यवक्रीत, त्रित, स्थूलाक्ष, शबलाक्ष, कण्व, मेधातिथि, कृश, नारद, पर्वत, सुधन्वा, एकत, नितम्भू, भुवन, धौम्य, शतानन्द अकृतव्रण, परशुराम और कच। ये सभी महात्मा जब वहाँ पधारे तो भाइयोंसहित राजा युधिष्ठिरने उनकी विधिवत् पूजा की। तत्पश्चात् वे सुखपूर्वक बैठकर भीष्मजीसे सम्बन्ध रखनेवाली मधुर एवं मनोहर कथाएँ कहने लगे। शुद्धचित्तवाले उन महर्षियोंकी बातें सुनकर भीष्मजी बहुत संतुष्ट हुए। तदनन्तर, वे महर्षिगण भीष्मजी और पाण्डवोंकी अनुमति लेकर सबके देखते-देखते वहाँसे अदृश्य हो गये। उसके बाद धर्मपुत्र युधिष्ठिरने भीष्मजीके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और पुनः उनसे धर्मविषयक प्रश्न पूछा—पितामह ! कौन-से देश, कौन-से प्रान्त, कौन-कौन आश्रम, कौन-से पर्वत और कौन-कौन-सी नदियाँ पुण्यकी दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ समझने-योग्य हैं ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इस विषयमें शिलोञ्छवृत्तिसे जीविका चलानेवाले एक पुरुषका किसी सिद्ध पुरुषके साथ जो संवाद हुआ था, वह प्राचीन इतिहास सुनो—कोई सिद्ध पुरुष समूची पृथ्वीकी अनेकों बार परिक्रमा करनेके बाद शिलोञ्छवृत्तिसे जीविका चलानेवाले एक श्रेष्ठ गृहस्थके घर गया। उसने इसकी विधिवत् पूजा की और यह प्रसन्न होकर बड़े सुखके साथ रातभर उस गृहस्थके घरमें रहा। सबेरा होनेपर वह गृहस्थ स्नानादिसे पवित्र होकर प्रातःकालिक नित्यकर्ममें लग गया। जब उससे निवृत्त हुआ तो फिर उस सिद्ध अतिथिकी सेवामें आ पहुँचा। फिर दोनों महात्मा सुखपूर्वक बैठकर वेद-वेदान्तविषयक चर्चा करने लगे। थोड़ी देर बाद शिलोञ्छवृत्तिवाले गृहस्थ ब्राह्मणने तुम्हारी ही तरह प्रश्न किया—'कौन-कौन-से देश, जनपद (प्रान्त), आश्रम, पर्वत और नदियाँ पुण्यकी दृष्टिसे



सर्वोत्तम समझनेयोग्य हैं ?'

सिद्धने कहा—ब्रह्मन् ! वे ही देश, जनपद, आश्रम और पर्वत पुण्यकी दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ हैं, जिनके बीचसे होकर नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाजी बहती हैं। गङ्गाजीका सेवन करके जीव जिस उत्तम गतिको प्राप्त करता है, वह तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ और त्यागसे भी नहीं मिल सकती। जिन देहधारियोंके शरीर गङ्गाजीके जलसे भीगते हैं अथवा मरनेपर जिनकी हड्डियाँ गङ्गाजीमें डाली जाती हैं, वे कभी स्वर्गसे नीचे नहीं गिरते। जिन मनुष्योंके सम्पूर्ण कार्य गङ्गाजलसे ही सम्पन्न होते हैं, वे मरनेके बाद पृथ्वीका निवास छोड़कर स्वर्गमें विराजमान होते हैं। जो जीवनकी पहली अवस्थामें पापकर्म करके पीछे भी गङ्गाजीका सेवन करते हैं, वे भी उत्तम गतिको प्राप्त करते हैं। गङ्गाके पवित्र जलसे स्नान करके जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, उन पुरुषोंके पुण्यकी जैसी वृद्धि होती है, वैसी सैकड़ों यज्ञ करनेसे भी नहीं हो सकती। मनुष्यकी हड्डी जितने वर्षतक गङ्गाजलमें पड़ी रहती है, उतने हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जैसे सूर्य उदयकालमें घने अन्धकारको विदीर्ण करके प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार गङ्गाजलमें स्नान करनेवाला पुरुष अपने पापोंको नष्ट करके सुशोभित होता है। जो देश और दिशाएँ गङ्गाजीके कल्याणमय जलसे वञ्चित हैं, वे बिना चाँदनीकी रात और

पुष्पहीन वृक्षकी भाँति शोभा नहीं पाती। जैसे सूर्यके बिना आकाशकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार गङ्गासे रहित देश और दिशाएँ भी श्रीहीन जान पड़ती हैं। तीनों लोकमें जो कोई प्राणी हैं, वे सभी गङ्गाके उत्तम जलसे तर्पण करनेपर अत्यन्त तृप्त होते हैं। जो मनुष्य सूर्यकी किरणोंसे तपे हुए गङ्गाजलका पान करता है, वह गायके गोबरसे निकले हुए जौकी लप्सी खानेवाले पुरुषसे अधिक पवित्र माना जाता है। एक मनुष्य शरीरका शोधन करनेवाले एक हजार चान्द्रायणव्रतका आचरण करे और दूसरा केवल गङ्गाजीके जलका पान करे तो उन दोनोंमें शायद ही समानता हो। एक हजार युगोंतक एक पैरसे खड़ा होकर तपस्या करनेवाला पुरुष एक महीनेतक गङ्गास्नान करनेवाले पुरुषकी बराबरी कर सकता है या नहीं, इसमें संदेह है। एक मनुष्य दस हजार युगोंतक नीचे सिर करके वृक्षमें लटका रहे और दूसरा इच्छानुसार गङ्गाजीके तटपर निवास करे तो पहलेकी अपेक्षा दूसरा ही श्रेष्ठ है। जैसे आगमें डाली हुई रूई-तुरंत जलकर भस्म हो जाती है, उसी तरह गङ्गामें गोता लगानेवाले मनुष्यके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। इस संसारमें जो लोग दुःखोंसे व्याकुल होकर अपने लिये कोई आश्रय ढूँढ़ रहे हैं, उन सबके लिये गङ्गाके समान दूसरा कोई सहारा नहीं है। जैसे गरुड़को देखते ही सम्पूर्ण सर्पोंके विष झड़ जाते हैं, उसी प्रकार गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। जगत्‌में जिनका कहीं आधार नहीं है तथा जिन्होंने धर्मकी शरण नहीं ली है, उनका आधार और उन्हें शरण देनेवाली श्रीगङ्गाजी ही हैं। वे ही उसका कल्याण करनेवाली तथा वे ही कवचकी भाँति उसे सुरक्षित रखनेवाली हैं। जो नीच अनेकों बड़े-बड़े अशुभ पापोंसे ग्रस्त होकर नरकमें पड़नेवाले हैं, वे भी यदि गङ्गाकी शरणमें आ जाते हैं तो ये मरनेके बाद उनका उद्धार कर देती हैं। जो सदा गङ्गामें स्नान करने जाया करते हैं, वे निश्चय ही मुनियों तथा इन्द्र आदि देवताओंके समान माने जाते हैं। विनय और सदाचारसे हीन, अमङ्गलकारी तथा नीच मनुष्य भी गङ्गाकी शरणमें जानेपर शिवस्वरूप हो जाते हैं। जैसे देवताओंको अमृत, पितरोंको स्वधा और नागोंको सुधा तृप्त करती है, उसी प्रकार मनुष्योंके लिये गङ्गाजल ही पूर्ण तृप्तिका साधन है। जैसे भूखे हुए बच्चे माताके पास जाते हैं, उसी प्रकार कल्याण चाहनेवाले प्राणी गङ्गाजीकी उपासना करते हैं। जैसे ब्रह्मलोक सब लोकोंसे श्रेष्ठ बताया जाता है, वैसे ही स्नान करनेवाले पुरुषोंके लिये गङ्गा ही सब नदियोंमें श्रेष्ठ कही गयी हैं। जो मनुष्य गङ्गाके तीरकी मिट्टी अपने मस्तकमें लगाता है, वह अज्ञानान्धकारका नाश करनेके लिये सूर्यके समान निर्मल स्वरूप धारण करता है। गङ्गाकी तरङ्गमालाओंका चुम्बन करके बहनेवाली वायु जब मनुष्यके शरीरका स्पर्श करती है, उसी समय वह उसके सारे पापोंको नष्ट कर देती है। दुःखोंसे संतप्त होकर मृत्युकी घड़ियाँ गिननेवाला मनुष्य भी यदि गङ्गाजीका दर्शन करे तो उसे इतनी प्रसन्नता होती है कि उसकी सारी पीड़ा तत्काल नष्ट हो जाती है। गङ्गाके तटपर निवास करनेसे जो सुख—जो आनन्द मिलता है, वह स्वर्गमें रहकर सम्पूर्ण भोगोंका अनुभव करनेसे भी नहीं मिल सकता। मन, वाणी और क्रियाद्वारा होनेवाले पापोंसे ग्रस्त मनुष्य भी यदि गङ्गाजीका दर्शन करे तो वह परम-पवित्र हो जाता है, इस विषयमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं है। गङ्गाजीका दर्शन, उनके जलका स्पर्श तथा उनके भीतर डुबकी लगानेसे मनुष्य सात पीढ़ीतक आगे होनेवाली संतानोंको और सात पीढ़ी तथा उससे भी ऊपरके पितरोंका उद्धार कर देता है।

जो पुरुष गङ्गाजीका माहात्म्य सुनता, उनके तटपर जानेकी अभिलाषा करता, उनका दर्शन करता, जल पीता, स्पर्श करता तथा उनके भीतर गोते लगाता है, उसके दोनों कुलोंका भगवती गङ्गा उद्धार कर देती हैं। गङ्गाजी अपने दर्शन, स्पर्श, जलपान तथा नामकीर्तनमात्रसे सैकड़ों और हजारों पापियोंको तार देती हैं। जो पुरुष अपना जन्म, जीवन तथा अपनी विद्याको सफल करना चाहता हो उसे गङ्गाके तटपर जाकर देवताओं और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। मनुष्य गङ्गास्नान करके जिस अक्षय फलको प्राप्त करता है वह पुत्र, धन तथा किसी क्रियाके द्वारा नहीं मिल सकता। जो शक्ति रहते हुए भी पवित्र जलवाली कल्याणमयी गङ्गाका दर्शन नहीं करते, वे जन्मके अंधे, लुंजे और मुर्देके समान हैं। भूत, वर्तमान और भविष्यके ज्ञाता महर्षि तथा इन्द्र आदि देवता भी जिनकी उपासना करते हैं और विद्वान् ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी भी जिनकी शरण लेते हैं, ऐसी गङ्गाजीका कौन मनुष्य आश्रय न लेगा? जो मनुष्य प्राण निकलते समय मन-ही-मन गङ्गाजीका स्मरण करता है, उसे परमगतिकी प्राप्ति होती है। जो जीवनपर्यन्त गङ्गाकी उपासना करता है, उसे भय देनेवाले पापोंसे तनिक भी भय नहीं होता। आकाशसे गिरती हुई जिन परमपवित्र गङ्गाजीको भगवान् शंकरने अपने सिरपर धारण किया तथा जिन्होंने तीन निर्मल मार्गोंसे प्रवाहित होकर तीनों लोकोंकी शोभा बढ़ायी है, उनके जलका सेवन करनेवाला मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।

(गङ्गाजीमें भक्ति रखनेवाले पुरुषको) माता, पिता, पुत्र, स्त्री और धनका वियोग होनेसे भी उतना दुःख नहीं होता जितना गङ्गाके विछोहसे होता है। गङ्गाजीके दर्शनसे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी वनमें भ्रमण करने, अभीष्ट विषयोंको भोगने तथा पुत्र और धन पानेसे भी नहीं होती। जो गङ्गाजीमें श्रद्धा रखता, उन्हींमें मन लगाता, उन्हींके पास रहता, उन्हींका आश्रय लेता तथा भक्तिपूर्वक उन्हींका अनुसरण करता है, वह भगवती भागीरथीका प्रिय होता है। पृथ्वी, आकाश तथा स्वर्गमें रहनेवाले छोटे-बड़े सभी प्राणियोंको सदा गङ्गाजीमें स्नान करना चाहिये। यही सत्पुरुषोंका सबसे उत्तम कार्य है। आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, दिशा और विदिशाओंमें भी जिनकी ख्याति फैली हुई है, सरिताओंमें श्रेष्ठ उन भगवती भागीरथीके जलका सेवन करके सभी मनुष्य कृतार्थ हो जाते हैं। जो दूसरे मनुष्योंको 'ये गङ्गाजी हैं' ऐसा कहकर उनका दर्शन कराता है, उसके लिये भगवती भागीरथी ही प्रतिष्ठा (अक्षय पद प्रदान करनेवाली) हैं। वे कार्तिकेय और सुवर्णको अपने गर्भमें धारण करनेवाली, पवित्र जलकी धारा बहानेवाली और पाप दूर करनेवाली हैं। वे आकाशसे पृथ्वीपर उतरी हुई हैं। उनका जल सम्पूर्ण जगत्‌के लिये पेय है। उनमें प्रातःकाल स्नान करनेसे धर्म, अर्थ, काम तीनों वर्गोंकी सिद्धि होती है। गङ्गाजी गिरिराज हिमालयकी कन्या, भगवान् शंकरकी पत्नी तथा स्वर्ग और पृथ्वीकी शोभा हैं। वे भूमण्डलपर निवास करनेवाले प्राणियोंका कल्याण करनेवाली, परम सौभाग्यवती तथा तीनों लोकोंको पुण्य प्रदान करनेवाली हैं। श्रीभागीरथी मधुका स्रोत एवं पवित्र जलकी धारा बहाती हैं। जलते हुए घीकी ज्वालाके समान उनका प्रकाश है। वे अपने भीतर स्नान-संध्या आदि करनेवाले ब्राह्मणों और उत्ताल तरंगोंके द्वारा सुशोभित होती हैं। वे सबसे पहले स्वर्गलोकसे नीचेकी ओर चलीं, उस समय भगवान् शंकरने उन्हें अपने सिरपर धारण किया। फिर हिमालय पर्वतपर आकर वहाँसे वे इस पृथ्वीपर उतरी हैं। श्रीगङ्गाजी स्वर्गकी जननी हैं। सबका कारण, सबसे श्रेष्ठ, रजोगुणसे रहित, अत्यन्त सूक्ष्म, मरे हुए प्राणियोंके लिये सुखद शय्या, पवित्र जलका स्रोत बहानेवाली, यश देनेवाली, जगत्‌की रक्षा करनेवाली, सत्स्वरूपा तथा सिद्धगणोंकी अभीष्ट देवी भगवती गङ्गा अपने भीतर स्नान करनेवालोंके लिये स्वर्गका मार्ग बन जाती हैं। क्षमा, रक्षा तथा धारण करनेमें पृथ्वीके समान और तेजमें अग्नि तथा सूर्यके समान शोभा पानेवाली गङ्गाजी स्वामी कार्तिकेयकी माननीया माता हैं और ब्राह्मणजातिपर अनुग्रह करनेके कारण ब्राह्मण भी उनका सदा सम्मान करते हैं। ऋषियोंके द्वारा जिनकी स्तुति होती है, जो भगवान् विष्णुके चरणोंसे उत्पन्न, अत्यन्त प्राचीन तथा परम पावन जलसे भरी हुई हैं, उन भगवती भागीरथीकी मनसे भी शरण लेनेवाले मनुष्य ब्रह्मधामको प्राप्त होते हैं। जैसे माता अपने पुत्रोंको स्नेहभरी दृष्टिसे देखती है, वैसे ही गङ्गाजी सर्वात्मभावसे अपने आश्रयमें आये हुए प्राणियोंको कृपादृष्टिसे देखकर उन्हें सर्वगुणसम्पन्न लोक प्रदान करती हैं। इसलिये जो ब्रह्मलोकको प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं, उन्हें अपने मनको वशमें करके सदा मातृभावसे गङ्गाजीकी उपासना करनी चाहिये। जो अमृतमयी, दूध देनेवाली गौके समान सबको पुष्ट करनेवाली, सब कुछ देखनेवाली, सम्पूर्ण जगत्‌के उपयोगमें आनेवाली, अन्न देनेवाली तथा पर्वतोंको धारण करनेवाली हैं, श्रेष्ठ पुरुष जिनका आश्रय लेते हैं और जिन्हें ब्रह्माजी भी प्राप्त करना चाहते हैं, उन भगवती गङ्गाजीका मोक्षाभिलाषी पुरुषोंको अवश्य आश्रय लेना चाहिये। राजा भगीरथ अपनी उग्र तपस्यासे भगवान् शंकरसहित सम्पूर्ण देवताओंको प्रसन्न करके गङ्गाजीको इस पृथ्वीपर ले आये। उनकी शरण जानेसे मनुष्यको इस लोक और परलोकमें भय नहीं रहता।

ब्रह्मन्! मैंने अपनी बुद्धिसे सोचकर यहाँ गङ्गाजीके गुणोंका एक अंश बतलाया है। मुझमें इतनी शक्ति नहीं है कि मैं उनके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन कर सकूँ। कदाचित् पूरा यत्न करनेसे मेरुगिरिके रत्नों और समुद्रके पानीकी माप बतायी जा सकती है, किंतु गङ्गाजलके गुणोंका वर्णन करना असम्भव है। अतः मैंने बड़ी श्रद्धाके साथ जो ये गङ्गाजीके गुण बतलाये हैं, उनपर विश्वास करके मन, वाणी, क्रिया, भक्ति और श्रद्धाके साथ तुम उनकी आराधना करो। इससे तुम बहुत शीघ्र दुर्लभ सिद्धि प्राप्तकर और तीनों लोकोंमें अपने यशका विस्तारकर गङ्गाजीकी सेवासे प्राप्त हुए अभीष्ट लोकोंमें इच्छानुसार विचरोगे। महान् प्रभाववाली भगवती भागीरथी तुम्हारी और मेरी बुद्धिको सदा स्वधर्मानुकूल गुणोंसे युक्त करें। श्रीगङ्गाजी बड़ी भक्तवत्सला हैं, वे संसारमें अपने भक्तोंको सुखी बनाती हैं।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! वह उत्तम बुद्धिवाला परम तेजस्वी सिद्ध शिलोञ्छवृत्तिके द्वारा जीविका चलानेवाले उस ब्राह्मणसे त्रिपथगा गङ्गाजीके यथार्थ गुणोंका नाना प्रकारसे वर्णन करके आकाशमें अन्तर्धान हो गया और वह ब्राह्मण उसके उपदेशसे गङ्गाजीके माहात्म्यको जानकर उनकी विधिवत् उपासना करके परम दुर्लभ सिद्धिको प्राप्त

हुआ। कुन्तीनन्दन ! इसी प्रकार तुम भी पराभक्तिके साथ सदा गङ्गाजीकी उपासना करो; इससे तुम्हें उत्तम सिद्धि प्राप्त होगी।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! भीष्मजीके द्वारा कहे हुए श्रीगङ्गाजीकी स्तुतिसे युक्त इस इतिहासको सुनकर भाइयोंसहित राजा युधिष्ठिरको बड़ी प्रसन्नता हुई। गङ्गाके स्तवनसे युक्त इस पवित्र इतिहासका जो श्रवण या पाठ करेगा, वह सब पापोंसे मुक्त हो जायगा।



राजा वीतहव्यको ब्राह्मणत्व प्राप्त होनेकी कथा

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! आप बुद्धि, विद्या, सदाचार, शील और सब प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न हैं। आपकी अवस्था भी सबसे बड़ी है। संसारमें आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जिससे सब प्रकारके प्रश्न पूछे जा सकें; अतः यह बतानेकी कृपा कीजिये कि क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र किस उपायसे ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकता है ? कौन-सी तपस्या, किस कर्मका अनुष्ठान अथवा किस शास्त्रके अध्ययनसे ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति हो सकती है ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! क्षत्रिय आदि तीन वर्णोंके लिये ब्राह्मणत्व प्राप्त करना कठिन है।

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! आप तो कहते हैं कि ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति कठिन है, किंतु मैंने (आपहीसे) सुना है कि पूर्वकालमें विश्वामित्र क्षत्रियसे ब्राह्मण हुए थे तथा यह भी सुना जाता है कि राजा वीतहव्यने भी ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था; अतः आप बताइये, किस वरदान अथवा तपस्यासे राजाको ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति हुई ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! महायशस्वी राजर्षि वीतहव्यने जिस प्रकार दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था, उसका वृत्तान्त सुनो। पूर्वकालमें धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करनेवाले महात्मा मनुके एक धर्मात्मा पुत्र हुआ, जिसका नाम था शर्याति। शर्यातिके वंशमें राजा वत्स हुआ, उसके हैहय और तालजङ्घनामक दो पुत्र हुए। ये दोनों ही राजा थे। हैहय (का ही दूसरा नाम वीतहव्य था, उस) के दस स्त्रियाँ थीं, उनके गर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जो युद्धसे पीछे न हटनेवाले और शूरवीर थे। उन दिनों काशीमें हर्यश्व नामसे प्रसिद्ध एक राजा राज्य करते थे, जो दिवोदासके पितामह थे। वीतहव्यके पुत्रोंने हर्यश्वके राज्यपर चढ़ाई की और उन्हें गङ्गा-यमुनाके बीच (प्रयागके निकट) युद्धमें मार डाला। तदनन्तर हर्यश्वके पुत्र सुदेवका, जो देवताके समान तेजस्वी और दूसरे धर्मके समान धर्मात्मा था, काशीके राज्यपर अभिषेक किया गया; किंतु वीतहव्यके पुत्रोंने आकर उसे भी संग्राममें मौतके घाट उतार दिया। इसके बाद सुदेवका पुत्र दिवोदास काशीका राजा बनाया गया, उस महातेजस्वीने जब मनको वशमें रखनेवाले वीतहव्यके पुत्रोंका पराक्रम सुना तो इन्द्रकी आज्ञासे वाराणसीनामकी नगरी बसायी। इसका घेरा गङ्गाजीके उत्तर तटसे लेकर गोमतीके दक्षिण किनारेतक फैला हुआ था। इसके भीतर बसी हुई वाराणसी नगरी इन्द्रकी अमरावतीके समान शोभा पा रही थी। उसमें निवास करते हुए राजा दिवोदासपर भी हैहयवंशी राजाओंने धावा किया। तब महाबली और तेजस्वी राजा दिवोदासने पुरीसे बाहर निकलकर शत्रुओंके साथ लोहा लिया। दोनों ओरकी सेनाओंमें एक हजार दिन (दो वर्ष नौ महीने दस दिन) तक देवासुर-संग्रामके समान भयंकर युद्ध होता रहा। इसमें राजा दिवोदासके बहुत-से वाहन और सिपाही काम आये, उनका खजाना खाली हो गया और वे बड़ी दयनीय अवस्थामें पड़ गये। अन्तमें अपनी राजधानी छोड़कर वे भाग चले और (प्रयागमें) भरद्वाज मुनिके आश्रमपर पहुँचकर दोनों हाथ जोड़े उनके शरणापन्न हो गये। बृहस्पतिनन्दन भरद्वाजजी बड़े शीलवान् और दिवोदासके पुरोहित थे। राजाको उपस्थित देखकर उन्होंने पूछा—'महाराज ! तुम्हें यहाँ आनेकी क्या आवश्यकता पड़ी ? अपना सारा समाचार बतलाओ। तुम्हारा जो भी प्रिय कार्य होगा, उसे मैं निःसंदेह पूर्ण करूँगा।'

राजाने कहा—भगवन् ! वीतहव्यके पुत्रोंने मेरे वंशका नाश कर डाला, मैं अकेला ही भागकर आपकी शरणमें आया हूँ।

यह सुनकर महाभाग भरद्वाज मुनिने कहा—'सुदेवनन्दन ! तुम डरो मत। मैं एक यज्ञ करूँगा, उससे तुम्हें ऐसे पुत्रकी प्राप्ति होगी, जिसकी सहायतासे तुम हजारों वीतहव्यके पुत्रोंको मार डालोगे।' यह कहकर भरद्वाज मुनिने राजाके लिये पुत्रेष्टिनामक यज्ञ किया। उसके प्रभावसे दिवोदासके यहाँ एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो संसारमें प्रतर्दनके नामसे प्रसिद्ध था। वह पैदा होते ही इतना बढ़ गया कि तुरंत तेरह वर्षकी अवस्थाका-सा दिखायी देने लगा। उसी समय उसने अपने मुखसे सम्पूर्ण वेद और धनुर्वेदका गान किया।

भरद्वाज मुनिने उसे योगशक्तिसे सम्पन्न कर दिया और उसके शरीरमें सम्पूर्ण जगत्का तेज भर दिया।

तदनन्तर, राजकुमार प्रतर्दनने अपने शरीरपर कवच और धनुष धारण किया, उस समय देवर्षिगण उसका यश गाने लगे। वह ढाल और तलवार बाँधकर अपना धनुष टंकारता हुआ आगे बढ़ा। उसे देखकर राजा दिवोदासको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने प्रतर्दनको युवराज बनाकर अपनेको कृतकृत्य समझा। इसके बाद दिवोदासने शत्रुदमन प्रतर्दनको वीतहव्यके पुत्रोंका वध करनेके लिये भेजा। पिताकी आज्ञा पाकर वह शत्रुविजयी वीर हैहयनगरीकी ओर चला और रथपर बैठे-ही-बैठे गङ्गाके पार होकर तुरंत ही वहाँ पहुँच गया। उसके रथकी घोर घरघराहट सुनकर विचित्र ढंगसे युद्ध करनेवाले हैहयराजकुमार कवचसे सुसज्जित होकर नगराकार विशाल रथोंपर बैठे हुए पुरीसे बाहर निकले और बाणोंकी वर्षा करते हुए प्रतर्दनपर चढ़ आये। तब उस तेजस्वी राजकुमारने अपने अस्त्रोंकी वर्षासे शत्रुओंके अस्त्रोंको रोक दिया और वज्र एवं अग्निके समान प्रज्वलित बाणों तथा भल्लोंसे उनके मस्तक काट डाले। हैहयवीर खूनसे लथपथ होकर सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें धराशायी हो गये। उस समय वे जड़से कटे हुए पुष्पित पलासके वृक्षोंके समान दिखायी दे रहे थे।

पुत्रोंके मारे जानेपर राजा वीतहव्य नगर छोड़कर भाग गये और भृगुजीके आश्रमपर जाकर उन्होंने महर्षिकी शरण ली। भृगुजीने राजाको अभयदान दे दिया। इतनेहीमें उनके पीछे लगा हुआ राजकुमार प्रतर्दन भी वहाँ आ पहुँचा और आश्रममें जाकर बोला—'इस आश्रमपर महात्मा भृगुके शिष्य कौन-कौन हैं? वे लोग उनके पास जाकर मेरे आगमनकी सूचना दें, मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ।' महामुनि भृगुको जब प्रतर्दनके आगमनका समाचार मिला तो उन्होंने आश्रमसे बाहर आकर उसका विधिवत् सत्कार किया और पूछा—'राजेन्द्र! बताओ मुझसे क्या काम है?' राजकुमारने उनसे अपने आनेका कारण बतलाते हुए कहा—'ब्रह्मन्! राजा वीतहव्यको यहाँसे निकाल दीजिये, इनके पुत्रोंने मेरे समस्त कुलका विध्वंस किया है, काशीका सारा प्रान्त उजाड़ डाला है और वहाँकी रत्न-राशि भी लूट ली है। इन्हें अपने पराक्रमका बड़ा घमंड था; किंतु इनके सौ पुत्रोंको मैंने मौतके घाट उतार दिया। अब इनका भी वध करके मैं पिताके ऋणसे उऋण हो जाऊँगा।' यह सुनकर



धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महर्षि भृगुने दयासे द्रवित होकर कहा—'यहाँ तो कोई भी क्षत्रिय नहीं है, ये सब-के-सब ब्राह्मण ही हैं।' सत्यवादी भृगुका यह यथार्थ वचन सुनकर प्रतर्दनने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और अत्यन्त प्रसन्न होकर धीरेसे कहा—'भगवन्! यदि ऐसी बात है तो भी मैं कृतार्थ हो गया; क्योंकि मेरे पराक्रमसे इस राजाको अपनी जाति त्याग देनी पड़ी। अब आप मुझे जानेकी आज्ञा दें और मेरे कल्याणका चिन्तन करें।'

भृगुजीने प्रतर्दनको जानेकी आज्ञा दे दी और वह जैसे आया था वैसे ही लौट गया। इस प्रकार भृगुजीके वचनमात्रसे राजा वीतहव्य ब्रह्मर्षि हो गये। क्षत्रिय होकर भी भृगुकी कृपासे उन्हें ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति हो गयी।



नारदजीका भगवान् श्रीकृष्णको पूज्य पुरुषके लक्षण बताना और उशीनरद्वारा शरणागत कपोतकी रक्षा

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! इस त्रिभुवनमें कौन-कौन-से मनुष्य पूज्य होते हैं ? इसका विस्तारसे वर्णन कीजिये। आपकी बातें सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इस विषयमें देवर्षि नारद और भगवान् श्रीकृष्णका संवादरूप इतिहास सुनो। एक समयकी बात है, देवर्षि नारदजी हाथ जोड़कर उत्तम ब्राह्मणोंकी पूजा कर रहे थे। उन्हें ऐसा करते देखकर भगवान् श्रीकृष्णने पूछा—'भगवन् ! आप किनको नमस्कार कर रहे हैं, आपके हृदयमें जिनके प्रति बहुत बड़ा आदर है तथा आप भी जिनके सामने मस्तक झुकाते हैं, ऐसे लोगोंका परिचय यदि मेरे सुननेयोग्य हो तो बताइये।'

नारदजीने कहा—गोविन्द ! जो लोग वरुण, वायु, आदित्य, पर्जन्य, अग्नि, रुद्र, स्वामी कार्तिकेय, लक्ष्मी, विष्णु, ब्रह्मा, बृहस्पति, चन्द्रमा, जल, पृथ्वी और सरस्वतीको सदा प्रणाम करते हैं, वे मेरे प्रणम्य हैं। तपस्या ही जिनका धन है, जो वेदोंके ज्ञाता और सदा वेदोक्त कर्मका अनुष्ठान करनेवाले हैं, उन परमपूजनीय पुरुषोंकी ही मैं सर्वदा पूजा करता रहता हूँ। जो भोजनसे पहले देवताओंकी पूजा करते, अपनी झूठी बड़ाई नहीं करते, संतुष्ट रहते और क्षमाशील होते हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो क्षमावान्, जितेन्द्रिय और मनपर काबू रखनेवाले हैं, जो विधिपूर्वक यज्ञानुष्ठान और सत्य, धर्म, पृथ्वी तथा गौओंकी पूजा करते हैं, वे मेरे नमस्कारके योग्य हैं। जो वनमें फल-मूलका भोजन करते हुए तपस्यामें लगे रहते हैं, किसी प्रकारका संग्रह नहीं रखते और क्रियानिष्ठ होते हैं, उनके सामने मैं सदा मस्तक झुकाता हूँ। जो माता-पिता आदि पोष्यवर्गका भरण-पोषण करनेमें समर्थ हैं, जिन्होंने सदा अतिथि-सेवाका व्रत ले रखा है तथा जो देवयज्ञसे बचे हुए अन्नका ही भोजन करते हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ जो वेदका अध्ययन करके दुर्द्धर्ष और बोलनेमें कुशल होते हैं, ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं और यज्ञ कराने तथा वेद पढ़ानेमें लगे रहते हैं, उनकी मैं सदा पूजा किया करता हूँ। जो नित्यशः सम्पूर्ण प्राणियोंपर प्रसन्न रहते और सबेरेसे दोपहरतक वेदका स्वाध्याय करते हैं, वे मेरे पूज्य हैं। जो गुरुको प्रसन्न रखने और स्वाध्याय करनेके लिये सदा यत्नशील रहते हैं, जिनका व्रत कभी भंग नहीं होने पाता, जो गुरुजनोंकी सेवा करते और किसीके भी दोष नहीं देखते, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सुन्दर व्रतका पालन करनेवाले, मननशील, सत्यप्रतिज्ञ और हव्य-कव्यको ग्रहण करनेवाले हैं, वे मेरे नमस्कारके योग्य हैं। जो गुरुकुलमें रहकर भिक्षासे जीवननिर्वाह करते हैं, तपस्यासे जिनका शरीर दुर्बल हो गया है, जो कभी धन और सुखकी चिन्ता नहीं करते, उनके आगे मैं अपना मस्तक झुकाता हूँ।

यदुनन्दन ! जिनके मनमें ममता नहीं है, जो द्वन्द्वोंसे परे हो गये हैं, जिन्होंने सर्वस्वके साथ लज्जाका भी परित्याग कर दिया है, जिन्हें इस संसारमें कोई प्रयोजन नहीं है, जो वेदकी शक्ति पाकर दुर्द्धर्ष, प्रवचन करनेमें कुशल और ब्रह्मवादी हैं, जिन्होंने अहिंसा और सत्यका व्रत ले रखा है तथा जो इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रहके साधनमें संलग्न रहते हैं, वे मेरे प्रणामके योग्य हैं। जो गृहस्थ ब्राह्मण कपोत-वृत्तिसे रहते हुए सदा देवता और अतिथियोंकी पूजामें संलग्न रहते हैं, उनके चरणोंमें मैं मस्तक झुकाता हूँ। जिनके कार्योंमें धर्म, अर्थ और काम तीनोंका निर्वाह होता है, किसी एककी भी हानि नहीं होने पाती तथा जो सदा शिष्टाचारमें संलग्न रहते हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। जो ब्राह्मण शास्त्रज्ञानसे सम्पन्न, त्रिवर्गका सेवन करनेवाले, लोभहीन और पुण्यशील होते हैं, वे मेरे वन्दनीय हैं। जो नाना प्रकारके व्रतोंका पालन करते हुए केवल पानी या हवा पीकर रह जाते हैं तथा जो सदा यज्ञशेष अन्नका ही भोजन करते हैं, उनके चरणोंमें मैं प्रणाम करता हूँ। जो स्त्री-परिग्रहसे रहित हैं, जिन्होंने अग्निहोत्रका आश्रय लिया है, वेद ही जिनका सबसे बड़ा सहारा है तथा जो सब प्राणियोंको आश्रय देते हैं, उन्हें मैं वन्दनीय मानता हूँ। जो लोकका कल्याण करनेवाले, संसारमें सबसे श्रेष्ठ, कुलमें उत्तम, अज्ञानका नाश करनेवाले तथा सूर्यके समान जगत्को ज्ञानालोक प्रदान करनेवाले हैं, उनके सामने भी मैं सदा मस्तक झुकाता हूँ।

इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण ! आप भी सदा ब्राह्मणोंकी पूजा कीजिये। जो सबका अतिथि-सत्कार करते हैं, गौ, ब्राह्मण और सत्यपर प्रेम रखते हैं, वे बड़े-से-बड़े संकटके पार हो जाते हैं। जो सदा मनको वशमें रखते, किसीके दोषपर दृष्टि नहीं डालते और प्रतिदिन स्वाध्यायमें संलग्न रहते हैं, उनका महान् संकटसे उद्धार हो जाता है। जो सब देवताओंको प्रणाम करते, एकमात्र वेदका आश्रय लेते, श्रद्धा रखते और इन्द्रियोंको वशमें कर लेते हैं, उनको भी बहुत बड़ी

विपत्तिसे छुटकारा मिल जाता है। जो व्रतका पालन करते हैं और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको नमस्कार करके उन्हें दान देते हैं, वे दुःखसे मुक्त हो जाते हैं। तपस्वी, आबाल ब्रह्मचारी, तपस्यासे शुद्ध अन्तःकरणवाले, देवता, अतिथि, पोष्यवर्ग तथा पितरोंका पूजन करनेवाले और यज्ञशेष अन्नके भोक्ता पुरुष भी दुर्गम विपत्तियोंसे छूट जाते हैं। जो अग्निकी स्थापना करके विधिपूर्वक नमस्कार करते हुए सदा उसे प्रज्वलित रखते हैं तथा जो सोम-यज्ञमें विधिवत् आहुति करते हैं, वे संकटके पार हो जाते हैं तथा जो आपहीकी भाँति सदा माता, पिता और गुरुजनोंका आदर करते हैं, उनका भी दुःख छूट जाता है।

यह कहकर नारदजी चुप हो गये। कुन्तीनन्दन ! तुम भी सदा देवता, पितर, ब्राह्मण एवं अतिथियोंकी पूजा करते हो, इसलिये तुम्हें भी मनोवाञ्छित गति प्राप्त होगी।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! आप सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण हैं, अतः आपहीसे धर्मविषयक बातें सुननेकी इच्छा होती है। अब यह बतानेकी कृपा कीजिये कि जो लोग शरणमें आये हुए अण्डज, पिण्डज, स्वेदज और उद्भिज—इन चार प्रकारके प्राणियोंकी रक्षा करते हैं, उनको क्या फल मिलता है ?

भीष्मजीने कहा—धर्मनन्दन ! शरणागतकी रक्षा करनेसे जो महान् फल होता है, उसके विषयमें तुम एक प्राचीन इतिहास सुनो। एक समयकी बात है, एक बाज किसी सुन्दर कबूतरको मार रहा था। वह कबूतर बाजके डरसे भागकर महाभाग राजा वृषदर्भ (उशीनर-नरेश) की शरणमें गया। राजाका अन्तःकरण बहुत शुद्ध था। उन्होंने जब उस पक्षीको भयभीत होकर अपनी गोदमें आया देखा तो उसे धीरज देते हुए कहा—'कपोत ! अब तुझे किसी भी पक्षीका डर नहीं है; किंतु यह तो बता, तुझे यह महान् भय कहाँ और किससे प्राप्त हुआ ? तूने क्या अपराध किया है ? जिससे घबराया हुआ-सा यहाँ आया है। मैं तुझे अभय देता हूँ, मेरे पास आ जानेपर अब कोई तुझे पकड़नेका विचार भी मनमें नहीं ला सकता। यह काशीका राज्य और अपना जीवनतक तेरी रक्षाके लिये निछावर कर दूँगा। तू विश्वास कर, अब तुझे तनिक भी भय नहीं है।'

इतनेमें बाज भी वहाँ आकर बोला—'राजन् ! यह कबूतर मेरा भोजन है। इसके मांस, मज्जा, रक्त और मेदेसे मेरा हित होनेवाला है। यह मेरी भूख मिटाकर मेरी पूर्ण तृप्ति कर सकता है। आप मेरे और इसके बीचमें न पड़िये। मुझे भूखकी ज्वाला जला रही है, आप इस कबूतरको छोड़ दीजिये, मैं बड़ी दूरसे इसके पीछे उड़ता आ रहा हूँ। मेरे नाखून और परोंसे यह काफी घायल हो चुका है, अब इसमें कुछ-ही-कुछ साँस बाकी है। आप इसे बचानेकी चेष्टा न कीजिये। अपने देशमें रहनेवाले मनुष्योंकी ही रक्षा करनेके लिये आप राजा बनाये गये हैं। भूख-प्याससे तड़पते हुए पंछीको रोकनेका आपको कोई अधिकार नहीं है। यदि आपमें शक्ति है तो वैरियों, सेवकों, स्वजनों और इन्द्रियोंके विषयोंपर ही पराक्रम दिखाइये। आकाशचारियोंपर अपना पौरुष न प्रकट कीजिये। यदि धर्मके लिये आप कबूतरकी रक्षा करते हों तो मुझ भूखे पक्षीपर भी आपको दृष्टि डालनी चाहिये। देवताओंने सनातन कालसे कबूतरको बाजका भोजन बना रखा है। प्राचीन कालसे लोग इस बातको जानते हैं कि बाज कबूतर खाते हैं। महाराज उशीनर ! यदि आपको कबूतरपर बड़ा स्नेह है तो आप मुझे कबूतरके बराबर अपना ही मांस तराजूपर तौलकर दे दीजिये।'

राजाने कहा—बाज ! तुमने ऐसी बात कहकर मुझपर बड़ा अनुग्रह किया। बहुत अच्छा, मैं ऐसा ही करूँगा।

यह कहकर राजा उशीनर अपने मांस काट-काटकर तराजूपर तौलने लगे। यह समाचार सुनकर अन्तःपुरकी रानियाँ बहुत दुःखित हुईं और हाहाकार करती हुई बाहर निकल आयीं। सेवक, मन्त्री और रानियोंके रोनेसे वहाँ मेघकी गम्भीर गर्जनाके समान महान् कोलाहल मच गया। पहले आसमान साफ था, किंतु उस समय वहाँ बादलोंकी घटा घिर आयी। राजाका वह साहसपूर्ण कार्य देखकर पृथ्वी काँप उठी। वे अपनी पसलियों, भुजाओं और जाँघोंसे मांस काट-काटकर जल्दी-जल्दी तराजू भरने लगे तथापि वह मांसराशि उस कबूतरके बराबर न हुई। जब राजाके शरीरका मांस चुक गया और रक्तकी धारा बहाता हुआ केवल हड्डियोंका ढाँचामात्र रह गया, तब वे मांस काटनेका काम बंद करके स्वयं ही तराजूपर चढ़ गये।

यह देखकर इन्द्रसहित तीनों लोकके देवता राजा उशीनरके पास आ पहुँचे और आकाशमें खड़े होकर भेरी तथा दुन्दुभी बजाने लगे। देवताओंने राजा वृषदर्भ (उशीनर) को अमृतसे नहलाया, उनके ऊपर अत्यन्त सुखदायक दिव्य पुष्पोंकी बारम्बार वर्षा की। इतनेहीमें एक विमान उपस्थित हुआ। जिसमें सुवर्णके महल बने हुए थे, सोने और मणियोंकी बन्दनवारें लगी थीं और वैदूर्यमणिके खम्भे शोभा पा रहे थे। राजर्षि उशीनर उस विमानमें बैठकर सनातन लोकको प्राप्त हुए। युधिष्ठिर ! तुम्हें भी शरणागत प्राणियोंकी इसी प्रकार रक्षा करनी चाहिये। जो मनुष्य अपने भक्त, प्रेमी और शरणागत पुरुषोंकी रक्षा करता है तथा सब प्राणियोंपर दया रखता है, वह परलोकमें सुख पाता है। जो

राजा सदाचारी होकर सबके साथ सद्‌बर्ताव करता है, वह अपने कर्मसे किस वस्तुको नहीं प्राप्त कर लेता ? सत्य-पराक्रमी, धीर और शुद्ध हृदयवाले काशीनरेश राजर्षि उशीनर अपने कर्मसे तीनों लोकोंमें विख्यात हो गये। यदि दूसरा कोई पुरुष भी इसी प्रकार शरणागतकी रक्षा करेगा तो वह भी उसी गतिको प्राप्त करेगा। राजर्षि वृषदर्भके इस चरित्रका जो सदा वर्णन और श्रवण करता है, वह पुण्यात्मा होता है।



ब्राह्मणोंके महत्त्वका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! राजाके सम्पूर्ण कर्मोंमें किसका महत्त्व अधिक है ? वह किस कर्मका अनुष्ठान करनेसे इस लोक और परलोकमें सुखी होता है ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! राज्य-सिंहासनपर आसीन होकर अत्यन्त सुख चाहनेवाले राजाके लिये सबसे प्रधान कर्तव्य है ब्राह्मणोंकी सेवा। प्रत्येक राजाको वेदज्ञ ब्राह्मणों और वृद्ध पुरुषोंका सदा आदर करना चाहिये। नगर और प्रान्तमें रहनेवाले बहुश्रुत ब्राह्मणोंकी मधुर वाणी बोलकर, उत्तम भोग प्रदान कर तथा सादर नमस्कार करके पूजा करनी चाहिये। राजा जिस प्रकार अपनी तथा अपने पुत्रोंकी रक्षा करता है, उसी प्रकार ब्राह्मणोंकी भी करे, यही उसका सबसे प्रधान कर्तव्य है। ब्राह्मणों तथा उनके पूज्य पुरुषोंकी भी सुस्थिर चित्तसे पूजा करे; क्योंकि उनके शान्त रहनेपर ही सारा राष्ट्र शान्त एवं सुखी रह सकता है। राजाके लिये ब्राह्मण ही पिताकी भाँति पूजनीय, वन्दनीय और माननीय हैं। जैसे प्राणियोंका जीवन वर्षा करनेवाले इन्द्रपर निर्भर है, उसी प्रकार जगत्‌की जीवनयात्रा ब्राह्मणोंपर ही अवलम्बित है। ये जिस समय क्रोधमें भर जाते हैं, उस समय दावानलकी लपटोंके समान दाहक दृष्टिसे देखते हैं। इनसे बड़े-बड़े साहसी भी भय मानते हैं; क्योंकि इनके भीतर गुण ही अधिक होते हैं। इन ब्राह्मणोंमें कुछ तो घास-फूससे ढके हुए कूपकी तरह अपने तेजको छिपाये रहते हैं और कुछ निर्मल आकाशकी भाँति देदीप्यमान होते हैं। कुछ हठी होते हैं और कुछ रुईकी तरह कोमल। कोई-कोई ब्राह्मण खेती और गोरक्षासे जीवन चलाते हैं और कोई भिक्षापर जीवन-निर्वाह करते हैं तथा कितने ही सब प्रकारके कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। इस तरह नाना प्रकारके ब्राह्मण देखे जाते हैं। उन धर्मज्ञ एवं सत्पुरुष ब्राह्मणोंका सदा गुण गाना चाहिये। प्राचीन कालसे ही ब्राह्मणलोग देवता, पितर, मनुष्य, नाग और राक्षसोंके पूजनीय हैं। इनमेंसे कोई भी ब्राह्मणोंको जीत नहीं सकता। ब्राह्मण चाहें तो जो देवता नहीं है उसे देवता बना दें और देवताको भी देवत्वसे भ्रष्ट कर दें। वे जिसे राजा बनाना चाहें वही राजा रह सकता है। जिसे राजाके रूपमें न देखना चाहें उसका पराभव हो जाता है। राजन् ! मैं तुमसे यह सच्ची बात बता रहा हूँ, जो मूर्ख मनुष्य ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हैं, उनका निःसंदेह नाश हो जाता है। ब्राह्मण जिसकी प्रशंसा करते हैं, उस पुरुषका अभ्युदय होता है और जिसको वे शाप देते हैं, उसका एक क्षणमें पराभव हो जाता है। शक, यवन, काम्बोज आदि जातियाँ पहले क्षत्रिय ही थीं; किंतु ब्राह्मणोंकी उत्तम दृष्टिसे वञ्चित होनेके कारण उन्हें म्लेच्छ होना पड़ा। द्रविड़, कलिङ्ग, पुलिन्द, उशीनर, कोलिसर्प और माहिषक आदि क्षत्रिय जातियाँ भी ब्राह्मणोंकी ही कुदृष्टि पड़नेसे शूद्र हो गयीं। ब्राह्मणोंसे हार मान लेनेमें ही कल्याण है, उनको हराना अच्छा नहीं। ब्राह्मणोंकी निन्दा किसी तरह नहीं सुननी चाहिये। जहाँ उनकी निन्दा होती हो वहाँ नीचे मुँह करके चुपचाप बैठे रहना या उठकर चल देना चाहिये। इस पृथ्वीपर कोई भी ऐसा मनुष्य न पैदा हुआ और न पैदा होगा, जो ब्राह्मणके साथ विरोध करके सुखपूर्वक जीवित रहनेका साहस करे। हवाको मुट्ठीमें पकड़ना, चन्द्रमाको हाथसे छूना और पृथ्वीको उठा लेना जैसे अत्यन्त कठिन काम है, उसी तरह इस पृथ्वीपर ब्राह्मणोंको जीतना दुष्कर है।

इसलिये राजाओंको चाहिये कि उत्तम भोग, आभूषण और दूसरे मनोवाञ्छित पदार्थ देकर नमस्कार आदिके द्वारा सदा ब्राह्मणोंकी पूजा करें और पिताके समान उनके पालन-पोषणका ध्यान रखें, तभी राष्ट्रमें शान्ति रह सकती है। अतः तुम्हारे राज्यमें पवित्र और ब्रह्मतेजसे सम्पन्न ब्राह्मण अवश्य रहना चाहिये। कुलीन, धर्मज्ञ और उत्तम व्रत करनेवाले ब्राह्मणको अपने घरमें स्थान देना चाहिये; क्योंकि ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। ब्राह्मणोंको ही दिये हुए हविष्यको देवतालोग स्वीकार करते हैं। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, जल, पृथ्वी, आकाश और दिशा—इन सबके अधिष्ठाता देवता सदा ब्राह्मणके शरीरमें प्रवेश करके अन्न भोजन करते

हैं। ब्राह्मण जिसका अन्न नहीं खाते, उसके अन्नको पितर भी नहीं स्वीकार करते। ब्राह्मणसे द्वेष करनेवाले पापी पुरुषका अन्न देवता भी नही ग्रहण करते। यदि ब्राह्मण संतुष्ट हो जायँ तो देवता और पितर भी सदा प्रसन्न रहते हैं। ब्राह्मणोंको संतुष्ट रखनेवाले पुरुष मरनेके बाद उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं, उनका नाश नहीं होने पाता। मनुष्य जिस-जिस हविष्यसे ब्राह्मणोंको तृप्त करता है, उसी-उसीसे देवता और पितरोंकी भी तृप्ति होती है। जिससे समस्त प्रजा उत्पन्न होती है, वह यज्ञ आदि कर्म ब्राह्मणोंसे ही सम्पन्न होता है।

जीव जहाँसे उत्पन्न होता है और मरनेके पश्चात् जहाँ जाता है उस परमात्माको, स्वर्ग और नरकके मार्गको तथा भूत और भविष्यको ब्राह्मण ही जानते हैं। जो अपने धर्मको जानता है, वही सच्चा ब्राह्मण है। जो लोग ब्राह्मणोंका अनुसरण करते हैं, उनकी कभी पराजय नहीं होती तथा मृत्युके पश्चात् उनका विनाश नहीं होता। ब्राह्मणके मुँहसे निकले हुए वचनको जो सादर स्वीकार करते हैं, वे महात्मा कभी पराभवको नहीं प्राप्त होते। अपने तेज और बलसे तपते हुए क्षत्रियोंके तेज और बल ब्राह्मणोंके सामने आते ही शान्त हो जाते हैं। भृगुवंशी ब्राह्मणोंने तालजङ्घोंको, अङ्गिराकी संतानोंने नीपवंशी राजाओंको तथा भरद्वाजने हैहयों और इलाके पुत्रोंको परास्त किया था। क्षत्रियोंके पास अनेकों प्रकारके आयुध थे तो भी कृष्णमृगचर्म धारण करनेवाले ब्राह्मणोंने उन्हें हरा दिया। संसारमें जो कुछ कहा, सुना या पढ़ा जाता है वह सब काठमें छिपी हुई आगकी तरह ब्राह्मणोंमें ही स्थित है।

इस विषयमें भगवान् श्रीकृष्ण और पृथ्वीके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। किसी समय भगवान् श्रीकृष्णने पृथ्वीसे पूछा—'कल्याणी ! तुम सम्पूर्ण प्राणियोंकी माता हो, इसलिये मैं तुमसे एक संदेह पूछ रहा हूँ। गृहस्थ मनुष्य किस कर्मके अनुष्ठानसे अपने पापका नाश कर सकता है ?'

पृथ्वीने कहा—इसके लिये मनुष्यको ब्राह्मणोंकी ही सेवा करनी चाहिये, यही सबसे पवित्र और उत्तम कार्य है। ब्राह्मणकी सेवा करनेवाले पुरुषके सम्पूर्ण दोष नष्ट हो जाते हैं। ऐश्वर्य, कीर्ति और उत्तम बुद्धि भी ब्राह्मणसे ही प्राप्त होती है। उत्तम जातिसे सम्पन्न, धर्मज्ञ, उत्तम व्रतका पालन करनेवाले और पवित्र ब्राह्मणकी नित्य सेवा करनी चाहिये। माधव ! देखिये ब्राह्मणोंका प्रभाव, उन्होंने चन्द्रमामें कलङ्क लगा दिया, समुद्रका पानी खारा बना दिया तथा इन्द्रके शरीरमें एक हजार भगके चिह्न उत्पन्न कर दिये और फिर उन्हींके प्रभावसे वे भग नेत्रके रूपमें परिणत हो गये; जिनके कारण इन्द्र 'सहस्राक्ष' कहलाते हैं। इसलिये जो कीर्ति, ऐश्वर्य और उत्तम लोकोंको प्राप्त करना चाहता हो, उसे ब्राह्मणोंकी आज्ञामें स्थित रहना चाहिये।

भीष्मजी कहते हैं—पृथ्वीके ये वचन सुनकर भगवान् मधुसूदनने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—'वाह ! तुमने बहुत अच्छी बात बतायी।' युधिष्ठिर ! ब्राह्मणोंका यह माहात्म्य सुनकर तुम्हें सदा पवित्रभावसे उनकी पूजा करनी चाहिये, इससे तुम्हारा कल्याण होगा। महाभाग्यशाली ब्राह्मण जन्मसे ही समस्त प्राणियोंके वन्दनीय, अतिथि और प्रथम भोजन पानेके अधिकारी हैं। वे सब अर्थोंको सिद्ध करनेवाले, सबके सुहृद् और देवताओंके मुख हैं तथा पूजित होनेपर वे मङ्गलमयी वाणीसे आशीर्वाद देकर मनुष्यके कल्याणका चिन्तन करते हैं। पूर्वकालमें प्रजापतिने ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको पूर्ववत् उत्पन्न करके उनको समझाया, तुमलोगोंके लिये स्वधर्मपालन और ब्राह्मणोंकी सेवाके सिवा और कोई कर्तव्य नहीं है। ब्राह्मणकी रक्षा करनेपर वह स्वयं भी अपने रक्षककी रक्षा करता है। ब्राह्मणकी सेवासे तुमलोगोंका कल्याण होगा। विद्वान् ब्राह्मणको शूद्रोचित कर्म नहीं करना चाहिये। शूद्रके कर्म करनेसे उसका धर्म नष्ट होता है। स्वधर्मका पालन करनेसे लक्ष्मी, बुद्धि, तेज और प्रतापयुक्त ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है तथा स्वाध्यायका अत्यधिक माहात्म्य उपलब्ध होता है। ब्राह्मण आहवनीय अग्निमें स्थित देवतागणोंको हवनसे तृप्त करके अत्यन्त सौभाग्यशाली होते हैं। द्विजगण ! यदि तुमलोग किसी भी प्राणीके साथ द्रोह न करनेसे प्राप्त हुई परम श्रद्धाके द्वारा इन्द्रियसंयम और स्वाध्यायमें लगे रहोगे तो तुम्हारी सारी कामनाएँ पूर्ण होंगी। मनुष्यलोकमें तथा देवलोकमें जो कुछ भोग्य वस्तुएँ हैं, वे सब ज्ञान, नियम और तपस्यासे प्राप्त होनेवाली हैं।

युधिष्ठिर ! इस प्रकार ब्राह्मणोंपर कृपा करनेके लिये बुद्धिमान् ब्रह्माजीने जो उपदेश दिया था, वह ब्रह्मगीता मैंने तुम्हें सुना दी। मेकल, द्राविड़, लाट, पौण्ड्र, कान्वशिरा, शौण्डिक, दरद, दार्व, चौर, शबर, बर्बर, किरात और यवन—ये सब पहले क्षत्रिय थे; किंतु ब्राह्मणोंके अमर्षसे नीच हो गये। ब्राह्मणोंके तिरस्कारसे असुरोंको समुद्रके जलमें रहना पड़ा और ब्राह्मणोंकी ही कृपासे देवतालोग स्वर्गके निवासी हुए। जैसे आकाशको छूना, हिमालयको विचलित करना और मेड़ बाँधकर गङ्गाके प्रवाहको रोक देना असम्भव है, उसी प्रकार इस पृथ्वीपर ब्राह्मणोंको जीतना असम्भव

है। ब्राह्मणोंसे विरोध करके भूमण्डलका राज्य नहीं किया जा सकता; क्योंकि ब्राह्मण महात्मा और देवताओंके भी देवता हैं। युधिष्ठिर ! यदि तुम समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका राज्य भोगना चाहते हो तो दान और सेवाके द्वारा सदा ब्राह्मणोंकी पूजा किया करो। दान लेनेसे ब्राह्मणोंका तेज शान्त हो जाता है, इसलिये जो दान नहीं लेना चाहते, उन ब्राह्मणोंसे तुम्हें अपने कुलकी रक्षा करनी चाहिये।

इस विषयमें इन्द्र और शम्बरासुरके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है, उसे सुनो। एक समयकी बात है, देवराज इन्द्र रजोगुणसम्पन्न जटाधारी तपस्वी बनकर एक बेडौल रथपर सवार हो अपरिचित व्यक्तिके रूपमें शम्बरासुरके पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने इस प्रकार प्रश्न किया—'शम्बरासुर ! तुम किस बर्तावसे अपनी जातिवालोंपर शासन करते हो ? वे किस कारण तुम्हें सर्वश्रेष्ठ मानते हैं ? यह ठीक-ठीक बतलाओ।'

शम्बरासुरने कहा—मैं ब्राह्मणोंमें कभी दोष नहीं देखता, उनके मतको ही अपना मत समझता हूँ और शास्त्रोंकी बात बतानेवाले विप्रोंका सदा सम्मान करता हूँ—उन्हें सुख देनेकी चेष्टा करता हूँ। सुनकर उनके वचनोंकी अवहेलना नहीं करता, कभी उनका अपराध नहीं करता, उनकी पूजा करके कुशल पूछता हूँ और उनके दोनों चरणोंमें प्रणाम करता हूँ। ब्राह्मण भी अत्यन्त विश्वस्त होकर मेरे साथ बातचीत करते और मेरी कुशल पूछते हैं। ब्राह्मणोंके असावधान रहनेपर भी मैं सदा सावधान रहता हूँ। उनके सोते रहनेपर भी मैं जागता रहता हूँ। वे मुझे शास्त्रीय मार्गपर चलनेवाला, ब्राह्मणभक्त तथा दोषदृष्टिसे रहित जानकर अपने सदुपदेशके अमृतसे सींचते रहते हैं। संतुष्ट होकर वे मुझसे जो कुछ कहते हैं, उसे मैं अपनी बुद्धिके द्वारा ग्रहण करता हूँ। मेरा मन सदा ब्राह्मणोंमें लगा रहता है और मैं सदा उनके अनुकूल विचार रखता हूँ। उनकी वाणीसे जो उपदेशका मधुर रस प्रवाहित होता है, उसका आस्वादन करता रहता हूँ। इसीलिये नक्षत्रोंपर चन्द्रमाकी भाँति मैं अपनी जातिवालोंपर शासन करता हूँ। ब्राह्मणके मुखसे शास्त्रका उपदेश सुनकर उसके अनुसार बर्ताव करना ही पृथ्वीपर सर्वोत्तम अमृत और सर्वोत्तम दृष्टि है। इस बातको जानकर मेरे पिता बहुत प्रसन्न हुए थे। उन्होंने महात्मा ब्राह्मणोंकी महिमा देखकर चन्द्रमासे पूछा—'इन ब्राह्मणोंको किस प्रकार सिद्धि प्राप्त हुई ?'

चन्द्रमाने कहा—सम्पूर्ण ब्राह्मण तपस्यासे ही सिद्ध हुए हैं। इनका बल इनकी वाणीमें होता है। पहले गुरुके घरमें ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए क्लेशसहनपूर्वक निवास करके प्रणवसहित वेदका अध्ययन करना चाहिये। फिर अन्तमें क्रोध त्याग कर शान्तभावसे संन्यास ग्रहण करना चाहिये। संन्यासीको सर्वत्र समानदृष्टि रखनी चाहिये। जो सम्पूर्ण वेदोंको अपने पिताके घरमें रहकर पढ़ता है, वह ज्ञानसम्पन्न और प्रशंसनीय होनेपर भी विद्वानोंके द्वारा ग्रामीण (गँवार) ही समझा जाता है (वास्तवमें गुरुके घर रहकर वेद पढ़नेवाला ही श्रेष्ठ है)। जैसे साँप बिलमें रहनेवाले छोटे जीवोंको निगल जाता है, उसी प्रकार युद्ध न करनेवाले क्षत्रिय और प्रवास न करनेवाले ब्राह्मणको यह पृथ्वी निगल जाती है। मन्दबुद्धि पुरुषके भीतर जो अभिमान होता है, वह उसकी लक्ष्मीका नाश करता है। गर्भ धारण करनेसे कन्या और सदा घरमें रहनेसे ब्राह्मण दूषित समझे जाते हैं।

मेरे पिताने चन्द्रमासे यह बात सुनकर ब्राह्मणोंका पूजन किया था, उन्हींकी भाँति मैं भी उत्तम व्रत धारण करनेवाले ब्राह्मणोंकी पूजा करता हूँ।

भीष्मजी कहते हैं—दानवराज शम्बरके मुँहसे यह वचन सुनकर इन्द्रने ब्राह्मणोंका पूजन किया, इससे उन्हें महेन्द्रपदकी प्राप्ति हुई।



दानपात्र पुरुषोंकी परीक्षा और स्त्री-रक्षाके विषयमें देवशर्मा तथा विपुलकी कथा

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! दानका पात्र कौन होता है ? अपरिचित पुरुष या बहुत दिनोंतक अपने साथ रहा हुआ अथवा दूर देशसे आया हुआ ? इनमेंसे किसे पात्र समझना चाहिये ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इनमेंसे कोई-कोई अपनी क्रियाके कारण दानका पात्र होता है और कुछ लोग अपने मौनव्रतके कारण। जो मनुष्य (यज्ञ करने या गुरुदक्षिणा आदि देनेके उद्देश्यसे) सब कुछ दान कर देनेके लिये किसी वस्तुकी याचना करता है, वह भी दानका पात्र है। कुटुम्बके मनुष्योंको कष्ट न देकर ही दान करना चाहिये। जिनके भरण-पोषणका भार अपने ऊपर है, उनको कष्ट देकर दान करनेवाला मनुष्य अपनेको नीचे गिराता है। इस प्रकार जो

पहलेसे परिचित नहीं है या जो बहुत दिनोंतक साथ रह चुका है अथवा जो दूर देशसे आया हुआ है—इन तीनोंको ही विद्वान् पुरुष दानपात्र समझते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! किसी प्राणीको पीड़ा न पहुँचे और धर्ममें भी बाधा न आने पावे, इस प्रकार दान देना उचित है; किंतु पात्रकी यथार्थ पहचान कैसे हो ? जिससे उसको दान करनेके बाद मनमें पश्चात्ताप न हो।

भीष्मजीने कहा—बेटा ! ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, शिष्य, सम्बन्धी, बान्धव, विद्वान् और दोषदृष्टिसे रहित पुरुष—ये सभी पूजनीय और माननीय हैं। इनके विपरीत बर्ताव करनेवाले पुरुष सत्कारके योग्य नहीं हैं। अतः खूब सोच-विचारकर योग्य पुरुषोंकी परख करनी चाहिये। अक्रोध, सत्यभाषण, अहिंसा, इन्द्रियसंयम, सरलता, द्रोह और अभिमानका अभाव, लज्जा, सहनशीलता और मनोनिग्रह—ये गुण जिनमें स्वभावतः दिखायी दें और कोई बुराई न जान पड़े, वे दान और सम्मानके उत्तम पात्र हैं। जो पुरुष बहुत दिनोंतक अपने साथ रहा हो, वह भी दानका पात्र है तथा जो तुरंत आया हो, वह परिचित हो या अपरिचित, दान और सम्मान पानेके योग्य है। वेदोंको अप्रामाणिक मानना, शास्त्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना और सर्वत्र अव्यवस्था फैलाना अपने ही विनाशका कारण है। जो ब्राह्मण अपने पाण्डित्यका अभिमान करके व्यर्थके तर्कका आश्रय लेकर वेदोंकी निन्दा करता है, सत्पुरुषोंकी सभामें कोरी तर्ककी बातें कहकर विजय पाता, शास्त्रानुकूल युक्तियोंका प्रतिपादन नहीं करता, जोर-जोरसे हल्ला मचाता और बहुत अधिक बोलता है, जो सबपर संदेह करता, बालकों और मूर्खोंका-सा व्यवहार करता तथा कठोर वचन बोलता है, ऐसे पुरुषको अस्पृश्य समझना चाहिये। विद्वानोंकी दृष्टिमें वह मनुष्योंमें कुत्तेके समान है। जैसे कुत्ता भूँकने और काटनेके लिये दौड़ता है, इसी प्रकार वह बहस करने और शास्त्रोंका खण्डन करनेके लिये इधर-उधर दौड़ता फिरता है (ऐसे लोग दानके पात्र नहीं हैं)। मनुष्यको जगत्‌के व्यवहारपर दृष्टि डालनी चाहिये, धर्म और अपने कल्याणके उपायोंपर विचार करना चाहिये, ऐसा करनेवाला पुरुष सदा ही उन्नतिशील होता है। जो (यज्ञ-यागादि करके) देवताओंके, (वेदोंका स्वाध्याय करके) ऋषियोंके, (सत्पुत्रकी उत्पत्ति तथा श्राद्ध करके) पितरोंके, (दान देकर) ब्राह्मणोंके और (आतिथ्य-सत्कार करके) अतिथियोंके ऋणसे मुक्त होना और क्रमशः विशुद्ध (निष्काम) एवं विनययुक्त भावसे शास्त्रोक्त कर्मका अनुष्ठान करता है, वह गृहस्थ कभी धर्मसे भ्रष्ट नहीं होता।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! पुरुष इस संसारमें तरुणी स्त्रियोंकी रक्षा किस प्रकार कर सकता है ? जो सत्यको असत्य और असत्यको सत्य बना देती हैं, जो सत्कार करने और न करनेपर भी मनमें विकार पैदा कर देती हैं, ऐसी स्त्रियोंकी रक्षा कौन कर सकता है ? यदि उनकी रक्षा किसी प्रकार सम्भव हो अथवा किसीने पहले कभी उनकी रक्षा की हो तो उस विषयका स्पष्ट वर्णन कीजिये।

भीष्मजीने कहा—महाबाहो ! तुम स्त्रियोंके विषयमें जैसा कह रहे हो वह ठीक ही है, इसमें मिथ्या कुछ भी नहीं है। इस विषयमें मैं तुम्हें एक पुराना इतिहास सुना रहा हूँ, जिसमें महात्मा विपुलने जिस प्रकार गुरुपत्नीकी रक्षा की थी, उसीका वर्णन है। वास्तवमें तरुणी स्त्रियाँ प्रज्वलित अग्निके समान हैं। ये मयदानवकी बनायी हुई माया हैं। क्षुरेकी धार, विष, सर्प और अग्नि एक ओर और स्त्रियाँ एक ओर। प्राचीन कालकी बात है, देवशर्मा नामसे प्रसिद्ध एक महान् सौभाग्यशाली ऋषि थे। उनके रुचि नामकी एक स्त्री थी, जो इस पृथ्वीपर अद्वितीय सुन्दरी थी। उसका रूप देखकर देवता, दानव और गन्धर्व भी मतवाले हो जाते थे। इन्द्र तो उसपर विशेषरूपसे आसक्त थे। महामुनि देवशर्मा स्त्रियोंके चरित्रसे भलीभाँति परिचित थे और यह भी जानते थे कि इन्द्र बड़ा ही परस्त्रीलम्पट है, इसलिये वे अपनी स्त्रीकी यत्नपूर्वक रक्षा करते थे। एक बार उनके मनमें यज्ञ करनेका विचार हुआ। उस समय वे सोचने लगे 'यदि मैं यज्ञमें लग जाऊँ तो मेरी स्त्रीकी रक्षा कैसे होगी ?' फिर मन-ही-मन उसकी रक्षाका उपाय निश्चित कर उन महातपस्वीने अपने प्रिय शिष्य विपुलको, जो भृगुगोत्रमें उत्पन्न हुआ था, बुलाया और उससे इस प्रकार कहा—'बेटा ! मैं यज्ञ करने जाऊँगा, तुम मेरी स्त्री रुचिकी बलपूर्वक रक्षा करना; क्योंकि देवराज इन्द्र सदा इसे प्राप्त करनेकी घातमें लगा रहता है। उसकी ओरसे तुम्हें सदा सावधान रहना चाहिये; क्योंकि वह नाना प्रकारके रूप धारण करता है।'

विपुल बड़े ही जितेन्द्रिय और उग्र तपस्वी थे, अग्नि और सूर्यके समान उनकी कान्ति थी तथा वे धर्मके ज्ञाता और सत्यवादी थे। गुरुकी आज्ञा सुनकर उन्होंने उत्तर दिया—'बहुत अच्छा, मैं ऐसा ही करूँगा।' फिर जब गुरुजी चलनेको उद्यत हुए तो विपुलने पूछा—'मुने ! इन्द्र जब आता है तो कौन-कौन-से रूप धारण करता है ? उसका शरीर और तेज कैसा है ? यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।'

देवशर्माने कहा—बेटा ! इन्द्र बड़ा मायावी है, वह बारंबार बहुत-से रूप बदलता रहता है। कभी तो मस्तकपर मुकुट पहने, हाथमें वज्र और धनुष लिये तथा कानोंमें कुण्डल

धारण किये आता है और कभी एक ही क्षणमें चाण्डालके समान रूप बना लेता है। कभी हृष्ट-पुष्ट और बड़ा शरीर धारण करता है तथा कभी चिथड़े पहने दीन-दुर्बल देहमें दिखायी देता है। अपने शरीरका रंग भी कभी गोरा, कभी साँवला और कभी काला बना लेता है। एक ही क्षणमें कुरूप हो जाता है और एक ही क्षणमें रूपवान्। कभी बूढ़ा बन जाता है कभी जवान। वह तोते, कौवे, हंस, कोयल, सिंह, व्याघ्र, हाथी, देवता और दैत्य सभीके रूप धारण करता है। मक्खी और मच्छरतकका रूप धारण करनेमें नहीं चूकता। कोई भी उसे पकड़ नहीं सकता। औरोंकी तो बात ही क्या, जिन्होंने इस संसारको बनाया है, वे विधाता भी उसे अपने काबूमें नहीं कर सकते। अन्तर्धान हुआ इन्द्र केवल ज्ञानदृष्टिसे दिखायी देता है। इस प्रकार वह बहुत-से रूप धारण किया करता है; इसलिये तुम यत्नपूर्वक मेरी स्त्री रुचिकी रक्षा करना, जिससे यज्ञमें रखे हुए हविष्यको चाटनेकी इच्छावाले कुत्तेकी भाँति दुरात्मा इन्द्र इसका स्पर्श न करने पावे।

यह कहकर महाभाग देवशर्मा मुनि यज्ञ करनेके लिये चले गये। विपुल गुरुकी बात सुनकर बड़ी चिन्तामें पड़ गये और महाबली इन्द्रसे उस स्त्रीकी खूब चौकसी करने लगे। उन्होंने मन-ही-मन सोचा 'मैं गुरुपत्नीकी रक्षाके लिये क्या उपाय करूँ? इन्द्र मायावी होनेके साथ ही बड़ा दुर्द्धर्ष और पराक्रमी है। आश्रम या कुटीके दरवाजोंको बंद कर देनेमात्रसे उसका आना नहीं रोका जा सकता; क्योंकि वह कई तरहके रूप धारण करता है। सम्भव है वायुका रूप धारण करके कुटीमें घुस जाय और गुरुपत्नीको दूषित कर डाले। अतः मैं रुचिके शरीरमें प्रवेश करके रहूँगा, पुरुषार्थसे इसकी रक्षा नहीं की जा सकती; क्योंकि इन्द्र बहुरूपिया है। योगबलके द्वारा ही मैं रुचिकी उससे रक्षा करूँगा। अपने सूक्ष्म अवयवोंसे मैं इसके प्रत्येक अवयवोंमें प्रवेश करूँगा। यदि ऐसा कर सका तो यह मेरे द्वारा एक आश्चर्यजनक कार्य होगा। जिस प्रकार कमलके पत्तेपर पड़ी हुई जलकी बूँद उसपर निर्लिप्त भावसे स्थिर रहती है, इसी प्रकार मैं भी अनासक्त भावसे गुरुपत्नीके भीतर निवास करूँगा। मैं रजोगुणसे मुक्त हूँ, मेरेद्वारा कोई अपराध नहीं हो सकता। जैसे राह चलनेवाला बटोही कभी किसी सूनी धर्मशालामें ठहर जाता है, इसी प्रकार मैं भी सावधान होकर गुरुपत्नीके शरीरमें निवास करूँगा।' इस तरह धर्मपर दृष्टि डाल, वेद-शास्त्रोंपर विचार कर और अपनी तथा गुरुकी प्रचुर तपस्याको ध्यानमें रखकर विपुलने गुरुपत्नीकी रक्षाका उपर्युक्त उपाय ही निश्चित किया। इसके बाद रुचिके पास बैठकर उन्होंने तरह-तरहकी बातोंमें उसे लगा दिया। फिर अपने दोनों नेत्रोंको उसके नेत्रोंकी ओर लगाया और अपने नेत्रकी किरणोंको उसके नेत्रकी किरणोंके साथ जोड़ दिया तथा उसी मार्गसे आकाशमें प्रविष्ट होनेवाली वायुकी भाँति रुचिके शरीरमें प्रवेश किया। तत्पश्चात् वे छायाकी भाँति अन्तर्हित होकर किसी प्रकारकी चेष्टा न करते हुए गुरुपत्नीके शरीरको निश्चेष्ट करके स्थित हो गये और जबतक उनके गुरु यज्ञ समाप्त करके घर न आ गये, तबतक इसी भाँति उसकी रक्षा करते रहे।

तदनन्तर, इसी बीचमें एक दिन दिव्य रूपधारी इन्द्र, यह सोचकर कि यही रुचिको प्राप्त करनेका ठीक अवसर है, वहाँ आया और अत्यन्त सुन्दर लुभावना रूप धारण कर आश्रममें घुस गया। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि विपुलका शरीर चित्रलिखितकी भाँति निश्चेष्ट पड़ा है और उसके नेत्र स्थिर हैं तथा दूसरी ओर मनोहर कटाक्षवाली चन्द्रमुखी रुचि बैठी हुई है। रुचिने भी जब इन्द्रको उपस्थित देखा तो सहसा उठनेका विचार किया। उनका सुन्दर रूप देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। मानो अब वह पूछना ही चाहती थी कि 'तुम कौन हो?' विपुलने उसकी उठनेकी इच्छा देख योगबलसे उसको बेकाबू कर दिया, जिससे वह हिल-डुल न सकी। तब देवराजने बड़ी मधुर वाणीमें उससे कहा—'सुन्दरी! मैं देवताओंका राजा इन्द्र हूँ और तुम्हारे ही लिये यहाँतक आया हूँ। तुम्हारा स्मरण करनेसे कामदेव मुझे बड़ा कष्ट दे रहा है, इसीसे तुम्हारे निकट उपस्थित हूँ। अब देर न करो, समय बीता जा रहा है।' इन्द्रकी यह बात गुरुपत्नीके शरीरमें बैठे हुए विपुलने भी सुनी और उन्होंने इन्द्रको देख भी लिया; किंतु उनके द्वारा स्तम्भित होनेके कारण रुचि इन्द्रको कोई उत्तर न दे सकी। गुरुपत्नीका आकार देखकर विपुल उसका मनोभाव ताड़ गये थे, इसलिये उन्होंने योगद्वारा बलपूर्वक उसे नियन्त्रणमें रखा और योगसम्बन्धी बन्धनोंसे उसके समस्त इन्द्रियोंको बाँध लिया।

योगबलसे मोहित रुचिको निर्विकार देखकर इन्द्रको बड़ी लज्जा हुई। उन्होंने फिर कहा—'सुन्दरी! आओ, आओ।' यह सुनकर वह उन्हें कुछ अनुकूल उत्तर देना ही चाहती थी कि विपुलने उसकी वाणीमें उलट-फेर कर दिया। उसके मुँहसे सहसा निकल पड़ा 'अरे! तुम्हारे यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है?' परवश होनेके कारण यह उदासीनतापूर्ण वचन कहकर रुचि बहुत लज्जित हुई और वहाँ खड़े हुए इन्द्रका मन भी उदास हो गया। उन्होंने रुचिके भावपरिवर्तनको लक्ष्य किया और दिव्यदृष्टिसे जब उसकी ओर देखा तो

उसके शरीरके भीतर बैठे हुए विपुल मुनि दिखायी पड़े। दर्पणमें स्थित प्रतिबिम्बकी भाँति रुचिके देहमें रहकर घोर तपस्यामें संलग्न हुए मुनिको देखकर इन्द्र काँप उठे। शापके डरसे उनका सारा बदन थर्रा उठा। तब महातपस्वी विपुल भी गुरुपत्नीका शरीर त्याग कर अपने शरीरमें आ गये और भयभीत इन्द्रसे बोले—'पापी पुरन्दर ! तेरी बुद्धि बड़ी खोटी है, तू सदा इन्द्रियोंके अधीन रहता है। अब देवता और मनुष्य अधिक कालतक तेरी पूजा नहीं करेंगे। इन्द्र ! क्या तू उस दिनकी बात भूल गया, जब गौतमने तेरे सम्पूर्ण शरीरमें भगका चिह्न बनाकर तुझे जीवित छोड़ा था ? क्या तेरे मनमें उस घटनाकी याद अब नहीं रही ? मैं जानता हूँ तू मूर्ख है, तेरा मन वशमें नहीं है और तू महाचञ्चल है। पापी ! दूर हो यहाँसे; जैसे आया है वैसे ही लौट जा, मैं इस स्त्रीकी रक्षा कर रहा हूँ। मुझे तेरे ऊपर दया आती है, इसीलिये अपने तेजसे तुझे भस्म करना नहीं चाहता; किंतु मेरे बुद्धिमान् गुरु बड़े भयंकर हैं, यदि वे तुझे देख पावेंगे तो क्रोधसे उद्दीप्त हुए नेत्रोंद्वारा अभी भस्म कर डालेंगे। आजसे कभी ऐसा काम न करना। अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि तुझे ब्रह्मबलसे पीड़ित होकर पुत्र और मन्त्रियोंसहित नष्ट होना पड़े। यदि तू अपनेको अमर मानकर ऐसे कामोंमें हाथ डालता है तो (मैं तुझे सावधान किये देता हूँ) यों किसीका अपमान न किया कर। तपस्यासे कोई भी कार्य असाध्य नहीं है (तपस्वी अमरोंको भी मार सकता है)।'

भीष्मजी कहते हैं—महात्मा विपुलकी ये बातें सुनकर इन्द्र बहुत लज्जित हुए और कुछ उत्तर न देकर चुपचाप अन्तर्धान हो गये। अभी उनके गये एक ही मुहूर्त बीतने पाया था कि महातपस्वी देवशर्मा इच्छानुसार यज्ञ पूर्ण करके अपने आश्रमपर लौट आये। गुरुके आनेपर उनका प्रिय कार्य करनेवाले विपुलने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और अपनेद्वारा सुरक्षित उनकी सती-साध्वी भार्या रुचिको उन्हें सौंप दिया। तत्पश्चात् शान्तचित्त विपुल फिर पहलेकी ही भाँति निःशङ्कभावसे गुरुकी सेवा करने लगे। जब गुरुजी विश्राम लेकर अपनी पत्नीके साथ बैठे, उस समय विपुलने इन्द्रकी सारी करतूत उन्हें कह सुनायी। यह सुनकर वे प्रतापी मुनि विपुलपर बहुत प्रसन्न हुए और उनके शील, सदाचार, तप, नियम, गुरुसेवा, अपने प्रति भक्ति और धर्ममें निष्ठा देखकर उन्होंने अपने शिष्यको बारंबार साधुवाद दिया। तत्पश्चात् उन धर्मात्मा मुनिने अपने धर्मपरायण शिष्य विपुलसे वर माँगनेके लिये कहा। गुरुकी आज्ञा पाकर विपुलने कहा—'सदा धर्ममें मेरी स्थिति बनी रहे।' जब गुरुने वह वरदान दे दिया तो विपुल उनकी अनुमति लेकर उत्तम तपस्यामें प्रवृत्त हो गये।

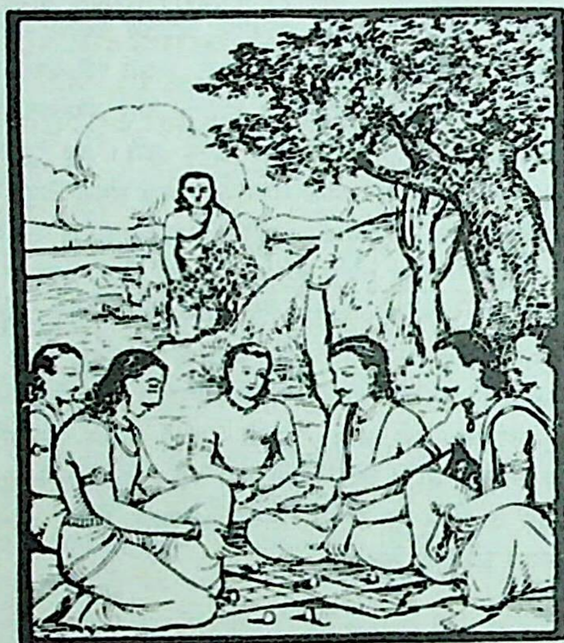


देवशर्माका विपुलको उसके दुरावकी याद दिलाना तथा उसको साथ ले पत्नीसहित स्वर्गमें जाना

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! गुरुपत्नीकी रक्षा और प्रचुर तपस्या करके विपुल समझने लगे—'मैंने दोनों लोक जीत लिये।' तदनन्तर, कुछ समय बीत जानेपर एक दिन एक दिव्य लोककी सुन्दरी अपना मनोहर रूप बनाये आकाशमार्गसे कहीं जा रही थी। उसके शरीरसे कुछ सुन्दर पुष्प, जिनमेंसे दिव्य सुगन्ध आ रही थी, देवशर्माके आश्रमके पास ही जमीनपर गिरे। रुचिने उन पुष्पोंको उठाकर रख लिया। उसकी एक बड़ी बहिन थी, जिसका नाम था प्रभावती। वह अङ्गराज चित्ररथको ब्याही गयी थी। एक बार उसके यहाँका निमन्त्रण पाकर सुन्दरी रुचि अपने केशोंमें उन दिव्य फूलोंको गूँथकर अङ्गराजके घर गयी। वहाँ अङ्गराजकी रानीने जब उन फूलोंको देखा तो अपनी बहिनसे वैसे ही फूल मँगवा देनेका अनुरोध किया। आश्रममें लौटनेपर रुचिने बहिनकी कही हुई सारी बातें अपने स्वामीसे कह सुनायीं। सुनकर ऋषिने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और विपुलको बुलाकर फूल लानेका आदेश देते हुए कहा—'तुम शीघ्र ही जाओ।'

महातपस्वी विपुलने गुरुकी आज्ञापर कोई अन्यथा विचार न करके 'बहुत अच्छा' कहकर उसे शिरोधार्य किया और जिस स्थानपर आकाशसे वे फूल गिरे थे वहाँ गये। वहाँ और भी कई फूल पड़े थे जो अभी कुम्हिलाये न थे। उन सुन्दर फूलोंको पाकर विपुलको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्हें लेकर वे तुरंत ही चम्पाके वृक्षोंसे घिरी हुई चम्पा नामक नगरीकी ओर चल दिये। एक निर्जन वनमें आनेपर उन्होंने स्त्री-पुरुषके एक जोड़ेको देखा, जो एक-दूसरेका हाथ पकड़कर गोलाकार घूम रहे थे। उनमेंसे एकने अपनी चाल तेज कर दी और दूसरेकी चाल मंद थी। इसपर दोनोंमें झगड़ा होने लगा। एकने कहा—'तुम शीघ्र चलने हो।' दूसरेने

कहा—'नहीं।' इस प्रकार दोनों ही इन्कार करने लगे। ऐसे झगड़ते हुए दोनोंने विपुलको लक्ष्य करके शपथ खाते हुए कहा—'हम दोनोंमें जो झूठ बोलता हो, उसको परलोकमें वही दुर्गति मिले जो इस विपुलको मिलनेवाली है।' तदनन्तर, विपुलको छः पुरुष दिखायी पड़े, जो सोने-चाँदीके पासे लेकर जूए खेल रहे थे और लोभ तथा हर्षमें भरे हुए थे। वे



भी वही शपथ कर रहे थे, जो पहले स्त्री-पुरुषके जोड़ेने की थी। उन्होंने विपुलको लक्ष्य करके कहा—'हमलोगोंमेंसे जो लोभवश बेईमानी करेगा, उसको वही गति मिलेगी जो परलोकमें इस विपुलको मिलनेवाली है।' इनकी बातें सुनकर विपुलने जन्मसे लेकर वर्तमान समयतकके अपने समस्त कर्मोंका स्मरण किया, किंतु कभी कोई पाप हुआ हो ऐसा नहीं जान पड़ा। उधर उन लोगोंकी शपथ सुनकर उनके हृदयमें आग-सी लगी हुई थी; इसलिये वे अपने कर्मोंपर खूब विचार करने लगे। विचारते-विचारते जब कई दिन बीत गये, तब उनके मनमें यह बात आयी कि 'मैंने रुचिकी रक्षा करते समय अपनी लक्षणेन्द्रियद्वारा उसकी लक्षणेन्द्रियमें और मुखद्वारा उसके मुखमें प्रवेश किया था और यह सच्ची बात भी गुरुसे छिपा ली थी।' युधिष्ठिर! विपुलने अपने मनमें इसीको पाप माना और वास्तवमें बात भी ऐसी ही थी। चम्पानगरीमें जाकर उन्होंने अपने लाये हुए फूल गुरुको अर्पण कर दिये और उनकी विधिवत् पूजा की। शिष्यको आया देख देवशर्माने पूछा—'विपुल! उस महान् वनमें तुमने क्या देखा है?'

विपुलने कहा—ब्रह्मर्षे! मैंने वहाँ स्त्री-पुरुषका एक जोड़ा और कुछ पुरुष देखे थे; किंतु वे कौन थे जो मुझे अच्छी तरह जानते थे?

देवशर्माने कहा—विपुल! तुमने जो स्त्री-पुरुषका जोड़ा देखा था, उसे दिन और रात्रि समझो। वे दोनों चक्रवत् घूमते रहते हैं, उन्हें तुम्हारे पापका पता है तथा जो अत्यन्त हर्षमें भरकर जूए खेलते हुए छः पुरुष दिखायी पड़े थे, उन्हें छः ऋतु जानो। वे भी तुम्हारे पापसे परिचित हैं। मनुष्य कितने ही एकान्तमें छिपकर पाप क्यों न करे, ऋतुएँ और रात-दिन उसे बराबर देखते रहते हैं। तुमने हर्ष और अभिमानमें भरकर गुरुसे अपना पाप-कर्म नहीं बताया था, इसलिये उसकी याद दिलाते हुए उन लोगोंने वैसी बातें कही हैं जैसी कि तुमने सुनी है। दिन-रात और ऋतुएँ पुरुषके पाप-पुण्यको सदा जानती रहती हैं। तुमने जो कर्म किया वह मुझे नहीं बतलाया, इसलिये तुम्हें पापकर्म करनेवालोंके लोक मिल सकते थे। किसी तरुणी स्त्रीको पापकर्मसे बचाना तुम्हारे वशकी बात नहीं है, फिर भी तुमने अपनी ओरसे कोई पाप नहीं किया, इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। यदि मैं तुम्हारा दुराचार देखता तो निःसंदेह क्रोधमें भरकर शाप दे देता; किंतु तुमने यथाशक्ति मेरी स्त्रीकी रक्षा ही की है, इस कारण मैं तुम्हारे ऊपर विशेष प्रसन्न हूँ। अब तुम सुखपूर्वक स्वर्गमें जा सकोगे।

विपुलसे ऐसा कहकर महर्षि देवशर्माको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे अपनी स्त्री तथा शिष्यसहित स्वर्गमें जाकर आनन्दपूर्वक रहने लगे। युधिष्ठिर! बहुत दिन पहलेकी बात है, महामुनि मार्कण्डेयजीने गङ्गाके तटपर बातचीतके प्रसंगमें मुझे यह उपाख्यान सुनाया था। इसीलिये मैं कहता हूँ कि तुम्हें भी सदा यत्नपूर्वक स्त्रियोंकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि उनमें भली और बुरी दोनों तरहकी बातें दिखायी देती हैं। यदि स्त्रियाँ साध्वी एवं पतिव्रता हों तो बड़ी सौभाग्यशालिनी होती हैं। संसारमें उनका आदर होता है और वे सम्पूर्ण जगत्‌की माता समझी जाती हैं। इतना ही नहीं, वे अपने पातिव्रत्यके प्रभावसे वन और काननोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीको धारण किये रहती हैं। किंतु दुराचारिणी स्त्रियाँ कुलका नाश करनेवाली होती हैं, उनके मनमें सदा पाप ही बसता है। ऐसी स्त्रियोंको उनके शरीरके साथ ही उत्पन्न हुए लक्षणों (हाथ-पैरकी रेखाओं) से पहचाना जा सकता है। मनुष्यको स्त्रियोंके प्रति न तो विशेष आसक्त

होना चाहिये और न उनसे ईर्ष्या ही करनी चाहिये। उदासीनभावसे रहकर धर्मपर दृष्टि रखते हुए ही उनका उपभोग करना चाहिये। इसके विपरीत बर्ताव करनेवाला मनुष्य मारा जाता है। आसक्तिके बन्धनसे सर्वथा अलग रहना ही सब जगह उत्तम माना गया है।



कन्याके विवाहके सम्बन्धमें विचार

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! जो सम्पूर्ण धर्मोंका, कुटुम्बका, घरका तथा देवता, पितर और अतिथियोंका मूल है, उस कन्यादानके विषयमें कुछ उपदेश कीजिये। सब धर्मोंसे बढ़कर चिन्ताका विषय यही माना गया है कि कैसे पात्रको कन्या देनी चाहिये ?

भीष्मजी कहते हैं—बेटा ! सत्पुरुषोंको चाहिये कि वे पहले वरके स्वभाव, आचरण, विद्या, कुल-मर्यादा और कार्योंकी जाँच करें। फिर यदि वह सभी दृष्टियोंसे सुयोग्य प्रतीत हो तो उसे कन्या प्रदान करें। इस प्रकार योग्य वरको बुलाकर उसके साथ कन्याका ब्याह करना उत्तम ब्राह्मणोंका धर्म—ब्राह्म-विवाह है। जो दहेज आदिके द्वारा वरको अनुकूल करके कन्यादान किया जाता है, यह श्रेष्ठ क्षत्रियोंका सनातन धर्म—क्षात्रविवाह कहलाता है। अपने (माता-पिताके) पसंद किये हुए वरको छोड़कर कन्या जिसे पसंद करती हो तथा जो कन्याको चाहता हो ऐसे वरके साथ कन्याका विवाह करना वेदवेत्ताओंके द्वारा गान्धर्वविवाह कहा गया है। कन्याके बन्धु-बान्धवोंको लोभमें डाल, बहुत-सा धन देकर जो कन्याको खरीद लिया जाता है, इसे मनीषी पुरुष असुरोंका धर्म (आसुर विवाह) कहते हैं। इसी प्रकार कन्याके अभिभावकोंको मारकर उनके मस्तक काटकर रोती हुई कन्याको घरमेंसे जबर्दस्ती पकड़ लाना राक्षसोंका काम (राक्षस-विवाह) है। इन पाँच (ब्राह्म, क्षात्र, गान्धर्व, आसुर और राक्षस) विवाहोंमेंसे पूर्वके तीन विवाह धर्मानुकूल हैं और शेष दो पापमय हैं। आसुर और राक्षस-विवाह कदापि नहीं करने चाहिये *।

जिस कन्याके पिता और भाई न हों, उसके साथ कभी विवाह नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह पुत्रिका धर्मवाली मानी जाती है। (यदि पिता-भ्राता आदि ऋतुमती होनेके पहले कन्याका विवाह न कर दें तो) ऋतुमती होनेके पश्चात् तीन वर्षतक कन्या अपने विवाहकी बाट देखे, चौथा वर्ष लगनेपर वह स्वयं ही किसीको अपना पति बना ले, ऐसा करनेसे उसकी संतान निकृष्ट नहीं मानी जाती। जो इसके विरुद्ध आचरण करती है, उसकी निन्दा होती है। जो कन्या माताकी सपिण्ड और पिताके गोत्रकी न हो, उसीके साथ विवाह करना मनुजीने धर्मानुकूल बताया है।†

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! यदि एक मनुष्यने विवाह पक्का करके कन्याका शुल्क (मूल्य) दे दिया हो, दूसरेने शुल्क देनेका वादा करके ब्याह पक्का किया हो, तीसरा उसी कन्याको बलपूर्वक ले जानेकी बात कर रहा हो, चौथा उसके भाई-बन्धुओंको विशेष धनका लोभ दिखाकर ब्याह करनेको तैयार हो और पाँचवाँ उसका पाणिग्रहण कर चुका हो तो धर्मतः वह कन्या किसकी पत्नी मानी जायगी ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! कन्याके भाई-बन्धु जिस कन्याको धर्मपूर्वक पाणिग्रहणकी विधिसे दान कर देते हैं अथवा जिसे शुल्क लेकर दे डालते हैं, उस कन्याको धर्मपूर्वक विवाह करनेवाला अथवा शुल्क देकर खरीदनेवाला यदि अपने घर ले जाय तो इसमें किसी प्रकारका दोष नहीं होता। कन्याके कुटुम्बीजनोंकी अनुमति मिलनेपर वैवाहिक मन्त्र और होमका प्रयोग करना चाहिये, तभी वे मन्त्र सफल होते हैं। जिसका पिता-माताके द्वारा दान नहीं किया गया, उसके लिये किये गये मन्त्र-प्रयोग सिद्ध नहीं होते। पति और पत्नीमें जो परस्पर

---

* स्मृतियोंमें निम्नलिखित आठ विवाह बतलाये गये हैं—१ ब्राह्म, २ दैव, ३ आर्ष, ४ प्राजापत्य ५ गान्धर्व, ६ आसुर, ७ राक्षस और ८ पैशाच। किंतु यहाँ १ ब्राह्म, २ क्षात्र, ३ गान्धर्व, ४ आसुर और ५ राक्षस—इन्हीं पाँच विवाहोंका उल्लेख किया गया है। अतः यहाँ जो ब्राह्मविवाह है, उसीमें स्मृतिकथित दैव और आर्ष-विवाहोंका भी अन्तर्भाव समझना चाहिये। इसी प्रकार यहाँ बताये हुए राक्षसविवाहमें उपर्युक्त पैशाच विवाहका समावेश कर लेना चाहिये तथा यहाँका क्षात्रविवाह ही स्मृतियोंका प्राजापत्य विवाह है।

† सापिण्ड्य-निवृत्तिके सम्बन्धमें स्मृतिका वचन है—वध्वा वरस्य वा तातः कूटस्थाद् यदि सप्तमः। पञ्चमी चेत्तयोर्माता तत्सापिण्ड्यं निवर्तते॥ अर्थात् 'यदि वर अथवा कन्याका पिता मूल पुरुषसे सातवीं पीढ़ीमें उत्पन्न हुआ है तथा माता पाँचवीं पीढ़ीमें पैदा हुई है तो वर और कन्याके लिये सापिण्ड्यकी निवृत्ति हो जाती है।' पिताकी ओरका सापिण्ड्य सात पीढ़ीतक चलता है और माताका सापिण्ड्य पाँच पीढ़ीतक। सात पीढ़ीमें एक तो पिण्ड देनेवाला होता है, तीन पिण्डभागी होते हैं और तीन लेपभागी होते हैं।

मन्त्रोच्चारणपूर्वक प्रतिज्ञा होती है, वही श्रेष्ठ मानी जाती है और यदि उसके लिये बन्धु-बान्धवोंका समर्थन प्राप्त हो, तब तो और उत्तम है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! यदि एक वरसे कन्यादानका वादा करके शुल्क ले लिया गया हो और पीछे उससे भी श्रेष्ठ धर्म, अर्थ और कामसे सम्पन्न अत्यन्त योग्य वर मिल जाय तो पहले जिससे शुल्क लिया गया है, उसको कन्या देनेसे इन्कार कर देना चाहिये या नहीं ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! शुल्क देनेमात्रसे ही कोई कन्या किसीकी पत्नी नहीं हो जाती। शुल्क देनेवाला भी इस बातको समझकर ही शुल्क देता है। इसके सिवा जो कन्याका शुल्क लेते हैं, वे वास्तवमें उसका दान नहीं (विक्रय) करते हैं। कन्याके भाई-बन्धु जब वरको किसी विपरीत गुण (वृद्धत्व आदि) से युक्त देखते हैं, तभी शुल्क माँगते हैं। यदि वरको बुलाकर कहा जाय कि तुम मेरी कन्याको गहने पहनाकर विवाह कर लो और ऐसा कहनेपर वह कन्याको आभूषण देकर विवाह करे तो यह भी धर्मानुकूल ही है। इस प्रकार कन्याके लिये आभूषण लेकर जो कन्यादान किया जाता है, वह न तो शुल्क है और न विक्रय ही। कन्याके लिये कोई वस्तु स्वीकार करके उस (कन्या) का दान करना सनातन धर्म है। जो लोग भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंसे कहते हैं कि 'मैं आपके साथ कन्याका विवाह करूँगा, आपको अपनी कन्या न दूँगा और आपको अवश्य दूँगा' उनकी ये सभी बातें कन्या देनेके पहले नहीं कहेके ही बराबर हैं। महर्षियोंका मत है कि अयोग्य वरको कन्या नहीं देनी चाहिये; क्योंकि सुयोग्य पुरुषको कन्यादान करना ही काम-सम्बन्धी सुख तथा सुयोग्य संतानकी उत्पत्तिका कारण है। कन्याके क्रय-विक्रयमें बहुत तरहके दोष हैं, इस बातको तुम अधिक कालतक सोचने-विचारनेके बाद समझ सकते हो। केवल कीमत देने या लेनेसे ही कोई कन्या किसीकी पत्नी नहीं हो सकती। ऐसी बात पहले भी कभी नहीं हुई थी। यदि कहो, 'शुल्कसे ही पत्नीत्वका निश्चय होता है, केवल पाणिग्रहणसे नहीं' तो यह कथन ठीक नहीं है; क्योंकि इसके विरुद्ध स्मृतिका वचन है—'जिसने शुल्क ले लिया हो वह पिता भी दूसरा सुयोग्य वर मिलनेपर उसीका आश्रय ले—उसीके साथ कन्या ब्याहे।' जो लोग शुल्कसे ही पत्नीत्वका निश्चय होना स्वीकार करते हैं, पाणिग्रहणसे नहीं, उनके कथनको धर्मज्ञ पुरुष प्रमाण नहीं मानते। कन्याका दान ही लोकमें प्रसिद्ध है, खरीदकर या जीतकर लाना नहीं। कन्यादान ही विवाह कहलाता है। जो लोग कीमत देकर खरीदने या बलात् हर लानेको ही पत्नीत्वका कारण मानते हैं, वे धर्मको नहीं जानते। खरीदनेवालोंको कन्या नहीं देनी चाहिये तथा जो बेची जा रही हो, ऐसी कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये; क्योंकि पत्नी खरीदने-बेचनेकी वस्तु नहीं है। जो दासियोंकी खरीद-बिक्री करते हैं, वे बड़े लोभी और पापात्मा हैं; ऐसे ही लोग पत्नीको भी खरीदने-बेचनेका विचार करते हैं। इस विषयमें पूर्वकालके लोगोंने सत्यवान्से प्रश्न किया—'महाप्राज्ञ ! यदि कन्याका शुल्क देनेके पश्चात् शुल्क देनेवालेकी मृत्यु हो जाय तो उसका दूसरेके साथ विवाह हो सकता है या नहीं ?' उनका यह प्रश्न सुनकर सत्यवान्ने कहा—'जहाँ उत्तम पात्र मिलता हो वहीं कन्या देनी चाहिये। इसके विपरीत कोई विचार मनमें नहीं लाना चाहिये। शुल्क देनेवाला जीवित हो तो भी सुयोग्य वरके मिलनेपर सज्जन पुरुष उसीके साथ कन्याका ब्याह करते हैं। फिर उसके मर जानेपर अन्यत्र करें, इसमें तो संदेह ही क्या है ? कन्याका पाणिग्रहण होनेसे पहलेका वैवाहिक मङ्गलाचार हो जानेपर भी यदि दूसरे सुयोग्य वरको कन्या दे दी जाय तो दाताको केवल मिथ्याभाषणका पाप लगता है (पाणिग्रहणसे पूर्व कन्या विवाहित नहीं मानी जाती है)। सप्तपदीके सातवें पदमें वैवाहिक मन्त्रोंकी समाप्ति होती है अर्थात् सप्तपदीकी विधि पूर्ण होनेपर ही कन्यामें पत्नीत्वकी सिद्धि होती है। जिस पुरुषको जलसे संकल्प करके कन्या दी जाती है, वही उसका पाणिग्रहीता पति होता है और उसीकी वह पत्नी कहलाती है। इस प्रकार विद्वानोंने कन्यादानकी विधि बतलायी है।'

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! जिस कन्याका शुल्क ले लिया गया हो और उसको शुल्क देनेवाला पति मौजूद न हो (परदेश चला गया हो) तो उसके पिताको क्या करना चाहिये ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! यदि संतानहीन धनीसे शुल्क लिया गया है तो पिताका कर्तव्य है कि वह उसके लौटनेतक कन्याकी हर तरहसे रक्षा करे। खरीदी हुई कन्याका शुल्क जबतक लौटा नहीं दिया जाता, तबतक वह कन्या शुल्क देनेवालेकी ही मानी जाती है।

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! जिसके पुत्र नहीं, कन्या है, उसके लिये वही पुत्रके समान है। फिर कन्याके रहते हुए दूसरे लोग उसके धनके अधिकारी कैसे हो सकते हैं ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! पुत्र अपने आत्माके समान है और कन्या तथा पुत्रमें कोई अन्तर नहीं है। फिर आत्मस्वरूप पुत्रीके रहते हुए दूसरा कोई उसका धन कैसे ले सकता है ? माताको जो दहेजमें धन मिला होता है, उसपर कन्याका ही अधिकार है। अतः जिसके कोई पुत्र नहीं है, उसके धनको

पानेका अधिकारी उसका नाती (दौहित्र) ही है; क्योंकि वह अपने पिता और नानाको भी पिण्ड देता है। धर्मकी दृष्टिसे पुत्र और दौहित्रमें कोई भेद नहीं है। यदि पहले कन्या उत्पन्न हुई और वह पुत्ररूपमें स्वीकार कर ली गयी तथा उसके बाद पुत्र भी पैदा हुआ तो वह पुत्र उस कन्याके साथ ही पिताके धनका अधिकारी होता है। (किंतु औरस पुत्रको उस धनका अधिक अंश मिलता है।) यदि दूसरेका पुत्र गोद लिया गया हो तो उस दत्तक पुत्रकी अपेक्षा अपनी सगी बेटी ही श्रेष्ठ मानी जाती है। (अतः वह पैतृक धनके अधिक अंशकी अधिकारिणी है) जो कन्याएँ शुल्क लेकर बेच दी गयी हों, उनसे उत्पन्न होनेवाले पुत्र केवल अपने पिताके ही उत्तराधिकारी होते हैं। उन्हें दौहित्रके रूपमें अपने धनका अधिकारी बनाना युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता; क्योंकि आसुर-विवाहसे जिन पुत्रोंकी उत्पत्ति होती है, वे दूसरोंके दोष देखनेवाले, पापाचारी, पराया धन हड़पनेवाले, शठ तथा धर्मके विपरीत बर्ताव करनेवाले होते हैं। इस विषयमें प्राचीन बातोंको जाननेवाले धर्मज्ञ पुरुष यमकी गायी हुई गाथाका इस प्रकार वर्णन करते हैं—'जो मनुष्य अपने पुत्रको बेचकर धन पाना चाहता है अथवा जीविकाके लिये शुल्क लेकर कन्याको बेच देता है, वह अत्यन्त भयंकर कालसूत्रनामक नरकमें पड़कर अपने ही पसीने और मल-मूत्रका भक्षण करता है।' जो किसी कुमारी कन्याको बलपूर्वक अपने वशमें करके उसका उपभोग करते हैं, वे पापी अन्धकारपूर्ण नरकमें पड़ते हैं। अपनी संतानकी बात तो दूर रही, किसी दूसरे मनुष्यको भी नहीं बेचना चाहिये। अधर्मके रास्तेसे जो-जो धन आता है, उससे कोई धर्म नहीं होता।

(विवाहके समय कन्याकी ससुरालवालोंकी तरफसे) कुमारी-पूजन-(कन्याके सत्कार) के रूपमें जो वस्त्र और आभूषण आदि प्राप्त होते हैं, उन्हें स्वीकार करनेमें कोई दोष नहीं है; किंतु वे सब-के-सब कन्याको दे डालने चाहिये। अपना विशेष कल्याण चाहनेवाले पिता, भाई, श्वशुर और देवरोंको चाहिये कि वे कन्याको वस्त्र, आभूषण आदि देकर उसका सम्मान करें। यदि स्त्रीकी रुचि पूर्ण न की जाय तो वह पुरुषको प्रसन्न नहीं कर सकती और उस अवस्थामें पुरुषकी संतान-वृद्धि नहीं हो सकती, इसलिये स्त्रियोंका सदा सत्कार और प्यार करना चाहिये। जहाँ स्त्रियोंका आदर होता है, वहाँ देवतालोग प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं। जिस घरमें स्त्रियोंका अनादर होता है, वहाँकी सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। जिस कुलकी बहू-बेटियोंको दुःख मिलनेके कारण शोक होता है, उस कुलका नाश हो जाता है। वे नाराज होकर जिन घरोंको शाप दे देती हैं, वे कृत्याद्वारा नष्ट हुएके समान उजाड़ हो जाते हैं; उनकी शोभा, समृद्धि और सम्पत्तिका नाश हो जाता है। महाराज मनुने स्त्रियोंको पुरुषोंके अधीन करके कहा था—'मनुष्यो ! स्त्रियाँ अबला, ईर्ष्यालु, मान चाहनेवाली, कुपित होनेवाली, पतिका हित चाहनेवाली और विवेकशक्तिसे हीन होती हैं, तथापि ये सम्मानके योग्य हैं; अतः तुमलोग सदा इनका सत्कार करना; क्योंकि स्त्रीजाति ही धर्मकी प्राप्तिका कारण है। तुम्हारी परिचर्या और नमस्कार स्त्रियोंके ही अधीन हैं। संतानकी उत्पत्ति, उसका लालन-पालन और लोकयात्राका प्रसन्नता-पूर्वक निर्वाह भी उन्हींपर निर्भर है। यदि तुमलोग स्त्रियोंका सम्मान करोगे तो तुम्हारे सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हो जायँगे।'

(स्त्रियोंके कर्तव्यके सम्बन्धमें) राजा जनककी पुत्रीने एक श्लोकका गान किया है, जिसका सारांश इस प्रकार है—'स्त्रीके लिये यज्ञ आदि कर्म, श्राद्ध और उपवास करना आवश्यक नहीं है; उसका धर्म है केवल अपने पतिकी सेवा करना। नारी पति-सेवासे ही स्वर्गपर विजय प्राप्त करती है।' कुमारावस्थामें स्त्रीकी रक्षा उसका पिता करता है, जवानीमें पति उसका रक्षक है और वृद्ध होनेपर पुत्रपर उसकी रक्षाका भार रहता है; अतः स्त्रीको कभी स्वतन्त्र नहीं रहना चाहिये। युधिष्ठिर ! स्त्रियाँ ही घरकी लक्ष्मी हैं, पुरुषको उनका भलीभाँति सत्कार करना चाहिये। अपने वशमें रखकर पालन करनेसे स्त्री लक्ष्मीका स्वरूप बन जाती है।



वर्णसंकरोंकी उत्पत्ति तथा कृतक पुत्रका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! यदि मनुष्य धनके लोभसे अथवा कामवश अन्य वर्णकी स्त्रीके साथ समागम करता है तो वर्णसंकर संतान उत्पन्न होती है। इस प्रकार उत्पन्न हुए वर्णसंकर मनुष्योंका क्या धर्म है ? और उनके कौन-कौनसे कर्म हैं ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! पूर्वकालमें प्रजापतिने यज्ञ (धर्म) के लिये केवल चार वर्णों और उनके पृथक्-पृथक् कर्मोंकी ही रचना की थी; किंतु सब वर्णोंमें अधम शूद्र यदि अपनेसे श्रेष्ठ वर्णोंकी स्त्रियोंके साथ समागम करता है तो उससे उत्पन्न होनेवाला पुत्र चारों वर्णोंसे अलग और अत्यन्त

निन्दनीय (चाण्डाल आदि) समझा जाता है। क्षत्रिय यदि ब्राह्मण-जातिकी स्त्रीके साथ संसर्ग करता है तो उससे वर्णबाह्य सूतजातिकी उत्पत्ति होती है, जिसका काम है स्तुति आदि करना। वैश्य जातिका पुरुष ब्राह्मणकी स्त्रीसे समागम करके जिस पुत्रको जन्म देता है, वह सब वर्णोंसे पृथक् वैदेहक और मौद्गल्य कहलाता है (उससे अन्तःपुरकी रक्षा आदिका काम लिया जाता है)। शूद्रद्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र अत्यन्त भयंकर कर्म करनेवाला चाण्डाल होता है। वह गाँवके बाहर बसता है और उससे वध्य पुरुषोंको प्राणदण्ड आदि देनेका काम लिया जाता है। ये सभी कुलाङ्गार मनुष्य नीच वर्णोंद्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे जन्म धारण करते और वर्णसंकर कहलाते हैं। वैश्यके द्वारा क्षत्रियजातिकी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र बंदी और मागध कहलाता है। यह लोगोंकी प्रशंसा करके अपनी जीविका चलाता है। इसी प्रकार यदि शूद्र क्षत्रिय-जातिकी स्त्रीके साथ समागम करता है तो उससे मछली मारनेवाले निषादजातिकी उत्पत्ति होती है और यदि वह वैश्य जातिकी स्त्रीसे संसर्ग करता है तो आयोगव-जातिका पुत्र उत्पन्न होता है, जो बढ़ईका काम करके जीविका चलाता है। वर्णसंकर भी जब अपनी जातिकी स्त्रीके साथ समागम करते हैं तो अपने ही समान वर्णवाले पुत्रोंको जन्म देते हैं और जब अपनेसे हीन जातिकी स्त्रियोंसे संसर्ग करते हैं तो नीच संतानोंकी उत्पति होती है। ये संतानें अपनी माताकी जातिवाली समझी जाती हैं। इस प्रकार वर्णसंकर मनुष्य भी यदि परस्पर विभिन्न जातिकी स्त्रियोंसे संसर्ग करते हैं तो उनसे निन्दनीय संतानोंकी ही उत्पत्ति होती है। जैसे शूद्र ब्राह्मणीके गर्भसे चाण्डाल नामक बाह्यजातिवाले पुत्रको उत्पन्न करता है, उसी प्रकार बाह्यजातिका मनुष्य भी ब्राह्मण आदि चारों वर्णकी स्त्रियोंके साथ संसर्ग करके अपनी अपेक्षा भी नीच जातिवाला पुत्र पैदा करता है, वह बाह्यतर कहलाता है। इस प्रकार बाह्य और बाह्यतर जातियोंसे क्रमशः पंद्रह प्रकारके अत्यन्त निकृष्ट वर्ण पैदा होते हैं। अगम्या स्त्रीसे समागम करनेपर वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं। जिस जातिके पुरुष राजाओंके शृङ्गार आदिका कार्य जानते और दास न होकर भी दासवृत्तिस जीविका चलाते हैं, वे सैरन्ध्र हैं; उनकी स्त्रियाँ सैरन्ध्री कहलाती हैं। मागध जातिकी सैरन्ध्री स्त्रीसे यदि बाह्य जातीय आयोगव पुरुष समागम करे तो उससे आयोगव जातिका सैरन्ध्र पुत्र उत्पन्न होता है, उसी (मागधी सैरन्ध्री) का यदि वैदेह जातिके पुरुषसे संसर्ग हो तो मदिरा बनानेवाले मैरेयक जातिके पुरुषकी उत्पत्ति होती है। निषादके वीर्य और मगधजातीय सैरन्ध्रीके गर्भसे मद्गुर जातिका पुरुष उत्पन्न होता है, जिसे दास भी कहते हैं। वह नावसे अपनी जीविका चलाता है। चाण्डाल और मागधी सैरन्ध्रीके संयोगसे श्वपाक नामसे प्रसिद्ध अधम चाण्डालकी उत्पत्ति होती है, यह मुर्दोंकी रखवालीका काम करता है। इस प्रकार मगध जातिकी सैरन्ध्री स्त्री आयोगव आदि चार जातियोंसे समागम करके मायासे जीविका चलानेवाले चार प्रकारके क्रूर मनुष्योंको उत्पन्न करती है। आयोगव जातिकी पापिनी स्त्री वैदेह जातिके पुरुषसे समागम करके अत्यन्त क्रूर मायाजीवी पुत्र उत्पन्न करती है, निषादके संयोगसे मद्रनाभ नामक जातिको जन्म देती है और चाण्डालके संसर्गसे पुल्कस जातिको उत्पन्न करती है। मद्रनाभ जातिके मनुष्य गदहेकी सवारी करते हैं और पुल्कस जातिवाले मुर्दोंपर चढ़े हुए कपड़े (कफन) लेकर पहनते और फूटे हुए बर्तनोंमें भोजन करते हैं। इस प्रकार ये तीन नीच जातिके मनुष्य आयोगवकी संतान हैं। निषादजातिकी स्त्रीका यदि वैदेहक जातिके पुरुषसे संसर्ग हो तो क्षुद्र, अन्ध्र और कारावर नामक चमारोंकी उत्पत्ति होती है, ये तीनों जातियाँ गाँवके बाहर रहती हैं। चाण्डाल पुरुष और निषादजातिकी स्त्रीके संयोगसे पाण्डुसौपाक जातिका जन्म होता है, यह जाति बाँसकी डलिया आदि बनाकर जीविका चलाती है। वैदेह जातिकी स्त्रीके साथ निषादका सम्पर्क होनेपर आहिण्डक और चाण्डालका संसर्ग होनेपर सौपाककी उत्पत्ति होती है। सौपाक और चाण्डालोंकी एक ही वृत्ति है। निषादजातिकी स्त्रीमें चाण्डाल (सौपाक) के वीर्यसे अन्तेवसायी नामक जातिका जन्म होता है, इस जातिके लोग सदा श्मशानमें ही रहते हैं। निषाद आदि बाह्यजातिके लोग भी उन्हें अछूत समझते हैं।

इस प्रकार माता-पिताके वर्ण-व्यतिक्रमसे वर्णसंकर जातियाँ उत्पन्न होती हैं। उनमेंसे कुछ प्रकट होती हैं और कुछ गुप्त। इनके कर्मोंसे ही इनकी पहचान करनी चाहिये। शास्त्रमें चारों वर्णोंके ही धर्मका निश्चय किया गया है, औरोंके नहीं। धर्महीन वर्णों-(वर्णसंकर जातियों) मेंसे किसीकी भी कोई नियत संख्या नहीं है। जो जातिका विचार न करके स्वेच्छानुसार अन्य वर्णकी स्त्रियोंसे समागम करते हैं तथा जो यज्ञोंके अधिकार और साधु पुरुषोंसे बहिष्कृत हैं, ऐसे वर्णबाह्य मनुष्योंसे ही वर्णसंकर सन्तानें उत्पन्न होती हैं और वे अपनी रुचिके अनुकूल कार्य करके भिन्न-भिन्न प्रकारकी आजीविका तथा आश्रयको अपनाती हैं। ऐसे लोग लोहेके आभूषण पहनकर चौराहोंमें, मरघटोंमें, पर्वतोंपर और वृक्षोंके नीचे निवास करते हैं। इन्हें चाहिये कि गहने तथा अन्य उपकरणोंको बनावें और अपने कर्मोंसे जीविका चलाते हुए प्रकटरूपमें निवास करें। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि यदि

ये गौ और ब्राह्मणोंकी सहायता करें, कठोरतापूर्ण कर्म त्याग दें, सबपर दया करें, सत्य बोलें, दूसरोंके अपराध क्षमा करें और अपने शरीरको कष्टमें डालकर भी दूसरोंकी रक्षा करें तो इन वर्णसंकर मनुष्योंकी भी पारमार्थिक उन्नति हो सकती है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! जो चारों वर्णोंसे बहिष्कृत, वर्णसंकर मनुष्यसे उत्पन्न और अनार्य होकर भी (ऊपरसे देखनेमें) आर्य-सा प्रतीत हो रहा हो, उसकी पहचान हमलोग कैसे कर सकते हैं ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जो (सज्जनोंके विपरीत) नाना प्रकारकी चेष्टाओंसे युक्त हो, उस कलुषित योनिसे उत्पन्न मनुष्यकी उसके कर्मोंसे ही पहचान हो सकती है। इसी प्रकार सज्जनोचित आचरणोंसे योनिकी शुद्धताका निश्चय करना चाहिये। इस जगत्‌में अनार्यता, अनाचार, क्रूरता और अकर्मण्यता आदि दोष मनुष्यको कलुषित योनिसे उत्पन्न (वर्णसंकर) सिद्ध करते हैं। वर्णसंकर पुरुष अपने पिता या माता अथवा दोनोंके ही स्वभावका अनुसरण करता है। वह किसी तरह अपनी असलियतको छिपा नहीं सकता। जैसे बाघ अपनी चित्र-विचित्र खाल और रूपके द्वारा माता-पिताके समान ही होता है, उसी प्रकार मनुष्य भी अपनी योनिका ही अनुसरण करता है। 'अमुक व्यक्ति किस कुलमें और किसके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है' यह बात अत्यन्त गुप्त होनेपर भी जिसका जन्म संकर-योनिसे हुआ है, वह मनुष्य थोड़ा-बहुत अपने पिताके स्वभावको पाता ही है। जो कृत्रिम मार्गका आश्रय लेकर श्रेष्ठ पुरुषोंके अनुरूप आचरण करता है वह वास्तवमें शुद्ध वर्णका है या संकरवर्णका, इसका निश्चय करते समय उसका स्वभाव ही सब कुछ बता देता है। संसारके प्राणी नाना प्रकारके आचार-व्यवहारमें लगे हुए हैं। आचरणके सिवा दूसरी कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो जन्मके रहस्यको साफ तौरपर प्रकट कर सके। वर्णसंकरको शास्त्रीय बुद्धि प्राप्त हो जाय तो भी वह उसके शरीरको नीचमार्गसे नहीं हटा सकती। उत्तम, मध्यम या निकृष्ट जिस प्रकारके स्वभावसे उसके शरीरका निर्माण हुआ है, वैसा ही स्वभाव उसे आनन्ददायक जान पड़ता है। ऊँची जातिका मनुष्य भी शीलसे रहित हो तो उसका सत्कार नहीं करना चाहिये और शूद्र भी यदि धर्मज्ञ और सदाचारी हो तो उसका विशेष आदर करना चाहिये। मनुष्य अपने शुभाशुभ कर्म, शील आचरण और कुलके द्वारा अपना परिचय देता है। यदि उसका कुल नष्ट भी हो गया हो तो अपने कर्मोंके द्वारा वह फिर उसे शीघ्र ही उज्जीवित कर देता है। ऊपर जितनी संकीर्ण योनियाँ बतलायी गयी हैं, उन सबमें तथा अन्य नीच जातियोंमें विद्वान् पुरुषको संतानोत्पत्ति नहीं करनी चाहिये, उनका सर्वथा परित्याग करना ही उचित है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! कृतक पुत्र कैसा होता है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! माता-पिताने जिसे रास्तेपर त्याग दिया हो और पता लगानेपर भी जिसके माता-पिताका ज्ञान न हो सके, उस बालकका जो पालन करता है, उसीका वह कृतक पुत्र समझा जाता है। वर्तमान समयमें जो उस अनाथ बच्चेका वारिस बनकर पोषण कर रहा हो, उस मनुष्यका वर्ण ही उस बालकका वर्ण होता है।

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! ऐसे लड़केका संस्कार कैसे करना चाहिये ? तथा उसके साथ किस जातिकी कन्याका विवाह करना चाहिये ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! जिसको माता-पिताने त्याग दिया है, वह अपने स्वामी—पालक पिताके वर्णको प्राप्त होता है। इसलिये उसके पालन करनेवालेको चाहिये कि वह अपने ही वर्णके अनुसार उसका संस्कार करे तथा अपनी ही जातिकी कन्यासे उसका ब्याह भी कर दे। इस प्रकार ये सारी बातें मैंने तुम्हें बतायीं, अब और क्या सुनना चाहते हो ?



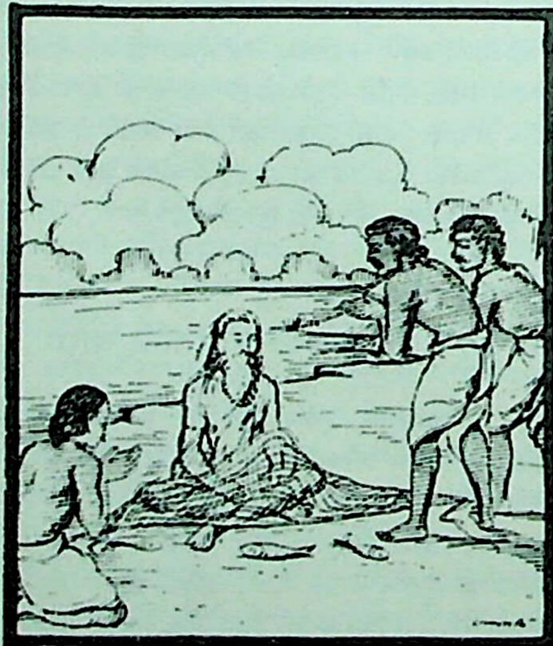
गौओंके माहात्म्य-वर्णनके प्रसंगमें महर्षि च्यवन और नहुषके संवादकी कथा

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! किसीको देखने और उसके साथ रहनेपर किस प्रकारका स्नेह होता है तथा गौओंका माहात्म्य क्या है ?

भीष्मजीने कहा—राजन् ! इस विषयमें मैं तुमसे महर्षि च्यवन और नहुषके संवादरूप प्राचीन इतिहासका वर्णन करूँगा। पूर्वकालकी बात है, भृगुवंशमें उत्पन्न हुए महर्षि च्यवनने महान् व्रतका आश्रय ले जलके भीतर रहना आरम्भ किया। वे अभिमान, क्रोध, हर्ष और शोकका परित्याग करके दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करते हुए बारह वर्षोंतक जलके भीतर रहे। उन्होंने सम्पूर्ण प्राणियों तथा विशेषतः जलचरोंपर पूर्ण विश्वास जमा लिया। एक बार वे देवताओंको प्रणाम करके अत्यन्त पवित्र होकर गङ्गा और यमुनाके जल (संगम) में प्रविष्ट हुए और वहाँ काष्ठकी भाँति स्थिरभावसे बैठ गये। गङ्गा-यमुनाके भयंकर वेगको, जिसमें

भीषण गर्जना हो रही थी, वे अपने मस्तकपर सहने लगे; किंतु गङ्गा-यमुना आदि नदियाँ और सरोवर ऋषिकी केवल परिक्रमा करते थे, उन्हें कष्ट नहीं पहुँचाते थे। वे कभी पानीके भीतर काठकी नाईं सो जाते और कभी उसके ऊपर खड़े हो जाते थे। जलमें रहनेवाले जीवोंके वे बड़े प्रिय हो गये थे। इस तरह उन्हें पानीमें रहते बहुत दिन बीत गये। तदनन्तर, एक समय मछलियोंसे जीविका चलानेवाले बहुत-से मल्लाह मछली पकड़नेका निश्चय करके जाल हाथमें लिये हुए, जहाँ वे मुनि थे, उसी स्थानपर आये। उन्होंने बहुत चेष्टा करके गङ्गा और यमुनाके जलमें जाल बिछा दिया। उनका जाल दूरतक फैला और नये सूतका बना हुआ था, उसकी चौड़ाई भी बहुत अधिक थी तथा वह अच्छी तरहसे बनाया हुआ और मजबूत था। थोड़ी देर बाद वे सभी मल्लाह निडर होकर पानीमें उतर गये और सब मिलकर जालको खींचने लगे। उस जालमें उन्होंने मछलियोंके साथ ही दूसरे जल-जन्तुओंको भी बाँध लिया था। जब जाल खींचा गया तो उसमें मत्स्योंसे घिरे हुए भृगुनन्दन च्यवन मुनि भी खिंच आये। उनका सारा शरीर नदीके सेवारसे भरा हुआ था, उनकी मूँछ, दाढ़ी और जटाएँ हरे रंगकी हो गयी थीं तथा उनके अङ्गोंमें शङ्ख आदि जलचरोंके नख लगनेसे चित्र-सा बन गया था।

उन वेदोंके पारगामी महर्षिको जालके साथ खिंच आये देख सभी मल्लाह हाथ जोड़े पृथ्वीपर पड़ गये और चरणोंमें



सिर रखकर प्रणाम करने लगे। उधर जालके आकर्षणसे अत्यन्त खेद, त्रास और स्थलका स्पर्श होनेके कारण बहुत-से मत्स्य मर गये। मुनिने जब मत्स्योंका यह संहार देखा तो उन्हें बड़ी दया आयी और वे बारंबार लंबी साँस खींचने लगे। यह देखकर मल्लाहोंने कहा—'महामुने! हमने अनजानमें जो पाप किया है, उसको क्षमा करके आप हमपर प्रसन्न होइये और बताइये हम आपका कौन-सा प्रिय कार्य करें?' उनके इस प्रकार पूछनेपर मछलियोंके बीचमें बैठे हुए च्यवन मुनिने कहा—'मल्लाहो! इस समय जो मेरा सबसे बड़ा काम है, उसे ध्यान देकर सुनो। यदि ये मत्स्य जीवित रहेंगे तभी मैं जीवन-धारण करूँगा, अन्यथा इनके साथ ही मैं भी प्राण त्याग दूँगा। ये मेरे सहवासी रहे हैं, मैं बहुत दिनोंतक इनके साथ जलमें रह चुका हूँ; अतः अब इन्हें त्याग नहीं सकता।' मुनिकी यह बात सुनकर निषादोंको बड़ा भय हुआ, वे थर-थर काँपने लगे और उनके मुँहका रंग फीका पड़ गया। उसी अवस्थामें जाकर उन्होंने यह सारा समाचार राजा नहुषसे निवेदन किया।

यह समाचार सुनकर और मुनिकी ऐसी अवस्था जानकर राजा नहुष अपने मन्त्री और पुरोहितको साथ ले तुरंत वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने पवित्र भावसे हाथ जोड़कर महात्मा च्यवन मुनिको अपना परिचय दिया और उनकी विधिवत् पूजा करके कहा—'विप्रवर! बताइये, मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?'

च्यवनने कहा—राजन्! मछलीसे जीविका चलानेवाले इन मल्लाहोंने आज बड़ा भारी परिश्रम किया है, अतः आप इन्हें मेरी और इन मछलियोंकी कीमत दीजिये।

नहुषने (पुरोहितसे) कहा—पुरोहितजी! भृगुनन्दन च्यवनजी जैसी आज्ञा दे रहे हैं, उसके अनुसार इनके बदले मल्लाहोंको एक हजार स्वर्णमुद्रा दे दीजिये।

च्यवनने कहा—राजन्! एक हजार स्वर्णमुद्रा मेरा उचित मूल्य नहीं है; आप इन्हें उचित मूल्य दीजिये।

नहुषने कहा—पुरोहितजी! आप निषादोंको एक लाख स्वर्णमुद्रा दे डालिये। (फिर च्यवन मुनिको लक्ष्य करके कहा—) भगवन्! यह आपके योग्य मूल्य होगा या आप कुछ और चाहते हैं?

च्यवनने कहा—राजन्! मेरा मूल्य एक लाख मुद्रा न लगाइये। मन्त्रियोंके साथ विचार करके मेरे योग्य कीमत दीजिये।

नहुषने कहा—पुरोहितजी! तो फिर इन मल्लाहोंको एक करोड़ मुद्रा दीजिये और यदि यह भी योग्य मूल्य न हो

तो और अधिक देना चाहिये।

च्यवनने कहा—राजन्! एक करोड़ या इससे अधिक मुद्रा भी मेरे योग्य नहीं है। आप ब्राह्मणोंके साथ विचार करके उचित मूल्य दीजिये।

नहुषने कहा—विप्रवर! यदि ऐसी बात है तो मेरा आधा या समूचा राज्य ही निषादोंको दे डालिये। मेरी समझमें यह आपके योग्य मूल्य होगा। अथवा आपका क्या विचार है?

च्यवनने कहा—आपका आधा या समूचा राज्य भी मैं अपने लिये उचित मूल्य नहीं समझता। आप ऋषियोंके साथ विचार कीजिये और फिर जो मेरे योग्य प्रतीत हो, वही कीमत दीजिये।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! महर्षिका वचन सुनकर राजा नहुषको बड़ा खेद हुआ। वे मन्त्री और पुरोहितके साथ इस विषयपर विचार करने लगे। इतनेहीमें फल-मूलका भोजन करनेवाले एक वनवासी मुनि, जिनका जन्म गायके पेटसे हुआ था, राजा नहुषके समीप आये और उन्हें सम्बोधित करके कहने लगे—'महाराज! ये ऋषि जिस प्रकार संतुष्ट होंगे, वह उपाय मुझे मालूम है। मैं इन्हें बहुत शीघ्र संतुष्ट कर दूँगा।'

नहुषने कहा—महर्षे! भृगुनन्दन च्यवन मुनिका, जो इनके योग्य मूल्य हो, वह बतलाइये और हमारे राज्य तथा कुलका उद्धार कीजिये। मैं अपने मन्त्री और पुरोहितके साथ अगाध दुःखके समुद्रमें डूब रहा हूँ। आप नौका बनकर हमें पार लगाइये—इनके योग्य मूल्यका निर्णय कर दीजिये।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! राजा नहुषकी बात सुनकर वे महाप्रतापी मुनि राजा और उनके मन्त्रियोंको आनन्दित करते हुए बोले—'महाराज! ब्राह्मण सब वर्णोंमें उत्तम हैं, उनका और गौओंका कोई मूल्य नहीं लगाया जा सकता, इसलिये आप इनकी कीमतमें एक गौ दीजिये।' महर्षिकी बात सुनकर मन्त्री और पुरोहितसहित राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे उत्तम व्रतका पालन करनेवाले भृगुनन्दन च्यवन मुनिके पास जाकर उन्हें अपनी वाणीद्वारा तृप्त करते हुए-से बोले—'ब्रह्मर्षे! मैंने एक गौ देकर आपको खरीद लिया, अतः आप उठनेकी कृपा करें। मैं यही आपका उचित मूल्य समझता हूँ।'

च्यवनने कहा—महाराज! अब मैं उठता हूँ, अब आपने मुझे उचित मूल्य देकर खरीदा है। मैं इस संसारमें गौओंके समान दूसरा कोई धन नहीं समझता। वीरवर! गौओंके नाम और गुणोंका कीर्तन करना, सुनना, गौओंका दान देना और उनका दर्शन करना—इनकी शास्त्रोंमें बड़ी प्रशंसा की गयी है। ये सब कार्य सम्पूर्ण पापोंको दूर करके परम कल्याण देनेवाले हैं। गौएँ लक्ष्मीकी जड़ हैं, उनमें पापका लेश भी नहीं है। गौएँ ही मनुष्योंको अन्न और देवताओंको उत्तम हविष्य देनेवाली हैं। स्वाहा और वषट्कार सदा गौओंमें ही प्रतिष्ठित होते हैं। गौएँ ही यज्ञका संचालन करनेवाली और उसका मुख हैं। वे विकाररहित दिव्य अमृत धारण करतीं और दुहनेपर अमृत ही देती हैं। वे अमृतका आधार होती हैं और सारा संसार उनके सामने मस्तक झुकाता है। इस पृथ्वीपर गौएँ अपने तेज और शरीरमें अग्निके समान हैं। वे महान् तेजकी राशि और समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाली हैं। गौओंका समुदाय जहाँ बैठकर निर्भयतापूर्वक साँस लेता है, उस स्थानकी शोभा बढ़ जाती है और वहाँका सारा पाप नष्ट हो जाता है। गौएँ स्वर्गकी सीढ़ी हैं, वे स्वर्गमें भी पूजी जाती हैं। गौएँ समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली देवियाँ हैं, उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। राजा नहुष! यह मैंने गौओंका माहात्म्य बतलाया है, इसमें उनके गुणोंके एक अंशका दिग्दर्शन कराया गया है। गौओंके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन तो कोई कर ही नहीं सकता।

निषादोंने कहा—मुने! सज्जनोंके साथ तो सात पग चलनेमात्रसे मित्रता हो जाती है। हमने तो आपका दर्शन किया और हमारे साथ आपकी इतनी देरतक बातचीत भी हुई, अतः अब आप हमलोगोंपर कृपा कीजिये। विद्वन्! हम आपको प्रसन्न करना चाहते हैं और आपके चरणोंमें पड़े हुए हैं। हमपर कृपा करनेके लिये हमारी दी हुई यह गौ आप स्वीकार कीजिये।

च्यवनने कहा—मल्लाहो! मैं तुम्हारी दी हुई गौ स्वीकार करता हूँ, इस गोदानके प्रभावसे तुम्हारे सब पाप दूर हो गये, अब तुमलोग जलमें पैदा हुई इन मछलियोंके साथ ही स्वर्गको जाओ।

भीष्मजी कहते हैं—तदनन्तर, शुद्ध अन्तःकरणवाले उन महर्षि च्यवनके प्रभावसे वे मल्लाह मछलियोंके साथ ही स्वर्गको चले गये। उन मल्लाहों और मछलियोंको स्वर्गकी ओर जाते देख राजा नहुषको बड़ा आश्चर्य हुआ। तत्पश्चात् गौसे उत्पन्न महर्षि और भृगुनन्दन च्यवनने राजा नहुषसे इच्छानुसार वर माँगनेको कहा। तब राजाने प्रसन्न होकर कहा—'बस, आपकी कृपा ही बहुत है।' फिर दोनोंके आग्रहसे उन इन्द्रके समान तेजस्वी नरेशने धर्ममें स्थित रहनेका वरदान माँगा और उनके 'तथास्तु' कहनेपर उन दोनों ऋषियों-का विधिवत् पूजन किया। उसी दिन च्यवन ऋषिके व्रतकी दीक्षा समाप्त हुई और वे अपने आश्रमको चले गये। इसके बाद

महातेजस्वी महर्षि गोजात भी अपने आश्रमको पधारे। सबके अन्तमें राजा नहुष भी वर पाकर अपनी राजधानीको चले गये। युधिष्ठिर! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने यह प्रसंग सुनाया है। दर्शन और सहवाससे कैसा स्नेह होता है, गौओंका क्या माहात्म्य है तथा धर्मानुकूल निश्चय कैसे किया जाता है—ये सारी बातें इस प्रसंगसे स्पष्ट हो जाती हैं। अब मैं तुम्हें कौन-सी बात बताऊँ, तुम्हारे मनमें क्या सुननेकी इच्छा है?



राजा कुशिक और च्यवनमुनिका उपाख्यान—मुनिद्वारा राजाके धैर्यकी परीक्षा

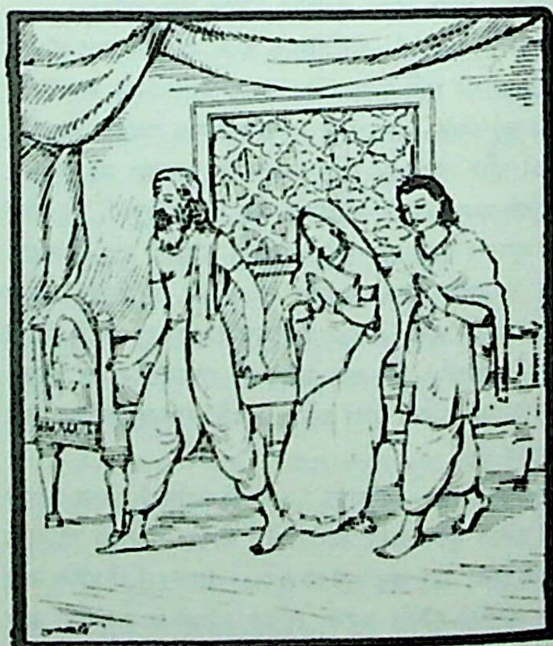
युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! राजा कुशिकका वंश तो क्षत्रिय था, उससे ब्राह्मण-जातिकी उत्पत्ति कैसे हुई? महात्मा परशुराम और विश्वामित्रका महान् प्रभाव अद्भुत था। राजा कुशिक और महर्षि ऋचीक—ये ही अपने-अपने वंशके प्रवर्तक थे। उनके पुत्र जमदग्नि और गाधिको लाँघकर उनके पौत्र परशुराम और विश्वामित्रमें ही यह विजातीयताका दोष क्यों आया? इसका रहस्य बतलाइये।

भीष्मजीने कहा—भारत! इस विषयमें राजा कुशिक और महर्षि च्यवनके संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। पूर्वकालमें भृगुवंशी महर्षि च्यवनको यह बात मालूम हुई कि हमारे वंशमें कुशिक वंशकी कन्याके सम्बन्धसे क्षत्रियत्वका महान् दोष आनेवाला है, यह जानकर उन्होंने कुशिकके समस्त कुलको भस्म कर डालनेका विचार किया और राजा कुशिकके पास जाकर कहा—'राजन्! मैं यहाँ तुम्हारे साथ कुछ कालतक रहना चाहता हूँ।' यह सुनकर राजाने महर्षिको बैठनेके लिये आसन दिया और स्वयं गड़ुवा लेकर उन्हें पैर धोनेके लिये जल निवेदन किया। इसके बाद अर्घ्य आदि देनेकी सम्पूर्ण क्रियाएँ पूर्ण कीं। तदनन्तर, उन्होंने शान्तभावसे महर्षिको विधिवत् मधुपर्क भोजन कराया और हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! हम दोनों पति-पत्नी आपके अधीन हैं। बताइये हम आपकी क्या सेवा करें? राज्य, धन, गौ और यज्ञके निमित्त दान—जो कुछ आप लेना चाहें, वह सब हम देनेको तैयार हैं। मेरा यह महल, यह राज्य और यह राज्यसिंहासन सब आपका है। आप ही राजा हैं, इस पृथ्वीका पालन कीजिये। मैं तो सदा आपकी आज्ञामें रहनेवाला सेवक हूँ।'

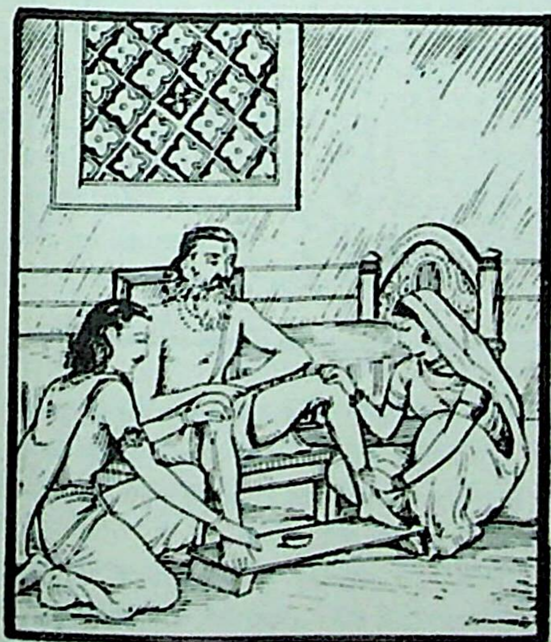
राजाके इस प्रकार कहनेपर महर्षि च्यवनने बहुत प्रसन्न होकर कहा—'राजन्! मुझे राज्य, धन, गौ, देश और यज्ञकी भी इच्छा नहीं है, मेरी बात सुनिये। यदि आप दोनों पसंद करें तो मैं एक नियम आरम्भ करूँगा, उस समय आप लोगोंको सावधानीके साथ निर्भयतापूर्वक मेरी सेवा करनी पड़ेगी।'

मुनिकी बात सुनकर राजदम्पतीको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने उत्तर दिया—'बहुत अच्छा, हम आपकी सेवा करेंगे।' तदनन्तर, राजा कुशिक महर्षि च्यवनको बड़े आनन्दके साथ अपने महलके भीतर ले गये और एक सुन्दर कमरा दिखाकर बोले—'तपोधन! यह शय्या बिछी हुई है, आप इच्छानुसार यहाँ आराम कीजिये। हमलोग यथाशक्ति आपको प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करेंगे।' इस प्रकार बातें होते-होते सूर्यास्त हो गया, तब महर्षिने राजाको अन्न और जल लानेकी आज्ञा दी। 'जो आज्ञा' कहकर राजा वहाँसे गये और जो भोजन तैयार था उसे लाकर उन्होंने मुनिके सामने प्रस्तुत कर दिया। मुनिने भोजन करके राजा और रानीसे कहा—'अब मुझे नींद सता रही है, मैं सोना चाहता हूँ। तुमलोग मुझे सोते समय न जगाना और सदा जागकर मेरे दोनों पैर दबाते रहना।' धर्मात्मा कुशिकने निर्भय होकर कहा—'अच्छा, हम ऐसा ही करेंगे।'

इस प्रकार राजाको सेवाका आदेश देकर महर्षि च्यवन इक्कीस दिनोंतक एक ही करवटसे सोते रहे और राजा कुशिक अपनी स्त्रीसहित बिना खाये-पीये निरन्तर उनकी सेवामें लगे



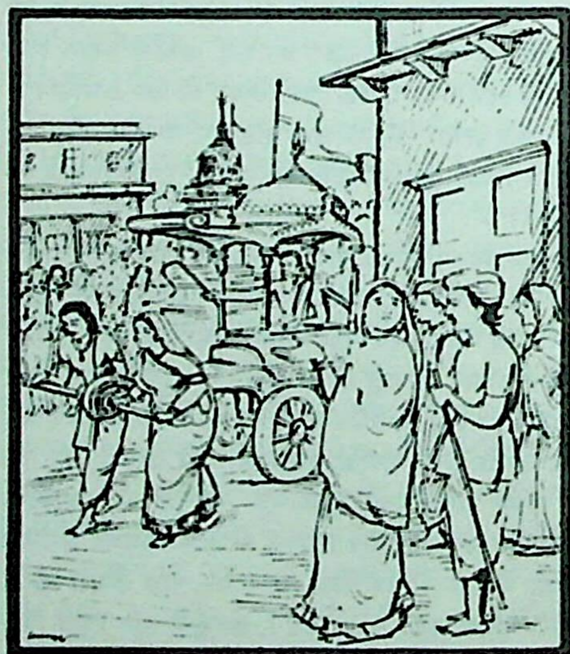
रहे। महर्षिकी उपासना करनेमें उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती थी। बाईसवें दिन महातपस्वी च्यवनमुनि अपने-आप उठे और राजासे कुछ कहे बिना ही महलसे बाहर चले गये। दोनों राजदम्पती भूख और परिश्रमसे दुर्बल हो गये थे तो भी मुनिको जाते देख वे उनके पीछे-पीछे गये; किंतु उन मुनिश्रेष्ठने उनकी ओर आँख उठाकर देखातक नहीं। उन दोनोंके देखते-देखते महर्षि अन्तर्धान हो गये और राजा खिन्न होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। थोड़ी देर बाद वे किसी तरह अपनेको सँभालकर उठे और रानीको साथ ले पुनः मुनिको ढूँढ़नेका प्रयत्न करने लगे। जब कहीं भी महर्षि दिखायी न पड़े तो राजा अपनी स्त्रीसहित थककर लौट आये। उस समय उन्हें बड़ा संकोच हो रहा था। नगरमें पहुँचकर वे किसीसे कुछ बोले नहीं, केवल दीन भावसे मुनिके चरित्रपर मन-ही-मन विचार करने लगे। उन्होंने सूने हृदयसे महलमें प्रवेश किया; किंतु वहाँ जाते ही भृगुनन्दन च्यवनजी उन्हें उसी पलंगपर सोये दिखायी दिये। ऋषिको देखकर वे दोनों बड़े आश्चर्यमें पड़े, उनकी सारी थकावट दूर हो गयी और फिर पहलेकी भाँति वे यथास्थान बैठकर मुनिके पैर दबाने लगे। अबकी बार वे महामुनि दूसरी करवटसे सो रहे थे। जब उतना ही (इक्कीस दिनका) समय बीत गया तब वे स्वयं ही जागे। राजा और रानी उनके भयसे शङ्कित थे, अतः उन्होंने अपने मनमें तनिक भी विकार नहीं आने दिया। जागते ही ऋषिने कहा—'अब मैं स्नान करूँगा, तुमलोग मेरे शरीरमें तेलकी मालिश करो।' यद्यपि वे दोनों भूख और थकावटसे दुर्बल हो गये थे तो भी 'बहुत अच्छा' कहकर आनन्दसे बैठे हुए ऋषिके शरीरमें चुपचाप तेल मलने लगे; किंतु महातपस्वी च्यवनजीने अपने मुँहसे एक बार भी यह नहीं कहा कि 'बस करो, अब मालिश पूरी हो गयी।' इतनेपर भी जब राजा और रानीके मनमें उन्होंने कोई विकार नहीं देखा तो सहसा उठकर वे स्नानागारमें चले गये। वहाँ स्नानके लिये राजोचित सामग्री पहलेसे ही तैयार करके रखी गयी थी; किंतु वे उसका किंचित् भी उपयोग न करके राजाके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। फिर भी उन दोनों दम्पतीने इसके लिये कोई बुरा नहीं माना। तदनन्तर, ऋषिने स्नान करके पुनः राजा और रानीको दर्शन दिया। उन्हें आये देख उन दोनोंका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और वे हाथ जोड़कर बोले—'भगवन्! भोजन तैयार है।' मुनिने कहा—'ले आओ।' आज्ञा पाकर दोनों पति-पत्नीने गृहस्थों और वनवासियोंके भोजन करने योग्य भाँति-भाँतिकी सामग्री लाकर मुनिके सामने रखी। मुनिने वह सब लेकर शय्या और बिछौनोंसहित एक स्थानपर रखा और उसे उत्तम वस्त्रोंसे ढक दिया। तत्पश्चात् भोजन-सामग्रीसहित उन सब वस्त्रोंमें उन्होंने आग लगा दी और राजा-रानीके देखते-देखते वे फिर अन्तर्धान हो गये; किंतु इतनेपर भी उन दोनों बुद्धिमान् दम्पतीने क्रोध नहीं किया। राजर्षि कुशिक सारी रात रानीके साथ चुपचाप बैठे रह गये।



जब इतने प्रयासके बाद भी महर्षि च्यवन राजाका कोई छिद्र न देख सके तो फिर उनसे बोले—'तुम स्त्रीसहित रथमें जुत जाओ और उसमें मुझे बिठाकर मैं जहाँ कहूँ वहाँ ले चलो।' राजाने निःशङ्क होकर कहा—'बहुत अच्छा।' और वे एक बहुत बड़ा रथ तैयार करके ले आये। उसमें बायीं ओर बोझ ढोनेके लिये रानीको लगाकर स्वयं दाहिनी ओर जुट गये। उस रथपर उन्होंने एक ऐसा चाबुक भी रख दिया जिसमें आगेकी ओर तीन शाखाएँ थीं और जिसका अग्रभाग सूईकी नोकके समान तीखा था। यह सब तैयारी करके उन्होंने मुनिसे पूछा—'भगवन्! बताइये रथ किस ओर चले? जहाँ जानेके लिये आप आज्ञा देंगे वहीं आपका रथ जायगा।'

राजाके इस प्रकार पूछनेपर च्यवनने कहा—'तुम यहाँसे बहुत धीरे-धीरे एक-एक कदम उठाकर चलो। यह ध्यान रखो कि मुझे कष्ट न होने पावे, हर तरहसे आराम पहुँचे। साथ ही किसी राहगीरको रास्तेपरसे हटाना नहीं चाहिये। मेरी इच्छा है कि सब लोग तुम्हें रथ खींचते देखें और मैं उन्हें

धन बाँटूँ। मार्गमें जो ब्राह्मण मुझसे कुछ माँगेंगे, उन्हें धन और रत्न आदि सभी मनोवाञ्छित वस्तुएँ दान करूँगा, अतः इन सब बातोंका प्रबन्ध कर लेना।' मुनिकी बात सुनकर राजाने अपने सेवकोंसे कहा—'मुनि जिस-जिस वस्तुके लिये आज्ञा दें, वह सब निःशङ्क होकर देना।' राजाकी इस आज्ञाके अनुसार नाना प्रकारके रत्न, स्त्रियाँ, वाहन, बकरे, भेंड़ें, सुवर्ण और पर्वताकार गजराज—ये सब मुनिके पीछे-पीछे चले। साथमें राजाके सभी मन्त्री भी थे। उस समय सारा नगर आर्त होकर हाहाकार कर रहा था। इतनेहीमें मुनिने सहसा चाबुक उठाया और उसकी तीखी नोकसे राजा और रानीकी पीठ तथा कमरमें प्रहार किया; फिर भी वे निर्विकार भावसे उस रथको खींचते रहे। पचास राततक उपवास करनेके कारण वे अत्यन्त दुर्बल हो गये थे; उनका सारा शरीर काँप रहा था, तथापि वे वीर दम्पती किसी तरह साहस करके उस रथका बोझ ढो रहे थे। उनके शरीरपर चाबुककी मारसे अनेकों घाव हो गये थे और उनसे खूनकी धारा बह रही थी। खूनसे लथपथ होनेके कारण वे खिले हुए पलाशके वृक्षोंकी



भाँति दिखायी देते थे। उनकी यह दशा देखकर पुरवासियोंको बड़ा दुःख हो रहा था; किंतु मुनिके शापसे भयभीत होकर कोई कुछ बोल न सके। वे परस्पर कहने लगे—'भाइयो! शुद्ध अन्तःकरणवाले इन महर्षिकी तपस्याका बल तो देखो, इनकी शक्ति अद्भुत है तथा राजा और रानीका धैर्य भी कैसा अनोखा है! ये इतने थके होनेपर भी कष्ट उठाकर इस रथको खींच रहे हैं और भृगुनन्दन च्यवन अभीतक इनमें जरा भी विकार नहीं पा सके हैं।'

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! मुनिवर च्यवनजी जब किसी तरह राजा-रानीके मनमें मैल न देख सके तो वे कुबेरकी तरह उनका सारा धन लुटाने लगे; किंतु इस कार्यमें भी राजा कुशिक बड़ी प्रसन्नताके साथ ऋषिकी आज्ञाका पालन करने लगे। यह सब देखकर मुनिवर च्यवन बहुत संतुष्ट हुए और उस उत्तम रथसे उतरकर उन दोनों दम्पतीको उन्होंने भार ढोनेके कार्यसे मुक्त कर दिया। तदनन्तर, वे स्नेहभरी गम्भीर वाणीमें बोले—'मैं तुम दोनोंको उत्तम वर देना चाहता हूँ, बतलाओ क्या दूँ।' यह कहते हुए उन दोनोंके घायल सुकुमार शरीरोंपर स्नेहवश अमृतके समान कोमल हाथ फेरने लगे। फिर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक राजासे कहा—'बेटा! गङ्गाका यह सुन्दर तट बड़ा ही रमणीय स्थान है, मैं कुछ देरतक यहाँ व्रत धारण करके रहूँगा। इस समय



तुम अपने नगरमें जाओ और अपनी थकावट दूर करके कल सबेरे अपनी स्त्रीके साथ फिर यहाँ आना। मैं यहीं मिलूँगा, अब तुम्हारे कल्याणका समय आया है। तुम्हारे मनमें जो-जो इच्छा होगी, वह सब पूर्ण हो जायगी।'

मुनिके ऐसा कहनेपर राजा कुशिकने मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'महाभाग! आपने हमलोगोंको पवित्र कर दिया, हम दोनोंकी तरुण अवस्था हो गयी तथा

हमारा शरीर सुन्दर और बलवान् हो गया। आपने हम दोनोंके शरीरपर चाबुक मारकर जो-जो घाव कर दिये थे, वे भी अब नहीं दिखायी देते। मैं तो अब बिलकुल स्वस्थ हो गया और अपनी इस रानीको भी अप्सराके समान सुन्दरी देख रहा हूँ। यह सब आपकी कृपाका फल है। आप-जैसे तपस्वीमें ऐसी शक्तिका होना आश्चर्यकी बात नहीं है।' ऐसा कहकर मुनिकी आज्ञा ले राजर्षि कुशिक उन्हें प्रणाम करके नगरकी ओर चले। उस समय उनके मन्त्री और पुरोहित भी उनके साथ थे। नगरमें प्रवेश करके उन्होंने पूर्वाह्णकालकी सम्पूर्ण क्रियाएँ सम्पन्न कीं और स्त्रीसहित भोजन करके रात्रिमें पलंगपर शयन किया। उस समय वे मुनिके दिये हुए नूतन शरीर और नयी शोभासे युक्त होनेके कारण बहुत प्रसन्न थे। इधर भृगुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले, तपस्याके धनी महर्षि च्यवनने गङ्गातटके तपोवनको अपने संकल्पद्वारा नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित करके इन्द्रपुरीसे भी बढ़कर सुन्दर और समृद्धिशाली बना दिया।



च्यवनका कुशिकको स्वर्गीय दृश्य दिखाना, उनके घरमें रहनेका प्रयोजन बतलाना और उनके वंशको ब्राह्मणत्व-प्राप्तिका वरदान देना

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! तदनन्तर, महामना राजा कुशिक वह रात्रि व्यतीत होनेपर जागे और पूर्वाह्णकालके नैत्यिक नियमोंसे निवृत्त होकर अपनी रानीके साथ उस तपोवनकी ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने एक सुन्दर महल देखा जो नीचेसे ऊपरतक सोनेका बना हुआ था, उसमें मणियोंके हजारों खम्भे लगे हुए थे और वह अपनी शोभासे गन्धर्वनगरको मात कर रहा था। राजाने वहाँ और भी बहुत-से दिव्य पदार्थ देखे, कहीं चाँदीके शिखरोंसे सुशोभित पर्वत, कहीं कमलोंसे भरे हुए सरोवर, कहीं भाँति-भाँतिकी चित्रशालाएँ और बन्दनवारें शोभा पा रही थीं। भूमिपर कहीं सोनेका फर्श और कहीं हरी-भरी घासकी बहार थी। अमराइयोंमें बौर लगे हुए थे। केतक, उद्दालक, अशोक, कुन्द, अतिमुक्त, चम्पा, तिलक, कटहल, बेंत और कनेर आदिके फूल खिले हुए थे। वहाँ विमानके आकारमें पर्वतोंके समान ऊँचे और भी अनेकों महल दिखायी दिये, जो बड़े ही रमणीय और पद्म एवं उत्पल जातिके कमलोंसे सुशोभित थे। वहाँ समस्त ऋतुओंमें खिलनेवाले फूल शोभा दे रहे थे।

यह अद्भुत दृश्य देखकर राजा मन-ही-मन सोचने लगे, 'क्या यह स्वप्न है या मेरे चित्तमें भ्रम हो गया है अथवा यह सब कुछ सत्य ही है। अहो! इसी शरीरसे मुझे परमगतिकी प्राप्ति हो गयी या मैं उत्तरकुरु अथवा अमरावतीमें आ पहुँचा। यह महान् आश्चर्यकी बात जो मुझे दिखायी दे रही है, क्या है?' राजा इस प्रकार सोच ही रहे थे कि उनकी दृष्टि भृगुनन्दन च्यवन मुनिपर पड़ी, जो मणिमय स्तम्भोंसे युक्त एक सुवर्णमय विमानके भीतर बहुमूल्य एवं दिव्य पलंगपर सो रहे थे। उन्हें देखकर राजा कुशिकको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे अपनी रानीके साथ उनके निकट गये। इतनेहीमें च्यवन ऋषि उस पलँगसहित अन्तर्धान हो गये। फिर एक ही क्षणमें वह सुन्दर वन और वहाँकी सारी सजावट विलीन हो गयी। तब राजा उन्हें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते दूसरे वनमें गये, वहाँ जाकर उन्होंने महाव्रतधारी च्यवनमुनिको कुशकी चटाईपर बैठकर जप करते देखा। इस प्रकार अपने योगबलसे उन्होंने राजाको मोहमें डाल दिया, तब राजा कुशिक यह अत्यन्त अद्भुत घटना देखकर पत्नीसहित बड़े आश्चर्यमें पड़े और हर्षमें भरकर अपनी स्त्रीसे कहने लगे—'कल्याणी! हमने भृगुकुलतिलक च्यवनमुनिकी कृपासे कैसे विचित्र और परम दुर्लभ पदार्थ देखे हैं। भला, तपोबलसे बढ़कर और कौन-सा बल है? जिस बातकी मनके द्वारा कल्पनामात्र की जाती है, वह तपस्यासे साक्षात् सुलभ हो जाती है। त्रिलोकीके राज्यकी अपेक्षा भी तप ही श्रेष्ठ है। अच्छी तरह तपस्या करनेपर उसकी शक्तिसे मोक्षतक मिल सकता है। इन ब्रह्मर्षि महात्मा च्यवनका प्रभाव अद्भुत है। ये इच्छा करते ही दूसरे लोकोंकी सृष्टि कर सकते हैं। इस पृथ्वीपर ब्राह्मण ही पवित्र वाक्, पवित्र बुद्धि और पवित्र कर्मवाले होते हैं। महर्षि च्यवनके सिवा दूसरा कौन है जो इतना महान् कार्य कर सके।'

राजा इस प्रकार खड़े-खड़े विचार कर रहे थे, इतनेमें उनका आना महर्षि च्यवनको मालूम हो गया। उन्होंने राजाको देखकर कहा—'राजन्! शीघ्र यहाँ आओ।' आज्ञा पाकर महाराज कुशिक स्त्रीसहित मुनिके पास गये और उन वन्दनीय महात्माको उन्होंने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। मुनिने आशीर्वाद और सान्त्वना देते हुए उन्हें

बैठनेकी आज्ञा दी। अब मुनि शान्त-अवस्थामें आ गये थे, उन्होंने राजाको मधुर वाणीसे तृप्त करते हुए कहा—'राजन्! तुमने पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों और मनको अच्छी तरह जीत लिया है; इसीलिये तुम महान् संकटसे मुक्त हुए हो। तुमने भलीभाँति मेरी आराधना की है, तुम्हारे द्वारा कोई छोटे-से-छोटा अपराध भी नहीं हुआ है। अच्छा, अब मुझे



जानेकी आज्ञा दो, मैं जैसे आया था वैसे ही लौट जाऊँगा। तुम्हारे ऊपर मैं बहुत प्रसन्न हूँ, अतः तुम मुझसे कोई उत्तम वर माँगो।'

कुशिकने कहा—ब्रह्मन्! आप मुझपर प्रसन्न हैं, यही मेरे लिये सबसे बड़ा वर है तथा यही मेरे जीवन और राज्यका फल है। भृगुनन्दन! यदि आपका मुझपर प्रेम हो तो मेरे मनमें एक संदेह है, उसे दूर करनेकी कृपा कीजिये।

च्यवनने कहा—नरश्रेष्ठ! तुम मुझसे वर भी माँग लो और तुम्हारे मनमें जो संदेह हो उसे भी कहो; मैं तुम्हारा सब कार्य पूर्ण करूँगा।

कुशिकने कहा—भार्गव! यदि आप प्रसन्न हों तो मुझे यह बताइये कि आपने मेरे घरपर इतने दिनोंतक क्यों निवास किया था? मैं इसका कारण सुनना चाहता हूँ। इक्कीस दिनोंतक एक करवटसे शयन करना, फिर उठनेपर बिना कुछ बोले बाहर चल देना, सहसा अन्तर्धान हो जाना, फिर दर्शन देकर इक्कीस दिनोंतक दूसरी करवटसे सोते रहना, उठनेपर तेलकी मालिश कराना, फिर अन्तर्धान होकर चल देना, पुनः महलमें आकर भाँति-भाँतिके भोजनको एकत्रित करना और उसमें आग लगाकर जला देना, फिर सहसा रथपर सवार हो बाहर नगरकी यात्रा करना, धन लुटाना एवं वनमें अनेकों सुवर्णमय महलों तथा मणि और मूँगोंके पायेवाले पलंगोंका दिखलाना और अन्तमें सबको अदृश्य कर देना—आपके इन कार्योंका मैं यथार्थ कारण सुनना चाहता हूँ।

च्यवनने कहा—राजन्! जिस कारणसे मैंने ये सब काम किये थे, उसे आद्योपान्त सुनो—पूर्वकालकी बात है, एक दिन देवताओंकी सभामें ब्रह्माजी कह रहे थे कि 'ब्राह्मण और क्षत्रियोंमें विरोध होनेके कारण दोनो कुलोंमें संकरता आ जायगी।' उनके मुँहसे मैंने यह भी सुना था कि (तुम्हारे वंशकी कन्यासे मेरे वंशमें क्षत्रिय-तेजका संचार होगा और) तुम्हारा एक पौत्र ब्राह्मण-तेजसे सम्पन्न तथा पराक्रमी होगा।' यह सुनकर मैं तुम्हारे वंशका उच्छेद कर डालनेकी इच्छासे यहाँ आया। उस समय मैंने तुमसे यही कहा था कि 'मैं एक व्रतका आरम्भ करूँगा, तुम मेरी सेवा करो।' (इसी व्याजसे मैं तुम्हारा दोष ढूँढ़ रहा था;) किंतु तुम्हारे घरमें रहकर भी मैंने आजतक तुममें कोई दोष नहीं पाया। इक्कीस दिनतक सोता रहा, पर तुमने या तुम्हारी स्त्रीने मुझे जगानेका साहस नहीं किया। फिर मैं अन्तर्धान हुआ और पुनः तुम्हारे घरमें आकर योगका आश्रय ले इक्कीस दिनोंतक सोया। मैंने सोचा था 'तुमलोग भूख और थकावटसे घबराकर मेरी निन्दा करोगे', इसी उद्देश्यसे मैंने तुमलोगोंको भूखे रखकर क्लेश पहुँचाया। इतनेपर भी तुम्हारे और तुम्हारी स्त्रीके मनमें तनिक भी क्रोध नहीं हुआ। इससे मैं तुमलोगोंके ऊपर बहुत संतुष्ट हुआ। इसके बाद जो मैंने भोजन मँगाकर जलाया, उसके भीतर भी यही उद्देश्य छिपा था कि तुम डाहके कारण मुझपर क्रोध करोगे; किंतु मेरे उस बर्तावको भी तुमने सह लिया। तदनन्तर, मैंने रथपर बैठकर कहा 'तुम स्त्रीसहित आकर मेरा रथ खींचो', इस कार्यको भी तुमने निर्भय होकर पूर्ण किया; फिर जब मैं तुम्हारा धन लुटाने लगा तो भी तुम क्रोधके वशीभूत नहीं हुए। इन सब बातोंसे मुझे तुम्हारे ऊपर बड़ी प्रसन्नता हुई, अतः मैंने तुम्हें संतुष्ट करनेके लिये ही इस वनमें स्वर्गका दर्शन कराया है। राजन्! इस वनमें तुमने जो दिव्य दृश्य देखा है, वह स्वर्गकी एक झाँकी थी। तुमने अपनी रानीके साथ इसी शरीरसे कुछ देरतक स्वर्गीय सुखका अनुभव किया है। यह सब मैंने तुम्हें तप और धर्मका प्रभाव दिखलानेके लिये ही किया है। ये बातें देखनेपर तुम्हारे मनमें जो इच्छा हुई है, वह भी मुझे मालूम हो गयी।

तुम सम्राट् और इन्द्रके पदको भी तृणवत् मानकर ब्राह्मणत्व पाना चाहते हो और तपकी अभिलाषा करते हो। तप और ब्राह्मणत्वके सम्बन्धमें अभी तुम जो विचार प्रकट कर रहे थे, वह बिलकुल ठीक है। वास्तवमें ब्राह्मण होना दुर्लभ है, ब्राह्मण होनेपर भी ऋषि होना और ऋषि होनेपर भी तपस्वी होना तो और भी दुर्लभ है। तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण होगी। भृगुवंशियोंके तेजसे तुम्हारा वंश ब्राह्मणत्वको प्राप्त होगा, तुम्हारा पौत्र अग्निके समान तेजस्वी और तपस्वी ब्राह्मण होगा, वह तीनों लोकोंको अपने प्रभावसे आतङ्कित करेगा। यह मैं तुमसे सच्ची बात बता रहा हूँ। राजर्षे ! अब तुम मुझसे अपना मनोवाञ्छित वर माँग लो। मैं तीर्थयात्राको जाऊँगा, देर हो रही है।

कुशिकने कहा—महामुने ! आप मुझपर प्रसन्न हैं, यही मेरे लिये बहुत बड़ा वर है। आप जैसा कह रहे हैं, वह सत्य हो—मेरा पौत्र ब्राह्मण हो जाय। अब मैं विस्तारके साथ यह बात सुनना चाहता हूँ कि मेरा वंश किस प्रकार ब्राह्मण होगा ? मेरा वह पौत्र कौन होगा ? (जो सर्वप्रथम ब्राह्मण होनेवाला है।)

च्यवनने कहा—नरश्रेष्ठ ! यह बात तुम्हें अवश्य बतानेके योग्य है, सुनो—क्षत्रियलोग सदासे ही भृगुवंशी ब्राह्मणोंके यजमान हैं; किंतु प्रारब्धवश आगे चलकर उनमें फूट हो जायगी, इसलिये वे दैवकी प्रेरणासे समस्त भृगुवंशियोंका संहार कर डालेंगे, गर्भके बच्चेतकको जीवित नहीं छोड़ेंगे। तदनन्तर, मेरे वंशमें उत्पन्न महर्षि ऊर्वके एक ऋचीक नामक पुत्र होगा, उसके पास प्रारब्धवश समस्त क्षत्रियोंका अन्त करनेके लिये सम्पूर्ण धनुर्वेद मूर्तिमान् होकर उपस्थित होगा। उस धनुर्वेदको ग्रहण करके ऋचीकमुनि अपने पुत्र जमदग्निको उसकी शिक्षा देंगे। जमदग्नि अपनी तपस्यासे शुद्ध अन्तःकरणवाले होंगे और उस धनुर्वेदको धारण करेंगे। वे तुम्हारे कुलका कल्याण करनेके लिये तुम्हारे वंशकी कन्याका पाणिग्रहण करेंगे, वह कन्या राजा गाधिकी पुत्री और तुम्हारी पौत्री होगी। उसके गर्भसे महर्षि जमदग्नि क्षत्रिय-धर्मका आचरण करनेवाला पुत्र उत्पन्न करेंगे और वे ही महाराज गाधिको विश्वामित्र नामक एक परम धार्मिक पुत्र प्रदान करेंगे, जो क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण-धर्मका पालन करनेवाला, बृहस्पतिके समान तेजस्वी और महान् तपस्वी होगा। इस प्रकार ब्राह्मणके कुलमें क्षत्रिय और क्षत्रियके कुलमें ब्राह्मणके उत्पन्न होनेमें दो स्त्रियाँ कारण बनेंगी। यह सब कुछ ब्रह्माजीकी प्रेरणासे होगा। तुम्हारी तीसरी पीढ़ी ब्राह्मण हो जायगी और तुम पवित्रात्मा भृगुवंशियोंके सम्बन्धी बनोगे।

भीष्मजी कहते हैं—महात्मा च्यवन मुनिका वचन सुनकर राजा कुशिक बहुत प्रसन्न हुए। तदनन्तर, महातेजस्वी च्यवनने उन्हें वर माँगनेके लिये पुनः प्रेरित किया। तब राजाने कहा—'महामुने ! मेरा कुल ब्राह्मण हो जाय और उसका मन धर्ममें लगा रहे।' उनके इस प्रकार कहनेपर च्यवन मुनिने कहा—'अच्छा, ऐसा ही होगा।' फिर वे राजाकी अनुमति ले तीर्थयात्राको चले गये। राजा युधिष्ठिर ! इस प्रकार मैंने भृगुवंशी और कुशिकवंशियोंके परस्पर सम्बन्धका कारण बतलाया है। च्यवन ऋषिने जैसा कहा था, उसी प्रकार परशुराम और विश्वामित्रजीका जन्म हुआ।



नाना प्रकारके शुभ कर्मोंका और जलाशय बनाने तथा बगीचे लगानेका फल

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! इस पृथ्वीको जब मैं सम्पत्तिशाली राजाओंसे हीन देखता हूँ तो मुझे बड़ी चिन्ता और घबराहट होती है। यद्यपि मैंने सैकड़ों देशोंके राज्योंपर अधिकार पाया है और समूची पृथ्वीपर विजय प्राप्त की है, तथापि इसके लिये जो करोड़ों मनुष्योंकी मेरेद्वारा हत्या हुई है, उसके कारण मेरे मनमें बड़ा संताप हो रहा है। हाय ! उन बेचारी स्त्रियोंकी क्या दशा होगी, जो आज अपने पति और बन्धुओंसे हीन हो चुकी हैं। यह सब सोचकर मेरी तो ऐसी इच्छा होती है कि भयंकर तपस्या करके अपने शरीरको सुखा डालूँ; किंतु इस विषयमें आपका क्या विचार है ? यह यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ।

भीष्मजीने कहा—राजन् ! मैं तुम्हें एक अद्भुत रहस्य बतलाता हूँ। मनुष्यको मरनेपर किस कर्मसे कौन-सी गति मिलती है, इस विषयको सुनो। तपस्यासे स्वर्ग मिलता है, तपस्यासे सुयशकी प्राप्ति होती है तथा तपस्यासे ही दीर्घायु, ऊँचा पद और तरह-तरहके भोग प्राप्त होते हैं। ज्ञान, विज्ञान, आरोग्य, रूप, सम्पत्ति और सौभाग्य भी तपस्याके ही फल हैं। तप करनेसे मनुष्य धन पाता है, मौन व्रतके आचरणसे सबपर हुक्म चलाता है, दानसे उपभोग और ब्रह्मचर्यके पालनसे दीर्घायु प्राप्त करता है। व्रतकी दीक्षा लेनेसे उत्तम कुलमें जन्म होता है, फल-मूल भोजन करनेवालोंको राज्य और पत्ता चबाकर रहनेवालोंको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। दूध पीकर रहनेवाला मनुष्य स्वर्गको जाता है और दान देनेसे अधिक धन मिलता है। गुरुकी सेवासे

विद्या और नित्य श्राद्ध करनेसे संतानकी वृद्धि होती है। जो केवल शाकाहार करके रहता है, उसे गोधनकी प्राप्ति होती है। तिनके खानेवाले स्वर्गमें जाते हैं और हवा पीकर रहनेवाले यज्ञका फल पाते हैं। जो द्विज नित्य स्नान करके दोनों समय संध्योपासन करते हैं, वे दक्ष प्रजापतिके समान होते हैं। अन्न और जलका त्याग करनेवाले स्वर्गमें जाते हैं तथा खुले मैदान वेदीपर शयन करनेवालोंको गृह और शय्याकी प्राप्ति होती है। चीथड़े और वल्कल पहननेवालोंको उत्तम-उत्तम वस्त्र और आभूषण मिलते हैं, जलमें बैठकर तप करनेवाला राजा होता है तथा सत्यवादी पुरुष स्वर्गमें देवताओंके साथ आनन्द भोगता है। दानसे यश, अहिंसासे आरोग्य तथा ब्राह्मणोंकी सेवासे राज्य और ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है। लोगोंको पानी पिलानेसे सदा रहनेवाली कीर्ति मिलती है तथा अन्नदानसे समस्त कामनाओं और उपभोगोंकी प्राप्ति होती है। जो समस्त प्राणियोंको सान्त्वना देता है, वह सब प्रकारके शोकोंसे छूट जाता है। देवताओंकी सेवासे राज्य और दिव्य रूप मिलते हैं। मन्दिरमें दीपदान करनेसे मनुष्यका नेत्र नीरोग रहता है। दर्शनीय (सुन्दर) वस्तुओंके दानसे बुद्धि और स्मरणशक्ति प्राप्त होती है। बारह वर्षोंतक उपवास, दीक्षा और त्रिकाल स्नानका नियम पालन करनेसे वीरोंसे भी श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। यज्ञ और उपवाससे स्वर्ग मिलता है। फल और फूल दान करनेवाला मनुष्य मोक्षदायक ज्ञान प्राप्त करता है।

जो सोनेसे मढ़ी हुई सींगोंवाली कपिला गायका काँसके बने हुए दुग्ध-पात्र और बछड़ेसमेत दान करता है, उस पुरुषके पास वह गौ उन्हीं गुणोंसे युक्त कामधेनु होकर आती है। उस गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षतक मनुष्य स्वर्गमें सुख भोगता है। इतना ही नहीं, वह गौ उसके पुत्र-पौत्र आदि सात पीढ़ियोंतकका उद्धार कर देती है। जैसे महासागरके बीचमें पड़ी हुई नाव वायुका सहारा पाकर पार पहुँचा देती है, उसी प्रकार अपने कर्मोंसे बँधकर घोर अन्धकारमय नरकमें पड़ते हुए मनुष्यको गोदान ही पार करता है। जो मनुष्य अपनी कन्याका ब्राह्मविधिसे विवाह करता, ब्राह्मणको भूमिदान देता और विधिवत् अन्न दान करता है, उसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। जो स्वाध्यायशील और सदाचारी ब्राह्मणको सर्वगुणसम्पन्न गृह दान करता है, उसका उत्तर कुरुदेशमें जन्म होता है। भार ढोनेमें समर्थ बैल और गायका दान करनेसे वसुलोककी प्राप्ति होती है। सुवर्णका दान स्वर्ग देनेवाला है तथा पक्के सोनेका दान उससे भी उत्तम फल देता है। छाता देनेसे उत्तम घर, उपानह (जूता) दान करनेसे सवारी, वस्त्र देनेसे सुन्दर रूप और गन्ध दान करनेसे सुगन्धित शरीरकी प्राप्ति होती है। जो ब्राह्मणको फल और फूलोंसे भरे हुए वृक्षका दान करता है, वह अनायास ही नाना प्रकारके रत्नोंसे पूर्ण समृद्धिशाली घर प्राप्त करता है। अन्न, जल और रस दान करनेवाला पुरुष इच्छानुसार रसोंको प्राप्त करता है तथा जो रहनेके लिये घर और ओढ़नेके लिये वस्त्र देता है, वह इन्हीं वस्तुओंको उपलब्ध करता है; इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो मनुष्य ब्राह्मणोंको फूलोंकी माला, धूप, चन्दन, उबटन, नहानेके लिये जल और पुष्प दान करता है, वह नीरोग और सुन्दर रूपवाला होता है। जो पुरुष अन्नसे भरे हुए घरको शय्यासहित दान करता है, उसे अत्यन्त पवित्र, मनोहर और नाना प्रकारके रत्नोंसे भरा हुआ उत्तम स्थान प्राप्त होता है। संग्रामभूमिमें वीरशय्यापर शयन करनेवाला मनुष्य ब्रह्माके समान हो जाता है।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! बगीचे लगाने और जलाशय बनवानेका जो फल होता है, उसको मैं आपके मुँहसे सुनना चाहता हूँ।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जहाँका दृश्य सुन्दर हो, जहाँ अन्नकी उपज अधिक होती हो, जो नाना प्रकारके धातुओंसे विभूषित एवं विचित्र दिखलायी देती हो तथा जहाँ सब प्रकारके प्राणी निवास करते हों, वही भूमि उत्तम मानी गयी है। उसमें तालाब एवं सब प्रकारके जलाशय (कूप आदि) बनवाना उत्तम क्षेत्र (तीर्थ) के समान है। अब मैं तालाब या पोखरे खुदवानेके पुण्यका वर्णन करता हूँ। तालाब बनवानेवाला मनुष्य तीनों लोकोंमें सर्वत्र पूज्य माना जाता है। तालाब मित्रके घरकी भाँति उपकारी, सूर्य देवताको प्रसन्न करनेवाला तथा देवताओंकी पुष्टि करनेवाला है। पोखरा खुदवाना अपनी कीर्ति फैलानेका सर्वोत्तम उपाय है; इससे धर्म, अर्थ और कामरूप फलकी प्राप्ति होती है। देशमें तालाब बनवानेका पुण्य एक महान् क्षेत्रके समान है, वह चारों प्रकारके प्राणियोंके लिये बहुत बड़ा आधार हो जाता है। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, नाग, राक्षस तथा समस्त स्थावर प्राणी जलाशयका आश्रय लेते हैं; अतः ऋषियोंने तालाब बनवानेसे जिस फलकी प्राप्ति बतलायी है, वह मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो—जिसके खुदवाये हुए पोखरेमें बरसातभर पानी रहता है, उसको अग्निहोत्रका फल प्राप्त होता है। जिसके तालाबमें शरत्कालतक पानी ठहरता है, वह मरनेके पश्चात् एक हजार गोदानका फल प्राप्त करता है। जिसके जलाशयमें हेमन्त (अगहन-पौष) तक पानी रुकता है, वह ऐसे यज्ञका फल प्राप्त करता है, जिसमें सुवर्णकी बहुत-सी दक्षिणा दी जाती है। जिसके पोखरेमें माघ-फाल्गुनतक जल रहता है, उसे

अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है। जिसके बनवाये हुए तालाबका पानी चैत्र-वैशाखतक समाप्त नहीं होता, वह अतिरात्र यज्ञका फल प्राप्त करता है तथा जिसके तालाबका जल जेठ-आषाढ़में भी मौजूद रहता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। जिसके खुदवाये हुए जलाशयमें गौएँ तथा साधु पुरुष पानी पीते हैं, वह अपने समस्त कुलको तार देता है। जिसके पोखरेमें प्यासी हुई गौएँ तथा मृग, पक्षी और मनुष्य जल पीते हैं, वह अश्वमेध-यज्ञका फल पाता है। यदि किसीके पोखरेमें लोग स्नान करते, पानी पीते और विश्राम करते हैं तो इन सबका पुण्य उस पुरुषको मरनेके बाद अक्षय सुख प्रदान करता है। पानी दुर्लभ पदार्थ है, परलोकमें तो उसका मिलना और भी कठिन है; जो जलका दान करते हैं, वे ही वहाँ सदा तृप्त रहते हैं। पानीका दान सब दानोंसे भारी और सब दानोंसे श्रेष्ठ है; अतः उसका दान अवश्य करना चाहिये।

इस प्रकार यह मैंने तालाब बनवानेके उत्तम फलका वर्णन किया, अब वृक्ष लगानेके सम्बन्धमें कुछ बातें बताता हूँ। स्थावर भूतोंकी छः जातियाँ बतायी गयी हैं—वृक्ष (बड़-पीपल आदि), गुल्म (कुश आदि), लता (वृक्षपर फैलनेवाली बेल), वल्ली (जमीनपर फैलनेवाली बेल), त्वक्सार (बाँस आदि) और तृण (घास आदि)। अब इनको लगानेमें जो गुण हैं, उनको सुनो। वृक्ष लगानेवाले मनुष्यकी इस लोकमें कीर्ति बनी रहती है और मरनेके बाद उसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। संसारमें उसका नाम होता है, परलोकमें पितर उसका सम्मान करते हैं तथा देवलोकमें चले जानेपर भी यहाँ उसका नाम नष्ट नहीं होता। वृक्ष लगानेवाला पुरुष अपने मरे हुए पितरों और भविष्यमें होनेवाली संतानोंका भी उद्धार कर देता है, इसलिये वृक्ष अवश्य लगाने चाहिये। जो वृक्ष लगाते हैं, उनके लिये वे वृक्ष पुत्रके समान होते हैं, उन्हींके कारण वह परलोकमें स्वर्ग तथा अक्षय लोकोंको प्राप्त करता है। वृक्षगण अपने फूलोंसे देवताओंकी, फलोंसे पितरोंकी और छायासे अतिथियोंकी पूजा करते हैं। किन्नर, नाग, राक्षस, देवता, गन्धर्व, मनुष्य और ऋषि—ये सभी वृक्षोंका आश्रय लेते हैं। फूले-फले वृक्ष इस जगत्‌में मनुष्योंको तृप्त करते हैं। जो वृक्षका दान करता है, उसको वे वृक्ष पुत्रकी भाँति परलोकमें तार देते हैं; इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको उचित है कि वह पोखरा खुदवाकर उसके किनारे अच्छे-अच्छे वृक्ष भी लगावे और उन वृक्षोंकी पुत्रके समान रक्षा करे; क्योंकि वे वृक्ष धर्मकी दृष्टिसे पुत्र ही माने जाते हैं। जो तालाब बनवाता, वृक्ष लगाता, यज्ञोंका अनुष्ठान करता तथा सत्य बोलता है, वह स्वर्गमें सम्मानित होता है। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह तालाब बनवाये, बगीचे लगावे, भाँति-भाँतिके यज्ञोंका अनुष्ठान करे और सदा सत्य बोले।



भीष्मद्वारा उत्तम दान और उत्तम ब्राह्मणोंकी प्रशंसा करते हुए उनकी आराधनाका उपदेश

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! वेदीके बाहर जो दान बतलाये जाते हैं, उनमें आप किसको सर्वश्रेष्ठ मानते हैं ? जिस दानका पुण्य दाताका अनुसरण करता हो, वही मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय दान दे, संकटके समय उनपर दया करे, उनकी चाही हुई वस्तु उन्हें दे और प्यासेको पानी पिलावे। सुवर्ण, गौ और पृथ्वी—इन तीन वस्तुओंका दान बड़ा पवित्र माना गया है, इससे पापीका भी उद्धार हो जाता है। राजन् ! तुम साधु पुरुषोंको हमेशा ही इन वस्तुओंका दान किया करो। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि ये दान मनुष्यको पापसे मुक्त कर देते हैं। संसारमें जो-जो पदार्थ अत्यन्त प्रिय माना जाता है तथा अपने घरमें जो भी प्रिय वस्तु मौजूद हो, वह सब गुणवान् पुरुषको दान देना चाहिये, इससे वह दान अक्षय होता है। जो सदा दूसरोंका प्रिय कार्य करता और उन्हें प्रिय वस्तु दान देता है, वह इहलोक और परलोकमें समस्त प्राणियोंका प्रिय होता है तथा उसे सदा प्रिय वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। जो आसक्तिरहित और अकिंचन पुरुषके भी याचना करनेपर अहंकारवश अपनी शक्तिके अनुसार उसका सत्कार नहीं करता, वह क्रूर है। शत्रु भी यदि दीन होकर शरण पानेकी इच्छासे घरपर आ जाय तो संकटके समय जो उसपर दया करता है, वही मनुष्योंमें श्रेष्ठ है। विद्वान् होनेपर भी जिसकी आजीविका क्षीण हो गयी है, जो दीन-दुर्बल और दुःखी है, ऐसे मनुष्यकी भूख मिटानेवाले पुरुषके समान पुण्यात्मा कोई नहीं है। जो स्त्री-पुत्रोंके पालनमें असमर्थ होनेके कारण विशेष कष्ट उठानेपर भी किसीसे याचना नहीं करते और सदा सत्कर्मोंमें ही लगे रहते हैं, उनको हर एक उपायसे अपने पास बुलाकर सहायता देनी चाहिये। युधिष्ठिर ! जो देवताओं और मनुष्योंसे किसी वस्तुकी कामना नहीं करते, सदा संतुष्ट रहते और जो कुछ मिल जाय उसीपर निर्वाह करते हैं, ऐसे पूज्य

पुरुषोंका पता लगाकर उन्हें निमन्त्रित करो और आवश्यक सामग्रीसे युक्त तथा सब प्रकारसे सुखद गृह निवेदन करके उनका पूर्ण सत्कार करो। यदि तुम्हारा दान श्रद्धासे पवित्र और कर्तव्यकी दृष्टिसे ही किया हुआ होगा तो पुण्य-कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले वे धार्मिक पुरुष उसे उत्तम मानकर स्वीकार कर लेंगे। जो विद्वान्, व्रतका पालन करनेवाले, किसीका आश्रय लिये बिना ही जीवन-निर्वाह करनेवाले, अपने स्वाध्याय और तपको गुप्त रखनेवाले, कठोर नियमोंमें संलग्न, शुद्ध, जितेन्द्रिय और अपनी ही स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं, उन उत्तम ब्राह्मणोंके लिये तुम जो कुछ दान करोगे उससे तुम्हारा कल्याण होगा। द्विजके द्वारा सायं और प्रातःकाल विधिपूर्वक किया हुआ अग्निहोत्र जो फल प्रदान करता है, वही फल संयमी ब्राह्मणोंको दान देनेसे मिलता है। तुम्हारे द्वारा किया जानेवाला विशाल दान यज्ञ-श्रद्धासे पवित्र एवं दक्षिणासे युक्त है; यह सब यज्ञोंसे बढ़कर है, इसको सदा चालू रखो।

जो ब्राह्मण कभी क्रोध नहीं करते, जिनके मनमें तिनकेका भी लोभ नहीं होता और जो सदा मीठे वचन बोलते हैं, वे ही मेरे परमपूज्य हैं। उपर्युक्त ब्राह्मण निःस्पृह होनेके कारण धनके लिये कोई कार्य नहीं करते, उनकी पुत्रके समान रक्षा करनी चाहिये। उन्हें बारंबार नमस्कार है; उनकी ओरसे हमलोगोंको कोई भय न हो। ऋत्विक्, पुरोहित और आचार्य—ये प्रायः कोमल स्वभाववाले और वेदोंको धारण करनेवाले होते हैं। क्षत्रियका तेज ब्राह्मणके पास जाते ही शान्त हो जाता है, इसलिये तुम अपनेको धनी, बलवान् और राजा समझकर ब्राह्मणोंकी अवहेलना करके स्वयं ही अन्न-वस्त्रका उपभोग न करना। तुम्हारे पास जो धन है उसके द्वारा अपने धर्मका अनुष्ठान करते हुए तुम्हें ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। यथेच्छ वृत्तिसे रहनेवाले ब्राह्मणोंको तुम सदा प्रणाम किया करो और वे भी तुम्हारे आश्रयमें उत्साह और आनन्दके साथ रहें। कुरुश्रेष्ठ! जिनकी कृपा अक्षय है, जो सबका हित करनेवाले और थोड़ेमें ही संतुष्ट रहनेवाले हैं, उन ब्राह्मणोंको तुम्हारे सिवा दूसरा कौन जीविका दे सकता है? जिस प्रकार इस संसारमें स्त्रियोंका सनातनधर्म पतिकी सेवापर ही अवलम्बित है, उसी प्रकार हमारी गति ब्राह्मणोंके अधीन है। तात! यदि हम ब्राह्मणोंकी पूजा न करें और क्षत्रियमें सदा रहनेवाले निष्ठुर कर्मको देखकर ब्राह्मण भी हमारा परित्याग कर दें तो हम वेद, यज्ञ, उत्तम लोक और आजीविकासे भी भ्रष्ट हो जायँ; उस दशामें हमारे जीवित रहनेका क्या प्रयोजन होगा?

राजन्! अब मैं तुम्हें सनातन कालका धार्मिक व्यवहार बता रहा हूँ, सुनो—पूर्वकालमें क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी, वैश्य क्षत्रियोंकी और शूद्र वैश्योंकी सेवा करते थे। ब्राह्मण अग्निके समान तेजस्वी हैं, अतः शूद्रको दूरसे ही उनकी सेवा करनी चाहिये; किंतु क्षत्रिय और वैश्यको शरीर-स्पर्शपूर्वक ब्राह्मणकी सेवा करनी उचित है। ब्राह्मण स्वभावतः कोमल, सत्यवादी और सत्यधर्मका पालन करनेवाले होते हैं, किंतु जब वे क्रोधमें भरते हैं तो विषैले साँपोंके समान भयंकर हो जाते हैं, अतः तुम सदा ब्राह्मणोंकी सेवा करते रहो। तेज और बलसे तपनेवाले क्षत्रियोंके तप और तेज ब्राह्मणोंमें ही शान्त होते हैं। तात! मुझे ब्राह्मण जितने प्रिय हैं उतने मेरे पिता, पितामह, यह शरीर और जीवन भी प्रिय नहीं हैं। इस पृथ्वीपर तुमसे बढ़कर मेरा प्रिय कोई नहीं है; किंतु ब्राह्मण मुझे तुमसे भी अधिक प्रिय हैं। पाण्डुनन्दन! यह मैं सच्ची बात बता रहा हूँ और इसी सत्यके कारण जहाँ मेरे पिता महाराज शान्तनु विराजमान हैं, उस लोकमें मैं जाऊँगा और सत्पुरुषोंको मिलनेवाले ब्रह्मलोक आदि उत्तम लोकोंका दर्शन करूँगा। अब मुझे बहुत शीघ्र और चिरकालतकके लिये उन लोकोंमें जाना है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! उत्तम आचरण, विद्या और कुलमें एक समान प्रतीत होनेवाले दो ब्राह्मणोंमेंसे यदि एक याचक हो और दूसरा अयाचक तो किसको दान देनेसे उत्तम फल मिलता है?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! याचना करनेवालेकी अपेक्षा याचना न करनेवालेको दिया हुआ दान विशेष कल्याण करनेवाला होता है तथा अधीर हृदयवाले कृपण मनुष्यकी अपेक्षा धैर्य धारण करनेवाला ही विशेष सम्मानका पात्र है। रक्षाके कार्यमें धैर्य धारण करनेवाला क्षत्रिय और याचना न करनेमें दृढ़ता रखनेवाला ब्राह्मण श्रेष्ठ है। जो ब्राह्मण धीर, संतोषी और विद्वान् होते हैं, वे देवताओंको प्रसन्न करते हैं। दरिद्रकी याचना उसके लिये तिरस्कारका कारण मानी गयी है; क्योंकि याचक लुटेरोंकी भाँति सदा प्राणियोंको उद्विग्न करते रहते हैं। याचक मर जाता है किंतु दाता कभी नहीं मरता। याचकको जो दान दिया जाता है यह दयारूप परम धर्म है; किंतु जो लोग क्लेश उठाकर भी याचना नहीं करते, उन ब्राह्मणोंको प्रत्येक उपायसे अपने पास बुलाकर दान देना चाहिये। यदि तुम्हारे राज्यके भीतर राखमें छिपी हुई आगकी तरह वैसे उत्तम ब्राह्मण रहते हों तो तुम्हें यत्नपूर्वक उनकी खोज करनी चाहिये; क्योंकि तपस्यासे देदीप्यमान रहनेवाले वे ब्राह्मण पूजित न होनेपर यदि चाहें तो सारी पृथ्वीको भस्म कर सकते हैं, अतः उनकी सदा पूजा करनी चाहिये। जो ब्राह्मण ज्ञान-विज्ञान और तपस्यासे

युक्त एवं पूजनीय हैं, उनकी तुम्हें सदा ही पूजा करनी चाहिये। जो याचना नहीं करते, उनके पास तुम्हें स्वयं जाकर नाना प्रकारके पदार्थ दान करने चाहिये। सायं और प्रातःकाल विधिपूर्वक अग्निहोत्र करनेसे जो फल मिलता है, वही वेदके विद्वान् और व्रतधारी ब्राह्मणको दान देनेसे भी मिलता है। जो विद्या और वेदव्रतमें निष्णात हैं, जो किसीके आश्रित होकर जीविका नहीं चलाते, जिनका स्वाध्याय और तपस्या गुप्त है तथा जो उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हैं, ऐसे उत्तम ब्राह्मणोंको तुम अपने यहाँ निमन्त्रित करो और उन्हें सेवक तथा आवश्यक सामग्रीके साथ रहनेके लिये उत्तम घर दो। वे धर्मज्ञ तथा सूक्ष्मदर्शी ब्राह्मण तुम्हारे श्रद्धायुक्त दानको कर्तव्यबुद्धिसे किया हुआ मानकर अवश्य स्वीकार करेंगे। जैसे किसान वर्षाकी बाट जोहता रहता है, उसी प्रकार जिनके घरकी स्त्रियाँ अन्नकी प्रतीक्षामें बैठी हों, ऐसे ब्राह्मणोंको दान देनेसे महान् पुण्य होता है। नियमपूर्वक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाले ब्राह्मण यदि प्रातःकाल घरमें भोजन करते हैं तो तीनों अग्नियोंको तृप्त कर देते हैं, दोपहरके समय उन्हें गौ, सुवर्ण और वस्त्र देनेसे इन्द्रदेवता प्रसन्न होते हैं तथा तीसरे पहरमें जो तुम देवताओं, पितरों और ब्राह्मणोंके उद्देश्यसे दान करते हो, वह विश्वेदेवोंको संतुष्ट करनेवाला होता है। सब प्राणियोंके प्रति अहिंसाका भाव रखना, सबको यथायोग्य भाग अर्पण करना, इन्द्रियसंयम, त्याग, धैर्य और सत्य—ये सब गुण तुम्हें यज्ञान्तमें अवभृथ-स्नानका फल देंगे और इस प्रकार जो तुम्हारे श्रद्धापूत एवं दक्षिणायुक्त यज्ञका विस्तार हो रहा है, यह सभी यज्ञोंसे बढ़कर है। तात युधिष्ठिर ! तुम इस यज्ञको सदा जारी रखना।



राजाके लिये यज्ञ, दान और ब्राह्मण आदि प्रजाकी रक्षाका उपदेश

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! दान और यज्ञ—ये दोनों क्रियाएँ इस लोकमें फल देती हैं या परलोकमें इनका महान् फल प्राप्त होता है ? इन दोनोंमेंसे किसका फल श्रेष्ठ है ? कैसे लोगोंको दान देना चाहिये ? तथा किस प्रकार और कब यज्ञका अनुष्ठान करना चाहिये ? इस बातको मैं यथार्थरूपसे जानना चाहता हूँ, अतः आप मुझसे दान-धर्मका वर्णन कीजिये।

भीष्मजीने कहा—बेटा ! क्षत्रियको सदा कठोर कर्म करने पड़ते हैं, अतः यज्ञ और दान ही उसे पवित्र करनेवाले कर्म हैं। साधु पुरुष पाप करनेवाले राजाका दान नहीं लेते, इसलिये राजाओंको पर्याप्त दक्षिणा देकर यज्ञोंका अनुष्ठान करना चाहिये। साधु पुरुष यदि दान स्वीकार करें तो राजाको बड़ी श्रद्धाके साथ उन्हें प्रतिदिन दान देना चाहिये; क्योंकि श्रद्धापूर्वक किया हुआ दान आत्मशुद्धिका सर्वोत्तम साधन है। तुम नियमपूर्वक यज्ञकी दीक्षा लेकर सुशील, सदाचारी, तपस्वी, वेदवेत्ता, सबसे मैत्री रखनेवाले तथा साधुस्वभाववाले ब्राह्मणोंको धन देकर संतुष्ट करो। यदि वे तुम्हारा दान स्वीकार नहीं करेंगे तो तुम्हें पुण्य नहीं होगा, इसलिये दक्षिणायुक्त यज्ञोंका अनुष्ठान करो और साधु-ब्राह्मणोंको स्वादिष्ट अन्न भोजन कराओ। याज्ञिक पुरुषोंको दान करके ही तुम अपनेको यज्ञ और दानके पुण्यका भागी समझ लो। यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंका सदा सम्मान करो, इससे तुम्हें भी यज्ञका आंशिक फल प्राप्त हो जायगा। जो बहुतोंका उपकार करनेवाले, बाल-बच्चेवाले ब्राह्मणोंका पालन-पोषण करता है, वह उस शुभकर्मके प्रभावसे प्रजापतिके समान संतानवान् होता है। परोपकारी संत पुरुष सदा उत्तम धर्मोंका प्रसार और प्रचार करते रहते हैं, अपना सर्वस्व समर्पण करके भी ऐसे लोगोंका पालन-पोषण करना चाहिये।

युधिष्ठिर ! तुम समृद्ध हो, इसलिये ब्राह्मणोंको गाय, बैल, अन्न, छाता, जूता और वस्त्रदान करते रहो। जो ब्राह्मण यज्ञ करते हों, उन्हें घी, अन्न, घोड़े जुते हुए रथ आदिकी सवारियाँ, उत्तम घर और शय्या आदि दान करो। ये दान सरलतासे होनेवाले और समृद्धिको बढ़ानेवाले हैं। जिन ब्राह्मणोंका आचरण निन्दित न हो, वे यदि जीविकाके बिना कष्ट पा रहे हों तो उनका पता लगाकर गुप्त या प्रकटरूपमें जीविकाका प्रबन्ध करके सदा उनका पालन करते रहना चाहिये। क्षत्रियोंके लिये यह कार्य राजसूय और अश्वमेध यज्ञसे भी अधिक कल्याणकारी है। ऐसा करनेसे तुम सब पापोंसे मुक्त और पवित्र होकर स्वर्गमें जाओगे। तुम्हें अपने सेवकों और प्रजाका भी पुत्रकी भाँति पालन करना चाहिये। ब्राह्मणोंके पास जो वस्तु न हो उसे देना और जो हो उसकी रक्षा करना भी तुम्हारा कर्तव्य है। अपना सारा जीवन ही तुम्हें ब्राह्मणोंकी सेवामें लगाना चाहिये, उनकी रक्षासे कभी मुँह नहीं मोड़ना चाहिये। ब्राह्मणोंके पास यदि बहुत धन इकट्ठा हो जाय तो यह उनके लिये अनर्थका ही कारण होता है; क्योंकि लक्ष्मीका निरन्तर सहवास उन्हें दर्प और मोहमें डाल देता है। ब्राह्मण जब मोहग्रस्त होते हैं तो निश्चय ही धर्मका नाश हो जाता है।

और धर्मका नाश होनेपर प्राणियोंका भी नाश हो जाता है—इसमें तनिक भी संदेहकी बात नहीं है। जो राजा प्रजासे करके रूपमें प्राप्त हुए धनको खजांचियोंके सुपुर्द करके खजानेमें रखवा लेता है और अपने कर्मचारियोंको यज्ञके लिये राज्यसे दूसरा धन वसूल करनेके लिये आज्ञा देकर प्रजाको लूटता है तथा उसकी आज्ञाके अनुसार लोगोंको डरा-धमकाकर निष्ठुरतापूर्वक जो धन लाया जाता है उसीसे यज्ञका अनुष्ठान करता है, उस राजाके ऐसे यज्ञकी साधु पुरुष प्रशंसा नहीं करते। इसलिये जो लोग बहुत धनी हों और बिना पीड़ा दिये ही अनुकूलतापूर्वक धन दे सकें उन्हींके दिये हुए धनको उपयोगमें लाना चाहिये। ऐसे ही उपायसे संग्रह किये हुए धनके द्वारा यज्ञ करना उचित है, बलात् लाये हुए धनसे नहीं। जब राजाका विधिपूर्वक राज्याभिषेक हो जाय तो राज्यासनपर बैठनेके अनन्तर राजाको महान् यज्ञका अनुष्ठान करके उसमें बहुत-सी दक्षिणा देनी चाहिये। राजा वृद्ध, बालक, दीन और अंधे मनुष्यके धनकी रक्षा करे। पानी न बरसनेपर जब प्रजा कुआँ खोदकर किसी तरह सिंचाई करके कुछ अन्न पैदा करे तो राजाको उससे कर नहीं लेना चाहिये तथा जो स्त्री किसी क्लेशमें पड़कर रो रही हो उससे भी धन लेना उचित नहीं है। राजा यदि दरिद्रका धन छीनता है तो वह धन उसके राज्य और लक्ष्मीका नाश कर देता है। जिसके स्वादिष्ट भोजनकी ओर बालक तरसती आँखोंसे देखते हैं और वह उन्हें खानेको नहीं मिलता, उस पुरुषके द्वारा इससे बढ़कर पाप और क्या हो सकता है ? राजन् ! यदि तुम्हारे राज्यमें कोई विद्वान् ब्राह्मण भूखसे कष्ट पा रहा हो तो तुम्हें भ्रूणहत्याका पाप लग सकता है। राजा शिबिने कहा है कि 'जिसके राज्यमें ब्राह्मण या और कोई मनुष्य क्षुधासे पीड़ित हो रहा हो, उस राजाके जीवनको धिक्कार है।' जिसके राज्यमें स्नातक ब्राह्मण भूखका क्लेश उठा रहा हो, उसके राज्यकी उन्नति नहीं होती, साथ ही वह शत्रु राजाओंके हाथमें चला जाता है। जिसके राज्यसे रोती-बिलखती स्त्रियोंका बलपूर्वक अपहरण हो जाता हो और उनके पति-पुत्र रोते-पीटते रह जाते हों, उस राजाको जीवित नहीं समझना चाहिये, वह मुर्देके समान है। जो प्रजाकी रक्षा नहीं करता, सिर्फ उसके धनको लूटता-खसोटता रहता है तथा जिसके पास कोई सुयोग्य मन्त्री नहीं है, वह निर्दयी राजा कलियुगके समान है। प्रजाको चाहिये कि ऐसे राजाको बाँधकर मार डाले। जो प्रजासे यह कहकर कि 'मैं तुमलोगोंका रक्षक हूँ' फिर उनकी रक्षा नहीं करता, वह पागल कुत्तेकी तरह मार डालनेके योग्य है। राजासे अरक्षित होकर प्रजा जो कुछ पाप करती है, राजाको उसके चतुर्थांशका भागी होना पड़ता है। इसी प्रकार राजासे भलीभाँति सुरक्षित होकर प्रजा जो भी शुभ कर्म करती है, उसके पुण्यका चौथाई भाग राजाको प्राप्त होता है। युधिष्ठिर ! जैसे सब प्राणी मेघके सहारे जीवन धारण करते हैं, जैसे पक्षी बहुत बड़े वृक्षका आश्रय लेकर रहते हैं तथा जिस प्रकार राक्षस कुबेरके और देवता इन्द्रके आश्रित होकर जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे जीते-जी सारी प्रजा तुमसे ही अपनी आजीविका चलावे, तुम्हारे सुहृद् और भाई-बन्धु तुमपर ही अवलम्बित होकर जीवन-निर्वाह करें।



भूमिदानका महत्त्व

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! 'यह देना चाहिये, वह देना चाहिये' कहकर श्रुति बड़े आदरके साथ दानका विधान करती है तथा शास्त्रोंमें राजाओंके लिये अनेकों प्रकारके दानकी आज्ञा है; किंतु उन सब दानोंमें कौन-सा दान सबसे उत्तम है ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! सब दानोंमें पृथ्वीदान सबसे बढ़कर माना गया है। पृथ्वी अचल और अक्षय है, वह मनुष्योंकी समस्त उत्तम कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है। वस्त्र, रत्न, पशु और धान-जौ आदि नाना प्रकारके अन्न पृथ्वीसे ही उत्पन्न होते हैं। अतः पृथ्वीका दान करनेवाला मनुष्य बहुत कालतक समृद्धिशाली रहकर सुख भोगता है। जबतक पृथ्वी कायम रहती है तबतक भूमिदान करनेवाला मनुष्य उत्तरोत्तर उन्नति करता ही रहता है। इस जगत्में भूमिदानसे बढ़कर और कोई दान नहीं है। हमने सुना है, जिन लोगोंने थोड़ी-सी भी पृथ्वी दान की है, वे भूमिदानका पूर्ण फल पाकर उसका उपभोग करते हैं। जो इस अक्षय पृथ्वीका दान करता है, वह दूसरे जन्ममें मनुष्य होकर पृथ्वीका स्वामी होता है। धर्मशास्त्रोंका सिद्धान्त है कि जैसा दान किया जाता है वैसा भोग मिलता है। संग्राममें शरीरका त्याग करे अथवा इस पृथ्वीको दान दे—ये दोनों ही कार्य क्षत्रियोंको उत्तम लक्ष्मीकी प्राप्ति करानेवाले हैं। दानमें दी हुई पृथ्वी दाताको पवित्र कर देती है। कितना ही बड़ा पापी, ब्रह्महत्यारा और असत्यवादी क्यों न हो, दानमें दी हुई पृथ्वी दाताके पापको धो-बहाकर उसे सर्वथा निष्पाप कर देती है। साधु

पुरुष पापी राजाओंसे भी पृथ्वीका दान ले लेते हैं; किंतु और किसी वस्तुका दान नहीं स्वीकार करते। अयोग्य पात्रको भूमिदान लेनेका अधिकार नहीं है। जिस भूमिको दानमें दे दिया जाय, उससे स्वयं काम नहीं लेना चाहिये। जीविका न होनेके कारण मनुष्य क्लेशमें पड़कर जो कुछ पाप कर डालता है, वह सारा पाप गोचर्मके बराबर भी भूमिदान करनेसे धुल जाता है। जो राजा कठोर कर्म करनेवाले और पापपरायण हैं, उन्हें पापमुक्त होनेके लिये इस परम पावन पृथ्वीदानका उपदेश करना चाहिये। प्राचीन कालके लोग ऐसा मानते थे कि जो अश्वमेध-यज्ञ करता है अथवा जो साधु पुरुषको पृथ्वी-दान करता है, इन दोनोंमें बहुत कम अन्तर है। जो पृथ्वीका दान करता है, उसे तप, यज्ञ, विद्या, सुशीलता, लोभका अभाव, सत्यवादिता, गुरु-शुश्रूषा और देवाराधनका भी फल मिल जाता है। जो अपने स्वामीका भला करनेके लिये रणभूमिमें मारे जाकर शरीर त्याग देते हैं और जो सिद्ध होकर ब्रह्मलोकमें पहुँच जाते हैं, वे भी भूमिदान करनेवाले पुरुषसे आगे नहीं बढ़ते। जैसे माता अपने बच्चेको सदा दूध पिलाकर पालती है, उसी प्रकार पृथ्वी सब प्रकारके रस देकर भूमिदाताके ऊपर अनुग्रह करती है। मृत्यु, काल, दण्ड, तमोगुण, दारुण अग्नि और भयंकर पाश—ये भूमिदान करनेवालेके पास नहीं फटकने पाते। पृथ्वीका दान करनेवाला शान्तचित्त मनुष्य देवता और पितरोंको भी तृप्त कर देता है। दुर्बल, जीविकाके बिना दुःखी और भूखके कष्टसे मरते हुए ब्राह्मणको उपजाऊ भूमिदान करनेवाला मनुष्य यज्ञका फल पाता है। जैसे बछड़ेके प्रति वात्सल्यभावसे भरी हुई गौ अपने थनोंसे दूध बहाती हुई उसे पिलानेके लिये दौड़ती है, उसी प्रकार यह पृथ्वी भूमिदान करनेवालेको सुख पहुँचाती है। जो मनुष्य जोती, बोयी और उपजी हुई खेतीसे भरी भूमिदान करता है अथवा विशाल भवन बनवाकर देता है, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं। जो सदाचारी अग्निहोत्री और उत्तम व्रतमें संलग्न ब्राह्मणको भूमिदान करता है, उसे कभी विपत्तिग्रस्त नहीं होना पड़ता। जैसे चन्द्रमाकी कला प्रतिदिन बढ़ती है, उसी प्रकार दान की हुई पृथ्वीमें जितनी बार फसल पैदा होती है, उतना ही उसके दानका फल बढ़ता जाता है। इस विषयमें प्राचीन बातोंके जानकार लोग पृथ्वीकी गायी हुई एक गाथा कहा करते हैं, जिसे सुनकर परशुरामजीने समूची पृथ्वी कश्यपजीको दान कर दी थी। वह गाथा इस प्रकार है—(पृथ्वी कहती है—) 'मुझे दानमें दो और मुझे ही दानके रूपमें ग्रहण करो। मुझे देकर मुझे ही पाओगे; क्योंकि मनुष्य इस लोकमें जो कुछ दान करता है, वही उसे परलोकमें मिलता है।' जो मनुष्य श्राद्धकालमें पृथ्वीकी इस वेदतुल्य गाथाका पाठ करता है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। अत्यन्त प्रबल कृत्या (मारण-शक्ति) के प्रयोगसे जो भय प्राप्त होता है, उसको शान्त करनेका सबसे महान् साधन पृथ्वीका दान ही है। भूमि-दान करके मनुष्य अपने आगे-पीछेकी दस पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है। जो वेदके समान माननीय इस भूमिगाथाको जानता है, वह भी अपनी दस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। यह पृथ्वी सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्तिका स्थान है और अग्नि इसका अधिष्ठाता देवता है। राजाको राजसिंहासनपर अभिषिक्त करनेके बाद उसे पृथ्वीकी बतायी हुई गाथा सुना देनी चाहिये, जिससे वह भूमिका दान करे और सत्पुरुषोंके हाथसे उन्हें दी हुई वृत्ति छीन न ले।

जिनका राजा धर्मको न जाननेवाला और नास्तिक होता है, वे लोग न सुखसे सोते हैं और न सुखसे जागते हैं, अपितु उस राजाके दुराचारसे सदा उद्विग्न रहते हैं। ऐसे राजाके राज्यमें योग-क्षेम नहीं प्राप्त होता। किंतु जिस देशका राजा बुद्धिमान् और धार्मिक होता है वहाँके लोग सुखसे सोते और सुखसे जागते हैं। वे अपने राजाके सद्व्यवहार और सुन्दर राज्य-व्यवस्थासे अत्यन्त संतुष्ट रहते हैं। उस राज्यमें समयपर वर्षा होती तथा वहाँकी प्रजा योग-क्षेमसे सम्पन्न एवं अपने शुभकर्मोंसे समृद्धिशालिनी होती है। जो पृथ्वी दान करता है, वही कुलीन, वही बन्धु, वही पुण्यात्मा, वही दाता और वही पराक्रमी है। जो मनुष्य वेदवेत्ता ब्राह्मणको धन-धान्यसे सम्पन्न भूमिदान करते हैं, वे इस पृथ्वीपर सूर्यके समान देदीप्यमान होते हैं। जैसे जमीनमें बोये हुए बीज अधिक अन्न पैदा करते हैं, उसी प्रकार भूमिदान करनेसे सब प्रकारकी कामनाएँ सफल होती हैं। आदित्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, चन्द्रमा, अग्नि और भगवान् शंकर—ये सभी भूमिदान करनेवालेका आदर करते हैं। समस्त जीव पृथ्वीसे ही उत्पन्न और पृथ्वीमें ही लीन होते हैं। अण्डज, पिण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—इन चार प्रकारके प्राणियोंका शरीर पृथ्वीका ही कार्य है। पृथ्वी ही इस जगत्‌की माता और पिता है, इसके समान दूसरा कोई भूत नहीं है।

युधिष्ठिर! इस विषयमें जानकार लोग बृहस्पति और इन्द्रके संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। प्राचीन कालमें जब इन्द्रने बहुत-सी दक्षिणा देकर बड़े-बड़े सौ यज्ञोंका अनुष्ठान पूर्ण कर लिया तो विद्वानोंमें श्रेष्ठ बृहस्पतिजीसे पूछा—'भगवन्! किस वस्तुका दान करनेसे स्वर्गका सुख प्राप्त होता है? जिसका फल अक्षय और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हो, वही दान मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।'

बृहस्पतिजीने कहा—इन्द्र! जो बुद्धिमान् सुवर्ण, गौ

और पृथ्वीका दान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। मैं तो भूमिदानसे बढ़कर और किसी दानको नहीं मानता। अन्य विद्वानोंकी भी यही सम्मति है। जो अपने स्वामीका भला करनेके लिये युद्धमें मारे जाकर शरीर त्याग देते हैं और जो योगयुक्त होकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं, वे भी भूमिदान करनेवालेसे आगे नहीं बढ़ते। भूमिदान करनेवाला मनुष्य अपनी पाँच पीढ़ीतकके पूर्वजोंका और छः पीढ़ियोंतक पृथ्वीपर आनेवाली संतानोंका—इस तरह कुल ग्यारह पीढ़ियोंका उद्धार करता है। जो रत्नोंकी दक्षिणासे युक्त पृथ्वीका दान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। भूमिदान करनेवालेको परलोकमें मधु, घी, दूध और दहीकी धारा बहानेवाली नदियाँ तृप्त करती हैं। राजा भूमिदान करनेसे सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। भूमिदानसे बढ़कर और कोई दान नहीं है। जो समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको शस्त्रोंसे जीतकर ब्राह्मणको दान दे देता है, उसकी कीर्ति संसारके लोग तबतक गाया करते हैं जबतक यह पृथ्वी कायम रहती है। जो परम पवित्र और समृद्धिरूपी रससे भरी हुई पृथ्वीका दान करता है, उसको उस दानके प्रभावसे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होती है। जो राजा ऐश्वर्य और सुख चाहता हो, उसे सदा सुपात्र ब्राह्मणको भूमिदान करना चाहिये। मनुष्य पृथ्वी-दानके साथ ही समुद्र, नदी, पर्वत, वन, तालाब, कुआँ, झरना, सरोवर, स्नेह (घृत आदि) और सब प्रकारके रसोंके दानका भी फल प्राप्त करता है। बहुत-सी दक्षिणा देकर अग्निष्टोम आदि यज्ञ करनेपर भी उस फलकी प्राप्ति नहीं होती, जो भूमिदान करनेपर मिलता है। भूमिका दान करनेवाला अपनी दस पीढ़ियोंका उद्धार करता है और देकर छीन लेनेवाला मनुष्य अपनी दस पीढ़ियोंको नरकमें ढकेलता है तथा स्वयं भी नरकमें पड़ता है। जो देनेकी प्रतिज्ञा करके नहीं देता है तथा जो देकर फिर ले लेता है, वह मृत्युकी आज्ञासे वरुणपाशमें बँधकर तरह-तरहके कष्ट पाता है। जिसकी जीविकाका कोई साधन नहीं है ऐसे ब्राह्मणकी दूसरोंसे मिली हुई वृत्ति कभी नहीं छीननी चाहिये। दरिद्र ब्राह्मण अपना खेत छिन जानेपर दुःखी होकर जो आँसू बहाते हैं, वह छीननेवालेकी तीन पीढ़ीका नाश कर देता है। जो राज्यसे भ्रष्ट हुए राजाको फिर राजसिंहासनपर बिठा देता है, वह पुरुष स्वर्गमें जाता है। जिस भूमिपर गन्ना, जौ अथवा गेहूँकी खेती लहलहा रही हो, जहाँ गौ और घोड़े आदि वाहनोंकी भरमार हो, जिसके भीतर खजाना गड़ा हुआ हो तथा जो सब प्रकारके रत्नमय उपकरणोंसे अलंकृत हो, ऐसी भूमिको अपने बाहुबलसे जीतकर जो राजा दान कर देता है, उसे अक्षयलोक मिलते हैं, उसका वह दान भूमियज्ञ कहलाता है। जो पुरुष पृथ्वीका दान करता है, वह अपने सब पापोंका नाश करके विशुद्ध और सत्पुरुषोंके आदरका पात्र हो जाता है। जगत्‌में सज्जन पुरुष सदा ही उसका सत्कार करते हैं। जैसे पानीमें पड़ी हुई तेलकी बूँद सब ओर फैल जाती है, उसी प्रकार दान की हुई भूमिमें जितना-जितना अन्न पैदा होता है, उतना-ही-उतना उसके दानका महत्त्व बढ़ता जाता है। पृथ्वी-दान करनेवाले मनुष्यको अमृत उत्पन्न करनेवाली भूमि प्राप्त होती है। भूमि-दानके समान दान, माताके समान गुरु, सत्यके समान धर्म और दानके समान कोई खजाना नहीं है।

भीष्मजी कहते हैं—बृहस्पतिजीके मुँहसे भूमि-दानका यह माहात्म्य सुनकर इन्द्रने धन और रत्नोंसे भरी हुई यह पृथ्वी उन्हें दान कर दी। जो पुरुष श्राद्धके समय पृथ्वी-दानके इस माहात्म्यको सुनाता है, उसके श्राद्धकर्ममें पितरोंको अर्पण किये हुए भाग राक्षस और असुर नहीं लेने पाते। पितरोंके निमित्त उसका दिया हुआ सारा दान अक्षय होता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। इसलिये विद्वान् पुरुषको चाहिये कि श्राद्धमें भोजन करते हुए ब्राह्मणोंको यह भूमिदानका माहात्म्य अवश्य सुनावें। युधिष्ठिर ! इस प्रकार तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने सब दानोंमें श्रेष्ठ पृथ्वी-दानका महत्त्व सुनाया है।



अन्न, सुवर्ण और जल आदि दान करनेका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! जिस राजाको दान करनेकी इच्छा हो, वह इस लोकमें गुणवान् ब्राह्मणोंको किन-किन वस्तुओंका दान करे ? किस वस्तुको देनेसे ब्राह्मण तुरंत प्रसन्न हो जाते हैं ? कौन-सा दान इस लोक और परलोकमें भी फल देनेवाला होता है ? इस विषयका आप विस्तारसे वर्णन कीजिये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! पूर्वकालकी बात है, एक बार मैंने देवर्षि नारदजीसे इस विषयमें प्रश्न किया था, उन्होंने मेरे प्रश्नके उत्तरमें जो कुछ कहा, वही तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो।

नारदजीने कहा—देवता और ऋषि अन्नकी ही प्रशंसा करते हैं। अन्नसे ही लोकयात्राका निर्वाह होता है और उसीसे बुद्धिको स्फूर्ति प्राप्त होती है। अन्न ही सबका आधार है।

अन्नके समान न कोई दान था और न होगा; इसलिये मनुष्य अधिकतर अन्नका ही दान करना चाहते हैं। अन्न शरीरके बलको बढ़ानेवाला है, अन्नके ही आधारपर प्राण टिके हुए हैं और सम्पूर्ण जगत्‌को अन्नने ही धारण कर रखा है। संसारमें गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी भी अन्नसे ही जीते हैं। अन्नसे ही सबके प्राणोंकी रक्षा होती है, यह बात किसीसे छिपी नहीं है। अतः जो अपना कल्याण चाहता हो, वह अन्नके लिये दुःखी, बाल-बच्चोंवाले महात्मा ब्राह्मणको और संन्यासीको अन्नदान करे। जो याचना करनेवाले सुपात्र ब्राह्मणको अन्नदान देता है, वह परलोकमें अपने लिये एक अच्छा खजाना संग्रह करता है। रास्तेका थका-माँदा बूढ़ा राहगीर यदि घरपर आ जाय तो अपना कल्याण चाहनेवाले गृहस्थको उस आदरणीय अतिथिका सत्कार करना चाहिये। जो पुरुष मनमें उठे हुए क्रोधको दबाकर और डाह छोड़कर सद्‌वर्तावपूर्वक अन्नदान करता है, उसे इस लोक और परलोकमें भी सुख मिलता है। अपने घरपर नीच-से-नीच मनुष्य भी आ जाय तो उसका अपमान नहीं करना चाहिये। चाण्डाल और कुत्तेको दिया हुआ अन्न भी कभी व्यर्थ नहीं जाता। जो मनुष्य कष्टमें पड़े हुए अपरिचित राहीको प्रसन्नतापूर्वक अन्न देता है, उसे महान् धर्मकी प्राप्ति होती है। जो देवताओं, पितरों, ऋषियों, ब्राह्मणों और अतिथियोंको भी अन्न देकर संतुष्ट करता है, वह विशेष पुण्यफलका भागी होता है। जो महान् पातक करके भी याचक मनुष्यको और उसमें भी विशेषतः ब्राह्मणको अन्न देता है, वह अपने पापके कारण मोहमें नहीं पड़ता। अन्नका दान ब्राह्मणको और शूद्रको भी देनेसे महान् फल होता है। यदि ब्राह्मण अन्नकी याचना करे तो उससे गोत्र, शाखा, वेदाध्ययन और निवासस्थान आदिके विषयमें प्रश्न न करने लगे, तुरंत ही उसकी सेवामें अन्न उपस्थित करे। जैसे किसान अच्छी वृष्टि मनाया करते हैं, उसी प्रकार पितर भी यह सोचा करते हैं कि 'क्या कभी हमारा भी पुत्र या पौत्र अन्नदान करेगा ?' ब्राह्मण एक महान् प्राणी है, वह यदि स्वयं अन्नकी याचना करता है तो कोई सकाम मनुष्य हो या निष्काम, वह उसे दान करके अवश्य पुण्य प्राप्त करे। ब्राह्मण सब मनुष्योंका अतिथि और सबसे पहले भोजनका अधिकारी है। भिक्षुक ब्राह्मण जिस घरपर जाते हैं, वहाँसे यदि सत्कारपूर्वक भिक्षा पाकर लौटें तो उस घरकी सम्पत्ति बढ़ती है। जो मनुष्य इस लोकमें सदा अन्न, गृह और मिष्टान्नका दान करता है, वह देवताओंसे सम्मानित होकर स्वर्गलोकमें निवास करता है। अन्न ही मनुष्योंके प्राण हैं, अतः अन्नदान करनेवाला मनुष्य पशु, पुत्र, धन, भोग, बल और रूप भी प्राप्त करता है। जो पुरुष अन्नदान करता है, वह संसारमें प्राणदाता और सर्वस्व देनेवाला कहलाता है। अतिथि ब्राह्मणको विधिपूर्वक अन्नदान देकर मनुष्य परलोकमें सुख पाता है और देवता भी उसका आदर करते हैं।

युधिष्ठिर ! ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ प्राणी और उत्तम क्षेत्र है, वहाँ जो बीज बोया जाता है, वह महान् पुण्यफल देनेवाला होता है। अन्नका दान ही एक ऐसा दान है, जो दाता और भोक्ता दोनोंको प्रत्यक्षरूपसे संतोष देनेवाला होता है। इसके सिवा और जितने दान हैं, उनका फल तो परोक्ष है। अन्नसे ही संतानकी उत्पत्ति होती है, अन्नसे ही धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धि होती है और अन्न ही रोगोंके नाशका कारण है। पूर्वकालमें प्रजापतिने अन्नको अमृत बतलाया है। अन्नका आहार न मिलनेपर शरीरमें रहनेवाले पाँचों तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। यदि अन्न खानेको न मिले तो बड़े-बड़े बलवानोंका बल भी क्षीण हो जाता है। अन्नके बिना आमन्त्रण, विवाह और यज्ञ भी नहीं हो सकते। उसके बिना वेदका ज्ञान भी भूल जाता है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् अन्नके ही आधारपर टिका हुआ है। अतः विद्वानोंको चाहिये कि धर्मके लिये अन्नका दान अवश्य करें। अन्न देनेवाले मनुष्यके बल, ओज, यश और कीर्तिका तीनों लोकोंमें विस्तार होता है। जो घरपर आये हुए याचकको अन्न देता है, वह सब प्राणियोंको प्राण और तेजका दान करता है।

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! नारदजीने जब इस प्रकार मुझे अन्नदानका माहात्म्य बतलाया, तबसे मैं सदा अन्नदान किया करता था। तुम भी ईर्ष्या और जलन त्यागकर सदा अन्न देते रहना। ब्रह्माजीके पुत्र भगवान् अत्रिका वचन है कि 'जो सुवर्णका दान करते हैं, वे मानो याचककी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण कर देते हैं।' राजा हरिश्चन्द्रने कहा है कि 'सुवर्ण परम पवित्र, आयु बढ़ानेवाला और पितरोंको अक्षयगति प्रदान करनेवाला है।' मनुजी कहते हैं—'जलका दान सब दानोंसे बढ़कर है।' इसलिये कुआँ, बावड़ी और पोखरे खुदवाने चाहिये। जिसके खुदवाये हुए कुएँमें अच्छी तरह पानी निकलकर सदा लोगोंके काम आता है, उस मनुष्यका आधा पाप नष्ट हो जाता है। जिसके खुदवाये हुए जलाशयमें सदा गौ, ब्राह्मण और साधु पुरुष पानी पीते हैं, उसके समस्त कुलका उद्धार हो जाता है। जिसके बनवाये हुए तालाबमें गरमीके दिनोंमें भी पानी मौजूद रहता है, वह कभी भयंकर विपत्तिमें नहीं पड़ता। घी दान करनेसे भगवान् बृहस्पति, पूषा, भग, अश्विनीकुमार और अग्निदेव प्रसन्न होते हैं। घृत सबसे उत्तम औषध और यज्ञकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। वह रसोंमें उत्तम रस है और फलदायक वस्तुओंमें सर्वश्रेष्ठ फल

देनेवाला है। जिसे फल, यश और पुष्टि प्राप्त करनेकी इच्छा हो, वह पुरुष मनको वशमें करके पवित्र भावसे प्रतिदिन ब्राह्मणोंको घृत-दान करे। जो आश्विनके महीनेमें ब्राह्मणोंको घृत-दान करता है, उसे अश्विनीकुमार प्रसन्न होकर सुन्दर रूप देते हैं। जो घी मिलाया हुआ खीर ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसके घरपर कभी राक्षसोंका आक्रमण नहीं होता। जो पानीसे भरा हुआ कमण्डलु दान करता है, वह कभी प्याससे नहीं मरता। उसके पास सब प्रकारकी आवश्यक सामग्री मौजूद रहती है और वह संकटमें नहीं पड़ता। जो अत्यन्त श्रद्धासे युक्त होकर ब्राह्मणके समक्ष विनययुक्त व्यवहार करता है, वह दानके छठे अंशका पुण्य प्राप्त करता है। जो सदाचारसम्पन्न ब्राह्मणोंको भोजन बनाने और तापनेके लिये लकड़ियाँ देता है, उसकी सभी कामनाएँ और नाना प्रकारके कार्य सिद्ध होते हैं तथा वह शत्रुओंके ऊपर रहकर अपने तेजस्वी शरीरसे देदीप्यमान होता है। इतना ही नहीं, उसके ऊपर सदा अग्निदेव प्रसन्न रहते हैं, उसके पशुओंकी हानि नहीं होती और वह संग्राममें विजयी होता है। जो पुरुष छाता दान करता है, उसे पुत्र और लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। उसके नेत्रमें कोई रोग नहीं होता और उसे सदा यज्ञका भाग मिलता है। जो गरमी और बरसातके महीनोंमें छाता दान करता है, उसके मनमें कभी संताप नहीं होता। कठिन-से-कठिन संकटसे भी वह शीघ्र ही छुटकारा पा जाता है। शाण्डिल्य ऋषिका वचन है कि 'रथ या बैलगाड़ीका दान उपर्युक्त सब दानोंके बराबर है।'

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! गरमीके दिनोंमें जिसके पैर जल रहे हों ऐसे ब्राह्मणको जो जूता पहनाता है, उसको क्या फल मिलता है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जो एकाग्रचित्त होकर ब्राह्मणोंके लिये जूते दान करता है, वह अपने सब कण्टकों (शत्रुओं) को मसल डालता है और कठिन विपत्तिसे भी पार हो जाता है।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! तिल, भूमि, गौ और अन्नका दान करनेसे जो फल मिलता है, उसका फिरसे वर्णन कीजिये।

भीष्मजीने कहा—कुन्तीनन्दन ! तिल-दानका फल सुनो—ब्रह्माजीने जो तिल उत्पन्न किया है, वह पितरोंका सर्वश्रेष्ठ भोजन है; इसलिये तिल-दान करनेसे पितरोंको बड़ी प्रसन्नता होती है। जो माघ मासमें ब्राह्मणोंको तिल-दान करता है, उसे नरक नहीं देखना पड़ता। जो तिलसे पितरोंका पूजन करता है, वह मानो सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान कर लेता है। तिल पौष्टिक पदार्थ है, वह सुन्दर रूप देनेवाला और पापनाशक है; इसलिये तिलका दान सब दानोंसे बढ़कर है। बुद्धिमान् महर्षि आपस्तम्ब, शङ्ख, लिखित और गौतम—ये तिलोंका दान करके दिव्य लोकको प्राप्त हुए हैं। ये सभी ब्राह्मण स्त्री-समागमसे अलग रहकर तिलोंका हवन किया करते थे। सब दानोंमें तिलका दान अक्षय कहलाता है। पूर्वकालमें राजर्षि कुशिकने हविष्य समाप्त हो जानेपर तिलोंसे ही हवन करके तीनों अग्नियोंको तृप्त किया था, इससे उन्हें उत्तम गति प्राप्त हुई। जो लोग गौओंको शीत और वर्षासे बचानेके लिये घर बनवाते हैं, उनकी सात पीढ़ियोंका उद्धार हो जाता है। जो बोनेके लिये खेत दान करते हैं, उन्हें उत्तम लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। रत्नगर्भा पृथ्वीका दान करनेसे वंशकी वृद्धि होती है। जो भूमि ऊसर, जली हुई और श्मशानके निकट हो तथा जहाँ पापी पुरुष निवास करते हों, उसे ब्राह्मणको दान नहीं देना चाहिये। जो दूसरोंकी जमीनमें श्राद्ध करता है अथवा दूसरोंकी भूमि दानमें देता है, उसके श्राद्ध और दानका फल पितरोंके द्वारा नष्ट कर दिया जाता है; इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको अधिक नहीं तो थोड़ी-सी भूमि अवश्य खरीदकर दान करनी चाहिये। अपनी जमीनमें दिया हुआ पिण्ड अक्षय होता है। वन, पर्वत, नदी और तीर्थोंका कोई स्वामी नहीं होता, अतः वहाँ श्राद्ध करनेके लिये भूमि खरीदनेकी आवश्यकता नहीं है।

युधिष्ठिर ! इस प्रकार मैंने तुम्हें भूमिदानका फल बतलाया, इससे आगे गोदानका फल बतला रहा हूँ। गौएँ सम्पूर्ण तपस्वियोंसे बढ़कर हैं, इसलिये भगवान् शंकरने गौओंके साथ रहकर तप किया था। जिस ब्रह्मलोकमें सिद्ध ब्रह्मर्षि भी जानेकी इच्छा करते हैं, वहीं ये गौएँ चन्द्रमाके साथ निवास करती हैं। ये अपने दूध, दही, घी, गोबर, चमड़ा, हड्डी, सींग और बालोंसे भी जगत्‌का उपकार करती रहती हैं। इन्हें सर्दी-गर्मी और वर्षाका कष्ट विचलित नहीं करता। ये गौएँ सदा ही अपना काम किया करती हैं, इसलिये ये ब्राह्मणोंके साथ ब्रह्मलोकमें जाकर निवास करती हैं। इसीसे गौ और ब्राह्मणको विद्वान् पुरुष एक बताते हैं। जो मनुष्य उत्तम ब्राह्मणोंको गोदान करता है, वह संकटमें पड़ा हो तो भी उस कठिन विपत्तिसे मुक्त हो जाता है। देवराज इन्द्रका वचन है कि 'गौओंका दुग्ध अमृत है।' इसलिये जो दूध देनेवाली गाय दान करता है, वह मानो अमृतका ही दान करता है। वेदवेत्ता पुरुष कहते हैं कि गोदुग्धके हविष्यका यदि अग्निमें हवन किया जाय तो वह अविनाशी फल देनेवाला होता है; अतः जो धेनु दान करता है, वह हविष्यका ही दान करता है। बैल स्वर्गका

मूर्तिमान् स्वरूप है। जो गुणवान् ब्राह्मणको बैल दान करता है, उसका स्वर्गलोकमें सम्मान होता है। गौएँ प्राणियों (को दूध पिलाकर पालनेके कारण उन) के प्राण कहलाती हैं, इसलिये जो दूध देनेवाली गौ दान देता है, वह मानो प्राण-दान करता है। वेदके विद्वान् कहते हैं कि गौएँ समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाली हैं; इसलिये जो धेनु दान करता है, वह सबको शरण देनेवाला है। जो मनुष्य वध करनेके लिये गौ माँग रहा हो उसको और नास्तिक, कसाई तथा गौसे जीविका चलानेवालेको भी गौ नहीं देनी चाहिये। वैसे पापियोंको गौ देनेवाला पुरुष अक्षय नरकमें पड़ता है, ऐसा महर्षियोंका वचन है। जो दुबली हो, जिसका बछड़ा मर गया हो तथा जो ठाँठ, रोगिणी, किसी अङ्गसे हीन और बूढ़ी हो, ऐसी गौ ब्राह्मणको नहीं देनी चाहिये।

इस प्रकार यह गोदान, तिलदान और भूमिदानका महत्त्व बतलाया गया, अब पुनः अन्नदानकी महिमा सुनो। अन्न-दान सब दानोंमें प्रधान है। राजा रन्तिदेवने अन्नका दान करके ही स्वर्गलोक प्राप्त किया। जो राजा थके-माँदे, भूखे मनुष्यको अन्न-दान करता है, वह ब्रह्माजीके परमधामको प्राप्त होता है। अन्न-दान करनेवाले पुरुष जिस प्रकार कल्याणके भागी होते हैं, वैसा कल्याण सोना, वस्त्र या और किसी वस्तुका दान करनेसे नहीं प्राप्त होता। अन्न प्रथम द्रव्य है, वह उत्तम लक्ष्मीका स्वरूप माना गया है। अन्नसे ही प्राण, तेज, वीर्य और बलकी पुष्टि होती है। पराशर मुनिका वचन है कि 'जो मनुष्य सदा एकाग्रचित्त होकर अन्नका दान करता है, उसपर कभी दुःख नहीं पड़ता।' मनुष्यको प्रतिदिन शास्त्रोक्त विधिसे देवताओंकी पूजा करके उन्हें अन्न निवेदन करना चाहिये। जो पुरुष जिस अन्नका भोजन करता है, उसके देवता भी वही अन्न ग्रहण करते हैं, जो कार्तिकके शुक्लपक्षमें अन्नका दान करता है, वह सब प्रकारके संकटोंसे पार होकर मृत्युके पश्चात् अक्षय सुखका उपभोग करता है। जो पुरुष स्वयं भूखा रहकर एकाग्रचित्तसे अतिथिको अन्न-दान करता है, वह ब्रह्मवेत्ताओंके लोकमें जाता है। अन्नदाता मनुष्य कठिन-से-कठिन आपत्तिमें पड़नेपर भी उसके पार हो जाता है और पापोंसे मुक्त होकर सारी बुराइयोंको त्याग देता है। इस प्रकार मैंने अन्न, तिल, भूमि और गौओंके दानका माहात्म्य बतलाया।



नाना प्रकारके दानोंका वर्णन तथा ब्राह्मणका धन लेनेसे होनेवाले अनिष्टके सम्बन्धमें राजा नृगकी कथा

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! मैंने अन्नदानकी विशेष प्रशंसा सुनी; अब जलदान करनेसे कैसे-कैसे महान् फलकी प्राप्ति होती है, इस विषयको मैं विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ।

भीष्मजीने कहा—राजन्! मनुष्य अन्नदान और जलदान करके जिस महान् फलको पाता है, उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। कोई भी दान अन्नदानसे बढ़कर नहीं है। समस्त प्राणी अन्नसे ही जीवन धारण करते हैं, इसलिये संसारमें अन्नको ही सर्वोत्तम बतलाया गया है। अन्नसे ही प्राणियोंके तेज और बलकी वृद्धि होती है, अतः प्रजापतिने अन्नके दानको ही सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। पूर्वकालमें महाराज शिबिने कबूतरकी रक्षाके लिये अपने प्राण देकर जिस गतिको प्राप्त किया था, ब्राह्मणको अन्नदान करनेसे भी वही गति मिलती है। किंतु अन्नकी उत्पत्ति जलसे ही होती है। पानीके बिना कुछ भी नहीं हो सकता। ग्रहोंके स्वामी भगवान् सोम भी जलसे ही प्रकट हुए हैं; अमृत, सुधा, स्वधा, अन्न, ओषधि, तृण और लताएँ भी जलसे ही उत्पन्न होती हैं, जिनसे देहधारियोंके प्राणोंकी पुष्टि होती है। देवताओंका अन्न अमृत, नागोंका अन्न सुधा, पितरोंका अन्न स्वधा और पशुओंका अन्न तृण-लता आदि हैं। मनीषी पुरुषोंने अन्नको ही मनुष्योंका प्राण बतलाया है; किंतु सब प्रकारका अन्न जलसे ही उत्पन्न होता है, अतः जलदानसे बढ़कर कुछ भी नहीं है। जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता हो, उसे प्रतिदिन जलका दान करना चाहिये। यह धन, यश और आयुको बढ़ानेवाला है। जलदाता पुरुषकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं और जगत्में उसकी सनातन कीर्तिका विस्तार होता है। वह पापोंसे मुक्त होकर मरनेके पश्चात् अक्षय आनन्दका अनुभव करता है।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! तिलदान, दीपदान और वस्त्रदानका माहात्म्य मुझे फिरसे बतलाइये।

भीष्मजीने कहा—राजन्! दीपदान करनेवाला मनुष्य अपने पितरोंका उद्धार कर देता है, इसलिये देवता और पितरोंके उद्देश्यसे सदा दीपदान करते रहना चाहिये; इससे अपने नेत्रोंका तेज बढ़ता है। रत्नदानका भी बहुत बड़ा पुण्य

बतलाया गया है। जो ब्राह्मण दानमें रत्न लेकर उसे बेचकर यज्ञ करता है, उसके लिये वह प्रतिग्रह भयदायक नहीं होता। यदि ब्राह्मण किसी दातासे रत्न दानमें लेकर उसे ब्राह्मणोंको बाँट देता है तो उस दानके देने और लेनेवाले दोनोंको ही अक्षय पुण्य होता है। जो पुरुष स्वयं धर्ममर्यादामें स्थित होकर अपने ही समान स्थितिवाले ब्राह्मणको दानमें मिली हुई वस्तु दान करता है, उन दोनोंको अक्षय धर्मकी प्राप्ति होती है—यह धर्मज्ञ मनुका वचन है। जो मनुष्य वस्त्रदान करता है, वह सुन्दर वस्त्र और सुन्दर वेष धारण करनेवाला होता है। युधिष्ठिर! गौ, सुवर्ण और तिलके दानका माहात्म्यका तो मैंने अनेकों बार शास्त्रीय प्रमाण देकर वर्णन किया है।

युधिष्ठिरने कहा—दादाजी! आप दानकी उत्तम विधिका फिरसे वर्णन कीजिये। जिस दानको सभी लोग कर सकते हों तथा वेदोंमें जिसका वर्णन किया गया हो, उसकी व्याख्या कीजिये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! गाय, भूमि और सरस्वती—इन तीनोंका एक ही नाम है गौ। एक नामवाली इन तीनों वस्तुओंका दान करना चाहिये। इन तीनोंके दानका समान ही फल है। ये तीनों ही मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करनेवाली हैं। जो ब्राह्मण अपने शिष्यको वेद-वाणी (सरस्वती) का उपदेश करता है, वह भूमिदान और गोदानके समान फलका भागी होता है। इसी प्रकार गोदानकी भी प्रशंसा की गयी है। गोदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है, उसका फल बहुत शीघ्र मिलता है। गौएँ सम्पूर्ण प्राणियोंकी माता कहलाती हैं, वे सबको सुख देनेवाली हैं। अपना अभ्युदय चाहनेवाले मनुष्यको सदा गौओंकी प्रदक्षिणा करके चलना चाहिये। गौओंको लात न मारे, गौओंके बीचसे होकर न निकले। वे मङ्गलकी आधारभूत देवियाँ हैं, उनकी सदा ही पूजा करनी चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि जब गौएँ स्वच्छन्दतापूर्वक चल रही हों, अथवा किसी सूने स्थानमें बैठी हों तो उन्हें तंग न करे। गौएँ प्याससे पीड़ित होकर जब अपने स्वामीकी ओर देखती हैं (और वह उन्हें पानी नहीं पिलाता) तो उसका बन्धु-बान्धवोंसहित नाश हो जाता है। जिनके गोबरसे लीपनेपर देवताओंके मन्दिर और पितरोंके श्राद्धके स्थान पवित्र होते हैं, उनसे बढ़कर पावन और क्या हो सकता है? जो एक वर्षतक प्रतिदिन भोजनके पहले दूसरेकी गायको एक मुट्ठी घास खिलाता है, उसका वह व्रत समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होता है। उसे पुत्र, यश, धन और सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है तथा उसके सम्पूर्ण अशुभ और दुःस्वप्न नष्ट हो जाते हैं।

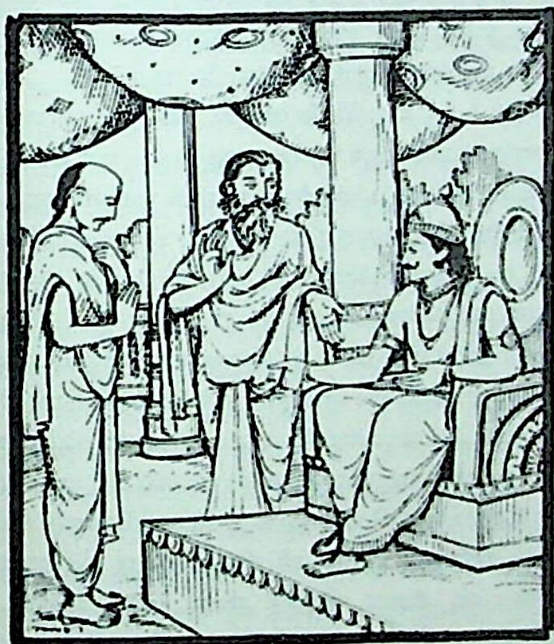
दुराचारी, पापी, लोभी, असत्यवादी तथा देवयज्ञ और श्राद्धकर्म न करनेवाले ब्राह्मणको किसी तरह गौ नहीं देनी चाहिये। जिसके बहुत-सी संतानें हों ऐसे याचक, श्रोत्रिय तथा अग्निहोत्री ब्राह्मणको दस गौ दान करनेसे दाताको अत्यन्त उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है। जो जन्म देता है, जो भयसे बचाता है तथा जो जीविका देता है—वे तीनों ही पिताके तुल्य हैं। इसलिये वेदान्तनिष्ठ, बहुज्ञ, ज्ञानी, जितेन्द्रिय, शिष्ट, यत्नशील, प्रियवादी, भूखसे पीड़ित होनेपर अनुचित कर्म न करनेवाले, मृदुल, शान्त, अतिथि-प्रेमी, सबपर समानभाव रखनेवाले और स्त्री-पुत्र आदि कुटुम्बसे युक्त ब्राह्मणकी जीविकाका अवश्य प्रबन्ध करना चाहिये। सुपात्र ब्राह्मणको गोदान करनेसे जितना पुण्य होता है, उसका धन ले लेनेपर उतना ही पाप लगता है। अतः किसी भी अवस्थामें ब्राह्मणके धनका अपहरण न करे तथा उनकी स्त्रियोंपर तो दूरसे भी दृष्टि न डाले।

कुन्तीनन्दन! इस विषयमें साधु पुरुष राजा नृगका उपाख्यान सुनाया करते हैं। किसी समय ब्राह्मणका धन ले लेनेके कारण राजा नृगको महान् कष्ट उठाना पड़ा था। पहलेकी बात है, द्वारकापुरीमें रहनेवाले यदुवंशी बालक पानीकी इच्छासे इधर-उधर घूम रहे थे। इतनेहीमें उन्हें एक महान् कूप दिखायी पड़ा, जिसका ऊपरी भाग घास और लताओंसे ढका हुआ था। उन बालकोंने बहुत परिश्रम करके जब कुएँके ऊपरका घास-फूस हटाया तो उन्हें उसके भीतर बैठा हुआ एक बहुत बड़ा गिरगिट दिखायी दिया। बालक हजारोंकी संख्यामें थे, सब मिलकर उस गिरगिटको वहाँसे निकालनेके यत्नमें लग गये। किंतु गिरगिटका शरीर चट्टानके समान था, लड़कोंने उसे रस्सियों और चमड़ेकी पट्टियोंसे बाँधकर खींचनेके लिये बहुत जोर लगाया, पर वह टस-से-मस न हुआ। जब बालक उसे निकालनेमें सफल न हो सके तो भगवान् श्रीकृष्णके पास जाकर बोले—'हमलोगोंने एक बहुत बड़ा गिरगिट देखा है, जो कुएँका सारा आकाश घेरकर बैठा है; उसे कोई निकालनेवाला नहीं है।'

यह सुनकर श्रीकृष्ण उस कुएँके पास गये और उन्होंने उसे बाहर निकालकर उसके पूर्वजन्मका वृत्तान्त पूछा। तब उसने कहा 'भगवन्! पूर्वजन्ममें मैं राजा नृग था, जिसने हजारों यज्ञोंका अनुष्ठान किया है।' उसकी बात सुनकर श्रीकृष्ण बोले—'राजन्! आपने तो सदा पुण्यके ही काम किये हैं, आपके द्वारा कभी भी पाप नहीं हुआ; फिर आपकी ऐसी दुर्गति क्यों मिली? हमने सुना है कि आपने पहले कई

बार मिलाकर इक्यासी लाख दो सौ गौएँ ब्राह्मणोंको दान की हैं; उस गोदानका फल कहाँ गया ?'

तब राजा नृगने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—''प्रभो ! एक अग्निहोत्री ब्राह्मण परदेश चला गया था। उसके पास एक गाय थी, जो एक दिन अपने स्थानसे भागकर मेरी गौओंके झुंडमें आ मिली। मेरे ग्वालोंने दानके लिये मँगायी हुई एक हजार गौओंमें उसकी भी गिनती करा दी और मैंने उसे एक ब्राह्मणको दान कर दिया। कुछ दिनों बाद जब वह ब्राह्मण परदेशसे लौटा तो अपनी गाय ढूँढ़ने लगा। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह गाय जब उसे दूसरेके घर मिली तो उसने उस ब्राह्मणसे कहा—'यह मेरी गौ है (अतः मैं इसे ले जाता हूँ)।' इसपर दोनोंमें झगड़ा होने लगा और दोनों ही क्रोधमें भरकर मेरे पास आये। एकने कहा—'महाराज ! यह गौ



आपने मुझे दानमें दी है (और यह ब्राह्मण इसे अपनी बता रहा है)।' दूसरेने कहा—'महाराज ! वास्तवमें यह मेरी गाय है, तुमने इसे चुरा लिया है।' तब मैंने दान लेनेवाले ब्राह्मणसे कहा—'भगवन् ! मैं इस गायके बदले आपको दस हजार गौएँ देता हूँ (आप इन्हें इनकी गाय वापस दे दीजिये)।' उसने जवाब दिया—'महाराज ! यह गौ देश, कालके अनुरूप, पूरा दूध देनेवाली, सीधी-सादी और अत्यन्त दयालु स्वभावकी है। इसका दूध बहुत मीठा होता है। धन्य भाग, जो यह मेरे घर आयी ! यह अपने दूधसे प्रतिदिन मेरे मातृहीन दुर्बल बच्चेका पालन करती है; मैं इसे कदापि नहीं दे सकता।' यह कहकर वह वहाँसे चल दिया। तब मैंने दूसरे ब्राह्मणसे प्रार्थना की 'भगवन् ! आप उसके बदलेमें एक लाख गौ ले लीजिये।' वह बोला—'महाराज ! मैं राजाओंका दान नहीं लेता, मुझे तो मेरी वही गौ शीघ्र ला दीजिये।' मैंने उसे सोना, चाँदी, रथ और घोड़े सब कुछ देना चाहा, पर वह कुछ न लेकर चुपचाप चला गया। इसी बीचमें कालकी प्रेरणासे मुझे शरीर त्यागना पड़ा और पितृलोकमें पहुँचकर मैं यमराजसे मिला। उन्होंने मेरा बहुत आदर-सत्कार किया और कहा—'राजन् ! तुम्हारे पुण्यकर्मोंकी तो गिनती ही नहीं है; किंतु अनजानमें तुमसे एक पाप भी हो गया है। उस पापको पहले भोग लो या पीछे, जैसी तुम्हारी इच्छा हो करो।' तब मैंने धर्मराजसे कहा—'प्रभो ! पहले मैं पाप ही भोग लूँगा, उसके बाद पुण्यका उपभोग करूँगा।' इतना कहना था कि मैं पृथ्वीपर गिरा। उस समय ऊँचे स्वरसे बोलते हुए धर्मराजकी यह बात कानोंमें पड़ी 'राजन् ! एक हजार वर्ष पूर्ण होनेपर तुम्हारे पापकर्मका भोग समाप्त होगा, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण आकर तुम्हारा उद्धार करेंगे और तुम अपने पुण्य कर्मोंके प्रभावसे प्राप्त हुए अक्षय लोकोंमें जाओगे।' कुएँमें गिरनेपर मैंने देखा 'मुझे तिर्यग्योनि मिली है और मेरा सिर नीचेकी ओर है।' इस योनिमें भी मेरी स्मरणशक्तिने मेरा साथ नहीं छोड़ा था। श्रीकृष्ण ! आज आपने मेरा उद्धार कर दिया। अब मुझे आज्ञा दीजिये, मैं स्वर्गको जाऊँगा।'

भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें आज्ञा दे दी और वे उनको प्रणाम करके दिव्य मार्गसे स्वर्गलोकको चले गये। उनके चले जानेपर श्रीकृष्णने इस श्लोकका गायन किया—'समझदार मनुष्यको ब्राह्मणके धनका अपहरण नहीं करना चाहिये। चुराया हुआ ब्राह्मणका धन चोरका उसी भाँति नाश कर देता है, जैसे ब्राह्मणकी गौने राजा नृगका सर्वनाश किया था।' कुन्तीनन्दन ! यदि सज्जन पुरुष साधु-महात्माओंका सङ्ग करें तो उनका वह सङ्ग व्यर्थ नहीं जाता। देखो, साधुसमागमके कारण राजा नृगका नरकसे उद्धार हो गया। गौओंका दान करनेसे जैसे उत्तम फल मिलता है, वैसे ही गौओंसे द्रोह करने या उन्हें सतानेपर बहुत बड़ा कुफल भोगना पड़ता है; इसलिये गौओंको कभी कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये।'



ब्रह्माजीका इन्द्रसे गोलोक, गोदान और स्वर्ण दक्षिणाकी महिमाका तथा गो-चोरीके पापका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! मुझे गोलोकके विषयमें कुछ संदेह है। गोदान करनेवाले मनुष्य जिस लोकमें निवास करते हैं, उसका मैं यथार्थ वर्णन सुनना चाहता हूँ।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इस विषयमें जानकार लोग एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं—एक बार इन्द्रने ब्रह्माजीसे इस प्रकार प्रश्न किया—'भगवन् ! मैं देखता हूँ, गोलोकनिवासी पुरुष अपने तेजसे स्वर्गवासियोंकी कान्ति फीकी करते हुए उन्हें लाँघकर आगे चले जाते हैं, इसलिये मेरे मनमें यह संदेह होता है कि गोलोक कैसा है ? वहाँ क्या फल मिलता है ? वहाँका विशेष गुण क्या है ? गोदान करनेवाले पुरुष सब चिन्ताओंसे मुक्त होकर वहाँ किस प्रकार पहुँचते हैं ? गोदान न करनेपर भी उसका फल कैसे मिलता है ? बहुत दान करनेवाला मनुष्य थोड़ा दान करनेवालेके समान तथा थोड़ा दान करनेवाला पुरुष अधिक दान करनेवालेके तुल्य किस प्रकार हो जाता है ? ये सब बातें मुझे यथार्थरूपसे बतलाइये।

ब्रह्माजीने कहा—इन्द्र ! गौओंके लोक अनेक प्रकारके हैं। मैं उन सबको देखता हूँ और पतिव्रता स्त्रियाँ भी उन सब लोकोंको देख सकती हैं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले शुद्धचेता ब्रह्मर्षि तो अपने शुभ कर्मोंके प्रभावसे उन लोकोंमें सशरीर पहुँच जाते हैं। श्रेष्ठ व्रतके आचरणमें लगे हुए योगी पुरुष समाधि-अवस्थामें अथवा मृत्युके समय जब शरीरसे सम्बन्ध त्याग देते हैं तो अपने शुद्धचित्तके द्वारा स्वप्नकी भाँति दीखनेवाले उन लोकोंका यहाँसे भी दर्शन करते हैं। अब तुम उन लोकोंके गुणोंका वर्णन सुनो—वहाँ काल, बुढ़ापा अथवा अग्निका जोर नहीं चलता। किसीका किंचित् भी अमङ्गल नहीं होता। वहाँपर न रोग है, न शोक। इन्द्र ! वहाँकी गौएँ अपने मनमें जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करती हैं, वह सब उन्हें प्राप्त हो जाता है—यह मेरी प्रत्यक्ष देखी हुई बात है। वे जहाँ जाना चाहती हैं, जाती हैं, जैसे चलना चाहती हैं, चलती हैं और संकल्पमात्रसे ही सम्पूर्ण कामनाओंका उपभोग करती हैं। बावड़ी, तालाब, नदियाँ, तरह-तरहके वन, गृह, पर्वत आदि सभी वस्तुएँ वहाँ उपलब्ध हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियोंको मनोरम जान पड़ती हैं। वहाँकी वस्तुओंपर सबका समान अधिकार देखा जाता है। इतना विशाल दूसरा कोई लोक नहीं है। जो पुरुष सब कुछ सहनेवाले, क्षमाशील, दयालु, गुरुजनोंकी आज्ञामें रहनेवाले और अहंकाररहित हैं, उन्हींका गोलोकमें प्रवेश होता है। जो किसीका मांस नहीं खाता, जिसका हृदय पवित्र भावोंसे भरा हुआ है, जो धर्मात्मा, माता-पिताका भक्त, सत्यवादी, ब्राह्मणोंकी सेवामें संलग्न, निन्दासे रहित, गौ और ब्राह्मणोंपर क्रोध न करनेवाला, धर्मपरायण, गुरुसेवक, जीवनभर सत्यका व्रत लेनेवाला, दानी, अपराधीको भी क्षमा देनेवाला, मृदुल, जितेन्द्रिय, देवपूजक, सबका आतिथ्य-सत्कार करनेवाला तथा दयावान् है—ऐसे ही गुणोंवाला मनुष्य उस सनातन एवं अविनाशी गोलोकमें जाता है। परस्त्रीगामी, गुरुहत्यारा, असत्यवादी, बकवादी, ब्राह्मणोंसे वैर रखनेवाला, मित्रद्रोही, ठग, कृतघ्न, शठ, कुटिल, धर्मद्वेषी और ब्रह्महत्यारा—इन सब दोषोंसे युक्त दुरात्मा मनुष्य मनसे भी कभी गोलोकका दर्शन नहीं पा सकता; क्योंकि वहाँ पुण्यात्माओंका निवास है।

इन्द्र ! यह सब मैंने विशेषरूपसे गोलोकका माहात्म्य बतलाया है, अब गोदान करनेवालोंको जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो। जो पुरुष अपनी पैतृक सम्पत्तिसे प्राप्त हुए धनद्वारा गौएँ खरीदकर दान करता है, वह उस धनसे धर्मपूर्वक उपार्जित किये हुए अक्षय लोकोंको प्राप्त होता है। पिताके हिस्सेसे जो-जो गौएँ न्यायपूर्वक प्राप्त हुई हों, उनका दान करनेसे दाताको अक्षय लोक मिलते हैं। जो पुरुष दानमें गौ लेकर फिर उसका शुद्ध हृदयसे दान कर देता है, उसे भी अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होती है। जो जन्मसे ही सदा सत्य बोलता, जितेन्द्रिय रहता, गुरु तथा ब्राह्मणके अपराधको सह लेता और क्षमावान् होता है, वह गोलोकमें जाता है। ब्राह्मणको कभी कुवाच्य नहीं बोलना चाहिये और मनसे भी गौओंकी बुराई नहीं करनी चाहिये। जो ब्राह्मण गौओंके समान वृत्तिसे रहता है, गौओंको घास आदि खिलाता है और सत्य एवं धर्ममें परायण रहता है, वह यदि एक गौ भी दान करे तो उसे एक हजार गोदानके समान फल मिलता है। जो पुरुष सदा उद्यत रहकर उपर्युक्त विधिसे बर्ताव करता है तथा जो सत्यवादी, गुरुसेवक, दक्ष, क्षमाशील, देवभक्त, शान्तचित्त, पवित्र, ज्ञानवान्, धर्मात्मा और अहंकारशून्य होता है, वह यदि पूर्वोक्त विधिसे ब्राह्मणको दूध देनेवाली गाय दान करे तो उसे महान् फलकी प्राप्ति होती है। जो सदा एक वक्त भोजन करके नित्य गोदान करता है, सत्यमें स्थित होता है, गुरुकी सेवा और वेदोंका स्वाध्याय करता है, जिसके मनमें गौओंके प्रति भक्ति है, जो गौओंका दान देकर प्रसन्न होता है तथा जन्मसे ही

गौओंको प्रणाम करता है, उसको मिलनेवाले फलका वर्णन सुनो। राजसूय यज्ञका अनुष्ठान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है तथा बहुत-से सुवर्णकी दक्षिणा देकर यज्ञ करनेसे जो फल मिलता है, उपर्युक्त मनुष्य भी उसके समान ही फलका भागी होता है—यह सिद्ध संत-महात्मा एवं ऋषियोंका वचन है। जो गो-सेवाका व्रत लेकर प्रतिदिन भोजनसे पहले गौओंको 'गो-ग्रास' अर्पण करता है तथा शान्त एवं निर्लोभ होकर सदा सत्यका पालन करता रहता है, वह प्रतिवर्ष एक हजार गोदान करनेके पुण्यका भागी होता है। जो एक वक्त भोजन करके दूसरे वक्तके बचाये हुए भोजनसे गाय खरीदकर दान करता है, वह उस गौके जितने रोएँ होते हैं उतने गौओंके दानका अक्षय फल प्राप्त करता है। गौओंके रोम-रोममें अक्षयलोकोंका निवास माना गया है। जो संग्राममें गौओंको जीतकर उन्हें दान दे देता है, उस पुरुषका वह दान अपनेको बेचकर दान करनेके समान माना जाता है। जो व्रतपरायण पुरुष गौओंके अभावमें तिलकी गौ बनाकर दान देता है, उसको वह गौ बड़े भारी संकटसे पार कर देती है तथा वह दूधकी नदीमें नहाकर प्रसन्न होता है। केवल गौओंका दान कर देना ही प्रशंसाकी बात नहीं है, दान करते समय पात्र, काल, गोविशेष, गोदानकी विधि, समय-ज्ञान, ब्राह्मण और गायके अन्तरपर भी विचार कर लेना चाहिये तथा यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यह गौ जहाँ जा रही है वहाँ इसे धूप और आगसे कष्ट तो नहीं पहुँचेगा ?

जो स्वाध्यायसम्पन्न, शुद्धयोनि (कुलीन), शान्तचित्त, यज्ञपरायण, पापसे डरनेवाला, बहुज्ञ, गौओंपर क्षमाका भाव रखनेवाला, मृदुलस्वभाव, शरणागतवत्सल और जीविकाहीन हो, वही ब्राह्मण गोदानका उत्तम पात्र है। जो जीविकाके बिना बहुत कष्ट पा रहा हो तथा जिसको खेती या यज्ञ-होम करने, प्रसूता स्त्रीको दूध पिलाने तथा गुरु-सेवा अथवा बालकका लालन-पालन करनेके लिये गौकी आवश्यकता हो, उसको साधारण देश-कालमें भी दूध देनेवाली गौका दान करना चाहिये। दूध देनेवाली, खरीदने अथवा विद्यासे प्राप्त हुई, युद्धमें प्राणोंको संकटमें डालकर पराक्रमसे प्राप्त की हुई, दहेजमें मिली हुई, संकटसे छुड़ाकर लायी हुई या पालन-पोषणके लिये अपने पास आयी हुई गौ श्रेष्ठ मानी जाती है। हृष्ट-पुष्ट, सीधी-सादी, जवान और उत्तम गन्धवाली गाय प्रशंसनीय मानी गयी है। जैसे गङ्गा सब नदियोंमें श्रेष्ठ है उसी प्रकार कपिला गौ सब गौओंमें उत्तम है। (गोदानकी विधि इस प्रकार है—) दाता तीन राततक उपवास करके केवल पानीके आधारपर रहे, पृथ्वीपर शयन करे और गौओंको घास-भूसा खिलाकर पूर्ण तृप्त करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन आदिसे संतुष्ट करके उन्हें वे गौएँ दान करे, उन गौओंके साथ दूध पीनेवाले हृष्ट-पुष्ट बछड़े भी होने चाहिये तथा गौएँ भी ऐसी हों जो अच्छी तरह चल-फिर सकें। गोदानके पश्चात् तीन दिनतक केवल गोरस पीकर रहना चाहिये। जो गौ सीधी-सूधी हो, दुहते समय तंग न करती हो, जिसका बछड़ा सुन्दर हो, जो बन्धन तोड़कर भागती न हो—ऐसी गौ दान करनेसे उसके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक दाता परलोकमें सुख भोगता है। जो मनुष्य ब्राह्मणको बोझ उठानेमें समर्थ जवान, बलिष्ठ, सीधा-सादा, हल खींचनेवाला और शक्तिशाली बैल दान करता है, वह दस गौ देनेवालेके लोकोंको प्राप्त होता है। जो दुर्गम वनमें फँसे हुए ब्राह्मणों और गौओंका उद्धार करता है, वह एक ही क्षणमें समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा उसे नाना प्रकारके दिव्यलोकोंकी प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं, वह गौओंसे अनुगृहीत होकर सर्वत्र पूजित होता है। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे वनमें रहकर गौओंका अनुसरण (सेवन) करता है तथा निःस्पृह, संयमी और पवित्र होकर घास, पत्ते और गोबर खाता हुआ जीवन व्यतीत करता है, वह मेरे लोकमें देवताओंके साथ आनन्दपूर्वक निवास करता है अथवा जहाँ रहनेकी उसकी इच्छा होती है, उन्हीं लोकोंमें गमन करता है।

इन्द्रने पूछा—भगवन्! यदि कोई जान-बूझकर दूसरेकी गौका अपहरण करे अथवा धनके लोभसे उसे बेच डाले तो उसकी क्या गति होती है ?

ब्रह्माजीने कहा—जो उच्छृङ्खलतावश मांस बेचनेके लिये गौकी हिंसा करते या गोमांस खाते हैं तथा जो स्वार्थवश कसाईको गाय मारनेकी सलाह देते हैं, वे सब महान् पापके भागी होते हैं। गौको मारनेवाले, उसका मांस खानेवाले तथा उसकी हत्याका अनुमोदन करनेवाले पुरुष गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक नरकमें पड़े रहते हैं। ब्राह्मणका यज्ञ नष्ट करनेवाले पुरुषको जैसे तथा जितने पाप लगते हैं, दूसरोंकी गौ चुराने और बेचनेमें भी वे ही दोष बताये गये हैं। जो दूसरेकी गाय चुराकर ब्राह्मणोंको दान करता है, वह गौके दानका पुण्य भोगनेके लिये जितना समय शास्त्रोंमें बताया गया है उतने ही समयतक नरक भोगता है।

गोदान करनेसे मनुष्य अपनी सात पीढ़ी पहलेके पितरोंका और सात पीढ़ी आनेवाली संतानोंका उद्धार करता है; किंतु यदि उसके साथ सोनेकी दक्षिणा भी दी जाय तो उस दानका दूना फल मिलता है। सुवर्णका दान सबसे उत्तम दान है, सुवर्णकी दक्षिणा सबसे श्रेष्ठ है तथा पवित्र करनेवाली

वस्तुओंमें सुवर्ण ही सबसे अधिक पावन है। सुवर्ण सम्पूर्ण कुलको पवित्र करनेवाला बताया गया है। इस प्रकार मैंने तुमसे संक्षेपमें दक्षिणाकी बात बतायी है।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! उपर्युक्त उपदेश ब्रह्माजीने इन्द्रको दिया, इन्द्रने राजा दशरथको, राजा दशरथने अपने पुत्र श्रीरामचन्द्रजीको, श्रीरामचन्द्रजीने प्रिय भ्राता लक्ष्मणको और लक्ष्मणने वनवासके समय ऋषियोंको दिया था। इस प्रकार परम्परासे प्राप्त हुए इस उपदेशको उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ऋषि और धार्मिक राजालोग धारण करते आ रहे हैं। मुझसे मेरे उपाध्याय (परशुरामजी) ने इस विषयका वर्णन किया था। जो ब्राह्मण अपनी मण्डलीमें बैठकर प्रतिदिन इस उपदेशको दुहराता है और यज्ञ तथा गोदानके समय भी इसकी चर्चा करता है, उसको सदा अक्षयलोक प्राप्त होते हैं।



व्रत, नियम और दम आदिकी प्रशंसा तथा गोदानकी विधि

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! व्रतों और नियमोंका क्या और कैसा फल बताया गया है ? स्वाध्याय करने, दान देने, वेदोंका स्मरण रखने और वेद पढ़ानेका क्या फल होता है ? जो स्वयं पढ़कर दूसरोंको पढ़ाता है, उसे किस फलकी प्राप्ति होती है ? अपने कर्तव्यका पालन करनेवाले शूरवीरोंको क्या फल मिलता है ? शौच, ब्रह्मचर्यका पालन तथा माता-पिता और आचार्यकी सेवा करनेसे कैसे फलकी प्राप्ति होती है ? इन सब बातोंको मैं यथार्थरूपसे जानना चाहता हूँ।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जो पुरुष शास्त्रोक्त विधिसे किसी व्रतको आरम्भ करके उसको अखण्डरूपसे निभा देते हैं, उन्हें सनातन लोकोंकी प्राप्ति होती है। संसारमें नियमोंके पालनका फल प्रत्यक्ष देखा जाता है, तुमने भी यह यज्ञ और नियमोंका ही फल प्राप्त किया है। वेदोंके सम्यक् स्वाध्यायका फल भी इस लोक और परलोकमें दृष्टिगोचर होता है। वेदाध्ययन करनेवाला पुरुष इहलोकमें भी सुखी होता है और परलोकमें भी आनन्दका अनुभव करता है। राजन् ! अब तुम विस्तारके साथ दम (इन्द्रियसंयम) के फलका वर्णन सुनो। जितेन्द्रिय पुरुष सर्वत्र सुखी और सर्वत्र संतुष्ट रहते हैं। वे जहाँ चाहते हैं चले जाते हैं और जिस वस्तुकी इच्छा करते हैं, वही उन्हें प्राप्त हो जाती है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। इन्द्रियनिग्रह करनेवाले पुरुषोंकी समस्त कामनाएँ सर्वत्र पूर्ण होती हैं। वे अपनी तपस्या, पराक्रम, दान तथा नाना प्रकारके यज्ञोंसे स्वर्गलोकमें आनन्द भोगते हैं। दमनशील पुरुष क्षमावान् होते हैं। दानसे दमका ऊँचा दर्जा है। दानी पुरुष ब्राह्मणको कुछ दान करते समय कभी क्रोध भी कर सकता है, किंतु दमका पालन करनेवाला मनुष्य कभी क्रोध नहीं करता; इसलिये दम दानसे श्रेष्ठ है। दान करते समय क्रोध आ जाय तो वह दानके फलको नष्ट कर देता है; किंतु जो क्रोधरहित होकर दान करता है, उसे सनातन लोकोंकी प्राप्ति होती है, इससे भी दमकी श्रेष्ठता सिद्ध है।

शिष्योंको वेद पढ़ानेवाला अध्यापक अक्षय फल प्राप्त करता है। अग्निमें विधिवत् हवन करनेवाला पुरुष ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है तथा जो आचार्यसे स्वयं वेद पढ़कर नीतिमान् शिष्योंको पढ़ाता है, उसको भी उपर्युक्त फलकी ही प्राप्ति होती है। गुरुके कर्मोंकी प्रशंसा करनेवाला छात्र स्वर्गमें सत्कार पाता है। वेदाध्ययन, यज्ञ और दान-कर्ममें तत्पर रहनेवाला तथा युद्ध करके दूसरोंकी रक्षा करनेवाला क्षत्रिय भी स्वर्गमें पूजा जाता है। अपने कर्ममें लगा हुआ वैश्य दान देनेसे महत्-पदको प्राप्त होता है तथा स्वकर्मानुष्ठानमें लगा हुआ शूद्र उच्च वर्णोंकी सेवासे स्वर्गमें जाता है। शूरवीरोंके अनेकों भेद बतलाये गये हैं, उनके स्वरूपका तथा शूर और शूरवंशियोंको मिलनेवाले फलोंका वर्णन सुनो। जो यज्ञ करनेमें उत्साहके साथ लगे रहते हैं, वे यज्ञशूर कहलाते हैं और दृढ़तापूर्वक इन्द्रियोंका दमन करनेवालोंको दमशूर कहते हैं। इसी प्रकार कितने ही सत्यशूर, युद्धशूर, दानशूर, सांख्यशूर, योगशूर, वनवासशूर, गृहवासशूर, त्यागशूर, आर्जवशूर, मनोनिग्रहशूर, नियमशूर, वेदाध्ययनशूर, अध्यापनशूर, गुरुशुश्रूषाशूर, पितृसेवाशूर, मातृसेवाशूर, भिक्षाशूर और अतिथिपूजनशूर होते हैं—ये सभी अपने-अपने कर्मोंसे प्राप्त हुए उत्तम लोकोंमें जाते हैं।

सम्पूर्ण वेदोंको धारण करने और समस्त तीर्थोंमें डुबकी लगानेका पुण्य भी सदा सत्य बोलनेवाले पुरुषके पुण्यके बराबर शायद ही हो सकता है। यदि तराजूके एक पलड़ेपर एक हजार अश्वमेध यज्ञोंका फल और दूसरे पलड़ेपर केवल सत्य रखा जाय तो हजार अश्वमेध यज्ञकी अपेक्षा सत्यका ही पलड़ा भारी होता है। सत्यके प्रभावसे सूर्य तपते हैं, सत्यसे अग्नि प्रज्वलित होती है और सत्यसे ही वायुका सर्वत्र संचार होता है। सब कुछ सत्यपर ही टिका हुआ है। देवता, पितर

और ब्राह्मण सत्यसे ही प्रसन्न होते हैं। सत्य सबसे बड़ा धर्म बताया गया है; अतः सत्यका कभी उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। ऋषि-मुनि सत्यपरायण, सत्यपराक्रमी और सत्यप्रतिज्ञ होते हैं, इसलिये सत्य सबसे श्रेष्ठ है। सत्य बोलनेवाले मनुष्य स्वर्गलोकमें आनन्द भोगते हैं। इस प्रकार मैंने दम और सत्यसे मिलनेवाले फलका सब प्रकारसे वर्णन किया। जिसका हृदय विनयशील है, वह निःसंदेह स्वर्गमें सम्मानित होता है। अब तुम ब्रह्मचर्यके गुणोंका वर्णन सुनो। जो जन्मसे लेकर मृत्युकालतक ब्रह्मचारी बना रहता है, उसके लिये संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। ब्रह्मलोकमें ऐसे करोड़ों ऋषि निवास करते हैं, जो इस लोकमें सदा सत्यवादी, जितेन्द्रिय और ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) थे। राजन्! यदि ब्रह्मचर्यका पालन किया जाय तो वह सम्पूर्ण पापोंको भस्म कर डालता है। ब्राह्मणको तो विशेषरूपसे ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये; क्योंकि ब्राह्मण अग्निका स्वरूप समझा जाता है। तपस्वी ब्राह्मणोंमें यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है। ब्रह्मचारीके कुपित होनेपर इन्द्र भी डरते हैं। ब्रह्मचर्यका यह फल यहाँ ऋषियोंमें पूर्णरूपसे दृष्टिगोचर होता है। अब तुम माता-पिता और गुरुजनोंका पूजन करनेसे जो धर्म होता है, उसके विषयमें सुनो। जो पिता, माता, ज्येष्ठ भ्राता, गुरु और आचार्यकी सेवा करता है, कभी उनके दोष नहीं देखता, उसको स्वर्गलोकमें सम्मानित स्थान प्राप्त होता है। उसे कभी नरकका दर्शन नहीं करना पड़ता।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! अब मैं गोदानकी उत्तम विधिका यथार्थरूपसे श्रवण करना चाहता हूँ, जिससे सनातन लोकोंकी प्राप्ति होती है।

भीष्मजीने कहा—बेटा! गोदानसे बढ़कर कुछ भी नहीं है। यदि न्यायपूर्वक प्राप्त हुई गौका दान किया जाय तो वह समस्त कुलका तत्काल उद्धार कर देती है। इसलिये तुम आदिकालसे प्रचलित हुई गोदानकी विधिका श्रवण करो। प्राचीनकालकी बात है, जब महाराज मान्धाताके पास बहुत-सी गौएँ दानके लिये लायी गयीं तो उन्होंने 'कैसी गौ दान करें' इस संदेहमें पड़कर बृहस्पतिजीसे तुम्हारी ही तरह प्रश्न किया। तब बृहस्पतिजीने इस प्रकार उत्तर दिया—''गोदान करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह व्रतका पालन करे और ब्राह्मणको बुलाकर उसका अच्छी तरह सत्कार करके कहे कि 'मैं कल प्रातःकाल आपको गौ-दान करूँगा।' तत्पश्चात् वह गोदानके लिये लाल रंगकी (रोहिणी) गौ मँगावे और 'समङ्गे बहुले' इस प्रकार कहकर गौओंको सम्बोधित करे। फिर गौओंके बीचमें जाकर निम्नाङ्कित श्रुतिका (जिसका सारांश यहाँ दिया जाता है) उच्चारण करे—'गौ मेरी माता और प्रतिष्ठा है, बैल मेरा पिता है, वे दोनों मुझे इहलोकमें तथा स्वर्गलोकमें सुख दें।' इस प्रकार कहकर गौओंकी शरण ले और उन्हींके साथ रात बिताकर सबेरे गोदान-कालमें ही फिर मौन भंग करे। इस प्रकार गौओंके साथ एक रात रहकर उनके समान व्रतका पालन करते हुए उन्हींके साथ एकात्मभावको प्राप्त होनेसे मनुष्य तत्काल सम्पूर्ण पापोंसे छुटकारा पा जाता है। गोदान करनेके पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करे—'गौएँ उत्साहसम्पन्न, बल और बुद्धिसे युक्त, अमरत्व प्रदान करनेवाले यज्ञ-सम्बन्धी हविष्यकी क्षेत्रभूता, जगत्‌की प्रतिष्ठा, पृथ्वीको प्रकट करनेवाली, संसारके अनादि प्रवाहको प्रवृत्त करनेवाली और प्रजापतिकी पुत्री हैं। सूर्य और चन्द्रमाके अंशसे प्रकट हुई वे गौएँ हमारे पापोंका नाश करें, हमें उत्तम लोककी प्राप्तिमें सहायता दें, माताकी भाँति शरण प्रदान करें और जिन इच्छाओंको हमने अपने मुँहसे नहीं प्रकट किया है, वे भी उनकी कृपासे पूर्ण हो जायँ। गौओ! जो लोग (तुम्हारे पञ्चगव्य आदिका सेवन करते हुए) तुम्हारी आराधनामें लगे रहते हैं, उनके कर्मोंसे प्रसन्न होकर तुम उन्हें क्षय आदि रोगोंसे छुटकारा दिलाती हो और (ज्ञानकी प्राप्ति कराकर) देह-बन्धनसे भी मुक्त कर देती हो। जो मनुष्य तुम्हारी सेवा किया करते हैं, उनके कल्याणके लिये तुम सरस्वती नदीकी भाँति सदा प्रयत्नशील रहती हो। गोमाताओ! हमारे ऊपर प्रसन्न हो जाओ और हमें समस्त पुण्योंके द्वारा प्राप्त होनेवाली अभीष्ट गति प्रदान करो।' इसके बाद दाता निम्नाङ्कित आधे श्लोकका उच्चारण करे—'या वै यूयं सोऽहमद्यैव भावो युष्मान् दत्त्वा चाहमात्मप्रदाता।'—गौओ! तुम्हारा जो स्वरूप है, वही मेरा भी है—तुममें और हममें कोई अन्तर नहीं है; अतः आज तुम्हें दानमें देकर हमने अपने आपको ही दान किया है।' दाताके ऐसा कहनेपर दान लेनेवाला ब्राह्मण शेष आधे श्लोकका उच्चारण करे—'मनश्च्युता मन एवोपपन्नाः संधुक्षध्वं सौम्यरूपोग्ररूपाः।'—गौओ! तुम शान्त और प्रचण्डरूप धारण करनेवाली हो। अब तुम्हारे ऊपर दाताका ममत्व (अधिकार) नहीं रहा; अब तुम मेरे अधिकारमें आ गयी हो, अतः अभीष्ट भोग प्रदान करके तुम मुझे और दाताको भी प्रसन्न करो।'

''जो गौके निष्क्रियरूपमें उसका मूल्य, वस्त्र अथवा सुवर्ण दान करता है, उसको भी गोदाता ही कहना चाहिये। इस रूपमें दी जानेवाली गौओंका नाम क्रमशः 'ऊर्ध्वास्या, भवितव्या और वैष्णवी' है। संकल्पके समय इनके इन्हीं नामोंका उच्चारण करना चाहिये। इनके दानका फल भी क्रमशः इस प्रकार समझना चाहिये—गौका

मूल्य देनेवाला छत्तीस हजार वर्षोंतक, गौकी जगह वस्त्र दान करनेवाला आठ हजार वर्षोंतक तथा गौके स्थानमें सुवर्ण देनेवाला बीस हजार वर्षोंतक दिव्यलोकमें सुख भोगता है। इस तरह गौओंके निष्क्रियदानका क्रमशः फल बताया गया, इसे ध्यानमें रखना चाहिये। साक्षात् गौका दान लेकर जब ब्राह्मण अपने घरकी ओर जाने लगता है, उस समय उसके आठ पग जाते-जाते ही दाताको अपने दानका फल मिल जाता है। साक्षात् गौको दान करनेवाला शीलवान् और उसका मूल्य देनेवाला निर्भय होता है तथा गौकी जगह इच्छानुसार सुवर्ण दान करनेवाला मनुष्य कभी दुःखमें नहीं पड़ता। जो प्रातःकाल उठकर नैत्यिक नियमोंका अनुष्ठान करनेवाला और महाभारतका विद्वान् है, वह तथा ऊपर बताये हुए गोदाता पुरुष चन्द्रमाके समान प्रकाशमान वैष्णव लोकोंमें गमन करते हैं।

"गौ दान करनेके पश्चात् मनुष्यको तीन राततक गोव्रतका पालन करना चाहिये और एक रात गौओंके साथ रहना चाहिये। कामाष्टमीसे लेकर तीन राततक गोबर, गोदुग्ध अथवा गोरसमात्रका आहार करना चाहिये। जो पुरुष एक बैल दान करता है, वह देवव्रती (सूर्यमण्डलका भेदन करके जानेवाला ब्रह्मचारी) होता है। जो एक गाय और एक बैल दान करता है, उसे वेदोंकी प्राप्ति होती है तथा जो विधिपूर्वक गौओंका दान करता है, उसे उत्तम लोक मिलते हैं; किंतु जो विधिको नहीं जानता, वह उत्तम फलसे वञ्चित रहता है। जो मनुष्य अपना शिष्य नहीं है, जो व्रतका पालन नहीं करता, जिसमें श्रद्धाका अभाव है तथा जिसकी बुद्धि कुटिल है, उसे इस गोदानकी विधिका उपदेश न दे; क्योंकि यह सबसे गोपनीय धर्म है। इसका यत्र-तत्र सर्वत्र प्रचार नहीं करना चाहिये। संसारमें बहुत-से अश्रद्धालु, क्षुद्र तथा राक्षस-स्वभावके मनुष्य हैं और कितने ही नास्तिकताका आश्रय लिये हुए हैं; उनको यदि इस धर्मका उपदेश दिया जाय तो अनिष्ट होता है।"

राजन्! बृहस्पतिजीके इस उपदेशको सुनकर जिन पुण्यशील राजाओंने गोदान किया और उसके प्रभावसे वे उत्तम लोकोंको प्राप्त हुए, उनका नाम मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो—उशीनर, विश्वगश्व, नृग, भगीरथ, यौवनाश्व (मान्धाता), मुचुकुन्द, भूरिद्युम्न, नैषध, सोमक, पुरूरवा, चक्रवर्ती भरत और राजा दिलीप—इन सबने गोदान करके स्वर्गलोक प्राप्त किया है। अतः कुन्तीनन्दन! तुम भी बृहस्पतिजीके उपदेशको धारण करो और कौरव-राज्यपर अधिकार पाकर उत्तम ब्राह्मणोंको प्रसन्नतापूर्वक पवित्र गौएँ दान करो।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भीष्मजीने जब इस प्रकार विधिवत् गोदान करनेकी आज्ञा दी तो धर्मराज युधिष्ठिरने वैसा ही किया और बृहस्पतिजीने मान्धाताके लिये जिस धर्मका उपदेश किया था, उसको भी भलीभाँति स्मरण रखा। वे गोबरके साथ जौके कणका आहार करते हुए इन्द्रियसंयमपूर्वक पृथ्वीपर शयन करने लगे। उनके मस्तकपर जटाएँ बढ़ गयीं। उन दिनों राजाओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर साक्षात् धर्मके समान देदीप्यमान हो रहे थे। वे अपने मनको एकाग्र रखकर देवताओंकी भाँति गौओंकी स्तुति करते और देवबुद्धिसे ही सदा उनको प्रणाम किया करते थे। तबसे उन्होंने अपने रथमें बैलोंको कभी नहीं जोता—बैलगाड़ीकी सवारी ही छोड़ दी। घोड़ोंसे जुते हुए रथकी सवारीसे ही वे इधर-उधरकी यात्रा करते थे।



गोदानके फल, कपिला गौकी उत्पत्ति और गोमाहात्म्यके विषयमें वसिष्ठ-सौदास-संवादका वर्णन

युधिष्ठिरने कहा—भारत! आप गोदानके उत्तम गुणोंका फिरसे वर्णन कीजिये, आपके मुँहसे इस अमृतमय उपदेशको सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती।

भीष्मजीने कहा—बेटा! वात्सल्य गुणसे युक्त एवं उत्तम लक्षणोंवाली जवान गायको वस्त्र ओढ़ाकर ब्राह्मणको दान करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसे असुर्य नामक अन्धकारमय लोकों (नरकों) में नहीं जाना पड़ता। जिसका घास खाना और पानी पीना समाप्त हो चुका हो, जिसका दूध नष्ट हो गया हो, जिसकी इन्द्रियाँ काम न दे सकती हों, अर्थात् जो बूढ़ी और रोगिणी होनेके कारण जीर्ण-शीर्ण शरीरवाली हो गयी हों, ऐसी गौका दान करनेवाला मनुष्य ब्राह्मणको व्यर्थ कष्टमें डालता है और स्वयं भी घोर नरकमें पड़ता है। क्रोध करनेवाली, मरकही, रुग्णा, दुबली-पतली तथा जिसका दाम न चुकाया गया हो, ऐसी गौका दान करना कदापि उचित नहीं है। हृष्ट-पुष्ट, सीधी-सुलक्षणा, जवान एवं उत्तम गन्धवाली गौकी सभी

लोग प्रशंसा करते हैं। जैसे नदियोंमें गङ्गा श्रेष्ठ है, वैसे ही गौओंमें कपिला गौ उत्तम मानी गयी है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! किसी भी रंगकी गौका दान किया जाय, गोदान तो एक-सा ही होगा। फिर सत्पुरुषोंने कपिला गौकी ही अधिक प्रशंसा क्यों की है ? मैं कपिलाके महान् प्रभावको विशेषरूपसे सुनना चाहता हूँ।

भीष्मजीने कहा—बेटा ! मैंने बड़े-बूढ़ोंके मुँहसे रोहिणी (कपिला) गौकी उत्पत्तिका जो प्राचीन वृत्तान्त सुना है, वह सब तुम्हें बता रहा हूँ। सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माजीने दक्ष प्रजापतिको आज्ञा दी कि 'तुम प्रजाको उत्पन्न करो।' किंतु दक्ष प्रजापतिने प्रजाओंकी भलाईके लिये सबसे पहले उनकी आजीविकाका उपाय निर्धारित किया। उसके बाद उन्होंने प्रजाको उत्पन्न किया। उत्पन्न होते ही समस्त जीव जीविकाके लिये कोलाहल करने लगे। जैसे भूखे-प्यासे बालक अपने माँ-बापके पास दौड़े जाते हैं, उसी प्रकार समस्त प्रजा जीविकादाता दक्षके पास गयी। प्रजाजनोंकी इस स्थितिपर मन-ही-मन विचार करके प्रजापतिने उनकी रक्षाके लिये अमृतका पान किया। अमृत पीकर जब वे पूर्ण तृप्त हो गये तो उनके मुखसे सुरभित (मनोहर) सुगन्ध निकलने लगी। उस सुरभि गन्धसे सुरभि (गौ) प्रकट हुई, जिसे प्रजापतिने अपने मुखसे उत्पन्न होनेवाली पुत्रीके रूपमें देखा। सुरभिने भी बहुत-सी कपिला गौएँ उत्पन्न कीं, जो प्रजाकी माताके समान थीं और जिनका रंग कुंदनकी भाँति दमक रहा था। वे सब गौएँ प्रजाकी आजीविका थीं। जैसे नदियोंकी लहरोंसे फेन उत्पन्न होता है, उसी प्रकार चारों ओर दूधकी धारा बहाती हुई अमृतके समान वर्णवाली उन गौओंके दूधसे फेन उठने लगा। एक दिनकी बात है, भगवान् शंकर पृथ्वीपर खड़े थे, उसी समय सुरभिके एक बछड़ेके मुँहसे फेन निकलकर उनके मस्तकपर गिर पड़ा। इससे वे कुपित हो उठे और अपनी ललाटाग्निकी ज्वालासे मानो रोहिणी गौको भस्म कर डालेंगे, इस तरह उसकी ओर देखने लगे। रुद्रका वह भयंकर तेज जिन-जिन कपिलाओंपर पड़ा उनके रंग नाना प्रकारके हो गये, किंतु जो वहाँसे भागकर चन्द्रमाकी शरणमें चली गयीं, उनका रंग नहीं बदला। वे जैसी उत्पन्न हुई थीं, वैसी ही रह गयीं।

तब प्रजापतिने महादेवजीको कुपित देखकर कहा—'प्रभो ! आपके ऊपर अमृतका छींटा पड़ा है। गौओंका दूध बछड़ोंके पीनेसे जूँठा नहीं होता। जैसे चन्द्रमा अमृतका संग्रह करके फिर उसे बरसा देता है, उसी प्रकार वे रोहिणी गौएँ भी अमृतसे उत्पन्न दूध देती हैं। जैसे वायु, अग्नि, सुवर्ण, समुद्र तथा देवताओंका पीया हुआ अमृत—इनमें उच्छिष्टका दोष नहीं होता, वैसे ही बछड़ोंको पिलाती हुई गौ भी दूषित नहीं मानी जाती। (तात्पर्य यह कि दूध पीते समय बछड़ेके मुँहसे गिरा हुआ झाग अशुद्ध नहीं माना जाता।) ये गौएँ अपने दूध और घीसे सम्पूर्ण जगत्का पालन करेंगी। सब लोग इनके अमृतमय दूधको पीना चाहते हैं।'

ऐसा कहकर प्रजापति दक्षने महादेवजीको बहुत-सी गौएँ और एक बैल भेंट किये तथा इसी उपायसे उनके चित्तको शान्त किया। महादेवजीने भी प्रसन्न होकर उस वृषभको अपना वाहन बनाया और उसीके चिन्हसे अपनी ध्वजा सुशोभित की। इसीसे उनका नाम 'वृषभध्वज' प्रसिद्ध हुआ। तदनन्तर, देवताओंने महादेवजीको पशुओंका राजा (पशुपति) बना दिया और गौओंके बीचमें उनका नाम 'वृषभाङ्क' रख दिया। इस प्रकार कपिला गौएँ अत्यन्त तेजस्विनी और शान्त वर्णवाली हैं। इसीसे उनको दानमें सब गौओंसे प्रथम स्थान दिया गया है। गौएँ संसारकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु हैं। वे जगत्को जीवन देनेवाली हैं। भगवान् शंकर सदा उनके साथ रहते हैं। वे चन्द्रमासे निकले हुए अमृतसे उत्पन्न हुई हैं तथा शान्त, पवित्र, समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाली और जगत्को प्राणदान देनेवाली हैं; अतः गोदान करनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंका दाता माना जाता है। अपवित्र मनुष्य भी यदि गौओंकी उत्पत्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली इस उत्तम कथाका पाठ करता है तो कलियुगके दोषोंसे मुक्त हो जाता है और उसे पुत्र, लक्ष्मी, धन तथा पशु आदिकी सदा प्राप्ति होती है। राजन् ! गोदान करनेवालेको हव्य, कव्य, तर्पण और शान्ति-कर्मका फल तथा वाहन, वस्त्र एवं बालकों और वृद्धोंका संतोष प्राप्त होता है। इस प्रकार ये सब गोदानके गुण हैं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! भीष्मजीकी बातें सुनकर राजा युधिष्ठिर और उनके भाइयोंने उत्तम ब्राह्मणोंको सोनेके समान रंगवाले बैल तथा उत्तम गौएँ दान कीं।

भीष्मजी कहते हैं—धर्मराज ! इक्ष्वाकुवंशमें एक सौदास नामके राजा थे। एक बार उन्होंने ब्रह्माजीके पुत्र महर्षि वसिष्ठको प्रणाम करके पूछा—'भगवन् ! तीनों लोकोंमें ऐसी पवित्र वस्तु कौन है, जिसका नाम लेनेमात्रसे

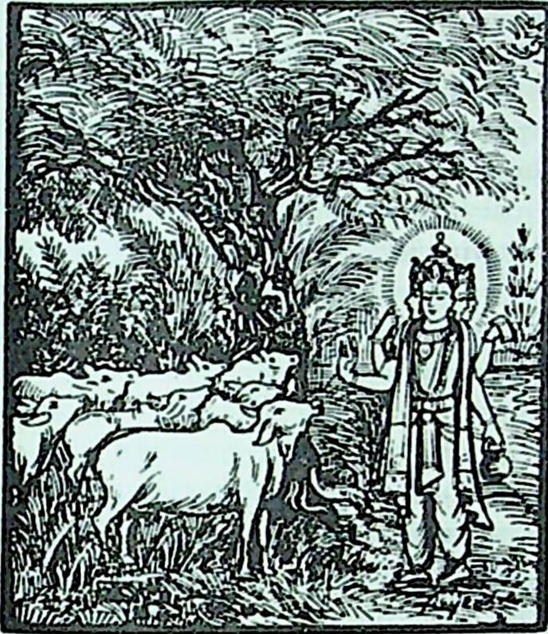
मनुष्यको सदा उत्तम पुण्यकी प्राप्ति हो सके ?' तब महर्षि वसिष्ठने गौओंको नमस्कार करके इस प्रकार कहना आरम्भ



किया—'राजन् ! गौओंके शरीरसे अनेकों प्रकारकी मनोरम सुगन्ध निकलती रहती है। बहुतेरी गौएँ गुग्गुलके समान गन्धवाली होती हैं। गौएँ प्राणियोंका आधार तथा कल्याणकी निधि हैं। भूत और भविष्य गौओंके ही हाथमें हैं। वे ही सदा रहनेवाली पुष्टिका कारण तथा लक्ष्मीकी जड़ हैं। गौओंकी सेवामें जो कुछ दिया जाता है, उसका फल अक्षय होता है। अन्न गौओंसे उत्पन्न होता है, देवताओंको उत्तम हविष्य (घृत) गौएँ देती हैं तथा स्वाहाकार (देवयज्ञ) और वषट्कार (इन्द्रयाग) भी सदा गौओंपर ही अवलम्बित हैं। गौएँ ही यज्ञका फल देनेवाली हैं, उन्हींमें यज्ञोंकी प्रतिष्ठा है। ऋषियोंको प्रातःकाल और सायंकालमें होमके समय गौएँ ही हवनके योग्य घृत आदि पदार्थ देती हैं। जो लोग दूध देनेवाली गौ दान करते हैं, वे अपने समस्त संकटों और पापोंके पार हो जाते हैं। जिसके पास दस गौएँ हों, वह एक गौ दान करे, जो सौ गायें रखता हो, वह दस गायें दान करे और जिसके पास हजार गौएँ मौजूद हों, वह सौ गौएँ दान करे तो इन सबको बराबर ही फल मिलता है। जो सौ गौओंका स्वामी होकर भी अग्निहोत्र नहीं करता, जो हजार गौएँ रखकर भी यज्ञ नहीं करता तथा जो धनी होकर भी कंजूसी नहीं छोड़ता—ये तीनों मनुष्य अर्घ्य (सम्मान) पानेके अधिकारी नहीं हैं। जो उत्तम लक्षणोंसे युक्त कपिला गौको वस्त्र ओढ़ाकर बछड़ेसहित दान करता है तथा उसके साथ दूध दुहनेके लिये एक काँसीका पात्र भी देता है, वह इहलोक-परलोक दोनोंको जीत लेता है। प्रातःकाल और सायंकालमें प्रतिदिन गौओंको प्रणाम करना चाहिये, इससे मनुष्यके शरीर और बलकी पुष्टि होती है। गोमूत्र और गोबर देखकर कभी घृणा न करे। गौओंके गुणोंका कीर्तन करे। कभी उनका अपमान न करे। यदि बुरे स्वप्न दिखायी दें तो गोमाताका नाम ले। प्रतिदिन शरीरमें गोबर लगाकर स्नान करे। सूखे हुए गोबरपर बैठे। उसपर थूक न फेंके, मल-मूत्र न त्यागे। गौओंके तिरस्कारसे बचता रहे। अग्निमें गायके घृतका हवन करे, उसीसे स्वस्तिवाचन करावे, गो-घृतका दान और स्वयं भी उसका भक्षण करे तो गौओंकी वृद्धि होती है। जो मनुष्य सब प्रकारके रत्नोंसे युक्त तिलकी धेनुको 'गोमा अग्ने विमाँ अश्वी' आदि गोमती मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उसे ब्राह्मणको दान करता है, उसे अपने पाप-पुण्यके लिये शोक नहीं करना पड़ता। रात हो या दिन, अच्छा समय हो या बुरा, कितना ही बड़ा भय क्यों न उपस्थित हुआ हो, यदि मनुष्य निम्नाङ्कित श्लोकार्थोंका कीर्तन करता है तो वह सब प्रकारके भयसे मुक्त हो जाता है—'जैसे नदियाँ समुद्रके पास जाती हैं, उसी तरह सोनेसे मढ़े हुए सींगोंवाली दुग्धवती सुरभी और सौरभेयी गौएँ मेरे निकट आवें। मैं सदा गौओंका दर्शन करूँ और गौएँ मुझपर कृपादृष्टि करें। गौएँ मेरी हैं और मैं गौओंका हूँ; जहाँ गौएँ रहें, वहीं मैं भी रहूँ।'

प्राचीनकालमें गौओंने श्रेष्ठता प्राप्त करनेके लिये एक लाख वर्षोंतक कठोर तपस्या की थी। उनकी इच्छा थी कि 'इस जगत्में जितनी दक्षिणा देनेयोग्य वस्तुएँ हैं, उन सबमें हम उत्तम समझी जावें। हमको कोई दोष न लगे। मनुष्य हमारे गोबरसे स्नान करनेपर सदा ही पवित्र हों। देवता और मानव पवित्रताके लिये हमेशा हमारे गोबरका उपयोग करें। समस्त चराचर प्राणी हमारे गोबरसे पवित्र हो जायँ और हमारा दान करनेवाले मनुष्योंको हमारा ही उत्तम लोक (गोलोक) प्राप्त हो।' इस प्रकारका संकल्प लेकर जब गौओंने अपनी तपस्या पूर्ण की तो उसके अन्तमें ब्रह्माजीने उन्हें वरदान दिया 'गौओ! तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूर्ण हों और तुम जगत्के जीवोंका उद्धार करती रहो।'

इस प्रकार अपनी कामनाएँ सिद्ध हो जानेपर गौएँ तपस्यासे निवृत्त हुईं और उसके पश्चात् जगत्का कल्याण करने



लगीं। इसीलिये वे महान् सौभाग्यशालिनी गौएँ परम पवित्र मानी जाती हैं। वे समस्त प्राणियोंसे श्रेष्ठ एवं वन्दनीय हैं। जो मनुष्य दूध देनेवाली सुलक्षणा कपिला गौको वस्त्र ओढ़ाकर कपिल रंगके बछड़ेसहित दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें सम्मानित होता है। सदा गोदानमें अनुराग रखनेवाला पुरुष सूर्यके समान देदीप्यमान विमानमें बैठकर मेघ-मण्डलको भेदता हुआ स्वर्गमें जाकर सुशोभित होता है। गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक वह स्वर्ग-लोकमें सत्कारपूर्वक रहता है। फिर पुण्य क्षीण होनेपर जब स्वर्गसे नीचे उतरता है तो इस मनुष्यलोकमें आकर सम्पन्न घरमें जन्म लेता है।

मनुष्यको चाहिये कि सबेरे और सायंकाल आचमन करके इस प्रकार जप करे—'घी और दूध देनेवाली, घीकी उत्पत्तिका आधार, घीको प्रकट करनेवाली, घीकी नदी तथा घीकी भँवररूप गौएँ मेरे घरमें सदा निवास करें। मेरे आगे-पीछे और चारों ओर गौएँ मौजूद रहें, मैं गौओंके बीचमें ही निवास करूँ।' इस प्रकार प्रतिदिन जप करनेसे मनुष्यके दिनभरके पाप नष्ट हो जाते हैं। गोदान करनेवाला मनुष्य अपने माता और पिताकी दस पीढ़ियोंको पवित्र करके उन्हें पुण्यमय लोकोंमें भेजता है। जो गायके बराबर तिलकी गाय बनाकर उसका दान करता है तथा जो जलका दान करता है, उसे यमलोकमें कोई यातना नहीं भोगनी पड़ती। गौ सबसे अधिक पवित्र, जगत्की प्रतिष्ठा और देवताओंकी माता है, उसका स्पर्श और उसकी प्रदक्षिणा करे तथा उत्तम समय देखकर सुपात्र ब्राह्मणको उसका दान करे। जो बड़े-बड़े सींगोंवाली कपिला धेनुको बछड़े, काँसीकी दोहनी तथा वस्त्रसहित दान करता है, वह मनुष्य यमराजकी दुर्गम सभामें निर्भय होकर प्रवेश करता है। गोदानसे बढ़कर कोई पवित्र दान नहीं है और गोदानके फलसे श्रेष्ठ अन्य कोई फल नहीं है। संसारमें गौसे बढ़कर दूसरा कोई उत्कृष्ट प्राणी नहीं है। जिसने समस्त चराचर जगत्को व्याप्त कर रखा है, उस भूत और भविष्यकी माता गौको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। राजन्! यह मैंने तुमसे गौओंके गुणोंका दिग्दर्शनमात्र कराया है। गौओंके दानसे बढ़कर इस संसारमें दूसरा कोई दान नहीं है तथा उनके समान दूसरा कोई सहारा भी नहीं है।

भीष्मजी कहते हैं—महर्षि वसिष्ठके ये वचन सुनकर भूमिदान करनेवाले महात्मा राजा सौदासने उसपर विचार किया और उसे सर्वथा उत्तम जानकर ब्राह्मणोंको बहुत-सी गौएँ दान दीं, इससे उन्हें उत्तम लोकोंकी प्राप्ति हुई।



व्यासजीका शुकदेवसे गोदानकी महिमाका वर्णन तथा भीष्मजीका गौ और लक्ष्मीका संवाद सुनाना

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! संसारमें जो वस्तु पवित्रोंमें भी पवित्र, उत्तम तथा परमपावन हो, उसका वर्णन कीजिये।

भीष्मजीने कहा—बेटा! गायें महान् अर्थका साधन, परमपवित्र और मनुष्योंको तारनेवाली हैं। ये अपने घी और दूधसे प्रजाके जीवनकी रक्षा करती हैं। गौओंसे अधिक पवित्र कोई वस्तु नहीं है। ये तीनों लोकोंमें पवित्र, पुण्यस्वरूप तथा सर्वश्रेष्ठ हैं। गौएँ देवताओंसे भी ऊपरके लोकोंमें निवास

करती हैं। जो इनका दान करते हैं वे मनीषी पुरुष आत्मोद्धार करके स्वर्गमें चले जाते हैं। मान्धाता, ययाति और नहुष सदा लाखों गौओंका दान किया करते थे, इससे उन्हें ऐसे उत्तम लोकोंकी प्राप्ति हुई जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं। इस विषयमें मैं तुम्हें एक पुराना वृत्तान्त सुना रहा हूँ। एक समयकी बात है, परमबुद्धिमान् शुकदेवजीने नित्यकर्मका अनुष्ठान करके पवित्र एवं शुद्धचित्त होकर लोकके भूत और भविष्यको देखनेवाले अपने पिता ऋषिश्रेष्ठ व्यासजीको प्रणाम करके पूछा—'पिताजी ! विद्वान् पुरुष किस कर्मका अनुष्ठान करके उत्तम स्थान प्राप्त करते हैं ? पवित्रोंमें भी पवित्र वस्तु क्या है ? इसे बतानेकी कृपा कीजिये।'

व्यासजीने कहा—बेटा ! गौएँ सम्पूर्ण भूतोंकी प्रतिष्ठा और परम आश्रय हैं। वे पुण्यस्वरूप, पवित्र और पावन हैं, हव्य और कव्य प्रदान करनेवाली हैं और शुभ, पुण्य, पवित्र, सौभाग्यवती तथा दिव्य विग्रहसे सम्पन्न हैं। गौएँ दिव्य एवं महान् तेज हैं, उनके दानकी शास्त्रोंमें प्रशंसा की गयी है। जो सत्पुरुष मात्सर्यका त्याग करके गौओंका दान करते हैं, वे पवित्र गोलोकमें जाते हैं। वहाँ पुण्यात्मा पुरुष ही सुखपूर्वक निवास करते हैं। गोलोकवासी शोक और क्रोधसे रहित तथा पूर्णकाम होते हैं। वे विचित्र एवं रमणीय विमानोंमें बैठकर यथेष्ट विहार करते हुए आनन्दका अनुभव करते हैं। जो पुरुष सब प्रकार गौओंका अनुसरण और सेवा करता है, उसपर प्रसन्न होकर गौएँ अत्यन्त दुर्लभ वरदान देती हैं। गौओंके साथ मनसे भी द्रोह न करे, उन्हें सदा सुख पहुँचावे तथा यथोचित सत्कार और प्रणामके द्वारा उनका पूजन करता रहे। गौओंके गोबरसे निकाले हुए जौकी लप्सीका एक मासतक भक्षण करनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्या-जैसे पापोंसे भी छुटकारा पा जाता है। जब दैत्योंने देवताओंको पराजित कर दिया तो उन्होंने इसी प्रायश्चित्तका अनुष्ठान किया, इससे उन्हें पुनः देवत्वकी प्राप्ति हुई तथा वे महाबलवान् और महासिद्ध हो गये। गौएँ परमपावन, पवित्र और पुण्यस्वरूपा हैं, उन्हें ब्राह्मणोंको दान करनेसे मनुष्य स्वर्गका सुख भोगता है। पवित्र जलसे आचमन करके पवित्र होकर गौओंके बीचमें गोमतीमन्त्र (गोमा अग्ने विमां अश्वी) का जप करनेसे मनुष्य अत्यन्त शुद्ध एवं निर्मल (पापमुक्त) हो जाता है। विद्या और वेदव्रतमें निष्णात पुण्यात्मा ब्राह्मणोंको चाहिये कि वे अग्नि, गौ और ब्राह्मणोंके बीच अपने शिष्योंको यज्ञतुल्य गोमतीमन्त्रकी शिक्षा दें। जो तीन राततक उपवास करके गोमतीमन्त्रका जप करता है, उसे गौओंका वरदान प्राप्त होता है। पुत्रकी इच्छावालेको पुत्र, धन चाहनेवालेको धन और पतिकी इच्छा रखनेवाली स्त्रीको पति मिलता है। इस प्रकार गौएँ मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करती हैं। वे यज्ञका प्रधान अङ्ग हैं, उनसे बढ़कर दूसरा कुछ नहीं है।

अपने महात्मा पिताके इस प्रकार कहनेपर महातेजस्वी शुकदेवजी प्रतिदिन गौकी पूजा करने लगे; इसलिये युधिष्ठिर ! तुम भी गौओंकी पूजा करो।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! मैंने सुना है कि गौके गोबरमें लक्ष्मीका वास है सो इस विषयका आप स्पष्ट वर्णन कीजिये।

भीष्मजीने कहा—राजन् ! इस विषयमें जानकार लोग गौ और लक्ष्मीके संवादरूप प्राचीन इतिहासका वर्णन करते हैं। एक समयकी बात है, लक्ष्मीने मनोहर रूप धारण करके गौओंके झुंडमें प्रवेश किया, उनके सुन्दर रूपको देखकर गौओंने विस्मित होकर पूछा—'देवि ! तुम कौन हो ? और कहाँसे आयी हो ? तुम पृथ्वीकी अनुपम सुन्दरी जान पड़ती हो। हमलोग तुम्हारा रूप-वैभव देखकर अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गयी हैं, इसीलिये तुम्हारा परिचय जानना चाहती हैं। सुन्दरी ! सच-सच बताओ, तुम कौन हो और कहाँ जाओगी ?'

लक्ष्मीने कहा—गौओ ! तुम्हारा कल्याण हो, मैं इस



जगत्‌में लक्ष्मीके नामसे प्रसिद्ध हूँ। सारा जगत् मेरी कामना करता है। मैंने दैत्योंको छोड़ दिया, इससे वे सदाके लिये नष्ट

हो गये हैं और मेरे ही आश्रयमें रहनेके कारण इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु, वरुण तथा अग्नि आदि देवता सदा आनन्द भोग रहे हैं। देवताओं और ऋषियोंको मेरी ही शरणमें आनेसे सिद्धि मिलती है। जिनके शरीरमें मैं प्रवेश नहीं करती, वे सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। धर्म, अर्थ और काम मेरा सहयोग होनेपर ही सुख दे सकते हैं। सुखदायिनी गौओ ! ऐसा ही मेरा प्रभाव है। अब मैं तुम्हारे शरीरमें सदा निवास करना चाहती हूँ और इसके लिये स्वयं ही तुम्हारे पास आकर प्रार्थना करती हूँ। तुमलोग मेरा आश्रय पाकर श्रीसम्पन्न हो जाओ।

गौओंने कहा—देवि ! तुम बड़ी चञ्चला हो, कहीं भी स्थिर होकर नहीं रहती। इसके सिवा तुम्हारा बहुतोंके साथ एक-सा सम्बन्ध है, इसलिये हमको तुम्हारी इच्छा नहीं है। तुम्हारा कल्याण हो, हमारा शरीर तो यों ही हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर है, हमें तुमसे क्या काम ? तुम्हारी जहाँ इच्छा हो चली जाओ। तुमने हमसे बातचीत की, इतनेहीसे हम अपनेको कृतार्थ मानती हैं।

लक्ष्मीने कहा—गौओ ! तुम यह क्या कहती हो, मैं दुर्लभ और सती हूँ फिर भी तुम मुझे स्वीकार नहीं करती, इसका क्या कारण है ? आज मुझे मालूम हुआ कि 'बिना बुलाये किसीके पास जानेसे अनादर होता है', यह कहावत अक्षरशः सत्य है। उत्तम व्रतका पालन करनेवाली धेनुओ ! देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, नाग, राक्षस और मनुष्य बड़ी उग्र तपस्या करके मेरी सेवाका सौभाग्य प्राप्त करते हैं। मेरा यह प्रभाव तुम्हारे ध्यान देने योग्य है, अतः मुझे स्वीकार करो। देखो, इस चराचर त्रिलोकीमें कोई भी मेरा अपमान नहीं करता।

गौओंने कहा—देवि ! हम तुम्हारा अपमान या अनादर नहीं करतीं, केवल तुम्हारा त्याग कर रही हैं और वह भी इसलिये कि तुम्हारा चित्त चञ्चल है, तुम कहीं भी जमकर नहीं रहती। अब बहुत बातचीतसे कोई लाभ नहीं है, तुम जहाँ जाना चाहो चली जाओ। हम सब लोगोंका शरीर यों ही हृष्ट-पुष्ट एवं प्राकृतिक शोभासे युक्त है, फिर हम तुम्हें लेकर क्या करेंगी ?

लक्ष्मीने कहा—गौओ ! तुम दूसरोंको आदर देनेवाली हो, यदि तुम मुझे त्याग दोगी तो सारे जगत्में मेरा अनादर होने लगेगा, इसलिये मुझपर कृपा करो। तुम महान् सौभाग्यशालिनी और सबको शरण देनेवाली हो, अतः मैं तुम्हारी शरणमें आयी हूँ, मुझमें कोई दोष नहीं है, मैं तुमलोगोंकी सेविका हूँ, यह जानकर मेरी रक्षा करो—मुझे अपनाओ। मैं तुमसे सम्मान चाहती हूँ, तुमलोग सदा सबकी कल्याण करनेवाली, पुण्यमयी, पवित्र और सौभाग्यवती हो। मुझे आज्ञा दो, मैं तुम्हारे शरीरके किस भागमें निवास करूँ ?

गौओंने कहा—यशस्विनी ! हमें तुम्हारा सम्मान अवश्य करना चाहिये। अच्छा, तुम हमारे गोबर और मूत्रमें निवास करो; क्योंकि हमारी ये दोनों वस्तुएँ परम पवित्र हैं।

लक्ष्मीने कहा—धन्य भाग ! जो तुमलोगोंने मुझपर अनुग्रह किया। मैं ऐसा ही करूँगी। सुखदायिनी गौओ ! तुमने मेरा मान रख लिया, अतः तुम्हारा कल्याण हो।

युधिष्ठिर ! इस प्रकार गौओंके साथ प्रतिज्ञा करके लक्ष्मी उनके देखते-देखते वहाँसे अन्तर्धान हो गयीं। इस प्रकार मैंने तुमसे गोबरके माहात्म्यका वर्णन किया है, अब फिर गौओंका ही माहात्म्य सुनो।



ब्रह्माजीका इन्द्रसे गोलोक और गौओंका उत्कर्ष बताना तथा सुवर्णकी उत्पत्ति और उसके दानकी महिमाके सम्बन्धमें वसिष्ठ और परशुरामका संवाद

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! जो मनुष्य सदा यज्ञशिष्ट अन्नका भोजन और गोदान करते हैं, उन्हें प्रतिदिन अन्न-दान और यज्ञ करनेका फल मिलता है। दही और घीके बिना यज्ञ नहीं हो सकता। उन्हींसे यज्ञ सम्पादित होता है, इसलिये गौओंको यज्ञका मूल कहते हैं। सब प्रकारके दानोंमें गोदान ही उत्तम माना गया है। गौएँ श्रेष्ठ, पवित्र तथा परम पावन बतायी गयी हैं। मनुष्यको अपने शरीरकी पुष्टि तथा सब प्रकारके विघ्नोंकी शान्तिके लिये भी गौओंका सेवन करना चाहिये। इनका दूध, दही और घी सब पापोंसे मुक्त करनेवाला है। गौएँ इस लोक और परलोकमें भी महान् तेजोरूप मानी गयी हैं, उनसे बढ़कर पवित्र कुछ भी नहीं है। इस विषयमें ब्रह्माजी और इन्द्रके संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। पूर्वकालमें दैत्योंके परास्त होनेपर जब इन्द्र तीनों लोकोंके अधीश्वर हुए तो समस्त प्रजा बड़ी प्रसन्नताके साथ सत्य और धर्ममें तत्पर रहने लगी। तदनन्तर एक दिन ऋषि, गन्धर्व, किन्नर, नाग, राक्षस, देवता, असुर, सुपर्ण (पक्षी) और प्रजापतिगण ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित थे। इसी समय देवराज इन्द्रने ब्रह्माजीको प्रणाम करके पूछा—'भगवन् ! गोलोक समस्त देवताओं और लोकपालोंके ऊपर क्यों है ? गौओंने ऐसा कौन-सा तप



किया है, जिससे वे रजोगुणसे रहित होकर देवताओंके भी ऊपर आनन्दपूर्वक निवास करती हैं, मैं इस बातको जानना चाहता हूँ।'

ब्रह्माजीने कहा—इन्द्र ! तुम सदा गौओंकी अवहेलना करते हो, इसीसे तुम इनका माहात्म्य नहीं जानते; अब मैं तुम्हें गौओंका उत्तम प्रभाव और माहात्म्य बता रहा हूँ, सुनो—गौओंको यज्ञका अङ्ग और साक्षात् यज्ञरूप बतलाया गया है। इनके बिना यज्ञ किसी तरह नहीं हो सकता। ये अपने दूध और घीसे प्रजाका पालन-पोषण करती हैं तथा इनके पुत्र (बैल) खेतीके काम आते और तरह-तरहके अन्न एवं बीज पैदा करते हैं, जिनसे यज्ञ सम्पन्न होते और हव्य-कव्यका भी काम चलता है। इन्हींसे दूध, दही और घी प्राप्त होते हैं। ये गौएँ बड़ी पवित्र होती हैं और बैल भूख-प्यासका कष्ट सहकर अनेकों प्रकारके बोझ ढोते रहते हैं। इस प्रकार गो-जाति अपने कर्मसे ऋषियों तथा प्रजाओंका पालन करती रहती है। उसके व्यवहारमें शठता या माया नहीं होती, वह सदा पवित्र कर्ममें लगी रहती है। इसीसे ये गौएँ हम सब लोगोंके ऊपर निवास करती हैं। इन्द्र ! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने यह बात बतायी कि गौएँ देवताओंके भी ऊपर क्यों निवास करती हैं। इसके सिवा गौएँ वरदान भी प्राप्त कर चुकी हैं तथा प्रसन्न होनेपर वे दूसरोंको भी वरदान देती हैं। सुरभी गौएँ पुण्य कर्म करनेवाली, पवित्र और सुलक्षणा होती हैं। वे जिस उद्देश्यसे पृथ्वीपर गयी हैं, उसको भी मैं बता रहा हूँ सुनो। पहले सत्ययुगमें जब देवता तीनों लोकोंपर राज्य करते थे, उस समय धर्मपरायणा दक्षकन्या सुरभी बड़े उत्साहके साथ घोर तपस्यामें प्रवृत्त हुई। कैलासके रमणीय शिखरपर, जहाँ देवता और गन्धर्व सदा विराजते रहते हैं, वह उत्तम योगका आश्रय ले ग्यारह हजार वर्षोंतक एक पैरसे खड़ी रही। तब मैंने उस तपस्विनी देवीके पास जाकर कहा—'कल्याणी ! तुम किसलिये यह घोर तपस्या कर रही हो, तुम्हारे इस तपसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम कोई वर माँगो, मैं देनेको तैयार हूँ।'

सुरभीने कहा—भगवन् ! मुझे वर लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, मेरे लिये तो सबसे बड़ा वर यही है कि आज आप मुझपर प्रसन्न हो गये।

ब्रह्माजी कहते हैं—इन्द्र ! जब सुरभीने इस प्रकार



कहा तो मैंने उसे यों उत्तर दिया—'देवि ! तुमने लोभका परित्याग करके निष्काम भावसे तप किया है, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है, अतः मैं तुम्हें अमर होनेका वरदान देता हूँ। अब मेरी कृपासे तीनों लोकोंके ऊपर तुम्हारा निवास होगा। तुम जहाँ वास करोगी, उसकी गोलोकके नामसे ख्याति होगी। तुम्हारी सभी शुभ सन्तानें मनुष्यलोकमें प्राणियोंके हितका कार्य करती हुई वहाँ निवास करेंगी। तुम अपने मनसे जिन दिव्य अथवा मानवीय भोगोंका चिन्तन करोगी, वे सब तुम्हें प्राप्त होंगे तथा सब प्रकारका सुख तुम्हारे लिये सदा सुलभ रहेगा।'

इन्द्र ! सुरभीके निवासभूत गोलोकमें समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं। वहाँ मृत्यु, बुढ़ापा और अग्निका जोर नहीं चलता। दुर्दैव तथा अशुभकी भी वहाँ पहुँच नहीं है। उस लोकमें दिव्य वन, दिव्य भवन तथा परम सुन्दर एवं इच्छानुसार विचरनेवाले विमान मौजूद हैं। ब्रह्मचर्य, सत्य, इन्द्रियसंयम, नाना प्रकारके दान, पुण्य, तीर्थसेवन, बड़ी भारी तपस्या तथा अन्यान्य शुभ कर्मोंके अनुष्ठानसे ही गोलोककी प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकार तुम्हारे पूछनेके अनुसार मैंने ये सारी बातें बतायी हैं। अब तुम्हें गौओंका कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिये।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! यह कथा सुननेके पश्चात् इन्द्र सदा गौओंकी पूजा करने लगे। गौओंके प्रति उनके मनमें विशेष आदरका भाव जाग्रत् हो गया। बेटा ! गौओंका यह परम पावन, परम पवित्र और अत्यन्त उत्तम माहात्म्य मैंने सब-का-सब तुम्हें सुना दिया। इसका कीर्तन समस्त पापोंसे छुटकारा दिलानेवाला है। जो सदा पवित्रचित्त होकर यज्ञ और श्राद्धमें हव्य और कव्य अर्पण करते समय ब्राह्मणोंको यह प्रसंग सुनायेगा, उसका दान समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और अक्षय होकर पितरोंको प्राप्त होगा। गोभक्त पुरुष जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब उसे प्राप्त होती है। गौओंमें भक्ति रखनेवाली स्त्रियाँ भी मनोवाञ्छित कामनाएँ प्राप्त करती हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! आपने सब मनुष्योंके लिये, विशेषतः धर्मपर दृष्टि रखनेवाले नरेशोंके लिये परम उत्तम गोदानका वर्णन किया है। वेद और उपनिषदोंने भी प्रत्येक कर्ममें दक्षिणाका विधान किया है। सभी यज्ञोंमें भूमि, गौ और सुवर्णकी दक्षिणा बतलायी गयी है। इनमें सुवर्ण सबसे उत्तम दक्षिणा है—ऐसा श्रुतिका वचन है; अतः इस विषयको मैं यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ। सुवर्ण क्या है ? कब और किस तरह इसकी उत्पत्ति हुई ? सुवर्णका उपादान क्या है ? इसका देवता कौन है ? तथा इसके दानका फल क्या है ? सुवर्ण क्यों उत्तम कहलाता है ? मनीषी विद्वान् इसके दानका क्यों विशेष आदर करते हैं ? तथा यज्ञकर्ममें सुवर्णकी ही दक्षिणा क्यों प्रशंसनीय समझी जाती है ?

भीष्मजीने कहा—राजन् ! ध्यान देकर सुनो, सुवर्णकी उत्पत्तिका कारण बहुत विस्तृत है। मैं अपने अनुभवके अनुसार सब बातें तुम्हें बता रहा हूँ। मेरे महातेजस्वी पिता महाराज शान्तनुका जब देहावसान हो गया, तो मैं उनका श्राद्ध करनेके लिये गङ्गाद्वार तीर्थ (हरिद्वार) में गया। वहाँ पहुँचकर मैंने पिताका श्राद्ध आरम्भ किया; इस कार्यमें माता गङ्गाजीने भी मेरी सहायता की। अपने सामने बहुत-से सिद्ध महर्षियोंको बिठाकर मैंने जलदानसे लेकर सब कार्य पूर्ण किया। एकाग्रचित्त होकर शास्त्रोक्त विधिसे पिण्डदानके पहलेका सारा कार्य जब समाप्त कर लिया तो विधिवत् पिण्डदान देना आरम्भ किया। इतनेहीमें पिण्डके लिये जो कुश बिछाये गये थे, उन्हें भेदकर एक बड़ी सुन्दर बाँह बाहर निकली। उस विशाल भुजामें बाजूबंद आदि अनेकों आभूषण

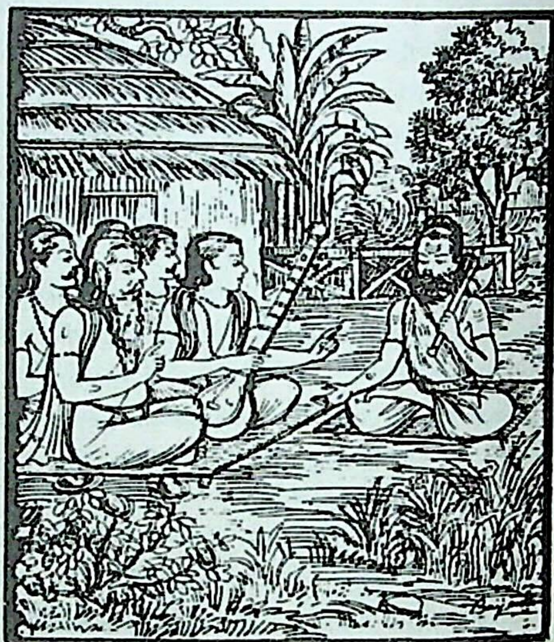


शोभा पा रहे थे। उसे ऊपर उठी देख मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। साक्षात् मेरे पिता ही पिण्डका दान लेनेके लिये उपस्थित थे। किंतु जब मैंने शास्त्रीय विधिपर विचार किया तो मेरे मनमें सहसा यह बात स्मरण हो आयी कि मनुष्यके लिये हाथपर पिण्ड देनेका वेदमें विधान नहीं है। पितर साक्षात् प्रकट होकर कभी मनुष्यके हाथसे पिण्ड लेते भी नहीं हैं। शास्त्रकी आज्ञा तो यही है कि 'कुशोंपर पिण्डदान करे।' यह सोचकर मैंने पिताके प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले हाथका आदर नहीं किया और शास्त्रीय प्रमाण मानकर उसकी सूक्ष्म विधिपर ध्यान रखते हुए कुशोंपर ही सब पिण्डोंका दान किया। इस प्रकार जब शास्त्रकी पद्धतिसे पिण्डदान कर दिया तो मेरे पिताकी वह बाँह अदृश्य हो गयी। तदनन्तर, पितरोंने मुझे स्वप्नमें दर्शन दिया और बड़े प्रसन्न होकर बोले— 'बेटा ! हम तुम्हारे शास्त्रीय ज्ञानसे बहुत प्रसन्न हैं;

क्योंकि उसके कारण तुम मोहवश धर्मसे भ्रष्ट नहीं हुए हो। तुमने शास्त्रका प्रमाण मानकर आत्मा, धर्म, शास्त्र, वेद, पितृगण, ऋषिगण, गुरु, प्रजापति और ब्रह्माजी—इन सबका मान बढ़ाया है तथा जो धर्ममें स्थित हैं, उन्हें भी तुमने अपना आदर्श दिखाकर विचलित नहीं होने दिया है। यह सब कार्य तो तुमने बहुत उत्तम किया है; किंतु अब (हमारे कहनेसे) भूमिदान और गोदानके निष्क्रियरूपसे कुछ सुवर्णदान भी करो। ऐसा करनेसे हम और हमारे सभी पितामह पवित्र हो जायँगे; क्योंकि सुवर्ण सबसे अधिक पावन वस्तु है। जो सुवर्ण दान करते हैं, वे अपने पहले और पीछेकी दस-दस पीढ़ियोंका उद्धार कर देते हैं।' इस प्रकार जब पितरोंने कहा तो मेरी नींद खुल गयी। उस समय इस स्वप्नका स्मरण करके मुझे बड़ा विस्मय हुआ। फिर मैंने सुवर्णदान करनेका निश्चय किया।

राजन्! अब (सुवर्णकी उत्पत्ति और उसके दानके माहात्म्यके विषयमें) एक प्राचीन इतिहास सुनो, जो जमदग्निनन्दन परशुरामजीसे सम्बन्ध रखनेवाला है। यह उपाख्यान धन तथा आयु बढ़ानेवाला है। पूर्वकालकी बात है, परशुरामजीने क्रोधमें भरकर इक्कीस बार इस भूमण्डलके क्षत्रियोंका संहार किया। इसके बाद सम्पूर्ण पृथ्वी जीतकर उन्होंने समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान किया। उस यज्ञकी सभी ब्राह्मणों और क्षत्रियोंने बहुत प्रशंसा की है। यद्यपि अश्वमेध यज्ञ सब प्राणियोंको पवित्र करनेवाला तथा तेज और कान्तिको बढ़ानेवाला है तो भी तेजस्वी परशुरामजी उसके फलसे अपनेको पापमुक्त न कर सके। इससे उन्होंने अपनेको बहुत तुच्छ समझा और प्रचुर दक्षिणासे सम्पन्न उस महान् यज्ञका अनुष्ठान पूर्ण करके अनेकों शास्त्रज्ञ ऋषियों और देवताओंके पास जाकर पूछा—'महानुभावो! कठोर कर्म करनेवाले मनुष्योंको पवित्र करनेके लिये जो सर्वोत्तम साधन हो, वह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।' परशुरामजीने जब दयासे द्रवित होकर इस प्रकार प्रश्न किया तो वेद-शास्त्रके जाननेवाले महर्षियोंने कहा—'राम! तुम वेदोंके प्रमाणपर विचार करके ब्राह्मणोंका सत्कार करो और उन ब्रह्मर्षियोंसे ही अपनेको पवित्र करनेवाला साधन पूछो। वे जो कुछ बतावें उसीका प्रसन्नतापूर्वक पालन करो।'

तब महातेजस्वी परशुरामजीने वसिष्ठ, नारद, अगस्त्य और कश्यपजीके पास जाकर पूछा—'विप्रवरो! मैं पवित्र होना चाहता हूँ, बताइये, किस उपायसे पवित्र हो सकता हूँ? इसके लिये मैं किस कर्मका अनुष्ठान करूँ? अथवा कौन-सा दान दूँ? यदि आपलोग मुझपर कृपा करना चाहते हों तो बतलाइये, मुझे पवित्र करनेवाला साधन क्या है?'



ऋषियोंने कहा—भृगुनन्दन! हमने सुना है कि पाप करनेवाला मनुष्य पृथ्वी, गाय और धन दान करनेसे पवित्र हो जाता है। इसके सिवा, एक और दान सुनो, जो सबसे बढ़कर पावन है। वह है सुवर्णका दान। सुवर्णका आकार बड़ा दिव्य और अद्भुत होता है। उसकी उत्पत्ति अग्निसे हुई है। सुना जाता है, पूर्वकालमें अग्निने सम्पूर्ण लोकोंको भस्म करके अपने वीर्यसे सुवर्णको उत्पन्न किया था। उसीका दान करनेसे तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। सारे जगत्का मन्थन करके जो तेजकी राशि प्रकट हुई है, वही सुवर्ण है; अतः यह सब रत्नोंसे उत्तम है। इसीलिये देवता, गन्धर्व, नाग, राक्षस, मनुष्य और पिशाच—ये सब प्रयत्नपूर्वक सुवर्ण धारण करते हैं। जगत्में जितनी पवित्र वस्तुएँ हैं, सुवर्ण उन सबसे अधिक पवित्र माना गया है। वह भूमि, गौ तथा सम्पूर्ण रत्नोंसे भी उत्तम है। पृथ्वी, गौ तथा और जो कुछ भी दान किया जाता है, उन सबसे बढ़कर सुवर्णका दान है। सुवर्ण अक्षय तथा पावन द्रव्य है, तुम उत्तम ब्राह्मणोंको सुवर्णका ही दान करो; यही पवित्रताका उत्तम साधन है। सब प्रकारकी दक्षिणाओंमें सुवर्ण देनेका विधान है। जो सुवर्णका दान करते हैं, वे सब कुछ दान करनेवाले माने जाते हैं। सुवर्ण देनेवाले मानो देवताका दान करते हैं, क्योंकि अग्नि

सम्पूर्ण देवताओंके स्वरूप हैं और सुवर्ण अग्निमय है। अतः जिसने सुवर्णका दान किया उसने सम्पूर्ण देवताओंका ही दान कर दिया। इसीलिये विद्वान् पुरुष सुवर्णदानसे बढ़कर और कोई दान नहीं मानते। सुवर्णदाता जब परम गतिको प्राप्त होता है, उस समय उसे ज्योतिर्मय लोक मिलते हैं तथा स्वर्गलोकमें उसका कुबेरके पदपर अभिषेक किया जाता है। जो सूर्योदयके समय विधिपूर्वक मन्त्र पढ़कर सुवर्णका दान करता है, वह अपने पाप और दुःस्वप्नको नष्ट कर डालता है। जो मध्याह्न कालमें सोना दान करता है, उसके भविष्यके पापोंका नाश हो जाता है। जो व्रतका पालन करते हुए सायंकालमें सुवर्ण दान देता है, वह ब्रह्मा, वायु, अग्नि और चन्द्रमाके लोकमें जाता है तथा इन्द्र आदिके लोकोंमें भी उसे सम्मान प्राप्त होता है। साथ ही वह इस लोकमें यशस्वी एवं पापरहित होकर आनन्दका उपभोग करता है। मृत्युके पश्चात् जब वह परलोकमें जाता है तो वहाँ अनुपम पुण्यात्मा समझा जाता है, कहीं भी उसकी गतिका प्रतिरोध नहीं होता और वह इच्छानुसार जहाँ चाहता है, विचरता रहता है। सुवर्ण अक्षय द्रव्य है, उसका दान करनेवाले मनुष्यको पुण्यलोकोंसे नीचे नहीं आना पड़ता, संसारमें उसके महान् यशका विस्तार होता है तथा वह अनेकों समृद्धिशाली लोकोंको प्राप्त करता है। जो मनुष्य सूर्योदयके समय आग जलाकर किसी व्रतके उद्देश्यसे सुवर्णदान करता है; उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण होती हैं। परशुरामजी ! इस प्रकार तुम्हें सुवर्णदानसे होनेवाले लाभ बतलाये गये; अतः अब तुम ब्राह्मणोंको सुवर्ण-दान करो।

भीष्मजी कहते हैं—प्रतापी परशुरामजीने वसिष्ठ आदि मुनियोंके इस प्रकार कहनेपर ब्राह्मणोंको सुवर्णका दान दिया; इससे वे सब पापोंसे छुटकारा पा गये। युधिष्ठिर ! सुवर्णकी उत्पत्ति और उसके दानका माहात्म्य सब तुमको सुना दिया। अब तुम भी ब्राह्मणोंको बहुत-सा सोना दान करो। इससे तुम्हें पापोंसे छुटकारा मिल जायगा।



भिन्न-भिन्न तिथियों और नक्षत्रोंमें श्राद्ध करनेका तथा उसमें तिल आदि देनेका फल

युधिष्ठिरने कहा—धर्मात्मन् ! अब आप मुझे श्राद्धकी पूरी-पूरी विधि बताइये।

भीष्मजीने कहा—राजन् ! तुम श्राद्धकर्मकी उत्तम विधिको ध्यान देकर सुनो; पितृयज्ञ (श्राद्ध) धन, यश तथा पुत्रकी प्राप्ति करानेवाला है। देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, पिशाच तथा किन्नरोंको भी सदा पितरोंकी पूजा करनी चाहिये। सभी दिनोंमें श्राद्ध करनेसे पितरोंको प्रसन्नता होती है। अब मैं तुम्हें तिथियोंके गुण-अवगुण बतला रहा हूँ। (कृष्णपक्षकी) प्रतिपदा तिथिको पितरोंकी पूजा करनेपर बहुत-सी सुन्दर और सुयोग्य संतानोंको जन्म देनेवाली रूपवती स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं। द्वितीयाको श्राद्ध करनेसे घरमें कन्याएँ पैदा होती हैं। तृतीयाको श्राद्ध करनेसे घोड़े मिलते हैं। चतुर्थीको श्राद्ध करनेसे बहुतेरे छोटे-छोटे पशु घरमें आते हैं। पंचमीको श्राद्ध करनेवाले पुरुषोंके यहाँ बहुत-से पुत्र उत्पन्न होते हैं। षष्ठीको श्राद्ध करनेसे सौन्दर्यकी वृद्धि होती है। सप्तमीको श्राद्ध करनेवाले मनुष्यकी खेती अच्छी होती है। अष्टमीको श्राद्ध करनेसे व्यापारमें लाभ होता है। नवमीके श्राद्धसे एक खुरवाले पशु (घोड़े-खच्चर आदि) की वृद्धि होती है। दशमीको श्राद्ध करनेवाले पुरुषकी गौएँ बढ़ती हैं। एकादशीको श्राद्ध करनेसे बर्तन और कपड़े मिलते हैं तथा घरमें ब्रह्मतेजसे सम्पन्न पुत्रोंका जन्म होता है। द्वादशीको श्राद्ध करनेवाले मनुष्यके यहाँ सदा सोने-चाँदी और अधिक धनकी वृद्धि होती देखी जाती है। त्रयोदशीको श्राद्ध करनेवाला पुरुष अपने जाति-बन्धुओंमें सम्मानित होता है। किंतु जो चतुर्दशीको श्राद्ध करता है, उसके घरवाले मनुष्य जवानीमें ही मर जाते हैं और श्राद्धकर्ताको भी शीघ्र ही लड़ाईमें जाना पड़ता है। अमावास्यामें श्राद्ध करनेसे मनुष्यकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। कृष्णपक्षमें चतुर्दशीके सिवा, दशमीसे लेकर अमावास्यातककी सभी तिथियाँ श्राद्धके लिये उत्तम मानी गयी हैं; अन्य तिथियाँ इनके समान नहीं हैं। श्राद्धके लिये जैसे शुक्लपक्षकी अपेक्षा कृष्णपक्ष श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार पूर्वाह्नकी अपेक्षा अपराह्नकाल श्रेष्ठ माना गया है।

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! पितरोंको दान की हुई कौन-सी वस्तु अक्षय होती है ? कौन-सा हविष्य उन्हें अधिक कालतक तृप्त रखता है और कौन-सा अनन्त कालतक ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! श्राद्धके तत्त्वको जाननेवाले विद्वानोंने श्राद्धकल्पमें जिन-जिन वस्तुओंको हविष्यके रूपमें ग्राह्य और कामनापूर्तिका साधक माना है, उन्हें बता रहा हूँ, साथ ही उनके उपयोगका जो फल है उसका भी वर्णन करता हूँ, सुनो—तिल, चावल, जौ, उड़द, जल और फल-मूल देनेसे पितरोंको एक मासतक तृप्ति बनी रहती है। मनुजीका वचन है कि 'जिस श्राद्धमें तिलोंका अधिक उपयोग किया जाता है, वह अक्षय होता है।' अतः श्राद्धके समय दिये

जानेवाले भोजनके पदार्थोंमें तिलोंको ही प्रधानता दी गयी है। घृतमिश्रित खीर देनेसे एक वर्षतक पितर तृप्त रहते हैं। पितर कहते हैं—'क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा पुरुष उत्पन्न होगा, जो दक्षिणायनमें त्रयोदशी तिथि और मघा-नक्षत्रका योग होनेपर हमें घृतयुक्त खीरका पिण्डदान करे ? बहुत-से पुत्र उत्पन्न होनेकी अभिलाषा करनी चाहिये; क्योंकि उनमेंसे एक भी तो गयातीर्थमें, जहाँ श्राद्धके फलको अक्षय करनेवाला अक्षयवट नामक लोकविख्यात वट विद्यमान है, जाकर हमारे लिये श्राद्ध करेगा।' पिताकी मृत्युतिथिको जल, मूल, फल और अन्न आदि जो कुछ दिया जाता है, वह सब मधु मिलाकर देनेसे पितरोंको अनन्त कालतक तृप्ति रहती है।

अब, यमराजने राजा शशविन्दुके प्रति भिन्न-भिन्न नक्षत्रोंमें किये जानेवाले जिन सकाम श्राद्धोंका वर्णन किया है, उनको बता रहा हूँ सुनो—'जो मनुष्य सदा कृत्तिका नक्षत्रके योगमें श्राद्ध करता है, वह पुत्रवान् होकर अग्निस्थापनपूर्वक नित्ययज्ञ करनेमें समर्थ होता है तथा उसके शोक-संताप दूर हो जाते हैं। पुत्रकी कामनावाले मनुष्यको रोहिणी नक्षत्रमें और तेजकी इच्छा रखनेवालेको मृगशिरामें श्राद्ध करना चाहिये। आर्द्रामें श्राद्ध करनेवाले मनुष्यकी क्रूर कर्ममें प्रवृत्ति होती है। पुनर्वसुमें श्राद्ध करनेसे धनकी इच्छा बढ़ती है। जो अपने शरीरकी पुष्टि चाहता हो, उसे पुष्य नक्षत्रमें श्राद्ध करना चाहिये। आश्लेषामें श्राद्ध करनेसे धीर स्वभाववाले पुत्रोंका जन्म होता है। मघामें श्राद्ध करनेवालोंको भाई-बन्धुओंमें सम्मान प्राप्त होता है। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें श्राद्धका दान करनेसे सौभाग्यकी वृद्धि और उत्तराफाल्गुनीमें करनेसे संतानकी प्राप्ति होती है। जो हस्त नक्षत्रमें श्राद्धका अनुष्ठान करता है वह अभीष्ट फलका भागी होता है। चित्रामें श्राद्ध करनेवालेको रूपवान् पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। स्वाती नक्षत्रमें पितरोंकी पूजा करनेसे व्यापारमें उन्नति होती है। पुत्रकी इच्छावाला मनुष्य यदि विशाखामें श्राद्ध करे तो उसे अनेकों पुत्र प्राप्त होते हैं। अनुराधामें श्राद्ध करनेवाला पुरुष राजाओंपर शासन करता है। यदि समृद्धिशाली पुरुष इन्द्रियसंयमपूर्वक ज्येष्ठामें श्राद्ध करता है तो उसे आधिपत्य (ऐश्वर्य) प्राप्त होता है। मूलमें श्राद्ध करनेसे आरोग्य और पूर्वाषाढ़में यश मिलता है। उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे मनुष्य शोकरहित होकर पृथ्वीपर विचरण करता है, अभिजित् नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवाला वैद्य वैद्यकशास्त्रमें सफलता प्राप्त करता है। श्रवणमें श्राद्ध करनेसे सद्गति मिलती है। धनिष्ठामें श्राद्ध करनेवाला राज्यका भागी होता है। यदि वैद्य शतभिषा नक्षत्रमें श्राद्ध करे तो उसे अपने कार्यमें सफलता प्राप्त होती है। पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवालेको बहुत-से बकरे और भेड़े मिलते हैं। उत्तराभाद्रपदामें श्राद्ध करनेसे सहस्रों गौएँ प्राप्त होती हैं। श्राद्धमें रेवती नक्षत्रका आश्रय लेनेवालेको नाना प्रकारके धातुओंका लाभ होता है। अश्विनी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे घोड़े मिलते हैं और भरणीमें श्राद्ध करनेसे उत्तम आयु प्राप्त होती है।' राजा शशविन्दुने श्राद्धकी यह विधि सुनकर इसीके अनुसार श्राद्ध किया। उसके प्रभावसे वे सम्पूर्ण पृथ्वीको अनायास ही जीतकर उसका शासन करने लगे।



श्राद्धमें ब्राह्मणोंकी परीक्षा—पंक्तिदूषक और पंक्तिपावन ब्राह्मणोंका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! श्राद्धका दान कैसे ब्राह्मणोंको देना चाहिये ? आप इसका स्पष्ट वर्णन कीजिये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! दान-धर्मके ज्ञाता क्षत्रियको देवसम्बन्धी कर्म (यज्ञ-यागादि) में ब्राह्मणकी परीक्षा नहीं करनी चाहिये, किंतु पितृ-कर्म (श्राद्ध) में उनकी परीक्षा न्यायसंगत मानी गयी है। विद्वान् पुरुष श्राद्धके समय कुल, शील, अवस्था, रूप, विद्या और पूर्वजोंके निवासस्थान आदिके द्वारा ब्राह्मणकी अवश्य परीक्षा करे। ब्राह्मणोंमें कुछ तो पंक्तिदूषक होते हैं और कुछ पंक्तिपावन। पहले पंक्तिदूषक ब्राह्मणोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। जुवारी, गर्भहत्यारा, राजयक्ष्माका रोगी, ग्वालेका काम करनेवाला, अपढ़, गाँवभरका हरकारा, सूदखोर, गवैया, सब तरहकी चीजें बेचनेवाला, दूसरोंका घर फूँकनेवाला, विष देनेवाला, जारज मनुष्यके घरका अन्न खानेवाला, सोमरसका विक्रय करनेवाला, सामुद्रिक विद्या (हस्त-रेखा) से जीविका चलानेवाला, राजाका नौकर, तेल बेचनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला, पितासे झगड़ा करनेवाला, जिसके घरमें जार पुरुषका प्रवेश हो वह, कलंकित, चोर, शिल्पजीवी, बहुरूपिया, चुगलखोर, मित्रद्रोही, परस्त्री-लम्पट, शूद्रोंका अध्यापक, हथियार बनाकर जीविका चलानेवाला, कुत्ते साथ लेकर घूमनेवाला, जिसे कुत्तेने काटा हो वह, जिसके छोटे भाईका विवाह हो गया हो ऐसा अविवाहित पुरुष, चर्मरोगी, गुरुस्त्रीगामी, नटका काम करनेवाला, मन्दिरकी पूजासे जीविका चलानेवाला, नक्षत्रोंका फल बताकर जीनेवाला (ज्योतिषी)—ये सभी ब्राह्मण पंक्तिसे बाहर रखने योग्य हैं। ब्रह्मवादी पुरुषोंका कहना है कि उपर्युक्त प्रकारके लोगोंको

श्राद्धमें जो अन्न भोजन कराया जाता है, वह राक्षसोंको प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण श्राद्धका अन्न भोजन करके फिर उस दिन वेद पढ़ता है तथा जो शूद्रा स्त्रीसे समागम करता है, उसके पितर उस दिनसे लेकर एक महीनेतक उसीकी विष्ठामें पड़े रहते हैं। सोमरस बेचनेवालेको दिया हुआ श्राद्धका अन्न विष्ठाके समान और वैद्यको जिमाया हुआ श्राद्धान्न रक्त एवं पीबके समान समझा जाता है। मन्दिरके पुजारीको दिया हुआ अन्न नष्ट हो जाता है। सूदखोरको दिया हुआ दान स्थिर नहीं रहता और व्यापार करनेवाले ब्राह्मणको जो कुछ दिया जाता है वह न तो इस लोकमें काम आता है न परलोकमें। जो दूसरी बार ब्याही हुई स्त्रीके पेटसे पैदा हुआ हो ऐसे ब्राह्मणको दिया हुआ हव्य और कव्य राखमें हवन करनेके समान निष्फल होता है। जो लोग धर्महीन और दुराचारी ब्राह्मणोंको हव्य-कव्य अर्पण करते हैं, उनका वह दान परलोकमें कोई फल नहीं देता। जो मूर्ख जान-बूझकर ऐसे लोगोंको श्राद्धका दान देते हैं उनके पितर परलोकमें विष्ठाका भोजन करते हैं। ऊपर बताये हुए इन अधम ब्राह्मणोंको अपांक्तेय (पंक्तिदूषक) समझना चाहिये। जो मन्दबुद्धि ब्राह्मण शूद्रोंको उपदेश देते हैं, उनको भी इसी कोटिमें समझना चाहिये। यदि श्राद्धभोजी ब्राह्मणोंकी पंक्तिमें कोई काना बैठा हो तो वह उस पंक्तिके साठ ब्राह्मणोंको दूषित करता है। इसी तरह नपुंसक सौ ब्राह्मणोंको और कोढ़ी जितने लोगोंपर दृष्टि डालता है, उन सबको अपवित्र कर देता है। सिरपर पगड़ी रखकर, दक्षिणाभिमुख होकर तथा जूते पहनकर खानेवाले ब्राह्मण श्राद्धका जितना अन्न भोजन करते हैं, वह सब असुरोंका भाग समझना चाहिये। जो ईर्ष्या और अश्रद्धापूर्वक श्राद्धका दान करता है वह सब ब्रह्माजीने असुरराज बलिका भाग निश्चित कर दिया। कुत्ते और पंक्तिदूषक ब्राह्मण किसी तरह श्राद्धपर दृष्टि न डालने पावें, इसके लिये चारों ओरसे घिरे हुए स्थानमें श्राद्ध-दानकी व्यवस्था करनी चाहिये और सब ओर रक्षाके उद्देश्यसे तिल छींटने चाहिये। तिलोंके बिना और क्रोधके वशमें होकर जो श्राद्ध किया जाता है, उसके हविष्यको यातुधान और पिशाच नष्ट कर डालते हैं। पंक्तिदूषक ब्राह्मण पंक्तिमें बैठकर भोजन करते हुए जितने ब्राह्मणको देख लेता है उतने ब्राह्मणोंके भोजनसे मिलनेवाले फलसे वह दाताको वञ्चित कर देता है।

भरतश्रेष्ठ ! अब मैं तुम्हें पंक्तिपावन ब्राह्मणोंका परिचय देता हूँ। जो ब्राह्मण विद्या और वेदव्रतमें निष्णात होकर सदाचारपरायण रहते हैं, वे सबको पवित्र करनेवाले हैं। मैं उन्हींको पंक्तिमें बिठाने योग्य मानता हूँ। उन सबको पंक्तिपावन समझना चाहिये। जो त्रिणाचिकेत मन्त्रका अध्ययन करनेवाले, गार्हपत्य आदि पाँच अग्नियोंके उपासक, त्रिसुपर्णमन्त्रोंके ज्ञाता, षडङ्गोंके विद्वान्, ब्रह्मवेत्ताओंके वंशमें उत्पन्न, सामवेदके ज्ञाता, ज्येष्ठ सामका गान करनेवाले और माता-पिताकी आज्ञामें रहनेवाले हैं, जिनके यहाँ दस पीढ़ियोंसे वेदाध्ययनकी परम्परा चली आती है तथा जो ऋतुकालमें अपनी ही स्त्रीके साथ समागम करते हैं, ऐसे वेदविद्या और व्रतमें प्रवीण ब्राह्मण पंक्तिको पवित्र करनेवाले समझे जाते हैं। अथर्ववेदके ज्ञाता, ब्रह्मचारी, नियमपूर्वक व्रतका पालन करनेवाले, सत्यवादी, धर्मात्मा तथा अपने कर्तव्यमें तत्पर रहनेवाले पुरुष भी पंक्तिपावन हैं। जिन्होंने पुण्यतीर्थोंमें गोते लगानेके लिये परिश्रम किया है, वेदमन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक अनेकों यज्ञोंका अनुष्ठान करके अवभृथ-स्नान किया है; जो क्रोधरहित, गम्भीर, क्षमाशील, मनको वशमें रखनेवाले, जितेन्द्रिय और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें लगे रहनेवाले हैं, उन्हीं ब्राह्मणोंको श्राद्धमें निमन्त्रित करना चाहिये; क्योंकि ये पंक्तिपावन हैं और उन्हें दिया हुआ दान अक्षय होता है। इनके सिवा जो मोक्षधर्मको जाननेवाले यति और उत्तम प्रकारसे व्रतका पालन करनेवाले योगी हैं, जो शुद्धचित्त होकर उत्तम ब्राह्मणोंको इतिहास सुनाते हैं, जो महाभाष्य और व्याकरणके विद्वान् हैं तथा जो पुराण और धर्मशास्त्रोंका न्यायपूर्वक अध्ययन करके उनकी आज्ञाके अनुसार विधिवत् आचरण करनेवाले हैं, जिन्होंने नियमित समयतक गुरुकुलमें निवास करके वेदाध्ययन किया है, जो परीक्षाके सहस्रों अवसरोंपर सत्यवादी सिद्ध हुए हैं तथा जो चारों वेदोंके पढ़ने-पढ़ानेमें अग्रगण्य हैं, ऐसे ब्राह्मण पंक्तिको जितनी दूर देखते हैं उतनी दूरमें बैठे हुए ब्राह्मणोंको पवित्र कर देते हैं। पंक्तिको पवित्र करनेके कारण ही उन्हें पंक्तिपावन कहा जाता है। ब्रह्मवादी कहते हैं कि वेदकी शिक्षा देनेवाले एवं ब्रह्मज्ञानी पुरुषोंके वंशमें उत्पन्न हुआ ब्राह्मण अकेला ही साढ़े तीन कोसतकका स्थान पवित्र कर सकता है, इसलिये सब प्रकारकी चेष्टाओंसे ब्राह्मणोंकी परीक्षा करके ही उन्हें श्राद्धमें निमन्त्रित करना चाहिये। जिसके द्वारा किये हुए श्राद्धके भोजनमें मित्रोंकी प्रधानता रहती है, उसके उस श्राद्धसे पितरोंको तृप्ति नहीं होती तथा जो मनुष्य श्राद्धमें भोजन देकर दूसरोंसे मित्रता जोड़ता है, वह मृत्युके बाद देवयानमार्गसे नहीं जाने पाता। जैसे पीपलका फल डंठलसे टूटकर नीचे गिर जाता है वैसे ही श्राद्धको मित्रताका साधन बनानेवाला पुरुष स्वर्गलोकसे भ्रष्ट हो जाता है; इसलिये श्राद्धकर्ताको चाहिये कि वह श्राद्धमें मित्रोंको निमन्त्रण न दे। मित्रोंको संतुष्ट करनेके लिये धन देना

उचित है। श्राद्ध और यज्ञमें भोजन तो उसे ही कराना चाहिये जो शत्रु या मित्र न होकर मध्यस्थ हो। जैसे ऊसरमें बोया हुआ बीज न तो जमता है और न बोनेवालेको उसका कोई फल ही मिलता है, उसी प्रकार अयोग्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया हुआ श्राद्धका अन्न न इस लोकमें लाभ पहुँचाता है, न परलोकमें कोई फल देता है। जैसे घास-फूसकी आग शीघ्र ही शान्त हो जाती है, उसी प्रकार स्वाध्यायहीन ब्राह्मण तेजहीन होता है, अतः उसे श्राद्धका दान नहीं देना चाहिये; क्योंकि राखमें कोई भी हवन नहीं करता। जो लोग एक दूसरेके यहाँ श्राद्धमें भोजन करके परस्पर दक्षिणा देते और लेते हैं, उनकी वह दान-दक्षिणा पिशाचदक्षिणा कहलाती है। वह न देवताओंको मिलती है, न पितरोंको। जिसका बछड़ा मर गया है ऐसी पुण्यहीना गौ जैसे दुःखी होकर गोशालामें ही चक्कर लगाती रहती है, उसी प्रकार आपसमें दी और ली हुई दक्षिणा इसी लोकमें रह जाती है, वह पितरोंतक नहीं पहुँचने पाती। जैसे आग बुझ जानेपर जो घृतका हवन किया जाता है उसे न देवता पाते हैं न पितर; उसी प्रकार नाचनेवाले, गवैये और झूठ बोलनेवाले अपात्र ब्राह्मणको दिया हुआ दान निष्फल होता है। अपात्र पुरुषको दी हुई दक्षिणा न दाताको तृप्त करती है न दान लेनेवालेको; प्रत्युत दोनोंका ही नाश करती है। यही नहीं, वह विनाशकारिणी निन्दित दक्षिणा दाताके पितरोंको देवयान-मार्गसे नीचे गिरा देती है। युधिष्ठिर! जो सदा ऋषियोंके बताये हुए धर्ममार्गपर चलते हैं, जिनकी बुद्धि एक निश्चयपर पहुँची हुई है तथा जो सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता हैं, उन्हींको देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। ऋषि-मुनियोंमें कोई स्वाध्यायनिष्ठ, कोई ज्ञाननिष्ठ, कोई तपोनिष्ठ और कोई कर्मनिष्ठ होते हैं। उनमें ज्ञाननिष्ठ महर्षियोंको ही श्राद्धका अन्न जिमाना चाहिये। जो लोग ब्राह्मणोंकी निन्दा नहीं करते, वे ही श्रेष्ठ मनुष्य हैं। जो बात-चीतमें ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हैं, उन्हें श्राद्धमें भोजन नहीं कराना चाहिये। मैंने वानप्रस्थ ऋषियोंका यह वचन सुना है कि 'ब्राह्मणोंकी निन्दा होनेपर वे निन्दा करनेवालेकी तीन पीढ़ियोंका नाश कर डालते हैं।' वेदवेत्ता ब्राह्मणोंकी दूरसे ही परीक्षा करनी चाहिये। वेदज्ञ पुरुष अपना प्रिय हो या अप्रिय इसका विचार न करके उसे श्राद्धमें भोजन कराना चाहिये। जो दस लाख अपात्र ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसके यहाँ उन सबके बदले एक ही सदा संतुष्ट रहनेवाला वेदज्ञ ब्राह्मण भोजन करनेका अधिकारी है (अर्थात् लाखों मूर्खोंकी अपेक्षा एक सत्पात्र ब्राह्मणको भोजन कराना उत्तम है)।



श्राद्धके विषयमें महर्षि निमिको अत्रिका उपदेश तथा अन्य ज्ञातव्य बातें

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! श्राद्ध कब प्रचलित हुआ? सबसे पहले किस महर्षिने इसका प्रचार किया? यदि भृगु और अङ्गिराके समयमें इसका प्रारम्भ हुआ हो तो किस मुनिने इसको प्रकट किया? श्राद्धमें कौन-कौन-से कर्म, कौन-कौन फल-मूल और कौन-कौन-से अन्न त्याग देने योग्य हैं?

भीष्मजीने कहा—राजन्! श्राद्धका जिस समय और जिस प्रकार प्रचलन हुआ, जो इसका स्वरूप है तथा सबसे पहले जिसने इसका प्रचार किया, वह सब तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो। प्राचीनकालमें ब्रह्माजीसे महर्षि अत्रिकी उत्पत्ति हुई। वे बड़े प्रतापी ऋषि थे। उनके वंशमें भगवान् दत्तात्रेयजीका प्रादुर्भाव हुआ। दत्तात्रेयके पुत्र निमि हुए, जो बड़े तपस्वी थे। निमिके भी एक पुत्र हुआ जिसका नाम था श्रीमान्! वह बड़ा सुन्दर था। उसने एक हजार वर्षोंतक बड़ी कठोर तपस्या करके अन्तमें काल-धर्मके अधीन होकर प्राण त्याग दिया। महर्षि निमिको पुत्रशोकके कारण बड़ा संताप हुआ तो भी उन्होंने शास्त्रविधिके अनुसार अशौच-निवारणकी सारी क्रियाएँ कीं। फिर चतुर्दशीके दिन श्राद्धमें देने योग्य सब वस्तुएँ एकत्रित करके रात बीतनेपर (अमावास्याको श्राद्ध करनेके लिये) वे बड़े सबेरे उठे। प्रातःकाल जागनेपर उनका मन पुत्रशोकसे व्यथित होता रहा, किंतु उनकी बुद्धि बड़ी विस्तृत थी, उसके द्वारा उन्होंने मनको शोककी ओरसे हटाया और एकाग्रचित्त होकर श्राद्धविधिका विचार किया। फिर श्राद्धके लिये शास्त्रोंमें जो फल-मूल और अन्न आदि भोज्यपदार्थ बताये गये हैं तथा उनमेंसे जो-जो पदार्थ उनके पुत्रको प्रिय थे—उन सबका विचार करके उन्होंने संग्रह किया। तदनन्तर, उन बुद्धिमान् मुनिने अमावास्याके दिन सात ब्राह्मणोंको बुलाकर उनकी पूजा की और प्रदक्षिणा करके उन्हें कुशके आसनपर बिठाया। फिर उन सातोंको एक ही साथ भोजनके लिये अलोना सावाँ परोसा। इसके बाद भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंके पैरोंके नीचे आसनोंपर उन्होंने दक्षिणाग्र कुश बिछा दिये और अपने सामने भी दक्षिणाग्र कुश रखकर पवित्र एवं सावधान हो अपने पुत्र श्रीमान्‌के नाम और गोत्रका उच्चारण करते हुए कुशोंपर पिण्डदान किया।

इस प्रकार श्राद्ध करनेके पश्चात् मुनिश्रेष्ठ निमिको बड़ा

पश्चात्ताप होने लगा (वेदमें पिता-पितामह आदिके उद्देश्यसे जिस श्राद्धका विधान है, उनको मैंने स्वेच्छासे पुत्रके निमित्त किया है—यह सोचकर) उन्होंने अपनेमें धर्म-संकरताका दोष माना। अतः मन-ही-मन बहुत संतप्त होकर वे सोचने लगे—'अहो ! मुनियोंने जो कार्य पहले कभी नहीं किया, उसे मैंने ही क्यों कर डाला ? मेरे इस मनमाने बर्तावको देखकर ब्राह्मणलोग मुझे अपने शापसे अवश्य भस्म कर डालेंगे।' यह बात ध्यानमें आते ही उन्होंने अपने वंश-प्रवर्तक महर्षि अत्रिका स्मरण किया। निमिके ध्यान करते ही तपोधन अत्रि वहाँ आ पहुँचे। आनेपर जब उन्होंने निमिको पुत्रशोकसे दुःखी देखा तो मधुर वाणीके द्वारा उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—'बेटा ! तुमने जो यह पितृ-यज्ञ (श्राद्ध) किया है, इससे डरो मत। सबसे पहले स्वयं ब्रह्माजीने इस धर्मका ज्ञान प्राप्त किया है और वे ही इसके प्रवर्तक भी हैं। उन्हींके द्वारा विहित धर्मका तुमने अनुष्ठान किया है। ब्रह्माजीके सिवा दूसरा कौन श्राद्ध-विधिका उपदेश कर सकता है ? अब मैं तुमसे स्वयम्भूकी बतायी हुई श्राद्धकी उत्तम विधिका वर्णन करता हूँ, इसे सुनो और सुनकर इसी विधिके अनुसार श्राद्धका अनुष्ठान करो। पहले वेद-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक अग्निकरणकी क्रिया पूरी करके फिर अग्नि, सोम, वरुण और पितरोंके साथ रहनेवाले विश्वेदेवोंको उनका भाग अर्पण करे। साक्षात् ब्रह्माजीने इनके भागोंकी कल्पना की है। तदनन्तर, श्राद्धकी आधारभूता पृथ्वीकी वैष्णवी, काश्यपी और अक्षया आदि नामोंसे स्तुति करनी चाहिये। श्राद्धके लिये जल लाते समय भगवान् वरुणका स्तवन करके अग्नि और सोमको भी तृप्त करना चाहिये। ब्रह्माजीके उत्पन्न किये हुए कुछ देवता ही पितरोंके नामसे प्रसिद्ध हैं; उन्हें 'उष्णप' भी कहते हैं। स्वयम्भूने श्राद्धमें उन्हींका भाग निश्चित किया है। श्राद्धके द्वारा उनकी पूजा करनेसे श्राद्धकर्ताके पिता-पितामह आदि पितरोंका नरकसे उद्धार हो जाता है। ब्रह्माजीने पूर्वकालमें जिन अग्निष्वात्त आदि पितरोंको श्राद्धका अधिकारी बताया है, उनकी संख्या सात है। विश्वेदेवोंकी चर्चा तो मैंने पहले ही की है, उन सबका मुख अग्नि है। वे सभी लोग यज्ञमें भाग प्राप्त करनेके अधिकारी हैं, उनके नाम ये हैं—बल, धृति, विपाप्मा, पुण्यकृत्, पावन, पार्ष्णिक्षेमा, समूह, दिव्यसानु, विवस्वान्, वीर्यवान्, ह्रीमान्, कीर्तिमान्, कृत, जितात्मा, मुनिवीर्य, दीप्तरोमा, भयंकर, अनुकर्मा, प्रतीत, प्रदाता, अंशुमान्, शैलाभ, परमक्रोधी, धीरोष्णी, भूपति, स्रज, वज्री, वरी, विद्युद्वर्चा, सोमवर्चा, सूर्यश्री, सोमप, सूर्य, सावित्र, दत्तात्मा, पुण्डरीयक, उष्णीनाभ, नभोद, विश्वायु, दीप्ति, चमूहर, सुरेश, व्योमारि, शंकर, भव, ईश, कर्ता, कृति, दक्ष, भुवन, दिव्यकर्मकृत, गणित, पंचवीर्य, आदित्य, रश्मिवान्, सप्तकृत्, विश्वकृत्, कवि, अनुगोप्ता, सुगोप्ता, नप्ता और ईश्वर। इस प्रकार सनातन विश्वेदेवोंके नाम बतलाये गये।

'अब श्राद्धमें निषिद्ध वस्तुओंका वर्णन करता हूँ। अनाजमें कोदो और पुलक (पइया धान); हिङ्गुद्रव्य (छौंकनेके काम आनेवाले पदार्थों) में हींग, लहसुन और प्याज; शाकोंमें सहिंजन, कचनार, गाजर, कोंहड़ा, आँवला और लौकी आदि, काला नमक, काला जीरा, बिरियानमक, शीतपाकी (शाक), बाँस-करीर आदिके अङ्कुर और सिंघाड़ा—ये सब वस्तुएँ शास्त्रमें वर्जित हैं। सब प्रकारके नमक, जामुनके फल तथा छींक या आँसूसे दूषित हुए पदार्थ भी श्राद्धमें त्याग देने चाहिये। श्राद्ध और यज्ञमें सुदर्शन नामक शाक निन्दित माना गया है। उसके हविष्यसे देवता और पितर नहीं प्रसन्न होते। श्राद्ध आरम्भ करनेके समय उस स्थानसे चाण्डाल और श्वपचोंको हटा देना चाहिये, इसी तरह गेरुआ कपड़ा धारण करनेवाला मनुष्य, कोढ़ी, पतित, ब्रह्महत्यारा, वर्णसंकर ब्राह्मण तथा धर्मभ्रष्ट सम्बन्धी भी यदि श्राद्धभूमिके आसपास खड़ा हो तो उसे हटा देना चाहिये। पिण्डदानके समय इन सबको दूर कर देना ही उचित है।'

भीष्मजी कहते हैं—इस प्रकार अपने वंशज महर्षि निमिको श्राद्धका उपदेश देकर महातपस्वी अत्रि मुनि ब्रह्माजीकी दिव्य सभामें चले गये। धर्मराज ! इस प्रकार पहले निमिने श्राद्धका आरम्भ किया, उसके बाद सभी महर्षि उनकी देखा-देखी शास्त्रविधिके अनुसार पितृ-यज्ञका अनुष्ठान करने लगे। नियमपूर्वक व्रत धारण करनेवाले धर्मपरायण ऋषि पिण्डदान करनेके पश्चात् तीर्थके जलसे पितरोंका तर्पण भी करते थे। धीरे-धीरे चारों वर्णोंके लोग श्राद्धमें देवताओं और पितरोंको अन्न देने लगे। लगातार श्राद्धमें भोजन करते-करते देवता और पितर पूर्ण तृप्त हो गये। अब वे अन्न पचानेके प्रयत्नमें लगे। अजीर्णसे उन्हें विशेष कष्ट होने लगा। तब वे सोम देवताके पास जाकर बोले—'भगवन् ! हम निरन्तर श्राद्धका अन्न भोजन करनेके कारण अजीर्णसे पीड़ित हो रहे हैं। अब आप हमलोगोंका कल्याण कीजिये।' तब सोमने उनसे कहा— 'देवताओ ! यदि आपलोग कल्याण चाहते हैं तो ब्रह्माजीकी सभामें जाइये, वे ही आपलोगोंका कष्ट दूर करेंगे।' सोमकी बात सुनकर देवता और पितर मेरुके शिखरपर विराजमान ब्रह्माजीके पास गये और इस प्रकार कहने लगे—'भगवन् ! श्राद्धका अन्न खाते-खाते हमें अजीर्ण हो गया है, इससे हम बहुत कष्ट पा रहे हैं, आप कृपा करके हमलोगोंका कल्याण कीजिये।'

देवताओंकी बात सुनकर ब्रह्माजी बोले—'देवगण ! मेरे

निकट ये अग्निदेव विराजमान हैं। ये ही तुम्हारे कल्याणकी बात बतायेंगे।' अग्नि बोले—'देवताओ और पितरो ! अबसे श्राद्धमें हमलोग साथ ही भोजन किया करेंगे। मेरे साथ रहनेसे आपलोगोंका अजीर्ण दूर हो जायगा।' यह सुनकर उनकी चिन्ता मिट गयी; इसीलिये श्राद्धमें पहले अग्निका भाग दिया जाता है। अग्निमें हवन करनेके बाद जो पितरोंके निमित्त पिण्डदान दिया जाता है उसे ब्रह्मराक्षस नहीं दूषित करते। श्राद्धमें अग्निदेवको उपस्थित देखकर राक्षस वहाँसे भाग जाते हैं। सबसे पहले पिताको, उनके बाद पितामहको और उनके बाद प्रपितामहको पिण्ड देना चाहिये—यही श्राद्धकी विधि है। प्रत्येक पिण्ड देते समय एकाग्रचित्त होकर गायत्री-मन्त्रका जप तथा 'सोमाय पितृमते स्वाहा' का उच्चारण करना चाहिये। रजस्वला और कनकटी स्त्रीको श्राद्धभूमिमें न उपस्थित होने दे। दूसरे कुलकी स्त्रीको श्राद्धका भोजन तैयार करनेमें न लगावे। तर्पण करते समय पिता-पितामह आदिके नामका उच्चारण करे। किसी नदीके किनारे पहुँचनेपर पितरोंका पिण्डदान और तर्पण अवश्य करना चाहिये। पहले अपने कुलके पितरोंको जलसे तृप्त करके पश्चात् मित्रों और सम्बन्धियोंको जलाञ्जलि देनी चाहिये। चितकबरे बैलोंसे जुती हुई गाड़ीमें बैठकर नदी-पार करते समय बैलोंकी पूँछसे पितरोंका तर्पण करना चाहिये; क्योंकि पितर वैसे तर्पणकी अभिलाषा रखते हैं। इसी तरह नावसे नदी-पार करनेवालोंको भी पितरोंका तर्पण करना चाहिये। जो तर्पणके महत्त्वको जानते हैं वे नावमें बैठनेपर एकाग्रचित्त हो अवश्य ही पितरोंको जलदान करते हैं। कृष्णपक्षमें जब महीनेका आधा समय बीत जाय, उस दिन अर्थात् अमावास्या तिथिको अवश्य श्राद्ध करना चाहिये। पितरोंकी भक्तिसे मनुष्यको पुष्टि, आयु, वीर्य और लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। ब्रह्माजी, पुलस्त्य, वसिष्ठ, पुलह, अङ्गिरा, क्रतु और महर्षि कश्यप—ये सात ऋषि महान् योगेश्वर और पितर माने गये हैं। इस प्रकार यह शास्त्रकी उत्तम विधि बतायी गयी। मरे हुए मनुष्य अपने वंशजोंद्वारा पिण्डदान पाकर प्रेतत्वके कष्टसे छुटकारा पा जाते हैं। राजा युधिष्ठिर ! यह मैंने शास्त्रके अनुसार तुम्हें श्राद्धकी उत्पत्तिका प्रसंग सुनाया है।



उपवास और ब्रह्मचर्य आदिके लक्षण तथा प्रतिग्रहके दोष बतानेके लिये राजा वृषादर्भि और सप्तर्षियोंकी कथा

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! यदि व्रतधारी विप्र किसी ब्राह्मणकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसके घर श्राद्धका अन्न भोजन कर ले तो इसे आप कैसा मानते हैं ? (अपने व्रतका लोप करना उचित है या ब्राह्मणकी प्रार्थना ठुकराना ?)

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जो वेदोक्त व्रतका पालन नहीं करते, वे ब्राह्मणकी इच्छा-पूर्तिके लिये (अपने सामान्य नियमका त्याग करके) श्राद्धमें भोजन कर सकते हैं; किंतु जो वैदिक व्रतका पालन कर रहे हों, वे यदि किसीके अनुरोधसे श्राद्धका अन्न ग्रहण करते हैं तो उन्हें अपना व्रत भङ्ग करनेके दोषका भागी होना पड़ता है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! साधारण लोग जो उपवासको ही तप कहा करते हैं, उसके सम्बन्धमें आपकी क्या धारणा है ? मैं यह जानना चाहता हूँ कि वास्तवमें उपवास ही तप है या उसका और कोई स्वरूप है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जो लोग पंद्रह दिन या एक महीनेतक उपवास करके उसे तपस्या मानते हैं, वे व्यर्थ ही अपने शरीरको कष्ट देते हैं। वास्तवमें केवल उपवास करनेवाले न तपस्वी हैं, न धर्मज्ञ। त्यागका सम्पादन ही सबसे उत्तम तपस्या है। ब्राह्मणको सदा उपवासी (व्रत-परायण), ब्रह्मचारी, मुनि और वेदोंका स्वाध्यायी होना चाहिये। धर्मपालनकी इच्छासे ही उसको स्त्री आदि कुटुम्बका संग्रह करना चाहिये (विषय-भोगके लिये नहीं)। ब्राह्मणको उचित है कि वह सदा जाग्रत् रहे, मांस कभी न खाय, पवित्र भावसे वेदका पाठ करे, सदा सत्य भाषण करे और इन्द्रियोंको संयममें रखे। उसको सदा अमृताशी, विघसाशी और अतिथिप्रिय होना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! ब्राह्मण सदा उपवासी, ब्रह्मचारी, विघसाशी और अतिथिप्रिय कैसे हो सकता है ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! जो मनुष्य केवल प्रातःकाल और सायंकालमें ही भोजन करता है, बीचमें कुछ नहीं खाता उसे सदा उपवासी समझना चाहिये। जो केवल ऋतुकालमें धर्मपत्नीके साथ सहवास करता है, वह ब्रह्मचारी ही माना जाता है। सदा दान देनेवाला पुरुष सत्यवादी ही समझने योग्य है। जो दिन में नहीं सोता, वह सदा जाग्रत् रहनेवाला कहलाता है। जो सदा भृत्यों[1] और अतिथियोंके भोजन कर

१. माता, पिता, स्त्री-बालक आदि कुटुम्बके सभी प्राणी भृत्य (भरण-पोषणके योग्य) कहलाते हैं।

लेनेके बाद ही स्वयं भोजन करता है, वह केवल अमृत भक्षण करनेवाला (अमृताशी) है। जबतक ब्राह्मण न भोजन कर लें तबतक जो अन्न ग्रहण नहीं करता, वह मनुष्य अपने उस व्रतके द्वारा स्वर्गलोकपर विजय पाता है। जो देवताओं, पितरों और आश्रितोंको भोजन करानेके बाद बचे हुए अन्नको ही स्वयं भोजन करता है, उसे विघसाशी कहते हैं। उन मनुष्योंको ब्रह्मधाममें अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होती है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! मनुष्य ब्राह्मणोंको नाना प्रकारकी वस्तुएँ दान देते हैं, किंतु दाता और दान लेनेवालेमें क्या विशेषता होती है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! ब्राह्मण सज्जन पुरुषसे भी दान लेते हैं और दुर्जनसे भी; किंतु गुणवान् (सज्जन) पुरुषसे दान लेनेपर उन्हें कम दोष लगता है और गुणहीन (दुर्जन) से दान लेनेपर वे अगाध नरकमें डूब जाते हैं। इस विषयमें राजा वृषादर्भि और सप्तर्षियोंके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है, एक समयकी बात है, कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि और पतिव्रता देवी अरुन्धती—ये सब लोग समाधिके द्वारा सनातन ब्रह्मलोकको प्राप्त करनेकी इच्छासे तपस्या करते हुए इस पृथ्वीपर विचर रहे थे। इन सबकी सेवा करनेवाली एक दासी थी, जिसका नाम था गण्डा। वह पशुसख नामक एक शूद्रके साथ ब्याही गयी थी (पशुसख भी इन्हीं महर्षियोंके साथ रहकर सबकी सेवा किया करता था)। एक बार पृथ्वीपर बहुत कालतक वर्षा नहीं हुई। संसारमें घोर अकाल पड़ गया। सभी लोग भूखों मरने लगे। इसी समय शिबिके पुत्र राजा वृषादर्भि घूमते-फिरते उसी मार्गसे आ निकले, जहाँ ये सप्तर्षि मौजूद थे। उन्हें अन्नके लिये कष्ट पाते देख राजाने कहा—'तपोधनो ! यदि आपलोग दान लेना स्वीकार करें तो वह आपको भूखके कष्टसे बचा सकता है। उससे आपलोगोंका यह दुर्बल शरीर हृष्ट-पुष्ट हो जायगा। अतः प्रतिग्रह स्वीकार कीजिये और मेरे पास जितना धन है, उसमेंसे इच्छानुसार माँगिये। मुझे ब्राह्मण बहुत ही प्रिय हैं। आपलोगोंके माँगनेपर मैं प्रत्येकको एक-एक हजार खचरियाँ, भारी बोझ ढोनेवाले सफेद रंगके मोटे-ताजे दस हजार बैल, सफेद रोएँवाली नयी ब्यायी हुई हृष्ट-पुष्ट एवं सीधी-सादी उतनी ही गौएँ, अच्छे-अच्छे गाँव, धान, रस, जौ, रत्न तथा और भी अनेकों दुर्लभ वस्तुएँ प्रदान कर सकता हूँ; अतः बताइये आपके शरीरकी पुष्टिके लिये मैं क्या दूँ ?'

ऋषियोंने कहा—महाराज ! राजाका दिया हुआ दान ऊपरसे मधुके समान मीठा जान पड़ता है; किंतु परिणाममें वह विषके समान हो जाता है। इस बातको जानते हुए भी आप क्यों हमलोगोंको प्रलोभनमें डाल रहे हैं ? ब्राह्मणोंका शरीर देवताओंका निवासस्थान है। उसमें सभी देवता विद्यमान रहते हैं। यदि ब्राह्मण तपस्यासे शुद्ध एवं संतुष्ट रहता है तो वह सम्पूर्ण देवताओंको प्रसन्न करता है। ब्राह्मण दिनभरमें जितना तप संग्रह करता है, उसको राजाका प्रतिग्रह वनको दग्ध करनेवाले दावानलकी भाँति एक क्षणमें नष्ट कर डालता है। इसलिये इस दानके साथ ही आप कुशलसे रहें। जिन्हें इन सब वस्तुओंकी आवश्यकता हो अथवा जो इनके लिये आपसे याचना करें उन्हीं लोगोंको दान दीजिये।

यह कहकर वे दूसरे मार्गसे आहारकी खोज करते हुए वनमें चले गये। तदनन्तर, राजाकी प्रेरणासे उनके मन्त्री वनमें आये और उन्होंने गूलरके फल तोड़कर उन्हें देनेका विचार किया। मन्त्रियोंने उन फलोंके भीतर सोनेके टुकड़े भर दिये और सबको भृत्योंके हवाले किया। भृत्यगण उन फलोंको देनेके लिये ऋषियोंके पीछे दौड़ गये; किंतु महर्षि अत्रिने उन सब फलोंको वजनदार देखकर कहा—'ये गूलर हमारे लेने योग्य नहीं हैं। हमारी बुद्धि मन्द नहीं हुई है, हम सो नहीं रहे हैं, जागते हैं; हमें मालूम है कि इनके भीतर



सुवर्ण भरा हुआ है। यदि आज हम इन्हें स्वीकार कर लेते हैं तो परलोकमें इसका कटु परिणाम भोगना पड़ेगा। जो इस

लोक और परलोकमें भी सुख पाना चाहते हैं, उन्हें प्रतिग्रहसे बचे रहना चाहिये।'

वसिष्ठ बोले—एक निष्क (स्वर्णमुद्रा) का दान लेनेसे हजार निष्कोंके दान लेनेका दोष लगता है। ऐसी दशामें जो बहुत-से निष्क ग्रहण करता है उसको तो घोर पापमयी गतिमें गिरना पड़ता है।

कश्यपने कहा—इस पृथ्वीपर जितने धान, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं वे सब किसी एक पुरुषको मिल जायँ तो भी उसे संतोष न होगा; यह सोचकर विद्वान् पुरुष अपने मनकी तृष्णाको शान्त करे।

भरद्वाज बोले—मनुष्यकी इच्छा सदा बढ़ती ही रहती है, उसकी कोई सीमा नहीं है।

गौतमने कहा—संसारमें ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जो मनुष्यकी आशाका पेट भर सके। पुरुषकी आशा समुद्रके समान है, वह कभी भरती ही नहीं।

विश्वामित्रने कहा—किसी वस्तुकी कामना करनेवाले मनुष्यकी एक इच्छा जब पूरी होती है तो दूसरी नयी उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार तृष्णा तीरकी तरह मनुष्यके मनपर चोट करती ही रहती है।

जमदग्निने कहा—प्रतिग्रह न लेनेसे ही ब्राह्मण अपनी तपस्याको सुरक्षित रख सकता है। तपस्या ही ब्राह्मणका धन है। जो लौकिक धनके लिये लोभ करता है, उसका तपरूपी धन नष्ट हो जाता है।

अरुन्धती बोली—संसारमें एक पक्षके लोगोंकी राय है कि धर्मके लिये धनका संग्रह करना चाहिये; किंतु मेरी रायमें धन-संग्रहकी अपेक्षा तपस्याका संग्रह ही श्रेष्ठ है।

गण्डाने कहा—मेरे ये मालिक लोग अत्यन्त शक्तिशाली होते हुए भी जब इस भयंकर प्रतिग्रहके भयसे इतना डरते हैं तो मेरी क्या बिसात है? मुझे तो दुर्बल प्राणियोंकी भाँति इससे बहुत बड़ा भय लग रहा है।

पशुसखने कहा—धर्मका पालन करनेपर जिस धनकी प्राप्ति होती है, उससे बढ़कर कोई धन नहीं है; उस धनको ब्राह्मण ही जानते हैं; अतः मैं भी उसी धर्ममय धनकी प्राप्तिका उपाय सीखनेके लिये विद्वान् ब्राह्मणोंकी सेवामें लगा हूँ।

ऋषियोंने कहा—जिसकी प्रजा ये कपटयुक्त फल देनेके लिये ले आयी है तथा जो इस प्रकार फलके व्याजसे हमें सुवर्णदान कर रहा है, उस राजाका उसके दानके साथ ही भला हो।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! यह कहकर उन सुवर्णयुक्त फलोंका परित्याग करके वे समस्त व्रतधारी महर्षि वहाँसे अन्यत्र चले गये। तब मन्त्रियोंने शैब्यके पास जाकर कहा—'महाराज! उन फलोंको देखते ही ऋषियोंको यह संदेह हुआ कि हमारे साथ छल किया जा रहा है, इसलिये वे फलोंका परित्याग करके दूसरे मार्गसे चले गये हैं।' सेवकोंके ऐसा कहनेपर राजा वृषादर्भिको बड़ा कोप हुआ और वे उनसे अपने अपमानका बदला लेनेका विचार करके राजधानीको लौट गये। वहाँ जाकर अत्यन्त कठोर नियमोंका पालन करते हुए वे आहवनीय अग्निमें आभिचारिक मन्त्र पढ़कर एक-एक आहुति डालने लगे। आहुति समाप्त होनेपर उस अग्निसे एक भयंकर कृत्या प्रकट हुई। राजा वृषादर्भिने उसका नाम यातुधानी रखा। कालरात्रिके समान विकराल रूप धारण करनेवाली वह कृत्या हाथ जोड़कर राजाके पास उपस्थित हुई और बोली—'महाराज! मैं आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ?'

राजाने कहा—यातुधानी! तुम यहाँसे वनमें जाओ और वहाँ अरुन्धतीसहित सातों ऋषियोंका, उनकी दासीका और उस दासीके पतिका भी नाम पूछकर उसका तात्पर्य अपने मनमें धारण करो। इस प्रकार उन सबके नामोंका अर्थ समझकर उन्हें मार डालो; उसके बाद जहाँ इच्छा हो चली जाना।

राजाकी यह आज्ञा पाकर यातुधानीने 'तथास्तु' कहकर इसे स्वीकार किया और जहाँ वे महर्षि विचरा करते थे उस वनमें चली गयी। वहाँ अत्रि आदि महर्षि फल-मूलका आहार करते हुए घूम रहे थे। उन सबके निश्चय और कार्य एकसे थे और वे उस वनमें विचरते हुए फल-मूलोंका संग्रह कर रहे थे। घूमते-फिरते किसी समय उन्हें एक सुन्दर तालाब दिखायी पड़ा जिसका जल बड़ा ही पवित्र और स्वच्छ था। उसके चारों किनारोंपर सघन वृक्षोंकी पंक्ति शोभा पा रही थी। पोखरेके भीतर सुन्दर कमल खिले हुए थे और अनेकों प्रकारके पक्षी उसके जलका सेवन करते थे। उसमें प्रवेश करनेके लिये एक ही दरवाजा था। उसके घाट और सीढ़ियाँ बहुत सुन्दर बनी थीं तथा वहाँ काई और कीचड़का नाम भी नहीं था। राजा वृषादर्भिकी भेजी हुई भयानक आकारवाली यातुधानी उस तालाबकी रक्षा कर रही थी।

तालाब देखकर वे महर्षि मृणाल लेनेके लिये पशुसखके साथ वहाँ आये और सरोवरके तटपर उस विकराल राक्षसीको खड़ी देखकर बोले—'तुम कौन हो और किसलिये यहाँ अकेली खड़ी हो। यहाँ तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है? इस सरोवरके तटपर रहकर तुम कौन-सा कार्य सिद्ध करना चाहती हो?'



यातुधानीने कहा—तपस्वियो ! मैं जो कोई भी होऊँ, तुम्हें मेरा परिचय पूछनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम इतना ही जान लो कि मैं इस तालाबकी रखवाली करनेवाली हूँ।

ऋषियोंने कहा—भद्रे ! हम सब लोग भूखसे व्याकुल हो रहे हैं। हमारे पास खानेके लिये कुछ भी नहीं है। अतः यदि तुम आज्ञा दो तो हम सब मिलकर इस तालाबसे कुछ मृणाल उखाड़ लें।

यातुधानी बोली—ऋषियो ! एक शर्तपर तुम इस तालाबसे इच्छानुसार मृणाल ले सकते हो। एक-एक आदमी आकर अपना नाम बताओ और कमलकी नाल ले लो। देर करनेकी आवश्यकता नहीं है।

भीष्मजी कहते हैं—उसकी बात सुनकर महर्षि अत्रि यह समझ गये कि यह राक्षसी कृत्या है और हम सब ऋषियोंका वध करनेकी इच्छासे यहाँ आयी हुई है। तथापि भूखसे व्याकुल होनेके कारण उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया—'कल्याणी ! काम आदि शत्रुओंसे त्राण करनेवालेको अरात्रि कहते हैं और अत् (मृत्यु) से बचानेवाला अत्रि कहलाता है। इस प्रकार मैं ही अरात्रि होनेके कारण अत्रि हूँ। जबतक जीवको एकमात्र परमात्माका ज्ञान नहीं होता तबतककी अवस्था रात्रि कहलाती है। उस अज्ञानावस्थासे रहित होनेके कारण भी मैं अरात्रि एवं अत्रि कहलाता हूँ। सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये अज्ञात होनेके कारण जो रात्रिके समान है उस परमात्मतत्त्वमें मैं सदा जाग्रत् रहता हूँ; अतः वह मेरे लिये अरात्रिके समान है, इस व्युत्पत्तिके अनुसार ही मैं अरात्रि और अत्रि (ज्ञानी) नाम धारण करता हूँ। यही मेरे नामका तात्पर्य समझो।'

यातुधानी बोली—तेजस्वी महर्षे ! आपने जिस प्रकार अपने नामका तात्पर्य बताया है उसका मेरी समझमें आना कठिन है। अच्छा, अब आप तालाबमें उतरिये।

वसिष्ठने कहा—मेरा नाम वसिष्ठ है, सबसे श्रेष्ठ होनेके कारण लोग मुझे वरिष्ठ भी कहते हैं। मैं गृहस्थ-आश्रममें वास करता हूँ; अतः वसिष्ठता (ऐश्वर्यसम्पत्ति) और वासके कारण तुम मुझे वसिष्ठ समझो।

यातुधानी बोली—मुने ! आपने जो अपने नामकी व्याख्या की है उसके तो अक्षरोंका भी उच्चारण करना कठिन है। मैं इस नामको नहीं याद रख सकती। आप जाइये, तालाबमें प्रवेश कीजिये।

कश्यपने कहा—यातुधानी ! कश्य नाम है शरीरका, जो उसका पालन करता है उसे कश्यप कहते हैं। मैं प्रत्येक कुल (शरीर) में अन्तर्यामीरूपसे प्रवेश करके उसकी रक्षा करता हूँ इसलिये कश्यप हूँ। कु अर्थात् पृथ्वीपर वम यानी वर्षा करनेवाला सूर्य भी मेरा ही स्वरूप है, इसलिये मुझे 'कुवम' भी कहते हैं। मेरे देहका रंग काशके फूलकी भाँति उज्ज्वल है, अतः मैं काश्य नामसे भी प्रसिद्ध हूँ। यही मेरा नाम है, इसे तुम धारण करो।

यातुधानी बोली—महर्षे ! आपके नामका तात्पर्य समझना मेरे लिये बहुत कठिन है। आप भी कमलोंसे भरी हुई बावड़ीमें जाइये।

भरद्वाज बोले—कल्याणी ! जो मेरे पुत्र और शिष्य नहीं हैं उनका भी मैं पालन करता हूँ तथा देवता, ब्राह्मण, अपनी धर्मपत्नी तथा द्वाज (वर्णसंकर) मनुष्योंका भी भरण-पोषण करता हूँ, इसलिये भरद्वाज नामसे प्रसिद्ध हूँ।

यातुधानी बोली—मुनिवर ! आपके नामाक्षरका उच्चारण करनेमें भी मुझे क्लेश जान पड़ता है, इसलिये मैं इसे धारण नहीं कर सकती। जाइये, आप भी इस सरोवरमें उतरिये।

गोतमने कहा—कृत्ये ! मैंने इन्द्रियसंयमके द्वारा गो (पृथ्वी और स्वर्ग) का भी दमन किया है, इसलिये 'गोदम' नाम धारण करता हूँ। मैं धूमरहित अग्निके समान तेजस्वी हूँ। सबमें समान दृष्टि रखनेके कारण तुम्हारे या और किसीके द्वारा मेरा दमन नहीं हो सकता। मेरे शरीरकी कान्ति (गो) अन्धकारको दूर भगानेवाली (अतम) है, अतः तुम मुझे गोतम समझो।

यातुधानी बोली—महामुने ! आपके नामकी व्याख्या भी मैं नहीं समझ सकती । जाइये, पोखरेमें प्रवेश कीजिये ।

विश्वामित्रने कहा—यातुधानी ! विश्वेदेव मेरे मित्र हैं तथा मैं गौओं और सम्पूर्ण विश्वका मित्र हूँ, इसलिये संसारमें विश्वामित्रके नामसे प्रसिद्ध हूँ ।

यातुधानी बोली—महर्षे ! आपके नामकी व्याख्याका भी मुझसे उच्चारण होना कठिन है। मैं इसे नहीं याद रख सकती, आप तालाबमें जाइये ।

जमदग्निने कहा—कल्याणी ! मैं जमत् अर्थात् देवताओंके आहवनीय अग्निसे उत्पन्न हुआ हूँ, इसलिये तुम मुझे जमदग्नि नामसे विख्यात समझो ।

यातुधानी बोली—मुने ! आपने जिस प्रकार अपने नामका तात्पर्य बतलाया है, उसको समझना मेरे लिये बहुत कठिन है। अब आप सरोवरमें प्रवेश कीजिये ।

अरुन्धतीने कहा—यातुधानी ! मैं अरु अर्थात् पर्वत, पृथ्वी और द्युलोकको अपनी शक्तिसे धारण करती हूँ। अपने स्वामीसे कभी दूर नहीं रहती और उनके मनके अनुसार चलती हूँ, इसलिये मेरा नाम अरुन्धती है ।

यातुधानी बोली—देवि ! आपने जो अपने नामकी व्याख्या की है उसके एक अक्षरका भी उच्चारण मेरे लिये कठिन है, अतः इसे भी मैं नहीं याद रख सकती। आप तालाबमें प्रवेश कीजिये ।

गण्डाने कहा—यातुधानी ! गडिधातुसे गण्डिशब्दकी सिद्धि होती है, यह मुखके एक देश—कपोलका वाचक है। मेरा कपोल (गण्ड) ऊँचा है, इसलिये लोग मुझे गण्डा कहते हैं।

यातुधानी बोली—तुम्हारे नामकी व्याख्याका भी उच्चारण करना मेरे लिये कठिन है। अतः इसको याद रखना असम्भव है। जाओ तुम भी बावड़ीमें उतरो ।

पशुसखने कहा—आगसे पैदा हुई कृत्ये ! मैं पशुओंको प्रसन्न रखता हूँ और उनका प्रिय सखा हूँ; इस गुणके अनुसार मेरा नाम पशुसख है ।

यातुधानी बोली—तुमने जो अपने नामकी व्याख्या की है उसके अक्षरोंका उच्चारण करना भी मेरे लिये कष्टप्रद है अतः इसको याद नहीं रख सकती; अब तुम भी पोखरेमें जाओ ।

इन ऋषियोंके साथ शुनःसख नामधारी एक संन्यासी भी था, उसने अपना परिचय इस प्रकार दिया—यातुधानी ! इन ऋषियोंने जिस प्रकार अपना नाम बताया है, उस तरह मैं नहीं बता सकता। तुम मेरा नाम शुनःसखसख (धर्मके मित्रभूत मुनियोंका मित्र) समझो ।

यातुधानी बोली—विप्रवर ! आपने संदिग्ध वाणीमें अपना नाम बताया है अतः अब फिर स्पष्टरूपसे अपने नामकी व्याख्या कीजिये ।

शुनःसखने कहा—मैंने एक बार अपना नाम बता दिया, फिर भी तुमने उसे ध्यानसे नहीं सुना है इसलिये लो, मेरे इस त्रिदण्डकी मार खाकर अभी भस्म हो जाओ ।

यह कहकर उस संन्यासीने ब्रह्मदण्डके समान अपने त्रिदण्डसे ऐसा हाथ जमाया कि वह यातुधानी पृथ्वीपर गिर पड़ी और तुरंत भस्म हो गयी। इस प्रकार शुनःसखने उस महाबलवती राक्षसीका वध करके त्रिदण्डको पृथ्वीपर रख दिया और स्वयं भी वहीं घासपर बैठ गया। तदनन्तर, वे सभी महर्षि इच्छानुसार फूल और मृणाल लेकर बड़ी प्रसन्नताके साथ तालाबसे बाहर निकले और बहुत परिश्रम करके उन्होंने मृणालोंके अलग-अलग बोझे बाँधे। इसके बाद उन्हें किनारेपर ही रखकर वे बावड़ीके जलसे तर्पण करने लगे। थोड़ी देर बाद जब पानीसे बाहर आये तो उन्हें अपने रखे हुए मृणाल नहीं दिखायी पड़े। तब सभी एक स्वरसे बोल उठे—'अरे ! हम सब लोग भूखसे व्याकुल थे और अब आहार ग्रहण करना चाहते थे, ऐसे समयमें किस निर्दयीने आकर हमारे मृणाल चुरा लिये ?' जब कुछ भी पता न चला तो सबने अपनी सफाई देनेके लिये शपथ खानेका निश्चय किया। उस समय सब-के-सब भूखसे विकल और अत्यन्त थके-माँदे थे; अतः उन्होंने शपथ खाना आरम्भ कर दिया। सबसे पहले अत्रि बोले—'जिसने इन मृणालोंकी चोरी की हो, उसे गायको लात मारने, सूर्यकी ओर मुँह करके पेशाब करने और अनध्यायके समय अध्ययन करनेका पाप लगे।'

वसिष्ठ बोले—जिसने मृणाल चुराये हों उसे निषिद्ध समयमें वेद पढ़ने, कुत्ते लेकर शिकार खेलने, संन्यासी होकर मनमाना बर्ताव करने, शरणागतको मारने, अपनी कन्या बेचकर जीविका चलाने तथा किसानके धन छीन लेनेका पाप लगे ।

कश्यपने कहा—जिसने मृणालोंकी चोरी की हो उसको सब जगह सब तरहकी बातें कहने, दूसरोंकी धरोहर हड़प लेने, झूठी गवाही देने, अपात्रको दान देने और दिनमें स्त्री-समागम करनेका दोष लगे ।

भरद्वाज बोले—जिसने मृणाल चुराये हों उस निर्दयीको स्त्री, बन्धु-बान्धव और गौओंके साथ अधर्म करने, ब्राह्मणको विवादमें परास्त करने, उपाध्याय (गुरु) को नीचे बैठाकर उनसे ऋग्वेद और यजुर्वेदका अध्ययन करने और घास-फूसकी आगमें आहुति डालनेका पाप लगे।

जमदग्नि बोले—जिसने मृणालोंका अपहरण किया हो उसे पानीमें मलत्याग, गौकी हत्या, गौके साथ द्रोह, बिना ऋतुकालके मैथुन और सबके साथ द्वेष करने, स्त्रीकी कमाईपर जीविका चलाने, भाई-बन्धुओंसे द्वेष रखने, सबसे वैर बाँधने और एक दूसरेके घरं अतिथि होनेका दोष लगे।

गोतमने कहा—जिसने मृणालोंकी चोरी की हो वह वेदोंको पढ़कर उन्हें भूल जाने, तीनों अग्नियोंका परित्याग करने और सोमरस बेचनेके पापका भागी हो तथा एक ही कूपवाले गाँवमें निवास करनेवाले और शूद्रकी पत्नीसे संसर्ग रखनेवाले ब्राह्मणको जो लोक मिलता है वही उसे भी मिले।

विश्वामित्रने कहा—जो इन मृणालोंको चुरा ले गया हो उसे वही पाप लगे जो पुत्रके जीते-जी उसके माता-पिता आदि पोष्य वर्गका दूसरोंके द्वारा पालन होनेपर लगता है। उसका कहीं ठिकाना न लगे, उसके घर बहुत-से पुत्र हों, वह अपवित्र, वेदको मिथ्या माननेवाला, धनका घमंड करनेवाला, किसान, दूसरोंसे डाह रखनेवाला, वर्षाकालमें परदेशकी यात्रा करनेवाला, वेतन लेकर काम करनेवाला, राजाका पुरोहित और यज्ञके अनधिकारीसे यज्ञ करानेवाला होवे।

अरुन्धती बोली—जिसने मृणालोंकी चोरी की हो वह स्त्री सदा अपनी सासको अपमानित करने, स्वामीका दिल दुःखाने, अकेले स्वादिष्ट भोजन करने, घरमें रहकर बन्धु-बान्धवोंका अनादर करने, शामको सत्तू खाने, अपनी योनि कलंकित करने और (ब्राह्मणी होकर क्षत्रियस्वभाववाले) वीर पुत्रकी जननी होनेके पापकी भागिनी हो।

गण्डा बोली—जिस स्त्रीने मृणालकी चोरी की हो उसे झूठ बोलने, बन्धुओंके साथ विरोध करने, कन्या बेचने, रसोई बनाकर अकेले भोजन करने और व्यभिचारिणी होनेका पाप लगे।

पशुसख बोला—जिसने मृणालोंकी चोरी की हो वह दासीके गर्भसे जन्म ले, संतानहीन और दरिद्र रहे तथा उसे देवताओंको नमस्कार न करनेका दोष लगे।

शुनःसखने कहा—जिसने इन मृणालोंको चुराया हो वह यजुर्वेदके ज्ञाता ऋत्विज् अथवा सामवेदके ज्ञाता ब्रह्मचारीको कन्यादान देनेका फल प्राप्त करे और अथर्ववेदका अध्ययन समाप्त करके विधिवत् स्नान करनेके पुण्यका भागी हो।

संन्यासीके यों कहनेपर सप्तर्षियोंने कहा—शुनःसख! तुमने जो शपथ की है वह तो ब्राह्मणोंको अभीष्ट ही है। अतः जान पड़ता है हमारे मृणालोंकी चोरी तुमने ही की है।

शुनःसखने कहा—मुनिवरो! आपका कहना ठीक है। वास्तवमें मृणालोंकी चोरी मैंने ही की है। जब आपलोग तर्पण कर रहे थे उसी समय आपकी दृष्टि बचाकर मैंने इन्हें अन्यत्र रखकर छिपा दिया था। देखिये, आपके मृणाल ये हैं, मैंने आपलोगोंकी परीक्षाके लिये ही ऐसा किया था। आप मुझे संन्यासी नहीं, इन्द्र समझें। आपलोगोंकी रक्षा करनेके उद्देश्यसे ही मैं यहाँ आया था। राजा वृषादर्भिकी भेजी हुई अत्यन्त क्रूरकर्म करनेवाली यातुधानी कृत्या आपलोगोंका वध करनेकी इच्छासे यहाँ आयी थी। अग्निसे इसका आविर्भाव हुआ था। यह पापिनी बड़ी दुष्ट स्वभाववाली थी। यह आपको अवश्य मार डालती, इसीसे यहाँ उपस्थित होकर मैंने इस राक्षसीका वध कर डाला है। तपोधनो! आपलोगोंने लोभका परित्याग करनेके कारण अक्षय लोकोंपर अधिकार प्राप्त किया है। वे लोक समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। अब आप यहाँसे उठकर वहीं चलिये।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! इन्द्रकी बात सुनकर महर्षियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने 'तथास्तु' कहकर देवराजकी आज्ञा स्वीकार की और सब-के-सब उनके साथ स्वर्गको चले गये। इस प्रकार उन महात्माओंने अत्यन्त भूखे होनेपर भी लोभ नहीं किया, इसीसे उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति हुई। अतः मनुष्यको चाहिये कि प्रत्येक अवस्थामें लोभका परित्याग करे, यही सबसे बड़ा धर्म है।



ब्रह्मसर तीर्थमें अगस्त्यजीके कमलकी चोरी होनेपर ब्रह्मर्षियों और राजर्षियोंकी धर्मोपदेशपूर्ण शपथ

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! प्राचीन कालमें राजर्षियों और ब्रह्मर्षियोंने तीर्थयात्रा करते समय मृणालकी चोरीको ही लेकर आपसमें जो शपथ खायी थी, वह पुरातन इतिहास मैं तुम्हें सुना रहा हूँ, सुनो—पश्चिम दिशाके प्रसिद्ध तीर्थ प्रभासक्षेत्रमें कुछ ऋषियों और राजाओंने एकत्रित होकर आपसमें सलाह की कि 'हम समस्त भूमण्डलके

पुण्यतीर्थोंकी यात्रा करें। हममेंसे सभी लोगोंके मनमें इस बातकी इच्छा है, अतः सब साथ ही चलें।' ऐसा निश्चय करके शुक्र, अङ्गिरा, कवि, अगस्त्य, नारद, पर्वत, भृगु, वसिष्ठ, कश्यप, गोतम, विश्वामित्र, जमदग्नि, गालव, अष्टक, भरद्वाज, अरुन्धती देवी, वालखिल्य ऋषि तथा शिबि, दिलीप, नहुष, अम्बरीष, ययाति, धुन्धुमार और पुरु आदि राजा देवराज इन्द्रको आगे करके सब तीर्थोंमें भ्रमण करने लगे। घूमते-घूमते माघकी पूर्णिमाको वे पवित्र जलवाली कौशिकी नदीके तटपर जा पहुँचे और सबने वहाँ स्नान किया। इस प्रकार अनेकों तीर्थोंमें स्नान करके निष्पाप होकर वे सब लोग अत्यन्त पवित्र ब्रह्मसर (पुष्कर) नामक तीर्थमें गये, वहाँ ब्रह्माजीके सरोवरमें स्नान करके उन अग्निके समान तेजस्वी ब्रह्मर्षियों और राजर्षियोंने कमलके पुष्पोंका भोजन किया। तत्पश्चात् कुछ ब्राह्मण मृणाल खोदने लगे और कुछ कमलोंका संग्रह करने लगे। अगस्त्य ऋषिने भी कुछ कमल उखाड़कर किनारेपर रख दिये थे, किंतु पोखरेसे निकलनेपर सबने देखा कि अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी हो गयी है। उस समय अगस्त्यजीने सम्पूर्ण ऋषियोंसे पूछा—'मेरा कमल किसने चुरा लिया?' तब सभी महर्षि घबरा उठे और कहने लगे—'मुनिवर! हमलोगोंने आपके कमल नहीं चुराये हैं। इस बातकी सचाईके लिये हम कठोर शपथ खा सकते हैं—ऐसा निश्चय करके उन महर्षियों और राजाओंने अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ धर्मकी ओर दृष्टि रखते हुए क्रमशः शपथ खाना आरम्भ किया।

भृगु बोले—मुने! जिसने आपके कमलकी चोरी की हो उसे गाली सुनकर बदलेमें गाली देने और मार खाकर मारनेका पाप लगे।

वसिष्ठ बोले—जिसने आपके कमल चुराये हों वह स्वाध्यायसे विमुख हो जाय, कुत्ता साथ लेकर शिकार खेले और गाँव-गाँव भीख माँगता फिरे।

कश्यप बोले—जो आपका कमल चुरा ले गया हो वह सब जगह सब तरहकी वस्तुओंकी खरीद-बिक्री करे। किसीकी धरोहर हड़प लेनेका लोभ करे और झूठी गवाही दे।

गोतम बोले—जिसने आपके कमलकी चोरी की हो वह अहंकारी, बेईमान और अयोग्यका साथ करनेवाला, खेतिहर और ईर्ष्यायुक्त होकर जीवन व्यतीत करे।

अङ्गिरा बोले—जो आपका कमल ले गया हो वह अपवित्र, वेदको मिथ्या बतानेवाला, कुत्ते लेकर शिकार खेलनेवाला, ब्रह्महत्यारा और अपने पापोंका प्रायश्चित्त न करनेवाला हो।

धुन्धुमार बोले—जिसने आपके कमलोंकी चोरी की हो उसे मित्रोंका उपकार न मानने, शूद्रजातिकी स्त्रीसे संतान उत्पन्न करने और अकेले ही स्वादिष्ट भोजन करनेका पाप लगे।

पुरु बोले—जो आपका कमल चुरा ले गया हो वह चिकित्साका व्यवसाय (वैद्य या डाक्टरका पेशा) करे, स्त्रीकी कमायी खाय तथा ससुरालके धनपर गुजारा करे।

दिलीप बोले—एक कुएँवाले गाँवमें रहकर शूद्रजातिकी स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मणको मृत्युके पश्चात् जिन दुःखदायी लोकोंमें जाना पड़ता है वे ही लोक उस मनुष्यको भी मिलें जो आपके कमल चुराकर ले गया हो।

शुक्र बोले—जिसने आपके कमलोंकी चोरी की हो उसे दिनमें मैथुन और राजाकी चाकरी करनेका पाप लगे।

जमदग्नि बोले—जिसने आपके कमल लिये हों वह निषिद्ध कालमें अध्ययन करे, मित्रको ही श्राद्धमें जिमावे तथा स्वयं भी शूद्रके श्राद्धमें भोजन करे।

शिबि बोले—जो आपका कमल चुरा ले गया हो वह अग्निहोत्र किये बिना ही मर जाय, यज्ञमें विघ्न डाले और तपस्वियोंके साथ विरोध करे।

ययाति बोले—जिसने आपके कमलोंकी चोरी की हो वह व्रतधारी होकर भी ऋतुकालके अतिरिक्त समयमें स्त्री-समागम और वेदोंका खण्डन करे।

नहुष बोले—जिसने आपके कमलोंका अपहरण किया हो वह संन्यासी होकर भी घरमें रहे, यज्ञकी दीक्षा लेकर भी मनमाना बर्ताव करे और वेतन लेकर विद्या पढ़ावे।

अम्बरीष बोले—जो आपका कमल ले गया हो वह नृशंस हो; स्त्रियों, बन्धु-बान्धवों और गौओंके प्रति अपने धर्मका पालन न करे तथा ब्रह्महत्याके पापका भागी हो।

नारदजी बोले—जिसने आपके कमलोंका अपहरण किया हो वह देहरूपी गृहको ही आत्मा समझे, मर्यादाका उल्लङ्घन करके शास्त्र पढ़े, उलटे-सीधे स्वरसे वेदमन्त्रका उच्चारण करे और गुरुजनोंका अपमान करनेवाला हो।

नाभाग बोले—जिसने आपके कमल चुराये हों वह सदा झूठ बोले, संतोंके साथ विरोध करे और कीमत लेकर कन्या बेचे।

कवि बोले—जिसने आपका कमल लिया हो वह गौको लात मारने, सूर्यकी ओर मुँह करके पेशाब करने और शरणागतको त्याग देनेके पापका भागी हो।

विश्वामित्र बोले—जो आपका कमल उठा ले गया हो वह राजाका पुरोहित और अनधिकारीका यज्ञ करानेवाला हो

तथा खरीदे हुए गुलामको अपने मालिककी खेतीमें हानि पहुँचानेसे जो दोष लगता है वही उसे भी लगे।

पर्वत बोले—जिसने आपका कमल चुराया हो वह गाँवका मुखिया हो, गधेकी सवारीपर चले और पेट भरनेके लिये कुत्तोंको साथ लेकर शिकार खेले।

भरद्वाज बोले—जिसने आपके कमलोंकी चोरी की हो उस पापीको निर्दयी और असत्यवादी मनुष्योंमें रहनेवाला सारा-का-सारा पाप लगे।

अष्टक बोले—जिसने आपका कमल चुराया हो वह राजा मन्दबुद्धि, स्वेच्छाचारी और पापी होकर अधर्मपूर्वक पृथ्वीका राज्य करे।

गालव बोले—जो आपका कमल चुरा ले गया हो वह महापातकियोंसे भी बढ़कर निन्दनीय, अपने बन्धुओंका अपकार करनेवाला तथा दान देकर अपने ही मुँहसे उसका बखान करनेवाला हो।

अरुन्धती बोली—जिस स्त्रीने आपका कमल लिया हो वह अपनी सासकी निन्दा करे, स्वामीसे रूठी रहे और अकेली स्वादिष्ट भोजन करे।

वालखिल्य बोले—जो आपका कमल ले गया हो वह अपनी जीविकाके लिये गाँवके दरवाजेपर एक पैरसे खड़ा रहे और धर्मको जानते हुए भी उसका परित्याग कर दे।

शुनःसख बोले—जो द्विज होकर भी सबेरे और शामको अग्निहोत्रकी अवहेलना करके सुखपूर्वक सोता हो तथा संन्यासी होकर भी मनमाना बर्ताव करता हो ऐसे मनुष्यको जो पाप लगता है वही आपका कमल चुरानेवालेको लगे।

सुरभी बोली—जिस गौने आपके कमलोंकी चोरी की हो उसका पैर बालोंकी रस्सीसे बाँधा जाय और उसे दूसरा बछड़ा दिखाकर काँसके बर्तनमें दुहा जाय।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! इस प्रकार जब सब लोग नाना प्रकारकी शपथें कर चुके तो देवराज इन्द्र बहुत प्रसन्न होकर मुनिवर अगस्त्यजीके सामने प्रकट हुए। उन्होंने मुनिकी ओर दृष्टिपात करके कहा—'ब्रह्मन् ! जो आपका कमल ले गया हो वह यजुर्वेदके ज्ञाता ऋत्विज्‌को अथवा सामवेदके विद्वान् ब्रह्मचारीको कन्या देनेका फल प्राप्त करे तथा वह अथर्ववेदका अध्ययन समाप्त करके स्नातक बने। यही नहीं, वह सम्पूर्ण वेदोंका स्वाध्यायी, पुण्यशील और धार्मिक होकर ब्रह्माजीके लोकमें गमन करे।'

अगस्त्य बोले—इन्द्र ! आपने जो शपथ की है वह तो आशीर्वाद रूप है; अतः आपहीने मेरे कमल लिये हैं, कृपया उन्हें वापस कीजिये, यही सनातन धर्म है।

इन्द्रने कहा—भगवन् ! मैंने लोभके कारण नहीं, धर्म सुननेकी इच्छासे ही ये कमल उठा लिये थे, अतः आपको मुझपर क्रोध नहीं करना चाहिये। आज मैंने आपलोगोंके मुँहसे उस आर्ष सनातन धर्मका श्रवण किया है जो नित्य, अविकारी, अनामय और संसार-सागरसे पार उतारनेके लिये पुलके समान है। इससे धार्मिक श्रुतियोंका उत्कर्ष सिद्ध होता है। अच्छा, अब आप यह कमल लीजिये और मेरा अपराध क्षमा कीजिये।



इन्द्रके ऐसा कहनेपर अगस्त्य मुनिने प्रसन्नतापूर्वक वह कमल ले लिया। तदनन्तर, उन सब लोगोंने बनके मार्गोंसे होते हुए पुनः तीर्थयात्रा आरम्भ की और पुण्यतीर्थोंमें जा-जाकर गोते लगाये। जो प्रत्येक पर्वके अवसरपर इस पवित्र आख्यानका पाठ करता है उसके ऊपर कोई आपत्ति नहीं आती तथा वह चिन्ता और पापसे रहित होकर कल्याणका भागी होता है। जो ऋषियोंद्वारा सुरक्षित इस शास्त्रका अध्ययन करता है वह अविनाशी ब्रह्मधामको प्राप्त होता है।

—★—

छत्र और उपानह दान करनेके विषयमें सूर्य और जमदग्नि मुनिका संवाद

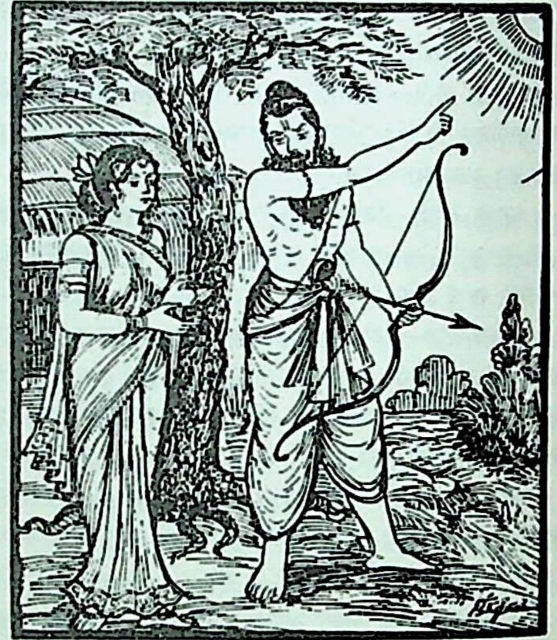
युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! छाता और जूता दान करनेकी प्रथा किसने चलायी है ? मैं देखता हूँ अनेकों पुण्य-अवसरोंपर इनका दान किया जाता है, अतः इस विषयका यथार्थ वर्णन सुननेकी इच्छा हो रही है।

भीष्मजीने कहा—राजन् ! छाता और उपानह (जूते) की उत्पत्ति तथा उनके प्रचारकी वार्ता मैं विस्तारके साथ बता रहा हूँ, सुनो—इन दोनों वस्तुओंका दान किस प्रकार अक्षय होता है तथा ये किस प्रकार पुण्यकी प्राप्ति करानेवाली मानी गयी हैं ? इसकी भी चर्चा करूँगा। इस विषयमें जमदग्नि और भगवान् सूर्यका संवाद प्रसिद्ध है। पूर्वकालकी बात है, एक दिन भृगुनन्दन जमदग्निजी धनुष चलानेकी क्रीडा कर रहे थे। वे बारंबार धनुषपर बाण रखकर उन्हें फेंकते और उनकी पत्नी रेणुका उन तेजस्वी बाणोंको ला-लाकर दिया करती थी। इस प्रकार खेलते-खेलते दोपहर हो गया। मुनिने पुनः अपने बाणोंको दूर फेंककर रेणुकासे कहा—'प्रिये ! जाओ मेरे धनुषसे छूटे हुए बाणोंको झटपट उठा लाओ, मैं फिर इन्हें धनुषपर रखकर चलाऊँगा।' आज्ञा पाकर रेणुका चल दी। सूर्यकी कड़ी धूपसे उसका मस्तक गरम हो उठा, तपी हुई भूमिपर उसके पैर जलने लगे; अतः वह एक वृक्षकी छायामें जाकर खड़ी हो गयी। किंतु उसे स्वामीके शापका डर लगा हुआ था, इसलिये वहाँ घड़ीभरसे अधिक न ठहर सकी, पुनः बाण लेनेके लिये आगे बढ़ गयी। जब बाण लेकर लौटी तो बहुत खिन्न हो रही थी। पैरोंके जलनेसे जो दुःख होता था उसको किसी तरह सहती और भयसे थर-थर काँपती हुई वह पतिके पास आयी। उस समय महर्षि कुपित होकर बारंबार पूछने लगे—'रेणुके ! तुम्हारे आनेमें इतनी देर क्यों हुई ?'

रेणुका बोली—तपोधन ! मेरा सिर तप गया, पैरोंमें जलन होने लगी, सूर्यके प्रचण्ड तेजसे आगे बढ़नेका साहस न हुआ, इसलिये थोड़ी देरतक वृक्षकी छायामें खड़ी होकर विश्राम लेने लगी थी। यही कारण है कि आपकी आज्ञाका पालन करनेमें विलम्ब हुआ, अतः आप मुझपर क्रोध न करें।

जमदग्निने कहा—प्रिये ! जिसने तुझे कष्ट पहुँचाया है उस प्रचण्ड सूर्यको आज मैं अपने बाणोंसे मार गिराऊँगा।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! ऐसा कहकर महर्षि जमदग्निने अपने दिव्य धनुषकी टंकार फैलायी और बहुत-से बाण हाथमें लेकर वे सूर्यकी ओर मुँह करके खड़े हो गये। उन्हें युद्धके लिये तैयार देख सूर्यदेव ब्राह्मणका रूप धारणकर उनके पास आये और बोले—'ब्रह्मन् !



सूर्यने आपका क्या अपराध किया है ? वे आकाशमें स्थित होकर अपनी किरणोंद्वारा वसुधाका रस खींचते हैं और बरसातमें पुनः उसे बरसा देते हैं। उस वृष्टिसे मनुष्योंको सुख देनेवाला अन्न पैदा होता है। अन्न ही मनुष्योंके प्राण हैं—यह बात वेदमें भी बतायी गयी है। अपने किरणजालसे मण्डित भगवान् सूर्य सातों द्वीपकी पृथ्वीको वर्षाके जलसे आप्लावित करते हैं, उसीसे नाना प्रकारके अन्न, फल, फूल और घास-पात आदि उत्पन्न होते हैं। जातकर्म, व्रत, उपनयन, विवाह, गो-दान, शास्त्रीय दान, संयोग और धन-संग्रह आदि सारे कार्य अन्नसे ही सम्पन्न होते हैं, इस बातको आप भी जानते हैं। भला, सूर्यको मार गिरानेसे आपको क्या लाभ होगा ? अतएव मैं प्रार्थनापूर्वक आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ (कृपया सूर्यको नष्ट करनेका संकल्प छोड़ दीजिये)।'

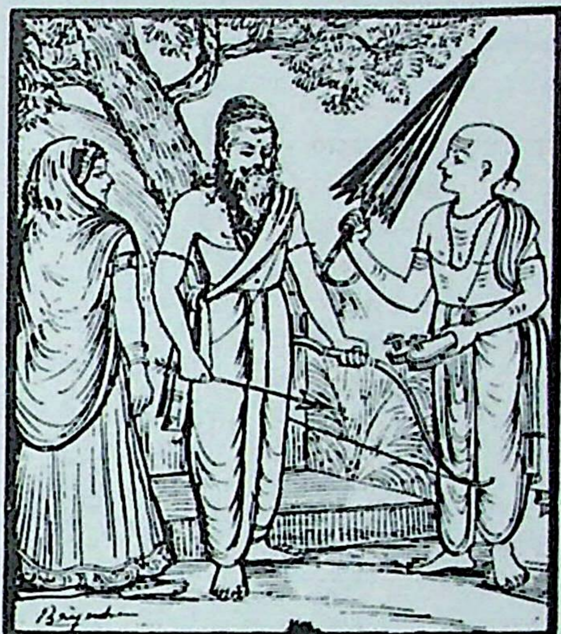
सूर्यदेवके यों प्रार्थना करनेपर भी अग्निके समान तेजस्वी जमदग्नि मुनिका क्रोध शान्त नहीं हुआ। वे कहने लगे—'मैं ज्ञानदृष्टिसे पहचान गया हूँ, तुम्हीं सूर्य हो, अतः आज दण्ड देकर तुम्हें अवश्य ही विनय सिखाऊँगा। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि अपने बाणोंसे तुम्हारे शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा।'

सूर्यने कहा—ब्रह्मर्षे ! आप धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ हैं,

अवश्य ही मेरे शरीरके टुकड़े कर सकते हैं। यद्यपि मैं आपका अपराधी हूँ तो भी इस समय आपकी शरणमें आया हूँ—ऐसा समझकर मेरी रक्षा कीजिये।

यह सुनकर महर्षि जमदग्नि हँस पड़े और कहने लगे—'सूर्यदेव ! अब तुम्हें भय नहीं मानना चाहिये; क्योंकि मेरी शरणमें आ गये हो। जो शरणमें आये हुएको मारता है उसे गुरुपत्नीगमन, ब्रह्महत्या और मदिरापानका पाप लगता है। तात ! इस समय तुम्हारे द्वारा जो अपराध हुआ है उसका समाधान सोचो (अर्थात् तुम्हारी किरणोंके तापसे मनुष्यकी रक्षा कैसे हो, उसका कोई उपाय बतलाओ)।' यह कहकर जमदग्नि मुनि चुप हो गये। तब सूर्यने उन्हें छत्र और उपानह देते हुए कहा—'महर्षे ! यह छत्र मेरी किरणोंका निवारण करके मस्तककी रक्षा करेगा और चमड़ेके बने हुए ये एक जोड़े जूते आपके पैरोंको जलनेसे बचायेंगे। आप इन्हें स्वीकार कीजिये। आजसे संसारमें प्रत्येक पुण्यके अवसरपर छाता और जूतोंका दान प्रचलित हो जायगा तथा इसका फल भी अक्षय होगा।'

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! इस प्रकार सबसे पहले भगवान् सूर्यने ही छाता लगाने और जूते पहननेकी प्रथा जारी की है। इन वस्तुओंका दान तीनों लोकोंमें पवित्र माना गया है। जिसके पैर जल रहे हों ऐसे स्नातक ब्राह्मणको



जो जूते दान करता है वह शरीरत्यागके पश्चात् देववन्दित लोकोंमें जाता है और बड़ी प्रसन्नताके साथ गोलोकमें निवास करता है। भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने यह छत्र और उपानह दान करनेका पूरा-पूरा फल बतलाया है।



गृहस्थ-धर्मके विषयमें पृथ्वी और श्रीकृष्णका संवाद तथा पुष्प, धूप और दीपके दान एवं देवता आदिको बलि देनेका माहात्म्य बतानेके लिये बलि-शुक्र-संवादका उल्लेख

युधिष्ठिरने कहा—दादाजी ! अब आप गृहस्थ-आश्रमके सम्पूर्ण धर्मोंका वर्णन कीजिये।

भीष्मजीने कहा—बेटा ! इस विषयमें मैं तुम्हें भगवान् श्रीकृष्ण और पृथ्वीका संवादरूप प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ।

श्रीकृष्णने पूछा—वसुन्धरे ! मुझको या मेरे-जैसे किसी दूसरे मनुष्यको गार्हस्थ्य-धर्मका आश्रय लेकर किस कर्मका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये ? क्या करनेसे गृहस्थको सफलता मिलती है ?

पृथ्वीने कहा—माधव ! गृहस्थ पुरुषको देवता, पितर, ऋषि और मनुष्योंका सदा ही पूजन एवं सत्कार करना चाहिये। अब मैं इसकी विधि बता रही हूँ, सुनिये—प्रतिदिन यज्ञ-होमके द्वारा देवताओंका, (श्राद्ध-तर्पण करके पितरोंका), अतिथि-सत्कारके द्वारा मनुष्योंका और वेदका स्वाध्याय करके पूजनीय ऋषि-महर्षियोंका पूजन करना चाहिये। स्वाध्यायसे ऋषियोंको बड़ी प्रसन्नता होती है। नित्यप्रति भोजनके पहले ही अग्निहोत्र एवं बलिवैश्वदेव कर्म करना आवश्यक है। ऐसा करनेसे देवता भी संतुष्ट होते हैं। पितरोंकी प्रसन्नताके लिये प्रतिदिन अन्न, जल, दूध अथवा फल-मूलके द्वारा श्राद्ध करना उचित है। सिद्ध अन्न (तैयार हुई रसोई) मेंसे अन्न लेकर उसके द्वारा विधिपूर्वक बलिवैश्वदेव करना चाहिये। इसके बाद ब्राह्मणको भिक्षा दे। यदि ब्राह्मण न मिल सके तो अन्नमेंसे थोड़ा-सा अग्रग्रास निकालकर उसका अग्निमें होम कर दे। जिस दिन पितरोंका श्राद्ध करनेकी इच्छा हो, उस दिन पहले श्राद्धकी ही क्रिया पूरी करे। उसके बाद पितृतर्पण और बलिवैश्वदेव करके ब्राह्मणको सत्कारपूर्वक भोजन करावे। फिर विशेष अन्नके



द्वारा अतिथियोंको भी संतुष्ट करे, किंतु भोजन देनेके पहले उनकी विधिवत् पूजा कर लेनी चाहिये। ऐसा करनेसे गृहस्थ पुरुष मनुष्योंको संतुष्ट करता है। जो नित्य अपने घरमें स्थित नहीं रहता, वह अतिथि कहलाता है। आचार्य, पिता, विश्वासपात्र मित्र और अतिथिसे सदा यह निवेदन करे कि 'अमुक वस्तु मेरे घरमें मौजूद है, उसे आप स्वीकार करें।' फिर वे जैसी आज्ञा दें, वैसा ही करें। इससे धर्मका पालन होता है। गृहस्थ पुरुषको सदा यज्ञशिष्ट अन्नका ही भोजन करना चाहिये। राजा, ऋत्विज, स्नातक, गुरु और श्वशुर—ये यदि एक वर्षके बाद आवें तो मधुपर्कसे इनकी पूजा करनी चाहिये। कुत्तों, चाण्डालों और पक्षियोंके लिये भूमिपर अन्न रख देना चाहिये। यह वैश्वदेव नामक कर्म है। प्रातःकाल और सायंकालमें इसका अनुष्ठान किया जाता है। जो मनुष्य दोषदृष्टिका परित्याग करके इन गृहस्थोचित धर्मोंका पालन करता है, उसे इस लोकमें ऋषि-महर्षियोंका वरदान प्राप्त होता है और मृत्युके पश्चात् वह पुण्यलोकोंमें सम्मानित होता है।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! पृथ्वीदेवीके ये वचन सुनकर प्रतापी भगवान् श्रीकृष्णने उन्हींके अनुसार गृहस्थधर्मोंका विधिवत् पालन किया। तुम्हें भी सदा इनका अनुष्ठान करना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! दीपदान किस तरह किया जाता है? उसकी उत्पत्ति कैसे हुई है? और इसका फल क्या है।?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! इस विषयमें शुक्र और बलिके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है।

बलिने पूछा—विप्रवर! फूल, धूप और दीप-दान करनेका क्या फल है? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

शुक्रने कहा—राजन्! पहले तपस्याकी उत्पत्ति हुई है, उसके बाद धर्मकी। इसी बीचमें लता और ओषधियाँ उत्पन्न हुईं। अनेकों प्रकारकी सोमलता, अमृत, विष तथा दूसरे-दूसरे तृणोंका प्रादुर्भाव हुआ। अमृत वह है, जिसे देखते ही मन प्रसन्न हो जाता है—तत्काल तृप्ति हो जाती है और विष वह है जो अपनी गन्धसे चित्तमें ग्लानि पैदा करता है। अमृत मङ्गल करनेवाला है और विष अमङ्गल। अब मैं देवता, असुर, राक्षस, नाग, यक्ष, पितर और मनुष्योंको प्रिय लगनेवाले तथा कामिनियोंको पसंद आनेवाले फूलोंका भी वर्णन करता हूँ। फूलोंके बहुत-से वृक्ष गाँवोंमें होते हैं और बहुत-से जंगलोंमें; बहुतेरे वृक्ष क्यारियोंमें लगाये जाते हैं और बहुत-से पर्वत आदिपर अपने-आप पैदा होते हैं। इन वृक्षोंमें कुछ काँटेदार होते हैं और कुछ बिना काँटोंके। इन सबमें रूप, रस और गन्ध विद्यमान रहते हैं। गन्ध दो प्रकारकी होती है—अच्छी और बुरी। अच्छी गन्धवाले फूल देवताओंको प्रिय होते हैं। जिन वृक्षोंमें काँटे नहीं होते उनके सफेद रंगवाले फल ही देवतालोग अधिक पसंद करते हैं। अथर्ववेदमें बतलाया गया है कि शत्रुओंका अनिष्ट करनेके लिये किये जानेवाले अभिचार कर्ममें लाल फूलोंवाली कड़वी और कण्टकाकीर्ण ओषधियोंका उपयोग करना चाहिये। जिन फूलोंमें काँटे अधिक हों, जिनका हाथसे स्पर्श करना कठिन जान पड़े, जिनका रंग अधिकतर लाल या काला हो तथा जिनका असर तीखा हो ऐसे फूल भूत-प्रेतोंके काम आते हैं। मनुष्योंको तो वे ही फूल प्रिय होते हैं जिनका रूप सुन्दर और रस मधुर हो तथा जो देखनेपर हृदयको आनन्ददायी जान पड़ें। श्मशान अथवा जीर्ण-शीर्ण देवालयमें पैदा हुए फूलोंका पौष्टिक कर्म, विवाह तथा एकान्त विहारमें उपयोग नहीं करना चाहिये। पर्वतोंके शिखरपर उत्पन्न हुए सुन्दर और सुगन्धित पुष्पोंको धोकर शास्त्रोक्त विधिके अनुसार उन्हें देवताओंपर चढ़ाना चाहिये। देवता फूलोंकी सुगन्धसे, यक्ष और राक्षस उनके दर्शनसे, नागगण उनका भलीभाँति उपभोग करनेसे और मनुष्य उनके गन्ध, दर्शन एवं उपभोग—तीनोंसे ही संतुष्ट होते हैं।

फूल चढ़ानेसे देवता तत्काल प्रसन्न हो जाते हैं और सिद्ध-संकल्प होनेके कारण वे मनुष्योंको मनोवाञ्छित तथा मनोरम भोग देकर उनकी भलाई करते हैं। देवताओंको यदि संतुष्ट और सम्मानित किया जाता है तो वे भी मनुष्योंको संतोष और आदर देते हैं तथा यदि उनकी अवज्ञा एवं अवहेलना की गयी तो वे अवज्ञा करनेवाले नीच मनुष्योंको अपनी क्रोधाग्निसे भस्म कर डालते हैं।

इसके बाद धूप-दानका फल सुनो—धूप भी अच्छे और बुरे कई तरहके होते हैं। मुख्यतः उनके तीन भेद हैं—निर्यास, सारी और कृत्रिम। इन धूपोंकी गन्ध भी अच्छी और बुरी दो प्रकारकी होती है। ये सब बातें विस्तारके साथ सुनो—वृक्षोंके रस (गोंद) को निर्यास कहते हैं, सल्लकी नामक वृक्षके सिवा अन्य वृक्षोंसे प्रकट हुए निर्यासमय धूप देवताओंको अधिक प्रिय होते हैं। उनमें भी गुग्गुल सबसे श्रेष्ठ है। जिन काष्ठोंको आगमें जलानेपर सुगन्ध प्रकट होती है उन्हें 'सारी' धूप कहते हैं। इनमें अगुरुकी प्रधानता है। 'सारी' धूप विशेषतः यक्ष, राक्षस और नागोंको प्रिय होते हैं। दैत्यलोग सल्लकी तथा उसी तरहके अन्य वृक्षोंकी गोंदका बना हुआ धूप पसंद करते हैं। सर्जरस (राल) आदि, पार्थिव रस (लोहबान आदि) तथा सुगन्धित काष्ठौषधियोंको मिलाकर शक्कर और घृतसे संयुक्त करके जो (अष्टगन्ध आदि) धूप तैयार किया जाता है, वही कृत्रिम है। मनुष्य उसका ही विशेष उपयोग करते हैं। उससे देवता-दानव आदि भी शीघ्र संतुष्ट होते हैं। इनके सिवा भोग-विलासके लिये उपयोगी और भी अनेकों प्रकारके धूप हैं जो केवल मनुष्योंके व्यवहारमें आते हैं। फूलोंको चढ़ानेका जो फल बताया गया है वही धूप निवेदन करनेका भी है। धूप भी देवताओंकी प्रसन्नता बढ़ानेवाले हैं।

अब दीप-दानका उत्तम फल बतला रहा हूँ। कब, किस प्रकार और कैसे दीप देने चाहिये, इन सब बातोंका वर्णन सुनो—दीपक ऊर्ध्वगामी तेज है, वह कीर्तिका विस्तार करनेवाला है, अतः दीप-दान करनेसे मनुष्यका तेज बढ़ता है। अन्धकारसे ही अन्धतामिस्र नामक नरकरूप है। दक्षिणायन भी अन्धकारसे ही आच्छन्न रहता है। इसके विपरीत उत्तरायण प्रकाशमय है, इसलिये वह श्रेष्ठ माना गया है। अतः अन्धकारमय नरककी निवृत्तिके लिये दीप-दानकी प्रशंसा की गयी है। दीपकी शिखा ऊर्ध्वगामिनी होती है, वह अन्धकारको दूर करनेकी दवा है, इसलिये जो दीप-दान करता है उसे निश्चय ही ऊर्ध्वगतिकी प्राप्ति होती है। देवता तेजस्वी, कान्तिमान् और प्रकाश फैलानेवाले होते हैं, अतः देवताओंके निमित्त दीप-दान दिया जाता है। दीप-दान करनेसे मनुष्यके नेत्रोंका तेज बढ़ता है और वह स्वयं भी तेजस्वी होता है। दान करनेके पश्चात् उन दीपकोंको न तो बुझावे, न उठाकर अन्यत्र ले जाय और न नष्ट ही करे। दीपक चुरानेवाला मनुष्य अंधा और श्रीहीन होता है तथा मरनेके पीछे नरकमें पड़ता है; किंतु जो दीप-दान करता है वह स्वर्गलोकमें दीपमालाकी भाँति प्रकाशित होता है। घीका दीपक जलाकर दान करना प्रथम श्रेणीका दीप-दान है। ओषधियोंके रस अर्थात् तिल, सरसो आदिके तेलसे जलाकर किया हुआ दीप-दान दूसरी श्रेणीका है। जो अपने शरीरकी पुष्टि चाहता हो उसे चर्बी, मेदा और हड्डियोंसे निकाले हुए तेलके द्वारा कदापि नहीं दीपक जलाना चाहिये। अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको प्रतिदिन पर्वतीय झरनेके पास, वनमें, देवमन्दिरमें और चौराहोंपर दीप-दान करना चाहिये। दीप-दान करनेवाला पुरुष अपने कुलको उद्दीप्त करनेवाला, शुद्धचित्त तथा श्रीसम्पन्न होता है और अन्तमें वह प्रकाशमय लोकोंमें जाता है।

अब मैं देवता, यक्ष, सर्प, मनुष्य, भूत और राक्षसोंको बलि समर्पण करनेसे जो लाभ होता है, उसका वर्णन करता हूँ। जो लोग अपने भोजन करनेसे पहले देवता, ब्राह्मण, अतिथि और बालकोंको भोजन नहीं कराते उन्हें अमङ्गलकारी राक्षस ही समझना चाहिये। अतः गृहस्थ मनुष्यका यह कर्तव्य है कि वह देवताओंकी पूजा करके उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम करे और सर्वप्रथम उन्हींको अन्नका भाग अर्पण करे; क्योंकि देवतालोग सदा मनुष्योंकी दी हुई बलिको स्वीकार करते और उन्हें आशीर्वाद देते हैं। बाहरसे आये हुए अतिथि और देवता, पितर, यक्ष, राक्षस तथा सर्प आदि गृहस्थके दिये हुए अन्नसे ही जीविका चलाते हैं और प्रसन्न होकर उस गृहस्थको आयु, यश तथा धनके द्वारा संतुष्ट करते हैं। देवताओंको जो बलि दी जाय वह दही-दूधकी बनी हुई परम पवित्र, सुगन्धित, दर्शनीय और फूलोंसे सुशोभित होनी चाहिये। नागोंको पद्म और उत्पलयुक्त बलि प्रिय होती है, भूतोंको गुड़ मिले हुए तिलकी बलि देनी चाहिये। जो मनुष्य देवता आदिको अग्रभाग देकर भोजन करता है वह उत्तम भोगसे सम्पन्न, बलवान् और वीर्यवान् होता है; इसलिये देवताओंकी पूजा करके उन्हें अग्रभाग अवश्य अर्पण करना चाहिये। गृहस्थके घरकी अधिष्ठात्री देवियाँ उसके घरको सदा प्रकाशित किये रहती हैं; अतः कल्याण-कामी मनुष्यको चाहिये कि भोजनका अग्रभाग देकर सदा ही उनकी पूजा किया करे।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! इस प्रकार शुक्राचार्यने यह प्रसंग असुरराज बलिको सुनाया और मनुने सुवर्ण मुनिको इसका उपदेश किया। तत्पश्चात् सुवर्णने नारदजीको और नारदजीने मुझे ये धूप-दीप आदि दानके गुण बतलाये थे। बेटा ! इस विधिको जानकर तुम भी इसीके अनुसार सब काम करो।



अनशन-व्रतका माहात्म्य

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! आपने अनेक प्रकारके दान, शान्ति, सत्य और अहिंसा आदिका वर्णन किया, अब यह बताइये कि तपोबलसे बढ़कर कौन-सा बल है ? तपस्यासे भी यदि कोई उत्कृष्ट साधन हो तो उसकी व्याख्या कीजिये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! मनुष्य जितना तप करता है, उसीके अनुसार उसे उत्तम लोक प्राप्त होते हैं; अतः तपसे बढ़कर कोई साधन नहीं है, किंतु मेरी रायमें सब प्रकारकी तपस्याओंसे अनशन-व्रत ही श्रेष्ठ है। अनशनसे बढ़कर दूसरा कोई तप नहीं है। इस विषयमें भगीरथ और ब्रह्माजीके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। हमने सुना है कि राजा भगीरथ देवताओंके लोकका उल्लङ्घन करके ऋषियोंको प्राप्त होनेवाले ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे। उन्हें देखकर ब्रह्माजीने पूछा—भगीरथ ! इस लोकमें आना तो बहुत ही कठिन है, तुम कैसे आ पहुँचे ? मनुष्य, देवता और गन्धर्व भी बिना तपस्या किये यहाँ नहीं आ सकते; फिर तुम्हारा आना किस प्रकार सम्भव हुआ ?'

भगीरथने कहा—भगवन् ! मैं ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करके प्रतिदिन एक लाख स्वर्णमुद्रा ब्राह्मणोंको दान किया करता था; किंतु उसके फलसे मेरा यहाँ आना नहीं सम्भव हुआ है। मैंने एक रातमें और पाँच रातमें समाप्त होनेवाले यज्ञ दस-दस बार किये हैं। ग्यारह रात्रियोंमें पूर्ण होनेवाले यज्ञका ग्यारह बार अनुष्ठान किया है तथा सौ बार ज्योतिष्टोम यज्ञसे देवताओंका यजन किया है; किंतु इन यज्ञोंके कारण भी मैं इस लोकमें नहीं आया हूँ। सौ वर्षोंतक निरन्तर गङ्गाजीके तटपर रहकर मैंने जो कठोर तपस्या की और वहाँ हजारों खच्चरियों तथा कन्याओंका दान किया, उस पुण्यके प्रभावसे भी मैं यहाँ नहीं आया हूँ। पुष्करतीर्थमें एक लाख बार जो ब्राह्मणोंको एक लाख घोड़े, दो लाख गौएँ तथा सोनेके चन्द्रहार और जाम्बूनदके गहनोंसे विभूषित हुई साठ हजार सुन्दरी कन्याएँ दान की थीं, वह पुण्य भी मुझे इस लोकमें ले आनेका कारण नहीं है। गोसव नामक यज्ञका अनुष्ठान करके उसमें दूध देनेवाली दस अरब गौओंका दान किया है; उस समय एक-एक ब्राह्मणको दस-दस गायें मिली थीं, प्रत्येक गायके साथ उसीके समान रंगवाले बछड़े और सुवर्णमय दुग्धपात्र भी दिये गये थे; परंतु उस यज्ञने भी मुझे यहाँतक नहीं पहुँचाया है। अनेकों बार सोमयागकी दीक्षा लेकर उसमें प्रत्येक ब्राह्मणको मैंने पहले बारकी ब्यायी हुई दूध देनेवाली दस-दस गौएँ और रोहिणी जातिकी सौ-सौ गौएँ दान की हैं तथा इनके अतिरिक्त भी दस-दस बार लाखों दूधार गायें प्रदान की हैं; किंतु उस पुण्यसे भी मैं इस लोकमें नहीं आया हूँ। बाह्लीक देशमें उत्पन्न हुए श्वेत रंगके एक लाख घोड़ोंको सोनेकी मालाओंसे सजाकर ब्राह्मणोंको दान किया; किंतु वह पुण्य भी मुझे यहाँतक न ला सका। एक-एक यज्ञमें अठारह-अठारह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ बाँटीं, पर उसके पुण्यसे भी यहाँ न आ सका। फिर स्वर्णहारसे विभूषित हरे रंगवाले सत्रह करोड़ श्यामकर्ण घोड़े, हरिसके समान दाँतोंवाले स्वर्णमालामण्डित एवं विशाल शरीरवाले सत्रह हजार हाथी तथा सोनेके बने हुए दिव्य आभूषणोंसे विभूषित, स्वर्णमय उपकरणोंसे युक्त और सजे-सजाये घोड़े जुते हुए सत्रह हजार रथ दान किये। इनके अतिरिक्त भी जो-जो वस्तुएँ वेदोंमें दक्षिणाके अङ्गरूपसे बतायी गयी हैं, उन सबको मैंने दस वाजपेय यज्ञोंका अनुष्ठान करके दान किया था। यज्ञ और पराक्रममें जो इन्द्रके समान प्रभावशाली थे, जिनके कण्ठमें सुवर्णके हार शोभा पा रहे थे, ऐसे हजारों राजाओंको युद्धमें जीतकर मैंने ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दे दिया (अर्थात् ब्राह्मणोंके कहनेसे विजित राजाओंको बन्धनसे मुक्त कर दिया)। संसारके समस्त राजाओंको परास्त कर अधिक धन खर्च करके आठ बार राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया; किंतु ये कोई भी यज्ञ मुझे ब्रह्मलोकतक पहुँचानेमें समर्थ न हो सके। मेरी दी हुई दक्षिणासे गङ्गाजीका सम्पूर्ण स्रोत आच्छादित हो गया था, परंतु उसके कारण भी मैं इस लोकमें न आ सका। उस यज्ञमें मैंने प्रत्येक ब्राह्मणको तीन-तीन बार सोनेके अलंकारोंसे विभूषित दो हजार घोड़े और एक-एक सौ अच्छे-अच्छे गाँव दिये थे। मिताहारी, मौन और शान्तभावसे रहकर मैंने हिमालय पर्वतपर बहुत कालतक तपस्या की थी, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने गङ्गाजीकी दुःसह धाराको अपने मस्तकपर धारण किया; किंतु वह तपस्या भी मुझे यहाँ लानेमें कारण नहीं है। मैंने अनेकों बार शम्याक्षेप

याग[1] किये, दस हजार साद्यस्क यागोंका अनुष्ठान किया, कई बार तेरह और बारह दिनोंमें समाप्त होनेवाले याग और पुण्डरीक नामक यज्ञ पूर्ण किये; परंतु उनके फलोंसे भी यहाँतक आनेमें सफल न हो सका। इतना ही नहीं, मैंने सफेद रंगके आठ हजार बैल भी ब्राह्मणोंको दान किये, जिनके एक-एक सींगमें सोना मढ़ा हुआ था तथा अनेकों बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करके उनमें सोने और रत्नोंकी ढेरी, रत्नमय पर्वत, धन-धान्यसे सम्पन्न हजारों गाँव और एक बारकी ब्यायी हुई सहस्रों गौएँ ब्राह्मणोंको दान कीं; किंतु उनके पुण्यसे मैं यहाँ नहीं आया हूँ। मेरे द्वारा एक बार एकादशाह और दो बार द्वादशाह यज्ञोंका अनुष्ठान हुआ है। मैंने सोलह बार आर्कायण तथा अनेकों बार अश्वमेध यज्ञ किये हैं; परंतु इन यज्ञोंके फलसे भी इस लोकमें नहीं आया हूँ। चार कोसका लंबा-चौड़ा एक वन, जिसके प्रत्येक वृक्षमें सोने और रत्न जड़े हुए थे, मैंने दान किया है; किंतु उसका फल भी मुझे यहाँतक लानेमें समर्थ नहीं हुआ है। मैं तीस वर्षोंतक क्रोधरहित होकर 'तुरायण' नामक दुष्कर व्रतका पालन करता रहा, जिसमें प्रतिदिन नौ सौ गायें ब्राह्मणोंको दान देता था। इनके अतिरिक्त रोहिणी (कपिला) जातिकी बहुत-सी दूधार गौएँ तथा बहुतेरे बैल भी दान किया करता था; पर उन सब दानोंके फलसे इस लोकमें नहीं आया हूँ। मैंने तीस बार अग्निचयन, आठ बार सर्वमेध और एक सौ अट्ठाईस बार विश्वजित् यज्ञ किये हैं; किंतु उनके फलसे भी यहाँ नहीं आ सका हूँ। सरयू, बाहुदा, गङ्गा और नैमिषारण्य तीर्थमें जाकर मैंने दस लाख गोदान किये हैं; परंतु उनके फल भी मुझे यहाँतक न ला सके। (केवल अनशन-व्रतके प्रभावसे मुझे इस दुर्लभ लोककी प्राप्ति हुई है।) पहले इन्द्रने स्वयं अनशन-व्रतका अनुष्ठान करके इसे गुप्त रखा था, उसके बाद शुक्राचार्यने तपस्याके द्वारा उसका ज्ञान प्राप्त किया; फिर उन्हींके तेजसे उस व्रतका माहात्म्य सबपर प्रकट हुआ। मैंने भी अन्तमें उसी व्रतका साधन आरम्भ किया; जब उसकी पूर्ति हुई, उस समय मेरे पास हजारों ब्राह्मण और ऋषि पधारे। वे सभी मुझपर बहुत संतुष्ट थे। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दी 'राजन्! तुम ब्रह्मलोकको जाओ।' इस प्रकार (मेरे अनशन-व्रतसे संतुष्ट हुए उन) हजारों ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे मुझे इस दुर्लभ लोकमें आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है; इसमें आप कोई अन्यथा विचार न करें। मैंने अपनी इच्छाके अनुसार विधिपूर्वक अनशन-व्रतका पालन किया है। इस समय आपने पूछा है, इसलिये ये सब बातें यथार्थरूपसे बतायी हैं। मेरी समझमें अनशन-व्रतसे बढ़कर दूसरा कोई तप नहीं है। देवेश्वर! आपको सादर नमस्कार है, अब आप मुझपर प्रसन्न होइये।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! राजा भगीरथने जब इस प्रकार कहा तो ब्रह्माजीने उनका विधिवत् आतिथ्य-सत्कार किया। इसलिये तुम भी सदा अनशन-व्रतका पालन करते हुए ब्राह्मणोंकी पूजा करो; क्योंकि ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे इहलोक और परलोकमें सब प्रकारकी कामनाएँ सिद्ध होती हैं।

—★—

आयुको बढ़ाने और घटानेवाले शुभाशुभ कर्मोंका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! शास्त्रोंमें कहा गया है कि 'मनुष्यकी आयु सौ वर्षोंकी होती है, वह सैकड़ों प्रकारकी शक्ति लेकर जन्म धारण करता है।' किंतु देखता हूँ कितने ही मनुष्य बचपनमें ही कालके गालमें चले जाते हैं; इसका क्या कारण है? किस उपायसे पुरुष अपनी पूरी आयुतक जीवित रहता है? क्या वजह है कि उसकी आयु कम हो जाती है? क्या करनेसे यश मिलता है और किस कर्मके अनुष्ठानसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है? मनुष्य मन, वाणी अथवा शरीरके द्वारा तप, ब्रह्मचर्य, जप, होम तथा औषध आदि साधनोंमेंसे किसका आश्रय ले, जिससे उसका भला हो?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! तुम जो कुछ पूछते हो उसका उत्तर दे रहा हूँ, सुनो—सदाचारसे ही मनुष्यको आयु, लक्ष्मी तथा इस लोक और परलोकमें कीर्तिकी प्राप्ति होती है। दुराचारी पुरुष, जिससे समस्त प्राणी डरते और तिरस्कृत होते हैं, इस संसारमें बड़ी आयु नहीं पाता; अतः यदि मनुष्य अपना कल्याण करना चाहता हो तो उसे सदाचारका पालन करना चाहिये। कितना ही बड़ा पापी क्यों न हो, सदाचार उसकी बुरी प्रवृत्तियोंको दबा देता है। सदाचार धर्मका और सच्चरित्रता पुरुषोंका लक्षण है। साधु पुरुष जैसा बर्ताव करते हैं, वही सदाचारका स्वरूप है। जो मनुष्य धर्मका आचरण करता और लोक-कल्याणके कार्यमें लगा

१. यज्ञकर्ता पुरुष 'शम्या' नामक एक काठका डंडा खूब जोर लगाकर फेंकता है, वह जितनी दूरपर जाकर गिरता है, उतने दूरमें यज्ञकी वेदी बनायी जाती है; उस वेदीपर जो यज्ञ किया जाता है, उसे 'शम्याक्षेप' अथवा 'शम्याप्रास' यज्ञ कहते हैं।

रहता है, उसका दर्शन न हुआ हो तो भी मनुष्य केवल नाम सुनकर उससे प्रेम करने लगते हैं। नास्तिक, क्रियाहीन, गुरु और शास्त्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले तथा धर्मको न जाननेवाले दुराचारी मनुष्योंकी आयु क्षीण हो जाती है। जो मनुष्य शीलहीन, धर्मकी मर्यादाको भङ्ग करनेवाले तथा दूसरे वर्णकी स्त्रियोंसे सम्पर्क रखनेवाले हैं, वे इस लोकमें अल्पायु होते और मरनेके बाद नरकमें पड़ते हैं। सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे हीन होनेपर भी जो सदाचारी, श्रद्धालु और ईर्ष्यारहित होता है, वह सौ वर्षोंतक जीवित रहता है। जो क्रोधहीन, सत्यवादी, प्राणियोंकी हिंसा न करनेवाला, दोषदृष्टिसे रहित और कपटशून्य है, उस पुरुषकी आयु सौ वर्षोंकी होती है। जो मनुष्य ढेले फोड़ता, तिनके तोड़ता, नख चबाता तथा सदा ही अशुद्ध एवं चञ्चल रहता है, उसे दीर्घायु नहीं प्राप्त होती।

प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्तमें (अर्थात् सूर्योदयसे एक घंटा पहले) जागकर धर्म और अर्थके विषयमें विचार करे। फिर शय्यासे उठकर शौच-स्नानके पश्चात् आचमनपूर्वक दोनों हाथ जोड़े हुए प्रातःकालकी संध्या करे। इसी प्रकार सायंकालमें भी मौन होकर संध्योपासना करनी चाहिये। उदय, अस्त, ग्रहण और मध्याह्नके समय सूर्यकी ओर कभी दृष्टि न डाले। जलमें भी उनकी परछाईं न देखे। ऋषिलोग प्रतिदिन संध्योपासन करनेसे ही दीर्घजीवी हुए हैं; अतः द्विज-मात्रको मौन रहकर प्रातःकाल और सायंकालकी संध्या अवश्य करनी चाहिये। जो द्विज दोनों समयकी संध्या नहीं करते, उनसे धार्मिक राजा शूद्रोंके काम करावे। किसी भी वर्णके पुरुषको परायी स्त्रीसे संसर्ग नहीं करना चाहिये। परस्त्रीसेवनसे मनुष्यकी आयु जल्दी ही समाप्त हो जाती है। इसके समान आयु नष्ट करनेवाला संसारमें दूसरा कोई कार्य नहीं है। स्त्रियोंके शरीरमें जितने रोमकूप होते हैं, उतने ही हजार वर्षोंतक व्यभिचारी पुरुषोंको नरकमें रहना पड़ता है।

केशोंको सँवारना, आँखोंमें अंजन लगाना, दाँत-मुँह धोना और देवताओंकी पूजा करना—ये सब कार्य दिनके पहले पहरमें ही करने चाहिये। मल-मूत्रकी ओर न देखे, उसपर कभी पैर न रखे। अत्यन्त सबेरे, दोपहरको और सायंकालमें कहीं बाहर न जाय। न तो अपरिचित पुरुषोंके साथ यात्रा करे, न शूद्रके साथ और न अकेले ही। ब्राह्मण, गाय, राजा, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री, दुर्बल और बोझ लिये हुए मनुष्य यदि सामनेसे आते हों तो स्वयं किनारे हटकर उन्हें जानेका मार्ग देना चाहिये। मार्गमें चलते समय परिचित वृक्षों और सभी चौराहोंको दाहिनी ओर छोड़ना चाहिये। प्रातःकाल, सायंकाल, मध्याह्न, रात और विशेषतः आधी रातके समय कभी चौराहोंपर न रहे। दूसरोंके पहने हुए वस्त्र और जूते न पहने। सदा ब्रह्मचर्यका पालन करे। पैरपर पैर न रखे। दोनों ही पक्षोंकी अमावास्या, पौर्णमासी, चतुर्दशी और अष्टमी तिथिको स्त्री-समागम न करे। दूसरोंकी निन्दा, बदनामी और चुगली न करे। किसीके मर्मपर आघात न करे। क्रूरताभरी बात न बोले। औरोंको नीचा न दिखावे। जिसके कहनेसे दूसरोंको उद्वेग होता हो, वह रुखाईसे भरी हुई बात पापलोकमें ले जानेवाली होती है; उसे कभी मुँहसे न निकाले। वचनरूपी बाण मुँहसे निकलते हैं, जिनकी चोट खाकर मनुष्य रात-दिन शोकमें पड़ा रहता है। अतः जिनसे दूसरे मनुष्यके मर्मपर आघात लगता हो, विद्वान् पुरुषको ऐसे वचनोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये। बाणोंसे बिंधा हुआ और फरसेसे काटा हुआ वन पुनः अङ्कुरित हो जाता है; किंतु दुर्वचनरूपी शस्त्रसे किया हुआ भयंकर घाव कभी नहीं भरता। कर्णि, नालीक और नाराच—ये यदि शरीरमें लग जायँ तो निकाले जा सकते हैं; किंतु वचनरूपी काँटेका निकाला जाना असम्भव है। वह सदा हृदयमें कसकता रहता है। हीनाङ्ग (अंधे-काने आदि), अधिकाङ्ग (छाँगुर आदि), अपढ़, निन्दित, कुरूप, धनहीन और असत्यवादी मनुष्योंकी खिल्ली नहीं उड़ानी चाहिये। नास्तिकता, वेदोंकी निन्दा, देवताओंके प्रति अनुचित आक्षेप, द्वेष, उद्दण्डता और कठोरता—इन दुर्गुणोंका त्याग कर देना चाहिये। क्रोधमें आकर पुत्र या शिष्यके सिवा और किसीको डंडे मारना अथवा जमीनपर गिराना उचित नहीं है। हाँ, शिक्षाके लिये पुत्र और शिष्यको ताडना देना शास्त्रसम्मत है। ब्राह्मणकी निन्दासे दूर रहे। घर-घर घूमकर नक्षत्र और तिथि न बताया करे। इन सब नियमोंका पालन करनेसे मनुष्यकी आयु नहीं क्षीण होती।

मल-मूत्र त्यागने और रास्ता चलनेके बाद तथा स्वाध्याय और भोजनके पहले पैर धो लेने चाहिये। जिसपर किसीकी दूषित दृष्टि न पड़ी हो, जो जलसे धोया गया हो तथा जिसकी ब्राह्मण प्रशंसा करते हों—ये ही तीन वस्तुएँ देवताओंने ब्राह्मणोंके उपयोगमें लाने योग्य और पवित्र बतायी हैं। गृहस्थ पुरुष प्रतिदिन अग्निहोत्र करे; संन्यासियोंको भिक्षा दे और मौन रहकर नित्य ही दन्तधावन करे। सबेरे सोकर उठनेके बाद पहले माता-पिता, आचार्य तथा अन्य गुरुजनोंको प्रणाम करना चाहिये, इससे दीर्घायु प्राप्त होती है। सूर्योदय होनेतक कभी न सोये; यदि किसी दिन ऐसा हो जाय तो प्रायश्चित्त करे। शास्त्रोंमें जिन काष्ठोंका दाँतन निषिद्ध माना गया है, उन्हें काममें न ले। शास्त्रविहित काष्ठका ही दन्तधावन करे, किंतु पर्वके दिन उसे भी

त्याग दे। सदा सावधान रहकर (दिनमें) उत्तरकी ओर मुँह करके ही मलमूत्रका त्याग करे। दन्तधावन किये बिना देवताओंकी पूजा न करे और देवपूजा किये बिना गुरु, वृद्ध, धार्मिक तथा विद्वान् पुरुषको छोड़कर दूसरे किसीके पास न जाय।

बुद्धिमान् मनुष्य मलिन दर्पणमें मुँह न देखे। गर्भिणी स्त्रीके साथ समागम न करे तथा उत्तर और पश्चिमकी ओर सिरहाना करके न सोये; केवल पूर्व अथवा दक्षिण दिशाकी ओर ही सिर करके सोना उचित है। टूटी और ढीली खाटपर नहीं सोना चाहिये। अँधेरेमें पड़ी हुई शय्यापर भी सहसा शयन करना उचित नहीं है (उजाला करके उसे अच्छी तरह देख लेना चाहिये)। इसी तरह पलंगपर कभी भी तिरछा होकर नहीं, सदा सीधे ही सोना चाहिये। नास्तिक मनुष्योंके साथ काम पड़नेपर भी न जाय; उनके साथ कोई प्रतिज्ञा भी न करे। आसनको पैरसे खींचकर न बैठे। कभी भी नंगा होकर अथवा रातमें न नहाय। स्नानके पश्चात् अपने अङ्गोंमें (तैल आदिकी) मालिश न करावे। स्नान किये बिना चन्दन न लगावे। नहा लेनेपर गीले वस्त्र न फहरावे और भीगे कपड़े कभी न पहने। गलेमें पड़ी हुई मालाको न खैंचे, उसे कपड़ेके ऊपर न पहने तथा रजस्वला स्त्रीके साथ कभी बातचीत न करे। बोये हुए खेतमें, गाँवके आस-पास तथा पानीमें कभी मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। भोजन करनेवाला मनुष्य पहले तीन बार जलसे आचमन करे, फिर भोजनके पश्चात् भी तीन आचमन करके दो बार मुँह धोवे। सदा पूर्वकी ओर मुँह करके मौन होकर भोजन करना चाहिये। परोसे हुए अन्नकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। भोजनके पश्चात् मन-ही-मन अग्निका ध्यान करना चाहिये। जो मनुष्य पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके भोजन करता है उसे दीर्घायु, जो दक्षिणकी ओर मुँह करके अन्न ग्रहण करता है उसे यश, जो पश्चिमकी ओर मुख करके भोजन करता है उसे धन और जो उत्तराभिमुख होकर भोजन करता है उसे सत्यकी प्राप्ति होती है। अग्निका स्पर्श करके जलसे सम्पूर्ण इन्द्रियोंका, सब अङ्गोंका, नाभिका और दोनों हथेलियोंका स्पर्श करे। भूसा, भस्म, बाल और मुर्देकी खोपड़ी आदिपर कभी न बैठे। दूसरेके नहाये हुए जलका दूरसे ही परित्याग कर दे। शान्ति, होम और गायत्रीका फिर जप करे। बैठकर ही भोजन करे; चलते-फिरते कभी नहीं भोजन करना चाहिये। खड़ा होकर पेशाब न करे। राखमें और गोशालामें भी मूत्र-त्याग न करे। भीगे पैर भोजन तो करे, परंतु शयन न करे। भीगे पैर भोजन करनेवाला मनुष्य सौ वर्षोंतक जीवन धारण करता है। भोजन करके हाथ-मुँह धोये बिना मनुष्य उच्छिष्ट (अपवित्र) रहता है, ऐसी अवस्थामें उसे अग्नि, गौ तथा ब्राह्मण—इन तीन तेजस्वियोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये। इस प्रकार आचरण करनेसे आयुका नाश नहीं होता। उच्छिष्ट पुरुषको सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र—इन त्रिविध तेजोंकी ओर कभी दृष्टि नहीं डालनी चाहिये। वृद्ध पुरुषोंके आनेपर तरुण पुरुषके प्राण ऊपरकी ओर उठने लगते हैं; ऐसी दशामें जब वह खड़ा होकर वृद्ध पुरुषोंका स्वागत और उन्हें प्रणाम करता है तो वे प्राण पुनः पूर्वावस्थामें आ जाते हैं। इसलिये जब कोई वृद्ध पुरुष अपने पास आवे तो उसे प्रणाम करके बैठनेको आसन दे और स्वयं हाथ जोड़कर उसकी सेवामें उपस्थित रहे। फिर जब वह जाने लगे तो उसके पीछे-पीछे कुछ दूरतक जाय।

फटे हुए आसनपर न बैठे। फूटी हुई काँसीकी थालीको काममें न ले। एक ही वस्त्र (केवल धोती) पहनकर भोजन न करे, साथमें गमछा भी लिये रहे। नंगे बदन नहाना और सोना कदापि उचित नहीं है। उच्छिष्ट अवस्थामें भी शयन करना निषिद्ध है। जूँठे हाथसे मस्तकका स्पर्श न करे; क्योंकि समस्त प्राण उसीके आधारपर स्थित हैं। सिरके बाल पकड़कर खींचना और मस्तकपर प्रहार करना वर्जित है। दोनों हाथ सटाकर उनसे अपना सिर न खुजलावे। बारंबार मस्तकपर पानी न डाले। इन बातोंके पालनसे मनुष्यकी आयु क्षीण नहीं होती। सिरपर तेल लगानेके बाद उसी हाथसे दूसरे अङ्गोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये और तिलके बने हुए पदार्थ नहीं खाना चाहिये—ऐसा करनेसे आयुका नाश नहीं होता। जूँठे मुँह पढ़ना-पढ़ाना कदापि उचित नहीं है और यदि दुर्गन्धित हवा चले तब तो मनमें भी स्वाध्यायका चिन्तन नहीं करना चाहिये। प्राचीन इतिहासके जानकार लोग इस विषयमें यमराजकी गायी हुई गाथा सुनाया करते हैं। (यमराज कहते हैं—) 'जो मनुष्य जूँठे मुँह उठकर दौड़ता और स्वाध्याय करता है, मैं उसकी आयु नष्ट कर देता हूँ और उसकी संतानोंको भी उससे छीन लेता हूँ। जो द्विज मोहवश अनध्यायके समय भी अध्ययन करता है, उसके वैदिक ज्ञान और आयुका नाश हो जाता है।' अतः सावधान पुरुषको निषिद्ध समयमें कभी अध्ययन नहीं करना चाहिये।

जो सूर्य, अग्नि, गौ तथा ब्राह्मणोंकी ओर मुँह करके पेशाब करते हैं और बीच रास्तेमें मूत्र-त्याग करते हैं, वे सब गतायु हो जाते हैं। मल और मूत्रका त्याग दिनमें उत्तराभिमुख और रातमें दक्षिणाभिमुख होकर करनेसे आयुका नाश नहीं होता। जिसे दीर्घकालतक जीवित रहनेकी इच्छा हो, वह ब्राह्मण, क्षत्रिय और सर्प—इन तीनोंको दुर्बल होनेपर भी न छेड़े; क्योंकि ये सभी बड़े जहरीले होते हैं। क्रोधमें भरा हुआ साँप जहाँतक आँखोंसे देख पाता है, वहाँतक धावा करके काटता है। क्षत्रिय भी कुपित होनेपर अपनी शक्तिभर

शत्रुको भस्म करनेकी चेष्टा करता है; किंतु ब्राह्मण जब क्रुद्ध होता है तो वह अपनी दृष्टि और संकल्पसे अपमान करनेवाले पुरुषके सम्पूर्ण कुलको दग्ध कर डालता है। इसलिये समझदार मनुष्यको यत्नपूर्वक इनकी सेवा करनी चाहिये। गुरुके साथ कभी हठ नहीं ठानना चाहिये। यदि गुरु अप्रसन्न हों तो उन्हें हर तरहसे मान देकर मनाकर प्रसन्न करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। गुरु प्रतिकूल बर्ताव करते हों तो भी उनके प्रति अच्छा ही बर्ताव करना उचित है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि गुरुकी निन्दा मनुष्योंकी आयु नष्ट कर देती है।

अपना हित चाहनेवाला मनुष्य घरसे दूर जाकर पेशाब करे, दूर ही पैर धोवे और दूरपर ही जूँठे फेंके। विद्वान् पुरुषको लाल पुष्पोंकी नहीं, श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करनी चाहिये; किंतु कमल और कुवलय लाल हों तो भी उन्हें धारण करनेमें कोई हर्ज नहीं है। लाल रंगके फूल तथा वन्य पुष्पको मस्तकपर धारण करना चाहिये। सोनेकी माला कभी भी पहननेसे अशुद्ध नहीं होती। स्नानके पश्चात् मनुष्यको अपने ललाटपर गीला चन्दन लगाना चाहिये। कपड़ोंमें कभी उलट-फेर नहीं करना चाहिये। दूसरेके पहने हुए कपड़े न पहने। जिसकी कोर फट गयी हो, उसको भी न धारण करे। सोते समयके लिये दूसरा, सड़कोंपर घूमनेके लिये दूसरा और देवताओंकी पूजाके लिये भी दूसरा ही वस्त्र रखना चाहिये। प्रियङ्गु, चन्दन, बिल्व, तगर तथा केसर आदि सुगन्धित वस्तुएँ शरीरमें लगानी चाहिये। स्नान करके पवित्र हो वस्त्र एवं आभूषणोंसे विभूषित होकर उपवास करे। सभी पर्वोंके समय ब्रह्मचर्यका पालन करना आवश्यक है। किसीके साथ एक पात्रमें भोजन करना निषिद्ध है। जिसको रजस्वला स्त्रीने छू दिया हो तथा जिसमेंसे सार निकाल लिया गया हो, ऐसे अन्नको कदापि भक्षण न करे। जो तरसती हुई दृष्टिसे अन्नकी ओर देख रहा हो, उसे दिये बिना भोजन करना उचित नहीं है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि किसी अपवित्र मनुष्यके निकट अथवा सत्पुरुषोंके सामने बैठकर भोजन न करे। धर्मशास्त्रमें जिनका निषेध किया गया है, ऐसे अन्नको छिपाकर भी न खाय। अपना कल्याण चाहनेवाले श्रेष्ठ पुरुषको पीपल, बड़ और गूलरके फलका तथा सनके सागका सेवन नहीं करना चाहिये। विद्वान् मनुष्य हाथमें नमक लेकर न चाटे। रातको दही और सत्तू न खाय। सावधानीके साथ केवल सवेरे और शामको ही भोजन करे, बीचमें कुछ भी खाना उचित नहीं है। बालकके साथ एक थालीमें भोजन करना निषिद्ध है। शत्रुके श्राद्धमें कभी अन्न ग्रहण न करे। भोजनके समय मौन रहना और आसनपर बैठना उचित है; उस समय एक वस्त्र धारण करना, खड़ा रहना, भक्ष्य पदार्थ जमीनपर रखकर खाना और बोलते रहना निषिद्ध माना गया है। पहले अतिथिको अन्न और जल देकर पीछे स्वयं एकाग्रचित्तसे भोजन करना चाहिये। एक पङ्क्तिमें बैठनेपर सबको समान भोजन करना उचित है। जो अपने सुहृद्जनोंको न देकर अकेला ही भोजन करता है, उसका अन्न हालाहल विषके समान है। भोजन-कालमें (यह अन्न पचेगा या नहीं ? इस प्रकारकी) शङ्का नहीं करनी चाहिये तथा भोजनके अन्तमें दही नहीं (मट्ठा) पीना चाहिये। भोजन करनेके बाद कुल्ला करके मुँह धो ले और एक हाथसे दाहिने पैरके अँगूठेपर पानी छोड़ ले। फिर जलसे आँख, नाक आदि इन्द्रियों और नाभिका स्पर्श करके दोनों हाथोंकी हथेलियोंको धो डाले। धोनके पश्चात् गीले हाथ लेकर ही न बैठ जाय (उन्हें कपड़ोंसे पोंछकर सुखा दे)। अँगूठेका मूलस्थान ब्राह्मतीर्थ कहलाता है, अङ्गुलियोंका अग्रभाग देवतीर्थ है तथा अङ्गुष्ठ और तर्जनीके मध्यका भाग पितृतीर्थ माना गया है श्राद्धतर्पण आदि पैतृक कर्म शास्त्र-विधिके अनुसार सदा पितृतीर्थसे ही करने चाहिये।

अपनी भलाई चाहनेवाले पुरुषको दूसरोंकी निन्दा तथा अप्रिय वचन मुँहसे नहीं निकालने चाहिये, किसीको क्रोध नहीं दिलाना चाहिये तथा पतित मनुष्योंके साथ वार्तालापकी इच्छा नहीं रखनी चाहिये। पतितोंके तो दर्शन और स्पर्शका भी परित्याग कर देना उचित है। ऐसा करनेसे मनुष्यकी आयु बढ़ती है। कुमारी कन्या और कुलटा या वेश्यासे संसर्ग न करे। अपनी पत्नीके साथ भी दिनमें तथा ऋतुकालके अतिरिक्त समयमें समागम न करे। इससे आयुकी वृद्धि होती है। अपने-अपने तीर्थमें आचमन करके कार्य आरम्भ करे और उसके पूर्ण होनेके पश्चात् पुनः तीन बार आचमन करके दो बार मुँह पोंछ ले—इससे मनुष्य शुद्ध हो जाता है। पहले नेत्र-नासिका आदि इन्द्रियोंका एक बार स्पर्श करके तीन बार अपने ऊपर जल छिड़के; इसके बाद वेदोक्त विधिके अनुसार देवयज्ञ और पितृयज्ञ करना चाहिये।

अब, ब्राह्मणके लिये भोजनके आदि और अन्तमें जो पवित्र एवं हितकारक शुद्धिका विधान है, उसे बता रहा हूँ, सुनो—ब्राह्मणको प्रत्येक शुद्धिके कार्यमें ब्राह्मतीर्थसे आचमन करना चाहिये। थूकने और छींकनेके बाद आचमन करनेसे ब्राह्मण पवित्र होता है। बूढ़े कुटुम्बी और दरिद्र मित्रको अपने घरपर आश्रय देना चाहिये; इससे धन और आयुकी वृद्धि होती है। परेवा, तोता और मैना आदि पक्षियोंका घरमें रहना अभ्युदयकारी एवं मङ्गलमय है। ये तैलपायिक पक्षियोंकी भाँति अमङ्गल करनेवाले नहीं होते। उद्दीपक,

गृध्र, कपोत (जंगली कबूतर) तथा भ्रमर नामक पक्षी यदि कभी घरमें आ जायँ तो शान्ति करानी चाहिये; क्योंकि ये अमङ्गलकारी होते हैं। महात्माओंकी निन्दासे भी मनुष्यका अकल्याण होता है। महात्मा पुरुषोंके गुप्त कर्म कभी किसीपर भी प्रकट नहीं करने चाहिये। परायी स्त्रीके संसर्गसे सदा बचे रहना चाहिये; इससे दीर्घायुकी प्राप्ति होती है। अपनी उन्नति चाहनेवाले बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि ब्राह्मणके द्वारा वास्तुपूजनपूर्वक आरम्भ कराये और अच्छे कारीगरके द्वारा बनाये घरमें निवास करे। (सायंकालमें गोधूलिके समय) नींद लेना, पढ़ना और भोजन करना निषिद्ध माना गया है। इन सब बातोंका पालन करनेसे मनुष्य दीर्घजीवी होता है। अपना कल्याण चाहनेवालेके लिये रातमें श्राद्ध करना, नहाना और सत्तू खाना मना है। भोजनके पश्चात् केशोंको सँवारना अच्छा नहीं है। निषिद्ध पदार्थोंके सिवा और जितनी खाने-पीनेकी वस्तुएँ हैं, उनका उचित मात्रामें सेवन करे। जलपात्रमें रखा हुआ जल पीये। रात्रिके समय खूब डटकर भोजन न करे। पक्षियोंकी हिंसासे दूर रहे। उत्तम कुलमें उत्पन्न और योग्य अवस्थाको प्राप्त हुई सुलक्षणा कन्याके साथ विवाह करे। उसके गर्भसे संतान उत्पन्न करके वंशपरम्पराकी रक्षा करे और ज्ञान तथा कुलधर्मकी शिक्षा पानेके लिये पुत्रोंको विद्वान् गुरुके आश्रयमें भेज दे। कन्या उत्पन्न होनेपर कुलीन एवं बुद्धिमान् वरके साथ उसका ब्याह कर दे। पुत्रका विवाह भी उत्तम कुलकी कन्याके साथ करे और भृत्य भी अच्छे कुलके मनुष्योंको ही बनावे। मस्तकपरसे स्नान करके देवकार्य तथा पितृकार्य करे। जिस नक्षत्रमें अपना जन्म हुआ हो उसमें श्राद्ध करना वर्जित है। पूर्वा और उत्तराभाद्रपदा तथा कृत्तिका नक्षत्रमें भी श्राद्धका निषेध है। (आश्लेषा, आर्द्रा, ज्येष्ठा और मूल आदि) सम्पूर्ण दारुण नक्षत्रों और प्रत्यरि[1] ताराका भी परित्याग कर देना चाहिये। सारांश यह कि ज्यौतिष शास्त्रके भीतर जिन-जिन नक्षत्रोंमें श्राद्धका निषेध किया गया है, उन सबमें देवकार्य और पितृकार्य नहीं करना चाहिये। पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके हजामत बनवानी चाहिये—इससे आयुकी वृद्धि होती है। निन्दा करना अधर्म बताया गया है, इसलिये दूसरोंकी और अपनी भी निन्दा नहीं करनी चाहिये।

जो कन्या किसी अङ्गसे हीन हो अथवा जो अधिक अङ्गवाली हो, जिसके गोत्र और प्रवर अपने ही समान हों तथा जो नानाके कुलमें उत्पन्न हुई हो, उसके साथ विवाह नहीं करना चाहिये। जिसके कुलका पता न हो, जो नीच कुलमें पैदा हुई हो, जिसके शरीरका रंग पीला हो तथा जो कुष्ठरोगवाली हो, उसके साथ भी विवाह करना निषिद्ध है। जिसके कुलमें किसीको मिरगी, सफेद कोढ़ तथा राजयक्ष्मा (तपेदिक) की बीमारी हो, वह कन्या भी ब्याहने योग्य नहीं मानी गयी है। जो सुलक्षणा, उत्तम आचरणवाली और देखनेमें सुन्दरी हो, उसीके साथ ब्याह करना उचित है। अपनेसे श्रेष्ठ या समान कुलमें विवाह करना चाहिये। अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको नीच जातिवाली एवं पतित कन्याका पाणिग्रहण कदापि नहीं करना चाहिये। अग्निकी स्थापना करके ब्राह्मणोंद्वारा बतायी हुई सम्पूर्ण वेदविहित क्रियाओंका यत्नपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये। स्त्रियोंसे ईर्ष्या रखना उचित नहीं है। प्रत्येक उपायसे अपनी स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये। ईर्ष्या करनेसे आयु क्षीण होती है, इसलिये उसे त्याग देना ही उचित है। सबेरे, सूर्योदयके समय और दिनमें सोनेसे आयुका नाश होता है। अच्छे लोग रातमें अपवित्र होकर नहीं सोते। परस्त्रीसे व्यभिचार करना और हजामत बनवाकर बिना नहाये रहना भी आयुकी हानि करनेवाला है। अपवित्रावस्थामें वेदाध्यासका यत्नपूर्वक त्याग करे। संध्याकालमें स्नान, भोजन और अध्ययन वर्जित है। उस समय शुद्धचित्त होकर ध्यान करनेके सिवा और कोई काम न करे। ब्राह्मणोंकी पूजा, देवताओंको नमस्कार और गुरुजनोंको प्रणाम स्नानके बाद ही करने चाहिये। बिना बुलाये कहीं भी जाना उचित नहीं है; किंतु यज्ञ देखनेके लिये बिना निमन्त्रणके भी जानेमें कोई हर्ज नहीं है। जहाँ अपना आदर न होता हो वहाँ जानेसे आयुका नाश होता है। अकेले परदेश जाना और रातमें यात्रा करना मना है। यदि किसी कामके लिये बाहर जाय तो संध्या होनेके पहले ही घर लौट आना चाहिये। माता- पिता और गुरुजनोंकी आज्ञाका अविलम्ब पालन करना चाहिये। उनकी आज्ञा हितकर है या अहितकर, इसका विचार नहीं करना चाहिये।

युधिष्ठिर ! क्षत्रियको वेद और धनुर्वेदके अभ्यासका यत्न करना चाहिये तथा हाथी-घोड़ेकी सवारी और रथ हाँकनेकी कलामें निपुणता प्राप्त करनी चाहिये। राजन् ! तुम सदा उद्योगी बने रहो; क्योंकि उद्योगी मनुष्य ही सुखी और उन्नतिशील होता है। शत्रु, भृत्य और स्वजन भी उसका पराभव नहीं कर सकते। जो राजा सदा प्रजाकी रक्षामें संलग्न रहता है, उसे कभी हानि नहीं उठानी पड़ती। तुम तर्कशास्त्र और शब्दशास्त्र (व्याकरण) का अध्ययन करो। संगीत और समस्त कलाओंका ज्ञान प्राप्त करो। तुम्हें प्रतिदिन पुराण, इतिहास, उपाख्यान तथा महात्माओंके

१. अपने जन्म-नक्षत्रसे वर्तमान दिनके नक्षत्रतक गिने, गिननेपर जितनी संख्या हो उसमें नौका भाग दे, यदि पाँच शेष रहे तो उस दिनके नक्षत्रको 'प्रत्यरि तारा' समझे।

जीवनचरित्रका श्रवण करना चाहिये। यदि अपनी पत्नी रजस्वला हो तो उसके पास न जाय तथा उसे भी अपने निकट न बुलावे। चौथे दिन जब वह स्नान कर ले तो रात्रिमें उसके पास जाना चाहिये। पाँचवें (ऋतुस्नानके दूसरे) दिन पत्नीके पास जानेसे कन्या पैदा होती है और छठे (ऋतुस्नानके तीसरे) दिन स्त्री-सहवास करनेसे पुत्रका जन्म होता है। विद्वान् पुरुषको इसी विधिसे पत्नीके साथ समागम करना चाहिये। सजातीय बन्धु, सम्बन्धी और मित्रोंका सदा आदर करना उचित है। अपनी शक्तिके अनुसार यज्ञ करके उसमें नाना प्रकारकी दक्षिणा देनी चाहिये। तदनन्तर, गार्हस्थ्यकी अवधि समाप्त हो जानेपर वानप्रस्थके नियमोंका पालन करते हुए वनमें निवास करना चाहिये। युधिष्ठिर ! इस प्रकार मैंने तुमसे आयुकी वृद्धि करनेवाले नियमोंका संक्षेपसे वर्णन किया है। जो नियम बाकी रह गये हैं, उन्हें तुम वेदके विद्वान् ब्राह्मणोंसे पूछकर जान लेना। सदाचार ही कल्याणका जनक और कीर्तिको बढ़ानेवाला है, उसीसे आयुकी वृद्धि होती और वही बुरे लक्षणोंका नाश करता है। सम्पूर्ण आगमोंमें सदाचार ही श्रेष्ठ बतलाया गया है। सदाचारसे धर्म उत्पन्न होता और धर्मके प्रभावसे आयुकी वृद्धि होती है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने सब वर्णके लोगोंपर दया करके यह उपदेश दिया था। यह यश, आयु और स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला तथा परम कल्याणका आधार है।



भाइयोंके पारस्परिक बर्ताव और उपवासके फलका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! बड़े भाईका अपने छोटे भाइयोंके साथ और छोटे भाइयोंका बड़े भाईके साथ कैसा बर्ताव होना चाहिये ? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

भीष्मजीने कहा—बेटा ! तुम अपने भाइयोंमें सबसे बड़े हो, अतः बड़ेके अनुरूप ही बर्ताव करो। गुरुका अपने शिष्यके प्रति जैसा बर्ताव होता है वैसा ही तुम्हें भी अपने भाइयोंके साथ करना चाहिये। यदि गुरु अथवा बड़े भाईका विचार शुद्ध न हो तो शिष्य या छोटे भाई उसकी आज्ञाके अधीन नहीं रह सकते। बड़ेके दीर्घदर्शी होनेपर छोटे भाई भी दीर्घदर्शी होते हैं। बड़े भाईको चाहिये कि वह अवसरके अनुसार अन्ध, जड और विद्वान् बने अर्थात् यदि छोटे भाइयोंसे कोई अपराध हो जाय तो उसे देखकर भी न देखे, जानकर भी अनजान बना रहे और उनसे ऐसी बात करे जिससे उनकी अपराध करनेकी प्रवृत्ति दूर हो जाय। यदि बड़ा भाई प्रत्यक्षरूपसे अपराधका दण्ड देता है तो उसके ऐश्वर्यको देखकर जलनेवाले और फूट डालनेकी इच्छा रखनेवाले कितने ही शत्रु उनमें मतभेद पैदा करा देते हैं। जेठा भाई ही अपनी अच्छी नीतिसे कुलको उन्नतिशील बनाता और वही कुनीतिका आश्रय लेकर उसे विनाशके गर्तमें डाल देता है। जहाँ बड़ा भाईका विचार खोटा हुआ, वहाँ वह अपने समस्त कुलको चौपट कर देता है। जो बड़ा होकर छोटे भाइयोंके साथ कुटिलतापूर्ण बर्ताव करता है, वह न तो बड़ा कहलाने योग्य है और न ज्येष्ठांश पानेका ही अधिकारी है, उसे तो राजाओंके द्वारा दण्ड मिलना चाहिये। कपट करनेवाला मनुष्य निःसंदेह पापमय लोकों (नरक) में जाता है। उसका जन्म बेंतके फूलकी भाँति निरर्थक ही माना गया है। जिस कुलमें पापी पुरुष जन्म लेता है उसके लिये वह सम्पूर्ण अनर्थोंका कारण बन जाता है। पापी मनुष्य कुलमें कलङ्क लगाता और उसके सुयशका नाश करता है। यदि छोटे भाई भी पापकर्ममें लगे रहते हों तो वे पैतृक धनका भाग पानेके अधिकारी नहीं हैं। छोटे भाइयोंको उनका न्यायोचित भाग दिये बिना बड़े भाईको पैतृक सम्पत्तिका भाग दहेजमें नहीं देना चाहिये। यदि बड़ा भाई पैतृक धनकी सहायता लिये बिना ही अपने परिश्रमसे धन पैदा करे तो वह उस धनका स्वतन्त्र मालिक है। इच्छा न होनेपर वह उसमेंसे भाइयोंको नहीं दे सकता है। यदि भाइयोंके हिस्सेका बँटवारा न हुआ हो और सबने साथ-ही-साथ व्यापार आदिके द्वारा धनकी उन्नति की हो, उस अवस्थामें यदि पिताके जीते-जी सब अलग होना चाहें तो पिताको उचित है कि वह सब पुत्रोंको बराबर-बराबर हिस्सा दे। बड़ा भाई अच्छा काम करनेवाला हो या बुरा, छोटेको उसका अपमान नहीं करना चाहिये। इसी तरह स्त्री अथवा छोटे भाई यदि बुरे रास्तेपर चल रहे हों तो श्रेष्ठ पुरुषको जिस तरहसे भी उनकी भलाई हो, वही उपाय करना चाहिये। धर्मज्ञ पुरुषोंका कहना है कि 'धर्म ही कल्याणका श्रेष्ठ साधन है।' गौरवमें दस आचार्योंसे बढ़कर उपाध्याय, दस उपाध्यायोंसे बढ़कर पिता और दस पिताओंसे बढ़कर माता है। माताका गौरव समूची पृथ्वीसे भी बड़ा है। उसके समान दूसरा कोई गुरु नहीं है। माताका गौरव सबसे अधिक होनेके कारण ही लोग उसका विशेष आदर करते हैं। पिताकी मृत्यु हो जानेपर बड़े भाईको ही पिताके समान समझना चाहिये। बड़े भाईको उचित है कि वह अपने छोटे भाइयोंकी जीविकाका प्रबन्ध करके उनका

पालन-पोषण करे। छोटे भाइयोंका भी कर्तव्य है कि वे बड़े भाईको प्रणाम करें, उनकी आज्ञामें रहें और उन्हींको पिता मानकर उनके आश्रयमें जीवन व्यतीत करें। माता-पिता केवल शरीरको उत्पन्न करते हैं; किंतु आचार्यके उपदेशसे जो ज्ञानरूप नवीन जीवन प्राप्त होता है, वह सत्य, अजर और अमर है। बड़ी बहिनको माताके समान समझना चाहिये। इसी तरह बड़े भाईकी स्त्री तथा बचपनमें दूध पिलानेवाली धाय भी माताके ही समान है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! सभी वर्णोंके और म्लेच्छ जातिके लोग भी उपवासमें मन लगाते हैं; किंतु इसका कारण समझमें नहीं आता। सुना जाता है कि ब्राह्मण और क्षत्रियोंको नियमोंका पालन करना चाहिये, परंतु उपवास करनेसे उनके किस प्रयोजनकी सिद्धि होती है? यह नहीं जान पड़ता। आप कृपा करके हमें सम्पूर्ण नियमों और उपवासोंकी विधि बताइये। उपवास करनेवाले मनुष्यको क्या गति मिलती है, इसका भी वर्णन कीजिये। कहते हैं उपवास बहुत बड़ा पुण्य है और उपवास सबसे बड़ा आश्रय है। अतः मैं जानना चाहता हूँ कि उपवास करके मनुष्यको किस फलकी प्राप्ति होती है? किस कर्मके द्वारा पापसे छुटकारा मिलता है? और क्या करनेसे धर्मका पालन होता है?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! उपवास करनेमें जो उत्तम गुण हैं, उन्हें जाननेके लिये जिस तरह आज तुमने मुझसे प्रश्न किया है इसी प्रकार मैंने भी पूर्वकालमें परम तपस्वी अङ्गिरा मुनिसे प्रश्न किया था। मेरा प्रश्न सुनकर अग्निनन्दन अङ्गिराने इस प्रकार उत्तर दिया—'कुरुनन्दन! ब्राह्मण और क्षत्रियके लिये तीन रात उपवास करनेका विधान है। कहीं-कहीं छः रात और एक रातके उपवासका भी उल्लेख मिलता है। धर्मशास्त्रके ज्ञाताओंने वैश्य और शूद्रोंके लिये लगातार चार वक्त अर्थात् दो दिनोंका उपवास बताया है। उनके लिये तीन रातके उपवासका विधान नहीं है। यदि मनुष्य पञ्चमी, षष्ठी और पूर्णिमाके दिन अपने मन और इन्द्रियोंको काबूमें रखकर उपवास अथवा एक वक्त भोजन करे तो वह क्षमावान्, रूपवान् और विद्वान् होता है; उसे कभी संतानहीन और दरिद्र होनेका अवसर नहीं आता। जो पुरुष अष्टमी तथा कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको उपवास करता है, वह नीरोग और बलवान् होता है। जो प्रतिदिन सबेरे और शामको ही भोजन करता है, बीचमें जलतक नहीं पीता तथा सदा अहिंसापरायण होकर नित्य अग्निहोत्र करता है, उसे छः वर्षोंमें सिद्धि प्राप्त हो जाती है तथा वह अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त करता है—इसमें तनिक भी संदेहकी बात नहीं है। यही नहीं, वह विमानपर बैठकर ब्रह्मलोकमें जाता और वहाँ एक हजार वर्षोंतक सम्मानपूर्वक निवास करता है। फिर पुण्य क्षीण होनेपर इस लोकमें आकर महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता है और जो पुरुष पूरे एक वर्षतक प्रतिदिन एक बार भोजन करता है वह अतिरात्र यज्ञके फलको प्राप्त होता है तथा दस हजार वर्षतक स्वर्गमें रहता है फिर वहाँसे लौटनेपर महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता है। जो एक वर्षतक दो-दो दिनपर भोजन करके रहता है तथा साथ ही अहिंसा, सत्य और इन्द्रियसंयमका पालन करता है, उसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है और वह दस हजार वर्षोंतक स्वर्गलोकमें सम्मान प्राप्त करता है। जो एक सालतक तीन-तीन दिनोंपर अन्न ग्रहण करता है, वह अश्वमेध यज्ञके फलका भागी होता है और विमानपर आरूढ़ हो स्वर्गमें जाकर चालीस हजार वर्षोंतक आनन्द भोगता है। जो मनुष्य चार दिनोंपर भोजन करता हुआ एक वर्षतक जीवन धारण करता है, उसे गवामय यज्ञका फल मिलता है तथा वह पचास हजार वर्षोंतक स्वर्गमें सुख भोगता है। जो एक-एक पक्षका उपवास करके वर्षभर तपस्या करता है, उसको छः मासतक अनशन करनेका फल मिलता है और वह साठ हजार वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। जो एक वर्षतक प्रतिमास एक बार जल पीकर रहता है, उसे विश्वजित् यज्ञका फल मिलता है और वह सत्तर हजार वर्षोंतक स्वर्गमें आनन्दका अनुभव करता है। एक महीनेसे अधिकका उपवास किसीको नहीं करना चाहिये। जो बिना रोग-व्याधिके अनशन-व्रत करता है, उसे पद-पदपर यज्ञका फल मिलता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। ऐसा पुरुष दिव्य विमानपर बैठकर स्वर्गमें जाता और वहाँ एक लाख वर्षोंतक आनन्द भोगता है। दुःखी अथवा रोगी मनुष्य भी यदि उपवास करता है तो वह एक लाख वर्षोंतक सुखपूर्वक स्वर्गमें निवास करता है। वेदसे बढ़कर कोई शास्त्र नहीं है, माताके समान कोई गुरु नहीं है, धर्मसे बढ़कर कोई लाभ तथा उपवाससे बढ़कर कोई तप नहीं है। इस लोक और परलोकमें जैसे ब्राह्मणोंसे बढ़कर कोई पावन नहीं है उसी प्रकार उपवासके समान कोई तप नहीं है। देवताओंने विधिवत् उपवास करके ही स्वर्ग प्राप्त किया है तथा ऋषियोंको भी उपवाससे ही उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई है। परम बुद्धिमान् विश्वामित्रजी एक हजार दिव्य वर्षोंतक प्रतिदिन एक वक्त भोजन करके भूखका कष्ट सहते हुए तपमें लगे रहे, इससे उन्हें ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति हुई। च्यवन, जमदग्नि, वसिष्ठ, गौतम और भृगु—ये सभी क्षमावान् महर्षि उपवास करके ही दिव्य लोकोंको प्राप्त हुए हैं। कुन्तीनन्दन! महर्षि अङ्गिराकी

बतलायी हुई इस उपवासव्रतकी विधिको जो प्रतिदिन क्रमशः पढ़ता और सुनता है, उस पुरुषका पाप नष्ट हो जाता है। वह सब प्रकारके संकीर्ण पापोंसे छुटकारा पा जाता है तथा उसके मनपर कभी दोषोंका प्रभाव नहीं पड़ता। इतना ही नहीं, वह पशु-पक्षियोंकी बोली समझने लगता है और संसारमें उसकी अक्षय कीर्ति फैल जाती है।



दरिद्रोंके लिये यज्ञतुल्य फल देनेवाले उपवास-व्रतका उपदेश और मानस तथा पार्थिव तीर्थकी महत्ता

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! राजा और राजकुमारोंके पास धनकी कमी नहीं होती। वे एकाकी और असहाय भी नहीं होते, अतः उनके द्वारा तो बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान होना सम्भव है; किंतु धनहीन, निर्गुण, एकाकी और असहाय मनुष्य वैसे यज्ञ नहीं कर सकते। इसलिये जिस कर्मका अनुष्ठान दरिद्रोंके लिये भी सुगम तथा बड़े-बड़े यज्ञोंके समान फल देनेवाला हो, उसीका वर्णन कीजिये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! अङ्गिरा मुनिकी बतलायी हुई जो उपवासकी विधि है, वह यज्ञोंके समान ही फल देनेवाली है। उसका पुनः वर्णन करता हूँ, सुनो—जो पुरुष अहिंसापरायण हो नित्य अग्निहोत्रका अनुष्ठान करते हुए प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकालमें ही भोजन करता है, बीचमें जलपानतक नहीं करता, उसे छः वर्षोंमें ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है और वह अग्निके समान तेजस्वी प्रजापतिलोकमें एक पद्म वर्षोंतक निवास करता है। जो एकपत्नी-व्रतका पालन करते हुए निरन्तर तीन वर्षोंतक प्रतिदिन एक समय भोजन करके रहता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। जो नित्य अग्निमें होम करता हुआ एक वर्षतक प्रति दूसरे दिन एक बार भोजन करता है तथा सदा सबेरे उठता और अग्निहोत्रके कार्यमें लगा रहता है, वह भी अग्निष्टोम यज्ञके ही फलका भागी होता है। जो बारह महीनोंतक प्रति तीसरे दिन एक समय भोजन करता, नित्य सबेरे उठता और अग्निहोत्र किया करता है, उसे अतिरात्र यागका उत्तम फल प्राप्त होता है तथा वह पुरुष तीन पद्म वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। जो अग्निहोत्रपूर्वक बारह महीनोंतक प्रति चौथे दिन एक बार अन्न ग्रहण करता है, वह वाजपेय यज्ञके उत्तम फलका भागी होता है तथा वह इन्द्रलोकमें रहकर सदा देवराजकी क्रीड़ाओंको देखा करता है। बारह महीनोंतक प्रति पाँचवें दिन एक समय भोजन करके नित्य अग्निहोत्र करनेवाला, लोभहीन, सत्यवादी, ब्राह्मणभक्त, अहिंसक, ईर्ष्यारहित और पापकर्मसे दूर रहनेवाला पुरुष द्वादशाह यज्ञका फल प्राप्त करता है तथा वह इक्यावन पद्म वर्षोंतक स्वर्गलोकमें सुख भोगता है। जो प्रति छठे दिन एक वक्त भोजन करके बारह महीनोंतक मौनभावसे अग्निहोत्रका अनुष्ठान करता, तीनों समय नहाता, ब्रह्मचर्यका पालन करता और किसीके दोषोंपर दृष्टि नहीं डालता है, वह मनुष्य दो पताका (महापद्म), अठारह पद्म, एक हजार तीन सौ करोड़ और पचास अयुत वर्षोंतक तथा सौ रीछोंके चमड़ोंमें जितने रोएँ होते हैं उतने वर्षोंतक ब्रह्मलोकमें सम्मानित होता है। जो एक वर्षतक प्रति सातवें दिन एक समय भोजन करता, नित्य अग्निहोत्र करता, वाणीको नियममें रखता और ब्रह्मचर्यका पालन करता है, वह असंख्य वर्षोंतक देवताओं और इन्द्रके लोकमें निवास करता है तथा जिस यज्ञमें बहुत-से सुवर्णकी दक्षिणा दी जाती है, उसके फलका वह भागी होता है। जो प्रति आठवें दिन एक वक्त भोजन करके बारह महीनोंतक क्षमाशील, देवकार्यपरायण और अग्निहोत्री होकर जीवन व्यतीत करता है, उसे पुण्डरीक यज्ञका सर्वश्रेष्ठ फल प्राप्त होता है। जो प्रति नवें दिन एक समय अन्न ग्रहण करके वर्षभर नित्य अग्निहोत्रका अनुष्ठान करता है, उसे एक हजार अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है तथा वह पुण्डरीकके समान श्वेतवर्णके विमानपर आरूढ़ हो रुद्रलोकमें जाकर वहाँ एक कल्प, लाख करोड़ और अठारह हजार वर्षोंतक सुख भोगता है। जो प्रति दसवें दिन एक समय भोजन करके बारह मासोंतक नित्य अग्निमें हवन करता है वह ब्रह्मलोकका निवासी होता है, उसे एक हजार अश्वमेध-यज्ञका उत्तम फल मिलता है तथा वह नीले और लाल कमलके समान अनेकों रंगोंसे सुशोभित मण्डलाकार घूमनेवाला, सागरकी लहरोंके समान ऊपर-नीचे होनेवाला, विचित्र मणि-मालाओंसे अलंकृत और शङ्ख-ध्वनिसे परिपूर्ण विमान प्राप्त करता है। जो पुरुष बारह महीनोंतक सदा ग्यारहवें दिन भोजन करते हुए अग्निमें हवन करता है, मन और वाणीसे भी परस्त्रीकी अभिलाषा नहीं करता तथा माता-पिताके लिये भी कभी झूठ नहीं बोलता है, वह विमानमें विराजमान परम शक्तिमान्

देवदेव महादेवजीके पास गमन करता और हजार अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है। उसके पास ब्रह्माजीका भेजा हुआ विमान स्वतः उपस्थित दिखायी देता है। उसीपर बैठकर वह रुद्रलोकमें जाता है और वहाँ असंख्य वर्षोंतक निवास करता हुआ प्रतिदिन देव-दानववन्दित भगवान् शंकरको प्रणाम करता है। वे भगवान् उसे नित्यप्रति दर्शन देते रहते हैं। जो बारह महीनोंतक प्रति बारहवें दिन केवल घी पीकर रहता है, उसे सर्वमेध यज्ञका फल मिलता है और वह सूर्यके समान प्रकाशमान विमानपर बैठकर ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहाँ उसे बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओंसे युक्त महल प्राप्त होते हैं, जो उसकी सेवा करनेवाले हजारों नर-नारियोंसे भरा रहता है। इस प्रकार महाभाग अङ्गिरा मुनिने उपवासका महान् फल बतलाया है।

युधिष्ठिर ! इन उपवास-व्रतोंका अनुष्ठान करके दरिद्र मनुष्योंने यज्ञका फल प्राप्त किया है। जो मनुष्य उपवासपूर्वक देवता और ब्राह्मणोंकी पूजामें संलग्न रहता है, उसे परम पदकी प्राप्ति होती है। नियमशील, सावधान, पवित्र, महामना, दम्भद्रोहविहीन, विशुद्धबुद्धि, अचल और स्थिर स्वभाववाले मनुष्योंके लिये मैंने यह उपवासकी विधि बतलायी है, इसमें तुम्हें किसी प्रकारका संदेह नहीं करना चाहिये।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! जो सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ हो तथा जहाँ जानेसे परम शुद्धि हो जाती हो, उसका वर्णन कीजिये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इस पृथ्वीपर जितने तीर्थ हैं, वे सब मनीषी पुरुषके लिये गुणकारी होते हैं; किंतु उन सबमें जो परम पवित्र और प्रधान तीर्थ है उसका वर्णन करता हूँ, एकाग्र चित्त होकर सुनो—जिसमें धैर्यरूप कुण्ड और सत्यरूप जल भरा हुआ है तथा जो अगाध, निर्मल एवं अत्यन्त शुद्ध है, उस मानसतीर्थमें सदा सत्त्वगुणका आश्रय लेकर स्नान करना चाहिये। कामनाका अभाव, सरलता, सत्य, मृदुता, अहिंसा, क्रूरताका अभाव, इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह—ये ही इस मानसतीर्थके सेवनसे प्राप्त होनेवाली पवित्रताके लक्षण हैं। जो ममता, अहंकार, द्वन्द्व और परिग्रहका सर्वथा त्याग करके भिक्षासे जीवन-निर्वाह करते हैं, वे विशुद्ध अन्तःकरणवाले महात्मा पुरुष तीर्थस्वरूप हैं। जिसकी बुद्धिमें अहंकारका नाम भी नहीं है, वह तत्त्वज्ञानी श्रेष्ठ तीर्थ कहलाता है। जिनके मनसे तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण दूर हो गये हैं, जो बाहरी पवित्रता-अपवित्रतापर ध्यान न देकर अपने कर्तव्य (ब्रह्मविचार) में परायण रहते हैं, जिन्हें सर्वस्वके त्यागमें ही प्रसन्नता होती है, जो सर्वज्ञ, समदर्शी तथा शौचाचारका पालन करनेवाले हैं, वे संत पुरुष ही परम पवित्र तीर्थस्वरूप हैं। शरीरको केवल पानीसे भिगो लेना ही स्नान नहीं कहलाता; सच्चा स्नान तो उसीने किया है, जो इन्द्रियसंयममें निष्णात है। जितेन्द्रिय पुरुष ही बाहर और भीतरसे शुद्ध माना गया है। जो नष्ट हुए विषयोंकी परवा नहीं करते, प्राप्त हुए पदार्थमें ममता नहीं रखते तथा जिनके मनमें कोई इच्छा पैदा ही नहीं होती, वे ही परम पवित्र हैं। इस जगत्में प्रज्ञान ही शरीरशुद्धिका विशेष साधन है। इसी प्रकार अकिंचनता और मनकी प्रसन्नता भी शरीरको शुद्ध करनेवाले हैं। शुद्धि चार प्रकारकी है—आचारशुद्धि, मनःशुद्धि, तीर्थशुद्धि और ज्ञानशुद्धि; इनमें ज्ञानसे प्राप्त होनेवाली शुद्धि ही सबसे श्रेष्ठ मानी गयी है। मानसतीर्थमें प्रसन्न मनसे ब्रह्मज्ञानरूपी जलके द्वारा जो स्नान किया जाता है, वही तत्त्वज्ञानियोंका स्नान है। जो सदा शौचाचारसे सम्पन्न, विशुद्ध भावसे युक्त और सद्गुणोंसे विभूषित है, उस मनुष्यको सदा शुद्ध ही समझना चाहिये।

यह मैंने शरीरमें स्थित तीर्थका वर्णन किया, अब पृथ्वीके पुण्य तीर्थोंका महत्त्व सुनो—जैसे शरीरके विभिन्न स्थान पवित्र बतलाये गये हैं उसी प्रकार पृथ्वीके भिन्न-भिन्न भाग भी पवित्र तीर्थ हैं और वहाँका जल पुण्यप्रद माना गया है। जो लोग तीर्थोंका नाम लेकर, तीर्थोंमें स्नान करके तथा उनमें पितरोंका तर्पण करके अपने पाप धो डालते हैं, वे बड़े सुखसे स्वर्गमें जाते हैं। पृथ्वीके कुछ भाग साधु पुरुषोंके निवाससे तथा स्वयं पृथ्वी और जलके तेजसे अत्यन्त पवित्र माने गये हैं। इस प्रकार पृथ्वीपर और मनमें भी अनेकों पुण्यमय तीर्थ हैं। जो इन दोनों प्रकारके तीर्थोंमें स्नान करता है, उसे शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है।



बृहस्पतिका युधिष्ठिरसे प्राणियोंके जन्मका प्रकार और पापोंके कारण तिर्यक् योनियोंमें जन्म लेनेका क्रम बतलाना

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! पृथ्वीपर रहनेवाले मनुष्य किस बर्तावसे स्वर्गमें जाते हैं ? और कैसे बर्तावसे नरकमें पड़ते हैं ? वे अपने मृतक शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेके समान यहीं छोड़कर जब परलोककी राह लेते हैं, उस समय उनके पीछे कौन जाता है ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! ये उदारबुद्धि बृहस्पतिजी यहाँ

पधार रहे हैं, इन्हींसे इस सनातन गूढ़ विषयको पूछो।

इन दोनोंमें इस प्रकार बात हो ही रही थी कि बृहस्पतिजी वहाँ आ पहुँचे। धर्मराज युधिष्ठिरने सभासदोंसहित उनकी पूजा की और उनके पास जाकर इस प्रकार प्रश्न किया—'भगवन्! आप सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता और सब शास्त्रोंके विद्वान् हैं, अतः बतलाइये पिता, माता, पुत्र, गुरु, सजातीय, सम्बन्धी और मित्र आदिमेंसे मनुष्यका सच्चा सहायक कौन है? जब सब लोग मरे हुए शरीरको काठ और ढेलेके समान त्याग कर चल देते हैं उस समय जीवके साथ परलोकमें कौन जाता है?'



बृहस्पतिजीने कहा—राजन्! प्राणी अकेला ही जन्म लेता, अकेला ही मरता, अकेला ही दुःखसे पार होता है तथा अकेला ही दुर्गति भोगना है, पिता, माता, भाई, पुत्र, गुरु, सजातीय, सम्बन्धी और मित्रोंमेंसे कोई उसका सहायक नहीं होता। लोग उसके मरे हुए शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेकी तरह फेंककर थोड़ी देरतक रोते हैं और फिर उसकी ओरसे मुँह फेरकर चल देते हैं। उस समय केवल धर्म ही जीवके पीछे-पीछे जाता है; अतः धर्म ही सच्चा सहायक है। इसलिये मनुष्योंको सदा धर्मका ही सेवन करना चाहिये। धर्मयुक्त प्राणी स्वर्गमें जाता है और अधर्मपरायण जीव नरकमें पड़ता है। अतः विद्वान् पुरुषको चाहिये कि न्यायसे प्राप्त हुए धनके द्वारा धर्मका अनुष्ठान करे। एकमात्र धर्म ही परलोकमें मनुष्योंका सहायक होता है। अविवेकी मनुष्य ही लोभ, मोह अथवा भयसे दूसरोंके लिये पाप करता है।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपके मुँहसे मैंने धर्मयुक्त एवं अत्यन्त हितकारक बातें सुनीं, किंतु मनुष्यका स्थूलशरीर तो मरकर यहीं पड़ा रह जाता है और उसका सूक्ष्मशरीर अव्यक्त—नेत्रोंकी पहुँचसे परे हो जाता है, ऐसी दशामें धर्म किस प्रकार उसका अनुसरण करता है?

बृहस्पतिजीने कहा—धर्मराज! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, यम, बुद्धि और आत्मा—ये सब एक ही साथ सदा मनुष्यके धर्मपर दृष्टि रखते हैं। दिन और रात भी सम्पूर्ण प्राणियोंके कर्मोंके साक्षी हैं। इन सबके साथ धर्म जीवका अनुसरण करता है। तत्पश्चात् धर्माधर्मसे युक्त प्राणी (परलोकमें अपने कर्मोंका भोग समाप्त करके) दूसरा शरीर धारण करता है। उस समय उस शरीरमें स्थित पञ्चभूतोंके अधिष्ठाता देवता पुनः उसके शुभाशुभ कर्मोंको देखने लगते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस शरीरमें वीर्यकी उत्पत्ति कैसे होती है?

बृहस्पतिजीने कहा—राजन्! इस शरीरमें स्थित पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और मनके अधिष्ठाता देवता जो अन्न भक्षण करके पूर्ण तृप्त होते हैं उसीसे स्थूल वीर्यकी उत्पत्ति होती है। फिर स्त्री-पुरुषका संयोग होनेपर वही वीर्य गर्भका रूप धारण करता है।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! जीव त्वचा, अस्थि और मांसमय शरीरका त्याग करके जब पाँचों भूतोंके सम्बन्धसे पृथक् हो जाता है तो कहाँ रहकर सुख-दुःखका अनुभव करता है?

बृहस्पतिजीने कहा—भारत! जीव अपने कर्मोंसे प्रेरित होकर शीघ्र ही वीर्यका आश्रय लेता है और स्त्रीके रजमें प्रविष्ट होकर समयानुसार जन्म धारण करता है। (गर्भमें आनेके पहले वह सूक्ष्म शरीरमें स्थित होकर अपने दुष्कर्मोंके कारण) यमदूतोंके प्रहार सहता, क्लेश उठाता और दुःखमय संसारचक्रमें दुर्गति भोगता है। यदि प्राणी इस लोकमें जन्मसे ही पुण्यकर्ममें लगा रहता है तो वह धर्मके फलका आश्रय लेकर उसके अनुसार सुख भोगता है। जो अपनी शक्तिके अनुसार बाल्यकालसे ही धर्मका सेवन करता है, वह मनुष्य होकर सदा सुखका अनुभव करता है; किंतु धर्मके बीचमें यदि कभी-कभी वह अधर्मका भी आचरण कर बैठता है तो उसे सुखके बाद दुःख भी भोगना पड़ता है। अधर्मपरायण मनुष्य यमलोकमें जाता है और वहाँ महान् कष्ट भोगकर पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेता है। जीव मोहके वशीभूत होकर

जिस-जिस कर्मका अनुष्ठान करनेसे जैसी-जैसी योनिमें जन्म धारण करता है, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो—शास्त्र, इतिहास और वेदमें भी यह बात बतायी गयी है कि मनुष्य इस लोकमें पाप करनेपर मृत्युके पश्चात् यमराजके भयंकर लोकमें जाता है। जो द्विज चारों वेदोंका अध्ययन करनेके बाद भी मोहवश पतित मनुष्योंसे दान लेता है, उसे गदहेकी योनिमें जन्म-लेना पड़ता है। पंद्रह वर्षोंतक गदहेके शरीरमें रहकर वह मृत्युको प्राप्त होता है फिर सात वर्षोंतक बैलकी योनिमें रहकर शरीर-त्यागके पश्चात् तीन महीनेतक ब्रह्मराक्षस होता है, उसके बाद वह पुनः ब्राह्मणका जन्म पाता है। पतित पुरुषका यज्ञ करानेवाला ब्राह्मण मरनेके बाद पंद्रह वर्ष कीड़ा, पाँच वर्ष गदहा, पाँच वर्ष सूअर, पाँच वर्ष मुर्गा, पाँच वर्ष सियार और एक वर्ष कुत्तेकी योनिमें रहकर अन्तमें मनुष्यका जन्म पाता है। जो शिष्य मूर्खतावश अपने अध्यापकका अपराध करता है, वह पहले कुत्ता, फिर राक्षस, फिर गदहा और फिर क्लेश भोगनेवाला प्रेत होकर अन्तमें ब्राह्मण होता है। जो पापाचारी शिष्य गुरुकी स्त्रीके साथ समागमका विचार भी मनमें लाता है, वह अपने मानसिक पापके कारण भयंकर योनियोंमें जन्म लेता है। पहले कुत्ता होकर तीन वर्षतक जीवन धारण करता है, फिर मरनेके बाद एक साल कीड़ेकी योनिमें रहता है। उसके बाद ब्राह्मण-योनिमें उत्पन्न होता है। यदि गुरु अपने पुत्रके समान प्रिय शिष्यको बिना कारणके ही मारता-पीटता है तो वह अपनी स्वेच्छाचारिताके कारण हिंसक पशुकी योनिमें जन्म लेता है। जो पुत्र अपने माता-पिताका अनादर करता है, वह मरनेके बाद गदहेकी योनिमें जन्म लेता है और उसमें दस वर्षतक जीवित रहकर शरीर त्यागनेके पश्चात् एक सालतक घड़ियालकी योनिमें रहता है। जिस पुत्रके ऊपर माता और पिता दोनों ही रुष्ट होते हैं, वह गुरुजनोंके अनिष्टचिन्तनके कारण मृत्युके बाद दस महीने गदहा, चौदह महीने कुत्ता और सात महीने बिलाव होकर अन्तमें मनुष्यकी योनिमें जन्म ग्रहण करता है। माता-पिताको गाली देनेवाला मनुष्य मैना होता है तथा उन्हें मारनेवाला पुत्र दस वर्ष कछुवा, तीन वर्ष साही और छः महीने साँपकी योनिमें जन्म लेकर फिर मनुष्य होता है। जो पुरुष राजाके टुकड़े खाकर पलता हुआ भी मोहवश उसके शत्रुओंकी सेवा करता है, वह मरनेके बाद दस वर्ष वानर, पाँच वर्ष चूहा और छः महीने कुत्ता होकर फिर मनुष्य-योनिमें आता है। दूसरोंकी धरोहर हड़प लेनेवाला मनुष्य यमलोकमें जाता है और क्रमशः सौ योनियोंमें भ्रमण करके अन्तमें कीड़ा होता है। कीड़ेकी योनिमें पंद्रह वर्षोंतक जीवित रहनेके बाद जब उसके पापोंका क्षय हो जाता है तो वह मनुष्यका जन्म पाता है। दूसरोंके दोष ढूँढ़नेवाला मनुष्य हरिणकी योनिमें जन्म लेता है। जो अपनी दुर्बुद्धिके कारण किसीके साथ विश्वासघात करता है, वह आठ वर्ष मछली, चार महीना हरिण, एक साल बकरा और उसके बाद कीड़ा होकर अन्तमें मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है। जो पुरुष लज्जाका परित्याग करके अज्ञान और मोहके वशीभूत होकर धान, जौ, तिल, उड़द, कुलथी, सरसों, चना, मटर, मूँग, गेहूँ और तीसी तथा दूसरे-दूसरे अनाजोंकी चोरी करता है, वह मरनेके बाद पहले चूहा होता है, फिर कुछ दिनों बाद मृत्युको प्राप्त होकर सूअरकी योनिमें जन्म लेता है। वह सूअर पैदा होते ही रोगसे मर जाता है। फिर पाँच वर्षतक कुत्तेकी योनिमें रहकर अन्तमें मनुष्य होता है। परस्त्रीगमनका पाप करके मनुष्य क्रमशः भेड़िया, कुत्ता, सियार, गृध्र, साँप, कङ्क और बगुला होता है। जो पापात्मा मोहवश भाईकी स्त्रीसे व्यभिचार करता है, वह एक वर्षतक कोयलकी योनिमें पड़ा रहता है। जो कामवासनाकी पूर्तिके लिये मित्र, गुरु और राजाकी स्त्रीके साथ बलात्कार करता है, वह मरनेके पीछे पाँच वर्ष सूअर, दस वर्ष भेड़िया, पाँच वर्ष बिलाव, दस वर्ष मुर्गा, तीन महीने चींटी और एक महीना कीड़ेकी योनिमें भ्रमण करके पुनः चौदह महीनेतक कीट-योनिमें पड़ा रहता है। इसके बाद पापोंका क्षय होनेपर उसे मनुष्ययोनि मिलती है। जो ब्याह, यज्ञ अथवा दानका अवसर आनेपर मोहवश उसमें विघ्न डालता है, वह पंद्रह वर्षोंतक कीड़ेकी योनिमें रहकर पापका भोग समाप्त होनेके पश्चात् मनुष्य होता है। जो पहले एक व्यक्तिको कन्यादान करके फिर दूसरेको उसी कन्याका दान करना चाहता है, वह मरनेके बाद तेरह वर्षोंतक कीड़ेकी योनिमें रहकर पाप क्षीण होनेके अनन्तर पुनः मनुष्य होता है। जो देवकार्य अथवा पितृकार्य न करके बलिवैश्वदेव किये बिना ही अन्न ग्रहण करता है, वह मरनेके बाद सौ वर्षोंतक कौएकी योनिमें पड़ा रहता है। इसके बाद क्रमशः मुर्गा और साँप होकर अन्तमें मनुष्यका जन्म पाता है। बड़ा भाई पिताके समान आदरणीय है; जो उसका अनादर करता है, उसे मृत्युके बाद क्रौञ्चपक्षीकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। उसमें एक वर्ष रहकर वह चीरक जातिका पक्षी होता है और फिर मरनेके बाद मनुष्य-योनिमें जन्म पाता है। शूद्र-जातिका पुरुष ब्राह्मण जातिकी स्त्रीके साथ समागम करके देहत्यागके पश्चात् पहले कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है, फिर मरनेके बाद सूअर होता है; सूअरकी योनिमें पैदा होते ही वह रोगका शिकार होकर मर जाता है; उसके बाद कुत्ता होकर अपने पापकर्मोंका भोग समाप्त करके मनुष्य-योनिमें जन्म धारण करता है। मनुष्य-योनिमें भी वह एक ही संतान पैदा करके मृत्युको

शिकार हो जाता है और चूहा होकर शेष पापोंका उपभोग करता है। कृतघ्न मनुष्य मरनेके बाद यमराजके लोकमें जाता है। वहाँ यमदूत क्रोधमें भरकर उसके ऊपर बड़ी निर्दयताके साथ प्रहार करते हैं। उसे दण्ड, मुद्गर और शूलकी चोट खाकर दारुण अग्निकुम्भ (कुम्भीपाक), असिपत्रवन, तपी हुई बालू, काँटोंसे भरी हुई शाल्मली तथा अन्यान्य नरकोंकी भयंकर यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। इस प्रकार निर्दयी यमदूतोंसे पीड़ित होकर कृतघ्न पुरुष पुनः संसारचक्रमें आता और कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। पंद्रह वर्षोंतक कीटयोनिमें रहनेके बाद मर जाता है, फिर बारंबार गर्भमें आकर उसीमें नष्ट होता रहता है। इस तरह सैकड़ों बार गर्भकी यन्त्रणा भोगकर बहुत बार जन्म लेनेके पश्चात् वह तिर्यग्-योनिमें उत्पन्न होता है। इस योनिमें बहुत वर्षोंतक दुःख भोगकर अन्तमें कछुवेकी योनिमें जन्म लेता है। दही चुरानेवाला बगुला और शहदकी चोरी करनेवाला डाँस होता है। फल, मूल अथवा पूएकी चोरी करनेवालेको चीटींकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। जो निष्पाव नामक अन्न चुराता है, वह हलगोलक नामवाला कीड़ा होता है। खीरकी चोरी करनेवाला तीतर, भरा हुआ पूआ चुरानेवाला उल्लू, लोहा चुरानेवाला कौआ, काँसीका बर्तन चुरानेवाला हारीत नामक पक्षी, चाँदीके बर्तनकी चोरी करनेवाला कबूतर, सोनेका बर्तन चुरानेवाला कीड़ा, ऊनी वस्त्र चुरानेवाला कृकल, रेशमी वस्त्रका अपहरण करनेवाला बत्तख, महीन कपड़ा चुरानेवाला तोता, पट्ट-वस्त्र चुरानेवाला हंस, सूती वस्त्रका अपहरण करनेवाला क्रौञ्च, ऊनी वस्त्र, क्षौमवस्त्र तथा पाटम्बरकी चोरी करनेवाला खरगोश, नाना प्रकारके रंग चुरानेवाला मोर और लाल कपड़ोंकी चोरी करनेवाला मनुष्य चकोर पक्षीका जन्म पाता है। जो मनुष्य लोभके वशीभूत होकर अनुलेपन और चन्दन आदिका अपहरण करता है, वह छछूँदरकी योनिमें जन्म लेता है और उसमें पंद्रह वर्षोंतक जीवित रहकर पाप क्षीण होनेके बाद फिर मनुष्यका जन्म पाता है। दूध चुरानेसे बलाकाकी योनि मिलती है। जो मोहवश तेल चुराता है, वह मरनेके बाद तेल पीनेवाला कीड़ा होता है। यदि कोई नीच मनुष्य धनके लोभसे अथवा शत्रुताके कारण हथियार लेकर निहत्थे पुरुषको मार डालता है तो वह अपनी मृत्युके बाद गदहेकी योनिमें जन्म लेता है। दो वर्ष गदहेके रूपमें रहकर देहत्यागके पश्चात् सदा प्राणोंके भयसे उद्विग्न रहनेवाला हरिण होता है। फिर एक वर्ष पूरा होते-होते वह शस्त्रद्वारा मारा जाकर मछलीका जन्म पाता है और चौथे महीनेमें जालमें फँसकर मृत्युको प्राप्त होता है। उसके बाद उसे दस वर्ष बाघ और पाँच वर्ष चीता होकर रहना पड़ता है। तदनन्तर, पापका क्षय होनेपर कालकी प्रेरणासे मृत्युको प्राप्त होकर वह मनुष्य-योनिमें जन्म लेता है। जो दुष्ट बुद्धिवाला पुरुष स्त्रीकी हत्या करता है, वह यमराजके लोकमें जाकर नाना प्रकारके क्लेश भोगता है। फिर बीस बार दुःखद योनियोंमें भ्रमण करके अन्तमें कीड़ेका जन्म पाता है और बीस वर्षतक कीट-योनिमें रहकर फिर मनुष्य होता है। भोजनकी चोरी करनेसे मनुष्य मक्खी होता है और कई महीनेतक मक्खियोंके समूहमें रहकर पाप क्षय होनेके बाद पुनः मनुष्ययोनिमें आता है। धान चुरानेवाले मनुष्यके देहमें दूसरे जन्ममें बहुत-से रोएँ होते हैं। जो मनुष्य तिलके चूर्णसे मिश्रित भोजनकी चोरी करता है, वह नेवलेके समान आकारवाला भयानक चूहा होता है तथा वह पापी सदा मनुष्योंको काटा करता है। जो दुर्बुद्धि मनुष्य घी चुराता है, वह काकमद्गु (सींगवाला जलपक्षी) होता है। नमक चुरानेवाला चिरिकाक होता है। जो मनुष्य विश्वासपूर्वक रखी हुई दूसरेकी धरोहरको हड़प लेता है, वह मरनेके बाद मछलीका जन्म पाता है और कुछ समय बाद मृत्युको प्राप्त होकर मनुष्य-योनिमें जन्म लेता है। मनुष्य होनेपर भी उसकी आयु बहुत थोड़ी होती है।

भारत ! इस प्रकार मनुष्य पाप करके तिर्यक्-योनियोंमें जन्म लेते हैं। वहाँ उन्हें अपने उद्धार करनेवाले धर्मका किंचित् भी ज्ञान नहीं रहता। जो पापाचारी पुरुष लोभ और मोहके वशीभूत हो पाप करके उसे व्रत आदिके द्वारा दूर करनेका प्रयत्न करते हैं, वे सदा सुख-दुःख भोगते हुए व्यथित रहते हैं, उन्हें कहीं रहनेको ठौर नहीं मिलता तथा वे म्लेच्छ होकर हमेशा मारे-मारे फिरते हैं। जो मनुष्य जन्मसे ही पापका परित्याग करते हैं, वे नीरोग, रूपवान् और धनी होते हैं। स्त्रियाँ यदि उपर्युक्त कर्म करती हैं तो उन्हें भी पाप लगता है और वे उन पापभोगी प्राणियोंकी ही भार्या होती हैं। महाराज ! पूर्वकालमें ब्रह्माजी देवर्षियोंके बीच यह प्रसंग सुना रहे थे। वहाँ उन्हींके मुँहसे मैंने ये सारी बातें सुनी थीं और तुम्हारे पूछनेपर उन्हीं बातोंका यथावत् वर्णन किया है। यह उपदेश सुनकर तुम्हें अपने मनको सदा धर्ममें लगाये रखना चाहिये।



बृहस्पतिका युधिष्ठिरको अन्न-दान और अहिंसा-धर्मकी महिमा बताना

युधिष्ठिरने पूछा—ब्रह्मन्! अब मैं धर्मका परिणाम सुनना चाहता हूँ। कौन-से कर्म करनेपर मनुष्यको उत्तम गति प्राप्त होती है ?

बृहस्पतिजीने कहा—राजन्! जो मनुष्य पाप-कर्म करता है, वह अधर्मके वशमें हो जाता है और उसका मन धर्मके विपरीत मार्गमें जाने लगता है; इसलिये उसे नरकमें गिरना पड़ता है। जो मोहवश अधर्म बन जानेपर पीछेसे पश्चात्ताप करता है, उसे चाहिये कि मनको वशमें रखकर फिर कभी पापका सेवन न करे। मनुष्यका मन ज्यों-ज्यों पापकर्मकी निन्दा करता है, त्यों-त्यों उसका शरीर उस अधर्मके बन्धनसे मुक्त होता जाता है। यदि पापी पुरुष धर्मज्ञ ब्राह्मणोंसे अपना पाप बतला दे तो वह उस अधर्मके कारण होनेवाली निन्दासे शीघ्र ही छुटकारा पा जाता है। मनुष्य अपने मनको स्थिर करके जैसे-जैसे अपना पाप प्रकट करता है वैसे-ही-वैसे वह उससे मुक्त होता जाता है। अब मैं दानोंका वर्णन करता हूँ। सब प्रकारके दानोंमें अन्नका दान श्रेष्ठ बताया गया है, अतः धर्मकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको सरल भावसे पहले अन्नका ही दान करना चाहिये। अन्न मनुष्योंका प्राण है। अन्नसे ही समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है और अन्नके ही आधारपर सारा संसार टिका हुआ है; इसलिये अन्न सबसे उत्तम माना गया है। देवता, ऋषि, पितर और मनुष्य अन्नकी ही विशेष प्रशंसा करते हैं। राजा रन्तिदेव अन्नके ही दानसे स्वर्गलोकको प्राप्त हुए थे। अतः स्वाध्यायपरायण ब्राह्मणोंको प्रसन्नचित्तसे न्यायोपार्जित अन्नका दान करना चाहिये। जो मनुष्य दस हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराता और सदा योग-साधनमें संलग्न रहता है, वह पापके बन्धनसे छूट जाता है तथा उसे तिर्यग्-योनिमें नहीं जाना पड़ता। वेदज्ञ ब्राह्मण भिक्षासे अन्न लाकर यदि अध्ययनशील विप्रको दान देता है तो इस लोकमें सदा सुखी होता है। जो क्षत्रिय ब्राह्मणके धनका अपहरण न करके न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए अपने बाहु-बलसे प्राप्त किया हुआ अन्न वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको शुद्ध एवं समाहित चित्तसे दान करता है, वह उस अन्न-दानके प्रभावसे अपने पूर्वकृत पापोंका नाश कर डालता है। यदि वैश्य खेतीसे अन्न पैदा करके उसका छठा भाग ब्राह्मणोंको दान कर देता है तो वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। शूद्र भी यदि प्राणोंकी परवा न करके कठोर परिश्रमसे कमाया हुआ अन्न ब्राह्मणोंको दान करता है तो पापसे छुटकारा पा जाता है। जो किसी प्राणीकी हिंसा न करके अपनी छातीके बलसे पैदा किया हुआ अन्न विप्रोंको दान करता है, वह कभी दुःखके दिन नहीं देखता। न्यायके अनुसार अन्न प्राप्त करके उसे वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको हर्षपूर्वक दान देनेवाला मनुष्य अपने पापोंके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। अन्न ही बलकी वृद्धि करनेवाला है, अतः इस संसारमें अन्नका दान करनेवाला मनुष्य बलवान् होता है और सत्पुरुषोंके मार्गका आश्रय लेकर समस्त पापोंसे छूट जाता है। दाता पुरुषोंने जिस मार्गको प्रवृत्त किया है, उसीसे विद्वान् पुरुष भी चलते हैं। अन्न-दान करनेवाले मनुष्य वास्तवमें प्राण-दान करनेवाले हैं। उन्हीं लोगोंसे सनातन धर्मकी वृद्धि होती है। मनुष्यको प्रत्येक अवस्थामें न्यायतः उपार्जित किया हुआ अन्न सत्पात्रको दान करना चाहिये; क्योंकि अन्न ही सब प्राणियोंका परम आधार है। अन्न-दान करनेसे मनुष्यको कभी नरककी भयंकर यातना नहीं भोगनी पड़ती, अतः न्यायोपार्जित अन्नका सदा ही दान करना चाहिये। प्रत्येक गृहस्थको उचित है कि वह पहले ब्राह्मणको भोजन कराकर पीछे स्वयं भोजन करनेका प्रयत्न करे तथा अन्न-दानके द्वारा प्रत्येक दिनको सफल बनावे। जो मनुष्य वेद, धर्म, न्याय और इतिहासके जाननेवाले एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह नरक और संसार-चक्रमें नहीं पड़ता; इस लोकमें उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और मरनेके बाद वह स्वर्गमें सुख भोगता है। राजन्! अन्न-दान सब प्रकारके धर्मों और दानोंका मूल है। इस प्रकार मैंने तुम्हें यह अन्नदानका महान् फल बतलाया है।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! अहिंसा, वेदोक्त कर्म, ध्यान, इन्द्रियसंयम, तपस्या और गुरुशुश्रूषा—इनमेंसे कौन-सा कर्म मनुष्यका विशेष कल्याण कर सकता है ?

बृहस्पतिजीने कहा—भारत! ये सभी कर्म धर्मानुकूल होनेके कारण कल्याणके साधन हैं। अब मैं मनुष्यके लिये कल्याणके सर्वश्रेष्ठ उपायका वर्णन करता हूँ। जो मनुष्य अहिंसायुक्त धर्मका पालन करता है, वह काम, क्रोध और लोभरूप तीनों दोषोंका त्याग करके सिद्धिको प्राप्त हो जाता है। जो अपने सुखकी इच्छासे अहिंसक प्राणियोंको डंडोंसे पीटता है, वह परलोकमें सुखी नहीं होता। जो मनुष्य सब जीवोंको अपने समान समझकर किसीपर प्रहार नहीं करता और क्रोधको अपने काबूमें रखता है, वह मृत्युके पश्चात् सुखी होता है। जो सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा है अर्थात् सबके सुख-दुःखको अपना ही सुख-दुःख समझता है तथा

जो सब भूतोंको अपनेमें स्थित देखता है, उस गमनागमनसे रहित ज्ञानीकी गतिका पता लगाते समय देवता भी मोहमें पड़ जाते हैं। जो बात अपनेको अच्छी न लगे, वह दूसरोंके प्रति भी नहीं करनी चाहिये; यही धर्मका संक्षिप्त लक्षण है। मनुष्य कामनासे प्रेरित होकर ही इसके विपरीत बर्ताव करता है। माँगनेपर देने और इन्कार करनेसे, सुख और दुःख पहुँचानेसे तथा प्रिय और अप्रिय करनेसे पुरुषको स्वयं जैसे हर्ष-शोकका अनुभव होता है, उसी प्रकार दूसरोंके लिये भी समझे। जैसे एक मनुष्य दूसरोंपर आक्रमण करता है तो अवसर आनेपर दूसरे भी उसके ऊपर आक्रमण करते हैं; इसीको तुम अपने लिये धर्म-अधर्मके सम्बन्धमें दृष्टान्त समझो अर्थात् धर्मसे सुख और अधर्मसे दुःखकी प्राप्ति होती है—ऐसा निश्चय करो।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! धर्मराज युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहकर परम बुद्धिमान् देवगुरु बृहस्पतिजी उस समय हमलोगोंके देखते-देखते स्वर्गको चले गये।



हिंसा और मांस-भक्षणकी निन्दा तथा मांस न खानेकी प्रशंसा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर, महातेजस्वी राजा युधिष्ठिरने बाण-शय्यापर पड़े हुए पितामह भीष्मसे पुनः प्रश्न किया।

युधिष्ठिरने पूछा—महामते ! देवता, ऋषि और ब्राह्मण वैदिक प्रमाणके अनुसार सदा अहिंसा-धर्मकी प्रशंसा किया करते हैं। अतः मैं पूछता हूँ कि मन, वाणी और क्रियासे भी हिंसाका ही आचरण करनेवाला मनुष्य किस प्रकार उसके दुःखसे छुटकारा पा सकता है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! ब्रह्मवादी पुरुषोंने (मनसे, वाणीसे तथा कर्मसे हिंसा न करना और मांस न खाना इन) चार उपायोंसे अहिंसा-धर्मका पालन बतलाया है। इनमेंसे एक अंशकी भी कमी हुई तो अहिंसा-धर्मका पालन नहीं होता। जैसे चार पैरोंवाले पशु तीन पैरोंसे नहीं खड़े रह सकते, उसी प्रकार अहिंसा भी केवल तीन ही कारणोंसे नहीं टिक सकती। जैसे हाथीके पैरके चिह्नमें सभी प्राणियोंके पदचिह्न समा जाते हैं, उसी प्रकार अहिंसा-धर्ममें सभी धर्मोंका समावेश हो जाता है। इस तरह अहिंसाका धर्मतः स्वरूप बतलाया गया है। जीव मन, वाणी और क्रियाके द्वारा हिंसाके दोषसे लिप्त होता है, किंतु जो क्रमशः पहले मनसे, फिर वाणीसे और फिर क्रियाद्वारा हिंसाका त्याग करके कभी मांस नहीं खाता, वह तीनों प्रकारकी हिंसाके दोषसे मुक्त हो जाता है। ब्रह्मवादी महात्माओंने हिंसा-दोषके तीन कारण बतलाये हैं—मन (मांस खानेकी इच्छा), वाणी (मांस खानेका उपदेश) और स्वाद (प्रत्यक्षरूपमें मांसका स्वाद लेना)। ये तीनों ही हिंसाके आधार हैं।

अब मैं मांस-भक्षणके दोष बता रहा हूँ। जो अविवेकी मनुष्य मोहवश मांस-भक्षण करता है, वह अत्यन्त नीच माना गया है। जैसे पिता और माताके संयोगसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार हिंसा करनेसे पापी पुरुषको अनेकों पापयोनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। जैसे जीभसे जब रसका ज्ञान होता है तो उसके प्रति वह आकृष्ट होने लगती है, उसी प्रकार मांसका आस्वादन करनेसे उसके प्रति आसक्ति बढ़ती है। शास्त्रोंमें भी कहा है कि विषयोंके आस्वादनसे उनके प्रति राग उत्पन्न होता है, जो चित्तको अपने वशमें कर लेता है। जिनका चित्त मांसका रस लेनेके लिये लोलुप होता है, वे मांसकी ऐसी प्रशंसा करते हैं जिसकी मन, वाणी और चित्तके द्वारा कल्पना भी नहीं हो सकती। मांसकी प्रशंसा करनेसे भी उसके खानेका पाप लगता है और उसका फल भी भोगना पड़ता है। कितने ही साधु पुरुष दूसरोंकी रक्षाके लिये अपने प्राण देकर, अपने मांससे दूसरोंके मांसकी रक्षा करके स्वर्गलोकमें गये हैं। युधिष्ठिर ! इस प्रकार चार उपायोंसे जिसका पालन होता है, उस अहिंसाधर्मका प्रतिपादन किया गया। यह सम्पूर्ण धर्मोंमें ओतप्रोत है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! आपने अनेकों बार बतलाया कि अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है। अतः मैं यह जानना चाहता हूँ कि मांस खानेसे क्या हानि होती है ? और न खानेसे क्या लाभ पहुँचता है ? जो स्वयं पशुका वध करके उसका मांस खाता है या दूसरेके मारे हुए पशुका मांस भक्षण करता है, अथवा जो दूसरेके खानेके लिये पशुका वध करता है या खरीदकर मांस खाता है, उसको क्या फल मिलता है ?

भीष्मजीने कहा—राजन् ! मांस न खानेसे जो लाभ होता है, उसका यथार्थ वर्णन सुनो—जो सुन्दर रूप, सुडौल शरीर, पूर्ण आयु, उत्तम बुद्धि, सत्त्व, बल और स्मरणशक्ति प्राप्त करना चाहते थे, उन महात्माओंने हिंसाका सर्वथा परित्याग कर दिया था। इस विषयको लेकर ऋषियोंमें अनेकों बार वाद-विवाद हो चुका है। अन्तमें उन्होंने जो सिद्धान्त निश्चित किया है, उसे बता रहा हूँ, सुनो—जो पुरुष व्रतका पालन करता हुआ प्रतिमास अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान

करता है तथा जो केवल मधु और मांसका परित्याग करता है, उन दोनोंको एक-सा ही फल मिलता है। सप्तर्षि, बालखिल्य और मरीचि आदि मनीषी महर्षि मांस न खानेकी ही प्रशंसा करते हैं। स्वायम्भुव मनुका वचन है कि 'जो मनुष्य न मांस खाता, न पशुकी हिंसा करता और न दूसरेसे ही हिंसा कराता है, वह सम्पूर्ण प्राणियोंका मित्र है।' जो पुरुष मांसका त्याग कर देता है, उसका कोई भी प्राणी तिरस्कार नहीं करता। वह सबका विश्वासपात्र हो जाता है तथा साधु पुरुष सदा ही उसका आदर करते हैं। धर्मात्मा नारदजी कहते हैं—'जो दूसरेके मांससे अपना मांस बढ़ाना चाहता है, उसे अवश्य ही दुःख उठाना पड़ता है।' बृहस्पतिजीका कथन है—'जो मधु और मांस त्याग देता है, उसे दान, यज्ञ और तपस्याका फल प्राप्त होता है।' मेरा तो ऐसा विचार है कि एक मनुष्य यदि सौ वर्षोंतक प्रतिमास अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करता है और दूसरा मांस न खानेका नियम पालन करता है तो उन दोनोंका कार्य समान ही है। मधु और मांसका त्याग कर देनेसे मनुष्य सदा यज्ञ करनेवाला, सदा दान देनेवाला और सदा तप करनेवाला समझा जाता है। जो पहलेसे मांस खाता रहा हो और पीछे उसका सर्वथा परित्याग कर दे तो उसको जितना पुण्य होता है, उतना सम्पूर्ण वेदोंके अध्ययन और समस्त यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नहीं हो सकता। जो विद्वान् सब जीवोंको अभय दान कर देता है, वह इस संसारमें निःसंदेह प्राणदाता माना जाता है। इस प्रकार विद्वान् पुरुष अहिंसारूप परम धर्मकी प्रशंसा करते हैं। जैसे मनुष्यको अपने प्राण प्रिय होते हैं, उसी प्रकार समस्त प्राणियोंको अपने-अपने प्राण प्रिय जान पड़ते हैं अतः जो बुद्धिमान् और पुण्यात्मा हैं, उन्हें चाहिये कि सम्पूर्ण प्राणियोंको अपने ही समान समझें। जब अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले विद्वानोंको भी मृत्युका भय बना रहता है तो जीवित रहनेकी इच्छावाले नीरोग और निरपराध प्राणियोंको, जिन्हें मांसपर जीविका चलानेवाले पापी पुरुष बलपूर्वक मार डालते हैं, क्यों न भय होता होगा? इसलिये तुम मांस त्याग देनेको ही धर्म, स्वर्ग और सुखका सर्वोत्तम आधार समझो। अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम तप है और अहिंसा परम सत्य है। अहिंसासे ही धर्मकी उत्पत्ति होती है। मांस घास, लकड़ी या पत्थरसे नहीं पैदा होता, वह जीवकी हत्या करनेपर ही मिलता है; अतः उसके खानेमें बहुत बड़ा दोष है। जो लोग स्वाहा (देवयज्ञ) और स्वधा (पितृयज्ञ) का अनुष्ठान करके यज्ञशिष्ट अमृतका भोजन करनेवाले तथा सत्य और सरलताके प्रेमी हैं, वे देवता हैं; किंतु जो कुटिलता और असत्यभाषणमें प्रवृत्त होकर सदा मांस-भक्षण किया करते हैं, उन्हें राक्षस समझना चाहिये। जो मनुष्य मांस नहीं खाता, वह संकटपूर्ण स्थान, भयंकर दुर्ग और गहन वनोंमें रात, दिन और संध्याके समय, चौराहों और सभाओंमें तथा हथियार उठाये हुए मनुष्यों, सर्पों और हिंसक पशुओंके बीचमें पड़ जानेपर भी किसीसे भयको नहीं प्राप्त होता। इतना ही नहीं, वह समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाला और सबका विश्वासपात्र होता है। संसारमें न तो वह दूसरेको उद्वेगमें डालता है और न स्वयं ही उद्विग्न होता है। जगत्में यदि मांस खानेवालोंका अभाव हो जाय तो पशुओंकी हिंसा करनेवाला भी कोई न रहे। हिंसक मनुष्य मांसखोरोंके लिये ही प्राणियोंका वध करता है। यदि मांसको अभक्ष्य समझकर सब लोग उसे खाना छोड़ दें तो पशुओंकी हत्या स्वतः ही बंद हो जायगी। हिंसा करनेवालोंकी आयु क्षीण होती है, इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको मांसका परित्याग कर देना चाहिये। जैसे यहाँ हिंसक पशुओंका लोग शिकार खेलते हैं, उसी प्रकार जीवोंकी हिंसा करनेवाले भयंकर मनुष्योंको दूसरे जन्ममें सभी प्राणी क्लेश पहुँचाते हैं। उस समय उन्हें कोई संकटसे बचानेवाला नहीं मिलता। लोभसे, बुद्धिके मोहसे, बल-वीर्यकी प्राप्तिके लिये अथवा पापियोंके संसर्गमें आनेसे मनुष्यकी अधर्ममें रुचि हो जाती है। जो दूसरोंके मांस खाकर अपना मांस बढ़ाना चाहता है, वह जहाँ कहीं भी जन्म लेता है, चैनसे नहीं रहने पाता। नियम पालन करनेवाले महर्षियोंने मांस-भक्षणके त्यागको ही धन, यश, आयु तथा स्वर्गकी प्राप्तिका प्रधान उपाय और परम कल्याणका साधन बतलाया है।

कुन्तीनन्दन! पूर्वकालमें मैंने मार्कण्डेयजीके मुखसे मांस खानेके जो दोष सुने हैं, उन्हें बता रहा हूँ; सुनो—जो जीवित रहनेकी इच्छावाले प्राणियोंको मारकर अथवा उनके स्वयं मर जानेपर उनका मांस खाता है, वह उन प्राणियोंका हत्यारा ही समझा जाता है। जो मांस खरीदता है वह धनसे, जो खाता है वह उपभोगसे तथा जो मारनेवाला है वह शस्त्रप्रहार करके या फाँसी लगाकर पशुओंकी हिंसा करता है। इस प्रकार तीन तरहसे प्राणियोंका वध होता है। जो मांसको स्वयं तो नहीं खाता, पर खानेवालेका अनुमोदन करता है, वह भी भावदोषके कारण मांस-भक्षणके पापका भागी होता है। इसी प्रकार जो मारनेवालेको प्रोत्साहन देता है, उसे भी हिंसाका पाप लगता है। जो मनुष्य मांस न खाकर सब जीवों-पर दया करता है, उसका कोई भी प्राणी तिरस्कार नहीं करता, वह दीर्घजीवी और सदा नीरोग होता है। हमने सुना है कि सुवर्णदान, गो-दान और भूमि-दान करनेसे जो धर्म प्राप्त होता है, मांसका भक्षण न करनेसे उससे भी विशिष्ट धर्मकी प्राप्ति होती है। जो मांसखोरोंके लिये पशुओंकी हत्या करता है,

वह पुरुषोंमें अधम है। हिंसाका अधिक दोष घातकको ही लगता है, मांस खानेवालेको नहीं। जो अज्ञानी मनुष्य वैदिक यज्ञ-यागादिके नामपर मांसके लोभसे प्राणियोंकी हिंसा करता है, वह नरकगामी होता है। जो पहले मांस खानेके बाद फिर उससे निवृत्त हो जाता है, उसको भी महान् धर्मकी प्राप्ति होती है; क्योंकि वह पापसे पीछे हटता है। जो मनुष्य हत्याके लिये पशु लाता है, जो उसे मारनेकी अनुमति देता है, जो उसका वध करता है तथा जो खरीदता, बेचता, पकाता और खाता है, वे सब-के-सब खानेवाले ही समझे जाते हैं। जो मनुष्य परम शान्तिमय जीवन व्यतीत करना चाहता हो, उसे दूसरे प्राणियोंके मांसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। मांस न खानेसे सब प्रकारका सुख मिलता है। जो सौ वर्षोंतक कठोर तपस्या करता है तथा जो केवल मांसका परित्याग कर देता है, वे दोनों मेरी दृष्टिमें एक समान हैं। इस प्रकार अहिंसा ही सबसे उत्तम धर्म है। जो महात्मा इसका पालन करते हैं, वे स्वर्गके निवासी होते हैं। जो सदा धर्मका आचरण करते हुए बाल्यकालसे ही मधु, मांस और मदिराका त्याग कर देते हैं, वे मुनि कहलाते हैं। जो पुरुष मांस-भक्षणके त्यागरूप इस अहिंसा-धर्मका स्वयं आचरण करता और दूसरोंको उपदेश देता है, वह पहलेका महान् दुराचारी होनेपर भी कदापि नरकमें नहीं पड़ता। जो मांस-भक्षणके त्यागरूप इस परम पवित्र एवं ऋषियोंद्वारा प्रशंसित विधिका सदा पाठ या श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इतना ही नहीं, इसके पाठ और श्रवण करनेपर आपत्तिमें पड़ा हुआ पुरुष आपत्तिसे, कैदमें पड़ा हुआ कैदसे, रोगी रोगसे और दुःखी दुःखसे छुटकारा पा जाता है। इसके प्रभावसे मनुष्य तिर्यग्-योनिमें नहीं पड़ता तथा उसे सुन्दर रूप, सम्पत्ति और महान् यशकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार मैंने ऋषियोंकी बतायी हुई यह मांस-त्यागकी विधि बतलायी है।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! बड़े खेदकी बात है कि संसारके ये निर्दयी मनुष्य महान् राक्षसोंकी तरह अच्छे-अच्छे खाद्य पदार्थोंका परित्याग करके मांसका स्वाद लेना चाहते हैं। ये मालपूए, तरह-तरहके साग और रसीली मिठाइयोंको भी उतनी रुचिसे नहीं खाना चाहते, जितनी रुचि मांसके लिये रखते हैं। अतः मैं मांस न खानेसे होनेवाले लाभ और उसे खानेसे होनेवाली हानियोंको पुनः सुनना चाहता हूँ।

भीष्मजीने कहा—बेटा! मांस न खानेमें बहुत-से लाभ हैं, मैं उन्हें बता रहा हूँ, सुनो—जो दूसरेका मांस खाकर अपना मांस बढ़ाना चाहता है, उससे बढ़कर नीच और निर्दयी मनुष्य कोई नहीं है; जगत्में अपने प्राणोंसे अधिक प्रिय दूसरी कोई वस्तु नहीं है; इसलिये मनुष्य जिस तरह अपने ऊपर दया चाहता है, उसी तरह उसे दूसरोंपर भी दया करनी चाहिये। मांस-भक्षण करनेसे महान् पाप होता है और उसे न खानेसे बहुत बड़ा पुण्य होता है। समस्त जीवोंपर दया करनेके समान इहलोक और परलोकमें कोई कार्य नहीं है। दयालु मनुष्यको कभी भयका सामना नहीं करना पड़ता। दयालु और तपस्वीके लिये यह लोक और परलोक दोनों ही सुखद होते हैं। जो मनुष्य दयापरायण होकर सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय-दान करता है, उसे सब प्राणी अभयदान देते हैं। वह घायल हो, लड़खड़ाता हो, गिर पड़ा हो, पानीके बहावमें खींचकर बहा जाता हो, आहत हो रहा हो अथवा किसी भी सम-विषम अवस्थामें पड़ा हो, सब प्राणी उसकी रक्षा करते हैं। हिंसक पशु, पिशाच और राक्षस भी उसके प्राण नहीं लेते। जो मनुष्य दूसरे जीवोंको भयसे बचाता है, वह स्वयं भी भयका अवसर आनेपर उससे छुटकारा पा जाता है। प्राण-दानके समान दूसरा कोई दान न हुआ है, न होगा। मृत्यु किसी भी प्राणीको अभीष्ट नहीं है; क्योंकि मृत्युकालमें सभी जीव काँप उठते हैं। इस संसार-समुद्रमें समस्त प्राणी सदा गर्भवास, जन्म और बुढ़ापा आदिके दुःखसे दुःखी होकर चारों ओर भटकते रहते हैं। इसके सिवा मृत्युका भय भी उन्हें बेचैन किये रहता है। गर्भमें आये हुए प्राणी मल-मूत्रके बीचमें रहकर क्षार, अम्ल और कटु आदि रसोंसे, जिनका स्पर्श अत्यन्त कठोर और दुःखदायी होता है, कष्ट पाते रहते हैं। मांसलोलुप जीव जन्म लेनेपर भी परवश होते हैं। वे बार-बार शस्त्रोंसे काटे और पकाये जाते हैं। उनकी यह दुर्गति प्रत्यक्ष देखी जाती है। वे अपने पापोंके कारण कुम्भीपाक नरकमें डाले जाते और भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म लेकर गला घोंट-घोंटकर मारे जाते हैं। इस प्रकार उन्हें बारंबार संसारचक्रमें भटकना पड़ता है।

इस भूमण्डलपर अपने आत्मासे बढ़कर कोई प्रिय वस्तु नहीं है, इसलिये सब प्राणियोंपर दया करे और सबको आत्मभावसे देखे। जो मनुष्य जीवनभर किसी भी जीवका मांस नहीं खाता, उसे निःसंदेह स्वर्गलोकमें श्रेष्ठ स्थान मिलता है। जो जीवित रहनेकी इच्छावाले प्राणियोंके मांस खाते हैं, वे भी दूसरे जन्ममें उन प्राणियोंद्वारा भक्षण किये जाते हैं। इस विषयमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं है। युधिष्ठिर! (जिसका वध किया जाता है, वह प्राणी कहता है—) 'मां स भक्षयते यस्माद् भक्षयिष्ये तमप्यहम्' अर्थात् 'आज मुझे वह खाता है तो कभी मैं भी उसे खाऊँगा।' यही मांसका मांसत्व है—इसे ही मांस शब्दका तात्पर्य समझो।

इस जन्ममें जिस जीवकी हिंसा होती है, वह दूसरे जन्ममें पहले घातकको मारता है, फिर मांस खानेवाला उसके हाथसे मारा जाता है। जो दूसरोंकी निन्दा करता है, वह स्वयं भी दूसरोंके क्रोध और द्वेषका पात्र होता है। अहिंसा परम धर्म, अहिंसा परम संयम, अहिंसा परम दान, अहिंसा परम तप, अहिंसा परम यज्ञ, अहिंसा परम फल, अहिंसा परम मित्र और अहिंसा परम सुख है। सम्पूर्ण यज्ञोंमें दान किया जाय, सब तीर्थोंमें डुबकी लगायी जाय और सब प्रकारके दानका फल प्राप्त हो तो भी अहिंसाके साथ इनकी तुलना नहीं हो सकती। जो हिंसा नहीं करता उसकी तपस्या अक्षय होती है, उसे सदा यज्ञ करनेका फल मिलता है, हिंसा न करनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियोंके माता-पिताके समान है। युधिष्ठिर ! यह अहिंसाका फल बतलाया गया। अभी इससे भी अधिक उसका फल होता है। अहिंसासे होनेवाले लाभका सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं हो सकता।



व्यासजीकी एक कीड़ेपर कृपा

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! जो योद्धा महान् संग्राममें जाकर इच्छा या अनिच्छासे प्राण-त्याग कर देते हैं, उनकी क्या गति होती है ? आप जानते हैं प्राण-त्याग करना कितना कठिन है। कोई उन्नतिकी अवस्थामें हो या अवनतिकी, शुभ समयमें हो या अशुभ समयमें; किंतु मरना नहीं चाहता। इसका क्या कारण है ? आप सर्वज्ञ हैं, बतानेकी कृपा कीजिये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इस संसारके प्राणी उन्नतिमें हों या अवनतिमें, शुभमें हों अथवा अशुभमें जिस किसी भी अवस्थामें हों, उसीमें सुख मानते हैं, मरना नहीं चाहते, इसका कारण बतला रहा हूँ, सुनो—इस विषयमें भगवान् व्यास और एक कीड़ेका संवादरूप प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है, वही तुम्हें सुना रहा हूँ। पहलेकी बात है, ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी कहीं जा रहे थे। उन्होंने एक कीड़ेको गाड़ी चलनेके रास्तेसे बड़ी तेजीके साथ भागता देखा। व्यासजी सम्पूर्ण प्राणियोंकी गतिके ज्ञाता और भाषाको समझनेवाले हैं। उन्होंने उस कीड़ेसे इस प्रकार पूछा—'कीट ! आज तुम बहुत डरे हुए और उतावले दिखायी देते हो, कहो, कहाँ दौड़े जा रहे हो ? कहाँसे तुम्हें भय प्राप्त हुआ है।'

कीड़ेने कहा—भगवन् ! कोई बहुत बड़ी बैलगाड़ी आ रही है, इसीकी घरघराहट सुनकर मुझे भय हो गया है। इसकी आवाज बड़ी डरावनी है, यह जब कानोंमें पड़ती है तो ऐसा संदेह होता है कि कहीं गाड़ी आकर मुझे कुचल न डाले, इसीलिये तेजीसे भाग रहा हूँ। यह देखिये, बैलोंपर चाबुककी मार पड़ रही है, वे भारी बोझ लिये हाँफते हुए इधर आ रहे हैं। मुझे उनकी आवाज बहुत निकट सुनायी पड़ती है। गाड़ीपर बैठे हुए मनुष्योंके भी नाना प्रकारके शब्द कानोंमें पड़ रहे हैं। हमारे-जैसे कीड़ोंके लिये इस आवाजको धैर्यपूर्वक सुन सकना कठिन है, अतः इस दारुण भयसे अपनी रक्षा करनेके लिये मैं यहाँसे भाग रहा हूँ। मौत प्रत्येक प्राणीके लिये दुःखदायिनी होती है। अपना जीवन सबको दुर्लभ जान पड़ता है। कहीं ऐसा न हो कि मैं सुखसे दुःखमें पड़ जाऊँ; इसी भयसे पलायन कर रहा हूँ।

व्यासजीने कहा—कीट ! तुम्हें कहाँ सुख है ? तुम तो तिर्यक्‌योनिमें पड़े हुए हो। मेरी समझमें मर जाना ही तुम्हारे लिये सुखकी बात है। तुम शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध तथा छोटे-बड़े भोगोंका अनुभव नहीं कर सकते; अतः तुम्हारा तो मरना ही अच्छा है।

कीड़ेने कहा—भगवन् ! जीव सभी योनियोंमें सुखका अनुभव करते हैं। मुझे भी इस योनिमें सुख मिलता है और यही सोचकर मैं जीवित रहना चाहता हूँ। यहाँ भी इस शरीरके अनुसार सब प्रकारके विषय उपलब्ध होते हैं। मनुष्यों और स्थावर प्राणियोंके भोग अलग-अलग हैं। पहले जन्ममें मैं एक बहुत धनी शूद्र था। ब्राह्मणोंके प्रति मेरे मनमें तनिक भी आदरका भाव न था। मैं परले सिरेका कंजूस और ब्याजखोर था। सबसे तीखे वचन बोलना, बुद्धिमानीके साथ लोगोंको ठगना और संसारभरसे द्वेष रखना—यह मेरा स्वभाव हो गया था। झूठ बोलकर लोगोंको धोखा देना और दूसरोंका माल हड़प लेना—यही मेरा काम था। मैं इतना निर्दयी था कि मात्सर्यवश घरपर आये हुए अतिथियों और आश्रित जनोंको भोजन कराये बिना ही केवल स्वाद लेनेकी इच्छासे अकेला ही भोजन कर लेता था। भयके समय अभय पानेकी इच्छासे कितने ही शरणार्थी मेरे पास आते; किंतु मैं उन्हें शरण लेने योग्य सुरक्षित स्थानमें पहुँचाकर भी अकस्मात् वहाँसे निकाल देता, उनकी रक्षा नहीं करता था। दूसरे मनुष्योंके पास धन-धान्य, सुन्दरी स्त्री, अच्छी-अच्छी सवारियाँ, अद्‌भुत वस्त्र और उत्तम लक्ष्मी

देखकर मैं अकारण ही उनसे जलता रहता था। दूसरोंका सुख देखकर मुझे ईर्ष्या होती थी। किसीका ऐश्वर्य मुझसे नहीं देखा जाता था। मैं अपनी इच्छाओंका गुलाम था। दूसरोंके धर्म, अर्थ और कामका विनाश करनेको सदा ही उद्यत रहता था। पूर्वजन्ममें मेरे द्वारा प्रायः क्रूरतापूर्ण कर्म हुए हैं। उनकी याद आनेसे मुझे बड़ा पश्चात्ताप होता है। उस समय मुझे शुभ कर्मोंके फलका ज्ञान न था। जीवनमें मैंने केवल अपनी बूढ़ी माताकी सेवा की थी तथा एक दिन अपने घरपर आये हुए एक ब्राह्मण अतिथिका, जो अपने जातीय गुणोंसे सम्पन्न थे, स्वागत-सत्कार किया था। उसी पुण्यके प्रभावसे मुझे आजतक पूर्वजन्मकी स्मृति बनी हुई है। अब मैं कोई शुभ कर्म करके भविष्यमें सुख पाना चाहता हूँ। अतः जिससे मेरा कल्याण हो वह उपाय आप ही बताइये। आपहीके मुँहसे मैं उसे सुनना चाहता हूँ।

व्यासजीने कहा—कीट ! तुम जिस शुभ कर्मके प्रभावसे तिर्यक्योनिमें जन्म लेकर भी मोहित नहीं हुए हो वह और कुछ नहीं, मेरा दर्शन ही है। मैं अपने तपोबलसे केवल दर्शनमात्र देकर तुम्हारा उद्धार कर दूँगा। तपोबलसे बढ़कर दूसरा कोई श्रेष्ठ बल नहीं है। मैं जानता हूँ, अपने पूर्वकृत पापोंके कारण तुम्हें कीड़ेकी योनिमें आना पड़ा है। यदि इस समय तुम्हारी धर्मके प्रति श्रद्धा है तो तुम्हें धर्म अवश्य प्राप्त होगा। देवता और तिर्यक्योनिमें पड़े हुए प्राणी इस कर्मभूमिमें किये हुए कर्मोंका ही फल भोगते हैं। अज्ञानी मनुष्यका धर्म भी कामनाको लेकर ही होता है तथा वे कामनाकी सिद्धिके लिये ही गुणोंको अपनाते हैं। अस्तु, एक जगह एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते हैं। वे जीवनमें सदा सूर्य और चन्द्रमाकी पूजा किया करते हैं तथा लोगोंको पवित्र कथाएँ सुनाते रहते हैं। उन्हींके यहाँ तुम पुत्ररूपसे जन्म लोगे और विषयोंको पञ्चभूतोंका विकार मानकर अनासक्त भावसे उनका उपभोग करोगे। उस समय मैं तुम्हारे पास आकर ब्रह्मविद्याका उपदेश करूँगा, अथवा तुम जिस लोकमें जाना चाहोगे, वहीं तुम्हें ले जाऊँगा।



कीड़ेका क्रमशः ब्राह्मण-योनिमें जन्म लेकर ब्रह्मलोक प्राप्त करना

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! व्यासजीके इस प्रकार कहनेपर उस कीड़ेने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली और बीच रास्तेमें आकर वह ठहर गया। इतनेमें वह विशाल छकड़ा वहाँ आ पहुँचा और उसके पहियेसे दबकर उस कीड़ेने प्राण त्याग दिया। तत्पश्चात् वह क्रमशः साही, गोधा, सूअर, मृग, पक्षी, चाण्डाल, शूद्र और वैश्यकी योनियोंमें जन्म लेता हुआ क्षत्रिय-जातिमें उत्पन्न हुआ। उस समय वह महर्षि व्यासजीका दर्शन करनेके लिये वनमें गया और उन्हें पहचानकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा। इसके बाद हाथ जोड़कर बोला—'भगवन् ! आज मुझे वह स्थान मिला है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। इसे मैं दस जन्मोंसे पाना चाहता था। यह आपहीकी कृपा है कि मैं अपने दोषसे कीड़ा होकर भी आज राजकुमार हो गया। अब सोनेकी मालाओंसे सुशोभित अत्यन्त बलवान् गजराज मेरी सवारीमें रहते हैं। मैं सुन्दर महलोंके भीतर सुखद शय्याओंपर बड़े सम्मानके साथ शयन करता हूँ। आप महान् तेजस्वी और सत्यप्रतिज्ञ हैं। आपके ही प्रसादसे आज मैं कीड़ेसे राजपूत हो गया हूँ। महाप्राज्ञ ! आपको नमस्कार है। आपके तपोबलके प्रभावसे मुझे यह राजपद प्राप्त हुआ है; अतः आज्ञा दीजिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?'



व्यासजीने कहा—राजन् ! आज तुमने अपनी वाणीसे

मेरा भलीभाँति स्तवन किया है। अभीतक तुम्हें अपनी कीट-योनिकी कलुषित स्मृति बनी हुई है। तुमने पूर्वजन्ममें अर्थपरायण, नृशंस और आततायी शूद्र होकर जो पाप संचित किया था, उसका सर्वथा नाश नहीं हुआ है। कीटयोनिमें जन्म लेकर भी जो तुमने मेरा दर्शन किया, उसी पुण्यका फल है कि तुम क्षत्रिय हुए और आज जो तुमने मेरी पूजा की इससे तुम्हें ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होगी। राजकुमार! तुम नाना प्रकारके सुख भोगकर अन्तमें गौ और ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये संग्रामभूमिमें अपने प्राणोंकी आहुति दोगे। तदनन्तर, ब्राह्मणरूपमें प्रचुर दक्षिणावाले अनेकों यज्ञोंका अनुष्ठान करके अविनाशी ब्रह्मस्वरूप होकर अक्षय आनन्दका अनुभव करोगे।

भीष्मजी कहते हैं—इस प्रकार अपने पूर्वजन्मका स्मरण करनेवाला वह कीट अब क्षत्रिय-योनिमें उत्पन्न हो क्षात्रधर्मका पालन करने लगा। तत्पश्चात् उसने बड़ी भारी तपस्या आरम्भ की। धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले उस राजकुमारकी उग्र तपस्या देखकर विप्रवर श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी उसके पास आये और कहने लगे—'कीट! प्राणियोंकी रक्षा करना ही क्षत्रियोंका धर्म है। तुम शुभ और अशुभका ज्ञान प्राप्त करो तथा अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें करके भलीभाँति प्रजाका पालन करो। उत्तम भोगोंका दान करते हुए अपने अशुभ दोषोंका मार्जन करो, प्रसन्न रहो और आत्माका ज्ञान प्राप्त करो। आजीवन स्वधर्मका पालन करते रहो। तदनन्तर, क्षत्रिय-शरीरका त्याग करके ब्राह्मणत्वको प्राप्त करोगे।'

युधिष्ठिर! महर्षि व्यासकी बात सुनकर वह राजकुमार प्रजाका धर्मपूर्वक पालन करने लगा। प्रजा-पालनरूप धर्मका आचरण करते हुए उसने थोड़े ही दिनोंमें (रणभूमिमें) शरीर त्याग दिया और दूसरे जन्ममें वह ब्राह्मणके घर उत्पन्न हुआ। यह जानकर महायशस्वी व्यासजी पुनः उसके पास आये और बोले—'विप्रवर! अब तुम्हें किसी प्रकारका भय नहीं होना चाहिये। उत्तम कर्म करनेवाला उत्तम जातिमें और पाप करनेवाला पाप-योनियोंमें जन्म लेता है। मनुष्य जैसा पाप करता है, उसके अनुसार ही उसे फल भोगना पड़ता है। अतः अब तुम मृत्युके भयसे न डरो। हाँ, तुम्हें धर्मके लोपका भय अवश्य होना चाहिये; इसलिये उत्तम धर्मका आचरण करते रहो।'

कीटने कहा—भगवन्! आपकी कृपासे मुझे अधिकाधिक सुखकी अवस्था प्राप्त होती गयी है। आज धर्ममूलक सम्पत्ति पाकर मेरा सारा पाप नष्ट हो गया।

भीष्मजी कहते हैं—इस प्रकार भगवान् व्यासके कथनानुसार उस कीटने दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर पृथ्वीको सैकड़ों यज्ञयूपोंसे अङ्कित कर दिया (अर्थात् उसने सैकड़ों यज्ञ किये)। तदनन्तर, ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ होकर उसने ब्रह्माजीका सालोक्य प्राप्त किया। व्यासजीके कथनानुसार उसने स्वधर्मका पालन किया था, उसीका यह फल हुआ कि वह ब्रह्मलोकमें जाकर सनातन ब्रह्ममें लीन हो गया। युधिष्ठिर! (क्षत्रिय-योनिमें उस कीटने युद्ध करके प्राणत्याग किया था, इसलिये उसे उत्तम गतिकी प्राप्ति हुई।) इसी प्रकार जो प्रधान-प्रधान क्षत्रिय अपनी शक्तिका परिचय देते हुए इस रणभूमिमें मारे गये हैं, वे भी पुण्यमयी गतिको प्राप्त हुए हैं; अतः उनके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये।



व्यास-मैत्रेय-संवादमें दान, तप आदिकी प्रशंसा

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! विद्या, तप और दान—इनमेंसे कौन-सा कर्म श्रेष्ठ है?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! इस विषयमें श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास और मैत्रेयके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। एक समयकी बात है, भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासजी गुप्तरूपसे विचरते हुए काशीमें जा पहुँचे। वहाँ मुनियोंकी मण्डलीमें मुनिवर मैत्रेयजी बैठे हुए थे। जब व्यासजी उनके पास गये तो मैत्रेयजीने उन्हें पहचान लिया कि ये कोई महात्मा हैं, फिर उनका विधिवत् पूजन करके उन्हें उत्तम अन्न भोजन कराया। वह उत्तम, लाभदायक और सबकी रुचिके अनुकूल अन्न भोजन करके महामना व्यासजी बहुत संतुष्ट हुए। फिर जब वहाँसे चलने लगे तो कुछ मुसकराये। उन्हें मुसकराते देख मैत्रेयने कहा—'धर्मात्मन्! मैं आपको प्रणाम करके पूछता हूँ, आपके इस प्रकार मुसकरानेका क्या कारण है?'

व्यासजीने कहा—मैत्रेयजी! मैंने आपके यहाँ अतिच्छेद और अतिवादका दर्शन किया है। अर्थात् आपकी जो स्थिति है वह असाधारण कर्मके बिना प्राप्त होनेवाली नहीं है; किंतु आपको वह सहज ही प्राप्त दिखायी देती है। यही

जानकर मुझे विस्मययुक्त हँसी आयी है। शास्त्रविधिके अनुसार दिया हुआ थोड़ा भी दान महान् फल देनेवाला होता है। आपने ईर्ष्यारहित हृदयसे भूखे-प्यासे प्राणियोंको दान दिया है। मैं भूखा और प्यासा था, ऐसी स्थितिमें मुझे अन्न देकर आपने तृप्त किया। इस पुण्यके प्रभावसे आपने महान् यज्ञोंद्वारा प्राप्त होनेवाले बड़े-बड़े लोकोंपर विजय पायी है। अतः मैं आपके पवित्र दानसे बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। आपका बल पुण्यका ही बल है और आपका दर्शन भी पुण्यका ही दर्शन है। इस दानरूप पुण्यके प्रभावसे ही आपके शरीरसे पवित्र गन्ध निकल रही है। तात ! दान करना तीर्थस्नान और वैदिक व्रतकी पूर्तिसे भी बढ़कर है। जितने पवित्र कर्म हैं, उन सबमें दान ही सबसे बढ़कर पवित्र और कल्याणकारी है। आप जिन-जिन वेदोक्त उत्तम कर्मोंकी प्रशंसा करते हैं, उन सबमें दान ही श्रेष्ठ है; इसमें तनिक भी संदेहकी बात नहीं है। दाताओंने जो उत्तम मार्ग बना दिया है, उसीसे मनीषी पुरुष चलते हैं। दान करनेवाले प्राणदाता समझे जाते हैं। उन्हींमें धर्म प्रतिष्ठित है। जैसे वेदोंका स्वाध्याय, इन्द्रियोंका संयम और सर्वस्वका त्याग उत्तम है, उसी प्रकार दान भी इस संसारमें अत्यन्त उत्तम माना गया है। महामते ! आपको इस दानके कारण उत्तम सुखकी प्राप्ति होगी। बुद्धिमान् मनुष्य दान करके उत्तरोत्तर श्रेष्ठ सुख प्राप्त करता है—यह बात हमलोगोंके सामने प्रत्यक्ष है। आप-जैसे लोग धन पाते हैं तो उससे दान और यज्ञ करके सुखी होते हैं। किंतु जो विषय-सुखोंमें आसक्त हैं, वे सुखसे दुःखमें पड़ते हैं और जो तपस्या आदिके द्वारा दुःख उठाते हैं, उन्हें दुःखसे ही सुखकी प्राप्ति होती देखी जाती है। इस जगत्‌में विद्वानोंने मनुष्यके आचरण तीन प्रकारके बतलाये हैं—किसीमें पुण्य होता है, किसीमें पाप होता है और किसीमें दोनोंका अभाव रहता है। ब्रह्मनिष्ठ पुरुषका आचरण न पुण्यमय माना जाता है, न पापमय। उनके कर्ममें दोनोंका ही अभाव रहता है। जो यज्ञ, दान और तपस्यामें प्रवृत्त रहते हैं, वे पुण्यकर्म करनेवाले हैं। जो प्राणियोंसे द्रोह करते हैं, वे पापाचारी समझे जाते हैं। जो मनुष्य दूसरोंके धन चुराते हैं, वे दुःखको प्राप्त होते और नरकमें पड़ते हैं।

मैत्रेयने कहा—मुने ! आपने दानके सम्बन्धमें जो बातें बतायी हैं, वे दोषरहित और निर्मल हैं। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि आपने विद्या और तपस्यासे अपने अन्तःकरणको परम पवित्र बना लिया है। आप शुद्धचित्त हैं, इसलिये आज आपके समागमसे मेरे लिये महान् लाभ पहुँचा है। जब मैं बारंबार बुद्धिसे विचार करके देखता हूँ तो आप अत्यन्त समृद्ध तपस्वी जान पड़ते हैं। आपके दर्शनसे मेरा अभ्युदय होगा। आपने यहाँतक आनेका कष्ट किया, इसे मैं आपकी कृपा समझता हूँ तथा अपने स्वाभाविक कर्मको भी इसमें कारण मानता हूँ। ब्राह्मणत्वके तीन कारण माने गये हैं—तपस्या, शास्त्रज्ञान और विशुद्ध ब्राह्मणकुलमें जन्म। जो इन तीन गुणोंसे युक्त है, वही सच्चा ब्राह्मण है। ऐसे ब्राह्मणके तृप्त होनेपर देवता और पितर भी तृप्त हो जाते हैं। विद्वानोंके लिये ब्राह्मणसे बढ़कर दूसरा कोई मान्य नहीं है। ब्राह्मण न हों तो यह सारा जगत् अज्ञानान्धकारसे आच्छन्न हो जाय, किसीको कुछ सूझ न पड़े तथा चारों वर्णोंकी स्थिति, धर्म-अधर्म और सत्य-असत्य कुछ भी न रह जाय। जैसे मनुष्य उत्तम खेतमें बीज बोनेपर उसका फल पाता है, उसी प्रकार विद्वान् ब्राह्मणको दान देकर दाता पुरुष उत्तम फलका उपभोग करता है। यदि विद्या और सदाचारसे सम्पन्न ब्राह्मण दान न स्वीकार करें तो धनवानोंका धन ही व्यर्थ हो जाय। मूर्ख मनुष्य यदि किसीका अन्न खाता है तो वह उस अन्नको नष्ट करता है (अर्थात् दाताको उसका कुछ फल नहीं मिलता)। इसी प्रकार वह अन्न भी उस मूर्खको नष्ट कर डालता है। जो सुपात्र होनेके कारण उस अन्न (और दाता) की रक्षा करता है, उसकी भी वह अन्न रक्षा करता है। जो मूर्ख दानके फलका हनन करता है, वह स्वयं भी मारा जाता है। विद्वान् ब्राह्मण यदि अन्न ग्रहण करता है तो वह उस अन्नका स्वामी होता है अर्थात् उसको पचानेकी शक्ति रखता है तथा वह ईश्वर (समर्थ) होनेके कारण दाताके लिये उसके दानके अनुरूप उत्तम फल उत्पन्न करता है। यदि इतर मनुष्य किसीका अन्न ग्रहण करते हैं तो वे दाताकी संतान समझे जाते हैं। अतः अयोग्य व्यक्तिको दान लेनेसे इस सूक्ष्म दोषकी प्राप्ति होती है; इसलिये उसे किसीका दान नहीं लेना चाहिये। दान देनेवालोंको जो पुण्य होता है, वही पुण्य दान लेनेवाले योग्य अधिकारीको भी मिलता है; क्योंकि दोनों एक-दूसरेके उपकारक होते हैं। एक पहियेसे गाड़ी नहीं चलती—प्रतिग्रहीताके बिना दाताका दान नहीं सफल हो सकता—ऐसा ऋषियोंका कथन है। जहाँ विद्वान् और सदाचारी ब्राह्मण रहते हैं, वहीं दिये हुए दानका फल इहलोक और परलोकमें भी मिलता है। जो ब्राह्मण विशुद्ध कुलमें उत्पन्न, तपस्यामें लगे रहनेवाले, दाता तथा अध्ययन-सम्पन्न हैं, वे ही सदा पूज्य माने गये हैं। ऐसे सत्पुरुषोंने जिस मार्गका निर्माण किया है, उससे चलनेवालेको कभी मोह नहीं होता।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! मैत्रेयके इस प्रकार कहनेपर भगवान् वेदव्यास बोले—'आप बड़े सौभाग्यशाली

हैं जो ऐसी बातोंका ज्ञान रखते हैं। आपको इस तरहकी बुद्धि भी सौभाग्यसे ही प्राप्त हुई है। संसारके लोग उत्तम गुणवाले पुरुषोंकी ही अधिक प्रशंसा करते हैं। बड़े आनन्दकी बात है कि रूप, अवस्था और सम्पत्तिका अभिमान आपके मनपर तनिक भी प्रभाव नहीं डालते। इसे आप अपने ऊपर देवताओंका अनुग्रह समझिये। अस्तु, अब मैं दानसे भी उत्तम धर्मका वर्णन करता हूँ। इस जगत्में जितने शास्त्र और जो-जो प्रवृत्तियाँ हैं, वे सब वेदके ही आधारपर क्रमशः प्रचलित हुई हैं। मैंने सुना है कि मनुष्य तप और विद्यासे ही महान् पदको प्राप्त होता है तथा तपके ही प्रभावसे वह अपने पापोंका नाश करता है। पुरुष जिस-जिस अभिलाषाकी सिद्धिके लिये तपस्यामें प्रवृत्त होता है, वह सब उसे तप और विद्यासे प्राप्त हो जाती है। जिससे संयोग होना, जिसको पराजित करना, जिसे पाना और जिसे टालना कठिन है, वह सब तपस्यासे साध्य हो जाता है; क्योंकि तपस्याका बल सबसे बड़ा है। शराबी, चोर, गर्भहत्यारा और गुरुकी स्त्रीसे व्यभिचार करनेवाला पापी भी तपस्यासे तर जाता है, अपने पापोंसे छुटकारा पा जाता है। जो सब प्रकारकी विद्याओंमें प्रवीण है वही नेत्रवान् है और तपस्वी चाहे जिस प्रकारका हो वह भी नेत्रवान् ही समझनेयोग्य है। इन दोनोंको सदा नमस्कार करना चाहिये। जो विद्याके धनी और तपस्वी हैं, वे सब पूज्य हैं तथा दान देनेवाले भी इस लोकमें धन और परलोकमें सुख पाते हैं। संसारके पुण्यात्मा पुरुष अन्न-दान देकर इस लोकमें भी सुखी होते हैं और मृत्युके बाद ब्रह्मलोक तथा अन्य शक्तिशाली लोकोंको प्राप्त करते हैं। दानी पुरुष स्वयं पूजित और सम्मानित होते हुए दूसरोंका पूजन और सम्मान करते हैं। वे जहाँ जाते हैं वहीं सब लोग उनके सामने मस्तक झुकाते हैं। मैत्रेयजी ! आप तरुण और व्रतधारी हैं, सदा धर्मपालनमें लगे रहिये और गृहस्थोंके लिये जो सबसे उत्तम एवं मुख्य कर्तव्य है, उसे ध्यान देकर सुनिये। जिस कुलमें पति अपनी पत्नीसे और पत्नी अपने पतिसे संतुष्ट रहती हो वहाँ सदा कल्याण होता है। जिस प्रकार पानीसे शरीरकी मैल धुल जाती है और अग्निकी प्रभासे अन्धकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार दान और तपस्यासे मनुष्यका सारा पाप नष्ट हो जाता है। आपका कल्याण हो, अब मैं अपने आश्रमपर जाता हूँ। मैंने जो कुछ बताया है उसे याद रखियेगा, इससे आपका कल्याण होगा।'



शाण्डिली और सुमनाका संवाद—पतिव्रत-धर्मका वर्णन

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! आप सम्पूर्ण धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं, अतः अब मैं आपके मुखसे साध्वी स्त्रियोंके सदाचारका विषय सुनना चाहता हूँ। आप उसका वर्णन कीजिये।

भीष्मजीने कहा—एक समयकी बात है, सब प्रकारके तत्त्वोंको जाननेवाली, सर्वज्ञ एवं मनस्विनी शाण्डिली देवलोकमें गयी। वहाँ कैकेयी सुमना पहलेसे मौजूद थी। उसने शाण्डिलीको देखकर उससे पूछा—'कल्याणी ! तुमने किस आचार और बर्तावका पालन किया था, जिससे समस्त पापोंका नाश करके तुम इस देवलोकमें आयी हो ? इस समय अपने तेजसे तुम अग्निकी ज्वालाके समान देदीप्यमान हो रही हो। तुम्हें देखकर अनुमान होता है कि थोड़ी-सी तपस्या, साधारण दान या छोटे-मोटे नियमोंका पालन करके तुम इस लोकमें नहीं आयी हो; अतः अपनी साधनाके सम्बन्धमें तुम सच्ची-सच्ची बात बताओ।'



जब सुमनाने इस प्रकार मधुर वाणीमें पूछा तो मनोहर मुसकानवाली शाण्डिलीने धीरेसे उत्तर दिया—'देवि ! मैं गेरुआ वस्त्र पहनने, वल्कल धारण करने, मूँड़ मुड़ाने या

बड़ी-बड़ी जटाएँ रखानेसे इस लोकमें नहीं आयी हूँ। मैंने सदा सावधान रहकर अपने पतिदेवके प्रति मुँहसे कभी अहितकर और कठोर वचन नहीं निकाले हैं। मैं सदा सास-ससुरकी आज्ञामें रहती और देवता, पितर तथा ब्राह्मणोंकी पूजामें प्रमाद नहीं करती थी। किसीकी चुगली नहीं खाती थी। चुगलीकी आदत मुझे बिलकुल पसंद न थी। मैं घरका दरवाजा छोड़कर अन्यत्र नहीं खड़ी होती और देरतक किसीसे बात नहीं करती थी। मैंने कभी छिपकर या सामने किसीसे अश्लील परिहास नहीं किया तथा मेरे द्वारा किसीका अहित भी नहीं हुआ है। यदि मेरे स्वामी किसी कामसे बाहर जाकर फिर घरको लौटते हैं तो मैं उठकर उन्हें बैठनेके लिये आसन देती और एकाग्रचित्तसे उनकी पूजा करती थी। जो अन्न मेरे स्वामी नहीं खाना चाहते, जिस भक्ष्य, भोज्य या लेह्य (चटनी) आदिको वे नहीं पसंद करते, उन सबको मैं भी त्याग देती थी। सारे कुटुम्बके लिये जो कुछ कार्य आ पड़ता, वह सब मैं सबेरे ही उठकर कर-करा लेती थी। यदि किसी आवश्यक कार्यवश मेरे स्वामी परदेश जाते तो मैं नियमसे रहकर उनके कल्याणके लिये नाना प्रकारके माङ्गलिक कार्य किया करती थी। स्वामीके बाहर चले जानेपर मैं अञ्जन, गोरोचन, माला और अङ्गराग आदिके द्वारा शृङ्गार नहीं करती थी। जब वे सुखसे सोये रहते उस समय आवश्यक कार्य आ जानेपर भी मैं उन्हें नहीं जगाती थी और ऐसा करके मेरे मनको विशेष संतोष होता था। परिवारके पालन-पोषणके कार्यके लिये भी मैं उन्हें कभी तंग नहीं करती थी। घरकी गुप्त बातोंको सदा छिपाये रहती और घर-द्वारको सदा झाड़-बुहारकर साफ रखती थी। जो स्त्री सदा सावधान रहकर इस धर्म-मार्गका पालन करती है, वह स्त्रियोंमें अरुन्धतीके समान आदरणीय होती है और स्वर्गलोकमें भी उसकी विशेष प्रतिष्ठा होती है।'

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! इस प्रकार वह सौभाग्यशालिनी देवी शाण्डिली सुमनासे पतिव्रत-धर्मका वर्णन करके अन्तर्धान हो गयी।



साम-गुणकी प्रशंसा—राक्षस और ब्राह्मणका संवाद

युधिष्ठिरने पूछा—भरतश्रेष्ठ! आप साम और दानमें किसको श्रेष्ठ मानते हैं?

भीष्मजीने कहा—बेटा! कोई मनुष्य सामसे प्रसन्न होता है और कोई दानसे। अतः पुरुषकी प्रकृतिको समझकर दोनोंमेंसे एकका प्रयोग करना चाहिये। अब तुम सामके गुणोंको सुनो। सामके द्वारा भयानक-से-भयानक प्राणी वशमें किये जा सकते हैं। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। कोई बुद्धिमान् ब्राह्मण निर्जन वनमें घूम रहा था। उसी समय एक राक्षसने आकर उसे खानेकी इच्छासे पकड़ लिया। ब्राह्मणकी बुद्धि तो अच्छी थी ही, वह विद्वान् भी था, इसलिये उस राक्षसकी भीषण आकृति देखकर भी न तो घबराया और न दुःखी ही हुआ। बल्कि उसके प्रति सामनीतिका प्रयोग करने लगा। राक्षसने ब्राह्मणके शान्तिमय वचनोंकी प्रशंसा की और कहा—'मेरे प्रश्नका उत्तर दे दो तो मैं तुम्हें छोड़ दूँगा। बताओ, मैं इतना दुर्बल और उदास क्यों हो रहा हूँ?'

यह सुनकर ब्राह्मणने कुछ देर विचार किया। फिर बड़े धैर्यके साथ उसने उसके प्रश्नोंका उत्तर देना आरम्भ किया 'राक्षस! जान पड़ता है तुम सुहृद् जनोंसे अलग होकर परदेशमें बेगाने लोगोंके साथ रहकर अतुलनीय विषयोंका उपभोग कर रहे हो। तुम्हारे मित्र तुम्हारे द्वारा



भलीभाँति सम्मानित होनेपर भी अपने स्वभाव-दोषके कारण

तुमसे विमुख रहते हैं। गुणोंमें जो तुम्हारी अपेक्षा बहुत ही निकृष्ट हैं, वे जड मनुष्य भी धन और ऐश्वर्यमें अधिक होनेके कारण सदा तुम्हारी अवहेलना किया करते हैं। इसी कारण तुम दुर्बल और उदास हो रहे हो। तुम गुणवान्, विद्वान् और विनीत होनेपर भी सम्मान नहीं पाते और गुणहीन तथा मूढ व्यक्तियोंको सम्मानित होते देखते हो। जीवन-निर्वाहका कोई उपाय न होनेसे तुम क्लेश उठाते होगे, किंतु अपने गौरवके कारण जीविकाके प्रतिग्रह आदि उपायोंकी निन्दा करते हुए उन्हें स्वीकार नहीं करते होगे; सम्भव है, यही तुम्हारी उदासी और दुर्बलताका कारण हो। तुम सज्जनताके कारण अपने शरीरको कष्ट देकर भी जब किसीका उपकार करते होगे तो वह तुम्हें अपनी शक्तिसे पराजित समझता होगा। जिनका चित्त काम और क्रोधसे आक्रान्त है, अतएव जो कुमार्गमें चलकर कष्ट भोग रहे हैं, सम्भवतः ऐसे ही लोगोंके लिये तुम सदा चिन्तित रहते होगे। यद्यपि तुम बड़े बुद्धिमान् हो तो भी अज्ञानी पुरुष तुम्हारी हँसी उड़ाते होंगे और दुराचारी मनुष्य तुम्हारा तिरस्कार करते होंगे—शायद यही तुम्हारी उदासीनता और दुर्बलताका कारण हो। अथवा यह भी हो सकता है कि कोई शत्रु ऊपरसे श्रेष्ठ पुरुषके समान बर्ताव करता हुआ आया हो और मुँहसे मित्रताकी बातें करके तुम्हें धोखा देकर भाग गया हो। तुम अर्थज्ञानमें प्रसिद्ध, रहस्यकी बातें समझानेमें कुशल और विद्वान् हो तो भी गुणज्ञ पुरुष शायद तुम्हारा सम्मान नहीं करते, इसीसे तुम उदासीन और दुर्बल रहते हो। तुम संदेहरहित होकर उत्तम बातोंका उपदेश करते हो तो भी नीच पुरुषोंके समुदायमें तुम्हारे गुणोंकी प्रतिष्ठा नहीं होती। अथवा यह हो सकता है कि तुम धन, बुद्धि और विद्यासे हीन होकर भी केवल शारीरिक शक्तिके आधारपर बड़प्पन चाहते रहे हो और इसमें सफलता न मिली हो। मुझे तो ऐसा अनुमान होता है तुम्हारा मन तपस्यामें लगा हुआ है और इसीके लिये तुम जंगलमें रहना चाहते हो; किंतु तुम्हारे भाई-बन्धु यह बात नहीं पसंद करते। यह भी सम्भव है कि तुम्हारी स्त्री बड़ी सुन्दरी हो और तुम्हारे पड़ोसमें ही कोई बहुत सुन्दर, धनी और परस्त्रीलम्पट नौजवान रहता हो। एक दूसरी सम्भावना भी है, तुम धनवानोंके बीच उत्तम और समयोचित बात कहते होगे, किंतु वह उन्हें पसंद न आती होगी अथवा तुम्हारा कोई प्रिय व्यक्ति मूर्खताके कारण तुमपर कुपित हो गया होगा और तुम उसे किसी तरह समझा-बुझाकर शान्त न कर पाते होगे। सम्भवतः इन्हीं सब कारणोंसे तुम दुर्बल और उदासीन हो रहे हो। जान पड़ता है कोई मनुष्य तुम्हें अपनी इच्छाके अनुसार किसी काममें नियुक्त करके सदा लाभ उठाना चाहता है अथवा तुम अपने सद्गुणोंके कारण लोगोंमें सम्मानित होते हो तो भी तुम्हारे सुहृद् (बन्धु-बान्धव) समझते हैं कि यह हमारे ही प्रभावसे आदर पा रहा है और तुम लज्जासे शिथिल होनेके कारण अपना आन्तरिक अभिप्राय किसीपर प्रकट करना नहीं चाहते। संसारमें नाना प्रकारकी बुद्धि और भिन्न-भिन्न रुचिवाले लोग रहते हैं, उन सबको तुम अपने गुणोंसे वशमें करना चाहते हो। अथवा यह भी हो सकता है कि तुम विद्वान् न होकर भी विद्यासे मिलनेवाले यशको पाना चाहते हो, डरपोक होनेपर भी पराक्रमजनित कीर्तिकी अभिलाषा रखते हो और अपने पास थोड़ा-सा धन रहनेपर भी बड़े-बड़े दानोंका सुयश प्राप्त करना चाहते हो—यही तुम्हारी उदासीनता और दुर्बलताका कारण जान पड़ता है। एक बात यह भी ध्यानमें आती है कि तुम्हें अपना कोई दोष नहीं दिखायी देता तो भी लोग अकारण ही तुम्हें कोसते रहते हैं। तुम साधु पुरुषोंको गृहस्थ, दुर्जनोंको वनवासी और संन्यासियोंको मठ-मन्दिर आदिमें आसक्त देखते हो, इसी चिन्तासे उदासीन और दुर्बल होते जा रहे हो। तुम्हारे स्नेही बन्धु-बान्धव कष्टमें पड़कर दरिद्रताका दुःख भोगते हैं और तुम उन्हें उससे मुक्त नहीं कर पाते, इसलिये अपने धनहीन जीवनको व्यर्थ समझते हो। तुम्हारी बातें धर्म, अर्थ और कामके अनुकूल एवं सामयिक होती हैं तो भी दूसरे लोग उनपर विश्वास नहीं करते। मनीषी होनेपर भी जीवनकी इच्छासे तुम्हें अज्ञानी पुरुषोंके दिये हुए धनपर गुजारा करना पड़ता है। तुम्हारे सुहृद्-सम्बन्धी एक-दूसरेसे विरोध रखते हैं और तुम उनका प्रिय करना चाहते हो। वेदज्ञ ब्राह्मणोंको वेद-विरुद्ध कर्म करते और विद्वानोंको इन्द्रियोंके वशमें पड़े देखकर तुम निरन्तर चिन्तित रहते हो। सम्भवतः इन्हीं सब कारणोंसे तुम्हारा शरीर उदास और दुर्बल हो गया है।

ऐसा कहकर जब उस ब्राह्मणने राक्षसका सम्मान किया तो राक्षसने भी ब्राह्मणका विशेष सत्कार किया। उसने उसी समय ब्राह्मणको अपना मित्र बना लिया और उसे धन देकर छोड़ दिया।



श्राद्धके विषयमें देवदूत और पितरोंका तथा धर्मके विषयमें इन्द्र और बृहस्पतिका संवाद

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! पूर्वकालमें भगवान् वेदव्यासने मुझे धर्मके जो गूढ़ रहस्य बतलाये थे, उनका वर्णन करता हूँ, सुनो—जिसके करनेसे देवता, पितर, ऋषि, प्रमथ, लक्ष्मी, चित्रगुप्त और दिग्गज प्रसन्न होते हैं, जिसमें महान् फल देनेवाले ऋषि-धर्मका रहस्यसहित समावेश हुआ है तथा जिसके अनुष्ठानसे बड़े-बड़े दानों और सम्पूर्ण यज्ञोंका फल मिलता है, उस धर्मको जो जानता और जानकर उसके अनुसार आचरण करता है, वह पापी रहा हो तो भी पापमुक्त होकर सद्गुणसम्पन्न हो जाता है। दस कसाइयोंके समान एक तेली, दस तेलियोंके समान एक कलवार, दस कलवारोंके समान एक वेश्या और दस वेश्याओंके समान एक राजा है। अतः राजाका दान लेना निषिद्ध माना गया है। जिसमें धर्म, अर्थ और कामका वर्णन है, जो पवित्र और पुण्यका परिचय करानेवाला है, जिसमें धर्म और उसके रहस्योंकी व्याख्या है तथा जो परम पवित्र, धर्मयुक्त और साक्षात् देवताओंद्वारा निर्मित है, उस शास्त्रका श्रवण करना चाहिये। जिसमें पितरोंके श्राद्धके विषयमें गूढ़ बातें बतायी गयी हैं, जहाँ सम्पूर्ण देवताओंके रहस्यका पूरा-पूरा वर्णन है तथा जिसमें रहस्यसहित महान् फलदायी ऋषि-धर्मका एवं बड़े-बड़े यज्ञों और सम्पूर्ण दानोंके फलका प्रतिपादन किया गया है, उस शास्त्रको जो लोग सदा पढ़ते हैं, जिन्हें उसका तत्त्व हृदयङ्गम होता है तथा जो पढ़कर दूसरोंके सामने उसकी व्याख्या करते हैं, वे साक्षात् भगवान् नारायणके स्वरूप हैं। जो मनुष्य अतिथियोंकी पूजा करता है, उसे गो-दान, तीर्थ-स्नान और यज्ञानुष्ठानका फल मिलता है। जो श्रद्धाके साथ धर्म-शास्त्रोंका श्रवण करते हैं तथा जिनका हृदय शुद्ध हो गया है, वे अवश्य ही पुण्य-लोकोंपर विजय प्राप्त करते हैं। श्रद्धापूर्वक शास्त्र-श्रवण करनेवाला मनुष्य अपने पूर्वपापोंसे छुटकारा पा जाता है। भविष्यमें वह पाप नहीं करता तथा नित्यप्रति धर्मका अनुष्ठान करता रहता है और मरनेके बाद उसे उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।

एक समयकी बात है, एक देवदूतने पितरों और देवताओंसे प्रश्न किया—'क्या कारण है कि श्राद्धके दिन श्राद्धकर्ता और श्राद्धमें भोजन करनेवाले पुरुषके लिये मैथुनका निषेध किया गया है ? श्राद्धमें अलग-अलग तीन पिण्ड क्यों दिये जाते हैं ? पहला पिण्ड किसे देना चाहिये ? दूसरा पिण्ड किसे मिलता है ? तथा तीसरे पिण्डका अधिकारी कौन है ? ये सब बातें मैं जानना चाहता हूँ।'



पितरोंने कहा—देवदूत ! तुम्हारा कल्याण हो, हम सब तुम्हारा स्वागत करते हैं। तुमने बहुत गूढ़ प्रश्न पूछा है तो भी हम उसका उत्तर देते हैं, सुनो—जो पुरुष श्राद्धका दान देकर अथवा श्राद्धमें भोजन करके स्त्रीके साथ समागम करता है, उसके पितर उस दिनसे लेकर एक महीनेतक उसीके वीर्यमें निवास करते हैं। अब हम क्रमशः पिण्डोंका भाग बतला रहे हैं। श्राद्धमें जो तीन पिण्डोंका विधान है, उनमें पहला पिण्ड जलमें डाल देना चाहिये। मध्यम पिण्ड श्राद्धकर्ताकी पत्नीको खिला देना चाहिये और तीसरे पिण्डको अग्निमें छोड़ देना चाहिये—यही श्राद्धकी विधि है। जो इसका पालन करता है, उसके धर्मका कभी लोप नहीं होता, उसके पितर सदा प्रसन्नचित्त एवं संतुष्ट रहते हैं और उसका दिया हुआ दान अक्षय होता है।

देवदूतने पूछा—पितृगण ! आपलोगोंने पिण्डोंका क्रमशः विभाग बतला दिया; किंतु पहले पिण्डको जो जलमें डाल देनेकी बात बतायी है, उसके अनुसार यदि वह जलमें डाल दिया जाय तो नीचे जाकर वह पिण्ड किसे मिलता है ? किस देवताको प्रसन्न करता है ? तथा किस प्रकार उससे पितरोंका उद्धार होता है ? इसी प्रकार यदि मध्यम पिण्ड

पत्नी ही खा जाती है तो उसके पितर किस प्रकार उस पिण्डका उपभोग करते हैं तथा अन्तिम पिण्ड जब अग्निमें डाल दिया जाता है तो उसकी क्या गति होती है ? वह किस देवताको मिलता है ? यह सब बातें मैं सुनना चाहता हूँ।

पितरोंने कहा—देवदूत ! पहला पिण्ड जो पानीके भीतर चला जाता है, वह चन्द्रमाको तृप्त करता है और चन्द्रमा स्वयं देवता तथा पितरोंको संतुष्ट करते हैं। इसी प्रकार पत्नी गुरुजनोंकी आज्ञासे जो मध्यम पिण्डका भक्षण करती है, उससे प्रसन्न होकर पितामह पुत्रकी कामनावाले पुरुषको पुत्र प्रदान करते हैं तथा अग्निमें जो पिण्ड डाला जाता है, उससे तृप्त होकर पितर मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करते हैं। इस प्रकार तीनों पिण्डोंकी गति बतलायी गयी। ब्राह्मणको स्नान आदिसे पवित्र होकर श्राद्धमें भोजन करना चाहिये। श्राद्धमें भोजन करनेवाला ब्राह्मण उस दिन यजमानका पितर माना जाता है, इसलिये उसे अपनी स्त्रीके साथ सहवास नहीं करना चाहिये; क्योंकि उस दिन उसके लिये वह परायी स्त्रीके समान होती है। जो पुरुष इस विधिके अनुसार श्राद्धका दान देता है, उसकी संतानकी वृद्धि होती है।

पितरोंके इस प्रकार कहनेके बाद विद्युत्प्रभ नामवाले एक तपस्वी महर्षिने इन्द्रसे पूछा 'देवराज ! मनुष्य मोहवश कीट, पिपीलिका (चींटी), साँप, भेड़, मृग और पक्षी आदि तिर्यग्योनिके प्राणियोंकी हिंसा करके जो महान् पाप बटोरते हैं, उससे छुटकारा पानेके लिये उन्हें कौन-सा प्रायश्चित्त करना चाहिये ?' उनका यह प्रश्न सुनकर सभी देवता, ऋषि और पितरोंने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इन्द्रने उत्तर दिया—मनुष्यको चाहिये कि कुरुक्षेत्र, गया, गङ्गा, प्रभास और पुष्कर क्षेत्रका मन-ही-मन ध्यान करके जलमें स्नान करे—ऐसा करनेसे वह पापसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य गायकी पीठका स्पर्श करके उसकी पूँछको प्रणाम करता है, उसे उपर्युक्त तीर्थोंमें तीन दिनतक उपवासपूर्वक रहने और स्नान करनेका फल प्राप्त होता है।

तत्पश्चात् इन्द्रने देवताओंके मध्यमें अपने गुरु बृहस्पतिजीसे मधुर वाणीमें कहा—'भगवन् ! मनुष्योंको सुख देनेवाले धर्मका गूढ़ स्वरूप बतलाइये, साथ ही रहस्यसहित दोषोंका भी वर्णन कीजिये।'

बृहस्पतिजीने कहा—इन्द्र ! साक्षात् ब्रह्माजीने सूर्य, पवन, अग्नि और लोकमाता गौओंकी सृष्टिकी है। ये मनुष्यलोकके देवता हैं तथा सम्पूर्ण जगत्‌का उद्धार करनेकी शक्ति रखते हैं। जो स्त्री और पुरुष सूर्यकी ओर मुँह करके पेशाब करते हैं, वे छियासी वर्षतक दुराचारी और कुलकलङ्क होकर जीवन व्यतीत करते हैं। जो पवन देवताके साथ द्वेष करते हैं, उनकी संतान गर्भमें आकर नष्ट हो जाती है। जो जलती हुई आगमें ईंधन नहीं डालते, उनका हविष्य अग्निहोत्रके समय अग्निदेव नहीं ग्रहण करते। जिनके बछड़े अभी बहुत छोटे हों ऐसी गौओंका सारा दूध दुहकर जो लोग पी जाते हैं, उनके यहाँ दूध पीनेवाले बच्चे नहीं पैदा होते। उनकी संतान और कुलका भी नाश हो जाता है। उत्तम कुलमें उत्पन्न विद्वान् ब्राह्मणोंने पूर्वकालमें इसी प्रकार उक्त पापोंका फल होता देखा है। इसलिये शास्त्रमें जिन कर्मोंका निषेध किया गया है, उनका परित्याग करना चाहिये और जिन्हें कर्तव्य बतलाया गया है उनका सदा अनुष्ठान करते रहना चाहिये।

तदनन्तर, सम्पूर्ण देवता, मरुद्गण और ऋषियोंने पितरोंसे पूछा—'मनुष्योंकी बुद्धि थोड़ी होती है अतः वे कौन-सा कर्म करें जिससे आपलोग उनके ऊपर संतुष्ट होंगे ? श्राद्धमें दिया हुआ दान किस प्रकार अक्षय हो सकता है ? मनुष्य किस कर्मके अनुष्ठानसे पितरोंके ऋणसे छुटकारा पा सकते हैं ? इन बातोंको सुननेके लिये हमें बड़ी उत्सुकता है।'

पितरोंने कहा—देवगण ! उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यके जिस कामसे हम संतुष्ट होते हैं, उसको सुनिये। नीले रंगके साँड़ छोड़ने, अमावास्याको तिलमिश्रित जलसे तर्पण करने और वर्षाकालमें दीप-दान करनेसे मनुष्यका पितरोंके ऋणसे उद्धार होता है। इस प्रकार निष्कपट भावसे किया हुआ दान अक्षय और महान् फलको देनेवाला है और इससे हमलोगोंको भी सदा संतोष रहता है। जो पुरुष पितरोंमें श्रद्धा रखकर संतान उत्पन्न करेंगे, वे अपने प्रपितामहोंका दुर्गम नरकसे उद्धार कर देंगे। इस प्रकार श्राद्धके काल, क्रम, विधि, पात्र और फलका यथावत् वर्णन किया गया।



विष्णु, ब्रह्मा, अग्नि, लक्ष्मी तथा अङ्गिरा आदि ऋषियोंके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! प्राचीन कालकी बात है एक बार देवराज इन्द्रने भगवान् विष्णुसे पूछा—



'भगवन् ! आप किस कर्मसे प्रसन्न होते हैं ? किस प्रकार आपको संतुष्ट किया जा सकता है ?'

विष्णुने कहा—इन्द्र ! ब्राह्मणोंकी निन्दा करना मेरे साथ महान् द्वेष करनेके समान है। ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे मेरी भी पूजा हो जाती है—इसमें तनिक भी संदेहकी बात नहीं है। जो मनुष्य प्रतिदिन भोजनके पश्चात् ब्राह्मणोंको प्रणाम करता है, मैं उसपर बहुत प्रसन्न होता हूँ। जो अपने घरपर ब्रह्मचारी ब्राह्मणको उपस्थित देखकर सबसे पहले उसे भोजन कराता और पीछे अपने भोजन करता है, उसका वह भोजन अमृतके समान माना गया है। जो प्रातःकालकी संध्या करके सूर्यके सम्मुख खड़ा होता है, उसे समस्त तीर्थोंमें स्नानका फल मिलता है और वह सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है।

फिर विश्वविख्यात वसिष्ठ आदि सप्तर्षियोंने पद्मयोनि ब्रह्माजीकी प्रदक्षिणा की और सब-के-सब हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े हो गये। उनमेंसे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वसिष्ठ मुनिने इस प्रकार प्रश्न किया—'भगवन् ! मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके तथा विशेषतः ब्राह्मण और क्षत्रिय-जातिके हितकी दृष्टिसे एक प्रश्न आपकी सेवामें उपस्थित करता हूँ। इस संसारमें सदाचारी मनुष्य प्रायः निर्धन हैं। वे किस प्रकार और किस कर्मके अनुष्ठानसे यज्ञका फल पा सकते हैं ?'

ब्रह्माजीने कहा—महान् भाग्यशाली महर्षियो ! मनुष्यको जिस प्रकार यज्ञका फल प्राप्त होता है, वह बता रहा हूँ, सुनो—पौष मासके शुक्ल पक्षमें जिस दिन रोहिणी नक्षत्रका योग हो उस दिनकी रातमें मनुष्य स्नान आदिसे शुद्ध हो एक वस्त्र धारण करके खुले मैदानमें शयन करे और श्रद्धा एवं एकाग्रताके साथ चन्द्रमाकी किरणोंका पान करे (निराहार रहे)। ऐसा करनेसे उसको महान् यज्ञका फल मिलता है। यह मैंने तुमलोगोंसे बहुत गुप्त बात बतायी है।

अग्निदेवने कहा—जो मनुष्य पूर्णिमा तिथिको चन्द्रोदयके समय चन्द्रमाकी ओर मुँह करके उन्हें जलकी एक अञ्जलि (अर्घ्य), घी और अक्षत अर्पण करता है, उसके अग्निहोत्रका कार्य पूर्ण हो जाता है। उसे गार्हपत्य आदि तीनों अग्नियोंमें हवन करनेका फल प्राप्त होता है। जो मूर्ख अमावास्याके दिन किसी वृक्षका एक पत्ता भी तोड़ लेता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है। अमावास्याको दाँतन चबानेवाला मनुष्य चन्द्रमाकी हिंसा करता है तथा उससे पितर भी उद्विग्न होते हैं। इतना ही नहीं, पर्वके दिन उसके दिये हुए हविष्यको देवतालोग नहीं स्वीकार करते और पितरोंका भी उसके ऊपर कोप होता है, जिससे उनके वंशका नाश हो जाता है।

लक्ष्मी बोलीं—जिस घरमें बर्तन फूटे, आसन फटे और पात्र इधर-उधर बिखरे रहते हैं तथा जहाँ स्त्रियाँ मारी-पीटी जाती हैं, वह घर पापके कारण दूषित होता है। वहाँसे उत्सव और पर्वके अवसरोंपर देवता निराश लौट जाते हैं; उस घरकी पूजा नहीं स्वीकार करते।

गार्ग्यने कहा—सदा अतिथियोंका सत्कार करे, यज्ञशालामें दीप जलावे, दिनमें न सोये, मांस न खाय, गौ और ब्राह्मणकी हत्या न करे तथा प्रतिदिन पुष्कर तीर्थका नाम लिया करे। यह रहस्यमय धर्म सर्वश्रेष्ठ और महान् फल देनेवाला है। सैकड़ों बार किये हुए यज्ञका फल भी क्षीण हो जाता है, किंतु श्रद्धापूर्वक उपर्युक्त धर्मोंका पालन करनेसे प्राप्त होनेवाले फलका कभी क्षय नहीं होता। श्राद्धमें, यज्ञमें, तीर्थमें और पर्वोंके दिन देवताओंके लिये जो

हविष्य तैयार किया जाता है, उसे यदि रजस्वला, कोढ़ी अथवा वन्ध्या स्त्री देख ले तो देवता उसे नहीं स्वीकार करते तथा पितृगण तेरह वर्षतक असंतुष्ट रहते हैं। श्राद्ध और यज्ञके दिन मनुष्य स्नान आदिसे पवित्र होकर श्वेत वस्त्र धारण करे और ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन तथा महाभारत (गीता आदि) का पाठ करावे—ऐसा करनेसे उसके दिये हुए हव्य और कव्यका फल अक्षय होता है।

धौम्यने कहा—घरमें फूटे बर्तन, टूटी खाट, मुर्गा, कुत्ता और वृक्षका होना अच्छा नहीं माना गया है। फूटे बर्तनोंमें कलियुगका वास माना गया है (अर्थात् फूटे बर्तन रखनेसे घरमें लड़ाई-झगड़ा लगा रहता है)। टूटी खाट रखनेसे धनकी हानि होती है। कुत्ता और मुर्गा पालनेसे देवतालोग घरमें हविष्य नहीं ग्रहण करते तथा मकानके अंदर कोई बड़ा वृक्ष होनेपर उसकी जड़कें अंदर साँप, बिच्छू आदि जन्तुओंका रहना अनिवार्य हो जाता है, इसलिये घरके अंदर पेड़ नहीं लगाना चाहिये।

जमदग्निने कहा—कोई अश्वमेध या सैकड़ों वाजपेय यज्ञ करे, नीचे मस्तक करके वृक्षमें लटके अथवा बहुत बड़ा अन्न-सत्र खोल दे; किंतु यदि उसका हृदय शुद्ध नहीं है तो उसे अवश्य नरकमें जाना पड़ता है; क्योंकि यज्ञ, सत्य और हृदयकी शुद्धि—ये तीनों बराबर हैं। (प्राचीन समयमें एक ब्राह्मण) शुद्ध हृदयसे सेरभर सत्तू दान करके ही ब्रह्मलोकको प्राप्त हुआ था। हृदयकी शुद्धताका महत्त्व बतलानेके लिये यह एक ही दृष्टान्त काफी होगा।



अरुन्धती, सूर्य, प्रमथ, महेश्वर, स्कन्द और विष्णुके बताये हुए विशेष धर्मका वर्णन

भीष्मजी कहते हैं—तदनन्तर, सभी ऋषियों, पितरों और देवताओंने तपस्यामें बढ़ी-चढ़ी हुई अरुन्धतीदेवीसे, जो शील और शक्तिमें महात्मा वसिष्ठजीके ही समान थीं, इस प्रकार कहा—'देवि! हम आपके मुँहसे धर्मका रहस्य सुनना चाहते हैं। अतः आप धर्मका गूढ़ तत्त्व बतलानेकी कृपा करें।'

अरुन्धतीने कहा—देवगण! आपलोगोंने मुझे स्मरण किया, इससे मेरे तपकी वृद्धि हुई है। अब मैं आप ही लोगोंकी कृपासे सनातन धर्मोंका वर्णन करती हूँ। श्रद्धाविहीन, अभिमानी, ब्रह्मघाती और गुरुस्त्रीगामी—इन चार प्रकारके मनुष्योंसे बात भी नहीं करनी चाहिये। इनके सामने धर्मका तत्त्व बतलाना कदापि उचित नहीं है। जो मनुष्य बारह वर्षोंतक प्रतिदिन एक कपिला गौ दान करता, हर महीनेमें यज्ञ करता और पुष्करतीर्थमें जाकर लाखों गौएँ दानमें देता है, उसके धर्मका फल उस मनुष्यके बराबर नहीं हो सकता जो अतिथिको अपनी सेवासे संतुष्ट करता है। प्रातःकाल उठे तथा कुश और जल लेकर गौओंके बीचमें जाय। वहाँ गौओंके सींगपर जल छिड़के और सींगसे गिरे हुए जलको अपने मस्तकपर धारण करके उस दिन उपवास करे। इससे जो पुण्य होता है उसका वर्णन सुनिये। तीनों लोकोंमें सिद्ध, चारण और महर्षियोंसे सेवित जो-जो तीर्थ सुने जाते हैं, उन सबमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वही गायोंके सींगके जलसे अपने मस्तकको सींचनेपर प्राप्त होता है।

यह सुनकर देवता, पितर और समस्त प्राणी बहुत प्रसन्न हुए तथा उन्होंने एक स्वरसे साधुवाद देकर अरुन्धतीदेवीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। फिर ब्रह्माजीने कहा—'महाभागे! तुम धन्य हो, तुमने रहस्यसहित अद्भुत धर्मका वर्णन किया है। मैं तुम्हें वरदान देता हूँ; तुम्हारी तपस्या सदा बढ़ती रहे।'

तदनन्तर, महान् तेजस्वी भगवान् सूर्यने देवताओं और पितरोंसे कहा—'ब्रह्महत्यारा, गोहत्या करनेवाला, परस्त्रीलम्पट, श्रद्धाहीन और स्त्रीसे जीविका चलानेवाला—ये पाँच प्रकारके दुराचारी नराधम सर्वथा त्याग कर देने योग्य हैं। इनसे बात भी नहीं करनी चाहिये। इनके पापोंका कोई प्रायश्चित्त नहीं है। ये पापी प्रेतलोक (यमपुरी) में जाकर वहाँके नरकमें मछलीकी तरह पकाये जाते हैं तथा इन्हें पीब और रक्तका भोजन मिलता है। देवता, पितर, स्नातक, ब्राह्मण और तपस्वी मुनियोंकी दृष्टिमें उपर्युक्त पापियोंके साथ बातचीत करना भी अनुचित है।'

भीष्मजी कहते हैं—इसके बाद समस्त देवता, पितर और महान् भाग्यशाली ऋषियोंने प्रमथोंसे पूछा—'आपलोग प्रत्यक्षरूपसे निशाचर हैं। बताइये, अपवित्र, अशुद्ध और क्षुद्र मनुष्योंकी क्यों हिंसा करते हैं? वे कौन-से उपाय हैं जिनका आश्रय लेनेसे आप उनकी हत्या नहीं करते। रक्षोघ्नमन्त्र कौन-कौन-से हैं जिनका उच्चारण करनेसे आप-जैसे निशाचर घर छोड़कर भाग जाते हैं?—ये सब बातें हमलोग आपके मुँहसे सुनना चाहते हैं।'

प्रमथोंने कहा—जो मनुष्य सदा स्त्री-सहवासके कारण दूषित रहते, बड़ोंका अपमान करते, मोहवश मांस खाते, वृक्षकी जड़में सोते, सिरपर मांसका बोझा ढोते, बिछौनोंपर पैर रखनेकी जगह सिर रखकर सोते तथा पानीमें मल-मूत्र एवं

थूक आदि फेंकते हैं, वे सब मनुष्य उच्छिष्ट (अपवित्र) और अनेकों छिद्रोंवाले होते हैं। ऐसे मनुष्योंको ही हम अपना भक्ष्य और वध्य समझते हैं। अब वह उपाय सुनिये, जिससे हम मनुष्योंकी हिंसा करनेमें असमर्थ हो जाते हैं। जो अपने शरीरमें गोरोचन लगाता, हाथमें 'वचा' लिये रहता, ललाटमें घी और अक्षत धारण करता तथा मांस नहीं खाता तथा जिसके घरमें दिन-रात होमाग्नि प्रज्वलित रहती है, उन मनुष्योंकी हिंसा हमलोग नहीं कर सकते।

महेश्वरने कहा—जिनकी बुद्धि सदा धर्ममें ही लगी रहती है और जो परम श्रद्धालु हैं, उन्हींको महान् फल देनेवाले धर्मका रहस्यसहित उपदेश देना चाहिये। जो मनुष्य प्रतिदिन धैर्यके साथ एक मासतक गौको चारा देता है और स्वयं एक वक्त भोजन करके रहता है, उसको मिलनेवाले फलका वर्णन सुनो। गौएँ महान् सौभाग्यशालिनी हैं, ये परम पावन मानी गयी हैं। देवता, असुर और मनुष्योंसहित तीनों लोकोंको गौओंने धारण किया है। इनकी सेवा करनेसे बहुत बड़ा पुण्य और महान् फल प्राप्त होता है। प्रतिदिन गौओंको चारा देनेवाला मनुष्य महान् धर्मका उपार्जन करता है। पहले सत्ययुगमें मैंने गौओंको अपने पास रहनेकी आज्ञा दी थी। पद्मयोनि ब्रह्माजीने भी इसके लिये मुझसे बहुत अनुनय-विनय की थी। इसीलिये मेरी गौओंके झुंडमें रहनेवाला वृषभ मुझसे ऊपर—मेरे रथकी ध्वजामें विराजमान रहता है, अतः गौओंकी सदा ही पूजा करनी चाहिये। उनका प्रभाव बहुत बड़ा है, वे वरदायिनी हैं, इसलिये उपासना करनेपर अभीष्ट वरदान देती हैं। जो एक दिन भी गायको चारा खिलाता है, उसे गौओंकी अनुमतिसे सम्पूर्ण शुभ कर्मोंके फलका चौथाई भाग प्राप्त होता है।

स्कन्दने कहा—देवताओ! अब मेरी मान्यताके अनुसार भी धर्मकी कुछ बातें सुनो। जो मनुष्य नीले रंगवाले साँड़के सींगोंमें लगी हुई मिट्टी लेकर उससे तीन दिनतक अभिषेक करता है, वह अपने सारे पापोंको धो डालता है और परलोकमें आधिपत्य प्राप्त करता है, फिर दुबारा जन्म लेनेपर वह महान् शूरवीर होता है। अब धर्मका दूसरा गुप्त रहस्य सुनो—पूर्णमासी तिथिको चन्द्रोदयके समय ताँबेके बर्तनमें मधु मिलाया हुआ पकवान लेकर जो चन्द्रमाके लिये बलि अर्पण करता है, उसे साध्य, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, मरुद्गण और वसुदेवता भी ग्रहण करते हैं तथा उससे चन्द्रमा और समुद्रकी वृद्धि होती है। इस प्रकार मैंने यह सुखदायक धर्मका रहस्य बतलाया है।



भगवान् विष्णु बोले—जो मनुष्य दोषदृष्टिका परित्याग करके श्रद्धा और एकाग्रताके साथ देवताओं और महर्षियोंके बताये हुए धर्मके इन गूढ़ रहस्योंका प्रतिदिन पाठ करता है, उसके यहाँ कभी कोई विघ्न नहीं पड़ता तथा उसके भयका भी अभाव हो जाता है। यहाँ जिन-जिन धर्मोंका रहस्योंसहित वर्णन किया गया है, वे सभी शुभ एवं परम पवित्र हैं। जो इन्द्रियसंयमपूर्वक उनके मार्मिक फलोंका पारायण करता है, उसके ऊपर कभी पापका प्रभाव नहीं पड़ता। वह सदा पापसे निर्लिप्त रहता है। जो इसे पढ़ता, दूसरोंको सुनाता अथवा स्वयं सुनता है, उसे भी उन धर्मोंके आचरणका फल मिलता है। उसका दिया हुआ हव्य-कव्य अक्षय होता है और उसे देवता तथा पितर बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार करते हैं। जो पुरुष शुद्धचित्त होकर पर्वके दिन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको धर्मके इन रहस्योंका श्रवण कराता है, वह सदा देवता, ऋषि और पितरोंके आदरका पात्र होता है तथा उसकी सर्वदा धर्ममें प्रवृत्ति बनी रहती है।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! देवताओंके बताये हुए धर्मका यह रहस्य मुझसे व्यासजीने बतलाया था, उसीको मैंने तुमसे कहा। एक ओर रत्नोंसे भरी हुए सम्पूर्ण पृथ्वी मिलती हो और दूसरी ओर यह उत्तम ज्ञान प्राप्त होता हो तो उस पृथ्वीको छोड़कर इस ज्ञानका ही श्रवण करना चाहिये। श्रद्धाहीन, नास्तिक, धर्मत्यागी, निर्दयी, युक्तिवादका सहारा लेकर दुष्टता करनेवाले, गुरुद्रोही तथा अनात्मीय व्यक्तिको इस धर्मका उपदेश नहीं देना चाहिये।

—★—

ग्राह्यान्न और त्याज्यान्न मनुष्योंका वर्णन तथा अयोग्य दान और अन्न ग्रहण करनेका प्रायश्चित्त

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रको किन-किन मनुष्योंका अन्न ग्रहण करना चाहिये ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! ब्राह्मणको ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यके यहाँ अन्न ग्रहण करना चाहिये। शूद्रका अन्न उनके लिये निषिद्ध है। इसी प्रकार क्षत्रियको ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यके घर भोजन करना चाहिये; किंतु भक्ष्याभक्ष्यका विचार न करके सब कुछ खानेवाले और शास्त्रके विरुद्ध आचरण करनेवाले शूद्रोंका अन्न उनके लिये भी त्याज्य है। वैश्योंमें भी जो नित्य अग्निहोत्र करनेवाले, पवित्रतासे रहनेवाले और चातुर्मास्य व्रतका पालन करनेवाले हैं, उन्हींका अन्न ब्राह्मण और क्षत्रियोंके ग्रहण करने योग्य है। जो द्विज शूद्रोंका अन्न खाता है, वह समस्त पृथ्वी और सम्पूर्ण मनुष्योंके मलका ही पान और भोजन करता है। शूद्रकी सेवामें रहनेवाला ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य भी नरककी यातना भोगता है। ब्राह्मणको वेदोंके स्वाध्याय और मनुष्योंके कल्याणकारी कार्यमें संलग्न रहना चाहिये। क्षत्रियको सबकी रक्षा करनी चाहिये और वैश्यको प्रजाके शरीरकी पुष्टिके लिये कृषि और गोरक्षा आदि कार्य करने चाहिये—यही उनके लिये धर्म बताया गया है। कृषि, गोरक्षा और व्यापार—ये वैश्यके अपने कर्म हैं, इनके प्रति उसे घृणा नहीं करनी चाहिये। जो अपने वर्णके लिये विहित कर्मका परित्याग करके शूद्रका काम अपनाता है, वह शूद्र ही मानने योग्य है। उसका अन्न कभी नहीं ग्रहण करना चाहिये। जो ब्राह्मण चिकित्सा करनेवाले, शस्त्र बेचकर जीविका चलानेवाले, ग्रामाध्यक्ष, पुरोहित, वर्षफल बतानेवाले (ज्योतिषी) और वेद-शास्त्रके अतिरिक्त व्यर्थकी पुस्तकें पढ़नेवाले हैं, वे सब शूद्रके ही समान हैं। जो लज्जाका परित्याग करके शूद्रके समान कर्म करनेवाले इन ब्राह्मणोंका अन्न खाता है, वह अभक्ष्यभक्षणका पाप करके घोर विपत्तिमें पड़ता है। उसका कुल, वीर्य और तेज नष्ट हो जाता है तथा वह धर्म-कर्मसे हीन होकर कुत्तेकी भाँति तिर्यग्योनिको प्राप्त होता है। चिकित्सा करनेवालेका अन्न विष्ठा, वेश्याका अन्न मूत्र और कारीगरका अन्न रक्तके समान माना गया है। विद्या बेचकर जीविका चलानेवाले पुरुषका अन्न भी शूद्रान्नके ही समान है, अतः साधु पुरुषको उसका परित्याग कर देना चाहिये। जो कलङ्कित मनुष्यका अन्न ग्रहण करता है, उसे रक्तका सरोवर कहते हैं। चुगुलखोरका अन्न भोजन करना ब्रह्महत्याके समान माना गया है। अवहेलना और अनादरपूर्वक मिले हुए अन्नको कदापि नहीं ग्रहण करना चाहिये। जो ब्राह्मण ऐसे अन्नको भोजन करता है, वह रोगी होता है और उसके कुलका भी संहार हो जाता है। नगररक्षकका अन्न खानेवाला चाण्डाल होता है। गोहत्या करनेवाले, ब्रह्मघाती, शराबी और गुरुपत्नीगामी मनुष्योंके यहाँ भोजन करनेवाला ब्राह्मण राक्षस-कुलमें जन्म लेता है। धरोहर हड़पनेवाले, कृतघ्न तथा नपुंसकका अन्न खानेसे भीलोंके घरमें जन्म लेना पड़ता है। युधिष्ठिर ! जिसका अन्न नहीं खाने योग्य और जिसका खाने योग्य है, उसका मैंने विधिपूर्वक परिचय दे दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो ?

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! प्रायः ब्राह्मणोंको ही हव्य और कव्यका प्रतिग्रह लेना पड़ता है और उन्हें ही नाना प्रकारके अन्न ग्रहण करनेका अवसर आता है। ऐसी दशामें उन्हें जो पाप लगते हैं, उनका क्या प्रायश्चित्त है—यह बतानेकी कृपा कीजिये।

भीष्मजीने कहा—राजन् ! महात्मा ब्राह्मणोंको प्रतिग्रह लेने और भोजन करनेके पापसे जिस प्रकार छुटकारा मिलता है, वह प्रायश्चित्त मैं बता रहा हूँ, सुनो—ब्राह्मण यदि घीका दान ले तो गायत्री-मन्त्र पढ़कर अग्निमें समिधाकी आहुति करे। तिलका दान लेनेपर भी यही प्रायश्चित्त करना चाहिये। शहद और नमकका दान लेनेपर उस समयसे लेकर सूर्योदयतक खड़े रहनेसे ब्राह्मण शुद्ध हो जाता है। सुवर्णका दान लेकर गायत्रीका जप करने और खुले तौरपर काला लोहा धारण करनेसे उसके दोषसे छुटकारा मिलता है। धन, वस्त्र, अन्न, खीर और ईखके रसका दान ग्रहण करनेपर भी सुवर्णदानके समान ही प्रायश्चित्त करे। गन्ना, तेल और कुशोंका प्रतिग्रह स्वीकार करनेपर त्रिकाल स्नान करना चाहिये। धान, फूल, फल, जल, पूआ, जौकी लप्सी और दही-दूधका दान लेनेपर तथा श्राद्धमें जूता और छाता ग्रहण करनेपर सौ बार गायत्रीमन्त्रका जप करना चाहिये। इससे उक्त वस्तुओंके प्रतिग्रहका पाप नष्ट हो जाता है। ग्रहणके समय अथवा जिसे जननाशौच लगा हो, उसके दिये हुए खेतका दान स्वीकार करनेपर तीन रात उपवास करनेसे उसके दोषसे छुटकारा मिलता है। जो ब्राह्मण कृष्णपक्षमें किये हुए पितृ-श्राद्धका अन्न भोजन करता है, वह एक दिन और एक रात व्यतीत होनेपर शुद्ध होता है। ब्राह्मण जिस दिन श्राद्ध-भोजन करे उस दिन संध्या, गायत्री-जप और दुबारा भोजन त्याग दे। इससे उसकी शुद्धि होती है। इसीलिये

अपराह्नकालमें पितरोंके श्राद्धका विधान किया गया है (जिससे सबेरेकी संध्योपासना हो जाय और शामको पुनः भोजनकी आवश्यकता ही न पड़े)। ब्राह्मणोंको एक दिन पहले श्राद्धका निमन्त्रण देना चाहिये, जिससे वे श्राद्धमें भलीभाँति भोजन कर सकें। जिसके घर किसीकी मृत्यु हुई हो, उसके यहाँ मरणाशौचके तीसरे दिन अन्न ग्रहण करनेवाला ब्राह्मण बारह दिनोंतक त्रिकाल स्नान करनेसे शुद्ध होता है। बारह दिन स्नानका नियम पूरा करके तेरहवें दिन वह विशेष रूपसे स्नान आदिके द्वारा पवित्र हो ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन करावे तब उसके पापसे मुक्त हो सकता है। जो मनुष्य किसीके यहाँ मरणाशौचमें दस दिनतक अन्न खाता है, उसे गायत्रीमन्त्र, रैवत साम, कूष्माण्ड, अनुवाक और अघमर्षणका जप करना चाहिये। ये ही उक्त पापके प्रायश्चित्त हैं। इसी प्रकार जो मरणाशौचवाले घरमें लगातार तीन रात भोजन करता है, वह ब्राह्मण सात दिनोंतक त्रिकाल स्नान करनेसे शुद्ध होता है। यह प्रायश्चित्त करनेके बाद ही उसे सिद्धि मिलती और सिरपर आनेवाली भारी विपत्ति टलती है। जो ब्राह्मण शूद्रके साथ एक पात्रमें भोजन कर लेता है, उसके लिये कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है। यदि ब्राह्मण वैश्यके साथ एक पात्रमें भोजन कर ले तो वह तीन राततक व्रत करनेपर उसके पापसे मुक्त होता है। क्षत्रियके साथ एक पात्रमें भोजन करनेवाला ब्राह्मण वस्त्रसहित स्नान करनेसे शुद्ध होता है। ब्राह्मणका तेज उसके साथ भोजन करनेवाले शूद्रके कुलका, वैश्यके पशु और बान्धवोंका तथा क्षत्रियकी लक्ष्मीका नाश कर डालता है। इसके लिये प्रायश्चित्त और शान्ति-होम करना चाहिये। गायत्री, रैवत साम, पवित्रेष्टि, कूष्माण्ड, अनुवाक और अघमर्षण मन्त्रका जप भी आवश्यक है। इससे पापकी निवृत्ति होती है। किसीका जूठा अथवा उसके साथ एक बर्तनमें भोजन नहीं करना चाहिये। प्रायश्चित्त करनेके अनन्तर गोरोचन, दूर्वा और हल्दी आदि माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श करना चाहिये।



दृष्टान्तपूर्वक दानकी श्रेष्ठता और पाँच प्रकारके दानोंका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! आप कहते हैं दान और तप दोनोंसे ही स्वर्गकी प्राप्ति होती है; किंतु इस पृथ्वीपर इन दोनोंमें श्रेष्ठ कौन-सा है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! तपस्यासे शुद्ध अन्तःकरणवाले जिन धर्मात्मा राजाओंने दानजनित पुण्यके प्रभावसे बहुत-से उत्तम लोक प्राप्त किये हैं, उनका नाम बता रहा हूँ, सुनो—लोकमान्य महर्षि आत्रेय अपने शिष्योंको निर्गुण ब्रह्मका उपदेश देकर उत्तम लोकमें गये हैं। काशीके राजा प्रतर्दनने अपने प्यारे पुत्रको ब्राह्मणकी सेवामें अर्पण कर दिया, जिसके कारण उन्हें इस लोकमें अनुपम कीर्ति मिली और परलोकमें भी वे अक्षय आनन्दका उपभोग कर रहे हैं। संकृतिनन्दन राजा रन्तिदेवने महात्मा वसिष्ठ मुनिको विधिवत् अर्घ्य-दान किया, जिससे उन्हें श्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति हुई। देवावृध नामक राजा यज्ञमें सोनेकी सौ कड़ियोंवाले दिव्य छत्रका दान करके स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं। सूर्यपुत्र कर्ण अपना दिव्य कुण्डल देकर तथा महाराज जनमेजय ब्राह्मणको सवारी और गौ-दान करके उत्तम लोकोंमें गये हैं। राजर्षि वृषादर्भिने द्विजोंको नाना प्रकारके रत्न और रमणीय गृह प्रदान करके स्वर्गलोकमें स्थान प्राप्त किया है। विदर्भके पुत्र राजा निमिने अगस्त्य मुनिको अपनी कन्या और राज्यका दान करके पुत्र, पशु और बान्धवोंसहित स्वर्गमें निवास किया है। महायशस्वी परशुरामजीने ब्राह्मणको भूमि-दान करके उन अक्षय लोकोंको प्राप्त किया है, जिन्हें पानेकी मनमें कल्पना भी नहीं हो सकती। एक बार संसारमें वर्षा न होनेपर मुनिवर वसिष्ठजीने समस्त प्राणियोंको जीवन-दान दिया था, जिससे उन्हें अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हुई। राजर्षि कक्षसेन महात्मा वसिष्ठको अपना सर्वस्व अर्पण करके स्वर्गमें गये हैं। करन्धमके पौत्र और अविक्षित्के पुत्र राजा मरुत्तने अङ्गिरा मुनिको अपनी कन्या देकर स्वर्गमें स्थान पाया है। पाञ्चाल देशके धर्मात्मा राजा ब्रह्मदत्तने निधि नामक शङ्खका दान करके परम गति प्राप्त की है। मनुके पुत्र राजा सुद्युम्नने महात्मा लिखितको धर्मानुसार दण्ड देकर उत्तम लोकोंमें स्थान प्राप्त किया है। महान् यशस्वी राजर्षि सहस्रचित्य ब्राह्मणके लिये अपने प्यारे प्राणोंकी बलि देकर श्रेष्ठ लोकमें गये हैं। महाराज शतद्युम्नने मौद्गल्य नामक ब्राह्मणको समस्त कामनाओंसे परिपूर्ण सुवर्णमय महल दान देकर स्वर्ग प्राप्त किया है। राजा समन्युने भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंकी पर्वतोंके समान ढेरी लगाकर उसे शाण्डिल्यको दान दिया था, इससे उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति हुई। अत्यन्त तेजस्वी शाल्वनरेश द्युतिमान्ने ऋचीक मुनिको राज्य देकर उत्तम लोक पाया है। राजर्षि मदिराश्व अपनी सुन्दरी कन्या हिरण्यहस्तको देकर देवलोकके निवासी हुए। राजर्षि

लोमपादने ऋष्यशृङ्ग मुनिको अपनी शान्ता नामवाली कन्या दान की थी, इससे उनकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हुईं। राजर्षि भगीरथ अपनी यशस्विनी कन्या हंसीको कौत्स ऋषिकी सेवामें देकर अक्षय लोकोंमें गये हैं। राजा भगीरथने कोहल नामक ब्राह्मणको एक लाख गौएँ दान कीं, इससे उन्हें उत्तम लोक प्राप्त हुए। युधिष्ठिर ! ये तथा और भी बहुत-से राजा दान और तपस्याके प्रभावसे बारंबार स्वर्गको जाते और पुनः वहाँसे इस लोकमें लौट आते हैं। जिन गृहस्थोंने दान और तपस्याके बलसे उत्तम लोकोंपर विजय पायी है, उनकी कीर्ति, जबतक यह पृथ्वी कायम है, तबतक बनी रहेगी। यह शिष्ट पुरुषोंका चरित्र बतलाया गया है। ये सब नरेश दान, यज्ञ और संतानोत्पादन करके स्वर्गमें प्रतिष्ठित हुए हैं। तुम भी सदा दान करते रहो। तुम्हारी बुद्धि दान और यज्ञकी क्रियामें संलग्न हो धर्मकी उन्नति करती रहे। अब संध्या हो गयी है, इस समय यदि तुम्हारे मनमें कुछ संदेह बाकी रह गये हों तो उनका समाधान कल सबेरे करूँगा।

(दूसरे दिन प्रातःकाल) *युधिष्ठिरने पूछा*—पितामह ! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि दान किसको देना चाहिये ? किन कारणोंसे देना चाहिये ? और दानके कितने प्रकार हैं ?

भीष्मजीने कहा—कुन्तीनन्दन ! सभी वर्णके लोगोंको दान किस प्रकार करना चाहिये, यह बतला रहा हूँ, सुनो—दानके पाँच हेतु हैं—धर्म, अर्थ, भय, कामना और दया। इन्हींसे वह पाँच प्रकारका माना गया है। दान करनेवाला मनुष्य इहलोकमें कीर्ति और परलोकमें उत्तम सुख पाता है। इसलिये ईर्ष्यारहित होकर ब्राह्मणोंको अवश्य दान देना चाहिये, यह धर्ममूलक दान कहलाता है। 'अमुक मनुष्य मुझे दान देता है अथवा देगा या अमुकने मुझे दान दिया है' याचकोंके मुँहसे ये बातें सुनकर कीर्तिकी इच्छासे जो कुछ दान किया जाता है, वह सब अर्थमूलक दान है। 'न मैं इसका हूँ न यह मेरा है, तो भी यदि इसको कुछ न दूँ तो यह अपमानित होकर मेरा अनिष्ट कर डालेगा' यह सोचकर विद्वान् पुरुष किसी मूर्खको जो दान देता है, वह भयनिमित्तक दान है। 'यह मेरा प्रिय है और मैं इसका प्रिय हूँ' यह विचारकर बुद्धिमान् मनुष्य अपने मित्रको जो कुछ देता है, वह कामना-मूलक दान है। 'यह बेचारा बड़ा गरीब है और मुझसे मुँह खोलकर माँग रहा है, थोड़ा देनेसे भी बहुत संतुष्ट होगा' यह विचारकर दरिद्र मनुष्यके लिये यदि कुछ दिया जाता है तो वह दयानिमित्तक दान कहलाता है। इस तरह पुण्य और कीर्तिको बढ़ानेवाला पाँच प्रकारका दान बतलाया गया है। प्रजापतिका वचन है कि 'सबको अपनी शक्तिके अनुसार दान अवश्य करना चाहिये।'



तपस्या करते हुए श्रीकृष्णके पास ऋषियोंका आना, उनका प्रभाव देखना और नारदजीका शिव-पार्वतीके धर्मविषयक संवादका वर्णन करना

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! आप हमारे कुलमें सब शास्त्रोंके जानकार और अत्यन्त बुद्धिमान् हैं; अतः मैं आपके मुखसे अब ऐसे विषयका वर्णन सुनना चाहता हूँ, जो धर्म और अर्थसे युक्त, भविष्यमें सुख देनेवाला और संसारके लिये अद्भुत हो। हमारे बन्धु-बान्धवोंको यह दुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ है, आपके सिवा दूसरा कोई सब धर्मोंका उपदेश करनेवाला महापुरुष हमें नहीं मिल सकता; अतः इन भगवान् श्रीकृष्ण और सम्पूर्ण राजाओंके सामने मेरा और मेरे भाइयोंका प्रिय करनेके लिये आप पूछे हुए विषयका वर्णन कीजिये।

भीष्मजीने कहा—बेटा ! अब मैं तुम्हें एक बड़ी मनोहर कथा सुना रहा हूँ। पूर्वकालमें इन भगवान् नारायण और महादेवजीका जो प्रभाव मैंने सुन रखा है, उसको तथा पार्वतीजीके संदेह करनेपर शिव और पार्वतीमें जो संवाद हुआ था, उसको भी बता रहा हूँ, सुनो—पहलेकी बात है, धर्मात्मा भगवान् श्रीकृष्ण बारह वर्षोंमें समाप्त होनेवाले व्रतकी दीक्षा लेकर (एक पर्वतके ऊपर) कठोर तपस्या कर रहे थे। उस समय उनका दर्शन करनेके लिये नारद, पर्वत, श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास, धौम्य, देवल, काश्यप, हस्तिकाश्यप तथा दूसरे-दूसरे दीक्षा और दमसे सम्पन्न ऋषि-महर्षि अपने शिष्यों, सिद्धों तथा देवोपम तपस्वियोंके साथ वहाँ आये। देवकीनन्दन श्रीकृष्णने बड़ी प्रसन्नताके साथ देवोचित उपचारोंसे उन महर्षियोंका आतिथ्य-सत्कार किया। भगवान्के दिये हुए हरे और सुनहरे रंगवाले कुशोंके नवीन आसनोंपर विराजमान होकर वे वहाँ रहनेवाले राजर्षियों और देवताओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक मधुर वाणीमें धर्मविषयक चर्चा करने लगे। इतनेहीमें अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे उनकी व्रत-चर्यासे प्रकट हुआ तेज बाहर निकलकर

वृक्ष, लता, झाड़ी, पक्षी, मृगसमुदाय, शिकारी पशु और सर्पोंसहित उस पर्वतको दग्ध करने लगा। उस समय नाना प्रकारके जीव-जन्तुओंका हाहाकार चारों ओर फैल रहा था। थोड़ी ही देरमें उस पर्वतका शिखर जलकर खाक हो गया। वहाँ चेतन जीवोंका नाम भी बाकी न रहा। उसकी स्थिति बड़ी दयनीय दिखायी देती थी। इस प्रकार ऊँची ज्वालाओंसे युक्त उस तेजःस्वरूप अग्निने पर्वतके समस्त शिखरको भस्म करके भगवान् श्रीकृष्णके पास आकर शिष्यकी भाँति उनके दोनों चरणोंमें प्रणाम किया। तब भगवान्‌ने उस पर्वतको जला हुआ देखकर उसके ऊपर अपनी शान्त दृष्टि डाली। इससे वह पुनः अपनी पहली अवस्थामें आ गया। वहाँ



पूर्वकी ही भाँति प्रफुल्लित लताओं और हरे-भरे वृक्षोंकी शोभा छा गयी। पक्षियोंका कलरव होने लगा तथा सभी जीव-जन्तु जीवित होकर विचरने लगे। यह अद्‌भुत और अचिन्त्य घटना देखकर मुनियोंको बड़ा विस्मय हुआ। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आये।

ऋषियोंको इस प्रकार विस्मित होते देख नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने विनय और स्नेहसे भरी हुई मधुर वाणीमें पूछा—'महर्षियो ! आपका समुदाय तो सदा आसक्ति और ममतासे रहित है, सबको शास्त्रोंका ज्ञान है, फिर भी आपलोगोंको आश्चर्य क्यों हो रहा है ?'

ऋषियोंने कहा—भगवन् ! आप ही संसारको बनाते और आप ही पुनः उसका संहार करते हैं। सर्दी, गर्मी और वर्षा—ये आपहीके स्वरूप हैं। इस पृथ्वीपर जितने भी चराचर प्राणी हैं, उन सबके पिता, माता, ईश्वर और उत्पत्तिके कारण भी आप ही हैं। आपके मुँहसे अग्निका प्रादुर्भाव देखकर हमलोगोंको महान् आश्चर्य हो रहा है; अतः आप उसका कारण बतानेकी कृपा करें। उसे सुनकर हमारा भय दूर हो जायगा।

श्रीकृष्णने कहा—मुनिवरो ! मेरे मुँहसे प्रलयकालकी अग्निके समान जो तेज प्रकट होकर पर्वतको दग्ध कर रहा था, वह मेरा ही वैष्णव तेज था। मैं इस पर्वतपर अपने ही समान वीर्यवान् पुत्र पानेकी इच्छासे व्रत (तपस्या) करनेके लिये आया हूँ। मेरे शरीरमें स्थित प्राण ही अग्निरूपमें बाहर निकलकर सबको वर देनेवाले लोकपितामह ब्रह्माजीका दर्शन करनेके लिये उनके लोकमें गया था। ब्रह्माजीने उसे यह संदेश देकर भेजा है कि 'भगवान् शंकरका आधा तेज ही मेरे पुत्ररूपमें उत्पन्न होनेवाला है।' वह तेजोमय प्राण वहाँसे लौटनेपर मेरे पास आया है और निकट पहुँचनेपर शिष्यकी भाँति परिचर्या करनेके लिये उसने मेरे चरणोंमें प्रणाम किया है। इसके बाद शान्त होकर वह अपनी पूर्वावस्थाको प्राप्त हो गया है। यही मेरे मुँहसे इस अग्निके प्रकट होनेका रहस्य है, जिसको मैंने थोड़ेमें आपलोगोंको बता दिया है; अतः आप भयभीत न हों। आपलोग दीर्घदर्शी हैं, आपकी गति कहीं नहीं रुकती, तपस्वियोंके योग्य व्रतका आचरण करनेसे आपका शरीर देदीप्यमान हो रहा है तथा ज्ञान और विज्ञान आपकी शोभा बढ़ा रहे हैं; इसलिये मेरी प्रार्थना है कि यदि आपलोगोंने इस पृथ्वीपर या स्वर्गमें कोई महान् आश्चर्यकी बात देखी या सुनी हो तो उसको मुझसे बतलाइये। आप तपोवनके निवासी हैं, अतः आपके अमृतके समान मधुर वचन सुननेकी मुझे सदा इच्छा बनी रहती है। क्योंकि सत्पुरुषोंका कहा और सुना हुआ वचन विश्वासके योग्य होता है तथा वह पत्थरपर खिंची हुई लकीरकी भाँति इस पृथ्वीपर बहुत दिनोंतक कायम रहता है।

यह सुनकर भगवान्‌के समीप बैठे हुए सभी ऋषियोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे कमलदलके समान खिले हुए नेत्रोंसे उनकी ओर देखने लगे। कोई उनका अभ्युदय मनाने लगा, कोई प्रशंसा करने लगा और कोई ऋग्वेदकी अर्थयुक्त ऋचाओंसे उनकी स्तुति करने लगा। तदनन्तर, सबने बातचीत करनेमें चतुर देवर्षि नारदको भगवान्‌की बातका उत्तर देनेके लिये प्रेरित किया। तब नारायणके सुहृद

भगवान् नारद मुनिने महादेवजीका पार्वतीदेवीके साथ जो संवाद हुआ था, उसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

नारदजी बोले—भगवन्! जहाँ सिद्ध और चारण विचरते रहते हैं, जो नाना प्रकारकी ओषधियों और पुष्पोंसे आच्छादित होनेके कारण अत्यन्त रमणीय दिखायी देता है तथा जहाँ झुंड-की-झुंड अप्सराएँ और भूतोंकी टोलियाँ निवास करती हैं; उस परम पावन हिमालय पर्वतपर परम धर्मात्मा देवाधिदेव भगवान् शंकर तपस्या कर रहे थे। उसी समय पार्वती देवीने उनके पास जाकर पूछा—'भगवन्! आप सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी और समस्त धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं, अतः मैं आपके सामने अपने मनका एक संदेह उपस्थित करना चाहती हूँ। यह मुनियोंका समुदाय भी यहाँ मौजूद है, जो तपस्यामें प्रवृत्त रहता और नाना प्रकारके वेष धारण करके संसारमें विचरता रहता है। आप इन ऋषियोंका और मेरा भी प्रिय करनेके लिये मेरे संदेहका निवारण करें। धर्मका क्या स्वरूप है? जो धर्मको नहीं जानते ऐसे मनुष्य उसका किस प्रकार आचरण कर सकते हैं।'

पार्वती देवीने जब यह प्रश्न उपस्थित किया तो समस्त ऋषियोंने ऋग्वेदकी अर्थयुक्त ऋचाओंसे स्तुति करते हुए उनकी बड़ी प्रशंसा की। तदनन्तर, भगवान् महेश्वरने कहा—'देवि! किसी भी जीवकी हिंसा न करना, सत्य बोलना, सब प्राणियोंपर दया करना, मन और इन्द्रियोंपर काबू रखना तथा अपनी शक्तिके अनुसार दान देना—यह गृहस्थ-आश्रमका उत्तम धर्म है। उक्त गृहस्थ-धर्मका पालन करना, परायी स्त्रीके संसर्गसे दूर रहना, धरोहर और स्त्रीकी रक्षा करना, बिना दिये किसीकी वस्तु न लेना तथा मांस और मदिराको त्याग देना—ये धर्मके पाँच भेद हैं, जिनसे सुखकी प्राप्ति होती है। इनमेंसे एक-एक धर्मकी अनेकों शाखाएँ हैं। धर्मको श्रेष्ठ माननेवाले मनुष्योंको इन धर्मोंका अवश्य पालन करना चाहिये।'

पार्वतीने पूछा—भगवन्! चारों वर्णोंका जो-जो धर्म अपने-अपने वर्णके लिये विशेष लाभकारी हो, वह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रके धर्मका पृथक्-पृथक् स्वरूप क्या है?

महेश्वरने कहा—देवि! तुमने न्यायके अनुसार प्रश्न करके सब कुछ पूछ डाला। अच्छा, अब अपने प्रश्नोंका उत्तर सुनो—संसारमें ब्राह्मण इस पृथ्वीके देवता माने गये हैं। उपवास करना उनका परम धर्म है। धर्मार्थसम्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। उसे धर्मका अनुष्ठान और विधिवत् ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। व्रतके पालनपूर्वक उपनयन-संस्कारका होना उसके लिये परम आवश्यक है; क्योंकि इसीसे वह द्विज होता है। गुरु और देवताओंकी पूजा, स्वाध्याय और अभ्यासरूप धर्मका पालन ब्राह्मणको अवश्य करना चाहिये। धर्मका रहस्य सुनना, वेदोक्त व्रतका पालन, होम और गुरुसेवा करना, भिक्षासे जीवन-निर्वाह करना, सदा यज्ञोपवीत धारण किये रहना, प्रतिदिन वेदका स्वाध्याय करना और ब्रह्मचर्य-आश्रमके नियमोंका पालन करना ब्राह्मणका प्रधान धर्म है। ब्रह्मचर्यकी अवधि समाप्त होनेपर द्विज अपने गुरुकी आज्ञा लेकर समावर्तन करे और घर आकर अपने अनुरूप स्त्रीसे विधिपूर्वक विवाह करे। ब्राह्मणको शूद्रका अन्न नहीं खाना चाहिये। सदाचारका पालन उसका परम धर्म है। उपवास, ब्रह्मचर्य-पालन, अग्निहोत्र, स्वाध्याय, हवन, इन्द्रियसंयम, अतिथि और भृत्योंको भोजन करानेके बाद अन्न-ग्रहण, आहार-संयम, सत्यभाषण, पवित्र रहना, अतिथि-सत्कार करना, गार्हपत्य आदि त्रिविध अग्नियोंकी परिचर्या करना, यज्ञ करना, किसी भी जीवकी हिंसा न करना और घरमें पहले भोजन न करके कुटुम्बके लोगोंको भोजन करानेके बाद ही भोजन करना—यह गृहस्थ ब्राह्मणका विशेषतः श्रोत्रियका परम धर्म है। पति और पत्नीका स्वभाव एक-सा होना चाहिये तभी गृहस्थधर्मका ठीक-ठीक पालन होता है। घरके देवताओंकी प्रतिदिन पुष्प आदिसे पूजा करना, उन्हें अन्नकी बलि अर्पण करना, रोज-रोज घर लीपना और प्रतिदिन व्रत रखना भी गृहस्थका धर्म है। झाड़-बुहार, लीप-पोतकर साफ किये हुए घरमें घृतयुक्त आहुति करके उसका धुँआ फैलाना चाहिये। यह ब्राह्मणोंका गार्हस्थ्य-धर्म बतलाया गया, जो संसारकी रक्षा करनेवाला है। अच्छे ब्राह्मण सदा ही इस धर्मका पालन करते हैं।

अब मैं क्षत्रियका धर्म बतला रहा हूँ। क्षत्रियका सबसे पहला धर्म है प्रजाका पालन करना। प्रजाकी आयके छठे भागका उपभोग करनेवाला राजा धर्मका फल पाता है। जो धर्मपूर्वक अपनी प्रजाकी रक्षा करता है, उस राजाको उसके प्रजापालनरूपी धर्मके प्रभावसे उत्तम लोक प्राप्त होते हैं। राजाका परम धर्म है—इन्द्रियसंयम, स्वाध्याय, अग्निहोत्र, दान, अध्ययन, यज्ञोपवीत-धारण, यज्ञानुष्ठान, धार्मिक कार्य करना, पोष्यवर्गका भरण-पोषण करना, आरम्भ किये हुए कर्मको सफल बनाना, अपराधके अनुसार उचित दण्ड देना, वेदोक्त यज्ञोंका अनुष्ठान करना, व्यवहारमें न्यायकी रक्षा करना और सत्यभाषणमें प्रेम रखना। जो राजा दुःखी मनुष्योंको हाथका सहारा देता है, वह इस लोक और परलोकमें भी सम्मानित होता है। जो गौ और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये संग्राममें पराक्रम दिखाकर प्राण त्याग करता है, वह

परलोकमें अश्वमेधयज्ञसे प्राप्त होनेवाले उत्तम लोकोंपर अधिकार प्राप्त करता है।

पशुओंका पालन, खेती, व्यापार, अग्निहोत्र, दान, अध्ययन, सदाचारका पालन, अतिथि-सत्कार, शम, दम, ब्राह्मणोंका स्वागत और त्याग—यह वैश्योंका सनातन धर्म है। व्यापार करनेवाले सदाचारी वैश्यको तिल, चन्दन और रसकी बिक्री नहीं करनी चाहिये तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन सबका यथायोग्य आतिथ्य-सत्कार करना चाहिये।

शूद्रका परम धर्म है तीनों वर्णोंकी सेवा। जो शूद्र सत्यवादी, जितेन्द्रिय और घरपर आये हुए अतिथिकी सेवा करनेवाला है, वह महान् तपका संग्रह करता है। उसे उत्तम तपस्वी समझना चाहिये। नित्य सदाचारका पालन और देवता तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाले बुद्धिमान् शूद्रको धर्मका मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। कल्याणी! इस प्रकार मैंने तुम्हें एक-एक करके चारों वर्णोंका धर्म बतलाया, अब और क्या सुनना चाहती हो।

पार्वतीने कहा—भगवन्! आपने चारों वर्णोंके हितकारी धर्मका पृथक्-पृथक् वर्णन किया, अब वह धर्म बतलाइये जो सब वर्णोंके लिये समान रूपसे उपयोगी हो।

महेश्वरने पूछा—देवि! गुणोंपर दृष्टि रखनेवाले और जगत्के सारभूत ब्रह्माजीने सम्पूर्ण लोकोंको तारनेके लिये ब्राह्मणोंकी सृष्टि की है। ब्राह्मण इस भूमण्डलके देवता हैं, अतः पहले उन्हींके कुछ और धर्मोंका वर्णन करता हूँ। (फिर सबके लिये उपयोगी धर्मोंका उपदेश करूँगा।) ब्रह्माजीने सम्पूर्ण जगत्की रक्षाके लिये वैदिक, स्मार्त और शिष्टाचार—इन तीन प्रकारके धर्मोंका विधान किया है। धर्मके ये तीनों ही भेद सनातन हैं। जो तीनों वेदोंका ज्ञाता और विद्वान् हो, पढ़ने-पढ़ानेका काम करके जीविका न चलाता हो, दान, अध्ययन और यज्ञ—इन तीन कर्मोंका सदा अनुष्ठान करता हो, काम, क्रोध और लोभ—इन तीनोंको त्याग चुका हो तथा सब प्राणियोंपर दया रखता हो, वही वास्तवमें ब्राह्मण माना गया है। सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी ब्रह्माजीने ब्राह्मणोंकी जीविकाके लिये यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, वेद पढ़ना और वेद पढ़ाना—ये छः कर्म बतलाये हैं। ये ब्राह्मणोंके सनातन धर्म हैं। इनमें भी सदा स्वाध्यायशील होना, यज्ञ करना और अपनी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक दान देना—ये तीन कर्म ब्राह्मणोंके लिये अत्यन्त उत्तम माने गये हैं।

सब प्रकारके विषयोंसे उपराम होना शम कहलाता है, यह सत्पुरुषोंमें सदा दृष्टिगोचर होता है। इसका पालन करनेसे शुद्ध चित्तवाले गृहस्थोंको महान् धर्मकी प्राप्ति होती है। गृहस्थ पुरुषको पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान करके अपने मनको शुद्ध बनाना चाहिये। जो गृहस्थ सदा सत्य बोलता, किसीके दोष नहीं देखता, दान देता, ब्राह्मणोंका सत्कार करता, अपने घरको झाड़-बुहारकर साफ रखता, अभिमानका त्याग करता, सदा सरल भावसे रहता, स्नेहयुक्त वचन बोलता, अतिथि और अभ्यागतोंकी सेवामें मन लगाता, यज्ञशिष्ट अन्न भोजन करता और अतिथिको शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार पाद्य, अर्घ्य, आसन, शय्या, दीपक तथा ठहरनेके लिये गृह प्रदान करता है, उसे धार्मिक समझना चाहिये। जो प्रातःकाल उठकर मुँह-हाथ धोनेके पश्चात् ब्राह्मणको भोजनके लिये निमन्त्रण देता और उसे ठीक समयपर सत्कारपूर्वक भोजन करानेके बाद कुछ दूरतक उसके पीछे-पीछे जाता है, उसके द्वारा सनातन धर्मका पालन होता है। शूद्र गृहस्थको अपनी शक्तिके अनुसार सदा सबका आतिथ्य-सत्कार करना चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन वर्णोंकी परिचर्यामें रहना उसके लिये प्रधान धर्म बतलाया गया है। प्रवृत्तिरूप धर्मका विधान गृहस्थोंके लिये किया गया है, वह सब प्राणियोंका हितकारी और उत्तम है। अब मैं उसीका वर्णन करता हूँ। अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको सदा अपनी शक्तिके अनुसार दान, यज्ञ तथा पुष्टिजनक कार्य करते रहना चाहिये। धर्ममार्गका आश्रय लेकर धनका उपार्जन करना चाहिये और उसका तीन विभाग करके एक अंशसे धर्म और अर्थकी सिद्धि करनी चाहिये, दूसरे अंशको उपभोगमें लगाना चाहिये और तीसरे अंशको बढ़ाना चाहिये। (यह प्रवृत्ति धर्मका वर्णन किया गया है।)

इससे भिन्न निवृत्तिरूप धर्म है। वह मोक्षका साधन है। अब मैं उसका यथार्थ स्वरूप बतला रहा हूँ। तुम ध्यान देकर सुनो—मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषोंको सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करनी चाहिये। हमेशा एक ही गाँवमें नहीं रहना चाहिये और अपने आशारूपी बन्धनोंको तोड़नेका यत्न करना चाहिये। मुमुक्षुके लिये यही प्रशंसाकी बात है। उसे कमण्डलु, जल, कौपीन, आसन, त्रिदण्ड, शय्या, अग्नि और घरपर ममता या आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। मुमुक्षुको अध्यात्मज्ञानका ही चिन्तन और मनन करना चाहिये तथा सदा उसीमें स्थित रहना चाहिये। निरन्तर योगाभ्यासमें प्रवृत्त होकर तत्त्वका विचार करते रहना चाहिये। संन्यासी ब्राह्मणको उचित है कि वह सब प्रकारकी आसक्तियों और स्नेहबन्धनोंसे मुक्त होकर सर्वदा वृक्षके नीचे, सूने गृहमें अथवा नदीके किनारे रहता हुआ अपने अन्तःकरणमें परमात्माका ध्यान करे। जो युक्तचित्त होकर संन्यास

ग्रहण करता है और मोक्षोपयोगी कर्म—श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदिके द्वारा समय व्यतीत करता हुआ ठूठे काठकी भाँति स्थिर रहता है, उसको सनातन धर्मका मोक्षरूप फल प्राप्त होता है। संन्यासी पुरुष किसी एक स्थानपर आसक्ति न रखे, एक ही गाँवमें न रहे तथा एक ही नदीके किनारेपर सर्वदा शयन न करे। उसे सब प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरना चाहिये। यह मोक्ष-धर्मके ज्ञाता सत्पुरुषोंका धर्म और वेद-प्रतिपादित सन्मार्ग है। जो इस मार्गसे चलता है, उसके लिये कोई सीमित स्थान नहीं रहता (वह मुक्त एवं सर्वव्यापक हो जाता है)। संन्यासी चार प्रकारके होते हैं—कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस। इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। इस परमहंस-धर्मके द्वारा प्राप्त होनेवाले आत्मज्ञानसे बढ़कर दूसरा कुछ भी नहीं है। यह दुःख-सुखसे रहित, सौम्य, अजर, अमर और अविनाशी पद है।

पार्वतीजीने कहा—भगवन्! आपने सत्पुरुषोंद्वारा आचरणमें लाये हुए गार्हस्थ्य-धर्म और मोक्ष-धर्मका वर्णन किया। ये दोनों ही मार्ग जीव-जगत्‌का महान् कल्याण करनेवाले हैं। इन्हें सुन लेनेके बाद अब मैं ऋषियोंका धर्म सुनना चाहती हूँ। महेश्वर! तपोवननिवासी मुनियोंके प्रति मेरे मनमें बड़ा स्नेह है। ये जब अग्निमें घृतमिश्रित हविष्यकी आहुति डालते हैं, उस समय उसके धूमसे प्रकट हुई सुगन्धसे सारा तपोवन भर जाता है। उसे देखकर मेरा चित्त सदा प्रसन्न रहता है, इसलिये मैंने मुनियोंके धर्मके सम्बन्धमें जिज्ञासा प्रकट की है। देवदेव! आप सम्पूर्ण धर्मोंका तत्त्व जाननेवाले हैं; अतः मैंने जो कुछ पूछा है उसका पूर्णरूपसे वर्णन कीजिये।

भगवान् महेश्वरने कहा—कल्याणी! तुम्हारा प्रश्न सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। अब मैं मुनियोंके उत्तम धर्मका वर्णन करता हूँ, जिसका आश्रय लेकर वे अपनी तपस्याके द्वारा परम सिद्धिको प्राप्त होते हैं। सबसे पहले धर्मके जाननेवाले फेनप[1] ऋषियोंका धर्म सुनो—पूर्वकालमें ब्रह्माजीने यज्ञ करते समय जिसका पान किया था तथा जो स्वर्गमें फैला हुआ है, वह अमृत (ब्रह्माजीके पीनेके कारण) ब्राह्म कहलाता है। उसके फेनको थोड़ा-थोड़ा संग्रह करके जो सदा पान करते हैं (और उसीके आधारपर जीवन-निर्वाह करते हुए तपस्यामें लगे रहते हैं), वे फेनप कहलाते हैं। यह धर्माचरणका मार्ग उन विशुद्ध फेनप महात्माओंका ही मार्ग है। अब बालखिल्य महर्षियोंके धर्मका श्रवण करो। बालखिल्यगण तपःसिद्ध महात्मा हैं। वे सब धर्मोंके ज्ञाता हैं और सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं तथा उञ्छवृत्तिका आश्रय लेकर पक्षियोंकी भाँति एक-एक दाना बीनकर उसीसे जीवन-निर्वाह करते हैं। मृगछाला, चीर और वल्कल—ये ही उनके वस्त्र हैं। वे शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे रहित, सदाचारका पालन करनेवाले और तपस्याके धनी हैं। उनमेंसे प्रत्येकका शरीर अँगूठेके सिरेके बराबर है। वे अपने-अपने कर्तव्यमें स्थित हो सदा तपस्यामें संलग्न रहते हैं। उनके धर्मका महान् फल है। वे तपस्यासे सम्पूर्ण पापोंको दग्ध करके अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हैं और देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये उनके समान रूप धारण करते हैं। इनके अतिरिक्त और बहुत-से शुद्धचित्त दया-धर्मपरायण एवं पुण्यात्मा महर्षि हैं। जिनमें कुछ चक्रचर (चक्रके समान विचरनेवाले), कुछ सोमलोकमें रहनेवाले तथा कुछ पितृलोकके निकट निवास करनेवाले हैं। ये सब शास्त्रीय विधिके अनुसार उञ्छवृत्तिसे जीविका चलाते हैं। कोई ऋषि सम्प्रक्षाल[2], कोई अश्मकुट्ट[3] और कोई दन्तोलूखलिक[4] हैं। ये लोग सोमप (चन्द्रमाकी किरणोंका पान करनेवाले) और उष्णप (सूर्यकी किरणोंका पान करनेवाले) देवताओंके निकट रहकर अपनी स्त्रियोंसहित उञ्छवृत्तिसे जीवन-निर्वाह करते और इन्द्रियोंको काबूमें रखते हैं। अग्निहोत्र, पितरोंका श्राद्ध और पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान—यह उनका मुख्य धर्म है। चक्रकी तरह विचरनेवाले और देवलोकमें निवास करनेवाले पूर्वोक्त ब्राह्मणोंने इस ऋषिधर्मका सदा ही अनुष्ठान किया है। इसके अतिरिक्त भी जो ऋषियोंका धर्म है, उसे सुनो। मेरे विचारसे सभी आर्ष धर्मोंमें इन्द्रियसंयमपूर्वक आत्मज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। फिर काम और क्रोधको भी जीतना चाहिये। प्रत्येक ऋषिको अग्निमें घृतका होम, धर्म-सत्रका अनुष्ठान, सोमयज्ञद्वारा यजन, यज्ञ-विधिका ज्ञान और यज्ञमें दक्षिणा देना—ये पाँच कर्म अवश्य करने चाहिये। नित्य यज्ञका अनुष्ठान और धर्मका पालन करना चाहिये तथा देवपूजा और श्राद्धमें अनुराग रखना चाहिये। उञ्छवृत्तिसे उपार्जित किये हुए अन्नके द्वारा सबका आतिथ्य-सत्कार करना ऋषियोंका परम कर्तव्य है। वे विषयभोगोंसे निवृत्त रहें, गो-रसका

१—फेन पीकर रहनेवाले। २—जो भोजनके पश्चात् पात्रको धो-पोंछकर रख देते हैं, दूसरे दिनके लिये कुछ भी नहीं बचाते, उन्हें सम्प्रक्षाल कहते हैं। ३—पत्थरसे फोड़कर खानेवाले। ४—जो दाँतोंसे ही ओखलीका काम लेते हैं अर्थात् अन्नको ओखलीमें न कूटकर दाँतोंसे ही चबाकर खाते हैं वे दन्तोलूखलिक कहलाते हैं।

आहार करें, शमके साधनमें प्रेम रखें, खुले मैदान चबूतरेपर सोवें, योगका अभ्यास करें, साग-पात, फल-मूल, वायु-जल और सेवारका आहार करके रहें—ये ऋषियोंके नियम हैं। इनका पालन करनेसे वे अजित (सर्वश्रेष्ठ) गतिको प्राप्त करते हैं। जब गृहस्थोंके घरमें रसोई-घरका धुआँ निकलना बंद हो जाय, मूसलसे धान कूटनेकी आवाज न आये—सन्नाटा रहे, चूल्हेकी आग बुझ जाय, घरके सब लोग भोजन कर चुकें, बर्तनोंका इधर-उधर ले जाना रुक जाय और भिक्षुक भीख लेकर लौट गये हों ऐसे समयतक ऋषिको अतिथिकी बाट जोहनी चाहिये और उसके भोजनसे बचे-खुचे अन्नको स्वयं ग्रहण करना चाहिये। जो गर्व और अभिमान नहीं करता, अप्रसन्न और विस्मित नहीं होता, शत्रु और मित्रको समान समझता तथा सबके प्रति मैत्रीका भाव रखता है, वही धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ऋषि है।



वानप्रस्थ-धर्मका वर्णन

पार्वतीने कहा—भगवन्! व्रतका पालन करनेवाले वानप्रस्थी महात्मा नदियोंके तटवर्ती रमणीय स्थानोंमें, झरनोंके आस-पासके कुञ्जोंमें, पर्वतोंपर, वनोंमें और फलमूलसे सम्पन्न पवित्र स्थानोंमें निवास करते हैं। वे अपने शरीरको ही कष्ट पहुँचाकर जीवन-निर्वाह करते हैं, अतः मैं उनके पालन करनेयोग्य पवित्र नियमोंको श्रवण करना चाहती हूँ।

महेश्वरने कहा—देवि! तुम सावधान होकर वानप्रस्थी महात्माओंके धर्म सुनो। उन्हें दिनमें तीन बार स्नान, देवताओं और पितरोंका पूजन, अग्निहोत्र और विधिवत् यज्ञ करने चाहिये। वानप्रस्थीको जीविकाके लिये नीवार और फल-मूलका सेवन तथा दीप आदि जलानेके लिये इङ्गुदी और रेंड़ीके तेलका उपयोग करना उचित है। वे योगका अभ्यास और काम-क्रोधका त्याग करें, वीरासनसे बैठें और वीरस्थान (जहाँ भीरु मनुष्योंको रहनेकी हिम्मत न पड़े ऐसे घने जंगल) में निवास करें। धर्ममें बुद्धि रखनेवाले वनवासी मुनियोंको वेदीपर सोना, सर्दीके मौसममें जलके भीतर अधिक कालतक बैठना, वर्षाकालमें खुले मैदानमें सोना और ग्रीष्मऋतुमें पञ्चाग्निका सेवन करना चाहिये। वे वायु अथवा जल पीकर रहें, सेवारका भोजन करें, पत्थरसे अन्न या फलको कूँचकर खायँ अथवा दाँतोंसे चबाकर ही भक्षण करें। सम्प्रक्षालके नियमसे रहें अर्थात् दूसरे दिनके लिये आहार संग्रह करके न रखें। चीर, वल्कल और मृगछाला—ये ही उनके वस्त्र होने चाहिये। उन्हें समयके अनुसार धर्मके उद्देश्यसे विधिपूर्वक तीर्थ आदि स्थानोंमें यात्रा करनी चाहिये। वानप्रस्थीको सदा वनमें ही रहना, वनमें ही विचरना, वनमें ही ठहरना, वनके ही मार्गपर चलना और वनमें ही जीवन-निर्वाह करना चाहिये। होम, पञ्चयज्ञका सेवन, पञ्चयज्ञसे बचे हुए अन्नका आहार, वेदोक्त कर्मोंका अनुष्ठान, अष्टका श्राद्ध, चातुर्मास्य यज्ञ, दर्श, पौर्णमास आदि याग और नित्य यज्ञका अनुष्ठान करना उनका धर्म है। वानप्रस्थी मुनि स्त्री-समागम, सब प्रकारके संकट तथा सम्पूर्ण पापोंसे दूर रहकर वनमें विचरते रहते हैं। स्रुवा ही उनका पात्र है। वे सदा आहवनीयादि त्रिविध अग्नियोंकी परिचर्यामें ही लगे रहते हैं और नित्य सन्मार्गपर चलते हैं। इस प्रकार मुनिवृत्तिसे रहनेवाले वे वानप्रस्थी संत परम गतिको प्राप्त होते हैं। वे सत्य-धर्मका आश्रय लेनेवाले और सिद्ध होते हैं, अतः महान् पुण्यमय ब्रह्मलोक तथा सनातन सोमलोकमें गमन करते हैं।

देवि! वानप्रस्थका नियम पालन करनेवाले इन तपस्वियोंमें कुछ तो तपस्यामें संलग्न रहकर सदा स्वच्छन्द विचरनेवाले होते हैं और कुछ अपनी-अपनी स्त्रीके साथ रहते हैं। स्वच्छन्द विचरनेवाले मुनि सिर मुड़ाकर गेरुए वस्त्र पहनते हैं। उनका कोई एक स्थान नहीं होता; किंतु जो स्त्रीके साथ रहते हैं, वे रात्रिको अपने आश्रममें ही ठहरते हैं। दोनों ही प्रकारके ऋषि तीनों समय जलमें स्नान करते, प्रतिदिन अग्निमें आहुति डालते, ऋषियोंके बताये हुए महान् धर्मका पालन करते, समाधि लगाते, सन्मार्गपर चलते और शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं। पहले जो वनवासियोंके धर्म बता आये हैं, उन सबका यदि वे पालन करते हैं तो उन्हें अपनी तपस्याका पूर्ण फल मिलता है। जो मुनि स्त्रीको साथ लिये रहते हैं, वे उसके साथ ही इन्द्रिय-संयमपूर्वक वेदविहित धर्मका आचरण करते हैं। उन धर्मात्माओंको ऋषियोंके बताये हुए धर्मके पालन करनेका फल मिलता है। धर्मपर दृष्टि रखनेवाले मुनिको कामनावश किसी भोगका सेवन नहीं करना चाहिये। जो हिंसादोषसे मुक्त होकर सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय दान कर देता है, उसीको धर्मका फल प्राप्त होता है। जो सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करता, सबके साथ सरलताका बर्ताव रखता और समस्त प्राणियोंको आत्मभावसे देखता है, वही धर्मका फल पाता है। चारों वेदोंमें निष्णात होना और

सब जीवोंके प्रति सरलताका बर्ताव करना—ये दोनों एक समान समझे जाते हैं; बल्कि सरलताका बर्ताव ही विशेष फल देनेवाला है। सरलता धर्म है और कुटिलता अधर्म। सरलभावसे युक्त मनुष्यको ही धर्मका वास्तविक फल मिलता है। जो सरल बर्तावसे प्रेम रखता है, वह देवताओंके समीप निवास करता है; इसलिये जो अपने धर्मका फल पाना चाहता हो, उसे सरलतापूर्ण बर्तावसे युक्त होना चाहिये। क्षमाशील, जितेन्द्रिय, क्रोधको जीतनेवाले, धार्मिकभावसे युक्त, हिंसारहित और धर्ममें मन लगानेवाले मनुष्यको ही धर्मका वास्तविक फल प्राप्त होता है। जो पुरुष आलस्यरहित, धर्मात्मा, सन्मार्गगामी, सच्चरित्र और ज्ञानी होता है, वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।



ऊँच और नीच वर्णकी प्राप्ति करानेवाले तथा बन्धन, मुक्ति एवं स्वर्ग देनेवाले शुभाशुभ कर्मोंका वर्णन

पार्वतीने पूछा—भगवन्! मेरे मनमें एक संशय है,ब्रह्माजीने पूर्वकालमें जिन चार वर्णोंकी सृष्टि की है, उनमेंसे वैश्य, क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण कैसा कर्म करनेके कारण शूद्रयोनिको प्राप्त हो जाते हैं तथा शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय किस प्रकार ब्राह्मणत्वको प्राप्त होते हैं? आप मेरी इस शङ्काका समाधान करें।

महेश्वरने कहा—देवि! ब्राह्मण होना बहुत कठिन है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चारों वर्ण मेरे विचारसे प्राकृतिक (स्वभावसिद्ध) हैं। इतना अवश्य है कि द्विज पापकर्म करनेसे अपने स्थानसे—अपनी महत्तासे नीचे गिर जाता है, अतः द्विजको उत्तम वर्णमें जन्म पाकर अपने पदकी रक्षा करनी चाहिये। यदि क्षत्रिय अथवा वैश्य ब्राह्मणधर्मका पालन करते हुए ब्राह्मणत्वका सहारा लेता है तो वह ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। जो ब्राह्मण स्वधर्मका त्याग करके क्षत्रिय-धर्मका सेवन करता है, वह ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट होकर क्षत्रिय-योनिमें जन्म लेता है। इसी प्रकार जो दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर अपनी मन्दबुद्धिताके कारण लोभ-मोहका आश्रय ले सदा वैश्योंके कर्म करता है, वह वैश्य-योनिमें जन्म लेता है अथवा यदि वैश्य शूद्रके कर्म अपनाता है तो वह भी शूद्रत्वको प्राप्त होता है। ब्राह्मण-जातिका पुरुष यदि शूद्रके कर्म अपनाता है तो जीतेजी ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट होता है और मृत्युके पश्चात् वह ब्रह्मलोककी प्राप्तिसे वञ्चित होकर नरकमें पड़ता है। उसके बाद वह शूद्रकी योनिमें जन्म ग्रहण करता है। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य कोई भी अपने कर्मको छोड़कर शूद्रका काम करने लगे तो वह अपनी जातिसे भ्रष्ट होकर वर्णसंकर हो जाता है और दूसरे जन्ममें शूद्रकी योनिमें जन्म लेता है। जो पुरुष अपने वर्ण-धर्मका पालन करते हुए बोध प्राप्त करता है और ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न, पवित्र तथा धर्मज्ञ होकर धर्ममें ही लगा रहता है, वही धर्मके वास्तविक फलका उपभोग करता है। देवि! ब्रह्माजीने एक बात और बतायी है, धर्मकी इच्छा रखनेवाले सत्पुरुषोंको अध्यात्मज्ञानका सम्पादन करना चाहिये। उग्र स्वभावके मनुष्यका अन्न निन्दित माना गया है। किसी समुदायका, श्राद्धका, जननाशौचका, दुष्ट पुरुषका और शूद्रका अन्न भी निषिद्ध है, उसे कभी नहीं खाना चाहिये—यह पितामहके श्रीमुखका वचन है; अतः इसका प्रमाण अवश्य मानना चाहिये। यदि पेटमें शूद्रका अन्न पड़ा हो और उसी अवस्थामें मृत्यु हो जाय तो वह ब्राह्मण अग्निहोत्री अथवा यज्ञ करनेवाला ही क्यों न रहा हो,उसे शूद्रकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। जो उत्तम और दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर उसकी अवहेलना करता है और नहीं खानेयोग्य अन्न खाता है, वह निश्चय ही ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट हो जाता है। शराबी, ब्रह्महत्यारा, क्षुद्र कर्म करनेवाला, चोर, व्रतभंग करनेवाला, स्वाध्यायहीन, पापी, लोभी, कपटी, शठ, व्रतका पालन न करनेवाला, शूद्र-जातिकी स्त्रीका स्वामी, कुण्डाशी (जिस बर्तनमें भोजन बनावे उसीमें खानेवाला), सोम-रस बेचनेवाला और नीच जातिके मनुष्यकी सेवा करनेवाला ब्राह्मण अपनी जातिसे भ्रष्ट हो जाता है। जो गुरुकी शय्यापर पैर रखता, गुरुसे द्रोह करता और गुरुकी निन्दामें ही लगा रहता है, वह ब्रह्मवेत्ता होनेपर भी ब्राह्मणत्वसे गिर जाता है। इसी प्रकार शुभ कर्मोंके आचरणसे शूद्र भी ब्राह्मणत्वको प्राप्त होता है। साक्षात् ब्रह्माजीका वचन है कि शूद्र भी यदि जितेन्द्रिय होकर पवित्र कर्मोंके अनुष्ठानसे अपने अन्तःकरणको शुद्ध बना लेता है, तो वह द्विजकी ही भाँति सेव्य होता है। मेरा तो ऐसा विचार है कि यदि शूद्रके स्वभाव और कर्म दोनों ही उत्तम हो तो वह द्विजातिसे भी बढ़कर माननेयोग्य है। केवल योनि, संस्कार, शास्त्रज्ञान और संतति—ये ही ब्राह्मणत्वकी प्राप्तिके कारण नहीं हैं,ब्राह्मणत्वका प्रधान हेतु तो सदाचार ही है। सदाचारमें स्थित रहनेवाला

शूद्र भी ब्राह्मणत्वको प्राप्त हो सकता है। ब्रह्मका स्वरूप सर्वत्र समान है। जिसके भीतर उस निर्गुण और निर्मल ब्रह्मका ज्ञान है, वही वास्तवमें ब्राह्मण है। ये जो चारों वर्णोंके स्थान और विभाग दिखलाये गये हैं, इन सबको अपनी उत्पत्तिके अनुसार ही जानना चाहिये। यह बात प्रजाकी सृष्टि करते समय वरदाता ब्रह्माजीने स्वयं ही कही है। अपना कल्याण चाहनेवाले ब्राह्मणको उचित है कि वह सज्जनोंके मार्गका अवलम्बन करके सदा अतिथि और पोष्यवर्गको भोजन करानेके बाद अन्न ग्रहण करे। वेदोक्त पथका आश्रय लेकर उत्तम बर्ताव करे। गृहस्थ ब्राह्मण घरमें रहकर प्रतिदिन संहिताका पाठ और शास्त्रोंका स्वाध्याय करे। अध्ययनको जीविकाका साधन न बनावे। जो ब्राह्मण सन्मार्गपर स्थित हो अग्निहोत्र और स्वाध्यायपूर्वक जीवन व्यतीत करता है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। देवि ! शूद्र धर्माचरण करनेसे जिस प्रकार ब्राह्मणत्वको प्राप्त होता है तथा ब्राह्मण स्वधर्मके त्यागसे जातिभ्रष्ट होकर जिस प्रकार शूद्र हो जाता है—यह गूढ़ रहस्यकी बात मैंने तुम्हें बतला दी।

पार्वतीने पूछा—भगवन् ! अब मुझे मनुष्योंके धर्म और अधर्मका विषय बतलाइये। मनुष्य कैसे कर्मसे बँधते, मुक्त होते अथवा स्वर्गमें जाते हैं ?

महेश्वरने कहा—देवि ! तुम धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाली तथा निरन्तर धर्ममें संलग्न रहनेवाली हो; इसीलिये तुमने यह सब प्राणियोंके लिये हितकारी और बुद्धिको बढ़ानेवाला प्रश्न किया है। अच्छा, अब इसका उत्तर सुनो—जो मनुष्य धर्मसे उपार्जित किये हुए धनको भोगते और सत्यधर्ममें परायण रहते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं। जिनके सब प्रकारके संदेह दूर हो गये हैं, जो प्रलय और उत्पत्तिके तत्त्वको जाननेवाले, सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा हैं, जिनकी आसक्ति दूर हो गयी है तथा जो मन, वाणी और कर्मसे किसी जीवकी हिंसा नहीं करते, वे ही पुरुष कर्म-बन्धनोंसे मुक्त होते हैं। उन्हें न धर्म बाँधता है न अधर्म। जो कहीं आसक्त नहीं होते, किसीके प्राणोंकी हत्यासे दूर रहते हैं तथा जो सुशील और दयालु हैं, वे भी कर्मोंके बन्धनमें नहीं पड़ते। जो शत्रु और मित्रको समान समझनेवाले हैं, वे जितेन्द्रिय पुरुष कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। जो सब प्राणियोंपर दया करनेवाले, सबके विश्वासपात्र तथा हिंसामय आचरणोंको त्याग देनेवाले हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो दूसरोंके धनपर ममता नहीं रखते, परायी स्त्रीसे सदा दूर रहते और धर्मके द्वारा प्राप्त किये हुए अन्नको ही भोजन करते हैं, जिनका दूसरोंकी स्त्रियोंके प्रति माता, बहिन और बेटीके समान भाव रहता है; जो सदा अपने ही धनसे संतुष्ट रहकर चोरी-चमारीसे अलग रहते हैं, जिन्हें सदा अपने भाग्यका ही भरोसा रहता है, जो अपनी ही स्त्रीसे संतुष्ट रहते, ऋतुकालमें ही स्त्री-समागम करते और ग्रामीण सुख-भोगोंमें लिप्त नहीं होते हैं; जो अपनी सच्चरित्रताके कारण परस्त्रियोंकी ओर आँख उठाकर देखतेतक नहीं, जिनकी इन्द्रियाँ काबूमें रहती हैं तथा जो शीलको ही श्रेष्ठ समझकर उसमें स्थित रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं। यह देवताओंका बनाया हुआ मार्ग है। राग और द्वेषको दूर करनेके लिये इस मार्गकी प्रवृत्ति हुई है। विद्वान् पुरुषोंको सदा ही इसका सेवन करना चाहिये। यह मार्ग दान, धर्म और तपस्यासे युक्त है। शील, शौच और दया इसका स्वरूप है। मनुष्यको जीविका, धर्म एवं आत्मोद्धारके लिये सदा ही इस मार्गका आश्रय लेना चाहिये (क्योंकि निष्कामभावसे सेवन किया हुआ धर्म परम कल्याणदायक होता है)।

पार्वतीने पूछा—भूतनाथ ! कैसी वाणी बोलनेसे मनुष्य बन्धनसे छुटकारा पाता है ? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

महेश्वरने कहा—जो मनुष्य अपने या दूसरेके लिये हँसी-परिहासमें भी झूठ नहीं बोलते, आजीविका, धर्म अथवा किसी कामनाके लिये असत्यभाषण नहीं करते, जिनकी वाणी मनको प्रिय लगनेवाली, किसीको दुःख न पहुँचानेवाली, पापपूर्ण विचारोंसे रहित तथा स्वागत-सत्कारके भावसे युक्त रहती है तथा जो कभी रूखी, कड़वी और निष्ठुरतापूर्ण बात मुँहसे नहीं निकालते, वे सज्जन पुरुष स्वर्गमें जाते हैं। जो मनुष्य दूसरोंसे तीखी बात बोलना और द्रोह करना छोड़ देते हैं, सब प्राणियोंको समान भावसे देखते और इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, जिनके मुँहसे कभी शठतापूर्ण बात नहीं निकलती, जो विरोधयुक्त वाणीका परित्याग करते हैं तथा क्रोधमें आनेपर भी जिनके मुँहसे हृदयको विदीर्ण करनेवाली बात नहीं निकलती—जो उस समय भी सान्त्वनापूर्ण वचन ही बोलते हैं, वे स्वर्गको प्राप्त होते हैं। देवि ! यह वाणीका धर्म बतलाया गया है। मनुष्योंको सदा इसका सेवन करना चाहिये। विद्वानोंको सर्वदा शुभ और सत्य वचन बोलना तथा मिथ्याका त्याग करना उचित है। *

पार्वतीने पूछा—भगवन् ! मनुष्य कौन-सा कर्म करनेसे दीर्घायु होता है ? और किस कर्मसे उसकी आयु क्षीण हो जाती है ? संसारमें कितने ही मनुष्य कुलीन होते

* उपर्युक्त कर्मोंका निष्कामभावसे आचरण करनेवाले पुरुषको परमात्मपदकी प्राप्ति हो जाती है।

हैं और कितने ही अकुलीन, कितने ही पण्डित जान पड़ते हैं और कितने ही दुर्बुद्धि। इसी प्रकार बहुतेरे ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न एवं महान् बुद्धिमान् देखे जाते हैं। कितने ही लोगोंपर छोटी-मोटी बाधाएँ आती हैं और कितने ही बड़ी-बड़ी आपत्तियोंके शिकार हुए रहते हैं, इसका क्या कारण है ? यह सब बतानेकी कृपा कीजिये।

महेश्वरने कहा—देवि ! कर्मका फल जिस प्रकार उदय होता है और मर्त्यलोकके सभी मनुष्य जिस प्रकार अपनी-अपनी करनीका फल भोगते हैं, वह सब बता रहा हूँ, सुनो—जो मनुष्य दूसरोंका प्राण लेनेके लिये हाथमें डंडा लिये सदा भयंकर रूप धारण किये रहता है, जो प्रतिदिन हथियार लेकर प्राणियोंकी हत्या किया करता है, जिसके भीतर दया नहीं होती, जो समस्त प्राणियोंको सर्वदा उद्विग्न करता रहता है, जिसकी निर्दयता पराकाष्ठाको पहुँची हुई होती है तथा जो चीटीं और कीड़ोंको भी शरण नहीं देता, वह घोर नरकमें पड़ता है। जिसका स्वभाव इसके विपरीत है, वह पुरुष धर्मात्मा और रूपवान् होता है। हिंसाप्रेमी मनुष्य अपने पाप-कर्मके कारण दूसरोंका वध्य, सब प्राणियोंका अप्रिय तथा अल्पायु होता है। जिसका चित्त हिंसामें लगा होता है, वह नरकमें गिरता है और जो हिंसा नहीं करता, वह स्वर्गमें जाता है। नरकमें पड़े हुए जीवको बड़ी कठोर और भयानक यातना भोगनी पड़ती है। यदि कभी कोई नरकसे छुटकारा पाता है तो मनुष्य-योनिमें जन्म लेता है; किंतु उसकी आयु थोड़ी ही होती है; क्योंकि जिसकी हिंसामें रुचि होती है, वह अपने पाप-कर्मसे बद्ध होनेके कारण सब प्राणियोंका अप्रिय और अल्पायु होता है। इसके विपरीत जो शुद्ध कुलमें उत्पन्न और जीवहिंसासे अलग रहनेवाला है, जिसने शस्त्र और दण्डका परित्याग कर दिया है, जिसके द्वारा कभी किसीकी हिंसा नहीं होती, जो न मारता, न मारनेकी आज्ञा देता और न मारनेवालेका अनुमोदन करता है, जिसके मनमें सब प्राणियोंके प्रति स्नेह बना रहता है तथा जो अपने ही समान दूसरोंपर भी दयादृष्टि रखता है, ऐसा पुरुष देवत्वको प्राप्त होता है अथवा यदि कदाचित् मनुष्यका जन्म मिल जाय तो वह दीर्घायु और सुखी होता है। यह सत्कर्मका अनुष्ठान करनेवाले सदाचारी एवं दीर्घजीवी मनुष्योंका मार्ग है। जीवहिंसाका परित्याग करनेसे इसकी उपलब्धि होती है। स्वयं ब्रह्माजीने इस मार्गका उपदेश किया है।



स्वर्ग और नरककी प्राप्ति करानेवाले कर्मोंका वर्णन

पार्वतीने पूछा—भगवन् ! किस प्रकारके शील, आचरण, कर्म और दानके द्वारा मनुष्य स्वर्गमें जाता है ?

महेश्वरने कहा—देवि ! जो मनुष्य ब्राह्मणोंका सम्मान और दान करता है; दीन, दुःखी और दरिद्र मनुष्योंको भक्ष्य-भोज्य, अन्न-पान और वस्त्र प्रदान करता है; ठहरनेके स्थान, धर्मशाला, कुआँ, प्याऊ और बावड़ी आदि बनवाता है; लेनेवाले लोगोंकी इच्छा पूछ-पूछकर नित्य देनेयोग्य वस्तुएँ दान करता है; आसन, शय्या, सवारी, गृह, रत्न, धन-धान्य, गौ, खेत और कन्याओंका प्रसन्नतापूर्वक दान करता है, वह देवलोकमें निवास करता है और पुण्यकर्मोंका भोग समाप्त होनेपर वहाँसे मनुष्यलोकमें आकर सुख-सामग्रियोंसे सम्पन्न उत्तम कुलमें जन्म लेता है। उसके पास धन-धान्यकी कमी नहीं होती। दान देनेवाले प्राणी ही ऐसे महान् सौभाग्यसे युक्त होते हैं—यह बात ब्रह्माजीने बहुत पहलेसे ही बता रखी है। दाता पुरुष सबके प्रिय होते हैं। इनके सिवा बहुत-से मनुष्य ऐसे होते हैं, जो किसीको कुछ देनेमें कंजूसी करते हैं। वे मन्दबुद्धि पुरुष ब्राह्मणोंके माँगनेपर अपने पास धन होते हुए भी कुछ नहीं देते। दीनों, अंधों, दरिद्रों, भिखमंगों और अतिथियोंको देखते ही हट जाते हैं। उनके याचना करनेपर भी जिह्वाकी लोलुपताके कारण अन्न नहीं देते। कभी भी धन, वस्त्र, भोग, सुवर्ण, गौ और अन्नकी बनी हुई नाना प्रकारकी खाद्य वस्तुओंका दान नहीं करते। इस प्रकारके अधर्मी, लोभी, नास्तिक एवं दानसे जी चुरानेवाले मूर्ख मनुष्य नरकमें पड़ते हैं। यदि कालचक्रके फेरसे वे पुनः मनुष्य-योनिमें जन्म लेते हैं तो निर्धन कुलमें ही उत्पन्न होते हैं। वे हमेशा भूख-प्यासका कष्ट सहते हैं, सब लोग उन्हें अपने समाजसे बाहर कर देते हैं तथा वे सब प्रकारके भोगोंसे निराश होकर पापाचारसे जीविका चलाते हैं अथवा वे थोड़े-से वैभववाले कुलमें उत्पन्न होते और थोड़ेसे ही भोग भोगते हैं।

इनके सिवा, दूसरे भी ऐसे मनुष्य हैं जो सदा गर्व और अभिमानमें फूले और पापमें परायण रहते हैं। जो मूर्ख मार्ग देनेयोग्य पुरुषोंको जानेके लिये मार्ग नहीं देते, पाद्य अर्पण करनेयोग्य पूजनीय व्यक्तियोंको पाद्य (पैर धोनेके लिये जल) नहीं देते, अर्घ्य देनेयोग्य पुरुषोंका विधिवत् सत्कार और पूजन नहीं करते अथवा उन्हें अर्घ्य और आचमनीय नहीं

देते, गुरुके आनेपर प्रेमपूर्वक उनकी पूजा नहीं करते तथा अभिमान और लोभके वशीभूत होकर सम्माननीय पुरुषोंका अपमान एवं वृद्धजनोंका तिरस्कार करते हैं, इस प्रकारके आचरण करनेवाले सभी लोग नरकगामी होते हैं और जब वे नरकसे छुटकारा पाते हैं तो बहुत वर्षोंके बाद अत्यन्त निन्दित कुलमें उत्पन्न होते हैं। गुरु और बड़े-बूढ़ोंका अपमान करनेवाले मनुष्योंका मूर्ख एवं घृणित चाण्डालोंके कुलमें जन्म होता है। जिसमें गर्व और अभिमानका नाम नहीं होता, जो देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, संसारके लोग जिसे पूज्य मानते हैं, जो बड़ोंको प्रणाम करनेवाला, विनयी, मीठे वचन बोलनेवाला, सब वर्णोंका प्रिय और सम्पूर्ण प्राणियोंका हित करनेवाला है, जिसका किसीके साथ द्वेष नहीं है, जिसका मुख प्रसन्न और स्वभाव कोमल है, जो स्वागतपूर्वक स्नेहभरी वाणी बोलता है, किसी भी प्राणीकी हिंसा नहीं करता तथा सबका सत्कार और पूजन करता है, जो मार्ग देनेयोग्य पुरुषको मार्ग देता, गुरुका यथोचित सत्कार करता और अतिथियोंको आमन्त्रित करके उनकी पूजा करता है—ऐसा मनुष्य स्वर्गको प्राप्त होता है। फिर वहाँका भोग समाप्त होनेपर मनुष्य-योनिमें आकर वह उत्तम कुलमें उत्पन्न होता है। वहाँ सब प्राणी उसका आदर करते हैं और सब लोग उसके सामने मस्तक झुकाते हैं। इस प्रकार मनुष्य अपने कर्मोंका फल सदा स्वयं ही भोगता है। धर्मात्मा मनुष्य सर्वदा उत्तम कुल, उत्तम जाति और उत्तम स्थानमें जन्म धारण करता है। यह साक्षात् ब्रह्माजीके बताये हुए धर्मका मैंने वर्णन किया है।

जिस मनुष्यका आचरण क्रूरतासे भरा हुआ है, जो समस्त जीवोंके लिये भयंकर है, जो हाथ, पैर, रस्सी, डंडे और ढेलेसे मारकर, खंभेमें बाँधकर तथा घातक शस्त्रोंका प्रहार करके जीव-जन्तुओंको सताता और भयावह रूप धारण करके उनपर आक्रमण करता है, ऐसे स्वभाववाले मनुष्यको नरकमें गिरना पड़ता है और कालचक्रमें पड़कर यदि वह मनुष्ययोनिमें आता है तो अनेकों प्रकारकी विघ्न-बाधाओंसे कष्ट उठानेवाले अधम कुलमें उत्पन्न होता है, ऐसा मनुष्य अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार जगत्‌में नीच समझा जाता है और सब लोग उससे द्वेष रखते हैं। इसके विपरीत जो मनुष्य सब प्राणियोंके प्रति दयादृष्टि रखता है, सबको मित्र समझता है, सबके ऊपर पिताके समान स्नेह रखता है, किसीके साथ वैर नहीं करता और इन्द्रियोंको वशमें किये रहता है, जो हाथ-पैर आदिको अपने अधीन रखकर किसी भी जीवको न उद्वेगमें डालता और न मारता ही है, सब प्राणी जिसपर विश्वास करते हैं, जो रस्सी, डंडे, ढेले और हथियारसे भी किसी प्राणीको दुःख नहीं पहुँचाता, जिसका कर्म मृदु होता है तथा जो सदा ही दयाभावसे युक्त रहता है, ऐसे स्वभाव और आचरणवाला पुरुष स्वर्गलोकके दिव्य भवनमें देवताओंकी भाँति आनन्दपूर्वक निवास करता है। फिर पुण्यकर्मोंके क्षीण होनेपर यदि वह मृत्युलोकमें जन्म लेता है तो उसके ऊपर बाधाओंका आक्रमण कम होता है। वह निर्भय, सुखी तथा आयास और उद्वेगसे रहित जीवन व्यतीत करता है। देवि ! यह सज्जन पुरुषोंका मार्ग है, जहाँ किसी प्रकारकी विघ्न-बाधा नहीं आने पाती।



पार्वतीजीके द्वारा स्त्री-धर्मका वर्णन

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर, भगवान् शंकरको भी पार्वतीजीके मुँहसे कुछ सुननेकी इच्छा हुई, इसलिये उन्होंने पास ही बैठी हुई अपनी प्रिय एवं अनुकूल भार्या पार्वतीसे कहा—'देवि ! तुम भूत और भविष्यको जाननेवाली, धर्मके तत्त्वका ज्ञान रखनेवाली और स्वयं धर्मका आचरण करनेवाली हो, अतः मैं तुम्हारे मुँहसे स्त्री-धर्मका वर्णन सुनना चाहता हूँ। तुम मेरी सहधर्मिणी हो, तुम्हारा शील, तुम्हारा व्रत तथा तुम्हारे बल और पराक्रम भी मेरे ही समान हैं। तुमने तीव्र तपस्या की है। यदि तुम स्त्री-धर्मका वर्णन करोगी तो वह विशेष लाभदायक होगा और जगत्‌में प्रामाणिक माना जायगा। स्त्रियाँ इसका विशेष आदर करेंगी; क्योंकि स्त्रीवर्गकी परम गति गौरीमें ही प्रतिष्ठित है। संसारमें यह बात सदासे ही विदित है। शुभे ! स्त्रियोंके सनातन कालसे प्रचलित सम्पूर्ण धर्मोंका तुम्हें अच्छी तरह ज्ञान है, अतः तुम स्वधर्म (स्त्री-धर्म) का विस्तारके साथ वर्णन करो।'

पार्वतीने कहा—भगवन् ! आप सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी हैं, आपके प्रभावसे मेरी वाक्-शक्तिमें वह प्रतिभा आ जाय (जिससे मैं आपके प्रश्नका उत्तर दे सकूँ)। यह देखिये, ये नदियाँ सम्पूर्ण तीर्थोंका जल लेकर आपके चरणोंका स्पर्श करनेके लिये आपकी सेवामें उपस्थित हो रही हैं। इन सबके साथ सलाह करके मैं स्त्रियोंके धर्मका वर्णन करूँगी। स्त्री स्त्रीका ही अनुसरण करती है, अतः मैं इन उत्तम सरिताओंका सम्मान करूँगी। ये परम पवित्र सरस्वती नदी हैं, जो सब



नदियोंमें उत्तम हैं। सरिताओंमें सबसे पहले इन्हींका प्रादुर्भाव हुआ है। ये समुद्रमें मिली हुई हैं। इनके सिवा ये विपाशा, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, शतद्रु, देविका, सिन्धु, कौशिकी और गौतमी (गोदावरी) भी यहाँ विराजमान हैं। समस्त सरिताओंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण तीर्थोंके जलसे सम्पन्न ये देवनदी गङ्गाजी हैं, जो आकाशसे भूमिपर उतर आयी हैं।

महादेवजीसे यों कहकर पार्वतीजीने स्त्री-धर्मके ज्ञानमें कुशल गङ्गा आदि श्रेष्ठ नदियोंसे किंचित् मुसकराते हुए पूछा—'सरिताओ ! भगवान् शंकरने मुझसे स्त्री-धर्मके विषयमें प्रश्न किया है, अतः मैं आपलोगोंसे सलाह लेकर उनके प्रश्नका उत्तर देना चाहती हूँ।' इस प्रकार जब पार्वतीजीने उन परम पवित्र और कल्याणमयी सरिताओंसे प्रश्न किया तो सबने मिलकर देवनदी गङ्गाको ही सम्मानित करके उन्हें उत्तर देनेके लिये नियुक्त किया। तब नाना प्रकारकी बुद्धियोंसे सम्पन्न, स्त्री-धर्मको जाननेवाली, पापका भय दूर करनेवाली, परम पवित्र, सब धर्मोंमें कुशल और विनयशीला गङ्गाजी मुसकराकर गिरिराजकुमारी उमासे बोलीं—'देवि ! तुम धर्ममें तत्पर रहनेवाली और सम्पूर्ण जगत्‌की पूजनीया हो। तुम जो यह प्रश्न करके मुझ-जैसी एक साधारण नदीको आदर दे रही हो, इससे मैं अपनेको धन्य और अनुगृहीत समझती हूँ। जो सब कुछ जानते हुए भी दूसरोंसे प्रश्न करता है और शुद्ध हृदयसे उन्हें आदर देता है, वही वास्तवमें पण्डित कहलाता है। जो ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न और ऊहापोहमें कुशल वक्ताओंसे अपने अभीष्ट विषयको पूछ लेता है, वह कभी संकटमें नहीं पड़ता। बुद्धिमान् मनुष्य जब सभामें कुछ बोलता है तो उसकी बातें साधारण मनुष्योंसे विलक्षण—प्रौढ़तासे भरी हुई होती हैं; किंतु बुद्धिहीन अहंकारी मनुष्यकी बात और ही ढंगकी निकलती है, उसमें कुछ दम नहीं रहता। अतः देवि ! तुम दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न हो, इसलिये तुम्हीं हमलोगोंको स्त्री-धर्मका उपदेश करनेयोग्य हो।'

इस प्रकार गङ्गाजीने जब बहुत-से गुणोंका बखान करके पार्वतीजीकी प्रशंसा की तो उन्होंने कहा—'देवि ! मुझे स्त्रियोंके धर्मका जैसा ज्ञान है उसके अनुसार उसका विधिवत् वर्णन करती हूँ, तुम ध्यान देकर सुनो—विवाहके समय कन्याके भाई-बन्धु पहले ही उसे स्त्री-धर्मका उपदेश कर देते हैं जब कि वह अग्निके समीप अपने पतिकी सहधर्मिणी बनती है। जिसके स्वभाव, बातचीत और आचरण उत्तम हों; जिसको देखनेसे भी पतिको सुख मिलता हो; जो अपने पतिके सिवा दूसरे किसी पुरुषमें मन नहीं लगाती और स्वामीके समक्ष सदा प्रसन्नमुख बनी रहती है, वह स्त्री धर्माचरण करनेवाली मानी गयी है। जो साध्वी स्त्री अपने स्वामीको सदा देवतुल्य समझती है, वही धर्मपरायण और वही धर्मके फलकी भागिनी होती है। जो पतिकी देवताके समान सेवा-शुश्रूषा और परिचर्या करती, पतिके सिवा और किसीसे हार्दिक प्रेम नहीं करती, कभी रंज नहीं होती तथा उत्तम व्रतका पालन करती है, जो पुत्रके मुखकी भाँति स्वामीके मुखकी ओर सदा निहारती रहती है और नियमित आहारका सेवन करती है, वह साध्वी स्त्री धर्मचारिणी है। 'पति और पत्नीको एक साथ रहकर धर्मका आचरण करना चाहिये' इस मङ्गलमय दाम्पत्य-धर्मको सुनकर जो स्त्री धर्मपरायण हो जाती है, वह पतिके समान व्रतका पालन करनेवाली (पतिव्रता) है। साध्वी स्त्री सदा अपने पतिको देवताके समान देखती है। पति और पत्नीका यह सहधर्म (साथ-साथ रहकर धर्माचरण करना), रूप, धर्म परम मङ्गलमय है। जो अपने हृदयके अनुरागके कारण स्वामीके अधीन रहती है, अपने चित्तको प्रसन्न रखती है, उत्तम व्रतका पालन करती है और देखनेमें सुखदायक—सुन्दर वेष धारण किये रहती है, जिसका चित्त अपने पतिके सिवा और किसीका चिन्तन नहीं करता, वह प्रसन्नवदन रहनेवाली स्त्री धर्मचारिणी मानी गयी है। जो स्वामीके कठोर वचन कहने या क्रूर दृष्टिसे देखनेपर भी प्रसन्नतासे मुसकराती रहती है, वही स्त्री पतिव्रता है। पतिके सिवा दूसरे किसी पुरुषकी ओर

देखना तो दूर रहा, जो पुरुषके समान नाम धारण करनेवाले चन्द्रमा, सूर्य और किसी वृक्षकी ओर भी दृष्टि नहीं डालती, वही पातिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली है। जो नारी अपने दरिद्र, रोगी, दीन अथवा रास्तेकी थकावटसे खिन्न हुए पतिकी पुत्रके समान सेवा करती है, उसीको धर्मका पूरा-पूरा फल मिलता है। जो स्त्री अपने हृदयको शुद्ध रखती, गृहकार्य करनेमें कुशल होती, पतिसे प्रेम करती और पतिको ही अपने प्राण समझती है, वही धर्मका फल पानेकी अधिकारिणी होती है। जो प्रसन्न चित्तसे पतिकी सेवा-शुश्रूषामें लगी रहती है, पतिके ऊपर पूर्ण विश्वास रखती है और उसके साथ विनययुक्त बर्ताव करती है, वह नारी-धर्मका फल पाती है। जिसके हृदयमें पतिके लिये जैसी चाह होती है वैसी काम, भोग, ऐश्वर्य और सुखके लिये भी नहीं होती, जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठनेमें रुचि रखती, गृहके काम-काजमें योग देती और घरको झाड़-बुहारकर उसे गायके गोबरसे लीप-पोतकर स्वच्छ बनाये रखती है, जो पतिके साथ रहकर नित्य अग्निहोत्र करती, देवताओंको पुष्प और बलि अर्पण करती तथा देवता, अतिथि और सास-ससुर आदि पोष्य-वर्गको भोजन देकर न्याय और विधिके अनुसार शेष अन्नका स्वयं भोजन करती है तथा घरके लोगोंको हृष्ट-पुष्ट एवं संतुष्ट रखती है, वही स्त्री नारी-धर्मका पालन करनेवाली है। जो उत्तम गुणोंसे युक्त होकर सदा सास-ससुरके चरणोंकी सेवामें संलग्न रहती और माता-पिताके प्रति भक्ति रखती है, वह स्त्री तपस्विनी मानी गयी है। जो ब्राह्मणों, दुर्बलों, अनाथों, दीनों, अंधों और कंगालोंको अन्न देकर उनका पालन-पोषण करती है, उसे पातिव्रत-धर्मका फल प्राप्त होता है। जो प्रतिदिन उत्तम व्रतका पालन करती, पतिमें ही मन लगाती और निरन्तर पतिके हित-साधनमें लगी रहती है, उसे पतिव्रता समझना चाहिये। जो नारी पातिव्रत-धर्मका पालन करती हुई स्वामीकी सेवामें तत्पर रहती है, उसका यह कार्य महान् पुण्य, बड़ी भारी तपस्या और अक्षय स्वर्गका साधन है। पति ही स्त्रियोंका देवता, पति ही उनका बन्धु-बान्धव और पति ही उनकी गति है। नारीके लिये पतिकें समान न दूसरा कोई सहारा है, न दूसरा कोई देवता। एक ओर पतिकी प्रसन्नता और दूसरी ओर स्वर्ग; ये दोनों नारीकी दृष्टिमें समान हो सकते हैं या नहीं, इसमें संदेह है। मेरे प्राणनाथ महेश्वर ! मैं तो आपको अप्रसन्न रखकर स्वर्गको भी नहीं चाहती। पति दरिद्र हो जाय, किसी रोगसे घिर जाय, आपत्तिमें फँस जाय, शत्रुओंके बीचमें पड़ जाय अथवा ब्राह्मणके शापसे कष्ट पा रहा हो और उस अवस्थामें वह न करनेयोग्य कार्य, अधर्म अथवा प्राण त्याग देनेकी भी आज्ञा दे तो उसे आपत्तिकालका धर्म समझकर निःशङ्क भावसे तुरंत पूरा करना चाहिये। भगवन् ! आपकी आज्ञासे मैंने यह स्त्री-धर्मका वर्णन किया है। जो स्त्री ऊपर बताये अनुसार अपना जीवन बनाती है, वह पातिव्रत्य-धर्मके फलकी भागिनी होती है।'

पार्वतीजीके द्वारा इस प्रकार नारी-धर्मका वर्णन सुनकर देवाधिदेव महादेवजीने उनकी बड़ी प्रशंसा की तथा वहाँ अनुचरोंके साथ आये हुए सब लोगोंको जानेकी आज्ञा दी। तब समस्त भूतगण, सरिताएँ, गन्धर्व और अप्सराएँ भगवान् शंकरको प्रणाम करके अपने-अपने स्थानको चली गयीं।



भगवान् श्रीकृष्णके माहात्म्यका वर्णन

ऋषियोंने कहा—विश्ववन्दित भगवान् शंकर ! अब हम वासुदेव (श्रीकृष्ण) का माहात्म्य श्रवण करना चाहते हैं।

महेश्वरने कहा—मुनिवरो ! भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्माजीसे भी श्रेष्ठ हैं। वे सनातन पुरुष श्रीहरि कहलाते हैं। उनके शरीरकी कान्ति जाम्बूनद नामक सुवर्णके समान देदीप्यमान है। वे बिना बादलके आकाशमें उदित सूर्यके समान तेजस्वी हैं। उनकी भुजाएँ दस हैं, उनका तेज महान् है। वे देवताओंके शत्रुभूत दैत्योंका नाश करनेवाले हैं। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न शोभा पाता है। वे हृषीक अर्थात् इन्द्रियोंके स्वामी होनेके कारण हृषीकेश कहलाते हैं। सम्पूर्ण देवता उनकी पूजा करते हैं। ब्रह्माजी उनके उदरसे और मैं उनके मस्तकसे प्रकट हुआ हूँ। उनके सिरके बालोंसे नक्षत्र और ताराओंका प्रादुर्भाव हुआ है। देवता और असुर उनके शरीरकी रोमावलियोंसे प्रकट हुए हैं। समस्त ऋषि और सनातन लोक उनके श्रीविग्रहसे उत्पन्न हुए हैं। वे श्रीहरि स्वयं ही सम्पूर्ण देवताओं और ब्रह्माजीके भी धाम हैं। सम्पूर्ण पृथ्वीके स्रष्टा और तीनों लोकोंके स्वामी भी वे ही हैं। वे ही समस्त चराचर प्राणियोंका संहार करते हैं। वे देवताओंमें श्रेष्ठ, देवताओंके रक्षक, शत्रुओंको संताप देनेवाले, सर्वज्ञ, सबमें ओतप्रोत, सर्वव्यापक और सब ओर मुखोंवाले हैं। वे ही परमात्मा, इन्द्रियोंके प्रेरक और सर्वव्यापी महेश्वर हैं। तीनों लोकोंमें उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। वे ही सनातन, मधुसूदन और गोविन्द



आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। सज्जनोंको आदर देनेवाले वे भगवान् श्रीकृष्ण महाभारत-युद्धमें सम्पूर्ण राजाओंका संहार करायेंगे। वे देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये पृथ्वीपर मानव-शरीर धारण करके प्रकट हुए हैं। उनकी शक्ति और सहायताके बिना सम्पूर्ण देवता भी कोई कार्य नहीं कर सकते। संसारमें नेताके बिना देवता कोई भी कार्य करनेमें असमर्थ हैं और यह भगवान् श्रीकृष्ण सब प्राणियोंके नेता हैं, इसलिये समस्त देवता उनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं। देवताओंकी रक्षा और उनके कार्य-साधनमें संलग्न रहनेवाले वे भगवान् वासुदेव ब्रह्मस्वरूप हैं। वे ही ब्रह्मर्षियोंको सदा शरण देते हैं। ब्रह्माजी और मैं—दोनों ही उनके शरीरके भीतर—उनके गर्भमें बड़े सुखके साथ रहते हैं। उनके श्रीविग्रहमें सम्पूर्ण देवता भी सुखपूर्वक निवास करते हैं।

उनकी आँखें कमलके समान सुन्दर हैं। उनके गर्भ (वक्षःस्थल) में लक्ष्मीका वास है। वे सदा लक्ष्मीके साथ निवास करते हैं। शार्ङ्गधनुष, सुदर्शनचक्र और नन्दक नामक खड्ग उनके आयुध हैं। उनकी ध्वजामें गरुडका चिह्न है। वे उत्तम शील, शम, दम, पराक्रम, वीर्य, सुन्दर शरीर, उत्तम दर्शन, सुडौल आकृति, धैर्य, सरलता, कोमलता, रूप और बल आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं। सब प्रकारके दिव्य और अद्भुत अस्त्र-शस्त्र उनके पास सदा मौजूद रहते हैं। वे योगमायासे सम्पन्न और हजारों नेत्रोंवाले हैं। उनका कभी भी विनाश नहीं होता। वे उदार हृदयवाले, वीर, मित्रजनोंके प्रशंसक, ज्ञाति एवं बन्धु-बान्धवोंके प्रिय, क्षमाशील, अहंकाररहित, ब्राह्मणभक्त, वेदोंका उद्धार करनेवाले, भयातुर पुरुषोंका भय दूर करनेवाले और मित्रोंका आनन्द बढ़ानेवाले हैं तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको शरण देनेवाले, दीनोंकी रक्षामें तत्पर, शास्त्रोंके ज्ञाता, अर्थसम्पन्न, सम्पूर्ण जगत्के वन्दनीय, शरणमें आये हुए शत्रुओंको भी वर देनेवाले, धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, नीतिमान्, ब्रह्मवादी और जितेन्द्रिय हैं। उन परमेश्वरकी पूजा करनेसे परम धर्मकी सिद्धि होती है। वे महान् तेजस्वी देवता हैं। उन्होंने प्रजाका हित करनेकी इच्छासे धर्मके लिये करोड़ों ऋषियोंकी सृष्टि की है। उनके उत्पन्न किये हुए वे सनत्कुमार आदि ऋषि आज भी गन्धमादन पर्वतपर रहकर तपस्यामें लगे हुए हैं, इसलिये धर्मको जाननेवाले उत्तम वक्ता भगवान् वासुदेवको सदा प्रणाम करना चाहिये। वे भगवान् नारायण देवलोकमें सबसे श्रेष्ठ हैं। जो उनकी वन्दना करता है, उसकी वे भी वन्दना करते हैं। जो उनका आदर करता है, उसका वे भी आदर करते हैं। इसी प्रकार अर्चित होनेपर अर्चना करते, पूजित होनेपर पूजते, दर्शन करनेवालोंपर सदा कृपादृष्टि रखते और शरणागतोंको शरण प्रदान करते हैं। यह उन आदिदेव भगवान् विष्णुका उत्तम व्रत है। सज्जन पुरुष सदा ही उनके इस व्रतका आचरण करते हैं। वे सनातन देवता हैं। अतः देवगण भी सदा ही उनकी पूजा करते हैं। जो उन भगवान्के अनन्य भक्त हों, वे अपने भजनके अनुरूप ही निर्भय पद प्राप्त करते हैं। द्विजोंको चाहिये कि वे मन, वाणी और कर्मसे सदा उन भगवान्को प्रणाम करें और यत्नपूर्वक उपासना करके उन देवकीनन्दनका दर्शन करें। मुनिवरो ! यह मैंने आपलोगोंको उत्तम मार्ग बता दिया है। केवल भगवान् वासुदेवका दर्शन करनेसे तुम्हें सब देवताओंका दर्शन हो जायगा। मैं भी महावराहरूप धारण करनेवाले उन सर्वलोकपितामह जगदीश्वरको नित्य प्रणाम करता हूँ। हम सब देवता उनके श्रीविग्रहमें निवास करते हैं, अतः उनका दर्शन करनेसे तीनों देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) का दर्शन हो जायगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तपोधनो ! आपलोगोंपर अनुग्रह करके मैंने भगवान्का पवित्र माहात्म्य इसलिये बताया है कि आप प्रयत्नपूर्वक उन यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णकी पूजा करें।

नारदजी कहते हैं—भगवन् ! हिमालयके शिखरपर भगवान् शंकरने हमलोगोंको जिनके माहात्म्यका उपदेश किया था, वे ब्रह्मभूत सनातन पुरुष आप ही हैं। श्रीकृष्ण ! आपके प्रभावमें दूसरी आश्चर्यकी बात यह हुई है कि हम



आपको देखकर विस्मित हुए और हमें पूर्वकालकी बात स्मरण हो आयी। प्रभो ! देवाधिदेव भगवान् शंकरने इस प्रकार आपके माहात्म्यका वर्णन किया था।

तपोवननिवासी ऋषियोंके इस प्रकार कहनेपर देवकीनन्दन श्रीकृष्णने उन सबका विशेष सत्कार किया। तदनन्तर, वे महर्षि पुनः हर्षमें भरकर बोले—'मधुसूदन ! आप हमें बारंबार दर्शन देते रहनेकी कृपा करें। आपका जो यह अवतार अथवा मानव-शरीरमें जन्म हुआ है और इसका जो गुप्त कारण है, वह सब हमलोग अपनी चपलताके कारण छिपानेमें असमर्थ हैं। इसीलिये आपके रहते हुए भी हम छोटे मुँह बड़ी बात कह रहे हैं। पृथ्वीपर अथवा स्वर्गमें कोई भी ऐसी आश्चर्यकी बात नहीं है, जो आपको ज्ञात न हो। आप सब कुछ जानते हैं। अच्छा, अब हमें जानेकी आज्ञा दीजिये।'

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! वे महर्षि उन देवाधिदेव पुरुषोत्तमको प्रणाम और उनकी प्रदक्षिणा करके चले गये। तदनन्तर, परम कान्तिसे देदीप्यमान भगवान् नारायण अपने व्रतको विधिवत् समाप्त करके द्वारकापुरीमें आये। उसके बाद दसवाँ महीना पूर्ण होनेपर रुक्मिणीके गर्भसे एक बड़ा सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। उसकी कान्ति बड़ी अद्भुत थी। वह भगवान्‌का वंश चलानेवाला और शूरवीर है। सम्पूर्ण प्राणियोंके मानसिक संकल्पमें व्याप्त रहनेवाला और देवताओं तथा असुरोंके भी अन्तःकरणमें निवास करनेवाला कामदेव ही श्रीकृष्णके पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुआ है। ये ही वे पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण हैं, जो मेघके समान श्याम वर्ण और चार भुजाधारी हैं। इन्द्र आदि तैंतीस देवता इन्हींके स्वरूप हैं। ये ही सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्रय देनेवाले आदिदेव महादेव हैं। इनका न आदि है न अन्त। ये अव्यक्तस्वरूप महातेजस्वी नारायण देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं। ये दुर्बोध तत्त्वके वक्ता और कर्ता हैं। कुन्तीनन्दन ! तुम्हारी सम्पूर्ण विजय, अतुलनीय कीर्ति और अखिल भूमण्डलका राज्य—सब भगवान् नारायणका आश्रय लेनेसे ही तुम्हें प्राप्त हुए हैं। ये अचिन्त्यस्वरूप नारायण ही तुम्हारे रक्षक और परम गति हैं। तुमने स्वयं होता बनकर प्रलयकालीन अग्निके समान तेजस्वी श्रीकृष्णको स्रुवा बनाया है और इनके द्वारा समराग्निकी ज्वालामें सम्पूर्ण राजाओंकी आहुति दे डाली है। आज दुर्योधन अपने पुत्र, भाई और सम्बन्धियोंसहित शोकके योग्य हो गया है; क्योंकि उस मूर्खने क्रोधके आवेशमें आकर श्रीकृष्ण और अर्जुनसे युद्ध ठाना था। कितने ही विशाल शरीरवाले महाबली दैत्य और दानव दावानलमें दग्ध होनेवाले पतङ्गोंकी तरह श्रीकृष्णकी चक्राग्निमें स्वाहा हो चुके हैं। सत्त्व (धैर्य) शक्ति और बल आदिमें स्वभावतः हीन मनुष्य युद्धमें श्रीकृष्णका मुकाबला नहीं कर सकते। अर्जुन भी योगशक्तिसे सम्पन्न और युगान्तकालकी अग्निके समान तेजस्वी हैं। ये बायें हाथसे भी बाण चलाना जानते हैं और रणभूमिमें सबसे आगे रहते हैं। इन्होंने अपने तेजसे दुर्योधनकी सारी सेनाका संहार कर डाला है, अतः तुम्हें अपने सगे-सम्बन्धियोंके लिये शोक नहीं करना चाहिये।

बेटा ! मैंने इन भगवान् श्रीकृष्णका माहात्म्य जैसा सुना था वह सब तुम्हें कह सुनाया। उनकी महिमाको समझनेके लिये इतना ही पर्याप्त है। सज्जनोंके लिये दिग्दर्शनमात्र अपेक्षित होता है। मैंने व्यासजी और बुद्धिमान् नारदजीके वचन सुनकर परम पूज्य श्रीकृष्ण और महर्षियोंका महान् प्रभाव बतलाया है, साथ ही शिव-पार्वती-संवादका भी वर्णन किया है। जो महापुरुष श्रीकृष्णके इस प्रभावको सुनेगा और याद रखेगा, उसको परम कल्याणकी प्राप्ति होगी। अतः जिसे कल्याणकी इच्छा हो, उस पुरुषको जनार्दनकी शरण लेनी चाहिये। ब्राह्मण भी इन्हीं अक्षय परमात्माकी स्तुति करते हैं। राजन् ! तुम सदा धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते रहो। प्रजाकी रक्षाके लिये जो दण्डका उचित उपयोग किया जाता है, वह धर्म ही कहलाता है। भगवान् शंकरका पार्वतीजीके साथ जो धर्मविषयक संवाद हुआ था, उसे इन

सत्पुरुषोंके निकट मैंने तुम्हें सुना दिया। अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको यह संवाद सुनकर या सुननेकी इच्छा रखकर विशुद्ध भावसे भगवान् शंकरकी पूजा करनी चाहिये। उनकी पूजाका संदेश देवर्षि नारदजीका ही दिया हुआ है, इसलिये तुम भी ऐसा ही करो। भगवान् श्रीकृष्ण और महादेवजीका यह अद्‍भुत वृत्तान्त पूर्वकालमें हिमालय पर्वतपर संघटित हुआ था। कमलनयन श्रीकृष्ण और अर्जुन—ये सत्ययुग आदि तीनों युगोंमें उत्पन्न होनेके कारण त्रियुग कहलाते हैं। देवर्षि नारद तथा व्यासजीने मुझे इन दोनोंके स्वरूपका परिचय दिया था। महाबाहु श्रीकृष्णने तो बचपनमें ही अपने बन्धु-बान्धवोंकी रक्षाके लिये कंसका घोर संहार किया था। ये सनातन पुराणपुरुष हैं, इनके लीला-चरित्रोंकी कोई सीमा या संख्या नहीं बतलायी जा सकती। नरश्रेष्ठ! तुम्हारा तो अवश्य ही कल्याण होगा; क्योंकि ये जनार्दन तुम्हारे सखा हैं। दुर्बुद्धि दुर्योधन यद्यपि परलोकमें चला गया है तो भी मुझे तो उसीके लिये अधिक शोक हो रहा है; क्योंकि उसीके कारण हाथी-घोड़े आदि वाहनोंसहित सारी पृथ्वीका नाश हुआ है। दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण और शकुनि—इन्हीं चारोंके अपराधसे समस्त कौरव मारे गये हैं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—गङ्गानन्दन भीष्मके इस प्रकार कहनेपर महात्मा पुरुषोंके बीचमें बैठे हुए युधिष्ठिर चुप हो गये। भीष्मजीकी बातें सुनकर धृतराष्ट्र आदि राजाओंको बड़ा विस्मय हुआ और वे मन-ही-मन श्रीकृष्णकी पूजा करके उन्हें हाथ जोड़ने लगे। नारद आदि महर्षि भी भीष्मजीके वचन सुनकर उनकी प्रशंसा करते हुए बहुत प्रसन्न हुए। इस प्रकार पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने अपने सब भाइयोंके साथ यह भीष्मजीका सब अनुशासन सुना, जो अत्यन्त आश्चर्यजनक और परम पवित्र है। तदनन्तर, बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंका दान करनेवाले गङ्गानन्दन भीष्मजी जब विश्राम ले चुके तो महाबुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर पुनः प्रश्न करने लगे।



विष्णुसहस्रनाम

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने सम्पूर्ण विधिरूप धर्म तथा पापोंका क्षय करनेवाले धर्मरहस्योंको सब प्रकार सुनकर शान्तनुपुत्र भीष्मसे फिर पूछा।

युधिष्ठिर बोले—समस्त जगत्‌में एक ही देव कौन है? तथा इस लोकमें एक ही परम आश्रय-स्थान कौन है? जिसका साक्षात्कार कर लेनेपर जीवकी अविद्यारूप हृदयग्रन्थि टूट जाती है, सब संशय नष्ट हो जाते हैं तथा सम्पूर्ण कर्म क्षीण हो जाते हैं। किस देवकी स्तुति—गुण-कीर्तन करनेसे तथा किस देवका नाना प्रकारसे बाह्य और आन्तरिक पूजन करनेसे मनुष्य कल्याणकी प्राप्ति कर सकते हैं? आप समस्त धर्मोंमें पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त किस धर्मको परम श्रेष्ठ मानते हैं? तथा किसका जप करनेसे जननधर्मा जीव जन्ममरणरूप संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

भीष्मजीने कहा—स्थावर-जङ्गमरूप संसारके स्वामी, ब्रह्मादि देवोंके देव, देश, काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न, क्षर-अक्षरसे श्रेष्ठ पुरुषोत्तमका सहस्र नामोंके द्वारा निरन्तर तत्पर रहकर गुण-संकीर्तन करनेसे पुरुष सब दुःखोंसे पार हो जाता है तथा उसी विनाशरहित पुरुषका सब समय भक्तिसे युक्त होकर पूजन करनेसे, उसीका ध्यान करनेसे तथा पूर्वोक्त प्रकारसे सहस्रनामोंके द्वारा स्तवन एवं नमस्कार करनेसे पूजा करनेवाला सब दुःखोंसे छूट जाता है। उस जन्म-मृत्यु आदि छः भावविकारोंसे रहित, सर्वव्यापक, सम्पूर्ण लोकोंके महेश्वर, लोकाध्यक्ष देवकी निरन्तर स्तुति करनेसे मनुष्य सब दुःखोंसे पार हो जाता है। जगत्‌की रचना करनेवाले ब्रह्माके तथा ब्राह्मण, तप और श्रुतिके हितकारी, सब धर्मोंको जाननेवाले, प्राणियोंकी कीर्तिको (उनमें अपनी शक्तिसे प्रविष्ट होकर) बढ़ानेवाले, सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी, समस्त भूतोंके उत्पत्ति-स्थान एवं संसारके कारणरूप परमेश्वरका स्तवन करनेसे मनुष्य सब दुःखोंसे छूट जाता है। विधिरूप सम्पूर्ण धर्मोंमें मैं इसी धर्मको सबसे बड़ा मानता हूँ कि मनुष्य अपने हृदयकमलमें विराजमान कमलनयन भगवान् वासुदेवका भक्तिपूर्वक तत्परतासहित गुण-संकीर्तनरूप स्तुतियोंसे सदा अर्चन करे। जो देव परम तेज, परम तप, परम ब्रह्म और परम परायण है, वही समस्त प्राणियोंकी परम गति है। पृथ्वीपते! जो पवित्र करनेवाले तीर्थादिकोंमें परम पवित्र है, मङ्गलोंका मङ्गल है, देवोंका देव है तथा जो भूत-प्राणियोंका अविनाशी पिता है, कल्पके आदिमें जिससे सम्पूर्ण भूत उत्पन्न होते हैं और फिर युगका क्षय होनेपर महाप्रलयमें जिसमें वे विलीन हो जाते हैं, उस लोकप्रधान, संसारके स्वामी, भगवान् विष्णुके पाप और संसारभयको दूर करनेवाले हजार नामोंको मुझसे सुन। जो नाम गुणके कारण प्रवृत्त हुए हैं, उनमेंसे जो-जो प्रसिद्ध हैं और मन्त्रद्रष्टा मुनियोंद्वारा जो जहाँ-तहाँ सर्वत्र भगवत्कथाओंमें गाये गये हैं, उस अचिन्त्यप्रभाव महात्माके उन समस्त नामोंको पुरुषार्थ-सिद्धिके लिये वर्णन करता हूँ।

ॐ सच्चिदानन्दस्वरूप, १ **विश्वम्**—समस्त जगत्के कारणरूप, २ **विष्णुः**—सर्वव्यापी, ३ **वषट्कारः**—जिनके उद्देश्यसे यज्ञमें ४ **भूतभव्यभवत्प्रभुः**—भूत, भविष्यत् और वर्तमानके स्वामी, ५ **भूतकृत्**—रजोगुणका आश्रय लेकर ब्रह्मारूपसे सम्पूर्ण स्वामी, ५ **भूतकृत्**—रजोगुणका आश्रय लेकर ब्रह्मारूपसे सम्पूर्ण भूतोंकी रचना करनेवाले, ६ **भूतभृत्**—सत्त्वगुणका आश्रय लेकर सम्पूर्ण भूतोंका पालन-पोषण करनेवाले, ७ **भावः**—नित्यस्वरूप होते हुए भी स्वतः उत्पन्न होनेवाले, ८ **भूतात्मा**—सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा अर्थात् अन्तर्यामी, ९ **भूतभावनः**— भूतोंकी उत्पत्ति और वृद्धि करनेवाले ॥

१० **पूतात्मा**— पवित्रात्मा, ११ **परमात्मा**— परमश्रेष्ठ नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव, १२ **मुक्तानां परमा गतिः**—मुक्त पुरुषोंकी सर्वश्रेष्ठ गतिस्वरूप, १३ **अव्ययः**— कभी विनाशको प्राप्त न होनेवाले, १४ **पुरुषः**— पुर अर्थात् शरीरमें शयन करनेवाले, १५ **साक्षी**— बिना किसी व्यवधानके सब कुछ देखनेवाले, १६ **क्षेत्रज्ञः**— क्षेत्र अर्थात् समस्त प्रकृतिरूप शरीरको पूर्णतया जाननेवाले १७ **अक्षरः**— कभी क्षीण न होनेवाले ॥

१८ **योगः**— मनसहित सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियोंके निरोधरूप योगसे प्राप्त होनेवाले, १९ **योगविदां नेता**— योगको जाननेवाले भक्तोंके योगक्षेमादिका निर्वाह करनेमें अग्रसर रहनेवाले, २० **प्रधानपुरुषेश्वरः**— प्रकृति और पुरुषके स्वामी, २१ **नारसिंहवपुः**—मनुष्य और सिंह दोनोंके-जैसा शरीर धारण करनेवाले, नरसिंहरूप, २२ **श्रीमान्**— वक्षःस्थलमें सदा श्रीको धारण करनेवाले, २३ **केशवः**—(क) ब्रह्मा, (अ), विष्णु और (ईश) महादेव—इस प्रकार त्रिमूर्तिस्वरूप, २४ **पुरुषोत्तमः**—क्षर और अक्षर इन दोनोंमें सर्वथा उत्तम ॥

२५ **सर्वः**—असत् और सत्—सबकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके स्थान, २६ **शर्वः**— सारी प्रजाका प्रलयकालमें संहार करनेवाले, २७ **शिवः**— तीनों गुणोंसे परे कल्याणस्वरूप, २८ **स्थाणुः**— स्थिर, २९ **भूतादिः**— भूतोंके आदि कारण, ३० **निधिरव्ययः**— प्रलयकालमें सब प्राणियोंके लीन होनेके अविनाशी स्थानरूप, ३१ **सम्भवः**— अपनी इच्छासे भली प्रकार प्रकट होनेवाले, ३२ **भावनः**— समस्त भोक्ताओंके फलोंको उत्पन्न करनेवाले, ३३ **भर्ता**— सबका भरण करनेवाले, ३४ **प्रभवः**—उत्कृष्ट (दिव्य) जन्मवाले, ३५ **प्रभुः**— सबके स्वामी, ३६ **ईश्वरः**— उपाधिरहित ऐश्वर्यवाले ॥

३७ **स्वयम्भूः**—स्वयं उत्पन्न होनेवाले, ३८ **शम्भुः**— भक्तोंके लिये सुख उत्पन्न करनेवाले, ३९ **आदित्यः**— द्वादश आदित्योंमें विष्णुनामक आदित्य, ४० **पुष्कराक्षः**— कमलके समान नेत्रवाले, ४१ **महास्वनः**—वेदरूप अत्यन्त महान् घोषवाले, ४२ **अनादिनिधनः**— जन्म-मृत्युसे रहित, ४३ **धाता**—विश्वको धारण करनेवाले, ४४ **विधाता**—कर्म और उसके फलोंकी रचना करनेवाले, ४५ **धातुरुत्तमः**— कार्यकारणरूप सम्पूर्ण प्रपञ्चको धारण करनेवाले एवं सर्वश्रेष्ठ ॥

४६ **अप्रमेयः**—प्रमाणादिसे जाननेमें न आ सकनेवाले, ४७ **हृषीकेशः**—इन्द्रियोंके स्वामी, ४८ **पद्मनाभः**— जगत्के कारणरूप कमलको अपनी नाभिमें स्थान देनेवाले, ४९ **अमरप्रभुः**— देवताओंके स्वामी, ५० **विश्वकर्मा**—सारे जगत्की रचना करनेवाले, ५१ **मनुः**— प्रजापति मनुरूप, ५२ **त्वष्टा**—संहारके समय सम्पूर्ण प्राणियोंको क्षीण करनेवाले, ५३ **स्थविष्ठः**—अत्यन्त स्थूल, ५४ **स्थविरो ध्रुवः**—अति प्राचीन, एवं अत्यन्त स्थिर ॥

५५ **अग्राह्यः**—मनसे ग्रहण न किये जा सकनेवाले, ५६ **शाश्वतः**—सब कालमें स्थित रहनेवाले, ५७ **कृष्णः**—सबके चित्तको बलात् अपनी ओर आकर्षित करनेवाले श्यामसुन्दर सच्चिदानन्दमय भगवान् श्रीकृष्ण, ५८ **लोहिताक्षः**—लाल नेत्रोंवाले, ५९ **प्रतर्दनः**—प्रलयकालमें प्राणियोंका संहार करनेवाले, ६० **प्रभूतः**—ज्ञान, ऐश्वर्य आदि गुणोंसे सम्पन्न, ६१ **त्रिककुब्धाम**— ऊपर-नीचे और मध्यभेदवाली तीनों दिशाओंके आश्रयरूप, ६२ **पवित्रम्**—सबको पवित्र करनेवाले, ६३ **मङ्गलं परम्**—परम मङ्गल ॥

६४ **ईशानः**—सर्वभूतोंके नियन्ता, ६५ **प्राणदः**—सबको प्राण देनेवाले, ६६ **प्राणः**—सबको जीवित रखनेवाले प्राणस्वरूप, ६७ **ज्येष्ठः**— सबके कारण होनेसे सबसे बड़े, ६८ **श्रेष्ठः**—सबमें उत्कृष्ट होनेसे परम श्रेष्ठ, ६९ **प्रजापतिः**— ईश्वररूपसे सारी प्रजाओंके मालिक, ७० **हिरण्यगर्भः**— ब्रह्माण्डरूप हिरण्यमय अण्डके भीतर ब्रह्मारूपसे व्याप्त होनेवाले, ७१ **भूगर्भः**— पृथ्वीको गर्भमें रखनेवाले, ७२ **माधवः**— लक्ष्मीके पति, ७३ **मधुसूदनः**—मधुनामक दैत्यको मारनेवाले ॥

७४ **ईश्वरः**—सर्वशक्तिमान् ईश्वर, ७५ **विक्रमी**—शूरवीरतासे युक्त, ७६ **धन्वी**— शार्ङ्गधनुष रखनेवाले, ७७ **मेधावी**—अतिशय बुद्धिमान्, ७८ **विक्रमः**— गरुड़ पक्षीद्वारा गमन करनेवाले, ७९ **क्रमः**—क्रम-विस्तारके कारण, ८० **अनुत्तमः**— सर्वोत्कृष्ट, ८१ **दुराधर्षः**—किसीसे भी तिरस्कृत न हो सकनेवाले, ८२ **कृतज्ञः**—अपने निमित्तसे थोड़ा-सा भी त्याग किये जानेपर उसे बहुत माननेवाले यानी पत्र-पुष्पादि थोड़ी-सी वस्तु समर्पण करनेवालोंको भी मोक्ष दे देनेवाले, ८३ **कृतिः**—

पुरुष-प्रयत्नके आधाररूप, ८४ **आत्मवान्**—अपनी ही महिमामें स्थित ॥

८५ **सुरेशः**—देवताओंके स्वामी, ८६ **शरणम्**—दीन-दुःखियोंके परम आश्रय, ८७ **शर्म**— परमानन्दस्वरूप, ८८ **विश्वरेताः**— विश्वके कारण, ८९ **प्रजाभवः**— सारी प्रजाको उत्पन्न करनेवाले, ९० **अहः**— प्रकाशरूप, ९१ **संवत्सरः**— कालस्वरूपसे स्थित, ९२ **व्यालः**— सर्पके समान ग्रहण करनेमें न आ सकनेवाले, ९३ **प्रत्ययः**— उत्तम बुद्धिसे जाननेमें आनेवाले, ९४ **सर्वदर्शनः**—सबके द्रष्टा ॥

९५ **अजः**— जन्मरहित, ९६ **सर्वेश्वरः**— समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर, ९७ **सिद्धः**—नित्य सिद्ध ,९८ **सिद्धिः**— सबके फलरूप, ९९ **सर्वादिः**— सब भूतोंके आदि कारण, १०० **अच्युतः**— अपनी स्वरूप-स्थितिसे कभी त्रिकालमें भी च्युत न होनेवाले, १०१ **वृषाकपिः**— धर्म और वराहरूप, १०२ **अमेयात्मा**— अप्रमेयस्वरूप, १०३ **सर्वयोगविनिःसृतः**— नाना प्रकारके शास्त्रोक्त साधनोंसे जाननेमें आनेवाले ॥

१०४ **वसुः**— सब भूतोंके वासस्थान तथा सब भूतोंमें बसनेवाले, १०५ **वसुमनाः**— उदार मनवाले, १०६ **सत्यः**— सत्यस्वरूप, १०७ **समात्मा**— सम्पूर्ण प्राणियोंमें एक आत्मारूपसे विराजनेवाले, १०८ **असम्मितः**— समस्त पदार्थोंसे मापे न जा सकनेवाले, १०९ **समः**— सब समय समस्त विकारोंसे रहित, ११० **अमोघः**— भक्तोंके द्वारा पूजन, स्तवन अथवा स्मरण किये जानेपर उन्हें वृथा न करके पूर्णरूपसे उनका फल प्रदान करनेवाले, १११ **पुण्डरीकाक्षः**— कमलके समान नेत्रोंवाले, ११२ **वृषकर्मा**— धर्ममय कर्म करनेवाले, ११३ **वृषाकृतिः**— धर्मकी स्थापना करनेके लिये विग्रह धारण करनेवाले ॥

११४ **रुद्रः**— दुःख या दुःखके कारणको दूर भगा देनेवाले, ११५ **बहुशिराः**— बहुत-से सिरोंवाले, ११६ **बभ्रुः**—लोकोंका भरण करनेवाले, ११७ **विश्वयोनिः**— विश्वको उत्पन्न करनेवाले, ११८ **शुचिश्रवाः**— पवित्र कीर्तिवाले, ११९ **अमृतः**— कभी न मरनेवाले, १२० **शाश्वतस्थाणुः**—नित्य-सदा एकरस रहनेवाले एवं स्थिर, १२१ **वरारोहः**— आरूढ़ होनेके लिये परम उत्तम अपुनरावृत्तिस्थानरूप, १२२ **महातपाः**— प्रताप (प्रभाव) रूप महान् तपवाले ॥

१२३ **सर्वगः**— कारणरूपसे सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले, १२४ **सर्वविद्भानुः**— सब कुछ जाननेवाले तथा प्रकाशरूप, १२५ **विष्वक्सेनः**— युद्धके लिये की हुई तैयारीमात्रसे ही दैत्यसेनाको तितर-बितर कर डालनेवाले, १२६ **जनार्दनः**— भक्तोंके द्वारा अभ्युदय—निःश्रेयसरूप परम पुरुषार्थकी याचना किये जानेवाले १२७ **वेदः**— वेदरूप, १२८ **वेदवित्**—वेद तथा वेदके अर्थको यथावत् जाननेवाले, १२९ **अव्यङ्गः**— ज्ञानादिसे परिपूर्ण अर्थात् किसी प्रकार अधूरे न रहनेवाले सर्वाङ्गपूर्ण, १३० **वेदाङ्गः**— वेदरूप अङ्गोंवाले, १३१ **वेदवित्**—वेदोंको विचारनेवाले, १३२ **कविः**— सर्वज्ञ ॥

१३३ **लोकाध्यक्षः**— समस्त लोकोंके अधिपति, १३४ **सुराध्यक्षः**— देवताओंके अध्यक्ष, १३५ **धर्माध्यक्षः**— अनुरूप फल देनेके लिये धर्म और अधर्मका निर्णय करनेवाले, १३६ **कृताकृतः**— कार्यरूपसे कृत और कारणरूपसे अकृत, १३७ **चतुरात्मा**—सृष्टिकी उत्पत्ति आदिके लिये चार पृथक् मूर्तियोंवाले, १३८ **चतुर्व्यूहः**—उत्पत्ति, स्थिति, नाश और रक्षारूप चार व्यूहवाले, १३९ **चतुर्दंष्ट्रः**—चार दाढ़ोंवाले नरसिंहरूप, १४० **चतुर्भुजः**— चार भुजाओंवाले वैकुण्ठवासी भगवान् विष्णु ॥

१४१ **भ्राजिष्णुः**— एकरस, प्रकाशस्वरूप, १४२ **भोजनम्**— ज्ञानियोंद्वारा भोगनेयोग्य अमृतस्वरूप, १४३ **भोक्ता**— पुरुषरूपसे भोक्ता, १४४ **सहिष्णुः**— सहनशील, १४५ **जगदादिजः**-- जगत्के आदिमें हिरण्यगर्भरूपसे स्वयं उत्पन्न होनेवाले, १४६ **अनघः**— पापरहित, १४७ **विजयः**— ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि गुणोंमें सबसे बढ़कर, १४८ **जेता**— स्वभावसे ही समस्त भूतोंको जीतनेवाले, १४९ **विश्वयोनिः**— विश्वके कारण, १५० **पुनर्वसुः**— पुनः-पुनः शरीरोंमें आत्मरूपसे बसनेवाले ॥

१५१ **उपेन्द्रः**— इन्द्रको अनुजरूपसे प्राप्त होनेवाले, १५२ **वामनः**— वामनरूपसे अवतार लेनेवाले, १५३ **प्रांशुः**— तीनों लोकोंको लाँघनेके लिये त्रिविक्रमरूपसे ऊँचे होनेवाले, १५४ **अमोघः**— अव्यर्थ चेष्टावाले, १५५ **शुचिः**— स्मरण, स्तुति और पूजन करनेवालोंको पवित्र कर देनेवाले, १५६ **ऊर्जितः**— अत्यन्त बलशाली, १५७ **अतीन्द्रः**— स्वयंसिद्ध ज्ञान-ऐश्वर्यादिके कारण इन्द्रसे भी बढ़े-चढ़े हुए, १५८ **संग्रहः**— प्रलयके समय सबको समेट लेनेवाले, १५९ **सर्गः**—सृष्टिके कारणरूप, १६० **धृतात्मा**— जन्मादिसे रहित रहकर स्वेच्छासे स्वरूप धारण करनेवाले, १६१ **नियमः**— प्रजाको अपने-अपने अधिकारोंमें नियमित करनेवाले, १६२ **यमः**— अन्तःकरणमें स्थित होकर नियमन करनेवाले ॥

१६३ **वेद्यः**— कल्याणकी इच्छावालोंके द्वारा जानने-योग्य, १६४ **वैद्यः**— सब विद्याओंके जाननेवाले, १६५ **सदा-योगी**— सदा योगमें स्थित रहनेवाले, १६६ **वीरहा**— धर्मकी रक्षाके लिये असुर योद्धाओंको मार डालनेवाले, १६७ **माधवः**— विद्याके स्वामी, १६८ **मधुः**— अमृतकी तरह सबको

प्रसन्न करनेवाले, १६९ **अतीन्द्रियः**— इन्द्रियोंसे सर्वथा अतीत, १७० **महामायः**—मायावियोंपर भी माया डालनेवाले महान् मायावी, १७१ **महोत्साहः**— जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके लिये तत्पर रहनेवाले परम उत्साही, १७२ **महाबलः**—महान् बलशाली ॥

१७३ **महाबुद्धिः**— महान् बुद्धिमान् , १७४ **महावीर्यः**— महान् पराक्रमी, १७५ **महाशक्तिः**— महान् सामर्थ्यवान् , १७६ **महाद्युतिः**— महान् कान्तिमान् , १७७ **अनिर्देश्यवपुः**— अनिर्देश्य विग्रहवाले, १७८ **श्रीमान्**— ऐश्वर्यवान् , १७९ **अमेयात्मा**— जिसका अनुमान न किया जा सके ऐसे आत्मावाले, १८० **महाद्रिधृक्**— अमृतमन्थन और गोरक्षणके समय मन्दराचल और गोवर्धन नामक महान् पर्वतोंको धारण करनेवाले ॥

१८१ **महेष्वासः**—महान् धनुषवाले, १८२ **महीभर्ता**— पृथ्वीको धारण करनेवाले, १८३ **श्रीनिवासः**— अपने वक्षःस्थलमें श्रीको निवास देनेवाले, १८४ **सतां गतिः**— सत्पुरुषोंके आश्रयरूप, १८५ **अनिरुद्धः**— सच्ची भक्तिके बिना किसीके भी द्वारा न रुकनेवाले, १८६ **सुरानन्दः**— देवताओंको आनन्दित करनेवाले, १८७ **गोविन्दः**— वेदवाणीके द्वारा अपनेको प्राप्त करा देनेवाले, १८८ **गोविदां पतिः**— वेदवाणीको जाननेवालोंके स्वामी ॥

१८९ **मरीचिः**—तेजस्वियोंके भी परम तेजरूप, १९० **दमनः**— प्रमाद करनेवाली प्रजाको यम आदिके रूपसे दमन करनेवाले, १९१ **हंसः**— पितामह ब्रह्माको वेदका ज्ञान करानेके लिये हंसरूप धारण करनेवाले, १९२ **सुपर्णः**— सुन्दर पङ्खवाले गरुडस्वरूप, १९३ **भुजगोत्तमः**— सर्पोंमें श्रेष्ठ शेषनागरूप, १९४ **हिरण्यनाभः**— हितकारी और रमणीय नाभिवाले, १९५ **सुतपाः**—बदरिकाश्रममें नर-नारायणरूपसे सुन्दर तप करनेवाले, १९६ **पद्मनाभः**— कमलके समान सुन्दर नाभिवाले, १९७ **प्रजापतिः**— सम्पूर्ण प्रजाओंके स्वामी ॥

१९८ **अमृत्युः**—मृत्युसे रहित, १९९ **सर्वदृक्**— सब कुछ देखनेवाले, २०० **सिंहः**— दुष्टोंका विनाश करनेवाले, २०१ **संधाता**— पुरुषोंको उनके कर्मोंके फलोंसे संयुक्त करनेवाले, २०२ **संधिमान्**— सम्पूर्ण यज्ञ और तपोंको भोगनेवाले, २०३ **स्थिरः**— सदा एकरूप, २०४ **अजः**— भक्तोंके हृदयोंमें जानेवाले तथा दुर्गुणोंको दूर हटा देनेवाले, २०५ **दुर्मर्षणः**— किसीसे भी सहन नहीं किये जा सकनेवाले, २०६ **शास्ता**— सबपर शासन करनेवाले, २०७ **विश्रुतात्मा**— वेद-शास्त्रोंमें विशेषरूपसे प्रसिद्ध स्वरूपवाले, २०८ **सुरारिहा**— देवताओंके शत्रुओंको मारनेवाले ॥

२०९ **गुरुः**— सब विद्याओंका उपदेश करनेवाले, २१० **गुरुतमः**—ब्रह्मा आदिको भी ब्रह्मविद्या प्रदान करनेवाले, २११ **धाम**— सम्पूर्ण प्राणियोंकी कामनाओंके आश्रय, २१२ **सत्यः**—सत्यस्वरूप, २१३ **सत्यपराक्रमः**—अमोघ पराक्रमवाले, २१४ **निमिषः**— योगनिद्रासे मुँदे हुए नेत्रोंवाले, २१५ **अनिमिषः**—मत्स्यरूपसे अवतार लेनेवाले, २१६ **स्रग्वी**—वैजयन्ती माला धारण करनेवाले, २१७ **वाचस्पतिरुदारधीः**—सारे पदार्थोंको प्रत्यक्ष करनेवाली बुद्धिसे युक्त समस्त विद्याओंके पति ॥

२१८ **अग्रणीः**— मुमुक्षुओंको उत्तम पदपर ले जानेवाले, २१९ **ग्रामणीः**— भूतसमुदायके नेता, २२० **श्रीमान्**—सबसे बढ़ी-चढ़ी कान्तिवाले, २२१ **न्यायः**— प्रमाणोंके आश्रयभूत तर्कको मूर्ति, २२२ **नेता**— जगत्‌रूप यन्त्रको चलानेवाले, २२३ **समीरणः**— श्वासरूपसे प्राणियोंसे चेष्टा करानेवाले, २२४ **सहस्रमूर्धा**— हजार सिरवाले, २२५ **विश्वात्मा**— विश्वके आत्मा, २२६ **सहस्राक्षः**— हजार आँखोंवाले, २२७ **सहस्रपात्**—हजार पैरोंवाले ॥

२२८ **आवर्तनः**—संसारचक्रको चलानेके स्वभाववाले, २२९ **निवृत्तात्मा**— संसारबन्धनसे मुक्त आत्मस्वरूप, २३० **संवृतः**— अपनी योगमायासे ढके हुए, २३१ **सम्प्रमर्दनः**—अपने रुद्र आदि स्वरूपसे सबका मर्दन करनेवाले, २३२ **अहःसंवर्तकः**— सूर्यरूपसे सम्यक्तया दिनके प्रवर्तक, २३३ **वह्निः**— हविको वहन करनेवाले अग्निदेव, २३४ **अनिलः**— प्राणरूपसे वायुस्वरूप, २३५ **धरणीधरः**— वराह और शेषरूपसे पृथ्वीको धारण करनेवाले ॥

२३६ **सुप्रसादः**—शिशुपालादि अपराधियोंपर भी कृपा करनेवाले, २३७ **प्रसन्नात्मा**— प्रसन्न स्वभाववाले अर्थात् करुणा करनेवाले, २३८ **विश्वधृक्**— जगत्‌को धारण करनेवाले, २३९ **विश्वभुक्**— विश्वको भोगनेवाले अर्थात् विश्वका पालन करनेवाले, २४० **विभुः**— सर्वव्यापक, २४१ **सत्कर्ता**—भक्तोंका सत्कार करनेवाले, २४२ **सत्कृतः**— पूजितोंसे भी पूजित, २४३ **साधुः**— भक्तोंके कार्य साधनेवाले, २४४ **जह्नुः**—संहारके समय जीवोंका लय करनेवाले, २४५ **नारायणः**— जलमें शयन करनेवाले, २४६ **नरः**—भक्तोंको परम धाममें ले जानेवाले ॥

२४७ **असंख्येयः**— नाम और गुणोंकी संख्यासे शून्य, २४८ **अप्रमेयात्मा**— किसीसे भी मापे न जा सकनेवाले, २४९ **विशिष्टः**— सबसे उत्कृष्ट, २५० **शिष्टकृत्**— शासन करनेवाले, २५१ **शुचिः**— परम शुद्ध, २५२ **सिद्धार्थः**—इच्छित अर्थको सर्वथा सिद्ध कर चुकनेवाले, २५३ **सिद्धसंकल्पः**— सत्य

संकल्पवाले, २५४ **सिद्धिदः**— कर्म करनेवालोंको उनके अधिकारके अनुसार फल देनेवाले, २५५ **सिद्धिसाधनः**— सिद्धिरूप क्रियाके साधक ॥

२५६ **वृषाही**— द्वादशाहादि यज्ञोंको अपनेमें स्थित रखनेवाले, २५७ **वृषभः**— भक्तोंके लिये इच्छित वस्तुओंकी वर्षा करनेवाले, २५८ **विष्णुः**— शुद्ध सत्त्वमूर्ति, २५९ **वृषपर्वा**— परम धाममें आरूढ़ होनेकी इच्छावालोंके लिये धर्मरूप सीढ़ियोंवाले, २६० **वृषोदरः**— अपने उदरमें धर्मको धारण करनेवाले, २६१ **वर्धनः**— भक्तोंको बढ़ानेवाले, २६२ **वर्धमानः**— संसाररूपसे बढ़नेवाले, २६३ **विविक्तः**— संसारसे पृथक् रहनेवाले, २६४ **श्रुतिसागरः**— वेदरूप जलके समुद्र ॥

२६५ **सुभुजः**— जगत्‌की रक्षा करनेवाली अति सुन्दर भुजाओंवाले, २६६ **दुर्धरः**— दूसरोंसे धारण न किये जा सकनेवाले पृथ्वी आदि लोकधारक पदार्थोंको भी धारण करनेवाले और स्वयं किसीसे धारण न किये जा सकनेवाले, २६७ **वाग्मी**— वेदमयी वाणीको उत्पन्न करनेवाले, २६८ **महेन्द्रः**—ईश्वरोंके भी ईश्वर, २६९ **वसुदः**— धन देनेवाले, २७० **वसुः**— धनरूप, २७१ **नैकरूपः**— अनेक रूपधारी, २७२ **बृहद्रूपः**— विश्वरूपधारी, २७३ **शिपिविष्टः**— सूर्यकिरणोंमें स्थित रहनेवाले, २७४ **प्रकाशनः**— सबको प्रकाशित करनेवाले ॥

२७५ **ओजस्तेजोद्युतिधरः**— प्राण और बल, शूरवीरता आदि गुण तथा ज्ञानकी दीप्तिको धारण करनेवाले, २७६ **प्रकाशात्मा**— प्रकाशरूप विग्रहवाले, २७७ **प्रतापनः**— सूर्य आदि अपनी विभूतियोंसे विश्वको तप्त करनेवाले, २७८ **ऋद्धः**— धर्म, ज्ञान और वैराग्यादिसे सम्पन्न, २७९ **स्पष्टाक्षरः**— ओंकाररूप स्पष्ट अक्षरवाले, २८० **मन्त्रः**— ऋक्, साम और यजुरूप मन्त्रोंसे जानने योग्य, २८१ **चन्द्रांशुः**— संसारतापसे संतप्तचित्त पुरुषोंको चन्द्रमाकी किरणोंके समान आह्लादित करनेवाले, २८२ **भास्करद्युतिः**— सूर्यके समान प्रकाशस्वरूप ॥

२८३ **अमृतांशूद्भवः**— समुद्रमन्थन करते समय चन्द्रमाको उत्पन्न करनेवाले समुद्ररूप, २८४ **भानुः**— भासनेवाले, २८५ **शशबिन्दुः**— खरगोशके समान चिह्नवाले चन्द्रमाकी तरह सम्पूर्ण प्रजाका पोषण करनेवाले, २८६ **सुरेश्वरः**— देवताओंके ईश्वर, २८७ **औषधम्**— संसाररोगको मिटानेके लिये औषधरूप, २८८ **जगतः सेतुः**— संसारसागरको पार करानेके लिये सेतुरूप, २८९ **सत्यधर्मपराक्रमः**— सत्यस्वरूप धर्म और पराक्रमवाले ॥

२९० **भूतभव्यभवन्नाथः**— भूत, भविष्य और वर्तमान सभी प्राणियोंके स्वामी, २९१ **पवनः**— वायुरूप, २९२ **पावनः**— दृष्टिमात्रसे जगत्‌को पवित्र करनेवाले, २९३ **अनलः**— अग्निस्वरूप, २९४ **कामहा**— अपने भक्तजनोंके सकामभावको नष्ट करनेवाले, २९५ **कामकृत्**— भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, २९६ **कान्तः**— कमनीयरूप, २९७ **कामः**— (क) ब्रह्मा, (अ) विष्णु, (म) महादेव—इस प्रकार त्रिदेवरूप, २९८ **कामप्रदः**— भक्तोंको उनकी कामना की हुई वस्तुएँ प्रदान करनेवाले, २९९ **प्रभुः**— सर्वोत्कृष्ट सर्वसामर्थ्यवान् स्वामी ॥

३०० **युगादिकृत्**— युगादिका आरम्भ करनेवाले, ३०१ **युगावर्तः**— चारों युगोंको चक्रके समान घुमानेवाले, ३०२ **नैकमायः**— अनेकों मायाओंको धारण करनेवाले, ३०३ **महाशनः**— कल्पके अन्तमें सबको ग्रसन करनेवाले, ३०४ **अदृश्यः**— समस्त ज्ञानेन्द्रियोंके अविषय, ३०५ **व्यक्तरूपः**— स्थूलरूपसे व्यक्त स्वरूपवाले, ३०६ **सहस्रजित्**— युद्धमें हजारों देवशत्रुओंको जीतनेवाले, ३०७ **अनन्तजित्**— युद्ध और क्रीडा आदिमें सर्वत्र समस्त भूतोंको जीतनेवाले ॥

३०८ **इष्टः**— परमानन्दरूप होनेसे सर्वप्रिय, ३०९ **अविशिष्टः**— सम्पूर्ण विशेषणोंसे रहित सर्वश्रेष्ठ, ३१० **शिष्टेष्टः**— शिष्ट पुरुषोंके इष्टदेव, ३११ **शिखण्डी**— मयूरपिच्छको अपना शिरोभूषण बना लेनेवाले, ३१२ **नहुषः**— भूतोंको मायासे बाँधनेवाले, ३१३ **वृषः**— कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, ३१४ **क्रोधहा**— क्रोधका नाश करनेवाले, ३१५ **क्रोधकृत्कर्ता**— दुष्टोंपर क्रोध करनेवाले और जगत्‌को उनके कर्मोंके अनुसार रचनेवाले, ३१६ **विश्वबाहुः**— सब ओर बाहुओंवाले, ३१७ **महीधरः**— पृथ्वीको धारण करनेवाले ॥

३१८ **अच्युतः**— छः भावविकारोंसे रहित, ३१९ **प्रथितः**— जगत्‌की उत्पत्ति आदि कर्मोंके कारण, ३२० **प्राणः**— हिरण्यगर्भरूपसे प्रजाको जीवित रखनेवाले, ३२१ **प्राणदः**— सबको प्राण देनेवाले, ३२२ **वासवानुजः**— वामनावतारमें कश्यपजीद्वारा अदितिसे इन्द्रके अनुजरूपमें उत्पन्न होनेवाले, ३२३ **अपांनिधिः**— जलको एकत्रित रखनेवाले समुद्ररूप, ३२४ **अधिष्ठानम्**— उपादानकारणरूपसे सब भूतोंके आश्रय, ३२५ **अप्रमत्तः**— अधिकारियोंको उनके कर्मानुसार फल देनेमें कभी प्रमाद न करनेवाले, ३२६ **प्रतिष्ठितः**— अपनी महिमामें स्थित ॥

३२७ **स्कन्दः**— स्वामिकार्तिकेयरूप, ३२८ **स्कन्दधरः**— धर्मपथको धारण करनेवाले, ३२९ **धुर्यः**— समस्त भूतोंके जन्मादिरूप धुरको धारण करनेवाले, ३३० **वरदः**— इच्छित वर देनेवाले, ३३१ **वायुवाहनः**— सारे वायुभेदोंको चलानेवाले, ३३२ **वासुदेवः**— समस्त प्राणियोंको अपनेमें बसानेवाले तथा

सब भूतोंमें सर्वात्मारूपसे बसनेवाले, दिव्यस्वरूप, ३३३ **बृहद्भानुः**— महान् किरणोंसे युक्त एवं सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाशित करनेवाले, ३३४ **आदिदेवः**— सबके आदि कारण देव, ३३५ **पुरन्दरः**— असुरोंके नगरोंका ध्वंस करनेवाले ॥

३३६ **अशोकः**— सब प्रकारके शोकसे रहित, ३३७ **तारणः**— संसारसागरसे तारनेवाले, ३३८ **तारः**— जन्म-जरा मृत्युरूप भयसे तारनेवाले, ३३९ **शूरः**— पराक्रमी, ३४० **शौरिः**— शूरवीर श्रीवसुदेवजीके पुत्र, ३४१ **जनेश्वरः**— समस्त जीवोंके स्वामी, ३४२ **अनुकूलः**— आत्मारूप होनेसे सबके अनुकूल, ३४३ **शतावर्तः**— धर्मरक्षाके लिये सैकड़ों अवतार लेनेवाले, ३४४ **पद्मी**— अपने हाथमें कमल धारण करनेवाले, ३४५ **पद्मनिभेक्षणः**— कमलके समान कोमल दृष्टिवाले ॥

३४६ **पद्मनाभः**— कमलको अपनी नाभिमें स्थित रखनेवाले, ३४७ **अरविन्दाक्षः**— कमलके समान आँखोंवाले, ३४८ **पद्मगर्भः**— हृदयकमलमें ध्यान करनेयोग्य, ३४९ **शरीरभृत्**— अन्नरूपसे सबके शरीरोंका भरण करनेवाले, ३५० **महर्द्धिः**— महान् विभूतिवाले, ३५१ **ऋद्धः**— सबमें बढ़े-चढ़े, ३५२ **वृद्धात्मा**— पुरातन आत्मवान्, ३५३ **महाक्षः**— विशाल नेत्रोंवाले, ३५४ **गरुडध्वजः**— गरुडके चिह्नसे युक्त ध्वजावाले ॥

३५५ **अतुलः**— तुलनारहित, ३५६ **शरभः**— शरीरोंको प्रत्यगात्मरूपसे प्रकाशित करनेवाले, ३५७ **भीमः**— जिससे पापियोंको भय हो ऐसे भयानक, ३५८ **समयज्ञः**— समभावरूप यज्ञसे प्राप्त होनेवाले, ३५९ **हविर्हरिः**— यज्ञोंमें हविर्भागको और अपना स्मरण करनेवालोंके पापोंको हरण करनेवाले, ३६० **सर्वलक्षणलक्षण्यः**— समस्त लक्षणोंसे लक्षित होनेवाले, ३६१ **लक्ष्मीवान्**— अपने वक्षःस्थलमें लक्ष्मीजीको सदा बसानेवाले, ३६२ **समितिञ्जयः**— संग्रामविजयी ॥

३६३ **विक्षरः**— नाशरहित, ३६४ **रोहितः**— मत्स्यविशेषका स्वरूप धारण करके अवतार लेनेवाले, ३६५ **मार्गः**— परमानन्द-प्राप्तिके साधनस्वरूप, ३६६ **हेतुः**— संसारके निमित्त और उपादान कारण, ३६७ **दामोदरः**— यशोदाजीद्वारा रस्सीसे बँधे हुए उदरवाले, ३६८ **सहः**— भक्तजनोंके अपराधोंको सहन करनेवाले, ३६९ **महीधरः**— पर्वतरूपसे पृथ्वीको धारण करनेवाले, ३७० **महाभागः**— महान् भाग्यशाली, ३७१ **वेगवान्**— तीव्रगतिवाले, ३७२ **अमिताशनः**— सारे विश्वको भक्षण करनेवाले ॥

३७३ **उद्भवः**— जगत्‌की उत्पत्तिके उपादानकारण, ३७४ **क्षोभणः**— जगत्‌की उत्पत्तिके समय प्रकृति और पुरुषमें प्रविष्ट होकर उन्हें क्षुब्ध करनेवाले, ३७५ **देवः**— प्रकाशस्वरूप, ३७६ **श्रीगर्भः**— सम्पूर्ण ऐश्वर्यको अपने उदरगर्भमें रखनेवाले, ३७७ **परमेश्वरः**— सर्वश्रेष्ठ शासन करनेवाले, ३७८ **करणम्**— संसारकी उत्पत्तिके सबसे बड़े साधन, ३७९ **कारणम्**— जगत्‌के उपादान और निमित्तकारण, ३८० **कर्ता**— सब प्रकारसे स्वतन्त्र, ३८१ **विकर्ता**—विचित्र भुवनोंकी रचना करनेवाले, ३८२ **गहनः**— अपने विलक्षण स्वरूप, सामर्थ्य और लीलादिके कारण पहिचाने न जा सकनेवाले, ३८३ **गुहः**— मायासे अपने स्वरूपको ढक लेनेवाले ॥

३८४ **व्यवसायः**—ज्ञानमात्रस्वरूप, ३८५ **व्यवस्थानः**— लोकपालादिकोंको, समस्त जीवोंको, चारों वर्णाश्रमोंको एवं उनके धर्मोंको व्यवस्थापूर्वक रचनेवाले, ३८६ **संस्थानः**—प्रलयके सम्यक् स्थान, ३८७ **स्थानदः**— ध्रुवादि भक्तोंको स्थान देनेवाले, ३८८ **ध्रुवः**— अविनाशी, ३८९ **परर्द्धिः**— श्रेष्ठ विभूतिवाले, ३९० **परमस्पष्टः**— ज्ञानस्वरूप होनेसे परम स्पष्टरूप, अवतार-विग्रहमें सबके सामने प्रत्यक्ष प्रकट होनेवाले, ३९१ **तुष्टः**— एकमात्र परमानन्दस्वरूप, ३९२ **पुष्टः**—सर्वत्र परिपूर्ण, ३९३ **शुभेक्षणः**— दर्शनमात्रसे कल्याण करनेवाले ॥

३९४ **रामः**— योगीजनोंके रमण करनेके लिये नित्यानन्दस्वरूप, ३९५ **विरामः**— प्रलयके समय प्राणियोंको अपनेमें विराम देनेवाले, ३९६ **विरतः**— रजोगुण तथा तमोगुणसे सर्वथा शून्य, ३९७ **मार्गः**— मुमुक्षुजनोंके अमर होनेके साधनस्वरूप, ३९८ **नेयः**— उत्तम ज्ञानसे ग्रहण करनेयोग्य, ३९९ **नयः**— सबको नियममें रखनेवाले, ४०० **अनयः**— स्वतन्त्र, ४०१ **वीरः**— पराक्रमशाली, ४०२ **शक्तिमतां श्रेष्ठः**— शक्तिमानोंमें भी अतिशय शक्तिमान्, ४०३ **धर्मः**— श्रुति-स्मृतिरूप धर्म, ४०४ **धर्मविदुत्तमः**— समस्त धर्मवेत्ताओंमें उत्तम ॥

४०५ **वैकुण्ठः**— परमधाम स्वरूप, ४०६ **पुरुषः**— विश्वरूप शरीरमें शयन करनेवाले, ४०७ **प्राणः**— प्राणवायुरूपसे चेष्टा करनेवाले, ४०८ **प्राणदः**— सर्गके आदिमें प्राण प्रदान करनेवाले, ४०९ **प्रणवः**— ॐकारस्वरूप, ४१० **पृथुः**— विराट् रूपसे विस्तृत होनेवाले, ४११ **हिरण्यगर्भः**— ब्रह्मारूपसे प्रकट होनेवाले, ४१२ **शत्रुघ्नः**— शत्रुओंको मारनेवाले, ४१३ **व्याप्तः**— कारणरूपसे सब कार्योंको व्याप्त करनेवाले ४१४ **वायुः**— पवनरूप, ४१५ **अधोक्षजः**— अपने स्वरूपसे क्षीण न होनेवाले ॥

४१६ **ऋतुः**— कालरूपसे लक्षित होनेवाले, ४१७ **सुदर्शनः**— भक्तोंको सुगमतासे ही दर्शन दे देनेवाले, ४१८

कालः— सबकी गणना करनेवाले, ४१९ **परमेष्ठी**— अपनी प्रकृष्ट महिमामें स्थित रहनेके स्वभाववाले, ४२० **परिग्रहः**— शरणार्थियोंके द्वारा सब ओरसे ग्रहण किये जानेवाले, ४२१ **उग्रः**— सूर्यादिके भी भयके कारण, ४२२ **संवत्सरः**— सम्पूर्ण भूतोंके वासस्थान, ४२३ **दक्षः**— सब कार्योंको बड़ी कुशलतासे करनेवाले, ४२४ **विश्रामः**— विश्रामकी इच्छावाले मुमुक्षुओंको मोक्ष देनेवाले, ४२५ **विश्वदक्षिणः**— बलिके यज्ञमें समस्त विश्वको दक्षिणारूपमें प्राप्त करनेवाले ॥

४२६ **विस्तारः**— समस्त लोकोंके विस्तारके कारण, ४२७ **स्थावरस्थाणुः**— स्वयं स्थितिशील रहकर पृथ्वी आदि स्थितिशील पदार्थोंको अपनेमें स्थित रखनेवाले, ४२८ **प्रमाणम्**— ज्ञानस्वरूप होनेके कारण स्वयं प्रमाणरूप, ४२९ **बीजमव्ययम्**— संसारके अविनाशी कारण, ४३० **अर्थः**— सुखस्वरूप होनेके कारण सबके द्वारा प्रार्थनीय, ४३१ **अनर्थः**— पूर्णकाम होनेके कारण प्रयोजनरहित, ४३२ **महाकोशः**— बड़े खजानेवाले, ४३३ **महाभोगः**— सुखरूप महान् भोगवाले, ४३४ **महाधनः**— यथार्थ और अतिशय धनस्वरूप ॥

४३५ **अनिर्विण्णः**— उकताहटरूप विकारसे रहित, ४३६ **स्थविष्ठः**— विराट्‌रूपसे स्थित, ४३७ **अभूः**— अजन्मा, ४३८ **धर्मयूपः**— धर्मके स्तम्भरूप, ४३९ **महामखः**— अर्पित किये हुए यज्ञोंको निर्वाणरूप महान् फलदायक बना देनेवाले, ४४० **नक्षत्रनेमिः**— समस्त नक्षत्रोंके केन्द्रस्वरूप, ४४१ **नक्षत्री**— चन्द्ररूप, ४४२ **क्षमः**— समस्त कार्योंमें समर्थ, ४४३ **क्षामः**— समस्त विकारोंके क्षीण हो जानेपर परमात्मभावसे स्थित, ४४४ **समीहनः**—सृष्टि आदिके लिये भलीभाँति चेष्टा करनेवाले ॥

४४५ **यज्ञः**— सर्वयज्ञस्वरूप, ४४६ **इज्यः**— पूजनीय, ४४७ **महेज्यः**— सबसे अधिक उपासनीय, ४४८ **क्रतुः**— यूपसंयुक्त यज्ञस्वरूप, ४४९ **सत्रम्**— सत्पुरुषोंकी रक्षा करनेवाले, ४५० **सतां गतिः**— सत्पुरुषोंके परम प्रापणीय स्थान, ४५१ **सर्वदर्शी**— समस्त प्राणियोंको और उनके कार्योंको देखनेवाले, ४५२ **विमुक्तात्मा**— सांसारिक बन्धनसे रहित आत्मस्वरूप, ४५३ **सर्वज्ञः**— सबको जाननेवाले, ४५४ **ज्ञानमुत्तमम्**—सर्वोत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप ॥

४५५ **सुव्रतः**— प्रणतपालनादि श्रेष्ठ व्रतोंवाले, ४५६ **सुमुखः**—सुन्दर और प्रसन्न मुखवाले, ४५७ **सूक्ष्मः**— अणुसे भी अणु, ४५८ **सुघोषः**— सुन्दर और गंभीर वाणी बोलनेवाले, ४५९ **सुखदः**— अपने भक्तोंको सब प्रकारसे सुख देनेवाले, ४६० **सुहृत्**— प्राणिमात्रपर अहैतुकी दया करनेवाले परम मित्र, ४६१ **मनोहरः**— अपने रूपलावण्य और मधुर भाषणादिसे सबके मनको हरनेवाले, ४६२ **जितक्रोधः**— क्रोधपर विजय करनेवाले अर्थात् अपने साथ अत्यन्त अनुचित व्यवहार करनेवालेपर भी क्रोध न करनेवाले, ४६३ **वीरबाहुः**— अत्यन्त पराक्रमशील भुजाओंसे युक्त, ४६४ **विदारणः**— अधर्मियोंको नष्ट करनेवाले ॥

४६५ **स्वापनः**— प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंको अज्ञाननिद्रामें शयन करानेवाले, ४६६ **स्ववशः**— स्वतन्त्र, ४६७ **व्यापी**— आकाशकी भाँति सर्वव्यापी, ४६८ **नैकात्मा**— प्रत्येक युगमें लोकोद्धारके लिये अनेक रूप धारण करनेवाले, ४६९ **नैककर्मकृत्**— जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयरूप तथा भिन्न-भिन्न अवतारोंमें मनोहर लीलारूप अनेक कर्म करनेवाले, ४७० **वत्सरः**— सबके निवास-स्थान, ४७१ **वत्सलः**— भक्तोंके परम स्नेही, ४७२ **वत्सी**— वृन्दावनमें बछड़ोंका पालन करनेवाले, ४७३ **रत्नगर्भः**— रत्नोंको अपने गर्भमें धारण करनेवाले समुद्ररूप, ४७४ **धनेश्वरः**— सब प्रकारके धनोंके स्वामी ॥

४७५ **धर्मगुप्**— धर्मकी रक्षा करनेवाले, ४७६ **धर्मकृत्**— धर्मकी स्थापनाके लिये स्वयं धर्मका आचरण करनेवाले, ४७७ **धर्मी**—सम्पूर्ण धर्मोंके आधार, ४७८ **सत्**— सत्यस्वरूप, ४७९ **असत्**— स्थूल जगत्स्वरूप, ४८० **क्षरम्**— सर्वभूतमय, ४८१ **अक्षरम्**— अविनाशी, ४८२ **अविज्ञाता**— क्षेत्रज्ञ जीवात्माको विज्ञाता कहते हैं, उनसे विलक्षण भगवान् विष्णु, ४८३ **सहस्रांशुः**—हजारों किरणोंवाले सूर्यस्वरूप, ४८४ **विधाता**— सबको अच्छी प्रकार धारण करनेवाले, ४८५ **कृतलक्षणः**— श्रीवत्स आदि चिह्नोंको धारण करनेवाले ॥

४८६ **गभस्तिनेमिः**— किरणोंके बीचमें सूर्यरूपसे स्थित, ४८७ **सत्त्वस्थः**— अन्तर्यामीरूपसे समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें स्थित रहनेवाले, ४८८ **सिंहः**— भक्त प्रह्लादके लिये नृसिंहरूप धारण करनेवाले, ४८९ **भूतमहेश्वरः**— सम्पूर्ण प्राणियोंके महान् ईश्वर, ४९० **आदिदेवः**— सबके आदि कारण और दिव्यस्वरूप, ४९१ **महादेवः**— ज्ञानयोग और ऐश्वर्य आदि महिमाओंसे युक्त, ४९२ **देवेशः**— समस्त देवोंके स्वामी, ४९३ **देवभृद्गुरुः**— देवोंका विशेषरूपसे भरण-पोषण करनेवाले उनके परम गुरु ॥

४९४ **उत्तरः**— संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाले और सर्वश्रेष्ठ, ४९५ **गोपतिः**— गोपालरूपसे गायोंकी रक्षा करनेवाले, ४९६ **गोप्ता**—समस्त प्राणियोंका पालन और रक्षा करनेवाले, ४९७ **ज्ञानगम्यः**— ज्ञानके द्वारा जाननेमें आनेवाले, ४९८ **पुरातनः**— सदा एकरस रहनेवाले सबके आदि पुराणपुरुष, ४९९ **शरीरभूतभृत्**—शरीरके उत्पादक पञ्च-भूतोंका प्राणरूपसे पालन करनेवाले, ५०० **भोक्ता**—निर-

तिशय आनन्दपुञ्जको भोगनेवाले, ५०१ **कपीन्द्रः**— बंदरोंके स्वामी श्रीराम, ५०२ **भूरिदक्षिणः**— श्रीरामादि अवतारोंमें यज्ञ करते समय बहुत-सी दक्षिणा प्रदान करनेवाले॥

५०३ **सोमपः**— यज्ञोंमें देवरूपसे और यजमानरूपसे सोमरसका पान करनेवाले, ५०४ **अमृतपः**— समुद्रमन्थनसे निकाला हुआ अमृत देवोंको पिलाकर स्वयं पीनेवाले, ५०५ **सोमः**— ओषधियोंका पोषण करनेवाले चन्द्रमारूप, ५०६ **पुरुजित्**— बहुतोंपर विजय लाभ करनेवाले, ५०७ **पुरुसत्तमः**— विश्वरूप और अत्यन्त श्रेष्ठ, ५०८ **विनयः**— दुष्टोंको दण्ड देनेवाले, ५०९ **जयः**— सबपर विजय प्राप्त करनेवाले, ५१० **सत्यसंधः**— सच्ची प्रतिज्ञा करनेवाले, ५११ **दाशार्हः**— दाशार्हकुलमें प्रकट होनेवाले, ५१२ **सात्वतां पतिः**— यादवोंके और अपने भक्तोंके स्वामी यानी उनका योगक्षेम चलानेवाले॥

५१३ **जीवः**— क्षेत्रज्ञरूपसे प्राणोंको धारण करनेवाले, ५१४ **विनयितासाक्षी**— अपने शरणापन्न भक्तोंके विनयभावको तत्काल प्रत्यक्ष अनुभव करनेवाले, ५१५ **मुकुन्दः**— मुक्तिदाता, ५१६ **अमितविक्रमः**— अपार पराक्रमी ५१७ **अम्भोनिधिः**— जलके निधान समुद्रस्वरूप, ५१८ **अनन्तात्मा**— अनन्तमूर्ति, ५१९ **महोदधिशयः**— प्रलयकालके महान् समुद्रमें शयन करनेवाले, ५२० **अन्तकः**— प्राणियोंका संहार करनेवाले मृत्युस्वरूप॥

५२१ **अजः**— जन्मविकाररहित, ५२२ **महार्हः**— पूजनीय, ५२३ **स्वाभाव्यः**— नित्य सिद्ध होनेके कारण स्वभावसे ही न उत्पन्न होनेवाले, ५२४ **जितामित्रः**— रावण-शिशुपालादि शत्रुओंको जीतनेवाले, ५२५ **प्रमोदनः**— स्मरणमात्रसे नित्य प्रमुदित करनेवाले, ५२६ **आनन्दः**— आनन्दस्वरूप, ५२७ **नन्दनः**— सबको प्रसन्न करनेवाले, ५२८ **नन्दः**— सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न, ५२९ **सत्यधर्मा**— धर्मज्ञानादि सब गुणोंसे युक्त, ५३० **त्रिविक्रमः**— तीन डगमें तीनों लोकोंको नापनेवाले॥

५३१ **महर्षिः कपिलाचार्यः**— सांख्यशास्त्रके प्रणेता भगवान् कपिलाचार्य, ५३२ **कृतज्ञः**— किये हुएको जाननेवाले यानी अपने भक्तोंकी सेवाको बहुत मानकर अपनेको उनका ऋणी समझनेवाले, ५३३ **मेदिनीपतिः**— पृथ्वीके स्वामी, ५३४ **त्रिपदः**— त्रिलोकीरूप तीन पैरोंवाले विश्वरूप, ५३५ **त्रिदशाध्यक्षः**— देवताओंके स्वामी, ५३६ **महाशृङ्गः**— मत्स्यावतारमें महान् सींग धारण करनेवाले, ५३७ **कृतान्तकृत्**— स्मरण करनेवालोंके समस्त कर्मोंका अन्त करनेवाले॥

५३८ **महावराहः**— हिरण्याक्षका वध करनेके लिये महावराहरूप धारण करनेवाले, ५३९ **गोविन्दः**— वेदवाणीसे जाननेमें आनेवाले, ५४० **सुषेणः**— पार्षदोंके समुदायरूप सुन्दर सेनासे सुसज्जित, ५४१ **कनकाङ्गदी**— सुवर्णका बाजूबंद धारण करनेवाले, ५४२ **गुह्यः**— हृदयाकाशमें छिपे रहनेवाले, ५४३ **गभीरः**— अतिशय गम्भीर स्वभाववाले, ५४४ **गहनः**— जिनके स्वरूपमें प्रविष्ट होना अत्यन्त कठिन हो—ऐसे, ५४५ **गुप्तः**— वाणी और मनसे जाननेमें न आनेवाले, ५४६ **चक्रगदाधरः**— भक्तोंकी रक्षाके लिये चक्र और गदा आदि दिव्य आयुधोंको धारण करनेवाले॥

५४७ **वेधाः**— सब कुछ विधान करनेवाले, ५४८ **स्वाङ्गः**— कार्य करनेमें स्वयं ही सहकारी, ५४९ **अजितः**— किसीके द्वारा न जीते जानेवाले, ५५० **कृष्णः**— श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण, ५५१ **दृढः**— अपने स्वरूप और सामर्थ्यसे कभी भी च्युत न होनेवाले, ५५२ **संकर्षणोऽच्युतः**— प्रलयकालमें एक साथ सबका संहार करनेवाले और जिनका कभी किसी भी कारणसे पतन न हो सके—ऐसे अविनाशी, ५५३ **वरुणः**— जलके स्वामी वरुणदेवता, ५५४ **वारुणः**— वरुणके पुत्र वसिष्ठस्वरूप, ५५५ **वृक्षः**—अश्वत्थवृक्षरूप, ५५६ **पुष्कराक्षः**— कमलनयन, ५५७ **महामनाः**— संकल्पमात्रसे उत्पत्ति, पालन और संहार आदि समस्त लीला करनेकी शक्तिवाले॥

५५८ **भगवान्**— उत्पत्ति और प्रलय, आना और जाना तथा विद्या और अविद्याको जाननेवाले एवं सर्वैश्वर्यादि छहों भगोंसे युक्त, ५५९ **भगहा**— अपने भक्तोंका प्रेम बढ़ानेके लिये उनके ऐश्वर्यका हरण करनेवाले और प्रलयकालमें सबके ऐश्वर्यको नष्ट करनेवाले, ५६० **आनन्दी**— परमसुखस्वरूप, ५६१ **वनमाली**— वैजयन्ती वनमाला धारण करनेवाले, ५६२ **हलायुधः**—हलरूप शस्त्रको धारण करनेवाले बलभद्रस्वरूप, ५६३ **आदित्यः**— अदितिपुत्र वामनभगवान्, ५६४ **ज्योतिरादित्यः**— सूर्यमण्डलमें विराजमान ज्योतिःस्वरूप, ५६५ **सहिष्णुः**— समस्त द्वन्द्वोंको सहन करनेमें समर्थ, ५६६ **गतिसत्तमः**— सत्पुरुषोंके परम गन्तव्य और सर्वश्रेष्ठ॥

५६७—**सुधन्वा**—अतिशय सुन्दर शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले, ५६८ **खण्डपरशुः**— शत्रुओंका खण्डन करनेवाले फरसेको धारण करनेवाले परशुरामस्वरूप, ५६९ **दारुणः**— सन्मार्गविरोधियोंके लिये महान् भयंकर, ५७० **द्रविणप्रदः**— अर्थार्थी भक्तोंको धन-सम्पत्ति प्रदान करनेवाले, ५७१ **दिवःस्पृक्**— स्वर्गलोकतक व्याप्त, ५७२ **सर्वदृग्व्यासः**—सबके द्रष्टा एवं वेदका विभाग करनेवाले श्रीकृष्ण-द्वैपायनस्वरूप, ५७३ **वाचस्पतिरयोनिजः**— विद्याके स्वामी तथा बिना योनिके स्वयं ही प्रकट होनेवाले॥

५७४ **त्रिसामा**— देवव्रत आदि तीन साम-श्रुतियोंद्वारा जिनकी स्तुति की जाती है—ऐसे परमेश्वर, ५७५ **सामगः**— सामवेदका गान करनेवाले, ५७६ **साम**— सामवेदस्वरूप, ५७७ **निर्वाणम्**— परम शान्तिके निधान परमानन्दस्वरूप, ५७८ **भेषजम्**— संसाररोगकी औषध, ५७९ **भिषक्**—संसार-रोगका नाश करनेके लिये गीतारूप उपदेशामृतका पान करानेवाले—परमवैद्य, ५८० **संन्यासकृत**— मोक्षके लिये संन्यासाश्रम और संन्यास-योगका निर्माण करनेवाले, ५८१ **शमः**— उपशमताका उपदेश देनेवाले, ५८२ **शान्तः**— परमशान्ताकृति, ५८३ **निष्ठा**— सबकी स्थितिके आधार अधिष्ठानस्वरूप, ५८४ **शान्तिः**— परम शान्तिस्वरूप, ५८५ **परायणम्**— मुमुक्षु पुरुषोंके परम प्राप्यस्थान ॥

५८६ **शुभाङ्गः**— अति मनोहर परम सुन्दर अङ्गोंवाले, ५८७ **शान्तिदः**— परम शान्ति देनेवाले, ५८८ **स्रष्टा**— सर्गके आदिमें सबकी रचना करनेवाले, ५८९ **कुमुदः**— पृथ्वीको प्रसन्न करनेवाले, ५९० **कुवलेशयः**— जलमें शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले, ५९१ **गोहितः**— गोपालरूपसे गायोंका और अवतार धारण करके भार उतारकर पृथ्वीका हित करनेवाले, ५९२ **गोपतिः**— पृथ्वीके और गायोंके स्वामी, ५९३ **गोप्ता**— अवतार धारण करके सबके सम्मुख प्रकट होते समय अपनी मायासे अपने स्वरूपको आच्छादित करनेवाले, ५९४ **वृषभाक्षः**— समस्त कामनाओंकी वर्षा करनेवाली कृपादृष्टिसे युक्त, ५९५ **वृषप्रियः**— धर्मसे प्यार करनेवाले ॥

५९६ **अनिवर्ती**— रणभूमिमें और धर्मपालनमें पीछे न हटनेवाले, ५९७ **निवृत्तात्मा**— स्वभावसे ही विषयवासनारहित नित्य शुद्ध मनवाले, ५९८ **संक्षेप्ता**— विस्तृत जगत्‌को क्षणभरमें संक्षिप्त यानी सूक्ष्मरूपमें करनेवाले, ५९९ **क्षेमकृत्**— शरणागतकी रक्षा करनेवाले, ६०० **शिवः**— स्मरणमात्रसे पवित्र करनेवाले कल्याणस्वरूप, ६०१ **श्रीवत्सवक्षाः**— श्रीवत्स नामक चिह्नको वक्षःस्थलमें धारण करनेवाले, ६०२ **श्रीवासः**—श्रीलक्ष्मीजीके वासस्थान, ६०३ **श्रीपतिः**— परमशक्तिरूपा श्रीलक्ष्मीजीके स्वामी, ६०४ **श्रीमतां वरः**—सब प्रकारकी सम्पत्ति और ऐश्वर्यसे युक्त ब्रह्मादि समस्त लोकपालोंसे श्रेष्ठ ॥

६०५ **श्रीदः**— भक्तोंको श्री प्रदान करनेवाले, ६०६ **श्रीशः**— लक्ष्मीके नाथ, ६०७ **श्रीनिवासः**— श्रीलक्ष्मीजीके अन्तःकरणमें नित्य निवास करनेवाले, ६०८ **श्रीनिधिः**— समस्त श्रियोंके आधार, ६०९ **श्रीविभावनः**— सब मनुष्योंके लिये उनके कर्मानुसार नाना प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, ६१० **श्रीधरः**— जगज्जननी श्रीको वक्षःस्थलमें धारण करनेवाले, ६११ **श्रीकरः**— स्मरण, स्तवन और अर्चन आदि करनेवाले भक्तोंके लिये श्रीका विस्तार करनेवाले, ६१२ **श्रेयः**— कल्याणस्वरूप, ६१३ **श्रीमान्**— सब प्रकारकी श्रियोंसे युक्त, ६१४ **लोकत्रयाश्रयः**— तीनों लोकोंके आधार ॥

६१५ **स्वक्षः**— मनोहर कृपाकटाक्षसे युक्त परम सुन्दर आँखोंवाले, ६१६ **स्वङ्गः**— अतिशय कोमल परम सुन्दर मनोहर अङ्गोंवाले, ६१७ **शतानन्दः**— लीलाभेदसे सैकड़ों विभागोंमें विभक्त आनन्दस्वरूप, ६१८ **नन्दी**— परमानन्दविग्रह, ६१९ **ज्योतिर्गणेश्वरः**— नक्षत्रसमुदायोंके ईश्वर, ६२० **विजितात्मा**— जीते हुए मनवाले, ६२१ **अविधेयात्मा**— जिनके असली स्वरूपका किसी प्रकार भी वर्णन नहीं किया जा सके—ऐसे अनिर्वचनीयस्वरूप, ६२२ **सत्कीर्तिः**— सच्ची कीर्तिवाले, ६२३ **छिन्नसंशयः**— हथेलीमें रखे हुए बेरके समान सम्पूर्ण विश्वको प्रत्यक्ष देखनेवाले होनेसे सब प्रकारके संशयोंसे रहित ॥

६२४ **उदीर्णः**— सब प्राणियोंसे श्रेष्ठ, ६२५ **सर्वतश्चक्षुः**— समस्त वस्तुओंको सब दिशाओंमें सदा-सर्वदा देखनेकी शक्तिवाले, ६२६ **अनीशः**— जिनका दूसरा कोई शासक न हो—ऐसे स्वतन्त्र, ६२७ **शाश्वतस्थिरः**— सदा एकरस स्थिर रहनेवाले निर्विकार, ६२८ **भूशयः**— लङ्कागमनके लिये मार्गकी याचना करते समय समुद्रतटकी भूमिपर शयन करनेवाले, ६२९ **भूषणः**— स्वेच्छासे नाना अवतार लेकर अपने चरण-चिह्नोंसे भूमिकी शोभा बढ़ानेवाले, ६३० **भूतिः**— सत्तास्वरूप और समस्त विभूतियोंके आधारस्वरूप, ६३१ **विशोकः**— सब प्रकारसे शोकरहित, ६३२ **शोकनाशनः**—स्मृतिमात्रसे भक्तोंके शोकका समूल नाश करनेवाले ॥

६३३ **अर्चिष्मान्**— चन्द्र-सूर्य आदि समस्त ज्योतियोंको देदीप्यमान करनेवाली अतिशय प्रकाशमय अनन्त किरणोंसे युक्त, ६३४ **अर्चितः**— समस्त लोकोंके पूज्य ब्रह्मादिसे भी पूजे जानेवाले, ६३५ **कुम्भः**— घटकी भाँति सबके निवासस्थान, ६३६ **विशुद्धात्मा**— परम शुद्ध निर्मल आत्मस्वरूप, ६३७ **विशोधनः**— स्मरणमात्रसे समस्त पापोंका नाश करके भक्तोंके अन्तःकरणको परम शुद्ध कर देनेवाले, ६३८ **अनिरुद्धः**— जिनको कोई बाँधकर नहीं रख सके—ऐसे चतुर्व्यूहमें अनिरुद्धस्वरूप, ६३९ **अप्रतिरथः**— प्रतिपक्षसे रहित, ६४० **प्रद्युम्नः**— परमश्रेष्ठ अपार धनसे युक्त चतुर्व्यूहमें प्रद्युम्नस्वरूप, ६४१ **अमितविक्रमः**— अपार पराक्रमी ॥

६४२ **कालनेमिनिहा**— कालनेमि नामक असुरको मारनेवाले, ६४३ **वीरः**— परम शूरवीर, ६४४ **शौरिः**— शूरकुलमें उत्पन्न होनेवाले श्रीकृष्णस्वरूप, ६४५ **शूरजनेश्वरः**—

इन्द्रादि शूरवीरोंके भी अतिशय शूरवीरताके कारण इष्ट, ६४६ **त्रिलोकात्मा**— अन्तर्यामीरूपसे तीनों लोकोंके आत्मा, ६४७ **त्रिलोकेशः**— तीनों लोकोंके स्वामी, ६४८ **केशवः**—सूर्यकी किरणरूप केशवाले, ६४९ **केशिहा**— केशी नामके असुरको मारनेवाले, ६५० **हरिः**— स्मरणमात्रसे समस्त पापोंका और समूल संसारका हरण करनेवाले ॥

६५१ **कामदेवः**— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको चाहनेवाले मनुष्योंद्वारा अभिलषित समस्त कामनाओंके अधिष्ठाता परमदेव, ६५२ **कामपालः**— सकामी भक्तोंकी कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले, ६५३ **कामी**— स्वभावसे ही पूर्णकाम और अपने प्रियतमोंको चाहनेवाले, ६५४ **कान्तः**— परम मनोहर श्यामसुन्दर देह धारण करनेवाले गोपीजनवल्लभ, ६५५ **कृतागमः**— समस्त शास्त्रोंको रचनेवाले, ६५६ **अनिर्देश्यवपुः**— जिनके दिव्य स्वरूपका किसी प्रकार भी वर्णन नहीं किया जा सके—ऐसे अनिर्वचनीय शरीरवाले, ६५७ **विष्णुः**— शेषशायी भगवान् विष्णु, ६५८ **वीरः**— बिना ही पैरोंके गमन करने आदि अनेक दिव्य शक्तियोंसे युक्त, ६५९ **अनन्तः**— जिनके स्वरूप, शक्ति, ऐश्वर्य, सामर्थ्य और गुणोंका कोई भी पार नहीं पा सकता—ऐसे अविनाशी गुण, प्रभाव और शक्तियोंसे युक्त, ६६० **धनञ्जयः**— अर्जुनरूपसे दिग्विजयके समय बहुत-सा धन जीतकर लानेवाले ॥

६६१ **ब्रह्मण्यः**—तप,वेद, ब्राह्मण और ज्ञानकी रक्षा करनेवाले, ६६२ **ब्रह्मकृत्**— पूर्वोक्त तप आदिकी रचनावाले, ६६३ **ब्रह्मा**— ब्रह्मारूपसे जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले, ६६४ **ब्रह्म**— सच्चिदानन्दस्वरूप, ६६५ **ब्रह्मविवर्धनः**— पूर्वोक्त ब्रह्मशब्दवाची तप आदिकी वृद्धि करनेवाले, ६६६ **ब्रह्मवित्**— वेद और वेदार्थको पूर्णतया जाननेवाले, ६६७ **ब्राह्मणः**— समस्त वस्तुओंको ब्रह्मरूपसे देखनेवाले, ६६८ **ब्रह्मी**— ब्रह्मशब्दवाची तपादि समस्त पदार्थोंके अधिष्ठान, ६६९ **ब्रह्मज्ञः**— अपने आत्मस्वरूप ब्रह्मशब्दवाची वेदको पूर्णतया यथार्थ जाननेवाले, ६७० **ब्राह्मणप्रियः**— ब्राह्मणोंके परम प्रिय और ब्राह्मणोंको अतिशय प्रिय माननेवाले ॥

६७१ **महाक्रमः**— बड़े वेगसे चलनेवाले, ६७२ **महाकर्मा**— भिन्न-भिन्न अवतारोंमें नाना प्रकारके महान् कर्म करनेवाले, ६७३ **महातेजाः**— जिसके तेजसे समस्त तेजस्वी देदीप्यमान होते हैं—ऐसे महान् तेजस्वी, ६७४ **महोरगः**— बड़े भारी सर्प यानी वासुकिस्वरूप, ६७५ **महाक्रतुः**— महान् यज्ञस्वरूप, ६७६ **महायज्वा**— बड़े यजमान यानी लोकसंग्रहके लिये बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले, ६७७ **महायज्ञः**— जपयज्ञ आदि भगवत्प्राप्तिके साधनरूप समस्त यज्ञ जिनकी विभूतियाँ हैं—ऐसे महान् यज्ञस्वरूप, ६७८ **महाहविः**— ब्रह्मरूप अग्निमें हवन किये जानेयोग्य प्रपञ्चरूप हवि जिनका स्वरूप है—ऐसे महान् हविःस्वरूप ॥

६७९ **स्तव्यः**— सबके द्वारा स्तुति किये जानेयोग्य, ६८० **स्तवप्रियः**— स्तुतिसे प्रसन्न होनेवाले, ६८१ **स्तोत्रम्**— जिसके द्वारा भगवान्‌के गुण-प्रभावका कीर्तन किया जाता है, वह स्तोत्र, ६८२ **स्तुतिः**— स्तवनक्रियास्वरूप, ६८३ **स्तोता**—स्तुति करनेवाले, ६८४ **रणप्रियः**— युद्धसे प्रेम करनेवाले, ६८५ **पूर्णः**— समस्त ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य और गुणोंसे परिपूर्ण, ६८६ **पूरयिता**— अपने भक्तोंको सब प्रकारसे परिपूर्ण करनेवाले, ६८७ **पुण्यः**— स्मरणमात्रसे पापोंका नाश करनेवाले पुण्यस्वरूप, ६८८ **पुण्यकीर्तिः**— परमपावन कीर्तिवाले, ६८९ **अनामयः**— आन्तरिक और बाह्य सब प्रकारकी व्याधियोंसे रहित ॥

६९० **मनोजवः**— मनकी भाँति वेगवाले, ६९१ **तीर्थकरः**— समस्त विद्याओंके रचयिता और उपदेशकर्ता, ६९२ **वसुरेताः**— हिरण्यमय पुरुष (प्रथम पुरुष-सृष्टिका बीज) जिनका वीर्य है—ऐसे सुवर्णवीर्य, ६९३ **वसुप्रदः**—प्रचुर धन प्रदान करनेवाले, ६९४ **वसुप्रदः** अपने भक्तोंको मोक्षरूप महान् धन देनेवाले, ६९५ **वासुदेवः**— वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण, ६९६ **वसुः**— समस्त प्राणियोंके वासस्थान और सबके अन्तःकरणमें निवास करनेवाले, ६९७ **वसुमनाः**— समानभावसे सबमें निवास करनेकी शक्तिसे युक्त मनवाले, ६९८ **हविः**— यज्ञमें हवन किये जानेयोग्य हविःस्वरूप ॥

६९९ **सद्‌गतिः**— सत्पुरुषोंद्वारा प्राप्त किये जानेयोग्य गतिस्वरूप, ७०० **सत्कृतिः**— जगत्‌की रक्षा आदि सत्कार्य करनेवाले, ७०१ **सत्ता**— सदा-सर्वदा विद्यमान सत्तास्वरूप, ७०२ **सद्‌भूतिः**— बहुत प्रकारसे बहुत रूपोंमें भासित होनेवाले, ७०३ **सत्परायणः**— सत्पुरुषोंके परम प्रापणीय स्थान, ७०४ **शूरसेनः**— हनुमानादि श्रेष्ठ शूरवीर योद्धाओंसे युक्त सेनावाले, ७०५ **यदुश्रेष्ठः**—यदुवंशियोंमें सर्वश्रेष्ठ, ७०६ **सन्निवासः**— सत्पुरुषोंके आश्रय, ७०७ **सुयामुनः**— जिनके परिकर यमुनातटनिवासी गोपालबाल आदि अति सुन्दर हैं, ऐसे श्रीकृष्ण ॥

७०८ **भूतावासः**— समस्त प्राणियोंके मुख्य निवासस्थान, ७०९ **वासुदेवः**— अपनी मायासे जगत्‌को आच्छादित करनेवाले परम देव, ७१० **सर्वासुनिलयः**— समस्त प्राणियोंके आधार, ७११ **अनलः**— अपार शक्ति और सम्पत्तिसे युक्त, ७१२ **दर्पहा**— धर्मविरुद्ध मार्गमें चलनेवालोंके घमण्डको नष्ट करनेवाले, ७१३ **दर्पदः**— अपने भक्तोंको विशुद्ध गौरव देनेवाले, ७१४ **दृप्तः**— नित्यानन्दमग्न, ७१५ **दुर्धरः**— बड़ी कठिनतासे

हृदयमें धारित होनेवाले, ७१६ **अपराजितः**— किसी प्रकार भी जीतनेमें न आनेवाले ।।

७१७ **विश्वमूर्तिः**— समस्त विश्व ही जिनकी मूर्ति है—ऐसे विराट्स्वरूप, ७१८ **महामूर्तिः**— बड़े रूपवाले, ७१९ **दीप्तमूर्तिः**— स्वेच्छासे धारण किये हुए देदीप्यमान स्वरूपसे युक्त ७२० **अमूर्तिमान्**— जिनकी कोई मूर्ति नहीं—ऐसे निराकार, ७२१ **अनेकमूर्तिः**— नाना अवतारोंमें स्वेच्छासे लोगोंका उपकार करनेके लिये बहुत मूर्तियोंको धारण करनेवाले, ७२२ **अव्यक्तः**— अनेक मूर्ति होते हुए भी जिनका स्वरूप किसी प्रकार व्यक्त न किया जा सके—ऐसे अप्रकटस्वरूप, ७२३ **शतमूर्तिः**— सैकड़ों मूर्तियोंवाले, ७२४ **शताननः**— सैकड़ों मुखोंवाले ॥

७२५ **एकः**— सब प्रकारके भेदभावोंसे रहित अद्वितीय, ७२६ **नैकः**— उपाधिभेदसे अनेक, ७२७ **सवः**— जिसमें सोमनामकी ओषधिका रस निकाला जाता है—ऐसे यज्ञस्वरूप, ७२८ **कः**— सुखस्वरूप, ७२९ **किम्**— विचारणीय ब्रह्मस्वरूप, ७३० **यत्**— स्वतःसिद्ध, ७३१ **तत्**— विस्तार करनेवाले, ७३२ **पदमनुत्तमम्**— मुमुक्षु पुरुषोंद्वारा प्राप्त किये जानेयोग्य अत्युत्तम परमपद, ७३३ **लोकबन्धुः**— समस्त प्राणियोंके हित करनेवाले परम मित्र, ७३४ **लोकनाथः**— सबके द्वारा याचना किये जानेयोग्य लोकस्वामी, ७३५ **माधवः**— मधुकुलमें उत्पन्न होनेवाले, ७३६ **भक्तवत्सलः**— भक्तोंसे प्रेम करनेवाले ॥

७३७ **सुवर्णवर्णः**— सोनेके समान पीतवर्णवाले, ७३८ **हेमाङ्गः**— सोनेके समान सुडौल चमकीले अङ्गोंवाले, ७३९ **वराङ्गः**— परम श्रेष्ठ अङ्ग-प्रत्यङ्गोंवाले, ७४० **चन्दनाङ्गदी**— चन्दनके लेप और बाजूबन्दसे सुशोभित, ७४१ **वीरहा**— धर्मकी रक्षाके लिये असुरवीरोंको मारनेवाले, ७४२ **विषमः**— जिनके समान दूसरा कोई नहीं—ऐसे अनुपम, ७४३ **शून्यः**— समस्त विशेषणोंसे रहित, ७४४ **घृताशीः**— अपने आश्रित जनोंके लिये कृपासे सने हुए द्रवित संकल्प करनेवाले, ७४५ **अचलः**— किसी प्रकार भी विचलित न होनेवाले अविचल, ७४६ **चलः**— वायुरूपसे सर्वत्र गमन करनेवाले ॥

७४७ **अमानी**— स्वयं मान न चाहनेवाले अभिमानरहित, ७४८ **मानदः**— दूसरोंको मान देनेवाले, ७४९ **मान्यः**— सबके पूजनेयोग्य माननीय, ७५० **लोकस्वामी**— चौदह भुवनोंके स्वामी, ७५१ **त्रिलोकधृक्**— तीनों लोकोंको धारण करनेवाले, ७५२ **सुमेधाः**— अति उत्तम सुन्दर बुद्धिवाले, ७५३ **मेधजः**— यज्ञमें प्रकट होनेवाले, ७५४ **धन्यः**— नित्य कृतकृत्य होनेके कारण सर्वथा धन्यवादके पात्र, ७५५ **सत्यमेधाः**— सच्ची और श्रेष्ठ बुद्धिवाले, ७५६ **धराधरः**— अनन्त भगवान्‌के रूपसे पृथ्वीको धारण करनेवाले ॥

७५७ **तेजोवृषः**— आदित्यरूपसे तेजकी वर्षा करनेवाले और भक्तोंपर अपने अमृतमय तेजकी वर्षा करनेवाले, ७५८ **द्युतिधरः**— परम कान्तिको धारण करनेवाले, ७५९ **सर्वशस्त्रभृतां वरः**— समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, ७६० **प्रग्रहः**— भक्तोंके द्वारा अर्पित पत्र-पुष्पादिको ग्रहण करनेवाले, ७६१ **निग्रहः**— सबका निग्रह करनेवाले, ७६२ **व्यग्रः**— अपने भक्तोंको अभीष्ट फल देनेमें लगे हुए, ७६३ **नैकशृङ्गः**— नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपातरूप चार सींगोंको धारण करनेवाले शब्दब्रह्मस्वरूप, ७६४ **गदाग्रजः**— गदसे पहले जन्म लेनेवाले ॥

७६५ **चतुर्मूर्तिः**— राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्नरूप चार मूर्तियोंवाले, ७६६ **चतुर्बाहुः**— चार भुजाओंवाले, ७६७ **चतुर्व्यूहः**— वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूहोंसे युक्त, ७६८ **चतुर्गतिः**— सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्यरूप चार परम गतिस्वरूप, ७६९ **चतुरात्मा**—मन, बुद्धि, अहंकार और चित्तरूप चार अन्तःकरणवाले, ७७० **चतुर्भावः**— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंके उत्पत्तिस्थान, ७७१ **चतुर्वेदवित्**— चारों वेदोंके अर्थको भलीभाँति जाननेवाले, ७७२ **एकपात्**— एक पादवाले यानी एक पाद (अंश) से समस्त विश्वको व्याप्त करनेवाले ॥

७७३ **समावर्तः**— संसारचक्रको भलीभाँति घुमानेवाले, ७७४ **निवृत्तात्मा**— स्वभावसे ही विषय-वासनारहित मनवाले, ७७५ **दुर्जयः**— किसीसे भी जीतनेमें न आनेवाले, ७७६ **दुरतिक्रमः**— जिनकी आज्ञाका कोई उल्लङ्घन नहीं कर सके ऐसे, ७७७ **दुर्लभः**— बिना भक्तिके प्राप्त न होनेवाले, ७७८ **दुर्गमः**— कठिनतासे जाननेमें आनेवाले, ७७९ **दुर्गः**— कठिनतासे प्राप्त होनेवाले, ७८० **दुरावासः**— बड़ी कठिनतासे योगीजनोंद्वारा हृदयमें बसाये जानेवाले, ७८१ **दुरारिहा**— दुष्ट मार्गमें चलनेवाले दैत्योंका वध करनेवाले ॥

७८२ **शुभाङ्गः**— सुन्दर अङ्ग-प्रत्यङ्गोंवाले, ७८३ **लोकसारङ्गः**— लोकोंके सारको ग्रहण करनेवाले, ७८४ **सुतन्तुः**— सुन्दर विस्तृत जगत्‌रूप तन्तुवाले, ७८५ **तन्तुवर्धनः**— पूर्वोक्त जगत्-तन्तुको बढ़ानेवाले, ७८६ **इन्द्रकर्मा**— इन्द्रके समान कर्मवाले, ७८७ **महाकर्मा**— बड़े-बड़े कर्म करनेवाले, ७८८ **कृतकर्मा**— जो समस्त कर्तव्यकर्म कर चुके हों, जिनका कोई कर्तव्य शेष न रहा हो—ऐसे कृतकृत्य, ७८९ **कृतागमः**— आगमरूप वेदोंको बनानेवाले ॥

७९० **उद्भवः**— स्वेच्छासे श्रेष्ठ जन्म धारण करनेवाले, ७९१ **सुन्दरः**—सबसे अधिक भाग्यशाली होनेके कारण परम

सुन्दर, ७९२ **सुन्दः**— परम करुणाशील, ७९३ **रत्ननाभः**— रत्नके समान सुन्दर नाभिवाले, ७९४ **सुलोचनः**— सुन्दर नेत्रोंवाले, ७९५ **अर्कः**— ब्रह्मादि पूज्य पुरुषोंके भी पूजनीय, ७९६ **वाजसनः**— याचकोंको अन्न प्रदान करनेवाले, ७९७ **शृङ्गी**— प्रलयकालमें सींगयुक्त मत्स्यविशेषका रूप धारण करनेवाले, ७९८ **जयन्तः**— शत्रुओंको पूर्णतया जीतनेवाले, ७९९ **सर्वविज्जयी**— सर्वज्ञ यानी सब कुछ जाननेवाले और सबको जीतनेवाले ॥

८०० **सुवर्णबिन्दुः**— सुन्दर अक्षर और बिन्दुसे युक्त ओंकारस्वरूप नाम ब्रह्म, ८०१ **अक्षोभ्यः**— किसीके द्वारा भी क्षुभित न किये जा सकनेवाले, ८०२ **सर्ववागीश्वरेश्वरः**— समस्त वाणीपतियोंके यानी ब्रह्मादिके भी स्वामी, ८०३ **महाह्रदः**— ध्यान करनेवाले जिसमें गोता लगाकर आनन्दमें मग्न होते हैं, ऐसे परमानन्दके महान् सरोवर, ८०४ **महागर्तः**— मायारूप महान् गर्तवाले, ८०५ **महाभूतः**— त्रिकालमें कभी न नष्ट होनेवाले महाभूतस्वरूप, ८०६ **महानिधिः**— सबके महान् निवास-स्थान ॥

८०७ **कुमुदः**— कु अर्थात् पृथ्वीको उसका भार उतारकर प्रसन्न करनेवाले, ८०८ **कुन्दरः**— हिरण्याक्षको मारनेके लिये पृथ्वीको विदीर्ण करनेवाले, ८०९ **कुन्दः**— कश्यपजीको पृथ्वी प्रदान करनेवाले, ८१० **पर्जन्यः**— बादलकी भाँति समस्त इष्ट वस्तुओंकी वर्षा करनेवाले, ८११ **पावनः**— स्मरणमात्रसे पवित्र करनेवाले, ८१२ **अनिलः**— सदा प्रबुद्ध रहनेवाले, ८१३ **अमृताशः**— जिनकी आशा कभी विफल न हो—ऐसे अमोघसंकल्प, ८१४ **अमृतवपुः**— जिनकी देह कभी नष्ट न हो—ऐसे नित्य-विग्रह, ८१५ **सर्वज्ञः**— सदा-सर्वदा सब कुछ जाननेवाले, ८१६ **सर्वतोमुखः**— सब ओर मुखवाले यानी जहाँ कहीं भी उनके भक्त भक्तिपूर्वक पत्र-पुष्पादि जो कुछ भी अर्पण करें, उसे भक्षण करनेवाले ॥

८१७ **सुलभः**— नित्य-निरन्तर चिन्तन करनेवालेको और एकनिष्ठ श्रद्धालु भक्तको बिना ही परिश्रमके सुगमतासे प्राप्त होनेवाले, ८१८ **सुव्रतः**— सुन्दर भोजन करनेवाले यानी अपने भक्तोंद्वारा प्रेमपूर्वक अर्पण किये हुए पत्र-पुष्पादि मामूली भोजनको भी परम श्रेष्ठ मानकर खानेवाले, ८१९ **सिद्धः**— स्वभावसे ही समस्त सिद्धियोंसे युक्त, ८२० **शत्रुजित्**— देवता और सत्पुरुषोंके शत्रुओंको अपने शत्रु मानकर जीतनेवाले, ८२१ **शत्रुतापनः**— शत्रुओंको तपानेवाले, ८२२ **न्यग्रोधः**— बटवृक्षरूप ८२३ **उदुम्बरः**— कारणरूपसे आकाशके भी ऊपर रहनेवाले, ८२४ **अश्वत्थः**— पीपल-वृक्षस्वरूप, ८२५ **चाणूरान्ध्रनिषूदनः**— चाणूर नामक अन्ध्रजातिके वीर मल्लको मारनेवाले ॥

८२६ **सहस्रार्चिः**— अनन्त किरणोंवाले, ८२७ **सप्तजिह्वः**— काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, धूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी और विश्वरुचि—इन सात जिह्वावाले अग्निस्वरूप, ८२८ **सप्तैधाः**— सात दीप्तिवाले अग्निस्वरूप, ८२९ **सप्तवाहनः**— सात घोड़ोंवाले सूर्यरूप, ८३० **अमूर्तिः**— मूर्तिरहित निराकार, ८३१ **अनघः**— सब प्रकारसे निष्पाप, ८३२ **अचिन्त्यः**— किसी प्रकार भी चिन्तन करनेमें न आनेवाले, ८३३ **भयकृत्**— दुष्टोंको भयभीत करनेवाले, ८३४ **भयनाशनः**—स्मरण करनेवालोंके और सत्पुरुषोंके भयका नाश करनेवाले ॥

८३५ **अणुः**— अत्यन्त सूक्ष्म, ८३६ **बृहत्**— सबसे बड़े, ८३७ **कृशः**— अत्यन्त पतले और हलके, ८३८ **स्थूलः**— अत्यन्त मोटे और भारी, ८३९ **गुणभृत्**— समस्त गुणोंको धारण करनेवाले, ८४० **निर्गुणः**— सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे रहित, ८४१ **महान्**— गुण, प्रभाव, ऐश्वर्य और ज्ञान आदिकी अतिशयताके कारण परम महत्त्वसम्पन्न, ८४२ **अधृतः**— जिनको कोई भी धारण नहीं कर सकता—ऐसे निराधार, ८४३ **स्वधृतः**— अपने-आपसे धारित यानी अपनी ही महिमामें स्थित, ८४४ **स्वास्यः**— सुन्दर मुखवाले, ८४५ **प्राग्वंशः**— जिनसे समस्त वंशपरम्परा आरम्भ हुई है—ऐसे समस्त पूर्वजोंके भी पूर्वज आदि पुरुष, ८४६ **वंशवर्धनः**—जगत्-प्रपञ्चरूप वंशको और यादव-वंशको बढ़ानेवाले ॥

८४७ **भारभृत्**—शेषनाग आदिके रूपमें पृथ्वीका भार उठानेवाले और अपने भक्तोंके योगक्षेमरूप भारको वहन करनेवाले, ८४८ **कथितः**— वेद-शास्त्र और महापुरुषोंद्वारा जिनके गुण, प्रभाव, ऐश्वर्य और स्वरूपका बारंबार कथन किया गया है, ऐसे सबके द्वारा वर्णित, ८४९ **योगी**— नित्य समाधियुक्त, ८५० **योगीशः**— समस्त योगोंके स्वामी, ८५१ **सर्वकामदः**— समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, ८५२ **आश्रमः**— सबको विश्राम देनेवाले, ८५३ **श्रमणः**— दुष्टोंको संतप्त करनेवाले, ८५४ **क्षामः**— प्रलयकालमें सब प्रजाका क्षय करनेवाले, ८५५ **सुपर्णः**— सुन्दर पङ्खवाले गरुडस्वरूप, ८५६ **वायुवाहनः**— वायुको गमन करनेके लिये शक्ति देनेवाले ॥

८५७ **धनुर्धरः**— धनुषधारी श्रीराम, ८५८ **धनुर्वेदः**— धनुर्विद्याको जाननेवाले श्रीराम, ८५९ **दण्डः**— दमन करनेवालोंकी दमनशक्ति, ८६० **दमयिता**— यम और राजा आदिके रूपमें दमन करनेवाले, ८६१ **दमः**— दण्डका कार्य यानी जिनको दण्ड दिया जाता है उनका सुधार, ८६२ **अपराजितः**— शत्रुओंद्वारा पराजित न होनेवाले, ८६३ **सर्वसहः**— सब कुछ सहन करनेकी सामर्थ्यसे युक्त, अतिशय तितिक्षु, ८६४ **नियन्ता**— सबको अपने-अपने कर्तव्यमें नियुक्त करनेवाले, ८६५ **अनियमः**—नियमोंसे न बँधे

हुए जिनका कोई भी नियन्त्रण करनेवाला नहीं ऐसे परमस्वतन्त्र, ८६६ **अयमः**— जिनका कोई शासक नहीं अथवा मृत्युरहित ॥

८६७ **सत्त्ववान्**— बल, वीर्य, सामर्थ्य आदि समस्त सत्त्वोंसे सम्पन्न, ८६८ **सात्त्विकः**— सत्त्वगुणप्रधानविग्रह, ८६९ **सत्यः**— सत्यस्वरूप, ८७० **सत्यधर्मपरायणः**—यथार्थ भाषण और धर्मके परम आधार, ८७१ **अभिप्रायः**—प्रेमीजन जिनको चाहते हैं—ऐसे परम इष्ट, ८७२ **प्रियार्हः**— अत्यन्त प्रियवस्तु समर्पण करनेके लिये योग्य पात्र, ८७३ **अर्हः**— सबके परम पूज्य, ८७४ **प्रियकृत्**— भजनेवालोंका प्रिय करनेवाले, ८७५ **प्रीतिवर्धनः**— अपने प्रेमियोंके प्रेमको बढ़ानेवाले ॥

८७६ **विहायसगतिः**— आकाशमें गमन करनेवाले, ८७७ **ज्योतिः**— स्वयंप्रकाशस्वरूप, ८७८ **सुरुचिः**— सुन्दर रुचि और कान्तिवाले, ८७९ **हुतभुक्**— यज्ञमें हवन की हुई समस्त हविको अग्निरूपसे भक्षण करनेवाले, ८८० **विभुः**— सर्वव्यापी, ८८१ **रविः**—समस्त रसोंका शोषण करनेवाले सूर्य, ८८२ **विरोचनः**— विविध प्रकारके प्रकाश फैलानेवाले, ८८३ **सूर्यः**— शोभाको प्रकट करनेवाले, ८८४ **सविता**— समस्त जगत्‌को प्रसव यानी उत्पन्न करनेवाले, ८८५ **रविलोचनः**— सूर्यरूप नेत्रोंवाले ॥

८८६ **अनन्तः**— सब प्रकारसे अन्तरहित, ८८७ **हुतभुक्**—हवन की हुई सामग्रीको खानेवाले, ८८८ **भोक्ता**—प्रकृतिको भोगनेवाले, ८८९ **सुखदः**— भक्तोंको दर्शनरूप परम सुख देनेवाले, ८९० **नैकजः**— धर्मरक्षा, साधुरक्षा आदि परम विशुद्ध हेतुओंसे स्वेच्छापूर्वक अनेक जन्म धारण करनेवाले, ८९१ **अग्रजः**— सबसे पहले जन्मनेवाले आदिपुरुष, ८९२ **अनिर्विण्णः**— कभी किसी प्रकार भी न उकतानेवाले, ८९३ **सदामर्षी**— सत्पुरुषोंपर क्षमा करनेवाले, ८९४ **लोकाधिष्ठानम्**— समस्त लोकोंके आधार, ८९५ **अद्भुतः**— अत्यन्त आश्चर्यमय ॥

८९६ **सनात्**— अनन्तकालस्वरूप, ८९७ **सनातनतमः**— सबके कारण होनेसे ब्रह्मादि पुरुषोंकी अपेक्षा भी परम पुराणपुरुष, ८९८ **कपिलः**— महर्षि कपिल, ८९९ **कपिः**—सूर्यदेव, ९०० **अप्ययः**— सम्पूर्ण जगत्‌के लयस्थान, ९०१ **स्वस्तिदः**— परमानन्दरूप मङ्गल देनेवाले, ९०२ **स्वस्तिकृत्**—आश्रितजनोंका कल्याण करनेवाले, ९०३ **स्वस्ति**—कल्याणस्वरूप, ९०४ **स्वस्तिभुक्**— भक्तोंके परम कल्याणकी रक्षा करनेवाले, ९०५ **स्वस्तिदक्षिणः**— कल्याण करनेमें समर्थ और शीघ्र कल्याण करनेवाले ॥

९०६ **अरौद्रः**— सब प्रकारके रुद्र (क्रूर) भावोंसे रहित शान्तमूर्ति, ९०७ **कुण्डली**—सूर्यके समान प्रकाशमान मकराकृति कुण्डलोंको धारण करनेवाले, ९०८ **चक्री**— सुदर्शनचक्रको धारण करनेवाले, ९०९ **विक्रमी**— सबसे विलक्षण पराक्रमशील, ९१० **ऊर्जितशासनः**— जिनका श्रुति-स्मृतिरूप शासन अत्यन्त श्रेष्ठ है—ऐसे अति श्रेष्ठ शासन करनेवाले, ९११ **शब्दातिगः**— शब्दकी जहाँ पहुँच नहीं, ऐसे वाणीके अविषय, ९१२ **शब्दसहः**— समस्त वेद-शास्त्र जिनकी महिमाका बखान करते हैं, ऐसे, ९१३ **शिशिरः**— त्रितापपीड़ितोंको शान्ति देनेवाले शीतलमूर्ति, ९१४ **शर्वरीकरः**— ज्ञानियोंकी रात्रि संसार और अज्ञानियोंकी रात्रि ज्ञान—इन दोनोंको उत्पन्न करनेवाले ॥

९१५ **अक्रूरः**— सब प्रकारके क्रूरभावोंसे रहित, ९१६ **पेशलः**—मन, वाणी और कर्म—सभी दृष्टियोंसे सुन्दर होनेके कारण परम सुन्दर, ९१७ **दक्षः**— सब प्रकारसे समृद्ध, परमशक्तिशाली और क्षणमात्रमें बड़े-से-बड़ा कार्य कर देनेवाले महान् कार्यकुशल, ९१८ **दक्षिणः**— संहारकारी, ९१९ **क्षमिणां वरः**— क्षमा करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ, ९२० **विद्वत्तमः**— विद्वानोंमें सर्वश्रेष्ठ परम विद्वान्, ९२१ **वीतभयः**— सब प्रकारके भयसे रहित, ९२२ **पुण्यश्रवणकीर्तनः**— जिनके नाम, गुण, महिमा और स्वरूपका श्रवण और कीर्तन परम पुण्य यानी परमपावन हैं ऐसे ॥

९२३ **उत्तारणः**— संसार-सागरसे पार करनेवाले, ९२४ **दुष्कृतिहा**— पापोंका और पापियोंका नाश करनेवाले, ९२५ **पुण्यः**— स्मरण आदि करनेवाले समस्त पुरुषोंको पवित्र कर देनेवाले, ९२६ **दुःस्वप्ननाशनः**— ध्यान, स्मरण, कीर्तन और पूजन करनेसे बुरे स्वप्नोंका और संसाररूप दुःस्वप्नका नाश करनेवाले, ९२७ **वीरहा**— शरणागतोंकी विविध गतियोंका यानी संसारचक्रका नाश करनेवाले, ९२८ **रक्षणः**— सब प्रकारसे रक्षा करनेवाले, ९२९ **सन्तः**— विद्या और विनयका प्रचार करनेके लिये सन्तरूपसे प्रकट होनेवाले, ९३० **जीवनः**—समस्त प्रजाको प्राणरूपसे जीवित रखनेवाले, ९३१ **पर्यवस्थितः**— समस्त विश्वको व्याप्त करके स्थित रहनेवाले ॥

९३२ **अनन्तरूपः**— अनन्त—अमितरूपवाले, ९३३ **अनन्तश्रीः**— अनन्तश्री यानी अपरिमित पराशक्तियोंसे युक्त, ९३४ **जितमन्युः**— सब प्रकारसे क्रोधको जीत लेनेवाले, ९३५ **भयापहः**— भक्तभयहारी, ९३६ **चतुरश्रः**— चार वेदरूप कोणोंवाले मङ्गलमूर्ति और न्यायशील, ९३७ **गभीरात्मा**— गम्भीर मनवाले, ९३८ **विदिशः**— अधिकारियोंको उनके कर्मानुसार विभागपूर्वक नाना प्रकारके फल देनेवाले, ९३९ **व्यादिशः**— सबको यथायोग्य विविध आज्ञा देनेवाले, ९४० **दिशः**— वेदरूपसे समस्त कर्मोंका फल बतलानेवाले ॥

९४१ **अनादिः**— जिसका आदि कोई न हो ऐसे सबके कारणस्वरूप, ९४२ **भूर्भुवः**—पृथ्वीके भी आधार, ९४३ **लक्ष्मीः**— समस्त शोभायमान वस्तुओंकी शोभा, ९४४ **सुवीरः**—आश्रित जनोंके अन्तःकरणमें सुन्दर कल्याणमयी विविध स्फुरणा करनेवाले, ९४५ **रुचिराङ्गदः**— परम रुचिकर कल्याणमय बाजूबंदोंको धारण करनेवाले, ९४६ **जननः**— प्राणिमात्रको उत्पन्न करनेवाले, ९४७ **जनजन्मादिः**—जन्म लेनेवालोंके जन्मके मूलकारण, ९४८ **भीमः**— दुष्टोंके लिये भयानक, ९४९ **भीमपराक्रमः**— अतिशय भय उत्पन्न करनेवाले पराक्रमसे युक्त ॥

९५० **आधारनिलयः**— आधारस्वरूप पृथ्वी आदि समस्त भूतोंके स्थान, ९५१ **अधाता**— जिसका कोई भी बनानेवाला न हो ऐसे स्वयं स्थित, ९५२ **पुष्पहासः**— पुष्पकी भाँति विकसित हाँसीवाले, ९५३ **प्रजागरः**— भली प्रकार जाग्रत् रहनेवाले नित्यप्रबुद्ध, ९५४ **ऊर्ध्वगः**— सबसे ऊपर रहनेवाले, ९५५ **सत्पथाचारः**— सत्पुरुषोंके मार्गका आचरण करनेवाले मर्यादापुरुषोत्तम, ९५६ **प्राणदः**— परीक्षित् आदि मरे हुओंको भी जीवन देनेवाले, ९५७ **प्रणवः**—ॐकारस्वरूप, ९५८ **पणः**— यथायोग्य व्यवहार करनेवाले ॥

९५९ **प्रमाणम्**— स्वतःसिद्ध होनेसे स्वयं प्रमाणस्वरूप, ९६० **प्राणनिलयः**— प्राणोंके आधारभूत, ९६१ **प्राणभृत्**— समस्त प्राणोंका पोषण करनेवाले, ९६२ **प्राणजीवनः**—प्राण-वायुके सञ्चारसे प्राणियोंको जीवित रखनेवाले, ९६३ **तत्त्वम्**— यथार्थ तत्त्वरूप, ९६४ **तत्त्ववित्**—यथार्थ तत्त्वको पूर्णतया जाननेवाले, ९६५ **एकात्मा**— अद्वितीयस्वरूप, ९६६ **जन्ममृत्युजरातिगः**— जन्म, मृत्यु और बुढ़ापा आदि शरीरके धर्मोंसे सर्वथा अतीत ॥

९६७ **भूर्भुवःस्वस्तरुः**—भूः भुवः स्वःरूप तीनों लोकोंको व्याप्त करनेवाले और संसारवृक्षस्वरूप, ९६८ **तारः**— संसार-सागरसे पार उतारनेवाले, ९६९ **सविता**—सबको उत्पन्न करनेवाले पितामह, ९७० **प्रपितामहः**— पितामह ब्रह्माके भी पिता, ९७१ **यज्ञः**— यज्ञस्वरूप, ९७२ **यज्ञपतिः**— समस्त यज्ञोंके अधिष्ठाता, ९७३ **यज्वा**— यजमानरूपसे यज्ञ करनेवाले, ९७४ **यज्ञाङ्गः**— समस्त यज्ञरूप अङ्गोंवाले, ९७५ **यज्ञवाहनः**— यज्ञोंको चलानेवाले ॥

९७६ **यज्ञभृत्**— यज्ञोंका धारण-पोषण करनेवाले, ९७७ **यज्ञकृत्**— यज्ञोंके रचयिता, ९७८ **यज्ञी**— समस्त यज्ञ जिसमें समाप्त होते हैं—ऐसे यज्ञशेषी, ९७९ **यज्ञभुक्**— समस्त यज्ञोंके भोक्ता, ९८० **यज्ञसाधनः**— ब्रह्मयज्ञ, जपयज्ञ आदि बहुत-से यज्ञ जिनकी प्राप्तिके साधन हैं ऐसे, ९८१ **यज्ञान्तकृत्**—यज्ञोंका अन्त करनेवाले यानी उनका फल देनेवाले, ९८२ **यज्ञगुह्यम्**— यज्ञोंमें गुप्त ज्ञानस्वरूप और निष्काम यज्ञस्वरूप, ९८३ **अन्नम्**— समस्त प्राणियोंके अन्न यानी अन्नकी भाँति उनकी सब प्रकारसे तुष्टि-पुष्टि करनेवाले तथा ९८४ **अन्नादः**—समस्त अन्नोंके भोक्ता भी ॥

९८५ **आत्मयोनिः**— जिनका कारण दूसरा कोई नहीं—ऐसे स्वयं योनिस्वरूप, ९८६ **स्वयंजातः**— स्वयं अपने-आप स्वेच्छापूर्वक प्रकट होनेवाले, ९८७ **वैखानः**— पातालवासी हिरण्याक्षका वध करनेके लिये पृथ्वीको खोदनेवाले, ९८८ **सामगायनः**— सामवेदका गान करनेवाले, ९८९ **देवकीनन्दनः**—देवकीपुत्र, ९९० **स्रष्टा**— समस्त लोकोंके रचयिता, ९९१ **क्षितीशः**— पृथ्वीपति, ९९२ **पापनाशनः**— स्मरण, कीर्तन, पूजन और ध्यान आदि करनेसे समस्त पापसमुदायका नाश करनेवाले ॥

९९३ **शङ्खभृत्**— पाञ्चजन्य शङ्खको धारण करनेवाले, ९९४ **नन्दकी**— नन्दक नामक खड्ग धारण करनेवाले, ९९५ **चक्री**— सुदर्शन नामक चक्र धारण करनेवाले, ९९६ **शार्ङ्गधन्वा**— शार्ङ्गधनुपधारी, ९९७ **गदाधरः**— कौमोदकी नामकी गदा धारण करनेवाले, ९९८ **रथाङ्गपाणिः**—भीष्मकी प्रतिज्ञा रखनेके लिये सुदर्शन चक्रको हाथमें धारण करनेवाले, ९९९ **अक्षोभ्यः**— जो किसीके द्वारा भी क्षुभित—भयभीत नहीं किये जा सके ऐसे, १००० **सर्वप्रहरणायुधः**—ज्ञात और अज्ञात जितने भी युद्धादिमें काम आनेवाले हथियार हैं, उन सबको धारण करनेवाले ॥

यहाँ हजार नामोंकी समाप्ति दिखलानेके लिये अन्तिम नामको दुबारा लिखा गया है, मङ्गलवाची होनेसे ॐकारका स्मरण किया गया है, अन्तमें नमस्कार करके भगवान्‌की पूजा की गयी है।

इस प्रकार यह कीर्तन करनेयोग्य महात्मा केशवके दिव्य एक हजार नामोंका पूर्णरूपसे वर्णन कर दिया। जो मनुष्य इस विष्णुसहस्रनामका सदा श्रवण करता है और जो प्रतिदिन इसका कीर्तन या पाठ करता है, उसका इस लोकमें तथा परलोकमें कहीं भी कुछ अशुभ नहीं होता। इस विष्णुसहस्रनामका पाठ करनेसे अथवा कीर्तन करनेसे ब्राह्मण वेदान्तपारगामी हो जाता है यानी उपनिषदोंके अर्थरूप परब्रह्मको पा लेता है। क्षत्रिय युद्धमें विजय पाता है, वैश्य व्यापारमें धन पाता है और शूद्र सुख पाता है। धर्मकी इच्छावाला धर्मको पाता है, अर्थकी इच्छावाला अर्थ पाता है, भोगोंकी इच्छावाला भोग पाता है और प्रजाकी इच्छावाला प्रजा पाता है। जो भक्तिमान् पुरुष सदा प्रातःकालमें उठकर स्नान करके पवित्र हो मनमें विष्णुका ध्यान करता हुआ इस वासुदेव-सहस्रनामका भली प्रकार पाठ करता है, वह महान्

यश पाता है, जातिमें महत्त्व पाता है, अचल सम्पत्ति पाता है और अति उत्तम कल्याण पाता है तथा उसको कहीं भय नहीं होता। वह वीर्य और तेजको पाता है तथा आरोग्यवान्, कान्तिमान्, बलवान्, रूपवान् और सर्वगुणसम्पन्न हो जाता है। रोगातुर पुरुष रोगसे छूट जाता है, बन्धनमें पड़ा हुआ पुरुष बन्धनसे छूट जाता है, भयभीत भयसे छूट जाता है और आपत्तिमें पड़ा हुआ आपत्तिसे छूट जाता है। जो पुरुष भक्तिसम्पन्न होकर इस विष्णुसहस्रनामसे पुरुषोत्तम-भगवान्‌की प्रतिदिन स्तुति करता है, वह शीघ्र ही समस्त संकटोंसे पार हो जाता है। जो मनुष्य वासुदेवके आश्रित और उनके परायण है, वह समस्त पापोंसे छूटकर विशुद्ध अन्तःकरणवाला हो सनातन परब्रह्मको पाता है। वासुदेवके भक्तोंका कहीं कभी भी अशुभ नहीं होता है तथा उनको जन्म-मृत्यु, जरा और व्याधिका भी भय नहीं रहता है। जो पुरुष श्रद्धापूर्वक भक्तिभावसे इस विष्णुसहस्रनामका पाठ करता है, वह आत्मसुख, क्षमा, लक्ष्मी, धैर्य, स्मृति और कीर्तिको पाता है। पुरुषोत्तमके पुण्यात्मा भक्तोंको किसी दिन क्रोध नहीं आता, ईर्ष्या उत्पन्न नहीं होती, लोभ नहीं होता और उनकी बुद्धि कभी अशुद्ध नहीं होती। स्वर्ग, सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रसहित आकाश, दसों दिशाएँ, पृथ्वी और महासागर—ये सब महात्मा वासुदेवके वीर्यसे धारण किये गये हैं। देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, सर्प और राक्षससहित यह स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण जगत् श्रीकृष्णके अधीन रहकर यथायोग्य बरत रहे हैं। इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, सत्त्व, तेज, बल, धीरज, क्षेत्र (शरीर) और क्षेत्रज्ञ (आत्मा)—ये सब श्रीवासुदेवके रूप हैं, ऐसा वेद कहते हैं। सब शास्त्रोंमें आचारको प्रथम माना जाता है, आचारसे ही धर्मकी उत्पत्ति होती है और धर्मके स्वामी भगवान् अच्युत हैं। ऋषि, पितर, देवता, पञ्चमहाभूत, धातुएँ और स्थावर-जङ्गमात्मक, सम्पूर्ण जगत्—ये सब नारायणसे ही उत्पन्न हुए हैं। योग, ज्ञान, सांख्य, विद्याएँ, शिल्प आदि कर्म, वेद, शास्त्र और विज्ञान—ये सब विष्णुसे उत्पन्न हुए हैं। वे समस्त विश्वके भोक्ता और अविनाशी विष्णु ही एक ऐसे हैं, जो अनेक रूपोंमें विभक्त होकर भिन्न-भिन्न भूतविशेषोंके अनेकों रूपोंको धारण कर रहे हैं तथा त्रिलोकीमें व्याप्त होकर सबको भोग रहे हैं। जो पुरुष परम श्रेय और सुख पाना चाहता हो, वह भगवान् व्यासजीके कहे हुए इस विष्णुसहस्रनामस्तोत्रका पाठ करे। जो विश्वके ईश्वर जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करनेवाले जन्मरहित कमललोचन भगवान् विष्णुका भजन करते हैं, वे कभी पराभव नहीं पाते हैं।



जपनेयोग्य मन्त्र और सबेरे-शाम कीर्तन करनेयोग्य देवता आदिके मङ्गलमय नामोंका वर्णन और गायत्री-जपका फल

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! आप सम्पूर्ण शास्त्रोंके विद्वान् हैं, अतः मैं पूछता हूँ कि प्रतिदिन किस स्तोत्र या मन्त्रका जप करनेसे धर्मके महान् फलकी प्राप्ति हो सकती है? यात्रा, गृह-प्रवेश या किसी कर्मका आरम्भ करते समय अथवा देवयज्ञमें या श्राद्धके समय किसका जप करनेसे कर्मकी पूर्ति हो जाती है? शान्ति, पुष्टि, रक्षा, शत्रुनाश तथा भयनिवारण करनेवाला कौन-सा ऐसा जप है, जो वेदके समान महत्त्व रखता है? आप उसे बतानेकी कृपा करें।

भीष्मजीने कहा—राजन्! महर्षि वेदव्यासका बताया हुआ मन्त्र मैं तुम्हें बतला रहा हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो—सावित्री देवीने इस मन्त्रकी सृष्टि की है तथा यह तत्काल ही पापसे छुटकारा दिलानेवाला है। जो इस मन्त्रको सुनता है, वह दीर्घजीवी होता है, उसकी सारी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं, और वह इहलोक तथा परलोकमें भी आनन्द भोगता है। प्राचीनकालमें क्षत्रिय-धर्मका पालन करनेवाले और सदा सत्यव्रतके आचरणमें संलग्न रहनेवाले राजर्षिगण इस मन्त्रका सदा ही जप किया करते थे। जो राजा इन्द्रियोंको वशमें करके शान्तिपूर्वक प्रतिदिन इस मन्त्रका पाठ करते हैं, उन्हें सर्वोत्तम सम्पत्ति प्राप्त होती है।

(यह मन्त्र इस प्रकार है—) महान् व्रतधारी वसिष्ठ, वेदनिधि, पराशर, विशाल, सर्परूपधारी अनन्त (शेषनाग), अक्षय सिद्धगण, ऋषिवृन्द तथा परात्पर, देवाधिदेव, वरदाता एवं सहस्र मस्तकवाले शिवको और सहस्रों नाम धारण करनेवाले भगवान् जनार्दनको नमस्कार है।

अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, अपराजित, ऋत, पितृरूप, त्र्यम्बक, महेश्वर, वृषाकपि, शम्भु, हवन और ईश्वर—ये ग्यारह रुद्र विख्यात हैं, जो तीनों लोकोंके स्वामी हैं। वेदके शतरुद्रिय-प्रकरणमें रुद्रके सैकड़ों नाम बताये गये हैं। अंश, भग, मित्र जलेश्वर वरुण, धाता, अर्यमा, जयन्त, भास्कर, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र तथा विष्णु—ये बारह आदित्य

कहलाते हैं। ये सब-के-सब कश्यपके पुत्र हैं। धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु कहे गये हैं। नासत्य और दस्र—ये दोनों अश्विनीकुमारके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनकी उत्पत्ति भगवान् सूर्यके वीर्यसे हुई है। ये अश्वरूपधारिणी संज्ञादेवीकी नाकसे प्रकट हुए थे (ये सब मिलाकर तैंतीस देवता हैं)।

अब मैं जगत्के कर्मपर दृष्टि रखनेवाले तथा यज्ञ, दान और सुकृतको जाननेवाले देवताओंका परिचय देता हूँ। ये देवगण स्वयं अदृश्य रहकर समस्त प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मोंको देखते रहते हैं। इनके नाम ये हैं—मृत्यु, काल, विश्वेदेव और मूर्तिमान् पितृगण। इनके सिवा तपस्वी मुनि तथा तप एवं मोक्षमें संलग्न सिद्ध महर्षि भी सम्पूर्ण जगत्पर दृष्टि रखते हैं। ये सब अपना नाम-कीर्तन करनेवाले मनुष्योंको शुभ फल देते हैं। प्रजापति ब्रह्माजीने जिन लोकोंकी रचना की है, उन सबमें ये अपने दिव्य तेजसे निवास करते हैं तथा शुद्धभावसे सबके कर्मोंका निरीक्षण करते हैं। ये सबके प्राणोंके स्वामी हैं। जो मनुष्य शुद्ध भावसे इनका कीर्तन करता है, उसे प्रचुर मात्रामें धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है तथा वह लोकनाथ ब्रह्माजीके रचे हुए मङ्गलमय पवित्र लोकोंमें जाता है। ऊपर बताये हुए तैंतीस देवता सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी हैं। इसी प्रकार नन्दीश्वर, महाकाय, ग्रामणी, वृषभध्वज, सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी गणेश, विनायक, सौम्यगण, रुद्रगण, योगगण, भूतगण, नक्षत्र, नदियाँ, आकाश, पक्षिराज गरुड़, पृथ्वीपर तपसे सिद्ध हुए महात्मा, स्थावर, जङ्गम, हिमालय, समस्त पर्वत, चारों समुद्र, भगवान् शंकरके तुल्य पराक्रमवाले उनके अनुचरगण, विष्णु, जिष्णु, स्कन्द और अम्बिका—इन सबके नामोंका शुद्ध भावसे कीर्तन करनेवाले मनुष्यके सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

अब श्रेष्ठ महर्षियोंके नाम बता रहा हूँ—यवक्रीत, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, उशिजके पुत्र कक्षीवान्, अङ्गिरानन्दन बल और मेधातिथिके पुत्र कण्वऋषि—ये सब ऋषि ब्रह्मतेजसे सम्पन्न और लोकस्रष्टा बतलाये गये हैं। इनका तेज रुद्र, अग्नि तथा वसुओंके समान है। ये पृथ्वीपर शुभकर्म करके अब स्वर्गमें देवताओंके साथ आनन्दपूर्वक रहते और शुभ फलका उपभोग करते हैं। ये सातों महर्षि महेन्द्रके गुरु (ऋत्विज) हैं और पूर्व दिशामें निवास करते हैं। जो पुरुष शुद्ध चित्तसे इनका नाम लेता है, वह इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। उन्मुचु, प्रमुचु, स्वस्त्यात्रेय, दृढव्य, ऊर्ध्वबाहु, तृण सोमाङ्गिरा और मित्रावरुणके पुत्र महाप्रतापी अगस्त्य मुनि—ये सात धर्मराज (यम) के ऋत्विज हैं और दक्षिण दिशामें निवास करते हैं। दृढेयु, ऋतेयु, परिव्याध, एकत, द्वित, त्रित तथा अत्रिके पुत्र सारस्वत मुनि—ये सात वरुणके ऋत्विज हैं और पश्चिम दिशामें इनका निवास है। अत्रि, भगवान् वसिष्ठ, महर्षि कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और ऋचीकनन्दन जमदग्नि—ये सात उत्तर दिशामें रहनेवाले और कुबेरके गुरु (ऋत्विज) हैं। इनके सिवा सात महर्षि और हैं जो सम्पूर्ण दिशाओंमें निवास करते हैं। वे जगत्को उत्पन्न करनेवाले हैं। उपर्युक्त महर्षियोंका यदि नाम लिया जाय तो वे मनुष्योंकी कीर्ति बढ़ाते और उनका कल्याण करते हैं। धर्म, काम, काल, वसु, वासुकि, अनन्त और कपिल—ये सात पृथ्वीको धारण करनेवाले हैं। ये महात्मा इस जगत्में शान्ति और कल्याणका विस्तार करनेवाले और दिशाओंके पालक कहलाते हैं। ये जिस-जिस दिशामें निवास करें उसी दिशाकी ओर मुँह करके इनकी शरण लेनी चाहिये। ये सम्पूर्ण भूतोंके स्रष्टा और लोकपावन बताये गये हैं। संवर्त, मेरुसावर्ण, मार्कण्डेय, सांख्य, योग, नारद और महर्षि दुर्वासा—ये सात ऋषि अत्यन्त तपस्वी, जितेन्द्रिय और त्रिभुवनमें विख्यात हैं। इन सब ऋषियोंके अतिरिक्त बहुत-से महर्षि रुद्रके समान प्रभावशाली और ब्रह्मलोकके निवासी हैं। इनका कीर्तन करनेसे मनुष्यके धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धि होती है।

पूर्वकालमें यह पृथ्वी जिनकी पुत्री हुई थी, उन वेननन्दन महाराज पृथुके नाम और गुणोंका कीर्तन करना चाहिये। जिन्होंने सूर्यवंशमें जन्म लेकर इन्द्रके समान पराक्रम दिखलाया था, जो इलाके गर्भसे उत्पन्न और बुधके प्रिय पुत्र थे, उन त्रिलोकविख्यात राजा पुरूरवाका भी नाम लेना चाहिये। इसी प्रकार त्रिभुवनमें प्रसिद्ध वीर भरतका और जिन्होंने सत्ययुगमें विश्वजित् यज्ञका अनुष्ठान किया था, उन तपस्वी राजा रन्तिदेवका भी नाम-कीर्तन करना चाहिये। परम कान्तिमान् राजर्षि श्वेत और गङ्गाजलके द्वारा सगरपुत्रोंका उद्धार करनेवाले महाराज भगीरथका नाम भी स्मरण करनेयोग्य है। ये सभी राजा अग्निके समाज तेजस्वी, महान् धीर और अपनी कीर्तिको बढ़ानेवाले थे। इन सबका कीर्तन करना चाहिये। श्रुतियोंके आधारभूत परब्रह्म परमात्माका कीर्तन सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये मङ्गलमय है। मनुष्यको प्रतिदिन सबेरे और शामके समय भगवत्कीर्तनके साथ ही उपर्युक्त देवताओं, ऋषियों और राजाओंका भी नाम लेना चाहिये। ये देवता ही जगत्की रक्षा करते, पानी बरसाते, प्रकाश और हवा देते तथा प्रजाकी सृष्टि करते हैं। ये ही विघ्नोंके राजा विनायक, श्रेष्ठ, दक्ष, क्षमाशील और जितेन्द्रिय हैं। ये महात्मा सबके पाप और पुण्योंके साक्षी

हैं, इनका नाम लेनेपर ये मनुष्योंके अमङ्गलका नाश करते हैं। जो सवेरे उठकर इनके नाम और गुणोंका उच्चारण करता है उसको शुभ कर्मोंके भोग प्राप्त होते हैं। प्रतिदिन इन देवताओंका कीर्तन करनेसे मनुष्योंके दुःस्वप्न नष्ट हो जाते हैं और वे सब पापोंसे छुटकारा पा जाते हैं। जो द्विज प्रत्येक दीक्षाके समय नियमपूर्वक रहकर इन पवित्र नामोंका पाठ करता है, वह न्यायवान्, आत्मनिष्ठ, क्षमाशील, जितेन्द्रिय और दोषदृष्टिसे रहित होता है। रोग-व्याधिसे ग्रस्त मनुष्य इसका पाठ करनेपर पापमुक्त एवं नीरोग हो जाता है। जो अपने घरके भीतर इन नामोंका पाठ करता है, उसके कुलका कल्याण होता है। दूसरे गाँवकी यात्रा करते समय जो इस नामावलीका पाठ करता है, उसका मार्ग सकुशल समाप्त होता है। जो देवयज्ञ और श्राद्धके समय उपर्युक्त नामोंका पाठ करता है, उसके हव्यको देवता और कव्यको पितर सहर्ष स्वीकार करते हैं। जो मनुष्य जहाजमें या किसी सवारीमें बैठनेपर विदेशमें अथवा राजदरबारमें जानेपर मन-ही-मन गायत्री-मन्त्रका जप करता है, उसे उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। गायत्रीका जप करनेसे राजा, पिशाच, राक्षस, आग, पानी, हवा और साँप आदिसे भय नहीं होता। गायत्री-मन्त्रका जप करनेवाला पुरुष चारों वर्णों और चारों आश्रमोंमें शान्ति स्थापित करता है। जिस घरमें प्रतिदिन गायत्रीका जप होता है वहाँ आग नहीं लगती, बालकोंकी मृत्यु नहीं होती और साँप नहीं ठहरते। जो परब्रह्मस्वरूप गायत्रीके गुणोंका कीर्तन सुनते हैं, उनके दुःख दूर हो जाते हैं और वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। यह सिद्धिको प्राप्त हुए महर्षि वेदव्यासका कहा हुआ प्राचीन इतिहास है। इसमें पराशर मुनिके दिव्य मतका वर्णन है। पूर्वकालमें इन्द्रको इसका उपदेश किया गया था, वही मैंने तुम्हें सुनाया है। सावित्री-मन्त्र सत्य सनातन ब्रह्मरूप है। यह सम्पूर्ण भूतोंका हृदय और सनातनी श्रुति है। चन्द्र, सूर्य, रघु और पुरुके वंशमें उत्पन्न हुए सभी राजा पवित्र भावसे प्रतिदिन गायत्री-मन्त्रका जप करते थे। गायत्री संसारके प्राणियोंकी परम गति है। काश्यप, गौतम, भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, शुक्र, अगस्त्य और बृहस्पति आदि वृद्ध ब्रह्मर्षियोंने सदा ही गायत्री-मन्त्रका सेवन किया है। भृगुका नाम लेनेसे धर्मकी वृद्धि होती है। वसिष्ठ मुनिको नमस्कार करनेसे वीर्य बढ़ता है। राजा रघुको प्रणाम करनेसे संग्राममें विजय प्राप्त होती है और अश्विनीकुमारोंके नाम लेनेसे कभी रोग नहीं सताता। राजन्! इस प्रकार सनातन ब्रह्मरूपा गायत्रीका माहात्म्य मैंने तुम्हें बताया है।



ब्राह्मणोंकी महिमाका वर्णन तथा कार्तवीर्य और वायुदेवताका संवाद

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! संसारमें कौन मनुष्य पूज्य हैं? किनको नमस्कार करना चाहिये? किनके साथ कैसा बर्ताव करना उचित है? तथा कैसे लोगोंके साथ किस प्रकारका आचरण करनेसे कोई हानि नहीं होती?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! ब्राह्मणोंका अपमान देवताओंको भी दुःखमें डाल सकता है, अतः राजाको चाहिये कि वह ब्राह्मणोंकी पूजा और उनको नमस्कार करे तथा ब्राह्मणोंके निकट पुत्रकी भाँति विनययुक्त बर्ताव करे; क्योंकि ब्राह्मण समस्त जगत्‌की धर्ममर्यादाका संरक्षण करनेवाले सेतुके समान हैं। वे धनका त्याग करके प्रसन्न होते और वाणीका संयम रखते हैं। वे उत्तम निधि, व्रतका पालन करनेवाले, लोक और शास्त्रके निर्माता और परम यशस्वी हैं। तपस्या उनका धन और वाणी उनका महान् बल है। वे धर्मोंके कारण, धर्मज्ञ, सूक्ष्मदर्शी, धर्मकी इच्छा रखनेवाले, पुण्य-कर्मोंद्वारा धर्ममें स्थित रहनेवाले और धर्मके सेतु हैं। उन्हींका आश्रय लेकर चार प्रकारकी प्रजा जीवन धारण करती है। ब्राह्मण ही सबके पथप्रदर्शक, नेता, यज्ञका भार वहन करनेवाले और सनातन हैं। वे देवता, पितर और अतिथियोंके मुख तथा हव्य-कव्यमें प्रथम भोजनके अधिकारी हैं। ब्राह्मण सबको उपदेश देनेवाले हैं। वेद ही उनका धन है। वे शास्त्रज्ञानमें कुशल, मोक्षधर्मके ज्ञाता, सब जीवोंकी गतिको जाननेवाले और अध्यात्मतत्त्वका चिन्तन करनेवाले हैं। उन्हें आदि, मध्य और अवसानका ज्ञान होता है। उनके संशय दूर हो गये होते हैं। वे ऊँच-नीच या भूत-भविष्यके ज्ञाता और परम गतिको जाननेवाले हैं। सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त और निष्पाप हैं। उनके चित्तपर द्वन्द्वोंका प्रभाव नहीं पड़ता। वे सब प्रकारके परिग्रहका त्याग करनेवाले और सम्मान पानेके योग्य हैं। ज्ञानी महात्मा उन्हें सदा ही आदर देते रहते हैं। वे चन्दन और मलकी कीचड़में, भोजन और उपवासमें तथा रेशमी वस्त्र और मृग-छालामें समान दृष्टि रखते हैं। वे चाहें तो बहुत दिनोंतक बिना भोजन किये रह सकते हैं, अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखकर स्वाध्याय करते हुए शरीरको सुखा सकते हैं और जो देवता नहीं है उसको देवता बना सकते हैं। यदि वे कोपमें भर जायँ तो देवताओंको भी देवत्वसे भ्रष्ट कर सकते हैं; दूसरे-दूसरे लोक और लोकपालोंकी रचना कर सकते हैं। उन्हीं महात्माओंके शापसे

समुद्रका पानी पीने योग्य नहीं रहा। उनकी क्रोधाग्नि दण्डकारण्यमें आजतक शान्त नहीं हुई। वे देवताओंके भी देवता, कारणके भी कारण और प्रमाणके भी प्रमाण हैं। भला कौन मनुष्य बुद्धिमान् होकर भी उन ब्राह्मणोंका अपमान करेगा ? ब्राह्मणोंमें कोई बूढ़े हों या बालक, सभी सम्मानके योग्य हैं। ब्राह्मणलोग आपसमें तप और विद्याकी अधिकता देखकर एक-दूसरेका सम्मान करते हैं। विद्याहीन ब्राह्मण भी देवताके समान और परम पवित्र माना जाता है, फिर जो विद्वान् है उसके लिये तो कहना ही क्या है ? वह तो महान् देवताके समान है।

युधिष्ठिरने पूछा—महामते ! आप कौन-सा फल देखकर और किस कर्मका उदय सोचकर ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं ?

भीष्मजीने कहा—राजन् ! इस विषयमें कार्तवीर्य अर्जुन और वायुदेवताके संवादरूप प्राचीन इतिहासका वर्णन किया जाता है। पूर्वकालकी बात है, माहिष्मती नगरीमें सहस्र भुजाधारी कार्तवीर्य अर्जुन नामवाला एक राजा राज्य करता था। वह महान् बलवान् और सत्यपराक्रमी था। इस लोकमें सर्वत्र उसीका आधिपत्य था। एक समय, कृतवीर्यकुमार अर्जुनने क्षत्रिय-धर्मको आगे करके विनय और शास्त्रज्ञानके अनुसार बहुत दिनोंतक मुनिवर दत्तात्रेयकी आराधना की और अपना सारा धन उनकी सेवामें अर्पण कर दिया। दत्तात्रेयजी उसके ऊपर बहुत संतुष्ट हुए और उसे तीन वर माँगनेके लिये उन्होंने आज्ञा दी। तब राजाने कहा—



'भगवन् ! मैं युद्धमें तो हजार भुजाओंसे युक्त रहूँ, किंतु घरपर मेरी दो ही बाँहें रहें। रणभूमिमें सभी सैनिकोंको मेरी एक हजार बाँहें दृष्टिगोचर हों और मैं अपने पराक्रमसे सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लूँ। इस प्रकार पृथ्वीको धर्मके अनुसार प्राप्त कर मैं आलस्यरहित होकर इसका पालन करूँ। इसके सिवा एक बातके लिये और प्रार्थना करता हूँ, मुझपर कृपा करके आप इसे भी पूर्ण करें। यदि कभी सन्मार्गका परित्याग करके असत्य-मार्गका आश्रय लूँ तो साधु पुरुष मुझे राहपर लानेके लिये शिक्षा दें।'

उसके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर दत्तात्रेयजीने 'तथास्तु' कहकर उपर्युक्त वर दे दिये। तब राजा कार्तवीर्य सूर्यके समान तेजस्वी रथपर बैठकर (सम्पूर्ण पृथ्वीपर विजय पानेके अनन्तर) बलके अभिमानसे मोहित होकर कहने लगा—'धैर्य, वीर्य, यश, शूरता, पराक्रम और ओजमें मेरे समान दूसरा कौन है ?' उसकी यह बात पूरी होते ही आकाशवाणी हुई—'मूर्ख ! तुझे पता नहीं है कि ब्राह्मण क्षत्रियसे भी श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणकी सहायतासे ही क्षत्रिय इस लोकमें प्रजाका शासन कर सकता है।'

कार्तवीर्यने कहा—मैं प्रसन्न होनेपर प्राणियोंकी सृष्टि कर सकता हूँ और कुपित होनेपर उनका नाश कर सकता हूँ। मन, वाणी अथवा क्रियाके द्वारा भी ब्राह्मण मुझसे श्रेष्ठ नहीं हो सकते। ब्राह्मण क्षत्रियोंके आश्रित रहकर जीविका चलाते हैं; किंतु क्षत्रिय कभी ब्राह्मणके आश्रयमें नहीं रहता। प्रजा-पालनरूप धर्म क्षत्रियोंपर ही अवलम्बित है, क्षत्रियसे ही ब्राह्मणको जीविका प्राप्त होती है, फिर ब्राह्मण क्षत्रियोंसे श्रेष्ठ कैसे हो सकता है ? आजसे मैं सदा भीख माँगकर जीवन-निर्वाह करनेवाले और अपनेको सबसे श्रेष्ठ माननेवाले ब्राह्मणोंको अपने अधीन रखूँगा। आकाशमें स्थित गायत्रीने जो ब्राह्मणोंको क्षत्रियोंसे श्रेष्ठ बतलाया है, वह बिलकुल झूठ है। मृगछाला पहननेवाले सभी ब्राह्मण विवश होते हैं, मैं इन सबको जीत लूँगा। तीनों लोकोंमें कोई भी देवता या मनुष्य ऐसा नहीं है, जो मुझे राज्यसे भ्रष्ट कर सके; अतः मैं ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ हूँ। संसारमें अबतक ब्राह्मण ही सबसे श्रेष्ठ माने जाते थे, किंतु आजसे मैं क्षत्रियोंकी प्रधानता स्थापित करूँगा। संग्राममें कोई भी मेरे बलको नहीं सह सकता।

यह सुनकर अन्तरिक्षमें स्थित हुए वायुदेवताने कहा—'कार्तवीर्य ! तू इस दूषित भावनाको त्याग दे और ब्राह्मणोंको प्रणाम कर। यदि तू इनकी बुराई करेगा तो तेरे राज्यमें विप्लव मच जायगा। ब्राह्मण महान् शक्तिशाली होते हैं, यदि तू उनके उत्साहमें बाधा डालेगा तो वे तुझे नष्ट कर देंगे

अथवा राज्यसे बाहर निकाल देंगे।' यह बात सुनकर कार्तवीर्यने पूछा—'महानुभाव ! आप कौन हैं ?' उत्तर मिला—'मैं देवताओंका दूत वायु हूँ और तुम्हें हितकी बात बता रहा हूँ।'

कार्तवीर्यने कहा—वायुदेव ! ऐसी बात कहकर आपने ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति और अनुरागका परिचय दिया है। अच्छा, आपकी जानकारीमें यदि कोई पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, सूर्य अथवा आकाशके समान श्रेष्ठ ब्राह्मण हो तो उसे बताइये।

वायुने कहा—मूर्ख ! मैं महात्मा ब्राह्मणोंके कतिपय गुणोंका वर्णन करता हूँ, सुन—तूने पृथ्वी, जल और अग्नि आदि जिन लोगोंका नाम लिया है, उन सबकी अपेक्षा ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। एक बार राजा अङ्गके साथ स्पर्धा (लाग-डाँट) होनेके कारण पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवी लोकधारणरूप अपने धर्म (धरणीत्व) का परित्याग करके अन्यत्र चली गयी। उस समय विप्रवर कश्यपने ही अपनी शक्तिसे इस स्थूल पृथ्वीको थाम रखा था। इसलिये ब्राह्मण मर्त्यलोक और स्वर्गमें भी अजेय हैं। पहलेकी बात है, महामना अङ्गिरा मुनि जलको दूधकी भाँति पी रहे थे। उस समय उन्हें पीनेसे तृप्ति ही नहीं होती थी, अतः पीते-पीते वे पृथ्वीका सारा जल पी गये। तत्पश्चात् फिर उन्होंने जलका महान् स्रोत बहाकर सम्पूर्ण पृथ्वीको भर दिया। वे ही अङ्गिरा मुनि एक बार मेरे ऊपर कुपित हो गये थे; उस समय उनके डरसे इस जगत्को त्यागकर मुझे बहुत दिनोंतक अग्निहोत्रकी अग्निमें निवास करना पड़ा था। महर्षि गौतमने इन्द्रको अहल्यापर आसक्त होनेके कारण शाप दे दिया था; केवल धर्मकी रक्षाके लिये उनके प्राण नहीं लिये। समुद्र पहले मीठे जलसे भरा रहता था, किंतु ब्राह्मणोंके शापसे उसका पानी खारा हो गया। अग्निका रंग पहले सोनेके समान था, उसमेंसे धुआँ नहीं उठता था और उसकी लपट सदा ऊपरकी ओर ही उठती थी; किंतु क्रोधमें भरे हुए अङ्गिरा ऋषिने उसे शाप दे दिया, इसलिये अब उसमें पूर्वोक्त गुण नहीं रह गये। देखो, ब्रह्मर्षि कपिलके शापसे दग्ध हुए सगरपुत्रोंकी, जो यज्ञसम्बन्धी अश्वकी खोज करते हुए यहाँ समुद्रतक आये थे, यह राखकी ढेरी पड़ी हुई है। इसलिये राजन् ! तू ब्राह्मणोंकी समानता कदापि नहीं कर सकता, उनसे अपने कल्याणका उपाय जाननेका यत्न कर। राजा तो गर्भमें स्थित हुए ब्राह्मणोंको भी प्रणाम करते हैं। दण्डकारण्यका विशाल साम्राज्य ब्राह्मणोंने ही नष्ट कर दिया। तालजङ्घ नामवाले महान् क्षत्रिय-वंशका अकेले महात्मा और्वने संहार कर डाला। तुम्हें भी जो परम दुर्लभ विशाल राज्य, बल, धर्म तथा शास्त्रज्ञानकी प्राप्ति हुई है, वह विप्रवर दत्तात्रेयजीकी कृपाका ही फल है। श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रत्येक जीवकी रक्षा करनेवाला और जीव-जगत्की सृष्टि करनेवाला है, इस बातको जानकर भी तू क्यों मोहमें पड़ा हुआ है ? जिन्होंने इस सम्पूर्ण चराचर जगत्की सृष्टि की है, वे अव्यक्तस्वरूप अविनाशी प्रजापति ब्रह्माजी भी ब्राह्मण ही हैं।

यह सुनकर राजा कार्तवीर्य चुप हो गया। तब वायुदेवताने पुनः कहना आरम्भ किया।



वायुदेवताके द्वारा कश्यप, अगस्त्य, वसिष्ठ, अत्रि और च्यवन मुनिकी महिमाका वर्णन

वायुने कहा—राजन् ! पूर्वकालकी बात है, अङ्ग नामवाले एक राजाने इस पृथ्वीको ब्राह्मणोंके लिये दान कर देनेका विचार किया, यह जानकर पृथ्वीको बड़ी चिन्ता हुई। वह सोचने लगी—'मैं सम्पूर्ण प्राणियोंको धारण करनेवाली और ब्रह्माजीकी पुत्री हूँ। मुझे पाकर यह श्रेष्ठ राजा क्यों ब्राह्मणोंको देना चाहता है ? यदि इसका ऐसा विचार है तो मैं भी भूमित्वका (लोक-धारणरूप अपने धर्मका) त्याग करके ब्रह्मलोकको चली जाऊँगी; भले ही मेरे जानेसे यह राजा अपने राज्यसहित नष्ट हो जाय।' ऐसा निश्चय करके पृथ्वी चली गयी। महर्षि कश्यपने जब पृथ्वीको जाती देखा तो योगका आश्रय ले तुरंत अपना शरीर त्याग दिया और पृथ्वीके इस स्थूल विग्रहमें वे प्रविष्ट हो गये। उनके प्रवेश करनेसे पृथ्वी पहलेकी अपेक्षा भी समृद्ध हो गयी। चारों ओर घास-पात और अन्नकी उपज अधिक मात्रामें होने लगी। उत्तरोत्तर धर्म बढ़ने लगा और भयका नाश हो गया। इस प्रकार विशाल व्रतका पालन करनेवाले महर्षि कश्यप तीस हजार दिव्य वर्षोंतक सजग होकर पृथ्वीके रूपमें स्थित रहे। तत्पश्चात् पृथ्वी ब्रह्मलोकसे लौटकर आयी और उन्हें प्रणाम करके उसने अपनेको उनकी पुत्री माना। तभीसे पृथ्वीका नाम काश्यपी हो गया। राजन् ! ये कश्यपजी ब्राह्मणही थे, जिनका ऐसा प्रभाव देखा गया है। तू कश्यपसे भी श्रेष्ठ किसी क्षत्रियको जानता हो तो मुझे बता।

इस प्रकार पूछनेपर भी राजा कार्तवीर्यने कोई जवाब नहीं दिया। तब वायुदेवता फिर कहने लगे—'राजन् ! अब तू ब्रह्मर्षि अगस्त्यका माहात्म्य श्रवण कर। प्राचीन समयमें असुरोंने

देवाओंको परास्त करके उनका उत्साह नष्ट कर दिया। उन्होंने देवताओंका यज्ञ, पितरोंका श्राद्ध तथा मनुष्योंका कर्मानुष्ठान लुप्त कर दिया। तब अपने ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हुए देवतालोग पृथ्वीपर मारे-मारे फिरने लगे। घूमते-घूमते एक दिन उन्हें महान् व्रतका पालन करनेवाले अत्यन्त तेजस्वी अगस्त्यजीका दर्शन हुआ। देवताओंने उन्हें प्रणाम करके कहा—'मुनिश्रेष्ठ ! दानवोंने हमें युद्धमें हराकर हमारा ऐश्वर्य छीन लिया है। आप इस महान् भयसे हमारी रक्षा कीजिये।' देवताओंके इस प्रकार कहनेपर तेजस्वी महर्षि अगस्त्यको दैत्योंके प्रति बड़ा क्रोध हुआ। वे प्रलयकालीन अग्निके समान प्रज्वलित हो उठे। उनके शरीरसे निकलती हुई उद्दीप्त किरणोंकी ज्वालासे सहस्रों दानव भस्म हो-होकर आकाशसे पृथ्वीपर गिरने लगे। तब दैत्यगण दोनों लोकोंका परित्याग करके दक्षिण दिशाकी ओर भाग गये। उस समय राजा बलि पृथ्वीपर आकर अश्वमेधयज्ञ कर रहे थे, अतः जो दैत्य उनके साथ पृथ्वीपर थे और जो पातालमें रह गये थे, वे ही दग्ध होनेसे बचे। इस प्रकार अगस्त्यके तेजसे स्वर्गवासी दैत्योंके दग्ध हो जानेपर देवताओंका भय दूर हुआ और वे पुनः अपने-अपने लोकमें चले गये। कार्तवीर्य ! ऐसे प्रभावशाली अगस्त्य मुनिकी कथा मैंने तुझे सुनायी है, तू उनसे भी श्रेष्ठ किसी क्षत्रियको जानता हो तो बता।'

यह सुनकर भी राजा कार्तवीर्य मौन ही रहा। तब वायुने पुनः कहना आरम्भ किया—'राजन् ! अब तू परम यशस्वी वसिष्ठ मुनिके एक महान् कर्मकी कथा श्रवण कर। एक समय देवताओंने मानसरोवरके तटपर यज्ञ आरम्भ किया, उस सरोवरके पास पर्वतके समान आकारवाले बहुत-से दानव रहते थे, जो 'खली' नामसे प्रसिद्ध थे। उन्होंने देवताओंको जब यज्ञ करते देखा तो उन सबको मार डालनेका विचार किया। फिर तो दोनों दलोंमें युद्ध छिड़ गया। मानसरोवर वहाँसे निकट था और ब्रह्माजीने उसके विषयमें दैत्योंको वरदान दे रखा था कि इसमें डुबकी लगानेसे तुम्हें नवीन जीवन मिलेगा। अतः उस समय दानवोंमेंसे जो हताहत होते थे, उन्हें दूसरे दानव मानसरोवरमें फेंक देते और वे उसके जलमें डुबकी लगाते ही जी उठते थे; फिर सरोवरके जलको सौ योजन ऊँचे उछालते तथा हाथमें भयंकर पर्वत, परिघ और वृक्ष लिये हुए वे देवताओंपर टूट पड़ते थे। उन दानवोंकी संख्या दस हजारकी थी। जब उन्होंने देवताओंको अच्छी तरह पीड़ित किया तो वे भागकर इन्द्रकी शरणमें गये। इन्द्रको भी उन दैत्योंसे भिड़कर क्लेश उठाना पड़ा, अतः वे वसिष्ठजीकी शरणमें गये। भगवान् वसिष्ठ बड़े दयालु थे। देवताओंको दुःखी जानकर उन्होंने उन्हें अभय-दान दे दिया और उन खलीनामवाले समस्त दानवोंको अपने तेजसे अनायास ही भस्म कर डाला। फिर वे महातपस्वी मुनि कैलास-मार्गसे बहती हुई गङ्गानदीको मानसरोवरमें ले आये। गङ्गाजीने वहाँ आते ही उस सरोवरका बाँध तोड़ डाला। उससे जो स्रोत बहकर निकला वही सरयू नदीके नामसे प्रसिद्ध हुआ। जिस स्थानपर खली नामके दानव मारे गये, उसे आज भी 'खलिन' के नामसे पुकारा जाता है। इस प्रकार महामुनि वसिष्ठने इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंकी रक्षा की और ब्रह्माजीसे वरदान पाये हुए दैत्योंको भी नष्ट कर दिया। यह वसिष्ठजीके कर्मका वर्णन किया गया है। कार्तवीर्य ! यदि इनसे भी बड़ा कोई क्षत्रिय हो तो बता।'

वायुदेवताके इस प्रकार कहनेपर भी कार्तवीर्य अर्जुन चुप ही रहा, तब वायुने फिर कहा—'राजन् ! अब तू महात्मा अत्रिके अलौकिक कर्मकी कथा सुन। एक बार देवता और दानवोंमें युद्ध हुआ, उसमें राहुने सूर्य और चन्द्रमाको बाणोंसे मारकर घायल कर दिया, इससे उनका तेज शान्त पड़ गया और वहाँ घोर अन्धकार छा गया। फिर तो अँधेरेमें सूझ न पड़नेके कारण देवतालोग दानवोंके हाथसे मारे जाने लगे। उन महाबली असुरोंके प्रहारसे आहत होनेके कारण देवताओंकी प्राणशक्ति क्षीण हो चली और वे भागकर तपस्यामें संलग्न हुए विप्रवर अत्रि मुनिके पास पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनेवाले उन महर्षिसे कहा—'प्रभो ! असुरोंने चन्द्रमा और सूर्यको अपने बाणोंसे बींध डाला है और अब घोर अन्धकार छा जानेके कारण हम भी शत्रुओंके हाथसे मारे जा रहे हैं। हमें तनिक भी शान्ति नहीं मिलती, आप कृपा करके इस भयसे हमारी रक्षा कीजिये।' अत्रिने कहा—'मैं किस तरह आपलोगोंकी रक्षा करूँ ?' देवता बोले—'आप अन्धकारको नष्ट करनेवाले चन्द्रमा और सूर्यका स्वरूप धारण कीजिये और हमारे शत्रुओंका नाश कर डालिये।' उनके ऐसा कहनेपर अत्रिने अन्धकार दूर करनेवाले चन्द्रमाका रूप धारण किया और देवताओंकी ओर शान्तभावसे देखा। उस समय चन्द्रमा और सूर्यकी प्रभा मन्द देखकर अत्रिने अपनी तपस्यासे प्रकाश फैलाया और सम्पूर्ण जगत्को अन्धकारशून्य एवं आलोकित कर दिया। उन्होंने अपने तेजसे ही देवताओंके शत्रुओंको परास्त कर दिया। उन महान् असुरोंको अत्रिके तेजसे दग्ध होते देख देवताओंने भी पराक्रम करके उन्हें मार डाला। इस प्रकार अत्रिने सूर्यको तेजस्वी बनाया, देवताओंका उद्धार किया और असुरोंको नष्ट कर दिया। अत्रिमुनि गायत्रीका जप करनेवाले, मृगछाला पहननेवाले और फलाहार करके रहनेवाले तेजस्वी ब्राह्मण थे। उन्होंने जो सामर्थ्य

दिखलाया, जैसा महान् कर्म किया, उसपर तू दृष्टि डाल और बता, उनसे भी श्रेष्ठ कोई क्षत्रिय है ?'

यह सुनकर भी कार्तवीर्यने कोई उत्तर नहीं दिया, तब वायुदेवता पुनः कहने लगे—'राजन् ! अब महात्मा च्यवनके किये हुए महान् कर्मका श्रवण कर। पूर्वकालमें च्यवन मुनिने अश्विनीकुमारोंको सोम-पान करानेकी प्रतिज्ञा करके इन्द्रसे कहा—'देवराज ! आप दोनों अश्विनीकुमारोंको देवताओंके साथ सोम-पानमें सम्मिलित कर लीजिये।'

इन्द्र बोले—विप्रवर ! अश्विनीकुमार हमलोगोंमें निन्द्य माने गये हैं, फिर वे सोम-पानके अधिकारी कैसे हो सकते हैं ? वे देवताओंके सम्मानपात्र नहीं हैं, अतः उनके लिये इस तरहकी बात न कीजिये। हमलोग अश्विनीकुमारोंके साथ सोम-पान करना नहीं चाहते। इसके सिवा और जिस कामके लिये आज्ञा देंगे, उसे मैं पूर्ण करूँगा।

च्यवनने कहा—देवराज ! अश्विनीकुमार भी सूर्यके पुत्र होनेके कारण देवता ही हैं। अतः वे आप सब लोगोंके साथ सोम-पानके अवश्य अधिकारी हैं। सब देवता मेरी बात मान लें, ऐसा करनेमें ही आपलोगोंकी भलाई है; अन्यथा इसका परिणाम अच्छा न होगा।

इन्द्र बोले—द्विजश्रेष्ठ ! मैं तो अश्विनीकुमारोंके साथ सोम-पान नहीं करूँगा।

च्यवनने कहा—इन्द्र ! यदि तुम सीधी तरह मेरी बात नहीं मानोगे तो यज्ञमें तुम्हारा अभिमान चूर्ण करके मैं जबर्दस्ती उनके साथ तुम्हें सोम-पान कराऊँगा।

तदनन्तर, च्यवन मुनिने अश्विनीकुमारोंके हितके लिये तत्काल यज्ञका आरम्भ किया। यह देखकर इन्द्र क्रोधसे मूर्च्छित हो उठे और हाथमें एक विशाल पर्वत तथा वज्र लिये हुए मुनिकी ओर दौड़े। उस समय उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं। महातपस्वी च्यवनने इन्द्रको अपने ऊपर आक्रमण करते देख उनके ऊपर पानीका एक छींटा डाला और वज्र तथा पर्वतसहित उन्हें जडवत् बना दिया। फिर उन्होंने अग्निमें आहुति डालकर इन्द्रके लिये एक अत्यन्त भयंकर शत्रु उत्पन्न किया, जिसका नाम मद था। वह मुँह फैलाये खड़ा हो गया। उसकी ठोढ़ीका भाग जमीनमें सटा हुआ था और ऊपरवाला होठ आकाश छू रहा था। उसके मुँहके भीतर एक हजार दाँत थे, जो सौ-सौ योजन ऊँचे दिखायी देते थे तथा उसकी भयंकर दाढ़ें दो-दो सौ योजन लंबी थीं। उस समय इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता उसकी जिह्वाकी जड़में आ गये; फिर तो मदके मुखमें पड़े हुए देवताओंने आपसमें सलाह करके इन्द्रसे कहा—'देवराज ! आप विप्रवर च्यवनको प्रणाम कीजिये (इनसे विरोध करना अच्छा नहीं है)। हमलोग निःसंकोच होकर अश्विनीकुमारोंके साथ सोम-पान करेंगे।' यह सुनकर इन्द्रने महामुनि च्यवनके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली। फिर च्यवनने अश्विनीकुमारोंको देवताओंके साथ सोम-रसका भागी बनाया और अपना यज्ञ समाप्त कर दिया। इसके बाद उन्होंने जुआ, शिकार, मद्य-पान और स्त्रियोंमें मदको बाँट दिया। इन दोषोंमें आसक्त हुए मनुष्योंका अवश्य ही नाश हो जाता है, अतः इनका दूरसे ही त्याग कर देना चाहिये। राजन् ! यह मैंने तुझसे च्यवनमुनिके महान् कर्मका वर्णन किया है। बता, उनसे भी बढ़कर कोई क्षत्रिय है ?

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! जब वायुने इस प्रकार ब्राह्मणोंका महत्त्व बतलाया तो कार्तवीर्य अर्जुनने उनके वचनोंकी प्रशंसा करके इस प्रकार उत्तर दिया—'प्रभो ! मैं सब प्रकारसे और सदा ब्राह्मणोंके ही लिये जीवन धारण करता हूँ, ब्राह्मणोंका भक्त हूँ और प्रतिदिन ब्राह्मणोंको प्रणाम करता हूँ। विप्रवर दत्तात्रेयजीकी कृपासे मुझे यह बल, उत्तम कीर्ति और महान् धर्मकी प्राप्ति हुई है। वायुदेव ! आपने मुझसे ब्राह्मणोंके अद्भुत कर्मोंका वर्णन किया है और मैंने ध्यान देकर उन सबको श्रवण किया है।'

वायुने कहा—राजन् ! तू क्षत्रिय-धर्मके अनुसार ब्राह्मणोंकी रक्षा और इन्द्रियोंका निग्रह कर।



भीष्मजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! आप कौन-सा लाभ देखकर उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले ब्राह्मणोंकी सदा पूजा करते हैं ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! ये महाव्रतधारी भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मणकी पूजासे होनेवाले लाभका प्रत्यक्ष अनुभव कर चुके हैं। अतः ये ही तुमसे इस विषयकी सारी बातें बतायेंगे। आज मेरा बल, मेरे कान, मेरी वाणी, मेरा मन और मेरे दोनों नेत्र शिथिल-से हो रहे हैं तथा मेरा ज्ञान भी विशुद्ध हो गया है। जान पड़ता है अब मेरा शरीर छूटनेमें अधिक विलम्ब नहीं है। पुराणोंमें जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके धर्म बतलाये गये हैं तथा सब वर्णके लोग जिस-जिस धर्मकी उपासना करते हैं, वह सब मैंने तुम्हें सुना दिया

है। अब जो कुछ बाकी रह गया हो उसको भगवान् श्रीकृष्णसे सीखना। इन श्रीकृष्णका जो स्वरूप है और जो इनका पुरातन बल है, उसे ठीक-ठीक मैं जानता हूँ। भगवान् श्रीकृष्ण अप्रमेय हैं, अतः तुम्हारे मनमें संदेह होनेपर ये ही तुम्हें धर्मका उपदेश करेंगे। श्रीकृष्णने ही इस पृथ्वी, आकाश और स्वर्गकी सृष्टि की है। ये ही भयंकर बलवाले वाराहके रूपमें प्रकट हुए थे तथा इन्हीं पुराणपुरुषने पर्वतों और दिशाओंको उत्पन्न किया है। अन्तरिक्ष,स्वर्ग, चारों दिशाएँ और चारों कोण—ये सब भगवान् श्रीकृष्णसे नीचे हैं। इन्हींसे इस सृष्टिकी परम्परा प्रचलित हुई है तथा इन्होंने ही इस प्राचीन विश्वका निर्माण किया है। सृष्टिके आरम्भमें इनकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ और उसीके भीतर अमित तेजस्वी ब्रह्माजी स्वतः प्रकट हुए। इन्होंने ही प्राचीन कालमें दैत्योंका संहार किया और ये ही दैत्य-सम्राट् बलिके रूपमें प्रकट हुए। समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति इन्हींसे हुई है। भूत और भविष्य इनका ही स्वरूप है और ये ही सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करते हैं। जब धर्मका ह्रास होने लगता है, उस समय ये श्रीकृष्ण देवताओं तथा मनुष्योंके वंशमें अवतार लेकर स्वयं धर्मका आचरण करते हुए उसकी स्थापना और पर-अपर—सब लोकोंकी रक्षा करते हैं। कुन्तीनन्दन ! ये त्याज्य वस्तुका त्याग करके असुरोंका वध करनेके लिये स्वयं कारण बनते हैं। कार्य और कारण इन्हींके स्वरूप हैं। विश्वकर्मा, विश्वरूप, विश्वभोक्ता, विश्वविधाता और विश्वविजेता भी ये ही हैं। ये ही एक हाथमें त्रिशूल और दूसरे हाथमें रक्तसे भरा खप्पर लिये हुए विकराल रूप धारण करते हैं। अपने नाना प्रकारके चरित्रोंसे जगत्‌में विख्यात हुए इन श्रीकृष्णकी ही सब लोग स्तुति करते हैं। सैकड़ों गन्धर्व,अप्सराएँ तथा देवता सदा इनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। राक्षस भी इनसे सम्मति लिया करते हैं। एकमात्र ये ही धनके रक्षक और विश्वविजयी हैं। यज्ञमें स्तोतालोग इन्हींकी स्तुति करते हैं। सामगान करनेवाले विद्वान् रथन्तर सामके द्वारा इन्हींका गुण-गान करते हैं। वेदवेत्ता ब्राह्मण वेदके मन्त्रोंसे इन्हींका स्तवन करते हैं और अध्वर्युलोग यज्ञमें इन्हींको हविष्यका भाग देते हैं। पृथ्वी, आकाश और स्वर्गलोक सब इन सनातन पुरुष श्रीकृष्णके वशमें रहते हैं। ये ही सर्वत्र विचरनेवाले वायु हैं, सर्वव्यापक हैं और प्रचण्ड किरणोंसे सुशोभित आदिदेव सूर्य हैं। इन्होंने ही समस्त असुरोंपर विजय पायी है तथा इन्होंने ही अपने तीन पगोंसे तीनों लोकोंको नाप लिया था। ये श्रीकृष्ण सम्पूर्ण देवताओं, पितरों और मनुष्योंके आत्मा हैं। इन्हींको याज्ञिक पुरुषोंका यज्ञ कहा गया है। ये ही दिन और रातका विभाग करते हुए सूर्यरूपमें उदित होते हैं। उत्तरायण और दक्षिणायन इन्हींके दो मार्ग हैं। ये प्रत्येक मासमें यज्ञ करते हैं और वेदज्ञ ब्राह्मण इन्हींके गुण गाते हैं। ये महातेजस्वी और सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले श्रीकृष्ण अकेले ही सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करते हैं। युधिष्ठिर ! तुम इन्हींको अन्धकारनाशक सूर्य समझो। ये पञ्चमहाभूतोंके केन्द्र हैं। इन्होंने ही आकाश, पृथ्वी, स्वर्ग, अन्तरिक्ष, वन और पर्वतोंकी सृष्टि की है। ये इन्द्रियोंके नियन्ता और अत्यन्त प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी हैं। बड़े-बड़े यज्ञोंमें विप्रोंद्वारा ऋग्वेदकी सहस्रों पुरातन ऋचाओंसे एकमात्र इन्हींकी स्तुति की जाती है। इन श्रीकृष्णके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो महातेजस्वी दुर्वासाको अपने घरमें ठहरा सके। इनको ही अद्वितीय पुरातन ऋषि कहते हैं। ये विश्वके रचयिता हैं और अपने स्वरूपसे ही अनेकों पदार्थोंको उत्पन्न करते रहते हैं। ये देवताओंके देवता होकर भी वेदोंका अध्ययन और प्राचीन विधियोंका पालन करते हैं। लौकिक और वैदिक कर्मका जो फल है, वह सब श्रीकृष्ण ही हैं। ये ही सम्पूर्ण लोकोंकी शुक्ल ज्योति हैं तथा तीनों लोक, तीनों लोकपाल, त्रिविध अग्नि, तीनों व्याहृतियाँ और सम्पूर्ण देवता भी ये देवकीनन्दन श्रीकृष्ण ही हैं। संवत्सर, ऋतु, पक्ष, दिन-रात, कला, काष्ठा, मात्रा, मुहूर्त, लव और क्षण—इन सबको श्रीकृष्णका ही स्वरूप समझो। चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा, अमावास्या, पूर्णिमा, नक्षत्र, योग और ऋतु—इन सबकी उत्पत्ति श्रीकृष्णसे ही हुई है। रुद्र, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, साध्य, विश्वेदेव, मरुद्गण, प्रजापति, देवमाता अदिति और सप्तर्षि भी श्रीकृष्णसे ही प्रकट हुए हैं। ये विश्वरूप श्रीकृष्ण ही वायुरूप धारण करके संसारको चेष्टा प्रदान करते, अग्निरूप होकर सबको भस्म करते, जलका रूप धारणकर जगत्‌को डुबाते और ब्रह्मा होकर सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करते हैं। ये स्वयं वेद्यस्वरूप होकर भी वेदवेद्य तत्त्वको जाननेका प्रयत्न करते हैं। विधिरूप होकर भी विहित कर्मोंका आश्रय लेते हैं। ये ही धर्म, वेद और बलको विषय करनेवाले हैं। तुम समस्त चराचर जगत्‌को श्रीकृष्णका ही स्वरूप समझो। ये परम ज्योतिर्मय सूर्यका रूप धारण करके पूर्व दिशामें प्रकट होते हैं, जिनकी प्रभासे सम्पूर्ण विश्व आलोकित हो उठता है। ये समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं। इन्होंने पूर्वकालमें पहले जलकी सृष्टि करके फिर सम्पूर्ण जगत्‌को उत्पन्न किया था। ऋतु, नाना प्रकारके उत्पात, अनेकों अद्भुत पदार्थ, मेघ, बिजली, ऐरावत और सम्पूर्ण चराचर जगत्‌की इन्हींसे उत्पत्ति हुई है। इन्हींको समस्त जगत्‌का आत्मा—विष्णु

समझो। ये विश्वके आवासस्थान और निर्गुण हैं। इन्हींको वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध कहते हैं। ये आत्मयोनि परमात्मा सबको अपनी आज्ञाके अधीन रखते हैं। इन्होंने ही इस विश्वको उत्पन्न किया है और ये ही आत्मशक्तिसे सबको जीवन प्रदान करते हैं। देवता, असुर, मनुष्य, लोक, ऋषि, पितर, प्रजा और सम्पूर्ण प्राणियोंको इन्हींसे जीवन मिलता है। ये ही सदा सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि तथा पालन करते हैं। शुभ-अशुभ और स्थावर-जङ्गमरूप यह सारा जगत् श्रीकृष्णसे ही उत्पन्न हुआ है। भूत, भविष्य और वर्तमान सब श्रीकृष्णका ही स्वरूप है। प्राणियोंका अन्तकाल आनेपर साक्षात् श्रीकृष्ण ही मृत्युरूप बन जाते हैं। ये धर्मके सनातन रक्षक हैं। जो बात बीत चुकी है तथा जिसका अभी पता नहीं है, उन सबके कारण श्रीकृष्ण ही हैं। तीनों लोकोंमें जो कुछ है वह सब श्रीकृष्णका ही स्वरूप है। श्रीकृष्णसे भिन्न कोई वस्तु है, ऐसा सोचना अपनी विपरीत बुद्धिका परिचय देना है। भगवान् श्रीकृष्णकी ऐसी ही महिमा है, बल्कि वे इससे भी अधिक प्रभावशाली हैं। ये परम पुरुष नारायण और विकाररहित हैं। ये ही स्थावर-जङ्गमरूप जगत्के आदि, मध्य और अन्त हैं। संसारमें जन्म लेनेवाले प्राणियोंके कारण भी ये ही हैं। इन्हींको अविनाशी परमात्मा कहते हैं।



श्रीकृष्णके द्वारा ब्राह्मणोंकी महिमा तथा भगवान् शंकरके माहात्म्यका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—मधुसूदन! ब्राह्मणकी पूजा करनेसे क्या फल मिलता है? इसका आप ही वर्णन कीजिये; क्योंकि आप इस विषयको अच्छी तरह जानते हैं और पितामह भी आपको इस विषयका ज्ञाता मानते हैं।

श्रीकृष्णने कहा—राजन्! मैं ब्राह्मणोंके गुणोंका यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ, आप ध्यान देकर सुनिये। एक दिनकी बात है, ब्राह्मणोंने मेरे पुत्र प्रद्युम्नको कुपित कर दिया था। उस वक्त मैं द्वारकामें ही था। प्रद्युम्नने मुझसे आकर पूछा—'पिताजी! ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे क्या फल होता है? वे इस लोक और परलोकमें भी क्यों ईश्वर माने जाते हैं? इस विषयमें मुझे बड़ा संन्देह है। अतः आप इसका स्पष्टरूपसे वर्णन कीजिये।' प्रद्युम्नके ऐसा कहनेपर मैंने उसको जो उत्तर दिया, उसे आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये। मैंने कहा—'रुक्मिणीनन्दन! ब्राह्मणोंके राजा चन्द्रमा हैं, इसलिये ये इहलोक और परलोकमें भी सुख-दुःख देनेमें समर्थ होते हैं। ब्राह्मणोंमें शान्त भावकी प्रधानता होती है, इसमें तनिक भी अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। ब्राह्मणोंकी पूजासे आयु, कीर्ति, यश और बलकी वृद्धि होती है। सम्पूर्ण लोक और लोकेश्वर ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं। धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धिके लिये, मोक्षकी प्राप्तिके लिये और यश, लक्ष्मी तथा आरोग्यकी उपलब्धिके लिये एवं देवता और पितरोंकी पूजाके समय ब्राह्मणोंको संतुष्ट करना हमलोगोंके लिये बहुत आवश्यक है, ऐसी दशामें मैं उनका आदर क्यों न करूँ? ब्राह्मण इस लोक तथा परलोकमें भी महान् माने गये हैं। वे सब कुछ प्रत्यक्ष देखते हैं। यदि क्रोधमें भर जायँ तो वे इस जगत्को भस्म कर सकते हैं, दूसरे-दूसरे लोक और लोकपालोंकी सृष्टि कर सकते हैं; अतः तेजस्वी पुरुष ब्राह्मणोंके महत्त्वको अच्छी तरह जानकर भी उनके साथ सद्बर्ताव क्यों न करेंगे?'

राजन्! इस प्रकार प्रद्युम्नके पूछनेपर मैंने उसे उत्तम ब्राह्मणका माहात्म्य बतलाया था, अतः आप भी सदा मीठे वचन बोलकर और नाना प्रकारके दान देकर महान् सौभाग्यशाली ब्राह्मणोंकी पूजा करते रहें। भीष्मजीने मेरे विषयमें जो कुछ कहा है, वह सब सत्य ही है। अब मैं भगवान् शंकरका माहात्म्य बतला रहा हूँ, आप ध्यान देकर सुनिये। विद्वान् पुरुष महादेवजीको अग्नि, स्थाणु, महेश्वर, एकाक्ष, त्र्यम्बक, विश्वरूप और शिव आदि अनेकों नामोंसे पुकारते हैं। वेदमें उनके दो स्वरूप बताये गये हैं, जिन्हें वेदवेत्ता ब्राह्मण जानते हैं। उनका एक स्वरूप तो घोर है और दूसरा शिव है। इन दोनोंके भी अनेकों भेद हैं। इनकी जो घोर मूर्ति है, वह भय उपजानेवाली है। उसके अग्नि, विद्युत् और सूर्य आदि अनेकों रूप हैं। इससे भिन्न जो शिव नामवाली मूर्ति है, वह परम शान्त एवं मङ्गलमयी है। उसके धर्म, जल और चन्द्रमा आदि कई रूप हैं। महादेवजीके आधे शरीरको अग्नि और आधेको सोम (चन्द्रमा) कहते हैं। उनकी शिवमूर्ति ब्रह्मचर्यका पालन करती है और जो अत्यन्त घोर मूर्ति है, वह जगत्का संहार करती है। उनमें महत्त्व और ईश्वरत्व होनेके कारण वे महेश्वर कहलाते हैं। वे सबको दग्ध करनेवाले, अत्यन्त तीक्ष्ण, उग्र और प्रतापी हैं, इसीसे उन्हें रुद्र कहते हैं। वे देवताओंमें महान् हैं और इस महान् विश्वकी रक्षा करते हैं, इसलिये महादेव कहलाते हैं। सब प्रकारके कर्मोंद्वारा सदा सब लोगोंकी उन्नति करने और सबका कल्याण चाहते हैं, इस कारण उनका नाम शिव है। वे ऊर्ध्व-भागमें स्थित होकर देहधारियोंके प्राणोंका नाश करते हैं और

सदा स्थिर रहते हैं, इस कारण उन्हें स्थाणु कहा गया है। भूत, भविष्य और वर्तमान कालमें स्थावर और जङ्गमोंके आकारमें उनके अनेकों रूप प्रकट होते हैं, इसलिये वे बहुरूप कहलाते हैं। उनमें सम्पूर्ण देवताओंका निवास है, इससे उनको विश्वरूप कहते हैं। उनके नेत्रसे तेज प्रकट होता है और उनके नेत्रोंका अन्त नहीं है, इसलिये वे सहस्राक्ष, अजिताक्ष और सर्वतोऽक्षिमय कहलाते हैं। वे सब प्रकारसे पशुओंका पालन करते हैं और उनके साथ रहनेमें सुख मानते हैं तथा पशुओंके अधिपति हैं, इसलिये उनका नाम पशुपति है। मनुष्य यदि ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए प्रतिदिन स्थिर शिवलिङ्गकी पूजा करता है तो इससे महात्मा शंकरको बड़ी प्रसन्नता होती है और वे संतुष्ट होकर अपने भक्तोंको सुख देते हैं। भगवान् शंकर ही अग्निरूपसे शवको दग्ध करते हुए श्मशानभूमिमें निवास करते हैं। जो लोग वहाँ उनकी पूजा करते हैं, उन्हें वीरोंको प्राप्त होनेवाले उत्तम लोक मिलते हैं। वे प्राणियोंके शरीरमें रहनेवाले और उनकी मृत्युरूप हैं तथा वे ही प्राण, अपान आदि वायुके रूपसे देहके भीतर निवास करते हैं। उनके अनेकों भयंकर एवं उद्दीप्त रूप हैं, जिनकी जगत्में पूजा होती है। विद्वान् ब्राह्मण ही उन सब रूपोंको जानते हैं। उनकी महत्ता, व्यापकता तथा दिव्य कर्मोंके अनुसार देवताओंमें उनके बहुत-से यथार्थ नाम प्रचलित हैं। वेदके शतरुद्रिय-प्रकरणमें उनके सैकड़ों उत्तम नाम हैं, जिन्हें वेदवेत्ता ब्राह्मण जानते हैं। महर्षि व्यासने भी उनका स्तवन किया है। ये सम्पूर्ण लोकोंको अभीष्ट वस्तु प्रदान करते हैं। यह महान् विश्व उन्हींका स्वरूप बताया गया है। ब्राह्मण और ऋषि उन्हें सबसे ज्येष्ठ कहते हैं। वे देवताओंमें प्रधान हैं। उन्होंने अपने मुखसे अग्निको उत्पन्न किया है। वे नाना प्रकारकी ग्रह-बाधाओंसे ग्रस्त प्राणियोंको दुःखसे छुटकारा दिलाते हैं। पुण्यात्मा और शरणागतवत्सल तो वे इतने हैं कि शरणमें आये हुए किसी भी प्राणीका त्याग नहीं करते। वे ही मनुष्योंको आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन और सम्पूर्ण कामनाएँ प्रदान करते और वे ही पुनः उन्हें छीन लेते हैं। इन्द्र आदि देवताओंके पास उन्हींका दिया हुआ ऐश्वर्य है। तीनों लोकोंके शुभाशुभपर उनकी सदा ही दृष्टि रहती है। समस्त कामनाओंके अधीश्वर होनेके कारण उन्हें ईश्वर कहते हैं और महान् लोकोंके ईश्वर होनेसे उनका नाम महेश्वर हुआ है।



धर्मके विषयमें आगम-प्रमाणकी श्रेष्ठता, धर्म-अधर्मके फल, सज्जन-दुर्जनोंके लक्षण और शिष्टाचारका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका उपदेश समाप्त होनेपर युधिष्ठिरने शान्तनुनन्दन भीष्मसे पुनः प्रश्न किया—'पितामह! धार्मिक विषयका निर्णय करनेके लिये प्रत्यक्ष प्रमाणका आश्रय लेना चाहिये या आगमका? इन दोनोंमें किससे वास्तविक निर्णय हो सकता है?'

भीष्मजीने कहा—बेटा! तुमने ठीक प्रश्न किया है, इसका उत्तर देता हूँ, सुनो—धार्मिक विषयमें संदेह होना सहज है, किंतु उसका निर्णय करना बहुत कठिन होता है। प्रत्यक्ष और आगम दोनोंहीका कोई अन्त नहीं है। दोनोंमें ही संदेह खड़े होते हैं। अपनेको बुद्धिमान् समझनेवाले हेतुवादी तार्किक प्रत्यक्ष कारणकी ओर ही दृष्टि रखकर परोक्ष वस्तुका अभाव मानते हैं, सत्य होनेपर भी उसके अस्तित्वमें संदेह करते हैं। किंतु वे बालक हैं, अहंकारवश अपनेको पण्डित मानते हैं; अतः उनका पूर्वोक्त निश्चय कदापि युक्तिसंगत नहीं है। (आकाशमें नीलिमा प्रत्यक्ष दिखायी देनेपर भी वह मिथ्या ही है, अतः केवल प्रत्यक्षके बलसे सत्यका निर्णय नहीं किया जा सकता; धर्म, ईश्वर और परलोक आदिके विषयमें शास्त्र-प्रमाण ही श्रेष्ठ है; क्योंकि अन्य प्रमाणोंकी वहाँतक पहुँच नहीं हो सकती)। यदि कहो कि एकमात्र ब्रह्म जगत्का कारण कैसे हो सकता है? तो इसका उत्तर यह है—'तुम आलस्य छोड़कर दीर्घकालतक योगका अभ्यास करो और तत्त्वका साक्षात्कार करनेके लिये निरन्तर प्रयत्नशील बने रहो, तभी इसका ज्ञान हो सकता है। इसके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं हैं। जब सारे तर्क समाप्त हो जाते हैं तभी उत्तम ज्ञानकी प्राप्ति होती है। वह ज्ञान ही सम्पूर्ण जगत्के लिये उत्तम ज्योति है। कोरे तर्कसे जो ज्ञान होता है, वह वास्तवमें ज्ञान नहीं है, अतः उसे प्रामाणिक नहीं मानना चाहिये। जिसका वेदके द्वारा प्रतिपादन नहीं किया गया हो, उस ज्ञानका परित्याग कर देना ही उचित है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम और भाँति-भाँतिके शिष्टाचार—ये बहुत-से प्रमाण उपलब्ध

होते हैं। इनमें कौन-सा प्रबल है? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

भीष्मजीने कहा—बेटा! जब बलवान् पुरुष दुराचारी होकर धर्मको हानि पहुँचाने लगते हैं तो साधारण मनुष्योंके द्वारा उसकी रक्षाका यत्न होनेपर भी समयानुसार उसमें विकृति आ ही जाती है। फिर तो घास-फूससे ढके हुए कुएँकी तरह अधर्म ही धर्मका चोला पहनकर सामने आता है। इससे सदाचारका ह्रास होने लगता है और आचारहीन, धर्मद्रोही तथा वेद-शास्त्रोंका त्याग करनेवाले मन्दबुद्धि पुरुष धर्मकी मर्यादा भंग करने लगते हैं। उस अवस्थामें धर्मके स्वरूपके विषयमें बड़ा संदेह होता है, ऐसी स्थितिमें जो साधुसङ्गके लिये नित्य उत्कण्ठित रहते हों, जिनकी बुद्धि आगम-प्रमाणको ही श्रेष्ठ मानती हो, जो सदा संतुष्ट रहते तथा लोभ-मोहका अनुसरण करनेवाले अर्थ और कामकी उपेक्षा करके धर्मको ही उत्तम समझते हों, ऐसे महात्मा पुरुषोंके पास जाकर तुम्हें प्रश्न करना चाहिये। उन संतोंके सदाचार, यज्ञ और स्वाध्याय आदि शुभ कर्मोंके अनुष्ठानमें कभी कोई अन्तर नहीं आता। उनमें आचार, उसको बतानेवाले वेदशास्त्र तथा धर्म—इन तीनोंकी एकता होती है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! मेरी बुद्धि पुनः संशयके अपार समुद्रमें डूब रही है। मैं इसके पार जाना चाहता हूँ, किंतु ढूँढ़नेपर भी कोई कूल-किनारा नहीं दिखायी देता। यदि प्रत्यक्ष, आगम और शिष्टाचार—ये तीनों ही प्रमाण हैं तो इनकी तो पृथक्-पृथक् उपलब्धि हो रही है और धर्म एक है; फिर ये तीनों कैसे धर्म हो सकते हैं?

भीष्मजीने कहा— राजन्! यदि तुम प्रमाण-भेदसे धर्मको तीन प्रकारका मानते हो तो तुम्हारा विचार ठीक नहीं है। यह निश्चय समझो कि धर्म एक ही है। तीनों प्रमाणोंके द्वारा एक ही धर्मका दर्शन होता है। मैं यह नहीं मानता कि ये तीनों प्रमाण भिन्न-भिन्न धर्मका प्रतिपादन करते हैं। उक्त तीनों प्रमाणोंके द्वारा जो धर्ममय मार्ग बतलाया गया है, उसीपर चलते रहो। तर्कका सहारा लेकर धर्मकी जिज्ञासा करना कदापि उचित नहीं है। मेरी बातमें तनिक भी संदेह न करो। अंधों और गूँगोंकी तरह निःशङ्क होकर, मैं जैसा कहूँ उसके अनुसार आचरण करो। अजातशत्रो! अहिंसा, सत्य, क्रोधका अभाव और दान—ये चार सनातन धर्म हैं, इनका सदा ही सेवन करो। तुम्हारे पिता-पितामह आदिने ब्राह्मणोंके साथ जैसा बर्ताव किया है, उसीका तुम भी अनुसरण करो; क्योंकि ब्राह्मण धर्मके उपदेशक हैं। जो मनुष्य प्रमाणको भी अप्रमाण बनाता है, वह अज्ञानी है। उसकी बातको प्रमाणिक नहीं मानना चाहिये; क्योंकि वह केवल विवाद करनेवाला है। तुम ब्राह्मणोंका ही विशेष आदर-सत्कार करके उनकी सेवामें लगे रहो और यह जान लो कि ये सम्पूर्ण लोक ब्राह्मणोंके ही आधारपर टिके हुए हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! जो मनुष्य धर्मकी निन्दा करते हैं और जो धर्मका आचरण करते हैं, वे किन लोकोंमें जाते हैं? आप इस विषयका वर्णन कीजिये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! जो मनुष्य रजोगुण और तमोगुणसे चित्त मलिन होनेके कारण धर्मसे द्रोह करते हैं, वे नरकमें पड़ते हैं तथा जो सदा सरलता और सत्यभाषणमें तत्पर होकर धर्मका पालन करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकका सुख भोगते हैं। आचार्यकी सेवा करनेसे जिन्हें एकमात्र धर्मका ही सहारा रहता है तथा जो सदा धर्ममें स्थित रहते हैं, वे देवलोकमें जाते हैं। मनुष्य हों या देवता, जो शरीरको कष्ट देकर भी धर्माचरणमें लगे रहते हैं तथा लोभ और द्वेषका त्याग कर देते हैं, उन्हें सुखकी प्राप्ति होती है। मनीषी पुरुष धर्मको ही ब्रह्माजीका ज्येष्ठ पुत्र कहते हैं। जैसे खानेवालोंका मन पके हुए फलको अधिक पसंद करता है, उसी प्रकार धर्मनिष्ठ पुरुष धर्मकी ही उपासना करते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! साधु पुरुष कौन-से काम करते हैं? तथा सज्जन और दुर्जन मनुष्य कैसे होते हैं?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! दुर्जन पुरुष दुराचारी, दुर्धर्ष (उद्दण्ड) और दुर्मुख (कटु वचन बोलनेवाले) होते हैं तथा सज्जन मनुष्य सुशील हुआ करते हैं। अब शिष्टाचारकी बातें सुनो। धर्मात्मा पुरुष सड़कपर, गौओंके बीचमें तथा अनाजकी ढेरीपर मल-मूत्रका त्याग नहीं करते। सत्पुरुष देवता, पितर, भूत (प्राणी), अतिथि और कुटुम्बी—इन पाँचोंको भोजन देकर शेष अन्नका स्वयं आहार करते हैं, भोजन करते समय बातचीत नहीं करते तथा भीगे हाथ लिये शयन नहीं करते हैं। जो लोग अग्नि, वृषभ, देवता, गोशाला, ब्राह्मण, धार्मिक और वृद्ध पुरुषोंकी प्रदक्षिणा करते हैं, जो बड़े-बूढ़ों, बोझसे कष्ट पाते हुए मनुष्यों और स्त्रियोंको तथा अनेकों गाँवोंके अधिपति, ब्राह्मण, गौ और राजाको सामनेसे आते देखकर जानेके लिये मार्ग देते हैं, उन सबको साधु पुरुष समझना चाहिये। सत्पुरुष-को चाहिये कि वह सब अतिथियों, सेवकों, स्वजनों तथा शरण चाहनेवाले मनुष्योंकी स्वागतपूर्वक रक्षा करे। देवताओंने मनुष्योंके लिये सबेरे और सायंकाल दो ही समय भोजन करनेका विधान किया है, बीचमें भोजन करनेकी विधि नहीं देखी जाती। इस नियमका पालन करनेसे उपवासका ही फल होता है। जो पुरुष ऋतुकालके अतिरिक्त समयमें स्त्रीके साथ

समागम नहीं करता, उसके द्वारा ब्रह्मचर्यका ही पालन होता है। अमृत, ब्राह्मण और गौ—ये तीनों एक समान हैं, अतः गौ और ब्राह्मणोंका सदा विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये। मनुष्य स्वदेशमें हो या परदेशमें, यदि उसके पास कोई अतिथि आ जाय तो उसे भूखा न रहने दे। गुरुने जिस कामके लिये आज्ञा दी हो, उसे पूरा करके उन्हें सूचित कर देना चाहिये। गुरुके आनेपर उन्हें प्रणाम करे और उनकी विधिवत् पूजा करके बैठनेके लिये आसन दे। गुरुकी पूजा करनेसे आयु, यश और लक्ष्मी—इन सबकी वृद्धि होती है। वृद्ध पुरुषोंका कभी अपमान न करे, उन्हें कोई काम करनेके लिये न भेजे तथा यदि वृद्ध पुरुष खड़े हों तो स्वयं भी बैठा न रहे, ऐसा करनेसे मनुष्यकी आयु क्षीण नहीं होती। नंगी स्त्री और नंगे पुरुषोंके ऊपर दृष्टि न डाले। मैथुन और भोजन—ये दोनों कार्य सदा एकान्त स्थानमें ही करे। तीर्थोंमें गुरु ही सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है, पवित्र वस्तुओंमें हृदय ही अधिक पवित्र है, ज्ञानोंमें परमात्माका ज्ञान सबसे श्रेष्ठ है और संतोष सबसे उत्तम सुख है। सायंकाल और प्रातःकालमें वृद्ध पुरुषोंकी बातें सुननी चाहिये। जो सदा बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें लगा रहता है उसे शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त होता है। स्वाध्याय और भोजनके समय दाहिना हाथ उठाना चाहिये तथा मन, वाणी और इन्द्रियोंको सदा अपने अधीन रखना चाहिये। अच्छे ढंगसे बनाये हुए खीर, हलुवा, खिचड़ी और हविष्य आदिके द्वारा देवताओं तथा पितरोंका अष्टकाश्राद्ध करना चाहिये। नवग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये। मूँछ और दाढ़ी बनवाते समय मङ्गल-सूचक शब्दका उच्चारण करना, छींकनेवालेको (शतं जीव आदि कहकर) आशीर्वाद देना तथा रोगग्रस्त पुरुषोंका उनके दीर्घायु होनेकी शुभ कामना करते हुए अभिनन्दन करना चाहिये।

युधिष्ठिर! तुम बड़े-से-बड़े संकटमें पड़नेपर भी किसी श्रेष्ठ पुरुषके प्रति 'तुम'का प्रयोग न करना। विद्वानोंके लिये तुम कहकर पुकारना अथवा उनका वध करना एक-सा ही माना गया है। जो अपने बराबरके हों, अपनेसे छोटे हों अथवा शिष्य हों, उनको 'तुम' कहनेमें कोई हर्ज नहीं है। पाप करनेवाले पुरुषका हृदय ही उसके पापको प्रकट कर देता है। दुराचारी मनुष्य जान-बूझकर किये हुए पापको भी दूसरोंसे छिपानेका प्रयत्न करते हैं, किंतु महापुरुषोंके सामने अपने किये हुए पापको गुप्त रखनेके कारण वे नष्ट हो जाते हैं। पापी मनुष्य यह सोचकर अपने पापपर पर्दा डालना चाहते हैं कि मुझे पाप करते समय न मनुष्य देख पाते हैं न देवता, किंतु यह उनकी भूल है; क्योंकि पापके द्वारा छिपाया हुआ पाप नये-नये पापकी ही वृद्धि करता है। जैसे नमककी डली जलमें डालनेसे गल जाती है, इसी प्रकार प्रायश्चित्त करनेसे तत्काल पापका नाश हो जाता है। इसलिये पापको छिपाना नहीं चाहिये; क्योंकि छिपानेसे वह बढ़ता है। यदि कभी पाप बन जाय तो उसे साधु पुरुषोंपर प्रकट कर देना चाहिये। वे उस पापको शान्त कर देते हैं। विद्वान् पुरुषोंका कहना है कि धर्म सम्पूर्ण प्राणियोंका हृदय है, इसलिये सबको धर्ममें ही लगना चाहिये। मनुष्यको उचित है कि वह अकेला ही धर्मका आचरण करे; किंतु धर्मध्वजी न बने। जो धर्मको उपभोगका साधन बनाते हैं—उसके नामपर जीविका चलाते हैं, वे धर्मके व्यवसायी हैं। दम्भका परित्याग करके देवताओंकी पूजा करे। छल-कपट छोड़कर गुरुजनोंकी सेवा करे और दान करके परलोककी यात्राके लिये धर्मरूपी धनका खजाना संग्रह करे।



भीष्मका शुभाशुभ कर्मोंको सुख-दुःखकी प्राप्तिका कारण बतलाते हुए धर्मके अनुष्ठानपर जोर देना

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! भाग्यहीन मनुष्य बलवान् हो तो भी उसे धन नहीं मिलता और जो भाग्यवान् है, वह बालक एवं दुर्बल होनेपर भी बहुत-सा धन प्राप्त कर लेता है। जबतक धनकी प्राप्तिका समय नहीं आता तबतक विशेष यत्न करनेपर भी कुछ हाथ नहीं लगता; किंतु लाभका समय आनेपर बिना यत्नके ही बहुत बड़ी सम्पत्ति मिल जाती है। यदि प्रयत्न करनेपर सफलता मिलनी अनिवार्य होती तो मनुष्य सब कुछ पा लेता। किंतु जो वस्तु प्रारब्धवश मनुष्यके लिये अलभ्य है, वह उद्योग करनेपर भी नहीं मिल सकती। बहुत-से मनुष्य यत्न करके भी विफल होते देखे जाते हैं। कितने ही लोग धनके लिये अनेकों बार कुकर्म करके भी धनहीन ही रह जाते हैं। कितने ही अपने धर्मानुकूल कर्तव्यका पालन करके धनी हो जाते और कई निर्धन ही दिखायी देते हैं। कोई मनुष्य नीतिशास्त्रका अध्ययन करके भी नीतिज्ञ नहीं देखा जाता और कोई नीतिसे अनभिज्ञ होनेपर भी मन्त्रीके पदपर पहुँच जाते हैं, इसका क्या कारण है? कभी-कभी विद्वान् और मूर्ख दोनोंकी एक-सी स्थिति होती है। खोटी बुद्धिवाले मनुष्य धनवान् हो जाते हैं

(और अच्छी बुद्धि रखनेवाले विद्वान्को फूटी कौड़ी भी नहीं नसीब होती)। यदि विद्या पढ़कर मनुष्य अवश्य ही सुख पा लेता तो विद्वान्को जीविकाके लिये किसी मूर्ख धनीका आश्रय नहीं लेना पड़ता। जिस तरह पानी पीनेसे मनुष्यकी प्यास अवश्य बुझ जाती है, उसी प्रकार यदि विद्यासे अभीष्ट वस्तुकी सिद्धि अनिवार्य होती तो कोई भी मनुष्य विद्याकी उपेक्षा नहीं करता। जिसकी मृत्युका समय नहीं आया है, वह सैकड़ों बाणोंसे बिंध जानेपर भी नहीं मरता; किंतु जिसके जीवनकी अवधि पूरी हो चुकी है, वह एक तिनकेसे छू जानेपर भी प्राण त्याग देता है।

भीष्मजीने कहा—बेटा! यदि नाना प्रकारकी चेष्टा तथा अनेकों उद्योग करनेपर भी मनुष्यको धन न मिल सके तो उसे उग्र तपस्या करनी चाहिये; क्योंकि बीज बोये बिना अङ्कुर नहीं पैदा होता। मनीषी पुरुषोंका कहना है कि मनुष्य दान देनेसे उपभोगकी सामग्री पाता है। बड़े-बूढ़ोंकी सेवा करनेसे उसको उत्तम बुद्धि प्राप्त होती है और अहिंसा-धर्मके पालनसे वह दीर्घजीवी होता है। इसलिये स्वयं दान दे, दूसरोंसे याचना न करे, धर्मनिष्ठ पुरुषोंकी पूजा करे, मीठे वचन बोले, सबका भला करे, शान्तभावसे रहे और किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे। युधिष्ठिर! डाँस, कीड़े और चींटी आदि जीवोंको उन-उन योनियोंमें उत्पन्न करके सुख-दुःखकी प्राप्ति करानेमें उनका अपना किया हुआ कर्म ही कारण है, यह सोचकर अपनी बुद्धिको स्थिर करो (और सत्कर्ममें लग जाओ)। मनुष्य जो शुभ और अशुभ कर्म करता तथा दूसरोंसे कराता है, उन दोनों प्रकारके कर्मोंमेंसे शुभकर्मका अनुष्ठान करके तो उसे प्रसन्न होना चाहिये और अशुभ कर्म हो जानेपर उससे किसी अच्छे फलकी आशा नहीं रखनी चाहिये। जब धर्मका फल देखकर मनुष्यकी बुद्धिमें धर्मकी श्रेष्ठताका निश्चय हो जाता है तभी उसका धर्मके प्रति विश्वास बढ़ता है और तभी उसका मन धर्ममें लगता है। जबतक धर्ममें बुद्धि दृढ़ नहीं होती तबतक कोई उसके फलपर विश्वास नहीं करता। प्राणियोंकी बुद्धिमत्ताकी यही पहचान है कि वे धर्मके फलमें विश्वास करके उसके आचरणमें लग जायँ। जिसे कर्तव्य और अकर्तव्य दोनोंका ज्ञान है, उस पुरुषको एकाग्रचित्त होकर धर्मका आचरण करना चाहिये। जो अतुल ऐश्वर्यके स्वामी हैं, वे यह सोचकर कि कहीं रजोगुणी होकर हम पुनः जन्म-मृत्युके चक्करमें न पड़ जायँ, धर्मका अनुष्ठान करते हैं और इस प्रकार अपने ही प्रयत्नसे आत्माको महत् पदकी प्राप्ति कराते हैं। काल किसी तरह धर्मको अधर्म नहीं बना सकता अर्थात् धर्म करनेवालेको दुःख नहीं देता; इसलिये धर्मात्मा पुरुषको विशुद्ध आत्मा ही समझना चाहिये। धर्मका स्वरूप प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी है। काल उसकी सब ओरसे रक्षा करता है। अतः अधर्ममें इतनी शक्ति नहीं है कि वह धर्मको छू भी सके। विशुद्धि और पापके स्पर्शका अभाव—ये दोनों धर्मके कार्य हैं। धर्म विजयकी प्राप्ति करानेवाला और तीनों लोकोंमें प्रकाश फैलानेवाला है। कोई कितना ही बुद्धिमान् क्यों न हो, वह किसीका हाथ पकड़कर उसे बलपूर्वक धर्ममें नहीं लगा सकता। अब मैं चारों वर्णोंके सम्बन्धमें कुछ कहता हूँ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन सब वर्णोंके शरीर पञ्चभूतोंसे ही बने हुए हैं और सबका आत्मा एक-सा है, फिर भी उनके लौकिक धर्म और विशेष धर्ममें विभिन्नता रखी गयी है। इसका उद्देश्य यही है कि सब लोग अपने-अपने धर्मका पालन करते हुए पुनः एकत्वको प्राप्त हों। यदि कहो धर्म तो नित्य माना गया है, फिर उससे स्वर्ग आदि अनित्य लोकोंकी प्राप्ति कैसे होती है? तो इसका उत्तर यह है कि जब धर्मका संकल्प नित्य होता है अर्थात् अनित्य कामनाओंका त्याग करके निष्कामभावसे धर्मका अनुष्ठान किया जाता है, उस समय किये हुए धर्मसे सनातन लोक (नित्य परमात्मा) की ही प्राप्ति होती है।



भीष्मजीका देवता, ऋषि, पर्वत और नदी आदिके नाम बतलाकर उनके स्मरणसे धर्मकी प्राप्ति बतलाना तथा भीष्मजीकी आज्ञासे युधिष्ठिरका परिवारसहित हस्तिनापुरमें जाना

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! मनुष्यके कल्याणका उपाय क्या है? क्या करनेसे वह सुखी होता है? किस कर्मके अनुष्ठानसे उसका पाप दूर होता है? और कौन-सा कर्म नष्ट करनेवाला है?

भीष्मजीने कहा—बेटा! यदि तीनों संध्याओंके समय देव-वंश और ऋषि-वंशका पाठ किया जाय तो मनुष्य दिन-रात, सबेरे-शाम अपनी इन्द्रियोंके द्वारा जानकर या अनजानमें जो-जो पाप करता है, उन सबसे छुटकारा पा जाता है तथा वह सदा पवित्र रहता है। देवर्षि-वंशका कीर्तन करनेवाला पुरुष कभी अंधा और बहरा न होकर सदा कल्याणका भागी होता है। वह तिर्यग्योनि और नरकमें नहीं पड़ता, संकरयोनियोंमें जन्म नहीं लेता, कभी दुःखसे भयभीत नहीं होता और मृत्युके

समय व्याकुल नहीं होता। (देवता और ऋषि आदिके वंशकी नामावली इस प्रकार है—) सर्वभूतनमस्कृत देवासुरगुरु स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी, उनकी पत्नी सती सावित्री देवी, वेदोंके उत्पत्तिस्थान जगत्कर्ता भगवान् नारायण, तीन नेत्रोंवाले उमापति महादेव, देवसेनापति स्कन्द, विशाख, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, सूर्य, शचीपति इन्द्र, यमराज, उनकी पत्नी धूमोर्णा, अपनी पत्नी गौरीके साथ वरुण, ऋद्धिसहित कुबेर, सौम्य स्वभाववाली सुरभी गौ, महर्षि विश्रवा, संकल्प, सागर, गङ्गा आदि नदियाँ, मरुद्गण, तपःसिद्ध वालखिल्य ऋषि, श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास, नारद, पर्वत, विश्वावसु, हाहा, हूहू, तुम्बुरु, चित्रसेन, देवदूत, सौभाग्यशालिनी देवकन्याएँ, उर्वशी, मेनका, रम्भा, मिश्रकेशी, अलम्बुषा, विश्वाची, घृताची, पञ्चचूडा और तिलोत्तमा आदि दिव्य अप्सराएँ, बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, अश्विनीकुमार, पितर, धर्म, शास्त्रज्ञान, तपस्या, दीक्षा, व्यवसाय, पितामह, रात, दिन, मरीचिनन्दन कश्यप, शुक्र, बृहस्पति, मङ्गल, बुध, राहु, शनैश्चर, नक्षत्र, ऋतु, मास, पक्ष, संवत्सर, विनताके पुत्र गरुड़, समुद्र, कद्रूके पुत्र सर्पगण, शतद्रु, विपाशा, चन्द्रभागा, सरस्वती सिन्धु देविका, प्रभास, पुष्कर, गङ्गा, महानदी, वेणा, कावेरी, नर्मदा, कुलम्पुना, विशल्या, करतोया, अम्बुवाहिनी, सरयू, गण्डकी, महानद शोणभद्र, ताम्रा, अरुणा, वेत्रवती, पर्णाशा, गौतमी, गोदावरी, वेण्या, कृष्णवेणा, अद्रिजा, दृषद्वती, चक्षु, मन्दाकिनी, प्रयाग, नैमिषारण्य, विश्वेश्वरका स्थान (काशी), विमल सरोवर, स्वच्छ सलिलसे युक्त पुण्यतीर्थ, कुरुक्षेत्र, उत्तम समुद्र, तपस्या, दान, जम्बूमार्ग, हिरण्वती, वितस्ता, प्लक्षवती, वेदस्मृति, वेदवती, मालवा, अश्ववती, पवित्र भूभाग, गङ्गाद्वार (हरिद्वार), ऋषिकुल्या, समुद्रगामिनी पवित्र नदियाँ, चर्मण्वती, कौशिकी, यमुना, भीमरथी, बाहुदा, माहेन्द्रवाणी, त्रिदिवा, नीलिका, नन्दा, अपरनन्दा, तीर्थभूत महान् ह्रद, गया, फल्गुतीर्थ, देवताओंसे युक्त धर्मारण्य, पवित्र देवनदी, तीनों लोकोंमें विख्यात, पवित्र एवं पापनाशक ब्रह्मनिर्मित सरोवर (पुष्करतीर्थ), दिव्य ओषधियोंसे युक्त हिमवान पर्वत, नाना प्रकारके धातुओं, तीर्थों और औषधोंसे सुशोभित विन्ध्यगिरि, मेरु, महेन्द्र, मलय, चाँदीकी खानोंसे युक्त श्वेतगिरि, शृङ्गवान्, मन्दर, नील, निषध, दर्दुर, चित्रकूट, अजनाभ, गन्धमादन, सोमगिरि तथा अन्यान्य पर्वत, दिशा, विदिशा, भूमि, वृक्ष, विश्वेदेव, आकाश, नक्षत्र और ग्रहगण—ये सदा हमारी रक्षा करें तथा जिनके नाम लिये गये हैं और जिनके नहीं लिये गये हैं, वे सम्पूर्ण देवता हमलोगोंकी रक्षा करते हैं। जो मनुष्य उपर्युक्त देवता आदिका कीर्तन, स्तवन और अभिनन्दन करता है, वह सब प्रकारके भयसे मुक्त हो जाता है। देवताओंकी स्तुति और अभिनन्दन करनेवाला पुरुष सब प्रकारके संकीर्ण पापोंसे छूट जाता है।

देवताओंके अनन्तर समस्त पापोंसे मुक्त करनेवाले तपःसिद्ध ब्रह्मर्षियोंके नाम बतलाता हूँ। यवक्रीत, रैभ्य, कक्षीवान्, औशिज, भृगु, अङ्गिरा, कण्व, मेधातिथि और सर्वगुण-सम्पन्न बर्हि—ये पूर्व दिशामें रहते हैं। उल्मुचु, प्रमुचु, मुमुचु, स्वस्त्यात्रेय, मित्रावरुणके पुत्र महाप्रतापी अगस्त्य और परम प्रसिद्ध ऋषिश्रेष्ठ दृढायु तथा ऊर्ध्वबाहु—ये दक्षिण दिशामें निवास करते हैं। अब पश्चिम दिशामें रहनेवाले ऋषियोंके नाम सुनो—अपने सहोदर भाइयोंसहित उषङ्गु शक्तिशाली परिव्याध, दीर्घतमा, गौतम, काश्यप, एकत, द्वित, त्रित, महर्षि दुर्वासा और सारस्वत। इसी प्रकार अत्रि, वसिष्ठ, शक्ति, पराशरनन्दन व्यास, विश्वामित्र, भरद्वाज, जमदग्नि, परशुराम, उद्दालकपुत्र श्वेतकेतु, कोहल, विपुल, देवल, देवशर्मा, धौम्य, हस्तिकाश्यप, लोमश, नाचिकेत, लोमहर्षण, उग्रश्रवा और भृगुनन्दन च्यवन—ये उत्तर दिशामें निवास करते हैं। यह देवता और ऋषियोंका मुख्य समुदाय अपने नामका कीर्तन करनेपर मनुष्यको सब पापोंसे मुक्त करता है।

अब राजर्षियोंके नाम सुनो—राजा नृग, ययाति, नहुष, यदु, शक्तिशाली पुरु, धुन्धुमार, दिलीप, प्रतापी सगर, कृशाश्व, यौवनाश्व, चित्राश्व, सत्यवान्, दुष्यन्त, महायशस्वी चक्रवर्ती राजा भरत, पवन, जनक, दृष्टरथ, नरश्रेष्ठ रघु, दशरथ, राक्षसहन्ता वीरवर राम, शशबिन्दु, भगीरथ, हरिश्चन्द्र, मरुत्त, दृढरथ, महोदर्य, अलर्क, ऐल (पुरूरवा), करन्धम, कध्मोर, दक्ष, अम्बरीष, कुकुर, महायशस्वी रैवत, कुरु, संवरण, सत्यपराक्रमी मान्धाता, राजर्षि मुचुकुन्द, गङ्गाजीसे सेवित राजा जह्नु, आदिराजा वेननन्दन पृथु, सबका प्रिय करनेवाले मित्रभानु, त्रसदस्यु, राजर्षिश्रेष्ठ श्वेत, प्रसिद्ध राजा महाभिष, निमि, अष्टक, आयु, राजर्षि क्षुप, राजा कक्षेयु, प्रतर्दन, दिवोदास, कोसलनरेश सुदास, राजर्षि नल, प्रजापति मनु, हविध्र, पृषध्र, प्रतीप, शान्तनु, अज, प्राचीनबर्हि, महायशस्वी इक्ष्वाकु, राजा अनरण्य, जानुजङ्घ, राजर्षि कक्षसेन तथा इनके अतिरिक्त पुराणोंमें जिनका अनेकों बार वर्णन हुआ है, वे सब पुण्यात्मा राजा स्मरण करनेयोग्य हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन सबेरे उठकर स्नान आदिसे शुद्ध हो प्रातःकाल और सायंकालमें इन नामोंका पाठ करता है, वह धर्मके फलका भागी होता है।

जनमेजयने पूछा—मुनिवर! मेरे पूर्व पितामह राजा युधिष्ठिरने बाणशय्यापर पड़े हुए कौरव-धुरन्धर भीष्मजीके

मुँहसे जब धर्मसम्बन्धी शास्त्रीय बातें और दानकी विधि सुन लीं, सब शङ्काओंका समाधान प्राप्त कर लिया और धर्म तथा अर्थके विषयमें उठनेवाले सम्पूर्ण संशयोंको मिटा डाला, उस समय फिर कौन-सा कार्य किया? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! धर्मराज युधिष्ठिरको इस प्रकार उपदेश देकर जब पितामह भीष्म चुप हो गये, उस समय सारा राजमण्डल कुछ देरतक स्तब्ध होकर चित्रलिखित-सा हो गया। तदनन्तर, सत्यवतीनन्दन महर्षि व्यासजीने थोड़ी देर ध्यान करके गङ्गानन्दन भीष्मसे कहा—'नरश्रेष्ठ! अब राजा युधिष्ठिर शान्त हो चुके हैं—इनके शोक और संदेह निवृत्त हो गये हैं और ये अपने भाइयों, अनुगामी राजाओं तथा भगवान् श्रीकृष्णके साथ आपके समीप बैठे हुए हैं।' अब आप इन्हें हस्तिनापुर जानेकी आज्ञा दीजिये।'

भगवान् व्यासके इस प्रकार कहनेपर शान्तनुनन्दन भीष्म मन्त्रियोंसहित राजा युधिष्ठिरको जानेकी आज्ञा देते हुए मधुरवाणीमें बोले—'राजन्! अब तुम हस्तिनापुरको जाओ और अपने मनकी चिन्ता दूर कर दो। राजा ययातिकी भाँति श्रद्धा और दम गुणसे सम्पन्न होकर क्षत्रिय-धर्मका पालन करते हुए देवताओंका पूजन और पितरोंका तर्पण करो। बहुत-सा अन्न खर्च करके पर्याप्त दक्षिणा देकर नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करते रहो। ऐसा करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा, अब तुम्हें अपनी मानसिक चिन्ता त्याग देनी चाहिये। तात! प्रजाको प्रसन्न रखना, मन्त्री, सेनापति आदि प्रकृतियोंको सान्त्वना देते रहना और सुहृदोंका यथोचित सम्मान करना। जैसे मन्दिरके आसपासके फले हुए वृक्षपर बहुत-से पक्षी आकर बसेरा लेते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे मित्र और हितैषी तुम्हारे आश्रयमें रहकर जीवन-निर्वाह करें। बेटा! जब सूर्यनारायण दक्षिणायनसे निवृत्त होकर उत्तरायणपर आ जायँ, उस समय फिर हमारे पास आना।'

यह सुनकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने 'बहुत अच्छा' कहकर पितामहकी आज्ञा स्वीकार की और उन्हें प्रणाम करके परिवारसहित हस्तिनापुरकी ओर चले। उनके आगे-आगे राजा धृतराष्ट्र और पतिव्रता गान्धारी देवी थीं और साथमें ऋषिगण, सभी भाई, भगवान् श्रीकृष्ण, नगर और प्रान्तके लोग तथा वृद्ध मन्त्री चल रहे थे। इन सबके साथ धर्मराजने हस्तिनापुरमें प्रवेश किया।



भीष्मके अन्त्येष्टि-संस्कारकी सामग्री लेकर युधिष्ठिर आदिका उनके पास आना और भीष्मका श्रीकृष्ण आदिसे देहत्यागकी अनुमति लेना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! हस्तिनापुरमें जानेके बाद कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने नगर और प्रान्तके लोगोंका यथोचित सम्मान किया तथा उन्हें अपने-अपने घर जानेकी आज्ञा दी। इसके बाद जिन स्त्रियोंके पति और पुत्र युद्धमें मारे गये थे, उन सबको बहुत-सा धन देकर धैर्य बँधाया। तदनन्तर, युधिष्ठिरका राज्यसिंहासनके ऊपर अभिषेक किया गया और उन्होंने मन्त्री आदि समस्त प्रकृतियोंको अपने-अपने पदपर स्थापित करके वेदवेत्ता एवं गुणवान् ब्राह्मणोंसे उत्तम आशीर्वाद ग्रहण किया। तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिरने पचास दिनोंतक हस्तिनापुरमें रहनेके बाद जब सूर्यदेवको दक्षिणायनसे निवृत्त होकर उत्तरायणमें आये देखा तो उन्हें कुरुश्रेष्ठ भीष्मजीकी मृत्युका स्मरण हो आया और वे यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंके साथ हस्तिनापुरसे चलनेको उद्यत हुए। जानेके पहले उन्होंने भीष्मजीका अन्त्येष्टि-संस्कार करनेके लिये घृत, माला, सुगन्धित द्रव्य, रेशमी वस्त्र, चन्दन, काला अगुरु, अच्छे-अच्छे फूल तथा नाना प्रकारके रत्न आदि सामग्री भेज दी। फिर धृतराष्ट्र और गान्धारीको आगे करके माता कुन्ती, सब भाई, भगवान् श्रीकृष्ण, बुद्धिमान् विदुर और सात्यकिको साथ लेकर वे नगरसे बाहर निकले। उनके साथ रथ, हाथी, घोड़े आदि राजोचित उपकरण और वैभवका महान् ठाट-बाट था। बंदीजन उनकी स्तुति करते हुए चलते थे। महातेजस्वी युधिष्ठिर भीष्मजीके स्थापित किये हुए त्रिविध अग्नियोंको आगे रखकर स्वयं पीछे-पीछे चल रहे थे। यथासमय वे कुरुक्षेत्रमें शान्तनुनन्दन भीष्मजीके पास जा पहुँचे। उस समय वहाँ पराशरनन्दन व्यास, देवर्षि नारद और देवल ऋषि उनके पास बैठे थे तथा महाभारत-युद्धमें मरनेसे बचे हुए और अन्यान्य देशोंसे आये हुए बहुत-से राजा उन महात्माकी सब ओरसे रक्षा कर रहे थे। धर्मराज युधिष्ठिर दूरसे ही वीरशय्यापर सोये हुए भीष्मजीका दर्शन करके भाइयोसहित रथसे उतर पड़े और निकट जाकर उन्होंने पितामह भीष्म तथा व्यास आदि महर्षियोंको प्रणाम किया। इसके बाद उन महर्षियोंने भी उनका अभिनन्दन किया। फिर वे ऋषियोसे घिरे हुए पितामहके पास जाकर बोले—'दादाजी! मैं युधिष्ठिर आपकी सेवामें उपस्थित हूँ और

आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ। यदि आपको मेरी बात सुनायी देती हो तो आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? आपके बताये हुए समयपर अग्नियोंको लेकर मैं उपस्थित हुआ हूँ। आपके महातेजस्वी पुत्र राजा धृतराष्ट्र भी अपने मन्त्रियोंके साथ यहाँ पधारे हुए हैं। भगवान् श्रीकृष्ण, मरनेसे बचे हुए समस्त राजा और कुरुजाङ्गल देशके लोग भी आये हुए हैं। आप आँखें खोलकर इन सबकी ओर देखिये। आपके कथनानुसार इस समयके लिये जो कुछ करना आवश्यक था, वह सब कर लिया गया है। सभी उपयोगी वस्तुओंका प्रबन्ध हो चुका है।'

परम बुद्धिमान् युधिष्ठिरके इस प्रकार कहनेपर गङ्गानन्दन भीष्मजीने आँखें खोलकर अपने चारों ओर खड़े हुए समस्त भरतवंशी राजाओंकी ओर देखा। फिर युधिष्ठिरका हाथ पकड़कर मेघके समान गम्भीर वाणीमें यह समयोचित वचन कहा—'बेटा युधिष्ठिर ! तुम अपने मन्त्रियोंके साथ यहाँ



आ गये, यह बड़ी अच्छी बात हुई। भगवान् सूर्य अब दक्षिणायनसे उत्तरायणकी ओर आ गये हैं। इन तीखे बाणोंकी शय्यापर शयन करते हुए आज मुझे अट्ठावन दिन हो गये; किंतु ये दिन मेरे लिये सौ वर्षके समान बीते हैं। इस समय चान्द्रमासके अनुसार माघका महीना प्राप्त हुआ है। इसका यह शुक्लपक्ष चल रहा है, जिसका एक भाग बीत चुका है और तीन भाग बाकी है।'

धर्मपुत्र युधिष्ठिरने ऐसा कहकर भीष्मजीने धृतराष्ट्रको सम्बोधित करके कहा—'राजन् ! तुम धर्मको अच्छी तरह जानते हो। तुमने अर्थ-तत्त्वका भी भलीभाँति निर्णय कर लिया है। अब तुम्हारे मनमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है; क्योंकि तुमने अनेकों शास्त्रोंका ज्ञान रखनेवाले बहुत-से विद्वान् ब्राह्मणोंकी सेवा की है। सम्पूर्ण वेदों, शास्त्रों और धर्मोंका तुम्हें पूरा-पूरा ज्ञान है; अतएव तुमको शोक नहीं करना चाहिये। जो कुछ हुआ है, वैसी ही होनहार थी। तुमने कृष्णद्वैपायन व्यासजीसे देवताओंका रहस्य भी सुन लिया है (उसीके अनुसार महाभारत-युद्धकी सारी घटनाएँ हुई हैं)। ये पाण्डव जैसे राजा पाण्डुके पुत्र हैं वैसे ही धर्मकी दृष्टिसे तुम्हारे भी हैं। ये सदा गुरुजनोंकी सेवामें लगे रहते हैं। तुम धर्ममें स्थित रहकर अपने पुत्रोंके समान ही इनकी रक्षा करना। धर्मराज युधिष्ठिरका हृदय बहुत ही शुद्ध है। ये सदा तुम्हारी आज्ञाके अधीन रहेंगे। मैं जानता हूँ इनका स्वभाव बहुत ही कोमल है और ये गुरुजनोंके प्रति बड़ी भक्ति रखते हैं। तुम्हारे पुत्र बड़े दुरात्मा, क्रोधी, लोभी, ईर्ष्या रखनेवाले और दुराचारी थे, अतः उनके लिये कभी शोक न करना।'

धृतराष्ट्रसे ऐसा कहकर भीष्मजी भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—'भगवन् ! आप देवताओंके भी देवता हैं। देवता और असुर सभी आपके चरणोंमें शीश झुकाते हैं। अपने तीन पगोंसे त्रिलोकीको नापनेवाले भगवान् वामन ! आपको प्रणाम है। आप शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले हैं, वासुदेव, हिरण्यात्मा, पुरुष, सविता, विराट्, अनुरूप जीव और सनातन परमात्मा भी आप ही हैं। कमलके समान नेत्रोंवाले पुरुषोत्तम ! आप मेरा उद्धार करें। श्रीकृष्ण ! अब आप मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये और सदा आपकी शरणमें रहनेवाले इन पाण्डु-पुत्रोंकी रक्षा करते रहिये। मैंने दुर्बुद्धि दुर्योधनको यह कहकर समझाया था कि 'जहाँ श्रीकृष्ण हैं वहाँ धर्म है जहाँ धर्म है उसी पक्षकी जीत होनी निश्चित है, इसलिये बेटा दुर्योधन ! भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो, यह संधिके लिये बड़ा अच्छा अवसर हाथ आया है।' इस प्रकार बार-बार कहनेपर भी उस मूर्खने मेरी बात नहीं मानी और सारी पृथ्वीके वीरोंका नाश कराकर अन्तमें वह स्वयं भी कालके गालमें चला गया। भगवन् ! मैं आपको जानता हूँ। आप वे ही पुरातन ऋषि नारायण हैं, जो नरके साथ चिरकालतक बदरिकाश्रममें निवास करते रहे हैं। देवर्षि नारद और महातपस्वी व्यासजीने भी मुझसे कहा था कि 'ये श्रीकृष्ण और अर्जुन साक्षात् भगवान् नारायण और नर हैं, जो मानव-शरीरमें अवतीर्ण हुए

हैं।' श्रीकृष्ण ! अब आप आज्ञा दीजिये, मैं इस शरीरका परित्याग करूँगा। आपकी आज्ञा मिलनेपर मुझे परमगतिकी प्राप्ति होगी।'

श्रीकृष्णने कहा—भीष्मजी ! मैं आपको सहर्ष आज्ञा देता हूँ। आप वसुलोकको जाइये, इस लोकमें आपके द्वारा अणुमात्र भी पाप नहीं हुआ है। राजर्षे ! आप दूसरे मार्कण्डेयके समान पितृभक्त हैं; इसलिये मृत्यु विनीत दासीकी भाँति आपके वशमें है।

भगवान्‌के ऐसा कहनेपर गङ्गानन्दन भीष्मने पाण्डवों तथा धृतराष्ट्र आदि सभी सुहृदोंसे कहा—'अब मैं प्राणोंका त्याग करना चाहता हूँ, तुम सब लोग मुझे इसके लिये आज्ञा दो। तुम्हें सदा सत्यधर्मके पालनका प्रयत्न करते रहना चाहिये; क्योंकि सत्य ही सबसे बड़ा बल है। तुम लोगोंको सबके साथ कोमलताका बर्ताव करना, सदा अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखना, ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति करना तथा धर्मनिष्ठ एवं तपस्वी होना चाहिये।'

यह कहकर भीष्मजीने अपने सब सुहृदोंको गलेसे लगाया और युधिष्ठिरसे पुनः इस प्रकार कहा—'राजन् ! तुम सामान्यतः सभी ब्राह्मणोंकी, विशेषतः विद्वानोंकी और आचार्य तथा ऋत्विजोंकी सदा ही पूजा करते रहना।'



भीष्मजीका प्राण-त्याग और धृतराष्ट्र आदिके द्वारा उनका दाह-संस्कार, कौरवोंका गङ्गाके जलसे भीष्मको जलाञ्जलि देना, गङ्गाजीका प्रकट होकर पुत्रके लिये शोक करना और श्रीकृष्णका उन्हें समझाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! समस्त कौरवोंसे इस प्रकार कहकर शान्तनुनन्दन भीष्मजी कुछ देरतक चुपचाप पड़े रहे। तदनन्तर, वे मनसहित प्राणवायुको क्रमशः भिन्न-भिन्न धारणाओंमें स्थापित करने लगे। इस तरह यौगिक क्रियाके द्वारा रोके हुए महात्मा भीष्मजीके प्राण क्रमशः ऊपर चढ़ने लगे। उस समय वहाँ एकत्रित हुए सभी संत-महात्माओंके बीच एक बड़े आश्चर्यकी घटना घटी। व्यास आदि सब महर्षियोंने देखा कि शान्तनुनन्दन भीष्मका प्राण उनके जिस-जिस अङ्गको त्यागकर ऊपर उठता था, उस-उस अङ्गके बाण अपने-आप निकल जाते और उनका घाव भर जाता था। इस प्रकार सबके देखते-देखते भीष्मजीका शरीर क्षणभरमें बाणसे रहित हो गया। यह देखकर भगवान् श्रीकृष्ण और व्यास आदि महर्षियोंको बड़ा विस्मय हुआ। भीष्मजीने अपने देहके सभी द्वारोंको बंद करके प्राणको सब ओरसे रोक लिया था, इसलिये वह उनका मस्तक (ब्रह्मरन्ध्र) फोड़कर आकाशमें चला गया। उस समय देवताओंने दुन्दुभी बजायी और फूलोंकी वर्षा की। सिद्धों तथा ब्रह्मर्षियोंको बड़ा हर्ष हुआ। वे भीष्मजीको साधुवाद देने लगे। भीष्मजीका प्राण उनके ब्रह्मरन्ध्रसे निकलकर उल्काकी भाँति आकाशकी ओर उड़ा और क्षणभरमें विलीन हो गया। इस प्रकार भरतवंशका भार वहन करनेवाले शान्तनुनन्दन भीष्मजी कालके अधीन हुए।

तदनन्तर, बहुत-से काष्ठ और नाना प्रकारके सुगन्धित द्रव्य लेकर महात्मा पाण्डव, विदुर और युयुत्सुने चिता तैयार की और बाकी लोग अलग खड़े होकर देखते रहे। तत्पश्चात् युधिष्ठिर और विदुरजीने भीष्मजीको चितापर सुलाकर उन्हें रेशमी वस्त्रों और फूलोंकी मालाओंसे ढक दिया। उस समय युयुत्सुने उनके ऊपर छत्र लगाया, भीमसेन तथा अर्जुन श्वेत चँवर और व्यजन डुलाने लगे। माद्रीकुमार नकुल और सहदेवने पगड़ी हाथमें लेकर भीष्मजीके मस्तकपर रखी। कुरुकुलकी स्त्रियाँ ताड़के पंखे लेकर चारों



ओरसे उन्हें हवा करने लगीं। फिर पाण्डवोंने विधिपूर्वक समयोचित पितृमेध किया और भीष्मके शवका संस्कार करते हुए अग्निमें बहुत-सी आहुतियाँ डालीं। उस समय सामवेदके विद्वान् ब्राह्मण सामगान करने लगे और धृतराष्ट्रने चन्दनकी लकड़ी तथा सुगन्धित वस्तुओंसे भीष्मके शरीरको आच्छादित करके उनकी चितामें आग लगा दी। फिर धृतराष्ट्र आदि सब कौरवोंने उस जलती हुई चिताकी प्रदक्षिणा की। इस प्रकार भीष्मजीका दाह-संस्कार करके समस्त कौरव अपने कुलकी स्त्रियोंको साथ लेकर ऋषि-मुनियोंसे सेवित परम पवित्र भागीरथीके तटपर गये। उनके साथ महर्षि व्यास, देवर्षि नारद, असित, देवल, भगवान् श्रीकृष्ण तथा नगर-निवासी मनुष्य भी थे। वहाँ पहुँचकर सब लोगोंने विधिपूर्वक महात्मा भीष्मको जलाञ्जलि दी।

उस समय अपने पुत्र भीष्मको जलाञ्जलि देनेका कार्य पूरा हो जानेपर भगवती भागीरथी जलके ऊपर प्रकट हुईं और शोकसे विकल हो कौरवोंसे रो-रोकर कहने लगीं—



'प्रिय पुत्रो! मेरी बात सुनो—भीष्म राजोचित सदाचारसे सम्पन्न थे, उनकी बुद्धि बड़ी पवित्र थी और उनका जन्म भी बहुत उत्तम कुलमें हुआ था। वे कुरुकुलके वृद्ध पुरुषोंका सत्कार करनेवाले और अपने पिताके बड़े भक्त थे। उन्होंने अपने जीवनमें महान् व्रतका पालन किया था। जमदग्नि-कुमार परशुरामजी भी अपने दिव्य अस्त्रोंके द्वारा उन्हें परास्त नहीं कर सके थे; किंतु वे ही महापराक्रमी भीष्म शिखण्डीके हाथसे मारे गये, यह कितने दुःखकी बात है! अवश्य ही मेरा हृदय पत्थरका बना हुआ है, तभी तो अपने प्यारे पुत्रको जीवित न देखकर भी यह फट नहीं जाता। काशीपुरीके स्वयंवरमें समस्त क्षत्रिय राजा एकत्र हुए थे; किंतु भीष्मने अकेले ही उन सबको जीतकर काशिराजकी कन्याओंका अपहरण किया था। हाय! बलमें जिनकी समानता करनेवाला इस पृथ्वीपर दूसरा कोई वीर नहीं है, उन्हींको शिखण्डीके हाथसे मारे गये सुनकर आज मेरी छाती क्यों नहीं फट जाती? ओह! जिन्होंने कुरुक्षेत्रके मैदानमें युद्ध करके परशुरामको भी अनायास ही कष्टमें डाल दिया था, उन्हींकी मृत्यु शिखण्डीके हाथसे हुई!'

ऐसी बातें कहकर जब गङ्गाजी बहुत विलाप करने लगीं तो भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें समझाते हुए कहा—'कल्याणी! धैर्य धारण करो, शोक त्याग दो। तुम्हारे पुत्र भीष्मजी अत्यन्त उत्तम लोकमें गये हैं, इसमें तनिक भी संदेह न करो। वे महातेजस्वी वसु थे। वसिष्ठ मुनिके शापसे उन्हें मनुष्य-योनिमें जन्म लेना पड़ा था। उनके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। उन्होंने समराङ्गणमें क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध किया था। वे अर्जुनके द्वारा मारे गये हैं; शिखण्डीके हाथसे उनकी मृत्यु नहीं हुई है। देवि! तुम्हारे पुत्र कुरुश्रेष्ठ भीष्म जब हाथमें धनुष-बाण लिये रहते, उस समय साक्षात् इन्द्र भी उन्हें मारनेमें समर्थ नहीं हो सकते थे। वे तो अपनी इच्छासे ही शरीर त्यागकर दिव्य लोकमें गये हैं। सम्पूर्ण देवता मिलकर भी युद्धमें उन्हें मारनेकी शक्ति नहीं रखते थे, इसलिये तुम कुरुनन्दन भीष्मजीके लिये शोक न करो। वे वसुओंके स्वरूपको प्राप्त हुए हैं, उनकी चिन्ता छोड़ दो।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्ण और व्यासने जब इस प्रकार समझाया तो नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाजी शोक छोड़कर पानीमें उतर गयीं और श्रीकृष्ण आदि सब लोग गङ्गाजीका सत्कार करके उनकी आज्ञा ले वहाँसे लौट आये।

★

अनुशासनपर्व समाप्त

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

आश्वमेधिकपर्व

युधिष्ठिरका शोक करना, श्रीकृष्णका उन्हें सान्त्वना देना और व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाते हुए राजा मरुत्तकी कथा सुनाना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप नररत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर विजय-प्राप्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

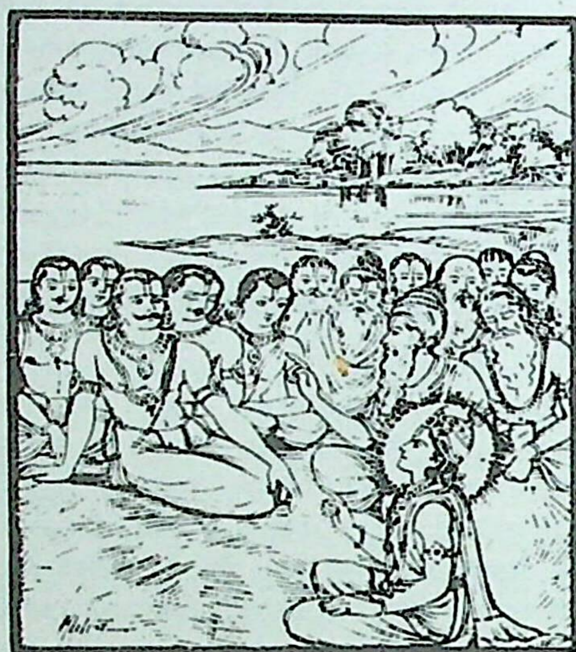
वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भीष्मको जलाञ्जलि दे लेनेके पश्चात् महाराज धृतराष्ट्रको आगे करके महाबाहु युधिष्ठिर पानीसे बाहर निकले। उस समय उनकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ शोकसे व्याकुल हो रही थीं। बाहर आनेपर वे दोनों



नेत्रोंसे आँसूकी धारा बहाते हुए गङ्गाजीके तटपर गिर पड़े। राजाको इतना दीन और हतोत्साह देखकर पाण्डव फिर शोकमें डूब गये और उन्हींके पास बैठ रहे। तब भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'राजन्! यदि मनुष्य मरे हुए प्राणीके लिये अपने मनमें अधिक शोक करता है तो उसके परलोकवासी पिता-पितामह आदि बहुत संतप्त होते हैं। इसलिये आप बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करके सोम-रससे देवताओंको और स्वधा (श्राद्ध) के द्वारा पितरोंको तृप्त कीजिये। अतिथियोंको अन्न और जल देकर तथा अकिंचन मनुष्योंको उनकी इच्छाएँ पूर्ण करके संतुष्ट कीजिये। आपने तो जाननेयोग्य तत्त्वका ज्ञान प्राप्त किया है, करनेयोग्य कार्योंको पूर्ण कर लिया है तथा भीष्म, व्यास, नारद और विदुरजीके मुँहसे राजाके धर्मोंका श्रवण किया है। अतः आपको मूढ़ पुरुषोंके समान शोक नहीं करना चाहिये। उठिये और अपने पिता-पितामहोंके बर्तावका अनुसरण करते हुए राज्यका भार सँभालिये। महाराज! जैसी होनहार थी वैसा ही सब कुछ हुआ है, अतः शोक त्याग दीजिये। इस युद्धमें जो लोग मारे गये हैं, उन्हें अब आप फिर नहीं देख सकते।'

यह कहकर भगवान् श्रीकृष्ण चुप हो गये। तब महातेजस्वी युधिष्ठिरने कहा—'गोविन्द! आपका मेरे ऊपर जो प्रेम है, उसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। आप स्नेह और सौहार्दवश सदा ही मुझपर कृपा करते रहते हैं। गदाधर! यदि प्रसन्नतापूर्वक आप मुझे तपोवनमें जानेकी आज्ञा दे देते तो मेरा सबसे बड़ा प्रिय कार्य हो जाता। मैं पितामह भीष्मको और युद्धसे कभी पीठ न दिखानेवाले नरश्रेष्ठ कर्णको मरवाकर कभी शान्ति नहीं पा सकता। अब जिस उपायसे मुझे अपने क्रूरतापूर्ण पापसे छुटकारा मिले, जिस कामके करनेसे मेरा चित्त शुद्ध हो, वही कीजिये।'

कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको ऐसी बातें करते देख धर्मके तत्त्वको जाननेवाले महातेजस्वी व्यासजीने कहा—'तात!



तुम्हारी बुद्धि अभी शुद्ध नहीं हुई। तुम पुनः बालकोंकी भाँति मोहमें पड़ गये। हमलोगोंका बार-बार समझाना व्यर्थका प्रलाप सिद्ध हो रहा है, अब हम किस लायक रह गये? युद्धसे ही जिनकी जीविका चलती है, उन क्षत्रियोंके धर्म तुम्हें भलीभाँति विदित हैं। जैसा बर्ताव करनेसे राजाको मानसिक चिन्तासे ग्रस्त नहीं होना पड़ता, वह भी तुमसे छिपा नहीं है। तुमने सम्पूर्ण मोक्ष-धर्मोंका यथार्थरूपसे श्रवण किया है। मैंने भी अनेकों बार तुम्हारे संदेहोंका निवारण किया है। इसके सिवा, तुम सम्पूर्ण राज-धर्म और दान-धर्मको भी सुन चुके हो। इस प्रकार सब धर्मोंके ज्ञाता और सम्पूर्ण शास्त्रोंके विद्वान् होकर भी अज्ञानवश बारंबार मोहमें क्यों पड़ रहे हो? युधिष्ठिर! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हारी बुद्धि ठीक नहीं है (तभी तुम सारा दोष अपने ही ऊपर मढ़ते हो)। अच्छा, यदि अन्ततोगत्वा तुम अपनेको ही युद्ध-रूप पाप-कर्मकी जड़ मानते हो तो वह उपाय भी सुनो, जिससे उस पापका नाश हो सकता है। जो मनुष्य पाप करते हैं, वे तपस्या, यज्ञ और दानके द्वारा ही अपना उद्धार करते हैं। इन्हीं कर्मोंसे पापियोंकी शुद्धि होती है। यज्ञोंसे ही देवताओंका माहात्म्य अधिक हुआ है और क्रियानिष्ठ देवताओंने यज्ञके ही बलसे दानवोंको परास्त किया है। दशरथनन्दन भगवान् रामने तथा दुष्यन्त और शकुन्तलाके पुत्र तुम्हारे पूर्वपितामह राजा भरतने जिस प्रकार अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान किया था, उसी प्रकार तुम भी नाना प्रकारकी दक्षिणा देकर तथा बहुत-से मनोवाञ्छित पदार्थ, अन्न और धन आदि खर्च करके अश्वमेधयज्ञ करो।'

युधिष्ठिरने कहा—विप्रवर! इसमें संदेह नहीं कि अश्वमेधयज्ञ राजाको पवित्र कर सकता है, किंतु इसके सम्बन्धमें मैं अपना एक हार्दिक अभिप्राय आपके सामने प्रकट करना चाहता हूँ, उसे सुनिये। अपने जाति-भाइयोंका यह महान् संहार करानेके बाद अब मेरे पास दक्षिणामें देनेके लिये धन नहीं रह गया है, अतः इस समय मैं थोड़ा-सा भी दान करनेमें असमर्थ हूँ। यहाँ जो राजकुमार उपस्थित हैं, ये सभी संकटमें पड़े हुए हैं। इनके शरीरका घाव भी अभी सूखने नहीं पाया है। इस युद्धके कारण ये भी दीन एवं दुःखी हो गये हैं। अतः इनसे भी मैं धनकी याचना नहीं कर सकता। सारी पृथिवीका नाश कराकर यों ही मैं शोकमें डूबा हुआ हूँ। अब इन बेचारोंसे किस तरह कर वसूल करूँ? दुर्योधनके अपराधसे यह पृथ्वी और इसपर रहनेवाले अधिकांश राजा नष्ट हो गये तथा हमलोगोंके माथे अपयशका टीका लगा। दुर्योधनने धनके लोभसे समस्त भूमण्डलका संहार कराया; किंतु धन मिलना तो दूर रहा, उसका अपना खजाना भी खाली हो गया। अश्वमेधयज्ञमें समूची पृथ्वीकी दक्षिणा देनी चाहिये, यही विद्वानोंने मुख्य कल्प माना है। इसके सिवा जो कुछ किया जाता है, वह विधिके विपरीत है। मुख्य वस्तुके अभावमें जो दूसरी कोई वस्तु दी जाती है, वह प्रतिनिधि दक्षिणा कहलाती है; किंतु प्रतिनिधि दक्षिणा देनेकी मेरी इच्छा नहीं होती; अतः इस विषयमें आप मुझे उचित सलाह देनेकी कृपा करें।

युधिष्ठिरके इस प्रकार कहनेपर श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासने थोड़ी देरतक सोचकर कहा—'धर्मराज! यद्यपि तुम्हारा खजाना इस समय खाली हो गया है तथापि वह बहुत शीघ्र भर जायगा। प्राचीन समयमें महात्मा राजा मरुत्तने बड़ा भारी यज्ञ करके उसमें ब्राह्मणोंको बहुत-सा सुवर्ण दान किया था। वह इतना अधिक था कि ब्राह्मणलोग उसे ला न सके, वहीं छोड़कर चले आये। वह सारा धन आज भी हिमालय पर्वतपर पड़ा हुआ है। तुम उसे मँगवा लो, वह तुम्हारे यज्ञके लिये पर्याप्त होगा।'

युधिष्ठिरने पूछा—महर्षे! महाराज मरुत्त किस समय इस पृथ्वीके राजा हुए थे? तथा उनके यज्ञमें इतने धनका संग्रह किस प्रकार किया गया था?

व्यासजीने कहा—बेटा! सत्ययुगमें राजदण्ड धारण करनेवाले वैवस्वत मनु एक प्रसिद्ध राजा थे। उनके पुत्र महाबाहु प्रसंधिके नामसे विख्यात थे। प्रसंधिके पुत्र

क्षुप और क्षुपके पुत्र महाराज इक्ष्वाकु हुए। इक्ष्वाकुके सौ पुत्र हुए, जो बड़े ही धार्मिक थे। उन्होंने उन सभी पुत्रोंको इस पृथ्वीका राजा बनाया। उनमें सबसे ज्येष्ठ पुत्रका नाम था विंश, जो धनुर्धर वीरोंका आदर्श था। विंशके पुत्रका नाम विविंश था, उसके पंद्रह पुत्र हुए। वे सब-के-सब धनुषके द्वारा पराक्रम दिखानेवाले, ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, दान-धर्मपरायण, शान्त और सर्वदा मधुर-भाषण करनेवाले थे। इन सबमें जो बड़ा था, उसका नाम था खनीनेत्र, वह अपने छोटे भाइयोंको बहुत कष्ट दिया करता था। पराक्रमी तो वह था ही, सबको जीतकर अकण्टक राज्य करने लगा; किंतु वह राज्यकी रक्षाका प्रबन्ध करनेमें असमर्थ था। प्रजा उससे संतुष्ट नहीं थी, इसलिये सबने मिलकर उसको राज्यसिंहासनसे उतार दिया और उसकी जगह उसके पुत्र सुवर्चाका राज्याभिषेक किया। सुवर्चाको राजा बनाकर प्रजा बहुत प्रसन्न हुई। सुवर्चा अपने पिताकी वह दुर्दशा—वह राज्यसे हटाया जाना देखकर शङ्कित रहते थे। इसलिये वे प्रजाका हित करनेकी इच्छासे बड़ी सावधानी और तत्परताके साथ राज्य-संचालन करने लगे। वे ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति रखते, सत्य बोलते, पवित्रतासे रहते और मन तथा इन्द्रियोंको अपने वशमें रखते थे। सदा धर्ममें लगे रहनेवाले उन मनस्वी राजापर प्रजावर्गके लोगोंका विशेष अनुराग था; किंतु केवल धर्ममें ही प्रवृत्त रहनेके कारण कुछ दिनोंमें राजाका खजाना खाली हो गया और उनके वाहन आदि भी नष्ट हो गये। उनकी यह दुर्बलता सामन्त राजाओंसे छिपी न रही। वे चारों ओरसे धावा करके उन्हें क्लेश पहुँचाने लगे। इससे अपने सेवकों और पुरवासियोंसहित वे बड़े कष्टमें पड़ गये। यद्यपि उनकी सेनाका संहार हो गया था तथापि आक्रमणकारी राजालोग उन्हें मार न सके; क्योंकि वे सदा धर्मका पालन किया करते थे (अतः धर्म उनकी रक्षा कर रहा था)। जब शत्रु अधिक पीड़ा देने लगे तो सुवर्चाने अपने हाथको मुँहसे लगाकर शङ्खकी भाँति बजाया। इससे बहुत बड़ी सेना प्रकट हो गयी। उसीकी सहायतासे उन्होंने अपने राज्यकी सीमापर निवास करनेवाले शत्रुओंको मार भगाया। हाथ बजानेके कारण ही राजा सुवर्चाका नाम करन्धम हो गया।

करन्धमके त्रेतायुगके आरम्भमें अविक्षित् नामका एक पुत्र हुआ। उसके शरीरकी शोभा इन्द्रसे तनिक भी कम नहीं थी। उसको जीतना देवताओंके लिये भी कठिन था। भूमण्डलके सभी भूपाल उसके अधीन थे। वह अपने सदाचार और बलके प्रभावसे सबका सम्राट् हो गया। शौर्यमें वह इन्द्रकी बराबरी करता था। उसका मन धर्ममें लगा रहता था। वह सदा यज्ञ करनेवाला, धर्मपरायण, कान्तिमान् और जितेन्द्रिय था। वह सूर्यके समान तेजस्वी, पृथ्वीके समान क्षमाशील, बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् और हिमालयके समान स्थिर रहनेवाला था। अपने मन, वाणी, कर्म, इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह आदिके द्वारा वह सदा प्रजाजनोंका चित्त प्रसन्न रखता था। उसने विधिके अनुसार सौ बार अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किया था और साक्षात् अङ्गिरा मुनिने उसके यज्ञ कराये थे। उसी राजा अविक्षित्के पुत्र महाराज मरुत्त हुए। वे गुणोंमें अपने पितासे बढ़े-चढ़े थे। उन्हें धर्मके तत्त्वका ज्ञान था। वे महान् यशस्वी एवं चक्रवर्ती राजा थे। उनमें दस हजार हाथियोंका बल था। वे साक्षात् दूसरे विष्णुके समान माने जाते थे। उन्होंने यज्ञ करनेकी इच्छासे सोनेके हजारों बर्तन बनवाये थे। हिमालयके उत्तरी भागमें मेरु पर्वतके पास एक महान् सुवर्णमय पर्वत है। उसीके निकट उन्होंने यज्ञशाला बनवायी और वहीं यज्ञ-कार्यका आरम्भ किया। उन्होंने अनेकों सुनार बुलाकर बहुत-से सुवर्णमय कुण्ड, सोनेके बर्तन, थाली और आसन (चौकी आदि) तैयार कराये, उन सब चीजोंकी गिनती बताना असम्भव है। सब सामग्री तैयार हो जानेपर धर्मात्मा राजा मरुत्तने अन्य राजाओंके साथ विधिपूर्वक यज्ञ किया।



इन्द्रकी प्रेरणासे बृहस्पतिका मनुष्यके यज्ञ न करानेकी प्रतिज्ञा करना, मरुत्तका नारदजीकी आज्ञासे संवर्तके पास जाना और उन्हें यज्ञके लिये राजी करना

युधिष्ठिरने पूछा—तपोधन! राजा मरुत्तका पराक्रम कैसा था? उन्हें इतने सुवर्णकी प्राप्ति किस तरह हुई? इस समय वह धन किस स्थानपर पड़ा हुआ है? और हमलोग उसे कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

व्यासजीने कहा—राजन्! महर्षि अङ्गिराके दो पुत्र हैं—एक महान् तेजस्वी बृहस्पति और दूसरे तपस्याके धनी संवर्त मुनि। ये दोनों व्रतका पालन करनेमें एक समान उत्साही थे, किंतु आपसमें बड़ी लाग-डाँट रखते थे। बृहस्पति अपने छोटे भाई संवर्तको बारंबार सताया करते थे। बड़े भाईके अनुचित बर्तावसे तंग आकर संवर्त धन-दौलतका

मोह छोड़ घरसे निकल गये और दिगम्बर होकर वनमें रहने लगे। घरकी अपेक्षा वनवासमें ही उन्होंने सुख माना। इसी समय इन्द्रने समस्त असुरोंको जीतकर त्रिभुवनका साम्राज्य प्राप्त किया और अङ्गिराके ज्येष्ठ पुत्र बृहस्पतिको अपना पुरोहित बना लिया। इसके पहले अङ्गिराके यजमान राजा करन्धम थे। उनके समान बलवान्, सदाचारी और पराक्रमी कोई नहीं था। वे बड़े धर्मात्मा थे और तेजमें इन्द्रको भी मात करते थे। उन्होंने अपने गुणोंके प्रभावसे सम्पूर्ण राजाओंको वशमें कर लिया था। कहते हैं, वे इस मानव-शरीरके साथ ही स्वर्गलोकको चले गये थे। तत्पश्चात् उनके पुत्र अविक्षित् इस पृथ्वीके राजा हुए, जो ययातिके समान धर्मज्ञ थे। वे पराक्रम और गुणोंमें अपने पिताके ही समान थे। उन्हींके पुत्र राजा मरुत्त थे, जिनका पराक्रम इन्द्रके समान था। समस्त भूमण्डलकी प्रजा उनमें अनुराग रखती थी। महाराज मरुत्त और देवराज इन्द्र—ये दोनों एक-दूसरेसे हमेशा लाग-डाँट रखते थे। मरुत्त बड़े पवित्र और गुणवान् थे। इन्द्र प्रत्येक बातमें उनसे बढ़नेका प्रयत्न करते थे; किंतु कभी भी उन्हें सफलता न मिली। जब किसी तरह वे बढ़ न सके तो बृहस्पतिको बुलाकर देवताओंके सामने उनसे इस प्रकार कहने लगे—'बृहस्पतिजी! यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो राजा मरुत्तका यज्ञ अथवा श्राद्ध न कराइयेगा। एकमात्र मैं ही तीनों लोकोंका स्वामी और देवताओंका इन्द्र हूँ। मरुत्त तो केवल पृथ्वीके राजा हैं। आपका कल्याण हो। आप मरुत्तको त्यागकर मुझे अपना यजमान बनाइये या मुझे छोड़कर राजा मरुत्तको।'

इन्द्रके इस प्रकार कहनेपर बृहस्पतिने थोड़ी देर सोचकर उत्तर दिया—'देवराज! तुम सम्पूर्ण जीवोंके स्वामी हो। तुम्हारे ही आधारपर समस्त लोक टिके हुए हैं। तुमने नमुचि, विश्वरूप और बल नामक दैत्यका संहार किया है। तुम देवताओंमें अद्वितीय वीर हो और तुमने सर्वोत्तम सम्पत्तिपर अधिकार प्राप्त किया है। पृथ्वी और स्वर्गका तुम्हीं सदा पालन करते हो। तुम्हारा पुरोहित होकर मैं मरणधर्मा मरुत्तका यज्ञ कैसे करा सकता हूँ। तुम धैर्य रखो। मैं अब किसी भी मनुष्यके यज्ञमें कभी भी स्रुवा नहीं ग्रहण करूँगा।' आग चाहे ठंडी हो जाय, पृथ्वी उलट जाय और सूर्यदेव प्रकाश करना छोड़ दें; किंतु मेरी यह सच्ची प्रतिज्ञा नहीं टल सकती।'

बृहस्पतिकी बात सुनकर इन्द्रने उनकी प्रशंसा की और अपने भवनमें चले गये। राजा मरुत्तने जब यह सुना कि अङ्गिराके पुत्र बृहस्पतिजीने मनुष्यके यज्ञ न करानेकी प्रतिज्ञा कर ली है तो उन्होंने एक महान् यज्ञका आयोजन किया। मन-ही-मन उस यज्ञका संकल्प करके वे बृहस्पतिजीके पास गये और विनीत भावसे बोले—'भगवन्! मैंने पहले एक बार आकर जो आपसे यज्ञके विषयमें सलाह ली थी और आपने जिसके लिये मुझे आज्ञा दी थी, उस यज्ञको अब मैं प्रारम्भ करना चाहता हूँ। आपके कथनानुसार मैंने सब सामग्री एकत्रित कर ली है। इसके सिवा, मैं आपका पुराना यजमान भी हूँ, इसलिये चलकर मेरा यज्ञ करा दीजिये।'

बृहस्पतिजीने कहा—राजन्! अब मैं तुम्हारा यज्ञ कराना नहीं चाहता। देवराज इन्द्रने मुझे अपना पुरोहित बना लिया है और मैंने भी उनके सामने प्रतिज्ञा कर ली है कि मनुष्योंके यज्ञ नहीं कराऊँगा।

मरुत्तने कहा—विप्रवर! मैं आपके पिताके समयसे ही आपका यजमान हूँ तथा आपका विशेष सम्मान करता हूँ, आपके चरणोंमें मेरी बड़ी भक्ति है; अतः आप मुझे स्वीकार कीजिये।

बृहस्पतिजीने कहा—मरुत्त! जो कभी मृत्युके वशमें नहीं होते, उन देवताओंका यज्ञ करानेके बाद अब मैं मरणधर्मा मनुष्योंका यज्ञ कैसे कराऊँगा? तुम दूसरे किसीको अपना पुरोहित बना लो, जो तुम्हारा यज्ञ करा दिया करेगा। आजसे मैं तुम्हारे यज्ञमें हाथ नहीं डालूँगा।

बृहस्पतिजीसे ऐसा उत्तर पाकर महाराज मरुत्तको बड़ा संकोच हुआ। वे बहुत खिन्न होकर लौटे जा रहे थे, उसी समय रास्तेमें उन्हें नारदजी दिखायी पड़े। उनके पास



जाकर राजा मरुत्त न्यायानुसार हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तब नारदजीने उनसे कहा—'राजर्षे ! तुम अधिक प्रसन्न नहीं दिखायी देते। कहो, तुम्हारे यहाँ कुशल तो है न ? इधर कहाँ गये थे ? और किस कारण तुम्हें यह खेदका अवसर प्राप्त हुआ ? यदि मेरे सुननेयोग्य हो तो बताओ, मैं तुम्हारा दुःख दूर करनेके लिये पूर्ण यत्न करूँगा।'

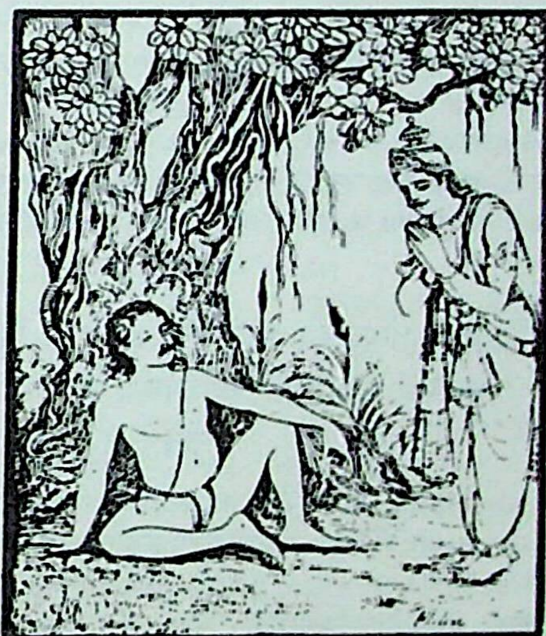
देवर्षि नारदके इस प्रकार पूछनेपर राजा मरुत्तने उपाध्याय (पुरोहित) से बिछोह होनेका सारा समाचार उन्हें कह सुनाया। वे बोले—'नारदजी ! मैं अङ्गिराके पुत्र देवगुरु बृहस्पतिजीके पास गया था। मेरा विचार था कि उन्हें अपने यहाँ यज्ञ करानेके लिये ऋत्विज् बनाऊँ; किंतु उन्होंने मेरी प्रार्थना नहीं स्वीकार की। उन्होंने स्पष्टरूपसे इनकार कर दी है। वे मेरे गुरु थे; किंतु आज उन्होंने मुझमें मरणधर्मा मनुष्य होनेका दोष बताकर मेरा सर्वथा परित्याग कर दिया है, इसलिये अब मैं जीवित रहना नहीं चाहता।'

राजा मरुत्तके ऐसा कहनेपर देवर्षि नारदने अपनी अमृतमयी वाणीके द्वारा उन्हें जीवन प्रदान करते हुए-से कहा—'राजन् ! अङ्गिराके द्वितीय पुत्र संवर्त बड़े धार्मिक हैं। वे दिगम्बर होकर सम्पूर्ण दिशाओंमें भ्रमण कर रहे हैं। यदि बृहस्पति तुम्हें अपना यजमान बनाना नहीं चाहते तो तुम उन्हींके पास चले जाओ। संवर्त बड़े तेजस्वी हैं। वे प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारा यज्ञ करा देंगे।'

मरुत्तने पूछा—देवर्षे ! आपने यह बात बताकर मुझे जिला दिया। अब यह भी बतानेकी कृपा कीजिये कि मैं संवर्त मुनिका दर्शन कहाँ कर सकूँगा ? और मुझे उनके साथ कैसा बर्ताव करना होगा ?

नारदजीने कहा—महाराज ! वे इस समय काशीपुरीमें विश्वनाथजीके दर्शनकी इच्छासे पागलका-सा वेष धारण किये अपनी मौजसे घूम रहे हैं। तुम विश्वनाथपुरीके प्रवेश-द्वारपर पहुँचकर वहाँ कहींसे एक मुर्दा लाकर रख देना। प्रातःकाल विश्वेश्वरके दर्शनके लिये जाते समय जो उस मुर्देको देखकर पीछे लौट पड़े उसे संवर्त समझना और वे जहाँ जायँ वहीं उनके पीछे-पीछे चले जाना। जब वे किसी एकान्त स्थानमें पहुँचें तो हाथ जोड़कर उनके शरणापन्न हो जाना। यदि पूछें 'किसने तुम्हें मेरा पता बताया है ?' तो कह देना कि 'नारदजीने बतलाया है। आप महात्मा संवर्त हैं।'

यह सुनकर राजर्षि मरुत्तने 'बहुत अच्छा' कहकर नारदजीकी आज्ञा स्वीकार की और उनकी पूजा करके उनसे जानेकी आज्ञा ले वे वाराणसीपुरीकी ओर चल दिये। वहाँ जाकर नारदजीके कथनका स्मरण करते हुए उन्होंने काशीपुरीके द्वारपर एक मुर्दा लाकर रखा। इसी समय विप्रवर संवर्त भी वहाँ आये; किंतु उस मुर्देको देखकर सहसा पीछे लौट पड़े। यह देखकर अविक्षित्नन्दन राजा मरुत्त संवर्त मुनिसे शिक्षा लेनेके लिये हाथ जोड़े उनके पीछे-पीछे गये। एकान्तमें पहुँचनेपर राजाको अपने पीछे-पीछे आते देख संवर्त मुनि बहुत-सी शाखाओंसे युक्त एक बरगदके सघन वृक्षकी शीतल छायामें बैठ गये और कहने लगे—'राजन् ! तुमने मुझे कैसे पहचाना है ? किसने तुम्हें मेरा परिचय दिया है ? यदि सच-सच बता दोगे तो तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण होंगे और यदि झूठ बोलोगे तो तुम्हारे मस्तकके सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे।'



मरुत्तने कहा—मुने ! नारदजीने मुझे रास्तेमें आपका पता और परिचय दिया है। आप मेरे गुरु अङ्गिराके पुत्र हैं, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है।

संवर्तने कहा—राजन् ! तुम ठीक कहते हो। नारदको यह मालूम है कि मैं यज्ञ कराना जानता हूँ। किंतु मेरा स्वभाव तो अपनी मौजसे काम करनेका है—मैं किसीके अधीन नहीं रहता, अतः तुम मुझसे क्यों यज्ञ कराना चाहते हो ? मेरे भाई बृहस्पति इस कार्यमें पूर्ण समर्थ हैं। आजकल इन्द्रके साथ उनका बड़ा मेल-जोल है। वे उनके यज्ञ आदि कार्य कराया करते हैं, इसलिये उन्हींसे अपना यज्ञ कराओ। घर-गृहस्थीका सारा सामान, यजमान तथा गृह-देवताओंके पूजन आदि

कर्म—इन सबको इस समय मेरे बड़े भाईने अपने अधिकारमें कर लिया है। मेरे पास तो केवल मेरा यह शरीर ही छोड़ रखा है।

मरुत्तने कहा—ब्रह्मन्! मैं पहले बृहस्पतिजीके ही पास गया था। वहाँका समाचार बताता हूँ, सुनिये। वे इन्द्रको प्रसन्न रखनेकी इच्छासे अब मुझे अपना यजमान बनाना नहीं चाहते। उन्होंने स्पष्ट कह दिया है कि 'अमर (देवता) यजमान पाकर अब मैं मनुष्यका यज्ञ नहीं कराऊँगा, साथ ही इन्द्रने मना भी किया है कि आप मरुत्तका यज्ञ न कराइयेगा।' इन्द्रकी इस बातको आपके भाईने स्वीकार कर लिया है। अतः अब मेरी इच्छा यह है कि मैं सर्वस्व देकर भी आपसे ही यज्ञ कराऊँ और आपके द्वारा सम्पादित गुणोंके प्रभावसे इन्द्रको भी मात कर दूँ। अब बृहस्पतिके पास जानेका मेरा विचार नहीं है; क्योंकि बिना अपराधके ही उन्होंने मेरी प्रार्थना ठुकरा दी है।

संवर्तने कहा—राजन्! यदि मेरी इच्छाके अनुसार काम करो तो तुम जो कुछ चाहोगे वह सब निश्चय ही पूर्ण होगा। जब मैं तुम्हारा यज्ञ कराऊँगा तो इन्द्र और बृहस्पति दोनों ही कुपित होकर मेरे साथ द्वेष करेंगे। उस समय तुम्हें मेरे पक्षका समर्थन करना होगा; किंतु इस बातका मुझे विश्वास कैसे हो कि तुम मेरा साथ दोगे। अतः जैसे भी हो मेरे मनका यह संशय दूर करो, नहीं तो अभी क्रोधमें भरकर मैं बन्धु-बान्धवोंसहित तुम्हें भस्म कर डालूँगा।

मरुत्तने कहा—ब्रह्मन्! यदि मैं आपका साथ छोड़ दूँ तो जबतक सूर्य तपते हों और जबतक पर्वतोंकी स्थिति बनी रहे, तबतक मुझे उत्तम लोकोंकी प्राप्ति न हो तथा मैं कभी भी अच्छी बुद्धि न प्राप्त कर सकूँ।

संवर्तने कहा—राजन्! तुम्हारी उत्तम बुद्धि सदा शुभ कर्मोंमें लगी रहे। अब मेरी बात सुनो—मेरे मनमें भी तुम्हारा यज्ञ करानेकी इच्छा है; अतः इसके लिये तुम्हें अक्षय धनकी प्राप्तिका उपाय बतालाऊँगा। उस धनसे तुम गन्धर्वोंसहित देवताओं और इन्द्रको भी नीचा दिखा सकोगे। मैं सच कहता हूँ, मुझको अपने लिये धन अथवा यजमानोंके संग्रहका लोभ नहीं है। मैं तो तुम्हारा प्रिय करना चाहता हूँ, अतः निश्चय ही तुम्हें इन्द्रकी बराबरीमें बिठाऊँगा।



संवर्तका मरुत्तको सुवर्णकी प्राप्तिके लिये महादेवजीकी नाममयी स्तुतिका उपदेश करना, मरुत्तकी सम्पत्तिसे बृहस्पतिका चिन्तित होना और उनकी प्रेरणासे इन्द्रका मरुत्तके पास अग्निको भेजना

संवर्त कहते हैं—राजन्! हिमालयके पृष्ठभागमें मुञ्जवान् नामक एक पर्वत है, जहाँ भगवान् शंकर सदा तपस्या किया करते हैं। उस पर्वतपर रुद्रगण, साध्यगण, विश्वेदेव, वसुगण, यमराज, वरुण, अनुचरोंसहित कुबेर, भूत, पिशाच, अश्विनीकुमार, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, देवर्षि, आदित्य, मरुत् और यातुधानगण सब ओरसे घेरकर उमापति महादेवजीकी उपासना करते रहते हैं। उनका श्रीविग्रह तेजसे जाज्वल्यमान् रहता है। संसारका कोई भी प्राणी अपने चर्म-चक्षुओंसे उनके स्वरूपको नहीं देख सकता। वहाँ न तो अधिक गर्मी पड़ती है, न विशेष ठण्डक। न वायुका प्रकोप होता है न सूर्यके प्रचण्ड तापका। उस पर्वतके ऊपर किसीको भूख और प्यास नहीं सताती, बुढ़ापा और मृत्युका प्रवेश नहीं होने पाता तथा दूसरा कोई भय भी नहीं रहता। उस पर्वतके चारों ओर सूर्यकी किरणोंके समान चमकते हुए सुवर्णके अनेकों शिखर हैं। अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित कुबेरके अनुचर अपने स्वामीका प्रिय करनेके लिये उन सुवर्ण-शिखरोंकी सदा रक्षा करते हैं। वहाँ जानेके बाद तुम पहले जगद्-विधाता भगवान् शंकरको नमस्कार करके फिर इस प्रकार स्तुति करना—'भगवन्! आप रुद्र (दुःखके कारणको दूर करनेवाले), शितिकण्ठ, (गलेमें नील चिह्न धारण करनेवाले), पुरुष (अन्तर्यामी), सुवर्चा (अत्यन्त तेजस्वी), कपर्दी (जटाजूटधारी), कराल (भयंकर रूपवाले), हर्यक्ष (हरे नेत्रोंवाले), वरद (भक्तोंको अभीष्ट वर प्रदान करनेवाले), त्र्यक्ष (त्रिनेत्रधारी), पूषाके दाँत उखाड़नेवाले, वामन, शिव, याम्य (यमराजके गणस्वरूप), अव्यक्तरूप, सद्वृत्त (सदाचारी), शंकर, क्षेम्य (कल्याणकारी), हरिकेश (भूरे केशोंवाले), स्थाणु (स्थिर), पुरुष, हरिनेत्र, मुण्ड, क्रुद्ध, उत्तरण (संसार-सागरसे पार उतारनेवाले), भास्कर, (सूर्यरूप), सुतीर्थ, (पवित्र तीर्थरूप), देवदेव, रंहस् (वेगवान्), उष्णीषी (सिरपर पगड़ी धारण करनेवाले), सुवक्त्र (सुन्दर मुखवाले), सहस्राक्ष (हजारों नेत्रोंवाले), मीढ्वान् (कामपूरक अथवा नन्दिकेश्वर वृषभ),

गिरिश (पर्वतपर शयन करनेवाले), प्रशान्त यति (संयमी), चीरवासा (चीरवस्त्र धारण करनेवाले), बिल्वदण्ड (बेलका डंडा धारण करनेवाले), सिद्ध, सर्वदण्डधर (सबको दण्ड देनेवाले), मृगव्याध (आर्द्रा नक्षत्ररूप), महान्, धन्वी (पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले), भव (संसारकी उत्पत्ति करनेवाले), वर (श्रेष्ठ), सोमवक्त्र (चन्द्रमाके समान मुखवाले), सिद्धमन्त्र (जिन्होंने सभी मन्त्र सिद्ध कर लिये हैं, ऐसे), चक्षुप् (नेत्ररूप), हिरण्यबाहु (सुवर्णके समान सुन्दर भुजाओंवाले), उग्र (भयंकर), दिशाओंके पति, लेलिहान, (अग्निरूपसे अपनी जिह्वाओंके द्वारा हविष्यका आस्वादन करनेवाले), गोष्ठ (गौ अथवा वाणीके निवासस्थान), सिद्धमन्त्र, वृष्णि (कामनाओंकी वृद्धि करनेवाले), पशुपति, भूतपति, वृष (धर्मस्वरूप), मातृभक्त, सेनानी (कार्तिकेयरूप), मध्यम, स्रुवहस्त (हाथमें स्रुवा ग्रहण करनेवाले ऋत्विज्रूप), पति (सबका पालन करनेवाले), धन्वी, भार्गव, अज (जन्मरहित), कृष्णनेत्र, विरूपाक्ष, तीक्ष्णदंष्ट्र, तीक्ष्ण, वैश्वानरमुख (अग्निरूप मुखवाले, महाद्युति, अनङ्ग (निराकार), सर्व, विशाम्पति (सबके स्वामी), विलोहित (रक्तवर्ण), दीप्त (तेजस्वी), दीप्ताक्ष (देदीप्यामान नेत्रोंवाले), महौजा (महाबली), वसुरेता (हिरण्यवीर्य अग्निरूप), सुवपुप् (सुन्दर शरीरवाले) पृथु (स्थूल), कृत्तिवासा (मृगचर्म अथवा भोजपत्र धारण करनेवाले), कपालमाली (मुण्डमाला धारण करनेवाले), सुवर्णमुकुट, महादेव, कृष्ण (सच्चिदानन्दस्वरूप), त्र्यम्बक (त्रिनेत्रधारी), अनघ (निष्पाप), क्रोधन (दुष्टोंपर क्रोध करनेवाले), अनृशंस (कोमल स्वभाववाले), मृदु, बाहुशाली, दण्डी, तप्ततपा (तपस्वी), अक्रूरकर्मा (कठोर कर्मसे दूर रहनेवाले), सहस्रशिरा (हजारों मस्तकवाले), सहस्रचरण, स्वधास्वरूप, बहुरूप और दंष्ट्री नाम धारण करनेवाले हैं। आपको मेरा प्रणाम है। इस प्रकार उन पिनाकधारी महादेव, महायोगी, अविनाशी, हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाले, वरदायक, त्र्यम्बक, भुवनेश्वर, त्रिपुरासुरको मारनेवाले, त्रिनेत्रधारी, त्रिभुवनके स्वामी, महान् बलवान्, सब जीवोंकी उत्पत्तिके कारण, सबको धारण करनेवाले, पृथ्वीका भार सँभालनेवाले, जगत्के शासक, कल्याणकारी, सर्वरूप, कल्याणस्वरूप, विश्वेश्वर, जगत्को उत्पन्न करनेवाले, पार्वतीके पति, पशुओंके पालक, विश्वरूप, महेश्वर, विरूपाक्ष, दस भुजाधारी, अपनी ध्वजामें दिव्य वृषभका चिह्न धारण करनेवाले, उग्र, स्थाणु, शिव, रुद्र, शर्व, गौरीश, ईश्वर, शितिकण्ठ, अजन्मा, शुक्र, पृथु, पृथुहर, वर, विश्वरूप, विरूपाक्ष, बहुरूप, उमापति, कामदेवको भस्म करनेवाले, हर, चतुर्मुख एवं शरणागतवत्सल महादेवजीको सिरसे प्रणाम करके उनके शरणापन्न हो जाना। राजन्! वे महान् देवता, महावेगवान् और महामना हैं। उनके चरणोंमें मस्तक झुकानेसे तुम्हें सुवर्णकी प्राप्ति होगी। सुवर्ण लानेके लिये तुम्हारे सेवकोंको भी वहाँ जाना चाहिये।

संवर्तका यह वचन सुनकर राजा मरुत्तने वैसा ही किया। इसीसे वे यज्ञका सारा सम्भार अलौकिक रूपसे करने लगे। उनके कारीगरोंने वहाँ रहकर सोनेके बहुत-से पात्र तैयार किये। उधर बृहस्पतिने जब सुना कि राजा मरुत्तको देवताओंसे भी बढ़कर सम्पत्ति प्राप्त हुई है तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे चिन्ताके मारे पीले पड़ गये और यह सोचकर कि 'मेरा शत्रु संवर्त बहुत धनी हो जायगा' उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया। देवराज इन्द्रने जब सुना कि बृहस्पतिजी अत्यन्त संतप्त हो रहे हैं तो वे देवताओंको साथ लेकर उनके पास गये और इस प्रकार पूछने लगे— 'विप्रवर! आपको यह मानसिक अथवा शारीरिक दुःख कैसे प्राप्त हुआ है ? आप उदास और पीले क्यों हो रहे हैं? बतानेकी कृपा कीजिये, मैं आपको दुःख देनेवालोंका नाश कर डालूँगा ?'

बृहस्पतिजीने कहा—इन्द्र! लोग कहते हैं कि महाराज मरुत्त उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त एक महान् यज्ञकी तैयारी कर रहे हैं तथा यह भी सुननेमें आया है कि संवर्त ही आचार्य होकर वह यज्ञ करायेंगे। किंतु मेरी इच्छा है कि संवर्तके आचार्यत्वमें उस यज्ञका अनुष्ठान न होने पावे।

इन्द्रने कहा—गुरुदेव! आप तो देवताओंके पुरोहित हैं। आपने जरा और मृत्यु दोनोंको जीत लिया है, फिर संवर्त आपका क्या बिगाड़ सकते हैं ?

बृहस्पतिजीने कहा—देवराज! शत्रुओंकी समृद्धि दुःखका कारण होती है। मेरा शत्रु संवर्त समृद्धिशाली होना चाहता है, यही सुनकर मैं उदास हो रहा हूँ। तुम कोई-न-कोई उपाय करके संवर्त अथवा राजा मरुत्तको कैद कर लो।

यह सुनकर इन्द्रने अग्निदेवतासे कहा—'अग्निदेव! यहाँ आओ, मैं तुम्हें राजा मरुत्तके पास भेजता हूँ। उनकी सम्मति लेकर बृहस्पतिजीको उनके पास पहुँचा दो। वहाँ जाकर राजासे कहना कि बृहस्पतिजी ही आपका यज्ञ करायेंगे तथा वे आपको अमर भी कर देंगे।'

अग्निदेवने कहा—मघवन्! मैं बृहस्पतिजीको मरुत्तके पास पहुँचा आनेके लिये आपका दूत बनकर जाऊँगा और ऐसा करके आपकी आज्ञाका पालन तथा बृहस्पतिजीका सम्मान करूँगा।

यह कहकर धूममय ध्वजावाले महात्मा अग्निदेव वहाँसे



चल दिये। उन्हें आते देख मरुत्तने संवर्तसे कहा—'मुने ! बड़े आश्चर्यकी बात है कि आज अग्निदेव मूर्तिमान् होकर यहाँ पधारे हैं। आज हमें इनका साक्षात् दर्शन मिला। आप इनके स्वागतके लिये आसन, पाद्य, अर्घ्य और गौ प्रस्तुत कीजिये।'

अग्निने कहा—राजन् ! मैं आपके दिये हुए पाद्य, अर्घ्य और आसन आदिको पा चुका। इसके लिये आपको धन्यवाद देता हूँ। इस समय मैं इन्द्रकी आज्ञासे दूत बनकर आपके पास आया हूँ।

मरुत्तने कहा—अग्निदेव ! श्रीमान् देवराज सुखी तो हैं न ? वे मुझसे संतुष्ट तो हैं ? सम्पूर्ण देवता उनकी आज्ञाके अधीन रहते हैं न ? ये सब बातें मुझे ठीक-ठीक बताइये।

अग्निदेवने कहा—राजन् ! देवराज इन्द्र बड़े सुखसे हैं और आपके साथ अटूट मैत्री जोड़ना चाहते हैं। सम्पूर्ण देवता भी उनके अधीन ही हैं। अब, उन्होंने जिस कामके लिये मुझे आपके पास पठाया है, उसे सुनिये। वे मेरे द्वारा बृहस्पतिजीको आपके पास भेजना चाहते हैं। उन्होंने कहा है कि 'बृहस्पतिजी आपके गुरु हैं, अतः ये ही आपका यज्ञ करायेंगे। आप मरणधर्मा मनुष्य हो, ये आपको अमर बना देंगे।'

मरुत्तने कहा—भगवन् ! मेरा यज्ञ करानेके लिये ये विप्रवर संवर्तजी यहाँ उपस्थित हैं। बृहस्पतिजीके लिये तो मैं हाथ जोड़ता हूँ। वे देवराज इन्द्रके पुरोहित हैं। मेरे-जैसे मनुष्यका यज्ञ कराना उन्हें शोभा नहीं देगा।

अग्निदेवने कहा—राजन् ! यदि बृहस्पतिजी आपका यज्ञ करायेंगे तो देवराज इन्द्र प्रसन्न होंगे और उनके प्रसन्न होनेपर देवलोकके भीतर जितने बड़े-बड़े लोक हैं, वे सब आपके लिये सुलभ हो जायँगे। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि आप यशस्वी होनेके साथ ही स्वर्गपर भी विजय प्राप्त करेंगे। दिव्यलोक, प्रजापतिलोक और देवताओंके राज्यपर भी आपका पूरा अधिकार हो जायेगा।

संवर्तने कहा—अग्ने ! मैं तुम्हें सावधान किये देता हूँ, बृहस्पतिको मरुत्तके पास पहुँचानेके लिये फिर कभी मत आना। नहीं तो क्रोधमें भरकर मैं अपनी दारुण दृष्टिसे तुम्हें भस्म कर डालूँगा।

संवर्तकी बात सुनकर अग्निदेव भस्म होनेके भयसे पीपलके पत्तेकी तरह काँपने लगे और तुरंत लौटकर देवताओंके पास चले गये। उन्हें लौटे देख इन्द्रने बृहस्पतिजीके सामने ही पूछा—'अग्निदेव ! तुम तो मेरी आज्ञासे बृहस्पतिजीको राजा मरुत्तके पास पहुँचानेका संदेश लेकर गये थे। बताओ, वे क्या कहते हैं ? उन्हें मेरी बात स्वीकार है या नहीं ?'

अग्निने कहा—देवराज ! राजा मरुत्तको आपकी बात पसंद नहीं आयी। बृहस्पतिजीको तो उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणाम कहलाया है। मेरे बारंबार अनुरोध करनेपर भी उन्होंने यही उत्तर दिया है कि 'संवर्तजी ही मेरा यज्ञ करायेंगे।'

इन्द्रने कहा—अग्निदेव ! एक बार फिर जाकर राजा मरुत्तसे मेरी बात कहो। यदि अब भी वे नहीं मानेंगे तो मैं उनके ऊपर वज्रका प्रहार करूँगा।

अग्निने कहा—देवराज ! ये गन्धर्वोंके राजा यहाँ मौजूद हैं। इन्हींको दूत बनाकर भेजिये। मुझे तो वहाँ जाते डर लगता है; क्योंकि ब्रह्मचारी संवर्तने बड़े क्रोधमें आकर मुझसे कहा था कि 'अग्ने ! यदि फिर बृहस्पतिको मरुत्तके पास पहुँचानेके लिये आओगे तो मैं क्रोधभरी दारुण दृष्टिसे तुम्हें भस्म कर डालूँगा।'

इन्द्रने कहा—अग्निदेव ! तुम्हारी बातपर विश्वास नहीं होता; क्योंकि तुम्हीं दूसरोंको भस्म करते हो। तुम्हें भस्म करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। तुम्हारे स्पर्शसे सभी लोग डरते हैं।

अग्निने कहा—महेन्द्र ! जरा राजा शर्यातिके यज्ञका तो स्मरण कीजिये, जहाँ च्यवन मुनि यज्ञ करानेवाले थे। आप क्रोधमें भरकर उन्हें मना करते ही रह गये और उन्होंने अकेले अपने ही प्रभावसे अश्विनीकुमारोंके साथ सोम-रसका पान

किया। उस समय आप अत्यन्त भयंकर वज्र लेकर मुनिके ऊपर प्रहार करना चाहते थे; किंतु उन्होंने कुपित होकर अपने तपोबलसे आपकी बाँहको वज्रसहित जकड़ दिया। तब भयभीत होकर आपको फिर उन्हीं महर्षिकी शरणमें जाना पड़ा था। अतः क्षात्रबलसे ब्रह्मबल ही श्रेष्ठ है। ब्रह्मबलसे बढ़कर दूसरा कोई भी बल नहीं है। मैं ब्रह्मतेजको अच्छी तरह जानता हूँ, अतएव मुझे संवर्तको जीतनेका साहस नहीं होता।



इन्द्रका गन्धर्वराजको भेजकर मरुत्तको भय दिखाना और संवर्तका मन्त्रबलसे सब देवताओंको बुलाकर मरुत्तका यज्ञ पूर्ण करना

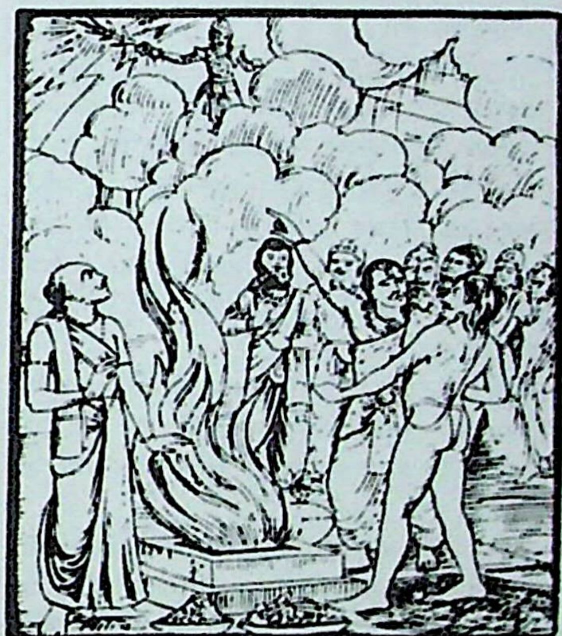
इन्द्रने कहा—यह ठीक है कि ब्रह्मबल सबसे बढ़कर है। ब्राह्मणसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है; किंतु मैं राजा मरुत्तके बलको नहीं सह सकता। उनके ऊपर अवश्य अपने घोर वज्रका प्रहार करूँगा। गन्धर्वराज धृतराष्ट्र! अब तुम मेरे कहनेसे वहाँ जाओ और संवर्तके साथ मिले हुए राजा मरुत्तसे कहो—'राजन्! आप बृहस्पतिको अपने यज्ञका आचार्य बनाइये। अन्यथा देवराज इन्द्र आपके ऊपर घोर वज्रका प्रहार करेंगे।'

इन्द्रकी आज्ञा पाकर धृतराष्ट्र राजा मरुत्तके पास गये और उनसे इन्द्रका संदेश इस प्रकार कहने लगे—'महाराज! मैं धृतराष्ट्र नामक गन्धर्व हूँ और आपसे देवराज इन्द्रका संदेश सुनाने आया हूँ। सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी इन्द्रने कहा है कि आप बृहस्पतिको अपने यज्ञका पुरोहित बनाइये। यदि मेरी बात नहीं मानेंगे तो मैं आपपर भयंकर वज्रसे प्रहार करूँगा।'

मरुत्तने कहा—गन्धर्वराज! आप, इन्द्र, विश्वेदेव, वसु और अश्विनीकुमार आदि सभी देवता इस बातको जानते हैं कि मित्रके साथ द्रोह करनेपर ब्रह्महत्याके समान महान् पाप लगता है। उससे छुटकारा पानेका संसारमें कोई उपाय नहीं है। अतः मेरा यज्ञ तो अब संवर्तजी ही करायेंगे। बृहस्पतिजी देवताओं और वज्रधारियोंमें श्रेष्ठ इन्द्रका यज्ञ करावें। इसके विरुद्ध न तो मैं आपकी बात मानूँगा और न इन्द्रकी ही।

गन्धर्वराजने कहा—महाराज! इन्द्र आकाशमें गर्जना कर रहे हैं। उनका भयंकर सिंहनाद सुनिये। जान पड़ता है अब वे आपके ऊपर वज्र छोड़ना ही चाहते हैं; अतः आप अपनी रक्षाका उपाय सोचिये; इसके लिये यही समय है।

गन्धर्वराज धृतराष्ट्रके ऐसा कहनेपर राजा मरुत्तने आकाशमें सिंहनाद करते हुए इन्द्रकी आवाज सुनकर तपःपरायण संवर्त मुनिसे कहा—'विप्रवर! मैं आपकी



शरणमें हूँ और आपके द्वारा अपनी रक्षा चाहता हूँ। अतः आप कृपा करके मुझे अभय-दान दें। देखिये, ये वज्रधारी इन्द्र दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए चले आ रहे हैं। इनके भयंकर सिंहनादसे हमारी यज्ञशालाके सभी सदस्य थर्रा उठे हैं।'

संवर्तने कहा—राजन्! इन्द्रसे भय न करो। मैं स्तम्भिनी विद्याका प्रयोग करके बहुत जल्द तुम्हारे ऊपर आनेवाले इस भयंकर संकटको दूर किये देता हूँ। विश्वास रखो और इन्द्रसे पराजित होनेका भय छोड़ दो। मैं अभी उन्हें स्तम्भित करता हूँ तथा सम्पूर्ण देवताओंके अस्त्र-शस्त्र भी मैंने क्षीण कर दिये हैं।

मरुत्तने कहा—विप्रवर! आँधीके साथ ही जोर-जोरसे होनेवाली वज्रकी भयंकर गड़गड़ाहट सुनायी दे रही है। इससे रह-रहकर मेरा हृदय काँप उठता है। आज मनमें तनिक भी शान्ति नहीं है।

संवर्तने कहा—राजन् ! तुम्हें इन्द्रके भीषण वज्रसे तो कदापि भय नहीं करना चाहिये। मैं अभी वायुका रूप धारण करके इस वज्रको निष्फल किये देता हूँ। इस भयको छोड़ो और मुझसे दूसरा कोई वर माँगो। बताओ, तुम्हारी कौन-सी मानसिक इच्छा पूर्ण करूँ ?

मरुत्तने कहा—ब्रह्मर्षे ! अब ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिससे साक्षात् इन्द्र मेरे यज्ञमें शीघ्रतापूर्वक पधारें और अपना भाग ग्रहण करें। साथ ही अन्य देवता भी आकर अपने-अपने स्थानपर बैठ जायँ तथा सब लोग एक साथ सोम-रसका पान करें।

तदनन्तर, संवर्तने अपने मन्त्र-बलसे समस्त देवताओं-का आवाहन किया। फिर तो इन्द्र अपने रथमें अच्छे-अच्छे घोड़े जोतकर देवताओंको साथ ले सोम-पानकी इच्छासे अनुपम पराक्रमी राजा मरुत्तकी यज्ञशालामें आ पहुँचे। देववृन्दके साथ इन्द्रको आते देख राजा मरुत्तने अपने पुरोहित संवर्त मुनिके साथ आगे बढ़कर उनकी अगवानी की और बड़ी प्रसन्नताके साथ शास्त्रीय विधिसे उनका अग्रपूजन किया।

संवर्तने कहा—देवराज ! आपका स्वागत है। आपके शुभागमनसे इस यज्ञकी शोभा बढ़ गयी। मेरे द्वारा तैयार किया हुआ यह सोम-रस प्रस्तुत है। आप इसका पान कीजिये।

मरुत्तने कहा—सुरेन्द्र ! आपको मेरा प्रणाम है। आप मुझपर कल्याणमयी दृष्टि रखिये। आपके पधारनेसे मेरा यज्ञ और जीवन सफल हो गया। ये संवर्तजी मेरा यज्ञ करा रहे हैं।

इन्द्रने कहा—नरेन्द्र ! आपके गुरु संवर्तजीको मैं जानता हूँ। ये बृहस्पतिजीके छोटे भाई और तपस्याके धनी हैं। इनका तेज दुस्सह है। इन्हींके आवाहनसे मुझे यहाँ आना पड़ा है। अब मेरा सारा क्रोध दूर हो गया है और मैं आपपर विशेष प्रसन्न हूँ।

संवर्तने कहा—देवराज ! यदि आप प्रसन्न हैं तो यज्ञमें जो-जो कार्य आवश्यक हैं, उसका स्वयं ही उपदेश दीजिये तथा स्वयं ही सब देवताओंके भाग निश्चित कीजिये।

संवर्तके यों कहनेपर इन्द्रने देवताओंको आज्ञा दी कि तुम सब लोग अत्यन्त समृद्ध एवं चित्र-विचित्र ढंगके अच्छे-अच्छे सभा-भवन बनाओ, जिससे यह यज्ञशाला स्वर्गके समान मनोहर जान पड़े। यह सुनकर समस्त देवताओंने शीघ्र ही इन्द्रकी आज्ञाका पालन किया। तत्पश्चात् इन्द्रने प्रसन्न होकर राजा मरुत्तकी प्रशंसा करते हुए कहा—'राजन् ! यहाँ मेरे साथ तुम्हारे पूर्वज और सम्पूर्ण देवता भी प्रसन्नतापूर्वक एकत्रित हुए हैं। ये सब लोग तुम्हारा दिया हुआ हविष्य ग्रहण करेंगे।'

तदनन्तर, द्वितीय अग्निके समान तेजस्वी महात्मा संवर्तने उच्च स्वरसे मन्त्र पढ़ते हुए देवताओंके नाम ले-लेकर अग्निमें हविष्यका हवन किया। इसके बाद इन्द्र तथा सोमपानके अधिकारी अन्य देवताओंने उत्तम सोमरसका पान किया। इससे सबको तृप्ति और प्रसन्नता हुई। फिर सब देवता राजा मरुत्तकी अनुमति लेकर अपने-अपने स्थानको चले गये। तब राजाने बड़े हर्षके साथ वहाँ पग-पगपर सुवर्णकी ढेरी लगवायी और ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दान किया। उस समय धनाधिपति कुबेरके समान उनकी शोभा हो रही थी। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंके ले जानेसे जो धन बच गया, उसको मरुत्तने एक स्थानपर जमा कर दिया। फिर अपने गुरु संवर्तकी आज्ञा लेकर वे राजधानीको लौट आये और समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका राज्य करने लगे। युधिष्ठिर ! राजा मरुत्त ऐसे प्रभावशाली थे। उनके यज्ञमें बहुत-सा सुवर्ण एकत्रित किया गया था। तुम उसी धनको मँगवाकर यज्ञके द्वारा देवताओंको तृप्त करो।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! सत्यवतीनन्दन व्यासजीके वचन सुनकर राजा युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उस धनके द्वारा यज्ञ करनेका विचार किया।



भगवान् श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको समझाना, ऋषियोंका अन्तर्धान होना और भीष्म आदिका श्राद्ध करके युधिष्ठिर आदिका हस्तिनापुरमें जाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! अद्भुत कर्म करनेवाले वेदव्यासजी जब राजा युधिष्ठिरको सान्त्वना दे चुके तो भी उन्हें बन्धु-बान्धवोंके मरनेसे अत्यन्त दुःखी जानकर महातेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार समझाना आरम्भ किया—'धर्मराज ! कुटिलता मृत्युका स्थान है और सरलता ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाली है, इस बातको ठीक-ठीक समझ लेना ही ज्ञान है; इसके विपरीत जो कुछ है वह कोरी बकवाद है। भला, उससे किसीको क्या लाभ होगा ? इस समय

आपको अकेले अपने मनके साथ युद्ध करना है, वह युद्ध सामने उपस्थित है; अतः उसके लिये आपको तैयार हो जाना चाहिये। अपने कर्तव्यका पालन करते हुए योगके द्वारा मनको वशीभूत करके आप इस मायामय जगत्‌के पार—परब्रह्मको प्राप्त कीजिये। मनके साथ होनेवाले इस युद्धमें अस्त्र-शस्त्र, सेवक तथा बन्धु-बान्धवोंका काम नहीं है, इसमें आपको अकेले लड़ना है। यदि इस संग्राममें आप मनको परास्त न कर सके तो पता नहीं, आपकी क्या दशा होगी ? इस बातको अच्छी तरह समझ लेनेपर आप कृतार्थ हो जायँगे। समस्त प्राणी यों ही आते-जाते (जन्मते-मरते) रहते हैं। ऐसा निश्चय करके आप अपने बाप-दादोंके बर्तावका पालन करते हुए उचित रीतिसे राज्यका शासन कीजिये। भारत ! केवल (राज्य आदि) बाह्य पदार्थोंका त्याग करनेसे ही सिद्धि नहीं प्राप्त होती। बाह्य पदार्थोंसे अलग होकर भी जो शारीरिक सुख-विलासमें आसक्त है, उसको जिस धर्म और सुखकी प्राप्ति होती है, वह तुम्हारे शत्रुओंको ही प्राप्त हो। 'मम' (मेरा) ये दो अक्षर ही मृत्युकी प्राप्ति करानेवाले हैं और 'न मम' (मेरा नहीं है) यह तीन अक्षरोंका पद सनातन ब्रह्मकी प्राप्तिका कारण है। ममता मृत्यु है और उसका त्याग अमृतत्व। चराचर प्राणियोंसहित समूची पृथ्वीको पाकर भी जिसकी उसमें ममता नहीं होती, उस पुरुषकी वह क्या हानि कर सकती है ? किंतु वनमें रहकर जंगली फल-मूलोंसे जीवन-निर्वाह करते हुए भी जिसकी द्रव्यमें ममता बनी हुई है, वह तो मृत्युके मुखमें ही पड़ा हुआ है। आप बाहरी और भीतरी शत्रुओंके स्वभावपर दृष्टिपात कीजिये (अर्थात् वे सब मायामय होनेके कारण मिथ्या हैं ऐसा निश्चय कीजिये)। जो मायिक पदार्थोंको ममत्वकी दृष्टिसे नहीं देखता, वह महान् भयसे छुटकारा पा जाता है। जिसका मन कामनाओंमें आसक्त है, उसकी संसारमें प्रतिष्ठा नहीं होती। कोई भी प्रवृत्ति बिना कामनाके नहीं होती और समस्त कामनाएँ मनसे ही प्रकट होती हैं। विद्वान् पुरुष कामनाओंको दुःखका कारण जानकर उनका परित्याग कर देते हैं। योगी पुरुष अनेक जन्मोंके अभ्याससे योगको ही मोक्षका मार्ग निश्चित करके कामनाओंका नाश कर डालता है। जो इस बातको जानता है वह दान, वेदाध्ययन, तप, वेदोक्त-कर्म, व्रत, यज्ञ, नियम और ध्यानयोग आदिका कामनापूर्वक अनुष्ठान नहीं करता और जिस कर्मसे वह कुछ कामना रखता है, वह धर्म नहीं है। वास्तवमें कामनाओंका निग्रह ही धर्म है और वही मोक्षका बीज है।

"इस विषयमें प्राचीन बातोंके जानकार विद्वान् 'काम-गीता'के नामसे प्रसिद्ध एक प्राचीन गाथाका वर्णन किया करते हैं, उसे मैं आपको सुनाता हूँ, सुनिये। कामना कहती है—'कोई भी प्राणी वास्तविक उपाय (निर्ममता और योगाभ्यास) का आश्रय लिये बिना मेरा नाश नहीं कर सकता। जो मनुष्य अपनेमें अस्त्र-बलकी अधिकताका अनुभव करके मुझे नष्ट करनेका प्रयत्न करता है, उसके उस अस्त्र-बलमें मैं अभिमानके रूपमें प्रकट होती हूँ। जो नाना प्रकारकी दक्षिणावाले यज्ञोंद्वारा मुझे मारनेका उद्योग करता है, उसके चित्तमें मैं वैसे ही उत्पन्न होती हूँ जैसे उत्तम योनियोंमें धर्मात्मा। जो वेद और वेदान्तके स्वाध्यायरूप साधनोंके द्वारा मुझे दबानेकी कोशिश करता है, उसके मनमें मैं स्थावर प्राणियोंमें जीवात्माकी भाँति अव्यक्तरूपसे निवास करती हूँ। जो सत्यपराक्रमी पुरुष धैर्यके बलसे मुझे मिटानेका यत्न करता है, उसके मानसिक भावोंके साथ मैं इतनी घुल-मिल जाती हूँ कि वह मुझे पहचान नहीं पाता। जो उत्तम व्रतका आचरण करनेवाला पुरुष तपस्याके द्वारा मेरे अस्तित्वको मिटानेका प्रयास करता है, उसकी तपस्यामें ही मैं प्रकट हो जाती हूँ। जो मोक्षकी अभिलाषा रखकर मेरे विनाशका यत्न करता है, उसकी मोक्षके प्रति आसक्तिका विचार करके मुझे हँसी आती है तथा मैं खुशीके मारे नाचने लगती हूँ। मैं प्राणियोंके लिये अवध्य एवं सदा रहनेवाली हूँ।' इसलिये राजन् ! आप भी नाना प्रकारकी दक्षिणावाले यज्ञोंके द्वारा अपनी कामनाको धर्ममें लगा दीजिये। ऐसा करनेसे आपका अभीष्ट सिद्ध होगा। विधिके अनुसार पर्याप्त दक्षिणा देकर आप अश्वमेध तथा अन्यान्य यज्ञोंका अनुष्ठान कीजिये। इससे आपको इस लोकमें उत्तम कीर्ति और परलोकमें श्रेष्ठ गति प्राप्त होगी।"

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण, वेदव्यास, देवस्थान, नारद, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी तथा अन्यान्य श्रेष्ठ पुरुषों और शास्त्रवेत्ता ब्राह्मणोंके समझाने-बुझानेपर युधिष्ठिरका शोकजनित दुःख दूर हुआ और उन्होंने मानसिक चिन्ता छोड़कर देवताओं तथा ब्राह्मणोंका पूजन किया। तदनन्तर, मरे हुए बन्धु-बान्धवोंका श्राद्ध करके वे समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका राज्य करने लगे। उस समय सबके समझानेपर जब उनका चित्त शान्त हुआ तो वे अपना राज्य स्वीकार करके व्यास, नारद तथा अन्यान्य मुनिवरोंसे बोले—'महानुभावो ! आप सब लोग वृद्ध और मुनियोंमें श्रेष्ठ हैं। आपकी बातोंसे मुझे बड़ी सान्त्वना मिली है। अब मेरे मनमें तनिक भी दुःख नहीं है। इधर पर्याप्त धन भी मिल गया, जिससे मैं भलीभाँति देवताओंका यजन कर सकूँगा। अब आपलोगोंके

ही सामने यज्ञ आरम्भ करूँगा। पितामह (व्यासजी)! हमलोग आपकी ही रक्षामें रहकर हिमालय पर्वतपर चलेंगे। सुना जाता है वहाँका प्रदेश अनेकों आश्चर्यजनक दृश्योंसे भरा हुआ है। आपने, देवर्षि नारदने तथा मुनिवर देवस्थानने बहुत-सी अद्भुत बातें बतायी हैं, जो मेरा कल्याण करनेवाली हैं। महान् सौभाग्यशाली पुरुषको छोड़कर दूसरे किसीको संकटके समय आप-जैसे साधु-सम्मानित हितैषी गुरुजनोंका दर्शन सुलभ नहीं होता।'

राजा युधिष्ठिरके इस प्रकार कृतज्ञता प्रकट करनेपर सभी महर्षि बहुत प्रसन्न हुए और युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण तथा अर्जुनकी अनुमति लेकर वे सबके देखते-देखते वहाँसे अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार सभी पाण्डव भीष्मकी मृत्युके बाद शौचकार्य सम्पन्न करते हुए कुछ कालतक वहीं रहे। उन्होंने भीष्म और कर्ण आदि कुरुवंशियोंके निमित्त और्ध्वदैहिक क्रिया (श्राद्ध) में ब्राह्मणोंको बड़े-बड़े दान दिये। तत्पश्चात् सबने हस्तिनापुरमें प्रवेश किया और धर्मात्मा युधिष्ठिर प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्रको सान्त्वना देकर भाइयोंसहित पृथ्वीका राज्य करने लगे।



श्रीकृष्णका अर्जुनसे द्वारका जानेका प्रस्ताव करना

जनमेजयने पूछा—विप्रवर! जब पाण्डव विजयी हो गये और राज्यमें सब ओर शान्ति स्थापित हो गयी, उसके बाद श्रीकृष्ण और अर्जुनने क्या काम किया?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! पाण्डवोंने संग्राममें विजय पाकर जब राज्यमें सब ओर शान्ति फैला दी तो श्रीकृष्ण और अर्जुनको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे दोनों आनन्दित होकर विचित्र-विचित्र वनोंमें और पर्वतोंके सुरम्य शिखरोंपर विचरने लगे। घूम-फिरकर वे पुनः इन्द्रप्रस्थमें लौट आये और वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे। वे दोनों महात्मा पुरातन ऋषि नर और नारायण थे और आपसमें बहुत प्रेम रखते थे। एक दिन बातचीतके प्रसंगमें वे दोनों देवताओं और ऋषियोंके वंशकी चर्चा करने लगे। भगवान् श्रीकृष्ण सब प्रकारके सिद्धान्तोंको जाननेवाले थे। उन्होंने अर्जुनको विचित्र अर्थ और पदोंसे युक्त बड़ी विलक्षण एवं मधुर कथाएँ सुनायीं। कथा समाप्त होनेपर श्रीकृष्णने अपनी युक्तियुक्त और कोमल वाणीके द्वारा अर्जुनको सान्त्वना देते हुए-से कहा—'पार्थ! धर्मराज युधिष्ठिरने तुम्हारे बाहुबलका सहारा लेकर और भीमसेन तथा नकुल-सहदेवके पराक्रमसे समूची पृथ्वीपर विजय पायी है। आज वे शत्रुहीन भूमण्डलका राज्य भोग रहे हैं। यह अकण्टक साम्राज्य उन्हें धर्मके ही बलसे प्राप्त हुआ है। धृतराष्ट्रके पुत्र अधर्ममें रुचि रखनेवाले, लोभी, कटुवादी और दुरात्मा थे, इसलिये वे अपने बन्धु-बान्धवोंसहित मारे गये। अर्जुन! तुम्हारे साथ रहनेपर तो मुझे निर्जन वनमें भी सुख मिलता है। फिर जहाँ इतने लोग और मेरी बुआ कुन्ती हों, वहाँकी तो बात ही क्या है? जहाँ धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर, महाबली भीमसेन और माद्रीनन्दन नकुल-सहदेव रहते हैं, वहीं रहनेमें मुझे विशेष आनन्द मिलता है। इस सभा-भवनके रमणीय और पवित्र स्थान स्वर्गको भी मात कर रहे हैं। यहाँ तुम्हारे साथ रहते हुए बहुत दिन बीत गये। इतने दिनोंतक पिताजी, भैया बलभद्रजी तथा अन्यान्य वृष्णिवंशियोंको मैंने नहीं देखा है। इसलिये अब द्वारकापुरीको जाना चाहता हूँ। आशा है तुम भी मेरे इस विचारसे सहमत होगे। महाबाहो! यदि तुम उचित समझो तो महात्मा युधिष्ठिरके पास चलकर उनसे मेरे द्वारका जानेका प्रस्ताव करो। मेरे प्राणोंपर संकट आ जाय तब भी मैं धर्मराजका अप्रिय नहीं कर सकता, फिर द्वारका जानेके लिये उनका दिल दुखाऊँ, यह तो हो ही कैसे सकता है? पार्थ! मैं सच्ची बात बता रहा हूँ, मैंने जो कुछ किया या कहा है, वह सब तुम्हारी प्रसन्नताके लिये और तुम्हारे ही हितकी दृष्टिसे किया है। अब यहाँ मेरे रहनेका प्रयोजन पूरा हो चुका है। धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन अपनी सेना और सहायकोंसहित मारा गया तथा समुद्रसे घिरी हुई सारी पृथ्वी, पर्वत, वन और काननोंसहित धर्मराजके अधीन हो गयी। इसलिये अब तुम मेरे साथ चलकर महाराजसे मुझे द्वारका जानेकी आज्ञा दिला दो। मेरे घरमें जो कुछ धन-सम्पत्ति है वह और मेरा यह शरीर धर्मराजकी सेवामें समर्पित है। वे मेरे परम प्रिय और माननीय हैं। अब तुम्हारे साथ मन बहलानेके सिवा यहाँ मेरे रहनेका और कोई प्रयोजन नहीं रह गया है।'

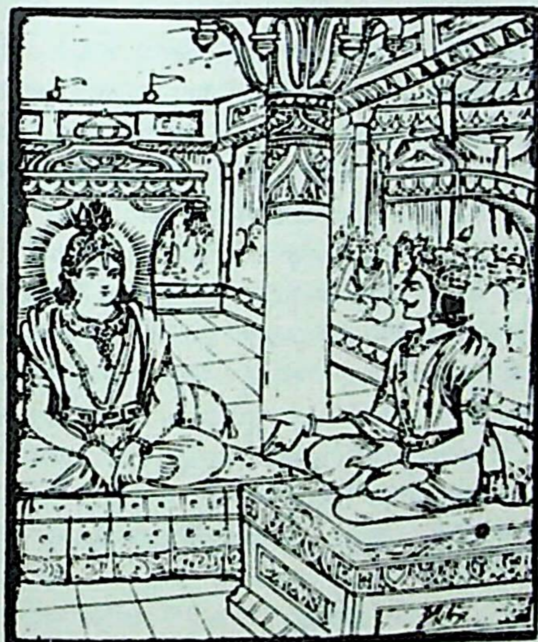
भगवान् श्रीकृष्णाके ऐसा कहनेपर अमितपराक्रमी अर्जुनने उनकी बातका आदर करते हुए बड़े दुःखके साथ उनके जानेका प्रस्ताव स्वीकार किया।



अर्जुनका श्रीकृष्णसे गीताका विषय पूछना और श्रीकृष्णका अर्जुनसे सिद्ध महर्षि और काश्यपका संवाद

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! शत्रुओंका नाश हो जानेके बाद जब महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन सभामें बैठकर वार्तालाप कर रहे थे, उस समय उनमें क्या-क्या बातचीत हुई ?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! श्रीकृष्णके सहित अर्जुनने जब अपने राज्यपर पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया तो वे दिव्य सभा-भवनमें आनन्दके साथ रहने लगे। एक दिन स्वजनोंसे घिरे हुए वे दोनों मित्र स्वेच्छासे घूमते-घूमते सभामण्डपके ऐसे भागमें पहुँचे जो स्वर्गके समान सुन्दर था। पाण्डुनन्दन अर्जुन श्रीकृष्णके साथ रहकर बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने एक बार उस रमणीय सभाकी ओर दृष्टि डालकर भगवान्‌से यह वचन कहा—'देवकीनन्दन ! जब युद्धका अवसर उपस्थित था, उस समय मुझे आपके माहात्म्यका



ज्ञान और ईश्वरीय स्वरूपका दर्शन हुआ था; किंतु केशव ! आपने स्नेहवश पहले मुझे जो ज्ञानका उपदेश किया था, वह सब इस समय बुद्धिके दोषसे भूल गया है। उन विषयोंको सुननेके लिये बारंबार मेरे मनमें उत्कण्ठा होती है। इधर, आप जल्दी ही द्वारका जानेवाले हैं; अतः पुनः वह सब विषय मुझे सुना दीजिये।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—अर्जुनके ऐसा कहनेपर वक्ताओंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें गलेसे लगाकर इस प्रकार उत्तर दिया।

श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन ! उस समय मैंने तुम्हें अत्यन्त गोपनीय विषयका श्रवण कराया था, अपने स्वरूपभूत धर्म—सनातन पुरुषोत्तमतत्त्वका परिचय दिया था और (शुक्ल-कृष्ण गतिका निरूपण करते हुए) नित्य लोकोंका भी वर्णन किया था; किंतु तुमने जो अपनी नासमझीके कारण उस उपदेशको याद नहीं रखा यह जानकर मुझे बड़ा खेद हुआ है। उन बातोंका अब पूरा-पूरा स्मरण होना सम्भव नहीं जान पड़ता। पाण्डुनन्दन ! निश्चय ही तुम बड़े श्रद्धाहीन हो, तुम्हारी बुद्धि अच्छी नहीं जान पड़ती। अब मेरे लिये उस उपदेशको ज्यों-का-त्यों दुहरा देना कठिन है; क्योंकि उस समय योगयुक्त होकर मैंने परमात्मतत्त्वका वर्णन किया था। अब उस विषयका ज्ञान करानेके लिये मैं एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ। इससे तुम्हें श्रेष्ठ एवं स्थिर बुद्धि प्राप्त होगी, जिसके द्वारा तुम परम उत्तम गतिको पा जाओगे। एक दिनकी बात है, एक दुर्द्धर्ष ब्राह्मण ब्रह्मलोकसे उतरकर मेरे यहाँ आये। मैंने उनकी विधिवत् पूजा की और मोक्षधर्मके विषयमें प्रश्न किया। मेरे प्रश्नका उन्होंने बड़े अच्छे ढंगसे उत्तर दिया। वही मैं तुम्हें बतला रहा हूँ। कोई अन्यथा विचार न करके इसे ध्यान देकर सुनो।

ब्राह्मणने कहा—मधुसूदन ! तुमने सब प्राणियोंपर कृपा करके उनके मोहका नाश करनेके लिये जो यह मोक्षधर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला प्रश्न किया है, उसका मैं यथावत् उत्तर दे रहा हूँ। सावधान होकर मेरी बात श्रवण करो—प्राचीन समयमें काश्यप नामके एक धर्मात्मा और तपस्वी ब्राह्मण किसी सिद्ध ब्रह्मर्षिके पास गये; जो धर्मके विषयमें शास्त्रके सम्पूर्ण रहस्योंको जाननेवाले, भूत और भविष्यके ज्ञान-विज्ञानमें प्रवीण, लोक-तत्त्वके ज्ञानमें कुशल, सुख-दुःखके रहस्यको समझनेवाले, जन्म-मृत्युके तत्त्वज्ञ, पाप-पुण्यके ज्ञाता और ऊँच-नीच प्राणियोंको कर्मानुसार प्राप्त होनेवाली गतिके प्रत्यक्ष द्रष्टा थे। वे मुक्तकी भाँति विचरनेवाले, सिद्ध, शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान, सर्वत्र जा सकनेवाले और अन्तर्धान होनेकी विद्याको जाननेवाले थे। अदृश्य रहनेवाले चक्रधारी सिद्धोंके साथ विचरते, बातचीत करते और उन्हींके साथ एकान्तमें

बैठते थे। जैसे वायु कहीं आसक्त न होकर सर्वत्र प्रवाहित होती है, उसी प्रकार वे स्वच्छन्दतापूर्वक अनासक्त भावसे सर्वत्र विचरा करते थे। महर्षि काश्यप उनकी उपर्युक्त महिमा सुनकर ही उनके पास गये थे। निकट जाकर उन मेधावी, तपस्वी, धर्माभिलाषी और एकाग्रचित्त महर्षिने न्यायानुसार उन सिद्ध महात्माके चरणोंमें प्रणाम किया। वे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ और बड़े अद्‌भुत संत थे। उनमें सब प्रकारकी योग्यता थी। वे शास्त्रके ज्ञाता और सच्चरित्र थे। उनका दर्शन करके काश्यपको बड़ा विस्मय हुआ। वे उन्हें गुरु मानकर उनकी सेवामें लग गये और अपनी विशेष शुश्रूषा, गुरुभक्ति तथा श्रद्धाभावके द्वारा उन्होंने उन सिद्ध महात्माको संतुष्ट कर लिया। जनार्दन! अपने शिष्य काश्यपके ऊपर प्रसन्न होकर उन सिद्ध महर्षिने परासिद्धिके सम्बन्धमें विचार करके जो उपदेश किया, उसे बताता हूँ, सुनो।

सिद्धने कहा—तात काश्यप! मनुष्य नाना प्रकारके शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करके केवल पुण्यके संयोगसे इस लोकमें उत्तम फल और देवलोकमें स्थान प्राप्त करते हैं। जीवको कहीं भी अत्यन्त सुख नहीं मिलता। किसी भी लोकमें वह सदा नहीं रहने पाता। तपस्या आदिके द्वारा कितने ही कष्ट सहकर बड़े-से-बड़े स्थानको क्यों न प्राप्त किया जाय, वहाँसे भी बार-बार नीचे आना ही पड़ता है। मैंने काम-क्रोधसे युक्त और तृष्णासे मोहित होकर अनेकों बार पाप किये हैं और उनके फलस्वरूप घोर कष्ट देनेवाली अशुभ गतियोंको भोगा है। बार-बार जन्म और बार-बार मृत्युका क्लेश उठाया है। तरह-तरहके पदार्थ भोजन किये और अनेकों स्तनोंका दूध पिया है। बहुत-से पिता और भाँति-भाँतिकी माताएँ देखी हैं। विचित्र-विचित्र सुख-दुःखोंका अनुभव किया है। कितनी ही बार मुझसे प्रियजनोंका वियोग और अप्रिय मनुष्योंका संयोग हुआ है। जिस धनको मैंने बहुत कष्ट सहकर कमाया था, वह मेरे देखते-देखते नष्ट हो गया है। राजा और स्वजनोंकी ओरसे मुझे कई बार बड़े-बड़े कष्ट और अपमान उठाने पड़े हैं। अत्यन्त दुःसह शारीरिक और मानसिक वेदनाएँ सहनी पड़ी हैं। मैंने अनेकों बार घोर अपमान, प्राणान्त दण्ड और कड़ी कैदकी सजाएँ भोगी हैं। नरकमें पड़कर यमलोककी यातनाएँ सही हैं। इस लोकमें जन्म लेकर बारंबार बुढ़ापा, रोग और राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंके दुःखोंका अनुभव किया है। इस प्रकार बारंबार क्लेश उठानेसे एक दिन मेरे मनमें बड़ा संताप हुआ और मैंने दुःखोंसे घबराकर परमात्माकी शरण ली तथा समस्त लोक-व्यवहारका परित्याग कर दिया। इस तरह अनुभवके पश्चात् मैंने इस मार्गका आश्रय लिया है और अब परमात्माकी कृपासे मुझे यह उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई है। अब मैं पुनः इस संसारमें नहीं आऊँगा। जबतक यह सृष्टि कायम रहेगी और जबतक मेरी मुक्ति नहीं हो जायगी, तबतक मैं अपनी और दूसरे प्राणियोंकी शुभ गतिका अवलोकन करूँगा। द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार मुझे यह उत्तम सिद्धि मिली है। इसके बाद मैं उत्तम-से-उत्तम सत्यलोकमें जाऊँगा और क्रमशः अव्यक्त ब्रह्मपद (मोक्ष) को प्राप्त कर लूँगा। इसमें तुम्हें तनिक भी संदेह नहीं करना चाहिये। अब मुझे मर्त्यलोकमें नहीं आना पड़ेगा। महामते! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। बोलो, तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ? तुम जिस इच्छासे मेरे पास आये हो उसके पूर्ण होनेका यह समय आ गया है। तुम्हारे आनेका उद्देश्य क्या है? इसे मैं जानता हूँ और शीघ्र ही यहाँसे जानेवाला हूँ। इसीलिये स्वयं तुम्हें प्रश्न करनेके लिये प्रेरित कर रहा हूँ। विद्वन्! तुम्हारे उत्तम आचरणसे मुझे बड़ा संतोष है। तुम अपने कल्याणकी बात पूछो, मैं तुम्हारे अभीष्ट प्रश्नका उत्तर दूँगा। काश्यप! मैं तुम्हारी बुद्धिकी सराहना करता और उसे बहुत आदर देता हूँ। तुमने मुझे पहचान लिया है, इसीसे कह रहा हूँ कि तुम बड़े बुद्धिमान् हो।



जीवकी मृत्यु और उसकी त्रिविध गतिका वर्णन

काश्यपने पूछा—महात्मन्! यह शरीर किस प्रकार गिर जाता है? फिर दूसरा शरीर कैसे प्राप्त होता है? संसारी जीव किस तरह इस दुःखमय संसारसे मुक्त होता है? वह मूल अविद्या और उससे उत्पन्न होनेवाले शरीरका कैसे त्याग करता है? और एक शरीरसे छूटकर दूसरेमें वह किस प्रकार प्रवेश करता है? मनुष्य अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल कैसे भोगता है? और शरीर न रहनेपर उसके कर्म कहाँ रहते हैं?

ब्राह्मण कहते हैं—कृष्ण! काश्यपके इस प्रकार पूछनेपर सिद्ध महर्षिने उनके प्रश्नोंका क्रमशः उत्तर देना आरम्भ किया।

सिद्धने कहा—काश्यप! मनुष्य इस लोकमें आयु

और कीर्तिको बढ़ानेवाले जिन कर्मोंका सेवन करता है, वे शरीर-प्राप्तिमें कारण होते हैं। शरीर-ग्रहणके अनन्तर जब वे सभी कर्म अपना फल देकर क्षीण हो जाते हैं, उस समय जीवकी आयुका भी क्षय हो जाता है। उस अवस्थामें वह विपरीत कर्मोंका सेवन करने लगता है और विनाशकाल निकट आनेपर उसकी बुद्धि उलटी हो जाती है। वह अपने सत्त्व (धैर्य), बल और अनुकूल समयको जानकर भी मनपर अधिकार न होनेके कारण असमयमें तथा अपनी प्रकृतिके विरुद्ध भोजन करता है। अत्यन्त हानि पहुँचानेवाली जितनी वस्तुएँ हैं, उन सबका सेवन करता है। कभी बहुत अधिक खा लेता है और कभी बिलकुल ही भोजन नहीं करता। कभी दूषित अन्न-पानको भी ग्रहण कर लेता है। कभी एक-दूसरेसे विरुद्ध गुणवाले पदार्थोंको एक साथ खा लेता है। किसी दिन गरिष्ठ अन्न और वह भी बहुत अधिक मात्रामें चट कर जाता है। कभी-कभी एक बारका खाया हुआ अन्न पचने भी नहीं पाता कि दुबारा भोजन कर लेता है। अधिक मात्रामें व्यायाम और स्त्री-सम्भोग करता है। काम करनेके लोभसे सदा मल और मूत्रके वेगको रोके रहता है। रसीला अन्न भोजन करता और दिनमें सोता है तथा कभी-कभी खाये हुए अन्नके पचनेके पहले असमयमें भोजन करके स्वयं ही अपने शरीरमें स्थित वात-पित्तादि दोषोंको कुपित कर देता है। उन दोषोंके कुपित होनेपर वह अपने लिये प्राणनाशक रोगोंको बुला लेता है और इन्हीं सब कारणोंसे उसका शरीर नष्ट हो जाता है। इस प्रकार संसारके सभी जीव वेदनाओंसे ग्रस्त और जन्म-मरणके भयसे सदा उद्विग्न रहते हैं।

देहधारी जीव जिन इन्द्रियोंके द्वारा रूप, रस आदि विषयोंका अनुभव करता है, उनके द्वारा वह भोजनसे परिपुष्ट होनेवाले प्राणोंको नहीं जान सकता। इस शरीरके भीतर रहकर जो सब कार्य करता है, वह सनातन जीव है। अन्तकाल उपस्थित होनेपर तम (अविद्या) के द्वारा जीवकी ज्ञानशक्ति लुप्त हो जाती है। उसके मर्मस्थान अवरुद्ध हो जाते हैं। उस समय जीवके लिये कोई आधार नहीं रह जाता और वायु उसे अपने स्थानसे विचलित कर देती है। तब वह जीवात्मा बारंबार लंबी साँस छोड़कर बाहर निकलते समय सहसा इस जड शरीरको कम्पित कर देता है। शरीरसे अलग होनेपर वह अपने किये हुए पुण्य अथवा पाप-कर्मोंसे घिरा रहता है। जिन्होंने वेद-शास्त्रके सिद्धान्तोंका यथावत् अध्ययन किया है, वे ज्ञानसम्पन्न ब्राह्मण लक्षणोंके द्वारा यह जान लेते हैं कि अमुक जीव पुण्यात्मा रहा है और अमुक जीव पापी। जिस तरह आँखवाले मनुष्य अँधेरेमें इधर-उधर उगते-बुझते हुए खद्योतको देखते हैं, उसी प्रकार सिद्ध पुरुष अपनी ज्ञानमयी दिव्य दृष्टिसे जन्मते-मरते तथा गर्भमें प्रवेश करते हुए जीवको सदा देखते रहते हैं। शास्त्रके अनुसार जीवके तीन स्थान देखे गये हैं (मर्त्यलोक, स्वर्गलोक और नरक)। यह मर्त्यलोककी भूमि, जहाँ बहुत-से प्राणी रहते हैं, कर्मभूमि कहलाती है। यहीं शुभ और अशुभ कर्म करके सब मनुष्य उसका यथायोग्य फल प्राप्त करते हैं। यहीं पुण्य कर्म करनेवाले जीव (स्वर्गमें जाकर) अपने कर्मानुसार उत्तम भोग प्राप्त करते हैं और यहीं पाप-कर्म करनेवाले मनुष्य कर्मानुसार नरकमें पड़ते हैं। यह जीवकी अधोगति है, जो घोर कष्ट देनेवाली है। इसमें पड़कर पापी मनुष्य नरकाग्निमें पकाये जाते हैं। उसकी यातनासे छुटकारा मिलना बहुत कठिन है। इसलिये पाप-कर्मसे अलग रहकर अपनेको नरकसे बचानेका विशेष ध्यान रखना चाहिये।

अब स्वर्ग आदि ऊर्ध्व लोकोंमें गये हुए प्राणी जिन स्थानोंमें निवास करते हैं, उनका वर्णन करता हूँ, सुनो। इसको सुननेसे तुम्हें कर्मोंकी गतिका निश्चय हो जायगा और नैष्ठिकी बुद्धि प्राप्त होगी। जहाँ ये समस्त ताराएँ हैं, जहाँ चन्द्रमण्डल प्रकाशित होता है तथा जिस लोकमें सूर्यमण्डल अपनी किरणोंसे देदीप्यमान दिखायी देता है, उन सबको तुम पुण्य कर्म करनेवाले मनुष्योंके स्थान समझो। (पुण्यात्मा मनुष्य उन्हीं लोकोंमें जाकर अपने पुण्यका फल भोगते हैं।) जब जीवोंके पुण्य-कर्मोंका भोग समाप्त हो जाता है, तब वे वहाँसे नीचे गिरते हैं। यह आवागमनकी परम्परा बराबर लगी रहती है। ऊपरके लोकोंमें भी ऊँच, नीच और मध्यमका भेद रहता है, इसलिये वहाँ निवास करनेवालोंको भी दूसरोंका तेज और ऐश्वर्य अपनेसे अधिक देखकर मनमें संतोष नहीं होता। इस प्रकार जीवकी इन सभी गतियोंका मैंने पृथक्-पृथक् वर्णन किया। अब यह बताऊँगा कि जीव किस प्रकार गर्भमें आकर जन्म धारण करता है। तुम एकाग्रचित्त होकर इस विषयको सुनो।



जीवके गर्भ-प्रवेश, आचार-धर्म, कर्म-फलकी अनिवार्यता तथा संसारसे तरनेके उपायका वर्णन

सिद्धने कहा—काश्यप ! इस लोकमें किये हुए शुभ और अशुभ कर्मोंका फल भोगे बिना नाश नहीं होता। वे कर्म एकके बाद एक शरीर धारण कराकर अपना फल देते रहते हैं। जैसे फल देनेवाला वृक्ष फलनेका समय आनेपर बहुत-से फल प्रदान करता है, उसी प्रकार शुद्ध हृदयसे किये हुए पुण्यका फल अधिक होता है तथा कलुषित चित्तसे किये हुए पापके फलमें भी वृद्धि होती है; क्योंकि जीवात्मा मनको आगे करके ही प्रत्येक कार्यमें प्रवृत्त होता है। काम-क्रोधसे घिरा हुआ मनुष्य जिस प्रकार कर्म-जालमें आबद्ध होकर गर्भमें प्रवेश करता है, उसका वर्णन सुनो। जीव पहले पुरुषके वीर्यमें प्रविष्ट होता है। फिर स्त्रीके गर्भाशयमें जाकर उसके रजसे मिल जाता है। तत्पश्चात् उसे कर्मानुसार शुभ या अशुभ शरीरकी प्राप्ति होती है। सूक्ष्म और अव्यक्त होनेके कारण वास्तवमें वह जीवात्मा शरीरको पाकर भी उसके दोषोंसे कभी लिप्त नहीं होता। वही सम्पूर्ण भूतोंका बीज है। उसीके द्वारा सब प्राणी जीवित रहते हैं। ऐसा होनेपर भी वह अज्ञानवश जीवभावसे विभक्त होकर गर्भके प्रत्येक अवयवमें व्याप्त हो जाता है और इन्द्रियोंके स्थानों (गोलकों) में स्थित होकर चित्तके द्वारा सबको धारण करता है। जीवके प्रवेश करनेसे गर्भ चेतन हो जाता है और उसके द्वारा सब अङ्गोंमें चेष्टा होने लगती है। जैसे गलाये हुए लोहेका रस जिस तरहके साँचेमें ढाला जाता है उसी तरहका आकार धारण करता है, उसी प्रकार जीवका गर्भमें प्रवेश होता है अर्थात् जीव भी जिस तरहके शरीरमें प्रवेश करता है उसी आकारका दिखायी देता है। जैसे आग लोहेके गोलेमें प्रविष्ट होकर उसे खूब तपाकर अग्निमय बना देती है, उसी प्रकार तुम जीवका गर्भ-प्रवेश भी समझो अर्थात् जीवके प्रविष्ट होनेसे सारा शरीर चेतन एवं जीवमय जान पड़ता है। जिस प्रकार जलता हुआ दीपक समूचे घरमें प्रकाश फैलाता है, उसी प्रकार जीवकी चैतन्यशक्ति शरीरके सब अवयवोंको प्रकाशित करती है। देहधारी जीव जो-जो शुभ या अशुभ कर्म करता है, उसको दूसरे जन्ममें भोगता है। पूर्वजन्मके शरीरसे किये हुए समस्त कर्मोंका फल उसे निश्चय ही भोगना पड़ता है। भोगनेसे प्राचीन कर्म तो क्षीण होते हैं और नये-नये कर्मोंका संचय बढ़ता जाता है। जीवको जबतक मोक्ष-धर्मका ज्ञान नहीं होता तबतक यह कर्मोंकी परम्परा चालू रहती है।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न योनियोंमें भ्रमण करनेवाला जीव जिनके अनुष्ठानसे सुखी होता है, उन कर्मोंका वर्णन सुनो। दान, व्रत, ब्रह्मचर्य, शास्त्रोक्त रीतिसे वेदाध्ययन, इन्द्रियनिग्रह, शान्ति, समस्त प्राणियोंपर दया, चित्तका संयम, कोमलता, दूसरोंके धन लेनेकी इच्छाका त्याग, संसारके प्राणियोंका मनसे भी अहित न करना, माता-पिताकी सेवा, देवता, अतिथि और गुरुकी पूजा, दया, पवित्रता, इन्द्रियोंको सदा काबूमें रखना तथा शुभ कर्मोंका प्रचार करना—यह सब श्रेष्ठ पुरुषोंका बर्ताव कहलाता है। इनके अनुष्ठानसे धर्म होता है, जो सदा ही प्रजावर्गकी रक्षा करता है। सत्पुरुषोंमें सदा ही इस प्रकारका धार्मिक आचरण देखा जाता है। उन्हींमें धर्मकी अटल स्थिति होती है। सदाचारसे ही धर्मके स्वरूपका परिचय मिलता है। शान्तचित्त महात्मा पुरुष सदाचारमें ही स्थित रहते हैं। उन्हींमें पूर्वोक्त दान आदि कर्मोंकी स्थिति है। वे ही कर्म सनातन धर्मके नामसे प्रसिद्ध हैं। जो उस सनातन धर्मका आश्रय लेता है, उसे कभी दुर्गति नहीं भोगनी पड़ती। इसीलिये धर्ममार्गसे भ्रष्ट होनेवाले लोगोंका नियन्त्रण किया जाता है। योगी और मुक्त पुरुष केवल आचार-धर्मका पालन करनेवाले मनुष्योंकी अपेक्षा श्रेष्ठ होते हैं। जो धर्मके अनुसार बर्ताव करता है, उसको अपने कर्मानुसार उत्तम फलकी प्राप्ति होती है और वह धीरे-धीरे अधिक काल बीतनेपर संसार-समुद्रसे तर जाता है। इस प्रकार जीव सदा अपने पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंका फल भोगता है। यह आत्मा निर्विकार ब्रह्म होनेपर भी जीवरूपमें विकृत होकर इस जगत्‌में जो जन्म धारण करता है, उसमें कर्म ही कारण है। आत्माके शरीर-धारण करनेकी प्रथा सबसे पहले किसने प्रचलित की है ? इस प्रकारका संदेह प्रायः लोगोंके मनमें उठा करता है, अतः अब उसीका उत्तर दे रहा हूँ। सम्पूर्ण जगत्‌के पितामह ब्रह्माजीने सबसे पहले स्वयं ही शरीर धारण किया। उसके बाद स्थावर-जङ्गमरूप समस्त त्रिलोकीकी रचना की। उन्होंने प्रधान नामक तत्त्वकी उत्पत्ति की, जो देहधारी जीवोंकी प्रकृति कहलाती है, जिसने सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त कर रखा है यह प्राकृत जगत् क्षर कहलाता है। इससे भिन्न जीवात्माको अक्षर कहते हैं पितामहने जीवके लिये नियत समयतक शरीर धारण किये रहने, भिन्न-भिन्न योनियोंमें भ्रमण करने और परलोकसे लौटकर फिर इस लोकमें जन्म ग्रहण करने आदिकी भी व्यवस्था की है। जिसने पूर्वजन्ममें अपने आत्माका साक्षात्कार कर लिया हो

ऐसा कोई मेधावी पुरुष संसारकी अनित्यताके विषयमें जैसी बात कह सकता है वैसी ही मैं भी कहता हूँ। मेरी कही हुई सारी बातें यथार्थ और संगत होंगी। जो मनुष्य सुख और दुःख दोनोंको अनित्य, शरीरको अपवित्र वस्तुओंका समूह और मृत्युको कर्मका फल समझता है तथा सुखके रूपमें प्रतीत होनेवाला यह सब कुछ दुःख-ही-दुःख है ऐसा मानता है, वह घोर एवं दुस्तर संसारसागरसे पार हो जाता है।



मोक्ष-प्राप्तिके उपायका वर्णन

सिद्ध ब्राह्मणने कहा—काश्यप ! जो मनुष्य (स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीरोंमेंसे क्रमशः) पूर्व-पूर्वका अभिमान त्यागकर कुछ भी चिन्तन नहीं करता और मौनभावसे रहकर सबके एकमात्र अधिष्ठान—परब्रह्म परमात्मामें लीन रहता है, वही संसार-बन्धनसे मुक्त होता है। जो सबका मित्र, सब कुछ सहनेवाला, मनोनिग्रहमें तत्पर, जितेन्द्रिय, भय और क्रोधसे रहित तथा मनस्वी है; जो नियमपरायण और पवित्र रहकर सब प्राणियोंके प्रति अपने-जैसा बर्ताव करता है, जिसके भीतर सम्मान पानेकी इच्छा नहीं है तथा जो अभिमानसे दूर रहता है, वह सर्वथा मुक्त ही है। जीवन-मरण, सुख-दुःख, लाभ-हानि तथा प्रिय-अप्रियमें जिसकी समान दृष्टि है; जो किसीके द्रव्यका लोभ नहीं रखता, किसीकी अवहेलना नहीं करता; जिसके मनपर द्वन्द्वोंका प्रभाव नहीं पड़ता, जिसके चित्तकी आसक्ति दूर हो गयी है; जो किसीको अपना मित्र, बन्धु या संतान नहीं मानता; जिसने धर्म, अर्थ और कामका परित्याग कर दिया है, जो सब प्रकारकी आकाङ्क्षाओंसे रहित हो गया है; जिसकी न धर्ममें आसक्ति है, न अधर्ममें; जो पूर्वके संचित कर्मोंको त्याग चुका है; वासनाओंका क्षय हो जानेसे जिसका चित्त अत्यन्त शान्त हो गया है तथा जो सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित है, वह मुक्त हो जाता है। जो काम्य कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करता, जिसके मनमें कोई कामना नहीं है, जिसकी दृष्टिमें यह जगत् अश्वत्थके समान आज है कल नहीं रहनेवाला है, जो सदा इसे जन्म, मृत्यु और जरा-अवस्थासे युक्त अस्थिर देखता है; जिसकी बुद्धि वैराग्यमें लगी रहती है; जो सदा अपने दोषोंपर दृष्टि रखता है, वह शीघ्र ही अपने बन्धनका नाश कर देता है। जो आत्माको गन्ध, रस, स्पर्श, शब्द, परिग्रह और रूपसे रहित तथा अज्ञेय मानता है; जिसकी दृष्टिमें आत्मा पाञ्चभौतिक गुणोंसे हीन, निराकार, कारणरहित, निर्गुण तथा गुणोंका भोक्ता है, वह मुक्त हो जाता है। जो बुद्धिसे विचार करके शारीरिक और मानसिक सब संकल्पोंका त्याग कर देता है, वह बिना ईंधनकी आगके समान धीरे-धीरे शान्तिको प्राप्त हो जाता है। जो सब प्रकारकी वासनाओंसे छूटकर द्वन्द्व और परिग्रहसे रहित हो गया है तथा जो तपस्याके द्वारा इन्द्रियसमूहको अपने वशमें करके अनासक्त भावसे विचरता है, उसे मुक्त ही समझना चाहिये; क्योंकि वासनाओंके बन्धनसे छूट जानेपर मनुष्य शान्त, अचल, नित्य, अविनाशी एवं सनातन परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है।

अब मैं उस परम उत्तम योगशास्त्रका वर्णन करता हूँ, जिसके अनुसार योग-साधन करनेवाले योगी पुरुष अपने आत्माका साक्षात्कार कर लेते हैं। पहले तुम उन उपायोंको श्रवण करो, जिनके द्वारा चित्तको वशीभूत एवं अन्तर्मुख करके योगी अपने नित्य आत्माका दर्शन करता है। इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे हटाकर मनमें और मनको आत्मामें स्थापित करे। इस प्रकार पहले तीव्र तपस्या करके फिर मोक्षोपयोगी उपायका अवलम्बन करना चाहिये। मनीषी पुरुषको चाहिये कि वह सदा तपस्यामें प्रवृत्त एवं यत्नशील होकर योगशास्त्रोक्त उपायका अनुष्ठान करे। इससे वह मनके द्वारा अपने अन्तःकरणमें आत्माका साक्षात्कार करता है। एकान्तमें रहनेवाला साधक पुरुष यदि अपने मनको आत्मामें लगाये रखनेमें सफल हो जाता है तो वह अवश्य ही अन्तःकरणमें आत्माका दर्शन करता है। जो साधक सदा संयमपरायण, योगयुक्त, मनको वशमें करनेवाला और जितेन्द्रिय है, वही आत्मासे प्रेरित होकर बुद्धिके द्वारा उसका साक्षात्कार कर सकता है। जैसे मनुष्य सपनेमें किसी अपरिचित पुरुषको देखकर जब पुनः उसे जाग्रत्-अवस्थामें देखता है तो तुरंत पहचान लेता है कि 'यह वही है।' उसी प्रकार साधनपरायण योगी समाधि-अवस्थामें आत्माको जिस रूपमें देखता है, उसी रूपमें उसके बाद भी देखता रहता है। जैसे कोई मनुष्य मूँजसे सींकको अलग करके दिखा दे, वैसे ही योगी पुरुष आत्माको इस देहसे पृथक् करके देखता है। यहाँ शरीरको मूँज कहा गया है और आत्माको सींक। योगवेत्ताओंने देह और आत्माके पार्थक्यको समझानेके लिये यह बहुत उत्तम दृष्टान्त दिया है। देहधारी जीव जब योगके द्वारा आत्माका यथार्थरूपसे दर्शन कर लेता है, उस समय उसके ऊपर त्रिभुवनके अधीश्वरका भी

आधिपत्य नहीं रहता। वह अपनी इच्छाके अनुसार विभिन्न प्रकारके शरीर धारण कर सकता है। बुढ़ापा और मृत्यु उसके पास नहीं फटकने पाते, शोक और हर्ष उसे नहीं छू सकते। अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला योगी पुरुष देवताओंका भी देवता हो सकता है। वह इस अनित्य शरीरका त्याग करके अविनाशी ब्रह्मको प्राप्त होता है। सम्पूर्ण प्राणियोंका विनाश देखकर भी उसे भय नहीं होता। सबके क्लेश उठानेपर भी उसको किसीसे क्लेश नहीं पहुँचता। शान्तचित्त एवं निःस्पृह योगी आसक्ति और स्नेहसे प्राप्त होनेवाले भयंकर दुःख, शोक तथा भयसे कभी विचलित नहीं होता। उसे शस्त्र नहीं काट सकते, मृत्यु उसके पास नहीं पहुँच पाती, संसारमें उससे बढ़कर सुखी कहीं कोई भी नहीं दिखायी देता। वह मनको आत्मामें लीन करके आत्मनिष्ठ हो जाता है तथा बुढ़ापाके दुःखोंसे छुटकारा पाकर सुखसे सोता—अक्षय आनन्दका अनुभव करता है। अच्छी तरह योगका अभ्यास करके जब योगी अपनेमें ही आत्माका साक्षात्कार करने लगता है, उस समय वह साक्षात् इन्द्रके पदको भी पानेकी इच्छा नहीं करता।

एकान्तमें ध्यान करनेवाले पुरुषको जिस प्रकार योगकी प्राप्ति होती है, वह सुनो—जो उपदेश पहले श्रुतिमें देखा गया है, उसका चिन्तन करके शरीरके जिस भागमें जीवका निवास माना गया है, उसीमें मनको भी स्थापित करे। उसके बाहर कदापि न जाने दे। फिर निर्जन वनमें, जहाँ किसी प्रकारका शब्द न सुनायी देता हो, इन्द्रियसमुदायको वशमें करके एकाग्रचित्तसे अपने अन्तःकरणमें परमात्मतत्त्वका चिन्तन करे। प्रमादको सर्वथा त्याग दे। इस प्रकार सदा ध्यानके लिये प्रयत्न करनेवाले पुरुषका चित्त शीघ्र ही प्रसन्न हो जाता और परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है। परमात्मा इन चर्म-चक्षुओंसे नहीं देखा जा सकता। सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भी उसको अपना विषय नहीं बना सकतीं। केवल मनरूपी दीपककी सहायतासे ही उस महान् आत्माका दर्शन होता है। वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर कानवाला है; क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है। जो इस प्रकार परमात्माका दर्शन करता है, वह उसीका आश्रय लेकर मुक्त हो जाता है।

विप्रवर! यह सारा रहस्य मैंने तुम्हें बतला दिया। अब मैं जानेकी अनुमति चाहता हूँ। तुम भी आनन्दपूर्वक अपने स्थानको लौट जाओ।

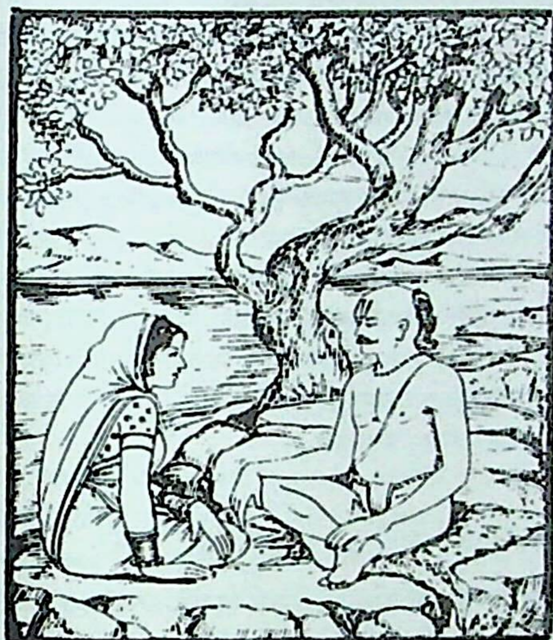
श्रीकृष्ण! (मैं ही वह सिद्ध ब्राह्मण हूँ।) मैंने उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले महातपस्वी शिष्य काश्यपको जब इस प्रकार उपदेश दिया तो वह इच्छानुसार अपने अभीष्ट स्थानको चला गया।

श्रीकृष्ण कहते हैं—अर्जुन! मोक्ष-धर्मका आश्रय लेनेवाले वे ब्राह्मणश्रेष्ठ सिद्ध मुनि मुझसे यह प्रसंग सुनाकर वहीं अन्तर्धान हो गये। पार्थ! क्या तुमने मेरे बताये हुए इस उपदेशको एकाग्रचित्तसे सुना है? मेरा तो ऐसा विश्वास है कि जिसका चित्त व्यग्र है तथा जिसे ज्ञानका उपदेश नहीं प्राप्त है, वह मनुष्य इस विषयको नहीं समझ सकता। जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, वही इसे जान सकता है। यह मैंने देवताओंका परम गोपनीय रहस्य बतलाया है। इस जगत्में कभी किसी भी मनुष्यने इस रहस्यका श्रवण नहीं किया है। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई मनुष्य इसको सुननेका अधिकारी भी नहीं है। जिसका चित्त दुविधेमें पड़ा हुआ है, वह इसे अच्छी तरह नहीं समझ सकता। सनातन ब्रह्म ही जीवकी परम गति है। ज्ञानी मनुष्य देहको त्यागकर उस ब्रह्ममें ही अमृतत्वको प्राप्त होता और सदाके लिये सुखी हो जाता है। स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि—चाण्डाल आदि भी इस धर्मका आश्रय लेकर परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं; फिर जो अपने धर्ममें प्रेम रखते और सदा ब्रह्मलोककी प्राप्तिके साधनमें लगे रहते हैं, उन बहुश्रुत ब्राह्मणों और क्षत्रियोंकी तो बात ही क्या है? इस प्रकार मैंने तुम्हें मोक्ष-धर्मका युक्ति-युक्त उपदेश किया है, उसके साधनके उपाय बतलाये हैं और सिद्धि, फल, मोक्ष तथा दुःखके स्वरूपका भी निर्णय किया है। इससे बढ़कर दूसरा कोई सुखदायक धर्म नहीं है। पाण्डुनन्दन! जो कोई बुद्धिमान्, श्रद्धालु और पराक्रमी मनुष्य लौकिक सुखको सारहीन समझकर उसका परित्याग कर देता है, वह इसी उपायके द्वारा बहुत शीघ्र परम गतिको प्राप्त हो जाता है। इतना ही मुझे कहना था। इससे बढ़कर कुछ नहीं है। जो छः महीनेतक निरन्तर योगका अभ्यास करता है, उसे अवश्य उसमें सिद्धि प्राप्त होती है।



ब्राह्मणका अपनी स्त्रीसे इन्द्रिय-यज्ञ तथा मन-इन्द्रिय-संवादका वर्णन

श्रीकृष्णने कहा—अर्जुन ! इसी विषयमें पति-पत्नीके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। एक ब्राह्मण, जो ज्ञान-विज्ञानके पारगामी विद्वान् थे, एकान्त स्थानमें बैठे हुए थे, यह देखकर उनकी पत्नी ब्राह्मणी उनके



पास जाकर बोली—'प्राणनाथ ! मैंने सुना है कि स्त्रियाँ पतिके कर्मानुसार प्राप्त हुए लोकोंमें जाती हैं; किंतु आप तो कर्म करना छोड़कर चुपचाप बैठे रहते हैं; और मेरे प्रति कठोरताका बर्ताव करते हैं; फिर आप-जैसे पतिको पाकर मैं किस गतिको प्राप्त होऊँगी ?'

स्त्रीके ऐसा कहनेपर शान्तचित्तवाले ब्राह्मण देवता मुसकराते हुए बोले—'सुन्दरी ! तुमने जो बात कही है उसके लिये मैं बुरा नहीं मानता। संसारमें जो ग्रहण करनेयोग्य दीक्षा और व्रत आदि हैं तथा इन आँखोंसे दिखायी देनेवाले जो स्थूल कर्म हैं, उन्हींको कर्म माना जाता है। कर्मठलोग ऐसे ही कर्मको कर्मके नामसे पुकारते हैं; किंतु जिन्हें ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हुई है, वे लोग कर्मके द्वारा मोहका ही नियन्त्रण करते हैं। यहाँ एक प्राचीन दृष्टान्त दिया जाता है। दस होता मिलकर जिस प्रकार यज्ञका अनुष्ठान करते हैं, वह सुनो—कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा (वाक् और रसना), नासिका, हाथ, पैर, उपस्थ और गुदा—ये दस होता हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वाणी, क्रिया, गति, मूत्र-त्याग और मल-त्याग—ये दस हविष्य हैं। दिशा, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, अग्नि, विष्णु, इन्द्र, प्रजापति और मित्र—ये दस देवता अग्नि हैं। सारांश यह कि दस इन्द्रियरूपी होता दस देवतारूपी अग्निमें दस विषयरूपी हविष्य एवं समिधाओंका हवन करते हैं। (इस प्रकार मेरे अन्तरमें निरन्तर यज्ञ हो रहा है, फिर मैं अकर्मण्य कैसे हूँ ?) अब सात होताओंके यज्ञका जैसा विधान है, उसको सुनो—नासिका, नेत्र, जिह्वा, त्वचा, कान, मन और बुद्धि—ये सात होता अलग-अलग रहते हैं। यद्यपि ये सभी सूक्ष्म शरीरमें ही निवास करते हैं, तो भी एक-दूसरेको नहीं देखते—नहीं पहचानते। कल्याणी ! इन सातों होताओंको तुम स्वभावसे ही पहचानो।'

ब्राह्मणीने पूछा—भगवन् ! जब सभी सूक्ष्म शरीरमें ही रहते हैं तो एक-दूसरेको देख क्यों नहीं पाते ? और उनके स्वभाव कैसे हैं ? यह बतानेकी कृपा करें।

ब्राह्मणने कहा—प्रिये ! यहाँ देखनेका अर्थ है जानना ! गुणोंको जानना ही गुणवान्‌को जानना है और गुणोंको न जानना ही गुणवान्‌को न जानना कहलाता है। ये नासिका आदि सात होता एक-दूसरेके गुणको कभी नहीं जान पाते (इसीलिये कहा गया है कि ये एक-दूसरेको नहीं देखते)। जीभ, आँख, कान, त्वचा, मन और बुद्धि—ये गन्धको नहीं समझ पाते, किंतु नासिका उसका अनुभव करती है। नासिका, कान, नेत्र, त्वचा, मन और बुद्धि—ये रसका आस्वादन नहीं कर सकते, केवल जिह्वा ही उसका स्वाद ले सकती है। नासिका, जीभ, कान, त्वचा, मन और बुद्धि—ये रूपका ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते; किंतु नेत्र इसका अनुभव करते हैं। नासिका, जीभ, आँख, कान, बुद्धि और मन—ये स्पर्शका अनुभव नहीं कर सकते; किंतु त्वचाको उसका ज्ञान होता है। नासिका, जीभ, आँख, त्वचा, मन और बुद्धि—इन्हें शब्दका ज्ञान नहीं होता, किंतु कानको होता है। नासिका, जीभ, आँख, त्वचा, कान और बुद्धि—ये संशय (संकल्प-विकल्प) नहीं कर सकते। यह काम मनका है। इसी प्रकार नासिका, जीभ, आँख, त्वचा, कान और मन—ये किसी बातका निश्चय नहीं कर सकते। निश्चयात्मक ज्ञान तो केवल बुद्धिको होता है। इस विषयमें इन्द्रियों और मनके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। एक बार मनने इन्द्रियोंसे कहा—'मेरी सहायताके बिना

नासिका सूँघ नहीं सकती, जीभ रसका स्वाद नहीं ले सकती, आँख रूप नहीं देख सकती, त्वचा स्पर्शका अनुभव नहीं कर सकती और कानोंको शब्द नहीं सुनायी दे सकता। मैं सब भूतोंमें श्रेष्ठ और सनातन हूँ। मेरे बिना समस्त इन्द्रियाँ सूने घरकी भाँति श्रीहीन जान पड़ती हैं। संसारके सभी जीव इन्द्रियोंके यत्न करते रहनेपर भी मेरे बिना विषयोंका अनुभव नहीं कर सकते।'

यह सुनकर इन्द्रियोंने कहा—'महोदय! यदि आप भी हमारी सहायता लिये बिना ही विषयोंका अनुभव कर सकते तो हम आपकी इस बातको सच मान लेतीं। हमारा लय हो जानेपर भी आप तृप्त रह सकें, जीवन धारण कर सकें और सब प्रकारके भोग भोग सकें तो आप जैसा कहते और मानते हैं, वह सब सत्य हो सकता है। अथवा हम सब इन्द्रियाँ लीन हो जायँ या विषयोंमे स्थित रहें, यदि आप अपने संकल्पमात्रसे विषयोंका यथार्थ अनुभव करनेकी शक्ति रखते हैं और आपको ऐसा करनेमें सदा ही सफलता प्राप्त होती है तो जरा नाकके द्वारा रूपका तो अनुभव कीजिये, आँखसे रसका तो स्वाद लीजिये और कानके द्वारा गन्धको तो ग्रहण कीजिये। इसी प्रकार अपनी शक्तिसे जिह्वाके द्वारा स्पर्शका, त्वचाके द्वारा शब्दका और बुद्धिके द्वारा स्पर्शका तो अनुभव कीजिये। आप-जैसे बलवान् लोग नियमोंके बन्धनमें नहीं रहते, नियम तो दुर्बलोंके लिये होते हैं। आप नये ढंगसे नवीन भोगोंका अनुभव कीजिये (लकीरके फकीर क्यों बनते हैं?)। हमलोगोंकी जूठन खाना आपको शोभा नहीं देता। जैसे शिष्य श्रुतिके अर्थको जाननेके लिये उपदेश करनेवाले गुरुके पास जाता है और उनसे श्रुतिके अर्थका ज्ञान प्राप्त करके फिर स्वयं उसका विचार करता है, वैसे ही आप सोते और जागते समय हमारे ही दिखाये हुए भूत और भविष्य विषयोंका उपभोग करते हैं। भले ही हमलोगोंकी अपने-अपने गुणोंके प्रति आसक्ति हो और भले ही हम परस्पर एक-दूसरेके गुणोंको न जान सकें; किंतु यह बात सत्य है कि आप हमारी सहायताके बिना किसी भी विषयका अनुभव नहीं कर सकते। आपके बिना तो हमें केवल हर्षसे ही वञ्चित होना पड़ता है।'



प्राण-अपान आदिका संवाद और ब्रह्माजीका सबकी श्रेष्ठता बतलाना

ब्राह्मणने कहा—प्रिये! अब पञ्च होताओंके यज्ञका जैसा विधान है उसके विषयमें एक प्राचीन दृष्टान्त बतलाया जाता है। प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान—ये पाँचों प्राण पाँच होता हैं। विद्वान् पुरुष इन्हें सबसे श्रेष्ठ मानते हैं।

ब्राह्मणी बोली—पहले तो मैं ऐसा समझती थी कि सात होता हैं; किंतु अब आपके मुँहसे पाँच होताओंकी बात मालूम हुई। अतः ये पाँचों होता किस प्रकार हैं? आप इनकी श्रेष्ठताका वर्णन कीजिये।

ब्राह्मणने कहा—प्रिये! वायु प्राणके द्वारा पुष्ट होकर अपानरूप, अपानके द्वारा पुष्ट होकर व्यानरूप, व्यानसे पुष्ट होकर उदानरूप और उदानसे परिपुष्ट होकर समानरूप होता है। एक बार इन पाँचों वायुओंने पितामह ब्रह्माजीसे प्रश्न किया—'भगवन्! हममें जो श्रेष्ठ हो उसका नाम बता दीजिये, वही हमलोगोंमें प्रधान होगा।'

ब्रह्माजीने कहा—'वायुगण! प्राणधारियोंके शरीरमें स्थित हुए तुमलोगोंमेंसे जिसका लय हो जानेपर सभी प्राण लीन हो जायँ और जिसके संचरित होनेपर सब-के-सब संचार करने लगें, वही श्रेष्ठ है। अब तुम्हारी जहाँ इच्छा हो जाओ।' यह सुनकर प्राणवायुने अपान आदिसे कहा—'मेरे लीन होनेपर प्राणियोंके शरीरमें स्थित सभी प्राण लीन हो जाते हैं तथा मेरे संचरित होनेपर सब-के-सब संचार करने लगते हैं। इसलिये मैं ही सबसे श्रेष्ठ हूँ। देखो, अब मैं लीन हो रहा हूँ (फिर तुम्हारा भी लय हो जायगा)।'

यह कहकर प्राणवायु थोड़ी देरके लिये लीन हो गया और फिर उसके बाद चलने लगा। तब समान और उदान वायुने उससे कहा—'प्राण! तुम हमारी तरह इस शरीरमें व्याप्त होकर नहीं रहते, इसलिये तुम हमलोगोंमें श्रेष्ठ नहीं हो। केवल अपान तुम्हारे वशमें है (अतः तुम्हारे लय होनेसे हमारी कोई हानि नहीं हो सकती)।' उन दोनोंके वचन सुनकर प्राण कोई उत्तर न दे सका, वह फिर पहलेहीकी भाँति चलने लगा। तब अपानने कहा—'मेरे लीन हो जानेपर प्राणियोंके शरीरमें स्थित सभी प्राणोंका लय हो जाता है तथा मेरे चलनेपर पुनः सब-के-सब चलने लगते हैं, इसलिये मैं ही सबसे श्रेष्ठ हूँ। देखो, अब मैं लीन हो रहा हूँ।'

तब व्यान और उदानने उत्तर दिया—'अपान! केवल प्राण तुम्हारे अधीन है, इसलिये तुम हमसे श्रेष्ठ नहीं हो सकते।' यह सुनकर अपान भी चुपचाप अपना काम करने लगा। तब व्यानने कहा—'मैं सबमें श्रेष्ठ हूँ। मेरी श्रेष्ठताका कारण सुनिये। मेरे लीन होनेपर प्राणियोंके देहमें स्थित

समस्त प्राणोंका लय हो जाता और मेरे चलनेपर फिर सब-के-सब चलने लगते हैं, अतएव मैं सबमें श्रेष्ठ हूँ। देखो, अब मैं लुप्त हो रहा हूँ।' तदनन्तर, व्यान थोड़ी देरतक लीन होकर फिर चलने लगा। तब प्राण, अपान, उदान और समानने कहा—'व्यान! केवल समान वायु तुम्हारे अधिकारमें है, इसलिये तुम हम सबमें श्रेष्ठ नहीं हो सकते।'

यह सुनकर व्यान पुनः पहलेकी भाँति चलने लगा। तब समान बोला—'मैं सबमें श्रेष्ठ हूँ, इसके लिये युक्तियुक्त कारण भी है, उसको सुनो। मेरे लय होनेपर प्राणधारियोंके शरीरमें स्थित सब प्राणोंका लय हो जाता है और मेरे चलनेपर फिर सब-के-सब चलने लगते हैं, अतः मैं ही श्रेष्ठ हूँ। देखो, अब मैं लीन होता हूँ।' यह कहकर समानवायु थोड़ी देरतक लीन होनेके पश्चात् फिर चलने लगा।

अब उदान बोला—'मैं सबमें श्रेष्ठ हूँ। मेरी श्रेष्ठताका जो कारण है, उसे सुनो—मेरे लीन होनेपर प्राणियोंके शरीरमें स्थित समस्त प्राणोंका लय हो जाता है और मेरे चलनेपर पुनः सब चलने लगते हैं, अतः मैं ही श्रेष्ठ हूँ। देखो, मैं लीन हो रहा हूँ।' तदनन्तर, उदान थोड़ी देरतक लुप्त रहकर फिर चलने लगा। तब प्राण आदिने उससे कहा—'उदान! केवल व्यान ही तुम्हारे वशमें है, इसलिये तुम हमसे श्रेष्ठ नहीं हो सकते।' तत्पश्चात् एकत्रित हुए उन सब प्राणोंसे प्रजापति ब्रह्माजीने कहा—'वायुगण! तुम सभी लोग श्रेष्ठ हो अथवा तुममेंसे कोई भी श्रेष्ठ नहीं है। तुम सबका धारणरूप धर्म एक-दूसरेपर अवलम्बित है। अतः तुम सभी अपने-अपने स्थानपर श्रेष्ठ हो। तुम्हारा कल्याण हो। कुशलपूर्वक जाओ और एक-दूसरेके हितैषी रहकर परस्परकी उन्नतिमें सहायता पहुँचाते हुए एक-दूसरेको धारण किये रहो।'



अन्तर्यामीकी प्रधानता और ब्रह्मरूपी वनका वर्णन

ब्राह्मणने कहा—प्रिये! जगत्का शासक एक ही है, दूसरा नहीं। जो हृदयके भीतर विराजमान है, उस परमात्माको ही मैं सबका शासक बतला रहा हूँ। जैसे पानी ढालू स्थानसे नीचेकी ओर प्रवाहित होता है, वैसे ही उस परमात्माकी प्रेरणासे मैं जिस तरहके कार्यमें नियुक्त होता हूँ, उसीका पालन करता रहता हूँ। एक ही गुरु है दूसरा नहीं। जो हृदयमें स्थित है, उस परमात्माको ही मैं गुरु बतला रहा हूँ। एक ही बन्धु है, उससे भिन्न दूसरा कोई बन्धु नहीं है। जो हृदयमें स्थित है, उस परमात्माको ही मैं बन्धु कहता हूँ। उसीके उपदेशसे बान्धवगण बन्धुमान् होते हैं और सप्तर्षि लोग आकाशमें प्रकाशित होते हैं। एक ही श्रोता है दूसरा नहीं। जो हृदयमें स्थित परमात्मा है, उसीको मैं श्रोता कहता हूँ। इन्द्रने उसीको गुरु मानकर गुरुकुलवासका नियम पूरा किया अर्थात् शिष्यभावसे वे उस अन्तर्यामीकी ही शरणमें गये। इससे उन्हें सम्पूर्ण लोकोंका साम्राज्य और अमरत्व प्राप्त हुआ। उसी गुरुकी प्रेरणासे जगत्के सारे सर्प सदा द्वेषके पात्र माने गये हैं।

पूर्वकालमें सर्पों, देवताओं और ऋषियोंकी प्रजापतिके साथ जो बातचीत हुई थी, उस प्राचीन प्रसंगको सुना रहा हूँ। एक बार देवता, ऋषि, नाग और असुरोंने प्रजापतिके पास बैठकर पूछा—'भगवन्! हमारे कल्याणका क्या उपाय है?' यह बताइये। उनका प्रश्न सुनकर प्रजापति ब्रह्माजीने एकाक्षर ब्रह्म—ॐकारका उच्चारण किया। उनका प्रणवनाद सुनकर सब लोग अपनी-अपनी दिशा (अपने-अपने स्थान) को चल दिये। फिर उन्होंने उस उपदेशके अर्थपर जब विचार किया तो सबसे पहले सर्पोंके मनमें दूसरोंको डँसनेका भाव पैदा हुआ, असुरोंमें स्वाभाविक दम्भका आविर्भाव हुआ तथा देवताओंने दानको और महर्षियोंने दमको ही अपनानेका निश्चय किया। इस प्रकार सर्प, देवता, ऋषि और दानव—ये सब एक ही उपदेशक गुरुके पास गये थे और एक ही शब्दके उपदेशसे उनकी बुद्धिका संस्कार हुआ तो भी उनके मनमें भिन्न-भिन्न प्रकारके भाव उत्पन्न हो गये। श्रोता गुरुके कहे हुए उपदेशको सुनता है और उसको जैसे-तैसे (भिन्न-भिन्न रूपमें) ग्रहण करता है। अतः प्रश्न पूछनेवाले शिष्यके लिये अपने अन्तर्यामीसे बढ़कर दूसरा कोई गुरु नहीं है। पहले वह कर्मका अनुमोदन करता है, उसके बाद जीवकी उस कर्ममें प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार हृदयमें प्रकट होनेवाला परमात्मा ही गुरु, ज्ञानी, श्रोता और द्वेष्टा है।

संसारमें जो पाप करते हुए विचरता है, वह पापाचारी और जो शुभ कर्मोंका आचरण करता है, वह शुभाचारी कहलाता है। इसी तरह कामनाओंके द्वारा इन्द्रियसुखमें परायण मनुष्य कामचारी और इन्द्रियसंयममें प्रवृत्त रहनेवाला पुरुष ब्रह्मचारी कहलाता है। जो व्रत और कर्मोंका त्याग करके ब्रह्ममें स्थित है और ब्रह्मस्वरूप होकर संसारमें विचरता रहता है, वही मुख्य ब्रह्मचारी है। ब्रह्म ही उसकी

समिधा है, ब्रह्म ही अग्नि है, ब्रह्मसे ही वह उत्पन्न हुआ है, ब्रह्म ही उसका जल और ब्रह्म ही गुरु है। उसकी चित्तवृत्तियाँ सदा ब्रह्ममें ही लीन रहती हैं। विद्वानोंने इसीको सूक्ष्म ब्रह्मचर्य बतलाया है। आत्मज्ञानी पुरुष इस ब्रह्मचर्यके स्वरूपको जानकर सदा उसका पालन करते रहते हैं।

जहाँ संकल्परूपी डाँस और मच्छरोंकी अधिकता होती है, शोक और हर्षरूपी सर्दी-गर्मीका कष्ट बना रहता है, मोहरूपी अन्धकार फैला हुआ है, लोभ तथा व्याधिरूपी सर्प विचरा करते हैं, जहाँ विषयोंका ही मार्ग है, जिसे अकेले ही तय करना पड़ता है तथा जहाँ काम और क्रोधरूपी शत्रु डेरा डाले रहते हैं, उस संसाररूपी दुर्गम पथका उल्लङ्घन करके अब मैं ब्रह्मरूपी महान् वनमें प्रवेश कर चुका हूँ।

ब्राह्मणीने पूछा—महाप्राज्ञ ! वह वन कहाँ है ? उसमें कौन-कौन-से वृक्ष, पर्वत और नदियाँ हैं तथा वह कितनी दूरीपर है ?

ब्राह्मणने कहा—प्रिये ! उस वनमें न भेद है न अभेद—वह इन दोनोंसे अतीत है। वहाँ लौकिक सुख और दुःख—दोनोंका अभाव है। उससे अधिक छोटी, उससे अधिक बड़ी और उससे अधिक सूक्ष्म भी दूसरी कोई वस्तु नहीं है। उसके सम्मान सुखरूप भी कोई नहीं है। उस वनमें प्रविष्ट हो जानेपर द्विजातियोंको न हर्ष होता है, न शोक। न तो वे स्वयं किन्हीं प्राणियोंसे डरते हैं और न उन्हींसे दूसरे कोई प्राणी भय मानते हैं। वहाँ (महत्तत्त्व, अहंकार और पाँच तन्मात्रारूप) बड़े-बड़े वृक्ष हैं, (रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श, संशय और निश्चय—ये) सात उन वृक्षोंके फल हैं तथा (महत्-अहंकार आदि पूर्वोक्त तत्त्वोंके अधिष्ठाता देवतारूप) सात ही उन फलोंके भोक्ता अतिथि हैं। (मन, बुद्धि और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—ये) उन अतिथियोंके सात आश्रम हैं, वहाँ सात प्रकारकी समाधियाँ हैं और सात प्रकारकी ही दीक्षाएँ हैं। यही उस वनका स्वरूप है। वहाँ मनरूपी वृक्ष शब्दादि विषयोंके अनुभवरूप पाँच प्रकारके दिव्य पुष्पों और उनसे उत्पन्न प्रीति आदिरूप पाँच प्रकारके फलोंकी सृष्टि करते हुए सब ओर व्याप्त हो रहे हैं। चक्षुरूप वृक्ष उस वनमें श्वेत-पीतादि वर्णरूप पुष्प और उन्हें देखनेसे प्राप्त होनेवाले सुख-दुःखरूपी फल उत्पन्न करते हुए सब ओर फैल रहे हैं। यज्ञादिरूपी वृक्ष पुण्य-पापरूपी पुष्प और स्वर्ग-नरक आदिरूप फल प्रदान करते हैं। ध्यानादिरूपी वृक्ष केवल सुखरूप फूल और फल देते हैं। मन और बुद्धिरूपी दो वृक्ष मन्तव्य और बोद्धव्यरूप नाना प्रकारके फूलों और फलोंकी सृष्टि करते हुए सब ओर फैले हैं। उस वनमें आत्मा ही अग्नि है, जीव ब्राह्मण है, मन और बुद्धि स्रुक् एवं स्रुवा हैं और पाँच इन्द्रियाँ समिधाएँ हैं। मन-बुद्धिसहित पाँचों इन्द्रियोंके आत्माग्निमें पृथक्-पृथक् हवन करनेपर जो मोक्ष प्राप्त होता है, वह अपादान-भेदसे सात प्रकारका है। इस यज्ञकी दीक्षाका फल अवश्य होता है; किंतु वह फल गौण माना गया है। इन्द्रियाधिष्ठाता देवता ही उस फलकी आशा करते हैं (यज्ञकर्ता पुरुष नहीं, उसकी तो मुक्ति हो जाती है)। महर्षिगण (इन्द्रियोंके अधिदेवता) इस आत्मयज्ञमें आतिथ्य ग्रहण करते हैं और पूजा स्वीकार करते ही उनका लय हो जाता है। तत्पश्चात् वह ब्रह्मरूप विलक्षण वन प्रकाशित होता है। उसमें प्रज्ञारूपी वृक्ष शोभा पाते हैं, मोक्षरूपी फल लगते हैं और शान्तिमयी छाया फैली रहती है। ज्ञान वहाँका आश्रयस्थान और तृप्ति जल है। उस वनके भीतर आत्मारूपी सूर्यका प्रकाश छाया रहता है। जो साधु पुरुष उस वनका आश्रय लेते हैं, उन्हें फिर कभी भय नहीं होता। वह वन ऊपर-नीचे तथा इधर-उधर सब ओर व्याप्त है। उसका कहीं भी अन्त नहीं है। वहाँ घ्राणादि वृत्तिरूप सात स्त्रियाँ निवास करती हैं, जो जीवन्मुक्त पुरुषको अपने वशमें न कर सकनेके कारण लज्जाके मारे अपना मुँह नीचेकी ओर किये रहती हैं। वे चिन्मयज्योतिसे प्रकाशित होती हैं और उस वनमें रहनेवाली प्रजाको सब प्रकारके उत्तम रस-उत्कृष्ट आनन्द प्रदान करती हैं। जैसे सत्य और असत्यमें महान् अन्तर होता है, उसी प्रकार बद्ध और मुक्तके आनन्दमें भी होता है। यश, प्रभा, भग (ऐश्वर्य), विजय, सिद्धि, (ओज) और तेज—ये सात ज्योतियाँ उपर्युक्त आत्मारूपी सूर्यका ही अनुसरण करती हैं। उस ब्रह्ममें ही गिरि, पर्वत, नदी और झरने आदि स्थित हैं। नदियोंका संगम भी उसीके अत्यन्त गूढ़ हृदयाकाशमें होता है। वही साक्षात् पितामहका स्वरूप है। आत्मज्ञानसे तृप्त पुरुष उसीको प्राप्त होते हैं। जिनकी आशा क्षीण हो गयी है, जो उत्तम व्रतके पालनकी इच्छा रखते हैं, तपस्यासे जिनके सारे पाप दग्ध हो गये हैं, वे ही पुरुष अपनी बुद्धिको आत्मनिष्ठ करके परब्रह्मकी उपासना करते हैं। विद्या (ज्ञान) के ही प्रभावसे ब्रह्मरूपी वनका स्वरूप समझमें आता है—इस बातको जाननेवाले मनुष्य इस वनमें प्रवेश करनेके उद्देश्यसे शम (मनोनिग्रह) की ही प्रशंसा करते हैं, जिससे बुद्धि स्थिर होती है।



आत्माकी निर्लिप्तता, परशुरामजीके द्वारा क्षत्रिय-कुलका संहार और पितामहोंके समझानेसे परशुरामजीका तपस्याके लिये जाना

ब्राह्मणने कहा—देवि ! मैं स्वयं न तो गन्ध सूँघता हूँ, न रसोंका स्वाद लेता हूँ, न रूप देखता हूँ, न स्पर्श करता हूँ, न नाना प्रकारके शब्दोंको सुनता हूँ और न किसी प्रकारका संकल्प ही करता हूँ। मेरे मनमें न तो कामनाओंके प्रति राग है और न दोषोंके प्रति द्वेष। जैसे कमलका पत्ता पानीकी बूँद पड़नेपर उससे लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार मुझपर भी राग-द्वेषका प्रभाव नहीं पड़ता। मेरे स्वभावका कभी भी लोप नहीं होता। जैसे आकाशमें सूर्यकी किरणें नहीं लिप्त होतीं, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष कर्ममें प्रवृत्त रहे तो भी उसके मनपर इस दृश्य-जगत्के भोगोंका कुछ असर नहीं होता।

भामिनि ! यहाँ कार्तवीर्य और समुद्रके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। पूर्वकालमें कार्तवीर्य अर्जुनके नामसे प्रसिद्ध एक राजा था, जिसकी एक हजार भुजाएँ थीं। उसने केवल धनुष-बाणकी सहायतासे समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको अपने अधिकारमें कर लिया था। सुना जाता है, एक दिन राजा कार्तवीर्य समुद्रके किनारे विचर रहा था। वहाँ उसने अपने बलके घमंडमें आकर सैकड़ों बाणोंकी वर्षासे समुद्रको आच्छादित कर दिया। तब समुद्रने प्रकट होकर उसके आगे मस्तक झुकाया और हाथ जोड़कर कहा—'वीरवर ! मुझपर बाणोंकी वर्षा न करो। बोलो, तुम्हारी किस आज्ञाका पालन करूँ ? तुम्हारे छोड़े हुए इन महान् बाणोंसे मेरे अंदर रहनेवाले प्राणियोंकी हत्या हो रही है। उन्हें अभय-दान करो।'



कार्तवीर्य अर्जुन बोला—समुद्र ! यदि कहीं मेरे समान धनुर्धर वीर मौजूद हो, जो युद्धमें मेरा मुकाबला कर सके तो उसका पता बता दो (फिर मैं तुम्हें छोड़कर चला जाऊँगा)।

समुद्रने कहा—राजन् ! यदि तुमने महर्षि जमदग्निका नाम सुना हो तो उन्हींके आश्रमपर चले जाओ। उनके पुत्र परशुरामजी तुम्हारा अच्छी तरह सत्कार कर सकते हैं।

तदनन्तर, राजा कार्तवीर्य बड़े क्रोधमें भरकर महर्षि जमदग्निके आश्रमपर परशुरामजीके पास जा पहुँचा और अपने भाई-बन्धुओंके साथ उनके प्रतिकूल बर्ताव करने लगा। उसने अपने अपराधोंसे महात्मा परशुरामजीको उद्विग्न कर दिया। फिर तो शत्रु-सेनाको भस्म करनेवाला अमित तेजस्वी परशुरामका तेज प्रज्वलित हो उठा। उन्होंने अपना फरसा उठाया और हजार भुजाओंवाले उस राजाको अनेकों शाखाओंसे युक्त वृक्षकी भाँति काट डाला। उसे मरकर जमीनपर पड़ा देख उसके सभी बन्धु-बान्धव एकत्र हो गये तथा हाथोंमें तलवार और शक्तियाँ लेकर परशुरामजीपर चारों ओरसे टूट पड़े। इधर परशुरामजी भी धनुष लेकर तुरंत रथपर सवार हो गये और बाणोंकी वर्षा करते हुए राजाकी सेनाका संहार करने लगे। उस समय बहुत-से क्षत्रिय परशुरामजीके भयसे पीड़ित हो सिंहके सताये हुए मृगोंकी भाँति पहाड़ोंकी गुफाओंमें घुस गये। उन्होंने उनके डरसे अपने क्षत्रियोचित कर्मोंका भी त्याग कर दिया। बहुत दिनोंतक ब्राह्मणोंका दर्शन न कर सकनेके कारण वे धीरे-धीरे अपने कर्म भूलकर शूद्र हो गये। इस प्रकार द्रविड़, आभीर, पुण्ड्र और शबरोंके सहवासमें रहकर वे क्षत्रिय होते हुए भी धर्मत्यागके कारण शूद्रकी अवस्थामें पहुँच गये।

तत्पश्चात् क्षत्रियवीरोंके मारे जानेपर ब्राह्मणोंने उनकी स्त्रियोंसे नियोगकी विधिके अनुसार पुत्र उत्पन्न किये, किंतु उन्हें भी बड़े होनेपर परशुरामजीने मौतके घाट उतार दिया। इस प्रकार एक-एक करके जब इक्कीस बार क्षत्रियोंका संहार हो गया तो परशुरामजीको यह आकाशवाणी सुनायी दी 'बेटा परशुराम ! इस हत्याके कामसे निवृत्त हो जाओ। भला

बारंबार इन बेचारे क्षत्रियोंके प्राण लेनेमें तुम्हें कौन-सा लाभ दिखायी देता है ?' इसी प्रकार उनके पितामह ऋचीक आदिने



भी समझाते हुए कहा—'बेटा ! यह काम छोड़ दो, क्षत्रियोंको न मारो। तुम ब्राह्मण हो, तुम्हारे हाथसे राजाओंका वध होना उचित नहीं है। इस विषयमें हम तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुना रहे हैं, उसे सुनकर तदनुकूल बर्ताव करो। पहलेकी बात है, अलर्क नामसे प्रसिद्ध एक राजर्षि थे, जो बड़े ही तपस्वी, धर्मज्ञ, सत्यवादी, महात्मा और दृढ़प्रतिज्ञ थे। उन्होंने अपने धनुषकी सहायतासे समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको जीतकर अत्यन्त दुष्कर पराक्रम कर दिखाया था। इसके पश्चात् उनका मन सूक्ष्म तत्त्वकी खोजमें लगा। अब वे बड़े-बड़े कर्मोंका आरम्भ त्यागकर एक वृक्षके नीचे जा बैठे और सूक्ष्म तत्त्वकी खोजके लिये इस प्रकार चिन्ता करने लगे।'

अलर्क कहने लगे—मुझे मनसे ही बल प्राप्त हुआ है, अतः वही सबसे प्रबल है। मनको जीत लेनेपर ही मुझे स्थायी विजय प्राप्त हो सकती है। मैं इन्द्रियरूपी शत्रुओंसे घिरा हुआ हूँ, इसलिये बाहरके शत्रुओंपर हमला न करके इन भीतरी शत्रुओंको ही अपने बाणोंका निशाना बनाऊँगा। यह मन चञ्चलताके कारण सभी मनुष्योंसे तरह-तरहके कर्म कराता रहता है, अतः अब मैं मनपर ही तीखे बाणोंका प्रहार करूँगा।

मन बोला—अलर्क ! तुम्हारे ये बाण मुझे किसी तरह नहीं बींध सकते। यदि इन्हें चलाओगे तो ये तुम्हारे ही मर्मस्थानोंको चीर डालेंगे और उस अवस्थामें तुम्हारी ही मृत्यु होगी; अतः और किसी बाणका विचार करो, जिससे तुम मुझे मार सकोगे।

यह सुनकर अलर्कने थोड़ी देरतक विचार किया, इसके बाद वे नासिकाको लक्ष्य करके बोले—'मेरी यह नासिका अनेकों प्रकारकी सुगन्धियोंका अनुभव करके भी फिर उन्हींकी इच्छा करती है, इसलिये इसीको तीखे बाणोंसे मार डालूँगा।'

नासिका बोली—अलर्क ! ये बाण मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। इनसे तो तुम्हारे ही मर्म विदीर्ण होंगे और तुम्हीं मरोगे, अतः मुझे मारनेके लिये और तरहके बाणोंकी तजवीज करो।

अब अलर्क कुछ देर विचार करनेके पश्चात् जिह्वाको लक्ष्य करके कहने लगे—'यह जीभ स्वादिष्ट रसोंका उपभोग करके फिर उन्हें ही पाना चाहती है। इसलिये अब इसीके ऊपर अपने तीखे सायकोंका प्रहार करूँगा।'

जिह्वा बोली—अलर्क ! ये बाण मुझे नहीं छेद सकते; ये तो तुम्हारे ही मर्मस्थानोंको बींधकर तुम्हें ही मौतके घाट उतारेंगे; अतः दूसरे प्रकारके बाणोंका प्रबन्ध सोचो, जिनकी सहायतासे तुम मुझे भी मार सकोगे।

यह सुनकर अलर्क कुछ देरतक सोचते-विचारते रहे, फिर त्वचापर कुपित होकर बोले—'यह त्वचा नाना प्रकारके स्पर्शोंका अनुभव करके फिर उन्हींकी अभिलाषा किया करती है, अतः नाना प्रकारके बाणोंसे मारकर इसे विदीर्ण कर डालूँगा।'

त्वचा बोली—अलर्क ! ये बाण मुझे अपना निशाना नहीं बना सकते। ये तो तुम्हारा ही मर्म विदीर्ण करेंगे और मर्म विदीर्ण होनेपर तुम्हीं मौतके मुखमें पड़ोगे। मुझे मारनेके लिये तो दूसरी तरहके बाणोंकी व्यवस्था सोचो।

त्वचाकी बात सुनकर अलर्कने थोड़ी देरतक विचार किया; फिर नेत्रको सुनाते हुए कहा—'यह आँख भी अनेकों बार सुन्दर-सुन्दर रूपोंका दर्शन करके पुनः उन्हींको देखना चाहती है, अतः इसे भी अपने तीखे तीरोंका निशाना बनाऊँगा।'

आँख बोली—अलर्क ! ये बाण मुझे नहीं छेद सकते, तुम्हारे ही मर्मस्थानोंको बींध डालेंगे और मर्म विदीर्ण हो जानेपर तुम्हें ही जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा; अतः दूसरे प्रकारके सायकोंका प्रबन्ध सोचो, जिनकी सहायतासे तुम मुझे भी मार सकोगे।

तब अलर्कने पुनः सोचकर कहा—'यह बुद्धि अपनी प्रज्ञा-शक्तिसे अनेकों प्रकारका निश्चय करती है, अतः इसीके ऊपर अपने तीक्ष्ण सायकोंका प्रहार करूँगा।'

बुद्धिने कहा—अलर्क! ये बाण मेरा स्पर्श भी नहीं कर सकते। इनसे तुम्हारा ही मर्म विदीर्ण होगा और तुम्हीं मरोगे। जिनकी सहायतासे मुझे मार सकोगे, वे बाण तो कोई और ही हैं। उनके विषयमें विचार करो।

तदनन्तर, अलर्कने उसी पेड़के नीचे बैठकर घोर तपस्या की; किंतु उससे मन-बुद्धिसहित इन्द्रियोंको मारनेयोग्य किसी उत्तम बाणका पता न लगा। तब वे एकाग्रचित्त होकर विचार करने लगे। बहुत दिनोंतक निरंतर सोचने-विचारनेके बाद उन्हें योगसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी साधन नहीं प्रतीत हुआ। अब वे मनको एकाग्र करके स्थिर आसनसे बैठ गये और ध्यानयोगका साधन करने लगे। इस एक ही बाणसे मारकर उन्होंने समस्त इन्द्रियोंको सहसा परास्त कर दिया—वे ध्यानयोगके द्वारा आत्मामें प्रवेश करके परा सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त हो गये। इस सफलतासे राजर्षि अलर्कको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने इस गाथाका गान किया—'अहो! बड़े कष्टकी बात है कि अबतक मैं बाहरी कामोंमें ही लगा रहा और भोगोंकी तृष्णासे आबद्ध होकर राज्यकी ही उपासना करता रहा। 'ध्यानयोगसे बढ़कर दूसरा कोई उत्तम सुखका साधन नहीं है' यह बात तो मुझे बहुत पीछे मालूम हुई है।'

पितामहोंने कहा—बेटा परशुराम! इन सब बातोंको अच्छी तरह समझकर तुम क्षत्रियोंका नाश न करो। घोर तपस्यामें लग जाओ, उसीसे तुम्हारा कल्याण होगा।

अपने पितामहोंके इस प्रकार कहनेपर महान् सौभाग्यशाली जमदग्निनन्दन परशुरामजीने घोर तपस्या की और इससे उन्हें परम दुर्लभ सिद्धि प्राप्त हुई।



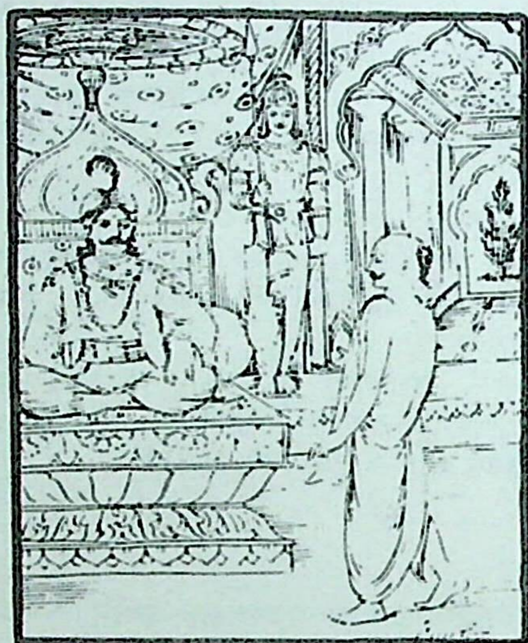
राजा अम्बरीषकी गायी हुई गाथा और ब्राह्मण-जनक-संवादका वर्णन

ब्राह्मणने कहा—देवि! संसारमें सत्त्व, रज और तम—ये तीन मेरे शत्रु हैं। ये गुणोंके भेदसे नौ प्रकारके माने गये हैं। हर्ष, प्रीति और आनन्द—ये तीन सात्त्विक गुण हैं; तृष्णा, क्रोध और अभिनिवेश—ये तीन राजस गुण हैं और श्रम, तन्द्रा तथा मोह—ये तीन तामस गुण हैं। शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, आलस्यहीन और धैर्यवान् पुरुष शम-दम आदि बाणसमूहोंके द्वारा इन पूर्वोक्त गुणोंका उच्छेद करके दूसरोंको जीतनेका उत्साह करते हैं। इस विषयमें पूर्वकालकी बातोंके जानकार लोग एक गाथा सुनाया करते हैं। पहले कभी शान्तिपरायण महाराज अम्बरीषने इस गाथाका गान किया था। कहते हैं—जब दोषोंका बल बढ़ा और अच्छे गुण दबने लगे, उस समय महायशस्वी महाराज अम्बरीषने बलपूर्वक राज्यकी बागडोर अपने हाथमें ली। उन्होंने अपने दोषोंको दबाया और उत्तम गुणोंका आदर किया। इससे उन्हें बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त हुई और उन्होंने यह गाथा गायी—'मैंने बहुत-से दोषोंपर विजय पायी और समस्त शत्रुओंका नाश कर डाला; किंतु एक सबसे बड़ा दोष रह गया है। यद्यपि वह नष्ट कर देने योग्य है तो भी अबतक मैं उसका नाश कर न सका। उसीकी प्रेरणासे प्राणीको वैराग्य नहीं होता। उसके वशमें पड़ा हुआ मनुष्य नीच कर्मोंकी ओर दौड़ता है और उसे अपनी अवस्थाका भान नहीं होता। उससे प्रेरित होकर वह नहीं करनेयोग्य काम भी कर डालता है। उस दोषका नाम है लोभ। उसे ज्ञानरूपी तलवारसे काट डालो, काट डालो। लोभसे तृष्णा और तृष्णासे चिन्ता पैदा होती है। लोभी मनुष्य पहले राजस गुणोंको पाता है और उनकी प्राप्ति हो जानेपर उसमें तामसिक गुण भी अधिक मात्रामें आ जाते हैं। उन गुणोंके द्वारा देह-बन्धनमें जकड़कर वह बारंबार जन्म लेता और तरह-तरहके कर्म करता रहता है। फिर जीवनका अन्त समय आनेपर उसके देहके तत्त्व विलग-विलग होकर बिखर जाते हैं और वह मृत्युको प्राप्त हो जाता है। इसके बाद फिर जन्म-मृत्युके बन्धनमें पड़ता है; इसलिये इस लोभके स्वरूपको अच्छी तरह समझकर इसे धैर्यपूर्वक दबाने और आत्मराज्यपर अधिकार पानेकी इच्छा करनी चाहिये। यही वास्तविक राज्य है। यहाँ दूसरा कोई राज्य नहीं है। आत्माका यथार्थ ज्ञान हो जानेपर वही राजा है।'

इस प्रकार यशस्वी राजा अम्बरीषने आत्मराज्यको आगे रखकर एकमात्र प्रबल शत्रु लोभका उच्छेद करते हुए उपर्युक्त गाथाका गान किया था।

ब्राह्मणने कहा—देवि! इसी प्रसंगमें एक ब्राह्मण और राजा जनकके संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया

जाता है। एक समय राजा जनकने किसी अपराधमें पकड़े हुए ब्राह्मणको दण्ड देते हुए कहा—'ब्रह्मन् ! आप मेरे राज्यसे बाहर चले जाइये।' यह सुनकर ब्राह्मणने उस श्रेष्ठ राजाको



उत्तर दिया—'महाराज ! बताइये, आपके अधिकारमें कितना राज्य है ? इस बातको जानकर मैं शास्त्रके अनुसार आपकी आज्ञा पालन करनेकी—दूसरे राजाके राज्यमें निवास करनेकी चेष्टा करूँगा।'

उस यशस्वी ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर राजा जनक बार-बार गरम उच्छ्वास लेने लगे, कुछ जवाब न दे सके। थोड़ी देर चुप रहनेके बाद वे ब्राह्मणसे बोले—'ब्रह्मन् ! यद्यपि बाप-दादोंके समयसे ही मिथिला-प्रान्तके राज्यपर मेरा अधिकार है तथापि जब मैं विचार-दृष्टिसे देखता हूँ तो सारी पृथ्वीमें खोजनेपर भी कहीं मुझे अपना राज्य नहीं दिखायी देता। जब पृथ्वीपर अपने राज्यका पता न पा सका तो मैंने मिथिलामें खोज की। जब वहाँसे भी निराशा हुई तो अपनी प्रजापर अपने अधिकारका पता लगाया; किंतु उनपर भी अपने अधिकारका निश्चय न हुआ। अन्ततोगत्वा मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि कहीं भी मेरा राज्य नहीं है अथवा सर्वत्र मेरा ही राज्य है। एक दृष्टिसे यह शरीर भी मेरा नहीं है और दूसरी दृष्टिसे सारी पृथ्वी ही मेरी है। यह जिस तरह मेरी है उसी तरह दूसरोंकी भी है; इसलिये अब आपकी जहाँ इच्छा हो, रहिये।'

ब्राह्मणने कहा—राजन् ! जब बाप-दादोंके समयसे ही मिथिला-प्रान्तके राज्यपर आपका अधिकार है तो बताइये, किस विचारसे आपने इसके प्रति अपनी ममताको त्याग दिया है ? किस बुद्धिका आश्रय लेकर आप सर्वत्र अपना ही राज्य मानते हैं और किस तरह कहीं भी अपना राज्य नहीं समझते ?

जनकने कहा—ब्रह्मन् ! इस संसारमें कर्मोंके अनुसार प्राप्त होनेवाली सभी अवस्थाओंका एक-न-एक दिन अन्त हो जाता है, यह बात मुझे अच्छी तरह मालूम है। वेद भी कहता है—'यह किसकी वस्तु है ? यह किसका धन है ? (अर्थात् किसीका नहीं है)' इसलिये जब मैं अपनी बुद्धिसे विचार करता हूँ तो कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जान पड़ती, जिसे अपनी कह सकें। इसी विचारसे मैंने मिथिलाके राज्यसे अपना ममत्व हटा लिया है। अब जिस बुद्धिका आश्रय लेकर मैं सर्वत्र अपना ही राज्य समझता हूँ, उसको सुनो। मैं अपनी नासिकामें पहुँची हुई सुगन्धको भी अपने सुखके लिये नहीं ग्रहण करना चाहता। इसलिये मैंने पृथ्वीको जीत लिया है और वह सदा मेरे वशमें रहती है। मुखमें पड़े हुए रसोंका भी मैं अपनी तृप्तिके लिये नहीं आस्वादन करना चाहता, इसलिये जल-तत्त्वपर भी मैं विजय पा चुका हूँ और वह सदा मेरे अधीन रहता है। इसी प्रकार नेत्रके विषयभूत रूप और ज्योतिका, त्वक्-इन्द्रियको प्राप्त हुए स्पर्शका, श्रवणगोचर शब्दोंका और मनमें आये हुए मन्तव्य विषयोंका भी मैं अपने सुखके लिये अनुभव करना नहीं चाहता। इसलिये मैंने तेज, वायु, आकाश और मनको भी जीत लिया है तथा वे सभी सदा मेरे वशमें रहते हैं। मेरे प्रत्येक कार्यका आरम्भ देवता, पितर, भूत और अतिथियोंके निमित्त होता है।

जनककी ये बातें सुनकर वह ब्राह्मण ठहाका मारकर हँस पड़ा और कहने लगा—'महाराज ! आपको मालूम होना चाहिये कि मैं धर्म हूँ और आपकी परीक्षा लेनेके लिये ब्राह्मणका रूप धारण करके यहाँ आया हूँ। अब मुझे निश्चय हो गया कि संसारमें सत्त्वगुणरूप नेमिसे घिरे हुए और कभी पीछेकी ओर न लौटनेवाले ब्रह्म-प्राप्तिरूप दुर्निवार-चक्रका सञ्चालन करनेवाले एकमात्र आप ही हैं।



ब्राह्मणका अपने ज्ञाननिष्ठ स्वरूपका परिचय देना तथा श्रीकृष्णका अर्जुनसे मोक्ष-धर्मके विषयमें गुरु और शिष्यका संवाद सुनाना

ब्राह्मणने कहा—भीरु ! तुम अपनी बुद्धिसे मुझे जैसा समझकर फटकार रही हो, मैं वैसा नहीं हूँ। मैं इस लोकमें देहाभिमानियोंकी तरह आचरण नहीं करता। तुम मुझे पाप-पुण्यमें आसक्त देखती हो; किंतु वास्तवमें मैं ऐसा नहीं हूँ। मैं ब्राह्मण, जीवन्मुक्त महात्मा, वानप्रस्थ, गृहस्थ और ब्रह्मचारी सब कुछ हूँ। इस भूतलपर जो कुछ दिखायी देता है, वह सब मेरे द्वारा व्याप्त है। ज्ञान ही मेरा धन है, यही ब्रह्मवेत्ताओंका एकमात्र मार्ग है। ब्रह्मज्ञानी पुरुष ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास—इन चार आश्रमोंमेंसे किसीमें भी रहें, वे ज्ञानमार्गके द्वारा ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। भिन्न-भिन्न आश्रमोंमें रहते हुए भी जिनकी बुद्धि शान्तिके साधनमें लगी हुई है, वे अन्तमें एकमात्र सत्स्वरूप ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। यह मार्ग बुद्धिगम्य है, शरीरके द्वारा इसे नहीं प्राप्त किया जा सकता। इसलिये देवि ! तुम्हें परलोकके लिये तनिक भी भय नहीं करना चाहिये। तुम मेरे साथ अपने तादात्म्यका चिन्तन करती हुई अन्तमें मेरे ही स्वरूपको प्राप्त हो जाओगी।

ब्राह्मणी बोली—नाथ ! मेरी बुद्धि थोड़ी और अन्तःकरण अशुद्ध है, अतः आपने संक्षेपमें जिस महान् ज्ञानका उपदेश किया है उसको समझना मेरे लिये कठिन है। मैं तो उसे सुनकर भी धारण न कर सकी। अतः आप कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मुझे भी यह बुद्धि प्राप्त हो। मेरा विश्वास है कि वह उपाय आपहीसे ज्ञात हो सकता है।

ब्राह्मणने कहा—देवि ! तुम बुद्धिको नीचेकी अरणी और गुरुको ऊपरकी अरणी समझो। तपस्या और वेद-वेदान्तके श्रवण-मननद्वारा मन्थन करनेपर उन अरणियोंसे ज्ञानरूप अग्नि प्रकट होती है।

ब्राह्मणीने पूछा—नाथ ! क्षेत्रज्ञ नामसे प्रसिद्ध शरीरान्तर्वर्ती जीवात्माको जो ब्रह्मका स्वरूप बताया जाता है, यह बात कैसे सम्भव है ? क्योंकि जीवात्मा ब्रह्मके नियन्त्रणमें रहता है और जो जिसके नियन्त्रणमें रहता है, वह उसका स्वरूप हो, ऐसा कभी नहीं देखा गया।

ब्राह्मणने कहा—देवि ! क्षेत्रज्ञ वास्तवमें देह-सम्बन्धसे रहित और निर्गुण है; क्योंकि उसके सगुण और साकार होनेका कोई कारण नहीं दिखायी देता (ऐसी दशामें वह ब्रह्मसे भिन्न कैसे हो सकता है ?)।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—अर्जुन ! ब्राह्मणके इस प्रकार उपदेश देनेपर उस ब्राह्मणीकी बुद्धिमें पहले क्षेत्रका ज्ञान हुआ, फिर उससे भिन्न क्षेत्रज्ञके ज्ञानद्वारा वह परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो गयी।

अर्जुन बोले—भगवन् ! इस समय आपकी कृपासे सूक्ष्म विषयके श्रवणमें मेरा मन लग रहा है, अतः जाननेयोग्य परब्रह्मके स्वरूपकी व्याख्या कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—अर्जुन ! इस विषयको लेकर गुरु और शिष्यमें जो मोक्षविषयक संवाद हुआ था, वह प्राचीन इतिहास बतलाया जा रहा है। एक दिन उत्तम व्रतका पालन करनेवाले एक ब्रह्मवेत्ता आचार्य अपने आसनपर विराजमान थे। उस समय किसी बुद्धिमान् शिष्यने उनके पास जाकर निवेदन किया—'भगवन् ! मैं कल्याणमार्गमें प्रवृत्त



होकर आपकी शरणमें आया हूँ और आपके चरणोंमें मस्तक झुकाकर याचना करता हूँ कि मैं जो कुछ पूछूँ, उसका उत्तर दीजिये। मैं जानना चाहता हूँ कि श्रेय क्या है ? जगत्‌के चराचर जीव कहाँसे उत्पन्न हुए हैं ? किससे जीवन धारण करते हैं ? उनकी अधिक-से-अधिक आयु कितनी है ? सत्य और तप क्या है ? सत्पुरुषोंने किन गुणोंकी प्रशंसा की है ?

कौन-कौन-से मार्ग कल्याण करनेवाले हैं ? सर्वोत्तम सुख क्या है ? और पाप किसे कहते हैं ? यह सब जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है, अतः आप इन प्रश्नोंका उत्तर देनेकी कृपा करें। आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो सब प्रकारकी शङ्काओंका निवारण कर सके।'

अर्जुन ! वह शिष्य सब प्रकारसे गुरुकी शरणमें आया था। यथोचित रीतिसे प्रश्न करता था। गुणवान् और शान्त था। छायाकी भाँति साथ रहकर गुरुकी सेवामें लगा रहता था तथा जितेन्द्रिय, संयमी और ब्रह्मचारी था। उसके पूछनेपर मेधावी एवं व्रतधारी गुरुने पूर्वोक्त सभी प्रश्नोंका ठीक-ठीक उत्तर दिया।

गुरुने कहा—बेटा ! ब्रह्माजीने वेद-विद्याका आश्रय लेकर तुम्हारे पूछे हुए इन सभी प्रश्नोंका उत्तर पहलेसे ही दे रखा है तथा प्रधान-प्रधान ऋषियोंने उसका सदा ही सेवन किया है। उन प्रश्नोंके उत्तरमें परमार्थविषयक विचार किया गया है। मैं ज्ञानको ही परब्रह्म और संन्यासको उत्तम तप मानता हूँ। जो अबाधित ज्ञान-तत्त्वको निश्चयपूर्वक जानकर अपनेको सब प्राणियोंके भीतर स्थित देखता है, वह सर्वगति (सर्वज्ञ अथवा सर्वव्यापक) माना जाता है। जो किसी वस्तुकी कामना नहीं करता तथा जिसके मनमें किसी बातका अभिमान नहीं होता, वह इस लोकमें रहता हुआ ही ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। जो माया और सत्त्वादि गुणोंके तत्त्वको जानता है, जिसे सब भूतोंके कारणका ज्ञान है और जो ममता तथा अहंकारसे रहित हो गया है, उसकी मुक्तिमें तनिक भी संदेह नहीं है। यह देह एक वृक्षके समान है, अज्ञान इसका मूल अङ्कुर (जड़) है, बुद्धि स्कन्ध (तना) है, अहंकार शाखा है, इन्द्रियाँ खोखले हैं, पञ्चमहाभूत उसके विशेष अवयव हैं और उन भूतोंके विशेष भेद उसकी टहनियाँ हैं। इसमें सदा ही संकल्परूपी पत्ते उगते और कर्मरूपी फूल खिलते रहते हैं। शुभाशुभ कर्मोंसे प्राप्त होनेवाले सुख-दुःखादि ही उसमें सदा लगे रहनेवाले फल हैं। इस प्रकार ब्रह्मरूपी बीजसे प्रकट होकर प्रवाहरूपसे सदा मौजूद रहनेवाला देहरूपी वृक्ष समस्त प्राणियोंके जीवनका आधार है। जो इसके तत्त्वको भलीभाँति जानकर ज्ञानरूपी तलवारसे इसे काट डालता है, वह अमरत्वको प्राप्त होकर जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है।

महाप्राज्ञ ! जिसमें भूत, वर्तमान और भविष्य आदिके तथा धर्म, अर्थ और कामके स्वरूपका निश्चय किया गया है, जिसको सिद्धोंके समुदायने भलीभाँति जाना है, जिसका पूर्वकालमें निर्णय किया गया था और मनीषी पुरुष जिसे जानकर सिद्ध हो जाते हैं, उस परम उत्तम सनातन ज्ञानका अब मैं तुमसे वर्णन करता हूँ। पहलेकी बात है, प्रजापति दक्ष, भरद्वाज, गौतम, भृगुनन्दन शुक्र, वसिष्ठ, कश्यप, विश्वामित्र और अत्रि आदि महर्षि अपने कर्मोंद्वारा समस्त मार्गोंमें भटकते-भटकते जब बहुत थक गये तो एकत्रित हो आपसमें जिज्ञासा करते हुए परम वृद्ध अङ्गिरा मुनिको आगे करके ब्रह्मलोकमें गये और वहाँ सुखपूर्वक बैठे हुए ब्रह्माजीका दर्शन करके उन्होंने विनयपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। फिर तुम्हारी ही तरह अपने परम कल्याणके विषयमें पूछा।

(तब) ब्रह्माजीने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले



महर्षियो ! चराचर जीव सत्य (परमात्मा) से उत्पन्न हुए हैं और तपस्या (कर्म) से जीवन धारण करते हैं। ब्रह्म सत्य है, तप सत्य है और प्रजापति भी सत्य है। सत्यसे ही सम्पूर्ण भूतोंका जन्म हुआ है। यह भौतिक जगत् सत्यरूप ही है। इसलिये सदा योगमें लगे रहनेवाले, क्रोध और संतापसे दूर रहनेवाले और नियमोंका पालन करनेवाले धर्मसेवी ब्राह्मण सत्यका आश्रय लेते हैं। जो परस्पर एक-दूसरेको नियमके अंदर रखनेवाले, धर्म-मर्यादाके प्रवर्तक और विद्वान् हैं, उन ब्राह्मणोंके प्रति मैं लोककल्याणकारी सनातन धर्मोंका उपदेश करूँगा। प्रत्येक वर्ण और आश्रमके लिये पृथक्-पृथक् चार विद्याओंका वर्णन करूँगा। मनीषी विद्वान् चार चरणोंवाले एक धर्मको नित्य बतलाते हैं। द्विजवरो !

पूर्वकालमें मनीषी पुरुष जिसका सहारा ले चुके हैं और जो ब्रह्मभावकी प्राप्तिका सुनिश्चित साधन है, उस परम मङ्गलकारी कल्याणमय मार्गका उपदेश करता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। यह सारा-का-सारा उपदेश परम पदका साधन है। आश्रमोंमें ब्रह्मचर्यको प्रथम आश्रम बतलाया गया है। गार्हस्थ्य दूसरा और वानप्रस्थ तीसरा आश्रम है, इसके बाद संन्यास-आश्रम है। इसमें आत्मज्ञानकी प्रधानता होती है, अतः इसे परम पदस्वरूप समझना चाहिये। जबतक अध्यात्मज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती तभीतक ज्योति, आकाश, वायु, सूर्य, इन्द्र और प्रजापति आदिके पृथक्-पृथक् दर्शन होते हैं। आत्मज्ञान होनेपर इनका नानात्व नहीं दृष्टिगोचर होता, अतः पहले आत्मज्ञानका उपाय बतलाता हूँ; सब लोग सुनो। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन द्विजातियोंके लिये वानप्रस्थ-आश्रमका विधान है। वनमें रहकर मुनिवृत्तिका सेवन करते हुए फल-मूल और वायुके आहारपर जीवन-निर्वाह करनेसे वानप्रस्थ-धर्मका पालन होता है। गृहस्थ-आश्रमका विधान सभी वर्णोंके लिये है। विद्वान् पुरुषोंने श्रद्धाको ही धर्मका मुख्य लक्षण बतलाया है। धैर्यवान् संत-महात्मा अपने कर्मोंसे धर्म-मर्यादाका पालन करते हैं। जो मनुष्य उत्तम व्रतका आश्रय लेकर उपर्युक्त धर्मोंमेंसे किसीका भी दृढ़तापूर्वक पालन करते हैं, वे कालक्रमसे सम्पूर्ण प्राणियोंके जन्म और मरणको प्रत्यक्ष देखते हैं। अब मैं यथार्थ युक्तिके द्वारा विषयोंमें स्थित सम्पूर्ण तत्त्वोंका विभागपूर्वक वर्णन करता हूँ। अव्यक्त प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, ग्यारह इन्द्रियाँ, पञ्च महाभूत और उनके शब्द आदि विशेष गुण तथा जीवात्मा—इस प्रकार तत्त्वोंकी संख्या पचीस बतलायी गयी है। जो इन सब तत्त्वोंकी उत्पत्ति और लयको ठीक-ठीक जानता है, वह सम्पूर्ण प्राणियोंमें धीर है और कभी मोहमें नहीं पड़ता। जो सम्पूर्ण तत्त्वों, गुणों तथा समस्त देवताओंको यथार्थ रूपसे जानता है, उसके पाप धुल जाते हैं और वह बन्धनसे मुक्त होकर सम्पूर्ण दिव्यलोकोंके सुखका अनुभव करता है।



ब्रह्माजीके द्वारा तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुणके कार्योंका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—महर्षियो! जब तीनों गुणोंकी साम्यावस्था होती है, उस समय उनका नाम अव्यक्त प्रकृति होता है। अव्यक्त समस्त प्राकृत कार्योंमें व्यापक, अविनाशी और स्थिर होता है। उपर्युक्त तीन गुणोंमें जब विषमता आती है तो वे पञ्चभूतका रूप धारण करते हैं और उनसे नौ द्वारवाले नगर (शरीर) का निर्माण होता है। इस पुरमें जीवात्माको विषयोंकी ओर प्रेरित करनेवाली ग्यारह इन्द्रियाँ हैं। इसकी अभिव्यक्ति मनके द्वारा हुई है। बुद्धि इस नगरकी स्वामिनी है। इसमें जो तीन स्रोत (चित्तरूपी नदीके प्रवाह) हैं, वे सदा भरे रहते हैं। इन्हें भरनेके लिये तीन गुणमयी नाड़ियाँ हैं। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण कहलाते हैं। ये परस्पर एक-दूसरेके आश्रित और एक-दूसरेके सहारे टिकनेवाले हैं। जहाँ तमोगुणको रोका जाता है वहाँ रजोगुण बढ़ता है और जहाँ रजोगुणको दबाया जाता है वहाँ सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है। तमको अन्धकाररूप समझना चाहिये। उसका दूसरा नाम मोह है। वह अधर्मको लक्षित करानेवाला और पाप करनेवाले लोगोंमें निश्चितरूपसे विद्यमान रहनेवाला है। तमोगुणका यह स्वरूप दूसरे गुणोंसे मिश्रित भी दिखायी देता है। रजोगुणको प्रकृतिरूप बतलाया गया है, यह सृष्टिकी उत्पत्तिका कारण है। सम्पूर्ण भूतोंमें इसकी प्रवृत्ति देखी जाती है। इसीसे इस दृश्य-जगत्‌की उत्पत्ति हुई है। सब भूतोंमें प्रकाश, लघुता (गर्वहीनता) और श्रद्धा—यह सत्त्वगुणका रूप है। गर्वहीनताकी साधु पुरुषोंने प्रशंसा की है। अब मैं युक्तिपूर्वक संक्षेप और विस्तारके साथ इन तीनों गुणोंके कार्योंका यथार्थ वर्णन करता हूँ, इन्हें ध्यान देकर सुनो। मोह, अज्ञान, त्यागका अभाव, कर्मोंका निर्णय न कर सकना, निद्रा, गर्व, भय, लोभ, शोक, शुभ कर्मोंमें दोष देखना, स्मरण-शक्तिका अभाव, परिणाम न सोचना, नास्तिकता, दुश्चरित्रता, निर्विशेषता (अच्छे-बुरेके विवेकका अभाव), इन्द्रियोंकी शिथिलता, हिंसा आदि निन्दनीय दोषोंमें प्रवृत्त होना, अकार्यको कार्य और अज्ञानको ज्ञान समझना, शत्रुता, काममें मन न लगाना, अश्रद्धा, मूर्खतापूर्ण विचार, कुटिलता, नासमझी, पाप करना, अज्ञान, आलस्य आदिके कारण देहका भारी होना, भाव-भक्तिका न होना, अजितेन्द्रियता और नीच कर्मोंमें अनुराग—ये सभी दुर्गुण तमोगुणके कार्य बतलाये गये हैं। इनके सिवा और भी जो-जो बातें इस लोकमें निषिद्ध मानी गयी हैं, वे सब तमोगुणी ही हैं। देवता, ब्राह्मण और वेदकी निन्दा करना, दान न देना, अभिमान, मोह, क्रोध, असहनशीलता और मात्सर्य—ये सब तामस बर्ताव हैं। (विधि और श्रद्धासे रहित) व्यर्थ कार्योंका आरम्भ करना, देश-काल-पात्रका विचार न करके अश्रद्धा और अवहेलनापूर्वक दान देना तथा

देवता और अतिथिको दिये बिना भोजन करना भी तामसिक कार्य है। अतिवाद, अक्षमा, मत्सरता, अभिमान और अश्रद्धाको तमोगुणका फल माना गया है। संसारमें ऐसे बर्तावावाले और धर्मकी मर्यादा भङ्ग करनेवाले जो भी पापी मनुष्य हैं, वे सब तमोगुणी माने गये हैं। ऐसे पापी मनुष्योंके लिये दूसरे जन्ममें जिन योनियोंमें जाना अनिवार्य होता है, उनका परिचय दे रहा हूँ। उनमेंसे कुछ तो नीचे नरकोंमें ढकेले जाते हैं और कुछ तिर्यग्योनियोंमें जन्म ग्रहण करते हैं। स्थावर (वृक्ष-पर्वत आदि) जीव, पशु, वाहन, राक्षस, सर्प, कीड़े-मकोड़े, पक्षी, अण्डज प्राणी, चौपाये, पागल, बहरे, गूँगे तथा अन्य जितने पापमय रोगवाले (कोढ़ी आदि) मनुष्य हैं, वे सब तमोगुणमें डूबे हुए हैं। अपने कर्मोंके अनुसार लक्षणोंवाले ये दुराचारी जीव सदा दुःखमें निमग्न रहते हैं। उनकी चित्तवृत्तियोंका प्रवाह निम्न दिशाकी ओर होता है, इसलिये उन्हें अर्वाक् स्रोता कहते हैं। ये सब-के-सब तमोगुणी हैं। तम (अविद्या), मोह (अस्मिता), महामोह (राग), क्रोध नामवाला तामिस्र और मृत्युरूप अन्धतामिस्र—यह पाँच प्रकारकी तामसी प्रकृति बतलायी गयी है। विप्रवरो ! वर्ण, गुण, योनि और तत्त्वके अनुसार मैंने तमोगुणका पूरा-पूरा वर्णन किया। जो अतत्त्वमें तत्त्व-दृष्टि रखनेवाला है ऐसा कौन-सा मनुष्य इस विषयको अच्छी तरह देख और समझ सकता है ? यह विपरीत दृष्टि ही तमोगुणकी पहचान है। इस प्रकार तमोगुणके स्वरूप और उसके कार्यभूत नाना प्रकारके गुणोंका यथावत् वर्णन किया गया। जो मनुष्य इन गुणोंको ठीक-ठीक जानता है, वह तामसिक गुणोंसे सदा मुक्त रहता है।

महर्षियो ! अब मैं तुमलोगोंसे रजोगुणके स्वरूप और उसके कार्यभूत गुणोंका यथार्थ वर्णन करूँगा। ध्यान देकर सुनो—संताप, रूप, आयास, सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी, ऐश्वर्य, विग्रह, संधि, हेतुवाद, मनका प्रसन्न न रहना, बल, शूरता, मद, रोष, व्यायाम, कलह, ईर्ष्या, इच्छा, चुगली खाना, युद्ध करना, ममता, कुटुम्बका पालन, वध, बन्धन, क्लेश, क्रय-विक्रय, छेदन, भेदन और विदारणका प्रयत्न, दूसरोंके कवचको कतर डालनेकी चेष्टा, उग्रता, निष्ठुरता, चिल्लाना, दूसरोंके छिद्र बताना, लौकिक बातोंकी चिन्ता करना, पश्चात्ताप, असत्यभाषण, मिथ्या दान, संशयपूर्ण विचार, तिरस्कारपूर्वक बोलना, निन्दा, स्तुति, प्रशंसा, प्रताप, बलात्कार, स्वार्थके लिये सेवा, तृष्णा, दूसरोंके आश्रित रहना, व्यवहार-कुशलता, नीति, प्रमाद (अपव्यय), परिवाद और परिग्रह—ये सभी रजोगुणके कार्य हैं। संसारमें जो स्त्री, पुरुष, भूत, द्रव्य और गृह आदिके पृथक्-पृथक् संस्कार होते हैं, वे भी रजोगुणकी ही प्रेरणाके फल हैं। संताप, अविश्वास, सकामभावसे व्रत-नियमोंका पालन, काम्यकर्म, नाना प्रकारके पूर्त (वापी, कूप-तड़ाग आदि पुण्य) कर्म, स्वाहाकार, नमस्कार, स्वधाकार, वषट्कार, याजन, अध्यापन, यजन, अध्ययन, दान, प्रतिग्रह, प्रायश्चित्त और मङ्गलजनक कर्म भी राजस माने गये हैं। 'मुझे यह वस्तु मिल जाय, वह मिल जाय' इस प्रकार जो विषयोंको पानेके लिये आसक्तिमूलक उत्कण्ठा होती है, उसका कारण रजोगुण ही है। द्रोण, माया, शठता, मान, चोरी, हिंसा, घृणा, परिताप, जागरण, दम्भ, दर्प, राग, विषयप्रेम, प्रमोद, द्यूतक्रीडा, लोगोंके साथ विवाद करना, स्त्रियोंके लिये सम्बन्ध बढ़ाना, नाच-बाजा और गानमें आसक्त होना—ये सब राजस गुण हैं। जो इस पृथ्वीपर भूत, वर्तमान और भविष्य पदार्थोंकी चिन्ता करते, धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्गके सेवनमें लगे रहते, मनमाना बर्ताव करते और सब प्रकारके भोगोंकी समृद्धिसे आनन्द मानते हैं, वे मनुष्य रजोगुणसे आवृत्त हैं, उन्हें अर्वाक्स्रोता कहते हैं। ऐसे लोग इस लोकमें बार-बार जन्म लेकर विषयजनित आनन्दमें मग्न रहते हैं और इहलोक तथा परलोकमें सुख पानेका यत्न किया करते हैं। मुनिवरो ! इस प्रकार मैंने तुमलोगोंसे नाना प्रकारके राजस गुणों और तदनुकूल बर्तावोंका यथावत् वर्णन किया। जो मनुष्य इन गुणोंको जानता है, वह सदा इनके बन्धनोंसे दूर रहता है।

महर्षियो ! अब मैं तीसरे उत्तम गुण (सत्त्वगुण) का वर्णन करूँगा, जो जगत्में सम्पूर्ण प्राणियोंका हितकारी और साधु पुरुषोंका प्रशंसनीय धर्म है। आनन्द, प्रसन्नता, उन्नति, प्रकाश, सुख, कृपणताका अभाव, निर्भयता, संतोष, श्रद्धा, क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, क्रोधका अभाव, किसीके दोष न देखना, पवित्रता, चतुरता और पराक्रम—ये सत्त्वगुणके कार्य हैं। जो इन धर्मोंका आचरण करता है, वह परलोकमें अक्षय सुखका भागी होता है। ममता, अहंकार और आशाका परित्याग करके सर्वत्र समान दृष्टि रखना और सर्वथा निष्काम हो जाना ही साधु पुरुषोंका सनातन धर्म है। विश्वास, लज्जा, तितिक्षा, त्याग, पवित्रता, आलस्यरहित होना, कोमलता, मोहमें न पड़ना, प्राणियोंपर दया करना, चुगली न खाना, हर्ष, संतोष, विस्मय, विनय, सद्बर्ताव, शान्तिकर्ममें शुद्धभावसे प्रवृत्ति, उत्तम बुद्धि, आसक्तिसे छूटना, जगत्के भोगोंसे उदासीनता, ब्रह्मचर्य, सब प्रकारका त्याग, निर्ममता, फलकी कामना न करना तथा धर्म-का निरन्तर पालन करते रहना—ये सब सत्त्वगुणके कार्य हैं।

जो उपर्युक्त बर्तावका पालन करते हुए इस जगत्‌में सत्यका आश्रय लेते हैं और वेदकी उत्पत्तिके स्थानभूत परब्रह्म परमात्मामें निष्ठा रखते हैं, वे ही धीर और साधुदर्शी माने गये हैं। वे धीर पुरुष सब पापोंका त्याग करके शोकसे रहित हो जाते हैं और स्वर्गलोकमें जाकर अनेकों शरीरोंकी सृष्टि करते हैं। सत्त्वगुणसम्पन्न महात्मा स्वर्गवासी देवताओंकी भाँति ईशित्व, वशित्व और लघिमा आदि सिद्धियोंको प्राप्त करते हैं। वे ऊर्ध्वस्रोता और वैकारिक देवता माने गये हैं। (योगबलसे) स्वर्गको प्राप्त होनेपर उनका चित्त भोगजनित संस्कारसे विकृत होता है। उस समय वे जो-जो चाहते हैं, उस-उस वस्तुको पाते और बाँटते हैं। इस प्रकार मैंने तुमलोगोंसे सत्त्वगुणके कार्योंका वर्णन किया। जो इस विषयको अच्छी तरह जानता है, उसे मनोवाञ्छित वस्तुकी प्राप्ति होती है तथा वह गुणोंका सेवन करता हुआ भी उनके बन्धनमें नहीं पड़ता।



सत्त्व आदि गुण, प्रकृतिके नाम तथा परमात्मतत्त्वके ज्ञानकी महिमा

ब्रह्माजीने कहा—महर्षियो ! सत्त्व, रज और तम—इन गुणोंका सर्वथा पृथक् रूपसे वर्णन करना असम्भव है; क्योंकि ये तीनों गुण अविच्छिन्न (मिले हुए) देखे जाते हैं। ये सभी परस्पर रँगे हुए, एक-दूसरेसे अनुप्राणित, अन्योन्याश्रित तथा एक-दूसरेका अनुसरण करनेवाले हैं। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि इस जगत्‌में जबतक तमोगुण और सत्त्वगुण है तबतक रजोगुणकी भी सत्ता रहती ही है। ये गुण सदा साथ रहते, साथ-ही-साथ विचरते, समूह बनाकर यात्रा करते और संघात (शरीर) में मौजूद रहते हैं। ऐसा होनेपर भी कहीं इनमेंसे किसीकी न्यूनता देखी जाती है और कहीं अधिकता। इस विषयका यथावत् वर्णन किया जाता है। तिर्यग्योनियोंमें जहाँ तमोगुणकी अधिकता होती है, वहाँ रजोगुण और सत्त्वगुणकी कमी समझनी चाहिये। मध्यस्रोता अर्थात् मनुष्य-योनिमें, जहाँ रजोगुणकी मात्रा अधिक होती है, वहाँ तमोगुण और सत्त्वगुणकी मात्रा बहुत कम हो जाती है। इसी प्रकार ऊर्ध्वस्रोता यानी देव-योनियोंमें जहाँ सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है वहाँ तमोगुण और रजोगुणकी कमी देखी जाती है। सत्त्वगुण इन्द्रियोंकी उत्पत्तिका कारण है, उसे वैकारिक हेतु मानते हैं। वह इन्द्रियों और उनके विषयोंको प्रकाशित करनेवाला है। सत्त्वगुणसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। सत्त्वगुणमें स्थित पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकोंको जाते हैं, रजोगुणमें स्थित पुरुष मध्यमें अर्थात् मनुष्यलोकमें ही रहते हैं और तमोगुणके कार्यरूप निद्रा, प्रमाद एवं आलस्य आदिमें स्थित हुए तामस मनुष्य अधोगतिको प्राप्त होते—नीच योनियों अथवा नरकोंमें पड़ते हैं। शूद्रमें तमोगुणकी, क्षत्रियमें रजोगुणकी और ब्राह्मणमें सत्त्वगुणकी प्रधानता होती है। इस प्रकार इन तीन वर्णोंमें मुख्यतासे ये तीन गुण रहते हैं। तमोगुण, सत्त्वगुण और रजोगुण—ये सर्वथा पृथक्-पृथक् हों, ऐसा कभी नहीं सुना गया। सूर्यका प्रकाश सत्त्वगुण है, उनका ताप रजोगुण है और अमावास्याके दिन जो उनपर ग्रहण लगता है वह तमोगुणका कार्य है। इस प्रकार सभी ज्योतियोंमें तीनों गुण क्रमशः प्रकट होते और विलीन होते रहते हैं। गुणोंके भेदसे दिनको भी तीन प्रकारका समझना चाहिये। रात भी तीन प्रकारकी होती है तथा मास, पक्ष, वर्ष, ऋतु और संध्याके भी तीन-तीन भेद होते हैं। तीन प्रकारसे दान दिये जाते हैं। तीन प्रकारका यज्ञानुष्ठान होता है। लोक, देव, विद्या और गति भी तीन-तीन प्रकारकी होती है। भूत, वर्तमान, भविष्य, धर्म, अर्थ, काम, प्राण, अपान और उदान—ये सब त्रिगुणात्मक ही हैं। इस जगत्‌में जो कोई भी वस्तु भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे उपलब्ध होती है, वह सब त्रिगुणमय है। सर्वत्र तीनों गुणोंकी ही सत्ता है। ये तीनों अव्यक्त स्वरूप हैं। सत्त्व, रज और तम इनकी सृष्टि सनातन है। प्रकृतिको तम, अव्यक्त, शिव, धाम, रज, योनि, सनातन, प्रकृति, विकार, प्रलय, प्रधान, प्रभव, अप्यय, अनुद्रिक्त, अन्यून, अकम्प, अचल, ध्रुव, सत्, असत् और त्रिगुणात्मक कहते हैं। अध्यात्मतत्त्वका चिन्तन करनेवाले लोगोंको इन नामोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जो मनुष्य प्रकृतिके इन नामों, सत्त्वादि गुणों और सम्पूर्ण गतियोंको ठीक-ठीक जानता है, वह गुण-विभागके तत्त्वका ज्ञाता है। उसके ऊपर सांसारिक दुःखोंका प्रभाव नहीं पड़ता। वह देह-त्यागके पश्चात् सम्पूर्ण गुणोंके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है।

महर्षियो ! परमात्मतत्त्वको जाननेवाला विद्वान् ब्राह्मण कभी मोहमें नहीं पड़ता। परमात्मा सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर कानवाला है; क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है। सबके हृदयमें विराजमान पुरुष (परमात्मा) का प्रभाव बहुत बड़ा

है। अणिमा, लघिमा और प्राप्ति आदि सिद्धियाँ उसीके स्वरूप हैं। वह सबका शासन करनेवाला, ज्योतिर्मय और अविनाशी है। संसारमें जो मनुष्य बुद्धिमान्, सद्भावपरायण, ध्यानी, योगी, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, ज्ञानवान्, लोभहीन, क्रोधको जीतनेवाले, प्रसन्न चित्त, धीर तथा ममता और अहंकारसे रहित हैं, वे सब मुक्त होकर परमात्माको प्राप्त होते हैं। जो महान् आत्माकी महिमाको जानता है उसे पुण्यदायक उत्तम गति मिलती है। जब पञ्चमहाभूतोंके विनाशके समय प्रलयकाल उपस्थित होता है, उस समय समस्त प्राणियोंको महान् भयका सामना करना पड़ता है; किंतु आत्मज्ञानी धीर पुरुष उस समय भी मोहित नहीं होता। जो इस प्रकार बुद्धिरूपी गुहामें स्थित, विश्वरूप, पुराण-पुरुष, हिरण्मय देव और ज्ञानियोंकी परम गतिरूप परम प्रभुको जानता है, वह बुद्धिमान् बुद्धिकी सीमाके पार पहुँच जाता है।



अहंकारसे पञ्चमहाभूतों और इन्द्रियोंकी सृष्टि, अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवतका वर्णन तथा निवृत्तिमार्गका उपदेश

ब्रह्माजीने कहा—महर्षिगण ! अहंकारसे पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज—ये पञ्चमहाभूत उत्पन्न हुए हैं। इन्हीं पञ्चमहाभूतोंमें अर्थात् इनके शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध नामक विषयोंमें समस्त प्राणी मोहित रहते हैं। महाभूतोंका नाश होनेके समय जब प्रलयका अवसर आता है उस समय समस्त प्राणियोंको महान् भयका सामना करना पड़ता है। जो भूत जिससे उत्पन्न होता है उसका उसीमें लय हो जाता है। ये भूत अनुलोमक्रमसे एकके बाद एक प्रकट होते हैं और विलोमक्रमसे इनका अपने-अपने कारणमें लय होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण चराचर भूतोंका लय हो जानेपर भी स्मरण-शक्तिसे सम्पन्न धीरहृदय योगी पुरुष नहीं लीन होते। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तथा इनको ग्रहण करनेकी क्रियाएँ—ये करणरूपसे (अर्थात् सूक्ष्म मनःस्वरूप होनेके कारण), नित्य हैं, अतः इनका भी प्रलयकालमें लय नहीं होता। स्थूल पदार्थ अनित्य हैं और उनको मोहके नामसे पुकारा जाता है। शरीरके बाह्य अङ्ग रक्त-मांसके संघात आदि स्थूल एवं अनित्य हैं। इसीलिये ये दीन और कृपण माने गये हैं। प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान—ये पाँच वायु नियतरूपसे शरीरके भीतर निवास करते हैं; अतः ये सूक्ष्म हैं। मन, वाणी, और बुद्धिके साथ गिननेसे इनकी संख्या आठ होती है। ये आठ इस जगत्के उपादान कारण हैं। जिसकी त्वचा, नासिका, कान, आँख, रसना और वाक्—ये इन्द्रियाँ वशमें हों, मन शुद्ध हो और बुद्धि एक निश्चयपर स्थिर रहनेवाली हो; जिसके मनको उपर्युक्त इन्द्रियादिरूप आठ अग्नियाँ संतप्त न करती हों, वह पुरुष कल्याणमय ब्रह्मको प्राप्त होता है। उससे बढ़कर दूसरा कोई नहीं होता।

द्विजवरो ! अहंकारसे उत्पन्न हुई जो ग्यारह इन्द्रियाँ बतलायी जाती हैं, उनका अब विशेषरूपसे वर्णन करूँगा, सुनो—कान, त्वचा, आँख, रसना, नाक, हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ और वाक्—ये दस इन्द्रियाँ हैं। मन ग्यारहवीं इन्द्रिय है। मनुष्यको पहले इन इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनी चाहिये। तत्पश्चात् उसे ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। इन इन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं और पाँच कर्मेन्द्रिय। कान आदि पाँच इन्द्रियोंको ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं और शेष पाँच इन्द्रियाँ कर्मेन्द्रिय कहलाती हैं। मनका सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनोंसे है और बुद्धि बारहवीं इन्द्रिय है। इस प्रकार क्रमशः ग्यारह इन्द्रियोंका वर्णन किया गया। इनके तत्त्वको अच्छी तरह जाननेवाले विद्वान् अपनेको कृतार्थ मानते हैं।

अब समस्त ज्ञानेन्द्रियोंके भूत, अधिभूत आदि विविध विषयोंका वर्णन किया जाता है। आकाश पहला भूत है। कान उसका अध्यात्म (इन्द्रिय), शब्द उसका अधिभूत (विषय) और दिशाएँ उसकी अधिदैवत (अधिष्ठातृ देवता) हैं। वायु दूसरा भूत है, त्वचा उसका अध्यात्म, स्पर्श उसका अधिभूत और विद्युत् उसका अधिदैवत है। तीसरे भूतका नाम है तेज; नेत्र उसका अध्यात्म, रूप उसका अधिभूत और सूर्य उसका अधिदैवत है। जलको चौथा भूत समझना चाहिये; रसना उसका अध्यात्म, रस उसका अधिभूत और चन्द्रमा उसका अधिदैवत है। पृथ्वी पाँचवाँ भूत है; नासिका उसका अध्यात्म, गन्ध उसका अधिभूत और वायु उसका अधिदैवत है। इन पाँच भूतोंमें जो अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव हैं, उनका वर्णन किया गया। अब कर्मेन्द्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले विविध विषयोंका निरूपण किया जाता है। तत्त्वदर्शी ब्राह्मण दोनों पैरोंको अध्यात्म कहते हैं और गन्तव्य स्थानको उनके अधिभूत तथा विष्णुको उनके अधिदैवत बतलाते हैं। गुदा अध्यात्म है और मलत्याग उसका अधिभूत तथा मित्र उसके अधिदेवता हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाला उपस्थ अध्यात्म है और वीर्य उसका

अधिभूत तथा प्रजापति उसके अधिष्ठाता देवता हैं। दोनों हाथ अध्यात्म बतलाये गये हैं; कर्म उनके अधिभूत और इन्द्र उनके अधिदेवता हैं। वाणी अध्यात्म है और वक्तव्य उसका अधिभूत तथा अग्नि उसका अधिदैवत है। पञ्चभूतोंका संचालन करनेवाला मन अध्यात्म कहा गया है; संकल्प उसका अधिभूत है और चन्द्रमा उसके अधिष्ठाता देवता माने गये हैं। सम्पूर्ण संसारको जन्म देनेवाला अहंकार अध्यात्म है और अभिमान उसका अधिभूत तथा रुद्र उसके अधिष्ठाता देवता हैं। विचार करनेवाली बुद्धि अध्यात्म मानी गयी है; मन्तव्य उसका अधिभूत और ब्रह्मा उसके अधिदेवता हैं। प्राणियोंके रहनेके तीन ही स्थान हैं—जल, थल और आकाश। चौथा स्थान सम्भव नहीं है। देहधारियोंका जन्म चार प्रकारका होता है—अण्डज, उद्भिज्ज, स्वेदज और जरायुज। तपस्या और पुण्यकर्मका अनुष्ठान—यही विद्वानोंका कर्तव्य है। कर्मके अनेकों भेद हैं, उनमें यज्ञ और दान—ये प्रधान हैं। वृद्ध पुरुषोंका कहना है कि द्विजोंके कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषके लिये वेदोंका अध्ययन अत्यन्त पुण्यका कार्य है। जो मनुष्य इस विषयको विधिपूर्वक जानता है, वह योगी होता है तथा उसे सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। इस प्रकार मैंने तुमलोगोंसे अध्यात्म-विधिका यथावत् वर्णन किया। ज्ञानी पुरुषोंको इस विषयका सम्यक् ज्ञान होता है। इन्द्रियों, उनके विषयों और पञ्चमहाभूतोंकी एकताका विचार करके उसे मनमें अच्छी तरह धारण कर लेना चाहिये। मनके क्षीण होनेके साथ ही सब वस्तुओंका क्षय हो जानेपर मनुष्यको जन्मके सुख (लौकिक सुख-भोग आदि) की इच्छा नहीं होती। जिनका अन्तःकरण ज्ञानसे सम्पन्न होता है, उन विद्वानोंको उसीमें सुखका अनुभव होता है।

महर्षियो ! अब मैं मनकी सूक्ष्म भावनाको जाग्रत् करनेवाली निवृत्तिके विषयमें उपदेश देता हूँ। जहाँ गुण होते हुए भी नहींके बराबर हैं, जो अभिमानसे रहित और एकान्तचर्यासे युक्त है तथा जिसमें भेद-दृष्टिका सर्वथा अभाव है, वही ब्रह्ममय बर्ताव बतलाया गया है, वही समस्त सुखोंका एकमात्र आधार है। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको सब ओरसे समेट लेता है, उसी प्रकार जो मनुष्य अपनी सम्पूर्ण कामनाओंको संकुचित करके रजोगुणसे रहित हो जाता है, वह सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त एवं सुखी होता है। जो कामनाओंको अपने भीतर लीन करके तृष्णासे रहित, एकाग्रचित्त और सम्पूर्ण प्राणियोंका सुहृद् होता है, वह ब्रह्मप्राप्तिका पात्र हो जाता है। विषयोंकी अभिलाषा रखनेवाली समस्त इन्द्रियोंको रोककर जनसमुदायके स्थानका परित्याग करनेसे मुनिका अध्यात्मज्ञानरूपी तेज अधिक प्रकाशित होता है। जैसे ईंधन डालनेसे आग प्रज्वलित होकर अत्यन्त उद्दीप्त दिखायी देती है; उसी प्रकार इन्द्रियोंका निरोध करनेसे परमात्माके प्रकाशका विशेष अनुभव होने लगता है। जिस समय योगी प्रसन्नचित्त होकर सम्पूर्ण प्राणियोंको अपने अन्तःकरणमें स्थित देखने लगता है, उस समय वह स्वयं ज्योतिःस्वरूप होकर सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म परमात्माको प्राप्त होता है। जिसने इस लोकमें तीन गुणोंवाले पाञ्चभौतिक देहका अभिमान त्याग दिया है उसे अपने हृदयाकाशमें परब्रह्मरूप उत्तम पदकी उपलब्धि होती है—वह मोक्षको प्राप्त हो जाता है। जिसमें पाँच इन्द्रियरूपी बड़े कगारे हैं, जो मनोवेगरूपी महान् जलराशिसे भरी हुई है और जिसके भीतर मोहमय कुण्ड हैं, उस देहरूपी नदीको लाँघकर जो काम और क्रोध दोनोंको जीत लेता है वही सब दोषोंसे मुक्त होकर परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार करता है। जो मनको हृदयकमलमें स्थापित करके अपने भीतर ही ध्यानके द्वारा आत्मदर्शनका प्रयत्न करता है, वह सम्पूर्ण भूतोंमें सर्वज्ञ होता है और उसे अन्तःकरणमें परमात्मतत्त्वका अनुभव होने लगता है। जैसे एक दीपसे सैकड़ों दीप जला लिये जाते हैं उसी प्रकार एक ही परमात्मा यत्र-तत्र अनेकों रूपोंमें उपलब्ध होता है। ऐसा निश्चय करके ज्ञानी पुरुष सब रूपोंको एकसे ही उत्पन्न देखता है। वास्तवमें वही विष्णु, मित्र, वरुण, अग्नि, प्रजापति, धाता, विधाता, प्रभु, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण प्राणियोंका हृदय तथा महान् आत्मा है। ब्राह्मणसमुदाय, देवता, असुर, यक्ष, पिशाच, पितर, पक्षी, राक्षस, भूत और सम्पूर्ण महर्षि भी सदा उस महात्माकी स्तुति करते हैं।



चराचर प्राणियोंके अधिपतियों, धर्म आदिके लक्षणों और विषयोंकी अनुभूतिके साधनोंका वर्णन तथा क्षेत्रज्ञकी विलक्षणता

ब्रह्माजीने कहा—महर्षियो ! बरगद, जामुन, पीपल, सेमल, शीशम, मेषशृङ्ग (मेढ़ासिंगी) और पोले बाँस—ये इस लोकमें वृक्षोंके राजा हैं। हिमवान्, पारियात्र, सह्य, विन्ध्य, त्रिकूट, श्वेत, नील, भास, कोष्ठवान् गुरुस्कन्ध,

महेन्द्र, माल्यवान्—ये पर्वतोंके अधिपति हैं। सूर्य ग्रहोंके, चन्द्रमा नक्षत्रोंके, यमराज पितरोंके, समुद्र सरिताओंके, वरुण जलके और इन्द्र मरुद्गणोंके स्वामी हैं। उष्णप्रभाके अधिपति सूर्य हैं, ताराओंके स्वामी चन्द्रमा हैं और भूतोंके अधीश्वर अग्निदेव हैं। ब्राह्मणोंके स्वामी बृहस्पति, ओषधियोंके सोम, बलवानोंके विष्णु, रूपोंके त्वष्टा तथा पशुओंके अधिपति भगवान् शिव हैं। दीक्षा ग्रहण करनेवालोंके यज्ञ और देवताओंके इन्द्र अधिपति हैं। दिशाओंकी स्वामिनी उत्तर दिशा है, ब्राह्मणोंके प्रतापी राजा सोम हैं, सब प्रकारके रत्नोंके स्वामी कुबेर और प्रजाओंके स्वामी प्रजापति हैं। मैं सम्पूर्ण प्राणियोंका महान् अधीश्वर और ब्रह्ममय हूँ। मुझसे अथवा विष्णुसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। ब्रह्ममय महाविष्णु ही सबके राजाधिराज हैं, उन्हींको ईश्वर समझना चाहिये । वे श्रीहरि सबके कर्ता हैं; किंतु उनका कोई कर्ता नहीं है। वे मनुष्य, किन्नर, यक्ष, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, देव, दानव और नाग सबके अधीश्वर हैं।

राजा धर्म-पालनके इच्छुक होते हैं और ब्राह्मण धर्मके सेतु हैं; अतः राजाको चाहिये कि वह सदा ब्राह्मणोंकी रक्षाका प्रयत्न करे। जिन राजाओंके राज्यमें साधु-पुरुषोंको कष्ट होता है, वे अपने समस्त राजोचित गुणोंसे हीन हो जाते और मरनेके बाद नरकमें पड़ते हैं। जिनके राज्यमें साधु-ब्राह्मणोंकी सब प्रकारसे रक्षा की जाती है, वे इस लोकमें आनन्दके भागी होते हैं और परलोकमें भी सुख भोगते हैं।

अब मैं सबके नियत धर्म और लक्षणोंका वर्णन करता हूँ। अहिंसा सबसे श्रेष्ठ धर्म है और हिंसा अधर्मका लक्षण (स्वरूप) है। प्रकाश देवताओंका, यज्ञ आदि कर्म मनुष्योंका, शब्द आकाशका, वायु स्पर्शका, रूप तेजका, रस जलका और गन्ध सम्पूर्ण प्राणियोंको धारण करनेवाली पृथ्वीका लक्षण है। स्वर-व्यञ्जनकी शुद्धिसे युक्त वाणीका लक्षण शब्द है। सोच-विचार मनका और निश्चय बुद्धिका लक्षण है; क्योंकि मनुष्य इस जगत्में मनके द्वारा सोची हुई बातोंका बुद्धिसे ही निश्चय करते हैं। साधु-पुरुषका लक्षण बाहरसे व्यक्त नहीं होता (वह स्वसंवेद्य हुआ करता है)। योगका लक्षण प्रवृत्ति और संन्यासका लक्षण ज्ञान है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह ज्ञानका आश्रय लेकर संन्यास ग्रहण करे। ज्ञानयुक्त संन्यासी मौत और बुढ़ापाको लाँघकर सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे परे हो अज्ञानान्धकारके पार पहुँचकर परम गतिको प्राप्त होता है।

महर्षियो ! यह मैंने तुमलोगोंसे सबके धर्म एवं लक्षणोंका विधिवत् वर्णन किया, अब यह बता रहा हूँ कि किस गुणको किस इन्द्रियसे ग्रहण किया जाता है। पृथ्वीका जो गन्ध नामक गुण है उसका नासिकाके द्वारा ग्रहण होता है और नासिकामें स्थित वायु उस गन्धका अनुभव करानेमें सहायक होती है। जलका गुण रस है जिसको जिह्वाके द्वारा ग्रहण किया जाता है और जिह्वामें स्थित चन्द्रमा उस रसके आस्वादनमें सहायक होता है। तेजका गुण रूप है और वह नेत्रमें स्थित सूर्यदेवताकी सहायतासे नेत्रके द्वारा देखा जाता है। वायुका गुण स्पर्श है, जिसका त्वचाके द्वारा ज्ञान होता है और त्वचामें स्थित वायुदेव उस स्पर्शका अनुभव करानेमें सहायक होते हैं। आकाशके गुण शब्दका कानोंके द्वारा ग्रहण होता है और कानमें स्थित सम्पूर्ण दिशाएँ शब्दके श्रवणमें सहायक बतायी गयी हैं। मनका गुण चिन्तन है जिसका बुद्धिके द्वारा ग्रहण किया जाता है और हृदयमें स्थित चेतन (आत्मा) मनके चिन्तन-कार्यमें सहायता देता है। निश्चयके द्वारा बुद्धिका और विशुद्ध बुद्धिके द्वारा महत्तत्त्वका ग्रहण होता है। इनके कार्योंसे ही इनकी सत्ताका निश्चय होता है और इसीसे इन्हें व्यक्त माना जाता है; किंतु वास्तवमें तो अतीन्द्रिय होनेके कारण ये बुद्धि आदि अव्यक्त ही हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। क्षेत्रज्ञ आत्माका कोई ज्ञापक लिङ्ग नहीं है; क्योंकि वह (स्वयंप्रकाश और) निर्गुण है। अतः क्षेत्रज्ञ अलिङ्ग (किसी विशेष लक्षणसे रहित) है; केवल ज्ञान ही उसका लक्षण (स्वरूप) माना गया है। गुणोंकी उत्पत्ति और लयके कारणभूत अव्यक्त प्रकृतिको क्षेत्र कहते हैं। आत्मा उसे जानता है, इसलिये वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है। क्षेत्रज्ञ आदि, मध्य और अन्तसे युक्त समस्त अचेतन गुणोंको जानता है; किंतु वे उसे नहीं जान पाते। क्षेत्रज्ञको कोई नहीं जानता, परंतु वह सबको जानता है। इन्द्रियोंके भोगमें आनेवाले जो गुण हैं, उनसे परे विराजमान परब्रह्म परमात्माको क्षेत्रज्ञके सिवा कोई नहीं जानता। अतः इस लोकमें जिनके दोषोंका क्षय हो गया है, वह गुणातीत पुरुष सत्त्व (बुद्धि) और गुणोंका परित्याग करके क्षेत्रज्ञके शुद्धस्वरूप परमात्मामें प्रवेश कर जाता है। क्षेत्रज्ञ सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंसे रहित, अचल और अनिकेत है। वही सर्वव्यापक परमात्मा है।



सब पदार्थोंके आदि-अन्त, ज्ञानकी नित्यता; देहरूपी कालचक्र तथा गृहस्थके धर्मका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—महर्षिगण ! अब मैं पदार्थोंके आदि, मध्य और अन्तका यथार्थ वर्णन करता हूँ। पहले दिन है फिर रात्रि (अतः दिन रात्रिका आदि है। इसी प्रकार)। शुक्लपक्ष महीनेका, श्रवण नक्षत्रोंका और शिशिर ऋतुओंका आदि है। गन्धोंका आदि कारण भूमि, रसोंका जल, रूपोंका ज्योतिर्मय आदित्य, स्पर्शोंका वायु और शब्दका आदि कारण आकाश है। ये गन्ध आदि पञ्चभूतोंसे उत्पन्न गुण हैं। अब मैं भूतोंके आदिका वर्णन करता हूँ। सूर्य समस्त ग्रहोंका और जठरानल सम्पूर्ण प्राणियोंका आदि बतलाया जाता है। सावित्री सब विद्याओंकी और प्रजापति देवताओंके आदि हैं। ॐकार सम्पूर्ण वेदोंका और प्राण वाणीका आदि है। इस संसारमें जो नियत उच्चारण है, वह सब गायत्री कहलाता है। छन्दोंका आदि गायत्री और प्रजाका आदि सृष्टिका प्रारम्भकाल है। गौएँ चौपायोंकी, ब्राह्मण मनुष्योंके, बाज चिड़ियोंके, उत्तम आहुति यज्ञोंकी, साँप रेंगकर चलनेवाले जीवोंका और सत्ययुग सम्पूर्ण युगोंका आदि है। रत्नोंमें सुवर्ण, अन्नोंमें जौ और भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंमें अन्न श्रेष्ठ है। बहनेवाले और पीने योग्य पदार्थोंमें जल उत्तम है। समस्त स्थावर भूतोंमें सामान्यतः ब्रह्माजीका क्षेत्र—पाकर नामवाला वृक्ष श्रेष्ठ एवं पवित्र माना गया है। सम्पूर्ण प्रजापतियोंका आदि मैं हूँ और मेरे आदि अचिन्त्यात्मा भगवान् विष्णु हैं। उन्हींको स्वयम्भू कहते हैं। पर्वतोंमें सबसे पहले मेरुगिरिकी उत्पत्ति हुई है। दिशा और विदिशाओंमें पूर्वदिशा प्रधान मानी गयी है। सब नदियोंमें त्रिपथगा गङ्गा ज्येष्ठ हैं। सरोवरोंमें सर्वप्रथम समुद्रका प्रादुर्भाव हुआ है। देव, दानव, भूत, पिशाच, सर्प, राक्षस, मनुष्य, किन्नर और समस्त यक्षोंके स्वामी भगवान् शंकर हैं। सम्पूर्ण जगत्के आदि कारण ब्रह्मस्वरूप महाविष्णु हैं। तीनों लोकोंमें उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। सब आश्रमोंमें गृहस्थ-आश्रमको प्रधानता दी गयी है। जगत्का आदि और अन्त अव्यक्त प्रकृति ही है। दिनका अन्त है सूर्यास्त और रात्रिका अन्त है सूर्योदय। सुखका अन्त सदा दुःख है और दुःखका अन्त सदा सुख है। संग्रहका अन्त है विनाश, ऊँचे चढ़नेका अन्त है नीचे गिरना, संयोगका अन्त है वियोग और जीवनका अन्त है मृत्यु। जिन-जिन वस्तुओंका निर्माण हुआ है उनका नाश अवश्यम्भावी है। जो जन्म ले चुका है उसकी मृत्यु निश्चित है। इस जगत्में स्थावर या जङ्गम कोई भी सदा रहनेवाला नहीं है। यज्ञ, दान, तप, अध्ययन, व्रत और नियम—इन सबका अन्त होता है, केवल ज्ञानका अन्त नहीं होता। इसलिये विशुद्ध ज्ञानके द्वारा जिसका चित्त शान्त हो गया है, जिसकी इन्द्रियाँ वशमें हो चुकी हैं तथा जो ममता और अहंकारसे रहित हो गया है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

महर्षियो ! मनके समान वेगवाला (देहरूपी) मनोरम कालचक्र निरन्तर चल रहा है। यह महत्तत्त्वसे लेकर स्थूल भूतोंतक चौबीस तत्त्वोंसे बना हुआ है। इसकी गति कहीं भी नहीं रुकती। यह संसार-बन्धनका अनिवार्य कारण है। बुढ़ापा और शोक इसे घेरे हुए हैं। यह रोग और दुर्व्यसनोंकी उत्पत्तिका स्थान है। देश और कालके अनुसार विचरण करता रहता है। बुद्धि इस कालचक्रका सार, मन खम्भा और इन्द्रियाँ बन्धन हैं। यह पञ्चमहाभूतोंके समूहसे बना हुआ है। श्रम तथा व्यायाम इसके शब्द हैं। रात और दिन इस चक्रका संचालन करते हैं। सर्दी और गर्मी इसका घेरा है। सुख और दुःख इसकी संधियाँ (जोड़) हैं। भूख और प्यास इसके कीलक तथा धूप और छाया इसकी रेखा हैं। आँखोंके खोलने और मीचनेसे इसकी व्याकुलता (चञ्चलता) प्रकट होती है। घोर मोहरूपी जल (शोकाश्रु) से यह व्याप्त रहता है। यह सदा ही गतिशील और अचेतन है। मास और पक्ष आदिके द्वारा इसकी आयुकी गणना की जाती है। यह कभी भी एक-सी अवस्थामें नहीं रहता। ऊपर, नीचे और मध्यवर्ती लोकोंमें सदा चक्कर लगाता रहता है। तमोगुणके वशमें होनेपर इसकी पाप-पङ्कमें प्रवृत्ति होती है और रजोगुणका वेग इसे भिन्न-भिन्न कर्मोंमें लगाया करता है। यह महान् दर्पसे उद्दीप्त रहता है। तीनों गुणोंके अनुसार इसकी प्रवृत्ति देखी जाती है। मानसिक चिन्ता ही इस चक्रकी बन्धनपट्टिका है। यह सदा शोक और मृत्युके वशीभूत रहनेवाला तथा क्रिया और कारणसे युक्त है। आसक्ति ही उसका दीर्घविस्तार (लंबाई-चौड़ाई) है। लोभ और तृष्णा ही इस चक्रको ऊँचे-नीचे स्थानोंमें गिरानेके हेतु हैं। अद्भुत अज्ञान (माया) इसकी उत्पत्तिका कारण है। भय और मोह इसे सब ओरसे घेरे हुए हैं। यह प्राणियोंको मोहमें डालनेवाला, आनन्द और प्रीतिके लिये विचरनेवाला तथा काम और क्रोधका संग्रह करनेवाला है। यह राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे युक्त जड देहरूपी

कालचक्र ही देवताओंसहित सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि और संहारका कारण है। तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिका भी यही साधन है। जो मनुष्य इस देहमय कालचक्रकी प्रवृत्ति और निवृत्तिको अच्छी तरह जानता है, वह कभी मोहमें नहीं पड़ता तथा सम्पूर्ण वासनाओं, सब प्रकारके द्वन्द्वों और समस्त पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त होता है।

ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चार आश्रम शास्त्रोंमें बताये गये हैं। गृहस्थ-आश्रम ही इन सबका मूल है। इस संसारमें जो कोई भी विधि-निषेधरूप शास्त्र है, उसमें पारंगत विद्वान् होना गृहस्थ द्विजोंके लिये उत्तम बात है। इसीसे सनातन यशकी प्राप्ति होती है। पहले सब प्रकारके संस्कारोंसे सम्पन्न होकर वेदोक्त विधिसे अध्ययन करते हुए ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करना चाहिये। तत्पश्चात् समावर्तन-संस्कार करके उत्तम गुणोंसे युक्त कुलमें विवाह करना चाहिये। अपनी ही स्त्रीपर प्रेम रखना, सदा सत्पुरुषोंके आचारका पालन करना और जितेन्द्रिय होना गृहस्थके लिये परम आवश्यक है। उसे श्रद्धापूर्वक पञ्चमहायज्ञोंके द्वारा देवता आदिका यजन करना चाहिये। गृहस्थको उचित है कि वह देवता और अतिथिको भोजन करानेके बाद बचे हुए अन्नका स्वयं आहार करे। वेदोक्त कर्मोंके अनुष्ठानमें संलग्न रहे। अपनी शक्तिके अनुसार प्रसन्नतापूर्वक यज्ञ करे और दान दे। हाथ, पैर, नेत्र, वाणी तथा शरीरके द्वारा होनेवाली चपलताका परित्याग करे अर्थात् इनके द्वारा कोई अनुचित कार्य न होने दे। यही सत्पुरुषोंका बर्ताव (शिष्टाचार) है। सदा यज्ञोपवीत धारण किये रहे, स्वच्छ वस्त्र पहने, उत्तम व्रतका पालन करे, शौच-संतोष आदि नियमों और सत्य-अहिंसा आदि यमोंके पालनपूर्वक यथाशक्ति दान करता रहे तथा शिष्ट पुरुषोंके साथ निवास करे। शिष्टाचारका पालन करते हुए जिह्वा और उपस्थको काबूमें रखे। सबके साथ मित्रताका बर्ताव करे। बाँसकी छड़ी और जलसे भरा हुआ कमण्डलु सदा साथ रखे। ब्राह्मणको अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन और दान तथा प्रतिग्रह—इन छः वृत्तियोंका आश्रय लेना चाहिये। इनमेंसे तीन कर्म—याजन (यज्ञ कराना), अध्यापन (पढ़ाना) और श्रेष्ठ पुरुषोंसे दान लेना—ये ब्राह्मणकी जीविकाके साधन हैं और शेष तीन कर्म—दान, अध्ययन तथा यज्ञानुष्ठान करना—ये धर्मोपार्जनके लिये हैं। धर्मज्ञ ब्राह्मणको इनके पालनमें कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये। इन्द्रियसंयमी, मित्रभावसे युक्त, क्षमावान्, सब प्राणियोंके प्रति समान भाव रखनेवाला, मननशील, उत्तम व्रतका पालन करनेवाला और पवित्रतासे रहनेवाला गृहस्थ ब्राह्मण सदा सावधान रहकर अपनी शक्तिके अनुसार यदि उपर्युक्त नियमोंका पालन करता है तो वह स्वर्गलोकको जीत लेता है।



ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासीके धर्मका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—महर्षियो! ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करनेवाले पुरुषको चाहिये कि वह अपने धर्ममें तत्पर रहे, विद्वान् बने, सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने अधीन रखे, मुनिव्रतका पालन करे, गुरुका प्रिय और हित करनेमें लगा रहे, सत्य बोले तथा धर्मपरायण एवं पवित्र रहे, गुरुकी आज्ञा लेकर भोजन करे। भोजनके समय अन्नकी निन्दा न करे। भिक्षाके अन्नको हविष्य मानकर ग्रहण करे। एक स्थानपर रहे। एक आसनसे बैठे और नियत समयमें भ्रमण करे। पवित्र और एकाग्र चित्त होकर दोनों समय अग्निमें हवन करे। सदा बेल या पलाशका दण्ड लिये रहे। रेशमी अथवा सूती वस्त्र या मृगचर्म धारण करे। अथवा ब्राह्मणके लिये सारा वस्त्र गेरुए रंगका होना चाहिये। ब्रह्मचारी मूँजकी मेखला पहने, जटा धारण करे, प्रतिदिन स्नान करे, यज्ञोपवीत पहने, वेदके स्वाध्यायमें लगा रहे तथा लोभहीन होकर नियमपूर्वक व्रतका पालन करे। जो ब्रह्मचारी सदा नियम-परायण होकर श्रद्धाके साथ शुद्ध जलसे सदा देवताओंका तर्पण करता है, उसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है।

इसी प्रकार आगे बतलाये जानेवाले उत्तम गुणोंसे युक्त जितेन्द्रिय वानप्रस्थी पुरुष भी उत्तम लोकोंपर विजय पाता है। वह उत्तम स्थानको पाकर फिर इस संसारमें जन्म धारण नहीं करता। वानप्रस्थी मुनिको घरकी ममता त्यागकर गाँवसे बाहर निकलकर वनमें निवास करना चाहिये। वह मृगचर्म अथवा वल्कल-वस्त्र पहने। प्रातः और सायंकालके समय स्नान करे। सदा वनमें ही रहे। गाँवमें कभी प्रवेश न करे। अतिथिको आश्रय दे और समयपर उनका सत्कार करे। जंगली फल, मूल, पत्ता अथवा सावाँ खाकर जीवन-निर्वाह करे। वनके सिवा अन्यत्रकी जल-वायुतकका सेवन न करे। अपने व्रतके अनुसार सदा सावधान रहकर क्रमशः उपर्युक्त वस्तुओंका आहार करे। यदि कोई अतिथि आ जाय तो फल-मूलकी भिक्षा देकर उसका सत्कार करे।

कभी आलस्य न करे। जो कुछ भोजन अपने पास उपस्थित हो, उसीमेंसे अतिथिको भिक्षा दे। मौन होकर पहले देवता और अतिथियोंको भोजन दे, उसके बाद स्वयं अन्न ग्रहण करे। किसीके साथ लाग-डाँट न रखे, हलका भोजन करे, देवताओंका सहारा ले, इन्द्रियोंका संयम करे, सबके साथ मित्रताका बर्ताव करे, क्षमाशील बने और दाढ़ी-मूँछ तथा सिरके बालोंको कभी न मुँड़ावे। समयपर अग्निहोत्र, वेदोंका स्वाध्याय और सत्य-धर्मका पालन करे। शरीरको सदा पवित्र रखे। धर्म-पालनमें कुशलता प्राप्त करे। सदा वनमें रहकर चित्तको एकाग्र किये रहे। इस प्रकार उत्तम धर्मोंका पालन करनेवाला जितेन्द्रिय वानप्रस्थी स्वर्गपर विजय पाता है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ अथवा वानप्रस्थ कोई भी क्यों न हो, जो मोक्ष पाना चाहता हो उसे उत्तम वृत्तिका आश्रय लेना चाहिये।

(वानप्रस्थकी अवधि पूरी करके) सम्पूर्ण भूतोंको अभय-दान देकर कर्म-त्यागरूप संन्यास-धर्मका पालन करे। सब प्राणियोंके सुखमें सुख माने। सबके साथ मित्रता रखे। समस्त इन्द्रियोंका संयम और मुनि-वृत्तिका पालन करे। बिना याचना किये, बिना संकल्पके दैवात् जो अन्न प्राप्त हो जाय, उस भिक्षासे ही जीवन-निर्वाह करे। गृहस्थोंके यहाँ रसोई-घरसे जब धुआँ निकलना बंद हो जाय, घरके सब लोग खा-पी चुकें और बर्तन धो-माँजकर रख दिये गये हों, उस समय मोक्ष-धर्मके ज्ञाता संन्यासीको भिक्षा लेनेकी इच्छा करनी चाहिये। भिक्षा मिल जानेपर हर्ष और न मिलनेपर विषाद न करे। (लोभवश) बहुत अधिक भिक्षाका संग्रह न करे। जितनेसे प्राण-यात्राका निर्वाह हो उतनी ही भिक्षा लेनी चाहिये। संन्यासी जीवन-निर्वाहके ही लिये भिक्षा माँगे। उचित समयतक उसके मिलनेकी बाट देखे। चित्तको एकाग्र किये रहे। साधारण लाभकी भी इच्छा न करे। जहाँ अधिक सम्मान होता हो, वहाँ भोजन न करे। मान-प्रतिष्ठाके लाभसे संन्यासीको घृणा करनी चाहिये। वह जूँठे, तिक्त, कसैले तथा कड़वे अन्नका स्वाद न ले। मधुर रसका भी आस्वादन न करे। केवल जीवन-निर्वाहके उद्देश्यसे प्राण-धारणमात्रके लिये उपयोगी अन्नका आहार करे। दूसरे प्राणियोंकी जीविकामें बाधा पहुँचाये बिना ही यदि भिक्षा मिल जाती हो, तभी उसे स्वीकार करे। भिक्षा माँगते समय दिये जानेवाले अन्नके सिवा दूसरा अन्न लेनेकी कदापि इच्छा न करे। उसे अपने धर्मका प्रदर्शन नहीं करना चाहिये। रजोगुणसे रहित होकर निर्जन स्थानमें विचरते रहना चाहिये। रातको सोनेके लिये सूने घर, जंगल, वृक्षकी जड़, नदीके किनारे अथवा पर्वतकी गुफाका आश्रय लेना चाहिये। गाँवमें एक रातसे अधिक नहीं रहना चाहिये; किंतु वर्षाके चार महीने किसी एक ही स्थानपर रहकर व्यतीत करने चाहिये। जबतक सूर्यका प्रकाश रहे तभीतक संन्यासीके लिये रास्ता चलना उचित है। वह कीड़ेकी तरह धीरे-धीरे समूची पृथ्वीपर विचरता रहे और यात्राके समय जीवोंपर दया करके पृथ्वीको अच्छी तरह देख-भालकर आगे पाँव रखे। किसी प्रकारका संग्रह न करे और किसीके स्नेह-बन्धनमें बँधकर कहीं निवास न करे।

मोक्ष-धर्मके ज्ञाता संन्यासीको उचित है कि सदा पवित्र जलसे काम ले। तुरंत निकाले हुए जलसे स्नान करे (बहुत पहलेके भरे हुएसे नहीं)। अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सत्य, सरलता, क्रोधका अभाव, दोष-दृष्टिका त्याग, इन्द्रियसंयम और चुगली न खाना—इन आठ व्रतोंका सावधानीके साथ पालन करे। इन्द्रियोंको वशमें रखे। उसका बर्ताव सदा पाप, शठता और कुटिलतासे रहित होना चाहिये। जो अन्न अपने-आप प्राप्त हो जाय, उसको ग्रहण करना चाहिये; किंतु उसके लिये भी मनमें इच्छा नहीं रखनी चाहिये। प्राण-यात्राका निर्वाह करनेके लिये जितना अन्न आवश्यक है उतना ही ग्रहण करे। धर्मतः प्राप्त हुए अन्नका ही आहार करे। मनमाना भोजन न करे। खानेके लिये अन्न और शरीर ढकनेके लिये वस्त्रके सिवा और किसी वस्तुका संग्रह न करे। भिक्षा भी, जितनी एक समय भोजनके लिये आवश्यक हो उतनी ही ग्रहण करे; उससे अधिक नहीं। दूसरोंके लिये भिक्षा न माँगे। स्वयं भी किसीको न दे। बिना प्रार्थनाके किसीकी कोई वस्तु स्वीकार न करे। किसी अच्छी वस्तुका उपभोग करके फिर उसके लिये लालायित न रहे। मिट्टी, जल, अन्न, पत्र, पुष्प और फल—ये वस्तुएँ यदि किसीके अधिकारमें न हों तो आवश्यकता पड़नेपर संन्यासी इन्हें काममें ला सकता है। वह शिल्पकारी करके जीविका न चलावे, सुवर्णकी इच्छा न करे। न किसीसे द्वेष करे और न किसीको उपदेश दे। सदा निर्विकार रहे। श्रद्धासे प्राप्त हुए पवित्र अन्नका आहार करे। मनमें कोई निमित्त न रखे। सबके साथ अमृतके समान मधुर बर्ताव करे, कहीं भी आसक्त न हो और किसी भी प्राणीके साथ परिचय न बढ़ावे। कामना और हिंसासे युक्त कर्मका न स्वयं अनुष्ठान करे और न दूसरोंसे करावे। सब प्रकारके पदार्थोंकी आसक्तिका उल्लङ्घन करके थोड़ेमें संतुष्ट हो सब ओर विचरता रहे। स्थावर और जङ्गम सभी प्राणियोंके प्रति समान भाव रखे, किसी दूसरे प्राणीको उद्वेगमें न डाले और स्वयं भी किसीसे उद्विग्न न हो। जो सब प्राणियोंका विश्वासपात्र बन जाता है, वह सबसे श्रेष्ठ और मोक्ष-धर्मका

ज्ञाता कहलाता है। संन्यासीको उचित है कि भविष्यके लिये विचार न करे, बीती बातकी चिन्ता छोड़ दे और वर्तमानकी भी उपेक्षा कर दे। केवल कालकी प्रतीक्षा करता हुआ, चित्त-वृत्तियोंको रोकनेका प्रयत्न करे। नेत्रसे, मनसे और वाणीसे किसी वस्तुको दूषित न करे। सबके सामने या दूसरोंकी आँख बचाकर कोई बुराई न करे। जैसे कछुवा अपने अङ्गोंको सब ओरसे समेट लेता है, उसी प्रकार इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे हटा ले। इन्द्रिय, मन और बुद्धिको दुर्बल करके निश्चेष्ट हो जाय। सम्पूर्ण तत्त्वोंका ज्ञान प्राप्त करे। द्वन्द्वोंसे प्रभावित न हो, किसीके सामने माथा न टेके। स्वाहाकार (अग्निहोत्र आदि) का परित्याग करे। ममता और अहंकारसे रहित हो जाय, योगक्षेमकी चिन्ता न करे। मनपर विजय प्राप्त करे। जो निष्काम, निर्गुण, शान्त, अनासक्त, निराश्रय, आत्मपरायण और तत्त्वका ज्ञाता होता है, वह निःसंदेह मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य हाथ, पैर, पीठ, मस्तक और उदर आदि अङ्गोंसे रहित, गुण-कर्मोंसे हीन, केवल, निर्मल, स्थिर, रूप-रस-गन्ध-स्पर्श और शब्दसे रहित, ज्ञेय, अनासक्त, मानसे हीन, निश्चिन्त, अविनाशी, दिव्य और सम्पूर्ण प्राणियोंमें स्थित आत्माको देखते हैं, उनकी कभी मृत्यु नहीं होती। उस आत्मतत्त्वतक बुद्धि, इन्द्रिय और देवताओंकी भी पहुँच नहीं होती। वेद, यज्ञ, लोक, तप और व्रतका भी वहाँ प्रवेश नहीं होता। वहाँ केवल ज्ञानवान् महात्मा किसी प्रकारका बाह्य चिह्न धारण किये बिना ही जा सकते हैं। इसलिये बाह्य चिह्नोंसे रहित धर्मको जानकर उसका यथार्थरूपसे पालन करना चाहिये। विद्वान् पुरुषको उचित है कि वह विज्ञानके अनुरूप आचरण करे। मूढ़ न होकर भी मूढ़के समान बर्ताव करे; किंतु अपने किसी व्यवहारसे धर्मको कलङ्कित न करे। जिस कामके करनेसे समाजके दूसरे लोग अनादर करें, वैसा ही काम सदा करता रहे; किंतु सत्पुरुषोंके धर्मकी निन्दा न करे। जो इस प्रकारका बर्ताव करते हुए धर्मका पालन करता है, वह श्रेष्ठ मुनि कहलाता है। जो मनुष्य इन्द्रिय, उनके विषय, पञ्चमहाभूत, मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति और पुरुष—इन सबका विचार करके इनके तत्त्वका यथावत् निश्चय कर लेता है तथा एकान्तमें बैठकर परमात्माका ध्यान करता है, वह आकाशमें विचरनेवाले वायुकी भाँति सब प्रकारकी आसक्तियोंसे छूटकर पञ्चकोशोंसे रहित, निर्भय तथा निराश्रय होकर मुक्त एवं परमात्माको प्राप्त हो जाता है।



परमात्माकी प्राप्तिके उपायोंका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—महर्षियो ! निश्चित बात कहनेवाले वृद्ध ब्राह्मण संन्यासको तप कहते हैं और ज्ञानको ही परब्रह्मका स्वरूप मानते हैं। वह ब्रह्म अज्ञानियोंसे अत्यन्त दूर, निर्द्वन्द्व, निर्गुण, नित्य, अचिन्त्य और श्रेष्ठ है। धीर पुरुष ज्ञान और तपस्याके द्वारा उसका साक्षात्कार करते हैं। जिनके मनकी मैल धुल गयी है, जो परम पवित्र हैं, जिन्होंने रजोगुणको त्याग दिया है, जिनका अन्तःकरण निर्मल है, जो संन्यासपरायण तथा ब्रह्मके ज्ञाता हैं, वे तपस्याके द्वारा कल्याणमय पथका आश्रय लेते हैं—परमेश्वरको प्राप्त होते हैं। ज्ञानी पुरुषोंका कहना है कि तपस्या (परमात्मतत्त्वको प्रकाशित करनेवाला) दीपक है, आचार धर्मका साधक है, ज्ञान परब्रह्मका स्वरूप है और संन्यास ही उत्तम तप है। जो तत्त्वका पूर्ण निश्चय करके सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर रहनेवाले आत्माको जान लेता है, वह सर्वत्र विचरनेवाला एवं सर्वज्ञ हो जाता है। जो किसी वस्तुकी कामना तथा किसीकी अवहेलना नहीं करता, वह इस लोकमें रहकर भी ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त हो जाता है। जो सब भूतोंमें प्रधान—प्रकृतिको तथा उसके गुण एवं तत्त्वको भलीभाँति जानकर ममता और अहंकारसे रहित हो जाता है, उसके मुक्त होनेमें तनिक भी संदेह नहीं है। शुभ और अशुभ समस्त त्रिगुणात्मक कर्मोंका तथा सत्य और असत्यका भी त्याग करनेसे जीवको अवश्य मोक्ष प्राप्त होता है। यह देह एक वृक्षके समान है। अज्ञान इसका मूल अङ्कुर (जड़) है, बुद्धि स्कन्ध (तना), अहंकार शाखा है, इन्द्रियाँ खोखले हैं और पञ्चमहाभूत इसके विशाल अवयव हैं, जो वृक्षकी शोभा बढ़ाते हैं। इसमें सदा ही संकल्परूपी पत्ते उगते और कर्मरूपी फूल खिलते रहते हैं। शुभाशुभ कर्मोंसे प्राप्त होनेवाले सुख-दुःखादि ही इसमें सदा लगे रहनेवाले फल हैं। इस प्रकार ब्रह्मरूपी बीजसे प्रकट होकर प्रवाहरूपसे सदा मौजूद रहनेवाला यह देहरूपी वृक्ष समस्त प्राणियोंके जीवनका आधार है। बुद्धिमान् पुरुष तत्त्वज्ञानरूपी खड्गसे इस वृक्षको काटकर जब जन्म-मृत्यु और जरावस्थाके चक्करमें डालनेवाले आसक्तिरूप बन्धनोंको तोड़ डालता है तथा ममता और अहंकारसे रहित हो जाता है, उस समय उसे अवश्य मुक्ति प्राप्त होती है।

जो मनुष्य अन्तकालमें आत्माका ध्यान करके, साँस लेनेमें जितनी देर लगती है उतनी देर भी, समभावमें स्थित

होता है, वह अमृतत्व (मोक्ष) प्राप्त करनेका अधिकारी हो जाता है। जो एक निमेष भी अपने मनको आत्मामें एकाग्र कर लेता है, वह अन्तःकरणकी प्रसन्नताको पाकर विद्वानोंको प्राप्त होनेवाली अक्षय गतिको पा जाता है। प्राणायामके द्वारा पुनः-पुनः प्राणोंका संयम करनेवाला पुरुष भी परमात्माको प्राप्त होता है। इस प्रकार जो पहले अपने अन्तःकरणको शुद्ध कर लेता है, वह जो-जो चाहता है उसी-उसी वस्तुको पा जाता है। सत्त्व (चित्तशुद्धि) के महत्त्वको जाननेवाले विद्वान् इस जगत्में सत्त्वसे बढ़कर और किसी वस्तुकी प्रशंसा नहीं करते। द्विजवरो ! हम अनुमान-प्रमाणके द्वारा इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि अन्तर्यामी परमात्मा सत्त्वमें ही स्थित हैं। सत्त्वके सिवा दूसरे किसी मार्गसे उनके पास पहुँचना असम्भव है। क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, ज्ञान, त्याग (दान) तथा संन्यास—ये सात्त्विक बर्तावके अन्तर्गत माने गये हैं (इनसे भी परमात्माकी प्राप्ति होती है)।



सत्त्व और पुरुषकी भिन्नता, बुद्धिमान्‌की प्रशंसा, पञ्चभूतोंके गुण और आत्माकी श्रेष्ठताका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—महर्षियो ! जो लोग प्राणियोंकी हिंसा करते हैं, नास्तिक-वृत्तिका आश्रय लेते हैं और लोभ तथा मोहमें फँसे हुए हैं, उन्हें नरकमें गिरना पड़ता है। जो विद्वान् आलस्य छोड़कर श्रद्धाके साथ वेदोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं और उनके फलमें आसक्त नहीं होते, वे धीर और उत्तम दृष्टिवाले माने गये हैं।

अब मैं यह बता रहा हूँ कि सत्त्व और क्षेत्रज्ञका परस्पर संयोग और वियोग कैसे होता है ? इस विषयको ध्यान देकर सुनो—इन दोनोंमें विषय-विषयिभाव सम्बन्ध माना गया है। इनमें पुरुष तो विषयी है और सत्त्व विषय। मनीषी पुरुष सत्त्वको द्वन्द्वयुक्त बतलाते हैं और क्षेत्रज्ञ निर्द्वन्द्व, निष्कल, नित्य और निर्गुण है। जैसे कमलके पत्तेपर पड़ी हुई जलकी चञ्चल बूँद उसे भिगो नहीं पाती, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष समस्त गुणोंसे सम्बन्ध रखते हुए भी किसीसे लिप्त नहीं होता। अतः क्षेत्रज्ञ पुरुष असङ्ग है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

जिसकी बुद्धि अच्छी नहीं है उसे हजार उपाय करनेपर भी ज्ञान नहीं होता और जो बुद्धिमान् है वह चौथाई प्रयत्नसे भी ज्ञान पाकर सुखका अनुभव करता है। ऐसा विचारकर किसी उपायसे धर्मके साधनका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये; क्योंकि उपायको जाननेवाला मेधावी पुरुष अत्यन्त सुखका भागी होता है। जैसे कोई मनुष्य यदि राहखर्चका प्रबन्ध किये बिना ही यात्रा करता है तो उसे मार्गमें बहुत क्लेश उठाना पड़ता है और वह बीचहीमें मर भी जाता है। यही बात कर्मके सम्बन्धमें जाननी चाहिये (अर्थात् शुभ कर्मरूपी पाथेयके बिना परलोकका मार्ग सुखपूर्वक नहीं तै किया जा सकता)। जैसे बिना देखे हुए दूरके रास्तेपर पैदल चलनेवाला मनुष्य गन्तव्य स्थानपर जल्दी नहीं पहुँच पाता, यही दशा तत्त्वज्ञानसे रहित अज्ञानी पुरुषकी होती है। किंतु उसी मार्गपर घोड़े जुते हुए शीघ्रगामी रथके द्वारा यात्रा करनेवाला पुरुष जिस प्रकार शीघ्र ही अपने लक्ष्य स्थानपर पहुँच जाता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुषोंकी गति होती है। बुद्धिमान् मनुष्य जहाँतक रथ जानेका मार्ग है वहाँतक रथसे जाता है और जब रथका रास्ता समाप्त हो जाता है तब वह उसे छोड़कर पैदल यात्रा करता है; इसी प्रकार तत्त्व और योग-विधिको जाननेवाला बुद्धिमान् एवं गुणज्ञ पुरुष अच्छी तरह समझ-बूझकर उत्तरोत्तर आगे बढ़ता जाता है। जैसे कोई पुरुष यदि मोहवश बिना नावके ही भयंकर समुद्रमें प्रवेश करता है और दोनों भुजाओंसे ही तैरकर उसके पार होनेका भरोसा रखता है तो निश्चय ही वह अपनी मौत बुलाना चाहता है (उसी प्रकार ज्ञान-नौकाका सहारा लिये बिना मनुष्य भवसागरसे पार नहीं हो सकता)। जिस तरह बुद्धिमान् पुरुष नावकी सहायतासे अनायास ही पानीमें प्रविष्ट हो जाता और शीघ्र ही तैरकर फिर उससे बाहर निकल आता है तथा पार हो जानेपर नावकी ममता छोड़कर चल देता है (उसी प्रकार संसार-सागरसे पार हो जानेपर बुद्धिमान् पुरुष पहलेके साधनोंकी ममता छोड़ देता है); परंतु स्नेहवश मोह प्राप्त हुआ मनुष्य ममतासे आबद्ध होकर नावपर सदा बैठे रहनेवाले मल्लाहकी भाँति वहीं चक्कर काटता रहता है।

जो गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्दसे रहित है तथा मुनिलोग बुद्धिके द्वारा जिसका मनन करते हैं, वह प्रधान कहलाता है; उसका दूसरा नाम अव्यक्त है। अव्यक्तका कार्य महत्तत्त्व और महत्तत्त्वका कार्य अहंकार है। अहंकारसे पञ्च-महाभूतोंको प्रकट करनेवाले गुणकी उत्पत्ति हुई है। पञ्च-

महाभूतोंके कार्य हैं रूप, रस आदि विषय। वे पृथक्-पृथक् गुणोंके नामसे प्रसिद्ध हैं; अव्यक्त प्रकृति कारणरूपा भी है और कार्यरूपा भी। इसी प्रकार महत्तत्त्वके भी कारण और कार्य दोनों ही स्वरूप सुने गये हैं। अहंकार भी कारणरूप तो है ही, कार्यरूपमें भी बारंबार परिणत होता रहता है। पञ्च-महाभूतोंमें भी कारणत्व और कार्यत्व दोनों धर्म हैं। उन भूतोंके विशेष कार्य शब्द आदि विषय भी बीजधर्मी (कारण) कहलाते हैं, साथ ही वे कार्यरूपमें भी उपस्थित होते हैं। पञ्चमहाभूतोंमेंसे आकाशमें एक ही गुण माना गया है। वायुके दो गुण बतलाये जाते हैं। तेज तीन गुणोंसे युक्त कहा गया है। जलके चार गुण हैं और पृथ्वीके पाँच गुण समझने चाहिये। वह स्थावर-जङ्गम प्राणियोंसे भरी हुई, समस्त जीवोंको जन्म देनेवाली तथा शुभ और अशुभका निर्देश करनेवाली है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये ही पृथ्वीके पाँच गुण हैं। इनमें भी गन्ध उसका खास गुण है। गन्ध अनेकों प्रकारकी होती है, मैं उसके गुणोंका विस्तारके साथ वर्णन करूँगा। इष्ट (सुगन्ध), अनिष्ट (दुर्गन्ध), मधुर, अम्ल, कटु, निर्हारी (दूरतक फैलनेवाली), मिश्रित, स्निग्ध, रूक्ष और विशद—ये पार्थिव गन्धके आठ भेद समझने चाहिये। शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये जलके चार गुण माने गये हैं (इनमें रस ही जलका मुख्य गुण है)। अब मैं रस-विज्ञानका वर्णन करता हूँ। रसके बहुत-से भेद हैं—मीठा, खट्टा, कड़ुआ, तीता, कसैला और नमकीन। इस प्रकार छः भेदोंमें जलमय रसका विस्तार बताया गया है। शब्द, स्पर्श और रूप—ये तेजके तीन गुण हैं। इनमें रूप ही तेजका मुख्य गुण है। रूपके भी कई भेद हैं—शुक्ल, कृष्ण, रक्त, नील, पीत, अरुण, छोटा, बड़ा, मोटा, दुबला, चौकोना और गोल। इस तरह तैजस रूपका बारह प्रकारसे विस्तार देखा जाता है। शब्द और स्पर्श—ये वायुके दो गुण हैं। इनमें भी स्पर्श ही वायुका प्रधान गुण है। स्पर्श भी कई प्रकारका माना गया है—रूखा, ठंडा, गरम, स्निग्ध, विशद, कठिन, चिकना, श्लक्ष्ण (हलका), पिच्छिल, कठोर और कोमल। इन बारह प्रकारोंसे वायुके गुण स्पर्शका विस्तार बतलाया गया है। आकाशका एक ही गुण शब्द है। शब्दके बहुत-से गुण हैं। उनका विस्तारके साथ वर्णन करता हूँ—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, निषाद, धैवत, इष्ट (प्रिय), अनिष्ट (अप्रिय) और संहत (श्लिष्ट)—ये आकाशजनित शब्दके दस भेद हैं। आकाश सब भूतोंमें श्रेष्ठ है। उससे श्रेष्ठ अहंकार, अहंकारसे श्रेष्ठ बुद्धि, बुद्धिसे श्रेष्ठ आत्मा (महत्तत्त्व), उससे श्रेष्ठ अव्यक्त प्रकृति और प्रकृतिसे श्रेष्ठ पुरुष है। जो मनुष्य सम्पूर्ण भूतोंके भूत, भविष्यका ज्ञाता, समस्त कर्मोंकी विधिका जानकार और सब प्राणियोंको आत्मभावसे देखनेवाला है, वह अविनाशी परमात्माको प्राप्त होता है।



तपस्याका प्रभाव, आत्माका स्वरूप और उसके ज्ञानकी महिमा तथा अनुगीताका उपसंहार

ब्रह्माजीने कहा—महर्षियो! जैसे सारथि अच्छे घोड़ोंको अपने काबूमें रखता है, उसी प्रकार मन सम्पूर्ण इन्द्रियोंपर शासन करता है। इन्द्रिय, मन और बुद्धि—ये सदा क्षेत्रज्ञके साथ संयुक्त रहते हैं। जिसमें इन्द्रियरूपी घोड़े जुते हुए हैं, जिसका बुद्धिरूपी सारथिके द्वारा नियन्त्रण हो रहा है, उस देहरूपी रथपर सवार होकर वह भूतात्मा (क्षेत्रज्ञ) चारों ओर दौड़ लगाता रहता है। ब्रह्ममय रथ सदा रहनेवाला और महान् है, इन्द्रियाँ उसके घोड़े, मन सारथि और बुद्धि चाबुक है। जो विद्वान् इस ब्रह्ममय रथकी सदा जानकारी रखता है, वह समस्त प्राणियोंमें धीर है और कभी मोहमें नहीं पड़ता। विश्वकी सृष्टि करनेवाले मरीचि आदि ब्राह्मण समुद्रकी लहरोंके समान बारंबार पञ्चभूतोंसे उत्पन्न होते और फिर समयानुसार उन्हींमें लीन हो जाते हैं। प्रजापतिने अपने तपःशक्तिसम्पन्न मनके ही द्वारा सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि की है तथा ऋषि भी तपस्यासे ही देवत्वको प्राप्त हुए हैं। फल-मूलका भोजन करनेवाले सिद्ध महात्मा तपस्याके प्रभावसे ही चित्तको एकाग्र करके तीनों लोकोंकी बातें प्रत्यक्ष देखते हैं। आरोग्यकी साधनभूत ओषधियाँ और नाना प्रकारकी विद्याएँ तपसे ही सिद्ध होती हैं। सारे साधनोंकी जड़ तपस्या ही है। जिसको पाना, जिसका अभ्यास करना, जिसे दबाना और जिसकी संगति लगाना नितान्त कठिन है, वह सब तपस्याके द्वारा साध्य हो जाता है; क्योंकि तपका प्रभाव दुर्लङ्घ्य है। शराबी, ब्रह्महत्यारा, चोर, गर्भ नष्ट करनेवाला और गुरुपत्नीकी शय्यापर सोनेवाला महापापी भी भलीभाँति तपस्या करके ही उस महान् पापसे छुटकारा पा सकता है। मनुष्य, पितर, देवता, पशु, मृग, पक्षी तथा अन्य जितने चराचर प्राणी हैं, वे सब सदा तपस्यामें संलग्न होकर ही सिद्धि प्राप्त करते हैं। तपस्याके बलसे ही महामायावी देवता स्वर्गमें निवास करते हैं।

जो लोग आलस्य त्यागकर अहंकारसे युक्त हो सकाम कर्मका अनुष्ठान करते हैं, वे प्रजापतिके लोकमें जाते हैं। जो ध्यानयोगका आश्रय लेकर सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं, वे आत्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ पुरुष सुखकी राशिभूत अव्यक्त परमात्मामें प्रवेश करते हैं, किंतु जो ध्यानयोगसे पीछे लौटकर अर्थात् ध्यानमें असफल होकर ममता और अहंकारसे रहित जीवन व्यतीत करता है, वह अव्यक्त प्रकृतिमें लीन होता है। फिर स्वयं भी अव्यक्त-संज्ञाको प्राप्त होकर अव्यक्तसे ही प्रकट होता है और केवल सत्त्वका आश्रय लेकर तमोगुण एवं रजोगुणके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है। जो सब पापोंसे मुक्त रहकर सबकी सृष्टि करता है, उसे अखण्ड ब्रह्म एवं क्षेत्रज्ञ समझना चाहिये। जो मनुष्य उसका ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वही वेदवेत्ता है। मुनिको उचित है कि चिन्तनके द्वारा चेतना (सम्यग्ज्ञान) पाकर मन और इन्द्रियोंको एकाग्र करके परमात्माके ध्यानमें स्थित हो जाय; क्योंकि जिसका चित्त जिसमें लगा होता है, वह निश्चय ही उसका स्वरूप हो जाता है—यह सनातन गोपनीय रहस्य है।

दो अक्षरका पद 'मम' (यह मेरा है—ऐसा भाव) मृत्यु-रूप है और तीन अक्षरका पद 'न मम' (यह मेरा नहीं है—ऐसा भाव) सनातन ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाला है। कुछ मन्दबुद्धि मनुष्य (स्वर्गादि फल प्रदान करनेवाले) काम्य कर्मोंकी प्रशंसा करते हैं, किंतु वृद्ध महात्माजन उन्हें उत्तम नहीं बतलाते; क्योंकि सकाम कर्मके अनुष्ठानसे जीवको सोलह विकारोंसे निर्मित स्थूल शरीर धारण करके जन्म लेना पड़ता है और वह सदा अविद्याका ग्रास बना रहता है। इतना ही नहीं, कर्मठ पुरुष देवताओंके भी उपभोगका विषय होता है। इसलिये पारदर्शी विद्वान् कर्मोंमें आसक्त नहीं होते; क्योंकि यह पुरुष (आत्मा) ज्ञानमय है, कर्ममय नहीं। जो इस प्रकार आत्माको अमृतस्वरूप, नित्य, इन्द्रियातीत, सनातन, अक्षर, जितात्मा एवं असङ्ग समझता है, वह कभी मृत्युके बन्धनमें नहीं पड़ता। जिसकी दृष्टिमें आत्मा अपूर्व (अनादि), अकृत (अजन्मा), नित्य, कूटस्थ, अग्राह्य और अमृताशी है, वह इन गुणोंका चिन्तन करनेसे स्वयं भी अग्राह्य (इन्द्रियातीत) एवं अमृतस्वरूप हो जाता है। जो चित्तको शुद्ध करनेवाले (मैत्री-करुणा आदि) सम्पूर्ण संस्कारोंका सम्पादन करके मनको आत्माके ध्यानमें लगा देता है, वही उस कल्याणमय ब्रह्मको प्राप्त करता है, जिससे बड़ा कोई नहीं है। ज्ञाननिष्ठ जीवन्मुक्त महात्माओंकी यही परम गति है, यही विरक्त पुरुषोंकी गति है, यही सनातन धर्म है और यही ज्ञानियोंका प्राप्तव्य स्थान है। जो सम्पूर्ण भूतोंमें समान भाव रखता है, लोभ और कामनासे रहित है तथा जिसकी सर्वत्र समान दृष्टि रहती है, वह ज्ञानी पुरुष भी इस गतिको प्राप्त कर सकता है। ब्रह्मर्षियो ! यह सब विषय मैंने विस्तारके साथ तुमलोगोंको बता दिया, इसीके अनुसार आचरण करो, इससे तुम्हें शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होगी।

गुरुने कहा—बेटा ! ब्रह्माजीके इस प्रकार उपदेश देनेपर उन महात्मा मुनियोंने इसीके अनुसार आचरण किया। इससे उन्हें उत्तम लोककी प्राप्ति हुई। महाभाग ! तुम्हारा चित्त शुद्ध है, इसलिये तुम भी मेरे बताये हुए ब्रह्माजीके उत्तम उपदेशका पालन करो। इससे तुम्हें भी सिद्धि प्राप्त होगी।

श्रीकृष्णने कहा—अर्जुन ! गुरुदेवके ऐसा कहनेपर उस शिष्यने समस्त उत्तम धर्मोंका पालन किया। इससे वह संसार-बन्धनसे मुक्त एवं कृतार्थ हो गया। उसने वह पद प्राप्त किया जहाँ जाकर शोक नहीं करना पड़ता।

अर्जुनने पूछा—जनार्दन ! वे ब्रह्मनिष्ठ गुरु और शिष्य कौन थे ? यदि मेरे सुनने योग्य हो तो ठीक-ठीक बतानेकी कृपा कीजिये।

श्रीकृष्णने कहा—महाबाहो ! मैं ही गुरु हूँ और मेरे मनको ही शिष्य समझो। तुम्हारे स्नेहवश मैंने इस गोपनीय रहस्यका वर्णन किया है। यदि मुझपर तुम्हारा प्रेम हो तो इस अध्यात्मज्ञानको सुनकर इसका यथावत् पालन करो। अच्छा, अब मैं पिताजीका दर्शन करना चाहता हूँ। उन्हें देखे बहुत दिन हो गये। यदि तुम्हारी राय हो तो मैं उनके दर्शनके लिये द्वारका जाऊँ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णकी बात सुनकर अर्जुनने कहा—'अब हमलोग यहाँसे हस्तिनापुरको चलें। वहाँ धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरसे मिलकर और उनकी आज्ञा लेकर आप अपनी पुरीको पधारें।'



श्रीकृष्णका अर्जुनके साथ हस्तिनापुर जाना और वहाँ सबसे मिलकर युधिष्ठिरकी आज्ञा ले सुभद्राके साथ द्वारकाको प्रस्थान करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर, भगवान् श्रीकृष्णने दारुकको रथ जोतनेकी आज्ञा दी। दारुकने थोड़ी ही देरमें लौटकर सूचना दी कि रथ जोतकर तैयार है। इसी प्रकार अर्जुनने भी अपने अनुचरोंको आदेश दिया, 'सब लोग तैयार हो जाओ, हस्तिनापुरकी यात्रा करनी है।' आज्ञा पाते ही सम्पूर्ण सैनिक तैयार हो गये और महान् तेजस्वी अर्जुनके पास जाकर बोले—'यात्राका सारा प्रबन्ध हो गया है (अब चलना चाहिये)।'

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन रथपर सवार हुए और प्रसन्नताके साथ तरह-तरहकी बातें करते हुए हस्तिनापुरकी ओर चल दिये। उस समय अर्जुनने रथपर बैठे हुए श्रीकृष्णसे पुनः इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'मधुसूदन! महाराज युधिष्ठिरने आपहीकी कृपासे विजय पायी, शत्रुओंका वध किया और अकण्टक राज्य प्राप्त किया है। हम सभी पाण्डव आपसे सनाथ हैं। आपको ही नौकारूपमें पाकर हमलोग कौरव-सेनारूपी समुद्रके पार पहुँचे हैं। विश्वकर्मन्! आप ही इस जगत्‌के आत्मा और संसारमें सबसे श्रेष्ठ हैं। मैं आपको उसी तरह जानता हूँ जिस तरह आप मुझे जानते हैं। भगवन्! आपके ही तेजसे सदा सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति होती है। नाना प्रकारकी लीलाएँ आपकी रति (मनोविनोद) हैं। आकाश और पृथ्वी आपकी माया है। आपहीमें यह समस्त चराचर जगत् प्रतिष्ठित है। (अण्डज, पिण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—इन) चार प्रकारके प्राणियों तथा पृथ्वी और आकाशको आप ही उत्पन्न करते हैं। निर्मल चाँदनीमें आपके ही हास्यकी छटाका दर्शन होता है। ऋतुएँ आपकी इन्द्रियाँ और सदा प्रवाहित होनेवाली वायु आपके प्राण हैं। आपका क्रोध ही सनातन मृत्युके रूपमें प्रकट है। आपकी प्रसन्नतामें भगवती लक्ष्मी निवास करती हैं। महामते! आपमें रति, तुष्टि, धृति, क्षान्ति, मति और कान्ति आदि गुणोंका तथा चराचर प्राणियोंका नित्य निवास माना गया है। प्रलयकालमें आप ही मृत्युके नामसे पुकारे जाते हैं। मैं सुदीर्घ कालतक आपके गुणोंका वर्णन करता रहूँ, तो भी उनका पार नहीं पा सकता। कमलनयन! आप ही आत्मा और परमात्मा हैं। आपको मेरा नमस्कार है। अजेय परमेश्वर! मैंने देवर्षि नारद, देवल, श्रीकृष्ण-द्वैपायन तथा पितामह भीष्मके मुखसे आपके माहात्म्यका ज्ञान प्राप्त किया है। सारा जगत् आपमें ही ओतप्रोत है। आप ही मनुष्योंके एकमात्र अधीश्वर हैं। जनार्दन! आपने मुझपर कृपा करके जो यह उपदेश दिया है, उसका मैं यथावत् पालन करूँगा। हमलोगोंका प्रिय करनेके लिये आपने यह बड़ा अद्भुत कार्य किया कि धृतराष्ट्रके पुत्र महापापी दुर्योधनको युद्धमें मार डाला। कौरवोंकी सेनाको आपने ही अपने तेजसे भस्म कर दिया था, तभी मैं युद्धमें विजय प्राप्त कर सका हूँ। आपहीने ऐसे-ऐसे उपाय किये हैं, जिनसे मेरे लिये विजय सुलभ हो गयी है। दुर्योधनके साथ जब संग्राम छिड़ा था, उस समय आपहीकी बुद्धि और आपहीके दिये हुए पराक्रमसे हमलोगोंकी जीत हुई थी। कर्ण, पापी जयद्रथ और भूरिश्रवाके वधका ठीक-ठीक उपाय आपहीने बतलाया था; अतः देवकीनन्दन! आपने प्रेमवश मुझे जो-जो उपदेश दिया है, वह सब मैं आचरणमें लाऊँगा। इसमें मुझे कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। आप द्वारका जाना चाहते हैं तो जाइये, इसमें मेरी भी सम्मति है। धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरके पास चलकर मैं भी उनसे आपको जानेकी आज्ञा दिलानेका प्रयत्न करूँगा। अब शीघ्र ही आप मामाजीका दर्शन करेंगे और अजेय वीर बलभद्रजी तथा अन्य वृष्णिवंशी वीरोंसे मिल सकेंगे।'

इस प्रकार बातचीत करते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों हस्तिनापुरमें जा पहुँचे। इनके नगरमें प्रवेश करते ही वहाँके नर-नारी निहाल हो गये। फिर इन्द्रभवनके समान शोभाशाली राजमहलमें जाकर वे दोनों मित्र क्रमशः महाराज धृतराष्ट्र, अत्यन्त बुद्धिमान् विदुरजी, राजा युधिष्ठिर, दुर्धर्ष वीर भीमसेन, माद्रीनन्दन नकुल-सहदेव, धृतराष्ट्रकी सेवामें लगे रहनेवाले अपराजित वीर युयुत्सु, बुद्धिमती गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी तथा सुभद्रा आदि भरतवंशकी सभी स्त्रियोंसे मिले। सबसे पहले राजा धृतराष्ट्रके पास पहुँचकर महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनने अपने नाम बताते हुए उनके दोनों चरणोंका स्पर्श किया। उसके बाद गान्धारी, कुन्ती, युधिष्ठिर और भीमसेनके पैर छुए। फिर विदुरजीसे मिलकर कुशल-मङ्गल पूछा। फिर उन सबके साथ कुछ देरतक वे वृद्ध राजा धृतराष्ट्रकी सेवामें बैठे रहे। तदनन्तर, रातके समय बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रने कौरवों और भगवान् श्रीकृष्णको अपने-अपने स्थानपर जानेकी आज्ञा दी। राजाकी आज्ञा पाकर सब अपने-अपने महलमें लौट आये। महापराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके साथ उन्हींके महलमें गये। वहाँ उनका

विधिवत् आदर-सत्कार हुआ और वे इच्छानुसार भोजन आदिसे निवृत्त होकर अर्जुनके साथ सो रहे। जब रात बीत गयी तो प्रातःकाल पूर्वाह्णकी क्रिया—संध्यावन्दन आदि करके वे दोनों धर्मराज युधिष्ठिरके महलमें गये, जहाँ वे अपने मन्त्रियोंके साथ रहते थे। उस सुन्दर भवनमें प्रवेश करके उन दोनों महात्माओंने धर्मराजका दर्शन किया। उनके आगमनसे महाराज युधिष्ठिरको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर उनके आज्ञा देनेपर वे दोनों मित्र उत्तम आसनोंपर विराजमान हुए। राजा युधिष्ठिरकी बुद्धि बड़ी सूक्ष्म थी। उन्होंने देखते ही ताड़ लिया कि ये दोनों मुझसे कुछ कहना चाहते हैं। अतः वे इस प्रकार बोले—'वीरवरो! मालूम होता है तुमलोग मुझसे कुछ कहना चाहते हो। जो भी कहना हो कहो। मैं वह सब शीघ्र ही पूर्ण करूँगा। तुम मनमें कुछ अन्यथा विचार न करो।'

यह सुनकर बात-चीत करनेमें परम चतुर अर्जुनने धर्मराजके पास जाकर बड़े विनीतभावसे कहा—'राजन्! महाप्रतापी भगवान् श्रीकृष्णको यहाँ रहते बहुत दिन हो गये। अब ये आपकी आज्ञा लेकर अपने पिताजीका दर्शन करना चाहते हैं। यदि आप स्वीकार करें और हर्षपूर्वक आज्ञा दे दें, तभी ये द्वारकापुरीको जायँगे। अतः मेरी प्रार्थना है कि आप इन्हें जानेकी आज्ञा दे दें।'

युधिष्ठिरने कहा—'मधुसूदन! आपका कल्याण हो। आप शूरनन्दन वसुदेवजीका दर्शन करनेके लिये आज ही द्वारकाको जाइये। महाबाहो! आपकी इस यात्रामें मेरी पूरी सम्मति है। आपने मेरे मामाजी और देवकी देवीको बहुत दिनोंसे नहीं देखा है; अतः वहाँ जाकर उन सबसे मिलिये तथा मेरी ओरसे मामाजीको प्रणाम कहकर भैया बलदाऊका भी यथायोग्य सत्कार कीजिये। भक्तोंको मान देनेवाले श्रीकृष्ण! द्वारका जानेपर आप भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेवके साथ मेरी भी याद सदा बनाये रहियेगा। महाबाहो! आनर्तदेशकी प्रजा, अपने माता-पिता तथा वृष्णिवंशी बन्धु-बान्धवोंसे मिलकर पुनः मेरे अश्वमेध-यज्ञमें पधारियेगा। ये तरह-तरहके रत्न, धन और दूसरी-दूसरी वस्तुएँ, जो आपको पसंद हों, लेकर यात्रा कीजिये। केशव! आपहीकी कृपासे हमारे शत्रु मारे गये और सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य हमलोगोंके हाथमें आया है (अतः यह सब कुछ आपहीका है)।'

धर्मराज युधिष्ठिरके यों कहनेपर पुरुषश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'महाबाहो! ये रत्न, धन और समूची पृथ्वी केवल आपकी है। यही नहीं, मेरे घरमें भी जो कुछ धन-वैभव है, उसको भी आप अपना ही समझिये।' उनके ऐसा कहनेपर युधिष्ठिरने 'जो आज्ञा' कहकर उनके वचनोंका आदर किया। तत्पश्चात् श्रीकृष्णने अपनी बुआ कुन्तीके पास जाकर बात-चीत की और उनसे यथोचित सत्कार पाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया तथा उनकी प्रदक्षिणा करके विदुरजी आदि सब लोगोंसे सत्कारपूर्वक बिदा होकर युधिष्ठिर और कुन्तीकी आज्ञासे सुभद्राको भी साथ ले लिया और अपने दिव्य रथपर सवार हो वे हस्तिनापुरसे बाहर निकले। उस समय नगरके निवासी मनुष्य उन्हें सब ओरसे घेरे हुए थे। कपिध्वज अर्जुन, सात्यकि, नकुल, सहदेव, अगाध बुद्धिवाले विदुरजी और गजराजके समान पराक्रमी भीमसेन—ये सब लोग भगवान् श्रीकृष्णके पीछे-पीछे उन्हें पहुँचानेके लिये कुछ दूरतक गये। तदनन्तर, श्रीकृष्णने समस्त कौरवों और विदुरजीको लौटाकर दारुक तथा सात्यकिसे कहा—'अब घोड़ोंको तेजीके साथ हाँको।'



मार्गमें श्रीकृष्णसे कौरवोंके विनाशकी बात सुनकर उत्तङ्क मुनिका कुपित होना और श्रीकृष्णका उन्हें शान्त करके अपने अध्यात्मज्ञानका वर्णन करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार द्वारका जाते हुए श्रीकृष्णको गले लगाकर सब पाण्डव अपने सेवकोंसहित पीछे लौटे। अर्जुनने बार-बार उन्हें छातीसे लगाया और जबतक वे आँखोंसे ओझल नहीं हुए तबतक उन्हींकी ओर दृष्टि लगाये खड़े रहे। श्रीकृष्णका भी यही हाल था। जब रथ दूर चला गया तो अर्जुनने बड़े कष्टसे श्रीकृष्णकी ओर लगी हुई दृष्टि पीछेको लौटायी। इसी प्रकार श्रीकृष्णने भी बड़ी कठिनतासे अर्जुनकी ओरसे दृष्टि हटायी। भगवान्‌की यात्राके समय अनेकों अद्भुत शकुन होने लगे। हवा बड़े वेगसे आती और उनके रथके आगेसे धूल, कंकड़ और काँटे उड़ाकर अलग कर देती थी। इन्द्र पवित्र एवं सुगन्धित जल तथा दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करते थे। इस प्रकार समतल भूमिपर यात्रा करते हुए महाबाहु श्रीकृष्ण मारवाड़ देशमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने अमिततेजस्वी उत्तङ्क मुनिका दर्शन एवं पूजन किया। तत्पश्चात् मुनिने भी उनका स्वागत-सत्कार किया। फिर दोनोंने दोनोंकी कुशल पूछी। इसके बाद विप्रवर उत्तङ्क मुनिने



भगवान्से प्रश्न किया—'श्रीकृष्ण ! क्या तुम कौरवों और पाण्डवोंके घर जाकर उनमें मेल करा आये ? क्या अब उनमें अविचल भ्रातृ-भाव स्थापित हो गया है ? वे तुम्हारे सम्बन्धी और परम प्रिय हैं; उन वीरोंमें संधि कराकर ही तो लौट रहे हो न ? क्या अब पाण्डु और धृतराष्ट्रके पुत्र तुम्हारे साथ संसारमें सुखपूर्वक विचर सकेंगे ? कौरवोंके शान्त हो जानेसे तुम्हारे द्वारा सुरक्षित पाण्डवोंको अब अपने राज्यमें सुख मिलेगा न ?' तात ! मैं सदा इस बातकी सम्भावना करता था कि तुम्हारे प्रयत्न करनेसे कौरव-पाण्डवोंमें मेल हो जायगा। मेरी वह आशा असफल तो नहीं हुई ?'

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महर्षे ! मैंने कौरवोंके पास जाकर उन्हें शान्त करनेके लिये बड़ी कोशिश की; किंतु वे किसी तरह संधिके लिये तैयार न हुए। इस कारण सब-के-सब अपने पुत्र और बान्धवोंसहित युद्धमें मारे गये। प्रारब्धके विधानको कोई बुद्धि और बलसे नहीं मिटा सकता; आपको तो ये सब बातें मालूम ही होंगी। कौरवोंने मेरी, भीष्मजीकी तथा विदुरजीकी भी सम्मतिको ठुकरा दिया। इसीलिये वे आपसमें लड़कर नष्ट हो गये। पाण्डव-पक्षमें भी युधिष्ठिर आदि पाँच भाई ही बचे हैं। उनके सभी पुत्र युद्धमें काम आ चुके हैं। धृतराष्ट्रके पुत्रोंमेंसे (युयुत्सुके सिवा) कोई नहीं बचा है। सभी अपने पुत्र बान्धवोंसहित मारे गये हैं।

श्रीकृष्णकी बात सुनकर उत्तङ्क मुनि बड़े क्रोधमें भरकर बोले—'मधुसूदन ! कौरव तुम्हारे सम्बन्धी और प्रेमी थे, तथापि शक्ति रहते हुए भी तुमने उनकी रक्षा नहीं की है; अतः आज मैं तुम्हें अवश्य शाप दूँगा। तुम उन्हें जबर्दस्ती पकड़कर रोक सकते थे, पर ऐसा नहीं किया; इसलिये मैं क्रोधमें भरकर तुम्हें शाप दिये बिना नहीं रह सकता। ओह ! कुरुवंशके श्रेष्ठ वीर नष्ट हो गये और तुमने सामर्थ्य रहते हुए भी उनकी उपेक्षा की।'

श्रीकृष्णने कहा—भृगुनन्दन ! पहले मेरी बात तो सुनिये। आप तपस्वी हैं, इसलिये मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिये। मैं आपको अध्यात्मतत्त्वकी बात सुना रहा हूँ। उसे सुननेके पश्चात् आपकी इच्छा हो तो मुझे शाप दे दीजियेगा। इतना याद रखिये कि कोई भी पुरुष थोड़ी-सी तपस्याके बलपर मेरा तिरस्कार नहीं कर सकता। आप तपस्वियोंमें श्रेष्ठ हैं, आपकी तपस्याका तेज बहुत बढ़ा हुआ है, आपने गुरुजनोंको भी अपनी सेवासे संतुष्ट किया है तथा बाल्यावस्थासे ही आप ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं—इन सब बातोंको मैं अच्छी तरह जानता हूँ; इसलिये अत्यन्त कष्ट सहकर संचित किये हुए आपके तपका मैं नाश कराना नहीं चाहता।

उत्तङ्कने कहा—केशव ! तुम अपने कथनानुसार उत्तम अध्यात्मतत्त्वका वर्णन करो। उसे सुनकर मैं तुम्हारे कल्याणके लिये आशीर्वाद दूँगा अथवा शाप ही दे दूँगा।

श्रीकृष्णने कहा—महर्षे ! आपको मालूम होना चाहिये कि तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण—ये सभी भाव मेरे ही आश्रित हैं। रुद्र और वसु भी मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं। इस बातको निश्चित समझिये कि सम्पूर्ण भूत मुझमें हैं और मैं सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित हूँ। सम्पूर्ण दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, नाग और अप्सराओंका मुझसे ही प्रादुर्भाव हुआ है। विद्वान्लोग जिसे सत्-असत्, व्यक्त-अव्यक्त और क्षर-अक्षर कहते हैं, वह सब मेरा ही स्वरूप है। मुने ! चारों आश्रमोंके जो चार धर्म प्रसिद्ध हैं तथा वेदोक्त जितने कर्म हैं, वे कोई मुझसे भिन्न नहीं हैं। असत्, सदसत् तथा उससे परे जो अव्यक्त जगत् है, वह भी मुझ सनातन देवाधिदेवसे पृथक् नहीं है। ॐकारसे आरम्भ होनेवाले चारों वेद मुझे ही समझिये। यज्ञमें यूप, सोम, चरु, देवताओंको तृप्त करनेवाला होम, होता और हवन-सामग्री भी मैं ही हूँ। अध्वर्यु, कल्पक और संस्कार किया हुआ हविष्य—ये सब मेरे ही समान स्वरूप हैं। बड़े-बड़े यज्ञोंमें उद्गाता उच्च स्वरसे साम-गान करके मेरी ही स्तुति करते हैं। प्रायश्चित्त-कर्ममें शान्ति-पाठ तथा मङ्गल-पाठ करनेवाले ब्राह्मण मुझ विश्वकर्माका ही सदा स्तवन करते हैं। सब प्राणियोंपर दया

करनारूप जो धर्म है उसको मेरा ज्येष्ठ पुत्र समझिये, वह मेरे मनसे प्रकट हुआ है। मैं धर्मकी रक्षा तथा स्थापनाके लिये अनेकों योनियोंमें अवतार धारण करता हूँ और भिन्न-भिन्न रूप तथा वेष बनाकर तीनों लोकोंमें विचरता रहता हूँ। मैं ही विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र तथा सबकी उत्पत्ति और प्रलयका कारण हूँ। सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि और संहार मुझसे ही होते हैं। जब-जब युगका परिवर्तन होता है तब-तब मैं प्रजाकी भलाईके लिये भिन्न-भिन्न योनियोंमें प्रविष्ट होकर धर्म-मर्यादाकी स्थापना करता हूँ। जब देव-योनिमें अवतार लेता हूँ, उस समय देवताओंकी ही भाँति सारे आचार-विचारका पालन करता हूँ। गन्धर्व-योनिमें अवतार लेनेपर मेरा सारा आचार-व्यवहार गन्धर्वोंके ही समान होता है। इसी प्रकार नागयोनिमें नागोंकी तरह और यक्ष-राक्षसकी योनियोंमें उन्हींकी भाँति यथावत् आचरण करता हूँ। इस समय मैंने मनुष्य-अवतार धारण किया है, इसलिये कौरवोंपर अपनी शक्तिका प्रयोग न करके पहले दीनतापूर्वक ही उनसे प्रार्थना की थी; किंतु मोहग्रस्त होनेके कारण उन्होंने मेरी बात नहीं मानी। इसके बाद क्रोधमें भरकर मैंने बड़े-बड़े भय दिखाये और उन्हें बहुत डराया-धमकाया, परंतु वे अधर्मसे युक्त एवं कालग्रस्त होनेके कारण मेरी बात माननेको राजी न हुए। अतः युद्धमें प्राण देकर इस समय स्वर्गमें पहुँचे हुए हैं। विप्रवर! आपने जो कुछ पूछा है उसके अनुसार मैंने यह सारा प्रसंग सुना दिया।



श्रीकृष्णका उत्तङ्क मुनिको विश्वरूपका दर्शन कराना और मरु-देशमें जल प्राप्त होनेका वरदान देना

उत्तङ्कने कहा—जनार्दन! मैं जानता हूँ आप सम्पूर्ण जगत्‌के कर्ता हैं। आपने जो यह ज्ञानका उपदेश किया, इसे निश्चय ही मैं आपकी कृपा समझता हूँ। अब मेरा चित्त प्रसन्न होकर आपकी भक्तिसे परिपूर्ण हो गया है, अतः शाप देनेका विचार न रहा। जनार्दन! यदि मैं आपकी थोड़ी-सी भी कृपा प्राप्त करनेका अधिकारी होऊँ तो आप मुझे अपना ईश्वरीय स्वरूप दिखा दीजिये, मुझे उसे देखनेकी बड़ी इच्छा है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! मुनिके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर उन्हें अपने उसी सनातन वैष्णव स्वरूपका दर्शन कराया, जिसे युद्धके प्रारम्भमें अर्जुनने देखा था। उत्तङ्क मुनिने उस विराट् विश्वरूपका दर्शन किया, जिसकी बड़ी-बड़ी भुजाएँ थीं। वह हजारों सूर्योंके समान देदीप्यमान, अग्निके समान तेजस्वी और सम्पूर्ण आकाशको घेरकर खड़ा था। उसके सब ओर मुँह दिखायी देते थे। उस व्यापक परमात्माके अद्भुत वैष्णव रूपको देखकर उत्तङ्क मुनिको बड़ा विस्मय हुआ और वे इस प्रकार स्तुति करने लगे—'विश्वकर्मन्! आपको नमस्कार है। विश्वात्मन्! आपहीसे सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्ति होती है। पृथ्वी आपके दोनों चरणोंसे और आकाश आपके मस्तकसे व्याप्त है। पृथ्वी और आकाशके बीचका भाग आपके उदरसे घिरा हुआ है। सम्पूर्ण दिशाएँ आपकी भुजाओंमें समायी हुई हैं। अच्युत! यह सारा दृश्य-प्रपञ्च आपहीका स्वरूप है। देवेश्वर! अब आप अपने इस उत्तम एवं अविनाशी स्वरूपको समेट लीजिये। मैं फिर आपको अपने पूर्व रूपमें ही देखना चाहता हूँ।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! मुनिकी बात सुनकर सदा प्रसन्नचित्त रहनेवाले श्रीकृष्णने कहा—'महर्षे! आप मुझसे कोई वर माँगिये।' तब उत्तङ्कने कहा—'पुरुषोत्तम! आपके इस स्वरूपको देख रहा हूँ, यही मेरे लिये आज सबसे बड़ा वरदान है।' यह सुनकर श्रीकृष्णने कहा—'मुने! आप इसमें कुछ अन्यथा विचार न कीजिये। मेरा दर्शन अमोघ होता है; अतः आपको मुझसे वर माँगना ही चाहिये।'

उत्तङ्कने कहा—प्रभो! यदि वर लेना मेरे लिये आवश्यक समझते हैं तो यही वर दीजिये कि मुझे यहाँ यथेष्ट जल प्राप्त हो सके; क्योंकि इस मरु-भूमिमें जल बड़ा दुर्लभ है।

तदनन्तर, भगवान्‌ने अपने तेजको समेटकर उत्तङ्क मुनिसे कहा—'महर्षे! जब जलकी आवश्यकता हो तो मेरा स्मरण कीजियेगा।' यह कहकर वे द्वारकाको चले गये। तत्पश्चात् एक दिन उत्तङ्क मुनिको बड़ी प्यास लगी। वे पानीके लिये मरु-भूमिमें चारों ओर घूमने लगे। घूमते-घूमते उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण किया। इतनेहीमें उन्हें एक नंग-धड़ंग चाण्डाल दिखायी पड़ा, जिसके शरीरमें मैल और कीचड़ जमी हुई थी। वह कुत्तोंके झुंडमें घिरा हुआ था। कमरमें तलवार बाँधे और हाथोंमें धनुष-बाण लिये वह अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था। उसकी मूत्रेन्द्रियसे जलकी धारा गिरती दिखायी देती थी। महर्षिकी प्यासा जानकर

चाण्डालने हँसते हुए कहा—'उत्तङ्क ! आओ, मुझसे पानी लेकर पी लो। तुम्हें प्याससे कष्ट पाते देख मुझे बड़ी दया आ रही है।'

चाण्डालके इस प्रकार कहनेपर उत्तङ्क मुनिने उस जलको लेना स्वीकार नहीं किया तथा वर देनेवाले श्रीकृष्णकी कठोर वचनोंसे खबर ली। उन्होंने क्रोधमें भरकर उस जलको ग्रहण नहीं किया और अपने निश्चयपर अटल रहकर उस चाण्डालको भी डाँट बतायी। उनके इन्कार करनेपर चाण्डाल कुत्तोंके साथ वहीं अन्तर्धान हो गया। यह देख उत्तङ्क मुनि मन-ही-मन बहुत लज्जित हुए और भीतर-ही-भीतर ऐसा समझने लगे कि श्रीकृष्णने मेरे साथ धोखा किया है। इतनेहीमें उसी मार्गसे शङ्ख-चक्र और गदा धारण किये हुए



महाबुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट होकर वहाँ आये। तब उत्तङ्कने उनसे कहा—'पुरुषोत्तम ! ब्राह्मणके लिये चाण्डालके पेशाबका जल देना आपको उचित नहीं था।' उनकी बात सुनकर भगवान् जनार्दन उत्तङ्क मुनिको मधुर वचनोंसे सान्त्वना देते हुए बोले—'महर्षे ! वहाँ जैसा रूप धारण करके वह जल आपको देना उचित था, उसी रूपसे दिया गया, किंतु आप उसे समझ न सके। मैंने आपके लिये वज्रधारी इन्द्रसे जाकर कहा था कि 'तुम उत्तङ्क मुनिको जलके रूपमें अमृत प्रदान करो।' मेरी बात सुनकर इन्द्र बारंबार यह कहने लगे—'मनुष्य अमर नहीं हो सकता। इसलिये आप उन्हें अमृत न देकर और कोई वर दीजिये।' किंतु मैंने जोर देकर कहा कि 'उत्तङ्क मुनिको तो अमृत ही देना है।' तब देवराज इन्द्र मुझे प्रसन्न करके बोले—'महामते ! यदि भृगुनन्दन उत्तङ्क मुनिको अमृत देना आवश्यक है तो मैं चाण्डालका रूप धारण करके उन्हें अमृत प्रदान करूँगा। यदि इस प्रकार वे लेना स्वीकार करेंगे तो उन्हें देनेके लिये अभी जा रहा हूँ और यदि वे अस्वीकार कर देंगे तो मैं किसी तरह उन्हें अमृत देनेको राजी न होऊँगा।' इस तरहकी शर्त करके साक्षात् इन्द्र चाण्डालके रूपमें उपस्थित हुए थे और आपको अमृत दे रहे थे; किंतु आपने डाँट बताकर उन्हें विमुख कर दिया, यह आपके द्वारा बड़ा भारी अपराध हुआ। अच्छा, वह बात तो बीत गयी। अब मैं आपकी तीव्र पिपासाको शान्त करने और जलकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिये दूसरा वरदान देता हूँ। ब्रह्मन् ! जब-जब आपको पानी पीनेकी इच्छा होगी तब-तब मरु-भूमिके आकाशमें जलसे भरे हुए मेघोंकी घटा घिर आयेगी। वे मेघ आपको सरस जल अर्पण करेंगे और 'उत्तङ्क मेघ' के नामसे इस पृथ्वीपर प्रसिद्ध होंगे।'

जनमेजय ! भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर विप्रवर उत्तङ्क मुनि बड़े प्रसन्न हुए। इस समय भी मरु-भूमिमें उत्तङ्क नामवाले मेघ वर्षा करते रहते हैं।



उत्तङ्ककी गुरु-भक्तिका वर्णन—गुरुपत्नीकी आज्ञासे उत्तङ्कका सौदासके पास जाकर उनकी रानीके कुण्डल माँगना

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! महामना उत्तङ्क मुनिने ऐसी कौन-सी तपस्या की थी, जिसके बलपर वे भगवान् विष्णुतकको शाप देनेको तैयार हो गये थे ?

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय ! उत्तङ्क मुनि बड़े भारी तपस्वी, तेजस्वी और गुरु-भक्त थे। (वे जब गुरुके यहाँ रहते थे, उस समय उन्हें देखकर) समस्त ऋषि-कुमारोंके मनमें यह

अभिलाषा होती थी कि हमें भी उत्तङ्कके समान गुरु-भक्ति प्राप्त हो। महर्षि गौतमके बहुत-से शिष्य थे; किंतु उनका सबसे अधिक स्नेह उत्तङ्कपर ही था। उनका इन्द्रियसंयम, शौच, पुरुषार्थका कार्य तथा उत्तम सेवापरायणता देखकर गौतम उनके ऊपर बहुत प्रसन्न रहते थे। गौतमके पास हजारों शिष्य आये और (गुरुकुलवासकी अवधि पूरी करके) उनकी आज्ञा लेकर अपने-अपने घर चले गये; किंतु उत्तङ्कपर अधिक प्रेम होनेके कारण महर्षि गौतमने उन्हें अपने घर लौटनेकी आज्ञा नहीं दी। धीरे-धीरे उन महामुनि उत्तङ्कको बुढ़ापाने आ घेरा; किंतु गुरु-भक्तिमें मग्न रहनेके कारण उन्हें इसका पता ही न लगा। एक दिनकी बात है, वे जंगलकी लकड़ी लानेके लिये गये और वहाँसे लकड़ियोंका बहुत बड़ा बोझ सिरपर लादकर ले आये। बोझ भारी होनेके कारण वे बहुत थक गये। जब आश्रमपर आकर वे उस बोझको जमीनपर गिराने लगे, उस समय चाँदीके तारकी भाँति सफेद रंगकी उनकी जटा लकड़ीमें चिपक गयी थी; अतः उन लकड़ियोंके साथ ही वह भी जमीनपर गिरी। उत्तङ्क मुनि एक तो उस भारी बोझसे पिस गये थे, दूसरे उन्हें भूख सता रही थी। उसी अवस्थामें उस सफेद जटाको देख अपने बुढ़ापाका निश्चय करके वे फूट-फूटकर रोने लगे। तब महर्षि गौतमने वहाँ आकर पूछा—'बेटा! आज तुम्हारा मन शोकसे व्याकुल क्यों हो रहा है? मैं इसका यथार्थ कारण सुनना चाहता हूँ। तुम निःसंकोच होकर सब बातें बताओ।'

उत्तङ्कने कहा—गुरुदेव! मेरा मन आपहीमें लगा रहता था। आपहीका प्रिय करनेकी इच्छासे मैं सदा आपकी सेवामें संलग्न रहता, आपहीमें श्रद्धा रखता और आपहीकी भक्ति किया करता था। इसलिये अबतक मुझे पता ही न चला कि कब मैं बूढ़ा हो गया। मैंने कभी कोई सुख नहीं उठाया, मुझे यहाँ रहते सौ वर्ष बीत गये तो भी आपने मुझे घर लौटनेकी आज्ञा नहीं दी। मेरे बाद सैकड़ों और हजारों शिष्य यहाँ आये और आपकी आज्ञा लेकर चले गये (केवल मैं ही यहाँ पड़ा हुआ हूँ)।

गौतमने कहा—भृगुनन्दन! तुम्हारी गुरु-शुश्रूषा देखकर तुमपर मेरा बहुत प्रेम हो गया था; इसीलिये इतना अधिक समय बीत गया तो भी मेरे ध्यानमें यह बात नहीं आयी। अच्छा, अबसे यदि तुम जाना चाहो तो मैं तुम्हें सहर्ष आज्ञा देता हूँ। शीघ्र अपने घरको जाओ, विलम्ब न करो।

उत्तङ्कने कहा—भगवन्! मैं आपको गुरु-दक्षिणामें क्या दूँ? यह बतानेकी कृपा कीजिये। उसे आपकी सेवामें अर्पण करनेके बाद आज्ञा लेकर घरको जाऊँगा।

गौतमने कहा—बेटा! सत्पुरुषोंके मतमें गुरुजनोंको संतुष्ट करना ही उनके लिये सबसे बड़ी दक्षिणा है। तुमने जो सेवा की है उससे मैं बहुत संतुष्ट हूँ इसमें तनिक भी संदेह न मानो।

तदनन्तर, उत्तङ्कने युवावस्थाको प्राप्त होकर गुरुकी आज्ञासे गुरुपत्नीके पास जाकर पूछा—'माताजी! मुझे आज्ञा दीजिये। गुरु-दक्षिणामें आपको क्या दूँ? मैं धन



और प्राण देकर भी आपका प्रिय और हित करना चाहता हूँ। इस लोकमें जो अत्यन्त दुर्लभ, अद्भुत और बहुमूल्य रत्न होगा, उसे भी मैं अपनी तपस्यासे ला सकता हूँ; इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

अहल्या बोली—बेटा! मैं तुम्हारी भक्तिसे बहुत संतुष्ट हूँ और यही मेरे लिये पर्याप्त दक्षिणा है। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम जहाँ जाना चाहो जा सकते हो।

यह सुनकर उत्तङ्कने फिर कहा—'माताजी! मुझे आपका कोई-न-कोई प्रिय कार्य करना ही है; इसलिये आज्ञा दीजिये मैं क्या करूँ?'

अहल्या बोली—बेटा! राजा सौदासकी रानीने अपने कानोंमें मणियोंके बने हुए दो दिव्य कुण्डल पहन रखे हैं। उन्हें मेरे लिये ला दो। उनसे गुरु-दक्षिणा पूरी हो जायगी। जाओ, तुम्हारा कल्याण हो।

जनमेजय! 'बहुत अच्छा' कहकर उत्तङ्कने गुरु-पत्नीकी आज्ञा स्वीकार कर ली और उनका प्रिय करनेकी इच्छासे उन

कुण्डलोंको लानेके लिये शीघ्रतापूर्वक चल दिये। जाते-जाते मनुष्य-भक्षी राजा सौदासके पास पहुँच गये।

इधर उत्तङ्क मुनिको आश्रममें न देखकर गौतमने अपनी पत्नीसे पूछा—'आज उत्तङ्क क्यों नहीं दिखायी देते?' अहल्या बोली—'वे मेरे लिये कुण्डल लाने गये हैं।' यह सुनकर महर्षिने कहा—'यह तुमने अच्छा नहीं किया। राजा सौदास ब्राह्मणोंके शापसे मनुष्य-भक्षी राक्षस हो गये हैं; इसलिये वे उस ब्राह्मणको अवश्य मार डालेंगे।'

अहल्या बोली—भगवन्! मैं इस बातको नहीं जानती थी; इसीलिये उन्हें ऐसा काम सौंप दिया। मुझे विश्वास है कि आपकी कृपासे उनपर कोई आँच नहीं आने पायेगी।

पत्नीके ऐसा कहनेपर महर्षि गौतम बोले—'अच्छा, ऐसा ही हो।' उधर उत्तङ्कने निर्जन वनमें जाकर राजा सौदासको देखा—बड़ी भयानक आकृति थी। लंबी-लंबी दाढ़ी और मूँछ! सारा शरीर मनुष्यके रक्तसे रँगा हुआ। उन्हें देखकर उत्तङ्कको तनिक भी घबराहट नहीं हुई। इन्हें देखते ही यमराजके समान भयंकर राजा सौदास उठकर खड़े हो गये और पास आकर बोले—'विप्रवर! अहो भाग्य! जो दिनके छठे भागमें आप स्वयं ही मेरे पास चले आये। मैं इस समय आहारकी ही खोजमें था।'



उत्तङ्कने कहा—राजन्! मैं गुरु-दक्षिणाके लिये घूमता-फिरता आपके पास आया हूँ। जो गुरु-दक्षिणा देनेके लिये उद्योग कर रहा हो, उसकी हिंसा नहीं करनी चाहिये—ऐसा मनीषी पुरुषोंका वचन है।

राजाने कहा—विप्रवर! मैंने दिनके छठे भागमें आहार करनेका नियम ले रखा है और यह वही समय है, अब मैं भूखसे पीड़ित हो रहा हूँ; इसलिये आपको छोड़ नहीं सकता।

उत्तङ्कने कहा—महाराज! यही सही; किंतु मेरी एक शर्त मान लीजिये। मैं गुरु-दक्षिणा देकर फिर आपके अधीन हो जाऊँगा। मैंने अपने गुरुको जो वस्तु देनेकी प्रतिज्ञा की है, वह आपके ही अधीन है; अतः आपसे उसकी भिक्षा माँगता हूँ। आप प्रतिदिन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बहुत-से रत्न दान करते हैं। इस पृथ्वीपर आप एक श्रेष्ठ दानीके रूपमें प्रसिद्ध हैं और मुझे भी दान लेनेका उत्तम पात्र समझिये। मैं गुरुको जो वस्तु देना चाहता हूँ, उसका मिलना आपके ही हाथमें है; अतः मेरी अभीष्ट वस्तु मुझे दे दीजिये। महाराज! मैं आपसे सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि वह वस्तु गुरुको देकर फिर अपनी की हुई शर्तके अनुसार आपके पास आ जाऊँगा। मेरी यह बात मिथ्या नहीं हो सकती। मैं कभी हँसी-खेलमें भी झूठ नहीं बोला हूँ, फिर ऐसे अवसरपर तो बोल ही कैसे सकता हूँ।

सौदासने कहा—ब्रह्मन्! यदि आपकी गुरु-दक्षिणा मेरे अधीन है तो उसे मिली हुई ही समझिये। अगर आप मेरी कोई वस्तु लेनेके योग्य समझते हैं तो माँगिये, इस समय मैं आपको क्या दूँ?

उत्तङ्कने कहा—पुरुषश्रेष्ठ! आपका दिया हुआ दान मैं सदा ही ग्रहण करनेके योग्य मानता हूँ। इस समय आपकी रानीके दोनों मणिमय कुण्डल माँगनेके लिये यहाँ आया हूँ।

सौदासने कहा—ब्रह्मर्षे! वे मणिमय कुण्डल तो मेरी रानीके ही योग्य हैं। आप और कोई वस्तु माँगिये, उसे मैं अवश्य दे दूँगा।

उत्तङ्कने कहा—राजन्! यदि आपका मुझपर विश्वास हो और आप मुझे उत्तम पात्र समझते हों तो बहाना न कीजिये; वे दोनों कुण्डल मुझे देकर सत्यका पालन कीजिये।

उत्तङ्कके ऐसा कहनेपर राजाने कहा—'विप्रवर! आप रानीके पास जाइये और उनसे मेरी आज्ञा सुनाकर वे कुण्डल माँग लीजिये। वे उत्तम व्रतका पालन करनेवाली हैं। आपके द्वारा मेरा संदेश सुनकर निःसंदेह दोनों कुण्डल दे देंगी।'

उत्तङ्कने कहा—महाराज! मैं कहाँ आपकी पत्नीको ढूँढ़ता फिरूँगा? मुझे क्योंकर उनका दर्शन हो सकता है? आप स्वयं ही उनके पास क्यों नहीं चले चलते?

सौदासने कहा—ब्रह्मन्! वे आपको जंगलमें किसी झरनेके किनारे मिल सकती हैं। यह दिनका छठा भाग है (मैं आहारकी खोजमें हूँ)। इस समय मैं उनसे नहीं मिल सकता।

राजाकी बात सुनकर उत्तङ्क मुनि उनकी रानी मदयन्तीके पास गये और उनसे अपने आनेका प्रयोजन बतलाया। राजाका संदेश सुनकर विशाललोचना रानीने महाबुद्धिमान् उत्तङ्क मुनिको इस प्रकार उत्तर दिया—'ब्रह्मन्! महाराजने जो आपको कुण्डल देनेकी बात कही है, सो ठीक है। आप असत्य नहीं कहते तो भी आपको मेरे विश्वासके लिये उनका कोई चिह्न ले आना चाहिये। मेरे ये दोनों मणिमय कुण्डल दिव्य हैं। देवता, यक्ष और महर्षिलोग नाना प्रकारके उपायोंद्वारा इन्हें चुरा ले जानेकी इच्छासे सदा छिद्र ढूँढ़ते रहते हैं। यदि इन्हें पृथ्वीपर रख दिया जाय तो नाग हड़प लेंगे, अपवित्र अवस्थामें धारण करनेपर यक्ष उड़ा ले जायँगे और इन्हें पहनकर यदि कोई नींद लेने लग जाय तो देवता लोग जबर्दस्ती छीन लेंगे। इन छिद्रोंमें सदा ही इन कुण्डलोंके खो जानेका भय रहता है। देवता, राक्षस और नागोंसे सावधान रहनेवाला मनुष्य ही इनको धारण कर सकता है। इनसे रात-दिन सोना टपकता रहता है। रातमें नक्षत्रों और ताराओंके समान इनकी चमक होती है। इनको पहन लेनेपर विषसे, अग्निसे तथा अन्य भयदायक जन्तुओंसे भी कभी भय नहीं होता, फिर भूख-प्यासका भय तो हो ही कैसे सकता है? छोटे कदका मनुष्य इन कुण्डलोंको पहने तो ये छोटे हो जाते हैं और बड़ी डील-डौलवाले मनुष्यके पहननेपर उसीके अनुरूप ये बड़े हो जाते हैं। ऐसे गुणोंसे युक्त होनेके कारण ये मेरे दोनों कुण्डल सबकी प्रशंसाके पात्र हैं। इनकी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि है। अतः आप यदि महाराजकी आज्ञासे इन्हें लेने आये हैं तो इसकी कोई पहचान लाइये।



कुण्डल लेकर उत्तङ्कका लौटना, मार्गमें उन कुण्डलोंका अपहरण होना और अग्निदेवकी कृपासे फिर उन्हें पाकर गुरुपत्नीको देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! रानी मदयन्तीकी बात सुनकर उत्तङ्क मुनिने महाराज मित्रसह (सौदास) के पास आकर उनसे कोई पहचान माँगी। तब इक्ष्वाकुवंशियोंमें श्रेष्ठ उन नरेशने पहचानके रूपमें रानीको सुनानेके लिये निम्नाङ्कित संदेश दिया।

सौदास बोले—प्रिये! मैं जिस दुर्गतिमें पड़ा हूँ, यह मेरे लिये कल्याण करनेवाली नहीं है तथा इसके सिवा अब दूसरी कोई भी गति नहीं है। मेरे इस विचारको जानकर तुम अपने दोनों मणिमय कुण्डल इन ब्राह्मण-देवताको दे डालो।

यह सुनकर महर्षि उत्तङ्क रानीके पास गये और उन्होंने राजाकी कही हुई बात वहाँ ज्यों-की-त्यों दुहरा दी। महारानी मदयन्तीने स्वामीका वचन सुनकर उसी समय अपने मणिमय कुण्डल उत्तङ्क मुनिको दे दिये। कुण्डल पाकर उत्तङ्क मुनि पुनः राजाके पास आकर बोले—'महाराज! आपके गूढ़ वचनका अभिप्राय क्या है, उसे मैं सुनना चाहता हूँ।'



सौदासने कहा—ब्रह्मन्! क्षत्रियलोग सृष्टिके प्रारम्भ कालसे ही ब्राह्मणोंकी पूजा करते चले आ रहे हैं तथापि कभी-कभी ब्राह्मणोंकी ओरसे भी क्षत्रियोंके लिये बहुत-से दोष प्रकट हो जाया करते हैं। मैं सदा ही ब्राह्मणोंको प्रणाम किया करता था; किंतु एक ब्राह्मणके ही शापसे मुझे यह दोष—यह दुर्गति प्राप्त हुई है। मैं मदयन्तीके साथ यहाँ रहता हूँ। मुझे इस दुर्गतिसे छुटकारा पानेका कोई उपाय नहीं

दिखायी देता। अब इस लोकमें रहकर सुख पाने अथवा परलोकमें स्वर्गीय सुख भोगनेके लिये दूसरी कोई गति नहीं दीख पड़ती। कोई भी राजा ब्राह्मणोंके साथ विरोध करके न तो इसी लोकमें चैनसे रह सकता है और न परलोकमें ही सुख पा सकता है (यही मेरे गूढ़ संदेशका तात्पर्य है)। अच्छा, अब आपकी इच्छाके अनुसार ये मणिमय कुण्डल मैंने आपको दे दिये। अब आपने जो प्रतिज्ञा की है, उसको सफल कीजिये।

उत्तङ्कने कहा—राजन्! मैं अपनी प्रतिज्ञाका पालन करूँगा, पुनः आपके अधीन हो जाऊँगा; किंतु इस समय एक प्रश्न पूछनेके लिये आपके पास लौटकर आया हूँ।

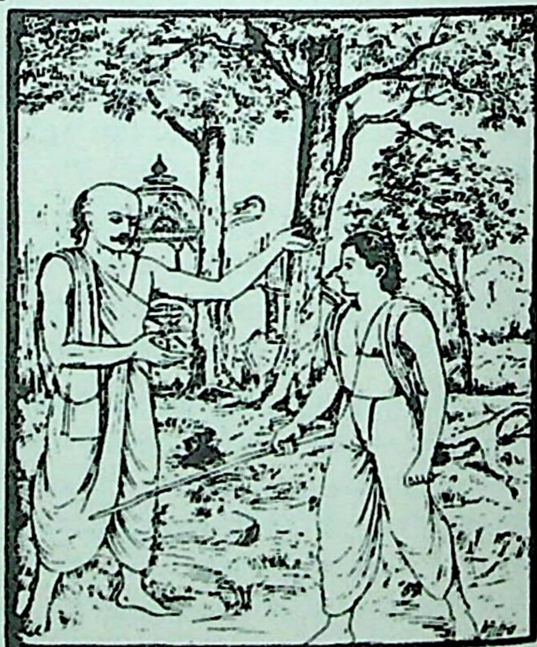
सौदासने कहा—विप्रवर! आप इच्छानुसार प्रश्न कीजिये, मैं आपकी बातका उत्तर दूँगा। आपके मनमें जो भी संदेह होगा, उसका निवारण करूँगा। इसमें मुझे कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

उत्तङ्कने कहा—राजन्! धर्मनिपुण विद्वानोंने उसीको ब्राह्मण कहा है जो अपनी वाणीका संयम करता हो—सत्यवादी हो। जो मित्रोंके साथ विषमताका बर्ताव करता है, उसे चोर माना गया है। आज आपके साथ मेरी मित्रता हो गयी है, इसलिये आप मुझे अच्छी सलाह दीजिये। बताइये, आप-जैसे पुरुषके पास मुझे फिर लौटकर आना चाहिये या नहीं?

सौदासने कहा—विप्रवर! यदि आप मुझसे उचित बात कहलाना चाहते हैं तो मेरा कहना यही है कि आप किसी तरह मेरे पास न आवें, इसीमें आपका कल्याण दिखायी देता है। यदि आयेंगे तो निःसन्देह आपकी मृत्यु हो जायगी।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार बुद्धिमान् राजा सौदासके मुखसे उचित और हितकी बात सुनकर उनकी आज्ञा ले उत्तङ्क मुनि अहल्याके पास चल दिये। गुरुपत्नीका प्रिय करनेके लिये दोनों दिव्य कुण्डल हस्तगत करके वे बड़े वेगसे गौतमके आश्रमकी ओर जा रहे थे। रानी मदयन्तीके कथनानुसार उन्हें उन कुण्डलोंकी रक्षाका भी ध्यान था, इसलिये वे उनको काले मृगछालेमें बाँधकर ले जा रहे थे। रास्तेमें एक स्थानपर उन्हें बड़े जोरकी भूख लगी। वहाँ पास ही फलोंके भारसे झुका हुआ एक बेलका वृक्ष दिखायी दिया। महर्षि उत्तङ्क उस वृक्षपर चढ़ गये और मृगछालाको उन्होंने उसकी एक शाखामें बाँध दिया। फिर बेल नीचे गिराने लगे। उस समय उनकी दृष्टि बेलोंपर ही लगी हुई थी (वे कहाँ गिरते हैं इसकी ओर उनका ध्यान नहीं था)। उनके तोड़े हुए प्रायः सभी बेल मृगछालापर ही, जिसमें दोनों कुण्डल बँधे हुए थे, गिरे। उनकी चोटसे बन्धन खुल गया और वह मृगछाला सहसा कुण्डलसहित वृक्षके नीचे जा गिरा। वहाँ ऐरावत-कुलमें उत्पन्न एक नाग पहलेसे मौजूद था। मृगछालाके अंदर रखे हुए उन मणिमय कुण्डलोंपर जब उसकी दृष्टि पड़ी तो उसने झपटकर उन्हें मुँहमें दबा लिया और एक वल्मीकमें घुसकर कुण्डलसहित गायब हो गया।

साँपके द्वारा कुण्डलोंकी चोरी होती देख उत्तङ्क मुनि उद्विग्न हो उठे और अत्यन्त क्रोधमें भरकर वृक्षसे कूद पड़े। नीचे आकर एक लकड़ीसे वे वल्मीकके अंदरकी बिल खोदने लगे। उनके मनमें तनिक भी घबड़ाहट नहीं हुई। लगातार पैंतीस दिनोंतक वे बिल खोदनेके कार्यमें जुटे रहे। उनके असह्य वेगको पृथ्वी भी न सह सकी। वह उनके दण्डकी चोटसे घायल एवं अत्यन्त व्याकुल होकर डगमगाने लगी। ब्रह्मर्षि उत्तङ्क नागलोकमें जानेका मार्ग बनानेके लिये निश्चय करके धरती खोदते ही जा रहे थे, यह देखकर महातेजस्वी इन्द्र घोड़े जुते हुए रथपर बैठकर हाथमें वज्र लिये हुए उस स्थानपर आये और विप्रवर उत्तङ्कसे मिले। इन्द्र उत्तङ्कके दुःखसे दुःखी थे, अतः ब्राह्मणका वेष बनाकर वे उनसे बोले—



'ब्रह्मन्! यह काम तुम्हारे वशका नहीं है। नागलोक यहाँसे हजारों योजन दूर है। इस काठके डंडेसे वहाँका रास्ता नहीं बनाया जा सकता। मेरी समझमें यह काम तुम्हारे लिये असाध्य है।'

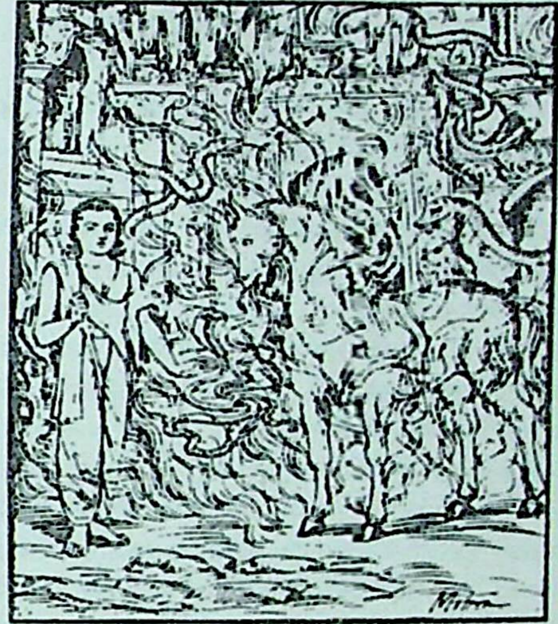
उत्तङ्कने कहा—ब्रह्मन्! यदि नागलोकमें जाकर उन कुण्डलोंको प्राप्त करना मेरे लिये असम्भव है तो मैं आपके सामने ही अभी अपने प्राण त्यागे देता हूँ।

वज्रधारी इन्द्र जब किसी तरह उत्तङ्कको अपने निश्चयसे हटा न सके तो उनके डंडेके अग्रभागमें अपने वज्रास्त्रको जोड़ दिया। उस वज्रके प्रहारसे पृथ्वी विदीर्ण हो गयी और नागलोकका रास्ता बन गया। उसके द्वारा नागलोकमें प्रवेश करके उन्होंने देखा कि वह लोक हजारों योजन विस्तृत है। उसके चारों ओर दिव्य मणि-मुक्ताओंसे अलंकृत अनेकों प्राकार हैं। वहाँ स्फटिक मणिकी बनी हुई सीढ़ियोंसे सुशोभित बावड़ियाँ, निर्मल जलवाली अनेकों नदियाँ और विहग-वृन्दसे शोभायमान बहुतेरे सुन्दर-सुन्दर वृक्ष हैं। नागलोकका बाहरी दरवाजा सौ योजन ऊँचा और पाँच योजन चौड़ा है। नागलोककी यह विशालता देखकर उत्तङ्क मुनि दीन (हतोत्साह) हो गये। अब उन्हें फिर कुण्डल पानेकी आशा न रही। इसी समय उनके पास एक घोड़ा आया, जिसकी पूँछके बाल सफेद और काले तथा आँख और मुँह लाल थे। वह अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहा था। उसने उत्तङ्कसे कहा—'बेटा! मेरे अपान-मार्ग (गुदा) में फूँक मारो। इससे तुम्हें कुण्डल मिल जायँगे। ऐरावतका पुत्र तुम्हारे कुण्डल चुराकर ले आया है। मेरी गुदामें फूँक मारनेसे तुम घृणा न करो; क्योंकि गौतमके आश्रममें रहते समय तुमने अनेकों बार ऐसा किया है।'

उत्तङ्कने पूछा—गुरुदेवके आश्रमपर मैंने कभी आपका दर्शन किया है, इस बातका ज्ञान मुझे कैसे हो? और आपके कथनानुसार वहाँ रहते समय पहले मैं जो काम अनेकों बार कर चुका हूँ वह क्या है? यह सुनना चाहता हूँ।

घोड़ेने कहा—ब्रह्मन्! मैं तुम्हारे गुरुका भी गुरु जातवेदा अग्नि हूँ। तुमने अपने गुरुके लिये सदा पवित्र रहकर विधिवत् मेरी पूजा की है, इसलिये मैं तुम्हारा कल्याण करूँगा। अब तुम मेरे बताये अनुसार कार्य करो। विलम्ब न करो।

अग्निदेवके ऐसा कहनेपर उत्तङ्कने उनकी आज्ञाका पालन किया। इससे प्रसन्न होकर वे नागलोकको भस्म करनेके लिये प्रज्वलित हो उठे। जिस समय ब्राह्मणने फूँक मारी, उसी समय उस अश्वरूपधारी अग्निके रोम-रोमसे जोर-जोरसे धुआँ उठने लगा, जो नागलोकको भयभीत करनेवाला था। वह धुआँ इतना बढ़ा कि वहाँ कुछ सूझ नहीं पड़ता था। ऐरावतके घरमें हाहाकार मच गया। वासुकि आदि मुख्य-मुख्य नागोंके घर धूमसे आच्छादित हो गये। उनमें अँधेरा छा गया। वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो कुहासासे ढके हुए पर्वत और वन हों।



धुँआ लगनेसे नागोंकी आँखें लाल हो गयीं और वे अग्निके तेजसे संतप्त होने लगे, अतः महामुनि उत्तङ्कका विचार जाननेके लिये सभी एकत्रित होकर उनके पास आये। उस समय उन अत्यन्त तेजस्वी महर्षिका दृढ़ निश्चय सुनकर उनकी आँखें भयसे कातर हो गयीं तथा सबने उनका विधिवत् पूजन किया। अन्तमें सभी नाग बूढ़े और बालकोंको आगे करके हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हुए बोले—'भगवन्! हमपर प्रसन्न हो जाइये (हम आपके कुण्डल लौटाये देते हैं)।' इस प्रकार ब्राह्मण देवताको प्रसन्न करके नागोंने उन्हें पाद्य और अर्घ्य निवेदन किया और वे दिव्य कुण्डल भी वापस कर दिये। तदनन्तर नागोंसे सम्मानित होकर उत्तङ्क मुनि अग्निदेवकी प्रदक्षिणा करके गुरुके आश्रमकी ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने गुरुपत्नीको वे दिव्य कुण्डल दे दिये और वासुकि आदि नागोंके यहाँ जो घटना घटी थी, वह सारा समाचार अपने गुरु महर्षि गौतमसे कह सुनाया। जनमेजय! इस प्रकार तीनों लोकोंमें घूमकर महात्मा उत्तङ्कने वे मणिमय दिव्य कुण्डल प्राप्त किये थे। वे ऐसे ही प्रभावशाली और महान् तपस्वी थे।

—★—

भगवान् श्रीकृष्णका द्वारकामें जाकर सबसे मिलना और वसुदेवजीके पूछनेपर महाभारत-युद्धका वृत्तान्त सुनाना

जनमेजयने कहा—विप्रवर! उत्तङ्कको वरदान देकर महान् यशस्वी भगवान् श्रीकृष्णने क्या किया?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! उत्तङ्कको वरदान देकर अपने शीघ्रगामी घोड़ोंके द्वारा वे सात्यकिके साथ फिर अपनी पुरीकी ओर ही चल दिये और मार्गमें अनेकों सरोवर, नदियाँ, वन तथा पर्वत लाँघकर परम रम्य द्वारका नगरीमें पहुँच गये। उस समय वहाँ रैवतक पर्वतपर कोई बड़ा भारी उत्सव मनाया जा रहा था। सात्यकिको साथ लिये भगवान् श्रीकृष्ण भी उस महोत्सवमें पधारे। उस समय रैवतक पर्वत नाना प्रकारके अद्भुत रत्नों, उनकी निधियों, सुन्दर सुवर्णकी मालाओं, भाँति-भाँतिके पुष्पों, वस्त्रों और कल्पवृक्षोंसे अलंकृत किया गया था। वृक्षके आकारमें सजाये हुए सोनेके दीप उस स्थानकी शोभाको और भी उद्दीप्त कर रहे थे। वहाँकी गुफाओं और झरनोंके स्थानोंमें दिनका-सा प्रकाश हो रहा था। वहाँ दीनों, अंधों और अनाथोंको निरन्तर दान दिया जाता था। इससे उस पर्वतका वह परम कल्याणमय उत्सव बड़ी शोभा पा रहा था। उस पर्वतपर पुण्यानुष्ठानके लिये अनेकों घर बने हुए थे, जिनमें पुण्यात्मा पुरुष निवास करते थे। उन पुण्य गृहोंके कारण रैवतक गिरिकी देवलोकके समान शोभा हो रही थी। भगवान् श्रीकृष्णके आ जानेसे तो वह इन्द्रभवनको भी मात करने लगा।

तदनन्तर, सबसे मिलकर और सबके द्वारा सम्मानित हो भगवान् श्रीकृष्ण और सात्यकि अपने-अपने भवनको गये। भगवान् बहुत दिनोंतक परदेशमें रहनेके बाद घर लौटे थे, इसलिये उनका चित्त बहुत प्रसन्न था। उस समय उनके पास भोज, वृष्णि और अन्धकवंशी वीर मिलनेके लिये गये। उन्होंने सबका आदर-सत्कार करके उनकी कुशल पूछी और प्रसन्नतापूर्वक अपने पिता-माताके चरणोंमें प्रणाम किया। उन दोनोंने उन्हें अपनी छातीसे लगा लिया और मीठे वचनोंसे सान्त्वना दी। इसके बाद सभी वृष्णिवंशी उनको घेरकर बैठ गये। महातेजस्वी श्रीकृष्ण जब हाथ-पैर धोकर विश्राम ले चुके तो पिताके पूछनेपर उन्होंने महाभारतकी सारी घटना उनसे कह सुनायी।

वसुदेवजीने पूछा—बेटा! मैं प्रतिदिन बात-चीतके प्रसंगमें लोगोंके मुँहसे सुनता रहा हूँ कि महाभारत-युद्ध बड़ा अद्भुत हुआ था; परंतु तुम तो उसे अपनी आँखों देख



आये हो और उसके स्वरूपसे भी भलीभाँति परिचित हो, इसलिये मुझसे उसका यथार्थ वर्णन करो। महात्मा पाण्डवोंका भीष्म, कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और शल्य आदिके साथ किस प्रकार युद्ध हुआ था? तथा दूसरे-दूसरे देशोंके रहनेवाले जो अस्त्रविद्यामें निपुण क्षत्रियवीर थे, उन्होंने किस तरह युद्ध किया था?

पिताके इस प्रकार पूछनेपर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी माताके सामने ही कौरव-वीरोंकी मृत्युसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनाने लगे।

श्रीकृष्णने कहा—पिताजी! महाभारत-युद्धमें काम आनेवाले क्षत्रिय महात्माओंके कर्म बड़े अद्भुत हैं। यदि विस्तारके साथ वर्णन किया जाय तो सौ वर्षोंमें भी उनकी समाप्ति नहीं हो सकती। इसलिये मैं थोड़ेमें मुख्य-मुख्य बातें बता रहा हूँ, उन्हें सुनिये। जैसे इन्द्र देवताओंकी सेनाके अधिनायक हैं, उसी प्रकार भीष्मजी कौरव-वीरोंके सेनापति बनाये गये थे। उनके अधीन ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी। पाण्डव-पक्षकी सात अक्षौहिणी सेनाके अधिनायक शिखण्डी थे। सव्यसाची अर्जुन उनकी रक्षामें रहा करते थे। कौरव और पाण्डवोंमें दस दिनोंतक बड़ा रोमाञ्चकारी युद्ध

हुआ। दसवें दिन शिखण्डीने अर्जुनकी सहायतासे भीष्मजीको अपने बहुत-से बाणोंका निशाना बनाया। उनसे घायल होकर भीष्मजी बाण-शय्यापर पड़ गये। जबतक दक्षिणायन रहा है, वे मुनि-व्रतका पालन करते हुए शर-शय्यापर सोते रहे हैं। उत्तरायण आनेपर ही उन्होंने मृत्यु स्वीकार की है।

भीष्मजीके घायल हो जानेके बाद अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ आचार्य द्रोण कौरव-पक्षके सेनापति बनाये गये। उस समय मरनेसे बची हुई नौ अक्षौहिणी सेना उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़ी थी। वे स्वयं तो युद्धका हौसला रखते ही थे, कृपाचार्य और कर्ण भी उनकी रक्षाके लिये सावधान रहते थे। इधर महान् अस्त्रवेत्ता धृष्टद्युम्न पाण्डव-सेनाके अधिनायक हुए और भीमसेन उनकी रक्षा करने लगे। पाण्डव-सेनासे घिरे हुए महामनस्वी वीर धृष्टद्युम्नने द्रोणके द्वारा अपने पिताके अपमानका स्मरण करके उन्हें मार डालनेके लिये युद्धमें बड़ा भारी पराक्रम दिखाया। धृष्टद्युम्न और द्रोणके उस भीषण संग्राममें नाना दिशाओंसे आये हुए वीर राजा अधिक संख्यामें मारे गये। उन दोनोंका वह दारुण युद्ध पाँच दिनोंतक चलता रहा। अन्तमें द्रोणाचार्य बहुत थक गये और धृष्टद्युम्नके हाथसे उनकी मृत्यु हो गयी।

द्रोणके मारे जानेपर दुर्योधनकी सेनाका नेतृत्व कर्णके हाथमें आया। वह मरनेसे बची हुई पाँच अक्षौहिणी सेनाओंसे घिरकर युद्धके मैदानमें खड़ा हुआ। उस समय पाण्डवोंके पास तीन अक्षौहिणी सेना शेष थी, जिसकी रक्षा अर्जुन कर रहे थे। कर्ण दो दिनतक युद्ध करता रहा और दूसरे दिन आगमें कूदकर जलनेवाले पतंगोंकी तरह अर्जुनसे भिड़कर मारा गया। कर्णकी मृत्युसे कौरवोंका उत्साह नष्ट हो गया। वे अपनी शक्ति खो बैठे और तीन अक्षौहिणी सेनाओंसे घिरे हुए मद्रराज शल्यको सेनापति बनाकर मैदानमें आये। पाण्डवोंके भी बहुत-से सैनिक और वाहन नष्ट हो गये थे। उनमें भी अब उत्साह नहीं रह गया था तो भी वे शेष बची हुई एक अक्षौहिणी सेनासे घिरे हुए युधिष्ठिरको आगे करके शल्यका सामना करनेके लिये बढ़े। कुरुराज युधिष्ठिरने दोपहर होते-होते अत्यन्त दुष्कर पराक्रम दिखाकर मद्रराज शल्यको मार गिराया।

शल्यके मारे जानेपर अमितपराक्रमी महामना सहदेवने कलहकी नींव डालनेवाले शकुनिको यमलोकका अतिथि बनाया। उसकी मृत्यु हो जानेपर राजा दुर्योधन बहुत दुःखी हो गया। उसके बहुत-से सैनिक युद्धमें काम आ चुके थे; इसलिये वह अकेला ही हाथमें गदा लेकर रणभूमिसे भाग निकला। इधर महाप्रतापी भीमसेन क्रोधमें भरकर उसका पीछा कर रहे थे। उन्होंने द्वैपायन नामक ह्रदमें पानीके भीतर छिपे हुए दुर्योधनका पता लगा लिया और मरनेसे बची हुई सेनाके द्वारा उसपर चारों ओरसे घेरा डाल दिया। फिर पाँचों पाण्डव बड़ी प्रसन्नताके साथ तालाबमें बैठे हुए दुर्योधनके पास जा पहुँचे। उस समय भीमसेनने उसे अपने वाग्बाणोंके द्वारा खूब पीड़ित किया। उनके कटु वचनोंसे व्यथित होकर वह पानीके बाहर निकल आया और हाथमें गदा ले युद्धके लिये तैयार हो गया। तब महाबली भीमसेनने सब राजाओंके देखते-देखते पराक्रम करके उसे मार डाला। तदनन्तर, जब पाण्डवोंकी सेना अपनी छावनीमें निश्चिन्त सो रही थी, उसी समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने अपने पिताके वधको न सह सकनेके कारण आक्रमण किया और सबको सोतेमें ही मार डाला। इस घमासानमें पाण्डवोंके पुत्र, सैनिक और मित्र सब कालके ग्रास बन गये। मेरे और सात्यकिके साथ केवल पाँच पाण्डव बचे हुए हैं। कौरवोंके पक्षमें कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा जीवित हैं। पाण्डवोंका आश्रय लेनेके कारण धृतराष्ट्र-पुत्र युयुत्सुकी भी जान बच गयी है। बन्धु-बान्धवोंसहित कौरवराज दुर्योधनके मारे जानेपर विदुर और सञ्जय धर्मराज युधिष्ठिरके आश्रयमें आ गये हैं। इस प्रकार वह युद्ध अठारह दिनोंतक जारी रहा है। उसमें जो राजा मारे गये हैं, उन्हें स्वर्गका निवास प्राप्त हुआ है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज! रोंगटे खड़े कर देनेवाली उस कथाको सुनकर वृष्णिवंशीलोग दुःख-शोकसे व्याकुल हो गये।

श्रीकृष्णका वसुदेवजीको अभिमन्यु-वधका हाल सुनाना और व्यासजीका उत्तरा तथा अर्जुनको समझाकर युधिष्ठिरको अश्वमेधयज्ञ करनेकी आज्ञा देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पिताके सामने महाभारत-युद्धका वृत्तान्त सुनाते समय महाबुद्धिमान् श्रीकृष्णने अभिमन्यु-वधके प्रसंगको जान-बूझकर छोड़ दिया। उन्होंने सोचा, पिताजी अपने नातीकी मृत्युका महान् अमङ्गलजनक समाचार सुनकर कहीं दुःख-शोकमें डूब न जायँ, इनका अनिष्ट न हो जाय, इसीसे वह प्रसंग नहीं

सुनाया; किंतु सुभद्राने जब देखा कि मेरे पुत्रके निधनका समाचार इन्होंने नहीं बताया तो उसने याद दिलाते हुए कहा—'भैया ! मेरे अभिमन्युके वधकी बात भी तो बता दो।' इतना कहकर वह मूर्च्छित हो जमीनपर गिर पड़ी। अपने नाती अभिमन्युके मरनेका समाचार जानकर वसुदेवजी भी दुःख और शोकसे व्याकुल हो उठे। उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा—'बेटा ! तुम मेरे दौहित्रके मरनेका हाल क्यों नहीं बताते ? उसकी आँखें तुम्हारेही-जैसी सुन्दर थीं। हाय ! तुम्हारे रहते हुए वह शत्रुओंके हाथसे कैसे मारा गया ? जान पड़ता है समय पूरा होनेके पहले मनुष्यके लिये मरना बहुत ही कठिन होता है। तभी तो यह दारुण समाचार सुनकर भी दुःखसे मेरे हृदयके सैकड़ों टुकड़े नहीं हो जाते। कहीं युद्धसे पीठ दिखाकर तो वह नहीं मारा गया ? मरते समय उसका मुख भयसे विकृत तो नहीं हो गया था ? कृष्ण ! वह महान् तेजस्वी बालक अपने बाल-स्वभावके अनुसार मेरे सामने विनीतभावसे अपनी वीरताकी प्रशंसा किया करता था। द्रोण, भीष्म और महाबली कर्णके साथ लोहा लेनेका हौसला रखता था। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि द्रोण, कर्ण और कृपाचार्य आदिने मिलकर उस बालकको कपटपूर्वक मार डाला हो ?'

जनमेजय ! इस प्रकार अत्यन्त दुःखित होकर जब वसुदेवजी नाना प्रकारसे विलाप करने लगे तो उनकी अवस्था देखकर श्रीकृष्णको बड़ा दुःख हुआ। वे सान्त्वना देते हुए कहने लगे—'पिताजी ! अभिमन्युने संग्राममें आगे रहकर लोहा लिया और कभी भी अपना मुख विकृत नहीं किया। उस दुस्तर युद्धमें उसने कभी पीठ नहीं दिखायी। लाखों राजाओंके समूहको मौतके घाट उतारकर वह द्रोण और कर्णका सामना करने लगा। उन दोनोंसे लड़ते-लड़ते जब बहुत थक गया, तब दुःशासनके पुत्रने उसके ऊपर विजय पायी। वह अकेला ही व्यूहमें लड़ रहा था। यदि निरन्तर उसे एक-एक वीरके ही साथ लोहा लेना पड़ता तो वज्रधारी इन्द्र भी उसको मार नहीं सकते थे, किंतु वहाँ तो बात ही दूसरी हो गयी। अर्जुन संशप्तकोंके साथ युद्ध करते हुए रणभूमिसे बहुत दूर हट गये थे। इस अवसरसे लाभ उठाकर उस क्रोधमें भरे हुए बालकको द्रोणाचार्य आदि कई वीरोंने मिलकर चारों ओरसे घेर लिया। तथापि वह शत्रुओंका बड़ा भारी संहार करके दुःशासनकुमारके हाथसे मारा गया। महामते ! अभिमन्युको निश्चय ही स्वर्गलोककी प्राप्ति हुई है, अतः आप उसके लिये शोक न कीजिये। पवित्र बुद्धिवाले साधुपुरुष संकटमें पड़नेपर भी शोकसे अधीर नहीं होते। जिसने इन्द्रके समान पराक्रमी द्रोण, कर्ण आदि वीरोंका युद्धमें डटकर मुकाबला किया, उसे स्वर्गकी प्राप्ति क्यों नहीं होगी ? इसलिये आप शोक त्याग दीजिये। शत्रुओंके नगरोंपर विजय पानेवाला वीरवर अभिमन्यु शस्त्राघातसे पवित्र हुई उत्तम गतिको प्राप्त हुआ है। उसके मरनेपर यह मेरी बहिन सुभद्रा जब दुःखसे व्याकुल होकर कुररीकी भाँति विलाप करने लगी तो कुन्तीने शनैः-शनैः इसे समझाते हुए कहा—'सुभद्रे ! श्रीकृष्ण, सात्यकि और अर्जुनका लाड़ला अभिमन्यु कालकी प्रेरणासे ही युद्धमें मारा गया है। मृत्युलोकमें जन्म लेनेवाले मनुष्योंका धर्म ही ऐसा है—उन्हें एक-न-एक दिन मृत्युके वशमें होना ही पड़ता है, इसलिये शोक न करो। यदुनन्दिनि ! तुम्हारा दुर्जय पुत्र परम उत्तम गतिको प्राप्त हुआ है। बेटी ! तुम महात्मा क्षत्रियोंके उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई हो, अतः शोक त्याग दो। तुम्हारी पुत्रवधू उत्तरा गर्भवती है। इसकी ओर देखकर चिन्ता छोड़ दो। यह शीघ्र ही अभिमन्युके पुत्रको जन्म देनेवाली है।' इस प्रकार इसे समझा-बुझाकर कुन्तीने अभिमन्युके श्राद्धकी तैयारी करायी। उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन और नकुल-सहदेवको आज्ञा देकर नाना प्रकारके दान करवाये, तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको बहुत-सी गौएँ दान देकर विराटकुमारी उत्तरासे कहा—'बेटी ! अब तुम अपने पतिके लिये अधिक शोक न करो।' अपने गर्भके बालककी रक्षापर ध्यान दो।' यों कहकर कुन्तीदेवी चुप हो गयीं। इस समय उनकी आज्ञासे ही मैं सुभद्राको अपने साथ ले आया हूँ। पिताजी ! इस प्रकार आपके नातीकी मृत्यु हुई है। अब आप उसके लिये मनमें शोक-संताप न कीजिये।'

अपने पुत्र श्रीकृष्णकी बात सुनकर धर्मात्मा वसुदेवजीने शोक छोड़कर उत्तम विधिके अनुसार उसका श्राद्ध किया। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने भी अपने भानजेकी श्राद्ध-क्रिया पूरी की। उन्होंने साठ लाख तेजस्वी ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक उत्तम अन्न भोजन कराया और उन्हें वस्त्र पहनाकर इतना धन दिया, जिससे उनकी धनविषयक तृष्णा दूर हो गयी। उस समय ब्राह्मणोंको हर्षसे रोमाञ्च हो आया। वे सुवर्ण, गौ, शय्या और वस्त्रका दान पाकर अभ्युदय होनेका आशीर्वाद देने लगे। श्रीकृष्णके साथ ही बलभद्र, सात्यकि और सत्यकने भी अभिमन्युका श्राद्ध किया।

उधर, हस्तिनापुरमें विराटकुमारी उत्तराने पति-वियोगके दुःखसे पीड़ित होकर बहुत दिनोंतक खाना-पीना छोड़ दिया, इससे सब लोगोंको बड़ा कष्ट हुआ। उसके गर्भका बालक उदरमें पड़ा-पड़ा क्षीण होने लगा। उसकी इस अवस्थाको दिव्य-दृष्टिसे जानकर महर्षि व्यास वहाँ आये और कुन्ती तथा उत्तरासे मिलकर बोले—'बेटी उत्तरा ! यह शोक छोड़ो,

तुम्हारा पुत्र महान् तेजस्वी होगा। भगवान् श्रीकृष्णके प्रभाव तथा मेरे आशीर्वादसे वह पाण्डवोंके बाद सम्पूर्ण पृथ्वीका पालन करेगा।' तत्पश्चात्! व्यासजीने धर्मराज युधिष्ठिरको सुनाते हुए अर्जुनकी ओर देखकर कहा—'धनञ्जय! तुम्हारे शीघ्र ही पौत्र होनेवाला है, वह बड़ा सौभाग्यशाली और महामनस्वी होगा। समुद्रपर्यन्त समूची पृथ्वीका वह धर्मके अनुसार पालन करेगा, इसलिये तुम अभिमन्युका शोक छोड़ दो। इस विषयमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। मेरा यह कथन सत्य होगा। वृष्णिवंशके वीर पुरुष भगवान् श्रीकृष्णने पहले जो कुछ कहा है, वह सब वैसा ही होगा। अभिमन्यु अपने पराक्रमसे उपार्जित किये हुए देवताओंके अक्षय लोकोंमें गया है। तुम्हें या अन्य कुरुवंशियोंको उस वीरके लिये शोक नहीं करना चाहिये।'



अपने पितामह व्यासजीके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर धर्मात्मा अर्जुनने शोक त्याग दिया। जनमेजय! उस समय तुम्हारे पिता परीक्षित् उत्तराके गर्भमें शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति वृद्धि पाने लगे। तदनन्तर, व्यासजीने धर्मराज युधिष्ठिरको अश्वमेधयज्ञ करनेकी आज्ञा दी और स्वयं वहाँसे अन्तर्धान हो गये। व्यासजीकी बात सुनकर परम बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने भी हिमालयसे धन ले आनेका विचार किया।



भाइयोंके साथ युधिष्ठिरका हिमालयपर जाना और वहाँसे सुवर्णराशि लेकर लौटना

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! महात्मा व्यासजीकी कही हुई बात सुनकर राजा युधिष्ठिरने अश्वमेधयज्ञके सम्बन्धमें क्या किया? राजा मरुत्तने जो सुवर्णमय रत्न-राशि पृथ्वी-तलपर छोड़ रखी थी, उसे उन्होंने किस प्रकार प्राप्त किया?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! महर्षि व्यासजीकी बातें सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव—इन सभी भाइयोंको बुलाकर कहा—'बन्धुओ! महात्मा व्यासजी, अद्भुत पराक्रमी भीष्म तथा परम बुद्धिमान् श्रीकृष्णने सौहार्दवश जो बातें बतायी हैं, वे सब तुमलोगोंने सुन ही ली हैं। अब मैं उनके अनुसार कार्य आरम्भ करना चाहता हूँ। ऐसा करनेसे वर्तमान और भविष्यकालमें भी हम सब लोगोंका हित होगा। व्यासजी ब्रह्मवादी महात्मा हैं, अतः उनकी बात परिणाममें हमारा कल्याण करनेवाली है। इस समय यह सारी पृथ्वी रत्न और धनसे हीन हो गयी है। अतः हमारी आर्थिक कठिनाई दूर करनेके लिये व्यासजीने हमें मरुत्तके धनका पता बताया है। यदि तुमलोग उस धनको पर्याप्त समझो और उसे ले आनेकी अपनेमें सामर्थ्य देखो तो व्यासजीकी आज्ञा मानकर धर्मतः उसे प्राप्त करनेका यत्न करो अथवा भीमसेन! तुम बोलो, तुम्हारा इस सम्बन्धमें क्या विचार है?'

राजाके ऐसा कहनेपर भीमसेन हाथ जोड़कर बोले—'महाबाहो! आपने व्यासजीके बताये हुए धनको लानेके विषयमें जो कुछ कहा है, वह मुझे बहुत पसंद है। महाराज! यदि हमे मरुत्तका धन प्राप्त हो जाय तो हमारा सारा काम ही बन जाय। हमलोग भगवान् शंकरको प्रणाम करके उस धनको ले आवेंगे। देवाधिदेव महादेव तथा उनके अनुचरोंकी पूजा करके मन, वाणी और क्रियाके द्वारा उन्हें प्रसन्न करेंगे। फिर हमें निश्चय ही उस धनकी प्राप्ति होगी। विकट आकार धारण करनेवाले जो किन्नर उसकी रक्षामें नियुक्त हैं, वे भी भगवान् शंकरके प्रसन्न होनेपर हमारे अधीन हो जायँगे।'

भीमका कथन सुनकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको बड़ी प्रसन्नता हुई। अर्जुन, नकुल और सहदेवने भी उनकी बातका समर्थन किया। तदनन्तर, सभी पाण्डवोंने रत्न लानेका निश्चय करके शुभ दिन एवं ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रमें सेनाको यात्राके

लिये तैयार होनेकी आज्ञा दी। फिर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर देवश्रेष्ठ महेश्वरकी पूजा करके वे स्वयं भी प्रसन्नताके साथ चलनेको उद्यत हुए। उनकी यात्राके समय नगरनिवासी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने प्रसन्नचित्तसे मङ्गल-पाठ किया। इसके बाद पाण्डवोंने अग्निसहित ब्राह्मणोंको प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की, गान्धारीसहित राजा धृतराष्ट्र और कुन्तीसे आज्ञा ली तथा धृतराष्ट्र-पुत्र युयुत्सुको राजधानीकी रक्षाके लिये छोड़कर स्वयं बाहर प्रस्थान किया। मार्गमें बहुत-से मनुष्य प्रसन्न होकर राजा युधिष्ठिरको विजयसूचक आशीर्वाद देते और वे उन्हें यथोचितरूपसे स्वीकार करते थे। राजाके पीछे-पीछे बहुत-से सैनिक चल रहे थे। उनके कोलाहलसे सारा आकाश गूँज उठता था। अनेकों सरोवरों, नदियों, वनों और उपवनोंको लाँघकर महाराज युधिष्ठिर उस पर्वतके पास जा पहुँचे, जहाँ राजा मरुत्तका रखा हुआ उत्तम द्रव्य संचित था। वहाँ समतल एवं सुखद स्थान देखकर राजाने तप, विद्या और इन्द्रिय-संयमसे युक्त ब्राह्मणों एवं वेद-वेदाङ्गके पारगामी विद्वान् राजपुरोहित धौम्य मुनिको आगे रखकर सैनिकोंके साथ पड़ाव डाला। तत्पश्चात् ब्राह्मणों और पुरोहितसहित समस्त क्षत्रियोंने विधिपूर्वक शान्तिपाठ किया और राजा तथा उनके मन्त्रियोंको बीचमें रखकर स्वयं चारों ओरसे उन्हें घेरकर निवास किया। ब्राह्मणोंने छः मार्ग और नौ चौकवाली छावनी बनवायी थी तथा उन्होंने (छावनीसे अलग) मतवाले गजराजोंके रहनके लिये भी स्थानका विधिवत् प्रबन्ध किया था। यह सब व्यवस्था करा लेनेके बाद राजा युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंसे कहा—'द्विजेन्द्रगण! इस कार्यके लिये कोई शुभ दिन और शुभ नक्षत्र देखकर आपलोग जैसा उचित समझें वैसा करें।' राजाकी बात सुनकर उनका प्रिय करनेकी इच्छावाले पुरोहित और ब्राह्मण बोले—'राजन्! आज ही परम पवित्र नक्षत्र और शुभ दिन है; अतः आजसे ही हमें शुभ कार्यकी सिद्धिका प्रयत्न करना चाहिये। हमलोग तो आज केवल जल पीकर रहेंगे और आपको भी अपने भाइयोंसहित आज उपवास करना चाहिये।' ब्राह्मणोंका वचन सुनकर सभी पाण्डवोंने रातमें उपवास किया और कुशके आसनोंपर बैठकर श्रद्धाके साथ ब्राह्मणोंकी बातें सुनते हुए रात्रि व्यतीत की। तत्पश्चात् जब निर्मल प्रभातका उदय हुआ तो उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिरसे कहा—'राजन्! अब आप भगवान् शंकरकी पूजा चढ़ाइये, उन्हें नैवेद्य अर्पण करके हमें अपने कार्यके लिये उद्योग करना चाहिये।'

ब्राह्मणोंकी आज्ञा पाकर राजा युधिष्ठिरने पहले शास्त्रीय विधिके अनुसार भगवान् शिवको नैवेद्य अर्पण किया। तत्पश्चात् उनके पुरोहित शिवके पार्षदोंको, यक्षराज कुबेरको, मणिभद्रको तथा अन्यान्य यक्षों एवं भूतोंके अधिपतियोंको खिचड़ी, तिलमिश्रित जल और भात घड़ोंमें भरकर भेंट किये। तदनन्तर, राजाने ब्राह्मणोंको हजारों गौएँ दान कीं। देवाधिदेव महादेवजीका वह स्थान धूपोंकी सुगन्धसे परिपूर्ण और फूलोंसे अलंकृत होकर बड़ा ही मनोरम जान पड़ता था। इस प्रकार भगवान् शिव और उनके पार्षदोंकी पूजा करके महर्षि व्यासको आगे लिये राजा युधिष्ठिर उस स्थानको गये, जहाँ वह सुवर्णराशि संचित थी। वहाँ उन्होंने भाँति-भाँतिके फूल, मालपूआ तथा खिंचड़ी आदिके द्वारा धनपति कुबेरकी पूजा करके उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उन्हीं सामग्रियोंसे शङ्ख आदि निधियों और समस्त निधिपालोंका पूजन करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्तिवाचन कराया।

ब्राह्मणोंके पुण्याह-घोषसे महान् तेजको प्राप्त होकर राजा युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उस धनको खुदवाना आरम्भ किया। थोड़ी ही देरमें सोनेके बने हुए अनेकों प्रकारके सुन्दर-सुन्दर कठौते, सुराही, गडुआ, कड़ाह, कलश, कटोरे तथा और भी विचित्र-विचित्र ढंगके हजारों बर्तन निकल आये। उनको रखनेके लिये बड़ी-बड़ी संदूकें लायी गयी थीं। एक-एक संदूकमें बंद किये हुए बर्तनोंका बोझ आधा-आधा भार होता था। उन सबको ढोनेके लिये राजाके साथ बहुत-सी सवारियाँ भी आयी थीं। साठ हजार



ऊँट, एक करोड़ बीस लाख घोड़े, एक लाख हाथी, एक लाख रथ, एक लाख छकड़े और उतनी ही हथिनियाँ थीं। गधों और मनुष्योंकी तो गिनती ही नहीं थी। युधिष्ठिरने वहाँ जितना धन खुदवाया था, उसका अनुमान इस प्रकार लगाया जा सकता है। उन्होंने प्रत्येक ऊँटपर आठ हजार, प्रत्येक छकड़ेपर सोलह हजार और प्रत्येक हाथीपर चौबीस हजार सुवर्णका भार लादा था। (इसी प्रकार घोड़ों, गदहों और मनुष्योंपर यथासम्भव भार रखवाया था।) इन सब वाहनोंपर धन लदवाकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने पुनः महादेवजीका पूजन किया और व्यासजीकी आज्ञा लेकर पुरोहित धौम्य मुनिको आगे करके हस्तिनापुरको प्रस्थान किया। वे (वाहनोंपर बोझ अधिक होनेके कारण) दो-दो कोसपर मुकाम देते जाते थे। द्रव्यके भारसे कष्ट पाती हुई वह विशाल सेना पाण्डवोंका हर्ष बढ़ाती हुई बड़ी कठिनाईसे नगरकी ओर बढ़ रही थी।



श्रीकृष्णका हस्तिनापुरमें आना और उत्तराके मृत बालकको जिलानेके लिये कुन्ती आदिकी उनसे प्रार्थना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इसी बीचमें भगवान् श्रीकृष्ण भी वृष्णिवंशियोंको साथ लेकर हस्तिनापुर आ गये। उनके द्वारका जाते समय धर्मपुत्र युधिष्ठिरने जैसी बात कही थी, उसके अनुसार अश्वमेध-यज्ञका समय निकट जानकर वे पहलेसे ही उपस्थित हो गये। भगवान्‌के साथ रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न, सात्यकि, चारुदेष्ण, साम्ब, गद, कृतवर्मा, सारण, निशठ, उल्मुक, बलदेवजी तथा जिनके पति युद्धमें मारे गये थे, उन अनाथ क्षत्राणियोंको ढाढ़स बँधानेके लिये आये थे। इनके आनेका समाचार पाकर राजा धृतराष्ट्र तथा महामना विदुरजीने आगे बढ़कर विधिवत् स्वागत किया। महान् तेजस्वी पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण अपने बन्धु-बान्धवोंसहित वहाँ युयुत्सु और विदुरजीके साथ रहने लगे। जनमेजय! वृष्णिवंशियोंके हस्तिनापुरमें रहते समय ही तुम्हारे पिता राजा परीक्षित्‌का जन्म हुआ। वे ब्रह्मास्त्रसे पीड़ित होनेके कारण चेष्टाहीन मुर्देके रूपमें उत्पन्न हुए थे। पहले तो पुत्र-जन्मके समाचारसे सबको अपार हर्ष हुआ, किंतु उसमें जीवनका कोई चिह्न न देखकर तत्काल शोकका समुद्र उमड़ पड़ा।

श्रीकृष्णने जब यह हाल सुना तो वे सात्यकिको साथ लिये तुरंत अन्तःपुरमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपनी बुआ कुन्तीको बड़े वेगसे आती देखा, जो बारंबार उन्हींका नाम लेकर 'दौड़ो, दौड़ो' की पुकार मचा रही थीं। उनके पीछे द्रौपदी, सुभद्रा तथा अन्य बन्धु-बान्धवोंकी स्त्रियाँ भी थीं, जो बड़े करुण स्वरसे बिलख-बिलखकर रो रही थीं। श्रीकृष्णके निकट पहुँचते ही कुन्तीकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी। वे गद्‌गद वाणीमें बोलीं—'वासुदेव! तुमको पाकर ही तुम्हारी माता देवकी उत्तम पुत्रवाली मानी जाती हैं। तुम्हीं हमारे अवलम्बन और तुम्हीं हमलोगोंके आधार हो। हमारे इस कुलकी रक्षाका भार तुम्हारे ही ऊपर है। देखो, यह तुम्हारे भानजे अभिमन्युका बालक है, जो अश्वत्थामाके प्रयत्नसे मरा हुआ ही उत्पन्न हुआ है। केशव! इसको जीवन-दान दो। अश्वत्थामाने जब सींकके बाणका प्रयोग किया था, उस समय तुमने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं उत्तराके मरे हुए बालकको भी जीवित कर दूँगा। बेटा! यही वह बालक है, जो मरा हुआ ही पैदा हुआ है; इसके ऊपर दृष्टि डालो। इसे जीवित करके उत्तरा, सुभद्रा और द्रौपदीसहित मेरी रक्षा करो। युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेवके भी प्राण बचाओ। मेरे और पाण्डवोंके प्राण इस बालकके ही अधीन हैं। मेरे पति तथा श्वशुरके पिण्डका भी यही सहारा है। इसे जीवन देकर परलोकवासी अभिमन्युका भी प्रिय करो। श्रीकृष्ण! मेरी बहूरानी उत्तरा अभिमन्युकी पहलेकी कही हुई एक बात, अत्यन्त प्रिय होनेके कारण, बार-बार दुहराया करती है। अभिमन्युने कभी उत्तरासे स्नेहवश कहा था—'कल्याणी! तुम्हारा पुत्र मेरे मामाके यहाँ—वृष्णि एवं अन्धकोंके कुलमें जाकर धनुर्वेद, नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र तथा सम्पूर्ण नीतिशास्त्रकी शिक्षा प्राप्त करेगा।' सुभद्राकुमारीकी कही हुई यह बात निःसंदेह सत्य होनी चाहिये। मधुसूदन! इस कुलकी भलाईके लिये हम सब तुम्हारे पैरों पड़कर भीख माँगती हैं; इस बालकको जिलाकर कुरुवंशका कल्याण करो।'

यों कहकर कुन्तीदेवी दुःखसे व्याकुल हो जमीनपर गिर पड़ीं। तब श्रीकृष्णने उन्हें सहारा देकर बिठाया और सान्त्वनापूर्ण वचनोंसे धैर्य बँधाने लगे। कुन्तीके बैठ जानेपर सुभद्रा अपने भाई श्रीकृष्णकी ओर देख फूट-फूटकर रोने लगी और दुःखसे आर्त होकर बोली—'भैया! अपने सखा पार्थके इस पौत्रकी दशा तो देखो। अभिमन्युका बेटा जन्म

लेनेके साथ ही मर गया—इस बातको सुनकर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर क्या कहेंगे ? भीमसेन, अर्जुन और नकुल-सहदेव भी क्या सोचेंगे ? आज द्रोणपुत्रने पाण्डवोंका सर्वस्व लूट लिया। श्रीकृष्ण ! इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि अभिमन्यु पाँचों भाइयोंका प्यारा था। उसके पुत्रकी यह हालत सुनकर अश्वत्थामाके अस्त्रसे पराजित हुए पाण्डव क्या कहेंगे ? अभिमन्युका पुत्र मरा हुआ उत्पन्न हो, इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है ? भैया ! मैं तुम्हारे चरणोंमें पड़कर तुम्हें प्रसन्न करना चाहती हूँ। कुन्ती और द्रौपदी भी तुम्हारे पैरोंपर पड़ी हुई हैं। इन सबकी ओर देखो। जब द्रोणपुत्र अश्वत्थामा पाण्डवोंके गर्भकी हत्याका प्रयत्न कर रहा था, उस समय तुमने क्रोधमें भरकर उससे कहा था—'ब्राह्मणाधम ! तेरी इच्छा पूर्ण नहीं होने पायेगी। मैं अर्जुनके पौत्रको अपने प्रभावसे जीवित कर दूँगा'—यह बात मैं सुन चुकी हूँ और तुम्हारे बलको भी मैं अच्छी तरह जानती हूँ। इसलिये चाहती हूँ कि तुम प्रसन्न हो जाओ, जिससे अभिमन्युके पुत्रको जीवन मिले। यदि प्रतिज्ञा करके भी तुम अपना वचन पूरा नहीं करोगे तो निश्चय जानो मैं प्राण दे दूँगी। यदि तुम्हारे जीते-जी अभिमन्युके बालकको जीवन-दान न मिला तो तुम मेरे किस काम आओगे ? जैसे बादल पानी बरसाकर सूखी खेतीको भी हरी-भरी कर देता है, उसी प्रकार तुम अभिमन्युके मरे हुए बालकको जीवित कर दो। केशव ! तुम धर्मात्मा, सत्यवादी और सत्यपराक्रमी हो, अतः तुम्हें अपनी कही हुई वह बात अवश्य पूरी करनी चाहिये। श्रीकृष्ण ! तुम चाहो तो मृत्युके मुखमें पड़े हुए तीनों लोकोंको जिला सकते हो। फिर अपने भानजेके इस प्यारे पुत्रको जीवित करना तुम्हारे लिये कौन बड़ी बात है ? मैं तुम्हारे प्रभावको जानती हूँ। इसीलिये प्रार्थना करती हूँ कि पाण्डवोंपर अनुग्रह करो। भैया ! तुम्हारी बड़ी बाँह है। तुम यह समझकर कि यह मेरी बहन है अथवा जिसका बेटा मारा गया है वह दुःखिया माँ है या शरणमें आयी हुई एक असहाय अबला है, मेरे ऊपर दया करो।'



उत्तराकी विलापपूर्ण प्रार्थना और श्रीकृष्णका परीक्षित्‌को जीवित कर देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! सुभद्राके ऐसा कहनेपर भगवान्‌ने उसे प्रसन्न करते हुए कहा—'अच्छा, ऐसा ही करूँगा।' जैसे धूपसे तपे हुए मनुष्यको जलसे नहा लेनेपर शान्ति मिल जाती है उसी प्रकार भगवान् कृष्णका यह अमृतमय वचन सुनकर अन्तःपुरकी स्त्रियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। तदनन्तर श्रीकृष्ण तुरंत ही तुम्हारे पिताके जन्मस्थान-सूतिकागारमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि वह घर सफेद फूलोंकी मालाओंसे विधिपूर्वक सजाया गया है। उसके चारों ओर जलसे भरे हुए कलश रखे गये हैं। तिन्दुक नामक काष्ठकी आग जल रही है, जिसमें घीकी आहुति की गयी है। यत्र-तत्र सरसों बिखेरे हुए हैं। चमकते हुए तेज हथियार रखे हुए हैं और सब ओर आग प्रज्वलित की गयी है। सेवाके लिये बूढ़ी और युवती स्त्रियाँ मौजूद हैं तथा अपने-अपने कार्यमें कुशल चतुर चिकित्सकगण भी विराजमान हैं। इन सबके अतिरिक्त राक्षसोंके भयका निवारण करनेवाले द्रव्योंका भी वहाँ संग्रह किया गया था। इस प्रकार सूतिकागृहको आवश्यक सामग्रियोंसे सम्पन्न देख भगवान् श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और साधुवाद देते हुए उस प्रबन्धकी प्रशंसा करने लगे।

इसी समय द्रौपदी बड़ी तेजीके साथ उत्तराके पास जाकर बोली—'कल्याणी ! यह देखो, तुम्हारे श्वशुरतुल्य अचिन्त्यात्मा, अपराजित एवं पुरातन ऋषि भगवान् मधुसूदन तुम्हारे पास आ रहे हैं।' यह सुनकर उत्तराने अपने आँसुओंको रोककर सारा शरीर वस्त्रोंसे ढक लिया। श्रीकृष्णके प्रति उसकी भगवद्-बुद्धि थी, इसलिये उन्हें आते देख वह तपस्विनी बाला व्यथित हृदयसे करुण विलाप करती हुई गद्गद कण्ठसे बोली—'जनार्दन ! देखिये, आज मैं और मेरे पति दोनों ही संतानहीन हो गये। अभिमन्यु तो पहलेसे ही मृत्युको प्राप्त हो चुके हैं, अब मुझे भी पुत्रशोकसे मरी हुई ही समझिये। मधुसूदन ! आपके चरणोंमें मस्तक रखकर मैं प्रार्थना करती हूँ कि मुझपर प्रसन्न हो जाइये और अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे दग्ध हुए मेरे बेटेको जिला दीजिये। हाय ! इस गर्भके बालकको ब्रह्मास्त्रसे मार डालनेका क्रूरतापूर्ण कर्म करके न जाने दुर्बुद्धि अश्वत्थामाने क्या लाभ उठाया है ? भगवन् ! मैं आपके पैरों पड़कर इस बालकके प्राणोंकी भीख माँगती हूँ। यदि यह जीवित नहीं हुआ तो मैं भी अपने प्राण त्याग दूँगी। इसको लेकर मैंने बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध रखी थीं; किंतु द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने उन सबपर पानी फेर दिया। अब मेरे जीनेका क्या प्रयोजन है ? मेरी बड़ी साध थी कि अपने बच्चेको गोदमें लेकर आपके चरणोंमें प्रणाम करूँ, किंतु अब वह व्यर्थ हो गयी। मधुसूदन, चञ्चल नेत्रोंवाले अभिमन्युपर आपका बड़ा प्रेम था, उन्हींका

बेटा आज ब्रह्मास्त्रकी मारसे मरा पड़ा है; इसे भर आँख देख लीजिये। मैंने अपने पतिके सामने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'वीरवर ! संग्रामभूमिमें यदि आप मारे जायँगे तो मैं भी शीघ्र ही शरीर त्यागकर आपका अनुसरण करूँगी।' परंतु मैं इतनी कठोरहदया और जीवनका मोह करनेवाली निकली कि अपनी की हुई प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सकी। इस समय जब मैं देह त्यागकर उनके पास जाऊँगी तो वे मुझे क्या कहेंगे ?'

इस प्रकार तपस्विनी उत्तरा पुत्र-शोकसे उन्मादिनी-सी होकर करुण स्वरसे विलाप करती हुई भूमिपर गिर पड़ी और बेहोश हो गयी। थोड़ी देर बाद जब होशमें आयी तो उस मरे हुए बालकको गोदमें लेकर कहने लगी—'बेटा ! तू तो धर्मज्ञ पिताका पुत्र है, फिर वृष्णिवंशके श्रेष्ठ वीर भगवान् श्रीकृष्णको सामने देखकर भी तू प्रणाम क्यों नहीं करता ? उठकर खड़ा हो जा और कमलके समान नेत्रोंवाले जगदीश्वर श्रीकृष्णके मुखकी शोभा निहार। ठीक उसी तरह, जैसे पहले मैं चञ्चल नेत्रोंवाले तेरे पिताका मुँह निहारा करती थी।' इस प्रकार विलाप करती हुई मत्स्यराजकुमारी उत्तराने हाथ जोड़कर भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया। उसका महान् विलाप सुनकर श्रीकृष्णने आचमन किया और अश्वत्थामाके चलाये हुए ब्रह्मास्त्रको शान्त कर दिया। तत्पश्चात् बालकको जिलानेकी प्रतिज्ञा करके वे सम्पूर्ण जगत्‌को सुनाते हुए उत्तरासे बोले—'बेटी ! मैं झूठ नहीं बोलता, मैंने जो प्रतिज्ञा की है, वह अवश्य सत्य होगी, देखो, मैं सबके देखते-देखते अभी इस बालकको जिलाये देता हूँ। मैंने खेल-कूदमें भी कभी मिथ्या-भाषण नहीं किया है और युद्धमें पीठ नहीं दिखायी है। इस सत्यके प्रभावसे अभिमन्युका यह बालक जीवित हो जाय। यदि धर्म और ब्राह्मण मुझे विशेष प्रिय हों तो अभिमन्युका यह पुत्र, जो पैदा होते ही मर गया था, पुनः जीवन-लाभ करे। यदि मुझमें सत्य और धर्मकी निरन्तर स्थिति बनी रहती हो तो अभिमन्युका यह मरा हुआ बालक जी उठे। यदि कंस और केशीका मैंने धर्मके अनुसार वध किया हो तो इस सत्यके प्रभावसे इस बालकके शरीरमें पुनः प्राण आ जायँ।'

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर उस बालकमें चेतना आ गयी और वह धीरे-धीरे साँस लेने लगा।



श्रीकृष्णद्वारा परीक्षित्‌का नामकरण, पाण्डवोंका हस्तिनापुरमें पहुँचना तथा व्यास और श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको यज्ञ आरम्भ करनेकी आज्ञा देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! भगवान् श्रीकृष्णने जब ब्रह्मास्त्रको पीछे लौटा दिया, उस समय सूतिका-गृह तुम्हारे पिताके तेजसे देदीप्यमान होने लगा। फिर तो विघ्न डालनेवाले राक्षस उस घरको छोड़कर गायब हो गये। इसी समय आकाशवाणी हुई—'केशव ! तुम धन्य हो !' साथ ही वह प्रज्वलित अस्त्र ब्रह्मलोकको चला गया। इस प्रकार तुम्हारे पिताको पुनर्जीवन मिला। उत्तराका वह बालक अपने उत्साह और बलके अनुसार हाथ-पैर हिलाने लगा। यह देखकर भरतवंशकी सभी स्त्रियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने श्रीकृष्णकी आज्ञासे ब्राह्मणोंको बुलाकर स्वस्तिवाचन कराया। फिर वे सब आनन्दमग्न होकर श्रीकृष्णका गुण-गान करने लगीं। जैसे नदीके पार जानेवाले मनुष्योंको नाव पाकर बड़ी खुशी होती है, उसी प्रकार कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा तथा कुरुकुलकी अन्य स्त्रियोंको बालकके जीवित होनेसे मन-ही-मन अपार हर्ष हुआ। तदनन्तर, सूत और मागधोंने भगवान् श्रीकृष्णका स्तवन किया। उस समय उत्तरा बहुत प्रसन्न थी। उसने पुत्रके साथ आकर श्रीकृष्णको प्रणाम किया और श्रीकृष्णने भी प्रसन्न होकर उस बालकको बहुत-से रत्न उपहारमें दिये। फिर अन्य यदुवंशियोंने भी नाना प्रकारकी वस्तुएँ भेंट कीं। इसके बाद सत्यप्रतिज्ञ श्रीकृष्णने तुम्हारे पिताका इस प्रकार नामकरण किया—'कुरुकुलके परिक्षीण हो जानेपर यह अभिमन्युका बालक उत्पन्न हुआ है, इसलिये इसका नाम 'परीक्षित्' होना चाहिये।'

जनमेजय ! इस प्रकार नामकरण हो जानेके बाद तुम्हारे पिता परीक्षित् कालक्रमसे बड़े होने लगे। जो ही उनकी ओर देखता, उसका मन प्रसन्न हो जाता था। तुम्हारे पिताकी आयु जब एक महीनेकी हो गयी, उस समय पाण्डवलोग बहुत-सी रत्न-राशि लेकर हस्तिनापुरको लौटे। यदुवंशियोंने जब सुना कि पाण्डव नगरके समीप आ गये हैं तो वे उनकी अगवानीके लिये बाहर निकले। पुरवासियोंने फूलोंकी बन्दनवारों, भाँति-भाँतिकी ध्वजाओं और विचित्र-विचित्र पताकाओंसे हस्तिनापुरको सजाया। उन्होंने अपने घरोंकी भी सजावट की। विदुरजीने देवमन्दिरोंमें विविध प्रकारसे पूजा करनेकी आज्ञा दी। राजमार्ग नाना प्रकारके फूलोंसे अलंकृत किये

गये। उस समय हवाके इशारेसे हस्तिनापुरमें चारों ओर पताकाएँ फहरा रही थीं।

पाण्डवोंके समीप आनेकी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण अपने मित्रों और मन्त्रियोंके साथ उनसे मिलनेके लिये चले। उन सब लोगोंने आगे बढ़कर अगवानी की और सब एक-दूसरेके साथ धर्मानुसार मिले। तत्पश्चात् पाण्डव और यदुवंशी वीरोंने एक साथ होकर हस्तिनापुरमें प्रवेश किया। उस समय धनका खजाना उनके आगे-आगे चल रहा था। पाण्डव अपने मित्रों और मन्त्रियोंसहित बहुत प्रसन्न थे। वे एकत्रित होकर सबसे पहले राजा धृतराष्ट्रके पास गये तथा सबने अपने-अपने नाम बतलाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। धृतराष्ट्रसे मिलनेके बाद वे गान्धारी, कुन्ती और विदुरजीका सम्मान करते हुए युयुत्सुसे मिले। इसके बाद उन्होंने तुम्हारे पिताके जन्म-कालका अत्यन्त अद्भुत एवं आश्चर्यजनक समाचार सुना और भगवान् श्रीकृष्णके उस अलौकिक कर्मकी बात सुनकर उनकी बड़ी प्रशंसा की।

इसके थोड़े दिनों बाद महातेजस्वी सत्यवतीनन्दन व्यासजी हस्तिनापुरमें पधारे। पाण्डवोंने उनका यथोचित पूजन किया और वृष्णि एवं अन्धकवंशी वीरोंके साथ वे उनकी सेवामें बैठ गये। फिर नाना प्रकारकी बातचीतके बाद धर्मनन्दन युधिष्ठिरने महर्षि व्याससे कहा—'भगवन्! आपकी कृपासे जो यह रत्न लाया गया है, उसका अश्वमेध-यज्ञमें उपयोग करना चाहता हूँ। इसके लिये आपकी आज्ञाकी प्रतीक्षा है। हम सब लोग आप और भगवान् श्रीकृष्णके अधीन हैं।'

व्यासजीने कहा—राजन्! मैं तुम्हें यज्ञके लिये आज्ञा देता हूँ। अब इसके बाद जो भी आवश्यक कार्य हो, उसे आरम्भ करो। विधिपूर्वक दक्षिणा देकर अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान करो। अश्वमेध-यज्ञ सब पापोंसे छुटकारा दिलानेवाला है। उसका अनुष्ठान करके तुम निःसंदेह पापसे मुक्त हो जाओगे।

व्यासजीके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरने अश्वमेध-यज्ञ आरम्भ करनेका विचार किया। महर्षि व्यासकी आज्ञा लेकर उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके पास जाकर कहा—'पुरुषोत्तम! हम आपके ही प्रभावसे अपने अधिकारमें किये हुए उत्तम भोगोंका उपभोग कर रहे हैं। आपने ही अपने पराक्रम और बुद्धिके बलसे इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जीता है, अतः आप ही यज्ञकी दीक्षा लेकर इसका आरम्भ कीजिये; क्योंकि आप हमारे परम गुरु हैं। यदि आप यज्ञका अनुष्ठान करेंगे तो निश्चय ही हमारे सब पाप नष्ट हो जायँगे। आप ही यज्ञ, अक्षर, सर्वरूप, धर्म, प्रजापति और सम्पूर्ण भूतोंकी गति हैं—ऐसी मेरी निश्चित धारणा है।'

श्रीकृष्णने कहा—महाराज! यह कथन आपके ही योग्य है। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि आप ही सम्पूर्ण प्राणियोंको सहारा देनेवाले हैं; क्योंकि आप धर्मसे सुशोभित हैं। हमलोग आपके अङ्ग अथवा सहायक हैं तथा आपको अपना राजा एवं गुरु मानते हैं। इसलिये आप हमारी अनुमतिसे स्वयं ही इस यज्ञका अनुष्ठान कीजिये तथा हमलोगोंमेंसे जिसको जिस कामपर लगाना चाहते हों, उसे उस काममें लगनेकी आज्ञा दीजिये। मैं आपके सामने सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि आप जो कुछ कहेंगे, वह सब करूँगा। आपके द्वारा यज्ञ होनेपर भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेवको भी यज्ञानुष्ठानका फल मिलेगा।



व्यासजीकी आज्ञासे अश्वमेध-यज्ञके लिये छोड़े हुए अश्वकी रक्षाके लिये अर्जुनकी नियुक्ति और घोड़ेके पीछे उनका सेनासहित जाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने व्यासजीको सम्बोधित करके कहा—'भगवन्! जब आपको यज्ञ आरम्भ करनेका ठीक समय जान पड़े तभी आकर मुझे उसकी दीक्षा दें; क्योंकि मेरा यज्ञ आपके ही अधीन है।'

व्यासजीने कहा—राजन्! जब यज्ञका समय आयेगा, उस समय मैं, पैल और याज्ञवल्क्य—ये सब आकर विधिपूर्वक तुम्हारा यज्ञ सम्पन्न करेंगे। चैत्रकी पूर्णिमाको तुम्हें यज्ञकी दीक्षा दी जायगी, तबतक तुम उसके लिये सामग्री एकत्रित करो। अश्वविद्याके ज्ञाता सूत और ब्राह्मण यज्ञके लिये पवित्र अश्वकी परीक्षा करें। जो अश्व निश्चित हो, उसे शास्त्रीय विधिके अनुसार छोड़ा जाय और वह तुम्हारे देदीप्यमान यशको फैलाता हुआ समुद्रपर्यन्त समस्त पृथ्वीपर घूमता फिरे।

यह सुनकर राजा युधिष्ठिरने 'बहुत अच्छा' कहकर व्यासजीके कथनानुसार सारा कार्य किया। उन्होंने मनमें

जिन-जिन सामानोंको एकत्रित करनेका संकल्प किया था, उन सबको जुटा लेनेके बाद महर्षि व्यासको सूचना दी। तब व्यासजीने कहा—'राजन्! हमलोग यथासमय उत्तम योग आनेपर तुम्हें दीक्षा देनेको तैयार हैं। इस बीचमें तुम सोनेके 'स्फ्य' और 'कूर्च' बनवा लो तथा और भी जो सुवर्णमय सामान आवश्यक हों, उन्हें तैयार करा डालो। आज शास्त्रीय विधिके अनुसार यज्ञसम्बन्धी अश्वको क्रमशः पृथ्वीपर घूमनेके लिये छोड़ना चाहिये तथा ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये, जिससे वह सुरक्षितरूपसे सब ओर विचर सके।'

युधिष्ठिरने कहा—मुने! यह घोड़ा उपस्थित है, इसको किस तरह छोड़ा जाय जिससे यह समूची पृथ्वीमें इच्छानुसार घूम आवे। इसकी व्यवस्था आप ही कीजिये तथा यह भी बताइये कि पृथ्वीपर स्वेच्छानुसार विचरनेवाले इस घोड़ेकी रक्षामें किसको नियुक्त किया जाय?

जनमेजय! युधिष्ठिरके यों पूछनेपर महर्षि व्यास बोले—'राजन्! अर्जुन सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ हैं। वे विजयमें उत्साह रखनेवाले, सहनशील और धैर्यवान् हैं। अतः वे ही इस घोड़ेकी रक्षा कर सकेंगे। उन्होंने निवातकवचोंका नाश किया है, वे सम्पूर्ण भूमण्डलको जीतनेकी शक्ति रखते हैं तथा उनके पास दिव्य अस्त्र, दिव्य कवच, दिव्य धनुष और दिव्य तरकस हैं, अतः उन्हें ही इस घोड़ेके पीछे-पीछे जाना चाहिये। वे धर्म और अर्थमें कुशल तथा सम्पूर्ण विद्याओंमें प्रवीण हैं, इसलिये शास्त्रीय विधिके अनुसार घोड़ेका संचालन करेंगे। अत्यन्त तेजस्वी और परम पराक्रमी भीमसेन तथा नकुल—ये दोनों वीर राज्यकी रक्षा करनेमें पूर्ण समर्थ हैं, अतः ये राज्य-कार्य देखें और परम बुद्धिमान् सहदेव कुटुम्ब-पालन-सम्बन्धी समस्त कार्योंकी देख-भाल करें।

व्यासजीके इस प्रकार बतलानेपर युधिष्ठिरने सब काम वैसा ही किया और अर्जुनको बुलाकर घोड़ेके विषयमें यों संदेश दिया—'वीर अर्जुन! यहाँ आओ। तुम्हारे ऊपर इस घोड़ेकी रक्षाका भार दिया जाता है। इसका विधिवत् पालन करो। तुम्हीं इसकी रक्षा करनेमें समर्थ हो। दूसरे किसी मनुष्यके द्वारा यह कार्य होना असम्भव है। महाबाहो! एक बातका खयाल रखना। अश्वकी रक्षाके समय जो राजा तुम्हारा सामना करने आवें, उनके साथ भरसक युद्ध न करना पड़े, ऐसा प्रयत्न करना तथा मेरे यज्ञका समाचार सब राजाओंको बतलाकर कहना कि 'आपलोग यथासमय यज्ञमें पधारें।'

अपने भाई सव्यसाची अर्जुनको इस प्रकार समझा-बुझाकर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरने भीमसेन और नकुलको नगरकी रक्षाका भार सौंप दिया और महाराज धृतराष्ट्रकी सम्मति लेकर सहदेवको कुटुम्ब-पालनके काममें नियुक्त किया। तदनन्तर, जब दीक्षा देनेका समय हुआ तो व्यास आदि महान् ऋत्विजोंने राजाको विधिपूर्वक यज्ञकी दीक्षा दी और यज्ञके लिये नियत किये हुए अश्वको स्वयं ब्रह्मवादी व्यासजीने शास्त्रीय विधिके अनुसार छोड़ा। फिर धर्मराजकी आज्ञासे अर्जुनने उस घोड़ेका अनुसरण किया। उसका रंग कृष्णसार मृगके समान श्याम था। अश्वके पीछे चलते समय अर्जुन गाण्डीव-धनुषको टंकारते जाते थे।



उन्होंने अपने हाथोंमें गोधाके चमड़ेसे बने हुए दस्ताने पहन रखे थे तथा वे बड़ी प्रसन्नताके साथ अश्वका अनुसरण कर रहे थे। अर्जुनकी यात्राके समय बच्चोंसे लेकर बूढ़ोंतक सारा हस्तिनापुर उनके दर्शनके लिये उमड़ आया। यज्ञके घोड़े और उसके पीछे जानेवाले धनञ्जयको देखनेकी इच्छासे लोगोंकी इतनी भीड़ इकट्ठी हुई कि आपसकी धक्का-मुक्कीसे सबके बदनमें पसीने निकल आये। उस समय मनुष्योंके कोलाहलसे आकाश और दिशाएँ गूँज उठीं। उदारबुद्धि अर्जुनने सुना, बहुत-से लोग कह रहे थे—'भारत! तुम्हारा कल्याण हो, तुम सुखसे जाओ और पुनः कुशलपूर्वक यहाँ लौट आओ।' दूसरे कहते थे—'अर्जुनकी यात्रा सुखमय हो, इन्हें मार्गमें कोई कष्ट न हो, किसी प्रकारका भय न हो। ये निश्चय ही

कुशलपूर्वक लौटेंगे और उस समय फिर हम इनका दर्शन करेंगे।' इस प्रकार पुरुषों और स्त्रियोंकी कही हुई मीठी-मीठी बातें बारंबार अर्जुनके कानोंमें पड़ती थीं। याज्ञवल्क्य मुनिके एक विद्वान् शिष्य, जो यज्ञ-कर्ममें चतुर तथा वेदोंमें पारंगत थे, विघ्न-शान्तिके लिये अर्जुनके साथ-साथ गये। उनके सिवा और भी बहुत-से वेदवेत्ता ब्राह्मणों तथा क्षत्रियोंने धर्मराजकी आज्ञासे पार्थका अनुसरण किया। वह अश्व पाण्डवोंके द्वारा अस्त्र-बलसे जीती हुई पृथ्वीके सब देशोंमें इच्छानुसार विचरने लगा। उन देशोंमें अर्जुनको शत्रुओंके साथ जो बड़े-बड़े अद्‌भुत युद्ध करने पड़े, उनकी कथा सुना रहा हूँ। यज्ञका घोड़ा पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता हुआ सबसे पहले उत्तर दिशाकी ओर गया। फिर अनेकों राज्योंमें घूमता-घामता पूर्व दिशाकी ओर मुड़ गया। महारथी अर्जुन भी धीरे-धीरे अश्वके पीछे-पीछे चले जा रहे थे। उस समय जिनके बन्धु-बान्धव मारे गये थे ऐसे जिन-जिन राजाओंके साथ अर्जुनको युद्ध करना पड़ा, उनकी गणना असम्भव है। तलवार और धनुष धारण करनेवाले बहुत-से किरात, यवन और म्लेच्छ, जो पहले महाभारत-युद्धमें पाण्डवोंद्वारा परास्त किये गये थे, अर्जुनका सामना करनेके लिये आये। इस तरह विभिन्न देशोंके राजाओंके साथ अर्जुनको कई बार युद्ध करना पड़ा।



अर्जुनके द्वारा त्रिगर्तोंकी पराजय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कुरुक्षेत्रके युद्धमें जो त्रिगर्त वीर मारे गये थे, उनके महारथी पुत्रों और पौत्रोंने अर्जुनके साथ वैर बाँध लिया था। त्रिगर्त देशमें जानेपर अर्जुनका उनके साथ घोर संग्राम हुआ। 'पाण्डवोंका यज्ञ-सम्बन्धी अश्व हमारे राज्यकी सीमामें आ पहुँचा है' यह जानकर त्रिगर्त वीर कवच आदिसे सुसज्जित हो पीठपर तरकस बाँधे अच्छे घोड़ोंसे जुते हुए रथपर बैठकर निकले और उस अश्वको चारों ओरसे घेरकर पकड़नेका उद्योग करने लगे। अर्जुन उनके मनका भाव समझ गये और उन्हें शान्तिपूर्वक समझा-बुझाकर रोकने लगे, किंतु त्रिगर्तोंने उनके वचनोंकी अवहेलना करके उनके ऊपर बाण बरसाना आरम्भ कर दिया। अर्जुनने बारंबार मना किया और हँसते-हँसते कहा—'पापियो! लौट जाओ! जीवनकी रक्षामें ही तुम्हारा कल्याण है।' उन्होंने ऐसा इसलिये कहा कि चलते समय धर्मराज युधिष्ठिरने यह कहकर मना कर दिया था कि 'जिन राजाओंके भाई-बन्धु कुरुक्षेत्रकी लड़ाईमें मारे गये हैं, उनका वध नहीं करना चाहिये।' धर्मराजकी इस आज्ञाको मान करके ही अर्जुनने त्रिगर्तोंको लौट जानेकी आज्ञा दी, तथापि वे लौटनेको तैयार न हुए। तब त्रिगर्तराज सूर्यवर्माको बाणसमूहोंसे बींधकर अर्जुन हँसने लगे। यह देखकर त्रिगर्तदेशीय वीर रथकी घरघराहट और पहियोंकी आवाजसे सारी दिशाओंको गुञ्जायमान करते हुए धनञ्जयपर टूट पड़े। सूर्यवर्माने अपना हस्तलाघव दिखाते हुए अर्जुनको एक सौ बाणोंका निशाना बनाया तथा उसके अनुयायियोंमें जो महान् धनुर्धर वीर थे, वे भी अर्जुनको मार डालनेकी इच्छासे उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे; किंतु पाण्डुनन्दन अर्जुनने अपनी प्रत्यञ्चासे छोड़े हुए बाणोंके द्वारा शत्रुओंके समस्त बाणोंको काट डाला। वे कटे हुए बाण टुकड़े-टुकड़े होकर जमीनपर गिर पड़े।

(सूर्यवर्माके परास्त होनेपर) उसका छोटा भाई केतुवर्मा, जो एक तेजस्वी नवयुवक था, अपने भाईके लिये यशस्वी अर्जुनके साथ युद्ध करने लगा। केतुवर्माको धावा करता देख वीरवर अर्जुनने उसे तीखे तीरोंसे मार डाला। उसके मारे जानेपर महारथी धृतवर्मा रथपर सवार हो शीघ्र ही आ धमका और अर्जुनपर बाणोंकी झड़ी लगाने लगा। धृतवर्मा अभी बालक था तो भी उसकी ऐसी फुर्ती देख महातेजस्वी अर्जुनको बड़ी प्रसन्नता हुई। वह कब बाण हाथमें लेता है और कब उसे धनुषपर चढ़ाता है—इसको अर्जुन भी नहीं देख पाते थे। केवल उसकी बाणवर्षा ही उनकी दृष्टिमें पड़ती थी। उन्होंने संग्राम-भूमिमें थोड़ी देरतक मन-ही-मन धृतवर्माकी प्रशंसा की और युद्धमें उसका हौसला बढ़ाने लगे। यद्यपि धृतवर्मा साँपके समान क्रोधमें भरा हुआ था तथापि कौरव-वीर अर्जुन प्रेमके साथ हँसकर बचा जाते थे। उन्होंने उसके प्राण नहीं लिये। इस प्रकार अमित तेजस्वी अर्जुनके द्वारा जान-बूझकर छोड़ दिये जानेपर धृतवर्माने उनके ऊपर एक अत्यन्त प्रज्वलित बाण चलाया। उससे अर्जुनके हाथमें बड़ी चोट आयी, उसमें गहरा घाव हो गया। अर्जुनको चक्कर आ गया और उनका गाण्डीव धनुष हाथसे छूटकर जमीनपर जा पड़ा। यह देखकर धृतवर्मा ठहाका मारकर हँसने लगा। अर्जुनने अपने हाथका रक्त पोंछ डाला और क्रोधमें भरकर पुनः उस धनुषको हाथमें लेकर बाणोंकी वर्षा आरम्भ की। तब त्रिगर्तदेशीय योद्धाओंने चारों ओरसे आकर अर्जुनको घेर लिया। यह देखकर अर्जुनने वज्रके समान लोहमय बाणोंकी वर्षा करके उनके अठारह

योद्धाओंको मौतके घाट उतार दिया। फिर तो त्रिगर्त योद्धाओंमें भगदड़ पड़ गयी। इधर अर्जुनने जोर-जोरसे हँसकर उन्हें सर्पाकार बाणोंसे मारना आरम्भ किया। उनके बाणोंसे पीड़ित होकर त्रिगर्त महारथियोंकी हिम्मत टूट गयी और वे चारों दिशाओंको भाग चले। कितनोंहीने भयभीत होकर अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! हम सब तुम्हारे आज्ञाकारी सेवक हैं और सदा तुम्हारे अधीन रहेंगे। कौरवनन्दन ! हम विनीत दासकी भाँति तुम्हारे सामने खड़े हैं। आज्ञा दो, कौन-सा कार्य करें ? हम तुम्हारे समस्त प्रिय कार्य करनेको तैयार हैं।' उनकी ये बातें सुनकर अर्जुनने कहा—'राजाओ ! यदि जीवनकी रक्षा चाहते हो तो हमारा शासन स्वीकार करो।'



प्राग्ज्योतिषपुरमें वज्रदत्तके साथ अर्जुनका युद्ध और वज्रदत्तकी पराजय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इसके बाद यज्ञका घोड़ा प्राग्ज्योतिषपुरके पास आकर विचरने लगा। वहाँ भगदत्तका पुत्र वज्रदत्त राज्य करता था। उसने जब सुना कि पाण्डवोंका घोड़ा मेरे राज्यकी सीमामें आ गया है तो नगरसे बाहर निकलकर उस घोड़ेको पकड़ लिया और उसे साथ लेकर नगरकी ओर लौटने लगा। यह देख महाबाहु अर्जुनने गाण्डीव-धनुषकी टंकार देते हुए सहसा उसपर धावा किया। गाण्डीवसे छूटे हुए बाणोंके प्रहारसे व्याकुल होकर राजा वज्रदत्तने घोड़ेको तो छोड़ दिया और स्वयं नगरमें प्रवेश करके कवच आदिसे सुसज्जित हो विशाल गजराजपर सवार होकर वह युद्धके लिये बाहर निकला। महारथी अर्जुनके पास आकर उसने बालचापल्य और मूर्खताके कारण उन्हें युद्धके लिये ललकारा। वज्रदत्तका हाथी पर्वतके समान ऊँचा था। उसके गण्डस्थलोंसे मदकी धारा बह रही थी। उसे शास्त्रीय विधिके अनुसार युद्धकी शिक्षा दी गयी थी। वह स्वामीके अधीन रहकर भी युद्धमें मतवाला हो उठता था। वज्रदत्तने कुपित होकर उस हाथीको अर्जुनकी ओर बढ़ाया। राजाके अंकुशकी चोट खाकर वह महाबली गजराज जब आगेकी ओर झपटा तो ऐसा जान पड़ा, मानो वह आकाशमें उड़ जाना चाहता है। वज्रदत्तको इस प्रकार आक्रमण करता देख अर्जुन क्रोधमें भर गये और पैदल होनेपर भी हाथीपर बैठे हुए वज्रदत्तसे युद्ध करने लगे। वज्रदत्तने रोषमें भरकर अर्जुनके ऊपर अग्निके समान तेजस्वी तोमर चलाये। वे तोमर वेगसे उड़नेवाले पतंगोंकी तरह अर्जुनकी ओर चले; किंतु अभी पास भी नहीं आने पाये थे कि अर्जुनने गाण्डीव-धनुषद्वारा बहुत-से बाण छोड़कर आकाशमें ही एक-एक तोमरके दो-दो, तीन-तीन टुकड़े कर डाले। यह देख वज्रदत्त अर्जुनके ऊपर लगातार बाणोंकी वर्षा करने लगा। तब अर्जुनने भी कुपित होकर बड़ी फुर्तीके साथ भगदत्तके पुत्रको सीधे जानेवाले बाणोंका निशाना बनाया। उन बाणोंकी चोट खाकर वह महान् तेजस्वी राजा बहुत घायल हो गया और हाथीकी पीठसे जमीनपर जा पड़ा; किंतु इतनेपर भी वह बेहोश नहीं हुआ। तदनन्तर, वज्रदत्त पुनः हाथीपर सवार हो धैर्यके साथ युद्धमें डट गया और अर्जुनको परास्त करनेके विचारसे फिर हाथीको उनकी ओर बढ़ाया, यह देख अर्जुन क्रोधसे आगबबूला हो उठे और उन्होंने हाथीके ऊपर प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी बाणोंका प्रहार किया। उनकी चोटसे उस महान् गजराजके शरीरमें घाव हो गया और खूनकी धारा बहने लगी। उस समय वह गेरू मिले हुए जलकी धारा बहानेवाले अनेकों झरनोंसे युक्त पहाड़के समान जान पड़ता था।

इस प्रकार अर्जुनका राजा वज्रदत्तके साथ तीन दिनोंतक निरन्तर युद्ध होता रहा। चौथे दिन महाबली वज्रदत्तने अट्टहास करके कहा—'अर्जुन ! खड़ा तो रह। आज मैं तुझे जीवित नहीं छोड़ूँगा। तुझे मारकर अपने पिताका विधिवत् तर्पण करूँगा। मेरे पिता भगदत्त तेरे पिताके मित्र थे तो भी तूने उनकी हत्या की। वे बूढ़े थे, इसलिये तू उन्हें मारनेमें सफल हो सका है। आज उनका बालक मैं तेरे सामने उपस्थित हूँ। मेरे साथ युद्ध कर।' यों कहकर क्रोधमें भरे हुए वज्रदत्तने पुनः अर्जुनकी ओर अपना हाथी बढ़ाया। स्वामीका इशारा पाकर वह गजराज नृत्य-सा करता हुआ तुरंत महारथी अर्जुनके पास जा पहुँचा। यह देखकर भी वे भयभीत नहीं हुए बल्कि पहलेके वैरका स्मरण करके अत्यन्त क्रोधमें भर गये। फिर बाणोंकी वर्षा करके उन्होंने वज्रदत्तके हाथीको इस तरह रोक दिया, जैसे किनारेकी भूमि समुद्रके वेगको रोक देती है। अपने हाथीको रुका हुआ देख भगदत्तकुमार क्रोधसे मूर्च्छित हो उठा और उसने अर्जुनपर तीखे बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। साथ ही अपने पर्वताकार गजराजको बलपूर्वक आगे बढ़ाया। यह देख अर्जुनने उस हाथीके ऊपर अग्निके समान तेजस्वी नाराचका प्रहार किया। उससे हाथीके मर्मस्थानमें बड़ी भारी चोट पहुँची और वह वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति सहसा जमीनपर ढह पड़ा। उसके साथ ही वज्रदत्त भी नीचे

आ गया। उसे भूमिपर पड़ा देख पाण्डुनन्दन अर्जुनने कहा—'राजन्! तुम डरो मत। आते समय मुझसे महातेजस्वी राजा युधिष्ठिरने कह दिया था कि 'धनञ्जय! तुम किसी भी राजाका वध न करना और युद्ध ठानकर योद्धाओंके प्राण न लेना। मार्गमें जो राजा मिलें उन्हें निमन्त्रण देते हुए कहना—'आपलोग अपने इष्ट-मित्रोंके साथ युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञमें पधारकर वहाँके उत्सवमें भाग लें।' भाईकी यह आज्ञा स्वीकार करके मैं तुम्हारा वध नहीं करूँगा। अब तुम्हें कोई भय नहीं है। उठो और कुशलपूर्वक अपने घरको जाओ। आगामी चैत्रकी पूर्णिमाको धर्मराजका अश्वमेध-यज्ञ आरम्भ होगा। उस समय तुम उसमें अवश्य पधारना।'

अर्जुनके ऐसा कहनेपर उनके द्वारा परास्त हुए भगदत्तकुमार वज्रदत्तने कहा—'बहुत अच्छा, ऐसा ही करूँगा।'



अर्जुनका सैन्धव वीरोंके साथ युद्ध और दुःशलाके प्रयत्नसे उसकी समाप्ति

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर, महाभारत-युद्धमें मरनेसे बचे हुए सिन्धुदेशीय वीरोंके साथ अर्जुनका युद्ध हुआ। यज्ञके घोड़ेको अपने राज्यकी सीमाके भीतर पाकर सिन्धुदेशके विषैले क्षत्रिय अर्जुनसे तनिक भी भयभीत नहीं हुए। वे पहले संग्राममें अर्जुनसे परास्त हो चुके थे और अब उन्हें जीतना चाहते थे, इसलिये उन महापराक्रमी वीरोंने पार्थको चारों ओरसे घेर लिया और उन्हें अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित कर दिया। वे एक हजार रथ और दस हजार घोड़ोंसे धनञ्जयको घेरकर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हो रहे थे। कुरुक्षेत्रके मैदानमें अर्जुनके द्वारा जो जयद्रथका वध हुआ था, उसकी याद उन्हें कभी भूलती नहीं थी। अब वे मेघके समान बाणोंकी वर्षा करने लगे। उनके बाणोंसे आच्छादित होकर कुन्तीनन्दन अर्जुन बादलोंमें छिपे हुए सूर्यकी भाँति शोभा पा रहे थे। उन्हें सायकोंसे पीड़ित देख तीनों लोकोंमें हाहाकार मच गया। उस समय घबराहटके कारण अर्जुनके हाथसे धनुष और दस्ताने गिर पड़े। उन्हें अचेत अवस्थामें पाकर सैन्धव योद्धा बड़ी तेजीके साथ बाण-वर्षा करने लगे। अर्जुनकी संकटापन्न स्थितिका अनुभव करके देवताओंके मनमें भय समा गया और वे उनके लिये शान्तिका उपाय करने लगे। तदनन्तर, देवताओंके प्रयत्नसे अर्जुनका तेज पुनः उद्दीप्त हो उठा और उत्तम अस्त्रविद्याके जाननेवाले परम बुद्धिमान् धनञ्जय संग्राम-भूमिमें पर्वतके समान अचलभावसे खड़े हो गये। फिर उन्होंने अपने दिव्य धनुषपर टंकार दी। उस समय उससे मशीनकी तरह बड़े जोर-जोरसे आवाज होने लगी। इसके बाद जैसे इन्द्र पानीकी वर्षा करते हैं उसी तरह अर्जुनने शत्रुओंके ऊपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। फिर तो पार्थके बाणोंसे आच्छादित हो सैन्धव योद्धा टीडियोंसे ढके हुए वृक्षोंकी भाँति अपने राजासहित अदृश्य हो गये। कितने ही गाण्डीवकी आवाज सुनकर थर्रा उठे, बहुतेरे भयसे व्याकुल होकर भाग गये और अनेकों योद्धा शोकसे आतुर होकर आँसू बहाने तथा संतप्त होने लगे। उस समय अर्जुन अलातचक्रकी भाँति घूम-घूमकर सायकोंकी वर्षा कर रहे थे। उन्होंने सम्पूर्ण दिशाओंमें इन्द्रजालके समान बाणोंका जाल-सा फैला दिया। तदनन्तर, सिन्धुदेशीय वीर फिरसे संगठित होकर खड़े हो गये और क्रोधमें भरकर बाणोंकी वृष्टि करने लगे। तब धर्मज्ञ अर्जुनने रणोन्मत्त सैन्धवोंसे कहा—'योद्धाओ! मैं तुम्हारे कल्याणकी बात बता रहा हूँ। तुममेंसे जो कोई अपनी पराजय स्वीकार करते हुए यह कहेगा कि 'मैं आपका हूँ, आपने मुझे युद्धमें जीत लिया है,' वह सामने खड़ा रहे तो भी मैं उसका वध नहीं करूँगा। मेरी यह बात सुनकर तुम्हें जिसमें अपना हित दिखायी पड़े, वह करो।' ऐसा कहकर कुरुश्रेष्ठ अर्जुन अत्यन्त कुपित हो क्रोधमें भरे हुए सैन्धव वीरोंसे युद्ध करने लगे। तब सैन्धवोंने अर्जुनपर लाखों बाणोंका प्रहार किया; किंतु उन्होंने अपने तीखे सायकोंसे उन सभी बाणोंको बीचसे ही काट डाला और प्रत्येक योद्धाको तेज किये हुए तीरोंसे बींध दिया। यह देख जयद्रथ-वधका स्मरण करके सैन्धवोंने अर्जुनको मारनेके लिये पुनः उनके ऊपर शक्ति और प्रास चलाये, परंतु उनके संकल्प व्यर्थ हो गये। महाबली धनञ्जयने उनकी शक्ति और प्रासोंको बीचसे ही काटकर बड़े जोरसे गर्जना की और विजयाभिलाषा लेकर आक्रमण करनेवाले सैन्धवोंके मस्तकको वे भल्लोंसे काट-काटकर गिराने लगे।

समस्त सैन्धवोंको कष्ट पाते जान धृतराष्ट्रकी पुत्री दुःशला अपने बेटे सुरथके बालकको साथ ले रथपर सवार हो रणभूमिमें उपस्थित हुई। उसके आनेका उद्देश्य यह था कि सब योद्धा युद्ध छोड़कर शान्त हो जायँ। अर्जुनके पास जाकर वह आर्तस्वरसे रोने लगी। उसे सामने देख धनञ्जयने भी धनुष नीचे डाल दिया। फिर बहिनका विधिवत् सत्कार करते हुए बोले—'कल्याणी! बताओ, मैं तुम्हारा कौन-सा कार्य



करूँ ?' दुःशलाने कहा—'भरतश्रेष्ठ ! यह तुम्हारे भानजेका पुत्र तुम्हें प्रणाम करता है। इसकी ओर देखो।' यह सुनकर अर्जुनने पूछा—'बहिन ! इस बालकके पिता कहाँ हैं ?' दुःशला बोली—'भैया ! मेरे पुत्र सुरथने पहलेसे सुन रखा था कि अर्जुनके हाथसे ही मेरे पिताकी मृत्यु हुई है। इसके बाद जब उसके कानोंमें यह समाचार पड़ा है कि अर्जुन घोड़ेके पीछे-पीछे यहाँतक आ पहुँचे हैं, तो वह भयके मारे संतापसे पीड़ित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा है और उसी दम उसके प्राण-पखेरू उड़ गये हैं। उसे इस अवस्थामें देख उसके पुत्रको साथ लेकर शरण खोजती हुई अब मैं तुम्हारे पास आयी हूँ।' यह कहकर वह अत्यन्त आर्त होकर विलाप करने लगी। उसकी दीन-दशा देख अर्जुनने भी दीन भावसे अपना सिर नीचा कर लिया। तदनन्तर दुःशला फिर कहने लगी— 'भैया ! तुम कुरुकुलमें श्रेष्ठ और धर्मको जाननेवाले हो। मुझ दुःखिया बहिन और अपने भानजेके पुत्रकी ओर देखो। मन्दबुद्धि दुर्योधन और जयद्रथको भूल जाओ। जैसे अभिमन्युसे परीक्षित्‌का जन्म हुआ है, उसी प्रकार सुरथसे मेरे इस पौत्रकी उत्पत्ति हुई है। इसीको गोदमें लेकर आज मैं तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। मैं चाहती हूँ सब योद्धा शान्त हो जायँ और तुम इस निरीह शिशुपर कृपा करो। यह तुम्हारे चरणोंपर मस्तक रखकर शान्तिकी भीख माँगता है; अतः शान्त हो जाओ। यह निरा अबोध है—कुछ नहीं जानता, इसके भाई-बन्धु नष्ट हो चुके हैं, अतः अब इसके ऊपर दया करो। क्रोध त्याग दो।

दुःशलाके ये करुणायुक्त वचन सुनकर अर्जुनको दुःख और शोकसे पीड़ित राजा धृतराष्ट्र और गान्धारी देवीका स्मरण हो आया और वे क्षत्रिय-धर्मका तिरस्कार करते हुए बोले—'राज्यके लोभी और अभिमानके पुतले उस नीच दुर्योधनको धिक्कार है, जिसके कारण हमने अपने सभी बन्धु-बान्धवोंको यमलोक भेज दिया।' यों कहकर अर्जुनने दुःशलाको बहुत सान्त्वना दी और प्रसन्नतापूर्वक मिलकर उसे घरकी ओर विदा किया। दुःशलाने भी उस महान् युद्धसे अपने योद्धाओंको पीछे लौटाया और अर्जुनकी प्रशंसा करती हुई प्रसन्नवदन होकर वह घरको लौट गयी। इस प्रकार सैन्धव वीरोंको परास्त करके धनञ्जय तेजीके साथ आगे बढ़नेवाले और स्वेच्छानुसार विचरनेवाले उस घोड़ेके पीछे-पीछे तीव्र गतिसे चलने लगे। घोड़ा क्रमशः एकके बाद दूसरे देशमें जाता और अर्जुनके पराक्रमको बढ़ाता हुआ इच्छानुसार विचरने लगा। घूमता-घामता वह अर्जुनसहित मणिपुरनरेशके राज्यमें जा पहुँचा।



अर्जुन और बभ्रुवाहनका युद्ध तथा अर्जुनकी मृत्यु

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! मणिपुरके राजा बभ्रुवाहनको जब अपने पिता अर्जुनके आनेका समाचार मिला तो वह ब्राह्मणोंको आगे करके बहुत-सा धन साथमें लेकर बड़ी विनयके साथ दर्शनके लिये नगरसे बाहर निकला। मणिपुरनरेशको इस रूपमें आते देख परम बुद्धिमान् धनञ्जयने क्षत्रिय-धर्मका स्मरण करके उसका आदर नहीं किया। बल्कि कुपित होकर कहा—'बेटा ! तेरा यह ढंग ठीक नहीं है। मैं महाराज युधिष्ठिरके यज्ञसम्बन्धी घोड़ेकी रक्षा करता हुआ तेरे राज्यके भीतर आया हूँ फिर भी तू मुझसे युद्ध क्यों नहीं करता ? दुर्मते ! तू क्षत्रिय-धर्मसे बहिष्कृत हो चुका है, इसलिये तुझे धिक्कार है। संसारमें जीवित रहकर तूने कोई पुरुषार्थ नहीं किया। तभी तो मुझे युद्धके लिये आये हुए जानकर भी तू शान्तिपूर्वक साथ ले जानेको आया है। यदि मैं हथियार रखकर खाली हाथ तेरे पास आता तो मेरा इस ढंगसे मिलना ठीक हो सकता था।

अर्जुन जब बभ्रुवाहनसे उपर्युक्त बातें कह रहे थे, उसी

समय यह हाल जानकर नागकन्या उलूपी धरती चीरकर वहाँ आ पहुँची। उसे अपने स्वामीकी कठोर बात नहीं सही गयी। इसलिये उसने बभ्रुवाहनसे धर्मयुक्त वचन कहा—'बेटा ! मैं तुम्हारी विमाता नागकन्या उलूपी हूँ। मेरी बात मानो, इससे तुम्हें परम धर्मकी प्राप्ति होगी। तुम्हारे पिता कुरुवंशके श्रेष्ठ पुरुष और युद्धके मदसे उन्मत्त रहनेवाले वीर हैं, अतः इनके साथ अवश्य युद्ध करो (यही इनके लिये समुचित सत्कार होगा) और ऐसा करनेसे ही ये तुम्हारे ऊपर विशेष प्रसन्न होंगे। माताकी यह बात सुनकर महातेजस्वी बभ्रुवाहनने मन-ही-मन युद्ध करनेका निश्चय किया। उसने सुवर्णमय कवच पहनकर मस्तकपर तेजस्वी शिरस्त्राण धारण किया तथा सैकड़ों तरकसोंसे भरे हुए, सब प्रकारकी युद्ध-सामग्रीसे सुसज्जित, मनके समान वेगवान् घोड़ोंसे युक्त, चक्र और आवश्यक वस्तुओंसे पूर्ण, सोनेके भाण्डोंसे विभूषित, सिंहके चिह्नवाले ध्वजासे सुशोभित और सोनेके बने हुए परम उत्तम रथपर सवार हो अर्जुनपर धावा किया। निकट आनेपर उस वीरने पार्थके संरक्षणमें विचरनेवाले यज्ञसम्बन्धी घोड़ेको अश्व-शिक्षामें प्रवीण पुरुषोंद्वारा पकड़वा लिया। घोड़ेको पकड़ा गया देख धनञ्जयका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ और वे रथपर बैठे हुए अपने पुत्रको युद्धके मैदानमें आगे बढ़नेसे रोकने लगे। राजा बभ्रुवाहनने वीरवर अर्जुनको विषैले साँपोंके समान जहरीले और तेज किये हुए सैकड़ों बाणोंसे बींधकर अनेकों बार पीडित किया। पिता और पुत्र दोनों प्रसन्न होकर लड़ रहे थे। उनके उस युद्धकी कहीं तुलना नहीं थी। वह संग्राम देवता और असुरोंके संग्रामको भी मात कर रहा था। बभ्रुवाहनने हँसते-हँसते अर्जुनके गलेकी हँसलीमें एक बाण मारा। जैसे साँप अपने बिलमें घुस जाता है, उसी प्रकार वह बाण अर्जुनके शरीरमें पङ्खसहित प्रवेश कर गया और उसे छेदकर पृथ्वीमें समा गया। उसकी चोटसे अर्जुनको बड़ी वेदना हुई। वे अपने धनुषका सहारा लेकर मुर्देके समान निश्चेष्ट हो गये। थोड़ी देर बाद जब उन्हें होश हुआ तो अपने पुत्र बभ्रुवाहनकी प्रशंसा करते हुए बोले—'बेटा ! तुम धन्य हो ! चित्राङ्गदानन्दन ! आज तुमने अपने योग्य पराक्रम दिखलाया है। इसे देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। अच्छा, अब मैं बाण मारता हूँ। तुम सावधान एवं स्थिर हो जाओ।'

ऐसा कहकर अर्जुनने नाराचोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। गाण्डीव-धनुषसे छूटे हुए वे नाराच इन्द्रके वज्रके समान जान पड़ते थे; परंतु राजा बभ्रुवाहनने भल्ल मारकर उन सभी नाराचोंके दो-दो, तीन-तीन टुकड़े कर दिये। तब अर्जुनने मुसकराकर क्षुराकार दिव्य बाणोंके प्रहारसे बभ्रुवाहनके रथकी सुनहले तालवृक्षके समान ऊँची सुवर्णमयी ध्वजा काट गिरायी और उसके वेगवान् घोड़ोंको भी मार डाला। घोड़ोंके मरनेपर बभ्रुवाहन रथसे उतर पड़ा और क्रोधमें भरकर पैदल ही अपने पितासे युद्ध करने लगा। पुत्रका पराक्रम देखकर अर्जुन बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे अधिक पीड़ा नहीं पहुँचायी। तब बभ्रुवाहनने पिताको युद्धसे विमुख होते जानकर पुनः सर्पके समान जहरीले बाणोंसे उन्हें पीड़ा देनी आरम्भ की। उसने बालस्वभावके कारण परिणामपर विचार किये बिना ही पिताकी छातीमें एक तीखे बाणका जोरदार प्रहार किया। वह बाण अर्जुनके मर्मस्थानको छेदकर घुस गया और अत्यन्त कष्ट देने लगा। उसकी चोटसे अत्यन्त घायल हो जानेके कारण मूर्च्छित होकर जमीनपर गिर पड़े। बभ्रुवाहन भी अर्जुनके बाणोंद्वारा पहलेसे ही बहुत घायल हो चुका था, इसलिये वह भी बेहोश होकर पृथ्वीका आलिङ्गन करने लगा। बभ्रुवाहनकी माता चित्राङ्गदाने जब देखा कि पति और पुत्र दोनों धराशायी हो गये हैं तो उसने शङ्कित हृदयसे रणभूमिमें प्रवेश किया। वहाँ जानेपर उसे पतिदेव अर्जुन मरे हुए दिखायी दिये; उनकी अवस्था देखकर वह काँप उठी और शोकसे संतप्त होकर अत्यन्त विलाप करने लगी।



चित्राङ्गदाका विलाप, बभ्रुवाहनका शोक, उलूपीके प्रयत्नसे अर्जुनका पुनः जीवित होना तथा उन सबकी बातचीत

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! चित्राङ्गदा पति-वियोगके दुःखसे संतप्त होकर बहुत विलाप करती हुई मूर्च्छित हो गयी और पृथ्वीपर गिर पड़ी। कुछ देर बाद जब उसे होश हुआ तो उसने देखा, नागकन्या उलूपी दिव्य रूप धारण किये सामने खड़ी है। उसे देखकर चित्राङ्गदा कहने लगी—'उलूपी ! देखो, तुम्हारे ही कहनेसे मेरे पुत्रने बाण मारकर समरविजयी अर्जुनकी हत्या की है। रणभूमिमें मरकर पड़े हुए अपने स्वामीको आज तुम भी जी-भरकर देख लो। तुम तो श्रेष्ठ धर्मको जाननेवाली और बड़ी पतिव्रता हो न ? इसीसे तुम्हारे पतिदेव आज तुम्हारे ही प्रयत्नसे मारे

जाकर रणभूमिमें सो रहे हैं। बहिन ! मैं तुमसे अर्जुनके प्राणोंकी भीख माँगती हूँ। तुम इन्हें जीवित कर दो। कल्याणी ! तुम्हें सब धर्मोंका ज्ञान है और तीनों लोकोंमें तुम्हारी ख्याति फैली हुई है (अतः तुम स्वामीको जिला सकती हो)। आर्ये ! मैं अपने बेटेके लिये उतना शोक नहीं करती। मुझे तो इन पतिदेवके ही लिये अत्यन्त शोक हो रहा है, जिनका मेरे यहाँ इस प्रकार अतिथि-सत्कार किया गया !'



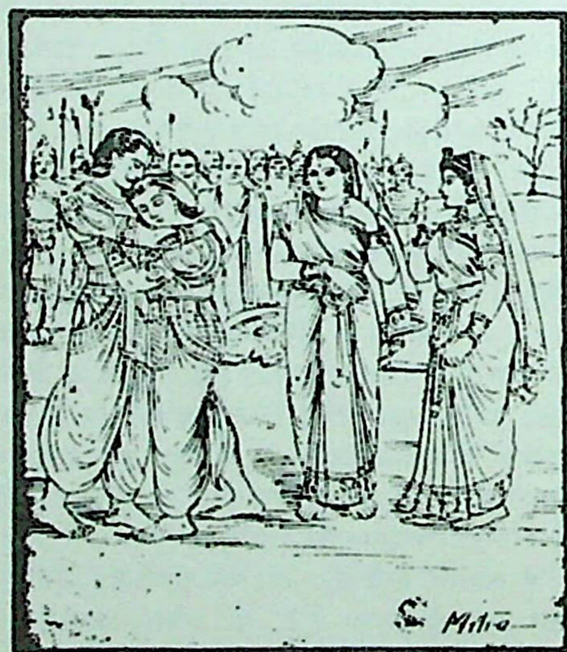
नागकन्या उलूपीसे इस प्रकार कहकर परम यशस्विनी चित्राङ्गदा अपने स्वामी अर्जुनके पास जाकर बोली—'प्रियतम ! उठो, मैंने तुम्हारा घोड़ा छुड़वा दिया है। तुम्हें तो महाराज युधिष्ठिरके यज्ञ-सम्बन्धी अश्वके पीछे-पीछे जाना है; फिर यहाँ कैसे सो रहे हो ? समस्त कौरवोंके प्राण तुम्हारे ही अधीन है। तुम तो दूसरोंके प्राणदाता हो, तुमने स्वयं कैसे प्राण त्याग दिया ?' (इसके बाद वह उलूपीसे फिर कहने लगी—) 'उलूपी ! पतिदेव पृथ्वीपर मरे पड़े हैं, इन्हें अच्छी तरह देख लो। तुमने बेटेको उकसाकर स्वामीकी हत्या करायी है, क्या इसके लिये तुम्हें शोक नहीं होता। मृत्युके वशमें पड़ा हुआ मेरा बालक चाहे सदाके लिये भूमिपर सोता रह जाय, किंतु निद्रापर विजय पानेवाले अर्जुनके जीवनकी रक्षा हो जानी चाहिये। विधाताने पति और पत्नीकी मित्रता सदा रहनेवाली एवं अटूट बनायी है। तुम्हारा भी इनके साथ वही सम्बन्ध है। इस सख्यभावके महत्त्वको समझो और ऐसा उपाय करो, जिससे तुम्हारी इनके साथ की हुई मैत्री सत्य एवं सार्थक हो। तुम्हींने बेटेको लड़ाकर मेरे पतिकी जान ली है। यदि आज पुनः इन्हें जीवित करके नहीं दिखा दोगी तो मैं भी प्राण त्याग दूँगी। मेरे पति और पुत्र दोनों नष्ट हो गये; उनके बिना मैं अगाध शोकमें डूब रही हूँ और तुम्हारे सामने यहाँ ही प्रायोपवेशन (आमरण उपवास) के लिये बैठती हूँ।

उलूपीसे ऐसा कहकर चित्राङ्गदा अनशन-व्रत धारण करके चुपचाप बैठ गयी। तदनन्तर राजा बभ्रुवाहनको होश हुआ। वह अपनी माताको रणभूमिमें बैठी देख दुःखी होकर कहने लगा—'हाय ! जो अबतक सुखोंमें पली थी, वही मेरी माता चित्राङ्गदा आज मृत्युके अधीन होकर पृथ्वीपर पड़े हुए अपने वीर पतिके साथ मरनेका निश्चय करके बैठी हुई है ! इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है ? संग्राममें जिनका वध करना दूसरेके लिये नितान्त कठिन है, उन्हीं मेरे पिता अर्जुनको आज यह मेरे ही हाथों मौतके मुखमें पड़े देख रही है। जान पड़ता है अन्तकाल आये बिना किसी भी जीवका मरना बड़ा कठिन है; तभी तो इस संकटके समय भी मेरे और मेरी माताके प्राण नहीं निकलते। हाय ! मुझे धिक्कार है। ब्राह्मणो ! मैं पिताकी हत्या करनेवाला, क्रूरकर्मी एवं महापापी हूँ। बताइये, मेरे लिये अब कौन-सा प्रायश्चित्त है ? नागराजकी पुत्री उलूपी ! देखो, आज युद्धमें मैंने तुम्हारे स्वामीका वध किया है, शायद इससे तुम्हारा प्रिय हुआ होगा; किंतु माँ ! मैं तो सत्यकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ, अब इस शरीरको नहीं धारण करूँगा। जहाँ मेरे पिता गये हैं वहीं मैं भी जाऊँगा।' ऐसा कहकर राजा बभ्रुवाहनने दुःख-शोकसे पीड़ित हो आचमन किया और बड़े खेदके साथ इस प्रकार कहा—'संसारके चराचर प्राणियो तथा माता उलूपी ! आप सब लोग सुनें, मैं सच्ची बात बता रहा हूँ। यदि मेरे पिता नरश्रेष्ठ अर्जुन आज जीवित होकर नहीं उठे तो मैं इस रणभूमिमें ही उपवास करके अपने शरीरको सुखा डालूँगा। पिताकी हत्या करके अब मेरे लिये दूसरा कोई प्रायश्चित्त नहीं है। ये पाण्डुपुत्र धनञ्जय महान् तेजस्वी, धर्मात्मा तथा मेरे पिता थे। इनका वध करके मैंने महान् पाप किया है। अब मेरा उद्धार कैसे हो सकता है ?' यों कहकर अर्जुनकुमार बभ्रुवाहनने पुनः आचमन किया और आमरण उपवासका व्रत लेकर चुपचाप बैठ गया।

तब उलूपीने संजीवन-मणिका स्मरण किया। नागोंके जीवनकी आधारभूत वह मणि उसके स्मरण करते ही वहाँ आ गयी। उसे हाथमें लेकर नागराजकुमारीने बभ्रुवाहनसे कहा—'बेटा ! उठो, शोक न करो। अर्जुन तुम्हारे द्वारा

परास्त नहीं हुए हैं। ये मनुष्यमात्रके लिये अजेय हैं। इन्द्र आदि देवता भी इन्हें नहीं जीत सकते। यह तो मैंने तुम्हारे यशस्वी पिताका प्रिय करनेके लिये मोहिनी माया दिखलायी है। तुम अपने द्वारा कोई पाप होनेकी रत्तीभर भी शङ्का न करो। ये महात्मा नर पुरातन ऋषि, सनातन एवं अविनाशी हैं। युद्धमें इन्द्र भी इनको नहीं हरा सकते। लो, मैं यह दिव्य मणि ले आयी हूँ। यह अपने स्पर्शसे सदा मरे हुए सर्पोंको जीवित किया करती है। इसे अपनी पिताकी छातीपर रख दो। इसका स्पर्श होते ही ये तुम्हें जीवित दिखायी देंगे।'

उलूपीके ऐसा कहनेपर अमित तेजस्वी बभ्रुवाहनने बड़े प्रेमके साथ पिताकी छातीपर वह मणि रख दी। उसके रखते ही वीरवर अर्जुन देरतक सोनेके बाद जगे हुए मनुष्यकी भाँति जीवित हो उठे। अपने मनस्वी पिताको सचेत और स्वस्थ देखकर बभ्रुवाहनने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उस समय इन्द्रने अर्जुनके ऊपर दिव्य फूलोंकी वर्षा की। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बिना बजाये ही मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर स्वरमें बज उठीं। आकाशमें 'साधुवाद' की ध्वनि गूँजने लगी। महाबाहु अर्जुन भलीभाँति स्वस्थ होकर उठे और



बभ्रुवाहनको छातीसे लगाकर उसका मस्तक सूँघने लगे। इतनेहीमें उलूपीके साथ कुछ दूरपर खड़ी हुई बभ्रुवाहनकी मातापर उनकी दृष्टि पड़ी, जो शोकसे दुर्बल हो रही थी। उसे देखकर अर्जुनने उलूपीसे पूछा—'कल्याणी! इस रणभूमिमें तुम्हारे और बभ्रुवाहनकी माताके आनेका क्या कारण है? मुझसे या बभ्रुवाहनसे अनजानमें तुम्हारा कोई अनिष्ट तो नहीं हो गया अथवा राजकुमारी चित्राङ्गदाने तो तुम्हारा कुछ अपराध नहीं किया!' यह प्रश्न सुनकर उलूपी हँस पड़ी और बोली—''प्राणनाथ! आपने या बभ्रुवाहनने मेरा कोई अपराध नहीं किया है तथा बभ्रुवाहनकी माताने भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा है। यह तो सदा दासीकी भाँति मेरी आज्ञाके अधीन रहती है। यहाँ आकर मैंने जिस प्रकार जो-जो काम किया है वह सब बतलाती हूँ, सुनिये। पहले आपके चरणोंपर मस्तक झुकाकर मैं प्रार्थना करती हूँ कि मेरेद्वारा जो कुछ अपराध हुआ है, वह सब आपकी भलाईके उद्देश्यसे हुआ है, इसलिये आप मुझपर क्रोध न कीजियेगा। महाभारतके युद्धमें शिखण्डीकी आड़ लेकर जो आपने भीष्मजीका वध किया था, उस पापकी शान्तिके लिये वसुओंने एक उपाय बतलाया। पहलेकी बात है, मैं गङ्गाजीके तटपर गयी थी। वहाँ भीष्मजीकी मृत्युके बाद देवता और वसु एकत्रित होकर स्नान करने आये। उन सबने गङ्गाजीसे मिलकर यह भयंकर बात कही—'देवि! शान्तनुनन्दन भीष्म दूसरेके साथ युद्ध कर रहे थे तो भी सव्यसाची अर्जुनने उनका वध किया है। इस अपराधके कारण हम उन्हें शाप देना चाहते हैं (इसके लिये आप आज्ञा दीजिये)। यह सुनकर गङ्गाजीने कहा—'हाँ, ऐसा ही होना चाहिये।' उनकी बातें सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और पातालमें प्रवेश करके मैंने अपने पितासे यह सारा समाचार कह सुनाया। यह सुनकर पिताजीको भी बड़ा खेद हुआ और वे वसुओंके पास जाकर आपके लिये क्षमा-याचना करने लगे। उनके बारंबार प्रार्थना करनेपर वसुओंने प्रसन्न होकर कहा—'महाभाग! मणिपुरका तरुण राजा बभ्रुवाहन अर्जुनका पुत्र है। वह संग्राममें खड़ा होकर जब अपने बाणोंसे उन्हें मार गिरायेगा, उस समय उनको इस पापसे छुटकारा मिल जायगा। अब तुम अपने स्थानको जाओ।' वसुओंके ऐसा कहनेपर मेरे पिताने घर आकर मुझसे यह बात बतायी। इसे सुनकर मैंने इसीके अनुसार चेष्टा की है और आपको उस पापसे छुटकारा दिलाया है। युद्धमें तो देवराज इन्द्र भी आपको नहीं जीत सकते। पुत्र तो अपना आत्मा ही है, इसीलिये इसके हाथसे यहाँ आपकी पराजय हुई है।''

उलूपीकी बात सुनकर अर्जुनका चित्त प्रसन्न हो गया। वे कहने लगे—'देवि! तुमने जो कुछ किया है, उससे मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य हुआ है।' उलूपीसे ऐसा कहकर चित्राङ्गदाको सुनाते हुए वे बभ्रुवाहनसे बोले—'बेटा! आगामी चैत्रकी पूर्णिमाको महाराज युधिष्ठिरका अश्वमेध-यज्ञ

होनेवाला है। तुम अपनी दोनों माताओंको साथ लेकर मन्त्रियोंसहित उस यज्ञमें आना।' पिताके स्नेहपूर्ण वचन सुनकर बभ्रुवाहनकी आँखोंमें प्रेमके आँसू छलक आये। वह बोला—'धर्मज्ञ ! आपकी आज्ञासे मैं अवश्य अश्वमेध-यज्ञमें सम्मिलित होऊँगा और उसमें ब्राह्मणोंको भोजन परोसनेका काम करूँगा। इस समय आपसे एक प्रार्थना है। आज मुझपर कृपा करनेके लिये अपनी दोनों धर्मपत्नियोंके साथ इस नगरमें प्रवेश कीजिये। यह भी आपका घर है। इसमें एक रात सुखपूर्वक निवास करके कल सबेरे घोड़ेके पीछे-पीछे जाइयेगा।' यह सुनकर अर्जुनने चित्राङ्गदाकुमारसे कहा—'महाबाहो ! यह तो तुम जानते ही हो कि मैं दीक्षा ग्रहण करके विशेष नियमोंके पालनपूर्वक विचर रहा हूँ। इसलिये जबतक यह दीक्षा पूर्ण नहीं हो जाती तबतक मैं तुम्हारे नगरमें नहीं प्रवेश कर सकता। यह यज्ञका घोड़ा अपनी इच्छाके अनुसार चलता है (इसे कहीं भी रोकनेका नियम नहीं है), अतः तुम्हारा कल्याण हो, मैं अब जाऊँगा। मेरे ठहरनेके लिये कोई स्थान नहीं है।'

तदनन्तर, बभ्रुवाहनने अर्जुनकी विधिवत् पूजा की और वे अपनी दोनों भार्याओंकी अनुमति लेकर वहाँसे चल दिये।



अर्जुनका मगध, चेदि, काशी, कोसल आदि देशोंके राजाओंको परास्त करते हुए गान्धार देशमें पहुँचना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! इसके बाद वह घोड़ा समुद्रपर्यन्त समूची पृथ्वीकी परिक्रमा करके पीछेकी ओर लौटा। अर्जुन भी उसके पीछे-पीछे लौट पड़े। रास्तेमें उन्हें राजगृहनामका नगर मिला। सहदेवका पुत्र मेघसंधि वहाँका राजा था। उसने जब सुना कि अर्जुन मेरे नगरके निकट आये हैं तो क्षत्रिय-धर्ममें स्थित होकर उन्हें युद्धके लिये आमन्त्रित किया। तत्पश्चात् स्वयं भी धनुष-बाणसे सुसज्जित हो रथपर बैठकर नगरसे बाहर निकला। उसने पैदल आते हुए अर्जुनपर धावा करके कहा—'भारत ! क्यों इस घोड़ेके पीछे-पीछे फिर रहे हो ? मैं इसे अभी पकड़कर लिये जाता हूँ। हिम्मत हो तो इसे छुड़ानेका यत्न करो। यदि मेरे पूर्वजोंने कभी युद्धमें तुम्हारा स्वागत न किया हो तो मैं वह कमी पूरी करूँगा—मेरे द्वारा आज तुम्हारा सत्कार होगा। पहले तुम मुझपर प्रहार करो, फिर मैं भी तुमपर प्रहार करूँगा।

मेघसंधिके ऐसा कहनेपर पाण्डुनन्दन अर्जुन हँसकर बोले—'राजन् ! मेरा व्रत तो यह है कि जो मेरे कार्यमें विघ्न डाले उसीको मैं रोकूँ, अतः तुम अपनी पूरी शक्ति लगाकर मेरे ऊपर प्रहार करो।' यह सुनकर पहले मगधराज मेघसंधिने ही प्रहार किया। उसने अर्जुनपर हजारों बाणोंकी वर्षा की; किंतु गाण्डीवधारी धनञ्जयने उन सभी बाणोंको अपने सायकोंसे काटकर व्यर्थ कर दिया। साथ ही मेघसंधिके ध्वज, पताकादण्ड, रथ, यन्त्र, घोड़े तथा रथके अन्य अङ्गोंपर उन्होंने बहुत-से प्रज्वलित बाण छोड़े; किंतु राजाके शरीर और सारथिपर एक भी बाण नहीं मारा। मगधराज मेघसंधि इसको अपना पराक्रम समझने लगा और अर्जुनपर लगातार बाणोंकी वर्षा करता रहा। उसके प्रहारसे जब अर्जुन बेतरह घायल हो गये तो उन्होंने क्रोधमें भरकर अपने धनुषपर जोरसे टंकार दी और मेघसंधिके घोड़ोंको मारकर उसके सारथिका भी सिर उड़ा दिया। फिर क्षुराकार बाणसे उसके महान् धनुषको काट डाला और हस्तत्राण नष्ट करके उसकी ध्वजा और पताकाको भी काट गिराया। उस समय मेघसंधिको बड़ी पीड़ा हुई और वह गदा लेकर अर्जुनपर टूट पड़ा, परंतु सामने आते ही धनञ्जयने अनेकों बाण मारकर उसकी स्वर्णमण्डित गदाके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इस प्रकार जब मेघसंधि रथ, धनुष और गदासे वञ्चित हो गया तो अर्जुनने उसे समझाते हुए कहा—'बेटा ! तुमने क्षत्रिय-धर्मके अनुसार पूरा पराक्रम दिखाया, अब अपने घर जाओ। तुम अभी बालक हो। इस युद्धमें तुमने जो शौर्य प्रकट किया है वही तुम्हारे लिये बहुत है। महाराज युधिष्ठिरका यह आदेश है कि युद्धमें राजाओंका वध न करना; इसीलिये मेरा अपराध करनेपर भी तुम अभीतक जीवित हो।'

अर्जुनकी बात सुनकर मेघसंधिको यह विश्वास हो गया कि अब इन्होंने मेरी जान छोड़ दी है। तब वह अर्जुनके पास गया और हाथ जोड़कर उनका आदर करते हुए कहने लगा—'वीरवर ! मैं परास्त हो गया। आपका कल्याण हो। मुझसे जो-जो सेवा लेनी हो, उसे बताइये। मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।' तब अर्जुनने उसे धैर्य देते हुए कहा—'राजन् ! तुम आगामी चैत्र पूर्णिमाको महाराज युधिष्ठिरके अश्वमेध-यज्ञमें पधारना।' उनके ऐसा कहनेपर सहदेवपुत्रने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और अर्जुनका विधिवत् पूजन किया। तदनन्तर, वह घोड़ा पुनः अपनी इच्छाके अनुसार समुद्रके किनारे होता हुआ बङ्ग, पुण्ड्र

और कोसल आदि देशोंमें गया तथा अर्जुनने भी उन-उन स्थानोंमें जाकर गाण्डीव धनुषकी सहायतासे म्लेच्छोंकी अनेकों सेनाओंको परास्त किया।

तत्पश्चात् अर्जुन घोड़ेका अनुसरण करते हुए दक्षिण दिशाकी ओर गये। कुछ दिनों बाद उधरसे लौटकर वह स्वेच्छाचारी अश्व चेदिदेशकी राजधानीमें पहुँचा। वहाँ शिशुपालका पुत्र शरभ राज्य करता था। उसने पहले तो अर्जुनके साथ युद्ध किया और उसमें परास्त होनेपर शास्त्रीय विधिके अनुसार उनकी पूजा की। चेदिराजकी पूजा स्वीकार करके वह उत्तम अश्व काशी, अङ्ग, कोसल, किरात और तङ्गण आदि देशोंमें गया। उन सभी राज्योंमें अर्जुनकी विधिवत् पूजा हुई। वहाँसे लौटकर वे दशार्ण देशमें पहुँचे। उस समय वहाँ महाबली चित्राङ्गदका राज्य था। उसके साथ अर्जुनका बड़ा भयंकर युद्ध हुआ और अन्तमें उसे परास्त करके वे निषादराज एकलव्यके राज्यमें गये। वहाँ एकलव्यके पुत्रने युद्धके द्वारा उन्हें रोका। फिर तो निषादोंके साथ उन्होंने बड़ा रोमाञ्चकारी युद्ध किया और अन्तमें निषादराजपर विजय पायी। उसके द्वारा पूजित होकर वे पुनः दक्षिण समुद्रकी ओर बढ़े। उधर भी द्रविड़, आंध्र, रौद्र, माहिषक और कोलाचलके प्रान्तोंमें रहनेवाले वीरोंके साथ अर्जुनका युद्ध हुआ। उन सबको सहजमें ही जीतकर वे घोड़ेके साथ-साथ सुराष्ट्र, गोकर्ण और प्रभासक्षेत्रमें गये। वहाँसे वह यज्ञका घोड़ा वृष्णिवीरोंके द्वारा सुरक्षित परम रमणीय द्वारका नगरीमें जा पहुँचा। वहाँ जाते ही यदुवंशी बालक उस घोड़ेको बाँधकर ले चले। इसी समय राजा उग्रसेन वसुदेवजीके साथ पुरीसे बाहर निकले। उन्होंने बालकोंको घोड़ा ले जाते देख उन्हें मना कर दिया। तदनन्तर, वे दोनों बड़े प्रेमके साथ अर्जुनसे मिले और शास्त्रोक्त विधिके अनुसार उनका पूजन किया। तत्पश्चात् उन दोनोंकी आज्ञा



लेकर वे घोड़ेके साथ-साथ पश्चिम समुद्रके तटवर्ती देशोंमें होते हुए पञ्चनद देशमें गये। वहाँ उनका घोड़ा इच्छानुसार विचरता हुआ गान्धार देशमें चला गया। वहाँ गान्धारराज शकुनिके पुत्रसे अर्जुनका बड़ा भयंकर युद्ध हुआ।



गान्धारराजको परास्त करके अर्जुनका लौटना, यज्ञभूमिकी तैयारी और नाना देशोंसे आये हुए राजाओंका यज्ञकी सजावट देखना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! शकुनिका पुत्र गान्धारोंमें सबसे बड़ा वीर और महारथी था। वह बहुत बड़ी सेना साथ लेकर अर्जुनका सामना करनेके लिये बढ़ा। उसके सैनिक शकुनिके वधका स्मरण करके अमर्षमें भरे हुए थे। सबने धनुष-बाण हाथमें लेकर पार्थपर आक्रमण किया। परम धर्मात्मा और किसीसे भी पराजित न होनेवाले वीरवर अर्जुनने उन्हें शान्तिपूर्वक समझाकर लड़नेसे रोका तथा युधिष्ठिरका हितकारी वचन भी सुनाया; किंतु वे अमर्षसे भरे होनेके कारण उनकी बात माननेको तैयार न हुए। अनेकों योद्धा घोड़ेको चारों ओरसे घेरकर उसे पकड़नेके लिये आगे बढ़े। यह देख पाण्डुनन्दन अर्जुन गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए तेज धारवाले क्षुरोंसे बिना परिश्रमके ही उनके मस्तक काटने लगे। इस प्रकार मार पड़नेपर बाणोंसे पीड़ित होनेके कारण वे सब सैनिक घोड़ा छोड़कर बड़े वेगसे अर्जुनकी ओर लौट पड़े। उन सभी गान्धारोंके द्वारा रोके जानेपर भी तेजस्वी वीर अर्जुन नाम ले-लेकर उनके सिर काटने और गिराने लगे। जब चारों ओर गान्धारोंका संहार आरम्भ हो गया तो शकुनिके पुत्रने आगे बढ़कर पाण्डुनन्दन अर्जुनको रोका।

तब अर्जुनने जिस प्रकार जयद्रथका सिर उड़ाया था, उसी प्रकार शकुनि-पुत्रके शिरस्त्राणको अर्धचन्द्राकार बाणसे काट गिराया। यह देखकर गान्धारोंको बड़ा विस्मय हुआ और वे सब-के-सब यह समझ गये कि अर्जुनने जान-बूझकर गान्धारराजको जीवित छोड़ दिया है। उस समय गान्धारराज शकुनिका पुत्र अपने भागते हुए सैनिकोंके साथ स्वयं भी भाग खड़ा हुआ। सम्पूर्ण सेनाके मनुष्य, हाथी और घोड़े इधर-उधर भटकने लगे। सारी फौज गिरती-पड़ती भागने लगी, उसके अधिकांश सिपाही युद्धमें मारे गये और वह बारंबार युद्धभूमिमें ही चक्कर काटने लगी।

तदनन्तर, गान्धारराजकी माता अत्यन्त भयभीत होकर बूढ़े मन्त्रियोंको आगे करके नगरसे निकली और उत्तम अर्घ्य लेकर रणभूमिमें उपस्थित हुई। आते ही उसने अपने रणोन्मत्त पुत्रको युद्ध करनेसे रोका और अर्जुनकी पूजा करके उन्हें प्रसन्न किया। अर्जुनने भी उसका सत्कार करके उसके ऊपर अनुग्रह किया और शकुनिके पुत्रको सान्त्वना देते हुए कहा—'महाबाहो! तुमने जो मुझसे युद्ध करनेका विचार किया, यह मुझे पसंद नहीं आया; क्योंकि तुम तो मेरे भाई ही हो। मैंने माता गान्धारी और पिता धृतराष्ट्रको याद करके युद्धमें तुम्हारी उपेक्षा की है, इसीसे अबतक जीवित हो। केवल तुम्हारे अनुगामी सैनिक ही मारे गये हैं। अब हमलोगोंमें ऐसी बात नहीं होनी चाहिये। आपसका वैर शान्त कर देना उचित है। अब तुम कभी इस प्रकार हमलोगोंके विरुद्ध युद्ध ठाननेका विचार न करना। आगामी चैत्रकी पूर्णिमाको महाराज युधिष्ठिरका अश्वमेध-यज्ञ होनेवाला है। उसमें तुम अवश्य पधारना।'

गान्धारराजसे यों कहकर अर्जुन इच्छानुसार विचरनेवाले घोड़ेके पीछे चल दिये। अब वह घोड़ा हस्तिनापुरकी राह पकड़कर लौट पड़ा। इसी समय महाराज युधिष्ठिरको जासूसोंकी जबानी अर्जुनके लौटनेका समाचार मिला। 'वे सकुशल आ रहे हैं और गान्धार तथा दूसरे देशोंमें उन्होंने अद्‌भुत पराक्रम दिखाया है' इत्यादि बातें सुनकर उनकी खुशीका ठिकाना न रहा। उस दिन माघ महीनेके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि थी और उसमें उत्तम नक्षत्रका योग था, यह जानकर महातेजस्वी धर्मराज युधिष्ठिरने अपने भाई भीम, नकुल और सहदेवको बुलाया और भीमको सम्बोधित करके कहा—'भीमसेन! तुम्हारे छोटे भाई अर्जुन घोड़ेके साथ-साथ आ रहे हैं। इधर यज्ञ आरम्भ करनेका समय भी निकट आ गया है। माघकी पूर्णिमा आ ही गयी। अब बीचमें केवल फाल्गुनका महीना बाकी है। अतः वेदके पारंगत विद्वान् ब्राह्मणोंको भेजना चाहिये कि वे अश्वमेध-यज्ञकी सिद्धिके लिये उपयुक्त स्थान देखें।' यह सुनकर भीमसेनने तत्काल राजाज्ञाका पालन किया। अर्जुनके लौटनेका समाचार सुनकर उनका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ था। तत्पश्चात् भीमसेन यज्ञ-कर्ममें कुशल ब्राह्मणोंको आगे करके होशियार कारीगरोंके साथ नगरसे बाहर गये और शालवृक्षसे भरे हुए सुन्दर स्थान पसंद करके उसे चारों ओरसे नाप लिया। तत्पश्चात् वहाँ उत्तम मार्गोंसे सुशोभित यज्ञभूमि तैयार करायी। उस भूमिमें सैकड़ों महल बनवाये गये, जिनके फर्शमें अच्छे-अच्छे रत्न जड़े हुए थे। यज्ञशाला सोने और रत्नोंसे सजायी गयी थी। वहाँ सुवर्णमय विचित्र खम्भे और बड़े-बड़े तोरण लगे हुए थे। धर्मात्मा भीमने यज्ञमण्डपके सभी स्थानोंमें शुद्ध सुवर्णका उपयोग किया था। उन्होंने अन्तःपुरकी स्त्रियों और भिन्न-भिन्न देशोंसे आये हुए राजाओं तथा ब्राह्मणोंके रहनेके लिये अनेकों उत्तम भवन बनवाये। उन सबका निर्माण शास्त्रीय विधिके अनुसार हुआ था।

यह सब काम हो जानेपर भीमसेनने महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे विभिन्न राजाओंको निमन्त्रण देनेके लिये दूत भेजे। निमन्त्रण पाकर वे सभी राजा अनेकों प्रकारके रत्न, स्त्रियाँ, घोड़े और नाना भाँतिके अस्त्र-शस्त्र लेकर वहाँ उपस्थित हुए। इन नवागत अतिथियोंका सत्कार करनेके लिये राजा युधिष्ठिरने अन्न, पान और अलौकिक शय्याओंका प्रबन्ध किया। चावल, शक्कर और गो-रससे भरे हुए भाँति-भाँतिके भवन और अनेकों सवारियाँ दीं। धर्मराजके उस महान् यज्ञमें बहुत-से ब्रह्मवादी मुनि भी पधारे। अच्छे-अच्छे ब्राह्मण अपने शिष्योंको साथ लेकर आये। महातेजस्वी युधिष्ठिर दम्भ छोड़कर स्वयं ही उन सबका विधिवत् सत्कार करते और जबतक उनके लिये योग्य स्थानका प्रबन्ध न हो जाता तबतक उनके साथ-साथ रहते थे। तत्पश्चात् कारीगरोंने आकर राजा युधिष्ठिरको यह सूचना दी कि यज्ञमण्डपका सारा कार्य पूरा हो गया। यह सुनकर वे अपने भाइयोंसहित बहुत प्रसन्न हुए।

तदनन्तर, यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये आये हुए राजालोग घूम-घूमकर भीमसेनके द्वारा तैयार कराये हुए यज्ञमण्डपकी उत्तम सजावट देखने लगे। उन्होंने सुवर्णके बने हुए तोरण, शय्या, आसन, विहार, रत्नोंके ढेर, घड़े, बर्तन, कड़ाहे, कलश और बहुत-से कटोरे देखे। वहाँ कोई भी ऐसा सामान नहीं दिखायी दिया, जो सोनेका बना हुआ न हो। शास्त्रोक्त विधिके अनुसार जो लकड़ीके यूप बने हुए थे, उनमें भी सोना जड़ा हुआ था। इस प्रकार वह यज्ञशाला पशु, गौ, धन और धान्य सभी दृष्टियोंसे सम्पन्न एवं आनन्द बढ़ानेवाली थी।

उसे देखकर राजाओंको बड़ा विस्मय हुआ। ब्राह्मणों और वैश्योंके लिये वहाँ परम स्वादिष्ट अन्नका भण्डार भरा हुआ था। प्रतिदिन एक लाख ब्राह्मणोंके भोजन कर लेनेपर बार-बार डंका पीटा जाता था। धर्मराजका यज्ञ रोज-रोज इसी रूपमें चालू रहा। अन्नके बहुत-से पर्वतके समान ढेर दिखायी देते थे। दहीकी नहरें बनी हुई थीं और घीके अनेकों तालाब भरे हुए थे। उस महान् यज्ञमें अनेकों देशोंके लोग जुटे हुए थे। सारा जम्बूद्वीप ही वहाँ एकत्रित दिखायी देता था। हजारों प्रकारकी जातियाँ बहुत-से पात्र लेकर वहाँ उपस्थित होती थीं। सैकड़ों और हजारों पुरुष ब्राह्मणोंको तरह-तरहके खाने-पीनेके पदार्थ परोसते रहते थे। वहाँ ब्राह्मणोंको राजोचित भोजन दिया जाता था।



श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे अर्जुनका संदेश कहना, अर्जुनका हस्तिनापुरमें आना तथा उलूपी और चित्राङ्गदाके साथ बभ्रुवाहनका आगमन

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! युधिष्ठिरने अपने यहाँ बहुत-से वेदज्ञ राजाओंको उपस्थित देखकर भीमसेनसे कहा—'भाई! यहाँ जो-जो राजा पधारे हुए हैं, सभी अत्यन्त श्रेष्ठ एवं पूजाके योग्य हैं; अतः तुम उनका यथोचित सत्कार करो।' राजाकी आज्ञा पाकर महातेजस्वी भीमसेन नकुल और सहदेवको साथ लेकर यज्ञमें आये हुए राजाओंके आतिथ्य-सत्कारमें लग गये। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण बलदेवजीको आगे करके सात्यकि, प्रद्युम्न, गद, निशठ, साम्ब तथा कृतवर्मा आदि वृष्णिवंशियोंके साथ युधिष्ठिरके पास आये। भीमसेनने उन लोगोंका भी विधिवत् सत्कार किया। फिर वे रत्नोंसे भरे हुए घरोंमें जाकर रहने लगे। श्रीकृष्ण युधिष्ठिरके पास बैठकर थोड़ी देरतक बात करते रहे। अन्तमें बोले—'राजन्! मेरे पास द्वारकाका रहनेवाला एक विश्वासपात्र मनुष्य आया था। उसने अर्जुनको अपनी आँखों देखा था। वे अनेकों स्थानोंपर युद्ध करनेके कारण बहुत दुर्बल हो गये हैं। उसने यह भी बताया कि महाबाहु अर्जुन अब निकट आ पहुँचे हैं, इसलिये अब आप अश्वमेध-यज्ञकी सफलताके लिये आवश्यक कार्य प्रारम्भ कर दीजिये।'

यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर कहने लगे—'माधव! बड़े सौभाग्यकी बात है कि अर्जुन कुशलपूर्वक लौट रहे हैं। उन्होंने जो कुछ संदेशा दिया हो, उसे मैं आपके मुँहसे सुनना चाहता हूँ।' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'महाराज! मेरे पास जो मनुष्य आया था, उसने अर्जुनकी बात याद करके मुझसे इस प्रकार कहा—'श्रीकृष्ण! आप समय देखकर मेरा यह कथन महाराज युधिष्ठिरको भी सुना दीजियेगा। अश्वमेध-यज्ञमें प्रायः सभी राजा आयेंगे। जो लोग आ जायँ, उन सबका पूर्ण सत्कार होना चाहिये, यही हमारे योग्य काम है। राजसूय-यज्ञमें अर्घ्य देनेके समय जो दुर्घटना हो गयी थी वैसी इस बार नहीं होनी चाहिये। राजा युधिष्ठिर और आप दोनोंको सलाह करके ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे राजाओंके पारस्परिक द्वेषवश पुनः इन प्रजाओंका संहार न हो।' राजन्! उस मनुष्यने अर्जुनकी कही हुई एक बात और बतायी थी, उसे भी सुन लीजिये—'इस यज्ञमें मणिपुरका राजा बभ्रुवाहन भी आनेवाला है जो महान् तेजस्वी और मेरा प्रिय पुत्र है। मेरे प्रति उसकी बड़ी भक्ति और अनुरक्ति है, उसके आनेपर आप मेरी अपेक्षा उसका विशेष सत्कार करें।'

अर्जुनका संदेश सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने उसका हृदयसे अभिनन्दन करते हुए कहा—'भगवन्! आपने जो यह प्रिय समाचार सुनाया है उसे मैंने अच्छी तरह सुन लिया। आपका अमृतमय वचन मेरे मनको आनन्दमग्न किये देता है। मेरे सुननेमें आया है कि भिन्न-भिन्न देशोंमें वहाँके राजाओंके साथ अर्जुनको कई बार युद्ध करने पड़े हैं। इसका क्या कारण है? मैं एकान्तमें बैठकर अर्जुनके बारेमें विचार करता हूँ तो यही जान पड़ता है कि वे सबसे अधिक दुःखके भागी हैं। उनका शरीर तो सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है, फिर उसमें अशुभ लक्षण कौन-सा है, जिसके कारण अधिक कष्ट उठाना पड़ता है।'

युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर भगवान् श्रीकृष्णने बहुत सोचकर उत्तर दिया—'राजन्! अर्जुनकी फिल्लियाँ औसतसे कुछ अधिक मोटी हैं। इसके सिवा और कोई अशुभ लक्षण उनके शरीरमें मुझे भी नहीं दिखायी देता। फिल्लियोंके मोटे होनेसे ही उन्हें सदा रास्ता चलना पड़ता है। और कोई कारण नहीं मालूम होता, जिससे उन्हें दुःख भोगना पड़े।' अर्जुनके सम्बन्धमें विचित्र बातें सुन-सुनकर भीमसेन आदि पाण्डव तथा यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण विशेष प्रसन्न हो रहे थे। इन लोगोंमें अभी अर्जुनविषयक बातचीत हो ही रही थी कि अर्जुनका भेजा हुआ दूत वहाँ आ पहुँचा। वह बड़ा

बुद्धिमान् था। उसने युधिष्ठिरके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और अर्जुनके आनेका समाचार सुनाया। उसकी बात सुनकर राजा युधिष्ठिरकी आँखोंमें आनन्दके आँसू छलक आये और यह प्रिय वृत्तान्त निवेदन करनेके कारण उस दूतको पुरस्काररूपमें उन्होंने बहुत-सा धन दिया। दूसरे दिन सबेरे ही अर्जुन आये। चारों ओर इसकी चर्चा होनेसे नगरमें कोलाहल-सा मच गया। यज्ञसम्बन्धी घोड़ेकी टापसे धूल उड़ने लगी और उसके बीचमें चलता हुआ वह अश्व उच्चैःश्रवाके समान शोभा पाने लगा। उस समय लोगोंके मुखसे निकली हुई आनन्ददायिनी बातें अर्जुनको सुनायी देने लगीं। लोग कह रहे थे—'पार्थ ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम घोड़ेसहित कुशलपूर्वक लौट आये। तुम्हें पाकर राजा युधिष्ठिर धन्य हैं। तुम्हारे सिवा दूसरा कौन है जो सारी पृथ्वीपर घोड़ेको घुमाकर भूमण्डलके समस्त राजाओंपर विजय पा जाय और कुशलपूर्वक लौट आवे। अतीत युगमें जो सगर आदि महात्मा राजा हो चुके हैं, उन्होंने भी कभी ऐसा पुरुषार्थ किया था, यह हमारे सुननेमें नहीं आया है।'

लोगोंकी ये बातें सुनते हुए धर्मात्मा अर्जुन यज्ञशालाकी ओर चले। उस समय मन्त्रियोंसहित राजा युधिष्ठिर और यदुनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने धृतराष्ट्रको आगे करके उनकी अगवानी की। निकट आनेपर अर्जुनने पहले पितातुल्य धृतराष्ट्र और धर्मराज युधिष्ठिरके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर भीमसेन आदिका विशेष सत्कार करके वे श्रीकृष्णको गलेसे लगाकर मिले। उन सबने एकत्रित होकर अर्जुनका सत्कार किया और अर्जुनने भी उन सबका विधिवत् पूजन किया। तत्पश्चात् वे विश्राम करने लगे। इसी समय अपनी दोनों माताओंके साथ राजा बभ्रुवाहन भी आ पहुँचा। वह कुरुकुलके वृद्ध पुरुषों तथा अन्य राजाओंको विधिवत् प्रणाम करके उनके द्वारा सत्कार पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। इसके बाद अपनी दादी कुन्तीके सुन्दर महलमें चला गया।



बभ्रुवाहन आदिका सत्कार तथा अश्वमेध-यज्ञका आरम्भ

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! महलमें प्रवेश करके बभ्रुवाहनने मीठे वचन बोलकर अपनी दादीके



चरणोंमें प्रणाम किया। इसके बाद देवी चित्राङ्गदा और उलूपीने भी विनीत भावसे कुन्ती और द्रौपदीके चरण छूये। फिर सुभद्रा तथा कुरुकुलकी अन्य स्त्रियोंसे भी वे यथायोग्य मिलीं। उस समय कुन्तीने उन दोनोंको नाना प्रकारके रत्न भेंट दिये। द्रौपदी, सुभद्रा तथा अन्य स्त्रियोंने भी अपनी ओरसे नाना प्रकारके उपहार दिये। तत्पश्चात् वे दोनों देवियाँ बहुमूल्य शय्याओंपर विराजमान हुईं। कुन्तीने उन दोनोंका बड़ा सत्कार किया। महातेजस्वी बभ्रुवाहन भी कुन्तीसे सत्कार पाकर महाराज धृतराष्ट्रके पास उपस्थित हुआ और विधिके अनुसार उसने उनका चरणस्पर्श किया। इसके बाद राजा युधिष्ठिर और भीमसेन आदि सभी पाण्डवोंके पास जाकर बभ्रुवाहनने विनयपूर्वक उनका अभिवादन किया। उन सब लोगोंने प्रेमवश उसे छातीसे लगा लिया और उसका यथोचित सत्कार किया। इसी प्रकार वह प्रद्युम्नकी भाँति विनीतभावसे शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें उपस्थित हुआ। श्रीकृष्णने उसे एक बहुमूल्य रथ प्रदान किया, जो सुनहरी साजोंसे सजाया हुआ, सबके द्वारा प्रशंसित और अत्यन्त उत्तम था। उसमें दिव्य घोड़े जुते हुए थे। तत्पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेवने अलग-अलग बभ्रुवाहनका सत्कार करके उसे बहुत-सा धन दिया।

उसके तीसरे दिन सत्यवतीनन्दन महर्षि व्यासजी युधिष्ठिरके पास आकर बोले—'कुन्तीनन्दन ! तुम आजसे

यज्ञ आरम्भ कर दो। उसका समय आ गया है। यज्ञका शुभ मुहूर्त उपस्थित है। याजकगण तुम्हें बुला रहे हैं। तुम्हारे इस यज्ञमें किसी बातकी कमी नहीं रहेगी, यह किसी भी अङ्गसे हीन नहीं होगा, इसलिये 'अहीन' (सर्वाङ्गपूर्ण) कहलायेगा। इसमें सुवर्णनामक द्रव्यकी अधिकता है; अतः यह 'बहुसुवर्णक' नामसे विख्यात होगा। महाराज! यज्ञके प्रधान कारण ब्राह्मण ही हैं, इसलिये तुम उन्हें तिगुनी दक्षिणा देना; ऐसा करनेसे तुम्हें तीन अश्वमेध-यज्ञोंका फल मिलेगा और तुम ज्ञातिवधके पापसे भी मुक्त हो जाओगे। इस यज्ञके अन्तमें जो तुम्हें अवभृथ-स्नान करनेका अवसर मिलेगा, वह परम पवित्र और पावन बनानेवाला है।'

महर्षि व्यासके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरने अश्वमेध-यज्ञकी सिद्धिके लिये उसी दिन दीक्षा ग्रहण की और बहुत-से अन्नकी दक्षिणासे युक्त तथा सम्पूर्ण कामना और गुणोंसे सम्पन्न उस महान् यज्ञको आरम्भ कर दिया। उसमें वेदोंके ज्ञाता और सम्पूर्ण विधियोंके जाननेवाले याजकोंने ही सब कर्म कराये। वे सब ओर घूम-घूमकर अच्छी प्रकार विधिका उपदेश दिया करते थे। उन्होंने यज्ञमें कहीं भी भूल नहीं की, कोई भी काम अधूरा नहीं छोड़ा। प्रत्येक कार्यको क्रमके अनुसार और उचित रीतिसे पूरा किया। सोमपान करनेवालोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने शास्त्रीय विधिके अनुसार सोमलताका रस निकालकर क्रमशः प्रातःसवन आदि कर्मोंका अनुष्ठान किया। यज्ञमें आया हुआ कोई भी मनुष्य दीन, दरिद्र, भूखा अथवा दुःखिया नहीं रह गया था। महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे महान् तेजस्वी भीमसेन भोजनार्थियोंको भोजन देनेके कामपर सदा डटे रहते थे। यज्ञकी वेदी बनानेमें निपुण याजकगण प्रतिदिन शास्त्रोक्त विधिके अनुसार सब कार्य सम्पन्न किया करते थे, उस यज्ञके सदस्योंमें कोई भी ऐसा नहीं था, जो छहों अङ्गोंका विद्वान्, ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करनेवाला, अध्यापनकार्यमें कुशल तथा वाद-विवादमें प्रवीण न हो।

तत्पश्चात् जब यूपकी स्थापनाका समय आया तो याचकोंने यज्ञ-भूमिमें बेलके छः, खैरके छः, पलाशके छः, देवदारुके दो और लसोड़ेका एक—इस प्रकार इक्कीस यूप खड़े किये। इनके सिवा धर्मराजकी आज्ञासे भीमसेनने यज्ञकी शोभाके लिये और भी बहुत-से सुवर्णमय यूप खड़े कराये। यज्ञकी वेदी बनानेके लिये सोनेकी ईंटें तैयार करायी गयी थीं। उनके द्वारा जब वेदी बनकर तैयार हुई तो वह दक्ष-प्रजापतिकी यज्ञवेदीके समान शोभा पाने लगी। उस यज्ञमण्डपमें अग्निचयनके लिये चार स्थान बने थे। उन सबकी लंबाई अठारह-अठारह हाथकी थी। उनका आकार गरुड़के समान था, जिसमें सोनेके पंख लगे हुए थे। उन वेदियोंपर त्रिकोण कुण्ड बने हुए थे। उन्हींमें अग्निस्थापनका कार्य हुआ। किम्पुरुष और किन्नरगण यज्ञशालाकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसके चारों ओर सिद्धों और ब्राह्मणोंका निवास था। व्यासजीके शिष्य, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके प्रणेता और यज्ञकर्ममें कुशल थे, उस यज्ञमें सदस्य थे। देवर्षि नारद, तुम्बुरु, विश्वावसु, चित्रसेन तथा गानविद्यामें प्रवीण दूसरे-दूसरे गन्धर्व भी वहाँ मौजूद थे। नाचने और गानेमें कुशल गन्धर्वलोग प्रतिदिन यज्ञकार्य सम्पन्न होनेके बाद अपनी कलाके द्वारा ब्राह्मणोंका मनोरञ्जन करते थे।



युधिष्ठिरका ब्राह्मणोंको दक्षिणा देना और राजाओंको भेंट देकर विदा करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार इन्द्रके समान तेजस्वी राजा युधिष्ठिरका यज्ञ पूर्ण हुआ। तत्पश्चात् शिष्योंसहित भगवान् व्यासने उनके अभ्युदय होनेका आशीर्वाद दिया। फिर युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक एक हजार करोड़ (एक खरब) स्वर्णमुद्राएँ दक्षिणामें देकर व्यासजीको सम्पूर्ण पृथ्वी दान कर दी। सत्यवतीनन्दन व्यासने उस दानको स्वीकार करके धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा—'राजन्! तुम्हारी दी हुई इस पृथ्वीको पुनः तुम्हारे ही अधिकारमें छोड़ता हूँ, तुम मुझे इसकी कीमत दे दो; क्योंकि ब्राह्मण धनके ही इच्छुक होते हैं (राज्यके नहीं)।' तत्पश्चात् महामना युधिष्ठिरने उन ब्राह्मणोंसे कहा—'अश्वमेध-यज्ञमें पृथ्वीकी दक्षिणा देनेका विधान है। अतः अर्जुनके द्वारा जीती हुई यह सारी पृथ्वी मैंने ऋत्विजोंको दे दी है, अब मैं वनमें चला जाऊँगा। आपलोग चातुर्होत्रकी विधिके अनुसार इसे चार भागोंमें बाँट लीजिये। मैं ब्राह्मणकी सम्पत्ति नहीं लेना चाहता। मेरे भाइयोंका विचार भी ऐसा ही रहता है।'

उनके ऐसा कहनेपर भीमसेन आदि भाइयों और द्रौपदीने एक स्वरसे कहा—'हाँ, महाराजका कहना बिलकुल ठीक है।' इस महान् त्यागकी बात सुनकर सबके रोंगटे खड़े हो गये। इसी समय आकाशवाणी हुई—'पाण्डवो! तुम धन्य हो।' समस्त ब्राह्मण उनके सत्साहसकी प्रशंसा करने लगे। तब भगवान् व्यासने ब्राह्मणोंके बीचमें युधिष्ठिरकी

प्रशंसा करते हुए कहा—'राजन्! तुमने तो यह पृथ्वी मुझे दे ही दी है। अब मैं अपनी ओरसे इसे वापस करता हूँ। इसके बदलेमें ब्राह्मणोंको सुवर्ण दे दो और पृथ्वीको अपने ही पास रहने दो।' इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'धर्मराज! भगवान् व्यास जो आज्ञा दे रहे हैं उसीके अनुसार आपको कार्य करना चाहिये।' यह सुनकर कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर भाइयोंसहित बहुत प्रसन्न हुए और प्रत्येक ब्राह्मणको उन्होंने एक-एक करोड़की तिगुनी दक्षिणा दी। महाराज मरुत्तके मार्गका अनुसरण करनेवाले राजा युधिष्ठिरने उस समय जैसा महान् त्याग किया था, वैसा इस संसारमें दूसरा कोई नहीं कर सकता। महर्षि व्यासने वह सुवर्णराशि लेकर ब्राह्मणोंको दे दी और उन्होंने चार भाग करके उसे आपसमें बाँट लिया; इस प्रकार पृथ्वीके मूल्यके रूपमें सुवर्ण देकर राजा युधिष्ठिर अपने भाइयोंसहित बहुत प्रसन्न हुए। उनके सारे पाप धुल गये और उन्होंने स्वर्गपर अधिकार प्राप्त कर लिया। ऋत्विजोंने अपनेको मिली हुई अनन्त सुवर्णकी ढेरीको बड़े आनन्द और उत्साहके साथ दूसरे-दूसरे ब्राह्मणोंको बाँट दिया। यज्ञशालामें भी जो कुछ सुवर्ण या सोनेके आभूषण, तोरण, यूप, घड़े, बर्तन और ईंटें थीं, उनको भी युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर ब्राह्मणोंने बाँट लिया। ब्राह्मणोंके लेनेके बाद जो धन वहाँ पड़ा रह गया, उसे क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा म्लेच्छ जातिके लोग उठा ले गये। धर्मराज युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंको धनसे पूर्ण तृप्त कर दिया था। वे बहुत प्रसन्न होकर अपने-अपने घर गये। उस महती सुवर्णराशिमेंसे भगवान् व्यासको जो अपना भाग मिला था, उसे उन्होंने बड़े आदरके साथ कुन्तीको भेंट कर दिया। श्वशुरके द्वारा स्नेहपूर्वक मिले हुए उस धनको पाकर कुन्तीदेवी बहुत प्रसन्न हुई और उन्होंने उससे बड़े-बड़े पुण्यकार्य किये। यज्ञके अन्तमें अवभृथ-स्नान करके पापरहित हुए राजा युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ इस प्रकार शोभा पाने लगे, जैसे देवताओंके साथ इन्द्र सुशोभित होते हैं। तदनन्तर, पाण्डवोंने यज्ञमें आये हुए राजाओंको भी तरह-तरहके रत्न, हाथी, घोड़े, आभूषण, स्त्रियाँ, वस्त्र और सुवर्ण भेंट किये। फिर राजा बभ्रुवाहनको पास बुलाया और उसे बहुत-सा धन देकर विदा किया। इसके बाद अपनी बहिन दुःशलाकी प्रसन्नताके लिये उन्होंने उसके पोतेको सिन्धुदेशके राज्यपर अभिषिक्त किया। इस प्रकार कुरुराज युधिष्ठिरने सब राजाओंको अच्छी तरह धन दिया और उनका विशेष सत्कार करके विदा कर दिया। इसके बाद उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण, महाबली बलराम तथा प्रद्युम्न आदि हजारों वृष्णिवीरोंकी विधिवत् पूजा करके उन्हें द्वारका जानेके लिये स्वीकृति दी। धर्मराज युधिष्ठिरका वह यज्ञ इस प्रकार पूर्ण हुआ। उसमें अन्न, धन और रत्नोंकी ढेरी लगी हुई थी। कई ऐसे तालाब बने थे, जिनमें घीकी ही कीचड़ जमी हुई थी। अन्नके तो पहाड़ ही खड़े थे और रसोंकी नदियाँ बहती थीं। जिसकी जैसी इच्छा हो, उसको वही वस्तु दी जाय और सबको इच्छानुसार भोजन कराया जाय—यह घोषणा दिन-रात जारी रहती थी। धर्मराजने उस यज्ञमें धनको पानीके समान बहाया। सब प्रकारकी कामनाओं, रत्नों और रसोंकी वर्षा की तथा इस प्रकार पापरहित एवं कृतार्थ होकर उन्होंने अपने नगरमें प्रवेश किया।

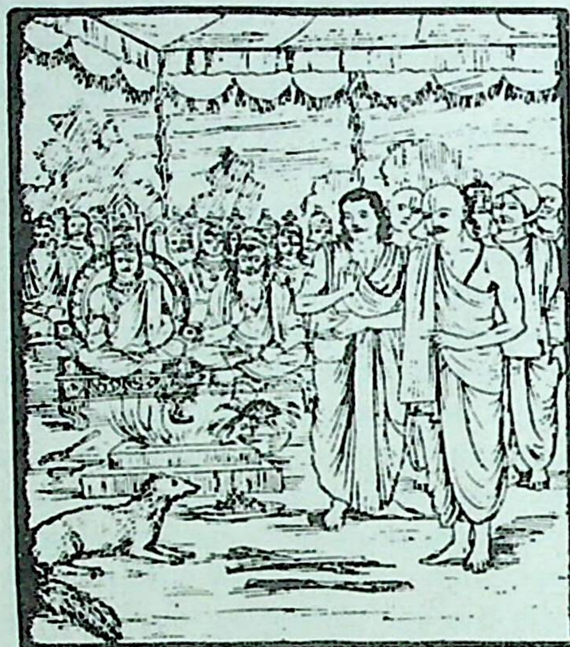


युधिष्ठिरके यज्ञमें एक नेवलेका उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मणके सेरभर सत्तू-दानकी महिमा बतलाना

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! मेरे प्रपितामह धर्मराज युधिष्ठिरके यज्ञमें यदि कोई आश्चर्यजनक घटना हुई हो तो आप उसे बतानेकी कृपा करें?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! युधिष्ठिरका वह महान् अश्वमेध-यज्ञ जब पूरा हुआ, उसी समय एक बड़ी उत्तम किंतु महान् आश्चर्यमें डालनेवाली घटना घटित हुई, उसे बतलाता हूँ, सुनो—उस यज्ञमें श्रेष्ठ ब्राह्मणों, जातिवालों, सम्बन्धियों, बन्धु-बान्धवों, अंधों तथा दीन-दरिद्रोंके तृप्त हो जानेपर युधिष्ठिरके महान् दानका चारों ओर शोर हो गया। उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी। उसी समय वहाँ एक नेवला आया। उसकी आँखें नीली थीं और उसके शरीरके एक तरफका भाग सोनेका था। उसने आते ही एक बार वज्रके समान भयंकर आवाज देकर समस्त मृगों और पक्षियोंको भयभीत कर दिया और फिर मनुष्यकी भाषामें कहा—'राजाओ! तुम्हारा यह यज्ञ कुरुक्षेत्रनिवासी एक उञ्छवृत्तिधारी उदार ब्राह्मणके सेरभर सत्तू-दान करनेके बराबर भी नहीं हुआ है।'

नेवलेकी बात सुनकर समस्त ब्राह्मणोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे उसे चारों ओरसे घेरकर पूछने लगे—'नकुल! इस यज्ञमें तो साधु पुरुषोंका ही समागम हुआ है, तुम कहाँसे



आ गये ? तुममें कौन-सा बल और कितना शास्त्रज्ञान है ? तुम किसके सहारे रहते हो ? हमें किस तरह तुम्हारा परिचय प्राप्त होगा ? तुम किस आधारपर हमारे इस यज्ञकी निन्दा करते हो ? हमने नाना प्रकारकी यज्ञ-सामग्री एकत्रित करके शास्त्रीय विधिकी अवहेलना न करते हुए इस यज्ञको पूर्ण किया है। शास्त्र और न्यायके अनुसार प्रत्येक कर्तव्य-कर्मका पालन किया गया है। पूजनीय पुरुषोंकी विधिवत् पूजा की गयी है, अग्निमें मन्त्र पढ़कर आहुति दी गयी है और देनेयोग्य वस्तुओंका ईर्ष्यारहित होकर दान किया गया है। यहाँ नाना प्रकारके दानोंसे ब्राह्मणोंको, उत्तम युद्धके द्वारा क्षत्रियोंको, श्राद्धके द्वारा पितामहोंको, रक्षाके द्वारा वैश्योंको, सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करके उत्तम स्त्रियोंको, दयासे शूद्रोंको, दानसे बची हुई वस्तुएँ देकर अन्य मनुष्योंको तथा राजाके शुद्ध बर्तावसे ज्ञाति एवं सम्बन्धियोंको संतुष्ट किया गया है। इसी प्रकार पवित्र हविष्यके द्वारा देवताओंको और रक्षाका भार लेकर शरणागतोंको प्रसन्न किया गया है। यह सब होनेपर भी तुमने क्या देखा या सुना है, जिससे इस यज्ञपर आक्षेप करते हो। इन ब्राह्मणोंके निकट तुम सच-सच बताओ; क्योंकि तुम्हारी बातें विश्वासके योग्य जान पड़ती हैं। तुम स्वयं भी बुद्धिमान् दिखायी देते और दिव्यरूप धारण किये हुए हो। इस समय तुम्हारा ब्राह्मणोंके साथ समागम हुआ है, इसलिये तुम्हें हमारे प्रश्नका उत्तर अवश्य देना चाहिये।'

ब्राह्मणोंके इस प्रकार पूछनेपर नेवलेने हँसकर कहा—'विप्रवृन्द ! मैंने आपलोगोंसे मिथ्या अथवा घमंडमें आकर कोई बात नहीं कही है। मैंने जो कहा है कि 'आपलोगोंका यह यज्ञ उञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मणके द्वारा किये हुए सेरभर सत्तू-दानके बराबर भी नहीं है' इसका कारण अवश्य आप लोगोंको बतानेयोग्य है। अब मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे आपलोग शान्तचित्त होकर सुनें। कुरुक्षेत्रनिवासी उञ्छवृत्तिधारी दानी ब्राह्मणके सम्बन्धमें मैंने जो कुछ देखा और अनुभव किया है, वह बड़ा ही उत्तम एवं अद्‌भुत है। उस ब्राह्मणके द्वारा न्यायतः प्राप्त हुए थोड़े-से अन्नका दान भी अत्यन्त उत्तम फलका साधक हुआ। यही प्रसंग आपलोगोंको बता रहा हूँ। कुछ दिनों पहलेकी बात है, धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें जहाँ बहुत-से धर्मज्ञ महात्मा रहा करते हैं, कोई ब्राह्मण रहते थे। वे उञ्छवृत्तिसे ही अपना जीवन-निर्वाह करते थे। कबूतरके समान अन्नका दाना चुनकर लाते और उसीसे कुटुम्बका पालन करते थे। वे अपनी स्त्री, पुत्र और पुत्र-वधूके साथ रहकर तपस्यामें संलग्न थे। ब्राह्मण देवता शुद्ध आचार-विचारसे रहनेवाले, धर्मात्मा और जितेन्द्रिय थे। वे प्रतिदिन दिनके छठे भागमें स्त्री-पुत्र आदिके साथ भोजन किया करते थे। यदि किसी दिन उस समय भोजन न मिला तो दूसरे दिन फिर उसी वेलामें अन्न ग्रहण करते थे। एक बार वहाँ बड़ा भयंकर अकाल पड़ा। उस समय ब्राह्मणके पास अन्नका संग्रह तो था नहीं और खेतोंका अन्न भी सूख गया था; अतः उनके पास द्रव्यका बिलकुल अभाव हो गया। प्रतिदिन दिनका छठा भाग आकर बीत जाता; किंतु उन्हें समयपर भोजन नहीं मिलता था। बेचारे सब-के-सब भूखे ही रह जाते थे। एक दिन ज्येष्ठके शुक्लपक्षमें दोपहरीके समय वे तपस्वी ब्राह्मण भूख और गर्मीका कष्ट सहते हुए अन्नकी खोजमें निकले। घूमते-घूमते भूख और परिश्रमसे व्याकुल हो उठे तो भी उन्हें अन्नका एक दाना भी नसीब नहीं हुआ। और दिनोंकी भाँति उस दिन भी उन्होंने अपने कुटुम्बके साथ उपवास करके ही दिन काटा। धीरे-धीरे उनकी प्राण-शक्ति क्षीण होने लगी। इसी बीचमें एक दिन दिनके छठे भागमें उन्हें सेरभर जौ मिल गया। उस ब्राह्मण-परिवारके सब लोग तपस्वी थे। उन्होंने जौका सत्तू तैयार कर लिया और नैत्यिक नियम एवं जपका अनुष्ठान करके अग्निमें विधिपूर्वक आहुति देनेके पश्चात् वे थोड़ा-थोड़ा सत्तू बाँटकर भोजनके लिये बैठे। इतनेहीमें कोई अतिथि ब्राह्मण वहाँ आ पहुँचा। अतिथिका दर्शन करके उन सबका हृदय हर्षसे खिल उठा। उसे प्रणाम करके उन्होंने कुशल-समाचार पूछा। ब्राह्मणपरिवारके सब

लोग विशुद्धचित्त, जितेन्द्रिय, श्रद्धालु, दोषदृष्टिसे रहित, क्रोधको जीतनेवाले, सज्जन, ईर्ष्याभावसे रहित और धर्मज्ञ थे, उन्होंने अभिमान, मद और क्रोधको सर्वथा त्याग दिया था। क्षुधासे कष्ट पाते हुए अतिथि ब्राह्मणको अपने ब्रह्मचर्य और गोत्रका परिचय देकर वे कुटीमें ले गये। वहाँ उञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मणने कहा—'भगवन्! आपके लिये यह अर्घ्य, पाद्य और आसन मौजूद है तथा न्यायपूर्वक उपार्जित किये हुए ये परम पवित्र सत्तू आपकी सेवामें उपस्थित हैं। मैंने प्रसन्नतापूर्वक इन्हें आपको अर्पण किया है, आप स्वीकार करें।'

उनके इस प्रकार कहनेपर अतिथिने एक भाग सत्तू लेकर खा लिया, किंतु उतनेसे उसकी भूख शान्त न हुई। ब्राह्मणने देखा कि अतिथि देवता अब भी भूखे ही रह गये हैं तो वे यह सोचते हुए कि 'इनको किस प्रकार संतुष्ट किया जाय?' उनके लिये आहारकी चिन्ता करने लगे। तब ब्राह्मणकी पत्नीने कहा—'नाथ! आप अतिथिको मेरा भाग दे दीजिये, उसे खाकर पूर्ण तृप्त होनेके बाद इनकी जहाँ इच्छा होगी, चले जायँगे।' अपनी पतिव्रता पत्नीकी यह बात सुनकर ब्राह्मणने उसकी अवस्थापर विचार किया। वे स्वयं जो भूखका कष्ट उठा रहे थे, उनके द्वारा यह अनुमान करते देर न लगी कि 'यह बेचारी तो खुद ही क्षुधासे दुःख पा रही है।' इसके सिवा, वह तपस्विनी बूढ़ी, थकी हुई और अत्यन्त दुर्बल भी थी। उसके शरीरमें चमड़ेसे ढकी हुई हड्डियोंका ढाँचामात्र रह गया था और वह सदा काँपती रहती थी; अतः उसे अधिक क्षुधातुर जानकर ब्राह्मणको उसके हिस्सेका सत्तू लेना उचित नहीं जान पड़ा, इसलिये उन्होंने अपनी भार्यासे कहा—'कल्याणी! अपनी स्त्रीकी रक्षा और पालन-पोषण करना कीट, पतंग और पशुओंका भी कर्तव्य है। पुरुष होकर भी जो स्त्रीके द्वारा अपना पालन-पोषण और संरक्षण करता है, वह मनुष्य दयाका पात्र है। वह उज्ज्वल कीर्तिसे भ्रष्ट हो जाता है और उसे उत्तम लोकोंकी प्राप्ति नहीं होती। धर्म, काम और अर्थसम्बन्धी कार्य, सेवा-सुश्रूषा, वंश-परम्पराकी रक्षा, पितृ-कार्य और स्वधर्मका अनुष्ठान—ये सब स्त्रीके ही अधीन हैं। जो पुरुष स्त्रीकी रक्षा करनेमें असमर्थ है, वह संसारमें महान् अपयशका भागी होता है और परलोकमें जानेपर उसे नरकमें गिरना पड़ता है।'

पतिके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणी बोली—'प्राणनाथ! हम दोनोंके धर्म और अर्थ एक ही हैं, अतः आप मुझपर प्रसन्न हों और मेरे हिस्सेका यह पावभर सत्तू लेकर अतिथिको दे दें। स्त्रियोंका सत्य, धर्म, रति, अपने गुणोंसे मिला हुआ स्वर्ग तथा उनकी सारी अभिलाषा पतिके ही अधीन है। माताका रज और पिताका वीर्य—इन दोनोंके मिलनेसे ही वंश-परम्परा चलती है। स्त्रीके लिये पति ही सबसे बड़ा देवता है। स्त्रीको जो रति और पुत्ररूप फलकी प्राप्ति होती है, वह पतिका ही प्रसाद है। आप पालन करनेके कारण मेरे पति, भरण-पोषण करनेसे भर्ता और पुत्र प्रदान करनेके कारण वरदाता हैं, इसलिये मेरे हिस्सेका सत्तू अतिथिदेवताको अर्पण कीजिये। आप भी तो जरा-जीर्ण वृद्ध, क्षुधातुर, अत्यन्त दुर्बल, उपवाससे थके हुए और क्षीणकाय हो रहे हैं (फिर आप जिस तरह भूखका क्लेश सहन करते हैं उसी प्रकार मैं भी सह लूँगी)।'

पत्नीके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणने सत्तू लेकर अतिथिसे कहा—'द्विजवर! यह सत्तू भी ग्रहण कीजिये।' अतिथि वह सत्तू भी लेकर खा गया; किंतु उसे संतोष न हुआ। यह देखकर उञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मणको बड़ी चिन्ता हुई। तब उनके पुत्रने कहा—'पिताजी! मेरा सत्तू लेकर आप ब्राह्मणको दे डालिये। मैं इसीमें पुण्य समझता हूँ, इसलिये ऐसा कर रहा



हूँ। मुझे सदा यत्नपूर्वक आपका पालन करना चाहिये; क्योंकि साधु पुरुष बूढ़े पिताके पालन-पोषणकी सदा ही अभिलाषा किया करते हैं। पुत्र होनेका यही फल है कि वह वृद्धावस्थामें पिताकी रक्षा करे। श्रुतिकी यह सनातन आज्ञा तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है (अतः आप यह सत्तू देनेमें कुछ अन्यथा विचार न करें)।'

पिताने कहा—बेटा ! तुम हजार वर्षके हो जाओ तो भी मेरे लिये बालक ही हो। पिता पुत्रको जन्म देकर ही उससे अपनेको कृतकृत्य समझता है। मैं जानता हूँ, बच्चोंकी भूख प्रबल होती है; मैं तो बूढ़ा हूँ, भूखे रहकर भी प्राण धारण कर सकता हूँ। जीर्ण अवस्था हो जानेके कारण मुझे भूखसे अधिक कष्ट नहीं होता। इसके सिवा, मैं दीर्घ कालतक तपस्या कर चुका हूँ, अतः अब मुझे मरनेका भय नहीं है। तुम अभी बालक हो, इसलिये बेटा ! तुम्हीं यह सत्तू खाकर अपने प्राणोंकी रक्षा करो।

पुत्र बोला—पिताजी ! मैं आपका पुत्र हूँ। पुरुषका त्राण करनेके कारण ही संतानको 'पुत्र' कहा गया है। इसके सिवा पुत्र पिताका अपना ही आत्मा माना गया है, अतः आप अपने आत्मभूत पुत्रके द्वारा अपनी रक्षा कीजिये।

पिताने कहा—बेटा ! तुम रूप, सदाचार और इन्द्रियसंयममें मेरे ही समान हो। तुम्हारे इन गुणोंकी मैंने अनेकों बार परीक्षा कर ली है। अब मैं तुम्हारा सत्तू लेकर अतिथिको देता हूँ।

यह कहकर ब्राह्मणने प्रसन्नतापूर्वक वह सत्तू ले लिया और हँसते-हँसते अतिथिको परोस दिया। उसे खा लेनेपर भी अतिथि देवताका पेट न भरा। यह देखकर उञ्छवृत्तिधारी धर्मात्मा ब्राह्मण बड़े संकोचमें पड़ गये। उनकी पुत्र-वधू भी बड़ी सुशीला थी। वह अपने श्वशुरकी स्थितिको समझ गयी और उनका प्रिय करनेके लिये सत्तू लेकर उनके पास जा बड़ी प्रसन्नताके साथ बोली—'पिताजी ! आप मेरे हिस्सेका यह सत्तू लेकर अतिथि देवताको दे दीजिये।'

श्वशुरने कहा—बेटी ! तुम पतिव्रता हो और सदा ऐसे ही शरीर सूख रहा है। तुम्हारी कान्ति फीकी पड़ गयी है। उत्तम व्रत और आचारका पालन करते-करते तुम अत्यन्त दुर्बल हो गयी हो। भूखके कष्टसे तुम्हारा चित्त व्याकुल है, तुम्हें ऐसी अवस्थामें देखकर भी तुम्हारे हिस्सेका सत्तू कैसे ले लूँ ? ऐसा करनेसे मेरे धर्ममें बाधा आयेगी। तुम प्रतिदिन शौच, सदाचार और तपस्यामें संलग्न रहकर दिनके छठे भागमें आहार करती हो। आज अन्न न मिलनेके कारण तुम्हें उपवास करती कैसे देख सकूँगा ? तुम भूखसे व्याकुल हुई बालिका एवं अबला हो, उपवासके कारण बहुत थक गयी हो और सेवा-शुश्रूषाके द्वारा बन्धु-बान्धवोंको सुख पहुँचाती हो, इसलिये तुम्हारी तो मुझे सदा ही रक्षा करनी चाहिये।

पुत्र-वधू बोली—भगवन् ! आप मेरे गुरुके भी गुरु और देवताके भी देवता हैं, अतः मेरा दिया हुआ सत्तू अवश्य स्वीकार कीजिये। मेरा यह शरीर, प्राण और धर्म सब कुछ बड़ोंकी सेवाके लिये ही है। आपकी प्रसन्नतासे ही मुझे उत्तम लोकोंकी प्राप्ति हो सकती है, अतः आप मुझे अपनी दृढ़ भक्त, रक्षणीय अथवा कृपापात्र समझकर अतिथिको देनेके लिये मेरा यह सत्तू स्वीकार कीजिये।

श्वशुरने कहा—बेटी ! तुम पतिव्रता हो और सदा ऐसे ही उत्तम शील एवं सदाचारका पालन करनेमें तुम्हारी शोभा है। तुम धर्म तथा व्रतके आचरणमें संलग्न होकर हमेशा गुरुजनोंकी सेवापर दृष्टि रखती हो, इसलिये तुम्हें पुण्यसे वञ्चित न होने दूँगा और श्रेष्ठ धर्मात्माओंमें तुम्हारी गिनती करके तुम्हारा दिया हुआ सत्तू अवश्य स्वीकार करूँगा।

यह कहकर ब्राह्मणने उसके हिस्सेका भी सत्तू लेकर अतिथिको दे दिया। उञ्छवृत्तिधारी महात्मा ब्राह्मणका यह अद्‌भुत त्याग देखकर अतिथि बहुत प्रसन्न हुआ। वास्तवमें पुरुष शरीर धारण करके साक्षात् धर्म ही अतिथिके रूपमें उपस्थित हुए थे, उन्होंने ब्राह्मणसे कहा—'विप्रवर ! तुमने अपनी शक्तिके अनुसार धर्मपर दृष्टि रखते हुए न्यायोपार्जित अन्नका शुद्ध हृदयसे दान किया है, इससे मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। अहो ! स्वर्गमें रहनेवाले देवता भी तुम्हारे दानकी घोषणा करते रहते हैं। यह देखो, आकाशसे फूलोंकी वर्षा हो रही है। देवता, ऋषि, गन्धर्व और देवदूत भी तुम्हारे दानसे विस्मित होकर आकाशमें खड़े-खड़े तुम्हारी स्तुति करते हैं। ब्रह्मलोकमें विचरनेवाले ब्रह्मर्षि विमानपर बैठकर तुम्हारे दर्शनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अब तुम दिव्यलोकको जाओ। पितृलोकमें तुम्हारे जितने पितर थे, उन सबको तुमने तार दिया तथा अनेकों युगोंतक भविष्यमें होनेवाली जो संतानें हैं, वे भी तुम्हारे ब्रह्मचर्य, दान, तपस्या और शुद्ध धर्मके अनुष्ठानसे तर जायँगी। तुमने बड़ी श्रद्धाके साथ तप किया है, उसके प्रभावसे और दानसे सब देवता तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुए हैं। संकटके समय भी तुमने शुद्ध हृदयसे यह सारा-का-सारा सत्तू दान किया है। भूख मनुष्यकी बुद्धिको चौपट कर देती है, उसके धार्मिक विचारोंका लोप हो जाता है; किंतु ऐसे समयमें भी जिसकी दानमें रुचि होती है, उसके धर्मका ह्रास नहीं होता। तुमने स्त्री और पुत्रके स्नेहकी उपेक्षा करके धर्मको ही श्रेष्ठ माना है और उसके सामने भूख-प्यासको भी कुछ नहीं गिना है। मनुष्यके लिये सबसे पहले न्यायपूर्वक धनकी प्राप्तिका उपाय जानना ही सूक्ष्म विषय है। उस धनको सत्पात्रकी सेवामें अर्पण करना उससे भी श्रेष्ठ है। साधारण समयमें दान देनेकी अपेक्षा उत्तम समयपर दान देना और भी अच्छा है, किंतु श्रद्धाका महत्त्व कालसे भी बढ़कर है। श्रद्धापूर्वक दान देनेवाले मनुष्योंमें यदि एक हजार देनेकी

शक्ति हो तो वह सौका दान करे, सौ देनेकी शक्तिवाला दसका दान करे तथा जिसके पास कुछ न हो, वह यदि अपनी शक्तिके अनुसार थोड़ा-सा जल ही दान कर दे तो इन सबका फल बराबर ही माना गया है। कहते हैं, राजा रन्तिदेवके पास जब कुछ नहीं रह गया था तो उन्होंने शुद्ध हृदयसे केवल जलका दान किया था। अन्यायपूर्वक प्राप्त हुए द्रव्यके द्वारा महान् फल देनेवाले बड़े-बड़े दान करनेसे धर्मको प्रसन्नता नहीं होती। धर्म देवता तो न्यायोपार्जित थोड़े-से अन्नका भी श्रद्धापूर्वक दान करनेसे ही संतुष्ट होते हैं। राजा नृगने ब्राह्मणोंको हजारों गौएँ दान की थीं; किंतु एक ही गौ उन्होंने दूसरेकी दान कर दी, जिससे अन्यायतः प्राप्त द्रव्यका दान करनेके कारण उन्हें नरकमें जाना पड़ा। उशीनरके पुत्र राजा शिबि श्रद्धापूर्वक अपने शरीरका मांस देकर भी पुण्यात्माओंके लोकमें आनन्द भोगते हैं। न्यायपूर्वक एकत्रित किये हुए धनका दान करनेसे जो लाभ होता है, वह बहुत-सी दक्षिणावाले अनेकों राजसूय-यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे भी नहीं होता। तुमने सेरभर सत्तूका दान करके अक्षय ब्रह्मलोकपर विजय पायी है, बहुत-से अश्वमेध-यज्ञ भी तुम्हारे इस दानके फलकी समानता नहीं कर सकते। अतः द्विजश्रेष्ठ ! तुम रजोगुणसे रहित ब्रह्मधामको सुखपूर्वक पधारो। तुम सब लोगोंके लिये दिव्य विमान उपस्थित है। इसपर सवार हो जाओ। मेरी ओर दृष्टि डालो, मैं साक्षात् धर्म हूँ। तुमने अपने शरीरका उद्धार कर दिया। संसारमें तुम्हारा यश सदा ही कायम रहेगा।'

नेवलेने कहा—धर्मके ऐसा कहनेपर वे ब्राह्मणदेवता अपनी स्त्री, पुत्र और पुत्र-वधूके साथ विमानमें बैठकर ब्रह्मलोकको चले गये। उनके जानेके बाद मैं अपने बिलमेंसे बाहर निकला और जहाँ अतिथिने भोजन किया था, उस स्थानपर लोटने लगा। उस समय सत्तूकी गन्ध सूँघने, वहाँ गिरे हुए जलकी कीचसे सम्पर्क होने, दिव्य पुष्पोंको रौंदने और उन महात्मा ब्राह्मणके दान करते समय गिरे हुए अन्नके कणोंमें मुँह लगानेसे तथा ब्राह्मणकी तपस्याके प्रभावसे मेरा मस्तक और आधा शरीर सोनेका हो गया। उनके तपका यह महान् प्रभाव आपलोग अपनी आँखों देख लीजिये। ब्राह्मणो ! जब मेरा आधा शरीर सोनेका हो गया तो मैं इस फिक्रमें पड़ा कि 'बाकी शरीर भी किस उपायसे ऐसा ही हो सकता है ?' इसी उद्देश्यसे मैं बारंबार अनेकों तपोवनों और यज्ञस्थानोंमें प्रसन्नतापूर्वक भ्रमण करता रहता हूँ। महाराज युधिष्ठिरके इस यज्ञका भारी शोर सुनकर मैं बड़ी आशा लगाये यहाँ आया था; किंतु मेरा शरीर सोनेका न हो सका। इसीसे मैंने हँसकर कहा था कि 'यह यज्ञ ब्राह्मणके दिये हुए सेरभर सत्तूके बराबर भी नहीं हुआ है।' क्योंकि उस समय सेरभर सत्तूमेंसे गिरे हुए कुछ कणोंके प्रभावसे मेरा आधा शरीर सुवर्णमय हो गया था। परंतु यह महान् यज्ञ भी मुझे वैसा न बना सका; अतः उसके साथ इसकी कोई तुलना नहीं है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! ब्राह्मणोंसे यह कहकर नेवला वहाँसे गायब हो गया और ब्राह्मण भी अपने-अपने घर चले गये। यह सारा प्रसंग मैंने तुम्हें सुना दिया। उस महान् अश्वमेध-यज्ञमें यही एक आश्चर्यकी घटना हुई थी। उस यज्ञके विषयमें ऐसी घटना सुनकर तुम्हें किसी प्रकार विस्मय नहीं करना चाहिये। हजारों ऋषि यज्ञ न करके केवल तपस्याके ही बलसे दिव्यलोकको प्राप्त हो चुके हैं। किसी भी प्राणीसे द्रोह न करना, संतोष, शील, सरलता, तप, इन्द्रियसंयम, सत्य और दान—इनमेंसे एक-एक गुण बड़े-बड़े यज्ञोंकी समानता करनेवाला है।



महर्षि अगस्त्यके यज्ञकी कथा

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! उञ्छवृत्ति धारण करनेवाले ब्राह्मणको न्यायतः प्राप्त हुए सत्तूका दान करनेसे जिस महान् फलकी प्राप्ति हुई, उसका आपने वर्णन किया। निःसंदेह यह बात ठीक है; परंतु हर एक यज्ञमें इस उत्तम निश्चयको किस प्रकार काममें लाया जा सकता है ? (क्योंकि न्यायतः प्राप्त धन तो बहुत थोड़ा होता है, उससे बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान कैसे हो सकता है ?)

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! (अधिक धनका संग्रह किये बिना ही महान् यज्ञोंका अनुष्ठान हो सकता है) इस विषयमें पहले अगस्त्य मुनिके महान् यज्ञमें जो घटना घटित हुई थी, उस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें संलग्न रहनेवाले महान् तेजस्वी महर्षि अगस्त्यने एक समय बारह वर्षोंमें समाप्त होनेवाले यज्ञकी दीक्षा ली थी। उन महात्माके यज्ञमें अग्निके समान तेजस्वी

होता थे, जिनमें फल-मूलका आहार करनेवाले अश्मकुट्ट,[१] मरीचिप, [२] परिपृष्टिक[३], वैघसिक[४] और प्रसंख्यान[५] आदि अनेकों प्रकारके यति एवं भिक्षु थे। वे सभी प्रत्यक्ष धर्मका पालन करनेवाले, क्रोधको जीतनेवाले, जितेन्द्रिय, मनोनिग्रहपरायण, हिंसा और दम्भसे दूर और सदा शुद्ध आचारमें स्थित रहनेवाले थे। ऐसे-ऐसे महर्षि उस यज्ञमें उपस्थित हुए थे। इनके सिवा और भी बहुत-से ऋषि-मुनियोंने उस महान् यज्ञका अनुष्ठान पूरा किया था। महर्षि अगस्त्य जब इस प्रकार यज्ञ कर रहे थे, उस समय इन्द्रने संसारमें पानी बरसाना बन्द कर दिया। तब यज्ञ-कर्मके बीच-बीचमें मुनिलोग अगस्त्यजीके सम्बन्धमें परस्पर इस प्रकार चर्चा करने लगे—'ब्राह्मणो ! ये अगस्त्यजी यज्ञकर्ममें प्रवृत्त होकर प्रतिदिन द्वेषशून्य हृदयसे अन्न-दान करते हैं। इधर बादल पानी नहीं बरसते; ऐसी दशामें अन्नकी उपज कैसे होगी ? यह महान् यज्ञ बारह वर्षोंतक चलता रहेगा और उतने समयतक इन्द्र वर्षा नहीं करेंगे। इस बातपर भलीभाँति विचार करके आपलोग इन तपस्वी महात्माके ऊपर अनुग्रह करें।'

ऋषियोंकी यह बात सुनकर महाप्रतापी अगस्त्य मुनिने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—'यदि इन्द्र बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं करेंगे तो मैं चिन्ता-यज्ञ करूँगा अर्थात् संकल्पमात्रसे ही मेरे यज्ञका अनुष्ठान चालू रहेगा अथवा स्पर्शयज्ञ करूँगा—संचितद्रव्यका व्यय किये बिना ही उसके स्पर्शमात्रसे देवताओंको तृप्त करूँगा। यह भी यज्ञकी एक सनातन विधि है अथवा यदि बारह वर्षोंतक इन्द्र पानी नहीं बरसावेंगे तो मैं व्रत-नियमोंका पालन करता हुआ ध्यानद्वारा ध्येयरूपसे स्थित होकर इन यज्ञोंका अनुष्ठान करूँगा। यह बीजयज्ञ मेरे द्वारा बहुत वर्षोंतक चालू रह सकता है। बीजोंसे ही अपना यज्ञ पूर्ण कर लूँगा। उसमें कोई विघ्न-बाधा नहीं आ सकती। इन्द्र वर्षा करें या न करें; किंतु मेरा यह यज्ञ कभी बंद नहीं हो सकता। मैं स्वयं ही इन्द्र होकर समस्त प्रजाकी जीवनरक्षा करूँगा। जिस प्राणीका जो आहार है उसको वही मिलेगा अथवा मैं आवश्यकतानुसार विशेष आहारका प्रबन्ध भी प्रचुरमात्रामें कर सकता हूँ। इस समय तीनों लोकोंमें जितना सोना और धन है, वह स्वयं यहाँ उपस्थित हो जाय। दिव्य अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, विश्वावसु तथा दूसरे स्वर्गवासी भी यहाँ आकर मेरे यज्ञकी उपासना करें। उत्तर कुरुदेशमें जितना धन हो, वह सब यहाँ आ जाय। स्वर्ग,



स्वर्गमें रहनेवाले देवता और धर्म भी स्वयं ही इस यज्ञमें आकर उपस्थित हो जायँ।'

महर्षि अगस्त्यके इतना कहते ही उनके तपके प्रभावसे सब कुछ वैसा ही हो गया। उन तेजस्वी महर्षिकी तपस्याका यह महान् बल देखकर मुनियोंको बड़ा हर्ष हुआ। वे विस्मित होकर कहने लगे—'महर्षे ! आपकी बातोंसे हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है। हम आपके यज्ञोंसे ही संतुष्ट हैं। न्यायसे उपार्जित किया हुआ अन्न ही हमारा भोजन है। हम सदा अपने कर्मोंमें लगे रहते हैं। अब इस यज्ञकी समाप्ति होनेतक हम यहाँ उपस्थित रहेंगे और अन्तमें आपकी आज्ञा लेकर यहाँसे जायँगे। वे इस प्रकार बात कर रहे थे, इतनेहीमें महर्षिका तपोबल देखकर देवराज इन्द्रने पानी बरसाना आरम्भ किया। जबतक उनका यज्ञ समाप्त नहीं हुआ तबतक वहाँ इच्छानुसार वृष्टि होती रही। देवराजने बृहस्पतिजीको आगे करके स्वयं ही मुनिके पास उपस्थित होकर उन्हें प्रसन्न किया। तदनन्तर, यज्ञ पूर्ण होनेपर अगस्त्यजी बड़े प्रसन्न हुए और वहाँ आये हुए महर्षियोंकी विधिवत् पूजा करके उन्होंने सबको विदा कर दिया।



१. खाद्य पदार्थको पत्थरपर फोड़कर खानेवाले। २. सूर्यकी किरणोंका पान करनेवाले। ३. पूछकर दिये हुए अन्नको ही लेनेवाले। ४. यज्ञशिष्ट अन्नको ही भोजन करनेवाले। ५. एक समयके लिये ही अन्न ग्रहण करनेवाले अथवा तत्त्वका विचार करनेवाले।

युधिष्ठिरका वैष्णव-धर्मविषयक प्रश्न और भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा धर्म तथा अपनी महिमाका वर्णन

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! पूर्वकालमें जब मेरे प्रपितामह महाराज युधिष्ठिरका अश्वमेध-यज्ञ पूर्ण हो गया तो उन्होंने धर्मके विषयमें संदेह होनेपर भगवान् श्रीकृष्णसे कौन-सा प्रश्न किया?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! अश्वमेध-यज्ञके बाद जब धर्मराज युधिष्ठिरने अवभृथ-स्नान कर लिया तो भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करके इस प्रकार पूछना आरम्भ किया—'भगवन्! वैष्णव-धर्मोंके अनुष्ठानसे किस फलकी प्राप्ति होती है? ब्रह्महत्यारा, गो-घाती, माताकी हत्या करनेवाला, गुरुपत्नीकी सेजपर सोनेवाला, भोजन परोसनेमें पङ्क्ति-भेद करनेवाला, कृतघ्न, शराबी, वेद-विक्रयी, मित्रसे विश्वासघात करनेवाला, किसी वीरको कपटपूर्वक मारनेवाला, गर्भहत्यारा, तप और दानका फल बेचनेवाला, अपने शरीरका विक्रय करनेवाला, मूर्ख, पाप-कर्मसे जीविका चलानेवाला, पापी, शठ, कपटी, दम्भी, दूसरोंपर दोषारोपण करनेवाला, पारा आदि रसोंको मारनेवाला, ब्राह्मणका वध करनेवाला, शूद्रकी सेवामें रहनेवाला, चोर और पुरोहिती करनेवाला ब्राह्मण, दूसरोंकी धरोहर हड़पनेवाला, स्त्रीकी हत्या करनेवाला, परस्त्री-लम्पट तथा और भी जितने पापी हैं, वे सब जिन धर्मोंका श्रवण करके अपने पापोंसे छुटकारा पा जाते हैं, उनका वर्णन कीजिये। भक्तवत्सल! मैं सच्चे भक्तिभावसे आपके चरणोंकी शरणमें आया हूँ। यदि आप मुझे अपना प्रेमी या भक्त समझते हैं और यदि मैं आपके अनुग्रहका अधिकारी होऊँ तो मुझसे वैष्णव-धर्मोंका वर्णन कीजिये। मैं उनके सम्पूर्ण रहस्योंका यथार्थरूपसे जानना चाहता हूँ। मैंने मनु, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, पराशर, मैत्रेय, उमा, महेश्वर, ब्रह्मा, कार्तिकेय, भार्गव, याज्ञवल्क्य, मार्कण्डेय, भरद्वाज, बृहस्पति, विश्वामित्र, जैमिनि, पुलस्त्य, पुलह, अग्नि, अगस्त्य, मुद्गल, शाण्डिल्य, शलभ, बालखिल्यगण, सप्तर्षि आपस्तम्ब, शङ्ख, लिखित, प्रजापति, यम, महेन्द्र, व्यास, विभाण्ड, नारद, कपोत, विदुर, भृगु, अङ्गिरा, सूर्य, हारीत, उद्दालक, शुक्राचार्य, वैशम्पायन तथा दूसरे-दूसरे महात्माओंके बताये हुए धर्मोंका श्रवण किया है; परंतु मुझे विश्वास है कि आपके मुँहसे जो धर्म प्रकट होंगे; वे अत्यन्त पवित्र होनेके कारण उपर्युक्त सभी धर्मोंसे श्रेष्ठ होंगे। इसलिये केशव! आपकी शरणमें आये हुए मुझ भक्तसे आप अपने पवित्र धर्मोंका वर्णन कीजिये।'

धर्मपुत्र युधिष्ठिरके इस प्रकार प्रश्न करनेपर सम्पूर्ण धर्मोंको जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न होकर उनसे धर्मके सूक्ष्म विषयोंका वर्णन करने लगे। वे बोले—'कुन्तीनन्दन! तुम धर्मके लिये इतना उद्योग करते हो, इसलिये तुम्हें संसारमें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहेगी। धर्म ही जीवका पिता-माता, रक्षक, सुहृद्, भ्राता, सखा और स्वामी है। अर्थ, काम, भोग, सुख, उत्तम ऐश्वर्य और सर्वोत्तम स्वर्गकी प्राप्ति भी धर्मसे ही होती है। यदि विशुद्ध धर्मका सेवन किया जाय तो वह महान् भयसे रक्षा करता है। धर्मसे ही ब्राह्मणत्व और देवत्वकी प्राप्ति होती है। धर्म ही मनुष्यको पावन बनाता है। युधिष्ठिर! जब कालक्रमसे मनुष्यका पाप नष्ट हो जाता है तभी उसकी बुद्धि धर्माचरणमें लगती है। हजारों योनियोंमें भटकनेके बाद भी मनुष्य-योनिका मिलना कठिन होता है। ऐसे दुर्लभ मनुष्य-जन्मको पाकर भी जो धर्मका अनुष्ठान नहीं करता, वह महान् लाभसे वञ्चित हो जाता है। आज जो लोग निन्दित, दरिद्र, कुरूप, रोगी, दूसरोंके द्वेषपात्र और मूर्ख देखे जाते हैं, उन्होंने पूर्व-जन्ममें धर्मका अनुष्ठान नहीं किया है। किंतु जो दीर्घजीवी, शूरवीर, पण्डित, भोग-सामग्रीसे सम्पन्न, नीरोग और रूपवान् हैं, उनके द्वारा पूर्वजन्ममें निश्चय ही धर्मका सम्पादन हुआ है। इस प्रकार शुद्ध भावसे किया हुआ धर्मका अनुष्ठान उत्तम गतिकी प्राप्ति कराता है, परंतु जो अधर्मका सेवन करते हैं, उन्हें पशु-पक्षी आदि तीर्यग्योनियोंमें गिरना पड़ता है।

''पाण्डुनन्दन! अब मैं तुम्हें एक रहस्यकी बात बताता हूँ, सुनो—तुमसे परम धर्मका वर्णन अवश्य करूँगा। तुम मेरे भक्त हो, अत्यन्त प्रिय हो और सदा मेरी शरणमें स्थित रहते हो। तुम्हारे पूछनेपर मैं परम गोपनीय आत्मतत्त्वका भी वर्णन कर सकता हूँ, फिर धर्मसंहिताके लिये तो कहना ही क्या है? इस समय धर्मकी स्थापना और दुष्टोंका विनाश करनेके लिये मैंने अपनी मायासे मानव-शरीरमें अवतार धारण किया है। जो लोग मुझे केवल मनुष्य-शरीरमें सीमित समझकर मेरी अवहेलना करते हैं, वे मूर्ख हैं और संसारके भीतर बारंबार तिर्यग्योनियोंमें भटकते रहते हैं। इसके विपरीत जो ज्ञान दृष्टिसे मुझे सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित देखते हैं, वे सदा मुझमें मन लगाये रहनेवाले मेरे भक्त हैं, ऐसे भक्तोंको मैं परमधाममें अपने पास बुला लेता हूँ। मेरे भक्तोंका नाश नहीं होता, वे निष्पाप होते हैं। मनुष्योंमें उन्हींका जन्म सफल है,

जो मेरे भक्त हैं। हजारों जन्मोंतक तपस्या करनेसे जब मनुष्योंका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है तब उसमें भक्तिका उदय होता है। मेरा जो अत्यन्त गोपनीय, कूटस्थ, अचल और अविनाशी परस्वरूप है उसका मेरे भक्तोंको जैसा अनुभव होता है वैसा देवताओंको भी नहीं होता और जो मेरा अपरस्वरूप है वह अवतार लेनेपर दृष्टिगोचर होता है। संसारके समस्त जीव सब प्रकारके पदार्थोंसे मेरे स्वरूपकी पूजा करते हैं। जो मनुष्य मुझे जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहारका कारण समझकर मेरी शरण लेता है, उसके ऊपर कृपा करके मैं उसे संसार-बन्धनसे मुक्त कर देता हूँ। मैं ही देवताओंका आदि हूँ। ब्रह्मा आदि देवताओंकी मैंने ही सृष्टि की है। मैं ही अपनी प्रकृतिका आश्रय लेकर सम्पूर्ण संसारकी सृष्टि करता हूँ। ब्रह्मासे लेकर छोटे-से कीड़ेतक सबमें मैं व्याप्त हो रहा हूँ। द्युलोकको मेरा मस्तक समझो। सूर्य और चन्द्रमा मेरी आँखें हैं। गौ, अग्नि और ब्राह्मण मेरे मुख हैं और वायु मेरी साँस है। आठ दिशाएँ मेरी बाँहें, नक्षत्र मेरे आभूषण और सम्पूर्ण भूतोंको अवकाश देनेवाला अन्तरिक्ष मेरा वक्षःस्थल है। बादलों और हवाके चलनेका जो मार्ग है, उसे मेरा अविनाशी उदर समझो। द्वीप, समुद्र और जंगलोंसे भरा हुआ यह भूमण्डल मेरे दोनों पैरोंके स्थानमें है। मेरे हजारों मस्तक, हजारों मुख, हजारों नेत्र, हजारों भुजाएँ, हजारों उदर, हजारों ऊरु और हजारों पैर हैं। मैं पृथ्वीको सब ओरसे धारण करके समस्त ब्रह्माण्डसे दस अंगुल ऊँचे अर्थात् सबसे परे विराजमान हूँ। सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मा हूँ, इसलिये सर्वव्यापी कहलाता हूँ। मैं अचिन्त्य, अनन्त, अजर, अजन्मा, अनादि, अवध्य, अप्रमेय, अव्यय, निर्गुण, गूढस्वरूप, निर्द्वन्द्व, निर्मम, निष्कल, निर्विकार और मोक्षका आदि कारण हूँ। सुधा, स्वधा और स्वाहा भी मैं ही हूँ। मैं चारों आश्रमोंका धर्म, चार प्रकारके होताओंसे सम्पन्न होनेवाला यज्ञ, चतुर्व्यूह, चतुर्यज्ञ और चारों आश्रमोंको प्रकट करनेवाला हूँ। प्रलयकालमें समस्त जगत्‌का संहार करके उसे अपने उदरमें स्थापित कर दिव्य योगका आश्रय ले मैं एकार्णवके जलमें शयन करता हूँ। एक हजार युगोंतक रहनेवाली ब्रह्माकी रात पूर्ण होनेतक महार्णवमें शयन करनेके पश्चात् स्थावर-जङ्गम प्राणियोंकी सृष्टि करता हूँ। प्रत्येक कल्पमें मेरे द्वारा जीवोंकी सृष्टि और संहारका कार्य होता है; किंतु मेरी मायासे मोहित होनेके कारण वे जीव मुझे नहीं जान पाते। राजन्! कहीं कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जिसमें मेरा निवास न हो तथा कोई ऐसा जीव नहीं है, जो मुझमें स्थित न हो। अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं तुमसे सच्ची बात बता रहा हूँ, भूत और भविष्य जो कुछ है, वह सब मैं ही हूँ। सम्पूर्ण भूत मुझसे ही उत्पन्न होते हैं और मेरे ही स्वरूप हैं। फिर भी मेरी मायासे मोहित रहते हैं, इसलिये मुझे नहीं जान पाते। इस प्रकार देवता, असुर और मनुष्योंसहित समस्त संसारका मुझसे ही जन्म और मुझमें ही लय होता है।''



चारों वर्णोंके कर्म और उनके फलोंका वर्णन तथा धर्मकी वृद्धि और पापके क्षय होनेका उपाय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने सम्पूर्ण जगत्‌को अपनेसे उत्पन्न बतलाकर धर्मनन्दन युधिष्ठिरसे पवित्र धर्मोंका इस प्रकार वर्णन आरम्भ किया—'पाण्डुनन्दन! जो मनुष्य पवित्र और एकाग्रचित्त होकर तपस्यामें संलग्न हो स्वर्ग, यश और आयु प्रदान करनेवाले जाननेयोग्य धर्मका श्रवण करता है, उस श्रद्धालु पुरुषके—विशेषतः मेरे भक्तके पूर्वसंचित जितने पाप होते हैं, वे सब तत्काल नष्ट हो जाते हैं।'

श्रीकृष्णका यह परम पवित्र और सत्य वचन सुनकर मन-ही-मन प्रसन्न हो धर्मके अद्भुत रहस्यका चिन्तन करते हुए सम्पूर्ण देवर्षि, ब्रह्मर्षि, गन्धर्व, अप्सराएँ, भूत, यक्ष, ग्रह, गुह्यक, सर्प, महात्मा बालखिल्य, तत्त्वदर्शी योगी तथा भगवद्भक्त पुरुष उत्तम वैष्णव-धर्मका उपदेश सुनने तथा भगवान्‌की बात हृदयमें धारण करनेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित होकर वहाँ आये। आनेके बाद उन सबने मस्तक झुकाकर भगवान्‌को प्रणाम किया। भगवान्‌की दिव्य दृष्टि पड़नेसे वे सब निष्पाप हो गये। उन्हें उपस्थित देखकर महाप्रतापी धर्मपुत्र युधिष्ठिरने भगवान्‌को प्रणाम करके इस प्रकार प्रश्न किया—'जगदीश्वर! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी पृथक्-पृथक् कैसी गति होती है? इन सबके कर्मोंके फलका वर्णन कीजिये।'

भगवान्‌ने कहा—धर्मराज! ब्राह्मणादि वर्णोंके क्रमसे धर्मका वर्णन सुनो। जो ब्राह्मण शिखा और यज्ञोपवीत धारण करते, संध्योपासना करते, पूर्णाहुति देते, विधिवत् अग्निहोत्र करते, बलिवैश्वदेव और अतिथियोंका पूजन करते, नित्य स्वाध्यायमें लगे रहते तथा जप-यज्ञका अनुष्ठान किया करते हैं; जो सायंकाल और प्रातःकाल होम करनेके बाद ही अन्न ग्रहण करते, शूद्रका अन्न नहीं खाते, दम्भ और मिथ्या

भाषणसे दूर रहते, अपनी ही स्त्रीसे प्रेम रखते तथा पञ्चयज्ञ और अग्निहोत्र करते रहते हैं, वे ब्राह्मण पापरहित होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं।

क्षत्रियोंमें भी जो राज्यसिंहासनपर आसीन होनेके बाद अपने धर्मका पालन और प्रजाकी भलीभाँति रक्षा करता है, लगानके रूपमें प्रजाकी आमदनीका छठा भाग लेकर सदा उतनेसे ही संतोष करता है, यज्ञ और दान करता रहता है, धैर्य रखता है, अपनी स्त्रीसे संतुष्ट रहता है, शास्त्रके अनुसार चलता, तत्त्वको जानता और प्रजाकी भलाईके कार्यमें संलग्न रहता है तथा ब्राह्मणोंकी इच्छा पूर्ण करता, पोष्यवर्गके पालनमें तत्पर रहता, प्रतिज्ञाको सत्य करके दिखाता, सदा पवित्र रहता एवं लोभ और दम्भको त्याग देता है, उसे भी देवताओंद्वारा सेवित उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है।

जो वैश्य कृषि और गो-पालनमें लगा रहता है, धर्मका अनुसंधान किया करता है; दान, धर्म और ब्राह्मणोंकी सेवामें संलग्न रहता है तथा सत्यप्रतिज्ञ, नित्य पवित्र, लोभ और दम्भसे रहित, सरल, अपनी ही स्त्रीसे प्रेम रखनेवाला और हिंसाद्रोहसे दूर रहनेवाला है, जो कभी भी वैश्यधर्मका त्याग नहीं करता और देवता तथा ब्राह्मणोंकी पूजामें लगा रहता है, वह अप्सराओंसे सम्मानित होकर स्वर्गलोकमें गमन करता है।

शूद्रोंमेंसे जो सदा तीनों वर्णोंकी सेवा करता और विशेषतः ब्राह्मणोंकी सेवामें दासकी भाँति खड़ा रहता है; जो बिना माँगे ही दान देता, सत्य और शौचका पालन करता, गुरु और देवताओंकी पूजामें प्रेम रखता, परस्त्रीके संसर्गसे दूर रहता, दूसरोंको कष्ट न पहुँचाकर अपने कुटुम्बका पालन-पोषण करता और सब जीवोंको अभय-दान कर देता है, उसको भी स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

इस प्रकार धर्मसे बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। वही निष्कामभावसे आचरण करनेपर संसार-बन्धनसे मुक्ति दिलाता है। धर्मसे बढ़कर पाप-नाशका और कोई उपाय नहीं है; इसलिये इस दुर्लभ मनुष्य-जीवनको पाकर सदा धर्मका पालन करते रहना चाहिये। धर्मानुरागी पुरुषोंके लिये संसारमें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। ब्रह्माजीने इस जगत्में जिस वर्णके लिये जैसे धर्मका विधान किया है, वह वैसे ही धर्मका भलीभाँति आचरण करके अपने पापोंको नष्ट कर सकता है। मनुष्यका जो जातिगत कर्म हो, उसका किसीको त्याग नहीं करना चाहिये। वही उसके लिये धर्म होता है और उसीका निष्कामभावसे आचरण करनेपर मनुष्यको सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त हो जाती है। अपना धर्म गुणरहित होनेपर भी पापको नष्ट करता है। इसी प्रकार यदि मनुष्यके पापकी वृद्धि होती है तो वह उसके धर्मको क्षीण कर डालता है।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! शुभ और अशुभकी वृद्धि और ह्रास किस प्रकार होते हैं, इसे सुननेकी मेरी बड़ी उत्कण्ठा है।

भगवान्ने कहा—तुमने जो कुछ पूछा है, उसे सुनो। पापको दूसरोंसे कहने और उसके लिये पश्चात्ताप करनेसे प्रायः उसका नाश हो जाता है। इसी प्रकार धर्म भी अपने मुँहसे दूसरोंपर प्रकट करनेपर नष्ट होता है। छिपानेपर ये दोनों ही बढ़ते हैं। इसलिये समझदार मनुष्यको चाहिये कि सर्वथा उद्योग करके अपने पापको प्रकट कर दे। उसे छिपानेकी कोशिश न करे। पापका कीर्तन उसके नाशका कारण होता है, इसलिये हमेशा पापको प्रकट करना और धर्मको गुप्त रखना चाहिये।



निरर्थक जन्म, दान और जीवनका वर्णन, सात्त्विक आदि दानोंका लक्षण, दानका योग्य पात्र और ब्राह्मणकी महिमा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर, धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान्से पुनः धर्मके विषयमें प्रश्न किया—'पुरुषोत्तम! कितने जन्म व्यर्थ समझे जाते हैं? कितने प्रकारके दान निष्फल होते हैं? और किन-किन मनुष्योंका जीवन निरर्थक माना गया है? सात्त्विक, राजस और तामस दान कैसे होते हैं? उनसे किसकी तृप्ति होती है? उत्तम दानका स्वरूप क्या है? और उससे किस फलकी प्राप्ति होती है? यह बतानेकी कृपा कीजिये। मैं इस विषयको जानना चाहता हूँ और इसे सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है।'

भगवान्ने कहा—राजन्! मैं तुम्हें न्यायके अनुसार यथार्थ एवं उत्तम उपदेश सुनाता हूँ, ध्यान देकर सुनो। यह विषय परम पवित्र और सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाला है। चौदह जन्म व्यर्थ समझे जाते हैं। पचपन प्रकारके दान निष्फल होते हैं और जिन-जिन मनुष्योंका जीवन निरर्थक होता है, उनकी संख्या छः बतलायी गयी है। इन सबका मैं

क्रमशः वर्णन करूँगा। धर्मका नाश करनेवाले, लोभी, पापी, बलिवैश्वदेव किये बिना भोजन करनेवाले, परस्त्रीगामी, भोजनमें भेद करनेवाले, असत्यभाषी, बन्धु-बान्धवोंको क्लेश देकर अकेले ही मिठाई उड़ानेवाले, माता-पिता, अध्यापक-गुरु और मामा-मामीको मारने या गाली देनेवाले, ब्राह्मण होकर भी संध्या न करनेवाले, अग्निहोत्रका त्याग करनेवाले, श्राद्ध-तर्पणसे दूर रहनेवाले, ब्राह्मण होकर शूद्रका अन्न खानेवाले तथा मेरी, शंकरजीकी, ब्रह्माजीकी अथवा ब्राह्मणोंकी भक्ति न करनेवाले—ये चौदह प्रकारके मनुष्य अधम होते हैं। इन्हीं पापियोंके जन्मको व्यर्थ समझना चाहिये।

जो दान अश्रद्धा या अपमानके साथ दिया जाता है, जिसे दिखावेके लिये दिया जाता है, जो पाखण्डीको प्राप्त हुआ है, जिसे शूद्रके समान आचरणवाले पुरुषने ग्रहण किया है, जिसे देकर अपने ही मुँहसे बारंबार बखान किया गया है, जिसे रोषपूर्वक दिया गया है तथा जिसको देकर पीछेसे उसके लिये शोक प्रकट किया गया है; जो दम्भसे उपार्जित अन्नका, झूठ बोलकर लाये हुए अन्नका, ब्राह्मणके धनका, चोरी करके लाये हुए द्रव्यका तथा कलंकी पुरुषके घरसे लाये हुए धनका दान किया गया है; जो पतित ब्राह्मणको दिया गया है; जिस दानकी वस्तुको वेदविहीन पुरुषोंने, सबके यहाँ याचना करनेवालोंने, संस्कारहीन पतितोंने तथा एक बार संन्यास लेकर फिर गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करनेवाले पुरुषोंने ग्रहण किया है; जो दान वेश्यागामीको और ससुरालमें रहकर गुजारा करनेवाले ब्राह्मणको दिया गया है; समूचे गाँवसे याचना करनेवाले, कृतघ्न, उपपातकी, वेद बेचनेवाले, राजसेवक, ज्योतिषी, तान्त्रिक, शूद्र जातिकी स्त्रीके साथ सम्बन्ध रखनेवाले, अस्त्र-शस्त्रसे जीविका चलानेवाले, नौकरी करनेवाले, साँप पकड़नेवाले, पुरोहिती करनेवाले, वैद्य, बनियेका काम करनेवाले, क्षुद्र मन्त्र जपकर जीविका चलानेवाले, शूद्रके यहाँ गुजारा करनेवाले, वेतन लेकर मन्दिरमें पूजा करनेवाले, देवोत्तर सम्पत्तिको खा जानेवाले, तस्वीर बनानेका काम करनेवाले, रंग-भूमिमें नाच-कूदकर जीविका चलानेवाले, मांस बेचकर जीवन-निर्वाह करनेवाले, सेवाका काम करनेवाले, ब्राह्मणोचित आचारसे हीन होकर भी अपनेको ब्राह्मण बतानेवाले, उपदेश देनेकी शक्तिसे रहित, ब्याजखोर, अनाचारी, अग्निहोत्र न करनेवाले, संध्योपासनासे अलग रहनेवाले, शूद्रके गाँवमें निवास करनेवाले, झूठे ही महात्माओंके-से वेष धारण करनेवाले, सबके साथ और सब कुछ खानेवाले, नास्तिक, धर्मविक्रेता, नीच वृत्तिवाले, झूठी गवाही देनेवाले तथा कूटनीतिका आश्रय लेकर गाँवके लोगोंमें लड़ाई-झगड़ा करानेवाले ब्राह्मणको जो दान दिया जाता है, वह सब निष्फल होता है। उपर्युक्त ब्राह्मणोंको दिये हुए दान बहुत हों तो भी राखमें डाली हुई घीकी आहुतिकी भाँति व्यर्थ हो जाते हैं। उन्हें दिये गये दानका जो कुछ फल होनेवाला होता है, उसे राक्षस और पिशाच प्रसन्नताके साथ लूट ले जाते हैं।

युधिष्ठिर! अब जिन-जिन मनुष्योंका जीवन व्यर्थ है, उनका परिचय दे रहा हूँ, सुनो। जो लोग मेरी, भगवान् शंकरकी अथवा भूमण्डलके देवता ब्राह्मणोंकी शरण नहीं लेते, उनका जीवन व्यर्थ है। जिनकी कोरे तर्कशास्त्रमें ही आसक्ति है, जो नास्तिक-पथका अवलम्बन करते हैं, जिन्होंने आचार त्याग दिया है तथा जो देवताओंकी निन्दा करते हैं, उनका जीवन भी व्यर्थ ही है। जो नराधम नास्तिकोंके शास्त्र पढ़कर ब्राह्मण और यज्ञोंकी निन्दा करते हैं, वे व्यर्थ ही जीवन धारण करते हैं। जो मूढ़, दुर्गा, स्वामी कार्तिकेय, वायु, अग्नि, जल, सूर्य, माता-पिता, गुरु, इन्द्र तथा चन्द्रमाकी निन्दा करते और आचारका पालन नहीं करते, वे भी निरर्थक ही जीवन व्यतीत करते हैं, जो धन होनेपर भी दान और धर्म नहीं करता तथा दूसरोंको न देकर अकेले ही मिठाई उड़ाया करता है, उसका जीवन भी निरर्थक ही है। इस प्रकार व्यर्थ जीवनकी बात बतायी गयी।

अब दानका समय बतलाता हूँ। जो मनुष्य स्नान करके पवित्र हो मन और इन्द्रियोंको प्रसन्न रखकर श्रद्धाके साथ दान करता है, उसके फलको वह यौवनावस्थामें भोगता है। जो स्वयं देनेयोग्य वस्तु ले जाकर भक्तिपूर्वक सत्पात्रको दान करता है, उसको मरणपर्यन्त हर समय उस दानका फल प्राप्त होता है। दान और उसका फल सात्त्विक, राजस और तामस-भेदसे तीन-तीन प्रकारका होता है तथा उसकी गति भी तीन प्रकारकी होती है। इस विषयका वर्णन करता हूँ, सुनो—दान देना कर्तव्य है—ऐसा समझकर अपना उपकार न करनेवाले ब्राह्मणको जो दान दिया जाता है, वह सात्त्विक है। जिसका कुटुम्ब बहुत बड़ा हो तथा जो दरिद्र और वेदका विद्वान् हो, ऐसे ब्राह्मणको प्रसन्नतापूर्वक जो कुछ दिया जाता है, वह भी सात्त्विक दानके ही अन्तर्गत है। परंतु जो वेदका एक अक्षर भी नहीं जानता, जिसके घरमें काफी सम्पत्ति मौजूद है तथा जो पहले कभी अपना उपकार कर चुका है, ऐसे ब्राह्मणको दिया हुआ दान राजस माना गया है। अपने सम्बन्धी और प्रमादीको दिया हुआ, फलकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंके द्वारा दिया हुआ तथा अपात्रको दिया हुआ दान भी राजस ही है। जो ब्राह्मण बलिवैश्वदेव नहीं करता, वेदका ज्ञान नहीं रखता तथा चोरी किया करता है, उसको दिया हुआ दान तामस है। क्रोध,

तिरस्कार, क्लेश और अवहेलनापूर्वक तथा सेवकको दिया हुआ दान भी तामस ही बतलाया गया है। सात्त्विक दानको देवता, पितर, मुनि और अग्नि ग्रहण करते हैं तथा उससे इन्हें बड़ा संतोष होता है। राजस दान दानव, दैत्य, ग्रह, यक्ष और राक्षसोंके उपभोगमें आता है तथा तामस दान पापी और मलिन कर्म करनेवाले प्रेत एवं पिशाचोंको प्राप्त होता है। अब त्रिविध गतिका वर्णन सुनो। सात्त्विक दानका फल उत्तम, राजस दानका मध्यम और तामस दानका फल अधम होता है। दानके उत्तम पात्र अग्निहोत्री ब्राह्मणोंको जो दान दिया जाता है, वह अक्षय बतलाया गया है। अतः जो वेदके विद्वान् होते हुए दरिद्र हों, उनके भरण-पोषणका तुम स्वयं प्रबन्ध करो और सम्पत्तिशाली द्विजोंकी रक्षा करते रहो। धनहीन दरिद्र ब्राह्मणोंको दान देकर उनकी भलीभाँति पूजा करो। दाताका पाप दानके साथ ही दान लेनेवालेके पास चला जाता है और उसका पुण्य दाताको प्राप्त हो जाता है, अतः परलोकमें अपना हित चाहनेवाले पुरुषको सदा दान करते रहना चाहिये। जो वेद-विद्या पढ़कर अत्यन्त शुद्ध आचार-विचारसे रहते हों और शूद्रोंका अन्न कभी नहीं ग्रहण करते हों, ऐसे विद्वानोंको प्रयत्नपूर्वक बड़े-बड़े दानोंका भाण्डार बनाना चाहिये।

पाण्डुनन्दन ! जिनकी स्त्रियाँ अपने पतिके भोजनसे बचे हुए अन्नको हजारोंगुना लाभ समझकर उसके मिलनेकी प्रतीक्षा किया करती हैं, ऐसे ब्राह्मणोंको तुम भोजनके लिये निमन्त्रित करना। दरिद्र कुलके ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करके उन्हे निराश न लौटाना, अन्यथा उनकी आशा मारी जायगी। जो मेरे भक्त हों, मेरी शरणमें हों, मेरा पूजन करते हों और नियमपूर्वक मुझमें ही लगे रहते हों, उनका यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। युधिष्ठिर ! अपने उन भक्तोंको पवित्र करनेके लिये मैं प्रतिदिन दोनों समयकी संध्यामें व्याप्त रहता हूँ। मेरा यह नियम कभी खण्डित नहीं होता, इसलिये मेरे निष्पाप भक्तजनोंको चाहिये कि वे आत्मशुद्धिके लिये संध्याके समय निरन्तर अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) का जप करते रहें। संध्या और अष्टाक्षर मन्त्रका जप करनेसे दूसरे ब्राह्मणोंके भी पाप नष्ट हो जाते हैं, अतः चित्त-शुद्धिके लिये प्रत्येक ब्राह्मणको दोनों कालकी संध्या करनी चाहिये। जो ब्राह्मण इस प्रकार संध्योपासन और जप करता हो, उसे देवकार्य और श्राद्धमें नियुक्त करना चाहिये। उसकी निन्दा कदापि नहीं करनी चाहिये; क्योकि निन्दा करनेपर ब्राह्मण उस श्राद्धको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे आग ईंधनको जला डालती है। धर्मके जाननेवाले पुरुषको यज्ञमें ब्राह्मणोंकी परीक्षा नहीं करनी चाहिये; क्योकि ऐसा करनेसे यजमानकी बड़ी निन्दा होती है। ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला मनुष्य कुत्तेकी योनिमें जन्म लेता है, उसपर दोषारोपण करनेसे गदहा होता है और उसका तिरस्कार तथा उसके साथ द्वेष करनेसे वह कीड़ेकी योनिमें जन्म पाता है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि क्षत्रिय, साँप और विद्वान् ब्राह्मण यदि कमजोर हों तो भी कभी उनका अपमान न करे; क्योंकि ये तीनों अपमानित होनेपर मनुष्यको भस्म कर डालते हैं। ब्राह्मण जन्मसे ही धर्मकी सनातन मूर्ति है। वह धर्मके ही लिये उत्पन्न हुआ है और मुक्तिपर उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। ब्राह्मण अपना ही खाता और अपना ही पहनता है। दूसरे मनुष्य ब्राह्मणकी दयासे ही भोजन पाते हैं, अतः ब्राह्मणोंका कभी अपमान नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे सदा ही मुझमें भक्ति रखनेवाले होते हैं।

जो ब्राह्मण बृहदारण्यक उपनिषद्में वर्णित मेरे गूढ़ और निष्कल स्वरूपका ज्ञान रखते हैं, उसका यत्नपूर्वक पूजन करना। घरपर रहो या विदेशमें, मेरे भक्त ब्राह्मणोंकी निरन्तर श्रद्धाके साथ पूजा करते रहना। ब्राह्मणके समान कोई देवता, ब्राह्मणके समान गुरु, ब्राह्मणसे बढ़कर बन्धु और ब्राह्मणसे बढ़कर कोई निधि नहीं है। कोई तीर्थ और पुण्य भी ब्राह्मणसे श्रेष्ठ नहीं है। ब्राह्मणसे बढ़कर पवित्र और पावन कोई नहीं है। ब्राह्मणसे श्रेष्ठ धर्म और ब्राह्मणसे उत्तम कोई गति नहीं है। पाप-कर्मके कारण नरकमें गिरते हुए मनुष्यका एक सुपात्र ब्राह्मण भी उद्धार कर सकता है। जो बाल्यकालसे ही अग्निहोत्र करनेवाले, शान्त, शूद्रका अन्न त्याग देनेवाले और मेरे भक्त हैं तथा सदा मेरी पूजा किया करते हैं, उनको दिया हुआ दान अक्षय होता है। मेरे भक्त ब्राह्मणको दान देकर उसकी पूजा करने, शीश झुकाने, सत्कार करने, बातचीत करने अथवा दर्शन करनेसे वह मनुष्यको दिव्य-लोकमें पहुँचा देता है। जो लोग मेरे गुण और लीलाओंका पाठ तथा मेरा नमस्कार और ध्यान करते हैं, उनका दर्शन और स्पर्श करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मेरे भक्त हैं, जिनके प्राण मुझमें ही लगे हुए हैं, जो मेरी महिमाका गान करते और मेरी शरणमें पड़े रहते हैं, जिनकी उत्पत्ति शुद्ध रज और वीर्यसे हुई है, जो वेदके विद्वान, जितेन्द्रिय तथा शूद्रान्नसे बचे रहनेवाले हैं, वे दर्शनमात्रसे पवित्र कर देते हैं—ऐसे लोगोंके घरपर स्वयं उपस्थित होकर भक्तिपूर्वक विशेषरूपसे दान देना चाहिये। वह साधारण दानकी अपेक्षा करोड़गुना फल देनेवाला माना गया है। जागते अथवा सोते समय, परदेशमें या घर रहते समय जिस ब्राह्मणके हृदयसे उसकी भक्ति-भावनाके कारण मैं कभी दूर नहीं होता, वह पूजन, दर्शन, स्पर्श अथवा सम्भाषण करनेमात्रसे मनुष्यको पवित्र कर देता है। इस प्रकार सब अवस्थाओंमें मेरे भक्तोंको दिये हुए सब प्रकारके दान स्वर्गमार्ग प्रदान करनेवाले होते हैं।



बीज और योनिकी शुद्धि तथा गायत्री-जप और ब्राह्मणोंकी महिमाका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार सात्त्विक, राजस और तामस दान, उसकी भिन्न-भिन्न गति और पृथक्-पृथक् फलका वर्णन सुनकर धर्मपरायण युधिष्ठिरका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। इस परमपवित्र धर्मरूपी अमृतका पान करनेसे उन्हें तृप्ति नहीं हुई, अतः वे पुनः भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—'जगदीश्वर! मुझे बीज और योनि (वीर्य और रज) से शुद्ध पुरुषोंके लक्षण बताइये। बीज-दोषसे कैसे मनुष्य उत्पन्न होते हैं? इसे बतानेके साथ ही ब्राह्मणोंके उत्तम, मध्यम आदि विशेष भेद और उनके गुण-दोषोंका भी विवेचन कीजिये। मैं आपका भक्त हूँ, इसलिये मेरी पूछी हुई सारी बातें बतलानेकी कृपा कीजिये।'

भगवान्‌ने कहा—राजन्! बीज और योनिकी शुद्धि-अशुद्धिका यथावत् वर्णन सुनो। उनकी शुद्धिसे ही यह संसार टिकता है और अशुद्धिसे उसका नाश हो जाता है। जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्यका विधिवत् पालन करता है, जिसका व्रत कभी खण्डित नहीं होता, उसको शुद्ध बीज समझना चाहिये, उसीका बीज शुभ होता है। इसी प्रकार जो कन्या पिता और माताकी दृष्टिसे उत्तम कुलमें उत्पन्न हो, जिसकी योनि दूषित न हुई हो तथा ब्राह्म आदि उत्तम विवाहोंकी विधिसे ब्याही गयी हो, वह उत्तम मानी गयी है। उसीकी योनि श्रेष्ठ है। जो स्त्री मन, वाणी और क्रियासे परपुरुषके साथ समागम करती है, उसकी योनि गर्भाधानके योग्य नहीं होती। जो पापात्मा पुरुष संतानकी इच्छासे व्यभिचारिणी स्त्रीको स्वीकार करता है, वह अपनी दस पीढ़ी पहलेके पूर्वजों और दस पीढ़ी बादकी संतानोंको नरकमें डालता है। जो मूर्ख मोहवश दूषित योनिमें वीर्यकी स्थापना करता है, उसके वीर्यसे उत्पन्न हुआ ब्राह्मण छहों अङ्गोंका विद्वान् ही क्यों न हो जाय, साधु पुरुषोंको उचित है कि उसका चाण्डालके समान बहिष्कार करें। जो स्त्री मन, वाणी और क्रियासे व्यभिचार करती है, उसको कुलघातिनी समझना चाहिये। उसके पेटसे पैदा हुआ बालक चाण्डालके समान होता है। दूषित योनिसे उत्पन्न हुए मनुष्य यज्ञ, दान, भोजन, वार्तालाप, शयन तथा सम्बन्ध आदिमें सम्मिलित करने योग्य नहीं होते। बिना ब्याही कन्यासे उत्पन्न, ब्याहके समय गर्भवती कन्यासे उत्पन्न, पतिकी जीवितावस्थामें व्यभिचारसे उत्पन्न, पतिके मर जानेपर परपुरुषसे उत्पन्न, संन्यासीके वीर्यसे उत्पन्न तथा पतित मनुष्यसे उत्पन्न—ये छः प्रकारके ब्राह्मण चाण्डाल होते हैं। इनको चाण्डालोंसे भी नीच समझना चाहिये। जो जहाँ-तहाँ जिस किसी स्त्रीसे अथवा शूद्र जातिकी स्त्रीसे भी समागम कर लेता है, वह पापात्मा स्वेच्छाचारी कहलाता है। उसका बीज अशुभ होता है। उसका अशुद्ध वीर्य किसी शुद्ध योनिवाली स्त्रीके योग्य नहीं होता। उसके सम्पर्कसे कुत्तेके चाटे हुए हविष्यकी तरह शुद्ध योनि भी दूषित हो जाती है। ब्राह्मणका वीर्य जब शूद्रा स्त्रीके योनिमें पड़ता है तो हाहाकार कर उठता है और दुःखी होकर कहता है—'हाय! मैं विष्ठाके गड्ढेमें पड़ गया। मुझे इस प्रकार अधोगतिमें डालनेवाला यह काम-मोहित पापात्मा स्वयं भी शीघ्र ही अधोगतिको प्राप्त हो।' इस तरह शाप देकर वह वीर्य गिरता है। वीर्यको आत्मा बताया गया है। वह सबसे श्रेष्ठ देवता है, इसलिये सब प्रकारका प्रयत्न करके अपने वीर्यकी रक्षा करनी चाहिये। मनुष्य ब्रह्मचर्यके पालनसे आयु, तेज, बल, वीर्य, बुद्धि, लक्ष्मी, महान् यश, पुण्य और मेरे प्रेमको प्राप्त करता है। जो गृहस्थ-आश्रममें स्थित होकर अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए पञ्चयज्ञोंके अनुष्ठानमें तत्पर रहते हैं, वे पृथ्वीतलपर धर्मकी स्थापना करते हैं। जो प्रतिदिन सबेरे और शामको विधिवत् संध्योपासन करते हैं, वे वेदमयी नौकाका सहारा लेकर इस संसार-समुद्रसे स्वयं भी तर जाते हैं और दूसरोंको भी तार देते हैं। जो ब्राह्मण सबको पवित्र बनानेवाली वेदमाता गायत्रीका जप करता है, वह समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका दान लेनेपर भी प्रतिग्रहके दोषसे दुःखी नहीं होता तथा सूर्य आदि ग्रहोंमेंसे जो उसके लिये अशुभ स्थानमें रहकर अनिष्टकारक होते हैं, वे भी गायत्री-जपके प्रभावसे शान्त, शुभ और कल्याणकारी हो जाते हैं। जहाँ कहीं क्रूर कर्म करनेवाले भयंकर पिशाच रहते हैं वहाँ जानेपर भी वे उस ब्राह्मणका अनिष्ट नहीं कर सकते। वैदिक व्रतोंका आचरण करनेवाले पुरुष पृथ्वीपर दूसरोंको पवित्र करनेवाले होते हैं। प्रजापति मनुका कहना है कि 'शील, स्वाध्याय, दान, शौच, कोमलता और सरलता—ये सद्‌गुण ब्राह्मणके लिये वेदसे भी बढ़कर हैं।' जो ब्राह्मण 'भूर्भुवः स्वः' इन व्याहृतियोंके साथ गायत्रीका जप करता, वेदके स्वाध्यायमें संलग्न रहता और अपनी ही स्त्रीसे प्रेम करता है, वही जितेन्द्रिय, वही विद्वान् और वही इस भूमण्डलका देवता है।

जो श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रतिदिन संध्योपासन करते हैं, वे निःसंदेह ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं। केवल गायत्रीमात्र जाननेवाला ब्राह्मण भी यदि नियमसे रहता हो तो वह श्रेष्ठ है; किंतु जो चारों वेदोंका विद्वान् होनेपर भी सबका अन्न खाता,

सब कुछ बेचता और नियमोंका पालन नहीं करता, वह उत्तम नहीं माना जाता। पूर्वकालमें देवता और ऋषियोंने ब्रह्माजीके सामने गायत्रीमन्त्र और चारों वेदोंको तराजूपर रखकर तौला था। उस समय गायत्रीका पलड़ा ही चारों वेदोंसे भारी साबित हुआ। जैसे भ्रमर खिले हुए फूलोंसे उनके सारभूत मधुको ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण वेदोंसे उनकी सारभूत गायत्रीका ग्रहण किया गया है। इसलिये गायत्री सम्पूर्ण वेदोंका प्राण कहलाती है। गायत्रीके बिना सभी वेद निर्जीव हैं। नियम और सदाचारसे भ्रष्ट ब्राह्मण चारों वेदोंका विद्वान् हो तो भी वह निन्दाका ही पात्र है; किंतु शील और सदाचारसे युक्त ब्राह्मण यदि केवल गायत्रीका जप करता हो तो भी वह श्रेष्ठ माना जाता है। प्रतिदिन एक हजार गायत्री-मन्त्रका जप करना उत्तम है, सौ मन्त्रका जप करना मध्यम और दस मन्त्रका जप करना कनिष्ठ माना गया है। कुन्तीनन्दन ! गायत्री सब पापोंको नष्ट करनेवाली है, इसलिये तुम सदा उसका जप करते रहो।

युधिष्ठिरने पूछा—त्रिलोकीनाथ ! आप सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा हैं। बताइये, किस कर्मसे आप संतुष्ट होते हैं ?

भगवान्‌ने कहा—भारत ! कोई एक हजार भार गुग्गुल आदि सुगन्धित पदार्थोंको जलाकर मुझे धूप दे, निरन्तर नमस्कार करे, खूब भेंट-पूजा चढ़ावे तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदकी स्तुतियोंसे सदा मेरा स्तवन करता रहे; किंतु यदि वह ब्राह्मणको संतुष्ट न कर सके तो मैं उसपर प्रसन्न नहीं होता। इसमें संदेह नहीं कि ब्राह्मणकी पूजासे सदा मेरी भी पूजा हो जाती है और ब्राह्मणको कटुवचन सुनानेसे मैं ही उस कटुवचनका लक्ष्य बनता हूँ। जो ब्राह्मणकी पूजा करते हैं, उनकी परम गति मुझमें ही होती है; क्योंकि पृथ्वीपर ब्राह्मणोंके रूपमें मैं ही निवास करता हूँ। जो बुद्धिमान् मुझमें मन लगाकर ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, उसको मैं अपना स्वरूप ही समझता हूँ। ब्राह्मण यदि कुबड़े, काने, बौने, दरिद्र और रोगी भी हों तो विद्वान् पुरुषोंको कभी उनका अपमान नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे सब मेरे ही स्वरूप हैं। समुद्रपर्यन्त पृथ्वीके ऊपर जितने भी श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, वे सब मेरे स्वरूप हैं। उनके पूजन करनेसे मेरा भी पूजन हो जाता है। बहुत-से अज्ञानी पुरुष इस बातको नहीं जानते कि मैं इस पृथ्वीपर ब्राह्मणोंके रूपमें निवास करता हूँ। जो ब्राह्मणोंका अपमान करते, उन्हें स्वधर्मसे भ्रष्ट कर देते, दूत बनाकर भेजते और उनसे अपनी सेवा कराते हैं, उन पापियोंको यमराजके महाबली दूत इच्छानुसार काटते हैं। जो ब्राह्मणोंको गाली देकर और उनकी निन्दा करके प्रसन्न होते हैं, वे जब यमलोकमें जाते हैं तो लाल-लाल आँखोंवाले क्रूर यमराज उन्हें पृथ्वीपर पटककर छातीपर सवार हो जाते हैं और आगमें तपाये हुए सँड़सोंसे उनकी जीभ उखाड़ लेते हैं। जो पापी ब्राह्मणोंकी ओर पापपूर्ण दृष्टिसे देखते हैं, ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति नहीं करते, वैदिक मर्यादाका उल्लङ्घन करते और सदा ब्राह्मणोंके द्वेषी बने रहते हैं, वे जब यमलोकमें पहुँचते हैं तो वहाँ यमराजकी आज्ञासे टेढ़ी चोंचवाले बड़े-बड़े बलवान् पक्षी आकर क्षणभरमें उन पापियोंकी आँखें निकाल लेते हैं। जो मनुष्य ब्राह्मणको पीटता, उसके शरीरसे खून निकाल देता, उसकी हड्डी तोड़ डालता अथवा उसके प्राण ले लेता है, वह क्रमशः इक्कीस नरकोंमें अपने पापका फल भोगता है। पहले वह शूलपर चढ़ाया जाता है। फिर मस्तक नीचे करके उसे आगमें लटका दिया जाता है और वह हजारों वर्षोंतक उसमें पकता रहता है। वह दुष्टबुद्धिवाला पुरुष उस दारुण यातनासे तबतक छुटकारा नहीं पाता, जबतक कि उसके पापका भोग समाप्त नहीं हो जाता। इसलिये ब्राह्मणोंके प्रति कभी अमङ्गलसूचक वचन न कहे, उनसे रूखी और कठोर बात न बोले तथा कभी उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन न करे। जो ब्राह्मणोंको फटकारते और गालियाँ सुनाते हैं, वे मुझे ही गाली देते और मुझे ही डाँट बताते हैं। जो चन्दन, धूप और दीप आदिके द्वारा मेरी काष्ठमयी प्रतिमाका पूजन करता है, उसके द्वारा मेरी भलीभाँति पूजा नहीं होती; किंतु ब्राह्मणके पूजनसे मेरी यथावत् पूजा हो जाती है। ब्राह्मणोंकी कृपासे ही मैं इस पृथ्वीको धारण करता हूँ। ब्राह्मणोंके अनुग्रहसे ही असुरोंपर विजय पाता हूँ। ब्राह्मणोंके प्रसादसे ही मुझमें दाक्षिण्य आदि गुण मौजूद हैं तथा ब्राह्मणोंकी दयासे ही मुझे कोई परास्त नहीं कर पाता।



यमलोकके मार्गका कष्ट और उससे बचनेके उपाय

युधिष्ठिरने पूछा—केशव ! आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये बताइये, मनुष्यलोक और यमलोकके बीचकी दूरी कितनी है ? यमलोक कैसा है ? कितना बड़ा है ? और कहाँ है ? मनुष्य किस उपायसे यमलोकके दुःखोंसे छुटकारा पाते हैं ? जब जीव पाञ्चभौतिक शरीरसे अलग होकर त्वचा, हड्डी और मांससे रहित हो जाता है, उस समय उसे सुख-दुःखका अनुभव किस प्रकार होता है ? देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाले धर्मपरायण मनुष्य स्वर्गकी यात्रा किस प्रकार

करते हैं ? तथा पापी पुरुष प्रेतलोकमें कैसे जाते हैं ? यमलोकमें जाते समय जीवका रूप-रंग कैसा होता है ? और उसका शरीर कितना बड़ा होता है ? ये सब बातें बताइये।

भगवान्‌ने कहा—राजन् ! तुम मेरे भक्त हो, इसलिये जो कुछ पूछते हो वह सब बात यथार्थ रूपसे बता रहा हूँ। मनुष्यलोक और यमलोकमें छियासी हजार योजनका अन्तर है। इस बीचके मार्गमें न वृक्षकी छाया है, न तालाब है, न पोखरा है, न बावड़ी है और न कुँआ ही है। कोई मण्डप, बैठक, प्याऊ, घर, पर्वत, नदी, गुफा, गाँव, आश्रम, बगीचा, वन अथवा ठहरनेका दूसरा कोई स्थान भी नहीं है। जब जीवका मृत्युकाल उपस्थित होता है और वह वेदनासे छटपटाने लगता है, उस समय कारण-तत्त्व शरीरका त्याग कर देते हैं, प्राण कण्ठतक आ जाते हैं और वायुके वशमें पड़े हुए जीवको बरबस इस शरीरसे निकल जाना पड़ता है। छः कोषोंवाले शरीरसे निकलकर वायुरूपधारी जीव एक-दूसरे अदृश्य शरीरमें प्रवेश करता है। उस शरीरके रूप, रंग और माप भी पहले शरीरके ही समान होते हैं। उसमें प्रविष्ट होनेपर भी जीवको कोई देख नहीं पाता। देहधारियोंका अन्तरात्मा जीव आठ अङ्गोंसे युक्त होकर यमलोककी यात्रा करता है। वह काटने, टुकड़े-टुकड़े करने, जलाने अथवा मारनेसे नष्ट नहीं होता। यमराजकी आज्ञासे नाना प्रकारके भयंकर रूप धारण कर अत्यन्त क्रोधी और दुर्धर्ष यमदूत प्रचण्ड हथियार लिये आते हैं और जीवको जबर्दस्ती पकड़कर ले जाते हैं। उस समय जीव स्त्री-पुत्रादिके स्नेह-बन्धनमें आबद्ध होकर विवश-सा हो जाता है, जब वह जाने लगता है तो उसके किये हुए पाप-पुण्य उसके पीछे-पीछे जाते हैं और उसके बन्धु-बान्धव दुःखसे पीड़ित होकर करुणाजनक स्वरमें विलाप करने लगते हैं। उस समय जीव सबकी ओरसे निरपेक्ष हो समस्त बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर चल देता है। माता-पिता, भाई-मामा, स्त्री-पुत्र और मित्र रोते रह जाते हैं, उनका साथ छूट जाता है, उनके नेत्र और मुख आँसुओंसे भीगे होते हैं, उनकी दशा बड़ी दयनीय हो जाती है, फिर भी वह जीव उन्हें दिखायी नहीं पड़ता। वह अपना शरीर छोड़कर वायुरूपमें उस मार्गकी ओर चल देता है, जो अन्धकारसे भरा होता है और जिसका कहीं पार नहीं दिखायी देता। वह पथ बड़ा भयंकर होता है। उसपर चलनेवाले पापियोंको अन्ततक दुःख-ही-दुःख उठाना पड़ता है। पापाचारियोंके लिये वह बड़ा ही दुस्तर और दुर्गम मार्ग है। वहाँ किसी सहायकका मिलना बड़ा कठिन होता है, जिसका काल आ जाता है, उस मनुष्यको बन्धु-बान्धव, भोग-सामग्री और धन-वैभव सब कुछ छोड़कर अवश्य ही उस मार्गपर जाना पड़ता है। स्थावर और जङ्गम सभी प्राणी एक दिन यमलोकके पथिक होते हैं। यमराजके अधीन रहनेवाले देवता, असुर और मनुष्य आदि जो भी जीव हैं, वे स्त्री-पुरुष अथवा नपुंसक हों, बाल, वृद्ध, तरुण या जवान हों, तुरंतके पैदा हुए हों अथवा गर्भमें स्थित हों, उन सबको एक दिन उस महान् पथकी यात्रा करनी ही पड़ती है। पूर्वाह्ण हो या पराह्ण, संध्याका समय हो या रात्रिका, आधी रात हो या सबेरा, वहाँकी यात्रा सदा खुली ही रहती है। कोई परदेशमें हों, जंगलमें हों या पर्वतपर रहते हों, जल, थल, आकाश या घरके भीतर मौजूद हों, खाते या पानी पीते हों, बैठे हों, खड़े हों या बिछौनेपर पड़े हों, जागते हों अथवा सो गये हों, हर जगह और हर अवस्थामें उस महामार्गकी ओर प्रस्थान करना ही पड़ता है। यमलोकके पथपर कहीं डरकर, कहीं पागल होकर, कहीं ठोकर खाकर और कहीं वेदनासे आर्त होकर रोते-चिल्लाते हुए चलना पड़ता है। यमदूतोंकी डाँट सुनकर जीव उद्विग्न हो जाते हैं और भयसे विह्वल हो थर-थर काँपने लगते हैं। दूतोंकी मार खाकर शरीरमें बेतरह पीड़ा होती है तो भी उनकी फटकार सुनते हुए आगे बढ़ना पड़ता है। जिन मनुष्योंने दान नहीं किया है उन्हें काँटे बिछाये हुए और तपी हुई बालू तथा धूलसे भरे हुए मार्गपर जलते पाँवसे चलना पड़ता है। धर्महीन पुरुषोंको काठ, पत्थर, शिला, डंडे, जलती लकड़ी, चाबुक और अंकुशकी मार खाते हुए यमपुरीको जाना पड़ता है। जो दूसरे जीवोंकी हत्या करते हैं, उन्हें इतनी पीड़ा दी जाती है कि वे छटपटाने, कराहने तथा जोर-जोरसे चिल्लाने लगते हैं और उसी स्थितिमें उन्हें गिरते-पड़ते चलना पड़ता है। उनमेंसे किसीके हाथ-पैर और जंघे तोड़ दिये जाते हैं, किसीका गला मरोड़ दिया जाता है और किसीके कान, नाक और ओठ काट लिये जाते हैं। उनके ऊपर शक्ति, भिन्दिपाल, शङ्कु, तोमर, बाण और त्रिशूलकी मार पड़ती रहती है। कुत्ते, बाघ, भेड़िये और कौवे उन्हें चारों ओरसे नोचते रहते हैं। मांस काटनेवाले राक्षस भी उन्हें पीड़ा पहुँचाते हैं। जो लोग मांस खाते हैं, उन्हें उस मार्गमें भैंसे, मृग, सूअर और चितकबरे हरिण चोट पहुँचाते और उनके मांस काटकर खाया करते हैं। जो पापी बालकोंकी हत्या करते हैं, उन्हें सुईके समान तीखे डंकवाली मक्खियाँ चारों ओरसे काटती रहती हैं। जो लोग अपने ऊपर विश्वास करनेवाले स्वामी, मित्र अथवा स्त्रीकी हत्या करते हैं, उन्हें यमपुरके मार्गपर यमदूत हथियारोंसे छेदते रहते हैं। जो दूसरे जीवोंको भक्षण करने या उन्हें दुःख पहुँचाते हैं, उनको कुत्ते और राक्षस काट खाते हैं। जो दूसरोंके कपड़े, पलंग और बिछौने चुराते हैं, उन्हें यमदूत पिशाचोंकी तरह नंगे करके भगाते हुए ले जाते हैं। जो दुरात्मा

और पापाचारी मनुष्य बलपूर्वक दूसरोंकी गौ, अनाज, सोना, खेत और गृह आदिको हड़प लेते हैं, वे यमलोकमें जाते समय यमदूतोंके हाथसे पत्थर, जलती हुई लकड़ी, डंडे, काठ और काँटेदार शस्त्रोंकी मार खाते हैं। तथा उनके समस्त अङ्गोंमें घाव हो जाता है। जो मनुष्य नरकका भय न मानकर ब्राह्मणोंका धन छीन लेते, उन्हें गालियाँ सुनाते और सदा मार बैठते हैं, वे जब यमपुरके मार्गमें जाते हैं, उस समय यमदूत इस तरह जकड़कर बाँधते हैं कि उनका गला सूख जाता है; उनकी जीभ, आँख और नाक काट ली जाती है; उनके शरीरपर दुर्गन्धित पीब और रक्त डाला जाता है; गीदड़ उनके मांस नोच-नोचकर खाते हैं और क्रोधमें भरे हुए भयानक चाण्डाल उन्हें चारों ओरसे पीड़ा पहुँचाते रहते हैं। यमलोकमें पहुँचनेपर भी उन पापियोंको जीते-जी विष्ठाके कूएँमें डाल दिया जाता है और वहाँ वे करोड़ों वर्षोंतक पीड़ा सहते हुए कष्ट भोगते रहते हैं। तदनन्तर, समयानुसार नरकयातनासे छुटकारा पानेपर वे इस लोकमें सौ करोड़ जन्मोंतक विष्ठाके कीड़े होते हैं। जिन लोगोंने लोभ, दम्भ और असत्यके वशीभूत होकर धन रहते हुए भी श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दान नहीं दिया है, उनके गलेमें फंदा डालकर राक्षस उन्हें पीटते हैं और वे भूख-प्यास तथा परिश्रमसे पीड़ित होकर यमपुरीकी यात्रा करते हैं। दान न करनेवाले जीवोंके कण्ठ, मुँह और तालु भूख-प्यासके मारे सूखे रहते हैं तथा वे यमदूतोंसे बारंबार अन्न और जल माँगा करते हैं। वे कहते हैं—'मालिक ! हम भूख और प्याससे बहुत कष्ट पा रहे हैं, अब चला नहीं जाता; कृपा करके मुट्ठीभर अन्न और थोड़ा-सा पानी दे दीजिये। इस प्रकार याचना करते ही रह जाते हैं, किंतु कुछ भी नहीं मिलता। यमदूत उन्हें उसी अवस्थामें यमराजके घर पहुँचा देते हैं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे भयंकर यम-यातनाका वर्णन सुनकर महाराज युधिष्ठिर भयसे थर्रा उठे और बेहोश होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। मूर्छाने उनपर पूरा अधिकार जमा लिया। तत्पश्चात् जब वे धीरे-धीरे होशमें आये तो भगवान्ने उन्हें आश्वासन दिया। इसके बाद वे जलसे अपने नेत्र धोकर पुनः भगवान्से बोले—'देवेश्वर ! यमलोकके मार्गका विस्तृत वर्णन सुनकर मुझे बड़ा भय हो गया है। अब यह बतानेकी कृपा कीजिये कि मनुष्य किस उपायसे उस विकट मार्गको सुखपूर्वक तय कर सकते हैं ?'

भगवान्ने कहा—पाण्डुनन्दन ! इस संसारमें जो लोग धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं, जीवहिंसासे अलग रहकर गुरुजनोंकी सेवामें लगे रहते हैं, देवता तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं और ब्राह्मणोंको नाना प्रकारकी वस्तुएँ दान देते हैं, वे यमलोकमें सुखपूर्वक जाते हैं। जो लोग ब्राह्मणोंको, उनमें भी विशेषतः श्रोत्रियोंको अत्यन्त प्रसन्नताके साथ अच्छी प्रकारसे बनाये हुए उत्तम अन्नका भोजन कराते हैं, वे महात्मा पुरुष विचित्र विमानोंपर बैठकर यमलोककी यात्रा करते हैं। जो प्रतिदिन निष्कपटभावसे सत्यभाषण करते हैं तथा जो ब्राह्मणोंको और उनमें भी विशेषतः श्रोत्रियोंको कपिला आदि गौओंका पवित्र दान देते रहते हैं, वे निर्मल कान्तिवाले बैल जुते हुए विमानोंमें बैठकर यमलोकको जाते हैं। जो ब्राह्मणोंको छाता, जूता, शय्या, आसन, वस्त्र और आभूषण दान करते हैं, वे सोनेके छत्र लगाये उत्तम गहनोंसे सज-धजकर घोड़े, बैल अथवा हाथीकी सवारीसे धर्मराजके सुन्दर नगरमें प्रवेश करते हैं। जो स्नान आदिसे शुद्ध होकर ब्राह्मणोंको प्रयत्नपूर्वक शुद्ध दूध, दही, घी, गुड़ और शहदका श्रद्धाके साथ दान करते हैं, वे चक्रवाकोंसे जुते हुए सुवर्णमय विमानोंपर बैठकर यमलोककी यात्रा करते हैं। उस समय गन्धर्वगण उनके साथ रहकर भाँति-भाँतिके बाजे बजाते हुए उनका मनोरञ्जन करते हैं। जो सुगन्धित फूल और फलका दान करते हैं, वे हंसयुक्त विमानोंके द्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो ब्राह्मणोंको घीमें तैयार किये हुए भाँति-भाँतिके पकवान दान करते हैं, वे वायुके समान वेगवाले सफेद विमानोंपर बैठकर यमपुरकी यात्रा करते हैं। जो समस्त प्राणियोंको जीवन देनेवाले जलका दान करते हैं, वे अत्यन्त तृप्त होकर हंस जुते हुए विमानोंद्वारा सुखपूर्वक धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो लोग शान्तभावसे युक्त होकर श्रोत्रिय ब्राह्मणको तिल अथवा तिलकी गौ या घृतकी गौका दान करते हैं, वे सूर्यमण्डलके समान तेजस्वी विमानोंद्वारा गन्धर्वोंके गीत सुनते हुए यमराजके नगरमें जाते हैं। जिन्होंने इस लोकमें बावड़ी, कुएँ, तालाब, पोखरे, पोखरियाँ और जलसे भरे हुए जलाशय बनवाये हैं, वे चन्द्रमाके समान उज्ज्वल और दिव्य घण्टानादसे निनादित विमानोंपर बैठकर यमलोकमें जाते हैं; उस समय वे महात्मा नित्यतृप्त और महान् कान्तिमान् दिखायी देते हैं तथा दिव्यलोकके पुरुष उन्हें ताड़के पंखे और चँवर डुलाया करते हैं। जिन्होंने यहाँ अत्यन्त विचित्र, विस्तृत, मनोहर, सुन्दर और दर्शनीय देवमन्दिर बनवाये हैं, वे सफेद बादलोंके समान कान्तिमान् एवं हवाके समान वेगवाले विमानोंद्वारा यमलोककी यात्रा करते हैं और वहाँ जानेपर वे यमराजको सुखी एवं प्रसन्न देखते हैं तथा उनके द्वारा सम्मानित होकर देवलोकके निवासी होते हैं। जो लोग देवताओंके उद्देश्यसे प्याऊ बनवाकर वहाँ गडुएके द्वारा प्यासे मनुष्योंको ठंडे जल पिलाया करते हैं, वे उस महान् मार्गपर

अत्यन्त तृप्त होकर सुखके साथ यात्रा करते हैं। खड़ाऊँ और जल-दान करनेवाले मनुष्योंको उस मार्गमें सुख मिलता है, वे उत्तम रथपर बैठकर सोनेके पीढ़ेपर पैर रखे हुए यात्रा करते हैं। जो लोग बड़े-बड़े बगीचे बनवाते और उसमें वृक्षोंके पौधे रोपते हैं तथा शान्तिपूर्वक जलसे सींचकर उन्हें फल-फूलोंसे सुशोभित करके बढ़ाया करते हैं, वे दिव्य वाहनोंपर सवार हो आभूषणोंसे सज-धजकर वृक्षोंकी अत्यन्त रमणीय एवं शीतल छायामें होकर दिव्य पुरुषोंद्वारा सम्मान पाते हुए यमलोकमें जाते हैं। जो ब्राह्मणोंको घोड़े, बैल अथवा हाथीकी सवारी दान करते हैं तथा जो लोग उन्हें सोना, चाँदी, मूँगा और मोती प्रदान करते हैं, वे सोनेके विमानोंपर बैठकर धर्मराजके नगरमें जाते हैं। भूमिदान करनेवाले लोग समस्त कामनाओंसे तृप्त होकर बैल जुते हुए सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंके द्वारा उस लोककी यात्रा करते हैं। जो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको अत्यन्त भक्तिपूर्वक सुगन्धित पदार्थ तथा पुष्प प्रदान करते हैं, वे सुगन्धपूर्ण सुन्दर वेष धारण कर उत्तम कान्तिसे देदीप्यमान हो सुन्दर हार पहने हुए विचित्र विमानोंपर बैठकर धर्मराजके नगरमें जाते हैं। दीप-दान करनेवाले पुरुष सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंसे दसों दिशाओंको देदीप्यमान करते हुए साक्षात् अग्निके समान कान्तिमान् स्वरूपसे यात्रा करते हैं। जो घर एवं आश्रय-स्थानका दान करनेवाले हैं, वे सोनेके चबूतरोंसे युक्त और प्रातःकालीन सूर्यके समान कान्तिवाले गृहोंके साथ धर्मराजके नगरमें प्रवेश करते हैं। जो ब्राह्मणोंको पैरोंमें लगानेके लिये उबटन, सिरपर मलनेके लिये तेल, पैर धोनेके लिये जल और पीनेके लिये शर्बत देते हैं, वे घोड़ेपर सवार होकर यमलोककी यात्रा करते हैं। जो रास्तेके थके-माँदे दुर्बल ब्राह्मणोंको ठहरनेकी जगह देकर उन्हें आराम पहुँचाते हैं, वे चक्रवाकसे जुते हुए विमानपर बैठकर यात्रा करते हैं। जो घरपर आये हुए ब्राह्मणोंको स्वागतपूर्वक आसन देकर उनकी विधिवत् पूजा करते हैं, वे उस मार्गपर बड़े आनन्दके साथ जाते हैं। जो मनुष्य मेरा दर्शन करके 'नमो ब्रह्मण्यदेवाय' कहकर मुझे प्रणाम करते हैं और सदा व्रतधारी पुरुषके समान अपने मन और इन्द्रियोंपर संयम रखते हैं, वे सुखके साथ धर्मराजके स्थानको जाते हैं। जो प्रतिदिन 'नमः सर्वसहाभ्यश्च' ऐसा कहकर गौको नमस्कार करता है, वह यमपुरके मार्गपर सुखपूर्वक यात्रा करता है। नित्य प्रातःकाल बिछौनेसे उठकर जो 'नमोऽस्तु विप्रदतायै' कहते हुए पृथ्वीपर पैर रखता है, वह सब कामनाओंसे तृप्त और सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित होकर दिव्य विमानके द्वारा सुखपूर्वक यमलोकको जाता है। जो देवता और अतिथियोंको भोजन करानेके बाद स्वयं अन्न ग्रहण करते हैं (अथवा जो सबेरे और शामको भोजन करनेके सिवा बीचमें कुछ नहीं खाते) तथा दम्भ और असत्यसे बचे रहते हैं, वे भी सारसयुक्त विमानके द्वारा सुखपूर्वक यात्रा करते हैं। जो दिन-रातमें केवल एक बार भोजन करते और दम्भ तथा असत्यसे दूर रहते हैं, वे हंसयुक्त विमानोंके द्वारा बड़े आरामके साथ यमलोकको जाते हैं। जो जितेन्द्रिय होकर केवल चौथे वक्त अन्न ग्रहण करते हैं अर्थात् एक दिन उपवास करके दूसरे दिन शामको भोजन करते हैं, वे मयूरयुक्त विमानोंके द्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो मेरे भक्त होकर इन्द्रियोंको वशमें करके तीर्थोंमें भ्रमण करते हैं, वे महात्मा भी बड़े आनन्दके साथ विमानोंके द्वारा उस मार्गको तय करते हैं। जो श्रेष्ठ द्विज अधिक दक्षिणावाले यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं, वे हंस और सारसोंसे युक्त विमानोंके द्वारा उस मार्गपर जाते हैं। जो दूसरोंको कष्ट पहुँचाये बिना ही अपने कुटुम्बका पालन करते हैं, वे सुवर्णमय विमानोंके द्वारा यात्रा करते हैं। जो सम्पूर्ण प्राणियोंपर समान दृष्टि रखते, जीवोंको अभयदान देते, क्रोध और लोभसे रहित होते तथा इन्द्रियोंको अपने वशमें किये रहते हैं, वे महान् कान्तिमान् तथा देवता और गन्धर्वोंसे सेवित होकर पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल विमानोंद्वारा यमराजके लोकमें जाते हैं। जो प्रतिदिन भगवान्‌की पूजा, स्तुति और नमस्कार करते हैं, वे सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंके द्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। वहाँ धर्मराज स्वयं सुन्दर फूलोंकी मालाएँ पहनाकर उनकी पूजा करते हैं।



जल-दान, अन्न-दान और अतिथि-सत्कारका माहात्म्य

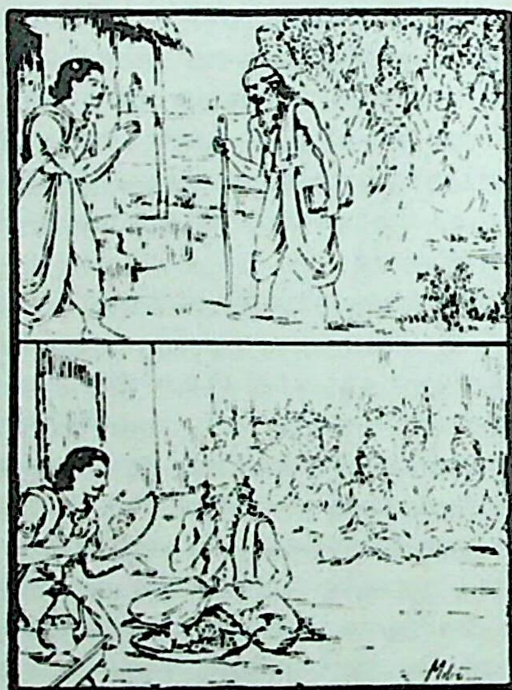
वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! यमपुरके मार्गका वर्णन तथा वहाँ जीवोंके (सुखपूर्वक) जानेका उपाय सुनकर राजा युधिष्ठिर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए और भगवान् श्रीकृष्णसे फिर बोले—'देवदेवेश्वर ! आप सम्पूर्ण दैत्योंका वध करनेवाले हैं, ऋषियोंका समुदाय सदा आपकी ही स्तुति करते हैं। आप षडैश्वर्यसे युक्त, भव-बन्धनसे मुक्ति देनेवाले, श्रीसम्पन्न और हजारों सूर्यके समान तेजस्वी हैं। आपहीसे सबकी उत्पत्ति हुई है। आप धर्मके ज्ञाता और सम्पूर्ण धर्मोंके प्रवर्तक हैं। शान्तस्वरूप अच्युत ! मुझे सब प्रकारके दानोंका फल बतलाइये। दान किस प्रकार और कैसे ब्राह्मणको देना

चाहिये ? तथा किस तरहके तपका अनुष्ठान करके कहाँ उसका फल भोगा जाता है ?'

श्रीकृष्णने कहा—राजन् ! ध्यान देकर सुनो—सब प्रकारके दानोंका फल परम पवित्र, उत्तम और पापोंका नाश करनेवाला है। यदि एक दिन भी गायकी प्यास बुझानेभरका जल, जो स्वयं ही जमीन खुदवाकर पैदा किया गया हो, दान किया जाय तो उससे सात पीढ़ीतकके पूर्वजोंका उद्धार हो जाता है। संसारमें जलको प्राणियोंका जीवन माना गया है, उसके दानसे जीवोंकी तृप्ति होती है। जलके गुण दिव्य हैं और वे परलोकमें भी लाभ पहुँचानेवाले हैं। यमलोकमें पुष्पोदकी नामवाली परम पवित्र नदी है। वह जलदान करनेवाले पुरुषोंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करती है। उसका जल ठंडा होता है और वह ठंडे जलका दान करनेवाले लोगोंको सदा सुख पहुँचाता है। प्यासे मनुष्यकी प्यास अन्नसे नहीं बुझती, इसलिये समझदार मनुष्यको चाहिये कि वह प्यासेको सदा पानी पिलाया करे। सब प्राणी जलसे पैदा होते और जलसे ही जीवन धारण करते हैं, इसलिये जलदान सब दानोंसे बढ़कर माना गया है। सब प्रकारके दान, तप और यज्ञसे जो उत्तम फल प्राप्त होता है, वह सब केवल जलके दानसे मिल जाता है—इसमें तनिक भी संदेहकी बात नहीं है। जो लोग ब्राह्मणोंको सुपक्व अन्न-दान करते हैं, वे मानो प्राण-दान करते हैं; तेज, बल, रूप, सत्त्व, वीर्य, धृति, द्युति, ज्ञान, मेधा और आयु—इन सबका आधार अन्न ही है। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान—ये पाँचों प्राण अन्नके ही आधारपर रहकर देहधारियोंको धारण करते हैं। समस्त विद्यालय और पवित्र बनानेवाले सम्पूर्ण यज्ञ अन्नसे ही चलते हैं। इसलिये अन्न सबसे श्रेष्ठ माना गया है। रुद्र आदि सम्पूर्ण देवता, पितर और अग्नि अन्नसे ही संतुष्ट होते हैं। प्रजापतिने प्रत्येक कल्पमें अन्नसे ही सारी प्रजाकी सृष्टि की है; इसलिये अन्नसे बढ़कर न कोई दान हुआ है और न होगा। धर्म, अर्थ और कामका निर्वाह अन्नसे ही होता है; अतः इस लोक या परलोकमें अन्नसे बढ़कर कोई दान नहीं है। यक्ष, राक्षस, ग्रह, नाग, भूत और दानव भी अन्नसे ही संतुष्ट होते हैं; इसलिये अन्नका महत्त्व सबसे बढ़कर है। दूसरेका अन्न खानेवाला मनुष्य जो भी शुभ कर्म करता है, उसका एक भाग तो करनेवालेको मिलता है और तीन भाग अन्नदाताका हो जाता है, इसलिये ब्राह्मणोंको विशेषरूपसे अन्न देना चाहिये। जो मनुष्य दम्भ और असत्यका परित्याग करके मुझमें परम भक्ति रखकर रसोईमें भेद न करते हुए दरिद्र एवं श्रोत्रिय ब्राह्मणको एक वर्षतक अन्न-दान करता है, वह एक लाख वर्षतक बड़े सम्मानके साथ देवलोकमें निवास करता है तथा वहाँ इच्छानुसार रूप धारण करके यथेष्ट विचरता रहता है; फिर समयानुसार पुण्य क्षीण हो जानेपर जब वह स्वर्गसे नीचे उतरता है तो मनुष्यलोकमें ब्राह्मण होता है। जो छः महीने या वार्षिक श्राद्धपर्यन्त प्रतिदिनकी पहली भिक्षा दरिद्र ब्राह्मणको देता है, उसे एक हजार गो-दानका पुण्यफल प्राप्त होता है। जो एक वर्षतक प्रतिदिनकी अग्रभिक्षाको वस्त्रसे ढककर याचना न करनेवाले ब्राह्मणके यहाँ स्वयं पहुँचा आता है; वह हजारों कपिला गौओंके दानसे मिलनेवाले पुण्यफलको पाकर इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। पाण्डुनन्दन ! देश-कालके अनुसार प्राप्त एवं रास्ता चलकर थके-माँदे आये हुए भूखे और अन्न चाहनेवाले ब्राह्मणको अन्नदान करना चाहिये। जो धनकी आय होते हुए भी याचकको अन्न नहीं देता, वह लोभी मनुष्य कीड़ोंसे भरे हुए कालसूत्र नामक नरकमें गिरता है। लोभ और मोहके कारण विवेकको खो बैठनेवाला वह पापी पुरुष उस घोर नरकमें दस हजार वर्षोंतक वेदनासे कराहता हुआ क्लेश भोगता रहता है। फिर दीर्घकालके पश्चात् उस नरकसे छुटकारा पानेपर वह मर्त्यलोकमें चाण्डालोंके यहाँ जन्म लेता और अत्यन्त दरिद्र होता है।

जो दूरका रास्ता तय करनेके कारण दुर्बल तथा भूख-प्यास और परिश्रमसे थका-माँदा हो, जिसके पैर बड़ी कठिनतासे आगे बढ़ते हों तथा जो बहुत पीड़ित हो रहा हो, ऐसा ब्राह्मण अन्नदाताका पता पूछता हुआ धूलभरे पैरोंसे यदि घरपर आकर अन्नकी याचना करे तो यत्नपूर्वक उसकी पूजा करनी चाहिये; क्योंकि वह अतिथि स्वर्गका सोपान होता है। उसके संतुष्ट होनेपर सम्पूर्ण देवता संतुष्ट हो जाते हैं। अतिथिकी पूजा करनेसे अग्निदेवको जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी हविष्यसे होम करने और फूल तथा चन्दन चढ़ानेसे भी नहीं होती। श्रेष्ठ पुष्करतीर्थमें विधिपूर्वक कपिला गौका दान करनेसे भी उस फलकी प्राप्ति नहीं होती, जो ब्राह्मणको भोजन करानेसे मिलता है। ब्राह्मणके चरणोदकसे भीगी हुई यह पृथ्वी जबतक कायम रहती है, तबतक अन्नदाताके पितर कमलके पत्तेसे जल पीते हैं। देवताके ऊपर चढ़ी हुई पत्र-पुष्प आदि पूजन-सामग्रीको हटाकर उस स्थानको साफ करना, ब्राह्मणके जूठे किये हुए बर्तन और स्थानको माँज-धो देना, थके हुए ब्राह्मणका पैर दबाना, उसके चरण धोना, उसे रहनेके लिये घर, सोनेके लिये शय्या और बैठनेके लिये आसन देना—इनमेंसे एक-एक कार्यका महत्त्व गो-दानसे बढ़कर है। जो मनुष्य ब्राह्मणोंको पैर धोनेके लिये जल, पैरमें लगानेके लिये घी, दीपक, अन्न और रहनेके लिये घर देते हैं, वे कभी यमलोकमें नहीं जाते। राजन् ! ब्राह्मणका आतिथ्य-

सत्कार तथा भक्तिपूर्वक उसकी सेवा करनेसे तैंतीसों देवताओंकी सेवा हो जाती है। पहलेका परिचित मनुष्य यदि घरपर आवे तो उसे अभ्यागत कहते हैं और अपरिचित पुरुष अतिथि कहलाता है। द्विजोंको इन दोनोंकी ही पूजा करनी चाहिये। यह पञ्चम वेद—पुराणकी श्रुति है। जो अतिथिके चरणोंमें तेल मलता, उसे भोजन कराता और पानी पिलाता है, उसके द्वारा मेरी भी पूजा हो जाती है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। वह मनुष्य तुरंत सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है और मेरी कृपासे चन्द्रमाके समान उज्ज्वल विमान-पर आरूढ़ होकर मेरे परम धामको पधारता है। थका हुआ



अभ्यागत जब घरपर आता है तो उसके पीछे-पीछे समस्त देवता, पितर और अग्नि भी पदार्पण करते हैं। यदि उस अभ्यागत द्विजकी पूजा हुई तो उसके साथ उन देवता आदिकी भी पूजा हो जाती है और उसके निराश लौटनेपर वे देवता, पितर आदि भं। हताश होकर लौट जाते हैं। जिसके घरसे अतिथिको निराश होकर लौटना पड़ता है, उसके पितर पंद्रह वर्षोंतक भोजन नहीं करते। वह लोभी मनुष्य देवताओं, पितरों और अग्नियोंसे परित्यक्त होकर पंद्रह वर्षोंतक रौरव नरकमें पड़ा रहता है और वहाँसे छूटनेपर संसारमें जन्म लेकर उच्छिष्टभोगी होता है। जो बलिवैश्वदेव कर्मके समय घरपर आये हुए अतिथिकी पूजा नहीं करता, वह तुरंत चाण्डाल हो जाता हैं। जो देश-कालके अनुसार घरपर आये हुए ब्राह्मणको वहाँसे बाहर कर देता है, वह तत्काल पतित हो जाता है और मरनेके बाद एक करोड़ वर्षोंतक घोर रौरव नरकमें पकाया जाता है; फिर समयानुसार जब उससे छुटकारा पाता है तो इस संसारमें बारह जन्मोंतक भूख-प्यासका कष्ट भोगनेवाला कुत्ता होता है। यदि देश-कालके अनुसार अन्नकी इच्छासे चाण्डाल भी अतिथिके रूपमें आ जाय तो गृहस्थ पुरुषको सदा उसका सत्कार करना चाहिये। जो लोभ और मोहवश विचारशून्य होकर उसका सत्कार किये बिना ही भोजन कर लेता है, वह दस जन्मोंतक चाण्डाल होता है। जो अतिथिको निराश लौटाकर स्वयं भोजन करते समय अत्यन्त हर्षका अनुभव करता है, उसे इस बातका पता नहीं रहता कि मैं विष्ठाके कुएँमें पड़नेवाला हूँ। जो अतिथिका सत्कार नहीं करता, उसका ऊनी वस्त्र ओढ़ना, अपने लिये रसोई बनवाना और भोजन करना—सब कुछ व्यर्थ है। जो प्रतिदिन साङ्गोपाङ्ग वेदोंका स्वाध्याय करता है किंतु अतिथिकी पूजा नहीं करता, उस द्विजका जीवन व्यर्थ है। जो लोग पाक-यज्ञ, पञ्चमहायज्ञ तथा सोमयाग आदिके द्वारा यजन करते हैं परंतु घरपर आये हुए अतिथिका सत्कार नहीं करते, वे यशकी इच्छासे जो कुछ दान या यज्ञ करते हैं वह सब व्यर्थ हो जाता है। अतिथिकी मारी गयी आशा मनुष्यके समस्त शुभकर्मोंका नाश कर देती है। इसलिये श्रद्धालु होकर देश, काल, पात्र और अपनी शक्तिका विचार करके थोड़ा-बहुत अतिथि-सत्कार अवश्य करना चाहिये। जब अतिथि अपने द्वारपर आवे तो बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह प्रसन्नचित्त होकर हँसते हुए मुखसे अतिथिका स्वागत करे तथा बैठनेको आसन और चरण धोनेके लिये जल देकर अन्न-पान आदिके द्वारा उसकी पूजा करे। अपना हितैषी, प्रेमपात्र, द्वेषी, मूर्ख अथवा पण्डित—जो कोई भी बलिवैश्वदेवके बाद आ जाय, वह स्वर्गतक पहुँचानेवाला अतिथि है। जो यज्ञका फल पाना चाहता हो, वह भूख-प्यास और परिश्रमसे दुःखी तथा देश-कालके अनुसार प्राप्त हुए अतिथिको सत्कारपूर्वक अन्न प्रदान करे। यज्ञ और श्राद्धमें अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषको विधिवत् भोजन कराना चाहिये। अन्न मनुष्योंका प्राण है, अन्न देनेवाला प्राणदाता होता है; इसलिये कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको अन्न-दानकी विशेष चेष्टा रखनी चाहिये। जो मनुष्य धर्मपूर्वक धनका उपार्जन करके भोजनमें भेद न रखते हुए एक वर्षतक सबका अतिथि-सत्कार करता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

—★—

भूमि-दान, तिल-दान और उत्तम ब्राह्मणकी महिमा

भगवान्‌ने कहा—अब मैं सबसे उत्तम भूमि-दानका वर्णन करता हूँ। भूमि-दानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है और भूमि छीन लेनेसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। दूसरे दानोंके पुण्य समय पाकर क्षीण हो जाते हैं; किंतु भूमि-दानके पुण्यका कभी भी क्षय नहीं होता। जो लोग प्रचुर दक्षिणासे युक्त अग्निष्टोम आदि यज्ञोंके द्वारा देवताओंका यजन करते हैं, वे भी भूमि-दानके समान उत्तम फलको नहीं पाते। जो मनुष्य श्रोत्रिय ब्राह्मणको भूमि दान करके फिर उसे अपने अधिकारमें नहीं लेता, उसके दानकी चारों ओर चर्चा होती है और जबतक इस संसारकी स्थिति बनी रहती है, तबतक वह स्वर्गलोकमें रहकर अपने पुण्यका फल भोगता है। जो मनुष्य श्रोत्रिय ब्राह्मणको खेतीसे भरी हुई भूमि दान करता है, उसके पितर महाप्रलयकालतक तृप्त रहते हैं। ब्राह्मणको भूमि-दान करनेसे सब देवता, सूर्य, शंकर और मैं—ये सभी प्रसन्न होते हैं। भूमि-दानके पुण्यसे पवित्रचित्त हुआ दाता निःसंदेह मेरे परमधाममें निवास करता है। मनुष्य जीविकाके अभावमें जो कुछ पाप करता है, उससे गोकर्णमात्र भूमि दान करनेपर भी छुटकारा पा जाता है। एक महीनेतक उपवास, कृच्छ्र और चान्द्रायण-व्रतका अनुष्ठान तथा सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो पुण्य होता है, वह सारा पुण्य गोकर्णमात्र भूमि दान करनेसे प्राप्त हो जाता है।

युधिष्ठिरने कहा—'देवेश्वर! आपको नमस्कार है। मुझे गोकर्णमात्र भूमिका ठीक-ठीक माप बतलानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् बोले—राजन्! पूरबसे पश्चिम तथा उत्तरसे दक्खिन चारों ओर तीस-तीस दण्ड नापनेसे जितनी भूमि होती है, उसको गोकर्णमात्र भूमि कहते हैं। जितनी भूमिमें खुली हुई सौ गौएँ बैलों और बछड़ोंके साथ सुखपूर्वक रह सकें, उतनी भूमिको गोकर्ण कहते हैं। भूमिका दान करनेवाले पुरुषके पास यमराजके दूत नहीं फटकने पाते; मृत्युके दण्ड, दारुण कुम्भीपाक, भयानक वरुणपाश, रौरव आदि नरक, वैतरणी नदी और कठोर यम-यातनाएँ भी उसे नहीं सतातीं। चित्रगुप्त, कलि, काल, कृतान्त, मृत्यु और साक्षात् भगवान् यम भी भूमिदान करनेवालेकी पूजा करते हैं। रुद्र, प्रजापति, इन्द्र, देवता, ऋषि और स्वयं मैं—ये सभी प्रसन्न होकर भूमिदाताका पूजन करते हैं। जिसके कुटुम्बके लोग जीविकाके अभावसे दुर्बल हो गये हों, जिसकी गौएँ और घोड़े भी दुबले-पतले दिखायी देते हों तथा जो सदा अतिथि-सत्कार करनेवाला हो, ऐसे ब्राह्मणको भूमि-दान देना चाहिये; क्योंकि वह परलोकके लिये खजाना है। जिसके कुटुम्बीजन कष्ट पा रहे हों—ऐसे श्रोत्रिय, अग्निहोत्री, व्रतधारी एवं दरिद्र ब्राह्मणको भूमि देनी चाहिये। जैसे धाय अपना दूध पिलाकर पुत्रका पालन-पोषण करती है, उसी प्रकार दानमें दी हुई भूमि दातापर अनुग्रह करती है। जैसे गौ अपना दूध पिलाकर बछड़ेका पालन करती है, वैसे ही सर्वगुणसम्पन्न भूमि अपने दाताका कल्याण करती है। जिस प्रकार जलसे सींचे हुए बीज अङ्कुरित होते हैं, वैसे ही भूमि-दाताके मनोरथ प्रतिदिन पूर्ण होते रहते हैं। जैसे सूर्यका तेज समस्त अन्धकारको दूर कर देता है, उसी प्रकार भूमि-दान मनुष्यके सम्पूर्ण पापोंका नाश कर डालता है। जो मनुष्य भूमिका दान करता है, वह दस पीढ़ी पहलेतकके पूर्वजोंका और दस पीढ़ी बादतक होनेवाली संतानोंका उद्धार कर देता है; किंतु जो किसीकी भूमि छीन लेता है, वह दस पूर्वजों और दस वंशधरोंको भी नरकमें डुबो देता है। जो भूमि-दानकी प्रतिज्ञा करके नहीं देता अथवा देकर फिर छीन लेता है, उसे वरुणके पाशसे बाँधकर पीब और रक्तसे भरे हुए नरक-कुण्डमें डाला जाता है। जो अपने या दूसरेकी दी हुई भूमिका अपहरण करता है, उसके लिये नरकसे उद्धार पानेका कोई उपाय नहीं है। जो ब्राह्मणका खेत छीन लेता है, वह बारह पीढ़ीतकके पूर्वजोंको नरकमें डाल देता है और स्वयं कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है तथा उससे कभी छुटकारा नहीं पाता। जो ब्राह्मणको भूमि-दान देकर फिर उसीसे जीविका चलाता है, उसे एक लाख गो-हत्याका फल मिलता है। वह पापात्मा नीचे सिर करके कुम्भीपाक नरकमें लटका दिया जाता है और एक हजार दिव्य वर्षोंतक उसमें पकता रहता है। तत्पश्चात् उस नरकसे छूटनेपर उसे सौ जन्मोंतक इस लोकमें कुत्ता होना पड़ता है। जिसमें हलसे जोतकर बीज बो दिये गये हों तथा जहाँ हरी-भरी खेती लहरा रही हो, ऐसी भूमि दरिद्र ब्राह्मणको देनी चाहिये। अथवा जहाँ जलका सुभीता हो, वह भूमि दानमें देनी चाहिये। राजन्! इस प्रकार प्रसन्नचित्त होकर मनुष्य यदि पृथ्वीका दान करे तो वह सम्पूर्ण मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त करता है। बहुत-से राजाओंने इस पृथ्वीको दानमें दिया है और बहुत-से अभी दे रहे हैं। यह भूमि जब जिसके अधिकारमें रहती है, उस समय वही उसे दानमें देता और उसके फलका भागी होता है।

जिसकी जीविका क्षीण और गौएँ दुर्बल हो गयी हैं, ऐसे दरिद्र ब्राह्मणको जो चाँदी दान करता है, वह अपने इच्छानुसार स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। फिर पुण्यका क्षय होनेपर वहाँसे उतरकर इस लोकमें महापराक्रमी राजा होता है। जो श्रोत्रिय ब्राह्मणको—विशेषतः दरिद्रको तिलका पर्वत दान करता है, वह दस हजार वृषोत्सर्गके पुण्यको प्राप्त करके तत्काल निष्पाप हो जाता है। तिलका दान करनेवाला मनुष्य महान् यश और इच्छानुसार रूप धारण करनेकी शक्ति पाकर सात हजार वर्षोंतक पितृलोकमें सुख और आनन्द भोगता है। जो दरिद्र एवं श्रोत्रिय ब्राह्मणको तिलकी गौ प्रदान करता है, उसे एक हजार गो-दानका फल मिलता है। जो जितने कुड़वों[1]में तिल भरकर उससे बनायी हुई तिलकी गौका दान करता है, वह उतने ही करोड़ वर्षोंतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तिल, गौ, सोना, अन्न और पृथ्वी—इतने पदार्थ यदि ब्राह्मणोंको दिये जायँ तो ये दाताका उद्धार कर देते हैं। सदाचारसम्पन्न, अग्निहोत्री तथा अलोलुप ब्राह्मणकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये; क्योंकि वह परलोकमें काम देनेवाला खजाना है। जो ब्राह्मण वेदका विद्वान्, अग्निहोत्रपरायण, जितेन्द्रिय, शूद्रके अन्नसे दूर रहनेवाला और दरिद्र हो, उसकी यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। जो प्रतिदिन तर्पण करनेवाला, सदा यज्ञोपवीत धारण किये रहनेवाला, नित्यप्रति स्वाध्यायपरायण, वृषलका अन्न न खानेवाला, ऋतुकालमें ही अपनी स्त्रीसे समागम करनेवाला और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करनेवाला हो, वह ब्राह्मण दूसरोंको तारनेमें समर्थ होता है। जो मेरा भक्त, मुझमें अनुराग रखनेवाला, मेरे भजनमें परायण और मुझे ही कर्मफलोंको अर्पण करनेवाला है, वह ब्राह्मण अवश्य संसार-समुद्रसे तार सकता है।



विविध प्रकारके दानोंकी महिमा

युधिष्ठिरने कहा—माधव ! आपके मुँहसे इस धर्ममय अमृतका श्रवण करते हुए मुझे तृप्ति नहीं होती। अब दूसरे प्रकारके दानोंका, जिन्हें अभीतक आपने नहीं बतलाया है, वर्णन कीजिये और क्रमशः उनका फल भी बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान्‌ने कहा—राजन् ! गाड़ी खींचनेवाला एक बैल भी दस गौओंके समान है। जो मनुष्य श्रोत्रिय, सदाचारी एवं दरिद्र ब्राह्मणको भारी बोझ ढोनेमें समर्थ एक जोड़ा बैल दान करता है, उसको एक हजार गौओंके दानका फल मिलता है। पाण्डुनन्दन ! दरिद्रको ही दान देना चाहिये, धनवान्‌को नहीं। वर्षाका फल तालाबमें ही देखा जाता है, समुद्रमें नहीं। जो पुरुष वेदके जाननेवाले धनहीन ब्राह्मणको दीपकके प्रकाशसे युक्त, शय्या और आसनोंसे विभूषित, भाँति-भाँतिके बर्तनों और अन्य सामग्रियोंसे युक्त, धन-धान्यसे अलंकृत दासी, गौ और भूमिसे सम्पन्न तथा सब प्रकारके साधनोंसे परिपूर्ण गृह प्रदान करता है, उसको देवता, पितर, अग्नि और ऋषिगण प्रसन्न होकर सूर्यके समान तेजस्वी विमान देते हैं। तथा उसीमें बैठकर वह अनुपम शोभासे सम्पन्न हो परम उत्तम ब्रह्मलोकमें पदार्पण करता है और वहाँ महाप्रलयपर्यन्त बड़े आनन्दसे समय व्यतीत करता है। जो मनुष्य भक्तिके साथ वस्त्र, माला और चन्दन चढ़ाकर ब्राह्मणकी पूजा करता तथा उसे बिछौनोंसहित शय्या दान करता है, वह वेदमन्त्रोंके बलसे चलनेवाले सुन्दर विमानपर आरूढ़ हो सप्तर्षियोंके लोकमें जाता और वहाँ ब्रह्मवादी महर्षियोंसे पूजित होता है। उस लोकमें तीस चतुर्युगीतक देवताओंकी भाँति क्रीडा करके वह मनुष्यलोकमें वेदवेत्ता ब्राह्मण होता है। जो रास्तेके थके-माँदे दुर्बल ब्राह्मणको विश्राम देता है, उसका एक वर्षका किया हुआ पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। तदनन्तर जब वह भक्तिपूर्वक उस अतिथिके दोनों चरणोंको पखारता है, उस समय उसके दस वर्षके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं तथा यदि वह उसके दोनों पैरोंमें घी या तेल मलकर उसकी पूजा करता है तो उसके बारह वर्षोंके पाप तुरंत नष्ट हो जाते हैं। जो घरपर आये हुए ब्राह्मणका स्वागत करके, उसे आसन और अभ्युत्थान देकर पूजन करता है, वह देवताओंका प्रिय होता है। अतिथिके स्वागतसे अग्नि, उसे आसन देनेसे इन्द्र और अभ्युत्थान देने (अगवानी करने) से अतिथियोंपर प्रेम रखनेवाले पितर प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार अग्नि, इन्द्र और पितरोंके प्रसन्न होनेपर मनुष्यका एक वर्षका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य ब्राह्मणको सवारी दान करता है, वह रत्नोंसे चित्रित विमानपर बैठकर स्वर्गलोकको जाता है। जो पुरुष पत्ते, फूल और फलोंसे भरे हुए वृक्षको वस्त्रों और आभूषणोंसे विभूषित करके चन्दन और फूलोंसे उसकी पूजा

१. लोहे या लकड़ीका बना हुआ अन्न नापनेका एक पुराना मान, जो चार अंगुल चौड़ा और उतना ही गहरा होता था। —हिन्दीशब्दसागर

करता तथा वेदवेत्ता ब्राह्मणको भोजन कराकर दक्षिणाके साथ वह वृक्ष दान कर देता है, वह सुवर्णजटित सुन्दर विमानपर बैठकर जय-जयकारके शब्द सुनता हुआ इन्द्रलोकमें जाता है और वहाँ उसके मनमें जो-जो इच्छाएँ होती हैं, उन सबको कल्पवृक्ष पूर्ण करता है। जो पुरुष भक्तिपूर्वक मन्दिर बनवाकर उसमें मेरी प्रतिमाकी स्थापना करता और दूसरेसे उसकी पूजा करवाता या स्वयं भक्तिके साथ पूजा करता है, वह एक हजार अश्वमेध-यज्ञका फल पाकर मेरे परमधामको पधारता तथा वहाँसे कभी लौटकर इस लोकमें नहीं आता। जो मनुष्य देवमन्दिरमें, ब्राह्मणके घरमें, गोशालामें और चौराहेपर दीपक जलाता है, वह सुवर्णमय विमानपर बैठकर सम्पूर्ण दिशाओंको देदीप्यमान करता हुआ सूर्यलोकको जाता है; उस समय श्रेष्ठ देवता उसकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। वह महातपस्वी पुरुष करोड़ों वर्षोंतक सूर्यलोकमें यथेष्ट विहार करनेके पश्चात् मर्त्यलोकमें आकर वेद-वेदाङ्गोंमें पारंगत ब्राह्मण होता है। जो मनुष्य ब्राह्मणको करका (कमण्डलु), कर्णिका (गिलास) अथवा महान् जलपात्र दान करता है, वह सदा तृप्त रहता है; उसे सब प्रकारके सुगन्धित पदार्थ सुलभ होते हैं तथा उसकी इन्द्रियाँ और मन सदा प्रसन्न रहते हैं। इतना ही नहीं, वह हंस और सारसोंसे जुते हुए सुन्दर विमानपर बैठकर दिव्य गन्धर्वोंसे सेवित वरुणलोकमें जाता है। जो गर्मीके तीन महीनोंमें जीवोंके जीवनभूत जलका दान करता है, उसे एक करोड़ कपिला-दानका पुण्यफल प्राप्त होता है तथा वह पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान विमानपर आरूढ़ होकर इन्द्रभवनकी यात्रा करता है। वहाँ देवता और गन्धर्वोंसे सेवित होकर तीस करोड़ युगोंतक यथेष्ट सुख भोगनेके पश्चात् इस लोकमें आकर चारों वेदोंका ज्ञाता ब्राह्मण होता है। सिरमें लगानेके लिये तेल दान करनेसे मनुष्य तेजस्वी, दर्शनीय, सुन्दर, रूपवान्, शूरवीर और पण्डित होता है। वस्त्र-दान करनेवाला पुरुष भी तेजस्वी, दर्शनीय, सुन्दर, श्रीसम्पन्न और मनोरम होता है। जो पुरुष जूता और छाता दान करता है, वह महान् तेजसे सम्पन्न हो सोनेके बने हुए सुन्दर रथपर बैठकर इन्द्रलोकमें जाता है। जो काठकी खड़ाऊँ दान करते हैं, वे काष्ठनिर्मित विमानोंपर आरूढ़ होकर श्रेष्ठ देवताओंसे सेवित हो धर्मराजके रमणीय नगरमें प्रवेश करते हैं। दाँतनका दान करनेसे मनुष्य मधुरभाषी होता है, उसके मुँहसे सुगन्ध निकलती रहती है तथा वह लक्ष्मीवान् एवं बुद्धि और सौभाग्यसे सम्पन्न होता है। जो पुरुष वैशाखके महीनेमें विशाखा नक्षत्रके दिन अत्यन्त भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंकी विधिवत् पूजा करके उन्हें तिल और गुड़के लड्डू दान करते हैं, उन्हें विधिवत् गो-दान करनेका फल मिलता है तथा वे मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होते हैं।

जो मनुष्य अतिथि और कुटुम्बीजनोंको भोजन करा लेनेके पश्चात् स्वयं भोजन करता, सदा व्रतका पालन करता, सत्य बोलता, क्रोधसे दूर रहता तथा स्नान आदिके द्वारा सर्वदा पवित्र रहता है, वह दिव्य विमानके द्वारा इन्द्रलोककी यात्रा करता है। जो एक वर्षतक प्रतिदिन एक वक्त भोजन करता, ब्रह्मचारी रहता, क्रोधको काबूमें रखता तथा सत्य और शौचका पालन करता है, वह भी दिव्य विमानमें बैठकर इन्द्रलोकमें पदार्पण करता है। जो एक वर्षतक चौथे वक्त अर्थात् प्रति दूसरे दिन भोजन करता, ब्रह्मचर्यका पालन करता और इन्द्रियोंको काबूमें रखता है, वह विचित्र पंखवाले मोरोंसे जुते हुए अद्‌भुत ध्वजासे शोभायमान दिव्य विमानपर आरूढ़ हो महेन्द्रलोकमें गमन करता है और वहाँ बारह करोड़ वर्षोंतक आनन्दका अनुभव करता है। जो मुझमें चित्त लगाकर एक महीनेतक उपवास करता तथा प्रतिदिन स्नान करते हुए इन्द्रिय, क्रोध और बुद्धिको वशमें रखता है, इस प्रकार नियम समाप्त होनेपर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें प्रसन्नचित्तसे दक्षिणा देता है, वह महान् तेजस्वी होकर सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मलोकमें जाता है और वहाँ दिव्य ऋषियोंसे सेवित होकर सौ करोड़ वर्षोंतक इच्छानुसार आनन्दका उपभोग करता है।

जो मनुष्य पवित्र और मेरी सेवामें परायण होकर मेरे श्रीविग्रहमें मन लगाता (मेरा ध्यान करता) तथा चतुर्दशीके दिन रुद्र अथवा दक्षिणामूर्तिमें चित्त एकाग्र करता है, वह महान् तपस्वी पुरुष सिद्धों, ब्रह्मर्षियों और देवताओंसे पूजित होकर गन्धर्वों और भूतोंका गान सुनता हुआ मुझमें या शंकरमें प्रवेश कर जाता है तथा उसका इस संसारमें फिर जन्म नहीं होता। जो मनुष्य गौ, स्त्री, गुरु और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये प्राण दे डालते हैं, वे इन्द्रलोकमें जाते और वहाँ इच्छानुसार विचरनेवाले सुवर्णके बने हुए विमानपर रहकर एक मन्वन्तरतक दिव्य आनन्दका अनुभव करते हैं। देनेकी प्रतिज्ञा की हुई वस्तुको न देनेसे अथवा दी हुई वस्तुको छीन लेनेसे जन्मभरका किया हुआ सारा दान-पुण्य नष्ट हो जाता है। जो दान श्रोत्रिय ब्राह्मणको नहीं दिया जाता, उसका कुछ फल नहीं मिलता तथा जहाँ श्रोत्रिय ब्राह्मण भोजन नहीं करते, वहाँ देवता भी आहार नहीं ग्रहण करते। वेदवेत्ता ब्राह्मणोंसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है तथा उन्हें भोजन करानेसे बढ़कर परलोकके लिये दूसरी कोई निधि नहीं है।

—★—

पञ्चमहायज्ञ, विधिवत् स्नान और उसके अङ्गभूत कर्म, भगवान्के प्रिय पुष्प तथा भगवद्भक्तोंका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! द्विजातियोंको पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान किस प्रकार करना चाहिये? उन यज्ञोंके नाम भी बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान्ने कहा—युधिष्ठिर! जिनके अनुष्ठानसे गृहस्थ पुरुषोंको ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है, उन पञ्चमहायज्ञोंका वर्णन करता हूँ; सुनो। ऋभुयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ और पितृयज्ञ—ये पञ्चयज्ञ कहलाते हैं। इनमें 'ऋभुयज्ञ' तर्पणको कहते हैं, 'ब्रह्मयज्ञ' स्वाध्यायका नाम है, समस्त प्राणियोंके लिये अन्नकी बलि देना 'भूतयज्ञ' है। अतिथियोंकी पूजाको 'मनुष्ययज्ञ' कहते हैं और पितरोंके उद्देश्यसे जो श्राद्ध आदि कर्म किये जाते हैं, उनकी 'पितृयज्ञ' संज्ञा है। हुत, अहुत, प्रहुत, प्राशित और बलिदान—ये पाकयज्ञ कहलाते हैं। वैश्वदेव आदि कर्मोंमें जो देवताओंके निमित्त हवन किया जाता है, उसे विद्वान् पुरुष 'हुत' कहते हैं। दान दी हुई वस्तुको 'अहुत' कहते हैं। ब्राह्मणोंको भोजन करानेका नाम 'प्रहुत' है। प्राणाग्निहोत्रकी विधिसे जो प्राणोंको पाँच ग्रास अर्पण किये जाते हैं, उनकी 'प्राशित' संज्ञा है तथा गौ आदि प्राणियोंकी तृप्तिके लिये जो अन्नकी बलि दी जाती है, उसीका नाम बलिदान है। इन पाँच कर्मोंको पाकयज्ञ कहते हैं। कितने ही विद्वान् इन पाकयज्ञोंको ही पञ्चमहायज्ञ कहते हैं; किंतु दूसरे लोग, जो महायज्ञके स्वरूपको जाननेवाले हैं, ब्रह्मयज्ञ आदिको ही पञ्चमहायज्ञ मानते हैं। ये सभी सब प्रकारसे महायज्ञ बतलाये गये हैं। घरपर आये हुए भूखे ब्राह्मणोंको यथाशक्ति निराश नहीं लौटाना चाहिये। जो मनुष्य प्रतिदिन इन पाँच यज्ञोंका अनुष्ठान किये बिना ही भोजन कर लेते हैं, वे केवल मल भोजन करते हैं। इसलिये विद्वान् द्विजको चाहिये कि वह प्रतिदिन स्नान करके इन यज्ञोंका अनुष्ठान करे। इन्हें किये बिना भोजन करनेवाला द्विज प्रायश्चित्तका भागी होता है।

युधिष्ठिरने कहा—देवदेवेश्वर! अपने इस भक्तको स्नान करनेकी विधि बताइये।

भगवान् बोले—पाण्डुनन्दन! जिस विधिके अनुसार स्नान करनेसे द्विजगण समस्त पापोंसे छूट जाते हैं, उस परम पवित्र पापनाशक विधिका पूर्णरूपसे श्रवण करो। मिट्टी, गोबर, तिल, कुशा और फूल आदि शास्त्रोक्त सामग्री लेकर जलके समीप जाय। श्रेष्ठ द्विजको उचित है कि वह नदीमें स्नान करनेके पश्चात् और किसी जलमें न नहाय। अधिक जलवाला जलाशय उपलब्ध हो तो थोड़े-से जलमें कभी स्नान न करे। जलके निकट जाकर शुद्ध और साफ जगहपर मिट्टी और गोबर आदि सामग्री रख दे और पानीसे बाहर ही अपने दोनों पैर धोकर दो बार आचमन करे। फिर जलाशयकी प्रदक्षिणा करके उसके जलको नमस्कार करे। जलाशयके जलपर अपने हाथ-पैर न पटके; क्योंकि जल सम्पूर्ण देवताओंका तथा मेरा भी स्वरूप है; अतः उसपर प्रहार नहीं करना चाहिये। जलाशयके जलसे उसके किनारेकी भूमिको धोकर साफ करे, फिर पानीमें प्रवेश करके एक बार सिर्फ डुबकी लगावे, अङ्गोंकी मैल न छुड़ाने लगे। इसके बाद पुनः आचमन करे—हाथका आकार गायके कानकी तरह बनाकर उससे तीन बार जल पीये। फिर अपने पैरोंपर जल छिड़ककर दो बार मुखमें जलका स्पर्श करे। तदनन्तर गलेके ऊपरी भागमें स्थित आँख, कान और नाक आदि समस्त इन्द्रियोंका एक-एक बार जलसे स्पर्श करे। फिर दोनों भुजाओंका स्पर्श करनेके पश्चात् हृदय और नाभिका भी स्पर्श करे। इस प्रकार प्रत्येक अङ्गमें जलका स्पर्श कराकर फिर मस्तकपर जल छिड़के। इसके बाद 'आपः पुनन्तु' मन्त्र पढ़कर फिर आचमन करे अथवा आचमनके समय ओङ्कार और व्याहृतियोंसहित 'सदसस्पतिम्' इस ऋचाका पाठ करे। आचमनके बाद मिट्टी लेकर उसके तीन भाग करे और 'इदं विष्णुः' इस मन्त्रको पढ़कर उसे क्रमशः ऊपरके, मध्यभागके तथा नीचेके अङ्गोंमें लगावे। तत्पश्चात् वारुण सूक्तोंसे जलको नमस्कार करके स्नान करे। यदि नदी हो तो जिस ओरसे उसकी धारा आती हो, उसी ओर मुँह करके तथा दूसरे जलाशयोंमें सूर्यकी ओर मुँह करके स्नान करना चाहिये। ओङ्कारका उच्चारण करते हुए धीरेसे गोता लगावे, जलमें हलचल न पैदा करे। इसके बाद गोबरको हाथमें जलसे गीला करके उसके तीन भाग करे और उसे भी पूर्ववत् अपने शरीरके ऊर्ध्वभाग, मध्यभाग तथा अधोभागमें लगावे। उस समय प्रणव और व्याहृतियोंसहित गायत्रीमन्त्रकी पुनरावृत्ति करता रहे। फिर मुझमें चित्त लगाकर आचमन करनेके पश्चात् 'आपो हिष्ठा मयो' इत्यादि तीन ऋचाओंसे, 'तरत्समन्दीभिः' इत्यादि चार ऋचाओंसे और गोसूक्त, अश्वसूक्त, वैष्णवसूक्त, वारुणसूक्त, सावित्रसूक्त, ऐन्द्रसूक्त, वामदेव्यसूक्त तथा मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य साममन्त्रोंके द्वारा शुद्ध जलसे अपने ऊपर

मार्जन करे। फिर जलके भीतर स्थित होकर अघमर्षण-सूक्तका जप करे अथवा प्रणव एवं व्याहृतियोंसहित गायत्रीमन्त्र जपे या जबतक साँस रुकी रहे तबतक मेरा स्मरण करते हुए केवल प्रणवका ही जप करता रहे।

इस प्रकार स्नान करके जलाशयके किनारे आकर धोये हुए शुद्धवस्त्र—धोती और चादर धारण करे। चादरको काँखमें रस्सीकी भाँति लपेटकर बाँधे नहीं। जो वस्त्रको काँखमें रस्सीकी भाँति लपेट करके वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान करता है उसके कर्मको राक्षस, दानव और दैत्य बड़े हर्षमें भरकर नष्ट कर डालते हैं; इसलिये काँखको वस्त्रसे बाँधना नहीं चाहिये और इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिये। वस्त्र-धारणके पश्चात् धीरे-धीरे हाथ और पैरोंको मिट्टीसे मलकर धो डाले, फिर गायत्री-मन्त्र पढ़कर आचमन करे और पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके एकाग्रचित्तसे वेदोंका स्वाध्याय करे। जलमें खड़ा हुआ द्विज जलमें ही आचमन करके शुद्ध हो जाता है और स्थलमें स्थित पुरुष स्थलमें ही आचमनके द्वारा शुद्ध होता है, अतः जल और स्थलमेंसे कहीं भी स्थित होनेवाले द्विजको आत्मशुद्धिके लिये आचमन करना चाहिये। इसके बाद संध्योपासन करनेके लिये हाथोंमें कुश लेकर पूर्वाभिमुख हो कुशासनपर बैठे और मुझमें मन लगाकर एकाग्रभावसे प्राणायाम करे। फिर एकाग्रचित्त होकर एक हजार या एक सौ गायत्री-मन्त्रका जप करे। मन्देह नामक राक्षसोंका नाश करनेके उद्देश्यसे गायत्री-मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित जल लेकर सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। उसके बाद आचमन करके 'उद्वर्गोऽसि' इस मन्त्रसे प्रायश्चित्तके लिये जल छोड़े। फिर अञ्जलिमें सुगन्धित पुष्प और जल लेकर सूर्यको अर्घ्य दे और आकाशमुद्राका प्रदर्शन करे। तदनन्तर, सूर्यके एकाक्षर मन्त्रका बारह बार जप करे और उनके षडक्षर आदि मन्त्रोंकी छः बार पुनरावृत्ति करे। आकाशमुद्राको दाहिनी ओरसे घुमाकर अपने मुखमें विलीन करे। इसके बाद दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर एकाग्रचित्तसे सूर्यकी ओर देखते हुए उनके मण्डलमें स्थित मुझ चार भुजाधारी तेजोमूर्ति नारायणका एकाग्रचित्तसे ध्यान करे। उस समय 'उदुत्यम्' 'चित्रं देवानाम्' 'तच्चक्षुः'—इन मन्त्रोंका, गायत्री-मन्त्रका तथा मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले सूक्तोंका जप करके मेरे साममन्त्रों और पुरुषसूक्तका भी पाठ करे। तत्पश्चात् 'हंसः शुचिषत्' इस मन्त्रको पढ़कर सूर्यकी ओर देखे और प्रदक्षिणापूर्वक उन्हें नमस्कार करे।

इस प्रकार संध्योपासन समाप्त होनेपर क्रमशः ब्रह्माजीका, मेरा, शंकरजीका, प्रजापतिका, देवताओं और देवर्षियोंका, अङ्गोंसहित वेदों, इतिहासों, यज्ञों और समस्त पुराणोंका, अप्सराओंका, ऋतु-कला-काष्ठारूप संवत्सर तथा भूत-समुदायोंका, भूतोंका, नदियों और समुद्रोंका तथा पर्वतों, उनपर रहनेवाले देवताओं, ओषधियों और वनस्पतियोंका जलसे तर्पण करे। तर्पणके समय जनेऊको बायें कंधेपर रखे तथा दायें और बायें हाथकी अञ्जलिसे जल देते हुए उपर्युक्त देवताओंमेंसे प्रत्येकका नाम लेकर 'तृप्यताम्' पदका उच्चारण करे (यदि दो या अधिक देवताओंको एक साथ जल दिया जाय तो क्रमशः द्विवचन और बहुवचन—'तृप्येताम्' और 'तृप्यन्ताम्' इन पदोंका उच्चारण करना चाहिये)। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि मन्त्रद्रष्टा मरीचि आदि तथा नारद आदि ऋषियोंको निवीती होकर अर्थात् जनेऊको गलेमें मालाकी भाँति पहन करके एकाग्रचित्तसे तर्पण करे। इसके बाद जनेऊको दाहिने कंधेपर करके आगे बताये जानेवाले पितृसम्बन्धी देवताओं एवं पितरोंका तर्पण करे। कव्यवाट् अग्नि, सोम, वैवस्वत, अर्यमा, अग्निष्वात्त और सोमपा—ये पितृसम्बन्धी देवता हैं। इनका तिलसहित जलसे कुशाओंपर तर्पण करे और 'तृप्यताम्' पदका उच्चारण करे। तदनन्तर पितरोंका तर्पण आरम्भ करे; उनका क्रम इस प्रकार है—पिता, पितामह और प्रपितामह तथा माता, पितामही और प्रपितामही। इनके सिवा गुरु, आचार्य, पितृष्वसा (बुआ), मातृष्वसा (मौसी), मातामही, उपाध्याय, मित्र, बन्धु, शिष्य, ऋत्विज् और जाति-भाई आदिमेंसे भी जो मर गये हों, उनपर दया करके ईर्ष्या-द्वेष त्यागकर उनका भी तर्पण करना चाहिये।

तर्पणके पश्चात् आचमन करके स्नानके समय पहने हुए वस्त्रको निचोड़ डाले। उस वस्त्रका जल भी कुलके मरे हुए संतानहीन पुरुषोंका भाग है। वह उनके स्नान करने और पीनेके काम आता है। अतः उस जलसे उनका तर्पण करना चाहिये, ऐसा विद्वानोंका कथन है। पूर्वोक्त देवताओं तथा पितरोंका तर्पण किये बिना स्नानका वस्त्र नहीं धोना चाहिये। जो मोहवश तर्पणके पहले ही धौत वस्त्रको धो लेता है, वह ऋषियों और देवताओंको कष्ट पहुँचाता है। उस अवस्थामें उसके पितर उसे शाप देकर निराश लौट जाते हैं, इसलिये तर्पणके पश्चात् आचमन करके ही स्नान-वस्त्र निचोड़ना चाहिये। तर्पणकी क्रिया पूर्ण होनेपर दोनों पैरोंमें मिट्टी लगाकर उन्हें धो डाले और फिर आचमन करके पवित्र हो कुशासनपर बैठ जाय और हाथोंमें कुशा लेकर स्वाध्याय आरम्भ करे। पहले वेदका पाठ करके फिर उसके अन्य अङ्गोंका अध्ययन करे। अपनी शक्तिके अनुसार प्रतिदिन जो अध्ययन किया जाता है, उसको स्वाध्याय कहते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदका स्वाध्याय करे। इतिहास और पुराणोंके अध्ययनको भी यथाशक्ति न छोड़े।

स्वाध्याय पूर्ण करके खड़ा होकर दिशाओं, उनके देवताओं ब्रह्माजी, पृथ्वी, ओषधि, वाणी, वाचस्पति और सरिताओंको तथा मुझे भी प्रणाम करे। फिर जल लेकर प्रणवयुक्त 'नमोऽद्भ्यः' यह मन्त्र पढ़कर पूर्ववत् जल-देवताको नमस्कार करे। इसके बाद घृणि, सूर्य तथा आदित्य आदि नामोंका उच्चारण करके अपने मस्तकपर दोनों हाथ जोड़कर सूर्यदेवको प्रणाम करे और प्रणवका जप करते हुए एकाग्रचित्तसे उनका दर्शन करे। उसके बाद मुझे प्रिय लगनेवाले पुष्पोंसे नित्यप्रति मेरी पूजा करे।

युधिष्ठिरने कहा—माधव ! जो पुष्प आपको अत्यन्त प्रिय हों तथा जिनमें आपका निवास हो, उन सबका मुझसे वर्णन कीजिये।

भगवान्‌ने कहा—राजन् ! जो फूल मुझे बहुत प्रिय हैं, उनके नाम बताता हूँ; सावधान होकर सुनो। कुमुद, करवीर, चणक, चम्पा, मालती, जाति-पुष्प, नन्द्यावर्त, नन्दिक, पलाशके फूल और पत्ते, दूर्वा, भृङ्गक और वनमाला—ये फूल मुझे विशेष प्रिय हैं। सब प्रकारके फूलोंसे हजारगुना अच्छा उत्पल माना गया है। उत्पलसे बढ़कर पद्म, पद्मसे शतदल, शतदलसे सहस्रदल, सहस्रदलसे पुण्डरीक और हजार पुण्डरीकसे बढ़कर तुलसीका गुण माना गया है। तुलसीसे श्रेष्ठ है वकपुष्प और उससे भी उत्तम है सौवर्ण; सौवर्णके फूलसे बढ़कर दूसरा कोई भी फूल मुझे प्रिय नहीं है। फूल न मिलनेपर तुलसीके पत्तोंसे, पत्तोंके न मिलनेपर उसकी शाखाओंसे और शाखाओंके न मिलनेपर तुलसीकी जड़के टुकड़ोंसे मेरी पूजा करे। यदि वह भी न मिल सके तो जहाँ तुलसीका वृक्ष रहा हो, वहाँकी मिट्टीसे ही भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करे। अब त्यागनेयोग्य फूलोंके नाम बता रहा हूँ, ध्यान देकर सुनो। किङ्किणी, मुनि पुष्प, धुर्धूर, पाटल, अतिमुक्तक, पुन्नाग, नक्तमालिक, यौधिक, क्षीरिकापुष्प, निर्गुण्डी, लाङ्गुली, जपा, अशोक, सेमलका फूल, ककुभ, कोविदार, बैभीतक, पुरण्टक, कल्पक, कालक, अंकोल, गिरिकर्णी, नीले रंगके फूल तथा एक पंखड़ीवाले फूल—इन सबका त्याग कर देना चाहिये। आक (मदार) के फूल तथा आकके पत्तेपर रखे हुए फूल भी वर्जित हैं। नीमके फूलोंका भी परित्याग कर देना चाहिये। इनके अतिरिक्त जिनका निषेध नहीं किया गया है, ऐसे सफेद पंखड़ियोंवाले सुगन्धित पुष्प जितने मिल सकें, उनके द्वारा भक्त पुरुषको मेरी पूजा करनी चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! आपके भक्त कैसे होते हैं, तथा उनके नियम कौन-कौन-से हैं—यह बतानेकी कृपा कीजिये; क्योंकि मैं भी आपके चरणोंमें भक्ति रखता हूँ।

भगवान्‌ने कहा—राजन् ! जो दूसरे किसी देवताके भक्त न होकर केवल मेरी ही शरण ले चुके हों तथा मेरे भक्तजनोंके साथ प्रेम रखते हों, वे ही मेरे भक्त कहे गये हैं। स्वर्ग और यश देनेवाले होनेके साथ ही जो मुझे विशेष प्रिय हों, ऐसे व्रतोंका ही मेरे भक्त पालन करते हैं। भक्त पुरुषको जलमें तैरते समय एक वस्त्रके सिवा दूसरा नहीं धारण करना चाहिये। स्वस्थ रहते हुए दिनमें कभी नहीं सोना चाहिये। मधु और मांसको त्याग देना चाहिये तथा मार्गमें ब्राह्मण, गौ, पीपल और अग्निके मिलनेपर उनकी प्रदक्षिणा करके जाना चाहिये। पानी बरसते समय दौड़ना नहीं चाहिये, खाली नमक नहीं खाना चाहिये तथा सौभाञ्जन और करञ्जनका भक्षण नहीं करना चाहिये। गौको प्रतिदिन ग्रास अर्पण करे और अन्नमें खटाई मिलाकर न खाय; दूसरेके घरसे उठाकर आयी हुई रसोई, बासी अन्न तथा भगवान्‌को भोग न लगाये हुए पदार्थका भी प्रयत्नपूर्वक त्याग करे। बहेड़े और करञ्जकी छायासे दूर रहे, कष्टमें पड़नेपर भी ब्राह्मणों और देवताओंकी निन्दा न करे। चारों वेदोंके विद्वान्, क्रियापरायण और बुद्धिमान् ब्राह्मणके शरीरमें भी छः वृषल निवास करते हैं। क्षत्रियोंके शरीरमें सात, वैश्योंके देहमें आठ और शूद्रोंमें इक्कीस वृषलोंका निवास माना गया है। काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और महामोह—ये छः वृषल ब्राह्मणके शरीरमें स्थित बताये गये हैं। गर्व, स्तम्भ (जड़ता), अहंकार, ईर्ष्या, द्रोह, पारुष्य (कठोर बोलना) और क्रूरता—ये सात क्षत्रिय-शरीरमें रहनेवाले वृषल हैं। तीक्ष्णता, कपट, माया, शठता, दम्भ, सरलताका अभाव, चुगली और असत्यभाषण—ये आठ वैश्य-शरीरके वृषल हैं। तृष्णा, खानेकी इच्छा, निद्रा, आलस्य, निर्दयता, क्रूरता, मानसिक चिन्ता, विषाद, प्रमाद, अधीरता, भय, घबराहट, जड़ता, पाप, क्रोध, आशा, अश्रद्धा, अनवस्था, निरङ्कुशता, अपवित्रता और मलिनता—ये इक्कीस वृषल शूद्रके शरीरमें रहनेवाले बताये गये हैं। ये सभी वृषल जिसके भीतर न दिखायी दें, वही वास्तवमें ब्राह्मण कहलाता है। अतः ब्राह्मण यदि मेरा प्रिय होना चाहे तो सात्त्विक, पवित्र और क्रोधहीन होकर सदा मेरी पूजा करता रहे। जिसकी जिह्वा चञ्चल नहीं है, जो धैर्य धारण किये रहता है और चार हाथ आगेतक दृष्टि रखते हुए चलता है, जिसने अपने चञ्चल मन और वाणीको वशमें करके भयसे छुटकारा पा लिया है, वह मेरा भक्त कहलाता है। ऐसे अध्यात्मज्ञानसे युक्त जितेन्द्रिय ब्राह्मण जिनके यहाँ श्राद्धमें तृप्तिपूर्वक भोजन करते हैं, उनके पितर उस भोजनसे पूर्ण तृप्त होते हैं। धर्मकी जय होती है, अधर्मकी नहीं; सत्यकी विजय होती है, असत्यकी नहीं तथा क्षमाकी जीत होती है, क्रोधकी नहीं। इसलिये ब्राह्मणको क्षमाशील होना चाहिये।

कपिला गौका माहात्म्य और उसके दस भेद

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! दान और तपस्याके पुण्य-फलोंको सुनकर युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—'भगवन्! जिसे ब्रह्माजीने अग्निहोत्रकी सिद्धिके लिये पूर्वकालमें उत्पन्न किया था तथा जो सदा ही पवित्र मानी गयी है, उस कपिला गौका ब्राह्मणोंको किस प्रकार दान करना चाहिये? वह पवित्र लक्षणोंवाली गौ किस दिन और कैसे ब्राह्मणको देनी चाहिये? ब्रह्माजीने कपिला गौके कितने भेद बतलाये हैं? इन सब बातोंको मैं यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पाण्डुनन्दन! यह विषय बड़ा ही पवित्र और पावन है, इसका श्रवण करनेसे पापी पुरुष भी पापसे मुक्त हो जाता है; अतः ध्यान देकर सुनो—पूर्वकालमें स्वयम्भू ब्रह्माजीने अग्निहोत्र तथा ब्राह्मणोंके लिये सम्पूर्ण तेजोंका संग्रह करके कपिला गौको उत्पन्न किया था। कपिला गौ पवित्र वस्तुओंमें सबसे बढ़कर पवित्र, मङ्गलजनक पदार्थोंमें सबसे अधिक मङ्गलकारिणी तथा पुण्योंमें परमपुण्यस्वरूपा है। वह तपस्याओंमें श्रेष्ठ तपस्या, व्रतोंमें उत्तम व्रत, दानोंमें श्रेष्ठ दान और सबका अक्षय कारण है। पृथ्वीपर जितने पवित्र तीर्थ और मन्दिर हैं तथा संसारमें जो कुछ पवित्र और रमणीय वस्तुएँ हैं, उन सबका तेज निकालकर विश्वविधाता ब्रह्माजीने जगत्‌को तारनेके लिये कपिला गौकी सृष्टि की है। कपिला सम्पूर्ण तेजोंका पुञ्ज है; वह अमृतस्वरूप, मेध्य, शुद्ध, पवित्र करनेवाली और उत्तम है। द्विजातियोंको चाहिये कि वे सायंकाल और प्रातःकालमें कपिला गौके दूध, दही अथवा घीसे अग्निहोत्र करें। जो ब्राह्मण कपिला गौके घी, दही अथवा दूधसे विधिवत् अग्निहोत्र करते, भक्तिपूर्वक अतिथियोंकी पूजा करते, शूद्रके अन्नसे दूर रहते तथा दम्भ और असत्यका सदा त्याग करते हैं, वे सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंद्वारा सूर्यमण्डलके बीचसे होकर परम उत्तम ब्रह्मलोकमें जाते हैं। वहाँ ब्रह्माके दिव्यधाममें इच्छानुसार रूप धारण कर यथेष्ट स्थानोंपर विचरते हुए एक कल्पतक आनन्दका उपभोग करते हैं और ब्रह्माजीसे सदा सम्मानित होते रहते हैं। इस प्रकार कपिला गौ परमपवित्र और अमृतमय दुग्धको प्रकट करनेवाली अरणी है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने उसे अग्निके भीतर उत्पन्न किया था।

युधिष्ठिर! ब्रह्माजीकी आज्ञासे कपिलाके सींगके अग्रभागमें सदा सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं। जो मनुष्य सबेरे उठकर कपिला गौके सींग और मस्तकसे गिरती हुई जल-धाराको अपने सिरपर धारण करता है, वह उस पुण्यके प्रभावसे सहसा पापरहित हो जाता है। जैसे आग तिनकेको जला डालती है, उसी प्रकार वह जल मनुष्यके तीन जन्मोंके पापोंको भस्म कर डालता है। जो कपिलाका मूत्र लेकर अपनी नेत्र आदि इन्द्रियोंमें लगाता तथा उससे स्नान करता है, वह उस स्नानके पुण्यसे निष्पाप हो जाता है; उसके तीस जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। जो प्रातःकाल उठकर भक्तिके साथ कपिला गौको घासकी मुट्ठी अर्पण करता है, उसके एक महीनेके पापोंका नाश हो जाता है। जो सबेरे शयनसे उठकर भक्तिपूर्वक कपिला गौकी परिक्रमा करता है, उसके द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है तथा एक-एक परिक्रमासे दस-दस रातके पाप नष्ट होते हैं। जो पुरुष कपिला गौके पञ्चगव्यसे नहाकर शुद्ध होता है, वह मानो गङ्गा आदि समस्त तीर्थोंमें स्नान कर लेता है। श्रद्धालु पुरुषके उस स्नानसे दस रातके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। भक्तिपूर्वक कपिला गौका दर्शन करके तथा उसके रँभानेकी आवाज सुनकर मनुष्य एक दिन-रातके पापको नष्ट कर डालता है। जो स्नान आदिसे पवित्र होकर कपिला गौके किसी भी अङ्गका स्पर्श करता है, उसका एक वर्षका पाप दूर हो जाता है। एक मनुष्य एक हजार गौओंका दान करे और दूसरा एक ही कपिला गौको दानमें दे तो लोकपितामह ब्रह्माजीने उन दोनोंका फल बराबर बतलाया है। इसी प्रकार कोई मनुष्य प्रमादवश यदि एक ही कपिला गौकी हत्या कर डाले तो उसे एक हजार गौओंके वधका पाप लगता है।

ब्रह्माजीने कपिला गौके दस भेद बतलाये हैं; उनका वर्णन करता हूँ, सुनो। पहली स्वर्णकपिला[1], दूसरी गौरपिङ्गला[2], तीसरी आरक्तपिङ्गाक्षी[3], चौथी गलपिङ्गला[4], पाँचवीं बभ्रुवर्णाभा[5], छठी श्वेतपिङ्गला[6], सातवीं रक्तपिङ्गाक्षी[7], आठवीं खुरपिङ्गला[8], नवीं पाटला[9], और दसवीं पुच्छपिङ्गला[10]—ये दस प्रकारकी कपिला गौएँ बतलायी गयी हैं जो सदा मनुष्योंका उद्धार करती हैं। वे मङ्गलमयी, पवित्र और सब पापोंको नष्ट करनेवाली हैं। गाड़ी खींचनेवाले बैलोंके

---

१. सुवर्णके समान पीले रंगवाली। २. गौर तथा पीले रंगवाली। ३. कुछ लालिमा लिये हुए पीले नेत्रोंवाली। ४. जिसके गरदनके बाल कुछ पीले हों। ५. जिसका सारा शरीर पीले रंगका हो। ६. कुछ सफेदी लिये हुए पीले रोमवाली। ७. सुर्ख और पीली आँखोंवाली। ८. जिसके खुर पीले रंगके हों। ९. जिसका हलका लाल रंग हो। १०. जिसकी पूँछके बाल पीले रंगके हों।

भी ऐसे ही दस भेद बताये गये हैं। उन बैलोंको ब्राह्मण ही अपनी सवारीमें जोते। दूसरे वर्णका मनुष्य उनसे सवारीका काम न ले। गाड़ीमें जुते रहनेपर उन बैलोंको हुङ्कारकी आवाज देकर अथवा पत्तेवाली टहनीसे हाँके। डंडेसे, छड़ीसे और रस्सीसे मारकर न हाँके। जब बैल भूख-प्यास और परिश्रमसे थके हुए हों तथा उनकी इन्द्रियाँ घबरायी हुई हों तो उन्हें गाड़ीमें न जोते। जबतक बैलोंको खिलाकर तृप्त न कर ले तबतक स्वयं भी भोजन न करे। उन्हें पानी पिलाकर ही स्वयं जल-पान करे। सेवा करनेवाले पुरुषकी कपिला गौएँ माता और बैल पिता हैं। दिनके पहले भागमें ही भार ढोनेवाले बैलोंको सवारीमें जोतना उचित माना गया है। मध्य भागमें—दोपहरीके समय उन्हें विश्राम देना चाहिये, किंतु दिनके अन्तिम भागमें अपनी रुचिके अनुसार बर्ताव करना चाहिये अर्थात् आवश्यकता हो तो उनसे काम ले और न हो तो न ले। जहाँ जल्दीका काम हो अथवा जहाँ मार्गमें किसी प्रकारका भय आनेवाला हो, वहाँ विश्रामके समय भी यदि बैलोंको सवारीमें जोते तो पाप नहीं लगता। परंतु जो विशेष आवश्यकता न होनेपर भी ऐसे समयमें बैलोंको गाड़ीमें जोतता है, उसे भ्रूण-हत्याके समान पाप लगता है और वह रौरव नरकमें पड़ता है। जो मोहवश बैलोंके शरीरसे रक्त निकाल देता है, वह पापात्मा उस पापके प्रभावसे निःसंदेह नरकमें गिरता है और सभी नरकोंमें सौ-सौ वर्ष रहकर इस मनुष्यलोकमें बैलका जन्म पाता है। अतः जो संसारसे मुक्त होना चाहता हो, उसे कपिला गौका दान करना चाहिये। जो शूद्र मनुष्य लोभसे मोहित होकर कपिला गौको सवारीमें जोतता है, वह मानो तैंतीस देवताओं और पितरोंपर भी सवारी करता है। उस दुष्ट बुद्धिवाले पुरुषको देवता और पितर सदा सताया करते हैं और वह महाप्रलयतक एक नरकसे छूटकर दूसरे घोर नरकमें पड़ता रहता है।

जिस समय कपिल जातिके बैल थककर लंबी साँस लेते हैं, उस समय वे अपनेको कष्ट देनेवाले मनुष्यके कुलका संहार कर डालते हैं। उनके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने सौ वर्षोंतक उन्हें सवारीमें जोतनेवाले मनुष्य नरकोंमें पकाये जाते हैं। सब प्रकारके यज्ञोंमें दक्षिणा देनेके लिये कपिला गौकी सृष्टि हुई है; इसलिये द्विजातियोंको यज्ञमें उनकी दक्षिणा अवश्य देनी चाहिये। जो मनुष्य अग्निहोत्रके होमके लिये अमिततेजस्वी एवं धनहीन श्रोत्रिय ब्राह्मणको प्रयत्नपूर्वक कपिला गौ दानमें देता है, वह उस दानसे शुद्धचित्त होकर मेरे गोलोकधाममें प्रतिष्ठित होता है। कपिलाके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने ही हजार वर्षोंतक दाताको स्वर्गलोकमें सम्मान प्राप्त होता है। जो मनुष्य कपिलाके सींग और खुरोंमें सोना मढ़ाकर उसे विषुवयोगमें अथवा उत्तरायण-दक्षिणायनके आरम्भमें दान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है तथा उस पुण्यके प्रभावसे वह मेरे लोकमें जाता है। जिसके सींगोंमें सोना और खुरोंमें चाँदी मढ़ी हो, जो वस्त्रोंसे सुसज्जित, पुष्ट और चन्दन तथा फूल-मालाओंसे शोभायमान हो—ऐसी गौको काँसेके बने हुए दुग्धपात्र तथा बछड़ेसहित दानमें देना चाहिये। मेरे विचारसे पवित्र वस्तुओंमें सुवर्ण सबसे अधिक पवित्र है, इसलिये गौको सोनेके आभूषणोंसे सजाकर दान करना चाहिये। इस प्रकार दान करनेसे दाता अपनी सात पीढ़ियोंतकके पूर्वजोंको और सात पीढ़ी आगे होनेवाली संतानोंको निश्चय ही तार देता है। एक हजार अग्निष्टोमके समान एक वाजपेय यज्ञ होता है। एक हजार वाजपेयके समान एक अश्वमेध होता है और एक हजार अश्वमेधके समान एक राजसूय-यज्ञ होता है। जो मनुष्य शास्त्रोक्त विधिसे एक हजार कपिला गौओंका दान करता है, वह राजसूय-यज्ञका फल पाकर मेरे परमधाममें प्रतिष्ठित होता है; उसे पुनः इस लोकमें नहीं लौटना पड़ता। जो पुरुष कपिला गौके खुरों और सींगोंमें सोना मढ़ाकर उसे सब प्रकारके अलंकारोंसे सुशोभित करके काँसेकी दोहनी और बछड़ेसहित दान करता है, उसके पास वह गौ उन-उन गुणोंसे युक्त कामधेनुके रूपमें उपस्थित होती है। दानमें दी हुई गौ अपने कर्मोंसे बँधकर घोर अन्धकारपूर्ण नरकमें गिरते हुए मनुष्यका उसी प्रकार उद्धार कर देती है, जैसे वायुके सहारेसे चलती हुई नाव मनुष्यको महासागरमें डूबनेसे बचाती है। पुत्र, पौत्र आदि सात पीढ़ियोंतकके समस्त कुलको वह गौ तार देती है। जबतक पृथ्वी मनुष्योंको धारण करती है, तबतक दानमें दी हुई गौ परलोकमें दाताको धारण किये रहती है। जैसे मन्त्रके साथ दी हुई ओषधि प्रयोग करते ही मनुष्यके रोगोंका नाश कर देती है, उसी प्रकार सुपात्रको दी हुई कपिला गौ मनुष्यके सब पापोंको तत्काल नष्ट कर डालती है। जैसे साँप केंचुल छोड़कर नये स्वरूपको धारण करता है, वैसे ही पुरुष कपिला गौके दानसे पाप-मुक्त होकर अत्यन्त शोभाको प्राप्त होता है। जैसे प्रज्वलित दीपक घरमें फैले हुए अन्धकारको दूर कर देता है, उसी प्रकार मनुष्य कपिला गौका दान करके अपने भीतर छिपे हुए पापको भी निकाल फेंकता है। बछड़ेसहित कपिला गौके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने करोड़ युगोंतक दाता मनुष्य ब्रह्मलोकमें आनन्दका अनुभव करता है। जो प्रतिदिन अग्निहोत्र करनेवाला, अतिथिका प्रेमी, शूद्रके अन्नसे दूर रहनेवाला, जितेन्द्रिय, सत्यवादी तथा स्वाध्यायपरायण हो, उसे दी हुई गौ परलोकमें दाताका अवश्य उद्धार करती है।



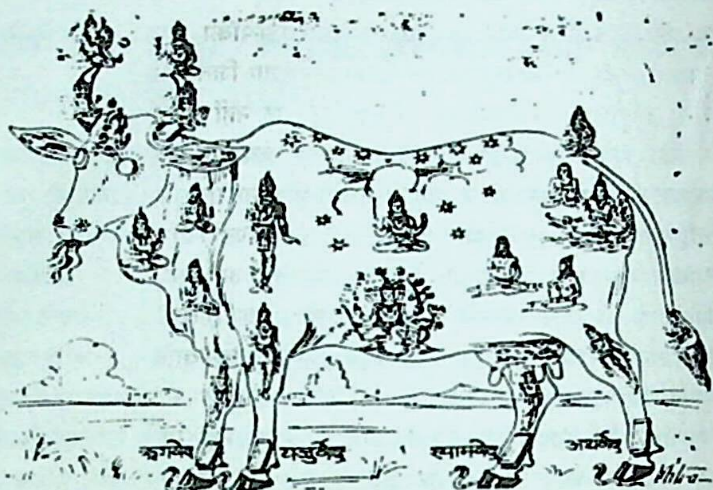
कपिला गौका माहात्म्य, अयोग्य ब्राह्मण तथा नरक और स्वर्गमें ले जानेवाले पाप और पुण्योंका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार परम पुण्यमय कपिला गौके उत्तम दानका वर्णन सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरका मन बहुत प्रसन्न हुआ और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे पुनः इस प्रकार प्रश्न किया—'देवदेवेश्वर! जब कपिला गौ ब्राह्मणको दानमें दी जाती है तो उसके सम्पूर्ण अङ्गोंमें देवता किस प्रकार रहते हैं? आपने जो दस प्रकारकी कपिला गौएँ बतलायी हैं, उनमेंसे कितनी कपिलाएँ पुण्यमयी मानी जाती हैं? देवताओं और पितरोंने उनके ऊपर किस प्रकार अनुग्रह किया है? और उन गौओंका रंग कैसा होता है?—ये सब बातें सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है।'

भगवान्‌ने कहा—राजन्! परम पवित्र, गोपनीय एवं उत्तम धर्मका वर्णन करता हूँ; सुनो। जिस समय गौ प्रसव कर रही हो और बछड़ेके दो पैर सिरसहित योनिसे बाहर दिखायी दे रहे हों, मुनियोंद्वारा वही उसके दानका उत्तम समय बतलाया गया है। जबतक बछड़ा आकाशमें ही लटक रहा हो, पृथ्वीपर नहीं गिरने पाया हो, तबतक वह गौ पृथ्वीका स्वरूप मानी जाती है, इसलिये उसी अवस्थामें गौका दान करना चाहिये। युधिष्ठिर! प्रसव-कालमें बछड़ेसहित गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं तथा उसके गर्भके जलसे धूलिके जितने कण भीग जाते हैं, उतने हजार वर्षोंतक दाता स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। बछड़ेसहित कपिला गौको सोनेके आभूषणों तथा सब प्रकारके रत्नोंसे अलंकृत करके तिलोंके साथ दानमें देना चाहिये। जो इस प्रकार दान करता है, उसके द्वारा नदी, समुद्र, पर्वत, वन और काननोंसहित चारों ओरकी पृथ्वीका दान हो जाता है। इस प्रकारका दान पृथ्वीदानके समान ही माना जाता है। उसके द्वारा मनुष्य संसार-सागरसे पार होकर प्रजापतिके लोकमें जाता है। ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, गोहत्या तथा गुरुस्त्रीगमन आदि महान् पातकोंसे युक्त मनुष्य भी उपर्युक्त इस प्रकारसे कपिला गौका दान करनेसे शुद्ध हो जाता है। जो मनुष्य सबेरे उठकर मुझमें भक्ति रखते हुए इस परम पुण्यमय उत्तम कपिला-दानके माहात्म्यका पाठ करता है, उसके पुण्यका फल सुनो। इस अध्यायका पाठ करनेवाला मनुष्य रात्रिमें मन-वाणी अथवा क्रियाद्वारा किये हुए सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो श्राद्धकालमें इस अध्यायका पाठ करते हुए ब्राह्मणोंको भोजन आदिसे तृप्त करता है, उसके पितर अत्यन्त प्रसन्न होकर अमृत भोजन करते हैं। जो मुझमें चित्त लगाकर इस प्रसंगको भक्तिपूर्वक सुनता है, उसके एक रातके सारे पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं।

अब मैं कपिला गौके सम्बन्धमें विशेष बातें बतला रहा हूँ। पहले जो मैंने तुम्हें दस प्रकारकी कपिला गौएँ बतलायी हैं, उनमें चार कपिलाएँ अत्यन्त श्रेष्ठ, पुण्य प्रदान करनेवाली तथा पाप नष्ट करनेवाली हैं। सुवर्णकपिला, रक्ताक्षपिङ्गला, पिङ्गलाक्षी और पिङ्गलपिङ्गला—ये चार प्रकारकी कपिलाएँ श्रेष्ठ, पवित्र और पाप दूर करनेवाली हैं। इनके दर्शन और नमस्कारसे भी मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं। ये पापनाशिनी कपिला गौएँ जिसके घरमें मौजूद रहती हैं, वहाँ श्री, विजय और कीर्तिका नित्य निवास होता है। इनके दूधसे भगवान् शंकर, दहीसे सम्पूर्ण देवता और घीसे अग्निदेव तृप्त होते हैं। पिता, पितामह और प्रपितामह तो एक बार भी कपिला गौके दूध आदि देनेपर करोड़ों वर्षोंतक तृप्त रहते हैं। कपिला गौके घी, दूध, दही अथवा खीरका एक बार भी श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दान करके मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। जो जितेन्द्रिय रहकर एक दिन-रात उपवास करके कपिला गौका पञ्चगव्य पान करता है, उसे चान्द्रायणसे बढ़कर उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। जो क्रोध और असत्यका त्याग करके मुझमें चित्त लगाकर शुभ मुहूर्तमें कपिला गौके पञ्चगव्यका आचमन करता है, उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। जो विषुवयोगमें पृथक्-पृथक् मन्त्र पढ़कर कपिलाके पञ्चगव्यसे मेरी या शंकरकी प्रतिमाको स्नान कराता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। वह निष्पाप एवं शुद्धचित्त होकर आकाशकी शोभा बढ़ानेवाले विमानके द्वारा मेरे अथवा रुद्रके लोकमें गमन करता है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने उत्तम वेदमन्त्रोंके द्वारा अग्निकुण्डसे सुवर्णके समान कान्तिमती कपिला गौको उत्पन्न किया। उस होम-धेनुकी प्रभा दूरतक फैली हुई थी। उसके उत्पन्न होते ही रुद्र आदिक देवता, सिद्ध, ब्रह्मर्षि, वेद, वेदाङ्ग, यज्ञ, समुद्र, नदियाँ, पर्वत, मेघ, गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष और नाग वहाँ उपस्थित हुए। उसे देखकर सबको बड़ा विस्मय हुआ और सभी अनेकों प्रकारके मन्त्र पढ़कर बारम्बार उसकी स्तुति करने लगे। उस गौके सींग बहुत बड़े नहीं थे, उसकी तीन आँखें थीं, उसका बछड़ा उसके साथ ही था तथा वह दुग्धरूप अमृतको प्रकट करनेके लिये अरणीके समान थी। समस्त

देवता आदिने हाथ जोड़कर उस गौको प्रणाम किया और चतुर्मुख ब्रह्माजीसे कहा—'भगवन् ! बताइये हम आपकी किस आज्ञाका किस प्रकार पालन करें ?'



देवताओंके इस प्रकार प्रश्न करनेपर ब्रह्माजीने कहा—'आपलोग भी इस दूध देनेवाली गौपर अनुग्रह कीजिये। यह होमकी सिद्धिके लिये प्रकट हुई है और अपने हविष्यसे तीनों अग्नियोंको तृप्त करेगी। जब अग्निदेव स्वयं तृप्त हो जायँगे तो आपलोगोंको भी तृप्त करेंगे। इसके दूधरूपी अमृतसे आपलोगोंके बल और पराक्रमकी वृद्धि होगी और आप इच्छा करते ही दानवोंपर विजय पा जायँगे।' ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर देवताओंके मुखपर प्रसन्नता छा गयी और वे कपिला गौको इस प्रकार वरदान देने लगे—'देवि ! ब्रह्माजीने सम्पूर्ण जगत्‌का हित करनेके लिये तुम्हें उत्पन्न किया है; इसलिये तुम परम पवित्र, शुद्ध और पापका नाश करनेवाली होओ। जो मनुष्य तुम्हें देखकर नमस्कार करेंगे अथवा जो अपने हाथोंसे तुम्हारे शरीरका स्पर्श करेंगे, तुममें भक्ति रखनेवाले उन मनुष्योंका एक वर्षका किया हुआ पाप तत्क्षण नष्ट हो जायगा। जो तुम्हारा दर्शन करके तुम्हें प्रणाम करेंगे, उनके अनिच्छासे किये हुए, अनजानमें किये हुए तथा दृष्टि न पड़नेके कारण स्वतः हो जानेवाले पातक उसी प्रकार नष्ट हो जायँगे जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार मिट जाता है।'

इस प्रकार कपिला गौको वरदान देकर देवता आदि जैसे आये थे, वैसे लौट गये और वह गौ लोगोंका उद्धार करनेके लिये सम्पूर्ण लोकोंमें विचरने लगी। उसीके शरीरसे नौ कपिलाएँ और उत्पन्न हुईं। वे सब-की-सब जगत्पर अनुग्रह करनेके लिये इस पृथ्वीपर विचरती रहती हैं, इसलिये परलोकमें हित चाहनेवाले पुरुषको कपिला गौका दान अवश्य करना चाहिये। जिस समय अग्निहोत्री ब्राह्मणको कपिला गौ दानमें दी जाती है, उस समय उसके सींगोंके ऊपरी भागमें विष्णु और इन्द्र निवास करते हैं। सींगोंकी जड़में चन्द्रमा और वज्रधारी इन्द्र रहते हैं। सींगोंके बीचमें ब्रह्मा तथा ललाटमें भगवान् शंकरका निवास होता है। दोनों कानोंमें अश्विनीकुमार, नेत्रोंमें चन्द्रमा और सूर्य, दाँतोंमें मरुद्गण, जिह्वामें सरस्वती, रोमकूपोंमें मुनि, चमड़ेमें प्रजापति, श्वासोंमें षडङ्ग, पद और क्रमसहित चारों वेद, नासिकाछिद्रोंमें गन्ध और सुगन्धित पुष्प, नीचेके ओठमें वसुगण, मुखमें अग्नि, कक्षमें साध्य-देवता, गरदनमें पार्वती, पीठपर नक्षत्र, ककुद्‌के स्थानमें आकाश, अपानमें सब तीर्थ, मूत्रमें साक्षात् गङ्गाजी, गोबरमें लक्ष्मीजी, नासिकामें ज्येष्ठादेवी, नितम्बोंमें पितर, पूँछमें भगवती रमा, दोनों पसलियोंमें विश्वेदेव, छातीमें शक्तिधारी कार्तिकेय, घुटनों, जंघों और ऊरुओंमें पाँच वायु, खुरोंके मध्यमें गन्धर्व और खुरोंके अग्रभागमें सर्प निवास करते हैं। चारों समुद्र उसके चारों स्तन हैं। रति, मेधा, क्षमा, स्वाहा, श्रद्धा, शान्ति, धृति, स्मृति, कीर्ति, दीप्ति, क्रिया, कान्ति, तुष्टि, पुष्टि, संतति, दिशा और प्रदिशा आदि देवियाँ सदा कपिला गौका सेवन किया करती हैं। देवता, पितर, गन्धर्व, अप्सराएँ, लोक, द्वीप, समुद्र, गङ्गा आदि नदियाँ तथा अङ्गों और यज्ञोंसहित सम्पूर्ण वेद, नाना प्रकारके मन्त्रोंसे कपिला गौकी प्रसन्नतापूर्वक स्तुति किया करते हैं। वे कहते हैं—'सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित पुण्यमयी कपिलादेवी ! तुम्हें नमस्कार है। ब्रह्माजीने तुम्हें अग्निकुण्डसे उत्पन्न किया है। तुम्हारी प्रभा विस्तृत और शक्ति महान् है। समस्त तीर्थ तुम्हारे ही स्वरूप हैं और तुम सबका शुभ करनेवाली हो। समस्त देवता आकाशमें खड़े होकर बारम्बार कहा करते हैं—'अहो ! यह कपिला गौरूपी रत्न कितना पवित्र और कितना उत्तम है ! यह सब दुःखोंको दूर करनेवाला है। अहा ! यह धर्मसे उपार्जित, शुद्ध, श्रेष्ठ और महान् धन है।' कपिला गौ यदि चाहे तो भूलोकवासी सम्पूर्ण मनुष्योंको ब्रह्मलोकमें ले जा सकती है। पृथ्वी, घोड़ा, सोना, गौ, चाँदी, तिल और जौ—ये पदार्थ प्रतिदिन ब्राह्मणको दान करनेसे दाताको महान् आनन्दकी प्राप्ति होती है।

युधिष्ठिरने पूछा—देवदेवेश्वर ! हव्य (यज्ञ) और कव्य (श्राद्ध) का उत्तम समय कौन-सा है? उसमें किन ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये और किनका परित्याग ?

भगवान्‌ने कहा—युधिष्ठिर ! देव-कर्म (यज्ञ) पूर्वाह्णकालमें करना चाहिये और पितृ-कर्म (श्राद्ध) अपराह्णकालमें। अयोग्य समयमें किया हुआ दान राजस माना गया है। जिसके लिये लोगोंमें ढिंढोरा पीटा गया हो, जिसमेंसे किसी असत्यवादी मनुष्यने भोजन कर लिया हो

तथा जो कुत्तेसे छू गया हो, उस अन्नको राक्षसोंका भाग समझना चाहिये। पतित, जड और उन्मत्त ब्राह्मण जितने भी मिलें, उनका देव-यज्ञ और पितृ-यज्ञमें सत्कार नहीं करना चाहिये। नपुंसक, अङ्गहीन, कोढ़ी और राजयक्ष्मा तथा मृगीका रोगी भी श्राद्धमें आदरके योग्य नहीं माना गया है। वैद्य, पुजारी, झूठे नियम धारण करनेवाले (पाखण्डी) तथा सोमरस बेचनेवाले ब्राह्मण श्राद्धमें सत्कार पानेके अधिकारी नहीं हैं। गवैये, नाचने-कूदनेवाले, बाजा बजानेवाले, बकवादी, पहलवान, अग्निहोत्र न करनेवाले, मुर्दा ढोनेवाले, चोरी करनेवाले, शास्त्रविरुद्ध कर्ममें संलग्न रहनेवाले और अपरिचित ब्राह्मण भी श्राद्धमें सत्कार पानेयोग्य नहीं माने जाते। जो किसी समुदायके पुत्र हों अर्थात् जिनके पिताका निश्चित पता न हो तथा जो पुत्रिका-धर्मके अनुसार नानाके घरमें रहते हों, वे ब्राह्मण भी श्राद्धके अधिकारी नहीं हैं। युद्धमें लड़नेवाला, रोजगार करनेवाला तथा पशु-पक्षियोंकी बिक्रीसे जीविका चलानेवाला ब्राह्मण भी श्राद्धमें सत्कार पानेका अधिकारी नहीं है।

परंतु जो ब्राह्मण व्रतका आचरण करनेवाले, गुणवान्, सदा स्वाध्यायशील, गायत्री-मन्त्रके ज्ञाता और क्रियानिष्ठ हों, वे श्राद्धमें सत्कारके योग्य माने गये हैं। श्राद्धका सबसे उत्तम काल है सुपात्र ब्राह्मणका मिलना। जिस समय भी ब्राह्मण, दही, घी, कुशा, फूल और उत्तम क्षेत्र प्राप्त हो जायँ, उसी समय श्राद्धका दान आरम्भ कर देना चाहिये। जो ब्राह्मण सदाचारी, थोड़ी-सी आजीविकापर गुजारा करनेवाले, दुर्बल, तपस्वी और भिक्षासे निर्वाह करनेवाले हों, वे यदि याचक होकर कुछ माँगने आवें तो उन्हें दिये हुए दानका महान् फल होता है। युधिष्ठिर! इन सब बातोंको पूर्णरूपसे जानकर धनहीन और उपकार न करनेवाले वेदवेत्ता ब्राह्मणको दान करो। यदि तुम अपने दानको अक्षय बनाना चाहते हो तो जो दान तुम्हें प्रिय लगता हो तथा जिसे वेदवेत्ता ब्राह्मण पसंद करते हों वही दान करो।

युधिष्ठिर! अब नरकमें जानेवाले पुरुषोंका वर्णन सुनो। जो ब्राह्मण गुरुकी रक्षा अथवा अपनेको भयसे बचानेके अवसरोंको छोड़कर अन्य समयमें भी झूठ बोलते हैं, वे नरकमें जाते हैं। जो परायी स्त्रीका अपहरण करते, परस्त्रीके साथ व्यभिचार करते और दूसरोंकी स्त्रियोंको दूसरे पुरुषोंसे मिलाया करते हैं, वे भी नरकमें पड़ते हैं। चुगुलखोर, घरमें सेंध खोदनेवाले (अथवा सुलहकी शर्त तोड़नेवाले), पराये धनसे जीविका चलानेवाले, वर्ण और आश्रमसे विरुद्ध आचरण करनेवाले, पाखंडी, पापाचारी, वेद बेचनेवाले, वेदोंकी निन्दा करनेवाले, वेदोंके लिखनेवाले तथा रस, विष और दूधकी बिक्री करनेवाले मनुष्य भी नरकगामी होते हैं। जो नराधम धनके लोभसे अथवा आसक्तिवश चाण्डालोंको भी दूध देते हैं, पशुओंका दमन करते, उन्हें नाथते और बधिया करते हैं, वे नरकमें पड़ते हैं। जो सामर्थ्य होते हुए भी धनके लोभसे दान नहीं करते, दीनों और अंधोंपर कृपादृष्टि नहीं रखते तथा चिरकालतक अपने साथ रहे हुए सहनशील, जितेन्द्रिय, दुर्बल एवं बुद्धिमान् मनुष्योंको भी काम निकल जानेपर त्याग देते हैं, वे नरकगामी होते हैं। जो बच्चों, बूढ़ों तथा थके हुए मनुष्योंको कुछ न देकर अकेले ही मिठाई उड़ाते हैं, उन्हें भी नरकमें गिरना पड़ता है। प्राचीनकालके ऋषियोंने इस प्रकार नरकगामी मनुष्योंका वर्णन किया है।

अब स्वर्गमें जानेवालोंका वर्णन सुनो। जो दान, तपस्या, सत्यभाषण और इन्द्रिय-संयमके द्वारा निरन्तर धर्माचरणमें लगे रहते हैं, जो उपाध्यायकी सेवा करके उनसे वेद पढ़ते तथा प्रतिग्रहमें आसक्ति नहीं रखते, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो मधु, मांस, मदिरासे निवृत्त होकर उत्तम व्रतका पालन करते, परस्त्रीके संसर्गसे बचे रहते, माता-पिताकी सेवा करते, भाइयोंके प्रति स्नेह रखते, भोजनके समय घरसे बाहर निकलकर अतिथि-सेवा करते, अतिथियोंसे प्रेम रखते और उनके लिये कभी अपना दरवाजा बंद नहीं करते, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो दरिद्र मनुष्योंकी कन्याओंका धनियोंसे ब्याह करा देते अथवा स्वयं धनी होते हुए भी दरिद्रकी कन्यासे ब्याह करते हैं तथा जो श्रद्धापूर्वक रस, बीज और ओषधियोंका दान करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो मार्गमें जिज्ञासा करनेवाले पथिकोंको अच्छे-बुरे, सुखदायक और दुःखदायक मार्गका ठीक-ठीक परिचय दे देते हैं, तथा जो अमावस्या, पूर्णिमा, चतुर्दशी, अष्टमी—इन तिथियोंमें, दोनों संध्याओंके समय, आर्द्रा नक्षत्रमें, जन्म-नक्षत्रमें, विषुवयोगमें और श्रवण नक्षत्रमें स्त्री-समागमसे बचे रहते हैं, वे मनुष्य भी स्वर्गमें जाते हैं। राजन्! इस प्रकार हव्य-कव्यके विधानका समय बताया गया और स्वर्ग तथा नरकमें ले जानेवाले धर्म-अधर्मोंका वर्णन किया गया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! मनुष्य ब्राह्मणकी हिंसा किये बिना ही ब्रह्महत्याके पापसे कैसे लिप्त हो जाता है, इस विषयको ठीक-ठीक बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान्ने कहा—राजन्! जो जीविकारहित ब्राह्मणको स्वयं ही भिक्षा देनेके लिये बुलाकर पीछे इनकार कर जाता है, उसे ब्रह्महत्यारा कहते हैं। जो दुष्ट बुद्धिवाला पुरुष

वेदवेत्ता ब्राह्मणकी जीविका छीन लेता है, वह भी ब्रह्मघाती ही है। जो क्रोधमें भरकर किसी आश्रम, घर, गाँव अथवा नगरमें आग लगा देता है, प्याससे तड़पती हुई गौओंको पानीके निकट पहुँचनेमें बाधा डालता है तथा वैदिक श्रुतियों और ऋषिप्रणीत शास्त्रोंपर बिना समझे-बूझे दोषारोपण करता है, वह भी ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है। जो अंधे, पङ्गु और गूँगे मनुष्यका सर्वस्व हरण कर लेता है, जो मूर्खतावश गुरुको 'तू' कहकर पुकारता, हुङ्कारके द्वारा उनका तिरस्कार करता तथा उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके मनमाना बर्ताव करता है, उसे भी ब्रह्मघाती ही कहते हैं। जो मनुष्य क्रोध या द्वेषके कारण अथवा कटुवचन या फटकार सुनकर ऋतुकालमें स्त्रीके पास नहीं जाता तथा जो दरिद्र मनुष्यका सर्वस्व छीन लेता है, वह भी ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला ही माना गया है।

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! जो दान सब दानोंसे श्रेष्ठ माना गया हो, उसको बतलाइये तथा जिन ब्राह्मणोंका अन्न खानेयोग्य न हो, उनका परिचय दीजिये।

भगवान्‌ने कहा—राजन्! ब्रह्मा आदि सभी देवता अन्नकी ही प्रशंसा करते हैं, अतः अन्नके समान दान न कोई हुआ है न होगा; क्योंकि अन्न ही इस जगत्‌में बल देनेवाला है तथा अन्नके ही आधारपर प्राण टिके रहते हैं। अब मैं उन लोगोंका परिचय दे रहा हूँ, जिनका अन्न ग्रहण करने योग्य नहीं माना गया है; ध्यान देकर सुनो। यज्ञमें दीक्षित, कदर्य, क्रोधी, शठ, शापग्रस्त, नपुंसक, भोजनमें भेद करनेवाले, वैद्य, दूत, उच्छिष्टभोजी, वर्णसंकर तथा अशौचमें पड़े हुए मनुष्यका अन्न, शूद्रकी जूठन तथा शत्रुका अन्न नहीं खाना चाहिये। इसी प्रकार पतित, चुगुलखोर, यज्ञका फल बेचनेवाले, नट, कपड़ा बुननेवाले—जुलाहे, कृतघ्न, अम्बष्ठ, निषाद, रङ्गभूमिमें नाटक खेलनेवाले, सुनार, वीणा बजाकर जीनेवाले, हथियार बेचनेवाले, सूत, शराब बेचनेवाले, धोबी, स्त्रीके वशमें रहनेवाले, क्रूर और भैंस चरानेवालेका अन्न भी अग्राह्य माना गया है। जिनके यहाँ मरणाशौचके दस दिन न बीते हों, उनका तथा वेश्याओंका अन्न नहीं खाना चाहिये। कैदी, जुआरी, द्यूतविद्या जाननेवाले, परिवित्त (विवाहित छोटे भाईके अविवाहित बड़े भाई) और परिवेत्ता (अविवाहित बड़े भाईके विवाहित छोटे भाई) का अन्न भी खाने योग्य नहीं है। जिसकी बड़ी बहिन अविवाहित हो, उस कन्याके साथ विवाह करनेवाले ब्राह्मण तथा भाईके मर जानेपर उसकी स्त्रीका उपभोग करनेवाले पुरुष और राजाके अन्नका भी त्याग कर देना चाहिये। राजाका अन्न तेजका, शूद्रका अन्न ब्राह्मणत्वका, सुनारका अन्न आयुका और चमारका अन्न सुयशका नाश करता है। किसी समूहका और वेश्याका अन्न भी निन्दित माना गया है। वैद्यका अन्न पीब तथा व्यभिचारिणीके पतिका अन्न वीर्यके समान माना गया है, इसलिये उसका त्याग कर देना चाहिये। जो उनका अन्न खाता है वह उनके चमड़े, रोएँ और हड्डीका ही भोजन करता है। यदि अनजानमें इनका अन्न ग्रहण कर लिया गया हो तो तीन दिनतक उपवास करना चाहिये; किंतु जान-बूझकर एक बार भी इनका अन्न खा लेनेपर द्विजको प्राजापत्य-व्रतका आचरण करना चाहिये।

पाण्डुनन्दन! अब मैं दानोंका यथार्थ फल बतला रहा हूँ, सुनो। जल-दान करनेवालेको तृप्ति होती है, अन्न देनेवालेको अक्षय सुख मिलता है, तिलका दान करनेवाला मनुष्य मनके अनुरूप संतान और दीप-दान करनेवाला पुरुष उत्तम नेत्र पाता है। भूमि देनेवालेको भूमि, सुवर्ण-दान करनेवालेको दीर्घ आयु, गृह देनेवालेको सुन्दर भवन और चाँदी दान करनेवालेको उत्तम रूपकी प्राप्ति होती है। वस्त्र देनेवाला चन्द्रलोकमें और अश्व-दान करनेवाला अश्विनीकुमारोंके लोकमें जाता है। गाड़ी ढोनेवाले बैलका दान करनेवाला लक्ष्मीको पाता है और गो-दान करनेवाला पुरुष गोलोकके सुखका अनुभव करता है। सवारी और शय्यादान करनेवाले पुरुषको स्त्रीकी तथा अभय-दान देनेवालेको ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। धान्य-दान करनेवाला मनुष्य शाश्वत सुख पाता है और वेद प्रदान करनेवाला पुरुष परब्रह्मका स्वरूप हो जाता है। जो सोना, पृथ्वी, गौ, अश्व, बकरा, वस्त्र, शय्या और आसन आदि वस्तुओंको सम्मानपूर्वक ग्रहण करता तथा जो दाता न्यायानुसार आदरपूर्वक दान करता है, वे दोनों ही स्वर्गमें जाते हैं; परंतु जो इसके विपरीत अनुचितरूपसे देते और लेते हैं, उन दोनोंको नरकमें गिरना पड़ता है। विद्वान् पुरुष कभी झूठ न बोले, तपस्या करके उसपर गर्व न करे, कष्टमें पड़ जानेपर भी ब्राह्मणोंका अनादर न करे तथा दान देकर उसका बखान न करे। झूठ बोलनेसे यज्ञका, गर्व करनेसे तपस्याका, ब्राह्मणके अपमानसे आयुका और अपने मुँहसे बखान करनेपर दानका नाश हो जाता है।

जीव अकेले जन्म लेता, अकेले मरता तथा अकेले ही पुण्य और पापका फल भोगता है। बन्धु-बान्धव मनुष्यके मरे हुए शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेके समान पृथ्वीपर डालकर मुँह फेरकर चल देते हैं। उस समय केवल धर्म ही जीवके पीछे-पीछे जाता है। मनुष्यका मन भविष्यके कर्मोंका हिसाब लगाया करता है, किंतु काल उसके नाशवान् शरीरको लक्ष्य करके मुसकराता रहता है; इसलिये धर्मको ही

सहायक मानकर सदा उसीके संग्रहमें लगे रहना चाहिये; क्योंकि धर्मकी सहायतासे मनुष्य दुस्तर नरकके पार हो जाता है। जिन्होंने अधिक जलसे भरे हुए अनेकों सरोवर, धर्मशालाएँ, कुएँ और सुन्दर पौंसले बनवाये हैं तथा जो सदा अन्नका दान करते और मीठी वाणी बोलते हैं, उनपर यमराजका जोर नहीं चलता।



धर्म और शौचके लक्षण, संन्यासी और अतिथिके सत्कारका उपदेश, शिष्टाचार, दानपात्र ब्राह्मण तथा अन्न-दानकी प्रशंसा

युधिष्ठिरने पूछा—जनार्दन! मनीषी पुरुष धर्मको अनेकों प्रकारका और बहुत-से द्वारवाला बतलाते हैं। वास्तवमें उसका लक्षण क्या है, यह बतानेकी कृपा करें।

भगवान्ने कहा—राजन्! तुम धर्म और शौचकी विधिका क्रम संक्षेपसे सुनो। अहिंसा, शौच, क्रोधका अभाव, क्रूरताका अभाव, दम, शम और सरलता—ये धर्मके निश्चित लक्षण हैं। ब्रह्मचर्य, तपस्या, क्षमा, मधु-मांसका त्याग, धर्ममर्यादाके भीतर रहना और मनको वशमें रखना—ये सब शौच (पवित्रता) के लक्षण हैं। मनुष्यको चाहिये कि वह बचपनमें विद्याध्ययन करे, युवावस्था होनेपर स्त्रीके साथ विवाह करे और बुढ़ापेमें मुनिवृत्तिका आश्रय ले; किंतु धर्मका आचरण सदा ही सब अवस्थाओंमें करता रहे। ब्राह्मणका अपमान न करे, गुरुजनोंकी निन्दा न करे और संन्यासी-महात्माओंके अनुकूल बर्ताव करे—यह सनातनधर्म है। संन्यासी ब्राह्मणोंका गुरु है, ब्राह्मण चारों वर्णोंका गुरु है, पति अपनी स्त्रीका गुरु है और राजा सबका गुरु है। यदि संन्यासी गृहस्थके घर एक रात भी ठहर जाय तो वह उसके द्वारा जान-बूझकर या अनजानमें किये हुए समस्त पापोंको भस्म कर डालता है। संन्यासी एक दण्ड धारण करनेवाला हो या तीन दण्ड, बड़ी-बड़ी जटाएँ रखता हो या माथा मुँड़ाये रहता हो अथवा गेरुआ वस्त्र पहननेवाला हो, उसकी पूजा ही करनी चाहिये। यदि गृहस्थ पुरुष संन्यासी और अतिथिकी पूजा नहीं करते अथवा उनका अपमान करते हैं तो वे उन गृहस्थोंको नरकमें डालते हैं। इसलिये जो परलोकमें अपना कल्याण चाहते हों, उन पुरुषोंको उचित है कि वे मुझमें समस्त कर्मोंको अर्पण करनेवाले मेरे शरणागत भक्तोंकी यत्नपूर्वक पूजा करें। ब्राह्मणोंपर हाथ न छोड़े, गायको कभी न मारे; जो इन दोनोंपर प्रहार करता है, उसे भ्रूणहत्याके समान पाप लगता है। अग्निको मुँहसे न फूँके, पैरोंको आगपर न तपावे और आगको पैरसे न कुचले तथा पीठकी ओरसे अग्निका सेवन न करे। दो जगह आग जलती हो तो उसके बीचसे न निकले। अग्निमें कोई अपवित्र वस्तु न डाले। उच्छिष्ट अवस्थामें तथा सूतकमें भी कभी अग्निका स्पर्श न करे। अग्नि सर्वदेवतारूप है, अंतः शुद्ध होकर उसका स्पर्श करना चाहिये। मल या मूत्रकी हाजत होनेपर बुद्धिमान् पुरुषको अग्निका स्पर्श नहीं करना चाहिये; क्योंकि जबतक यह मल-मूत्रका वेग धारण करता है तबतक अशुद्ध रहता है। भोजन बनानेके लिये दूसरेके घरसे कभी आग नहीं लानी चाहिये; क्योंकि उस आगसे तैयार हुए अन्नके द्वारा मनुष्य जो कुछ भी शुभकर्म करता है, उसके पुण्यका आधा भाग उस आग देनेवालेको ही मिलता है। इसलिये अपने घरकी आग कभी बुझने नहीं देनी चाहिये। यदि असावधानीसे अथवा अनजानमें घरकी आग शान्त हो जाय तो पुनः अरणी काष्ठका मन्थन करके अग्नि प्रकट करनी चाहिये। अथवा किसी श्रोत्रिय ब्राह्मणके घरसे माँग लानी चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—जनार्दन! जिनको दान देनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है, वे साधु ब्राह्मण कैसे होते हैं?

भगवान्ने कहा—राजन्! जो क्रोध न करनेवाले, सत्यवादी, सदा धर्ममें लगे रहनेवाले और जितेन्द्रिय हों, वे ही साधु ब्राह्मण हैं तथा उन्हींको दान देनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है। जो अभिमानशून्य, सब कुछ सहनेवाले, शास्त्रीय अर्थके ज्ञाता, इन्द्रियजयी, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितकारी, सबके साथ मैत्रीका भाव रखनेवाले, निर्लोभ, पवित्र, विद्वान्, संकोची, सत्यवादी और स्वधर्मपरायण हों, उनको दिया हुआ दान महान् फलकी प्राप्ति करनेवाला होता है। जो प्रतिदिन अङ्गोंसहित चारों वेदोंका स्वाध्याय करता हो और जिसके उदरमें शूद्रका अन्न न पड़ा हो, उसको ऋषियोंने दानका उत्तम पात्र माना है। युधिष्ठिर! यदि शुद्ध बुद्धि, शास्त्रीय ज्ञान, सदाचार और उत्तम शीलसे युक्त एक ब्राह्मण भी दान ग्रहण कर ले तो वह दाताके समस्त कुलका उद्धार कर देता है। ऐसे ब्राह्मणको गाय, घोड़ा, अन्न और धन देना चाहिये। सत्पुरुषोंद्वारा सम्मानित किसी गुणवान् ब्राह्मणका नाम सुनकर उसे दूरसे भी बुलाना और प्रयत्नपूर्वक उसका

सत्कार तथा पूजन करना चाहिये।

युधिष्ठिरने कहा—देवेश्वर ! धर्म और अधर्मकी इस विधिका भीष्मजीने विस्तारके साथ वर्णन किया था। आप उनके वचनोंमेंसे सारभूत धर्म छाँटकर बतलाइये।

भगवान्‌ने कहा—राजन् ! समस्त चराचर जगत् अन्नके ही आधारपर टिका हुआ है। अन्नसे प्राणकी उत्पत्ति होती है, यह बात प्रत्यक्ष है; अतः अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको देश और कालका विचार करके भिक्षुकको अवश्य अन्न-दान करना चाहिये। ब्राह्मण बालक हो अथवा बूढ़ा, यदि वह रास्तेका थका-माँदा घरपर आ जाय तो गृहस्थ पुरुषको बड़ी प्रसन्नताके साथ गुरुकी भाँति उसकी पूजा करनी चाहिये। परलोकमें कल्याणकी प्राप्तिके लिये अपने प्रकट हुए क्रोधको भी रोककर, मत्सरताका त्याग करके सुशीलता और प्रसन्नतापूर्वक अतिथिकी पूजा करनी चाहिये। गृहस्थ पुरुष कभी अतिथिका अनादर न करे, उससे झूठी बात न कहे तथा उसके गोत्र, शाखा और अध्ययनके विषयमें भी कभी प्रश्न न करे। भोजनके समयपर चाण्डाल या श्वपाक (महाचाण्डाल) भी घर आ जाय तो परलोकमें हित चाहनेवाले गृहस्थको अन्नके द्वारा उसका सत्कार करना चाहिये। जो (किसी भिक्षुकके भयसे) अपने घरका दरवाजा बंद करके खुशी-खुशी भोजन करता है, उसने मानो अपने लिये स्वर्गका दरवाजा बंद कर दिया है। जो देवताओं, पितरों, ऋषियों, ब्राह्मणों, अतिथियों और निराश्रय मनुष्योंको अन्नसे तृप्त करता है उसको महान् पुण्यफलकी प्राप्ति होती है। जिसने अपने जीवनमें बहुत-से पाप किये हों, वह भी यदि याचक ब्राह्मणको विशेषरूपसे अन्न-दान करता है तो सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। संसारमें अन्न देनेवाला पुरुष प्राणदाता माना जाता है और जो प्राणदाता है, वही सब कुछ देनेवाला है। अतः कल्याण चाहनेवाले पुरुषको अन्नका दान विशेषरूपसे करना चाहिये। अन्नको अमृत कहते हैं और अन्न ही प्रजाको जन्म देनेवाला माना गया है। अन्नके नाश होनेपर शरीरके पाँचों धातुओंका नाश हो जाता है। बलवान् पुरुष



भी यदि अन्नका त्याग कर दे तो उसका बल नष्ट हो जाता है। इसलिये श्रद्धासे हो या अश्रद्धासे, अधिक चेष्टा करके अन्न-दान देना चाहिये। सूर्य अपनी किरणोंसे पृथ्वीका सारा रस खींचते हैं और हवा उसे लेकर बादलोंमें स्थापित कर देती है। बादलोंमें पड़े हुए उस रसको इन्द्र पुनः इस पृथ्वीपर बरसाते हैं, उससे आप्लावित होकर पृथ्वी तृप्त होती है और उसमेंसे अन्नके पौधे उगते हैं, जिनसे सम्पूर्ण प्रजाका जीवन-निर्वाह होता है। इस प्रकार सूर्य, वायु, मेघ और इन्द्र—ये एक ही समुदायके अन्तर्गत हैं, जिनसे सम्पूर्ण भूतोंका प्रादुर्भाव हुआ है। आकाशमें इन महात्माओंके अनेकों दिव्य भवन हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकारसे बने हुए और पृथक्-पृथक् भूमिपर स्थित हैं। उनमेंसे किसीका चन्द्रमण्डलके समान श्वेत रंग है और किसीका उदयकालीन सूर्यके समान लाल। उन लोकोंमें स्थावर और जङ्गम सभी तरहके प्राणी निवास करते हैं। अन्न-दाताओंको वे ही लोक प्राप्त होते हैं, इसलिये सदा अन्न-दान करते रहना चाहिये।



भोजनकी विधि, गौओंको घास डालनेका विधान और माहात्म्य तथा ब्राह्मणके लिये तिल और गन्ना पेरनेका निषेध

युधिष्ठिरने कहा—मधुसूदन ! अन्न-दानका फल सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है, अब आप भोजनकी विधि बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान्‌ने कहा—पाण्डुनन्दन ! द्विजातियोंके भोजनका जो विधान है, उसे सुनो। श्रेष्ठ द्विजको उचित है कि वह स्नान करके पवित्र हो शुद्ध और एकान्त स्थानमें बैठकर अग्निमें होम करे। फिर ब्राह्मण हो तो चौकोना, क्षत्रिय हो तो गोलाकार और वैश्य हो तो अर्धचन्द्राकार मण्डल बनावे। उसके बाद पैर धोकर उसी मण्डलमें बिछे हुए शुद्ध आसनके ऊपर पूर्वाभिमुख होकर बैठ जाय और दोनों पैरोंसे अथवा एक पैरके द्वारा पृथ्वीका स्पर्श किये रहे। एक वस्त्र पहनकर तथा सारे शरीरको कपड़ेसे ढककर भी भोजन न करे। इसी प्रकार फूटे हुए बर्तनमें तथा उल्टी पत्तलमें भी भोजन करना निषिद्ध है। भोजन करनेवाले पुरुषको प्रसन्नचित्त होकर पहले अन्नको नमस्कार करना चाहिये। अन्नके सिवा दूसरी ओर दृष्टि नहीं डालनी चाहिये तथा भोजन करते समय परोसे हुए अन्नकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। भोजन आरम्भ करनेसे पहले हाथमें जल लेकर उसके द्वारा अन्नकी प्रदक्षिणा करे, फिर मन्त्र पढ़कर पृथक्-पृथक् पाँचों प्राणोंको अन्नकी आहुति दे। अन्न, अन्नाद और पाँचों प्राणोंके तत्त्वको जानकर जो प्राणाग्निहोत्र करता है, उसके द्वारा पञ्चवायुओंका यजन हो जाता है। प्राणोंको आहुति देनेके पश्चात् अपने मुखमें पड़नेलायक एक-एक ग्रास अन्न उठाकर भोजन करे। यदि एक ग्रासका अन्न मुखमें जानेके बाद बच रहे तो वह अपना जूठा कहलाता है। ग्राससे बचे हुए तथा मुँहसे निकले हुए अन्नको अखाद्य समझे और उसे खा लेनेपर चान्द्रायण-व्रतका आचरण करे। जो अपना जूठा खाता है तथा एक बार खाकर छोड़े हुए भोजनको फिर ग्रहण करता है उसको चान्द्रायण, कृच्छ्र अथवा प्राजापत्य-व्रतका आचरण करना चाहिये। जो स्त्रीके भोजन किये हुए पात्रमें भोजन करता है, स्त्रीका जूठा खाता है तथा स्त्रीके साथ एक बर्तनमें भोजन करता है, वह मानो मदिरा पान करता है। तत्त्वदर्शी मुनियोंने उस पापसे छूटनेका कोई प्रायश्चित्त ही नहीं देखा है। यदि पानी पीते-पीते उसकी बूँद मुँहसे निकलकर भोजनमें गिर पड़े तो वह खानेयोग्य नहीं रह जाता। जो उसे खा लेता है, उस पुरुषको चान्द्रायण-व्रतका आचरण करना चाहिये। इसी प्रकार पीनेसे बचा हुआ पानी भी पुनः पीनेके योग्य नहीं रहता। यदि कोई ब्राह्मण मोहवश उसको पी ले तो उसे चान्द्रायणव्रतका आचरण करना चाहिये। ब्राह्मणको उचित है कि वह मौन होकर पृथ्वी या दिशाओंकी ओर न देखते हुए विधिवत् भोजन करे, किसीको अपना जूठा न दे, कभी भी बहुत अधिक अथवा बहुत कम भोजन न करे। प्रतिदिन उतना ही अन्न खाय, जिससे अपनेको कष्ट न हो। भोजन करते समय यदि रजस्वला स्त्री, चाण्डाल, कुत्ता अथवा सूअर दीख जाय तो अन्नको त्याग देना चाहिये। जो मोहवश उस अन्नका त्याग नहीं करता, वह द्विज चान्द्रायण-व्रतका अधिकारी है। जिस भोजनमें बाल या कोई कीड़ा पड़ा हो, जिसे मुँहसे फूँककर ठंडा किया गया हो, उसको अखाद्य समझना चाहिये; ऐसे अन्नको भोजन कर लेनेपर चान्द्रायण-व्रतका आचरण आवश्यक हो जाता है। भोजनके स्थानसे उठ जानेके बाद जिसे फिर छू दिया गया हो, जो पैरसे छू गया या लाँघ दिया गया हो, वह राक्षसके खाने योग्य अन्न है—ऐसा समझकर उसका त्याग कर देना चाहिये। राक्षसके उच्छिष्ट भागको ग्रहण करनेवाला ब्राह्मण अपनी सात पीढ़ी पहलेके पितरों और सात पीढ़ीतक आनेवाली संतानोंको घोर रौरव नरकमें गिराता है। भोजन समाप्त होनेपर, जिसमें भोजन किया हो उस पात्रमें आचमन करना चाहिये। यदि आचमन किये बिना ही भोजन करनेवाला द्विज भोजनके आसनसे उठ जाय तो उसे तुरंत स्नान करना चाहिये, अन्यथा वह अपवित्र ही रहता है।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! गौओंके आगे घासकी मुट्ठी डालनेका विधान और माहात्म्य क्या है तथा गन्नेसे चन्द्रमाकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है—यह बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान्‌ने कहा—राजन् ! बैलोंको जगत्‌का पिता समझना चाहिये और गौएँ संसारकी माताएँ हैं; उनकी पूजा करनेसे सम्पूर्ण पितरों और देवताओंकी पूजा हो जाती है। जिनके गोबरसे लीपनेपर सभा-भवन, पौसले, घर और देवमन्दिर भी शुद्ध हो जाते हैं, उनसे बढ़कर और कौन प्राणी हो सकता है? जो मनुष्य एक सालतक स्वयं भोजन करनेके पहले प्रतिदिन दूसरेकी गायको मुट्ठीभर घास खिलाया करता है, उसको प्रत्येक समय गौकी सेवा करनेका फल प्राप्त होता है। (गौके आगे घासकी मुट्ठी

डालनेका विधान इस प्रकार है—) गोमाताके सामने घास रखकर इस प्रकार कहना चाहिये—'संसारकी समस्त गौएँ मेरी माताएँ और सम्पूर्ण वृषभ मेरे पिता हैं। गोमाताओ ! मैंने तुम्हारी सेवामें यह घासकी मुट्ठी अर्पण की है, इसे स्वीकार करो।' * यह मन्त्र पढ़कर अथवा गायत्रीका उच्चारण करके एकाग्रचित्तसे घासको अभिमन्त्रित करके गौको खिला दे; ऐसा करनेसे जिस पुण्यफलकी प्राप्ति होती है, उसे सुनो। उस पुरुषने जान-बूझकर या अनजानमें जो-जो पाप किये होते हैं, वह सब नष्ट हो जाते हैं तथा उसको कभी बुरे स्वप्न नहीं दिखायी देते। तिल बड़े पवित्र और पापनाशक होते हैं; भगवान् नारायणसे उनकी उत्पत्ति हुई है; इसलिये श्राद्धमें तिलकी बड़ी प्रशंसा की गयी है और तिलका दान अत्यन्त उत्तम दान बताया गया है। तिल दान करे, तिल भक्षण करे और सबेरे तिलका उबटन लगाकर स्नान करे तथा सदा ही अपने मुँहसे 'तिल-तिल'का उच्चारण किया करे; क्योंकि तिल सब पापोंको नष्ट करनेवाले होते हैं। द्विजातियोंको तिल खरीदकर या दानमें लेकर बेचना नहीं चाहिये। जो तिलोंका भोजन करने, उबटन लगाने और दान देनेके अतिरिक्त और किसी काममें उपयोग करता है, वह कीड़ा होकर अपने पितरोंके साथ कुत्तेकी विष्ठामें डूबता है। ब्राह्मणको स्वयं तिल पेरनेकी मशीनमें तिल डालकर तेल नहीं पेरना चाहिये। जो मोहवश स्वयं ही तिल पेरता है, वह रौरव नरकमें पड़ता है। चन्द्रमा इक्षु (गन्ने) के वंशमें उत्पन्न हुआ है और ब्राह्मण चन्द्रमाके वंशमें उत्पन्न हुए हैं, इसलिये ब्राह्मणको कोल्हूमें गन्ना नहीं पेरना चाहिये। यदि ब्राह्मण गन्ना पेरता है तो उसे एक-एक गन्नेके लिये एक-एक ब्रह्महत्याका दोष लगता है।



आपद्धर्म, श्रेष्ठ और निन्द्य ब्राह्मण, श्राद्धका उत्तम काल और मानव-धर्म-सारका वर्णन

युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! आपकी कृपासे मैंने सब धर्मोंका संग्रह सुन लिया तथा यह भी मालूम हो गया कि कौन-सा अन्न भोजनके योग्य है और कौन नहीं है। अब कृपा करके आपद्धर्मका वर्णन कीजिये।

भगवान्ने कहा—राजन् ! जब देशमें अकाल पड़ा हो, राष्ट्रके ऊपर कोई आपत्ति आयी हो, जन्म या मृत्युका सूतक हो तथा कड़ी धूपमें रास्ता चलना पड़ा हो और इन सब कारणोंसे नियमका निर्वाह न हो सके तथा दूरका मार्ग तै करनेके कारण विशेष थकावट आ गयी हो, उस अवस्थामें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके न मिलनेपर शूद्रसे भी जीवन-निर्वाहके लिये थोड़ा-सा कच्चा अन्न (सीधा) लिया जा सकता है। रोगी, दुःखी, पीड़ित और भूखा ब्राह्मण यदि भोजन-सम्बन्धी नियमका पालन न कर सके तो भी उसे प्रायश्चित्त नहीं लगता। जल, मूल, घी, दूध, हवि, ब्राह्मणकी इच्छा पूर्ण करना, गुरुकी आज्ञाका पालन और ओषधि—इन आठोंके सेवनसे व्रतका भंग नहीं होता। जो मनुष्य विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करनेमें असमर्थ हो, वह विद्वानोंके वचनसे तथा दानके द्वारा भी शुद्ध हो सकता है। परदेशमें रहनेवाला पुरुष यदि कुछ कालके लिये घर आवे तो वह ऋतुकालमें तथा उससे भिन्न समयमें भी, रातमें तथा दिनमें भी अपनी स्त्रीके साथ समागम करनेपर प्रायश्चित्तका भागी नहीं होता।

युधिष्ठिरने पूछा—देवेश्वर ! कैसे ब्राह्मण प्रशंसाके योग्य होते हैं और कैसे निन्दाके योग्य तथा अष्टका-श्राद्धका कौन-सा समय है—यह मुझे बताइये।

भगवान्ने कहा—राजन् ! उत्तम कुलमें उत्पन्न, शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले, विद्वान्, दयालु, श्रीसम्पन्न, सरल और सत्यवादी—ये सभी ब्राह्मण सुपात्र (प्रशंसाके योग्य) माने जाते हैं। ये आगेके आसनपर बैठकर सबसे पहले भोजन करनेके अधिकारी हैं तथा उस पंक्तिमें जितने लोग बैठे होते हैं, उन सबको ये अपने दर्शनमात्रसे पवित्र कर देते हैं। जो श्रेष्ठ ब्राह्मण मेरे शरणागत भक्त हों, उन्हें पङ्क्तिपावन समझो। वे विशेषरूपसे पूजा करनेके योग्य हैं। अब निन्दाके योग्य ब्राह्मणोंका वर्णन सुनो। जो ब्राह्मण संसारमें कपटपूर्ण बर्ताव करते हैं, वे वेदोंके पारगामी विद्वान् होनेपर भी पापाचारी ही माने जाते हैं। जो अग्निहोत्र और स्वाध्याय न करता हो, सदा दान लेनेकी ही रुचि रखता हो और जहाँ कहीं भी भोजन कर लेता हो, उसको ब्राह्मण जातिका कलंक समझना चाहिये। जिसका शरीर मरणाशौचका अन्न खाकर मोटा हुआ हो, जो शूद्रका अन्न भोजन करता हो और शूद्रके ही अन्नके रससे पुष्ट हुआ हो, वह ब्राह्मण प्रतिदिन स्वाध्याय, जप और होम करनेपर भी उत्तम गतिको नहीं प्राप्त होता। जो ब्राह्मण प्रतिदिन अग्निहोत्र करनेपर भी शूद्रके अन्नसे बचा न रहता हो, उसके आत्मा, वेदाध्ययन और तीनों अग्नि—इन

* गावो मे मातरः सर्वाः पितरश्चैव गोवृषाः। ग्रासमुष्टिं मया दत्तं प्रतिगृह्णीत मातरः॥

पाँचोंका नाश हो जाता है। शूद्रकी सेवा करनेवाले ब्राह्मणको खानेके लिये जमीनपर ही अन्न डाल देना चाहिये; क्योंकि वह कुत्ते और गीदड़के ही समान होता है। जो ब्राह्मण मूर्खतावश मरे हुए शूद्रके शवके पीछे-पीछे श्मशानभूमिमें जाता है, उसको तीन रातका अशौच लगता है। तीन रात पूर्ण होनेपर यदि किसी समुद्रमें मिलनेवाली नदीके भीतर स्नान करके सौ बार प्राणायाम करे और घी पीवे तो वह शुद्ध होता है। जो श्रेष्ठ द्विज किसी अनाथ ब्राह्मणके शवको श्मशानमें ले जाते हैं, उन्हें पग-पगपर अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है तथा वे जलमें स्नान करनेमात्रसे तत्काल शुद्ध हो जाते हैं। निवृत्तिमार्गपरायण ब्राह्मणको शूद्रके घरमें दूध या दही भी नहीं खाना चाहिये। उसे भी शूद्रान्न ही समझना चाहिये। अत्यन्त भूखे होनेके कारण अन्नकी इच्छावाले ब्राह्मणोंके भोजनमें जो मनुष्य विघ्न डालता है, उससे बढ़कर पापी दूसरा कोई नहीं है।

राजन्! यदि ब्राह्मण शील और सदाचारसे रहित हो जाय तो छहों अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेद, सांख्य, पुराण और उत्तम कुलका जन्म—ये सब मिलकर भी उसे सद्‌गति नहीं दे सकते। ग्रहणके समय, विषुव योगमें, अयन समाप्त होनेपर, पितृ-कर्म (श्राद्ध आदि) में, मघा-नक्षत्रमें, अपने यहाँ पुत्रका जन्म होनेपर तथा गयामें पिण्डदान करते समय जो थोड़ा-सा भी दान दिया जाता है, वह एक हजार स्वर्णमुद्राके दान देनेके समान होता है। वैशाख मासकी शुक्ला तृतीया, कार्तिक शुक्लपक्षकी नवमी, भाद्रपद मासकी कृष्णा त्रयोदशी, माघकी अमावास्या, चन्द्रमा और सूर्यका ग्रहण तथा उत्तरायण और दक्षिणायनके प्रारम्भिक दिन—ये श्राद्धके उत्तम काल हैं। इन दिनोंमें मनुष्य पवित्रचित्त होकर यदि पितरोंके लिये तिलमिश्रित जलका भी दान कर दे तो उसके द्वारा एक हजार वर्षतक श्राद्ध करनेकी आवश्यकता पूर्ण हो जाती है। यह रहस्य स्वयं पितरोंका बतलाया हुआ है। जो मनुष्य स्नेह या भयके कारण अथवा धन पानेकी इच्छासे एक पङ्क्तिमें बैठे हुए लोगोंको भोजन-परोसनेमें भेद करता है उसे विद्वान् पुरुष क्रूर, दुराचारी, अजितात्मा और ब्रह्महत्यारा बतलाते हैं। जिनके पास धनका भंडार भरा हुआ है और जो परलोकके विषयमें कुछ भी न जाननेके कारण सदा भोग-विलासमें ही रम रहे हैं, वे केवल दैहिक सुखमें ही आसक्त हैं; उनके लिये इस लोकका ही सुख सुलभ है। पारलौकिक सुख तो उन्हें कभी नसीब नहीं होता। जो विषयोंकी आसक्तिसे मुक्त होकर तपस्यामें संलग्न रहते, नित्य स्वाध्याय करते, इन्द्रियोंको वशमें रखते और समस्त प्राणियोंके हित-साधनमें लगे रहते हों, उनके लिये इस लोकका भी सुख सुलभ है और परलोकका भी। परंतु जो मूर्ख न विद्या पढ़ते हैं, न तप करते हैं, न दान देते और न अन्य सुखभोगोंका ही अनुभव कर पाते हैं, उनके लिये न इस लोकमें सुख है न परलोकमें।

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आप साक्षात् नारायण, पुरातन ईश्वर और सम्पूर्ण जगत्‌के निवासस्थान हैं। आपको नमस्कार है। अब मैं सम्पूर्ण धर्मोंका सार श्रवण करना चाहता हूँ।

भगवान्‌ने कहा—महाप्राज्ञ! मनुजीने जो धर्मके सारतत्त्वका वर्णन किया है, वह पुराणोंके अनुकूल और वेदके द्वारा समर्पित है। उसीका मैं वर्णन करता हूँ, सुनो। अग्निहोत्री द्विज, कपिला, गौ, यज्ञ करनेवाला पुरुष, राजा, संन्यासी और महासागर—ये दर्शनमात्रसे मनुष्यको पवित्र कर देते हैं, इसलिये सदा इनका दर्शन करना चाहिये। एक गौ एकको ही दानमें देनी चाहिये, बहुतोंको नहीं (बहुतोंको देनेपर वे उस गौको बेचकर आपसमें उसकी कीमत बाँट लेते हैं) यदि वह गौ बेच दी गयी तो वह दाताकी सात पीढ़ियोंको भस्म कर देती है। एक गौ, एक वस्त्र, एक शय्या और एक स्त्रीको कभी अनेक मनुष्योंके अधिकारमें नहीं देना चाहिये; क्योंकि वैसा करनेपर उस दानका फल दाताको नहीं मिलता। यदि ब्राह्मण और गौ अनार्य मनुष्योंके घरमें स्वयं जाकर आहार ग्रहण करें तो उन अनार्योंको राजसूययज्ञसे भी बढ़कर पुण्य होता है। जो ब्राह्मणको और गौको आहार देते समय किसीको 'मत दो' कहकर मना करता है, वह सौ बार पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेकर अन्तमें चाण्डाल होता है। ब्राह्मणका, देवताका, दरिद्रका और गुरुका धन यदि चुरा लिया जाय तो वह स्वर्गवासियोंको भी नीचे गिरा देता है। जो धर्मका तत्त्व जानना चाहते हैं, उनके लिये वेद मुख्य प्रमाण हैं, धर्मशास्त्र दूसरा प्रमाण है और लोकाचार तीसरा प्रमाण है। पूर्वसमुद्रसे लेकर पश्चिम समुद्रतक और हिमालय तथा विन्ध्याचलके बीचका जो देश है, उसे आर्यावर्त कहते हैं। सरस्वती और दृषद्वती—इन दोनों देवनदियोंके बीचका जो देवताओंद्वारा रचा हुआ देश है, उसे ब्रह्मावर्त कहते हैं। जिस देशमें चारों वर्णों तथा उनके अवान्तर भेदोंका जो आचार पूर्वपरम्परासे चला आता है, वही उनके लिये सदाचार कहलाता है। कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पञ्चाल और शूरसेन—ये ब्रह्मर्षियोंके देश हैं और ब्रह्मावर्तके समीप हैं। इस देशमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंके पास जाकर भूमण्डलके सम्पूर्ण मनुष्योंको अपने-अपने आचारकी शिक्षा लेनी चाहिये। हिमालय और विन्ध्याचलके बीचमें कुरुक्षेत्रसे पूर्व और प्रयागसे पश्चिमका जो देश है, वह मध्यदेश कहलाता है।

जिस देशमें कृष्णसार नामक मृग स्वभावतः विचरा करता है, वही यज्ञके लिये उपयोगी देश है; उससे भिन्न म्लेच्छोंका देश है। इन देशोंका परिचय प्राप्त करके द्विजातियोंको इन्हींमें निवास करना चाहिये; किंतु शूद्र जीविका न मिलनेपर निर्वाहके लिये किसी भी देशमें निवास कर सकता है। सदाचार, अहिंसा, सत्य, शक्तिके अनुसार दान तथा यम और नियमोंका पालन—ये मुख्य धर्म हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंका गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टिपर्यन्त सब संस्कार वेदोक्त विधियों और मन्त्रोंके अनुसार कराना चाहिये; क्योंकि संस्कार इहलोक और परलोकमें भी पवित्र करनेवाला है। गर्भाधान-संस्कारमें किये जानेवाले हवनके द्वारा और जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकरण, यज्ञोपवीत, वेदाध्ययन, वेदोक्त व्रतोंके पालन, स्नातकके पालनेयोग्य व्रत, विवाह, पञ्चमहायज्ञोंके अनुष्ठान तथा अन्यान्य यज्ञोंके द्वारा इस शरीरको परब्रह्मकी प्राप्तिके योग्य बनाया जाता है। जिससे न धर्मका लाभ होता हो न अर्थका तथा विद्या-प्राप्तिके अनुकूल जो सेवा भी नहीं करता हो, उस शिष्यको विद्या नहीं पढ़ानी चाहिये, ठीक उसी तरह जैसे ऊसर खेतमें उत्तम बीज नहीं बोया जाता। जिस पुरुषसे लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हुआ हो, उस गुरुको पहले प्रणाम करना चाहिये। अपने दाहिने हाथसे गुरुका दाहिना चरण और बायें हाथसे उनका बायाँ चरण पकड़कर प्रणाम करना चाहिये। गुरुको एक हाथसे कभी प्रणाम नहीं करना चाहिये। जो गर्भाधान आदि सब संस्कार विधिवत् कराता और वेद पढ़ाता है, वह ब्राह्मण गुरु कहलाता है। जो उपनयन-संस्कार करके कल्प और रहस्योंसहित वेदोंका नित्य अध्ययन कराता है, उसे उपाध्याय कहते हैं। जो षडङ्गयुक्त वेदोंको पढ़ाकर वैदिक व्रतोंकी शिक्षा देता और मन्त्रार्थोंकी व्याख्या करता है, वह आचार्य कहलाता है। गौरवमें दस उपाध्यायोंसे बढ़कर एक आचार्य, सौ आचार्योंसे बढ़कर पिता और सौ पितासे भी बढ़कर माता हैं; किंतु जो ज्ञान देनेवाले गुरु हैं, वे इन सबकी अपेक्षा अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। गुरुसे बढ़कर न कोई हुआ, न होगा; इसलिये मनुष्यको उपर्युक्त गुरुजनोंके अधीन रहकर उनकी सेवा-शुश्रूषामें लगे रहना चाहिये। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि गुरुजनोंके अपमानसे नरकमें गिरना पड़ता है। जो लोग किसी अङ्गसे हीन हों, जिनका कोई अङ्ग अधिक हो, जो विद्यासे हीन, अवस्थाके बूढ़े, रूप और धनसे रहित तथा जातिसे भी नीच हों, उनपर आक्षेप नहीं करना चाहिये; क्योंकि आक्षेप करनेवाले मनुष्यका पुण्य, जिसका आक्षेप किया जाता है, उसके पास चला जाता है और उसका पाप आक्षेप करनेवालेके पास चला आता है। नास्तिकता, वेद और देवताओंकी निन्दा, द्वेष, दम्भ, अभिमान, क्रोध तथा कठोरता—इनका परित्याग कर देना चाहिये।



अग्निके स्वरूप, अग्निहोत्रकी विधि तथा उसके माहात्म्यका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—देवदेवेश्वर! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको किस प्रकार हवन करना चाहिये? अग्निके कितने भेद हैं? उनके पृथक्-पृथक् स्वरूप क्या हैं? किस अग्निका कहाँ स्थान है? अग्निहोत्री पुरुष किस अग्निमें हवन करके किस लोकको प्राप्त होता है? पूर्वकालमें अग्निहोत्रका निमित्त क्या था। देवताओंके लिये किस प्रकार हवन किया जाता है और कैसे उनकी तृप्ति होती है? अग्निहोत्रीको किस गतिकी प्राप्ति होती है? यदि तीनों अग्नियोंके स्वरूपको न जानकर उनमें अविधिपूर्वक हवन किया जाय अथवा उनकी उपासनामें त्रुटि रह जाय तो वे त्रिविध अग्नि अग्निहोत्रीका क्या अनिष्ट करते हैं? तथा जिसने अग्निका परित्याग कर दिया हो, वह पापात्मा किस योनिमें जन्म लेता है? ये सारी बातें संक्षेपमें मुझे सुनाइये; क्योंकि मैं भक्ति-भावसे आपकी शरणमें आया हूँ। भगवन्! आप सर्वज्ञ हैं, सबसे महान् हैं; अतः आपको मैं नमस्कार करता हूँ।

भगवान्‌ने कहा—राजन्! इस महान् पुण्यदायक और परम धर्मरूपी अमृतका वर्णन सुनो—यह धर्मपरायण अग्निहोत्री ब्राह्मणोंको भवसागरसे पार कर देता है। मैंने सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्मारूपसे सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि की और लोगोंकी भलाईके लिये अपने मुखसे सर्वप्रथम अग्निको प्रकट किया। इस प्रकार अग्नितत्त्व मेरे द्वारा सब भूतोंके आगे उत्पन्न हुआ है, इसलिये पुराणोंके ज्ञाता मनीषी विद्वान् उसे अग्नि कहते हैं। समस्त कार्योंमें सबसे आगे प्रज्वलित आगमें ही आहुति दी जाती है, इसलिये इसका नाम अग्नि है। यह भलीभाँति पूजित होनेपर ब्राह्मणोंको अग्रय गति (परमपद) की प्राप्ति कराता है, इसलिये भी देवताओंमें अग्निके नामसे विख्यात है। यदि इसमें विधिका उल्लङ्घन करके हवन किया जाय तो यह एक क्षणमें ही यजमानको खा जानेकी शक्ति रखता है, इसलिये अग्निको क्रव्याद कहा गया है। यह अग्नि सम्पूर्ण भूतोंका स्वरूप और

देवताओंका मुख है। अन्न पचानेके कारण इसे पचन कहते हैं। इसकी उपासना होती है, इसलिये यह औपासन कहा गया है। 'आहुति' शब्दसे सबका बोध होता है; उस सर्वस्वरूप आहुतिमें अग्निका आवसथ—निवास है, अतः ब्रह्मवादी पुरुषोंने उसे 'आवसथ्य' बतलाया है। जिस ब्राह्मणके यहाँ धर्मके अनुसार पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान होता है, वह चन्द्रमण्डलके मध्यमें होकर ऊर्ध्वगतिको प्राप्त होता है। इन्द्रियों और मन-बुद्धिपर संयम रखनेवाले सिद्ध सप्तर्षिगण अग्निकी आराधनामें तत्पर रहनेके कारण ही देवताओंके स्वरूपको प्राप्त हुए हैं। दूसरे विद्वान् आवसथ्य अग्निको ही पचनाग्नि कहते हैं; क्योंकि उसीमें पञ्चमहायज्ञोंकी स्थिति है। स्थालीपाक तथा गृह्यकर्म सब इसीमें प्रतिष्ठित हैं। गृह्यकर्मका आधार होनेके कारण इसे गृहपति भी कहते हैं। कुछ ब्रह्मवेत्ताओंके मतमें औपासन, आवसथ्य, सभ्य और पचन नामक अग्नि भी यही है। ऐसा ही मेरा भी मत है।

राजन्! अब एकाग्रचित्त होकर अग्निहोत्रका प्रकार सुनो। गुणके अनुसार नाम धारण करनेवाले जो त्रिविध अग्नि हैं, उनके सम्बन्धमें यहाँ कुछ बातें बतायी जाती हैं। गृहोंका आधिपत्य ही गृहपत्य माना गया है। यह गृहपत्य जिस अग्निमें प्रतिष्ठित है, वही गार्हपत्य अग्निके नामसे प्रसिद्ध है। जो अग्नि यजमानको दक्षिण मार्गसे स्वर्गमें ले जाता है, उसे ब्राह्मणलोग दक्षिणाग्नि कहते हैं। 'आहुति' शब्द सर्वका वाचक है और हवन नाम है हव्यका। सब प्रकारके हव्यको स्वीकार करनेवाला वह्नि आहवनीय अग्नि कहलाता है। जिस आवसथ्य नामक मूल अग्निमें ब्राह्मण विधिपूर्वक हवन करता है, उसीको पचनाग्नि भी कहते हैं। उन अग्नियोंकी सभामें स्थित रहनेवाला एक और अग्नि है, जो सभ्य कहलाता है। आवसथ्य नामवाला जो प्रथम अग्नि है, वह प्रजापतिका स्वरूप है। गार्हपत्य अग्नि ब्रह्माका स्वरूप है; क्योंकि ब्रह्माजीसे ही उसका प्रादुर्भाव हुआ है और यह दक्षिणाग्नि रुद्रस्वरूप है। होमके आरम्भसे लेकर अन्ततक जिसके मुखमें आहुति डाली जाती है, वह आहवनीय अग्नि स्वयं मैं हूँ, सभ्य नामक जो पञ्च अग्नि है, वह स्वामी कार्तिकेयका स्वरूप है। पृथ्वी गार्हपत्याग्नि, अन्तरिक्ष दक्षिणाग्नि और स्वर्ग आहवनीयाग्नि है। इस प्रकारके अग्निके तीन भेद माने गये हैं। गार्हपत्य अग्नि गोलाकार है; क्योंकि उसकी स्वरूपभूता पृथ्वी गोल है। अन्तरिक्षका आकार अर्धचन्द्रके समान है, इसलिये दक्षिणाग्नि भी वैसा ही माना गया है। स्वर्गलोक निर्मल, निरामय और चौकोना है, इसलिये आहवनीय अग्नि भी चौकोना ही बतलाया गया है। जो गार्हपत्य-अग्निमें हवन करता है, वह पृथ्वीपर विजय पाता है। दक्षिणाग्निमें हवन करनेवाला पुरुष अन्तरिक्षको जीत लेता है, किन्तु जो मनुष्य भक्तियुक्त चित्तसे प्रतिदिन आहवनीय अग्निमें हवन करता है वह पृथ्वी, अन्तरिक्ष और ऋषियोंसहित स्वर्गलोकपर भी अधिकार प्राप्त कर लेता है।

यज्ञोंमें सब ओरसे अग्निके मुखमें हवन किया जाता है, इसलिये वह अत्यन्त कान्तिमान् अग्नि 'आहवनीय' संज्ञाको प्राप्त होता है। अग्निहोत्र अथवा अन्यान्य यज्ञोंमें होमके आरम्भसे ही अग्निके भीतर आहुति डाली जाती है, इसलिये भी उसे आहवनीय कहते हैं। जो द्विज आवसथ्य नामक मूल अग्निमें विधिवत् हवन करता है, वह अपनी पत्नीके साथ सप्तर्षिलोकमें जाकर आनन्द भोगता है तथा वह समस्त अग्नियोंका प्रिय हो जाता है। आवसथ्य अग्निमें जो होम किया जाता है, उसको अग्निहोत्र कहते हैं। वह 'हो' अर्थात् दुःखसे यजमानका त्राण करता है, इसलिये अग्निहोत्र कहा गया है। आत्मवेत्ता विद्वानोंने आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—ये तीन प्रकारके दुःख बतलाये हैं। विधिवत् होम करनेपर अग्नि इन तीनों प्रकारके दुःखोंसे यजमानका त्राण करता है, इसलिये उस कर्मको वेदमें अग्निहोत्र नाम दिया गया है। विश्वविधाता ब्रह्माजीने ही सबसे पहले अग्निहोत्रको प्रकट किया। वेद और अग्निहोत्र स्वतः उत्पन्न हुए हैं—इनका दूसरा कोई कर्ता नहीं है। वेदाध्ययनका फल अग्निहोत्र है (अर्थात् वेद पढ़कर जिसने अग्निहोत्र नहीं किया, उसका वह अध्ययन निष्फल है)। शास्त्रज्ञानका फल शील और सदाचार है, स्त्रीका फल रति और पुत्र है तथा धनकी सफलता दान और उपभोग करनेमें है। तीनों वेदोंके मन्त्रोंके संयोगसे अग्निहोत्रकी प्रवृत्ति होती है। ऋक्, यजुः और सामवेदके पवित्र मन्त्रों तथा मीमांसा-सूत्रोंके द्वारा अग्निहोत्रकर्मका प्रतिपादन किया जाता है।

वसन्त ऋतुको ब्राह्मणका स्वरूप समझना चाहिये तथा वह वेदकी योनिरूप है, इसलिये ब्राह्मणको वसन्त ऋतुमें अग्निकी स्थापना करनी चाहिये। जो वसन्त ऋतुमें अग्न्याधान करता है, उस ब्राह्मणकी श्रीवृद्धि होती है तथा उसका वैदिक ज्ञान भी बढ़ता है। क्षत्रियके लिये ग्रीष्म ऋतुमें अग्न्याधान करना श्रेष्ठ माना गया है। जो क्षत्रिय ग्रीष्म ऋतुमें अग्नि-स्थापना करता है, उसकी सम्पत्ति, प्रजा, पशु, धन, तेज, बल और यशकी अभिवृद्धि होती है। शरत्कालकी रात्रि साक्षात् वैश्यका स्वरूप है, इसलिये वैश्यको शरद् ऋतुमें अग्निका आधान करना चाहिये। जो वैश्य शरद् ऋतुमें अग्निस्थापना करता है उसकी सम्पत्ति, प्रजा, आयु, पशु और धनकी वृद्धि होती है।

सब प्रकारके रस, घी आदि स्निग्ध पदार्थ, सुगन्धित द्रव्य, रत्न, मणि, सुवर्ण और लोहा—इन सबकी उत्पत्ति अग्निहोत्रके ही लिये हुई है। अग्निहोत्रको ही जाननेके लिये आयुर्वेद, धनुर्वेद, मीमांसा, विस्तृत न्यायशास्त्र और धर्मशास्त्रका निर्माण किया गया है। छन्द, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्यौतिषशास्त्र और निरुक्त भी अग्निहोत्रके ही लिये रचे गये हैं। इतिहास, पुराण, गाथा, उपनिषद् और अथर्ववेदके कर्म भी अग्निहोत्रके ही लिये हैं। तिथि, नक्षत्र, योग, मुहूर्त और करणरूप कालका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये पूर्वकालमें ज्यौतिषशास्त्रका निर्माण हुआ है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंके छन्दका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये तथा संशय और विकल्पके निराकरणपूर्वक उनका तात्त्विक अर्थ समझनेके लिये छन्दःशास्त्रकी रचना की गयी है। वर्ण, अक्षर और पदोंके अर्थका, संधि और लिङ्गका तथा नाम और धातुका विवेक होनेके लिये पूर्वकालमें व्याकरण-शास्त्रका प्रणयन हुआ है। यूप, वेदी और यज्ञका स्वरूप जाननेके लिये, प्रोक्षण और श्रपण (चरु पकाना) आदिकी इतिकर्तव्यताको समझनेके लिये तथा यज्ञ और देवताके सम्बन्धका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये शिक्षा नामक वेदाङ्गकी रचना हुई है। यज्ञके पात्रोंकी शुद्धि, यज्ञसम्बन्धी सामग्रियोंके संग्रह तथा समस्त यज्ञोंके वैकल्पिक विधानोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये कल्पका निर्माण हुआ है। सम्पूर्ण वेदोंमें प्रयुक्त नाम, धातु और विकल्पोंके तात्त्विक अर्थका निश्चय करनेके लिये ऋषियोंने निरुक्तकी रचना की है। यज्ञकी वेदी बनाने तथा अन्य सामग्रियोंको धारण करनेके लिये ब्रह्माजीने पृथ्वीकी सृष्टि की है। समिधा और यूप बनानेके लिये वनस्पतियोंकी रचना की है। जो ब्राह्मण मन्त्रोंका विनियोग, यज्ञिय पदार्थोंका प्रोक्षण, चरु पकाना, दर्श और पौर्णमासके अङ्गभूत अनुयाज और प्रयाज, वायुदेवताका स्तवन, सामवेदके उद्गाताका कर्म, प्रतिप्रस्थाताका कर्म, दक्षिणा, अवभृथस्नान, त्रिकालपूजन, उचित स्थानपर देवताओंको नैवेद्य अर्पण करना, देवताओंका आवाहन, विसर्जन और हविष्य तैयार करने आदि कर्मोंको नहीं जानते, वे अन्धकारसे भरे हुए घोर रौरव नरकमें पड़ते हैं।

सुवर्ण और चाँदी—ये यज्ञके पात्र और कलश बनानेका काम लेनेके लिये पैदा हुए हैं। कुशोंकी उत्पत्ति हवनकुण्डके चारों ओर फैलाने और राक्षसोंसे यज्ञकी रक्षा करनेके लिये हुई है। यज्ञ तथा पूजाका कार्य करनेके लिये ब्राह्मणोंका प्रादुर्भाव हुआ है। सबकी रक्षाके लिये क्षत्रिय-जातिकी सृष्टि की गयी है। कृषि, गो-रक्षा और वाणिज्य आदि जीविकाका साधन जुटानेके लिये वैश्योंकी उत्पत्ति हुई है और तीनों वर्णोंकी सेवाके लिये ब्रह्माजीने शूद्रोंको उत्पन्न किया है। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् अग्निहोत्रके ही लिये रचा गया है। जो मनुष्य अज्ञानान्धकारसे आच्छादित होनेके कारण इस बातको नहीं जानते, वे रौरव नामसे प्रसिद्ध भयानक नरकमें पड़ते हैं तथा उससे छूटनेपर उनका कृमि (कीड़े) की योनिमें जन्म होता है। जो द्विज विधिपूर्वक अग्निहोत्रका सेवन करते हैं उनके द्वारा दान, होम, यज्ञ और अध्यापन—ये समस्त कर्म पूर्ण हो जाते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणोंके द्वारा जो यज्ञ करने, बगीचे लगाने और कुएँ खुदवाने आदिके कार्य होते हैं, उन सबके पुण्यको लेकर मैं सूर्यमण्डलमें स्थापित कर देता हूँ। मेरे द्वारा स्थापित किये हुए संसारके पुण्य और अग्निहोत्रियोंके सुकृतको सूर्यदेव धारण किये रहते हैं। अग्निहोत्री पुरुष स्वर्गमें जाकर अग्निहोत्रके पुण्य-फलका उपभोग करते हैं और सम्पूर्ण भूतोंके प्रलय होनेतक वे देवताओंके समान रूप धारण करके वहाँ निवास करते हैं। कपटपूर्वक वीरोंकी हत्या करनेवाले दुराचारी मनुष्य दरिद्र, अङ्गहीन और रोगी होकर शूद्र-योनिमें जन्म लेते हैं (यही गति अग्निहोत्रका त्याग करनेवालोंकी भी होती है।) इसलिये जो द्विज परदेशमें न रहते हों और ऊर्ध्वगतिको प्राप्त करना चाहते हों, उन्हें प्रतिदिन विधिपूर्वक अग्निहोत्र करना चाहिये। अग्निहोत्रको अपने आत्माके समान समझकर कभी भी उसका अपमान या एक क्षणके लिये भी त्याग नहीं करना चाहिये। जो बाल्यकालसे ही अग्निहोत्रका सेवन करते और शूद्रके अन्नसे सदा दूर रहते हैं, जिनपर क्रोध और लोभका प्रभाव नहीं पड़ता, जो प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके जितेन्द्रियभावसे विधिवत् अग्निहोत्रका अनुष्ठान करते, अतिथिकी सेवामें लगे रहते तथा शान्तभावसे रहकर दोनों समय मेरा ध्यान करते हैं, वे सूर्यमण्डलको भेदकर मेरे परम धामको प्राप्त होते हैं, जहाँसे पुनः इस संसारमें नहीं लौटना पड़ता। वे उदयकालीन सूर्यके समान कान्तिमान् विमानोंपर बैठकर अपनी स्त्रीसहित मेरे लोकमें जाते हैं और बालसूर्यके समान तेजस्वी होकर इच्छानुसार रूप धारण करते तथा जहाँ चाहते, वहाँ विचरते रहते हैं। इतना ही नहीं, ईश्वरीय गुणोंसे सम्पन्न होकर वे वहाँ अपनी मौजके अनुसार क्रीड़ाएँ करते रहते हैं। पाण्डुनन्दन ! अग्निहोत्रियोंकी ऐसी ही विभूति होती है। इस संसारमें कुछ मूर्ख मनुष्य श्रुतिपर दोषारोपण करते हुए उसकी निन्दा करते हैं तथा उसे प्रमाणभूत नहीं मानते; ऐसे लोगोंकी बड़ी दुर्गति होती है। परंतु जो द्विज आस्तिक्यबुद्धिसे युक्त होकर वेदों और इतिहासोंको प्रामाणिक मानते हैं, वे देवताओंका सायुज्य प्राप्त करते हैं।



चान्द्रायण-व्रतकी विधि, उसके करनेके निमित्त तथा महिमाका वर्णन

युधिष्ठिरने कहा—गरुड़ध्वज ! अब आप मुझसे चान्द्रायणकी परम पावन विधिका वर्णन कीजिये।

भगवान्‌ने कहा—पाण्डुनन्दन ! समस्त पापोंका नाश करनेवाले चान्द्रायण-व्रतका यथार्थ वर्णन सुनो। इसके आचरणसे पापी मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य—जो कोई भी चान्द्रायण-व्रतका विधिवत् अनुष्ठान करना चाहते हों, उनके लिये पहला काम यह है कि वे नियमके अंदर रहकर पञ्चगव्यके द्वारा समस्त शरीरका शोधन करें। फिर कृष्णपक्षके अन्तमें मस्तकसहित दाढ़ी-मूँछ आदिका मुण्डन करावें। तत्पश्चात् स्नान करके शुद्ध हो श्वेत वस्त्र धारण करें, कमरमें मूँजकी बनी हुई मेखला बाँधें और पलाशका दण्ड हाथमें लेकर ब्रह्मचारीके व्रतका पालन करते रहें। द्विजको चाहिये कि वह पहले दिन उपवास करके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाको नदियोंके संगमपर, किसी पवित्र स्थानमें अथवा घरपर ही व्रत आरम्भ करे। पहले नित्य-नियमसे निवृत्त होकर एक वेदीपर अग्निकी स्थापना करे और उसमें क्रमशः आधार, आज्यभाग, प्रणव, महाव्याहति और पञ्चवारुण होम करके सत्य, विष्णु, ब्रह्मर्षिगण, ब्रह्मा, विश्वेदेव तथा प्रजापति—इन छः देवताओंके निमित्त हवन करे। अन्तमें प्रायश्चित्तहोम करके हवनका कार्य समाप्त करे। फिर शान्ति और पौष्टिक कर्मका अनुष्ठान करके अग्नि तथा सोमदेवताको प्रणाम करे और विधिपूर्वक शरीरमें भस्म लगाकर नदीके तटपर जा विशुद्धचित्त होकर सोम, वरुण तथा आदित्यको प्रणाम करके एकाग्रभावसे जलमें स्नान करे। इसके बाद बाहर निकलकर आचमन करनेके पश्चात् पूर्वाभिमुख होकर बैठे और प्राणायाम करके कुशकी पवित्रीसे अपने शरीरका मार्जन करे। फिर आचमन करके दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर सूर्यका दर्शन करे और हाथ जोड़कर खड़ा हो सूर्यकी प्रदक्षिणा करे। उस समय नारायण, रुद्र, ब्रह्मा या वरुणसम्बन्धी सूक्तका पाठ करे अथवा वीरघ्न, ऋषभ, अघमर्षण, गायत्री या मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले वैष्णव मन्त्रका जप करे। यह जप सौ बार या एक सौ आठ बार अथवा एक हजार बार करना चाहिये। तदनन्तर, पवित्र एवं एकाग्रचित्त होकर मध्याह्नकालमें यत्नपूर्वक खीर या जौकी लप्सी बनाकर तैयार करे अथवा सोने, चाँदी, ताँबे, मिट्टी या गूलरकी लकड़ीका पात्र अथवा यज्ञके लिये उपयोगी वृक्षोंके हरे पत्तोंका दोना बनाकर हाथमें ले ले और उसको ऊपरसे ढक ले। फिर सावधानतापूर्वक सात ब्राह्मणोंके घरपर जाकर भिक्षा माँगे, सातसे अधिक घरोंपर न जाय। गौ दुहनेमें जितनी देर लगती है उतने ही समयतक एक द्वारपर खड़ा होकर भिक्षाके लिये प्रतीक्षा करे, मौन रहे और इन्द्रियोंपर काबू रखे। भिक्षा माँगनेवाला पुरुष न तो हँसे, न इधर-उधर दृष्टि डाले और न किसी स्त्रीसे बातचीत करे। यदि मल, मूत्र, चाण्डाल, रजस्वला स्त्री, पतित मनुष्य तथा कुत्तेपर दृष्टि पड़ जाय तो सूर्यका दर्शन करे।

तदनन्तर, अपने घर आकर भिक्षापात्रको जमीनपर रख दे और पैरोंको घुटनोंतक तथा हाथोंको दोनों कोहनियोंतक धो डाले। इसके बाद जलसे आचमन करके अग्नि और ब्राह्मणोंकी पूजा करे। फिर उस भिक्षाके पाँच या सात भाग करके उतने ही पिण्ड बना ले। उनमेंसे एक-एक पिण्ड क्रमशः सूर्य, ब्रह्मा, अग्नि, सोम, वरुण तथा विश्वेदेवोंको निवेदन करे और अन्तमें जो एक पिण्ड बच जाय उसको ऐसा बना ले, जिससे वह सुगमतापूर्वक मुँहमें आ सके। फिर पवित्र भावसे पूर्वाभिमुख होकर उस पिण्डको दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंके अग्रभागपर रखकर गायत्री-मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे और तीन अङ्गुलियोंसे ही उसे मुँहमें डालकर खा जाय। जैसे चन्द्रमा शुक्लपक्षमें प्रतिदिन बढ़ता और कृष्णपक्षमें प्रतिदिन घटता रहता है, उसी प्रकार पिण्डोंकी मात्रा भी शुक्लपक्षमें बढ़ती और कृष्णपक्षमें घटती रहती है।* चान्द्रायणव्रत करनेवालेके लिये प्रतिदिन तीन समय, दो समय अथवा एक समय भी स्नान करनेका विधान मिलता है। उसे सदा ब्रह्मचारी रहना चाहिये। दिनमें एक जगह खड़ा न रहे, रातको वीरासनसे बैठे अथवा वेदीपर या वृक्षकी जड़पर सो रहे। वल्कल, रेशम, सन अथवा कपासका वस्त्र धारण करे। इस प्रकार एक महीने बाद चान्द्रायणव्रत पूर्ण होनेपर उद्योग करके भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा दे। चान्द्रायणव्रतके आचरणसे मनुष्यके

---

* अर्थात् शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको एक पिण्ड और द्वितीयाको दो पिण्ड भोजन करना चाहिये। इसी तरह पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास भोजन करके कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे चतुर्दशीतक प्रतिदिन एक-एक ग्रास कम करना चाहिये। अमावास्याको उपवास करनेपर इस व्रतकी समाप्ति होती है। यह एक प्रकारका चान्द्रायण है। स्मृतियोंमें इसके और भी अनेकों प्रकार उपलब्ध होते हैं।

समस्त पाप सूखे काठकी भाँति तुरंत जलकर खाक हो जाते हैं। ब्रह्महत्या, गो-हत्या, सुवर्णकी चोरी, भ्रूण-हत्या, मदिरापान और गुरु-स्त्री-गमन आदि जितने भी पाप या पातक होते हैं, वे चान्द्रायणव्रतसे उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे हवाके वेगसे धूल उड़ जाती है। जिस गौको ब्याये हुए दस दिन भी न हुए हों, उसका दूध तथा ऊँटनी एवं भेड़का दूध पी जानेपर और मरणाशौच तथा जननाशौचका अन्न, उपपातकी तथा पतितका अन्न और शूद्रका जूठा अन्न खा लेनेपर चान्द्रायणव्रतका आचरण करना चाहिये। आकाशमें लटकते हुए वृक्ष आदिके फलोंको, हाथपर रखे हुए, नीचे गिरे हुए तथा दूसरेके हाथपर पड़े हुए अन्नको खा लेनेपर भी चान्द्रायणव्रतका आचरण आवश्यक हो जाता है। बड़े भाईके अविवाहित रहते विवाह करनेवाले छोटे भाईका और अविवाहित बड़े भाईका अन्न, पुजारीका अन्न तथा पुरोहितका अन्न भोजन कर लेनेपर भी चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। मदिरा, आसव, विष, घी, लाख, नमक और तेलकी बिक्री करनेवाले ब्राह्मणको भी चान्द्रायणव्रत करना आवश्यक है। जो द्विज अधिक मनुष्योंकी भीड़में भोजन करता तथा फूटे बर्तनोंमें खाता है, जो उपनयन-संस्कारसे रहित बालक, कन्या और स्त्रीके साथ (एक पात्रमें) भोजन करता है तथा जो मोहवश अपना जूठा दूसरेके भोजनमें मिला देता अथवा दूसरेको देता है, उस ब्राह्मणको भी चान्द्रायणव्रतका आचरण करना चाहिये। यदि द्विज प्याज, गाजर, छत्राक (कुकुरमुत्ते), लहसुन, बासी अन्न, दूसरेके घरसे उठाकर आयी हुई रसोई, मांस तथा रजस्वला स्त्री, कुत्ते अथवा चाण्डालके द्वारा देखा हुआ अन्न खा ले तो उसके लिये चान्द्रायणव्रतका आचरण अनिवार्य हो जाता है। पूर्वकालमें ऋषियोंने आत्मशुद्धिके लिये इस व्रतका आचरण किया था, यह सब प्राणियोंको पवित्र करनेवाला और पुण्यरूप है। जो द्विज इस परम गोपनीय, पवित्र एवं पापनाशक व्रतका अनुष्ठान करता है वह पवित्रात्मा तथा निर्मल सूर्यके समान तेजस्वी होकर स्वर्गलोकको प्राप्त होता है।



सर्वहितकारी धर्मका वर्णन, द्वादशी-व्रतका माहात्म्य तथा युधिष्ठिरके द्वारा भगवान्की स्तुति

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! अब आप मुझसे समस्त प्राणियोंके लिये हितकारी धर्मका वर्णन कीजिये।

भगवान्ने कहा—युधिष्ठिर! जो धर्म दरिद्र मनुष्योंको भी स्वर्ग और सुख प्रदान करनेवाला तथा समस्त पापोंका नाश करनेवाला है, उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। जो मनुष्य एक वर्षतक प्रतिदिन एक समय भोजन करता, ब्रह्मचारी रहता, क्रोधको काबूमें रखता, नीचे सोता और इन्द्रियोंको वशमें रखता है; जो स्नान करके पवित्र रहता, व्यग्र नहीं होता, सत्य बोलता, किसीके दोष नहीं देखता और मुझमें चित्त लगाकर सदा मेरी पूजामें ही संलग्न रहता है; जो दोनों संध्याओंके समय एकाग्रचित्त होकर मुझसे सम्बन्ध रखनेवाली गायत्रीका जप करता, 'नमो ब्रह्मण्यदेवाय' कहकर सदा मुझे प्रणाम किया करता, पहले ब्राह्मणको भोजनके आसनपर बिठाकर भोजन करानेके पश्चात् स्वयं मौन होकर जौकी लप्सी अथवा भिक्षान्नका भोजन करता तथा 'नमोऽस्तु वासुदेवाय' कहकर ब्राह्मणके चरणोंमें प्रणाम करता है; जो प्रत्येक मास समाप्त होनेपर पवित्र ब्राह्मणोंको भोजन कराता और एक सालतक इस नियमका पालन करके ब्राह्मणको इसकी दक्षिणाके रूपमें माखन अथवा तिलकी गौ दान करता है तथा ब्राह्मणके हाथसे सुवर्णयुक्त जल लेकर अपने शरीरपर छिड़कता है, उसके जान-बूझकर या अनजानमें किये हुए दस जन्मोंतकके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं—इसमें तनिक भी अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! सब प्रकारके उपवासोंमें जो सबसे श्रेष्ठ, महान् फल देनेवाला और कल्याणका सर्वोत्तम साधन हो, उसका वर्णन करनेकी कृपा कीजिये।

भगवान्ने कहा—राजन्! जो व्रत मुझे भी अत्यन्त प्रिय है, उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। जो पुरुष स्नान आदिसे पवित्र होकर मेरी पञ्चमीके दिन भक्तिपूर्वक उपवास करता तथा तीनों समय मेरी पूजामें संलग्न रहता है, वह सम्पूर्ण यज्ञोंका फल पाकर मेरे परम धाममें प्रतिष्ठित होता है। अमावस्या और पूर्णिमा—ये दोनों पर्व, दोनों पक्षकी द्वादशी और श्रवणनक्षत्रयुक्त द्वादशी—ये पाँच तिथियाँ मेरी पञ्चमी कहलाती हैं। ये मुझे विशेष प्रिय हैं, अतः श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको उचित है कि वे मेरा विशेष प्रिय करनेके लिये मुझमें चित्त लगाकर इन तिथियोंमें उपवास करें। जो सबमें उपवास न कर सके, वह केवल द्वादशीको ही उपवास करे; इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। जो मार्गशीर्षकी द्वादशीको दिन-रात उपवास करके 'केशव' नामसे मेरी पूजा करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। जो पौष मासकी द्वादशी तिथिको उपवास करके

'नारायण' नामसे मेरा पूजन करता है, वह वाजिमेध-यज्ञका फल पाता है। जो माघकी द्वादशीको उपवास करके 'माधव' नामसे मेरी पूजा करता है, उसे राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। फाल्गुनके महीनेमें द्वादशीको उपवास करके जो 'गोविन्द' के नामसे मेरा अर्चन करता है, उसे अतिरात्र यागका फल मिलता है। चैत्र महीनेकी द्वादशी तिथिको व्रत धारण करके जो 'विष्णु' नामसे मेरी पूजा करता है, वह पुण्डरीक-यज्ञके फलका भागी होता है। वैशाखकी द्वादशीको उपवास करके 'मधुसूदन' नामसे मेरी पूजा करनेवालेको अग्निष्टोम-यज्ञका फल मिलता है। जो मनुष्य ज्येष्ठ मासकी द्वादशी तिथिको उपवास करके 'त्रिविक्रम' नामसे मेरी पूजा करता है, वह गोमेधके फलका भागी होता है। आषाढ़ मासकी द्वादशीको व्रत रहकर 'वामन' नामसे मेरी पूजा करनेवाले पुरुषको नरमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। श्रावणके महीनेमें द्वादशी तिथिको उपवास करके जो 'श्रीधर' नामसे मेरा पूजन करता है, वह पञ्च-यज्ञोंका फल पाता है। भाद्रपद मासकी द्वादशी तिथिको उपवास करके 'हृषीकेश' नामसे मेरा अर्चन करनेवालेको सौत्रामणि-यज्ञका फल मिलता है। आश्विनकी द्वादशीको उपवास करके जो 'पद्मनाभ' नामसे मेरा अर्चन करता है, उसे एक हजार गो-दानका फल प्राप्त होता है। कार्तिक महीनेकी द्वादशी तिथिको व्रत रहकर जो 'दामोदर' नामसे मेरी पूजा करता है, उसको सम्पूर्ण यज्ञोंका फल मिलता है। जो द्वादशीको केवल उपवास ही करता है, उसे पूर्वोक्त फलका आधा भाग ही प्राप्त होता है। इसी प्रकार श्रावणमें भी यदि मनुष्य भक्तियुक्त चित्तसे मेरी पूजा करता है तो वह मेरी सालोक्य मुक्तिको प्राप्त होता है, इसमें तनिक भी अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। उपर्युक्त रूपसे प्रतिमास आलस्य छोड़कर मेरी पूजा करते-करते जब एक साल पूरा हो जाय तो पुनः दूसरे साल भी मासिक पूजन प्रारम्भ कर दे। इस प्रकार मेरी आराधनामें तत्पर होकर जो भक्त बारह वर्षतक बिना किसी विघ्न-बाधाके मेरी पूजा करता रहता है, वह मेरे स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य द्वादशी तिथिको प्रेमपूर्वक मेरी और वेदसंहिताकी पूजा करता है, उसे निःसंदेह पूर्वोक्त फलोंकी प्राप्ति होती है। जो द्वादशी तिथिको मेरे लिये चन्दन, पुष्प, फल, जल, पत्र अथवा मूल अर्पण करता है उसके समान मेरा प्रिय भक्त कोई नहीं है। युधिष्ठिर! इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता उपर्युक्त विधिसे मेरा भजन करनेके कारण ही आज स्वर्गीय सुखका उपभोग कर रहे हैं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार उपदेश देनेपर राजा युधिष्ठिर हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—'हृषीकेश! आप सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी और देवताओंके भी ईश्वर हैं, आपको नमस्कार है। हजारों नेत्र धारण करनेवाले परमेश्वर! आपके सहस्रों मस्तक हैं,आपको मेरा प्रणाम है। वेदत्रयी आपका स्वरूप है, तीनों वेदोंके आप अधीश्वर हैं, वेदत्रयीके द्वारा आपकी ही स्तुति की गयी है; आपको बारंबार नमस्कार है। आप चार भुजाधारी, विश्वरूप, जगत्के अधीश्वर तथा सम्पूर्ण लोकोंके आवासस्थान हैं, आपको मेरा प्रणाम है। नरसिंह! आप ही इस जगत्की सृष्टि और संहार करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। भक्तोंके प्रियतम श्रीकृष्ण! आपको बारंबार प्रणाम है। भक्तवत्सल! आप सम्पूर्ण लोकों और योगियोंके प्रिय हैं, योगियोंके स्वामी हैं। आपने ही हयग्रीव अवतार धारण किया था। चक्रपाणे! आपको बारंबार नमस्कार है।'

धर्मराज युधिष्ठिर जब भक्तिगद्गद वाणीसे इस प्रकार भगवान्की स्तुति करने लगे तो उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक धर्मराजका हाथ पकड़कर उन्हें रोका और इस प्रकार कहा—'राजन्! यह क्या? तुम मेरी स्तुति क्यों करने लगे? इसे बंद करके पहलेके ही समान प्रश्न करो।'

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! कृष्णपक्षमें द्वादशीको आपकी पूजा किस प्रकार करनी चाहिये? इस धर्मयुक्त विषयका वर्णन कीजिये।

भगवान्ने कहा—राजन्! मैं पूर्ववत् तुम्हारे सभी प्रश्नोंका उत्तर देता हूँ, सुनो। कृष्णपक्षकी द्वादशीको मेरी पूजा करनेका बहुत बड़ा फल है। एकादशीको उपवास करके द्वादशीको मेरा पूजन करना चाहिये। उस दिन भक्तियुक्त चित्तसे ब्राह्मणोंका भी पूजन करना उचित है। ऐसा करनेसे मनुष्य दक्षिणामूर्तिको अथवा मुझे प्राप्त होता है।



विषुव योग और ग्रहण आदिमें दानकी महिमा, पीपलका महत्त्व, तीर्थभूत गुणोंकी प्रशंसा और उत्तम प्रायश्चित्त

वैशम्पायनजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार उपदेश देनेपर राजा युधिष्ठिरने पुनः दानके समय और उसकी विशेष विधिके विषयमें प्रश्न किया—'भगवन्! विषुव योगमें तथा सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणके समय दान देनेसे किस फलकी प्राप्ति बतायी गयी है, यह बतलानेकी कृपा करें।'

भगवान्‌ने कहा—राजन्! विषुव योगमें, सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणके समय तथा व्यतीपात योगमें जो दान दिया जाता है, वह अक्षय फल देनेवाला होता है; इस विषयका वर्णन करता हूँ, सुनो। उत्तरायण और दक्षिणायनके मध्यभागमें जब कि रात और दिन बराबर होते हैं, वह समय 'विषुव योग' के नामसे पुकारा जाता है। उस दिन संध्याके समय मैं, ब्रह्मा और महादेवजी क्रिया, करण और कार्योंकी एकतापर विचार करनेके लिये एक बार एकत्रित होते हैं। जिस मुहूर्तमें हमलोगोंका समागम होता है, वह परम पवित्र और विषुवपर्वके नामसे प्रसिद्ध है; उसे अक्षरब्रह्म और परब्रह्म भी कहते हैं। उस मुहूर्तमें सब लोग परम पदका चिन्तन करते हैं। देवता, वसु, रुद्र, पितर, अश्विनीकुमार, साध्यगण, विश्वेदेव, गन्धर्व, सिद्ध, ब्रह्मर्षि, सोम आदि ग्रह, नदियाँ, समुद्र, मरुत्, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस और गुह्यक—ये तथा दूसरे देवता भी विषुवपर्वमें इन्द्रियसंयमपूर्वक उपवास करते और प्रयत्नपूर्वक परमात्माके ध्यानमें संलग्न होते हैं। इसलिये युधिष्ठिर! तुम अन्न, गौ, तिल, भूमि, कन्या, घर, विश्रामस्थान, धन, वाहन, शय्या तथा और जो वस्तुएँ दानके योग्य बतलायी गयी हैं, उन सबका विषुवपर्वमें दान करो। उस समय विशेषतः श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दिये हुए दानका कभी नाश नहीं होता, वह प्रतिदिन बढ़ते-बढ़ते करोड़गुना हो जाता है।

आकाशमें जब चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण लगा हो, उस समय जो मेरी अथवा भगवान् शंकरकी गायत्रीका जप करता तथा भक्तिके साथ शङ्ख, तूर्य, झाँझ और घण्टा बजाता है, उसके पुण्यफलका वर्णन सुनो। मेरे सामने गीत गाने, होम और जप करने तथा मेरे उत्तम नामोंका कीर्तन करनेसे राहु दुर्बल और चन्द्रमा बलवान् होते हैं। सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहण-कालमें श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको जो दान दिया जाता है, वह हजारगुना होकर दाताको मिलता है। महान् पातकी मनुष्य भी उस दानसे तत्काल पापरहित हो जाता है और सुन्दर विमानपर बैठकर चन्द्रलोकमें गमन करता है तथा जबतक आकाशमें चन्द्रमाके साथ तारे मौजूद रहते हैं, तबतक चन्द्रलोकमें वह सम्मानके साथ निवास करता है। फिर समयानुसार वहाँसे लौटनेपर इस संसारमें वह वेद-वेदाङ्गोंका विद्वान् ब्राह्मण होता है।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपकी गायत्रीका जप किस तरह किया जाता है तथा उसका क्या फल होता है—यह बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान्‌ने कहा—राजन्! द्वादशी तिथिको, विषुवपर्वमें, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय, उत्तरायण तथा दक्षिणायनके आरम्भके दिन, श्रवण नक्षत्रमें तथा व्यतीपात योगमें पीपलका तथा मेरा दर्शन होनेपर मेरी गायत्रीका अथवा अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) का जप करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्यके पूर्वोपार्जित पापोंका निःसंदेह नाश हो जाता है।

युधिष्ठिरने पूछा—देव! अब यह बतलाइये कि पीपलका दर्शन आपके दर्शनके समान क्यों माना जाता है; इसे सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है।

भगवान्‌ने कहा—राजन्! मैं ही पीपलके वृक्षके रूपमें रहकर तीनों लोकोंका पालन करता हूँ। जहाँ पीपलका वृक्ष नहीं है, वहाँ मेरा वास नहीं है। जहाँ मैं रहता हूँ, वहाँ पीपल भी रहता है। जो मनुष्य भक्तिभावसे पीपल वृक्षकी पूजा करता है, उसके द्वारा मेरी ही पूजा होती है और जो क्रोध करके पीपलपर प्रहार करता है, वह वास्तवमें मुझको ही अपने प्रहारका लक्ष्य बनाता है; इसलिये पीपलकी सदा प्रदक्षिणा करनी चाहिये, उसको काटना नहीं चाहिये। व्रतका पारण, सरलता, देवताओंकी सेवा, गुरु-शुश्रूषा, पिता-माताकी सेवा, अपनी स्त्रीको संतुष्ट रखना, गृहस्थ-धर्मका पालन करना, अतिथि-सेवामें लगे रहना, वेदका अध्ययन, ब्रह्मचर्यका पालन, आहवनीयादि तीन प्रकारकी अग्नियाँ—ये सब परम पावन सनातन तीर्थ कहे जाते हैं। इन सबका मूल धर्म है—ऐसा जानकर इनमें मन लगाओ तथा तीर्थोंमें जाओ; क्योंकि धर्म करनेसे धर्मकी वृद्धि होती है। दो प्रकारके तीर्थ होते हैं—स्थावर और जङ्गम। स्थावर तीर्थसे जङ्गम तीर्थ श्रेष्ठ है; क्योंकि उससे ज्ञानकी प्राप्ति होती है।

इस लोकमें पुण्यकर्मके अनुष्ठानसे विशुद्ध हुए पुरुषके हृदयमें सब तीर्थ वास करते हैं,इसलिये वह तीर्थस्वरूप कहलाता है। गुरुरूपी तीर्थसे परमात्माका ज्ञान प्राप्त होता है, इसलिये उससे बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है। ज्ञानतीर्थ सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है और ब्रह्मतीर्थ सनातन है।

पाण्डुनन्दन ! समस्त तीर्थोंमें भी क्षमा सबसे बड़ा तीर्थ है। क्षमाशील मनुष्योंको इस लोक और परलोकमें भी सुख मिलता है। कोई मान करे या अपमान, पूजा करे या तिरस्कार अथवा गाली दे या डाँट बतावे। इन सभी परिस्थितियोंमें जो क्षमाशील बना रहता है, वह तीर्थ कहलाता है। क्षमा ही यश, दान, यज्ञ और मनोनिग्रह है।अहिंसा, धर्म, इन्द्रियोंका संयम और दया भी क्षमाके ही स्वरूप हैं। क्षमासे ही सारा जगत् टिका हुआ है; अतः जो ब्राह्मण क्षमावान् है वह देवता कहलाता है, वह सबसे श्रेष्ठ है। क्षमाशील मनुष्यको स्वर्ग, यश और मोक्षकी प्राप्ति होती है; इसलिये क्षमावान् पुरुष साधु कहलाता है। राजन् ! आत्मारूप नदी परम पावन तीर्थ है, यह सब तीर्थोंमें प्रधान है। आत्माको सदा यज्ञरूप माना गया है। स्वर्ग, मोक्ष—सब आत्माके ही अधीन हैं। जो सदाचारके पालनसे अत्यन्त निर्मल हो गया है तथा सत्य और क्षमाके द्वारा जिसमें अतुलनीय शीतलता आ गयी है—ऐसे ज्ञानरूपी जलमें निरन्तर स्नान करनेवाले पुरुषको केवल पानीसे भरे हुए तीर्थकी क्या आवश्यकता है।

युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! अब मुझे कोई ऐसा प्रायश्चित्त बताइये, जो करनेमें सुगम और समस्त पापोंका नाश करनेवाला हो।

भगवान्‌ने कहा—राजन् ! मैं तुम्हें अत्यन्त गोपनीय प्रायश्चित्त बता रहा हूँ। यह अधर्ममें रुचि रखनेवाले पापाचारी मनुष्योंको सुनाने योग्य नहीं है। किसी पवित्र ब्राह्मणको सामने देखनेपर सहसा मेरा स्मरण करे और 'नमो ब्रह्मण्यदेवाय' कहकर भगवद्-बुद्धिसे उन्हें प्रणाम करे। इसके बाद अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करते हुए ब्राह्मणदेवताकी परिक्रमा करे, ऐसा करनेसे ब्राह्मण संतुष्ट होते हैं और मैं उस प्रणाम करनेवाले मनुष्यके सम्पूर्ण पापोंका नाश कर देता हूँ। जो मनुष्य सूर्यग्रहणके समय पूर्ववाहिनी नदीके तटपर जाकर मेरे मन्दिरके निकट दक्षिणावर्त शङ्खके जलसे अथवा कपिला गायके सींगका स्पर्श कराये हुए जलसे एक बार भी स्नान कर लेता है, उसके समस्त संचित पाप एक ही क्षणमें नष्ट हो जाते हैं। जो पूर्णिमाको उपवास करके पञ्चगव्यका पान करता है, उसके भी पूर्वसंचित पाप नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार जो प्रतिमास अलग-अलग मन्त्र पढ़कर संग्रह किये हुए ब्रह्मकूर्चका पान करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। अब मैं ब्रह्मकूर्च और उसके पात्रका वर्णन करता हूँ, सुनो। पलाश या कमलके पत्तेमें अथवा ताँबे या सोनेके बने हुए बर्तनमें ब्रह्मकूर्च रखकर पीना चाहिये। ये ही उसके उपयुक्त पात्र हैं। (ब्रह्मकूर्चकी विधि इस प्रकार है—) गायत्री-मन्त्र पढ़कर गौका मूत्र, 'गन्धद्वारां०' इत्यादि मन्त्रसे गौका गोबर, 'आप्यायस्व०' इस मन्त्रसे गायका दूध, 'दधिक्राव्णः०' इस मन्त्रसे दही, 'तेजोऽसि शुक्रम्०' इस मन्त्रसे घी, 'देवस्य त्वा०' आदि मन्त्रके द्वारा कुशका जल तथा 'आपो हि ष्ठा मयो०' इस ऋचाके द्वारा जौका आटा लेकर सबको एकमें मिला दे और प्रज्वलित अग्निमें ब्रह्माके उद्देश्यसे विधिपूर्वक हवन करके प्रणवका उच्चारण करते हुए उपर्युक्त वस्तुओंका आलोडन और मन्थन करे। फिर प्रणवका उच्चारण करके उसे पात्रमेंसे निकालकर हाथमें ले और प्रणवका पाठ करते हुए ही उसे पी जाय। इस प्रकार ब्रह्मकूर्चका पान करनेसे मनुष्य बड़े-से-बड़े पापसे भी उसी प्रकार छुटकारा पा जाता है, जैसे साँप अपनी केंचुलसे पृथक् हो जाता है। जो मनुष्य जलके भीतर बैठकर अथवा सूर्यके सामने दृष्टि रखकर 'भद्रं नः०' इस ऋचाके एक चरणका या ऋक्संहिताका पाठ करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मुझमें चित्त लगाकर प्रतिदिन मेरे सूक्त (पुरुषसूक्त) का पाठ करता है, वह जलसे निर्लिप्त रहनेवाले कमलके पत्तेकी तरह कभी भी पापसे लिप्त नहीं होता।



उत्तम और अधम ब्राह्मणोंके लक्षण, भक्त, गौ, ब्राह्मण और पीपलकी महिमा तथा ब्राह्मणत्वसे गिरानेवाले कर्म

युधिष्ठिरने पूछा—देवेश्वर ! जिनके भाव शुद्ध हों, वे पुण्यात्मा ब्राह्मण कैसे होते हैं तथा ब्राह्मणको अपने कर्ममें सफलता न मिलनेका क्या कारण है—यह बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान्‌ने कहा—पाण्डुनन्दन ! ब्राह्मणोंका कर्म क्यों सफल होता है और क्यों निष्फल—इन बातोंको मैं क्रमशः बताता हूँ, सुनो। यदि हृदयका भाव शुद्ध न हो तो त्रिदण्ड धारण करना, मौन रहना, जटा रखाना, माथा मुँड़ाना, वल्कल या मृगचर्म पहनना, व्रत और अभिषेक करना, अग्निमें आहुति देना, गृहस्थ-धर्मका पालन करना, स्वाध्यायमें संलग्न रहना और अपनी स्त्रीका सत्कार करना—ये सारे कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। जो क्षमाशील, दमका पालन करनेवाला, क्रोधरहित तथा मन और इन्द्रियोंको जीतनेवाला हो, उसीको मैं श्रेष्ठ ब्राह्मण मानता हूँ। उसके अतिरिक्त जो ब्राह्मण कहलानेवाले लोग हैं, वे सब शूद्र माने गये हैं। जो अग्निहोत्र, व्रत और स्वाध्यायमें लगे रहनेवाले, पवित्र, उपवास करनेवाले और जितेन्द्रिय हैं उन्हीं पुरुषोंको देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। केवल जातिसे किसीकी पूजा नहीं होती, उत्तम गुण ही कल्याण करनेवाले होते हैं। मनःशुद्धि, क्रियाशुद्धि, कुलशुद्धि, शरीरशुद्धि और वाक्-शुद्धि—इस तरह पाँच प्रकारकी शुद्धि बतायी गयी है। इन पाँचों शुद्धियोंमें हृदयकी शुद्धि सबसे बढ़कर है। हृदयकी ही शुद्धिसे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं। जो ब्राह्मण अग्निहोत्रका त्याग करके खरीद-बिक्रीमें लग गया है, वह वर्णसंकरताका प्रचार करनेवाला और शूद्रके समान माना गया है। जिसने वैदिक श्रुतियोंको भुला दिया है तथा जो खेतमें हल जोतता है, अपने वर्णके विरुद्ध काम करनेवाला वह ब्राह्मण वृषल माना गया है। वृष शब्दका अर्थ है धर्म; उसका जो लय करता है, उसको देवतालोग वृषल मानते हैं। वह चाण्डालसे भी नीच होता है। जो पापात्मा मनुष्य ब्रह्मगीता आदिके द्वारा मेरी स्तुति न करके किसी शूद्रका स्तवन करता है, वह चाण्डालके समान है। जैसे कुत्तेकी खालमें रखा हुआ दूध और कुत्तेका चाटा हुआ हविष्य अशुद्ध होता है, उसी प्रकार वृषल मनुष्यकी बुद्धिमें स्थित वेद भी दूषित हो जाता है। चार वेद, छः अङ्ग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण—ये चौदह विद्याएँ हैं। तीनों लोकोंके कल्याणके लिये इनका आविर्भाव हुआ है, अतः शूद्रको इनका स्पर्श नहीं करना चाहिये। शूद्रके सम्पर्कमें आनेवाली सभी वस्तुएँ अपवित्र हो जाती हैं। इस संसारमें तीन अपवित्र और पाँच अमेध्य हैं। कुत्ता, शूद्र और श्वपाक (चाण्डाल)—ये तीन अपवित्र होते हैं तथा अश्लील गायक, मुर्गा, जिसमें वध करनेके लिये पशुओंको बाँधा जाय वह खंभा, रजस्वला स्त्री और वृषल जातिकी स्त्रीसे ब्याह करनेवाला द्विज—ये पाँच अमेध्य माने गये हैं, इनका कभी भी स्पर्श नहीं करना चाहिये। यदि ब्राह्मण इन आठोंमेंसे किसीका स्पर्श कर ले तो वस्त्रसहित जलमें प्रवेश करके स्नान करे। जो मनुष्य मेरे भक्तोंका शूद्र-जातिमें जन्म होनेके कारण अपमान करते हैं, वे करोड़ों वर्षतक नरकोंमें निवास करते हैं; अतः चाण्डाल भी यदि मेरा भक्त हो तो बुद्धिमान् पुरुषको उसका अपमान नहीं करना चाहिये। अपमान करनेसे मनुष्यको रौरव नरकमें गिरना पड़ता है। जो मनुष्य मेरे भक्तोंके भक्त होते हैं, उनपर मेरा विशेष प्रेम होता है। इसलिये मेरे भक्तके भक्तोंका विशेष सत्कार करना चाहिये। मुझमें चित्त लगानेपर कीड़े, पक्षी और पशु भी ऊर्ध्वगतिको ही प्राप्त होते हैं, फिर ज्ञानी मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। मेरा भक्त शूद्र भी यदि पत्र, पुष्प, फल अथवा जल ही अर्पण करे तो मैं उसे सिरपर धारण करता हूँ। जो ब्राह्मण सम्पूर्ण भूतोंके हृदयमें विराजमान मुझ परमेश्वरका वेदोक्त रीतिसे पूजन करते हैं, वे मेरे सायुज्यको प्राप्त होते हैं। युधिष्ठिर ! मैं अपने भक्तोंका हित करनेके लिये ही अवतार धारण करता हूँ, अतः मेरे प्रत्येक अवतार-विग्रहका पूजन करना चाहिये। जो मनुष्य मेरे अवतार-विग्रहोंमेंसे किसी एककी भी भक्ति-भावसे आराधना करता है, उसके ऊपर मैं निःसंदेह प्रसन्न होता हूँ। मिट्टी, ताँबा, चाँदी, स्वर्ण अथवा मणि एवं रत्नोंकी मेरी प्रतिमा बनवाकर उसकी पूजा करनी चाहिये। इनमें उत्तरोत्तर मूर्तियोंकी पूजासे दसगुना अधिक पुण्य समझना चाहिये। यदि ब्राह्मणको विद्याकी, क्षत्रियको युद्धमें विजयकी, वैश्यको धनकी, शूद्रको सुखरूप फलकी तथा स्त्रियोंको सब प्रकारकी कामना हो तो ये सब मेरी आराधनासे अपने सभी मनोरथोंको प्राप्त कर सकते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—देवेश्वर ! आप किस तरहके शूद्रोंकी पूजा नहीं स्वीकार करते ?

भगवान्‌ने कहा—राजन् ! जो व्रतका पालन करनेवाला और मेरा भक्त नहीं है, उस शूद्रकी की हुई पूजाको मैं

कुत्ता पकानेवाले चाण्डालकी की हुई समझकर त्याग देता हूँ। गौ, ब्राह्मण और पीपलका वृक्ष—ये तीनों देवरूप हैं; इन्हें मेरा और भगवान् शंकरका स्वरूप समझना चाहिये। मेरे भक्त पुरुषको उचित है कि वह इन तीनोंका कभी अपमान न करे; क्योंकि अपमानित होनेपर ये मनुष्यकी सात पीढ़ियोंको भस्म कर डालते हैं। युधिष्ठिर ! मेरे स्वरूप होनेके कारण ये मनुष्यका उद्धार करनेवाले हैं, इसलिये तुम यत्नपूर्वक इनकी पूजा किया करो।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! मनुष्य ब्राह्मण-शरीरसे ही शूद्र कैसे हो जाता है, उसका ब्राह्मणत्व किस प्रकार नष्ट हो जाता है—यह बतानेकी कृपा करें।

भगवान्‌ने कहा—राजन् ! जो बारह वर्षोंतक केवल कुएँके जलसे स्नान करता है तथा जो उतने ही वर्षोंतक राजाके आश्रयमें रहकर जीविका चलाता है, ऐसा ब्राह्मण वेदका पारंगत विद्वान् होनेपर भी उसी शरीरसे शूद्रभावको प्राप्त हो जाता है। जो किसी बड़े कस्बे अथवा नगरमें लगातार बारह वर्षोंतक रह जाता है, वह ब्राह्मण भी निःसंदेह शूद्र हो जाता है। जो ब्राह्मण कामसे मोहित होकर शूद्रजातिकी स्त्रीसे संतान उत्पन्न करता है, उसके शरीरका ब्राह्मणत्व तुरंत नष्ट हो जाता है। युधिष्ठिर ! जो लोग दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर भी ऊपर बताये हुए बुरे मार्गोंसे चलकर उसका नाश कर डालते हैं, उनके लिये मुझे बड़ा शोक होता है; इसलिये जो ब्राह्मण मुझमें प्रेम रखता हो, उसे सब प्रकारके प्रयत्नद्वारा ऐसा कोई कर्म नहीं करना चाहिये जो उसे ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट करनेवाला हो।



भगवान्‌के उपदेशका उपसंहार और उनका द्वारकागमन

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! यदि कोई ब्राह्मण परदेश गया हो और वहीं कालकी प्रेरणासे उसका शरीर छूट जाय तो उसकी प्रेत-क्रिया (अन्त्येष्टि-संस्कार) किस प्रकार सम्भव है ?

भगवान्‌ने कहा—राजन् ! यदि किसी अग्निहोत्री ब्राह्मणकी इस प्रकार मृत्यु हो जाय तो प्रेतकल्पमें बताये अनुसार उसकी काष्ठमयी प्रतिमा बनवानी चाहिये। वह काष्ठ पलाशका ही होना उचित है। मनुष्यके शरीरमें तीन सौ साठ हड्डियाँ बतायी गयी हैं। उन सबकी शास्त्रोक्त रीतिसे कल्पना करके उस प्रतिमाका दाह करना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! जो भक्त तीर्थ-यात्रा करनेमें असमर्थ हों, उन सबको तारनेके लिये कृपया किसी विशेष तीर्थका धर्मानुसार वर्णन कीजिये।

भगवान्‌ने कहा—राजन् ! सामवेदका गायन करनेवाले विद्वान् कहते हैं कि सत्य सब तीर्थोंको पवित्र करनेवाला है। सत्य बोलना और किसी जीवकी हिंसा न करना—ये तीर्थ कहलाते हैं। तप, दया, शील, थोड़ेमें संतोष करना—ये सद्गुण भी तीर्थरूप ही हैं। पतिव्रता नारी, संतोषी ब्राह्मण और ज्ञानको भी तीर्थ कहते हैं। मेरे और शंकरके भक्त, संन्यासी, विद्वान् और दूसरोंको शरण देनेवाले पुरुष भी तीर्थ हैं। जीवोंको अभय-दान देना भी तीर्थ ही कहलाता है। मैं तीनों लोकोंमें उद्वेगशून्य हूँ। दिन हो या रात, मुझे कभी किसीसे भी भय नहीं होता। देवता, दैत्य और राक्षसोंसे भी मैं नहीं डरता। परंतु शूद्रके मुखसे जो वेदका उच्चारण होता है, उससे मुझे सदा ही भय बना रहता है। इसलिये शूद्रको मेरे नामका भी प्रणवके साथ नहीं उच्चारण करना चाहिये; क्योंकि वेदवेत्ता विद्वान् इस संसारमें प्रणवको सर्वोत्कृष्ट वेद मानते हैं। शूद्र मुझमें भक्ति रखते हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवा करें—यही उनका परम धर्म है। द्विजोंकी सेवासे ही वे परम कल्याणके भागी होते हैं। इसके सिवा उनके उद्धारका दूसरा कोई उपाय नहीं है। राग, द्वेष, मोह, कठोरता, क्रूरता, शठता, अधिक कालतक वैर रखना, अधिक अभिमान, सरलताका अभाव, झूठ बोलना, निन्दा करना, चुगली खाना, अत्यन्त लोभ करना, हिंसा, चोरी, झूठ-मूठ अपवाद लगाना, धोखा देना, क्रोध, लालच, मूर्खता, नास्तिकता, भय, आलस्य, अपवित्रता, कृतघ्नता, दम्भ, जड़ता, कपट और अज्ञान—ये समस्त दुर्गुण शूद्रके पैदा होते ही उसमें प्रवेश कर जाते हैं। ब्रह्माजीने शूद्रोंको उत्पन्न करके उनके लिये द्विजोंकी सेवारूप धर्मका उपदेश किया। द्विजोंकी भक्तिसे शूद्रके तामस भाव नष्ट हो जाते हैं। शूद्र भी यदि भक्तिपूर्वक मुझे पत्र, पुष्प, फल अथवा जल अर्पण करता है तो मैं उसके भक्तिपूर्वक दिये हुए उपहारको सादर शीश चढ़ाता हूँ। सम्पूर्ण पापोंसे युक्त होनेपर भी यदि कोई ब्राह्मण सदा मेरा ध्यान करता रहता है, तो वह अपने सम्पूर्ण पापोंसे छुटकारा पा जाता है। विद्या और विनयसे सम्पन्न तथा वेदोंके पारंगत विद्वान् होनेपर भी जो

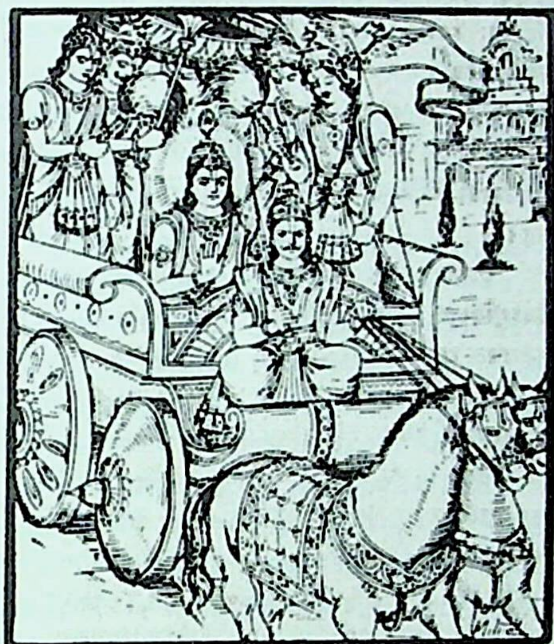
ब्राह्मण मुझमें भक्ति नहीं करते, वे चाण्डालके समान हैं। जो द्विज मेरा भक्त नहीं है उसके दान, तप, यज्ञ, होम और अतिथि-सत्कार—ये सब व्यर्थ हैं।

पाण्डुनन्दन! जब मनुष्य समस्त स्थावर-जङ्गम प्राणियोंमें एवं मित्र अथवा शत्रुमें समान दृष्टि कर लेता है, उस समय वह मेरा सच्चा भक्त होता है। क्रूरताका अभाव, अहिंसा, सत्य, सरलता तथा किसी भी प्राणीसे द्रोह न करना—यह मेरे भक्तोंका व्रत है। जो मनुष्य मेरे भक्तको श्रद्धापूर्वक नमस्कार करता है, वह चाण्डाल ही क्यों न हो, उसे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होती है। फिर जो साक्षात् मेरे भक्त हैं, जिनके प्राण मुझमें ही लगे रहते हैं तथा जो सदा मेरे ही नाम और गुणोंका कीर्तन करते रहते हैं, वे यदि लक्ष्मीसहित मेरी विधिवत् पूजा करते हैं तो उनकी सद्गतिके विषयमें क्या कहना है। अनेकों हजार वर्षोंतक तपस्या करनेवाला मनुष्य भी उस पदको नहीं प्राप्त होता, जो मेरे भक्तोंको अनायास ही मिल जाता है। इसलिये राजेन्द्र! तुम सदा सजग रहकर निरन्तर मेरा ही ध्यान करते रहो; इससे तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी और तुम परम पदका साक्षात्कार कर सकोगे। जो व्यर्थकी बातें बकते रहते हैं वे मेरे भक्त नहीं, शूद्र हैं; किंतु जो वास्तवमें मेरे भक्त हैं, वे जन्मसे शूद्र होनेपर भी वास्तवमें शूद्र नहीं हैं। भगवद्भक्त ब्राह्मणके ही समान माने गये हैं। जो द्वादशाक्षर-मन्त्रके तत्त्वका ज्ञाता और निरन्तर पञ्चयाम सेवाविधिको जाननेवाला है, वह उत्तम भक्त है। जो होता बनकर ऋग्वेदके द्वारा, अध्वर्यु होकर यजुर्वेदके द्वारा, उद्गाता बनकर परम पवित्र सामवेदके द्वारा तथा अथर्ववेदीय द्विजोंके रूपमें जो अथर्ववेदके द्वारा हमेशा मेरी स्तुति किया करते हैं, वे भगवद्भक्त माने गये हैं। यज्ञ वेदोंके अधीन हैं और देवता यज्ञ तथा ब्राह्मणोंके अधीन होते हैं, इसलिये ब्राह्मण देवता हैं।

किसीका सहारा लिये बिना कोई ऊँचे नहीं चढ़ सकता, अतः सबको किसी प्रधान आश्रयका सहारा लेना चाहिये। देवतालोग भगवान् रुद्रके आश्रयमें रहते हैं, रुद्र ब्रह्माजीके आश्रित हैं और ब्रह्माजी मेरे आश्रयमें रहते हैं; किंतु मैं किसीके आश्रित नहीं हूँ। मेरा आश्रय कोई नहीं है। मैं ही सबका आश्रय हूँ। राजन्! इस प्रकार ये उत्तम रहस्यकी बातें मैंने तुम्हें बतायी हैं; क्योंकि तुम धर्मके प्रेमी हो। अब तुम इस उपदेशके ही अनुसार आचरण करो। यह पवित्र आख्यान पुण्यदायक एवं वेदके समान मान्य है। जो मेरे बताये हुए इस वैष्णव-धर्मका प्रतिदिन पाठ करेगा, उसके धर्मकी वृद्धि होगी और बुद्धि निर्मल। साथ ही उसके समस्त पापोंका नाश होकर परम कल्याणका विस्तार होगा। यह प्रसंग परम पवित्र, पुण्यदायक, पापनाशक और अत्यन्त उत्कृष्ट है। सभी मनुष्योंको, विशेषतः श्रोत्रिय विद्वानोंको श्रद्धाके साथ इसका श्रवण करना चाहिये। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसे सुनाता और पवित्रचित्त होकर सुनता है, वह निश्चय ही मेरे सायुज्यको प्राप्त होता है। मेरी भक्तिमें तत्पर रहनेवाला जो भक्त पुरुष श्राद्धमें इस धर्मका श्रवण करता है, उसके पितर इस ब्रह्माण्डके प्रलय होनेतक सदा तृप्त बने रहते हैं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! साक्षात् विष्णुस्वरूप, जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे भागवत-धर्मोंका श्रवण करके इस अद्भुत प्रसंगपर विचार करते हुए ऋषि और पाण्डवलोग बहुत प्रसन्न हुए और सबने भगवान्‌को प्रणाम किया। धर्मनन्दन युधिष्ठिरने तो बारंबार गोविन्दका पूजन किया। देवता, ब्रह्मर्षि, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सराएँ, ऋषि, महात्मा, गुह्यक, सर्प, महात्मा बालखिल्य, तत्त्वदर्शी योगी तथा पञ्चयाम उपासना करनेवाले भगवद्भक्त पुरुष, जो अत्यन्त उत्कण्ठित होकर उपदेश सुननेके लिये पधारे थे, इस परम पवित्र वैष्णव-धर्मका उपदेश सुनकर तत्क्षण निष्पाप एवं पवित्र हो गये। सबमें भगवद्भक्ति उमड़ आयी। फिर उन सबने भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और उनके उपदेशकी प्रशंसा करके कहा—'भगवन्! अब हम द्वारकामें पुनः आप जगद्गुरुका दर्शन करेंगे।' यों कहकर सब ऋषि प्रसन्नचित्त हो देवताओंके साथ अपने-अपने स्थानको चले गये। उनके चले जानेपर भगवान् श्रीकृष्णने सात्यकिसहित दारुकको याद किया। सारथि दारुक पास ही बैठा था, उसने निवेदन किया—'भगवन्! रथ तैयार है, पधारिये।' यह सुनकर पाण्डवोंका मुँह उदास हो गया। वे हाथ जोड़कर आँसूभरे नेत्रोंसे पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी ओर एकटक देखने लगे, किंतु अत्यन्त दुःखी होनेके कारण कुछ बोल न सके। भगवान् कृष्ण भी उनकी दशा देखकर दुःखी-से हो गये तथा उन्होंने कुन्ती, धृतराष्ट्र, गान्धारी, विदुर, द्रौपदी, महर्षि व्यास और अन्यान्य ऋषियों एवं मन्त्रियोंसे बिदा लेकर सुभद्रा तथा पुत्रसहित उत्तराकी पीठपर हाथ फेरा और आशीर्वाद दे वे उस राजभवनसे बाहर निकल आये। फिर शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामवाले चार घोड़ोंसे जुते हुए अपने रथपर सवार हो गये। उस समय कुरु देशके राजा युधिष्ठिर भी प्रेमवश भगवान्‌के पीछे-पीछे स्वयं भी रथपर जा बैठे

और दारुकको सारथिके स्थानसे हटाकर उन्होंने घोड़ोंकी बागडोर अपने हाथमें ले ली। फिर अर्जुन भी रथपर आरूढ़ हो स्वर्गदण्डयुक्त विशाल चँवर हाथमें लेकर दाहिनी ओरसे



भगवान्‌के मस्तकपर हवा करने लगे। इसी प्रकार महाबली भीमसेन भी रथपर जा चढ़े और भगवान्‌के ऊपर छत्र लगाये खड़े हो गये। वह छत्र सौ कमानियोंसे युक्त तथा दिव्य मालाओंसे सुशोभित था। उसका डंडा वैदूर्यमणिका बना हुआ था तथा सोनेकी झालरें उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। नकुल और सहदेव भी अपने हाथोंमें सफेद चँवर लिये रथपर सवार हो गये और भगवान्‌के ऊपर डुलाने लगे। इस प्रकार युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवने श्रीकृष्णका अनुसरण किया। तीन योजन (अर्थात् चौबीस मील) तक चले आनेके बाद भगवान् श्रीकृष्णने अपने चरणोंमें पड़े हुए पाण्डवोंको गलेसे लगाकर बिदा किया और स्वयं द्वारकाको चले गये। इस प्रकार भगवान्‌को प्रणाम करके जब पाण्डव घर लौटे तो सदा धर्ममें तत्पर रहकर कपिला आदि गौओंका दान करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णके वचनोंको बारम्बार याद करके वे मन-ही-मन उनकी सराहना करते थे। धर्मात्मा युधिष्ठिर ध्यानद्वारा भगवान्‌को अपने हृदयमें विराजमान करके उन्हींके भजनमें लग गये, उन्हींका स्मरण करने लगे और योगयुक्त होकर भगवान्‌का यजन करते हुए उन्हींके परायण हो गये। जनमेजय! इस प्रकार प्राचीन वैष्णवधर्मका यह उपदेश मैंने तुम्हें सुना दिया। यह परम पवित्र और पापोंका नाश करनेवाला है। भगवान् विष्णुके बतलाये हुए इस धर्मका निरन्तर श्रवण करते रहो। इसीसे तुम विष्णुके परम धामको जा सकते हो। उनकी प्राप्तिके लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है।



आश्वमेधिकपर्व समाप्त

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

आश्रमवासिकपर्व

कुन्ती आदि स्त्रियोंका तथा भाइयोंसहित राजा युधिष्ठिरका धृतराष्ट्र और गान्धारीके अनुकूल बर्ताव

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप नररत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर विजय-प्राप्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! मेरे प्रपितामह महात्मा पाण्डव अपने राज्यपर अधिकार प्राप्त कर लेनेके बाद महाराज धृतराष्ट्रके साथ कैसा बर्ताव करते थे? राजा धृतराष्ट्र अपने मन्त्री और पुत्रोंके मरनेसे निराश्रय हो गये थे, उनका ऐश्वर्य छिन गया था; ऐसी अवस्थामें वे और यशस्विनी गान्धारी देवी किस प्रकार जीवन व्यतीत करते थे? तथा मेरे प्रपितामहोंने कितने समयतक राज्यका उपभोग किया था? ये सब बातें बतानेकी कृपा कीजिये।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! महात्मा पाण्डव राज्य पानेके अनन्तर राजा धृतराष्ट्रको ही आगे रखकर पृथ्वीका पालन करने लगे। विदुर, सञ्जय तथा युयुत्सु—ये लोग सदा धृतराष्ट्रकी सेवामें उपस्थित रहते थे और पाण्डव भी प्रत्येक कार्यमें उनकी सलाह पूछा करते थे। उन्होंने पंद्रह वर्षोंतक राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञाके ही अनुसार सब काम किये। वीर पाण्डव प्रतिदिन राजा धृतराष्ट्रके पास जा उनके चरणोंमें प्रणाम करते और कुछ कालतक उनकी सेवामें बैठे रहते थे। धृतराष्ट्र भी स्नेहवश पाण्डवोंका मस्तक सूँघकर जब उन्हें जानेकी आज्ञा देते, तब वे आकर और सब काम देखा करते थे। कुन्ती भी सदा गान्धारीकी सेवामें लगी रहती थीं। द्रौपदी, सुभद्रा तथा पाण्डवोंकी अन्य स्त्रियाँ कुन्ती और गान्धारी—दोनों सासोंकी समान भावसे सेवा किया करती थीं। राजा युधिष्ठिर बहुमूल्य शय्या, वस्त्र, आभूषण तथा राजाके उपभोगमें आनेयोग्य सब प्रकारके उत्तम पदार्थ और अनेकों प्रकारके भक्ष्यभोज्य धृतराष्ट्रको अर्पण किया करते थे। इसी प्रकार कुन्ती देवी अपनी सासकी भाँति गान्धारीकी परिचर्या करती थीं। महान् धनुर्धर कृपाचार्य उस समय राजा धृतराष्ट्रके ही पास रहते थे। भगवान् व्यास भी प्रतिदिन उनके पास जाकर बैठते और उन्हें प्राचीन ऋषि, देवर्षि, पितर और राक्षसोंकी कथाएँ सुनाया करते थे। धृतराष्ट्रकी आज्ञासे धर्म और व्यवहारके समस्त कार्य विदुरजी ही देखते थे। उनकी अच्छी नीतिके प्रभावसे राजाके बहुतेरे प्रिय कार्य थोड़े खर्चमें ही सामन्तों (सीमाके राजाओं) से सिद्ध हो जाया करते थे। वे कैदियोंको कैदसे छुटकारा दे देते और वधके योग्य मनुष्योंको भी प्राण-दान देकर छोड़ देते थे; किंतु राजा युधिष्ठिर इसके लिये उनसे कभी कुछ नहीं कहते थे। राजा धृतराष्ट्रकी सेवामें पहलेकी भाँति ही रसोईके काममें निपुण आरालिक[1], सूपकार[2] और रागखाण्डविक[3] मौजूद रहते थे। पाण्डव उन्हें बहुमूल्य वस्त्र और नाना प्रकारके हार भेंट करते थे। पीनेके लिये मीठे-मीठे शर्बत और खानेके लिये भाँति-भाँतिके भोजन देते थे। भिन्न-भिन्न देशोंसे जो-जो राजा वहाँ एकत्रित होते थे, वे सब पहलेकी ही भाँति राजा धृतराष्ट्रकी सेवामें उपस्थित होते थे। कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा, नागकन्या उलूपी, देवी चित्राङ्गदा, धृष्टकेतुकी बहिन तथा जरासन्धकी पुत्री—ये

---

१. 'अरा' नामक शस्त्रसे काटकर बनाये जानेके कारण साग-भाजी आदिको 'अरालु' कहते हैं; उसको सुन्दर रीतिसे तैयार करनेवाले रसोइये 'आरालिक' कहलाते हैं। २. दाल आदि बनानेवाले सामान्यतः सभी रसोइयेको 'सूपकार' कहते हैं। ३. पीपल, सोंठ और शक्कर मिलाकर मूँगका रसा तैयार करनेवाले रसोइये 'रागखाण्डविक' कहलाते हैं।

सब तथा दूसरी बहुत-सी स्त्रियाँ गान्धारीकी सेवामें दासीकी भाँति लगी रहती थीं। राजा युधिष्ठिर प्रतिदिन अपने भाइयोंको शिक्षा देते रहते थे कि 'धृतराष्ट्रका अपने पुत्रोंसे वियोग हुआ है। तुमलोग कभी ऐसा बर्ताव न करना, जिससे इनके मनमें तनिक भी दुःख हो।' धर्मराजके ये अर्थयुक्त वचन सुनकर भीमसेनको छोड़ अन्य सभी पाण्डव उनकी आज्ञाका विशेषरूपसे पालन करते थे। वीरवर भीमसेनके हृदयसे कभी भी यह बात दूर नहीं होती थी कि जुएके समय जो कुछ भी अनर्थ हुआ था, वह धृतराष्ट्रकी ही खोटी बुद्धिका परिणाम था।

इस प्रकार पाण्डवोंसे भलीभाँति सम्मानित होकर अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्र पूर्ववत् ऋषियोंके साथ गोष्ठी करते हुए सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगे। वे ब्राह्मणोंको देनेयोग्य श्रेष्ठ वस्तुओंका दान करते और कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर उनके सब कार्योंमें सहयोग देते थे। युधिष्ठिरमें क्रूरताका नाम भी नहीं था। वे सदा प्रसन्न रहते तथा अपने भाइयों और मन्त्रियोंसे कहा करते थे कि 'राजा धृतराष्ट्र मेरे और आपलोगोंके माननीय हैं। जो इनकी आज्ञामें रहेगा, वह मेरा सुहृद् है और जो इनके विपरीत आचरण करेगा, वह मेरे दण्डका भागी होगा।' पिता-पितामह आदिकी मृत्यु-तिथि आनेपर तथा पुत्रों और हितैषियोंके श्राद्धकर्ममें महामना राजा धृतराष्ट्र जितना धन खर्च करना चाहते थे, उतना ही करते थे। वे पूजनीय ब्राह्मणोंको उनकी योग्यताके अनुसार बहुत-सा धन देते थे और युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा नकुल-सहदेव उनका प्रिय करनेकी इच्छासे सब कामोंमें उनका साथ देते थे। उन्हें सदा इस बातकी चिन्ता बनी रहती थी कि पुत्र-पौत्रोंके वधसे पीड़ित हुए बूढ़े राजा धृतराष्ट्र हमारी ओरसे कोई शोकका कारण पाकर कहीं अपने प्राण न त्याग दें। अपने पुत्रोंकी जीवितावस्थामें उन्हें जितने सुख और भोग प्राप्त थे, वे अब भी उन्हें मिलते रहें—इस बातका पाण्डवोंने पूरा प्रबन्ध किया था। इस प्रकारके शील और बर्तावसे युक्त होकर युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई धृतराष्ट्रकी आज्ञाके अधीन रहते थे। धृतराष्ट्र भी उन्हें परम विनीत, अपनी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले और शिष्यभावसे सेवामें संलग्न देखकर पिताकी ही भाँति उनसे स्नेह रखते थे। गान्धारी देवीने भी अपने पुत्रोंके निमित्त नाना प्रकारके श्राद्धकर्मोंका अनुष्ठान करके ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार धन दान किया और ऐसा करके वे पुत्रोंके ऋणसे मुक्त हो गयीं।

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर इस प्रकार अपने भाइयोंसहित राजा धृतराष्ट्रके आदर-सत्कारमें लगे रहे। धृतराष्ट्रने पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरका कोई भी ऐसा बर्ताव नहीं देखा, जो उनके मनको अप्रिय लगनेवाला हो। पाण्डवोंका सद्बर्ताव देखकर अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्र उनके ऊपर बहुत प्रसन्न रहते थे तथा राजा सुबलकी पुत्री गान्धारी देवी भी उनपर अपने सगे पुत्रों-जैसा स्नेह करती थीं। राजा धृतराष्ट्र अथवा तपस्विनी गान्धारी देवी छोटा-बड़ा जो भी काम करनेके लिये कहतीं, उनकी आज्ञाको शिरोधार्य करके युधिष्ठिर वह सारा कार्य पूर्ण करते थे। इससे राजा धृतराष्ट्र उनके ऊपर बहुत प्रसन्न रहते और अपने मन्दबुद्धि पुत्र दुर्योधनको याद करके पछताया करते थे। प्रतिदिन सबेरे उठकर स्नान, संध्या एवं गायत्री-जपसे निवृत्त होकर वे पाण्डवोंको समर-विजयी होनेका आशीर्वाद दिया करते थे। ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर अग्निमें हवन करनेके पश्चात् सदा यह शुभ कामना करते थे कि 'पाण्डुके पुत्र दीर्घजीवी हों।' राजा धृतराष्ट्रको पाण्डवोंके बर्तावसे जितनी प्रसन्नता होती थी, उतनी उन्हें कभी अपने पुत्रोंसे भी नहीं प्राप्त हुई थी। युधिष्ठिर अपने सद्बर्तावके कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सभीके प्रिय हो गये थे। धृतराष्ट्रके पुत्रोंने उनके साथ जो कुछ बुराई की थी, उसको भुलाकर वे उनकी सेवामें संलग्न रहते थे। युधिष्ठिरके भयसे कोई भी मनुष्य कभी राजा धृतराष्ट्र और दुर्योधनके अनुचित कार्योंकी चर्चा नहीं करता था। राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी और विदुरजी अजातशत्रु युधिष्ठिरके धैर्य और शुद्ध व्यवहारसे विशेष प्रसन्न थे; किंतु भीमसेनके बर्तावसे उन्हें संतोष नहीं था। यद्यपि भीमसेन भी युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार ही चलते थे, तथापि धृतराष्ट्रको देखकर उनके मनमें सदा ही दुर्भावना हो जाया करती थी। राजा युधिष्ठिरको धृतराष्ट्रके अनुकूल बर्ताव करते देख वे स्वयं भी ऊपरसे उनके अनुकूल ही चलते थे, तथापि उनका हृदय धृतराष्ट्रसे विमुख ही रहता था।



गान्धारीसहित धृतराष्ट्रकी वनमें जानेके लिये तैयारी और युधिष्ठिरका शोक

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! राजा युधिष्ठिर और धृतराष्ट्रमें जो पारस्परिक प्रेम था, उसमें राज्यके लोगोंने कभी कोई अन्तर आता नहीं देखा; परंतु भीमसेन गुप्तरीतिसे धृतराष्ट्रको अप्रिय लगनेवाले काम किया करते थे। वे अपने द्वारा नियुक्त किये हुए पुरुषोंसे उनकी आज्ञा भी भङ्ग करा दिया करते थे। एक दिनकी बात है, भीमसेन अमर्षमें भरकर धृतराष्ट्र और गान्धारीको सुनाते हुए अपने मित्रोंके बीचमें इस प्रकार कठोर वचन कहने लगे—'भाइयो ! मेरी भुजाएँ परिघके समान सुदृढ़ हैं। मैंने ही उस अंधे राजाके समस्त पुत्रोंको यमलोकका अतिथि बनाया है। देखो, ये हैं मेरे दोनों भुजदण्ड, जो परिघको भी मात करनेवाले और दुर्द्धर्ष हैं। इन्हींके बीचमें पड़कर धृतराष्ट्रके पुत्रोंका संहार हुआ है।' भीमसेनकी यह काँटोंके समान कसक पैदा करनेवाली बात सुनकर राजा धृतराष्ट्रको बड़ा खेद हुआ। समयके उलट-फेरको समझने और समस्त धर्मोंको जाननेवाली बुद्धिमती गान्धारी देवीने भी इन कठोर वचनोंको सुना था। उस समयतक उन्हें राजा युधिष्ठिरके आश्रयमें रहते पंद्रह वर्ष व्यतीत हो चुके थे। उस दिन भीमसेनके वचनरूपी बाणोंसे व्यथित होकर धृतराष्ट्रको बड़ा दुःख हुआ; किंतु युधिष्ठिरको इस बातकी जानकारी न हो सकी। अर्जुन, कुन्ती, यशस्विनी द्रौपदी और धर्मको जाननेवाले नकुल-सहदेव—ये सबलोग धृतराष्ट्रके मनोऽनुकूल ही बर्ताव करते थे, कभी कोई अप्रिय बात नहीं कहते थे।

तदनन्तर धृतराष्ट्रने अपने सुहृदोंको बुलाकर उनका पूर्ण सम्मान किया और आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद वाणीमें कहा—'मित्रो ! आपलोगोंको यह मालूम ही है कि कौरवोंका नाश किस प्रकार हुआ है। यह सब मेरे ही अपराधका फल है। दुर्योधनकी बुद्धिमें दुष्टता भरी थी, वह अपने जाति-भाइयोंका भय बढ़ानेवाला था; तो भी मैं इतना मूर्ख हूँ कि मैंने उसे कौरवोंके राजपदपर अभिषिक्त कर दिया। भगवान् श्रीकृष्णकी अर्थभरी बातें अनसुनी कर दीं। पुत्रके स्नेहसे मेरी बुद्धि मारी गयी थी। उस अवस्थामें मनीषी पुरुषोंने मुझे यह हितकारक बात सुझायी थी कि दुष्टबुद्धि पापी दुर्योधनको उसके मन्त्रियोंसहित मार डालना चाहिये; किंतु मैंने ऐसा नहीं किया। विदुर, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और भगवान् व्यासने तो मुझे पद-पदपर नेक सलाह दी। सञ्जय और गान्धारीने भी बहुत समझाया। परंतु मैंने किसीकी बातपर ध्यान नहीं दिया। इससे मुझे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है। महात्मा पाण्डव गुणवान् थे, तथापि उनके बाप-दादोंकी सम्पत्ति भी उन्हें लौटाकर न दे सका। इस तरह मेरी की हुई हजारों भूलें मेरे हृदयमें संचित हैं, जो इस समय काँटेके समान कसक रही हैं। विशेषतः आज पंद्रह वर्षोंके बाद मेरी आँखें खुली हैं। मैं अपने किये हुए पापकी शुद्धिके लिये नियमपूर्वक रहकर कभी चौथे और कभी आठवें समय केवल भूख मिटानेकी इच्छासे अन्न ग्रहण करता हूँ, इस बातको केवल गान्धारी ही जानती है। अन्य सब लोगोंको यही मालूम है कि मैं प्रतिदिन पूरा भोजन करता हूँ। युधिष्ठिरके भयसे ही लोग मेरे पास आया करते हैं। मैं नियम-पालनके बहाने मृगछाला पहनकर कुशासनपर आसीन हो जपमें लगा रहता हूँ और भूमिपर शयन करता हूँ। यशस्विनी गान्धारी देवीका भी यही हाल है। हम दोनोंके सौ पुत्र मारे गये हैं, किंतु उनके लिये मुझे दुःख नहीं है; क्योंकि वे क्षत्रिय-धर्मको जानते थे और उसके अनुसार ही उन्होंने युद्धमें प्राण-त्याग किया है।'

अपने सुहृदोंसे ऐसा कहकर धृतराष्ट्र राजा युधिष्ठिरसे बोले—'कुन्तीनन्दन ! तुम्हारा कल्याण हो, मेरी यह बात सुनो। तुम्हारे द्वारा पालित होकर मैंने यहाँ बड़े सुखसे दिन बिताये हैं, बड़े-बड़े दान दिये हैं और अनेकों बार श्राद्ध-कर्मका अनुष्ठान किया है। द्रौपदीके साथ अत्याचार करके तुम्हारे ऐश्वर्यको छीन लेनेवाले मेरे क्रूरकर्मा पुत्र क्षत्रिय-धर्मके अनुसार युद्धमें मारे गये हैं। अब उनके लिये कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं दिखायी देती; क्योंकि वे शस्त्रधारियोंको मिलनेवाले उत्तम लोकोंको प्राप्त हुए हैं। अब तो मुझे और गान्धारीको अपने हितके लिये पुण्यकर्मका अनुष्ठान करना है, अतः इसके लिये तुम हमें अनुमति दो। तुम्हारी अनुमति मिल जानेपर मैं वनमें चला जाऊँगा और वहाँ गान्धारीके साथ चीर एवं वल्कल वस्त्र धारण करके तुम्हें आशीर्वाद देता हुआ निवास करूँगा। वनमें वायु पीकर अथवा उपवास करके रहूँगा तथा अपनी पत्नीके साथ कठोर तपस्या करूँगा। बेटा ! तुम भी उस तपस्याके उत्तम फलके भागी बनोगे; क्योंकि तुम राजा हो और राजा अपने राज्यके भीतर होनेवाले भले-बुरे सभी कर्मोंके फलभागी होते हैं।'

युधिष्ठिरने कहा—महाराज ! आप यहाँ रहकर इस प्रकार दुःख उठा रहे थे—यह जानकर अब इस राज्यसे मुझे तनिक भी प्रसन्नता नहीं होती। मुझ दुर्बुद्धिको धिक्कार है। मैं इतना

प्रमादी और राज्यमें आसक्त हूँ कि आजतक मुझे और मेरे भाइयोंको यह पता ही न लगा कि आप दुःखसे पीड़ित और उपवास करनेके कारण अत्यन्त दुर्बल होकर पृथ्वीपर शयन कर रहे हैं। ओह ! आपने अपने विचारोंको छिपाकर मुझ मूर्खको अबतक धोखेमें ही डाल रखा था; क्योंकि पहले मुझे यह विश्वास दिलाकर कि मैं सुखी हूँ, आप आजतक यह दुःख भोगते रहे। इस राज्यसे, इन भोगोंसे, नाना प्रकारके यज्ञोंसे अथवा इस सुख-सामग्रीसे मुझे क्या लाभ हुआ, जब कि मेरे ही पास रहकर आपको इतने दुःख उठाने पड़े। आप ही मेरे पिता, माता और परम गुरु हैं। आपसे विलग होकर हम कहाँ रहेंगे। ये युयुत्सु आपके औरस पुत्र हैं। इनको या और किसीको, जिसे आप उचित समझते हों, राजा बना दीजिये अथवा स्वयं इस राज्यका शासन कीजिये; मैं ही वनको चला जाऊँगा। पिताजी ! मैं पहलेसे ही अपयशकी आगमें जल चुका हूँ; अब पुनः आप भी मुझे न जलाइये। राजा मैं नहीं, आप हैं। मैं तो आपकी आज्ञाके अधीन रहनेवाला सेवक हूँ। फिर मैं क्या अनुमति दे सकता हूँ। दुर्योधनके अपराधोंके कारण हमलोगोंके हृदयमें तनिक भी क्रोध नहीं है। जो कुछ हुआ है, वैसी ही होनहार थी। जैसे दुर्योधन आदि आपके पुत्र थे, उसी प्रकार हम भी हैं। मेरे विचारसे गान्धारी और कुन्तीमें कोई अन्तर नहीं है। यदि आप मुझे छोड़कर चले जायँगे तो मैं अपनी सौगन्ध खाकर सत्य कहता हूँ—मैं भी आपके पीछे-पीछे चल दूँगा। आपके न रहनेपर यह धन-धान्यसे परिपूर्ण समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका राज्य भी मुझे प्रसन्न नहीं रख सकता। महाराज ! यह सब कुछ आपका ही है। मैं आपके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रार्थना करता हूँ, आप प्रसन्न हो जाइये; हम सब लोग आपके अधीन हैं। यदि सौभाग्यवश मुझे आपकी सेवाका अवसर मिलता रहा तो मेरी मानसिक चिन्ता दूर हो जायगी।

धृतराष्ट्र बोले—बेटा ! अब मेरा मन तपस्यामें ही लग रहा है तथा जीवनकी अन्तिम अवस्थामें वनको जाना हमारे कुलके लिये उचित भी है। मैं दीर्घकालतक तुम्हारे पास रह चुका और तुमने भी बहुत दिनोंतक मेरी सेवा-शुश्रूषा की। अब मेरी वृद्धावस्था आ गयी। अब तो मुझे वनमें जानेकी अनुमति देनी ही चाहिये।

धृतराष्ट्रकी यह बात सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर काँप उठे और हाथ जोड़े चुपचाप बैठे रह गये। तब अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्रने महात्मा सञ्जय और महारथी कृपाचार्यसे कहा—'मैं आपलोगोंके द्वारा राजा युधिष्ठिरको समझाना चाहता हूँ। एक तो मेरी अधिक अवस्था और दूसरे बोलनेका परिश्रम, इन कारणोंसे मेरा जी घबरा रहा है और मुँह सूखा जाता है।'

इतना कहते-कहते वे सहसा गान्धारीका सहारा लेकर



निर्जीवकी भाँति सो गये। यह देखकर राजा युधिष्ठिरको बड़ा दुःख हुआ। वे कहने लगे—'ओह ! जिनमें हजारों हाथियोंके समान बल था, वे ही राजा धृतराष्ट्र आज प्राणहीन-से होकर स्त्रीका सहारा लिये सो रहे हैं। जिन्होंने पहले भीमसेनकी लोहमयी प्रतिमाको चूर्ण कर डाला था, वे ही महाबली राजा आज अबलाके सहारे पड़े हैं। मुझ पापीको धिक्कार है। मेरी बुद्धि और विद्याको भी धिक्कार है ! जिसके कारण ये महाराज इस समय अपने लिये अयोग्य अवस्थामें सो रहे हैं। यदि राजा धृतराष्ट्र और यशस्विनी गान्धारी देवी भोजन नहीं करते तो मैं भी इन्हींकी भाँति उपवास करूँगा।'

यह कहकर धर्मके ज्ञाता युधिष्ठिरने हाथमें ठंडा जल लेकर धृतराष्ट्रकी छाती और मुखको धीरे-धीरे धोया। उनके हाथके स्पर्शसे राजा धृतराष्ट्रकी मूर्च्छा दूर हो गयी और वे होशमें आकर बोले—पाण्डुनन्दन ! तुम फिरसे मेरे शरीरपर अपना हाथ फेरो और मुझे छातीसे लगा लो। तुम्हारे सुखदायक स्पर्शसे मेरे शरीरमें मानो प्राण आ जाते हैं। तुम्हारे दोनों हाथोंका स्पर्श मेरी तृप्तिका महान् साधन हो रहा है। इधर चार दिनोंसे मैंने अन्न नहीं ग्रहण किया है, इसीसे मेरे द्वारा कोई चेष्टा नहीं हो पाती। तुमसे अनुरोध करनेके

लिये बोलते समय मुझे बड़ा परिश्रम करना पड़ा है, अतः मैं अचेत-सा हो गया था। तुम्हारे हाथके स्पर्शने मानो मुझपर अमृत-रस छिड़क दिया है, इससे मुझमें नया जीवन-सा आ गया है।'

धृतराष्ट्रके ऐसा कहनेपर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने बड़े स्नेहके साथ उनके समस्त अङ्गोंपर धीरे-धीरे हाथ फेरा। उनके स्पर्शसे धृतराष्ट्रके शरीरमें नूतन प्राण-सा आ गया और उन्होंने अपनी दोनों भुजाओंसे युधिष्ठिरको छातीसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा। यह करुण दृश्य देखकर अत्यन्त दुःखमग्न हो विदुर आदि सब लोग रो पड़े। कुन्तीके साथ कुरुकुलकी अन्य स्त्रियाँ भी शोकग्रस्त हो नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई उन्हें घेरकर खड़ी हो गयीं। तदनन्तर धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरसे फिर कहा—'बेटा! बार-बार बोलनेसे मेरा जी घबराता है। अतः अब अधिक कष्टमें न डालो। मुझे तपस्या करनेकी अनुमति दे दो।' उन्हें इस प्रकार बात करते देख वहाँ उपस्थित हुए समस्त योद्धा आर्तभावसे हाहाकार करने लगे। धृतराष्ट्रको इस प्रकार उपवास करनेके कारण थके हुए और दुर्बल देखकर युधिष्ठिरने उन्हें गलेसे लगा लिया और अपने शोकाश्रुओंको रोककर कहा—'नरश्रेष्ठ! मुझे इस राज्य तथा जीवनकी इच्छा नहीं है; जिस तरह भी आपका प्रिय हो, वही मैं करना चाहता हूँ। यदि आप मुझे अपनी कृपाका पात्र समझते हों और यदि मैं आपका प्रिय होऊँ तो मेरी प्रार्थनासे इस समय भोजन कीजिये। इसके बाद आगेकी बात सोचूँगा।' यह सुनकर धृतराष्ट्रने कहा—'बेटा! तुम मुझे वनमें जानेकी अनुमति दे दो तो भोजन करूँ, यही मेरी इच्छा है।' राजा धृतराष्ट्र इस प्रकार कह ही रहे थे कि सत्यवतीनन्दन महर्षि व्यासजी वहाँ आ पहुँचे और इस प्रकार कहने लगे।



व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाना और धृतराष्ट्रका उन्हें राजनीतिकी शिक्षा देना

व्यासजीने कहा—युधिष्ठिर! महातेजस्वी धृतराष्ट्र जो कुछ कह रहे हैं, वैसा ही करो; इसके लिये कुछ विचार न



करो। अब ये बूढ़े हो गये हैं। विशेषतः इनके सभी पुत्र नष्ट हो चुके हैं। मेरा ऐसा विश्वास है कि अब ये इस कष्टको अधिक कालतक नहीं सह सकेंगे। सौभाग्यवती गान्धारी परम विदुषी है, इसीलिये यह महान् पुत्र-शोकको धैर्यपूर्वक सहती चली आ रही है। इस समय मैं भी तुम्हें यही सलाह देता हूँ। मेरी बात मानो और राजा धृतराष्ट्रको वनमें जानेकी अनुमति दे दो, नहीं तो यहाँ रहनेसे इनकी व्यर्थ मृत्यु होगी। तुम इन्हें मौका दो, जिससे ये प्राचीन राजर्षियोंके पथका अनुसरण कर सकें। सम्पूर्ण राजर्षिगण जीवनके अन्तिम भागमें वनका ही आश्रय लेते आये हैं।

अद्भुतकर्मा महामुनि व्यासके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी राजा युधिष्ठिरने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—'भगवन्! आप ही हमारे माननीय और आप ही हमलोगोंके गुरु हैं। इस राज्य और कुलके परम आधार भी आप ही हैं। मैं आपका पुत्र हूँ और आप मेरे पिता हैं। इसी प्रकार राजा धृतराष्ट्र भी मेरे गुरु हैं (मैं इन्हें कैसे किसी बातके लिये आज्ञा दे सकता हूँ)। धर्म तो यही है कि पुत्र ही पिताकी आज्ञाका पालन करे।' युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी व्यासजीने पुनः उनसे कहा—'महाबाहो! तुम्हारा कहना सत्य है। तथापि राजा धृतराष्ट्र बूढ़े हो गये और अन्तिम अवस्थाको पहुँच चुके हैं; इसलिये अब मेरी और तुम्हारी अनुमति लेकर ये तपस्याके द्वारा अपना मनोरथ सिद्ध करें। तुम इनके शुभकार्यमें विघ्न न डालो। युधिष्ठिर!

राजर्षियोंका परम धर्म यही है कि युद्ध अथवा वनमें उनकी विधिपूर्वक मृत्यु हो। तुम्हारे पिता राजा पाण्डुने भी धृतराष्ट्रको गुरुके समान मानकर शिष्यभावसे इनकी सेवा की है। इन्होंने रत्नमय पर्वतोंसे सुशोभित और प्रचुर दक्षिणासे सम्पन्न अनेकों बड़े-बड़े यज्ञ किये, पृथ्वीका राज्य भोगा, प्रजाका भलीभाँति पालन किया और नाना प्रकारके धनका दान किया है। अपने सेवकोंसहित तुमने भी गुरुवत् शुश्रूषाके द्वारा इनकी और गान्धारीदेवीकी आराधना की है। अब इनके तप करनेका समय है, अतः तुम अपने पिताको वनमें जानेकी अनुमति दे दो। तुम्हारे ऊपर इनके मनमें तनिक भी क्रोध नहीं है।'



यों कहकर महर्षि व्यासने राजा युधिष्ठिरको राजी कर लिया और 'बहुत अच्छा' कहकर जब युधिष्ठिरने उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली तो वे वनमें अपने आश्रमपर चले गये। भगवान् व्यासके चले जानेपर राजा युधिष्ठिरने अपने वृद्ध पिता धृतराष्ट्रसे नम्रतापूर्वक धीरे-धीरे कहा—'पिताजी ! महर्षि व्यासने जो आज्ञा दी है और आपने जो कुछ करनेका निश्चय किया है तथा महान् धनुर्धर कृपाचार्य, विदुर, युयुत्सु और सञ्जय जैसा कहेंगे, निःसंदेह मैं वैसा ही करूँगा; किंतु इस समय आपके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रार्थना करता हूँ कि पहले भोजन कर लीजिये। फिर आश्रमको जाइयेगा।'

तदनन्तर, राजा युधिष्ठिरकी अनुमति पाकर धृतराष्ट्र गान्धारीके साथ अपने महलमें पधारे। उनकी चलनेकी शक्ति क्षीण हो गयी थी। वे बड़ी कठिनाईसे कदम उठाते थे। उस समय उनके पीछे-पीछे विदुर, सञ्जय और कृपाचार्य भी गये। महलमें पहुँचकर उन्होंने पूर्वाह्णकालकी धार्मिक क्रिया पूरी की। फिर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको अन्न-पान आदिसे तृप्त करके स्वयं भी भोजन किया। इसी प्रकार मनस्विनी गान्धारीदेवीने भी कुन्ती तथा पुत्रवधुओंके द्वारा पूजित होकर अन्न ग्रहण किया। उनके भोजन करनेके पश्चात् विदुर आदि तथा पाण्डवोंने भी भोजन किया और फिर सब लोग धृतराष्ट्रकी सेवामें उपस्थित हुए। उस समय कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको एकान्तमें बैठे देख धृतराष्ट्रने उनकी पीठपर हाथ फेरते हुए कहा—'कुरुनन्दन ! इस आठ अङ्गोंवाले राज्यमें तुम सदा धर्मको ही आगे रखना और बड़ी सावधानीके साथ इसका संचालन करना। राज्यकी रक्षा धर्मसे ही हो सकती है—इस बातको तुम स्वयं जानते हो, तथापि मुझसे भी सुनो। सदा विद्यामें बढ़े-चढ़े विद्वानोंका सङ्ग किया करो। वे जो कुछ कहें, उसे ध्यानपूर्वक सुनो और बिना विचारे उसका पालन करो। सबेरे उठकर उन विद्वानोंका यथोचित सम्मान करो और आवश्यकताके समय उनसे अपने कर्तव्य पूछो। अपना हित करनेकी इच्छासे तुम्हें अवश्य उनका सम्मान करना चाहिये। सम्मानित होनेपर वे सर्वथा तुम्हारे हितकी बात बतायेंगे। जैसे सारथि घोड़ोंको काबूमें रखता है, उसी प्रकार तुम सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने अधीन रखकर उनकी रक्षा करो, ऐसा करनेसे वे संचित धनकी भाँति भविष्यमें तुम्हारे लिये हितकर होंगी। जो जाँचे-बूझे हुए और निष्कपट-भावसे काम करनेवाले हों, जो पिता-पितामहोंके समयसे काम देखते आ रहे हों तथा जो बाहर-भीतरसे शुद्ध, संयमी, पुण्यकर्म करनेवाले तथा परम पवित्र हों, उन मन्त्रियोंको सब तरहके कार्योंमें नियुक्त करना। जिनकी अवसरपर परीक्षा ले ली गयी हो, जो अपने ही राज्यके भीतर निवास करनेवाले हों तथा जिन्हें शत्रु पहचानते न हों, ऐसे अनेकों जासूसोंको भेजकर उनके द्वारा शत्रुओंका गुप्त भेद लेते रहना। तुम्हारे नगरकी रक्षाका पूर्ण प्रबन्ध रहना चाहिये—उसके चारों ओरकी दीवारें और सदर दरवाजा खूब मजबूत हों। बीचमें सब ओर ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ रहें। नगरके सभी दरवाजे विशाल हों तथा उनपर चौकी-पहरेका पूरा प्रबन्ध रहे। द्वारोंका विभाग ठीक स्थानपर होना चाहिये तथा चारों ओरसे उनकी रक्षाके लिये यन्त्र (मशीन अथवा तोप) लगे रहने चाहिये। जिन मनुष्योंका कुल और शील अच्छी तरह मालूम हो, उन्हींसे काम लेना चाहिये। आहार और विहार करने, माला पहनने, शय्यापर सोने तथा आसनपर बैठनेके समय सदा सावधानीके साथ अपनी रक्षा

करनी चाहिये। कुलीन, शीलवान्, विद्वान्, विश्वासपात्र एवं वृद्ध पुरुषोंके द्वारा रनिवासकी रक्षाका पूर्ण प्रबन्ध करना चाहिये।

'युधिष्ठिर ! तुम उन्हीं ब्राह्मणोंको मन्त्री बनाना, जो विद्यामें प्रवीण, विनयशील, कुलीन, धर्म और अर्थमें कुशल तथा सरल स्वभाववाले हों; उन्हींके साथ तुम गूढ़ विषयपर परामर्श करना। किंतु अधिक लोगोंको साथ लेकर देरतक मन्त्रणा नहीं करनी चाहिये। सम्पूर्ण मन्त्रियोंको अथवा उनमेंसे दो-एकको किसी कामके बहाने चारों ओरसे सुरक्षित बंद कमरेमें या खुले मैदानमें ले जाकर उनके साथ परामर्श करना। जिसमें अधिक घास-फूस या झाड़-झंखाड़ न हो, ऐसे जंगलमें भी मन्त्रणा की जा सकती है; किंतु रात्रिके समय तो इन स्थानोंमें किसी तरह गुप्त सलाह नहीं करनी चाहिये। बंदर, पक्षी, मनुष्योंके पीछे चलनेवाले प्राणी, मूर्ख तथा पंगु मनुष्य—इन सबोंको मन्त्रणा-गृहमें नहीं आने देना चाहिये; क्योंकि गुप्त मन्त्रणाके दूसरोंपर प्रकट हो जानेसे राजाओंको जिन संकटोंका सामना करना पड़ता है, उनका किसी तरह निवारण नहीं किया जा सकता—ऐसा मेरा विश्वास है। मन्त्रणा खुल जानेसे जो दोष पैदा होते हैं, उनको तुम अपने मन्त्रिमण्डलके समक्ष सदा बतलाते रहना। नगर और प्रान्तमें रहनेवाले लोगोंका हार्दिक भाव तुम्हारे प्रति शुद्ध है या अशुद्ध, इस बातको जाननेकी पूरी चेष्टा रखना। न्याय करनेके कामपर तुम सदा ऐसे ही पुरुषोंको नियुक्त करना, जो विश्वासपात्र, संतोषी और हितैषी हों तथा गुप्तचरोंके द्वारा हमेशा उनके कार्योंपर दृष्टि रखना। तुम्हें ऐसा विधान बनाना चाहिये, जिससे तुम्हारे नियुक्त किये हुए न्यायाधिकारी पुरुष अपराधियोंके अपराधोंको भलीभाँति समझकर जो दण्डनीय हों, उन्हें ही उचित दण्ड दें। जिनकी दूसरोंसे रिश्वत लेनेकी आदत हो, जो परायी स्त्रियोंका अपहरण करते हों, जिनमें कठोर दण्ड देनेकी प्रवृत्ति हो, जो झूठा फैसला देनेवाले, कटुवादी, लोभी, दूसरोंका धन हरनेवाले, दुःसाहसका काम करनेवाले, सभाभवन और विहारस्थलोंको भङ्ग करनेवाले और वर्णसंकर-दोषके प्रचारक हों, उन मनुष्योंको देश-कालका ध्यान रखते हुए आर्थिकदण्ड अथवा प्राणदण्ड देना चाहिये। प्रातःकाल उठकर (नित्य-नियमसे निवृत्त होनेके बाद) पहले तुम्हें उन लोगोंसे मिलना चाहिये, जो तुम्हारे लिये खर्च-बर्चके कामपर नियुक्त हों; इसके बाद आभूषण और भोजनपर ध्यान देना चाहिये। तत्पश्चात् सैनिकोंका हर्ष और उत्साह बढ़ाते हुए उनसे मिलना चाहिये। दूतों और जासूसोंसे मिलनेका उत्तम समय संध्याकाल है। पहरभर रात बाकी रहते ही उठकर अगले दिनके कर्तव्यका निर्णय कर लेना चाहिये। आधी रात और दोपहरके समय तुम्हें स्वयं घूम-फिरकर प्रजाकी अवस्थाका निरीक्षण करना उचित है। सदा न्यायका अनुसरण करते हुए ही तुम खजाना बढ़ानेका यत्न करना। न्यायके विपरीत उपायका अवलम्बन न करना। पहले काम देखकर फिर किसीको नौकरी देना। जो अपने आश्रयमें रहते हों, वे किसी स्थायी कामपर नियुक्त हों या न हों, उनसे काम बराबर लेते रहना चाहिये। सेनापति उसको बनाना चाहिये जो दृढ़प्रतिज्ञ, शूरवीर, क्लेश सह सकनेवाला, हितैषी, पुरुषार्थी और स्वामिभक्त हो। तुम्हारे राज्यके अंदर रहनेवाले कारीगर यदि तुम्हारा काम करें तो तुम्हें उनके भरण-पोषणका प्रबन्ध करना चाहिये। अपनी और शत्रुओंकी कमजोरीपर सदा दृष्टि रखनी चाहिये। अपने देशमें उत्पन्न होनेवाले पुरुषोंमेंसे जो लोग अपने कार्यमें विशेष कुशल और हितैषी हों, उन्हें उनके योग्य आजीविका देकर अपनाना चाहिये। बुद्धिमान् राजाको उचित है कि वह गुणार्थी मनुष्योंके गुण बढ़ानेका प्रयत्न करता रहे।

'भारत ! तुम अपने शत्रुओंके, उदासीन राजाओंके तथा मध्यस्थ पुरुषोंके समुदायपर दृष्टि रखो। चार प्रकारके शत्रुसमुदाय, छः प्रकारके आततायी, अपने मित्र तथा शत्रुके मित्र—इन बारह प्रकारके मनुष्योंकी तुम्हें सदा जानकारी रखनी चाहिये। मन्त्री, देश, दुर्ग और सेना—इन्हींपर शत्रुओंका लक्ष्य रहता है; अतः इनकी रक्षामें सावधान होना चाहिये। उपर्युक्त बारह प्रकारके मनुष्य राजाओंके ही मुख्य विषय हैं। मन्त्रीके अधीन रहनेवाले कृषि आदि साठ गुण और पूर्वोक्त बारह मनुष्य—इन सबको नीतिज्ञ आचार्योंने 'मण्डल' नाम दिया है। राजाको इनकी जानकारी होनी आवश्यक है; क्योंकि राज्य-रक्षाके छः उपायोंका उचित उपयोग इन्हींके अधीन है। राजाको चाहिये कि वह अपनी वृद्धि, क्षय तथा स्थितिका हमेशा ज्ञान रखे और जब अपना पक्ष बलवान् और शत्रुका पक्ष निर्बल जान पड़े, उस समय शत्रुके साथ लड़ाई छेड़कर उसे जीतनेका उद्योग करे; किंतु जिस समय शत्रु-पक्ष प्रबल और अपना ही पक्ष दुर्बल हो, उस समय शत्रुओंके साथ संधि कर ले। राजाको हमेशा द्रव्योंका महान् संग्रह रखना चाहिये। जब वह शत्रुपर शीघ्र ही चढ़ाई करनेमें समर्थ न हो सके तो उस समय जो उसका उचित कर्तव्य हो, उसका भलीभाँति विचार कर ले। शत्रुको कम उपजवाली जमीन, थोड़ा-सा सोना और अधिक मात्रामें जस्ता-पीतल आदि धातुएँ तथा दुर्बल मित्र देकर उसके साथ संधि करे; किंतु शत्रु-पक्षकी ओरसे जब संधिका प्रस्ताव किया जाय तो संधिकुशल राजाको उससे विपरीत वस्तुएँ—उपजाऊ भूमि, सोना-चाँदी

आदि धातुएँ तथा बलवान् मित्रोंको लेकर संधि करनी चाहिये अथवा प्रतिद्वन्द्वी राजाके राजकुमारको ही अपने यहाँ जमानतके तौरपर रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये, इससे विपरीत बर्ताव करना अच्छा नहीं है। यदि कोई आपत्ति आ जाय तो उचित उपाय और मन्त्रणाके ज्ञाता राजाको उससे छूटनेका उद्योग करना चाहिये। प्रजाजनोंके भीतर जो दीन-दरिद्र मनुष्य हों, उनपर कृपादृष्टि रखनी चाहिये। अपनी वृद्धि चाहनेवाले राजाको उचित है कि वह अपने समीप आये हुए सामन्त राजाका वध न करे। जो समूची पृथ्वीपर विजय पाना चाहता हो, वह तो कदापि उसकी हिंसा न करे। अच्छे पुरुषोंसे मेल-जोल बढ़ावे, दुष्टोंको कैद करके उन्हें दण्ड दे। बलवान् पुरुषको दुर्बलोंके विनाशकी चेष्टा कभी नहीं करनी चाहिये। युधिष्ठिर ! तुम्हें बेंतकी-सी वृत्ति (नम्रता) का आश्रय लेना चाहिये। यदि किसी दुर्बल राजापर बलवान् राजा आक्रमण करे तो अपनेमें युद्धकी शक्ति न देखकर मन्त्रियोंके साथ उसकी शरणमें जाय और कोष, पुरवासी मनुष्य, दण्डशक्ति तथा अन्य प्रिय वस्तुएँ अर्पण करके साम आदि उपायोंके द्वारा प्रतिद्वन्द्वीको लौटानेकी चेष्टा करे। यदि किसी भी उपायसे संधि न हो सके तो युद्धके लिये टूट पड़े। उस दशामें मृत्यु भी हो जाय तो वीर पुरुषकी मुक्ति हो जाती है।

'युधिष्ठिर ! तुम्हें संधि और विग्रहपर भी दृष्टि रखनी चाहिये। शत्रु प्रबल हो तो उसके साथ संधि करना और दुर्बल हो तो उसके साथ युद्ध छेड़ना—ये संधि और विग्रहके दो आधार हैं। इनके प्रयोगके नाना उपाय हैं तथा इनके प्रकार भी बहुत हैं। अपनी द्विविध अवस्था—बलाबलका अच्छी तरह विचार करके शत्रुसे युद्ध या मेल करना उचित है। यदि शत्रु मनस्वी है और उसके सैनिक हृष्ट-पुष्ट एवं संतुष्ट हैं तो उसपर सहसा धावा न करके उसे परास्त करनेका दूसरा कोई उपाय सोचे। आक्रमण करना तो तभी उचित है जब शत्रु विपरीत अवस्थामें हो अर्थात् उसके सैनिक निर्बल और असंतुष्ट हों। यदि शत्रुसे अपना मान-मर्दन होनेकी सम्भावना हो तो वहाँसे भागकर किसी मित्र राजाकी शरण लेनी चाहिये और चेष्टा करनी चाहिये कि शत्रुओंमें परस्पर फूट हो जाय। उन्हें भय देने और संग्राममें उनके सैनिकोंको नष्ट करनेका भी यत्न करते रहना चाहिये। शत्रुपर चढ़ाई करनेवाले राजाको अपनी और विपक्षीकी त्रिविध शक्तियोंपर भलीभाँति विचार कर लेना उचित है। शत्रुकी अपेक्षा उत्साह-शक्ति, प्रभु-शक्ति और मन्त्र-शक्तिमें बढ़ा-चढ़ा राजा ही सफल आक्रमण कर सकता है। यदि इसके विपरीत स्थिति हो तो आक्रमणका विचार त्याग देना चाहिये। राजाको अपने पास सेनाबल, धनबल, मित्रबल, अरण्यबल, भृत्यबल और श्रेणिबलका संग्रह करना चाहिये। इनमें मित्रबल और धनबल सबसे बढ़कर हैं। देश-कालकी अनुकूलता होनेपर सैनिकबल तथा राजोचित गुणोंसे युक्त राजा अच्छी सेना साथ लेकर विजयके लिये यात्रा करे। यदि अपनेमें असमर्थता न हो तो युद्धके अनुकूल मौसम न होनेपर भी शत्रुपर चढ़ाई करे। युद्धके समय युक्ति करके सेनाका शकट, पद्म अथवा वज्रव्यूह बना ले। शुक्राचार्यके ग्रन्थमें ऐसा ही विधान मिलता है। गुप्तचरोंके द्वारा शत्रुकी तथा अपनी सेनाकी जाँच-पड़ताल करके अपने या शत्रुके अधिकृत प्रदेशमें युद्ध आरम्भ करे। राजाको चाहिये कि वह पारितोषिक आदिके द्वारा सेनाको संतुष्ट रखे और उसमें बलवान् मनुष्योंकी भर्ती करे। अपने बलाबलको अच्छी तरह समझकर साम आदि उपायोंके द्वारा संधि या युद्धके लिये उद्योग करे। जो राजा इन सब बातोंका विचार करके इनके अनुसार ठीक-ठीक आचरण और प्रजाका धर्मपूर्वक पालन करता है, वह मृत्युके पश्चात् स्वर्गलोकको जाता है। बेटा ! इसी प्रकार तुम्हें भी इहलोक और परलोकमें सुख पानेके लिये सदा प्रजावर्गके हित-साधनमें संलग्न रहना चाहिये। भीष्मजी, भगवान् श्रीकृष्ण तथा विदुरने तुम्हें सभी बातोंका उपदेश कर दिया है। मेरा भी तुम्हारे ऊपर प्रेम है, इसलिये मैंने भी कुछ बतलाना आवश्यक समझा है; उन सब बातोंका यथोचित पालन करना। इससे तुम प्रजाके प्रिय बनोगे और स्वर्गमें भी सुख पाओगे। राजा एक हजार अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान करे अथवा धर्मपूर्वक प्रजाका पालन; दोनोंका समान ही फल मिलता है।'



धृतराष्ट्रका प्रजावर्गसे वन जानेकी अनुमति लेते हुए क्षमा माँगना और युधिष्ठिरको उनके हाथों सौंपना

युधिष्ठिरने कहा—महाराज ! आप जैसा कहते हैं, वैसा ही करूँगा। अभी कुछ और उपदेश दीजिये। भीष्मजी स्वर्ग सिधारे, श्रीकृष्ण द्वारका चले गये और विदुर तथा सञ्जय भी आपके साथ जा रहे हैं। अब दूसरा कौन रह जाता है, जो मुझे उपदेश देगा ? मेरे हितका विचार करके इस समय आप जो कुछ उपदेश देते हैं, उसीके अनुसार मैं सब काम करूँगा।

धर्मराजके ऐसा कहनेपर धृतराष्ट्रने कहा—'बेटा ! अब रहने दो, मुझे बोलनेमें बड़ा परिश्रम पड़ता है। अब तो मैं जानेकी अनुमति चाहता हूँ। यह कहकर वे गान्धारीके महलमें चले गये। वहाँ जब वे आसनपर बैठे तो धर्मपरायणा गान्धारीदेवीने उनसे पूछा—'नाथ ! महर्षि व्यासने स्वयं आकर आपको वन जानेकी आज्ञा दे दी है और युधिष्ठिरकी भी अनुमति मिल गयी। अब आप किस दिन वनको चलेंगे ?'

धृतराष्ट्रने कहा—गान्धारी ! अब वन चलनेमें अधिक विलम्ब नहीं है। मैं चाहता हूँ प्रजाको बुलाकर अपने मरे हुए पुत्रोंके उद्देश्यसे कुछ धन दान कर लूँ।

यों कहकर धृतराष्ट्रने धर्मराज युधिष्ठिरके पास अपना विचार कहला भेजा। युधिष्ठिरने उनकी आज्ञाके अनुसार सब सामग्री जुटा दी। फिर (राजाका संदेश पाकर) कुरुजाङ्गलदेशके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वहाँ एकत्रित हुए। तदनन्तर, महाराज धृतराष्ट्र अन्तःपुरसे बाहर निकले और वहाँ नगर तथा प्रान्तकी प्रजाको उपस्थित देखकर बोले—'सज्जनो ! आप और कौरव चिरकालसे एक साथ रहते आये हैं। कौरवों तथा आपमें परस्पर घनिष्ठ स्नेह स्थापित हो गया है। आप दोनों सदा एक-दूसरेके हितमें परायण रहते हैं। इस समय मैं आपलोगोंसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। आप उसे बिना विचारे स्वीकार करनेकी कृपा करें। मैंने गान्धारीके साथ वनमें जानेका निश्चय किया है। इसके लिये महर्षि व्यास और कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिरकी भी अनुमति मिल गयी है। अब आपलोग भी मुझे वनमें जानेकी आज्ञा दें, इसमें कुछ अन्यथा विचार न करें। हमारे साथ आपलोगोंका जो यह प्रेम-सम्बन्ध सदासे चला आ रहा है, ऐसा सम्बन्ध मेरी समझमें दूसरे देशके राजाओंके साथ वहाँकी प्रजाका शायद ही हो। अब बुढ़ापेने मुझे और गान्धारीको बहुत थका दिया है, इधर उपवास करनेके कारण भी हम दोनों अधिक दुर्बल हो गये हैं। युधिष्ठिरके राज्यमें मुझे बड़ा सुख मिला है। मैं समझता हूँ दुर्योधनके राज्यमें भी कभी इतना सुख नहीं नसीब हुआ। एक तो मैं जन्मका अंधा हूँ, दूसरे बुढ़ापेने मुझपर अधिकार जमा लिया है; इसपर भी मेरे बेटे मारे गये हैं (उनका शोक कभी दूर नहीं होता)। ऐसी दशामें वनमें जानेके सिवा मेरे कल्याणका और क्या उपाय हो सकता है ? इसलिये अब आपलोग मुझे जानेकी आज्ञा दें।'

धृतराष्ट्रकी ये बाते सुनकर वहाँ उपस्थित हुए कुरुजाङ्गलनिवासी सभी मनुष्योंकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली और वे फूट-फूटकर रोने लगे। उन्हें शोकमग्न होकर कुछ भी उत्तर देते न देख धृतराष्ट्र फिर कहने लगे—'भाइयो ! महाराज शान्तनुने इस पृथ्वीका यथावत् पालन किया था। उनके बाद यह भीष्मके द्वारा सुरक्षित राजा विचित्रवीर्यके अधिकारमें आयी। उन्होंने जिस प्रकार इस राज्यकी रक्षा की, वह आपलोगोंसे छिपा नहीं है। तदनन्तर, मेरे भाई पाण्डुने इसका विधिवत् पालन किया था, इसे भी आपलोग जानते हैं। अपने प्रजा-पालनरूपी गुणके कारण ही वे आपलोगोंके परमप्रिय हो गये थे। पाण्डुके बाद मैंने आपलोगोंकी भली या बुरी जैसी बन सकी, सेवा की है। किंतु उस समय मुझसे जो अपराध हो गये हों, उन्हें आपलोग क्षमा कीजियेगा। दुर्योधनने जब अकण्टक राज्यका उपभोग किया था, उस समय उसने भी आपलोगोंका कुछ नहीं बिगाड़ा था (केवल पाण्डवोंके साथ अन्याय किया था)। किंतु उस दुर्बुद्धिके अपराध और अभिमानसे तथा मेरे किये हुए अन्यायके कारण असंख्य राजाओंका महान् संहार हो गया है। उस अवसरपर मुझसे भला या बुरा जो कुछ हुआ है, उसे आपलोग भूल जायँ; इस बातके लिये मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ। मुझे वृद्ध, दुःखी और अपने प्राचीन राजाओंका वंशज समझकर क्षमा करें। यह बेचारी तपस्विनी गान्धारी भी मेरे साथ आपलोगोंसे क्षमा-याचना करती है। हम दोनों वृद्ध हैं और अपने पुत्रोंके मारे जानेके कारण दुःखमें डूबे हुए हैं—ऐसा जानकर आप हमें क्षमादान देते हुए वनमें जानेकी आज्ञा दें। आपलोगोंका कल्याण हो। हम दोनों आपकी शरणमें हैं। ये कुरुकुलभूषण कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर आपलोगोंके राजा हैं अच्छे और बुरे—सभी समयमें आप सब लोग इनपर कृपादृष्टि रखें। लोकपालोंके समान महान् तेजस्वी तथा धर्म और अर्थके मर्मज्ञ भीमसेन आदि चार भाई जिनके मन्त्री हैं, ऐसे राजा युधिष्ठिर कभी संकटमें नहीं पड़ सकते; फिर भी आपलोगोंको इनका खयाल रखना चाहिये। सम्पूर्ण जीव-जगत्के स्वामी भगवान् ब्रह्माकी भाँति ये महान् तेजस्वी युधिष्ठिर आपलोगोंका यथावत् पालन करेंगे। मैं इन्हें धरोहरके रूपमें आपलोगोंके हाथ सौंपता हूँ तथा आपलोगोंको इनके हाथमें दे रहा हूँ। आपलोग अत्यन्त गुरुभक्त हैं, अतः मैं आपको हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। मेरे पुत्रोंकी बुद्धि चञ्चल थी। वे लोभी और स्वेच्छाचारी थे, उनके अपराधोंके लिये मैं और गान्धारी दोनों आपसे क्षमाकी भीख माँगते हैं।'

धृतराष्ट्रके इस प्रकार कहनेपर नगर और प्रान्तके रहनेवाले सब लोग नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए एक-दूसरेका मुँह देखने लगे, किसीने कोई उत्तर नहीं दिया।



साम्ब नामक ब्राह्मणका प्रजाकी ओरसे धृतराष्ट्रको उत्तर देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! कुरुराजकी करुणाभरी बातें सुनकर वहाँ एकत्रित हुए सब लोग दुपट्टों और हाथोंसे अपना-अपना मुँह ढककर रोने लगे। अपनी संतानको विदा करते समय पिता और माताको जितना क्लेश होता है, उतना ही क्लेश कुरुजाङ्गलनिवासी मनुष्योंको हुआ। वे शोकसे संतप्त हो उठे और अपने सूने हृदयमें धृतराष्ट्रके प्रवासजन्य दुःखको धारण करके अचेत-से हो गये। फिर धीरे-धीरे उनके वियोगजनित क्लेशको कम करके उन सबने आपसमें बात करके अपनी-अपनी राय जाहिर की। तदनन्तर, एकमत होकर उन्होंने राजाकी बातका उत्तर देनेका भार एक ब्राह्मणपर रखा। वे ब्राह्मणदेवता सदाचारी, सबके माननीय और अर्थ-ज्ञानमें निपुण थे। उनका नाम था साम्ब। वे ऋग्वेदके विद्वान्, निर्भय होकर बोलनेवाले और बुद्धिमान् थे। उन्होंने उठकर महाराजको आदर देते और सारी सभाको प्रसन्न करते हुए इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'राजन् ! यहाँ उपस्थित हुए सब लोगोंने अपना विचार प्रकट करनेका सारा भार मुझपर रखा है, इसलिये मैं ही इनकी बातें आपकी सेवामें निवेदन करूँगा। आप सुननेकी कृपा करें। महाराज ! आप जो कुछ कहते हैं, वह सब ठीक है; उसमें असत्यका लेश भी नहीं है। निःसंदेह हममें और आपमें परस्पर घनिष्ठ स्नेह स्थापित हो चुका है। इस राजवंशमें कभी कोई भी ऐसा राजा नहीं हुआ, जो प्रजाका पालन करते समय सबका प्रिय न रहा हो। आपलोग पिता और बड़े भाईके समान हमारा पालन करते हैं। राजा दुर्योधनने भी हमारे साथ कोई अनुचित बर्ताव नहीं किया है। परम धर्मात्मा महर्षि व्यासजी आपको जैसी सलाह देते हैं, वैसा ही कीजिये; क्योंकि वे हम सब लोगोंके परम गुरु हैं। आपसे बिछुड़ जानेपर हम बहुत दिनोंतक दुःख और शोकमें डूबे रहेंगे। आपके सैकड़ों गुणोंकी याद हमें भूल नहीं सकती। महाराज शान्तनु, राजा चित्राङ्गद और भीष्मद्वारा सुरक्षित आपके पिता विचित्रवीर्यने जिस प्रकार इस पृथ्वीका पालन किया है तथा आपकी देख-रेखमें रहकर राजा पाण्डुने जिस तरह इस राज्यकी रक्षा की है, उसी प्रकार आपके पुत्र दुर्योधनने भी हमलोगोंका यथावत् पालन किया है। उन्होंने रत्तीभर भी हमारी बुराई नहीं की है। हमलोग पिताके समान उनपर विश्वास करते थे और उनके राज्यमें बड़े सुखसे जीवन व्यतीत करते थे, यह बात आपसे छिपी नहीं है। बड़ी-बड़ी दक्षिणा प्रदान करनेवाले धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर तो प्राचीनकालके पुण्यात्मा राजर्षि कुरु और संवरण आदिके तथा राजा भरतके बर्तावका अनुसरण करते हैं। इनमें कोई छोटे-से-छोटा दोष भी नहीं दिखायी देता। इनके राज्यमें आपके द्वारा सुरक्षित होकर हम सदा सुखसे ही रहते आ रहे हैं। आपका या आपके पुत्रका कोई सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अपराध भी हमारे देखनेमें नहीं आया। महाभारत-युद्धमें जो जाति-भाइयोंका संहार हुआ है और उसके विषयमें जो आपने दुर्योधनके अपराधकी चर्चा की है, इसके सम्बन्धमें भी मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। कौरवोंके मारे जानेमें न दुर्योधनका हाथ है, न आपका; कर्ण और शकुनिने भी कुछ नहीं किया है। हमारी समझमें तो यह दैवका विधान था, जिसे कोई टाल नहीं सकता था। पुरुषार्थसे दैवको मेटना असम्भव है। उस युद्धमें अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्रित हुई थीं; किंतु भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण और कृपाचार्य आदि कौरव-पक्षके प्रधान योद्धाओंने तथा सात्यकि, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव आदि पाण्डव-पक्षके वीरोंने अठारह दिनोंमें ही सबका संहार कर डाला। ऐसा विकट संहार दैवी शक्तिके बिना कदापि नहीं हो सकता था। अतः उन राजाओंके वधमें आपके पुत्र दुर्योधन, आप, आपके सेवक, महावीर कर्ण तथा शकुनि भी कारण नहीं हैं। उस समय जो हजारों राजा मौतके घाट उतारे गये, वह सब दैवकी ही करतूत समझिये। इस विषयमें दूसरा कोई क्या कह सकता है। आप इस सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, इसलिये हम आपको सबसे श्रेष्ठ और धर्मात्मा मानते हैं तथा आप और आपके पुत्रके साथ अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं। परमात्मा करे, महाराज दुर्योधन ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे अपने सहायकोंसहित वीरलोकको प्राप्त हों। आप भी धर्ममें ऊँची स्थिति और पुण्य प्राप्त करें। आप सम्पूर्ण धर्मोंको ठीक-ठीक जानते हैं, इसलिये उत्तम व्रतोंके अनुष्ठानमें लग जाइये। पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिर पहलेके राजाओंद्वारा स्वीकृत किये हुए ब्राह्मणोंके अग्रहार (दानमें दिये हुए ग्राम) तथा परिबर्ह (पुरस्कारमें दिये हुए ग्राम) की रक्षा करते ही हैं। ये दीर्घदर्शी, कोमल स्वभाववाले और जितेन्द्रिय हैं। इनके मन्त्री उच्च विचारके हैं, इनका हृदय बड़ा ही विशाल है। ये शत्रुओंपर भी दया करनेवाले और परम पवित्र हैं। बुद्धिमान् होनेके साथ ही ये सबको सरल भावसे देखनेवाले हैं और हमलोगोंका सदा पुत्रवत् पालन करते हैं। ये पाँचों भाई बड़े पराक्रमी, महात्मा तथा पुरवासियोंके हित-साधनमें लगे रहनेवाले हैं। कुन्ती, द्रौपदी, उलूपी और

सुभद्रा भी कभी प्रजाके प्रतिकूल व्यवहार नहीं करेंगी। आपका प्रजाके साथ जो स्नेह था, उसे युधिष्ठिरने और भी बढ़ा दिया है। नगर और प्रान्तके लोग कभी उनकी अवहेलना नहीं कर सकते। इसलिये महाराज! आप युधिष्ठिरके विषयकी चिन्ता तो छोड़ दीजिये और अपने धार्मिक कार्योंके अनुष्ठानमें लग जाइये। आपको समस्त प्रजाका नमस्कार है।'

साम्बके धर्मानुकूल और गुणयुक्त वचन सुनकर समस्त प्रजा उन्हें साधुवाद देने लगी तथा सबने उनकी बातका अनुमोदन किया। धृतराष्ट्रने भी बारम्बार साम्बके वचनोंकी सराहना की और सब लोगोंसे सम्मानित होकर धीरे-धीरे सबको विदा कर दिया। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर उन ब्राह्मण-देवताका सत्कार किया और गान्धारीके साथ वे फिर अपने महलमें चले गये।



धृतराष्ट्रका युधिष्ठिरसे धन लेकर उससे भीष्म आदिका श्राद्ध करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर, रात बीतनेपर जब सबेरा हुआ तो अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्रने विदुरजीको युधिष्ठिरके महलमें भेजा। राजाकी आज्ञासे महातेजस्वी विदुरजी युधिष्ठिरके पास जाकर बोले—'राजन्! महाराज



धृतराष्ट्र वनवासकी दीक्षा ले चुके हैं, आगामी कार्तिकी पूर्णिमाको वे वनकी यात्रा करेंगे। इस समय तुमसे कुछ धन लेना चाहते हैं। उनका विचार है कि महात्मा भीष्म, द्रोण, सोमदत्त, बाह्लीक और अपने पुत्रों तथा मरे हुए सुहृदोंका श्राद्ध करें और उनके निमित्त दान दें। तुम्हारी सम्मति हो तो वे जयद्रथका भी श्राद्ध करना चाहते हैं।' विदुरजीकी यह बात सुनकर युधिष्ठिर और अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए और उनकी सराहना करने लगे। परंतु भीमसेनके हृदयमें अमिट क्रोध जमा हुआ था। उन्हें दुर्योधनके किये हुए अत्याचारोंका स्मरण हो आया। अतः उन्होंने विदुरजीकी बात नहीं स्वीकार की। अर्जुन उनका मनोभाव ताड़ गये, इसलिये वे कुछ विनीत होकर बोले—'भैया! राजा धृतराष्ट्र हमारे ताऊ और वृद्ध पुरुष हैं तथा इस समय वनवासकी दीक्षा ले चुके हैं। जानेके पहले वे भीष्म आदि समस्त सुहृदोंका श्राद्ध कर लेना चाहते हैं, अतः इसमें आपको सहयोग देना चाहिये। सौभाग्यकी बात है कि राजा धृतराष्ट्र आज हमलोगोंसे धनकी याचना करते हैं। समयका उलट-फेर तो देखिये। पहले हमलोग जिनसे याचना करते थे, आज वे ही हमारे सामने हाथ फैलाते हैं। जो सम्पूर्ण भूमण्डलके राजा थे, वे आज वनमें जाना चाहते हैं; अतः आप उन्हें धन देनेके सिवा और कोई विचार मनमें न लावें। उनकी याचना ठुकरा देनेसे बढ़कर हमारे लिये और कोई कलंककी बात न होगी। उन्हें धन न देनेसे हमें महान् अधर्मका भागी होना पड़ेगा। आप राजा युधिष्ठिरके बर्तावसे शिक्षा ग्रहण करें; क्योंकि बड़ा भाई ईश्वरके समान होता है।'

अर्जुनकी यह बात सुनकर धर्मराजने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। तब भीमसेनने क्रोधमें भरकर कहा—'अर्जुन! हमलोग स्वयं ही महात्मा भीष्म, राजा सोमदत्त, भूरिश्रवा, राजर्षि बाह्लीक, महात्मा द्रोणाचार्य तथा अन्य सब सगे-सम्बन्धियोंका श्राद्ध करेंगे। हमारी माता कुन्ती कर्णको पिण्डदान कर लेगी। राजा धृतराष्ट्रको इसके लिये धन देनेकी आवश्यकता नहीं है। वे उपर्युक्त महानुभावोंका श्राद्ध न करें, यही मेरा विचार है। क्या तुम्हें उनकी करतूतें भूल गयीं? वे ही हमारे कुलमें आग लगानेवाले हैं। उनकी बुद्धि इतनी खोटी है कि कपट-द्यूत आरम्भ कराकर वे विदुरजीसे

बार-बार पूछते थे कि इस दावमें हमलोगोंने कितना जीता है ?' भीमको ऐसी बातें करते देख बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने डाँटकर कहा—'चुप रहो।'

अर्जुनने कहा—भैया ! आप मेरे बड़े और गुरुजन हैं, इसलिये मैं आपसे कुछ विशेष कहनेका साहस नहीं कर सकता। इतना ही निवेदन करता हूँ कि राजर्षि धृतराष्ट्र हमारे द्वारा सर्वथा सम्मान पानेके योग्य हैं। साधु स्वभाववाले श्रेष्ठ पुरुष दूसरोंके अपराधोंका स्मरण नहीं करते। वे सबके उपकारोंको ही याद रखते हैं।

महात्मा अर्जुनके ये वचन सुनकर धर्मात्मा युधिष्ठिरने विदुरजीसे कहा—'चाचाजी ! आप मेरी ओरसे राजा धृतराष्ट्रसे जाकर कह दीजिये कि वे अपने पुत्रोंका श्राद्ध करनेके लिये जितना भी धन लेना चाहें, मैं देने को तैयार हूँ। यह धन मैं अपने भण्डारमेंसे दूँगा। इसके लिये भीमसेनको दुःखी होनेकी आवश्यकता नहीं है।' विदुरजीसे ऐसा कहकर धर्मराजने अर्जुनकी बड़ी प्रशंसा की। तब भीमसेन कुछ संकुचित होकर अर्जुनकी ओर कनखियोंसे देखने लगे। यह देख राजा युधिष्ठिर पुनः विदुरजीसे कहने लगे—'आप राजा धृतराष्ट्रसे यह भी कहियेगा कि भीमसेनपर वनवासके दुःखोंका विशेष प्रभाव पड़ा है; इसलिये ये डाहवश जो कुछ कहते या करते हैं, उसका वे खयाल न करें। मेरे और अर्जुनके भवनमें जितनी सम्पत्ति है, उसके मालिक महाराज ही हैं। वे अपनी इच्छाके अनुसार उसे खर्च करें और ब्राह्मणोंको दान दें। आज वे अपने पुत्रों और सुहृदोंके ऋणसे मुक्त हो जायँ। मेरा यह शरीर और धन—सब उन्हींके अधीन है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।'

राजा युधिष्ठिरके इस प्रकार कहनेपर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विदुरने धृतराष्ट्रके पास जाकर कहा—'महाराज ! मैंने युधिष्ठिरके यहाँ जाकर आपका संदेश कह सुनाया। उसे सुनकर उन्होंने आपकी बड़ी प्रशंसा की। महातेजस्वी अर्जुन तो अपना घर, सम्पत्ति और प्राणतक आपकी सेवामें समर्पण करनेको तैयार हैं। आपके पुत्र धर्मराज युधिष्ठिरकी भी यही स्थिति है। वे अपना राज्य, प्राण, धन तथा और जो कुछ उनके पास है, सब आपको दे रहे हैं। परंतु महाबाहु भीमसेनने पहलेके समस्त क्लेशोंका स्मरण करके बड़ी कठिनाईसे आपकी आज्ञा स्वीकार की है। धर्मात्मा युधिष्ठिर तथा अर्जुनने उन्हें भलीभाँति समझाकर उनके हृदयमें भी आपके प्रति सौहार्द उत्पन्न कर दिया है। धर्मराजने आपसे कहलाया है कि 'भीमसेन पूर्व वैरका स्मरण करके जो कभी-कभी आपके साथ अन्याय-सा कर बैठते हैं, उसके लिये आप इनपर क्रोध न कीजियेगा। भीमसेनके कटु बर्तावके लिये मैं और अर्जुन दोनों बारम्बार क्षमा-याचना करते हैं। आप प्रसन्न हों। मेरे पास जो कुछ है, उसके स्वामी आप ही हैं। आप जितना धन दान करना चाहते हों, करें। मेरे राज्य और प्राणोंके भी आप ही अधीश्वर हैं। पुत्रोंका श्राद्ध कीजिये और ब्राह्मणोंको माफी जमीन दीजिये।' युधिष्ठिरने यह भी कहा है कि 'महाराज धृतराष्ट्र मेरे यहाँसे नाना प्रकारके रत्न, गौएँ, दास और दासियाँ मँगवाकर ब्राह्मणोंको दान करें।' उन्होंने मुझसे कहा है—'विदुरजी ! आप दीनों, अंधों और कंगालोंके लिये भिन्न-भिन्न स्थानोंमें प्रचुर अन्न, रस और पीनेयोग्य पदार्थोंसे भरी हुई अनेकों धर्मशालाएँ बनवाइये तथा गौओंके पानी पीनेके लिये पौंसलेका निर्माण कीजिये। साथ ही भाँति-भाँतिके अन्य पुण्यकर्मोंका भी अनुष्ठान कीजिये।' इस प्रकार राजा युधिष्ठिर और अर्जुनने मुझसे जो कुछ कहा है, वह सब मैंने सुना दिया। अब इसके बाद जो काम करना हो, उसे बताइये।'

विदुरके ऐसा कहनेपर राजा धृतराष्ट्रने पाण्डवोंकी बड़ी सराहना की और कार्तिकी पूर्णिमापर बहुत बड़ा दान करनेका निश्चय किया। वे युधिष्ठिर तथा अर्जुनके कामसे बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने भीष्म आदिके श्राद्धके लिये योग्य ब्राह्मणों तथा श्रेष्ठ ऋषियोंको हजारोंकी संख्यामें निमन्त्रित किया तथा उनके लिये अन्न, पान, सवारी, ओढ़नेके वस्त्र, सुवर्ण, मणि, रत्न, कम्बल, ग्राम, खेत, धन, आभूषणभूषित हाथी और घोड़े आदि देनेकी व्यवस्था करायी। तत्पश्चात् मरे हुए एक-एक व्यक्तिका नाम ले-लेकर सबके उद्देश्यसे उपर्युक्त वस्तुओंका दान किया। द्रोण, भीष्म, सोमदत्त, बाह्लीक, राजा दुर्योधन तथा अन्य पुत्रोंका और जयद्रथ आदि सगे-सम्बन्धियोंका नाम उच्चारण करके उन सबके निमित्त पृथक्-पृथक् दान किया गया। युधिष्ठिरकी सम्मतिसे उस श्राद्ध-यज्ञमें बहुत-से धन तथा अनेक प्रकारके रत्नोंकी दक्षिणा दी गयी। धर्मराजकी आज्ञासे हिसाब लगाने और लिखनेवाले बहुतेरे कार्यकर्ता वहाँ निरन्तर उपस्थित रहकर धृतराष्ट्रसे पूछते रहते थे कि 'बताइये, इन याचकोंको क्या दिया जाय ? यहाँ सब सामग्री प्रस्तुत है।' उनके मुँहसे निकलते ही उतना दान दे दिया जाता था। बुद्धिमान् युधिष्ठिरके आदेशानुसार सौकी जगह हजार और हजारकी जगह दस हजारका दान दिया गया। जिस प्रकार मेघ पानीकी धारा बहाकर खेतीको हरी-भरी कर देता है, उसी प्रकार राजा धृतराष्ट्रने धनकी वर्षासे समस्त ब्राह्मणोंको तृप्त कर दिया। तदनन्तर, सभी वर्णके लोगोंको भाँति-भाँतिके भोजन और पीनेयोग्य रस प्रदान करके संतुष्ट किया। इस प्रकार उन्होंने पुत्रों, पौत्रों और पितरोंका तथा अपना और गान्धारीका भी

श्राद्ध किया। अनेकों प्रकारके दान देते-देते जब वे थक गये, तब उन्होंने उस दानयज्ञको बंद किया। राजा धृतराष्ट्रका वह महान्-दान-यज्ञ इस प्रकार पूर्ण हुआ। उसमें लगातार दस दिनोंतक दान देकर वे पुत्र और पौत्रोंके ऋणसे मुक्त हो गये।



धृतराष्ट्र और गान्धारीका कुन्ती आदिके साथ वन-गमन और कुन्तीका युधिष्ठिर आदिको समझाकर लौटाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर ग्यारहवें दिन प्रातःकाल गान्धारीसहित धृतराष्ट्रने वन जानेकी तैयारी करके पाण्डवोंको बुलाया और उनका यथावत् अभिनन्दन किया। उस दिन कार्तिककी पूर्णिमा थी। उन्होंने वेदके पारंगत विद्वानोंसे यात्राकालोचित इष्टि करवाकर वल्कल और मृगचर्म धारण किया और अग्निहोत्रको आगे करके वे राजमहलसे बाहर निकले; फिर लाजा और भाँति-भाँतिके फूलोंसे उस घरकी पूजा करके उन्होंने धन देकर भृत्योंका सत्कार किया। तत्पश्चात् सबको विदा करके चल दिये। उस समय राजा युधिष्ठिर हाथ जोड़े हुए काँपने लगे, आँसुओंसे उनका गला भर आया और वे जोर-जोरसे बिलख-बिलखकर रोने लगे। भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, विदुर, सञ्जय, युयुत्सु, कृपाचार्य, धौम्य तथा और भी बहुत-से ब्राह्मण आँसू बहाते हुए गद्‌गदकण्ठ होकर उनके पीछे-पीछे चले। आगे-आगे कुन्ती गान्धारीका हाथ पकड़े चल रही थीं, उनके पीछे आँखोंमें पट्टी बाँधे गान्धारी थीं। गान्धारीका हाथ कुन्तीके कंधेपर था और राजा धृतराष्ट्र गान्धारीके कंधेपर हाथ रखे निश्चिन्ततापूर्वक चले जा रहे थे। द्रौपदी, सुभद्रा, चित्राङ्गदा, नन्हा-सा बालक लिये उत्तरा तथा कुरुकुलकी अन्य स्त्रियाँ अपनी बहुओंको साथ लिये राजा धृतराष्ट्रके साथ जा रही थीं। उस समय दुःखके आवेगसे वे कुररीकी भाँति उच्चस्वरसे विलाप कर रही थीं। उनके रोनेकी आवाज सुनकर चारों ओरसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंकी स्त्रियाँ भी घर छोड़कर बाहर निकल आयीं। जिन रमणियोंने कभी बाहर आकर सूर्य और चन्द्रमातकको नहीं देखा था, वे ही कौरवराज धृतराष्ट्रके वनमें प्रस्थान करते समय शोकसे व्याकुल होकर खुली सड़कपर आ गयी थीं।



तदनन्तर, राजा धृतराष्ट्र वर्धमान नामक द्वारसे होते हुए हस्तिनापुर नगरसे बाहर निकले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बारम्बार आग्रह करके अपने साथ आये हुए जनसमूहको विदा किया। विदुर और सञ्जयने राजाके साथ वनमें जानेका निश्चय कर लिया था, इसलिये वे दोनों नहीं लौटे; किंतु कृपाचार्य और महारथी युयुत्सुको युधिष्ठिरके हाथों सौंपकर उन्होंने लौटा दिया। पुरवासियोंके लौट जानेपर राजा युधिष्ठिरने रनिवासकी स्त्रियोंको साथ लेकर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे लौटनेका विचार किया और वनकी ओर जाती हुई अपनी माता कुन्तीसे कहा—'माताजी! आप अपनी बहुओंके साथ नगरको लौट जाइये। मैं महाराजके पीछे-पीछे जाऊँगा। ये धर्मात्मा नरेश तपस्याका निश्चय कर चुके हैं, इसलिये इन्हें वनमें जाने दीजिये।' धर्मराजके इस प्रकार कहनेपर कुन्तीकी आँखोंमें आँसू भर आये। तो भी वे गान्धारीका हाथ पकड़े चलती ही गयीं। जाते-जाते ही उन्होंने युधिष्ठिरसे कहा—'महाराज! तुम सहदेवकी कभी उपेक्षा न करना। ये मेरे और तुम्हारे परमभक्त हैं। संग्राममें कभी पीठ न दिखानेवाले अपने भाई कर्णको भी सदा याद रखना; क्योंकि मेरी ही दुर्बुद्धिके कारण वह वीर युद्धमें मारा गया। बेटा! मुझ अभागिनीका हृदय निश्चय ही लोहेका बना हुआ है। तभी तो आज कर्णको न देखकर इसके सैकड़ों टुकड़े

नहीं हो जाते। तुम अपने भाइयोंके साथ उसके लिये दान-पुण्य करते रहना। मेरी बहू द्रौपदीका भी सदा प्रिय करना। भीमसेन, अर्जुन और नकुलका हमेशा खयाल रखना; आजसे कुरुकुलका भार तुम्हारे ही ऊपर है। अब मैं वनमें गान्धारीके साथ रहकर तपस्या करूँगी और अपने इन सास-ससुरके चरणोंकी सेवामें लगी रहूँगी।'

कुन्तीके ऐसा कहनेपर भाइयोंसहित युधिष्ठिरको बड़ा दुःख हुआ। वे थोड़ी देरतक मौन रहकर कुछ सोचते रहे इसके बाद शोकाकुल होकर मातासे बोले—'माँ ! आपने अपने मनमें यह क्या ठान लिया ? आपको ऐसा नहीं करना चाहिये। मैं इसके लिये अनुमति नहीं दे सकता। हमलोगोंपर कृपा करके लौट चलिये। पहले आपने ही विदुलाके वचनोंसे हमें क्षत्रिय-धर्मके पालनके लिये उत्साहित किया था। पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे आपका विचार सुनकर ही मैंने राजाओंका संहार करके इस राज्यको हस्तगत किया है। कहाँ आपकी वह बुद्धि और कहाँ आजका यह विचार ! हमें क्षत्रिय-धर्मपर स्थित रहनेका उपदेश देकर आप स्वयं उससे गिरना चाहती हैं। भला, हमको, अपनी इस बहूको और इस राज्यको छोड़कर आप उस दुर्गम वनमें कैसे रह सकेंगी ? अतः हमारे ऊपर कृपा कीजिये।'

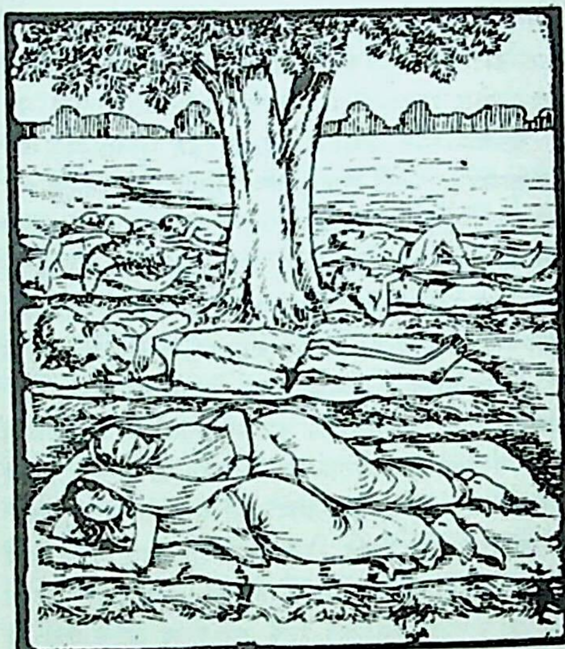
अपने पुत्रके ये अश्रुगद्गद वचन सुनकर कुन्तीके नेत्रोंमें भी आँसू उमड़ आये; तो भी वे रुक न सकीं, आगे बढ़ती ही गयीं। तब भीमसेनने कहा—'माताजी ! जब पुत्रोंके जीते हुए इस राज्यको भोगनेका अवसर आया और राजधर्मोंके पालनकी सुविधा प्राप्त हुई तो आपकी बुद्धि कैसे बदल गयी ? क्या कारण है कि आप हमें छोड़कर वनको जाना चाहती हैं ? जब वनमें ही रहना था तो बालक-अवस्थामें हमलोगोंको और दुःख-शोकमें डूबे हुए इन माद्रीकुमारोंको आप नगरमें क्यों ले आयीं ? माँ ! हमलोगोंपर प्रसन्न होइये और बलपूर्वक प्राप्त की हुई राजा युधिष्ठिरकी राजलक्ष्मीका उपभोग कीजिये।' यह सुनकर भी कुन्ती वनवासके निश्चयसे विचलित न हुई। उनके पुत्र नाना प्रकारसे विलाप करते रहे; किंतु उन्होंने उनकी बात नहीं मानी। सासको इस प्रकार वनवासके लिये जाती देख द्रौपदीका भी मुँह उदास हो गया और वह सुभद्राके साथ रोती हुई कुन्तीके पीछे-पीछे जाने लगी। कुन्तीकी बुद्धि बड़ी ही ऊँची थी। वे वनवासका निश्चय कर चुकी थीं, इसलिये अपने रोते हुए पुत्रोंकी ओर बारम्बार देखकर भी वे टस-से-मस न हुईं—आगे बढ़ती ही चली गयीं। पाण्डव भी अपने सेवकों और अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ उनके पीछे-पीछे जाने लगे। यह देख कुन्तीदेवी आँसू पोंछकर अपने पुत्रोंसे बोलीं—'महाबाहो ! तुम्हारा कहना ठीक है। पूर्वकालमें तुम नाना प्रकारके कष्ट उठा रहे थे, इसलिये मैंने तुम्हें युद्धके लिये उत्साहित किया था। जूएमें तुम्हारा राज्य छीन लिया गया था, तुम सुखसे भ्रष्ट हो चुके थे; और तुम्हारे ही बन्धु-बान्धव तुम्हारा तिरस्कार करते थे; इसलिये मैंने तुम्हें युद्धके लिये उत्साह प्रदान किया था। पाण्डुकी संतान किसी तरह नष्ट होनेसे बच जाय और तुम सब भाइयोंके सुयशका नाश न होने पावे—इस उद्देश्यसे ही मैंने तुम्हें युद्धके लिये उकसाया था (उसमें मेरा कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं था)। मैं अपने स्वामी महाराज पाण्डुके विशाल राज्यका सुख भोग चुकी हूँ। बड़े-बड़े दान और विधिवत् सोम-पान भी कर चुकी हूँ। मैंने अपने लाभके लिये श्रीकृष्णको प्रेरित नहीं किया था। विदुलाके वचन सुनाकर जो उनके द्वारा तुम्हारे पास संदेश भेजा था, वह सब तुम्हारी रक्षाके उद्देश्यसे ही किया गया था। बेटा युधिष्ठिर ! अब मैं तपस्याके द्वारा अपने पतिके पवित्र लोकमें जाना चाहती हूँ, अतः वनवासी सास-ससुरकी सेवा करके तपके द्वारा इस शरीरको सुखा डालूँगी। तुम भीमसेन आदिके साथ लौट जाओ। मैं आशीर्वाद देती हूँ—तुम्हारी बुद्धि धर्ममें लगी रहे और तुम्हारा हृदय अत्यन्त उदार हो।'



गान्धारी और धृतराष्ट्र आदिका गङ्गा-तटपर विश्राम करते हुए कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर घोर तपस्या करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कुन्तीकी बात सुनकर पाण्डव बहुत लज्जित हुए और उन्हें लौटानेमें सफल न होकर राजा धृतराष्ट्रकी प्रदक्षिणा एवं प्रणाम करके द्रौपदीसमेत नगरको लौट पड़े। तदनन्तर धृतराष्ट्रने गान्धारी और विदुरका सहारा लेकर कहा—'गान्धारी! युधिष्ठिरकी माता कुन्तीको लौटा दो। युधिष्ठिर जैसा कह रहे हैं, वह सब ठीक ही है। यह राज्यमें रहकर भी बड़े-बड़े दान और तप कर सकती है। बहू कुन्तीकी सेवा-शुश्रूषासे मैं बहुत संतुष्ट हूँ, इसलिये अब तुम इसे घर लौट जानेकी आज्ञा दो।' राजाके ऐसा कहनेपर गान्धारीदेवीने कुन्तीसे उनका संदेश सुना दिया और अपनी ओरसे भी उन्हें लौटनेके लिये विशेष जोर दिया; किंतु धर्मपरायणा सती कुन्तीदेवी वनवासके लिये दृढ़ निश्चय कर चुकी थीं, अतः गान्धारी उन्हें किसी प्रकार लौटा न सकीं। कुरुकुलकी स्त्रियाँ कुन्तीका यह दृढ़ निश्चय जानकर पाण्डवोंको निराश लौटते देख फूट-फूटकर रोने लगीं। जब बहुओंके साथ समस्त पाण्डव लौट गये, तो राजा धृतराष्ट्र वनकी ओर चल दिये। उस समय पाण्डव अत्यन्त दीन और दुःख-शोकमें मग्न हो रहे थे। उन्होंने वाहनोंपर बैठकर स्त्रियोंसहित नगरमें प्रवेश किया। उस दिन बालक-वृद्ध और स्त्रियोंसहित सारा हस्तिनापुर नगर हर्ष और आनन्दसे रहित, उत्सवशून्य—उदास-सा हो गया था। किसीके मनमें उत्साह नहीं रह गया था। कुन्तीके बिना बेचारे पाण्डवोंकी दशा तो बिना गायके बछड़ोंकी-सी हो गयी थी।

उधर, राजा धृतराष्ट्रने उस दिन बहुत दूरतक यात्रा करनेके पश्चात् गङ्गाके तटपर निवास किया। वहाँके तपोवनमें वेदवेत्ता ब्राह्मणोंद्वारा विधिपूर्वक प्रकट की हुई आग यत्र-तत्र प्रज्वलित हो रही थी। वृद्ध राजा धृतराष्ट्रने भी अग्निको प्रकट किया और उसकी विधिवत् आराधना करके उसमें आहुति डाली। फिर सूर्यदेवको संध्याके समय अस्त होते देख उनका उपस्थान किया। इसके बाद विदुर और सञ्जयने राजाके लिये कुशोंकी शय्या बिछा दी। उनके पास ही गान्धारीके लिये भी एक पृथक् आसन लगा दिया। उत्तम व्रतोंका पालन करनेवाली कुन्ती भी गान्धारीके निकट कुशासनके ऊपर सोयीं और उसीमें उन्होंने सुख माना। विदुर आदि भी राजासे उतनी ही दूरपर सोये, जहाँसे उनकी आवाज सुनायी दे सके। यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण तथा राजाके साथ आये हुए अन्य विप्र यथायोग्य स्थानपर सोये। उस



तपोवनमें मुख्य-मुख्य ब्राह्मण स्वाध्याय करते थे और जहाँ-तहाँ अग्निहोत्रकी आग प्रज्वलित हो रही थी। इससे वह रात्रि उन लोगोंको बड़ी आनन्ददायिनी जान पड़ी। रात बीत जानेपर प्रातःकाल उठकर सब लोगोंने पूर्वाह्न-कालकी क्रिया पूरी की और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करके सब-के-सब उत्तरदिशाकी ओर क्रमशः आगे बढ़े। किसीने भोजन नहीं किया था। सब लोग उपवास-व्रतका ही पालन कर रहे थे।

तदनन्तर, (दिन व्यतीत होनेपर) विदुरजीके कहनेसे राजा धृतराष्ट्रने पुण्यात्मा पुरुषोंके रहनेयोग्य भागीरथीके पवित्र तटपर निवास किया। वहाँ वनवासी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बहुत बड़ी संख्यामें एकत्रित होकर राजासे मिलनेको आये। उनसे घिरे हुए राजा धृतराष्ट्रने नाना प्रकारकी बातचीत करके सबको प्रसन्न किया और ब्राह्मणों तथा उनके शिष्योंका विधिवत् पूजन करके उन्हें विदा किया। तत्पश्चात् सायंकालमें राजा तथा यशस्विनी गान्धारीदेवीने गङ्गाजीके जलमें प्रवेश करके विधिवत् स्नान किया और विदुर आदि अन्य सब लोगोंने भी गङ्गाके भिन्न-भिन्न घाटोंपर डुबकी लगाकर संध्योपासन आदि समस्त शुभ क्रियाएँ पूर्ण कीं। स्नान आदि कर लेनेके पश्चात् अपने बूढ़े श्वशुर धृतराष्ट्र



और गान्धारीदेवीको कुन्तीदेवी गङ्गाके किनारे ले आयीं। वहाँ यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंने राजाके लिये एक वेदी तैयार की, जिसपर अग्निकी स्थापना करके उन्होंने विधिवत् अग्निहोत्र किया। इस प्रकार नित्यकर्मसे निवृत्त होकर राजा धृतराष्ट्र इन्द्रियसंयमपूर्वक नियमोंका पालन करते हुए अपने अनुयायियोंसहित गङ्गातटसे चलकर कुरुक्षेत्रमें जा पहुँचे और वहाँ एक आश्रमपर जाकर राजर्षि शतयूपसे मिले। वे राजर्षि पहले केकयदेशके राजा थे। अपने पुत्रको राजसिंहासनपर बिठाकर स्वयं वनमें चले आये थे। धृतराष्ट्र उन्हें साथ लेकर महर्षि व्यासके आश्रमपर गये और वहाँ उन्होंने व्यासजीकी विधिवत् पूजा की। तत्पश्चात् उनसे वनवासकी दीक्षा लेकर वे शतयूपके आश्रमपर ही आकर रहने लगे। महामति राजा शतयूपने व्यासजीकी आज्ञासे धृतराष्ट्रको वनमें रहनेकी सम्पूर्ण विधि बतला दी। अब महामना धृतराष्ट्र स्वयं भी तप करने लगे और अपने अनुचरोंको भी तपस्यामें लगा दिया। गान्धारी देवी भी कुन्तीके साथ वल्कल और मृगछाला धारण कर धृतराष्ट्रके समान ही व्रतका पालन करने लगीं। दोनों स्त्रियाँ इन्द्रियोंको अपने अधीन करके मन, वाणी, कर्म तथा नेत्रोंके द्वारा भी कठोर तपस्या करने लगीं। राजा धृतराष्ट्रके शरीरका मांस सूख गया। वे अस्थि-चर्मावशिष्ट होकर मस्तकपर जटा और शरीरपर मृगछाला तथा वल्कल धारण किये महर्षियोंकी भाँति तीव्र तपस्यामें प्रवृत्त हो गये। उनके चित्तका सम्पूर्ण मोह दूर हो गया था। धर्म और अर्थके ज्ञाता तथा उत्तम बुद्धिवाले विदुरजी भी सञ्जयसहित वल्कल और चीर वस्त्र धारण किये गान्धारी और धृतराष्ट्रकी सेवामें लगे रहते तथा मनको वशमें करके दुर्बल शरीरसे घोर तपस्या किया करते थे।



नारदजीका धृतराष्ट्रसे तपस्याका महत्त्व बतलाना और पाण्डवोंका धृतराष्ट्रके पास जानेकी तैयारी करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर, राजा धृतराष्ट्रसे मिलेनेके लिये नारद, पर्वत, महातपस्वी देवल, शिष्योंसहित महर्षि व्यासजी तथा अन्यान्य सिद्ध महर्षि वहाँ आये। परम धार्मिक राजर्षि शतयूप भी उनके साथ पधारे थे। कुन्तीदेवीने उन सबका विधिवत् स्वागत-सत्कार किया और वे ऋषि भी कुन्तीकी सेवा और तपस्यासे बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने राजा धृतराष्ट्रका मन लगानेके लिये अनेकों धार्मिक कथाएँ सुनायीं। सब कुछ प्रत्यक्ष देखनेवाले देवर्षि नारदने किसी कथाके प्रसंगमें यों कहना आरम्भ किया—'राजन्! राजर्षि शतयूपके पितामह महाराज सहस्रचित्य केकयदेशके राजा थे। वे बड़े श्रीसम्पन्न थे और किसीसे भी भय नहीं मानते थे। उन्होंने अपने परम धार्मिक ज्येष्ठ पुत्रको राज्य देकर तपस्या करनेके लिये वनमें प्रवेश किया और वहाँ तीव्र तपस्याका अनुष्ठान करके इन्द्रलोकको प्राप्त किया। तपस्यासे उनके सारे पाप भस्म हो गये थे। मैंने इन्द्रलोकमें आते-जाते उन परम प्रसन्न राजर्षिको अनेकों बार देखा है। इसी प्रकार भगदत्तके पितामह राजा शैलालय भी तपस्याके बलसे ही इन्द्रलोकको गये हैं। राजा पृषध्र इन्द्रके समान पराक्रमी थे, उन्होंने भी तपस्या करके स्वर्गलोकको प्राप्त किया था। मान्धाताके पुत्र राजा पुरुकुत्सने भी इसी वनमें तपस्या करके बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त की है। परम धार्मिक राजा शशलोमाने भी इसी तपोवनमें तपस्या करके स्वर्ग प्राप्त किया था। तुम भी इस तपोवनमें आकर तपस्या कर रहे हो, अतः महर्षि व्यासजीकी कृपासे तुम्हें भी परम दुर्लभ एवं उत्तम

गति प्राप्त होगी। तपस्या पूर्ण होनेपर तुम अद्भुत तेजसे सम्पन्न होकर गान्धारीके साथ उपर्युक्त महात्माओंकी ही गतिको प्राप्त करोगे। राजा पाण्डु स्वर्गमें इन्द्रके पास रहकर सदा तुम्हारा स्मरण किया करते हैं। वे अवश्य तुम्हारा कल्याण करेंगे। तुम्हारी और गान्धारीकी सेवा करनेसे तुम्हारी यशस्विनी वधू कुन्ती भी अपने पतिके लोकमें पहुँच जायगी। यह युधिष्ठिरकी जननी है और युधिष्ठिर सनातन धर्मके साक्षात् स्वरूप हैं (अतः इसकी सद्गतिमें तनिक भी संदेह नहीं है)। यह सब हम दिव्यदृष्टिसे देख रहे हैं। विदुरजी महात्मा युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश करेंगे और सञ्जय उन्हींका चिन्तन करनेके कारण यहाँसे सीधे स्वर्गको जायँगे।'

यह सुनकर महात्मा राजा धृतराष्ट्र अपनी पत्नीके साथ बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने नारदजीके वचनोंकी प्रशंसा करके उनकी विशेष पूजा की। तदनन्तर, समस्त ब्राह्मणोंने अत्यन्त प्रसन्न होकर नारदजीका बहुत ही आदर-सत्कार किया। इसके बाद राजर्षि शतयूपने नारदजीसे कहा—'भगवन्! आपकी बातें सुनकर यहाँ बैठे हुए सब लोगोंकी, कुरुराज धृतराष्ट्रकी तथा मेरी भी तपस्याविषयक श्रद्धा बहुत बढ़ गयी है। इस समय मैं राजा धृतराष्ट्रके सम्बन्धमें आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। आप सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको ठीक-ठीक जानते हैं। मनुष्योंको जो तरह-तरहकी गति प्राप्त होती है, उसे आप अपनी दिव्यदृष्टिके द्वारा प्रत्यक्ष देखते हैं। आपने अनेकों राजाओंकी इन्द्रलोक-प्राप्तिका वर्णन किया, किंतु यह नहीं बतलाया कि ये राजा धृतराष्ट्र किस लोकको जायँगे। इन्हें कब और किस लोककी प्राप्ति होगी, इस बातको मैं सुनना चाहता हूँ; अतः आप ठीक-ठीक बतानेकी कृपा करें।'

शतयूपके इस प्रकार प्रश्न करनेपर दिव्य दृष्टिसम्पन्न महातपस्वी देवर्षि नारदने उस सभामें सबके मनको सुहानेवाली बात कही—'राजर्षे! मैं एक बार घूमता-फिरता इन्द्रलोकमें गया और वहाँ शचीपति इन्द्र तथा राजा पाण्डुसे मिला। वहाँ राजा धृतराष्ट्रकी इस कठोर तपस्याके विषयमें ही बात चल रही थी। उस समय साक्षात् इन्द्रके मुखसे मैंने यह सुना था कि अभी राजा धृतराष्ट्रकी आयु तीन वर्ष बाकी है, उसके समाप्त होनेपर ये गान्धारीके साथ कुबेरके लोकको जायँगे और वहाँ राजराज कुबेरसे सम्मानित होकर विमानके द्वारा देव, गन्धर्व तथा राक्षसोंके लोकोंमें स्वेच्छानुसार विचरते रहेंगे। तपस्याके द्वारा इनका सारा पाप भस्म हो जायगा। यह देवताओंका गुप्त विचार है; परंतु आप लोगोंपर प्रेम होनेके कारण मैंने इसे प्रकट कर दिया है। आपलोग वेदके धनी हैं और तपस्यासे निष्पाप हो चुके हैं (अतः आपके सामने इस रहस्यको प्रकट करनेमें कोई हर्ज नहीं है)।'

देवर्षिके ये मधुर वचन सुनकर वे सब लोग बहुत प्रसन्न हुए और राजा धृतराष्ट्रको भी इससे बड़ा हर्ष हुआ। इस प्रकार वे मनीषी महर्षिगण अपनी कथाओंसे धृतराष्ट्रको संतुष्ट करके सिद्ध गतिका आश्रय लेकर इच्छानुसार विभिन्न स्थानोंको चले गये।

इधर, पाण्डवलोग धृतराष्ट्रके वनमें चले जानेसे बहुत दुःखी हो गये थे। उन्हें माताके बिछोहका भी कष्ट सता रहा था। पुरवासी मनुष्य भी धृतराष्ट्रके लिये निरन्तर शोकमग्न रहते थे। ब्राह्मणलोग सदा राजा धृतराष्ट्रके सम्बन्धमें इस प्रकार चर्चा करते थे—'हाय! हमारे बूढ़े महाराज निर्जन वनमें कैसे रहते होंगे? महाभागा गान्धारी तथा कुन्ती भी किस तरह दिन बिताती होंगी?' पाण्डवोंके शोककी तो कोई सीमा ही नहीं थी। उन्हें अपनी बूढ़ी माताके लिये इतनी चिन्ता हुई कि वे अधिक कालतक नगरमें नहीं रह सके। वृद्ध पिता धृतराष्ट्र, महाभागा गान्धारीदेवी तथा परम बुद्धिमान् विदुरजीकी विशेष याद आनेसे उनका मन न राजकाजमें लगता था, न स्त्रियोंमें; वेदाध्ययनमें भी उनकी प्रवृत्ति नहीं होती थी। निरन्तर चिन्तामें डूबे रहनेके कारण वे तनिक भी शान्ति नहीं पाते थे। शोकने मानो उनके हृदयमें घर बना लिया था। किसी भी वस्तुको पाकर वे प्रसन्न नहीं होते थे। कोई आकर वार्तालाप करता तो भी वे उसकी किसी बातपर ध्यान नहीं देते थे, मानो उनकी सुध-बुध खो गयी हो। एक दिन अपनी माताकी याद करके वे परस्पर यों कहने लगे—'हाय! मेरी माँ कुन्ती अत्यन्त दुर्बल हो गयी हैं। वे उन दोनों बूढ़ोंको कैसे निभाती होंगी? शिकारी जन्तुओंसे भरे हुए जंगलमें आश्रयहीन राजा धृतराष्ट्र अपनी पत्नीके साथ अकेले कैसे रहते होंगे? जिनके बान्धव मारे गये हैं, वे महाभागा गान्धारीदेवी उस निर्जन वनमें अपने अंधे और बूढ़े पतिकी सेवा किस प्रकार करती होंगी?' इस प्रकार बात करते-करते उनके मनमें बड़ी उत्कण्ठा हो गयी और उन्होंने धृतराष्ट्रके दर्शनकी इच्छासे वनमें जानेका विचार किया। उस समय सहदेवने राजा युधिष्ठिरको प्रणाम करके कहा—'भैया! जान पड़ता है आपका मन तपोवनमें जानेको उत्सुक हो रहा है—यह बड़ी खुशीकी बात है। मेरी तो बहुत दिनोंसे वहाँ चलनेकी इच्छा थी, पर आपके संकोचवश मैं स्पष्टरूपसे कह नहीं पाता था। सौभाग्यसे वह अवसर अपने-आप उपस्थित हो गया। माता कुन्ती तपस्यामें लगी होंगी, उनके सिरके बाल जटाके रूपमें परिणत हो गये होंगे और उनका वृद्ध शरीर कुश और कासके आसनोंपर शयन

करनेके कारण क्षत-विक्षत हो गया होगा; उनका दर्शन पाकर मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा।'

सहदेवकी बात सुनकर द्रौपदीदेवी राजाका सत्कार करके उन्हें प्रसन्न करती हुई बोलीं—'नाथ! मुझे अपनी सासके दर्शन कब होंगे? क्या वे अभीतक जीवित हैं? जीते-जी उनके चरणोंका दर्शन करके मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। अन्तःपुरकी सभी बहुएँ वनमें जानेके लिये पैर आगे बढ़ाये खड़ी हैं; सबके मनमें कुन्ती, गान्धारी और ससुरजीके दर्शनकी उत्कण्ठा है।'

द्रौपदीके ऐसा कहनेपर राजा युधिष्ठिरने समस्त सेनापतियोंको बुलाकर कहा—'तुमलोग बहुत-से रथ और हाथी-घोड़ोंसे सुसज्जित सेनाके कूच करनेकी तैयारी करो। मैं वनवासी महाराज धृतराष्ट्रका दर्शन करनेके लिये चलूँगा।' इसके बाद उन्होंने रनिवासके अध्यक्षोंको आज्ञा दी—'तुम सब लोग भाँति-भाँतिके वाहनों और पालकियोंको हजारोंकी संख्यामें तैयार करो। (आवश्यक सामानोंसे लदे हुए) छकड़े, बाजार, दूकानें, खजाना, कारीगर और कोषाध्यक्ष—ये सब कुरुक्षेत्रके आश्रमकी ओर रवाना हो जायँ। नगरवासियोंमेंसे भी जो कोई महाराजका दर्शन करना चाहता हो, उसे बेरोक-टोक सुविधापूर्वक और सुरक्षितरूपसे चलने दिया जाय। पाकशालाके अध्यक्ष और रसोइये भोजन बनानेके सब सामानों तथा भाँति-भाँतिके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंको छकड़ोंपर लादकर ले चलें। नगरमें घोषणा करा दिया जाय कि 'कल सबेरे यात्रा की जायगी, इसलिये चलनेवालोंको विलम्ब नहीं करना चाहिये।' मार्गमें हमलोगोंके ठहरनेके लिये आज ही कई तरहके डेरे तैयार कर दिये जायँ।' इस प्रकार आज्ञा देकर सबेरा होते ही भाइयोंसहित राजा युधिष्ठिरने स्त्री और बूढ़ोंको आगे करके नगरसे प्रस्थान किया। बाहर जाकर पुरवासी मनुष्योंकी प्रतीक्षा करते हुए वे पाँच दिनोंतक एक ही स्थानपर टिके रहे। फिर सबको साथ लेकर वनमें गये।



पाण्डवोंका परिवारसहित कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर धृतराष्ट्र आदिका दर्शन करना तथा सञ्जयका ऋषियोंसे उनका परिचय देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर, राजा युधिष्ठिरने लोकपालोंके समान पराक्रमी अर्जुन आदि वीरोंद्वारा सुरक्षित सेनाको कूच करनेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही सब लोग चल दिये। कुछ लोग सवारियोंसे जा रहे थे और कुछ लोग पैदल। कोई महान् वेगशाली घोड़ोंपर, कोई प्रज्वलित अग्निके समान दमकते हुए सुवर्णमय रथोंपर, कोई गजराजोंपर और कोई ऊँटोंपर सवार होकर यात्रा करते थे। नगर और प्रान्तके रहनेवाले मनुष्य भी धृतराष्ट्रका दर्शन करनेके लिये नाना प्रकारकी सवारियोंसे राजा युधिष्ठिरके पीछे-पीछे गये। राजाके कथनानुसार सेनापति कृपाचार्य भी सेनाको साथ लेकर आश्रमकी ओर चल दिये। कुरुराज युधिष्ठिर अनेकों ब्राह्मणोंसे घिरे हुए यात्रा कर रहे थे। उस समय अनेकों सूत, मागध और वंदीजन उनकी स्तुति करते चलते थे। उनके मस्तकपर श्वेत छत्र तना हुआ था तथा रथियोंकी बहुत बड़ी सेना उनके साथ चल रही थी। भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेन पर्वताकार गजराजोंकी सेनाके साथ जा रहे थे। उन गजराजोंकी पीठपर अनेकों यन्त्र और आयुध सुसज्जित किये गये थे। माद्रीकुमार नकुल और सहदेव घोड़ोंपर सवार थे। महातेजस्वी जितेन्द्रिय अर्जुन सफेद घोड़ोंसे जुते हुए दिव्य रथपर, जो सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहा था, सवार होकर राजा युधिष्ठिरका अनुसरण करते थे। द्रौपदी आदि स्त्रियाँ भी शिबिकाओंमें बैठकर गरीबोंको असंख्य धन बाँटती हुई जा रही थीं। रनिवासके अध्यक्ष सब ओरसे उनकी रक्षा कर रहे थे। पाण्डवोंकी उस सेनामें रथ, हाथी और घोड़ोंकी अधिकता थी। उसमें कहीं वेणु बज रहा था और कहीं वीणा। इन वाद्योंकी तुमुल ध्वनिसे युक्त होनेके कारण उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। कुरुवंशी वीर नदियोंके रमणीय तटों तथा अनेकों सरोवरोंपर पड़ाव डालते हुए क्रमशः आगे बढ़ते गये महातेजस्वी युयुत्सु और पुरोहित धौम्य मुनि युधिष्ठिरके आदेशसे हस्तिनापुरमें ही रहकर नगरकी रक्षा करते थे। उधर, राजा युधिष्ठिर क्रमशः चलते-चलते परम पवित्र यमुना नदीको पार करके कुरुक्षेत्रमें जा पहुँचे और वहाँ दूरसे ही उन्होंने राजर्षि शतयूप तथा कुरुवंशी धृतराष्ट्रके आश्रमको देखा। इससे सब लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। समस्त पाण्डव अपनी-अपनी सवारियोंसे उतर पड़े और दूरसे ही पैदल चलकर बड़ी विनयके साथ राजाके आश्रमपर आये। साथ आये हुए समस्त सैनिक, राज्यके निवासी मनुष्य तथा कुरुवंशके प्रधान पुरुषोंकी स्त्रियाँ भी पैदल ही आश्रमतक गयीं। धृतराष्ट्रके उस पवित्र आश्रमपर सब ओर मृगोंके झुंड दिखायी दे रहे थे और केलेका सुन्दर

उद्यान वहाँकी शोभा बढ़ा रहा था। पाण्डवलोग ज्यों ही आश्रममें पहुँचे, त्यों ही बहुत-से व्रतधारी तपस्वी कौतूहलवश उन्हें देखनेके लिये वहाँ एकत्रित हो गये। राजा युधिष्ठिरने आँखोंमें आँसू भरकर उन तपस्वियोंसे पूछा—'मुनिवरो ! हमारे ज्येष्ठ पिता इस समय कहाँ गये हैं ?' उन्होंने उत्तर दिया—'राजन् ! वे स्नान करने, फूल लाने तथा कलशमें जल भरनेके लिये यमुनाके तटपर गये हैं।'

यह सुनकर उन्हींके बताये हुए मार्गसे वे सब-के-सब पैदल ही यमुना-तटकी ओर चल दिये। कुछ दूर जानेपर उन्हें धृतराष्ट्र आदि सब लोग दूरसे आते दिखायी दिये। फिर तो समस्त पाण्डव पिताके दर्शनकी इच्छासे बड़ी तेजीके साथ चलने लगे। सहदेव तो बड़े वेगसे दौड़कर कुन्तीके पास जा पहुँचे और माताके चरणोंमें पड़कर फूट-फूटकर रोने लगे। अपने प्यारे पुत्रको देखकर कुन्तीके मुखपर भी आँसुओंकी धारा बह चली और उन्होंने सहदेवको दोनों हाथोंसे उठाकर छातीसे लगा लिया। तदनन्तर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन और नकुलको देखकर वे बड़ी उतावलीके साथ उनकी ओर चलीं। माताको आती देख पाण्डवोंने पृथ्वीपर माथा टेककर उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् अपने नेत्रोंके आँसू पोंछकर उन्होंने गान्धारीसहित राजा धृतराष्ट्र और माता कुन्तीके चरणोंका विधिवत् स्पर्श किया तथा उन सबके हाथसे जलके भरे हुए कलश स्वयं ले लिये। उस समय रनिवासकी स्त्रियों तथा नगर और प्रान्तके रहनेवाले अन्य लोगोंने धृतराष्ट्रका दर्शन किया और राजा युधिष्ठिरने सब लोगोंका नाम और गोत्र बतलाकर परिचय दिया। परिचय पाकर धृतराष्ट्रने भी उन सबका सत्कार किया और उन सबसे घिरकर वे आनन्दके आँसू बहाने लगे। उस समय उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानो मैं पहलेकी भाँति ही हस्तिनापुरके राजमहलमें बैठा हूँ। तदनन्तर द्रौपदी आदि बहुओंने गान्धारी और कुन्तीसहित राजा धृतराष्ट्रको प्रणाम किया और उन्होंने भी उनको आशीर्वाद दिया। इसके बाद वे सबके साथ सिद्ध और चारणोंसे सेवित अपने आश्रमपर आये। उस समय उनका आश्रम तारोंसे भरे हुए आकाशकी भाँति दर्शकोंसे भरा था।

राजा धृतराष्ट्र जब युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयोंके साथ आश्रममें विराजमान हुए, उस समय वहाँ अनेकों देशोंसे आये हुए महान् भाग्यशाली तपस्वी पाण्डवोंको देखनेके लिये पधारे हुए थे। उन्होंने पूछा—'यहाँ आये हुए लोगोंमें महाराज युधिष्ठिर कौन हैं ? भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और यशस्विनी द्रौपदी देवी कौन हैं ? हमलोग इन सबका परिचय जानना चाहते हैं।'

उनके इस प्रकार पूछनेपर सञ्जयने समस्त पाण्डवों तथा द्रौपदी आदि कुरुकुलकी स्त्रियोंका परिचय देते हुए कहा—'ये जो सुवर्णके समान गोरे और ऊँची कदवाले हैं, जिनकी नासिका नुकीली और नेत्र बड़े-बड़े एवं कुछ लालिमा लिये हुए हैं, ये सिंहके समान बैठे हुए कुरुराज युधिष्ठिर हैं। जो मतवाले गजराजके समान चलनेवाले, तपाये हुए सोनेके समान गौरवर्ण तथा मोटे और चौड़े कंधेवाले हैं, जिनकी भुजाएँ मांसल और विशाल हैं—इनका नाम भीमसेन है। इनके पास जो ये महान् धनुर्धर और श्याम रंगके तरुण दिखायी देते हैं, जिनके कंधे सिंहके समान ऊँचे और नेत्र कमलदलके समान विशाल हैं, ये वीरवर अर्जुन हैं। कुन्तीके पास जो दो श्रेष्ठ पुरुष बैठे दिखायी देते हैं, ये एक ही साथ उत्पन्न हुए नकुल और सहदेव हैं। रूप, बल और शीलमें इन दोनोंकी समानता करनेवाला संसारमें दूसरा कोई नहीं है। ये नील कमलके समान श्याम रंगवाली सुन्दरी, जो मूर्तिमती लक्ष्मी तथा देवताओंकी देवी-सी जान पड़ती हैं, महारानी द्रौपदी हैं। इनके पास जो ये सुवर्णसे भी उत्तम कान्तिवाली देवी चन्द्रमाकी मूर्तिमती प्रभा-सी विराजमान हो रही हैं, ये अनुपम प्रभावशाली चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्रा हैं। उधर, जो विशुद्ध सोनेके रंगवाली सुन्दरी देवी बैठी हैं, वे नाग-राजकन्या उलूपी हैं तथा जिनके शरीरका रंग नूतन मधूक-पुष्पोंकी शोभाको मात कर रहा है—वे राजकुमारी चित्राङ्गदा हैं, ये दोनों भी अर्जुनकी ही पत्नियाँ हैं। यह जो इन्दीवरके समान श्याम वर्णवाली राजमहिला विराजमान है, यह श्रीकृष्णके साथ टक्कर लेनेका हौसला रखनेवाले राजसेनापतिकी बहिन और भीमसेनकी पत्नी है। साथ ही यह जो चम्पाके समान गौर वर्णवाली सुन्दरी बैठी हुई है, यह मगधराज जरासन्धकी कन्या एवं माद्रीकुमार सहदेवकी भार्या है। इनके पास जो नील कमलके समान श्याम रंगवाली महिला है, वह माद्रीके ज्येष्ठ पुत्र नकुलकी पत्नी है और यह जो तपाये हुए कुन्दनके समान गोरे रंगवाली तरुणी गोदमें बालक लिये बैठी है, यह राजा विराटकी कन्या एवं अभिमन्युकी धर्मपत्नी उत्तरा है। इनके सिवा, ये जितनी स्त्रियाँ सफेद चादर ओढ़े विधवावेषमें बैठी हुई हैं, जिनके सीमन्त सिन्दूरशून्य दिखायी देते हैं—ये सब दुर्योधन आदि सौ भाइयोंकी पत्नियाँ और इन बूढ़े महाराजकी पुत्र-वधुएँ हैं। इनके पति और पुत्र रणमें मारे जा चुके हैं। महर्षियो ! आपके प्रश्नके अनुसार मैंने इनमेंसे मुख्य-मुख्य व्यक्तियोंका परिचय दे दिया।'

इस प्रकार सञ्जयके मुखसे सबका परिचय पाकर वे सभी तपस्वी चले गये। पाण्डवोंके सैनिकोंने वाहनोंको खोलकर आश्रमकी सीमाके बाहर पड़ाव डाल दिया तथा स्त्री, वृद्ध और बालकोंका समुदाय छावनीमें सुखपूर्वक विश्राम लेने लगा। उस समय राजा धृतराष्ट्र पाण्डवोंसे मिलकर कुशल-समाचार पूछने लगे।

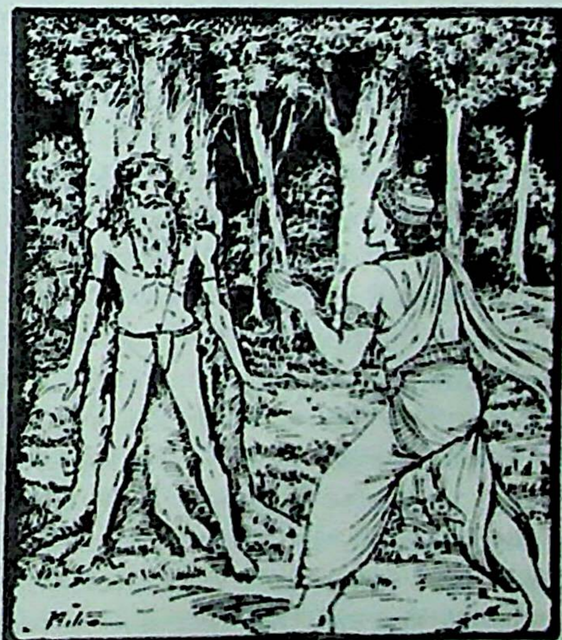


धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा विदुरजीका युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश

धृतराष्ट्रने पूछा—युधिष्ठिर ! तुम नगर और प्रान्तकी समस्त प्रजाओं तथा भाइयोंसहित कुशलसे तो हो न ? तुम्हारे आश्रयमें रहकर जीवन-निर्वाह करनेवाले मन्त्री, नौकर-चाकर और गुरुजन नीरोग हैं न ? क्या वे तुम्हारे राज्यमें बेखटके रहते हैं ? क्या तुम प्राचीन राजर्षियोंसे सेवित पुरानी रीति-नीतिका पालन करते हो ? अन्यायसे तो अपना खजाना नहीं भरते ? शत्रु, मित्र और उदासीन पुरुषोंके साथ यथायोग्य बर्ताव करते हो न ? क्या तुम्हारे स्वभाव और बर्तावसे ब्राह्मण संतुष्ट रहते हैं ? पुरवासी, सेवक और स्वजनोंकी तो बात ही क्या, शत्रुओंको भी तुम अपने सद्व्यवहारसे संतुष्ट रखते हो न ? क्या तुम श्रद्धापूर्वक पितरों और देवताओंकी पूजा तथा अन्न और जलके द्वारा अतिथियोंका सत्कार करते हो ? क्या तुम्हारे राज्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा कुटुम्बीजन न्यायमार्गका अवलम्बन करते हुए अपने कर्तव्यका पालन करते हैं ? स्त्री-बालक और वृद्ध पुरुषोंको दुःख तो नहीं उठाना पड़ता ? वे जीविकाके लिये भीख तो नहीं माँगते ? तुम्हारे घरमें बहू-बेटियोंका आदर तो होता है न ?

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! धृतराष्ट्रके इस प्रकार कुशल-समाचार पूछनेपर बातचीत करनेमें कुशल न्यायवेत्ता राजा युधिष्ठिरने इस प्रकार कहा—'राजन् ! मेरे यहाँ सब कुशल है। आपके तप, इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह आदि सद्गुणोंकी वृद्धि तो हो रही है न ? मेरी माता कुन्तीको आपकी सेवा-शुश्रूषा करनेमें कुछ क्लेश तो नहीं होता ? क्या इनका वनवास सार्थक होगा ? मेरी बड़ी माता गान्धारीदेवी, जो घोर तपस्यामें संलग्न हो रही हैं, युद्धमें मारे गये अपने महापराक्रमी पुत्रोंके लिये कभी शोक तो नहीं करतीं ? पिताजी ! ये सञ्जय तो कुशलपूर्वक तपस्या कर रहे हैं न ? इस समय विदुरजी कहाँ हैं ? वे अबतक नहीं दिखायी दिये।'

युधिष्ठिरके इस प्रकार प्रश्न करनेपर धृतराष्ट्रने कहा—'बेटा ! विदुरजी कुशलपूर्वक हैं। वे बड़ी कठोर तपस्यामें लगे हैं। निरन्तर उपवास करने और वायु पीकर रहनेके कारण अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं। उनके शरीरकी नस-नस दिखायी देती है। इस निर्जन वनमें कभी-कभी ब्राह्मणोंको उनके दर्शन हो जाया करते हैं।' राजा धृतराष्ट्र इस प्रकार कह ही रहे थे कि मुखमें पत्थरका टुकड़ा लिये जटाधारी विदुरजी दूरसे आते दिखायी पड़े। उनका नंग-धड़ंग शरीर अत्यन्त दुर्बल और वनकी धूल-मिट्टियोंसे भरा दिखायी देता था। वे आश्रमकी ओर देखकर सहसा लौट पड़े। यह देख राजा युधिष्ठिर अकेले ही उनके पीछे-पीछे दौड़े; विदुरजी कभी दिखायी देते और कभी अदृश्य हो जाते थे। इस प्रकार वे घोर जंगलकी ओर बढ़ते चले गये और युधिष्ठिर यह कहते हुए यत्नपूर्वक दौड़ते जा रहे थे कि 'विदुरजी ! मैं आपका परम प्रिय राजा युधिष्ठिर हूँ (आपके दर्शनके लिये आया हूँ)।' इस प्रकार अत्यन्त निर्जन और एकान्त वनमें पहुँचकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विदुरजी एक पेड़के सहारे खड़े हो गये।



वे इतने दुर्बल हो चुके थे कि उनके शरीरका ढाँचामात्र रह गया था, फिर भी परम बुद्धिमान् युधिष्ठिरने उन्हें पहचान लिया और 'मैं युधिष्ठिर हूँ'—ऐसा कहते हुए वे उनके सामने

जाकर खड़े हो गये। साथ ही उन्होंने विदुरजीका सत्कार भी किया।

तदनन्तर, महात्मा विदुरजी एकाग्रचित्त होकर राजा युधिष्ठिरकी ओर एकटक देखने लगे। वे अपनी दृष्टिको उनकी दृष्टिमें, शरीरको शरीरमें, प्राणोंको प्राणोंमें और इन्द्रियोंको इन्द्रियोंमें मिलाकर उनके साथ एकाकार हो गये। इस प्रकार अपने तेजसे प्रज्वलित होते हुए विदुरजीने धर्मराजके शरीरमें प्रवेश किया। राजा युधिष्ठिरने देखा विदुरजीकी आँखें पूर्ववत् स्थिर हैं और उनका शरीर भी पहलेकी ही भाँति वृक्षके सहारे खड़ा हुआ है, किंतु अब उसमें चेतना नहीं रह गयी है। इसके विपरीत उन्होंने अपनेमें विशेष बल और अधिक गुणोंका अनुभव किया। अब उनके मनमें विदुरजीके शरीरका दाह-संस्कार करनेकी इच्छा हुई। इतनेमें आकाशवाणी हुई—'राजन्! विदुरजी संन्यासधर्मका पालन करते थे, अतएव उनके शरीरका दाह न करो; यही सनातन धर्म है। उन्हें सांतानिक नामक लोकोंकी प्राप्ति होगी, अतः उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये।'

यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर वहाँसे लौट गये और उन्होंने राजा धृतराष्ट्रके पास जाकर उनसे सारी बातें बतायीं। विदुरजीके देह-त्यागका अद्भुत समाचार सुनकर तेजस्वी राजा धृतराष्ट्र तथा भीमसेन आदि सब लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। इसके बाद धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरसे कहा—'बेटा! मेरे दिये हुए फल, मूल और जलको ग्रहण करो। मनुष्यके पास अपने उपभोगमें आनेवाली जो वस्तु हो, उसीसे उसको अतिथिका भी सत्कार करना चाहिये।' उनके इस प्रकार कहनेपर युधिष्ठिरने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और उनके दिये हुए फल-मूलका भाइयोंसहित भोजन किया। तत्पश्चात् सब लोगोंने वृक्षोंके नीचे रहकर वह रात्रि व्यतीत की।



युधिष्ठिर आदिका ऋषियोंके आश्रम देखना और महर्षि व्यासका धृतराष्ट्रको सान्त्वना देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर, रात बीत जानेपर राजा युधिष्ठिर पूर्वाह्णकालीन नैत्यिक नियमोंसे निवृत्त होकर धृतराष्ट्रकी आज्ञा ले मुनियोंके आश्रम देखनेके लिये चले। उनके साथ भीमसेन आदि चारों भाई, अन्तःपुरकी स्त्रियाँ, नौकर-चाकर और पुरोहित भी थे। उन्होंने सुखपूर्वक भिन्न-भिन्न स्थानोंपर घूमकर देखा—वेदियोंपर अग्नियाँ प्रज्वलित हैं और स्नान करके बैठे हुए ऋषि-मुनि आहुति दे रहे हैं तथा कहीं-कहीं वेदोंका स्वाध्याय करनेवाले द्विजवृन्द अपनी मनोहर ध्वनिसे आश्रमोंकी शोभा बढ़ा रहे हैं। उस समय राजा युधिष्ठिरने तपस्वियोंके लिये लाये हुए सोने और ताँबेके कलश, मृगचर्म, कम्बल, स्रुक्, स्रुवा, कमण्डलु, बटलोई, थाली तथा लोहेके बने हुए भाँति-भाँतिके बर्तन बाँटे। जिसने जितने और जो-जो बर्तन माँगे, उनको उतने और वे ही बर्तन दिये गये। इस प्रकार धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर आश्रमोंमें घूम-घूमकर धन बाँटनेके पश्चात् धृतराष्ट्रके आश्रमपर लौट आये। वहाँ आकर उन्होंने देखा कि राजा धृतराष्ट्र नित्यकर्म करके गान्धारीके साथ शान्तभावसे बैठे हुए हैं और उनसे थोड़ी दूरपर शिष्टाचारका पालन करनेवाली माता कुन्ती शिष्याकी भाँति विनीत भावसे खड़ी हैं। युधिष्ठिरने अपना नाम बताकर धृतराष्ट्रको प्रणाम किया और बैठनेकी आज्ञा मिलनेपर वे कुशासनपर बैठ गये। भीमसेन आदि भी उन्हें प्रणाम करके उनकी आज्ञासे बैठ गये। इन सबके बैठ जानेपर कुरुक्षेत्रनिवासी शतयूप आदि महर्षियों और महातेजस्वी भगवान् व्यासने दर्शन दिया। व्यासजीके साथ अनेकों देवर्षि तथा शिष्यवृन्द भी थे। राजा धृतराष्ट्र तथा कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर और भीमसेन आदिने उठकर उन सबको प्रणाम किया। व्यासजीने धृतराष्ट्रको बैठनेकी आज्ञा दी और स्वयं एक सुन्दर कुशासनपर, जो काले मृगचर्मसे आच्छादित तथा उन्हींके लिये बिछाया गया था, विराजमान हुए। फिर व्यासजीकी आज्ञासे अन्य ऋषि-महर्षि भी चारों ओर कुशकी चटाइयोंपर बैठ गये।

तदनन्तर, सत्यवतीनन्दन व्यासजीने धृतराष्ट्रसे पूछा—'राजन्! तुम्हारी तपस्या ठीक-ठीक चल रही है न? वनवासमें तुम्हारा मन तो लगता है न? अब कभी तुम्हारे मनमें अपने पुत्रोंके मारे जानेका शोक तो नहीं होता? तुम्हारी समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ निर्मल तो हो गयी हैं न? क्या तुम अपनी बुद्धिको दृढ़ करके वनवासके कठोर नियमोंका पालन करते हो? मेरी बहू गान्धारी बड़ी बुद्धिमती है। यह धर्म और अर्थको समझनेवाली और जन्म-मरणके तत्त्वको जाननेवाली है; इसे तो कभी शोक नहीं होता? तथा यह कुन्ती—जिसने अपने पुत्रोंकी ममता छोड़कर गुरुजनोंकी सेवामें मन लगाया है, अभिमानरहित होकर तुम्हारी शुश्रूषा करती है न? क्या तुमने युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवको धीरज बँधाया है? इन्हें देखकर तुम्हें प्रसन्नता तो होती है न?

इनकी ओरसे तुम्हारा मन साफ है न ? क्या तुम्हारे हृदयके भाव शुद्ध हो गये ? महाराज ! किसीसे भी वैर न रखना, सत्यभाषण करना और क्रोधको सर्वथा त्याग देना—ये तीन गुण सब प्राणियोंके लिये श्रेष्ठ माने गये हैं। महात्मा विदुरके परलोकगमनका समाचार तो तुम्हें ज्ञात ही होगा। साक्षात् धर्म ही माण्डव्य ऋषिके शापसे विदुरके रूपमें अवतीर्ण हुए थे। वे परम बुद्धिमान्, महान् योगी, महात्मा और महामनस्वी थे। देवताओंमें बृहस्पति और असुरोंमें शुक्राचार्य भी वैसे बुद्धिमान् नहीं हैं, जैसे कुरुश्रेष्ठ विदुर थे। तुम्हारे भाई विदुर देवताओंके भी देवता और सनातन धर्मके साक्षात् स्वरूप थे। जो सत्य, इन्द्रियसंयम, मनोनिग्रह, अहिंसा और दान आदिके रूपमें विश्वका कल्याण करता है, वह तेजस्वी सनातन धर्म विदुरसे भिन्न नहीं है। जिसने योगबलसे कुरुराज युधिष्ठिरको जन्म दिया था, वह धर्म नामक देवता भी विदुरका ही स्वरूप है। जैसे अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाशकी सत्ता इस लोक और परलोकमें भी है, उसी प्रकार धर्म भी उभय लोकमें व्याप्त है। धर्मकी सर्वत्र गति है तथा वह सम्पूर्ण चराचर जगत्को व्याप्त करके स्थित है। जिनके समस्त पाप धुल गये हैं, वे सिद्ध पुरुष तथा देवताओंके देवता ही धर्मका साक्षात्कार करते हैं। जिन्हें धर्म कहते हैं, वे ही विदुर थे। और जो विदुर थे, वे ही ये पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर हैं—जो इस समय तुम्हारे सामने दासकी भाँति खड़े हुए हैं। महान् योगबलसे सम्पन्न और बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ तुम्हारे भाई विदुर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको सामने देखकर इन्हींके शरीरमें प्रविष्ट हो गये हैं। अब तुम्हें भी शीघ्र ही कल्याणका भागी बनाऊँगा। बेटा ! इस समय मैं तुम्हारे संशयोंका निवारण करनेके लिये आया हूँ। पूर्वकालके किसी भी महर्षिने अबतक जो चमत्कारपूर्ण कार्य नहीं किया है, वह भी आज मैं प्रत्यक्ष कर दिखाऊँगा। आज मैं तुम्हें अपनी तपस्याका आश्चर्यजनक प्रभाव दिखलाता हूँ। बतलाओ, तुम मुझसे किस अभीष्ट वस्तुको पाना चाहते हो। यदि किसीको देखने, सुनने या स्पर्श करनेकी तुम्हारी इच्छा हो तो कहो; मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'



गान्धारी और कुन्तीका व्यासजीसे मरे हुए पुत्रोंके दर्शन करानेका अनुरोध

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! धृतराष्ट्रके आश्रमपर पाण्डवोंके रहते परम तेजस्वी महर्षि व्यासजीने जो आश्चर्यजनक घटना दिखानेकी प्रतिज्ञा की थी, वह किस प्रकार हुई—यह बतानेकी कृपा कीजिये। राजा युधिष्ठिरने पुरवासियों-सहित कितने दिनोंतक वनमें निवास किया ? तथा वे अपने सैनिकों और अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ क्या आहार करते थे ?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! पाण्डव धृतराष्ट्रकी आज्ञासे भाँति-भाँतिके भोजन करते हुए बड़े सुखसे उनके आश्रमपर रहने लगे। उन्होंने एक मासतक उस तपोवनमें निवास किया था। महर्षि व्यासजी राजा धृतराष्ट्रसे जब उपर्युक्त बातें कह रहे थे, उसी समय वहाँ और भी बहुत-से ऋषि पधारे। उनमें नारद, पर्वत, देवल, विश्वावसु, तुम्बुरु और चित्रसेन भी थे। कुरुराज युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रकी आज्ञासे उन महात्माओंका भी विधिवत् स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् वे उत्तम आसनोंपर विराजमान हुए। फिर पाण्डवोंसहित राजा धृतराष्ट्र भी बैठ गये। गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा तथा दूसरी स्त्रियाँ भी अपने-अपने आसनोंपर आसीन हुईं। उस समय वहाँ उन लोगोंमें प्राचीन ऋषियों, देवताओं और असुरोंसे सम्बन्ध रखनेवाली धर्मविषयक चर्चा होने लगी। बातचीतके अन्तमें वेदवेत्ताओं और वक्ताओंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी महर्षि व्यासजीने प्रसन्न होकर राजा धृतराष्ट्रसे कहा—'महाराज ! तुम और गान्धारी अपने मरे हुए पुत्रोंकी शोकाग्निसे निरन्तर जल रहे हो। इसके कारण तुम दोनोंके हृदयमें सर्वदा जो दुःख बना रहता है, उसे मैं जानता हूँ। कुन्ती और द्रौपदीके हृदयमें भी वही दुःख है; तथा श्रीकृष्णकी बहिन अपने पुत्र अभिमन्युके मारे जानेका जो तीव्र दुःख सहन कर रही है, वह भी मुझसे छिपा नहीं है। वास्तवमें तुम सब लोगोंका समागम सुनकर ही मैं तुम्हारे मानसिक संदेहोंका निवारण करनेके लिये यहाँ आया हूँ। ये देवता, गन्धर्व और महर्षि आज मेरी चिरसंचित तपस्याका प्रभाव देखें। महाराज ! बोलो, मैं तुम्हारी कौन-सी कामना पूर्ण करूँ ? आज मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वर देनेको तैयार हूँ। तुम मेरी तपस्याका फल देखो।'

धृतराष्ट्रने कहा—भगवन् ! आज मुझे आप-जैसे साधु पुरुषोंका समागम प्राप्त हुआ—यह आपका मुझपर महान् अनुग्रह है। इससे मैं अपनेको धन्य मानता हूँ। आज मेरा जीवन सफल हो गया। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि मैं आपलोगोंके दर्शनमात्रसे ही पवित्र हो गया। परंतु मेरे मनमें एक संशय है—महाभारत-युद्धमें जो मेरे पुत्र और पौत्र मारे गये हैं, उनकी क्या गति हुई होगी ? उनकी याद करके मेरा चित्त सदा संतप्त

रहता है। मेरे पापी पुत्रने पृथ्वीका राज्य पानेके लोभसे शान्तनुनन्दन भीष्म और वृद्ध ब्राह्मण द्रोणाचार्यके साथ ही बहुत बड़ी सेनाको मरवाकर समस्त कुलका संहार कर डाला—इन सब बातोंका निरन्तर स्मरण करके मैं दिन-रात अनुतापकी आगमें जलता रहता हूँ। दुःख-शोकके आघातसे एक क्षणके लिये भी मुझे शान्ति नहीं मिलती।

राजर्षि धृतराष्ट्रका भाँति-भाँतिसे विलाप सुनकर गान्धारीका शोक फिर नया-सा हो गया। वे पुत्र-शोकसे आकुल होकर खड़ी हो गयीं और अपने श्वशुरसे हाथ जोड़कर बोलीं—'मुनिवर ! इन महाराजको अपने मरे हुए पुत्रोंके लिये शोक करते आज सोलह वर्ष बीत गये; किंतु अबतक इन्हें शान्ति न मिली। पुत्र-शोकसे संतप्त होकर ये सदा आह भरते रहते हैं; रातभर इनको नींद नहीं आती (अतः एक बार आप इन्हें इनके पुत्रोंसे मिला दीजिये, इसीसे इनका दुःख शान्त होगा)। आप अपने तपोबलसे सम्पूर्ण लोकोंकी नयी सृष्टि कर सकते हैं; फिर राजाको इनके परलोकवासी पुत्रोंसे मिला देना आपके लिये कौन बड़ी बात है। द्रुपदकुमारी कृष्णा मुझे अपनी समस्त पुत्र-वधुओंमें सबसे बढ़कर प्रिय है। इस बेचारीके भाई-बन्धु और पुत्र सभी मारे गये हैं, जिससे यह अत्यन्त शोकमग्न रहा करती है। सदा कल्याणमय वचन बोलनेवाली श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्रा भी अभिमन्युके वधसे संतप्त होकर दिन-रात शोकमें ही डूबी रहती है। और ये हैं भूरिश्रवाकी धर्मपत्नी; इन्हें भी अपने स्वामीके मारे जानेका बड़ा दुःख है। इन महाराजके जो सौ पुत्र रणाङ्गणमें मारे गये हैं, उनकी ये सौ स्त्रियाँ बैठी हैं। ये मेरी विधवा बहुएँ दुःख और शोकके आघात सहन करती हुई मेरे और महाराजके भी शोकको बढ़ा रही हैं। मेरे महात्मा श्वशुर भीष्मजी तथा महारथी सोमदत्त आदि किस गतिको प्राप्त हुए होंगे, यह महान् संदेह दूर नहीं होता। भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें जिससे इन महाराजका, मेरा तथा आपकी वधू कुन्तीका भी शोक दूर हो जाय।'

गान्धारी जब इस प्रकार कह रही थीं, उसी समय कुन्तीने गुप्तरूपसे उत्पन्न हुए सूर्यके समान तेजस्वी अपने पुत्र कर्णका स्मरण किया। भगवान् व्यासने उन्हें दुःखी देखकर कहा—'बेटी ! यदि तुम्हें भी किसी कामके लिये कुछ कहना हो तो कहो।' यह सुनकर कुन्तीदेवीने मस्तक झुकाकर अपने श्वशुरके चरणोंमें प्रणाम किया और कुछ लज्जित-सी होकर प्राचीन रहस्यको प्रकट करते हुए कहा—'भगवन् ! आप मेरे श्वशुर हैं, मेरे देवताके भी देवता हैं; अतः मेरे लिये देवताओंसे भी बढ़कर हैं। मैं आपके सामने (अपने जीवनका गुप्त रहस्य प्रकट करती हूँ) सच्ची बात बता रही हूँ, सुनिये। एक समयकी बात है—परम क्रोधी महर्षि दुर्वासा मेरे पिताके यहाँ भिक्षाके लिये आये थे। मैंने उन्हें अपनी की हुई सेवाओंके द्वारा संतुष्ट कर लिया। मेरा बर्ताव पवित्र और हृदय शुद्ध था। मेरे द्वारा उनका कोई अपराध नहीं हुआ। क्रोध करनेके अनेकों अवसर आये; किंतु एक बार भी मैंने उनपर क्रोध नहीं किया। इससे संतुष्ट होकर वे महामुनि मुझे वरदान देने लगे। उन्होंने कहा—'मेरा दिया हुआ वरदान तुम्हें अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा।' उनकी बात सुनकर मैं शापके डरसे बोली—'आपकी जो आज्ञा हो, मुझे स्वीकार है।' तब वे पुनः बोले—'भद्रे ! तुम जिन-जिन देवताओंका आवाहन करोगी, वे सभी तुम्हारे अधीन हो जायँगे।' यों कहकर वे अन्तर्धान हो गये। यह सुनकर मैं बड़े आश्चर्यमें पड़ गयी। किसी भी अवस्थामें उनकी बात मुझे भूलती नहीं थी। एक दिन मैं अपने महलकी छतपर खड़ी थी। उसी समय सूर्यदेवका उदय हुआ। महर्षि दुर्वासाके वचनोंका स्मरण करके मैं चाहभरी दृष्टिसे उनकी ओर देखने लगी। इतनेहीमें भगवान् सूर्य मेरे पास आकर खड़े हो गये। वे दो शरीर धारण करके एकसे सम्पूर्ण विश्वको प्रकाशित करते रहे और दूसरेसे मेरे पास आ गये थे। उन्हें देखकर मैं काँप उठी। उन्होंने आते ही कहा—'देवि ! मुझसे कोई वर माँगो;' किंतु मैंने उनके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'भगवन् ! मुझे कुछ नहीं चाहिये। आप कृपा करके चले जाइये।' वे बोले—'देवि ! मेरा आवाहन व्यर्थ नहीं हो सकता। तुम कोई-न-कोई वर अवश्य माँग लो, अन्यथा मैं तुम्हें और तुम्हारे वरदाता ब्राह्मणको भी भस्म कर डालूँगा।' तब मैंने कहा—'भगवन् ! मुझे आपके समान पुत्र पैदा हो।' इतना कहते ही सूर्यदेव मुझे मोहित करके अपने तेजके द्वारा मेरे शरीरमें प्रविष्ट हो गये। तत्पश्चात् बोले—'देवि ! तुम्हें एक पुत्र उत्पन्न होगा।' यों कहकर वे आकाशमें चले गये। तबसे मैं इस वृत्तान्तको पिताजीसे गुप्त रखनेके लिये महलके भीतर ही रहने लगी और जब गुप्तरूपसे पुत्र उत्पन्न हुआ तो उसे मैंने पानीमें बहा दिया। वही मेरा कर्ण था। उसके जन्मके बाद मैं पुनः भगवान् सूर्यकी कृपासे कन्याभावको प्राप्त हो गयी। मेरा वह कार्य पाप हो या अपाप, मैंने आपके सामने प्रकट कर दिया। यदि पाप भी हो तो आप उसे दूर कर सकते हैं। इस समय मैं अपने उसी पुत्र कर्णको देखना चाहती हूँ। राजा धृतराष्ट्रके हृदयकी बात भी आपको ज्ञात ही हो चुकी है, अतः इनकी इच्छा भी अभी पूर्ण होनी चाहिये।'

कुन्तीके इस प्रकार कहनेपर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षि

व्यासने कहा—'बेटी ! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है। ऐसी ही होनहार थी; इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है; क्योंकि उस समय तुम अभी कुमारी बालिका थी। देवतालोग अणिमा आदि ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होते हैं, अतः दूसरेके शरीरमें प्रविष्ट हो जाते हैं। वे संकल्प, वचन, दृष्टि, स्पर्श और हर्षोत्पादनमात्रसे भी पुत्र उत्पन्न कर सकते हैं। देवधर्मके द्वारा मनुष्यधर्म दूषित नहीं होता—ऐसा जानकर तुम अपनी मानसिक चिन्ताका त्याग कर दो।'

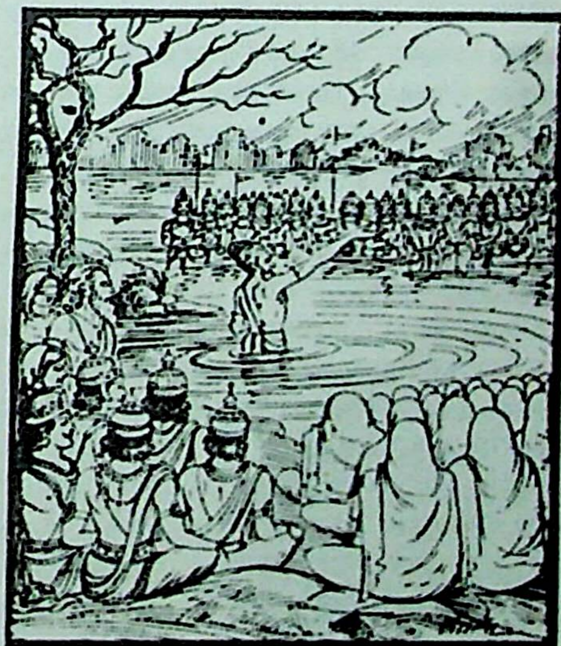


धृतराष्ट्र आदिके पूर्वजन्मका परिचय तथा व्यासजीका मरे हुए वीरोंको प्रकट करके उन्हें उनके सम्बन्धियोंसे मिलाना

अब महर्षि व्यासने गान्धारीसे कहा—'बेटी गान्धारी ! आज रातमें तुम अपने पुत्रों और भाइयोंका दर्शन करोगी। कुन्ती कर्णको, सुभद्रा अभिमन्युको तथा द्रौपदी अपने पिता, पुत्र और भाइयोंको देखेगी। तुम सब लोगोंको उन महात्मा क्षत्रियोंके लिये शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहकर ही मृत्युको प्राप्त हुए हैं। यह देवताओंका कार्य था और इसी रूपमें होनेवाला था; इसलिये सम्पूर्ण देवता अपने-अपने अंशसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए थे। गन्धर्वोंके राजा धृतराष्ट्र ही इस मनुष्यलोकमें अवतीर्ण होकर तुम्हारे पति हुए हैं। महाराज पाण्डु देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान् विष्णुके अंशसे अवतीर्ण हुए थे। विदुर और युधिष्ठिर धर्मके अंशावतार हैं, दुर्योधनको कलियुग और शकुनिको द्वापर समझो। दुःशासन आदि सभी भाई राक्षस थे। महाबली भीमसेन मरुद्गणोंसे उत्पन्न हुए हैं। अर्जुनको पुरातन ऋषि नर और भगवान् श्रीकृष्णको नारायण जानो, नकुल और सहदेव अश्विनीकुमारोंके अवतार हैं। युद्धमें जिसे छः महारथियोंने मिलकर मारा था, वह सुभद्राका पुत्र अभिमन्यु साक्षात् चन्द्रमाका अंश था, और कर्णके रूपमें स्वयं सूर्यदेव अवतीर्ण हुए थे। द्रौपदीके साथ उत्पन्न हुआ धृष्टद्युम्न अग्निका अंश था और शिखण्डी राक्षस था। द्रोणाचार्य बृहस्पतिके अंश थे और अश्वत्थामा भगवान् शंकरके अंशसे उत्पन्न हुआ था। गङ्गानन्दन भीष्म मनुष्यभावको प्राप्त हुए एक वसु थे। इस प्रकार ये सब देवता कार्यवश मनुष्ययोनिमें अवतीर्ण हुए थे और अब अपने अवतारका उद्देश्य पूरा करके पुनः स्वर्गको चले गये हैं। तुम सब लोगोंके हृदयमें पारलौकिक भयके कारण जो चिरकालसे दुःख भरा हुआ है, उसे आज दूर कर दूँगा। इस समय सब लोग गङ्गाजीके तटपर चलें। वहीं सबको अपने मरे हुए पुत्रोंके दर्शन होंगे।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! महर्षि व्यासके वचन सुनकर सब लोग सिंहके समान गर्जना करते हुए प्रसन्नता-पूर्वक गङ्गातटकी ओर चल दिये। राजा धृतराष्ट्र अपने मन्त्री, पाण्डव, मुनिगण और गन्धर्वसमुदायके साथ गङ्गाजीके समीप गये। धीरे-धीरे वह सारा जनसमुद्र गङ्गातटपर जा पहुँचा और सब लोग अपनी-अपनी रुचि तथा सुविधाके अनुसार जहाँ-तहाँ ठहर गये। मृत राजाओंको देखनेकी इच्छासे सभी लोग वहाँ रात होनेकी प्रतीक्षा करने लगे। वह दिन उन्हें सौ वर्षोंके समान जान पड़ा। तदनन्तर जब सूर्य-नारायण अस्त हो गये और रात होनेको आयी, तो सब लोग सायंकालके नैत्यिक नियमोंसे निवृत्त होकर भगवान् व्यासके समीप गये। धर्मात्मा राजा धृतराष्ट्र पवित्र एवं एकाग्रचित्त होकर पाण्डवों और ऋषियोंके साथ व्यासजीके निकट जा बैठे। कुरुकुलकी स्त्रियाँ गान्धारीके साथ बैठ गयीं और नगर तथा प्रान्तके निवासी भी अवस्थाके अनुसार यथास्थान विराजमान हो गये।

तदनन्तर महातेजस्वी मुनिवर व्यासजीने भागीरथीके



पवित्र जलमें प्रवेश किया और पाण्डव-कौरव-पक्षके समस्त योद्धाओं तथा भिन्न-भिन्न देशोंके निवासी राजाओंका आवाहन किया। उस समय पानीके भीतर वैसी ही तुमुलध्वनि सुनायी पड़ी, जैसी कुरुक्षेत्रमें कौरव-पाण्डव सेनाओंके एकत्रित होनेपर सुनी गयी थी। थोड़ी ही देरमें भीष्म और द्रोणाचार्य आदि हजारों वीर अपने सैनिकों सहित जलसे बाहर निकल आये। पुत्रों और सेनाओंसहित राजा विराट, द्रुपद, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, सुभद्रानन्दन अभिमन्यु, राक्षस घटोत्कच, कर्ण, दुर्योधन, शकुनि और दुःशासन आदि धृतराष्ट्रके पुत्र, जरासन्धकुमार सहदेव, भगदत्त, जलसन्ध भूरिश्रवा, शल, शल्य, भ्राताओंसहित वृषसेन, राजकुमार लक्ष्मण, धृष्टद्युम्न और शिखण्डीके पुत्र, अपने छोटे भाईसहित धृष्टकेतु, अचल, वृषक, राक्षस अलायुध, बाह्लीक, सोमदत्त, चेकितान तथा और भी बहुत-से वीर, जो संख्यामें अधिक होनेके कारण नाम लेकर नहीं बताये गये हैं, देदीप्यमान शरीर धारण करके जलसे प्रकट हुए। जिस वीरका जैसा वेष, जिस तरहकी ध्वजा और जैसा वाहन था, वह उसीसे युक्त दिखायी पड़ा। सबने दिव्य वस्त्र धारण कर रखे थे, सभीके कानोंमें दिव्य कुण्डल जगमगा रहे थे। उस समय वे वैर, अहंकार, क्रोध और मात्सर्य छोड़ चुके थे। गन्धर्व उनका यश गाते और वंदीजन उनकी स्तुति करते थे।

सत्यवतीनन्दन महर्षि व्यासने प्रसन्न होकर अपने तपके प्रभावसे राजा धृतराष्ट्रको दिव्य नेत्र प्रदान किये। यशस्विनी गान्धारी भी दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न हो चुकी थीं। उन दोनोंने युद्धमें मरे हुए पुत्रों तथा अन्य सम्बन्धियोंको देखा। वह बड़ा ही अद्भुत, अचिन्त्य और अत्यन्त रोमाञ्चकारी दृश्य था। प्रजावर्गके सब लोग आश्चर्यमग्न होकर एकटक दृष्टिसे उस घटनाको देखने लगे। राजा धृतराष्ट्र व्यासजीकी कृपासे दिव्य दृष्टि पाकर अपने सब पुत्रोंको देखते हुए आनन्दमग्न हो गये।

तत्पश्चात् क्रोध और मात्सर्यसे रहित एवं पापशून्य हुए वे सभी नरश्रेष्ठ वीर ब्रह्मर्षियोंकी बनायी हुई उत्तम प्रणालीके अनुसार एक-दूसरेसे प्रेमपूर्वक मिले। उस समय सबके मनमें उल्लास छा रहा था। पुत्र पिता-माताके साथ, स्त्री पतिके साथ, भाई भाईके साथ और मित्र मित्रके साथ मिलने लगे। पाण्डवोंने सुभद्रानन्दन अभिमन्यु और द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको बड़े हर्षमें भरकर छातीसे लगाया। फिर उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ कर्णसे मिलकर उनके साथ सौहार्दपूर्ण बर्ताव किया। इसी प्रकार वे सब लोग गुरुजनों, बान्धवों और पुत्रोंके साथ मिले। सारी रात एक-दूसरेके साथ घूमने-फिरनेके कारण उनके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। वहाँ किसीके हृदयमें शोक, भय, त्रास, उद्वेग और अपयशको स्थान नहीं मिला। वहाँ आयी हुई स्त्रियाँ अपने पिता, भाई और पुत्रोंसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुईं। उन सबका मानसिक दुःख दूर हो गया। वे वीर और उनकी वे तरुणी स्त्रियाँ एक रात साथ-साथ रहे और अन्तमें एक-दूसरेकी अनुमति ले परस्पर गले मिलकर जैसे आये थे, उसी प्रकार चले जानेको उद्यत हुए। तब मुनिवर व्यासजीने उन सबका विसर्जन कर दिया और वे एक ही क्षणमें सबके देखते-देखते गङ्गाजीमें डुबकी लगाकर अदृश्य हो गये; रथों और ध्वजाओंसहित अपने-अपने लोकोंमें चले गये। कोई देवलोकमें गये और कोई ब्रह्मलोकमें। कुछ लोग वरुण, कुबेर और सूर्यके लोकोंमें गये। कितने ही राक्षसों और पिशाचोंके लोकोंमें चले गये। इस प्रकार सबको विचित्र-विचित्र गतियोंकी प्राप्ति हुई थी और वहींसे वे देवताओंके साथ अपने-अपने वाहनों तथा अनुचरोंसहित आये थे।

उन सबके अदृश्य हो जानेपर महामुनि व्यासजीने जलमें खड़े-खड़े उन विधवा स्त्रियोंसे कहा—'देवियो ! तुमलोगोंमेंसे जो-जो अपने-अपने पतिके लोकमें जाना चाहती हों, वे आलस्य त्यागकर तुरंत गङ्गाजीके जलमें गोता लगावें।' उनकी बात सुनकर उनमें श्रद्धा रखनेवाली सती स्त्रियाँ गङ्गाजीमें कूद पड़ीं और मनुष्य-शरीरसे छुटकारा पाकर अपने-अपने पतिके साथ चली गयीं। इस प्रकार उत्तम शील और पतिव्रतका पालन करनेवाली सभी क्षत्रिय-बालाएँ पतिलोकको प्राप्त हुईं। पतियोंकी ही भाँति उनके शरीर दिव्य हो गये; उनके वस्त्र, आभूषण और मालाएँ भी दिव्य ही थीं। उनका सारा शोक दूर हो गया और वे समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न होकर विमानपर आरूढ़ हो अपने-अपने योग्य स्थानको चली गयीं। उस समय जिसके-जिसके मनमें जो-जो कामना हुई, धर्मवत्सल भगवान् व्यासने वह सब पूर्ण की। संग्राममें मरे हुए राजाओंके पुनरागमनका वृत्तान्त सुनकर भिन्न-भिन्न देशके मनुष्योंको बड़ा ही आश्चर्य और आनन्द हुआ। जो मनुष्य कौरव-पाण्डवोंके प्रियजन-समागमका यह वृत्तान्त भलीभाँति श्रवण करेगा, उसे इहलोक और परलोकमें भी प्रिय वस्तुकी प्राप्ति होगी, अनायास ही इष्ट-बन्धुओंसे मिलन होगा तथा उसे कोई दुःख-शोक नहीं सतावेगा। जो विद्वान् दूसरे समझदार व्यक्तियोंको यह प्रसंग सुनावेगा, वह इस लोकमें यश और परलोकमें सद्गति प्राप्त करेगा। स्वाध्यायपरायण, तपस्वी, सदाचारी, जितेन्द्रिय, दानके द्वारा पापरहित, सरल, शुद्ध, शान्त, अहिंसक, सत्यवादी, आस्तिक, श्रद्धालु और धैर्य धारण करनेवाले मनुष्य इस आश्चर्यजनक पर्वको सुनकर उत्तम गति प्राप्त करेंगे।



जनमेजयको परीक्षित्के दर्शन और युधिष्ठिर आदिका हस्तिनापुरको लौटना

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन्! यदि वरदाता भगवान् व्यासजी मेरे पिताका भी उसी रूप, वेष और अवस्थामें दर्शन करा दें तो आपकी बतायी हुई सारी बातोंपर मुझे विश्वास हो जायगा और उस अवस्थामें मैं कृतार्थ होकर आजीवन कृतज्ञ बना रहूँगा। आज महर्षिकी कृपासे मेरी इच्छा भी पूर्ण होनी चाहिये।

राजाके इस प्रकार कहनेपर परम प्रतापी महर्षि व्यासने उनपर कृपा की और उनके पिता परीक्षित्को उस यज्ञ-भूमिमें बुला दिया। राजाने देखा—पिताजी उसी रूप, वेष और अवस्थामें आकाशसे उतर आये। उनके साथ महात्मा शमीक और उनके पुत्र शृङ्गी ऋषि भी थे। राजा परीक्षित्के जो मन्त्री थे, वे भी वहाँ दिखायी दिये। तदनन्तर, राजा जनमेजयने अत्यन्त प्रसन्न होकर यज्ञान्तस्नानके समय पहले अपने पिताको नहलाया, फिर स्वयं स्नान किया। स्नानके पश्चात् उन्होंने यायावर-कुलमें उत्पन्न जरत्कारुनन्दन आस्तीकसे कहा—'विप्रवर! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि मेरा यह यज्ञ भाँति-भाँतिके आश्चर्योंका केन्द्र हो रहा है; क्योंकि आज मेरे शोकोंका नाश करनेवाले पिताजी भी यहाँ उपस्थित हो गये।'

आस्तीकने कहा—राजन्! जिसके यज्ञमें तपस्याके निधि पुराणपुरुष महर्षि व्यासजी विद्यमान हों, उसकी दोनों लोकोंमें विजय है। तुमने यह विचित्र उपाख्यान सुना, तुम्हारे शत्रु सर्पगण भस्म होकर तुम्हारे पिताकी ही पदवीको पहुँच गये। तुम्हारी सत्यपरायणताके कारण किसी तरह तक्षकके प्राण बच गये हैं। तुमने समस्त ऋषियोंकी पूजा की, महात्मा व्यासजीके प्रभावका दर्शन किया और इस पापनाशक कथाको सुनकर महान् धर्म प्राप्त किया। उदार हृदयवाले संतजनोंके दर्शनसे तुम्हारे हृदयकी गाँठ खुल गयी—तुम्हारा सारा संदेह दूर हो गया। अब, जो धर्मके पक्षका समर्थन करनेवाले हैं, जिनकी सदाचारके पालनमें रुचि रहती है तथा जिनके दर्शनसे पापका नाश होता है, उन महात्माओंको तुम्हें नमस्कार करना चाहिये।

सौति कहते हैं—विप्रवर आस्तीककी यह बात सुनकर राजा जनमेजयने महर्षि व्यासका बारंबार पूजन और सत्कार किया। तत्पश्चात् मुनिवर वैशम्पायनजीसे पूछा—'ब्रह्मन्! राजा धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरने पुत्रों, पौत्रों और सम्बन्धियोंसे मिलनेके बाद फिर क्या किया?'

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! राजर्षि धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंका दर्शनरूप महान् चमत्कार देखकर शोकसे रहित हो पुनः अपने आश्रमपर चले आये। अन्य सब लोग तथा महर्षिगण भी उनसे विदा लेकर अपने-अपने अभीष्ट स्थानोंपर चले गये। महात्मा पाण्डव सैनिकों और स्त्रियोंको साथ लेकर धृतराष्ट्रके पीछे-पीछे गये। आश्रमपर पहुँचकर लोकपूजित महर्षि व्यासने धृतराष्ट्रसे कहा—'महाबाहो! तुमने धर्मके जाननेवाले प्राचीन ऋषियोंके मुँहसे नाना प्रकारकी धार्मिक कथाएँ सुनी हैं, इसलिये अब मनमें शोक न करो; क्योंकि समझदार मनुष्य प्रारब्धके विधानसे दुःख नहीं मानते। परम बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर इस समय अपने सम्पूर्ण भाइयों, सुहृदों और स्त्रियोंके साथ स्वयं तुम्हारी सेवा कर रहे हैं। अब इन्हें विदा कर दो। ये जाकर अपने राज्यका काम सँभालें। इन लोगोंको वनमें रहते एक महीनेसे अधिक हो गया।'

व्यासजीके इस प्रकार कहनेपर राजा धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरको निकट बुलाकर कहा—'अजातशत्रो! तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपने भाइयोंसहित मेरी बात सुनो; तुम्हारी बदौलत मेरा सारा शोक दूर हो गया। अब तुम राजधानीको लौट जाओ, विलम्ब न करो। तुम्हारी दोनों माताएँ मेरी ही तरह सूखे पत्ते चबाकर रहा करती हैं। अब ये अधिक दिनोंतक जीवित नहीं रह सकतीं। भगवान् व्यासके तपोबल और तुम्हारे समागमसे मुझे अपने परलोकवासी दुर्योधन आदि पुत्रोंके दर्शन हो गये, अतः मेरे जीवनका भी प्रयोजन पूरा हो गया। अब मैं कठोर तपस्या करूँगा, इसके लिये तुम मुझे अनुमति दे दो। आजसे पितरोंके पिण्डका, सुयशका और इस कुलका भार भी तुम्हारे ही ऊपर है; इसलिये बेटा! आज या कल तुम अवश्य चले जाओ, अधिक देर न लगाओ। अब मुझे तुमसे कुछ नहीं कहना है; तुमने मेरे लिये बहुत कुछ किया है।'

राजा धृतराष्ट्रके ऐसा कहनेपर युधिष्ठिर बोले—'चाचाजी! आप धर्मके ज्ञाता हैं, मेरा परित्याग न कीजिये; क्योंकि मैं सर्वथा निरपराध हूँ। मेरे सभी भाई और सेवक भले ही चले जायँ; किंतु मैं संयम और व्रतका पालन करता हुआ आपकी तथा इन दोनों माताओंकी सेवा करूँगा।' यह सुनकर गान्धारीने कहा—'बेटा! ऐसी बात न करो। मैं जो कहती हूँ, उसे सुनो; तुमने जितना किया है, वही बहुत है। तुम्हारे द्वारा हमलोगोंका स्वागत-सत्कार भलीभाँति हो चुका है। इस समय महाराज जो आज्ञा दे रहे हैं, वही करो; क्योंकि पिताका वचन मानना तुम्हारा कर्तव्य है।'

गान्धारीके इस प्रकार आदेश देनेपर राजा युधिष्ठिरने अपने आँसूभरे नेत्रोंको पोंछकर रोती हुई कुन्तीसे कहा—

'माँ ! राजा और यशस्विनी गान्धारी देवी भी मुझे घर लौट जानेकी आज्ञा देती हैं; किंतु मेरा मन आपमें लगा हुआ है। जानेका नाम भी सुनकर मुझे बड़ा दुःख होता है; फिर कैसे जा सकूँगा ? मैं आपकी तपस्यामें विघ्न डालना नहीं चाहता; क्योंकि तपसे बढ़कर कुछ नहीं है। तपस्यासे परब्रह्म परमात्माकी भी प्राप्ति हो जाती है। अब मेरा चित्त पहलेकी तरह राज-काजमें नहीं लगता। हर तरहसे तपस्या करनेको ही जी चाहता है। यह सारी पृथ्वी मेरे लिये सूनी हो गयी है; अतः केवल धर्मका पालन करनेके लिये मैं यहाँ रहना चाहता हूँ। हम सब लोगोंको अपनी कल्याणमयी दृष्टिसे अनुगृहीत कीजिये।'

यह सुनकर सहदेवकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये। उसने राजा युधिष्ठिरसे कहा—'भैया ! मुझमें माताजीको छोड़कर जानेका साहस नहीं है। आप शीघ्र ही लौट जाइये। मैं इनके साथ रहकर तपस्या करूँगा और इस शरीरको सुखा डालूँगा। मेरा हृदय महाराज तथा इन दोनों माताओंकी सेवामें संलग्न रहना चाहता है।' यह सुनकर कुन्तीने सहदेवको छातीसे लगा लिया और कहा—'बेटा ! ऐसा न कहो, मेरी बात मानकर घरको लौट जाओ। तुमलोगोंके रहनेसे मेरी तपस्यामें विघ्न पड़ेगा, तुम्हारी ममतामें बँधकर मैं उत्तम तपस्यासे गिर जाऊँगी; इसलिये बेटा ! चले जाओ, अब हमलोगोंकी आयु थोड़ी ही रह गयी है।'

इस प्रकार कुन्तीने तरह-तरहकी बातें कहकर उनके मनको धीरज बँधाया। फिर माता तथा महाराज धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकर पाण्डवोंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'राजन् ! आपके आशीर्वादसे हमलोग कुशलपूर्वक राजधानीको लौट जानेके लिये तैयार हैं।' धर्मराजके ऐसा कहनेपर राजर्षि धृतराष्ट्रने उन्हें आशीर्वाद देकर जानेकी आज्ञा दी। फिर महाबली भीमसेनको धैर्य बँधाया। भीमने भी उनकी बातोंको हृदयसे स्वीकार किया।



तत्पश्चात् धृतराष्ट्रने अर्जुन और नकुल-सहदेवको छातीसे लगाकर उन्हें आशीर्वाद देकर विदा किया। इसके बाद वे सब गान्धारीके चरणोंमें पड़े और उनकी भी आज्ञा लेकर उन्होंने कुन्तीको प्रणाम किया। माता कुन्तीने सबको हृदयसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा। तदनन्तर उन्होंने सबकी परिक्रमा की। द्रौपदी आदि स्त्रियोंने भी अपने श्वशुरको न्यायपूर्वक प्रणाम किया। फिर दोनों सासुओंने उन्हें गलेसे लगाकर आशीर्वाद दे जानेकी आज्ञा दी और उन्हें उनके कर्तव्यका उपदेश भी दिया। तत्पश्चात् वे अपने पतियोंके साथ चली गयीं। थोड़ी ही देरमें सारथियोंने 'रथ जोतो, रथ जोतो' की पुकार मचायी। इसके बाद अपने घरकी स्त्रियों, भाइयों और सैनिकोंके साथ राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुर नगरको लौट आये।



नारदजीसे धृतराष्ट्र आदिकी मृत्युका हाल जानकर युधिष्ठिर आदिका शोक और उन तीनोंके अन्त्येष्टि-कर्म

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! पाण्डवोंको तपोवनसे लौटकर आये जब दो वर्ष व्यतीत हो गये तो एक दिन देवर्षि नारद राजा युधिष्ठिरके पास आये। युधिष्ठिरने उनकी विधिवत् पूजा की और जब वे आसनपर बैठकर थोड़ी देर विश्राम कर चुके तो उन्होंने कहा—'भगवन् ! इधर बहुत दिनोंसे आपके दर्शन नहीं हुए थे; कुशल तो है न ? इस समय आप किन-किन देशोंमें भ्रमण करते हुए आ रहे हैं ? बतलाइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? आप ही हमलोगोंकी परम गति हैं।'

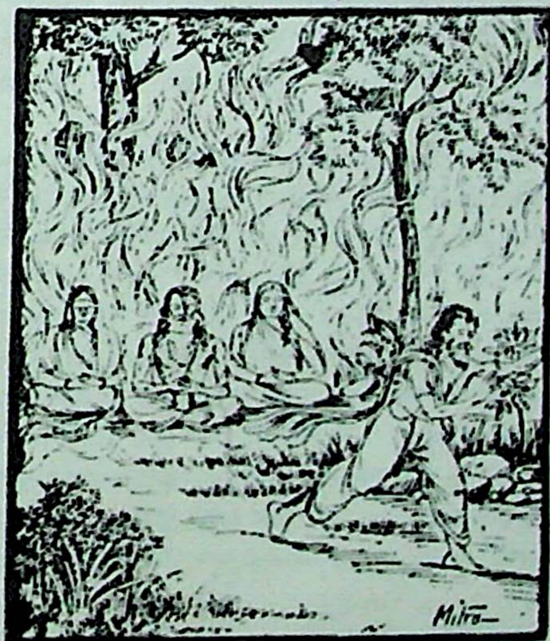
नारदजीने कहा—राजन् ! तुम्हारा कहना सत्य है। इधर

बहुत दिनों बाद तुमसे मिलना हुआ है। इस समय मैं तपोवनसे आ रहा हूँ। रास्तेमें भगवती गङ्गा तथा अनेकों तीर्थोंका भी दर्शन करता आया हूँ।

युधिष्ठिर बोले—भगवन्! गङ्गाके किनारे रहनेवाले मनुष्य मेरे पास आकर कहा करते हैं कि महाराज धृतराष्ट्र इस समय बड़ी कठोर तपस्यामें लगे हुए हैं; क्या आपने भी उन्हें देखा है? वे कुशलपूर्वक हैं न? गान्धारी, कुन्ती, सञ्जय तथा मेरे ताऊ महाराज धृतराष्ट्र इस समय कैसे रहते हैं? ये सब बातें मैं सुनना चाहता हूँ। यदि आपने उन्हें देखा हो तो बतानेकी कृपा कीजिये।

नारदजीने कहा—महाराज! मैंने उस तपोवनमें जो कुछ देखा और सुना है, वह सारा वृत्तान्त ठीक-ठीक बतला रहा हूँ। तुम स्थिरचित्त होकर सुनो—जब तुमलोग वनसे लौट आये तो तुम्हारे पिताजी गान्धारी और वधू कुन्तीके साथ गङ्गाद्वार (हरद्वार) को चले गये। सञ्जय और यज्ञ करानेवाले पुरोहित भी अग्निहोत्रकी सामग्री लेकर उनके साथ ही गये। वहाँ पहुँचकर तुम्हारे पिताने तीव्र तपस्या आरम्भ की। वे मुँहमें पत्थरका टुकड़ा रखकर वायुका आहार करते और मौन रहते थे। उस वनमें जितने ऋषि थे, वे सब लोग उनका विशेष सम्मान करने लगे। उनके शरीरमें चमड़ेसे ढकी हुई हड्डियोंका ढाँचामात्र रह गया। इस प्रकार उन्होंने छः महीने व्यतीत किये। गान्धारी केवल जल पीकर रहने लगीं। कुन्ती देवी एक महीनेतक उपवास करके एक दिन भोजन करती थीं और सञ्जय छठे समय अर्थात् दो दिन उपवास करके तीसरे दिन संध्याको आहार ग्रहण करते थे। यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण उनके द्वारा स्थापित अग्निमें विधिवत् हवन करते रहते थे। राजा धृतराष्ट्र कभी दिखायी देते और कभी अदृश्य हो जाते थे। अब उनका कोई नियत स्थान नहीं रह गया था। वे वनमें चारों ओर विचरते रहते थे। गान्धारी और कुन्ती—ये दोनों देवियाँ साथ-साथ रहकर धृतराष्ट्रके पीछे-पीछे फिरती थीं। सञ्जय भी उन्हींका अनुसरण करते थे। ऊँची-नीची भूमि आनेपर सञ्जय ही धृतराष्ट्रको निभाते थे और कुन्तीदेवी गान्धारीके लिये नेत्र बनी हुई थीं।

एक दिनकी बात है, राजा धृतराष्ट्र गङ्गाके कछारमें घूम रहे थे। उन्होंने गङ्गाजीके जलमें प्रवेश करके डुबकी लगायी और वहाँसे पुनः वे आश्रमकी ओर चल दिये। इसी समय बड़े जोरकी हवा चली, जिससे उस वनमें भयंकर दावाग्नि प्रज्वलित हो उठी। सारा जंगल सब ओरसे धायँ-धायँ करके जलने लगा, मृगोंके झुंड झुलसने लगे और बनैले सूअर भाग-भागकर जलाशयोंमें छिपने लगे। समस्त वन आगसे घिर गया और उन लोगोंके ऊपर बड़ा भारी संकट आ पड़ा; तो भी राजा धृतराष्ट्र उपवास करनेसे प्राण-शक्ति क्षीण हो जानेके कारण भाग न सके। तुम्हारी दोनों माताएँ भी अत्यन्त दुर्बल हो गयी थीं, अतः वे भी भागनेमें असमर्थ थीं। उस समय आगको निकट आती देख राजा धृतराष्ट्रने अपने सारथिसे कहा—'सञ्जय! तुम किसी ऐसे स्थानपर भाग जाओ, जहाँ यह दावाग्नि तुम्हें जला न सके। हमलोग तो अब यहीं अपनेको अग्निमें होमकर परम गति प्राप्त करेंगे।' उनकी बात सुनकर सञ्जय घबरा उठे और बोले—'महाराज! इस लौकिक अग्निसे आपकी मृत्यु होना ठीक नहीं है (आपके शरीरका दाह-संस्कार तो आहवनीय अग्निमें होना चाहिये); किंतु इस समय इस दावानलसे छुटकारा पानेका कोई उपाय नहीं दिखायी देता। अब इसके बाद क्या करना चाहिये—यह बतानेकी कृपा करें।' सञ्जयके इस प्रकार पूछनेपर धृतराष्ट्रने फिर कहा—सञ्जय! हमलोग स्वेच्छासे गृहस्थाश्रमका परित्याग करके चले आये हैं; अतः हमारे लिये इस तरहकी मृत्यु अनिष्टकारक नहीं हो सकती। जल, अग्नि या वायुके संयोगसे अथवा उपवास करके प्राण त्यागना तपस्वियोंके लिये प्रशंसनीय माना गया है; इसलिये तुम अब यहाँसे शीघ्र चले जाओ, विलम्ब न करो।' यह कहकर राजा धृतराष्ट्रने अपने मनको एकाग्र किया और गान्धारी तथा कुन्तीके साथ वे पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये। उन्हें उस अवस्थामें देख सञ्जयने उनकी परिक्रमा की और कहा—'महाराज! अब अपनेको योगयुक्त कीजिये।' राजाने उनके कथनानुसार समाधि लगा ली। वे इन्द्रियोंको रोककर काष्ठकी भाँति निश्चेष्ट हो गये। इसके बाद देवी गान्धारी, तुम्हारी माता कुन्ती तथा तुम्हारे पितृव्य राजा धृतराष्ट्र—ये तीनों ही दावाग्निमें जलकर भस्म हो गये; किंतु सञ्जयके प्राण बच गये हैं। मैंने उन्हें गङ्गाके तटपर तपस्वियोंसे घिरे



हुए देखा था। उन्होंने उन तपस्वियोंको बुलाकर यह सारा समाचार निवेदन किया और स्वयं वहाँसे हिमालय पर्वतपर चले गये। इस प्रकार महामना धृतराष्ट्र और तुम्हारी दोनों माताओंकी मृत्यु हुई है। वनमें घूमते समय अकस्मात् उन तीनोंके मृतशरीर मेरी दृष्टिमें भी पड़े थे। तत्पश्चात् राजाकी इस तरह मृत्यु होनेका वृत्तान्त सुनकर समस्त तपस्वी उस तपोवनमें एकत्रित हुए, किंतु किसीने उनके लिये शोक नहीं किया; क्योंकि उनके मनमें उन तीनोंकी सद्गतिके विषयमें तनिक भी संदेह नहीं था। युधिष्ठिर ! वहाँ जानेपर मैंने राजा और उन दोनों देवियोंके दग्ध होनेका समाचार सुना है। इसके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्तीने स्वेच्छासे ही दावाग्निमें अपने शरीरकी आहुति दी है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! राजा धृतराष्ट्रके परलोक-गमनका यह वृत्तान्त सुनकर महात्मा पाण्डवोंको बड़ा शोक हुआ और उनके अन्तःपुरमें उस समय महान् हाहाकार मच गया। सब लोग फूट-फूटकर रोने लगे। थोड़ी देरमें जब रोनेकी आवाज शान्त हुई, तो धर्मराज युधिष्ठिर अपने आँसू पोंछकर नारदजीसे इस प्रकार कहने लगे— 'ब्रह्मन् ! हमलोगोंके जीते-जी कठोर तपस्यामें लगे हुए महात्मा धृतराष्ट्रकी वनमें यों अनाथकी-सी मृत्यु हुई, यह कितने दुःखकी बात है ! मुझे यशस्विनी गान्धारीके लिये उतना शोक नहीं है; क्योंकि वे पातिव्रतका पालन करके अपने पतिके लोकमें गयी हैं। मैं तो उन माता कुन्तीको याद करके शोक-समुद्रमें डूबा जा रहा हूँ, जिन्होंने अपने पुत्रोंका समृद्धिशाली ऐश्वर्य त्यागकर वनमें रहना पसंद किया था। हाय ! उस महान् वनमें मन्त्रोंसे पवित्र किये हुए आहवनीय आदि अग्नियोंके रहते हुए मेरे पिताका दाह लौकिक अग्निसे क्यों हुआ ?'

नारदजीने कहा—राजन् ! धृतराष्ट्रका दाह लौकिक अग्निसे नहीं हुआ है। मैंने सुना है कि वायु पीकर रहनेवाले वे राजर्षि जब गङ्गातीरवर्ती तपोवनमें प्रवेश करने लगे, तो उस समय उन्होंने याजकोंद्वारा इष्टि करानेके अनन्तर आहवनीय आदि अग्नियोंको वहीं त्याग दिया था। उनके याजकगण उन अग्नियोंको निर्जन वनमें रखकर इच्छानुसार अपने-अपने स्थानको चले गये। तपस्वियोंका कहना है कि उसी अग्निके बढ़ जानेसे उस वनमें आग लगी थी और जैसा कि मैंने पहले बतलाया है, वे गङ्गाके तटपर अपने उसी अग्निके द्वारा दग्ध हुए हैं। इस प्रकार राजा धृतराष्ट्रका अपने द्वारा स्थापित वैदिक अग्निसे ही दाह हुआ है और वे परम गतिको प्राप्त हुए हैं; इसलिये तुम उनके लिये शोक न करो। गुरुजनोंकी सेवा करनेसे तुम्हारी माताने भी बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त की है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। अब तुम अपने सभी भाइयोंके साथ जाकर उन तीनोंको जलाञ्जलि दो।

तदनन्तर, राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों और स्त्रियोंके साथ नगरसे बाहर निकलकर गङ्गातटपर गये। नगर और प्रान्तकी प्रजा भी राजभक्तिसे प्रेरित होकर एक वस्त्र धारण किये गङ्गाजीके समीप गयी; फिर सबने जलमें स्नान किया और युयुत्सुको आगे करके उन्होंने महात्मा धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्तीदेवीको उनके पृथक्-पृथक् नाम और गोत्रका उच्चारण करके जलाञ्जलि दी। उसके बाद अशौच-निवृत्तिके अनुकूल कार्य करते हुए पाण्डवलोग नगरके बाहर ही ठहर गये। युधिष्ठिरने जहाँ राजा धृतराष्ट्र दग्ध हुए थे, उस स्थानपर भी विधि-विधानके जाननेवाले विश्वासपात्र मनुष्योंको भेजा और वहीं—हरद्वारमें उनके श्राद्धकर्म करनेकी आज्ञा देकर उन्हें दानमें देनेयोग्य नाना प्रकारकी वस्तुएँ अर्पण कीं। शौच-सम्पादनके लिये दशाह आदि कर्म कर लेनेके पश्चात् पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने बारहवें दिन धृतराष्ट्र आदिके उद्देश्यसे विधिवत् श्राद्ध किये तथा ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणाएँ दीं। धृतराष्ट्रके निमित्त उन्होंने सोना, चाँदी, गौ तथा बहुमूल्य शय्याएँ प्रदान कीं। इसी प्रकार गान्धारी और कुन्तीके पृथक्-पृथक् नाम लेकर उनके लिये भी उत्तम-उत्तम वस्तुएँ दान कीं। उस समय जो जिस वस्तुकी जितनी मात्रामें इच्छा करता, उसको वह वस्तु उतनी ही मात्रामें प्राप्त होती थी। राजा युधिष्ठिरने अपनी दोनों माताओंके उद्देश्यसे शय्या, भोजन, सवारी, मणि, रत्न, धन, वाहन और वस्त्र आदि वस्तुएँ दानमें दीं। इस प्रकार अनेकों बार श्राद्धका दान देकर युधिष्ठिरने हस्तिनापुरमें प्रवेश किया। जो लोग हरद्वारमें भेजे गये थे, उन्होंने भी राजाकी आज्ञाके अनुसार श्राद्ध किया और उन तीनोंकी हड्डियोंको एकत्रित करके भाँति-भाँतिके फूलों और चन्दनोंसे उनकी पूजा की और फिर उन्हें गङ्गामें प्रवाहित कर दिया। इसके बाद हस्तिनापुरमें लौटकर उन्होंने यह सब समाचार राजाको कह सुनाया। देवर्षि नारदजी भी धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरको धैर्य बँधाकर अपने अभीष्ट स्थानको चले गये। इस प्रकार (युद्ध समाप्त होनेके बाद) राजा धृतराष्ट्रने अपने जाति-भाई, सम्बन्धी, मित्र, बन्धु और स्वजनोंके निमित्त दान देते हुए पंद्रह वर्ष हस्तिनापुर नगरमें व्यतीत किये थे और तीन वर्ष वनमें तपस्या करते हुए बिताये थे।



॥आश्रमवासिकपर्व समाप्त ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

मौसलपर्व

युधिष्ठिरका अपशकुन देखना तथा द्वारकामें उत्पात देख श्रीकृष्णका यादवोंको तीर्थयात्राके लिये आज्ञा देना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप नररत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर विजय-प्राप्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! महाभारत युद्धके बाद जब छत्तीसवाँ वर्ष आरम्भ हुआ तो राजा युधिष्ठिरको कई तरहके अपशकुन दिखायी देने लगे। भारी तूफान लिये प्रचण्ड आँधी चलने लगी। उससे कंकड़ और पत्थरोंकी वर्षा होने लगी। पक्षी दाहिनी ओर मण्डल बनाकर उड़ते दिखायी देते थे। बड़ी-बड़ी नदियोंका जल बालूके भीतर छिप गया और समस्त दिशाएँ कुहरेसे आच्छादित हो गयीं। आकाशसे पृथ्वीपर अंगार बरसाती हुई उल्काएँ गिरने लगीं। सूर्यमण्डल धूलसे आच्छन्न हो गया। उदयके समय सूर्यमें तेज नहीं रहता था और उनके मण्डलमें कबन्ध (बिना सिरके धड़) दिखायी देते थे। सूर्य और चन्द्रमाके चारों ओर भयानक घेरे दृष्टिगोचर होते थे। उनके किनारोंमें लाल, काला और धूसर—ये तीन रंग दिखायी देते थे। ये तथा और भी बहुत-से भयसूचक उत्पात दीखने लगे। इसके थोड़े ही दिनों बाद युधिष्ठिरको यह खबर मिली कि 'मूसलके कारण समस्त वृष्णिवंशियोंका संहार हो गया, केवल श्रीकृष्ण और बलभद्र ही उसके आघातसे बचे हैं।' यह सुनकर उन्होंने अपने भाइयोंको बुलाया और पूछा—'अब हमें क्या करना चाहिये?' ब्रह्मदण्डके प्रभावसे वृष्णिवंशियोंका विनाश सुनकर पाण्डवोंको बड़ी वेदना हुई। वे दुःख-शोकमें डूब गये और हताश हो मन मारकर बैठ रहे।

जनमेजयने पूछा—विप्रवर! वृष्णि, अन्धक और भोज-वंशके वीरोंको किसने शाप दे दिया था, जिससे उनका संहार हो गया? इस प्रसंगको आप विस्तारके साथ बतानेकी कृपा करें।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! एक समयकी बात है—महर्षि विश्वामित्र, कण्व और तपोधन नारदजी द्वारकामें गये हुए थे। उन्हें देखकर दैवके मारे हुए सारण आदि वीर साम्बको स्त्रीके वेषमें विभूषित करके उनके पास ले गये और बोले—'महर्षियो! यह महातेजस्वी बभ्रुकी स्त्री है। बभ्रु पुत्रके लिये बड़े लालायित हैं। आपलोग अच्छी तरह



समझकर यह बताइये कि इस स्त्रीके गर्भसे क्या उत्पन्न होगा।' ऐसा कहकर वञ्चनाके द्वारा जब उन्होंने ऋषियोंका तिरस्कार किया तो वे मुनि क्रोधमें भरकर एक-दूसरेकी ओर देखते हुए बोले—'मूर्खो ! यह श्रीकृष्णका पुत्र साम्ब वृष्णि और अन्धकवंशी पुरुषोंका नाश करनेके लिये लोहेका एक भयंकर मूसल उत्पन्न करेगा, जिसके द्वारा तुम-जैसे दुराचारी, क्रूर और क्रोधी लोग अपने समस्त कुलका संहार कर डालेंगे, केवल बलराम और श्रीकृष्णपर उनका वश नहीं चलेगा। बलरामजी तो स्वयं ही अपने शरीरका परित्याग करके समुद्रमें प्रवेश कर जायँगे और महात्मा श्रीकृष्ण जब भूमिपर शयन करते होंगे, उस समय जरा नामक व्याध उन्हें अपने बाणोंसे बींध डालेगा।' ऐसा कहकर वे मुनि भगवान् श्रीकृष्णसे जाकर मिले। यह समाचार सुनकर मधुसूदनने वृष्णिवंशियोंको भी बता दिया। वे सबका अन्त जानते थे, इसलिये यादवोंसे यह कहकर कि 'ऋषियोंकी यह बात अवश्य सत्य होगी' नगरमें चले गये। यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर हैं, तथापि उन्होंने यदुवंशियोंके उस अन्तकालको पलटना न चाहा।

दूसरे दिन साम्बने मूसल उत्पन्न किया। यादवोंने इसकी सूचना राजा उग्रसेनको दे दी। यह सुनकर राजाके मनमें बड़ा विषाद हुआ और उन्होंने उस मूसलको चूर्ण कराकर समुद्रमें फेंकवा दिया। इसके बाद उग्रसेन, श्रीकृष्ण, बलभद्र और बभ्रुकी आज्ञाके अनुसार नगरमें घोषणा करा दी गयी कि 'आजसे कोई भी नगरनिवासी वृष्णिवंशी और अन्धकवंशियोंके यहाँ शराब और मदिरा न तैयार करे। जो कोई मनुष्य कहीं छिपकर इस तरहका पेय तैयार करेगा, वह जीते-जी अपने भाई-बन्धुओंसहित सूलीपर चढ़ा दिया जायगा।' यह घोषणा सुनकर समस्त द्वारकावासी मनुष्योंने राजाके भयसे मदिरा नहीं बनानेका निश्चय कर लिया।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार वृष्णि और अन्धकवंशके लोग अपने ऊपर आये हुए संकटका निवारण करनेके लिये नाना प्रकारके उपाय कर रहे थे; तथापि काल प्रतिदिन उन सबके घरोंमें चक्कर लगाया करता था। उसका स्वरूप भयंकर और वेष विकट था। उसके शरीरका रंग काला और पीला था। वह मूँड़ मुँड़ाये हुए पुरुषके रूपमें घूम-घूमकर वृष्णियोंके घरोंको देखता और कभी-कभी अदृश्य हो जाता था। उसे देखनेपर बड़े-बड़े धनुर्धर वीर उसके ऊपर लाखों बाणोंकी वर्षा करते, किंतु उसे बींध नहीं पाते थे; क्योंकि वह सम्पूर्ण भूतोंसे अतीत था। अब, प्रतिदिन बड़ी भयंकर आँधी उठने लगी। चूहे इतने बढ़ गये थे कि सड़कोंपर भी अधिक संख्यामें पाये जाते थे। वे रातमें सोये हुए मनुष्योंके केश और नख कुतरकर खा जाया करते थे। यदुवंशियोंके घरोंमें सारिकाएँ निरन्तर चें-चें किया करती थीं। दिन हो या रात, एक क्षणके लिये भी उनकी आवाज बंद नहीं होती थी। सारस उल्लुओंकी और बकरे गीदड़ोंकी-सी बोली बोलने लगे। कालकी प्रेरणासे वृष्णि और अन्धकोंके घरोंमें सफेद पंख और लाल पैरोंवाले कबूतर घूमने लगे। गौओंके पेटसे गदहे, खच्चरियोंसे हाथी, कुत्तियोंसे बिलाव और नेवलियोंके गर्भसे चूहे पैदा होने लगे। उस समय यदुवंशियोंको पाप करते लज्जा नहीं आती थी। वे देवता, पितरों, ब्राह्मणों और गुरुजनोंका भी अपमान करते थे। केवल बलराम और श्रीकृष्ण उनके तिरस्कारसे बचे थे। जब श्रीकृष्णके पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनि होती, उस समय यदुवंशियोंके घरोंमें चारों ओरसे गधोंके रेंकनेकी भयंकर आवाज होती थी। इस प्रकार कालकी विपरीत गति देखकर और पक्षके तेरहवें दिन अमावास्याका संयोग जानकर भगवान् श्रीकृष्णने यदुवंशियोंसे कहा—'वीरो ! महाभारत युद्धके समय जैसा योग लगा था, इन दिनों भी हमलोगोंका संहार करनेके लिये वही योग प्राप्त हुआ है।' यों कहकर श्रीकृष्ण कालकी अवस्थापर विचार करने लगे। सोचते-सोचते उनके मनमें यह बात आयी—'जान पड़ता है बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर पुत्रशोकसे संतप्त गान्धारीने आर्तभावसे यदुवंशियोंके लिये जो शाप दिया था, उसके पूर्ण होनेका यह समय—छत्तीसवाँ वर्ष आ गया।' यह सोचकर भगवान् श्रीकृष्णने गान्धारीका शाप सत्य करनेके उद्देश्यसे यदुवंशियोंको तीर्थयात्रा करनेकी आज्ञा दी। भगवान्‌की आज्ञासे राजपुरुषोंने सारे नगरमें यह घोषणा कर दी कि 'सब लोग समुद्रके तटपर प्रभासतीर्थमें चलनेकी तैयारी करें।'



यदुवंशियोंका संहार

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! द्वारकाकी स्त्रियाँ रातको सपनेमें देखती थीं कि सफेद दाँतोंवाली एक काले रंगकी स्त्री हँसती हुई आयी है और उनका सौभाग्यचिह्न लूटती हुई सारे नगरमें दौड़ लगा रही है। पुरुषोंको ऐसा स्वप्न दिखायी देता था कि भयंकर गृध्र आकर वृष्णि और अन्धक-वंशके मनुष्योंको अग्निशालामें तथा निवासगृहोंमें पकड़-पकड़कर खा रहे हैं। अत्यन्त भयानक राक्षस उनके आभूषण, छत्र, ध्वजा और कवच चुराकर भागते देखे जाते थे। तदनन्तर वृष्णि और अन्धक महारथियोंने स्त्रियोंसहित तीर्थयात्रा करनेका विचार किया। फिर अत्यन्त तेजस्वी सैनिकोंका समुदाय रथ, घोड़े और हाथियोंपर सवार हो नगरसे बाहर निकला। इसके बाद समस्त यादव स्त्रियोंसहित प्रभासक्षेत्रमें पहुँचकर अपने-अपने अनुकूल घरोंमें ठहर गये। योगवेत्ता उद्धवजीने जब यह सुना कि यदुवंशी वीर प्रभासक्षेत्रमें समुद्रके तीरपर निवास करते हैं तो वे उनसे मिलनेके लिये वहाँ आये और उन सबसे विदा लेकर चले गये। जाते समय भगवान् श्रीकृष्णने उन महात्माको हाथ जोड़कर प्रणाम किया। भगवान्‌को यदुवंशियोंके विनाशकी बात मालूम थी, इसीलिये उन्होंने जाते हुए उद्धवजीको वहाँ रोकना उचित न समझा।

इसके बाद यादवोंकी गोष्ठीमें बैठे हुए सात्यकिने मदके आवेशमें आकर कृतवर्माका उपहास और अनादर करते हुए कहा—'हार्दिक्य ! अपनेको क्षत्रिय माननेवाला कौन ऐसा वीर होगा, जो रातमें मुर्देकी-सी दशामें सोये हुए मनुष्योंकी तेरी तरह हत्या करेगा ? तूने जो अन्याय किया है, उसे यदुवंशी कभी नहीं क्षमा कर सकते।' सात्यकिके ऐसा कहनेपर प्रद्युम्नने भी कृतवर्माका अपमान करते हुए उनकी बातका अनुमोदन किया। यह सुनकर कृतवर्माको बड़ा क्रोध हुआ और उसने बायाँ हाथ उठाकर सात्यकिका तिरस्कार करते हुए कहा—'अरे ! भूरिश्रवाकी बाँह कट गयी थी और वे मरणान्त उपवासका निश्चय करके युद्ध-भूमिमें बैठ गये थे; उस अवस्थामें तूने वीर कहलाकर भी उनकी नृशंसतापूर्ण हत्या कैसे की ?' उसकी बात सुनकर सात्यकिके क्रोधका ठिकाना न रहा। वे खड़े होकर बोले—'मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि आज इस पापीको मारकर द्रौपदीके पाँचों पुत्रों, धृष्टद्युम्न और शिखण्डीके पास पहुँचा दूँगा।' यों कहकर सात्यकि श्रीकृष्णके पाससे झपटकर आगे बढ़े और



तलवार हाथमें लेकर उन्होंने कृतवर्माका मस्तक धड़से अलग कर दिया। इसके बाद वे अन्य वीरोंको भी मौतके घाट उतारने लगे। यह देख भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें रोकनेके लिये दौड़े। इतनेमें कालकी प्रेरणासे भोज और अन्धकवंशके वीरोंने एकमत होकर सात्यकिको चारों ओरसे घेर लिया। उन्हें क्रोधमें भरकर सात्यकिके ऊपर धावा करते देख रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न क्रोधमें भर गये और सात्यकिको बचानेके लिये वे बीचमें कूदकर भोजवंशी वीरोंसे लोहा लेने लगे। उधर सात्यकि अन्धकवंशियोंके साथ भिड़ गये। अपनी भुजाओंके बलसे क्षोभित होनेवाले वे दोनों वीर बड़े उत्साह और परिश्रमके साथ विपक्षियोंका मुकाबला कर रहे थे; किंतु उनकी संख्या अधिक होनेके कारण उन्हें परास्त न कर सके और अन्तमें श्रीकृष्णके देखते-देखते दोनों ही शत्रुओंके हाथसे मारे गये। अपने पुत्र और सात्यकिको मारा गया देख भगवान् श्रीकृष्णने क्रोधमें आकर एक मुट्ठी एरका उखाड़ ली। उनके हाथमें आते ही वह घास वज्रके समान भयंकर लोहेका मूसल बन गयी। फिर तो जो-जो सामने पड़े, उन सबको वे उसी मूसलसे मौतके घाट उतारने लगे। उस समय कालसे प्रेरित होकर अन्धक, भोज, शिनि और वृष्णिवंशके वीर उस हंगामेमें एक-दूसरेको

मूसलोंकी मारसे धराशायी करने लगे। उनमेंसे जो कोई भी क्रोधमें आकर एरका नामक घास लेता, उसीके हाथमें वह वज्रके समान दिखायी पड़ती थी। जनमेजय! यह सब ब्राह्मणोंके शापका प्रभाव था कि तिनका भी मूसलके रूपमें परिणत हो जाता था। जिस किसी तृणका प्रहार किया जाता, वह अभेद्य वस्तुका भी भेदन कर डालता था। उसको लेकर पुत्र पिताके और पिता पुत्रके प्राण ले रहे थे। मतवाले यदुवंशी आपसमें ही लड़कर धराशायी होने लगे। कुकुर और अन्धकवंशके योद्धा आगमें गिरनेवाले पतंगोंकी तरह प्राण त्याग रहे थे, फिर भी कोई भागना नहीं चाहता था। श्रीकृष्णके देखते-देखते साम्ब, चारुदेष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और गदकी मृत्यु हो गयी। फिर तो उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी और शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करनेवाले उन प्रभुने बाकी बचे हुए समस्त वीरोंका संहार कर डाला। यह देख महातेजस्वी बभ्रु और दारुक उनके पास जाकर बोले— 'भगवन्! अब सबका विनाश हो गया। इनमें अधिकांश आपके हाथों मारे गये हैं। अब बलदेवजीका पता लगाना चाहिये। चलिये, हम तीनों उधर ही चलें जिधर बलरामजी गये हैं।'



बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्णका परमधाम-गमन

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर, दारुक, बभ्रु और भगवान् श्रीकृष्ण—ये तीनों ही बलरामजीके चरण-चिह्न देखते हुए वहाँसे चल दिये। थोड़ी दूर जानेपर उन्होंने अनन्त पराक्रमी बलभद्रजीको एक वृक्षके नीचे विराजमान देखा, जो एकान्तमें बैठकर कुछ सोच-विचार कर रहे थे। उनके पास पहुँचकर श्रीकृष्णने दारुकको आज्ञा दी कि 'तुम शीघ्र ही कुरुदेशकी राजधानी हस्तिनापुरमें जाकर अर्जुनको यादवोंके इस महासंहारकी सूचना दो। ब्राह्मणोंके शापसे यदुवंशियोंकी मृत्युका समाचार पाकर अर्जुन शीघ्र ही द्वारका चले आवें।' श्रीकृष्णके इस प्रकार आज्ञा देनेपर दारुक रथपर सवार हो कुरुदेशको चला गया। उसके चले जानेके बाद श्रीकृष्णने बभ्रुको अपने पास खड़े देखकर कहा—'आप स्त्रियोंकी रक्षाके लिये शीघ्र ही द्वारकाको चले जाइये। कहीं ऐसा न हो कि डाकू धनके लालचमें पड़कर उनकी हत्या कर डालें।' बभ्रु अपने भाई-बन्धुओंके वधसे बहुत दुःखी थे; भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे वे ज्यों ही द्वारकापुरीके लिये प्रस्थित हुए, त्यों ही ब्राह्मणोंके शापके प्रभावसे उत्पन्न हुआ मूसल एक व्याधेके लोहमय मुद्गरमें जुड़ा हुआ उनके ऊपर गिरा, जिसकी चोटसे सहसा उनकी मृत्यु हो गयी। बभ्रुको मरे देख अत्यन्त तेजस्वी श्रीकृष्णने अपने बड़े भाईसे कहा—'भैया बलरामजी! आप यहीं रहकर मेरी प्रतीक्षा करें; तबतक मैं स्त्रियोंको कुटुम्बीजनोंके संरक्षणमें सौंप आता हूँ।' यह कहकर श्रीकृष्ण द्वारकापुरीमें गये और अपने पिता वसुदेवजीसे बोले—'तात! आप अर्जुनके आनेकी बाट देखते हुए सम्पूर्ण स्त्रियोंकी रक्षा करें। इस समय बलरामजी वनके भीतर बैठकर मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, मैं उनसे मिलने जाऊँगा। मैंने यदुवंशियोंका विनाश अपनी आँखों देखा है, उन वीरोंसे सूनी हुई यह द्वारकापुरी अब मुझसे नहीं देखी जाती।'



यह कहकर वे अपने पिताके चरणोंमें प्रणाम करके तुरंत वहाँसे चल दिये। इतनेमें ही उस नगरकी स्त्रियों और बालकोंके रोने-बिलखनेका महान् आर्तनाद सुनायी पड़ा। विलाप करती हुई युवतियोंके करुण क्रन्दन सुनकर श्रीकृष्ण पुनः लौट आये और उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले—'देवियो! नरश्रेष्ठ अर्जुन शीघ्र ही इस नगरमें आनेवाले हैं। वे तुम्हें संकटसे बचावेंगे।' यह कहकर वे चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने एकान्त वनमें बलरामजीका दर्शन किया। बलरामजी योगयुक्त हो समाधि लगाये बैठे थे। श्रीकृष्णके देखते-देखते उनके मुखसे सफेद रंगका एक बहुत बड़ा साँप निकला और समुद्रकी ओर चला गया। उसके हजारों मस्तक थे और मुखकी प्रभा रक्त



वर्णकी थी। समुद्रने स्वयं प्रकट होकर उन भगवान् अनन्तका स्वागत किया। साथ ही दिव्य नागों और पवित्र सरिताओंने भी उनका सत्कार किया। कर्कोटक, वासुकि, तक्षक, पृथुश्रवा, अरुण, कुञ्जर, मिश्री, शङ्ख, कुमुद, पुण्डरीक, धृतराष्ट्र, ह्राद, क्राथ, शितिकण्ठ, उग्रतेजा, चक्रमन्द, अतिषण्ड, दुर्मुख और अम्बरीष आदि नाग भी उनकी सेवामें उपस्थित थे। स्वयं राजा वरुणने भी वहाँ पदार्पण किया था। इन सबने आगे बढ़कर अनन्त भगवान्का स्वागत, अभिनन्दन, एवं अर्घ्य-पाद्य आदिके द्वारा पूजन किया। भाई बलरामके परमधाम पधारनेके पश्चात् सम्पूर्ण गतियोंको जाननेवाले दिव्यदर्शी भगवान् श्रीकृष्ण उस सूने वनमें विचरने लगे। घूमते-घूमते वे एक जगह भूमिपर बैठ गये और कुछ सोचने लगे। पूर्वकालमें गान्धारीदेवीने जो शाप दिया था, उसको याद करके उन्होंने अपने अन्तर्धान होनेका उपयुक्त समय प्राप्त हुआ समझा। श्रीकृष्ण सम्पूर्ण अर्थोंके तत्त्ववेत्ता और अविनाशी देवता थे; तो भी उन्होंने तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये परमधाम पधारनेके उद्देश्यसे मन, वाणी और इन्द्रियोंका संयम किया और महायोग (समाधि) का अवलम्बन करके वे पृथ्वीपर लेट गये। उसी समय एक जरा नामवाला व्याध मृगोंको मार ले जानेकी इच्छासे उस स्थानपर आया और योगमें स्थित होकर सोते हुए श्रीकृष्णके पैरमें बाण मारकर घाव कर दिया। उसका चित्त मृगमें आसक्त था, इसलिये श्रीकृष्णको भी उसने मृग ही समझा था। बाण मारनेके बाद जब वह अपना शिकार पकड़नेके लिये आगे बढ़ा तो योगमें स्थित चार भुजावाले पीताम्बरधारी पुरुष भगवान् श्रीकृष्णपर उसकी दृष्टि पड़ी। अब तो जरा अपनेको अपराधी मानकर मन-ही-मन बहुत शङ्कित हुआ और उसने भगवान्के दोनों चरण पकड़ लिये। महात्मा श्रीकृष्णने उस समय उसे आश्वासन दिया और अपनी कान्तिसे आकाश एवं पृथ्वीको व्याप्त करते हुए वे ऊर्ध्वलोकमें (अपने परम धामको) चले गये। अन्तरिक्षमें पहुँचनेपर इन्द्र, अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य, वसु, विश्वेदेव, मुनि, सिद्ध और अप्सराओंसहित मुख्य-मुख्य गन्धर्वोंने आगे बढ़कर भगवान्का स्वागत किया। तत्पश्चात् अत्यन्त तेजस्वी, जगत्को उत्पन्न करनेवाले, अविनाशी एवं योगशास्त्रके आचार्य भगवान् नारायण अनन्त तेजसे पृथ्वी और आकाशको प्रकाशमान करते हुए अपने परम धाम— अप्रमेय पदको प्राप्त हो गये। उनके परम धामकी यात्रा करते समय देवता, ऋषि, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध और साध्यगणोंने विनीत भावसे उनका पूजन किया। देवताओंने अभिनन्दन, मुनियोंने ऋग्वेदकी ऋचाओंसे पूजन, गन्धर्वोंने स्तवन तथा इन्द्रने भी प्रेमवश उनका स्वागत-सत्कार किया।



द्वारकामें आकर अर्जुनका वसुदेवसे संवाद तथा वसुदेवजीका निधन

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! दारुकने कुरुदेशमें पहुँचकर महारथी पाण्डवोंसे यह समाचार कह सुनाया कि समस्त यदुवंशी आपसमें मूसलोंकी मारसे नष्ट हो गये। वृष्णि, भोज, अन्धक और कुकुर-वंशके वीरोंका विनाश सुनकर पाण्डवोंको बड़ा शोक हुआ। उनका हृदय आतङ्कित हो उठा। श्रीकृष्णके प्रिय सखा अर्जुनको तो सहसा इस बातपर विश्वास ही नहीं हुआ। वे तुरंत अपने मामा वसुदेवजीसे मिलनेके लिये चल दिये। दारुकके साथ वृष्णियोंके निवासस्थानपर पहुँचकर अर्जुनने देखा कि द्वारका नगरी विधवा स्त्रीकी भाँति श्रीहीन हो रही है। भगवान् श्रीकृष्णकी सोलह हजार रानियाँ अर्जुनको देखते ही बिलख-बिलखकर रोने लगीं। उनका आर्तनाद बहुत बढ़ गया। उनपर दृष्टि डालते ही अर्जुनकी आँखोंमें आँसू भर आये। पति और पुत्रोंसे हीन हुई उन अनाथ अबलाओंकी ओर उनसे देखा

नहीं गया। द्वारका नगरी और श्रीकृष्णकी पत्नियोंकी यह दुरवस्था देख अर्जुन फूट-फूटकर रोने लगे और आँसुओंकी धारा बहाते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े। सत्राजित्‌की पुत्री सत्यभामा और रुक्मिणी आदि पटरानियाँ भी अर्जुनके निकट आ जमीनपर गिर पड़ीं और उन्हें घेरकर जोर-जोरसे रोने लगीं। तत्पश्चात् उन्होंने अर्जुनको उठाकर सोनेके सिंहासनपर बिठाया और चुपचाप उनके चारों ओर बैठ गयीं। उस समय पाण्डुनन्दन अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंकी प्रशंसा करके उनके विषयकी अनेकों बातें सुनायीं और समझा-बुझाकर उन दुःखिनी स्त्रियोंको सान्त्वना दी। इसके बाद वे अपने मामा वसुदेवजीसे मिलनेके लिये उनके महलमें गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि महात्मा वसुदेवजी पुत्र-शोकसे संतप्त होकर पृथ्वीपर पड़े हुए हैं। मामाकी यह दशा देखकर आँसू बहाते हुए अर्जुनने उनके दोनों पैर पकड़ लिये। वसुदेवजीने अपनी दोनों भुजाओंसे अर्जुनको खींचकर छातीसे लगा लिया और अपने समस्त पुत्रों, भाइयों, पौत्रों, दौहित्रों और मित्रोंको याद कर-करके वे रोने-बिलखने लगे।

वसुदेवजी बोले—अर्जुन! जिन वीरोंने सैकड़ों दैत्यों और राजाओंपर विजय पायी थी, उन्हें आज नहीं देख पाता



हूँ; इतनेपर भी मेरे प्राण नहीं निकलते। जो तुम्हारे प्रिय शिष्य थे और जिनका तुम बहुत सम्मान किया करते थे, वृष्णिवंशके प्रमुख वीरोंमें जिन दोको ही अतिरथी माना जाता था तथा तुम भी जिनकी प्रशंसाके गीत गाया करते थे वे श्रीकृष्णके स्नेहभाजन प्रद्युम्न और सात्यकि ही इस समय वृष्णिवंशियोंके विनाशका प्रधान कारण हुए हैं। अथवा सात्यकि, कृतवर्मा, अक्रूर या प्रद्युम्नकी भी निन्दा क्यों करूँ? वास्तवमें ऋषियोंका शाप ही इस सर्वनाशका प्रधान कारण है। जिन जगदीश्वरने केशी, कंस, चेदिराज, शिशुपाल, निषादराज एकलव्य, कालिंग, मागध, गान्धार, काशिराज तथा मरुभूमिके राजाओंको भी यमलोकका अतिथि बनाया; जिन्होंने पूर्व, दक्षिण तथा पर्वतीय-प्रान्तके नरेशोंका संहार किया, उन्हीं मधुसूदनने बालकोंको अनीतिके कारण प्राप्त हुए इस संकटकी उपेक्षा कर दी। तुम, देवर्षि नारद तथा अन्य महर्षि भी श्रीकृष्णको पापके सम्पर्कसे रहित सनातन परमेश्वर जानते हैं; वे ही परमात्मा अपने कुटुम्बके वधको चुपचाप देखते रहे और सदा इसकी ओरसे उदासीन बने रहे। जान पड़ता है, मेरे पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए जगदीश्वरने गान्धारी तथा ऋषियोंके वचनको अन्यथा करना नहीं चाहा। अर्जुन! तुम्हारा पौत्र परीक्षित् अश्वत्थामाके हाथसे मारा जाकर भी श्रीकृष्णके प्रभावसे जीवित हो गया—यह तो तुम लोगोंकी आँखों देखी घटना है। इतने शक्तिशाली होते हुए भी तुम्हारे सखाने अपने कुटुम्बियोंकी रक्षा नहीं की। जब पुत्र, पौत्र, भाई और मित्र—सभी एक-दूसरेके हाथसे मरकर धराशायी हो गये तो उन्हें उस अवस्थामें देखकर श्रीकृष्णने मेरे पास आकर कहा—'पिताजी! आज इस कुलका संहार हो गया। अर्जुन द्वारकापुरीमें आनेवाले हैं; आनेपर उनसे वृष्णिवंशियोंके महानाशका वृत्तान्त सुनाइयेगा। अर्जुन महान् तेजस्वी हैं। वे यदुवंशियोंका निधन सुनकर शीघ्र ही यहाँ आयेंगे—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो मैं हूँ, वे ही अर्जुन हैं। जो अर्जुन हैं, वही मैं हूँ। अर्जुन जो भी कहें, वही कीजियेगा। जिन स्त्रियोंका प्रसवकाल समीप हो, उनके बालकोंकी रक्षापर अर्जुन विशेषरूपसे ध्यान देंगे और वे ही आपका और्ध्वदैहिक संस्कार भी करेंगे। अर्जुनके यहाँसे जाते ही चहारदिवारी और अट्टालिकाओंसहित इस द्वारका नगरीको समुद्र डुबो देगा। मैं किसी पवित्र स्थानमें रहकर व्रत और नियमोंका पालन करता हुआ परम बुद्धिमान् बलरामजीके साथ कालकी प्रतीक्षा करूँगा।' अचिन्त्य पराक्रमी श्रीकृष्ण ऐसा कहकर बालकोंके साथ मुझे यहीं छोड़ स्वयं किसी अज्ञात दिशाको चले गये हैं। तबसे मैं तुम्हारे दोनों भाई महात्मा श्रीकृष्ण और बलरामको तथा इस भयंकर कुटुम्ब-वधको याद करके शोकसे गलता जा रहा हूँ। मुझसे भोजन नहीं किया जाता। अब मैं न तो भोजन करूँगा और न इस जीवनको ही रखूँगा। पाण्डुनन्दन! सौभाग्यकी बात

है; जो तुम यहाँ आ गये। अब श्रीकृष्णने जो कुछ कहा है, वह सब करो। यह राज्य, ये स्त्रियाँ और ये रत्न—सब तुम्हारे अधीन हैं। अब मैं निश्चिन्त होकर अपने प्राणोंका परित्याग करूँगा।'

अपने मामाकी ये बातें सुनकर अर्जुन मन-ही-मन बहुत दुःखी हुए। उनका मुख मलिन हो गया। वे वसुदेवजीसे बोले—'मामाजी ! वृष्णिवंशके श्रेष्ठ पुरुष श्रीकृष्ण तथा अपने भाइयोंसे सूनी हुई यह पृथ्वी अब मुझसे नहीं देखी जायगी। राजा युधिष्ठिर, आर्य भीमसेन, नकुल, सहदेव तथा देवी द्रौपदीसे भी अब इस पृथ्वीपर नहीं रहा जायगा। हम सबोंका चित्त एक ही है। राजा युधिष्ठिरके भी परलोक-गमनका समय आ गया है। अब मैं वृष्णिवंशकी स्त्रियों, बालकों और बूढ़ोंको अपने साथ इन्द्रप्रस्थ ले जाऊँगा।' यह कहकर अर्जुनने दारुकसे कहा—'मैं वृष्णिवंशी वीरोंके मन्त्रियोंसे शीघ्र मिलना चाहता हूँ।' ऐसा कहकर उन्होंने यादव महारथियोंके लिये शोक करते हुए सुधर्मा-सभामें प्रवेश किया और वहाँ वे एक सिंहासनपर विराजमान हुए। उस समय राज्यकी अङ्गभूत समस्त प्रकृतियाँ (मन्त्री आदि) तथा वेदवेत्ता ब्राह्मण उन्हें सब ओरसे घेरकर बैठ गये। वे सभी दीन, मोहग्रस्त और अचेत-से हो रहे थे। अर्जुनकी अवस्था तो और भी दयनीय हो रही थी। उन्होंने सभासदोंसे कहा—'मैं वृष्णि और अन्धक-वंशके लोगोंको अपने साथ इन्द्रप्रस्थ ले जाऊँगा; क्योंकि समुद्र अब इस सारे नगरको डुबो देगा। अतः तुमलोग तरह-तरहके वाहन और रत्न लेकर तैयार हो जाओ। इन्द्रप्रस्थमें चलनेपर श्रीकृष्णके पौत्र वज्रको तुम्हारा राजा बना दिया जायगा। आजके सातवें दिन सूर्योदय होते ही हमें इस नगरसे बाहर हो जाना है। इसलिये सब लोग शीघ्र ही तैयारी करो।'

अर्जुनके इस प्रकार आज्ञा देनेपर समस्त मन्त्रियोंने अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये अत्यन्त उत्सुक होकर शीघ्र ही तैयारी आरम्भ कर दी। अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णके महलमें ही वह रात व्यतीत की। सबेरा होनेपर महातेजस्वी वसुदेवजीने अपने चित्तको समाहित करके योगके द्वारा उत्तम गति प्राप्त की। फिर तो उनके महलमें बड़ा भारी कुहराम मचा। रोती-चिल्लाती हुई नारियोंकी आवाज भयंकर जान पड़ती थी। सबके बाल खुले हुए थे। आभूषण और मालाएँ टूट-टूटकर बिखरी पड़ी थीं और वे छाती पीटती हुई करुण स्वरमें विलाप कर रही थीं। तदनन्तर, अर्जुनने एक बहुमूल्य विमान सजाकर उसपर वसुदेवजीके शवको सुलाया और मनुष्योंके कंधोंपर उठवाकर वे उसे नगरसे बाहर ले गये। उस समय समस्त द्वारकावासी तथा आसपासके प्रान्तके लोग दुःख-शोकमें भरकर वसुदेवजीके शवके पीछे-पीछे गये। उनकी अरथीके आगे-आगे अश्वमेध-यज्ञमें उपयोग किया हुआ छत्र तथा अग्निहोत्रकी प्रज्वलित अग्नि लिये याजक ब्राह्मण चल रहे थे। और पीछे-पीछे वसुदेवजीकी पत्नियाँ वस्त्र और आभूषणोंसे सज-धजकर अपनी हजारों पुत्रवधुओंके साथ-साथ जा रही थीं। वसुदेवजीको अपने जीवन-कालमें जो स्थान विशेष प्रिय था, वहीं ले जाकर उनका पितृमेध (दाह-संस्कार) किया गया। जब चितामें आग लगा दी गयी तो उनकी चार पत्नियाँ—देवकी, भद्रा, रोहिणी और मदिरा भी उसपर जा बैठीं और उन्हींके साथ भस्म होकर पतिलोकको प्राप्त हुईं। पाण्डुनन्दन अर्जुनने चन्दन और नाना प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंके द्वारा चारों स्त्रियोंसहित वसुदेवजीके शवका दाह-संस्कार किया। तत्पश्चात् वज्र आदि वृष्णि और अन्धकवंशके कुमारों तथा स्त्रियोंने महात्मा वसुदेवजीको जलाञ्जलि दी। इसके बाद अर्जुन उस स्थानपर गये, जहाँ वृष्णियोंका संहार हुआ था। उन्हें मरकर धरतीपर पड़े देख अर्जुनको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने ब्रह्मशापके कारण एरकासे उत्पन्न हुए मूसलोंद्वारा मारे गये समस्त यादव वीरोंके अन्त्येष्टिकर्म किये। उन सबका विधिवत् प्रेतकर्म करके अर्जुन सातवें दिन रथपर सवार हो तुरंत द्वारकासे चल दिये। उनके साथ घोड़े, बैल, खच्चर और ऊँटोंसे जुते हुए रथोंपर बैठकर शोकसे दुर्बल वृष्णिवंशी वीरोंकी स्त्रियाँ भी रोती हुई चलीं। अर्जुनकी आज्ञासे अन्धकों और वृष्णियोंके नौकर, घुड़सवार, रथी तथा नगर और प्रान्तके लोग बूढ़े और बालकोंसे युक्त वीरविहीना स्त्रियोंको चारों ओरसे घेरकर चलने लगे। अन्धक और वृष्णिवंशके बालक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा श्रीकृष्णकी सोलह हजार स्त्रियाँ उनके पौत्र वज्रको आगे करके चल रही थीं। भोज, वृष्णि और अन्धक-वंशकी लाखों और अरबों विधवा स्त्रियाँ उस समय अर्जुनके साथ जा रही थीं। वृष्णिवंशियोंका वह महान् समुदाय, जिसे रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन अपने साथ ले जा रहे थे, समुद्रके समान दिखायी पड़ता था। उन सबके निकल जानेपर मगर और नाकोंके निवासभूत समुद्रने रत्नोंसे भरी हुई द्वारकाको अपने जलमें डुबो दिया।

इस अद्भुत दृश्यको देखकर द्वारकावासी मनुष्य बड़ी तेजीसे चलने लगे। उस समय उनके मुखसे बार-बार यही निकलता था—'दैवकी लीला अद्भुत है।' अर्जुन रमणीय काननों, पर्वतों और नदियोंके तटपर निवास करते हुए यदुवंशकी स्त्रियोंको ले जा रहे थे। चलते-चलते वे अत्यन्त समृद्धिशाली पञ्चनद देशमें जा पहुँचे और वह प्रान्त गौ, पशु तथा धन-धान्यसे सम्पन्न था, अर्जुनने वहीं पड़ाव डाला। अकेले अर्जुनके संरक्षणमें इतने बड़े समुदायको जाते देख वहाँ

रहनेवाले लुटेरोंके मनमें लोभ पैदा हुआ। वे सब आभीर जातिके मनुष्य थे। उन सबने एकत्रित होकर आपसमें इस प्रकार सलाह की—'भाइयो ! यह देखो, धनुर्धर अर्जुन हम लोगोंको कुछ न समझकर वृद्ध-बालकोंके इस अनाथ समुदायको अकेला ही लिये जा रहा है। इसके ये सभी सैनिक उत्साहहीन दिखायी देते हैं (अतः इनपर धावा करना चाहिये)।' ऐसा निश्चय करके लूटका माल लेनेवाले वे लट्ठधारी लुटेरे वृष्णिवंशियोंके समुदायपर हजारोंकी संख्यामें टूट पड़े और कालके उलट-फेरसे प्रोत्साहन पाकर अपने महान् सिंहनादसे सब लोगोंको डराते हुए उन्हें मार डालनेको उतारू हो गये। उन्हें पीछेकी ओरसे आक्रमण करते देख कुन्तीनन्दन अर्जुन अपने पैदल सिपाहियोंके साथ सहसा पीछे लौट पड़े और हँसते हुए-से बोले—'पापियो ! यदि जीवित रहना चाहते हो तो लौट जाओ, अन्यथा मेरे बाणोंसे विदीर्ण होकर इस समय तुम बड़े शोकमें पड़ जाओगे।'

वीरवर अर्जुनके ऐसा कहनेपर भी उन्होंने उनकी बातोंपर ध्यान नहीं दिया और वे मूर्ख बारंबार उनके मना करनेपर भी उस समूहके ऊपर चढ़ आये। तब अर्जुनने अपने दिव्य धनुष गाण्डीवको चढ़ाना आरम्भ किया और यत्नपूर्वक बड़ी कठिनाईसे जैसे-तैसे उसको चढ़ा भी दिया; किंतु जब वे अपने अस्त्र-शस्त्रोंका स्मरण करने लगे तो उनकी बिलकुल याद नहीं आयी। यह देखकर वे बड़े लज्जित हुए। हाथी-सवार और रथी योद्धा भी उन डाकुओंके हाथमें पड़े हुए अपने मनुष्योंको लौटा न सके। उस समुदायमें स्त्रियोंकी संख्या बहुत थी, इसलिये डाकू कई ओरसे उनपर धावा करने लगे और अर्जुन उनकी रक्षाका यथासाध्य प्रयत्न करते रहे। सब योद्धाओंके देखते-देखते वे लुटेरे कितनी ही सुन्दरी स्त्रियोंको घसीट-घसीटकर चारों ओर ले जाने लगे। उनकी यह दुर्दशा देख बहुतेरी स्त्रियाँ डाकुओंकी इच्छाके अनुसार चुपचाप उनके साथ चली गयीं। तब अर्जुन अत्यन्त उद्विग्न हो उठे और हजारों वृष्णिवंशी योद्धाओंको साथ लेकर गाण्डीव-धनुषसे छोड़े हुए बाणोंद्वारा उन डाकुओंके प्राण लेने लगे; परंतु एक ही क्षणमें उनके सारे बाण समाप्त हो गये। बाणोंकी कमीसे अर्जुनको बड़ा दुःख हुआ और वे शोक-संतप्त होकर धनुषकी नोकसे ही लुटेरोंका वध करने लगे। जनमेजय ! उस समय पार्थके देखते-देखते ही वे म्लेच्छ डाकू वृष्णि और अन्धक-वंशकी सुन्दरी स्त्रियोंको लूटकर चारों ओर भाग गये। अर्जुनने इसे दैवका विधान समझा और दुःख-शोकमें डूबकर वे लम्बी-लम्बी साँस लेने लगे। अस्त्रोंका ज्ञान लुप्त हो गया, भुजाओंमें अब पहले-जैसी शक्ति नहीं रही, धनुषपर काबू नहीं चलता था और अक्षय बाणोंका भी क्षय हो गया। इन सब बातोंको दैवकी लीला समझकर वे बहुत उदास हो गये और डाकुओंका पीछा न करके लौट आये। फिर अपहरणसे बची हुई स्त्रियों और लूट-खसोटसे बचे हुए रत्नोंको साथ लेकर कुरुक्षेत्रमें पहुँचे। इस प्रकार वृष्णिवंशियोंके शेष परिवारको ले आकर अर्जुनने उसको जहाँ-तहाँ बसा दिया। उन्होंने कृतवर्माके पुत्रको मार्त्तिकावत नगरका राज्य दे दिया और भोजराजके परिवारकी बची हुई स्त्रियोंको उसके साथ छोड़ दिया। तत्पश्चात् बूढ़ों, बालकों तथा अन्य स्त्रियोंको साथ लेकर वे इन्द्रप्रस्थ आये और उन सबको वहाँका निवासी बना दिया। उन्होंने सात्यकिके प्रिय पुत्रको सरस्वतीके तटवर्ती (सारस्वत) देशका अधिकारी बनाया और वज्रको इन्द्रप्रस्थका राज्य दे दिया। वज्रके बहुत रोकनेपर भी अक्रूरजीकी स्त्रियाँ वनमें तपस्या करनेके लिये चली गयीं। रुक्मिणी, गान्धारी, शैब्या, हैमवती तथा जाम्बवती देवी—ये अग्निमें प्रवेश कर गयीं। श्रीकृष्णकी प्रिया सत्यभामा तथा अन्य देवियाँ तपस्याका निश्चय करके वनमें चली गयीं। जो-जो द्वारकावासी मनुष्य पार्थके साथ आये थे, उन सबका यथायोग्य विभाग करके अर्जुनने उन्हें वज्रको सौंप दिया। इस प्रकार समयोचित व्यवस्था करके अर्जुन नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए महर्षि व्यासजीके आश्रमपर गये और वहाँ बैठे हुए महर्षिका उन्होंने दर्शन किया।



अर्जुन और व्यासजीकी बातचीत

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! महान् व्रतधारी तथा धर्मके ज्ञाता व्यासजीके पास जाकर 'मैं अर्जुन हूँ' ऐसा कहते हुए धनंजयने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उन्हें आये देख महामुनि व्यासजी प्रसन्न होकर बोले—'बेटा ! तुम्हारा स्वागत है; आओ, बैठो।' अर्जुनका चित्त अशान्त था, वे बारंबार लम्बी साँस लेते हुए अत्यन्त खिन्न हो रहे थे। उनकी ऐसी दशा देखकर व्यासजीने पूछा—'पार्थ ! तुम्हारे ऊपर नख, बाल अथवा अधोवस्त्रकी कोर पड़ जानेसे अशुद्ध हुए घड़ेका जल तो नहीं पड़ गया है ? अथवा तुमने रजस्वला स्त्रीसे समागम या ब्रह्महत्या तो नहीं की है ? कहीं युद्धमें परास्त तो नहीं हो गये ? क्यों श्रीहीन-से दिखायी देते हो ? यदि तुम्हारा वृत्तान्त मेरे सुननेयोग्य हो तो शीघ्र बताओ।'

अर्जुनने कहा—भगवन् ! जिनका सुन्दर विग्रह मेघके समान श्याम और नेत्र कमलदलके समान विशाल थे, वे



भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ परम धामको चले गये। ब्राह्मणोंके शापसे मूसल-युद्धमें वृष्णिवीरोंका विनाश हो गया। प्रभासक्षेत्रमें उनका रोमाञ्चकारी संग्राम हुआ था, जिसमें सभी वीरोंका सफाया हो गया। महाबली भोज, वृष्णि और अन्धक-वंशी वीर आपसमें ही लड़कर मर मिटे हैं। समयका उलट-फेर तो देखिये, जिनकी भुजाएँ परिघके समान थीं तथा जो गदा, परिघ और शक्तियोंकी चोट सह लेनेवाले थे, वे ही एरका नामक घाससे मारे गये? उन अनन्त तेजस्वी वीरोंके विनाशका दुःख मुझसे किसी तरह सहा नहीं जाता। यदुवंशियोंके संहारकी बात सोचकर तो मुझे ऐसा जान पड़ता है मानो समुद्र सूख गया, पर्वत हिलने लगे, आकाश टूट पड़ा और अग्निमें शीतलता आ गयी! यह घटना विश्वासके योग्य नहीं है, फिर भी सत्य है। इसके सिवा जो दूसरी घटना घटित हुई है, वह इससे भी अधिक कष्टदायक है। पञ्चनद देशके निवासी आभीरोंने मुझसे युद्ध ठानकर मेरे देखते-देखते वृष्णिवंशकी हजारों स्त्रियोंका अपहरण कर लिया। वहाँ मेरे पास धनुष था, तो भी मैं उसका संधान न कर सका। मेरी भुजाओंमें पहले जो बल था, वह अब नहीं रहा। मेरा नाना प्रकारके अस्त्रोंका ज्ञान विलुप्त हो गया। मेरे सभी बाण क्षणभरमें नष्ट हो गये! जिनका स्वरूप अप्रमेय है, जो शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले, चतुर्भुज, पीताम्बरधारी, श्यामसुन्दर तथा कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले हैं, जो परम पुरुष गोविन्द अपनी अनन्त प्रभाका प्रसार करते हुए मेरे रथके आगे-आगे चलते और शत्रुसेनाको भस्म किये डालते थे, वे अब मुझे नहीं दिखायी देते। उनका दर्शन न मिलनेसे मुझे बड़ा दुःख हो रहा है, मस्तिष्कमें चक्कर आता है, चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो गया है, एक क्षणके लिये भी शान्ति नहीं मिलती। वीरवर जनार्दनके बिना अब मैं जीवित नहीं रह सकता। उनका अन्तर्धान सुनकर मुझे दिग्भ्रम हो गया है। मेरे भी कुटुम्बका नाश तो हो ही चुका था, मेरा पराक्रम भी नष्ट हो गया। अब शून्यहृदय होकर इधर-उधर भटक रहा हूँ। अतः आप कृपा करके यह उपदेश दें कि मेरा कल्याण कैसे होगा।

व्यासजीने कहा—कुरुश्रेष्ठ! वृष्णि और अन्धकवंशके महारथी ब्राह्मणोंके शापसे दग्ध होकर नष्ट हुए हैं। तुम उनके लिये शोक न करो। उनकी ऐसी ही भवितव्यता थी। यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण उनके इस संकटको टाल सकते थे, तथापि उन्होंने इसकी उपेक्षा कर दी। श्रीकृष्ण तो तीनों लोकोंके समस्त चराचर प्राणियोंकी गतिको पलट सकते हैं; फिर यादवोंपर पड़े हुए शापको अन्यथा करना उनके लिये कौन बड़ी बात थी? जो स्नेहवश तुम्हारे रथके आगे चलते थे (सारथिका काम करते थे) वे वासुदेव कोई साधारण पुरुष नहीं, साक्षात् चक्र-गदाधारी पुरातन ऋषि नारायण थे। वे विशाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण पृथ्वीका भार उतारकर अब अपने परमधामको चले गये। महाबाहो! तुमने भी भीमसेन और नकुल-सहदेवकी सहायतासे देवताओं-का महान् कार्य सिद्ध किया है। मेरी समझमें अब तुमलोगोंने अपना कर्तव्य पूर्ण कर लिया है। तुम्हें सब प्रकारसे सफलता प्राप्त हो चुकी है। अब तुम्हारे परलोकगमनका समय आया है और यही तुमलोगोंके लिये श्रेयस्कर है। जब उद्भवका समय आता है तो इसी प्रकार मनुष्यकी बुद्धि, तेज और ज्ञानका विकास होता है और जब विपरीत समय उपस्थित होता है तो इन सबका नाश हो जाता है। काल ही इन सबकी जड़ है। संसारकी उत्पत्तिका बीज भी काल ही है। तुम्हारे अस्त्रशस्त्रोंका प्रयोजन भी पूरा हो चुका है; इसलिये वे जैसे मिले थे, वैसे ही चले गये। अब तुमलोगोंके उत्तम गति प्राप्त करनेका समय उपस्थित है। मुझे इसीमें तुम्हारा परम कल्याण जान पड़ता है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अमिततेजस्वी व्यासजीके इस वचनका तत्त्व समझकर अर्जुन उनकी आज्ञासे हस्तिनापुरको चले गये और वहाँ युधिष्ठिरसे मिलकर उन्होंने वृष्णि और अन्धकवंशका सारा समाचार कह सुनाया।

—★—

॥मौसलपर्व समाप्त॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

महाप्रास्थानिकपर्व

द्रौपदीसहित पाण्डवोंका महाप्रस्थान

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप नररत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर विजय-प्राप्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! इस प्रकार वृष्णि और अन्धक-वंशके वीरोंमें मूसल-युद्ध होनेका समाचार सुनकर भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम पधारनेके पश्चात् पाण्डवोंने क्या किया?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! कुरुराज युधिष्ठिरने जब इस प्रकार वृष्णिवंशियोंके महान् संहारका समाचार सुना तो महाप्रस्थानका निश्चय करके अर्जुनसे कहा—'महामते! काल ही सम्पूर्ण प्राणियोंको पका रहा है, विनाशकी ओर ले जा रहा है। अब मैं कालके बन्धनको स्वीकार करता हूँ, तुम भी इसके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट कर सकते हो।' भाईके इस प्रकार कहनेपर अर्जुनने भी कालकी अनिवार्यता बतलाकर उनके कथनका अनुमोदन किया। अर्जुनका विचार जानकर भीमसेन और नकुल-सहदेवने भी उनकी बातका समर्थन किया। तत्पश्चात् युधिष्ठिरने युयुत्सुको बुलाकर उसे सम्पूर्ण राज्यकी देख-भालका भार सौंप दिया और अपने राज्यसिंहासनपर परीक्षित्का अभिषेक किया। इसके बाद वे अत्यन्त दुःखी होकर सुभद्रासे बोले—'बेटी! यह तुम्हारा पौत्र परीक्षित् कौरवोंका राजा होगा और यदुवंशियोंमेंसे जो लोग बच गये हैं, उनका राजा श्रीकृष्णपौत्र वज्रको बनाया गया है। परीक्षित्का राज्य हस्तिनापुरमें होगा और वज्रका इन्द्रप्रस्थमें। तुम्हें राजा वज्रकी भी रक्षा करनी चाहिये।' ऐसा कहकर भाइयोंसहित धर्मराज युधिष्ठिरने श्रीकृष्णका, अपने बूढ़े मामा वसुदेवजीका तथा बलराम आदिका भी तर्पण किया और बड़ी सावधानीसे सबके नाम ले-लेकर उनके लिये विधिवत् श्राद्ध किया। फिर द्वैपायन व्यास, नारद, मार्कण्डेय, भारद्वाज और याज्ञवल्क्यको यत्नपूर्वक बुलाकर उन्हें भगवत्प्रीत्यर्थ स्वादिष्ठ अन्नका भोजन कराया तथा भगवान्का नाम-कीर्तन करते हुए उन्होंने उत्तम ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके रत्न, वस्त्र, ग्राम, घोड़े और रथ प्रदान किये। इसके बाद गुरुवर कृपाचार्यकी पूजा करके नगरनिवासियोंसहित परीक्षित्को शिष्यभावसे उनकी सेवामें सौंप दिया। तदनन्तर समस्त प्रजाको बुलाकर राजर्षि युधिष्ठिरने उन्हें अपना महाप्रस्थानविषयक विचार बतलाया। उनकी बात सुनते ही नगर और प्रान्तके लोग उद्विग्न हो उठे और बोले—'महाराज! आप ऐसा न करें (हमें छोड़कर कहीं न जायँ)। परंतु धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरने उन्हें समझा-बुझाकर राजी किया और भाइयोंसहित चले जानेका निश्चित विचार कर लिया। फिर तो युधिष्ठिरने अपने आभूषण उतारकर वल्कलवस्त्र धारण कर लिया। भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा यशस्विनी द्रौपदी देवीने भी ऐसा ही किया। सबने वल्कलवस्त्र पहन लिये। इसके बाद ब्राह्मणोंसे विधिपूर्वक उत्सर्गकालीन इष्टि कराकर उन्होंने अग्नियोंका जलमें विसर्जन कर दिया और स्वयं वे महायात्राके लिये प्रस्थित हो गये। पहले जूएमें परास्त होकर पाण्डवलोग जिस प्रकार वनमें गये थे, उसी प्रकार उस दिन द्रौपदीसहित उन्हें घरसे जाते देख नगरकी सम्पूर्ण स्त्रियाँ रोने लगीं; किंतु उन पाँचों भाइयोंको इस यात्रासे बड़ी प्रसन्नता हुई थी। युधिष्ठिरका अभिप्राय जानकर और वृष्णिवंशियोंका संहार देखकर समस्त पाण्डव, द्रौपदी और एक कुत्ता—ये सब साथ-साथ चले। उन छहोंको साथ लेकर सातवें राजा युधिष्ठिर जब हस्तिनापुरसे बाहर निकले तो नगरनिवासी प्रजा और अन्तःपुरकी स्त्रियाँ उन्हें बहुत दूरतक पहुँचाने गयीं; किंतु कोई भी मनुष्य राजा युधिष्ठिरको लौटनेके लिये नहीं कह

सका। धीरे-धीरे समस्त पुरवासी और कृपाचार्य आदि युयुत्सुको साथ लिये लौट आये। नागकन्या उलूपी गङ्गामें प्रवेश कर गयी, चित्राङ्गदा मणिपुर नगरमें चली गयी तथा शेष माताएँ परीक्षित्‌को घेरे हुए पीछे लौट आयीं।

तदनन्तर महात्मा पाण्डव और यशस्विनी द्रौपदी देवी उपवास करते हुए पूर्व दिशाकी ओर चल दिये। वे सब-के-सब योगमुक्त, महात्मा तथा त्याग-धर्मका पालन करनेवाले थे। उन्होंने अनेकों देशों, नदियों और समुद्रोंकी यात्रा की। आगे-आगे युधिष्ठिर, उनके पीछे भीमसेन, भीमसेनके पीछे अर्जुन और उनके भी पीछे क्रमशः नकुल और सहदेव चलते थे। स्त्रियोंमें श्रेष्ठ द्रौपदीदेवी सबके पीछे चल रही थीं। इस प्रकार चलते हुए शूरवीर पाण्डव क्रमशः लालसागरके तटपर पहुँचे। अर्जुनने दिव्य रत्न समझकर लोभवश अभीतक अपने गाण्डीव धनुष तथा दोनों अक्षय तूणीरोंका परित्याग नहीं किया था। वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने मार्ग रोककर खड़े हुए पुरुषरूपधारी साक्षात् अग्निदेवको सामने उपस्थित देखा। सात प्रकारकी ज्वालारूप जिह्वाओंसे सुशोभित होनेवाले उन अग्निदेवने पाण्डवोंसे इस प्रकार कहा—'महाबाहु युधिष्ठिर! भीमसेन! अर्जुन! नकुल और सहदेव! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैं अग्नि हूँ। अब तुम मेरी बातोंपर ध्यान दो। मैंने नरस्वरूप अर्जुन और नारायण-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके प्रभावसे ही खाण्डव वनको जलाया था। तुम्हारे भाई अर्जुनको चाहिये कि ये इस उत्तम अस्त्र गाण्डीव धनुषको यहीं छोड़कर वनमें जायँ; क्योंकि अब इन्हें इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह गाण्डीव धनुष सब प्रकारके धनुषोंमें श्रेष्ठ है। इसे पहले मैं अर्जुनके लिये ही वरुणसे माँगकर ले आया था, अब पुनः इसे वरुणको ही वापस कर देना चाहिये।'



यह सुनकर सब भाइयोंने अर्जुनको वह धनुष त्याग देनेके लिये कहा। अर्जुनने उनकी बात मानकर धनुष और दोनों तरकस पानीमें फेंक दिये। इसके बाद अग्निदेव वहाँसे अन्तर्धान हो गये और पाण्डव वीर दक्षिणाभिमुख होकर चल दिये। जाते-जाते वे लवणसमुद्रके उत्तर तटपर होते हुए दक्षिण और पश्चिम दिशाकी ओर बढ़ने लगे। तत्पश्चात् केवल पश्चिम दिशाकी ओर मुड़ गये और आगे बढ़कर उन्होंने समुद्रमें डूबी हुई द्वारकापुरीको देखा। फिर योग, धर्ममें स्थित पाण्डवोंने वहाँसे घूमकर पृथ्वीकी परिक्रमा पूरी करनेकी इच्छासे उत्तर दिशाकी ओर यात्रा की।



मार्गमें द्रौपदी तथा सहदेव आदि चार पाण्डवोंका गिरना

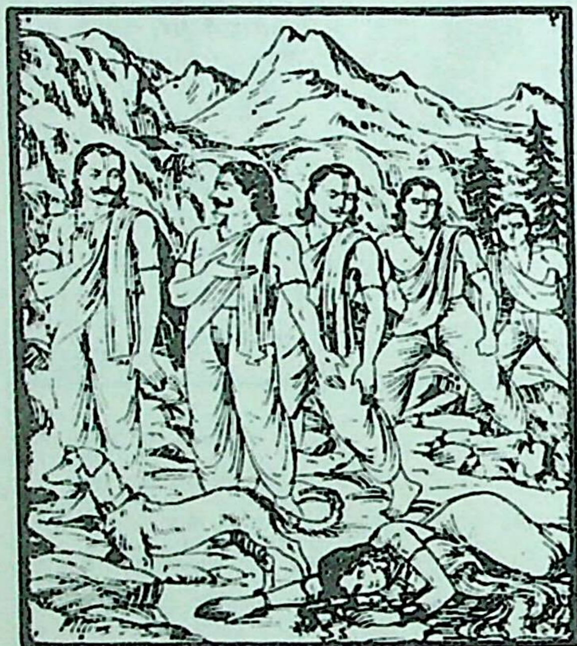
वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! नियमोंका पालन करनेवाले योगयुक्त पाण्डवोंने पश्चिमसे उत्तर दिशामें आकर महागिरि हिमालयका दर्शन किया। उसको लाँघकर जब वे आगे बढ़े तो उन्हें बालूका समुद्र दिखायी पड़ा। तत्पश्चात् उन्होंने पर्वतोंमें श्रेष्ठ महागिरि सुमेरुका दर्शन किया। समस्त पाण्डव एकाग्रचित्त होकर बड़ी तेजीके साथ चल रहे थे। उनके पीछे आती हुई द्रौपदी लड़खड़ाकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसे नीचे पड़ी देख महाबली भीमसेनने धर्मराजसे पूछा—'भैया! राजकुमारी द्रौपदीने कभी कोई पाप नहीं किया था; फिर बताइये, क्या कारण है कि वह नीचे गिर गयी?'

युधिष्ठिरने कहा—नरश्रेष्ठ! इसके मनमें अर्जुनके प्रति विशेष पक्षपात था, आज यह उसीका फल भोग रही है।

यह कहकर धर्मात्मा युधिष्ठिर द्रौपदीकी ओर देखे बिना ही अपने चित्तको एकाग्र करके आगे बढ़ गये। थोड़ी देर

बाद सहदेव भी गिरे। उन्हें गिरते देख भीमसेनने राजासे पूछा—'भैया ! यह माद्रीनन्दन सहदेव, जो सदा हमलोगोंकी सेवामें संलग्न रहता और अहंकारको कभी अपने पास फटकने नहीं देता था, आज क्यों धराशायी हुआ है ?'

युधिष्ठिरने कहा—राजकुमार सहदेव किसीको अपने-



जैसा विद्वान् नहीं समझता था, इसी दोषके कारण इसे आज गिरना पड़ा है।

द्रौपदी और सहदेवको गिरे देख बन्धुप्रेमी शूरवीर नकुल शोकसे व्याकुल होकर गिर पड़े। यह देख भीमसेनने पुनः राजासे प्रश्न किया—'भैया ! संसारमें जिसके रूपकी समानता करनेवाला कोई नहीं था, जिसने कभी अपने धर्ममें त्रुटि नहीं होने दी तथा जो सदा हमलोगोंकी आज्ञाका पालन करता था, वह हमारा प्रिय बन्धु नकुल क्यों गिर पड़ा ?' भीमसेनके इस प्रकार पूछनेपर युधिष्ठिरने नकुलके सम्बन्धमें यों उत्तर दिया—'भीमसेन ! नकुल हमेशा यही समझता था कि रूपमें मेरे समान दूसरा कोई नहीं है। इसके मनमें यही बात बैठी रहती थी कि मैं ही सबसे बढ़कर रूपवान् हूँ। इसीलिये इसको गिरना पड़ा है।' उन तीनोंको गिरे देख अर्जुनको बड़ा शोक हुआ और वे भी अनुतापके मारे गिर पड़े। दुर्धर्ष वीर अर्जुनको गिरे और मरणासन्न हुए देख भीमने पुनः प्रश्न किया—'भैया ! महात्मा अर्जुन कभी परिहासमें भी झूठ बोले हों, ऐसा मुझे याद नहीं आता; फिर यह किस कर्मका फल है, जिससे उन्हें भी पृथ्वीपर गिरना पड़ा।'

युधिष्ठिर बोले—अर्जुनको अपनी शूरताका अभिमान था। इन्होंने कहा था कि 'मैं एक ही दिनमें शत्रुओंको भस्म कर डालूँगा' किंतु ऐसा किया नहीं। इसीसे आज इन्हें धराशायी होना पड़ा है। इतना ही नहीं, इन्होंने सम्पूर्ण धनुर्धरोंका अपमान भी किया था (जिसका फल इन्हें भोगना पड़ रहा है); अतः अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको ऐसा नहीं करना चाहिये।

यों कहकर राजा युधिष्ठिर आगे बढ़ गये। इतनेमें ही भीमसेन भी गिर पड़े। गिरनेके साथ ही उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरको पुकारकर कहा—'राजन् ! जरा मेरी ओर तो देखिये। मैं आपका प्रिय भीमसेन हूँ और यहाँ गिरा हुआ हूँ; यदि जानते हों तो बताइये, मेरे गिरनेका क्या कारण है ?'

युधिष्ठिरने कहा—भीम ! तुम बहुत खाते थे और दूसरोंको कुछ भी न समझकर अपने बलकी डींग हाँका करते थे; इसीसे तुम्हें भूमिपर गिरना पड़ा है।

यह कहकर महाबाहु युधिष्ठिर उनकी ओर देखे बिना ही आगे चल दिये। केवल एक कुत्ता बराबर उनका अनुसरण करता रहा।



युधिष्ठिरका इन्द्र और धर्मके साथ वार्तालाप तथा सदेह स्वर्गगमन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर आकाश और पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए देवराज इन्द्र रथ लिये वहाँ आ पहुँचे और युधिष्ठिरसे बोले—'कुन्तीनन्दन ! तुम इस रथपर सवार हो जाओ।' तब अपने गिरे हुए भाइयोंकी ओर दृष्टि डालकर धर्मराज युधिष्ठिर शोकसे संतप्त हो उठे और इन्द्रसे कहने लगे—'देवेश्वर ! मेरे भाई मार्गमें गिरे पड़े हैं। वे भी मेरे साथ चलें इसकी व्यवस्था कीजिये; अन्यथा मैं अपने भाइयोंके बिना स्वर्गमें भी नहीं जाना चाहता। राजकुमारी द्रौपदी अत्यन्त सुकुमारी है, उसे भी हमलोगोंके साथ चलनेकी अनुमति दीजिये।'

इन्द्रने कहा—भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे सभी भाई तुमसे पहले ही स्वर्गमें पहुँच चुके हैं; उनके साथ द्रौपदी भी है। वहाँ चलनेपर वे सब तुम्हें मिलेंगे, अतः उनके लिये शोक न करो। वे मनुष्य-शरीरका परित्याग करके स्वर्गमें गये हैं; किंतु तुम इसी शरीरसे वहाँतक चल सकते हो।

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! यह कुत्ता मेरा बड़ा भक्त है, इसने सदा ही मेरा साथ दिया है; अतः इसे भी मेरे साथ चलनेकी आज्ञा दीजिये।

इन्द्रने कहा—राजन् ! तुम्हें अमरता, मेरे समान ऐश्वर्य, पूर्ण लक्ष्मी और बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त हुई है; साथ ही तुम्हें स्वर्गीय सुख भी सुलभ हुए हैं। अतः इस कुत्तेको छोड़कर मेरे साथ चलो। इसमें कोई कठोरता नहीं है।

युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! आर्य पुरुषके द्वारा निम्नश्रेणीका काम होना कठिन है; मुझे ऐसी लक्ष्मीकी प्राप्ति कभी न हो, जिसके लिये भक्त पुरुषका त्याग करना पड़े।

इन्द्रने कहा—धर्मराज ! कुत्ता रखनेवालोंके लिये स्वर्गलोकमें स्थान नहीं है। उनके यज्ञ करने और कुँआ, बावली आदि बनवानेका जो पुण्य होता है, उसे क्रोधवश नामके राक्षस हर लेते हैं; इसलिये सोच-विचारकर काम करो। इस कुत्तेको छोड़ दो—ऐसा करनेमें कोई निर्दयता नहीं है।

युधिष्ठिरने कहा—महेन्द्र ! भक्तका त्याग करनेसे जो पाप होता है, उसका कभी अन्त नहीं होता, संसारमें वह ब्रह्महत्याके समान माना गया है। अतः मैं अपने सुखके लिये कभी किसी तरह भी इस कुत्तेका त्याग नहीं कर सकता। जो डरा हुआ हो, भक्त हो, मेरा दूसरा कोई सहारा नहीं है—ऐसा कहते हुए आर्तभावसे शरणमें आया हो, अपनी रक्षामें असमर्थ—दुर्बल हो और अपने प्राण बचाना चाहता हो, ऐसे पुरुषको प्राण जानेपर भी मैं नहीं छोड़ सकता—यह मेरा सदाका व्रत है।

इन्द्रने कहा—वीरवर ! मनुष्य जो कुछ दान, स्वाध्याय अथवा हवन आदि पुण्यकर्म करता है, उसपर यदि कुत्तेकी दृष्टि भी पड़ जाय तो उसके फलको क्रोधवश नामके राक्षस हर ले जाते हैं; इसलिये इस कुत्तेका त्याग कर दो। इससे तुम्हें देवलोककी प्राप्ति होगी। तुमने भाइयों तथा प्रिय पत्नी द्रौपदीका परित्याग करके अपने पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप देवलोकको प्राप्त किया है, फिर इस कुत्तेको क्यों नहीं छोड़ देते ? सब कुछ छोड़कर अब कुत्तेके मोहमें कैसे पड़ गये ?

युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! संसारमें यह निश्चित बात है कि मरे हुए मनुष्योंके साथ न किसीका मेल होता है, न विरोध। द्रौपदी तथा अपने भाइयोंको जीवित करना मेरे वशकी बात नहीं है; अतः मर जानेपर उनका मैंने त्याग किया है, जीवितावस्थामें नहीं। शरणमें आये हुएको भय देना, स्त्रीका वध करना, ब्राह्मणका धन लूटना और मित्रोंके साथ द्रोह करना—ये चार अधर्म एक ओर और भक्तका त्याग दूसरी ओर हो, तो मेरी समझमें यह अकेला ही उन चारोंके बराबर है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! (कुत्तेका शरीर धारण करके आये हुए) धर्मस्वरूपी भगवान् धर्मराज युधिष्ठिरकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उनकी स्तुति करते हुए मधुर वचनोंमें बोले—'राजेन्द्र ! तुम अपने सदाचार, बुद्धि और सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति होनेवाली इस दयाके कारण अपने पिताका नाम उज्ज्वल कर रहे हो। बेटा ! एक बार पहले मैंने द्वैतवनमें भी तुम्हारी परीक्षा की थी, जबकि तुम्हारे सभी भाई पानी लानेके लिये जाकर मारे गये थे। उस समय तुमने कुन्ती और माद्री दोनों माताओंमें समानताकी इच्छा रखकर अपने सगे भाई भीम और अर्जुनको छोड़ केवल नकुलको जीवित करना चाहा था। इस समय भी, 'यह कुत्ता मेरा भक्त है' ऐसा सोचकर तुमने देवराज इन्द्रके रथका भी परित्याग कर दिया है। अतः स्वर्गलोकमें तुम्हारी समता करनेवाला कोई नहीं है। इसलिये तुम्हें अपने इसी शरीरसे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हुई है, तुम परम उत्तम दिव्य गतिको पा गये हो।'

यों कहकर धर्म, इन्द्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, देवता और देवर्षियोंने पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको रथमें बिठाया और अपने-अपने विमानोंपर आरूढ़ होकर वे स्वर्गलोकको चल दिये। वे सब-के-सब अपनी इच्छाके अनुसार विचरनेवाले, रजोगुणशून्य, पुण्यात्मा, पवित्र वाणी, बुद्धि एवं कर्मवाले तथा सिद्ध थे। इन्द्रके रथमें बैठे हुए राजा युधिष्ठिर अपने तेजसे पृथ्वी और आकाशको देदीप्यमान करते हुए बड़ी तेजीके साथ ऊपरकी ओर जाने लगे। उस समय सम्पूर्ण लोकोंका वृत्तान्त जाननेवाले, बोलनेमें कुशल तथा महान् तपस्वी नारदजीने देवमण्डलमें स्थित होकर उच्चस्वरसे कहा—'जितने राजर्षि स्वर्गमें आये हैं, वे सभी यहाँ उपस्थित हैं, किंतु कुरुराज युधिष्ठिर अपने सुयशसे उन सबकी कीर्तिको आच्छादित करके विराजमान हो रहे हैं। अपने यश, तेज और सदाचाररूप सम्पत्तिसे तीनों लोकोंको आवृत करके अपने भौतिक शरीरसे स्वर्गलोकमें आनेका

सौभाग्य पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके सिवा और किसी राजाको भी प्राप्त हुआ हो—ऐसा मैंने कभी नहीं सुना है। युधिष्ठिर ! पृथ्वीपर रहते हुए तुमने आकाशमें नक्षत्र और ताराओंके रूपमें जितने तेज देखे हैं, वे ही ये देवताओंके हजारों लोक हैं; इनकी ओर देखो।'

नारदजीकी बात सुनकर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरने देवताओं तथा अपने पक्षके राजाओंकी अनुमति लेकर कहा—'मेरे भाइयोंको भला या बुरा जो भी स्थान प्राप्त हुआ हो, उसीको मैं भी पाना चाहता हूँ। उसके सिवा, दूसरे लोकमें जानेकी मेरी इच्छा नहीं है।' उनके ऐसा कहनेपर देवराज इन्द्रने कोमल वाणीमें कहा—'महाराज ! तुम अपने शुभ कर्मोंद्वारा प्राप्त हुए इस स्वर्गलोकमें निवास करो। मनुष्यलोकके स्नेहपाशको क्यों अभीतक खींचते आते हो ? तुम्हें वह उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई है जो दूसरे मनुष्यके लिये दुर्लभ है। तुम्हारे भाइयोंको ऐसा स्थान नहीं प्राप्त है। क्या अभीतक मनुष्यलोककी भावना तुम्हारा पिण्ड नहीं छोड़ती ? यह स्वर्गलोक है; पर स्वर्गवासी देवर्षियों और सिद्धोंकी ओर तो दृष्टि डालो।'

देवेन्द्रकी ऐसी बातें सुनकर युधिष्ठिरने फिर कहा—'देवराज ! अपने भाइयोंके बिना मुझे यहाँ रहनेका उत्साह नहीं होता। मैं तो वहीं जाना चाहता हूँ, जहाँ मेरे भाई गये हैं और जहाँ सत्त्वगुणसम्पन्ना द्रौपदी देवी विराजमान हैं।'



॥महाप्रास्थानिकपर्व समाप्त ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

स्वर्गारोहणपर्व

स्वर्गमें नारद और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा युधिष्ठिरको नरकका दर्शन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप नररत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर विजयप्राप्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

जनमेजयने पूछा—मुने! मेरे प्रपितामह पाण्डव जब स्वर्गमें पहुँच गये तो उन्हें और धृतराष्ट्रके पुत्रोंको किस-किस स्थानकी प्राप्ति हुई?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! तुम्हारे प्रपितामह धर्मराज युधिष्ठिरने स्वर्गमें जानेके पश्चात् देखा कि दुर्योधन स्वर्गीय शोभासे सम्पन्न हो देवता और साध्यगणोंके साथ एक दिव्य सिंहासनपर बैठकर सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहा है। उसका ऐसा ऐश्वर्य देखकर युधिष्ठिर सहसा पीछेको लौट पड़े और उच्च स्वरसे कहने लगे—'देवताओ! जिसके कारण हमने अपने समस्त सुहृदों और बन्धुओंका युद्धमें संहार कर डाला तथा जिसकी प्रेरणासे निरन्तर धर्मका आचरण करनेवाली हमारी पत्नी पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदीको भरी सभामें गुरुजनोंके सामने घसीटा गया, ऐसे दुर्योधनके साथ मैं इस स्वर्गलोकमें नहीं रहना चाहता।' यह सुनकर नारदजी हँस पड़े और बोले—'महाबाहो! स्वर्गमें आनेपर मृत्युलोकका वैर-विरोध नहीं रहता, अतः तुम्हें महाराज दुर्योधनके विषयमें ऐसी बात कदापि नहीं कहनी चाहिये। स्वर्गलोकमें जितने श्रेष्ठ राजा रहते हैं, वे और समस्त देवता भी यहाँ राजा दुर्योधनका विशेष सम्मान करते हैं। यह सत्य है कि इन्होंने सदा ही तुमलोगोंको कष्ट पहुँचाया है, तथापि युद्धमें अपने शरीरकी आहुति देकर ये वीरलोकको प्राप्त हुए हैं। अतः द्रौपदीको इनके द्वारा जो क्लेश प्राप्त हुआ है, उसे भूल जाओ और इनके साथ न्यायपूर्वक मिलो। यह स्वर्गलोक है, यहाँ आनेपर पहलेका वैर नहीं रहता।'

नारदजीके ऐसा कहनेपर राजा युधिष्ठिरने पूछा—'ब्रह्मन्! जो महान् व्रतधारी, महात्मा, सत्यप्रतिज्ञ, विश्वविख्यात वीर और सत्यवादी थे उन मेरे भाइयोंको कौन-से लोक प्राप्त हुए हैं? उन्हें मैं देखना चाहता हूँ। सत्यपर दृढ़ रहनेवाले कुन्तीपुत्र महात्मा कर्णको, धृष्टद्युम्नको, सात्यकिको तथा धृष्टद्युम्नके पुत्रोंको भी मुझे देखनेकी इच्छा है। इनके सिवा जो-जो राजा क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्धमें शस्त्रोंद्वारा मारे गये हैं, वे इस समय कहाँ हैं? उनका तो यहाँ दर्शन ही नहीं हो रहा है। राजा विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, पाञ्चालराजकुमार शिखण्डी, द्रौपदीके पाँचों पुत्र तथा दुर्द्धर्ष वीर अभिमन्युसे भी मैं मिलना चाहता हूँ।'

अब युधिष्ठिरने देवताओंसे कहा—'देवगण! यहाँ युधामन्यु और उत्तमौजा—ये दोनों भाई क्यों नहीं दिखायी देते? जिन-जिन महारथी राजाओं और राजकुमारोंने समराग्निमें अपने शरीरोंकी आहुति दी है, जो मेरे लिये युद्धमें मारे गये हैं, वे सिंहके समान पराक्रमी वीर कहाँ हैं? क्या उन महापुरुषोंने भी इस लोकपर अधिकार प्राप्त किया है? यदि वे सब महारथी भी इस लोकमें आये हों, तब तो मैं उन महात्माओंके साथ यहीं रहूँगा; परंतु यदि उनको यह शुभ और अक्षय लोक नहीं प्राप्त हुआ है, तो मैं अपने उन भाई-बन्धुओंके बिना यहाँ सुखसे नहीं रह सकता। युद्धके बाद जब मैं अपने मृत सम्बन्धियोंको जलाञ्जलि दे रहा था, उस समय मेरी माता कुन्तीने कहा था—'बेटा! कर्णको भी जलाञ्जलि देना।' माताकी यह बात सुनकर जब मुझे मालूम हुआ कि महात्मा कर्ण मेरे ही भाई थे, तबसे मुझे उनके लिये बड़ा दुःख होता है। यह सोचकर तो मैं और भी पश्चात्ताप करता रहता हूँ कि महामना कर्णके दोनों चरणोंको माता कुन्तीके चरणोंके समान देखकर भी मैं क्यों नहीं उनका अनुगामी हो गया। यदि कर्ण हमारे साथ होते तो हमें इन्द्र भी युद्धमें परास्त नहीं कर सकते थे। वे सूर्यनन्दन कर्ण इस समय जहाँ-कहीं

भी हों, मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ। अपने प्राणोंसे भी प्रिय भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा धर्मपरायणा द्रौपदीको भी देखना चाहता हूँ। यहाँ रहनेकी मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। यह मैं आपलोगोंसे सच्ची बात बता रहा हूँ। भला, भाइयोंसे अलग रहकर मुझे स्वर्गसे क्या लेना है। जहाँ मेरे भाई हैं, वहीं मेरे लिये स्वर्ग है। मैं इस लोकको स्वर्ग नहीं मानता।'

देवताओंने कहा—राजन्! यदि उन्हीं लोगोंमें तुम्हारी श्रद्धा है तो चलो, विलम्ब न करो। हमलोग देवराजकी आज्ञासे हर तरहसे तुम्हारा प्रिय करना चाहते हैं।

यों कहकर देवताओंने देवदूतको आज्ञा दी—'तुम युधिष्ठिरको इनके सुहृदोंका दर्शन कराओ।' तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिर और देवदूत दोनों साथ-साथ उस स्थानकी ओर चले, जहाँ पुरुषश्रेष्ठ भीमसेन आदि थे। आगे-आगे देवदूत जा रहा था और पीछे-पीछे राजा युधिष्ठिर। दोनों एक ऐसे मार्गपर पहुँचे, जो बहुत ही खराब था; उसपर चलना कठिन हो रहा था। पापाचारी पुरुष ही उस रास्तेसे आते-जाते थे। वहाँ सब ओर घोर अन्धकार छा रहा था। चारों ओरसे बदबू आ रही थी, इधर-उधर सड़े हुए मुर्दे दिखायी देते थे। जहाँ-तहाँ बाल और हड्डियाँ पड़ी हुई थीं। लोहेकी चोंचवाले



कौए और गीध मँडरा रहे थे। सुईके समान चुभते हुए मुखोंवाले पर्वताकार प्रेत सब ओर घूम रहे थे। उन प्रेतोंमेंसे किसीके शरीरसे मेद और रुधिर बहते थे; किसीके बाहु, ऊरु, पेट और हाथ-पैर कट गये थे। धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर बहुत चिन्तित होकर उसी मार्गके बीचसे होकर निकले। उन्होंने देखा—वहाँ खौलते हुए पानीसे भरी हुई एक नदी बह रही है, जिसको पार जाना बहुत ही कठिन है। दूसरी ओर तीखे छुरोंके-से पत्तोंसे परिपूर्ण असिपत्र नामक वन है। कहीं गरम-गरम बालू बिछी है तो कहीं तपाये हुए लोहेकी बड़ी-बड़ी चट्टानें रखी गयी हैं। सब ओर लोहेके कलशोंमें तेल खौलाया जा रहा है। यत्र-तत्र पैने काँटोंसे भरे हुए सेमलके वृक्ष हैं, जिनको हाथसे छूना भी कठिन है। इन सबके अलावे वहाँ पापियोंको जो बड़ी-बड़ी यातनाएँ दी जा रही थीं, उनपर भी युधिष्ठिरकी दृष्टि पड़ी। वहाँकी दुर्गन्धसे तंग आकर उन्होंने देवदूतसे पूछा—'भाई! ऐसे मार्गपर हमलोगोंको अभी कितनी दूर और चलना है? तथा मेरे भ्राता कहाँ हैं?'

धर्मराजकी बात सुनकर देवतदूत लौट पड़ा और बोला— 'बस, यहींतक आपको आना था। महाराज! देवताओंने मुझसे कहा है कि 'जब युधिष्ठिर थक जायँ तो उन्हें वापस लौटा लाना।' अतः अब मैं आपको लौटा ले चलता हूँ। यदि आप थक गये हों तो मेरे साथ आइये।' युधिष्ठिर उस बदबूसे विकल हो रहे थे, इसलिये घबराकर उन्होंने लौटनेका ही निश्चय किया। वे ज्यों ही उस स्थानसे लौटने लगे, त्यों ही उनके कानोंमें चारों ओरसे दुःखी जीवोंकी यह दयनीय पुकार सुन पड़ी—'धर्मनन्दन! आप हमलोगोंपर कृपा करके थोड़ी देर यहाँ ठहर जाइये; आपके आते ही परम पवित्र और सुगन्धित हवा चलने लगी है, इससे हमें बड़ा सुख मिला है। कुन्तीनन्दन! आज बहुत दिनोंके बाद आपका दर्शन पाकर हमलोगोंको बड़ा आनन्द मिल रहा है, अतः क्षणभर और ठहर जाइये। आपके रहनेसे यहाँकी यातना हमें कष्ट नहीं पहुँचाती।' इस प्रकार वहाँ कष्ट पानेवाले दुःखी जीवोंके भाँति-भाँतिके दीन वचन सुनकर युधिष्ठिरको बड़ी दया आयी। उनके मुँहसे सहसा निकल पड़ा—'ओह! इन बेचारोंको बड़ा कष्ट है।' यों कहकर वे वहीं ठहर गये। फिर पूर्ववत् दुःखी जीवोंका आर्तनाद सुनायी देने लगा; किंतु वे पहचान न सके कि ये किनके वचन हैं। जब किसी तरह उनका परिचय समझमें नहीं आया तो युधिष्ठिरने उन दुःखी जीवोंको सम्बोधित करके पूछा—'आपलोग कौन हैं और यहाँ किसलिये रहते हैं?' उनके इस प्रकार पूछनेपर चारों ओरसे आवाज आने लगी—'मैं कर्ण हूँ, मैं भीमसेन हूँ, मैं अर्जुन हूँ, मैं नकुल हूँ, मैं सहदेव हूँ, मैं धृष्टद्युम्न हूँ, मैं द्रौपदी हूँ और हमलोग

द्रौपदीके पुत्र हैं।' इस प्रकार अपने-अपने नाम बताकर सब लोग विलाप करने लगे। यह सुनकर राजा युधिष्ठिर मनमें विचार करने लगे—'दैवका यह कैसा विधान है? मेरे महात्मा भाई भीमसेन आदि, कर्ण, द्रौपदीके पुत्र तथा स्वयं द्रौपदीने भी ऐसा कौन-सा पाप किया था, जिसके कारण इन्हें इस दुर्गन्धपूर्ण भयानक स्थानमें रहना पड़ रहा है। ये सभी पुण्यात्मा थे। जहाँतक मैं जानता हूँ, इन्होंने कोई पाप नहीं किया था; फिर किस कर्मका यह फल है जो ये नरकमें पड़े हुए हैं? मेरे भाई सम्पूर्ण धर्मके ज्ञाता, शूरवीर, सत्यवादी तथा शास्त्रके अनुकूल चलनेवाले थे। इन्होंने क्षत्रिय-धर्ममें तत्पर रहकर बड़े-बड़े यज्ञ किये और बहुत-सी दक्षिणाएँ दी हैं (तथापि इनकी ऐसी दुर्गति क्यों हुई?)। मैं सोता हूँ या जागता? मुझे चेत है या नहीं? कहीं यह मेरे चित्तका विकार अथवा भ्रम तो नहीं है?'

इस तरह नाना प्रकारसे सोच-विचार करते हुए राजा युधिष्ठिरने देवदूतसे कहा—'तुम जिनके दूत हो, उनके पास लौट जाओ; मैं वहाँ नहीं चलूँगा। अपने मालिकोंसे जाकर कहना—'युधिष्ठिर वहीं रहेंगे।' मेरे रहनेसे यहाँ मेरे भाई-बन्धुओंको सुख मिलता है।' युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर देवदूत देवराज इन्द्रके पास चला गया और युधिष्ठिरने जो कुछ कहा या करना चाहते थे, वह सब उसने देवराजसे निवेदन किया।



इन्द्र और धर्मका युधिष्ठिरको सान्त्वना देना तथा युधिष्ठिरका शरीर त्यागकर दिव्य लोकको जाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! धर्मराज युधिष्ठिरको उस स्थानपर खड़े हुए एक मुहूर्त भी नहीं बीतने पाया था कि इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता वहाँ आ पहुँचे। साक्षात् धर्म भी शरीर धारण करके राजासे मिलनेके लिये आये। उन तेजस्वी देवताओंके आते ही वहाँका सारा अन्धकार दूर हो गया। पापियोंकी यातनाका वह दृश्य कहीं नहीं दिखायी देता था। फिर शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चलने लगी। इन्द्रसहित मरुद्गण, वसु, अश्विनीकुमार, साध्य, रुद्र, आदित्य तथा अन्यान्य स्वर्गवासी देवता सिद्धों और महर्षियोंके साथ महातेजस्वी युधिष्ठिरके पास एकत्रित हुए। उस समय इन्द्रने युधिष्ठिरको सान्त्वना देते हुए कहा—'महाबाहो! अबतक जो हुआ सो हुआ, अब इससे अधिक कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं है। आओ, हमारे साथ चलो। तुम्हें बहुत बड़ी सिद्धि मिली है, साथ ही अक्षयलोकोंकी प्राप्ति भी हुई है। तुम्हें जो नरक देखना पड़ा है, इसके लिये क्रोध न करना। मनुष्य अपने जीवनमें शुभ और अशुभ—दो प्रकारके कर्मोंकी राशि संचित करता है। जो पहले शुभ कर्मोंका फल भोगता है, उसे पीछेसे नरक भोगना पड़ता है और जो पहले ही नरकका कष्ट भोग लेता है, वह पीछे स्वर्गीय सुखका अनुभव करता है। जिसके पाप-कर्म अधिक और पुण्य थोड़े होते हैं, वह पहले स्वर्गका सुख भोगता है (तथा जो पुण्य अधिक और पाप कम किये रहता है, वह पहले नरक भोगकर पीछे स्वर्गमें आनन्द भोगता है)। इसी नियमके अनुसार तुम्हारी भलाई सोचकर पहले मैंने तुम्हें नरकका दर्शन कराया है। तुमने अश्वत्थामाके मरनेकी बात कहकर छलसे द्रोणाचार्यको उनके पुत्रकी मृत्युका विश्वास दिलाया था, इसीलिये तुम्हें भी छलसे ही नरक दिखलाया गया है। तुम्हारे पक्षके जितने राजा युद्धमें मारे गये हैं, वे सभी स्वर्गलोकमें पहुँचे हुए हैं। महान् धनुर्धर तथा शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्ण भी, जिनके लिये तुम सदा दुःखी रहते हो, उत्तम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। तुम्हारे दूसरे भाई तथा पाण्डव-पक्षके अन्य राजा भी अपने-अपने योग्य स्थानको प्राप्त हुए हैं। उन सबको चलकर देखो और अपनी मानसिक चिन्ताका त्याग कर मेरे साथ स्वर्गमें विहार करो। अपने किये हुए पुण्यकर्म, तप और दानके फल भोगो। राजसूय-यज्ञद्वारा जीते हुए, समृद्धिशाली लोकोंको स्वीकार करो और अपनी तपस्याका महान् फल भोगो। युधिष्ठिर! तुम्हें प्राप्त हुए सम्पूर्ण लोक राजा हरिश्चन्द्रके लोकोंकी भाँति सब राजाओंके लोकोंसे

ऊपर हैं, उन्हींमें तुम विचरण करोगे। जहाँ राजर्षि मान्धाता, राजा भगीरथ और दुष्यन्तकुमार भरत गये हैं, उन्हीं लोकोंमें निवास करके तुम भी दिव्य सुखका उपभोग करोगे। महाराज! वह देखो, त्रिभुवनको पवित्र करनेवाली देवनदी मन्दाकिनी सामने ही दिखायी दे रही हैं; उनके पवित्र जलमें स्नान करके तुम दिव्य लोकोंमें जा सकोगे। वहाँ गोता लगाते ही तुम्हारा मानव-स्वभाव दूर हो जायगा, तुम्हारे मनके शोक-संताप, ग्लानि और वैर आदि सभी दोष मिट जायँगे।'

देवराजकी बात समाप्त होनेपर शरीर धारण करके आये हुए साक्षात् धर्मने कहा—'बेटा! तुम्हारे धर्मविषयक अनुराग, सत्यभाषण, क्षमा और इन्द्रियसंयम आदि गुणोंके कारण मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। यह मेरे द्वारा तीसरी बार तुम्हारी परीक्षा हुई है। किसी भी युक्तिसे कोई तुम्हें अपने स्वभावसे विचलित नहीं कर सकता। द्वैतवनमें अरणी-काष्ठका अपहरण करनेके पश्चात् जब यक्षके रूपमें मैंने तुमसे कई प्रश्न किये थे, वह तुम्हारी पहली परीक्षा थी; उसमें तुम भलीभाँति उत्तीर्ण हो गये। फिर द्रौपदीसहित तुम्हारे सब भाइयोंकी मृत्यु हो जानेपर कुत्तेका रूप धारण करके मैंने दूसरी बार तुम्हारी परीक्षा ली थी, उसमें भी तुम्हें सफलता मिली। यह तुम्हारी परीक्षाका तीसरा अवसर था; किंतु इस बार भी तुम अपने सुखकी परवा न करके भाइयोंके हितके लिये नरकमें रहना चाहते थे, अतः तुम हर तरहसे शुद्ध प्रमाणित हुए। तुममें पापका नाम भी नहीं है, इसलिये स्वर्गका सुख भोगो। तुम्हारे भाई नरकके योग्य नहीं हैं। तुमने जो उन्हें नरक भोगते देखा है, वह देवराज इन्द्रद्वारा प्रकट की हुई माया थी। अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव और सत्यवादी शूरवीर कर्ण तथा राजकुमारी द्रौपदी—इनमेंसे कोई भी नरकमें जाने योग्य नहीं है। भरतश्रेष्ठ! आओ, अब मेरे साथ चलकर त्रिलोकगामिनी गङ्गाजीका दर्शन करो।'

जनमेजय! धर्मके यों कहनेपर तुम्हारे पूर्वपितामह राजर्षि युधिष्ठिरने धर्म तथा समस्त स्वर्गवासी देवताओंके साथ जाकर मुनिजनवन्दित परम पावन देवनदी गङ्गाजीमें स्नान किया। स्नान करते ही उन्होंने मानवशरीरका त्याग करके दिव्य देह धारण कर लिया। उनके हृदयका शोक-संताप और वैर-भाव जाता रहा। तत्पश्चात् वे देवताओंसे घिरकर महर्षियोंसे स्तुति सुनते हुए धर्मके साथ-साथ उस स्थानको गये, जहाँ उनके चारों भाई पाण्डव और धृतराष्ट्रके पुत्र क्रोध त्यागकर आनन्दपूर्वक निवास करते थे।



युधिष्ठिरका दिव्यलोकमें श्रीकृष्ण आदिके दर्शन करना, भीष्म आदिका अपने मूलस्वरूपमें मिलना और महाभारतका उपसंहार तथा माहात्म्य

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर देवताओं, ऋषियों और मरुद्गणोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए राजा युधिष्ठिर क्रमशः उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ कुरुश्रेष्ठ भीमसेन आदि विराजमान थे (वह भगवान्का परम धाम था)। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपना ब्राह्मविग्रह धारण किये विराजमान हैं। उनका स्वरूप अपने पूर्व विग्रहके ही समान है; अतः पहलेकी देखी हुई समानताओंके कारण वे अनायास ही पहचाने जा रहे हैं। उनके श्रीविग्रहसे दिव्य ज्योति छिटक रही है। चक्र आदि भयंकर दिव्यास्त्र देवताओंके-से शरीर धारण करके सेवामें उपस्थित हैं। अत्यन्त तेजस्वी वीरवर अर्जुन भगवान्की आराधनामें लगे हुए हैं। देवपूजित भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने भी युधिष्ठिरको उपस्थित देख उनका यथावत् सम्मान किया। इसके बाद दूसरी ओर दृष्टि डालनेपर युधिष्ठिरने शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्णको बारह आदित्योंके समान तेजोमय स्वरूप धारण किये विराजमान देखा। दूसरे स्थानमें भीमसेन दिखायी पड़े जो पहलेके ही समान शरीर धारण किये मूर्तिमान् वायु देवताके पास बैठे थे। उनके चारों ओर मरुद्गण दिखायी दे रहे थे और उनका दिव्य विग्रह उत्तम कान्तिसे देदीप्यमान हो रहा था। उन्हें भी

बड़ी भारी सिद्धि प्राप्त हुई थी। नकुल और सहदेव अश्विनीकुमारोंके साथ बैठे थे। वे दोनों भाई अपने दिव्य तेजसे उद्दीप्त दिखायी पड़ते थे।

तत्पश्चात् देवराज इन्द्रने कहा—'युधिष्ठिर ! ये जो लोककमनीय विग्रहसे युक्त पवित्र गन्धवाली देवी दिखायी दे रही हैं, साक्षात् भगवती लक्ष्मी हैं। ये ही तुम्हारे लिये मनुष्यलोकमें जाकर अयोनिसम्भूता द्रौपदीके रूपमें अतवीर्ण हुई थीं। स्वयं भगवान् शंकरने तुमलोगोंकी प्रसन्नताके लिये इन्हें प्रकट किया था और इन्होंने ही द्रुपदके कुलमें जन्म धारण कर तुमलोगोंकी सेवा की थी। इधर ये अग्निके समान तेजस्वी पाँच गन्धर्व दिखायी दे रहे हैं, जो तुमलोगोंके वीर्यसे उत्पन्न हुए द्रौपदीके पाँच पुत्र थे। इन परम बुद्धिमान् गन्धर्वराज धृतराष्ट्रका दर्शन करो, ये ही तुम्हारे पिताके बड़े भाई थे। वह देखो, तुम्हारे बड़े भाई कर्ण सूर्यके साथ जा रहे हैं। उस ओर वृष्णि, अन्धक और भोज-वंशके सात्यकि आदि महारथियों तथा महाबली वीरोंको देखो; वे साध्यों, विश्वेदेवों तथा मरुद्गणोंमें विराजमान् हैं। जिसे युद्धमें कोई भी परास्त नहीं कर सकता था, उस महान् धनुर्धर सुभद्राकुमार अभिमन्युकी ओर दृष्टि डालो। वह चन्द्रमाके साथ उन्हींके समान कान्ति धारण किये बैठा है। इधर देखो, कुन्ती और माद्रीके साथ तुम्हारे पिता राजा पाण्डु विराजमान हैं। ये विमानपर बैठकर सदा मेरे पास आया करते हैं। शान्तनुनन्दन भीष्म वसुओंके साथ और तुम्हारे गुरु द्रोणाचार्य बृहस्पतिके पास बैठे हैं—इन दोनोंका दर्शन करो। ये तुम्हारे पक्षमें युद्ध करनेवाले दूसरे-दूसरे राजा गन्धर्वों, यक्षों और पुण्यजनोंके साथ जा रहे हैं। किन्हीं-किन्हींको गुह्यकोंका लोक प्राप्त हुआ है। ये सब युद्धमें शरीर त्यागकर अपनी पवित्र वाणी, बुद्धि और कर्मोंके द्वारा स्वर्गलोकपर अधिकार प्राप्त कर चुके हैं।'

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! भीष्म, द्रोण, राजा धृतराष्ट्र, विराट, द्रुपद, शङ्ख, उत्तर, धृष्टकेतु और शकुनि आदि तथा तेजस्वी शरीर धारण करनेवाले अन्यान्य राजा स्वर्गलोकमें कितने समयतक एक साथ रहे ? उन्हें वहाँ सनातन स्थानकी प्राप्ति हुई अथवा वे और किसी गतिको प्राप्त हुए ? मैं आपके मुँहसे इस वृत्तान्तको सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! यह देवताओंका गूढ़ रहस्य है, तुम्हारे पूछनेपर इसे बता रहा हूँ। जिनकी बुद्धि अगाध है, जो सब कर्मोंकी गतिको जाननेवाले और सर्वज्ञ हैं, उन महान् व्रतधारी पुरातन मुनि पराशरनन्दन व्यासजीने मुझसे यही कहा है कि वे सभी वीर अन्ततोगत्वा अपने मूलस्वरूपमें ही मिल गये थे। महातेजस्वी भीष्म वसुओंके स्वरूपमें प्रविष्ट हो गये, तभी आठ ही वसु उपलब्ध होते हैं (अन्यथा भीष्मजीको लेकर नौ वसु हो जाते)। आचार्य द्रोणने बृहस्पतिमें प्रवेश किया, कृतवर्मा मरुद्गणोंमें मिल गया, प्रद्युम्न जैसे आये थे, उसी प्रकार सनत्कुमारके शरीरमें प्रविष्ट हो गये। धृतराष्ट्रको कुबेरके दुर्लभ लोकोंकी प्राप्ति हुई, यशस्विनी गान्धारी देवी भी उनके साथ ही गयीं। राजा पाण्डु अपनी दोनों पत्नियोंके साथ इन्द्रभवनमें चले गये। विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, निशठ, अक्रूर, साम्ब, भानु, कम्प, विदूरथ, भूरिश्रवा, शल, भूरि, कंस, उग्रसेन, वसुदेव, उत्तर और शङ्ख—ये विश्वेदेवोंमें मिल गये। चन्द्रमाके महातेजस्वी पुत्र वर्चा ही नरश्रेष्ठ अर्जुनके पुत्र होकर अभिमन्यु नामसे विख्यात हुए थे। उन्होंने क्षत्रियधर्मके अनुसार ऐसा युद्ध किया था, जिसकी कहीं तुलना नहीं थी। वे धर्मात्मा महारथी अभिमन्यु अपने अवतारका कार्य पूरा करके चन्द्रमामें प्रविष्ट हो गये। कुरुश्रेष्ठ कर्णने सूर्यमें, शकुनिने द्वापरमें और धृष्टद्युम्नने अग्निके स्वरूपमें प्रवेश किया। धृतराष्ट्रके सब पुत्र महाबली यातुधानों (राक्षसों) में मिल गये। विदुर और राजा युधिष्ठिरने धर्मका सायुज्य प्राप्त किया। जो ब्रह्माजीके अनुरोधसे अपनी योगशक्तिका आश्रय लेकर इस पृथ्वीको धारण किये रहते हैं, वे भगवान् अनन्त (बलरामजी) रसातलमें चले गये। जो सनातन देवादिदेव नारायणके नामसे प्रसिद्ध हैं, उन्हींके अंशसे भगवान् श्रीकृष्णका अवतार हुआ था। अवतारका प्रयोजन पूर्ण कर लेनेपर वे भी अपने मूल स्वरूपमें स्थित हो गये। श्रीकृष्णकी सोलह हजार स्त्रियाँ अवसर पाकर सरस्वती नदीमें कूद पड़ीं और अपना भौतिक शरीर त्यागकर अप्सराओंके रूपमें भगवान्‌की सेवामें उपस्थित हो गयीं। इस प्रकार महाभारत-युद्धमें मरे हुए वीर महारथी अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार देवताओं और यक्षोंमें मिल गये। कोई इन्द्रके भवनमे पहुँचा और कोई कुबेरके। कितने ही महापुरुष वरुणलोकको प्राप्त हुए। जनमेजय ! इस प्रकार कौरव और पाण्डवोंका सारा चरित्र मैंने तुम्हें विस्तारके साथ सुना दिया।

सौति कहते हैं—द्विजवरो ! महाराज जनमेजय अपने

यज्ञमें वैशम्पायनजीके मुखसे इस प्रकार महाभारत-इतिहास सुनकर बड़े विस्मित हुए। तदनन्तर यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंने शेष कार्य पूरा करके उस यज्ञको समाप्त किया। सर्पोंको संकटसे छुड़ाकर आस्तीक मुनिको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। राजाने यज्ञ-कर्ममें सम्मिलित हुए समस्त ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणा देकर संतुष्ट किया तथा वे ब्राह्मण भी राजासे यथोचित सम्मान पाकर अपने-अपने घर गये। उन्हें विदा करके राजा भी तक्षशिलासे हस्तिनापुरको चले गये। इस प्रकार जनमेजयके सर्पयज्ञमें व्यासजीकी आज्ञासे मुनिवर वैशम्पायनजीने जो इतिहास सुनाया था, उसका मैंने आपलोगोंके समक्ष वर्णन किया। यह पुण्यमय इतिहास बड़ा ही पवित्र और उत्तम है। सत्यवादी, सर्वज्ञ, विधि-विधानके ज्ञाता, धर्मज्ञ, साधु, इन्द्रियसंयमी, शुद्ध, तपके प्रभावसे पवित्र अन्तःकरणवाले, सांख्य एवं योगके विद्वान् तथा अनेकों शास्त्रोंके पारदर्शी मुनिवर व्यासजीने दिव्य दृष्टिसे देखकर महात्मा पाण्डवों तथा अन्य तेजस्वी राजाओंकी कीर्तिका प्रसार करनेके लिये इस इतिहासकी रचना की है। जो विद्वान् प्रत्येक पर्वपर इसे दूसरोंको सुनाता है, उसके सारे पाप धुल जाते हैं। वह स्वर्गपर अधिकार तथा ब्रह्मभावको प्राप्त होनेकी योग्यता हासिल कर लेता है। श्रीकृष्णद्वैपायनद्वारा प्रकट होनेके कारण यह उपाख्यान 'कार्ष्ण वेद'के नामसे प्रसिद्ध है। जो एकाग्रचित्त होकर इस सम्पूर्ण ग्रन्थका श्रवण करता है, उसके ब्रह्महत्या आदि करोड़ों पापोंका नाश हो जाता है। जो श्राद्ध-कर्ममें ब्राह्मणोंको महाभारतका थोड़ा-सा अंश भी सुना देता है, उसका दिया हुआ अन्न-पान अक्षय होकर पितरोंको प्राप्त होता है। मनुष्य अपनी इन्द्रियों अथवा मनसे दिनभरमें जो पाप करता है, वह सायंकालकी संध्याके समय महाभारतका पाठ करनेसे छूट जाता है और रात्रिके समय उससे जो पाप हो जाते हैं, उनसे प्रातःकालकी संध्याके समय महाभारतका पाठ करनेपर छुटकारा मिल जाता है। इस ग्रन्थमें भरतवंशियोंके महान् जन्म-कर्मका वर्णन है, इसलिये इसे 'महाभारत' कहते हैं। महान् और भारी होनेके कारण भी इसका नाम 'महाभारत' हुआ है। जो महाभारतकी व्युत्पत्तिको समझ लेता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। वेदविद्याके महासागर एवं अठारह पुराणोंके निर्माता महर्षि वेदव्यासकी सिंहगर्जना सुनो। वे कहते हैं—'अठारह पुराण, सम्पूर्ण धर्मशास्त्र और छहों अङ्गोंसहित चारों वेद एक ओर तथा केवल महाभारत दूसरी ओर; यह अकेला ही उन सबके बराबर है।'

मुनिवर भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनने तीन वर्षोंमें समस्त महाभारतको पूर्ण किया था। जो 'जय' नामक इस महाभारत-इतिहासको सदा भक्तिपूर्वक सुनता रहता है, उसे श्री, कीर्ति तथा विद्याकी प्राप्ति होती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके विषयमें जो कुछ महाभारतमें कहा गया है, वही अन्यत्र है। जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है। मोक्षकी इच्छा रखनेवाले ब्राह्मण और क्षत्रियको तथा गर्भिणी स्त्रीको भी इस 'जय' नामक इतिहासका श्रवण करना चाहिये। महाभारतका श्रवण या पाठ करनेवाला मनुष्य यदि स्वर्गकी इच्छा करे तो उसे स्वर्ग मिलता है और युद्धमें विजय पाना चाहे तो विजय मिलती है। इसी प्रकार गर्भिणी स्त्रीको महाभारतके श्रवणसे सुयोग्य पुत्र या सौभाग्यशालिनी कन्याकी प्राप्ति होती है। नित्यमुक्तस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनने धर्मकी कामनासे इस भारत-संदर्भकी रचना की है। पहले उन्होंने साठ लाख श्लोकोंकी महाभारतसंहिता बनायी थी; उसमेंसे तीस लाख श्लोकोंकी संहिताका देवलोकमें प्रचार हुआ, पंद्रह लाखकी दूसरी संहिता पितृलोकमें प्रचलित हुई, चौदह लाख श्लोकोंकी तीसरी संहिताका यक्ष-लोकमें आदर हुआ तथा एक लाख श्लोकोंकी चौथी संहिता मनुष्यलोकमें प्रतिष्ठित हुई। देवताओंको देवर्षि नारदने, पितरोंको असित-देवलने, यक्ष और राक्षसोंको शुकदेवजीने और मनुष्योंको वैशम्पायनजीने ही पहले-पहल महाभारतसंहिता सुनायी है। शौनकजी! जो मनुष्य ब्राह्मणोंको आगे करके गम्भीर अर्थसे परिपूर्ण और वेदकी समानता करनेवाले इस व्यासप्रणीत पवित्र इतिहासका श्रवण करता है, वह इस जगत्में सारे मनोवाञ्छित भोगों और उत्तम कीर्तिको पानेके साथ ही परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है—इस विषयमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं है। जो अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिके साथ महाभारतके एक अंशको भी सुनता या दूसरोंको सुनाता है,

उसे सम्पूर्ण महाभारतके अध्ययनका पुण्य प्राप्त होता है और उस पुण्यके प्रभावसे उसको उत्तम सिद्धि मिलती है। जिन भगवान् व्यासने इस पवित्र संहिताको प्रकट करके अपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाया था, वे महाभारतके सारभूत उपदेशका इस प्रकार वर्णन करते हैं—'मनुष्य इस जगत्‌में हजारों माता-पिताओं तथा सैकड़ों स्त्री-पुत्रोंके संयोग-वियोगका अनुभव कर चुके हैं, करते हैं और करते रहेंगे * । अज्ञानी पुरुषको प्रतिदिन हर्षके हजारों और भयके सैकड़ों अवसर प्राप्त होते हैं; किंतु विद्वान् पुरुषके मनपर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता †। मैं दोनों हाथ ऊपर उठाकर पुकार-पुकारकर कह रहा हूँ, पर मेरी बात कोई नहीं सुनता। धर्मसे मोक्ष तो सिद्ध होता ही है, अर्थ और काम भी सिद्ध होते हैं तो भी लोग उसका सेवन क्यों नहीं करते‡ कामनासे, भयसे, लोभसे अथवा प्राण बचानेके लिये भी धर्मका त्याग न करे। धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य। इसी प्रकार जीवात्मा नित्य है और उसके बन्धनका हेतु अनित्य §।' यह महाभारतका सारभूत उपदेश भारत-सावित्रीके नामसे प्रसिद्ध है। जो प्रतिदिन सबेरे उठकर इसका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण महाभारतके अध्ययनका फल पाकर परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है ×। जैसे समुद्र और हिमालय पर्वत दोनों ही रत्नोंकी निधि माने गये हैं, उसी प्रकार महाभारत भी नाना प्रकारके उपदेशमय रत्नोंका भंडार कहलाता है। जो विद्वान् श्रीकृष्णद्वैपायनके द्वारा प्रसिद्ध किये गये इस महाभारतरूप पञ्चम वेदको सुनाता है उसे अर्थकी प्राप्ति होती है। जो एकाग्रचित्त होकर इस भारत-उपाख्यानका पाठ करता है, वह मोक्षरूप परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है। इस विषयमें मेरे मनमें तनिक भी संदेह नहीं है।



॥ स्वर्गारोहणपर्व समाप्त ॥

॥ संक्षिप्त महाभारत समाप्त ॥

---

* मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च। संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे॥

† हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च। दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥

‡ ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे। धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥

§ न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥

× इमां भारतसावित्रीं प्रातरुत्थाय यः पठेत्। स भारतफलं प्राप्य परं ब्रह्माधिगच्छति॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

महाभारत-श्रवण-विधि

माहात्म्य, कथा सुननेकी विधि और उसका फल

जनमेजयने पूछा—भगवन्! विद्वानोंको किस विधिसे महाभारतका श्रवण करना चाहिये ? इसके सुननेसे क्या फल होता है ? प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर क्या दान देना चाहिये ? और इस कथाका वाचक कैसा होना चाहिये ?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! महाभारत सुननेकी जो विधि है और उसके श्रवणसे जो फल होता है, वह सब बता रहा हूँ; सुनो। मनुष्यको चाहिये कि अपने मन और इन्द्रियोंका संयम करके, पवित्र होकर यथोक्त विधिके अनुसार इस इतिहासको सुने और क्रमशः इसकी समाप्ति करे। जो बाहर-भीतरसे पवित्र, शीलवान्, सदाचारी, शुद्ध वस्त्र धारण करनेवाला, जितेन्द्रिय, संस्कारसम्पन्न, सम्पूर्ण शास्त्रोंका तत्त्वज्ञ, श्रद्धालु, दोष-दृष्टिसे रहित, सौभाग्यशाली, मनको वशमें रखनेवाला और सत्यवादी हो, उसको दान और मानसे अनुगृहीत करके वाचक बनाना चाहिये। कथावाचकको न तो बहुत रुक-रुककर कथा बाँचनी चाहिये और न बहुत जल्दी ही। आरामके साथ धीर गतिसे वर्णोंका स्पष्ट उच्चारण करते हुए उच्चस्वरसे कथा बाँचनी चाहिये। मीठे स्वरसे भावार्थ समझाकर कथा कहे। तिरसठ अक्षरोंका उनके आठों स्थानोंसे ठीक-ठीक उच्चारण करे। कथा सुनाते समय वाचकके लिये स्वस्थ और एकाग्रचित्त होना आवश्यक है; उसके लिये आसन ऐसा होना चाहिये जिसपर वह सुखपूर्वक बैठ सके। अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप नररत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर विजयप्राप्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

राजन्! महाभारतकी कथा प्रारम्भ हो जानेपर प्रत्येक पर्वमें क्षत्रियोंकी जाति, सत्यता, उनके देश, माहात्म्य तथा धर्मको जानकर ब्राह्मणोंको जो-जो वस्तुएँ देनी चाहिये, उनका वर्णन करता हूँ; सुनो। पहले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर कथा-वाचनका कार्य प्रारम्भ करावे, फिर पर्व समाप्त होनेपर अपनी शक्तिके अनुसार उन ब्राह्मणोंकी पूजा करे। आदिपर्वकी कथाके समय वाचकको नूतन वस्त्र पहनाकर चन्दन आदिसे उसकी पूजा करे और विधिपूर्वक उसे मीठी खीर भोजन करावे। तत्पश्चात् आस्तीकपर्वकी कथा होते समय ब्राह्मणको मधु और घीसे युक्त खीर, मीठा भात और मूल-फल जिमावे। सभापर्व प्रारम्भ होनेपर पूओं, कचौड़ियों और मिठाइयोंके साथ खीर भोजन करावे। वनपर्वमें फल और मूलोंसे ब्राह्मणको संतुष्ट करे। अरणीपर्वमें पहुँचनेपर जलसे भरे हुए घड़ोंका दान करे तथा जिनको खानेसे तृप्ति हो सके, ऐसे उत्तम-उत्तम जंगली मूल-फल और सर्वगुणसम्पन्न अन्न प्रदान करे। विराटपर्वमें भाँति-भाँतिके वस्त्र दान करे तथा उद्योगपर्वमें ब्राह्मणोंको चन्दन और फूलोंकी मालासे विभूषित करके उन्हें उत्तम अन्न भोजन करावे। भीष्मपर्वमें उत्तम सवारी और सर्वगुणसम्पन्न बढ़िया पकवान दान करे। द्रोणपर्वमें ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन करावे। कर्णपर्वमें भी ब्राह्मणोंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूरी करनेके साथ ही उन्हें अच्छा भोजन देना चाहिये। शल्यपर्वमें अपने मनको एकाग्र करके मीठे भात, पूए, तृप्ति करनेवाले फल और मिठाइयोंके साथ सब प्रकारका अन्न दान करना चाहिये। गदापर्वमें मूँग मिलाये हुए अन्नका दान करना उचित है। स्त्रीपर्वमें अच्छे-अच्छे ब्राह्मणोंको तरह-तरहके रत्नोंसे संतुष्ट करे। ऐषीकपर्वमें पहले घी मिलाया हुआ भात जिमावे, फिर सब प्रकारके गुणोंसे युक्त एवं स्वादिष्ठ अन्न भोजन करावे। शान्तिपर्वमें भी ब्राह्मणोंको हविष्यका ही भोजन देना चाहिये। आश्वमेधिकपर्वमें पहुँचनेपर सबकी रुचिके अनुकूल भोजन दे तथा आश्रमवासिकपर्वमें हविष्य भोजन करावे। मौसलपर्वमें सर्वगुणसम्पन्न अन्न, चन्दन, माला और अनुलेपन दान करे। महाप्रास्थानिकपर्वमें भी ऐसा ही करे। फिर स्वर्गारोहणपर्वमें ब्राह्मणोंको खीर भोजन करावे।

इस प्रकार सब पर्वोंकी संहिताओंको समाप्त करके शास्त्रवेत्ता पुरुषको चाहिये कि वह उन्हें रेशमी वस्त्रोंमें लपेटकर किसी उत्तम स्थानमें रखे और स्वयं स्नान आदिसे पवित्र हो श्वेत वस्त्र, फूलकी माला तथा आभूषण धारण करके चन्दन, माला आदि उपचारोंसे उनकी पृथक्-पृथक् विधिवत् पूजा करे। पूजाके समय चित्तको एकाग्र एवं शुद्ध रखना चाहिये और भाँति-भाँतिके उत्तम भक्ष्य, भोज्य, पेय

तथा पुष्प आदि सामग्री अर्पण करके सुवर्णमयी दक्षिणा देनी चाहिये। प्रत्येक पुस्तकपर शुद्ध चित्तसे तीन-तीन पल सोना चढ़ाना चाहिये। इतना न हो सके तो सबपर डेढ़-डेढ़ पल सोना चढ़ावे और यह भी संभव न हो तो पौन-पौन पल चढ़ाना चाहिये; किंतु धन रहते हुए कंजूसी नहीं करनी चाहिये। जो-जो वस्तु अपनेको प्रिय लगती हो, वही-वही ब्राह्मणको दानमें देनी चाहिये। कथावाचक अपने गुरुके समान होते हैं, अतः भक्तिपूर्वक उन्हें सर्वथा संतुष्ट करना चाहिये। उस समय सम्पूर्ण देवताओं तथा भगवान् नर-नारायणका कीर्तन करना चाहिये। फिर उत्तम ब्राह्मणोंको बुलाकर चन्दन और माला आदिसे विभूषित करके उन्हें नाना प्रकारकी मनोवाञ्छित वस्तुएँ दान करे और भाँति-भाँतिके छोटे-बड़े आवश्यक पदार्थ देकर उन्हें संतुष्ट करे। ऐसा करनेसे मनुष्यको अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है तथा प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर ब्राह्मणकी पूजा करनेसे श्रौत यज्ञका फल प्राप्त होता है। कथावाचकको विद्वान् होना चाहिये और प्रत्येक अक्षर, पद तथा स्वरका उच्चारण करते हुए महाभारतकी कथा सुनानी चाहिये। सम्पूर्ण कथा समाप्त होनेपर अच्छे-अच्छे ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें यथावत् दान देना चाहिये। फिर वाचकको भी वस्त्र और अलंकारोंसे विभूषित करके उत्तम अन्न भोजन कराना चाहिये। कथावाचकके संतुष्ट होनेपर ही उत्तम आनन्दकी प्राप्ति होती है। ब्राह्मणोंके संतुष्ट होनेपर श्रोताके ऊपर समस्त देवता प्रसन्न हो जाते हैं; इसलिये साधुस्वभावके श्रोताओंको चाहिये कि वे न्यायपूर्वक ब्राह्मणोंकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण करते हुए उनका यथोचित पूजन करें।

राजन्! तुम्हारे पूछनेके अनुसार यह मैंने महाभारतके सुनने तथा उसका परायण करनेकी विधि बतलायी है। इसपर श्रद्धा करो और यदि अपना परम कल्याण चाहो तो सदा यत्नपूर्वक इसका पालन करते रहो। मनुष्यको सदा ही महाभारतका श्रवण और कीर्तन करना चाहिये। जिसके घरमें महाभारत ग्रन्थ मौजूद है, उसके हाथमें ही विजय है। भारत परम पवित्र ग्रन्थ है, उसमें नाना प्रकारकी कथाएँ हैं। देवता भी भारतग्रन्थका सेवन करते हैं। भारत परमपदस्वरूप है। यह सम्पूर्ण शास्त्रोंमें उत्तम है। इससे मोक्षकी प्राप्ति होती है, यह मैं सच्ची बात बता रहा हूँ। महाभारत-इतिहास, पृथ्वी, गौ, सरस्वती, ब्राह्मण और भगवान् वासुदेवका कीर्तन करनेवाला मनुष्य कभी विपत्तिमें नहीं पड़ता। जनमेजय! वेद, रामायण और महाभारतके आदि, मध्य एवं अन्तमें सर्वत्र भगवान् नारायणके ही यशका गायन किया जाता है। महाभारतमें नारायणकी दिव्य कथाओं तथा सनातन श्रुतियोंका समावेश है। जो मनुष्य परम पदको प्राप्त करना चाहता हो, वह सदा उसका श्रवण करे। महाभारत परम पवित्र, धर्मके स्वरूपका साक्षात्कार करानेवाला तथा सब प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न है। कल्याण चाहनेवाले पुरुषको अवश्य इसका श्रवण करना चाहिये। महाभारतके श्रवणसे मन, वाणी और शरीरद्वारा संचित किये हुए पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार। अठारह पुराणोंके सुननेसे जो फल होता है, वह सारा फल भगवद्भक्त पुरुषको अकेले महाभारतके श्रवणसे मिल जाता है। स्त्री हो या पुरुष, सभी इसके श्रवणसे वैष्णव-पदको प्राप्त हो जाते हैं। शास्त्रोक्त फलको प्राप्त करनेकी इच्छावाले पुरुषको चाहिये कि वह महाभारत-श्रवणके पश्चात् वाचकको सोनेके पाँच सिक्के दक्षिणाके रूपमें दान करे तथा अपनी शक्तिके अनुसार कपिला गौके सींगमें सोना मँढ़ाकर उसे वस्त्रसे आच्छादित करके बछड़ेसहित वाचकको दान करे; इससे श्रोताका कल्याण होता है। इसके सिवा कथावाचकके लिये दोनों हाथोंके कड़े, कानोंके कुण्डल और विशेषतः धन प्रदान करे। राजन्! वाचकको भूमि-दान तो अवश्य ही करना चाहिये; क्योंकि भूमि-दानके समान दूसरा कोई दान न हुआ है, न होगा। जो पुरुष सदा महाभारतको सुनता-सुनाता रहता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर वैष्णव-पदको प्राप्त होता है। इतना ही नहीं, वह अपनी ग्यारह पीढ़ीके पूर्वजोंका, अपना तथा अपनी स्त्री और पुत्रका भी उद्धार कर देता है। महाभारत सुननेके पश्चात् उसके लिये दशांश होम भी करना आवश्यक है। इस प्रकार मैंने तुम्हारे समक्ष इन सब बातोंका विस्तारके साथ वर्णन कर दिया।



॥महाभारत-श्रवण-विधि समाप्त॥

॥ श्रीहरिः॥

ग्रन्थाकारमें उपलब्ध

'कल्याण' के पुराने, अति उपयोगी पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

शिवाङ्क (सचित्र) [वर्ष ८, सन् १९३४ ई०]—यह शिवतत्त्व तथा शिव-महिमापर विशद विवेचनसहित शिवार्चन, पूजन, व्रत एवं उपासनापर तात्त्विक और ज्ञानप्रद मार्ग-दर्शन कराता है यह एक मूल्यवान् अध्ययन-सामग्री है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका सचित्र परिचय तथा भारतके सुप्रसिद्ध शैव-तीर्थोंका प्रामाणिक वर्णन इसके अन्यान्य महत्त्वपूर्ण (पठनीय) विषय हैं।

शक्ति-अङ्क (सचित्र) [वर्ष ९, सन् १९३५ ई०]—इसमें परब्रह्म परमात्माके आद्यशक्ति-स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, महादेवीकी लीला-कथाएँ एवं सुप्रसिद्ध शाक्त-भक्तों और साधकोंके प्रेरणादायी जीवन-चरित्र तथा उनकी उपासना-पद्धतिपर उत्कृष्ट उपयोगी सामग्री संगृहीत है। इसके अतिरिक्त भारतके सुप्रसिद्ध शक्ति-पीठों तथा प्राचीन देवी-मन्दिरोंका सचित्र दिग्दर्शन भी इसकी उल्लेखनीय विषय-वस्तुके महत्त्वपूर्ण अङ्ग हैं।

योगाङ्क (सचित्र) [वर्ष १०, सन् १९३६ ई०]—इसमें योगकी व्याख्या तथा योगका स्वरूप-परिचय एवं प्रकार और योग-प्रणालियों एवं अङ्ग-उपाङ्गोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। साथ ही अनेक योग-सिद्ध महात्माओं और योग-साधकोंके जीवन-चरित्र तथा साधना-पद्धतियोंपर रोचक, ज्ञानप्रद वर्णन हैं। सारांशतः यह विशेषाङ्क सर्वसाधारण जनोंको योगके कल्याणकारी प्रभावों और योग-सिद्धियोंके चमत्कारी प्रभावोंकी ओर आकृष्ट कर 'योग'के सर्वमान्य महत्त्वसे परिचय कराता है।

संत-अङ्क (सचित्र) [वर्ष १२, सन् १९३८ ई०] संतोंकी महिमासे मण्डित, उनकी शिक्षाओं-उपदेशों और प्रेरणाओंसे पूरित यह 'संत-अङ्क' नित्य पठनीय और सर्वदा सेवनीय है। इसमें उच्चकोटिके अनेक संतों—प्राचीन, अर्वाचीन, मध्ययुगीन एवं कुछ विदेशी भगवद्विश्वासी महापुरुषों तथा त्यागी-वैरागी महात्माओंके ऐसे आदर्श जीवन-चरित्र हैं, जो पारमार्थिक गतिविधियोंके लिये प्रेरित करनेके साथ-साथ उनके सार्वभौमिक सिद्धान्तों, त्याग-वैराग्यपूर्ण तपस्वी जीवन-शैलीको उजागर करके उनके पारमार्थिक आदर्श, जीवन-मूल्योंको रेखाङ्कित करते हैं। और, किसीको भी उनके पद-चिन्होंपर चलनेकी सत्प्रेरणा देते हैं।

साधनाङ्क (सचित्र) [वर्ष १५, सन् १९४१ ई०]—यह अङ्क उच्चकोटिके विचारकों, वीतराग महात्माओं, एकनिष्ठ साधकों एवं विद्वान् मनीषियोंके साधनोपयोगी अनुभूत विचार और उनके साधनापरक बहुमूल्य मार्ग-दर्शनसे ओतप्रोत—महत्त्वपूर्ण है। इसमें साधना-तत्त्व, साधनाके विभिन्न स्वरूप—ईश्वरोपासना, योगसाधना, प्रेमाराधना आदि अनेक कल्याणकारी साधनों और उनके अङ्ग-उपाङ्गोंका शास्त्रीय विवेचन है। यह सभीके लिये विशेषतः आत्मकल्याणकामी पुरुषोंके लिये उत्तमोत्तम दिशा-निर्देशक है।

संक्षिप्त महाभारत (सचित्र—दो खण्डोंमें) [वर्ष १७, सन् १९४३ ई०]—धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके महान् उपदेशों एवं प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओंके उल्लेखसहित इसमें ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, योग, नीति, सदाचार, अध्यात्म, राजनीति, कूटनीति आदि मानव-जीवनके उपयोगी विषयोंका विशद वर्णन और विवेचन है। महाभारतकी अत्यधिक महिमा और अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंके समावेशके कारण इसे शास्त्रोंमें 'पञ्चम वेद' और विद्वत्समाजमें भारतीय ज्ञानका 'विश्वकोश' कहा गया है।

संक्षिप्त पद्मपुराण (सचित्र) [वर्ष १९, सन् १९४५ ई०]—इसमें (पद्मपुराण-वर्णित) भगवान् विष्णुके माहात्म्यके साथ भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके अवतार-चरित्रों एवं उनके परात्पररूपोंका विशद वर्णन है। भगवान् शिवकी महिमाके साथ इसमें श्रीअयोध्या, श्रीवृन्दावनधामका माहात्म्य भी वर्णित है। इसके अतिरिक्त शालग्रामके स्वरूप और उनकी महिमा, तुलसीवृक्षकी महिमा, भगवन्नाम-कीर्तन एवं भगवती गङ्गाकी महिमासहित, यमुना-स्नान, तीर्थ, व्रत, देवपूजन, श्राद्ध, दानादिके विषयमें भी इसमें विस्तृत चर्चा है।

संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क (सचित्र) [वर्ष २१, सन् १९४७ ई०]—आत्म-कल्याणकारी महान् साधनों, उपदेशों और आदर्श चरित्रोंसहित इसमें मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत देवी-माहात्म्य (श्रीदुर्गासप्तशती), तीर्थ-माहात्म्य, भगवद्भक्ति, ज्ञान, योग, सदाचार आदि अनेक गम्भीर, रोचक विषयोंका वर्णन (इन दो संयुक्त पुराणोंमें) है। कल्याणकामी पुरुषोंके लिये इनका अनुशीलन लाभप्रद है।

नारी-अङ्क (सचित्र) [वर्ष २२, सन् १९४८ ई०]—इसमें भारतकी महान् नारियोंके प्रेरणादायी आदर्श चरित्र तथा नारीविषयक विभिन्न समस्याओंपर विस्तृत चर्चा और उनका भारतीय आदर्शोचित समाधान है। इसके साथ ही विश्वकी अनेक सुप्रसिद्ध महान् महिला-रत्नोंके जीवन-परिचय और जीवनादर्शोंपर मूल्यवान् प्रेरक-सामग्री इसके उल्लेखनीय विषय हैं। माता-बहनों और देवियोंसहित समस्त नारीजाति और नारीमात्रके लिये आत्मबोध करानेवाला यह अत्यन्त उपयोगी और प्रेरणादायी मार्ग-दर्शक है।

हिन्दू-संस्कृति-अङ्क (सचित्र) [वर्ष २४, सन् १९५० ई०]—भारतीय संस्कृति—विशेषत: हिन्दू-धर्म, दर्शन, आचार-विचार, संस्कार, रीति-रिवाज, पर्व-उत्सव, कला-संस्कृति और आदर्शोंपर प्रकाश डालनेवाला यह तथ्यपूर्ण बृहद् (सचित्र) दिग्दर्शन है। इस प्रकार भारतीय संस्कृतिके उपासकों, अनुसंधानकर्ताओं और जिज्ञासुओंके लिये यह अवश्य पठनीय, उपयोगी और मूल्यवान् दिशा-निर्देशक है।

संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क (सचित्र) [वर्ष २५, सन् १९५१ ई०]—इसमें भगवान् शिवकी महिमा, सती-चरित्र, शिव-पार्वती-विवाह, कुमार कार्तिकेयके जन्मकी कथा तथा तारकासुर-वध आदिका वर्णन है। इसके अतिरिक्त अनेक आख्यान एवं बहुत-से रोचक, ज्ञानप्रद प्रसंग और आदर्श चरित्र भी इसमें वर्णित हैं। शिव-पूजनकी महिमाके साथ-साथ तीर्थ, व्रत, जप, दानादिका महत्त्व-वर्णन आदि इसके विशेषरूपसे पठनीय विषय हैं।

भक्तचरिताङ्क (सचित्र) [वर्ष २६, सन् १९५२ ई०]—इसमें भगवद्विश्वासको बढ़ानेवाले अनेकों भगवद्भक्तों, ईश्वरोपासकों और महात्माओंके जीवन-चरित्र एवं विभिन्न विचित्र भक्तिपूर्ण भावोंकी ऐसी पवित्र, सरस, मधुर कथाएँ हैं जो मानव-मनको प्रेम-भक्ति-सुधारससे अनायास सराबोर कर देती हैं। रोचक, ज्ञानप्रद और निरन्तर अनुशीलनयोग्य ये भक्तगाथाएँ भगवद्विश्वास और प्रेमानन्द बढ़ानेवाली तथा शान्ति प्रदान करनेवाली होनेसे अवश्य ही नित्य पठनीय हैं।

बालक-अङ्क (सचित्र) [वर्ष २७, सन् १९५३ ई०]—यह अङ्क बालकोंसे सम्बन्धित सभी उपयोगी विषयोंका बृहद् संग्रह है। यह सर्वजनोपयोगी—विशेषत: बालकोंके लिये आदर्श मार्ग-दर्शक है। प्राचीन कालसे अबतकके भारतके महान् बालकों एवं विश्वभरके सुविख्यात आदर्श बालकोंके प्रेरक, शिक्षाप्रद, रोचक, ज्ञानवर्धक तथा इसके अनुकरणीय जीवन-वृत्त एवं बालोचित आदर्श चरित्र बार-बार पठनीय और प्रेरणाप्रद हैं।

सत्कथा-अङ्क (सचित्र) [वर्ष ३०, सन् १९५६ ई]—जीवनमें भगवत्प्रेम, सेवा, त्याग, वैराग्य, सत्य, अहिंसा, विनय, प्रेम, उदारता, दानशीलता, दया, धर्म, नीति, सदाचार और शान्तिका प्रकाश भर देनेवाली सरल, सुरुचिपूर्ण सत्प्रेरणादायी छोटी-छोटी सत्कथाओंका यह बृहत् संग्रह सर्वदा अपने पास रखनेयोग्य है। और इसकी कल्याणकारी बातें हृदयङ्गम करने लायक, सर्वदा अनुकरणीय हैं।

तीर्थाङ्क (सचित्र) [वर्ष ३१, सन् १९५७ ई०]—इस अङ्कमें तीर्थोंकी महिमा, उनका स्वरूप, वर्तमान स्थिति एवं तीर्थ-सेवनके महत्त्वपर उत्कृष्ट मार्ग-दर्शन—अध्ययनका विषय है। इसमें देव-पूजन-विधिसहित, तीर्थोंमें पालन करनेयोग्य तथा त्यागनेयोग्य उपयोगी बातोंका भी उल्लेख है। अत: भारतके प्राय: समस्त तीर्थोंका अनुसंधानात्मक ज्ञान करानेवाला यह एक ऐसा संकलन है जो सभी तीर्थाटन-प्रेमियोंके लिये विशेष महत्त्वपूर्ण और कामका है।

संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत (सचित्र) [वर्ष ३४, सन् १९६० ई०]—इसमें पराशक्ति भगवतीके स्वरूप-तत्त्व, महिमा आदिके तात्त्विक विवेचनसहित श्रीमद्देवीकी लीला-कथाओंका सरस एवं कल्याणकारी वर्णन है। श्रीमद्देवीभागवतके विविध, विचित्र कथा-प्रसंगोंके रोचक और ज्ञानप्रद उल्लेखके साथ देवी-माहात्म्य, देवी-आराधनाकी विधि एवं उपासनापर इसमें महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। अत: साधनाकी दृष्टिसे यह अत्यन्त उपादेय और अनुशीलनयोग्य है।

॥ श्रीहरिः ॥

गीताप्रेसकी निजी दूकानें तथा स्टेशन-स्टाल

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५, फैक्स (०५५१) ३३६९९७; फोन (०५५१) ३३४७२१

कलकत्ता-	गोविन्दभवन-कार्यालय	✆(०३३) २३८६८९४
पिन-७००००७	१५१, महात्मा गाँधीरोड	२३८०२५१
दिल्ली-	गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान;	✆(०११) ३२६९६७८
पिन-११०००६	२६०९, नयी सड़क	
पटना-	गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान;	✆(०६१२) ६६२८७९
पिन-८००००४	अशोकराजपथ, बड़े अस्पतालके सदर फाटकके सामने	
कानपुर-	गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान;	✆(०५१२) ३५२३५१
पिन-२०८००१	२४/५५, बिरहाना रोड	
वाराणसी-	गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान;	✆(०५४२) ३५३५५१
पिन-२२१००१	५९/९, नीचीबाग	
हरिद्वार-	गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान;	✆(०१३३) ४२२६५७
पिन-२४९४०१	सब्जीमण्डी, मोतीबाजार	
ऋषिकेश-	गीताभवन, गङ्गापार, पो० स्वर्गाश्रम	✆(०१३६४) ३०१२२
पिन-२४९३०४		

स्टेशन-स्टाल

(१) दिल्ली जंक्शन, प्लेटफार्म नं० १२ (२) नयी दिल्ली, प्लेटफार्म नं० ८-९ (३) अन्तर्राज्यीय बस-अड्डा, दिल्ली (४) हजरत निजामुद्दीन (दिल्ली), प्लेटफार्म नं० ४-५ (५) कानपुर, प्लेटफार्म नं० १ (६) गोरखपुर, प्लेटफार्म नं० १ (७) वाराणसी, प्लेटफार्म नं० ४-५(८) हरिद्वार, प्लेटफार्म नं० १ (९) कोटा (राजस्थान), प्लेटफार्म नं० १ (१०) पटना जंक्शन, पुस्तक-ट्राली (११) हावड़ा, न्यू कॉम्पलेक्स, प्लेटफार्म नं० १८ के पास (१२) मुगलसराय जं०, प्लेटफार्म नं० ३-४ (१३) लखनऊ (N.E.Railway) (१४) सिकन्दराबाद, प्लेटफार्म नं० १ (१५) सियालदा मेन, प्लेटफार्म नं० ८।

अन्य अधिकृत पुस्तक-विक्रेता— श्रीगीताप्रेस पुस्तक-प्रचारकेन्द्र, 'बुलियन बिल्डिंग', जौहरी बाजार, जयपुर-३०२००३ ✆ (०१४१) ५६३३७९

अँग्रेजी एवं दक्षिण भारतीय भाषा प्रकाशनके प्रमुख विक्रेता

गोपाल-सेवा ट्रस्ट-८२, कृष्णा टाकीज रोड, इरोड-६३८००३ ✆ (०४२४) २१३९७६

संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क (सचित्र) [वर्ष ३५, सन् १९६१ ई०]—योगवासिष्ठके इस संक्षिप्त रूपान्तरमें जगत्‌की असत्ता और परमात्मसत्ताका प्रतिपादन है। पुरुषार्थ एवं तत्त्व-ज्ञानके निरूपणके साथ-साथ इसमें शास्त्रोक्त सदाचार, त्याग-वैराग्ययुक्त सत्कर्म और आदर्श व्यवहार आदिपर सूक्ष्म विवेचन है। कल्याणकामी साधकोंके लिये इसका अनुशीलन उपादेय है।

संक्षिप्त शिवपुराण (सचित्र) [वर्ष ३६, सन् १९६२ ई०]—सुप्रसिद्ध शिवपुराणका यह संक्षिप्त अनुवाद परात्पर परमेश्वर शिवके कल्याणमय स्वरूप-विवेचन, तत्त्व-रहस्य, महिमा, लीला-विहार, अवतार आदिके रोचक, किंतु ज्ञानमय वर्णनसे युक्त है। इसकी कथाएँ अत्यन्त सुरुचिपूर्ण, ज्ञानप्रद और कल्याणकारी हैं। इसमें भगवान् शिवकी पूजन-विधिसहित महत्त्वपूर्ण स्तोत्रोंका उपयोगी संकलन भी है।

संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क (सचित्र) [वर्ष ३७, सन् १९६३ ई०]—इसमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्नस्वरूपा प्रकृति-ईश्वरी श्रीराधाकी सर्वप्रधानताके साथ, गोलोक-लीला तथा अवतार-लीलाका विशद वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें कुछ विशिष्ट ईश्वरकोटिके सर्वशक्तिमान् देवताओंकी एकरूपता, महिमा तथा उनकी साधना-उपासनाका भी सुन्दर प्रतिपादन है। इसकी कथाएँ रोचक, बड़ी मधुर, ज्ञानप्रद और कल्याणकारी हैं। यह वैष्णवपुराणका साररूप कहा जाता है। उपयोगी अनुष्ठेय सामग्रीके रूपमें इसमें अनेक स्तोत्र, मन्त्र, कवच आदि भी दिये गये हैं।

परलोक और पुनर्जन्माङ्क (सचित्र) [वर्ष ४३, सन् १९६९ ई०]—मनुष्यमात्रको मानव-चरित्रके पतनकारी आसुरी-सम्पदाके दोषोंसे सदा दूर रहने तथा परम विशुद्ध उज्ज्वल चरित्र होकर सर्वदा सत्कर्म करते रहनेकी शुभ प्रेरणाके साथ इसमें परलोक तथा पुनर्जन्मके रहस्यों और सिद्धान्तोंपर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। आत्म-कल्याणकामी पुरुषों तथा साधकमात्रके लिये इसका अध्ययन-अनुशीलन अति उपयोगी है।

श्रीहनुमान-अङ्क (सचित्र) [वर्ष ४९, सन् १९७५ ई०]—इसमें श्रीहनुमान्‌जीका आद्योपान्त जीवन-चरित्र और श्रीरामभक्तिके प्रतापसे सदा अमर बने रहकर उनके द्वारा किये गये क्रिया-कलापोंका तात्त्विक और प्रामाणिक एवं सुरुचिपूर्ण चित्रण है। श्रीहनुमान्‌जीको प्रसन्न करनेवाले विविध स्तोत्र, ध्यान एवं पूजन-विधियाँ आदि साधनोपयोगी बहुमूल्य सामग्रीका भी इसमें उपयोगी संकलन है। अतः साधकोंके लिये यह उपादेय है।

शिवोपासनाङ्क (सचित्र) [वर्ष ६७, सन् १९९३ ई०]—इसमें शिवतत्त्व एवं शिवोपासनापर तथ्यपूर्ण विवेचनके अतिरिक्त भगवान् विष्णुकी शिवोपासना, जगन्माता लक्ष्मीकी शिव-निष्ठा, भगवान् नृसिंहकी शिव-भक्ति और महर्षि वसिष्ठ, दुर्वासा, लोमश, महामुनि गर्ग तथा महर्षि वाल्मीकि आदिकी शिवशरणागति एवं भक्ति-विषयक सुन्दर आख्यान हैं तथा सुप्रसिद्ध शैव-तीर्थों एवं द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके वर्णनसहित इसमें भारतके एवं विश्वके सुविख्यात शिवालयों (शिव-मन्दिरों) का सचित्र वर्णन भी उपलब्ध है। अनेकों शिवभक्तों और उपासकोंके रोचक, शिक्षाप्रद चरित्र इसके उल्लेखनीय आकर्षण हैं।



मिलनेका पता—

गीताप्रेस, पत्रालय—गीताप्रेस,

गोरखपुर—273005